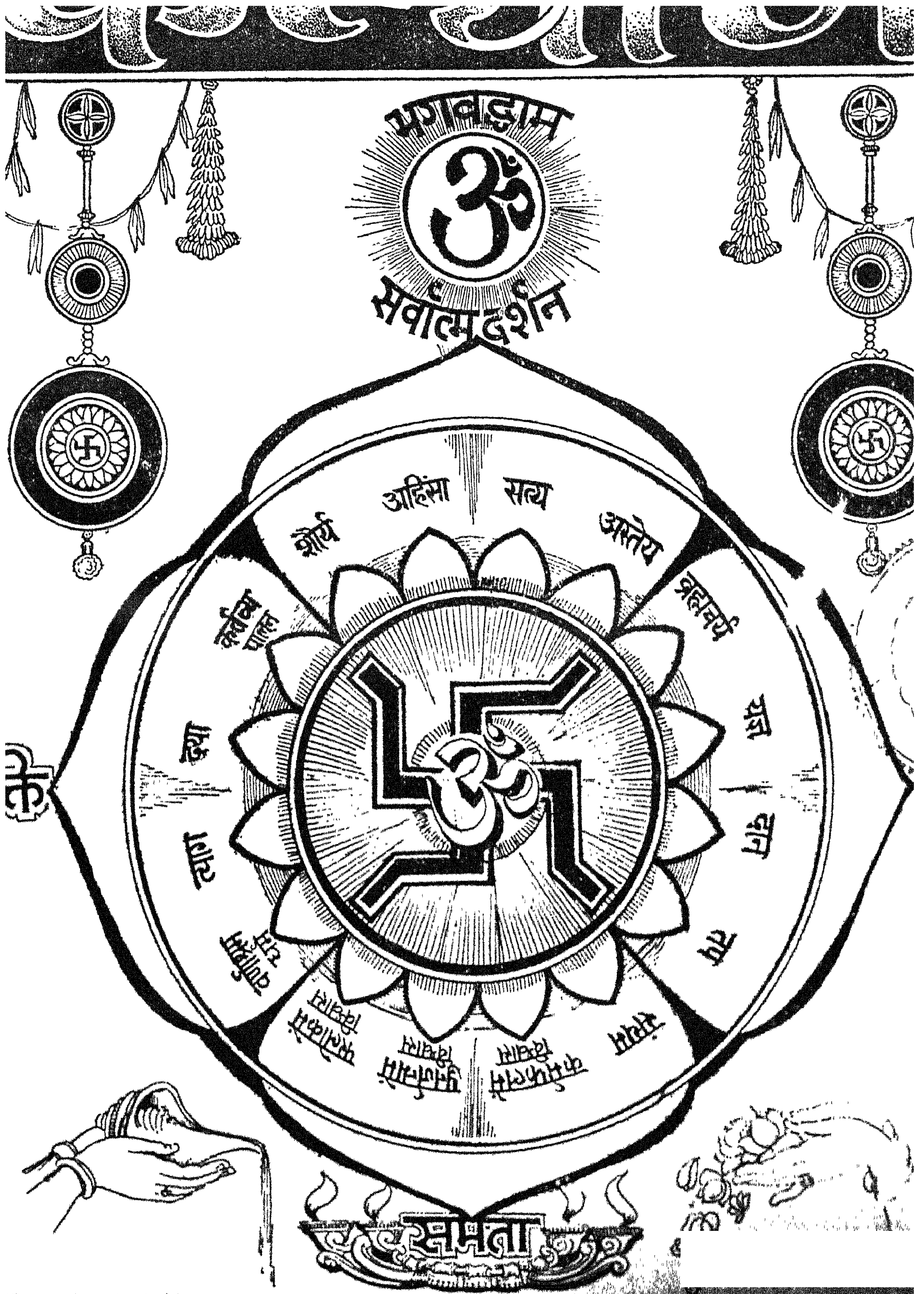


हिन्दू संस्कृति अंक

उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
रे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । गौरी-शंकर सीता-राम ॥
जय रघुनन्दन जय सिया-राम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीता-राम ॥

मुखपृष्ठके चित्रमें हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप

ध्यान धरे प्रणव-स्वरूप ज्योति ब्रह्मका जो 'स्वस्तिक' सुखद शिवरूप वह पाता है ।
उर बीच सत्य आदि षोडश कमल-दल होते हैं प्रबुद्ध, चित्त शुद्ध बन जाता है ॥
'भक्ति', 'प्रेम', 'समता' विराजती तभी हैं वहाँ, 'सर्व-आत्मदर्शन' अनावृत सुहाता है ।
'भगवद्-धाम' में विराम है परम गति हिंदू-संस्कृतिका भव्य रूप यह भाता है ॥

'राम-चक्र'

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

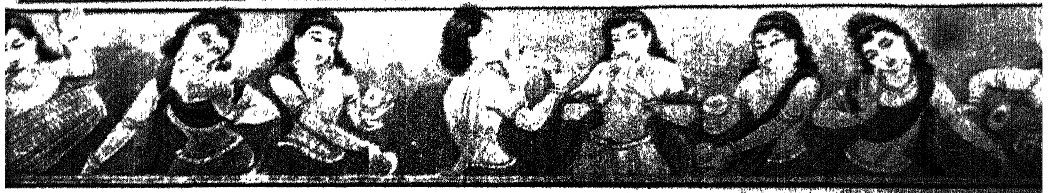
कल्याण

रामराज्य

आरण्य संस्कृति

जौहर





कल्याण-प्रेमियों तथा ग्राहकोंसे निवेदन

'हिंदू-संस्कृति-अङ्क'में चित्रोंसमेत सब मिलाकर १०४६ पृष्ठ दिये गये हैं। 'उपनिषद्-अङ्क'
ठाकर ८३० पृष्ठ थे, इस अङ्कमें पिछले अङ्कसे २१६ पृष्ठ अधिक हैं। कई बड़े सुन्दर
त्र भी इसमें हैं।

न सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ गये होंगे, उनके अङ्क जानेके बाद शेष ग्राहकोंके
पी. भेजी जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका एक
त डाल दें ताकि वी. पी. भेजकर 'कल्याण' को व्यर्थका नुकसान न उठाना पड़े। उनके
के खर्चसे 'कल्याण' के कई आने बच जायँगे। आशा है पुराने सम्बन्धके नाते वे इतना
श्य स्वीकार करेंगे।

विशेषाङ्कका अलग मूल्य ६।।) है। जिन महानुभावोंको वितरणादिके लिये जितने अङ्क अ
वाने हों, उनके लिये शीघ्र आर्डर देनेकी कृपा करें।

तकल नये-नये उपद्रव तथा अशान्तिके कारण बन रहे हैं। इसलिये यदि किसी कार
ोंके अङ्क पूरे वर्षतक न भेजे जा सकें तो जितने अङ्क पहुँचें, उतनेमें ही मूल्य पूरा समझ
ा करें।

ाआर्डर-कूपनमें अपना पता और ग्राहक-नंबर जरूर लिखें। ग्राहक-नंबर याद न हो तो क
'पुराना ग्राहक' अवश्य लिख दें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा
क-नंबर न लिखनेसे आपका नाम 'नये ग्राहकों'में दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें
कृति-अङ्क' नये नंबरोंसे पहुँच जायगा और पुराने नंबरकी वी. पी. दुबारा जायगी। ऐस
सकता है कि उधरसे आपने रुपये भेजे हों और उनके हमारे पास पहुँचनेके पहले ही अ
। वी. पी. चली जाय। दोनों ही सूरतोंमें आपसे यह प्रार्थना है कि आप कृपा
पी. लौटायें नहीं, चेष्टा करके कृपया नया ग्राहक बनाकर उनके नाम-पते साफ-साफ
वनेकी कृपा करें। आप ऐसा करेंगे तो आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और
याण' के प्रचारमें सहायता करके पुण्यके भागी बनें। अगर नया ग्राहक न मिले तो
नहीं छुड़ानी चाहिये।

ू-संस्कृति-अङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड पोस्टसे जायगा। सब अङ्कोंके उ
भग दो महीने लग जाते हैं; क्योंकि पोस्ट-आफिसवाले प्रतिदिन अधिक संख्यामें रजि
ट नहीं ले पाते। इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें विशेषाङ्क नंबरवार जायगा। परि
झकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

कल्याण-प्रेमी महानुभावोंने 'कल्याण' के नये ग्राहक बनाये हैं और बना रहे हैं, उनके
से कृतज्ञ हैं। इस बार कल्याण-प्रेमी सज्जनोंको 'कल्याण' के नये ग्राहक बनानेकी
ल चेष्टा करनी चाहिये। धर्मपर इस समय बड़ी विपत्ति आयी हुई है। ऐसे समयमें
सेवा समझकर 'कल्याण' का प्रचार बढ़ानेमें सभीको सहायक होना चाहिये।

प्रेस पोस्ट-आफिस अब 'डिलेवरी आफिस' हो गया है। अतः 'कल्याण' व्यवस्था-वि

ानेवाले सभी पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, बीमा आदिपर केवल 'गोरखपुर' न ।
ा० गीताप्रेस (गोरखपुर) इस प्रकार लिखना चाहिये ।

ाजिल्द विशेषाङ्क वी. पी. द्वारा नहीं भेजे जायँगे । सजिल्द अङ्क चाहनेवाले ग्रा
ेल्दचार्जसहित ८॥।) मनीआर्डरद्वारा भेजनेकी कृपा करें ।

ापके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नंबर और पता लिखा गया है, उ
ावधानीपूर्वक नोट कर लें । रजिस्ट्री या वी. पी. नंबर भी नोट कर लेना चाहिये
ाक-विभागके नियमानुसार रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर यथास्थान न पहुँचनेकी शिकायत ६
ोतर ही होनी चाहिये, अन्यथा वे शिकायतपर विचार नहीं करते । अतः रुपया भेजने
दि दो मासके भीतर आपको पोस्ट-आफिससे कार्यालयकी सहीयुक्त वापसी रसीद न ि
ापने पोस्ट-आफिसमें तुरंत शिकायत कर देनी चाहिये । रुपया भेजनेकी रसीद मिलने
मासके भीतर आपको 'कल्याण'की रजिस्ट्री न मिले तो कार्यालयको सूचना देनी च
िशेषाङ्क तो रजिस्टर्ड होनेसे पहुँच ही जाता है । शेष अङ्क साधारण डाकसे जानेके
भी-कभी रास्तेमें खो जाते हैं । कार्यालयसे अङ्क बहुत सावधानीके साथ भेजे जा
ड़बड़ी पोस्ट-आफिसमें ही होनेकी सम्भावना है । अतः दो मासके भीतर अगला अङ्क
तो पोस्ट-आफिसमें कड़ी शिकायत लिखनी चाहिये । वहाँसे जो उत्तर मिले, वह ह
ना चाहिये । कुछ लोग चार-चार, पाँच-पाँच अङ्कोंकी शिकायत एक साथ लिखते
ी होनेसे न तो पोस्ट-आफिसपर शिकायतोंका प्रभाव पड़ता है और न खोये हुए अङ्क
ल पाते हैं । अतः इस विषयमें बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये । जिनके अङ्क बराब
ते रहें, वे अपने डिवीजनके 'सुपरिंटेंडेंट ऑफ पोस्ट आफिसेज' को शिकायत लिखनेव
ें । यदि हर महीने रजिस्ट्रीसे अङ्क मँगाना चाहें तो ।) प्रति अङ्क रजिस्ट्री-खर्च अ
जना चाहिये ।

व्यवस्थापक—कल्याण, गोर

कल्याणके पुराने प्राप्य विशेषाङ्क और साधारण अङ्क

र्ष १५वाँ—साधारण अङ्क ३, ४ दो अङ्क एक साथ, मूल्य ॥)
र्ष १८वाँ—साधारण अङ्क ६ ठा, मूल्य ।) प्रति ।
र्ष १९वाँ—संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क—पूरी फाइल, पृष्ठ-संख्या ९,७८, रंगीन चित्र २१, लाइ
२४१, मूल्य ४≡)
र्ष २०वाँ—साधारण अङ्क ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ११, १२ नौ अङ्क एक साथ, मूल्य २।)

पुराने वर्षोंके साधारण अङ्क आधे मूल्यमें—

१ वें वर्षके साधारण अङ्क २, ३, ४, ५, ९, १०, ११, १२ कुल आठ अङ्क एक साथ, मल
खर्च ।) कुल १॥)
२ वें वर्षके साधारण अङ्क २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ कुल दस अङ्क एक
।–), रजिस्ट्रीखर्च ।) कुल १॥।–)
पर्युक्त दोनों वर्षोंके कुल १८ अङ्क एक साथ रजिस्ट्रीखर्चसहित मूल्य ३–)

|| श्रीहरिः ||

हिंदू-संस्कृति-अङ्ककी विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

ाचीन आदर्श परोपकारी भक्त राजा और त्पुरुष (सु०) ८२१-८३३

कुछ आचार्य, महात्मा और भक्त (सु०) ८४

कविता



सुनहरी

तिरंगे

इकरंगे

पृष्ठ-संख्या





एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

(मनुस्मृति २ । २०)

गोरखपुर, सौर माघ २००६, जनवरी १९५०

संख्य
पूर्ण संख्य

प्रार्थना

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥

(श्रीमद्भागवत १० । १० । ३८)

भगवन् ! मेरी वाणी आपके गुण-कीर्तनमें लगी रहे । मेरे कान आपकी लीलाकथा सुननेमें संलग्न रहें । मेरे हाथ आपकी सेवाके कार्यमें और मन आपके चरणोंके चिन्तनमें तत्पर रहे । मेरा मस्तक आपके निवासभूत जगत्को नमस्कार करनेके लिये झुका रहे और मेरी आँखें आपके स्वरूपभूत संतजनोंके दर्शनमें

॥ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।

ोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा

जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।

नेकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु

फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।

योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

(यजु० सं० २२ । २२)

(अनुवाद)

भारतवर्ष हमारा प्यारा, अखिल विश्वसे न्यारा;

सब साधनसे रहे समुन्नत, भगवन् ! देश हमारा ।

हों ब्राह्मण विद्वान् राष्ट्रमें ब्रह्मतेज-व्रत-धारी,

महारथी हों शूर धनुर्धर क्षत्रिय लक्ष्य-प्रहारी ।

गौएँ भी अति मधुर दुग्धकी रहें बहाती धारा ॥

सब···· ॥ १ ॥

भारतमें बलवान वृषभ हों, बोझ उठायें भारी;

अश्व आशुगामी हों, दुर्गम पथमें विचरणकारी ।

जिनकी गति अवलोक लजाकर हो समीर भी हारा ॥

सब··· ॥ २ ॥

महिलाएँ हों सती सुन्दरी सद्गुणवती सयानी,

रथारूढ भारत-वीरोंकी करें विजय अगवानी ।

जिनकी गुण-गाथासे गुंजित दिग्-दिगन्त हो सारा ॥

सब···· ॥ ३ ॥

यज्ञ-निरत भारतके सुत हों, शूर सुकृत-अवतारी,

युवक यहाँके सभ्य सुशिक्षित सौम्य सरल सुविचारी,

जो होंगे इस धन्य राष्ट्रका भावी सुदृढ सहारा ॥

सब···· ॥ ४ ॥

समय-समयपर आवश्यकतावश रस घन बरसाये,

अन्नौषधमें लगें प्रचुर फल और स्वयं पक जायें ।

योग हमारा, क्षेम हमारा स्वतः सिद्ध हो सारा ॥

सब···· ॥ ५ ॥

वैदिक सूक्त

(भाषान्तरकर्ता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

नासदीय सूक्त

(ऋग्वेद १० । १२९ । १–७)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम् ॥ १ ॥

हीं उस प्रलयकालमें, 'सत्' भी नहीं रहा कारण;
मे-पाताल प्रभृति भुवनोंकी सत्ताका वारण।
भी नहीं, नहीं वे स्वर्ग आदि रह गये प्रदेश;
रण, कहाँ, किसके हित, गहन गभीर नीर था शेष ॥१॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ २ ॥

थी, नहीं अमरता, रात-दिवसका ज्ञान नहीं;
, बस, एक ब्रह्म ही, हैं जिसके मन-प्रान नहीं।
ाके साथ विराजित ब्रह्ममात्र ही सत्तावान्
थी वस्तु यहाँपर उससे भिन्न न कोई आन ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे-
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥

ो अज्ञान-तिमिरसे पहले यह सब था तमरूप,
में मिलित सलिल-सा अखिल विश्व अज्ञात अरूप।
विद्यासे छादित जो तमसे एकीभूत हुआ,
विभुके तपकी महिमासे फिर उद्भूत हुआ ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्

हुआ सृष्टि-रचनाके पहले ईश्वरके मनमें संक
क्योंकि पुरातन कर्मराशि थी बीजरूपमें उदित अ
ज्ञानी पुरुषोंने मेधासे निज उरमें जब किया वि
'सत्' के साधनभूत कर्मका हुआ 'असत्'में साक्षात

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-
मधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्
रेतोधा आसन् महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ।

तना सृष्टिका सूर्यरश्मि-सा सहसा ही सब ओर वित
पहले मध्यलोकमें, ऊपर या नीचे—कुछ हुआ न
कर्मोंके कर्ता-भोक्ता थे अगणित जीव हुए उ
भोग्य-स्थान महान् भूत भी, भोक्ता उच्च, अधम है

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा
को वेद यत आबभूव

किस निमित्त, किस उपादानसे हुई प्रकट नानाविध सृ
कौन जानता, कौन बताये, किसकी वहाँ पहुँचती
पैदा हुए देवगण भी तो भूत-सर्गके ही प
फिर किससे सब सृष्टि हुई है, यह रहस्य किसको है

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो
अङ्ग वेद यदि वा न वेद

जिस विभुसे इस विविध सृष्टिका हुआ प्रकट अतिशय
वही इसे धारण करता है, रखता या कि बिना आ
जो इस जगका परम अधीश्वर रहता परम व्योममय

पृथ्वी-सूक्त

(अथर्व० १२ काण्ड)

अथर्ववेदके बारहवें काण्डके प्रथम सूक्तका नाम पृथ्वी-सूक्त है। इसमें कुल ६३ मन्त्र हैं। इन मन्त्रोंमें मा[illegible] ी प्रगाढ भक्तिका परिचय ऋषिने दिया है। हिंदू-शास्त्रोंके अनुसार प्रत्येक जडतत्त्व चेतनसे अधिष्ठि[illegible] उसका नियन्ता और संचालक है। हमारी इस पृथ्वीका भी एक चिन्मय स्वरूप है। यही इस स्थूल [illegible] है। इसीको श्रीदेवी और भूदेवी भी कहते हैं। 'श्रीश्च लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ' इस मन्त्रमें 'श्री' पद[illegible] स्मरण किया गया है। ये चिन्मयी देवी इस स्थूल पृथ्वीकी अधिष्ठात्री हैं। ये ही इसका हृदय हैं। ये अ[illegible] न्मय हैं। जडतत्त्व ही मृत्युका ग्रास बनता है। अतएव ये मृत्युलोकसे परे परम व्योममें प्रतिष्ठित हैं।

यस्या हृदयं परमे व्योमन् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।

ऋषिने इस सूक्तमें पृथ्वीके आधिभौतिक और आधिदैविक दोनों रूपोंका स्तवन किया है। कहीं भ[illegible] के नैसर्गिक सौन्दर्यका चित्रण है और कहीं पौराणिक वर्णनका बीज भी उपलब्ध होता है। पुराणोंमें [illegible] का रूप 'गौ' बताया गया है। इस सूक्तमें भी 'कामदुघा', 'पयस्वती', 'सुरभिः', 'धेनुः' आदि पदोंद्वा[illegible] यथार्थता सूचित की गयी है। यहाँ सम्पूर्ण भूमि ही माताके रूपमें ऋषिको दृष्टिगोचर हुई है और [illegible] विश्वगर्भा वसुधाके गुण-गौरवका गान किया है। यह भूदेवी अपने सच्चे सेवकके लिये भी [illegible] जाती है। इसके ही द्वारा सबका जन्म और पालन होता है। अतः ऋषिने माताकी इस महाम[illegible] करके उससे उत्तम वरके लिये प्रार्थना की है।

ायणाचार्यने इस सूक्तके मन्त्रोंका अनेक लौकिक लाभोंके लिये भी विनियोग बताया है। अनेक[illegible] ी यही मत है। आग्रहायणी कर्म, पुष्टिकर्म, कृषिकर्म तथा पुत्र-धनादि सर्ववस्तुकी प्राप्तिके लिये किये[illegible] अन्न, सुवर्ण, मणि आदिकी प्राप्ति, ग्राम-नगर आदिकी रक्षा, भूकम्प, प्रायश्चित्त, सोमराज तथा पार्थिव [illegible] कर्ममें भी इन मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है। प्रयोगविधि अथर्ववेदी विद्वानोंसे जाननी चाहिये। [illegible] दृष्टियोंसे यह सूक्त बहुत ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। केवल इसके पाठसे भी बहुत लाभ होता है।

बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
ो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं
लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ १॥

ऋत, सत्य, बृहत्, तप उग्र, ब्रह्म, मख उत्तम,
सुधाके धारक हैं आधार अनुत्तम।
ह भूत-भविष्यत्की पालक, सुख-दाता,
हमको विस्तृत लोक, मेदिनी माता॥ १॥

ाधं सध्यतो मानवानां
यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
वीर्या ओषधीर्या बिभर्ति
पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥ २॥

वत प्रदेश, उत्तुङ्ग शिखर अति सुन्दर,
ची वसुन्धरा, नीचे बहते निर्झर,
[illegible]

जिसपर शोभित [illegible]
बहु शक्तिशाली ओषधियाँ [illegible]
वह भूमि हमारे लिये [illegible]
उसके आगमनसे [illegible]

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो
यस्यामन्नं [illegible]
यस्यामिदं जिन्वति [illegible]
[illegible]

जिस मातृभूमि [illegible]
सरिता [illegible]
खेती हो [illegible]
जिसपर [illegible]
यह प्राणि जगत [illegible]
चलना-फिरता [illegible]

ः प्रदिशः पृथिव्या
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
र्ति बहुधा प्राणदेजत्
सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥

र दिशाएँ जहाँ, अन्नकी खेती,
ष्ट्रायुत बहु प्राणि-जगत्को सेती ।
न्म-भूमि, वह भारत-भू अविभाजित
-अन्नोंमें हमको करे विराजित ॥ ४ ॥

वे पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गां वयसश्च विष्ठा
भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

र्श पूर्वजोंने था जहाँ सँवारा,
र देवोंने असुरोंको संहारा,
, अश्वों, विहगोंकी आश्रयदाता—
-तेज दे हमको वह भू-माता ॥ ५ ॥

वसुधानी प्रतिष्ठा
हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
विभ्रती भूमिरग्नि-
मिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥

श्व भरण करती है, धरती धनको,
बनकर देती निवास जग-जनको,
स्थान अहो जिसका वक्षःस्थल,
वैश्वानरको जो निज अन्तस्तल,
है वृषभ जिस मनुमयी धरणीके,
देवी दे वैभव हमको नीके ॥ ६ ॥

न्यस्वप्ना विश्वदानीं
देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
मधु प्रियं दुहामथो
उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

[illegible]
निशि [illegible]
मधु [illegible] दुग्ध प्रदान हमें नहला कर दे,
ान, प्राणोंको दिव्य तेजसे भर दे ॥ ७ ॥

सलिलमग्र आसीद् या
[illegible]

यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्ये-
नावृतममृतं पृथिव्याः
नो भूमिस्त्विषिं
बलं राष्ट्रे दधातूत्त

था प्रथम जलधिके जलमें जिसका आसन,
जिसपर मनीषियोंका मायासे शासन,
है परम व्योममें निहित शुचि हृदय जिसका,
उर सत्य-समावृत और अमृतमय जिसका—
वह भूमि दीप्ति दे, बल दे, शक्ति-सहारा
उद्दीप्त, सबल हो उत्तम राष्ट्र हमारा

यस्यामापः परिचराः समानी-
रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो-
दुहा मथो उक्षतु वर्चस

सब ओर जहाँ गतिशील सलिल निशि-वासर
तजकर प्रमाद बहता समगतिसे सत्वर—
वसुधा वह बहुविध धाराओंसे भूमि
दे हमें दुग्ध-रस कर ओजसे सिञ्चित

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्र
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपति
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे प

अश्विनीकुमारोंने है जिसे बनाया,
जिसपर उपेन्द्रने अपना पाँव बढ़ाया,
कर जिसे अकंटक शचीकान्त अपनाता
मुझ सुतको दूध पिलाये वह भू-माता

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो-
ऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ता
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमह

ये गिरि पर्वत हिमवान [illegible]
हे मातृभूमि! ये मोद-निकेतन [illegible]
पिङ्गल श्यामल अरुणाभ अगम [illegible]
है हरिपालित बहुरूप धराका अञ्चल

मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं
यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
[illegible]ु नो धेह्यभि नः पवस्व माता
भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

जो मध्य भाग, जो नाभिदेश हैं तेरे,
तुझसे प्रकटित जो पोषक तत्व घनेरे,
रख वहीं, उन्हींमें मुझे, मोद उर भर दे;
निज पुत्र अपावनको अतिपावन कर दे ।
हम सुत वसुधाके, वह हम सबकी माता;
जीवन-दाता पर्जन्य पिता, हो त्राता ॥ १२ ॥

[illegible]ं वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां
यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
[illegible]ं मीयन्ते स्वरवः पृथिव्या-
मूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३॥

जिस भूतलपर विद्वान बनाते वेदी,
जिसमें करते मख अखिल-कर्मविधि-वेदी,
आहुतिके पहले जहाँ बनाये जाते
ऊँचे, चमकीले यज्ञ-स्तम्भ सुहाते—
वह भूमि अन्नसे, वैभवसे बढ़ जाये,
हम सबको भी नित उन्नतिशील बनाये ॥ १३ ॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद्
योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

[illegible]सुधे ! जो लोग जगत्में रखते हमलोगोंसे द्वेष,
[illegible]ढ़ आते सैन्य साजकर देनेके हित हमको क्लेश,
[illegible]नसे भी अहित चाहते, वध करनेको हैं तैयार—
संहारिणि ! पहले ही तू कर दे उन सबका संहार ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं
बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

[illegible] हो उत्पन्न मर्त्यगण तुझपर ही कर रहे विहार;
[illegible]

भूदेवी ! ये मनुज पञ्चविध तेरे ही हैं तनुज उद[illegible]
जिनके हित रवि उदित रश्मियोंसे करता है अमृत-[illegible]

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥

वे दिनमणिकी स्वर्ण-रश्मियाँ दें हमको सुन्दर संत[illegible]
और ज्ञान दें सब वाङ्मयका; मेदिनि तू ! कर मधुका [illegible]

विश्वस्वं मातरमोषधीनां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ।

जिसे प्राप्तकर जग होता है बहुविध वैभवसे सम[illegible]
व्रीहि-यवादिक ओषधियोंको जो करती रहती उत[illegible]
भूदेवी वह अचल, धर्म ही है जिसका दृढतर आधा[illegible]
उसी शिवा सुखदा भूपर हम करें सदा सब ओर वि[illegible]

महत् सधस्थं महती बभूविथ
महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव ।
संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ।

तू महती, तू अखिल विश्वका, वसुधे ! महानिवास-स्थ[illegible]
वेग-प्रगति, हलचल-कम्पन हैं तेरे अद्भुत और म[illegible]
मातृभूमि ! तेरी रक्षामें सावधान रहते भगव[illegible]
ऐसी महिमामयी जननि ! तू कर अपनी करुणाका [illegible]
हमें बना प्रिय, रुचिर स्वर्ण-सम, सबके नयनोंमें छवि[illegible]
कोई द्वेष न माने हमसे, हमको परम सुहृद निज [illegible]

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो
बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु
गोष्वश्वेष्वग्नयः ।

भूतलमें सब ओर अनल है, ओषधियोंमें व्यापक अ[illegible]
जल धारण करता बडवानल, पत्थरमें भी पावक [illegible]
पुरुष-देहके अभ्यन्तर भी जठरानलका नित्य-नि[illegible]
गायों-घोड़ोंके भीतर भी अग्निदेव करते हैं [illegible]

अग्निर्दिव आ तपत्यग्ने-
र्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते
हव्यवाहं घृतप्रियम्

र अनल स्वर्गमें भी तपता रहता सब काल,
ाका आश्रय है अन्तरिक्ष भी परम विशाल ।
ासी मानव भी हव्यवाहको कर उद्दीप्त
वाले पावकको संतत करते रहते तृप्त ॥

वासाः पृथिव्यसितज्ञू-
स्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥

मयसे आवृत जो, असित जानु जिसका भाता—
अतिप्रखर दीप्तिमय करे हमें वह भू-माता ॥

गां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरं कृतम् ।
यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु
जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

ही नर अमरोंको देते संस्कृत यज्ञ-हविष्य,
ते अन्न-सलिलसे यहीं मनुज ले भव्य भविष्य ।
ारी आयु बढ़ाये, भूमि हमें दे जीवन-प्रान;
शतक जीनेको करे हमें वह शक्ति-प्रदान ॥

। गन्धः पृथिवि संबभूव
यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन
मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

माता वसुन्धरे ! है तुझमें जो व्यापक गन्ध,
; जलराशि जिसे है धारण करती निष्प्रतिबन्ध,
वन करते हैं गन्धर्व और अप्सरा अशेष----
र सौरभित हमें तू, कोई करे न हममें द्वेष ॥

। गन्धः पुष्करमाविवेश
यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
र्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा
सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥

व्याप्त हुआ, मा ! जो तेरा शुचि गंध-प्रवाह,
या जिसे अमरोंने जब सूर्याका हुआ विवाह,
कर चुके पूर्व ही जिस सुगन्धका देव अशेष—
सौरभित हमें तू, कोई करे न हमसे द्वेष ॥

। गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
ायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ
अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

कन्यामें लावण्यरूपसे उदित हुआ जो ओज विशे
उन सबसे कर युक्त हमें तू, करे न कोई हममे ।

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा
भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे
पृथिव्या अकरं नमः ॥

भूमि शिला है,भूमि धूल है,वह प्रस्तर, गिरि-शैल आ
सब रूपोंमें परिणत भू यह टिकी धर्मके दृढ आ
है सुवर्णकी खान मनोहर जिसका वक्षःस्थल अभिर
उस पृथ्वी देवीको हम सब सादर हैं कर रहे प्रण

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वह
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि

अचल खड़े सब ओर जहाँपर विविध वनस्पति, वृक्ष म
हम उस विश्वम्भरा धराके करते गुण-गौरवका

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्त
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्या

निज दायें-बायें पैरोंसे चलें-फिरें या हों आ
अथवा खड़े रहें हम भूपर, किन्तु व्यथाके हों न उ

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि
क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं
घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥

जो सबका शोधन करती है ब्रह्मशक्तिसे हुई म
क्षमामयी उस वसुन्धराका करते हम प्रतिदिन गुण
शक्ति-पुष्टिप्रद अन्नभाग, घृत, वसुधे ! तू करती ध
तुझपर हम आसीन रहें नित, कर तू क्लेशोंका व

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु
यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥

बरसे अनिश हमारे तनपर नीर नवल, निर्मल, नी
रिपुजनपर हम उसे डालते, हमें कष्ट देता जो
लेकर करमें भूदेवी ! मैं दर्भविनिर्मित एक प
उसमें ही तव पावन जल ले अपनेको कर रहा प

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते
भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।

्, वसुन्धरे ! मैं जब करता होऊँ विचरण,
क्षिण-पश्चिम दिक् करें मुझे नित सुख-वितरण ।
मध्य आश्रय ले स्वस्थ-सुखी हो मेरा तन,
ग्रतिशील बनूँ मैं, हो न कभी मम अधःपतन ॥

ं नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा
मोत्तरादधरादुत ।
स्ति भूमे नो भव मा विदन्
परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

, ऊपर-नीचेसे भी मुझपर हो न प्रहार;
ाणकारिणी हो तू निज करुणाका करे प्रसार ।
न पायें हिंसक, चोर, लुटेरे या बटमार;
दे हत्यारोंको, हो न कहीं भीषण संहार ॥

तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
ं चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३॥

देखता जबतक पा स्नेही रविका सहयोग
हो नष्ट न तबतक, दृग प्रतिवर्ष रहें नीरोग ।

छयानः पर्यावर्ते
दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
ानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे
हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥

दायीं-बायीं करवट बदलूँ या उत्तान रहूँ,
पृष्ठभागमें पश्चिमको कर निद्रावान रहूँ ।
स्थामें भी, वसुधे ! कर न कभी मेरा संहार;
विस्तृत शय्या है, तू सबका आश्रय-आधार ॥

् ते भूमे विखनामि
क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
ते मर्म विमृग्वरि
मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

रे कंद-मूल, फल-औषध आदि रहा जो खोद,
उग आये वह भी पाकर तेरा स्नेह समोद ।
रेणि जननि ! न तेरे करूँ मर्मपर मैं आघात;
तव हृदय व्यथित हो, करूँ न ऐसी कोई बात ॥

ष्मस्ते भूमे वर्षाणि
शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

गर्मी-वर्षा, शरद-हिमानी; शिशिर और मोहक मधुम
भूदेवी ! तेरे हित विभुने छः ऋतुओंका किया ि
दिवस-निशा, युग पक्ष, मास-ऋतु; अयन युगल; अभि
करें मनोरथ पूर्ण हमारे, देवें हमें सतत

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी
यस्यामासन्नग्नयो येऽप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं
वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥

कँप उठती जो पावन पृथ्वी शेषनागके कम्प
जिसमें ही वह अनल प्रतिष्ठित, जिसकी स्थिति जलके भ
देवद्रोही दस्यु दूरकर वरण इन्द्रका जो व
नहीं वृत्रका, इन्द्र-वृषभ हित जीवित धेनुमयी

यस्यां सदो हविर्धाने यूपो यस्यां निमीय
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्वि
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पात

जहाँ यज्ञमण्डप-वेदी है, खड़ा किया जाता है
जहाँ विप्र ऋक्-साम-मन्त्रसे सदा पूजते प्रभुका
यजुर्वेदके ज्ञाता ऋत्विज जहाँ कर रहे यज्ञ-प्र
और जहाँ करते सुरपतिको सोम पिलानेका उद्यो

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृ
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा स

उच्चारण वैदिक मन्त्रोंका करके जहाँ प्रजापति
ऋषि करते थे ब्रह्मसत्र-मख, तपमें निरत हुए दिन रा

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयाम
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगव

वही भूमि देवे हम सबको, जिस धन-वैभवकी हो
भाग्यदेवता बनें सहायक, इन्द्र चलें आगेको

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलब
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभि
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसप मा पृथिवी

विजय-मुदित नर नृत्य गानरत जहाँ युद्ध करते भर
हाहाकार कहीं जिसपर है, कहीं दिव्य दुन्दुभिका

मन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

: जिस वसुधापर धान और जौ आदिक अन्न,
सुधासे हुए सभी ये पञ्चवर्ण मानव उत्पन्न,
मेदा है जिसका, जिससे पड़ा मेदिनी नाम—
न्य-पालिता पृथ्वीको है मेरा नित्य प्रणाम ॥

: पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
ातिः पृथिवीं विश्वगर्भा-
माशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

ीपर देवविनिर्मित शोभित नगर और पुर-ग्राम,
वपुल क्षेत्रमें क्रमशः होते विकृत देह-धन-धाम,
रती सदा गर्भमें जो वसुधा यह विश्व अशेष—
दशा-दिशा शुभ-सुन्दर करें हमारे लिये प्रजेश ॥

' बिभ्रति बहुधा गुहा वसु
मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
ा नो वसुदा रासमाना
देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४॥

ो धरती निज उरमें गूढ़ विविध रत्नोंकी खान,
, मणि-रत्न, स्वर्ण वह हमको संतत करे प्रदान ।
ह धन-रत्न-दायिनी देवी वरदायिनी प्रसन्न
' अमित वैभव दे, जिसमें हों हम सुख-सम्पन्न ॥

बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५॥

धर्मोंके पालक, बहुविध भाषाके विद्वान,
रणको धारण करती जो देकर वासस्थान,
अति शान्त-अचञ्चल रुचिर धेनु-सी हो साकार
ारे लिये बरसती धनकी रहे सहस्रों धार ॥

सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा
हेमन्तजब्धो भृमलो गुहाशये ।
जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि
तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६॥

जो अहि-वृश्चिक,जिनके दंशनसे जगती प्यास,
त हेमन्त-समय जो गूढ़ गुहामें करते वास,
र कृमि पावसमें, भूदेवि ! विचरते तेरी गोद,
आयें; जो शिव हों; कर हमें उन्हींसे सुखी-समोद ॥
ार वर्ण और निषाद ।

ये ते पन्थानो बहवो जनायना
रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं
जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड

मा ! जिनपर मानव चलते हैं, वे तेरे जो अश्व अने
रथके और शकटके पथ जो,जिनपर चलें बुरे औ ने
जीतें हम उस पुण्यपंथको, जहाँ शत्रु या चोर न
मङ्गलमय जो मार्ग, उसीसे सुखी हमें कर, मातृ-मह

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्र-
पापस्य निधनं तितिक्षुः
वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय वि जिहीते मृगाय

नीच-ऊँच, लघु-गुरु पदार्थको जो धारण करती धर
पुण्यात्मा-पापी जनके भी शवका भार सहन कर
खोज रहे थे महासिन्धुमें जिसको श्रीभगवान वराह
मृग-सूकर-तनुधारी हरिको मिली भूमि वह सहित उ

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने
हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित
ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत

जो तेरे,भूदेवि ! वन्य पशु –हरिण-व्याघ्र,हिंसक मृगर
नर-भक्षी बहु जन्तु विपिनमें विचरण करते-फिरते अ
चीता और भेड़िया, भालू-राक्षस आदि जीव जो क्रूर
उन सबको पीड़ा देकर, हे जननि ! भगा दे हमसे

गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय

जो गन्धर्व-अप्सराएँ, जो दान-विघातक दानव क्रूर
राक्षस-भूत-पिशाच —सभीको, भूमि ! हटा दे हमसे

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति
हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि
कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः

जिसपर दो पगवाले पंछी—हंस-गरुड़ भर रहे उड़ा
जिसपर धूल उड़ाती आँधी और गिराती वृक्ष गगन
जब समीपसे वसुधातलपर प्रखर समीरण है चलत
लपटोंसे अनुसरण उसीका करता हुआ अनल जल

ी कृष्णमरुणं च संहिते
अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
। भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो
दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥५२॥

वसुन्धरापर जब होता परम मनोरम प्रातःकाल,
। श्यामरंग रजनीके संग दिवस दूलह-सा लाल—
। शत-शत धारासे आवृत हो वह भूमि महान
ब्को प्रिय धाम-धाममें भद्र भावनासे दे स्थान ॥

। म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
ः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥५३॥

भूमि औ अन्तरिक्षने दिया हमें विस्तृत मैदान ।
, सूर्य, जल, विश्वेदेवोंने है की सद्बुद्धि प्रदान ॥

स्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
षाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४॥

वेग रोकनेवाला मैं भूपर वर वीर उदार ।
ड़, सबपर विजयी हो दिशि-दिशि करूँ शत्रु-संहार ॥

यद् देवि प्रथमाना
पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
चा सुभूतमविशत् तदानी-
मकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥

प्रथम जब फैली थीं तुम देववृन्दका कहना मान,
था वह—लघु कायाको क्षणभरमें कर लिया महान ।
मय सुन्दर भूतोंने अङ्क तुम्हारे किया प्रवेश,
शाओंके विभागका किया तुम्हींने तब निर्देश ॥

ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

रजो ग्राम, गहन वन, जनपद-सभा, समाजस्थान,
ा संग्राम—वहाँ हम करते तेरे गुणका गान ॥

इव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्
य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।
द्रेत्वरी भुवनस्य गोपा
वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

श्व निज देह हिलाकर धूल झाड़ता, हुआ प्रसन्न,
टाती त ननको, जो तझमें स्थित, तझसे उत्पन्न ।

यद् वदामि मधुमत्तद् वदामि
यदीक्षे तद् वनन्ति मा
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्
हन्मि दोधत

मैं जो कहता, उसे बोलता भीतर मधुका घोल मिला
मैं देखा करता, जैसे उस दर्शनको सबको अभिल
तेजस्वी हूँ, शक्तिमान हूँ, मुझपर पर-रक्षणका भा
मुझे कँपाने जो आता, कर देता मैं उसका मंद

शन्तिवा सुरभिः स्योना
कीलालोध्नी पयस्वती
भूमिरधि ब्रवीतु मे
पृथिवी पयसा सह

सीधी, शान्त सुरभि-सी जो है जगको सुखका देती द
भरे अन्नसे थन जिसके, जो दुग्धदायिनी धेनु समान
वह वसुधा ले साथ अन्नके पुष्टिप्रद रस अथ अर्थ
सुख पहुँचावे हमें और दे सदा मानसिक शुभ सन्दे

यामन्वैच्छद्धविषा विश्व-
कर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा
यदाविर्भोगे अभवन् मातृमद्भ्य

हुई विश्वकर्माको हविसे तुझे प्राप्त करनेकी चा
रही समायी-सी सिकतामें जब तू सागर बीच अथ
अवसर आया मातृमान जीवोंके जभी भोग अनुरूप
प्रकट हुआ तब अन्नपात्र सा छिपा कन्दरिमें जग

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः
कामदुघा पप्रथाना
यत्त ऊनं तत् त आ
पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य

अन्नौषधकी क्षेत्र-भूमि, तू जग जीवोंकी योनि मा
तू अखण्ड विस्तृत, तू करती सबको अभिमत काम प्र
जो तुझमें न्यूनता कहीं हो, जो कुछ रीता रहा अपू
सत्य—नियमके ज्येष्ठ तनय वे आदि प्रजापति करें

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः

! उत्संगरूप जो तेरे प्रकटित द्वीप-प्रदेश,
हों हम सबके हित,क्षय-भयका हो वहाँ न लेश।
ो आयु हमारी, सावधान हम जगे रहें;
व कुछ बलि देनेके शुभ उद्यममें लगे रहें ॥

मातर्नि धेहि मा
भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।

संविदाना दिवा कवे
श्रियां मा धेहि भूत्य

स्थापित कर, हे मातृभूमि! तू मुझे भद्र भावोंके स
सर्वज्ञे! स्वर्गीय भूतिकी प्राप्ति करा तू करे स
पार्थिव सुख-सम्पत्ति-राशिमें,करुणामयि! दे मुझको
और साथ ही; जननि! मुझे कर भागवती विभूतिव

(३)

संज्ञान-सूक्त

(ऋ० १० । १९१)

समिद् युवसे वृषन्नग्ने
विश्वान्यर्य आ।
स्पदे समिध्यसे
स नो वसून्या भर ॥ १ ॥

, अभिमतफलदाता! तुम ईश्वर, तुम स्वामी;
तुम सब भूतोंमें व्यापक अन्तर्यामी।
ोपर याज्ञिकजन करते तुम्हें प्रदीपित;
में, ज्ञान दो हमको; है तव शक्ति असीमित ॥१॥

गच्छध्वं सं वदध्वं
सं वो मनांसि जानताम्।
भागं यथा पूर्वे
संजानाना उपासते ॥ २ ॥

ठ्कर तुम एक रहो, हे धर्म-निरत विद्वानो!
; तुम बोलो, मनसे अर्थ एक तुम जानो।
हो देव पुरातन ज्यों लेते निज भाग,
ुम भी लो, करके निज विरोधका त्याग ॥२॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि

मन्त्र एक-सा हो इन सबका, होवे प्राप्ति स
अन्तःकरण समान सभीके; सम विचार, सभ
तुम सबके हित मैं अभिमन्त्रित करता मन्त्र स
सम हविष्यसे लिये तुम्हारे करता आहुति-

समानी व आकूतिः
समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति

तुम सबकी चेष्टा समान हो, निश्चय एक-स
हृदय तुम्हारे एक-तुल्य हों, हो न विषमता
एक-सदृश ही हों तुम सबके अन्तःकरण उ
हो सुन्दर सहवास तुम्हारा, ज्यों समता सा

(४)

ऋत-सूक्त

(१० । १९०)

च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥
द्र्णवादधि संवत्सरो अजायत।
त्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥
द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः ॥१-३॥

यह अनन्त जलराशि-संवलित लहराता जो सिंधु म
उसी विधातासे इसका भी प्रादुर्भाव हुआ ले
जलसे भरे महासागरका जब हो प्रादुर्भाव
हुआ विधातासे फिर संवत्सरका आविर्भाव
संवत्सर यह, दिवस-रात्रिको जो धारण करने
धत-निमिष चर अचर विश्वको भी वशमें रखने

धनान्नदानसूक्त

(ऋ० १० । ११७)

वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं
ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
रयिः पृणतो नोप दस्य-
त्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

नहीं दी, वध जीवोंका देवोंने कर डाला;
वही, अन्न देकर जो बुझा सके यह ज्वाला ।
क्षीणकी अवहेला कर जो खुद माल उड़ाता,
दिवस उसके प्राणोंको भी अन्तक ले जाता ॥
का धन कभी न घटता, देता उसे विधाता;
कृपणको कहीं न कोई सुख-दाता मिल पाता ॥ १ ॥

ाध्राय चकमानाय पित्वोऽन्न-
वान्त्सन्नफितायोपजग्मुषे ।
मनः कृणुते सेवते पुरोतो
चित् स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

और भूखसे पीडित स्वयं द्वारपर आये,
अन्नकी चाह, विकल हो संमुख कर फैलाये—
ाचकके प्रति भी जो हृदय कठोर बनाता,
ान है, किंतु नहीं देनेको हाथ बढ़ाता,
नहीं, तरसाकर उसको स्वयं सामने खाता—
ाता उस महाक्रूरको कहीं नहीं मिल पाता ॥ २ ॥

इद् भोजो यो गृहवे
ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
स्मै भवति यामहूता
उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

शरीर है माँग रहा घर आकर दाना-पानी,
प्रतिग्रही याचकको जो देता, वह दानी ।
ं पूरा-पूरा फल उसको ही मिल पाता,
ण्डलीमें भी वह है सबको मित्र बनाता ॥ ३ ॥

। सखा यो न ददाति सख्ये
सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
ास्मेयान्न तदोको अस्ति
पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

अपना अंग, सखा, जो रखता स्नेह सही है,
ो भी जो अन्न न देता, वह तो मित्र नहीं है ।
छोड़ हट जाय दूर नर, उसका गेह नहीं वह;
किसी दाताका आश्रय कर ले यत्रणा कहीं वह ॥ ४ ॥

ओ हि वर्तन्ते रथ्येव
चक्राऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त र

धनका दान करे याचकको निश्चय ही धनवा
दिखलायी देता दाताको शुभका मार्ग मह
आवर्तित रथके चक्रों-सा होता विभव विलास
कभी एकके पास संपदा, कभी अन्यके पास

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत् स त
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवला

व्यर्थ अन्न पैदा करता वह, जिसका मन न उदा
सच कहता हूँ, वह संग्रह है उसका ही संत
देव-तृप्तिके काम न आता जो, न मित्रके का
जो केवल निज पेट पालता, वह केवल अघधाम

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति
यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रै
वदन् ब्रह्मा वदतो वनीयान्
पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्या

खेत जोतकर फाल कृषकको अन्न दे रहा उपकार
उपकृत करता आचरणोंसे पथको पांथ ग
वक्ता ब्राह्मण सदा अवक्तासे बढ़कर आदर पा
दाता पुरुष कृपणसे उत्तम बन्धु सदृश माना जा

एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे
द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चा
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे
संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमान

एक अंशका धनी द्विगुणके पीछे चलता है चिरकाल
वह भी तीन अंशवालेका अनुगम करता है सब का
चार अंशवाला चलता है पीछे औरोंको अवलोक
अतः विभव-अभिमान छोड़ धन-दान करे संतत सब

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः
सं मातरा चिन्न समं दुहा
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती
चित् सन्तौ न समं पृणी

दोनों हाथ समान यदपि हैं, करते कार्य न किंतु सम
दो व्यायी गौएँ भी करतीं एक सदृश क्या दुग्ध प्रदा

(६)

श्रद्धासूक्त

(ऋ० १० । १५१)

ाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥

े ही अग्निहोत्रकी होती दीपित आग,
ते ही अर्पित होता उसमें हविका भाग ।
ऐश्वर्योंके मस्तकपर श्रद्धा रही विराज,
-वाणीसे विज्ञापन यह हम करते हैं आज ॥१॥

श्रद्धे ददतः प्रि॑ श्रद्धे दिदासतः ।
भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

! दाताके हित कर तू अभिमत फलका दान,
ो इच्छावालेको भी प्रिय वस्तु प्रदान ।
प्राप्तिके अभिलाषी जो याज्ञिक मेरे इष्ट,
ा भी पूर्वोक्त रूपसे कर दे पूर्ण अभीष्ट ॥२॥

देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

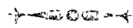
विजयी होंगे' देवोंने की श्रद्धा-विश्वास,
उग्र असुरोंपर जैसे पाया जय-उल्लास—
वैसे ही श्रद्धालु हमारे जो ये याज्ञिक लोग
भोगार्थी हैं; इनको भी दो, श्रद्धे ! प्रार्थित भोग

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपास॰
श्रद्धां हृदय्ययाऽऽकूत्या श्रद्धया विन्दते व॰

देव और यजमान मनुज सब, जिनके रक्षक वायु
श्रद्धा देवीकी उपासना करते सारी आ॰
कर उरकी संकल्प-क्रियासे श्रद्धाका आराधन
श्रद्धासे सब धन पाते हैं; श्रद्धा धनका साध॰

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं प॰
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह न

श्रद्धा देवीको पुकारते हम प्रातः-पूर्वाह्न
श्रद्धाके ही आवाहनमें बिता रहे मध्याह्न
करते हैं सूर्यास्त-समय भी श्रद्धाका आह्वान
... देवि ! करो हम सबमें श्रद्धाका आध॰



वैदिक सूक्त

(भाषान्तरकर्ता—डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम्० ए०, डी० लिट्०)

(१)

सञ्ज्ञानसूक्त

[अथर्ववेद, पैप्पलादशाखा, ५ । १९]

इदं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
ोऽन्यमभिनवत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १ ॥

सबके मध्यमें विद्वेषको हटाकर मैं सहृदयता,
ाका प्रचार करता हूँ । जिस प्रकार गौ अपने
ेम करती है, उसी प्रकार आप सब एक दूसरेसे
॥ १ ॥

व्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति संयतः ।
ा पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥ २ ॥

पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका
ी हो । पत्नी अपने पतिसे शान्ति-युक्त मीठी वाणी
ी हो ॥ २ ॥

भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्‌ मा स्वसारमत स्वसा ।
ईर्ष्या न रक्खें । आप सब एकमत और समान व्रतवा
मृदुवाणीका प्रयोग करें ॥ ३ ॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः

जिस प्रेमसे देवगण एक-दूसरेसे पृथक् नहीं हो
आपसमें द्वेष करते हैं, उसी ज्ञानको तुम्हारे परिवारमें
करता हूँ । सब पुरुषोंमें परस्पर मेल हो ॥ ४ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्योन्यस्मै वल्गु वदन्तो यात
समग्रास्थ सध्रीचीनान् ॥ ॰

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदयसे

:स्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त
उदा मिले हुए रहो ॥ ५ ॥

मानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
म्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभ्रितः ॥ ६ ॥

न्न और जलकी सामग्री समान हो । एक ही बन्धनमें
युक्त करता हूँ ।
थ मिलकर अग्निकी परिचर्या करो, जिस प्रकार रथकी
चारों ओर अरे लगे रहते हैं ॥ ६ ॥

सध्रीचीनान् वः संमनसः कृणोम्ये-
कश्नुष्टीन् संवननेन सहृदः ।
देवा इवेदमृतं रक्षमाणाः
सायंप्रातः सुसमितिर्वो अस्तु ॥ ७ ॥

समान गतिवाले आप सबको सममनस्क बन
जिससे आप पारस्परिक प्रेमसे समान भावोंके
अग्रणीका अनुसरण करें ।

देव जिस प्रकार समान चित्तसे अमृतकी रक्षा
उसी प्रकार सायं और प्रातः आप सबकी
समिति हो ॥ ७ ॥

(२)

एवा मे प्राण मा बिभेः

(प्राणोंकी अभयप्राप्ति)

[अथर्ववेद २ । १५]

। द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
। मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ १ ॥

त प्रकार द्यौ और पृथिवी न डरते हैं और न क्षीण होते हैं,
ग ! उसी प्रकार तुम भी मत डरो, मत क्षीण हो ॥ १ ॥

। वायुश्चान्तरिक्षं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
। मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ २ ॥

। प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं, न क्षीण होते हैं,
ग ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥ २ ॥

सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ ३ ॥

। प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न क्षीण होते हैं,
ग ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥ ३ ॥

हश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ ४ ॥

। प्रकार दिन और रात्रि न डरते हैं, न क्षीण होते हैं, हे
! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥ ४ ॥

धेनुश्चानड्वांश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ ५ ॥

प्रकार धेनु और वृषभ न डरते हैं, न क्षीण होते हैं,
ग ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥ ५ ॥

मित्रश्च वरुणश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।

जिस प्रकार मित्र और वरुण न डरते हैं, न क्षीण
हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः

जिस प्रकार ब्रह्म और क्षत्र न डरते हैं, न क्षीण हो
मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥

यथेन्द्रश्चेन्द्रियं च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः

जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्रियाँ न डरते हैं, न क्षीण
हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ॥

यथा वीरश्च वीर्यं च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः

जिस प्रकार वीर और वीर्य न डरते हैं और न क्षीण
हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

यथा प्राणश्चापानश्च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः

जिस प्रकार प्राण और अपान न डरते हैं, न क्षीण
हे मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो, न क्षीण हो ।

यथा मृत्युश्चामृतं च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः

जिस प्रकार मृत्यु और अमृत न डरते हैं और न क्षी

सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः ॥ १२ ॥

प्रकार सत्य और अनृत न डरते हैं और न क्षीण होते हैं,
। ! उसी प्रकार तुम भी न डरो; न क्षीण हो ॥१२॥

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः एवा मे प्राण मा रिषः

जिस प्रकार भूत और भव्य न डरते हैं और न क्षीण
मेरे प्राण ! उसी प्रकार तुम भी न डरो; न क्षीण हो ।

(३)

गृह-महिमा

[अथर्ववेद, पैप्पलादशाखा, ३ । २६]

नैमि मनसा मोदमान
ऊर्जं बिभ्रद् वः सुमतिः सुमेधाः ।
ोरेण चक्षुषा मित्रियेण
गृहाणां पश्यन्पय उत्तरामि ॥ १ ॥

ः (शक्ति) को पुष्ट करता हुआ, मतिमान् और
मैं मुदित मनसे गृहमें आता हूँ ।
गणकारी तथा मैत्री-भावसे सम्पन्न चक्षुसे इन
देखता हुआ, इनमें जो रस है, उसका ग्रहण
॥ १ ॥

गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
ं वामस्य तिष्ठन्तस्ते नो जानन्तु जानतः ॥ २ ॥

घर सुखके देनेवाले हैं, धान्यसे भरपूर हैं, घी-दूधसे
।
प्रकारके सौन्दर्यसे युक्त ये घर हमारे साथ घनिष्ठता
और हम इन्हें अच्छी तरह समझें ॥ २ ॥

ृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
ृष्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीतन ॥ ३ ॥

। घरोंमें रहनेवाले परस्पर मधुर और शिष्ट सम्भाषण
, जिनमें सब तरहका सौभाग्य निवास करता है, जो
ोंसे संयुक्त हैं, जिनमें सब हँसी-खुशीसे रहते हैं,
जहाँ कोई न भूखा है न प्यासा है, उन घरोंमें क
का सञ्चार न हो ॥ ३ ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बह
गृहानुपह्वयाम यान् ते नो जानन्त्वायत

प्रवासमें रहते हुए हमें जिनका बराबर ध्या
करता है, जिनमें सहृदयताकी खान है, उन घ
आवाहन करते हैं । वे बाहरसे आये हुए हमको जानें

उपहूता इह गाव उपहूता अजाव
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु न

हमारे इन घरोंमें दुधारु गौएँ हैं; इनमें भेड़, बक
पशु भी प्रचुर संख्यामें हैं । अन्नको अमृत-तुल्य
बनानेवाले रस भी यहाँ हैं ॥ ५ ॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुद
अरिष्टाः सर्वपूरुषा गृहा नः सन्तु सर्वत

बहुत धनवाले मित्र इन घरोंमें आते हैं, हँस
साथ हमारे सङ्ग स्वादिष्ट भोजनोंमें सम्मिलित होते है
हे हमारे गृहो ! तुममें बसनेवाले सब प्राणी स
अर्थात् रोगरहित और अक्षीण रहें, किसी प्रक
ह्रास न हो ॥ ६ ॥

(४)

पवमान सूक्त

(अथर्ववेद, पैप्पलादसंहिता, ९ । २३)

स्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
। सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ १ ॥

सहस्रों नेत्रवाला, सैकड़ों धाराओंमें बहनेवाला
ृषियोंसे पवित्र किया गया है, उस सहस्रधार सोमसे
मुझे पवित्र करे ॥ १ ॥

जिससे अन्तरिक्ष पवित्र हुआ है, वायु जिससे
है, उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे ॥

येन पूते द्यावापृथिवी आपः पूता अथो स्व
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम

पूते अहोरात्रे दिशः पूता उत येन प्रदिशः ।
। सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ४ ॥
ससे रात और दिन, दिशा-प्रदिशाएँ पवित्र हुई हैं,
स्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे ॥ ४ ॥

पूतौ सूर्याचन्द्रमसौ नक्षत्राणि
भूतकृतः सह येन पूताः ।
। सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ५ ॥
ससे सूर्य और चन्द्रमा, नक्षत्र और भौतिक सृष्टि
के पदार्थ पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोमसे
मुझे पवित्र करे ॥ ५ ॥

पूता वेदिरग्नयः परिधयः सह येन पूताः ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ६ ॥
से वेदी, अग्नियाँ और परिधि पवित्र की गयी हैं,
स्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे ॥ ६ ॥

पूतं बर्हिराज्यमथो हविर्येन पूतो
यज्ञो वषट्कारो हुताहुतिः ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ७ ॥
ससे कुशा, आज्य, हवि, यज्ञ और वषट्कार तथा
हुई आहुति पवित्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोमसे
मुझे पवित्र करे ॥ ७ ॥

पूतौ व्रीहियवौ याभ्यां यज्ञो अधिनिर्मितः ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ८ ॥
के द्वारा व्रीहि और जौ (अर्थात् प्राणापान
ए हैं, जिससे यज्ञका निर्माण हुआ है, उस सहस्रधार
वमान मुझे पवित्र करे ॥ ८ ॥

पूता अश्वा गावो अथो पूता अजावयः ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥ ९ ॥
से अश्व, गौ, अजा, अवि [और पुरुषसंज्ञक]
त्र हुए हैं, उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे
॥ ९ ॥

पूता ऋचः सामानि यजुर्ब्राह्मणं सह येन पूतम् ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥१०॥
के द्वारा ऋचाएँ, साम, यजु और ब्राह्मण पवित्र हुए
हस्रधारके द्वारा पवमान मुझे पवित्र करे ॥ १० ॥

पूता अथर्वाङ्गिरसो देवताः सह येन पूताः ।
सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे

येन पूता ऋतवो येनार्तवा
येभ्यः संवत्सरो अधिनिर्मित
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥
जिससे ऋतु तथा ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले
हुए हैं, एवं जिससे संवत्सरका निर्माण हुआ है, उस
सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे ॥ १२ ॥

येन पूता वनस्पतयो वानस्पत्या ओषधयो
वीरुधः सह येन पूत
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा
जिससे वनस्पतियाँ, पुष्पसे फल देनेवाले वृक्ष,
और लताएँ पवित्र हुई हैं, उस सहस्रधार सोमसे प
पवित्र करे ॥ १३ ॥

येन पूता गन्धर्वाप्सरसः सर्पपुण्यजनाः
सह येन पूत
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा
जिससे गन्धर्व और अप्सराएँ, सर्प और पुण्य
हैं, उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे ॥

येन पूताः पर्वता हिमवन्तो वैश्वानराः
परिभुवः सह येन पूत
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा
जिससे हिममण्डित पर्वत, वैश्वानर आदि
पवित्र हुई हैं, उस सहस्रधार सोमसे पवमान म
करे ॥ १५ ॥

येन पूता नद्यः सिन्धवः समुद्राः सह येन पूत
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा
जिससे नदियाँ, सिंधु आदि महानद और समु
हुए हैं, उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे

येन पूता विश्वेदेवाः परमेष्ठी प्रजापति
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा
जिससे विश्वेदेव और परमेष्ठी प्रजापति पवित्र
उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे ॥ १७

येन पूतः प्रजापतिर्लोकं विश्वं भूतं स्वराजभ
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु मा
[illegible]

पूतः स्तनयित्नुरपामुत्सः प्रजापतिः ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥१९॥

से विद्युत् और जलोंके आश्रय प्रजापालक मेघ ए हैं, उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र ९ ॥

पूतमृतं सत्यं तपो दीक्षां पूतयते ।
सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥२०॥

जिससे ऋत और सत्य पवित्र हुए हैं, जो दीक्षाको पवित्र करता है, उस सहस्रधार सोमसे मुझे पवित्र करे ॥ २० ॥

येन पूतमिदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्

जिससे जो कुछ भूत और भविष्य है, सब हुआ है, उस सहस्रधार सोमसे पवमान मुझे पवित्र करे

(५)
दीर्घ आयु

[अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा ६ । १८

मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
मायमग्निः सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

द्गण, पूषा, बृहस्पति और यह अग्नि मुझे प्रजा और ंचें, और मेरी आयुकी वृद्धि करें ॥ १ ॥

मा सिञ्चन्त्वादित्याः सं मा सिञ्चन्त्वग्नयः ।
ः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ २ ॥

देत्य, अग्नि और इन्द्र मुझे प्रजा और धनसे सींचें, दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ २ ॥

मा सिञ्चन्त्वरुषः समर्को ऋषयश्च ये ।
समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ ३ ॥

ग्नकी ज्वालाएँ, प्राण, ऋषिगण और पूषा मुझे प्रजा से सींचें, और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ३ ॥

ा सिञ्चन्तु गन्धर्वाप्सरसः सं मा सिञ्चन्तु देवताः ।
ः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ ४ ॥

र्व एवं अप्सराएँ, देवता और भग मुझे प्रजा और चें, और दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ४ ॥

मा सिञ्चतु पृथिवी सं मा सिञ्चन्तु या दिवः ।
तरिक्षं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ ५ ॥

पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष मुझे प्रजा औ सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ५ ॥

सं मा सिञ्चन्तु प्रदिशः सं मा सिञ्चन्तु या दिश
आशाः समस्मान् सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन
दीर्घमायुः कृणोतु मे

दिशाः प्रदिशाएँ और ऊपर-नीचेके प्रदेश और धनसे सींचें तथा मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥

सं मा सिञ्चन्तु कृषयः सं मा सिञ्चन्त्वोषधी
सोमः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन
दीर्घमायुः कृणोतु मे

कृषिसे उत्पन्न धान्य, ओषधियाँ और सोम और धनसे सम्पन्न करें तथा दीर्घ आयु दें ॥ ७ ॥

सं मा सिञ्चन्तु नद्यः सं मा सिञ्चन्तु सिन्धव
समुद्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन
दीर्घमायुः कृणोतु मे

नदी, सिंधु (नद) और समुद्र मुझे प्रजा औ सम्पन्न करें । वे मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ८ ॥

सं मा सिञ्चन्त्वापः सं मा सिञ्चन्तु कृष्टय
सत्यं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन
दीर्घमायुः कृणोतु मे

जल और कृष्ट ओषधियाँ तथा सत्य हम सबको धनसे युक्त करें । वे हमें दीर्घ आयु प्रदान करें ॥

ऋग्वेद

ग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव। (१। ९४। ४)
श्वर! हम तेरे मित्रभावमें दुखी और विनष्ट न हों।

कं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (१। १६४। ४६)
एक प्रभुको विद्वान् लोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं।

को विश्वस्य भुवनस्य राजा। (६। ३६। ४)
सब लोकोंका एकमात्र स्वामी है।

स्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। (१। १६४। ३९)
उस ब्रह्मको नहीं जानता, वह वेदसे क्या करेगा।

ङ्गच्छध्वं संवदध्वम्। (१०। १९१। २)
कर चलो और मिलकर बोलो।

द्धाः पूता भवत यज्ञियासः। (५। ५१। १)
और पवित्र बनो तथा परोपकारमय जीवनवाले हो।

त्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुः। (४। ३३। ६)
(मर्दो) ने सत्यका ही प्रतिपादन किया है और
आचरण किया है।

स सखा यो न ददाति सख्ये। (१०। ११७। ४)
मित्र ही क्या, जो अपने मित्रको सहायता नहीं देता।

गा ऋतस्य पन्थाः। (८। ३१। १३)
का मार्ग सुखसे गमन करने योग्य, सहल है।

तस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः। (९। ७३। ६)
के मार्गको दुष्कर्मी पार नहीं कर पाते।

स्ति पन्थामनुचरेम। (५। ५१। १५)
कल्याण-मार्गके पथिक हों।

क्षेणावन्तो अमृतं भजन्ते। (१। १२५। ६)
। अमर-पद प्राप्त करते हैं।

नां सख्यमुपसेदिमा वयम्। (१। ८९। २)
देवों (विद्वानों) की मैत्री करें।

नाना हृदयानि वः। (१०। १९१। ४)
तुम्हारे हृदय (मन) एक हों।

१५. विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (१। ११
इस ग्राममें सब नीरोग और हृष्ट-पुष्ट हों।

१६. सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते। (१०। १
देवपदके अभिलाषी सरस्वतीका आह्वान करते

१७. न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। (४। ३३
बिना स्वयं परिश्रम किये देवोंकी मैत्री नहीं मि

१८. उप सर्प मातरं भूमिम्। (१०। १८
मातृभूमिकी सेवा कर।

१९. न देवानामति व्रतं शतात्मा च न जीवति।
(१०। ३
देवताओंके नियमको तोड़कर कोई सौ वर्ष
सकता।

२०. सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्। (९। ७
धर्मात्माको सत्यकी नाव पार लगाती है।

२१. यतेमहि स्वराज्ये। (५। ६
हम स्वराज्यके लिये सदा यत्न करें।

२२. अहमिन्द्रो न पराजिग्ये। (१०।
मैं आत्मा हूँ; मुझे कोई हरा नहीं सकता।

२३. भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि। (१। १२३
हे प्रभो! हम लोगोंमें सुख और कल्याण
सङ्कल्प, ज्ञान और कर्मको धारण कराओ।

२४. उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः। (१०। १०
हे एक विचार और एक प्रकारके ज्ञानसे यु
जनो, उठो! जागो!!

२५. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति
(८। २
देवता यज्ञकर्ता, पुरुषार्थी तथा भक्तको च
आलसीसे प्रेम नहीं करते।

यजुर्वेद

द्रं कर्णेभिः शृणुयाम। (२५। २१)
कानोंसे सदा भद्र—मङ्गलकारी वचन ही सुनें।

३. शं नः कुरु प्रजाभ्यः। (३६
प्रभो! हमारी प्रजाका कल्याण करो।

ात्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । (३६ । १८)
सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखें ।

यं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः । (९ । २३)
अपने देशमें सावधान होकर पुरोहित (नेता),
ानें ।

स्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा । (३१ । १९)
परमात्मामें ही संपूर्ण लोक स्थित हैं ।

स्माकं सन्त्वाशिषः सत्याः । (२ । १०)
री कामनाएँ सच्ची हों ।

हमनृतात्सत्यमुपैमि । (१ । ५)
झूठसे बचकर सत्यको धारण करता हूँ ।

शः श्रीः श्रयतां मयि । (२९ । ४)
और ऐश्वर्य मुझमें हों ।

ुसस्याः कृषीष्कृधि । (४ । १०)
छे सस्यसे युक्त खेती कर ।

मेव विदित्वाति मृत्युमेति । (३१ । १८)
ब्रह्म (प्रभु) को जानकर ही मनुष्य मृत्युको लाँघ

१३. भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम् । (३०
जागना (ज्ञान) ऐश्वर्यप्रद है । सोना (
दरिद्रताका मूल है ।

१४. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । (
मनुष्य इस संसारमें कर्म करता हुआ ही सौ व
इच्छा करे ।

१५. ऋतस्य पथा प्रेत । (७
सत्यके मार्गपर चलो ।

१६. अदीनाः स्याम शरदः शतम् । (३६
हम सौ वर्षोंतक दीनतारहित होकर जीयें ।

१७. पश्येम शरदः शतम् । (३६
हम सौ वर्षोंतक देखते रहें ।

१८. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु । (६
मेरा मन उत्तम सङ्कल्पोंवाला हो ।

१९. अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ।
(१९
प्रभुने झूठमें अश्रद्धाको और सत्यमें श्रद्धाको रख

अथर्ववेद

स्य ते भक्तिवांसः स्याम । (६ । ७९ । ३)
प्रभो ! हम तेरे भक्त हों ।

। एष एक एकवृदेक एव । (१३ । ५ । ७)
ईश्वर एक और सचमुच एक ही है ।

ुक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः । (२ । २ । १)
परमेश्वर ही पूजाके योग्य और प्रजाओंमें स्तुत्य है ।

। नो मुञ्चत्वंहसः । (४ । २३ । १)
ईश्वर हमें पापसे मुक्त करे ।

ामेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः । (१० । ८ । ४४)
आत्माको ही जान लेनेपर मनुष्य मृत्युसे नहीं डरता ।

इत् तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः । (९ । १० । १)
उस ब्रह्मको जान लेते हैं, वे मोक्षपद पाते हैं ।

ं श्रुतेन गमेमहि । (१ । १ । ४)
वेदोपदेशसे युक्त हों ।

मन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ।
(७ । ११५ । ४)
यकी कमाई मेरे घरकी शोभा बढ़ावे, पापकी

हे परमात्मा ! मुझे ब्रह्मज्ञानी विद्वानोंमें प्यारा

१०. मा जीवेभ्यः प्रमदः । (८ ।
प्राणियोंकी ओरसे बेपरवाह मत हो ।

११. अयज्ञियो हतवर्चा भवति । (१२ । २
यज्ञहीनका तेज नष्ट हो जाता है ।

१२. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु । (१९ । १
सभी दिशाएँ हमारे लिये हितकारिणी होवें ।

१३. वयं देवानां सुमतौ स्याम । (६ । ४
हम विद्वान् पुरुषोंकी शुभमतिमें (उत्तम
अनुसार) रहें ।

१४. वयं सर्वेषु यशसः स्याम । (६ । ५
हम समस्त जीवोंमें यशस्वी होवें ।

१५. आ रोह तमसो ज्योतिः । (८ ।
अन्धकार (अविद्या) से निकलकर (ऊपर
प्रकाश (ज्ञान) की ओर बढ़ो ।

१६. यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः । (९ । १०

र (मर्द) ! तेरे लिये ऊपर उठना है, न कि नीचे

। नो द्विक्षत कश्चन । (१२ । १ । २४)
े कोई भी द्वेष करनेवाला न हो ।

स्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।
(३ । ३० । ३)
न गति, समान कर्म, समान ज्ञान और समान
ः बनकर परस्पर कल्याणी वाणीसे बोलो ।

। मा प्रापत पाप्मा मोत मृत्युः । (१७ । १ । २९)
पाप और मौत न व्यापे ।

भि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
(६ । ७८ । २)
य दुग्धादि पदार्थोंसे बढ़ें और राज्यसे बढ़ें ।

रिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः । (५ । ३ । ५)
शरीरसे नीरोग हों और उत्तम वीर बनें ।

ोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् ।
(५ । ३० । ७)
त होना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीवका लक्ष्य है ।

ह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
(११ । ७ । १९)
चर्यरूपी तपोबलसे ही विद्वान् लोगोंने मृत्युको
।

तं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
(७ । ५२ । ८)
दाहिने हाथमें कर्म—पुरुषार्थ है और सफलता बायें
रखी हुई है ।

धुमतीं वाचमुदेयम् । (१६ । २ । २)
मैं मीठी वाणी बोलूँ ।

२७. माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । (१२ ।
भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमिका

२८. सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम । (६ । ११
हमलोग ऋणरहित होकर परलोकके सभी मार्गों

२९. वाचा वदामि मधुमद् । (१ । ३
मैं वाणीसे माधुर्ययुक्त ही बोलता हूँ ।

३०. ज्योगेव दृशेम सूर्यम् । (१ । ३
हम सूर्यको बहुत कालतक देखते रहें ।

३१. मा पुरा जरसो मृथाः । (५ । ३०
हे मनुष्य ! तू बुढ़ापेसे पहले मत मर ।

३२. शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
(३ । २
सैकड़ों हाथोंसे इकट्ठा करो और हजारों हाथोंसे

३३. परैतु मृत्युरमृतं न एतु । (१८ । ३
मृत्यु हमसे दूर हो और अमृत-पद हमें प्राप्त

३४. सर्वमेव शमस्तु नः । (१९ । ९
हमारे लिये सब कुछ कल्याणकारी हो ।

३५. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
(११ ।
ब्रह्मचर्यरूप तपके द्वारा राजा राष्ट्रका संरक्षण क

३६. शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु । (१९ । ९
मुझे कल्याणकी प्राप्ति हो और किसी प्रकार
न हो ।

३७. शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् । (६ । ७
मेरे लिये अन्न कल्याणकारी और स्वादिष्ट हो

उपनिषदोंकी सूक्तियाँ

चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः ।
षु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥
(केन० २ । ५)

जीवनमें यदि परब्रह्मको जान लिया, तब तो कुशल
[illegible]

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुया
(कठ० १ । २

जिस मनुष्यने बुरे आचरणोंका त्याग नहीं कर
जिसका मन शान्त नहीं है, जिसका चित्त एका
तथा जिसने मन-बुद्धिको वशमें नहीं कर लिया है

ा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
थ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥
(कठ० २ । ६ । १४)

ा इसके हृदयमें स्थित सारी कामनाएँ नष्ट हो जाती यह मरणधर्मा मानव अमर हो जाता है और यहीं अनुभव करता है ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशय
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराव
(मुण्डक० २ ।

कार्य-कारणरूप परात्पर ब्रह्मका साक्षात्कार हे हृदयकी अविद्यारूप ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त सं कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते

श्रीवाल्मीकीय रामायणकी सूक्तियाँ

त्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाऽऽश्रितः ।
त्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥
तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।
ाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥
(अयोध्या० १०९ । १३-१४)

ात्में सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्यके ही आधारपर स्थिति रहती है । सत्य ही सबकी जड़ है । सत्यसे दूसरी कोई उत्तम गति नहीं है ।

न, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद—इन सबका सत्य है; इसलिये सबको सत्यपरायण होना

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्त
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरग
(किष्किन्धा० ६

मनको विषादग्रस्त नहीं बनाना चाहिये; विषा बड़ा दोष है । जैसे क्रोधमें भरा हुआ साँप बालक खाता है, वैसे ही विषाद पुरुषका नाश कर डालता

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मन
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति
(लङ्का०

जो पुरुष निरुत्साह,दीन और शोकाकुल रहता है, काम बिगड़ जाते हैं और वह बहुत बड़ी विपत्तिमें पड़ ज

महाभारतकी सूक्तियाँ

ां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च ।
न् सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ॥
(वन० १ । २६)

नके विद्या, कुल और कर्म— ये तीनों शुद्ध हों, उन रुषोंकी सेवामें रहे । उनके साथ बैठना, उठना स्वाध्यायसे भी श्रेष्ठ है ।

ृतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात् ।
र्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः ॥
(वन० १२ । ८)

मनुष्योंके दर्शनसे, स्पर्शसे, उनके साथ वार्तालाप था एक आसनपर बैठनेसे धार्मिक आचार नष्ट हो और मनुष्य किसी कार्यमें सफल नहीं हो पाते ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित
तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधी
(वन० ३१३

धर्म ही आहत (परित्यक्त) होनेपर मनुष्यक है और वही रक्षित (पालित) होनेपर रक्षा करता है धर्मका त्याग नहीं करता—इस भयसे कि कहीं मारा किया) हुआ धर्म हमारा ही वध न कर डाले ।

धर्मेणैवर्षयस्तीर्णा धर्मे लोकाः प्रतिष्ठित
धर्मेण देवता ववृधुर्धर्मे चार्थः समाहित

धर्मके द्वारा ऋषिगण इस भवसागरसे पार ह सम्पूर्ण लोक धर्मके आधारपर ही टिके हुए हैं; ध देवता बढ़े हैं और धन भी धर्मके ही आश्रित है ।

श्रीमद्भागवतकी सूक्तियाँ

ामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
ेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

मोक्षकी ही कामना रखता है, सबको तीव्र भक्तियोग परम पुरुष भगवान् श्रीहरिकी ही आराधना करनी च

अभिमानी और भेददर्शी है, जिसने सम्पूर्ण प्राणियों-
ेर बाँध रक्खा है, अतएव जो दूसरेके शरीरमें स्थित
तर्यामी परमात्मासे द्वेष रखता है, उसके मनको
न्ति नहीं मिलती।

सैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन्।
रो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥

(३।२९।३४)

सब भूतप्राणियोंमें सर्वेश्वर भगवान्ने ही अपने
अंशभूत जीवके रूपमें प्रवेश किया है—यों मा
प्राणियोंको अत्यन्त आदर देते हुए सबको मन-ही-म
करना चाहिये।

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वर
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत

(७।...)

समस्त भूत-प्राणियोंमें सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि ि
हैं, यों अपने मनमें समझते हुए उन सबको इ
वस्तुएँ देकर भलीभाँति सम्मानित करना चाहिये।

स्तवन

हैम चूड़पर स्वर्ण रश्मि प्रभ
ज्योति मुकुट जाज्वल्य शीषपर,
शत सूर्योज्ज्वल कुवलय कोमल
स्फुरत् किरण मंडित मुख सुंदर!

नयन अकूल क्षमा गरिमामय
ज्योति प्रीतिके अतल सरोवर,
अधर प्रवालोंपर चिर गुंजित
मौन मधुर स्मितिके मुरली स्वर!

सहृदय वक्ष विशाल सिन्धुवत्
विश्व भार भृत अंस धुरंधर
करुणालंवित वाहु, वरद कर,
मृत्यु कलुष हर चारु धनुष शर!

बढ़ते युग-युग चरण, छोड़ निज
अक्षय चिह्न समयके पथपर,
विश्व हृदय शतदल पर स्थित तुम
हृदयेश्वर, जगदीश, परात्पर!

सृजन नृत्य उल्लास निरत नित
चिर त्रिभंगमय, रहस रतीश्वर,
अभय इङ्गितोंसे जीवनकी
शाश्वत शोभा पड़ती झर झर!

जय पुरुषोत्तम, प्रणत प्राण मन
नयनोंमें भर रूप मनोहर,
चिर श्रद्धा विश्वास भक्तिका
मंगलमय, निज जनको दो वर!!

—श्रीसुमित्रानन्दन पंत

हिंदू-संस्कृति

भगवत्पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य प्रभु श्रीज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महार
ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रमका प्रसाद)

सूर्यमथाम्बिकां हरिहरौ रूपाणि पञ्चावहन्
यं सगुणः कृतार्थयति सन्मार्गानुगान् साधकान् ।
बुद्धेर्वरतेजसः क्रमगताच्छक्तेश्चितः सत्सतः
ादवधार्यते स भगवान् पञ्चात्मको नम्यते ॥

-संस्कृतिके स्वरूप और उसकी विशेषताओं आदि-
र करनेके पूर्व यह निश्चय कर लेना आवश्यक है कि
है और संस्कृतिका क्या अर्थ होता है । हिंदू कौन
निश्चय करनेके लिये सर्वप्रथम जातिनिर्णयका आधार
जाना चाहिये ।

जातिनिर्णयका आधार

ान्यतया जातिनिर्णयके दो आधार प्रतीत होते हैं—
और 'धर्मग्रन्थ' । कुछ जातियोंके नाम देशोंके
ाधारपर प्रचलित हैं—जैसे जर्मन, फ्रेंच, बंगाली,
ादि । और कुछ जातियोंके नाम धर्मग्रन्थोंके आधार-
से बाइबिलको माननेवाली ईसाई जाति और कुरानको
ी मुस्लिम जा

ार करनेपर देशके आधारपर जातिका निर्णय पूर्ण
हीं होता । जैसे बंगालके निवासी मुस्लिम भी बंगाली
हिंदू भी बंगाली हैं; किंतु दोनों बंगाली होते हुए
क जातिके नहीं माने जाते । उनकी जातिका निर्णय
र्मग्रन्थोंके आधारपर ही होता है । कुरानको माननेवाले
और वेदादि शास्त्रोंको माननेवाले हिंदू जातिके माने
इससे स्पष्ट होता है कि स्थान या देशके नामके
जातिनिर्णयका कोई मूल्य नहीं होता; अन्ततः
के (या शास्त्रके) आधारपर ही जातिनिर्णय
।

ई मनुष्य चाहे कोट-पेंट पहनकर मांस-मदिरा सेवन
आ विलायतमें रहे या धोती-कुरता पहनकर शाका-
र भारतमें रहे; किंतु यदि वह बाइबिलको मानता
ाई ही कहा जायगा और यदि कुरानको मानता है
म जातिमें ही उसकी गणना होगी । इसमे स्पष्ट है

भूषा, खान-पान आदिसे किसीकी जातिका निर्णय नहं
जा सकता । यह अवश्य है कि जिस देशमें जिस
प्रादुर्भाव होता है, उस देशको वह जाति अपना देश
है; किंतु स्पष्ट है कि जातियोंकी भिन्नताका कारण देश
न होकर शास्त्रभेद ही है ।

किसी एक जातिके लोगोंके भिन्न-भिन्न देश
जानेके कारण जल-वायु आदिकी भिन्नतासे उनके व
खान-पानादिमें अवश्य अन्तर पड़ जाता है और देशके
उनका नाम भी भिन्न हो जाता है; किंतु जबतक वे
धर्मशास्त्रको मानते हैं, तबतक एक ही जातिके क
या एक ही जातिकी विभिन्न उपजातियोंमें उनकी गण
है । जैसे देश या प्रान्तके आधारपर ईसाई जातिके
जर्मन, फ्रेंच, इंगलिश, अमेरिकन आदि नामोंसे उ
जातिके लोग ही बंगाली, पंजाबी, गुजराती, मराठ
विभिन्न नामोंसे कहे जाते हैं । इसलिये जातिनिर्णयमें
ही प्रधानता सिद्ध होती है ।

माना जाता है कि पहले एक ही 'आर्य' जाति
वही विभिन्न देशोंमें बसकर विभिन्न जातियोंमें प
गयी । किंतु यदि विभिन्न देशोंमें बसे हुए आर्यलोग
शास्त्रोंको बराबर मानते रहते तो दूर-दूर देशोंमें
भी और जल-वायु आदिके कारण वेश-भूषा, खान-पान
भिन्नता रहते हुए भी वे एक ही 'आर्य' या 'हिंदू'
कहे जाते । वेदादि शास्त्रोंसे भिन्न बाइबिल और
अपने धर्मग्रन्थ माननेके कारण ही ईसाई और मुस्लि
जातियोंकी हिंदू-जातिसे भिन्न स्थिति है । इसलिये
निर्णयका मुख्य आधार धर्मशास्त्र या धर्मग्रन्थ ह
होता है ।

हिंदू कौन ?

जातिनिर्णयके उक्त आधारसे स्पष्ट ही है कि
शास्त्रोंको माननेवाली जाति ही हिंदू-जाति है । इ
वेदादि हिंदू-शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ही हिंदू

स्था, शासन-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था आदिके द्वारा
ोवनके समस्त क्षेत्रोंमें लौकिक-पारलौकिक अभ्युदयपर
रखनेवाला ही हिंदू कहा जा सकता है। वैदिक
ानुसार मानव-जीवनके समस्त क्षेत्रोंकी विभिन्न
ओंका सक्रिय रूप वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्थामें प्राप्त होता
लिये वर्णाश्रमधर्मानुकूल आचार-विचारके द्वारा जीवन
करनेवाला ही हिंदू माना जा सकता है। अथवा
क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चार वर्णोंमें उत्पन्न होकर
ोंको अपना धर्मग्रन्थ माननेवाला ही हिंदू है।

संस्कृति-शब्दार्थ

म्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुमें भूषण-अर्थमें सुट्का
रके 'क्तिन्' प्रत्यय करनेसे 'संस्कृति' शब्द बनता है।
ार्थ होता है—भूषणभूत सम्यक् कृति। इसलिये
ा सम्यक् कृति या चेष्टा ही संस्कृति कही जा सकती
प्रकार भूषणभूत सम्यक् कृतियोंका सम्पूर्ण क्षेत्र
ा क्षेत्र है।

-पक्षी, कीट-पतंगादि भोगयोनियोंमें जीवकी चेष्टाएँ
क ही हुआ करती हैं। उनमें सम्यक्-असम्यक्का
किया जा सकता। मनुष्ययोनिमें ही जीव कर्म करनेमें
ाना गया है। मनुष्य सम्यक्-असम्यक् दोनों प्रकारकी
रनेमें समर्थ होता है। इसलिये सम्यक् चेष्टा या
संस्कृतिका प्रयोग मनुष्यके सम्बन्धमें ही किया जा सकता
लिये मनुष्यकी भूषणभूत सम्यक् कृति या चेष्टा ही
है।

चेष्टाओंके द्वारा मनुष्य अपने जीवनके समस्त क्षेत्रोंमें
रता हुआ सुख-शान्ति प्राप्त करे, वे चेष्टाएँ ही उसके
गभूत सम्यक् चेष्टाएँ कही जा सकती हैं। अथवा
आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक उन्नतिके
चेष्टाएँ ही उसकी भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएँ हैं। या
वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक
ी क्षेत्रोंमें लौकिक-पारलौकिक अभ्युदयके अनुकूल
मन-बुद्धि, चित्ताहङ्कारकी चेष्टा ही उसकी भूषणभूत
ष्टा या संस्कृति है। (देहेन्द्रियकी समस्त चेष्टाएँ
के क्षेत्रमें और मन-बुद्धि-चित्ताहङ्कारकी चेष्टाएँ
ः क्षेत्रके अन्तर्गत कही जाती हैं; इसलिये) संक्षेपमें
कता है कि मनुष्यके लौकिक-पारलौकिक सर्वाभ्युदयके

संस्कृतिका आधार

ऊपर 'संस्कृति' शब्दकी व्याख्या कर दी ग
उससे स्पष्ट है कि कोई जाति अपनी लौकिक-पा
उन्नतिका मार्ग जिस आधारपर निश्चय करती है, उसीके
पर उसकी संस्कृतिका निर्णय हो सकता है।

किसी जातिके लिये लौकिक-पारलौकिक ि
आधार उस जातिका दर्शन-शास्त्र होता है। दर्श
सत्यासत्यविवेचनात्मक, ज्ञानपरक होता है। मैं कौन हूँ
आया हूँ, कहाँ जाऊँगा—इस नाना नाम-रूपमय जगत्
स्वरूप क्या है, इसका कर्ता कौन है, वह जड है य
और परम सुख-शान्तिका क्या स्वरूप है—आदिका
दर्शन-शास्त्रसे होता है। कोई जाति अपने दर्शन
अनुसार इहलोक और परलोकका जो स्वरूप निर्णय क
उसीके अनुरूप लौकिक, पारलौकिक उन्नतिका माग
उस जातिका आचारशास्त्र होता है। आचार-शास्त्र
शास्त्र विधि-निषेधात्मक, कर्तव्याकर्तव्य-सम्बन्धी आज्ञा
कर्मपरक होता है।

किसी जातिका धर्मशास्त्र अपने दर्शनशा
पादित लौकिक-पारलौकिक अभ्युदयमें सहायक ि
या आचार-विचारोंका विधान करता है, वे कर्म ही उस
लिये कर्तव्य होते हैं और उन्हींके द्वारा वह जाति
लौकिक-पारलौकिक उन्नति मानती है। इससे स
किसी जातिके धर्मशास्त्रद्वारा प्रतिपादित आचार-वि
उस जातिकी संस्कृतिका स्वरूप होता है। अतएव सं
आधार शास्त्र या धर्मग्रन्थ ही है।

हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप

हिंदू कौन है, संस्कृतिका क्या अर्थ होता है और
क्या आधार है—यह निश्चय हो जानेके बाद स्पष्ट ह
वेदादिशास्त्रसम्मत आचार-विचार ही हिंदू संस्कृतिका
है मनुष्यका सम्पूर्ण जीवन आचार-विचारमय ही हो
इसलिये संस्कृतिके क्षेत्रमें मानव-जीवनके समस्त क्षेत्र
हैं। अतएव मानव-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें वेदादि-शास
आचार-विचार ही हिंदू-संस्कृति है। जीवनके समस्त
वेदादि-शास्त्रानुकूल आचार-विचारकी व्यवस्थाका स
वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्थामें प्राप्त होता है। इसलिये वर्णाश्र
आचार-विचार ही हिंदू-संस्कृतिका प्रत्यक्षरूप है। और वै

श्रीराधाकृष्ण—दर्पण-दर्शन



त्रशैली १८ वीं शती] [भारतीय पुरातत्त्व-विभागके

श्रीराधाकृष्ण — मुरली-लीला



चित्रशैली १८ वीं शती] [भारतीय पुरातत्त्व-विभागके

भूषा, उपासना आदि-सम्बन्धी समस्त हलचलें या चार वर्णाश्रमधर्मानुकूल हों—यही हिंदू-संस्कृतिका ।

हिंदू-संस्कृतिकी विशेषताएँ

र इस बातपर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है कि ते अपने दर्शनशास्त्रके अनुसार लौकिक, पारलौकिक -विवेचनद्वारा परम सुख-शान्ति, मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म का जो स्वरूप निर्णय करती है, उसकी प्राप्तिमें सहायक, पारलौकिक अभ्युदयप्रद, धर्मशास्त्र-प्रतिपादित, सम्यक् भूषणभूत चेष्टाएँ ही उस जातिकी संस्कृति हैं। इसलिये किसी जातिकी संस्कृतिकी सबसे बड़ी और उसकी समस्त विशेषताओंका मूल उस जातिका स्त्र होता है।

दूदर्शन या वैदिक दर्शन-शास्त्र ही हिंदू-संस्कृतिकी वेशेषताओंके मूलमें स्थित है। नानात्वमय समस्त पञ्चके प्रत्यक्ष बहुत्ववादसे अलक्ष्य, अगोचर, प्रत्यक्ष-से परे, निर्गुण-निराकार एक-तत्त्ववाद, अद्वैत-सिद्धान्त-ष्ठा ही हिंदू-दर्शनकी मौलिक विशेषता है। साकार-का पूर्ण समन्वय हिंदू-दर्शनोंमें ही पाया जाता है। रण है कि हिंदू-संस्कृतिमें व्यावहारिक उत्तमता और क श्रेष्ठता—दोनों पूर्णताकी सीमापर प्रतिष्ठित हैं। वहारमें प्रतिपल व्यवहार करते हुए भी हिंदू द्वैत-प्रपञ्चसे अद्वैतस्वरूप-निष्ठा—जीवन्मुक्तिकी अवस्था प्राप्त समर्थ होता है। मनुष्यको मानव-विकासके उच्चतम र पहुँचाकर जीवन्मुक्तिकी अवस्थामें प्रतिष्ठित करा देना -संस्कृतिकी सबसे बड़ी विशेषता है।

द्वैतनिष्ठा या जीवन्मुक्तिकी अवस्थाको मानव-जीवनकी अवस्था इसलिये माना गया है कि उस स्थितिमें या प्राप्तिके मार्गमें ही मनुष्य आधिभौतिक, आधिदैविक ाध्यात्मिक क्षेत्रोंमें पूर्ण विकासको प्राप्त हो जाता है। त्मिक क्षेत्रमें वह निर्गुण निरञ्जन परमतत्त्वसे एकत्व प्राप्त ा है; और आधिदैविक एवं आधिभौतिक क्षेत्रमें उसके छ अप्राप्य नहीं रह जाता, इच्छामात्रसे वह सब कुछ समर्थ हो जाता है—

> यं यं लोकं मनसा संविभाति
> विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
> तं तं लोकं जयते तांश्च कामान्……

केवल विचारमात्रसे सब कुछ कर सकनेकी सा अधिक सामर्थ्य और हो ही क्या सकता है। इसलिये निष्ठा ही मानव-जीवनके विकासकी श्रेष्ठतम अवस्था मानी है और इसीकी प्राप्ति हिंदू-संस्कृतिका लक्ष्य है। म पूर्ण स्वातन्त्र्यमय अनन्त ज्ञानके क्षेत्रमें समासीनकर परमा अनुभव करा देनेकी सामर्थ्य हिंदू-संस्कृतिमें ही है। इ हिंदू-संस्कृति सर्वसामर्थ्यमय सर्वाङ्गीण पूर्ण संस्कृति है

हिंदू-संस्कृति सर्वकल्याणकारिणी है। इसके द्वारा न अपने अनुयायियोंके लिये ही, अपितु समस्त ब्रह्माण्डके विश्वपोषक मङ्गलकारी प्रभाव उत्पन्न होता है। हिंदू-संस्क इस विश्वपोषकताका रहस्य हृदयङ्गम हो जानेपर उसकी विशेषताओंको समझनेके लिये एक आधार प्राप्त हो जा इसलिये इसे स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

जिस प्रकार सरोवरके जलमें पत्थर फेंकनेसे या प्रकारकी हलचल करनेसे उसमें उत्पन्न हुई तरङ्गें सरोवरमें फैलकर सम्पूर्ण जल-राशिको प्रभावित करती हैं प्रकार समस्त जीवों और मनुष्योंकी देहेन्द्रिय आदिकी हलचलोंसे वायु-मण्डलमें स्पन्दन उत्पन्न होते हैं—जो सूक्ष्मरूपसे समस्त वायुमण्डलमें फैलकर सम्पूर्ण ब्र व्याप्त हो जाते हैं और सम्पूर्ण नभोमण्डल, तेजो पृथ्वीमण्डल एवं सम्पूर्ण जलराशिपर अपना प्रभाव डा इस प्रकार प्राणीके प्रत्येक कर्मका प्रभाव कर्तातक ही न रहकर समस्त ब्रह्माण्डपर पड़ता है। किंतु किस किस कर्मका प्रभाव सृष्टिके अनुकूल और किस कर्मका सृष्टिके प्रतिकूल पड़ता है—इसका पूर्णरूपसे निर्ण मानवी बुद्धिके परे है। मनुष्य अल्पज्ञ है, वह समस्त परिचित नहीं है और अनन्त प्राणियोंकी अनन्त क भी परिचित नहीं है; इसलिये किस प्राणीके किस कर्मका प्रकृतिके किस स्तरमें कैसा पड़ता है, यह निर्णय करना म सामर्थ्यके बाहर है। इसका निर्णय वही कर सकता है, हो। जिसने सृष्टिकी रचना की है, जिसने समस्त प्रा बनाया है और जिसने समस्त कर्मराशि एवं कर्मफल सृजन किया है, वही सर्वज्ञ परमात्मा कर्मके सूक्ष्म प्रभावोंका पूर्ण या प्रकाश कर सकता है। इसलिये प अज्ञरूप निःश्वासभूत सनातन वेद जिन कर्मोंको शुभ या प्रतिपादन करते हैं, उनका प्रभाव पूर्णतया सृष्टि-पोषक मय एवं सर्वकल्याणकारी होता है और जिन कर्म

ही अमङ्गलकारी होता है—इसमें सन्देह नहीं। इससे क वेद-शास्त्रसम्मत समस्त शुभकर्म कर्ताके लिये सर्व-याणप्रद फलोत्पादन करते हुए समस्त ब्रह्माण्डपर प्रभाव डालते हैं; इसीलिये हिंदू-संस्कृति कारिणी मानी गयी है।

संस्कृतिके विभिन्न अङ्गोंपर दृष्टिपात करनेसे पद-की महती विशेषताएँ प्रत्यक्ष होती हैं। हिंदू-संस्कृति-श्रमधर्मव्यवस्थाकी उत्कृष्टता, सर्वाङ्गीण पूर्णता एवं के प्रतिपादनमें अनन्त-रहस्यमय कोटिशः विशाल ा जा सकते हैं। यह चार वर्णों और चार आश्रमोंकी व्यवस्था मनुष्य-योनिमें जीवकी क्रमोन्नतिका सर्वोत्कृष्ट इसके अनुसार चलकर हिंदू व्यक्तिगत एवं सामाजिक नव-विकासकी पूर्णताके उत्कृष्ट शिखरपर समासीन ामर्थ्य प्राप्त करता है। मनुष्यको अल्प शक्ति और मर्थ्यसे अनन्त शक्ति और अपरिमित सामर्थ्यकी ओर, वभावसे ईशभाव या ब्रह्मभावकी ओर स्वाभाविक-सर करनेवाली इस वर्णाश्रम-व्यवस्था या हिंदू-संस्कृति-बात रहस्यपूर्ण विशेषतामय है।

चर्याश्रममें गुरु-शिष्यके व्यवहारकी उत्कृष्टता और त-पालनद्वारा ऊर्ध्वरेतस्त्वकी प्राप्ति हिंदू-संस्कृतिकी वशेषताएँ हैं। गृहस्थाश्रममें पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भ्राता आदिके परस्पर आदर्श व्यवहार; पत्नीके लिये धर्म, सतीत्वकी श्रेष्ठता और पतिके लिये पत्नीका गृहलक्ष्मी-स्वरूप तथा पुत्रके लिये 'मातृदेवो भव, भव'का उपदेश आदि ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण ृति अन्य संस्कृतियोंके समक्ष सदा ही उज्ज्वल-मुख तभाल रही है॥

स्थाश्रमके पश्चात् तृतीय अवस्थामें अधिकारानुसार आश्रम और चतुर्थ अवस्थामें संन्यास आश्रमकी है। गृहस्थाश्रममें नाना प्रकारके व्यवहार सम्पादन मनुष्यकी बुद्धि प्रायः सांसारिक अधिक हो जाती है; जगत्प्रपञ्चसे हटकर त्याग, वैराग्य और तपके सहारे ने बुद्धि-कल्मषको क्रमशः हटाकर अपना मन परमानन्द-मतत्त्व या ईश्वरतत्त्वमें नियोजित करता है। इस प्रकार व्यवस्था प्रवृत्ति-धर्म और निवृत्ति-धर्म दोनोंसे पूर्ण है।

प्रस्थाश्रममें निवृत्ति सिखलायी जाती है और संन्यास-निवृत्ति करायी जाती है। इस प्रकार हिंदू-संस्कृतिमें व्यावहारिक और पारमार्थिक सामञ्जस्यकी पूर्ण शक्ति है कारण हिंदू लौकिक और पारलौकिक दोनों सुख-शा[illegible] करनेमें समर्थ होता है।

हिंदुओंकी उपासना-शैलीकी पूर्णता हिंदू-संस्कृति बड़ी विशेषता है। अधिकारानुसार मन्त्रयोग, हठयो[illegible] योग, राजयोग एवं भक्तिकी प्रक्रियाएँ मनुष्यको शक्ति आगार (सिद्धिसम्पन्न) बनाकर उसे अनन्तानन्दके सिंहासनपर समासीन करती हैं। इसके अतिरिक्त जगत्कार्यमें लगे हुए लोगोंके लिये हिंदू-संस्कृति निष्[illegible] योगका उपदेश देकर उनके सम्पूर्ण कार्यक्षेत्रको ही [illegible] साधन बना देती है। और उनसे भगवदर्पणबुद्धिपूर्व[illegible] कराते हुए उनके लिये लौकिक, पारलौकिक सर्वोन्नति प्रशस्त करती है। इसके अतिरिक्त यज्ञ, महायज्ञों एवं [illegible] द्वारा उपासना करके स्थूल जगत्के नियामक सूक्ष्म दैवी पदाधिकारी विभिन्न देवी-देवताओंको प्रसन्न करके हिं[illegible] वैयक्तिक, सामाजिक एवं विश्वकल्याणके लिये दैवी [illegible] करनेमें समर्थ होता है। यह हिंदू-संस्कृतिकी ही विशे[illegible]

सामाजिक सर्वोन्नतिके लिये हिंदू-संस्कृतिमें [illegible] गुणानुसारी कर्मोंके आधारपर ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और इन चार वर्णोंकी व्यवस्था है। इसके मूलमें हिंदू सं[illegible] बहुत बड़ी विशेषता, जन्मान्तरवादकी मान्यता है। इस जीव प्रधानरूपसे जो कार्य करता है, उसके संस्कार चित्तमें अङ्कित हो जाते हैं। उन्हीं संस्कारोंको ले अग्रिम जन्ममें उन्हीं संस्कारोंके अनुरूप शरीर धार[illegible] है और उन संस्कारोंके अनुसार ही उसकी आगामी [illegible] स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसीलिये मीमांसाका सिद्धा[illegible] 'कर्मबीजं संस्कारः' और 'तन्निमित्ता सृष्टिः।' अर्थात् ही कर्मका बीज है और वही सृष्टिका कारण है। औ[illegible] ही संस्कारोंका धाम है। हिंदू-संस्कृतिमें जीवके [illegible] निर्णय उसके जन्मके आधारपर किया जाता है। [illegible] या वर्णमें किसी जीवका जन्म ही इस बातका प्रमा[illegible] उसके संस्कार उसी वर्ण या जातिके संस्कारोंके अनु[illegible] इसलिये उसके पूर्व-संस्कारोंका निर्णय जन्मसे [illegible]

द्वारा उसमें विशिष्ट संस्कारोंका अतिशयाधान करते । उसी जातिके कर्मोंमें नियोजितकर हिंदू-संस्कृति के राजमार्गपर आगे बढ़ाती है । यही जन्मना वर्ण- का रहस्य है ।

र किसी मनुष्यको उसके स्वाभाविक संस्कारोंसे भिन्न ले कर्मोंमें लगाया जाय तो उसे समझने और करनेमें शेष मानसिक और शारीरिक परिश्रम करना पड़ेगा परिश्रममें उसकी शक्तिका व्यर्थ ह्रास होगा । उसकी शक्ति उसके स्वाभाविक संस्कारोंसे भिन्न नवीन सीखनेमें लग जानेके कारण उसका आध्यात्मिक पतन जायगा । इस प्रकार शक्तिके ह्राससे समाजको बचानेके र अपने प्राकृत संस्कारोंके अनुरूप जगत्कार्यमें लगे ाध्यात्मिक मार्गमें भी सब लोगोंको आगे बढ़नेका रहे—यही उद्देश्य वर्णाश्रम-शृङ्खलाके मूलमें निहित है। ने प्रकारके कार्य समाजमें होते हैं, वे सब करने ही वाहे जो करे । एक नहीं करेगा तो दूसरेको वही करना सलिये यदि सब मनुष्य अपने-अपने प्राकृत संस्कारोंके र्म करें तो स्वाभाविकरूपसे सरलतासे ही सब कार्य ँ और मनुष्यके प्राचीन-नवीन संस्कारोंमें संघर्ष और कर्म-साङ्कर्य न फैले । संस्कारोंके संघर्षसे अन्तः- ल होता है, जिसके कारण मनुष्यका आधिदैविक और क पतन होता है और कर्म-साङ्कर्यसे कर्मकी शक्ति ी है (अर्थात् कर्म बलशाली नहीं होते), जो आधि- ाक्तिके ह्रासका द्योतक है । इस प्रकार समाजके उनके प्राक्तन संस्कारोंसे भिन्न प्रकृतिवाले कर्मोंमें कारण व्यक्ति तथा समाजकी आधिभौतिक, आधि- वं आध्यात्मिक शक्तियोंका ह्रास होता जाता है । इस क्तिका सतत ह्रास ही ग्रीस, रोमन आदि जातियोंके पतनका कारण हुआ और इस प्रकारके ह्राससे हिंदू- चाये रखनेके लिये और उसे सतत शक्तिशाली तथा ठ बनाये रखनेके लक्ष्यसे हिंदू-संस्कृतिमें जीवके संस्कारानुसारी कर्मोंका निश्चय करनेके लिये जन्मना -व्यवस्थाकी स्थापना है और यही हिंदू-जातिके रहनेका एक प्रधान कारण है । प्रत्यक्ष भी अनुभव ा है कि क्षत्रियका बालक जन्मसे ही वीर प्रकृतिका,

वर्ण-व्यवस्थामें सामाजिक कार्योंका स्वाभाविक सन्तु रहता है और अपने वर्गके कार्यमें प्रत्येक पीढ़ी उन्न जाती है । इस प्रकार समाजके प्रत्येक वर्गके लिये स्वाभाविक मार्ग जन्मना वर्णव्यवस्थासे प्रशस्त हो प्रत्येक वर्ण या जातिके लिये निर्धारित शास्त्रोक्त विचारोंका विस्तारसे विश्लेषण करके और उनके सूक्ष्म का उद्घाटन करके यह स्पष्ट किया जा सकता है व्यवस्था सबके लिये समानरूपसे अभ्युन्नतिकारी है औ वर्गको सम्पूर्ण समाजकी उन्नतिके लिये सन्नद्ध रखती

हिंदू-संस्कृतिकी यह विशेपता है कि आधिभौतिक (अर्थात् व्यवहारमें) वर्ण एवं आश्रम-धर्मानुसारी ही मान्यता होते हुए भी किसी भी वर्णका कोई भ भगवान्की प्रगाढ़ रागात्मिका भक्ति करके सर्वत्र अपन दर्शन करता हुआ आध्यात्मिक विकासकी उच्चातिउच्च प्राप्त कर सकता है । यह अवश्य है कि जबतक इष्ट बोध नहीं हो जाता और जबतक सर्वत्र परमात्मदर्शन वृत्ति भगवत्-तत्त्वमें लीन नहीं हो जाती, तबतक वर्णाश्रम अवलम्बन नहीं छोड़ना चाहिये । पूर्ण बोध हुए बिन वर्णाश्रमानुसारी कर्मोंको छोड़ना अपने उन्नतिके प्रशस्त मार्गसे भ्रष्ट होना है । हिंदू-संस्कृतिकी यह विशेषता है अपने अनुयायियोंको क्रमोन्नतिके सांस्कृतिक राजमार्गपर हुई उनके लिये पूर्णोन्नतिका द्वार सदा खोले रखती है

वर्ण या जातिके अपरिवर्तनका सिद्धान्त हिंदू-सं बहुत बड़ी विशेषता है । हिंदू-संस्कृति वर्णसंकरतामें एवं राष्ट्रका विनाश देखती है । हिंदू-संस्कृतिका वैदिक बतलाता है कि (४,३२००० वर्षका एक कलियुग होता है द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण—क्रमशः द्वापर, त्रेता और होते हैं । चारों युग मिलाकर एक महायुग कहलाता ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है; एक मन कालप्रमापक मनु और देवराज इन्द्रादि बड़े-बड़े देवपदा बदल जाते हैं और उनके स्थानपर नये पदाधिकारी उ हैं; ऐसे १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है) वर्तमान प्रारम्भमें वैवस्वत मनु नामक मनु और भृगु, अङ्गिरा ऋषिगण उत्पन्न हुए थे और उनके द्वारा गोत्र तथा प्र सृष्टि हुई थी । उस समयसे लेकर अबतक हिंदू-जातिमें

ाधारपर विवाहादि सम्बन्धद्वारा रज-वीर्यकी शुद्धि ातिके चिरजीवी होनेका प्रधान कारण है।

ाशुद्ध-विवेक और स्पृश्यास्पृश्य-विवेक हिंदू-संस्कृतिकी ी विशेषता है। आत्मा अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, ोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोषसे आवृत है; उसकी अभिव्यक्तिके लिये इन समस्त कोषोंकी पवित्रता करनेके लक्ष्यसे अतिगम्भीर रहस्योंसे परिपूर्ण शुद्धा-स्पृश्यास्पृश्य-विवेककी मान्यता है।

ाके आवागमन-चक्र और जन्मान्तरवादपर विश्वास संस्कृतिकी विशेषता है। इसीके आधारपर परलोक-ाका पथ सरल रहे और उसे कष्ट न हो, इसके लिये नस्तिक श्राद्ध-तर्पणादि कर्मकाण्डकी सुव्यवस्थाके लक्ष्यसे ंस्कृतिमें दायभागकी विशेष व्यवस्था है और इसी वित्र धर्मनिष्ठ पुत्रकी प्राप्ति ही हिंदू-संस्कृतिमें विवाह-ा पवित्र उद्देश्य है।

-पूजा हिंदू-संस्कृतिकी बहुत बड़ी विशेषता है। सिद्धान्त है—

भिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

ी-जातिके महान् गौरवकी मान्यता हिंदू-संस्कृतिकी ाता है। नारीको शक्तिका प्रतीक मानकर उसकी पूजा िंदू-जातिने ही स्वीकार किया है।

। नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

हिंदू-संस्कृतिका ही सिद्धान्त है।

ू-संस्कृतिमें घृणाके लिये स्थान नहीं है। यहाँ तो -

ने चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।

ा सिद्धान्त माना जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ान्त हिंदू-संस्कृतिका ही उदात्त सिद्धान्त है। िवदं ब्रह्म' की दृष्टि हिंदू-संस्कृतिका उच्च आदर्श है। स्कारद्वारा समागत प्राणीको ईश्वर-तुल्य समझकर ातिथ्य संतुष्ट करना हिंदू-संस्कृतिकी ही विशेषता है। ् परद्रव्येषु' और 'मातृवत् परदारेषु' 'लोष्टवत्' की दृष्टि आदर्श हिंदू-संस्कृतिकी ही विशेषता है।

धर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

है। हिंदू-संस्कृतिमें संस्कारोंका इतना महत्त्व है कि अष्टचत्वारिंशत् आदि संस्कारोंके सम्बन्धमें प्रयुक्त 'संस्कार' शब्द 'संस्कृति' का प्रायः समानार्थी माना जैसे विभिन्न प्रकारकी मिट्टीको विधानानुसार संस्- शोधकर उससे लोहा, ताँबा, सोना आदि बहुमूल्य प्राप्त की जाती हैं, उसी प्रकार हिंदू-जाति अपने संस्कारोंद्वारा मनुष्यका मलापनयन करके उसमें दि क्षात्रादि तेजोंका अतिशयाधान करके उन्हें दैवी अवतरणानुकूल बनाती है। षोडश, अष्टचत्वारिंशत् संस्कार हिंदू-संस्कृतिकी महती विशेषताएँ हैं।

हिंदू-संस्कृति सर्वांशमें विशेषतामय है। उसक विशेषताएँ और उनके गम्भीर रहस्योंका उद्घाटन अगणित विशाल ग्रन्थोंकी सामग्री प्रयुक्त होगी। य केवल सूक्ष्मरूपसे दिग्दर्शन ही किया गया है। वह रूपसे कहा जा सकता है कि हिंदू-संस्कृतिकी समस्त और उनके लौकिक-पारलौकिक रहस्य लिखकर व्यक्त नहीं किये जा सकते; क्योंकि हिंदू-संस्कृति सीमा मानव-विकासकी पूर्णताकी उस सीमासे सम्बद्ध भगवती श्रुति—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा स

-कहकर मन, वाणीकी सीमाके परे निर्देश करती में यही कहा जा सकता है कि च [illegible] अपनी महती विशेषताओंके कारण ही हिंदू-संस्कृति [illegible] कारिणी [illegible]

हिंदू-जातिका कर्तव्य

प्रत्येक जातिका स्वाभाविक कर्तव्य है कि [illegible] लौकिक-पारलौकिक [illegible] आधार और [illegible] वर्णाश्रमधर्मानुसारी आचार-विचार [illegible] इसपर पर्याप्त प्रकाश [illegible] लिये [illegible] राजमार्ग [illegible] बुद्धिमत्ता है।

[illegible] संस्कृतियाँ [illegible] हिंदू-संस्कृति [illegible] संस्कृतियाँ [illegible]

हैं; राजमार्गके लिये कभी भटकनेका अवसर नहीं उसका मार्ग प्रशस्त है और निश्चित है कि वह अपने प्राप्ति करेगा । अपने दीनता-दरिद्रता-अल्पज्ञतामय मिटाकर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् अनन्तानन्दमय की प्राप्ति करना ही जीवनका परम लक्ष्य है। जीवनके इस क्ष्यकी प्राप्ति हिंदू-संस्कृतिके प्रशस्त राजमार्ग—वर्णा- नुसारी आचार-विचार—के द्वारा ही हो सकती है। हिंदू-जातिका परम कर्तव्य है कि इतर क्षुद्र संस्कृतियों- चाकचिक्यसे विमोहित न होकर दृढ़तापूर्वक अपनी सहारे अपने महान् लक्ष्यकी प्राप्ति करे। अन्य ोंको हमारे सांस्कृतिक राजमार्गकी पगडंडियाँ इसलिये है कि उनका क्षेत्र मनुष्यके एक जन्मतक ही सीमित । हिंदू-संस्कृतिका क्षेत्र मनुष्यके अनन्त पिछले और की प्राप्तितकके अग्रिम अनिश्चितसंख्याक जन्मोंसे रखता है।

ो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

-यह महान् सिद्धान्त जिस संस्कृतिका हो, उसके अनुयायी संस्कृतियोंसे प्रभावित हों, जो अपने अनुयायियोंको बाद 'कब्र'में सुला देती हैं, तो उनका दुर्भाग्य ही है; ा कहा जा सकता है।

ुओ ! तुम्हारा सांस्कृतिक कोष अक्षय्य है, तुम्हें ोंका द्वार निहारनेकी आवश्यकता नहीं है। अपने घर- खजाना काममें लो। अपने गृहके अनन्त भण्डार- ल्ना कर जब तुम दूसरोंका नेत्र निहारते हो, तब तुम्हारे णकी गरीबी देखकर हमें कष्ट होता है। रईसकी ो अपना गौरव और मर्यादा नष्ट नहीं करनी चाहिये। संस्कृति विश्वकी समस्त संस्कृतियोंमें मूर्धन्य है। कोई किक-पारलौकिक वस्तु नहीं है, जो तुम्हारे लिये अप्राप्य तु जब तुम बहिर्मुख होकर खोंचेवालोंकी टेरमें मुग्ध ो तो अपने गृहके पवित्र भण्डारका रसास्वादन कैसे त हो। जैसे तुमने वर्णाश्रम-धर्मका यथासाध्य दृढ़ता- ालन करते हुए अपनी सर्वोन्नतिके सांस्कृतिक राजमार्ग- तक सुरक्षित रक्खा है और अनेकों बाह्य संस्कृतियों- ा आक्रमणोंको निष्फल बनाया है, उसी प्रकार दृढ़ता

सर्वोन्नतिके राजमार्गमें उड़कर आये हुए कण्टक स उनसे बचते चलो।

वर्तमान समयमें भी हिंदुओंका वही कर्तव्य है, जे उनका कर्तव्य रहा है। प्रत्येक हिंदू अपने वर्णाश्रमके आचार-विचार, खान-पान, वेष-भूषा आदि रक्खे और अ नुसार ईश्वरोपासनामें अवश्य ही कुछ समय लगाये। व धर्मविरोधी, हिंदू-संस्कृतिके घातक, सुधारवाद- वर्तमान भ्रष्टाचारसे अपने समाजको बचानेके लिये रूपमें सुसंघटित होना और इस प्रकारके असत्प्रचारों कम करनेके लिये यथासाध्य उनका खण्डन करना भी समयमें हिंदुओंका कर्तव्य है। शासनसत्ताका प्रभाव पड़ता है; इसलिये अपने देशमें हिंदू-संस्कृतिपोषक, व धर्मानुकूल शासन-व्यवस्था बनानेका प्रयत्न करना भी हिं का कर्तव्य है। आज भारतमें जनतन्त्रात्मक शासन है; इसलिये हिंदू-समाजको अवसर है और उसका इ परम कर्तव्य है कि अपनी संस्कृतिके अनुकूल शास बनाकर अपनी लौकिक-पारलौकिक उन्नतिक निष्कण्टक बना ले।

स्वतन्त्र भारतके शासनाधिकारियोंको चेत

हिंदुस्थानकी राजनैतिक स्वतन्त्रताका तभी क हो सकता है, जब यहाँ हिंदू-जीवनके अनुकूल शासन हो। स्वतन्त्र भारतके शासनाधिकारियोंका यह कर्त विदेशियोंने हिंदूजीवनकी सर्वोन्नतिके मार्ग हिंदू-स विनष्ट करनेके लिये धर्महीन शिक्षा आदिके प्रसा गम्भीर राजनैतिक षड्यन्त्र रचे थे, उन्हें निर्मूल क में विशुद्ध भारतीय संस्कृतिके अनुकूल शासन बनायें। हिंदू-संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है; क्यों या हिंदुस्थान, जैसा कि उसके नामसे ही प्रत्यक्ष है, ही देश है।

अन्य संस्कृतियोंके अनुयायी, अन्य देशोंमें भाँति, अतिथिरूपमें यहाँ आकर रहें तो कोई हानि न स्वतन्त्र भारतके शासनाधिकारियोंका यह कर्तव्य है बातपर ध्यान रक्खें कि हिंदुओंकी सर्वोन्नतिका र राजमार्ग निष्कण्टक बना रहे; क्योंकि किसी जातिकी पारलौकिक सर्वोन्नतिका मार्ग उसकी संस्कृति ही हो

नकी उन्नति करनी है तो हिंदू-जीवनप्रणाली, हिंदू-
या वर्णाश्रमधर्मव्यवस्थाके अनुकूल शासन-व्यवस्था
अत्यावश्यक है। स्वतन्त्र हिंदुस्थानमें भी यदि हिंदू-
के अनुरूप शासन-व्यवस्था न हुई तो हिंदुस्थानकी
क स्वतन्त्रताका अर्थ ही क्या और उसका मूल्य ही
रह जाता है।

दू-संस्कृति या वर्णाश्रम-धर्मव्यवस्थाके अनुकूल शासन-
होनेका यही तात्पर्य है कि राजकीय नियम ऐसे हों
ब्रचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार
में और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चार वर्णोंमें
को स्वधर्मपालन करनेमें कोई कानूनी अड़चन न पड़े।
र्तमान राजनैतिक नेतृवृन्दको समझना चाहिये कि
अन्य देशों और अन्य जातियों तथा हमारी इस
हिंदुस्थान और हिंदू-जातिमें दिन-रात-जैसा प्रबल
है। जिन-जिन विशेषताओंके कारण हिंदू-जाति
वर्षोंमे अबतक जीवित है और उनके मूलमें जो
विद्यमान है, उसको भली प्रकार समझकर तदनुकूल
प्रणाली प्रयुक्त करनेसे ही हिंदुस्थान और हिंदू-जातिका
होगा और सरकार भी दीर्घकालतक स्थायी रहेगी और
त्में उसका सम्मान होगा।

र्तमान राजनैतिक नेतागण यदि किसी कारणसे हिंदू-
पोषक शासन-व्यवस्था बनानेमें असमर्थ हों तो
कम-से-कम इतना तो अवश्य ही कर्तव्य है कि
प्रणालीको हिंदू-संस्कृतिके प्रतिकूल न होने दें। हिंदू-
घातक नये-नये कानून बनाकर वे स्वयं अपने चरण-
राघात कर रहे हैं। उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि
नमें कथमपि यह सम्भव नहीं है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय,
र शूद्र वर्णोंके भेदको मिटाकर समानताके आधारपर
, जातिहीन समाजका निर्माण किया जा सके।
साक्षी है कि बड़े-बड़े दूरदर्शी बौद्ध सम्राट् अशोक,
आदिके बाद जब अदूरदर्शी परवर्ती बौद्ध राजाओंने
समानता फैलानेका प्रयत्न किया, तब उसका फल
हुआ। बौद्ध-साम्राज्य नष्ट हो गया और बौद्ध शासक-
रतसे भगा दिये गये। अतः स्वतन्त्र भारतके शासना-

चतुष्पादपूर्ण वर्णाश्रम-व्यवस्थाके सुदृढ़
सुप्रतिष्ठित एवं दैवी सूक्ष्म जगत्से सम्बद्ध हिंदू-संस्कृ
रक्षाके लिये किसी शासन-सत्ताके पोषणकी अपेक्षा नहीं
शत्रुओंसे मोर्चा लेनेके लिये उसका अपना बल
कि अनादि कालसे मनुष्योंकी निम्नगामिनी स्व
प्रवृत्तियोंका सतत संघर्ष और सहस्रों वर्षोंतक
संस्कृतियोंके भीषण आक्रमण तथा प्रतिकूल शासन-
आन्तरिक और बाह्य प्रबल षड्यन्त्र भी उसे
कर सके। इस प्रकार सर्वसामर्थ्यवान् होते हुए
संस्कृति अपने स्वतन्त्र हिंदुस्थानकी शासन-सत्तासे क
इतनी आशा तो अवश्य ही रखती है कि वह वि
भाँति उसके स्वरूपपर आक्रमण न करेगी।

स्वतन्त्र भारतके वर्तमान शासनाधिकारी यह
रक्खें कि वे अपनी अदूरदर्शिताके कारण भारतीय
विरुद्ध राजकीय नियम बनाकर वर्णाश्रम-व्यवस्थाको
करनेका प्रयत्न कर सकते हैं, पर उसकी महती उपादे
सर्वकल्याणकारितापर पानी नहीं डाला जा सकता
शासनाधिकारीगण राजकीय कानूनोंके बलपर भगवान्
विष्णु आदि देवताओंके पवित्र मन्दिरोंमें अन्त्य
वर्णबाह्योंका प्रवेश कराकर मन्दिरोंको भ्रष्ट कर स
किंतु क्या वे भगवान् शङ्कर और विष्णुके प्रसन्न होने
विधानोंमें परिवर्तन करके देवताओंके स्वभावको बदल
की भी सामर्थ्य रखते हैं। शङ्कर और विष्णुको प्रसन्न
का जो उनके स्वभावके अनुकूल सनातन विधान है
द्वारा वे प्रसन्न हो सकते हैं। भूतलकी समर्थ शास
कोटिशः कठोर राजकीय नियम भी उन नियमोंको
सकेंगे। क्या गवर्नरके गृहमें प्रवेश कर लेनेमात्रसे
उनका सम्बन्धी या कृपापात्र माना जा सकता है? अन
के लिये इस प्रकारकी चेष्टा अज्ञानमूलक या भ्रष्टाचा
ही मानी जा सकती है।

गवर्नरके गृहमें बलपूर्वक घुस जाना कठिन नहीं
उसके परिणाममें गवर्नरके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुए
कारण जो राजकीय दण्ड सहन करना पड़ेगा, क्
बचनेका भी कोई उपाय है? जो अपराधी है, उ
मिलना स्वाभाविक है। यदि गवर्नर दयावश उसे
देता तो शासनसत्ताकी दृष्टिमें वह स्वयं भ्रष्टाचारको

ीतिसे राजकीय नियमोंका पालन करते हुए
कारियोंको प्रसन्न करना पड़ता है, ठीक उसी
त्सञ्चालिका सूक्ष्म दैवी सत्ताकी कृपा प्राप्त करनेके
राज्यपदाधिकारी विभिन्न देवी-देवताओंको प्रसन्न
क्ष्यसे उनके अनुकूल नियमोंका पालन करना
होता है । विभिन्न देवी-देवताओंकी आराधनाके
स्त्रोंमें इसीलिये कहे गये हैं कि उनका स्वभाव
उनके अनुकूल उपासना करके मनुष्य उनकी
ाप्त करके अपनी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त कर सके
कार्य न करे, जिससे उनकी अप्रसन्नता होती है ।

शास्त्रका अनुशासन है कि अन्त्यज आदि जातियोंके
दिक मन्दिर दूषित हो जाते हैं, उनकी देव-
में देव-कलाकी हानि होती है और इन देवत्व-
तमाओंमें भूत-प्रेत आदि आसुरी शक्तियोंका वास
है और इन भूत-प्रेतनिवासित प्रतिमाओंके पूजनसे
क्तियाँ पुष्ट होती हैं और कलह, क्रोध, द्वेष आदि
वोंकी वृद्धि होती है तथा बीमारी, अजारी, अतिवृष्टि,
काल, भूकम्प आदिका प्रकोप होकर राजा-प्रजाका
है । क्या किसी शासनसत्ताका बल है कि इस दैवी
बदल सके ?

हो सकता है कि हिंदू-संस्कृतिके अभिमानी
ोंको शासन-सत्ताके बलपर जेलोंमें बंद करके रक्खा
शासनाधिकारी स्वच्छन्द रूपसे हिंदू-संस्कृति, हिंदू-
भारतकी प्राचीन परम्पराओंके विरुद्ध समानताके
न्दिर आदि पवित्र स्थानोंमें और सर्वत्र भ्रष्टाचार
किंतु क्या इसके परिणाममें हुए दैवी प्रकोपको भी
सकेगा ? रावण भारतीय था, ब्राह्मण था, वेद-
ज्ञाता विद्वान् था, बलशाली था और भगवान्
कृपापात्र भक्त था; किंतु जब उसने हिंदू-संस्कृतिपर
या, गो-ब्राह्मणोंको सताया, उनके धर्ममें हस्तक्षेप
ऋषियोंके दैवी यज्ञानुष्ठानोंको भ्रष्ट किया, धार्मिकोंका
प्रचार नष्ट किया, तब उसके परिणाममें हुए दैवी
क्या वह रोक सका ? रावण स्वयं नष्ट हो गया, पर
तिको वह विनष्ट नहीं कर सका । इसलिये स्वतन्त्र

इसलिये इसमें छेड़-छाड़ करनेका परिणाम उनके लि
देशके लिये अच्छा नहीं होगा । उन्हें निश्चय रखना
कि इस प्रकारके उनके व्यवहारसे दैवी प्रकोप निि
चाहे वह जिस रूपमें और जब प्रकट हो ।

स्वतन्त्र भारत, भारतीय शासन-सत्ता और
प्रजाके सर्वविध कल्याणकी दृष्टिसे वर्तमान शासनाधिक
इस धर्मपीठसे संक्षेपमें हमारा यही सत्परामर्श है कि–

(१) स्वतन्त्र भारतकी शासनप्रणाली हिंदू-सं
अनुकूल रामराज्य-जैसी हो । यदि ऐसा न हो
शासननीति कम-से-कम ऐसी हो, जो हिंदू-संस्कृतिकी
न हो ।

शासनाधिकारी यदि उपनिषद्को सर्वोच्च दर्श
हैं और गीतापर गौरव रखते हैं तो उनके लि
सक्रिय रूप हिंदू-संस्कृति या वर्णाश्रम-धर्मव्यवस्था भ
होनी चाहिये । अन्यथा गीता और उपनिषद्के ग
गानेका क्या मूल्य है । और—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः
....

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थित
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि

यह गीताका ही उपदेश है । इसके
शासनाधिकारियोंको यदि गीता और उपनिषद्के
मान्य न भी हों, तो भी जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तकी
दृष्टिसे उन्हें भारतदेशके निवासी बहुसंख्यक हि
सांस्कृतिक वर्णाश्रम-धर्मव्यवस्थाका सम्मान ही करना
उनके द्वारा हिंदू-संस्कृतिपर आघातके प्रयत्न उन
लज्जाकी बात है ।

(२) राजकीय कानूनोंद्वारा अन्त्यज अ
वैदिक मन्दिरोंमें प्रवेश कराकर देशमें दैवी प्रकोप न
जाय ।

(३) राजकीय कानूनद्वारा गोवध यथार्थ
कराकर देशमें बढ़ता हुआ दैवी प्रकोप रोका जाय ।

द्र-विवेक और स्पृश्यास्पृश्य-विवेकको राजकीय कानूनों-
छकर हिंदू-जातिको पतनोन्मुख बनानेका प्रयत्न न किया

५) सगोत्र-विवाह, असवर्ण-विवाह, तलाकादि पाप-
कृत्योंको कानूनी प्रोत्साहन देकर हिंदू-संस्कृतिकी
-शुद्धिमूलक व्यवस्थाको भ्रष्ट करके देशमें वर्णसंकर-
वृद्धिद्वारा राष्ट्रके सर्वनाशका बीज न बोया जाय ।

६) देशमें वर्गहीन, जातिहीन समाज-निर्माणके
हिंदू-संस्कृतिको शिथिल करनेके लिये कूटनीतिमय
षड्यंत्र रचकर अपने चरणोंपर कुठाराघात न
य ।

७) प्रत्यक्ष रूपसे हिंदू-संस्कृति-घातक हिंदूकोड
बलोंको समाप्त कर दिया जाय और भविष्यमें ऐसी
योजनाओंको राजकीय प्रोत्साहन न दिया जाय ।
ष्ट्रकी भलाई है ।

हिंदू-संस्कृतिके रक्षक भगवान्

-संस्कृतिका मूल आधार सनातन अपौरुषेय वेद
अङ्गरूप निःश्वासभूत तत्त्व है, वे ही कर्तुमकर्तु-
र्तुं समर्थ सर्वशक्तिमान् भगवान् हिंदू-संस्कृतिके
और वे ही सदा इसके रक्षक रहे हैं । जब-जब
ृतिके धारक, पोषक एवं संवर्धक सनातन वैदिक
स भारतखण्ड या हिंदुस्थानमें हुआ, तब-तब किसी-
रूपमें प्रकट होकर उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञाका
या ही है—

यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
भ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
त्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

-कृष्ण-नृसिंहादि अवतारोंका इतिहास किसीसे छिपा
नहीं है । बौद्धकालमें हिंदू-संस्कृतिका ह्रास होनेपर श
भाष्यकार भगवान् आदि-शङ्कराचार्यका प्रादुर्भाव ।
है । इसलिये हिंदू-संस्कृतिके रक्षक स्वयं भगवान्
निर्विवाद सिद्धान्त है । हिंदू-जाति अतीत काल
अनुभव करती आ रही है । अन्य संस्कृतियोंसे
मस्तिष्कोंमें यह बात भले ही संगत प्रतीत न ह
हिंदुओंके लिये यह अनुभूत सत्य है ।

इसलिये धार्मिकोंके प्रति इस धर्मपीठसे हम
कथन है कि वर्तमान समयमें सनातनधर्म-विरुद्ध
संस्कृतिघातक प्रवाहको बढ़ते हुए देखकर निराश न
चाहिये । इस प्रकारकी आँधियाँ आया ही करती है
झकोरे सनातनधर्मियोंने बहुत सहे हैं । यह प्रसन्नत
है कि यह प्रवाह जिन लोगों (पाश्चात्यों) के सम्पर्क
है, उनकी आचार-विचारशैलीका प्रभाव देशमें अ
शिथिल होता जा रहा है और राजनैतिक नेतृवृन्द
किसी अंशमें अपनी प्राचीन संस्कृतिका गौरव सम
लगा है । कुछ समयमें व्यवस्था सुधरनेकी आशा
सकती है; किंतु जब आँधी आये, तब सावधान
चाहिये । जो सावधान नहीं होता, वह प्रवाहमें उड़
और कहीं खाई-खंदकमें गिरकर नष्ट हो जाता है ।
सावधान होकर अपने वर्ण और आश्रमका गौरव
रखकर यथासाध्य तदनुकूल व्यवहार सम्पादन क
और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवानका भजन, पूजन,
करते हुए समयको बिताना चाहिये ।

अपना कर्तव्य पालन करते चलो । परिस्थितियोंको
भय मानने और व्यग्र होनेकी आवश्यकता नहीं है ।
सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और विश्वम्भर है । वही
संस्कृतिके प्राण— धर्मका संरक्षक है । उसने सदा
रक्षा की है और आगे भी रक्षा करता हुआ
अनुयायियोंका सर्वविध कल्याण करेगा ।

भगवान्के भक्तका लक्षण

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥ (विष्णुपु० ३ । ७

मराज कहते हैं—जो पुरुष अपने वर्णधर्मसे विचलित नहीं होता, अपने सुहृद् और विपक्षियोंमें समान भा

हिंदू-भारतकी स्तुति

(१)

ए हो देश भारत ! हमारे तुम प्यारे देव, महिमा अपार, तीन लोकसे उपरि हो;
गोदमें तुम्हारी जन्म चाहते समोद सुर, तुम भवसिन्धुसे उतारनेको तरि हो ।
काशीमें वृषध्वज, पुरीमें गरुडध्वज हो; शीश-पदतलमें भी धारे सुरसरि हो;
राका-से सुगौर-धाम, श्याम त्यों अमा-से तुम; जान पड़ता है नहीं, हर हो कि हरि हो ॥

(२)

अमित-महिम हिमगिरिका मुकुट माथ, सागर पखारता चरण लहराता है;
हास काश्मीर, हीर-हार नदियोंकी धार, पञ्चनद-रव पाञ्चजन्य-सा सुहाता है ।
नव वनमालासे अलंकृत विशाल वक्ष, गौरव गदाका लिये विन्ध्यगिरि भाता है;
चक्र चित्रभानु, शक्र मस्तक झुकाता सदा, भारत अनूप विष्णुरूप छवि पाता है ॥

(३)

शारद प्रदेश मुख, अवध-विहार उर, दायाँ हाथ सिंध, वंग बायाँ हाथ प्यारा है;
गङ्गा-गोमतीने, गंडकीने, गौतमीने जिसे निज जलधार-हार देकर सँवारा है ।
मध्यम प्रदेश नाभिदेश है सुहाता, कटि किङ्किणी समान नर्मदाकी अम्बुधारा है;
आन्ध्र औ द्रविड, महाराष्ट्र हैं चरण; विश्व-वन्दित अखण्ड यही भारत हमारा है ॥

(४)

नव घन-मण्डलके भरित कमण्डलमें गङ्गवारि पावस तुम्हें ला नहलाती है;
शरद पिन्हाकर प्रफुल्ल पंकजोंके हार, चन्द्र-रश्मियोंके चारु चन्दन चढ़ाती है ।
पूजती हिमानी हिमविन्दु-मौक्तिकोंसे तुम्हें, शिशिर पदोंमें पत्र-पुष्प बरसाती है;
मधु ऋतु आती, मधुरसका लगाती भोग; तप्त ग्रीष्म ऋतु तुम्हें तपसे रिझाती है ॥

(५)

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका निधान तू है; चार धाम, सप्त पुरियोंका तू सहारा है;
तू ही मातृभूमि, पितृभूमि और तीर्थभूमि; तूने कितनोंको यहाँ तारा है, उबारा है ।
तू है धर्म-क्षेत्र, तू ही कर्म-क्षेत्र भी है; तेरे अङ्कमें अजन्मा प्रभुने भी जन्म धारा है;
वन्दनीय देश ! नन्दनन्दनका रूप मान तेरे चरणोंमें अभिवन्दन हमारा है ॥

नन्तश्रीविभूषित परमहंसपरिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य श्रीजगद्गुरु स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी श्री
शारदापीठाधीश्वर महाराजका उपदेश)

ीवेद्यं हृद्यं त्रिपुरहरमाद्यं त्रिनयनं
जटाभारोदारं चलदुरगहारं मृगधरम् ।
ादेवं देवं मयि सदयभावं पशुपतिं
चिदालम्बं साम्बं शिवमतिविडम्बं हृदि भजे॥
संसारसमुद्रतारनौकायिताभ्यां स्थिरभक्तिदाभ्याम् ।
साम्राज्यदपूजनाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥

ातन संस्कृति इतर सभी संस्कृतियोंसे श्रेष्ठ है तथा और अनन्त भी है । दूसरी संस्कृतियाँ सनातन ा अंश लेकर ही जीवित हैं । संस्कृतिका जन्मस्थान कारण भारतवर्षका माहात्म्य विश्वमें प्रख्यात है । र्वादरणीय आर्य भारतीय संस्कृतिकी रक्षा करना यक्तिका कर्तव्य है । विशेषतः आज तो उसकी प्रशंसा अपेक्षा रक्षा करनेकी आवश्यकता ही अधिक है । स सनातन भारतीय संस्कृतिकी रक्षा करनेके लिये मकल्याणके लिये निम्नलिखित सिद्धान्तोंपर ध्यान देना का यथावत् अनुसरण करना प्रत्येक भारतीयके लिये र्तव्य और श्रेयस्कर है—

स्वधर्मपर महान् प्रेम रक्खो और यथाशक्ति धर्मका रो । धर्मका यथावत् पालन करनेसे सुख, स्वर्ग प्राप्त होते हैं । यह बात निश्चय करके मानो ।

तुम्हारे धर्मका नाम 'सनातन धर्म' है । यह धर्म नवका चलाया हुआ मत अथवा पंथ नहीं । यह न प्रभुका सनातन धर्म है ।

जगत्कर्ता परमेश्वरने सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, जल, पवन, वृक्ष, ओषधि, अन्न, पशु, पक्षी, मनुष्य आदिको तथा साथ-साथ इन सबका धर्म भी बनाया । धर्मके ीका अस्तित्व ही टिक नहीं सकता ।

धैर्य, क्षमा, सत्यभाषण, अहिंसा, सर्वप्रकारसे पवित्रता च्छता, मन तथा इन्द्रियोंका नियन्त्रण, भिन्न-भिन्न और कलाओंका शिक्षण, विवेकपूर्वक कार्यसम्पादन, करना, अस्तेय (चोरी न करना), मादक वस्तुओंका श्वर-भक्ति, परलोकविषयमें ध्यान, माता-पिता, गुरु ोंका आज्ञापालन, जन्म-भूमिकी सेवा, परस्त्रीमात्रमें —ये सब सामान्य धर्म हैं । विशेष धर्ममें स्त्रियोंका ोंका धर्म, पिताका धर्म, पुत्रका धर्म, राजाका धर्म, प्रजाका धर्म, गुरुका धर्म, शिष्यका धर्म, वर्णधर्म, अ युगधर्म, देशधर्म तथा अन्य भिन्न-भिन्न आपद्धर्म अ

५. धर्मको जाननेके लिये धर्मशास्त्रोंका अध्ययन अथवा सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणद्वारा धर्म-वार्ता श्रव चार वेद, दस उपनिषद्, छः दर्शन, अठारह अठारह पुराण, रामायण तथा महाभारत इत्यादि प्रामाणिक तथा उपादेय ग्रन्थ हैं ।

६. गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य और जगदम्बा— हमारे पूजनीय देवता हैं और परब्रह्म परमात्मा सर्व देवता हैं । ये सब देवता इन परब्रह्म परमात्माके ही हैं । एवं इन परमात्माके भी अनेक अवतार होते हैं

७. जिस कुलमें परम्परासे जिस देवताको इष्टदेव माना जाता है, उस कुलमें उसी देवताकी विशेष होनी चाहिये; परंतु अन्य किसी भी देवताकी नि करनी चाहिये । प्रत्युत दूसरे सम्प्रदायके भक्तों प्रेमका ही व्यवहार करना चाहिये ।

८. संसारके सब कार्य एक ओर रखकर भगवान्‌का भजन करना आवश्यक है । यदि तुमने समस्त कार्य किये, किंतु भगवान्‌का भजन नहीं कि मानव-शरीर पाकर क्या लाभ प्राप्त किया ? कुछ भी

९. आलस्य छोड़कर आगे बढ़नेका कार्य अपनी कमाईमेंसे अच्छे पात्रोंको दान करो ।

१०. अपने जीवनको पवित्र एवं सुखी बनाने मादक वस्तुओं तथा अन्य दुर्व्यसनोंसे बचे रहो सिगरेट, भाँग, गाँजा, अफीम, शराब आदि धर्म, आरोग्य आदिका नाश करनेवाले हैं; अतः उनका करनेसे ही तुम भगवान्‌के भक्त बन सकोगे ।

११. दूसरोंकी हानि न करो; परंतु तुम्हारे देश, ध तथा मानको यदि कोई हानि पहुँचाता हो तो उसको धर्मसङ्गत उपायसे सन्मार्गपर लानेका प्रयत्न करो । स्वयं अ करना जितना पाप है, उतना ही पाप दूसरोंके द्वा गये अत्याचार सहनेमें होता है; अतः धीर होकर करो ।

१२. सदा देव-दर्शन, शास्त्रश्रवण, भगवद् पितृतर्पण, अतिथि-सत्कार, सत्संग तथा स्ववर्णा सन्ध्या आदि सत्कर्म किया करो ।



(अनन्तश्री १००८ श्रीपूज्य स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

न्त्रता-प्राप्तिके साथ भारतीय संस्कृतिकी रक्षा और चारकी चर्चा चल पड़ी—यह बड़ी प्रसन्नताकी । वास्तवमें किसी देश या राष्ट्रका प्राण उसकी ही है; क्योंकि यदि उसकी कोई अपनी संस्कृति तो संसारमें उसका अस्तित्व ही क्या । परंतु का क्या अर्थ है और भारतीय संस्कृति क्या है—यह लाया जाता । अंग्रेजी शब्द 'कलचर'का अनुवाद किया जाता है । परंतु 'संस्कृति' संस्कृतभाषाका है, अतः संस्कृत-व्याकरणके अनुसार ही इसका अर्थ हिये । 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुसे भूषण अर्थमें गम-पूर्वक 'क्तिन्' प्रत्यय होनेसे 'संस्कृति' शब्द सिद्ध । इस तरह लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, , राजनैतिक अभ्युदयके उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, अहङ्कारादिकी भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएँ एवं हलचलें ति हैं ।

संस्कृति और संस्कार

संस्कार' या 'संस्करण' का भी संस्कृतिसे मिलता- अर्थ होता है । संस्कार दो प्रकारके होते हैं— नयन' और 'अतिशयाधान' । किसी दर्पणपर चूर्ण घिसकर उसका मल साफ करना 'मलापनयन-' है । तैल, रंगद्वारा हस्तीके मस्तक या काष्ठकी वस्तुको चमकीला तथा सुन्दर बनाना 'अतिशयाधान-' है । नैयायिकोंकी दृष्टिसे वेग, भावना और थापक—ये ही त्रिविध संस्कार हैं । अनुभवजन्य ा हेतु 'भावना' है । अन्यत्र किसी भी शिल्पादिमें (अभ्यास करनेसे उत्पन्न कौशलकी अतिशयता ही मानी गयी है—

त्तज्जात्युचिते शिल्पे भूयोऽभ्यासेन वासना ।
ौशलातिशयाख्या या भावनेत्युच्यते हि सा ॥

ाश्रयकी प्रागुद्भूत अवस्थाके समान अवस्थान्तरोत्पादक ्य धर्म ही 'संस्कार' है—

त्राश्रयस्य प्रागुद्भूतावस्थासमानावस्थान्तरोत्पादको-

आदिसे ही, अपितु देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, आदिकी सभी हलचलों, चेष्टाओं, व्यापारोंसे उत्पन्न होते हैं । अतएव 'कर्मसंस्कार' या 'कर्म' शब्दसे उनका व्यवहार होता है । इस दृष्टिसे सम्यक्-अ सभी प्रकारके कर्मोंसे संस्कार उत्पन्न होते हैं ।

संस्कारोंका प्रभाव

संस्कारोंसे आत्मा या अन्तःकरण शुद्ध होत इसलिये उत्तम और निकृष्ट संस्कार—इस रूपसे सं उत्कृष्टता या निकृष्टताका भी व्यवहार होता है । षो अष्टचत्वारिंशत् संस्कारोंद्वारा आत्मा अथवा अन्तः संस्कृत करना चाहिये—यह भी शास्त्रका आदेश है—

यस्यैते अष्टचत्वारिंशत् संस्कारा भवन्ति स सायुज्यं सलोकतां प्राप्नोति ।

यहाँ 'सम्'की आवृत्ति करके 'सम्यक् संस्कार' संस्कृति कहा जाता है । इन सम्यक् संस्कारोंका भी मलापनयन एवं अतिशयाधानमें होता है । कृ द्वारा पाप, अज्ञानादिका अपनयन और कृच्छ्रद्वारा विद्या आदि अतिशयताका आधान किया जात साधारणतः दार्शनिकोंके यहाँ यह सब आत्मामें पर वेदान्तकी दृष्टिसे अन्तःकरणमें । आत्मा तो असङ्ग ही रहता है । मोटे तौरपर कह सकते हैं खानसे निकले हुए हीरक एवं मणि आदिमें सं चमक या शोभा बढ़ायी जाती है, वैसे ही अविद्या-तल प्रपञ्चमग्न स्वभावशुद्ध अन्तरात्माकी शोभा संस् व्यक्त की जाती है । तथाच आत्माको प्राकृत निम्न मुक्त करके क्रमेण ऊपरी स्तरोंसे सम्बन्धित प्रकृतिके सभी स्तरोंसे मुक्त करके उसे स्वाभावि आनन्दसाम्राज्य-सिंहासनपर समासीन करनेमें संस्कार है । ऐसे संस्कारोंके उपयुक्त कृतियाँ ही शब्दसे कही जा सकती हैं । जैसे वेदोक्त कर्म और अदृष्ट दोनों ही 'धर्म' शब्दसे व्यवहृत होते हैं संस्कार और संस्कारोपयुक्त कृतियाँ दोनों ही

संस्कृति और सभ्यता

कृति और सभ्यतामें कोई भी खास अन्तर नहीं है। ति ही संस्कृति है और सभामें साधुता ही सभ्यता आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चाल आदिकी या साधुताका निर्णय शास्त्रसे ही हो सकता है। शास्त्रद्वारा निर्णीत सम्यक् एवं साधु चेष्टा ही सभ्यता यही संस्कृति भी है।

विभिन्न संस्कृतियाँ

भिन्न देशों और जातियोंकी विभिन्न संस्कृतियाँ प्रसिद्ध स्कृतियोंमें प्रायः सङ्घर्ष भी चलता है—कहीं तो ंकी खिचड़ी बन जाती है और कहीं एक सबल निर्बल संस्कृतिका विनाश कर देती है। संस्कृतिका भूमिके न्ध होनेसे ही उसमें विभिन्नता आती है। किसी देशके का प्रभाव वहाँके निवासियोंके आचार-विचार, भाषा-साहित्य आदिपर पड़ता ही है। कुछ विद्वानोंने तो इसी प्रभावको प्राधान्य दिया है। ानोंका मत है कि 'किसी राष्ट्रके किसी असाधारण गर्वको ही संस्कृति कहना चाहिये। उदाहरणार्थ— लोगोंको सबसे बड़ा गर्व अपनी 'पार्लामेंट्री ाली'के आविष्कारके लिये है। अमरीकाको गर्व उसने संसारमें स्वतन्त्रताकी पताका फहरायी और द्धोंमें विश्वको स्वतन्त्रताका वरदान दिया। हिटलरने आर्यत्वके विशुद्ध रुधिरका गर्व उत्पन्न किया। की यह विशेषता ही उनकी संस्कृतिका आधार है।' शमें ये सब भाव ठीक हैं; परंतु संस्कृतिकी ऐसी अन्धोंद्वारा किये गये हाथीके वर्णन-जैसी हैं।

धर्म और संस्कृति

और संस्कृतिमें इतना ही भेद है कि धर्म केवल धिगम्य है और संस्कृतिमें शास्त्रसे अविरुद्ध र्म भी परिगणित हो सकता है। युद्ध-भोजनादिमें , अलौकिकता—दोनों ही हैं। जितना अंश लोकप्रसिद्ध लौकिक है; जितना शास्त्रैकसमधिगम्य है, उतना है। अलौकिक अंश धर्म है, धर्माविरुद्ध लौकिक है। संस्कृतिमें दोनोंका अन्तर्भाव है।

संस्कृतिका आधार

परिभाषा ...

दिखलाया जा चुका है कि संस्कृतिका लक्ष्य आत्माक है। जिसके द्वारा इसका मार्ग बतलाया जाय, वही का आधार हो सकता है। यह विभिन्न जातियोंके ध द्वारा ही बतलाया जाता है। उनके अतिरिक्त चेष्टाओंकी भूषणता-दूषणता, सभ्यता या असः निर्णायक या कसौटी और हो ही क्या सकता है सामान्यरूपसे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके धर्मग्रन्थोंके विभिन्न संस्कृतियाँ निर्णीत होती हैं, तथापि अपौरुषेय ग्रन्थ वेद ही हैं। अतः वेद एवं वेदानुस धर्म-ग्रन्थोंके अनुकूल लौकिक-पारलौकिक अभ्यु निःश्रेयसोपयोगी व्यापार ही मुख्य संस्कृति है हिंदू-संस्कृति, वैदिक संस्कृति अथवा भारतीय संस सनातन परमात्माने अपने अंशभूत सनातन जीवा सनातन अभ्युदय एवं निःश्रेयस—परमपद प्राप्त करा जिस सनातन मार्गका निर्देश किया है, तदनुकूल संस सनातन वैदिक संस्कृति है और वह वैदिक सना संस्कृति ही सम्पूर्ण संस्कृतियोंकी जननी है। डेढ़- वर्षोंकी अर्वाचीन विभिन्न संस्कृतियाँ भी इसी संस्कृतिके कतिपय अंशोंको लेकर उद्भूत हुई हैं। य है कि विभिन्न देशोंकी विभिन्न संस्कृतियोंमें वैदिक स विकृत एवं अविकृत अनेक रूप उपलब्ध होते सनातन संस्कृतिका पूजक हिंदू है। जैसे इस्लाम संस्कृ मुस्लिम-जातिका आधार 'कुरान' है, वैसे ही वैदिक संस्कृति एवं हिंदू जातिका आधार वेद एवं तदनुसा धर्म-ग्रन्थ हैं।

भारतीय संस्कृति

इसमें सन्देह नहीं कि भारतमें कई विदेशी आयीं और बस गयीं। भारतीयोंके आचार विचार सहन आदिपर उनका कुछ प्रभाव भी पड़ा। पर नहीं कहा जा सकता कि भारतीय संस्कृतिका आधार गया। भारत हिंदुओंका देश है, अतः उन्हींकी 'भारतीय संस्कृति' है, जिसके मूलस्रोत वेदादि शा अतएव लौकिक-पारलौकिक, आर्थिक, राजनैतिक, उन्नतिका वेदादिशास्त्रसम्मत मार्ग ही भारतीय संस्कृ दर्शन, भाषा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, इतिहास, कल संस्कृतिके सभी अङ्गोंपर वेदादिशास्त्रमूलक सिद्धान्त

की प्राचीन संस्कृतियोंमें भारतीय संस्कृतिकी कितनी
विकृतरूपमें पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ—किसी-न-
पमें वर्णव्यवस्था सभी जगह मिलती है। विभिन्न
प्राचीन ग्रन्थोंमें यज्ञ-यागादिकी भी चर्चा आती है।
त्र तो व्यापकरूपमें फैला हुआ है। ये सब बातें वहाँ
वीं, यह दूसरा प्रश्न है। पर इतना तो सिद्ध ही है
सबका सम्बन्ध हिंदू-संस्कृतिसे है—एतावता
सिद्ध हो जाता है कि वह हिंदू-संस्कृति है। भारतकी
ी उसका सम्बन्ध है। जो बड़प्पनके गर्वकी बात
ी है, उसका भी अनुभव उसी संस्कृतिमें होता है।
र सभी दृष्टियोंसे यही मानना पड़ता है कि हिंदू-
ही भारतीय संस्कृति है। यह मान लिया जाय तो
अवसर ही नहीं रहता; क्योंकि हिंदू-संस्कृतिकी
दू-धर्मशास्त्रोंमें निर्धारित है। उनके द्वारा हमें उसके
ा सिद्धान्तों और उसके विकसित रूपका सम्पूर्ण चित्र
ता है।

हिंदू

आजकल वास्तविकतासे दूर हटकर अधिकाधिक
ानेकी दृष्टिसे 'हिंदू' शब्दकी परिभाषा की जाती
एव कई लोग वेद न माननेवालोंको भी 'हिंदू' सिद्ध
ल्ये—

न्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
भूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

ऐसी परिभाषा करते हैं; परंतु इस परिभाषाकी भी
ते होती है। इसके अतिरिक्त भावनाकी दृढ़ताका
ार नहीं रहता।

भक्तिर्भवेद्यस्य प्रणवे च दृढा मतिः।
र्जन्मनि विश्वासः स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

यह परिभाषा अभीष्ट समाजोंमें अनुगत हो जाती
ामें जिसकी भक्ति हो, प्रणव जिसका पूज्य मन्त्र
न्मों जिसका विश्वास हो—वही हिंदू है। यह
, [illegible] वैदिक—सबमें घट जाता है। परंतु वेदोंके
, [illegible] इत्यादि प्रयोगों और [illegible]',
[illegible] प्रयोगोंकी दृष्टिसे तथा 'कालिकापुराण',
[illegible] आदिके आधारपर वर्तमान 'हिंदू' [illegible]' के
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

विकास होता रहता है। ईश्वररहित जडविकासवाद
अनुसार जडप्रकृतिसे ही चैतन्यका विकास होता
जिस विकासवादकी दृष्टिसे अभीतक सर्वज्ञ ईश्वर अ
विकसित ही नहीं हुआ, वह सर्वथा अमा
आध्यात्मिकता और धार्मिकतासे विहीन साम्यवाद,
वाद आदि भी हिंदू-संस्कृतिमें नहीं खप सकते।

खिचड़ी संस्कृति

आजकलके कुछ नेता कई संस्कृतियों, विशेषत
मुस्लिम-संस्कृतिके मिश्रित रूपको ही भारतीय संस्कृ
हैं। इसीको 'हिंदुस्तानी संस्कृति' का नाम भी दिया
किंतु इसे भारतीय संस्कृति कदापि नहीं कहा जा
न इसका कोई आधार है और न कोई स्पष्ट रूप
देखा तो यह गया है कि जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृति
अङ्गपर विदेशी प्रभाव पड़ा, वहीं उसमें निकृ
गयी। दर्शन, कला, साहित्य आदि सभीमें यह
जा सकता है। नेताओंने 'इण्डियन यूनियन' (भा
को सेक्युलर स्टेट (धर्मनिरपेक्ष राज्य) घोषि
अनेक बार यह आश्वासन भी दिया है कि
संस्कृतिकी रक्षा की जायगी, किसी संस्कृतिपर ह
किया जायगा। कई नेताओंने यह भी कहा है वि
विरंगे पुष्पों या हीरोंद्वारा जैसे मालाकी शोभा बढ़त
ही अनेक धर्मों और संस्कृतियोंका यदि एक सूत्रमें
हो तो उससे राष्ट्रकी शोभा बढ़ेगी, घटेगा नहीं
किसी पुष्प, हीरक या उसके रंगके बिगाड़नेको
नहीं।' ऐसी स्थितिमें संस्कृतिकी खिचड़ी कहाँतक
हिंदू-जाति, हिंदू-संस्कृति, हिंदू-धर्म, वेदादिशास्त्र
और राम-कृष्ण आदि समझमें आ सकते हैं;
कुरान, मस्जिद, इस्लाम, अरबी-उर्दू भाषा [illegible]
सकती है। परंतु इन दोनोंको मिलाकर वेद-कुरान,
कुरान, मन्दिर-मस्जिद, अल्लाह-राम आदिको
हिंदुस्तानी संस्कृति, हिंदुस्तानी भाषा आदि कथमपि
नहीं आते। राम भी अच्छा, खुदा भी अच्छ
'रम खुदया' कहनेसे [illegible] नहीं। दीनदार, ईमान
या मुसलमान—दोनों ही ठीक; बेदीन, बेईमान
खतरनाक हो सकते हैं। अपने-अपने मूल धर्मों, सं
[illegible] तक [illegible] विश्वास न होगा तो कृत्रिम सं

एक संस्कृति

दिनोंसे 'एक संस्कृति' का नारा लगाया जा रहा भी वही प्रश्न होता है कि कौन संस्कृति— खिचड़ी या विशुद्ध हिंदू-संस्कृति ? तथाकथित संस्कृतिमें क्या सर्वसाधारण हिंदू या मुसल्मानको श्रद्धा हो सकती है ? तब फिर यदि एक संस्कृति ति ही मानी जाय, तो यह कैसे आशा की जा सकती ल्मान उसे स्वीकार कर लेंगे ? कुछ लोग कहते हैं मान कलमा-कुरान और मस्जिदका आदर और ाषा, वेष-भूषा रखते हुए भी भारतीय संस्कृतिके ू-संस्कृतिका पालन कर सकते हैं ।' फिर आचार-रहन-सहन, इतिहास-साहित्य, दर्शन-धर्म आदिसे कृति कौन-सी वस्तु होगी, जिसे मानकर मुसल्मान र्न करेगा ? कुछ लोग तो यहाँतक कहते हैं कि ृति हिंदू-संस्कृति ही है, वही सबको माननी पड़ेगी । ा करेंगे, उन्हें भारत छोड़ना होगा ।' किंतु ऐसा कारद्वारा घोषित सेक्युलर (धर्मनिरपेक्ष) नीतिके नहीं, हिंदूधर्म एवं हिंदू-संस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्तके त है । हिंदू-धर्म तो प्रत्येक जाति, प्रत्येक व्यक्तिको ार चलनेकी स्वतन्त्रता देता है । 'स्वधर्मे निधनं का सिद्धान्त है । अतः उसे कभी भी अभीष्ट येन-केन प्रकारेण सभी हिंदू बना लिये जायँ । ृति ही भारतीय संस्कृति है, इस दृष्टिसे एक संस्कृतिका है; पर इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि ल्पसंख्यकोंकी संस्कृतियोंका संरक्षण न हो । यह ही विशेषता है कि वह भिन्नतामें भी एकता देखता सूत्रमें गुँथे हुए मणियोंकी मालाका उदाहरण भी ता है ।

कर्मणा वर्णव्यवस्था

कृतिके प्रसङ्गमें ही 'कर्मणा वर्ण-व्यवस्था'की बात उठती ा यह जाता है कि 'कर्मणा वर्ण-व्यवस्था मान लेनेसे विलम्बियोंको हिंदूसमाजमें लानेमें सुविधा होगी । मुल्ला, अध्यापक आदि बुद्धिजीवी ब्राह्मण बन सैनिक आदि बलजीवी क्षत्रिय, व्यापारी वैश्य परायण शूद्रकोटिमें आ जायँगे । बहुतोंको इसका रहेगा ।' यद्यपि यह ठीक है कि भारतमें वैदिकोंका

वेदानुसारी आर्ष धर्मग्रन्थोंके अनुसार आचार उपासना-कर्म आदिका हिंदू-संस्कृतिमें समावेश है । सत्य, भगवद्-उपासना, तत्त्वज्ञान आदि बीस धर्म जिनसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है । उन पालन करनेवाला कोई भी हिंदू कहला सकता है; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णव्यवस्था जन्मना वर्णोंका कर्मणा उत्कर्ष अवश्य होता है; जैसे बीज दोनों ही अङ्कुरके कारण होते हैं, वैसे ही जन्म दोनों वर्णके मूल हैं । प्राक्तन गुण-कर्मानुरूप जन वर्ण और फिर समुचित गुण-कर्मसे उसका उत्कर्ष हो गुण-कर्मविहीन अधम और गुणकर्मयुक्त उत्तम ब्राह्मण हैं । जन्मप्राप्तिमें भी प्राक्तन कर्म अपेक्षित होते ही हैं । जैसे शौर्य, क्रौर्य आदि गुण-कर्मसे युक्त मुख्य सिंह और गुण-कर्मके बिना जन्ममात्रसे जाति-सिंह—जन्म गुण-कर्ममात्रसे मनुष्यको भी शौर्यादि गुण-कर्म कहा जाता है, पर वह गौण प्रयोग है । उसी तर और कर्मसे मुख्य ब्राह्मणादि, गुण-कर्मके बिना केवल जाति-ब्राह्मणादि तथा जन्मके बिना गुण-कर्मादि ब्राह्मणादिका व्यवहार होता है । जैसे माता, भगिनी आदि करके उनके कर्तव्योंका शास्त्रोंमें उपदेश है, वैसे ही ब्र को उद्दिष्ट करके उनके कर्तव्योंका । इसी तरह व्यवस्थ सकती है । अन्यथा पत्नीका कर्म करनेसे दुहिता या भ पत्नी हो जायगी । इसीलिये 'ब्राह्मणो यजेत्' आदि विध 'यः ब्राह्मणो भवितुमिच्छेत्स यजेत्' या 'यो यजेत् स ऐसा विधान नहीं है । 'पत्नी एवं कुर्यात्' यही वि 'या एवं कुर्यात् सा पत्नी' ऐसा विधान नहीं है वर्णव्यवस्था माननेपर दिनभरमें ही अनेकों बार व रहेंगे, फिर व्यवस्था क्या होगी ? अतः उपनयन, वे अग्निहोत्रादि कर्मानुष्ठान, भोजन-विवाहादि सभी कर्म जन्मना ब्राह्मणादिके आधारमें ही हो सकते हैं । ब्राह्मण और कर्मणा ब्राह्मण मुसल्मान आदिमें विवाहादि सम्बन्ध तथा जन्मना वर्णोंसे भिन्न उपनयन, अग्निहोत्रादि कर्मका अधिकार सर्वथा शास्त्रा

संस्कृति-सम्मेलन

कुछ दिनोंसे एक अ० भा० संस्कृति-सम्मेलन है । वह चाहता है कि भारतकी आर्थिक, राजनै

ो देश तथा संसारका कल्याण होगा। किंतु पहले यह कर लेना चाहिये कि प्राचीन भारतीय संस्कृतिके मूलभूत । और उसका रूप क्या है। बिना ऐसा किये केवल भटकना है—जिसका समय, सम्पत्ति और शक्तिके ह्रास-रेक्त कोई परिणाम नहीं। उसके प्रचारसे जनतामें प्रायः म फैलता है। शास्त्रीय विषयोंपर सम्मेलनको आचार्यों पण्डितोंसे अपनी शङ्काओंका समाधान कर लेना । तब फिर सबके सहयोगसे काम चल सकता है और सफलता भी होगी। धार्मिक विषयोंमें शास्त्र और र्योंद्वारा उनकी व्याख्या ही प्रमाण है।

एक सुझाव

। सभीको अपनी संस्कृतिकी रक्षा, उन्नति और प्रचार अभीष्ट है। इसमें सभीका सहयोग अपेक्षित है। यह तभी सम्भव है, जब पहले यह निश्चित व जाय कि भारतीय और हिंदू-संस्कृति क्या है। वस्तुतः प्रमेय, फल, साधनादिपर तो विचार किया जाता प्रमाणकी परवा नहीं की जाती। यदि उसके विचार किया जाय तो सब बात स्पष्ट हो जाय। संस्कृतिके सम्बन्धमें विभिन्न मत रखनेवाले विद्वानों साथ मिलकर या लेखोंद्वारा विचार-विनिमय करना यदि भारतीय संस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्त और उ निश्चित हो जाय, तो विवादके लिये अवकाश ही अतः सभी विद्वानोंसे हमारा अनुरोध है कि वे इ ध्यान दें। यह प्रश्न टाला नहीं जा सकता; क्योंकि उचित समाधानपर हमारा भविष्य निर्भर है। जब ए इसका निर्णय करना ही है, तो फिर विलम्ब क्यों किय 'शुभस्य शीघ्रम्।'

संस्कृति क्या है?

(एक महात्माका प्रसाद)

कृतिक विधानके अनुरूप संस्कार की हुई पद्धति ही है। उसी संस्कृतिके किसी एक अंशको सभ्यता ।

कृति अनुभवजन्य ज्ञानके और सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञानके निर्भर है। अनुभवजन्य ज्ञान नित्य और बुद्धिजन्य वर्तनशील होनेके कारण संस्कृति नित्य और सभ्यता ील होती है।

ी देश-कालकी सभ्यता किसीके लिये अहितकारी भी है; किंतु संस्कृति सर्वदेश, सर्वकालमें सभीके लिये तकारी ही होती है। संस्कृति किसी मानवकी उपज ुत खोज है। इसी कारण वह नित्य है। उसका तनका मूल है, उसका आदर विकासका हेतु है।

कृतिरूपी भूमिमें धर्मरूप वृक्ष शोभा पाता है। र वृक्षमें फल, फूल, पत्ते, शाखा आदि अनेक उसी प्रकार धर्मरूपी वृक्षके सभी सम्प्रदाय अङ्ग हैं। सार्वजनिक साधनका नाम धर्म और व्यक्तिगत नाम सम्प्रदाय है। संस्कृतियुक्त धर्म ही वास्तवमें , उस हिंदुत्वको अपनानेवाला हिंदू है।

धर्म-विज्ञान, अध्यात्मविज्ञान एवं योगविज्ञान—तं हिंदुत्वके प्रधान अङ्ग हैं। धर्मविज्ञानसे प्राणीका सुन्दर हो जाता है, अध्यात्मविज्ञानसे सब परतन्त्रता मिट जाती है और योगविज्ञानसे शक्ति होती है।

धर्म प्राणीको ह्रासले विकासकी तथा असत्यसे सीमितसे असीमकी, जडतासे चेतनाकी और मृत्युसे अ ओर ले जाता है।

धर्म अपने कर्तव्यसे दूसरोंके अधिकारोंको सुरक्षित की प्रेरणा करता है। इस कारण धर्मात्माकी माँग सभ

अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार भिन्न-भिन्न साध हुए एक ही साध्यके प्राप्त करानेमें धर्म समर्थ है। सा होनेपर भी प्रीति-भेद तथा लक्ष्य-भेद नहीं होता। यही महत्ता है।

दो व्यक्ति भी सर्वांशमें समान योग्यताके नहीं किंतु अनेक व्यक्तियोंकी आवश्यकता अर्थात् लक्ष्य होता है। इस कारण धर्म साधनकी भिन्नता और एकताका प्रतिपादन करता है।

जिस प्रकार ...

ना निर्माण करनेके लिये साधनका भेद और साध्यकी
ाम अनिवार्य है।

क-निर्माण ही समाज-निर्माण और समाज-निर्माण ही
ितका मुख्य हेतु है। व्यक्ति-निर्माण संस्कृतियुक्त
त् हिंदुत्वके बिना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।
त्व मानव-जीवनको गुणोंका विकास, सीमित उपभोग,
र त्याग—इन चार भागोंमें विभाजित करनेके
त करता है। प्रथम भाग और तीसरा भाग
ाल हैं, उपभोग-काल नहीं। दूसरा भाग विषयानन्द
र्थ भाग निजानन्द तथा प्रेमानन्दको प्रदान करता
न भागमें मानव दीक्षा तथा शिक्षाद्वारा अपनेको
नाता है अर्थात् ज्ञान-विज्ञान तथा कलाओंद्वारा
करता है, जिससे समाज उसको स्थान देता है।
ागमें अर्थ और कामकी वास्तविकताका अनुभव
लिये धर्मानुकूल उपभोगमें प्रवृत्त होता है—अर्थात्
उपार्जित अर्थसे रोगी, बालक एवं सेवक तथा
सेवा करता है तथा अपनेसे योग्य सन्तान उत्पन्न-
ऋणसे मुक्त होता है। तृतीय भागमें जितेन्द्रियता-
ाद्वारा समाजके ऋणसे मुक्त हो सत्यकी खोज करता
र्थ भागमें असत्यको त्याग अपनेमें ही अपने प्रीतमका
कर कृतकृत्य हो जाता है।

तप (धर्मार्थ कठिनाइयोंको प्रसन्नतापूर्वक सहन करना)।
व्रत (अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये दृढ़ संकल्प करना)।

३. प्रायश्चित्त (की हुई भूल पुनः न करना)

४. प्रार्थना (अपनी निर्बलताओंको मिटाने
व्यथित हृदयसे प्रेम-पात्रको पुकारना)।

—ये चारों ही हिंदुत्वके मुख्य अङ्ग हैं, जिनके ि
भी प्राणी—चाहे वह किसी भी देश, जाति अथवा सं
न हो—विकास नहीं पाता। इस दृष्टिसे यह निर्विवाद
जाता है कि मानव-विकास हिंदुत्वके बिना सम्भव न

जिससे किसीको भय न हो अर्थात् जिसके
केवल प्रीतिकी गङ्गा लहराती हो तथा जिसका शरीर
काम आ गया हो एवं जिसका अहं अभिमान
और जिसको किसीसे भय न हो—अर्थात् नित्य जीव
रस, नित्य प्यार सतत उपलब्ध हों, वही हिंदू है।

प्रत्येक अहिंदू हिंदू हो सकता है। क्योंकि हिं
करनेके लिये केवल प्राप्त योग्यताका सदुपयोग
जिसके करनेमें मानव सर्वथा स्वतन्त्र है।

प्राणी परिस्थिति-परिवर्तनमें भले ही परतन्त्र
उसके सदुपयोगमें लेशमात्र भी परतन्त्रता नहीं
कारण हिंदू-धर्मके अपना लेनेमें किसीको भी कठिन
है। जो जिस अवस्थामें है, उसीके अनुरूप साधन
करके हिंदुत्व प्राप्तकर अभय हो जाओ—यही मानव
लिये हिंदू-संस्कृतिका जयघोष है।

कर्मकी भिन्नता एवं स्नेहकी एकता ही
गौरव है।

सांस्कृतिक परम्परा

(श्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानुजसम्प्रदायाचार्य आचार्यपीठाधिपति श्रीराघवाचार्य स्वामीजी महाराजका उपदेश)

कृति है मानवकी जीवन-शक्ति, प्रगतिशील साधनाओं-
की विभूति, राष्ट्रिय आदर्शोंकी गौरवमयी मर्यादा और
की वास्तविक प्रतिष्ठा। इस तथ्यका चिन्तन करते
ीय परम्पराने सदा संस्कृति-निष्ठाके मङ्गलमय मार्गको
। फलस्वरूप संस्कृति भारतभूमिके कण-कणमें व्याप्त
ीय साहित्यके पद-पदमें ओत-प्रोत है और भारतीय
के प्रत्येक पृष्ठपर अङ्कित है। इसके अधिष्ठान एवं
ो अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये अपेक्षित है
है। कहना न होगा कि भारतीय संस्कृतिके निर्
आचार्योंने संस्कृतिको अलङ्कारोंसे अलंकृत करनेकी
कर उसके द्वारा अपने-आपको संस्कृत करनेका
किया। इसीका सुन्दर परिणाम यह निकला कि
दार्शनिक दृष्टिकोणों एवं सैद्धान्तिक मतभेदोंके रह
सांस्कृतिक परम्पराकी अविच्छिन्न गतिमें किसी
अन्तर न पड़ सका। आत्मकल्याणके साधनोंमें
[illegible]

आर्य-संस्कृति

र प्रचलित भाषाओंमें अंग्रेजी 'कल्चर' शब्दके संस्कृति' शब्द व्यवहृत होने लगा है। 'पालिसी' तरह 'कल्चर' शब्दका भी अर्थ बहुत व्यापक होनेपर 5 लिये 'संस्कृति' शब्द अच्छा गढ़ा गया है। सम्-कृ' धातुसे भाव-अर्थमें 'क्तिन्' प्रत्यय करनेपर ।' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है परम्परागत संस्कार। यह दर्शन-शास्त्रका सिद्धान्त है कि संस्कार-जिके ही अनुसार कर्म-रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है। से पूर्व-संस्कार होंगे, वैसे ही हमारे कर्म बनेंगे। प्राचीन रहन-सहन, आचार-व्यवहार, धर्म, कर्म, क और धार्मिक व्यवस्था, शास्त्रीय सिद्धान्त, शिक्षा-आदि जिसके प्रधान-प्रधान अवलम्बन हों, वही आर्य-कही जा सकती है।

आर्यजातिके लक्षण

चारोंसे ही जाति मानी जाती है। शास्त्र कहते हैं 'आचार-तिः' अर्थात् आचार देखकर जाति बनायी जा सकती र्यजातिकी विशेषता यह है कि वह जीवन-यात्रा-रजोवीर्य-शुद्धिमूलक वर्ण-व्यवस्था तथा प्रवृत्तिरोधक वृत्तिपोषक आश्रम-व्यवस्था मानती है। इसीसे उसका लक्षण कहा गया है 'उभयोपेता आर्यजातिः।' र्णधर्म और आश्रम-धर्मके लक्षण जिस जातिमें पाये से आर्यजाति कहते हैं। आर्यजातिके शारीरिक-लक आचार पृथ्वीकी अन्य सब जातियोंसे कुछ हैं। हमारी संस्कृतिका विचार करनेवालोंको यह बात नमें रखनी चाहिये कि जिस मनुष्य-जातिमें रजोवीर्य-क जातिभेदका सिद्धान्त, सतीत्वधर्ममूलक स्त्री-पवित्रता, प्रवृत्तिमूलक ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थाश्रम और लक वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम-ऐसे धर्मोंके लक्षण ते हों, वही मनुष्यजाति आर्यजाति कहाती है। ये आर्य (हिंदू)-संस्कृतिके मौलिक सिद्धान्त हैं। र पुरुष-धर्म और नारी-धर्मके अधिकार आर्य-धर्ममें

पुरुष और स्त्रीके विभिन्न धर्म

मनुष्य-सृष्टिमें पुरुष और स्त्री—ये दो विभा दोनोंके धर्म भिन्न-भिन्न हैं। कैवल्य-प्राप्तिके लिये पुरु है; परंतु स्त्री पुरुष होनेकी अपेक्षा रखती है। तन्मय होकर जब पुरुष होगी, तभी कैवल्य प्राप्त कर पुरुष स्वतन्त्र होनेसे उसका धर्म यज्ञ-प्रधान है, कैवल करनेवाले ज्ञानका यज्ञके साथ साक्षात् सम्बन्ध है। कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीन काण्डोंमें विभ स्मृतिशास्त्रमें कहा है—

यज्ञप्रधानतामेति नृणां धर्म इति श्रुति

नारी-धर्म एक विशेष धर्म है। आदिसृष्टि ज पुरुष परमात्मा और प्रकृति महामायाके सम्बन्धसे होती है, तब जीवकी प्रथमोत्पत्तिमें भी वे ही दो विद्यमान रहेंगी—इसमें कोई सन्देह नहीं है। उ जीवोंमें भी पुरुष और नारीकी दो स्वतन्त्र शक्ति पड़ती हैं। मनुष्य-योनिमें पहुँचकर जीव जबतक प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक नवीन संस्कार भी सं कर सकता। सहज कर्म परिवर्तित भी नहीं होते, इ साधारण स्त्री स्त्री होकर और पुरुष पुरुष होकर ह होता है। अद्वैत-भावके बिना कैवल्यकी प्राप्ति नहीं वह स्थिति परम पुरुषके स्व-स्वरूपमें ही विद्यमान कारण कैवल्याधिगमके लिये पुरुषको आत्म-ज्ञानके अ से स्व-स्वरूपको प्राप्त करना होता है और स्त्रीको तन्मयता प्राप्त करके पुरुषधारामें पहुँचनेपर आत अवलम्बनसे अद्वैत भावमय स्व-स्वरूपकी उपलब्धि पड़ती है। इस प्रकार जब स्त्रीको अपनी धारा बदलन है, तब उसके लिये तपोधर्मका आश्रय लेना अनिव स्मृतिशास्त्रमें कहा है—

तपःप्रधानतामेति नारीधर्मो यतः सदा

आदिसृष्टिसे ही स्वाभाविक संस्कार और सह अनुसार पुरुषधारा और स्त्रीधारा दोनों पृथक्-पृथक् हुआ करती हैं। परमपुरुष स्वाधीन, निःसङ्ग तथा स्वरूप है और मूलप्रकृति जड़ा, सङ्गकी अपेक्षा रख

ान रहनेसे नारीका पराधीन होना विज्ञानसिद्ध है। ण है कि हिंदू-जातिमें कन्यावस्थासे लेकर वृद्धावस्था-; पति, पुत्र और आत्मीय स्वजनोंके संरक्षणमें नारी-की विधि है और यही आर्य-जातिकी प्राचीन ।

क दर्शनोंने यह भी सिद्ध किया है कि इस संसारके म प्रपञ्चके सब अङ्गोंमें दो प्रकारकी शक्तियाँ देखने-हैं—एक आकर्षणशक्ति और दूसरी विकर्षणशक्ति। पञ्चमें परमाणुसे लेकर ग्रह-उपग्रहोंतकमें आकर्षण कर्षणरूपी दोनों शक्तियोंका कार्य स्पष्ट देखनेमें। ग्रह-उपग्रहादिकी सृष्टि-दशामें परमाणु एकत्र होते प्रलय-दशामें पृथक्-पृथक् होकर ब्रह्माण्डका प्रलय-करते हैं। इसी स्थूल उदाहरणके अनुसार सूक्ष्म अन्तः-वृत्तियोंमें रागकी वृत्तियाँ आकर्षणजनित और द्वेषकी विकर्षणजनित होती हैं। राग-मूलक आकर्षणशक्ति समुद्भूत और द्वेषमूलक विकर्षणशक्ति तमोगुण-है। इन्हीं दोनों शक्तियोंसे समस्त पिण्ड और आच्छन्न हैं। दोनों शक्तियोंका विकास पुरुषशरीर शरीरमें होता रहता है। पुरुष विकर्षण-शक्तिरूप आकर्षण-शक्तिरूप है। अन्ततः दोनोंके अधिकार भी स्वतन्त्र हैं। आकर्षण-शक्तिसे सृष्टिक्रिया होती विकर्षणशक्तिसे लय-क्रिया। स्मृतिशास्त्र कहता है—

कर्षणस्वरूपं हि शरीरं योषितामिह।
ा विकर्षणं नृणां शरीरं स्यात्स्वरूपतः॥

ा प्रकार अन्तर्जगत्में राग और द्वेष—समन्वयसे मुक्तिका उदय होता है अर्थात् साधक भूत राग और तमोगुण-संभूत द्वेषको जीतकर सत्त्व-वलम्बनसे द्वन्द्वातीत हो जाता है—मुक्त हो जाता है, र बहिर्जगत्में ऊर्ध्वरेता होकर वह दाम्पत्य-सम्बन्धके और विकर्षणशक्तिकी जय करके द्वन्द्वातीत मुक्ति-हुँच जाता है। इसीसे वानप्रस्थाश्रममें सस्त्रीक रहकर ी कामका जय करके मुक्तिमार्गमें अग्रसर होनेकी त्रोंमें पायी जाती है। पतिभक्ति और सतीत्वकी स्त्री मुक्तिमार्गमें अग्रसर होती है और पुरुष भी ारा सुरक्षित रहकर मुक्तिमार्गपर विजय-लाभ करनेमें ा है। दोनों शक्तियोंकी जहाँ सुन्दर समता होती

चुका है। चाहे कोई दर्शनशास्त्र उसको मूलप्रकृ कोई महामाया कहे, कोई ब्रह्मशक्ति कहे—सब द प्रकृतिकी प्रधानता मानते हैं। यही कारण है कि वे और तन्त्र आदि शास्त्र एकवाक्य होकर नारीका सम्म और उसको जगदम्बाका स्वरूप समझकर उसकी पूज आज्ञा देते हैं। आर्य-जातिके सदाचारोंमें और उ प्रकारमें कुमारी-पूजा और सुवासिनी-पूजाकी सर्वमा पायी जाती है। पश्चिमकी वर्तमान सभ्य जाति सब दार्शनिक सिद्धान्तोंकी कल्पना भी नहीं पायी जाती जाति स्त्रीजातिको जगदम्बाकी प्रतिकृति समझकर उ करती है; परंतु पश्चिमी सभ्य जातियाँ स्त्रीजाति भोगविलासकी एक सामग्री समझती हैं और उसकी और अपवित्रताका कुछ भी विचार नहीं रखतीं।

सृष्टि-प्रकरणमें स्त्री और पुरुष—इन दोनोंके पृ अधिकारके विचारका स्थान सबसे प्रधान माना ग क्या प्राचीन साहित्य और क्या नवीन साहित्य, क्य वैदिक शास्त्र-समूह और क्या नवीन अर्थादि-शास्त्रस क्या प्राचीन संस्कृतिकी विद्वन्मण्डली और क्य संस्कृतिके विद्वज्जन—इन सबोंका एकमत इस विषय कि स्त्री और पुरुष—इन दोनोंके अधिकारका प्रश्न स सृष्टि-प्रकरणमें सबसे प्रधान तथा परमावश्यक है अज्ञानके कारण ऐसे बड़े आवश्यक विषयपर बहुत ध्यान दे रहे हैं। वर्तमान समयकी राजनीतिक उथ सामाजिक उथल-पुथल तथा धार्मिक उथल-पुथलकी सबसे पहले स्त्री और पुरुषके अधिकार-विज्ञानपर ध्या आवश्यकता है।

वेद और वेदसम्मत शास्त्र-समूह एकवाक्य बताते हैं कि सृष्टिकी आदि अवस्थामें सृष्टि-कर्ता ब्रह्माजीने जब सृष्टिका प्रारम्भ किया, तब उस समय पहले सनक, सनन्दन आदि पूर्णावयव मनुष्यरूपी मह की सृष्टि हुई। वे पूर्णावयव होनेके कारण उनमें वासनातकका सम्बन्ध नहीं पाया गया और न उ बढ़ानेका कार्य ही हुआ। उसके बाद भगवान् ब्र दुबारा सृष्टिकी इच्छा की, जिससे प्रजापतिगण पैद ये लोग एक प्रकारके देवता थे। उनको आज्ञा देनो मानसिक सृष्टि उत्पन्न हुई—यह सृष्टिकी दूसरी अव

सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। यही साधारण मैथुनी (लौकिकी) की पहली अवस्था है। हिंदू दर्शन-शास्त्र इसके पहलेकी थाको दैवी सृष्टिकी अवस्था मानते हैं। लौकिकी की अवस्थामें स्त्री और पुरुष दोनोंके अधिकार समान र भी नारी-जातिका स्थान प्रधान माना गया है। रण तौरपर देखा भी जाता है कि सृष्टि-प्रकरणमें पुरुषों- ार्य मिनटोंका है, किंतु नारी-जातिका वर्षोंका है। क्योंकि गर्भपालन और शिशुपालन आदि कार्य करने पड़ते हैं। ल साइंसकी उन्नतिके साथ-ही-साथ विज्ञानके द्वारा इस भी पुष्टि हो चुकी है कि उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और ज—इन चारों प्रकारकी जीव-योनियोंमें स्त्री और पुरुषका होना रूपसे पाया जाता है। निम्नश्रेणीके उद्भिज्ज जीवोंमें स्त्री- र पुंरेणु—इन दोनोंके संगमसे सृष्टि होनेके प्रत्यक्ष प्रमाण गये हैं। स्वेदज, अण्डज और जरायुज पिण्डोंकी तथा पूर्णावयव मानव-पिण्डोंकी सृष्टि—सभीमें इस की सिद्धि होती है।

पेण्ड तीन प्रकारका होता है—उद्भिज्ज, स्वेदज, ; और जरायुज पशुका सहज पिण्ड, मनुष्योंका मानव- और देवताओंका देवपिण्ड। दर्शनशास्त्र, पदार्थविद्याका शास्त्र और लौकिक अनुभव—इन सभोंसे प्रमाणित कि सृष्टि-प्रकरणमें स्त्रीजातिकी जिम्मेवारी सबसे अधिक भूमिरूपा है और पुरुष बीजरूप है। यही कारण है कि ौर शास्त्रोंने एकवाक्य होकर स्त्रीजातिके लिये यज्ञमूलक का उपदेश दिया है। दोनोंके लिये पृथक्-पृथक् धर्म आचारका होना स्वतःसिद्ध है। इस विषयमें हिंदू- ो एकमत हैं ही, किंतु पृथ्वीके सब चिन्ताशील पण्डितों- एकमत होना ही पड़ेगा; क्योंकि सत्य सत्य ही है।

ष्टिकार्यको पवित्र रखनेके लिये वेद, स्मृति, पुराण, हिंदुओंका ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेद आदि सब मूह एकवाक्य होकर स्त्री-पुरुषके पृथक् अधिकार- ी पुष्टि करते हैं। इस अलौकिक और परमावश्यक ओर आधुनिक शिक्षित समाजकी दृष्टि आकृष्ट है।

ातिकी पवित्रता-रक्षा और आध्यात्मिक विज्ञानसम्मत विवाह-पद्धति

ष्टि-प्रकरणमें स्त्रीजातिकी पवित्रताकी रक्षा और धर्मा- जातिकी पवित्रताकी रक्षाकी ओर विशेष ध्यान उन जातियोंमें जैसे युवकोंकी स्वतन्त्रता है, वैसे ही यु भी स्वतन्त्रता रक्खी गयी है। वयःप्राप्त होनेपर स्त्रि इच्छासे मनमाने पुरुषोंसे सम्बन्ध कर लेती हैं और पीछे अपने-अपने धर्मानुकूल विवाह होता है। विवाह होते ई रीतिसे विवाहित दम्पति आनन्दोत्सव मनानेके लि चले जाते हैं और यथेच्छा-विहार करते हैं तथा पतिसे होनेपर एक दूसरेसे अदालतके द्वारा विवाह-विच्छे करा लेते हैं। स्त्रीके विधवा होनेपर उनके यहाँ विध बार-बार पुनर्विवाह होता है। पृथ्वीके अन्यधर्मावल जन्मान्तरवादपर विश्वास न रहनेसे विवाहित लोकान्तर होनेपर पति-पत्नीका सम्बन्ध स्थायी नहीं इन सब कारणोंसे अन्य जातियोंमें 'स्त्री और सम्बन्ध परलोकमें भी स्थायी रहता है' ऐसा विश्वा है; किंतु वर्णाश्रमी हिंदू-जातिमें जन्मान्तर और लोक-लो वादका सम्बन्ध पूर्णरूपसे माना गया है। आर्य सतीत्व-धर्मका अधिकार सर्वोपरि माने जानेसे उच्च आर्य-नारियोंमें विधवा-विवाहकी आज्ञा नहीं है। तो बात ही क्या है, मनसे भी परपुरुषका सम्बन्ध आर्य स्त्रियाँ गर्हित समझती हैं। स्वेच्छासे विवा विहार न होने देना ही वेद और स्मृतिकी आज्ञा है जातिका विवाह एक बड़ा भारी धर्मकार्य है। हिंदूका इन्द्रिय-सुखभोगके लिये नहीं, बल्कि परलोकगत चिर-सहायता पहुँचानेके लिये माना गया है। हिंदू- अनुसार विवाहकी आठ श्रेणियाँ बतायी गयी हैं- ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस पैशाच। इन आठ श्रेणियोंके विवाहोंमेंसे ब्राह्मणजातिमें चार श्रेणियोंके विवाह उपादेय हैं और पीछेकी चार श्रे विवाह हेय हैं। क्षत्रियजातिके लिये अन्य विवाहोंके उद भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं; परंतु उनके द्वारा कन्याका होनेपर भी पीछेसे शास्त्रोक्त विवाह करनेकी विधि जैसे राजाओंके यहाँ गान्धर्व-विवाह हो जानेपर भी शास्त्रोक्त विवाह-विधिकी पूर्णता की जाती थी। हिंदू- समूहका सिद्धान्त यह है कि कन्यामें रजोधर्म हो जानेसे कन्याके चित्तको पतिदुर्गद्वारा सुरक्षित कर देना चाहि क्योंकि रजोधर्म पूर्णवयस्काका लक्षण है और पूर्णवयस्का

ऐसे ही प्रचलित है और पूर्णवयस्का होनेसे पहले
चत्त पतिदुर्गद्वारा सुरक्षित हो जानेपर उसमें अपवित्रता-
का बीज पैदा ही नहीं होने पाता और
बीज सुरक्षित रहता है। इस कारण स्वेच्छा-
अनादर आर्य-संस्कृतिमें चिरकालसे चला आता
-संस्कृतिमें दम्पतिके भेदका कुछ दिग्दर्शन तन्त्र
ाणोंके आधारपर नीचे कराया जाता है। त्रिगुण-
भेदके अनुसार नर और नारी तीन प्रकारके होते
चक गुणमोहित, राजसिक रूपमोहित और तामसिक
काममोहित होते हैं। नर-नारियोंकी मिथुनी-
ं भी तीन दशाएँ होती हैं—सात्त्विककी प्राकृतदशा,
की विकृतदशा और तामसिककी उन्माददशा होती है।
ा मुक्तिप्रद है, विकृतदशा स्वर्गप्रद है और
शा नरकप्रद है—यों समझना चाहिये। सात्त्विक
ानसेवी, राजसिक कामुक किंतु विचारवान् और
नर-नारी घोर कामासक्त तथा अविचारी होते हैं।
नर-नारी ज्ञाननिरत तथा परस्परार्थी होते हैं,
भोगनिरत और स्वार्थी होते हैं तथा तामसिक
विचाररहित, प्रमादी, कामभोगपरायण और
री होते हैं। सात्त्विक नर-नारी पवित्र ज्ञान-कुशल,
अद्भुत क्रियाशील और तामसिक पशुभावके
पाती होते हैं। सात्त्विक स्वभावतः धीर, राजसिक
और तामसिक उन्मादी होते हैं। सात्त्विक नित्य
राजसिक कुटिल और तामसिक निर्लज्ज होते हैं।
नर-नारीकी सङ्गम-दशामें अध्यात्मकी ओर लक्ष्य और
रेके आनन्दमें तत्परता, राजसिकका एकमात्र कामज
ओर लक्ष्य और भोगमें तत्परता तथा तामसिकका केवल
अपना लक्ष्य और प्रमाद-जनित सुखमें तत्परता रहती
त्त्विक नर-नारियोंके चित्तमें ही आत्मज्ञान और धर्मका
रूप प्रकाशित हो सकता है। स्त्री और पुरुष यदि
प्रकृति, प्रवृत्ति और धर्मवाले होकर सात्त्विक लक्षणोंको
कर सकें तो उनके लिये अभ्युदयकी तो बात ही क्या,
भी अति सुलभ है। यदि दोनों स्त्री-पुरुष ज्ञानी भक्त
जन्म ग्रहण करें तो ऐसा लोकातीत मेल हो सकता
ाधारणतः शास्त्रमें पुरुष और स्त्रीकी जो चार श्रेणियाँ
गयी हैं, उनमें उनके शरीरके लक्षण और मापका हिसाब

और पुराण आदि शास्त्रोंमें पुरुष और स्त्रीके सोलह
भेद कहे गये हैं। शश, मृग, वराह और अश्व—ये
चार श्रेणियाँ होती हैं। प्रत्येक श्रेणीमें प्रत्येकका अन्तर्भाव
पुरुषकी सोलह श्रेणियाँ होती हैं। पद्मिनी, चित्रिणी,
और हस्तिनी—ये चार श्रेणियाँ स्त्रियोंकी होती हैं। इन
प्रत्येकमें प्रत्येकका अन्तर्भाव होनेसे स्त्रीकी भी सोलह
हुईं। यदि इन सोलह प्रकारके पुरुष और सोलह प्रकारकी
ठीक-ठीक समान श्रेणीमें दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित हो
दोनोंके अभ्युदय और निःश्रेयसका कारण होता है। दोनों
श्रेणी यदि उच्च हो तो सात श्रेणियोंतक नारीकी
सामञ्जस्यकी रक्षा करती है और अभ्युदयका क्रम बन
है। सात श्रेणीके अनन्तर अशान्ति, रोग और दुः
है। पुरुषका यथाक्रम सामञ्जस्य बना रहता है।
सृष्टिकी सामञ्जस्य-रक्षामें बाधा होती है। स्त्रियाँ औ
यदि अपने-अपने धर्मसे च्युत हो जायँ तो सृष्टिका सामञ्जस
ठीक नहीं रहने पाता। क्योंकि नारीधर्म 'तपःप्रधान'
पुरुषधर्म 'यज्ञप्रधान' है। नारीके लिये ही श्री, मधुर वचन
पवित्रता, स्वार्थरहितता, पातिव्रत्य, वात्सल्यभाव, सेवाप
और पुरुषोंके उपयोगी भावोंमें भावित होनेमें सदा
ये आठ ही उत्तम गुण कहे गये हैं। पुरुषोंके लिये
वर्णाश्रमाचारका सदा प्रतिपालन ही उत्तम गुण कहा गया
और पुरुषोंकी परीक्षा बहुत ही कठिन है। ऋतम्भरा प्र
ज्ञानी भक्त ही यथार्थ रूपमें स्त्री परीक्षा और पुरु
करनेमें समर्थ होते हैं। सामुद्रिकविद्या, स्वरोदयवि
ज्यौतिषविद्या आदिके द्वारा भी दोनोंकी परीक्षा
जाती है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध करनेके लिये जिन पचीस
ध्यान देना अभ्युदय और कैवल्यकी इच्छा रख
आवश्यक है, वे ये हैं—यथा कुल, शरीर, गण, यो
राशि, दिन, माहेन्द्र, स्त्री-दीर्घ, राशिका अधिपति
वश्य, वेध, वर्णकूट, नाड़ीभूतलिङ्गाख्यकूट, योगि
जाति, पक्षिकूटक, तारा, भकूट, प्रवृत्ति, इन्द्रि
बुद्धि और पचीसवाँ—भाव। यदि समानाधिकारमें क
दाम्पत्य-सम्बन्ध हो तो अभ्युदयकी तो बात
निःश्रेयस भी सुलभ है। ऐसा दाम्पत्य-सम्बन्ध होने

दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्य-जातिके
का विवाह-संस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पनातक
अन्य जातियोंमे नहीं है और न उनके आचार-
हो सकती है। इस कारण पृथ्वीकी इस वर्तमान
लके दिनोंमें केवल इन्द्रिय-सुखको लक्ष्य करके
के नेतृवृन्दोंको बिना पूर्वापर-विचार किये विपथगामी
ा चाहिये। उनको यह विचार लेना चाहिये कि
तका आध्यात्मिक लक्ष्य कहाँसे कहाँतक है और आर्योंके
और पुरुषधर्मके अधिकार निर्णय करनेमें हमारे पूर्वजोंने
सूक्ष्म विचार और दूरदर्शिताका काम किया है।

स्थानके हिंदूलोग स्त्री-पुरुषोंके अधिकारविज्ञान
वाह-पद्धतिके सिद्धान्तको परम आवश्यक धार्मिक
समझते हैं; क्योंकि ये सब मौलिक विचार स्त्री-पुरुषोंके
को सम्हालनेवाले हैं, वंशकी संस्कृति स्थिर रखने-
और जातिको पवित्र रखनेवाले हैं। कन्या और वर
स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा आर्यजातिमें
क्योंकि काम पशुभावका स्वाभाविक प्रेरक है। युवती
र युवक—इन दोनोंमें संसारका अनुभव नहीं होता।
उनसे बड़ी-बड़ी भूलें हो सकती हैं। पिता-माता
रिवारिक गुरुजनोंमें अनुभव अधिक होता है। अतः
माद होनेकी सम्भावना कम होती है। इस कारण
गमें युवक और युवतियोंको स्वाधीनता न देकर
यन्त्रित किया जाय, यही आर्य-संस्कृति है। कन्या-
बालिकाओंको देवीरूप समझना, उनके सामने
ाम-चेष्टाकी बातें करना भी पापजनक समझना,
यासे ही उन्हें धार्मिक शिक्षा देना और धार्मिक
कराना, तुलसी-अन्नपूर्णा आदिकी पूजा कराना,
रजस्वला होनेसे पहले ही उसका विवाहसंस्कार कर
थम रजोदर्शनमें गर्भाधान-संस्कार कराके देवता,
र पितरोंका संवर्धन कराते हुए गर्भाधान-संस्कारकी
म्पन्न करना—ये सब बातें आध्यात्मिक उन्नतिमें
हैं। पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें इस प्रकारकी पवित्रताके
संस्कारोंका नामतक नहीं है। वहाँ विवाह पशुधर्मका
यक मात्र है।

संस्कार

डाला जाता है। साथ-ही-साथ लोककल्याण-बुद्धिसे तु
गवेषणा की जायगी। आर्य-जातिमें विवाह-संस्का
बड़ा शास्त्रीय संस्कार है—जिसका सम्बन्ध केव
लोकतक नहीं, किंतु लोक-लोकान्तरतक माना गय
पृथ्वीकी अन्य सभ्य जातियों और विभिन्नधर्मावल
विवाह स्थायी संस्कार नहीं है और न उसका
शरीरान्तके उपरान्त माना ही गया है। उनमें इन्द्रिय
चरितार्थता और इस जन्ममें सामयिक सुख
अतिरिक्त कुछ नहीं माना गया है। उनके यहाँ
विच्छेद साधारण-सी बात है; किंतु आर्य-संस्कृतिमें
विच्छेद हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि आर्य
विधवाका विवाह होना अशास्त्रीय माना है। छोटी ज
विधवाविवाह प्रचलित है; परंतु वह 'विवाह' नहीं,
कहाता है। द्विजोंमें तो विधवाविवाह अधर्म समझ
है; क्योंकि विधवाविवाह प्रचलित होनेपर त्रिलोक
कारी सती-धर्मपर आघात पहुँचता है। आर्य-जातिमें
संस्कारका सबसे बड़ा उद्देश्य यह रक्खा गया है कि
परलोकगामी पितरोंके आवागमन-चक्रमें श्राद्धादिसे
सहायता करे और यही कारण है कि इसी सिद्धान्तके
दायभागकी व्यवस्था बाँधी गयी है। इन सब
विषयोंपर आजकलके नवशिक्षित सज्जन कभी ध्यान
देते और मनमाने विधानोंको बनानेकी चेष्टा किया क
वे यह भी नहीं सोच सकते कि कानूनद्वारा सत्य
काटना असम्भव है। सत्य सूर्यके समान सत्य ही है
कभी-कभी बादलोंसे ढक जाता है; परंतु वह ढँकना
होता है।

पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें विवाहका काल निश्चि
किया गया है और न स्त्रीसंभोगके लिये कोई आ
लक्ष्य ही रक्खा गया है। हनीमून-जैसे वैषयिक आ
आचार उनमें किस प्रकार प्रचलित हैं, सभी जानते हैं
संस्कृतिमें रजोदर्शनसे पूर्व विवाहसंस्कार करने
आज्ञा है। यदि ऐसा हो जाय कि विवाहसे पहले ही
रजोदर्शन होने लगे तो प्रत्येक रजोदर्शनमें पिताको प्र
करके शुद्ध होनेकी आज्ञा है। प्रथम रजोदर्शन होनेके
पशु-धर्मके अनुसार स्त्री-सम्बन्ध न करके ऋषि-देव

न्तर काम-वृत्तिसे नहीं, धर्म-वृत्तिसे स्त्रीसम्बन्ध करनेकी
। आर्य-शास्त्र देते हैं। तदनन्तर पूर्णिमा, अमावास्या आदि
तिथियों तथा अशास्त्रीय वार, कुयोग, पर्वदिन, आशौच-
न आदि दिनोंको छोड़कर धर्म-बुद्धिसे युक्त होकर स्त्री-
करनेकी आर्य-शास्त्र आज्ञा देते हैं। इसके विरुद्ध
का धर्मशास्त्र निषेध करते हैं। अपनी उम्रसे अधिक उम्र-
न्यासे विवाह करना आर्य-शास्त्रमें निषिद्ध है। गोत्र और
सम्बन्ध इस कल्पके प्रारम्भसे ही माना गया है और
गोत्र तथा प्रवरसे सम्बद्ध कन्यासे विवाह करना मातासे
करनेके समान समझा गया है। जन्मसे जाति मानना,
जातिकी कन्यासे विवाह करना और रजोदर्शनसे पहले
सम्बन्ध करना, आर्यविवाहके लक्षण हैं। कामज
अन्य जातिकी स्त्रियोंके साथ दूसरे युगोंमें हो सकता
किंतु वह भी अनुलोम विवाह हो सकता था, प्रतिलोम
अपनेसे निम्न जातिकी स्त्रीसे विवाह करना अनुलोम
च्च जातिकी स्त्रीसे विवाह करना प्रतिलोम कहाता है।
म नरकका कारण होता है और उसकी सन्तति
समझी जाती है। अनुलोम सन्तति माताकी जातिक
। ब्राह्मण यदि शूद्रासे विवाह करे, जैसा दक्षिणमें
, तो उसकी सन्तति शूद्र ही मानी जायगी। ऐसी
क्षिण भारतमें विद्यमान भी है। पृथ्वीकी किसी अन्य
ातिमें विवाहके ऐसे दूरदर्शितापूर्ण नियम नहीं पाये
ौर स्मृति-शास्त्र तथा दर्शन-शास्त्र एकमत होकर
द करते हैं कि इन्हीं सब मौलिक कारणोंसे आर्य-जाति
आरम्भ-कालसे अबतक अपने स्वरूपमें जीवित है।
अन्य मनुष्यजातियाँ, जिनमें रजोवीर्य-शुद्धि और
की शृङ्खला नहीं है, पतित हो गयीं और कालके
पहुँच गयीं। प्राचीन इतिहास और आधुनिक इतिहास
ाकर इसकी साक्षी दे रहे हैं।

र्य-संस्कृतिके अनुसार वेद, स्मृति और तन्त्रमें सब
४२ संस्कार पाये जाते हैं। उनमेंसे १६ मुख्य हैं, जिनकी
वेदके 'कर्ममीमांसा' दर्शनमें की गयी है। संस्कार-
ीमांसा-शास्त्रमें कर्मका बीज कहा है। जैसे बीजसे वृक्ष-
त होती है, वैसे ही संस्कारसे कर्म प्रकट होता है।
पूर्ण उपायद्वारा ये १६ संस्कार ऐसे बाँधे गये हैं
ूर्वक उनका अनुष्ठान हो तो ये ही १६ संस्कार,
८ संस्कारोंद्वारा मुक्तिभूमिमें पहुँचा देते हैं।
संस्कारोंमें प्रथम संस्कार गर्भाधान-संस्कार
अन्तिम संस्कार संन्यास-संस्कार है। आर्य-शा
भलीभाँति सिद्ध किया है कि यदि माता औ
दोनों सात्त्विक बुद्धिसे तथा अन्तःकरणसे इ
और विधिपूर्वक सावधान होकर संस्कार करें तो जै
वैसी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। दम्पतिका
सम्बन्ध दैवी जगत्से बाँधनेके लिये गर्भाधान-संस्का
जाता है। तदनन्तर कोई भी दैवी कार्य बिना स्त्री अ
दोनोंके एकत्र हुए सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीसे ग
की प्रणाली हिंदू-जातिमें सर्वत्र प्रचलित है। इस प्र
एकत्र होकर दैवी कार्य करें तो वहाँ एक दैवी पीठ
है। ये सिद्धान्त आर्य-संस्कृतिके मूलभूत हैं। पृथ्वीकी
अवैदिक जातियाँ हैं, उनमें इन पवित्र सिद्धान्तोंकी
भी नहीं है। ऐसे गूढ़ रहस्य-पूर्ण शास्त्रीय विषयोंका
करके आजकलके नेतृवृन्द जो पश्चिमी जातियोंका अनु
हिंदू-जाति, हिंदू-संस्कृति, हिंदू-धर्म और हिंदू-आचार-
विप्लव मचाना चाहते हैं—यह कितनी हानि और अदूर
का कार्य है, इसे विचारशील पुरुष सुगमताके साथ
सकते हैं।

हिंदू-शास्त्रोंका यह सिद्धान्त है कि जैसा बीज बोय
है, वैसा ही वृक्ष होता है। अवश्य ही वृक्षोत्पत्तिमें औ
कई वस्तुओंकी आवश्यकता होती है—जैसे देश,
जल, भूमि आदि; किंतु सबसे अधिक महत्त्व बीजका
वैदिक, पौराणिक, स्मार्त और तान्त्रिक संस्कारोंका
यही है कि द्रव्य-शुद्धि, क्रिया-शुद्धि और मन्त्र-
सुकौशलपूर्ण रीतिपर इन वैदिक संस्कारोंके द्वारा अन्त
ऐसी शक्ति उत्पन्न की जाती है कि वही शक्ति समय
वैसे ही वृक्ष और फलकी उत्पत्ति करती है, जैसी
बीज-रोपणके समयमें सङ्कल्पद्वारा की गयी
दार्शनिक विषयोंको समझनेके लिये दर्शनोंके अनुशील
आवश्यकता है। इसीमें संस्कारशुद्धिके बलसे भारत
(पृथ्वीमें) हिंदुस्थान (भारत-द्वीप) एक अ
भूमि है, जहाँ 'अर्थ' और 'काम'की अपेक्षा
और 'मोक्ष'को प्रधान माना जाता है और मनुष्य-जी
आध्यात्मिक उन्नतिको ही श्रेष्ठ स्थान दिया गया है।

एक राष्ट्र माना गया है, जिस राष्ट्रमें निवृत्ति-
धन-ऐश्वर्यकी उपेक्षा करनेवाली, तपःस्वाध्याय-
ह्मणजाति स्वाभाविक नेता समझी जाती है, जिसके
गोंकी राष्ट्रभाषा संस्कृत है और जिसके सब ग्रन्थ
ालसे संस्कृतमें ही बने हैं, जिसके सब शास्त्रीय
संस्कृतमें ही होते हैं। कोई कुछ भी कहे, किंतु ऐसी
ौर अपरिवर्तनीय अवस्था संसारकी किसी जातिमें
ो जाती।

ष्टि होनेके सूत्रपातकी दशामें स्त्रीरूपी पीठमें दैवी
गर्भाधानके द्वारा सम्बन्ध बाँधा जाता है। तदनन्तर
के द्वारा दैवी जगत्‌को सामने रखकर सृष्टि उत्पन्न
है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म और नाम-
ादि संस्कार दैवी जगत्‌से सम्बन्ध-स्थापनके लिये ही
े हैं। यथासमय 'चूडाकर्म' तो हिंदू-जातिके सब
ोता है। इसका कारण यह है कि बालककी शिखा
उसका दैवी जगत्‌से सम्बन्ध कराया जाता है और
त्तमाङ्ग (सिर) देव-मन्दिरके रूपमें परिणत किया
। द्विज-बालकोंका यथासमय 'यज्ञोपवीतसंस्कार'
उसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक
लिये तीन लड़ोंका जनेऊ पहनाया जाता है और
व्रत धारण कराके उसको आध्यात्मिक जीवनके
तिज्ञाबद्ध कराया जाता है। इसके अनन्तर बालककी
क्षा आरम्भ होती है, जिसमें गुरुका प्राधान्य रक्खा
और गुरुका अधिकार सर्वोपरि माना गया है।
'विवाहसंस्कार' होता है, जो स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये
र्गका सबसे बड़ा संस्कार है। इस संस्कारमें स्त्री
ुरुषका पृथक्-पृथक् उत्तरदायित्व बताया जाता है
उत्तरदायित्व इसी जन्मतक सीमित न रहकर जन्म-
रतक बना रहता है। विवाहित दम्पति हिंदू-संस्कृतिके
केवल अपने ही गार्हस्थ्य-जीवनकी सुख-समृद्धिके
तरदायी नहीं, किंतु समस्त ब्रह्माण्डकी सुख-समृद्धिके
तरदायी होते हैं। यह महत्ता संसारकी किसी जातिमें
ी जाती। हिंदू जातिका पञ्चमहायज्ञ इसका प्रत्यक्ष
है। यह स्थूल संसार दैवी जगत्‌की सहायतासे सुरक्षित
ौर परिचालित होता है। दैवी जगत्‌के सञ्चालकोंमें ज्ञान-
िक होनेसे भृगु, वशिष्ठ और अङ्गिरा आदि महर्षियों-
न सबसे ऊँचा है। उनके संवर्धनके लिये नित्य यज्ञ

अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, देवरा
धर्मराज, यम आदिके संवर्धनके लिये प्रतिदिन नियमि
'देवयज्ञ' करनेकी आज्ञा है; क्योंकि कर्मके दात
पदधारी देवता ही समझे जाते हैं। तीसरे महायज्ञका
'पितृयज्ञ'। पितृगण एक प्रकारके देवता हैं, जो
कहलाते हैं। उनकी कृपासे कुल—वंश और मनुष्य-
सुरक्षा होती है और स्त्रीकी गर्भावस्थामें उन्हींकी कृप
के अन्तर्गत पूर्वकर्मानुसार देह बनता है। नैमित्तिक
कहाते हैं, जो हमारे पितर शरीरान्तके पश्चात् प
पहुँचते हैं और आवागमनके नियमानुसार फिर लौट
लोकमें आ जाते हैं। इनके संवर्धनके लिये जो य
जाता है, वह 'पितृयज्ञ' कहाता है और यह श्राद्ध
द्वारा भी होता है। तर्पणकी यहाँतक महिमा है कि
द्वारा साधक मिनटोंमें पञ्चमहायज्ञका यजन कर सक
चतुर्थ महायज्ञका नाम है 'भूतयज्ञ'। मनुष्यके
संसारकी अन्य जो जीव-सृष्टि है, वह चार श्रेणियोंमें
और वे चारों श्रेणियाँ स्वतन्त्ररूपसे देवताओंद्वारा परिचालि
संवर्द्धित होती हैं। जैसे वृक्षादिकी उद्भिज्ज सृष्टि, जो रो
करती और नीरोगता भी उत्पन्न करती है;
बादकी स्वेदज-सृष्टि—जैसे जूँ, खटमल इत्यादि;
उत्पन्न होनेवाली अण्डज सृष्टि—पक्षी, मछल
आदिकी सृष्टि और चौथी सृष्टिका नाम है जरायु
जैसे मृग, गाय, घोड़ा और हाथी आदि। मनुष्य
यद्यपि जरायुज ही है, फिर भी वह उक्त स्वाभाविक जी
भिन्न है; क्योंकि उसको धर्माधर्मका अधिकार प्राप्त
है। हिंदू-धर्मके महत्त्व, उदारता और आचारकी व्यापक
ज्वलन्त प्रमाण है कि वह कृतज्ञताके वश होकर
भूतसंघके कल्याणके लिये प्रतिदिन भूतयज्ञका आ
है। हिंदू-जातिका पञ्चम महायज्ञ 'नृयज्ञ' कह
अपने भोजनसे पहले किसी वर्ण, किसी आश्रमका म
आर्य-अनार्य, किसी जाति या देशका हो, उसे
समझते हुए पहले भोजन कराकर पीछे गृहस्थ
भोजन करनेकी विधि है। अतिथि-सेवा भी इसी
अङ्ग माना जाता है। जो अदूरदर्शी सज्जन हिंदुओं
नीचके अधिकारभेद और मनुष्योंमें स्पर्शास
और जातिभेद आदि माननेका कलङ्क लगाते है
समाहित-अन्तःकरण होकर शान्तिसे विचार करेंगे

। अनुभव, स्थूल और सूक्ष्म लोकोंका सम्बन्ध और
त्रमें भ्रातृभाव-स्थापनाका अधिकार जैसा हिंदू-जाति
हिंदू-धर्ममें है, वैसा न कहीं देखनेमें आता है न
ही आता है।

वृत्ति-धर्मकी पूर्णता गार्हस्थ्यमें हो जाती है—वह कैसे
है सो ऊपर बताया गया है। तदनन्तर आर्यजीवनमें
धर्मका अधिकार प्रारम्भ हो जाता है। उस समय
श्रम आरम्भ होता है, उसका नाम वानप्रस्थ है।
य आश्रम है। इस आश्रममें पुरुष अकेला रह सकता
स्त्रीको भी साथ रख सकता है। सब इन्द्रियादिको
ाननेके लिये वह तपस्याके द्वारा प्रयत्न करता रहता
ाचीन कालके ऋषि-मुनिगण प्रायः वानप्रस्थ ही
रते थे, जिनका विवरण पुराण आदि शास्त्रोंमें
ाता है। तदनन्तर अन्तमें जो आश्रम ग्रहण किया
, उसका नाम है 'संन्यास'। आज-कल जैसी पृथ्वी-
था है कि एक गृहस्थाश्रमके ढंगपर ही समस्त
व्यतीत करते और निवृत्तिकी ओर ध्यान भी नहीं
ह अनार्यप्रथा है। प्रकृति-माता जैसा इङ्गित करती
ष्यको उसीका अनुसरण करना चाहिये। नहीं तो
नीचे गिरना स्वाभाविक है। इस कारण प्रवृत्तिधर्म
निवृत्तिधर्म यथासमय अवश्य पालनीय हैं।
मके चार पृथक्-पृथक् अधिकार हैं—कुटीचकधर्म,
र्म, हंसधर्म और परमहंसधर्म। इनके अलग-
ाधन और आचार हिंदू-शास्त्रोंमें पाये जाते हैं,
स-गीता और संन्यास-पद्धतिमें द्रष्टव्य हैं। इस समय
समें व्यतिक्रम दीख पड़ता है, तथापि जो व्यवस्था
ी है, वह सर्वोत्तम है।

प्रकार जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारोंसे संस्कृत
नुष्य कैसी नियमित उन्नति कर सकता है, इसकी
पद्धति हिंदू-धर्ममें ही है और हिंदू-जातिके अधः-
होनेपर भी ये सब संस्कृतिके लक्षण हिंदू-जातिमें
क मिलते हैं। इस समयके नेतृवृन्दोंको सबसे पहले हिंदू-
ा अध्ययन करके अन्य संस्कृतियोंके साथ
क गवेषणा करनी चाहिये। तत्पश्चात् हिंदू-संस्कृतिकी
ते हुए यदि वे सामाजिक सुधारमें ध्यान देंगे,
सफल होंगे, नहीं तो ऐहिक और पारलौकिक

हिंदू-संस्कृतिके सोलह मूलाधार

आर्य-जाति जो धर्म-प्राण है, उसके प्रा
हिंदू-धर्मके सोलह अङ्ग प्रधान हैं। पूज्यपाद
सनातन हिंदू-धर्मको सोलह प्रधान अङ्गोंमें विभ
है और इस धर्मको पूर्णचन्द्रकी तरह सोलह कला
बताया है। हिंदू-धर्मके ये ही सोलह अङ्ग हिंदू-
मूलाधार हैं—

(१) धर्मानुकूल शारीरिक व्यापार-रूपी
समूह इसका प्रथम अङ्ग है। (२) आत्माकी
जानेवाले यावत् विचार सद्विचार कहाते हैं। य
दूसरा अङ्ग है। इस दूसरे अङ्गकी पूर्तिके लि
जाति शिखा-सूत्र धारण करती है। शिखाके
शरीर देव-मन्दिर समझा जाता है। शिखा-बन्धन
ब्रह्मा, विष्णु और महेशका ध्यान किया जाता है
जो तीन लड़ें होती हैं, वे अध्यात्मशुद्धि, अधि
और अधिभूतशुद्धिकी द्योतक हैं। (३) वर्ण-धर्म
धर्मका तीसरा अङ्ग है। क्योंकि रजोवीर्य-शु
जातिकी शुद्धि बनी रहती है और जातिकी आधिभौति
पिताके वीर्य और माताके रजकी शुद्धिपर निर्भर र
(४) जातिकी इस शुद्धिका मूल माताओंके सती
पालनपर ही सम्पूर्ण रूपसे निर्भर है। इस कारण
नारियोंमें सतीत्वका प्राधान्य रहता है और यह इस
अङ्ग है। (५) हिंदू-जातिके धर्मका पाँचवाँ अङ्ग आश्रम
इसके द्वारा मनुष्य-जातिका जीवन व्यवस्थित रह
ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवृत्ति कैसे की जाती है, इसकी सब
शिक्षा दी जाती है। गृहस्थाश्रममें धर्मानुकूल प्रवृत्ति
जाती है। यहीं जीवनकी समाप्ति नहीं होती
वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति सिखायी जाती और
संन्यासाश्रममें निवृत्ति करायी जाती है। इन्हीं
मनुष्य-जीवनकी सार्थकता होती है। (६) दैव
विश्वास हिंदू-धर्मका छठा अङ्ग है। यह स्थूल जगत् सू
जगत्के अधीन होकर सुरक्षित होता है। अनन्तकोटि
नायक, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्के
होकर हमारे इस चतुर्दशलोकमय ब्रह्माण्डके सृ
भगवान् ब्रह्मा, रक्षाकार्यमें भगवान् विष्णु और
कार्यमें भगवान् शिव नियुक्त हैं। उनके अधी

नामक अनेक देवता अपने-अपने पदोंपर नियुक्त
ारी और नित्य ऋषिगण ज्ञानराज्यका सञ्चालन
और अर्यमा आदि नित्य पितृगण स्थूल राज्यकी
। करते हैं। पूर्वजन्मार्जित कर्मके अनुसार सुन्दर
कुरूप शरीर, अन्धता, बधिरता आदि नित्य
ी माताके गर्भमें सृजन करते हैं। उद्भिज्ज, स्वेदज,
आदि चतुर्विध भूतसङ्घकी व्यवस्था भी देवतागण
। हैं। किसी मनुष्यको मारना अथवा बचाना—ये
म देवताओं और असुर आदिकी प्रेरणासे ही
किया करता है। राजा अथवा विचारपति जब
करने बैठता है, तब यदि वह आस्तिक हो तो
हृदयमें देवता प्रेरणा किया करते हैं। यही सब
की अलौकिक क्रियाएँ हैं। (७) भगवान्‌की
क्तिपर स्थिर विश्वास रखकर उनके तथा देवताओं
असुरोंके अवतारोंपर विश्वास करना हिंदू-धर्मका
अङ्ग है। (८) योगमूलक और भक्तिमूलक हिंदू-धर्मकी
ासना-पद्धति है, वह इसका आठवाँ अङ्ग है।
नमूलक मन्त्रयोग, ज्योतिर्ध्यानमूलक हठयोग,
ानमूलक लययोग और निर्गुणध्यानमूलक राजयोग—
ोगमार्गके चार भेद हैं। इसीसे हिंदुओंकी उपासना-
बहुत विस्तृत है। (९) मूर्ति आदि सोलह
दिव्य देशोंमें पीठस्थापन करके सर्वव्यापक
त्ताकी उपासना करना हिंदू-धर्मका नवाँ अङ्ग है।
) शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक इसका
अङ्ग है। यह अङ्ग बहुत गम्भीर विज्ञानसे पूर्ण है।
। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और
मय—इन पाँच कोषोंसे आच्छादित रहता है।
ुद्धि और स्पर्शास्पर्श-विचारके द्वारा उन कोषोंकी
। सम्पादन करता हुआ अन्तमें उन्नत साधक मुक्त
ता है। इन पाँचों कोषोंके पाँच स्वतन्त्र अपवित्र
ले पदार्थ हैं। अन्नमय कोषके दोषको मल कहते
इस मलका लक्षण तो स्पष्ट ही है। प्राणमय कोषके
विकार कहते हैं। शवादिके स्पर्श करनेसे यह
ाक्ति बढ़ती है; क्योंकि प्राणमय कोष अन्य
ो लेकर लोकान्तरमें चला जाता है, तब भी मृतदेहमें
े [illegible] खींचनेकी शक्ति बनी रहती है।

मनोमय बाधक शक्तिको विक्षेप कहते हैं। यह दोष अ
सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदिके समय आ जाता है, जिसके नि
लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बताये गये हैं। वि
कोषके दोषको आवरण कहते हैं और आनन्दमय
दोषको अस्मिता कहते हैं। कर्ममीमांसाशास्त्रमें इन
बचनेके लिये ही शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श-विवेकक
बतायी गयी है।

(११) यज्ञों, महायज्ञोंपर विश्वास रखना हिं
ग्यारहवाँ अङ्ग है। यज्ञ-महायज्ञके हिंदू-शास्त्रमें अ
कहे गये हैं। जो धर्मकार्य एकाधारमें श्रीभ
प्रसन्नता सम्पादन करके साथ-ही-साथ दैवी
संवर्द्धनका कारण होता है, उसको यज्ञ कहते हैं
और महायज्ञमें भेद यह है कि साधक अपने
और पारलौकिक कल्याणके लिये जो साधन कर
जैसा कि पुत्रेष्टियाग और अग्निहोत्रादि, उसक
कहते हैं और जो जगत्‌के मङ्गलके लिये किया जाता
पञ्चमहायज्ञ, उसको महायज्ञ कहते हैं। ऋषियोंकी
लिये किये जानेवाले यज्ञको ब्रह्मयज्ञ कहते हैं और दे
संवर्द्धनके लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसको
कहते हैं। अर्यमा आदि नित्य पितृगण और अ
पूर्वजोंकी तृप्तिके लिये किया जानेवाला पितृयज्ञ है।
स्वेदज, अण्डज और जरायुज—इस चतुर्विध भूतसङ्घ
के लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसको भूतयज्ञ क
एक मनुष्य मनुष्य-जातिका अङ्ग है; इस कारण कर्तव
भोजनसे पहले जो कोई आ जाय, उसको अन्नादि
करना नृयज्ञ है। ये पञ्चमहायज्ञ आर्य-जातिवे
कर्म हैं; परंतु इस समय इनको लोग बिल्कुल
हैं। (१२) वेदों और वेद-सम्मत स्मृति, पुराण औ
शास्त्रोंमें स्थिर विश्वास रखना हिंदू-धर्मका बारहवाँ
(१३) कर्म तथा कर्मका बीज, संस्कार और उसकी त्रि
क्रियापर दृढ़ विश्वास रखना हिंदूधर्मका तेरहवाँ
(१४) जन्मान्तरवादपर विश्वास हिंदूधर्मका चौदह
है। मनुष्य मृत्युलोकमें आता है और जाति, आ
प्रकृति, प्रवृत्ति, शक्ति और संस्कार—इन सातोंके
अपने कर्म-फलको भोगता है और भोग लेनेपर

न्तर घूमनेको आवागमन-चक्र कहते हैं । इसी घूर्णायमान चक्रमें आत्मा या जीवको सहायता ; लिये नाना प्रकारकी श्राद्धविधि, तर्पणविधि और दाय- । स्मृतिकारोंने बाँधी है और श्राद्धादिके नाना स्मृति-पुराणोंमें वर्णित हैं । आजकल दायभागको ोग समझते हैं, वैसी दायभागकी विधि साधारण विज्ञानसिद्ध नहीं है। वह बड़ी सद्व्यवस्थासे बाँधी है। (१५) निर्गुण-उपासना और सगुण-उपासनाकी नाना जो हिंदू-शास्त्रोंमें बतायी गयी हैं, वह हिंदू-धर्मका अङ्ग है और (१६) जीवकी कैवल्य-प्राप्ति इसका र अङ्ग है । हिंदू-संस्कृतिको समझनेके लिये सबसे ऊपर लिखी इन सब बातोंकी ओर ध्यान देना आवश्य

भारतीय संस्कृति और सूर्य

(लेखक—पू० योगिराज स्वामीजी श्रीमाधवानन्दजी महाराज)

ी भी राष्ट्रका अस्तित्व उसकी संस्कृतिके कारण बना ा है । संस्कृतिके उदयास्तसे ही राष्ट्रका उदयास्त होता रतीय राष्ट्रके उत्थानका कारण भारतीय संस्कृतिका । पालन ही हो सकता है और स्वकीय संस्कृतिका त्याग ही का मूल है। इस सत्य और तथ्यको समझे बिना जो रतके उत्थानकार्यमें लगे हैं, चाहे वे बड़े-से-बड़े नेता ही हों, वे सफल नहीं हो सकते । हो सकता है कि ओंकी मानसिक भावनाएँ भारतके कल्याणकी कामनासे ों और उसके लिये उन्होंने अतीतमें अनेक कष्ट भी ये हों; किन्तु जिस पाश्चात्त्य मार्गसे वे अपने तथा- पौरस्त्य ध्येयकी ओर जाना चाहते हैं, वह मार्ग उन्हें संस्कृतिके निकट नहीं ले जाता, वरं उससे दूर कर रहा ै ही इस विपरीत-दिशा-गमनको उनका बुद्धि-चक्षु, बिलायती चश्मा चढ़ा है, न देखता हो । अतः अपने भारतको भव्य बनानेकी स्तुत्य भावना रखते हुए भी व नियोजितः' की भाँति वे दिग्भ्रान्त होकर उस तरफ जा रहे हैं, जिधर जानेमें भारतकी भारतीयताको खतरा भारत-भूमिकी ऋषिप्रणीत संस्कृति अथवा प्रकृतिके ; किये जा रहे कार्योंके फलस्वरूप जिस परिवर्तनको वे ना चाहते हैं, वह विकास नहीं, विनाशका कारण होगा विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्' की उक्तिको र्थ करेगा । खेद है कि हमारे राजनैतिक नेताओंने े और कई बातें सीखकर भी उनके स्व-सभ्यता-प्रचार- हको नहीं सीखा ।

क्षमें आदान और विसर्ग, व्यष्टि और समष्टि, त्मकता और भौतिकताके जितने सिद्धान्त प्रचलित हैं, भारतने विसर्ग, समष्टि और आध्यात्मिकताको ही क्यों ा ? वह आदान, व्यष्टि और भौतिकताके मनोरम मार्गसे क्यों न गया ? यह एक प्रश्न है, जो आजके अंग्रेजी प भारतीय युवकोंके हृदयमें उठता है। इसके उत्तर संक्षेपमें इसपर प्रसंगोपात्त प्रकाश डाला जा रहा है । किये जानेवाले सन्ध्योपासनमें सूर्योपस्थानके चार मन्त्रों मन्त्र इस प्रकार है—

'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्

इस मन्त्रने सूर्यको जगत्की आत्मा बताकर प्रश्नका उत्तर संक्षेपमें दिया है । अर्थात् जिस प्रकार चैतन्यमय प्रकाश प्रत्येक अङ्गको भिन्न-भिन्न अर्थोंमें प्रकाशित तथा प्रेरित किये हुए है, वैसे ही सूर्यनारायण सहस्र किरणोंद्वारा हर देशकी प्रकृति और प्रवृत्ति भिन्नरूपसे प्रकाशित, प्रभावित तथा प्रेरित करते हैं स्थित आत्मा जैसे हाथोंको कार्य करनेकी, पैरोंको नाकको सूँघनेकी, आँखोंको देखनेकी और कानोंको भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रवृत्तिमय शक्तियाँ प्रदान करता उसी तरह ब्रह्माण्डके आत्मरूप सूर्यकी भिन्न-भिन्न प्र किरणें पृथक्-पृथक् देशोंको भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक और प्रवृत्तियाँ प्रदान करती हैं । हमारे शरीरका कार्य इन्द्रियोंको अपना-अपना कार्य करनेकी जो प्रेरणा अथ मिलती है, उसका प्रकट कारण देह-स्थित आत्मा होते मूलस्रोत अथवा उद्गम-स्थान सूर्यमण्डल ही है आत्माके द्वारा शरीरकी सब इन्द्रियोंको अपने-अपने प्रवृत्ति मिलती है । तभी तो उपर्युक्त 'चित्रं देवा सूर्योपस्थान-मन्त्रके आगेवाले मन्त्रमें प्रत्येक स्वधर्म प्रातःकालकी पुनीत वेलामें ब्रह्माण्डके आत्मरूप 'पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शतं प्रब्रवाम शरदः' कहकर अपनी इन्द्रियोंको देनेकी प्रार्थना करता है ।

ंशुकी सहस्र किरणोंके पृथक्-पृथक् प्रभाव
र्यकी पहली किरण जहाँ आसुरी-सम्पत्तिमूलक
उन्नतिकी विधायक है, वहाँ उसकी सातवीं किरण दैवी-
लक आध्यात्मिक उन्नतिकी प्रेरणा देनेवाली है ।
स्थितिके कारण सूर्यकी सातवीं किरण भारतवर्षमें
ाके मध्य अधिक समयतक पड़ती है । इसलिये यहाँ
में अवतारादि और आध्यात्मिकताका प्रसार करनेवाले
र्षि तथा संत पैदा होकर समष्टिके हितमें विसर्गका
ागका उपदेश देते आये हैं और देते रहेंगे । यूरोपमें
ली किरण अधिक समयतक पड़ती है । अतः वहाँके
ावतः ही भौतिक उन्नतिकी ओर प्रवृत्तिशील, व्यक्ति-
र आदानप्रिय होते हैं । उनमें आध्यात्मिकतामूलक
ावना प्रायः उत्पन्न ही नहीं होती । उपर्युक्त तरीकेसे
िरणोंके पृथक्-पृथक्‌रूपमें पड़नेकी सम्भावना सूर्य
ेके परस्पर गतियुक्त सम्बन्धके कारण होती है ।

ुक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतकी
अथवा हिंदू-संस्कृतिसे सूर्य-किरणोंका कितना
ा विलक्षण सम्बन्ध है । सूर्यकी इतर किरणोंके भी
क् स्वभाव अथवा प्रभाव हैं, जिनका विशद
हाँ शक्य नहीं ।

प्रकार सूर्यनारायण विसर्गमूलक देवता होनेसे
र्थात् त्यागकी शिक्षा देते हैं, उसी प्रकार वे अपने
बिना किसी भेदके स्थावर-जङ्गम सृष्टिको प्रकाशित
हैं । कविवर कालिदासने सूर्यदेवके त्यागका वर्णन
रघुवंशी राजाओंके त्यागकी महिमा गाते हुए यों
—

नामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
स्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥

कका तात्पर्य इतना ही है कि सूर्यदेव ग्रीष्मकालमें
जिस रसको खींचते हैं या ग्रहण करते हैं, उसे
हजारगुना करके दे देते हैं । भारतने उनके इस
परहितके लिये त्याग करनेकी शिक्षा ली थी ।
ारतीय संस्कृति सूर्यवत् विसर्गमूलक बनी । वास्तवमें
सब विपत्तियोंके निराकरणका एकमात्र उपाय है ।
ह अर्थ नहीं कि आदान सर्वथा हेय है । सीमित
और असीमित विसर्ग (त्याग) भारतकी विशेषता
र्य-प्रकाशके औदार्य गुणको भी हिंदू-धर्मने अच्छी
हण किया है । भारतीय संस्कृतिमें व्यक्तिवादको

आधुनिक भारतमें पश्चिमकी देखा-देखी आद
प्राधान्य होता जा रहा है, वह उस पाश्चिमात्य शिः
है, जिसे अंग्रेजोंने स्व-सभ्यता-विस्तारकी छिपी इच्छ
विस्तारित किया । आज कहनेको तो देशमें भारतीय
है, किंतु भारतीय संस्कृतिके विकासके लिये कोई सुदृ
होता दिखायी नहीं देता । देशमें जबतक भारतीय
अनुरूप प्राचीन कालकी भारतीय शिक्षा-पद्धतिका
ऋषिप्रणीत मार्गका अनुसरण और अवलम्बन
जायगा, तबतक यह देश नामसे 'भारत' (अब तो
'भारत' नहीं रहा) होते हुए भी अभारतीय भावोंव
बना रहेगा । अतः भारतीय संस्कृतिके प्रेमी भारती
दिशामें कोई बड़ा प्रयत्न करना चाहिये । उन्हे
नहीं होना चाहिये । हजार प्रयत्न करनेपर भी इ
अध्यात्मप्रधान प्रकृतिको बदला नहीं जा सकता
उसका आधारभूत कारण सूर्यकी सातवीं किरण है ।
भारतको आध्यात्मिकताकी ओर खींचे बिना नहीं रह
इस समय भारतकी आध्यात्मिकताका जो विकास रु
सा दीखता है, इसका कारण यह है कि भारतको
प्रकृतिरूप सातवीं किरण तो आध्यात्मिकताकी ओर
है और भारतीयोंको दी जानेवाली पाश्चात्त्य
उन्हें पश्चिमकी ओर खींचना चाहती है । अतः
बीचमें अवरुद्ध होकर 'लटकन्तनाथ' बने हुए
संशयमें पड़े हैं; किंतु यह अवस्था अधिक समय
रह सकती । 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' के अनुसार
सूर्य-किरणप्रधान प्रकृति भारतीयोंको रास्तेपर लाकर
वे यदि स्वयं प्रयत्न करते हैं तो वह सुअवसर
जायगा । यदि वे स्वयं कोई प्रयत्न नहीं करते
समय अधिक लग सकता है । जैसे बकरीको गलेमें रस
कर ले जानेवाले आदमीके साथ-साथ बकरी अपने पै
जल्दी उठाकर चलती है तो समय थोड़ा लगता है अ
पग रोप-रोपकर चलती है तो ले जानेवालेको थोड़ी
भी होती है और समय भी अधिक खर्च होता
प्रकार भारतकी सूर्यकी सातवीं किरणरूपी प्रकृ
आध्यात्मिकताकी ओर खींचना चाहती है । यदि
उधर ही बल लगायें तो समय थोड़ा लगेगा;
भौतिकतापर पग रोपकर अड़ जायँगे तो समय
लगेगा । अन्तमें हम भारतीयोंको जाना तो है उसी अ
मार्गकी ओर; क्योंकि हमारी प्रकृतिके अनुकूल,

(लेखक—योगिराज श्रीअरविन्द)

धर्म एक प्रधान प्रेरणा है

न्त सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, एकमेवाद्वितीय ईश्वर
 शब्दमें भगवान् ही जीवमात्र और कर्ममात्रका गूढ़
 लक्ष्य है; अतएव वही व्यक्ति तथा समाजके—उसके
ों और सभी प्रवृत्तियोंके सम्पूर्ण विकासका उद्देश्य
लिये तर्कबुद्धि हमारी चरम-परम पथप्रदर्शिका नहीं
। संस्कृति, अपने साधारणतः समझे जानेवाले
मार्गदर्शक ज्योति नहीं हो सकती और न यह
स्त जीवन और कर्मके नियामक एवं समन्वयकारी
ा पता ही पा सकती है। क्योंकि तर्कबुद्धि भगवान्से
रह जाती है तथा जीवनकी समस्याओंसे समझौताभर
है; और संस्कृतिको अगर भगवान्की प्राप्ति करनी
उसे आध्यात्मिक संस्कृति बनना होगा। बौद्धिक
ासक, नैतिक एवं व्यावहारिक शिक्षणकी अपेक्षा
ऊँची कोटिकी वस्तु बनना होगा। तो फिर हमें पथ-
प्रकाश तथा नियामक, एवं समन्वयकारी सिद्धान्त
लब्ध होगा ? इसका सर्वप्रथम उत्तर, जो हमारे मनमें
और जो एशियाके विचारकोंने दिया है, यह है कि
ा और सिद्धान्त हमें सीधा धर्ममें उपलब्ध होगा।
युक्तियुक्त तथा आपाततः सन्तोषजनक मालूम
क्योंकि धर्म मनुष्यके अंदरकी एक ऐसी प्रेरणा,
प्रवृत्ति एवं विधि-व्यवस्था है, जिसका लक्ष्य स्पष्ट-
ावान् ही हैं, जब कि मनुष्यकी अन्य सभी प्रवृत्तियाँ
ें ही उन्हें अपना लक्ष्य बनाती प्रतीत होती हैं और
बाह्य एवं अपूर्ण प्रतीतियोंके पीछे चिरकाल भटक-
ठोकर खानेके बाद ही कहीं उनतक पहुँच पाती हैं।
र आदर्श व्यक्ति तथा आदर्श समाजका विकास
र मनुष्यके सम्पूर्ण जीवनको भगवान्में ऊँचा उठा
। ठीक मार्ग यही प्रतीत होगा कि समस्त जीवनको
ानाकर सब काम-काज धार्मिक भावनाके अनुसार
ाय।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि धर्मकी यह प्रधानता
र्मिक प्रेरणा एवं धार्मिक भावनाका अन्य सब प्रेरणाओं

सभ्यताओंकी ही निराली विशेषता नहीं है, अपितु
ही मानव-मन तथा मानव-समाजोंकी न्यूनाधिक स
अवस्था रही है। हाँ, धार्मिक इतिहासके कुछ
संक्षिप्त युग अवश्य इसके अपवाद हैं। आज हम
ऐसे ही युगमें जी रहे हैं; अवश्य ही हम इसमें उबर
शनैः-शनैः करवट बदल रहे हैं, पर अभी इससे
पाये हैं। अतः हमें यह मानना होगा कि साधारण
समाजने धर्मको जो यह प्रमुख एवं प्रधान पद प्रदान
उसमें हमारे प्राकृतिक अस्तित्वकी एक ऐसी
आवश्यकता एवं सचाई निहित है, जिसकी ओर हमें
लंबी नास्तिकताके बाद भी फिर-फिर लौटना होगा
विपरीत हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि महत्
उच्च अभीप्सा, गम्भीर बीजारोपण तथा समृद्ध फल
युगोंमें धर्मकी इस प्रधानतापर प्रायः ही कुठाराघा
जाता रहा है। आधुनिक युग भी एक ऐसा ही यु
यह अपने सभी दोषों एवं अपराधोंके रहते हुए भी
काल है, जब मानवजातिने धर्मकी शक्तिसे नहीं, बल्कि
चेतना तथा मानवीय आदर्शवाद एवं सहानुभूति
उन बहुत-सी चीजोंसे छुटकारा पा लिया है, जो क्रूर,
अज्ञानमय, अन्धकारपूर्ण तथा घृणाजनक थीं। इस
मानवजातिके उस भागने, जो पुनरुज्जीवन (Renasc
के कालमें विचार तथा प्रगतिकी पताका फहरानेमें अग्रग
अर्थात् पुनरुज्जीवनके बादके यूरोप या आधुनिक यूरोप
प्रभुत्वपर प्रबल आक्रमण करते हुए इनका निराकरण

इस विद्रोहने पराकाष्ठाको पहुँचकर धर्मको
मटियामेट कर देनेका यत्न किया; निःसन्देह धर्मके वि
यहाँतक अभिमान किया कि हमने मनुष्यके अंदरकी
प्रवृत्तिका उन्मूलन कर दिया है। परंतु जैसा कि ह
देखते हैं, यह अभिमान थोथा और अज्ञानपूर्ण था;
मनुष्यकी धार्मिक प्रवृत्ति अन्य सबसे बढ़कर उसकी
ऐसी प्रवृत्ति है, जो नष्ट नहीं की जा सकती। यह केवल
रूप ही बदल लेती है। इस विद्रोहने अपने अधि
रूपोंमें धर्मको आत्माके एक कोनेमें अकेले एक

के नैतिक जीवनमेंसे भी इसका मिश्रण निकाल फेंका
इस कारण कि विज्ञान, दर्शन, राजनीति एवं
तथा सामान्यतः जीवनमात्रमें धर्मके मिश्रणसे
अन्धविश्वास, अत्याचार एवं अज्ञानको बल मिलता
निश्चय ही मिलेगा भी । धर्मवादी कह सकता है कि
भ्रम तथा नास्तिकतापूर्ण विकार था । अथवा वह
ा है कि इस नश्वर संसारमें महत्तर ज्ञान, महत्तर
ाचुरतर सुख, हर्ष तथा प्रकाशकी प्राप्तिके अनवरत
अपेक्षा परम तत्त्वके पावन विचारोंसे परिपूर्ण धर्म-
तेरोध, धर्मपरायण अज्ञान, सन्तुष्ट निष्क्रिय अवस्था,
कि व्यवस्थित गतिरोध भी कहीं अधिक श्रेष्ठ है ।
ार विचारक ऐसे तर्कसे सहमत नहीं हो सकता ।
देखनेको बाध्य है कि जबतक मनुष्यने अपने जीवनका
ा आदर्श तत्त्व उपलब्ध न कर लिया हो, तबतक प्रगति
जीवनका आवश्यक एवं वाञ्छनीय नियम है, न कि
स्थिति—निश्चय ही नयी-नयी चीजोंके पीछे किसी
अंधाधुंध दौड़ नहीं, बल्कि व्यष्टि तथा समष्टि दोनोंमें
ाजकी भावना, आदर्श-समूह, स्वभाव एवं गठनमें,
मन एवं प्राणके अधिकाधिक महान् सत्यकी खोज ।
देखे बिना भी नहीं रह सकता कि धर्मपर किये गये
रोपणके निष्कर्षमें तो नहीं, पर इसकी स्थापनामें कुछ
ज थी । यहाँतक कि ऐसा बहुत कुछ था, जो इसे
द्र करता था—यह नहीं कि शुद्ध धर्म प्रगतिमें बाधक
वरं यह कि इतिहास इस बातका साक्षी है और
भी है कि सम्मानित धर्म तथा उनके पुरोहित एवं
ार प्रायः गतिरोधके पृष्ठपोषक रहे हैं, उन्होंने बहुधा
, अत्याचार एवं अज्ञानका पलड़ा ही भारी किया
पीड़ित मानव-मन एवं हृदयके लिये यह
हो गया है कि वे इन गलतियोंको सुधारकर धर्मको
ते लगानेके लिये इसका निषेध एवं विरोध करें ।
दि धर्म मनुष्यकी सभी प्रवृत्तियों तथा सम्पूर्ण मानव-
सच्चा तथा समर्थ पथप्रदर्शक और नियामक हो तो
ता ही क्यों ।

मध्ययुगमें धर्मके नामपर अत्याचार

ा तार्किक या नास्तिक मनके पीछे चलकर हमें इसके
नक समचे उग्र दोषारोपणका अवगाहन करनेकी
बल देनेकी आवश्यकता नहीं, जिन्हें गिरजों,
सम्प्रदायोंने आश्रय, सहमति, स्वीकृति एवं सहाय
की है या जिनका अपने निजी लाभके लिये दुरुपयो
है । इनके निरे द्वेषपूर्ण परिगणनसे मनुष्य नास्तिक रो
की इस पुकारको गुँजानेमें ही प्रवृत्त होगा कि 'ऐसी
बुराइयोंकी ओर धर्म मनुष्यको प्रेरित करनेमें समर्थ
इसी प्रकार स्वाधीनताके नामपर किये गये अपरा
दोषोंका उद्धरण देकर कोई कह सकता है कि ये स्वा
आदर्शको दूषित ठहरानेके लिये पर्याप्त हैं । परंतु इस
ध्यान देते हुए कि ऐसी बुराई सम्भव थी, हमें इसक
ढूँढ़नेकी जरूरत है । उदाहरणार्थ हम उस रक्तरं
अग्निसंकुल पथकी उपेक्षा नहीं कर सकते, जिसपर
तथा बहिर्मुखी ईसाइयत, लगभग कांस्टैंटाइन (Co
tine) के दिनोंसे अर्थात् अपनी लौकिक विजयके
मुहूर्तसे लेकर बिल्कुल आधुनिक कालतक, यूरोपके म
सारे इतिहासमें बराबर चलती आयी है और न हम
आलोचनाकी ही अवहेलना कर सकते हैं, जो पाखण्ड
न्यायसभा (Inquisition)-जैसी संस्थाने ध
दावेपर की है कि वह नैतिकता तथा समाजमें प्रेर
एवं नियामक शक्ति है अथवा जो धार्मिक युद्ध-परम
व्यापक सरकारी दमनचक्रने धर्मके इस दावेपर की है
मानवजातिके राजनीतिक जीवनका मार्गदर्शक है ।
इस बुराईकी जड़पर दृष्टि डालनी चाहिये । इसकी
सच्चा धर्म नहीं, बल्कि इसकी जड़ है मनुष्यका वह
मतिभ्रम, जिसके कारण वह धर्मको तथा किसी वि
सम्प्रदाय, सिद्धान्त, धार्मिक समाज या गिरजे-मन्दि
ही चीज समझकर इनमें घपला कर देता है । इस भ्र
मनुष्यकी प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि प्राचीन सहि
पूजक पैगनधर्म (Paganism)तकने धर्म तथा स
नामपर सुकरातका वध किया, आइसिस (Isis)
तथा मिथ्र (Mithra) के मत-जैसे अराष्ट्रिय धर्मों
मन्द दुःख—कष्ट दिया तथा प्रारम्भिक ईसाइयोंके जि
यह विनाशकारी तथा समाजविरोधी समझता था,
अत्युग्र यातनाएँ दीं । यहाँतक कि इससे भी अधिक
सहिष्णु हिंदूमतमें धर्मने पारस्परिक घृणाको जन्म दि
मौके-मौकेपर बौद्ध, जैन, शैव और वैष्णवपर उपद्रव

र्मकी असमर्थताका सारा मूल कारण इसी बातमें निहित
दाहरणतः, मन्दिरों, गिरजों और मत-सम्प्रदायोंने
था विज्ञानके मार्गमें जबरदस्त रुकावट डाली, एक
नो ब्रूनो (Giordano Bruno) को जला दिया
क गेलिलियो (Galileo) को बन्दी बनाया और
लेमें इन्होंने इतने सामान्य रूपमें दुर्व्यवहार किया
ा और विज्ञानको अपने उचित विकासका खुला क्षेत्र
नेके लिये आत्मरक्षाके भावमें धर्मपर आक्रमण कर
-भ्रष्ट कर देना पड़ा; और यह सब इसलिये कि
यह निश्चित धारणा बना ली थी कि धर्म ईश्वर तथा
सम्बन्धमें कुछ ऐसे स्थिर बौद्धिक विचारोंसे बँधा
जो कसौटीपर पूरे नहीं उतर सकते । अतएव उस
ो आग तथा तलवारसे दबा देना आवश्यक
र्मिक भ्रान्तिके जीवित बने रहनेके लिये वैज्ञानिक एवं
सत्यका निषेध करना आवश्यक था । हम यह भी
कि अतिसंकीर्ण धार्मिक भावना असहिष्णु वैराग्य-
नके आनन्द एवं सौन्दर्यको कुचलकर उसे ऊसर
ही है। प्यूरिटन सम्प्रदायके लोगोंने धर्मका सच्चा
न जानते हुए जीवनके सौन्दर्य एवं आनन्दको
की चेष्टा की । वे नहीं देख सके कि धार्मिक तप धर्मका
ङ्ग भले ही हो, पर यह उसका सार-सर्वस्व नहीं—
का नीति-धर्ममय मार्ग एकमात्र यही नहीं; क्योंकि
ग, सज्जनता, सहिष्णुता, दयालुता भी ईश्वरीय गुण
ा ही नहीं, बल्कि ये अधिक दिव्य वस्तुएँ हैं और
गये या वे कभी जानते ही न थे कि पवित्रताके
म और सौन्दर्य भी ईश्वरका स्वरूप है । राजनीतिमें
ः ही राजसत्ताका पक्षपोषण किया है और अधिक
जनीतिक आदर्शोंके आविर्भावमें बाधा डाली है ।
यं इसका स्वरूप राजसत्तासे पोषित धर्म-संस्थाका
ोर यह सम्प्रदाय और धर्मके अन्तरको हृदयङ्गम
पाता था अथवा, क्योंकि यह झूठे दैवी राज्यका
बना हुआ था, यह भूलकर कि सच्चा दैवी राज्य
ाज्य होता है, न कि पोप तथा पुरोहित-पुजारियोंका
सी प्रकार इसने प्रायः कठोर तथा घिसी-पिटी समाज-
ा समर्थन किया है; क्योंकि इसने समझा कि इसका
वन उन सामाजिक रूपोंसे बँधा हुआ है, जिनके साथ
इतिहासके दीर्घ भागमें सम्बद्ध रहा था और इसने

और इसके अस्तित्वके लिये संकट—मानो मनुष्यके
भावना-जैसी शक्तिशाली और आभ्यन्तरिक वस्तु
रूपके परिवर्तन-सरीखी तुच्छ वस्तु या सामाजिक पुन
जैसी बाहरी वस्तुसे मिटायी जा सकती हो ! यह भ्रां
नाना रूपोंमें अतीतके क्रियात्मक धर्मकी महान् दुर्ब
है और साथ ही इससे बुद्धि, सौन्दर्यभावना, सामाजि
राजनीतिक आदर्श—यहाँतक कि मानवकी नैतिक
ऐसा अवसर और बहाना मिला है कि वे उस वस्तुके
विद्रोह करें, जो उनकी अपनी सर्वोच्च प्रवृत्ति और नि
होनी चाहिये थी

प्राच्य और पाश्चात्य आदर्शोंका समन्

इस तथ्यमें प्राचीन तथा अर्वाचीन, प्राच्य और
आदर्शोंकी विषमताका एक रहस्य निहित है और
उनके समन्वयका एक सूत्र भी । दोनों एक प्रबल न्य
आधारपर प्रतिष्ठित हैं और दोनोंके झगड़ेका कारण
भ्रान्ति । यह ठीक है कि धर्म जीवनमें प्रभावपूर्ण त
चाहिये । इसे जीवनका प्रकाश और विधि-विधान होना
परंतु यहाँ धर्मसे हमारा मतलब धर्मके उस स्वरूपसे है
उसका होना चाहिये और जो उसका अन्तरीय स्व
उसके अस्तित्वका मूल नियम है अर्थात् ईश्वरकी खो
आध्यात्मिकताका सिद्धान्त । दूसरी ओर यह भी सच
धर्म जब अपने-आपको किसी मत, सम्प्रदाय या मठ-
या रूढ़ विधि-विधानोंकी पद्धतिमात्रसे एकाकार कर
तब वह सहज ही बाधक शक्तिका रूप धारण कर स
और मानव आत्माके लिये यह आवश्यक हो सक
कि वह जीवनकी विविध प्रवृत्तियोंपरसे इसका प्रभुत्व दू

परंतु यहाँ एक जटिलता आ उपस्थित होती
विषमताका अधिक गम्भीर कारण प्रस्तुत करती है !
धर्म आध्यात्मिकताको प्रायः ऐसी चीज समझता प्रतीत
है, जो पार्थिव जीवनसे दूरस्थ, इससे भिन्न तथा इसकी
हो । यह ऐसी घोषणा करता प्रतीत होता है कि
जीवनका अनुसरण तथा मनुष्यकी ऐहिक आशाएँ आध्य
जीवन या मनुष्यकी पारलौकिक आशासे असंगत हैं
तो आत्मा एक ऐसी अलग-अलग-सी वस्तु हो जाती है
मनुष्य अपने निम्नतर अङ्गोंके जीवनका बहिष्कार कर
ही प्राप्त कर सकता है और सो इस प्रकार कि या तो

ड़त करके नष्ट कर दिया जाय। यदि धर्मका सच्चा
ो हो तो यह स्पष्ट ही है कि न तो इसके पास
क प्रयत्न, आशा और अभीप्साके यथार्थ क्षेत्रमें मानव-
लिये कोई निश्चित सन्देश है और न हमारी
कसी भी निम्नतर अङ्गके लिये ही। क्योंकि हमारे जीवन-
क तत्त्व स्वभावतः ही अपने क्षेत्रमें अपनी पूर्णता
है और यदि इसे उच्चतर शक्तिका अनुसरण करना ही
ह इसलिये करेगा कि वह शक्ति इसे इसके अपने
ो महत्तर पूर्णता एवं समृद्धतर तृप्ति प्रदान करती
; यदि आध्यात्मिक प्रेरणा इसकी पूर्णता-प्राप्तिकी
ासे ही इन्कार करे और अतः इसकी पूर्णताकी
को ही निकाल फेंके, तब या तो यह आत्मविश्वास खो
और साथ ही अपनी सामर्थ्यों एवं प्रवृत्तियोंके
क विस्तारके सम्पादनकी क्षमता भी, अथवा इसे अपने
भाव तथा स्वधर्मका अनुसरण करनेके लिये आत्माकी
परित्याग करना होगा। पृथिवी और स्वर्गका,
और उसके करणोंका यह कलह हमें और भी अधिक
एवं पङ्गु बना देनेवाला हो जाता है। यदि आध्यात्मिकता
, कठोर यातना और संसारकी निःसारताके धर्मका
ग कर ले, तो यह दुःखवाद अपने बढ़े-चढ़े रूपमें
ऐसे घोर विषाद और निराशाके दुःस्वप्नोंको जन्म
जैसे मध्ययुगमें उसकी हीनतम अवस्थामें छाये हुए
कि संसारका सन्निकट और प्रत्याशित अन्त या
ावी एवं अभीष्ट प्रलय ही मानवजातिका एकमात्र
दीख पड़ता था। परंतु जगद्विषयक यह निराशा-
वना अपने कम प्रकट और कम असहिष्णु रूपोंमें
को निरुत्साहित करनेवाले बलका काम करती है,
यह जीवनका सच्चा नियम एवं पथप्रदर्शक नहीं हो
समस्त दुःखवाद इतने अंशमें आत्मसत्ता तथा
-वैभव एवं ऋद्धि-सिद्धिको अङ्गीकार न करनेवाला,
ईश्वरकी कार्यप्रणालियोंको सहन न करनेवाला और
उत्पादक तथा सञ्चालक दिव्यप्रज्ञा एवं शक्तिमें
श्वास करनेवाला है। यह उस प्रज्ञा एवं शक्तिके
एक अशुद्ध विचारको अपनाता है और इसलिये यह
माकी वह परम प्रज्ञा एवं शक्ति नहीं हो सकता,
सार ऐसी आशा लगा सके कि वह इसके सम्पूर्ण
पथपर चलाकर भगवान्‌की ओर ऊँचा उठा देगी।
मकी धर्म-विमुखता एक दूसरी अति है, लटकनकी
टी गति है। इसके अनुसार यूरोपने धर्मके दावे

(Reformation) मेंसे गुजरते हुए आधुनिक
भावनाका विकास किया, जो भावना साधारण पार्थिव
को ही अपना एकमात्र मुख्य धंधा समझती तथा
अङ्गोंके अध्यात्मजिज्ञासाशून्य धर्मसे अपनेको
करना चाहती है। यह एक भूल है; क्योंकि पूर्णता ऐ
एवं संकीर्णताके भीतर प्राप्त नहीं की जा सकती, जो
जीवनके पूर्ण विधान, गभीरतम प्रेरणा तथा गुह्यतम
इन्कार करे। उच्चतमकी ज्योति और शक्तिसे ही नि
परिचालित, उदात्त और चरितार्थ किया जा सक
मनुष्यका निम्नतर जीवन अपने बाह्य रूपमें अदिव्य है
इसके भीतर दिव्यताका रहस्य निहित है और उच्चतर
तथा आध्यात्मिक प्रकाश अधिगत करके ही इसे दिव्य
जा सकता है। दूसरी ओर जब मनुष्य वर्तमान
अदिव्यता तथा आध्यात्मिक जीवनसे इसकी असंगतिवे
व्याकुल होकर इससे भागता या इसके विकासको निर
करता है तो उसकी यह व्याकुलता एवं वैराग्य भी एक
है। साधु या कोरा तपस्वी इससे अपना वैयक्तिक नि
अवश्य प्राप्त कर सकता है—जिस प्रकार जडवादी भी
शक्ति और एकाग्र गवेषणाके उचित फल अधिगत क
है; परंतु वह वैरागी साधु मनुष्यजातिका सच्चा मा
और उसका नियमोपदेष्टा शास्त्रकार नहीं हो सकता।
इस सारे मनोभावमें जीवन और उसकी अभीप्साओं
घृणा तथा उनपर अविश्वास अन्तर्निहित है और जिस
मनुष्यको जरा भी सहानुभूति नहीं, जिसे वह न्यून
तथा निरुत्साहित करना चाहता है, उसका वह भल
कुशलतासे सञ्चालन कर सकता है। शुद्ध वैराग्य
जीवन और मानव-समाजका परिचालन करती हुई इन्हें
इस योग्य बना सकती है कि ये अपने-आपको ही अ
करने तथा अपनेसे दूर भागनेके साधन बन जायें
निम्नतर प्रवृत्तियोंको सहन तो कर सकती है, पर केवल
प्रेरणा देनेके लिये ही कि वे अपने-आपको यथासम्भ
करके अन्ततोगत्वा अपनी क्रिया बंद कर दें। जो आ
पुरुष मानव-जीवनको इसकी पूर्णताकी ओर ले चल
है, उसका आदर्शरूप 'ऋषि' के प्राचीन भारतीय वि
निदर्शित है। जिस ऋषिने मनुष्यका-सा जीवन बित
अतिबौद्धिक, अतिमानसिक, आध्यात्मिक सत्यका दिव्य
श्रवण किया होता है, वह इन शरीर-प्राण-मनकी
सीमाओंसे ऊपर उठ चुका होता है और सभी वस्तुएँ ऊप
देख सकता है; पर साथ ही उसे उनके प्रयत्नके

है। अतः वह मानव-जगत्का उसी तरह पथ-
र सकता है, जिस तरह ईश्वर दिव्यरीतिसे इसका
न करते हैं; क्योंकि भगवान्के समान वह भी जगत्के
हता हुआ भी उससे ऊपर होता है।

धर्म और आध्यात्मिकता

: आध्यात्मिकताके इस अभिप्रायको हृदयङ्गमकर
दर्शक ज्योति और समन्वयकारी विधानकी खोज ऐसी
कतामें ही करनी होगी और धर्ममें उसी हदतक, जहाँतक
को इस आध्यात्मिकतासे तदाकार करता है। जबतक वह
रहता है, तबतक वह अन्यान्य मानवी प्रवृत्तियों तथा
ी श्रेणीके ही अन्तर्गत होता है—भले ही वह उन
धेक मुख्य तथा अधिक प्रभावशाली ही क्यों न हो; और
को पूरी तरह मार्ग नहीं दिखा सकता। यदि यह उन्हें
किसी सिद्धान्त, अपरिवर्तनीय धर्मशास्त्र तथा विशेष
सीमाओंमें बाँधनेकी चेष्टा करता है तो इसे उन्हें
मुत्वके विरुद्ध विद्रोह करते देखनेको तैयार रहना
योंकि चाहे वे कुछ समयके लिये इसका प्रभाव अङ्गीकार-
े महान् लाभ उठा सकती हैं, तो भी अन्तमें उन्हें
त्ताके नियम (स्वभाव) के अनुसार अधिक स्वतन्त्र
र कर्मकी ओर बढ़ना होगा। आध्यात्मिकता मानव-
आत्माकी स्वतन्त्रताका सम्मान करती है; क्योंकि उस स्वतन्त्र
यह स्वयं चरितार्थता लाभ करती है। अपनी निजी प्रवृ
नियम (स्वधर्म) के अनुसार पूर्णताकी ओर विस्तार
विकास-लाभ करनेकी क्षमता ही स्वतन्त्रताका अत्यन्त ग
आशय है। ऐसी स्वाधीनता यह हमारी सत्ताके सभी
अङ्गोंको प्रदान करेगी। यह दर्शन तथा विज्ञानको
स्वाधीनता देगी, जो प्राचीन भारतीय धर्मने दी थी,—य
कि उन्हें ऐसी स्वतन्त्रता भी देगी कि यदि वे चाहें तो उ
से इन्कार भी कर सकते हैं,—जिस स्वाधीनताके प
स्वरूप प्राचीन भारतमें दर्शन और विज्ञानने धर्मसे स
विच्छेद करनेकी कभी आवश्यकता अनुभव नहीं की,
वे इसकी ज्योतिकी छत्रच्छायामें विकसित होकर इसीमें
हो गये। यह मनुष्यकी राजनीतिक एवं सामाजिक पू
खोजको तथा उसकी अन्य सभी शक्तियों एवं अभीप्स
भी वही स्वाधीनता प्रदान करेगी। हाँ, यह उन्हें आ
अवश्य करना चाहेगी, ताकि वे आत्माके प्रकाश एवं ि
विकसित हो जायँ—दबाव या बन्धनके कारण न
अपनी महत्तम, उच्चतम, गभीरतम सम्भाव्य शक्तियोंके
तथा बहुमुखी उपलब्धिके द्वारा। क्योंकि ये सभी उ
ही सम्भाव्य शक्तियाँ हैं।

श्रद्धा

(लेखिका—श्रीअरविन्द-आश्रमकी अध्यक्षा श्रीमाताजी)

ह्य चेतना-जन्य बोध आन्तरात्मिक बोधको अस्वीकार
रता है। तथापि, अन्तरात्मामें सच्चा ज्ञान एवं सहज
ज्ञान निहित है। अन्तरात्मा कहती है, 'मैं जानती हूँ;
कयाँ नहीं दे सकती, पर मैं जानती हूँ।' क्योंकि इसका
मानसिक अनुभवपर आश्रित या प्रमाणोंसे सत्य सिद्ध
हुआ नहीं होता। यह प्रमाण दिये जानेके बाद ही
स करती हो ऐसी बात नहीं; अन्तरात्माका ज्ञान सहज-
त एवं प्रत्यक्ष होता है और ऐसी अन्तरात्माकी क्रियाको
द्धा कहते हैं। चाहे सारा संसार इन्कार करे और विरोधमें
प्रमाण प्रस्तुत करे, तो भी उसका ज्ञान एक ऐसा
ज्ञान एवं साक्षात् प्रत्यक्ष होता है, जो उन सबका निराकरण
सकता है। वह होता है तादात्म्यलब्ध ज्ञान। अन्तरात्माका
एक मूर्त एवं गोचर वस्तु तथा ठोस पिण्ड होता है।
हमे अपने मन, अपने प्राण तथा अपने शरीरमें भी ला
किसी भागको अविश्वासीके रूपमें प्रकट होकर यों नहीं
चाहिये, 'यह बात ऐसी नहीं है' और न उसे प्रमाण
ही करनी चाहिये। जरा भी अधूरे विश्वाससे तुम सब
बिगाड़ देते हो। यदि श्रद्धा पूर्ण एवं अटल न हो
देव भला कैसे प्रकट हो सकते हैं। श्रद्धा अपने आ
अविचल होती है—यह इसका निज स्वभाव ही है
अन्यथा इसे श्रद्धा कह ही नहीं सकते। परंतु, सम्भ
मन या प्राण या शरीर अन्तरात्माकी गतिका अनुसरण
यह हो सकता है कि किसी मनुष्यमें एक योगीके प
सहसा ऐसी श्रद्धा पैदा हो कि यह व्यक्ति मुझे में
पहुँचा देगा। उसे मालूम नहीं कि इस व्यक्तिको
है या नहीं। उसे आन्तरात्मिक आवेगका अनुभ
और ऐसा जान पड़ता है कि उसे गुरु मिल गये
बहुत देर मनमें सोच-विचारकर या अनेक चमत



व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण

व अपनी भवितव्यतासे हाथ धो बैठोगे । कुछ
: सोचने बैठ जाते हैं कि आन्तरात्मिक आवेग युक्ति-
या नहीं ।

गोंके पथभ्रष्ट होनेका कारण वास्तवमें तथाकथित
वास नहीं होता । वे प्रायः कहते हैं, 'अहो, मैंने
मुक व्यक्तिमें विश्वास किया और उसने मुझे धोखा
।' परंतु सच पूछिये तो दोष उस व्यक्तिका नहीं,
श्वास करनेवालेका होता है । उसके अपने अंदर ही
जोरी होती है । यदि वह अपना विश्वास अटूट
खता तो वह उस व्यक्तिको बदल देता । क्योंकि वह
ामय चेतनामें स्थिर नहीं रहा, अतएव उसने अपनेको
अनुभव किया और उस व्यक्तिको वह जिस रूपमें
चाहता था, उस रूपमें नहीं देख पाया । यदि उसमें
ा होती तो वह उस व्यक्तिको बदलनेके लिये बाध्य
। श्रद्धासे ही सदा चमत्कारोंकी सृष्टि होती है । एक

व्यक्ति किसी दूसरेके पास जाता है और वहाँ
उपस्थितिका सम्पर्क प्राप्त करता है; यदि वह इस
शुद्ध और सुरक्षित रख सके तो इससे भागवत चेतना
जड भागतकमें प्रकट होनेको बाध्य होगी । परंतु
तुम्हारी अपनी आदर्श-मर्यादा एवं तुम्हारी अपनी
निर्भर है; जितना ही अधिक तुम आन्तरात्मिक तौर
होगे, उतना ही अधिक ठीक मार्ग तथा ठीक
प्राप्तिकी दिशामें प्रेरित होगे । अन्तरात्मा और उस
सदा सच्ची होती है; पर यदि तुम्हारी बाह्य सत्तामें छ
है और यदि तुम आध्यात्मिक जीवनके बदले
सिद्धियोंकी प्राप्तिका यत्न कर रहे हो तो यह चीज तुम्हें
कर सकती है । तुम्हें भटकानेवाली चीज यही है, न कि
श्रद्धा । यह संभव है कि श्रद्धा, अपने आपमें शुद्ध होने
हमारी सत्तामें निम्न चेष्टाओंके योगसे मिलावटी बन जा
जब ऐसा होता है, तभी तुम गलत रास्तेपर जा पड़ते



हिंदू-संस्कृति

(लेखक—श्रीमाधवराव सदाशिव गोळवलकर [पू० गुरुजी] सरसंघसंचालक, रा० स्व० संघ)

ुष्यमात्रको परम सुखकी प्राप्ति करवा देनेका ध्येय
खकर चलनेका दावा करनेवाले बहुत-से धर्म-पंथ तथा
नाएँ आज संसारमें विद्यमान हैं। उनके स्थूल-
ो भेद किये जा सकते हैं—(१) ईश्वरका
मानकर उसकी उपासनाद्वारा मनुष्यको सुख प्राप्त हो
, यों कहनेवाली और (२) प्रत्यक्ष दिखायी
इस भौतिक जगत्के अतिरिक्त और कोई सत्य है
और इस जड जगत्में पाये जानेवाले साधनोंको
प्रत्येक व्यक्तिको प्राप्त करवा देकर उसकी स्वाभाविक
ताएँ या आकाङ्क्षाएँ पूरी करनेमें ही सब सुख है,
तेपादन करनेवाली । शारीरिक क्षुधाओंकी पूर्तिमें
उस पूर्तिके लिये आवश्यक वस्तुओंकी अप्राप्तिमें
वमात्रको होता है । अतः भौतिक कामनाओंकी पूर्तिमें
, यह बात आपाततः ठीक जँचती है । इसी बातको लेकर
धुनिक विचार-प्रणालियाँ उत्पन्न हुई हैं । मानवोंकी
अधिष्ठानपर रचना करना, जिसमें प्रत्येक मनुष्य
ारीरिक सुख-साधनोंको प्राप्त करे, और उस आर्थिक
के अनुकूल ही मनुष्यका समाज-जीवन और राजनैतिक

एकमात्र उद्दिष्ट है । परंतु कुछ कालके लिये होनेवाली वास
जीवसाधारण-विषयप्राप्ति सुखकारक होनेपर वह आगे
मनुष्यको अशान्त करती हुई दिखायी देती है । इसके द
हैं । एक तो विषय-वासनाओंकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है ।
तुष्ट करनेकी जितनी ही चेष्टा की जाती है, उतनी ही वे बढ़
इस प्रकार व्यक्ति या समाजके लिये वासनाओंका उ
बढ़ते जाना और उसपर सदा असंतोषका बना ही रहन
जगत्में बार-बार होनेवाले भयङ्कर युद्धोंका प्रमुख का
जगत्में अशान्ति तथा असुख बनाये रखनेमें यही
कारण है । इस प्रकार वासनापूर्ति असम्भव होनेके
मानव-जीवन दुखी होता हुआ दीखता है । दूसरे,
केवल निर्बुद्ध प्राणी तो है नहीं । उसमें बुद्धि
सोच सकता है और जीवसाधारण विकारोंके कारण
जगत्का ही प्रथम अनुभव और उससे कुछ भौतिक सुख-
सम्भावना देखनेके कारण वह उसमें कुछ काल रमण क
परंतु आगे चलकर वह समझ जाता है कि इन आपातत
देनेवाली वस्तुओंमें वास्तविक सुख देनेकी कोई शक्ति
है । सुख तो अपने ही अंदर समय-समयपर उठनेवाली व
तरङ्गोंकी शान्तिसे होता है । यानी सुख बाह्य वस्तुमें

विचारके उत्पन्न होते ही मनुष्य भौतिक जीवनसे मुँह
गत्की चित्र-विचित्र रचना करनेवाली ईश्वर नामकी
ुणसम्पन्न सर्वसुखमयी शक्ति होनी ही चाहिये, ऐसा
करके भौतिक जीवनको केवल दुःखमय मान लेता
उस शक्तिकी उपासना करनेसे सुख-प्राप्ति हो सकेगी,
ना करता है। ऐसी भावना और अनुमान ही
के जन्ममें कारण होते हैं (यहाँ निसर्गपूजा, प्रेतपूजा
यन्त प्राथमिक स्वरूपोंकी उपासनाओंका विचार नहीं
। भौतिक सुखमें सुख है ही नहीं, जीवन केवल
है, इस जीवनके पश्चात् उस शक्तिकी उपासनासे
सुख प्राप्त हो सकेगा—इस भावको लेकर केवल
पर आधारित ये पंथ बन जाते हैं।

; मनुष्य केवल श्रद्धाके भरोसे, मृत्युके पश्चात् आनेवाले
पर निर्भर रहकर, जिसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता
ाजके प्रत्यक्ष जीवनके सुख-दुःखादिको भूल
ा। इन उपासनाओंमें प्रत्यक्ष मानव-जीवनकी रचना
े निर्मित सुखका कुछ भी प्रबन्ध नहीं होता।
ब प्रत्यक्ष जीवनको दुःखसे मुक्त करनेके
इस प्रकारकी केवल श्रद्धामूलक उपासनाएँ उसे
दीखती हैं, तब उसे भयानक असमाधानका
होता है और श्रद्धाशून्य जडवादकी ओर वह झुक
।

ु मनुष्यमें बुद्धि भी है। वह स्वयं जीवके, और
ेखनेवाले और दिन-प्रतिदिन अनुभवमें आनेवाले
मिश्रित जगत्के, विषयमें सोचता है। इस सारे
के किसी मूलभूत सत्तत्त्व (Reality) की खोज
। उस सत्तत्त्वके विचारसे प्राप्त निर्णयोंका जीवनमें
रके देखता है; किंतु सुखका मध्यबिन्दु प्राप्त नहीं
ह स्वाभाविक भी है। किसी वर्तुलके मध्यबिन्दुको
लिये उसकी परिधिके दो ही बिन्दु लेनेसे काम नहीं
एक तीसरा बिन्दु भी लेना पड़ता है, तभी वर्तुलका
या जा सकता है। अन्यथा सभी सत्तत्त्व-जिज्ञासा
रह जाती है।

रतीयेतर समाजोंमें, विशेषकर आजके भौतिक दृष्टिसे
श्चात्त्य समाजोंमें, उपर्युक्त तीनों प्रकार पाये जाते हैं।
में मनुष्यके जीवनको समाजरूपसे सुव्यवस्थितकर

सम्बन्ध वे नहीं ला सके और इसीलिये उनके प्रति
अधिकाधिक अश्रद्धा ही निर्माण होती जा रही है
जडवाद ही मनुष्यमात्रके अन्तःकरणपर प्रभाव रख
दिखायी देता है। वह भी सुखका वास्तविक स्वरूप न
कारण जीवनमें एक तीव्र असमाधान और अशान्ति
हुआ प्रतीत होता है।

भारतमें इस विषयपर सब पहलुओंसे विचा
गया है। इस शरीरके अतिरिक्त और कुछ भी
अतएव—

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः

—इस प्रकारके पूर्णतया जडवादी विचारसे ले
सत्यं जगन्मिथ्या' इस पूर्णतया तत्त्व-ज्ञानात्मक सि
सभी विचार अपने हिंदू-समाजके पूर्व ऋषि-मुनियोंने
उन्होंने यह अनुभव किया कि 'सुखकी प्राप्ति किसी
इस जीवनके अन्तके पश्चात् होगी, अभी कुछ भी नहीं
इससे किसीका समाधान हो नहीं सकता। साथ ही
यह भी अनुभव किया कि 'ऐहिक जीवनके सुख-साधन
व्यर्थ न होनेपर भी वे चिरकाल सुख देनेमें समर्थ
सुख वस्तुनिष्ठ नहीं, आत्मनिष्ठ है। कामपूर्तिके समस
समीप होनेपर भी मनुष्य दुखी रह सकता है और ऐहि
लाभके किसी साधनके बिना ही मनुष्य चिरन्तन
अनुभव कर सकता है।' उन्होंने यह भी देखा कि "
के साधनोंकी विपुलता कामको पूर्णकर सुख देनेके
कामकी वृद्धि ही करके असमाधान और तज्जन्य दुःख
देती है।' तथापि इस जीवनमें भी सुख मिले
शरीरके अन्तके पश्चात् भी यदि कोई जीवन हो त
सुखसम्पन्न हो, यही मनुष्य चाहता है। यही
हिंदू-तत्त्वज्ञोंने 'धर्म' की व्याख्या 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेय
इस प्रकार करके धर्मको अभ्युदय और निःश्रेयस, ऐहि
पारलौकिक सुख, सिद्ध करनेके लिये समाजकी धारण
वाला बतलाया।

मनुष्यमात्रको सुव्यवस्थित समाजरूपसे धारणक
व्यक्तिके ऐहिक सुखलाभके साथ पारमार्थिक उन्नति
दृष्टिसे हिंदुओंकी तत्त्व-विचारणा हुई। सर्वप्रथम
अर्थात् सुखका वास्तविक स्वरूप निर्धारित कर

ह रूप है। इस विचारको पाकर उन्होंने जीव और —इन दो विन्दुओंके साथ सत्-चित्-आनन्दमय प तीसरे विन्दुकी खोज की, और इन तीन विन्दुओं-पर जोड़कर इस अखण्ड-मण्डलाकार विश्वका मध्य द्वितीय अनिर्वचनीय जो मध्यके नाते सबको व्याप्त हुआ भी उससे परे और सर्वथा स्वतन्त्र है, उस तत्त्वका आविष्कार किया और उसे उन्होंने 'ब्रह्म' शब्द इस ब्रह्मका साक्षात्कार ही सुख—अखण्ड सुख ा है। मनुष्य यानी जीव एक ओर जगत् और दूसरी श्वरसे सम्बन्धित होता हुआ इस ब्रह्मको कैसे साक्षात् र सुखी हो, यह प्रश्न उन्होंने इसके साथ सामने रक्खा सके मार्ग प्रस्थापित किये—कर्म, भक्ति, योग और इन मार्गोंको इसके साक्षात्कारके हेतु प्रकट करके उन्होंने ान्त प्रस्थापित किया कि 'ब्रह्मका ज्ञान हुए बिना अन्तिम त्यन्तिक सुखकी प्राप्ति हो नहीं सकती।' किसी भी वस्तु-ज्ञान उससे ऐकात्म्य होनेपर ही मिलता है। इस नियम-सार यह स्पष्ट है कि जीव भी ब्रह्म होकर ही उसका ज्ञान प्राप्तकर सुखी हो सकता है। जीव वस्तुतः ब्रह्म योंकि सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करता हुआ ब्रह्म ही भी स्वरूप है। अन्तर केवल इतना ही है कि जीव (सीमित) है और ब्रह्म अमर्याद (असीम)। व यदि अपनी मर्यादाओंको नष्ट कर दे तो वह ब्रह्म और सुख भी।

परसे यह स्पष्ट होता है कि जीव—मनुष्य अपने को यानी मर्यादित्वको—अल्पत्वको दूरकर जितनी ाका अनुभव करेगा, उतना ही उसे सुख मिलेगा। यही यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति' इस श्रुतिवाक्यमें या गया है। मनुष्यका अल्पत्व इसी कारण है कि वह एक शरीरधारीमात्र समझता है, अपने शरीरको ही मझकर उसके सुखके निमित्त बाह्य साधन—परिवार, रण-पोषणके साधन इत्यादिमें ही मग्न रहकर 'मैं' मेरा' इस भावनाकी अपने चारों ओर संकुचित डाल लेता है। अतः विशालताका अनुभव कर सुखी लये सर्वप्रथम इन मर्यादाओंको तोड़ना आवश्यक मैं' और 'मेरा' को छोड़ना जीवनको स्वार्थसे कामनाओंकी गुलामीको तजकर ऊपर विजय पाप्त

संकुचित मर्यादाओंको तोड़कर सुखकी प्राप्ति करना अ त्यागकी प्रखर अग्निमें स्वार्थ, कामना और ऐहिक सुख- का होम करना ही सच्चा जीवन है। यही 'यज्ञ' है औ नारायण—सर्वसुखमय ब्रह्मका साक्षात् स्वरूप है।

त्यागसे 'मैं' की संकुचित भावनाके भंग कर दे प्रथम जो सामने आता है, वह है अपना समाज- 'मैं' कहनेवाले जीवमें जो ब्रह्म है, वही इसमें अधिक रूपमें व्यक्त है—यह भाव उत्पन्न होता है। उपर्यु विन्दुओंका इस दृष्टिसे व्यष्टि, समष्टि और परमेष्टि— समाज और विश्वात्मा—इन नामोंसे विचार करके विशाल हो जाता है और समाजके साथ तादात्म्यका अ अन्तमें संपूर्ण विश्व और ब्रह्मका साक्षात् कर चिरन्त लाभ करता है, यह समझना सुलभ है। इस वि अनुभव इसी जीवनमें करना जगत्में सुखप्राप्तिका सा

वैयक्तिक जीवनकी संकुचिततासे ऊपर उठकर सम व्यक्तिके तादात्म्यका अनुभव होना समाजके व्य जीवनमें वास्तविक सुख और शान्तिका निर्माण क समाज जिन व्यक्तियोंसे बना है, उन सबमें एका उत्पन्न निरतिशय प्रेमके बिना यह तादात्म्य सकता। अतः जब व्यक्ति संकुचितताको छोड़कर, वासनाओंपर विजय पाकर, त्यागी जीवनको अपना बातको पहचान लेता है कि सारा समाज अपने-जैसे ही व्य है, एक ही सत्तत्त्वसे प्रकट हुआ है, अपनेमें और अन्य में अभेदरूपसे वह सत्तत्त्व भरा हुआ है, तभी वह प्रेम करनेमें समर्थ होकर समाजके साथ तादात्म्यका कर सकता है, और इस तादात्म्यसे विशाल होकर सु है। समाजके साथ अभेददृष्टि रखनेसे प्रेमका प्रादुर्भ ही प्रत्येक व्यक्तिके सुख-दुःखकी अनुभूति और प्रत्येक के दुःखको हटाकर उसे सुखी करनेके लिये उस करना तथा प्रत्येक व्यक्ति उस चिरन्तन सत्तत्त्व ईश्वरका है—इस सद्भावसे उसकी सेवा करना स्वाभाविक हो इस धारणाको आत्मसात् कर समाजसेवा करनेवाले, मार्गदर्शन करनेवाले त्यागी ज्ञानी जितनी मात्रामें समाजमें होंगे, वह समाज उतना ही सुखी, प्रगतिमा श्रेष्ठ होगा।

हिंदू-संस्कृतिने समाजरचनामें इस प्रकारके

व्यक्तियोंकी आवश्यकता समझी । प्रयत्नपूर्वक सब
का इस प्रकार बनना उसने वाञ्छनीय समझा और
था महान् परिश्रमपूर्वक सत्संस्कार-निर्माणके प्रयत्नों-
त हो सकती है । इस भावको प्रकट करनेके लिये जिस
इमें समाजकी ऐसी अवस्था होगी, उसे 'कृत' युग
म्पूर्ण समाज ही इस श्रेष्ठ चारित्र्यसे पूर्ण होनेके कारण
सुव्यवस्थित धारणाकर प्रत्येक व्यक्तिको अभ्युदय
श्रेयससिद्ध करवा देनेवाला धर्म पूर्णरूपसे वर्तमान
और सब व्यक्तियोंमें परस्पर स्वार्थशून्य स्नेहपूर्ण
रखता है । अतः व्यक्तियोंमें अनाचारका नियमन
तको स्वास्थ्य देनेवाली राजसत्ता, दण्डनियम आदि
थामें अनावश्यक होते हैं । यही बात—

ाज्यं न च राजाऽऽसीन्न दण्डो न च दाण्डिकः ।
णैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

इस श्लोकमें निःसन्दिग्ध रूपसे कही गयी है । आज भी
archism—withering away of the State
वप्न देख रहे हैं; किंतु उनके द्वारा उसके अधिष्ठानका—
चार नहीं किया गया होनेके कारण वह अवस्था कैसी
र किस प्रकार व्यक्ति समाजरूपमें रहेंगे—इसका उन
माधानकारक स्पष्टीकरण नहीं मिलता । उस अवस्थाका
र्णन और उसकी प्राप्तिका साधन केवल हिंदू-संस्कृतिने
माधानकारक रीतिसे बतलाया है ।

 जबतक यह वाञ्छनीय अवस्था प्राप्त नहीं होती,
माजधारणा कैसे हो ? तबतक तो राजसत्ताके बिना काम
गा । यह बात हिंदू-संस्कृतिने मान ली । राजसत्ताकी
ता होनेके बाद उन्होंने यह भी अनुभव किया कि
त सत्ता समाजको स्वातन्त्र्य-सुख देनेके स्थानपर
और दुःख ही देगी । अतः उन्होंने सत्ताके ऊपर उपरि-
ष्ठ पुरुषोंका नियन्त्रण डाला । राजसत्ताके द्वारा हो सकने-
न्यायको अन्याय ही कहते हुए उसे बदल देनेका भी
उन्हें दिया; परंतु स्वयं स्वार्थनिरपेक्ष रहकर राजसत्ता-
ोगसे उन्हें सर्वथा दूर रक्खा । धर्म और न्यायदाता तथा
को विभक्त रखकर अनिर्बन्ध हो सकनेवाली और इसी
अत्याचारी एवं दुःखदायक हो सकनेवाली सत्ताको
त रखनेका सुप्रबन्ध किया ।

। विभक्तीकरणके अनुसार राजसत्ता और द्रव्योत्पादन—
दोनोंके द्वारा मद उत्पन्न होकर अन्यायकी प्रवृत्ति ह
है । राजसत्ता और द्रव्योत्पादनके साधनोंपर अधिकार-
एकत्रित होनेपर कितनी उन्मत्तता उत्पन्न हो सकती है—
भी समझ सकता है । एक ही व्यक्तिमें या व्यक्तिसमूह
शक्तियोंके केन्द्रित हो जानेसे शेष समस्त समाजका सर्वथा
गुलाम-सा होकर पतित होना या अत्याचारके नीचे पिसे
कारण चिढ़कर विद्रोही बन जाना और इस प्रकार समाज
तथा सुखका नाश हो जाना स्वाभाविक ही है । इस विप्लव
समाजको बचाकर चिरशान्ति देनेके हेतु राजसत्ताको
और धनयुक्त व्यक्तिको सत्ताहीन रखकर दोनोंको परस्पर
अन्योन्याश्रित करके दोनोंके ऊपर त्यागी, स्वा
व्यक्तियोंका न्यायपूर्ण नियन्त्रण प्रस्थापितकर सत्ताध
धनवान्—कोई भी बाकीके समाजसे अन्यायपूर्ण व्यवहा
दुखी न कर सके, अपनी समाजरचनामें हिंदू-संस्कृति
लिये सुव्यवस्था करनेकी चेष्टा की । इस प्रकार
परस्परावलम्बित्व, परस्परसहकार्य तथा परस्पर सद्भाव
ही समाजको सुव्यवस्थित रखकर सब व्यक्तियोंको
जीवन प्राप्त करा सकता है—हिंदू-संस्कृति इस सिद्धान्त
सामने रखकर ही समाज-रचनाका प्रयास करती है ।

व्यावहारिक जीवनमें समाजकी यह व्यवस्था ब
सब व्यक्तियोंको यही भावना धारण करनी चाहिये
समाज अमूर्त परमात्माका ही व्यक्त रूप है ।
इस जगत्का स्वामी है—इसी दृष्टिसे यह समाजरूपी,
परमात्मा भी इस राष्ट्रकी सारी सम्पत्तिका स्वामी है । इ
ज्ञान, सत्ता, धन, कला—सब उसीका है । व्यक्ति त
पास जो शरीर, शक्ति, गुण और सम्पत्ति आदि है, उस
स्वार्थनिरपेक्ष होकर इस परमात्माकी सेवा करनेका
है । राजसत्ताधीश राज्यका उपभोगशून्य अधिपति,
करनेवाला धनका उपभोगशून्य रक्षक एवं संवर्ध
प्रकार स्वार्थरहित होकर प्रत्येकके लिये अपने-अपने
गुणादिकोंके द्वारा इस समाजस्वरूपकी एकात्मता, परमात्म
करना ही परमश्रेष्ठ कर्तव्य है । व्यक्तिके लिये विशा
सुखमय परमात्मस्वरूप बननेके लिये इस व्यक्त पर
एकात्मभावसे, त्यागसे, निःस्वार्थतासे, शरीर-मन-वाणी
मन-धनका अर्पण करके सेवा करना ही परम कर्तव्य
कर्तव्यको सद्भावसे निभानेसे ही जीवनमें सफलता प्र

-संस्कृतिद्वारा निर्धारित समाज-रचनाके स्वरूपका विचार यहाँ किया गया है । यह विषय इतना : कि इस छोटे-से प्रबन्धमें उसके सब पहलुओंका ी करना असम्भव है । अतः हिंदू-संस्कृतिके श्रेष्ठ ऐहिक सुखको भी दृष्टिमें रखते हुए किस प्रकारसे ाख्या करनेका प्रयत्न किया एवं उसके आधारपर सर्वाङ्गपूर्ण रचना करनेके उनके प्रयत्न प्रत्येक ऐहिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त करवा देकर उसके भौतिक एवं नैतिक और आध्यात्मिक स्तर ऊँचा हेतु कैसे रहे, इस ओर अङ्गुलिनिर्देशमात्र करनेके यह लिखा गया है । आजकी अनेक समस्याएँ तथा अनेक ाहोंका भी अपनी सांस्कृतिक दृष्टिसे कुछ विचार : ही इसमें हुआ है । यदि कोई विद्वान् हिंदू-संस्कृतिका ा अभ्यास कर उसकी सुखमयी विचारधारा तथा व्यवहारको प्रकट करे तथा आजकी अवस्थामें जगत्को भिन्न विचारोंसे 'यही विश्वशान्ति प्रदान करनेमें समः यह बात सबको सुगमतासे समझा दे तो उत्तम हो आज अपनी ही संस्कृतिको भूलनेवाले हिंदू-समाज मार्ग-दर्शन होगा । मैं तो इस लेखमें कुछ अंशमें ह कर सका हूँ । मेरे विचारकी जिस दिशाका निर्देश : वह यदि किसीके लिये उपयुक्त हुआ और उससे अपनी संस्कृतिके अध्ययन, मनन तथा आचरणकी प्रेरणा हु इस त्रुटियुक्त प्रयत्नको सफल ही मानूँगा ।

अन्तमें हिंदू-संस्कृतिके विश्वशान्ति-महामन्त्र—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात

—का स्मरण कर इस अल्प लेखको अपने हिंदु परमात्माके चरणोंमें समर्पित करता हूँ ।

क्या हिंदुत्व साम्प्रदायिकता है ?

(लेखक—पू० महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी महाराज)

जके भारतके अधिकांश नागरिक और संसारके प्रमुख जो हिंदुत्वसे अनभिज्ञ हैं, प्रायः हिंदुत्वका अर्थ येकता और हिंदूका अर्थ साम्प्रदायिक समझते हैं । ाजका एक प्रचलित नारा हो गया है और यह भी साथ कहा जा सकता है कि इसके सदृश भ्रमपूर्ण नर्गल नारा दूसरा हो भी नहीं सकता । यदि आजके ा भारतीय और विशेषतः हिंदू यह समझ सकें कि और साम्प्रदायिकतामें उतना ही अन्तर है, जितना और पातालमें, तो इसमें सन्देह नहीं कि वे मानसिक दासताकी एक श्रृङ्खला और सबसे श्रृङ्खलाको अवश्य तोड़नेमें समर्थ हो जायँगे । इस विचार करनेके पूर्व कि वास्तवमें हिंदुत्व ायिकता है या नहीं, यह उचित होगा कि हम इन महत्त्वपूर्ण शब्दों—'हिंदुत्व' और 'साम्प्रदायिकता' पर अलग विचार करें ।

ंदूकी परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकारसे की गयी है; पर विशद, प्रामाणिक और सरल परिभाषा अखिल र्षीय हिंदू-महासभाकी ओरसे निम्नलिखित प्रकारसे —

अर्थात् जो इस सिन्धु नदसे लेकर सागर (कन्या पर्यन्त विस्तृत इस भारत-भूमिको अपनी ि और पुण्य-भूमि मानता है, उसे ही हिंदू कहा ज है (वह हिंदू है) ।

कितनी असाम्प्रदायिक परिभाषा है यह ! साम्प्रदा तो इसमें बूतक नहीं है । यह किसी भी सम्प्रदाय धर्मविशेषकी ओर इंगित करती प्रतीत नहीं होत इसके अनुसार केवल शिवलिङ्गकी पूजा करनेवाला हिं न गायत्रीमन्त्र जपनेवाला ही । पर हिंदू वह है, जो भारतभूमिको अपनी पितृ-भूमि और पुण्य-भूमि मा कितनी राष्ट्रियता है इसमें, और है कितनी देशभ मनुष्य इस भूमिको अपनी पितृ-भूमि और पुण्य-भूमि वह कभी इसको धोखा नहीं दे सकता । हिंदू हि लिये जी सकता है, मर सकता है और कर सकता सर्वस्व-समर्पण ! पर एक हिंदूके लिये इस भूमिके पितृ-भूमि मानना ही पर्याप्त नहीं है, उसको इ पुण्य-भूमि भी मानना ही पड़ेगा और तभी वह हिं सकता है ।

जन्में हम इसी भूमिमें, यही भाव उर धरे मरें' न कि
ौला ! मदीने बुला ले मुझे' । एक हिंदूके तीर्थ काशी
मथुरा होंगे, न कि मक्का और फिलस्तीन । हिंदू
ें शुद्ध राष्ट्रिय होगा । पितृ-भूमि और पुण्य-भूमि
; पश्चात् फिर वह अपने देशके साथ किसी भी
ा विश्वासघात नहीं कर सकता । एक मुसल्मान या
यह मानता है कि भारत-भूमि उसकी पितृ-भूमि है,
हिंदू तबतक नहीं कहला सकता, जबतक वह उसे
मे भी न माने अर्थात् यहाँके तीर्थोंको अपना तीर्थ
यहाँके महापुरुषोंको अपना महापुरुष न माने । उसे
न और मक्काकी याद छोड़नी ही पड़ेगी और शुद्ध
बनना ही पड़ेगा । अतएव केवल पितृ-भूमि
ही कोई राष्ट्रिय नहीं हो सकता, पुण्य-भूमि भी उसके
ाकार करना आवश्यक है ।

येक मस्तिष्कमें दो प्रकारकी मनोवृत्तियाँ सुरक्षित
—एक, जो पुण्य-भूमिकी ओर मनुष्यको आकर्षित
ै और दूसरी, जो पितृ-भूमिकी ओर । अब कल्पना
कि मक्कासे और भारतसे युद्ध प्रारम्भ हो जाता है ।
पुण्य-भूमिकी ओर आकर्षित करनेवाली मनोवृत्ति
बलवती रही, वे निश्चय ही मक्काका पक्ष ले लेंगे ।
मनुष्य जो भारतका शुद्ध राष्ट्रिय व्यक्ति सिद्ध होना
है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह इसे अपनी
ा भी माने और पुण्य-भूमि भी । और चूँकि
एकमात्र राष्ट्रिय हिंदू है, अतः उसके लिये भी इन
का होना आवश्यक है । यह तो हुई हिंदूकी
। अब लीजिये सम्प्रदायकी परिभाषाको । और इस
ी कसौटीपर हिंदूको कसकर देखना है कि क्या
वमें साम्प्रदायिक है ।

शब्दमें, चिरकालसे चली आनेवाली अविच्छिन्न
सम्प्रदाय कहते हैं । अर्थात् सनातनधर्म एक
हो सकता है या बौद्धधर्मको हम एक सम्प्रदाय कह
। क्योंकि चिरकालसे चली आ रही इनकी एक
न परम्परा है । बौद्धधर्म या सनातनधर्म जिस
ाज माना जाता है अर्थात् इनके पालन करनेके
ा आज हैं, आजके सहस्रों वर्ष पूर्व जब इन
का प्रारम्भ हुआ था, तब भी इनके पालन
आ रही इनकी एक अविच्छिन्न परम्परा है । प
चिरकालसे चले आनेपर भी एक ही परम्परा, एक
एक ही नियममें आबद्ध नहीं । वेदविरोधी चार्वाक भी
भगवान् व्यास भी हिंदू थे, जिन्होंने वेदकी
सर्वोपरि माना । शाक्त भी हिंदू हैं, जो हिंसामें
मानते एवं बौद्ध और जैन भी हिंदू हैं, जो 'अहिं
धर्मः' के उपासक हैं ।

ये सब भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय हैं, पर एक व्याप
ये सभी केवल हिंदू हैं । एकत्रित होनेपर इनकी स
राष्ट्रियताको जन्म देती है—जिसे हिंदुत्व कहते हैं
ब्राह्मण अधिक हिंदू है और न शूद्र कम, दोनों
और उपर्युक्त सम्प्रदायकी परिभाषापर 'हिंदू'
कसनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो हिंदू साम्
है और न हिंदुत्वका अर्थ साम्प्रदायिकता
हिंदुत्व एक सागर है, जिसमें भिन्न-भिन्न सम्प्र
नदियाँ आकर विलीन हो जाती हैं और विलीन हो
सागरमय हो जाती हैं । वे विभिन्न तरंगोंके रूपमें
हुई एकमात्र समुद्रकी ही शोभा बढ़ाती और
महत्ताकी घोषणा करती हैं । ये सब मिलकर सागर
प्रतिनिधित्व करने लगती हैं । अतएव हिंदू एक महान्
नाम है, न कि किसी फिरकेका ।

तब हिंदुत्व है क्या ? हिंदुत्व एक आदर्श भ
राष्ट्रिय समाजवाद (An ideal Indian nat
Socialism) है, जिसने समस्त भारतीय समाजको एक
आबद्ध कर लिया है । बौद्धधर्मके नामपर केवल
धर्मानुयायी आगे बढ़ेंगे, सनातनधर्मके नामपर
सनातनी आगे आयेंगे । पर हिंदुत्वके नामपर सब ए
आयँगे और सम्मिलित रूपसे आयँगे; और उनमें सन
आर्यसमाजी, सिक्ख, बौद्ध, जैनी—सभी रहेंगे ।

अतएव हिंदुत्व साम्प्रदायिकता नहीं राष्ट्रियता है-
राष्ट्रियता, जिसका भारतके अतिरिक्त कोई अस्तित्व ही
स्मरण रखिये—कितने सम्प्रदाय नष्ट हो चुके हैं, नष्ट
और हो रहे हैं; पर हिंदुत्व इन सबके ऊपर है और अ
वह न कभी नष्ट हुआ है, न होनेवाला है और न हो र
है । यदि किसी दिन भारतकी इस राष्ट्रियता (हिंदुत्व) के
होनेकी बात सोची जा सकती है तो उसीके साथ

हिंदू कौन ?

(महात्मा श्रीविनोबाजी भावे)

यो वर्णाश्रमनिष्ठावान् गोभक्तः श्रुतिमातृकः । मूर्तिं च नावजानाति सर्वधर्मसमादरः ॥
उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मान्मोक्षणमीहते । भूतानुकूल्यं भजते स वै हिंदुरिति स्मृतः ॥
हिंसया दूयते चित्तं तेन हिंदुरितीरितः ॥

जो वर्णों और आश्रमोंकी व्यवस्थामें निष्ठा रखनेवाला, गो-सेवक, श्रुतियोंको माताकी भाति पूज्य माननेवाला तथा सब धर्मोंका आदर करनेवाला है; देवमूर्तिकी जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्मको मानता और उससे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवोंके अनुकूल बर्तावको अपनाता है, वही 'हिंदू' माना गया है । हिंसासे उसका चित्त दुखी होता है, इसलिये उसे 'हिंदू' कहा गया है ।



हिंदू-संस्कृति ही विश्व-संस्कृति है

(महामहिम गवर्नरजनरल श्रीयुत सी०राजगोपालाचारी महोदय)

हिंदू-संस्कृति भारतीय संस्कृति है और भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जगत्की संस्कृति है । कि
थवा राष्ट्रके शिष्ट पुरुषोंमें विचार, वाणी एवं क्रियाका जो रूप व्याप्त रहता है, उसीक
है । विचार, वाणी एवं क्रियाके जिस आदर्शको हिंदू-संस्कृतिके नामसे पुकारा जा
ा स्वरूप है उपनिषदों एवं इतिहासोंमें दिये हुए उपदेशोंके अनुकूल जीवन बनाना । इसक
ज्ञान, भक्ति और अपने सम्पूर्ण कर्मोंमें भगवच्छरणागतिका भाव । जैसा मैंने 'क
-अङ्क' में लिखा था—ज्ञानका अर्थ प्रचुर अध्ययनसे होनेवाला गम्भीर आध्यात्मिक ज्ञा
नुभव तथा गुरुजनोंके उपदेश एवं आचरणपर ध्यान देनेसे प्राप्त होनेवाली सम्यक् ह
ा है और असत् क्या है, महान् क्या है और क्षुद्र क्या है, हमें क्या स्मरण रखना चाहिये औ
ना चाहिये—इस बातको जानना आवश्यक है । इसीका नाम ज्ञान है और यह ज्ञान
क्रियाओंका सूत्रधार होना चाहिये । इससे कर्ममें अनासक्तिका भाव आता है । हम क
मोड़ें, अपितु समस्त प्राप्तकर्म अनासक्त होकर तथा इस बातपर दृष्टि रखते हु
ातमें जगत्का हित है और किसमें अहित है—करते रहें । हमारी क्रिया स्वार्थके लिये-
लिये न हो ।

भक्ति संकल्पकी दृढता, विनयशीलता तथा श्रद्धाका वह समन्वित रूप है, जिसके द्वारा
र हमारी उपासना दूसरोंके लिये तथा अपने लिये भी कल्याणकारक एवं सफल होत
न्य कर्म अहंकारका प्रतीक है और भक्तिरहित उपासना दम्भका नामान्तर है ।

भगवान्के शरण हुए बिना शोक एवं विफलतासे छुटकारा नहीं मिल सकता और न
ही सम्भव है । आनन्दकी प्राप्ति करानेवाला वेदान्तका यही अन्तिम उपदेश है । ध

श्रीमद्भगवद्गीता और कम्यूनिस्टवाद

(लेखक—बङ्गदेशके गवर्नर डाक्टर श्रीकैलाशनाथजी काटजू महोदय)

ारी चिर-अभिलषित स्वाधीनताका द्वितीय वर्ष पूरा हो । यह जो समय अभी बीता है, बड़ी कठिनाई और साथ बीता है । जिस आर्थिक अशान्तिने समस्त और यूरोपको ग्रसा है, उसीमें हमलोग भी आ फँसे य ही हमलोगोंको अन्नादिके सम्बन्धमें जो कष्ट उठाने हैं, उनके कारण बहुत-से लोग प्रायः भूल गये हैं कि दो वर्ष पहले कैसी दुःस्थितिसे हमलोगोंका उद्धार । लोगोंकी अब कुछ ऐसी मनोवृत्ति बन गयी है कि ाको वे एक अनायास बनी-बनायी चीज माने बैठे स बातको भुला देना चाहते हैं कि इस स्वाधीनताके तना प्रचण्ड राष्ट्रिय संग्राम करना पड़ा था। हमलोग ऐसी कठिनाइयोंसे घिरे हुए हैं कि कुछ लोग अपनी ो स्वाधीनताको भी अपने सामान्य हानि-लाभकी दृष्टिसे ग्गे हैं । ये कठिनाइयाँ स्थायी नहीं हैं । स्वाधीनता इतनी हल्की चीज नहीं है, जो अन्य किसी लाभसे ा सके । इस महान् यशका महत्त्व हमारे देखते- टता हुआ दीख रहा है । तारतम्यबुद्धि ही मानो खो । जिन खराबियोंसे आज हमलोग दुखी हैं—उनके कारण क्या हैं—यह शिक्षितलोग सोचना-समझना ते । इन खराबियोंमेंसे कुछ तो निश्चय ही महायुद्धके हैं—जिनसे जगत्के सभी लोग त्रस्त हैं, केवल ही लोग नहीं । इनमेंसे कुछ खराबियाँ हमारी टियों और कमियोंसे पैदा हुई होंगी । पर जैसे कोई मनुष्य धीरज खो बैठता और अपने दुःखोंके लिये को दोषी बतलाने लगता है, कुछ वैसी ही अधीरता शा लोगोंमें आ गयी है । आज जिन लोगोंके हाथोंमें सूत्र हैं, उन्हींको हमलोग अपनी सब विपत्तियोंका लाने लगे हैं । यह बहुत ही शोचनीय मनोऽवस्था विचारकी अपरिपक्वता और तारतम्य-बुद्धिका सूचित होता है । यह अनिष्टकारक भी है, क्योंकि इससे चार और अनिष्ट कर्म बन सकते हैं । हमलोग अधिका- बातको अनुभव कर रहे हैं कि यह भूगोल यथार्थमें ध' है और अन्य देशोंमें अन्य लोगोंके साथ जो ी है, उसकी खबर हमलोगोंतक पहुँचती है—पर प्रायः

हमलोग बहुत बेचैन हो उठते हैं । यह सच है कि आगे बढ़ रहा है और एशियाके अन्य देशोंमें ज हो रही हैं, उनसे हम अछूते नहीं रह सकते । प इस बातको भूल जाते हैं कि हमारा देश थोड़ी-सी वाला कोई छोटा-सा ऐसा देश नहीं है, जो चारों ओ लोगोंद्वारा घिरा हो और इतना कमजोर हो कि आवश्यकताओंको आप पूरा न कर सके या अपने पैरों न रह सके, स्वाधीन न रह सके । चीनको थोड़ी दे छोड़ दें तो जगत्में भारतवर्ष ही जन-संख्यामें स देश है और वह एक ही एकीभूत शासनके अधीन लोग एक ही जीवन-पद्धति, परम्परा और संस्कृति एकत्वमें बँधे हुए हैं और सब सुस्थिर शासनका समय लाभ कर रहे हैं । यह सब भूलकर हमलोग विपत्तियोंमें वैसे ही बन जाते हैं, जैसे कोई आतुर जो तुरंत अच्छा हो जानेकी अधीरतामें नीम-हकीम दौड़ जाया करता है । नीम-हकीम खतरए-जान होते ये जितना लाभ पहुँचाते हैं, उससे अधिक हानि अभी हमलोगोंने ठीक तरहसे समझा ही नहीं । प्राचीन संस्कृति और परम्परा, हमारी भारतीय प्रति हमारे महापुरुषोंके उपदेश स्वयं इतने बड़े धन्वन्त उनके आदेशोंके अनुसार चलने और उनकी दे रहनेसे निश्चय ही रोग पूरे तौरपर हट जायगा । अ व्याधिने हमें पीड़ित कर रक्खा है, सम्भव है इससे महान् हित हो और राष्ट्र पहलेसे अधिक बलवान् औ होकर आगे बढ़े । इस आलङ्कारिक भाषाका प्रयोग साहित्यिक युक्तिके तौरपर नहीं कर रहा हूँ । मैं अपने यही अनुभव कर रहा हूँ कि आज जो विपत्तियाँ हमा हैं, इनका यदि बुद्धिमानीके साथ इलाज किया जाय लिये ये कल्याणप्रद ही प्रमाणित होंगी । पुराना ढाँ देखते-देखते ढहा जा रहा है । इसका ढह जाना नहीं सकता । प्रश्न है केवल नये ढाँचेका, उसका क्य होगा और वह कैसे बनेगा ? अन्यत्र जो प्रयोग हो रहे हम लाभ उठा सकते हैं । इस नवीन व्यवस्थाके अ रहेगा या इसका लक्ष्य क्या होगा—इस विषयमें a

र किस मार्गसे, किस पद्धतिसे पहुँचेंगे। मार्ग भिन्न-। सबसे उत्तम और सबसे कम कष्टप्रद कौन-सा मार्ग प्रद' की बात मैं इसलिये कहता हूँ कि अन्यत्र ऐसे अवलम्बन किया गया है, जो सबसे समीपका मार्ग जान पर जिसमें लोगोंको अकथनीय दुःख, क्लेश और भोगनी पड़ी हैं। मनुष्य पिछली बातोंको बहुत ल जाता है और आगे आनेवाली पीढ़ियोंको उन की अथवा उस विषाद-नैराश्यकी कोई तीव्रता ी कभी अनुभूत होती हो, जिसमेंसे होकर पहलेकी जाना पड़ा था। नेत्रोंके सामने एक महान् भव्य दिखायी देता है; पर वह जिस नींवपर खड़ा है, उसमें कितनी टूटी-फूटी चीजें जुड़ी हुई हैं! पिछले कुछ कई देशोंने नवसमाज-विधानकी जो भव्य अट्टालिकाएँ ं, उनपर यह रूपक ठीक घटता है। क्या हम भी इस घाटीमेंसे होते हुए इसी दुःखमय पथका करेंगे? मैं समझता हूँ, आधुनिक विचार और प्रगतिके नामपर हमलोगोंने बुद्धि और मनकी करनेमें जो अति कर दी है, उससे हमने अपनी प्राचीन क सम्पत्तिको ठुकरा दिया है। हमलोग जरा भी इस विचार नहीं करते कि यह संस्कृति सहस्रों वर्षोंके मारे भौतिक शरीरका अङ्ग बन गयी है और अब उससे अलग करनेकी चेष्टा करना जीते-जी उसकी धेड़नेके समान है। ऐसा करना सम्भव तो है; पर शरीर जीवित नहीं रहेगा, केवल उसकी लाश रह। मेरा यह विश्वास है कि हमारी पूर्वपरम्परा तथा प्रतिभाकी किसी प्रकार उपेक्षा करनेका परिणाम बहुत भारी होगा। उससे कोई ऐसी समाजरचना नहीं होगी, सब चाहते हैं कि हो; उससे केवल भयानक रक्तपात और अंधेर मचेगा। पिछले छः वर्षोंमें हमलोग तीन भयानक रोमाञ्चकारी दुर्घटनाओंमेंसे होकर निकले हैं बंगालका अकाल, कलकत्तेकी मार-काट और सबसे १९४७ का पंजाबकाण्ड! इनसे हमारे दुर्भाग्य दुःखकी सीमा हो चुकी है, यहीं यह चीज समाप्त हो दीजिये।

तो नये तरीकोंकी यह अंधाधुंध ढूँढ-खोज, जिनसे पूरा नहीं की जा सकती, सर्वथा निरर्थक और मूर्खता-

जानेका मार्ग हम बना रहे हैं। पर बात यह है आदर्श सदासे ही हमारे पूर्वजोंके सामने रहा और मार्ग भी वे स्पष्टरूपसे निर्दिष्ट कर गये हैं। इससे सुनिश्चित बात और कुछ हो ही नहीं सकती कि लोग उस पूर्व-निर्दिष्ट पथपर चलें तो हम उस निश्चय ही प्राप्त कर लेंगे, जो हमारे हृदयमें है। लोगोंकी ऐसी धारणा हो रही है कि राष्ट्रकी सर्ववि तभी हो सकती है, जब नफाखोरीकी धुन या व्यापारि की दृष्टि ही न रह जाय और अर्थमूलक प्रतिष्ठा (या की अर्थमूलकता) का ही अन्त कर दिया जाय। सम्प साम्पत्तिक लाभकी दृष्टिसे मुक्ति मिल जाय तो तुरं वर्गहीन समाजकी स्थापना हो लेगी, जिसमें अमीर-गरीबके वर्ग न रहेंगे। यही नवीन मत है। पर यही हमा प्राचीन शिक्षा है और उसका ढंग भी अधिक आक हमारे यहाँकी शिक्षा स्वेच्छापूर्वक त्याग करनेकी है— मानवी प्रयत्नका त्याग नहीं, प्रत्युत कर्मके फलका त्या एक दूसरे ढंगसे वही बात हुई कि वैयक्तिक ल कर्मका हेतु न होना चाहिये। जो मनुष्य अपने कर्म आसक्त नहीं है और अपने लिये उस फलकी इ करता, वह वैयक्तिक लाभके हेतुसे कुछ नहीं करता। के सम्बन्धमें यह बात है कि सम्पत्ति वैयक्तिक सञ्चयका ही परिणाम है। यदि हम अपने कर्मका चाहते ही नहीं तो कोई सम्पत्ति सञ्चित करें, यह नहीं है। कर्मफलका त्याग हो, साथ ही सब सुख और सार्वत्रिक हितके लिये सतत कर्म होता रहे— बातें एक साथ चलती हैं। इससे अधिक और क्या आधुनिक तत्त्वज्ञान भी इससे अधिक क्या देता दोनोंमें एक अन्तर अवश्य है। आधुनिक मतव मान लिया गया है कि जबतक अल्पसंख्यक समुदाय बलका प्रयोग करके बहुजनसमाजको अपने वशमें नहीं रखता या उसे नष्ट नहीं कर डालता, तबतक यह सिद्ध नहीं हो सकता। हमलोग एक ऐसा वर्गही स्थापित देखना चाहते हैं, जो साम्पत्तिक लाभके हेतुसे न हो, न अर्थमूलक प्रतिष्ठासे बँधा हो। ऐसे स्थापनामें ईसाई-मत कहाँतक सहायक हो सकता नहीं बतलाना चाहता, न मैं यह बतलानेका अधि

ाल है कि किन्हींके द्वारा स्वार्थवश मिलाया हुआ
पि इस पुण्यमय साहित्याकाशमें गीता निरभ्र शारदीय
ह पूर्ण-चन्द्रके समान प्रकाशमान है। गीता इष्टपद-
द्रके लिये ध्यान-धारणा, पूजा-अर्चा अथवा कैवल्यमें
की शिक्षा नहीं देती, प्रत्युत सतत कर्म और समाज-
र्य सत्प्रयत्न करनेको ही सर्वोत्तम मार्ग बतलाती है।
ा मन, वचन, कर्ममें अहिंसापर ही प्रतिष्ठित है।
गत निष्ठा नहीं सिखाती, न एक दलको दूसरे
वेरुद्ध या अल्पसंख्यकोंको बहुसंख्यकोंके विरुद्ध
है। इसकी शिक्षा प्रत्येक व्यक्तिको उसीकी नैतिक
लिये है। इस शिक्षाकी खूबी यह है कि इसमें
कल्याण और व्यक्तिका कल्याण दोनों अविभाज्य-
क हो जाते हैं अथवा यों कहिये कि समाजका
स्वयं ही व्यक्तिके नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान-
ा बन जाता है। मैं समझता हूँ, इस विषयमें गीता-
ा बिल्कुल बेजोड़ है। अन्य धर्मोपदेशकोंने दीन-
पतितों और बीमारोंकी सेवा करनेको बहुत आग्रह-
ा है और इसे आत्मिक उद्धारका साधन बताया
ने समाजके कल्याणके लिये समाजकी सेवाको उच्चतम
रखा है। अर्थोत्पादनके लिये प्रयत्न करनेका आदेश
ी है। संसारसे विरक्त होकर ध्यान-धारणामें जीवन
गीता अच्छा नहीं बतलाती। उसने अखिल मानव-
कर्म, योग्यता और सहज प्रवृत्तिके भेदसे चार बड़े
ाने हैं। कुछ लोगोंमें विद्याकी विशेष अभिरुचि
उनके द्वारा अध्यापन और नवीन पीढ़ीको तैयार
काम अच्छी तरहसे हो सकता है। कुछ लोग अपने
बल और क्षात्रतेजके कारण पर-चक्रनिवारण और
न्ति-स्थापन करनेका काम अच्छा कर सकते हैं। कुछ
हज रुचि और बुद्धिसे राष्ट्रके साम्पत्तिक उत्पादनके
वेशेष योग दे सकते हैं। अन्तमें वह वर्ग है, जिसे
या मजदूरवर्ग कहते हैं। समाजकी उन्नतिके
ये चारों वर्ग जुटकर एक ही अविभक्त समाज बन
। गीताकी यह शिक्षा है कि संसारसे विरक्त होकर
ो जानेका कुछ भी फल न होगा। सबका दुःख-
करने और जीवनका मान ऊँचा करनेके लिये
न आवश्यक है। आध्यात्मिक और भौतिक
का ऐसा पूर्ण सामञ्जस्य अन्य किसी धार्मिक या

उसके कर्मकी अच्छाईसे की जाती है। कर्मकी अ
उसके अपने वैयक्तिक लाभसे नहीं, बल्कि समस्त
उससे क्या लाभ हुआ—इस दृष्टिसे नापी जाती है।
होना चाहिये अत्यन्त नम्रता और शुचिताके साथ
और शुचिता ही इसका आधार है। 'अपने पड़ो
ही प्यार करो, जैसे अपने आपको करते हो।' द
सहानुभूति इस प्राचीन मन्त्रके मुख्य स्वर हैं।

और विशेष बात यह कि यह शिक्षा किसी स
साथ बँधी नहीं है। आप चाहे ईश्वरको मानें या न
आप चाहे सगुण-साकार ईश्वरको मानें या अचिन्त्य
निराकारको। असल चीज यह है कि 'कर्म ही भ
तुम्हारा अधिकार है;' फल जो कुछ हो, श्रीकृष्ण
कि, मुझे अर्पण करो। श्रीकृष्णके प्रति श्रद्धा-भ
तो उनके स्थानमें आप समाजको रक्खें। इससे भ
उसी जगह। कारण, श्रद्धावान्‌की दृष्टिमें समाज
कृष्णकी ही सबसे महान् विभूति है। आप चाहे जि
देखें, फल वही होगा।

कोई-कोई यह कहते हैं कि पूँजीपतियोंकी स
दी जायगी और उद्योग-धंधे राष्ट्रकी सम्पत्ति ब
जायँगे तो बड़े-बड़े उद्योगपतियों और व्यापारी वर्ग
कौशल और सञ्चित अनुभव हमलोग खो बैठेंगे, क
दिखानेवाला या जानकारीके साथ मदद करनेवाला
समाज बड़े सङ्कटमें पड़ जायगा। मैं समझता हूँ
होगा। पर यदि ऐसा हुआ तो यह बहुत शोच
भयानक बात होगी। मेरे विचारमें पूँजीपतियों औ
पतियोंकी असहयोगकी इस धमकीसे बढ़कर पूँजीपति
नाश करनेवाली और कोई चीज नहीं हो सकती।
उन्नति-साधनमें यह काम अत्यन्त मूर्खतापूर्ण, नी
और देशहितविरोधी होगा। गीताके प्रकाशमें दे
काम सदाचार और धर्मके अत्यन्त विरुद्ध है। कि
को जो बौद्धिक आदि गुण प्राप्त होते हैं, वे केव
स्वार्थसाधनके लिये नहीं, बल्कि समाजकी सेवाके
हैं। यदि भगवत्सत्तापर उसका विश्वास है तो
परम धर्म है कि वह अपने तन-मनके सब गुणों और
का उपयोग अपने भगवान्‌की सेवामें करे। ज
जनार्दनकी सेवा है। अतः उपस्थित प्रश्नको मझा

वदाज्ञाका ही उल्लङ्घन है । ऐसी अनीति सर्वथा
।

जो कुछ लिखा, कोई धर्मोपदेश या किसी धर्ममत-
पादन करनेके लिये नहीं लिखा है । जो उद्देश्य इस
मलोगोंके सामने है अर्थात् एक ऐसी राष्ट्रिय अर्थ-
स्थापित करना, जिसमें सब मनुष्य सर्वथा समान हों
ई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तिका शोषण न कर सके—
ह अत्यन्त व्यावहारिक, साधनेतरोंसे अधिक अच्छा,
सुविधाजनक और अधिक शीघ्र फलदायी उपाय है ।
र्वक यह कहना चाहता हूँ कि हमारे प्राचीन ऋषि-
और आचार्योंके सामने यह उद्देश्य सतत विद्यमान
उन्हींकी शिक्षा भगवद्गीताकी विलक्षण शब्द-रचना-
संक्षिप्तरूपसे सदाके लिये भर दी गयी है । गीता
केवल हिंदुओंका ग्रन्थ नहीं है । कारण, हिंदू-धर्म
धर्म नहीं है । अभीके कुछ रस्म-रिवाज हिंदू-ध
नहीं हैं । हिंदू-धर्मकी अत्युच्च भावनामें अखिल मा
समा जाती है । अतः गीतामें फलासक्तिरहित क
जो उपदेश है, उसे सभी स्त्री-पुरुष अपना सकते हैं—
कहीं रहते हों, किसी धर्म-सम्प्रदायके माननेवाले
चीज ही ऐसी है कि इसका सार्वत्रिक उपयोग किया
है । यही हमारी भारतीय संस्कृति है । मैं यह
चाहता हूँ कि कम्यूनिस्टवादका यही पूर्ण उत्तर है
यह उससे हर बातमें श्रेष्ठ है । कम्यूनिस्टवादमें जो
हिंसा और वर्ग-वर्गके बीच सतत सङ्घर्षका विलक्ष
है, वह उसमेंसे निकल जाय तो गीताका ही गीत
रूपमें उससे सुनायी देगा ।

हिंदू-संस्कृतिकी महत्ता

(लेखक—बिहारप्रान्तके गवर्नर माननीय श्रीयुत माधव श्रीहरि अणे महोदय)

**हिंदू-संस्कृतिके अनुरागी सभी भारतवासी 'कल्याण' के 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' का हृदयसे
हिंदू-संस्कृतिका मूल वेदोंमें ही नहीं है अपितु वेदोंसे भी प्राचीन संस्कृतिमें निहित है, और
कृति वर्तमान प्राचीनतम संस्कृतियोंमेंसे एक है । हजारों वर्षोंसे जो इसकी धारा अविच्छिन्नरूप
, यही इसके सफल तथा मानव-जातिके लिये उपयोगी होनेका प्रमाण है । जनताके लिये यह अ
ह इसके मूल-सिद्धान्तोंको समझे । इन सिद्धान्तोंको भलीभाँति हृदयङ्गम कर लेनेपर इस सं
न करनेवाले नर-नारी, चाहे जिस परिस्थितिमें रहें, उसके अनुकूल अपनेको बना सकते हैं ।
किसी भी मानव-समाजकी भौतिक अवस्थामें परिवर्तन हो सकता है; परंतु जो राष्ट्र सु
वान् है, संस्कृतिका मुख्य उद्देश्य होता है उसके मानसिक गठनको अविकलरूपमें बनाये
विपरीत परिणामोंसे बचनेके लिये वह स्वयं ही स्वतन्त्र साधनोंकी सृष्टि कर लेती है । अ
अपनेको हिंदू-संस्कृतिका अनुयायी कहनेवाले प्रत्येक भारतवासीको यह जानना चाहि
कृतिके आधारभूत एवं मुख्य सिद्धान्त क्या हैं । उसके लिये यह उचित है कि वह मुख्य एवं
भलीभाँति समझे और तब वह अपने देशकी उन्नतिमें तथा मानव-जातिको उच्चतर ध्येयकं
करनेमें समुचित भाग ले सकेगा । मैं इस अङ्ककी महती सफलता चाहता हूँ ।**

सन्देश

(माननीय डा० श्रीश्यामाप्रसाद मुकर्जी महोदय, उद्योगमन्त्री, केन्द्रिय-सरकार)

लगभग पचीस वर्षोंसे 'कल्याण' भारतीय संस्कृतिके संदेशको जनतामें पहुँचानेका कार्य क
हमारे धर्म, राजनीति, समाज-संगठन, दर्शन, कला एवं साहित्यके तत्त्वोंको समझानेका एक
धन बना हुआ है । अतः मुझे यह जानकर विशेष ह ुआ कि वह अपनी आयुके चौबीसवें
रनेके उपलक्षमें 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क'के नामसे एक विशेषाङ्क निकालने जा रहा है । इसमें दार्शनि
क एवं आर्थिक समस्याओंसे सम्बन्धित विविध विषयोंपर लेख रहेंगे, जो अपने-अपने क्षेत्रके ना
ही लेखनीसे प्रसूत होनेके कारण उच्च कोटिके होंगे । प्रस्तुत विशेषाङ्क सभी लोगोंके लिये

ल भारतीय संस्कृति ही आज इस बातका अभिमान
ो है कि सहस्रों वर्षोंसे उसका जीवन अविच्छिन्न
युग-युगसे वह अपनी विजय-पताका फहराती
रही है। नाना प्रकारकी संस्कृतियोंके आक्रमण
ए, पर सबको सहकर यह अपने स्थानपर स्थिर रही।
ोलन, यूनान तथा रोमकी सभ्यताओंका अपने-अपने
एक दिन था; पर अन्य संस्कृतियों एवं सभ्यताओंके
े फलस्वरूप अथवा जराग्रस्त होकर वे सब या
गयीं या उनका रूप ही बदल गया। आज हमें
तियोंका कोई भी प्रतिनिधि काहिराकी गलियोंमें या
(Euphrates) नदीके तटपर अथवा एथेन्स
कुट्टिमों और रोमके प्रसिद्ध ऐप्पियन मार्गपर
ं दिखायी देता। प्रतिमाएँ, स्तूप और चैत्य तो
हैं, जिनको हम आज भी देख सकते हैं; पर संसारमें
कोई ऐसे जीवित मनुष्य नहीं दिखायी देंगे, जो
मस्र अथवा रोमके प्रतिनिधिके नाते हमसे मिलें।
ी ओर हम देखते हैं कि हमारी भारतीय संस्कृति
ठरूपमें न केवल अभीतक जीवित ही है वरं निरन्तर
भी प्राप्त करती रही है। चाहे हिमालयकी ऊँची
चले जाइये, या गङ्गाके कछारोंमें, विन्ध्याचलकी
अथवा कावेरीके तटोंपर—हमें भारतवर्षमें सर्वत्र
पुरुष मिलेंगे, जिन्हें हम अपनी पुरानी संस्कृतिके
र प्रतिनिधि कह सकते हैं।

री संस्कृति विविधरूपिणी एवं बहुमुखी रही है।
नवी कार्यक्षेत्रमें—युद्ध और शान्तिकी प्रत्येक कलामें,
एवं शासन-व्यवस्थामें, संगीत तथा साहित्यमें,
ौर प्रतिमा-निर्माणमें, नृत्य एवं चित्रकलामें—हमारी
विकसित हुई है और उसने ऐसे आदर्श उपस्थित
जिनकी सारा विश्व प्रशंसा करता है।

नी इस परम्परागत सांस्कृतिक सम्पत्तिपर गर्व
आज हमारे लिये यथेष्ट नहीं है। हमें बहुत कुछ
। मैं विशेषकर एक बातकी ओर संकेत करना
हूँ, जिसे करनेमें हम सबको तुरंत लग जाना

यह अभीतक जीवित है और इसे नित्य नवीन प्राणश
होती रहती है। इस प्रकारकी वैज्ञानिक खोजके
हमें वह मार्ग दिखानेमें बहुत लाभदायक सि
जिसका अनुसरण करके पूर्वजोंसे प्राप्त अपनी स
निधिकी जड़ोंको हम और सुदृढ़ बना सकेंगे।

मेरी तुच्छ सम्मतिमें, कठिनाइयों तथा विपत्ति
हमारी संस्कृति झुकी है, पर कभी टूटी नहीं।
प्रत्येक अवसरपर विजय इसीके हाथ रही। इस
कट्टर बनने, दूसरोंको दबाने, बलप्रयोगके द्वारा
अपनेमें मिला लेनेकी चेष्टा नहीं की। इसके विपरीत
समयानुसार बदलनेवाली, सबके अंदर समावेश क
और सबसे बढ़कर बात यह कि सबको आत्मसात् क
रही है। इसकी यह व्यापक उदारता ही इसकी
शक्तिका मूल कारण कही जा सकती है। यह स
अनेक बातोंमें यह इतनी बदल गयी है कि इसके
रूपको पहचानना कुछ कठिन हो गया है; पर
प्रधान दृष्टिकोणमें—सब पदार्थोंको अध्यात्ममूलक
तथा बाह्य रूपोंके भीतरी अर्थ देखनेमें इसकी जे
है, उसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

मनुष्यके अंदर जो भौतिक, जैविक, मानसिक
एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ क्रियाशील हैं, मनुष्य
संहत रूप है। इन शक्तियोंका परम सामञ्जस्य प्रा
ही मानव-पुरुषार्थकी पराकाष्ठा है। मानवी चेतना
इन सभी स्तरोंमें विचरण करती है और वास्त
इन सभी स्तरोंकी निवासिनी है। भारतीय संस्कृ
विभिन्न स्तरोंके महत्त्वभेदपर सदा विशेष ध्यान
और प्रायः उच्चतर और सूक्ष्मतर स्तरको निम्नस
अधिक प्रधानता दी है। जीवनके इन उच्चत
वास करनेकी यह निरन्तर और अनवरत चेष्टा
कारण है, जो हमारी संस्कृतिको जूझने और विज
शक्ति प्रदान करता है।

यहाँ मैंने उस दिशाका केवल संकेतमात्र कर
जिस दिशामें हमें खोजका प्रयत्न करना चाहिये
विश्वास है कि भारतीय संस्कृतिकी प्रबल धाराके

(लेखक—माननीय बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजी, शिक्षामन्त्री, युक्तप्रान्त)

'स्कृति' शब्दका प्रचार तो आजकल बहुत है, परंतु इसके
बोध उस मात्रासे बहुत कम है। साधारणतः तो लोग
योग सभ्यताके अर्थमें करते हैं। सभ्यता और संस्कृति
थ कहनेपर भी बहुधा यह शब्दविन्यास आलङ्कारिक-
ता है। अभी थोड़े ही दिन हुए श्रीपुरुषोत्तमदास
उद्योगसे काशीमें संस्कृति-सम्मेलन हुआ था। उसमें
त होनेवाले पण्डितोंके लिये वर्णाश्रम ही भारतीय
ा आर्य) संस्कृतिका प्रतीक है; संस्कृतिके यदि कोई
अंग या भेद होते हैं तो उस सम्मेलनमें किसीने उनका
ीं लिया। वर्णभेद जन्मगत हो या कर्मगत; परंतु
यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको समाजमें अपने गुणकर्मा-
योचित स्थान मिल सके, ताकि वह अपना और समाजका
से-अधिक अभ्युदय और सम्भवतः अपना पारलौकिक
भी कर सके। आश्रम-भेदका उद्देश्य यह है कि
जीवनका इस प्रकार नियमन किया जाय कि उसके
गोंके विकासको अधिक-से-अधिक अवसर मिल सके।
समष्टिके जीवनमें वर्णभेदका है, वही व्यष्टिके जीवनमें
भेदका है। दोनों ही सामाजिक संघटनके पहलू हैं,
भ्यताके अन्तर्गत हैं।

यता और संस्कृति सर्वथा असम्बद्ध न होते हुए भी
रसे भिन्न हैं। संस्कृति आभ्यन्तर, सभ्यता बाह्यतत्त्व
स्कृतिको अपनानेमें देर लगती है; परंतु सभ्यताकी
कल की जा सकती है। अफ्रीकाका आदिम निवासी
टून पहन सकता है, यूरोपियन ढंगके बँगलोंमें रह
है, कल-कारखाने चला सकता है; फिर भी उसका
क स्तर अंग्रेज़-जैसा हो जाय, यह आवश्यक नहीं है।
र्ता पहन लेने, आसनपर बैठकर दाल-रोटी खाने,
झोपड़ीमें रहने और चर्खा चलानेसे ही भारतीय
ा रंग नहीं चढ़ जाता। संस्कृतिका सम्बन्ध निश्चय
क विश्वासोंसे है। एक ही धर्मके अनुयायी एक दूसरेके
कट खिंच आते हैं; परंतु ऐसा नियम नहीं है कि ऐसे
संस्कृति एक हो। पूर्वी बंगालके मुसल्मानकी संस्कृति
तके पठानकी संस्कृतिसे भिन्न है। वह पूर्वी बंगालके
अधिक मेल खाती है। यूरोपके रहनेवाले ईसाई,

संस्कृति समष्टिगत समान अनुभवोंसे उत्पन्न
एक ही जल-वायुमें पले, एक ही प्रकारके गिरि, नि
सागरको देखनेवाले, एक ही प्रकारके राजनीतिक,
और आर्थिक सुख-दुःखको भोगे हुए लोगोंके चित्तों
प्रायः एक-सा होगा। उनकी सामूहिक आशाएँ और अ
प्रायः एक-सी होंगी। वाङ्मय हृदयके उद्वेगका सू
है। कवि, नाट्यकार, कथा-लेखक लोगोंके अन्तस्तल
होनेवाले तारोंकी स्वरलहरीको वाग्बद्ध कर देता है।
ऐसा करनेमें असफल होता है तो उसकी कृति कृत्रिम,
और लोकमें अप्रिय रह जाती है। इसका तात्पर्य य
जिन लोगोंकी अनुभूतियाँ एक-सी होंगी, उनमें वा
एक या एक-सा ही होगा। यही कारण है कि रहीम,
रसखान, कबीर मुसल्मान होते हुए भी लोकप्रिय
परंतु नसीम या दूसरे उर्दू-कवियोंकी रचना, चाहे
ही रहे हों, थोड़े-से नगरवासियोंतक ही पहुँच सकी
अनुभूति धर्मभावमें भी समता उत्पन्न कर देती है। ई
ही एक हो, परंतु वह रुद्र भी है और शंकर भी। र
पराजय, दुष्काल, महामारी, युद्धसे घिरी हुई जनताको
रूपमें ही देख पड़ेगा; परंतु विजय, सुख-सम्पत्ति,
समय वही शंकर हो जाता है। नित्य नये देशपर राज
करनेवाले, नित्य मन्दिर तोड़कर मस्जिदकी प्रतिष्ठा दे
विदेशी और विधर्मी नरेशोंके भूलुण्ठित मुकुटोंपर पाँ
उनके प्रजाजनको जजिया लेकर जीवन-भिक्षा देनेवाले
लिये खुदा क़हहार और जब्बार और साथ ही मु
प्रति रहमान और रहीम था। परंतु उसी समय हिंदू—प
के जालमें जकड़ा हुआ, अपने मन्दिरोंका नित्य ढहन
वाला, अपनी स्त्रियोंकी रक्षामें असमर्थ हिंदू—निर्ब
रणछोड़ भगवान्‌के द्वारपर नाक रगड़ रहा था और रा
ताता-थेईमें अपने हृदयकी धड़कनको दबाना चाह
धर्म वही, परंतु कहाँ गुप्तकालका वाङ्मय और कहाँ
मुग़लकालका भक्ति और रीतिकाव्य! आज हमको
हुए बहुत दिन नहीं हुए और अभी तो हम बहुत-
अभिभूत हैं; फिर भी वह पहले-जैसी निराशा नहीं है।

| नहीं है, कोई महाकवि आज भक्तिकाल-जैसी रचना करके
य नहीं बन सकता। आज ऐसे भगवान्‌की खोज है,
र्बलोंका नहीं, वरं सबलोंका बल हो। लोकानुभूतिका
योगियोंतकपर पड़े बिना नहीं रहता; एक ओर नानक-
था दूसरी ओर गोरक्षकी वाणियोंको मिला लीजिये। जो
भाव नानक-कबीरमें है, गोरक्ष उससे अपरिचित थे।

कानुभूतिका दार्शनिक विचारोंके साथ भी घनिष्ठ
है। अच्छा-से-अच्छा, गम्भीर-से-गम्भीर दार्शनिक
हो; परंतु जनता उसे व्यापकरूपसे विशेष अवस्थाओंमें
कार करती है। व्यक्तिवाद, समाजवाद, अध्यात्मवाद,
, अद्वैतवाद, प्रधानवाद, शून्यवाद—बुद्धि-विलासके
नी वाद अच्छे हो सकते हैं; परंतु कोई ऐसी परिस्थिति
जिसमें किसी समाजविशेषको कोई वाद-विशेष रुचि-
त होता है। कालान्तरमें वह विचारधारा उस स्थानको
ती है। वादोंके संघर्षका इतिहास बड़ा रोचक है।
नुष्यके सांस्कृतिक विकासका इतिहास निहित है।

कृति उस दृष्टिकोणको कहते हैं, जिससे कोई समुदाय-
ीवनकी समस्याओंपर दृष्टिनिक्षेप करता है। यह दृष्टि-
ई बातोंपर निर्भर रहता है। थोड़ेमें यह कह सकते हैं
ायकी वर्तमान अनुभूतियों और पुरातन अनुभूतियोंके
के अनुरूप उसका दृष्टिकोण होता है। जो आजकी
है, वह कल संस्कारके रूपमें अवशिष्ट रह जायगी और
अनुभूति सम्भवतः दूसरे ढंगकी होगी। इसलिये
भी बदल जायगा। दूसरे शब्दोंमें यह समझ लेना
कि लकड़ी-पत्थरकी भाँति संस्कृति निश्चल, एकरस
हीं होती। वह बदलती रहती है। जब हम किसी देश
ी संस्कृतिकी चर्चा करें तो उस कालविशेषका भी
कर देना चाहिये, जो हमारे ध्यानमें है। अन्यथा हमारा
नेरर्थक होगा। यूरोप तो वही है, परंतु आजसे
र्ष पहलेकी संस्कृति और आजकी संस्कृति एक दूसरे-
भिन्न हैं। १९१७ के पूर्व और उसके बादके रूसकी
क अवस्थामें आकाश-पातालका अन्तर है। ऐसी दशामें
| या रूसी संस्कृति कहनेसे किसी निश्चित भावका
ं हो सकता। ऐसे प्रयोग सुननेमें सरल लगते हैं,
मक होते हैं।

| इस कथनका तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृति

अपरिवर्तनशील रहती है। देशका जल-वायु बदलता
न उसके भौगोलिक या दूसरे प्राकृतिक दृग्विषयोंमें
होता है। देशके राजनीतिक इतिहास और आर्थिक
बनानेमें बहुत कुछ हाथ उसकी भौगोलिक स्थितिका
इसलिये घटनाओंमें उलट-फेर होते हुए भी राजनीि
आर्थिक जीवनकी रूप-रेखा भी बहुत कुछ एक-स
इसके अतिरिक्त राष्ट्रिय स्मृति, पुरानी सामूहिक अनु
संस्कार भी संस्कृतिको जल्दी बदलनेसे रोकेंगे। रा
सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति भले ही हो जाय
बार वर्तमान और अतीतके सम्बन्धको विच्छिन्न भ
परंतु कुछ कालमें जब क्रान्तिके चण्डांशुका तेज कु
पड़ता है, तब पुरानी स्मृतियाँ फिर जागने लगती
संस्कृतिकी धाराको फिर पुराने मार्गकी ओर ले जा
करती हैं। क्रान्तिका संस्कार मिटाया नहीं जा सकत
नयेके नयेपनमें पुरानेकी झलक आ जाती है।

इस भूमिकामें ही हम भारतीय संस्कृतिके
विचार कर सकते हैं। भारतीय जनतामें हिंदुओंक
सर्वाधिक है। भारतका वह भाग, जिसके हम आज
हैं, सर्वतः हिंदूप्रधान है। वैदिक और पौराणिक व
नहीं, प्रत्युत वर्तमान कालतककी प्रायः सभी ऐतिहासिक
इसी भूभागमें घटीं और प्रायः सभी आदरणीय व्य
यही कार्यक्षेत्र था और है। यहाँ रहनेवालोंको बहु
समान अनुभवोंका सामना करना पड़ा है। इन अनुभ
संस्कार बने हैं, लोगोंके विचार जैसे साँचोंमें ढले हैं,
द्योतन संस्कृतमें होता है। प्रादेशिक भाषाएँ भी
प्रकारके भावोंसे स्फूर्ति पा रही हैं—इसका प्रमाण इस
मिलता है कि तुलसी और सूर, मीरा और कबीर,
रामदास और तुकाराम, प्रेमचन्द और रविठाकुरको स
अपना मानता है। इस वेदनासाम्यके सबसे बड़े प्रत
युगमें महात्मा गान्धी हुए हैं। उनकी वाणीमें भारती
अपने स्पन्दनकी प्रतिध्वनि सुनता था।

इस हमारे देशमें हिंदुओंके अतिरिक्त ईसा
मुसल्मान भी रहते हैं। ये लोग यहींके निवासी है
इनके धार्मिक विचार फ़िलिस्तीन और अरबसे आ
मुसल्मानोंका ईरान, ईराक़ और अरबसे दीर्घकाल
सम्बन्ध रहा, उसके कारण उनके विचारोंपर उन

नके पड़ोसी हिंदुओंपर भी पड़ा है। इस प्रकार
षोंमें एक मिली-जुली संस्कृति बन गयी है। इसकी
ारा तो वही है, जो आर्यजीवनके आदिपुरुषों,
ब्दोंमें 'नः पूर्वे पितरः', प्राचीन ऋषियों और
समयसे चली आती है। बीच-बीचमें यह सूखने
तु बुद्ध और महावीर, शङ्कराचार्य और चैतन्य,
ौर कबीर, तुलसी और सूर, दयानन्द और रामकृष्ण-
पथको फिर प्रशस्त किया। इसमें कई सहायक
ाएँ मिली हैं। इसके जलमें वे बूँदें हैं, जिनके
द्वीप, ईरान, ईराक़, अरबमें हैं। आर्य, द्रविड़,
न और मुगलने मिलकर इस प्रासादका निर्माण
। आज इसमें प्रबल वेगसे यूरोप और अमेरिकासे
कई नदियाँ मिल गयी हैं।

मिली-जुली संस्कृतिको भारतीय संस्कृति कहना
युक्त होगा; परंतु यह निर्विवाद है कि इसका ताना
जेसे आर्य या हिंदू नामसे उपलक्षित किया जा
। बानेके सूत इधर-उधरसे आये हैं, पर वे सब
ाश्रित हैं। गङ्गामें बहुत-सी छोटी-बड़ी नदियाँ मिली
मिलनेपर जो पयस्विनी बनती है, वह गङ्गा ही कही
। इस न्यायसे भारतीय संस्कृतिको हिंदू-संस्कृति भी
ा हैं। भारतके बाहर जब लोग 'भारतीय संस्कृति' का
हैं तो निश्चय ही उनका सङ्केत इस संस्कृतिकी
ाकी ओर ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार
ीय दर्शन'की चर्चा करनेवालेके सामने सांख्य, योग,
आर्यदर्शन होते हैं।

हिंदू या भारतीय संस्कृतिने अपनेको धर्म, वाङ्मय,
, मूर्तिकलाके रूपमें व्यक्त किया है। समय-
इसके स्वरूपमें हेर-फेर होता रहा है। अशोककालीन
ुप्तकालीन संस्कृतिसे भिन्न थी, पठान और मुग़ल-
स्कृतिने कुछ और ही रंग पकड़ा था और उसी
त्तर तथा दक्षिण भारतमें अन्तर था। फिर भी,
देश-कालानुगत भेदोंके रहते हुए भी, इसमें कुछ तो
है, कुछ अपना पृथक् व्यक्तित्व है, जो भेदमें
को बनाये हुए है। यदि ऐसा न होता तो एक
कारना किसी भी अंशमें सार्थक न होता। यह
इसकी प्रधान धारा, आर्य या वैदिक धारासे आयी

यदि इसे एक शब्दमें व्यक्त करना चाहें तो व
'आध्यात्मिकता' होगा। इस बातको बहुत दिन हुए
विवेकानन्दने यों समझाया था; यदि पश्चिमके
सामने कोई नयी योजना रक्खी जाती है तो उनक
प्रश्न यह होता है 'क्या इससे मेरी आयमें वृद्धि
भारतीय ऐसे अवसरपर यह पूछता है 'क्या इस
मिलेगा?' इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यहाँ
विरक्त, तपस्वी, मुमुक्षु हैं। भाव केवल इतना ही
हमारी सामूहिक आत्माका झुकाव आध्यात्मिकता
है। हम प्रश्नोंको आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे देखते हैं।
आध्यात्मिक स्तरपर रक्खी जाती है, वह हमको
रुचती है। व्यक्ति-व्यक्तिकी मनोवृत्तिमें बड़ा अन्त
सब मनोवृत्तियोंका समन्वय करके उनके महत्तम सम
रूपमें जो समष्टि मनोवृत्ति, सामुदायिक प्रवृत्ति ब
उसका ऐसा ही रूप है।

इस आध्यात्मिक भावका विश्लेषण करनेसे इसमें
मुख्य विश्वासोंका सम्मिश्रण मिलता है। सबसे पहली ध
अद्वैतधारणा है। द्वैतवादी दार्शनिक भी हुए हैं
द्वैतवाद विद्वद्गोष्ठियोंतक ही रह गया। मध्वादि सम
भक्तोंने लोकभाषामें भले ही द्वैतवादका प्रतिपाद
हो, परंतु श्रोताओंने उनके शब्दोंमेंसे भी खींच-
अद्वैतभावकी ही पुष्टि की। विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वै
अद्वैतवादोंमें जो सूक्ष्म भेद हैं, उनकी ओर सामान्य
सरल बुद्धिने ध्यान नहीं दिया; उसने उन सबमेंसे
सादा 'अद्वैत' भाव—जीवात्मा और परमात्माका
अभेदमात्र पकड़ लिया।

अद्वैतभावनाका परिणाम कट्टरपनका अभाव
इस संस्कृतिकी दूसरी विशेषता है। हिंदूके नस-नस
बात भर गयी है—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इ

उसके लिये दूसरेके धर्मको सर्वथा मिथ्या
दूसरेकी उपासनाशैलीको सर्वथा नरक ले जानेवाली
असम्भव नहीं तो बहुत कठिन होता है। क्रोधकी तो

पनसे नहीं लड़ पाता, जो और लोग दिखला सकते
र्मावलम्बियोंके साथ जैसा उदार व्यवहार हिंदुओंने
वह वस्तुतः अप्रतिम है।

तभावनाका दूसरा परिणाम अहिंसाभाव और दया
क्रोध भी करता है, क्रूरता भी दिखलाता है,
ष, निर्दयतामें नीचातिनीच गहराईतक भी पहुँच
। फिर भी उसकी बुद्धि अहिंसानिम्न ही होती
सभी प्राणी अपने ही रूपान्तर हैं, तब कौन किससे
कौन किसका अहित करे। राग-द्वेषजनित स्वार्थके
होकर हिंदू भी बुरे-से-बुरे काम कर बैठता है; परंतु
: उसकी प्रवृत्ति स्वरक्षणात्मक होती है,
त्मक नहीं। बल होते हुए भी वह अकारण,
रने लिये, दूसरोंसे कम ही छेड़-छाड़ करता है।
या मोहवश निर्दयता भी करता है, परंतु प्रत्यक्ष
तिर्यक् प्राणियोंके प्रति समवेदना उसको अधिक
।

ा ऐसा शब्द है, जिसकी व्याख्या करनेमें बड़े-बड़े
ो सङ्कोच कर सकते हैं; परंतु भ्रम, मिथ्या, धोखा—
उसके पर्याय बन गये हैं। दार्शनिक सूक्ष्मताओंसे
अपढ़ ग्रामीण भी ऐसा मानता है कि यह जगत्
। माया बुरी चीज है, इसको तोड़ना चाहिये।
षयोंके पीछे दौड़नेसे मायाका बन्धन और दृढ़
अतः हमको इन्द्रियनिग्रहका अभ्यास करना चाहिये।
दू यति नहीं होता; परंतु हिंदूके चित्तमें विषय-
रतिकी प्रतिष्ठा बैठी हुई है। वह त्यागीको भोगीसे
नता है, चाहे स्वयं त्यागी न हो सके। हिंदूजीवनमें
रण तपस्याका थोड़ा-बहुत वातावरण रहता है।
वास, जागरण हिंदू घरोंमें होते ही रहते हैं। अमुक
स नहीं खाना, अमुक दिन अन्न नहीं खाना,
ाेय होते हुए भी अमुक वस्तुओंको त्याज्य मानना—
दू बचपनसे ही परिचित रहता है।

और पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर अटल विश्वास
ृतिकी दूसरी विशेषता है। ईश्वर या अन्य उपास्यकी
ते हुए और योग-क्षेमके लिये सैकड़ों देव-देवियोंकी
र माथा टेकते हुए भी हिंदू अन्ततोगत्वा अपनेको
सुख-दुःखका दायी मानता है। इस विश्वासमें

नहीं करते। मृत्यु भी उसके लिये उतनी महत्त्व
नहीं है। वह ऐसा मानता है कि यह अनुभव उसे
बार हो चुका है और अभी न जाने कितनी बार हो
इसीलिये तो वह अपने महापुरुषोंकी देहावसानति
मनाता। जिसको बराबर यह उपदेश मिलता रहता
स्वर्ग और नरक भी अनित्य हैं, उसमें कष्ट सहनेकी
क्षमता आ जाती है।

योगपर विश्वास भी इस संस्कृतिका एक गुण है
की दार्शनिक परिभाषाएँ कुछ हों; परंतु साधारणतः
सकते हैं कि आत्मसाक्षात्कारकी साधनाका नाम योग
उसके भजन, ध्यान आदि कई पर्याय प्रचलित हैं; प
कह सकते हैं कि हिंदूको ऐसी धारणा-सी है कि
उपायोंसे इसी जीवनमें ईश्वरसाक्षात्कार हो सकता
मनुष्य अपनेको देवोपम बना सकता है।

इतना दिग्दर्शन पर्याप्त होना चाहिये। इससे
मानसिक बनावटका—और यह मानसिक बना
संस्कृतिका मूल है—परिचय हो जाता है। थोड़ेमें व
हैं कि इस लोकमें रहते हुए भी, हिंदूकी दृष्टि 'परल
ढूँढ़ती रहती है। उसके सामने राम, कृष्ण, जनकके
रहते हैं—जिन्होंने राजपाटके साथ ज्ञान-वैराग्यको
मिला दिया था।

आज कुछ परिवर्तन हो रहा है। पश्चिमके भ
प्रधान प्रभावने चकाचौंध पैदा कर दी है। जि
हमारा धर्म सामने आता है, जिस प्रकारकी रूढ़ियं
पुष्ट करता प्रतीत होता है, उनसे आजकी समस्याएँ
नहीं प्रतीत होतीं। हमारे विद्वान् विज्ञानसे अनभिज्ञ
व्यावहारिक जगत्से दूर हैं। वे विज्ञान और म
जैसी विचारधाराओंका तर्कपूर्ण उत्तर नहीं दे सकते
पुराने विचारों और संस्कारोंकी ओरसे वैरस्य हो
है। पुरानी स्मृतियाँ नष्ट नहीं हुई हैं; परंतु व्यज्ञ उ
उनको भुलानेका यत्न किया जाता है। हमारी आँखों
संस्कृति कलेवर बदल रही है।

रूढ़िवादिता अच्छी नहीं होती। जहाँतक
सम्पर्क, नये और पुराने विचारोंके सङ्घर्ष हमारो
उदार बनाते हैं—हमको उनका आदर करना चाहिये
संस्कृति नवयुगकी प्रतीक नयी विचारधारारूपी

ा; संस्कृति वर्तमानके अनुरूप होनी ही चाहिये ; ु यह भी न होना चाहिये कि नवीनकी खोजमें खो जाय। हमारी विशेषताएँ मनुष्यमात्रके लिये हैं। अद्वैतभावना, अद्वेष, अहिंसा, दया, तपस्या, ग्रह और कर्मसिद्धान्तपर आस्थाकी आवश्यकता । इनके अभावमें संस्कृति स्वार्थमूलक पशुताका

परिवर्द्धित और विकृत संस्करण होकर रह जाती है यह सन्देश, हिंदू-संस्कृतिका यह सार, दिग्दिगन्तमें फै जगत्का कल्याण होगा। यदि मानवसमाजका पु इन आधारोंके साथ आधुनिक विज्ञानके सिद्ध मिलाकर किया जा सके तो सचमुच मनुष्यजातिक उसके अतीत और वर्तमान दोनोंसे उज्ज्वल और श्रेयस्क

हिंदू कौन ?

(लेखक—शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

बात अब निर्विवाद हो चुकी है कि भारतीय संस्कृतिके ासकोंको एक सूत्रमें बाँधनेके लिये 'हिंदू' शब्दके आर्य-वाङ्मयमें अन्य शब्द नहीं है। लगभग पौन हिंदू' शब्दके विरुद्ध प्रयत्न होते आये हैं। इसे की देन, 'गुलाम' शब्दका पर्याय, असंस्कृत शब्द, अर्वाचीन शब्द एवं आर्य-गौरवका अपमानसूचक द्ध करनेकी चेष्टाएँ की गयीं और जनगणनाके समय सज्जनोंने भावावेशमें हिंदूकी जगह अन्यान्य र हिंदुओंकी संख्याका ह्रास किया। परंतु आज अब ी इस बातको समझ रहे हैं—'हिंदू' नामके महत्त्वका करने लगे हैं।

 सचमुच 'हिंदू' शब्द विजेता यवनोंकी ओरसे प्रदत्त ो लानतका संसूचक होता तो महाराणा प्रताप-जैसे प्रबल प्रतीक अपने आपको 'हिंदू-पति' उपाधिसे त न समझते। छत्रपति महाराज शिवाजीके दरबारी ा भूषण उनको—'राखी हिंदुवानी' 'हिंदुवानको तिलक -हिंदुनकी चोटी' 'राखी' शब्दोंमें स्मरण न करते; ान्दसिंह स्वयं अपनी कवितामें—'जगै धर्म हिंदू, सभी जैं' कहकर 'हिंदू' शब्दको सम्मान न देते !

रतन्त्र' 'कालिकापुराण' आदि ग्रन्थोंके अतिरिक्त की प्रसिद्ध पुस्तक 'शातीर' में भी 'हिंदू' शब्दका उल्लेख विद्यमान है। 'बृहस्पति-आगम' में तो की सीमा निर्धारित करते हुए इसे भौगोलिक ज शब्द स्वीकार किया गया है। यथा—

ालयं समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम्।
देवनिर्मितं देशं 'हिन्दुस्थानं' प्रचक्षते॥

र्गत हिमालय पर्वतके 'हि'-शब्दोपलक्षित परले शब्दोपलक्षित अन्तिम प्रदेशकी समाप्तिपर्यन्त दे विस्तृत स्थलका नाम 'हि+न्दु=स्थान' है।

वेदमें निरुक्तके नियमानुसार सकार हकाररूपमें भी होता है—जैसे 'सरित्', 'सरस्वती', 'सिन्धु' आ 'हरित्,' 'हरस्वती' 'हिन्धु' भी उच्चरित होते हैं। 'के 'केहरी,' तथा भारतीय 'श्री' शब्दका आङ्गल 'स जर्मनी 'हर' भी इसी कोटिके शब्द हैं।

अन्ताराष्ट्रिय हिंदू

कभी-कभी ऐसा विचार सामने आता है कि पा साथ अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, फारस, सुदूर मुसल्मानोंका जाल बिछा है। पूर्वमें भी चीन और उसं वर्ती प्रदेशोंमें मुसल्मान रहते हैं। सब मिलाकर अन्यून करोड़ मुसल्मान समय पड़नेपर एक झंडेके नीचे सं सकते हैं। 'पाकेशिया' और 'पान इस्लाम'का न आधारपर बुलंद किया जा रहा है। इसी प्रकार सर्वत्र सत्तर करोड़ ईसाई बसते हैं। परंतु हिंदू सब पैंतीस करोड़के लगभग हैं। अतः संख्याबलकी दृष्टिसे चिन्ताजनक है ! परंतु ऐसी आशङ्का करनेवाले स भूल जाते हैं कि यदि मुसल्मानोंके बहत्तर फिरके और के रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टैंट आदि अनेक फिरके हो सकते हैं तो फिर सनातनी, समाजी, सिक्ख, जै बौद्ध—हिंदुओंके ये प्रधान पाँच सम्प्रदाय संगठित हो सकते ? उक्त पाँचों भाइयोंके संगठित हो जानेपर की भी सम्मिलित संख्या एक अरबसे अधिक हो जा अन्ताराष्ट्रिय दृष्टिसे समस्त विश्वकी जनसंख्याके आ अधिक बन जाती है। इस प्रकार अकेला हिंदू संसारके समस्त फिरकोंके सम्मिलित योगसे अधिक सिद्ध होता

हैं, जो इनको अहिंदुओंसे पृथक् करके एक सूत्रमें करते हैं। यथा—

ंकारमूलमन्त्राढ्यः पुनर्जन्मदृढाशयः ।
भक्तो भारतगुरुर्हिन्दुर्हिंसनदूषकः ॥

(माधवदिग्विजय)

र्थात् (१) ओंकारको मूलमन्त्र माननेवाला, (२) विश्वासी, (३) गोभक्त, (४) जिसका प्रवर्तक हो और (५) हिंसाको निन्द्य माननेवाला 'हिंदू' ता है।

ना न होगा कि उक्त पाँचों लक्षण सनातनी, आर्य-सिक्ख, जैन और बौद्ध—इन पाँचों सम्प्रदायोंमें समान टित होते हैं। इसलिये हिंदूका यह अव्याप्ति, अति-रि असम्भव रूप दोषत्रयशून्य सुनिश्चित लक्षण है।

:) सनातनी प्रत्येक मन्त्रके साथ ओंकारका योग मानते हैं। अतः उनका यह परम पवित्र सर्ववेद-प्रधान मन्त्र है। आर्य-समाजी तो 'ओं'के सर्वाधिक हैं, स्वामी श्रीदयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाशमें इसे का निज नाम माना है। उनका ध्वज भी 'ओं'से होता है। सिक्खोंके धर्म-ग्रन्थमें सर्वप्रथम—'एक द्गुरप्रसाद' यही मङ्गलाचरण मिलता है। जैनियों-न्त्र 'ओं नमो अरिहंताणम्' इत्यादि है, बौद्धोंका । मन्त्र 'ओं मणिपद्मे हुम्' है, इस प्रकार सभी मूलमन्त्र मानते हैं।

:) पुनर्जन्ममें सबका समान विश्वास है, कर्म-विपाक-यसे ही सब—'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः' हैं।

सनातनी गौके लिये अब भी प्राणोंकी बाजी लगानेको हैं। स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजके नेतृत्वमें र चोटीके महात्मा, विद्वान्, राजा, सेठ और सभी ग विगत वर्ष जेल-यातना सहन कर चुके हैं। तीन ाण भी प्रदान कर चुके हैं। आर्यसमाजमें भी लिये यही बात है, स्वामी दयानन्दजीने 'गोकरुणा-मक स्वतन्त्र पुस्तक लिखकर गायका महत्त्व प्रकट । सिक्खसम्प्रदायके सभी गुरुओंने—खासकर श्रीगोविन्दसिंहजीने—अपने 'दशम ग्रन्थ' 'विचित्र

प्रत्यक्षमें भी उनका समस्त जीवन ही गोरक्षामे हुआ है; पंजाबका सुप्रसिद्ध 'कूकाविद्रोह' गोर आधारित था, जिसमें सहस्रों नामधारी सिक्खोंको अंग्रे उड़ा दिया था। जैनी तो मुखकी साँससे भी सूक्ष्म की हत्यासे बचते हैं। अतः गायके सम्बन्धमें उनकी विच उल्लेख करना मानो उनका अपमान करना है। नरहरिके उद्योगसे ही अकबरने अपने राज्यमें गोव फर्मान निकाला था। बुद्ध भगवान्ने 'धम्मपद'में लि

गावो नो परमा मित्ता गावो नो परमं धनम्

इस प्रकार ये पाँचों सम्प्रदाय परम गोभक्त हैं बौद्धोंका सर्वभक्षित्व तो अहिंदुओंके सम्पर्कका क अतः वह उपेक्षणीय है। हम यहाँ केवल सिद्धान्त-स चर्चा कर रहे हैं)।

(४) उक्त पाँचों सम्प्रदायोंके धर्माचार्य, अवतार, तीर्थङ्कर और मूलप्रवर्तक भारतके ही सपूत

(५) ये पाँचों ही मनसा, कर्मणा, वाचा हिंस करनेवाले हैं। इसलिये अन्यून सवा अरब हिंदुओ सर्वसम्मत लक्षण है।

वर्णाश्रमी हिंदू

आदिकालमें सभी हिंदू थे; परंतु मनूक्तिके 'ब्राह्मणानामदर्शनात्' अनेक क्षत्रिय-जातियाँ वृ गयीं। इसी प्रकार अहिंदुओंके कुसङ्गसे उक्त पाँचों स में—खासकर बौद्धशाखामें—वर्णाश्रमसम्बन्धी खा अन्तर पड़ गया है। अतः अन्ताराष्ट्रिय दृष्टिसे ये सब हिंदू होते हुए भी वर्णाश्रमकी दृष्टिसे इनके अन्तर्गत सनातनी शाखामें विशुद्ध हिंदुत्वका अब भी दर्श जा सकता है, जिसको सामने रखकर लोकमान्य ति हिंदू-लक्षण ठीक उतरता है। यथा—

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु नियमानामनेकता
उपास्यानामनियमो हिन्दुधर्मस्य लक्षणम्

अर्थात् 'वेदोंमें प्रामाण्यबुद्धि रखनेवाला, न नियमोंका पालक, अनेक प्रकारसे ईश्वरकी उपासना क हिंदू कहाता है।' इसीसे मिलता-जुलता लक्षण वीर सा किया है, यथा—

आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका

ितृक सम्पत्ति और पवित्रभूमि हो, वही हिंदू है।'
श्रीधर रोड़ेने 'वृद्धस्मृति'के नामसे हिंदूका एक
क्षण उद्धृत किया है। यथा—

नया दूयते यश्च सदाचरणतत्परः।
गोप्रतिमासेवी स हिन्दुमुखशब्दभाक्॥

र्थात् 'हिंसासे दुःखित होनेवाला एवं ब्राह्मण-सदा-
तत्पर; क्षत्रिय—सदा-च-रण-तत्पर=सदैव रणके लिये
श्य—सदा-चरण-तत्पर=सदैव गमन—यात्रामें संलग्न;
दा-चरण-तत्पर=सदैव द्विजातिकी चरणसेवामें
रत। वेद-गो-प्रतिमासेवी=ब्राह्मण—वेदवाणीके मूर्तिमा
का अनन्य सेवक; क्षत्रिय—वेदों, भूमि और देवप्रति
विश्वासी; वैश्य—वेद, गो-जाति और देवसत्ता का सेव
वेद और गौ जिस विराट् पुरुषकी प्रतिमा है,
वर्णत्रयका सेवक अर्थात्—वर्णाश्रम-मर्यादानुकूल
करनेवाला पुरुष 'हिंदू' है।

इस प्रकार 'अन्ताराष्ट्रिय हिंदू' और 'वर्णा
कौन है? इस प्रश्नका विशद उत्तर उपर्युक्त प
संक्षेपतः आ जाता है।

भारतीय संस्कृति

(लेखक—श्रीशिवशरणजी)

ुनिक लोगोंकी भाषामें 'संस्कृति', 'सभ्यता' आदि
बहुत प्रयोग होता है। वास्तवमें उन शब्दोंका यह
ोग 'धर्म', 'ज्ञान' आदि प्राचीन शब्दोंके स्थानपर
परंतु यह उचित नहीं है। यदि नवशिक्षित लोग
ठीक अर्थ जानते होते तो इन शब्दोंका ऐसा
नहीं करते।

मान पश्चिमियोंसे या उनके अनुयायियोंसे यदि पूछा
के 'संस्कृति क्या वस्तु है?' तो वे प्रश्नके अर्थपर
न करके तुरंत पश्चिमी सभ्यताकी प्रशंसा करने
; परंतु यदि पुराने ढंगके पण्डितोंके सामने यही
आ जाय तो वे निःसंदेह 'संस्कृति' शब्दका अर्थ
लगेंगे, संस्कृतिका हर एक अवयव अलग करते
कृति वास्तवमें क्या वस्तु है', इसपर विचार करनेका
रेंगे—जिससे विदित होगा कि संस्कृतिके कई अङ्ग
अङ्ग सब संस्कृतियोंमें सामान्यरूपसे मिलते हैं और
ा भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंमें अलग-अलग मिलते हैं।

एक प्रश्नके उत्तरसे स्पष्ट होगा कि पश्चिमी एवं
विद्वानोंकी दृष्टिमें कितना अन्तर है। तात्त्विक दर्शन
संस्कृतिके अनुपम मणि हैं। वर्तमान पाश्चात्त्य-दर्शन
वैशेषिकका अंश माना जा सकता है; परंतु उन
पूर्ण ध्यान रखते हुए भी भारतीय दार्शनिक अपने
ान्त, साख्य आदिके साधनोंसे उनकी त्रुटियोंको
सकते हैं।

अवस्थापर ठहरनेके लिये यह आवश्यक है कि
अन्य अंश भी उन्नत अवस्था प्राप्त करें। यदि
अंश उन्नत हैं और दूसरे अविकसित हैं, तो संस्कृति
अनिवार्य है। इसीलिये यह दिखायी पड़ता है कि
देशोंमें कितनी ही सभ्यताएँ फूलीं-फलीं और नष्ट हो
भारतीय सभ्यता एक ही है, जो अनादि समयसे चली
है और निःसंदेह आगे भी चलती रहेगी।

भारतीय दर्शनके अनुसार संस्कृतिके पाँच अवय
हैं—धर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति-रिवाज।
शब्दका यह अर्थ लगाते हुए यदि वर्तमान
संस्कृतिका परीक्षण किया जाय तो विदित होगा
इतनी त्रुटियाँ हैं कि उसे संस्कृति कहनेमें भी संदेह

'संस्कृति' शब्दका लक्ष्यार्थ धर्म, विद्या
उन्नति है; परंतु वाच्यार्थ संस्कृत—शुद्ध करनेकी क्रि
प्राकृत वस्तु जिस रूपमें साधारणतासे प्राप्य है, उ
नहीं कहा जा सकता। किसी स्थूल धातुसे सू
तत्त्व निकालनेकी क्रियाका नाम संस्कृति है। एक हरी
संस्कृत करनेसे भास्वत् ताम्र मिल जाता है। वैसे ही
जातिके स्थूल धातुसे संस्कृतिद्वारा उत्तम मानसि
सामाजिक गुण प्रादुर्भूत होते हैं।

संस्कृतिकी उत्पत्तिके विषयमें कुछ मतभेद
बातपर इतिहासकारोंको वाद-प्रतिवाद करनेका अच्छ
मिलता है। फिर भी संस्कृतिका रूप और मूल
उत्पत्तिके प्रश्नसे अलग बात है। कुछ लोगोंका कह

: स्वरूपको प्राप्त हो गया। दूसरे लोग कहते हैं कि
द्ध ताम्र कहीं नहीं दिखायी पड़ता, उसका प्राकृत रूप
ही है। उस मिट्टीको संस्कृत करके प्रकृतिकी ओटमें
। शुद्ध ताम्र-तत्त्व निकाला जा सकता है। प्रायः दोनों
अपने प्रमाणके उपायकी सीमाओंमें सच कही जा
। इसी तरह कहा जा सकता है कि पुरुष आरम्भमें
समान था। फिर भी जहाँतक हम लोगोंका प्रत्यक्ष
हो सकता है, हम देखते हैं कि मनुष्य-जातिके मूढ
इसे भी संस्कृतिद्वारा शुद्ध संस्कृत भाषा एवं विद्वान्
रुष बनते हैं।

ष्य-जातिका इतिहास समझनेके लिये भारतखण्ड एक
; क्योंकि भारतीय संस्कृतिको छोड़कर कोई भी ऐसी
कृति नहीं है, जो मनुष्यकी उत्पत्तिके समयसे आजतक
ारासे चलती आयी हो। सब धर्मोंका आधार सनातन-
रतीय-धर्म ही है। धर्मानुसार समाजके स्वरूपकी रक्षा
रतमें हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय
ऐसे गुण होना अनिवार्य है, जिनसे संस्कृतिकी
है।

ुनिक पश्चिमी देशोंमें लोगोंको एक विचित्र
हो गया। वे कहने लगे कि 'हमलोगोंने वैज्ञानिक
ोंसे एक नया युग पैदा कर दिया है।' परंतु इन नये
ोंका फल थोड़ा-सा भी अन्वेषण करनेसे स्पष्ट होता
नुष्य इस नये विज्ञानसे अद्भुत यन्त्रोंके मालिक न
निर्दयी निर्विचार भयङ्कर यन्त्ररूप राक्षसके गुलाम
हैं! किसीको पता नहीं कि वह राक्षस मनुष्य-जातिको
ा रहा है। बड़े-से-बड़े यन्त्रोंके चलानेके लिये अनेक
ासकोंको सारी प्रजासे काम लेना पड़ता है। इस कारणसे
लये स्वतन्त्रता नहीं रह सकती। लोगोंको इस अप्रिय
गाये रखनेके लिये उनकी विचारशक्तिका नाश करना
। आजकल कई देशोंमें एक नयी चिकित्साका प्रयोग
जिसके द्वारा मनुष्यके मस्तिष्कका एक छोटा अंश
र असाधारण विचार करनेकी शक्ति नष्ट कर दी जाती
: किसी व्यक्तिको ऐसा विचार होने लगता है, जिसमें
तरा देखते हैं, तब छोटी-सी शल्य-क्रियासे उसको
बना लेते हैं। ऐसी सम्भावना अवश्य ही स्वतन्त्रता
तिकी द्योतक नहीं है। इस नये यन्त्रराज्यमें

कुछ लोगोंका कहना है कि 'भारत वर्तमान
वञ्चित रहा। जंगली जातियोंकी तरह भारतीयोंने
उन्नतिके मार्गपर चलना नहीं सीखा। इसलिये भा
चाहिये कि अपने पुराने विचार एवं रहने-खानेके ढंग
छोड़कर नवीन युगकी रीतिसे रहने लगें।' परंतु ऐसा क
लोग प्राचीन संस्कृतिसे अपरिचित हैं। यदि वे लोग
एवं अर्वाचीन दोनों संस्कृतियोंके गुणोंकी तुलना क
तो कभी ऐसा विचार नहीं करते। यह प्रश्न अनुचित
कि 'यदि प्राचीन संस्कृति वस्तुतः निर्मूल्य है तो अ
मर ही जायगी। फिर उसका मूल्य छिपाने, उसका
रोकनेके लिये क्यों इतना प्रयत्न हो रहा है?' इसक
यह है कि यदि किसीको भारतीय सनातन विद्याके
छोटे अंशका लेशमात्र भी दर्शन करनेका सौभाग्य
तो वह कभी भी दूसरी विद्या, दूसरी संस्कृतिको नहीं :

संसारमें कोई ऐसी विद्या नहीं है, जिसकी प्राचीन ि
विचारोंसे तुलना की जा सके। हिंदू न्याय, सांख्य,
व्याकरण, योग, नीति आदिके सामने समस्त वर्तमान
दर्शन लड़कोंके निरर्थक जल्प-से दिखायी पड़ते हैं
दर्शनसे परिचित किसी भी विद्वान्को वर्तमान
दर्शनके गुणगान करनेका साहस नहीं हो सकता।

संस्कृत-व्याकरणकी पूर्णताके सामने अन्य भा
रचनाविधि अनुपपन्न एवं असमाप्त दिखायी पड़ती है
अन्य समाजोंका रूप हिंदू-समाजके सामने पशुओंके सम
विदित होता है।

हर-एक पुरुषार्थ, हर एक उन्नतिका साधन अन्य
अत्यन्त उत्तम रूपमें भारतकी पवित्र भूमिपर प्राप
मानसिक प्रवृत्तिके साधनोंसे जीवन एक सुन्द
मनोरञ्जक यात्रा बनता है — न कि रेल, वायुयान-
कार आदि साधनोंसे। जीवनको सफल एवं ओ
करनेवाले उपायोंका खजाना भारतवर्ष ही है। इ
देशकी विद्या-मणियोंको कौन गिन सकता है।
पूछा जाय कि 'यदि यह सच है कि इतनी अनुपम
भारतमें मिलती हैं तो नमूनेके लिये कम-से-कम ए
वस्तुका नाम बताओ, जो यहाँ मिलती है और अन्य
नहीं।' तब मैं एक बात बतलाऊँगा, एक ऐसे गु
वस्तुका नाम दूँगा, अन्य सभी गुण जिसके अन्तर
भारत ही एक ऐसा शुभ देश है, जहाँ सत्संगका अनुपम ल

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हिंदू-संस्कृति और रामायण

[illegible]-संस्कृतिके स्वरूपको बतलानेके लिये रामायण एक आदर्श ग्रन्थ है। उसमें हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप कूट-[illegible]रा है। हिमालयका 'हि' और सिन्धु (समुद्र) का [illegible]कर 'हिन्धू' शब्द बना है। उसीका अपभ्रंश 'हिंदू' शब्द [illegible]लयसे समुद्रतकके स्थानका नाम है हिंदुस्थान और [illegible]सनेवाली जातिका नाम हिंदू है। हिंदूजातिका ही [illegible]म है आर्यजाति—श्रेष्ठजाति। इस जातिका चाल-[illegible]रहन-सहन, आहार-व्यवहार आदि जो स्वाभाविक [illegible]य आचरण है, उसका नाम है 'हिंदू-संस्कृति'। [illegible]की उक्त संस्कृतिको सदाचार कहा जाता है। [illegible]ल-चलन, आहार-विहार, खान-पान आदि प्रत्येक श्रुति-स्मृति-विहित, अतएव आत्माका कल्याण करने-[illegible]ा है। इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला [illegible]रण इस सदाचारको ही हिंदू 'धर्म' कहते हैं।* [illegible]दि कालसे चला आ रहा है, इसलिये इसीको 'सनातन-[illegible]ते हैं। मनुजीका वचन है—

[illegible] स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥
(मनु० २।१२)

[illegible], स्मृति, सत्पुरुषोंका आचार तथा जिसके कारण सहज प्रसन्नता प्रकट हो, वह आत्मप्रिय (परोपकार [illegible] कार्य—इस तरह चार प्रकारका यह धर्मका साक्षात् [illegible]ा गया है।'

सनातनधर्म ईश्वरका कानून है और सदा ईश्वरमें [illegible]रता है। यह सृष्टिके आदिमें ईश्वरसे ही प्रकट [illegible] भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
[illegible]स्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
(४।१)

[illegible] इस अविनाशी योगको सूर्यसे कहा था, सूर्यने अपने [illegible]त मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु-[illegible]

[illegible] यह प्रलयके समय ईश्वरमें ही समा जाता है। [illegible]श्वर ही इसकी प्रतिष्ठा हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य [illegible]
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य [illegible]
(गीता १४[illegible]

'क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृ[illegible] नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय[illegible]

अतः इस शाश्वत धर्मको ईश्वरका स्वरूप ही क[illegible] है। यह सदासे है और सदा रहेगा, इसलिये इ[illegible] 'सनातन-धर्म' है।

यह कभी प्रकटरूपसे रहता है, कभी अप्र[illegible] किंतु इसका कभी विनाश नहीं होता। ईश्वरके [illegible] भाँति इसका केवल प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता है[illegible]

वाल्मीकीय और अध्यात्म-रामायणके समस्त श्ल[illegible] तुलसीकृत रामचरितमानसके सारे दोहे, चौपाई, छ[illegible] सभी इसी शाश्वत धर्मरूप हिंदू-संस्कृतिका दिग्दर्शन हैं। उनमें भी श्रीराम और सीताके आदर्श चरित्र [illegible] भाइयोंका परस्पर भ्रातृप्रेम हिंदू-संस्कृतिके प्रधान निद[illegible]

रामायणमें श्रीरामका आदर्श चरित्र

श्रीरामचन्द्रजीकी सारी ही चेष्टाएँ धर्म, ज्ञान [illegible] शिक्षा, गुण, प्रभाव, तत्त्व एवं रहस्यसे भरी हुई थीं [illegible] व्यवहार देवता, ऋषि, मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी आ[illegible] के साथ बहुत ही प्रशंसनीय, अलौकिक और अतुलन[illegible] देवता, ऋषि, मुनि और मनुष्योंकी तो बात ही [illegible] जाम्बवान्, सुग्रीव, हनुमान् आदि रीछ-वानर, जटायु [illegible] तथा विभीषण आदि राक्षसोंके साथ भी उनका ऐसा प्रेमयुक्त और त्यागमय व्यवहार था कि जिसे स्मरण [illegible] ही रोमाञ्च हो आता है। भगवान् श्रीरामकी कोई भी [illegible] नहीं, जो कल्याणकारिणी न हो।

वे साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा होते हुए भी मित्र[illegible] मित्रका-सा, माता-पिताके साथ पुत्रका-सा, स्त्रीके साथ [illegible] सा, भाइयोंके साथ भाईका-सा, सेवकोंके साथ स्वाम[illegible] मुनि और ब्राह्मणोंके साथ शिष्यका-सा—इसी प्रका[illegible] साथ यथायोग्य त्यागयुक्त प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे [illegible] उनके प्रत्येक व्यवहारसे हमलोगोंको शिक्षा लेनी चाहि[illegible]

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यका तो कहना ही क्या है, [illegible]

सके राज्यमें प्रायः सभी मनुष्य परस्पर प्रेम करनेवाले, ते, धर्म, सदाचार और ईश्वरकी भक्तिमें तत्पर रहकर ने धर्मका पालन करनेवाले थे। प्रायः सभी उदार- र परोपकारी थे। वहाँके प्रायः सभी पुरुष एक- और प्रायः सभी स्त्रियाँ पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली वान् श्रीरामका इतना प्रभाव था कि उनके राज्यमें तो बात ही क्या, पशु-पक्षी भी परस्पर वैर भुलाकर चरा करते थे। उनके चरित्र बड़े ही प्रभावोत्पादक लौकिक थे। यह हमारे आर्यपुरुषोंका स्वाभाविक ही था। इसी आदर्शको हिंदू-संस्कृति कहते हैं। हमें उसी लक्ष्यमें रखकर उसका अनुकरण करना चाहिये।

मायणमें सीताका अनुकरणीय चरित्र

-संस्कृतिके अनुसार पतिके साथ पत्नीको कैसा रना चाहिये—इसकी शिक्षा माताएँ श्रीसीताके चरित्र- ती हैं। जगज्जननी श्रीसीताका प्रायः सारा जीवन ही नोंके लिये आदर्श और शिक्षाप्रद है। सास-ससुर, ा, देवरों, सेवकों तथा अन्य सभी स्त्री-पुरुषोंके साथ— कि दुष्टोंके साथ भी कैसा व्यवहार करना चाहिये— न्दर उपदेश हमें श्रीसीताजीके जीवनसे विशेषरूपसे । इसे किसी भी रामायणमें देख सकते हैं। श्रीसीता- की क्रियाएँ कल्याणकारिणी हैं। अतः माता-बहिनोंको जीवनमें जो शिक्षाएँ भरी हुई हैं, उन्हें अपने जीवन- नेकी कोशिश करनी चाहिये।

रामायणमें भ्रातृ-प्रेम

-संस्कृतिके अनुसार भाइयोंके साथ कैसा प्रेमपूर्ण होना चाहिये, इसकी शिक्षा हमें रामायणमें श्रीराम, ा, श्रीभरत एवं श्रीशत्रुघ्नके चरित्रोंसे स्थल-स्थलपर है। उनकी प्रत्येक क्रियामें स्वार्थत्याग और प्रेमका क रहा है। श्रीराम और भरतके स्वार्थत्यागकी बात ी जाय—श्रीरामचन्द्रजीका प्रत्येक संकेत, चेष्टा और भरतको राज्य दिलानेमें है और भरतकी श्रीरामको लानेमें। पाठकगण किसी भी रामायणके अयोध्याकाण्डमें यको विस्तारपूर्वक देख सकते हैं। द्वापरयुगमें आदि पाण्डवोंका परस्पर भ्रातृ-प्रेम आदर्श और ीय है। यह है हिंदू-संस्कृति!

ईश्वरवाद

-संस्कृतिमें ईश्वरवाद एक प्रधान स्थान रखता है। केवल हिंदू ही नहीं, ईसाई और मुसल्मान आदि सभी । जिसे हम हरि, ओम्, ईश्वर, परमात्मा, नारायण,

हैं। जैसे जल, पानी, नीर, अप्, वाटर आदि सभी ज नाम हैं, उसीके पर्याय हैं—वस्तुतः सबका अर्थ एक ज उसी प्रकार ये सभी नाम वस्तुतः एक ही ईश्वरके

हमारे श्रुति, स्मृति, दर्शन, इ

---

१. श्रुति कहती है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत

(यजुर्वेद ४०

'अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतनस्वरूप जगत समस्त ईश्वरसे व्याप्त है।'

२. मनुजी कहते हैं—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥
एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत्॥

(मनु० १२। १२२,

'जो सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म और सबका भली प्रकार करनेवाला है एवं स्वर्णके समान उज्ज्वल और निर्मल तथा स्व भी बुद्धिद्वारा प्रत्यक्ष होनेवाला है, उस परम पुरुष प जानना चाहिये। यही सम्पूर्ण प्राणियोंको पञ्चभूतरू मूर्तियोंके द्वारा व्याप्त किये हुए है तथा जन्म, वृद्धि औ द्वारा निरन्तर समस्त प्राणियोंको चक्रकी भाँति घुमा रहा है

३. महर्षि वेदव्यासजी कहते हैं—

जन्माद्यस्य यतः। (ब्रह्मसूत्र १

'इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार आदि जिससे वह ईश्वर है।' महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

(योग० १

'क्लेश, (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभि कर्म (पाप-पुण्य), कर्मोंके फल (जाति, आयु, भोग वासनाओंसे रहित जो पुरुषोंमें विशेष है, वह ईश्वर है।'

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। (योग० १

'सर्वज्ञताका बीज (कारण) अर्थात् सम्यक् ज्ञान उस में सबसे बढ़कर है, उससे बढ़कर किसीमें नहीं है।'

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। (योग० १

'वह ईश्वर ब्रह्मादिकोंको भी शिक्षा देनेवाला और सब है; क्योंकि उसका कालके द्वारा अन्त नहीं होता।'

४. महाभारतमें आया है—

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः।

आदि शास्त्रोंमें तो ईश्वरका अस्तित्व पद-पदपर अङ्कित
ा गीता, रामायण, भागवतकी तो बात ही क्या है—
ईश्वरवादके प्रधान आदर्श ग्रन्थ हैं ही।

मस्त ऋषिगण, पितृगण, देवगण और अन्यान्य प्राणिवर्ग
त प्रकृतियाँ—यह सम्पूर्ण जड-चेतनात्मक जगत् नारायणसे
ा हुआ है।'

श्रीविष्णुपुराणमें आता है—

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो
व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः।
सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्वविच्च
समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः॥
(६।५।८६)

ईश्वर ही समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त और
रूप हैं; वे ही सबके स्वामी, सबके साक्षी और सब कुछ
े हैं तथा उन्हीं सर्वशक्तिमान्‌को परमेश्वर कहते हैं।'

गीता कहती है—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥
(१५।१७)

न दोनोंसे उत्तम तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश
बका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और
—इस प्रकार कहा गया है।'

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
(१८।६१)

अर्जुन! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको
परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण
आ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है।'

श्रीभागवतकार कहते हैं—

मादस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
ा ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
ोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
म्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥
(१।१।१)

ससे इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है,
य और व्यतिरेक—दोनों प्रकारसे सत्य है अर्थात् जिसकी
ी जगत्‌की सत्ता है, परंतु जगत्‌के न रहनेपर भी जिसका

सर्वज्ञ है तथा अखण्ड, अबाध ज्ञानसम्पन्न होनेके कारण
प्रकाश है; सर्गके आदिमें जिसने अपने संकल्पसे ह
हृदयमें उन वेदोंका ज्ञान प्रदान किया है, जिनके सम्ब
बड़े ऋषि-मुनि मोहित हो जाते हैं; जिसके सत्य स्वरू
त्रिगुणमयी सृष्टि उसकी सत्तासे सत्य है, परंतु भिन्न-भि
रूपोंकी दृष्टिसे असत्य भी है—जैसे तेजोमय सूर्यकी किरण
आदि मृत्तिकाके विकारोंमें जलका और जलमें स्थलका
जाया करती है; जिसके अपने ज्ञानमय प्रकाशसे माया—
आदि सदा ही निरस्त रहते हैं, उस परम सत्यस्वरूप प
हम ध्यान करते हैं।'

तथा—

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां सन्तत्य वक्त्रतः।
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः॥
(११।९

'जिस प्रकार मकड़ी अपने पेटमेंसे मुखद्वारा तन्तुओंको
कर उनको फैलाती है और उसके साथ विहार करके
निगल जाती है, उसी प्रकार सर्वेश्वर परमात्मा भा
रचना करके तथा उसमें विहार करके पुनः अपनेमें

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुर
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रम
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावत
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्

'जिनकी मायाके वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मा
और असुर हैं, जिनकी सत्तासे रस्सीमें सर्पके भ्रमकी
सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके श्री
भवसागरसे तरनेकी इच्छावालोंके लिये एकमात्र नौक
समस्त कारणोंसे परे (सब कारणोंके कारण और सब
राम कहानेवाले भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता

तथा अरण्यकाण्डमें श्रीलक्ष्मणजीके पूछनेपर
स्वयं कहते हैं—

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव

'जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं
वह जीव है; और जो कर्मानुसार बन्धन और मोक्ष दे
सबसे परे, मायाका प्रेरक और कल्याणमय है, वह ईश

जो ईश्वरको नहीं माननेवाले नास्तिक हैं, उन्हों
प्रकारके झूठे तर्क-वितर्क करके बहुत-से अनजान

र दिया है, जिससे वे बेचारे भोले-भाले लोग भ्रममें
श्वरके सम्बन्धमें भी अनेक प्रकारके शङ्का-समाधान
। इससे हमारी हिंदू-संस्कृतिका ह्रास होने लगा,
थानके पतनमें बहुत बड़ा कारण सिद्ध हुआ ।
माननेमें लाभ और न माननेमें अनेक हानियाँ
हैं ।

रको माननेवाला मनुष्य ईश्वरके भयसे पाप नहीं
ौर ईश्वरपर निर्भर हो जाता है, जिससे उसके
नेर्भयता, धीरता, वीरता, गम्भीरता आदि अनेक
जाते हैं । ईश्वरके चिन्तनसे अनायास ही सारे
राचार और पापोंका नाश होकर उसमें सारे सद्गुण,
आ जाते हैं । तथा परम शान्ति और परम आनन्दकी
र मरनेपर उत्तम-से-उत्तम गति मिलती है ।

रको न माननेवाले नास्तिकके हृदयमें दुर्गुण, दुराचार
ते हैं । उसे ईश्वरका तो भय रहता नहीं, फिर वह
करनेसे रुकेगा । उसे पापोंके फलस्वरूप दुःखोंकी
नेपर चिन्ता, शोक, भय प्राप्त होते हैं और मरनेपर
ड़ी दुर्गति होती है ।

से भी यह बात सिद्ध है । आप कहते हैं
हीं है' और मैं कहता हूँ 'ईश्वर है ।' थोड़ी देरके
न लीजिये, आपकी बात ही सत्य हो तो ऐसी
में यदि ईश्वर नहीं है और मैंने भूलसे ईश्वरको
ा तो इससे मुझे क्या हानि होगी। आपकी मान्यताके
वास्तवमें ईश्वर है ही नहीं, तो चाहे जितना ही उसकी
लिये प्रयत्न किया जाय, न वह आपको मिलेगा
। यह तो हो ही नहीं सकता कि मुझे ईश्वर न मिले और
मिल जाय; जब ईश्वर है ही नहीं, तब मिलेगा
मने जो भूलसे ईश्वरको मान लिया, उसके फलस्वरूप
दण्ड तो होना ही नहीं है । फलतः आप और हम
मान कक्षामें ही रहेंगे; परंतु थोड़ी देरके लिये
यदि हमारी मान्यता सत्य हो गयी, ईश्वरका वास्तवमें
माणित हो गया तो इसके फलस्वरूप यदि हमारे
ास्त्रानुसार साधन किया गया तो हमें तो ईश्वरकी
कर परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होगी और
न सबसे वञ्चित रहेंगे । इतना ही नहीं, इसके फलस्वरूप
घोर नरकोंकी प्राप्ति होगी और भारी दुःखोंका

अन्य युक्तियोंसे भी ईश्वरका होना सिद्ध है
ईश्वरके किसीका भी काम चलना सम्भव नहीं । आका
तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे आ
ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित कर रहे हैं । ये सभी
उत्पन्न हुए हैं और जिससे संचालित हो रहे हैं, वह
है; क्योंकि बिना किसी कारणके कोई कार्य नहीं हो
अतः इस जगत्का भी तो कोई कारण होना चाहि
सारा जगत् जिससे उत्पन्न हुआ है, वही सबका
निमित्तोपादान कारण* एकमात्र परमात्मा है ।
संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाला त
पुण्यके अनुसार फलदाता और सबको नियममें
यथायोग्य संचालन करनेवाला है, वही ईश्वर है ।
बड़े-बड़े यन्त्र और कारखाने हैं; किंतु बिना किसी
चेतन संचालकके उनका चलना सम्भव नहीं, बल्कि
उसके वे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ।

आपकी दृष्टिमें जो कुछ देखने-सुननेमें आता है,
जिससे संचालित है, वह ईश्वर है । वह है चेतन;
जो जड प्रकृति (नेचर) है, उसमें ज्ञान न होनेके क
न तो सबको यथायोग्य स्थानमें स्थापित ही कर सकती
न उसका संचालन ही कर सकती है । किंतु इस संसा
जो शक्ति है, उसका कार्य देखनेसे मालूम होता है
बहुत विलक्षण अतिशय ज्ञानमयी शक्ति है । जिस
संसारका संचालन नियमानुसार हो रहा है, उस
विलक्षण कुशलताको तो देखिये । ऐसे अत्यन्त
से-सूक्ष्म प्राणी होते हैं, जो सूक्ष्मता
कागजोंमें भी कभी-कभी लक्ष्यमें आते हैं । वह सफे
आदि अनेक रंगोंके होते हैं और पोस्तके दानेकी अ
सूक्ष्म होते हैं । उन्हें कोई 'पोस्तिया जानवर' भी क
उनके इतने सूक्ष्म शरीरमें भी सब यन्त्र होते हैं । चल
पैर और उड़नेके लिये पाँखें तो रहती ही
बुद्धि, भी होती है । इनके अलावा शरीरके भीतर

* जिस वस्तुसे जो चीज बनती है, वह उसका
कारण है और बनानेवाला निमित्तकारण—जैसे
उपादानकारण मिट्टी है और निमित्तकारण कुम्हार
संसारके उपादान और निमित्तकारण परमात्मा ही
मकड़ी जाला तानती है तो उस जालेका उपादानकारण भी



श्रीरामकी कांस्यमूर्ति

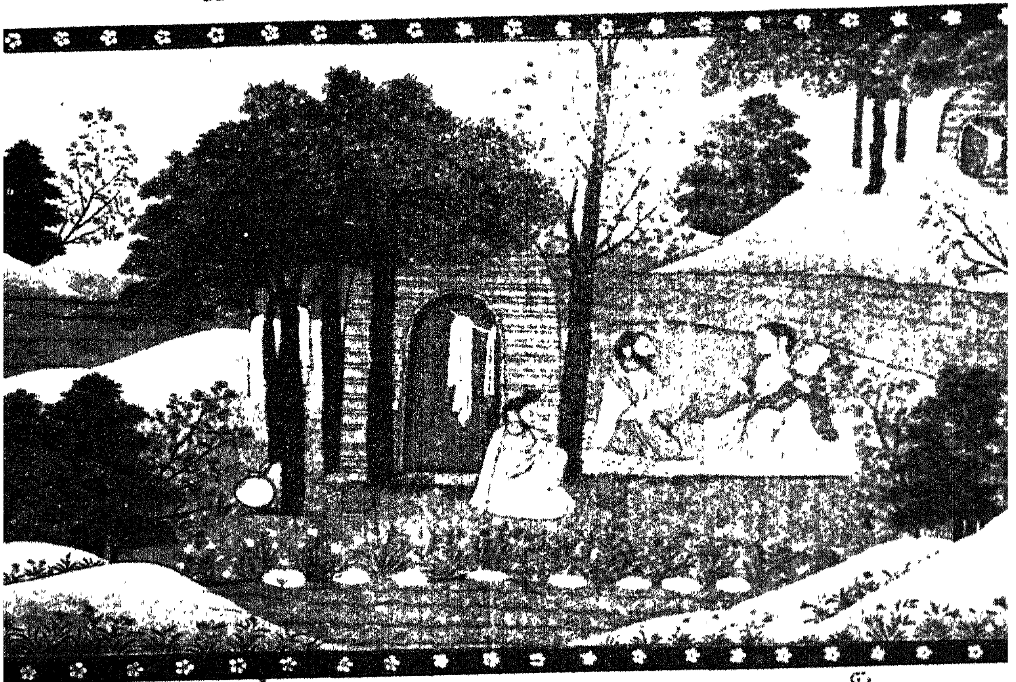
श्रीराम-लक्ष्मण-सीतासे भरत एवं माताओंका मिलन



(जम्मू) शैली १८ वीं शतीका मध्यभाग]

(पृष्ठ ७

वाल्मीकि-आश्रममें नारद



शैली १८ वीं शती]

(पृष्

[भारतीय पुरातत्त्व-विभागके

ी उसीके अंदर होते हैं। उनसे भी सूक्ष्म
ते हैं, जो देखनेमें भी नहीं आते। अब विचारिये,
र्माता कितना बुद्धिकुशल होना चाहिये। यह काम
ति (नेचर) से सम्भव नहीं।

्योंकी प्रकृति, बुद्धि, इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न होनेसे
ाचरण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। ऐसे उन विभिन्न
पाप-पुण्यरूप आचरणोंके अनुसार यथायोग्य सुख-
का भुगताना भी जड प्रकृतिका काम नहीं हो सकता।
सका फलदाता भी कोई बुद्धिका महान् सागर
होना चाहिये और वह है एकमात्र परमात्मा।

ये, संसारमें ऐसा कोई भी यन्त्र देखनेमें नहीं आता,
ाम बिना सँभालके चल सके। उदाहरणार्थ कपड़ेकी या
कल है; यदि उसका संचालक कोई चेतन पुरुष नहीं
न कपड़ा ही तैयार होगा और न गंजी ही; क्योंकि
पर संचालकके बिना उसे कौन जोड़ेगा। बल्कि यन्त्र
हो जायगा। बड़े-से-बड़ा यन्त्र रेलगाड़ी है। उसके
टरी आदिकी सार-सँभाल आदि नहीं होगी तो उसका
म्भव नहीं। किसी बुद्धिशाली चेतन संचालक,
बिना एक दिन भी काम नहीं चलेगा और सब
हो सकता है। इसी प्रकार यह सारा जगच्चक्र चल
दि इसका निर्माता, संयोजक, संचालक तथा सँभाल-
करनेवाला कोई बुद्धिशाली चेतन न हो तो इसकी
दशा होगी।

आप, कोई प्राणी अपनी सत्तामें सन्देह नहीं करते।
साथ ही हम चेतन हैं; किंतु ज्ञानके लिये इच्छुक
मको और अधिक ज्ञान मिले, इस प्रयत्नमें रहते
ी ज्ञानके साथ सुख चाहते हैं और किसी-न-
अपनेसे अधिक सुखी मानते हैं। इस प्रकार सत्ता,
सुख—सत्, चित्, आनन्दको हम मानते तो हैं
भी देखते हैं कि जगत्में ज्ञान और आनन्द कहीं
सब उसको पानेके ही प्रयत्नमें हैं। जिसे सभी
ना चाहते हैं, वह हो ही नहीं—यह कैसे होगा।
सत्ता, ज्ञान और आनन्द तीनों पूर्णरूपसे हैं, वही
ानन्द ईश्वर है। जगत्में तो अकेली सत्ता ही है।
र्थके परमाणुतकको तोड़ डाला गया, पर वहाँ तो
ा और सुख है नहीं; और सबसे छोटे प्राणी जो
भी कठिनतासे दीखते हैं, उनमें भी सत्ताके साथ
चाहते हैं; क्योंकि शत्रुसे डरकर भागते उन्हें भी दे
है। यह चेतना, ज्ञान और सुखकी इच्छा जब जडमें
तब कहीं माननी पड़ेगी। जहाँ वह है, वही परमात्मा
चेतन ही इस जडका संचालक है। वही सर्वेश्वर है

इससे यही निर्णय हुआ कि इसका उत्पादक,
संचालक, संयोजक, रक्षक—जो कोई है, वही चेतन
है। यह हिंदुओंकी अनुभवयुक्त मान्यता सदासे चली
है—इसीको हिंदू-संस्कृति कहते हैं।

अवतारवाद

भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्णब्रह्म
हैं, यह विश्वास हिंदू-जातिमें प्रायः सदासे ही चला आ
यह युक्तियुक्त और उचित ही है। निर्गुण-निर
सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सगुण-साकाररूपमें प्रक
हैं, जैसे आकाशमें परमाणुरूपसे स्थित जल ही बादल
आकर फिर जल और बर्फके रूपमें प्रकट होकर बरसने
है। सर्गके आदिमें सारे पदार्थ भी निराकारसे साकार बन

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे
(गीता ८

उस निराकाररूप ब्रह्माके सूक्ष्मशरीरसे ही सारी
व्यक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार वह सच्चिदा
परमात्मा स्वयं ही निराकाररूपसे साकार रूपको धारण
है। इसीका नाम अवतार लेना है।

तुलसीकृत रामायणमें अवतारवाद स्थान-स्थानपर
हुआ है। यहाँ संक्षेपसे कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है

बालकाण्डमें श्रीशिवजी पार्वतीसे कहते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभि
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति से
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हे

वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि जब देवता
ऋषियोंने रावणके उपद्रवोंसे दुःखित हो ब्रह्माजीसे
की, तब ब्रह्माजी उन्हें सान्त्वना देने लगे। उसी समय भ
श्रीविष्णुके प्रकट होनेका वर्णन इस प्रकार आया है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः

ी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु, ढ़े हुए सूर्यके समान गरुड़पर सवार हो, वहाँ आ उनके शरीरपर पीताम्बर, हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा ायुध एवं भुजाओंमें चमकीले स्वर्णके बाजूबंद रहे थे। सभी देवताओंने उनको प्रणाम किया।'

वान्ने देवताओंकी प्रार्थनापर दशरथजीके घरमें से अवतार लेना स्वीकार कर लिया—

ा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च॥
ामि मानुषे रूपे पालयन्पृथिवीमिमाम्॥

(वा० रा० बाल० १५। २९, ३०)

ता और ऋषियोंको भय देनेवाले उस क्रूर एवं उसका नाश करके मैं ग्यारह हजार वर्षोंतक पृथ्वीका ता हुआ मनुष्यलोकमें निवास करूँगा।'

ात्मरामायणमें कथा आती है—जब विश्वामित्रजी क्ष्मणको यज्ञरक्षार्थ ले जानेके लिये आये, उस समय के द्वारा सलाहके रूपमें पूछे जानेपर वशिष्ठजीने

; राजन् देवगुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः।
ो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः॥
भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा।
एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ॥

(अध्यात्म० बाल० ४। १२, १३)

न्! यह देवताओंकी गुह्य लीला सुनो, इसे किसी कट न होने देना चाहिये। ये राम मनुष्य नहीं हैं, नातन परमात्मा ही (अपनी मायासे) इस रूपमें ए हैं। हे अनघ! पूर्वकालमें पृथ्वीका भार उतारनेके ाजीने भगवान्से प्रार्थना की थी, उसे पूर्ण करनेके परमेश्वरने तुम्हारे यहाँ कौसल्याके गर्भसे जन्म लिया है।'

कूटमें माता कैकेयीने श्रीरामसे क्षमा-प्रार्थना कहा है—

साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः।
ामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत्॥

(अध्यात्म० अयोध्या० ९। ५७)

प साक्षात् विष्णुभगवान्, अव्यक्त परमात्मा और पुरुष हैं। अपने लीलामय मनुष्यरूपसे आप समस्त

हुए श्रीरामने कहा कि मैं तो अपनेको दशरथपु समझता हूँ। वास्तवमें मैं जो हूँ, जैसा हूँ, आप ही ब इसपर ब्रह्माजी श्रीरामका महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभु

....

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापति

....

वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्

(वा० रा० युद्ध० ११९। १३, २

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीना हैं। सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप भगवान कृष्ण एवं प्रजापति हैं। आपने रावणवधके लिये शरीर धारण किया है।'

भगवान्के परमधाम पधारनेके प्रकरणमें यह स्पष्ट हो जाती है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्व उस समय ब्रह्माजीके कथनानुसार भगवान्ने अपने साथ इस मानवविग्रहसे ही उस वैष्णव तेजमें प्रवेश

विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुज

(वा० रा० उत्तर० ११०

इसी प्रकार गीता, भागवत आदि ग्रन्थ अवतारवादका उल्लेख स्थान-स्थानपर मिलता है

---

१. गीतामें कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(४।

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अध अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। हे भारत! जब-ज हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अप रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म क विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थाप लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।'

ायः हिंदुओंके हृदयमें स्वाभाविक ही अङ्कित हैं।
दू-संस्कृति !

परलोकवाद

त-से आदमी यह शङ्का करते हैं कि 'मरनेके बाद
हता है या नहीं, किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको परलोकमें
या नहीं, मृत व्यक्तिके लिये दिया हुआ पदार्थ
ता है या नहीं और जो मृत व्यक्ति मुक्त हो
उसके प्रति दिया हुआ पदार्थ किसको मिलता
न प्रश्नोंका समाधान यह है कि मरनेपर आत्मा
रहता है तथा किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको
मिलता है। वह इस लोकमें भी मिल जाता
शेष बचा हुआ परलोकमें मिलता है। मृत व्यक्तिके
कुछ दिया जाता है, वह सब उसे प्राप्त होता है।
मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति
ा कर्ताके कोषमें जमा होता है।

) कठोपनिषद्में यमराजके प्रति नचिकेताने भी यही
या था कि मरनेपर आत्मा रहता है या नहीं।
यही उत्तर दिया कि अवश्य रहता है*। गीतामें
ान् कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिप
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्
(२

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं
तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे।
ऐसा ही है कि इसके आगे हम सब नहीं रहेंगे।'

वाल्मीकीय रामायणमें युद्धके बाद दशरथजीन
तथा श्रीराम और लक्ष्मण आदिसे वार्ताला
परलोकका जीता-जागता प्रमाण है। इसके लिये व
रामायण, युद्धकाण्ड, १२१ वाँ सर्ग देखिये।

अन्यान्य शास्त्रोंमें भी जगह-जगह इसके अने
प्राप्त होते हैं। हिंदू-जातिके हृदयमें यह संस्कार स
ही अङ्कित है। यह युक्तिसंगत भी है। जब मनुष्य
है, तब उसके जाति, आयु, भोग और स्वभाव f
होते हैं। तथा मनुष्यका जन्मते ही रोना, हँसना
होना, सोना, माताके स्तनोंसे स्वयं ही दूधको
करना आदि उसके पूर्वजन्मके अभ्यासके द्योतक
पूर्वजन्मको सिद्ध करते हैं। इसलिये आत्मा नि
शरीरके नाश होनेपर भी उसका नाश नहीं होता।†

तयोर्वा पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात्।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः॥
तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम्।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति॥
(१०।३।४१—४३)

सारमें शील, उदारता आदि सद्गुणोंमें अपने सदृश
न देखकर मैं स्वयं ही आप दोनोंका पुत्र होकर
श्निगर्भ' के नामसे विख्यात हुआ था। उसके बाद
दोनों कश्यप और अदितिके रूपमें प्रकट हुए, तब मैं
ोकर 'उपेन्द्र' के नामसे विख्यात हुआ; उस समय मेरा
ोटा होनेके कारण मेरा दूसरा नाम 'वामन' हुआ था।
रे कल्पमें अब मैं ही उसी शरीरसे आप दोनोंके यहाँ
न्न हुआ हूँ। हे सति! मैंने यह आपसे सत्य कहा है।"

साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥
(कठ० १।२।६)

मृत्युके वशमें बार-बार पड़ता है अर्थात् पुनः-पुनः ज
प्राप्त होता है।'

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव क
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने श
(कठ० १। र

'नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा न तो जन्मता है और
ही है। यह न तो स्वयं किसीसे हुआ है, न इससे
हुआ है। अर्थात् यह न तो किसीका कार्य है और
ही है। यह अजन्मा, नित्य, सदा एकरस रहनेवाला अ
है अर्थात् क्षय और वृद्धिसे रहित है। शरीरके नाश
इसका नाश नहीं होता।'

† गीतामें भी कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भ
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने श
(२

'यह आत्मा न तो किसी कालमें जन्मता है और
ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला है

:) श्रीरामचरितमानसमें दशरथजीने कहा है—

असुभ करम अनुहारी । ईस देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करम पाव-फल सोई । निगम नीति अस कह सबु कोई ॥

वाल्मीकीय रामायणमें कहा है—

ह्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ।
: पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥
कृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ।

(युद्ध० १११ । २५, २६)

मिन् ! इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि समय आनेपर उसके पाप-कर्मका फल अवश्य मिलता है । शुभ कर्म को उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और पापीको दुःख भोगना पड़ता है ।'

य जैसा कर्म करता है, उसे उसका वैसा ही फल है—यह बात गीता आदि शास्त्रोंमें भलीभाँति गयी है ।* यह युक्तियुक्त भी है । मनुष्य जैसे ता है, उसके अनुसार ही उसके हृदयमें संस्कार फिर उनके अनुसार ही उसके अन्तःकरणकी ती है । वृत्तिके अनुसार ही अन्तकालमें स्मृति और स्मृतिके अनुसार ही भावी जन्म होता है । इस दके कारण ही मनुष्यके जाति, आयु, भोग और भिन्नता होती है । अर्थात् सब प्राणियोंमें जो बुद्धि, और भोगकी भिन्नता देखी जाती है, इसका मूल र्म ही है । अतः कर्मफल प्राप्त होनेकी बात बिल्कुल न है और प्रत्यक्ष देखनेमें भी आती है ।

(ग) श्राद्ध-तर्पणका उल्लेख रामायणमें स्थ पर आया है । श्रीरामचरितमानसमें महाराज मृत्यु होनेपर भरतके द्वारा उनकी यथोचित ३ करनेका उल्लेख मिलता है । यथा—

नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा । परम बिचित्र बिमानु
चंदन अगर भार बहु आए । अमित अनेक सुगंध
सरजु तीर रचि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान
एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही । बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि
सोधि सुमृति सब बेद पुराना । कीन्ह भरत दसगात
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा । तहँ तस सहस भाँति सबु
भए बिसुद्ध दिए सब दाना । धेनु बाजि गज बाहन

श्रीरामचन्द्रजी महाराजने भी पिताकी मृत्युक सुनते ही मन्दाकिनीके तीरपर जाकर तर्पण कि स्वयं जैसा भोजन किया करते थे, उसीके पिण्ड दशरथजीके निमित्त दिये—

ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषा
राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षि
पिण्डान्निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुत
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान् मधुसम्प्लुता
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिता

(अध्यात्म० अयोध्या० ९ । १

"फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्ना पवित्र हुए । वहाँ सबने जलकाङ्क्षी महाराज जलाञ्जलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजे दिये । 'जो हमारा अन्न है, वही हमारे पितरं होगा—यही स्मृतिकी आज्ञा है' यों कह उन्होंने इंगुद पीठीके पिण्ड बना उनपर मधु डालकर उन्हें प्रदान कि

रामायणके सिवा श्राद्धका प्रकरण गीता, आदि सभी शास्त्रोंमें पाया जाता है ।

---

* गीता कहती है—

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥

(१४ । १६)

'कर्मका तो सात्त्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि फल कहा है; राजस कर्मका फल दुःख एवं तामस का अज्ञान कहा है ।'

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥

(१८ । १२)

फलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका तो

१. गीतामें कहा है—

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः

(१

'वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले ज ही होता है । लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले अ और तर्पणसे वञ्चित इनके पितरलोग भी अधोगतिको प्राप्त हो

२. मनुजी कहते हैं—

: बात युक्तिसंगत भी है। जो आदमी जिस नामसे बैंकमें रुपये जमा कराता है, उसी व्यक्तिके ये जमा हो जाते हैं और जिसके नामसे जमा होते हैं, मिलते हैं, दूसरेको नहीं। उन रुपयोंके बदलेमें ावश्यकता होती है, वही चीज उतनी कीमतकी ाती है। इसी प्रकार पितरोंके नामसे किया हुआ तर्पण, ब्राह्मणभोजन आदि कर्मका जितना मूल्य जाता है, उतना ही फल उस प्राणीको वह जिस होता है, वहीं आवश्यकतानुसार प्राप्त हो जाता है। यदि वह प्राणी गाय है तो उसे चारेके रूपमें, है तो अमृतके रूपमें, मनुष्य है तो अन्नके रूपमें दर आदि है तो फल आदिके रूपमें उतने ही वस्तु मिल जाती है।

दे कहें कि जीवित व्यक्तिके लिये भी अगर कोई यज्ञ, नुष्ठान, व्रत, उपवास आदि कर्म करता है तो क्या भी मिलता है, तो इसका उत्तर यह है कि अवश्य उसे है। नहीं तो फिर यजमानके लिये जो ब्राह्मण यज्ञ, नुष्ठान, पूजा, पाठ आदि करता है, वह किसको ? न्यायतः वह यजमानको ही मिलेगा, कर्म करनेवाले ो नहीं।

द वह प्राणी मुक्त हो गया है तो उसके निमित्त हुआ कर्म कर्ताको ही मिलता है। जैसे किसी ो रजिस्ट्री चिट्ठी या बीमा भेजी जाती है और भेजी जाय, वह आदमी मर गया हो तो फिर वह भेजनेवालेको ही वापस मिल जाती है, उसी प्रकार पमें भी समझना चाहिये।

सब संस्कार हिंदुओंके रग-रगमें भरे हुए हैं। लेकर प्रायः सभी हिंदू सदासे श्राद्ध-तर्पण आदि रहे हैं। यह है हिंदू-संस्कृति !

ईश्वरोपासन

ू-संस्कृतिमें ईश्वरोपासना सदासे ही प्रधानरूपमें ा रही है। हिंदुओंकी तो बात ही क्या, इसको और मुसलमान भी मानते हैं। कोई ईश्वरके पकी, कोई निराकारकी और कोई दोनोंकी उपासना । यह भेद उचित ही है। हिंदुओंके हृदयमें तो नाके भाव सदासे ही अङ्कित हैं। थोड़ी-सी विपत्ति भी वे संकटनिवारणार्थ ईश्वरको ही पुकारते हैं और आश्रय ग्रहण करते हैं।

ष्य श्रद्धावान् होकर जो-जो पदार्थ अच्छी तरह विधिपूर्वक

ईश्वरकी उपासनाका विषय श्रुति-स्मृतियोंमें

१. श्रुति कहती है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते
(कठ० २।

'यह अक्षर (ओंकार) ही तो ब्रह्म है और यह परब्रह्म है; इसी अक्षरको जानकर मनुष्य जो कुछ उसको वही मिल जाता है। यही अत्युत्तम आलम्ब सबका अन्तिम आश्रय है; इस आलम्बनको भलीभाँ साधक ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।'

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृ
ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रह
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तक
(श्वेताश्वतर० १।१

'प्रकृति तो विनाशशील है, इसको भोगनेवाला अमृतस्वरूप अविनाशी है; इन विनाशशील जड़त अविनाशी चेतन आत्मा—दोनोंको एक ईश्वर अपने शासन है। इस प्रकार जानकर उस परमेश्वरका निरन्तर ध्यान मनको उसमें लगाये रहनेसे तथा तन्मय हो जानेसे अन् उसीको प्राप्त हो जाता है; फिर समस्त माया जाती है। तथा उस परम देव परमेश्वरका निरन्तर ध्या उस प्रकाशमय परमात्माको जान लेनेपर समस्त बन्धन हो जाता है; क्योंकि क्लेशोंका नाश हो जानेके कारण ज सर्वथा अभाव हो जाता है। अतः वह शरीरका नाश होने लोक (स्वर्ग) तकके समस्त ऐश्वर्यका त्याग करके सर्व एवं पूर्णकाम हो जाता है।'

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्र
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीरा
(मुण्डक० ३।

'वह निष्कामभाववाला पुरुष इस परम विशुद्ध ब्रह्मधामरूप परमेश्वरको जान लेता है, जिसमें सम्पू स्थित हुआ प्रतीत होता है; जो भी कोई निष्काम परमपुरुषकी उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान् रजोवी जगत्को अतिक्रमण कर जाते हैं।'

२. मनुजी कहते हैं—

अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः
विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।

ौर भी सभी शास्त्रोंमें[1] इसका उल्लेख अनेक जगह । पूर्वकालमें जितने ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा कोटिके पुरुष हुए हैं, उन्होंने हमारे सामने का अत्युत्तम उदाहरण और आदर्श रक्खा है, मारे लिये अनुकरणीय है ।
[2]हास, पुराणोंमें[3] तो यह विषय कूट-कूटकर भरा

नाशी तो उस अक्षर—ओंकारको जानना चाहिये, जो था प्रजापतिका स्वरूप है । तथा (दर्शपौर्णमासादि) जपयज्ञ दसगुना श्रेष्ठ है, उपांशुजप (जिसे दूसरे न , ऐसा होठोंसे किया जानेवाला जप) सौगुना श्रेष्ठ है ासिक जप तो हजारगुना श्रेष्ठ है । कर्मयज्ञ मास)-सहित जो चार पाकयज्ञ (बलिवैश्वदेव, अग्निहोत्र, और अतिथिपूजन) हैं, वे सब जपयज्ञकी सोलहवीं कला- न नहीं हैं ।'

हर्षि पतञ्जलिजीने बतलाया है—

ईश्वरप्रणिधानाद् वा । (योग० १ । २३)

की भक्तिसे भी मन समाधिस्थ हो जाता है ।'

तस्य वाचकः प्रणवः । (योग० १ । २७)

परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ओंकार है ।'

तज्जपस्तदर्थभावनम् । (योग० १ । २८)

परमात्माके नामका जप और उसके अर्थकी भावना रूपका चिन्तन करना चाहिये ।'

क्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च । (योग० १ । २९)

र्युक्त साधनसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी होती है ।'

महाभारतमें बतलाया है—

ेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥
नादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
काध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
(अनुशासन० १४९ । ५,६)

मनुष्य उस अविनाशी परम पुरुषकी सदा भक्तिपूर्वक (ध्यान करता है तथा उसीका स्तवन और उसीको करता है, वह साधक उस अनादि, अनन्त, सर्वव्यापी, ईश्वर, अखिलाधिपति परमात्माकी नित्य स्तुति करता र्ण दुःखोंसे पार हो जाता है ।' एवं—

श्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
जन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥
(अनुशासन० १४९ । १४२)

जगत्की उत्पत्ति और विनाश करनेवाले और समस्त एकमात्र अधीश्वर उस अजन्मा कमललोचन परमदेवका

है । महर्षि वेदव्यासजीने स्त्री और शूद्रोंका वेदोंमें न होनेके कारण उनके लिये ही इतिहास-पुराणोंव की । अतः अठारह पुराणोंमें ऐसा कोई भी पुरा जिसमें ईश्वरोपासनाका विषय न हो ।

पुराणोंमें श्रीमद्भागवत[1] तो भक्तिप्रधान ग्रन्थ किन्तु गीतामें[2] भी उपासनाका विषय विशदरूपसे व

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथापरम्
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम्
(१ । ११

'जो पर—निर्गुण ब्रह्म और अपर—सगुण ब्रह्म परमधाम है; ऐसे उस हरिकी आराधना करके मनुष्य अ मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है ।'

तथा महात्मा और्वने भी बतलाया है—

भौमं मनोरथं स्वर्गं स्वर्गे रम्यं च यत्पदम्
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम्
(३ ।

'भगवान् विष्णुकी आराधना करनेपर मनुष्य भूमण्ड समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मपद और परम पद भी प्राप्त कर लेता है ।'

१—भागवतकार कहते हैं—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
(२ । ३

'किसी भी उदारबुद्धिवाले मनुष्यको—चाहे वह प्रकारकी कामनावाला हो, चाहे निष्काम हो और चाहे कामनावाला हो—तीव्र भक्तियोगके द्वारा परम पुरुष आदरपूर्वक भजन-स्मरण करना चाहिये ।' तथा—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥
(३ । ३२

'भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके किया हुआ साधन वैराग्य और उस ज्ञानको उत्पन्न कर देता है जो ब्रि साक्षात्कार करानेवाला है ।' एवं—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥
(६ । २

'उत्तम कीर्तिवाले भगवान् वासुदेवके नामका कीर्तन— ज्ञानपूर्वक किया गया हो और चाहे अनजानमें हो किया ग मनुष्यके पापोंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे

तक कि प्रायः सभी अध्यायोंमें इसका उल्लेख
है*। एवं रामायणोंमें अध्यात्मरामायण और तुलसीकृत
मानस तो उपासनाप्रधान ग्रन्थ हैं ही, वाल्मीकीय
में भी उपासनाका अनेक स्थलोंपर वर्णन है ।
दासजीने तो भक्तिका ऐसा प्रवाह बहा दिया कि
नेपर मनुष्यका हृदय भक्ति-भावोंसे सराबोर हो
।

-वन्दना करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं—

मि जपत अनयासा । भगत होहिं मुद मंगल बासा ॥
वनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥
ामिलु गजु गनिकाऊ । भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ॥
तीनि काल तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
न संत मत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥

वान्‌ने स्वयं कहा है—

ष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥

ा और भी अनेक स्थलोंपर उपासनाका महत्त्व और
र्णित है । यथा—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥
(८ । २२)

पार्थ ! जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस
न्दघन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन
रम पुरुष तो अनन्यभक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है ।'

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥
(१२ । ३–४)

ा जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भलीप्रकार वशमें
न-बुद्धिसे परे सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप और सदा एक-
वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन
निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण
हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही
हैं ।'

देखिये गीता अ० २ । ६१; ३ । ३०; ६ । ११;
; ६ । ४७; ७ । १४; ८ । ८; ९ । ३४; १० । १०;

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास

भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अबिद्या
राम भगति मनि उर बस जाकें । दुख लवलेस न सपनेहुँ

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते

अध्यात्मरामायणमें सुतीक्ष्ण ऋषिसे भगवान् कह

मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम्
(अरण्य० २ । ३१

'इस लोकमें जो मेरे मन्त्रके उपासक हैं, जो मेरे श
हैं, जो किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखते और मे
सिवा कोई अन्य गति नहीं; ऐसे भक्तोंको मैं
दर्शन देता हूँ ।'

पञ्चवटीमें लक्ष्मणके पूछनेपर भगवान्‌ने अति
ज्ञान-विज्ञानका वर्णन करते हुए अन्तमें कहा है—

अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च
वैराग्यं च भवेच्छीघ्रं ततो मुक्तिमवाप्नुयात्
(अरण्य० ४

'इसलिये मेरी भक्तिसे युक्त पुरुषको शीघ्र
और विज्ञान तथा वैराग्य भी प्राप्त हो जाता है, जि
मुक्तिको पा लेता है ।'

भगवान्‌ने शबरीके प्रति कहा है —

भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि
(अरण्य० १०

'भक्तिके उत्पन्न होनेमात्रसे ही तत्काल मेरे
अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो
उसकी उसी जन्ममें निःसन्देह मुक्ति हो जाती है ।'

श्रीहनुमान्‌जीने रावणके प्रति कहा है—

* काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं—'मैं आपसे
निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ—मेरे वचन अन्यथा
नहीं हैं—कि जो मनुष्य श्रीहरिका भजन करते हैं, वे अत

ष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धिय-

स्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् ।

शुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः

सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥

ो भजस्वाद्यहरिं रमापतिं

रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् ।

सृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां

भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ॥

(सुन्दर० ४ । २२-२३)

गवान् विष्णुकी भक्ति बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध ी है, उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है । नसे विशुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और इस म्यक् ज्ञान हो जानेसे मनुष्य परमपद प्राप्त करता है । तुम प्रकृतिसे परे, पुराणपुरुष, सर्वव्यापक, आदि- , लक्ष्मीपति श्रीहरि भगवान्‌का भजन करो । अपने स्थित शत्रुभावरूप मूर्खताको छोड़ दो और शरणागत- ीरामका भजन करो ।'

ल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने के अपनी शरणमें आनेपर जो वचन कहे हैं, वे सदा खने योग्य हैं । वे कहते हैं—

ृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

ायं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

(युद्ध० १८ । ३३)

रा यह व्रत है कि जो एक बार शरणमें आकर 'मैं हूँ' यों कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ ।''

। रावण-वधके अनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्‌की स्तुति : कहा है—

त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।

नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥

(युद्ध० ११७ । ३१)

सदा प्रकाशमान पुराण पुरुषोत्तम आपकी भक्ति हैं, वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ लेते हैं तथा आपको भी पा जाते हैं ।'

ामचन्द्रजी तथा श्रीभरतजीका चरित्र तो कहींसे भी

सुतीक्ष्ण और हनुमान् आदिके चरित्र भी श्रद्धा-भ हुए हैं । उन चरित्रोंको पढ़कर किसका हृदय द्रवीभ होगा । भक्त निषादराज गुह, केवट, शबरी भीलनी ईश्वरकी भक्तिके प्रभावसे परमपदको प्राप्त हो गये । तन-मनसे तत्पर होकर भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये

पूर्वकालमें ऋषिलोग सन्ध्या-गायत्री, अग्निहोत्र, वेद पूजा-पाठ आदि ईश्वरोपासनाके आह्निक कृत्य करके कामभें प्रवृत्त होते थे । त्रेतायुगमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने भी स्वयं सन्ध्योपासनादि कर्म नित्य करके इसका उपस्थित किया । द्वापरयुगमें तो महाभारत युद्धके स लोग युद्ध छोड़कर सन्ध्योपासन आदि किया करते थे उल्लेख मिलता है ।* किन्तु दुःखकी बात है कि इस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंमें नित्य अग्निहोत्रका तो कि जगह ही दर्शन होता है । सन्ध्या, गायत्री, वेदाध्य ब्राह्मणजातिमें तो कुछ देखनेमें आता है; परन्तु प्राचीन तो सन्ध्योपासनरहित ब्राह्मण जाति-बहिष्कृत कर दिय था । यह थी हिंदू-संस्कृति ! आज वे भाव लुप्तप्राय हो अतएव हमें यथाधिकार नित्य सन्ध्या, गायत्री, अ स्वाध्याय, पूजा-पाठ, भजन-ध्यान आदि ईश्वरोपासना मनको लगानेका प्रयत्न करना चाहिये ! उपासनाके लिये काल और सायंकाल बहुत ही उत्तम और विशेष उप ये समय स्वाभाविक ही सूर्यतापसे रहित होनेके कारण लिये रमणीय और शान्तिमय होते हैं । स्नानके अनन्त भोजनसे पूर्व वृत्तियाँ शान्त रहती हैं, विक्षेप और आल नहीं आते; अतः उस समय चित्त अनायास ही परमात्मा सकता है । फिर श्रद्धा-भक्ति और विवेक-वैराग्यपूर्वक करनेपर परमेश्वरकी उपासनामें चित्त स्थिर हो जाय, इ आश्चर्य ही क्या है ।

अर्वाचीन कालमें श्रीतुलसीदासजी, कबीरदासजी, स जी, तुकारामजी, समर्थरामदासजी, श्रीगौराङ्गमहा

---

* महाभारतमें आया है—

ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः ।

दिवाकरस्याभिमुखं जपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ।

(द्रोण० १८६

'उस समय कौरव और पाण्डव—दोनों सेनाओंके सभी

ामकृष्णजी आदि अनेक संत हो गये हैं। उन्होंने तो रोपासनाका बहुत ही सुन्दर आदर्श स्थापित करके से उसका प्रचार किया है।

ुनिक कालमें महात्मा गांधीजी भी ईश्वरोपासनाके । वे कहते थे कि मेरे तो राम-नामका आधार है और रे कार्य सिद्ध होते हैं; संसारमें ऐसा कोई काम नहीं, मसे सिद्ध न हो सके। नामकी महिमा और प्रार्थनाके नके बहुत-से लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

उद्धरण नीचे लिखे जा रहे हैं—

सके चित्तमें तरङ्ग उठते ही रहते हैं, वह सत्यके दर्शन सकता है। चित्तमें तरङ्गका उठना समुद्रके तूफान- तूफानमें जो सुकानी सुकानपर काबू रख सकता है, मत रहता है। ऐसे ही चित्तकी अशान्तिमें जो ा आश्रय लेता है, वह जीत जाता है।'

—(३० । ११ । ४४)

कारी विचारसे बचनेका एक अमोघ उपाय रामनाम कण्ठसे ही नहीं, किन्तु हृदयसे निकालना चाहिये।'

—(२८ । १२ । ४४)

ाधि अनेक हैं, वैद्य अनेक हैं, उपचार भी अनेक र व्याधिको एक ही देखें और उसको मिटानेहारा राम ही हैं, ऐसा समझें तो बहुत-सी झंझटोंसे हम ।'

—(२९ । १२ । ४४)

श्चर्य है! वैद्य मरते हैं, डाक्टर मरते हैं। उनके पीछे ते हैं। लेकिन राम जो मरता नहीं है; हमेशा जिन्दा और अचूक वैद्य है, उसे हम भूल जाते हैं।'

—(३० । १२ । ४४)

ुष्य जानता है कि जब वह मरनेके नजदीक पहुँचता है, श्वरके कोई सहारा नहीं है; तो भी रामनाम लेते ाहट होती है। ऐसा क्यों!' —(१२ । ३ । ४५)

पर्युक्त सभी उद्धरण 'बापूके आशीर्वाद (रोजके 'से उद्धृत किये गये हैं।) महात्माजीके इस सम्बन्धमें उद्गार पढ़िये —

मकी महिमाके बारेमें तुलसीदासने कुछ भी कहनेको बाकी ा है। द्वादशाक्षर-मन्त्र, अष्टाक्षर इत्यादि सब इस मोह- ँसे हाए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद हैं—इसमें जरा भी

जो शान्तिकी खोजमें है, उसको तो अवश्य रामनाम प बन सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे हैं—उसका अ कि उसके नाम अनन्त हैं, गुण अनन्त हैं। इसी कार नामातीत और गुणातीत भी है। परन्तु देहधारी नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मू निरक्षर भी रामनामरूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले है। वस्तुतः 'राम उच्चारणमें एकाक्षर ही है और ॐक राममें कोई फरक नहीं है। परन्तु नाम-महिमा बु सिद्ध नहीं हो सकती। श्रद्धासे अनुभवसाध्य है।'

(कल्याण—भगव

'जो शक्ति रामनाममें मानी गयी है, उसके बा कोई शक नहीं है। हर एक आदमी इच्छामात्रसे ही रा अपने हृदयमें अङ्कित नहीं कर सकेगा। उसमें प आवश्यकता है, धीरजकी भी है। पारसमणिको हासिल लिये धीरज क्यों न हो। नाम तो उससे भी अधिक है

—(हरिजनसेवक १७ फरवरी १

'मैंने तो बचपनमें ही रामनामके जरिये ईश्वर है। लेकिन मैं जानता हूँ कि ईश्वरको ओम्‌के नाममें संस्कृत, प्राकृतसे लेकर इस देशकी या दूसरे देशकी भाषाके नाममें उसको जपो—परिणाम एक ही होता है

—(हरिजनसेवक २४ मार्च १

'सब रोगोंकी रामबाण दवाके रूपमें मैं जिस राम सुझाता हूँ, वह तो खुद ईश्वर ही है, जिसके नामका उ भक्तोंने शुद्धि और शान्ति पायी है; और मेरा यह दा रामनाम सभी बीमारियोंकी—फिर वे तनकी हों, या म या रूहानी हों—एक ही अचूक दवा है। इसमें शक डाक्टरों या वैद्योंसे शरीरकी बीमारियोंका इलाज ब सकता है। लेकिन रामनाम तो आदमीको खुद ही अ या डाक्टर बना देता है, और उसे अपनेको नीरोग संजीवनी हासिल करा देता है।'

—(हरिजनसेवक २ जून

'जीवनकी अलग-अलग हालतोंमें और आखिरी राष्ट्रकी आजादी और इज्जतकी रक्षाके लिये अपने-आ देनेकी जो भव्य और वीरतापूर्ण कला हमें सीखनी लिये प्रार्थना पहला और आखिरी सबक है।

'प्रार्थनाके लिये ईश्वरमें सजीव श्रद्धाकी जरूरत

स्य यह है कि वह और उसका कानून एक ही हैं ।'
—(हरिजनसेवक १४ अप्रैल १९४६)

वान् अपने ढंगसे हमारी प्रार्थना सुनता है। इन्सानोंके वान्का ढंग अलग होता है। इसलिये कोई उसे ं सकता। प्रार्थनाके लिये श्रद्धाका होना जरूरी है। र्थना बेकार नहीं जाती। प्रार्थना भी दूसरे कामोंकी काम ही है। हम देख सकें या न देख सकें, उसका मिलता ही है और नामधारी कर्मके फलके बनिस्बत जानेवाली प्रार्थनाका फल बहुत ज्यादा शक्ति रखता है।'
—(हरिजनसेवक २९ जून १९४७)

त्माजी प्रातः-सायं नित्य नियमित ईश्वरकी प्रार्थना इससे सिद्ध होता है कि वे ईश्वरके भक्त और आस्तिक की बात है कि आज हमलोग उनके कथनपर ख्याल रहे हैं। हमें चाहिये कि हम उनके कथनानुसार श्वास करके ईश्वर-प्रार्थना और रामनामके जपमें जायँ।

प्रकार उपासनाकी परम्परा अनन्त कालसे चली आ अब भी हिंदुओंके हृदयोंमें यह भाव स्वाभाविक-कृत है। यह शास्त्रसंगत तो है ही, युक्तिसंगत भी है। यकी जैसी श्रद्धा यानी जैसा भाव होता है, वही उसका । उसीके अनुसार उसकी चेष्टा होती है। चेष्टाके ो उसके हृदयमें संस्कार जमते हैं तथा संस्कारोंके ो उसके अन्तःकरणकी वृत्ति और स्वभाव बनता है, ाके स्वभावके अनुसार ही उसकी श्रद्धा तथा श्रद्धाके ो उसकी स्थिति और स्वरूप होता है। एवं उसके ी पुनः उसके आचरण होने लगते हैं। ये आचरण त हैं। हिंदुओंमें अनन्त जन्मोंके प्रवाहसे जो संस्कृति रही है, उसके प्रवाहको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये दिश और महात्माओंके चरित्र ही प्रधानतया आदरणीय रणीय हैं। गम्भीरतापूर्वक विचार करनेपर यह अनुभव क मनुष्य जैसे-जैसे आचरण करता है, उसके अनुसार हृदयमें संस्कार जमते हैं और तदनुसार ही उसके ाका स्वभाव बन जाता है। जैसे एक आदमी कसाई-करता है तो उसके हृदयमें मारकाटके संस्कार इतने ढमूल हो जाते हैं कि उसे स्वप्नमें भी वैसे ही दृश्य देने लगते हैं और उसका हृदय कठोर हो जाता है। र, एक परोपकारी परुष हर समय जीवोंके हितके

अहित नहीं होता। उस दयालुसे कसाईका काम औ दयालुका काम होना असम्भव-सा है। यह बात और प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार हिंदुओंके हृदयमें स्वा ईश्वरमें आस्तिक भाव—श्रद्धा-प्रेम है। यह हिंदुओंके है। इस ईश्वरोपासनाके प्रचारमें ही सब सफलताएँ अ परम हित सन्निहित है। इसलिये इसका हमें खूब प्र चाहिये।

बड़ोंका आदर-सत्कार

प्राचीन धर्मग्रन्थोंको देखनेपर मालूम होता है पिता आदि गुरुजनोंका आज्ञापालन, वन्दन और करना—यह भी हिंदू-संस्कृतिका एक प्रधान अ इसका प्रसङ्ग श्रुति[1], स्मृति[2], गीता[3], रामायण, इतिहा

१. श्रुति कहती है—

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवे अतिथिदेवो भव। (तैत्तिरीय १ । १

'माताको देव (ईश्वर) माननेवाला हो । पिता माननेवाला हो । आचार्यको ईश्वर माननेवाला हो । ईश्वर माननेवाला हो ।'

२. मनुजी कहते हैं—

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥
(मनु० २ ।

'पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि, गुरु अग्नि—ऐसा कहा है। और वह अग्नित्रय अत्यन्त श्रेष्ठ

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥
(मनु० २ ।

'वे ही तीनों लोक, वे ही तीनों आश्रम, वे ही और वे ही तीनों अग्नि कहे गये हैं।'

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥
(मनु० २ ।

'जिसने इन तीनोंका आदर किया, उसने सब धर्मोंक किया और जिसने इनका आदर नहीं किया, उसकी सब निष्फल हो जाती हैं।'

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥
(मनु० २ ।

'इन तीनोंकी सेवासे पुरुषका सब कर्तव्य कर्म पूर्ण ह

थोंमें कूट-कूटकर भरा है । उन स्थलोंको पढ़नेसे ़ोने लगता है, हृदय प्रफुल्लित हो जाता है । श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत, श्रीशत्रुघ्न आदि तो इसके ादर्श माने गये हैं । इस विषयमें उनके भाव बहुत ण, उच्चकोटिके और स्फूर्तिदायक हैं ।

ात्मरामायणमें वन जाते समय श्रीराम माता कैकेयीसे —

र्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम् ॥
ां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम् ।

(अयोध्या० ३ । ५९, ६०)

ताजीके लिये मैं जीवन दे सकता हूँ, भयङ्कर विष पी ूँ तथा सीता, कौसल्या और राज्यको भी छोड़ ।'

। प्रकार भरतका भी सेवा-पूजाका भाव बहुत विलक्षण ीकीय रामायणमें आता है, श्रीभरद्वाजजीने चित्रकूट भरत तथा उनके साथियोंका बहुत सत्कार-सम्मान उन्होंने उन सबको सुख पहुँचानेके लिये अपनी देव्य विविध सामग्रियाँ और महल, राज्यासन आदि ; किंतु भरत उनमें आसक्त नहीं हुए । वे तो मनसे पर भगवान्‌को ही स्थापित समझकर उनकी पूजा स्कार करते रहे—

। राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च ।
तो मन्त्रिभिः सार्धमभ्यवर्तत राजवत् ॥
सनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च ।
लव्यजनमादाय न्यषीदत्सचिवासने ॥

(अयोध्या० ९१ । ३८, ३९)

रतने वहाँ दिव्य राजसिंहासन, चँवर और छत्र भी ा उनमें राजा (राम) की भावना करके मन्त्रियोंके न सबकी प्रदक्षिणा की । सिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजी ान हैं, ऐसी धारणा बनाकर उन्होंने श्रीरामको प्रणाम ौर उस सिंहासनकी भी पूजा की । फिर वे अपने हाथमें मन्त्रीके आसनपर जा बैठे ।'

दमें भी जब भरतजीको श्रीहनुमान्‌जीद्वारा भगवान्‌के लौटनेका शुभ संवाद प्राप्त हुआ, तब वे अत्यन्त हर्षके साथ भगवान्‌की चरणपादुकाओंको मस्तकपर भगवान्‌के दर्शनार्थ चल पड़े । वहाँका वर्णन कर महर्षि वाल्मीकिजी लिखते हैं—

आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम्
प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः
यथार्थेनार्घ्यपाद्याद्यैस्ततो राममपूजयत्
ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम्

(युद्ध० १२९ । १७, १८, ३५

'धर्मज्ञ भरतने अपने बड़े भाई श्रीरामच पादुकाएँ सिरपर रखकर अपने साथ श्वेत म सुशोभित सफेद रंगका छत्र तथा राजाओंके योग्य सो हुए सफेद चँवर भी ले लिये । फिर प्रसन्नवदन श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि लगाये हाथ जोड़कर खड़े उन्होंने दूरसे ही बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य, पाद्य उनकी पूजा की और विनीतभावसे प्रणाम किया । (ही श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वह विमान पृथ्वीप आया । भगवान्‌ने भरतको उसपर चढ़ा लिया । मेरुपर्वतपर स्थित-से दिखायी पड़नेवाले सूर्यकी त विमानमें स्थित भाई श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें करते हुए गिर गये ।'

अध्यात्मरामायणमें लिखा है—जब भरतजी तथ आदि सब चित्रकूट पहुँचे हैं, उस समय श्रीरामचन्द्र गुरुजनोंको प्रणाम करते हैं ।

रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयो
ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्यातीव दुःखित
इतराश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दन
ततः समागतं दृष्ट्वा वशिष्ठं मुनिपुङ्गवम्
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुन

(अयोध्या० ९ । ९, १

'श्रीरामजीने अपनी माताको देखते ही उठकर उनका चरणवन्दन किया और उन्होंने दुःखसे नेत्रोंमें जल भरकर पुत्रको हृदयसे लगाय श्रीरघुनाथजीने उसी प्रकार अन्य माताओंको भ किया । तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीको आते दे साष्टाङ्ग प्रणामकर बारंबार कहने लगे 'मैं धन्य धन्य हूँ ।'

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

(१७ । १४)

न्दित होते हैं और बार-बार भगवान्‌को प्रणाम
।

त्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ।
पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः ॥
(अध्यात्म० अयोध्या० ९ । ५१)

तजीने वे रत्नजटित दिव्य पादुकाएँ लेकर श्रीरामचन्द्र-क्रमा की और उन्हें बारंबार प्रणाम किया ।'

प्रकार रामायणमें अनेक स्थलोंपर आज्ञापालन, और सेवाके आदर्श मिलते हैं। जब श्रीरामचन्द्रजी लौटकर आते हैं, तब सभी लोग परस्पर एक-दूसरेसे णाम करते हैं। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

गुर चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
न्ह मिलि नायउ माथा । धर्म धुरंधर रघुकुल नाथा ॥
ुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज ॥
भरत सिर नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ॥

राजतिलकके बाद भाइयोंके सेवा और आज्ञापालन-व्यक्त करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

नुकूल सब भाई । राम चरन रति अति अधिकाई ॥
मल बिलोकत रहहीं । कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ॥
श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवँराई ॥
निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥

युगमें पाण्डवोंका भी बड़ोंकी सेवा-पूजा, नमस्कार-बहुत विलक्षण और आदर्श था । धर्मव्याध और ाल आदिने भी माता-पिताकी सेवा करके ही परम-की थी। वैश्य ऋषिकुमार श्रवणने तो माता-पिताकी ऐसी अनुपम ख्याति प्राप्त कर ली कि आज भी माता-पिताकी विशेषरूपसे सेवा करता है तो उसे ी उपाधि दी जाती है ।

ोंमें माता-पिता आदि गुरुजनोंको—यहाँतक कि भाई, भी प्रणाम करनेकी बात मिलती है।* आजकल कहीं इस प्रथाका अंश देखनेमें आता है, किंतु वह मात्रामें है । हमें नमस्कार आदिसे होनेवाले लाभकी डालनी चाहिये । जब एक दूसरेको प्रणाम करते हुए देखकर दर्शकको भी प्रसन्नता होती है; तब ि किये जानेवालेको प्रसन्नता हो, इसमें तो कहना ही बड़ोंको नमस्कार आदि करनेसे मनुष्यकी आयु, ि और बलकी वृद्धि होती है*; तथा इससे लोकमें कीर्ति सम्मान मिलता है, लोग उसे आदरकी दृष्टिसे दे इसलिये यह प्रत्यक्षमें भी महान् लाभकर है ।

एवं इसमें न तो कोई परिश्रम है, न पैसे खर्च तथा न कोई विशेष समय ही लगता है और इ महान् है । जिस घरमें सब स्त्री-पुरुष अपने बड़ोंको करते हैं, उस घरमें परस्पर वैमनस्य कैसे हो सकता है ऐसे विनयके व्यवहारसे तो पहलेका वैमनस्य भी मिट फिर नया कैसे हो! वर्तमानमें भी हमारी हिंदू-जातिमें यह है कि किसीका किसीके साथ वैमनस्य होता है तो अ उन्हें शिक्षा देकर वैमनस्य मिटा देते हैं और बादमें द्वारा बड़ोंको प्रणाम करवाकर भविष्यके लिये पर बढ़ानेका ही आदेश देते हैं । अतएव हिंदू-संस्कृ प्रणाम आदिके भावको उत्तरोत्तर वृद्धिगत करनेकी आवश्यकता है । सभी माता-बहिनों और भाइयों सविनय प्रार्थना है कि सबको अपने घरमें कम-से-कम प्रातःकाल प्रणाम करनेकी प्रथा तो जारी करनी ही च

हिंदू-जातिमें यह प्रणाम करनेकी प्रथा किसी अं भी जारी है। अपनेसे पूज्य विद्वान्, ब्राह्मण, संन्यासी देखकर प्रायः हिंदू नतमस्तक हो जाता है। यह है हिंदू-स

सद्गुण-सदाचारका सेवन

काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, घमण्ड, रा अभिमान, अहङ्कार, क्रूरता, निर्दयता, अज्ञान, संश निद्रा, आलस्य, विक्षेप, चिन्ता, शोक, भय, वैर, क्षु नीचता, नास्तिकता, अश्रद्धा आदि दुर्गुण तथा छल झूठ, कपट, चोरी, डकैती, व्यभिचार, अनाचार, अ मांसभक्षण, मदिरापान, मादक वस्तुओंका सेवन, हिंसा, प्रमाद, उद्दण्डता आदि दुराचार हैं, यह सम्पदा है । इसको राक्षसी संस्कृति समझना चाहि सर्वथा घृणित और त्याग करने योग्य है । तथा इसके जो क्षमा, दया, शान्ति, सन्तोष, शम, दम, धैर्य

नुजी कहते हैं—
ातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
वेप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥
(मनु० २ । १३२)
ी सवर्णा भार्याके चरणोंकी नित्यप्रति ...

* अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥
(मनु० २ । ...

ग्य, तेज, विनय, सरलता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, निरभिमानता, हृदयकी पवित्रता, आस्तिकता, दे सद्गुण तथा यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, ा, आदर, सत्कार, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्यका पालन, परोपकार माता-पिता आदि गुरुजनोंकी और नाथ आतुरोंकी सेवा आदि सदाचार हैं, ये दैवी लक्षण हैं और अनन्तकालसे आर्य पुरुषोंमें स्वभाव- आ रहे हैं। यह है हिंदू-संस्कृति !

संस्कृतिके इन भावोंको खूब जोरसे जाग्रत् करके ार करना चाहिये। इसीसे हमारे लिये इस लोकमें र सुख-शान्ति है और मरनेपर परमगतिकी प्राप्ति है। ये हिंदू-संस्कृतिके भाव शनैः-शनैः विधर्मी और के कुसंग और शासनसे बहुत ही दब गये थे, लोगोंका पतन होकर पराधीनता आ गयी थी। ावोंकी पुनः जागृति होनेपर उससे असली स्वराज्यकी जाती है; फिर हमारा इस लोक या परलोकमें कहीं पराभव नहीं कर सकता। इसीमें हिंदू-देश और की इज्जत और गौरव है। इसीके सेवन, पालन और ठये तन, मन, धनसे प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

कानूनसे हिंदू-धर्मकी रक्षा

ह-संस्कार भी हिंदू-धर्मका एक प्रधान अङ्ग है। हिंदुओंमें जो विवाह-संस्कार-पद्धति प्रचलित है, वेवाहके अनुसार है। यह चाल बहुत ही उत्तम त्रविहित है। इसके संस्कार हिंदू-जातिके हृदयमें ही अङ्कित हैं। वैदिक मन्त्रोंद्वारा होम, वर- पदेश तथा सप्तपदी आदिद्वारा विवाह-संस्कारको सम्पन्न -संस्कृतिका एक महान् आदर्श आचार है। इन लिक विवाह-कार्योंको देखकर स्वतः ही चित्तमें ान्ति और आनन्द होते हैं। किंतु इन सबको तथा हिंदुओंके धार्मिक कृत्योंको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये हिंदूकोडके नामसे कानून बनने जा रहा है। अब वाली हानियोंपर कुछ विचार किया जाता है—

ायभाग और मिताक्षरा कानून जो कि हमारे देशमें और याज्ञवल्क्यस्मृतिके आशयको लिये हुए से चले आ रहे हैं, उन सबको 'हिंदूकोड'में रद्द गया है।

ोडमें जो बँटवारा कायम किया गया है, वह कलह [illegible]

स्त्रीके लिये उससे कोई लाभ नहीं। जो आज बँटवारेके लिये भाई-भाईमें लड़ाइयाँ होती हैं, वे बहिन तथा ननद-भावजमें भी हो सकती हैं। लड़कीको अपने हिस्सेमें मकानका कोई भाग मिलेगा तो उसे व न ला सकनेके कारण चाहे जिसे बिक्री कर सकेगी उसके भाइयोंको महान् कष्ट और दुःख उठाना पड़े उसके ससुरालमें उसकी ननद अपना हिस्सा किसी बेचेगी। इससे उसको भी बड़े भारी दुःखका सामना क सकता है। इससे अनेक प्रकारकी लड़ाइयाँ और मुक होकर धन अदालत और वकीलोंके हाथमें जाकर व्यर्थ हो सकता है और घूसखोरी बढ़ सकती है। इसके स्वरूप धर्म, इज्जत, धन और शरीरकी महान् हानि ह है। इससे बढ़कर और दुःखकी बात क्या है।

२—हमारे हिंदू-धर्ममें पुरुषोंके लिये एकनारीव्र स्त्रियोंके लिये पातिव्रत-धर्म परम आदर्श हैं। महाराणा समयमें चित्तौड़गढ़में करीब तेरह हजार स्त्रियोंने अपने धर्मको बचानेके लिये अपनेको अग्निमें होम दि जिसका स्मरण करनेसे रोमाञ्च हो उठता है। उस पातिव्रत-धर्मको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये ही हिंदूकोडमें विधान किया गया है, जिसका आशय यह है कि परि कायम करके स्त्री उसे चाहे जब त्यागकर स्वतन्त्रता विवाह कर सकती है। इसका परिणाम यह हो सकत एक स्त्री अपने पतिमें दोष कायम करके उसे छोड़कर दूसे उसे भी छोड़कर तीसरेको—इस प्रकार कई विवाह कर स

यदि कोई विवाह अवैध सिद्ध हो जायगा त उत्पन्न सन्तान भी नाजायज मानी जायगी। ऐसी उ उन बच्चोंका क्या होगा ? उनको सम्पत्तिका भाग सकेगा और दूसरे लोग भी उन्हें घृणित दृष्टिसे देख जायँगे तथा वे बच्चे मारे-मारे भटकेंगे।

यह हिंदू-संस्कृतिके लिये महान् कलङ्क और घ एवं इस लोक और परलोकमें महान् दुःखदायी है।

३—इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हरिजन, जैन, सिख, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी आदि सभी हिंदू हैं। इसमें तो कोई हर्ज नहीं; किंतु इनको परस्पर कि साथ विवाह-शादी और किसी वर्गमेंसे दत्तक पुत्र अधिकार दिया गया है, जो बहुत ही घातक है।

ईसाई, मुसल्मान, पारसी, यहूदी—इनको ि अलग रक्खा है; किंतु इनमें भी कोई हिंदू-धर्मको स्वी ले तो वह भी हिंदू माना जा सकता है। इस तरह व

ावट भी नहीं है। यह बड़े दुःखकी बात है। इससे र्मपर और कुठाराघात क्या हो सकता है। सचमुच ो नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये ही हिंदूकोडकी सृष्टि हुई क अनुसार एक भंगी, चमार, विधर्मी या मांसाहारी तिके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि निरामिषभोजीके न्ध कर सकता है—इसमें भी कोई रुकावट नहीं।

कोडमें लड़कीको १६ वर्षकी होनेपर बिना ककी आज्ञाके स्वतन्त्रतासे विवाह करनेकी छूट दी गयी अनुसार पिताकी इच्छा न होनेपर भी लड़की चाहे ाह कर सकती है और इस प्रकार यदि पिताके घरमें कियाँ हों तो उनके यहाँ एक निरामिषभोजी और एक तथा एक अछूत और एक ब्राह्मण दामादके रूपमें हैं और हिंदूकोडके कानूनके अनुसार उन्हें कोई सकता। इससे घरवालोंको इतना क्लेश और दुःख है, जिसकी कोई सीमा नहीं। इसके अतिरिक्त ' में अदालतमें रजिस्ट्रीद्वारा विवाहको वैध मान है, यह बड़ा ही अनर्थका मूल है।

सी प्रकार दत्तक पुत्र भी चाहे जिस जातिका लाया है। एक हिंदू निरामिषभोजी ब्राह्मणके परिवारमें हों, उनमें तीनके सन्तान हो और एकके न हो तो वह भाई स्वेच्छानुसार अछूत-जातिके या मांसाहारी भी दत्तक पुत्र बना सकता है। अथवा जो पहले मुसल्मान रहा है किंतु अब जिसने हिंदू-धर्म स्वीकार है, उसे भी ला सकता है; इसके लिये भी कोई नहीं है। देखिये, जिसे अपने भाइयोंको दुःख हो, कोई वैर-बदला लेना हो तो उसके लिये उनको नेका यह बड़ा भयङ्कर उपाय निकल आता है। उस का कोई भी कानूनन विरोध नहीं कर सकता।

त्तिके अधिकारके विषयमें भी बड़ी गड़बड़ी होगी। पिता सम्पत्ति हटा दे तो नाबालिग बच्चे दावा उससे क्या पा सकेंगे। इसका फल क्या होगा? असहाय और अनाथ होकर भटक सकते हैं।

: यह हिंदूकोड हिंदू-संस्कृतिके सर्वथा विरुद्ध और ।

तके लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषोंने—जिनमें सम्मान्य विद्वान्, वकील, बैरिस्टर, सुविख्यात नेता और महिलाएँ भी शामिल हैं, इस बिलका घोर विरोध

कोई अधिकार नहीं है। इस विधानसभामें ह सिद्धान्तके रूपमें यह स्वीकृत हो चुका है कि व धर्ममें हस्तक्षेप नहीं किया जायगा तथा इसे 'ध राज्य' घोषित किया गया है। ऐसी अवस्थामें किसी ध विषयमें कानून बनाने जाना महान् अन्याय है। विवाह-संस्कार आदि कार्य पवित्रतम धार्मिक अनुष्ठ इसे कोई भी समझदार व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकत

यद्यपि डाक्टर अम्बेडकरने यह स्वीकार कर लि बहुमत इस बिलके विरोधमें है, फिर भी वे बलात्क हिंदुओंपर लादने जा रहे हैं। यह लोकतन्त्रात्मक लिये बड़े ही अन्याय एवं लज्जाकी बात है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह हिंदूकोड अशास्त्रीय और हिंदुओंकी समाज-व्यवस्थाको तोड़ देने यदि इसे कानूनका रूप दे दिया गया तो इससे अन चली आती हुई हिंदुओंकी धार्मिक और सामाजिक छिन्न-भिन्न होकर लोग दुःखोंके गर्तमें गिर जा सकते

अतः सभी भाई-बहिनोंसे प्रार्थना है कि यथासाध्य खूब जोरोंसे विरोध करें; क्योंकि कानून जानेपर फिर इससे बचनेका कोई उपाय नहीं रह जायगा सभीको कष्टोंका सामना करना पड़ सकता है। भी हमारी प्रार्थना है कि वह हिंदू-लोकमतके विरु बनानेका विचार छोड़ दे और बिलको वापस ले ले।

विचारनेका विषय है कि कांग्रेस-सरकार किसी शिक्षा-विभाग और कानून-विभागमें लानेका अधि रखती, किंतु वह हिंदू-धर्मको कानूनमें गाँठनेका विच है—यह कौन-सा न्याय है? यदि कानून भी बने त हिंदुओंके लिये ही क्यों; ईसाई, मुसल्मान—सभीके कानून बनना चाहिये। जैसे ईसाई और मुसल्मानों विषयमें सरकार हस्तक्षेप नहीं करती और उनको स्वत रक्खी है, उसी प्रकार हिंदुओंके धर्मके विषयको छोड़ देना चाहिये। हिंदुओंके धर्मको कानूनका हिंदुओंके चित्तको आघात पहुँचाना—यह कांग्रेस-जैसी लिये बहुत ही अनुचित है।

अतः सभी भाइयोंसे निवेदन है कि वे गाँ सभाएँ करके इस हिंदूकोडके विरोधमें प्रधानमन्त्री श्री के तथा भारतीय-पार्लामेंटके स्पीकर श्रीमावलङ्कर तार और विरोधपत्र भेजें और तबतक भेजते रहें, जब कोड वापस न ले लिया जाय।

हिंदू-धर्मके अनुयायी हों। यदि अनुयायी न हों तो
कम विरोधी तो न हों। जो हिंदू-धर्मको कानूनमें
ाहते हैं, उन्हें तो कभी वोट नहीं देना चाहिये।

ी प्रकार गायोंकी रक्षा करना हिंदुओंका परमधर्म
ह भारत अब अंग्रेजोंके हाथसे मुक्त हो गया,
ोंने अपना पाकिस्तान अलग बना ही लिया; अब तो
ायका वध किया जाना कतई बंद हो जाना चाहिये।
ो-वध सर्वथा बंद नहीं होगा और बूढ़ी तथा बेकार
मारनेकी छूट रहेगी तो जैसे वर्तमानमें छोटी बछिया
वान दूधवाली गायें मारी जा रही हैं, वही सिलसिला
ह सकता है। क्योंकि घूस देकर कसाई उपयोगीको
पयोगी पास करा ले सकते हैं और इसपर कोई विरोध
उसे सफलता मिलनी कठिन है। इससे केवल दुनिया-
की आँखमें धूल झोंकना यानी धोखा देना होगा।
उपयोगी गायोंका वध बंद कर दिया। अतः इसके
हिंदूमात्रको सरकारसे प्रार्थना करनी चाहिये कि गो-व
बंद कर दें। तथा अगले चुनावमें उन्हींको वोट देना
जो सर्वथा गो-वध बंद करनेके समर्थक हों; जो
लिये छूट देनेवाले हैं, उन्हें कभी वोट न दें।

हमारी भी प्रार्थना है कि सरकार गम्भीरतासे सोचक
भारतमें गो-वधको सर्वथा बंद कर देनेका कानून
कृपा करे। यदि स्वराज्य होनेपर कांग्रेस-सरकारसे
ऐसी आशा न करें तो फिर किससे करें? स्वराज्य
पूर्व नेताओंने यह विश्वास भी दिलाया था कि स्वराज
बाद गो-वध कतई बंद किया जाना सहज हो जायगा;
बातको काममें लाना कांग्रेस-सरकारका कर्तव्य है।

रामराज्यका स्वरूप

(लेखक—श्रीरामकृष्णजी पोद्दार)

रामराज्य

न राज राजत सकल धरम निरत नर-नारि।
न रोष न दोष दुख सुलभ पदारथ चारि॥
राज संतोष सुख घर बन सकल सुपास।
सुरतरु सुरधेनु महि अभिमत भोग बिलास॥
ी बनि बिद्या बनिज सेवा सिलिप सुकाज।
सी सुरतरु सरिस सब सुफल राम कें राज॥
जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
हु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥
ें सोच न पोचकर करिअ निहोर न काज।
सी परमिति प्रीतिकी रीति राम कें राज॥
(दोहावली)

तवर्षमें अनेकानेक राज्य प्रतिष्ठापित हुए, जिनपर
तापशाली तथा धर्मसम्पन्न राजाओंने शासन किया।
याति, शिबि, सत्यवादी हरिश्चन्द्र-जैसे प्रतापी सम्राट्
हुए। महाराज दशरथ-जैसे सच्चे भगवत्-प्रेमी तथा
सम्राट् भी भारतमें हुए—जिन्होंने शरीरका त्याग कर
ंतु सत्यको नहीं छोड़ा। इन सबका हम श्रद्धा-सम्मानके
ण करते हैं। परंतु हम इनके राज्योंको नहुषराज्य,
, हरिश्चन्द्रराज्य अथवा दशरथराज्य कहकर स्मरण
ते; पर हम 'रामका राज्य' अथवा 'रामराज्य'
मरण करते हैं, राम और उनके राज्य—दोनोंके प्रति
द्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। इसका मुख्य कारण

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम क्यों?

वास्तवमें परब्रह्म परमात्माके रामस्वरूपको '
पुरुषोत्तम' क्यों कहते हैं, इसे कम लोग जानते हैं।
सब प्रकारकी सर्वोत्तम मर्यादाएँ प्रतिष्ठित की थीं। आप
होनेके पूर्व अपने निर्मल पूत चरित्रोंद्वारा व्यष्टिकी
मर्यादाओंको स्वयं पालन करके दिखलाया। एक
समाज, परिवार आदिके साथ कैसा व्यवहार क
व्यक्तिको जीवनयात्रा चलानेके लिये तथा जीवनके
उद्देश्य परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये किस प्रकारके
किस प्रकारके त्याग-तपकी आवश्यकता होती है—
दिग्दर्शन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपनी लीला
मर्यादाएँ प्रतिष्ठापित करके प्रत्यक्ष करा दिया।

राज्यारोहणके पश्चात् उन्होंने जो सर्वोत्तम शासन-
अर्थनीति, धर्मनीति, समाजनीति तथा राजनीतिकी
स्थापित कीं, उन सबके समूहका नाम ही 'रामराज
उन्होंने व्यष्टि तथा समष्टि—दोनोंके लिये ही
मर्यादाओंका अपने जीवनमें तथा राज्यके द्वारा भ
परिपालन किया।

रामराज्य क्या और कैसा?

अब प्रश्न उठता है 'रामराज्य क्या और कैसा
तो इसका उत्तर यह है—रामराज्यमें सभी वर्गोंके

कर्तव्यका मानदण्ड अपनी इच्छामात्र नहीं था;
ीके शब्दोंमें 'करहु जाइ जा कहुँ जो भावा' नहीं
वेदमार्गको—शास्त्रवचनोंको मानदण्ड मानकर
टको अग्रगमित करते थे। इसके फलस्वरूप रोग,
ा भयकी प्राप्ति उनको नहीं होती थी। सभी
यण तथा काम-क्रोध-लोभ-मदादिकोंसे सर्वथा रहित
किसीसे वैर नहीं करता था। वैरके अभावमें प्रेम
ः ही है। सभी गुणज्ञ, गुणसम्पन्न, पुण्यात्मा, ज्ञानी
थे; पर उनकी चतुरता भजनमें, ज्ञानमें थी—परदारा,
णमें नहीं।

वद्वारा आचरित इस धर्मका—कर्तव्य-पालनका प्रभाव
ाथा पशु-पक्षियोंपर भी पड़े बिना नहीं रहा।
ो पशु-पक्षियोंके लिये लिखते हैं—'रहहिं एक सँग
ान।'

सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

त्याग तथा धर्मपालनका प्रकृतिपर कैसा प्रभाव
को श्रीगोस्वामीजी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

न्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
ल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
ज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥

त्रिविध तापका अभाव

प्रकारके ताप होते हैं—दैहिक, दैविक, भौतिक।
ो रामराज्यमें बिल्कुल नहीं रह गये थे।

विक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

तथा तदन्तर्गत स्वास्थ्यके नियमोंका पालन
को भय, शोक, रोग आदि दैहिक तापोंकी पीड़ा
कती थी। भौतिक ताप प्रकृतिके उपर्युक्त प्रकारसे
हो जानेके पश्चात् कैसे हो सकते थे। दैविक ताप तो
वेमुख तथा अधार्मिक व्यक्तियोंको दण्डस्वरूप मिला
उनकी रामराज्यमें स्थिति ही कहाँ थी?

त्रिविध विषमताका अभाव

राज्यमें (१) आत्मिक (आन्तरिक); (२) बाह्य और
ाक विषमताएँ बिल्कुल नहीं थीं। १—सद्भाव, सद्विचार,
और परमार्थ ही परम लक्ष्य होनेके कारण साधनाके द्वारा

की प्रेमभक्तिमें निमग्न होकर परमपदके अधिकारी हो
इससे उनमें 'आत्मिक वैषम्य' नहीं था। वे सब
भगवान्‌को देखते थे—'निज प्रभुमय देखहिं जगत

२—आत्मिक विषमताके दूर हो जानेके कार
विषमता' भी सर्वथा नष्ट हो गयी थी। किसीको कि
गर्व करने अथवा छोटे-बड़ेका प्रश्न उठानेके लिये
न था। शुद्ध अन्तःकरणवालोंको किसीसे राग-द्वे
छोटे-बड़ेका गर्व हो ही कैसे सकता था।

३—पर्वतोंके द्वारा मनोवाञ्छित मणिमाणिक्य दि
समुद्रद्वारा रत्नोंके बाहर फेंक देनेसे, विलासिता एव
तलबीके न रहनेसे, स्वकर्तव्यपालनकी निष्ठासे तथ
सर्वथा न रहनेसे रामराज्यमें 'आर्थिक विषमता' भी
इसका अर्थ यह नहीं कि रामराज्यमें विशाल व्यापा
था। वैश्यवर्ग अपना कर्तव्य समझकर बड़े-बड़े व्या
थे। परंतु रामराज्यमें सभी वस्तुएँ बिना मूल्य बिकती थ
जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, वह उसी वस्तुको
जितनी चाहे, उतने परिमाणमें प्राप्त कर सकता था
कोई विशेष संग्रह भी नहीं करता था।

राजा और प्रजाका सम्बन्ध

जिस राज्यमें पाप अथवा अपराधकी कभी
न हो, जिस राज्यके लिये श्रीगोस्वामीजीके अनुसार—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समा
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें रा

—ऐसी स्थिति हो, उस राज्यमें, तथा जिसमें सम्राट्
रामचन्द्र प्रजासे कुछ आध्यात्मिक ज्ञानपर कहना
तो हाथ जोड़कर कहते हैं कि 'यदि आप लोगोंका
तो मैं कुछ कहूँ। आपको अच्छा लगे तो सुनिये,
लगे अथवा मैं कोई अनीतिपूर्ण बात कहूँ तो
दीजिये।'

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय

—वहाँ, उस राज्यमें राजा-प्रजाके कैसे क्या स
सकते हैं—सो स्पष्ट है।

रामराज्यमें सभी व्यक्तियोंने इहलोक और परलोक
सफल किया था। उस समयके-जैसा सर्वतोभावेन
मण्डित राज्य कभी स्थापित नहीं हो सका। इसीि
भी, युगोंके पश्चात् भी भारतकी जनता पवित्र रा

(लेखक—डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

दूकी दृष्टिमें धर्म, संस्कृति, जीवन—तीनों क्षेत्रोंका विस्तार समान है। एकको हटाकर एक नहीं

दू संस्कृतिका दृष्टिकोण समन्वयप्रधान है। समन्वय हिंदुत्वकी सबसे बड़ी विशेषता है। ाथ अविरोध-भाव प्राप्त करनेकी पद्धति समन्वय है।

हुधा' भावकी स्वीकृतिसे सहिष्णुताका जन्म होता है। हिंदू धर्म सहिष्णुताकी प्राणवायुसे जी

ुधामें एकत्वकी पहचान हिंदू संस्कृतिका प्रयत्न रहा है। एकत्वका आग्रह बहुत्वका ना: दू संस्कृतिको इष्ट नहीं है। बहुधासे ही एकको महिमा प्राप्त होती है—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'

—यह हिंदू विचारोंका अन्तर्यामी सूत्र है।

नेक संघर्षोंके बीचसे समन्वयकी प्राप्ति हिंदू संस्कृतिके इतिहासका राजमार्ग रहा है।

ार्मिक स्वातन्त्र्य, सामाजिक स्वातन्त्र्य, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य हिंदू संस्कृतिको इष्ट हैं; किंत पभोग सत्यदर्शनके लिये होना चाहिये।

ड और चेतनका आपेक्षिक मूल्याङ्कन हिंदू संस्कृतिकी विशेषता है।

तन्य ही महान्, नित्य, रसपरिपूर्ण और प्राप्त करनेयोग्य तत्त्व है। इस प्रकारका सचेष्ट प्रयत्न अं श्वास हिंदू संस्कृतिके प्रत्येक युगमें प्रकट होता रहा है।

सार और उसके उपभोग अल्प, सीमित, तुच्छ और जीतने योग्य हैं—यह दृढ प्रतीति हिं दा ऊँची प्रतिष्ठाकी पात्र बनी रही।

ंसारिक जीवनका उचित मूल्य तो आँक लिया गया, किंतु उसकी उपेक्षा या अवहेलना दू संस्कृतिको इष्ट नहीं। जो जडकी उलझनको नहीं समझ सका, वह चैतन्यको कैसे समझ ? निःश्रेयसके साथ अभ्युदयकी प्राप्तिपर भी हिंदू दृष्टिकोणने बहुत बल दिया है। लो लोकका समन्वय, जड और चेतनका समन्वय प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति हिंदू धर्मको मान्य है

सी दृष्टिकोणसे हिंदू संस्कृतिमें साहित्य, कला, सौन्दर्य और सँवारे हुए जीवनके अनेक वर तिष्ठित स्थान दिया गया।

र्म और जीवनका मेल हिंदू संस्कृतिके आग्रहका विषय है। धर्म धारणात्मक नियमोंकी स ज्ञा थी।

'धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।' (व्यास)

सम्प्रदाय या मत-मतान्तरके लिये भी 'धर्म' शब्दका प्रयोग हुआ; परंतु नित्य धर्म-त बके ऊपर और बड़ा है। धर्म और सर्वोपरि चैतन्यका धरातल एक है।

ृत, सत्य, धर्म, ब्रह्म, चैतन्य अभिन्न और सर्वोपरि हैं। इनकी अखण्ड निष्ठा हिंदू संस्कृतिका

हिंदू संस्कृति चैतन्यपर आश्रित होनेके कारण व्यक्तिको बाँधकर नहीं रखना चाहती। हिंदू स
बन्धन स्थितिके पोषक हैं, अर्थात् अपने केन्द्रसे दाहिने-बायें, आगे-पीछे भटकनेको व्यक्तिके
अनावश्यक विघ्न माना गया है। किंतु ऊर्ध्वगति या अपने केन्द्रसे मानस जगत्में ऊँचे
प्रत्येकके लिये प्रत्येक स्थितिमें बहुत आवश्यक माना गया है।

ऊर्ध्वगति ही अध्यात्मका कल्याण है। अध्यात्मकी साधना हिंदू संस्कृतिके आग्रहका विषय है

कर्मपर हिंदू संस्कृतिमें पूरा जोर दिया गया है; किंतु कर्म बिना धर्मके अधूरा है। जिस
ज्ञानका भाव नहीं, वह कर्म स्वार्थमें सना हुआ होनेसे व्यक्ति और समाजके जीवनको और भी उ
डाल देता है।

हिंदू धर्मकी दृष्टिमें कर्म जीवनका आवश्यक लक्षण है। कर्मके बिना जीवनकी स्थिति असम्भ
ठीक विधिसे किये जानेवाले कर्मको योगकी पदवी दी गयी है।

हिंदू संस्कृति लौकिक विजयसे उतनी तृप्त नहीं होती, जितनी आध्यात्मिक विजयसे। आज भी
मन अध्यात्मसे प्रफुल्लित, रसतृप्त और आकर्षित होता है। लौकिक विजयके भीतर लोभ, स्वार्थ
छिपी रह सकती हैं; किंतु अध्यात्मकी जय केवल धर्मपर टिकी रहती है और चार खूँट जाग
सार्वजनिक स्वागत प्राप्त करती है।

हिंदुओंने राजनीति और दण्डनीतिका आविष्कार तो किया किंतु सर्वापहारी राजसत्ता उनको
नहीं रुची। जीवनका अधिक-से-अधिक क्षेत्र राजसत्तासे किस प्रकार बचा रह सकता है, इसका
हिंदू सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवनकी पद्धतिमें पाया जाता है। जीवनके अनेक स
के बीचमें राज्य भी एक समझौता है, उसे सबका स्थान छीनकर जीवनपर छा जानेका अधिक
संस्कृतिमें नहीं पाया जाता। हिंदू जीवनका अधिकतम क्षेत्र बाह्य नियन्त्रणसे जान-बूझकर
रक्खा गया है। हिंदुओंके संस्कार जन्मसे मृत्युपर्यन्त जीवनका नियमन करनेके लिये पर्याप्त
मनुष्यके आपसी प्रबन्धके बलसे प्रचलित और विकसित होते रहे हैं। बहुविधता उनकी विशे
जो देशकालकृत भेदोंको स्वीकार करती है।

हिंदूका मन हिंदू संस्कृतिका ही एक टुकड़ा है। वह मन उदार, सहिष्णु, नूतन भावोंका जागरू
स्वागत करनेवाला है। अनुशासन या अङ्कुशकी अपेक्षा वह उच्च आदर्श, त्यागकी भावना,
कर्म-प्रेरणासे अधिक द्रवित होता है। उस मनको दृढ़तासे लोकहितमें बाँधनेके लिये, उसमें
भावोंको भरनेके लिये त्याग, तप या यज्ञका धरातल ही एकमात्र उपाय है। त्यागकी भा
सामाजिक स्तरपर जो उतार सकता है, वही हिंदू संस्कृतिकी छिपी हुई मानस निधितक पहुँ
है। अन्यथा भारतीय मन समाजकी ओरसे अपने तन्तु समेटे हुए पड़ा रहता है।

ब्रह्म कौन है?

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म। (तैत्तिरी

ये सब भूतप्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसकी सत्तासे जीवित रहते हैं और विनाशके समय
कर जाते हैं वह ब्रह्म है।

हिंदूका सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्श

(लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय एम्०ए०)

ष्यके साथ मनुष्यके जितने प्रकारके संघर्ष और ते हैं, उन सबकी उत्पत्ति होती है उनके देह, ौर मनके अभाव, प्रयोजन एवं आकाङ्क्षाके क्षेत्रमें ग्र सुख-सम्पत् और प्रभुत्वके क्षेत्रमें। प्रत्येक अन्न, वस्त्र और घर आदिकी आवश्यकता तथा र्य और प्रभुत्वकी आकाङ्क्षा होती है और इसी क्का स्वार्थ दूसरेके स्वार्थका प्रतिद्वन्द्वी बनता है। , वस्त्र, गृह, वित्तादि और पार्थिव सुख-सम्पत् व ही मानव-समाजमें श्रेष्ठ पुरुषार्थ माने जायँगे, तो में व्यक्तिगत विरोध, श्रेणिगत संघर्ष और जातिगत रन्तर चलते रहेंगे। किसी प्रकारकी भी राष्ट्रनीति माजनीति मानव-समाजकी इस अशान्तिके दावानलसे में समर्थ न होगी। आग बुझानेकी प्रत्येक चेष्टा आग सुलगाती रहेगी।

को ही आदर्श माननेवाली जडवादी जाति और जीवनमें बाह्य आपातरमणीय उन्नतिके साथ-साथ का दुर्भोग बढ़ना अनिवार्य है। पाश्चात्त्य जातियोंकी इतिहास इस विषयमें सुस्पष्ट प्रमाण देते हैं। बाह्य आदर्शको केन्द्र बनाकर यदि मनुष्य अपने ज्ञान कका विकास करता है तथा समाज और राष्ट्रका करता है, तो उससे स्थूल दृष्टिमें कुछ समयके लिये ष और सम्प्रदायविशेषकी आर्थिक उन्नति, ोंकी प्रचुरता तथा राष्ट्रिय प्रभावकी वृद्धि भले ही आवे; परंतु उसके साथ ही उन जातियोंके भीतर के साथ दूसरे वर्गका, एक सम्प्रदायके साथ दूसरे का तथा एक प्रान्तके साथ दूसरे प्रान्तका संग्राम रूपसे तथा स्वाभाविक नियमानुसार उत्पन्न हो जाता के आदर्शको केन्द्र बनाकर जो उन्नति होती है, वह ाता, प्रतिद्वन्द्विता और संघर्षके अन्तरालमें ही होती है, प्रकारके संग्रामके भीतर जो उन्नति प्राप्त होती है ी सर्वसाधारणकी इच्छित उन्नति नहीं होती। यक्तियों तथा सारे दलोंके सुख, ऐश्वर्य और प्रभुत्वकी ी पूर्ति किसी भी नीति अथवा कौशलके द्वारा सम्भव

सम्पत् और प्रभुत्वपर उन्हींका अधिकार होता है भाग्यलक्ष्मी उन्हींकी अङ्कशायिनी होती है—अवश्य समयके लिये ही। संग्राममें जो पटु नहीं होते, जि शक्ति नहीं होती, बुद्धिसे जो सीधे-सादे होते हैं, प्रति जो पराजित हो जाते हैं, वे भीतर द्वेष, हिंसा औ पोषण करते हुए भी उन लोगोंके चरणोंमें आ करनेके लिये बाध्य होते हैं, तथा उनके आज्ञानुसा और उनके जूँठे टुकड़े खाते हुए जीवन-यापन क मनमें छिपी हुई प्रतिहिंसाको चरितार्थ करनेका ढूँढ़ते रहते हैं। शक्तिशाली सम्पत्शाली प्रभुओंके भी निर्बाध शान्ति-सुखका सम्भोग सम्भव नहीं ह एक ओर तो अपने प्रतिद्वन्द्वी अन्यान्य शक्तिशा सम्पत्शाली धनलोलुप और राज्य-लोलुपोंके भयसे अ रहते हैं और दूसरी ओर जिनको शोषित और करके उन्होंने अपने श्रेष्ठत्वको स्थापित किया है विद्रोहकी आशङ्कासे भी सर्वदा आतङ्कित रहते हैं। सर्वदा ही संग्रामके लिये प्रस्तुत रहना पड़ता है। बाह्य सम्पत्में जिसकी निष्ठा है, उस जाति और सभ्यता और संस्कृति संग्रामात्मिका हो जाती है। पटुता ही उसकी सभ्यताका लक्षण समझा जाता है। एक संग्रामके बाद दूसरा संग्राम और एक क्रान्ति दूसरी क्रान्ति अवश्यम्भावी हो जाती है। परिणाम है कि ऐश्वर्य और प्रभुत्व निरन्तर हस्तान्तरित होते और जगत्में शान्तिकी कोई सम्भावना नहीं रहती।

इस उत्कट समस्याके स्थायी समाधानका एकम है समाज-विधान, राष्ट्र-विधान और अर्थ-नीतिको अ भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित करना, मनुष्यके व्यष्टि-जी समष्टि-जीवनके सारे विभागको धर्मके आदर्शद्वारा सु करनेकी व्यवस्था करना और सभी श्रेणियोंके मनुष्यों समस्त कार्योंद्वारा आध्यात्मिक कल्याणनिष्ठ बना प्रबल चेष्टा करना। धर्मतत्त्वके सम्बन्धमें जिनकी य यथार्थ अनुभूति है, वे जानते हैं कि धर्म कोई सा विशेष मतवाद नहीं है, कतिपय विशेष प्रकारके प

करके, किसी अवास्तविक काल्पनिक पदार्थ या
सेवा भी नहीं है। मनुष्यके अन्तर्जीवन, बाह्य-
व्यष्टि-जीवन और समष्टि-जीवनके सब विभागोंमें
सामञ्जस्य स्थापितकर, मनुष्यकी आत्माके चरम
-सुन्दर' स्वरूपकी उपलब्धिको लक्ष्यमें रखकर इस
सर्वाङ्गसुन्दर मानव-जीवन, सुखशान्तिमय मानव-
स्वकल्याणव्रती मानव-राष्ट्रका निर्माण करना ही धर्मका
। धर्म-साधनाकी मुख्य बात यही है कि आत्माको
र जगत्के केन्द्रमें उपलब्धकर, आध्यात्मिक दृष्टि
कर, विश्व-जगत्के सब क्षेत्रोंके सभी प्रकारके
दर्शन और उपभोग करनेका सुनियत अभ्यास हो,
यात्मिक आदर्शके द्वारा अनुप्राणित होकर सब
कार्योंको सम्पादित करनेका सुन्दर प्रयास हो।

यात्मिक आदर्श ही मनुष्यके व्यक्तिगत जीवन,
जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रिय जीवन और
जीवनके सब प्रकारके विरोधोंमें सामञ्जस्य स्थापित
है, सब प्रकारके वैषम्यमें साम्यकी प्रतिष्ठा कर
सब प्रकारके संघर्ष और संग्रामका अन्त कर मानव-
म, शान्ति, सौहार्द और ऐक्यको सुप्रतिष्ठित कर
। हिंदूका समाज-विधान, राष्ट्र-विधान और शिक्षा-
स आध्यात्मिक आदर्शको केन्द्र बनाकर ही किया
। वर्णाश्रम-व्यवस्थाका भी यही मूलतत्त्व है। समाजके
रोंमें एक ऐसी शिक्षा और संस्कृतिका वातावरण
था, तथा समाज और राष्ट्रकी कुछ ऐसी मौलिक
स्था थी कि राष्ट्र-शक्ति, अर्थ-शक्ति और श्रमशक्ति—
, वैश्य-शक्ति और शूद्र-शक्ति—स्वेच्छासे
पूर्वक प्रेम और गौरवका अनुभव करती हुई
क आदर्शका अनुसरण कर अपने-अपने कर्तव्यका
और सम्पादन करती हुई अपनेको कृतार्थ समझती
वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण और ब्रह्मैकनिष्ठ संन्यासी हिंदू
समष्टिप्राणकी आध्यात्मिक शक्तिके प्रतीक थे। यही
कि हिंदूके शिक्षा-क्षेत्रमें, राष्ट्र-क्षेत्रमें और समाज-
क्षेत्र आदर्श चरित्रवाले त्यागव्रती ब्राह्मण और संन्यासी
के पदपर प्रतिष्ठित थे। सभी स्तरोंके नर-नारी उनके
द्धा और सत्कारपूर्वक सिर झुकाते थे। समाज और
न्होंने जिस आदर्शको स्थापित किया तथा जिस

नीतिका अनुवर्तन कर एक ओर जहाँ जाति और
कल्याण-साधन करते थे, दूसरी ओर उसी प्रकार
जीवनकी पूर्णता भी सम्पादित करते थे। समाज औ
प्रति श्रद्धा, प्रेम और त्यागके साथ अपने-अपने निर्दि
सुचारुरूपसे सम्पादन करके ही प्रत्येक नर-नारी अप
जीवनको परम कल्याण और शान्तिके मार्गमें अ
सकता है—यही हिंदूकी कर्मनीति है।

समाज और राष्ट्रके विभिन्न विभागोंमें विभिन्न
कार्योंमें लगे हुए तरह-तरहकी शक्ति, सामर्थ्य, रु
प्रकृतिवाले नर-नारियोंके चित्तोंमें सुशिक्षाके प्रभा
धारणा सुदृढ़ हो जाती है कि जीवनकी सार्थकता औ
राष्ट्रिय प्रभुत्व अथवा आर्थिक सम्पत्की प्राप्तिमें
ऐहिक भोगोंकी प्रचुरता अथवा शक्तिकी विशाल
है। जीवनका यथार्थ गौरव और सार्थकता सभी
उन्नत आदर्शका अनुवर्तन करने, चरित्रके महत्त्वको
करने तथा आत्माका समुचित विकास-साधन कर
मनुष्य चाहे जिस कर्ममें नियोजित हो, उसके लिये
कर्म कर्तव्यरूपमें निर्धारित हो, उसे यदि जीवनके
आध्यात्मिक आदर्शकी ओर लक्ष्य रखकर सम्पाद
जाय तो प्रत्येक कर्म गौरवमण्डित हो जायगा औ
द्वारा जीवनका विकास-साधन होगा। समष्टिकी सेवामें
प्रेमयुक्त आत्मनियोग ही मानवोचित सत्कार्यका यथा
है। जाति और समाजके सङ्गठन, संरक्षण, अभ्यु
कल्याणके लिये सभी प्रकारके शुभ कर्म आवश्यक हैं
मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके द्वारा जाति और समा
करता है; परंतु कार्यसम्पादनके समय केवल अपनी भ
के द्वारा परिचालित न होकर यदि वह अपने हृद
बुद्धिको ही प्रधानता देनेकी शिक्षा ले, तो उसके कर्म
अनन्तगुना बढ़ जाता है और वह चरित्र-विकास
मार्ग हो जाता है। तभी वह जीवनको सार्थक ब
इसे ही हिंदू समाजमें 'यज्ञनीति' कहते हैं। सभी कर्म
बुद्धिसे सम्पादन करना चाहिये। अपनी भोगस्पृह
स्पृहा, प्रभुत्वस्पृहा, आसक्ति और द्वेषभावको दबा
और समाजकी सेवा-स्पृहासे परिचालित होकर,
अनुसार कर्तव्य-कर्मोंको निरन्तर करते रहनेसे ह
यज्ञमय होता है। जाति और समाजमें विश्वप्राण

ामें परिणत होगा और जीवन कल्याणमय हो जायगा। समाज-विधान, राष्ट्र-विधान तथा प्रत्येक कर्मक्षेत्रमें नीतिकी शिक्षा दी जाती है।

ई मनुष्य समाजके चाहे किसी स्तरमें उत्पन्न क्यों न , चाहे किसी प्रकारकी शक्ति और सम्पत्का अधिकारी ो, चाहे किसी प्रकारके सुख-दुःखका उपभोग क्यों न हो—इन सबके द्वारा उसके जीवनका मूल्य निर्धारित ा, उसकी मानवोचित मर्यादाका निरूपण नहीं हो वह किस प्रकारके आदर्शकी सेवामें अपनी शक्ति त्को लगाता है, किस प्रकारकी दृष्टिसे समाजमें ाथ व्यवहार करता है, किस तरह सुख-दुःखादिको ता है तथा किस दृष्टिसे अपने कर्मोंको देखता है— तोंपर उसके जीवनका मूल्य और मर्यादा निर्भर । बहुत ही अल्प शक्ति, अल्प ज्ञान और अल्प धन- अधिकारी होते हुए भी यदि कोई अपने जीवनको कर डालता है और अपने समस्त कर्मोंको सेवा- म्पादन कर सकता है तो उसका जीवन सार्थक है के जीवनका अधिक-से-अधिक मूल्य है।

् समाजके शीर्षस्थानीय ब्राह्मण और संन्यासीगण दृष्टिमें सत्य, प्रेम, पवित्रता, संयम, त्याग और सेवाके जीवन्त विग्रहरूपमें सर्वत्र विचरण करते हैं। नहिताय बहुजनसुखाय' सब प्रकारके लौकिक त्यागकर आध्यात्मिक स्वार्थसिद्धिके आदर्शको रूपसे सामने रखते हैं तथा जाति और समाजके ोंके नर-नारियोंके विचारों और कर्मोंपर उनकी अनुरूप प्रभाव डालते हैं। जब समाजमें आध्यात्मिक किक स्वार्थकी अपेक्षा ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेता है, जीवन जब कर्मक्षेत्रमें ही क्षणभङ्गुर बाह्य स्वार्थको आहुति देकर अनन्त कालतक रहनेवाले विराट् ति अनुरक्त होता है, तभी स्वार्थ और परार्थका ्यष्टि-स्वार्थ और समष्टि-स्वार्थका संघर्ष, विभिन्न स्वार्थोंकी प्रतियोगिता अधिकांशमें तिरोहित हो जाती र्वत्र प्रेम, शान्ति और ऐक्यका राज्य स्थापित हो ।

ष ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिंदुओंके धान और राष्ट्र-विधानमें जिस ब्राह्मण और संन्यासी- कर्मचारीका पद लेनेकी मनाही है, व्यवसाय-वाणिज्य कृषि आदि अर्थकरी वृत्तिमें अपनेको नियोजित क है, लौकिक धन-सम्पत् और प्रभुत्वपर अधिकार कर निषिद्ध है तथा राजा या धनीके अधीन किसी प्रकारव स्वीकार करना वर्जित है। कोई ब्राह्मण या संन् राजा या शासनकर्ता, सेनापति या जमींदार होकर सामर्थ्यके बलपर समाजके ऊपर अपना आधिपत्य ज अथवा किसी बड़ी फैक्टरी, किसी बड़े वाणिज्य अथवा कृषि-क्षेत्रका मालिक बनकर अर्थके उत्पाद वितरणके कार्यमें लगता है, अथवा नौकरी कर स्वातन्त्र्यको खोकर जीविका अर्जन करता है तो व हो जाता है, ब्राह्मणोचित और संन्यासोचित अधिकार हो जाता है, जाति और समाजको आदर्शके पथपर प करनेमें अयोग्य हो जाता है। ब्राह्मण और संन्यासी दारिद्र्य वरण करके सब प्रकारकी लौकिक पद शक्ति-मर्यादा और अर्थ-मर्यादाका लोभ त्याग क प्रकारकी प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विताके क्षेत्रसे ऊप ज्ञान-तपस्या और त्याग-व्रत तथा प्रेम-साधनाके और समाजके आध्यात्मिक आदर्शको जीवन्त रखते सब श्रेणियोंके नर-नारियोंको मानव-जीवनके इस सम्बन्धमें सर्वदा जाग्रत् रखते हैं; यही उनके लि है। जिससे उनकी आन्तरिक स्वाधीनता किसी प्रक होनेकी सम्भावना हो, ऐसे किसी कार्यमें उन्हें लिप्त ह नहीं तथा ऐसी किसी वृत्तिका अवलम्बन करना नहीं है। समाज और राष्ट्र उनके जीविका-संर स्वास्थ्य-विधानकी सुव्यवस्था करे; श्रद्धा, सत्व कृतज्ञताके कारण नत-मस्तक होकर सब श्रेणियोंके लो सेवा करें तथा उनके प्रदर्शित मार्गमें अपने नियन्त्रित करें। यही हिंदूकी समाज-विधि और राष्ट्र एक प्रधान बात है।

जिनकी आध्यात्मिकतामें निष्ठा हो, ऐसे आद नेता तथा राष्ट्रनेताओंके निर्माणके लिये ही ब्राह्मणकी दीक्षाकी व्यवस्था है तथा संन्यास-जीवन ही ब्राह्मण आदर्श है। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगतो हिताय च' सर्वतोभावेन ज्ञानसे समुज्ज्वल, प्रेमसे समुदार, कर्मो और त्यागमें सुमहान् बना देनेके उद्देश्यसे ही

नेसे ही सब श्रेणियोंके नर-नारी आदर्शके पथपर चलनेके
 होते हैं। ऐसा होनेपर बीच-बीचमें प्रकृतिवश
र उत्पन्न होनेपर भी जाति और समाज आदर्शसे
हीं होता। जो भविष्यमें समाजके आचार्य या जातिके
गे, उनको जीवनके प्रभातकालसे ही आध्यात्मिक
 द्वारा अनुप्राणित होकर, जिसमें वे ज्ञान, शक्ति और
आहरण करना सीखें तथा त्याग, संयम, पवित्रता और
क बलका अनुशीलन करनेके अभ्यासी बनें, इसी
 उनके लिये सबसे प्रथम ब्रह्मचर्याश्रमका विधान
या है। ब्रह्मचर्यकी शिक्षाको कर्म-जीवनमें, जाति और
कार्यान्वित करनेके लिये ही गार्हस्थ्याश्रम है। वयो-
ाथ-साथ क्रमशः जीवनको पारिवारिक बन्धनसे मुक्त
न्नत आध्यात्मिक स्वार्थबोधको पारिवारिक स्वार्थके
शः मुक्त करके, लौकिक स्वार्थ और परार्थके द्वन्द्व
र्गको चित्तसे निकालकर आत्मबोधको समाजात्मबोधके
शः विश्वात्मबोधमें परिणत करना होगा। इसीसे
आश्रमके अंदरसे होते हुए अन्तमें सम्यक् संन्यासमें
 परिसमाप्ति होती है। इस प्रकार संन्यासादर्शसे
त, सम्पूर्ण समाजको आत्मस्वरूप अनुभव करनेवाले,
 वेदवेदान्तविद् ब्राह्मण लोग ही हिंदूके समाज-
और राष्ट्र-विधानके प्रणेता हैं। वे लोग राष्ट्रके
के भी गुरु हैं, अर्थोपार्जन करनेवालोंके भी गुरु हैं
 और श्रमिक—सभीके गुरुस्थानीय हैं। सभी विषयोंमें
-संयमके उपदेष्टा हैं, शान्ति और प्रेमके आदर्शका
रनेवाले हैं; परंतु वे स्वयं राष्ट्रशक्ति और अर्थके
 ऊँचे उठे हुए हैं।

लोग जातिमें सङ्घबद्धरूपमें शान्ति-व्यवस्था और
 सुप्रतिष्ठित रखनेका उत्तरदायित्व अपने सिर लेते
 बाह्य आक्रमण और अन्तर्विप्लवसे रक्षा कर जन-
ो साधु-ब्राह्मणके द्वारा प्रदर्शित मार्गमें परिचालित
ठ्ये राष्ट्रिय सामर्थ्यका प्रयोग करते हैं तथा जिन्हें
र्थ और व्यष्टि-स्वार्थमें तथा विभिन्न प्रकारकी रुचि,
ृत्ति एवं शक्तिवाले नर-नारियोंके विभिन्न प्रयोजनोंमें
थापित करनेके उद्देश्यसे न्याय और धर्मके अनुसार
के प्रयोगका अधिकार दिया गया है, वे हिंदू समाजमें
नामसे कहे गये हैं। उस राष्ट्र-सेवक क्षत्रियवर्गकी

है। वे समस्त देश, जाति और समाजके कल्याण
कल्याणके रूपमें अनुभव करनेकी शिक्षा ग्रहण
जाति और समाजकी सेवाके लिये योग्यता प्राप्त
उद्देश्यसे वे शौर्य-वीर्यका अनुशीलन कर युद्ध-विद्यामें
प्राप्त करते हैं, निर्माण और सङ्गठन-शक्तिको
करते हैं, सब प्रकारकी प्रतिकूल अवस्थाओंमें
अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये चरित्रबल सञ्चय करते
सब प्रकारके प्रलोभनों और दुर्बलताओंपर वि
करनेके लिये न्याय-दण्ड सञ्चालन करनेकी श
करते हैं। इसीका नाम क्षात्रधर्म है। वे ब्राह्म
संन्यासीको पथ-प्रदर्शक उपदेष्टाके रूपमें मानकर
हैं, परंतु ब्राह्मणत्वके लिये लालायित नहीं रह
न सामाजिक और राष्ट्रिय उत्तरदायित्व छोड़कर स
अवलम्बन करनेके लिये ही उत्सुक होते हैं। सम
राष्ट्र उनसे जिस प्रकारकी सेवाकी आशा करता है, जिस
सेवाका भार उनके सिरपर दिया गया है, उसीके गौर
अनुप्राणित होकर वे अपनी सारी ज्ञान-शक्ति अ
शक्तिको अकुण्ठित हृदयसे उसी प्रकारकी सेवामें ही ल
हैं और उसीके द्वारा अपने जीवनको सार्थक करते
सेवाके द्वारा ही व्यष्टि-आत्माका समष्टि-आत्मासे योग
उनके प्राण प्रेमपूर्वक विश्वप्राणके साथ मिल जाते हैं
धर्म क्षात्रभावापन्न लोगोंको इस समुज्ज्वल आध्यात्मि
योगमें दीक्षित करता है।

हिंदू संस्कृतिके अनुसार राष्ट्रिय शक्तिका परिचालन
वालोंके लिये कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि अर्थकरी
लगना—अर्थके उत्पादन और वितरणमें स्वार्थ-विशि
मना है। राष्ट्र-सेवकगण अर्थके लिये अर्थसेवकोंके
निर्भर रहते हैं; और अर्थसेवक लोग अपनेको
रखनेके लिये तथा अर्थके सुनियत उत्पादन और वि
सुयोगके लिये राष्ट्र-सेवकोंके ऊपर निर्भर करते हैं। द
व्रती, स्वार्थबुद्धिरहित, व्यापकदृष्टिसम्पन्न, आ
आदर्शमें निष्ठा रखनेवाले मनीषी ब्राह्मण और संन्या
द्वारा निर्धारित विधानका अनुगमन करते हुए रा
क्षत्रियों तथा अर्थ-सेवक वैश्योंके प्रेमपूर्ण सहयोग
जाति और समाजमें साम्य, श्रृङ्खला, शान्ति, समृद्धि, न्य
धर्मका राज्य प्रतिष्ठित होता है तथा विभिन्न श्रेणियों

पने-अपने धर्मके आदर्शसे अनुप्राणित होनेके कारण
ानका लोभ नहीं करता तथा दूसरेकी मर्यादा (गौरव)-
र ईर्ष्यान्वित भी नहीं होता।

के सुनियन्त्रित उत्पादन और वितरणके द्वारा समस्त
(समाजके कल्याणके विधानमें जो लगे हुए हैं,
दूकी भाषामें 'वैश्य' कहते हैं। उनकी पारस्परिक
ता और प्रतिद्वन्द्विता तीव्र न हो, उनमेंसे प्रत्येक
ने अधिकारमें अनुरक्त रहकर स्वच्छन्दतापूर्वक
ाह्य सम्पत्तिको बढ़ा सके और समाजको श्रीसमन्वित
इसकी सुव्यवस्था हिंदू संस्कृतिने की है। अर्थकी
र्थके लिये नहीं है और न भोगके लिये ही है।
अर्थका सेव्य है। धर्मके लिये ही मनुष्यको जीवन
: रखनेकी आवश्यकता है, धर्मके लिये ही मनुष्यको
ादि बाह्य उपकरणोंकी आवश्यकता है, एवं धर्मसे मानव-
समुज्ज्वल और शक्तिशाली बनाये रखनेके लिये ही
क्षाकी आवश्यकता है। धर्म ही मनुष्यके व्यक्तिगत
ाष्टिगत जीवनकी सभी अवस्थाओंमें केन्द्रस्थानका
करके स्थित है—यही हिंदूका जीवनादर्श है।
साथ मनुष्यका सप्रेम मिलन ही धर्मका प्रधान लक्षण
ानव-समाजमें विरोध, संघर्ष, हिंसा, विद्वेष, घृणा और
ाधर्मका लक्षण है। मानव-समाजमें अर्थकी वृद्धि,
ानका प्रसार, राष्ट्रिय शक्तिका प्राबल्य—इनसे
्यके साथ मनुष्यका सौहार्दपूर्ण मिलन नहीं होता
ाव और संघर्ष बढ़ जाता है तो वह अर्थ, वह ज्ञान-
ाह राष्ट्रशक्ति मनुष्यकी उन्नतिकी परिचायिका नहीं
ी। मनुष्यके ज्ञान, वीर्य, अर्थ और कर्म बढ़कर
सुसभ्य न बनायें, प्रत्युत क्रमशः असभ्यताके मार्गमें
ो उसकी अपेक्षा इन सबका विकास न होना ही
ाञ्छनीय है। अतः सारा मानव-समाज तथा उसके
प्रत्येक जाति, प्रत्येक श्रेणी, प्रत्येक सम्प्रदाय,
ाक्तिका—जिसके द्वारा वह ज्ञान, वीर्य और अर्थसे समृद्ध
ुष्योचित परम कल्याणके मार्गमें अग्रसर हो सके, उसी
सामने रखकर राष्ट्रशक्ति, अर्थशक्ति और ब्राह्मण्य-
द्वारा—धर्मके आदर्शद्वारा सुनियन्त्रित होना
है।

संस्कृतिकी आध्यात्मिक नीतिके अनुसार, जो देशकी
राष्ट्रिय शक्तिके सञ्चालनका भार ग्रहण करेंगे, शासः
वे अर्थ-सेवासे पृथक् रहेंगे। जाति और समाजके र
कल्याणके लिये क्षात्रशक्ति और वैश्यशक्ति दोनोंकी
आवश्यकता है। परंतु किसी एक श्रेणीके लिये दूसरी
गौरव, मर्यादा एवं सुयोग-सुविधाके प्रति लोलुप दृा
ठीक नहीं। इसीसे संघर्ष उत्पन्न होता है। प्रत्ये
स्वधर्मके गौरव-बोधसे अनुप्राणित होकर अपने व
ही उत्कर्ष प्राप्त करे तथा उसके द्वारा देशके कल्य
अपने आन्तर एवं बाह्य जीवनकी सार्थकता सम्पादः
इसे धर्मका निर्देश मानकर सब श्रेणियोंके लोग श्र
आनन्दके साथ स्वीकार करें। हिंदूके सामाजिक और
विधानमें श्रेणीके साथ श्रेणीकी एवं सम्प्रदायके साथ स
की प्रतियोगिता और संघर्षका कम-से-कम अवस
इसकी व्यवस्था करनेकी चेष्टा की गयी है।

समाजके जिस स्तरके नर-नारी स्वाधीनतापूर्वक
शक्ति और कर्म-शक्तिके अनुशीलनके द्वारा देशके
विज्ञानकी उन्नति करने, शिक्षा-दीक्षाकी उन्नति करने,
के साथ राष्ट्रका सञ्चालन करने, बाह्य सम्पत्तिके
तथा जन-साधारणके सुख-स्वास्थ्यके विधानमें अपनेको
असमर्थ हैं, जो अपने धर्मानुकूल कर्तव्योंके निरूप
उनके भलीभाँति सम्पादन करनेके लिये परमुखा
अपने जीवनके सम्यक् विकासके लिये जिनको श्रेष्ठतर
आदेश और उपदेशके अनुसार चलना पड़ता है, वे
समाजमें 'शूद्र' नामसे कहे जाते हैं। वे ही देशके जन
हैं, सभी देशोंमें इन्हींकी संख्या अधिक होती है।
विचार-शक्तिसे युक्त और सङ्गठनमें निपुण ब्राह्मण, क्षा
वैश्यगण उनको विचार-शक्ति प्रदान करते हैं, उनके
नियमन करते हैं, उनके स्वार्थकी रक्षा करते हैं तथ
उन्नतिमें सहायक होते हैं और वे ही उनके अभि
हैं। उनका महान् उत्तरदायित्व समाजके नीति
शिक्षा-विधायक, राष्ट्र-सञ्चालक और धनोत्पादक ब्राह्मण
और वैश्योंके ऊपर होता है। समस्त जातिके कल्याण
यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन (शूद्रों) की सुशिक्ष
सन्तोष, उनके चित्तमें धार्मिक भावोंके उद्दीपन, उनके
और गृहादिकी सुव्यवस्था, उनके भीतर देशात्मबो
समाजात्मबोधके जागरण तथा उनमें समाजके उच्चत

दू धर्मके अपौरुषेय शास्त्र 'वेद' स्मरणातीत कालसे करते हैं कि समस्त मानव-समाज एक अखण्ड सत्तासे [है, एक अनन्त प्राण-शक्तिके द्वारा सञ्जीवित है, म पुरुषका विराट् देह है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और । विराट् देहके चार अवयव हैं। एक जीवित देहके यङ्गकी भाँति किसी जाति, श्रेणी या सम्प्रदायको दूसरी श्रेणी या सम्प्रदायसे विच्छिन्न करके उसका कल्याण-करना सम्भव नहीं है। इसका कोई भी अङ्ग स्वार्थ-ते ही व्याधिग्रस्त हो जाता है और समस्त देहको करनेमें प्रवृत्त होता है। यदि कोई अङ्ग अपनेको झकर दूसरे अङ्गोंको नीच माने तो वह अपनेको ार्गमें ले जायगा और साथ ही दूसरोंको भी ध्वंसके ारा देगा। समाजरूपी शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें विभिन्नता ार स्वाभाविक है, भगवान्की विश्वलीलामें यह । जिस प्रकार अवश्यम्भावी होती है, उसी प्रकार भेन्नताओंमें एक जीवन्त एकत्व ही इसका यथार्थ है। प्रत्येक अङ्ग अपने-अपने धर्ममें निष्ठायुक्त रहकर ण्ड एककी सेवामें लग जाय, तभी प्रत्येककी सत्ता ोती है। विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें प्रतियोगिता, प्रति-संघर्ष और संग्राम ही इस विराट् देहके व्याधि-। सबकी एकप्राणतामें ही इस देहका सौन्दर्य, वैभव और आनन्द प्रकाशित होता है। यह मानव-गवान्का विराट् विश्वमय शरीर है। इसके प्रत्येक ङ्गको उन्होंने स्वतन्त्रता प्रदान की है, वैशिष्ट्य ग्या है तथा पृथक्-पृथक् कर्माधिकार और शक्ति-देया है; परंतु सबके बीचमें एकत्वको ही उन्होंने ी बनाकर रक्खा है। यदि कोई अङ्ग एकत्वका ोगा, वैषम्यका उपासक होगा, तो वह नाना प्रकारके सन्तप्त होता हुआ समाजका अकल्याण करेगा। पनी शक्तिको विकसित करते हुए सारे समाजकी : उसके द्वारा सर्वान्तर्यामी भगवान्की सेवा करना श्रेणीके लिये कर्तव्य है। यही हिंदू संस्कृतिका त आदर्श है।

मैं अथर्ववेदके ऋषिकी एक आशीर्वाक्को स्मरणकर ग्का उपसंहार करता हूँ। इसमें हिंदू संस्कृतिका ाम-राज्यका आदर्श तथा साम्यवादियोंके साम्यका

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि व
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्य
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमन
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवा
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वस
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रय
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथ
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्य
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्त
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त
एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो भुनज्मि
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणो-
म्येक श्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान
देवा इवामृतं रक्षमाणाः
सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु

(अथर्व० ३

मानव-समाजकी सारी जातियोंके समस्त वर्ग नारियोंको लक्ष्य करके ऋषि कहते हैं कि 'मैं इस प्रक अग्नि (विश्वदेवता) की सेवा करता हूँ, जिससे तु हृदयोंमें सम्यक् मिलन हो, मनोंमें सम्यक् मिलन द्वेषभाव दूर हो जाय। गाय जिस प्रकार अपने बछड़ेके प्रति आकृष्ट होती है, तुम भी उसी प्रकार एक प्रति आनन्दपूर्वक आकृष्ट होओ ॥ १ ॥ पुत्र पिताके व्रतका अनुसरण करे, माताके साथ एकमना हो ज मधुमती वाक्के द्वारा स्वामीके चित्तको शान्तिमय करे भाई भाईसे द्वेष न करे, बहिन बहिनसे द्वेष न करे। सब एक लक्ष्य-साधनमें, एक व्रत-पालनमें सम्मिलित सुभद्र वाक्यसे परस्पर सम्भाषण करें ॥ ३ ॥ जिस 'ब्रह्म' या ईश्वरभावनाके बलसे देवगण परस्पर विच्छि होते, कोई किसीसे विद्वेष नहीं करते, सारे मनुष्योंके उसी प्रकार एक मतिका सम्पादन करनेवाले सम्यक् उत्पन्न करनेवाली ब्रह्मभावनाकी विधि प्रणयन क

नुष्य अपने-अपने कार्यभारको वहन करे। परस्पर न होओ, परस्पर प्रिय सम्भाषण करते-करते अग्रसर मैं तुमलोगोंको एक लक्ष्यमें निबद्धदृष्टि तथा होनेके लिये आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥ एक ही तुम सब जल पियो, एक ही अन्नसत्रमें भाग करके करो। मैं तुम सबको एक ही स्नेह-रज्जुमें एकत्र करता हूँ। एक ही लक्ष्यसे आबद्ध होकर तुम सब ी परिचर्या करो। रथचक्रके अरे जिस प्रकार एक केन्द्रित करके अपना-अपना कार्य करते हैं, तुम

सब भी उसी प्रकारसे एक ही सुमहान् आदर्शसे उ होकर, एक ही परम देवताको जीवनके केन्द्रमें रखकर, अपने-अपने व्रतोंका सम्पादन करते हुए उ करो ॥ ६ ॥ एक ही संवनन अर्थात् साम्यसाधक द्वारा मैं तुम सबको एक लक्ष्यके साधनमें एकमना क सब एकान्न-भोजी बनो। स्वर्गके अमृतकी रक्षामें जि सारे देवता एकमना होते हैं, उसी प्रकार अखण्ड म आदर्शकी रक्षामें तुम सबमें रात-दिन निरन्तर ऐकमत्य रहे ॥ ७ ॥



भारतीय संस्कृतिकी मूलधारा

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

कृति किसी देश या जातिकी आत्मा है। इससे न सब संस्कारोंका बोध होता है, जिनके सहारे वह मूहिक या सामाजिक जीवनके आदर्शोंका निर्माण । यह विशिष्ट मानवसमूहके उन उदात्त गुणोंको करती है, जो मानव-जातिमें सर्वत्र पाये जानेपर भी हकी विशिष्टता प्रकट करते हैं और जिनपर उनके अधिक जोर दिया जाता है।

ने दीर्घ अनुभव, तपःपूत ज्ञान और चिन्तनद्वारा आत्मदर्शी ऋषि इस निष्कर्षपर पहुँचे थे कि व, आत्मसाक्षात्कार, आत्मदर्शन ही मानव-जीवन- पुरुषार्थ है। जीवन और जगत्में दो प्रकारके । एक वह जो नित्य परिवर्तनशील है, जो प्रतिक्षण हा है; दूसरा वह जो इस परिवर्तनके मूलमें है, है पर उसीके कारण और उसीको लेकर जगत्की दृश्य वस्तुओं, सम्पूर्ण व्यक्त पदार्थोंका अस्तित्व त्के पीछे जो यह महती अव्यक्त शक्ति है, उसका करने और उसे अनुभव तथा धारण करनेसे यह असहाय, दुर्बल, अशक्त दीखनेवाला मानव-जीवन कल्याणकारी शक्ति एवं वैभवसे पूर्ण हो सकता है। छे शक्तिका जो अमित कोष छिपा हुआ है, उसकी और सिद्धिसे ही मानव-जीवनका आदर्श पूर्ण हो है। भारतीय सामाजिक जीवनकी विविध श्रेणियाँ शक्ति और मर्यादाके अनुसार इसी दिशामें, इसी

को न समझ सकनेके कारण अनेक छिद्रान्वेषी यह आक्षेप करते हैं कि भारतीय संस्कृति स्व कल्पनाओंकी अस्थिर भूमिपर खड़ी है और जगत भूमिसे उसका सम्बन्ध ही मिट गया है। यह सर्व धारणा है। भारतीय संस्कृति खड़ी तो इसी भू परंतु उसका सिर आकाशकी ओर उठा है। मान जमीनपर है, पर देखता सामने या ऊपर है—उ ऊपरकी ओर उठा है। भारतीय संस्कृति भी अन्तरिक्षको भेदकर उसके अनन्त रहस्योंको लिये विकल हुई थी। यह शुद्ध वैज्ञानिक वृत्ति थ अध्यात्मविद्यामें जो उन्नति की थी, उसमें पदा उपेक्षा न थी; बल्कि उसकी मूलप्रकृतिको जान यह आवश्यक था। उसने पदार्थविद्या, शासन- समाज-व्यवस्था, अर्थविद्या, शरीरशास्त्र, चिकि वास्तुकला, युद्धविद्या, जनन-विज्ञान आदि भौतिक क्षेत्रमें कुछ कम प्रगति न की थी। वह वायु- सहायतासे समय और दूरीके व्यवधानपर विजय सकी थी; वह सूर्य-विज्ञानके द्वारा वस्तुओंके रू बदल देने, एक जातिके पदार्थको दूसरी जाति देने, लोहेको सोना करने और मृत्युपर भी, एक विजय प्राप्त करनेमें समर्थ हुई थी; उसकी समाज- व्यक्तिके विकासकी सम्पूर्ण सुविधाओंके होते समाज या समूहके अन्तिम हितकी भावना प्र

त्व न प्राप्त किया था । हठयोगियोंने शरीरकी
ऐसी शक्तियों एवं शक्ति-संस्थानोंका पता लगाया था,
ज्ञान आधुनिक शरीरशास्त्रियोंको अबतक नहीं लग
ाथवा किसी अंशमें लगनेपर भी वे उनका उपयोग नहीं
ये हैं । जीवनका कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था, जो उसने
छोड़ा हो । हाँ, एक बात अवश्य थी । इन सब
अथवा विज्ञानोंके मूलमें उसी परम पुरुषार्थ या
ो प्रेरणा थी । सब विद्याएँ उसी ओर प्रधावित थीं ।
आधार वही था । जीवनका यह आध्यात्मिक आधार
ीय संस्कृतिकी विशेषता थी ।

ावसमाजमें दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं ।
इम केन्द्रोन्मुखी ('सेन्ट्रीपेटल') प्रवृत्ति कहते हैं
ारीको वृत्तोन्मुखी । पहली परिधि या वृत्तसे केन्द्र-
ओर जाती है; वह कहीं रहे, केन्द्रके साथ वह बँधी
ं ध्यानस्थ है । दूसरी वह, जो केन्द्रसे परिधिकी
ाती है । भारतीय संस्कृति अपने मूलरूपमें
ी रही है । वह जगत्‌में रहकर भी आदर्शोन्मुख
बाहर रहकर भी अन्तःस्थ, आत्मस्थ है । इसके
ाश्चात्त्य संस्कृति बाह्यप्रसारी है; वह बाहरकी ओर
केन्द्रसे दूर फैलनेकी ओर उसकी प्रवृत्ति है ।

दो भिन्न प्रवृत्तियोंसे दो सभ्यताओंका जन्म हुआ
ब प्रवृत्तियाँ मूलतः भिन्न थीं तो उनकी साधनाके
ी भिन्नता आयी । भारतीय संस्कृति आचरणप्रधान
समें अन्तर्वृत्तियोंके उत्कर्षपर जोर दिया गया;
माजकी प्रत्येक इकाई या घटकसे आत्मशुद्धिकी
हले की गयी; उसमें व्यक्तिके जीवनको त्यागकी ओर
गया । क्योंकि त्याग और आत्मनियन्त्रण एवं
द्धिके बिना समाजके घटकोंमें सच्चे सामाजिक
ी भावना तथा तदनुकूल आचरणका होना कठिन है ।

के विरुद्ध ग्रीक या पाश्चात्त्य संस्कृति मनुष्यके
सुधारपर अधिक जोर देती है । समाज-सेवा उसका
द्देश्य है; पर आत्मशुद्धिके मुख्य दृष्टिबिन्दुपर जोर
कारण वहाँ व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण
में बहुत बड़ा अन्तर आ गया और धीरे-धीरे
विकृत होकर नष्ट हो गयी । जब व्यक्ति अपने
समाजके उद्धारका प्रयत्न करता है, तब सभ्यताका
विकृत होना स्वाभाविक है । इसके विरुद्ध जब
प्रत्येक घटक आत्मशुद्धिपर ध्यान देता है, स्वा
नियन्त्रण रखता है, तब सम्पूर्ण समाज अपने-आप
जाता है । लड़कपनमें मैंने बीरबलकी बुद्धिके
सम्बन्धमें अनेक कहानियाँ सुनी थीं । इन्हींमेंसे ए
कहा गया था कि एक बार बीरबलकी सलाहसे
नगरके किनारेपर तालाब खुदवाया और प्रत्येक
दी गयी कि रातको एक-एक घड़ा दूध उसमें
योजना यह थी कि एक दूधका तालाब दूसरे दि
हो जायगा । पर दूसरे दिन सुबह जब अकबर
साथ वहाँ पहुँचे तो देखा कि तालाब जलसे पूर
दूधका नाम नहीं । बात यह थी कि प्रत्येकने
सब तो दूध डालेंगे ही, यदि मैं एक घड़ा पानी डाल
उतने दूधमें क्या पता चलेगा । जहाँ व्यक्ति अ
नहीं देखता, आत्मशुद्धिसे प्रेरित नहीं होता, वहाँ यह
होती है ।

हमारी समाज-व्यवस्थामें श्रमिकसे लेकर ज्ञान
(शास्त्रकी शब्दावलीमें शूद्रसे ब्राह्मणतक) सबकी उ
थी; सबको उचित स्थान मिला था । पर क्षत्रिय और
(अर्थात् शासन और धनसत्ता) मिलकर भी ज्ञा
उसके सर्वोच्च स्थानसे नीचे न गिरा सके थे । जि
त्यागकी जितनी ही क्षमता थी, उसे समाजमें उतना
स्थान मिला था; उसके शब्द, उसके आदेश उतने
थे । समाजनीतिका नियन्त्रण राजाके हाथमें न थ
उन महात्माओंके हाथमें था, जो अपने सुखोपभोगकी
बाह्य सामग्रियों एवं सुविधाओंका त्याग करके केवल
चिन्तन तथा अपने अनुभव एवं ज्ञानसे समाजके
लिये जीते थे; जो समाजसे कम-से-कम लेते थे और
से-अधिक देते थे; जिनको स्वयं किसी बाह्य सु
अधिकारकी आवश्यकता न थी; शासन-शक्तिके
उनके पथ-प्रदर्शनकी अवहेलना सम्भव न थी । यही
बलकी प्रतिष्ठा, संसारकी सम्पूर्ण शक्तियों वा शक्ति
ऊपर साधुत्व, त्याग, तपकी प्रतिष्ठा भारतीय सं
मुख्य विशेषता रही है । समाज जीवनके आदर्शों
प्रेरणाओंके लिये ऋषियों और तपस्वियोंकी ओर

र्के प्रति उदासीनताका भाव था ? नहीं । इस
भी वह मानव-प्रकृतिमें निहित सत्योंके मूलमें
ई थी । समाजका मूल मनुष्यका 'स्व' है । यह
भाव ही जीवन तथा उसकी समस्त प्रेरणाओंका
है । मनुष्य जो कुछ करता है, अपने इसी 'स्व'को
रता है । जगत्के सारे सम्बन्ध आत्मरूपको लेकर
।'में मनुष्यका जो प्रेम है, उसीसे वह टिका हुआ
लिये 'स्व'का विरोध नहीं, बल्कि उसका अनुभव
कार ही समाजके हितकी दृष्टिसे वाञ्छनीय है ।
कल्याण या परम पुरुषार्थके लिये इस 'स्व'का
करके इसे उच्च मनोभूमिकाओंपर स्थापित करनेकी
ता पड़ती है । इसके लिये क्षुद्र 'स्व' और महत्
एकत्र करना पड़ता है । क्षुद्र 'स्व' महत् 'स्व'का
नहीं, बीजरूप है । जैसे जरासे बीजमें सम्पूर्ण वृक्ष
हुआ है, तैसे ही क्षुद्र (यानी व्यक्तिके) 'स्व'में
व' घनीभूत एवं अन्तर्निहित है । ज्यों-ज्यों क्षुद्र
शोधन एवं संस्कार होता है, उसमें महत् 'स्व'की
बढ़ती जाती है, आदमी स्वार्थसे ऊँचा उठता है
तमें यही क्षुद्र 'स्व' विराट् 'स्व'में बदल जाता है ।
मात्रसे अभिन्नता एवं परम ऐक्यकी अनुभूति होती
प्रकार विश्वप्रेमकी सिद्धि होती है । इस आध्यात्मिक
ा समाजकी विभिन्न श्रेणियोंमें सामञ्जस्य स्थापित
ा था और व्यक्ति तथा समाजकी तात्त्विक अभिन्नता-
व किया गया था ।

ा, धन और शक्तिकी अवज्ञा हमारे यहाँ नहीं की
इनकी आवश्यकता औसत दर्जेके व्यक्ति, वर्ग या
है; पर इनका उपयोग मनुष्य किस प्रकार करता
देखकर ही उसकी संस्कृतिका अनुमान लगाया जाता
ग ब्राह्मण था, परम विद्वान् था, शक्तिमान् भी था ।
द्या और शक्तिका दुरुपयोग किया, इसलिये राक्षस
। जब मनुष्य धनसे पर-पीड़न करता है तो कोई
उच्च संस्कृतिका नहीं कहता । आज संसारमें विद्याकी
ीं, शक्तिकी कमी नहीं, धनकी कमी नहीं; तब भी
द्वारा मानव-जाति और मानव-शक्तियोंका भयङ्कर
हो रहा है । पश्चिमके बड़े-बड़े वैज्ञानिक अत्यन्त
आविष्कारोंके द्वारा मानव-जातिके भविष्यको खतरेमें

नहीं कह सकते । भारतवर्षमें इन साधनोंपर स
आत्मबलका नियन्त्रण सिद्ध करता है कि हमारी सं
केवल श्रेष्ठ थी, बल्कि व्यावहारिक दृष्टिसे भी उ
उदाहरणों एवं प्रतीकोंको जन्म दिया था । वि
और शक्तिके उचित उपयोगके लिये ही हमारे
आध्यात्मिक आधारपर प्रतिष्ठित किया गया था ।

यह इसी आध्यात्मिक अधिष्ठानका परिणाम
मैक्समूलरके शब्दोंमें 'प्राचीन वंश विनष्ट हुए, प
ह्रास हुआ, नये साम्राज्योंकी नींव पड़ी; किंतु इन
और हलचलोंसे हिंदुओंके आन्तरिक जीवनमें
नहीं हुआ ।' युग बीतते गये हैं, क्रान्तियाँ औ
क्रान्तियाँ हुई हैं, अनेक जातियाँ बाहरसे आयी
भारतीय संस्कृतिकी मूलधारा आजतक वही है—अ
त्याग और तपके जीवनद्वारा सच्ची सामाजिक र
सिद्धि ।

हमारे धर्ममें, हमारी समाज-व्यवस्थामें, हमा
क्रममें, हमारे चिकित्साशास्त्रमें, हमारे साहित्य औ
कलामें जीवनकी इसी उदात्त कल्पना और संस्कृति
है—अन्धकारसे उठकर प्रकाश, असत्यसे सत्य औ
अमरत्वके स्रोतकी ओर यात्रा करनेकी वृत्ति ।
सार्थकता त्यागमें, आत्मार्पणमें, अपनेको देनेमें
सन्देश हमारी संस्कृतिका सन्देश है ।

क्या इसका अर्थ निष्क्रियता है ? क्या इ
जीवनकी प्रेरणाओंकी उपेक्षा है ? क्या इसका अर्थ अ
है ? हमारे जीवनमें आज निष्क्रियता और अकर्म
गयी है । हम जीवनकी महती प्रेरणाओंसे दूर हो
पर इसका कारण यह है कि हम आत्म-विस्मृत
अपनी संस्कृतिके आदर्शोंकी ओरसे आँखें मूँदे है
अन्यथा उत्तरोत्तर जीवनके शोधमें आत्मार्पण,
परम नियन्त्रणकी स्थापना, मृत्युपर विजय, स्वार्थ
कल्याणके आदर्शकी प्रतिष्ठा—यही तो हमारी सं
पहले अपनेको निर्मल करो, फिर निर्मल अन्त
जगत्के हितमें लगाओ—आत्मानुभव एवं आत
लगाओ, यही हमारी संस्कृतिकी अमर वाणी है । व
जो शताब्दियोंसे मानवताके हृदयको पुकार र

हिंदू संस्कृति

(लेखक—म० श्रीशम्भूदयालजी मोतिलावाला)

हिंदू संस्कृतिके गुण

ू संस्कृतिके प्रवर्तक वे महापुरुष हैं, जिन्होंने ईश्वर ृतिके रहस्यको आदिसे अन्ततक अनुभव कर लिया जीवत्वसे ब्रह्मत्वको प्राप्त कर चुके थे। इसलिये इस ं जीवको परमानन्दमें लय करनेके गुण हैं।

ना ही भले या बुरे कार्यमें ले जानेवाली है

र महान् और आनन्दमय है। कामना ईश्वरकी ही , अतः कामनाका 'बड़ाई' तथा 'स्वाद' में रहना क है। लेकिन जब कामना मिथ्या भोगोंमें फँसकर स्वाद' या 'बड़ाई' का रसास्वादन करती है तो वह अपने मेथ्या (संसार) में समझकर, उन मिथ्या भोगोंका क निर्माण करती है और फलतः दुःख भोगती है। ति कामनाको इस भ्रान्तिसे बचाकर वास्तविक चलनेका अभ्यास कराती है। तब इसे वस्तुतः सुख ा है।

सत् और असत् पथोंकी व्याख्या

ूधर्ममें पुण्य और पापके ये मार्ग कहे गये हैं।

की सीढ़ियाँ—

( ) तन, मन तथा इन्द्रियोंको प्राकृत ढंगसे भीतर-बाहरसे पवित्र रखते हुए अपने वशमें करके युक्तिपूर्वक सत्कार्योंमें लगाना।

( ) नित्य परोपकार करना।

( ) जीवोंपर दया करना और यथाशक्ति सत्पात्रको दान देना आदि……।

र्गकी सीढ़ियाँ—

( ) तन, मन तथा इन्द्रियोंको मलिन करना और अपने वशसे बाहर होने देना तथा असन्तोषको बढ़ाना।

( ) झूठ, चोरी और लूट आदि करना।

) हिंसा करना।

र्य यह कि जिस विचार या कार्यसे परिणाममें अपने और ायोंमें सुख-शान्तिकी वृद्धि हो, वह पुण्यमार्ग है और ार या कार्यसे अपने अथवा दूसरे प्राणियोंके दुःख बढ़ें, वह पाप-मार्ग है।

सद्ग्रन्थोंमें पुण्य-पापकी विस्तारसे व्याख्या की ऐसे बहुत अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इतनेपर वैद्यके बिना औषधका ठीक उपयोग नहीं होता, मर्मी व्याख्याताके बिना ग्रन्थोंकी दशा होती है। हिंदूधर आदेशों (आर्डिनेन्सों) में अपराधियोंके लिये इस लं परलोकमें भय बताया गया है, उन आदेशोंका अ लोग उपहास करते हैं और कहते हैं—'इनसे वहम (होता है और वास्तविकता दब जाती है।' उनको य नहीं कि भ्रम होता ही अपराधीको है और ये आदे (शास्त्र) अपराध करनेसे मनुष्यको रोकते हैं वास्तविकता दबती नहीं, उलटे अधिक अच्छी तरह आती है। वास्तविकता मायाके आवरणमें ही पक्व हे पक्व होनेपर वह स्वतः आवरणको दूर फेंक देती है शिशु गर्भाशयमें पकता है, पक्षी अण्डेमें पकता फलियोंमें पकता है, इसी प्रकार ज्ञान समाधिमें पक्व हे वास्तविकता निरपराध स्थितिमें परिपक्व होती है और स्थिति इन पापसे डरनेवाले (शास्त्रीय) ग्रन्थोंसे द है। निरपराध अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। निर्मल भक्तिका प्रवाह उमड़ता है और फलतः भक्त साकार प्राप्त कर लेता है। इस दुनियाके विषयी 'अहरन (छली) प्राणी भक्त नहीं हो सकते। उनकी कूप बुद्धि अपने अहङ्कारमें घिरी हुई इस संसाररूपी कुं चक्कर लगाती रहती है।

अनुशासन

हिंदू संस्कृतिका अनुशासन फौजी या पुलिसका अ नहीं, वह प्रेमका अनुशासन है। प्रेममें स्वार्थ-कामन होती। प्रेममें आत्मसमर्पण किया जाता है। त्या उपकारकी बड़ी महिमा है इस संस्कृतिमें। त्याग—ह धर्म या कर्तव्यका त्याग त्याग नहीं है। त्यागका अ मायामें फँसा जीव आसक्तिके बन्धनोंको युि शिथिल करता हुआ कामनाओंको छोड़ दे और जिस क सङ्कल्प किया हो, उसे पूर्ण करके या उसका उचित स करके नवीन सङ्कल्पोंको प्रारम्भ न करे। जिनकी अपनेसे बँधी है, उन्हें यथासम्भव निराश न करे। त्यागसे भी दयाका महत्त्व अधिक है। संतवाणी है— बिन संत कसाई।'

ोकी अनुचित कामनाकी सामग्रीको बढ़ा देना दया नहीं दयाका अर्थ तो है कि किसी विवश जीवके बन्धन-ल-पुर्जे और बिगाड़कर उसके छूटनेमें रुकावट कर । दया है जीवको बन्धनोंसे छूटनेकी ओर प्रेरित

अनुशासन, जो प्रेम, त्याग और दयापर स्थित है, ' या ऐसे किसी 'बिल'की अपेक्षा नहीं करता। सभ्यतामें रँगे लोगोंको चाहिये कि वे कामनाको इस ऋषिभूमिके निर्मल प्रेमको दूषित न करें। प्रेमके दके सम्मुख कामना-वेश्याके विषय तुच्छ हैं। स निर्मल प्रेमका आराधक है, जहाँ दो भाइयोंके ोध्याका राज्य चौदह वर्षतक गेंदके समान लुढ़कता । प्रेममें राज्य या वैभवके लोभका लेश नहीं, अपने । प्रश्न नहीं। यह वह आदर्श है, जिसमें पतिके दमयन्ती अपने पिताके राजभवनमें भी जंगली फल-र्वाह करती है। इस प्रेमका दिव्य अनुशासन है—ा-बेटी माँ-बापके, छोटा भाई बड़े भाईका, बहू सास-देवरानी जेठानीकी, पत्नी पतिकी, देवर तथा छोटी ाभीके—इस प्रकार सब छोटे अपने गुरुजनोंके ो सेवक हैं।'

ा माता-पिताके घरमें देवी है, पतिके घरमें लक्ष्मी के समीप जगदम्बा है। इस संस्कृतिमें स्त्री प्रत्येक आदरणीया है। इस संस्कृतिमें कामनाका मुख बँधा । पुरुषके लिये अपनी पत्नीके अतिरिक्त शेष सभी मा, बहिन या बेटी समझनेकी शिक्षा दी गयी है। समय इसीलिये गोत्र, शासन आदि बड़ी सावधानीसे ते हैं कि लड़की कहीं किसी दूर सम्पर्कमें भी बहिन होती!

हारमें जाति-पाँतिका विचार चलनेपर भी सब गाँव-चा, ताऊ, बुआ, बहिन कहकर पुकारते हैं। इसमें कोई भेद नहीं है। प्रत्येक जातिका वृद्ध आदरणीय । सेवक अपने स्वामीको पिताके समान और स्वामी पुत्रके समान समझता है। यही पिता-पुत्र-सम्बन्ध । शिष्यका चलता है। जब हिंदू संस्कृतिका बोलबाला के इस अनुशासनमें न तो 'हड़तालें' होती थीं और न्स' की नौबत आती थी। श्रीरामने पिताकी

अपने ही मृत पुत्रका कफन उतरवा लिया। जिस र पाये इतने दृढ़ एवं कामनारहित हों, उसे विदेशी कैसे मिटा सकते थे।

सब जातियाँ कर्तव्य तो अपनी जातिका पालन क परंतु एक जातिसे दूसरी जातिका सम्बन्ध भाई-थ था। प्रेमके कारण छोटे-बड़ेका भाव नहीं था। न तो द्वेष था और न एक दूसरेकी निन्दा करता था। अनुशासनमें कुम्भ-जैसे मेलोंपर सब एकत्र स्नान क पूँजीपति अपना सर्वस्व दीनोंको लुटाकर कंगाल ब गौरव मानते थे। दीपावलीपर एक समान सारे घरोंप जगमग करते थे। करवा चौथको भारतकी समर चन्द्रमाको अर्घ्य देकर एक साथ एक समय अप घरोंमें मुखमें ग्रास उठाती थीं। कितनी बड़ी ज प्रेमके कारण एकभावमें गुँथी थी। जहाँ भावोंमें ि हो, वहाँ 'टंटा' (झगड़ा) क्या। प्रेमने सब सामञ्जस्यके साथ अपने-अपने कर्तव्योंमें बाँध रक्खा द्वेषके लिये अवकाश नहीं था।

तात्पर्य

यह सम्पूर्ण संसार सनातन देवता अर्थात् ' प्रकृति है, यही रामका राज्य है। इसकी गद्दीपर ठीक-ठीक राज्य वही कर सकता है, जो रामसे उ चुका हो। जो ज्ञानी—आत्मानुभवी हो। उसके अधि कर्मचारियोंमें ये गुण होने चाहिये—

१. किसीसे वैर-भाव न हो।
२. अपने पदका अभिमान न हो।
३. न्याय करनेमें भयभीत न होता हो।
४. प्राणिमात्रपर दयाभाव रखता हो।
५. हिंसा करनेवाला न हो।
६. सत्य सहज प्रिय हो।
७. क्रोध करनेवाला न हो।
८. त्यागी हो।
९. किसी प्रकारकी लालसा न रखता हो।
१०. ईश्वरविश्वासी और निर्मल अन्तःकरणका हो

भारत अब स्वतन्त्र हुआ है; परंतु इसे अभी संस्कृतियोंके प्रभावोंसे स्वतन्त्र होना है। काम दौड़नेवाले देशोंकी झूठी चमकमें भारतको नई

ो। जो परमाणु बमसे रक्षाकी बात सोचते हैं, उन्हें
कि बाहरी किलेबंदी कुछ नहीं कर सकती, जब
ाका सर्प आस्तीनमें छिपा है। युक्त आहार-विहारकी
शान्तिप्रद है। भारत सदासे शौच, स्नान, जप, तप,
: प्राकृतिक नियमोंसे पञ्चतत्त्वोंका शोधन करता
। यही सुख-शान्ति पानेका सच्चा आविष्कार है।
ामके कारण यहाँ ग्रामके शाकपातको स्वीकार करके,
चरता अखिलेश गोपाल बना पोले बाँसके छिद्रोंमें
ना रहस्य गाया करता था—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत
(गीता १४

विदेशी संस्कृतिके अनुयायी अरब-खरबपति सि
बन्द खिड़कियोंमें, मखमलकी गद्दियोंपर बैठकर इस
तत्त्वज्ञानका स्वप्न भी नहीं देख सकते। यह तो आज
लिये सोचनेकी बात है कि सुसंस्कृत कौन है, सुसभ्य
है। इधर-उधर भटकनेवाली अन्य संस्कृतियोंके पीछे भ
सम्पूर्णाङ्ग समुज्ज्वल हिंदू संस्कृतिकी उपेक्षा नहीं होनी च

संस्कृतिकी समस्या

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम्० ए०)

ेक देशकी प्राचीन संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था,
ाज, धार्मिक कृत्य, कला, साहित्य आदिमें कुछ ऐसी
श्य मिलती हैं, जो भारतीय-सी जान पड़ती हैं। प्रायः
चीन धर्मग्रन्थों तथा दर्शन-शास्त्रोंमें यत्रतत्र प्राचीन
सिद्धान्त बिखरे हुए मिलते हैं। इनके एक नहीं,
उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसी अङ्कके कई लेखोंमें
तलाया गया है। देखना यह है कि यह समता
से ? इस सम्बन्धमें तीन ही बातें सम्भव हैं। एक
के विभिन्न देशोंमें स्वतन्त्र रीतिसे लोगोंके मस्तिष्कमें
बातें आयीं। दूसरे यह कि वे किसी तरह भारतसे
ोंमें गयीं। इसीमें या तो भारतीयोंने उन देशोंमें
अपनी संस्कृतिका प्रचार किया या वहाँके लोग भारत
ाहाँकी कुछ बातें अपने साथ ले गये। तीसरे यह कि
देशोंसे वे बातें भारतने ही लीं। पाश्चात्त्य विद्वान्
ासरी ही बात मानते हैं। बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखकर
सिद्ध किया है कि प्राचीन मिस्र, चीन, यूनान
भारतने क्या-क्या सीखा। ईसाई तथा इस्लामधर्मका
तना ऋणी है। एकसे उसने भक्ति, और दूसरेसे उसने
ो शिक्षा प्राप्त की। पर यदि यह दिखाया जा सके
तीय संस्कृति ही सबसे प्राचीन है और उसीके आधार-
य देशोंकी संस्कृति विकसित हुई, तो इस मतका स्वतः
हो जाता है। उसके साथ ही प्रथम मत भी नहीं
क्योंकि सबसे प्राचीन एक संस्कृति हो, जिसोर अन्य

अवश्य है कि विभिन्न देशोंकी संस्कृतिका विकास
रूपसे हुआ। पर उसके माननेवाले इने-गिने विद्व
अधिकांश विद्वानोंका यही मत है कि विभिन्न संस्कृ
कुछ-न-कुछ परस्पर सम्बन्ध अवश्य है। अन्ततः
दूसरा ही मत रह जाता है और उसके विवेचनमें
होगा कि विभिन्न देशोंकी संस्कृतियोंमें भारतीय सं
समावेश कैसे हुआ।

इसपर विचार करनेके लिये हमें अपने प्राचीन इति
ही आधार मानना पड़ेगा। पाश्चात्त्य विद्वानोंद्वार
इतिहासके आधारपर हम नहीं चल सकते, क्योंकि
मत तथा उनकी शैली भिन्न है। प्रस्तुत विषयपर
करनेमें सबसे प्रथम यही प्रश्न उठता है कि क्या मा
किसी एक ही स्थानपर हुई और धीरे-धीरे मनुष
भू-भागोंपर फैल गये या विभिन्न भूखण्डोंमें समय
स्वतन्त्र रीतिसे मानव-सृष्टि हुई ? हमारे यहाँके इ
पहला ही मत मान्य है। पुराणोंमें जो सृष्टिक्रम दिया
उससे यही सिद्ध होता है कि प्रथम मानव-सृष्टि भा
और उसका विस्तार समस्त संसारमें हुआ। पुराणोंके
पहले महाशक्तिमान् नारद, मरीचि, वशिष्ठ आदि
दस मानस पुत्र हुए, पर वे सृष्टिका विस्तार नहीं क
ब्रह्माजी तब इस सोचमें पड़ गये कि सृष्टिका सन
विस्तार किस प्रकार हो। इसी समय उनका शरीर दो

ने शतरूपासे पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं, जिनमें प्रियव्रत
ानपाद नामके दो पुत्र और आकूति, देवहूति तथा
तीन कन्याएँ हुईं। उनमेंसे मनुने आकूतिका मरीचि
देवहूतिका कर्दम प्रजापति और प्रसूतिका दक्ष
ः साथ विवाह कर दिया। उन्हींकी उत्पन्न सन्तानोंसे
सार भरा हुआ है। भागवतके तीसरे स्कन्धमें
स्तृत वर्णन मिलता है। पाँचवें स्कन्धमें बतलाया
के पृथ्वीपर राजा प्रियव्रतके रथके पहियेकी लीकसे
: सात समुद्र और सात द्वीपोंकी रचना हुई। चतुर्थ
बतलाया गया है कि राजा पृथुके पहले इस भूमण्डल-
भी पुर, ग्रामादिकी कल्पना नहीं थी। पिताके
ाजाओंको जीविका देनेवाले महाराज पृथुने सब
जहाँ-तहाँ ग्राम, पुर, नगर, दुर्ग, वीरोंके रहने
न, पशुशालाएँ, छावनियाँ, खानें, किसानोंके गाँव
ोंकी तलहटीमें बस्तियाँ बसाकर सबको यथायोग्य
ान प्रदान किया—

ास्मिन् भगवान् वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता।
ासान् कल्पयाञ्चक्रे तत्र तत्र यथार्हतः॥
ान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च।
ान् व्रजान् सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान्॥

(श्रीमद्भा० ४। १८। ३०-३१)

तरह भारतसे ही मानव-सृष्टिका विस्तार अन्य भागोंमें
ारतवर्षमें भी मानव-सृष्टिका आरम्भ ब्रह्मावर्तमें माना
यह प्रदेश देवताओंसे निर्मित और आध्यात्मिक
गया है। भगवान् राम, श्रीकृष्ण आदिके अवतार
शमें हुए। हिंदू धर्म तथा संस्कृतिके आधार वेद हैं,
ुषेय तथा नित्य माने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी
से प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। जिन-जिन भूमियोंपर
हिंदू आबाद होते गये, वहाँ उनके साथ वैदिक
भी पहुँची। पर संसारका केन्द्र या हृदय भारत ही
पने शास्त्रोंमें उसे कर्मभूमि कहा गया है। अन्य
केवल भोगभूमि हैं। कालान्तरमें भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके
की भिन्नताके कारण वहाँ जाकर बसनेवाले भारतीयोंके
: आकृतियोंमें भी भिन्नता आ गयी। जल-वायुका
वेचारपर भी प्रभाव पड़ा। आने-जानेकी असुविधाओं-
कई देशोंका भारतसे सम्पर्क छूट गया। इसका

कि वहाँके प्रवासी भारतीय भारतमें विदेशी तथा भि
प्रतीत होने लगे। जब शरीरके किसी अङ्गको हृद
रक्त नहीं मिलता, तब उसकी क्या दशा होती है? :
आसपासवाले देशके सम्बन्धमें मनुका कहना है कि इ
उत्पन्न ब्राह्मणद्वारा संसारके सब मनुष्य अपने-अपने
को सीखें—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा

पर कई दृष्ट तथा अदृष्ट कारणोंसे यह न हो
जब शुद्ध भारतीय विचारधाराका उन देशोंमें जाना र
तब वहाँके प्रवासी भारतीयोंका पतन होने लगा। :
प्रतिलोम विवाह चल पड़े और कितनी ही संकर
उत्पन्न हो गयीं। मनुके दसवें अध्यायमें ऐसी कई उ
वर्णन है। वहाँ स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि क्षत्रि
उपनयन आदि क्रियाओंके लोप होनेसे, याजन,
प्रायश्चित्त आदिके लिये ब्राह्मणोंके दर्शनका अभा
वे शनैः-शनैः संसारमें शूद्रताको प्राप्त हुए। पौण्ड्र
द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन,
दरद, खश—इन देशोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय f
होनेसे शूद्र हो गये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शू
क्रिया लोप होनेसे जो बाह्य जातियाँ हुईं, वे स
भाषासे अथवा आर्यभाषासे युक्त दस्युसंज्ञक कहाती है

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातय
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च
पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शका
पारदा पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशा
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहि
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृता

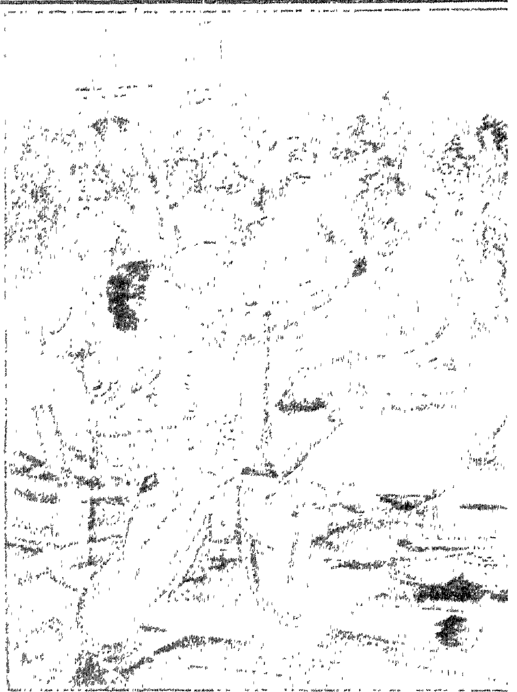
इस तरह आर्य कौन थे और भारतमें कब त
आये, ऐसे प्रश्न ही नहीं उठते। विदेशी इतिहासका
ही ऐसे पचड़े उठा रक्खे हैं और भारतीय विद्वान् भी
अन्धानुकरण करते जा रहे हैं! पहले स्वयं मैक्स
कोई आर्य-जाति नहीं मानते थे। विभिन्न भाषाओं
ऐसे शब्द देखे, जो संस्कृत रूपमें ही या संस्कृत
बने हुए जान पड़े। इसपर उन्होंने यह अनुमान ल
कोई भाषा ऐसी अवश्य रही होगी, जिसके ð

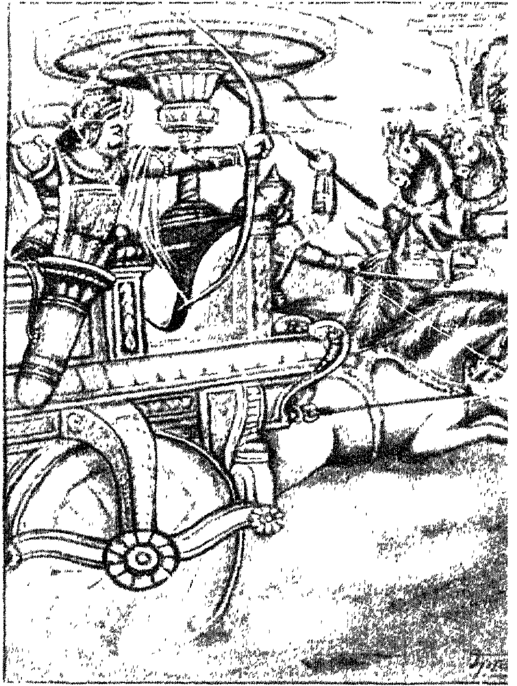
। संस्कृत है। जो बात एक साधारण व्यक्तिको
' है, वह बड़े-बड़े विद्वानोंको नहीं सूझती; क्योंकि
माग अपनी बुद्धिमत्ताके गर्वमें इधर-उधर चक्कर
ोई नयी बात, जिसे आजकल 'मौलिक' भी कहा
' है, ढूँढ़ निकालनेकी धुनमें रहता है। इसीका
अनुसन्धान' है, जिससे आजकल जगत्‌में ख्याति
' है। विद्वान् मैक्समूलरके दिमागने यह बात खोज
के कोई एक ऐसी भाषा अवश्य रही होगी, जिससे
अन्य प्रधान भाषाएँ निकलीं। इसका कोई अन्य
रमें न आनेपर उन्होंने 'आर्यभाषा' की कल्पना कर
ऐसी भाषा हुई, तो उसे बोलनेवाली कोई जाति
ो। उसके लिये 'आर्यजाति' गढ़ ली गयी। फिर
कल्पनाओंका प्रासाद खड़ा होने लगा। आर्योंका
ा कहीं उत्तरी ध्रुव, तो कहीं जर्मनीके आसपास
' लगा। उसकी शाखाएँ यूरोप तथा एशियाके
देशोंमें पहुँचने लगीं। उनकी भाषाओं, उनकी
समता स्वाभाविक हो गयी। इस तरह इतिहास-
ोचा कि इतिहासकी एक बड़ी पहेली हल हो गयी।

ु यह तथाकथित ऐतिहासिक खोज भी भारतके
नीतिक उद्देश्यसे खाली न थी। हम यह पहले लिख
क कई दृष्ट तथा अदृष्ट कारणोंसे भारतका अपने
ानिवेशोंसे सम्पर्क टूट गया। इस बीच इन उप-
कितने ही उथल-पुथल हो गये। वैदिक संस्कार
रमें रह गये। भाषा भी अशुद्ध होकर म्लेच्छ-भाषामें
हो गयी। नये अवैदिक सम्प्रदाय भी चल पड़े।
बमें लुकी-छिपी मूल वस्तु कहीं अपने शुद्धरूपमें,
अपने विकृत रूपमें बनी रह गयी। भारतका अपने
ः हुए उपनिवेशोंसे फिर सम्पर्क स्थापित हुआ
में। अशोकके समयसे बौद्ध प्रचारक विभिन्न देशोंमें
लगे। विदेशोंके साथ व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित
यूनान, चीन आदिसे विद्वान् भी भारत आने लगे।
। बाद कई एशियाई देशोंमें हिंदू राज्य भी पुनः
हुआ। इतिहासकारोंने इन्हींके आधारपर यह मत
ः लिया कि इसी कालमें भारतका विदेशोंसे सम्पर्क
हुआ। परंतु अपनी प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टिसे यह
ात पीछेकी है। वास्तवमें बौद्ध प्रचारकोंने विदेशोंमें
दिक धर्म तथा संस्कृतिके सम्बन्धमें बहुत कुछ भ्रम
। वहाँ प्रचलित विकृत वैदिक संस्कृतिमें उन्होंने
अपनी विकृत विचारधाराका समावेश कर दिया।
महासागरके देशोंमें बौद्धोंके पहुँचनेके बहुत पहलेसे
विकृतरूपमें हिंदू संस्कृति चल रही थी।* इसी
पूर्वलिखित भारतीय संस्कृति-प्रचारके तीन मतोंमें
मतपर भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा। इसमें व
है कि 'या तो भारतीयोंने उन देशोंमें जाकर अपनी सं
प्रचार किया या वहाँके लोग भारत आकर कुछ बा
साथ ले गये।' किसी अंशमें ये दोनों बातें अवश्य
वस्तुस्थिति इन दोनोंसे भिन्न है। अन्य संस्कृतिय
गहराईके साथ प्राचीन भारतीय बातें घुसी हुई
देखते हुए ऐसा नहीं जान पड़ता कि इस थोड़े-
सम्पर्कद्वारा ऐसा हुआ। पूर्वमें बर्मासे लेकर अ
प्रत्येक देशकी संस्कृतिपर प्राचीन भारतीय संस्कृति
मिलती है। मिस्टर क्यूजिनका कहना है कि "
देशोंकी सभी भाषाओंमें 'ईश्वर'के लिये जो शब्द
वह संस्कृत 'देव'से बना हुआ जान पड़ता है।"

इसी तरह 'इंसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिज
एथिक्स' भाग ७ जिल्द २ में मिस्टर किंगका कह
'प्राचीन पोलिनेशियन गाथाओंमें वैदिक भावोंक
मिलता है। स्वर्ग-नरक, पृथ्वी-आकाश, लोक-
सम्बन्धमें इन लोगोंके विचार पढ़नेसे ऐसा जान
कि मानो वहाँके द्वीप-द्वीपसे प्रशान्त महासागरके जल
मन्त्र प्रतिध्वनित हो रहे हैं।' डाक्टर रैंडी
'पोलिनेशियन रिलिजन' नामक ग्रन्थमें इन देशोंक
गाथाओंका अनुवाद करके दिखलाया है कि 'उनमे
भावोंसे कितनी समता है।' दीवान चमनलाल
'हिंदू अमेरिका' नामक पुस्तकमें दिखलाया है ि
अमेरिकाओंमें हिंदू संस्कृतिका कितना प्रचार था
पश्चिममें अफगानिस्तानसे लेकर मिस्रतक प्रायः सभ
हिंदू संस्कृतिके बिखरे हुए चिह्न मिलते हैं। यूरोपी
तथा विज्ञानका आदिगुरु यूनान माना जाता है
विचारधारा प्राचीन भारतीय सिद्धान्तोंसे रँगी हुई ज
है। स्कैंडिनेविया, जर्मनी, आयरलैंड आदि देशोंक
संस्कृतियोंमें भी भारतीय संस्कृतिसे बहुत कुछ स
जाती है। यह सब कुछ केवल थोड़े कालके व्यापारि
या दो-चार विद्वानोंके आवागमनसे नहीं हो सकता।

* 'सिद्धान्त' वर्ष ४ में प्रकाशित 'प्रशान्त महासाग
हिंद संस्कृति'।



भरत छीन शिशु सिंह-वधूका, मार रहा उसको अति क्रुद्ध ,
करता है अभिमन्यु अकेला सप्त महारथियोंसे युद्ध ।
एकाकी ककुत्स्थने रणमें रिपुदलका कर दिया सँहार ,
बीर भीष्मसे समराङ्गणमें मानी परशुरामने हार ॥

आदर्श भक्त-चतुष्टय









नारद, ध्रुव, प्रहलाद वर, विदुर महामतिमान ।
ये चारों हरिभक्तिके हैं आदर्श महान ॥

सीसी विद्वान् सिलवाँ लेवीकी पूर्वी देशोंके सम्बन्धमें
के 'सम्भवतः भारतमें आर्योंकी विजय होनेपर वहाँके
सियोंने भागकर इन देशोंमें शरण ली।' यह कितना
र्क है! पहले तो भारतपर आर्योंकी विजय ही कपोल-
है, जैसा हम दिखला चुके हैं। दूसरे, शरणार्थियोंकी
का प्रभाव उन देशोंकी संस्कृतिपर पड़े, क्या यह
है! किसी देशमें जानेवाले मुट्ठीभर शरणार्थी तो
संस्कृतिका प्रभाव डालनेकी अपेक्षा उसी देशकी
में रँग जायँगे। एक मत यह भी है कि 'पहले इनमेंसे
ओंका भारतसे व्यापारिक सम्बन्ध था। वहाँ जाकर
ने धर्मका प्रचार करने लगे और वहाँके राजाओंने
ग्रहण कर लिया।' यह मत भी तर्ककी कसौटीपर ठीक
रता। कुछ आगन्तुक हिंदुओंके प्रचारसे प्रभावित
न देशोंके राजा अपना परम्पराप्राप्त धर्म छोड़ बैठें,
नहीं जँचती। कुछ लोगोंका यह भी कहना है कि
ोंपर विजय प्राप्त करके हिंदुओंने अपने राज्य स्थापित
र वैदिक संस्कृतिका प्रचार किया।' पर इस तर्कमें
है। मनु आदिने लिखा है कि 'किसी देशके विजय
वहाँके प्रचलित रीति-रिवाजोंमें विजेताको कदापि
नहीं करना चाहिये।' हिंदू नरेशोंने इस राजधर्मका
ान रक्खा। उन्होंने दूसरोंपर अपने धर्म या संस्कृतिके
कभी प्रयत्न नहीं किया। दूसरोंको हिंदूधर्म ग्रहण
मनाही ऐसे तर्कोंकी असत्यता सिद्ध करती है।

तके प्राचीन इतिहासमें म्लेच्छ, यवन आदिका
न आता है, वे आचारभ्रष्ट हिंदू ही थे। जब भारतमें
बौद्ध आदि वेदबाह्य सम्प्रदाय चल पड़े, तब उन
कहना ही क्या, जिनका सम्पर्क भारतसे टूट चुका
ाहाँ यहूदी, ईसाई, इस्लाम आदि सम्प्रदाय चल
बौद्ध सम्प्रदायसे भी अधिक वेदबाह्य हैं, पर जिनमें
संस्कारोंके कारण इधर-उधर कुछ विकृतरूपमें
र्मके सिद्धान्तोंकी झलक देख पड़ती है। पाश्चात्य
ोमके साथ भारतका व्यापारिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन
ा। धीरे-धीरे वह व्यापार बहुत कुछ मुसल्मानोंके
गया। सोलहवीं शताब्दीमें भारतका पाश्चात्योंसे
क्ष सम्पर्क स्थापित हुआ। अंग्रेज, फ्रांसीसी, डच
ई जातियोंके पाश्चात्य व्यापार करने भारत आये।
शासनकालमें भारतकी प्रगति बहुत कुछ रुक गयी।

कलाओंपर मुसल्मानी छाप आने लगी। हिंदुओं
देशोंमें आना-जाना बंद हो गया। पाश्चात्योंने
विज्ञानके अध्ययनसे युद्ध तथा अन्य क्षेत्रोंके कई नये
ढूँढ़ निकाले। साथ ही उन्होंने अपनी कूटनीति
परिपक्व किया। भारत-जैसा समृद्धिशाली देश उन्हें
नये साधनोंके उपयोगका अच्छा क्षेत्र मिल गया।
कूटनीतिज्ञोंने देखा कि मुसल्मानोंका पतन हो रहा
हिंदू फिर जोर मार रहे हैं। यदि उनके हृदयों
धर्म, अपने देश, अपनी जातिका अभिमान हटाया
और उसके स्थानपर पाश्चात्य सभ्यताकी श्रेष्ठता स्था
जा सके, तो राजनीतिक प्रभुत्व जमानेमें बड़ी
मिलेगी। इसी दृष्टिसे नवीन इतिहासकी रचना
आधुनिक शिक्षाका आरम्भ हुआ। इतिहासद्वारा
आदिवासी असभ्य सिद्ध किये गये और यह दिखला
कि बाहरसे आर्योंने आकर सभ्यताका प्रचार किया।
आधारपर इतिहास गढ़ डाले गये और हिंदू धर्म, वर्ण
आदिके उलटे-सीधे अर्थ कर दिये गये। बड़े-बड़े प
विद्वान् दो-चार भारतीय बातोंकी प्रशंसा करके
निष्पक्षता दिखलाते हुए छिपे-छिपे अपनी रचनाओं
घोलते रहे। मैक्समूलर-जैसा प्रसिद्ध विद्वान् भी इस
न रह सका। भारतीय विचारोंकी यत्र-तत्र उसे
करते देखकर भारतीय विद्वान् उसपर लट्टू हो ग
वेदोंका अनुवाद उसने इसीलिये आरम्भ किया कि
हिंदू धर्मकी पोल खुल जाय, जैसा कि उसने स्वयं
किया है।*

पाश्चात्योंके लिखे नहीं, अपने यहाँका इतिहास
पुराणोंमें उपलब्ध है, उसकी दृष्टिसे यदि देखा जा
कितनी ही ऐतिहासिक गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। एक
प्रायः उठता है कि संसारमें आज भी कितनी ही
तथा जंगली जातियाँ मिलती हैं। यदि सबकी
प्राचीन भारतीयोंसे ही, जिनकी सभ्यता बड़ी उच्च की
थी, मान ली जाय, तो उनकी सन्तानें इतनी जंगली
असभ्य कैसे बन गयीं? इस तरहके सन्देह उत्पन्न
एक कारण यह है कि आजकल विद्वानोंका ऐतिहासिक
पीछे दस हजार वर्षसे अधिक नहीं जाता। इतने ही
वे सब ऐतिहासिक घटनाएँ ठूँस लेते हैं। पहले तो

* देखिये—'सिद्धान्त' वर्ष २, अङ्क ९, मैक्समूलर

कि जो कुछ हुआ, वह ईसवी सन्‌के भीतर ही;
धीरे-धीरे बढ़कर यह दस हजार वर्षतक पहुँच
। परंतु भारतीयोंकी कालकी कल्पना बड़ी व्यापक
लाख ३२ हजार वर्षका एक युग माना जाता है।
युगोंका एक चतुर्युग या महायुग और १ हजार
का अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंका एक कल्प
। इसके आगे फिर देवोंके अहोरात्रकी गणना है।
का एक ब्राह्म दिन और ७२० कल्पोंका एक ब्राह्म
र १०० ब्राह्मवर्ष अर्थात् ३१ नील, १० खरब,
ह मानववर्ष ब्रह्माकी आयु मानी जाती है। ऐसी
ब्रह्मायु विष्णुकी एक घड़ी और १२ लाख विष्णु-
की केवल आधी कला होती है। ये संख्याएँ देख-
चकराने लगती है। युगोंका चक्र बराबर चलता
। उनकी अवधिके प्रचलित मानकी दृष्टिसे अन्तिम
आरम्भ-कालको ३८ लाख ९३ हजार वर्ष हुए।
वर्तमान सृष्टिके आदिकालका अनुमान लगाया जा
। फिर ऐसी सृष्टियाँ कितनी होती रहीं, इसका
पता ही नहीं। इस कालका ध्यान रखते हुए ही
इतिहास समझना है।

वर्षोंमें मनुष्यके जीवनमें कितनी उथल-पुथल
ो है। इतने दिनोंमें कितनी ही बार मनुष्य सभ्यसे
ौर जंगलीसे सभ्य बना। यह तो इतने वर्षोंकी
इतिहासमें थोड़े ही कालकी ऐसी घटनाएँ देखनेमें
। दक्षिणी अमेरिकाकी मय, ऐस्टिक, इंका आदि
किसी समय सभ्यताके शिखरपर पहुँची थीं। मय
सभ्यता १० हजार वर्ष प्राचीन बतलायी जाती है।
० तक दक्षिणी अमेरिकामें उसका विशाल साम्राज्य
ऐस्टिक लोगोंके सम्बन्धमें लेखिका कोराबाकरका
कि 'जब यूरोप जंगली बना हुआ था, ये लोग
के महलोंमें रहते थे। विशाल मन्दिरोंके पास
रोवर थे। जब यहूदी असभ्य दशामें इधर-उधर
फिरते थे, इन लोगोंमें खेती तथा व्यापारकी पर्याप्त
ो चुकी थी।' मिस्टर ब्रेकरके शब्दोंमें 'प्राचीन
की सभ्यताने यूरोपको शिक्षा दी होगी' (हिंदू
)। परंतु जब स्पेनवालोंका वहाँ आधिपत्य हुआ,
उन जातियोंको नष्ट करनेमें कोई बात उठा न

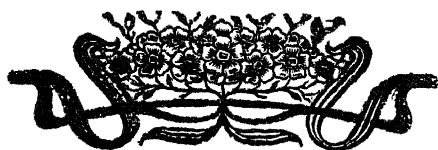
जाते हैं। अफ्रीका, ईराक आदि देशोंमें भी यह
अब धीरे-धीरे वहाँकी प्राचीन सभ्यताका पता लग
जिन्हें आजकल असभ्य कहा जाता है, जब उनके
अध्ययन किया जाता है, उनमें कितनी ही ऐसी
मिलती हैं, जिनका ज्ञान सभ्यताका दम भरनेव
नहीं। ऐसे संस्कार उनमें कहाँसे आये? भेड़ियों
पले हुए मनुष्योंके बच्चे अपनी मनुष्यता भूलकर
तरह आचरण करने लगते हैं। तब फिर यदि इत
सभ्यताके सम्पर्कसे रहित होकर कुछ जातियाँ जं
जायँ तो इसमें आश्चर्य क्या?

कहा जा सकता है कि 'पुराणोंकी कपोलक
आधारपर सच्चा इतिहास नहीं लिखा जा सकता
आधुनिकोंद्वारा जो इतिहास लिखा गया, वह सच्चा है
का क्या प्रमाण? आँखोंदेखी घटनातक ठीक नहीं
जा सकती। दो व्यक्ति उसे भिन्न रूपमें ही देख
कुछ दिखायी देता है, उसमें भी प्रत्येक व्यक्तिकी कु
कल्पना रहती है। आज-ही-कल कितनी बार
समाचारपत्रोंद्वारा किसी घटनाका वर्णन सामने
फिर प्राचीन इतिहासका कहना ही क्या? प्राची
खंडहरों, मुद्रा आदिके आधारपर आजकल प्राची
इतिहास लिखा जाता है; पर इनमें क्या एक भी
है? उनके द्वारा इतिहास पढ़नेमें भी बहुत कुछ
अनुमान चलता है। फिर आजकल तो जान-बूझकर
विकृत किया गया है, जैसा कि आर्योंके बाहरसे
आनेके मतके सम्बन्धमें हम दिखला चुके हैं
केलटेनने अपनी 'प्रास्पेक्टस आफ हिस्ट्री' नामक
ठीक ही लिखा है कि 'यदि शैतान झूठका पि
स्वदेशभक्ति माता है।' स्वदेशभक्तिके आवेशमें इ
कितना तोड़ा-मरोड़ा गया है। कितने ही दिनों
विद्वान् इतिहासोंमें यह दिखलानेका प्रयत्न करते
जर्मन लोग ही शुद्ध 'आर्य' हैं और उन्होंने
सभ्यता, संस्कृतिका सन्देश पहुँचाया। इस तरह
जर्मनी'की नींव सुदृढ़ करनेका प्रयत्न किया गया
इतिहासकारोंका यही तुर्कोंके सम्बन्धमें कहना है। जिन
अपने धर्मका प्रचार करना है, वे इतिहासद्वारा यह
चाहते हैं कि उन्हींका धर्म सबसे प्राचीन है अ

दशामें आधुनिकोंद्वारा लिखे इतिहासपर ही वैसे किया जा सकता है।

ारे यहाँके प्राचीन इतिहासकारोंने इतिहास लिखनेमें ात साधनोंसे काम नहीं लिया। उन्होंने ईंट-पत्थरोंमें हीं फोड़ा। व्यास, वाल्मीकि आदिने जो 'दिव्य-दृष्टि' ा, वही लिखा। योगसे ऐसा होना असम्भव नहीं; उन्होंने जो लिखा, उसे झूठ नहीं कहा जा सकता। बहुत-सी बातें जँचतीं नहीं, क्योंकि वे प्रायः ण प्रतीत होती हैं। पर यह दोष है सङ्कुचित दृष्टि- ो वस्तु हम प्रतिदिन देखते हैं, उसे साधारण मानते पने यहाँ लिखे विमानोंकी बात कुछ दिन पहले कोरी ही प्रतीत होती थी, पर आज प्रतिदिन अपने सिर- ते हुए हवाई जहाज देखकर ऐसा नहीं कहा जा यह बात दूसरी है कि इतनेपर भी कुछ लोग बुद्धिसे प्रेरित होकर प्राचीन हिंदुओंको इतिहासमें विमान बनानेका श्रेय देनेके लिये तैयार नहीं। ऋषियोंने झूठा इतिहास लिखा हो, इसका कोई ी नहीं जान पड़ता। व्यास, मनु, शुक्र, कौटिल्य बराबर यही राय दी है कि राजाको विजित राष्ट्रोंके ना धर्म, अपनी संस्कृति, अपनी शासनपद्धति ानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। प्रत्येक राष्ट्र, शको अपना धर्म पालन करने और अपनी संस्कृति- चलनेकी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। रामायण, तथा अन्य इतिहासोंसे पता लगता है कि अपने बर इसी नीतिका अनुसरण होता रहा। राजसूय हैं, चक्रवर्ती बननेकी राजाओंको अभिलाषा होती अभिप्राय इतना ही रहता है कि उनका आधिपत्य र लिया जाय। विजित देशोंको अपने राज्यमें उनमें अपना गवर्नर नियुक्त कर देना और जैसे- ी शासनव्यवस्था वहाँ घुसेड़ देना हमारे प्राचीन कभी अपेक्षित नहीं रहा। इसीलिये प्राचीन भारतमें कितने राज्य मिलते हैं। सम्राट् हुए, बड़े-बड़े स्थापित हुए; पर इसी नीतिके कारण वे 'साम्राज्यवाद'के दुर्गुणोंसे बचते रहे। धार्मिक प्राचीन हिंदुओंने दूसरोंको अपने धर्ममें लानेका क ही नहीं किया। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' उनका रहा। ऐसी दशामें रामायण, महाभारत, पुराण त प्राचीन ग्रन्थोंमें वर्णित इतिहासपर विश्वास क्यों जाय?

जैसा कि हम आरम्भमें ही कह आये हैं, वि जटिल है। इस लेखमें तो बहुत ही संक्षिप्त रूप विचार किया गया है। यदि और गहराईमें घुसा कितनी ही ऐसी बातें मिलेंगी, जिनमें असङ्गति औ विरोध दिखायी देगा। पर उतनेहीसे यह अनु लेना कि सिद्धान्त ही गलत है, ठीक न होगा। ऐस और भी गहराईमें घुसना चाहिये, तब विरोधाभास दूर होने लगेगा। कहनेका तात्पर्य यह कि पाश्चात्त्य प ने जो इतिहासका मार्ग दिखला दिया है, उसका अन्ध छोड़कर हमें अपने दृष्टिकोणसे अनुसन्धान करना च यदि ऐसा हो तो इतिहासकी सबसे बड़ी पहेली जायगी और उसकी कितनी ही बातें समझमें आ ज खेदकी बात है कि अबतक इस ओर ध्यान नहीं दिया इसमें कितनी ही कठिनाइयाँ हैं, इसे हम मानते हैं पौराणिक रहस्योंका ज्ञान है, उन्हें आधुनिक अ और लेखनशैलीका ज्ञान नहीं और जिन्हें इनका उनका शास्त्र-रहस्योंमें प्रवेश नहीं। आजकल आधुनिक ढंगसे बात न समझायी जाय, लोगोंकी समझ आती। बुद्धि ही बिगड़ रही है, उसका विकास नह प्रकारसे ह्रास हो रहा है। वह केवल स्थूल दृष्टिसे योग्य रह गयी है। क्या ही अच्छा होता यदि शैलीके विद्वानों और आधुनिक विद्वानोंको यह सौंपा जाता, जिसमें दोनों एक दूसरेकी बात समझ ढंगसे वस्तु-स्थिति सामने लाते, जिसे माननेको सब बाध्य होना पड़ता। पर इधर न तो विद्वानोंका और न धनिकोंका ही, फलतः झूठे इतिहास पढ़ हमारी बुद्धि और भी बिगड़ती जा रही है!



हिंदू-संस्कृतिके मूर्तिमान् स्वरूप

धर्म-विग्रह भगवान् श्रीरामचन्द्र

(लेखक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

-जातिके इतिहासमें अनेक धर्मप्राण ऋषि-महर्षि र्षि हो गये हैं। उन सबमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् स्थान सर्वोपरि है। वेदों और धर्मशास्त्रोंमें हमें रूप और उपदेश तो प्राप्त होता है; किंतु उस गेग कैसे होना चाहिये, इसका उदाहरण भगवान् जीवनचर्यामें मिलेगा। तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा र्म या कर्मके स्वरूपमें सन्देह हो तो धर्मज्ञ पुरुषोंके देखकर उसके स्वरूपका निश्चय कर लेना चाहिये— त्र वर्तेरन्, तथा तत्र वर्तेथाः।' इसके अनुसार सम्पूर्ण धर्मों और धर्मपूर्ण बर्तावोंका आदर्श किन्हीं पुरुषमें देखना चाहें तो सर्वप्रथम भगवान् श्रीरामके ही दृष्टिपात करना होगा। श्रीरामने जिसे धारण ी आदर्श धर्म है; जिसे संस्कार प्रदान किया, वही कृति है और जिसको वे आचरणमें ले आये, वही आदर्श सदाचार एवं शिष्टाचार है। इसीलिये कहा 'रामो विग्रहवान् धर्मः'—श्रीरामचन्द्रजी धर्मके विग्रह हैं।

ामके गुण अनन्त हैं। वे ईश्वर हैं, फिर भी उन्हें भिमान नहीं है। वे एक साधारण मनुष्यके समान बचते हुए धर्मकी मर्यादामें स्थित रहते हैं; इसीलिये ष्टिमें वे 'मर्यादापुरुषोत्तम' हैं। शतकोटि रामायणों- महिमाका वर्णन किया, फिर भी किसीने पार नहीं थापि अपनी लेखनी और वाणी पवित्र करनेके लिये श्रीरामके धर्ममय जीवनकी यत्किञ्चित् झाँकी करायी।

दिकवि महर्षि वाल्मीकि अपने आदिकाव्यके लिये े नायकका अनुसन्धान कर रहे थे, जिसमें सभी ी प्रतिष्ठा हो, जिसका जीवन ही धर्म और सदाचारकी हो तथा जो सम्पूर्ण लोकोंका एकमात्र प्रियतम हो। ऐसे लोकोत्तर गुणोंकी एक सूची बनायी और अपने र कृपापूर्वक पधारे हुए देवर्षि नारदसे पूछा—'मुने ! दृष्टिमें कोई ऐसे महापुरुष हैं, जिनमें ये सभी सद्गुण किया। वाल्मीकि और नारदका यह संवाद ही रामायणका बीज है। आदिकविका सम्पूर्ण 'रामायण श्रीरामके उन लोकोत्तर गुणों तथा धर्ममय आचार व्याख्या है।

वाल्मीकिका प्रश्न इस प्रकार है—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हित
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकः प्रियदर्शनः
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयक
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे

(वा० रा० बाल० १ । :

'इस समय संसारमें गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ (उपकार माननेवाला), सत्यवक्ता और दृढप्रति है ? सदाचारसे युक्त, समस्त प्राणियोंके हितका विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन (पुरुष कौन है ? मनपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधके वाला, कान्तिमान् और किसीकी भी निन्दा नहीं क कौन है ? तथा संग्राममें कुपित होनेपर किससे दे डरते हैं ?'

प्रश्न सुनकर नारदजीने यों उत्तर दिया—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुत
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी
बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हण

(वा० रा० बाल० १

'राजा इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए एक ऐसे जो लोगोंमें राम नामसे विख्यात हैं। वे ही मन रखनेवाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और हैं। बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा संहारक हैं।'

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनु

: समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
वक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥
(वा० रा० बाल० १ । ९—११)

के कंधे मोटे और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, ग्रीवा शङ्खके ार ठोढ़ी मांसल है। उनकी छाती चौड़ी तथा धनुष गलेके नीचेकी हड्डी (हँसली) मांससे छिपी हुई त्रुओंका दमन करनेवाले हैं। भुजाएँ घुटनेतक । मस्तक सुन्दर है। ललाट भव्य और चाल ै। उनका शरीर अधिक ऊँचा या नाटा न होकर ौर सुडौल है। देहका रंग चिकना है। वे बड़े । उनका वक्षःस्थल भरा हुआ है। नेत्र बड़े-बड़े क्ष्मीवान् और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं।' आकृति- सर्वश्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त शरीरका वर्णन है इन फिर वे—

ज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
स्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥
ापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
ता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥
ता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥
शास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ।
लोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥
दाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
र्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥
च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
ुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥
ष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः।
लाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
नदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।
(वा० रा० बाल० १ । १२—१९)

र्मके ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाके हित-साधनमें लगे हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय और एकाग्र रखनेवाले हैं। प्रजापतिके समान पालक, , शत्रुनाशक और जीवों तथा धर्मके रक्षक हैं। और स्वजनोंके पालक हैं। वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्ववेत्ता नुर्वेदमें प्रवीण हैं। वे अखिल शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, स्मरण-

उसी प्रकार साधु पुरुष सदा श्रीरामसे मिलते रहते आर्य (श्रेष्ठ) हैं और सबके प्रति समान भाव रखनेव उनका दर्शन सदा ही प्रिय मालूम होता है। सम्पूर्ण युक्त वे श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता कौसल्याके आ बढ़ानेवाले हैं। गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिम समान हैं। वे विष्णुभगवान्के समान बलवान् हैं, दर्शन चन्द्रमाके समान मनोहर प्रतीत होता है। वे कालाग्निके और क्षमामें पृथ्वीके सदृश हैं। त्यागमें और सत्यमें द्वितीय धर्मराजके समान हैं।'

उपर्युक्त गुणावलीमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आत्माश्रित सभी प्रकारके गुणोंका वर्णन आ गया सभी भगवान् श्रीराममें एकत्र समवेत हैं। उनके कहाँ कब किस गुणका विशेष विकास दृष्टिगोचर हु इसकी समीक्षा करनेपर बहुत बड़ी पुस्तक तैयार हो है। इस लेखमें विस्तारके लिये स्थान नहीं है, अ थोड़ेसे प्रसङ्गोंद्वारा ही श्रीरामके धर्ममय जीवनपर प्रकाश डाला जायगा। आदिकविने सर्वप्रथम अपने 'गुणवान्'की चर्चा की है। श्रीरामके गुण अनन्त हैं।

वाल्मीकीय रामायणमें अयोध्याकाण्डके प्रारम्भ श्रीरामचन्द्रजीके शील, स्वभाव तथा सद्व्यवहार गुणोंका जो मनोरम चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह मात्रके लिये पठनीय, मननीय तथा अनुकरणीय है। लिखते हैं—'श्रीराम बड़े ही रूपवान् और पराक्र वे किसीके दोष नहीं देखते थे। भूमण्डलमें उनके करनेवाला कोई नहीं था। वे सदा शान्तचित्त रह मीठे वचन बोलते थे। यदि कोई कठोर बात भी तो वे उसका उत्तर नहीं देते थे। किसीके सैकड़ों करनेपर भी उसके अपराधोंको याद नहीं रखते थे। ज्ञानमें तथा अवस्थामें बड़े सत्पुरुषोंसे सदा बातचीत और उनसे शिक्षा लेते थे। सर्वदा मधुर और प्रिय थे। झूठी बात तो उनके मुखसे कभी निकलती ही न वे वृद्ध पुरुषोंका सदा सम्मान किया करते थे। रामके प्रति तथा रामका प्रजाके प्रति अनुराग परम दयालु, क्रोधको जीतनेवाले और ब्राह्मणोंके पुज दीनोंपर कृपालु, धर्मका रहस्य जाननेवाले और विजयी थे। श्रीरामचन्द्रजी बाहर और भीतरसे सदा

ा और अवस्था तरुण । वे असाधारण वक्ता, सुन्दर
ुशोभित तथा देश-कालके तत्त्वको समझनेवाले थे ।
ाकर ऐसा जान पड़ता था, मानो विधाताने संसारमें
ुषोंके सार-तत्त्वको समझनेवाले साधु पुरुषके रूपमें
श्रीरामको ही प्रकट किया है । श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त
र राम अपने सद्गुणोंके कारण प्रजाको बाह्य प्राणोंके
प्रेय थे । वे सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात और
के ज्ञाता थे । बाण-विद्यामें तो अपने पितासे भी बढ़-
कल्याणकी तो मानो जन्मभूमि ही थे । साधु,
हित, सत्यवादी और सरल थे । धर्म और अर्थके
ः ब्राह्मणोंद्वारा उन्हें उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई थी ।
ा तथा अर्थके तत्त्वका उन्हें सम्यक् ज्ञान था । वे
क्तसे सम्पन्न और प्रतिभाशाली थे । उनको सामयिक
का विशेष ज्ञान था । वे बड़े गम्भीर, अपने आकार-
नेवाले और मन्त्रको गुप्त रखनेवाले थे । उन्हें
संग्रह, दीनोंपर अनुग्रह तथा दुष्ट पुरुषोंके निग्रहके
ा ठीक-ठीक ज्ञान था । उन्होंने सब प्रकारके अस्त्र-
ा संस्कृत-प्राकृत आदि नाना प्रकारकी भाषाओंके
नेपुणता प्राप्त की थी ।........क्रोधमें भरकर
देवता और असुर भी उनको संग्राममें परास्त नहीं
थे । दोष-दृष्टिका तो उनमें लेशमात्र भी नहीं था ।
वे जीत चुके थे । घमंड और द्वेष उनके पास भी
कने पाते थे । किसी प्राणीके मनमें उनके प्रति
का भाव नहीं था । वे कालके वशमें होकर उसके
नेवाले नहीं थे; काल ही उनके पीछे चलता था ।'

(वा० रा० अयोध्या० १ । १—३१)

को वनमें भेजनेवाली विमाता कैकेयीपर भी उनके
था न्यायोचित व्यवहारोंका इतना प्रभाव था कि वे
बहकानेपर भी रामकी प्रशंसा करती नहीं अघाती ।
हैं—'कुब्जे ! तू रामके राज्याभिषेकका शुभ
नकर जलती क्यों है ? मेरे लिये जैसे भरत आदरके
वैसे ही, बल्कि उनसे भी बढ़कर श्रीराम आदरणीय
पनी सगी माता कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी सेवा
यदि रामको राज्य मिल रहा है, तो उसे भरतका
ले' ।* इसी प्रकार सुन्दरकाण्डमें, जब हनुमान्जी
सीताके सम्मुख गये हैं, उन्होंने श्रीरामके अलौकिक
स्वभावका बड़े विस्तारके साथ वर्णन करके अपने प्र
सीताका विश्वास प्राप्त किया है ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और देवर्षि नारदने
यह बता दिया कि तीनों लोकोंमें सबसे बढ़कर
श्रीराम ही हैं । गुण हों और वीर्य—पराक्रम न
गुण किस कामके ! लोकमें उसीका समादर होत
गुणवान् होनेके साथ ही वीर्यवान्—पराक्रमी भी हो
दृष्टिसे देखनेपर भी श्रीराम ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो
जनकपुरके उस दिव्य धनुषको, जो देवता, मानव और
किसीके हाथसे भी हिलाया तक न जा सका, श्रीरघु
अनायास ही तोड़ डाला । परशुराम-जैसे दुर्द्धर्ष
जिन्होंने इक्कीस बार इस पृथ्वीको वीर क्षत्रियोंसे
दिया था, अपने पराक्रमसे सन्तुष्ट करना रघुवीरका
था । पञ्चवटीमें चौदह हजार राक्षसों तथा खर, दूष
त्रिशिराका अकेले ही बिना किसीकी सहायता लिये
देरमें संहार कर डालनेवाले श्रीरघुनाथजीके पराक्रमक
तुलना हो सकती है ! वालिवध, समुद्र-निग्रह तथा
कुम्भकर्णादिका संहार भी केवल उन्हींके पराक्रमसे
हुआ । हनुमान्जीने तो रावणके दरबारमें पहले ही
कर दिया था—

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघ

(वा० रा० सुन्दर० ५१

'औरोंकी तो बात ही क्या, चार मुखोंवाले
ब्रह्मा, त्रिपुरसंहारक त्रिनेत्रधारी रुद्र तथा देवराज
रघुनाथजीके सामने युद्धमें नहीं ठहर सकते ।'

गुणवान् और वीर्यवान् होनेके साथ ही धर्मज्ञ
आवश्यक है, अन्यथा वह पराक्रम अधर्ममें लगानेव
सकता है । भगवान् श्रीरामके लिये 'धर्मकामार्थ
(धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके ज्ञाता और
यह विशेषण आया है । वे धर्म और अर्थके तत्त्वके
थे । इसका सुन्दर उदाहरण वालि-वधका प्रसङ्ग है । वा
श्रीरघुनाथजीके कार्यको अन्याय बताते हुए धर्मकी
देनी आरम्भ की, उस समय उन्होंने उसकी प्रत्येक
खण्डन करते हुए बड़ी सुन्दर युक्तियोंद्वारा यह

प्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥
ा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ।
सल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम् ॥

, बलपूर्वक रख लिया है और उसपर बलात्कार किया तुम्हें दण्ड देकर राजधर्म, मित्रधर्म एवं अपनी पालन किया है।' उन्होंने अपनी बातकी पुष्टिमें द्वारा अपनायी हुई नीति तथा मनुस्मृतिके मतका भी किया है—'श्रूयेते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्स- ह प्रसंग वा० रा० किष्किन्धाकाण्डके १८वें सर्गमें र्वक वर्णित है। वहीं देखना चाहिये।

ामकी धर्मज्ञताका दूसरा उदाहरण है विभीषण-शरणा- प्रसङ्ग। शरणमें आये हुए भयभीत पुरुषकी रक्षा त्येक शक्तिशाली वीर पुरुषका धर्म है। भगवान् ो तो यहाँतक प्रतिज्ञा है कि 'जो एक बार भी मेरी आकर यह कह दे कि 'प्रभो! मैं आपका हूँ' उस ा जनको मैं सब प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ।'* ीषण अपने मन्त्रियोंके साथ आकर यह पुकार लगाता ं श्रीरघुनाथजीकी शरणमें आया हूँ,' उस समय नापतियोंमें हलचल-सी मच जाती है। सब-के-सब हो उठते हैं। किसीको यह विश्वास नहीं होता कि सद्भावसे आया है। सब यही समझते हैं, विभीषणके आनेमें मायावी राक्षसोंकी कोई गहरी चाल है। ीके सामने यह बात पहुँचायी जाती है। सेनापतियोंकी त्रणा होती है। भगवान् सबकी सलाह लेते हैं। ा सुग्रीव तो उसे मार डालनेका ही निर्णय देते हैं। सेनापति भी सन्देहकी ही दृष्टिसे देखते हैं। केवल ज़ी ही विभीषणको विश्वासके योग्य मानते और इसीके अपना निर्णय देते हैं। सुग्रीवको यह बात नहीं वे बार-बार प्रतिवाद करते हुए कहते हैं—'जो गे भाईको छोड़कर आ सकता है, वह किसको धोखा ा?' श्रीराम सुग्रीवकी इस आशङ्काको यथार्थ बताते की बुद्धिकी सराहना करते हैं; फिर भी अपना प्रण— ातरक्षणरूपी धर्म' त्यागना नहीं चाहते। वे कहते न्त्रियो! यदि शत्रु भी शरणमें आये और दीनता- ाथ जोड़कर प्रार्थना करे तो उसपर चोट नहीं करनी । शत्रु दुखी हो अथवा अभिमानी, यदि वह अपने ी शरणमें आ जाय तो धर्मात्मा पुरुषको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये।*

> आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया
> विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्
> (वा० रा० युद्ध० १८

'कपिवर सुग्रीव! वह विभीषण हो अथवा स्व ही क्यों न आया हो, मैंने उसे अभयदान दे दिय तुम उसे मेरे पास ले आओ।'

यह है मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी धर्मज्ञता, धर्मप तथा शरणागतवत्सलता! कौन है त्रिलोकीमें, जो समानता कर सके। धर्मज्ञ होनेके साथ ही वे ह अनुपम हैं। उनके कृतज्ञ स्वभावका महर्षिने इस प्रका किया है—

> न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया
> कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति

'मनपर नियन्त्रण रखनेके कारण वे दूसरोंद्वारा ि सौ-सौ अपराधोंको भी भुला देते हैं, कभी एकको नहीं रखते। परंतु यदि कोई किसी प्रकार एक उपकार कर दे तो उसीसे सदा सन्तुष्ट रहते हैं, स एक ही उपकारको याद रखते हैं।'

उदाहरणके लिये जब हनुमान्‌जी लङ्कासे सीताज लगाकर लौटते हैं, उस समय उनसे मिलकर भग प्रसन्न होते हैं और उनके कार्योंकी भूरि-भूरि प्रशंसा व यहाँतक कह डालते हैं—'आज हनुमान्‌जीने सीता लगाकर धर्मानुसार मेरी, समस्त रघुवंशकी तथा ल भी रक्षा कर ली है। मैं दीन हूँ, असमर्थ हूँ, मेरे म यही बात कसक रही है कि जिसने मुझे ऐसा प्रिय सुनाया, उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर यों कहकर रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा केवल उसी समय ऐसा भाव, ऐसी कृतज्ञता प्रकट की यह बात नहीं है। राज्याभिषेकके पश्चात् जब श्रीराम हनुमान्‌जीको बिदा करते हैं, उस समय भी उनके उ

> ृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
> भयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

> * बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागत
> न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप
> आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गत
> अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना

ाके वे आनन्द-गद्गद हो उठते हैं और भावावेशमें प्रकट करने लगते हैं—

कस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे ।
स्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥
ङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे ।
प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥
(उत्तर० ४० । २३-२४)

पेश्रेष्ठ ! मुझपर तुम्हारे ऐसे महान् उपकार हैं कि क-एकके बदले अपने प्राणतक दे सकता हूँ । फिर उपकारोंके लिये मुझे सदा तुम्हारा ऋणी बनकर ही ा । कपिवर ! तुमने जो भी उपकार किये हैं, वे रीरमें ही विलीन हो जायँ—मुझे उनका बदला चुकाने- अवसर न मिले । अर्थात् तुमपर कभी कोई विपत्ति नहीं । क्योंकि मनुष्य विपत्तियोंमें पड़नेपर ही का पात्र बनता है ।'

वान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ और कृतज्ञ श्रीराम सत्यवादी ते स्वयं कहते हैं—'अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये —'मैंने पहले कभी न तो झूठ बात कही है और न ी कहूँगा ।' 'रामो द्विर्नाभिभाषते'—राम दो तरहकी बोलता । चौदह वर्षोंका वनवास स्वीकार कर लेनेपर कष्ट सहकर भी उसे निबाहा । अनेक प्रलोभन आये, का, लक्ष्मणने ओज और उत्साहभरी बातोंसे राज्यपर अधिकार कर लेनेको उत्तेजित किया । फिर स्वयं हें मनाने गये । अयोध्या लौट चलनेके लिये बहुत या गया; किंतु श्रीरामचन्द्रजी विचलित नहीं हुए । नमें रहकर पिताके तथा अपने सत्यकी पूर्णरूपसे । ये ही बातें उनके दृढ़व्रत होनेका भी परिचय देती वयं सीताजीसे कहते हैं—

प्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य······················ ।'

नकनन्दिनी ! मैं अपने प्राण त्याग सकता हूँ, तुमको और ो भी छोड़ सकता हूँ; परंतु प्रतिज्ञा करके उसे टाल ता ।'

 प्रकार महर्षिके द्वारा जिज्ञासित प्रारम्भिक छहों गुण

युक्त कौन है ?)।' इस चारित्र्य-गुणमें भी श्रीरघु अद्वितीय हैं । उनका एकपत्नीव्रत सर्वत्र प्रसिद्ध है । पुष्पवाटिकामें सीताजीकी अलौकिक शोभा देखकर उ जब किशोरीजीकी ओर आकृष्ट हुआ तो वे चकित यह जीवनमें प्रथम घटना थी । उन्होंने अपने मन और वहाँ कलुषित वासनाकी गन्ध भी न पाकर कहने लगे— भाई !

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि

वही मेरा सहज पुनीत मन आज क्षुब्ध क्यों इसका कारण विधाता ही जानते हैं । (जान पड़ता अनादि कालसे मेरी हैं और मेरी ही रहेंगी—मानो य करनेके लिये) मेरे दायें अङ्ग फड़क रहे हैं । रघुकुलका हूँ, जहाँ—

'मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥'
'नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥'

यह है श्रीरामका आत्मविश्वास ! न केवल अपितु प्रत्येक रघुवंशीका ही यह स्वभाव है कि उस परायी स्त्री न लुभा सके, उसकी दृष्टि पर-स्त्रीकी आकृष्ट न हो ।

'नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥' का आदर्श हो तो शूर्पणखा-प्रसङ्गपर दृष्टिपात कीजिये । मायासे मनोहर रूप धारण करके आती है और हुई कहती है—

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक ति
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि

सर्वान्तर्यामी प्रभु उस मायाविनीके कपटपूर्ण तुरंत ही ताड़ जाते हैं । कौतुकी तो वे हैं ही; सोचा विवाहिता होकर भी अपनेको कुमारी बताती है विवाहितको भी कुमार कहा जा सकता है, तब लक्ष्मण भी कुआँरा ही है । अतः कहते हैं 'जैसी तु है, उसी तरह हमारा छोटा भाई भी कुमार है । उस मायाविनीकी बातका उत्तर था, जो देना ही था । परंतु प्रभुने एक बार भी उसके उस सुन्द ओर आँख उठाकर देखातक नहीं । उन्होंने

भूतेषु को हितः ?' समस्त प्राणियोंका हितकारी यह महर्षिका नवाँ प्रश्न है । उत्तर एक ही है—सर्वात्मा एवं सर्वेश्वर श्रीरामके सिवा दूसरा कौन हित-साधन कर सकता है ? उनका अवतार, उनका बोलना, चलना, उनकी बातचीत, उनका अनुपम सब कुछ सबको सुख देनेके लिये ही तो था । धारण करके अपनी बाल-लीलाओंसे पहले अयोध्या- सुख दिया—

सिसुबिनोद प्रभु कीन्हा । सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा ॥

जनकपुरवासियोंको परमानन्दमें निमग्न किया—

हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।
जहँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ॥

वासके समय भी वे गाँव-गाँव आनन्द बाँटते —

अस होइ अनंदू । देखि भानुकुल कैरव चंदू ॥
बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत ।
चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥

में जाकर मुनियोंका हित किया—

चर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

न्, समर्थ और प्रियदर्शन कौन है ?—इन प्रश्नों- आदिकविने लोकोत्तर विद्वत्ता, लोकोत्तर सामर्थ्य कोत्तर सौन्दर्यकी जिज्ञासा की है । ये सभी बातें जीमें पूर्णतः प्रकट हैं । रामगीताके उपदेशक श्रीराम- ता सबके समक्ष है । सामर्थ्यका परिचय 'वीर्यवान्' ख्यामें दिया जा चुका है । एकमात्र प्रियदर्शन तो वे मनुष्योंकी तो बात ही क्या है—

मृग मगन देखि छबि होहीं ।

मवान् (मनपर अधिकार रखनेवाले) तो वे ऐसे चौदह वर्षोंतक वनमें ही रहकर सब प्रकारके सुख- ठते रहे; पर मित्रोंके आग्रहपर भी कभी एक दिनके ग्राम या नगरमें नहीं गये । अवसर आनेपर उन्होंने दिया—

ा बचन मैं नगर न आवउँ ।'

मवान होनेके कारण ही वे हर्ष-शोकसे ऊपर उठ

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःख

जो आत्मवान् है, वह क्रोधपर विजय पा ही भगवान् श्रीरामने अपना अपराध करनेवालेपर क्रोध नहीं किया । मन्थरा-जैसी दासी भी, जिसके कहीं तुलना नहीं थी, कभी श्रीरामके क्रोधका भाज सकी । उन्होंने कभी मन्थराके अपराधकी चर्चा की । एक दिन वनमें लक्ष्मणने जब कैकेयीपर आ तो श्रीरामने तुरंत उन्हें रोक दिया और कहा—

'न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन

'भैया लक्ष्मण ! तुम मझली माताकी कभी नि किया करो ।' साथ ही भगवान् शरणागतवत्सल हैं जो लोग भक्तजनोंका या भगवदाश्रित जनोंका अपर हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रजी अवश्य दण्ड देते हैं । जय रावण आदिको भी इसीलिये दण्ड मिला था । 'द्यु कहते हैं कान्तिमान्को । त्रिलोकीमें कौन ऐसा है, जो श्रीरामकी मनमोहिनी छबिपर मुग्ध नहीं होत

कहहु सखी अस को तनुधारी । जो न मोह यह रूप नि
बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम

जो गुणोंमें भी दोष देखे, वह असूयक है अनसूयक हैं । वे कभी किसीके दोष नहीं देखते तो दूर रहा, सुनते भी नहीं । इसीलिये तो कैकेयीक करते समय तुरंत ही लक्ष्मणको रोक दिया । अन्ति महर्षिने प्रभावकी जिज्ञासा की है । संग्राममें क्रोधपू होनेपर किसके सामने जानेमें देवता भी थर्रा उ देवता तो रावण और मेघनादसे ही डर जाते हैं । आदि राक्षस भी जिनसे अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं उन भगवान् श्रीरामके अलौकिक प्रभावका पार सकता है ?

महर्षिकी जिज्ञासाके उत्तरमें देवर्षिने श्रीर अलौकिक गुण बताये हैं, वे सब इन्हीं सद्गुणोंके वि

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाह

—इत्यादि श्लोकोंमें भगवान्के शारीरिक शुभ वर्णन किया गया है, जो सामुद्रिक शास्त्रकी दृष्टि महान् ऐश्वर्य, प्रभाव, सुख और सामर्थ्यके सूचक हैं

* जैसे कंधोंका उन्नत होना सुखदायक माना ग

के सिवा भगवान् श्रीरामने माता-पिताकी अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। माताकी उपयुक्त आज्ञा ले तो बहुत हो सकते हैं; परंतु विमाताकी भी आज्ञाको शिरोधार्य करनेवाले केवल श्रीराम हैं। ़्यीने वरदानकी आड़ लेकर श्रीरामको वनमें जानेका दिया, उस समय श्रीराम उलाहना देते हुए कहते ! यह काम तो मैं तुम्हारे ही कहनेसे कर सकता ने पिताको क्यों कष्ट दिया? मालूम होता है, अब में इस तरहका कोई गुण नहीं देखतीं! मुझपर पूरा अधिकार है। फिर भी इस बातको सीधे कहकर तुमने पिताजीसे कहलाया है।'* पिताकी पालनमें उनका कितना उत्साह था—यह निम्नाङ्कित स्पष्ट है—'मैं पिताजीके कहनेसे आगमें भी कूद, तीव्र विषका भी पान कर सकता हूँ और समुद्रमें सकता हूँ। † कौसल्याने जब वन जानेसे रोका तो विवश होकर कहा—'मा! मुझमें पिताजीकी टाल देनेकी शक्ति नहीं है; मैं वनमें जानेकी ही लता हूँ। तुम बाधा न डालो; तुम्हारे चरणोंपर वकर प्रार्थना करता हूँ।' ‡

का भ्रातृप्रेम भी संसारके लिये सदा अनुकरणीय ा। उन्होंने सदा अपने भाइयोंके प्रति स्नेहका खा, उनके सुख और सुविधाका ख्याल किया। नहीं, खेलमें हारी हुई बाजी भी उन्हें जिताते रहे—नका मन न टूटे, उत्साह न भंग हो। चित्रकूटपर आगमनकी सूचना मिलनेपर श्रीरामने लक्ष्मणसे जो कट किया है, वह उनके अगाध भ्रातृ-स्नेहका रेचायक है। वे कहते हैं—'लक्ष्मण! मैं सत्य और आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अ तथा सम्पूर्ण पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लि हूँ। लक्ष्मण! मैं भाइयोंकी भोग्य-सामग्री और उन लिये ही राज्य भी चाहता हूँ। भरतको, तुमको औ को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उ लग जाय। वह जलकर भस्म हो जाय।'§

प्रजाजनोंपर उनका इतना अटूट प्रेम था। वनगमनके समय सारी अयोध्या उनके साथ जाने हो गयी थी। तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेके लिये अपनी प्राणोंसे प्यारी पत्नी सीताको भी वनमें भे लिये विवश हुए थे। वे आदर्श राजा थे राज्यमें प्रजाको सब प्रकारका सुख था। सभी सब चिन्ता और भयसे मुक्त थे। यह पृथ्वी धन-धान्य थी। किसीकी अकाल मृत्यु नहीं होती थी। स्वभावतः धर्मात्मा और सदाचारपरायण रहते आदर्श पुत्र थे। बड़े-से-बड़े कष्टोंको सहकर भी गु आज्ञाका पालन करनेको उद्यत रहते थे। पिता उ पुत्रको पाकर अपनेको परम सौभाग्यशाली मानते थे आदर्श पति थे, उनका एकपत्नीव्रत संसारको अ सदाचार और संयमका पाठ पढ़ा रहा है। वे आद थे; उनके सेवक उन्हें अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रि थे। उनका सेवकोंपर पुत्रवत् स्नेह था। इसी आदर्श मित्र और आदर्श शरणागतपालक थे। सारा जीवन ही धर्ममय था। वे आदर्श राजा थे, उन्होंने प्रजारञ्जनके उद्देश्यसे सीता-सरीखी सतीको भी दे दिया। वे धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। आर्य-सं मूर्तिमान् स्वरूप कहीं देखना हो तो भगवान् श्रीरा देखना चाहिये।



* न नूनं मयि कैकेयि किञ्चिदाशंससे गुणान्। यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥ (वा० रा० अ० १९।

† अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके। भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥ (वा० रा० अ० १८। २८

‡ नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम। प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥ (वा० रा० अ० २१

§ धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण। इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण। राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे॥

भगवान् श्रीकृष्ण

(लेखक—स्व० साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्रामजी शास्त्री)

तारोंमें श्रीराम और श्रीकृष्णका नाम सबसे अधिक क्ति तथा आदरके साथ लिया जाता है। इनमेंसे र्यादापुरुषोत्तम' कहे जाते हैं और दूसरे 'लीला-' । यद्यपि ये दोनों ही भगवान्के अवतार माने जाते हैं, भाव आदिमें एक दूसरेसे नितान्त भिन्न दीखते हैं। हम आदिसे अन्ततक एक समान गम्भीर मुद्रा रभावमें देखते हैं तो श्रीकृष्णको चञ्चलता और की प्रतिमूर्ति पाते हैं। यदि यह कहा जाय कि किसीने कभी हँसते नहीं देखा और श्रीकृष्णको ते नहीं देखा तो अत्युक्ति न होगी। एकमें प्रसाद- है तो दूसरेमें विषादका अत्यन्त अभाव है। एकने एक रूप धारण किया तो दूसरेने क्षण-क्षणमें भिन्न- मेकाएँ धारण कीं और नयी-नयी लीलाएँ दिखायीं। र्यादा बाँधनेके लिये स्वयं अपनेको मर्यादाओंके बेतरह जकड़ लिया तो दूसरेने त्रिलोकीका सूत्रधार प्रकृति-नटीको नचानेमें कमाल कर दिखाया। एकको लीलामें अपने वास्तविक स्वरूपका स्मरण बहुत कम दूसरेको उसका विस्मरण कभी हुआ ही नहीं। कई बार देवताओंके याद दिलानेपर भी अपने ज्ञान कठिनतासे हुआ तो श्रीकृष्णको अपने विराट् र त्रिलोकनायकत्वका भान सदा अपनी आँखोंके चता ही दीखता—

पि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥
द्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
देवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
थवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
ष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १० । ३९, ४१-४२)

र्जुन ! समस्त सृष्टिका आदि कारण मैं ही हूँ। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मुझसे रहित हो। जगत्में ाँ वैभव, तेज और लक्ष्मी दीखती है, वह सब मेरी तिका अंश समझो। अथवा बहुत-सी बातोंसे क्या

पादोऽस्येहाभवत् पुनः।' वेदने कहा है कि केवल एक चतुर्थांश इस भूत-भौतिकमयी समस्त व्याप्त किये हुए है और तीन अंश इससे बाहर हैं।

अर्जुनका सन्देह दूर करनेके लिये विराट् दर्शन कराते समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचर
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि

(गीता १

'अर्जुन ! चर और अचर सम्पूर्ण जगत्को इस (विराट्) शरीरमें देखो और इसके अति कुछ और देखना चाहते हो, वह भी देखो।'

कोई पूछे कि निखिल ब्रह्माण्ड (सचराचर देखनेके बाद और बचा ही क्या, जिसे अर्जु चाहेंगे ? भगवान् यह क्या कह रहे हैं ? चर अर्थात् चेतन और जड अथवा प्रकृति और पुरु क्या कुछ और भी संसारमें है, जिसे देखने भगवान् दे रहे हैं ? जी हाँ, है। वह है अनाग उसीकी ओर भगवान् संकेत कर रहे हैं। उस सम जो-जो वस्तु अपने जिस-जिस रूपमें विद्यमान थी अर्जुनको भगवान्के विराट्रूपमें दीख सकती आगे चलकर उसकी जो दशा होनेवाली है—जो तक नहीं हुई थी, संसारमें जो रूप उसका उस नहीं हुआ था, भावी या अनागत था, वह भी चाहें तो भगवान्की देहमें देख सकते हैं। यही 'यच्चान्यद्' का तात्पर्य है। आगे चलकर हुआ भी अर्जुनने भगवान्के अनेक विकराल मुखोंकी भयान बीच भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुःशासन आदि हुए देखा था। यह बात उस समयतक संसारमें नहीं थी। अनागतके गर्तमें प्रच्छन्न थी। वह भी प्रत्यक्ष दीख पड़ी। इसीलिये तो अर्जुनको सम भगवान्ने कहा था कि 'इन सबको तो मैंने ही है, अर्जुन ! तुम निमित्तमात्र होकर यशके भागी ब

भगवान् श्रीरामके समान श्रीकृष्णको प्रौढ

प दिखाकर कर्तव्यका ज्ञान कराया, उधर कौरवोंकी सन्धिका प्रस्ताव करते समय जब कर्ण, दुःशासन र्योधन आदिने इन्हें (भगवान् श्रीकृष्णको) अकेला बाँध लेनेकी गुप्त मन्त्रणा की तो आपने यह कहते 'बच्चा ! मुझे अकेला न समझो, मेरे साथ यहाँ भी छ है'—एक विकट अट्टहास करके अपने शरीरमें रूप दिखलाया कि विरोधियोंकी फूँक निकल गयी। लमें जब माता यशोदाने इन्हें मिट्टी खाते देखकर र मुँह खोलनेको कहा तो आपने मुँह खोलकर ह्माण्डको अपने पेटमें दिखला दिया। वह बेचारी ी ग्वालिन हक्की-बक्की-सी होकर चौंधिया गयी चने लगी कि 'समस्त पृथ्वी जिसके पेटमें समायी वह यदि जरा-सी मिट्टी खा ही लेगा तो क्या विकार ा है।' बात-की-बातमें आपने अपनी माया समेट शोदा सब बातें भूल गयीं और बालकृष्णको कोरा मझकर वात्सल्य-रससे परिपूर्ण हो गयीं। तात्पर्य भगवान् श्रीकृष्णको कठिन तपस्या, योगाभ्यास या आदिके द्वारा कोई सिद्धि प्राप्त हुई हो, यह बात । विश्वामित्र या अगस्त्य आदि महर्षियोंके समान हीने दिव्य वस्त्र या 'बला' 'अतिबला' आदि विद्याएँ कृपा नहीं की। इन्हें इसकी आवश्यकता भी नहीं ये तो 'लीलापुरुषोत्तम' थे। इन्होंने जन्मसे ही लीलाएँ आरम्भ कर दी थीं। बिना सीखे-पढ़े ही और पूतना आदिका शिकार करना शुरू कर दिया स अवस्थामें बच्चोंको लँगोटी बाँधनेकी भी सुध-बुध ा करती, और शायद ये भी वैसे ही घूमा करते हों, ापने अनेक असुरोंकी मरम्मत करना आरम्भ कर ।। इनका तो बिना सीखे-पढ़े ही यह हाल था। सीखते भी कब और कैसे। इनके जन्मसे भी लेसे कंसकी विकराल दृष्टि इनकी खोजमें लगी थी। में उसकी भीषण भ्रुकुटी देवकी और वसुदेवका कँपाया करती थी। यदि यह बात न होती तो आप ाको छोड़कर 'गोकुल गाँवके ग्वालन'से दोस्ती से पहुँचते ? ग्यारह वर्ष तो गौएँ चराने, ग्वालबालों- ा मचाने और गोपकन्याओंके साथ धमाचौकड़ी ही बीत गये। इसी बीचमें अनेक असुरोंकी भी ोटी गयी। अन्तमें कंसका कचूमर निकालनेकी ायी। जब उग्रसेन (कंसके पिता) राजा हुए देव-देवकी जेलखानेसे मुक्त हुए, तब लोगोंने समझा

कि अब श्रीकृष्ण-बलदेवकी जानका खतरा दूर हुआ बाद इनके क्षत्रियोचित संस्कार हुए और उ सान्दीपनि मुनिके यहाँ आप विद्याभ्यासकी रस करने पहुँचे। वहाँ कितने दिन रहे और क्या-क्य पढ़ा, जरा इसका हाल भी सुन लीजिये। चौंस चारों वेद और उनके छहों अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व निरुक्त, ज्योतिष और छन्द एवं आलेख्य, गणित, ग और वैद्यक—यह सब सीख लिया। बारह दिनमें ह आदिकी शिक्षा प्राप्त की और पचास दिनमें दसों अ धनुर्वेदकी शिक्षा समाप्त कर दी। महाभारतमें लिखा

> **अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या साङ्गान् वेदानवापतुः**
> **लेख्यं च गणितं चोभौ प्राप्नुतां यदुनन्दनौ**
> **गान्धर्ववेदं वैद्यं च सकलं समवापतुः**
> **हस्तिशिक्षामश्वशिक्षां द्वादशाहेन चाप्नुताम्**
> **पञ्चाशद्भिरहोरात्रैर्दशाङ्गं सुप्रतिष्ठितम्**
> **सरहस्यं धनुर्वेदं सकलं ताववापतुः**

इसके अनन्तर गुरुदक्षिणा देनेकी बारी अगस्त्यकी भाँति अनेक विद्याओंके समुद्रको एक ह सोख लेनेकी अद्भुत शक्ति देखकर गुरुजी भी द गये थे। उन्होंने कसके गुरुदक्षिणा माँगी। ब पहले उनके पुत्रको समुद्रमें एक मगर निगल ग उन्होंने उसीको ला देनेकी बात कही।

भगवान्‌ने गुरुको आर्त्त देखकर उनका पुत्र ल प्रतिज्ञा की। महर्षि वेदव्यास कहते हैं कि जो काम प्रा में कोई नहीं कर सकता था, वह उस समय भगवान् श्र कर दिखाया। सान्दीपनि मुनिका पुत्र आ गया, जिसे सभीको विस्मय हुआ। कहनेका मतलब यह है कि श्रीकृष्णकी सभी बातें अलौकिक हैं। उनकी लीलाएँ ही आरम्भ हो जाती हैं। उनकी दिव्य शक्तियाँ अप्रतिहतरूपसे अपना प्रसार दिखाती हैं। अघासुर, आदि असुरों तथा ब्रह्मा, इन्द्र आदि सुरोंके साथ बचपनसे ही मोर्चा लिया था। उन्हें पढ़ने-लिखने या की परतन्त्रता नहीं थी। यदि होती तो सान्दीपनि पुत्र कैसे आता ? यह विद्या उन्होंने किससे सीख यदि सान्दीपनिजीको यह विद्या आती होती तो वे अबतक अपने पुत्रको क्यों न ले आये होते ? इ लोग श्रीकृष्णको पूर्णावतार बताते हैं।

हम साधारण —असाधारण साधारण सिखाने

ानका अनुमान कीजिये। 'ताण्डव' और 'लास्य' ये के प्राचीन नृत्य प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्णने एक तीसरी की सृष्टि की, जो शिव-नृत्य (ताण्डव) और पार्वती-लास्य)—इन दोनोंसे विलक्षण तथा चमत्कारी थी। क क्रोधोन्मत्त भीषण भुजङ्गमके फणोंपर नाच सकता की शरीर-साधना, चरणलाघव और लोकोत्तर कलामें देह हो सकता है ? संगीतमें आज चार मत प्रसिद्ध नारदमत-सङ्गीत, २. भरतमत-सङ्गीत, ३. हनुमन्मत-और ४. श्रीकृष्णमत-सङ्गीत—इनमें अन्तिम सबसे और सबसे अधिक चमत्कारक बताया जाता है।

र देखिये, युद्धकी शिक्षा तो आपने सान्दीपनि अखाड़ेमें पायी थी, परंतु हजारों हाथियोंका बल रखने- और चाणूरका चूरन बनानेकी विद्या किससे सीखी । प्रबल और कुशल पहलवानोंको पछाड़नेके दाव-ने सिखाये थे ? कुवलयापीड़का पुलाव पकानेकी किसने बतायी थी ? ग्वालोंने या गोपियोंने ? ये । इन सबके नामसे ही थर-थर काँपते थे।

ीत तो सीखा उज्जैनके आचार्यकुलमें जाकर, परंतु थनका नृत्य किसने सिखाया ? गोप और गोपियोंका िक सङ्गीत कहाँसे आया ? त्रिभुवनमोहिनी -मुरलीकी सने दी ? गोकुलभरमें किसी दूसरे मुरलीधरकी तो ो नहीं मिलती । घोड़े हाँकनेमें मातलि (इन्द्रके) को भी मात करनेकी करामात इन्हें किसने दी स समय आदित्यब्रह्मचारी भीष्मने युद्धमें प्रलय—के समान विकराल रूप धारण करके पाण्डवोंकी सेना-स आरम्भ किया था, तब उनके सामनेसे इन्हींने अश्वचालन-कौशलके बलपर अर्जुनको सही-सलामत था, जिसे देखकर मातलि भी दंग रह गया था। हारथियोंने और खासकर भीष्मपितामहने भी—अँगुली दबाकर उस सारथित्वको दाद दी थी। ताइये तो सही कि इस प्रकारकी कुशलता प्राप्त करने-श्रीकृष्णने कौन-सी सड़कोंपर घोड़े दौड़ानेका अभ्यास ।

च्छा, इन सब बातोंको छोड़िये । जरा 'भगवद्गीता' तो दृष्टि उठाकर देखिये। केवल चौसठ दिनकी खाईके ज्ञानका यह परिणाम कि आज संसारमें उसके आविर्भाव हो जानेपर भी अबतक गीताके जोड़ पुस्तक न बन सकी। इस गीता-निर्माणके पूर्व ऐसी पुस्तक थी, इसका भी तो प्रमाण नहीं मिलता जोड़की पुस्तक बनानेकी तो बात ही छोड़िये। जिन शङ्कराचार्यको आज भी बड़े-बड़े ज्ञानी (देशी तथ भी) संसारका अद्वितीय दार्शनिक मानते हैं, उ भगवद्गीताके चरणोंमें मस्तक रगड़नेमें ही अपना अ समझा है। जब भगवान् शङ्कर-जैसे दिगन्त-विश्रा आचार्यका यह हाल है तो दूसरोंकी तो बात ही क्य तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः।' औरोंने भी अनुकरण किया है और अपने मतको गीताके अनुकूल ही अपनेको कृतकृत्य समझा है। गीता वह अगाध स कि जिसने इसमें जितनी ही गहरी डुबकी लगायी उतनी ही अधिक शान्ति और सन्तोष प्राप्त हुआ। कामधेनु है, जिसने सभी सेवकोंको सन्तोष प्रदान कि यह वह कल्पवृक्ष है कि जो जैसी भावना लेकर इसके हुआ, उसे वैसा ही फल मिला।

श्रीमद्भगवद्गीता एक प्रकारसे भगवान्‌का प्र है। भगवान्‌ने कहा है कि 'मुझे जो जिस भावनासे भ उसे मैं उसी रूपमें दीख पड़ता हूँ।'

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्

(४

श्रीभगवद्गीताके सम्बन्धमें भी यही बात प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। इसे जिसने जिस भावसे देखा, वैसी ही दीख पड़ी । संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद क निःस्पृह संन्यासीकी बगलमें भी गीताकी पुस्तक मिली बम या पिस्तौलसे अंग्रेजोंको उड़ा देनेकी हिंसावृत्ति र नवयुवकोंकी झोलीमें भी यह पायी गयी है। कुछ दि तो यहाँकी पुलिस राजद्रोहात्मक साहित्यके साथ पुस्तकको भी पकड़ा करती थी । इसके भाष्य भी हैं। सभीको अपने-अपने मतोंका मूल इसमें दीख प सांख्य, योग, वेदान्त—सभी कुछ इसमें मिलता है। ज्ञ कर्मयोग, उपासनायोग, ध्यानयोग, कर्मसंन्यास, संन्यास, द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत मतोंके माननेवाले अनेक आचार्योंने गीतापर भाष्य लिखे सभीने इसे अपने मतका पोषक बताया है। लं

सज्जनको यहाँतक कहते सुना है कि गीतामें मांस-सेवन करके भगवान्‌की उपासना करनेका विधान है। नेपर उन्होंने कहा कि 'मद्य' और 'अज' (बकरा) द भगवान्‌को नमस्कार करना या उनकी उपासना करनी इसके प्रमाणमें उन्होंने गीताका यह पद्यांश उद्धृत मद्याजी मां नमस्कुरु'। इसका अर्थ करते समय 'मद्य' और 'अज' शब्दके समस्त रूपके आगे तद्धित 'इनि' प्रत्यय बताया। 'यान्ति मद्याजिनोऽपि ऐसा ही वाक्य है।* मतलब यह कि गीतापर ार मोहित है। सभी इसे अपनानेमें अपना गौरव है। जिसे पूरा प्रकरण नहीं मिलता, वह दो एक ी अपना काम निकाल लेना चाहता है। गीतामें ांण है कि सभी भले-बुरे इसकी ओर आकृष्ट होते हैं वह लोकोत्तर वैचित्र्य है कि सब प्रकारकी भावना को इसमें अपना ही मुँह दीख पड़ता है।

सोचना यह चाहिये कि गीताका वास्तविक स्वरूप उसका अपना कोई असली स्वरूप भी है या कि वह ख-धंधा है, जिसमें जाकर सभी उलझ जाते हैं! छ वास्तविक तत्त्व भी है, या वह एक 'मोमकी नाक' जेसका जिधर जी चाहे उधर ही मोड़ ले!

इसपर हिंदीके एक प्राचीन दोहेकी याद आती है। में एक नव-वधू आयी। उसके सौन्दर्यकी बड़ी । सबने सुन रक्खा था कि वैसी सुन्दरी हजारों-ही मिल सकती। गाँवकी स्त्रियोंमें उसे देखनेका हल मचा। एक-एक करके सभी उसे देखने रंतु उसके रूपका मर्म किसीकी समझमें नहीं आया। खा, उसने उसे अपनी ही सूरत-शकलका पाया। बूढ़ी और जवान—सबने उसे अपने ही समान यों? इसलिये कि ये सब गँवार थीं। उसके रूपका मझ सकीं। उसके कपोल दर्पणके समान दमकते उनमें सामने बैठे मनुष्यका प्रतिबिम्ब भी पड़ता में ये सब गँवार स्त्रियाँ अपना ही मुँह देखकर लौट नववधूके वास्तविक स्वरूपका किसीको पता ही जरा देखिये तो कि इस जरासे दोहेमें ये सब भाव कितनी सुन्दरतासे सन्निविष्ट हैं—

न जान्यो रूपको मुकुर कपोलन पेखि।

भगवद्गीताके सम्बन्धमें भी ठीक यही बात च है। जिसने इसे देखा, उसे इसमें अपना ही मुँह दीख दर्पणका स्वरूप समझनेके पहले आपको अपने प्रतिबिम्बसे दृष्टि हटानी पड़ेगी और गीताका तत्त्व पहले आपको अपना मत भुला देना पड़ेगा। यदि अपना कोई मत स्थिर करके आपने गीताको देख आपको वही दीख पड़ेगा। जलका स्वरूप जान आपको क्यारियोंकी शकल भुलानी पड़ेगी, अन्य कोनेकी क्यारीमें आपको जल भी तीन कोनेका दीखे गोल क्यारीमें गोल। नववधूके मुखका वास्तवि समझनेके लिये आपको अपना मुख भुला देना पड़े गीताका रहस्य जाननेके लिये आपको अपने पिछले अपना काल्पनिक स्वरूप भी भुला देना होगा। अस्तु

भगवान् श्रीकृष्णकी अलौकिक लीलाओं और शक्तियोंका आविर्भाव जन्मसे ही आरम्भ हो गय पढ़ने-लिखने या सीखनेका इनसे विशेष सम्बन्ध न इनमेंसे 'भगवद्गीता' आज भी हमारे सामने है, उ अलौकिक गुणोंसे समस्त संसारको अपनी ओर अ रही है। यह ठीक है कि आज जो 'भगवद्गीता सामने है, वह इस रूपमें महर्षि वेदव्यासकी बन श्रीकृष्णने जो कुछ अर्जुनको समझाया था, उसीको अपनी दिव्यदृष्टिसे देखकर तद्रूप ही इन पद्योंमें किया है। महर्षि व्यास दूसरोंको भी दिव्यदृष्टि देनेकी रखते थे। धृतराष्ट्रसे उन्होंने कहा था कि 'यदि म का युद्ध देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि दे इससे तुम घर बैठे ही युद्धकी समस्त घटनाएँ अपनी अं सकोगे।' इसपर धृतराष्ट्रने कहा कि 'मैं अपने सम्ब मरते-कटते देखना नहीं चाहता। केवल हाल सुनन हूँ।' इसपर महर्षिने वह दृष्टि सञ्जयको थोड़े सम दी, जिससे उन्होंने महाभारतका सब हाल देखकर को सुनाया।

महर्षि वेदव्यास आजकलके वैसे लेखकोंकी तर नहीं, जो इधर-उधरके सामानको लेकर धोखेसे कीर्ति करते हैं। इसीसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी बातोंक के नामसे और उसी रूपमें प्रकाशित किया।

अलौकिक शक्तियोंसे ... और ... महर्षि

कारण उनकी बातोंको बड़ी श्रद्धा-आदरके साथ स्थान ै; परंतु जिन श्रीकृष्णमें भगवान् व्यास-जैसे महर्षि क रखते हों, उनकी महिमाका अनुमान करना कठिन ।

गवान् श्रीकृष्णकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनके मयिक बड़े-से-बड़े ज्ञानी, विज्ञानी, धर्मात्मा, तपस्वी, शूर, प्रतापी और पराक्रमी योद्धा भी उन्हें बड़ी द्धा और आदरकी दृष्टिसे देखते थे एवं उनके शायी ऐश्वर्यके कायल थे। व्यास-जैसे महर्षि, युधिष्ठिर-र्मात्मा, विदुर-जैसे नीतिज्ञ, धृतराष्ट्र-जैसे स्वार्थी, अर्जुन म-जैसे योद्धा, सहदेव-जैसे ज्ञानी, द्रौपदी और कुन्ती-न-वयोवृद्धा स्त्रियाँ और भीष्मपितामह-जैसे अलौकिक बल-सम्पन्न महात्मा ईश्वरबुद्धिसे इनके चरणोंमें नत-होकर सुखी होते थे। यह एक बात ही इनके पूर्णा-ोनेका काफीसे भी अधिक प्रमाण है।

ष्मपितामहके पराक्रमसे कौन परिचित नहीं। ये 'इच्छा- । इक्कीस बार समस्त पृथ्वीके क्षत्रियोंका अकेले ही नेवाले श्रीपरशुरामजी इनके शस्त्र-शिक्षक थे। सभी अस्त्रोंके ये ज्ञाता और प्रयोक्ता थे। एक बार जीसे भी इनकी मुठभेड़ हो चुकी थी। बराबर तेईस घोर संग्राम हो चुकनेके बाद जब ये हताश होने लगे में इन्हें अपनी माता मन्दाकिनी (भागीरथी गङ्गा) वसुओंके दर्शन हुए। उन्होंने इन्हें प्रस्वापन अस्त्र युद्धमें स्मरण करते ही वह अस्त्र इनके सामने आकर हुआ। तब देवतालोग भी घबरा उठे और इन युद्ध बंद करा दिया। परशुरामने भीष्मकी विजय । इन्होंने उन्हें विजयी पुत्रके समान प्रणाम किया होंने प्रसन्नचित्त होकर आशीर्वाद दिया। इसके वे तपस्या करने चले गये। तबसे भीष्मके पराक्रमकी स्त संसारमें जम गयी।

ों भीष्मने महाभारत-युद्धमें जब घोर कदन आरम्भ पाण्डवोंकी सेना आँधीमें पड़े तिनकोंके ढेरके समान र बिखरने लगी। अर्जुनका पराक्रम एक बच्चेके खने लगा। बड़े-बड़े महारथी उसी तरह उड़ने लगे ीके आघातसे रूईके फाहे। सब लोगोंको यह निश्चय कि अब पाण्डवोंकी खैर नहीं है। सबने यह प्रत्यक्ष इन्होंने यह समझा कि अब युधिष्ठिरकी सेनाका उपस्थित है। यह भयानक भीष्म एक ही दिनमें और दानवोंतकका बीज नाश कर सकता है। इस पाण्डवोंका यह तुच्छ बल किस खेतकी मूली है सारथि बनकर आये हैं, उसे अपने सामने विनष्ट होत पड़ेगा। जिस पक्षकी रक्षाका भार ग्रहण किया है अपनी आँखोंके सामने विध्वंस होते देखना पड़ेगा भगवान्ने स्वयं पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा की और को अपना निश्चय सुनाकर सुदर्शन चक्रका स्मरण स्मरण करते ही वह आपके हाथमें आ गया। भगवा उतर पड़े, घोड़े छोड़ दिये और बड़े वेगसे चक्र घुम भीष्मकी ओर झपटे। इनके भीषण पदाघातसे पृथ्वी लगी और दिशाएँ काँपने लगीं।

भीष्मने जब देखा कि भगवान् चक्र घुमाते हु ऊपर बढ़े ही चले आ रहे हैं, तब उन्होंने बिन घबराहटके अपने धनुषको और कसके पकड़ा एवं उ घोषके साथ रणमें आन्दोलित करते हुए अनन भगवान्से बोले—'आइये, भगवन्! आइये, देव नाथ और जगत्के अन्तर्यामी भगवन्! आ चक्रपाणे! हे माधव! आपको प्रणाम है। हे त्रिलोकी आज बलपूर्वक आप मुझे इस रथसे मार गिरा सर्वशरण्य! (सबको शरण देनेवाले) स्वामिन्! आ रणमें मेरा काम तमाम कीजिये। हे कृष्ण! आपके द्वा जानेपर मेरा दोनों लोकों (पृथ्वी तथा स्वर्ग) में. होगा। हे यदुनाथ! आज आपके इस आक्रमणसे तीनों में मेरी प्रतिष्ठा बढ़ गयी है। सब लोग यही कहेंगे कि धन्य हैं, जिनके लिये स्वयं भगवान्को अपनी (महाभारत-युद्धमें शस्त्र-ग्रहण न करनेकी) भुलाकर आना पड़ा।'

कहना न होगा कि भगवान् श्रीकृष्णके रहस्यको भीष्म समझते थे, उतना दूसरा नहीं समझता था। अ पहले तो भीष्मपितामह-जैसे आदित्यब्रह्मचारीके अ बल और ज्ञानका अंदाज लगाइये। उसके बाद उनके वचनोंको देखकर श्रीकृष्णके ऊपर उनकी भक्ति-श्रद्धाक चलाइये। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णकी अलौकिक श का अनुमान लगाइये। जो भीष्म एक ही दिनमें दे

बचना असम्भव है और साथ ही वह इस मृत्युको अहोभाग्य भी मान रहे हैं। इन सब बातोंका मनन ए आप भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपको पहचाननेका जिये।

भीष्मपितामहने इस प्रकरणमें भगवान्‌को 'सर्वशरण्य' देकर बड़ी मीठी चुटकी ली है। वे कहते हैं तो 'सर्वशरण्य' (सबको शरण देनेवाले) हैं। दृष्टिमें तो मैं और अर्जुन बराबर होने चाहिये। भक्ति अर्जुनसे कुछ कम है! फिर मेरे ऊपर यह रूप क्यों? क्या इसीका नाम सर्वशरण्यत्व है? भीष्म वीर क्षत्रिय हैं। वे अपने क्षात्रधर्मके अनुसार रगतिको प्राप्त होना चाहते हैं। इसीसे भगवान्‌के नन्य श्रद्धा-भक्ति रखते हुए भी—उन्हें प्रणाम करते अपनी मृत्युको निश्चित समझते हुए भी, उसी धनुष खींचे हुए युद्धके लिये सन्नद्ध खड़े हैं। वान्‌ने लड़नेका ही निश्चय किया तो कसके दो-दो । भीष्म पहले भगवान्‌के चरणोंमें और फिर क्षःस्थलमें अपने पैने बाणोंकी वीरमाला पहनाकर वीरगति प्राप्त करेंगे। इसीलिये प्रकृत प्रकरणमें अपने धनुषको आस्फालित करते हुए ही प्रणाम सब बातें कही हैं। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण भी य थे। यदि भीष्म शस्त्र छोड़कर एक ओर हाथ खड़े हो जाते तो वह उनके ऊपर आक्रमण ही सकते थे! न्यस्तशस्त्रके ऊपर आक्रमण करना तो र्म नहीं है।

ष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ प्रथम किसका पूजन किया जाय और युधिष्ठिरने वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध और पराक्रमवृद्ध समझकर महसे इसका निर्णय करनेकी बात कही, तब वे रतक चुप रहे और फिर सोचकर बोले कि 'यह जो ओंके तेज, बल और पराक्रमका अभिभव करते हुए सूर्यके समान विराजमान हैं, वही भगवान् सबसे जनीय हैं। जिस प्रकार सूर्य और वायुके कारण काशित तथा आनन्दित रहता है, उसी प्रकार यह वान् श्रीकृष्णके कारण भासित और ह्लादित है। ा इस सभाकी वही दशा हो जायगी, जो सूर्य और न जगत्‌की हो सकती है।'

> ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः।
> तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः॥
> असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना।
> भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः॥
> (सभापर्व ३६। २

इसपर शिशुपाल बिगड़ उठे, उन्होंने श्रीकृ भीष्मको बुरी तरह फटकारा। तब भीष्मने कहा श्रीकृष्णके बालचरितकी जो बहुत-सी अलौकिक लोगोंसे सुनी हैं, उन्हें देखते हुए भी आज संसा कोई पुरुष नहीं है जो वेद-वेदाङ्गोंके विज्ञानमें और श्रीकृष्णसे बढ़कर हो। समस्त भूतोंकी उत्पत्ति और आधार श्रीकृष्ण ही हैं। समस्त जगत्‌के आधार प्रकृति और पुरुष यही हैं, सब भूतोंसे परे इन्हींकी अतः यही सबमें पूज्यतम हैं। व्यक्त और अव्यक्त श्रीकृष्णमें ही प्रतिष्ठित है। सूर्य-चन्द्रमा तथा दिशा आदि सब इन्हींमें आश्रित हैं। यह शिशुपाल तो कोरा बच्चा है, इसीसे कुछ नहीं समझता और श्री सदा निन्दा किया करता है। आज महानुभाव र बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक ऐसा कौन है, जो श्रीकृष्णको न मानता हो। अथवा यदि शिशुपाल हमारी इस पूजाको अनुचित ही समझता हो तो जो उचित स कर देखे। जिसे अपने प्राण भारू हों, वह रणमें श्री सामने आकर अपने अनौचित्यका फल भोगनेको हो जाय।'

> कर्माण्यपि च यान्यस्य जन्मप्रभृति धीमतः।
> बहुशः कथ्यमानानि नरैर्भूयः श्रुतानि मे॥
> वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
> नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥
> कृष्ण एव हि भूतानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः।
> कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
> एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
> परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात्पूज्यतमोऽच्युतः॥
> बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या।
> चतुर्विधं च यद् भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम्॥
> अयं तु पुरुषो बालः शिशुपालो न बुध्यते।
> सर्वत्र सर्वदा कृष्णं तस्मादेवं प्रभाषते॥
> सबालवृद्धेष्वथवा पार्थिवेषु महात्मसु।
> को नार्हं मन्यते कृष्णं को वाप्येनं न [illegible]॥
> अथवा दुष्कृतां पूजां शिशुपालो [illegible]ति।
> दुष्कृतायां यथा न्याय्यं तथायं [illegible]ति॥
> (सभापर्व ३८। १३, १४, १९, २३, २४, [illegible], ३०, ३१

देव आदि अन्य भद्र पुरुषोंने भी भीष्मका समर्थन
परंतु शिशुपाल न माने । कुछ और राजा भी उनके
लिये । रण छिड़ गया । और राजा तो बात समझ-
हट गये; परंतु शिशुपाल बहुत कुछ उछल-कूद
बाद सुदर्शनचक्रके घाट उतर गये ।

डवोंकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर जब श्रीकृष्ण
र पहुँचे, तब दुर्योधनने कर्ण, शकुनि और दुःशासन
सलाहसे सब बात उलट दी । वह इस प्रस्तावका
करता हुआ सभासे उद्दण्डतापूर्वक उठकर चला
और एकान्तमें जाकर श्रीकृष्णको कैद कर रखनेकी
करने लगा । यह बात वृद्ध कौरवोंके कानोंतक पहुँची ।
दुर्योधनको बुलवाया और भरी सभामें उसकी भर्त्सना
ए बोले कि 'तू इन अप्रधृष्य दुरासद पुण्डरीकाक्ष
) को अपने पापात्मा सहायकोंके साथ मिलकर
चाहता है ? जिन्हें इन्द्रसहित समस्त देवता भी
क सकते, उन्हें तू रोकना चाहता है ? तेरी वही दशा
हाथसे चन्द्रमाको पकड़नेकी इच्छा रखनेवाले दुधमुँहे
होती है । समस्त देवता, मनुष्य, गन्धर्व, असुर
ग मिलकर भी जिनके सामने रणमें नहीं ठहर सकते,
नके रूपको तू पहचानता ही नहीं । अरे मूर्ख ! जिस
ायु मुट्ठीमें बंद नहीं की जा सकती, चन्द्रमा हाथसे
हीं जा सकता और पृथ्वी उठाकर सिरपर नहीं
ा सकती, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण बलपूर्वक
जा सकते ।'

के अनन्तर विदुरने भी दुर्योधनको समझाते हुए
कृष्णके अनन्त अतीत चरितोंका स्मरण दिलाते हुए
'भगवान् श्रीकृष्ण जगत्के कारण हैं । इनका कर्ता
हीं । यह जो चाहें सो कर सकते हैं । तुम इनके
क्रमको नहीं जानते । हे दुर्योधन ! तुम इनकी
करनेसे अमात्योंसहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे,
में पड़कर पतङ्ग ।'

के पश्चात् भगवान्ने विराट् रूप प्रकट किया, जिसे
कर्ण-दुर्योधनादि मूर्च्छित हो गये और फिर आप
उठकर चल दिये । इनके पीछे-पीछे भीष्म, द्रोण,
दुर, धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, युयुत्सु, विकर्ण आदि
लोग विनीत शिष्यकी भाँति इन्हें पहुँचाने प्रधान
आये ।

के कतिपय प्रकरणोंके उद्धृत करनेसे हमारा यह
से-बड़े लोग ईश्वर समझते थे और उनकी अलौकिक
के कायल थे । साथ ही वे स्वयं भी जन्मसे ही अप
शक्तियोंके ज्ञाता और प्रयोक्ता बराबर रहे । हम यह
कहते कि उस समय श्रीकृष्णका कोई विरोधी था ह
यदि ऐसा होता तो उनके अवतारका कुछ प्रयोजन
रह जाता । केवल मक्खन खाने और गौएँ चरानेके
वे अवतीर्ण हुए ही नहीं थे । हमारे कहनेका अभिप्रा
इतना ही है कि महर्षि व्यास, आदित्यब्रह्मचारी भीष्मा
ब्रह्मविद्या और क्षत्रविद्याकी प्रत्यक्ष मूर्ति आचा
आदि महानुभावोंके आगे कंस, चाणूर और शिशुपा
स्वार्थप्रधान तामस व्यक्ति किस गिनतीमें थे ?

हमने यहाँ सब-के-सब उदाहरण जान-बूझकर म
से ही चुने हैं । इसके कई कारण हैं । पहले तो
चरितका पता देनेवाली पुस्तकोंमें 'महाभारत' ह
प्राचीन है; फिर इसके लेखक महर्षि कृष्णद्वैपायन वेद
कही बातोंमें जितनी अक्षुण्ण प्रामाणिकता मानी जा स
उतनी किसी अन्य लेखककी बातें विश्वसनीय
सकतीं । काम और लोभसे रहित दिव्य-दृष्टिसम्पन्न
की कही अलौकिक बातोंके आगे सिर झुकाना ही पड़
सबसे बड़ी बात समसामयिकताकी है । चरित्र
समकालीन निःस्पृह लेखक जितना सच्चा ऐतिहासिक
दे सकेगा, उतना दूसरोंके लिये असम्भव है । फिर
व्यासमें तो प्रच्छन्न और प्रकट सभी बातें जानने
त्रिकालदर्शिनी दिव्यदृष्टि भी थी ।

सारांश यह कि श्रीकृष्णको 'भगवान्' मानने
संख्या उनके समयमें ही बहुत ऊँचे दर्जेतक पहुँच ग
यह बात इतिहाससे सिद्ध है कि उनके समकालीन
महर्षि भी उनकी अद्भुत शक्तियोंको प्रत्यक्ष देख
ईश्वर या भगवान् मानने लगे थे । आगे यह क्र
परम्परा बहुत ही अधिक बढ़ी । यहाँतक कि इतनी
संख्या शायद ही किसी अवतारके भक्तोंकी रही हो
प्रभाव बौद्धकालके बादतक रहा । प्रसिद्ध पुस्तक 'अम
के कर्ता अमरसिंहको महाराज विक्रमकी सभाका
रत्न बताया जाता है । इससे इनका समय आजसे लग
सहस्र वर्ष पूर्व ठहरता है । ये बौद्ध थे । अमरकोषमें
स्वर्ग और स्वर्गवासी देव-सामान्यका नाम निर्देश
बाद सबसे पहले बुद्ध भगवान्की ही नामावली गिन
रामका तो इन्होंने कहीं अन्ततक नाम ही नहीं लि

ागे इनका मस्तक अनिच्छापूर्वक ही जबरदस्ती झुक
हे प्रच्छन्न श्रीकृष्ण-भक्तिके कारण हो, चाहे श्रीकृष्णकी
शक्तियोंके ज्ञानके कारण हो और चाहे उस समय
पेनी श्रीकृष्णभक्तिके प्रबल प्रवाहके कारण हो—
ाहे जो कुछ हो; परंतु यह प्रत्यक्ष है कि ब्रह्मा,
हेशका वर्णन करते हुए अमरसिंहको श्रीकृष्णका नाम
कर लेना पड़ा है। केवल नाम ही नहीं, उन्होंने तो
थानमें इन्हींका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। 'विष्णु-
कृष्णः'से आरम्भ करके उन्होंने उपेन्द्र (इन्द्रके
), कैटभजित् (मधु-कैटभके मारनेवाले), श्रीपति,
यज्ञपुरुष, विश्वरूप, जलशायीके साथ-साथ दामोदर,
देवकीनन्दन और वसुदेवका पुत्र भी कहा है।
विष्णु तो देवकीनन्दन या वसुदेवसूनु हो नहीं
तः यह स्पष्ट है कि अमरसिंहने विष्णुको श्रीकृष्णके
ं बल्कि श्रीकृष्णको ही विष्णुके रूपमें अङ्कित किया
के आगे बलरामजी भी आ गये हैं। प्रद्युम्नको
त्रको) कामदेवके नामोंमें स्थान मिला है, यद्यपि काम-
ाचकोंके स्थानपर 'प्रद्युम्नका' प्रयोग संस्कृत-साहित्य-

में कहीं नहीं होता। सारांश यह कि श्रीकृष्णकी
शक्तियों और लोकातिशायी प्रभावकी छाप उनके ज
लेकर हजारों वर्ष बादतक—बौद्धधर्मके बादतक—
तकपर भी अटूट बनी रही, इनके भक्तोंकी संख्या अप
और बराबर बढ़ती ही गयी।

× × ×

ऐतिहासिक दृष्टिसे महाभारतका श्रीकृष्णचरित
अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है और उससे श्री
भगवान् होना और अवतार होना निर्विवाद सिद्ध है

जहाँ श्रीकृष्ण इतने बड़े कुटुम्बी थे, वहाँ उन्होंने
कुटुम्बियोंको अन्यायी और अत्याचारी होते देखक
जान-बूझकर अपनी आँखोंके सामने ही समूल न
करा दिया था। इन्हीं सब बातोंको देखते हुए तो
प्रकृतिका वशवर्ती जीव नहीं बल्कि उसका
'भगवान्' मानते हैं। इसीलिये तो महर्षि व्यास
अनेक स्थानोंपर 'प्रकृति-नटीका नचानेवाला सूत्रधा
है और इसी कारण उन्हें उनके समकालीन बड़े-से-ब
विज्ञानी और पराक्रमी पुरुष 'भगवान्' कहा करते

हिंदू-संस्कृतिमें ईश्वरवाद

(लेखक—श्रीबाँकेविहारीदासजी बी०एस्-सी०, बी०ए०, एल्-एल्०बी०)

अंग्रेज संतकी बात याद आ गयी—'A man can-
y a more sincere compliment to
than to spend his life seeking It.'
पके अन्वेषणमें ही जीवन-यापन करनेसे बढ़कर
ान अथवा सत्यके पूजनकी कोई अन्य पद्धति
ं।'

की खोजमें चल पड़ा हूँ। जीवनकी उलझी पहेली
ो मन आतुर हो उठा है। मेरा ज्ञान केवल इतना
ह 'प्यारा है', और वह असंख्य कल्याण-गुणोंका
। उसकी करुणाके स्वभावमें पूर्ण विश्वास रख
क्षात्कारको जीवनका लक्ष्य बनाया है। वर्षों बाद
ा जागे हैं। यह शरीर जिसका परिणाम भस्म,
विष्ठा है, उसे श्यामसुन्दरके पथकी रेणु बना पाया
सुन्दर कभी प्रियाजीके साथ नग्नचरण वृन्दावनके

हमारा ईश्वरवाद तर्ककी कसौटीसे परेकी व
अनुभूतिका विषय है। जो उसमें शङ्का करता है,
दोनों हाथ उठाकर कहता हूँ—यदि सच्ची जिज्ञास
जाग गयी है तो साधनके क्षेत्रमें कूद पड़ो। मैं
दिलाता हूँ—उस ईश्वरको त्रिभङ्ग-ललित भङ्गिमासे
सहारा लेकर स्थित, मुरली-रवसे जड़को चेतन और
अचेतन करते आज भी साक्षात् देख सकोगे।

हमारा ईश्वर कल्पित नहीं, वह सच्चिदानन्दस्व
राधाका प्रियतम, नन्दका लाला, यशोदाका कन्हैय
वपु धारणकर नित्य वृन्दावनमें विराजता है। उस
रूप, गुण, नाम—किसीका आश्रय लो। द्रौपदीके
गजेन्द्रके समान आर्त होकर आश्रय लो! वह आ
अपने पीताम्बरके छोरसे जन्मोंसे ढुलकते तुम्हारे अश्
आयेगा। अनित्य संसारमें यही चार वस्तुएँ नित्य हैं,

ूफी संतने जब श्यामा-श्यामका आलिङ्गन प्राप्त किया,
ानुभूति इस प्रकार व्यक्त हुई—

ाने इस्म व मुसम्मा चू फ़र्क नेस्त बबीं
दर तजल्ली इस्मा जमाले ख़ुदा बूद।
ालि हक़ तलबी हमनशीं नामश बाश
ः विसाले ख़ुदा दर विसाले नामे ख़ुदा॥

—मुईम

ी तथा उसके आवरण देहमें कोई भी अन्तर मत
रे देहाभिमानके द्वारपर ईश्वरीय प्रकाश प्रत्यक्ष हो
ईश्वरीय मिलनके लिये निरन्तर भगवन्नामके साथ
ावन्नामकी प्राप्तिसे ही भगवत्प्राप्ति होती है।'

पके प्रसिद्ध वैज्ञानिक रिकेजक (Recejac) ने
त्र'में आरूढ़ होकर अपना अनुभव इस प्रकार
–

live, yet not I, but God in me.'
जीवित हूँ—पर मुझमें मेरा अहं नहीं। मुझमें मेरा
ओतप्रोत है।'

रे ईश्वरवादकी अनुभूति असाधारण है। पश्चिम देश-
उसकी गाथा यों गायी है—

re perceiving of Reality will not do,
articipating in it, possessing and
possessed by It.

यका अनुशीलन ही पर्याप्त नहीं, सत्यमय हो
ीतर-बाहर उसीसे ओतप्रोत रहना परम श्रेयस्कर
म अपनी भाव-भाषामें एक शब्दमें कहेंगे—
'। गोपियोंने प्रभासक्षेत्रमें अपने प्रियतमसे माँगा है—

ुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
ारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहञ्जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥

(श्रीमद्भा० १० । ८२ । ४९)

ाद्मनाभ! तुम्हारे चरणारविन्द अगाध ज्ञानी योगेश्वरों-
में चिन्तनीय बताये गये हैं। गृहोंमें आसक्त संसार-
में गिरी हम सबके उद्धारके अवलम्बरूप वे श्रीचरण
ः मनोंमें प्रत्यक्ष रहें। असुरोंके पीछे दौड़नेसे श्रान्त
वनकी कण्टक-कंकड़ियोंसे व्यथित उन चरणोंको अपने

नहीं कर लेता, जबतक प्यारेको पा नहीं लेता, ।
प्राप्तिमें साधनाके अन्तकी प्राप्ति (Journey's en
lover's meeting) से पूर्व सन्तुष्ट नहीं होता
स्वरूप कितना महामहिम है। श्यामसुन्दरने भक्तकी
वर्णन करते हुए कहा है—

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।'

'मैं नित्य मेरे उस अनन्य प्रेमी भक्तके पीछे-
लिये चलता हूँ कि उसकी पवित्र चरण-रजसे अपने
बना लूँ।' यह उच्च स्वरूप कितना महान् त्याग नहीं
कितनी महती गुरुकृपाकी आवश्यकता नहीं
रहस्यको जाननेवालोंने कबसे इस तत्त्वको कह रक्ख

The Supreme Experience deman
whole man. No man can serve two m
(*Theologia Gern*

'अनन्य भावसे परमात्माका ही हो जाना पड़ेग
म्यानमें दो तलवारें नहीं समा सकतीं।'

इसी अनुभूतिका वर्णन रसिकवर भारतेन्दु श्रीहरिश
किया है—

पिया प्यारे बिना यह माधुरी मूरति औरनको अब पेखि
सुख छाड़िकै संगमको तुम्हरे इन तुच्छनको अब लेखि
'हरिचंद' जू हीरन को बेवहार कै काचन को लै परेखि
जिन आँखिनमें तुव रूप बस्यो, उन आँखिन सों अब देखि

हमारे ईश्वरको देखनेके लिये प्रेमका चश्मा
पड़ेगा। भक्तोंकी पदधूलिमें लोटना पड़ेगा। इन
गङ्गा-यमुना बहा उस त्रिवेणीमें अपने आत्माको स्ना
होगा। प्यारेके लिये करुण पुकार करनी होगी—
पुकार, जैसी कि स्वामी श्रीविवेकानन्दजीने अपने सर्वज्ञ
जीके सम्मुख रुद्ध कण्ठसे की थी। 'रुरुदुः सुस्वरं
दर्शनलालसाः' जैसी गोपियोंकी पुकारके समान ही
पुकार। वह उनकी रससे ओतप्रोत भाषा—

(राग जैजैवन्ती)

कत दिने हबे से प्रेम संचार।
हये पूर्णकाम, बलबो हरिनाम, नयने बहिबे प्रेम-अ
कबे हबे आमार शुद्ध प्राण मन, कबे जाब आमि प्रेमेर वृ
संसार बंधन हइबे मोचन, ज्ञानाञ्जने जाबे लोचन-

कबे जाबे आमार धर्म-कर्म, कबे जाबे जाति-कुलेर भर्म।
जाबे भय-भावना-श्रम, परिहरि अभिमान लोकाचार॥
र्व अंगे भक्त-पद-धूलि, काँधे लये चिर वैराग्येर झूलि।
रवारि दुइ हात तूलि, अञ्जलि अञ्जलि प्रेम-यमुनार॥
ऽ हये हाँसिब-काँदिब, सच्चिदानन्द-सागरे भासिब।
मातिये, सकले माताब, हरिपदे नित्य करिब विहार॥
—श्रीरामकृष्णपरमहंसकथामृत (बँगला), पहला भाग

र्थ गुरुदेवने 'तथास्तु' कहा। एक आलिङ्गनद्वारा नि करा दिया। वे बोले—'नरेन्द्र! आज मैं अपनी तुम्हें देकर भिखारी हो गया।' प्रेम-मूर्छाद्वारा ईश्वरानुभूति हो गयी। वह कृतकृत्य हो गया। गीविवेकानन्दजीने गुरुसे प्राप्त वह महान् सम्पत्ति में वितरित की और कितने ही शुष्क जीवनोंको और सुरभित बनाया।

रवाद ही एकमात्र सत्य है। उस सत्यका प्रकाश भी हो सकता है और चाहे जिस उद्दीपन-विभावसे ा है। उसके लिये समय नहीं निर्धारित किया —

Ione can say when and how it come. It is not for me and you the moment. After making some Jacob Boehme gazed fixedly upon nished pewter' and fell into an r: St. Ignatius Loyola on seeing nning water."
(In Re. Fifth Veda—Harvard University)

ई कह नहीं सकता कि कबतक और किस प्रकार यह येगा। नगण्य प्रयत्नके फलस्वरूप हमारे और तुम्हारे (लक्ष्यप्राप्तिके) क्षणको निर्धारित करना सम्भव त इग्नाशियस लोयला बहता पानी दीखनेपर (निर्झर-रत अनन्तकालीन साधनाका संकेत समझकर) तथा मकीली गिल्टके बर्तनको थोड़ी देरतक देखते रहनेके माधिस्थ हो गया।'

वह अनुभूत होता है, हुआ है और होगा; क्योंकि वही सत्य है।

तो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

'जो असत् है, उसकी भावरूपसे विद्यमानता और सत्का कभी अभाव नहीं होता। तत्त्व इन दोनों—असत् और सत्का अन्त देख लिया है। पथके पथिक हैं, उन सबका यही अनुभव है—

'There is a great experiment p in this life and there is a great of the experiment; but in the nat things it is not to be bought ch for it demands the whole man. been said that the life of the my one of awareness of God and as t we must remember that we are d with a question of life and of problem.........(*Lamps of Western Mystic* A. E. Waite, p. 242)

'जीवनमें बड़ी-से-बड़ी अनुभूतिके लिये अवस उसका बड़े-से-बड़ा फल भी है; परंतु है यह सौ महँगा। इसके लिये सर्वतोभावसे समर्पणकी आवश्यक है। इस सम्बन्धमें इस बातका ध्यान रखना अत्यन्त है कि यह जीवनका तथा जीवन भर हल करते र प्रश्न है।'

(वेट लिखित 'लैम्प आफ वेस्टर्न मिस्टि

हमारे देशके संतोंने कहा—इस अनुभूतिके लिये जीवन बिताना होगा। (Ethical life is a prel life spiritual.) सदाचार आध्यात्मिक जीवनक है। वह जीवन श्रद्धासे युक्त होगा। श्रद्धा क्या ?—आस्तिकता। भगवान्के चाहे जिस स्वरूपका साक्षात्क हो, उनके व्यापक स्वरूपकी अनुभूतिके पश्चात् ही तत्त्व (सगुण स्वरूप) का साक्षात्कार होगा। 'ब्रह्मभूत पश्चात् भगवत्कृपाद्वारा पराभक्ति पाकर जीव प्रभुको कृतकृत्य होता है। (गीता १८। ५

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ है
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उ
(श्रीतुलसी

हमारे 'ईश्वरवाद'की सत्यताका अनुभव क दार्शनिक शोपेनहर (Schopenhaur) पुकार उ

'In the whole world there is no

निषदोंके उच्चातिउच्च कल्याणमय ज्ञानसे बढ़कर
रमें अध्ययनके लिये और कुछ है ही नहीं। मेरे
वं मृत्यु दोनोंका यही अवलम्बन है।'

अमेरिकन कविश्रेष्ठ इमर्सन (Emerson) संत
'horeau) के पास वाल्डेनमें दर्शन करने गये तो
त एक वृक्षतले एक टूटी खाटपर विराजमान हैं
। सर्प निर्भय विचर रहे हैं। आपने प्रश्न किया—
! आपको इनसे डर नहीं लगता ?' उत्तरमें श्री-
ो सिरहानेसे निकाल अश्रुजलसे प्रभुकी उस शब्दमयी
ाभिषेक करते हुए संत बोले—'Where is fear
Mother Gītā is there to protect.'
तेश्वरी गीताजीकी गोदमें उनके अबोध बालकको
म्भावना कहाँ ?'

ओंके ईश्वरवादकी यदि कोई प्रत्यक्ष मूर्ति देखना
तो उसे श्रीमद्भगवद्गीता देखना चाहिये। उस
प्रदर्शकके ये वाक्य बड़े महत्त्वपूर्ण हैं—

मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
ाहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६ । ३०)

सब कहीं मुझे देखता है और सबको मुझमें देखता
उसे तिरोहित नहीं होता और वह मुझसे तिरोहित नहीं
ादि यह वाक्य हृदयमें बैठ गया तो अवश्य जीव एक
मसुन्दरके चरणारविन्दको प्राप्त कर लेगा। यह सब
नेर्भर है—

द्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
नं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४ । ३९)

यतेन्द्रिय होकर ज्ञान-प्राप्तिमें लगा हुआ श्रद्धावान् पुरुष
ा करता है और ज्ञान प्राप्त करके अविलम्ब परम शान्ति
।' यह श्रद्धा दैन्यसे उत्पन्न होती है। दैन्य कैसा ?—

चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
उँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

(श्रीरामचरितमानस)

। 'नमः' कारसे मन सदाके लिये नम्र हो जाता है।
ही बन्धन तथा मोक्षका हेतु है। यह परम दुर्लभ

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते

(गीता ९

'मेरे भक्त निरन्तर मेरा कीर्तन करते हुए, दृढ़ निय
संयम करते हुए, मुझे नमस्कार करते हुए तथा नित
लगे हुए भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं।'

इस प्रकारका कीर्तन कैसे हो ? यह श्रीचैतन्यम
बतलाया है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः

'तृणसे भी अपनेको छोटा मानकर, वृक्षसे भी
सहिष्णु रहते हुए, स्वयं सम्मानसे दूर तथा दूसरोंका
करते हुए सदा श्रीहरिका कीर्तन करना चाहिये।' उ
की अनन्त नामावलीमेंसे जो नाम अपनेको प्रिय लगे,
कीर्तन करना चाहिये।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा

'श्रीहरिका नाम, हरिका नाम, एकमात्र श्रीहरि
ही—इसके अतिरिक्त कलियुगमें दूसरी कोई गति
नहीं है, नहीं ही है।' प्यारे (प्रभु) ने स्वयं कहा है

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद

(८

'नारदजी ! मैं वैकुण्ठमें निवास नहीं करता
योगियोंके हृदयमें ही। मेरे भक्त जहाँ गायन (
करते हैं, मैं वहीं रहता हूँ।' कीर्तनमें सात्त्विक
प्रकाश (प्रादुर्भाव) होनेसे उन प्रभुके आगमनका
होता है।

प्रह्लादके लिये प्रेमवश पाषाण-स्तम्भसे प्रक
वाले, सदा हमारे हृदयमें विराजनेवाले, श्यामसुन्द
उस कमलासनको छोड़ अपनी रूप-माधुरीसे नेत्रों
करते हुए अपनी ईश्वरताका अनुभव हमें क्यों नहीं क

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वै
ज्ञानं वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति
हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला
हे गोपीजनवल्लभ व्यथयते हा हन्त दासैव म

ग है, न ज्ञान प्राप्त है, न मैंने कोई भी शुभ कर्म मेरी जाति भी अच्छी नहीं है; इस प्रकार अत्यन्त साधकको यह अच्छेद्य जड़वाली होनेके कारण माया, जनवल्लभ ! तुम्हारे रहते ही हाय, हाय, निरन्तर कष्ट ।'

भावमें आरूढ़ हो पुकारते चलना है—

गोपाल हरे मुकुन्द गोविन्द हे नन्दकिशोर कृष्ण ।
यशोदातनय प्रसीद श्रीबल्लवीजीवन राधिकेश ॥
(बृहद्भागवतामृत)

ी माधुरी इस साधनमें है । यहाँ साध्य-साधन प्राप्त हो जाते हैं । अहो, प्यारेके नामकी माधुरी राधिकाजीसे पूछे—

ताण्डविनीरतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
डकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम् ।
ङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
ने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥
(विदग्धमाधव)

खमें पहुँचकर अनेक मुखोंकी प्राप्तिके लिये (जिससे ोंसे एक साथ ले सकें) प्रबल उत्कण्ठा जाग्रत् ; कर्णकुहरोंमें पहुँचकर अरबों कानोंकी प्राप्तिकी पन्न करते हैं (जिससे सबसे सुने जा सकें); चित्तमें सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी कृति एकत्र कर लेते हैं (इन्द्रिय- ो जाता है) ! पता नहीं 'कृष्ण' ये दो अक्षर कितने उत्पन्न हुए हैं ।'

'कृष्ण' नामके आस्वादनकी युक्ति श्रीरासेश्वरीसे चाहिये—

श्यामेत्यनुपमरसापूर्णवर्णैर्जपन्ती
स्थित्वा मधुरमधुरोत्तारमुच्चारयन्ती ।
थूलान्नयनगलितानश्रुविन्दून् वहन्ती
मा . प्रतिपलचमत्कुर्वती पातु राधा ॥
(श्रीराधासुधानिधि)

याम-श्याम' इस प्रकार अनुपम रससिन्धु इन वर्णोंका ती हुई, रुक-रुककर अत्यन्त मधुर तारस्वरमें इन्हींका करती, मोतियोंके समान अश्रुबिन्दुओंको नेत्रोंसे , हर्षसे रोमाञ्चित होती तथा पल-पलपर चौंकती हुई

किस वाणीसे पुकारा जा रहा है—इसकी वह चि करता । वह भावका रसिक है । मौलाना रूमीने 'मसनवी'में यह रहस्य इस प्रकार प्रकट किया है—

"मूसा पैगम्बरने एकान्त वनमें एक सरलहृद गड़रियेको रुद्ध कण्ठसे विलाप करते सुना—

'हे स्वामी ! तू कहाँ है जो मैं तेरी चाकरी कर जूता सीऊँ । तुझे कँघी करूँ । हे नाथ ! तू कहाँ है तेरी सेवा करूँ, तेरे वस्त्र धोऊँ, उनकी जूँवें मारूँ ! बीमार पड़े तो तेरे पास बैठकर तुझे आश्वासन दूँ । चापूँ । तेरा बिस्तर लगाऊँ । यदि मैं तेरा घर दे तो तुझे रोज सबेरे और सन्ध्यासमय मालपूए अ खिलाऊँ । इन वस्तुओंको लाना मेरा काम रहा औ तेरा काम ।'

पैगम्बर मूसाने उसे धमकाकर कहा—'ओ कुफ्र मत बक ! अपना मुँह बंद कर ! अपने कुफ्रसे संसारको गंदा कर रहा है । धर्मके रेशमी कपड़ोंमें सी रहा है ।'

वह बेचारा सहम गया । लेकिन करुणासागर भ यह सहा न गया । आकाशवाणी हुई—

वही आमद सूए मूसा अज खुदा ।
बंदा मारा अज मा करदी जुद
तू बराए वस्ल करदन आमदी ।
या बराए फ़स्ल करदन आमदी
मा बरूँ न निगरेम व क़ालरा ।
मा दरूँरा बनिगरेम व कालरा
नाज़िरे कल्बेम अगर ख़ाशा बुवद ।
गर चे गुफ्ते लफ्ज़े नाखासा बुवद
चंद अजो अलफ़ाज़ो अखमोरा मजाज़ ।
सोज़ खांहम सोज़ बआँ सोज साज
आतिशे अज इश्क दरजा बर फ़रोज़ ।
सर बसर फ़िक्रो इबादत राँ बसोज
मूसया आदाबे दाना दीगरंद ।
सोख़्ता जाना रुवाना दीगरंद
मिल्लते इश्क अज हमा दीनहा जुदास्त ।
आशिकां रा मिल्लता मज़हब ख़ुदास्त

'मूसा ! तूने मेरे प्यारेको मुझसे जुदा कर दिया । त

हूँ। मैं निष्कपट द्रवीभूत हृदयसे आकर्षित होता तड़पन चाहता हूँ—तू तड़पन उत्पन्न कर। प्रेमकी गेन पैदा कर। ज्ञानियों एवं पण्डितोंके ढंगसे प्रेमियों-यारे होते हैं। इनमें तू पाण्डित्य मत ढूँढ़। इनको वस्त्र को कहता है, फटेको सीनेको कहता है? इनको होश इन्होंने कपड़े पहने भी हैं। प्रेमका धर्म तथा कर्म मैं हूँ। यह पन्थ ही निराला है।'

ू संस्कृति प्रत्येक क्षेत्रमें सब देशोंकी संस्कृतियोंकी । पश्चिम देशके प्रकाण्ड विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर muller) ने इसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है—

I were to look over the whole to find out the country most richly ed with all the wealth, power and that Nature can bestow, I should to India.

I were asked under what sky the 1 mind has most fully developed of its choicest gifts, has most deeply red on the greatest problems of life is found solutions of some of them well deserve the attention even of who have studied Plato and Kant, ıld point to India.

nd, if I were asked myself what literature we here in e, we who are nurtured almost ively on the thoughts of the s and Romans and of the Semetic he Jewish, may draw that corrective is most wanted in order to make ıer life more perfect, more universal, more truly human, a life not for ife only, but a transfigured and l life, again I should point to India.'

(In a letter to Queen Victoria in the year 1858)

पूर्ण विश्वमें समस्त प्राकृतिक साधनोंसे सम्पन्न, शक्ति और सम्पत्तिसे समलङ्कृत देश मेरे विचारसे ही है।

दि मुझसे पूछा जाय कि किस देशमें मानव-मस्तिष्कने मुख्यतम शक्तियोंको विकसित किया, जीवनके ड़े प्रश्नोंपर विचार किया और ऐसे समाधान ढूँढ़ [illegible]

'यदि मैं अपने आपसे पूछूँ—किस साहित्यका आ सेमेटिक, यूनानी और केवल रोमन विचारधारा हुए यूरोपीय अपने आध्यात्मिक जीवनको अ विकसित, अत्यन्त विश्वजनीन, उच्चतम मानवीय बना जो जीवन इहलोकसे ही सम्बद्ध न हो अपितु एवं दिव्य हो, तो मैं फिर भारतवर्षकी ही ओर सङ्केत क

(सन् १८५८ में महारानी विक्टोरियाको भेजे गये पत्र

यह स्वाभाविक है; क्योंकि स्वयं श्यामसुन्दरका कथ

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह

(गीता

'मैं ही इस जगत्का माता-पिता, रक्षक तथा भी हूँ।'

हमारे ईश्वरवादमें सभी मत-मतान्तरोंको स्थान है हम दूसरेकी वाणीका मर्म समझ लें तो विश्व-प्रेमक हममें धधक उठे। अपने ईश्वरवादको न समझकर खण्डन-मण्डनमें उलझते हैं। हमें प्रभुका यह वाक्य रखना चाहिये—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्

(गीता ७। १०

'धनंजय! मुझसे परे और कुछ भी नहीं है सूतके मणियोंकी भाँति यह सब मेरेद्वारा व्याप्त है तीन (सत्त्व, रज, तम) गुणोंके भावोंसे मोहित यह विश्व इस जगत्से परे मुझ अविनाशीको नहीं जानता।'

'वाणी'—शास्त्र न समझनेसे भ्रम होता है। अ की सम्भावना होती है। हमारा ईश्वरवाद हमें हमारे सबमें दिखाता है, विशेषकर द्वेषीमें। उसे देखक रोम पुकार उठता है—

हजारों जाँ भी हों तो कर दूँ रकीब पर कुरबान
मेरा उदू ही सही, पर है आशनाँ तेरा

मैं तो अपने ईश्वरवादका अर्थ इतना ही जान अनुभव करनेकी चेष्टा करता हूँ—

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिंचनानां

अत्यन्त दुष्प्राप्य निर्मल ज्ञान, जो नरके सखा नारायणने देवर्षि नारदजीको बतलाया था, भगवान्के अनन्य भक्तोंके चरण-कमलोंकी धूलि सर्वाङ्गमें ोंको ही प्राप्त होता है।'

कजन यदि अपनी चरण-रज देंगे तो मैं उस पहेलीको ; सफलमनोरथ होऊँगा। मेरे मनोरथका स्वरूप ालुद्दीन रूमीने बताया है—

ıy love has pierced me through
and through;
; thrill with bone and nerve entwine.
est a flute laid on Thy lips,
lute on Thy breast recline.
eathe deep in me that I may sigh,
t strike my strings and tears shall
be mine.

(Hastie's translation of *Masnavi*)

रोम-रोममें पैठा, प्रियतम! प्रेम तुम्हारा।
तनके तार-तारमें धावित उसकी विद्युत्-धारा॥
मुरली एक अधरपर, मोहन! धरी तुम्हारे।
मैं हूँ एक तुम्हारे उरपर पड़ी विपञ्ची, प्यारे॥

ऐसा स्वर मुरलीमें फूँको, आह उठे अन्तरसे।
ऐसा तारोंको झनकारो, नयन हमारे बरसें।

उसीको एक ईसाई संतने इस प्रकार व्यक्त किया

Oh to be nothing, nothing!
Only to lie at His feet.
A broken and empty vessel
For the master's use made meet.
Empty that He may fill me
As forth to His service I go;
Broken that so more freely
His life through mine may flow.

'ओह, और कुछ भी बननेकी इच्छा नहीं। कुछ भी
बस, उनके चरणोंपर पड़ा रहूँ।
एक भग्न और रिक्त पात्र बनकर,
जो वास्तवमें मालिककी सेवाके ही लिये गढ़ा गय
यह रिक्त इसलिये कि वे ही इसे भरें,
जब मैं उनकी सेवाके लिये उपस्थित होऊँ।
और भग्न इसलिये कि अबाधरूपसे उनकी जी
मुझमें प्रवाहित हो सके।

हिंदू संस्कृति और स्वाधीनता

(लेखक—पं० श्रीजीवजो न्यायतीर्थ, एम्०ए०)

संस्कृतिका प्रथम प्रभात किस पुण्यदिवसको दिखलायी , यह आज भी गवेषणाका ही विषय है। एक समय के तट-प्रदेशमें फैली हुई एक विशिष्ट सभ्यताकी ाहित हुई थी तथा वही सभ्यता क्रमशः समस्त भारतमें , यह अनेकों वेद-मन्त्रों तथा मनु प्रभृति धर्मशास्त्रोंसे ा है।* सिन्धु, सरस्वती, दृषद्वती प्रभृति कुछ नद- नदियोंके सन्निहित बहनेवाली धाराओंसे प्लावित उत्तर भूखण्डमें आर्य-सभ्यता या हिंदू-संस्कृतिकी आदि ज है, यह बहुतोंका मत है। †

परवर्ती कालमें बाहरसे विदेशी जातियोंने भारत किया तथा सिन्धुनदके किनारेके प्रदेशोंपर आक्रमण उनका जिस जातिके साथ संघर्ष हुआ, देशके नामके

* दृष्टान्तरूपमें ऋग्वेद १० मण्डल ७५ सूक्त देखिये। इस प्रकारके बहुतसे मन्त्र हैं। मनुके द्वितीय अध्याय १७, १ १, २२ श्लोकमें ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल, शूरसेन, मध्यदेश तथा आर्यावर्तपर्यन्त क्रमिक सभ्यताका हुए नामोल्लेख किया गया है। 'संस्कृति' शब्दका आधुनिक अर्थ प्राचीन कालमें आचार-सदाचार, चरित्र प्रभृति शब्द ा जाता था। वर्तमानमें प्रचलित सभ्यता, कृष्टि, भावधारा—ये सारे शब्द भी आजकलके कल्पित culture शब्दके अनुवाद

† मैक्समूलर साहब अपनी 'Vedic Index' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं—Here the home of the of the earliest period—that of the Ṛgveda is the territory drained by the Indus river corresponding roughly to the North-west Frontier Province of the Punjab of the

को उन्होंने 'सिन्धु' कहकर पुकारा। सम्भवतः
ारी लोग सेमेटिक जातिके थे, इसी कारण उनके
किल्यके कारण 'सिन्धु' 'हिंदू' रूपमें परिणत हो
ेरुतन्त्रमें 'हिंदू' शब्दकी व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार
है, तथापि अन्य किसी शास्त्र-ग्रन्थमें 'हिंदू' शब्दका
होने तथा मेरुतन्त्रमें लण्डन नगरका 'लण्ड्र' प्रभृति
ारा उल्लेख होनेके कारण इसकी प्रामाणिकताके
सन्देहको पर्याप्त अवकाश है; परंतु 'हिंदू'
व्यवहार इतना व्यापक हो गया है कि इसे माने
न नहीं चल सकता। इन बातोंकी आलोचनाका
यही है कि किसीको यह भ्रम न हो जाय कि 'हिंदू'
उत्पत्तिके साथ हिंदू-संस्कृति समकालीन है; बल्कि
के उत्पन्न होनेके बहुत पहले ही हिंदू-संस्कृतिका
ास हो गया था, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

य ही हिंदू-संस्कृतिका काल-निर्णय करनेके लिये
नस्वी पुरुषोंने बहुत परिश्रम किया है। मनस्वी
र तिलक, हार्मेन जेकोबि, मैक्समूलर, मैक्डॉनेल,
वेबर प्रभृति प्राच्य विद्याविशारदोंका नाम इस
वेशेषरूपसे उल्लेखनीय है। परंतु खेदका विषय यह
मेंसे किसी भी मतका दूसरेके साथ ऐक्य नहीं है। सभी
हैं, सभी तर्क और युक्ति उपस्थित करते हैं; परंतु इनके
तनी विभिन्नता है कि किसीके मतको स्वीकार करनेकी
ीं होती। पचीस हजार, आठ हजार, छः हजार, चार
र अन्ततः तीन हजार वर्ष पूर्व हिंदू-संस्कृतिका आविर्भाव-
न्न विद्वानोंके मतसे है। कुछ वर्ष पूर्व सिन्धुनदके तट-
देशमें 'मोहन-जो-दड़ो' तथा 'हरप्पा'के खण्डहरोंका
हुआ है। इस अन्वेषणके बाद भारतीय इतिहासमें
ड़े परिवर्तनकी सम्भावना दीख पड़ती है। यह
ा छः हजारसे भी अधिक पूर्वकी किसी सभ्यताका
करता है। इसे प्रायः सभी मतके लोग स्वीकार
आर्य-सभ्यता अथवा हिंदू-संस्कृतिके आविर्भावके
ाश्चात्य पण्डितोंमें अधिकांशका मत चार हजार वर्षसे
ले नहीं जाता। इस ध्वंसावशेषके समान जीवन्त प्रमाण
जानेपर उनके मतका खण्डन सम्भव हो गया है।
स स्थानकी अनुसन्धान-समितिके परिचालकके रूपमें
मार्शलकी नियुक्ति हुई। उन्होंने अपने लिखित
यह मत प्रकट किया कि 'यद्यपि वर्तमान हिंदू-
मिलता-जुलता है, जिसका कारण यह है कि वर्तमान हिंदू
अनार्य-सभ्यताके साथ मिश्रित हो गयी है, तथापि य
वशेष प्राग्वैदिक युगकी अनार्य सभ्यताका निदर्शन
युक्ति देकर उन्होंने पूर्वप्रकाशित भारतीय इतिहासकी
की रक्षा करनेकी चेष्टा की है।

वस्तुतः 'मोहन-जो-दड़ो' और 'हरप्पा'के ध्वंसा
सम्बन्धमें अबतक गम्भीर विवेचना सम्भव नहीं
अतएव मार्शल साहबकी उक्तिका मूल्य कितना है,
निर्धारण नहीं हो सकता।

इस प्रसङ्गमें यह उल्लेख किया जा सकता है कि
विश्वविद्यालयके अध्यापक डा० बेनीमाधव बरुआ एम
ने इस विषयमें मनोयोगपूर्वक गवेषणा करके एक
तथ्यका पता लगाया है; परंतु दुःखकी बात है कि इस
समाप्त करनेके पहले ही उनका देहावसान हो गय
तथ्य यह है कि उपर्युक्त ध्वंसावशेषके चित्र-संग्रहमें ए
चित्र मिला है, जिसमें एक वृक्षकी शाखापर दो पक्षी
एकके मुखके पास कुछ फल है और दूसरेके मुखके
कोई फल नहीं है। इस चित्रकी ओर उन्होंने विद्वानों
आकर्षित की है और अनुरोध किया है कि इसका
ऋग्वेदके इस मन्त्रके अर्थके साथ करें—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वज
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशी

(ऋ० म० १ सू०

'सख्य और सायुज्ययुक्त दो पक्षी एक ही वृक्षका
लेकर बैठे हैं; उनमें एक तो स्वादु अश्वत्थ-फलको
करता है और दूसरा बिना कुछ खाये साक्षिरूपसे
है।' इस मन्त्रमें जीव और ईश्वर दो पक्षियोंके रूपमें व
यह रूपक-चित्र मोहन-जो-दड़ोमें मिट्टीके साँचेमें गढ़
निकला है, उसीका आलोक-चित्र मोहन-जो-दड़ोके विवर

इसके सिवा श्मशानका आलोक-चित्र भी ध्या
योग्य है। वर्तमान हिंदू-संस्कृतिके मतसे अन्त्येष्टि-क्रि
प्रकार अनुष्ठित होती है, मोहन-जो-दड़ोके ध्वंसावशे
उसी प्रकारके चित्र पाये गये हैं। एक घड़ा, अधजली
चिता-भस्म आदि चित्रमें दिखलाये गये हैं। शवका
संस्कार करना एक वैदिक आचार है। ऋग्वेदके
मण्डल १५। १६ सूक्तोंमें, अग्नि ही मृत पुरुषको पि
ले जाती है, यह वर्णित है। परंतु असुर (अनार्य

ा शव-संस्कार होता है, यह छान्दोग्योपनिषद् ८
८ खण्डमें स्पष्ट उल्लिखित है। रामायणमें विराध
अनार्य) के अनुरोधसे ही उसकी मृत्युके बाद उसके
गर्तमें डाल दिया गया था और यही है मृत राक्षस-
चेरन्तन धर्म। (अरण्यकाण्ड, चतुर्थ सर्ग)

तः इन दो चित्रोंके दृष्टान्तसे मोहन-जो-दड़ो और
वैदिक संस्कृतिका प्रभाव विद्यमान होनेकी सूचना
। अतएव यह प्रमाणित होता है कि उपर्युक्त
। प्राग्-वैदिक युगका निदर्शन नहीं है।

संस्कृतिके प्राथमिक काल-निरूपणके सम्बन्धमें चाहे
सन्देह और वैमत्य क्यों न हो, यह तो निर्विवाद
से ही हिंदू-संस्कृतिका प्राकट्य और प्रसार हुआ
य जगत्के किसी-किसी विद्वान्ने ऋग्वेदको सर्वापेक्षा
मग्रन्थ माना है,* परंतु उन्होंने भी काल-निर्णयके
प्रयास नहीं किया।

क भावराशि हिंदू-संस्कृतिका मूल है। धर्मसूत्र,
राण, तन्त्र—सभी वेदकी छायाको लेकर धन्य-धन्य
तथा ये समस्त ग्रन्थ हिंदू-संस्कृतिके काण्ड, पत्र
-फूल हैं।

ा स्वाधीनताके नव-प्रभातमें प्राची दिशा उद्भासित
है। पराधीनताकी अन्धकारमयी रजनीके अवसानसे
की उषःप्रभा क्या विश्वकल्याणके सुप्रभातकी
गी ?

बात हृदयमें उठती है कि भारतकी स्वाधीनताके
त्का क्या कोई कल्याण हो सकता है ? अन्ततोगत्वा
ाधीन भारत स्वातन्त्र्य प्राप्तकर विश्वके प्राङ्गणमें
द्वके सिवा दूसरा कौन-सा अभ्युदय अर्जन करेगा ?

न विश्वमें विज्ञानका एकछत्र साम्राज्य है। नये-नये
आविष्कार विश्वके निवासियोंके मनको विस्मित कर
कहाँ तो बड़ी-बड़ी तोपें, सबमैरिन, वायुयान, जन-
कारी एटम बम—और कहाँ हिंदू-संस्कृतिकी नीरव
निष्पन्द गति और शान्तिमय प्रकृति! यदि आज
बाध्य होकर विज्ञानके पीछे ही दौड़ना पड़े, यन्त्र-
के लिये पाश्चात्त्योंका ही अनुकरण करना पड़े,
के द्वारा प्राप्त चावल, गेहूँ, औषधादिके द्वारा ही
जीवन धारण करना पड़े, पाश्चात्त्य सभ्यताके उ
अपनी संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर हिंदू-कोड बिलव
लेना पड़े, तो इस स्वातन्त्र्यकी सार्थकता कहाँतक रहि
—यह विचारणीय है।

हिंदू-संस्कृतिके भीतर छिपा हुआ स्वाधीनताव
क्या है, यही आज विचारणीय है। पराधीन भा
किसी रूपमें हिंदू-संस्कृति अवशिष्ट रह गयी थी
कारण यह है कि उसकी आन्तरिक स्वाधीनताके बी
भी नष्ट नहीं कर सका था। यह स्वाधीनताका स्वरू
अन्य किसी देशमें है या नहीं, मैं नहीं जानता; परंतु
मिट्टीमें इसकी अभिव्यक्ति दूसरे ही रूपसे हुई है।
स्वाधीनता दो प्रकारकी होती है—एक भौमिक (
और दूसरी आत्मिक। यह दोनों प्रकारकी स्वाध
पूर्ण स्वाधीनता कहलाती है।

राष्ट्र अथवा भूमिकी स्वाधीनता कालवश
विपर्ययको प्राप्त होती है। चिरकालतक समानरूपसे
स्वाधीनता अक्षुण्ण रहेगी, इस प्रकारका निश्च
करनेकी क्षमता किसीमें नहीं। परंतु भूमिके पराधीन
भी आत्मिक स्वाधीनतामें विपर्यय नहीं होता,
भूमिके निवासी स्वेच्छापूर्वक अपने स्वरूपको परकीय
अधीन न बनायें। जबतक आत्मिक स्वाधीनताका
रहता है, तबतक किसी भी देशके निवासी अपने
विहार, आचार-व्यवहार, वेश-भूषा आदि समस्त
सचेत रहते हैं, अर्थात् इन विषयोंपर अपने देशकी
अनुसार ही विचार करते हैं।

भौमिक (राष्ट्रिय) स्वाधीनताका कुछ कालतव
भी हो तो आत्मिक स्वतन्त्रताके द्वारा उसे पुनः प्र
जा सकता है; परंतु आत्मिक स्वाधीनताका त्याग
राष्ट्रिय स्वाधीनता भी चली जाती है। फारस देशके
अधिवासी किसी समय अग्निपूजक थे, और उनका
था 'जेन्दावस्ता'। जब अरबके मुसल्मानोंने इस देश
लिया तो सहस्रों पारसी भारतमें आत्मरक्षाके लिये भा
परंतु अवशिष्ट पारसीलोग अपनी आत्मिक स्वाधीनता
चिरकालके लिये विजेताके साथ मिल-जुल गये। आज भ
उसी प्राचीन पारसी जातिके अनेकों लोग आत्म-र
रक्षा करके विपुल धन और सम्मानके अधिकारी हो

*The Rgvedas are the Hindu sacred writings

स्कृतिके प्रसारके लिये अदम्य चेष्टा भी की है; परंतु ातिको आंशिकरूपसे विकृत करनेके सिवा वे इसको ाहीं कर सके । संस्कृतिकी महिमासे, आत्मिक कि बलसे भारतकी हिंदू-जाति अजेय बनी रही। ास स्वाधीनताका उषालोक देखनेका आज सौभाग्य ा । भगवान् मनु कहते हैं—

परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
द्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥

कुछ पराधीन है, दुःखप्रद है और जो कुछ ;, वही सुखप्रद है। यही सुख-दुःखका संक्षिप्त लक्षण जानना चाहिये।'

े स्पष्ट हो जाता है कि भौमिक और आत्मिक ाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकारकी स्वाधीनताकी ो चाहिये।

ल्लीके सिंहासनपर जब सम्राट् अकबर आरूढ़ था, तब ीने-इलाहीका प्रचारकर मुस्लिम-धर्म-संस्कृतिके द्वारा ृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। वह था मुसल्मानोंकी पुरातन रीति—एक हाथमें तलवार ्में कुरान लेकर धर्मप्रसारका वह पक्षपाती न था। ालपूर्वक मधुरताके द्वारा जनचित्तको आकर्षित चेष्टामें लगा रहा। उसका फल यह हुआ कि सर्व- के मुखसे 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' इस प्रकारके त्क शब्द निकलने लगे; परंतु उसका वह कौशल संस्कृतिके सामने न चल सका। बल्कि किसी-किसी स्वयं सम्राट् अकबर हिंदू-संस्कृतिका अनुकरण कर मुसल्मानोंके कोपका भाजन बना। हिंदू-संस्कृति ो भावोंसे दूर रहकर आत्मरक्षाके लिये भारतवासियोंको ्करती रही, बल्कि मुसल्मान भी हिंदू-संस्कृतिकी ्में पड़कर बहुत कुछ हिंदू-भावापन्न हो बैठे।* सत्यपीर और सत्यनारायणकी उपासना, गाँव-गाँवमें ीरके स्थानमें दूध चढ़ाना, पीरकी दरगाहमें हिंदू- ोंका धरना और मनौती, औलाबीबी तथा शीतलाकी ्नों सम्प्रदायोंके घर-घरमें इस मूर्तिकी परिक्रमा इत्यादि । निराकारवादी मुसल्मान भी साकार उपासनामें अग्रसर होने लगे, मानिक पीरके स्थान मिट्टीके घोड़ोंसे भर गये, औलाबीबीकी मूर्ति देखी गयी स्थानमें काली और दुर्गाकी पूजामें मुसल्मान अपनी अनुसार आर्थिक सहायता प्रदान करने लगे। यदि ः और इसी प्रकार चलता तो हिंदू-संस्कृति मुसल्मानोंव सीमाके अंदर और भी खींच लाती। यह कृपाण नहीं होता, धर्मान्तरकरणसे नहीं होता, यह होता संयोग-स्थापनके द्वारा सांस्कृतिक मिलनके पथसे आज तो स्थिति ऐसी प्रतिक्रियात्मक हो गयी है संस्कृतिकी रक्षा भी कठिन हो चली है।

भारतमें शासनाधिकार प्राप्त करनेके बाद अंग्रे पहले मार्गमें बाधाओंका सामना करना पड़ा था—सि १८५७ ई०में जातीयता-बोध न होनेपर भी भारतीय सं प्रेरणाने ही वैदेशिक शासनके प्रति विद्रोहकी भावना थी। उस समय मुसल्मानोंके अत्याचारसे जर्जरित किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे; यही कारण था कि कुछ अंग्रेजोंका पक्ष ग्रहण किया और इसीसे अंग्रेज विजयी

इस विद्रोहके बाद ही १८५८ ई० में पहली न महारानी विक्टोरियाने जो घोषणापत्र प्रकाशित किय बाध्य होकर यह वचन देना पड़ा कि हिंदू-संस्कृतिके हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। इस घोषणाके द्व जनसाधारणके चित्तमें सान्त्वना प्रदान करनेपर भी अंग्रेज समझते थे कि हिंदू-संस्कृति हमको भारतमें ही-बाहर रक्खेगी। दरवानके समान हम बाहरी शत्रुके उ भारतकी रक्षा करेंगे, परंतु भीतर हमारा प्रवेश सकेगा। भीतर प्रवेश न करनेपर भारतका शास शोषण पूर्णरूपसे न हो सकेगा, अतएव अब एकम रह गया है हिंदू-संस्कृतिमें परिवर्तन करना।

सिपाही-विद्रोहका धक्का खाकर अंग्रेज शासक वर्षोंतक हिंदू-संस्कृतिको बड़े भयकी दृष्टिसे देख मिशनरी लोगोंके ईसाई मतके प्रचारका भी समर्थ उनसे नहीं हुआ; परंतु अन्तमें यही स्थिर हुआ ि भारतको अधीन रखना है तो भारतको ईसाई बनान दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह सुयोग प्राप्तकर मि ने हिंदू-संस्कृतिके विरुद्ध विराट् प्रचार प्रारम्भ क हिंदू-संस्कृतिके विषयमें कितनी ही कविताएँ र

The Mohamedans have themselves become

दू-संस्कृतिका विकृत चित्र बनाकर देश-विदेशमें किया गया।

देश राजत्वके समय १८३५ ई० में कलकत्ताके में एक जहाज विलायती माल लेकर आया। वह ना प्रकारकी लोभनीय वस्तुओंसे पूर्ण था। औषधसे तक बहुतेरी व्यवहारयोग्य वस्तुएँ बिक्रीके लिये जी गयी थीं; परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि एक कोई वस्तु यहाँ नहीं बिक सकी। उस समयकी हिंदू नझती थी कि म्लेच्छदेशकी तैयार की हुई वस्तुएँ लिये अस्पृश्य हैं, अव्यवहार्य हैं। यह संस्कार ढ़ और प्रबल था कि बहुत प्रयत्न करनेपर भी माल भारतमें न चल सका, और उस जहाजको था वैसे वापस लौट जाना पड़ा। उस समयके सेक्रेटरी (भारतमन्त्री) लार्ड मैकालेने इस बातको देखकर थी कि भारतमें हम अब एक ऐसी जाति पैदा सका रंग और रक्त भारतीय रहेगा, परंतु शिक्षा, र रुचिमें वह अंग्रेज हो जायगी।

प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये लार्ड मैकालेने भारतमें शिक्षाकी नींव डाली, और उनके सङ्कल्पित कार्यने ता प्राप्त की। चाय, चुरुट, बिस्कुट, जमा हुआ ध आदिसे लेकर विलासकी भाँति-भाँतिकी सामग्रियाँ शोंसे आती हैं और करोड़ों-करोड़ों रुपये विदेश हैं।

-संस्कृतिने एक दिन शिक्षा दी थी कि भारतकी त्पन्न वस्तु ही पवित्र और उपकारी है। भारतके फल-तकी ओषधि-लता, भारतके अन्न-वस्त्र—सभी पवित्र र हैं, अतएव व्यवहारयोग्य हैं। प्राचीनकालमें चीन तमें वस्त्र आता था; परन्तु इस प्रकारकी उस समय ी, जिससे उसका भी भारतमें प्रसार न हो सका।

स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः।
कोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद्विचक्षणः॥

े हुए, जले हुए, खास करके विदेशोंमें बने हुए रा, चूहेके कुतरे हुए अथवा पुराने वस्त्रके द्वारा पुरुष वैध कर्मोंको न करे।'

भारतके वनपर्वमें पाण्डुराजाके मृतदेहके दाह करने-लिखा है कि, उनका शरीर शक्र देशी वस्त्रद्वारा

हिंदूके लिये अपने-आप ही वर्जनीय हो जाता दूसरोंके प्रति विद्वेषमूलक 'बायकाट' नहीं है, बल्कि प्रेमका एक निदर्शन मात्र है। साथ ही, देशका ध ही रखकर अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करनेका एक उ

हिंदू-संस्कृति भारतको यही शिक्षा देती है मुखापेक्षी न होकर पूर्णतः अपने भावसे अपने पै भारतवर्ष जिससे संसारमें खड़ा रह सके, वही सर्वा स्वाधीनता है। हिमालयरूपी प्राचीर तथा समुद्ररूपी द्वारा वेष्टित हो यह भारत जिस प्रकार भौगोलिक स देशोंसे विच्छिन्न होकर एक वैशिष्ट्य धारण कर उसी प्रकार इस भारतमें उत्पन्न शिक्षा, सभ्यता औ पृथ्वीके दूसरे भागोंकी अपेक्षा एक असाधारणता र वह असाधारणत्व कुछ अंशोंमें विस्मृतिके आवरणसे ि पर भी अभी सर्वथा विलुप्त नहीं हुआ है। इसी उडरफ साहबने कहा था कि 'भारत वैसी कोई सत्ता नहीं है, और न उस प्रकारकी कोई जन-समि अचानक पृथ्वीके किसी अंशमें आकर पड़ गयी है पृथ्वीके किसी प्रान्तमें पड़ी रह सकती हो। भारत प्रतीक है।'

मैजिनीने कहा था कि "स्वाधीनता-शब्दके अर्थका विचार न करके केवल 'स्वाधीनता' शब लगाना केवल पीड़ित क्रीत दासकी मनोवृत्तिका होनेके सिवा और कुछ नहीं।"*

अत्यन्त दुःखके साथ प्लेटोने कहा था कि 'जो मनु देशकी संस्कृतिके प्रति घृणा उत्पन्न करता है, उससे बद दूसरा कोई नहीं; ऐसे मनुष्यका मर जाना ही श्रेयस्क

एडमण्ड बर्क महोदयने कहा था कि 'स्वाधी भाव है, और दूसरे भावोंके समान यह भी प्र नहीं है। स्वाधीनताका ज्ञान बहुत कुछ अनुभवसिद्ध साथ जुड़ा रहता है, तथा प्रत्येक जाति अपनी प्रिय वस्तुओंकी धारणाको लेकर स्वाधीनताके रूपको करती है, जिसकी पूर्णताके ऊपर सुखके मानदण्डकी की जाती है।'†

---

* **Merely to spout liberty without re what it is intended the word should in the instinct of the oppressed slave a more.**

† **A man who brings into contem**

मुच ही स्वाधीनताका कोई निर्दिष्ट स्वरूप नहीं है।
स्वाधीनतासे जिस प्रकार 'अपने ऊपर टैक्स लगाने-कार' (Self-taxation) प्रधानतः समझा जाता है, कार भारतमें स्वाधीनता कहनेसे मुख्यतः 'हिंदू-ी रक्षा' ही समझी जाती है। सच पूछिये तो, । है या संस्कृति, पार्थिव राज्य बड़ा है या मनोमय ोग्य वस्तु बड़ी है या भोक्ता—यही संघर्ष आज सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। भारतकी प्राचीन विचार-ंस्कृति बड़ी मानी जाती थी, मनोराज्यकी प्रधानता । भोक्ताका प्रमुत्व था। आधुनिक विचारमें राष्ट्र ही गया है। इन दोनों धाराओंकी तुलना करनेपर ज्ञात यगा कि भारतमें संस्कृतिकी प्रधानता होनेके ही ष्ट्रके पराधीन होनेपर भी उसकी स्वाधीन होनेकी ा नष्ट नहीं हो सकी; परंतु यदि राष्ट्र प्रधान होता धिकांश जनता संस्कृतिकी उपेक्षा करती, तो राष्ट्र-ऽ साथ-साथ संस्कृतिका भी नाश अवश्यम्भावी हो तब भारतका जो कुछ अतीत गौरव तथा पूर्वपुरुषों-' थी, सब विस्मृतिके अतल-तलमें डूब जाते। आज । अपने हृदयसे यह बात समझने लगे हैं कि राष्ट्रके ंस्कृतिको एक सूत्रमें बाँधकर मुस्लिम-संस्कृतिको स्थान देना पड़ेगा। इसी कारण उनके राष्ट्रका नाम ान' हुआ है, उनके राष्ट्रका शासन कुरानशरीफ-रपर हो रहा है, तथा उनके लिये स्वाधीनताका अर्थ है—'मुस्लिम-संस्कृतिकी अबाध गति'।

श्चर्यकी बात यह है कि मुस्लिम-संस्कृतिमें जगत्‌को रने योग्य बहुत ही कम सम्पत्ति है; परंतु जो कुछ का जय-डंका बजानेके लिये वे कटिबद्ध हैं और इधर कृतिमें जो असीम रत्नभण्डार, समस्त जगत्के लिये सम्पद् विद्यमान है, उसकी आज उपेक्षा हो रही है। निषद्, दर्शन, तन्त्र, राजनीति, साहित्य, भागवत, , महाभारत आदि अमूल्य ग्रन्थराशिमें कितने भाव, ान-विज्ञान तथा कितने उपदेश निहित हैं, उनका रना कठिन है; परंतु आज स्वाधीन भारतमें उनकी ाके लिये कोई सुयोग ही नहीं है!

ार्थ तो यह है कि हिंदू-संस्कृति ही हिंदूके

---

o be found. Liberty inheres in some
e object and every nation has formed

लिये परम प्रिय वस्तु है। इस संस्कृतिके ऊ जितने आघात, चाहे जितने आक्रमण क्यों न हों, अधिकांश जनता इस संस्कृतिके प्रति अनुरक्त है। याज्ञवल्क्यसे लेकर धर्मव्याधपर्यन्त सबकी कीर्तिसे स इस संस्कृतिकी आदिजननी अपौरुषेय वेदवाणी संस्कृतिके साथ स्वाधीनताका सम्बन्ध अच्छेद्य है, यह भी अत्युक्ति नहीं है। इसी संस्कृतिकी महिमामें स प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्रमें प्रतिष्ठित थी।

वर्णाश्रम-धर्मका स्थान इस संस्कृतिमें केन्द्रीभूत और वह आज भी पूर्णतः उच्छिन्न नहीं हुआ है। धर्ममें वैयक्तिक स्वाधीनता, वर्णधर्ममें सामाजिक स तथा वर्णाश्रमधर्मके यथायथ पालनमें राष्ट्रिय स्वा रक्षा होती थी।

आश्रमधर्ममें चरम और परम स्वाधीनता चतु अर्थात् संन्यासमें विकसित होती है। संसारकी उ भी जाति इस स्वाधीनताके स्वरूपका चिन्तन नहीं है। जो स्वाधीन होगा, उसके लिये कोई भी बन रहेगा। जो स्त्री-पुत्रके अधीन हैं, विषयके अधीन हैं, अधीन हैं, मन-इन्द्रियोंके अधीन हैं, शुभाशुभ कर्मके उ वे स्वाधीन कैसे कहला सकते हैं? जो काम-क्रोधादि अधीन हैं, अन्न-वस्त्रके अधीन हैं, विलास-वासनाके हैं, वे स्वाधीन कैसे हो सकते हैं? वास्तविक संन्या वेष-भूषाकी आवश्यकता नहीं, भोजनके लिये बाध्य कामना-वासनाका बन्धन नहीं—इसकी अपेक्षा स्वा श्रेष्ठ आदर्श और क्या हो सकता है? जो सब प्रकारके से मुक्त हैं, वस्तुतः वे ही स्वतन्त्र हैं।

ब्रह्मचर्य-आश्रममें देह और मनका गठन, गृह कतिपय कर्तव्योंका पालन और परम्परा या धारा करना—ये सारी बातें नियम-तन्त्रके अधीन होने इनके द्वारा मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आ शक्तियोंका विकास होता है। व्यक्ति-समूहसे ही समा है। व्यक्ति-समूह यदि नियमानुसार बर्तने लगें तो स्वस्थ और सबल हो उठे। हिंदू-संस्कृति कभी य नहीं देती कि स्वाधीनताका अर्थ अनधीनता है अर्थात् चारिता या कामाचार है। स्वेच्छाचारिताके द्वारा क भी महान् कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। संन्यासी सर्वब होनेपर भी स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते; उनके भी ि

थ्राश्रममें रहकर भगवत्-आराधना और पितृ-श्राद्धादि
के करते-करते चित्तमें जो अनासक्तिका भाव आता
वैयक्तिक स्वाधीनताका विकास संभव होता है।
ृहस्थ-धर्मके लिये उपदेश देते हुए मनु कहते हैं—

यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः॥

(मनु० ४।१५९)

यत् कर्म पराधीनं परप्रार्थनादिसाध्यं तत्तद् यत्नतो
यद् यत् स्वाधीनदेहव्यापारसाध्यं परमात्मग्रहादि
ातोऽनुतिष्ठेत्॥ (कुल्लूकभट्टकी टीका)

'जो कर्म पराधीन अर्थात् दूसरोंकी प्रार्थनादिसे सिद्ध
उन-उन कर्मोको यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये,
कार्य स्वाधीन हैं, दैहिक व्यापारद्वारा सिद्ध हो
उन परमात्मज्ञान प्रभृति कार्योंका यत्नपूर्वक अनुष्ठान
हिये।'

प्रकार स्वातन्त्र्य-शिक्षाके द्वारा गृहस्थकी व्यक्तिगत
लिये पद-पदपर उपदेश दिये गये हैं। क्या
और क्या गृहस्थ, सबके लिये कहा है कि 'जो सब
त्माको देखते हैं तथा जिन्हें आत्मामें सब भूत
दीखते हैं, वही समदर्शी आत्मयाजी पुरुष स्वाराज्य-
होता है।' स्वाराज्यप्राप्तिका अर्थ यह है कि वह परमात्मा-
स्वतन्त्र और स्वाधीन भावको प्राप्त होता है।*

धर्ममें सामाजिक स्वातन्त्र्यके विकासके लिये सुविधा
गयी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—
मनुष्य-जातिके इन चार प्राकृतिक विभागोंके द्वारा
न एकाइयों (Units) की सृष्टि की गयी थी। जो
सम्बन्धी कार्य था, वह सब ब्राह्मणोंके उत्तरदायित्व-
 था। राष्ट्रकी रक्षा, पालनादिका समस्त उत्तरदायित्व
ऊपर था। धनका आगम और वृद्धि तथा
दि कर्म वैश्यके हाथमें थे। शिल्प और सेवाका
उत्तरदायित्व शूद्र जातिके ऊपर था। इनके बी
कितनी ही अवान्तर उपजातियोंका निर्माण कर श्रम
(Division of labour) के द्वारा विभिन्न
पारस्परिक प्रतियोगिता (Competition) का
कर दिया गया था। बल्कि समाजके विविध प्र
सिद्धि तथा प्रत्येक उपजाति (Unit) का जीवि
एक ही समय एक ही कर्मके द्वारा सम्पन्न हो ज
कोई तेली, जुलाहा या सूत्रधार अपने निजी व्य
स्वयं स्वामी था। उसकी स्वतन्त्रतामें कोई बाधा ड
न था। स्वयं मनुष्य जितना अधिक परिश्रम अ
कार्य करता, उतना ही वह अपना तथा समाजका
करता।*

हिंदू-संस्कृतिमें प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक स
इस प्रकार स्वाधीनताका उपभोग किया है, तथा
किसी अंशमें कर रहा है। उसके साथ तुलना करनेपर
रूसका नव-कल्पित सम्प्रदायवाद (Communism
हो जाता है। रूसके सम्प्रदायवादमें व्यक्तिगत स्व
लिये स्थान नहीं है, तथा मुट्ठीभर व्यक्तियोंके द्वारा प
स्टेटके अधीन शेष समस्त जनता दासके समान का
लिये बाध्य है। उनका व्यक्तित्व नष्ट हो रहा है
स्टेटके किसी प्रधान पदपर बैठनेका सौभाग्य प्र
होता, तबतक व्यक्तिका मूल्य चने-चबैनेके समान है
सम्प्रदायवादका मूल-मन्त्र है—समभावमें धन-विभ
और दरिद्रके वैषम्यको दूर करना।

हिंदू-संस्कृतिमें वर्णाश्रमधर्मके द्वारा धनी-दरिद्रके
को दूर करनेकी व्यवस्था भी पायी जाती है। समान
समान कर्म करनेवालोंके बीच आदान-प्रदान, विवाहादि
नियन्त्रित होनेके कारण एक ओर समस्त धनी
ओर समस्त दरिद्रोंके दल नहीं हो सकते।
सजातीय समाजमें धनी और दरिद्रका मिलना-जुलना
धनियोंको माता-पिताके निधन, विवाह अथवा अन्या
कालमें दरिद्रोंकी सहायता प्राप्त करनी पड़ती है; अतए
गर्व खर्व हो ही जाता है। धनीलोग कहीं विलास
न हो जायँ, इसके लिये पूजा-पार्वण, श्राद्ध और

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥

(मनु० १२।९१)

× × स्वे राज्ये भवं स्वाराज्यम् परमात्मवत् स्वतन्त्रः
। (मेधातिथि-टीका)

* मनुसंहितामें यन्त्रशिल्पको निन्दित कहा गया
गृहशिल्पकी प्रशंसा की गयी है। [illegible]

धन समाजके प्रत्येक स्तरमें वितरित हो जाय,
व्यवस्था भी देखी जाती है । एक दिन युधिष्ठिरने
े पूछा कि गृहस्थके धर्म क्या हैं ? नारदजीने उत्तर

यद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
धिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भा० ७ । १४ । ८)

ातनेसे उदर-पूर्ति होती है, उतनेमें ही प्रत्येकका
। जो इससे अधिक सञ्चय करता जाता है, वह चोर
ण्डनीय है ।' सम्प्रदायवाद (Communism) का
द्धान्त इसी एक श्लोकमें प्रकट कर दिया गया है ।

दू-संस्कृतिमें राष्ट्रके कल्याणकी आकाङ्क्षा कम नहीं
जुर्वेदके अ० २२ मन्त्र २२ में एक प्रार्थना है—
न् ! हमारे राष्ट्रमें यज्ञ और अध्ययनशील ब्राह्मण
हों; शूर, शरक्षेपपटु, शत्रुभेदकारी, महारथी क्षत्रिय
हों । इस राष्ट्रमें दुग्धप्रदा धेनु, वहनशील वृषभ,
व्रगति अश्व उत्पन्न हों । इस राष्ट्रमें पुरन्ध्री (जिसके
ादि जीवित हों) नारी तथा जयशील रथी उत्पन्न हों ।
ानके सभा-शोभाकारी, वीर, सामर्थ्यवान् पुत्र हों;
 राष्ट्रमें पर्जन्य हमारे इच्छानुसार वृष्टि प्रदान करें,
ाँ (अन्न) फलवती होकर परिपक्व हों तथा राष्ट्रके
का वहन करें ।'

श्वमेध, राजसूय प्रभृति यज्ञ जिनका वर्णन वेदोंमें
ाता है, उनसे समस्त राष्ट्रके अभ्युदयकी सूचना
है ।

तोंकी धारणा यह है कि 'स्वाधीनताका ज्ञान प्राप्त
लिये देश-प्रेम (Patriotism) को जानना और
आवश्यक है । पर प्राचीन हिंदू-संस्कृतिमें देश-प्रेमकी
ीं सुनी जाती है ?' कुछ लोग यह भी कहते हैं कि
ता पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसका पता प्राचीन ऋषियों-
ा । वे लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको ही लेकर
। '

तुतः भारत जबतक आर्षप्रज्ञामें प्रतिष्ठित था, तबतक
कारकी पराधीनताका प्रश्न ही नहीं उठा । तथापि
देशके सम्बन्धमें जो उनकी श्रद्धा थी, वह अत्यन्त

देवतालोग भी उनका कीर्तिगान करते हैं; क्योंकि
कर्मभूमि है—यहाँ जन्म ग्रहण करके ही स्वर्ग य
प्राप्त किया जाता है । देवताओंको भी अपवर्गके
लिये इस भारतमें ही आना पड़ेगा, अतएव भ
स्वर्गके देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक भाग्यशाली हैं

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि 'यह भारत
प्राङ्गण है; यहाँ जो मानव जन्म ग्रहण करता है, वह
सौभाग्यशाली है ! क्योंकि इससे उसे मुकुन्द-सेवा
सुयोग प्राप्त होता है ।'*

रामायणका यह प्रसिद्ध श्लोक है—

नेयं स्वर्णपुरी लङ्का रोचते मम लक्ष्मण
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

श्रीरामचन्द्र लङ्कामें रावण-वधके बाद अयोध्यामें
के लिये व्याकुल हैं, अतएव आग्रहपूर्वक कहते है
लक्ष्मण ! यह स्वर्णपुरी लङ्का मुझे अच्छी नहीं लग
क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी बढ़कर है ।'

इसीका अनुवाद-सा करते हुए गोस्वामी तुलसी
श्रीरामचरितमानसमें लङ्का-विजय करके पुष्पक-विमान
श्रीअयोध्या लौटते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्र अ
देखकर सुग्रीव, विभीषण और अङ्गदादिसे कहते हैं-

सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी रुचिर यह
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना । बेद पुरान बिदित जगु
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरजू पा

इसके अतिरिक्त यह भारत-भूमि देवताके रूप
भी पूजित हुई है । 'वही स्नेहमयी माता है । सबको
गोदमें स्थान देती है'—यह अनेकों मन्त्रोंमें आ
यही मन्त्रार्थ गीता और सप्तशतीमें प्रकाशित हुआ है

जिनकी देशमातृकाने हृदयपर इस प्रकार
किया था, वे स्वाधीनताके मूल्यको नहीं समझते
कहनेसे वक्ताकी मूर्खता ही प्रकट होती है । स्वा

---

* गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्व
(विष्णुपुराण २ । ३ ।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं

नुष्य सुखी होगा, केवल इसीलिये स्वाधीनताकी होती है; अन्यथा स्वाधीनता प्राप्त करके भी यदि निरन्तर दुःख-कष्ट ही भोग करें तो उससे आन्तरिक और क्रमशः अशान्ति ही उत्पन्न होती है। मनुने मके लक्षणमें बतलाया है कि 'जो कुछ पराधीन है, खप्रद है तथा जो कुछ स्वाधीन है, वही सुखप्रद का तात्पर्य यही है कि स्वाधीनताके नामपर यदि क्षिता और परकीय संस्कृतिका अनुकरण अथवा संस्कृतिका विसर्जन हो तो विदेशी शासनके स्थानमें ी शासनका प्रतिष्ठित होना स्वाधीनताका आभासमात्र स्वाधीनता नहीं है; और ऐसी स्वाधीनतासे कभी ाप्ति नहीं हो सकती।

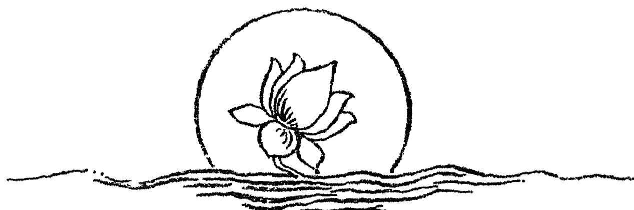
भारतकी भूमिसे दूर खड़े होकर बृटिशलोग इस तिके विनाशकी बाट देख रहे हैं। बृटिशलोग स्वयं के करनेमें समर्थ नहीं हुए, आज भारतवासियोंके सी संस्कृति-विनाशके लिये चेष्टा कर रहे हैं।

ईसाई मिशनरीने प्रायः २५ वर्ष भारतमें वास श्चात् सन् १९१७ ई० में एक पुस्तक लिखी थी। पुस्तकमें लिखते हैं कि 'बहुत दिनोंके बाद इंग्लैंड- : पाश्चात्त्य धर्मनीतिके जाननेकी चेष्टा करके मुझे हो रहा है कि जर्मनी, अमेरिका, यहाँतक कि भी धर्म-जगत्में हिंदूधर्म और दर्शनशास्त्रका ढ़ता जा रहा है। इसका विनाशक प्रभाव इतनी । गया है कि उसको समझानेके लिये मेरी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् और विचक्षण लेखककी ता है। इसका वर्तमान कालमें प्रभाव न होनेपर यमें जान पड़ता है कि यह ईसाई-मतका मूलोच्छेद गा। अतएव इसका प्रतिरोध करना बहुत ही है।'*

त्मा गांधीकी अहिंसानीतिको कार्यान्वित करनेके चेष्टाएँ हो रही हैं, उनमें यथार्थ साधना—आत्मोन्नति या हिंदू-संस्कृतिविषयक शिक्षाकी कोई व्यवस्था न पड़ती। हिंदू-संस्कृतिको विज्ञानके चरणतले लुण्ठि की मनोवृत्ति क्रमशः बढ़ती जा रही है। इसका होगा कि भारतकी स्वाधीनता बाह्यरूपसे कुछ रहते हुए भी अन्तरकी पराधीनता क्रमश पकड़ती जायगी और अन्तमें स्वाधीनताके नामपर चारिताका राज्य हो जायगा। प्रत्येक प्रान्त-उपप्रा और असंयम बढ़ेगा, और उसके साथ चित्तकी म कारण प्रान्तीयता उत्पन्न होगी, और क्रमशः उ अनिवार्य हो जायगा और अपनी स्वाधीनता वि जायगी।

आज आवश्यकता यह है कि विज्ञानके ऊपर म प्रतिष्ठित करना, विज्ञानके ऊपर धर्मका स्थान करना, विज्ञानको नियन्त्रित करनेके लिये लोगोंको अनुसन्धानमें लगाना। आज भारतका यही कर्तव्य है

इस युगमें विज्ञान सर्वथा हेय नहीं माना ज यह सत्य है। पारस्परिक संघर्षसे बचनेके उद्देश विज्ञानकौशल प्राप्त करनेके लिये शिक्षाकी आवश् इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। पर साथ-साथ मध्यमार्गको ढूँढ़ना होगा। एक ऐसी योज होगी, जिसके द्वारा विज्ञानकी अनिष्टकारिता और इष्ट तुलनात्मक समालोचना निष्पक्षभावसे की ज विज्ञानके विनाशात्मक प्रभावको नष्ट करनेके लि और सन्तोषके आदर्शको विश्वके सामने उपस्थि जाय। इस प्रकारके आदर्शका प्रचार और प्रस हिंदू-संस्कृतिका अत्युच्च आसन विश्वके दरबारमें होगा और परस्पर विवादमें लीन पाश्चात्त्य जाति विनाशरूप रोगकी ओषधिके रूपमें इस आदर्श करनेके लिये बाध्य होंगी। यदि किसी दिन इस विश्व-कल्याण प्रतिष्ठित हो सका, तभी भारतकी सार्थक होगी।



* उड्रफ-प्रणीत 'क्या भारत सभ्य है?' ग्रन्थसे उद्धृत।

हिंदू-संस्कृतिकी कुछ विशेषताएँ

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पाण्ड्या बी०ए०)

ंस्कृति' शब्दका उद्‌गम 'संस्कार' शब्दसे है । 'का अर्थ वह क्रिया है, जिससे वस्तुके मल (दोष) र वह शुद्ध—सिद्धिसाधक बनती है।

न्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ।'

जका अर्थ है दुबारा जन्म लिया हुआ—रूपान्तरित बाइबलमें भी ईसामसीहका वाक्य आया है कि 'मैं र्वक कहता हूँ कि जबतक मनुष्यका दुबारा जन्म वह परमात्माके राज्यका दर्शन नहीं कर सकता' ३ । ३) । यहाँ भी दुबारा जन्मसे तात्पर्य मृत्युके ुनर्जन्मसे नहीं, किंतु इसी जन्ममें आत्माकी अवस्था- र देनेसे है; और 'परमात्माके राज्य'से तात्पर्य 'सत्य वेत्रता'के उन दिव्य तथ्योंसे है, जिनका आलोक अपनी अन्तरात्मासे ही प्रकट होता है । क्योंकि ईसामसीहके परमात्माका राज्य स्वयं तुम्हारे ही अंदर है क १७ । २१) । अतः संस्कृतिका अर्थ वह शिक्षा- । जिससे मनुष्यका जीवन सुधरे । पुरातन अभ्यासों दतोंको भी संस्कार कहते हैं—यथा जन्म-जन्मान्तरके । अतः किसी देश या जातिकी संस्कृतिका अर्थ उस जातिकी वे पुरानी आदतें, प्रथाएँ, रहन-सहन आदि उस देश या जातिके मनुष्योंका चरित्र-निर्माण ं या उस निर्माणमें प्रभावशाली होती हैं ।

ी संस्कृतियोंका लक्ष्य मानवात्माको उन्नत करनेका । क्योंकि सभी मानव मूलतः एवं प्रकृतिसे सदृश सभी देशों और जातियोंकी संस्कृतियाँ कई अंशोंमें यी जाती हैं । लेकिन फिर भी देश, काल और पात्रकी यों एवं संस्कृतियोंके प्रेरकों—निर्माताओं—के विभिन्न अपेक्षाओंके प्रति मुख्यता और गौणताके कि कारण विभिन्न देशों तथा जातियोंकी संस्कृतियों- विभिन्नताओं (विशेषताओं) का पाया जाना भी नक नहीं है ।

दू-संस्कृतिकी कुछ विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

) समस्त प्राणियोंके प्रति समानता और प्रेमका भाव— ीवोंको अपने समान समझना तथा उनके प्रति प्रेम- ना और तदनुसार आचरण करना, यह हिंदू-संस्कृति- कर और किसी संस्कृतिमें इतने पूर्ण और सच्चे रूपमें नहीं पाया जाता । यह हिंदू-संस्कृतिका प्र यह सब हिंदुओंकी नस-नसको, उनके दैनिक जीव पलको प्रभावित करता रहता है । हम निस्संकोच सकते हैं कि इस विशेषतामें हिंदू-संस्कृतिकी अ विशेषताएँ गर्भित हैं—एकमात्र इसीको बताने संस्कृतिका सारा और पूरा वर्णन हो जाता है ।

(२) पुनर्जन्म तथा आशावाद—प्रत्येक सभी जीवधारियोंके स्वरूपोंमें जन्म ले सकती विश्वास । यह ऊपर वर्णित भावनाका कि ' ही आत्मा सबकी है और सबकी-जैसी ही मेरी अ का कारण भी है तथा परिणाम भी । इससे फलित होता है कि 'मेरी आत्माकी अवस्था अन्य जीवों-जैसी हुई है और भविष्यमें भी हो स और यह कि 'सभी जीव किसी-न-किसी समय मेरे आदि सम्बन्धी रहे हैं और रह सकते हैं ।' इन स सब प्राणियोंके प्रति समानता एवं प्रेम-भाव दृढ़ इनसे यह भी सूचित होता है कि जीवकी को (योनि) शाश्वत नहीं है । हिंदू-धर्मके अनुसार अनन्तकालीन स्वर्ग या अनन्तकालीन नरक न जीवके किसी जन्म या किन्हीं जन्मोंके पुण्य या प शक्ति नहीं है कि सदाके लिये उस जीवक निश्चित कर दे । पुरुषार्थसे सुपथगामी होकर आत अवस्थाको प्राप्त कर सकती है तथा पतित होकर—कु होकर अधःस्वरूपको भी धारण कर सकती है । इस त पुरुषार्थ, सत्प्रयत्न और आशाको प्रेरणा मिलती रहत

(३) ब्रह्मचर्य तथा काम-तत्त्व—ब्रह्मचर्यपर जि हिंदू-संस्कृतिने दिया है, उतना अन्य किसी संस्कृतिने नह कारण भी वही सब आत्माओंकी समानतावाला सिद्धान्त यह विश्वास कि वस्तुतः आत्मा लिङ्गादिके भेदोंके परे है; तो उसकी सांसारिक अवस्थाएँ हैं जो कि परिवर्तन लेकिन साथ ही साधारण मनुष्योंकी योग्यताका खय हुए काम-तत्त्वकी भी अवहेलना नहीं की गयी है, उसे प कर, धर्मके साथ संयुक्तकर, लौकिक तथा पारमार्थिक प्र संयम एवं ब्रह्मचर्यके आदर्श—का साधन बना दिया इसीलिये गीतामें कामको, 'धर्मसे अविरुद्ध' कामको

न बताया गया है (१० । २८; ७ । ११)। विवाह-
यह उद्देश्य है कि पति-पत्नी अपनी काम-वासनाको
रेमें सीमित करके सुसंयतरूपसे उसका उपयोग
त्पत्तिके लिये पर्वदिनों आदिको छोड़कर ऋतुकाल-
करें; क्योंकि धार्मिक समाजकी (अर्थात् धर्मकी)
सुसन्तानोंके होनेसे ही चल सकती है। परंतु पति-
सम्बन्ध केवल काम-वासनाके लिये नहीं है। वे धर्म
दोनोंमें परस्पर सहायक और सखा हैं; काम-सेवन तो इन
ओंका एक धर्म-कार्यके लिये विहित कालमें पवित्र
सम्मिलन है। और फिर एक पुत्रकी उत्पत्तिके बाद तो
त्तिका भी उतना प्रयोजन नहीं रहता; क्योंकि
ये तो एक ही पुत्र पर्याप्त है (मनु० ९ । १०६-७)
के बाद 'आत्मा वै पुत्रनामासि'के अनुसार स्व-स्त्रीके
पवित्र जायाभाव रखनेका संकेत है (मनु० ९ । ८)।
नाको भी इतना पवित्र तथा संयममय स्वरूप दे
। संस्कृतियोंमें नहीं है।

) **संयुक्त पारिवारिक जीवन**—इसका भी उद्देश्य
सब मनुष्योंको उनके धर्म, अर्थ और कामके
समुचित व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका अवसर देना और
पारस्परिक सहयोग देना है; क्योंकि प्रधान उद्देश्य यही
त्येककी आत्माको उसकी योग्यताके अनुसार पूर्ण
ओर अग्रसर करना। पारस्परिक सहयोगके लिये
प्रति आदरका भाव रक्खा गया है। यदि पुत्रके
तृदेवो भव, पितृदेवो भव' है, तो पिताके लिये भी
च्छेत् पराजयम्' और 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे
वरेत्' है। यदि पत्नीके लिये उपदेश है कि वह
वता समझे, तो पतिके लिये भी यह है कि वह
ीस्वरूपा तथा सखाके समान माने—

नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
ास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

(मनु० ३ । ५६)

हाँ नारियोंकी पूजा की जाती है—उनका सम्मान
ा है, वहाँ देवताओंकी प्रीति होती है। जहाँ स्त्रियों-
नहीं की जाती, वहाँ सब काम निष्फल होते हैं।'

न्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

कुल शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जहाँ स्त्रियाँ दुःखमें न
वहाँ सदा ऋद्धिकी वृद्धि होती रहती है।'

और—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुव

(मनु० ३

'जिस कुलमें पत्नीसे पति प्रसन्न है और प
प्रसन्न है—दम्पति एक दूसरेको सन्तुष्ट रखते हैं
जानो कि उस कुलमें कल्याणका सर्वदा निवास रहत

इसी प्रकार भाई-बहिन और अन्य सगे-सम्बन्
प्रति बर्ताव किया जाता है।

(५) **आश्रम-व्यवस्था**—हिंदूकी दृष्टिमें
लक्ष्य भोग नहीं, संग्रह नहीं, किंतु त्याग और परो
उसका जीवन धर्म-प्रधान है। अतः उसका प्रारम्भ
शिक्षा और पवित्र रहन-सहन—ब्रह्मचर्याश्रमसे हो
गृहस्थाश्रममें भी, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया
'त्यागमय भोग' का जीवन बिताता है तथा अन्तमें
और संन्यास-आश्रमोंमें पूर्णतः उच्चतर धर्मकी ओ
है। इस प्रकार गृहस्थाश्रमकी भित्ति ब्रह्मचर्याश्र
उसका लक्ष्य वानप्रस्थाश्रम और संन्यास है। पुत्र
हिंदू इसीलिये करता है कि उसे गृहस्थाश्रमका भार
स्वयं पूर्णतः उच्च धर्मकी ओर लग सके।

(६) **वर्ण-भेद**—Struggle for exi
(जीवनके लिये संग्राम) नहीं, किंतु प्र
अभाव हिंदू-संस्कृतिका ध्येय है; और इसीके ए
स्वरूप वर्ण-प्रथाका विधान है, जिसका मतलब है—
सम्पत्तिके लिये अपने वर्ण और जातिकी यान
आजीविकाको अपनाकर उससे सन्तुष्ट रहना और उ
जो सम्पत्ति प्राप्त हो, उसे समाजमें वितरण करना
मनुष्योंके लिये पैतृक व्यवसाय कितना उपयुक्त है
अपनानेसे कितनी कठिनाइयों और अशान्तिसे त्राण
है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। प्रश्न हो सक
यदि किसीमें विशेष योग्यता हो तो वह क्या करे ? इस
यह है कि अर्थ-साधनके लिये वर्ण-प्रथाका नियम है,
आदि धर्मोंके साधनके लिये नहीं। एक व्याध तथा ए
भी तत्त्ववेत्ता और धर्मपरायण हो सकता है; परंतु अ
के लिये वह अपने वर्णका उत्तम काम ही करे।

ात् 'स्त्री, भोजन और धनमें—अर्थ और काममें—
रे; परंतु ज्ञान-साधनमें, उपासनामें और दान करने-
ा-वृत्ति न रक्खे।' यहाँ भी प्रश्न किया जा सकता है
ं सन्तोष रखनेसे अर्थात् अल्प-धन या धनाभाव-
तुष्ट रहनेसे धनके बिना दान किस तरह किया जा
इसका उत्तर है कि अभय-दान एवं ज्ञान-दान तथा
त्माको पापोंसे बचाकर उसकी दुर्गतिसे रक्षा करना—
सबसे बढ़कर हैं और इनमें पैसेकी आवश्यकता नहीं
ा दान तो धनोपार्जनमें जो पाप होता है, उसके
प्रायश्चित्तस्वरूप है। इसके अतिरिक्त अपनी
की तृष्णाको कम करनेसे औरोंको धनोपार्जनका
अवसर मिलता है—आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा कम होती है,
ान ही है। इस प्रकार यदि किसीमें विशेष योग्यता
ामाजिक कल्याण तथा आत्मकल्याण विशेषरूपसे
तु आजीविकाके लिये अपने वर्णानुसार कार्यसे ही
हे। हिंदू-संस्कृति जहाँ एक ओर लौकिक आकाङ्क्षाएँ
पूर्ण अपरिग्रहकी ओर ले जाती है, वहाँ दूसरी ओर
, पूर्ण आनन्द और पूर्ण शक्तिका शाश्वत भोक्ता—
रमात्मा—बननेकी ओर प्रेरणा करती है।

७) **सादगी और शान्ति**—ये हिंदू-संस्कृतिकी महान्
हैं। इसके अनुसार जीवन (Standard of life)
करनेका अर्थ आवश्यकताओंको—सांसारिक पदार्थोंके
—बढ़ाना नहीं है; किंतु अपने नैतिक स्तरको
ना है, अपने सुख और शान्तिको सांसारिक पदार्थों-
न बनाना है। इसलिये वर्ण-प्रथामें अपरिग्रही
ामय जीवनको—ब्राह्मण वर्णको सर्वोच्च पद दिया

ीविकाके अनुसार वर्ण विभिन्न होनेपर भी वे
माजके अङ्ग हैं और उनमें पारस्परिक प्रेम एवं
अभाव नहीं समझना चाहिये। यदि उपमाके तौरपर
ो उत्पत्ति परमात्माके चरणोंसे और ब्राह्मणवर्णकी
तायी गयी है तो इससे यही सूचित होता है कि
तरह शूद्र भी उसी देहका एक आवश्यक
। चैतन्यकी दृष्टिसे मुखमें और पैरमें क्या
है? और फिर उसी चरणसे गङ्गाजीकी भी

पैरसे भी निकृष्टतर अङ्ग बताये गये हैं (भागवत
३२), तो क्या वे निकृष्ट हो गये? स्वयं विष्णु भी
के अभिमानी देवता हैं (भागवत ३।२६।५८),
को अधम कैसे कह सकते हैं? अतः शूद्रोंकी
उत्पत्ति बताना उनकी अधमताका चिह्न नहीं है।

(८) **सामाजिक जीवन**—जितने त्यौह
संस्कृतिमें हैं, उतने अन्य किसी संस्कृतिमें नहीं हैं
सबका धर्मसे सम्बन्ध है। जहाँ हिंदूके लिये आत्मध्या
वनमें एकान्त-साधना है, वहाँ उसके त्यौहार और
जीवन—

'सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै' तथा
देवहितं यदायुः'

—के मूर्तिमान् उदाहरण हैं।

(९) **मूर्ति-उपासना**—अर्थात् अव्यक्त, इ
और अवाङ्मनसगोचर बताये गये निराकार ब्रह्मकी
रूपमें अवतारणा और धारणा करना—उसे भक्ति
साधन-सुलभ बनाना। तथाकथित एकेश्वरवादियोंकी
प्रायः यह निन्दा अथवा परिहासके ढंगसे कहा जात
हिंदू तैंतीस करोड़ देवताओंको मानता है। लेकिन
परमात्मस्वरूप आत्मा सभीमें है, अतः सर्वमें परमा
भावना करनेवाले हिंदूके लिये देवताओंकी तैंती
संख्या भी बहुत कम है। वह तो जहाँ भी सौन्दर्य,
महानता देखेगा, वहीं परमात्माका दर्शन करना चाहे

(१०) **शौच**—शरीरको अपवित्र मानते हुए
अशुचित्वको साक्षात् करनेके लिये तथा 'शुचित्व'
प्रेमको जगाकर परम शुचि आत्माका प्रेमी बनानेके
शौचाचारका भी हिंदू-संस्कृतिमें विशेष विधान है।

संक्षेपमें हिंदू-संस्कृतिका मुख्य गुण विषमता,
और अशान्तिको दूर कर समता, समानता और
साम्राज्य स्थापित करना है और यही उसका गौ
उसकी उपयोगिता है; और इसी महिमासे मण्डित
आजकलके जगत्में और जबतक संसारमें दुःख है,
है, भय है, तबतक एक माताके तौरपर, एक त्राताके
हिंदू-संस्कृति अन्य सब संस्कृतियोंकी ओर निहार

रे धर्मग्रन्थोंमें धर्मका विचार कई दृष्टियोंसे किया इन विविध विचारोंको एकत्रकर उनका समन्वय सकता है। धर्मका समग्र और अखण्ड रूप देखनेके ा करना आवश्यक है । हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें धर्मकी ; परिभाषाएँ मिलती हैं; उनमेंसे चुनी हुई कुछ भाषाएँ यहाँ दी जाती हैं—

चोदनालक्षणार्थो धर्मः।

ावदाज्ञा धर्मका लक्षण है।'

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

ससे इस लोकमें अभ्युदय और आगे परम कल्याणकी वह धर्म है।'

एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

का हनन करनेसे धर्म मारता है और धर्मकी रक्षा ; रक्षा करता है।'

कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।

ाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म विजय है।'

'धर्मस्तमनुगच्छति।'

ं ही साथी है, जो मरनेपर भी पीछे-पीछे चलता है।'

णाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः॥

ण करनेवालेको धर्म कहते हैं, धर्म प्रजाको धारण '

, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चतुर्विध पुरुषार्थोंमेंसे र कामकी लालसा, विशेषतः इस युगमें, इतनी के लोग इस बातको भूल ही जाते हैं कि इस अर्थ का मूल धर्म है। केवल अर्थ अथवा केवल कामोप- नका कोई उदात्त उद्देश्य नहीं है। इनका त्याग न इनका ग्रहण भी वहीं उचित है, जहाँ ये धर्मके हों—बल्कि धर्मसे ही प्राप्त हों। धर्मके विपरीत जहाँ : कामको स्वार्थमय आसुरी उपायोंसे प्राप्त करनेमें ाता है, वहाँ घृणा और द्वेष ही फैलते हैं।

र्थिकामाः किल तात लोके
समीक्षिता धर्मफलोदयेषु।

यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसन्निविष्टा
धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमे
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके
कामात्मता खल्वपि न प्रशस्त

(वा० रा० अयो० २१।

'धर्मसे प्राप्त होनेवाले सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्तिमें अर्थ-कामरूप उपाय माने गये हैं, वे एक धर्ममें ही जैसे पतिके अधीन रहनेवाली स्त्री ही प्रियाचरण करने सुपुत्रवती होती है। इस विषयमें मुझे कोई संदेह जिस कर्ममें तीनों पुरुषार्थ सन्निविष्ट न हों (पर हो) तो जिससे धर्म बनता हो, वही कर्म करना (धर्मको छोड़) अर्थपरायण रहनेवाला पुरुष इस द्वेष्य होता है। ऐसे ही कामपरायणकी कामात निन्दनीय है।'

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ

(गीता ७

भगवान् कहते हैं, 'मैं वही काम हूँ, जो धर्मके अनु

धर्मरहित काम, जो रावणरूपमें मूर्तिमान् है, अनर्थकारी है—इसकी शिक्षा रामायणने, और धर्मरहि जो दुर्योधनरूपमें मूर्तिमान् है, कितना नाशकारी है- शिक्षा महाभारतने दी है। भागवतने यह बतलाया अर्थ और काम पशु-जीवन हैं, मनुष्यको सदाचार इन दोनोंका नियन्त्रण कर पशुकोटिसे ऊपर उठना इससे भी ऊपर देवकोटिमें मनुष्य तब पहुँच सकता जीवका परम लक्ष्य—अर्थात् मोक्ष, ईश्वर-भ परमानन्दकी प्राप्ति सतत उसके सामने रहे। इस सम्मुख होनेसे धर्म, अर्थ, कामका परस्पर-सम्बन्ध मोक्षके साथ उनका सम्बन्ध जान पड़ता है।

तदाऽर्थधर्मश्च विलीयते नृणां
वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां
शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः

(श्रीमद्भा० १ । १८

ोकर लोग कुत्तों और बन्दरोंके समान वर्णसंकर हैं।'

स्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
स्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
स्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
स्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(श्रीमद्भा० १।२।९-१०)

र्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति। उससे यदि ारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह कोई उसकी नहीं है। धनका फल है एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; करके यदि उससे कामोपभोगकी कुछ सामग्री (ली तो वह कोई लाभकी बात नहीं है। भोगकी का भी यह लाभ नहीं है कि इन्द्रियोंको तृप्त किया तनेसे जीवन-निर्वाह हो, उतना ही भोग पर्याप्त है। र्वाहका भी यह फल नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके ड़ा रहे। उसका लाभ तो यही है कि तत्त्व-जिज्ञासा त्यानुसन्धान करे।'

से ही चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धिके बिना ो ओर ले चलनेवाले कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्ति- ज्ञानयोगके मार्गपर कोई चल नहीं सकता।

के कुछ अङ्गोंका निरूपण वर्णाश्रम-धर्मसे होता है। के मूलमें श्रेष्ठ-कनिष्ठ होनेकी कोई भावना नहीं है, विभाग तथा परस्पर आश्रयकी नींवपर यह एक स्थायी सामाजिक व्यवस्था है। १९२० में महात्मा अपने 'यंगइंडिया' पत्रमें लिखा था, 'चातुर्वर्ण्यके के उद्दाम श्रेष्ठ होनेकी भावना नहीं है, बल्कि यह तिकी विभिन्न पद्धतियोंके आधारपर किया हुआ है। सामाजिक स्थैर्य और उत्कर्षकी यही सबसे वस्था बन सकती थी।'……प्रत्येक वर्ण पवित्र वेशिष्ट मार्गपर चलनेवाले सब कुनबोंका एक समूह ……आनुवंशिक परम्पराके सिद्धान्तमें इसकी निष्ठा ।……वर्णभेद उच्चता या नीचताका कोई संकेत ा। विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवालोंके विभिन्न जीवन- होना इसमें मान्य है।' अंग्रेजीका 'कास्ट' शब्द आया हुआ है। उसके अर्थमें उच्च-नीचका भाव ो यह भाव नहीं है। प्रत्येक वर्णका अपना स्वतन्त्र

और संन्यासी—ये चार आश्रम हैं। आत्मज्ञानके चार पड़ाव हैं, इनमेंसे होते हुए मनुष्य सुगमत क्रमशः त्यागके द्वारा आत्मज्ञानके अधिकाधिक व्याप पहुँचता है।

धर्मका एक और वर्गीकरण है। इसमें नि नैमित्तिक कर्म आते हैं। नित्यकर्म ये हैं—

सन्ध्या स्नानं जपो होमः देवतानां च पूजनम्
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने

'स्नान, सन्ध्योपासन तथा जप, होम, देवतार्चन, सत्कार और वैश्वदेव—ये प्रतिदिन करनेके षट्कर्म

नैमित्तिक कर्म वे हैं, जो विशेष अवसरोंपर, जैसे अ एवं पूर्णिमाके दिन दर्शपूर्णमास आदि किये जाते हैं कर्म वे हैं, जो विशेष-विशेष कामनाओंकी पूर्तिके लि जाते हैं।

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्

(मनु० १।

'इस प्रकार मुनियोंने आचारसे धर्मकी प्राप्ति सब तपोंका परम मूल आचारको ही माना है।'

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम्
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते

(मनु० ४।

'नित्य शुभ आचरण करने और मनको वशमें रखने जप और होम करनेवालोंका कभी पतन नहीं होता।'

धर्मका एक वर्गीकरण है, सामान्य और विशेष। धर्म, जो सबके लिये समान हैं, ये हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः

'अहिंसा, सत्य, चोरी न करना तथा इन्द्रियों रखना—यह चारों वर्णोंके लिये समान धर्म मनुने बता

गौतमने अपने धर्मसूत्रोंमें सामान्य धर्मको इ कहा है—

अथाष्टावात्मगुणाः। दया सर्वभूतेषु क्षान्ति शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति॥

(७।२०,

ष धर्म वे हैं, जो स्त्री-पुरुष, वर्ण-आश्रम आदिके
न्न होते हैं—जैसे स्त्रियोंका स्त्री-धर्म, पुरुषोंका पुरुष-
र्णोंमें ब्राह्मण-धर्म आदि। आश्रमोंमें ब्रह्मचारि-धर्म,
ं आदि।

मादि स्मृतिकारोंने आत्मगुणोंके अतिरिक्त जीवनकी
शेष अवस्थाओंमें करनेके विशेष-विशेष संस्कारोंका भी
त्या है (गौतमधर्मसूत्र अ० ८)। गर्भाधानसे
ोष्टितक ऐसे ४० संस्कार हैं। संस्कार उसे कहते
दोष हटते हैं और गुणोंका उत्कर्ष होता है।

र्हौमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
कं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥
ध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
यज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

(मनु० २। २७-२८)

ंको पवित्र करनेवाले होमसे, जातकर्म, चूड़ाकर्म,
न (उपनयन) आदि संस्कारोंसे द्विजोंके बैजिक
आये हुए) और गार्भिक (गर्भजनित) दोष नष्ट
हैं। स्वाध्याय, व्रत, होम, वेदत्रयीका अध्ययन
नुकूल कर्म, देव-ऋषि-पितृ-तर्पण, प्रजोत्पादन,
यज्ञ तथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंके द्वारा मानव-शरीर
ति् ब्रह्मप्राप्तिका योग्य साधन बनता है।'

त् शङ्कराचार्य अपने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें कहते हैं—

कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्याद्दोषा-
वा।

(१।१।४)

ति् 'जिसका संस्कार किया जाता है, उसमें गुणोंका
अथवा उसके दोषोंको दूर करनेके लिये जो कर्म
ा है, उसे संस्कार कहते हैं।'

ीस संस्कारोंमेंसे गृहस्थके २६ संस्कार हैं—पाँच
(देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और
), सात पाकयज्ञ (स्मार्त्त), सात हविर्यज्ञ (श्रौत)
सोमयज्ञ। इन यज्ञोंमेंसे बहुत थोड़े यज्ञ पीछे
रह गये।

म कहते हैं—

ते चत्वारिंशत्संस्कारा न चाष्टावात्मगुणा न स
ायुज्यं सालोक्यं च गच्छति। यस्मिंस्तु खलु संस्काराणा-
प्यष्टावात्मगुणा अथ स ब्रह्मणस्सायुज्यं सालोक्यं

आठ आत्मगुण न हों, वह ब्रह्मका सायुज्य और
नहीं पा सकता। परंतु जिसमें आठों आत्मगुण
संस्कारोंमेंसे जिसके केवल कुछ ही संस्कार हुए हों, व
साथ सायुज्य और सालोक्य प्राप्त कर सकता है।'

भगवान् मनु कहते हैं—

जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नास्ति संशय
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते

मानव-धर्मशास्त्रमें इस प्रकार सब प्राणियोंके
और जप, इन्हीं दोसे सिद्धि बतलायी है; चाहे और
करे या न करे। कुल्लूक भट्टने इस श्लोककी टी
हुए कहा है—

ब्राह्मणो जप्येनैव निस्सन्देहां सिद्धिं लभते मं
योग्यो भवति। अन्यद्वैदिकं करोतु न करोतु वा। य
ब्राह्मणः ब्रह्मणः सम्बन्धी ब्रह्मणि लीयते इत्यागमे
मित्रमेव मैत्रः। स्वार्थेऽण्। यागादिषु पशुबीजा
सर्वप्राणिप्रियता संभवति तस्माद्यागादिना
प्रणवादिजपनिष्ठो निस्तरतीति जपप्रशंसा न तु य
निषेधस्तेषामपि शास्त्रीयत्वात् ॥

'ब्राह्मण जपसे ही निस्सन्देह सिद्धिलाभ करता
प्राप्तिके योग्य होता है। वह और कुछ वैदिक क
न करे। कारण, मैत्र ब्राह्मण, ब्रह्मसम्बन्धी, ब्रह्ममें
है—यह आगमोंमें कहा है। यज्ञादिमें पशुबीजादि
कारण उनकी सर्वप्राणिप्रियता सम्भावित नहीं है
यागादिके बिना भी प्रणवादि जपमें निष्ठावाला पुरुष तर
यह जपकी प्रशंसा है—यागादिकोंका निषेध नहीं
यागादिक भी शास्त्रीय हैं।'

धर्मका और एक विभाग छान्दोग्य उपनिषद
भगवद्गीताके १८ वें अध्यायमें वर्णित है—यज्ञ,
तप। इन्हींमें ईश्वरके प्रति, मनुष्योंके प्रति और अ
सब कर्तव्य आ जाते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि
करनेवाले हैं। किसी भी अवस्थामें इनका त्याग न
चाहिये, बल्कि अहंतायुक्त फलासक्तिका त्याग
अवश्य करना चाहिये (गीता १८। ५)।
तृतीय अध्यायमें यह वर्णन आता है कि "यज्ञ
प्रजाओंको उत्पन्नकर प्रजापतिने उनसे कहा, इ
द्वारा तुमलोग फूलो-फलो, यह तुम्हारी सब इ
पूर्ण करनेवाला होगा। इससे देवताओंको प्रसन्न क

ाता है, वह चोर ही है। यज्ञ करके जो शेष भाग
ते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होते हैं; जो अपने ही
 करते हैं, वे पाप भक्षण करते हैं।' (गीता
—१३)।

ा-भिन्न वर्ण हैं, उनकी भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ हैं। इसी
ापत्कालके आपद्धर्म हैं। उनके सम्बन्धमें यहाँ
लिखना सम्भव नहीं है। सामान्यतः ब्राह्मणके लिये
जीवन-निर्वाह करनेको कहा गया है। षट्कर्म हैं—
जन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह।
अन्य वर्णोंके लिये तो वृत्तियोंका वर्णन है, पर
लिये कुछ नहीं कहा गया है। समयके साथ
प्रकार बहुत बढ़ गये हैं और उनमें बहुत कुछ
भी हुआ है। उदाहरणार्थ, पराशरस्मृतिमें कहा
ट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत्' (षट्कर्मके
ाण कृषिकर्म भी करा सकता है)। (२। २)

कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः।
पेत् पञ्चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत्॥

(पाराशर० २। ६)

यं जोती हुई भूमिसे जो धान्य स्वयं अर्जित किया
उससे पञ्चयज्ञ करे और क्रतुदीक्षा भी कराये।'

ाने वैश्योंके लिये केवल 'कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्'
पाराशरस्मृतिने उसमें 'लाभकर्म' और 'रत्नकर्म'
ा है। शूद्रोंके लिये गीतामें केवल 'परिचर्यात्मक-
पर पाराशरस्मृतिमें—

गं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः।
दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात् सर्वेषु विक्रयम्॥

ण, मधु, तेल, दही, घी, दूध आदि बेचनेमें शूद्रों-
ोई दोष नहीं माना है।' पीछे कौटिल्यने अपने
में शूद्रोंका वार्त्ता (कृषि, उद्योग और व्यापार)
कुशीलवकर्म (कारीगरी और गाने-बजानेके काम) में
माना है।

कहा जाता है कि कृतयुगमें मनुस्मृतिका तथा अन्य तीन
याक्रम गौतम, शंख-लिखित और पाराशरस्मृतियों-
य है। सामान्यतः मनुस्मृतिकी मान्यता ही सबसे
।

तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
[illegible]

'मनुके अभिप्रायके विरुद्ध जो स्मृति होगी
मानी जायगी।'

यद्वै किंचिन्मनुरवदत्तद्भेषजम्।

'मनुने जो कुछ भी कहा है, वह औषध है।'

पाराशरस्मृतिका व्यवहार-प्रकरण लुप्त हो गया
आचार और प्रायश्चित्त-प्रकरण शेष हैं। ये सभी
स्मृतिग्रन्थ हैं और भारतवर्षमें सर्वत्र माने जाते हैं।

धर्मके मूल स्रोत वेद, वेदविदोंकी स्मृति औ
सत्पुरुषोंके आचार और आत्मतुष्टि हैं; यथा—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च

(मनु०

कुल्लूक भट्ट इस श्लोककी टीका करते हुए 'आत्म
का अर्थ करते हैं—

साधूनां धार्मिकाणाम् आत्मतुष्टिश्च वैकल्पिक
विषया धर्मे प्रमाणम्।

अर्थात् 'जिस विषयमें विकल्प हो, उस विषयमें स
की आत्मतुष्टि धर्म-निर्णयमें प्रमाण है।'

विभिन्न धर्मसूत्रों, धर्मशास्त्रों और निबन्ध
स्वरूप और कालक्रम-वर्णन मैंने विस्तारपूर्वक एक
किया है। इन धर्मसूत्रादि ग्रन्थोंमें आचार, व्यवह
प्रायश्चित्त-विषय वर्णित हैं। व्यवहार-प्रकरण अब बहु
कानूनों और न्यायालयोंके निर्णयोंद्वारा बदल गय
प्रायश्चित्त-प्रकरण भी प्रार्थना, पूजा और भक्तिके
बहुत क्षीण हो गया है।

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै
यानि तेषामशेषाणां श्रीकृष्णानुस्मरणं परम्

'जो-जो तपःकर्मात्मक अशेष प्रायश्चित्त हैं, उ
सर्वोपरि प्रायश्चित्त श्रीकृष्णानुस्मरण है।'

वृत्तियोंके विषयमें तो बहुत परिवर्तन हो ग
अस्पृश्यता प्रायः उठ ही गयी है। पर बहुत-से
विशेषतः षट्कर्म, उपनयन, विवाह, तर्पण, श्राद्ध
संन्यास अभीतक जीवित हैं। विज्ञान और राष्ट्रवाद,
वाद और साम्यवादके इस युगमें आत्मगुणोंका,
सत्य और अहिंसाका आग्रह महात्मा गांधीके द्वार

तने धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रका गठन किया है। इसका
: नहीं है कि भारतवासियोंको धर्मविहीन होना
इसका अर्थ है कि भारतकी राष्ट्र-शक्ति भारतके सभी
के धर्मको निरपेक्ष दृष्टिसे देखेगी । किसी धर्मके
पातपूर्ण दृष्टि उसकी न होगी।

भारतवर्ष विभिन्न धर्मोंका आश्रय-स्थल है तो राष्ट्र-
इस प्रकारकी दृष्टि प्रशंसनीय ही है। भारतराष्ट्र जिस
दुओंके मन्दिर तथा तीर्थ-महिमाकी रक्षा करेगा,
कार मुसलमानोंकी मस्जिदोंके प्रति भी श्रद्धावान्
ईसाइयोंके गिरजों, बौद्धोंके विहार तथा सिक्खोंके
ो वह समानभावसे रक्षा करेगा। इस प्रकारकी
ौर महान् हृदयशीलता भारतवासीके लिये ही
।

हिंदू हैं, अतः हिंदू-धर्मकी विशेषता और स्वतन्त्रताकी
य ही रक्षा करेंगे। हमारी जातीय शिक्षाका आधार
रतकी सनातन संस्कृति और ऐतिह्य। इस स्वधर्मकी
प्रसर होनेपर विभिन्न सम्प्रदायोंकी सृष्टि अनिवार्य है।
में साम्प्रदायिकताका नाम सुनते ही यदि राष्ट्र-शक्ति
ती है, तो हमें कहना पड़ेगा कि इस प्रकारका राष्ट्रचक्र
नहीं है। क्योंकि सम्प्रदायोंके न होनेपर भारत-
यपूर्ण धर्म-भित्तिकी रक्षा कौन करेगा ? बङ्गालमें
कौन करेगा ? कौन पिचकारी हाथमें लेकर होली
लिये अग्रसर होगा ? शिवरात्रिको उपवास करके
रात घंटा-घड़ियाल बजाता हुआ शिवपूजामें रत
म्प्रदाय न रहनेपर ईद कौन मनावेगा ? बकरीदमें
चेत्त उन्मत्त हो उठेगा ? मुहर्रममें झंडा उठाकर
समें निकलेगा ? ईसाई सम्प्रदायके बिना गुडफ्राइडे
वेगा ? क्रिसमस डे मनानेका अधिकार किसको होगा ?
यह निश्चित है कि जबतक धर्म-वैचित्र्य रहेगा,
म्प्रदाय अवश्य रहेंगे। हम तो यह भी कहते हैं कि
अनादिकालसे चले आ रहे हैं, और अनन्त कालतक
तएव साम्प्रदायिकताका नाम लेकर यदि राष्ट्र-शक्ति
जेम्मेवार ठहराती है तो उसकी भ्रान्तिको दूर करनेके
म्प्रदायोंको सिर उठाना चाहिये और उसका प्रतिवाद

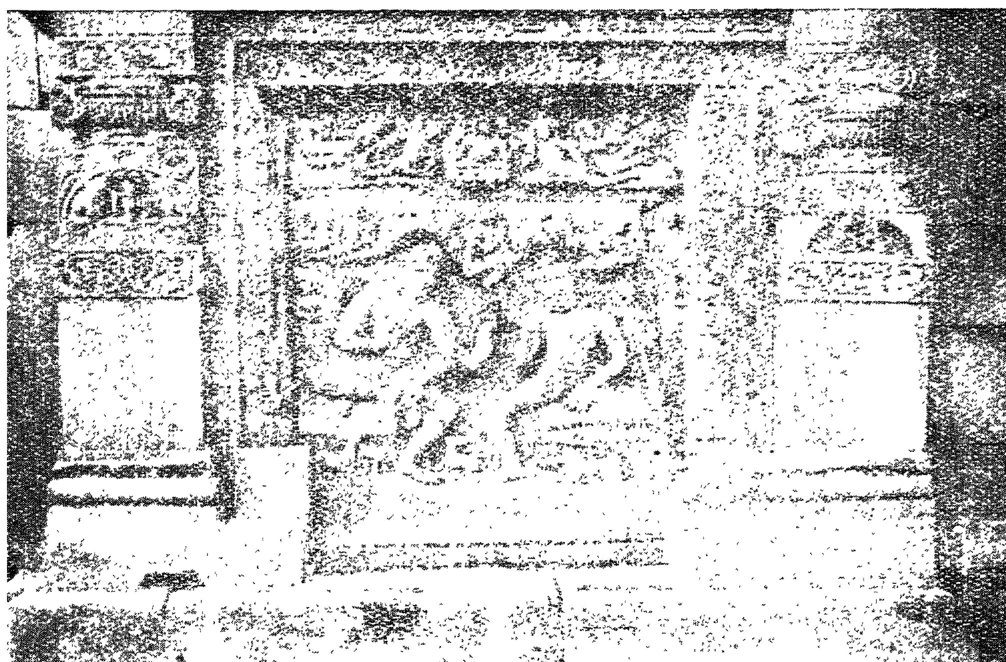
सम्प्रदायविहीना ये धर्मास्ते निष्फला मत

'जो धर्म सम्प्रदायविहीन हैं, वे निष्फल मत
शक्ति असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति रखते हुए ही भार
समस्त (ईश्वरकी ओर ले जानेवाले विभिन्न
सम्प्रदायोंके महत्त्वकी रक्षा कर सकती है। यह बात
युक्तिपूर्ण है।

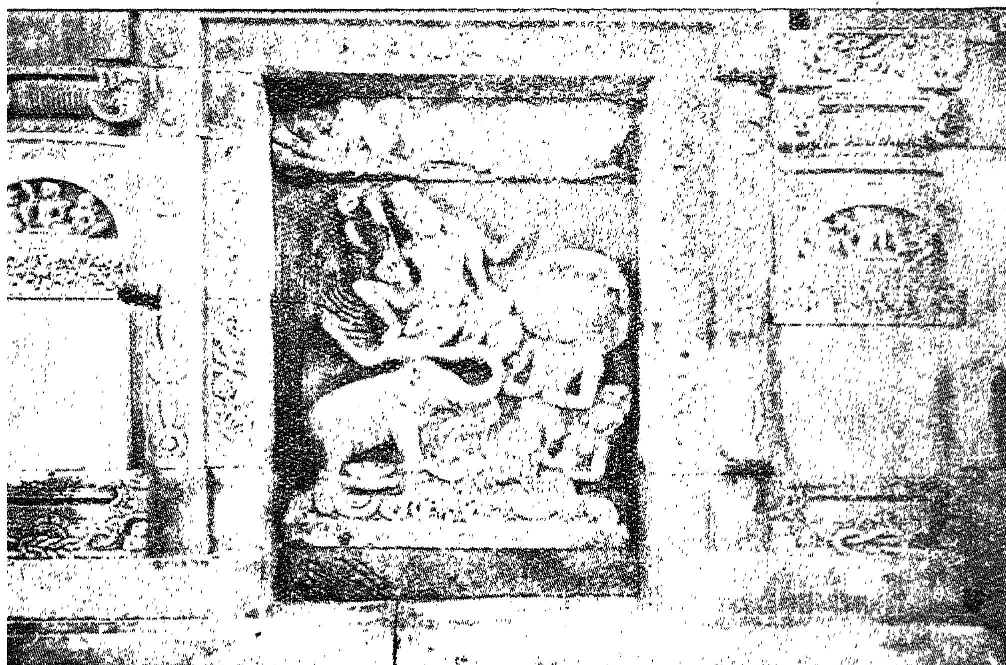
धर्मका लक्ष्य है—आत्माका अभ्युत्थान और
क्या विश्वमें इस प्रकारका मनुष्य आप खोज सक
आत्मचेतनाको समुन्नत नहीं करना चाहता, प्राकृत
दूरकर मुक्ति प्राप्त करना नहीं चाहता ? और यदि सभ
उद्देश्य और लक्ष्य एक है तो धर्मको हम अभिन्न अद्व
रूपमें ही ग्रहण करेंगे। परंतु यह धर्मलाभ प्र
विभिन्न आचारका आश्रय लेकर होता है। और ये
आचार ही सम्प्रदाय-भेद लाते हैं। जिसका लक्ष्य
वह हिंदू हो तो भी मस्जिदको दूसरे सम्प्रदायकी ध
का क्षेत्र समझकर मर्यादा प्रदान करनेमें कुण्ठित न
इसी प्रकार यदि कोई मुसलमान या ईसाई पूर्णतः ध
तो वह भी हिंदूके मन्दिर और तीर्थको छोटी नज
देखेगा। खेद है कि आज मुसलमान-ईसाई ह
हिंदू भी इतने सङ्कीर्ण-हृदय हो गये हैं कि स
भेदसे परस्पर द्वेषभाव उत्पन्नकर मानवताका अप
रहे हैं! भारतकी राष्ट्रशक्ति यदि इस प्रकारकी
साम्प्रदायिकताका प्रतिवाद करती है तो हमारे लिये उ
कोई कारण नहीं रह जाता।

धर्म, कर्म और ज्ञान सापेक्ष हैं। कर्महीन धर
ज्ञानविहीन धर्म जिस क्षेत्रमें आश्रय लेते हैं, उस
उत्कट साम्प्रदायिक विद्वेषका उत्पन्न होना अव
होता है। इस्लामके अनुयायी यदि हिंदूको प्रति
कहकर गाली देते हैं, और हिंदू यदि प्रतिमाशून्य म
मुसलमानको पश्चिमाभिमुख खड़े होकर उपासनामें रत
हँसते हैं, तो उन दोनोंको ही धर्मकी महिमाका प
है—यह मानना होगा। आज कर्म हो गया है स्वार्थ
सेत और ज्ञान हो गया है केवल पुस्तकीय विद्या।

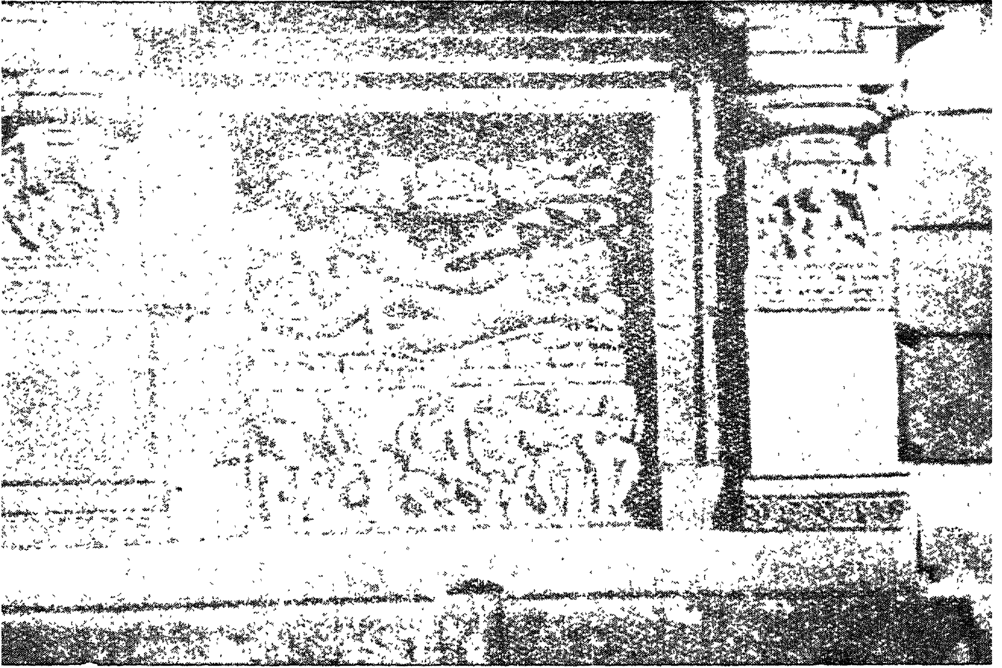
नर-नारायण—देवगढ़ दशावतार-मन्दिर



गजोद्धारका दृश्य—देवगढ़ दशावतार-मन्दिर



[भारतीय पुरातत्त्व-विभागके सौजन



अहल्योद्धार—देवगढ़ दशावतार-मन्दिर



गुप्तकाल, लगभग ५ वीं शती] [भारतीय पुरातत्त्व-विभागके सौ

म्प्रदायोंको हेय समझकर अपनी जातिमें शुद्ध धार्मिक की सृष्टि करनी होगी। भारतकी मुक्ति और अभ्युत्थान से हुआ है। राष्ट्र-शक्तिके धर्मनिरपेक्ष न होनेपर सब धर्मोंको मर्यादा प्रदान करनेमें बाधा आती है। का यह अर्थ नहीं है कि इस देशमें सम्प्रदायका नहीं रहेगा। भगवान् न करें कि कभी हमारी की दुर्बुद्धि हो!

-जाति इन सारी बातोंको अपने हृदयमें अनुभव। इसी कारण उसने अपौरुषेय वेदका आश्रय लेकर र न्यायके विधानको नतमस्तक होकर स्वीकार किया दू धर्मको जानना चाहता है, पर अपनी कपोल-बुद्धिके द्वारा नहीं। जो धर्म श्रुतिविरुद्ध है, जो कमूलक नहीं है, जो धर्म अनुभूतिके द्वारा ग्राह्य हिंदू उसे स्वीकार नहीं करता। हिंदू धर्मके लिये ता है ब्रह्मनिष्ठ गुरुको; मन्त्रका आश्रय लेकर वह र्त बनाता है प्रतिमामें। यह तत्त्व पल्लवग्राही बुद्धिसे नहीं किया जा सकता; इसी कारण अतीत कालमें के लोगोंने परधर्मके प्रभावसे भारतीय धर्मके इस ायको अस्वीकार करना चाहा था; किंतु भारतमें र्मका अनुसरण करते हुए ही विष्णुयशकी जाति सब हात्म्यकी रक्षा करनेमें समर्थ होगी। वेद-प्रसिद्ध वैध द्ध आचारका अतिक्रमण करके भी अनन्य चित्तसे ण सम्भव है, इसे हिंदू-जातिने स्वीकार किया है।

तमें प्रचलित विधि-निषेधके मार्गके बाहर खड़ा यदि कोई मनुष्य ईश्वरपरायण होता है, तो वह भी भगवान्‌का मनुष्य है। जो मेरा आचार है, वह तुम्हार हो सकता है। यहाँतक कि 'जो अत्यन्त दुराचारी है ईश्वरपरायण हो सकता है'—यह भी घोषणा क गीताका मन्त्र (९। ३०)। 'केवल असाम्प्रदायि साम्प्रदायिकता मत रक्खो,' यह कहनेसे ही मौलिक प्रतिष्ठा नहीं होती। गीताके धर्मको हृदयके द्वारा और पालन करना होगा।

हम भारतकी हिंदू-जाति हैं। हमें प्राप्त हुआ है धर्म—सार्वजनीन धर्म। हमारा धर्ममत शाश्वत है, उ विराट् है, इसमें सारे धर्मों और सम्प्रदायोंको र ऐसा कोई खास आचार नहीं है, जिसका आश्रय ईश्वरपरायण होनेमें बाधा पड़ती है। आचार- इसी कारण सम्प्रदाय-भेद भी अनिवार्य है। इस सबसे पहले भारतकी हिंदू-जातिने ही समझा था शास्त्र ही इसकी साक्षी नहीं देते। साधक रामप्रसाद भी हम देखते हैं—

'ओ रे मन, बलि भज काली, इच्छा हय तोर जे आ

अर्थात् 'हे मन! मैं कहता हूँ—तुम कालीको भ चाहे तुम्हारी जिस किसी भी आचारमें रहनेकी इच्छ

आचारकी भिन्नतासे सम्प्रदायकी भिन्नता हो परंतु जिस आचारमें मनुष्य ईश्वरपरायण होता आचारको भारतने स्वीकार कर लिया है। इसी र ऊपर असाम्प्रदायिक भारत राष्ट्रकी सुप्रतिष्ठा हो, कामना है।

अपनी संस्कृति*

नी संस्कृतिका अभिमान,
करो सदा हिंदू-सन्तान।
आदर्शोंकी वह खान,
नररत्नत्व करेगी दान॥
नी चिरसंस्कृतिकी मूर्ति,
है मनुष्यताकी परिपूर्ति।

प्राणरूप उसका पुरुषार्थ,
साधन करता है परमार्थ
युग युगके सञ्चित संस्कार,
ऋषि-मुनियोंके उच्च विचार
धीरों, वीरोंके व्यवहार,
हैं निज-संस्कृतिके शृंगार

—मैथिलीश

ृतिका स्वरूप—बहुसंख्यक जनता या जाति एक
के संस्कारोंसे परिप्लुत होती है। ये संस्कार
समूहको एक 'जाति' का नाम और रूप देते हैं।
एक-जैसे संस्कारोंके मूर्तरूपको ही संस्कृति कहते
ी व्यञ्जना वेष, भाषा, आचार-व्यवहार तथा रीति-
ादिसे होती है। चूँकि ये संस्कार परम्परारूपसे
इसलिये एक संस्कृति माननेवालोंके पुरखे कभी
ही नहीं सकते। भारतमें रहनेवाले लोग चाहे जिस
बको मानते हों, संस्कृति सबकी एक है। बौद्ध हों
, जैन हों चाहे वैष्णव, सिक्ख हों चाहे ब्रह्मसमाजी,
र श्रीकृष्णको अपना पूर्वज सब मानते हैं; भले ही
उन पूर्वजोंके जीवन-वृत्तोंको अपने मत-मजहबका
इसलिये सब एक जातिके हैं, एक संस्कृतिके
कृति ही किसी जातिको दूसरी जातिसे पृथक
और संस्कृति ही राष्ट्र बनाती है। सुसंस्कृत और
देशको राष्ट्र कहते हैं। एक देश या एक राष्ट्रकी
क 'जाति' है। उस जातिका जो स्वरूप है—
, उसीको 'राष्ट्रियता' कहते हैं। राष्ट्रियता ही
ष्ट्रका जीवन है, जो संस्कृतिका नामान्तरभर है।
से उसकी अपनी संस्कृति, जातीयता या राष्ट्रियता
दी जाय, वह (राष्ट्र) नष्ट हो जाता है। नष्ट होने-
ब यह कि उसकी आत्मा मर जाती है। 'राष्ट्र'
दूसरे राष्ट्रकी आत्मा समा जाती है, उसका अपनापन
जाता है। वह निर्जीव हो जाता है। इसीलिये जब
और प्रबल राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्रपर राजनैतिक
ाप्त करता है, तो उस (विजय) को स्थायित्व
ये उस (विजित) राष्ट्रकी राष्ट्रियताको, उसकी
या जातीयताको नष्ट करनेका उद्योग करता है। वह
शासक विजित राष्ट्रकी भावनाको बदलना चाहता
के चिर-प्ररूढ संस्कारोंको वह कुचलता है।
ा उपहास करता है। किसी भी देशकी जन-भाषा
दली नहीं जा सकती; भाषाकी आत्मा 'क्रिया-पद'
कोई बलात बदल नहीं सकता। इन (क्रिया-
आदि क्रियाओंकी जगह फारसी या अरबी-अंग्रेजीक
नहीं चलायी जा सकतीं। सर्वनाम भी नहीं ब
यहाँ विवशता है। परंतु विजित राष्ट्रकी भाषाम
विदेशी अपने देशके शब्द भरता है। अपनी
वह विजित राष्ट्रपर थोपता है। वह विजित राष्ट्रकी
विकृत करके अपनी भाषाके शब्दोंसे भरकर उ
लिपिमें लिखता है। राज्य-शक्तिके द्वारा इस तर
राष्ट्रकी आत्माका हनन किया जाता है। इसी उद्यो
'उर्दू ज़बान' है। अंग्रेजोंने भी 'रोमन' लिपिमें इ
भाषा लिखनेकी प्रवृत्ति जाग्रत् की थी और फौजमें उ
हिंदुस्तानी' कहकर प्रचलित किया था। यह 'दू
समझिये, जो लश्कर (फौज) में दूसरे विजेत
चलायी गयी। संस्कृतिका मूल आधार भाषा
जन-भाषाको विकृत करके, उसमें विदेशी शब्दोंद्वार
तत्त्व भरकर विजित राष्ट्रकी संस्कृतिका समूलोच्छे
विजेताका मुख्य काम है।

हमारे देशने विजेताओंके ये प्रहार दृढ़ताके
हैं, परंतु अपनी संस्कृतिको छोड़ा नहीं। यही
है कि वह सदा इससे अनुप्राणित रहा, उसे बल
रहा और उसका अपनापन नष्ट नहीं हुआ। र
स्वातन्त्र्य लाभ करनेमें सांस्कृतिक चेतना मूल क
सन् १८५७का प्रथम स्वातन्त्र्य-समर मूलतः संस्कृति
हुआ था। भारतने गौको माताके रूपमें देखा और
यह राष्ट्रकी नींव है। हमारे ऋषियोंने बताया है कि या
चाहते हो, तो गौमाताकी सेवा करो। इस (
देशका 'शिव' (कल्याण) एकमात्र वृषभपर
भावना बद्धमूल होकर संस्काररूपसे हममें विद्यम
हम गौके लिये जान दे देते हैं—यह जानकर कि इस
ही हमारी जातिकी रक्षा है। हम जिस रूपमें गौव
करते हैं, उसे देखकर मूर्खलोग हँसते हैं। परंतु
समझते कि भावना भी कोई चीज होती है। ती
तीन कपड़ोंको जोड़कर बनाया गया तिरंगा झंडा
साधारण कपड़ा है। परंतु उसे हमने राष्ट्रियताक

झंडेकी शान बनाये रखनेके लिये, आजतक लाखों
। अपने प्राण दे चुके हैं । इसी बलिदानका फल
आज यह हमारी राष्ट्रियताका प्रतीक अपने सर्वोच्च
: गर्वके साथ फहरा रहा है ।

ी तरह इस राष्ट्रने गौको अपनी संस्कृतिका प्रतीक
: । उसकी हत्याको हम राष्ट्रकी हत्या समझते हैं ।
ैष्णव, आर्यसमाजी आदि किसी भी मत-मजहबका
इस प्रतीकका समान सम्मान करता है । इसकी
लिये ही सन् १८५७का वह तूफान उठा था । पर
: गये । जीतकर भी हार गये और फिर विदेशी
हमें जबड़ोंमें कसकर दबा लिया ।

र हमारे राष्ट्र-पितामह (लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर
) ने जब राजनैतिक संघर्ष शुरू किया, तब उन्होंने
संस्कृति-मूलक ही रक्खा । जीवन ही संस्कृतिसे
है । तिलकने महाराष्ट्रमें 'गणेश-उत्सव' तथा
-उत्सव' प्रवर्तित किये, जिससे जनतामें पुनः अपनी
के प्रति ममता जागे और उसके लिये एक प्रबल
ो, जिसका फल राजनैतिक स्वातन्त्र्य है । राजनैतिक
प्राप्त होनेपर तो संस्कृतिकी रक्षा हो ही जाती है ।
नको जब अरब विजेताओंने दबाया, तो वहाँकी
तुर्की) में अरबी भाषाके अनन्त शब्द भर गये,
। गये । अरबवालोंने अपनी लिपि भी वहाँ जारी कर
ादियोंकी पराधीनतामें तुर्कलोग अपनी लिपि भूल
योंकि वहाँ ऐसा कोई राष्ट्रवादी दल था नहीं, जो
ट सहकर भी अपनी लिपि आदिकी रक्षा करता ।
ाषाको कौन बदले ? उसकी आत्मा (क्रिया, सर्वनाम
कोई कैसे बदल सकता था ? जब तुर्किस्तान
हुआ और मजहबके भूत (खिलाफत) से उसकी
टी, तो उसके तेजस्वी उद्धारक श्रीकमालपाशाने
ंस्कृतिका पुनरुद्धार किया; क्योंकि वही राष्ट्रकी
है । अपना पुराना आचार-व्यवहार चालू किया ।
ाके जो रीति-रिवाज आ गये थे, सब हटाये । तुर्की
रबी शब्द छाँट-छाँटकर अलग किये गये । कमाल-
अपने नामका एक अंश भी बदल लिया था । 'पाशा'
ाषाका शब्द है; इसलिये उस महान् तुर्क-नेताने
ाम 'कमाल अतातुर्क' कर लिया था । अरबी भाषामें

सब इसलिये किया गया कि तुर्किस्तानकी मूढ़ जनत
अरब' के प्रति कहीं मानसिक निष्ठा (वफादा
ग्रहण कर ले । यदि तुर्कोंमें अरबी भाषा तथा री
आदिके प्रति सम्मानकी वैसी ही भावना बनी र
निःसन्देह उस देश (अरब) के प्रति उनका आ
रहता और यह आकर्षण राष्ट्रियताका विघात
इसीलिये दूरदर्शी नेताने अपनी संस्कृतिका पुनरुद्धार
आज तुर्किस्तानकी गिनती संसारके प्रबल राष्ट्रोंमें
तुर्कलोगोंने अरबी लिपि भी त्याग दी । अपनी
भूल ही चुके थे । फलतः रोमन लिपि स्वीकार की
अरबी लिपि न रक्खी; क्योंकि वह विजेता राष्ट्रद्वारा :
लादी चीज थी, गुलामीका प्रतीक थी ।

तिलकके बाद महात्मा गांधीने राष्ट्रके सूत्रधार
लिया, जो अन्ततः 'राष्ट्रपिता' के पदसे सम्मानित
महात्माजीने भी राजनीतिको संस्कृतिसे प्रभावित
संस्कृतिके बलसे उसे बढ़ाया । वे सम्पूर्ण भारतीय सं
'रामराज्य' शब्दसे प्रकट करते थे । 'रामराज्य' ऐसा :
जो संस्कृतिकी व्याख्याकी अपेक्षा नहीं करता । इस
सन् १९२१-२४ के उस आन्दोलनमें जादूका काम
जिसने इस देशकी राजनीतिमें कांग्रेसकी जड़ें ए
पातालतक पहुँचा दीं ।

कहनेका तात्पर्य यह कि अपनी संस्कृतिसे राज
बल मिलता है और संस्कृतिको विकृत करनेसे :
करनेसे राष्ट्र मृत हो जाता है । चीनमें बौद्ध, शिन्त
मुसलमान—ये तीन प्रधान मजहब हैं । परंतु वे
मजहब एक चीनी जातिके हैं । जाति सबकी एक, :
या राष्ट्रियता सबकी एक । वहाँका बौद्ध भी 'चाङ् पू
और शिन्तो भी 'पाङ् काङ् चाङ्' तथा मुसलमान भी
चू तैह !' वहाँ न तो बौद्ध 'शीलभद्र' है और न मु
ही 'अल्लाबख्श' है । इसीलिये अखण्ड एकता है
'मजहब नहीं सिखाता आपसमें वैर रखना !' परंतु
यहाँ जहाँ हिंदू और बौद्ध ज्ञानचन्द और ज्ञानभिक्षु है
बहुत बड़ा समुदाय कुछ और है । वह अरब तथा ई
संस्कृति मानता है, भारतकी नहीं । वस्तुतः वह स
वर्षोंसे यहाँ रहता हुआ भी 'हिंद-प्रवासी' अरबी या
आदि है । वह अपना नाम अरबी ढंगका रक्खेगा—

हम अपना मजहब छोड़ दें ? उसे कौन समझाये
रदत्त' नाम रखनेसे मजहब न बिगड़ेगा ? चीनी
का मजहब क्यों नहीं बिगड़ जाता ?

एक देशमें दो संस्कृतियाँ नहीं रह सकतीं ।
नामपर भारतमें अरब तथा ईरानकी संस्कृति पाली-
ी और उसीने देशके टुकड़े कराये, लाखों जन
था स्त्री-बच्चोंकी वह दुर्दशा करायी । यदि संस्कृति-
ता तो वह सब न होता । मजहब तो हिंदूजातिमें
ारों हैं; पर संस्कृति सबकी एक है । एक वैदिक
का मत मुसल्मानसे अधिक मिलता है, जैन मतकी
परंतु वैदिक हिंदू जैनसे बन्धुत्व रखता है और
ो 'पर' समझता है । क्यों ? इसीलिये कि उसकी
भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि) भारतीय
देशी है; अरब या ईरान आदिका सब कुछ है ।
तीय कलेवरोंमें अरब-ईरानकी आत्माएँ घूम रही
हम उन्हें 'अपना' या 'भारतीय' कैसे समझें ? यदि
भारतीय बन जायँ, तो हमारे भाई हैं, भारतीय हैं ।
बके बारेमें हिंदूजाति बड़ी उदार है । चाहे जो
नो, चाहे न मानो । परंतु संस्कृति तो एक ही
?

-संस्कृति या भारतीय संस्कृति—अब प्रश्न यहाँ
ा जायगा कि एक देशकी एक ही संस्कृति चाहिये,
पर वह कौन-सी संस्कृति हो ? इस देशमें तो वैदिक
ा-संस्कृति, बौद्ध-संस्कृति, मुस्लिम-संस्कृति, सिक्ख-
न जाने कितनी संस्कृतियाँ हैं । इनमेंसे कौन-सी
य? किसे किस तरह मिटाया जाय ? इसलिये, सबको
एक नयी संस्कृति बनाओ, जिसे लोग 'इंडियन
कहने लगे हैं ! इसी 'इंडियन कलचर'को देशी
र्वोदय समाज' भी कहा जाता है । इसपर हमें
ना है ।

तः ये सब वितण्डावाद हैं । किसी देशकी संस्कृति
ाहीं जाती, स्वतः बनती है । इस देशकी अपनी
है, जिसे समस्त संसार जानता है । समय-समयपर
ाग अपने साथ विदेशी संस्कृतियोंकी लहरें लाये,
य संस्कृतिके महासागरमें लीन हो गयीं । एक ही
नेताके रूपमें ऐसी आयी, जिसने अपनी संस्कृति

शेष भारतमें तो अब एक ही संस्कृति रहेगी, जो इ
अपनी संस्कृति है, जिसका नाम 'हिंदू-संस्कृति'
राष्ट्रका आधार हिंदू-संस्कृति ही है । यदि यहाँ अब
दूसरी संस्कृति है, तो उसे इसीमें विलीन हो जान
यह (भारतीय संस्कृति) भारतमें ही किसी दूसरी
में न मिलेगी । नदीमें नाले मिलते हैं, नालोंमें न
नहीं जाती । वे नाले नदीके रूप-रंगको प्रभावित क
हैं, पर इसके नाम-रूपको बदल नहीं सकते ।

अब हम हिंदू-संस्कृति तथा भारतीय संस्कृतिके
पर विचार करेंगे । संस्कृति देश या जातिकी होती
मजहबकी नहीं—यह पीछे कहा गया । इस दे
संस्कृति तथा मुस्लिम-संस्कृतिकी बात बहुत दि
रही है, जो वस्तुतः 'भारतीय संस्कृति' तथा विदेशी
या ईरान आदिकी) संस्कृति समझिये । यदि ऐसा
तो जहाँ-जहाँ इस्लाम है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र एक ह
होनी चाहिये । पर ऐसा है नहीं । चीनके मुसल्मान
संस्कृति है और अफगानिस्तानके मुसल्मानकी
संस्कृति । कबायली पठान भी अपनी अलग संस्कृ
रखता है । हाँ, परतन्त्र भारतमें मुसल्मानोंने अ
ईरानकी संस्कृति अपना ली थी । सो, भारतकी
संस्कृति है, जो 'भारतीय संस्कृति' कहलाती है ।
नाम मुसल्मानोंने 'हिंदुस्तान' रक्खा, यहाँकी जनता
कहा । तब यहाँकी संस्कृति भी 'हिंदू-संस्कृति'
लगी । यानी 'भारतीय संस्कृति'का ही दूसरा ना
संस्कृति' है ।

'बौद्ध-संस्कृति' का भी ढिंढोरा पीटा जाता है ।
इतिहासकारोंने 'बौद्ध-संस्कृति'का राग अलापना शुरू
वस्तुतः 'बौद्ध दर्शन' है, 'बौद्ध मत' है; पर बौद्ध
जैसी कोई चीज नहीं है । चीन, जापान, स्याम त
आदि देशोंकी जनता प्रायः बौद्ध है । इस दृष्टिसे इ
देशोंकी संस्कृति एक होनी चाहिये; परंतु ऐसा
उन सभी बौद्ध देशोंकी संस्कृति पृथक-पृथक है । पृथ
पृथक् संस्कृति, जो पृथक् देश बनाती है । इसी तरह
संस्कृति'की बात है । सिक्खोंका रहन-सहन, नाम
रीति-रिवाज आदि सब हिंदू-जातिके हैं । मजहब अलग
संस्कृति अलग कैसे हो सकती है ? कोई भी सिक्ख
लड़केका नाम 'रामसिंह', 'गंगासिंह' आदि न रखकर

तुतः एक देश (भारत) में इस तरह अनेक ाोंकी कल्पना अंग्रेजोंने खड़ी की फूट डालनेके लिये। 'मुस्लिम-संस्कृति'के नामपर देशद्रोहियोंको मदद दो संस्कृतियोंसे दो राष्ट्र! विभाजन हुआ! बिल्ली-न्दर मजे करता है।

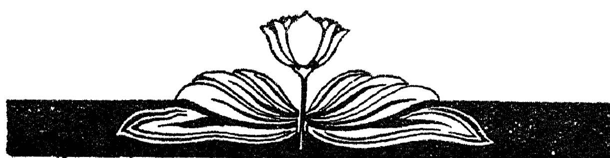
कृति और राजनीतिका अच्छेद्य सम्बन्ध है; यह चुके हैं। संस्कृतिसे राजनीति प्रभावित होती है। ; बलपर राजनीति चलती है। किसी भी देशकी में शक्ति उन्हींके पास रहेगी, जो संस्कृतिको बल देंगे। अपनी संस्कृति छोड़कर राजनीतिका महल खड़ा ानका वह महल नींवरहित होनेसे ढह जायगा। इसीलिये ाताලोग विजित राष्ट्रकी संस्कृतिको विकृत या नष्ट उद्योग करते हैं, जिससे वे चिरकालतक राज-सुख हैं।

ब तथा ईरान आदिकी संस्कृति यहाँ फैलानेका यही ा। उस अन्धकारके युगमें गोस्वामी तुलसीदास-की वाणीने जातिको बड़ा बल दिया। जाति रामको स्कृतिका आदर्श मानकर दृढ़ हुई। आदर्श सदा ;, इसलिये अभिवादनमें 'जय राम' चलाया गया। ारमें विदेशी शासकोंने उस समयके 'शिक्षित' जनोंमें ाकिमोंद्वारा 'बंदगी' चलायी। अब भी गाँवोंमें ! बंदगी' आप सुन सकते हैं। परंतु मुंशीजीको करके भी आपसमें 'जय रामजीकी' ही रही। राजा आदि 'बंदगी' पक्षके थे और महाराणा प्रताप-जैसे । रामजी' वाले। फिर तो महाराष्ट्रमें 'जय-जय श्रीरघुवीर नाद करनेवाले समर्थ गुरु रामदासने जादू भर दिया। य हुई और बंदगीकी गंदगी उड़ गयी। 'जय राम-हनेमें अपनी संस्कृतिकी मूर्ति सामने आ जाती है। ी' उड़ाने आयी थी। 'बंदगी' लेनेवाले विदेशी डूबे हुए थे।

जी राज्यने अंग्रेजी भाषा तथा ईसाइयोंने प्रचारद्वारा हमारी संस्कृतिको उड़ाना चाहा। बहुत जोर लग परंतु लोक-जागरणने उस बलको परास्त कर दिया।

फिर भी विदेशी चक्र घूमता रहा, अबतक है, यद्यपि वेग मन्दा पड़ता जा रहा है। दण्ड-भङ्ग है। फिर भी, उधरके लोग हताश नहीं हुए हैं। सेनामें बिजली भरनेके लिये 'जय हिन्द' फौजी अ चालू किया था। उनकी फौजमें मुसल्मान, ईसाई अ थे। उस सैनिक अभिवादनको उन लोगोंने (सिविल) अभिवादनका रूप दे दिया, जिन्होंने नीति कभी नहीं अपनायी और जिनका उनसे सदा मतभेद' रहा। 'जय हिन्द' जारी होनेपर भी 'जय र सर्वोपरि है। 'जय राम'में 'जय हिन्द' भी समाया पर 'जय हिन्द'में वह पितृ-भक्ति, वह भ्रातृ-वात्सल कहाँ है? इसका मतलब यही कि देश अप समझता है।

संस्कृति और राज्य—किसी राज्यका सम्ब मजहबसे न हो, इसीको धर्म-निरपेक्ष राज्य कहते हैं कोई भी राज्य संस्कृति-शून्य होकर नहीं रह सांस्कृतिक आधारपर स्थित राज्य ही सुदृढ़, अ सुख-समृद्धिसे पूर्ण हो सकता है। जिस देशका र अपने सांस्कृतिक महत्त्वकी उपेक्षा करेगा, अपनी सं सर्वोपरि महत्त्व न देगा, उसकी नींव बालूपर ही चाहिये। कारण, संसारकी और सब चीजें बदलती पर किसी जातिके संस्कार या भावनाएँ कोई कैसे बदल है? चतुर राजनीतिज्ञ इस बातको अच्छी तरह हैं। यही कारण है कि मि० मुहम्मद अली जिन्नाने मुस की पृथक संस्कृतिपर उतना जोर दिया था और उ बराबर पचीस-तीस वर्षतक जोर देते रहे। यही (सं पृथक्त्व) उनकी सफलताका और हमारी दुर्दशाक है। दुःख तो इस बातका है कि यह बात हम अच्छी तरह समझे नहीं हैं!



धर्म और संस्कृति

(लेखक—पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी, काव्य-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

और संस्कृति वास्तवमें एक ही वस्तुके दो नाम
जकल बहुधा कई चोटीके नेता एकाधिक बार यह
ने गये हैं कि भारतमें धर्म अनेक रह सकते हैं
ति एक ही रहेगी । और वह भारतीय संस्कृति
हम नहीं समझते वे संस्कृतिका क्या अर्थ करते हैं;
उन्होंने अबतक संस्कृतिकी कभी कोई अपनी खास
ही जनताके सामने की है । उनके मनमें उसका
रूप है, इसे वे ही जानते हैं । जनता अबतक उनके
शब्दके तात्पर्यावगाहनमें असमर्थ ही रही है

वमें 'संस्कृति' शब्द ही आधुनिक विद्वानोंके माथे-
है, सो शायद अंग्रेजीके 'कल्चर' (culture)
तिनिधि है । भारतीय प्राचीन विद्वानोंने 'संस्कार'
प्रयोग अवश्य किया है जो कि संस्कृत-व्याकरणके
संस्कृति' शब्दका समानार्थक है । यदि इसी अर्थमें
ते' शब्दको ग्रहण करते हों तो फिर किसीको कोई
हीं हो सकती ।

हमें भारतीय प्राचीन महर्षियोंकी एतद्विषयक
ा समझनी होगी । उनका यह दृढ़ विश्वास है कि
सृष्टि रचनेके पहले सृष्टिके प्राणियोंकी ऐहिक
ुष्मिक उन्नतिका मूल तथा मोक्षप्राप्तिका साधनभूत
धित ज्ञानराशि वेद, जो भगवान्‌का श्वास-प्रश्वास है
नित्य है, प्रकट किया और उसके आधारपर
रचना पूर्वकल्पानुसार की ।

षां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

ावान्‌ने वेदशब्दोंके आधारपर जगत्‌की रचना की
उके अन्तर्भूत विविध प्राणियोंका (देव, तिर्यक्,
पशु, पक्षी, अश्व, गौ, वृषभ आदि) नाम तथा
क् वर्णोंके कर्म एवं संस्था (लौकिकी व्यवस्था)
की ।' तात्पर्य यह कि भारतकी संस्कृति वेदमूलक
दबाह्य जो संस्कृति (संस्कार) है, वह अभारतीय

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदा
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च

'सम्पूर्ण धर्मका मूल वेद है । वेद जाननेवालों
तथा शील (ब्रह्मण्यता, देव-पितृभक्ति, सौम्यता,
तापिता, अनसूयुता, मृदुता, अपारुष्य, मित्रता, प्रि
कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्य और प्रशान्ति—यह तेर
का शील) तथा वेदज्ञोंका आचार तथा वेदके
विषयोंमें साधुओंकी आत्मतुष्टि ही धर्म है ।' अर्थात्
स्मृति, पुराण, इतिहास आदि द्वारा प्रतिपादित सदाचार
है; तद्विपरीत आधुनिक जितनी भी वेदबाह्य स्मृ
कल्पनाएँ हैं, वे निष्फल, मिथ्या तथा तमो
अकल्याणकारक हैं—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टय
ताः सर्वा निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृता

(

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचि
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च

(

अर्वाचीन होनेके कारण वेदसे विपरीत जो
वे उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं । वे सब नि
और मिथ्या हैं । इसलिये वेदको छोड़कर सन्म
संसारमें अन्य कोई शास्त्र हो ही नहीं सकता । ये भ
प्राचीन संस्कार हैं । वेदके अनुसार चार वर्ण, ती
चार आश्रम—विशेष क्या, जो भी भूत, भविष्य, व
सब वेदसे ही सिद्ध होते हैं—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वार आश्रमाः पृथ
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति

यह सही है जब कोई कारीगर किसी मकानक
चाहता है तो पहले उसके नामकी, पीछे स्थान त
उपयोगकी अपने मनमें कल्पना करता है । फि
प्रत्यक्ष रूप देता है । यही नियम सृष्टिकर्ताके लिये
है । उसने अपनी सृष्टिके निर्माणकी इच्छा की (
एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय)। फिर सबके नाम-रूप, जे

प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव, जिसके जीवनका लक्ष्य परमात्मप्राप्ति है, उत्पन्न किया—

ाहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
स्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥
ानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ाणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥

ा पुराणि विविधान्यजमात्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् ।
ैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥

ावको अपने पूर्वकर्मानुसार चार वर्णोंमें विभक्त सबके लिये मोक्षप्राप्तिके साधन अपने पृथक्-पृथक् ादेश किया, जिसको करते हुए—लोक-दृष्टिमें नीच-कर्म करते हुए भी मनुष्य एक त्यागी, तपस्वी, परमहंस महात्माकी तरह समान रूपसे मोक्षको लेते हैं। यह है हिंदू-संस्कृति या भारतीय संस्कृति! संस्कृति वेदमूलक धर्मके अनुसार आचरणके आधार-हुई है। इसमें स्त्री-पुरुष, भाई-बहिन, पिता-पुत्र, ाष्य, राजा-प्रजा और स्वामी-सेवक आदि विविध योंके विविध कर्म नियत हैं, जिनको परमात्माकी नकर करता हुआ, परमात्माका स्मरण करता हुआ धिकारी निर्विशेषरूपसे परमात्माको प्राप्त हो जाता नुस्मर युध्य च)।

ों कर्तव्योंके आधारपर बनी हुई भारतकी समस्त ै। उसीके अनुसार मनुष्योंने जिस साहित्य, सङ्गीत, ला, मनोरञ्जन, रहन-सहन और वेष-भूषाकी सृष्टि की को आजकल विद्वान् 'संस्कृति' कहते हैं—वही भारतीय ै। लोग जो यह कहते हैं 'भारतमें एक ही संस्कृति ौर रहनी चाहिये' सो उनकी यह बात तो समझमें परंतु साथ ही वे जो यह कहते हैं कि 'धर्म भले ही न्न हो'—यह समझमें नहीं आता; क्योंकि धर्म और कोई मौलिक भेद देखनेमें नहीं आता। भारतमें न धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित हैं—यहाँतक कि बौद्ध, ै वेद-विरोधी कहे जानेवाले धर्म या संस्कृतियाँ भी दमूलक ही हैं। यह इनके आदि आचार्योंके चरित्रोंसे ाता है। इसीलिये श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें उनको ा अवतार माना है। भला, कहीं वेदविरोधी कोई

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ।

राक्षसी प्रवृत्तिके पुरुषोंकी यज्ञमें अश्रद्धा करा भगवान् बुद्धको प्रयोजनवश वेदकी भी निन्द पड़ी। जैनियोंके आदिगुरु भगवान् ऋषभदेवके श्रीमद्भागवतमें व्यासजी कहते हैं—

'इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां दुश्चरिताभिहरणम्। परममहामंगलायनमनुश्रद्धयो नुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन् एकान्ततो भक्तिरनयोः समनुवर्तते।'

जिनके चरित्रको सुनने, एवं वर्णन करनेसे वासुदेवमें वक्ता-श्रोताकी अविचल भक्ति होती है ब्राह्मण, गौ और लोकका परम गुरु कहा गया है, चरित्रश्रवण समस्त पापोंका नाश करनेवाला माना वे क्या वेदविरोधी हो सकते हैं?

महाभारतमें कर्ण और शल्यका आपसमें कटाक्ष पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि मद्र, गन्धार, बाह्लीक आ सिन्धकी सीमासे सटे हुए हैं, वहाँके मनुष्योंमें आ हजार वर्ष पहले ही वर्ण-व्यवस्था ढीली पड़ चुकी थ

महाराज मनु कहते हैं, 'धीरे-धीरे ब्राह्मणोंका सं जानेसे ये क्षत्रिय जातियाँ वृषल, धर्महीन या दस्यु हो

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातय
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शका
पारदा पल्हवाश्चीना किराता दरदाः खशा
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहि
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृता

'धीरे-धीरे क्रियाका लोप होनेसे, ब्राह्मणोंका सं जानेसे ये सब क्षत्रिय जातियाँ वृषल तथा दस्यु बन जैसे पौण्ड्र, ओड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, द आदि चार वर्णोंसे रहित जो जाति हैं, वे चाहे म्लेच

: विश्वमार्यम्' वेदघोष था; परंतु शनैः-शनैः
, जिनके ऊपर भगवान्‌की ओरसे आर्य-संस्कृतिकी
ार समर्पित किया गया था, विद्या, त्याग और
' अभाव होता चला गया । इन गुणोंके अभावसे
य हो गये । इसी कारण यह सभ्यता अन्य देशोंमें
गयी । अब आर्यावर्तसे भी इसको बिदा करनेकी
ारी कर रहे हैं !!!

र्वर्ण्यं चातुराश्रम्यधर्माः
सर्वे न स्युर्ब्राह्मणानां विनाशात् ।

(महाभारत)

ण यदि धर्मपरायण होता है तो वह सभीको अपने-
में परायण रहनेके लिये बाध्य कर देता है ।

णं तु स्वधर्मस्थं दृष्ट्वा बिभ्यति चेतरे ।
र्मं चानुतिष्ठन्ति कृत्यं सर्वं च कुर्वते ॥
ाथा क्षत्रियाद्यास्तु तस्माद्विप्रस्तपश्चरेत् ॥

(शुक्रनीति)

णेषु प्रमूढेषु धर्मो विप्रणशेद् ध्रुवम् ।
णाशे भूतानामभावः स्यादसंशयः ॥

(महाभारत)

श यह कि भारतकी संस्कृति वर्ण और आश्रम-
। इसकी रक्षाका भार ब्राह्मणों और क्षत्रियोंपर है ।
के प्रचारक और क्षत्रिय रक्षक हैं ।

स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
नामाश्रमाणां च राजा सृष्टाभिरक्षिता ॥

के हाथमें समस्त मर्यादाओंका भार रहता है ।
म इस बातका निरीक्षण करना है कि कोई इस
नष्ट करके समाजमें कामचार, कामविहार तो नहीं
ाहता । यदि कोई फैलाता है तो वह उसको दण्ड
रामराज्यकी दुहाई सब देते हैं, पर उसके आदर्शको
ा करना चाहते । इस रामराज्यके संचालक वे ही
ुषोत्तम भगवान् श्रीराम थे, जिन्होंने मर्यादा भङ्ग
पस्या करनेवाले शूद्रको अपने हाथसे दण्ड देकर
ो मर्यादा-रक्षाका आदर्श प्रदर्शित किया था । आज
राज्य उनके हाथोंमें है, जिनकी शिक्षा, दीक्षा, पालन-
आदर्श, इतिहास-ज्ञान और आचार-विचार भारतके
सर्वथा विपरीत हैं । वे आगे राज्याधिकारके बलपर

विभाग नहीं, वह म्लेच्छ देश है; जिसमें वर्णाश्रम-वि
वह आर्यावर्त है ।

वर्णाश्रमविभागोऽयं यस्मिन् देशे न विद्यते
स म्लेच्छदेशो विज्ञेय आर्यावर्तस्ततोऽन्तरः

क्या तीस कोटि आर्यसन्तानका यह देश उनके
रहते ही म्लेच्छ देश बनाया जा सकता है ? यदि
हमें एक स्वरसे यह तारस्वरमें घोषित करना होगा—

न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन
देशे मदीये त्वमधर्मबन्
आर्यावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञै-
र्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञा

अर्थात् यह आर्यावर्त हमारा देश है; इस
संस्कृतिका नाश करनेवाला अधर्मी कोई नहीं रह सकत
यज्ञेश्वर भगवान्‌की वैदिक यज्ञोंसे पूजा की जाती है
वहाँ खर-दूषणका क्या काम ?

लेख-समाप्तिके पूर्व हम यह स्पष्ट कर देना
समझते हैं कि यह आर्य-संस्कृति-प्रेम हमारा मू
अन्धपरम्परा-प्रेम नहीं है । इस संस्कृतिमें गूढतम
है, अपार आनन्द है । हजारों-लाखों वर्षोंसे जिसने अ
से समाजका रक्षण-पालन-पोषण किया है, जिसे
त्रिकालदर्शी ऋषियोंने राग-द्वेषशून्य बुद्धिसे समाज
निर्माण किया है, जिसके मधुर फल हम अनन्तकाल
आ रहे हैं, उसको राग-द्वेष, भ्रम-प्रमाद, विप्रलिप्सादि
बुद्धिवाले स्थूलदर्शी जीवोंके बहकावेमें आकर हम
छोड़ सकते ।

भारतके विधानशास्त्री विधान बनानेको बैठे
रूस, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन आदिके विधानके
विधान बना रहे हैं । एक बार वे विधान बनाने
याज्ञवल्क्यके इस विधानसूत्रपर ध्यान दे लेते तो आ
में इतना असन्तोष दिखायी नहीं देता—

यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थिति
तथैव परिपाल्योऽसौ यदासौ वशमागत

अर्थात् किसी देशपर राजा विजय करे तो उ
जो आचार, व्यवहार, कुलकी स्थिति है, उसकी र
आगे देशके आचार, व्यवहार, कुलाचारोंका उपाय

औरंगजेबने तो इस नियमका उल्लङ्घन करके मुस्लिम-उन्मूलन ही कर दिया। अंग्रेजोंके डेढ़ सौ वर्षके में ऊपरसे इस नियमका पालन किया गया; परंतु अपनी शिक्षामें वह विष भर दिया, जिससे भारतीयों-ष्क ही अपनी सभ्यता, संस्कृति, आचार, कुलमर्यादा- हो गया। यद्यपि उनकी संख्या अब भी अंगुलियों- लायक है, फिर भी वे अंग्रेजीदा हैं। अंग्रेजोंने उनके शासनसत्ता सौंपी है। भारतका आज विदेशोंसे भी धिक घनिष्ठ सम्पर्क हो गया है। अतः विदेशी-नीतिशास्त्रोंके इन विद्वानोंकी एक विधानसभा ो गयी है, जो भारतका धर्मनिरपेक्ष अर्थनीतिमूलक बनानेके लिये ही निर्माण की गयी थी। वह ने अधिकार-क्षेत्रको छोड़कर धर्म-संस्कृतिमें भी परिवर्तन करना चाहती है। यह नीति अत्यन्त है। इससे सुधारके बदले संहारका ही दृश्य उपस्थित

होगा। हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि हजार पराधीनताके कारण सामाजिक व्यवस्थामें बहुत-सी ने अपना घर कर लिया है। उनका सुधार अवश्य होना परंतु वह इसी विषयके विशेषज्ञ विद्वानोंद्वारा श तर्कोंके आधारपर ही हो, तभी समाजमें सुख-शान्ति प्रसार होगा। यही भारतीय संस्कृतिके पुनरुद्धारका है। इसके विपरीत जितने मार्ग हैं, वे कुपथ हैं, कुचि संस्कृत भाषाका आबालवृद्ध सबमें प्रचार हो, अविचल भक्ति हो, लक्ष्मी और सरस्वती प्रत्येक घरमें विराजमान रहें; यही भारतकी उन्नति है, भारतीयता है—यही सच्ची भारतीय संस्कृति है।

आबालाद्वदनाम्बुजे तनुभृतां सारस्वतं जृ
देवे कौस्तुभधाम्नि चन्द्रमुकुटेऽद्वैता मतिः
वाग्देव्या सह मुक्तवैशसरसा देवी च दीव्या
शेषस्येव फणाञ्चलेषु सततं लक्ष्मीः सतां स

हिंदू-संस्कृति और धर्म

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

सदासे धर्मप्राण समाज है। हिंदू-समाजका संगठन र अर्थको आधार मानकर नहीं हुआ है, जैसे पाश्चात्त्य। जैसे पाश्चात्त्य समाज अर्थपर अवलम्बित है, अपने र्यमें अर्थको प्रमुखता देता है, वैसे ही हिंदू-समाज वलम्बित है। जीवनके प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य यहाँ धारपर व्यवस्थित होते हैं। **'धारयतीति धर्मः।'** का, व्यक्तिका धारण करे, वह धर्म है।* यह धर्मकी भाषा है। जैसे अग्निका धर्म उष्णत्व है—उष्णता अग्निकी सत्ता ही नहीं रह जायगी—ऐसे ही धर्म न हो माजकी सत्ता ही नहीं रहेगी। धर्मपर ही यह संस्कृति त है। पाश्चात्त्य आलोचक जब अपनी ही भाँति ाजको भी अर्थपर अवलम्बित मान लेते हैं, तो श्लेषण भ्रमपूर्ण होने ही हैं। पाश्चात्त्य प्रणालीको मानकर किया गया विश्लेषण अनर्गल कल्पनाओं-को डालेगा ही।

ही मनुष्यको धारण करता है, यह बात आजके भले न समझ सकें; परंतु यह तो प्रत्यक्ष है कि

धर्मकी उपेक्षासे ही वर्तमान मनुष्य-समाजका पतन घूसखोरी, अनाचार, धूर्तता, चोरी, ठगी, हत्याएँ, घात—ये सब कुकृत्य धर्मकी उपेक्षासे ही मनुष्यमें और आते जा रहे हैं। विश्वमें विनाशकी ओर जाने धर्मत्यागसे ही आयी है।

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः

'धर्मका जो नाश करेगा, धर्म उसका विनाश और जो धर्मकी रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा क यह प्राचीनतम सिद्धान्त जीवनमें प्रत्यक्ष है। आज ब कहा जाता है कि 'प्रगतिवाद मनुष्यको जिस प्र पतियोंकी आर्थिक दासतासे मुक्त करना चाहता है आसमानी शासक ईश्वरकी दासता और धर्मके भी!' बड़ा अच्छा है—मनुष्यको दासताओंसे मुक्त चाहिये; पर फिर मनुष्य समाजकी ही दासता क्यों करे के स्वामी सर्वेश्वरकी दासतासे मुक्त होकर वह देश राष्ट्रकी कल्पित दासतामें क्यों लगे? फिर वह संयम, त्याग, श्रम—यह सब करे ही क्यों?

आज 'दासतासे मुक्ति' यह शब्द बड़ा लुभाव

* धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।'

वर या धर्मने कभी आपसे कहा कि आप उनकी करें ? कभी उन्होंने आपको रोका कि आप अमुक करें ? उन्हें स्वीकार करके उनका अनुगमन करनेके या आप सदासे स्वतन्त्र नहीं हैं ? प्रश्न तो यह है क्ति' चाहिये किसलिये ? बच्चेको माताकी गोदसे चाहिये लाल-लाल दीखते अङ्गारोंसे खेलनेके लिये, मुक्ति चाहिये शस्त्रसे आघात करनेके लिये और मन-नसे मुक्ति चाहिये क्रूरता, लोलुपता, कामुकताको प्रश्रय ये । ऐसी ही मुक्ति अभीष्ट है ?

चीन समाजने कहा—'धर्मके अनुसार चलो । परमेश्वर-ख नम्र रहो, यह दासता कल्याणमय है । मनकी मुक्ति पाओ । यही सच्ची मुक्ति है ।' आधुनिक हता है—'धर्म और ईश्वरकी दासतासे मुक्ति पाओ । लता है ! नियमबन्धन व्यर्थ हैं । मनकी दासता करो । मन जैसा कहे, करो ।' दासता, तो एककी करनी ही है । धर्मके बन्धन सुख, शान्ति, सन्तोष कि चञ्चलता, लोलुपता, संघर्षको वहाँ स्थान नहीं । योंकी दासता देगी शोक, चिन्ता, अशान्ति और योंकि मन कभी तृप्त होता नहीं । विश्वमें सब मनमानी सकते । मनकी सब इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकतीं सबको मनचाही करनी है तो सबल दुर्बलोंका करेंगे ही । मनुष्यको यही विचार करना है कि वह दासता स्वीकार करेगा, धर्मकी मङ्गलमय अधीनता पैशाचिक दासता ?

र्मकी उपेक्षासे विनाश होता है' यह बात पारलौकिक प मानें या न मानें, लौकिक दृष्टिसे ही यह प्रत्यक्ष , दुर्बल, दुखी और अशान्त मानव क्या मृतप्राय क्या रोग, दुर्बलता, दुःख, अशान्ति—ये असंयमके म नहीं हैं ? जहाँ भी, जितने अंशमें कोई व्यक्ति धर्मके किसी नियमकी उपेक्षा करता है, उतने सकी हानि होती है । उदाहरणके लिये एक व्यक्तिने बलात् धन प्राप्त किया । देखनेमें वह धनी और गया, परंतु उसकी मानसिक शान्ति भङ्ग हो गयी । की दासतामें बद्ध हो गया । अब वह असंयमके जायगा और रोग, शोक आदि उसे सतायेंगे । जो समूह अपने यहाँ हिंसादि तत्त्वोंको उत्तेजित करके,

धर्मकी उपेक्षासे विनाशको समझ लेनेपर धर्मक अपनी रक्षा होती है, यह समझना कठिन नहीं र अपनी रक्षाका क्या अर्थ ? मनुष्यका शरीर तो नष्ट होगा ही । संसारके पदार्थ भी नष्ट होंगे । अपन सच्चा अर्थ तो है मानसिक शान्ति, पवित्रता और रक्षा । वैसे यह तो प्रत्यक्ष ही है कि धर्मकी रक्षासे स्वास्थ्य, बल आदिकी रक्षा होती है; किंतु ये गौण इनमें अपवाद भी हो सकते हैं । दुष्ट व्यक्ति सम्पत्तिको अपहरण कर सकते हैं और उसे आघात सकते हैं । इतनेपर भी जिसका मानसिक बल स्थिर रक्षित है । क्योंकि विनाशके जो कारण हैं—लोभ-उनसे वह सुरक्षित है । जलसे सुरक्षाका यह अर्थ आप घरसे बाहर न निकलें; सुरक्षा ठीक तब जब भी रुग्ण न हों । इसी प्रकार जो मानसिक दृढ़ता चुका है, वही सुरक्षित है । उसकी सुख-शान्ति अ यह सुरक्षा धर्मकी रक्षासे ही प्राप्त होती है ।

आज विश्वमें राष्ट्र-धर्म, समाज-धर्म, मानव-ध विभिन्न धर्मोंका उद्घोष किया जाता है; परंतु धर्म या सौ दो सौ नहीं हो सकते । अग्निका धर्म एक है— जलका धर्म है—रस; ऐसे ही मनुष्यका भी एक है । यह दूसरी बात है कि अग्निकी उष्णता जैसे गर्मि और प्रकाशके रूपमें प्रकट होती है तथा उसकी आवृ प्रभावमें देश, काल, पात्रके अनुसार विभिन्नता वैसे ही देश, काल, पात्रके अनुसार धर्मके भी भेद होता है । धर्मका मुख्य रूप क्या है ? यह प्र सहज ही उठता है । शास्त्रोंका कहना है कि प्राणि प्रयत्न दुःखहीन शाश्वत सुख पानेके लिये है; अतएव हीन शाश्वत सुख पानेका भ्रान्तिहीन प्रयत्न ही व धर्म है । वह है अन्तर्मुखता । जो प्रयत्न अन्तर्मु प्रेरणा दे, वह धर्म और जो बहिर्मुख करे, वह अध सार्वभौम सार्वकालिक धर्मकी परिभाषा है ।

बहिर्मुखता मनुष्य और समाजको असंयमकी विनाशकी ओर ले जाती है और अन्तर्मुखता संय शान्तिकी ओर । मन भी एक भौतिक तत्त्व है, य जानते हैं । जलको आप जितना छानेंगे, शुद्ध कर ढक रखनेका प्रयत्न करेंगे, उतना ही वह स्वच्छ

ी तो है। उसे खुला छोड़ेंगे तो विकृत होगा, हानि ढककर रखेंगे, संयमित रखेंगे तो सुख-शान्ति देगा।

दे अन्तर्मुखताका प्रयत्न ही धर्म है तो उससे व्यक्ति ाजका धारण कैसे होगा? हिंदू-समाजके इतने कर्म-ा भी क्या अर्थ? अन्तर्मुखताका प्रयत्न और धारणा--ये दो वस्तुएँ नहीं हैं। शरीर जड है। व्यक्तिमें जो है, वह अन्तस्तलसे आती है। यह सभी जानते हैं कामर्में जितनी एकाग्रता होती है, वह कार्य उतना प्रकार सम्पन्न होता है। शक्तिका स्रोत भीतर है। ना ही अन्तर्मुख होगा, जितना ही एकाग्र हो सकेगा, नी ही शक्ति प्राप्त करेगा। इसी शक्तिपर उसका तथा जीवन निर्भर है। जिस समाजमें जितने अधिक ा वृत्तिके पुरुष होंगे, वह समाज उनकी एकाग्रतामें ग्से उतना ही लाभान्वित होगा। उसे उतनी ही शक्ति ी। वह उतना ही अधिक टिकाऊ बनेगा।

वनका क्षेत्र बहुत व्यापक है। संसारमें भिन्न-भिन्न भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं। मनुष्योंके पृथक्-पृथक् हैं। एक ही मनुष्यको जन्मसे मृत्युतक अनेक ोंको पार करना पड़ता है। देश, काल, अवस्था, दिके भेदसे आचार-शास्त्रका निर्माण होता है। जीवनके क ही प्रकारसे अन्तर्मुखताका प्रयत्न और मानसिक सुरक्षा शक्य नहीं। पूजाके आसनपर जिस प्रकारका शक्य है, वैसा ही प्रयत्न भोजनके आसनपर शक्य ार्यक्षेत्रमें प्रयत्नोंके अनेक रूप हो जाते हैं। हिंदू-समस्त आचार-विस्तार इसी भेदसे युक्त है। प्रत्येक त्येक कार्यमें अन्तर्मुखताका प्रयत्न बना रहे, मानसिक सुरक्षित रहे--इसके लिये इतने कर्मविस्तार हैं।

ुष्य एक प्राणी है, अतः उसके धर्म अनेक नहीं हो वेश्वमें दो या दस-पाँच धर्म हैं, यह एक भ्रान्ति ही है। किसी धर्ममें ऐसा कोई मौलिक अन्तर नहीं, जिसके उसे पृथक् धर्म कहा जा सके। अनादि सनातन मानव-धर्म है, यह बात अनादि कालसे इतिहासके सात सहस्र वर्ष पूर्वतक विश्वमान्य थी। विश्वके शेष छः-सात सहस्र वर्षसे अधिक प्राचीन नहीं हैं। देश, पात्रके अनुसार महापुरुषोंने धर्मके किसी विशेष कहीं प्रचलित किया और वही धर्म कहा जाने अपने दम्भका प्रसार करता है। जब दम्भके द्वारा आदर्श हो जाते हैं तो महापुरुष समाजको धर्मपर ले जा दम्भका संशोधन करते हैं। ये संशोधन ही नूतन सम्प्रदाय बन जाते हैं।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग आ भौम धर्म हैं। किसी आचार्यने किसीपर बल दिया औ ने किसी दूसरेपर। समाजकी तात्कालिक विकृतिको द के लिये जिस साधनपर बल देना आवश्यक था, उन्हें को प्रमुखता दी। किसीने यह नहीं कहा कि वह न चला रहे हैं। शाश्वत धर्मका उद्घाटन--पुनः-स्थापनव ही सब करते हैं। नवीन धर्म हो भी कैसे सकता है; मनुष्य प्राचीन प्राणी है। अग्निमें क्या कोई नव उत्पन्न कर सकता है? जो मनुष्यका स्रष्टा है, उ आदि कालमें ही उसका धर्म दिया है। जलका धर्म जब विकृत हो जाता है; तब जलको शुद्ध करना पड़ महापुरुषोंने मानवकी विकृतिको दूर करनेके प्रयत्न किये हैं। इन सब प्रयत्नोंके परिणाम जिस स्वरूपव करते हैं, वही वास्तविक धर्म है। इसीसे उसे सन कहते हैं। समस्त धर्म उसके किसी-न-किसी अंशसे होते हैं। उससे भिन्न कोई धर्म नहीं और सम्भव है।

शास्त्रविहित कर्म ही धर्म

धर्मका स्वरूप व्यक्तिकी पात्रता, समय, स्थान, अनुसार निश्चित होता है। जो कार्य एकके लिये वि है, वही दूसरेके लिये अधर्म हो सकता है। जैसे शूद्र वेद-पाठ अधर्म है और ब्राह्मणके लिये वेद-त्याग। दृष्टिसे जैसे एक ओषधि रोगीके लिये उपयोगी स्वस्थके लिये हानिकर। जल्लादके लिये निश्चित अ फाँसी देना उचित कर्म है और दूसरा यही कर्म प्राणदण्डका भागी होगा। एक व्यक्तिने अपराध नियमतः उसे बेतोंका दण्ड मिलना है; पर यदि उ मारेंगे तो अपराधी होंगे। बेत मारना जिसका काम मारेगा और दण्डका निर्णय न्यायालय करेगा। इ धर्ममें स्वधर्म और परधर्मका भेद होता है।

कौन-सा कर्म कब किसके लिये धर्म है, यह साधन शास्त्र है। अतएव धर्मकी दूसरी परिभाषा है '

ा है। जो धर्मको नहीं मानते, वे भी समाजके लिये
ो बनाना ही चाहते हैं। ये प्रेरणात्मक नियम न हों
का धारण ही कैसे होगा। अतः धर्म—धारणा-शक्ति
ात्मक शक्ति ही है। प्रेरणा-नियम ही करणीय-
का निर्णय कर सकते हैं।

छ धर्म सार्वभौम धर्म हैं। उन्हींको नित्य धर्म कहना
' इस प्रकार कुछ लोग अहिंसा, सत्यादिको ही
ना चाहते हैं। इसमें शास्त्रकी आवश्यकता उन्हें
त होती; परंतु ऐसे भी अवसर आते हैं, जब दो
एकको चुनना अनिवार्य हो जाता है। जैसे एक
िसी निरपराध दुर्बलका पीछा कर रहा है; दुर्बल कहीं
है। आप उसे जानते हैं और यदि आप कुछ नहीं
भी उसके मारे जानेका भय है। रक्षा करने-जैसा
में है नहीं। ऐसी स्थितिमें दया या सत्यमेंसे एकको
गा।

धर्म सामान्य और कुछ विशेष होते हैं। जैसे दान
र्म है; परंतु यदि कोई रोगी ऐसे पदार्थ आकर
उसे हानि करेंगे तो उस समय विशेष धर्म है उसे
ं न देना। इसी प्रकार आततायीको क्षमा करना
नहीं, कायरता है। वहाँ सामान्य धर्म अहिंसामें
ं आ जाता है—आततायीको दण्ड देना।

भी मनुष्य अपनेको या दूसरेको पापमें लगाता है,
करता है, वह अधर्म करता है। जो पापमें लगा है,
थपर है, उसे कठोरतासे भी रोक देना धर्म ही होता
ोई अन्यायी दुर्बल, बालक, विप्र, गौ या नारीके साथ
करता हो, उसे क्षमाके नामपर चुपचाप देखनेवाला
गा। उसे अपना प्राण देकर और आवश्यकता हो
यीका प्राण लेकर भी दुष्कृत्यको रोकना चाहिये।
न्यायीका भी आत्मिक कल्याण निहित है।

नमें ऐसे अवसर आते हैं, जब स्वधर्मके सामान्य
पालन अशक्य हो जाता है। क्षुधार्त प्राणीसे हम
ीं कर सकते कि वह प्राप्त कदन्नका त्याग करके
ोजनकी प्रतीक्षा करेगा। ऐसे आपत्तिकालके लिये
ी होते हैं। सामान्य नियमोंमें एक सीमातक अपवाद
रना पड़ता है। इन अपवादोंको आपद्धर्म कहते हैं।

पशु तो अपने आहार-व्यवहारके नियम जन्मसे सी
है। क्या भोजन करना चाहिये, क्या नहीं—य
बतलाना नहीं पड़ता। बंदरको पेड़पर चढ़ना
तैरना कोई सिखलाने नहीं जाता। पाचन-क्रियामें
होनेपर गायको उपवासका आदेश नहीं देना
सन्तानोत्पादनका काल कब है, इसके लिये कुत्ते-
पोथे नहीं पढ़ने पड़ते। गधे-जैसे मूर्ख कहे जानेवा
तम्बाकू नहीं चरेंगे। परंतु मनुष्य तो बिना सिख
बात सीखता ही नहीं। उसे अपने हानि-लाभका
विचार नहीं। बच्चेको अभ्यास करानेपर वह अफी
जायगा या नशेसे घृणा करनेवाला। ऐसी अबोध मनु
यदि आदिसे ही ईश्वरीय आदेशरूप शास्त्र न पाती
हो गयी होती। यह तर्क व्यर्थ है कि मनुष्य हानि
उठाते सीखता है। लड़के यदि मादक द्रव्य सेवन क
हैं, तो दूसरोंके बतानेसे ही उन्हें हानिका ज्ञान ह
स्वयं वे हानि नहीं समझ पाते। अतएव मनुष्यके
सम्यक् आदेश चाहिये। उसके पास पशुओंकी भाँ
सहज स्वभाव या धर्म नहीं है। उसका धर्म प्रेरणा
होगा। वह दूसरोंसे ही आदेश प्राप्त करेगा।

हिंदू-समाजने चार वर्ण और चार आश्रमों
व्यवस्था की है। यदि सूक्ष्म विचार करें तो मनुष्य
समाज चार वर्णोंमें विभाजित है। अन्तर यही है
देशोंमें वर्ण स्थिर नहीं हैं, वर्णसंकर होता रहता है;
सब मानते हैं कि योग्य शिक्षा-सुविधा पानेपर सैनि
व्यक्ति जितना दक्ष सैनिक हो सकता है, वैसा सैनि
नहीं हो सकता। यही बात दूसरे व्यवसायोंके सम्ब
है। वर्ण-व्यवस्था उन्नततम समाजकी व्यवस्था है,
उदार विचारक यह स्वीकार करने लगे हैं। यही बात
व्यवस्थाकी है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवनकी उ
सर्वविदित है और यदि मनुष्य परलोककी सत्यताम
करता है तो उसे वानप्रस्थ और संन्यासकी महत्ता भी
कठिनाई न होगी।

वर्णोंके भीतर भी जातियाँ हैं। व्यापार औ
कार्योंमें अनेक भेद होनेसे वैश्य एवं शूद्रवर्णोंमें
जातियाँ हैं। इन जातियोंकी महत्ता भी वर्णके समान
प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक आश्रम और प्रत्येक जातिके कर्म

ार्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

ने धर्ममें दोष भी जान पड़े तो अपने लिये वही है। दूसरेका धर्म भयप्रद है। यदि नापित यज्ञ कराने ावर, मात्रा एवं विधिका दोष करके वह अपना और ा भी अकल्याण करेगा। इसी प्रकार ब्राह्मण बाल गे तो वह किसीको छूरेके घाव करके पिटेगा। यदि लें कि दीर्घकालीन अभ्याससे दोनों पटु हो सकते ाभ ? समाजको तो शिक्षक और भंगी दोनोंकी ता है। भंगीका बालक जिस सरलता, शीघ्रता और पिताके कार्य सीख सकता है, उसी सरलतासे काम कैसे सीखेगा ? श्रम, रुचि और समय—इन ापेक्षा करके वह अपना और समाजका कौन-सा करेगा ?

:-धर्म सांसारिक सफलताको महत्त्व ही नहीं देता। ो वर्णाश्रम-धर्मका इसलिये पालन नहीं करते कि सांसारिक सुख और सम्मान प्राप्त होगा। यहाँ ात्र अन्तर्मुखताका प्रयत्न है—धर्म है। प्रत्येक मोन्नतिके लिये किया जाता है और साधनके क्षेत्रमें निर्णय प्रथम कार्य है। अधिकारके विपरीत साधनमें ा ही नहीं होता, हानिकी भी सम्भावना रहती है। त्रमें अधिकार-निर्णय गुरु या शास्त्र ही करते हैं। कृतिमें कार्यमात्र साधन हैं, वहाँ जिसके लिये जो श्चत हैं, उनका पालन अनिवार्य होना ही चाहिये। लनसे कल्याण और उसको त्यागकर दूसरेके धर्मका नेसे हानि निश्चय ही वहाँ एक वैज्ञानिक सत्य है। ागका प्रभाव है कि आज सारी जातियों और वर्णोंको ा जा रहा है !

ओर कहा जाता है कि कार्य कोई छोटा-बड़ा नहीं ो कार्यको करनेसे कोई हीन या श्रेष्ठ नहीं होता। ोर वर्गविशेषको उसके कार्यसे पृथक् होनेको प्रेरित ता है। जो जातियाँ अपने काम सुचारुरूपसे कर उन्हें दूसरी जातियोंके कर्म अपनानेको कहा जा रहा शूद्र-जातियाँ सेवा-कार्य छोड़ देंगी, तो भी वे कार्य को करने ही पड़ेंगे। चमार जूतेका व्यवसाय छोड़कर लिये भटकें और ब्राह्मण शू-फैक्टरी खोलें, इसमें भी क्या हित है—यह बुद्धिमें आने-जैसी बात नहीं

होनेपर अशान्ति और संघर्ष होता है। यदि समाजमें होगी तो व्यक्ति कैसे शान्तिसे रह पायेगा ?

सामान्य धर्म, विशेष धर्म

जितनी अव्यवस्था स्वधर्म और परधर्मके ए होती है, उतनी ही सामान्य धर्म और विशेष धर्म करणसे भी। यह सब जानते हैं कि हिंसा अधर्म है प्लेग फैलनेके समय चूहोंको मारना पड़ता है। यह वि विशेष धर्म होगी। इससे भी सरलतासे समझा जा चिकित्सकका विशेष धर्म, जब वह किसी रोगीके विकृ स्वस्थ व्यक्तिके शरीरका भाग काटकर लगा देता है यदि इन विशेष धर्मोंको सामान्य धर्म मान लिया ज चूहे नित्य ही मारे जायँ या प्रत्येक घावपर स्वस्थ अङ्ग ही काटकर चिकित्सक लगाये तो यह पागलपन ह

आजके अन्वेषक शास्त्रोंके सामान्य धर्मसे तो कर लेते हैं और विशेष धर्मोंको उस समयका साम मानकर पृथ्वी-आकाश एक करने-जैसी कल्पनाएँ करते हैं। यज्ञोंके 'आलम्भन' कृत्यको पशुहिंसा औ भक्षणकी प्रथाएँ बताया जाता है, जब कि 'आल अर्थ केवल प्रोक्षण ही है। इसी प्रकार कुछ राजक विवाहोंको लेकर प्राचीन विवाहकी मर्यादा निश्चित क है और कहा जाता है कि 'उस समय बड़ी अवस्थामें विवाह होता था। स्वयंवर, आहरण आदि प्रथा जातिबन्धन नहीं था।' यह सब कल्पना यह मानकर है कि राजा भी सामान्य पुरुष है और उसे भी एक नागरिक-जैसा ही रहना चाहिये। पर ऐसी बात न देशका हित, सम्मान आदि सब शासनके जिस प्रधान अवलम्बित हैं, उसको सामान्य नागरिककी अपेक्षा अधिकार और सुविधाएँ देना आवश्यक हो जाता है

समाजमें राजाके अतिरिक्त भी विशेष पुरुष ह प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें विशेष अवसर आते हैं व्यक्तियों या अवसरोंके लिये विशेष धर्म होते हैं। धर्म उस व्यक्ति या अवसरतक ही सीमित रहते हैं। परम्पराका अन्वेषण करते समय यदि विशेष धर्मक छोड़ दिया जायगा तो समस्त आधार भ्रममें पड़ ज स्मृतियों और शास्त्रोंमें सामान्य धर्मके साथ विशेष भी वर्णित है। विशेष धर्म अविहित नहीं है। धर्मक

आपद्धर्म

तो आपत्ति भी एक विशेष स्थिति है और उस
वशतावश सामान्य धर्ममें जो अपवाद स्वीकार किया
, वह भी एक प्रकारका विशेष धर्म ही है; परंतु
र्म और आपद्धर्ममें एक मौलिक भेद भी है। जिस
क्ति या विशेष अवसरके लिये जो विशेष धर्म शास्त्र-
; उस समय उसीका पालन धर्म है। उस विशेष
ालन न करके सामान्य धर्मका पालन उस व्यक्तिके
उस अवसरपर अधर्म होगा। आपद्धर्ममें ऐसी कोई
ं है। आपत्तिकालमें सामान्य धर्मपर दृढ़ रहना और
का आश्रय न लेना महत्ता है, त्याग है। आपद्धर्मका
आपत्ति-कालमें करनेपर सामान्य धर्ममें जो अपवाद
किया गया, उसका दोष नहीं होगा। उदाहरणके
वंशकी घटना ले लीजिये। महर्षि वशिष्ठकी नन्दिनी
हने बनमें आक्रान्त कर लिया। महाराज दिलीपने,
गौकी रक्षामें थे, गौको बचानेके लिये त्रोणसे बाण
। चाहा; परंतु हाथ त्रोणमें चिपक गया। महाराज
ो गये। अब यदि महाराज गुरुके पास लौट आते
क्षा न करनेके पापके भागी नहीं थे; परंतु महाराजने
शरीर देकर गो-रक्षा करनी चाही, यह उनकी
ी।

पद्धर्म केवल आपत्ति-कालतकके लिये होता है और
उतने अंशमें, जितने अंशमें आपत्ति हो। मरणासन्न
वैद्यने लहसुन दे दिया तो अच्छे होनेपर भी लहसुन
ाद्य नहीं हो गया। उपनिषद्में एक ऋषिकी कथा
ालसे पीड़ित होकर दीर्घकालके उपवासके अनन्तर
एक शूद्रको उड़द खाते देखा। बहुत माँगने और
पर शूद्रने उनको जूठे उड़द दे दिये। उड़द खानेके
ने जल भी देना चाहा। ऋषिने अस्वीकार किया और
कि 'मेरे प्राण क्षुधाके कारण जानेवाले थे। मैं इन
शरीर-रक्षा करके अब धर्माचरणकी इच्छा करता
उड़द मैंने आपत्तिके कारण स्वीकार किये हैं। जल तो
नेर्झरोंमें पी लूँगा। तुम्हारे स्पर्शसे प्राप्त जल लेनेसे मैं
होऊँगा।' आपद्धर्मके सम्बन्धमें यह उदाहरण अत्यन्त
। साथ ही प्राचीन परम्पराओंके अन्वेषकोंको यह भी
अन्वेषणमें देख लेना चाहिये कि कहीं वे आपद्धर्मको

धर्मका आधार

धर्म भावरूप और क्रियारूप दो प्रकारकी
रखता है। मुख्यतः धर्मका उद्देश्य अन्तर्मुख व
अतएव उसका आधार भाव ही होता है। भ
उद्धवजीको उपदेश करते हुए बताया है—

क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद् दोषोऽपि विधिना गुण
गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते

(श्रीमद्भा० ११ । २१

'कहीं गुण (धर्म) भी विशेष अवस्थामें दोष
है और दोष भी विधान होनेके कारण गुण (विशे
हो जाता है। ये गुण और दोषके नियम उन्हींको
हैं, जो उनको जानते हैं।' जो नहीं जानते—जैसे
पागल आदि, वे दोषके भागी नहीं होते।

यह बात ठीक है कि बहुत-से धर्म वस्तुके आ
हैं और वे क्रियामात्रसे फल देते हैं। भगवन्नामो
उत्तम कर्म और गोहिंसादि अधर्म ऐसे ही कर्म है
सामान्यतया भाव इन कर्मोंके फलको भी बढ़ा देता है
एवं फलको जानकर भावपूर्वक किये गये धर्म-कार्य
परिणाम प्रकट करते हैं। हिंदू-शास्त्र क्रियाकी अपेक्षा
और भावको महत्त्व देता है। बिना इस बातको सम
निष्काम कर्मका रहस्य समझमें आता है और
शास्त्रीय कृत्योंकी उपयोगिता और पवित्रता ही।

शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते

—क्षात्र-धर्मका यह उपदेश अनेक बार
समझमें नहीं आया। अनेक बार पूरे समाजके लिये श
प्रयोग हुए। अहिंसाको उसकी सीमासे विस्तृत करने
हुआ। जिन महत्तम पुरुषों और अवतारोंने शस्त्रद्वारा
रक्षा की, उन्हें अपूर्णतक कहनेकी धृष्टता की ग
प्रत्येक बार ये प्रयोग बुरी तरह असफल हुए। ईस
अनुयायी परमाणु बम बना और डाल रहे हैं। बौ
माननेवाले चीन और जापानकी हिंसाएँ छिपी
अपने प्रभुत्वकालमें जैन शासकोंने जो कुछ
गुजरात-काठियावाड़का इतिहास उसका साक्षी है।
गान्धीजीकी अहिंसापर हमारी सरकार जिस प्रकार
है या चलना चाहती है, उसके सम्बन्धमें किसी
बताना नहीं है।

तो विश्वमें प्रलय हो जायगी। क्रिया होती ही है। जब सर्वत्र प्रकृतिमें विषमता है, तब एक ही ाबका सञ्चालन नहीं कर सकता। सबको उनकी अनुरूप चलानेकी व्यवस्था करनी होगी। जहाँ जो अपनी सीमासे विस्तृत होना चाहेगा, वह या तो केके लिये निष्क्रियता (मोक्ष) प्रदान करेगा या ो जायगा। क्रियाकी व्यवस्था वहाँ नहीं रहेगी।

नन और व्यायाम अच्छी वस्तु हैं, पर सीमासे ों तो? अग्निमें उष्णत्व बढ़ता ही जाय तो क्या सब पदार्थ उसमें जल जायँगे या अग्निकी प्रतिक्रिया- होगी और अग्नि बुझ जायगी। इसी प्रकार जैसे र्ममें प्रतिक्रिया या विनाश है, वैसे ही सभी धर्मोंमें धर्मको अपनी पराकाष्ठापर एक व्यक्ति पहुँचा दे तो र्माशय नष्ट हो जायगा। वह मुक्त हो जायगा। वह विश्वमें सीमातीत करना चाहे तो प्रतिक्रिया अहिंसा ही विश्वमें व्यापक हो तो क्या होगा? प्राणिमात्रको भोजन और श्वासका रोध करना पड़ेगा। ता है। रोगाणुओंको मारना स्वीकार करना और दण्ड देना अस्वीकार करना—ये परस्परविरोधी- ऐसी अहिंसा विकृत होती है। उसकी प्रतिक्रिया ।

ष्य-समाज किस प्रकार अन्तर्मुख हो, किस प्रकारके ो अन्तर्मुख करेंगे, इस प्रयत्नकी विरोधी वृत्तियाँ । होंगी—धर्मका यही लक्ष्य है। जिस प्रकार क्रियामें ावश्यक हैं, वैसी ही बात पदार्थोंकी है। अनेक जो धार्मिक कृत्योंके समय उपयोगमें आते हैं—मृगचर्म, , कस्तूरी, चामर आदि। इनकी पवित्रतामें सन्देह है, जैसे क्षात्र-धर्मको हिंसा बताकर तिरस्कृत करना। आज दुरुपयोग हुआ है, यह बात ठीक है; लेकिन तो आजका समाज सबका करता है। आखेट लिये आवश्यक कर्म है। सबसे प्रधान बात है । आजका समाज भी मानता है कि यदि किसीकी ानिसे, थोड़े कष्टसे दूसरोंका अत्यधिक लाभ हो तो या कष्ट क्षम्य है। शास्त्र कहते हैं कि एक अन्तर्मुख, । पूरे विश्वको सात्त्विकताकी प्रेरणा और शक्ति देता दिव्य पुरुषत्वका निर्माण जिस प्रकारसे हो सके,

प्राप्त होती है—यह जानना आजके यन्त्रोंकी शक्तिके बात है; परंतु जिन ऋषियोंने अन्तर्मुखताको ही प्र माना, उनके सम्मुख यह रहस्य नहीं था। उन पदार्थोंको उन अवसरोंपर पवित्र बताया, जो पद अवसरोंपर मनको एकाग्र करनेकी प्रेरणा देते हैं। ऐ यदि उचित हिंसासे प्राप्त होते हैं तो वे अपवित्र सकते। क्षत्रिय नरेशोंका आखेट औचित्यकी सीम न करे, इसके लिये भी अत्यन्त कठोर आदेश शास्त्रों

धर्मका प्राप्य

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म

जिससे लौकिक उन्नति तथा पारलौकिक क प्राप्ति हो, वह धर्म है। यह धर्मकी तीसरी परिभ तीनों परिभाषाएँ अभिन्न हैं। जो धारण करे—केवल इस ही नहीं, परलोकमें भी,—जो दोनों लोकोंमें उन्नति धर्म है और शास्त्रद्वारा ही वह जाना जाता है। य परिभाषाओंका तात्पर्य है।

धर्मसे ही लोक और समाजका धारण हो अनुशासनहीन समाज या व्यक्ति पतनके गर्तमें गिरे अतएव धर्मसे ही अभ्युदय होता है, यह बात व्य आवश्यकता नहीं रखती। हमारे सत्कर्म ही प्रारब्ध और वही दूसरे जन्मके ऐश्वर्य, वैभव, सुखके कार यह आस्तिकजन मानते हैं। जो पुनर्जन्म नहीं मान भी मानते हैं कि समाजके कल्याणके लिये सत्य, दया, परोपकारादि धर्म आवश्यक हैं। जिस समाजमें ये न वह समाज निश्चय कलहपूर्ण रहेगा और नष्ट होगा। अभ्युदय सम्भव नहीं।

निःश्रेयसके सम्बन्धमें धर्मको कारण मानने निःश्रेयसका स्वरूप समझ लेना चाहिये। निःश्रेयस है आत्यन्तिक कल्याण—ऐसी स्थितिकी प्राप्ति जिसमें शोकादि अकल्याणके भाव कहीं आयें ही नहीं। पदार्थ क्या यह स्थिति सम्भव है? विश्वके भोगोंमें तो क्षय, अन की प्राप्ति और विकार रहेंगे ही। ये न भी हों तो सन्तोष कहाँ होता है। असन्तोष, चञ्चलता, अशान्ति लगे ही रहेंगे। आत्यन्तिक कल्याण है आवश्यकतापर प्राप्त कर लेनेमें—ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेनेमें, जह

। यदि शरीरको पृथक् करके देखें तो किसीको कोई
कता नहीं। सुषुप्तिमें भिक्षुक और सम्राट् एक-सी
रहते हैं। अतः शरीरसे छुटकारा मिल जाय तो
कता न होगी; परंतु स्वप्न-जैसा छुटकारा नहीं। स्वप्नमें
-दुःख होते हैं। यह इसलिये कि स्वप्नमें देहकी
कताकी प्रतीति रहती है। देहकी आवश्यकताकी
भी न रहे, तब निःश्रेयस-सिद्धि हो। इसीको मोक्ष
।

की प्राप्ति क्यों होती है? इच्छाओंसे, कर्मसे। इन
का उपशम, कर्मका असंसर्ग ही देहकी प्राप्तिसे
ता है। धर्मकी गति अन्तर्मुख है। बाह्य प्रवृत्तिके
इच्छाओंकी समाप्तिके लिये ही धर्म-विधान है।
ःश्रेयसकी सिद्धि धर्मके द्वारा होती है। धर्मके
े भोगवृत्तिका नाश होता है, हृदयकी शुद्धि होती
क्रमसे कर्मोंमें असंगताकी प्राप्ति होती है। जहाँ
संगताकी सिद्धि हुई, मोक्ष स्वतःसिद्ध है।

ोंमें असङ्गताका अर्थ कर्म-त्याग समझना एक भ्रम
ऐसे कर्मोंका विधान करता है, जिनका त्याग पाप
ा है। अतएव कर्तव्यकर्मका त्याग तो किसी प्रकार
नहीं होना चाहिये। कर्म दो प्रकारके होते हैं।
सी इच्छासे किये जाते हैं और दूसरे स्वतः होते
कर्तव्यबुद्धिसे किये जाते हैं। श्वास, रक्तकी गति
र्म स्वतः होते हैं। भोजन और मलोत्सर्ग ऐसे कर्म
शरीर रहनेतक करने ही होंगे। इसी प्रकार अपने
श्रम, जाति, कुल, अवस्थादिके अनुसार जो कर्म
े नियत हैं, वे कर्तव्य हैं। उन्हें त्यागना नहीं चाहिये।
ी उद्देश्यसे कर्म करना बन्धनका कारण नहीं है।
बिना तो जो कर्म होगा, वह अव्यवस्थित
परंतु उद्देश्यमें आसक्ति, वह पूर्ण ही हो—
ग्रह, उसकी पूर्णतामें अपने कर्तृत्वका अहंकार—ये
। उद्देश्य कोई वासना—अधर्मप्रवृत्ति सकामवृत्ति
ना चाहिये। उसे कर्तव्य मानकर करना और
सम्बन्धमें तटस्थ रहना, यही निष्कामता है।

हमें कर्तव्यकी प्रेरणा देता है, साथ ही फलकी ओर-
रहनेका आदेश भी। फलोंके विस्तृत वर्णन तो
टिके अधिकारियोंके लिये शास्त्रोंमें हैं। शास्त्र स्पष्ट
कि फलविस्मरण ...

नैष्कर्म्यके द्वारा मोक्ष उसका प्राप्य है। यह पहले
चुका है कि जिस कर्म या नियमका लक्ष्य अन्त
होकर बहिर्मुखता है, वह विषय-प्रवृत्तिको बढ़ाव
अशान्ति और असन्तोषके द्वारा विनाशका प
करेगा। वह धर्म नहीं, उसमें धारण-शक्ति नहीं।
है। वह नष्ट करनेवाला है।

धर्मत्याग

आज बड़े गर्वसे धर्मसे मानव-जातिको मुक्त कर
कही जाती है। आजके महापण्डित यह कहकर
होते हैं—'मैं इस रोगसे छूट चुका हूँ!' परन्तु इसव
क्या होगा, वे कभी सोचते ही नहीं। अग्नि अप
त्याग करके भस्म बन जाती है। मनुष्य अपना ध
देगा तो पशु हो जायगा। पशु होकर भी उसक
नहीं। पशु तो अपने धर्मका पालन करते ही हैं।
धर्मत्याग जहाँ भी किया है, वहाँ वह पिशाचसे भ
हो गया है। धर्मसे दूर होकर मानव-जाति विनाश
जा रही है।

धर्मत्यागका अर्थ है—उच्छृङ्खलताकी स्वीकृति
विनाशक ही होती है। शास्त्रीय कृत्योंका मर्म हम
बुद्धिमें नहीं आता, इसीलिये हम उन्हें व्यर्थ या दम्भ
छोड़ दें—यह वैसी ही बात है, जैसे कोई बालक दिय
मसालेकी दाहकता न समझे और दियासलाई दाहक
बातको दम्भ कहे। अवश्य ही दियासलाईका मस
घिसे उसका हाथ जलानेमें असमर्थ है। इसी प्रकार
आदेश अपने परिणामको तभी प्रकट कर सकते
उनको निर्दिष्ट विधिसे सम्यक् पूर्ण किया जाय। के
करना अज्ञानका ही परिचायक है। जो लोग कु
करते भी हैं, वे प्रयत्नकी साङ्गतापर ध्यान नहं
दियासलाई यदि नम होगी, कम वेगसे घिसी जा
अग्नि नहीं प्रकट होगी—यह वे भूल जाते हैं। शास्त्रप
करके वे अपनी ही हानि करते हैं।

धर्म-परिवर्तन

धर्म-परिवर्तनका प्रश्न धर्मत्यागसे भिन्न है।
धर्म यदि वह सचमुच धर्म है और उसकी प्रवृत्ति
है तो वह स्वतः पूर्ण है। क्योंकि पूर्णता व्यक्ति

दो दृश्य (१)

स्वाध्याय

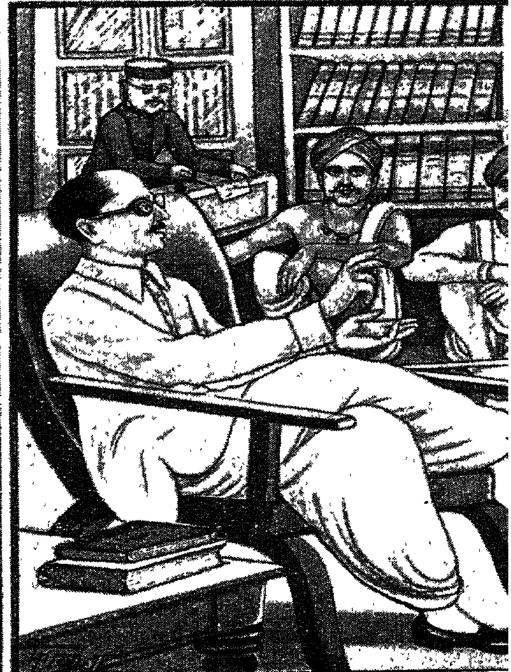


अखबार





कथा-कीर्तन



साक्षी-निर्माण









अतिथि-सत्कार

अतिथि-तिरस्कार

पहले चरणामृत पीते थे अब हो चला सुरासे प्यार ।

ाचार, रुचिके अनुसार वहाँ जानेका अधिकार। धर्म-परिवर्तनका प्रश्न जहाँ धर्मके लिये—कृतके लिये उठता है, वहाँ निष्ठा एवं विचारके अतिरिक्त अन्य कोई कारण सम्भव ही नहीं है।
ो धर्मके आदिप्रवर्तकने दूसरे धर्मोंको हीन या हीं बतलाया है। कोई भी धर्म जो प्रवर्तित हुआ ः सम्प्रदाय ही है और जहाँ उसका प्रवर्तन हुआ श, काल तथा आचारके अनुकूल वह श्रेयस्कर है। अनादि धर्म, जो ज्ञान और वाणीके साथ ही प्राप्त हुआ, प्रवर्तित धर्म नहीं हो सकता। वह तो सृष्टिके साथ ही मिला। वह ईश्वरीय धर्म ही र्म है। देश-कालादिके अनुसार उसके किसी अंशको देकर महापुरुषोंने दूसरे धर्मोंका प्रवर्तन किया। र्तित धर्मोंको दूसरे देशों एवं अन्यधर्मावलम्बियों-लादना अहंकारकी प्रेरणाके अतिरिक्त और कुछ

। धर्म भी राजनीतिका एक साधन हो गया है। पर जितनी सभाएँ, संगठन या आन्दोलन होते हैं, ा राजनैतिक अधिकार-क्षेत्र ही विस्तृत करना। धर्म भी दूसरे साधनोंके समान अर्थका साधन है। धर्म-परिवर्तन अपनी जन-संख्याकी वृद्धि और थिंक लाभके लिये किया या कराया जाता है। रके प्रयत्न अवश्य ही जब एक पक्षसे आघातरूप दूसरा पक्ष आत्मरक्षाके लिये उनका आश्रय लेता ो हो, ये संघर्ष वस्तुतः धर्मके क्षेत्रसे बाहर हैं। धर्म—वृत्ति अन्तर्मुख है, उसीको बाह्य भोगोंका साधन अहंकारका विनाश जहाँ अभीष्ट है, वहाँ ऐसा अहंकार अतिरिक्त शेष धर्मानुयायियोंको पशु कहना—इससे ा और छल क्या होगा? यह वञ्चना अपना और भी विनाश कर रही है। धर्मका नाम लिया जाता है, ाई दी जाती है—उसका गला घोंटकर, उसके शवपर र; और तब भी मनुष्यकी मान्यता है कि वह ! उसका उत्थान होगा!!

तनधर्ममें धर्म-परिवर्तनके लिये कोई स्थान नहीं—म नहीं, यह स्वीकार करना होगा! जो सार्वभौम जहाँ दूसरे धर्म उसके एक अंशसे ही उत्पन्न हुए नादि धर्मका प्रतिद्वन्द्वी ही नहीं, उसमें धर्म-परिवर्तन शुद्धि ढूँढ़नेवाले यह भूल जाते हैं कि चार सह पूर्व दूसरा कोई धर्म ही नहीं था। अपने समाज और से प्रमादवश च्युत हुए लोगोंकी शुद्धिका ही वहाँ वि यह धर्म-परिवर्तन—शुद्धिका प्रश्न उठा ही उनके जिन्हें नवीन धर्म चलाना था। आजके संघर्ष सनात लिये आपत्तिरूप हैं और आपद्धर्मका शास्त्रोंमें निर्देश है। आपद्धर्मके नियमानुसार शास्त्रोंसे अनुगमन करते हुए आत्मरक्षणका प्रयत्न तो अवश्य चाहिये, और उसको किये बिना इस समय समाज कठिन ही है। परंतु शास्त्रोंका ही विपरीत अर्थ करन 'कल्याणप्रद' नहीं है। धर्मको दूसरोंकी देखा-देखी साधन हिंदू भी बना दें, यह तो हानिप्रद ही होगा।

'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

सभा-संगठन-प्रचार

'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे।' आज जिस प्रकार हिंदू चारों ओरसे आघात हो रहे हैं, उनको देखते हुए य है कि संगठनके अतिरिक्त आत्मरक्षणका दूसरा प्रधान सा है। समस्त मतभेदोंको भूलकर, संगठित होकर ही इ अपने आचार, समाजकी रक्षा की जा सकती है। इस भरपूर प्रयत्न करना हिंदू-समाजके प्रत्येक सदस्यका होना चाहिये।

हमें इस समय समस्त मतभेदोंको भूलकर संगठि चाहिये; परंतु यह ध्यान रखना चाहिये कि यह आपत्तिकालिक है, आपद्धर्म है। जबतक ऐसी बात ठी समझ ली जाती, तबतक संगठन पूर्ण नहीं होंगे अपने-अपने संगठनोंको स्थायित्व और महत्त्व देने हैं। इससे अहंकार पोषित होता है। शक्ति संगठित स्थानमें छिन्न-भिन्न हो जाती है। इस समय तो हमें एकत्र करना है।

हिंदू-धर्म सभा, संगठन, मञ्चोंपर दिये गये विशाल तथा दूसरे प्रचार-साधनोंका धर्म नहीं है। संस्थाएँ करना और प्रचारके लिये संगठन बनाकर क्षेत्र प्राप्त क ये पाश्चात्त्य सभ्यताके शस्त्र हैं। 'कण्टकेनैव कण्टक न्यायसे हम इस आपत्तिके समय इनका आपद्धर्मके उपयोग तो कर सकते हैं और करना ही चाहिये; यदि हमें अपने धर्मको अविकृत रखना है तो इनके स्था

-धर्म ऐकान्तिक धर्म है। अन्तर्मुखताका साधन समूहमें
सकता। जहाँ बाहरसे अपनेको भीतर करना है,
रकी प्रवृत्तिको बढ़ाना कोई सामञ्जस्य नहीं रखता।
, पाठशालाओंमें सामूहिक प्रार्थना समझमें आनेकी
। जहाँ समूह है, वहाँ समूहके साथ एकाग्रताका
चल सकता है; परंतु प्रयत्नका आदर्श तो समूह
रको भूल ही जाना वहाँ भी है। जहाँ समूह
वहाँ समूह बनाकर प्रार्थना की जाय—इसका अर्थ
ही है कि या तो मन इतनी निम्न स्थितिमें है कि
प्रेरणाके बिना एकाग्र नहीं होगा, या फिर प्रार्थना ही
लिये नहीं है, वह भी एक राजनैतिक साधन है—प्रचार
ठन करनेका। समस्त पाश्चात्त्य समाज अर्थको ही
नता है, अतएव उसके प्रार्थनादि भी संगठनके ही
। वहाँ प्रत्येक कार्यमें सैनिक वृत्ति, आर्थिक लाभकी
रहती है; पर हिंदू-संस्कृति ठीक इसके विपरीत
गोंसे निवृत्तिकी प्रेरणा देनेवाली है। वहाँ प्रार्थना भी
हो, यह एक उपहासास्पद बात है।

ीन समयमें सर्वज्ञ महर्षि ही समाजके सञ्चालक थे।
। नियम थे। प्रत्येक कार्य शास्त्रपर अवलम्बित
मतके बदले शास्त्रमत, आप्तमत मान्य था। अतएव
र्यके लिये संस्था-निर्माणकी आवश्यकता नहीं थी।
अधिकारीको दिये जाते थे; अनधिकारी उनका
करेंगे—यह बात सर्वमान्य थी। ऐसी दशामें मञ्चोंसे
प्रश्न ही नहीं उठता था। सत्सङ्ग, कथा, सत्र—ये
किंतु उनकी न तो आजके समान संस्थाएँ चलती
र न उनका विज्ञापन होता था। किसी संतके
: उनके उपदेश जो वे कृपापूर्वक श्रोताके अधिकारके
दे देते, वही सत्संग थे। संतोंके, महर्षियोंके समीप
ग्रहणार्थ दूर-दूरसे बड़े-बड़े सम्राट्तक जाते और वहाँ
ते, तब कहीं सफल होते। प्राचीन कथाओंका एक
गवतसप्ताह अब भी देशमें देखनेको मिल जाता है।
कथा-प्रसङ्ग या यज्ञ जब दीर्घकालतक चलते तो
हे जाते।

ज प्रत्येक संस्थाकी एक-सी दशा है। त्यागी, परोपकारी,
एक या अनेक व्यक्ति संस्था स्थापित करते हैं। आरम्भमें
शुद्धरूपमें चलती है। जैसे ही वह इस योग्य होती है

संस्थापर उन्हींका अधिकार हो जाता है, वे प्रमुख
हैं। जो सचमुच निःस्वार्थ, परोपकारवृत्तिसे लगे
उसमें होते हैं, वे या तो कुछ कर नहीं पाते या पृथक्
बाध्य होते हैं।

लेख लिखना, भाषण देना और अभिनय क
कलाएँ हैं। यह आवश्यक नहीं कि लेखक या व
गम्भीर तथ्योंको प्रकट कर रहा है, उनका अनुभव भ
हो—जो उपदेश दे रहा है, उसका आचरण भी क
सभाओंमें जब कोई बोलने लगता है तो थोड़े
होते हैं, जो यह नहीं चाहते कि जनता उनकी बातको
सुने। जनता ध्यानसे सुने, इसके लिये जनताकी रुचि
कहनी चाहिये। इस प्रकार वास्तविकताकी अपेक्षा
विद्वत्ताको अधिक महत्त्व मिलता है। यह भी व्यव
जाता है और जो इस प्रकारका व्यवसाय ही क
उनका जीवन अन्तर्मुख कैसे हो सकता है। य
लेखककी भी है, यदि वह अपने लेखोंको
बनानेके ध्यानसे लिखता है।

धर्म भी प्रचारकी वस्तु है, यह हिंदू-समाजने स्वीक
किया। धर्म तो अधिकारके अनुसार प्राप्त करके
करनेकी वस्तु है। अनधिकारीको उसका उपदेश ही व
समाजका प्रत्येक क्षेत्र जहाँ धर्मपर अवलम्बित है
ओतप्रोत है, वहाँ किसी क्षेत्रमें प्रचारके लिये स
बचता। वस्तुतः प्रचार है क्या वस्तु? हम अपने
दूसरोंको प्रभावित करना चाहते हैं। क्यों? इस
हम अपने विचारोंको श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरोंक
आचरण करके कल्याण होगा, ऐसा हमारा विश्व
अथवा हमें दूसरोंको अनुगामी बनाना है। अपनी र
या किसी दूसरी इच्छाको सार्थक करना है।

ज्ञानका मार्ग है जिज्ञासा। जबतक स्वयं जि
हो, किसीको उपदेश लाभ नहीं करता। उपदेः
जिज्ञासा उत्पन्न होती है, वहीं यह भी भय रहत
स्वाभाविक रुचि दबती है और मानसिक धारा अस्त
सकती है। हिंदू-संस्कृतिके अनुसार जिज्ञासा उत्पन
ही उपदेश देना चाहिये। हम अपने ही विचारों, ि
प्रचार करें—यह सचाईसे हम कर सकते हैं; परं
अर्थ यह तो है ही कि हमारा अहंकार बढ़

ठये ठीक नहीं, यह अहङ्कारकी ही प्रवृत्ति है।
जिन धारणाओंको भ्रान्तिहीन मानते हैं, उनका करके हमने क्या पूर्णता प्राप्त कर ली है? पूर्णता नेसे पूर्व हम प्रचारमें लगते हैं—इसका अर्थ है कि म अपनेमें उन धारणाओंपर चलनेकी योग्यता, या हमारे प्रयासमें पूरी शक्ति नहीं, या वे धारणाएँ आचरणयोग्य हैं—इसमें हमारा विश्वास नहीं। दशामें हम क्या प्रचारके योग्य रहते हैं? विश्वका अनुभव यही है कि पूर्णताको प्राप्त पुरुष संगठन नहीं बनाते। जो अन्तर्मुख हो चुका, प्रवृत्तिमें एक सीमातक ही लगा रह सकता है। ो, जिज्ञासुको वे प्रेरणा, उपदेश तो देते हैं; किंतु जगत्के व्यवस्थित करनेके सम्बन्धमें उनकी प्रवृ सोसायटी आदिकी ओर कदाचित् ही होती है।

हिंदू धर्मके इस आपत्तिकालमें हम भगवान्को साथ-ही-साथ आपद्धर्मके रूपमें संगठन और प्रचार करें, इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं; परंतु धर्म अहङ्कारका शैथिल्य है, उसे बढ़ाना नहीं—य रहनेपर ही ये संगठन सफल होंगे। हिंदू-समाज धर्मपर समाज है। उसमें बाह्य प्रवृत्तिका निरोध ही श्रेयस जाता है। जिज्ञासु ही वहाँ उपदेशका पात्र है। प्रभावके प्रबल प्रवाहमें इस समय इन मूल तथ्योंका धर्मके प्रतिकूल ही होगा। हिंदू-धर्मकी अन्तर्मुख रक्षा सबसे प्रथम दृष्टिमें रखकर ही शेष प्रस्तार उ

हिंदू-संस्कृति और पाश्चात्यवाद

(लेखक—आचार्य श्रीनरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ)

—पाश्चात्त्य राष्ट्रोंमें अनेक वादोंका प्राबल्य हो रहा उनकी प्रतिक्रियाएँ सर्वत्र दिखलायी पड़ रही हैं। आघात-प्रत्याघात चल रहे हैं; उन क्रियाओं-प्रति- आघातों-प्रत्याघातोंका कुछ-कुछ प्रभाव भारतवर्षपर भी है। ब्रिटिश सरकार अपने शासनकालमें उस प्रभाव- नेका भरसक प्रयत्न करती रही थी। उसको मुख्य के वर्गवाद अथवा साम्यवादसे ही रहा। कार्ले समाजवाद भी भयका हेतु रहा।

—भारतवर्षको पाश्चात्त्य रंग-ढंगके किसी वाद किन्हीं वादोंसे शङ्कित अथवा भयभीत रहनेकी कता नहीं है। भारतवर्ष तो अनादिकालसे—जबसे मिक प्राणी संसारमें उत्पन्न हुआ, तभीसे तत्त्वज्ञान- भूमि तथा क्रीड़ाभूमि रह चुका है। उसके सामने र आये, वह अपने ढंगकी निरीक्षण-परीक्षण-पद्धति- का मर्म जानकर यह निश्चय कर सकेगा कि वह वाद ठये उपादेय है कि हेय। भारतवर्षके तत्त्वज्ञानकी इतनी क्रमबद्ध, इतनी सुसंगत है कि उसको किसी से किसी प्रकारकी आशङ्का नहीं हो सकती।

—जब ये वाद अपना हठ छोड़कर हमारी संस्कृतिके ादि मलस्रोत अध्यात्मवादके साथ बहेंगे, तभी संसार-

४—रूसको वर्गवाद खा रहा है। उसको केवल और मजदूरोंकी ही चिन्ता है। कार्ल मार्क्सका र केवल मिलके अथवा शहरी मजदूरोंकी चिन्ता करत गाँवके किसानोंके विषयमें उदासीन ही रहा है।

५—स्वाभाविक, ईश्वरनिर्मित पद्धति यह है कि समाज गुण-कर्म-स्वभावानुसार (१) ब्राह्मण, (२) (३) वैश्य, (४) शूद्र—इन चार वर्णोंमें विभक्त

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। (यजुः

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश

(गीता ४

—और वे अपने स्वाभाविक कर्मोंमें संलग्न र विपरीत रूसमें एक ही वर्ग है। किसान-मजदूर एक जा रहे हैं। वहाँके राज्यचक्र-संचालनमें केवल कि मजदूर—इन्हीं दो वर्गोंका हाथ है। ब्राह्मण-वृत्तिवा क्षात्रवृत्तिवाला एवं वैश्य-समाज इन्हीं दो वर्गों रहता है। अर्थात् सिर, भुजाएँ और पेट पैरोंके रहते हैं। यह अस्वाभाविक पद्धति चल नहीं सकती पैरोंका भी स्थान है और अपने स्थानमें उसका है। पर सिर, भुजाएँ तथा पेटका भी अपना-अप स्थान तथा महत्त्व है। जब पैर उनकी प्रेरणासे चलें

और साथ स्वयं भी नष्ट हों। फिर भी यह एक
है कि साम्यवादके नामपर सबको एक-जैसा
अस्वाभाविक प्रयत्न किया जा रहा है। शरीरमें
ङ्ग-प्रत्यङ्ग एक ही प्रकारके, एक-ही-जैसे हों तो
क्या दुर्गति होगी अथवा उस प्रकारका शरीर
में शरीर भी कहलाया जा सकेगा कि नहीं—विचार

ारतीय संस्कृतिके मुख्य अङ्ग ये हैं—
१—ईश्वरीय सत्ता,
२—ईश्वरीय न्याय,
३—कर्मफलानुसार दण्ड,
४—गुण-कर्म-स्वभावानुसार समाज-व्यवस्था।
चारोंमें अध्यात्मवाद ओतप्रोत रहता है। इसीलिये
ष्टिसे सब प्राणियोंमें एक आत्मतत्त्व विद्यमान है,
कर हिंदू-संस्कृति चलती है और इसीलिये हमारा
माजवाद आत्मतत्त्वकी समताके आधारपर चलता है
ज सुखी रहे, इसलिये वर्णाश्रम-धर्मके अनुरूप प्रत्येक
-अपने स्वाभाविक धर्मपर आरूढ़ रहता है।
देशवासी ईश्वरीय सत्ता, ईश्वरीय न्याय, कर्म-
अपरिहार्यता और आत्मतत्त्वकी समताको मानकर
ते। इसीलिये ये लोग अध्यात्मज्ञानविहीन, केवल
त्ताके आधारपर अपने समाजको सुखी बनाना अथवा
ाहते हैं। यही उनकी मुख्य त्रुटि है।
–हमारी संस्कृति कहती है—

वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
(ईशोपनिषद् १)

न्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
(ईशोपनिषद् २)

ष्टिकी रचना त्रिगुणात्मक तत्त्व—सत्त्व, रज, तम—
गुणोंके आधारपर की गयी है। मनुष्यके कर्मफल
नन्त वासनाओंके कारण अनन्त हैं। कर्मानुरूप ही
ब आते हैं। ऐसी दशामें अपने अज्ञानके कारण यह
टना कि हम सबको एक-जैसा धनी, एक-जैसा
ा, एक-जैसा साधनसामग्रीवाला, एक-जैसा सुखी

८—यूरोपीय प्रथम महाभारतके समयमें
क्रान्ति हुई थी। तबके लेनिनके रूसमें और
स्टालिनके रूसमें बड़ा अन्तर हो गया है।
समयमें राजा-राजा आपसमें लड़ते रहते थे
प्रजातन्त्रके नामपर युद्ध जुट जाते हैं। रूसकी
गयी तो उसके स्थानमें रूसका वर्गवाद आया।
कैसरशाही गयी तो उसके स्थानमें राष्ट्रिय समाज
गया, जो नाजीवाद कहलाया। अब तो वह भी न
जर्मनीके चार टुकड़े हो रहे हैं। जर्मनीमें प्रजा-त
पर हिटलरके समयमें वह पूर्ण एकतन्त्र हो गया
वर्गवाद रहनेपर भी स्टैलिनके समयमें सर्वथा
चल रहा है। इस प्रकार प्रजातन्त्रका नाम लेकर ए
चलाया जा रहा है। इंग्लैंडमें प्रजातन्त्र है, पर
वैश्यप्रधान पूँजीवादके अधीन रहा है और अब तो
वाद प्रबल हो रहा है। अमेरिकाकी यही दशा है
साम्यवाद तथा समाजवादसे सतर्क रहता है। और
किसी रूपमें वहाँ भी एकतन्त्र चलता ही है। जिस
वर्गवाद अथवा साम्यवाद रूसमें प्रचलित है, वह
है, अधूरा है; वहाँ शूद्रवर्गने अन्य वर्गको दबा र
जर्मनीके समाजवादमें क्षात्रशक्तिको इतनी अधिक
दी गयी थी कि अन्य वर्ग दबे रहे, उभर न सके।
वैश्यसमाज इतना प्रबल रहा कि अन्य वर्ग पनप
इस प्रकार पाश्चात्त्य समाजमें न चारों वर्ण यथार्थरूप
यथार्थ रीतिपर काम कर रहे हैं। इसलिये अ
पाश्चात्त्य भौतिकवादी समाज सब प्रकारकी साध
ऐश्वर्य होनेपर भी सच्चे अर्थोंमें सुखी नहीं है।
जगत् समस्त सुखोंके केन्द्र ईश्वरको भूल गया है,
फलकी मीमांसामें विश्वास नहीं रखता, उसने
न्यायदण्डको अपने हाथोंमें ले लिया है, उसको अ
नहीं सुहाता और वह विज्ञानपर अधिक भरोसा
है; तब उसको सच्चा सुख कैसे मिल सकता है। उस
भरोसा बिजली और भापपर है—इसीलिये यूरोप
रहा है। इसीलिये अमेरिका सुखी नहीं है। इसी
हाथ-पैर पटक रहा है और इसीलिये फ्रांस नष्ट-भ्र
है। इनको कोई उपाय सूझ नहीं रहा है। अब ये
ओर निहार रहे हैं।

ऐसे समाजकी रचना करनी पड़ेगी, जिसमें सब
ने-अपने स्वाभाविक कर्मोंको करते हुए परस्पर
रहेंगे। ऐसे समाजकी रचना करेंगे, जिसमें सबको
अवसर रहे और जो एक दूसरेको बाधा न पहुँचाते
तिशील बने रहें, परस्पर सुख-दुःखके भागी बनें।
का वर्णाश्रम-धर्म वह सुन्दर मार्ग बतलाता है; क्योंकि
आधारशिला सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके
रक्खी तथा मानी गयी है। उसमें अध्यात्मतत्त्व
है। वह उपनिषद्-वर्णित भूमा, सब सुखोंके केन्द्र,
ता—ईश्वरको मानता है।

वै भूमा तत्सुखम्। (छान्दोग्य०)

सबसे बड़ा है, बृहत् है, वही सब सुखोंका केन्द्र है।

ल्पे सुखमस्ति। (छान्दोग्य०)

अल्पभूतोंमें सुख कहाँ। इसलिये—

मा त्वेव विजिज्ञासितव्यः। (छान्दोग्य०)

लिये भूमा-शक्तिको जानो और उसको जान-मानकर
विचरो, तभी सच्चा सुख पाओगे।

तएव रूसके वर्गवाद 'Workers of the world
'(संसारके मजदूरो! मिलकर उठो)—इसमें अन्य वर्ग मारे
इटलीके फासिस्टवाद 'Everything for the
' (सब कुछ अपने राज्यतन्त्रके लिये)—इसमें प्रजा
ती है और राज्यतन्त्रके नामपर अत्याचार चलता
राज्यतन्त्र ही एकतन्त्र हो जाता है। जर्मनीके
ything for the Nation' (सब कुछ अपने राष्ट्र-
)—इस सिद्धान्तमें संकुचित राष्ट्रवाद चलकर सत्ता फिर
के रूपमें परिणत होकर एक वर्गके हाथमें ही आती
ी प्रकार इंग्लैंडमें प्रजातन्त्रके नामपर धनीवर्ग अन्य
दबाये रखता है। यही अस्वाभाविक है। अमेरिकाकी
जलबिच मीन पियासी' की-सी हो रही है। इस प्रकारका
तिरछा समाजवाद कभी भी सुख नहीं दे सकता।
वाद इन्हें नष्ट कर चुका और अब भी न सँभले तो
ो नष्ट कर देगा।

०—भारतीय समाजवाद आध्यात्मिकतासे सम्बन्ध
है, रखता रहा है,—इसलिये दासता, पराधीनता,
, अनर्थ-परम्पराओंमें भी यह जैसे-तैसे बचा रहा।

इसकी सभ्यता, इसकी संस्कृति, इसके अध्यात्मवाद
भी वह अद्भुत शक्ति है।

श्रीडॉक्टर भगवानदासजीने अपनी पुस्तक
ऑफ सेल्फ' (आत्मविज्ञान) में ठीक ही लिखा है—

It is the ancient socialism v
some are convinced, is truly scie
because based on the science of Psych
the most important of all scienc
is being widely recognized in the
now; while modern socialism
Communism) which calls itself scie
fails to be so, because it ignores
even goes positively against
fundamental facts and laws of h
nature, and therefore will fail to r
its objective, and fail exactly i
degree in and to the extent wh
violates those facts and laws.

All this world of objects, wh
named by the word *"this"* is ma
and by ideation and hence none
knows not the science of the sel
carry action to fruitful issues.

He who knows the inner p
of the laws of process and its
ideated by the self-existent, he alo
rightly ascertain and enjoin the
and duties of the different clas
human beings, of their social O
tions (Varṇas) and Vocạtions
their Āśramas, "stages in life".

न ह्यध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमपाश्नुते।

इसका भावार्थ यह है कि अनेकोंका यह विश्व
प्राचीन समाजवाद ही वैज्ञानिक समाजवाद है; क
वैज्ञानिक अध्यात्मवादपर निर्भर है। वैज्ञानिक अ
सब विज्ञानोंका विज्ञान है। पाश्चात्यदेशवासी भी
बातको मानने लगे हैं।

वर्तमान समाजवाद और साम्यवाद, जो वै
समझे जा रहे हैं, असफल हो रहे हैं; क्योंकि वे

तना कि वे स्वभावशास्त्रसे विरुद्ध जायँगे अथवा नियमोंके विरुद्ध चलेंगे।

भौतिक संसार जिसको कि हम 'इदम्' (यह) से पुकारते हैं, किसी विशिष्ट कल्पना अथवा आधारपर स्थित है। इसलिये उसके भीतरके त्त्वको जो जानते हैं, वे ही भिन्न वर्गों अथवा र्तव्योंको भलीभाँति जान सकते हैं, उस वैज्ञानिक र्मको समझ सकते हैं। मनुमहाराजने ठीक है कि जो पुरुष अध्यात्मतत्त्वको नहीं वह क्रिया-फलको नहीं प्राप्त कर सकता; जितने भी वाद हैं, उनकी आधार-शिला वैज्ञानिक ाद नहीं है; यही सब दुःखोंका मूल है।

—जो व्यक्ति अध्यात्मवादको जानेगा, वह ऐसे करेगा, जिससे दूसरोंको कष्ट हो। जिस समाज-मवाद प्रचलित होगा, वह दूसरे समाजको, दूसरे जातिको क्यों कष्ट पहुँचायेगा ? हमारे प्राचीनतम स- ऋत तथा सत्य Ethic of right good को समझा था और वे इसी ऋत तथा सत्यका ते रहे।

पे आर्यधर्मका पोषक, पालक आर्यराज्य सिरपर नहीं पि अध्यात्मवादके आधारपर भारत किसी प्रकार ा ही। ये जो वर्णाश्रमधर्मके भव्य भग्नावशेष शेष पुरातन समाजके भव्य भवनोंके स्मृतिचिह्न ही तो सोचिये, सहस्रों वर्षोंके प्रहारोंके पश्चात् भी उनका है।

तका सब कुछ गया सो गया, पर अध्यात्म बना रहा; भारत बचा रहा। कर्मफल तथा ईश्वरीय न्यायसे युक्त ादपर दृढ़ विश्वास रहनेके कारण भारतीय आर्यधर्म -संस्कृतिके उपासकोंपर ऐसा विपरीत प्रभाव न पड़ ससे भारत सर्वथा नष्ट हो जाता। विदेशी संस्कृतियोंका होते रहनेपर भी बाहर-बाहर तो वह अध्यात्मवाद दबा-सा दिखलायी पड़ा, पर भीतर वे ही आध्यात्मिक संस्क दशामें पड़े रहे और समय-समयपर होनेवाले महापुरु प्रबुद्ध करते रहे—इसीसे संस्कृति बच गयी। अ होकर फिर उभरनेको है। संसारका सब वैभव ए तथा हमारी आध्यात्मिक दैवी संपत्ति एक ओर। पा आसुरी संपद् भारतीय दैवी संपद्को थोड़ी देरके ि भले ही सकती थी, पर सर्वथा नष्ट नहीं कर सकती थ पूर्वजोंके पुण्य-प्रतापसे भारत स्वतन्त्र हो गया है संस्कृतिका साम्राज्य सर्वत्र होगा। 'साम्राज्य' शब्द अर्थोंमें नहीं, अपितु—**'सर्वभूतहिते रतः'** सर्वभू दृष्टिसे साम्राज्य होगा। जब संसारमें ऐसा साम्राज्य तभी संसारके भाग्योदयका दिन समझिये।

देश-कालानुरूप प्रत्येक देशकी अपनी संस्कृ सभ्यता रहती है, पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता देश-कालसे बँधे हुए नहीं हैं। वे तो 'वसुधैव कुटुम्ब नीतिपर बने हुए हैं। वे संसारभरके हितकी दृ आर्यजातिमें निम्नलिखित विशिष्ट गुणोंका जो स विकास हुआ, वह अबतक चला आया। इसीसे कि वह संस्कृति कितनी अपूर्व, कितनी व्यापक है, जिसमें राष्ट्रियताका नाम नहीं, जिसमें प्रत्येक बात मानव हितकी दृष्टिसे है, विश्वबन्धुत्वकी दृष्टिसे है, विश्वप्रेमव है। इसी कारण आर्यजातिमें निम्न आठ गुणोंका विकास और ऐसा विकास हुआ कि चरम सीमाको पहुँच गय

(१) शान्तः (२) तितिक्षुः (३)
(४) सत्यवादी (५) जितेन्द्रियः।
(६) दाता (७) दयालुः (८)
आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः ॥

(महाभारतमें

संसारकी किसी जातिमें समष्टिरूपमें इतने गु मिलेंगे।

हिंदुओंकी निष्कपटता

हिंदुओंके चरित्रकी निष्कपटता तथा ईमानदारी उनकी मुख्य पहचान है। वे कभी अनीतियुक्त ळते। —श्रीकिंडिल

तिके सम्बन्धमें विचार करते समय एक शब्द
ने और आ जाता है, वह है सभ्यता। हमें यह
रना चाहिये कि क्या सभ्यता और स्कृति एक ही
यदि नहीं तो इनमेंसे प्रत्येकका अर्थ क्या है, और
में क्या सम्बन्ध है। पर इसका ठीक-ठीक विचार
आसान नहीं है; कारण, कुछ लेखकोंने जो अर्थ
लिया है, दूसरोंने वही अर्थ संस्कृतिका समझा
ने ही विद्वानोंने दोनों शब्दोंका एक ही अर्थमें भी
किया है। कई कोष-निर्माताओंने एकको दूसरेका
समानार्थवाची लिखा है।

सभ्यताका अर्थ

यता' शब्द 'सभ्य' से बना है; और सभ्यका एक
स्य या सभासद् है। सदस्यता किसी सभा, समूह
जकी होती है। इस प्रकार सभ्यता एक सामाजिक
आदमीके समाजमें रहनेके कारण ही सभ्यताका
होता है। साधारणतया हम किसी आदमीकी
अंदाज इसी बातसे लगाते हैं कि सभा या समाजमें
ठना-बैठना, वेष-भूषा, बात-व्यवहार आदि कैसा है।
मी कपड़े पहने हुए हो, जिसके कपड़े साफ-सुथरे
का शरीर, हाथ-मुँह आदि धुले हुए हों, जिसके
तीबसे हों, जिसके बैठने-उठने तथा बातचीतमें
की झलक हो, उसे हम सभ्य कहा करते हैं। इसमें
की बाहरी बातोंकी ही ओर ध्यान देते हैं, आन्तरिक
ओर नहीं।

आधुनिक 'सभ्य' जेंटलमैन

आदमीको हम सभ्य समझते हैं, उसमें आन्तरिक
सकते हैं, और बहुधा होते हैं। पर यह अनिवार्य
। सम्भव है, वह कुछ लिखा-पढ़ा न हो; अथवा
शिक्षा ऐसी ही हो, जो केवल ज्ञानवृद्धिमें सहायक
उससे उस आदमीकी सूक्ष्म या उच्च भावनाओंका
न हुआ हो। कितने ही युवक 'बूटेड, सूटेड
' होते हैं। इनके हाथमें छड़ी, मुँहमें पान तथा
सिगरेट और जेबमें ... रहती है।

अथवा अगर टोपी ही ओढ़ते हैं तो बड़े बाँके ढंगसे।
चाल-ढालमें अजीब अदा होती है। इन्हें अंग्रेजी
ज्ञान चाहे अधूरा ही हो, ये अपनी भाषा जान-बूझकर
मरोड़कर बोलते हैं तथा उसमें स्थान-स्थानपर अपने
शब्द-ज्ञानकी विज्ञप्ति देकर साधारण जनतापर अप
जमाया करते हैं। मामूली आदमी इन्हें 'सभ्य' क
समझते हैं। ये भी अपने, खासकर ग्रामीण भाइयोंको
माना करते हैं।

'सभ्य' आदमीका व्यवहार, भौतिक उ

'सभ्य' व्यक्ति प्रायः अपनी (भौतिक) उन्नति
रहता है। वह अपने स्वार्थ-साधनकी बात सोचता है
इस बातसे विशेष प्रयोजन नहीं होता कि दूसरों
कैसी है, उनका कष्ट किस प्रकार निवारण किया जाय
प्रकार सभ्य व्यक्तियोंमें रिश्वतखोरी, छीन-झपट, छल
चालबाजी, धूर्तता, दूसरोंका पीड़न या शोषण बहुत
हो सकता है। हाँ, ये लोग अपने इन कृत्योंको इस
करते हैं कि इनके दोष साधारण आदमीकी समझ
आते। पर इससे वस्तुस्थितिमें अन्तर नहीं आता।
देखनेमें आता है कि रेलकी यात्रामें 'सभ्य' कहे
व्यक्ति अपना बिस्तर लगाकर इतनी जगह घेर लेता
दूसरोंको बैठनेको भी स्थान नहीं मिलता; परंतु
गाड़ीमें सवार होता है तो इसे किसी रोगी आदमी
रहना सहन नहीं होता। 'सभ्य' आदमीकी बात
का अनुभव खासकर पुलिस, रेल और अदालतों
करनेवालोंके प्रतिदिनके जीवनसे अच्छी तरह हो ज
अनेक बार ऐसे ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदाधिकारी भी
लिप्त पाये जाते हैं, जिनकी 'सभ्यता' सर्वमान्य होती

यूरोपियनोंका दृष्टिकोण

इसी प्रकार जब यूरोपियन लोग अपने आपको
अफ्रीकावालोंसे अधिक सभ्य समझते हैं और दूसरोंको
या अर्धसभ्य कहते हैं तो उनके सामने त्याग, दया,
आदि कोमल भावनाओंकी तुलनाका प्रश्न नहीं होता
विचार यही होता है कि सांसारिक सुख-साधन कि

ा स्वामी है और कौन पराजित या अधीन ? इससे
ात होता है कि यूरोप-अमरीकावाले प्रायः सभ्यताका
हरी वैभव, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, धन-
ादि लेते हैं। समाजमें कोई व्यक्ति या समूह आदि
में जितना बढ़ा-चढ़ा होता है, उतना ही वह अधिक
ा जाता है।

संस्कृति और संस्कार

कृतिका अर्थ जाननेके लिये 'संस्कार' शब्द विचारणीय
कारका अर्थ शुद्ध करना, साफ करना, चमकाना,
पको प्रकाशित करना है। यद्यपि संस्कारोंका परिचय
री बातोंसे होता है, और हिंदू-धर्मके अनुसार
जो संस्कार होते हैं, उनमें कुछ क्रियाएँ अनिवार्य
फिर भी संस्कारोंका उद्देश्य विशेषतया मानसिक और
क होता है। उनमें रूढ़ियाँ या बाहरी बातें गौण
मुख्य लक्ष्य यह होता है कि जिस व्यक्तिका संस्कार
, उसके मन और आत्मापर अच्छा प्रभाव पड़े।
किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें यह कहते हैं कि वह
है, या उसके संस्कार अच्छे हैं, तब हमारा आशय
की बाहरी बातों या व्यवहारसे इतना नहीं होता,
सकी सद्भावना, सच्चरित्रता तथा मन और आत्माके
होता है, जिसकी प्रेरणासे वह व्यक्ति अपने विविध
रता है या अपने सद्गुणोंका परिचय देता है।

ृति हमारे आन्तरिक गुणोंका समूह है, वह एक
क्ति है। संस्कृति हमारे सामाजिक व्यवहारोंको
करती है; हमारे साहित्य और उसकी भाषाको
, हमारी संस्थाओंको जन्म देती है। संस्कृति
है कि हम अपनी सूक्ष्म चित्त-वृत्तियोंका कितना
र पाये हैं। पशु-जीवनसे हम कितना ऊँचा उठ
ममता प्राणिमात्रका स्वाभाविक गुण है; पर एक
ममता उसके अपने परिवारतक ही सीमित रहती
की अपने परिवारसे बाहरके भी दुखी बालक या
पहुँचती है और तीसरेकी अपने शत्रुसे भी
र करनेकी प्रेरणा करती है। इससे अवश्य ही
रा और दूसरेसे तीसरा व्यक्ति अधिक संस्कृत
गा।

संस्कृत व्यक्तिका भोजन-वस्त्र

व्यक्ति भोजन करता है, पर केवल इसलिये कि
शरीरयात्राके लिये, जीवित रहनेके लिये आवश्यक है
नहीं कि खानेमें जीभका स्वाद है। इस प्रकार उसक
साधारण होना स्वाभाविक है, वह अपने भोजनके
विधिको अपने वैभव या ऐश्वर्यकी विज्ञप्तिका सा
बनायेगा। संस्कृत व्यक्ति कपड़ा तो पहनेगा; पर इस
उद्देश्य केवल लज्जा-निवारण या शरीरकी सर्दी-गर्म
करना होगा, समाजमें अपनी अमीरीकी घोषणा
आदर-प्रतिष्ठा पाना नहीं। इसलिये वह अपने पास
जोड़ी कपड़े रखनेकी और एक बारमें अपने शरीरपर
कपड़े लादनेकी ज़रूरत नहीं समझेगा। महात्मा ग
सुसंस्कृत व्यक्ति वायसराय या सम्राट्से मिलते समय '
या 'अर्ध-सभ्य' रूपमें जा सकता है, और इं
ठंडे प्रदेशमें दो कम्बलोंमें गुजर कर लेता है।

परोपकाराय सतां विभूतयः

संस्कृत व्यक्ति शिक्षा, साहित्य, कला-कौशल
उपेक्षा नहीं करता; परंतु वह इन्हें अपनी व्यक्तिगत
की पूर्ति या ख्यातिके साधनके रूपमें नहीं देखता
लिये तो ये चीजें, उसके धन आदिकी तरह, समाजके
सुखके साधनमात्र हैं। साधारण रहन-सहनवाला
सभ्यताके इन चिह्नोंसे दूर रहते हुए भी संस्कृत हो
यदि उसमें सहानुभूति, उदारता, प्रेम, परोपकार
भावनाओंका विकास हो गया हो, यदि वह दूसरे
निवारण करनेके लिये स्वयं दुःख झेलनेको त
उसका हृदय मानव-सेवाके लिये बेचैन हो, वह सब
में अपनी ही आत्माका अनुभव करता हो।

क्या संस्कृतिके भेद हो सकते हैं ?

हम बहुधा 'संस्कृति'के साथ विविध विशेषणों
होते देखते हैं। कहीं हिंदू-संस्कृति और मुस्लिम
की बात होती है, कहीं पूर्वी और पश्चिमी संस्
भारतीय संस्कृति, चीनी संस्कृति, ईरानी संस्कृति या
संस्कृति-सम्बन्धी लेख या पुस्तकें हमारी दृष्टिमें अ
तो क्या संस्कृतिके अलग-अलग भेद हो सकते है
देश या धर्म (सम्प्रदाय) के आधारपर संस्
वर्गीकरण ठीक है ?

े पहले कहा है, सभ्यताके अन्तर्गत आती हैं। ातिका अङ्ग माननेसे, संस्कृतियोंकी संख्या असंख्य तो संस्कृतिका उपहास ही होता है।

य जातियोंको अपनी-अपनी संस्कृतिका अहङ्कार

ा-से आदमियोंकी यह इच्छा रहती है कि अपनी धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिये वे उसकी संस्कृति- । और दूसरी संस्कृतियोंसे भिन्न कहें। प्राचीन मय-समयपर विविध जातियोंके कुछ लोग यह दावा हैं कि उनकी ही जाति वैसी ऊँची संस्कृति रख अन्य जातिवालोंकी संस्कृति वैसी ऊँची हो ही ी। आधुनिक कालमें यूरोपकी गौरवर्ण जातियोंको स्कृतिका विशेष गर्व है। ये रंगदार (काली-पीली) । सभ्य और सुसंस्कृत बनानेका भार अपने ऊपर ्हैं। गत वर्षोंमें जर्मनोंने 'जर्मन कल्चर (संस्कृति)' ष्ठ घोषित किया था।

स्कृतिके स्तर हो सकते हैं, भेद नहीं

भूल जाते हैं कि मनुष्य सब जगह मनुष्य है। ाति, रंग-रूप आदि भिन्न-भिन्न होनेपर भी उसकी ंसारभरमें एक-सी है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन प्रवृत्ति थोड़ी-बहुत सभीमें पायी जाती है। काम, भि, मोह कुछ कम-ज्यादा सभीमें हैं। हर्ष और नी न्यूनाधिक प्रभावित होते हैं। अपने शरीरकी रक्षा पने वंशकी वृद्धि और विस्तार करना सभी चाहते की खोज सभीको होती है। इसी प्रकार संस्कृत क्षमता सभीमें है। यह किसी जातिविशेषमें नहीं। किसी जातिके मनुष्य ऊँची संस्कृतिके री नहीं हो सकते एक जाति, रंग या देशके तने संस्कृत हुए हैं, दूसरी जाति, रंग या देश- ोंमें उतने ही संस्कृत होनेकी क्षमता है। हाँ, इसके हें अनुकूल अवसर या परिस्थिति मिलनी चाहिये; भावमें वे कुछ समयतक निचले स्तरपर रह सकते ; इस दशामें यह निष्कर्ष निकालना भ्रमपूर्ण और ठक है कि एक जाति स्वभावतः ऊँची संस्कृतिवाली [illegible]

हैं और होते ही हैं; परंतु जाति, धर्म या देशके संस्कृतिके भेद नहीं हो सकते। निदान, हिंदू-संस्कृ मुस्लिम-संस्कृति आदि भेद करना या भारतीय और चीनी संस्कृति आदिकी बात उठाना ठीक हाँ, इसके बजाय यदि यह कहा जाय कि मानव- विकासमें अमुक जाति या धर्मके अनुयायियोंने इत लिया, उन्होंने मानवताको ऊँचा उठानेमें इन-इन या आदर्शोंकी खोज की, और उनके अनुसार व्यवहार किया तो बात कुछ सार्थक भी हो सकती है

विविध जातियोंके सांस्कृतिक स्तर सम होनेकी प्रवृत्ति

प्राचीन कालमें आमद-रफ्त या यातायातके स थे। एक जातिका दूसरी जातिसे सम्पर्क कम हो प्रत्येक जाति बहुत कुछ एकान्तका-सा जीवन व्यती थी। उसे इस बातका ज्ञान या अनुभव नहीं होत दूसरी जातिमें कैसी विचारधारा चल रही है, कैसे का मनन और आदर्शोंकी प्राप्तिका प्रयत्न हो रहा प्रकार प्रायः हर एक जातिका सांस्कृतिक विकास अलग हुआ। एक जाति कुछ बातोंमें आगे बढ़ी कुछ अन्य बातोंमें प्रगति की। कई जातियोंमें कुछ या आदर्शोंमें समानता भी रही। इस प्रकार हर एक सांस्कृतिक विकासका स्तर अलग-अलग रहा। पीछे आमद-रफ्तके साधनोंकी वृद्धि हुई, भिन्न-भिन्न ज देशोंके आदमियोंमें सम्पर्क बढ़ा, उनमें विचारोंके प्रदानकी वृद्धि हुई। अब भिन्न-भिन्न जातियोंके स स्तरमें उतना अन्तर रहनेकी सम्भावना नहीं है।

'असभ्य' जातियोंका सांस्कृतिक स्तर उ हो सकता है

इस प्रसङ्गमें दो बातें ध्यानमें रखनी चाहिये बात यह है कि यह आवश्यक नहीं कि जो जातियाँ समझी जाती हैं, उनकी संस्कृतिका स्तर नीचा हो सभ्यताका दम भरनेवालोंने ऐसा प्रचार कर रक्खा असभ्य जातियोंकी संस्कृति निम्न श्रेणीकी है; उनमें नीति-नियमोंका पालन आदि बहुत कम होता है। [illegible]

न किया तो पता लगा कि असभ्य मानी जानेवाली
नपनी संस्कृतिमें सभ्यलोगोंके समान तथा उनसे भी
ो सकती हैं। संस्कृति ऊँची होनेके लिये किसी
भ्यतामें अग्रसर होना अनिवार्य नहीं है। उदाहरण-
नेग्रो अर्थात् अमरीकाके हबशियोंको संसारमें प्रायः
म्न संस्कृतिका कहा जाता है; सभ्यलोगोंने प्रचार
कर रक्खा है। परंतु सभ्यताका दम भरनेवाले
बहुधा उनसे वैसा अमानुषिक व्यवहार करते हैं,
यनशील पाठकोंसे छिपा नहीं। जबतक अमरीका-
ग' आदिकी कुप्रथाएँ मौजूद हैं, कौन सत्यतप्रेमी
गोंके सांस्कृतिक स्तरको अमरीकाके गोरे लोगोंके
स्तरकी अपेक्षा नीचे दर्जेका कहनेका दुस्साहस

हापुरुष सब जातियोंके लिये होते हैं

हम दूसरी बात लें। एक जाति या देशके कुछ
ण नये सिद्धान्तों और आदर्शोंको जनताके
वते हैं। आरम्भमें उसी जातिमें उनका चलन
से होता है। परंतु इससे वे सिद्धान्त या आदर्श
तके नहीं हो जाते। उनमें एक सच्चाई होती है; वह
सी उस जातिके मनुष्योंके लिये होती है, वैसी ही
तियोंके मनुष्योंके वास्ते होती है। सभी जातियाँ
भ उठा सकती हैं। महापुरुष चाहे जिस जातिमें
पर वे उस जातिविशेषके लिये ही नहीं होते, वे
लिये समान रूपसे होते हैं। कोई जाति यह गर्व
करे कि उसमें पैदा हुए महापुरुषने संसारके लिये
या आदर्शों आदिके रूपमें बहुमूल्य भेंट दी; पर
ह दावा करना भूल है कि उस महापुरुषद्वारा
सिद्धान्त आदिपर उसी (जाति) का अधिकार
श्रीकृष्णका निष्काम कर्म केवल हिंदुओंके ही लिये
गौतम बुद्धकी अहिंसापर केवल भारतवर्षका या
नुयायियोंका ही स्वत्व है? क्या न्यूटनका गुरुत्व-
सिद्धान्त केवल अंग्रेजोंकी मिलकियत मानी जा

सकती है? लोकमान्य तिलकके इस वाक्यमें कि 'स्वर
जन्मसिद्ध अधिकार है' प्रत्येक देशके मनुष्योंकी र
माँग उपस्थित है। महात्मा गांधीके सत्याग्रह और अ
का संदेश दूर-दूरके देशोंकी पीड़ित और दलित
अपनाया है और अपनायेगी। और कौन जाने व
ऐसी प्रगति कर जाय कि वहाँका औसत नागरिक
गांधीके प्रति भारतके औसत नागरिककी अपेक्षा
श्रद्धालु हो जाय। अस्तु, विचारधाराएँ किसी सीम
कैद नहीं रह सकतीं। अवश्य ही उपज तो ये कि
जाति या देशकी ही होंगी, परंतु मिलकियत उसीकी
समस्त मानवजाति या विश्वभरकी हो जायँगी।

संस्कृति एक अविभाज्य वस्तु है; हम उ विकास करें

हमें यह भी न भूलना चाहिये कि किसी खास
देशको ही महापुरुष पैदा करनेका ठेका नहीं ि
महापुरुष कहीं भी पैदा हो सकते हैं। उनके लिये व
या पीले—सभी रंगोंके देश समान हैं। वे हरी-भरी भू
नहीं, रेगिस्तान और पहाड़ी या जंगली भूमिको भ
रूपसे कृतार्थ कर सकते हैं। उनके द्वारा आवि
निर्धारित सिद्धान्त मानव-संस्कृतिके अङ्ग हैं। अतः स
हिंदू, मुस्लिम या ईसाईकी अथवा भारतीय, अंग्रेज
की या पूर्व, पश्चिम आदिकी छाप लगाना ठीक
सच्चाई सबके लिये सच्चाई है। उसके हिंदू सच्चाई,
सच्चाई आदि भेद करना गलत है। गणित या विज्ञान
प्रत्येक नियम सबके लिये समान है, उसका जाति
आदिके आधारपर विभाजन नहीं हो सकता। :
प्रकार संस्कृतिके भी, जाति या धर्म अथवा देश
आधारपर अलग-अलग भेद नहीं किये जा सकते;
अविभाज्य वस्तु है। वह मानव-संस्कृति है। हमें
कि उसके विकास और प्रचारमें, मानवताको ऊँचा
अधिक-से-अधिक भाग लेकर अपना जीवन सफल व

भारतीयोंकी अकृत्रिमता

भारतीयोंकी मुखाकृतिमें जीवनके प्रकृत रूपका दर्शन होता है। हम तो कृत्रिमताका आवरण :

[हिंदू]-संस्कृति' शब्द मुझे बेमानी लगता है। 'हिंदू' [इ]तिहास हमें गौरवान्वित नहीं कर सकता। भले ही [यह] शब्द हमें कितना ही प्रिय हो गया हो और हमें [कि]तना ही अभिमान भी होता हो। हाँ, 'आर्य'-शब्द अपने मानी रखता है और वह आसानीसे [सम]झ भी आ जाता है। यद्यपि 'आर्य' शब्द आगे चल[कर जाति]वाचक बन गया, तथापि मूलमें वह गुणवाचक था। [इसी]में 'आर्य' शब्दका असली महत्त्व एवं गौरव है। [इसका] साधारण अर्थ है श्रेष्ठ, भला। संसारमें हम मनुष्य[के] दो ही स्वाभाविक विभाग कर सकते हैं—या [स्त्री] और पुरुष, या सज्जन और दुर्जन। स्त्री-[पुरुषमें] भी सज्जन-दुर्जन दोनों मिलते हैं, अतः [भे]द सज्जन-दुर्जनका ही रह जाता है। पूर्वी-[पश्चिमी], काले-गोरे, हिंदू-मुसलमान-ईसाई आदि भेद सज्जन-[दुर्जन]की अपेक्षा अधिक परिस्थिति-जन्य हैं। सज्जन-[दुर्जन]-[भेद] चारित्रिक गुणोंसे सम्बन्ध रखता है, अतः अधिक [स्थायी ए]वं मौलिक है। अतः संस्कृतिको भी हम दो ही [भागोंमें बाँ]ट सकते हैं—सज्जन-संस्कृति, दुर्जन-संस्कृति। पुरानी [परिभाषाका] आश्रय लें तो आर्य-संस्कृति और अनार्य-संस्कृति।

[अब] रहा यह प्रश्न कि सज्जन कौन और दुर्जन कौन। [इसका] उत्तर गीताने और दुनियाके कई आचार्योंने एवं [अद्भु]त संतोषजनक दे दिया है। गीताने जिसे दैवी-[सम्पत्ति ए]वं आसुरी-सम्पत्ति कहा है, वही सज्जन-संस्कृति या [दुर्जन-सं]स्कृति है। तुलसीदास, एकनाथ, रामदास—सभी संत-[महात्मा]ओंने संत-असंतकी या सज्जन-दुर्जनकी विशद व्याख्याएँ की हैं। सज्जनका प्रधान लक्षण है दूसरोंके सुख-दुःख[का] खयाल करना; दुर्जनका प्रधान लक्षण है अपनी स्व[ार्थ-सिद्धि] सबसे पहले करना—दूसरोंको दुखी, अपमानित करके भी, खदेड़के भी!

अतः मेरी समझमें तो हम जो 'कल्याण'के [पाठक] हैं, सज्जन-संस्कृतिको अपनानेकी और दुर्जन-संस्कृ[तिसे दूर] रहनेकी सतत चेष्टा करते रहें। यदि दूसरोंको दु[र्जन कहते] रहनेकी अपेक्षा हम स्वयं अधिक सज्जन बननेका प्रय[त्न करते] रहें तो जिसे हम आज 'हिंदू-संस्कृति' कहते हैं, 'हिं[दू-संस्कृति'] कहते हैं, उसका गौरव अदम्य गतिसे बढ़ता रहे।

आजकी दुनियामें हमारे अकेले या एकाकी सज्ज[न बननेसे] काम नहीं चलेगा; हमें अपने आस-पास भी सज्ज[न] बनाना और बढ़ाना है। किंतु जो स्वयं सज्जन-संस्कृ[तिसे] सुसंस्कृत होंगे, वही तो दूसरोंको सुसंस्कृत बना सकें[गे]।

हिंदू-संस्कृति या आर्य-संस्कृतिकी यदि कोई [विशेषता] कही जा सकती है तो वह यही कि उसने स्वार्थ-सिद्धि[की अपेक्षा] पर-सेवा, समाज-सेवा; स्वार्थकी अपेक्षा परमार्थपर अ[धिक जोर] दिया है। उसने व्यक्तिको समाजमें, समष्टिमें, भगवा[न्‌में लीन] होनेका उपदेश दिया है और मार्ग भी बताया है। जो विधि, जो क्रिया, हमे भगवान्‌की तरफ ले जाती है, [वही हिंदू-]संस्कृति, आर्य-संस्कृति, सज्जन-संस्कृति, सुसंस्कृति[है। जो] हमें उससे विमुख बनाती है, वह अहिंदू, अनार्य, दुर्जन[-संस्कृति] और कुसंस्कृति है।

सज्जन-दुर्जन

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्ये चान्यद् दुरात्मनाम्। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्॥
नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः। अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥

दुर्जनोंके मनमें कुछ और, वाणीमें कुछ और एवं क्रियामें कुछ और होता है; परंतु सज्जनोंके [मनमें जो होता है] वही वाणीमें और वही कर्ममें।

(लेखक—स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी)

. पार्थिव उन्नतिकी अतिसे आधुनिक मानवका पतन

;निक सभ्यताका ध्यान और ध्येय भौतिक हैं। उसने तिक प्रकृतिकी प्रचण्ड शक्तियोंसे काम लेनेमें, ; अद्भुत सफलता प्राप्त की है। साधारण मनुष्योंके उसने भोग-विलासकी ऐसी-ऐसी सामग्रियाँ जुटा दी चीन कालके राजाओंको भी नसीब नहीं थीं। परंतु ी इस अतिसे मनुष्य अपनी पाशविक प्रकृतिकी नाओंका दास बन गया है। जितना ही उसने बाह्य जीतकर उससे काम लिया है, उतना ही वह अपनी कृतिकी दुर्वासनाओंके सामने हतबल और असहाय के अधीन हो गया है। निम्नगा प्रकृतिकी इन सहज को वह इतनी बड़ी चीज मानने लगा है कि मानो य-जीवनका और इसलिये विश्वजीवनका भी सार-तत्त्व । महान् और दिव्यतर अङ्गोंके स्वतन्त्र अस्तित्वकी र्वथा उपेक्षा की है। इन्हें वह निम्नगा प्रकृतिकी के ही परिवर्तित रूप मानता है। उनका कोई स्वतन्त्र और महत्त्व नहीं जानता। मनुष्योंके ऐहिक हितवादके निर्मित नीतिशास्त्रसे बड़े-बड़े परिवर्तन होनेकी गयी थी। यह सोचा गया था कि आध्यात्मिक को हटाकर यही उसका स्थान ग्रहण करेगा; पार्थिव दृष्टिकोणके गर्भसे संघर्ष और संग्रामके र कुछ न निकला। इसने मानवजातिके दैन्य, दुःख हल्के करनेके बजाय उनकी कल्पनातीत वृद्धि की है। : धनराशि, ये ऊँची-ऊँची गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, मूल्य साज, रेडियो, सिनेमा आदि सर्वसुलभ भोग- -इन सबने मानवजातिके वैयक्तिक, सामाजिक और क संतुलनको नष्ट कर दिया है।

२. मानव-प्रकृतिका विश्लेषण

ष्यने मानव-प्रकृतिके प्रधान अर्थात् आध्यात्मिक और ङ्गोंकी बहुत ही बुरी तरहसे अवहेलना की है ऐसा नष्य पशु बन गया है। अतिसंकुचित स्वार्थपरता, जहाँ-कहीं मनुष्यके असली गुण चमक जाते हैं, व सुव्यवस्था, शान्ति, सहानुभूति और परस्पर सहयो दिखायी देने लगते हैं। व्यक्तिगत या समष्टिगत भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक अङ्गोंमें परस्पर को नहीं है।

३. नैतिक और आध्यात्मिक नियमोंव सार्वत्रिक और वास्तविक स्वरूप

इनमेंसे प्रत्येक क्षेत्रके नियम सार्वत्रिक और हैं। विश्वजीवन उन्हींपर स्थित है। विश्व अनै अध्यात्महीन नहीं है; यदि ऐसा होता तो निरुद्दे विश्वसे मानव-प्रकृतिके नैतिक और आध्यात्मिक अङ् उत्पन्न होते ? इन क्षेत्रोंके नियम मनुष्यकृत नहीं मनुष्य इन नियमोंको बच्चोंके खिलौनोंकी तरह बन नहीं सकता। ये उच्चतर क्षेत्रोंके उच्चतर नियम, भौतिक नियमोंकी तरह ही, इन नैतिक और आध्यात्मिक प्रकृतिके अंदर ही अनुस्यूत हैं। भौतिक जग भौतिक नियमोंको अनुसन्धान करके जानना और पड़ता है, वैसी ही इन उच्चतर क्षेत्रोंकी बात वैज्ञानिक जैसे स्वयं नियम बनाकर भौतिक जगत् पालन नहीं कराता, वैसे ही नैतिक और आध्यात्मिक नियमोंका नियन्ता मनुष्य नहीं है जैसा कि वह अपने कुछ दिनोंसे समझने लगा है। भौतिक क्षेत्रकी तरह इ भी उसका काम इतना ही है कि वह अपने लाभके क्षेत्रोंके नियमोंको जाने और अडिग श्रद्धाके सा पालन करे। यह सारा विधान सार्वत्रिक है, इसके कोई द्वेष्य है न प्रिय। शासक और शासित, ज्ञा मूर्ख, धनी और गरीब, आचार्य और शिष्य, पूँजीप श्रमजीवी, साम्राज्यशाली राष्ट्र और पराधीन ज जाति और कृष्ण जाति, स्त्री और पुरुष, कीट और सबके साथ इस विधानका एक-सा व्यवहार है। कानून किसीका ख्याल नहीं करता। कोई भी व्यक्तियोंका समूह, जो इस विधानका उल्लङ्घन करता

तिक जीवनको संपूर्ण जीवन मानकर उसीके तदाकार
ा है, शरीरको ही अपना आत्मा समझ लेता और अपने
;, नैतिक और आध्यात्मिक तत्त्वको, अपने उस
ाको भुला देता है जो इस भौतिक ढाँचेका नियन्ता है,
क तरहसे जब चाहे इस शरीरको धारण कर लेता और
ाहे छोड़ देता है ।

आन्तर ऐक्यका दर्शन और उसका महत्त्व

रंतु जो मनुष्य इस भौतिक ढाँचेका, इसकी
कताओं और भोगोंका मोह पार कर चुका है, जिसने
सच्चे, आध्यात्मिक और नैतिक स्वरूपको प्राप्त कर लिया
के लिये यह मूल आध्यात्मिक विधान बहुत ही रमणीय
सके साथ उसका एकीभाव हो जाता है । उसका अन्तः-
अन्तर्जगत्का ही अंश है । अतः उसे इस अन्तर्जगत्के
त्मिक और नैतिक क्षेत्रोंके नियम विजातीय नहीं मालूम
इन नियमोंके साथ उसका तादात्म्य होता है । वह इन
विविध रूपोंमें सर्वत्र एकत्व और सामञ्जस्य देख
है । इस परिदर्शनसे सब झगड़े मिट जाते हैं । कारण,
भी परस्पर विरोध, झगड़े या संघर्ष हैं, सब इस परम
अप्रतीतिसे ही उत्पन्न होते हैं ।

५. एकत्वके परिदर्शनका महत्त्व

मारा सच्चा, स्वरूपगत समत्व या भ्रातृभाव इसीमें है ।
ंघटन, संस्थाएँ, परम्पराएँ और रीति रिवाज इस
निसे उत्पन्न होते हैं, उन्हींसे मानव-जगत्का सच्चा
ा हो सकता है । इन सबके अंदर आत्मसत्ताकी प्रतीति
ली चीज है, अन्यथा वे शवोंके ढेर हैं—मानवजातिके
व्यर्थके महाभयानक बोझ हैं ! जीवनके विविध रूपोंमें
त्य असली तत्त्व है । रूपका भी अपना एक मूल्य
हत्त्व है और वह यही है कि अन्तःस्थ आत्मा परिस्थिति-
ावश्यकताके अनुरूप वेष धारण कर लेता है । पर
स्थ आत्मासे वियुक्त होनेपर उस रूपका किसी शवके
कोई मूल्य और आकर्षण नहीं रह जाता । कुटुम्ब,
, राज्य, कोई व्यापारिक संघ या विद्याप्रचारक सभा
अनेकविध संघटन मनुष्योंके परस्पर स्नेह और उन्नति-
के लिये आवश्यक होते ही हैं । पर जब इनमें एकत्वका
नहीं होता, तब परस्पर सहयोग हवा हो जाता है ! जिस

राजतन्त्र, समाजतन्त्र, साम्यतन्त्र, अधिनायकतन्त्र आ
परस्परविरोध, शोषण, परापहरण और युद्धकी ह
उत्पन्न करनेके कारण बनते हैं । जबतक राज्य अथवा अ
प्रकारके संघटनको सार्वत्रिक नीति और अध्यात्मसे द
की बुद्धिका ही हठ चलता रहेगा, तबतक हमारे
बुद्धिका भी कोई अन्त न देख पड़ेगा । सब स
देशोंके साधु-संतों और ऋषि-मुनियोंने एकत्वके प
साक्ष्य भरी है ।

६. देशके साधनोंका समान उपयो

देश या राज्यके सब साधन इस परम सत्यके
एक कार्यपद्धतिके अंदर लाये जा सकते हैं ।
अध्यात्मविद्या और तत्त्वज्ञानमें, उसी प्रकार राज्य
या पार्थिव, आर्थिक उन्नतिमें कोई परस्पर विरोध
सबका अपना-अपना क्षेत्र और अपना-अपना काम है
किसीको अलग कर देने या किसीपर अत्यधिक
मानव-जातिकी प्रगति रुकेगी । आवश्यकता है
सबका सावधानीके साथ समान उपयोग करनेकी ।

७. भारतकी राजनीतिक स्वाधीनता
पश्चिमका अन्ध-अनुकरण

भगवत्कृपासे हमें अपनी राजनीतिक स्वाधीनत
गयी है । सहस्रों वर्षकी गुलामीके पश्चात् हम स्व
हैं । हमारा स्वाधीन होना मानवजातिके भावी
दृष्टिसे बहुत शुभ है । कारण, भारतवर्ष अध्यात्मवि
उद्गमस्थान है । अध्यात्मविद्या इस धरतीकी सहज
और अन्य देशों और सभ्यताओंकी तुलनामें य
विशेषता है । अब भी इस देशके लोगोंके मनोंप
प्रभाव सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है । परंतु तत्त्वज्ञान,
अध्यात्मके इस क्षेत्रमें केवल सर्वसाधारण लोगों
बल्कि सबसे बड़े नेताओंका भी दृष्टिकोण अज्ञातरूप
ढंगका अर्थात् जड पार्थिव हो गया है । राजनी
हमलोग निस्सन्देह स्वतन्त्र हो गये; पर मानसिक द
सबसे अधम दासत्व है, अभीतक यहाँ दलबलके स
है । राजनीतिक परिवर्तनसे राष्ट्रके सब साधनों और
को खुलकर खेलनेका पूरा अवसर मिला है । इ
[illegible]

के पाश्चात्त्य जड सभ्यताका प्रचार हमारे विदेशी
स देशमें अपने स्वार्थके द्वारा नियन्त्रित रूपमें करते
 ऊपर एक बन्धन था; और यद्यपि हमने भी जीवन-
त्य आदर्शको बहुत कुछ ग्रहण कर लिया था, तथापि
 चाहते थे, कर नहीं पाते थे। पर राजनीतिक
 टूटते ही हम देशको सर्वथा पश्चिमके साँचेमें
लिये अधीर हो उठे हैं। अब प्रतिदिन बड़ी-बड़ी
न रही हैं, बड़े-बड़े काम छेड़े जा रहे हैं। जीवन-
 क्षेत्र और विभागमें—राजनीतिमें, जल-स्थल-वायु-
उद्योगधंधोंमें, व्यापार, कृषि, शिक्षा और विज्ञानमें,
ान्ति करना चाहते हैं! राजनीतिक बन्धनमें इतने
तक पड़े रहनेके बाद हम अब यथासंभव शीघ्र अपने
बिना राजाका जनतन्त्र घोषित करना चाहते हैं।
सब प्रयत्न बहुत अच्छे हैं, जनहितकी इच्छासे ही
 अतः प्रशंसा, कृतज्ञता और सहयोगके पात्र हैं।
ा सही निदान करनेमें अभीतक हम चूक रहे हैं।
 आविष्कारों और उनके सार्वत्रिक प्रयोगोंके इस
मारे जीवनपर ही महान् संकट उपस्थित है, यदि हम
 आधुनिक सामानोंसे लैस होकर पहलेसे तैयार न
 सच्ची बात यह है कि इस जगद्व्यापी दुःख,
 और परस्पर अविश्वासका कारण इन सामानोंकी
हीं, बल्कि अत्यधिकता है। कम-से-कम पश्चिममें
 कोई कमी नहीं है, फिर वहाँ शान्ति और मेल
 है? बात यह है कि किसी ऐसी वस्तुका अभाव है,
 चाहिये पर है नहीं। इन सब बातोंको सोचनेका हमें
काश ही नहीं है। पश्चिमसे जो कुछ हमको मिल
ूर्वमें मारे अधीरताके हम उसीके प्रचारमें लग जाते हैं।
रे प्रत्येक कार्यक्षेत्रमें इसी अनुकरणशील उन्मादका
ज रहा है। हम मानते हैं किसी हदतक भौतिक
ताओंपर ध्यान देना जरूरी है। पर सबसे जरूरी
 संकटकालमें नैतिक आचरण और अध्यात्मज्ञान ही
 हमारी सच्ची परम्परागत सम्पत्ति है, जिससे हम आज
ासीन हैं! यही हमारी सभ्यताका सार-तत्त्व है। यही
ा है, जिसे हमें पीड़ित मानव-जातिके पास पहुँचाना
 जीवनका श्वास-प्रश्वास और हृदयकी गति है। क्या
त्त्वको हमने कुछ भी हृदयङ्गम किया है? क्या
ानको उसके योग्य स्थानपर बिठानेका हमने कोई
 किया है?

८. हमारी राजनीतिक तत्त्वनिष्ठा

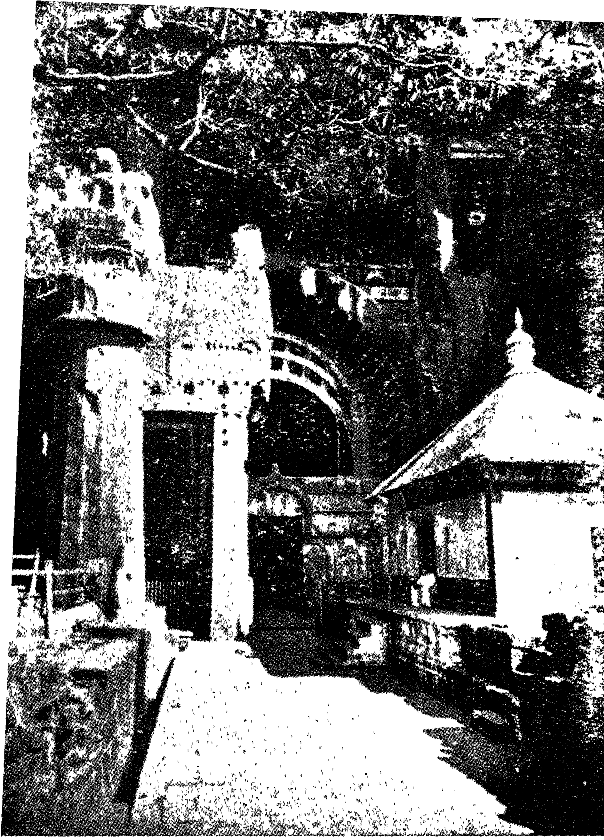
हमारी राजनीतिक तत्त्वनिष्ठामें भी पार्थिव दृष्टिको
दोष घुस आया है। हमारा राज्य 'सेक्युलर' यानी 'धर
राज्य कहाता है। इसीसे पता लगता है, हमारा
क्या है। अब इस शब्दपर हम जरा गौर करें।
है? राज्य शासनका एक यन्त्र अथवा व्यवस्था है, जिस
उद्देश्य है—लोगोंके लिये आवश्यक वस्तुओं,
स्वार्थों और सम्पत्तियोंकी रक्षा करना। राज्यका सेक्यु
शासनकी ऐसी व्यवस्था सूचित करता है, जिसमें ईश्वर
विश्वास, धर्म और परजीवनकी कोई मान्यता नह
इंग्लैंडमें इस प्रकारकी राज्यपद्धतिने सब धर्मोंके
रुख ग्रहण किया था। ऐसे राज्यमें नैतिकताक
धर्म नहीं होता और राज्यके द्वारा चलाये जानेवाले वि
धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। 'सेक्युलर' शब्दकी ऐ
पार्श्वभूमिसे धर्मके विरोधकी गन्ध आती है।
ऐतिहासिक अर्थको छोड़ दें, तो भी 'सेक्युलर'
ऐहिक या सांसारिक होता है; उससे कोई पवित्र,
आध्यात्मिक भाव नहीं उदय होता।

९. धर्मनिरपेक्ष राज्यका भाव

धर्मनिरपेक्ष या सेक्युलर राज्य हम उसी राज्य
(१) जिसके उद्देश्यमें सांसारिक चीजें, भौतिक आव
अन्न-वस्त्र-घर तथा भौतिक भोग-विलासकी साम
बौद्धिक विलासकी चीजें ही आती हैं, (२) जिस
धर्मनिरपेक्ष न्याय ही है, जो अध्यात्मविद्या या धर
विचार नहीं करेगा, चाहे उनके आदेश या वचन
अविरोधी और सर्वथा सत्यमूलक क्यों न हों। अथ
तत्त्वनिष्ठा निरी भौतिक होगी।

१०. अपनी धरतीकी प्रकृति और आध्या परम्पराकी उपेक्षा

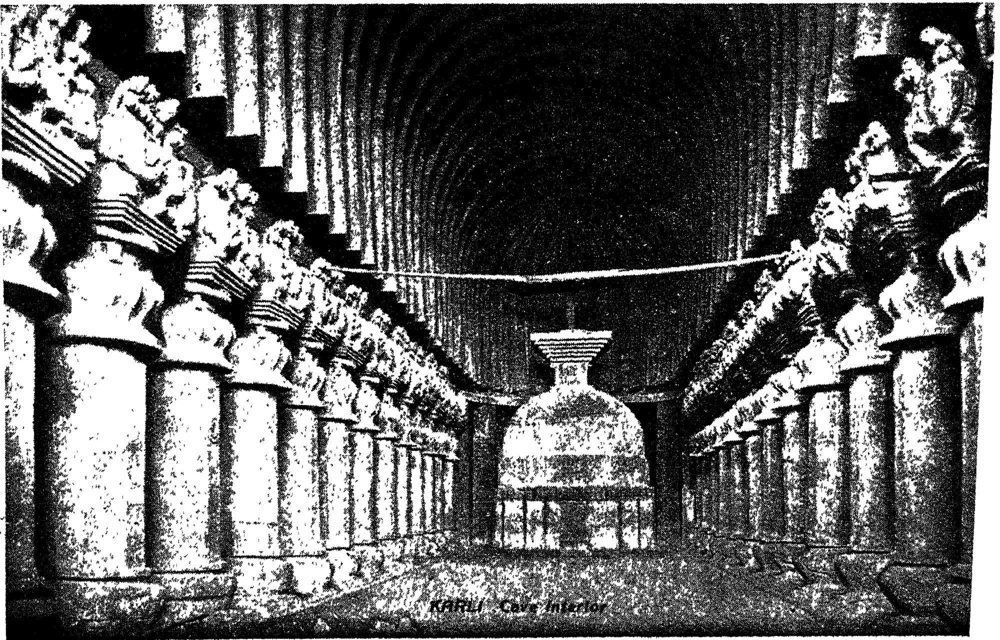
इससे यह जाहिर होता है कि हमलोग अपनी
प्रकृति और आध्यात्मिक परम्पराके सर्वथा विमुख
घरका यह पुराना संस्कार है कि जब किसी घ
बच्चा पैदा होता है तो उसकी जीभपर सोनेकी लेख
शहदकी स्याहीसे 'ॐ' अक्षर लिखा जाता है और
मनुष्य इस जगत्से कूच करता है, तब जोर-जो
नाम'की ही रट लगायी जाती है। जीवनका आ



कार्ली गुफाका बहिर्द्वार



भाजा इन्द्र गुफामें-मूर्ति



भाजाकी चैत्यगुफा

रहते हुए हमलोग जिन नामोंसे पुकारे जाते हैं, हमारे
। रक्खे जाते हैं, वे क्या हैं—कृष्ण, राम, मोहन,
, राधा, सीता, सावित्री आदि । ये सब नाम इसीलिये
हमारी धरतीके स्वभावका हमें सदा स्मरण करायें और
ह विषयोंके मिथ्या मोहमें पड़कर पाशविक आचरणपर
होनेसे बचायें । इसपर भी कोई यह कह सकता है
सब व्यर्थ है; क्योंकि ईश्वर और धर्मके नामपर अभी
ी कितने अमानुष और भयंकर अत्याचार हुए हैं ।
समें हमारा आदर्श, हमारी शुभेच्छा, भगवन्नाम लेने-
ति कारण नहीं है । बहुत-से अन्य अन्तर्बाह्य कारण
इस पवित्रतम वस्तुको भ्रष्ट करनेमें दीर्घकालसे लगे
वस्तु इतनी पवित्र है, इतने महत्त्वकी है और जिसके
भकी इतनी बड़ी क्षमता है, यह यदि विपरीत रूपमें
ो जायगी तो स्वभावतः ही उसका परिणाम भी उतना
कर होगा । पर क्या इससे इस वस्तुको ही हटा देना
देना उचित होगा ? संसारमें कौन संस्था ऐसी है,
ष्टाचार प्रवेश नहीं करता, जिसका दुरुपयोग नहीं होता ?

: सचमुच ही बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिस देशमें
के नामपर मनुष्योंके नाम रक्खे जाते हैं, उस देशका
र्मनिरपेक्ष, सांसारिक, ईश्वरविमुख हो । हमारे लोग
: देखते हैं पूर्वकी ओर, जिधरसे प्रकाश, दिव्यता,
शक्ति और समृद्धि प्राप्त होती है । पर हमारा राज्य
है पश्चिमकी ओर, जहाँसे अन्धकार, अशान्ति, संघर्ष
रिद्रताका आगमन होता है । क्या हमारा अपने देशके
धर्मनिरपेक्ष राज्य कहना भारतवर्षकी आध्यात्मिक
ी प्रतिष्ठाके विरुद्ध नहीं है ?

र्मनिरपेक्ष तत्त्वनिष्ठा और नामकरणका कारण

१) भारतवर्ष बहुत कालतक अंग्रेजोंके राजनीतिक
रहा और अंग्रेजोंकी शिक्षापद्धतिने इसे पाश्चात्त्य
ौर विचार-प्रणालीकी ही दीक्षा देकर अपनी सभ्यता-
ख कर दिया । विदेशी राज्यको स्थिर करनेके लिये
आवश्यकता थी । हमलोगोंने इस तरह जीवनका
आदर्श अपनाकर उसीका ढंग सीख लिया । भारतीय
धर्मनिरपेक्ष तत्त्वनिष्ठा और नामकरणका एक मुख्य
ा यही है । पाश्चात्त्य देशोंमें धर्म और अध्यात्मको
वेच्छिन्न रखनेमें दो कारण हुए । एक, धर्मके नाम-
चार और दूसरा, ईसाई-धर्मकी कुछ बातोंके साथ

किया गया । परंतु वस्तुतः (१) राज्य और (२)
नैतिक आचरण और धर्ममें परस्पर कोई मौलि
नहीं है । धर्मका अपना क्षेत्र और कार्य क्या
विषयका अज्ञान और पादरियोंके अहंगत स्वार्थ—
कारणोंसे पाश्चात्त्य देशोंमें उनके बीच संघर्ष रहा । इ
को मिटानेके लिये जो उपाय किया गया कि ये द
दूसरेसे अलग किये गये, यह न तो एकमात्र समा
न यह समुचित और उपकारक ही था । अतः इसर
जीवनकी समस्या हल न हुई । पाश्चात्त्य जगत्‌में रा
अधःपतन और भ्रष्टाचारका यही कारण हुआ । पा
राजनीतिक प्रभुत्वसे प्रभावित और पाश्चात्त्य शिक्षासे
भारतीय भी इन दोषोंको समझनेमें असमर्थ ही रहे

(२) पाश्चात्त्य देशोंके ही समान भारतव
आध्यात्मिक विषयोंकी ओरसे उदासीनता बढ़ती
है । इससे धार्मिक या आध्यात्मिक विषयोंसे राज्यकी ि
हमें नहीं खटकती । जीवनका यह भौतिक दृष्टिको
रोटीका प्रश्न और ऐसे ही अन्य प्रश्न इसमें सर्वप्रधा
रहते हैं ।

(३) धर्मकी भित्तिपर, विभिन्न सम्प्रदायों और
के बीच होनेवाले संघर्षोंका समाधान भी हमलोग
ढंगसे ही करना चाहते हैं । यह बहुत शोचनीय
कि हमें दूसरोंकी सभ्यताका सच्चा ज्ञान प्रायः नही
इतिहास, जो साधारणतया पढ़ाया जाता है, या तो इस
चुप रहता है अथवा वैयक्तिक स्वार्थों और समयके चल
और विचारोंके वश प्रायः कुछ-का-कुछ समझ
है । कोई ग्रन्थ यदि भारत आदि देशोंकी संस्कृतिके
भावों और विचारोंको प्रकट भी करते हैं तो उन्हें क
कहकर उड़ा दिया जाता है । अपनी संस्कृति और स
भी हमलोग पाश्चात्त्योंकी आँखोंसे देखने लगे हैं !

यूरोपके धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक इ
शासितोंपर शासकोंके अत्याचार, दुर्बलों और ग
बलवानों और अमीरोंके अत्याचार और विभिन्न स्वा
संस्थाओंके परस्पर संघर्ष ही सर्वत्र वर्णित हैं । परस्
और सहानुभूतिके सम्बन्धोंकी कोई चर्चा उसमें नहीं ि
मनुष्योंकी पाशविक वृत्तियोंका ही उसमें प्राधान्य है ।
खून, डाका, कर्तव्यकी अवहेलना, विश्वासघात आदि
वृत्तियोंकी कहानियाँ ही मानव-इतिहासकी विश्वसनीय

ोंके दृष्टान्त अव्यावहारिक कहकर त्याग दिये जाते धार्मिक भित्तिपर होनेवाले अपने यहाँके संघर्षोंको यह पाश्चात्त्य उपाय कि धर्म या अध्यात्मसे राज्यका न्ध ही न रक्खा जाय, कोई वास्तविक उपाय नहीं इसके जो बुरे परिणाम पाश्चात्त्य देशोंमें हुए, वे ही होंगे—यह स्पष्ट है। पाश्चात्त्योंकी नकल करनेसे काम ा।

१) राज्य और (२) नैतिक आचरण, ात्मज्ञान और धर्मका मूल सम्बन्ध

) मानव-प्रकृतिके नैतिक और आध्यात्मिक अङ्ग न और मूलभूत अङ्ग हैं। मनुष्यकी ये ही विशेषताएँ व्यक्ति, कोई समाज, किसी प्रकारका कोई संघटन , जो नैतिक और आध्यात्मिक सत्यपर प्रतिष्ठित नहीं फलता या उन्नति-लाभ नहीं कर सकता।

) किसी संघटनका मूल उद्देश्य ही इन उच्चतर निरूपण और धारण कर उनका पालन कराना ही जंगलीपन या पशुता पशुओंके लिये ही योग्य है। भी यह चीज है, पर वह पशुकोटिकी है। अतः थवा अन्य किसी संस्थाका निर्माण नैतिक और क अनुशासनका ही फल है।

) किसी राज्य अथवा संस्थाकी उन्नति, अमोघ षरहित कार्यकारिता मूलतः इसीपर निर्भर है कि लोग इन आध्यात्मिक और नैतिक नियमोंका पालन ल लें।

) मनुष्यके जीवनकी आवश्यकताओंमें नैतिक ताओंका अन्न-वस्त्रादिकी भौतिक आवश्यकताओंकी हुत अधिक महत्त्व है; क्योंकि मानव-जीवनकी ये ही जें हैं। (आजके इस अन्न-वस्त्रके अभावमें भी यदि देखा जाय तो अन्न-वस्त्रका वास्तविक अभाव प्रधान ीं है, बल्कि नैतिकता और धार्मिकताका अभाव ही ारण है।) भौतिक अभावोंकी पूर्ति भी नैतिक यात्मिक क्षेत्रोंमें उन्नति करनेके लिये ही साधनरूपसे है। अतः राज्यका मुख्य कर्म ही यह हो जाता है नताकी नैतिक और आध्यात्मिक उन्नतिके उपायोंकी रे। अतः उसका धर्मनिरपेक्ष अथवा अध्यात्मनिरपेक्ष ाना अस्वाभाविक, बुद्धिविसंगत और हानिकारक है।

. पाश्चात्त्योंकी तर्कप्रणालीमें हेत्वाभास

सत्ता ही डिग जाती है। वैसा राज्य केवल नाम औ राज्य है, वास्तविक नहीं। नैतिक और अ नियम ही राज्यका एकमात्र आधार हैं। इसे न पशुताके नियमोंका प्रवर्तन है। इससे राज्य राज्य जाता है। उच्चतर नियमानुवर्तनके विकासके साथ विकास होता है और उच्चतर नियमोंके उल्लङ्घनसे होता है। आधुनिक जगत्‌की दृष्टिमें पवित्रत कोई चीज ही नहीं है। अतः यह संसार अराज्यरूप है। क्या भारतवर्ष अपनी अत्युज्ज्वल आध्यात्मिक रहते हुए इससे शिक्षा ग्रहणकर पश्चिमका अन्धानुक छोड़ न देगा? इस अन्धानुकरणसे उसका सर्वनाश और उसके साथ जगत्‌का भी।

१४. राजनीतिक कठिनाइयोंका समा

हमारी धार्मिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक, —सभी कठिनाइयोंको हल करनेका एक ही बुद्धिस है। वह यही है कि इन सबका सङ्गटन सर्वमान्य नैतिक और आध्यात्मिक सत्यके सुदृढ़ आधारपर होना राष्ट्रोंके पारस्परिक युद्ध और राजनीतिक दलबंदियों संघर्ष भौतिक दृष्टिकोणसे ही उद्भूत होते है भौतिकताके कारण ही आज नैतिक और आध्यात्मिक ओर सब लोग पीठ फेरे हुए हैं। हमारे साध्य औ दोनों ही दूषित हो गये हैं। भौतिक भोग-विलास अनन्य ध्येय बन गये हैं। सिनेमा-नर्तकियाँ देवियाँ हैं। आजकी जनता उन्हींकी पूजा-भक्ति करना है। बड़े-बड़े राष्ट्रोंके प्रधान मन्त्री जितना धन अप भरमें नहीं कमा सकते, उतना ये नर्तकियाँ साल, कमा लेती हैं। विवाहकी हाटमें इन्हींको सबसे मूल्य मिलता है। लोग सर्वस्व देकर इन्हें पाने करते हैं। नैतिक और आध्यात्मिक पतनका यह लक्षण है। आधुनिक मानव-सभ्यतामें सर्वत्र सब क्षेत्र विभिन्न प्रकार हैं। बार-बार होनेवाले ये जागतिक भौतिकताके परिणाम हैं, यह समझानेकी कोई आ नहीं। इस सार्वत्रिक पतनसे मानव-जातिके उद्धारका उपाय है—उसका नैतिक और आध्यात्मिक पुन प्रजातन्त्रवाद, समाजवाद, साम्यवाद अथवा जीवनवाद—कोई भी वाद अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ- भी सर्वराष्ट्रिय संघटन इन दुःखों और संघर्षोंसे

न, सहानुभूति आदि दिव्य भाव संचार नहीं करेंगे, ।नसे क्या होनेवाला है ! कोई कानून, कोई संघ , हिंसोद्यत, स्वार्थपरायण, प्रतारक बहुजन-समुदायको ोपर नहीं ला सकता। केवल नैतिक और आध्यात्मिक जनताद्वारा पालन होनेकी स्थिति ही कुछ काम कर हमारी सभी राजनीतिक कठिनाइयाँ आध्यात्मिक और नरुत्थानसे ही हल हो सकती हैं। हमारी साम्प्रदायिक ाँ भी इसीसे हल हो सकती हैं। कारण, सभी की यही समान आधारभूमि है। जो राज्य सर्वसामान्य क प्रचारको प्रोत्साहन करता है, उससे कोई सम्प्रदाय नहीं हो सकता। इसीसे सभी सम्प्रदायोंको पुष्टि और परस्पर विरोधकी कल्पनाएँ नष्ट होती हैं। ज्यके द्वारा इन व्यापक धर्म-सिद्धान्तों, आध्यात्मिक ोक नियमोंका प्रचार हो—यही हमारी सभी राज- ामाजिक, साम्प्रदायिक और आर्थिक कठिनाइयोंको का एकमात्र उपाय है।

१५. महात्मा गांधीका रामराज्य

विश्वासके साथ यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रकी के जन्मदाता महात्मा गांधीका 'रामराज्य' क आधारपर प्रतिष्ठित था। भारतीय संस्कृतिके वे । भारतके ऋषि-महर्षियों और साधु-संतोंने भारतको दी, महात्मा गांधीने उसी परम्पराकी शिक्षा दी। शों और समयोंके संत-महात्माओंके उपदेश समर्थन करते हैं। महात्मा गांधीकी विशेष रही कि वे भारतवर्षकी राजनीतिक स्वाधीनताके । उनकी लोकप्रियता और दिग्दिगन्तमें उनकी यही कारण है। पर उन्होंने अपने आत्मचरितके में यह बताया है कि सत्य और अहिंसा ही वह जिससे मैं अपनी सफलताको मापा करता हूँ। ो निरूपण उन्होंने किया, वह निश्चय ही भारतकी ाध्यात्मिक संस्कृतिके अनुरूप था। पर उनका सत्य क हितवादमूलक नहीं था। उसका मूल था आध्यात्मिक । उनका सत्य था राम और राम था उनका सत्य। में जो न्याय, समत्व आदि दैवी गुण जनतामें थे, उन्हींसे मुग्ध होकर महात्मा गांधी अपनी आदर्श राज्यको रामराज्य कहा करते थे। आधुनिक के कायल लोग भी न्याय, समता आदि गुणोंकी

आध्यात्मिक था। जो कुछ वे करते थे, सब श्रीरामको अर्पण करते थे। रामके लिये वे जीते थे अ अन्तिम शब्द भी 'हे राम ! हे राम !' थे। उनका स आध्यात्मिक था। समाजवाद और निष्क्रिय प्रतिरोध उनसे पहले किसी-न-किसी रूपमें वर्तमान थे। पर महात्मा गांधीने आध्यात्मिकताकी छाप लगा दी, उन्हें बना लिया।

१६. भारतीय संस्कृतिका आध्यात्मिक ह

आध्यात्मिकता भारतीय सभ्यता और संस्कृतिका है। इसने भारतको अमर बना दिया है। भारतीय अन्तर्बाह्य सभी कर्मों और उद्योगोंका यही मार्गदर्शक रहा है। आहार, विहार, वस्त्र-परिधान, स्नान अ आदि सामान्य कर्मोंमें भी भारतीय संस्कृतिने आध्य भर दी है। गीताके १७ वें और १८ वें अध्याय आहार, यज्ञ, दान, त्याग, कर्म आदिके त्रिविध भेद यह समझाया गया है कि किस प्रकार ये सब कर्म भी जीवनके परम लक्ष्यके साधक बनते हैं। झाड़ू देने य माँजनेसे लेकर राजपद सँभालनेतक सब कर्मोंमें आ भाव भर जानेसे उनके भौतिक भेद कोई भेद नह होते और सभी कर्म परम पदका मार्ग सबके लि देते हैं।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः

'जिससे ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जो इस सारे व्याप्त है, स्वकर्मके द्वारा जो मनुष्य उसकी पूजा क वह अपने जीवनकी सिद्धि लाभ करता है। स्वकर्मक चाहे उसमें कोई विशेष बात न हो, दूसरेके उत्तम किये गये कर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। स्वधर्मका पालन क मर जानेमें भी परम कल्याण है, दूसरेका धर्म ग्रहण भय-ही-भय है।'

इस प्रकार आध्यात्मिक समता सुप्रतिष्ठित थी। गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल—सबमें यही आ समत्वदर्शन करनेकी शिक्षा गीता देती है। ऐसी आ दृष्टि जीवनके सब व्यवहारोंमें परिव्याप्त होनेसे एक

अपना मस्तक नवाया है। साधु-संन्यासी या ऋषि-मुनिके
नक राजपदका बागी भला कौन हो सकता है, कौन
नवज्ञा कर सकता है ? आजके भारतवर्षमें भी यह
आध्यात्मिक परम्परा और उसका गौरव किसी-न-
पमें वर्तमान है। प्राचीन भारतमें यह आध्यात्मिक
सर्वथा जीती-जागती थी। तभी तो राजा अश्वपति अपने
म्बन्धमें यह दावा कर सकते थे कि 'मेरे राज्यमें कोई चोर-
है, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है, फिर व्यभिचारिणी
ते होगी ?' लोगोंका धर्ममें, नैतिक आचरणमें और
ानमें पूर्ण विश्वास था। राजा-रंक सभीका कल्याण
ता था। इस सम्बन्धमें रामायण और महाभारत
से कुछ उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा—

) रामको चौदह वर्ष वनवास होनेके प्रसंगमें
उनसे कहा कि आप यह वनवास स्वीकार मत
तब राम उत्तर देते हैं—

मेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
ात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः॥

ारहित सत्य ही राजाका सनातनधर्म है। राज्य
है, सत्यमें ही जगत् प्रतिष्ठित है।'

) तब राजगुरु महर्षि वशिष्ठने प्रतिज्ञा की कि राम
र नहीं लौट आयेंगे और राजसिंहासनपर न बैठेंगे,
हीं इसी कुशासनपर मैं बैठा रहूँगा। इसपर राम
देते हैं—

ीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
यात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥

भी चाहे चन्द्रमाको छोड़ दे, हिमालय हिमको
समुद्र अपनी मर्यादाका भले ही उल्लङ्घन करे, पर
पिताकी प्रतिज्ञा भङ्ग न होने दूँगा।'

) राजा-प्रजाके बीच कैसा सम्बन्ध होता है, इस
ान्तिपर्व (महाभारत) में पितामह भीष्म युधिष्ठिर-
हैं—

यं हि कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिनः।
प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत्॥

ानुवर्ती राजाका यह कर्तव्य है कि अपना प्रिय
र वही करे, जिससे लोकहित हो।'

)—

'राजा बिना युद्धके विजय प्राप्त करे। युद्ध
प्राप्त करना कोई अच्छी चीज नहीं।'

(५)—

धर्मः सनातनस्सत्यं सत्यं ब्रह्म सनातन
वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दम
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासन

'सत्य सनातन धर्म है, सत्य सनातन ब्रह्म है। वेदें
सत्य है, सत्यका रहस्य इन्द्रियों और मनका दमन है
का रहस्य मोक्ष है। यही सबके लिये अनुशासन है।

(६) राम अपना राज्य भरतको सौंपकर ज
चले हैं, तब उन्होंने भरतको राजनीतिका सिद्धान्त
बतलाया है—

'धर्म, अर्थ, काम—त्रिविध पुरुषार्थ हैं; इन्हें प्र
ही चाहिये। पर तीनों एक साथ जब न मिलें, तब
कामको त्यागकर धर्मको ही ग्रहण करना चाहिये।'

प्राचीन भारतकी राजनीतिक तत्त्वनिष्ठाकी य
है। ऐसे ही अन्य सहस्रों दृष्टान्त दिये जा सकते
मध्याह्नके सूर्यके समान यह स्पष्ट है कि भारतीय रा
तत्त्वज्ञान अध्यात्मज्ञान और सदाचरणपर प्रति
महात्मा गांधीकी राजनीति भी अध्यात्म और स
प्रतिष्ठित थी। यही कारण है कि वे जनताके हृदयों
वशमें कर सके। माताके दूधके साथ ही जनता
शिक्षा पायी है। भारतीय जनताके ये ही पूर्वपरम्पर
संस्कार हैं।

भारतकी यह राजनीतिक स्वाधीनता आ
स्वाधीनताके बिना अधूरी है। शरीर स्वाधीन हुआ, प
कैद है। पश्चिममें राजनीतिक स्वाधीनताके पीछे-पीछे
स्वाधीनताकी पुकार मचती है। कारण, यह भौति
ही उनके लिये सब कुछ है। भौतिक शरीरकी उ
भी नहीं चाहते; कारण, यही 'आद्यं धर्मसाधनम्' है।
साधन है, साध्य नहीं। साध्य है आध्यात्मिक स्वा
भारतकी उन्नति आध्यात्मिकताके नापसे ही नापी
आध्यात्मिकताकी ओर हम आगे बढ़ें तो आर्थिक उन्नति
स्वभावतः ही पीछे-पीछे चलेंगी। पाश्चात्त्य जगत् अपने
भौतिक भावोंकी आगमें जल रहा है। पाश्चात्त्य
तत्त्वज्ञानी और राजनीतिक सभी भौतिकताके अन
हैं।

कामके ही विकारमात्र कहकर कामको प्रोत्साहित । इस तरह युद्ध, परापहार, नानाविध अत्याचार के विपरीत कुत्सित प्रयोग इत्यादि बुराइयोंका मण्डन ा है । इन सब बुराइयोंने जगत्को प्रत्यक्ष नरक ा है । अब यह भारतके तत्त्वज्ञानी, वैज्ञानिक नीतिकोंका काम है कि वे इन बुराइयोंको दूर करें । की राजनीतिक स्वाधीनताकी चरितार्थता इसी । भारतका यह आध्यात्मिक सन्देश सारे जगत्के । यह कार्य करनेके योग्य भारतसे बढ़कर और नहीं है ।

नीतिक पराधीनताने भारतवर्षकी आध्यात्मिक महा- को अबतक दबा रक्खा था । स्वाधीन भारत नी आध्यात्मिक निधिके आधारपर सब प्रकारसे उन्नत त्को वास्तविक उन्नतिका मार्ग दिखा सकता है ।

‌१७. भारतीय राज्यका मुख्य कर्तव्य

तीय राजनीतिक नेताओंको यह घोषित कर देना क हमारे राज्यका मुख्य आधार सार्वत्रिक सदाचार यात्म है । भारतीय विधानके मूल उद्देश्यमें , समता, न्याय और भ्रातृभावका आश्वासन दिया गया है । उसमें सदाचार और अध्यात्मकी भावना देनी चाहिये । भारतीय राज्यका नाम भी 'रामराज्य इतना ही अर्थपूर्ण कोई दूसरा नाम होना चाहिये । समाचारपत्र, रेडियो, वैज्ञानिक और दार्शनिक अनुस इन सब साधनोंके सामने आध्यात्मिक उत्थानका लक्ष जाना चाहिये । स्कूल-कालेजोंमें पढ़ाये जानेवाले आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे सुधार लेना होगा । इतिहास, विज्ञान, राजनीति, दर्शन और समाजशास्त्रके द्वारा आ सत्यकी शिक्षा दी जानी चाहिये । जीव, ईश्वर, अथवा पारलौकिक जीवन इत्यादि आध्यात्मिक संस्कार जो पहलेसे जनतामें हैं, उन्हें जीवित ढंगसे और पुष्ट करना होगा ।

यह काम दार्शनिकों, साधु-संतों, वैज्ञानिक राजनीतिकोंके परस्पर पूर्ण सहयोगसे साधित होगा अ हम अपने देशको भौतिकताका ग्रास बननेसे बच और जगत्की भी रक्षा कर सकेंगे । हमें यह आशा है वि कार्यक्षेत्रोंके नेता इस संकटमय घड़ीका ध्यान क अपनी जिम्मेदारी समझकर देशके आध्यात्मिक महत्कार्यमें अग्रसर होंगे ।

आध्यात्मिक समाजवाद

(लेखक—योगी श्रीशुद्धानन्दजी भारती)

का अङ्क शुभ है । वेदोंने चिच्छक्तिके सात लोक —भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् । इन्हीं के प्रतीकस्वरूप सात नदियाँ और सप्त सिन्धु हैं । ह ही प्रचारमें आकर 'हिंदू' बना है । 'हिंदू' शब्दका ह देव-मनुष्य, जो चिच्छक्तिके सातों लोकोंको प्राप्त हिंदुस्थान ऐसे सत्यदर्शी देवमनुष्योंकी पुण्यभूमि पुण्यभूमि भारतवर्ष भी कहते हैं; कारण, यह धर्म- निधि है । धर्मकी शक्ति ही दुःख और दैन्यकी से मनुष्योंको बचाती है । यही इस पृथ्वीपर स्वर्ग मृद्धि और सौन्दर्यका धाम है । जो इस देशमें और जो इस पुण्यभूमिके भक्त हैं, इसे ही अपना हैं, वे भारतीय हैं । उत्तरापथके हों या दक्षिणा- ार्य हों या द्रविड़, ब्राह्मण हों या हरिजन, सभी हैं—चाहे उनका वर्ण या धर्मसम्प्रदाय कुछ भी हो— चिच्छक्तिकी इस एकतामें हमारे देशका भावी गौ हुआ है । इस आधारभूत एकताके अभावमें हमा बार-बार गुलामीके बन्धनोंमें जकड़ जाना पड़ा है ।

भारतवर्षको देव-मनुष्योंका आशीर्वाद प्रा आध्यात्मिक ज्ञानकी अथाह सम्पत्ति उसके पास है उपनिषद्, गीता, रामायण, भागवत, महाभारत, शक्ति, योगसिद्धि और संतोंके भजन—सभी सत्यानुभ अन्तर्ज्ञानकी दुर्लभ निधि हैं—जो आज मानवजाति हैं । वैज्ञानिक संस्कृतिमें भी भारतवर्ष अकिंचन न पूर्वकालमें उसका विज्ञान उसके लिये पर्याप्त था । अ वह बात न हो । सङ्गीत, चित्रकला, मूर्ति-निर्मा वास्तु-शास्त्र, वैद्यक-शास्त्र, अस्त्र-विद्या, फलित ज्योतिष और कोई देश भारतके आगे नहीं बढ़ा है । योग भारतवर्ष आज भी जगद्गुरु है । जगत्के सभी देशों

ाँच सौ वर्ष विदेशियोंके दासत्वमें रहना पड़ा। उसकी
ीण हुई, उसकी सन्तानोंको विवश होकर विदेशी
करने पड़े और अपने ही देशमें विदेशी बनकर
ा। ऐसा क्यों हुआ? कुरुक्षेत्रके युद्धके साथ भारतवर्ष-
नयी दुनियाका सामना करना पड़ा और नये
ंसे होकर जाना पड़ा। भारतवर्षका ऋषिधर्म
एक गलत रूपके सामने दबता गया, उसकी समर-
ण होती गयी। इससे समाज दुर्बल हुआ, समाजके
सहस्रों साम्प्रदायिक टुकड़ोंमें विच्छिन्न हो गये और
अन्तर दिन-दिन अधिकाधिक चौड़ा ही होता
ादेशी आक्रमणोंके सामने समाजका पुराना ढाँचा
। सिकंदर अपनी यूनानी फौजके साथ इस देशमें
ाया। स्वदेशद्रोहियोंने उसे रास्ता दिखाया।
राजा भी इतने कोमलाङ्ग थे कि उसका प्रतिरोध न
। एक पुरु (या पुरुषोत्तम) उससे लड़नेके लिये
तरह आगे बढ़ा, पर उसे हार खानी पड़ी। वह
क्रारीके हाथ कैद हुआ, पीछे छोड़ दिया गया।
ंश उस समय राज्य करता था। उसमें इतना बल
कि विदेशियोंके इस आक्रमणका सामना कर सकता।
र राजनीतिज्ञने यह सब देखा और समझा। एक
क्तिशाली हिंदू-राज्य स्थापित करनेका वह स्वप्न देख
इसका नाम था चाणक्य, जिसका 'अर्थशास्त्र' ग्रन्थ
। इसने चन्द्रगुप्त मौर्यको अपने हाथका यन्त्र
उसमें अपनी शक्ति भर दी। चन्द्रगुप्तने निकम्मे
हराकर यूनानी सेनाके सेनापति सेल्युकसके भी दाँत
और अपनी माता मुराके नामपर मौर्यराजवंशकी
की। भारतवर्षने राष्ट्रोंकी पंक्तिमें अपना गौरवमय
ा किया। यह गौरव प्रियदर्शी राजा अशोकके समय-
शिखरतक पहुँचा। अशोक बौद्ध थे, उन्होंने
कर्मकी प्रचण्ड शक्ति भर दी। बौद्ध भिक्षु
से दूर-दूर देशोंमें जाकर भगवान् बुद्धके नैतिक
ा प्रचार करने लगे। स्तूप और विहार निर्मित
कासे गयातक समस्त देशमें बुद्ध, उनके धर्म और
वन नाम गूँजने लगे। महाराज हर्षतक यह क्रम
ाशोकके पश्चात् फिर विदेशी सेनाएँ भारतवर्षपर
थीं और उन्होंने यहाँके राजनीतिक और सामाजिक
विघटितकर छिन्न-भिन्न कर डाला। बहुत-से नये-

हो गया और सब एक दूसरेके उत्कर्षमें बाधक ब
दूसरेके नाशका उपाय सोचने लगे।

दक्षिण भारतमें चेर, चोल, पाण्ड्य,
राष्ट्रकूट आदिकोंमें राजनीतिक होड़ चली। पर
भारतको विदेशी उतना उजाड़ नहीं सके, जि
उत्तर-भारतको। उत्तरमें जो आध्यात्मिक अग्नि
थी, वह दक्षिणमें स्थिर रूपसे प्रज्वलित थी। शं
रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि समय रहते आ
उन्होंने आत्मज्ञान तथा भक्तिप्रदीपसे देशमें उजाला क
उनमें व्यक्तिशः कुछ सिद्धान्तोंका भेद था, पर इ
सबका एकमत था कि मनुष्यका परम लक्ष्य उस
प्राप्त करना है, जो एकमेवाद्वितीयम् है। उन्होंने
शिक्षा दी कि सब प्राणियोंके अंदर जो विशुद्ध
वही प्राणिमात्रका सत्तत्त्व है, वह दिव्य है और
है। पीछेके आचार्योंने इसी सत्यको दुहराया। बहु
अवश्य ही शाब्दिक वितण्डावादमें पड़ गये औ
निष्प्राण रूढ़ियोंके दास बने रहे। सृष्टि-सामर्थ्य
अन्तर्ज्ञान सुषुप्त होकर रहा। वह कड़ी, जो आत्म
जागतिक जीवनकर्मको जोड़ती है, खो गयी
प्राचीन संस्कृतिमें जो कुछ सामर्थ्यवती वस्तु थी,
पुरुषार्थहीन, निष्प्राण, यान्त्रिक रीतियोंके नीचे दबी
जो किसी राष्ट्रके उन्नतिसाधनमें बिल्कुल बेकार हैं
अंदर जो विश्वासघाती देशद्रोही लोग थे, वे अपने ही
से लड़नेके लिये विदेशियोंको बुला लाये!

इस प्रकार स्वाधीन भारतके अन्तिम नृप पृ
शत्रुने मुसल्मान-सेनाओंके आनेके लिये रास्ता साफ
शस्त्रवेशी कुरानने तीन शताब्दियोंतक अपने जो
राज इस देशमें कायम रक्खा और लाखों हिंदुओं
भ्रष्ट किया। उस राजने अपने रक्तचिह्न आज पा
रख छोड़े हैं! भारतवर्षने अपना स्वराज्य खोया
अपना स्वधर्म खो दिया। राणा प्रताप, शिवाजी
गोविन्दसिंह अपने राष्ट्रको फिरसे स्वाधीन करने
अद्भुत वीरताके साथ उठे; पर स्वधर्म फिर भी दूर

अब एक अनात्म कर्मवादकी लहर देशपर दौ
इस समय वैज्ञानिक संस्कृतिने श्वेत जातियोंको संसारके
शक्ति बना दिया था। इसके राजनीतिक और

ंग्रेजों और फ्रेंचोंकी कूटनीतिक चालोंका सामना कर कभी कोई नाना या टीपू अथवा बाजीराव इस रापहरणके जालको छिन्न करनेके लिये निकल पड़ते; त्याग और वीरत्वपर विश्वासघाती लोग आकर के लिये तैयार हो जाते। भारतवर्षमें इतनी फूट रा राष्ट्र राजनीतिक शत्रुओंका सामना करनेके लिये (कोई प्रयत्न न कर पाता था। इस तरह दो सौ मारा देश गुलामीकी यन्त्रणाएँ भोगता रहा।

ारतका आत्मा सो नहीं सकता। उसकी ज्वालाओं- युग-तेज उत्पन्न किया और अकस्मात् राष्ट्रके नका उदय हुआ। राजा राममोहन राय, दयानन्द रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामलिंगम् आदि हान् संतोंने जन्म लेकर नये युगका मंगलगान नकी वाणीने राष्ट्रको जगाया और जगत्को उस क सत्ताका संदेश सुनाया, जिसका ज्ञान उसे भारतवर्ष ता है। तिलक, श्रीअरविन्द और महात्मा गान्धीने जनीतिक चेतनाको जगाया और उसे स्वभाग्यनिर्णय- ाया। महात्मा गांधी स्वयं एक युग थे। भारतवर्ष- -गरिमाके शिखर, उसकी स्वाधीनताके जन्मदाता एकमात्र राष्ट्रविधाता थे, जिनके सामने सारा जगत् हुआ। सेवा और त्यागसे परिपूर्ण अपने अद्भुत द्वारा भारतवर्षकी प्रतिष्ठा उन्होंने फिरसे स्थापित स्वयं बुद्ध, ईसा और महावीर-जैसे जग-उद्धारक की पंक्तिमें बैठनेके अधिकारी हुए।

त अब एक स्वाधीन देश है, पर दुःख है कि वह हहै; उसके हृदयके दो टुकड़े हो गये हैं! स्वाधीनताकी र सहस्रों-लाखों हिंदू काटे गये। भारतवर्षकी राजनीतिक चरमपन्थियोंने महीनों यहाँ-वहाँ बुरी न्दोलित कर रक्खा था। गांधीजीके बलिदानके पश्चात् क संकट टला नहीं है। राष्ट्रने अभी एकत्वका पाठ ।

के सामने इस समय कितने ही विकट प्रश्न हैं। श्न तो सर्वोपरि है। फिर मजदूरोंका प्रश्न है। गङ्गा री जिस देशमें बहती हैं, उसे विदेशोंसे अन्न मँगाना कितनी शोचनीय अवस्था है। लाखों-करोड़ों मनुष्यों- स्त्र और घर बनानेके सामान देनेके लिये बड़े-बड़े

सुसज्जित और शक्तिशाली बनाना है कि वह उस परिस्थितिका सामना कर सके, जो दिन-दिन अ भयानक होती जा रही है। किसानोंको सँभालना है। सुव्यवस्था बाँधनी है। इन सब बातोंमें भारतीय मन्त्रियोंका ध्यान बँटा हुआ है।

इन सब चीजोंके परे एक बहुत बड़ा काम यह है विभिन्न घटकोंसे यह महान् विशाल राष्ट्र बना है, उन और अखण्डता स्थापित हो। विभक्त भारतमें अ एक भारतीय यूनियन या संघ है; परंतु भार संघ पूरा नहीं बना है। हमारे राष्ट्रिय मेल और ऐक्य कई विच्छेदक और विभेदक शक्तियाँ गुप्तरूपसे अ कर रही हैं। ये ही विच्छेद और विभेदकी आसुरी संसारमें सर्वत्र ही क्रियाशील हैं। विश्वव्यापी तृतीय सामान इनके द्वारा जुटाये जा रहे हैं। गौरैयाएँ रहती, एक साथ उड़ती और सुखी रहती हैं। मधु एक साथ शहदके छत्तेपर चिमटती और सामाजिक रहस्य गुनगुनाकर मनुष्यको सुनाती हैं। तारका-पुञ्ज साथ व्यूह बाँधे नित्य-नवीन उषःकालकी ओर च पर मनुष्यने अभी अपने भाईके साथ सुख और मे नहीं सीखा। इसका कारण क्या है? कारण राजनीति नहीं, जितना कि मानसिक है।

अन्तःस्थ चेतन एकतामें मनुष्यका मन ही नहीं 'मैं' और 'मेरे' के चक्करमें ही रहता है। उसे उ अन्तःस्थ एकताका अभी पता ही नहीं है, जो सब जीव साथ धारण किये हुए है—जैसे मणिमालाका सूत्र म हृत्पुरुषकी चेतना प्राणियोंकी अनेकतामें सदा उ देखती है। मनुष्य इसे भूला रहता है। वह इस बा जाता है कि वह भी मानव-समष्टिका वैसा ही एक है, जैसे एक अँगुली शरीरका अङ्ग है। मनुष्य अह विभक्त मनमें रहता है और यह मन अपने ए व्यक्ति होनेका संकुचित रूप धारण करता है। यह अहं कभी-कभी अपनेको ईश्वरसे भी बड़ा मान मनुष्योंके शून्यवाद, अज्ञेयवाद और नास्तिवाद कारण है।

जरा सोचो, यह पृथ्वी क्या है? ऊपर आक विशाल वितानको देखो। असंख्य नक्षत्र और

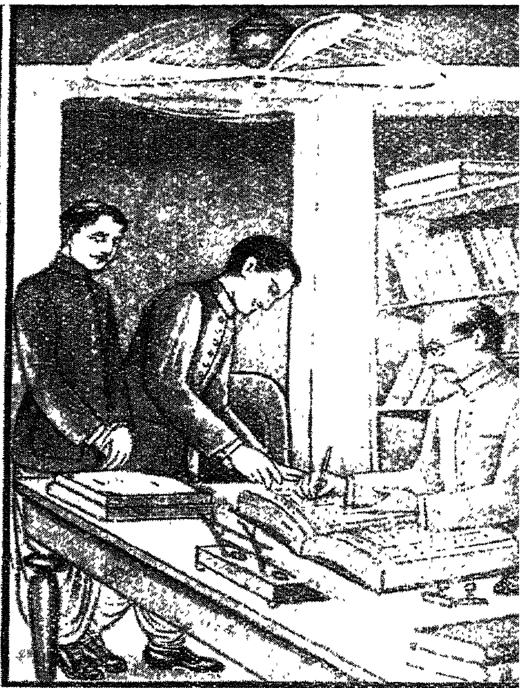
अणुके बराबर है। कोई विलक्षण गुप्त शक्ति है, जो
ती है। उस शक्तिको हम 'ईश्वर' कहते हैं। वह
पक है और वही एक जड धूलिकणसे लेकर प्रज्ञावान्
सब प्राणियोंका, प्रकृतिके द्वारा, विकास-साधन कराता
लता-वनस्पति, कीट, पतंग, पक्षी, पशु और मनुष्य—
कर प्राणियोंका एक ही परिवार हैं। सब एक ही
स लेते, एक ही धरतीपर चलते और विश्वके वितान
द्युलोकसे प्राप्त वस्तुएँ ग्रहण करते हैं। ईश्वरने
एक ही आकाश, एक ही पृथ्वी, एक ही आत्मा
के एक होनेकी ही भावना दी। ईश्वरने मनुष्यको
दिया, जिससे वह दूसरोंके साथ मेलसे रहे, दूसरों-
ही दूसरे रूप, दूसरे अहं समझे। पर अहंग्रस्त
पने हृदयमें छिपी हुई इन स्वाभाविक सद्वृत्तियोंका
ों करता और 'मैं' और 'मेरे'के सिवा और कोई
नहीं जानता। यही उस विभेदका मूल है, जिसका
। द्वेषसे ही अशान्ति पैदा होती है। मनुष्य
लिये खतरनाक हो गया है; क्योंकि वह अपने
हीं जानता, अपने ही परिवर्तित अन्य रूपको नहीं
मनुष्यको अपना पृथक्कृत व्यक्तित्व विश्वचैतन्यमें
ा होगा। यह जगत्की एकताके लिये उतना ही
है, जितना कि राष्ट्रकी एकताके लिये राज्योंका
रकारके शासनमें मिलाया जाना।

द्धारक महापुरुष आये और चले गये; समाज-
ौर क्रियाहीन तत्त्वज्ञानी बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख गये।
राजतन्त्रसे लेकर अराजकतन्त्रतक और सैनिक
वादसे लेकर जनतन्त्रात्मक समाजवादतक बड़े-बड़े
जा चुके। पर संसारका रवैया जो कल था, सो आज है
बना रहेगा, जबतक मनुष्य यह नहीं जानेगा कि वह
है और उसे क्या होना चाहिये। ऋषिका वचन है,
नीचे मत गिरने दो, अपने आत्माको अपने ही
द्वारा ऊपर उठाओ; आत्मा आनन्दामृतसे सिक्त
जानो और वही बनो।' पर स्वार्थ-सुखकी स्वार्थी
प्याससे ही मनुष्यका मन जब आकुल है, तब
इस गभीर वाणीको कौन सुनता है?

असंख्यशीर्ष स्वार्थपरता और स्वार्थानुसन्धान जीवनके
कौटुम्बिक, नागरिक, प्रान्तिक, राष्ट्रिक, सर्वराष्ट्रिक,
कुसंस्कार, मनुष्यकी इसी प्रचण्ड स्वार्थपरताकी सन्ता
धर्मसम्प्रदाय दूसरे धर्मसम्प्रदायसे द्वेष करता है। क्यों
कि प्रत्येक धर्म यह समझता है कि ईश्वर, स्वर्ग औ
उसीका ठेका है। एक प्रान्त दूसरे प्रान्तसे द्वेष
क्यों? इसीलिये कि कोई प्रान्त अन्य प्रान्तके
सौन्दर्यको देखना नहीं चाहता, केवल उसके साधनों
कर लेना चाहता है। एक भाषा दूसरी भाषाका
करती है; क्योंकि उसके गुणोंको स्वीकार करनेमें
हेठी समझती है।

यदि हम इन बातोंको भारतवर्षपर घटाकर
अच्छी तरह हमारी समझमें आ जायगा कि हम
क्यों हैं और हमें क्या होना चाहिये। गांधीजी
बलने भारतकी जनताको जगाया और स्वाधीनता
विभूषित किया। पर यह स्वाधीनता, जो इतनी
प्राप्त हुई, विरोधी शक्तियोंके द्वारा भीतरसे और ब
झटका दे-देकर कमजोर की जा रही है। विधा
विविधतासे परिपूर्ण इस विशाल राष्ट्रके केवल सांसारि
साधक प्रस्ताव पास किये हैं। रूसके 'सोशल कंट्रा
राज्यक्रान्ति और अमेरिकाकी स्वाधीनताके मूल अधि
ही इसने बहुत कुछ अनुसरण किया है।
आध्यात्मिक सत्त्वको इस नवीन विधानमें कोई स
मिला। इसीलिये वर्तमान सरकारसे यह आशा न
देशके आध्यात्मिक उत्थानके लिये वह कोई वि
कर सकेगी। पर सामाजिक जीवनके लिये इसकी ब
आवश्यकता है। राष्ट्रकी सरल उन्नतिमें सभी दले
गत कुसंस्कार बाधक होते हैं। आध्यात्मिक चेतनासे
कुसंस्कारोंको हटाया जा सकता है। सामाजिक जीवन
और सुसंगति तभी होती है, जब हृदय मिलकर ए
यह हृत्तत्त्वके उद्घाटन और आत्मचैतन्यकी अनु
हो सकता है। राष्ट्रके जीवनका मानव-समष्टिमें
करनेवाले भगवान्के साथ योग होना चाहिये। मनुष्य
अंदर जो भगवत्-तत्त्व है, उसे पहचाने। हर किसी
सबके लिये हो और सबका हर किसीके लिये
नामान्तर है 'आध्यात्मिक समाजवाद अर्थात् आत्म
अंदर मानवजातिका समष्टि-जीवन। यही परम क
जीवन है।









साहूकारी–ईमानदारी

चोरबाजारी–रिश्वतखोरी

मेली स्वर्णमुद्राओंपर भी राँका धूल रहा है डाल
किन्तु आजके व्यवसायी लिख झूठ बहीमें रचते जाल ।

पुण्यदानसे नरकके प्राणियोंकी मुक्ति



पुण्यात्माने पापी जनको करके अपना पुण्य प्रदान ।
भेज दिया उत्तम लोकोंमें किया नरक भी स्वर्ग-समान ॥

न्तःस्थ आत्माको ध्यानमें रखकर सोचे और कर्म करे । उत्पन्न करनेवाली इस चेतनाके पोषणके लिये साधना है । यह साधना ऐसी हो कि उससे हमारे जीवनके और हार्दिक अङ्ग परिपुष्ट हों । इसके कुछ साधन जाते हैं—

सूर्योदय और सूर्यास्तके पूर्व समूचे राष्ट्रको व्यक्तिशः ङ्घशः सर्वथा मौन होकर ईश्वरका ध्यान करना और मन-ही-मन ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—

'प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले हे परमात्मा ! परस्पर-स्नेह, वह सदिच्छा और वे साधन दो, जिनसे वैसे ही एक हों, जैसे सूर्यकिरणें एक होती हैं और मान हितसाधन करें—जैसे वायु और मेघ करते हैं ।'

हमारे साधु-संतों और ऋषि-मुनियोंके जो ईश्वर-ग्रन्थ हैं, उनसे संग्रह करके सबके लिये समान एक निबन्ध-ग्रन्थ निर्माण किया जाय । वेद, उपनिषद्, भागवत, महाभारत, रामायण आदि सद्ग्रन्थ हमारी निधियाँ हैं ।

भारतवर्षके प्रत्येक गली-कूचेमें भजन और प्रार्थनाका न नियत होना चाहिये । भजन सबके लिये समान का अङ्ग होना चाहिये—प्रत्येक भारतवासी अवश्य नकर भजन करे । बहुत लोगोंके मिलकर भजन-आदि करनेका प्रभाव समाजपर अच्छा पड़ता है । ऐसी शक्ति है, जो सबके हृदयोंको मिला देती है । ऐसी प्रार्थनाएँ कराते थे । यह क्रम आगे प्रत्येक नगर और गाँवमें चलाना चाहिये । सब धर्म एक सम्मेलनमें एकत्र होकर धर्मकी पुनः स्थापना लिये कोई एक मार्ग ढूँढ़ निकालना चाहिये । सर्व एक ऐसा धर्मपीठ बनाना चाहिये, जो सबके लिये स जहाँ सब धर्माचार्य और दार्शनिक एकत्र हो स अपनी-अपनी बात कह सकें । उन्हें एक ऐसा स धार्मिक और नैतिक अनुशासन स्थिर करना चाहि सब लोग मानें । ऐसे साधुओं और संन्यासियोंको तै जो स्थान-स्थानमें घर-घर घूमकर सबके समान धर्मग्र नैतिक-धार्मिक आचारका प्रचार करें । धनका निम्नलिखित कार्योंमें किया जाना चाहिये—

सद्ग्रन्थोंका मुद्रण, प्रकाशन और प्रचार ।

धर्मके प्रचारकोंको तैयार करना और प्रचा जगत्के सब देशोंमें भेजना ।

गीताकी सहस्रों प्रतियाँ छपवाकर अत्यल्प मूल्य वितरण करना ।

प्रतिवर्ष किसी मुख्य स्थानमें सर्वधर्मसम्मेल जाना चाहिये । इससे सब सम्प्रदायों, विचारों और लोग एक जगह आ जायँगे और उनमें मेल बढ़ेगा ।

मन्दिरों और मठोंमें धार्मिक शिक्षाके उच्च स्थापित करने चाहिये ।

इस प्रकार भारत अपने आध्यात्मिक स पुनः प्राप्त होगा । उसीसे वास्तविक एकता स्थापि एकता आरम्भ होती है अंदरसे, विशुद्ध अन्तरात्मासे

हिंदुओंकी वर्तमान दशा

भूलि गये ज्ञान ध्यान वेद विज्ञता महान भूलि गये पूजा औ क्रियाएँ सब जापकी[1] ।
बल्लम और भाला देखे धड़का बढ़ावै चित्त धीरता भगावै धुनि घोड़नके टापकी[2] ॥
क्षमता औ दृढ़ता निज शब्दहूकी भूलिगे ऊपर ते सींचि रहे देखो बेलि पापकी[3] ।
गौरव औ मान बल वीरता बड़ाई प्रेम भूलि गये आन-बान आपुने प्रतापकी ॥

—प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'

---

१. ब्राह्मण, २. क्षत्रिय, ३. वैश्य ।

हिंदू-संस्कृति, उसकी अजेयता और आधारशिला

(लेखक—पं० श्रीमुरलीधरजी शर्मा, बी०ए०, बी०एल्०, काव्यतीर्थ)

दि मनुष्यके पास संसारकी प्रत्येक वस्तु है, पर आध्यात्मिकता नहीं है तो क्या लाभ ? × × × × वे (हि
कि इस भौतिक सृष्टिके मूलमें वह सत्य और दिव्य आत्मतत्त्व निहित है, जिसे कोई पाप कलुषित न
कोई दुराचार भ्रष्ट नहीं कर सकता और कोई दुर्वासना गंदा नहीं कर सकती; जिसे अग्नि जला नहीं सक
नहीं कर सकता; जिसे गर्मी सुखा नहीं सकती और मृत्यु मार नहीं सकती। उनकी दृष्टिमें मनुष्य
ते—आत्मा उतना ही सत्य है जितना कि एक पाश्चात्त्य व्यक्तिकी इन्द्रियोंके लिये कोई भौतिक पदार्
मेंं वह शक्ति निहित है, जिसने उनको शताब्दियोंके उत्पीड़न और वैदेशिक आक्रमण या अत्याचारके बीच अजे
भी राष्ट्र जीवित है और उस राष्ट्रमें भयङ्कर-से-भयङ्कर विपत्तिके दिनोंमें भी आध्यात्मिक महापुरुष कभी उत्प
हैं। सैकड़ों वर्षोंतक लहरों-पर-लहरें प्रत्येक वस्तुको तोड़ती-फोड़ती हुई देशको आप्लावित करती रही हैं;
और 'अल्लाहो अकबर'के गगनभेदी नारे लगे हैं; किंतु वे बाढ़ें चली गयीं और राष्ट्रिय
न कर सकीं। हजार वर्षोंके असंख्य कष्ट और सङ्घर्षोंमें यह हिंदूजाति मर क्यों न गयी ? यदि
चार इतने अधिक खराब हैं तो क्योंकर हमलोग अबतक पृथ्वीपरसे मिट न गये ? क्या भिन्न-भिन्न
ने हमें कुचल डालनेमें किसी बातकी कमी रक्खी ? तब क्यों न हिंदू बहुत-से अन्य देशोंकी भाँति समूल
रतीय राष्ट्र मर नहीं सकता। अमर है वह और उस वक्ततक अमर रहेगा जबतक कि यह विचारध
पमें रहेगी, जबतक कि उसके लोग आध्यात्मिकताको नहीं छोड़ेंगे।''*—स्वामी विवेकानन्द

कृति' शब्द संस्कृतभाषामें 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' क्तिन्' प्रत्यय लगानेपर निष्पन्न होता है। इसका है संस्कार—निखरना या निखारना। राष्ट्रोंकी का अध्ययन करनेसे उनमें दो धाराएँ मिलती विचारधारा (Theory) और दूसरी आचारधारा ice)। पहली धाराको हम संस्कृतिका आधार, द या आन्तरिक रूप कहते हैं और दूसरीको चार, कार्यवाद या बाह्य रूप। एकके बिना दूसरी र दोषपूर्ण रहती है। आचारधाराके बिना कोरी ा दुरूह कल्पनामात्र—अस्पष्ट स्वप्नरूप है, जिसके के विषयमें भी वाद-विवाद हो जाया करता है। चारधाराके निरी आचारसृष्टि निर्जीव रूढिवाद है, राष्ट्रके जीवनमें घुल-मिलकर समा जानेकी शक्ति ा। उन्नत और सुरुचिसम्पन्न राष्ट्रके जीवनमें संस्कृति-दोनों धाराएँ ओतप्रोत रहती हैं। उनका समन्वय जनक और जीवनदायक है। उनका वियोग राष्ट्रके तक है और जातियोंके पारस्परिक सङ्घर्षमें हास्यका ता है। इनमें भी आद्य धारा प्राणरूप और द्वितीया

मनोवृत्तियोंकी परिचायिका होती हैं, उसी भाँति काव्य गान, चित्रकला, स्थापत्यकला आदि राष्ट्रिय संस्कृतिके तत्कालीन राष्ट्रकी विचारधाराके स्थूल प्रतीक होते हैं। निखारनेवाला—मानवसे महामानव या देव बनाने उसका सिद्धान्तवाद होता है। काव्य, गीति आदि कलाएँ उस संस्कृत और सुरुचिसम्पन्न राष्ट्रके कार्यवाद हैं। यद्यपि हम दोनोंको ही संस्कृतिके नामसे क तथापि उनमें प्राणस्थानीय मूलभूत विचारधारा ही मु दूसरी धारा उसकी छाया है। जिस प्रकार हमलोग सृष्टिके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर उस सृष्टिकर्ताको और सौन्दर्यमयी प्रतिमाको भूल बैठते हैं, ठीक उसी त ललित कलाओंके लालित्यपर दिङ्मूढ हो उनके उद्ग और उसके असीम वैभवको भुला देते हैं। प्रत्येक सं आन्तरिक विचारधारा ही उसकी आधारशिला है। उसकी चिरस्थायिता और क्षणभङ्गुरता निर्भर कर नीचेकी पङ्क्तियोंमें हम भी जरा अपनी सनातन हिंदू-स की आधारशिला—उसकी प्राणदायिनी विचारधार जिसने अनादिकालसे इस राष्ट्रको जीवित और महत्

संसारमें ऐसा कोई देश है, जिसमें सभ्यताके
ंप्रथम उदय हुआ, जिसमें ज्ञानमहोदधिकी उत्ताल
ादिकालसे सुदूर कोनोंको भी आप्लावित करती रही
सदासे धर्म, त्याग और वैराग्यकी अविरल-
ाराओंने लोगोंको मनसा, वचसा, कायेन पावन किया
कर्म, ज्ञान और भक्तिकी परम पवित्र त्रिवेणी
ेक कालसे दुःखदावानलदग्ध प्राणियोंके सन्तप्त हृदयों-
ा-सुधा पिलाती रही है, जिसको युग-युगमें संख्यातीत
पुरुष और अवतारोंको प्रकट करनेका गौरव प्राप्त
आध्यात्मिकता-लता खूब घनी फूली-फली है, तो वह
भारतवर्ष है। यदि समस्त विश्वमें कहीं ऐसी कोई
जिसने भूभागपर सर्वप्रथम मानव-सभ्यता और
ो जन्म दिया, जिसने जीवनकी अत्यन्त उलझी हुई
ग्रन्थियोंको त्याग-स्नेहपूर्ण आलोकशाली ज्ञानप्रदीपके
पष्ट रीतिसे सुलझाकर मनुष्य-जातिका परम कल्याण
ासने गम्भीर विचारपूर्ण 'दर्शनों' की प्रौढ रचनाके
ानसागरको गागरमें भर दिया, जिसने विश्वको
वेद्या और चौसठ कलाओंके आलोकसे चकाचौंध
या; जिसको जीव, ईश्वर और जगत्-सम्बन्धी
दोंके प्रवर्तक होनेका अनन्यसाधारण सौभाग्य प्राप्त
ो दुःख सहना सिखाया गया है, दुःख देना नहीं;
सदासे अन्यधर्मावलम्बियोंके प्रति सहिष्णुताकी
क्खी है और उनकी पीड़ित, असहाय अवस्थामें
ण दी है; जिसमें ईश्वर-दर्शनकारी संतोंका सदा
ा रहा है, जिसकी सभ्यता प्रारम्भसे आजतक चली
और विधर्मी वैदेशिक शासकोंके क्रूर और कपटमय
ो प्रहारोंको एक हजार वर्षतक ढकेलती हुई
ही है, जो आत्माकी अमरताके गीत गाती हुई
कर अपने लक्ष्य—आत्मा—के समान अमर हो
तो वह पुण्यभूमि भारतवर्षकी आर्य हिंदू जाति है।

राष्ट्र और संस्कृतिने एक हजार वर्षकी अग्नि-
ा अपनी योग्यता और अजेयताको सिद्ध कर दिया
मानोंके अमानुषिक अत्याचारोंको सदियोंतक सहकर,
कोंद्वारा दिये गये भय, वैभव और जीवनसत्ताकी
कर हिंदू-जातिने अपनी संस्कृतिकी रक्षा की;
वह उन्हें अपने प्राणोंसे भी प्रियतर थी।

इतना अधिक कि उसके समक्ष सम्पूर्ण ऐहिक सुख
तिनकेके समान थी। मुसलमानलोग शक, हूण, यव
अन्य आक्रमणकर्ताओंकी भाँति केवल लूट-खस
राज्य करने नहीं आये थे। उनके पास अपना नि
और संस्कृति थी, जिनका प्रचार करना उनके
चरम लक्ष्य था। हिंदू-संस्कृतिपर उनके अभूत
और घातक प्रहार हुए, पर उसकी परम दृढ़ जड़को
काटते मुसलमानोंकी तलवार भोंटी होकर जीर्ण-शी
छिन्न-भिन्न हो गयी। संस्कृतिकी इस घायल दशामें ह
एक दूसरा विदेशी शासन—अंग्रेजी राज्य—आ लद
और भी विचित्र था। उसके पीछे शक्ति, वैभव,
शिष्टाचार, कूटनीति और आधिभौतिक विज्ञानका
था। अंग्रेजोंने भलीभाँति देशकी परिस्थितिका
कर लिया था। वे हिंदू-संस्कृतिसे सशङ्क थे; क्यों
पहले कई दूसरी संस्कृतियोंको अपनेमें विलीन क
थी और उसे कोई न मिटा सका था। देशीय दृष्टिसे
चुका था। पर सांस्कृतिक विचारकोणसे वह अपन
उन गौराङ्ग महाप्रभुओंसे उत्कृष्ट मानता था।
शासकोंको बहुत अखरती थी, पर वे मुसलमानोंकी
नहीं दोहराना चाहते थे। उन्होंने अपने चालाक
ऐसा मायामय षड्यन्त्र रचा कि जिससे हिंदू-स
उसीके अंदरसे आक्रमण होने लगे, हिंदू ही उसके
और विरोधकी भावना रखने लगे। उन्होंने
अंग्रेजी-शिक्षा-पद्धतिका जाल फैलाया और उसमें फँ
को बड़े-बड़े प्रलोभन मिले, जिन्हें देखकर लोगोंक
उस ओर चल पड़ा। शिक्षा क्या थी, सनातन
संस्कृतिके शरीरमें शिथिल-सञ्चारी विषका इंजेक्श
उस मोहमयी मदिराको पीकर युवकोंके दिमाग़ बदर
उन्मत्त हो गये। उस वक्तकी स्थितिका दिग्दर्शन
श्रीविवेकानन्दजीके प्रभावशाली शब्दोंमें ही नीचे क
उचित समझता हूँ—

"वर्तमान (उन्नीसवीं) शताब्दीके प्रारम्भमें
पाश्चात्त्य प्रभाव भारतमें आने लग पड़ा था, जब वि
विजेतालोग हाथमें तलवार ले ऋषियोंकी सन्तान
प्रत्यक्ष दिखलाने आये थे कि वे (ऋषिसन्तान) अ
थोथे स्वप्न देखनेवाले लोगोंकी एक जाति हैं, उनका

त्यागके हजारों वर्ष व्यर्थ रहे हैं; तब विश्वविद्यालयों-
ाले नवयुवकोंके बीच यह प्रश्न उठने लगा—'क्या
तकका राष्ट्रिय जीवन असफल रहा है; क्या उनको
णालीके आधारपर पुनः श्रीगणेश करना होगा, अपनी
ुस्तकोंको फाड़ डालना होगा, दर्शनशास्त्रोंको जला
ा, धर्मोपदेशकोंको भगा देना पड़ेगा और मन्दिरोंको
ना होगा ?' क्या पाश्चात्त्य विजेता, जिसने अपने
लवार और बन्दूकके द्वारा प्रदर्शन किया था, नहीं
ा था—'तमाम पुरानी बातें निरा रूढ़िवाद और
है।' पाश्चात्त्य पद्धतिके अनुसार परिचालित नये
शिक्षा-दीक्षा पाये हुए बालकोंमें ये विचार बचपनसे
ो। फिर सन्देहोंके उत्पन्न होनेमें आश्चर्य ही क्या
रूढिवादको दूर डाल सत्यकी खोज करनेके स्थानमें
सौटी यह हो गयी—'(इस विषयमें) पश्चिम क्या
?' ब्राह्मण विदा हों, वेद जला दिये जायँ; क्योंकि
सा ही कहा है।''* ओह ! कितना घोर विषाक्त प्रचार
ाती प्रहार था! अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्त्य संस्कृति-
दुओंको तैयार किया, जिनको संसारमें हिंदुत्व और
संस्कृतिके अतिरिक्त सब बातें पसंद आयीं।
धर्मग्रन्थ और आचार-विचारको तिलाञ्जलि दे उनको
ासकोंके नक्काल बननेमें गौरवका अनुभव होने
नकी मौलिकता समाप्त हुई !

को अपनी दासतामें परमानन्दका अनुभव होने
, विजेताकी विजय पूरी हुई। पतनकी पराकाष्ठा
और तो क्या, अंग्रेजी प्रणालीके अनुसार पढ़ने-
तके विद्वानोंने भी आजतक भारतीय रीति-नीति-
र संस्कृत-साहित्य और हिंदू-संस्कृतिके ग्रन्थ नहीं
ो भी लिखे, उनमें अंग्रेजी, अंग्रेज और अंग्रेजी-
प्रभाव ओतप्रोत है। पश्चिमसे हमें बहुत-सी बातें
; पर जिन बातोंको हम उन्हें सिखा सकते हैं, उनमें
दासता और शिष्यता अङ्गीकारके गौरवका अनुभव
ग्रेजी-शासनकी देन है। वेद, उपनिषद्, स्मृति
मक ग्रन्थोंके बारेमें पाश्चात्त्य विद्वान् और उनके
भारतीयोंने ऐसे-ऐसे काल्पनिक, परस्पर-विरोधी
उपस्थित किया कि जिन्हें पढ़कर नवयुवकोंके
फेर गये और धर्मग्रन्थोंके प्रति श्रद्धाके स्थानमें

बात पढ़ायी जाने लगी कि आर्य भारतमें बाहर
थे, ताकि छात्रोंको भविष्यमें यह अभिमान न
कि पुण्यभूमि आर्यावर्त केवल उन्हींका 'आदि दे
नवशिक्षितोंका यह प्रवाद हो गया कि भारतवर्ष
देश नहीं है, उसमें सब जातियाँ बाहरसे आयीं। इ
'भारतीयोंके कोई इतिहास नहीं हैं', 'धर्म लड़ाईकी
'ईश्वर कोई वस्तु नहीं है', 'पाप-पुण्य कोरी कल्पनाप्र
इत्यादि असद्वाद भारतीयोंको रात-दिन सिखाये-पढ़ा
फल यह हुआ कि ऐसे हिंदुओंको अपने देशीय तथा
वेष, भाषा और भावके प्रति अनास्था और
वस्तुओंके प्रति श्रद्धा हो गयी।

अंग्रेजोंने हिंदुओंके देशको ही नहीं छीना, किंतु कूट
द्वारा हिंदू-जातिको सांस्कृतिक दृष्टिसे नष्ट-भ्रष्ट कर
भगीरथ प्रयत्न किया। आज वह अंग्रेजी राज्य ही
कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, भारतभूमिसे मिट गय
हिंदू-संस्कृति उसके भयङ्कर प्रहारोंको सहकर भी अप
आधारशिलापर स्थित है। क्या यह आश्चर्यकी बात
इतिहासज्ञो! आप समस्त विश्वकी सम्पूर्ण जातियोंके इ
को सृष्टिकी आदिसे पढ़ जाइये और फिर बतल
भारतकी हिंदू-जातिको छोड़ क्या अन्य कोई दूसरी
है, जिसने हजार वर्षोंतक विधर्मी-विदेशी शासकोंके नृश
मायामय हमलोंको सहन कर अपने और अपनी सं
जीवनकी रक्षा की है ? फिर भी यदि कोई हिंदू-सं
सदोष और निकम्मी बताकर बदनाम करे तो 'उन्मत्त
नहीं तो क्या है ?

हिंदू-संस्कृति अमर है, वह मिट नहीं सकती।
उसका मूल अमर है, उसकी आधारशिला अमर है
देहात्मवादी नहीं है, वह अध्यात्मवादी है। उसक
देहाध्यास अज्ञानमूलक होता है। जन्म, शिक्षा-दीक्ष
संस्कार, वातावरण आदि नाना कारणोंसे हिंदू हार्दिक
रखता है—'इस दृश्यमान स्थूल जगत्‌के मूलमें-
अणु-अणुमें एक, अद्वितीय, पूर्ण, अपरिच्छिन्न—
और अनन्त—नित्य, अविनाशी आत्मा है और वही मैं

'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि'

(यजुर्वेद ४०

वह (हिंदू) मानता ही नहीं कि मैं शरीर हूँ।

ा, वायु मुझे सुखा नहीं सकता, मृत्यु मुझे मार नहीं मैं अनित्य साङ्घातिक शरीर नहीं हूँ, बल्कि उसका नित्य-अद्वैत शरीरी हूँ; क्षणभङ्गुर देह नहीं हूँ, सका अविनाशी अधिष्ठाता देही हूँ। मेरा जन्म नहीं मरण नहीं है, मैं एक देहरूपी चोला छोड़ता हूँ और रण कर लेता हूँ। देहके विकार मुझमें नहीं हैं। मैं द्रष्टामात्र हूँ, उससे सर्वथा भिन्न हूँ; वह क्षेत्र है, मैं। देहका ही आगम और अपाय होता है। मैं सदा, एकरस हूँ, सनातन हूँ, आत्मा हूँ और केवल 'सृष्टिमें भेद नहीं है।' 'यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है', त्मा ब्रह्म है।' 'मैं वहीं ब्रह्म हूँ।' 'सब मुझमें हैं' सबमें हूँ'—

ह नानास्ति किञ्चन' (कठ० २। १। ११)
र्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्य० ३। १४। १)
यमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक्य० २)
हं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यक० १। ४। १०)
या ततमिदं सर्वं'........'मत्स्थानि सर्वभूतानि' (गीता ९। ४)

सदा आशापूर्ण आस्तिक होता है, शून्यवादी नहीं। 'अस्ति, अस्ति'—'है, है' ही उसका श्वास 'नास्ति, नास्ति'—'नहीं है, नहीं है'। ये केवल वाक्य नहीं हैं, न कुछ इने-गिने दार्शनिकोंके बुद्धिवाद, न कोरी कल्पनाके ऊँचे उड़ान, न यें विचार या विश्वासमात्र। ये हैं वे वास्तविक जीवन-नका हिंदू महर्षियोंने संख्यातीत वर्षोंकी त्यागपूर्ण द्वारा आविष्कार किया था और जिनका अनादिकाल-जाति अपने व्यावहारिक जीवनमें निरन्तर बड़े योग करती रही है। हिंदुओंको 'कोरी कल्पनाएँ और निरे स्वप्न देखनेवाली जाति' कहकर जो रुद्ध अव्यावहारिकता और अकर्मण्यताका दोषारोप ा है, वह अज्ञानमूलक और द्वेषपूर्ण है। वास्तवमें समान व्यावहारिक जाति धरातलपर है ही नहीं। ततने भी सूक्ष्म विचार खोज निकाले हैं, उन सबको जी जीवनमें व्यावहारिक रूप दिया है। दूसरे देशोंके को यह गौरव प्राप्त नहीं है। वे निरे स्वप्नद्रष्टा हैं। ी विचार और व्यवहारमें भेद किया है, हिंद

को सत्य सिद्ध करनेके लिये असंख्य हिंदुओंने भ छोड़ा है, समृद्ध राज्योंको ठुकराया है। उन्होंने अ सामान्य व्यक्तिके लिये अनिवार्य भोजन, वस्त्र सामग्रीको भी नहीं रक्खा! वृक्षोंके पत्ते खाक नदियोंका जल पीकर उसी तत्त्वकी उपलब्धिके लिये अ झरने बहाये हैं और साधनपथमें ही अपनी हड्डियाँ दे ह आज भी ऐसे व्यक्तियोंका ताँता टूटा नहीं है। 'अ से हिंदूका अभिप्राय आत्मसम्बन्धी कोरी कल्पना, निरे बौद्धिक ग्रहण या शास्त्रीय ज्ञानसे नहीं है, बल्कि स्वात्म है, आत्मसाक्षात्कारसे है। आत्मदर्शनसे कम किसी वह सन्तुष्ट होनेवाला नहीं। कई एक महापुरुष इसी उस अनुपम स्थितिको प्राप्तकर 'जीवन्मुक्त' हो जाते हैं हृदयकी सब गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं, सब संशय जाते हैं, सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, प्रारब्धभिन्न भस्म हो जाते हैं। धर्म, ईश्वर, जीव, जगत्-सम्बन्ध उनके लिये समस्याएँ न रहकर हस्तामलककी भाँति प्र जाती हैं। आत्मदर्शी महात्माका हिंदू-समाजमें साक्षात् समान सम्मान होता है। वह जो कुछ कह देता कल्याणमार्ग है। जिस पथसे वह निकल पड़ता है, धूलि पावन और शिरोधार्य हो जाती है। ऐसे महापुर उदयद्वारा अधर्म और अज्ञानके अन्धकारको दूरकर ज्ञ से संसारका पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं। धर्माधर्मके हिंदूलोग पाश्चात्त्य देशोंकी भाँति 'बहुमत' को कोई मह देते; क्योंकि सत्य या धर्मको 'संख्या' का पक्षपात एक आदमी सत्यकी राहपर हो सकता है और तमाम अनीतिकी राहपर। उनका निश्चित मत है कि आत्मवे ही धर्म-निर्णयके लिये पर्याप्त है, अनात्मज्ञ हजारोंकी भी नहीं—

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तम
(याज्ञवल्क्यस्मृति

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते
(मनुस्मृति १२।

'वैदिकधर्मके ज्ञाता चार आदमी और तीन वि

ाँ ब्राह्मण मिलकर भी 'धर्मसभा' नहीं हो सकते ।'
अद्वितीयता, अमरता, व्यापकता आदि सिद्धान्त
गिने-चुने व्यक्तियोंकी ठेकेदारीके सामान नहीं रहे हैं,
ासे रङ्कतक और ब्राह्मणसे चाण्डालतक फैले हुए हैं ।
ो परमात्मा', 'वही सबमें रम रहा है', 'उसका देहान्त
'उसका चोला छूट गया'—आदि सर्वसाधारणद्वारा
ये जानेवाले वाक्य उसके परिचायक हैं । अपनी
ामें एक ग्रामीण बालके गीतका वह अंश, जिसका
-"मेरे चर्खेका पहिया भी 'सोऽहं' 'सोऽहं' गाता है"
ामी श्रीविवेकानन्दजी आनन्दविभोर और आश्चर्य-
गये थे । आत्मा ही परमात्मा है । उसके सगुण
खनेवाले भक्तों—ईश्वरदर्शनकारी संतोंका—प्रवाह
बल है । उनका व्यवहारदर्शन बड़ा विचित्र और
। उनकी सम्पूर्ण साधनाएँ ईश्वरदर्शनके लिये, ठीक
उसे देखनेके लिये जिस प्रकार हम एक दूसरेको
बल्कि उससे भी और अधिक घनिष्ठ रूपमें अनुभव
ये, उससे बातचीत करनेके लिये, आदेश पानेके
हीं, नहीं, सुख-दुःखमें साथी बनने, घरेलू धंधोंमें भी
नेके लिये उस सर्वलोकमहेश्वरका आह्वान करनेके
हैं । वहाँ कोई 'अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी',
खौ तित स्याममयी है' आदि दर्शन-लालसाभरे
ा है तो कोई पुत्र, मित्र, माता या पिताके भावमें
ककर परमाह्लादका अनुभव कर रहा है; एक अपनी
ात'के वक्त उसके देरीसे पहुँचनेपर उससे रूठ
दूसरा उसे उसकी गलतीके कारण पीट रहा है;
तिलक करवा रहा है तो दूसरेकी रूखी रोटीको
ापमें लेकर दौड़ रहा है; एक माता उसे दधि-
प्रलोभन दे आँगनमें नचा रही है तो दूसरीके
कको वह जंगलमें साथी बन पाठशाला ले जाता है
दि । उन भक्तोंकी जीवनगाथाओंको पढ़-सुनकर
नदियाँ बन जाती हैं । वे महापुरुष वेदोंके 'नेति-
से गाये हुए परम पुरुषको अपने प्रेमपाशमें बाँध
ीवनके स्थूलरूपमें ले आये । अबतक जो जीवन
विषय था, आनन्दभूमि बन गया ।

जरा बतलाइये, हिंदू सपने देखनेवाला कल्पना-
ाणी है या प्रयोगकुशल वैज्ञानिक ? क्या उसने

लोगोंको 'अस्ति, नास्ति'—'है या नहीं है' का
रहा है, वहाँ हिंदूने स्वयं तद्रूप होकर या उसका द
तत्त्वके दर्शन कर लिये । फिर भी पाश्चात्त्य जा
उनकी शिक्षा-दीक्षासे प्रभावित भारतीय लोग
कल्पनापरायण क्यों कहते हैं ? वे लोग अनित्य
भोगोंके चिपटे हुए हैं और उन्हें ही परमार्थ म
उनकी दृष्टिमें उनसे ऊँची कोई वस्तु है ही नहीं
परमात्मा और धर्म आदि शब्दोंके लिये उनके
कोई स्थान नहीं है । उनके अनुसार वे
काल्पनिक पद हैं और उनकी खोजमें लगे रहने
कल्पनाके विमानपर उड़ रहे हैं । लोक-परलोक,
व्यर्थका जाल है; क्योंकि उनको वे समझते नहीं
माननेसे उनका जीवन निःसार सिद्ध होता है । नि
तत्त्वके ज्ञानी और जिज्ञासु अनित्य वस्तुओंमें आस
वाले लोगोंको 'बालक' कहते हैं, जिनको अपने
सिवा दुनियामें कोई तात्त्विक वस्तु दृष्टिगोचर न
उनकी दशाका वर्णन कठोपनिषद्की श्रुति इ
करती है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमाना
दन्द्रम्यमाणाः परियान्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्ध
(कठ० १ ।

'अविद्याके बीच फँसे हुए, अपने आपको विद्व
बुद्धिमान् माननेवाले मूढलोग अंधेके पीछे चलनेवा
की भाँति बुरी तरह भटकते रहते हैं ।' यह प्रा
पाश्चात्त्य दृष्टिकोणका मौलिक भेद है, जिसका समन्वय
सकता । इसीको लेकर कवि किपलिङ्गके शब्द
जाते हैं—

'The East is East and the West is
And never the twain shall

'पूर्व पूर्व ही है और पश्चिम पश्चिम । दोनों
मेल हो नहीं सकता ।'

पाश्चात्त्य संस्कृतिके अनुसार सर्वोच्च व्य
है, जिसके पास दुनियाकी सबसे अधि
हैं । हिंदू दृष्टिकोण सर्वथा विपरीत है । उनकी द
श्रेष्ठ वह है, जिसने नित्यतत्त्वकी उपलब्धिके लिये स
वस्तुओंको मनसा त्याग दिया—

म्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति और परित्याग दोनोंमें त्याग
है ।' जहाँ पाश्चात्त्य विचारधाराकी 'इतिश्री' हो
वहाँ प्राच्य दर्शनका प्रारम्भ होता है । वहाँ भोगी-
माना है, यहाँ त्यागीको । पाश्चात्त्यों और उनके
योंकी दृष्टिमें हिंदू कल्पनाप्रिय प्राणी है; क्योंकि
के दिमागके परेकी बातोंको सोचता और करता
। हिंदुओंके मतानुसार वे लोग 'बालक' हैं, जो अपनी
के कारण नित्य आत्माको छोड़ अनित्य भोगोंको
मानकर अपनाते हैं और उन्हींमें अपने जीवनको
हैं । दोनों दृष्टिकोणोंके लिये कारण स्पष्ट है ।

त्मोपलब्धि और ईश्वरसाक्षात्कारके लिये जो साधन
त्कर्म हैं, वे व्यक्ति और समष्टिकी स्थितिको धारण
कारण 'धर्म' कहलाते हैं । हिंदू महर्षियोंने खाने-
ने-उठनेसे लेकर वर्णाश्रमव्यवस्थातक सम्पूर्ण धर्माधर्म
ाकर्तव्यका विवेचन 'आत्मानुभूति' या 'ईश्वरदर्शन'
से किया है । पाश्चात्त्योंकी तरह 'अधिकार'का हो-
हाँ नहीं है । वहाँ तो केवल 'धर्म' का बोलबाला है।
विश्वास है कि जो धर्मपर स्थित है, उसके अधिकार-
स्वयं 'धर्म' करता है, धर्माधिपति 'ईश्वर' करता
का लेखा दुनियामें है और दुनियासे परे भी है ।
र साधनका अभेद मानकर वह धर्मके प्रति अटूट
र निष्ठा रखता है । पाश्चात्त्योंकी भाँति वह उसे
नियम' नहीं मानता, जिन्हें वे मोमके नाककी तरह
अनुसार इधर-उधर कर बैठते हैं । उसका तो
:—

एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
ाद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

(मनुस्मृति ८ । १५)

र्मकी हत्या करनेपर वह उस हत्या करनेवालेका
र डालता है, धर्मकी रक्षा होनेपर वह रक्षककी भी रक्षा
इसलिये हमें धर्मका नाश नहीं करना चाहिये । नष्ट हुआ
ा नाश न करे ।' सनातन प्रभुका धर्म भी सनातन
का नाश कभी हो नहीं सकता । जब-जब उसके

ह्रास या ग्लानिका और अधर्मकी वृद्धि या अभ्युत्थान
आता है, तब-तब स्वयं मायाधिपति ईश्वर उसकी र
संस्थापनाके लिये अवतार लेता है । उसकी रक्षा
किसी लौकिक जीवपर नहीं है, स्वयं अविनाशी ई
जो उसका प्रभु है—'धर्मस्य प्रभुरच्युतः ।'

धर्म और ईश्वरकी श्रद्धामय और निष्ठायुक्त
ही 'आध्यात्मिकता' कहते हैं । वही हिंदूका जीवन
हिंदू-संस्कृतिकी आधारशिला है । उससे सब कुछ है
बिना कुछ नहीं । 'हिंदू कहता है कि जीवनकी
एक ही हल है, वह है धर्म और ईश्वर । यदि ये (
ईश्वर) सत्य हैं तो जीवन सार्थक है, सच्चा है,
अन्यथा वह केवल निरर्थक भार है। यह है हमारा (
का) विचार' (स्वामी विवेकानन्द) । समाजके
वर्गका आदमी—चाहे वह विद्वान् हो या मूर्ख,
या व्यापारी, कृषक हो या कारीगर, कवि हो या दार्श
इस अमर भावनाको किसी-न-किसी रूप या अंशमे
साथ लिये रहता है । इस विचारधाराको प्रारम्भमे
साहित्यने जन्म दिया; बादमें आर्ष धर्मग्रन्थोंने उसे
किया । फिर युगपरिवर्तनके साथ पौराणिक साहि
महाभारत आदि ग्रन्थोंने तदनुरूप कथा-रचन
दार्शनिक वादके मिश्रित आधारपर उसे सुरक्षित
मध्ययुगमें भगवद्भक्तोंकी अनन्त परम्पराने उसे
दे सर्वसाधारणतक पहुँचाया । हमारे जमानेके रा
आन्दोलनके पीछे भी पिछले दिनों उसी आध्याति
दबी आवाज़ थी । हिंदू-संस्कृति अमर आधार
आध्यात्मिकता—पर स्थित रही है, इसीलिये सब
रहते भी सदा रही है और यदि भविष्यमें आधारशिल
रहेगी तो सदाके लिये वह अमर रहेगी । पूर्वजोंकी
निधि आध्यात्मिकताका उपार्जन और संरक्षण प्रत्येक
पवित्र कर्तव्य है । उसीसे आत्मकल्याण और वि
होगी और उसीसे भारतभूमिका गौरव फिर पूर्ववत्
ॐ शान्तिः ।

हिंदके गुण

आर्य हिंदू-धर्म

(लेखक—बाबू श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला)

ीय आर्य हिंदू-संस्कृतिका रक्षक 'धर्म' ही हो सकता तनधर्म ही उसका प्राण है। धर्मके बिना संस्कृति-र्थ नहीं, कोई गौरव तथा मूल्य भी नहीं। वर्तमान ज्ञानवश बहुत-से भाई धर्मका नाम लेनेमें भी कुछ लज्जाका अनुभव करते हैं (वास्तवमें यह बड़ी त है)। इसीलिये वे धर्मको भी संस्कृति, सभ्यता के नामसे ही सम्बोधन करते हैं। वे भाई सनातन या उससे प्रकट हुई शाखाओंके माननेवाले बौद्ध, नातनी आदि अपने धर्मबन्धुओंसे भी परस्परके संस्कृतिको ही आगे कर कहते हैं कि 'आपकी-स्कृति मिली हुई है।' किंतु केवल संस्कृति-, वेष और सामाजिक आचार-व्यवहारका सूचक रतके हिंदुओंमें ही भिन्न-भिन्न दिखायी पड़ते हैं -समयपर बदलते रहते हैं। प्रान्तीय भाषाओंका त है, परंतु तब भी बोल-चालकी भाषामें कई वेशेष अन्तर पड़ गया है। पोशाक भी धोती या रान्त उत्तर, दक्षिण या पूर्वी भारतकी, देश-कालकी के कारण समान नहीं रह गयी है; फिर भी धार्मिकता-ावनाके कारण हम काश्मीरी, नैपाली तथा सिन्धी, मदरासी हिंदूको अपना भाई समझते हैं। यदि भाषा क आदिसे ही एक संस्कृति या सभ्यता समझी जाती, ड़ोसी बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त, काबुल आदिसे भी होता। उनके साथ भी एक हजार वर्ष पहले वैसी ही क्योंकि वे भी हिंदू थे; किंतु आज तो वे अपनी मसे भिन्न समझते हैं। दूसरी ओर चीन, जापान, ाम आदिके बौद्ध भाई दूर रहनेपर भी अपनी ारतसे मिली-जुली समझते हैं।

ह मूलमें धर्म ही कारण है। यों तो वेष, भाषा तथा , शिल्प आदिका भी बहुत महत्त्व है; क्योंकि अमुक मनुष्य हिंदू या मुसल्मान वा अमुक देशका ा जाता है। उनमें भी पोशाकसे पण्डित, पादरी, ाधु या सैनिक आदिको पहचाना जा सकता है। विशेष प्रकारकी बनावट होनेसे मन्दिर, मस्जिद, ी [illegible]

पड़ती है। इन सभी देशोंमें आर्यधर्मी साधु-संन्य पीले रंगकी पोशाक भी प्रायः एक समान पायी किंतु शिक्षित कहे जानेवाले लोगोंमें अब वर्तमान यूरोपियन पोशाकका प्रचार भी सभी देशोंमें बढ़ यूरोपियन पोशाक महँगी पड़ती है और विशेष खर्ची से सादे जीवनके अनुकूल भी नहीं है। तब भी उ दो-तीन वस्तुएँ धूप तथा सर्दीसे रक्षा देनेवाली दिख उनको धारण किया जा सकता है; परंतु व्यर्थकी नकल करके धारण करना तो हानिकर ही है। अस्तु समान भाषा या लिपि या पोशाक धर्मके आधा एक संस्कृति नहीं बना सकती।

ईरानी (आर्यन्) जिनकी पारसी भाषा संस्कृत भरपूर है, अपनेको आर्य भी मानते हैं। यूरोप, अ लोग भी अपनेको आर्यन् मानते हैं। उनकी मूल ग्रीक आदि भाषाओंका निकास संस्कृत भाषासे ही है। यूरोपकी तो लिपि भी अन्य आर्य लिपियोंकी भ में स्वस्तिकसे ही निकली मानी जाती है; परंतु भिन्नताके कारण यूरोप तथा ईरान, काबुल आदि सभी अपनेको अलग मानते हैं। अतएव संस्कृतिकी के लिये मूलमें धर्म ही प्रधान है।

धर्मकी रक्षासे ही संस्कृति भी टिक सकती है; श्रेय हो सकता है तथा व्यक्तियोंकी आत्मिक उन्नति

है। खेद है कि इस समय धार्मिक शिक्षणके अभाव शिक्षित कहे जानेवाले अधिकांश लोगोंने धर्मके अर्थको विचित्र मान लिया है। वे देशोद्धार या सुधारके उलटे मार्गमें जा रहे हैं। कुछ वर्ष पहलेतक सनात आर्यसमाज तथा अन्य जातीय संस्थाएँ धार्मिक उन्नति कुछ सामाजिक रूढ़ियोंमें सुधार आदिकी चर्चा करत थीं; परंतु आज समान अधिकारके नामपर राग-द्वेष वाली, धर्मविरोधी उद्दण्डताके कार्य करनेवाली अनेकों दिखायी पड़ती हैं। आश्चर्य और खेद तो यह है कि गांधीके सत्य, अहिंसा, त्याग और ईश्वरभक्तिके उ भी राष्ट्रोन्नतिके नामपर बहुत-से लोगोंने ताकपर र है [illegible]

ा और पतित स्त्रियाँ समाजसुधारके नामपर सार्वजनिक
। नेतृत्व करती दिखायी पड़ती हैं। इसी प्रकार प्राचीन
, महात्मा तथा वीर पुरुषोंके स्थानपर चरित्रहीन
तिक लोगोंका समाजमें प्रभाव बढ़ रहा है। विद्या-
[वक और युवतियोंको एक साथ शिक्षा दी जाने
जिसका कुपरिणाम दृष्टिगोचर होने लगा है। उचित
र्मिक और नैतिक शिक्षाके अभावमें विद्यार्थी शारीरिक
नसिक दोनों प्रकारसे अनेक रोगोंमें फँस जाते
ाजिक एकताके स्थानपर अनेकता बढ़ रही है।
कारके नामपर अशान्ति और विरोधकी आग यहाँतक
है कि अनेक वर्गवादोंके उपरान्त स्त्री और पुरुष-
मपर भी विरोध चल पड़ा है। यदि स्थितिको नहीं
ाया तो भारतीय समाज तथा संस्कृतिके सर्वथा नष्ट
र है। इससे बचनेके लिये धार्मिक शिक्षा अर्थात्
दि सद्ग्रन्थोंकी पढ़ाईकी अति आवश्यकता है। इसके
ाल्योंमें हिंदू बालकोंके लिये अनिवार्य नियम बनाया

जाना आवश्यक है। श्रीगीताके उपदेश प्राणिमा
कल्याणकारी हैं, वे देश-कालकी सीमासे बाधित नहं
वे साम्प्रदायिकतासे दूर हैं—इस प्रकारकी मान्यता हमारं
गवर्नमेंटके प्रधान मन्त्री श्रीनेहरूजी और गवनं
श्रीराजाजीकी भी है। कई बार अपने भाषणोंमें वे
कह चुके हैं। तब क्या कारण है कि विद्यालयोंमें ये
पढ़ाये जायँ। इसी गीताको पढ़कर लोकमान्य तिलक
बने तथा इसी गीतासे श्रीअरविन्द राजयोगी ब
श्रीगांधीजी भी गीताके प्रतापसे ही महात्मा बन गये।
जीने भी अपने भाषणमें कहा था कि 'उनके जीवनप
का बहुत प्रभाव पड़ा है।' वर्तमान समयमें हमारे
सभी नेता प्रायः गीतासे प्रभावित हैं; किंतु इतन
भी यह दुर्भाग्यकी बात है कि अभीतक इस
कार्यारम्भ नहीं किया गया है। मैं एक बार फिरं
करूँगा कि मनुष्यता तथा भारतीय संस्कृति या भा
की रक्षाके लिये श्रीगीताके प्रचारकी बहुत ही आवश्य

हिंदू-संस्कृति क्या है ?

(लेखक—कुँवर श्रीचाँदकरणजी शारदा)

: वर्षके इस संघर्ष और उलट-पुलटके समयमें अब
ाई यह कहता है कि हम अपने देशकी संस्कृतिकी रक्षा
रंतु उनमेंसे बहुत-से भाई यह नहीं समझते कि
कहते किसे हैं। जब उनसे पूछा जाता है कि संस्कृति-
ा अर्थ क्या यह है कि हम उस संस्कृतिकी रक्षा करें,
छोटे बच्चोंको मारना और स्त्रियोंको भगाकर ले जाना
र्म समझते हैं? या वह संस्कृति उत्तम है कि जिस
अनुसार काले-गोरोंका भेद रखकर अफ्रीकाके
ों तथा हिंदुस्थानियोंको मारा जाता है? अथवा
ो रक्षासे क्या उस पश्चिमी संस्कृतिकी रक्षा करना
जिसने जापानके लाखोंकी आबादीके हिरोशिमा
एटम बम गिराकर लाखों बूढ़ों, बच्चों एवं स्त्रियोंका
दिया? अथवा संस्कृतिके नामपर क्या इन अमेरिका-
अच्छा मानते हैं, जो निग्रोलोगोंको खाल खींचकर
ते हैं? उत्तर मिलेगा—हम ऐसी संस्कृतिको कदापि
ते। तो फिर कैसी संस्कृति चाहते हैं? उत्तर मिलता
ऐसी संस्कृति चाहते हैं, जिसमें सब ईश्वरविश्वासी हों,

कालेका भेद-भाव जहाँ न हो, अपितु प्रेम, समझ
और सुख-शान्तिका राम-राज्य हो। 'मातृवत् परदारेषु
लोष्टवत्' के भाव सबके हृदयोंमें तरङ्गित हों। ऐसी
हिंदू-संस्कृति ही है। राम और भरतकी सभ्यता और
ही विश्वमें शान्ति फैला सकती है। पिताकी आ
राज्यको छोड़कर वन जाते हैं, किंतु भरत उसे ल
हैं। राज्यको 'फुटबाल' की भाँति एक भाई इध
मारता है, दूसरा भाई उधरसे। अन्तमें भरतने चौदह
महलों और राजप्रासादोंमें शानसे न रहकर जमीं
बनाकर रामके प्रतिनिधिरूपमें राज्य-संचालन
एक उस संस्कृतिको देखिये कि जिसमें औरंगजेब
पदके लिये दगा करके भाइयोंको मरवा डाला,
कैदमें डाला! हम ऐसी संस्कृतिको नहीं चाहते, जिस
यह शिक्षा दी गयी है कि अन्य धर्मावलम्बीका वध
धर्म है; उनके धर्मस्थानोंको तोड़ना, पुस्तकोंको जल
उनके स्त्री-पुरुषोंको दास-दासी बनाकर अनाचार
आदेश हैं।

की शिक्षा देती है। धर्म और संस्कृतिकी रक्षाके
चित्तौड़के किलेमें विधर्मियोंसे बचनेके लिये चौदह हजार
ओंने जौहरकी ज्वालामें भस्मीभूत होकर आर्य-
ो अमर बनाया। वीर आर्यबालक हकीकतने तलवार-
ा-हँसते चूमकर, गुरु गोविन्दसिंहने अपने पुत्रोंकी
कर, महाराणा प्रतापसिंह, दुर्गादास राठौर,
शिवाजीने वर्षों जंगलोंमें भटककर अपनी प्यारी
ृतिके गीत गाये, किंतु त्याज्य एवं परिहार्य
ंके आगे नतमस्तक नहीं हुए। हमारी संस्कृति
समान धर्मवीर उत्पन्न करनेका उपदेश देती है,
वंशीके रूप-लावण्यपर अपनेको मोहित नहीं होने
ंतु उसे अपनी माता कहकर पुकारा और ब्रह्मचर्यकी
हमें वह गुंडागिरी नहीं चाहिये, जो अपने ही
मोहल्ले और ग्रामकी बहिन-बेटियोंको कुदृष्टिसे
खाती है। हमें तो वह शूरता और सौम्यता चाहिये,
ठकर हमारे नवयुवक न तो स्वयं गुंडे बनें न किसी
ो गुंडावृत्ति करने दें।

स्थान और पाकिस्तानका बँटवारा संस्कृति और
ामपर हो गया। पाकिस्तानमें उपर्युक्त मुस्लिम
आधारपर देशका निर्माण होगा। उस संस्कृतिसे
शमें हमारे धर्म, मान-प्रतिष्ठा और बहिन-बेटियोंकी
हो सकती है—इसका अनुमान सहज ही लगाया
है। भारत-विभाजन होनेपर नोआखालीमें पहले
ने ही स्त्री-अपहरणका नारकीय काण्ड आरम्भ
और बच्चे कत्ल किये। एक उदाहरण हमारे सामने
ताप और राठौर दुर्गादासका है कि मुगल बादशाहों-
के पकड़े जानेपर उन्हें आदरपूर्वक उनके पतियों
ावकोंके पास भेज दिया था। यह हमारी हिंदू-
ी है कि पाकिस्तान बन जानेके बाद भी भारतवर्षमें
उतने ही सुरक्षित रह सकते हैं, जितने हिंदू तथा
ातावलम्बी। आज भी वैदिक सभ्यताके माननेवाले
ार्य (हिंदू) सबके साथ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की
ात्य अर्थोंमें चरितार्थ करके उत्तम व्यवहार कर रहे
अन्तर है हमारी और उनकी संस्कृतिमें। देखिये,
ू-संस्कृति मनुष्यको क्या उपदेश देती है—

) हिंदू-संस्कृति मनुष्यको आत्मसंयम तथा
ाओंकी कमीका पाठ पढाती है।

(३) हिंदू-संस्कृतिका मुख्य तत्त्व परार्थ-भाव
परोपकार, दान, अतिथि-सेवा तथा दूसरोंके हितके ि
स्वार्थोंका त्याग सिखलाती है। वह सबके स्
अपना स्वार्थ माननेका पाठ पढ़ाती है।

(४) हिंदू-संस्कृति निष्कामभावसे शुभ-का
सिखाती है।

(५) हिंदू-सभ्यता स्वार्थरहित, जान-बूझकर गर
व्यतीत करनेवाले सौम्य तपस्वी ब्राह्मणोंका आद
सिखलाती है।

(६) हिंदू-संस्कृति प्राकृतिक उन्नतिकी—
अभ्युदयकी, जिसको जीवनका एकमात्र ध्येय मानक
पीछे दौड़नेवाला यूरोपीय समाज विनाशकी ओर जा
सर्वथा उपेक्षा करना नहीं सिखाती; परंतु वह उस
संयमित और सञ्चालित करना सिखाती है और
आध्यात्मिक उन्नतिपर भी पूरा बल देती है। ऐसा क
मनुष्य-समाज विनाश तथा पतनसे बच सकता है।

(७) हिंदू-संस्कृति सत्य, अहिंसा, अस्तेय, तप,
इत्यादि नैतिक गुणोंकी शक्तियोंमें बड़ा विश्वास रखत

भारतवर्षमें अनार्य, शक, हूण आदि अनेकों
आयीं, किंतु हिंदू-संस्कृतिमें घुल-मिल गयीं और
पृथक् कोई सत्ता इस देशमें नहीं रही। मुस्लिम-सं
बाद यूरोपियन संस्कृति, जिसे पाश्चात्त्य सभ्यता एवं सं
नामसे पुकारते हैं, भारतमें आयी। भगवत्कृपा औ
भक्तोंके प्रबल प्रयत्नसे वे पाश्चात्त्य शासक तो इस देश
गये, किंतु उनकी संस्कृतिके कुछ अवशेष अभी दृ
होते हैं। परंतु निश्चय है कि हिंदू-संस्कृतिके सामने
नहीं सकेंगे और अंग्रेजी शासकोंकी भाँति अंग्रेजी स
जो कि पतनकी ओर ले जानेवाली है, स्वयं पतित हो ज

वैसे भारतमें अधिक टक्कर मुस्लिम-संस्कृतिवा
रही है। पर उसके मुकाबिलेमें भी हिंदू-संस्कृति ही वि
हुई। मुस्लिम सभ्यताका बोलबाला ११ सौ वर्षोंतक र
इस कालमें उनकी सभ्यता-संस्कृति, शिक्षा भारतके एक
दूसरे सिरेतक व्याप्त रही, और उनकी संस्कृतिका
अमीर-गरीब सभीपर पड़ा। मुसल्मान हिंदूकुशके प
लेकर एशिया और अफ्रीका तथा दक्षिणी यूरोप, स्पेन
फ्रांसको भी धूलि-धूसरित कर चुके थे। [illegible]

घुसनेका साहस नहीं करते थे। किंतु पारस्परिक हिंदू-संस्कृतिका ह्रास आरम्भ कर दिया। मुहम्मदगोरी- व सफल न होता, यदि हिंदुओंकी यौद्धिक शक्तिका क्षय न हो गया होता। यवन-साम्राज्यकी नींव अकबर- ने इसलिये प्रौढ़ हुई कि उसने हिंदू-संस्कृति और शा दोनोंका ही पूरा-पूरा सहयोग लिया। उसने हिंदू और हिंदू-नीतिपर राज्य-विस्तार किया। जबतक चेत रही, हिंदुओंके सहयोगसे उसकी नैया चलती तु उसकी मृत्युके दो सौ वर्ष बाद ही प्रतापी मुग़ल- हवा हो गया! मुग़ल-साम्राज्य ताशके महलकी ह गया और उसके उत्तराधिकारी मराठोंकी कैदमें क्षिणमें तालिकोटके मैदानमें हिंदू-शक्तिके पुनः कुछ नेपर सौ वर्षके बाद फिर हिंदू-संस्कृतिके रूपमें पेशवाजी पैदा हुए और उन्होंने बड़े बाँकेपनसे मैदानमें ढाई लाख मराठे एकत्रित कर दिये। प्रतापीके सामने वीर प्रतापने पच्चीस वर्ष तलवार और औरंगजेबने राठौर वीर दुर्गादास एवं शिवाजी अपने पचास वर्ष चिंता और तलवारकी धारपर क इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है कि भारतमें कभी संस्कृतिका मस्तक नीचा नहीं हुआ। पृथ्वीभरके ग्यारह सौ वर्षोंतक अराजकतामें रहकर, अरक्षित इतने आक्रमण, कत्ल और लूट सहकर तथा नौ विदेशी धर्म एवं संस्कृतिके मुस्लिम और अंग्रेज शासनमें रहकर भी किसी जातिका जीवन, उसकी एवं संस्कृति अक्षुण्ण बनी रही है तो वह हिंदू- मुकाबिलेमें और कौन-सी संस्कृति है?

विश्व-कल्याणका मार्ग—भारतीय नैतिक संस्कृति

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

ज हम देखते हैं कि समाजकी दशा उत्तरोत्तर विकृत रही है। जनता अनन्त दुःखों, क्लेशों और विघ्नोंका हो रही है। परस्परविरोधी स्वार्थोंसे प्रत्येक जाति तंग है। मन, वचन और क्रियामें समन्वय दिखायी नहीं न्मनोवृत्ति, सद्वचन और सत्कर्म दुर्लभ हो गये हैं। ष्ट्रिका स्वस्थ ऐक्य भ्रष्टाचारोंसे क्षत-विक्षत हो रहा है। सा और उच्छृङ्खलताका बोलबाला है। युद्धविभीषिका सामने दिखायी देती है। प्रीति, करुणा, सहानुभूति य-तत्परता अन्तिम साँस ले रही हैं। पोषक और व कलहके प्राङ्गण बने हुए हैं। घातक तत्त्व मुँह रका ग्रास करनेको खड़े हुए हैं। सत्यकी कोई परवा ा। धर्म मुर्दा-सा होकर पड़ा है। मनुष्योंके क्रिया- त्यधिक भयावह होते जा रहे हैं। विशेषतः ज्ञान, , धन और श्रम कलहके क्षेत्र बने हुए हैं। ऐसी ार्योचित नैतिक आचरणसे ही संसारको सुखी और ाया जा सकता है। इसीसे समाजके क्रियाकलाप किये जा सकते हैं। आजके दुखी और मरणोन्मुख यही एक सदोषधि है। इसलिये कि भारतीय नैतिक के कुछ ऐसे नियन्त्रण और संरक्षण हैं कि जिनसे

(क) निवृत्ति-योग
(ख) अनासक्ति-योग
(ग) निष्काम-योग

तात्पर्य यह है कि हिंदू-संस्कृति निवृत्तिप्रध इसकी प्रवृत्ति भी निवृत्तिमय है। यह प्रवृत्तिमें ि साधना है। इसकी मुक्ति इसके निवृत्ति-पथकी ही अ है। यही कारण है कि इसके नागरिकोंके स्वार्थ आपर टकराते। वे वित्तैषणा, सन्तानैषणा और लोकैषणामें घातक दोषोंसे सदैव असंस्पृष्ट रहते हैं। यही निवृत्ति अभिप्राय है।

अनासक्ति-योग निवृत्ति-योगका भी प्राण है। यह आसक्तिमूलक पापोंके नाशकी निर्दोष साधना है। निवृत्ति कोर-कसरसे बचे-बचाये दोषोंका इससे पूर्णतः उन्म जाता है। जैसे तृणहीन स्थानमें पड़ी अग्नि स्वयमेव हो जाती है, वैसे ही इसमें प्रवृत्तिके पापोंको मुँह दिख पनपनेका अवसर ही नहीं मिलता। इसमें कर्ता, कार्य और साधक, साध्य, साधनतक प्रवृत्तिके दोषोंसे स विमुक्त रहते हैं।

र भी प्रभावहीन हो जाता है । निष्कामयोगी रहता हुआ और सब कुछ करता हुआ भी निर्लिप्त । उसे प्रवृत्तिका कोई भी दोष दूषित नहीं कर

तरह इस योगत्रयके प्रतापसे नैतिक आचरणोंको ी अनैतिकताकी स्पर्शजन्य बुराइयोंके ग्रास होनेका रहता। वे बुराइयोंके काल, स्थान और कारणजनित भी मुक्त रहते हैं। ऐसी दशामें राजस-तामस तत्त्वोंकी में ही समाप्त हो जाती है, साधकका अन्तःकरण तत्त्वोंकी विहारस्थली बन जाता है और नैतिक को अच्छी तरह पनपने और फूलने-फलनेका अवसर । फिर सार्वभौम और सार्वजनीन अशान्ति तो होकर ही रहती है। ऐसी दशाके सुफल होते हैं—

च्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
ानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
नमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋग्० १० । १९१ । २, ४)

इसपर भी निवृत्ति-प्राण तत्त्वोंका वातावरण ़्र-गत नैतिक आचरणको और भी हृष्ट-पुष्ट और देता है। वे तत्त्व हैं—

तप (Self-denial)

न्यास (Self-renunciation)

। नैतिक कार्योंमें विलक्षण स्वर्गीय भावना, चिन्ता ा उत्पन्न हो जाती है। नैतिक सम्बन्धोंमें अनुभूति, और कर्मठताका वातावरण बन जाता है। ऐसी दशामें ाचरणोंमें विश्वब्रह्माण्डोंके वायुमण्डलको नीतिमय शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस स्तरतक पहुँचकर चरण अति दिव्य हो जाते हैं और उनके संग-प्रसंगमें ़ व्यक्तित्व भी ऋषिकल्प बन जाते हैं।

इतने ऊँचे स्तरपर पहुँचकर भी भारतीय हिंदू- विश्राम नहीं लिया; अपितु कुछ ऐसी साधनाओंसे ाधिकाधिक दृढ़ और विकसित होनेका अवसर मिला, लिये ईश्वरीय आशीर्वाद ही सिद्ध हुई। वे हैं—

) वर्ण-व्यवस्था।

) आश्रम-व्यवस्था।

व्यवस्थाने नैतिक आचरणोंको सर्वथा संयत

अर्द्धचन्द्र दे दिया। विशेषतः श्रम-विभागने इन्हें सत्य, शिव और सुन्दर बना दिया, जिसका प्रकारान्तरसे हर्बर्ट स्पेन्सरने भी इस प्रकार किया है-

'यह एक सचाई है कि वैयक्तिक और सामाजिक जब उनके व्यापारोंका विशेषीकरण हो जाता है अथ करनेवाले पृथक्-पृथक् होते हैं तो उनकी कार्य-शक्ति हैं। भिन्न-भिन्न कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियों और समुदायोंको सौंप दिये जानेसे प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय अपने-अपने कार्य नियमित हो जानेसे अपेक्षा उन्हें उत्तमतासे करते हैं। इससे पारस्परिक स क्षमता बढ़ जाती है। इस तरह सम्पूर्ण वैयक्तिक औ क्रियाकलाप श्रम-विभागोचित नैतिकताके वातावरणमें फूलते-फलते हैं।'

आश्रम-व्यवस्थाने तो सम्पूर्ण जीवनके विधि-ि ही निवृत्तिप्रधान बनाकर नैतिक आचरणोंको सर्वथा स्वाभाविक, विकासोन्मुख और समधिक सुन्दर ब था। परंतु फिर भी हिंदू-संस्कृतिके नैतिक क्रिया- जिस वस्तुसे लोकोत्तर लाभ पहुँचा वह है—

भारतीय राजयोग[1]

राजयोगके आत्म-सम्पृक्त और पर-सम्पृक्त यम सम्पूर्ण व्यष्टि-समष्टिको ही नैतिकताका रूप दे प्राणायामने शारीरिक और मानसिक अनैतिक तत्त्वों तत्त्वोंमें परिणत कर दिया; धारणा, ध्यान और वर्णाश्रमियोंके मनको तत्त्व-साधना, आत्म-साधना परमात्म-आराधनाप्रधान बनाकर देशके समस्त वात ही अनीति-मुक्त और नीति-भुक्त बना दिया, चारित्र्यमय सिद्ध कर दिया। यह वह समय था लिये भगवान् मनुने कहा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः[2]

इसीका परिणाम छान्दोग्यके अश्वपतिके मुखसे सु

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः[3]

---

१. भारतीय राजयोग हिंदू-राजयोगका ही पर्याय है।

२. पृथिवीके सब मनुष्य भारतीय ब्राह्मणोंसे ही अपना चरित्र सीखें।

मीकि मुनिकी निम्नलिखित उक्ति भी इसी नैतिक परिचायक है—

ब्रह्ममुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः ।
ाः स्वकर्मनिरताञ्जीन् वर्णानुपचारिणः ॥

[यहाँ यह प्रश्न होता है कि आखिर भारतीय नीति तीय नैतिक-परम्परा किस दीक्षा और दक्षिणासे े विश्व-दुर्लभ स्तरको पहुँच सकीं ? इसका सदुत्तर भ्यासके प्रवचन इस प्रकार देते हैं—

।) **१. स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ।** (छा० ३ । १७ । १)

२. अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैवैति । (छा० ३ । १७ । २)

त् ब्रह्मचारी जो कुछ करता है, यदि उसमें उसकी ा हो तो वही उसकी दीक्षा है । अन्यथा वह दीक्षासे कर असत् हो जाता है ।

ा) **अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ।** (छा० ३ । १७ । ४)

त् जो ब्रह्मचारी तप, तितिक्षा, दान, सरलता, अहिंसा -भाषण-तत्पर रहता है, उसकी यही दक्षिणा है ।

[हम देखते हैं कि आज तो नैतिकताका भवन होनेको है । उसमें पहलेकी-सी भारतीय नैतिकता ही कहीं कभी दिखायी दे जाती हो । सार्वभौम जनीन नैतिकताका तो अत्यन्ताभाव-सा ही है । बात-बातमें कपट और छल-छिद्रका बोलबाला है । और श्रीमती कौरेलीके शब्दोंमें तो यह भी कहा है कि—

पुरुष अज्ञानी है, वही भारतीयोंको पाश्चात्त्य वादका अनुकरण करनेके लिये कह सकता है; रतमें घोर दुर्भिक्षके समय भी उतनी नैतिकताका नहीं पाया जाता, जितना यूरोपके प्रधान नगरोंमें वादके कारण नित्य दिखायी देता है ।'

ोपके तो सभी व्यक्तियोंपर नास्तिकता, अविश्वास- ोर-हृदयता, नीतिभीरुता, स्वार्थपरायणता, अभिमान, ता और आदर्श-उदासीनताका कलंक लगाया जा ।'

यह है भारतेतर देशोंके लोगोंकी अपने सम्मति । चाहे इसमें अतिशयोक्ति भी हो, परंतु फिर अवश्य है । यद्यपि भारतकी भी दशा आज पूर्णतः इ नहीं है, फिर भी भाग्यवश उसके पास अपना प्राचीन आदर्श मौजूद है । वह चाहे तो उससे संसारका भ सकता है, परंतु उसी दशामें जब कि वह पहले स्व पूर्वजोंकी परम्पराके योग्य सिद्ध हो सके । अन्यथा व इस उपदेशको सगर्व कैसे दोहरा सकता है—

एतद्देश ....पृथिव्यां सर्वमानवाः

अन्तमें यहाँ यह कहना भी अनिवार्य प्रतीत हो भारतीय नीति-विज्ञान और नीति-कला निःसन्देह साथ ही आत्म-तत्त्वकी तरह अच्छेद्य, अभेद्य, अक्लेद्य और अदाह्य भी । परंतु इसका लाभ तो इस और मुख्यतः आचरणसे ही हो सकता है, अन्यथ गीत गाना तुस कूटना-सा ही है; किंतु फिर भी यह ब है और बिना हिचकचाहट कही भी जा सकती है कि वातावरण इस समय भी अपेक्षाकृत समधिक नैतिक क्षण भी यहाँ संख्यातीत ब्राह्मण अकारण ही षड वेदाभ्यास-तत्पर हैं । ज्ञान-विज्ञानके धनी हैं । त्यागी, वीतराग और कर्मठ हैं । साथ ही उनके अनुय न्यूनाधिक ऐसे ही हैं । हमारा तो विश्वास है कि यदि विश्व-वातावरण वास्तविक नैतिक बन सका तो उस नीति-विज्ञान और हिंदू-सपूतोंका ही प्रमुख हाथ देखिये, बाहरके गण्यमान्य विद्वान् भी इस विषयमें आशावादी और अनुकूल मालूम होते हैं—

(क्ष) भारतीय ब्राह्मण इतने ईमानदार और सच्चे किसी भी बातके लिये झूठ बोल ही नहीं सकते ।—म

(त्र) न केवल सत्य अपितु इनकी उदारता, सा मुक्तकण्ठता, बुद्धिमत्ता, सुशीलता, नम्रता, वफादारी, सुरा-विरक्ति, सम्मान-श्रद्धा, श्रमशीलता और वि इस समय भी उल्लेखनीय हैं । —

(ज्ञ) भारतकी आदर्श किंतु अमर संस्कृति साम्राज्योंका उत्थान-पतन देखा है, मनुष्यमात्रके लिये है । यही कारण है कि आजका यूरोप अपनी घातक दुखी होकर भारतकी ओर देख रहा है—डा० जेम्स

स्कृति' आधुनिक युगका सर्वोच्च शब्द कहा जा
है। हमारे क्रियात्मक व्यवहार व्यक्तिगत और
न्तर्राष्ट्रिय चाहे कैसे भी तात्कालिक फलोंसे चालित
रकी दृष्टिसे उन्हें हम उनके सांस्कृतिक अर्थ और
ो सिद्ध-असिद्ध करनेका यत्न करते हैं अथवा उनका
; मूल्य उनके सांस्कृतिक अर्थमें ही स्वीकार करते हैं।
द और इसका भाव प्रत्यक्ष ही आज अत्यन्त
ली हो रहे हैं।

ु जितना यह शब्द प्रभावशाली और प्रचलित है,
ो शायद इसका अर्थ अनिश्चित है। इस विषयमें
विचारकोंके मत अत्यन्त रोचक हैं। ओस्वाल्ड
इस विषयके एक विशेषज्ञ हैं और उनका ग्रन्थ
ा अधोगमन' जगद्विख्यात है। उनके विचारमें
नी Kultur (संस्कृति)-स्थितिका जीवन-काल
ंस्कृतिके साथ समाप्त कर चुका था और अब वह
ation (सभ्यता)-की अवस्थामें आ पड़ा है।
ले आन्तरिक प्राण और सजीवता थी, वहाँ अब
ाल्प और यन्त्र-आयोजन है। यही सांस्कृतिक
का प्रारम्भ है। हरमान काईजरलिंग, एक और
चारक, सभ्यताको संस्कृतिके पतनकी स्थिति नहीं
वे इसे बर्बरताके बादकी अवस्था कहते हैं, जब कि
वन और व्यवहारमें कुछ संगठन और नियम आ
परंतु प्रत्यक्ष ही दोनोंके लिये संस्कृति आन्तरिकता-
ना रखती है और सभ्यता बाह्य परिस्थिति और
ो। एल्बर्ट स्वाईटजर इसी विषयके एक और
प्रसिद्ध हैं। वे संस्कृतिको आन्तरिक अनुशीलन
र विशेष बल नैतिक भावनाके विकासपर देते हैं।
ुष्य कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो, वह
ा कितना भी भावुक मर्मज्ञ क्यों न हो, उसकी
के भी कितनी ही विकसित क्यों न हो, फिर भी उसका
यदि मूलरूपमें नैतिक भाव और भावनासे प्रेरित नहीं
ह वास्तविक अर्थमें संस्कृत नहीं। नैतिक भाव
वनापर आग्रह सामान्य प्राकृतिक सूचनार्थक ज्ञानके
पैदा हुआ है। लगभग चार सौ वर्षोंसे यूरोपके
ाली व्यक्ति प्रकृतिके नियमोंको जानने तथा उनसे
व्यावहारिक लाभ उठानेका यत्न करते रहे हैं
परिणामस्वरूप अनेक आविष्कार हुए हैं और ए
सम्पन्न और आडम्बरशील सभ्यताकी रचना हुई
इस वैज्ञानिक सभ्यताकी अपरिमेय शक्तिको योग
संचालित करनेके लिये आवश्यक हितभाव अथवा
प्रति कर्तव्यभाव विकसित नहीं हुआ। फलतः उन
का विनाशकारी और अहितकर प्रयोग अधिक हो
इस संकटावस्थाको तीव्ररूपमें अनुभव करते हुए
महोदय कहते हैं कि संस्कृतिमें नैतिक भाव केन्द्र
है। इसके बिना किसी व्यक्ति या जातिको संस्कृत
जा सकता।

'संस्कृति' सम्बन्धी ये सभी पाश्चात्त्य भाव
दूसरीसे भिन्न होते हुए भी एक ही आधारपर
वह आधार है मानवी व्यक्तित्वके मन, प्राण और
संगठन। संस्कृतिका मानो ध्येय ही है मन,
शरीरकी शक्तियोंको विकसित करना, उनकी विभि
से अपूर्व मौलिक समन्वय पैदा करना और उनके
से फिर परिस्थिति और समाजको संगठित और
करना। शिल्पकला, विज्ञान, दर्शन, साहित्य
रचना इस विकासका साधन भी है और ध्येय भी।
ये सब सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ ध्येयरूप अधिक हैं,
अपने आन्तरिक भावमें उन्नत करनेकी साधना
इसीलिये आजका सांस्कृतिक विकास मानवचेतनाके लिये
और भार बना हुआ है। मानवचेतना मान
परिचालित होती है, वे मानवचेतनासे अधिकृत नहीं

'संस्कृति' और 'सुसंस्कृत व्यक्ति'

भारतीय विचार मौलिकरूपमें पाश्चात्त्य विचारसे भि
वहाँ इस विचारमें 'अनुशीलन'का भाव प्रधान है
'शोधन'का। वहाँ यत्न है अनुशीलन अथवा अ
मन, प्राण और शरीरकी शक्तियोंको अपनी-अपनी
पराकाष्ठातक विकसित करना। यहाँ पुरुषार्थ है म
और शरीरके साथ आत्म-भावके सम्मिश्रणको दूर क
वास्तविक आत्म-भावको उपलब्ध करना और
भावसे सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंको यथार्थ आत्माभिव्य
आत्मचरितार्थता बनाना। भारतकी सब कला

तथा दर्शन और धर्मशास्त्रकी प्रधान धारा निश्चित-
रही है। श्रीअरविन्द-जैसे भारतीय संस्कृतिके मर्मज्ञ
अन्य संस्कृतियोंके ज्ञाता बलपूर्वक कहते हैं—
त्मिकता ही भारतीय मनकी मुख्य कुंजी है; अनन्तता-
ना उसकी सहजात भावना है। भारतने आदिकालमें
देख लिया और अपने तर्क-बुद्धिके युगमें तथा
ढ़ते हुए अज्ञानके युगमें भी उसने वह अन्तर्दृष्टि
नहीं खोयी कि जीवनको केवल उसकी बाह्य
तिके प्रकाशमें ही ठीक-ठीक नहीं देखा जा सकता
वह केवल उन्हींकी शक्तिसे पूरी तरह बिताया जा
। वह प्राकृतिक नियमों तथा शक्तियोंकी महत्ताके
गरूक था, उसे भौतिक विज्ञानोंके महत्त्वका सूक्ष्म
। वह साधारण जीवनकी कलाओंको संगठित करना
गा। परंतु उसने यह देखा कि भौतिकताको अपनी
कता तबतक नहीं प्राप्त होती, जबतक वह अति-
ठीक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर लेती; उसने देखा
ारकी जटिलताकी व्याख्या मनुष्यकी वर्तमान
ओंसे नहीं की जा सकती और न मनुष्यकी स्थूल
मझी जा सकती है, और यह कि विश्वके मूलमें कुछ
क्तियाँ भी हैं तथा स्वयं मनुष्यके भीतर भी कुछ
क्तियाँ हैं, जिन्हें वह साधारणतया नहीं जानता।'
Renascence in India, pp. 9-10)

ु आध्यात्मिकता कोई विभिन्नता और विविधता-
करसता नहीं। यह अत्यन्त समृद्ध तथा मूर्त
एक स्तर है, मानसिक तथा बौद्धिकसे अधिक
ौर विविधतापूर्ण। आध्यात्मिक जीवनकी समताका
भिन्नता और मौलिकतारहित समानता नहीं। इसका
वास्तवमें रजोगुणी आवेगोंके उतार-चढ़ावसे मुक्त
। आग्रहशील उद्वेलनोंसे स्वतन्त्र शान्त अन्तरमें गम्भीर
ौलिक आत्म-प्रेरणाद्वारा जीवनकी स्थिति और
निर्धारण। प्रत्यक्ष ही, साधक और सिद्ध निजी
तथा विकासकी विशेषतासे भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक
अभिव्यक्त और द्योतित करेंगे। इन भावोंमें जहाँ शान्ति
ता एक न्यूनतम सामान्य अंश होगा, वहाँ उनमें
ं कम या अधिक अथवा स्तरमें ऊँच या नीचके
। अथवा इनमें एक क्रमविकास दिखायी देगा

इस दृष्टिसे यदि हम भारतीय जीवनके ऐ
विकासको विचारें तो हमें कई अपूर्व तथ्य दिखायी देंगे
आजकी अपनी जातीय स्थितिको अधिगत करनेमें
सहायक हो सकते हैं। इतना हमें यहाँ स्मरण क
होगा कि हमारा प्रयोजन ऐतिहासिक छोटी य
घटनाओंसे नहीं है। हम देखना चाहते हैं उस
चेतनाको, जो सब प्रकारके सुखद-दुःखद अ
विकसित होती आयी है। इस चेतनाकी धारा, हमारे
ज्ञानके अनुसार, वेदकालसे शुरू होकर अबतक अनव
ही बहती रही है। ऐसा लंबा जीवन संसारमें हिंदू
अद्वितीय विशेषता है और यह अपने-आपमें एक
सांस्कृतिक तथ्य है।

स्वाधीनता उपलब्ध करनेके बाद हमारी जातीय
अपने प्रश्नोंके लिये स्वयं हल ढूँढ़ने शुरू किये
संसारभरकी स्थिति विषम है, उसमें अनेक विकट
बुरा उलझाव पड़ा हुआ है। भारतमें भी सामान्यतः
स्थिति है; परंतु हम पुरानी अनुभवी जाति होते हु
आज इस स्थितिके लिये नये हैं। हम उत्साहपूर्वक
प्रश्नोंका हल कर रहे हैं, बहुतेरोंका कर भी चुके हैं
भी बहुत-से अत्यन्त आवश्यक विषयोंका हल करना
हम एक गम्भीर छटपटाहटमें हैं। स्वीकार करना हो
हम काफी व्यग्र और चिन्तित हैं। हम अपने-
अपनी स्थितिके लिये अपर्याप्त अनुभव कर रहे हैं
स्थिति हमें भारी प्रतीत हो रही है और हम अपनी चे
त्रुटिको महसूस करते हैं और उसमें एक नयी सब
गम्भीर माँग कर रहे हैं। अपनी वर्तमान स्थितिके
तथा उनके समाधानोंके बारेमें हम अनेक मत और
सुनते हैं। ये सब प्रायः बाह्य संगठन और नियम-कान
स्थितिको सुधारनेके उपाय बताते हैं। इन सबमें कुछ-
सार्थकता है। परंतु ये उपाय मूल कारणको स्पर्श
करते; ये उस चेतनासे सीधा सम्पर्क नहीं रखते, जो
साथ संघर्ष कर रही और अपने-आपको अपूर्ण
कर रही है। इस चेतनाकी इस अपूर्णताका यथार्थ
और निदान उपायके लिये सबसे पहली आवश्यक
और हमारी जिज्ञासा यहाँ विशेषरूपसे यही है।

अपनी वर्तमान वास्तविक चेतना-स्थितिको

नको स्वाभाविकतया एक दूसरे जगत्में अनुभव ते हैं। वैदिक युगका नेता 'ऋषि' था और वह रल, स्वाभाविक, शरीर और चेतनामें स्वस्थ तथा मुक्त और आनन्दमय प्राणी अनुभव होता है। के सौन्दर्यको अनुभव करनेवाला, उसका भक्त है। न, धन-धान्य आदिके लिये मुक्त कण्ठसे प्रार्थनाएँ और उन्हें वह यथार्थ स्वीकारात्मक भावमें ग्रहण करता फिर भी वह स्थूल प्रत्यक्षवादी नहीं, वह तो गम्भीर ादी है। वह अन्तर्दृष्टिसे वस्तुओंके निहित चेतन ानता है और इन्हें उसकी ही अभिव्यक्ति अनुभव । वेदमन्त्रोंके वातावरणमें निवास करना मानो परमात्मा और प्रकृतिके वास्तविक आनन्दका करना है। वैदिक ऋषि गाता है—

ा देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'

ो इस प्रभुके सुन्दर जगत्को, जो न नष्ट होता है, पड़ता है।' वह प्रार्थना करता है 'जीवेम शरदः हम सौ सालतक जीयें। आँख, नाक, कान आदिके े सौ सालतक जीयें। वह कहता है—

ूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः..

त्रती बहुधा गुहावसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।'

पृथ्वीका पुत्र हूँ, पृथ्वी मेरी माता है, वह मुझे विध सम्पत्ति तथा गुप्त धन प्रदान करे।' साथ ही ात्मिक चेतनाकी किन उड़ानोंका आनन्दपूर्ण वर्णन । वह आध्यात्मिक जगत्का अथक अन्वेषक है। ं ऋतं बृहत्' सत्य, यथार्थ और बृहत्का उपासक अभीप्सा करता है—

भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने'

ग्नि! तू ऊपर उठ, सब आवरणोंको भेद डाल और दर देवत्वको प्रकट कर।

अन्तरमें स्थिति बदल जाती है और हमारी जातीय चिह्न मन्द पड़ने लगते हैं। हम आन्तरिक चेतनाका कर बाह्य कर्मकाण्डमें लिप्त हो जाते हैं, हमारे ं दम्भ आ जाता है। कितने समय बाद फिर गौतम पमें एक उच्च कोटिका जिज्ञासु प्रकट होता है। वह दुःखरूप अनुभव करता है; रोग, जरा और उपाय ढूँढ़ना चाहता है। वह निर्वाण-स्थिति प्राप्त और त्यागके महामन्त्रका उपदेश देता है। संसारको

तथा आस-पासके देशोंमें अपने जीवनके दृष्टान्त उपदेशको सुनाते हैं।

शताब्दियोंतक 'संसार तुच्छ है तथा त्याज्य भाव जनताके अन्तःकरणमें रमता चला जाता है। पि और महापुरुष प्रकट होकर जातीय चेतनाको नये उद्वेलित कर देता है। शङ्कराचार्य नास्तिक बौद्धधर्मके आस्तिक हिंदू-धर्मको प्रतिष्ठित करते हैं। जनता व्यापक चेतन-तत्त्वके लिये, ब्रह्मके लिये भावना जाती है। परंतु संसार पहलेके समान ही तुच्छ और रहता है, बल्कि माया बन जाता है। कर्ममात्र ब जाता है तथा जीवनसे मुक्त होकर निर्गुण ब्रह्ममें जाना पूर्णता है।

फिर अनेक बड़े-बड़े ईश्वर-भक्त स्मरण आते हैं है उनकी भक्ति, कैसी तल्लीनता। परंतु संसार उन भी हेय है, कनक और कामिनी पापका मूल है।

अपने इतिहासके निकटभूतमें हम एक नयी भ उदय देखते हैं। कई महान् मूर्तियाँ प्रकट होकर नकारात्मक भावके स्थानपर स्वीकारात्मक वृत्ति पैदा यत्न करती हैं। अपना ऐहिक जीवन सुधारनेको क पिछड़े हुए भाइयोंको अङ्गीकार करनेका आदेश क स्त्रियोंके प्रति स्वस्थ भाव बनानेकी प्रेरणा देती हैं, आदर्शोंका स्मरण कराती हैं, राजसत्ता अधिगत करने संघर्षका भाव उत्तेजित करती हैं।

भारतीय चेतनाके लंबे विकासकी ये प्रधान और गतियाँ कही जा सकती हैं। ये सब आ अवस्थाएँ हैं और इनमेंसे हर एककी भारतीय विकासमें कुछ देन है।

इनमेंसे हर एकमें अपने-अपने ढंगका आ प्रकृतिका सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध सांस्कृतिक दृष्टिसे बड़े है। वैदिक चेतना आध्यात्मिक चेतना होनेसे प्रकृति आपको अलिप्त और स्वतन्त्र अनुभव करती है, पर या इसी कारण प्रकृतिपर पूरा अधिकार अनुभव करती स्वतन्त्रतापूर्वक उसका उपभोग करती है। बुद्धकाल संसारके प्रति प्रत्यक्ष ही भयभीत भाव रखती है दुःखमय है और इसका त्याग ही एकमात्र उपाय है समय मानो हमारी चेतना एक ऐकान्तिक, जगत्से आध्यात्मिक सौम्यताके अनुभवके लिये लालायित थी। यह गति वास्तवमें थी एक प्रतिक्रिया—बा धार्मिक कर्मकाण्डके प्रति, जो उस समयकी सामान्य



प्रतिक्रियात्मक गतिको शंकराचार्यने बहुत सुधारा।
अस्तित्वको प्रतिष्ठित किया। परंतु यह धारा अपने
द्ध-विचारकी प्रतिक्रिया भी थी। बुद्धने आत्मा और
े विषयमें मौन धारण किया था, मानो उनका
है ही नहीं; शंकरने कहा 'केवल ब्रह्म ही है,
नहीं। संसार दुःखमय है, माया है, सर्वथा त्याज्य
मजबूरीका बन्धन है।' यह भाव और भावनाएँ हमारी
चेतनामें लगभग ढाई हजार वर्षसे रम रही हैं।
स्वरूप जहाँ हमने आध्यात्मिक अनुभवमें कुछ नयी
याँ प्राप्त की हैं, वहाँ संसार और जगत्के जीवनमें
ः भी झेले हैं, राज-पाट खोया और शक्ति तथा
वञ्चित रहे। हम कह सकते हैं—हमने एक विशेष
क अनुभवकी सबलता तथा सीमा दोनोंको जान
इससे हम वैदिक और औपनिषदिक आदर्शोंकी
ो अनुभव करनेके लिये विशेष रूपसे तैयार हो गये
निश्चय ही अब जो नयी चेतना विकसित होगी, वह
पूर्णतर होगी। यदि हम अपनी ऐतिहासिक
ोंका लाभ उठाते हुए आगे चलना चाहें तो वह
म पूर्णतर हो सकती है।

रे निकटभूतके महापुरुषोंका वास्तवमें संसार और
प्रति एक नया स्वीकारात्मक भाव पैदा करनेका
ो रहा। इस प्रकार एकके बाद एक चेतनाके अंदर
ास, नयी शक्ति तथा संघर्षके भाव भरते रहे हैं।
ु सत्ता अधिगत करनेके बाद, अधिकार और राज-
ति जो हमारा मनोभाव एकदम ही विकसित हुआ,
में कुछ चौंका दिया। इस नयी स्थितिमें हमने
रूपमें स्वस्थ और तटस्थ अनुभव नहीं किया। हम
प हो गये। स्वाभाविकतया चिन्ता होती है और हम
किये बिना रह नहीं सकते कि हमारी मध्ययुगीन
पुराने संस्कार इतनी जल्दी दूर नहीं हो सकते। जो
सारसे भय मानती थी, वह अब भी या तो उस भय
श्वासको व्यक्त कर रही है या प्रतिक्रियारूपमें लोलुपता।
ारोंका शोधन और जगत्सम्बन्धी स्वस्थ स्वीकारात्मक
ना ही, हमारे विचारमें आजकी भारतीय चेतनाका
सांस्कृतिक प्रश्न है। आजके हमारे प्रश्न प्रथमतः
सकी माँग करते हैं और यदि हम अपने प्रश्नोंके
क रूपको देख सकें तथा इसका ऐतिहासिक कारण
सकें तो आधा हल तो हमें स्वतः प्राप्त हो जायगा।

[illegible]

मन, प्राण और शरीरके 'अनुशीलन'में लगा हुआ
प्रकृतिमें लिप्त भावके कारण आत्मभाव और आत्म
खो बैठा है, प्रकृतिमें लिप्त भाव होनेके कारण ही
पाश्चात्त्य चेतनाके लिये यह विपुल वैज्ञानिक विका
बन गया है। संस्कृतिसम्बन्धी भारतीय विचार इ
यथार्थ समाधान है। 'संस्कृति' और 'सुसंस्कृत व्य
अनिवार्य लक्षण है—आन्तरिक शुद्ध भाव अर्थात्
मन, प्राण और शरीरकी प्राकृतिक चेष्टाओंसे स्वत
तटस्थ भाव। इसीसे मानव प्रकृतिमें स्वामी-भावसे
सकता है और उसका यथोचित उपयोग और उप
सकता है।

भारतकी सामान्य मानव-संस्कृतिके लिये यह भा
देन हो सकती है। वास्तवमें भारत अपनी यथार्थ स
वृत्तिको अभिव्यक्त करके इस समय संसारको संकटसे
लेनेकी भी सामर्थ्य रखता है; परंतु उसे अपने म
अनुभवोंका उचित शोधन करना होगा। जगत्-त्य
भावनाको एक उच्चतर स्वीकारात्मक अध्यात्मवादमें
करना होगा। जगत् अपने आपमें, आत्माका वि
होते हुए तुच्छ भी है और त्याज्य भी। परंतु
तो वह ब्रह्मकी अभिव्यक्ति है, एक प्रयोजनीय च
है। तब वह त्याज्य कैसे हो सकता है? निश्चय
ब्रह्मको उसके सर्वाङ्गीण रूपमें अङ्गीकार करना चाहेंगे त
साथ पूर्ण तादात्म्यके लिये अभीप्सा करते हुए उसे
और निर्गुण रूपमें, उसकी स्थिति और गतिमें,
करना तथा अभिव्यक्त करना चाहेंगे।

श्रीअरविन्द-दर्शन भारतीय संस्कृतिकी वर्तमान
का पूर्ण प्रतीक प्रतीत होता है। यह जगत्को
अभिव्यक्तिके रूपमें केवल अंगीकार ही नहीं करत
इसे मानवके सर्वाङ्गीण आध्यात्मिक विकासका उपयुक्त
और क्षेत्र बतलाता है। श्रीअरविन्द-दर्शनके
जगत् अनिवार्यरूपमें वैश्व-विकासके क्रमसे जड प्र
मनके क्रमिक स्तरोंद्वारा व्यापक अध्यात्माभिव्यक्ति
तैयार हो रहा है और भावी विकासमें समय आयगा
ये आजके अज्ञानाच्छादित स्तर सजग और सचेतन हो
अतः मानवको, जो कि प्रजापतिकी सर्वश्रेष्ठ सन्तान है,
यहीं जगत्के क्रियाकलापमें भागवत इच्छाको चरित
अभिव्यक्त करना है। इसीसे मानव अपने

[illegible]

आर्यसंस्कृतिकी तुलनात्मक गवेषणा

ाजातिकी संस्कृतिमें एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान्
ो माना गया है। वे ही परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण
ामसे अभिहित होते हैं। जैसे हमारा यह ब्रह्माण्ड
ो अनन्ताकाशमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड हैं। परमात्माके
से ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमें सृष्टि, स्थिति और
ार्य नाना देहधारियोंके द्वारा व्यवस्थितरूपसे हुआ
। वे परमात्मा निर्गुण-निराकार होनेपर भी भक्तोंके
सगुणरूप धारण कर लेते हैं। पृथ्वीकी अन्य मनुष्य-
एक ईश्वरवादका विचार तो प्रचलित देखनेमें
परंतु उनमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी महान् धारणा-
नहीं है और न वे ऐसी विचारशैलीकी ओर
हैं कि प्रत्येक ब्रह्माण्डका कार्य कैसे चलता है।
राज्य चलानेके लिये अनेक श्रेणियोंके राजपद-
आवश्यकता होती है, वैसे ही हमारे ब्रह्माण्डके
के संचालनके लिये अनेक देवता, ऋषि, पितृ
दधारी सदा अपने-अपने कामपर नियुक्त रहते हैं—
रशैली उनमें नहीं है और जब भगवान् सर्व-
हैं, तो भक्तके कल्याणार्थ वे सगुणरूप भी धारण
हैं—ऐसी धारणा भी सबमें नहीं है। आर्यजातिकी
जैसे ब्रह्माण्डोंकी संख्या अनन्त मानी गयी है, उसी
ा जीवोंके पिण्ड भी अनेक माने गये हैं। उद्भिज
दज पिण्ड, अण्डज पिण्ड और जरायुज पिण्ड—ये सब
ड कहाते हैं। मनुष्यके स्थूल शरीरको मानव पिण्ड
ौर देवता, ऋषि, पितर, यक्ष, गन्धर्व, असुर, प्रेत
पेण्ड देवपिण्ड कहाते हैं। जीव उद्भिज्ज योनिसे
ोनिमें, स्वेदजयोनिसे अण्डजयोनिमें, अण्डजयोनिसे
निमें क्रमशः पहुँचता है। मनुष्ययोनि अन्य उच्च-
माध्यम है। मनुष्ययोनिसे जीव उन्नति करता हुआ
ायोंमें जा सकता है। नाना देवपदधारी देवयोनियाँ
ोककी सहायक हैं; देवयोनियोंका इतना विस्तार है
ा, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—चार श्रेणीके जीव
शरीरधारी होनेके कारण इनमेंसे हर एक श्रेणीके
क-एक रक्षक और चालक अलग-अलग एक-एक
। प्रसिद्ध पर्वत, नदी आदिके भी अलग-अलग
हैं और ये सब दैवी राज्य-श्रृङ्खलाके अधीन रहकर
त होकर अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। पृथ्वी-

की अन्य सभ्य जातियोंमें इस प्रकारकी संस्कृतिका प्र
है। वे सामान्यरूपसे दैवी राज्यको मानते हैं।

असुरको शैतान और देवताओंको फिरिश्ता,
आदिसे अभिहित करते हैं; परंतु उनकी संस्कृतिमें दै
महान् विस्तारपर और दैवीपदधारियों तथा दैवी
विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया गया है। आ
संस्कृतिमें पुरुष और स्त्रीका भेद बहुत कुछ माना
जैसे दिन और रातमें भेद है, जैसे बीज और बोनेके
भेद है और जैसे विकर्षण-शक्ति और आकर्षण
भेद है, उसी प्रकार बड़ा भारी भेद समझकर आर्य-
स्त्रीजातिके मौलिक धर्म और आचारोंके सम्बन्धमें ब
विशेषता मानी गयी है। आर्यजातिकी संस्कृतिके
पुरुष जातिकी अपेक्षा स्त्रीजातिमें आचार-विचार, र
और शिक्षा, धर्म आदिके विषयमें सब प्रकारसे पृथक्
गयी है। आर्यजाति यह समझती है कि श्रीभगवान
जातिको और स्त्रीजातिको विशेष-विशेष शक्ति दे
क्रियामें प्रवृत्त किया है। थोड़ी-सी बुद्धि जिसमें है,
समझ सकता है कि जगत्की सृष्टिक्रियामें पुरुषकी
मिनटकी जिम्मेवारी है और स्त्रीकी कम-से-कम नौ
जिम्मेवारी है। पुरुष यदि वेश्यागामी हो जाय, त
कुल और जाति आदिको विशेष क्षति नहीं पहुँचती
स्त्री यदि अपने जीवनमें पाँच-दस मिनटकी भूल कर
उस भूलके द्वारा उसका सतीत्व ही नष्ट नहीं होग
उसका वंश, उसकी कुल-परम्परा, उसकी जाति औ
समाज—सब अपवित्र हो जायगा। इन थोड़े-से उदाहरण
विचारशील सज्जन समझ सकते हैं कि आर्यजातिकी
की रक्षाके लिये और सृष्टिकी पवित्रताकी रक्षाके ि
जातिकी जिम्मेवारी कितनी अधिक है। इस कारण अ
अपनी माता और कन्याओंको नाना उपायद्वारा पवित्र
का प्रयत्न करती है। परंतु आज पृथ्वीकी अन्य
जातियाँ स्त्री और पुरुषोंको एक प्रकारकी शिक्षा दे
एक ही रास्तेपर चलाकर मनुष्य-जातिके अकल्याणका
हो रही हैं! पृथ्वीकी अन्य मनुष्य-जातियोंकी
आर्यजातिका वर्णाश्रमधर्ममूलक समाज-विज्ञान (सोशिय
बड़ा विचित्र और कठिन प्रतीत होती है। उसकी स
अवस्थाको चारों ओरसे चार सदृढ दुर्गोंके द्वारा सुरक्षि

प्रथम दुर्ग यह है कि आर्य नारियोंमें सतीत्व-धर्म-
व्रताकी रक्षा अति दृढ़तासे की गयी है। वैसी
पृथ्वीके अन्य किन्हीं जातियोंमें नहीं पायी गयी है।
की सामाजिक पवित्रताकी रक्षाके लिये रजोवीर्य-
क वर्णधर्मकी व्यवस्था और जन्मसे जाति माननेका
ादि द्वितीय दुर्ग है।

ीकी अन्य मनुष्य-जातियोंमें मनुष्यजीवनकी आयुके
नुसार कोई विशेष व्यवस्था नहीं बाँधी गयी है;
ार्यसंस्कृतिमें अति सुन्दर उपायोंके द्वारा ब्रह्मचर्य,
वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमोंकी व्यवस्था
र रूपसे बाँधी गयी है। यह आश्रमधर्म तृतीय
इस समय सब अस्त-व्यस्त हो जानेपर भी सबको
ा ही पड़ेगा कि मनुष्यजीवनको प्रथमसे लेकर
त एक ढंगसे न चलाकर ब्रह्मचर्य आश्रममें कैसी
ोनी चाहिये, सो विद्याभ्यासद्वारा सिखानेकी रीति
हस्थाश्रमधर्ममें प्रवृत्तिधर्मका धर्मानुकूल पालन
ाता है। तीसरे वानप्रस्थधर्ममें तपस्या आदिद्वारा
र्मकी शिक्षा दी जाती है और चौथे संन्यास-आश्रम-
त्तिधर्मकी चरितार्थता करायी जाती है। एक जीवनमें
धर्मानुकूल प्रवृत्ति करता हुआ अन्तमें निवृत्तिके
पहुँचकर श्रीभगवान्‌के निकट पहुँच सके—इसकी
बाँधी गयी है। आर्यजातिकी संस्कृतिमें सामाजिक
ो सुरक्षाके लिये सब समय आचार और विचारके प्रति
रखना चौथा दुर्ग है। इस प्रकार चार दुर्गोंके
धर्मोंद्वारा मनुष्यसमाजको चिरजीवी बनाने और
रखनेका नियम पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें नहीं पाया

ू-जातिमें आचार और विचारके विस्तार और दृढ़ता-
कतासे कोई-कोई अन्यधर्मावलम्बी संदेह करते हैं
ते हैं कि जिस जातिमें इतना कठिन जाति-भेदका
प्रचलित है और जो जाति शुद्धाशुद्धविवेकको इतना
है, उस जातिमें मनुष्य-प्रेमका सिद्धान्त कैसे चल
। हिंदुओंके प्रतिदिनके करनेयोग्य 'नृयज्ञ'पर मनन
ो ऐसी निर्मूल शंकाओंका समाधान हो जाता है।
ज्ञ सनातनी हिंदुओंका नित्यकर्म है। विधिपूर्वक
सेवाको नृयज्ञ कहते हैं। हिंदुओंके समाजविज्ञान

जाती हैं। साथ-ही-साथ धर्मशास्त्रोंमें प्रत्येक गृहस्थको
पञ्चमहायज्ञ करनेकी आज्ञा भी है। नृयज्ञ उनमेंसे
है। नृयज्ञका सिद्धान्त यह है कि घरमें आये हुए अ
परमात्माका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये
आया हुआ अतिथि चाहे हिंदू हो, चाहे मुसलम
ईसाई हो, चाहे और किसी धर्मका हो; चाहे ब्राह्मण
शूद्र हो और चाहे अछूत जातिका हो, चाहे असभ्य
मनुष्य हो—उसको आसन, भोजन, जल और आदरके
द्वारा तृप्त करना चाहिये। वेद और शास्त्रोंमें दृढ़
कि घरमें आये हुए अतिथिको भगवान् समझकर
नहीं करता, उसका सब पिछला पुण्य नष्ट हो ज
मनुष्यमात्रको भाई-भाई समझनेके लिये और उ
विचारको आचारमें परिणत करनेके लिये हिंदू-जातिमें
नृयज्ञसे अधिक क्या प्रमाण हो सकता है? आ
उन्नतिकी इच्छा रखनेवाली जिस मनुष्यजातिमें
आश्रमधर्म, शुद्धाशुद्ध-विचार-धर्म और नारियोंमें स
का इतना विचार किया जाता है, उस हिंदू जातिमें एक
परमात्माको पितारूप मानते हुए और उसकी सब
सन्तानोंमें प्रेम करते हुए उनमें भ्रातृभावका संस्क
रखनेके लिये ही नृयज्ञका ऐसा दृढ़ नियम भी प्रचलित
यह मानना पड़ेगा कि मनुष्यमात्रसे प्रेम करना उनक
उद्देश्य है, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि पृथ्वीके सब
तथा सभी मनुष्य-समाजोंमें किसी-न-किसी
मनुष्यमात्रमें भ्रातृप्रेम बनाये रखने और अतिथि-सेव
सिद्धान्त किसी-न-किसी रूपमें पाये जाते हैं, तथापि
धर्मरूप धार्मिक समाज-विज्ञानको माननेवाली हिंदूजा
शास्त्रमें नृयज्ञरूपी धार्मिक अतिथि-सेवा करनेकी जैसी
पायी जाती है, वैसी शास्त्रीय आज्ञा अन्य किसी ध
है। हिंदू गृहस्थोंके नित्य करनेयोग्य जितने धर्मसा
गये हैं, उनमेंसे नृयज्ञ एक प्रधान साधन है।
अलौकिक आर्यसंस्कृति तथा पृथ्वीकी अन्य
जातियोंकी संस्कृति—दोनोंकी तुलनात्मक गवेषण
पर परस्पर दिन और रातका पार्थक्य दिखायी
आर्यसंस्कृतिमें स्त्रीजातिको जगज्जननी महामायाकी
मानकर कन्यावस्थासे लेकर वृद्धावस्थातक
महिलाओंकी सम्मान-रक्षा और पवित्रता-रक्षाका पू
बाँधा गया है। किंतु अन्य सभ्य जातियोंमें इस

आजकल अत्यन्त दरिद्र हो जानेपर भी आर्य- कि शरीरको ढँके रखनेके लिये वस्त्र आदिका कितना उत्तम है सो सब जानते ही हैं। दूसरी प और अमेरिकाके शिक्षित अधिवासियोंमें किस नर्लज्जताकी रीति प्रचलित है, उसे देखनेसे भी हिंदू- लज्जित होना पड़ता है। उदाहरणकी रीतिपर दिखाया कि इन सभी जातियोंका सामाजिक उत्सव किसी भी हो; उसमें स्त्रियोंके पुरुषोंके साथ निर्लज्जभावसे प्रथा और उस समय भोजनके साथ मद्यपान-प्रथा क प्रचलित है। ऐसे उत्सवोंके समय स्त्रियाँ जैसा वस्त्र धारण करती हैं, वह कितना लज्जाजनक ो जिन्होंने देखा है, वे स्वयं जानते हैं। विशेषता यह कोई विवाहिता स्त्री अपने पतिके साथ नहीं नाच यह नियमविरुद्ध है। उसको परपुरुषके साथ ही ोगा। ऐसे उत्सवोंमें एकान्त स्थान भी बने रहते कारी युगल स्त्री-पुरुष रातभर नाचनेमें, स्वेच्छापूर्वक दिमें स्वतन्त्र और निर्भय रहते हैं। यह उस देशकी प्रथा है। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष-बन्धुसे एकान्त- त करती है, तो उस समय उसका पति बिना उसकी ाहाँ जा नहीं सकता। यह उस देशका नियम है।

दूसरी ओर आर्यजातिकी संस्कृतिमें इसके बिल्कु नियम प्रचलित है, जो धर्मशास्त्रकी आज्ञाके अनुसा किया जाता है। स्त्रियोंके लिये रहनेके स्थानका नाम है; वहाँ परपुरुषकी तो बात ही क्या है, अपने घ भी सब समय नहीं जा सकते। आर्य-संस्कृतिमें साथ नाचनेकी तो बात ही नहीं, प्रत्युत परपुरुषका हिंदूशास्त्रमें निषिद्ध है। नाचनेकी प्रथा हिंदूजाति है; क्योंकि संगीतशास्त्रके तीन भेद हैं—नर्तन, गा वादन। परंतु जिन जातियोंमें नाचनेकी प्रथा है, उन अन्तःपुरमें स्त्री-मण्डलीमें ही नाचती हैं। परपुरुषों तो बात ही क्या है, परपुरुषके सामने भी कुलीन नाचना आर्यसंस्कृतिके विरुद्ध है। धार्मिक उत्सव आदिमें आर्यस्त्रियाँ अपने पति आदि अभिभावक जाती हैं। एकाकिनी जाना या परपुरुषके साथ आर्यसंस्कृतिके विरुद्ध है। आजकलके राजनैतिक और नेतृवृन्दोंको इस तुलनात्मक गवेषणाको अपने बु सामने रखकर समाजसंस्कारकी बात सोचनी चाहिये सभ्यताकी बहुत-सी बातें आपातरमणीय होती हैं परिणाममें विषवत् भयङ्कर सिद्ध होती हैं, इसका ध्यान रखना चाहिये। **'सूर्योदय'**

हिंदू और हिंदू-संस्कृति

(लेखक—श्रीबाबूलालजी गुप्त 'श्याम')

कल हिंदू और हिंदू-संस्कृति शब्द सुननेमें तो बहुत परन्तु उसकी परिभाषा कोई नहीं करता। बहुत-से तो 'हिंदू' शब्दका अर्थ अपमानसूचक होनेका भी था इस शब्दकी प्राचीनतामें भी सन्देह है। अतः में ही इसपर कुछ निवेदन करनेकी चेष्टा की

ू' शब्दकी व्याख्यामें विद्वानोंने कहा है—

स्मृत्यादिशास्त्रेषु प्रामाण्यबुद्धिमवलम्ब्य श्रुत्यादि-
विश्वासं निष्ठां च यः करोति स एव वास्तवहिंदूपद-

ात् श्रुति-स्मृत्यादि शास्त्रोंमें प्रामाण्यबुद्धिका अवलम्बन नमें कहे हुए धर्ममें जो विश्वास और निष्ठा वही वास्तवमें 'हिंदू'-पद-वाच्य है। इसी प्रकार **ोक्तानि सर्वाणि दूषणानि हिनस्तीति हिंदुः'** भी कहा

प्राचीन ग्रन्थोंमें भी 'हिंदू' शब्द आया है। कु देखिये। मेरुतन्त्रमें—

हिंदूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिन
हीनं च दूषयत्येव हिंदुरित्युच्यते प्रिये

(प्रक

'कितने ही चक्रवर्ती राजा हिंदूधर्मका लोप होंगे। प्रिये! जो हीन वृत्ति और हीन आचार करे—निन्द्य समझकर उसका त्याग करे, वह 'हिंदू' कह शार्ङ्गधरपद्धतिमें—

यवनैरवनिः क्रान्ता हिंदवो विन्ध्यमाविशन्
बलिना वेदमार्गोऽयं कलिना कवलीकृ

'यवनोंने इस पृथ्वीपर अधिकार कर लिया औ हिंदू विन्ध्यगिरिकी गुफाओंमें प्रवेश कर गये। ...

ङ्गना कलिनाऽऽच्छन्ने धर्मे कवलिते कलौ।
नैरवनिः क्रान्ता हिंदवो विन्ध्यमाविशन्॥

लिमें बलवान् कलियुगद्वारा जब धर्मका स्वरूप
त एवं विलुप्त हो गया, तब यवनोंने इस भूमिपर
कर लिया और हिंदू विन्ध्य-प्रदेशमें चले गये।'

ब्दकल्पद्रुम कोष' में '**हीनं दूषयति इति हिंदुः'**
दित्वात् साधुजातिविशेषः'—जो हीनको दूषित करे,
है। '**पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्**' इस पाणिनि-सूत्रके
यह 'हिंदु' शब्द सिद्ध हुआ है। 'हिंदू' एक जाति-
नाम है। यह हिंदू शब्दकी व्याख्या की गयी है।
षमें भी ऐसा आया है कि **हिंदुर्हिंदूश्च प्रसिद्धौ
च विधर्षणे। रूपशालिनि दैत्यारौ'** 'हिंदु' और
ब्द दुष्टोंको हीन—तिरस्कृत करनेवालेके अर्थमें प्रसिद्ध
रूपसे सुशोभित तथा दैत्योंके शत्रु—इन दोनों अर्थोंमें
प्रयोग होता है।' पारिजातहरण नाटकमें—

**स्ति तपसा पापान् दैहिकान् दुष्टमानसान्।
भिः शत्रुवर्गं च स हिंदुरभिधीयते॥**

अपनी तपस्यासे दैहिक पापों तथा चित्तको दूषित
दोषोंका नाश करता है तथा जो शस्त्रोंसे अपने
ायका भी संहार करता है, वह हिंदू कहलाता है।'
प्रकार अनेक स्थलोंपर 'हिंदू' शब्दका प्रयोग हुआ
हाँपर विस्तारके भयसे थोड़े-से उद्धरण दिये गये हैं।
'हिंदू' शब्द न तो नवीन है और न इसका अर्थ ही
सूचक है।

'संस्कृति' को लीजिये। संस्कार और संस्कृति एक
निकले हैं। दोनोंमें 'सम्' उपसर्ग है तथा संस्कारोंकी
रूपसे केन्द्रीभूत समष्टि—समूह ही संस्कृति है। जिस प्रकार
के अनुसार ही चेष्टा, व्यवहार और कर्म आदि होते हैं,
ार संस्कृतिके अनुसार ही राष्ट्रका भी उत्थान-पतन
। राष्ट्ररूपी शरीरमें संस्कृति प्राणस्वरूप है। जिस प्रकार
तेक मानसपिण्डमें स्थूल, सूक्ष्म और कारण—त्रिविध
ते हैं और उसमें स्थूल शरीरको तो देखा जाता है,
सूक्ष्म और कारण शरीरको साधारणतया चर्मचक्षुओंसे
ा जा सकता, परन्तु सभी बातोंमें प्रधान वही होता
रोंका आधारभूत अन्तःकरण ही सारे कर्म करनेमें कारण
उसी प्रकार संस्कृति भी इन आँखोंसे तो देखी नहीं

अब 'हिंदू-संस्कृति' की ओर ध्यान दीजिये।
क्या वस्तु तथा उसका आधार क्या है। वास्तव
संस्कृतिका परिचय उसके इतिहास और साहित्यसे च
अतः यहाँपर भी यह बात स्पष्ट है कि जब श्रुति-स्मृत्यादि
विश्वास एवं निष्ठा करनेवाला 'हिंदू' पद-वाच्य
श्रुति-स्मृत्यादि शास्त्र, रामायण-महाभारतादि इति
उसकी आधारशिला हैं, और उसमें आध्यात्मिक, आ
आधिभौतिक आदि त्रिविध भावोंसे पूर्ण (त्रिविध शरीर
कर्म, उपासना, ज्ञान, अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी सिद्धि प्रद
वाली वर्णाश्रमधर्मादिकी जो शिक्षा-व्यवस्था है, उसके
इन्द्रियोंकी हलचल होती है, उसीका समष्टि सूक्ष्म
व्यापक संस्कार ही 'हिंदू-संस्कृति' है। उसका ज्ञान जिस
होगा, उसके संस्कार भी तदनुसार बनेंगे और संस्कारों
पुनः जो कर्म होगा अथवा जो व्यवहार और चेष्टा हे
उस संस्कृतिका स्थूल रूप होगा। (यद्यपि कर्मसे
तथा संस्कारसे कर्म—ये दोनों बीज-वृक्ष-न्यायसे चलते है
जिस प्रकार सूक्ष्म कारण बीज ही होता है, उसी भाँति
एवं संस्कृति भी मूल कारण होते हैं।) अतः इ
स्पष्टीकरण हो गया कि हिंदू-संस्कृतिकी आधारशिला
शास्त्र तथा श्रुति-स्मृत्यादि ही हैं। हमारे पुराण-इ
उनका स्थूल रूप वर्णित है। उसमें अपने पूर्वजों
गौरवपूर्ण कथाएँ, आदर्श जीवन और ज्वलन्त उदा
पड़े हैं।

हरिश्चन्द्र-जैसे सत्यवक्ता, धर्मराज युधिष्ठिर-जैसे
कपिल, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, जैमिनि तथा वेदव्य
दर्शनशास्त्रनिर्माता, मनु-जैसे राजर्षि, कर्ण-दधीचि-
विक्रमादित्य-मान्धाताके समान महीपति, शिबिके समान
गत-रक्षक, भीष्म-जैसे आजन्म ब्रह्मचारी धर्मज्ञाता,
बली, अर्जुन-जैसे वीर, अष्टावक्र-शुकदेव-सदृश
सुतीक्ष्ण-अम्बरीष-जैसे भक्त, जनकके समान
याज्ञवल्क्य-अरविन्द-जैसे योगी, भगवान् शङ्कर
दार्शनिक महात्मा, तुलाधार-समाधिके समान वैश्य,
रूपमें अवतरित श्रीभगवान् रामचन्द्रजी-से राजा, जि
पर रामराज्यका आदर्श आज भी सहसा सभी लोगों
निकल ही पड़ता है, उनके समान नीति, प्रीति, परमार्थ
यथार्थ ज्ञाता; अनसूया-सीता-सावित्री-सी पतिपरायण

स प्रकार हमारे यहाँके वेद अपौरुषेय हैं तथा शास्त्र
ोषोंसे रहित ज्ञानके भंडार हैं और पुराण-इतिहास
ौरवपूर्ण आदर्श हैं, उसी प्रकार उनकी नींवपर स्थापित
हेंदू-संस्कृति भी संशय तथा भ्रमसे रहित है और
नींव भी बड़ी गहरी है । यही कारण है कि उसका
किसी प्रकार नष्ट नहीं हो सकता । (यद्यपि आजकल
ज्ञात् उसके छिन्न-भिन्न करनेका प्रयास अवश्य किया
है !)

तवमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, लौकिक,
क आदि सभी प्रकारकी उन्नति अपनी हिंदू-संस्कृतिके
ानेसे हो सकती है और उसके लिये शास्त्रों तथा
ा ही सहारा लेना होगा । इसके अतिरिक्त और
कोई साधन ही नहीं है । वेदादि शास्त्र ही हिंदू-
परिचायक हैं और उसके अनुयायी हमारे पूर्वज
आदर्श नायक हैं । इतिहास इसमें साक्षी और प्रमाण

जो लोग विद्या, बुद्धि अथवा समय आदिके
अथवा किन्हीं अन्य कारणोंसे सभी शास्त्रोंको नहीं दे
उनके लिये सर्वशास्त्रमयी निखिलज्ञानराशि
श्रीमद्भगवद्गीता अपनी संस्कृतिके परिचायकरू
श्रीरामचरितमानस आदर्श ज्वलन्त उदाहरणवे
संस्कृतिनिष्ठ एवं कल्याणपात्र बनानेमें पर्याप्त है । य
और हिंदू-संस्कृति' का सूक्ष्म और संक्षिप्त परिचय
इसीके अपनानेसे तथा इसीके अनुसार चलनेसे हम
देशका कल्याण हो सकता है ।

अन्त्यजोंके लिये मन्दिर-प्रवेशका निषेध क्यों ?

(श्रीवर्णाश्रमस्वराज्यसंघद्वारा प्रेषित)

ो पहले हम यह सोचें कि हिंदू ही मूर्तिपूजा क्यों
जब कि अन्य धर्मवाले मूर्तिपूजक नहीं हैं । हिंदुओंके
करनेका कारण यही है कि शास्त्रोंने यह बतलाया
र्तिपूजासे वे भगवत्कृपाके अधिकारी हो सकते हैं ।
मूर्तिपूजा नहीं करते; क्योंकि कुरानने बतलाया
ा करनेसे पाप लगेगा । हमें अपने शास्त्रोंपर विश्वास
पर नहीं; इसलिये हमलोग मूर्तिपूजा करते हैं ।
शास्त्रोंपर विश्वास न हो तो मूर्तिपूजाका कुछ अर्थ
है । शास्त्रोंके कोई वचन हमें यदि गलत मालूम
। हमें यह मान लेना चाहिये कि हमने उन वचनों-
वेक अभिप्राय समझा ही नहीं । पर यदि हम यह
ं कि शास्त्रोंके वे वचन ही गलत हैं और हम सही
कहना चाहिये कि शास्त्रोंपर हमें सच्चा विश्वास ही

शास्त्र मूर्तिकी पूजा करनेको कहते हैं, वे यह भी
ं कि यह पूजा कैसे करनी चाहिये । पूजाके जो
उनमें एक नियम यह भी है कि किस प्रकारके लोगों-
ोंमें प्रवेश न करने देना चाहिये । यदि हम यह सोचें
ातियोंके साथ द्वेष होनेसे उनके लिये ऐसे नियम
ब तो शास्त्रकारोंके सम्बन्धमें हमारी कल्पना बहुत
निश्चित होता है । जो अच्छे कर्म करते हैं, वे
क्षत्रियादि वर्णोंमें उत्पन्न होते हैं और जो बुरे कर्म क
चाण्डालादि योनियोंको प्राप्त होते हैं ।* कोई मनुष्य
करता है, तब उससे उसका शरीर अशुचि हो जात
यह अशुचिता दूसरे जन्ममें भी उसके साथ च
इसलिये ऐसे पुरुषका मन्दिरमें प्रवेश निषिद्ध है ।

मन्दिर-प्रवेश ही ईश्वरकी उपासनाका एकमा
नहीं है । हमें ईश्वरकी उपासना अपने मनमाने ढं
बल्कि शास्त्रोपदिष्ट मार्गसे ही करनी चाहिये ।
जिनका प्रवेश शास्त्रोंने निषिद्ध बतलाया, उनके लिये
शिखरदर्शनकी विधि शास्त्र बतलाते हैं और इससे
फल प्राप्त होता है, जो अंदर मूर्तिकी पूजा-अर्चा क
को मिलता है ।

ईश्वर तो सर्वत्र है । पर उसकी अभिव्यक्ति क
कहीं अधिक है । उदाहरणार्थ—गङ्गाजलमें उसकी
अभिव्यक्ति है, उतनी किसी नालेके पानीमें नहीं । शा
के अनुसार जिन मूर्तियोंकी पूजा होती है, उनमें
आविर्भाव सबसे अधिक होता है । यदि विग्रहकी पू

* रमणीयचरणाः रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मण

' (जिनमें यह नियम भी है कि मन्दिरमें कौन और कौन नहीं) उल्लङ्घन किया जाता है तो देवत्व भी चला जाता है। एक नित्य परिचित वस्तु-दाहरण लीजिये । विद्युत् तो सर्वत्र ही है । पर उसे ां लाना तभी बन सकता है, जब कोई विद्युत्-यन्त्र हो, विद्युत्वाहक तार हों और प्रकाशक बल्ब ई विज्ञानकी रीतिसे यह सारी व्यवस्था की जाय तो ो प्रकाश, गतिशक्ति और संदेश मिल सकते हैं। इस यान्त्रिक व्यवस्थाके नियम तोड़ डाले जायँ तो ीजें उससे नहीं मिल सकतीं । इसी प्रकार मूर्तिपूजा-ामें शास्त्रकी जो विधि है, उसका उल्लङ्घन करनेसे ससे प्रकट न होगा ।

दरोंमें प्रवेश करनेसे अन्त्यजोंको कोई लाभ नहीं ़लटे शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेसे पाप लगता ोंमें जो विधि है, उसे करना ही पुण्य है; जिसका , उसे करना ही पाप है । यदि वे यह समझें कि ये मन्दिर-प्रवेशका निषेध उनके पूर्वजन्मकृत पापोंके और उन पापोंपर उन्हें पश्चात्ताप हो तो इससे दय शुद्ध होंगे और वे पारमार्थिक उन्नतिके अधिकारी ान्दिर-प्रवेशका निषेध इस तरह उनके लिये भी द ही होता है । किसी विषयपर भिन्न-भिन्न लोगोंमें ातभेदका होना अनिवार्य है । पर जब एक मतके य मतके लोगोंपर जबर्दस्ती अपना मत लादनेका ़ते हैं, तब शान्ति भंग होती है। सनातनियोंका सदासे ब्रत मार्ग है, एक विशिष्ट ढंगसे वे ईश्वरोपासना ़ आये हैं । उनके विचारमें शास्त्र प्रमादरहित हैं । श्रीकृष्णने भी **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-ौ'** (गीता १६।२४) 'कार्य-अकार्यके निर्णयमें शास्त्र : लिये प्रमाण है' यह कहकर उन्हींके पक्षका मण्डन । 'शास्त्र' हैं—वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, ा, याज्ञवल्क्य-संहिता आदि । गीताके इस श्लोकका ़ते हुए श्रीमत् शङ्कराचार्य और श्रीमत् रामानुजाचार्य ो 'शास्त्र' शब्दका यही अर्थ बताया है ।

्याकर्तव्यके निर्णयमें हम सदा अपनी बुद्धिका ही हीं कर सकते । मनुष्य प्रमादशील है, उससे भूलें ाती हैं । महात्मा गांधी-जैसे मनुष्योंसे भी भूलें

ने बनाये । वेद किसी मनुष्यके लिखे नहीं हैं, अपौ इस कथनकी पुष्टिमें श्रीमत् शङ्कराचार्यने बृह उपनिषद्से यह वचन दिया है—

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः ।

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इ भूत (परमपुरुष) के निःश्वास हैं ।'

महाभारत महर्षि वेदव्यासने रचा, जिसमें स्त्रि और ऐसे ब्राह्मण जिन्होंने वेदोंका अध्ययन नहीं ि वेदार्थको जानें । मनुसंहितामें वैदिक विधि-निषेधों है, मनुके अपनी बुद्धिके निर्णय नहीं । मनुसंहितामें कि मनुष्यका परम ध्येय उस आत्मस्वरूपकी उप जो सब प्राणियोंके अंदर है और जिसके अंदर स हैं* (मनु० १२।९१)। ऐसे पुरुषकी दृष्टि संकुचित सम्भव नहीं है । यदि उनके कुछ वचन कठोर और युक्त मालूम होते हैं तो इसका कारण यह है कि ह वास्तविक अभिप्राय समझ नहीं सके हैं । महाभारत संहिताके कई वचन उद्धृत किये हैं और मनुसंहिताके रहित कहा है । मनुसंहिताकी रचना भगवद्गीतासे ब हुई है, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं किया जा सक गीता (१६ । २४) में जहाँ 'शास्त्र'की बात आयी शास्त्रसे 'मनुस्मृति' भी अभिप्रेत है।

अस्पृश्यताके नियम द्वेषमूलक नहीं हैं । मनुस्मृ यह कहा है कि चाण्डालका स्पर्श होनेपर स्नान करना वहीं उसीके साथ ही यह भी कहा है कि ऋतुवती स्त्रीका (वह अपनी मा, बहिन, पत्नी—कोई भी है) स्पर्श होनेपर स्नान करना चाहिये ।† (मनु० ५ शरीरको शुद्ध रखनेके लिये यह विधि है ।

मनुके सब वचनोंपर वेदोंकी मुहर लगी है औ भगवान्‌की तरह ही स्तुति की गयी है । श्रीमत् श और श्रीमत् रामानुजाचार्यने ब्रह्मसूत्रके अपने भाष्योंमें की श्रेष्ठता बतलाते हुए यह वेदवचन उद्धृत कि **'यद्वै किं च मनुरवदत् तद् भेषजम्'** अर्थात् 'मनुने कहा है, वह औषध है ।'

---

* सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥

ोंने उत्तमसे अधमतक सब वर्णोंकी वृत्तियाँ निश्चित हैं। किसी वर्णको यह अधिकार नहीं है कि वह रे वर्णकी वृत्ति छीन ले। यदि उच्च वर्णोंने अन्त्यजों- ा होता तो अमेरिकाके रेड इंडियनों और आस्ट्रेलिया- ाटोंकी तरह अन्त्यजोंका कुलक्षय हुआ होता। ं आज जो करोड़ों अन्त्यज हैं, ये न होते यदि ोंसे वे 'दलित' या 'पीड़ित' किये गये होते।

भारतमें धर्मव्याधकी जो कथा है, उससे पता चलता ीन समयमें हरिजन स्वकर्मका पालन और शास्त्रोंकी ा अनुसरणकर किस प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्रमें परम सकते थे। धर्मव्याध इतने ज्ञानसम्पन्न थे कि णको भी धर्मतत्त्व जाननेके लिये उनके पास जानेमें हीं होता था। किसी हरिजनने शास्त्रमर्यादाका र मन्दिर-प्रवेश करके वैसी उन्नति लाभ की हो, कोई दृष्टान्त अभीतक नहीं मिला है।

ष्ण, श्रीराम, श्रीवेदव्यास, श्रीवाल्मीकि, श्री- , श्रीरामानुजाचार्य, श्रीचैतन्य, श्रीतुलसीदास, ग परमहंस आदि सभीने धार्मिक विषयोंमें सर्वोपरि ो प्रमाण माना है। शास्त्र न माननेवालोंको हिंदू ा जा सकता। बाइबलको न माननेवाले कहलानेके अधिकारी नहीं। कुरानको न मुसल्मान नहीं। उसी प्रकार जो शास्त्रोंको नहीं हिंदू नहीं कहला सकते। इस प्रकार जो हिंदू नहीं हिंदुओंकी पूजा-पद्धतिमें दखल देनेका क्या है?

ृश्यताके विषयमें मनुसंहिताके एक वचनका हम र आये हैं। मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें भृगुसंहिता- देश है कि 'चाण्डाल मूर्तिको स्पर्श नहीं कर सकता, में प्रवेश कर सकता है, न पूजा होती हो ऐसी मूर्तिके दर्शन ही कर सकता है।'

सम्बन्धमें शास्त्रोंका निर्देश स्पष्ट है। सन्देहके लिये काश नहीं है। वर्णाश्रमस्वराज्यसंघकी ओरसे इस मीमांसाके लिये सार्वजनिक सभाएँ की गयीं, जिनमें पण्डितोंको बुलाया गया था। अब भी शास्त्रार्थ- ाईकोर्टके न्यायाधीशोंकी अध्यक्षतामें ऐसी सभाएँ कती हैं।

स्थापिका सभाओंके सदस्योंमें बहुत ही कम ऐसे लोग ोंने सतरके समीप बैठकर विधिपूर्वक वेदों और अन्य शास्त्रोंका अध्ययन किया हो। जिन्होंने इ शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया, उन्हें क्या अधिका हिंदुओंकी उपासना-पद्धति कैसी हो और कैसी न विषयमें अपना वोट दें? यह काम तो उन विद्व जिन्होंने विधिपूर्वक शास्त्राध्ययन किया है। हिंदुअ भी सदाचारसम्पन्न विद्वान्, कांचीकामकोटिपीठ, पुरी, द्वारिका एवं ज्योतिर्मठके शङ्कराचार्य, काशी श्रीकरपात्रीजी महाराज-जैसे सत्पुरुष विद्यमान हैं। उ इस विषयमें क्यों नहीं लिया जाता?

ब्रिटिश पार्लमेंटमें धर्मविषयक कोई बिल न किया जा सकता, जबतक कि पादरियोंकी कमेटी स न ले और यह न कह दे कि ईसाई-धर्मके मौलिक का इससे कोई विरोध नहीं है। ऐसी ही एक कमे वर्षके पण्डितोंकी हो, यह और भी अधिक है। कारण—

(१) ब्रिटिश पार्लमेंटमें गैर-ईसाई सदस्य कम हैं। पर भारतकी व्यवस्थापिका सभाओंमें अ सैकड़ावारी उससे बहुत अधिक है।

(२) हिंदुओंके उपनिषद्, धर्मशास्त्रादि शा ईसाइयोंके धार्मिक साहित्यकी अपेक्षा बहुत अधि और गूढ़ हैं।

(३) आधुनिक हिंदुओंको विदेशी शिक्षा जिससे वे अपनी धार्मिक परम्परासे विच्छिन्न हो शास्त्रोंके वास्तविक अभिप्रायको समझनेमें उनको यही अधिक सम्भव है।

यदि ऐसे आधुनिक सुधारक यह समझें कि स का पक्ष गलत है और ये सब सदाचारसम्पन्न आचार्य और सत्पुरुष गलती करते हैं तो उचित य वे जिस ढंगकी मूर्ति-पूजा ठीक समझते हों, वही ढं लिये स्वीकार करें। वे चाहें तो अपने अलग मन् सकते हैं और अन्त्यजोंके साथ बैठकर पूजा कर स यदि अन्त्यज अपने लिये अलग मन्दिर चाहते हों तो अलग मन्दिर बनवानेमें उनकी सहायता कर स ऐसे बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें कि ने शास्त्रोंकी आज्ञाओंका अनुसरणकर परम अ उन्नति की है। महाभारतके धर्मव्याधकी बात हम आये हैं। चिदम्बरम्‌के नन्द, महाराष्ट्रके चोखामेला,

त भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें अंत्यज जातियोंमेंसे हैं। मन्दिर-प्रवेशके निषेधने उनकी आध्यात्मिक कोई बाधा नहीं डाली।

ातनियोंकी जो पूजा-पद्धति है, उसमें हमारे सुधारकोंको तक्षेप न करना चाहिये। ऐसी कोई नयी बात न चाहिये, जो सनातनियोंकी दृष्टिमें मन्दिरोंको भ्रष्ट ो है। यह कहना बिल्कुल बेकार है कि 'सनातनी क प्रवेशसे मन्दिर भ्रष्ट होते हैं, यह विचार छोड़ दें।' है कि वे ऐसा समझते हैं। बहुसंख्यकोंके वोटसे ीं होता। फिर बहुसंख्यकोंको यह अधिकार नहीं शास्त्रीय पद्धतिसे पूजा करनेवाले अल्पसंख्यकोंका त अधिकार वे छीन लें।

जी कानूनके इतिहासमें यह बात मिलती है कि एक जिसमें रोमन कैथलिक संप्रदायके लोग बसते थे। क गिरजाघर बना। रोमन कैथलिक ढंगसे वहाँ चलती थी। पीछे उस नगरके अधिवासियोंमेंसे प्रोटेस्टैंट संप्रदाय स्वीकार कर लिया। इन लोगोंने ोलन उठाया कि गिरजाघरमें अब प्रोटेस्टैंट संप्रदायके उपासना होनी चाहिये; क्योंकि प्रोटेस्टैंटोंका बहुमत श कोर्टके सामने आया। कोर्टने फैसला दिया कि एक भी रोमन कैथलिक ऐसा रहेगा, जो कहे कि थलिक ढंगसे ही उपासना होनी चाहिये, तबतक गिरजाघरकी उपासना-पद्धतिमें कोई परिवर्तन नह जा सकता।

अबतक जो परिपाटी चली आती है, उससे यही होता है कि इन प्राचीन मन्दिरोंके संस्थापकों और घ उनकी सहायता करनेवालोंका यही उद्देश्य था कि इन में शास्त्रकी रीतिसे ही पूजा-अर्चा हो और जिन प्रवेश निषिद्ध हो, उन्हें इनमें प्रवेश न करने दिय मन्दिरोंके प्रतिष्ठापकों और उनके सहायकोंकी इच्छाव कोई काम करनेका ट्रस्टियोंको कोई अधिकार न संस्थापकों और उनके सहायकोंकी इच्छाके विरुद्ध या जनताके बहुसंख्यकोंकी इच्छा चलने नहीं दी जा

अंत्यजोंमेंसे अधिकांश लोग मन्दिर-प्रवेश नहीं बहुतोंने वैसा स्पष्ट कहा भी है। वे चाहते हैं, रा अधिकार और आर्थिक सम्पन्नता। सनातनियोंको इस आपत्ति नहीं है।

मन्दिर-प्रवेशसे मन्दिरोंकी क्या गति होगी, हमें समझना चाहिये। जब मन्दिरोंमें अंत्यज घुसते उन मन्दिरोंको सनातनी, सुधारक और अंत्यज—ती छोड़ देते हैं। सनातनी इसलिये छोड़ते हैं कि मन्दि हो गये। सुधारकों और अंत्यजोंको मन्दिरोंसे कुछ ही नहीं है, वे क्यों जाने लगे?





हिंदुओंका भाग्य

(रचयिता—श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त 'कमलेश')

गौतम, जाबालि, व्यास, वामदेव, वाल्मीकि,
कपिल, कणाद-से महान ब्रह्मज्ञानी थे।
अर्जुन-से वीर, अम्बरीषके समान भक्त,
हरिश्चन्द्र, कर्णके समान यहाँ दानी थे॥
नारद-से संत, सती सीता-अनुसूया-सम,
सत्य-सदाचार-पूर्ण एक-एक प्रानी थे।
ऐसा था हिंदुओंके भाग्यका अतीत काल,
सुयश यहाँके देवलोककी कहानी थे॥



स्पर्शास्पर्श-विवेक

शुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेक जो आर्य-
ज्ञान अङ्ग है, उसके विषयमें वर्तमान राजनैतिक
ाास्त्रीय ज्ञान न होनेके कारण अनेक शङ्काओं और
सामना धार्मिक जगत्‌को करना पड़ रहा है। दर्शन-
जाननेसे ही लोगोंको ऐसी बातोंपर सन्देह हो सकता है।
ार्य जातिका शुद्धाशुद्ध-विवेक तथा स्पर्शास्पर्श-विवेक
नेक भित्तिपर स्थित है। शरीरमें पाँच कोश हैं, जिनसे
ा रहता है। वे अन्नमय कोष, प्राणमय कोष,
ोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष कहलाते हैं।
को साधारण रीतिसे समझनेके लिये यह इङ्गित किया
के अन्नके सहारे जो घटता-बढ़ता है, उसे अन्नमय
ा हैं। अन्नमय कोषका जो संचालन करता है, उसे
ोष कहते हैं; प्राणमय कोषको जो चलाता है और जो
ा व्यवस्थित रहता है, उसे मनोमय कोष कहते हैं।
ा केन्द्र है। मनको जो सदसद्विचारके द्वारा
न करके चलाता है, वह विज्ञानमय कोष कहलाता
द्धतत्त्वके परे आत्माकी स्थिति शास्त्रने मानी है—
बुद्धेः परतस्तु सः' (गीता ३।४२) और परमात्मासे
ो अलग करनेवाला द्वैतभावोत्पादक पञ्चम आनन्दमय
लाता है। इन पाँचों कोषोंको मलिन करनेके स्वतन्त्र-
ाँच कारण हैं। जिन अपवित्र स्थूल पदार्थोंके द्वारा
ोष अपवित्र होता है, उनको मल कहते हैं। प्राणमय
मलिन करनेवाला विकार कहलाता है। मनोमय कोषमें
ता उत्पन्न करता है, उसे विक्षेप कहते हैं।
य कोषमें जो अपवित्रता उत्पन्न करता है, उसे आवरण
। आनन्दमय कोषमें जो अपवित्रता उत्पन्न करता
अस्मिता कहते हैं। अस्मिता आत्मस्वरूपको ढकती है
तनी ही अस्मिताकी अभिवृद्धि होती है, उतना ही
ढ़ता जाता है। इन पाँचों प्रकारके कोषोंमें (शरीरोंमें)
ारकी मलिनता न बढ़ने पाये, इसीका नाम शुद्धाशुद्ध-
था स्पर्शास्पर्श-विवेक है। इस बातको मीमांसाशास्त्रने
रह सिद्ध किया है। इस दार्शनिक रहस्यको विशेष
नेके लिये कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

धोनेसे तथा सचैल (वस्त्रसहित) स्नानादि करनेसे
कोषकी अपवित्रता दूर होती है। यह स्पष्ट ही है कि
आदिके स्पर्शसे वह मलिन होता है। जब मृत देहसे प्राणम
अन्य कोषोंके साथ लोकान्तरमें चला जाता है, तब स्वत
प्राणमय कोषका अभाव होनेसे शवस्पर्शकारीके प्राण खिं
हैं। इसीलिये शवस्पर्शीके लिये स्नान, अग्नि-सुवर्ण
स्पर्श करके अपने प्राणमय कोषको पवित्र करनेकी
शास्त्रोंमें वर्णित है। देवमन्दिरस्थ मूर्ति आदिमें जो पीठ
है, वह प्राणमय कोषकी क्रियाका ही परिणाम है। आ
उसी पीठमें व्यापक दैवी शक्तिकी पूजा किया करते
जहाँ चेतन शक्तिका विकास होता है, उसीको पीठ कह
जिस पीठमें जैसी संस्कारपरम्परा रहती है, विरुद्ध
द्वारा उसको नष्ट करनेसे पीठाभिमानी देवता अप्रसन्न
है। मनोमय कोषके मलिन होनेका उदाहरण सूर्य-चन्द्र
अशौचादि समझना उचित है। सूर्य और चन्द्रकी
प्रभाव जो मनोमय कोषपर रहता है, उसमें ग्रहणसे बा
है; इसलिये उसमें सामयिक मलिनता आती है। स्नान
जपादिद्वारा उस मलिनताको दूर किया जाता है। अशौ
द्वारा मनोमय कोषमें जो अपवित्रता होती है, वह श्राद्ध
द्वारा दूर होती है। विज्ञानमय कोषकी अपवित्रता कु
से होती है। इसको दूर करनेसे तथा सत्संगति
विज्ञानमय कोष पवित्र होता है। इसी कारण
साधुसंगकी बड़ी महिमा है और अस्मिता जो जीव
मूल कारण है, उसकी वृद्धि होनेसे आनन्दमय
अपवित्रता बढ़ती है। निष्काम कर्म, ईश्वर तथा
अहैतुकी भक्ति और ज्ञानके द्वारा आनन्दमय
अपवित्रता दूर होती है। ऐसे शुद्धाशुद्ध-विवेक तथा स्पर्
विवेककी महिमा न समझकर अज्ञलोग स्वयं विप
होते हैं तथा समाजको भी विपद्ग्रस्त करते हैं। आ
इन थोड़े उदाहरणोंसे विज्ञलोग सचेत होकर
अमङ्गलका कारण न बनेंगे, और दैवी जगत्‌को
करके अपना अमङ्गल नहीं करेंगे। मनमाने निरंकुश
काम करनेसे विपत्ति अवश्य भोगनी पड़ती है औ
समझकर काम करनेसे सब ओर मङ्गल होता है।



वर्णाश्रमकी ऐतिहासिकता

(लेखक—श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा)

हासके अनुसार मेगास्थिनिस् पश्चिम एशियाके ग्रीक-
ल्यूकसके राजदूत थे। वे ईसाके पूर्व चतुर्थ शताब्दी-
नागमें (आनुमानिक ३०२) मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त-
भामें आये थे। उन्होंने तत्कालीन भारतका एक
ौर विशद विवरण लिखा था; परंतु दुःखका विषय
कालक्रमसे उसका अधिकांश लुप्त हो गया है।
ओडोरस (Strabo, Diodorus) इत्यादि विभिन्न
ग्रन्थोंमें उद्धृत उसके अंशमात्र ही आधुनिक
पलब्ध हैं।

-जहाँ मेगास्थिनिस् सुनी हुई बातोंपर निर्भर रहे,
कुछ त्रुटियाँ रहनेपर भी समष्टिरूपसे उनका वर्णन
त हैं। उदाहरणस्वरूप खेदामें हाथी पकड़नेके
उनका वर्णन अत्यन्त रोचक है।

हासिक दृष्टिसे उनके विवरणका मूल्य अपरिमेय
ा कारण यह है कि भारतवर्षके सम्बन्धमें उनके
भी विदेशीका विश्वासयोग्य लेख कम मिलता है।

ास्थिनिस्के लेखमें है कि भारतमें सात जातियाँ
र्शनिक, योद्धा, शिल्पी, कृषक, पशुपालक, सदस्य
दर्शक। इस वर्णनमें अवश्य ही भूल है। कहना
ा कि चन्द्रगुप्तके समयमें भारतवासी (कुछ बौद्धोंको
) सनातन वैदिक-धर्मावलम्बी थे।

हासके वर्तमान पाठ्य-ग्रन्थोंमें उपर्युक्त सात जातियों-
उल्लेख किया जाता है; किंतु आश्चर्यका विषय
इसके बाद मेगास्थिनिस्ने जो कुछ लिखा,
ानिक भी विचार नहीं किया जाता। इसका
यह है कि पाश्चात्त्य विद्वान् एवं उनके
यह बताना चाहते हैं कि भारतमें प्राचीन कालमें
वर्ण अथवा जातिभेद नहीं था; यदि जातिभेद था
ा। और विभिन्न जातियोंके बीच विवाहमें कोई बाधा
। इस प्रकारके भ्रान्त विचार कई इतिहासों तथा
थोंमें प्रकट किये गये हैं।

ु मेगास्थिनिस्का कहना है कि 'किसीको न तो
ातिके बाहर विवाह करनेकी और न अपनी वृत्तिको
अन्य वृत्ति ग्रहण करनेकी अनुमति है। उदाहरणार्थ—
योद्धा कृषक नहीं बन सकता और शिल्पी दार्श
बन सकता।'

वे अन्यत्र लिखते हैं कि 'अपनी जातिके बाहर वि
विवाहका अनुमोदन नहीं किया जाता अथवा किसी
अपनी वृत्ति किंवा व्यवसायका परिवर्तन नहीं करने दि
अथवा कोई एकाधिक वृत्तिको नहीं ले सकता
दार्शनिकोंके लिये ही इसका व्यतिक्रम होता है।
धार्मिक हैं, इसलिये वे वैशिष्ट्य भोग करते हैं।'

'इस देशकी रीतिके अनुसार अन्तर्जातीय विवा
है। उदाहरणार्थ—कृषक शिल्पी जातिकी किसी स्त्री
नहीं कर सकता। प्रथानुसार किसी मनुष्यको दो
वृत्तियाँ करना मना है। कोई एक जातिसे दूसरी जाति
नहीं कर सकता। यथा—यदि कोई पशुपालक है
नहीं बन सकता। सभी जातियोंके लोग त्यागी बन
कारण, त्यागीका जीवन सहज नहीं वरं सर्वापेक्षा कठोर

उपर्युक्त लेखसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है वि
२२००-२३०० वर्ष पूर्व भारतमें वर्ण अथवा जाति
थी और कर्म भी जन्मानुसार ही था। यह निर्विव

*** "No one is allowed to marry out of . caste, or to exchange one profession or tr. another, or to follow more than one b An exception is made in favour of the Philo who for his virtue is allowed this pri (McCrindle: *Megasthenes*, pp. 85-86)**

"No one is allowed to marry out of h caste or to exercise any calling or art exc own: for instance, a soldier cannot bec husbandman, or an artisan a philosopher." (

"The custom of the country prohibits marriage between the castes: for instan husbandman cannot take a wife from the caste, nor the artisan from the husbandma Custom also prohibits anyone from exercisi trades, or from changing from one ca another. One cannot, for instance, bec husbandman if he is a herdsman, or bec herdsman if he is an artisan. It is pe that the Sophist only be from any caste: life of the Sophist is not an easy one, l hardest of all." (P. 218)

में समाज मनुके विधानसे शासित होता था। यह
य वैदेशिकका लिखा हुआ निरपेक्ष प्राचीनतम
क प्रमाण है। इसको किसी भी प्रकारसे उड़ा देना
हीं है।

लोगोंमेंसे अधिकांशका ज्ञान नाटक अथवा उपन्यासोंमें
है। जिन लोगोंने 'चन्द्रगुप्त' नाटक या छायाचित्र
, वे कहेंगे कि 'क्यों, चन्द्रगुप्त मौर्यके साथ तो
सेल्यूकसकी कन्या हेलेनका विवाह हुआ था ?'
लन' सम्पूर्ण कविकल्पना है। इतिहासमें सेल्यूकसकी
कन्याका विवरण नहीं है, जिससे चन्द्रगुप्तका विवाह
था। वैदिक समाजकी कठोर नीति प्राचीन युगमें
नहीं की जा सकती थी।*

स्थिनिस्ने तत्कालीन वर्णाश्रमधर्मके जो चित्र अङ्कित
वे चित्ताकर्षक हैं। स्थानाभावसे संक्षिप्तरूपसे ही
लोचना की जाती है।

ब्राह्मण और श्रमण

स्थिनिस्ने दार्शनिकोंके ब्राह्मण और श्रमण—
ाग किये हैं।

) ब्राह्मण—गर्भसे ही ब्राह्मणोंके मन्त्र-संस्कार
होते हैं। जन्मके बाद क्रमानुसार एक गुरुके बाद
र भी गुणवान् गुरुके समीप शिक्षा होती रहती है।
ग नगरोंके बाहर तपोवनमें बहुत सरल जीवन यापन
। वे कुश अथवा अजिनपर शयन करते हैं; मत्स्य,
आमिष-आहार वर्जित है। ब्रह्मचर्यका पालन
गम्भीर तत्त्वोंपर उपदेश सुनते और शिक्षा देते हैं।
३७ वर्ष व्यतीत करनेके उपरान्त ब्राह्मण गृहस्थाश्रम-
करते हैं; तबसे वे सूक्ष्म वस्त्र परिधान करते तथा
स्वर्णालंकार धारण करते हैं। उष्णवीर्य अथवा
देया हुआ खाद्य निषिद्ध है। एकाधिक स्त्रीसे विवाह
है। भारतमें दास-प्रथा नहीं है, इसलिये अधिक
ा प्रयोजन है।

ह्मणोंकी पद-मर्यादा सर्वोच्च है, किंतु जातिके

'There seems however to be no room in his
cos') family circle, as we otherwise know
any relationship of this kind. × × What
ied is a *convention*, a *jus connubii* between
o royal families. In the land of caste, a
onnubii between the two peoples is
:able." (Cambridge History, p. 431).

हिसाबसे उनकी जनसंख्या सबसे अल्प है; जो यज्ञ अ
धर्म-कर्म करना चाहता है, वह उनको नियुक्त क

वर्षके प्रारम्भमें तोरणद्वारके सामने राजा एक मह
ब्राह्मणोंको सम्मिलित करते हैं। इस वर्ष यदि किसी
द्वारा कामके तत्त्वपर कुछ लिखा होता है अथवा खा
अथवा पालतू पशुओंकी उन्नतिके विषयपर
उपायका अनुसन्धान किया गया होता है या जनर
उपकारकी किसी वस्तुका ज्ञान प्राप्त हुआ होत
जनसाधारणके सामने सभामें उसकी घोषणा की जात

ब्राह्मणगण मृत्युके विषयपर आलोचना करते
भी एक दूसरे जन्म-सरीखी वस्तु समझी जाती है।
को माया समझते हैं। मेगास्थिनिस्ने जन्म,
अमरता, पाप-पुण्यके फल प्रभृति तत्त्वोंका वि
वर्णन किया है।

ब्राह्मणगण तपस्या करते और ब्रह्मज्योतिवे
करते हैं।

वे समय-समयपर चितारोहणसे प्राणत्याग कर
स्फाइनेस (Sphines) नामक एक ब्राह्मण त
माकिदनीय वाहिनीके साथ गया था। ग्रीक
उसका नाम कलानस् (Kalanos) रक्खा। (माल
कि वह 'कल्याण' कहकर आशीर्वाद देता होग
जितेन्द्रिय नहीं था एवं ग्रीकोंके साथ भोजनादि क
इसलिये उसके देशवासियोंने उसको धिक्कार दिया।
देशमें बीमार पड़ा और उसने ग्रीकसेनाके सामने उ
चितापर चढ़कर प्राणत्याग कर दिया, किंतु जल
उसके किसी भी यन्त्रणाका चिह्न नहीं दिखायी
मालूम होता है कि वह चितापर आसन और समाधि
बैठा था।*

उपर्युक्त घटनासे यह स्पष्ट होता है कि आहा
का नियम भारतमें उस समय भी बड़ा कठोर था।
यह कहा जाता है कि 'इस समय हमारा धर्म केवल चौ

*"Suddenly in Persia he (Kalanos) an
his resolution to live no longer. × × × In
all the army he ascended the pyre and
the due posture. × × × As the flames moun
wrapped the figure of the sage, the onlool
it still motionless. This was the way i
Kalanos chose to take leave of the Yavan
(Cambridge History, p. 381) (Arrian
Strabo XV. (

ुसा है। कभी ऐसा नहीं था, सबके साथ खानपान था। आजकल इस जातिभेद और छूआछूतके हमारा पतन हुआ है।' किंतु मेगास्थिनिस्के यह प्रमाणित होता है कि उस समय भी हर किसीके ा-पान वर्जित था और भोजनमें पवित्रताकी रक्षाकी व्यवस्था थी।

ास्थिनिस्का कहना है 'और जो सब कार्य किये उनका समर्थन नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ— ारतीयगण) सदा ही अकेले आहार करते हैं। ा लिये कोई निर्दिष्ट समय नहीं है।'

रतीय जब भोजन करने बैठते हैं, तब प्रत्येकके ्क तिपायी चौकी रक्खी जाती है। उसपर एक रक्खा जाता है, जिसमें पहले सिद्ध चावल परोसे (चावलोंको जौकी भाँति पकाया जाता है)। तदनन्तर प्रथासे बनायी हुई अन्यान्य खाद्य वस्तुएँ परोसी । *

ापात्रके उल्लेखसे प्रतीत होता है कि यह वर्णन राजा म्पन्न लोगोंके सम्बन्धमें है; किंतु तिपायी चौकी अलग- ़क्खी जाती थी, इस बातपर लक्ष्य करना चाहिये। ले भोजन करते थे। एक ही आसनपर एक कर किया गया भोजन उच्छिष्ट माना जाता था। शमें सहभोजकी प्रथा थी।

ाकल भी महाराष्ट्रादि प्रान्तोंमें आसनके सामने ात्र रखकर भोजन करनेका नियम है।

ावान्ने गीतामें कहा है—**'उच्छिष्टमपि चामेध्यं तामसप्रियम् ॥'** महाभारतमें भी जगह-जगह सम्बन्धमें कठोर नियमोंका उल्लेख है—

शूद्रस्य तु कुलं हन्ति वैश्यस्य पशुबान्धवान्
क्षत्रियस्य श्रियं हन्ति ब्राह्मणस्य सुवर्चसम्
तथोच्छिष्टमथान्योन्यं संप्राशेन्नात्र संशय
(महा० अनु० १३६। २

शूद्रके शूद्रके साथ एक पात्रमें भोजन करनेसे उसका वैश्यके वैश्यके साथ एक पात्रमें भोजन करनेसे उसके बान्धवका, क्षत्रियके क्षत्रियके साथ एक पात्रमें भोजन क का नाश एवं ब्राह्मणके ब्राह्मणके साथ एक पात्रमें भोज उनके तेजका नाश होता है। अतएव एक दूसरे खाना यानी कई लोगोंका एक पात्रमें भोजन करना अवाञ्छनीय है।' आजकल तो एक-दूसरेका जूठा लोग गौरव समझते हैं!

९०० वर्षके बाद आनेवाले प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वे लिखा है कि 'आहारके पूर्व सब लोग स्नान करते हैं भोजनावशिष्ट जूठे पदार्थोंका कभी भी व्यवहार नहीं एकके पात्र दूसरेको भोजनके समय नहीं दिये जाते।'

(२) श्रमण—('श्रमण' का अर्थ यहाँ बौद्ध नहीं, संन्यासी है) श्रमणोंमें हैलोबिये (Hylobic हैं। वे वनमें निवास करते हैं, कन्द-मूल-फल ख वल्कल पहनते और अञ्जलिसे जलपान करते हैं। वे ब्रह्म मद्यपान नहीं करते। राजालोग दूतोंके द्वारा इनसे एवं परामर्श करते हैं। वे इनकी सहायतासे भ आराधना करते और कृपाभिक्षा माँगते हैं।

सिकन्दरने पंजाबमें बहुत-से योगी पुरुषोंको दे मन्दनीस (Mandanes) नामक एक योगी बड़े ि थे। एक बार सिकन्दरने उनको अपने पास बुलाया, पर उसके आवाहनको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मृत्यु या दण्ड—किसीमें भी उनका अनुराग या विरा और न उन्हें सिकन्दरसे कोई भय ही है। ि उनकी बड़ी प्रशंसा की। ओनसीक्रिटस्ने भी तक्ष निकट योगियोंके दर्शन किये थे।*

चिकित्सकोंका स्थान इनके बाद ही है। वे अ रूपसे जीवन यापन करते हैं। उनका आहार चा जौ है। बिना माँगे वह अपरिचितरूपसे उनको मिल

But other things they do, which one approve: for instance, that they eat alone , and that thay have no fixed hours neals are to be taken by all in common.× × ×"
(pp. 68-69)

hen the Indians are at supper, a table is before each person, this being like a There is placed upon it a golden bowl, ich they first put rice, boiled as they would rley, and then they add many dainties d according to Indian recipes." (McCrindle: *India, Megasthenes,* p. 72)

*** "Onesicritus found fifteen ascetics so miles from the city (Texila) sitting nak motionless in the sun so burning that one not walk over the stones with bare feet."**
(Cambridge History of India,

ाधिके प्रभावसे वन्ध्यत्व-निवारण और इच्छानुरूप कन्याका निर्माण गर्भमें करा सकते हैं; किंतु वे ी अपेक्षा आहारके संयम और पथ्यसे ही अधिक मोचन करते हैं। मलहम और प्रलेपकी बहुत ही ओषधियाँ उनके पास हैं।

तवासी सर्पदंशन आरोग्य कर सकते हैं। सिकन्दरके साँपके कई ओझोंको एकत्र किया गया था। याँ भी शास्त्रचर्चा करती हैं और ब्रह्मचारिणी होकर ें निवास करती हैं।

क्षत्रिय और राजागण

त्रय एवं राजाओंके विषयमें मेगास्थिनिस्ने लिखा है के लिये दिवानिद्राका नियम* नहीं है।' (पृ. ७०) ा दिनभर न्यायसभामें रहते हैं। वहाँका कार्यक्रम ा बंद नहीं रहता। यहाँतक कि जब काष्ठके दंड डर) से राजाका गात्र-मर्दन किया जाता है, उस समय ार्य बंद नहीं रहता। इधर चार सेवक मर्दनका े रहते हैं और राजा अभियोग सुनते रहते हैं। (इससे अनुमान होता है कि संभवतः चन्द्रगुप्त त्रय थे; कई ऐतिहासिकोंका यही मत है) अथवा ंके लिये वे महलके बाहर जाया करते हैं और इसके केवल मृगयाके लिये ही बाहर जाते हैं।

विवरणके साथ १८०० वर्षोंके बाद विजयनगरके म्राट् कृष्णदेव रायकी दिनचर्या तुलनीय है।

ास्थिनिस्का कहना है कि 'भारतीयगण इसके और कई नियमोंका अनुसरण करते हैं। इसलिये ंक्षका निवारण होता है। अन्य देशोंके लोग युद्ध-साधारणतया भूमि और खेतोंको उजाड़ देते हैं, खेतीके योग्य नहीं रहने देते। परंतु यहाँ किसान कर्षण करता है। इस कारण यहाँके निवासी उनपर द्रव करना अनुचित समझते हैं। पड़ोसमें युद्ध हता है, परंतु किसान बिना किसी बाधा-विपत्तिके ाम करते रहते हैं। दोनों पक्षोंके सैनिक परस्पर करते हुए भी खेतीमें लगे हुए लोगोंको किसी ी सताना नहीं चाहते; इसके अतिरिक्त वे ्क देशमें कभी आग नहीं लगाते और न वृक्षोंको ा हैं।'

* दिवानिद्रा सभीके लिये मना थी।

कृषकवर्ग

कृषक द्वितीय जाति है। समाजमें इन्हींकी अ अधिक है। इनका स्वभाव अति शान्त और भद्र है युद्धवृत्तिसे छुटकारा दिया जाता है और ये नि अपनी जमीनमें खेती करते हैं। वे कभी नगरमें नह इस कारण कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक एक ही स्थानमें सेना तो युद्धसज्जासे सज्जित होकर युद्ध कर रही है और उसीके निकट अन्य ल निर्भय होकर अपनी रक्षाका भार सेनाके ऊपर खेती, खुदाई आदि कार्य कर रहे हैं।' (पृ० ८३

उस समय खेतीका अधिकांश कार्य शूद्रोंके ह था। यह लक्ष्यका विषय है कि उनको युद्ध नह पड़ता था। इधर तो यह हाल था और उधर ग्री युद्धमें किसी देशपर विजय प्राप्त करनेपर उस देश दुर्दशा करती थी, इसका वर्णन प्रसिद्ध अमेरिकन विल डुरेन्टकी भाषामें पढ़िये—'(ग्रीस विजय किये हुए नगरोंको लूटना, घायलोंकी हत्य जो लोग शुल्क नहीं दे सकते, ऐसे बन्दियोंको (योद्धा हों या असामरिक हों) गुलामोंमें परिण सारे घरों, फलोंके वृक्षों और तमाम खेतीको जला समस्त पालतू पशुओंका वध और अगली खेतीके ब विध्वंस कर देना ग्रीस देशके अन्तर्वर्ती युद्धोंमें नियमित व्यापार था।'*

यह कहना युक्तियुक्त है कि कूटनीतिज्ञ और अ में प्रवृत्त विदेशियोंके साथ धर्मयुद्ध करनेसे ही वैदि बार-बार पराजित हुई है। शत्रुओंकी घुड़सवार सेनाने या बगलसे पैदल सेनापर भीषण आक्रमण करके व्यूहको तोड़ दिया; किंतु पिछले दिनों पहलेतक भी हिंदुओंने सम्मुख युद्धका त्याग नहीं किया। उ कूटनीतिकी चालबाजीमें हमलोग भूल ही करते जा रहे

* 'It is a regular matter, even in civil w sack the conquered city, to finish o wounded, to slaughter or enslave all unar persons and all captured non-combatants, to down the houses, the fruit trees, and the to exterminate the live stock, and to destr seed for future sowings.' (Will Durant, *L Greece*, p. 226)

ास्थिनिस्के वर्णनसे ज्ञात होता है कि साढ़े बाईस सौ भारतमें वर्णाश्रम-व्यवस्था दृढ़रूपसे प्रतिष्ठित थी। जातिभेद जन्मगत था, कर्मगत नहीं; इतना ही ई भी मनुष्य अपने वर्णगत कर्मका त्याग नहीं कर ा। दूसरी जातिमें विवाह निषिद्ध था। परंतु विवाहमें बाधा नहीं थी। ब्राह्मणगण ब्रह्मचर्य-के बाद गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास-आश्रमका रते थे। तपोवन और गुरुगृह कविके द्वारा अङ्कित ; चित्र नहीं हैं। सत्य ही तपोवन और गुरुगृह उस समय थे। वर्णसंकरता एवं कर्मसंकरताने उस ल रूप धारण नहीं किया था। सप्तम शताब्दीमें रिव्राजक ह्वेनसांगने भारतके विषयमें जो कुछ लिखा भी यह बात मिलती है। स्मरण रखना चाहिये कि नेस् विदेशी था और संभवतः भारतकी भाषासे था। यहाँ एक आगन्तुकके नातेसे उसने कुछ निवास किया था। और उसके लेख भी पूर्ण रूपमें ते। परंतु ह्वेनसांगने तो कई वर्षोंतक भारतमें निवास और उसने यहाँकी भाषा एवं शास्त्रोंका भी अध्ययन। उसने भारतके बहुत-से स्थानोंमें भ्रमण भी किया कारण उसके लेखोंका मूल्य सामान्य नहीं है। वह। इसलिये यह भी निश्चित है कि उसने वर्णाश्रम-ो पक्षपातकी दृष्टिसे नहीं देखा होगा।

सांगका कहना है कि 'विभिन्न जातियोंमें विवाह ा। प्रथम जाति ब्राह्मण धार्मिक पुरुष हैं; वे धर्मरक्षा। पवित्र जीवन यापन करते हैं एवं अत्यन्त कठोर ा पालन करते हैं। द्वितीय क्षत्रिय राजाओंकी जाति ुग-युगसे शासन करते आ रहे हैं। कर्तव्यपरायण शील हैं। तृतीय वैश्य वणिक् जाति है। वे वाणिज्य-विक्रय करते हैं एवं देश-विदेशोंमें लाभजनक करते हैं। चतुर्थ शूद्र कृषिजीवी हैं। वे खेती और ामोंमें परिश्रम करते हैं। इन चारों वर्णोंमें जातिकी थवा अशुद्धतासे अपना-अपना स्थान निश्चित होता है। ात्मीयोंमें विवाह निषिद्ध है। कोई स्त्री एक विवाह-ुनः दूसरा स्वामी ग्रहण नहीं कर सकती।*

'ब्राह्मणगण चारों वेद पढ़ते हैं। आचार्योंके रूपसे वेदोंके गम्भीर और गोपन तत्त्वोंको सीखना और उसके सूक्ष्मतम अर्थकी उपलब्धि करनी पड़ती

'जब शिक्षा शेष हो जाती है और तीस वर्षकी हो जाती है, उस समय उनके चरित्रका गठन हो एवं वे ज्ञानपक्व हो जाते हैं। किसी वृत्तिके प्राप्त पहले वे अपने गुरुको उनके परिश्रमके लिये धन्यव हैं। कोई-कोई प्राचीन शास्त्रोंमें गम्भीर ज्ञान उच्चस्तरकी शास्त्रालोचनाके द्वारा संसारसे पृथक् होकर व्यतीत करते हैं और चरित्रके सरल भावको अक्षुण्ण हैं। वे पार्थिव व्यापारसे ऊँचे स्तरपर उठ जाते जगत्‌की प्रशंसा अथवा निन्दासे परे पहुँच जाते हैं नाम विख्यात होते हैं। राजालोग उनका समादर परंतु वे उन्हें राजसभामें ले जानेमें असमर्थ होते देशके सम्राट् उनकी प्रतिभाके लिये उनका सम्मान करते हैं। जनसाधारण भी उनके यशका प्रचार क सभी लोग उनकी भक्ति करते हैं। इसलिये वे उत्सा निष्ठाके सहित किसी भी श्रमकी परवा न करके ज्ञान में अभिनिवेश कर सकते हैं।'*

The first is called the Brahmans, men of pure t. They guard themselves in religion, live and observe the most correct principles. econd is called the Kshattrias, the royal For ages, they have been the governing They apply themselves to virtue (humanity) indness. The third is called Vaisyas, the nt class: they engage in commercial ge, and they follow profit at home and . The fourth is called Sudras, the tural class: they labour in ploughing and tillage. In the four classes, purity or i of caste assigns every one to his place. × × do not allow promiscuous marriages l relatives. A woman once married can neve another husband." (Beal: *Hiuentsang*, pp.

* "The Brahmans study the four Vedas The teachers must themselves have studied the deep and secret principles contain, and penetrated to their remotest me

"When they have finished their edu and have attained to 30 years of age, ther character is formed, and their knowledge When they have secured an occupation, th of all thank their master for his attention. are some, deeply versed in antiquity, who themselves to elegant studies, and live apa the world, and retain the simplicity of character. These rise above mundane p and are as insensible to renown as contempt of the world. Their name spread afar, the Rulers appreciate them but are unable to draw them to cour Chief of the country honours them on of their (mental) gifts, and the peopl their fame and render them universal I This is the reason of their devoting the to the studies with ardour and resolution, any sense of fatigue."

(Ibid.,

ासांगने इस देशके कई प्रान्तोंमें भ्रमण किया था;
होंने घुणाक्षर-न्यायसे भी कहीं यह संकेत नहीं किया
ामें वर्णभेद पूर्वकालमें कभी भी जन्मगत नहीं था,
ंगत था ।

एवं आर्ष शास्त्रोंमें जन्मगत जाति-भेदके ही
मिलते हैं । वर्णाश्रम भी भारतीय वैदिक (आर्य)
और संस्कृतिकी विशेषता है । जो लोग जाति-भेदको
र्थक व्यापार एवं समाजके लिये अहितकर समझते हैं,
ातमें इसका कभी भी रहना उचित नहीं था और
नहीं है, उनकी बात अलग है ।

ु ऐसे भी कई लोग हैं, जो अपनेको शास्त्र माननेवाले
परंतु कहते हैं कि 'आहार-विहार इच्छानुरूप चलना
उसमें किसी भेदकी आवश्यकता नहीं; जातिभेद
ता है, पर वह जन्मगत न होकर कर्मगत होना

ा भारतमें जातिभेद है, यह प्रत्यक्ष सत्य है और यह
है, इसमें भी कोई संदेह नहीं । प्राचीनतम
क (विदेशियोंद्वारा सन्-तारीखसहित) साक्ष्यसे
ंदिग्ध और सुस्पष्ट प्रमाणित है कि तेईस शताब्दी
जाति और वर्ण-भेद भारतमें था और यह जन्मगत
ा कोई सामान्य प्रमाण भी नहीं मिलता, जिसके आधार-
कहा जाय कि किसी भी कालमें भारतमें जन्मगत
ौर वर्णभेद नहीं था । ऐतिहासिक कालके पहले
प्रागैतिहासिक कालमें भी जातिभेद था ही ।

वैदिक कालमें वर्णभेद था

ागत वर्णभेद वैदिक युगमें भी था । वेद अनादि
द-मन्त्र इतिहास नहीं हैं । पाश्चात्त्य विद्वद्वर्गने
वेदोंसे गवेषणाके द्वारा इतिहासके प्रमाण निकालनेका
किया है । उन्होंने वेदोपलब्धिके कालको 'वैदिक
ा आख्या दी है । और ऋग्वेदको भारत तथा
प्राचीनतम ज्ञानसमष्टिके रूपमें स्वीकार किया है ।
ो इम प्रागैतिहासिक समझते हैं ।

ाक युगमें वर्णभेदके विषयपर प्रसिद्ध धुरन्धर वेदा-
डाक्टर कीथ (Dr. Keith) ने भारतके केम्ब्रिज-
ं जो कुछ लिखा है, उसका उद्धरण नीचे दिया

मतानुसार ऋग्वेदीय युगमें किसी प्रकारका भी जाति
था; किंतु आधुनिक कालमें क्रमशः बड़े जोरोंसे
न्यूबर्गके मतानुसार) यह कहा जा रहा है कि वह
भेद) था । एक दृष्टिसे देखनेपर सत्य ही ऋग्वेद
भेदका अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया जा स

"इस मतमें (वेदोंमें जातिभेद नहीं है) कुछ
रहनेपर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि 'ऋग्वेद
मुक्त है' यह तत्त्व इसमें बहुत कुछ बढ़ाकर कहा
प्रत्युत ऋग्वेदमें कोई भी वास्तविक प्रमाण नहीं है
कालमें पुरोहित (ब्राह्मण) एक निरुद्ध और निि
वंशगत जाति नहीं था । ब्राह्मण (ब्रह्मके पुत्र) श
वरं दिखता है कि पौरोहित्य साधारणतः पुरुषानुक्रमि
ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसीने पुरोहितका काम ि
इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता ।'†

'ऋग्वेदमें एक शासक क्षत्रियजातिकी कथा
निःसंदेह है । एवं वैदिककालमें राजपद वंशगत था
अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं विश्—इन तीन
समाज विभक्त था, इसका उल्लेख मिलता है ।'‡

'इसपर विश्वास करनेके यथेष्ट कारण हैं कि

---

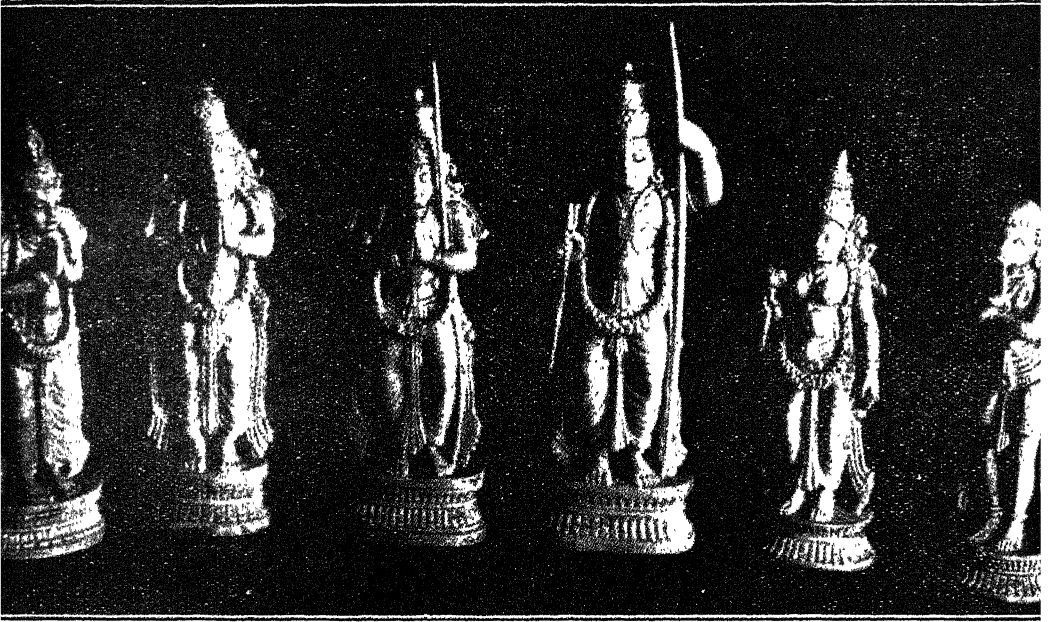
* "The existence of the Caste system
form in the age of the Rigveda has been
by high authority (Muir, Zimner, Weber),
it has been asserted of late with in
insistence (Gelmer, Niubarg). In one
indeed, its presence in the Rigveda can
disputed."

(Keith: *Cambridge History*, I

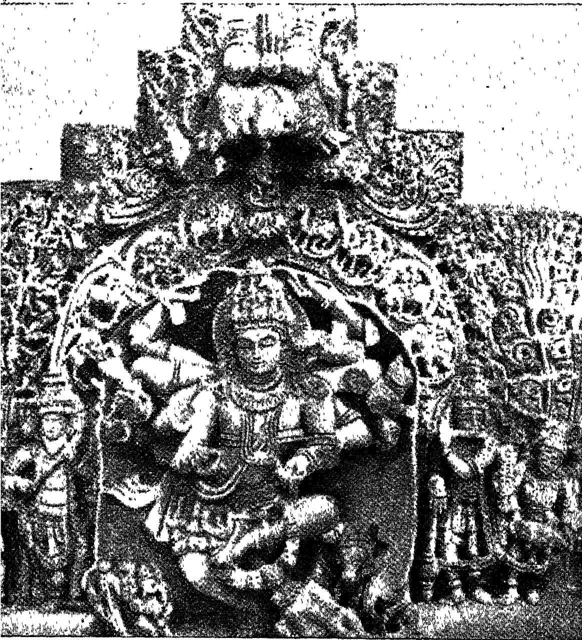
† "While there is much truth in the vi
must be admitted that it exaggerates the f
of the Rigveda from caste × × × × Moreover,
no actual proof in the Rigveda th
Priesthood was not then a closed hereditar
The term 'Brahmana' (son of a Brahma)
on the contrary, to show that the prie
was normally hereditary, and there is no i
which can be quoted of any person who is
to be other than a priest appearing to e
priestly practices." (Ibid., p. 98)

‡ "× × The Rigveda certainly knows of a
class, the Kshattria, and the Vedic kingshi
normally hereditary. × × There are

रामपञ्चायत (हाथीदाँतकी मूर्ति, त्रिवन्द्रम्)



शत्रुघ्न   भरत   लक्ष्मण   राम   सीता   हनुमा

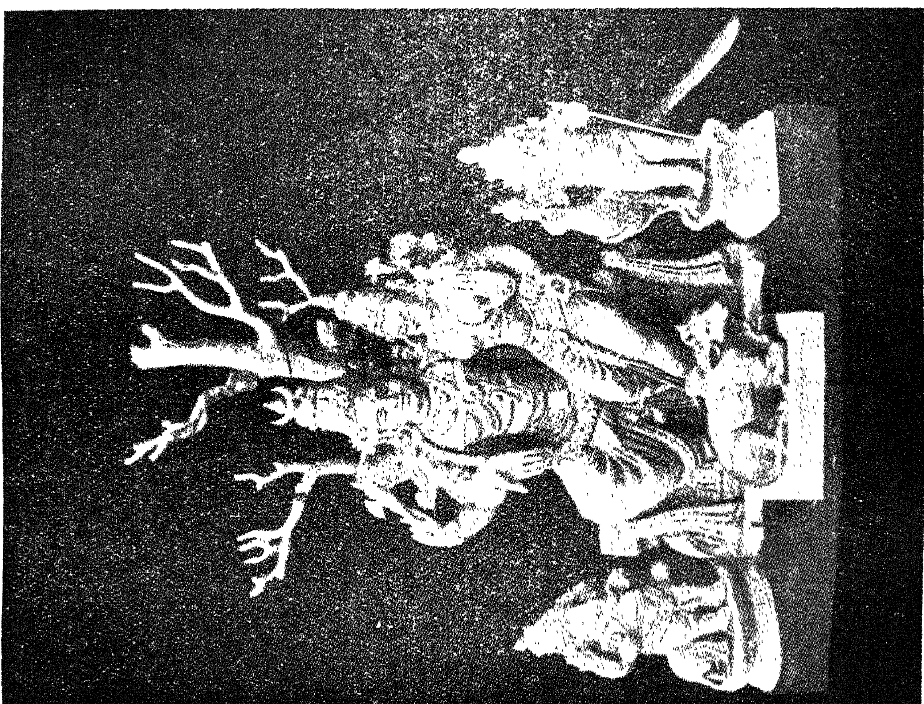


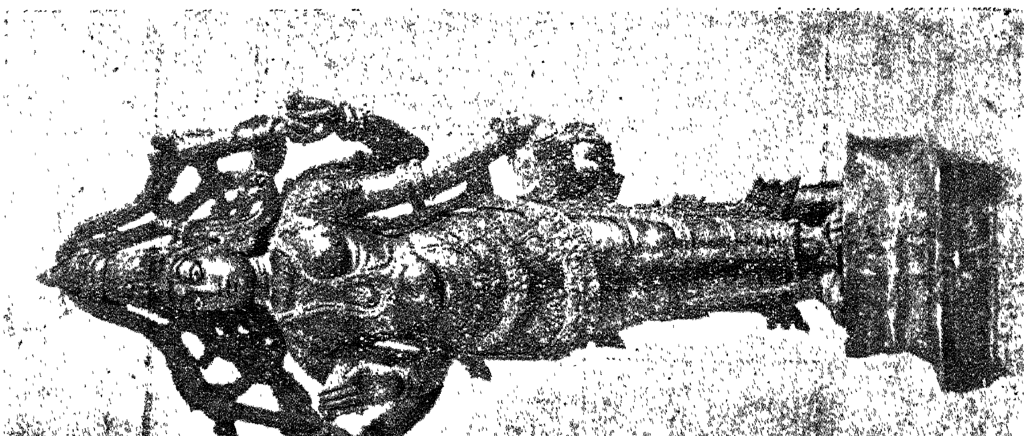
गजासुर-संहार (प्रस्तरमूर्ति-अमृतपूर, मैसूर)



प्रसन्न गणपति (हाथीदाँतकी मूर्ति, त्रिं







रोहित्य (ब्राह्मण) एवं आभिजात्य (क्षत्रिय)
मिक था·····'सगोत्र और निकट-सम्बन्धी (पितृ-मातृ-
लोगोंमें विवाह नहीं होता था। प्रथानुसार पुरुषको
तमें ही विवाह करना पड़ता था। और जातिके
ाह तो निम्नतर जातिमें ही हो सकता था।'*
तेका परिवर्तन करना सम्भव था कि नहीं, यह
श्न है। परिवर्तनके बहुत ही कम प्रमाण मिलते हैं।
ास्त्रमें ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि किसी वैश्यने
रके ब्राह्मणत्व अथवा क्षत्रियत्व प्राप्त किया हो।'†
जुर्वेदके कालमें जातिभेद दृढ़रूपसे ही वर्तमान था।'‡
भवतः शूद्रोंमें भी अपनी जातिमें ही विवाह-प्रथा
थी।'
दिक आर्य एवं अनार्य दोनों ही अपनी-अपनी
ं विवाह करते थे।'§

वेदोंमें मूर्ति-पूजा

दिक कालमें मूर्ति-पूजा नहीं थी, यह आधुनिक मत
, यह मत भी भ्रान्त है। वैदिक कालमें भी भगवान्-
ान मूर्तियोंकी पूजा प्रचलित थी—यह एक स्थानमें
ूर्तिकी उपासनाके उल्लेखसे प्रमाणित होता है।×

आधुनिक पाश्चात्त्य लेखकोंने पुरीधामस्थ श्रीजगन्नाथ
काष्ठ-मूर्तिको बौद्ध-मूर्ति प्रमाणित करनेका प्रयास किया है
भी युक्ति बतायी जाती है कि जगन्नाथदेवकी रथयात्रा (
बौद्ध-मूर्तिके रथपर परिभ्रमणसे ली गयी है। परंतु
मत भ्रान्त हैं। ऋग्वेदमें दारु-ब्रह्म श्रीपुरुषोत्तम-मूर्तिक
उल्लेख है—

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्॥

(ऋग्वेद १० । १५५

अदः (दूरमें), यत् (जो), अपूरुषम् (जो
द्वारा निर्मित नहीं है), दारु (काष्ठमय पुरुषो
देव-शरीर), सिन्धोः (समुद्रके), पारे (तटपर)
(जलके ऊपर है), हे दुर्हण (स्तोता), तत् (वह),
(अवलम्बन करो), तेन (उसके द्वारा), गच्छ प
(उत्कृष्ट स्थान वैकुण्ठ) को प्राप्त हो।

'हे उपासक! दूर देशमें समुद्रके तटपर जलके उ
दारुब्रह्मकी मूर्ति है, जो किसी मनुष्यसे निर्मित न
उसकी आराधना करके उनकी कृपासे वैकुण्ठको प्रा

उड़ीसाप्रान्तमें भुवनेश्वरके निकट उदयगिरिक
गुफामें कलिङ्गराज खरवेलकी जो लिपि है, उसमें भी
काष्ठसे निर्मित मूर्तिका उल्लेख मिलता है। खरवेल न
के १५० वर्ष बाद हुए हैं।

सनातनधर्मके समग्र शास्त्र वेदमूलक हैं। वेद,
पुराण प्रभृतिमें कहीं भी पार्थक्यका अवकाश इस का
रह सकता। वर्णाश्रम, जातिभेद (जन्मगत) प्र
वैदिक धर्ममें और वैदिक जातिमें प्रथमसे ही
विषयमें जरा भी सन्देह नहीं है।

गीतामें वर्णाश्रमके प्रमाण

आजकल कई सुविधावादी लोग शास्त्र-पुर
कहींसे एक-आध श्लोक उद्धृत कर उसकी
व्याख्या करके अथवा अर्थका अनर्थ करके अपने
मत अथवा युक्तिकी स्थापना करनेका प्रयत्न क
पढ़े-लिखे लोग गीताको किसी रूपमें मा
गीताके—

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः

There is good reason to believe that in the
of the Rigveda the Priesthood and the
ty were hereditary.' × × 'There shall be
rriage with agnates or cognates and they
 that a man must either marry in his own
or if he marries out of the caste, it must
to a lower caste.' (Keith, in *Cambridge*
y, p. 126)
'The question of how far change of caste was
le raises difficult problems. The evidence of
ange is scanty in the extreme. × × There
instance recorded in the Vedic texts of a
rising to the rank of a priest or prince.'
, p. 127)
'Caste system existed substantially in the time
urveda." (*Cambridge History*, p. 55)
It is probable enough that among the Sudras
elves there were rules of endogamy. × ×
'edic Aryans and the aborigines alike married
 the tribe." (P. 129)
'On the other hand, fetishism is seen in the
n already quoted to the use of an image
idra against one's enemies." (*Cambridge*
y, p. 106)

था, जन्मगत भेद नहीं था। यहाँतक कि गीताके कुछ
ीकाकारोंने भी इस प्रकारका अर्थ करके अंग्रेजी
प्रभावसे मोहग्रस्त हुए हमलोगोंके चित्तमें और भी
सन्देहके बीज बो दिये हैं।

ता महाभारतका एक अंश है। गीताके साथ महाभारतके
ी सम्पूर्ण अवहेलना नहीं की जा सकती। क्या
में कहीं भी यह है कि उस समय वर्णभेद जन्मगत
, गुण और कर्मानुसार वर्ण स्थिर होता था? क्या
श्रीकृष्णने किसी भी धार्मिक शूद्रको (धर्मके अवतार
अथवा क्षत्रिय (युधिष्ठिर एवं भीष्म) को ब्राह्मणवर्णमें
किसी युद्धकुशल ब्राह्मण (द्रोण, कृप अथवा
ा) को क्षत्रिय वर्णमें परिणत किया था?

तके समग्र शास्त्र एवं इतिहास आदिका अवलोकन
ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा, जहाँ किसी
व्यक्तिका पुत्र अथवा कन्या इसी जन्मके देहके गुण-
: ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रिय हुआ हो।
कर्मकी परीक्षाके ऊपर जाति स्थिर करेंगे कौन?
र सर्वशक्तिमान् हुए बिना ऐसा करना असम्भव
; जब भूमिष्ठ होता है, उस समयकी तो बात ही
के अनन्तर कम-से-कम बीस वर्षतक उसके गुण
का साधारण विकास भी नहीं होता। स्त्रियोंके
र्म-सन्तानपालन आदि सभी जातियोंमें साधारण कर्म
ा जाति-विभाग कैसे किया जायेगा? किस उम्रमें
य होगा और उसे कौन निर्धारित करेगा? फलतः
भेद जन्मसे ही हो सकता है। गुण-कर्मानुसार करना
है।

ामें भी जाति और वर्णके जो उल्लेख हैं, उनमें
र एवं वंशानुक्रमिक वर्णभेद एवं जातिभेद ही देखा
। गुण एवं कर्मानुसार जाति-वर्णभेदका और कोई
ा नहीं मिलता। संकर एवं अस्पृश्य जातिका भी
है ही।

ाविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
ने चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
(गीता ५।१८)

श्लोकमें समाजके उच्च स्तरमें स्थित ब्राह्मण एवं

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोन
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गति
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथ
(९।

यहाँपर श्रीभगवान्ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै
पापयोनि (अन्त्यज)—सभीका उल्लेख किया है।
शब्दसे जन्मगत अस्पृश्यता ज्ञात होती है, इसपर ल
चाहिये।

'चातुर्वर्ण्यम्' के अर्थ चार वर्ण नहीं, चार वर्णों
वर्णाश्रमी समाज है। इस श्लोकके बाद ही—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्त
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणै
(१८

एवं उसके बादके सात श्लोकोंको पढ़ जानेपर
विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं रहना चाहिये। चार
प्रत्येक वर्णके (लक्ष्य करना चाहिये कि किसी एव
विशेषकी बात नहीं हो रही है) स्वभाव (
संस्कार)—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिक
× × ×
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि स
(६।

—जात गुणके अनुसार एक-एक कर्म निर्दिष्ट है
श्रीभगवान्के गीताप्रवचनका उद्देश्य ही था
प्रतिरूप (नर-अवतार) नरोत्तम अर्जुनको ब्राह्मण
भैक्ष्य (श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके) ग्रहण
इच्छासे निवृत्तकर क्षत्रियके कर्म धर्मयुद्धमें प्रवृत्त
एवं इस उपदेशच्छलसे जगत्को निष्काम कर्मयोगक
शिक्षा देना।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठिता
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजे
(१८।४

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठिता
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह

योत्स्य इति मन्यसे', 'स्वभावजेन (स्वभावः हेतुः पूर्वकर्मसंस्कारस्तस्मात् जातेन) निबद्धः ‍णा ।'

‍ नष्ट होनेपर अर्जुन बोले—

‍तः अस्मि (युद्धाय उत्थितः अस्मि) । करिष्ये ‍ ।

‍ज' (सह–जन्+ड) शब्दको भी लक्ष्य करना

‍वान्ने गीतामें सांकर्यकी निन्दा की है—

‍रस्य (वर्ण एवं कर्मसंकरका) च कर्ता स्याम् ‍मिमाः प्रजाः । (३ । २४)

‍र्जुनने पूर्वमें कहा था—

‍रो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
‍द्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥॥
(१ । ४२-४३)

‍ वर्ण और जातिभेद जन्मगत एवं वंशानुक्रमिक ‍ तो कुलके धर्म अथवा जातिधर्मकी बात कहाँसे ? एक ही पिताके विभिन्न वर्णके पुत्र-कन्या होनेपर कौन उसे पिण्ड आदि देगा ? फिर तो समाज वंश, संस्कार, विवाह, अशौच, श्राद्ध आ‍ असम्भव हो जायँगे ।

उपसंहार

संक्षिप्त आलोचनासे यह निःसंदेह प्रमाणित किया भारतमें सदासे ही वर्ण और जाति जन्मगत थी, ‍ कर्मगत नहीं थी । असवर्ण विवाह (विशेषतः प्र‍ निन्दित था—इसका ऐतिहासिक प्रमाण है । प्रागै‍ एवं प्राचीनतम कालसे ही जन्मगत वर्णभेदप्रथा ‍ रही है । वेदोंमें भी जातिभेदके बहुत प्रमाण मि‍ गुण-कर्म-भेदसे जाति एवं इच्छानुसार वर्ण-प‍ उदाहरण नहीं हैं, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा ।

इतनेपर जो लोग यह कहना चाहते हैं कि वेद‍ पहले अतिप्राचीन समयमें वर्ण-व्यवस्था नहीं ‍ दूसरे देशोंके अनुसार स्वच्छन्द कर्म अथवा विव‍ भारतमें भी होते थे, वे अपने विचारानुसार सब ‍ सकते हैं; परंतु यह निश्चित है कि वैदिक सम‍ वर्णाश्रमी वैदिक जाति अथवा सनातन धर्मका अ‍ नहीं रहा होगा—फिर तर्कका अवसर कहाँ है ?

जन्मना जाति

(लेखक—श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम्० ए०)

‍ आधुनिक हिंदुओंका यह कहना है कि "वर्णव्यवस्था ‍मानते हैं; क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने भी ‍कि चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि मैंने की है । पर चातुर्वर्ण्यसे ‍का अभिप्राय 'जन्मना जाति' माननेवाली वर्तमान ‍ नहीं, किंतु वह व्यवस्था है जिसमें मनुष्यके गुण-‍र उसका वर्ण निश्चित होता है । भगवान्ने स्पष्ट ही ‍विभागशः' कहा है ।" अतः इन लोगोंका यह मत ‍'जन्मना जाति माननेवाली वर्तमान पद्धतिको उठा ‍हिये और कोई नयी व्यवस्था तो क्या, वही प्राचीन ‍ जिसका निर्देश भगवान्ने किया है अर्थात् मनुष्यके ‍र कर्म देखकर तदनुसार उसका वर्ण निश्चित करने-‍वस्था फिरसे स्थापित की जानी चाहिये । तभी हमारे ‍ अंदर सच्चे और अच्छे लोग ब्राह्मण कहलायेंगे व्यवस्थामें केवल ब्राह्मणकुलमें जन्म हो जानेसे ही लोग ब्राह्मण कहलाते हैं, जिनमें जरा भी कोई यो‍ है । इससे बहुत बड़ी हानि हुई है । हमलोगोंका र‍ दासत्व इसीका परिणाम है और इसीसे वे सब बुराइ‍ हुई हैं, जिनसे आज हिंदू-समाज त्रस्त है ।" किंचित ‍करनेसे यह समझमें आ जायगा कि भगवान् श्र‍ श्रीमद्भगवद्गीताका यह अभिप्राय नहीं है कि किसी गुण और कर्म देखकर उसका वर्ण निश्चित कि‍ बल्कि उन्हें यही बतलाना है कि किसीकी भी ज‍ जन्मसे ही जाननी चाहिये । हम आगे यह भी ‍ कि जन्मना जातिकी व्यवस्थापर जो अन्य आक्षेप ‍ हैं, वे भी किस प्रकार निराधार हैं ।

यदि किसी मनुष्यकी जाति उसकी वृत्ति य‍

युद्ध करना था। पर जन्मके कारण ही वे ब्राह्मण
। प्रकार उनके स्यालक कृपाचार्य योद्धा होनेपर भी
थे; क्योंकि ब्राह्मणकुलमें उनका जन्म हुआ था।
ामें ब्राह्मणके न कोई गुण थे न कर्म ही। कर्म
वे एक क्षत्रियका। गुणमें तो वे इतने क्रूर थे कि
ाण्डवोंके शिविरमें घुसकर सोये हुए द्रौपदीके बच्चोंको
कत्ल कर डाला। उत्तराके गर्भस्थ अर्भकपर भी
अति भयंकर बाण चलाया। फिर भी जब वे पकड़े
यही निश्चय किया गया कि अश्वत्थामाका वध नहीं
सकता; क्योंकि अश्वत्थामा ब्राह्मण हैं। उनका सिर
। और वे निष्कासित किये गये।

ग्रा मुक्तो द्रोणपुत्रो ब्राह्मण्याद् गौरवेन च।

(महाभारत, सौप्तिकपर्व १६। ३२)

ष्ठिरका स्वभाव ऐसा था कि चाहे कोई कितना ही
रे, युधिष्ठिर उसे क्षमा करनेको तैयार; और भीमको
। जरा-सी बातपर लड़नेको तैयार! यदि गुणोंको
ेर्णायक माना जाता तो दोनोंकी जाति अलग-अलग
। पर दोनों ही थे क्षत्रिय, क्योंकि जन्मसे ही
।

कर्मके अनुसार किसी मनुष्यका वर्ण निश्चित करनेमें
बहुत बड़ी बाधा है। प्रायः ऐसा देखनेमें आता
सी मनुष्यके गुण तो उसे एक वर्णका बतलाते हैं, पर
र्म किसी दूसरे ही वर्णका होता है। ऐसी अवस्थामें
ा कैसे निश्चित किया जायगा? फिर किसी मनुष्यके
ुणोंकी पहचान करनेका काम भी तो बहुत कठिन
रूपसे ठीक पता नहीं चलता—प्रायः धोखा हो
हो सकता है बाहरसे देखनेमें कोई मनुष्य बहुत
खा हो, पर हृदय उसका अत्यन्त कोमल हो। यह
व नहीं है कि किसीकी वाणी बहुत मधुर हो, पर हृदय
कठोर। किस मनुष्यमें कौनसे गुण हैं, इस विषयमें
तभेद भी हो सकता है। मित्रलोग कहेंगे, अमुक
जन है; शत्रु कहेंगे, महादुर्जन है। यह मान भी
। कि हर किसीके गुणोंका पता लगानेसे लग सकता
त बातका क्या भरोसा जो उसके गुण वैसे ही बने
: बदलेंगे नहीं? वाल्मीकि अपने प्रारम्भिक जीवनमें
र पीछे महर्षि हो गये। असाधु पुरुष साधु हो
वैसे ही साधु भी असाधु हो सकते हैं। इन सब

कुरुक्षेत्रका महायुद्ध आरम्भ होनेसे पहले अर्
था 'मैं युद्ध नहीं करूँगा, भिक्षा माँगकर जीऊँगा।'
कर्मसे ही जाति निश्चित करनी होती तो उसकी इ
खण्डन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी।
ब्राह्मणोचित वे सब गुण थे, जिनका गीतामें उल्लेख हु

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्

(गीता १७

'शम, दम, तप, शुचिता, क्षमा, आर्जव, ज्ञान,
आस्तिकता—ये सब ब्राह्मणोंके स्वभावज गुण हैं।'

भिक्षावृत्ति ब्राह्मणकी है; यदि अर्जुन उसे ग्रह
है तो गुण-कर्मके अनुसार ही जब वर्ण निश्चित
तब उसे अबसे ब्राह्मण कहना चाहिये। क्षात्रधर्म
यदि इस तरह वह ब्राह्मणधर्म ग्रहण करता है तो
कोई पाप न लगना चाहिये। पर श्रीकृष्ण तो उसे
यह समझा रहे हैं कि 'यदि तुम युद्ध न करोगे
पाप लगेगा।'

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि

(गीता २

'यदि तुम यह धर्मयुक्त संग्राम न करोगे तो स्व
कीर्तिसे हाथ धोकर पापके भागी बनोगे।'

यह कहना तो तभी युक्तियुक्त हो सकता है, जब
जाति माननेकी ही व्यवस्था हो। अर्जुन जन्मसे क्षत्रिय है।
का स्वधर्म है युद्ध करना। यदि अर्जुन युद्ध नहीं कर
वह अपने धर्मकी अवहेलना करता है और पापक
होता है। यदि जन्मजात वर्णसे धर्म निश्चित होत
कोई मनुष्य चाहे जो कर्म नहीं कर सकता। पर यदि
वर्ण निश्चित हो तो वह अपना कर्म अपनी इच्छा
जो निश्चित कर सकता है।

गीताके १८वें अध्यायमें भगवान्ने चारों वर्णों
बतलाये हैं और फिर कहा है कि यदि कोई मनुष्
वर्णका धर्म पालन करता है तो उसीसे वह परम
प्राप्त होता है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः

(१८

ह वचन जन्मना जातिकी ही व्यवस्था देता है। यदि । कर्म देखकर उसकी जाति निश्चित करनी हो के पीछे-पीछे जाति चलेगी और सबके कर्म स्वजातिके होनेसे सभी, गीताके उक्त वचनके अनुसार, मोक्षके ी होंगे। परंतु यह तो एक ऐसी बात है, जिसका र्थ नहीं।

तामें श्रीकृष्ण बतलाते हैं कि कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें । प्रमाण है—

माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

(गीता १६ । २४)

स्त्रोंमें सबसे पहले हैं वेद। ये ही सब शास्त्रोंके आधार ृग्वेद-संहिताके १० । ९० (पुरुषसूक्त) में तथा -संहिताके ७ । १ । १ में बतलाया है कि चार वर्ण ब्रह्माके चार अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। छान्दोग्यो- ५ । १० । ७ में यह वर्णन है कि जो लोग पुण्य- ते हैं, वे दूसरे जन्ममें ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय अथवा कुलमें जन्म लेते हैं और जो पापकर्म करते हैं, वे दि योनियोंको प्राप्त होते हैं—

णीयचरणा रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा निं वा वैश्ययोनिं वा। कपूयचरणाः कपूयां योनिमा- वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा।

निषद् वेदोंके ही भाग हैं। अतः वेदोंके समान ही ामाण्य है। मनुस्मृति सुविख्यात धर्मशास्त्र है। कालसे बहुत पहले इसकी रचना हुई थी। अतः तहाँ शास्त्रकी बात आयी है (१६ । २४), वहाँ दोंके साथ मनुस्मृति भी अभिप्रेत होगी। मनु एक ही जातिके माता-पितासे उत्पन्न सन्तान भी उसी होगी—

वर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु।
ुलोम्येन सम्भूता जात्या ज्ञेयास्त एव हि॥

(मनु० १० । ५)

। वर्णोंकी अक्षत-योनि तुल्य पत्नियोंमें गर्भाधान ो सन्तान हों, उन्हें अनुलोमक्रमसे उन्हीं वर्णोंकी ाहिये। अर्थात् ब्राह्मण पति-पत्नीसे उत्पन्न सन्तान क्षत्रिय पति-पत्नीसे उत्पन्न सन्तान क्षत्रिय, वैश्य पति- पन्न सन्तान वैश्य—इस प्रकार जानना चाहिये।'

तसंहितामें है—

[illegible]

'ब्राह्मणीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण गया है।'

अत्रिसंहितामें कहा है—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद् द्विज उच्य

(१

'जन्मसे ब्राह्मण जाना जाता है, संस्कार होनेप द्विज-संज्ञा होती है।'

श्रीकृष्ण ही जब अध्याय १६ श्लोक २४ में शा प्रमाण माननेको कहते हैं, तब यह हो नहीं सकता कि अ श्लोक १३ में वे जाति-निर्णयकी कोई ऐसी व्यवस्था जो वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, अत्रिसंहिता, हारी आदि शास्त्रग्रन्थोंके वचनोंके विरुद्ध हो।

अब यह प्रश्न होता है कि यदि श्रीकृष्णका अभि है कि जन्मसे ही वर्ण निश्चित है तो उन्होंने अध्याय १३ में 'गुणकर्मविभागशः' क्यों कहा है। यह का अभिप्राय वृत्तिसे नहीं है। कर्मका यहाँ अर्थ है व कर्म-विभागका अर्थ विभिन्न वर्णोंके वे कर्तव्य हैं, जिनक गीता अध्याय १८ श्लोक ४२—४४ में हुआ है। गुणका अ है त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे विभागका अर्थ है, जन्मके साथ ही लगे हु गुणोंके अनुसार मनुष्योंका वर्गीकरण। गीता अध्याय १ ४१में भगवान् स्वयं यह गुण-कर्म-विभाग क्या है, स्प बतलाते हैं—

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः

'स्वभावसे उत्पन्न गुणोंके अनुसार कर्मोंका हुआ है।'

'स्वभाव-प्रभव' शब्दोंसे ही यह प्रकट है कि ज गुणोंके द्वारा ही वर्ण निश्चित होता है। छान्दोग्योप जो वचन (५ । १० । ७) हम पहले उद्धृत कर अ उसके साथ भी इसकी ठीक संगति बैठती है। जो पुण्यकर्म करते हैं, उनमें मृत्युके पश्चात् सत्त्वगुणका संचय होता है। अतः वे ब्राह्मण होकर जन्म लेते हैं अध्याय १८ श्लोक ४८ में जो 'सहजं कर्म' शब्द अ उनसे भी जन्मना जाति सूचित होती है। जन्मसे जा जातिसे धर्म निश्चित होता है। अर्थात् जन्मके साथ ह लगा हुआ है। यही 'सहजं कर्म' है।

होता है तो विश्वामित्र ब्राह्मण कैसे हुए । इसका
ह है कि तपका अलौकिक प्रभाव होता है, उससे
परमाणुतक बदल सकते हैं और वर्णका सम्बन्ध
जात शरीरसे ही । यह प्रसिद्ध है कि विश्वामित्रने
प किया था । उनके तपःप्रभावसे उनका वर्ण बदला
; यह निश्चय करना भी वशिष्ठ-जैसे महर्षिका ही
। तपःप्रभावसे वर्ण बदल जानेके और भी कुछ
हैं ।

। महाभारतके कुछ ऐसे वचनोंपर हम विचार करना
, जो गुण देखकर वर्ण निश्चय करनेकी बातका समर्थन
मालूम होते हैं । वनपर्वके १७९ वें अध्यायमें सर्पने
ा है—'ब्राह्मण कौन है ?' युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—
वह है, जिसमें सत्य, दानशीलता, क्षमा, सदाचार,
ौर तप—ये गुण हों ।' युधिष्ठिर आगे यह भी
कि 'ये गुण यदि किसी शूद्रमें हों तो उसे ब्राह्मण
ाहिये और यदि ये गुण किसी ब्राह्मणमें न हों तो
ण नहीं है ।' 'ब्राह्मण' शब्दका प्रयोग स्पष्ट ही
विभिन्न अर्थोंमें हुआ है । यदि ऐसा न मानें
कहना कि "जिस ब्राह्मणमें ये गुण नहीं हैं, वह
नहीं है" 'वदतो व्याघात' होगा । उक्त वचनमें
शब्दका प्रथम प्रयोग जन्मना ब्राह्मणके अर्थमें है ।
शब्दका दूसरा प्रयोग इस अर्थमें है कि जो गुण
होने चाहिये, वे उसमें नहीं हैं । यह वचन सत्य,
दि गुणोंकी प्रशंसा कर ब्राह्मणको मिथ्या जात्यभिमान-
नेके लिये आया है । इस वचनका अभिप्राय गुणोंको
वर्ण कल्पित करना नहीं है । इसके विरुद्ध कई
हैं—(१) 'वदतो व्याघात' होगा, जैसा कि हम
ह आये हैं । (२) वेद, उपनिषद्, मनुसंहिता,
हेता, हारीतसंहिता आदि शास्त्र-ग्रन्थोंके जो वचन
र उद्धृत कर आये हैं, जिनमें जन्मना जातिकी ही
है, उनके साथ इसका विरोध होगा । किसी वचनका
र्थ लगाते हुए हमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि
चनोंके साथ उसका कोई विरोध न हो । उपर्युक्त
के वचनोंका इसके सिवा और कोई अर्थ नहीं है
या जाति जन्मपर ही निर्भर है । वनपर्वके उपर्युक्त
। सुसंगत अर्थ यही होता है कि सत्य, दान आदि

आदि गुण अत्यधिक परिमाणमें होते ही हैं । यह
वचनमें नहीं बतलाया गया है कि किस दर्जेतक
गुण होनेसे कोई मनुष्य ब्राह्मण वर्णका हो सकत
(५) इस वचनमें फिर दो ही वर्गोंके नाम आ
ब्राह्मण और शूद्र । क्षत्रिय और वैश्यका कोई ना
है । फिर जिनमें ये गुण हैं, वे यदि ब्राह्मण हैं और
ये गुण नहीं, वे शूद्र, तो अखिल मानव-जातिके
और शूद्र—ये ही दो वर्ण-विभाग हुए, चातुर्वर्ण्य न
अतः इन सब बातोंसे यही स्पष्ट होता है कि उक्त
हेतु वर्ण-विभागका सिद्धान्त बतलाना नहीं, बल्कि
सदाचारादि गुणोंकी श्रेष्ठता बतलाना है । वर्ण-वि
सिद्धान्त अन्य शास्त्र-वचनोंमें निर्दिष्ट हो ही चुका
शास्त्रवचन जन्मना जातिका ही निर्देश करते हैं ।
वचन ऐसे हैं, जिनसे गुणों और कर्मोंके अनुसार
होनेकी बात सूचित होती है, उनका वास्तविक
कुछ और ही है । गुण या कर्मके अनुसार सब म
जाति निर्धारित करना व्यवहारतः संभव भी नहीं है

यह जो कहा जाता है कि जन्म नामकी आकस्मिक
पर किसीकी जाति या वर्ण निश्चित करना ठीक न
कहना भी युक्तियुक्त नहीं है । कारण, जन्म कोई अ
घटना नहीं, बल्कि हमारे पूर्वजन्मोंके कर्मोंका फल है
लोग स्वस्थ और हट्टे-कट्टे पैदा होते हैं और कुछ
रुग्ण, इसका यही तो कारण है ।

यह कहना भी निराधार है कि हिंदुओंका
ही हिंदू-समाजमें पैदा हुई सब बुराइयोंका कारण है
श्रीभगवान् कहते हैं 'चातुर्वर्ण्य मैंने उत्पन्न किया है
१३) । जो व्यवस्था भगवान्ने बना दी, व
समाजके लिये कभी हानिकर नहीं हो सकती । इ
नीतिक दासत्वमें हमारे ईर्ष्या-द्वेष, लड़ाई-झगड़े, भो
आदि अन्य कारण हो सकते हैं । यह बात भी
रखनी चाहिये कि कोई भी राष्ट्र सदाके लिये अपनी
बनाये नहीं रह सका है । ब्रिटेनपर रोमन और सैक्स
जमाये बैठे थे । सैक्सनोंको नार्मन लोगोंने जीत
ग्रीस, रोम, कार्थेज—पुरानी दुनियाके सभी देशोंको
कभी पराजित और पराधीन होकर रहना पड़ा था
बेलजियम, जर्मनी और जापानका पराधीन हो

नव फिर वे स्वाधीन हैं। प्राचीनोंमें एक हिंदू ही अपनी संस्कृति और सभ्यताकी रक्षा किये हुए हैं, अन्य प्राचीन सभ्यताएँ सब नष्ट हो गयीं। यह ईश्वरकृत [illegible]स्थाका ही सुपरिणाम है। इसीसे हिंदुओंके धर्म, शौर्य, धन और श्रमशक्तिकी रक्षा हुई है। यदि हम व्यवस्थाको उठा देंगे तो महान् अनर्थ होगा—होगा। भगवान् कहते हैं—'संकरसे प्रजाओंका [illegible] नाश होता है।' (गीता ३। २४)

हमारी मृत्युञ्जय संस्कृति

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०, साहित्याचार्य)

[illegible]री संस्कृतिकी यह एक बड़ी भारी विशेषता है कि [illegible]तने श्रद्धाके केन्द्र हैं, मान-विंदु हैं, उनके पीछे कोई-श्रेष्ठ तत्त्व है, और अवश्य है। आज हमारे दुर्भाग्यसे [illegible]सुप्तावस्थामें हैं, वे सिद्धान्त अमूर्त रूपमें हैं और इसी [illegible]हमारा यह ह्रास दृष्टिगोचर हो रहा है। आज [illegible]ता है उन तत्त्वोंको जाग्रदवस्थामें लानेकी। आज [illegible]ता है उन सिद्धान्तोंको मूर्तस्वरूपमें लानेकी, उनको [illegible]आचरणमें प्रत्यक्षरूपसे कार्यान्वित करनेकी। इसका [illegible]क ही उपाय है और वह है इन तत्त्वोंको—उन को बोधगम्य बनाना—ऐसे रूपमें सामने रखना [illegible]रण जनता उन्हें ठीक प्रकारसे समझ लें और हृदयङ्गम

सांस्कृतिक रथके दो चक्र

[illegible]क ध्वज पुरातन कालसे चली आयी हुई हमारी इस [illegible]कृतिकी सनातन धाराका मूर्तिमान् प्रतीक है। इस [illegible]गवा रंग 'ब्राह्मतेज' और 'क्षात्रबल' का परिचायक [illegible]हीं दो विशेषताओंपर हमारी संस्कृति अडिग खड़ी वह नींव है, जिसके कारण शत-शत आघात सहते हुए [illegible] यह संस्कृतिकी इमारत अचल रूपसे स्थिर है। [illegible]पना इतिहास अविदित नहीं है। हमारे यहाँ प्रजाका [illegible]जा सर्वदासे क्षत्रिय ही होता आया है। परंतु वह [illegible] इस सारे भारको सँभालता नहीं आया है। वह सदा [illegible]की सहायतासे ही व्यवस्था करता आया है। राजा [illegible]ता था अवश्य; परंतु उसके गुरु, उसके सलाहकार, [illegible]न्त्रणा देनेवाले, उसके मन्त्री सर्वदा ब्राह्मण ही होते [illegible]ामचन्द्रजी, जिन्हें हम श्रद्धापूर्वक भगवान् मानते हैं, [illegible]; परंतु उन्हें मार्ग दिखलानेवाले उनके गुरु वसिष्ठ [illegible] ब्राह्मण ही न? यह तो हुई हमारे उस परमपवित्र [illegible]की पुरातन स्वर्ण-युगकी बात। आजके युगको भी गुरु 'समर्थ रामदास स्वामी' कौन थे? परम [illegible] पेशवाओंको तो आप जानते ही हैं, वे कौन थे? [illegible] बिना अकेला क्षात्रबल क्या कर सकता है? जिस [illegible] चक्रोंके बिना रथ नहीं खींचा जा सकता, उसी [illegible] दो शक्तियोंके बिना यह हमारे 'हिंदू-राष्ट्र' का रथ [illegible] बढ़ सकता। हमारी इस पवित्र संस्कृतिका रथ स[illegible] दो चक्रोंके आधारपर चलता आया है।

ब्राह्मतेज तथा क्षात्रबलके आधारपर सुचारुरू[illegible] वाला यह हमारा सांस्कृतिक रथ दुनियामें, स[illegible] सर्वश्रेष्ठ है। इसका निर्माण संसारके ही नहीं अपि[illegible] विश्वके सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोंके संयोगसे हुआ है। वे तत्त्व[illegible] ही प्रारम्भ होते हैं—तपस्या, त्याग तथा तपोबल। [illegible] युग-युगकी तपस्या, ऋषि-महर्षियोंकी तपस्या, विष्[illegible] राजाओंकी तपस्या, प्रजाकी तपस्या, सारे हिंदू-समाज[illegible] ध्येयकी ओर अग्रसर होनेकी तीव्र लगन—हमारे [illegible] प्रखररूपसे प्रकाशित हो रही है। त्यागके लिये [illegible] कहनेकी आवश्यकता ही नहीं। यह तो हमारी समाज-[illegible] एक मुख्य अङ्ग है। इसके बिना हमारी संस्कृति[illegible] होना अत्यन्त असम्भव था। तपस्या और त्याग[illegible] हुई प्रचण्ड शक्तिका ही नाम तपोबल है। इ[illegible] आधारपर हमारी संस्कृतिने सम्पूर्ण विश्वके हृदय[illegible] प्राप्त की। यह ऐतिहासिक सत्य है। इसमें श[illegible] स्थान नहीं। इसी बलके कारण समस्त विश्वने भारत[illegible] गुरु, अपना पथप्रदर्शक माना।

हमारी मृत्युञ्जयता

तपस्या, त्याग तथा तपोबलके कारण स्वयं प्रका[illegible] जो यह हमारी संस्कृति है, इसमें दो विशेषताएँ हैं—प्राचीनता, सनातनता; दूसरी है मृत्युञ्जयता, [illegible] हमारी यह आर्य-संस्कृति, यह वैदिक संस्कृति, यह

ा इसे नहीं मानते थे; क्योंकि कोई भौतिक प्रमाण मने नहीं था। परंतु आज उन्हें यह बाध्य होकर करना पड़ रहा है। भूगर्भसे निकला हुआ मोहन-जो-रका अवशेष हमारी इस प्राचीन संस्कृतिकी जय है। इस खँडहर हुए नगरकी विशेषता देखिये। चौड़ी गलियाँ, बड़े-बड़े प्रासाद, प्रत्येक घरमें , कूप इत्यादि व्यवस्थाएँ क्या हमारी समृद्धिकी, र्यकी परिचायक नहीं हैं? यह नगर (हम नहीं इन्हीं पाश्चात्त्योंके मतके अनुसार विक्रमसे, उस महान् तःस्मरणीय शकारि विक्रमादित्यके समयसे, तीन अर्थात् आजसे लगभग पाँच हजार वर्षके भी पूर्वका से पाँच हजार वर्ष पूर्व हम इतने वैभवशाली थे! मैं क्या यह हमारी संस्कृतिकी प्राचीनताका पर्याप्त प्रमाण पूछता हूँ—क्या आज ऐसी कोई भी संस्कृति जीवित है, प्राचीन होनेका दम भर सकती है? मैं दावेके साथ कि आज हमारी संस्कृतिकी प्राचीनतासे टक्कर कोई भी संस्कृति जीवित नहीं है। केवल एक ो यह संस्कृति है, जो विद्यमान है। इसका क्या ? क्या यही बात हमारी मृत्युञ्जयताको प्रमाणित ती? इतिहासके पृष्ठ उलटिये तो आपको एक प्राचीन ा परिचय मिलेगा—मिस्रकी संस्कृति। मिस्र देशकी र्थ्यशालिनी संस्कृति प्राचीन संस्कृतियोंमेंसे मानी । कहाँ है वह संस्कृति? क्या इस बड़े भारी एक भी व्यक्ति उस संस्कृतिकी परम्पराको लेकर ? क्या एक भी व्यक्ति ऐसा है, जो प्राचीन मिस्र व्यवहारमें लायी जानेवाली भाषाको अपनी भाषा बोलनेका, व्यवहारमें लानेका प्रमाण दे सकता है? गयी, नष्ट हो गयी; आज उस संस्कृतिका एक भी तने विशाल पृथ्वीतलपर जीवित नहीं है। इसके है हमारी स्थिति। सबसे प्राचीन होते हुए भी संस्कृतिकी परम्परा अखण्डरूपसे चल रही है। प्राचीन कालमें जो भाषा हमारे आदिपुरुषकी वाणीके वाहित हुई, उस देववाणी 'संस्कृत' का व्यवहार हमारे के व्यवहारमें होता है। हम उसी प्रकार सन्ध्या-वन्दन हैं। हमारे नित्यके व्यवहारमें, विवाहोपनयनादि की वही कर्मकाण्ड-पद्धति जीवित है, जिसे हमारे न पूर्वज उपयोगमें लाते थे। मैं पछता हूँ, है कोई देकर उस संस्कृतिके परम्परा-दीपको प्रज्वलित अभिमान करता हो?

तीन महान् आघात

हमारी संस्कृतिने सचमुच ही मृत्युपर विजय न जाने इसपर कितने आघात हुए; परंतु यह अडि अचल रही, अटल रही। इन आघातोंमें सबसे बड़े आघात हुए। पहला हुआ सिकंदर (अलीकच द्वारा। उसका षड्यन्त्र कितना विकट था, यह विद्यार्थियोंसे छिपा नहीं है। उसने हमारी संस्कृतिक नाश करनेका तथा यवन-संस्कृतिको विश्वकी बनानेका प्रण किया था। परंतु एक ब्राह्मणने उ ली। उस महापुरुषका नाम था कौटिल्य, चाणक ऋषिस्वरूप ब्राह्मणने चन्द्रगुप्तके समान तेजस्वी निर्माण किया और गरीब बिचारा अलीकचन्द्र (अले अपना बोरिया-बँधना लेकर सिंधुके उस तीरपर आँसू अपने देश लौट गया। दूसरा आघात हुआ प्रात गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक महाराज विक्रमादित्यके महाप्रतापी रणशूर खूब लंबे-चौड़े डील-डौलवाले शकोंने आर्यावर्तको आत्मसात् करनेकी ठानकर ह पवित्र मातृभूमिकी स्वतन्त्रतापर आक्रमण कर दिया उस समय भी एक ब्राह्मणने जनताकी नस-नसमें आग वीर विक्रमके नाममें कलङ्क नहीं लगने दिया। उस था—कालिदास। कविकुलसूर्य कालिदासका रघुवंश देखिये, वह क्या था? ब्राह्मतेज और क्षात्रबलने ि बार बर्बरताको करारी हार दी। उसी प्रतापीके नाम यह संवत् चला आ रहा है। आज भी हम प्रत्येक कृत्यके आरम्भमें उस वीर विक्रमका नाम सादर लेते हैं, भी उसी प्रकार अपनी मातृभूमिकी सेवा करनेमें समर्थ ह आघात हुआ मुसल्मानोंके द्वारा। उस समय भी एक इस भारत-भूमिकी रक्षा की। उस प्रातर्वन्दनीय समर्थ को कौन नहीं जानता? उस महान् आत्माने एक म निर्माण किया—जिनका नाम है छत्रपति शिवाजी क्षत्रियकुलावतंस छत्रपतिने फिर एक बार उस शक्तिको नाकों चने चबवाये।

सर्वाधिक कुटिल आघात

कौन-सी ऐसी संस्कृति है, जो ऐसे भीषण सम्मुख अपनी प्राचीनताको अमर रखनेका दावा क

सफल हो जाता तो आज हमारी इस पवित्र भूमि-
ममान रखनेवाला एक भी न दिखायी देता। वह
आ अंग्रेजोंके द्वारा। आपने विषकन्याका वर्णन
पढ़ा होगा। जिस प्रकार अफीमची लोग थोड़ी-
त्रासे प्रारम्भकर बहुत अधिक मात्रामें अफीम खानेका
करते हैं, उसी प्रकार—उसी प्रणालीसे विषकन्या
जाती थी। बालपनसे उसे थोड़े-थोड़े परिमाणमें
लाया जाता था और धीरे-धीरे उसका प्रमाण बढ़ाया
। पर्याप्त समयके बाद उस कन्याके सारे शरीरमें इस
वेष व्याप्त हो जाता था कि यदि मनुष्य या पशुके
उसके नखसे खरोंच लगकर उस मनुष्यके रक्तका
खसे सम्पर्क हो जाता था तो वह मनुष्य या पशु तत्काल
से मर जाता था। अंग्रेजोंने भी अंग्रेजी शिक्षाका
सारे समाजकी नस-नसमें यह विष फैला दिया।
समाजकी रग-रगमें यह विष व्याप्त हो गया और
ही अपने धर्मकी—अपनी संस्कृतिकी जड़ काटने-
कुल्हाड़ीका बेंट बन गये। हमने उन्हींके वचनोंको
प्रारम्भ कर दिया। देखिये न? उन्होंने कहा और
न लिया कि हम 'यहाँके नहीं हैं, हम बाहरसे आये
।' चलिये, झगड़ा ही मिट गया। जब हम भी
आये हैं तो फिर क्यों हम इस भूमिके लिये दूसरेसे
मोल लें? परंतु हमने कभी यह विचार नहीं किया
हम बाहरसे आये हुए होते तो हमारे ही नहीं, प्रत्युत
प्राचीनतम ग्रन्थ हमारे वेदोंमें इसका कहीं तो उल्लेख
। यहीं वह सप्तनद प्रदेश है, जिसमें सरस्वतीका पुण्य-
त्य करता है और जहाँसे आर्योंने समस्त संसारमें
उपनिवेश स्थापित किये और बर्बरोंमें सभ्यताका
दिया, ताकि वे मनुष्यताका सम्मान करें। आज वे
न्होंने हमसे ऋणरूपमें बुद्धिका बीज लिया, हमसे
—'तुम यहाँके आदिनिवासी नहीं हो।' और हम
इसे सत्य मानकर अपनी इस मातृभूमिका
न छोड़कर विचार करने लगते हैं कि यथार्थमें हमें
अपनेको ही यहाँका राष्ट्रिय नहीं कहना चाहिये।
ही नहीं, इस विषका हमारे ऊपर इतना अधिक
हुआ है कि कुछ कहा नहीं जाता। हमारे इस युगके
थत नेता लोगोंको ही देखिये। उनमें बहुत-से अपनेको
हलानेमें भी लज्जाका अनुभव करते हैं। न जाने वह

अभिमान भरकर भारतके राजकरणमें भाग
कहनेका तात्पर्य यह कि हमारी संस्कृति
प्रबल आक्रमणोंके विरुद्ध संघर्षमय जीवन
अबतक जीवित है, इसका एकमात्र कारण इसकी मृ
है। इस मृत्युञ्जयताकी प्राप्ति हमें केवल हमारे ब्र
तेज तथा क्षात्रबलके द्वारा हुई है। इसी ब्राह्मते
क्षात्रबलके कारण हमारी इस संस्कृतिको, राष्ट्रको,
यह गौरव नसीब हुआ। हमारी समृद्धि देखकर दे
यहाँ जन्म लेनेके लिये तरसते थे। देवलोकसे दे
मर्त्यलोकमें आनेकी कल्पना लोगोंको जरा विचित्र
होती है; परंतु इसमें कुछ असत्य नहीं। क्योंकि दे
भोगभूमि है। वहाँ किये हुए पुण्यका कोई फल
इसीलिये मोक्षकी इच्छा करनेवाले देवताओंके इस मर
इस कर्मभूमिपर अवतार लेनेकी बात विचारसंगत तथा
है। यहाँ जो कुछ भी किया जाता है, उसका फल
मिलता है। परंतु इतना बड़ा यह विश्व है, फिर भी दे
की इच्छा यहाँ भारतमें जन्म लेनेकी क्यों होती
केवल यहाँकी आध्यात्मिक सुख-समृद्धि देखकर ही।

तेजःपुञ्जका प्रतीक ध्वज

इतना समृद्धिशाली हमारा देश था; परंतु आज
हमारी स्थिति अत्यन्त हीन है। इस हीन स्थितिसे नि
केवल एक ही मार्ग है। वह है—अपनी स
पुनः गौरवशाली बनानेका दृढ़ निश्चय लेकर सम
समाजको सुसंघटित करना। यह तभी हो सकता है, ज
संस्कृति, हमारी परम्पराका हमें हर समय ध्यान रहे
लिये हमने अपना यह पुरातन 'भगवा ध्वज' अपन
इसे देखते ही हमें अपने पूर्व गौरवका ध्यान हो अ
अपनी परम्पराका आँखोंके सम्मुख चित्र उपस्थित
है। इसी झंडेके नीचे हुए असंख्य बलिदानोंका स
आता है, जिनके कारण आज हम अपनेको हिं
जीवित देखते हैं। यह ध्वज हमारे हिंदू-राष्ट्रकी आ
आकांक्षाओं, इतना ही नहीं, वरं समस्त हिंदू-राष्ट्र
पुञ्ज प्रतीक है। यह हमारा है, हम इसके हैं। इस
हम हम हैं। अतः इसका सम्मान-रक्षण हमारे जीवन
कर्तव्य है—यह बात प्रत्येक हिंदूके मनमें जागरित
इस ध्वजके पीछे जो हमारी संस्कृतिका अमूर्त गौ
है, उसे मूर्त स्वरूप देनेमें वह कार्यशील हो। यही

सभ्यता और संस्कृति—एक गृध्र-दृष्टि

(लेखक—स्वामीजी श्रीसत्यदेवजी परिव्राजक)

१९३९ ई० के मई मासकी बात है। मैं
प्रसिद्ध नगर म्यूनिचके एक होटलमें ठहरा हुआ था।
हान्का आज साढ़े आठ बजे सबेरे रेडियोपर भाषण
था। होटलके सभी अतिथि बड़ी उत्सुकतासे उस
सुननेके लिये, होटलके बड़े हालमें, एकत्रित हो रहे
ो अपने मित्र डाक्टर हासके साथ उस कमरेमें जाकर
ठ गया। ठीक आठ बजे रेडियो महाशयने व्याख्यान-
दी और जर्मनीके शेरने दहाड़ना शुरू किया—

रे शत्रु हमपर दूसरे युद्धकी विभीषिका ला रहे हैं।
ते युद्ध नहीं चाहती, लेकिन दुश्मन हमें जबरदस्ती
घसीट रहे हैं। आठ करोड़ जर्मन प्रजा संगठित
है। वह युद्धसे बिल्कुल नहीं डरती; किंतु यदि
ओंने हमपर युद्ध थोप दिया तो यूरोपीय सभ्यता-
वेनाशके गढ़ेमें चली जायगी। हम जर्मनलोग
र सुसंस्कृत हैं। इस भयङ्कर युद्धसे हमारी सबसे
नि होगी। क्योंकि जर्मन जाति ही यूरोपकी सभ्यता
ृतिको उत्कर्षकी ओर ले जा सकती है; इसलिये यह
की सभ्यता और संस्कृतिके विनाशका कारण होगा
जंगली कम्युनिष्ट स्लाव लोग सुशिक्षित यूरोपको
।'

ता और संस्कृति' इन शब्दोंने मुझे पकड़ लिया
मस्तिष्क इन शब्दोंकी महत्तापर विचार करने लगा।
रे पढ़े-लिखे लोग इन दो शब्दोंको पर्यायवाची
इनका व्यवहार बोलचाल तथा व्याख्यानोंमें कर
रंतु इन दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। इस
ैं इन्हीं दो शब्दोंपर गृध्र-दृष्टि डालनेका प्रयत्न

हम यह कहते हैं कि जर्मन जाति सभ्य है, तो इसका
है कि वह जाति अपने दैनिक जीवनमें सुधरे हुए
व्यवहार करती है। अर्थात् शारीरिक आवश्यकताओं-
लिये उसके पास आधुनिक वैज्ञानिक साधन हैं और
इस बातके लिये प्रयत्नशील रहती है कि शरीरको
अधिक सुख और मजा मिले। अमरीकन लोग बड़े
क्योंकि वे बिजलीसे खाना बनाते हैं और ट्रैक्टरोंद्वारा
और उनकी आबादीके प्रत्येक चौथे व्यक्तिके पा
मोटरकार है। जो जातियाँ आज वैज्ञानिक साधनोंक
करती हुई अपने जीवन-स्तरको ऊँचा उठाती चली
वे जातियाँ सभ्य कहलाती हैं। अंग्रेजी भाषामें सभ्य
'Civilization' शब्दका व्यवहार किया जाता
जातियोंकी जीवन-आवश्यकताएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जा
बढ़ती रहेंगी; क्योंकि इनका मुँह सभ्यताकी ओर
प्राकृतिक पदार्थों तथा भोगोंके अंदर ही सुख-शान्तिक
करती हैं, जिनका कहीं अन्त ही नहीं है।

इन जातियोंके पास संस्कृति अर्थात् 'Cult
'तसद्दुत' भी है, किंतु वह सभ्यताके पीछे-पीछे उस
बनकर चलती है। वे सुन्दर चित्र बनवायेंगे, क
उत्साहित करेंगे, कवियोंको पुरस्कार देंगे और उत्कृष्ट
भवन बनाकर उसमें निवास करेंगे; अपनी बोलचाल
तथा दूकानोंमें उनकी भाषा मिष्ट और शिष्ट होगी। ले
सबका मुख्य लक्ष्य होगा सभ्यताके खुदा 'धन'
करना और दूसरोंकी जेबोंमेंसे पैसा निकालना
शब्दोंमें वे सुसंस्कृत अवश्य हैं, किंतु अपनी सभ्यता
बढ़ानेके लिये—प्राकृतिक सुखोंका मज़ा लूटनेके
उनका सारा प्रयास रहता है। उनकी वृत्ति बहिर्मुख
कारण वे सभी जातियोंको अपनी उस लपेटमें ले लेते
कच्चे मालकी खोजमें पृथ्वीको रौंद डालते हैं। प
बेचनेके लिये सब प्रकारके दाँव-पेंच, छल-प्रपञ्च काम
हैं। यहाँतक कि युद्धके रौरव नरकसे भी नहीं डरते

अब आइये संस्कृतिकी ओर, जिसपर मानवकी
पूर्णरूपसे निर्भर है। संस्कृति है आत्माकी वस्तु,
उत्थानका चिह्न, आत्मिक उत्कर्षकी सीढ़ी और आ
का मार्ग। सभ्यता है अपरा विद्या और संस्कृति है पर
यदि हमें इन दो शब्दोंका लक्षण अंग्रेज़ी भाषामें
करना पड़े तो हम उसे इस प्रकार करेंगे—

Civilization is an expressio
flesh, while culture is the manifes
of soul.

अर्थात् सभ्यता शरीरके मनोविकारोंकी द्योतक

ानवको प्रकृतिवादकी ओर ले जाता है, जब कि मानवको अन्तर्मुखी करके उसके सात्त्विक गुणोंको ती है । पाश्चात्त्य जातियोंने संस्कृतिको सभ्यताकी । दिया है; इसी कारण उनके यहाँ रोटीकी छीना-ामाजिक विषमता और राष्ट्रिय अशान्तिका बाजार चारों ओर हड़तालोंका जोर है । अमरीका-जैसे ली देशमें बेकारी मुँह बाये खड़ी है । इसका कारण अमेरिकन राष्ट्रके लोगोंने अपनी संस्कृतिको सभ्यता-बना डाला है । यदि वहाँके लोग सभ्यताको संस्कृति-ा बनाते तो उनकी सामाजिक विषमता दूर हो जाती । श्यकताओंकी वृद्धि न सताती और न धनी लोग ही ी बीमारीसे ग्रसित होते । यह जो व्यापारयुगका बुखार सता रहा है, वह केवल इसलिये कि सभ्य जातियोंने त्माको पहचाननेके बजाय इन्द्रियसुखोंको प्रधानता नी आवश्यकताओंको इतना अधिक बढ़ा लिया है -जीवनकी स्वाभाविकता ही नष्ट हो गयी है । इसी श्चात्त्य जातियोंमें जीवनकी होड़ने भयंकर रूप धारण है ।

आये हैं इस संसारमें सत्य ज्ञानकी प्राप्तिके लिये, ण्डके रहस्योंको समझनेके लिये, अपने आपको के लिये, मृत्युकी घुंडी समझनेके लिये, आकाशके क्षत्रोंकी जीवनचर्याका ज्ञान करनेके लिये और तहमें छिपे हुए खजानेके अन्वेषणके लिये । हमारा ना कम है, हमारी आँखें इतना कम देखती हैं, साधन इतना कम हमारी सहायता कर सकते हैं— सब सोचकर हम अपनी अज्ञानतापर आँसू बहाने । लाखों वर्षोंसे मानवने अबतक यह बात नहीं जानी के बाद मनुष्य कहाँ जाता है, किस तरह जाता है, रास्तेसे जाता है । अपनी आँखोंके सामने प्रतिदिन का भीषण दृश्य देखते हैं, किंतु फिर भी धनसंग्रह-ोसे हमारा पिण्ड नहीं छूटता । लाखों मनुष्य ऐसे की ज्वाला बुझानेके लिये अस्वाभाविक ढंगसे जीवन करते हैं । यदि हम व्यापार-युगके स्थानपर ज्ञान-र्तक बने होते तो संसारका प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने अनुसार विद्या प्राप्तकर सत्य ज्ञानकी खोज ौर आज सारा मानवसमाज रोटीकी छीना-झपटीसे

है और उसे चौबीसों घंटे पेट भरनेकी ही चि रहती है । आज हम सुशिक्षित पशु बन गये हैं, ज शिक्षाद्वारा अधिक-से-अधिक मक्कारी, अधिक-बनावटीपन और धोखा देनेकी कलामें निपुण पैसा बटोरनेमें लगे हुए हैं । यह सब इसीलिये है । अपनी संस्कृतिको तुच्छ स्वार्थ-सिद्धिका साधन बना

— हमें यह बात भली प्रकार जान लेनी च सभ्यताका शारीरिक आवश्यकताओंके साथ सम्बन्ध संस्कृतिका आत्माके सात्त्विक गुणोंके साथ । जितना सभ्यता हमें सात्त्विक बनानेमें सहायक बनेगी, उतने संस्कृतिके क्षेत्रमें आगे पग बढ़ायेंगे । हमें जाना है उत्कर्षकी ओर, जिसमें भौतिक आवश्यकताओंकी होना प्रधान साधन है । आवश्यकताओंकी कमी ही विषमताको दूर कर सकती है और यही मानव-समाजमें स्थापना कर सकती है । सादा जीवन और उच्च हमारा लक्ष्य होना चाहिये, तभी प्राकृतिक भोगोंका बटवारा मानव-समाजमें किया जा सकता है । जि अधिक हम सभ्यताकी ओर जायँगे, उतना ही हममें घर कर लेगी और हम सदा बेचैन रहकर जीव करेंगे । यूरोपके दो महासमर केवल इसीलिये लड़े यूरोपकी उन्नत जातियाँ अपना पक्का माल एशियामें चाहती थीं । उनका आपसका व्यापारिक ईर्ष्या-द्वेष भीष कारण बन गया । जब कारखानोंमें जरूरतसे ज्या तैयार हो जाता है और कारखाने बंद होने लगते हैं, कारखानोंके स्वामी अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये राष्ट्रोंको लड़वानेका षड्यन्त्र रचते हैं, ताकि मजदूर लोग बेक और उनका धन तथा कारखाने बराबर उत्पादक ब यह सब अत्याचार और भीषणता सभ्यताकी वृद्धि व उत्पन्न होती है । विज्ञान-जैसा ईश्वरदत्त वरदान मान लिये भीषण अभिशापका रूप धारण कर लेता है औ आचार्य संसारपर स्वर्गकी रचना करनेके बजाय नरक उपस्थित कर देते हैं !

इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखकर प्राचीन काल मुनियोंने मनुष्यको शरीरके मोहसे छूटनेकी शिक्षा उसे यह सिखलाया—'तू शरीर नहीं है, आत्मा है

ो अस्थियोंके अणु-अणुमें रमी हुई है। पशु-योनियोंमें ुद्धि या तर्कका अभाव था, इस कारण वह सीमामें ारीरिक सुख भोग लेता था। अब मानव-देह पाकर ्सका वही दृष्टिकोण रहे तो अपनी बुद्धि-विद्याके ह कैसा अनर्थकारी सिद्ध हो सकता है, इसका भयंकर जीते-जागते उदाहरण—हम उन नरपिशाचोंमें देख हैं, जिन्होंने पंजाब-हत्याकाण्डके समय निरपराध र असंख्य जुल्म ढाये थे! हमारे पूर्वज यह जानते ाक्षाका महान् उद्देश्य पशुयोनियोंके बीभत्स संस्कारोंको इस नर-पशुको सच्चा मानव बनाना है और ी ओर बढ़ना ही संस्कृतिका मुख्य उद्देश्य है। वह अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये नहीं बल्कि विश्वमैत्रीका नेवाली होनी चाहिये। यह तभी हो सकेगा, जब ष्टिकोण शारीरिक न होकर आत्मिक हो जायगा। इसी- री प्राचीन कालकी शिक्षा संस्कृतिको मुख्य रखकर थी। पैरोंमें जूता नहीं, सिरपर टोपी नहीं, ्वस्त्रधारी आदर्श विद्वान् पुरुष चारों ओर घूमकर ादका सन्देश सुनाते थे। ऐसे सात्त्विक पुरुष वर्षा करते हुए मनोविकारोंसे सन्तप्त जनताको शान्ति ते थे और देशके बच्चे उन्हें अपना आदर्श मानकर -चिह्नोंपर चलनेका प्रयत्न करते थे। संस्कृत-साहित्य इसी विषमताको दूर करनेके लिये स्थितप्रज्ञ बननेका र-बार देता है और यह कहता है—'दुईको निकाल दे, तू दुईको निकाल दे।' यही ध्वनि उन स्थितप्रज्ञोंके र ओतप्रोत हो रही है। यही उनके संगीतमें पायी जाती यही उनकी कलामें प्रदर्शित होती है। जबतक आर्य श बने रहे, तबतक उनकी चतुर्मुखी उन्नति होती रह वे प्रत्येक विभागमें अमर साहित्यकी रचना कर गये जबसे हमने वह मार्ग छोड़ दिया, हमारी दृष्टि व हो गयी, तबसे हमारे धार्मिक क्षेत्रमें भी पशुताने घर क और हम सात्त्विक गुणोंको बिक्रीके पदार्थ बनाकर उन धन-सञ्चय करने लगे। वहींसे हमारे पतनका प्रा इतिहास चलता है।

संक्षेपमें सभ्यता और संस्कृति दोनोंका आपस सम्बन्ध है। शरीरके बिना आत्मा अपनी शक्तियोंका नहीं कर सकता। उत्कृष्ट संस्कृतिके लोग अपनी स द्वारा अपने सात्त्विक गुणोंका परिचय देते हैं। वे अपने ताले नहीं लगाते, चोरी नामकी किसी बुराईको वे जानत व्यभिचार और बलात्कारका कोई चिह्न उनके यहाँ ि नहीं देता। उनकी भाषा अत्यन्त मधुर और पारस्परिक व्यवहार सत्यतासे परिपूर्ण रहता है। चीनी यूनानी यात्रियोंने अपनी यात्रा-कथाओंमें ऐसे ही क और सुसंस्कृत भारतीय समाजका वर्णन किया है, जहाँ और भुखमरीका नामोनिशानतक नहीं था। हमारी र संस्कृतिकी सहायक होनी चाहिये, तभी हम प्राकृतिक सु न्यायपूर्वक उपभोग करते हुए इस संसारको स्वर्ग बना सकते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

यह बुझे नहीं।
र अन्धकारमें,
वेगमय बयारमें;
यामिनी-विभीषिका,
प्रलय-काण्ड-भूमिका;
अग्नि-गीत गा रहीं,
वज्र हैं ढहा रहीं;
मुक्ति-द्वारका, अमन्द ज्योति-धारका;

प्रदीप यह बुझे नहीं।
ज्योतिमय प्रदीपके,
शक्ति-मय प्रदीपके;
अखण्ड ज्ञान-दीप्तिसे,
अमर्त्य-वर्ति-नीतिसे;
— हो विभा-मनोहरा
कान्ति-स्निग्ध हो धरा;
असत्-प्रमाद नाशका, विमुक्त-सत्-प्रकाशव
प्रदीप यह बुझे नहीं।

—लक्ष्मीप्रसाद द्विवेदी

हिंदू-संस्कृति और सभ्यता

(लेखक—प्रो० श्रीदशरथजी श्रोत्रिय, एम्० ए०, साहित्याचार्य, विद्याभूषण)

ारम प्रभुद्वारा प्रकाशित स्थावर एवं जङ्गम सृष्टिमें ोंका उच्च स्थान है। प्राणधारियोंमें मानवता श्रेष्ठ की गयी है, वेदमें मानवमात्रको 'अमृतस्य[1] पुत्राः' नव श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया गया है। मानवकी यह ाकी श्रेष्ठ आचार-विचार-परम्पराके हेतु प्रभु-प्रदत्त : आधारित है। मानव ही इस विशाल विश्वमें ष्ठ आचार और विचार धारण करनेकी सामर्थ्यसे यही मानवोपार्जित श्रेष्ठ आचार-विचार-परम्परा ौर संस्कृतिकी उपादान हो जाती है। श्रेष्ठ आचार- संस्कृतिका और श्रेष्ठ विचार-परम्परासे सभ्यताका ता है।

आचार और विचारका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। की परम्पराके रूपमें उपलब्ध संस्कृति और सभ्यताका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सच तो यह है कि 'संस्कृति' ता' शब्द परस्पर इतने सम्बद्ध और संसृष्ट हैं कि का प्रायः एक ही अर्थमें व्यवहार होने लगा है। भी इनमें अन्तर है, यद्यपि वह परम्पराभूत ारण अत्यन्त सूक्ष्म है। संस्कृति (सम्+कृति) ृति' शब्द इस अन्तरको स्पष्ट बता रहा है। कृति हारा लेकर हम 'संस्कृति' को निर्भीक होकर 'सदा- सकते हैं। जहाँ संस्कृति-शब्दकी व्याख्या 'आचार' रखकर की जानी ठीक है[2], वहाँ सभ्यता-शब्दकी विचार' को दृष्टिमें रखकर की जानी चाहिये[3]। भ्यता-शब्दमें 'तल्' प्रत्यय भाव (विचार) वाचक ान विचारसे अनुप्राणित मानवसमूहको 'सभा' सभामें दक्ष (साधु) पुरुषको 'सभ्य' कहा जाता का भाव ही 'सभ्यता' कहलाता है। यद्यपि सभ्यता-शब्दकी व्याख्या कर्म (आचार)-परक भी की ग है[1], तथापि कर्मपरक व्याख्या भी विचार (भाव) क बहिष्कार नहीं कर देती। वास्तवमें सभ्यता-शब्दकी परक व्याख्या ही अत्यन्त समीचीन है।

३–हाँ तो, श्रेष्ठ आचार-परम्परासे संस्कृतिका विचार-परम्परासे सभ्यताका सृजन होता है। इस श्रेष्ठ विचार-परम्पराको पाश्चात्त्य विद्वान् प्राकृतिक नियमोंके सतत विकासमान मानकर प्राचीन परम्पराओंको हेय ंक देते हैं। परंतु आर्य हिंदू अखिल-धर्ममूलक वेदको इस श्रेष्ठ परम्पराका आदिस्रोत मानता एवं जा इसीलिये वह प्राचीनतम परम्पराओंको बड़े आदरव देखता है। यही कारण है कि आज भी प्राचीनतम परम्पराओंमें उसकी ममता अक्षुण्ण है; आज भी वह मानवजातिके मध्य ऐतिहासिक दृष्टिसे अपनेको अत्य और महत्त्वका पात्र समझता है, और उन्हीं परम् मूलरूपमें अपनी सभ्यता और संस्कृति समझता है आज भी दृढ़ विश्वास है कि मानवजातिका चरम उन्हीं वेदविहित आचार-विचार-परम्पराओंको अप सकेगा। आज भी वह समझता है कि मानवकी सा समस्याओंके हल वेदमें प्राप्त हो सकते हैं। तभ कहता है—

'सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति।'

अर्थात् 'सभी वेदसे सिद्ध होता है।' आज मनुस्मृतिका यह श्लोक स्मरण करते हुए आत्मगौरव करता है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् सर्वे एव जना भुवि

अर्थात् 'इस भारतदेशमें उत्पन्न हुए वेदवित् सभी देशोंके सभी मनुष्य अपने-अपने चरित्रक ग्रहण करें।'

४–इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद-विहित विचार-परम्परा ही 'हिंदू-संस्कृति और सभ्यता' मानी जाती है।[2] इसीसे 'आस्तिक्य' हिंदू-सभ्य

---

[1] यजुर्वेद ११। ५ मन्त्रांश—
'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

[2] संस्क्रियते मानवः अनया इति संस्कृतिः अर्थात् सदाचारः।
'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'
'आचारः प्रथमो धर्मः॥'

[3] सह भाति सा सभा। सभायां साधुः (निपुणः)
सभ्यः। सभ्यस्य भावः सभ्यता।

---

[1] सभ्यस्य कर्म वा सभ्यता।

[2] वेदोऽखिलो धर्ममूलम्— (मनु०

ा प्रधान लक्षण है।' वेदके निन्दकको मनु महाराज
' कहकर पुकारते हैं—'नास्तिको वेदनिन्दकः।'
माण माननेवाला आर्य हिंदू वेद-विधायक परमपिता
को भी मानता है। वह परमपिता परमात्माको वेदका
तेपाद्य विषय[2] भी तथा इस सृष्टिका आदि कारण[3] भी
। यही मान्यता हिंदू-सभ्यता और संस्कृतिकी मौलिक
है। यह मान्यता कोरा विश्वास नहीं है, अपितु
; समाधिगत अनुभव[4] और व्युत्थानगत विचार[5]-विमर्श
द्ध) पर दृढ़तासे आधारित है।

हिंदू-सभ्यता और संस्कृतिकी दूसरी विशेषता है—
। वेदमें तथा वेदानुकूल ग्रन्थोंमें इसको भिन्न-भिन्न
ल्लिखित किया गया है; यथा—समदृष्टि, एकत्व
ता इत्यादि। इसी आत्मवादको दार्शनिक पद्धतिमें
कहा गया है। यद्यपि हिंदू-दर्शनमें द्वैत-सिद्धान्त भी
तियोंसे पोषित हुआ है, तथापि द्वैत-सिद्धान्त तथा
द्धान्तमें प्रतिफलित तात्त्विक निष्कर्ष एक ही है।
ता हूँ कि भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक साधन-पद्धतियों-
चीनता सिद्ध करनेके लिये ही भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंके
में आचार्योंने बौद्धिक श्रम किया है और इस श्रमसे
ोटी-बड़ी समस्याओंके हल भी मिले हैं; परंतु यह
। केवल एक बात हमें सिद्धान्ततः बता सका है—
न अनेक होते हुए भी साध्य एक हो सकता है,
तक पहुँचनेके अनेक मार्ग हो सकते हैं। 'साधनाना-
(लोकमान्य तिलक)। आत्मवादको किसी-न-किसी
ी हिंदू-दर्शन मानते हैं।

हाँ तो, आस्तिक्य और आत्मवाद हिंदू-सभ्यता और
; दो प्रधान स्तम्भ हैं। 'आस्तिक्य' के द्वारा हिंदुओंने
और 'स्व' का विश्लेषण करके चरमतत्त्वको माना
ा तथा 'आत्मवाद' के द्वारा उन्होंने विविधरूप
ल विश्वको 'मणिसूत्र-न्यायसे' संश्लिष्ट देखा और
'आस्तिक्य' से उन्हें ज्ञान मिला था और आत्मवादसे

उन्हें विज्ञान। ज्ञान और विज्ञान दोनोंके मिश्रणसे
'कला' का विकास किया था। सम्पूर्ण ज्ञान, विज्ञ
कलाओंका मूलरूप वेदमें उपलब्ध है—आज भी ि
यह विचार अडिग है। क्योंकि आधुनिकतम आ
और अनुसन्धानोंके सूत्र उन्हें किसी-न-किसी रूपमे
बराबर मिले और मिल रहे हैं। ऐसा किसी भी अन्य
और सभ्यताके प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता।

७—आज प्रायः सभी देशोंके विद्वान् यह मान ग
ऋग्वेद सम्पूर्ण ज्ञात जगत्का प्राचीनतम लेखबद्ध ग्र
वे अब यह सभी मानने लगे हैं कि ऋग्वेदमें जिस
और संस्कृतिका वर्णन मिलता है, वह बहुत ऊँची
है। फिर भी कुछ दुराग्रही पाश्चात्त्य पण्डित यह
अड़े हैं कि मिस्रदेशकी सभ्यता और संस्कृति ही प्र
है। देखना यह है कि नवीनतम अनुसन्धानोंकी आँध
वे अपने इस दुराग्रहरूप बालुका-दुर्गकी कबतक रक्षा कर
हिंदू तो आदिकालसे अपनी सभ्यता और संस्कृतिको
तम मानता चला आया है और अब भी मानता
अपनी संस्कृति और सभ्यताको प्राचीनतम ही नहीं
श्रेष्ठतम भी मानता है। उसका यह दृढ़ विश्वास
नहीं हिला कि 'विश्व-प्रेम' और 'विश्व-शान्ति' का
स्वप्न वैदिक सभ्यता और संस्कृतिको अपनानेसे ही
परिणत होगा। आज भी वैदिक-सभ्यता और
डिण्डिम-घोषसे कह रही है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्[1]
(यजु० ४॰

× × × ×

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे[2]
(यजु० ४

× × × ×

ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्। (गीता ३। १५)

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः (गीता १५। १५)

जन्माद्यस्य यतः। (ब्र० सू० १। २)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
(यजु० ३१। १८)—इत्यादि

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।

१. हे मानव! इस विशाल परिवर्तनशील विश्वमें
गति-विधि है, उस सबपर परमेश्वरका नियन्त्रण है। (सच
जगत् उस परमपिताका अपूर्व वरदान है।) इस वरदा
उपभोग कर (इस वरदानपर सभीका समान अधिकार है,
किसी अन्यके भागको भोगनेका लोभ न रख।

× × ×

२. हर मनुष्यको चाहिये कि ...

ु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
(यजु० ४० । ६)

न्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः[1] ॥
(यजु० ४० । ७)

× × × ×

मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
ाहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
(गीता ६ । ३०)

ऒपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
ं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः[2] ॥
(गीता ६ । ३२)

× × × ×

गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
भागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते ॥
(ऋ० १० । १९१ । २)

ानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
ानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
(ऋ० १० । १९१ । ३)

ानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः
ानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति[3] ॥
(ऋ० १० । १९१ । ४)

८. ऊपरके उद्धरणोंसे यह समझना सरल आस्तिक्य और आत्मवादके ऊपर टिकी हुई हिंदू-स संस्कृतिके अन्तर्गत जिस 'आस्तिक सर्वतः साम्य' क हुआ है, उसके सामने आधुनिक 'साम्यवाद' 'समाजवाद'† तथा 'लोकवाद'‡के अन्तर्गत तथाकथि प्रकारका केवल 'आर्थिक साम्य'§ कितना थोथा और अ होता है। इस आधुनिक आर्थिक साम्यमें मनुष्य और यन्त्र में अन्तर ही क्या रह जायगा—यह विचारणीय शान्ति और सुखका उद्देश्य ही क्या होगा ? आज साम्यवाद, समाजवाद और लोकवादके नामपर जिस का राग अलापा जा रहा है, उसमें 'आस्तिक्य'का नहीं। इस नास्तिक साम्यसे चिर विश्व-शान्ति किंवा वि कभी आविर्भाव होगा—हमें तो इसमें सन्देह ही है। 'हरड़ेके दस हाथ होते हैं'—ऐसा कहनेवालेके मु कोई रोक नहीं सकता।×

९. हिंदू आचार-परम्पराने 'लोक'को और हिंदू परम्पराने 'लोकेश्वर'को सदा सर्वोच्च स्थान दिया है दोनों परम्पराओंके अनुसार हिंदू-संस्कृति और सभ्य बहुत पहले ही दृढ़ 'आस्तिक लोकतन्त्र'+ का कर चुकी थी। यही कारण है कि हिंदू-संस्कृति और

अन्य कोई नहीं, जिससे ऐ मानव ! तू कर्मके बन्धनमें ा।

× × ×

जो सब भूतोंको आत्मा (अपने) में और अपनेको देखता है—समझता है, फिर वह किसीसे घृणा नहीं त् सभीसे प्रेम करता है। जहाँ एकत्व (आत्मोपमासे ो देखने-समझनेवाले विद्वान्के लिये सब प्राणी आत्मा ही हाँ शोक और मोह कैसा ?

× × ×

जो सबमें मुझे और मुझ (ईश्वर) को सबमें देखता लेये वह और उसके लिये मैं कभी नष्ट नहीं होता। से सबके दुःख और सुखको जिसने समान समझ लिया, मुझे विशेष प्यारा है अथवा मेरे मतमें श्रेष्ठ है।

बातचीत करो; मिल-जुलकर विचार करो। तुम्हारे पूर्व मिल-जुलकर विचार करते हुए ही अपने-अपने अधिकारके सदा आचरण करते आये हैं। तुम सबके विचार, संघ और चित्त समान हों। मैं (ईश्वर) तुम सबको यह उपदेश देता हूँ और समान भोगाधिकारसे युक्त व तुम्हारा सबका अभिप्राय समान हो, हृदय समान हों, म हो, जिससे तुम सब अच्छी प्रकार साथ-साथ रह सको।

* कम्युनिज्म (Communism)

† सोशलिज्म (Socialism)

‡ डेमाक्रेसी (Democracy)

§ आर्थिक समवितरण (Equitable Distribut wealth)

× सुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी—यह एक कहावत है।

\+ आस्तिक लोकतन्त्र—वह राज्य-व्यवस्था, जिस विधिके अनुसार अभिषिक्त राजाको प्रजा देवता समझती

पद-पदपर संस्कारों और यज्ञोंका बोल-बाला, धर्ममें ज्ञानका समन्वय और विधानमें क्षत्र और ब्रह्म
य और निःश्रेयसका समावेश, शास्त्रमें कर्म और संयोग पाते हैं।

संस्कृति और वेद

(लेखक—श्रीरामलालजी पहाड़ा)

ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है और इसमें इस देशके
सियोंका नाम 'भारत' है। यथा—

इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्॥
(ऋ० ३। ५३। १२)

का साधारण अर्थ—"आकाश, पृथ्वी दोनोंके मध्य
में स्थित इन्द्रकी मैंने स्तुति की है। विश्वामित्रका
हुआ स्तोत्र 'भारत जन'की रक्षा करे या करता है।"
भी देश-सम्बन्धसे अर्जुनको सम्बोधित करते हुए
र 'भारत या भरतर्षभ' कहा है। यथा—

'व्यक्तमध्यानि भारत', 'पश्याश्चर्याणि भारत', 'जायन्ते भरतर्षभ', 'ज्ञानी च भरतर्षभ', 'सत्त्वं भवति भारत', नाति भारत', 'रजः कर्मणि भारत।'

महिमायुक्त नाम उसी देशको दिया गया था, जो
भरण' करता था। मानसकार महात्माजी भी कहते हैं—

न पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

अन्तर 'आर्यावर्त' नाम हुआ। यहाँके निवासियोंने
गममें श्रेष्ठता प्राप्त की। 'ऋ' का अर्थ गति है और
शील, परमार्थकी ओर अग्रसर होता है, वह ऋषि है।
अर्थ निर्मल-बुद्धिसम्पन्न जीवनोपयोगी मन्त्ररहस्य-
ष है। यहाँ अनेक ऋषि हुए, इसलिये यह देश
आर्यभूमि या आर्यावर्त कहलाया। बार-बार किसी
बातके होनेसे मनपर प्रभाव पड़ जाता है। यह
संस्कार है, जो अमिट बन जाता है। इतना परिवर्तन
भी यहाँवालोंको 'भारत' या 'आर्य' कहलानेमें गौ
होता है। जब देशकी सीमा छोटी हुई, तब ए
'सिंधु' कहा। 'सीमाको धोये' वह सिन्धु है (सीमां धौति
इस कारण लाक्षणिक ढंगसे सिन्धुको समुद्र भी कहन
हुआ। जो कुछ हो—इस नदीके सम्बन्धसे अपर ज
के निवासियोंको सिंधु अर्थात् 'हिंदू' कहना आरम्भ
ऐसा परिवर्तन होता ही रहता है। इसे अपनी
देखनेपर अभिप्राय 'हीनताको दूर करनेवाले'
(हीनतां दुनोति दूरीकरोति यः सः)। हमको अन्य
दृष्टिसे या अर्थ (अन्य-भाषा-भाषियोंके कोषमें दिये
क्या प्रयोजन! अस्तु।

यदि प्राचीन ऋषिप्रणीत संस्कारोंको देखा
वे जीवनमें आनेवाली हीनताको दूर करनेके अमो
हैं। इस देशमें चलाये हुए व्रत, उत्सव, नित्य-
कार्य, मेले, लोकव्यवहार आदि सबका अन्तर ध्येय
हीनताको हटाकर मनुष्योंको आनन्दमय बनान
संस्कारोंका ध्येय आत्मसूचना देकर जीवनको सुचा
में ढालनेका है। व्रतोंका लक्ष्य ऋतु-अनुसार आह
करते हुए दुःखनाशक योगको प्राप्त करना है।

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः। महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो 'नृप' अवसि नरक अधिकारी॥

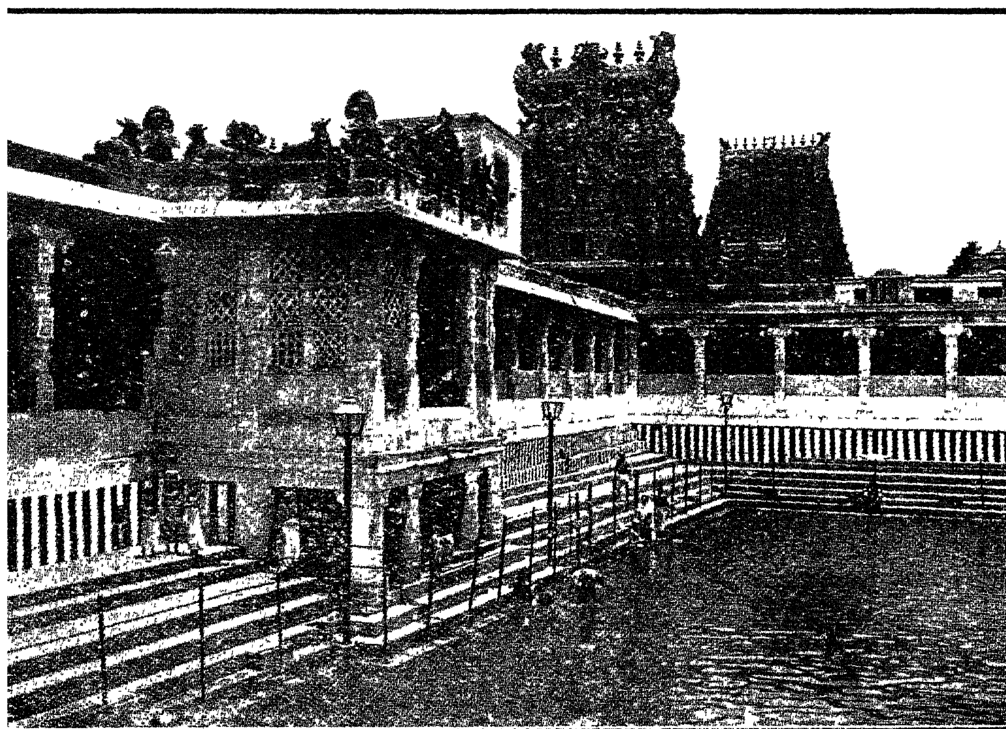
इसीको 'रामराज्य' भी कहा गया है। यथा—

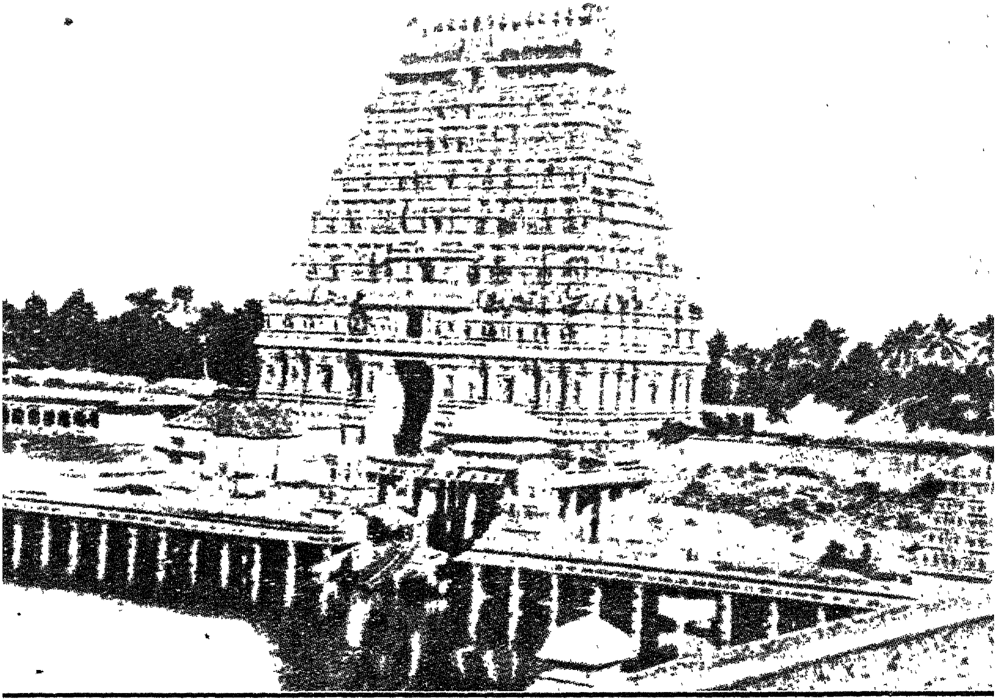
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

१. सोलह संस्कार प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं चौवालीस संस्कार भी बताये गये हैं तथा उनमें यज्ञोंकी भी गणना क
—नारदपरिव्राजकोपनिषद्)। यज्ञोंके असंख्य प्रकार हैं। हिंदुओंमें यज्ञोंकी सदा प्रधानता रही है। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त
धर्माण्यासन्।' (यजु० ३१। १६)

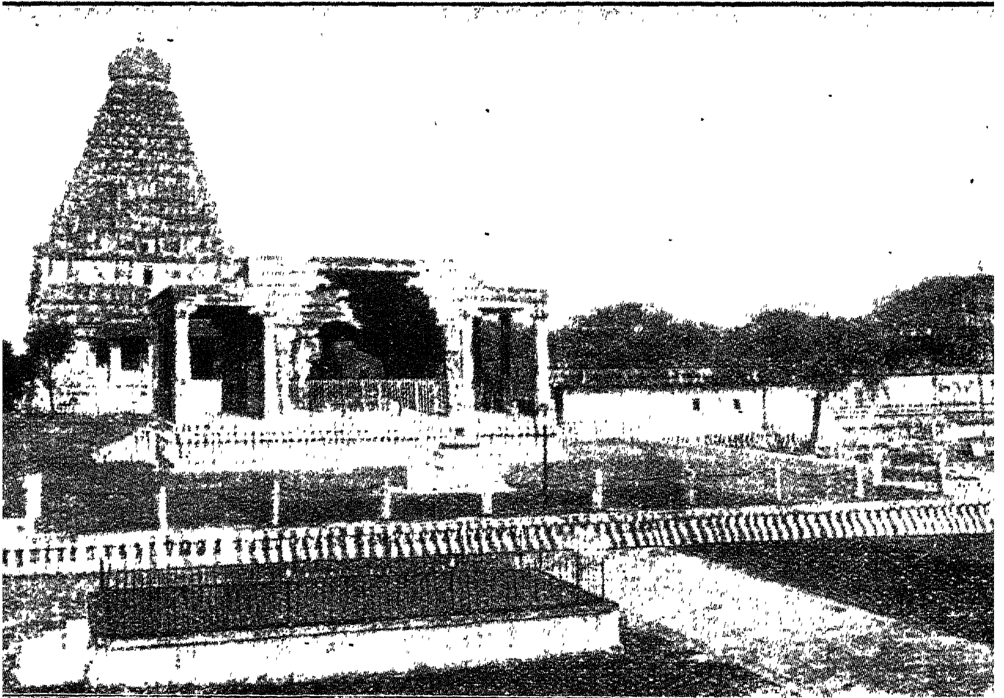
२. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः॥ (वैशेषिकदर्शन १। १)

श्रीमीनाक्षी और श्रीसुन्दरेश्वरके मन्दिर—मदुरा





श्रीचिदम्बरम्‌के मन्दिरका गोपुर



बृहदीश्वर-मन्दिर—तञ्जौर

ंस्कृतिकी रक्षाके हेतु अष्टाध्यायी 'रुद्र'का संकलन
वे समझने लग गये कि इतने विशाल वेदका अध्ययन-
' कठिन हो जायगा तथा लोक-व्यवहार विकृतिको
ायगा। 'रुद्र'का हेतु यह था कि लोकव्यवहारार्थ
म इतने वेद-ज्ञानका सिंचन लोगोंके हृदयोंमें
हे। संस्कृतिके रक्षार्थ नित्य कर्मके नियम
गये। सन्ध्या-तर्पण, वैश्वदेव, संस्कार, व्रत
योजनाएँ की गयीं। लोगोंको एकत्रितकर अपनी
ो स्थिर रखनेके लिये मेले तथा बृहत्
(यथा कुम्भ आदिपर प्रयाग, नासिक, उज्जैनके
किये गये। तीर्थोंका मुख्य ध्येय संस्कृतिका
रना था। लोग आकर पवित्राचारके कार्योंको
अपने जीवन-सुधारकी शिक्षा ग्रहण करें। आजकल
प्रायः भ्रष्टाचार एवं भिक्षाचारके केन्द्र बन
। प्राचीन ऋषियोंके आश्रम रहते थे, जहाँ सब
परिश्रम करके जीवन व्यतीत करते थे। आ+श्रम=
, जिसमे उन्नति और कल्याण हो। इस तरह वे
ो जीवनकी शिक्षाके केन्द्र थे।

षियोंकी दूर दृष्टिके प्रमाणमें चारों वेद-संहिताओंके
र इति'की ऋचाओंका कुछ विचार जनताके
दिया जाता है—

द—**ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।**
त्नधातमम्। (१।१।१)

ग्नि' ध्वनिसे अनेक अर्थोंकी सम्भावना होती है।
ंको लेकर विचार व्यक्त किया जाता है।

) भौतिक रूपमें अनेक कामोंमें लायी जाती है।
न स्थान मुख्य होनेसे गार्हपत्य, आहवनीय
ाणात्य—तीन रूप माने जाते हैं। गार्हपत्य जो घरमें,
जो यज्ञों या कला-कौशलके कार्योंमें, दाक्षिणात्य जो
या श्मशानमें काम आती है। ऋषि भावना करता
अग्निकी स्तुति करता हूँ, जो आवश्यक कार्यके
' उत्पन्न करनेवाला, उत्तम कार्योंको संपादन करने-
मूल्यवान् वस्तुओंको धारण करनेमें समर्थ है।

) दैविकरूपमें सूर्य और विद्युत् या स्वयं घर्षणसे
है, यथा समुद्रमें बडवानल और पृथ्वीके गर्भमें
और सामने प्रत्यक्ष भी है। ज्ञान बढ़ानेमें सहायता
और रमणीय पदार्थोंको उत्पन्न करती है।

(३) आध्यात्मिकरूपमें परमात्मा है, जो स
कर्ता-धर्ता है और रत्नरूप मोक्षको देनेवाला है।

(४) लौकिकरूपमें पुत्र या मित्र है, जो
कार्योंको सँभालनेवाला और सम्पत्तिको धारण करन
तथा यशको फैलानेवाला है।

(५) सामाजिकरूपमें अग्रणी—नेता है, जो
समाजके कार्योंके करनेमें प्रधान पुरुष है और उत्तम
धारण कर समयपर तदनुकूल काम करनेवाला है।

(६) शारीरिक रूपमें वीर्य तथा जठराग्नि
भोजनका सार निकालकर उत्तम गुणों या बलोंक
करता और शरीर-यात्रामें सहायता करता है।

(७) मानसिक (मनोविज्ञान) रूपमें विवेक
जीवनके सारासारको निकालकर सदाचरण धारण
या व्यवहारमें लानेके लिये सहायक होता है।

(८) जीवशास्त्रमें प्राण है, जो शरीरमें जीवन
और सबसे उत्कृष्ट वस्तु श्वास आदिको धारणकर
प्रकट किया करता है।

(९) अर्थशास्त्रमें सम्पत्ति, भूमि और परिश्रम
जीवनोपयोगी वस्तुओंको उत्पन्नकर उत्तम साम्यको
शान्ति स्थापित करते हैं।

(१०) कामशास्त्रमें स्त्री या वधू है, जो
जीवनमें मुख्य कार्यभाग सम्पादनकर पुत्र या पुत्र
धारणकर समाजकी वृद्धिमें मुख्य घटक है।

(११) धर्मशास्त्रमें सदाचार है, जो जीवनका
उत्तम भावोंको धारणकर समाजमें शान्ति लाता है।

(१२) वैद्यशास्त्रमें ओषधि है जो शरीरमें
बल देकर उत्तम धातुकी रक्षा करता और जीवन
सहायक होता है।

अब 'इति' को देखिये—

(१) सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते
(ऋ० १।१९१

जिसे देव—सुनागरिक पहले ही अच्छी तरह स्व
तथा तदनुकूल कर्तव्योंको जानकर उपासना करते हैं,

समान बोलो अर्थात् उन्नतिके लिये प्रयत्न करो व्य प्रकट करो; भेदभाव मत रक्खो कि कोई कुछ कोई कुछ। इसलिये परस्पर समान ढंगसे सब गावोंको जाननेका प्रयत्न करो। व्यक्तिगत विचारको तलाकर लोगोंकी दुर्गति मत करो। सब काम में रहकर करो।

) समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः मेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो होमि। (ऋ० १। १९१। ३)

भी काममें प्रवृत्त होनेका एक-सा मान (Standard) तरह मन्त्रणा करनेका, निर्णय करनेका एक-सा सबका चित्त एक ही ओर झुका रहे। प्रत्येक व्यक्ति र रक्खे कि मैं निर्णीत मन्त्रका अनुसरण करूँ और र्यमें समान रीतिसे भाग लूँ। यज्ञमें सबके साथ हवि गजके काममें यथाशक्ति सुअवसरपर स्वार्थत्याग करूँ क कार्य-भाग लूँ। वेदका अभिप्राय यह कदापि चाहे जिसके साथ उठो या बैठो और भक्ष्याभक्ष्य- (न करके खाओ-पीओ, और मर्यादाभ्रष्ट होकर मत रक्खो। अपनी सीमामें रहकर एक-सा मान काम करो। विवेकसे काम लो। विवेकभ्रष्ट ।

मानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
ानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥
(ऋ० १०। १९१। ४)

बातको कूँतनेका (कीमत स्थिर करनेका) ढंग । इसी तरह सबके हृदयोंमें एक-सी विचारधारा हो। (यथा—गो-बध-निवारणके सम्बन्धमें सबके क-से विचार रहें।) सबके मन एक ही बातपर जमें, ा साहित्य भी एक ही मानका हो। अर्थात् आचार, ठन-पाठन, वेषभूषा आदि जीवनके कार्योंका मान ard) एक-सा रहे। इस तरह साम्यभावसे प्रसार नहीं होता। देशमें सबका जीवन सुखी

योंने इस वेदमें महावाक्य (Life-motto) यह —'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', निश्चयपूर्वक यह सब ब्रह्म है।

रक्षाके लिये इतने संस्कारादि रक्खे गये हैं। यही र का सत्य स्वरूप है।

यजुर्वेद—**ॐ इषे त्वोर्जे त्वा, वायव स्थ, सविता प्रार्पयतु, श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वम्, इन्द्राय भागं, प्रजावतीः अनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्ते माऽघशंꣳसः ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात्, बह्वीर्य पशून् पाहि।** (यजु०

(१) हे परमेश्वर! मैं तुम्हारी ब्रह्म-तत्त्व और लिये प्रार्थना करता हूँ।

(२) मैं यथेष्ट वर्षा और अन्नके लिये प्रार्थना क

(३) सुप्रजा और अभ्युदयके लिये प्रार्थना क

(४) स्वत्वाधिकार और उत्कृष्ट सदाचार प्रार्थना करता हूँ। क्योंकि तुम सर्वत्र गमनश सबकी चिन्ता करते हो। सबको उत्पन्न करनेवाले कर्मोंके लिये प्राप्त हों और प्रेरित करें। इन्द्रके भाग—इन्द्रियाँ, कृषिहेतु—गौएँ और सुखहेतु—ज्ञा हनन करनेयोग्य नहीं हैं। ईश्वरकृपासे गायें बुद्धियाँ प्रजावती, रोगरहित और क्षयरोगसे र इनपर चोर और दुष्टजन अधिकार न करें। हे परमेश्वर पतित्व—स्वामित्वमें प्रजा, गायें, बुद्धि—सब कुछ और यजमान—कर्तव्यशील मनुष्यकी इन्द्रियाँ, गायें पशुओंकी रक्षा करो और संख्या बढ़ाओ। यजुर्वेदक अध्याय उपनिषद्की गणनामें आ गया है। अत पहलेके (३९वें) अध्यायके अन्तमें इस प्रकार है—

तपसे स्वाहा, तप्यते स्वाहा, तप्यमानाय तप्ताय स्वाहा, घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा, स्वाहा, भेषजाय स्वाहा॥ यमाय स्वाहान्तकाय मृत्यवे स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, ब्रह्महत्यायै विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा॥
(यजु० ३९।

तप तपनेवाले, तपे हुए, तप करते हुए टपकाते हुए अर्थात् उचित और उत्पादक परिश्रम मनुष्य धन्य हैं। उनकी सारी आवश्यकताओंकी प पूर्ति होती रहे। उचित पुरस्कार देनेवाले, प्रायश्चि वाली ओषधियाँ भी धन्य हैं। इनका उचित उपयोग-

ा जाय। सब देवोंकी तृप्ति की जाय और पृथ्वी ारिक्ष सुखदायक हों।

वा ४० वेंके अन्तमें इस प्रकार है—

। नय सुपथा रायेऽस्मान् विश्वानि देव वयुनानि युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम॥ । पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये ऽसावहम्। ॐ खं ब्रह्म॥ (यजु० ४०। १६-१७)

ाग्नि! जानते हुए सुपथमें हमको ले चलो। देवको प्रिय के धन-ऐश्वर्य हों (प्राप्त हों)। हम तुमको नमस्कार तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम (कृपाकर) कुटिल (हटाओ। सत्यका मुँह चमकीले पात्रसे ढका है। ोज करते समय आरम्भमें चमकीली बातें भ्रममें डाल संसारकी चमक-दमकके लोभमें पड़कर या नाम- ाधिमें अटककर वस्तु-तत्त्वको जानना कठिन हो जाता दित्यमें जो पुरुष है, वही मैं हूँ। मैं अखण्ड पुरुष हूँ।

इसका महावाक्य 'तत्त्वमसि' है। वही (अखण्ड- बेम्ब) तू है। समाज तू ही है (समाजका ही है) और तू ही समाज है। तू ही समाज (ब्रह्म) ाता है। तुझपरसे ब्रह्मके भास (समाजकी संस्कृति) ान हो जाता है। इससे समाजवादका उत्तम स्वरूप भाता है। समाजमें प्रत्येक व्यक्ति समाजकी स्थिर ा आदर करनेवाला हो। वह अपनेको समाज- ा रक्षक माने।

वेद—**अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। । सत्सि बर्हिषि। त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां देवेभिर्मानुषे जने॥** (साम० १। १। १-२)

अग्नि! स्तुति करनेवाले और उचित हवि (आवश्यक) देनेवालेके घर आकर कुशासन (उचित स्थान) य आराध्याराधक होकर बैठिये। तुम मेरे यज्ञोंके करनेवाले हो। मनुष्य-समाजमें उत्तम गुणोंद्वारा ृत करते हो।

न्तमें इस प्रकार है—

स्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। ास्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

(साम० २१। १। ९)

विशाल कीर्तिवाले इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें ज्ञानी सबके पोषण करनेवाले सूर्यदेव हमारा कल्याण अकुण्ठित आयुधवाले विष्णु (विश्वकर्मा) हमारा करें, वाणीके पति या देवोंके गुरु हमारा कल्याण करें

इसका महावाक्य है—'अयमात्मा ब्रह्म'—यह चैतन्य व्यक्ति ही ब्रह्म है। यही ब्रह्मका (सभी सम भास दे रहा है। यह भी समाजमें साम्यवाद उत्तम ढंग है।

अथर्ववेद—**ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि ि वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दध**

(अथर्व० १।

वाचस्पति (देवोंके गुरु) मेरे शरीरमें अब उन रक्खें, जो सब तीन और सात या इक्कीस होकर (ती और सात धातु—व्याहृतियाँ या पाँच भूत, पाँच और दस अधिष्ठान इन्द्रियाँ और जीव सब रूपोंक हुए चारों ओर घेरकर स्थित हैं। सब रूप इन्हींमें ये सब रूपोंमें न्यूनाधिक प्रमाणसे हैं।

अन्तमें इस प्रकार है—

मधुमतीरोषधीर्द्यावि आपो मधुमन्नोऽभवत्वन्त क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम। तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्वं

(अथर्व० ९। १४३

ओषधियाँ, द्यौ (आकाश), पानी (मेघ), (वातावरण), क्षेत्रपति क्रुद्ध न होते हुए हमारे लि समान हों, हम उनका अनुसरण करते रहें। अश्विनी द्वारा यह पृथ्वी, वातावरण और आकाशका म भंडार बनाया गया है अर्थात् थलचर, व्योमचर हेतु यह सुखदायक स्थान बनाया गया है। इस सहस्रों यहाँ आकर पानी पीयें और अपनी आवश्यक पूर्ति करें। सब इकट्ठे होकर उपभोग लें।

इसका महावाक्य—'सोऽहम्' है। मैं ही वह बिम्ब) हूँ, मुझमें ब्रह्म (समाज) की युग-युगान्त हुई कृतियोंका समावेश है। मैं उन सबको प्र उद्भूत किया करता हूँ।

हिंदू-संस्कृतिका आधार

(लेखक—पं० श्रीदुर्गादत्तजी त्रिपाठी)

...ृति' शब्द संस्कृत भाषाका है। संस्कृत-व्या-
...र 'सम्' (उत्तम) उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातुमे
...्रत्यय होनेपर 'संस्कृति' शब्द निष्पन्न होता है।
...ल अर्थ है 'उत्तम कृति' अर्थात् देह, इन्द्रिय,
...: बुद्धि आदिकी उत्तम (सम्यक्) चेष्टाएँ या
इनमें लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक,
राजनैतिक, सभी प्रकारके अभ्युदय—उन्नतिके
...ेष्टाएँ आ जाती हैं। वैसे तो देहादिकी अच्छी-बुरी
...एँ 'कृति' हैं; किंतु उनमें अच्छी, सम्यक्, उत्तम
'संस्कृति' (सम्+कृति) कही जाती हैं। हिंदुओं-
...ोंकी सभ्यता श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहासादि ग्रन्थों
...ानुमोदित परम्परागत सदाचारपर आधारित है।
...ते-स्मृति-सदाचारादिसे अनुमोदित, उनपर आधारित
हिंदू-संस्कृति' है। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है
-शास्त्रप्रतिपादित उन वर्ण-आश्रमादिके यथाधिकार
'संस्कृति' हैं। सारांश यह कि वेदादि शास्त्रों तथा
...देत परम्परागत आचार-विचारवाले समाजमें उत्पन्न,
...ादि शास्त्रोंका प्रामाण्य माननेवाला, उनपर विश्वास
...नुकूल व्यवहार करनेवाला व्यक्ति ही 'हिंदू' है
...; उक्त आचार-विचार ही 'हिंदू-संस्कृति' हैं।

...तः मैं यहाँ इस 'हिंदू-संस्कृति'के आधारभूत शास्त्रोंका
जानकारीके लिये वर्णन उपस्थित कर रहा हूँ।
...ो एक दूसरा नाम 'विद्या' है। साधारणतया परा
...रा भेदसे विद्या दो प्रकारकी कही गयी है।
...न्याभिन्न परब्रह्मका साक्षात्कार सम्पादन करानेवाली
...रा' और लौकिक-पारलौकिक अभ्युदयके अनुकूल
...नका उपदेश करनेवाली विद्याको 'अपरा' कहा गया
...ुक्राचार्यने 'नीतिसार'के चतुर्थ अध्यायके तीसरे
...तलाया है कि वैसे तो विद्याके अनन्त भेद हैं,
...तक नहीं गिनाये जा सकते; परंतु उनमें ३२
...्य हैं। शुक्राचार्यका कहना है कि सम्पूर्ण रूपसे
...ीका उपयोग किया जाता हो, वह 'विद्या' है—

यत् स्याद्वाचिकं सम्यक् कर्म विद्याभिसंज्ञकम्।'

...ण यहाँ 'सम्यक् कर्म' इन पदोंपर ध्यान दें।
'सम्' छिपा हुआ है और 'कर्म'में 'कृति'। वही
तो 'संस्कृति' है। इस प्रकार देखनेपर हमें ज्ञात हो...
विद्या-पदवाच्य शास्त्र भी 'संस्कृति'के बोधक होने...
'सम्यक् वाचिककर्म' अर्थात् 'संस्कृति' कहे गये हैं।
कर्मके मूलमें मानसिक होना ही चाहिये। और ...
उपयोग कायिक कर्मोंमें है; अतः वेदादि शास्त्रबोधित ...
वाचिक और कायिक—तीनों प्रकारके सत्कर्म ही 'संस्...
जा सकते हैं।

'हिंदू-संस्कृति'के आधारभूत उक्त बत्तीस ...
४ वेद (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व), ...
(आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व और तन्त्र), ६
(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यो...
६ दर्शन (मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, वेदा...
योग), इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकमत, अ...
कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, काव्य, देशभाषा, अ...
यवनमत और देशादि-धर्म हैं।

वेद

संक्षेपमें इन सबके लक्षण तथा परिभाषाएँ इस प्रक...
संहिता और ब्राह्मणभाग वेद कहा जाता है। संहि...
मन्त्रोंका संग्रह है। जिनका उच्चारण करके किये हु...
होम, पूजन आदि देवताओंकी प्रीति-सम्पादनके कार...
हैं; वे 'मन्त्र' हैं। मन्त्रोंका उपयोग कहाँ और कैसे
जाता है, यह बतलानेवाला वेदभाग 'ब्राह्मण' कहा जा...
जिस वेदमें गायत्री आदि छन्दोंके रूपमें मन्त्र अधिक ...
होते हैं और जिन मन्त्रोंसे यज्ञोंमें हौत्र नामक कर्म स...
होता है, वह 'ऋग्वेद' है। जिसमें अनेक मन्त्र ए...
मिलाकर पढ़े जाते हैं और जो प्रायः किसी छन्दविशेषके
नहीं होते एवं जिनसे अध्वर्यु (यज्ञका एक ऋत्विक्
कर्म करनेकी आज्ञा है, वह 'यजुर्वेद' है। जिसमें भि...
ऋचाओंपर विशिष्ट पद्धतिसे गीतियुक्त मन्त्र हैं, वह 'स...
है। उसके मन्त्रोंका उपयोग यज्ञोंमें उद्गाता आदि
गणके द्वारा विशिष्ट रीतिसे उच्चारणमें होता है
वेदभागमें उपास्य देवताओंकी उपासनाके अनेक मन्त्र
'अथर्ववेद' कहा जाता है। उसका नाम 'अथर्वाङ्गिरस...
है। हिंदू-शास्त्र वेदोंको अनादि, अपौरुषेय एवं स्वतः
मानते हैं। चारों वेदोंकी ११३१ शाखाएँ हैं, जिनमें ऋ...

ेदकी १०१, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी
ें हैं। इनमेंसे अधिकतर लुप्त हो चुकी हैं। कुछ
लब्ध हैं, जिनकी अध्ययनाध्यापन-परम्परा प्रचलित
े कालकी महिमासे वेदोंके पढ़नेवाले कम होते जा
तथापि काशी, नासिक आदि कतिपय स्थानोंमें
इस परम्पराको अभीतक उज्जीवित रक्खा है।
संख्यामें वेदोंके मन्त्र इनको कण्ठस्थ हैं। पाठमें
या मात्रा भी इधर-उधर होने नहीं पाती। उनके
परम्परा कबसे चली आ रही है, यह कहना कठिन
न वेद-पाठकोंकी स्मरणशक्ति देखकर आश्चर्य

उपवेद

चारों वेदोंमें प्रत्येकका एक-एक उपवेद है। 'आयुर्वेद'
उपवेद है। इसमें रोगोंकी पहचान, उनकी
कारण, चिकित्सा आदिका वर्णन है। इसको जानकर
आचरण करनेसे मनुष्यका स्वास्थ्य उत्तम रहता है
ु बढ़ती है। इसीलिये यह आयुर्वेद कहा जाता है।
आकृति अर्थात् शरीर-रचना ('अनाटमी' तथा
ऊजी') और औषध एवं चिकित्सा ('थेराप्यू-
था 'मेडिसन') दोनों आ जाते हैं।] धनुर्वेद यजुर्वेदका
। इसमें युद्धसम्बन्धी सभी बातोंका वर्णन है।
स्त्र-अस्त्रोंके निर्माणकी विधि, उनके चलानेके उपाय,
कारकी व्यूह-रचनाएँ आदि विषय इसमें विस्तारके
ाये गये हैं। प्राचीन कालमें शस्त्रास्त्रोंमें धनुष मुख्य
लिये उसके नामपर इस उपवेदका नाम 'धनुर्वेद'
ार्ववेद' सामवेदका उपवेद है। इसमें उदात्त, अनुदात्त
दसे और वीणा तथा कण्ठसे निकलनेवाले षड्ज,
ादि सात स्वरोंसे तालके साथ गानेकी विधि बतलायी
(इस तरह इसमें 'वोकल'—कण्ठ-सम्बन्धी और
'—तन्त्री-सम्बन्धी दोनों गान आ जाते हैं)। 'तन्त्र'
का उपवेद है। इसमें अनेक उपास्य मन्त्रोंकी उपासना-
याँ, प्रयोग और उपसंहार (लौटाने) के साथ
ोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि षट्कर्मोंके
उनके नियम आदि विशिष्ट प्रयोगोंके साथ विशद
। (आजकलके लोग इन्हें टोना-टामन भले ही कहें,
ो उपयोगिताको स्वर्गीय श्रीवुडरफ-सरीखे पाश्चात्त्य
ने भी स्वीकार किया है।)

कण्ठ, तालु आदि स्थानभेदसे एवं बाह्य, आभ्यन्तर
साथ वेदमन्त्रोंके पढ़नेकी विधि 'शिक्षा' कही ज
वैसी 'शिक्षा' की शिक्षा देनेवाले ग्रन्थको भी
कहते हैं। शिक्षाएँ प्रत्येक वेदकी पृथक्-पृथक् ए
हैं। इसे वेदकी 'घ्राणेन्द्रिय' कहा गया है। शिक्षा
'कल्प' है। इसके दो भेद हैं—एक श्रौत, दूसरा
'श्रौतकल्प'में ब्राह्मण नामक वेदभागमें कहे गये
प्रयोगकी विधियाँ बतलायी गयी हैं। 'स्मार्तकल्प'में उप
संस्कार एवं अन्यान्य स्मार्त कर्मोंकी विधियाँ कही ग
ये कल्प (सूत्र) प्रत्येक शाखाके जुदे-जुदे हैं।
के 'हाथ' माने गये हैं। 'व्याकरण'में धातु, प्रत्यय
समास, लिङ्ग आदि भेदोंसे शब्दोंका साधन किया ग
इसको जाननेसे शब्दोंकी शुद्धि-अशुद्धिका ज्ञान ह
बोलनेमें शब्दोंकी शुद्धता एवं अशुद्धताका ज्ञा
परमावश्यक है। व्याकरण वेदका 'मुख' है। पत
है कि प्राचीन समयमें ऐन्द्र, चान्द्र, काशकृत्स्न अ
व्याकरण प्रचलित थे; किंतु आज वे प्रायः नामशेष
हैं, केवल पाणिनिका संस्कृत-व्याकरण ही विशेष प्रच
'निरुक्त'में शब्दोंका निर्वचन (निष्कर्षसे कथन
गया है और वाक्योंके अर्थोंका एकार्थरूपमें संग्र
गया है। यह वेदोंके शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ बत
इसलिये इसे वेदोंके 'कान' कहते हैं। पहले कई न
ऐसा समझा जाता है; परंतु आजकल यास्कान
निरुक्त ही उपलब्ध है। 'छन्द'में मगण आदि गणों
पद्य-रचनाकी शैलीका वर्णन है। गायत्री आदि वै
आर्या आदि लौकिक छन्द हैं। 'छन्द' वेदका पाँच
है। यह वेदका 'चरण' कहा जाता है। छन्दके
पिङ्गलकृत सूत्र प्रधान है। 'ज्यौतिष'में नक्षत्र-ग्रहोंकी
से संहिता-होरा एवं गणित आदिद्वारा पृथक्-पृथक्
निर्देश किया गया है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों तथा
आदि ज्योति (नक्षत्रों) द्वारा कालका बोध कराने
इसको 'ज्यौतिष' कहते हैं। कालका ज्ञान यज्ञादि
लिये उपयुक्त है। यह शास्त्र वेदका 'नेत्र' माना ज
लगधाचार्यकृत वेदाङ्गज्यौतिष ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ज
विषय बड़ा गम्भीर और साथ ही अति म
है। इसकी सहायतासे प्राणीके भूत, वर्तमान,
सुख-दुःखादि भोगोंका पता लग सकता है। भारत

के हिटलरको इस शास्त्रपर अधिक विश्वास था और
ज्योंसे समझकर अपना कार्यक्रम निश्चित किया करते थे।

दर्शन

तक अङ्गोंका दिग्दर्शन कराया गया। आगे छः दर्शनों-
में विवरण किया जाता है। 'मीमांसा'में अपूर्व,
परिसंख्या आदि विधिभेद तथा अर्थवादादिभेदसे
के अर्थ लगानेकी पद्धति कही गयी है। इसको
ा भी कहते हैं। बिना इसकी सहायताके वेदवाक्यों-
ाय नहीं किया जा सकता। इसके प्रधान आचार्य
हुए हैं। ये वेदव्यास बादरायणके शिष्य थे। इन्होंने
रूके 'अथातो धर्म जिज्ञासा' आदि सूत्रोंका निर्माण
। इन सूत्रोंका शबरस्वामीने भाष्य किया है।
भट्ट आदि और भी कई इस शास्त्रके आचार्य

य' में भाव (द्रव्य, गुण आदि छः पदार्थ) तथा
प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे युक्तिपूर्वक विचार किया है।
भेद हैं—एक न्याय और दूसरा वैशेषिक। इन
तोंमें कुछ अधिक अन्तर न होनेसे शुक्राचार्यने
ारमें इन दोनोंको 'न्याय' ही कहा है। न्यायके
चार्य गौतम हुए हैं और वैशेषिकके कणाद। न्याय-
नुसार प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह तत्त्वोंके यथार्थ
ःश्रेयसकी प्राप्ति होती है। कणाद द्रव्य, गुण आदि
के तत्त्वज्ञानसे मुक्ति मानते हैं। गौतमके मतानुसार
ानुमान, उपमान और शब्द—ये चार प्रमाण हैं;
ाद प्रत्यक्ष तथा अनुमान दो ही प्रमाण मानकर
न्हींमें अन्तर्भाव करते हैं। गौतमके मतमें प्रमेयादि
व इस प्रकार हैं—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ
), बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख,
ये बारह प्रमेय हैं), संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त,
यह चार प्रकारका है—सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण
्युपगम), अवयव (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण,
ौर निगमन), तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा,
(इसके पाँच भेद हैं—सव्यभिचार, विरुद्ध,
1, साध्यसम और कालातीत), छल (यह वाक्छल,
ल, उपचारछल—इस तरह तीन प्रकारका है), जाति
ाहस्थान।

इनके अतिरिक्त अभावरूप एक सातवाँ पदार्थ
जाता है। उक्त पदार्थोंमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु,
काल, दिशा, आत्मा और मन—ये नौ 'द्रव्य' है
रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग
परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह,
बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अ
संस्कार—ये चौबीस 'गुण' माने जाते हैं। उत्क्षेपण (उ
अवक्षेपण (फेंकना), आकुञ्चन (सिकोड़ना),
(फैलाना), गमन (चलना)—ये पाँच 'कर्म' हैं।
अपर—यह दो प्रकारका 'सामान्य' है। 'विशेष
हैं। 'समवाय' एक है। अभाव चार प्रकारका है—
प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव।

'सांख्य' का विषय पच्चीस तत्त्व हैं। तत्त्वोंकी
संख्याकी विशेषता इसमें होनेसे इसका नाम 'सांख
इसके मुख्य आचार्य कपिल हुए हैं। इन्होंने स
द्वारा अपने सिद्धान्तको व्यक्त किया है। आ
आधिदैविक, आधिभौतिक तापोंकी अत्यन्त
ये पुरुषार्थ मानते हैं। पच्चीस तत्त्वोंमें १ पुरुष
कूटस्थ होनेसे न किसीका कारण है न विकार
प्रकृति, ३ महत्तत्त्व, ४ अहङ्कार, ५—९ पाँच
(शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-तन्मात्रा), १
पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चीकृत प
भूत, १५—१९ हस्त, पाद, वाणी, मलेन्द्रिय और मूत्रे
ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ, २०—२४ कान, त्वचा, नेः
और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और २५वाँ म
तरह सांख्यमतानुसार ये पच्चीस तत्त्व हैं। प्रत्यक्ष,
और शब्द—ये तीन प्रमाण उन्हें सम्मत हैं।

'वेदान्त'में सजातीय-विजातीय-स्वगत-सर्वविध
रहित, अद्वितीय, नित्य, निरतिशय, बृहत् सचि
रूप ब्रह्म ही एक सद्वस्तु प्रतिपाद्य है। ब्रह्मातिरि
प्रपञ्च रज्जुमें प्रतीत होनेवाले सर्पके समान मिथ्या (
है। वस्तुतः न होते हुए भी सर्वजगत्‌की प्रतीति ः
मायासे होती है।

ब्रह्मैकमद्वितीयं स्यान्नाना नेहास्ति किञ्चन
मायिकं सर्वमज्ञानाद्भाति वेदान्तिनां मतम्

(शुक्र

ा' में चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका उपाय वर्णित है।
ाम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान
ाधिके अभ्याससे अन्तःकरणकी वृत्तियोंका निरोध
समाधि दो प्रकारकी है—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।
सार समाधिद्वारा प्रकृति और पुरुषका पृथक् विवेचन
। प्रकृतिका व्यापार बंद हो जाता है और इसीसे
ती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और
—ये पाँच 'यम' हैं। शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय
-प्रणिधान—ये पाँच 'नियम' हैं। पद्मासन, स्वस्तिका-
ई अनेक 'आसन' हैं। पूरक, रेचक, कुम्भकके
े 'प्राणायाम' भी अनेक हैं। योगकी साधना-
गमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त
, जिनसे चमत्कार दिखाये जा सकते हैं।
ा, हिप्नाटिज्म आदि इसी योगकी निम्न-कोटिकी
हैं, जिनके द्वारा आजकल बहुत-से लोग तमाशा
र पैसा पैदा करते हैं; किंतु विवेकी पुरुष सिद्धियोंके
न फँसकर परम सिद्धि—मोक्षके लिये प्रयत्न करते
द्धियाँ परम सिद्धिके मार्गमें बाधक हैं। बिना अच्छे
गुरुकी सहायताके केवल पुस्तकोंके सहारे योगका
करना हानिकर है।

तक वेद, उपवेद, वेदाङ्ग तथा दर्शनोंके लक्षण
बतलाये गये।

हासमें किसी एक राजाके चरित्र-वर्णनके व्याजसे
घटनाओंका वर्णन रहता है। जैसे महाभारत,
ा आदि।

(सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश (महान् पुरुषोंके
न्वन्तर (किस-किस मनुका कितने समयतक अधिकार
यह) और वंशानुचरित (महान् पुरुषोंके कुल-
का वर्णन जिसमें मुख्य रूपसे किया गया हो, वह
कहा जाता है। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत,
ार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह,
ामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड—ये अठारह
। पुराणोंके रचयिता बादरायण महर्षि व्यास हैं।
ातके स्थानमें कोई-कोई देवी-भागवतको पुराण
। 'ब्रह्मवैवर्त' पुराणके मतानुसार क्रमशः पुराणों-
-संख्या (१ श्लोक=३२ अक्षर) इस प्रकार है—

११०००, २४०००, ८१०००, १००००,
१८०००, १९०००, १२००० । इस तरह सबकी
संख्या ४,३२,९०० होती है। कई दृष्टियोंसे पुराणोंका ब
है। अठारह पुराणोंके समान अन्यान्य महर्षियोंसे रचित
पुराण भी हैं। अनेकोंका विश्वास है कि उपपुराण वै
नहीं हैं; किंतु आधुनिक उपलब्ध उपपुराणोंमें कुछ प्रक्षि
हों, तो भी मूल उपपुराण अति प्राचीन कालसे है
सन्देह नहीं। ईसवी ११ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें
शिष्यने अपनी 'वेदार्थदीपिका' में नृसिंह-उपपुराण
उद्धृत किये हैं। उसके पहले मुसल्मान विद्वान् अ
अपनी 'भारत-यात्रा' के वर्णनमें नन्द, आदित्य
साम्ब और नरसिंह आदि उपपुराणोंका उल्लेख कि
उपपुराणोंके नाम ये हैं—सनत्कुमार, नरसिंह, बृह
शिव या शिवधर्म, दुर्वासस, कापिल, मानव,
वारुण, कालिका, साम्ब, नन्दिकेश्वर, सौर,
आदित्य, ब्रह्माण्ड, माहेश्वर, भागवत, वासिष्ठ
भार्गव, आदि, मुद्गल, कल्कि, देवी, महाभागवत,
परानन्द और पशुपति। पुराणोंकी ओर आधुनिक
ध्यान नहीं गया है। ऊटपटाँग दन्तकथाएँ समझकर
छोड़ दिया गया है; परंतु उनमें समाजशास्त्र,
संस्कृति-सम्बन्धी कितनी ही सामग्री भरी पड़ी है
विद्वान् पार्जिटरने इस ओर कुछ ध्यान दिया
संस्कार भिन्न होनेके कारण उनका प्रयत्न असफल ह

पुराणोंके बाद 'स्मृति' आती है। स्मृति
अविरुद्ध—वेदानुकूल—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शू
वर्णोंके एवं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास
तथा वर्णेतरोंके धर्मोंका स्मरण तथा अर्थशास्त्रका व
धर्मका निर्णय करनेमें वेदोंके बाद स्मृतियोंका ही स्थ
स्मृतियाँ अनेक हैं। इनमें मनु, अत्रि, विष्णु,
याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब,
कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित
गौतम, शातातप और वशिष्ठकी—ये बीस मुख्य हैं
अध्ययनसे पता लगता है कि अपने यहाँ कानूनका
भाव कितना व्यापक था। पाश्चात्त्य विद्वानोंमें रोमके
सम्बन्धी ज्ञानकी बड़ी प्रशंसा है। परंतु उनके उत्थान
वर्ष पूर्व अपने यहाँ कानूनकी जटिल समस्याओं

समें युक्तिकी ही प्रधानता है। वह अन्य आस्तिक की तरह—जैसे वे मानते हैं—जगत्‌के कर्ता ईश्वर को नहीं मानता। उसके मतमें सब वस्तुएँ क ही हैं—अकस्मात् अपने-आप उत्पन्न हुई हैं। की निन्दा करनेवालेको ही नास्तिक बतलाते हैं— 'वेदनिन्दकः' । उनका तात्पर्य यह है कि ईश्वर, , स्वर्ग-नरक आदिका बोध वेदसे ही होता है। द या वेदानुसारी स्मृति आदिके, दूसरे प्रत्यक्ष-दि प्रमाणोंसे ईश्वर आदिका अस्तित्व ही नहीं जाना । इसलिये वेदकी निन्दा जिसने की, उसने मानो रलोक आदिका खण्डन पहले ही किया। इसके दर्शन', 'लोकायतिक' आदि नाम भी हैं। इसके चार्य बृहस्पति हैं। नास्तिक-मतमें केवल प्रत्यक्ष ही ना गया है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु—ये ही र्थ हैं। महुआ आदि पदार्थोंमें अन्यान्य वस्तुके कालान्तरमें जैसे मादक शक्ति उत्पन्न होती है, थ्वी आदिके संयोगसे देह बनकर उसमें चैतन्य- जाती है। चैतन्ययुक्त देह ही आत्मा अतिरिक्त आत्मा नामकी कोई दूसरी वस्तु नहीं होना ही मुक्ति है। अच्छा खाना, पीना और करना—बस, यही पुरुषार्थ है। आधुनिक पाश्चात्त्य सी आदर्शका मूर्तिमान् उदाहरण है। उस समयकी स नास्तिक-मतका अध्ययन भी आवश्यक समझा ।

शास्त्र' में वेद और स्मृतियोंका विरोध न होते को अपना और राज्यका शासन किस तरह चलाना इसका और धनोपार्जन करनेके कुशल उपायोंका ता है। इस तरह इसमें 'पालिटिक्स' (राजनीति) कनामिक्स' (अर्थशास्त्र) दोनों आ जाते हैं। ऐसा समझते हैं कि धर्मका राजनीति, अर्थशास्त्र कोई सम्बन्ध नहीं है, धर्म तो कुछ विशिष्ट व्यक्तियों-रणकी वस्तु है, सर्वसाधारणको धर्मके पचड़ेमें प्रयोजन नहीं है, उन्हें शुक्राचार्यके इस लक्षण और राजनीति, अर्थनीतिके ग्रन्थोंका कुछ मनन करना

मशास्त्र' में शशक, मृग, अश्व एवं हस्तिभेदसे पुरुषों;

साधारणी आदि भेदसे नायिकाओंका वर्णन कि है। उनके परस्पर अनुरागादिका लक्षण भी क वर्णित है। इससे स्त्री-पुरुषोंके मानसिक भावोंको भी में बड़ी सहायता मिलती है। इसकी शिक्षाकी उप अब पाश्चात्त्य विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं। क श्रीहैवलाक एलिस, वेस्टर मार्क—ऐसे पाश्चात्त्य कहना है कि प्राचीन भारतीय कामशास्त्र कई दृष्टियों उच्चकोटिका है।

'शिल्प-शास्त्र' में महल, किले, मकान, बगीचे कूप, तालाब आदिके निर्माण और मरम्मतके प्रकार है। इसमें पूरी 'सिविल इञ्जीनियरिङ्ग' आ 'मूर्तिकला' का भी इसीमें समावेश है; इस तरह इस 'आर्कीटेक्चर' और 'स्कल्पचर' दोनों आ जाते बड़ी विशेषता यह है कि किस प्रकार, किस अनुपातके को बनानेसे क्या प्रभाव पड़ता है—इसका भी इस मिलता है। इसको आजकलके लोग भले ही न वह होता अवश्य है। शिल्प-शास्त्रके आधारपर मन्दिरोंको देखकर उनकी सुन्दरतापर विदेशी होते हैं। इस शास्त्रके कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं; खेदका विषय है कि उसके जानकारोंका प्रायः हो रहा है।

इसके बाद 'अलङ्कृति' है। इसमें सम, न्यून रूपमें सादृश्यादि-भेदसे परस्परके गुणोंके भूषा- वर्णन होता है। अलङ्कृतिका एक नाम अलङ्कार है

समन्यूनाधिकत्वेन सारूप्यादिप्रभेद
अन्योन्यगुणभूषा च वर्ण्यतेऽलङ्कृतिश्च स

(शुक्र

जिसमें शृङ्गार आदि रससे युक्त, अनुप्रास आदि अलंकारोंसे सुशोभित एवं दुःश्रव आदि दो शब्द और अर्थोंका समुदाय हो, उसे 'काव्य' क उसके गद्य और पद्य—ये दो भेद हैं। काव्यके सु एक विलक्षण अलौकिक आनन्दकी अनुभूति हो काव्यकी रचना करनेवाला 'कवि' कहा जाता है निर्माणका उद्देश्य केवल तात्कालिक मनोरञ्जनमात्र द्वारा यशोलाभ ही नहीं था, अपितु—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतर

र कृतियोंका इतना विशाल, अप्रतिम संग्रह है कि
न कालसे रसज्ञोंके लिये रस-वर्षण करता हुआ भी
वैसा ही सरस बना हुआ है; न जाने इनमें कितना
।'

न-भिन्न देशोंमें वहाँके निवासी लोगोंके द्वारा सङ्केत
पदार्थोंका बिना प्रयाससे ज्ञान करानेवाली वाणीको
या देशभाषा कहते हैं।

। या अन्यान्य शास्त्रीय परिभाषारूप सङ्केतके बिना,
देखकर उसके अनुसार, अपने अभिप्रायको जिस
यक्त किया जा सकता है, वह 'अवसरोक्ति' कही
। इसीको 'हाजिर-जवाबी' कहते हैं, शिक्षामें इसकी
वश्यकता है। सारे ग्रन्थोंको चाटकर भी बहुतोंको
ठीक उत्तर देनेका अभ्यास नहीं होता।

के बाद 'यावन' मतका उल्लेख इस तरहसे किया
—

रः कारणं यत्रादृश्योऽस्ति जगतः सदा।
स्मृती विना धर्माधर्मौ स्तस्तच्च यावनम्॥
ादिभिन्नधर्मोऽस्ति यत्र तद्यावनं मतम्।

ात् जिसमें जगत्को चार्वाककी तरह आकस्मिक
कर उसका कारण अदृश्य—जिसका दर्शन कभी न
ऐसा ईश्वर माना जाता हो और जिसमें पाप-पुण्य
जाते हों, किंतु उनके ज्ञान और उनके साधनोंके
द-स्मृतिके बिना ही होना माना जाता हो एवं
ेदविरुद्ध धर्मोंका उपदेश किया गया हो, उसे
यवनोंका मत कहते हैं। यह बड़े मार्केकी बात है,
स समयके शिक्षाक्रमकी उदारताका परिचय मिलता
ंके मतको जानना बड़ा आवश्यक है, क्योंकि उससे
में दृढ़ निष्ठा होगी। 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इस
त्रमें 'धर्मजिज्ञासा' और 'अधर्मजिज्ञासा' इस तरह
से पदच्छेद करके धर्म तथा अधर्मकी जिज्ञासा उपक्रान्त
है। वहाँ आचरणके लिये जैसे धर्मकी जिज्ञासा
वर्जनके लिये अधर्मकी जिज्ञासा अपेक्षित है, वैसे ही
आस्तिक विद्याओंका ज्ञान उनसे उपदिष्ट कर्तव्य-
वलम्बन करनेके लिये और चार्वाक, यावन आदि
विद्याओंका ज्ञान उनमें उपदिष्ट कर्मादिसे बचनेके
लिये अपेक्षित है। 'यवन' शब्द प्रायः वि
लिये ही प्रयुक्त होता था। कुछ लोगोंका मत है वि
शब्द 'आयोनियन' का ही रूपान्तर है, जिससे
'यूनानियों' अर्थात् प्राचीन ग्रीकलोगों (ग्रीसनिव
से है। यह चाहे न भी हो; परंतु इतना तो अव
है कि उस समय भी भारतीयोंका विदेशियोंसे स
और उनके मतको जाननेकी उनमें उत्सुकता थी।

इस तरह इकतीस विद्याओंके लक्षणोंको बतलाकर इ
ने अन्तमें 'देशादिधर्म'को बत्तीसवीं विद्या कहा है
लक्षण वे ऐसा लिखते हैं—

कल्पितः श्रुतिमूलो वामूलो लोकैर्धृतः सदा
देशादिधर्मः स ज्ञेयो देशे देशे कुले कुले

अर्थात् भिन्न-भिन्न देश, कुल या जातियोंमें
सदासे प्रचलित देखा जाता हो—चाहे उसके अ
प्रमाण वेद, स्मृति आदि ग्रन्थोंमें मिलते हों या न भ
हों, किंतु जो लोगोंके आचरणोंमें देखा जाता ह
'देशादि धर्म' जानना चाहिये। यहाँ 'आदि' पद
जातिको समझना चाहिये। इन धर्मोंके आचरण
जोर दिया गया है और इनके त्यागकी बड़ी निन्दा
है। युद्धके परिणामके विषयमें अर्जुनने भी भगवान् श
चिन्तित होकर यह शङ्का की थी—

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकै
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वता
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्द
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम

मनु, याज्ञवल्क्य आदिने राजाको इस बात
हिदायत की है कि राजा यदि किसी अन्य देशपर
अधिकार करे, तो—

यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थिति
तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः

—के अनुसार उस विजित देशमें जो-जो देश,
कुलके धर्म उस समय प्रचलित हों, उनके अनुसार ई
शासनकी व्यवस्था करे। शासनका यह कितना उद
है! इस तरह संक्षेपमें यहाँ हिंदू-संस्कृतिकी अ
बत्तीस विद्याओंका विवरण किया गया।



इह विद्याएँ—अति विस्तृत भारतीय वाङ्मयका
ह विद्याएँ हैं। याज्ञवल्क्यने अपनी स्मृति १। ३ में
दह विद्याओंका परिगणन निम्नलिखित प्रकारसे
—चार वेद, छः अङ्ग, एक मीमांसा, एक न्याय,
ा और एक धर्मशास्त्र।

भारतीय वाङ्मय इन चौदह विद्याओंके अन्तर्गत है।

रह विद्याएँ—विष्णुपुराण और कई अन्य ग्रन्थोंमें
विद्याएँ गिनायी गयी हैं। इनमेंसे चौदह विद्याएँ
-प्रदर्शित हैं; तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद
विद अथवा अर्थशास्त्र—ये चार अधिक हैं। चौदह
ाननेवाले इन चारको चारों वेदोंके अन्तर्गत मानते हैं।

सिद्धान्त—इन चौदह विद्याओंके अतिरिक्त सात
हैं। उनका वर्णन योगि-याज्ञवल्क्य नामक पुरातन
मिलता है। योगि-याज्ञवल्क्यके प्रमाण वाचस्पति-
संवत् ८९८) के ग्रन्थोंमें मिलते हैं। सात
ो हैं—

ात्र सिद्धान्त, कापिल सिद्धान्त, अपान्तरतम-
ब्रह्मिष्ठ-सिद्धान्त, पाशुपत सिद्धान्त, हैरण्यगर्भ
और शैव सिद्धान्त।

सौ शास्त्र और सत्तर महातन्त्र—विद्याओंके
ग्रन्थोंका उल्लेख महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय
निम्नलिखित श्लोकोंमें पाया जाता है—

सामेव विद्यानां व्यासमाह महेश्वरः॥३३॥
नि त्रीणि शास्त्राणां महातन्त्राणि सप्ततिः।
स एव तु विद्यानां महादेवेन कीर्तितः॥३४॥
ं पाशुपतं नाम पाञ्चरात्रं च विश्रुतम्।
शास्त्रं च सांख्यं च तन्त्रं लोकायतं तथा॥३५॥
ं ब्रह्मतुला नाम तर्कविद्या दिवौकसाम्।
दुःखार्थजिज्ञासा कारणं चेति विश्रुतम्॥३६॥

श्लोक महाभारतके सब संस्करणोंमें नहीं मिलते, पर
ङ्मयका विस्तार जाननेमें बहुत सहायक हैं।

त्र और शास्त्रका भेद—महाभारतान्तर्गत पूर्वोक्त

पर इतना प्रतीत होता है कि तन्त्र बृहदाक
विस्तृत हैं तथा शास्त्र किञ्चित् संक्षिप्त हैं। मूल
सत्तर थे और शास्त्र तीन सौ। यह विद्या-विस्ता
कहा है। यहूदी-ईसाई-प्रभावके नीचे दबे अनेक
ऐतिहासिक शिवकी ऐतिहासिकताको अभी समझ न

शिव अथवा विशालाक्षने श्रीब्रह्माजीके त्रिव
अर्थभागका पृथक्करण किया। उस महान् अर्थवेद
विषय थे। कालान्तरमें इनपर पृथक्-पृथक् ग्रन्थ लि
उनमेंसे जिन ग्रन्थोंका वर्णन हमें संस्कृत अथव
आदि ग्रन्थोंमें मिला है, वे आगे लिखे जाते हैं—

१. लोकायत-शास्त्र—(क) लोकतन्त्रका
महाभारत, आरण्यकपर्व १५९। १ में तथा '
विचक्षणः' पद शान्तिपर्व १७४। ४ में मिलता है

(ख) कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें लोकायत एक श
गया।

( ) पातञ्जल व्याकरणमहाभाष्य ७। ३।
भागुरीकृत लोकायत-शास्त्रकी व्याख्याका उ
पं० श्रीयुधिष्ठिरजी मीमांसकके मतानुसार सं
कि प्रसिद्ध वैयाकरण भागुरिकी बहिन भागु

(घ) तत्पश्चात् जैन अनुयोगद्वारसूत्रमें
वर्णित है।

(ङ) वात्स्यायनकृत कामसूत्र १। २। २८ में
का मत उद्धृत है।

(च) इनका उत्तरवर्ती बौद्ध आचार्य कमलशी
गुरु शान्तरक्षितके रचे तत्त्वसंग्रहके श्लोक
की टीकामें लिखता है—

मिथ्यार्थशास्त्रश्रवणाद् व्यामूढो लोकाय

(छ) लगभग उन्हीं दिनोंका जैन विद्वान् ह
अपने षड्दर्शनसमुच्चयके अन्तमें लोकायत
संक्षेप देता है।

(ज) चीनी यात्री ह्वेन सांगको एक वृद्ध लोकाय
मिला था[2]।

जैन विद्वान् सोमदेवसूरिकृत यशस्तिलक-चम्पूमें बृहस्पति लोकायतका उल्लेख है।

तत्पश्चात् अमरके नामलिङ्गानुशासनका प्रसिद्ध टीकाकार काश्मीरक क्षीरस्वामी लिखता है—

चार्वाकलोकायतिकौ। (२।७।६)

ति् चार्वाक और लोकायत दो भिन्न मत थे।

ायतशास्त्रके रचयिता—त्रिवन्द्रम्, रियासत ट्रावन्कोरात पण्डित गणपति शास्त्रीने पुरानी टीकाओंके : अर्थशास्त्रकी जो सुन्दर टीका रची है, उसमें वे —

ब्रह्मगार्ग्यप्रणीतं लोकायतशास्त्रम्।

ति् लोकायतशास्त्र ब्रह्मा और गार्ग्य आदिके द्वारा ा। प्रतीत होता है लोकायत-शास्त्र शुद्ध राजनीतिशास्त्र था। उत्तर-कालमें यह नास्तिक शास्त्र कहा ।

धनुर्वेदसूत्र—धनुर्वेद-सूत्रोंका उल्लेख महाभारत, ५। ११० में मिलता है।

नस धनुर्वेद—काव्य-उपनामधारी उशना (शुक्राचार्य) एक अतिपुरातन धनुर्वेद था। इसके अनेक उद्धरण मित्रोदयमें मिलते हैं।

ाजधनुर्वेद—भरद्वाजका धनुर्वेद-विशेषज्ञ होना ारत, शान्तिपर्व, अध्याय २१२ में लिखा है—

धर्वं नारदो वेद भरद्वाजो धनुर्ग्रहम्।३३।

ाय आरण्यक १।२।२ के अनुसार भरद्वाज ' अनूचानतम थे। उन्होंने अवश्यमेव कोई धनुर्वेद ा। धनुर्वेदके प्रसिद्ध आचार्य द्रोण इन्हींके पुत्र थे।

ग्निकृत धनुर्वेद—आयुर्वेदकी सुश्रुत-संहिताका कार उल्हण चिकित्सा-स्थान अध्याय १२ की टीकामें ता है—

र्या पदातिचर्या च जमदग्निराह—

दिग्भागभागेषु हस्त्यश्वरथपत्तिषु।

ास्त्रैर्यस्तु संयोगः सा चर्येति प्रकीर्त्यते। इति॥११॥

व्यूहशास्त्र—महाभारत, भीष्मपर्व ८३। २० में विशारदोंका उल्लेख है।

रथसत्र—महाभारत, सभापर्व ५। ११० में इन सूत्र स्मृत हैं। नकुलका अश्वशास्त्र इस समय उपल मत्स्यपुराण २१७। २०–१२ में यह ग्रन्थ उल्लिखि

अश्वलक्षणोंके अध्येता और वेत्ताओंका उल्लेख ४।२।६० में है।

६. **हस्तिसूत्र**—सभापर्वके पूर्वोक्त स्थानमें इ भी नाम मिलता है।

कर्ता—(क) **लोमपाद**—अङ्गदेशके राजा इस सूत्रके रचयिता थे। वायुपुराण अध्याय लिखा है—

………………… …त्रिदशा ददुः।

अङ्गाय लोमपादाय सूत्रकाराय वै द्विपान्॥२

(ख) **बुध**—लोमपादसे बहुत पहले सोम पुत्र बुधने हस्तिशास्त्र रचा था। मत्स्यपुराण ३ इनके विषयमें लिखा है—

सर्वार्थशास्त्रविद्धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः

७. **हस्त्यायुर्वेद**—इस विषयका पालकाप्य मुनि सम्प्रति उपलब्ध है। उसके प्रथम अध्यायमें लिखा

दिग्गजानां वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच पिताम
न विषादे मनः कार्यं व्याधीन्प्रति मतंगज
उत्पत्स्यत्यचिरेणाथ गजबन्धुर्महामुनि
आयुर्वेदस्य वेत्ता वै मत्कृतस्य भविष्यं

अर्थात् श्रीब्रह्माजीद्वारा रचित आयुर्वेदके महान् पालकाप्य मुनि हस्त्यायुर्वेदका भाग पृथक् करेंगे।

मत्स्यपुराण २१७। २५ में गजवैद्य स आयुर्वेदीय चरकसंहिता, सूत्र-स्थान, अध्याय ६ के चक्रपाणि टीकाकार 'उक्तं च हस्तिवैद्यके' लिख श्लोक उद्धृत करते हैं।

८. **शालिहोत्र(घोड़ोंकी चिकित्साका)ग्रन्थ**—पर सर्वानन्दके टीका-सर्वस्व, भाग १, पृ० ३३, ४ ग्रन्थ स्मृत है। नेपालके राजगुरु पण्डित हेमराज जो आयुर्वेदकी काश्यपसंहिता प्रकाशित की है, उसके पृ० ६९, ७०, ७१ में शालिहोत्र ग्रन्थके प्रमाण उ

९. **यन्त्रसूत्र**—मनुष्यमात्रके परमबन्धु स्वायंभुव मनुने यद्यपि 'महायन्त्रप्रवर्तनम्'को एक माना है, तथापि साधारण यन्त्र भारतमें प्रचलित

अध्ययन आवश्यक समझा गया है। शान्तिपर्व ५ में लिखा है—

त्राणि विविधान्येव क्रियास्तेषाम् ·········।

ः) विश्वकर्म-प्रोक्त यन्त्रमात्रिका—वात्स्यायनमुनि-सूत्र १। ३ की जयमङ्गला टीकामें लिखा है—

जीवानां निर्जीवानां यन्त्राणां यानोदकसंग्रामार्थं त्रं विश्वकर्मप्रोक्तम्।

मान समयमें समराङ्गणसूत्रधार, युक्तिकल्पतरु आदिमें कुछ वर्णन मिलता है।

. वाणिज्यशास्त्र—अमरकोश २। ९। ७९ पर ग्रमें लिखा है—

हेन च वाणिज्यशास्त्रं प्रणीतम्।

हराजकृत वाणिज्यशास्त्रका उल्लेख कौटिल्यरचित की गणपतिशास्त्रिकृत टीका, भाग १, पृष्ठ ३२ पर है।

गन्धशास्त्र—वङ्गीय वैद्य निश्चल अपने ग्रन्थमें —

श्रीगयदासेन · गन्धशास्त्रानुसारतः।
मध्यारिभेदोऽयं यथाङ्गेन निदर्श्यते॥

डियन हिस्टारिकल कार्टर्ली, भाग २३, संख्या २, जून ष्ठ १५४)

म-संवत् ८८७ में लिखे गये हरमेखला- नामक प्राकृत ग्रन्थमें माहुकने भी गन्धशास्त्रका या है।

कृषिशास्त्र—अर्थशास्त्रकी गणपतिशास्त्रिकृत टीका, के पृष्ठ ३२ और २८३ में पराशर और वृद्धपद्वारा शास्त्रका उल्लेख मिलता है।

वेद—कृषिशास्त्रका ही दूसरा नाम सस्यवेद प्रतीत याज्ञवल्क्यस्मृतिकी अपरार्क-टीकाके पृ० ३९७ पर न्दिपुराणके वचनमें यह नाम प्रयुक्त है।

पाशुपाल्यशास्त्र—गौतममुनिकृत यह ग्रन्थ अर्थ- णपतिशास्त्रिकृत टीका, पृ. ३२ पर स्मृत है।

गोवैद्य—हस्त्यायुर्वेदके समान गो-आयुर्वेद भी दैशका वर्णन मत्स्यपुराण २१७। २८ में मिलता

गोलक्षण नामक ग्रन्थके अध्येता और वेत्ताओं महाभाष्य ४। २। ६० में है।

१५. वृक्ष-आयुर्वेद—आग्निवेश्यमुनिकृत यह शास्त्रकी गणपतिशास्त्रिकृत टीका, पृ० २८३ पर उ 'वृक्ष-आयुर्वेद' शब्द अर्थशास्त्रके मूलपाठमें उपलब्ध

१६. तक्षशास्त्र—गार्ग्य और अगस्त्य मुनिर ग्रन्थमें आपस्तम्बीय शुल्वसूत्रकी करविन्दस्वामिकृ पृष्ठ ९६ पर इसका उल्लेख है।

शुक्रनीतिसार २। ३९९-४०० में तक्षण (ए शब्द प्रयुक्त है। इसका पञ्जाबी अपभ्रंश तरखान है

१७. मल्लशास्त्र—किसी पुरातन ऋषिका र यह ग्रन्थ महाभारत, विराट्पर्वकी नीलकण्ठ-टीकामें उद

१८. वास्तुशास्त्र—यह एक महान् शास्त्र थ अठारह उपदेष्टा मत्स्यपुराण अध्याय २५२में उल्लि यथा—

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथ
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः

अर्थात् भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति—ये वास्तुशास्त्रके उपदेष्टा प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे विश्वकर्मा फूटा वास्तुशास्त्र नामक ग्रन्थ अब भी प्रसिद्ध है। मयक मुद्रित हो चुका है। उसपर अभीतक किसीने पूर्ण नहीं की।

नग्नजित्—गान्धारराज नग्नजित् धृतराष्ट्रके महाराज सुबलके पिता थे।

नग्नजित्ने आयुर्वेदविषयक भी एक महान् ग्र था। नग्नजित्के कारण गन्धारकी प्रस्तरमूर्तिकला प्रसिद्ध हुई। आचार्य वराहमिहिर बृहत्संहिता ५७ प्रतिमा-लक्षण करते हुए कहते हैं—

नग्नजिता तु चतुर्दशदैर्घ्येण द्राविडं कथितम्

[illegible]

गन्धार आदि देशोंमें रहते थे । उनका गन्धार
चुर मान था। उत्तर-कालमें वे भारतके दक्षिणमें
से।

नजित्का एक नाम दारुवाह था। इसका अपभ्रंश
(Darius) है । गन्धारके अनेक राजाओंने
र्ममें इस अपभ्रंशरूप (Darius) में अपना नाम
केया। वे सब नग्नजित्की सन्तानमें थे।

ालाक्ष—विशालाक्ष अर्थात् शिवने अर्थ-शास्त्रके
वास्तुशास्त्र भी रचा । हिंदू-विश्वविद्यालयके
सदाशिव अल्तेकरजीने लिखा है कि ईसासे लगभग
सौ वर्ष पूर्व किसीने अर्थशास्त्रका ग्रन्थ लिखकर
के नामसे जोड़ दिया। अध्यापकजीका ऐसा कथन
ाई प्रभावके कारण है।

दर=इन्द्र—विष्णुके ज्येष्ठ भ्राता, देवासुरयुद्धोंके
दीर्घजीवी इन्द्र भारतीय इतिहासमें सुप्रसिद्ध हैं।

व्याकरणशास्त्र,
अर्थशास्त्र,
आयुर्वेदशास्त्र और
वास्तुशास्त्र

रचे । छान्दोग्योपनिषद् ८ । ७-११में लिखा है कि
अध्यात्मज्ञानके लिये १०१ वर्षोंतक ब्रह्मचर्य-पालन
परम सत्यवक्ता उपनिषत्कारने यह ऐतिहासिक तथ्य
।

ा—ये महान् जलप्लावनके पश्चात् योगजशरीर-
ादिदेव (Adam) हैं। इनसे सब विद्याएँ संसारमें
। इनका सत्य इतिहास वर्तमान-युगीन निःसार
दकी असत्यता पदे-पदे प्रकट कर रहा है।

ार—कुमार शंकरजीके पुत्र श्रीकार्तिकेयजी हैं ।
कष्टमें पड़े देवोंको उनका सैनिक नेतृत्व करके

ेश—विशालाक्ष शिव अथवा महादेवजीके अनुचर
। इन्होंने—

कामसूत्र और
वास्तुशास्त्र रचे।

ने स्वामी विशालाक्षके वास्तुशास्त्रका इन्होंने ...

वासुदेव—भगवान् श्रीकृष्णने अनेक शास्त्र क
वास्तुशास्त्र उनमेंसे एक था।

अनिरुद्ध—श्रीकृष्णके पौत्र भी इस शास्त्रके क
शुक्र और बृहस्पति अतिप्रसिद्ध हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृतिकी अपरार्क-टीका पृ०७२ पर
धर्मसूत्रका एक पाठ उद्धृत है। यह धर्मसूत्र भार
बहुत पहले विद्यमान था। अध्यापक पाण्डुरङ्ग वाम
इसके काल-निर्धारणमें महती भूल की है।

देवलके धर्मसूत्रमें वास्तुविद्या उल्लिखित है।
गणपाठ ४ । ३ । ७३ में वास्तुविद्याके व्याख्यान
पता दिया है।

१९. वाकोवाक्य—शतपथ ब्राह्मण ११ । ५ ।
इस विद्याका उल्लेख है। गोपथब्राह्मणमें लिखा है—

सवितर्कं ज्ञानमयमित्येतैः प्रश्नैः प्रतिवचनैश्च
पदमनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञो हि प्रबलो विषयी स्यात्
वाकोवाक्य इति ब्राह्मणम्। १ । १ । ३ ॥

भट्टकुमारिलने इस वाकोवाक्यविद्याके
आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और प्रयोजन आदिक
किया है।

२०. चित्रसूत्र—प्रजापतिका 'चित्रकर्म' ग्रन
आदित्य अथवा विवस्वान्का आदित्यमत यशस्तिल
वर्णित हैं। विष्णुधर्मोत्तरमें चित्रशास्त्रके विषयमें लेख
है। चित्र-विद्याके विषयमें देवल-धर्मसूत्रमें एक सु
कही है—

चित्रकर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनै
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकै

(अपरार्कटीका, पृ० २५ पर

यहाँ उन्मीलन-प्रयोग चित्रशास्त्रकी परिभाषामें ब
है। चित्रशास्त्रविषयक पुराने संस्कृत-ग्रन्थोंके वर्णन
देखिये इण्डियन हिस्टारिकल कार्टर्ली, भाग ९, पृ
९०६।

२१. लिपिशास्त्र—मानव-धर्मशास्त्रकी भृगु-प्रोक्त
में लिपि जाननेवालोंका उल्लेख है। बृहस्पति और
धर्मशास्त्रोंमें भी लिपि जाननेवाले वर्णित हैं। म
सभापर्व ५ । ६२ में गणक और लेखक वर्णित हैं।

ओंके अक्षरोंको बतानेवाले लिपिशास्त्र हमारे देशमें थे। पिशास्त्रमें अनेक गोपनीय लिपियोंके संकेत भी थे। ूढ लेख्योंका वर्णन, कामसूत्रकी जयमङ्गला टीका में।

. **मानशास्त्र**—सुश्रुत-संहिताकी उल्हण-टीका, पृ० र **'मानविदो विदुः'** पाठ है। इस शास्त्रमें भिन्न-ओंके मान (तौल या बाट) उल्लिखित थे।

. **धातुशास्त्र**—अमरकोष २ । ९ । १०० पर ीकी टीकामें लिखा है—**इति धातुविदः**।

. **संख्याशास्त्र**—महाभारत, शान्तिपर्व २३८ । ४७ । है—**संख्याविदः**।

. **हीरकसूत्र**—इस शास्त्रका एक ग्रन्थ लाहौरमें ा था।

. **अदृष्टशास्त्र**—महाभारत, सभापर्व ५ । ९३ में का नाम है।

. **तान्त्रिक श्रुति**—वैदिक श्रुतिके अतिरिक्त एक श्रुति थी। कुल्लूकभट्टने मनुस्मृतिके भाष्यमें हारीत-। एक वचन दिया है। उसमें श्रुतियोंका यह पार्थक्य ।

. **शिल्पशास्त्र**—महाभारत, सभापर्व १ । ८ में —

णं दिवि शिल्पस्य संचिन्त्य मयमब्रवीत्।

वचनका साक्ष्य मत्स्यपुराण १३१ । १ में —

मैते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना।

ो—(क) भृगु। महाभारत, शान्तिपर्व २१२ । ३४ है—

शिल्पशास्त्रं भृगुः पुनः।

ख) मय। इसका उल्लेख हो चुका।

ग) विश्वकर्मा। वायुपुराण ८४ । १६ में लिखा है—

श्वकर्मा सुतस्तस्य जातः शिल्पिप्रजापतिः।
ी शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वास्तुकृत्॥

श्वकर्माके शिल्पोंकी खोज बहुत फलदायक हो ।

२९. **माया-योग वेद**—कौटिल्य-अर्थशास्त्र, भाग १३३ पर मायायोगविद् प्रयोग मिलता है।

३०. **माणव-विद्या (हार बनानेकी विद्या)**—अर्थशास्त्र, भाग २, पृ० १३९ पर इस विद्याका ना

३१. **सूद (पाक)शास्त्र**—इस विद्यापर नलका था। सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, ४६ । ४४८—५६ पर टीकामें लिखा है—

विशेषतः सूदेभ्यो ज्ञेयाः। सट्टकस्तु लवङ्गव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालित दाडिमीबीजसंयुक्तं चन्द्रचूर्णावचूर्णित सट्टकं तु प्रमोदाख्यं नलादिभिरुदाहृत

मत्स्यपुराणने २१५ । २२ में इसे सूपशास्त्र कह

३२. **द्रव्यशास्त्र**—सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान पर उल्हण-टीकामें **'द्रव्यज्ञैः'** पाठ मिलता है।

३३. **मत्स्यशास्त्र**—सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, ४६ की उल्हण-टीकामें लिखा है—

कथितो मत्स्यवेदिभिः।

३४. **वायसविद्या**—पातञ्जल महाभाष्य ४ । में इस विद्याका उल्लेख है।

३५. **सर्प-विद्या**—पातञ्जल महाभाष्यके पूर्वोक्त यह विद्या भी निर्दिष्ट है।

३६. **भाष्यग्रन्थ**—महाभारत, सभापर्व ११ । 'भाष्याणि' पदसे भाष्यग्रन्थोंका अस्तित्व माना है। या स्मृति ३ । १२९ में भी भाष्य विद्यमान माने गये है

इनके उत्तरवर्ती शौनक, कौषीतकि और आश्व गृह्यसूत्रोंके ऋषितर्पण-प्रकरणोंमें भाष्यग्रन्थोंका माना गया है। इनके समीपवर्ती पाणिनिकी अष्टाध्याय ४ । ३ । ७३ के गणमें निम्नलिखित १९ ग्रन्थोंके व्य अथवा भाष्यों आदिका संकेत है—

ऋगयन, पदव्याख्यान, छन्दोमान, छन्द छन्दोविचिति, न्याय, पुनरुक्त, व्याकरण, निगम, वास्त अङ्गविद्या, क्षत्रविद्या, उत्पात, उत्पाद, संवत्सर, निमित्त, उपषिनद्, शिक्षा।

वायुपुराणमें लिखा है—

कल्पानां भाष्यविद्यानां नानाशास्त्रकृतः क्षये

पुराण १४४ । १३ में लिखा है—

णं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ।

चौरशास्त्र—आचार्य खर्पटका चौरशास्त्र प्रसिद्ध था।

मातृतन्त्र-मातृवेद—अपरार्क-टीका, पृ० १६ पर से उद्धृत श्लोकोंमें यह नाम पाया जाता है।

र हमने उन कतिपय शास्त्रोंका अतिसंक्षिप्त उल्लेख जो अधिक प्रसिद्ध न थे। प्रसिद्ध वैदिक शास्त्रोंके तो प्रकाशित हो ही चुके हैं।*

जिस जातिका वाङ्मय इतना विस्तृत, प्रशस्त सारगर्भित था, उसकी सभ्यता कितनी ऊँची थी—पाठक अनुमान स्वयं कर सकते हैं। भारतीय काव्य, ज्यौतिष, इतिहास, पुराण, कोश आदिका जो इतिहा और अमेरिकाके यहूदी और ईसाई लेखकोंने तथा ईसाई-गुरूपदिष्ट एतद्देशीय लेखकोंने लिखा है, व अशुद्ध है।

भारतीय संस्कृतिका प्राणधन—प्रेम

(लेखक——पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे)

ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
द्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

जड या चेतन वस्तुके सुधार या उत्कर्ष-साधनको हते हैं। पथरकट्टेकी छेनीके आघातोंसे तथा वैदिक प्राणप्रतिष्ठासे जड पत्थरमें देवत्वका आधान ता है। मानव-जीवनके जितने अङ्ग हैं—शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, जीवभाव—इन सबके ही उत्कर्षतक अनेक संस्कार होते हैं। गर्भाधानसे त्येष्टितक षोडश संस्कार प्रसिद्ध हैं। स्वाध्याय, व्रत, दि अड़तालीस संस्कार भी प्रसिद्ध हैं। इनके शिक्षा, संग, देश-कालकी विशेष माँग, अभ्यास ी शरीर, मन, बुद्धि आदिपर विशेष संस्कार घटित कुछ पूर्वजन्मके भी संस्कार होते हैं, कुछ आनु-स्कार भी। (कुछ संस्कार ऐसे भी होते हैं, जो बदले अपकर्ष करते हैं। उन्हें कुसंस्कार कहा) ऐसे सब संस्कारोंके संघातको संस्कृति कहते हैं। संस्कृतिमें सामान्य रूपसे जो मूलभूत मुख्य संस्कार का हम यहाँ किंचित् निर्देश करेंगे। विविध भारतीय इनका अति मनोहर अनन्त विस्तार है।

तीय संस्कृतिमें मनुष्यका परम ध्येय आत्मसाक्षात्कार भगवत्प्राप्ति है। मानव-जीवनके उत्कर्षकी यही है। भारतीय जीवनकी चरितार्थतामें चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुष्य अपने में पशुके समान ही होता है।

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।

खाना, पीना, सोना, भय और मैथुन—ये चीजें और पशुओंमें समान ही होती हैं। 'धर्मो हि तेष विशेषः'—मनुष्यकी विशेषता यह है कि वह इन तथा व्यवहारोंमें धर्मसे परिचालित होता है। प्राकृत अथवा पशु अपनी सहज वासना-कामनासे परिचालि हैं। मनुष्यका धर्मसे परिचालित होनेकी स्थितिमें अ संस्कार है। यह संस्कार उसमें माता-पिताके उ उपदेश, गुरुद्वारा प्राप्त शिक्षा, सत्सङ्ग आदिसे घटि है। इससे मनुष्यकी विवेक-बुद्धि विकसित होती

सांसारिक जीवन काममय है। उसके लिये प्रयोजन होता है। अतः अर्थ और काम भी संस्कृतिमें पुरुषार्थ माने जाते हैं। पर पहला पुरुषार्थ और अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष अथवा आत्मसाक्षात्कार अर्थ और काम धर्म और मोक्षसे बँधे रहते हैं। अर्थ और काम प्राप्त होते हैं। भगवान् वेदव्यास क

धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्य

धर्मसे अर्थ और काम दोनों सिद्ध होते हैं, तब का सेवन क्यों नहीं करते? पर धर्मसे चोरी, चं नहीं की जा सकती, रिश्वत नहीं ली जा सकती, किसीका धन नहीं छीना जा सकता, किसीका हक जा सकता, किसीको भूखों मारकर अपने आमोद साधन नहीं किया जा सकता। धर्मसे विषयभोगकी ए

ती है। आहार-विहारपर एक नियन्त्रण हो जाता है। ौर कामके स्वैराचारोंका नियन्त्रण करनेवाला धर्म धर्मके द्वारा नियन्त्रित अर्थ और काम भी पवित्र हैं।

र्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

र्मसे अविरुद्ध जो काम है, वह ईश्वरकी विभूति है। ाल्मीकिने धर्मसे अर्थ और कामकी सिद्धिमें पतिव्रता दृष्टान्त दिया है, 'भार्येव वश्याभिमता सुपुत्रा'— अनुगामिनी स्त्री स्वयं धर्मस्वरूपा है, उसके द्वारा च्छा पूर्ण होती है और सुपुत्ररूप अर्थ भी प्राप्त होते पिता या पितृपरम्पराका व्रत आगे चलाते हैं। व्यापक की दृष्टिसे विचार किया जाय तो सर्वत्र धर्मसे ही अर्थ ाम सिद्ध होते देख पड़ेंगे—अधर्मसे प्राप्त अर्थ और यन्त अल्पायु होते हैं।

धुनिक समाजव्यवस्थाओं और आर्थिक योजनाओंका य है कि सम्पूर्ण मानवजाति समानरूपसे सुखी और ो। फिर भी ये व्यवस्थाएँ और योजनाएँ अपने समीप पहुँचना छोड़ उससे दूर ही क्यों सरकती जा ! समानरूपसे मानवजातिको आज जो कुछ मिला है, -वस्त्रकी कमी, आरोग्यका नाश, अकाल और सर्व-महासमरका भय है। यदि इन राष्ट्रोंमें अर्थ और साथ उन्हें नियन्त्रित करनेवाला धर्म होता तो मानव-ाज बहुत सुखी और समृद्ध हुई होती। हमारे आदर्श-प्रवर्तक महाराजा रामचन्द्र वनगमनके प्रसङ्गमें कहते र्म, अर्थ और काम एक साथ ही रहते हैं—इस मुझे कोई संशय नहीं है। पर यदि धर्म किसी रास्तेसे हो और अर्थ एवं काम किसी दूसरे रास्तेसे तो अर्थ मका साथ छोड़कर धर्मका ही साथ देना चाहिये। धर्म ही अर्थ और कामका नियामक है; अर्थ और कि नियामक नहीं।'

रतीय संस्कृतिमें ये ही दो चीजें सर्वोपरि मुख्य हैं— र ईश्वर। ईश्वर ध्येय है और धर्म उसका साधन। धन तभी बनता है, जब धर्मके लिये ही धर्मका पालन ाता है, अर्थ और कामके लिये नहीं। अर्थ और काम ा दूरसे उसके पीछे-पीछे आप ही चलते हैं। पर

मिलनेवाला संतोष-सुख क्या किसी अर्थ या विषयभ हो सकता है? इसी प्रकार जगत्में जिसके साथ ज है, उस सम्बन्धसे निर्धारित होनेवाले धर्मका पालन अलौकिक सुख है, जो किसी अर्थ और कामसे न हो सकता।

हमारे यहाँकी सम्पूर्ण समाजव्यवस्था इसी सा साधनकी नींवपर खड़ी है। यह भगवान्‌का एक भव्य मनोहर मन्दिर है। इसमें ऋषि-मुनि, साधु-ब्राह्मण भगवान्‌का आराधन करते हुए उनकी इच्छ संकेत-संकल्प जाननेका यत्न करते और उनसे प्रसाद सबको बाँटते हैं; क्षत्रिय मन्दिरकी रक्षा कर करते हैं; वैश्य पूजाकी सब सामग्री जुटाते हैं, शूद्र इ तीनोंकी सेवा करते हैं, अतिशूद्र मन्दिरके सब मार्ग स्व पवित्र रखते हैं। सब अपने-अपने कर्माङ्ग सम्पादन ही भगवदाराधन करते हैं—एक ही प्रसाद, एव पाते हैं।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते न

विभिन्न कर्मोंके होते हुए भी चित्त एक होने संघर्षके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। चातुर्वर्ण्य समाजसंस्थाके विभिन्न समुदायोंमें जैसा गभीर पर होता है, वैसा अन्य किसी भी समाजव्यवस्थामें नहीं

मनुष्यका यह बाह्य भौतिक शरीर ही मानव एकमात्र क्षेत्र नहीं है, न विषयभोग या भोग-समृद्धि जीवनकी चरितार्थता है। इससे अधिक व्यापक उस मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार हैं, जिनके संस्कार बाह्य संस्कार अधूरे ही रहते हैं। उन्नत मन-बुद्धिके विकास भी सामान्य भौतिक विकाससे कहीं अधिक उद्‌बोधक और उपकारक होते हैं। भारतीय संस्कृति जातिके उत्कर्षकी भावना बहुत ऊँची है। आध्यात्मिक विकास और तदनुरूप भौतिक उत्कर्ष तथा इन दोनोंका योग भारतीय संस्कृतिमें ही मिलता है। भारतवर्ष जबतक राजनीतिक दासत्वकी नहीं बँधा था, तबतक उस उत्कर्षके दृश्य इस देशमें मिलते थे। उनके वर्णन रामायण, महाभारत और ग्रन्थोंमें ही नहीं, 'ऐतिहासिक' कालके इतिहासग्रन्थ मिलते हैं। उदाहरणार्थ, चन्द्रगुप्तके समयकी स्थिति

दिखायी देती। राजनीतिक दासत्वके बन्धनने
का उत्कर्ष-मार्ग कुण्ठित कर दिया। इससे केवल
ही नहीं; सारे जगत्‌की बहुत बड़ी आध्यात्मिक और
नि हुई।

ही मुसलमान इस देशमें संस्कृतिकी शिक्षा ग्रहण
आये थे; उनका काम था लूट-मार करना,
लोगोंको मुसलमान बनाना और अपना साम्राज्य
करना। वे भारतीय संस्कृतिका मर्म नहीं समझ
। उनमें ईश्वराभिमुख धर्मयुक्त कोई संस्कृति नहीं
के शासनकालमें हिंदुओंने अपनी संस्कृतिकी रक्षा
यही बहुत है। अंग्रेजी शासनकालमें हमारी बहुत
तिक हानि हुई। अंग्रेजी स्कूल-कालेजोंमें अर्थकरी
नेके लिये जो लड़के भेजे गये, वे अपनी संस्कृतिके
स्कार लेकर वहाँसे निकले। उनमें राष्ट्रवाद आया,
स्वाधीनताकी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई; त्याग, धैर्य,
दान आदि गुण उनमें विकसित हुए; पर भारतीय
जो लक्ष्य है—ईश्वर और उसका साधन धर्म, उससे
हो गये। उनके अंदर राष्ट्रवाद और पीछे 'अन्त-
' आया; संघर्ष और क्रान्तिका जोश आया। पर
म्परागत संस्कृतिके बोधके विषयमें वे कोरे ही रह
दि महात्मा गांधी न आते तो भारतीय राजनीतिमें
कोई नाम भी न लेता। महात्मा गांधीके बाद अब
, अभी कहना कुछ कठिन है। तात्पर्य, राजनीतिक
का ही यह फल है कि भारतीय संस्कृतिकी समाज-
मर्म आज हमारे ही उन लोगोंकी समझमें नहीं आ
जनके हाथोंमें ईश्वरने इस देशका भाग्यविधान सौंपा
यह मर्म उनके ध्यानमें आता और जनताकी
साथ समरस होकर वे आगे बढ़ते तो भ्रष्टाचार इस
बतक जड़-मूलसमेत उखड़ गया होता।

लोगोंकी दृष्टि दुनियामें फैल गयी, पर अपने देशकी
नहीं पहुँची। हमारे अंदर वह धृति और गम्भीरता नहीं
ह आत्मविश्वास नहीं उत्पन्न हुआ, जिससे राष्ट्रके बल,
वीर्य, धैर्य, औदार्य, परस्पर-स्नेह आदि गुणोंकी
वृद्धि होती। ऐटली, ट्रूमन और स्टालिन जितने
आते हैं, उतने अपने राम, कृष्ण और युधिष्ठिर
। हम चाहते हैं सामाजिक क्रान्ति, क्योंकि क्रान्तियाँ

ही राष्ट्र बलवान् और सब प्रकारसे समर्थ हो स
हमारे संस्कार बहुत बदल गये। विदेशी सभ्यता
जो जंगलीपन है, वह हमें नहीं देख पड़ता। ह
नकल उतारना चाहते हैं। समाजके विभिन्न अङ्ग अ
नाते-रिश्तोंसे एक दूसरेके साथ जुड़े हैं, उन सब नाते-
हम तोड़ डालना चाहते हैं। इसका परिणाम क्या
लोग वृत्तियों और काम-धन्धोंके लिये भटकते
बेकारीकी समस्या बढ़ेगी; जनताको आज जो सुविधा
अन्त होगा। परस्पर प्रेमका स्थान परस्पर संघर्ष
लेगा। समाजवाद और साम्यवाद दोनों ही संघर्ष
सवार हैं। पर क्या इस संघर्षकी कोई आवश्यकता
अर्थ और कामपर धर्मका नियन्त्रण नहीं रहेगा, ब
तो चलता ही रहेगा। उसकी परम्पराका कोई अन्त

भारतीय संस्कृतिके साध्य-साधनकी बात हम
चुके हैं। पर इस साध्य-साधनका नाम लेना भी संयु
संघसे लेकर भारतीय विधान-परिषद्‌तक सर्वत्र
बुद्धिका लक्षण समझा जाने लगा है। पर सङ्कटकाल
बड़े राष्ट्रोंके भी जब छक्के छूटने लगते हैं, तब
आवश्यक प्रतीत होता है कि उनकी विजयके लिये
ईश्वरसे प्रार्थना करें। और तो और, रूसको भी जर्म
अकुण्ठ गति देखकर ईश्वर और धर्मसम्बन्धी अपने
परिवर्तन करना पड़ा। जर्मन सेनाएँ जब मास्
स्टालिनग्राडतक पहुँच गयीं, तब रूसके अधिनायक
दलको यह सोचना पड़ा कि रूसी जर्मनोंको पीछे
समर्थ क्यों नहीं हो रहे हैं। महायुद्ध छिड़नेसे कुछ
रूसमें धर्मविरुद्ध कम्यूनिस्ट-प्रचारकी सफलता जाँचने
धर्मके सम्बन्धमें एक जनमत-गणना हुई थी। उ
मालूम हो चुका था कि रूसी जनतापर धर्मविरुद्ध
कुछ भी असर नहीं पड़ा है; उसके अंदर धर्मविश्वा
बद्धमूल है कि उसे उखाड़नेका प्रयत्न एक तरहसे
विफल ही रहा। जनतामें इस बातका असन्तोष भी
कम्यूनिस्ट-शासनमें उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता छिन ग
कारण जर्मन सेनाओंसे जूझनेका कोई हौसला उनमें
गया। 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी' वाली मने
उनकी हो गयी। पर सङ्कटकी इस घड़ीमें दो बातें
[illegible]

ड उठा; और दूसरी यह कि रूसकी सरकारने ईश्वर
पर लगाये हुए सब प्रतिबन्धोंको हटाकर सब लोगोंको
। किया कि वे रूसी सेनाओंकी विजयके लिये ईश्वरसे
रें । रूसमें सर्वत्र जनताके धर्मोत्साहका महासमुद्र
गया । मास्कोमें जो पहली सार्वजनिक ईश-प्रार्थना
के फिल्म रूसमें सर्वत्र एक महीनेतक बराबर दिखाये
तबसे रूसमें धर्मविरुद्ध कोई प्रचार नहीं होता,
कोई प्रतिबन्ध भी नहीं लगाया जाता । पर यह
की जाती है कि धर्म कम्यूनिस्ट-शासनका एक यन्त्र
। धर्मका इस तरह यन्त्र बनकर रहना अवश्य ही
थ अन्याय है ।

के इस उदाहरणसे हमें जानना चाहिये कि जनताके
ी उपेक्षा करना राजनीति और रणनीतिकी दृष्टिसे भी
रा है । जनताके आध्यात्मिक, धार्मिक और नैतिक
ो जितना ही प्रोत्साहन प्राप्त होगा, उतना ही राष्ट्रका
, परस्पर स्नेह और ऐक्य आदि गुणोंकी वृद्धि
ङ्कटकालमें ये गुण ही काम देंगे । सम्पत्कालमें इनसे
और सदाचारसे सब सुखोंकी वृद्धि होगी । वेद,
, दर्शन, रामायण, महाभारत, गीता, भागवत, नाना
काव्य, नाटक, मन्त्रशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, भक्तिशास्त्र
ही हमारी संस्कृतिका पूर्ण परिचय देते हैं । इन्हींके
और आदेशोंके संस्कार भारतीय जनताके अन्तःकरण-
हुए हैं । इस साहित्यके पठन-पाठनको भारतके सभी
विद्यालयोंमें प्रथम स्थान मिलना चाहिये और जनताके
क विविध आचरणको पूर्ण प्रोत्साहन दिया जाना
वर्णाश्रमधर्मावलम्बी समाज ही भारतीय जनताका
सबसे बड़ा और सर्वश्रेष्ठ समाज है । यही भारतीय
मेरुदण्ड है । विदेशी शासनकालमें इसपर अनेक
माघात हुए । उनसे इसके कुछ अङ्ग अवश्य जखमी
। अब स्वदेशी शासनकालमें इसपर कोई नया
हो । समाज-व्यवस्थामें कोई भी ऐसा परिवर्तन न
जाय, जिसमें समस्त समाजकी अनुज्ञा न हो ।
क व्यवस्था समाजके ही हाथमें रहनी चाहिये ।

ा जगत् एक है और भारत भी उससे पृथक् नहीं
ा, इस विषयमें तो सब एकमत हैं । पर भारतीय
में इस जगत्के सिवा अन्य लोक भी हैं । यह भूलोक
के साथ पितृलोक और देवलोक भी हैं । ये तीनों
स्पर सम्बद्ध हैं । हमारी आर्थिक योजनाओंसे ही

वसुन्धरा तृप्त होकर हमारे वाञ्छित फल नहीं प्रदान
देवलोकके देवताओं और पितृलोकके पितरोंको भी तृ
पड़ता है । भारतीय संस्कृतिमें तीनों लोक ही ना
काल भी एक हैं । हम केवल वर्तमानको देखकर क
कि भूतकाल समाप्त हो गया, अब उससे कोई मतल
हिंदू-संस्कृतिमें तीनों काल एक साथ देखे जाते
मण्डपमें हम खड़े हैं, वह एक नींवपर ठहरा है ।
नींवको हम वहाँसे खसका दें तो मण्डप एक क्षण भ
सकेगा । इसी प्रकार वर्तमान भूतकालपर ठहरा है ।
वर्तमान मिलकर ही भविष्य निर्माण करते हैं । ती
तीनों काल इस तरह एक हैं । प्रत्येक भारत-सन्ता
दृढ़ संस्कार है कि हमारे धर्मशास्त्रप्रवर्त्तक महर्षि त्रि
और त्रिकालदर्शी थे । तीनों लोक और तीनों काल
चिरन्तन महान् सत्यके आधारपर ही उन्होंने सब
बन्धन, सबके कर्तव्य और अधिकार निश्चित किये
साथ यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि वर्तम
जिस मानव-जातिको देखते हैं, वह अपनी पूर्व
अलग नहीं है और न हमारी भावी संतति हमसे
सकती है । तीनों कालमें रहनेवाली मानव-जाति
वर्तमान मानव-जातिके रूपमें ही आदिमानव जीते
भविष्यमें भावी संततिके रूपमें जीते रहेंगे । मुक्त
सदा ही जीते रहते हैं । यही पूर्वपरम्पराका महत्त्व है
परम्परावादी हैं, उनके परम्परावादका यही रह
कुलधर्म और जातिधर्मके सनातनत्वका भी यही रह

भारतीय जीवनमें जीवनका तो महत्त्व है ही,
और मृत्युका भी बहुत बड़ा महत्त्व है । मानव-जीवन
प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और जीवभाव
विविध अङ्ग हैं, उनकी सात्त्विक कामनाकी यथास
ही जीवनके स्वकर्म या स्वधर्मकी यथासम्भव पूर्णत
सकती है । स्वकर्मका यह निश्चय प्रकृतिभेदसे अनेक
होता है । इस निश्चयमें शास्त्रतः हमारा जन्म मुख्य
माना गया है । जन्म कोई ऐक्सीडेंट या आकस्मि
नहीं है । जीवनशृङ्खलाकी यह एक कड़ी है, जिसे
शृङ्खलासे अलग नहीं कर सकते । पूर्वजीवनके
आगे जो कुछ करना विधेय है, उसका निश्चय हमा
जन्मके द्वारा होता है । इसीलिये गीतामें कहते हैं—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजे

जन्मके साथ जो कर्म उत्पन्न हुआ है, उसका कोई

। कुलमें हमारा जन्म हुआ, उसका परम्परागत विहित मारा कर्म होता है। कारण, वर्तमान मानव-जाति त्रिकालमें व्याप्त सम्पूर्ण मानव-जाति एक है। भारतीय संस्कृतिमें जीवनका विचार केवल वर्तमान लकर ही नहीं किया जाता, बल्कि पूर्वजन्म, वर्तमान (पुनर्जन्म अर्थात् त्रिकालव्यापी अखण्ड मानव- देखकर किया जाता है। आज भी प्रत्येक भारत- अन्तःकरणमें यह संस्कार बद्धमूल है कि हमने । जैसा कर्म किया था, उसीके अनुसार हमारा वर्तमान आ और इस जन्ममें जैसा कर्म हम करेंगे, वैसा ही गला जन्म होगा। मृत्यु भारतीय सन्तानके संस्कारमें अन्त नहीं, नये जीवनका आरम्भमात्र है। भारत- भी मरता नहीं, मरकर भी पुनर्जीवित होता है। जो वनरेखाके जन्म और मृत्यु—इन दो चरमबिन्दुओंका हीं करते, वे जाने-बे-जाने—

ज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
ीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

इस चार्वाकपन्थके अनुयायी बन जाते हैं। उनकी दृष्टि संकुचित और वृत्ति कर्तव्यविमुख, विषयभोगरत । एक बार ट्रोजकीने जगत्के कुछ प्रसिद्ध राष्ट्रोंकी । अंदाजा लगाकर कहा था कि 'अंग्रेज तीस-चालीस गेतकका जमाना देख लेते हैं, रूस ६०-७० वर्ष- ातोंको सोच लेता है। समाजवादके प्रवर्तक कार्लमार्क्सने नेवाले सौ वर्षोंतकका जमाना देखा था। पर भारतीय र्शित्वके सिद्धान्तके सामने यह देखना कुछ न देखनेके । दूरदर्शिता हमें अपने त्रिकालदर्शी पूर्वजोंसे ही चाहिये। पूर्वजन्म और अगले जन्मका विचार करके त्रका कर्तव्य उसके जन्मसे ही निर्धारित किया जाता लिये जिस मनुष्यका जिस कुलमें जन्म होता है, उस र्म ही उस मनुष्यका स्वधर्म हो जाता है।

येक व्यक्ति अपने कुलका घटक है, प्रत्येक कुल अपने घटक है और प्रत्येक समाज अखिल मानव-जातिका । मानव-जाति अखिल जड-चेतन जगत्का घटक है। जगत् सप्तलोक और चतुर्दश भुवनोंका घटक है। सारा जीवन एक है और वह तीनों कालमें व्याप्त है। यह व्यापकता भारतीय आचार-विचारोंमें सर्वत्र

कुल-धर्मकी इतनी महिमा जिस भारतीय समाज में है, उसमें छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं है। बड़ा जो अपने नियत धर्मका पालन करता है। जो नहीं वह अपने आपको छोटा बनाता है। धर्मसे स्नेह है और जहाँ स्नेह होता है, वहाँ छोटे-बड़ेके भे व्यवहार होता है, वह भी स्नेहयुक्त ही होता है। उद पुत्र पिताके या छोटा भाई बड़े भाईके चरण छू उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा होता है तो इसे छो भेद नहीं कहा जाता। यों भड़कानेवाले लोग तो पति पत्नीको भी भड़काते हैं और उसका क्या परिणाम है यह 'हा राम!' कहकर प्राण त्यागनेवाले महाराज पूछिये। अंग्रेजी शासनने हममें फूट डालनेके लिये गढ़े— Depressed (दलित) और Untouc (अस्पृश्य); और हम भड़क गये, इन्हीं शब्दोंका करने लग गये। यथार्थमें हमारे शास्त्रोंने किसी 'दलित' नहीं किया है; और 'अस्पृश्य' नामकी शास्त्रोंमें है ही नहीं।' शास्त्रोंने जन्मसे सबका कर्म और कुल-परम्परा चलानेका आदेश दिया है—

येनास्य पितरो याताः येन याताः पितामहा
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति
(मनुस्मृति ४

'पिता जिस मार्गपर चले, जिसपर पितामह च सन्मार्गपर हर किसीको चलना चाहिये। उसीसे दुःखों और अभावोंको पार कर जायगा।' पतित वह अपने कुलको त्यागने और कुल-परम्पराको मिटाने करता है। जो पुत्र केवल पैतृक सम्पत्ति पानेके लि पूर्वपरम्परा मान लेता पर उस कुलके व्रतको त्याग उसे पतित नहीं तो और क्या कहें? भारतीय संस्कृ से धर्म निश्चित होता है और धर्मसे ही सम्पत्ति अधिकार।

अस्पृश्यता कहकर जिस चीजकी निन्दा की जा असलमें शौचाचार है और शौचाचार कोई निन्द नहीं। शुचि रहना, अन्तर्बाह्य स्वच्छता और पवित्र एक महान् गुण है और अन्य सब गुणोंका आ है। शुचितामें ही दैवी गुणोंका आधान होता है शुचिता नहीं, वहाँ कोई दैवी गुण नहीं ठहर सकते

जो देवगृह होता है, उसमें घरके लोग अत्यन्त होकर, शुचि वस्त्र पहनकर ही प्रवेश करते हैं। संस्कृतिमें द्विजत्व एक महान् संस्कार है, जिसके उपनयनादि अनेक संस्कार हैं। इससे न केवल अन्तः- प्रत्युत बाह्य शरीर भी ब्रह्मप्राप्तिके योग्य साधा जाता ब्राह्मीयं क्रियते तनुः' । इस महत् कार्यकी पवित्रताके है जिसका स्पर्श इष्ट नहीं है। संक्रामक रोगोंके समान विचार या पाशविक भाव भी संक्रामक होते हैं। चना चाहिये। जो चीज जैसी है, उसे उसी रूपमें ना चाहिये। लोगोंको कुछका कुछ और ही बतला- ाना उनका और सबका अपकार करना है, नेह- ड़कर द्वेष फैलाना है।

मूलक चातुर्वर्ण्यात्मक समाज-संस्थासे परस्पर संघर्षका कोई कारण नहीं रहता, सब वर्ण एक जीवन-समृद्धिके पूरक होते हैं, एक दूसरेपर आश्रित व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता भी यथासम्भव कम होती है, समस्या उठने ही नहीं पाती; कोई बेकार नहीं समाजकी सब सुविधाएँ स्वाभाविक हो जाती हैं। उनके -नये महकमे कायम करके विफल होनेके अवसर ने पड़ते। युद्धकी सम्भावना भी कम होती है और क संस्कारोंसे नैपुण्यकी निरन्तर वृद्धि होती है। को उठा देनेकी धुनके पीछे कोई परिणामदर्शी हीं है।

ने बार-बार 'हिंदू-संस्कृति' शब्दोंका प्रयोग न कर संस्कृति' शब्दोंका प्रयोग किया है। 'भारतीय' शब्द- ारमें अहिंदुओंका भी समावेश हो जाता है। पर ना गलत है कि भारतीय संस्कृति और हिंदू-संस्कृति संस्कृतियाँ हैं। यह समझना भी गलत है कि संस्कृति हिंदू-मुस्लिम खिचड़ी संस्कृति है। मुसलमान रतीय हैं तो हिंदुओंकी संस्कृतिसे भिन्न उनकी ई संस्कृति नहीं हो सकती। यदि उनकी संस्कृति (जैसा कि अधिकांश मुसल्मान कहते हैं, और इसी झगड़कर उन्होंने भारतवर्षमें ही अपना पृथक राज्य कायम कर लिया) तो वह भिन्न ही है। संस्कृतिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। पर सच्ची है कि ये उनके विदेशी संस्कार हैं, जो उन्हें यह हैं कि तुम्हारी संस्कृति हिंदू-संस्कृतिसे भिन्न है। मुसल्मान तो इस देशमें वे ही थे, जिन्होंने इस देश- पर बाहरसे आकर आक्रमण किया था। पीछे यहींके को उन्होंने लोभ, भय और द्वेषसे मुसल्मान बन हिंदू-संस्कृति जन्मसे ही जाति निश्चित करती है मुसल्मानोंके विदेशी संस्कार नष्ट हो जायँ तो वे हैं। उनके हृदयके अन्तस्तलमें आज भी हिंदू-सं हुए छिपे पड़े हैं। इन विदेशी संस्कारोंको सच ईश्वर ही हटा सकता है अथवा ईश्वरके अनन्य कि श्रीचैतन्यमहाप्रभु तथा अन्य अनेक संत-मह जीवनमें हम देखते हैं कि उन्होंने कितने ही मु अंदर छिपे हुए कृष्णभक्तिके भाव जगा दिये। मुसल्मान परम वैष्णव कवि हो गये। जन्म-ज कुसंस्कारोंको धो डालनेकी सामर्थ्य भगवत्कृपामें ही

भारतीय संस्कृतिमें गौ और ब्राह्मण अत्यन्त नवजात शिशुको गोदुग्ध पान करानेसे लेकर म गोदानतक सर्वत्र गौकी आवश्यकता होती है। गौ कृषिकर्म और गौसे ही हमारा यज्ञकर्म होता है। से बढ़कर कोई पातक नहीं है। पिछले महायुद्धमें भयानक संहार हुआ। इसीसे धान्यकी उपज कम और घी-दूधके लाले पड़ गये। हमारी नवीन कृ योजनाओंमें ट्रैक्टरों और कृत्रिम रासायनिक खादोंव रूपसे चर्चा है। पर इन नवीन प्रयोगोंके भरोसे उपेक्षा करना बुद्धिमानीका काम न होगा। गोवंशक समृद्धि होगी; यहाँकी कृषिभूमि उतनी ही धान समृद्ध होगी और राष्ट्रके नवयुवक स्वस्थ और हृष्ट-पु गो-वंशकी रक्षा और समृद्धिके आधारपर कृषिसुध योजना बनेगी; उसकी सफलतामें कोई सन्देह नहीं ब्राह्मणोंको हमलोग किसी जात्यभिमान या सम्प्रदाय नहीं पूजते; प्रत्युत इसलिये पूजते हैं कि ऋषि- अपरिग्रहपूर्वक वे ही इस व्रतके व्रती हैं कि जो अखिल जड-चेतन जगत्का शास्त्रोक्तरीत्या मङ्ग करें। ब्राह्मण सब वर्णोंके आप्त (अपने) हैं।

भारतीय संस्कृतिमें यह विशेषता है कि वैयक्तिक की चरितार्थताका विश्वके समष्टि-जीवनकी चरितार्थत कोई विरोध नहीं है। जो चतुर्विध पुरुषार्थ व्यक्ति ही चतुर्विध पुरुषार्थ अखिल मानवजातिके हैं। इन पुरुषार्थोंके साधनकी जो सांस्कृतिक प्रणाली है, उसका करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति और कुछ न करके भी विश्वहितका साधक बनता है। धर्म और मोक्षसे

जीवन सबके लिये अनुकरणीय होता है। संसारमें
ी अधिक व्यक्ति ऐसे जीवनसे समृद्ध होंगे, संसारमें
, सुख और शान्तिकी उतनी ही समृद्धि होगी।
सदाचारसम्पन्न बनाना राज्यव्यवस्थाका मुख्य
। अतः राजनीतिमें भारतीय संस्कृतिका आश्रय ही
ाश्रय है। भारतीय राजनीतिक संस्कार, जो हम
और महाभारत तथा पुराणादि ग्रन्थोंमें देखते हैं,
काया-पलट कर जगत्को शान्तिका अमोघ सन्देश
हैं।

ारी संस्कृतिमें कोई राष्ट्रवाद, धर्म-सम्प्रदायवाद
राजनीतिक सम्प्रदायवाद नहीं है। हमारे यहाँ धर्म
वज्ञानके अनेक सम्प्रदाय हैं। पर सबका लक्ष्य परम
अनुसन्धान, परमेश्वरकी प्राप्ति और धर्मका साधन
लिये इनमें परस्पर कोई संघर्ष नहीं है। संघर्ष
ा है, जहाँ लक्ष्य अर्थ और काम होते हैं और साधन-
धर्मका विचार नहीं होता। जहाँ लक्ष्य ईश्वर है,
र्म है और अर्थ और काम उस धर्मके द्वारा नियन्त्रित
वहाँ संघर्षका कोई कारण नहीं रहता। जगत्का
। ऐसे ही परम लक्ष्य और परम साधनके द्वारा
। जगत्का हित किसी राष्ट्रवाद, धर्म-सम्प्रदायवाद
ाजनीतिक सम्प्रदायवादसे नहीं हो सकता। कारण,
क्ष्य अन्य राष्ट्रों तथा धार्मिक अथवा राजनीतिक
को दबाकर या नष्ट करके अपने ही राष्ट्रिय अथवा
क अहङ्कारका प्रभुत्व स्थापित करना होता है। ऐसी
रस्पर संघर्ष अनिवार्य है। पर जिनका लक्ष्य किसी
समाज या सम्प्रदायका प्रभुत्व नहीं, बल्कि सारे
ित और विश्वात्माका आराधन होता है, वे अहङ्कारका
हीं चाहते; वे चाहते हैं इस जगत्के व्यवहारमें
का प्रभुत्व स्थापित हो और जगत्के उसी हितका
ो, जो धर्मसे प्राप्त है, जो विश्वात्माकी सकल-लोक-
ामनाके अविरुद्ध है। विश्वका हित और विश्वात्मा-
परस्पर अविरोधी तत्त्व हैं। जहाँ विश्वात्माकी
है, वहीं विश्वहित भी अनुस्यूत है। और विश्वको
रनेवाला धर्म ही है। वहीं धर्ममें अर्थ और काम
हैं। इसी परम सिद्धान्तमें सब वादोंका समन्वय
होता है। अधर्मसे प्राप्त होनेवाले राज्य और वि
भोग न केवल क्षणिक होते हैं बल्कि अपने सा
करनेवालेको भी जड़-मूलसे उखाड़ फेंकते हैं। अ
संस्कृतिके जो दो मुख्य अङ्ग हैं—ईश्वर और ध
आश्रयमें रहकर ही हमारा देश और राष्ट्र परम उ
अन्य राष्ट्रोंको दबाकर नहीं बल्कि अपने साथ
कारण, ईश्वर और धर्मकी दृष्टिमें हमारा हित और अ
का हित अलग-अलग नहीं है। जिन राष्ट्रोंने ज
विरुद्ध अपने उत्कर्षका प्रयास किया, उनमेंसे कोई
नहीं टिका और आगे भी नहीं टिक सकेगा। कार
एक है, मानव-जाति एक है, तीनों लोक एक हैं, त
एक हैं, एक ही परमात्माके अंदर ये सब एक
एकत्वसे अलग होकर कोई भी ठहर नहीं सकत
एकत्वमें सब अपने-अपने विशेष-विशेष गुणोंका उ
सकते हैं। ऐसे सब उत्कर्ष सबके परस्पर सहायक
इस एकत्वका दर्शन हमारी संस्कृतिके आचार्योंने
और सबको उनके विशेष-विशेष गुणोंके उत्कर्ष
शिक्षा दी थी इसीलिये भगवान् मनु कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा

(मनुस्मृति २

पृथ्वीके सात्त्विक जनसमूह आज भी भारतवर्ष
इस आशासे ताक रहे हैं कि उन्हें उनके परम हि
भारतवर्ष दिखायेगा। भारतीय संस्कृतिके आश्रयमें
मार्ग-प्रदर्शन हो सकता है।

श्रुति-स्मृति-पुराणजनित भारतीय संस्कृतिके दो
नाम हैं—श्रीराम और श्रीकृष्ण। राम धर्मके परम आ
श्रीकृष्ण धर्मसे प्राप्त प्रेमके स्वरूप हैं। प्रेम ही
संस्कृतिका प्राणधन है। पर यह प्रेम धर्मसे ही प्राप्त
प्रेम ही वह मूल उद्गमस्थान है, जहाँसे धर्मकी सरिता
होती और प्रेमसिन्धुमें जाकर मिलती है। प्रेम ही जगत्
में धर्मका रूप धारण करता है। इस तरह प्रेम और
ही हैं। उन्हीं प्रेमधर्म भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें
समर्पित है। कारण, भगवान् ही सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान
शाश्वत धर्म और अनन्त परमानन्दके धाम हैं।

हिंदू-संस्कृतिके आन्तरिक पक्ष

(लेखक—प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्०ए०, डी०लिट्०)

संस्कृति एवं सभ्यताका बाह्य पक्ष इतने महत्त्वका जेतना आन्तरिक पक्ष । क्योंकि भारतीय सभ्यताका आध्यात्मिकता है । संसारकी अन्य संस्कृतियाँ बाह्य टीपटाप, भौतिकवाद, राजनैतिक बुद्धिमत्ता और तामें विश्वास करती हैं; किंतु हिंदू-संस्कृति बाह्य लता, निःस्पृहता और अहिंसामें विश्वास करती है । तिकी नींव आध्यात्मिकता, त्याग, तपस्या, सत्य वप्रेमपर रक्खी गयी है ।

देखते हैं—पाश्चात्य संस्कृतियाँ जीवनकी विलासमय ताएँ बढ़ाकर बाह्यरूपसे मानव-जीवनको अवश्य कर रही हैं, आराम और भौतिक सुखोंमें वृद्धि किंतु उनसे मानवताका कल्याण नहीं हुआ है । रन्तर एकके पश्चात् दूसरे युद्ध, विप्लव और संघर्षके हैं । एक युद्ध निपटने नहीं पाता, दूसरेके प्रारम्भ क्षण प्रकट हो जाते हैं; भयंकर तनातनी, गुप्त , गर्हित गुटबन्दियाँ, राष्ट्रोंके पारस्परिक संघर्ष चलते आज यूरोपमें जो दूषित वातावरण फैला हुआ है, ीय सांस्कृतिक आदर्शोंके फलस्वरूप ही है । रूसमें बाह्य पक्ष निखरा हुआ दीखता है, मानव अपना खसे व्यतीत करते हुए प्रतीत होते हैं; किंतु वास्तव- हृदयमें तनिक भी शान्ति, सन्तोष, विश्राम नहीं है ।

कृतियोंका बाह्य पक्ष इतने महत्त्वका नहीं होता, जितना पक्ष । जबतक आन्तरिक पक्ष सजीव है, तबतक बल, वीर्य, तेज, उत्साह बना रहता है । यदि आन्तरिक पक्ष—हृदय, मस्तिष्क इत्यादि बलवान् हैं, छ होनेका कार्य ठीक चलता है, तो शरीर भी दृढ़ इसी प्रकार यदि संस्कृतिका आन्तरिक पक्ष सुरक्षित बाह्य पक्ष सबल बना रहता है । वस्तुतः आन्तरिक विशेष महत्ता है ।

विद्वान्‌के अनुसार, 'जबतक किसी संस्कृतिका क पक्ष रहता है, तबतक उसका बोलबाला रहता है । आन्तरिक पक्षकी रक्षाके लिये विशेष प्रयत्न चलने यदि शरीर हृष्ट-पुष्ट है तो उसमें अधिक कालतक स्थितिकी सम्भावना है ।'

हिंदू-संस्कृतिका आन्तरिक पक्ष दृढ़ आधार-शि रक्खा गया है । हिंदूका लक्ष्य मानव-समाजकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हुए चरम आध्यात्मिक प्रभुसे तादात्म्य प्राप्त करना, उसीमें अपने आपको वि देना है । एक सच्चा हिंदू जीवनके प्रथम भागमें पू जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मचर्य-धर्मका पालन क उसे सत्य, न्याय, प्रेम, अहिंसा, शौर्य, बल इत्य प्रकारकी विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जिनसे वह जी मजेमें पूर्ण कर सकता है । विद्या तथा दृढ़ जीवन ब्रह्मचर्य-आश्रमकी योजना प्रशस्त है । जीवनके द्विती वह गृहस्थ-धर्मका पालन करता है । आत्मोन्नति गृहस्थ-धर्म एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक सुलभ योग है । परिवारमें वृद्धि होनेसे हिंदू आत्मभावकी सीमा बढ़ती है—एकसे दो, दोसे तीन आत्माओंमें आत्मीयता बढ़ती है । क्रमशः मर्यादा मनुष्यके स्वार्थपर अङ्कुश लगता है, वह आत्मसंयम और स्त्री-पुत्र-सम्बन्धी-परिजनोंमें आत्मीयता बढ़ा है । वह क्रमशः आत्मोन्नतिकी ओर बढ़ता चला गृहस्थ-धर्म एक छोटी-सी पाठशाला है, जिससे न आत्मा विकसित होकर पूर्णताकी ओर पहुँचती है अवस्थामें यह आत्मभाव पूर्ण विकसित हो जाता है अवस्थामें वह लौकिक सेवा त्यागकर भगवत्-तत्त्वकी ओर अग्रसर होता है; संयम, त्याग, ब्रह्मविद्या पूर्ण नैतिक जीवन बनाकर विश्रान्ति प्राप्त करता प्रकार हिंदू-संस्कृति पूर्ण नैतिक जीवनका निर्माण कर

हिंदू-संस्कृतिका आन्तरिक पक्ष मूलरूपसे निम्न आधारित है—

(१) शरीरकी अपेक्षा आत्माका अधिक म हमें चाहिये कि हम अपने आपको शरीर नहीं माना करें और वैसा ही उच्च आचरण करें ।

(२) 'अहं' भावका त्याग करें, अर्थात् अप स्वार्थके क्षुद्र दायरेमें न बाँधे रहें वरं कर्तव्यनिष्ठ साथ समाज-सेवा और हितके लिये प्रयत्न करें । कार्य निष्काम, निःस्वार्थ भावनासे हों और वे अर्पण किये जायँ ।

) प्रत्येक हिंदू अपने दैनिक जीवन और सामाजिक सदाचारसे कार्य ले, सद्गुणोंका प्रकाश करे, अपने उच्च उदाहरणद्वारा दूसरोंको वैसा ही उच्च जीवन रनेके लिये उत्साहित करे।

( ) अर्थ, काम और मोक्ष—इन सभीका समन्वय तिसे किया जाय, जिससे मानव-जीवनकी सर्वाङ्गीण ो सके।

( ) आत्मा अमर है, केवल शरीरका परिवर्तन चला। यह अमरत्वकी भावना हमें उत्साहित करे।

( ) मनुष्यसे परे एक परम सत्ता—ईश्वरत्वमें विश्वास।

( ) हिंदू-संस्कृतिका अन्तिम आधार है प्रकृतिके साथ र्क। प्रारम्भिक तथा अन्तिम जीवनमें हिंदू प्रकृति-ीधा सम्पर्क रखनेमें विश्वास करते हैं। प्रकृतिके उनका अन्तःकरण पवित्र रहता है; परोपकार, ौर सदाचारकी ओर प्रवृत्ति रहती है।

ृतिके साथ सीधा सम्पर्क'—इसका आशय विस्तृत -पान, विहार इत्यादिमें सदा-सर्वदा प्रकृतिके निकट ौतिकवादसे मुक्त रहना, उच्च आध्यात्मिक विचारों चिन्तनमें तन्मय रहना—यह हमारी संस्कृतिका है। हिंदू-संस्कृतिमें वृक्ष लगानेका भी बड़ा महत्त्व जगत्‌का कितना कल्याण करता है, यह देखकर संस्कृतिमें वृक्षारोपण एक पुण्य-कर्म माना गया है। शोक, शमी, पीपल, नीम, गूलर, आँवला आदिके श्रद्धासे पूजे जाते हैं। गो-सेवा और पूजा भी इसीमें है। कुछ महानदियाँ—जैसे गङ्गा, यमुना, नर्मदा, इत्यादिका बड़ा महत्त्व है। हिंदू-संस्कृतिमें श्रीगङ्गाजी- महत्त्व है। विष्णुपदी, जाह्नवी, भागीरथी, स्वर्गापगा आदि विभिन्न नाम दे-देकर गङ्गाकी वर्णन किया गया है। गङ्गाका उद्गमस्थान मानसरोवर माना गया है। हमारी सब यात्राओंक यही है कि वे हमें प्रकृतिका साहचर्य बनाये रखनेमें करती हैं। धार्मिक यात्राओंमें पैदल पर्वतोंमें घूमते, में स्नान करते, वन-जंगलोंकी प्राकृतिक शोभाका करते हुए जब हिंदू यात्री आगे बढ़ते हैं, तब उन्हें दी साथ-साथ आन्तरिक पवित्रता भी मिलती है। वे स्नान करते हैं; इससे शरीरमें स्फूर्ति रहती है, क्षुध लगाती है, चर्मरोग दूर हो जाते हैं और शरीर जाता है।

यूरोप तथा अमेरिकाकी सभ्यता एवं संस्कृति शहरों, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, आमोद-प्रमोद-सामग्रियोंमें प्रकट होती है; किंतु हिंदू-संस्कृति आवश्यकताओंकी तृप्तिके साधनमात्रको कोई मह देती। हिंदू-संस्कृति तो तपोवनमें, प्रकृतिके अङ्क हम त्यागको महत्त्व देते हैं, आन्तरिक सम्पदाओंवे विश्वास करते हैं। हिंदू मानता है कि उसका मान जितना शुद्ध एवं विकसित, परिपक्व रहेगा, उतने ही अच्छे कर्म होंगे, और उसका उतना ही भी होगा। त्याग, संयम, ईश्वरमें विश्वास उनकी समाया हुआ है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिका विकास नगरोंसे दूर ऋषियों तथा मुनियोंके आश्रमों, पुण्यारण्योंमें हुआ है। यही कारण है कि उसमें आध्य की प्रधानता है। आत्मदर्शन हमारा चरम लक्ष्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदू-संस्कृति मनुष्यक अचेतन मनसे प्रारम्भ करती है। जब हमारी विकास नैतिक वातावरणमें होता है, तब हमारी वि सत्-तत्त्वकी ओर अधिक झुकी रहती है। विवे सम्यक् विकाससे ही एक सच्चे हिंदूमें आत्मदर्शनकी अभ्युदय होता है। अपने आन्तरिक पक्षकी दृढ़ताके हिंदू-संस्कृति अन्य समस्त संस्कृतियोंसे श्रेष्ठ है।

हिंदुओंकी बुद्धि और विचारशीलता

'बुद्धि और विचारशीलतामें हिंदू सभी देशोंसे ऊँचे हैं। गणित तथा फलित ज्यौतिषमें उन ी अन्य जातिसे अधिक यथार्थ है। चिकित्सा-विषयक उनकी सम्मति प्रथम कोटिकी होती है।'

—याकूबी (नवम

हिंदू-संस्कृति और वेद

ज्ञानका ह्रास, विकास नहीं

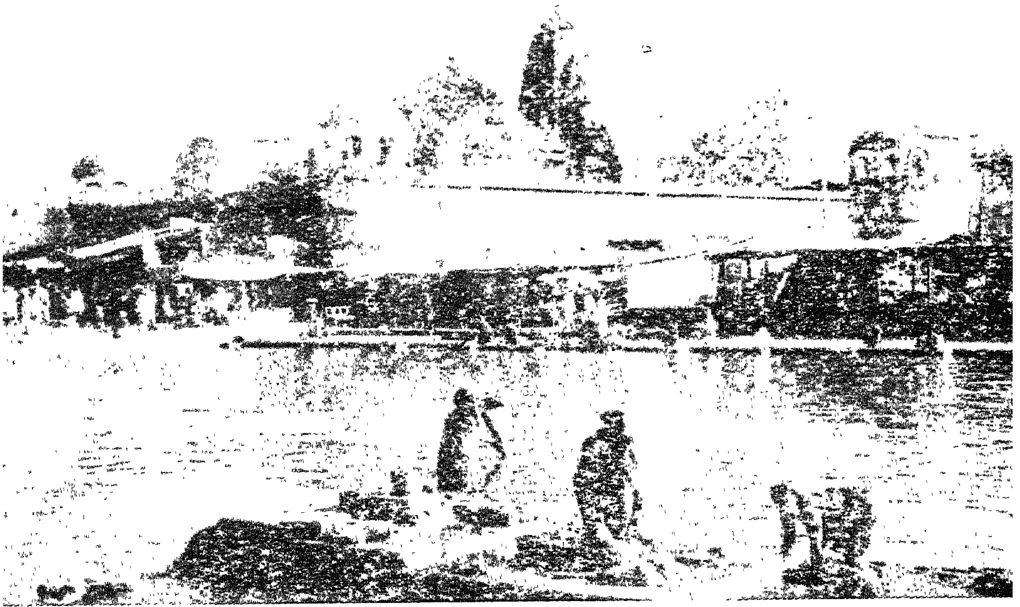
रके प्रायः सभी धर्मोंमें अपने मूल धर्मग्रन्थके प्रति
ताकी धारणा है। धर्मप्रवर्तक मूल-पुरुषको ईश्वरीय
ाक्षात् हुआ, ऐसा सभी धार्मिक विश्वास करते हैं।
साई, मुसल्मान इलहामकी इस धारणापर पूर्ण विश्वास
यह धारणा एक सीमातक सत्य है, पर हमें यहाँ
ालोचना नहीं करनी है। हमें तो देखना है कि
ादिमें मनुष्यको ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ और वह ज्ञान
ग। वेद, जो उपलब्ध विश्वसाहित्यमें निर्विवाद
। हैं, आदिज्ञानके रूपमें हैं या नहीं और यदि
हैं तो पुरुषकृत हैं या अपौरुषेय ?

बात हम स्पष्ट देखते हैं कि मनुष्य बिना
कुछ सीख नहीं पाता। यदि आपने पेड़पर
हीं सीखा है तो जंगलमें शेर आपको खा
रंतु उस प्राणसंकटमें भी आप पेड़पर नहीं चढ़
ारना न जाननेवालोंके जलमें डूबनेकी घटनाएँ बराबर
ी हैं। मनुष्यका बच्चा भूखों मर जायगा, यदि माता-
उसके मुखमें नहीं दिया जायगा। वह स्वयं अपनी
याँ खोलकर उन्हें ढूँढ़नेका यत्नतक नहीं करेगा।

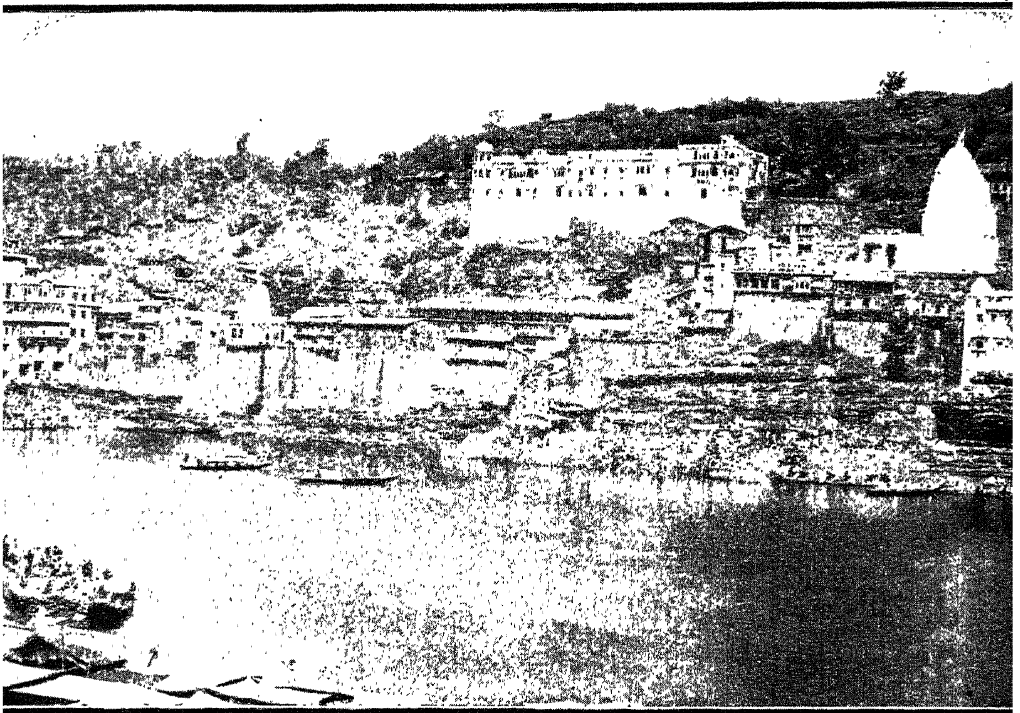
-शास्त्र कहते हैं कि सृष्टिके मनुष्येतर समस्त प्राणी
के जीव हैं। वे अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये
नेयोंमें आये हैं। फलतः अपने भोगके उपयुक्त
भाव एवं शक्ति उन्हें जन्मसे ही प्राप्त हुए हैं।
कर्मयोनिका प्राणी है। उसे संसारमें नूतन कर्म
। वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र बनाकर संसारमें भेजा गया
एव उसे शक्ति दी गयी है कि वह समस्त ज्ञानको
: सके। जन्मसे कोई ज्ञान, कोई स्वभाव उसे ऐसा
ा है कि वह उसके अनुसार चलनेको विवश रहे।
तक मनुष्यके पास जो ज्ञानराशि रक्षित है, वह धीरे-
सित हुई है या मूलमें ही पूर्ण प्राप्त हुई थी ? यह
ो सुगमतासे सुलझाया जा सकता है। मनुष्य
छ सीख नहीं पाता, उसे सिखलाया जाता है।
ज्ञान तो मनुष्य ही सिखलायेगा। हम यह
ते हैं कि विद्यार्थीने अध्यापकसे जितना पढ़ा है,
मझा है, उतना सब-का-सब वह सिखला नहीं पाता।
ा बतलाता है, सीखनेवाला उतना ठीक-ठीक समझ
नहीं सकता। इस प्रकार ज्ञानका उत्तरोत्तर ह्रास हं
जो यह मानते हैं कि ज्ञानका धीरे-धीरे विकास हुआ है
भूल जाते हैं कि पतंगा बराबर दीपकके पास आता
कुछ गर्मी पाकर लौट जाता है। दो-चार बार थो
जलकर भी वह कुछ नहीं सीख पाता और अन्तमें उ
है। मानवीय ज्ञान तो, सबका प्रत्यक्ष अनुभव है कि,
है। यदि आप निरन्तर उसे स्मरण रखनेका प्रयत्न क
हैं, तब तो सम्भव है कि आपका ज्ञान जाग्रत् रहे;
वह विस्मृत हो जायगा। चीनमें, मिश्रमें, अफ्रिकाके
अमेरिकामें बड़े सुन्दर कलापूर्ण मन्दिर मिले हैं। यह सि
है कि वहाँके लोग किसी समय वैसे भवन बनाना जा
सुसभ्य थे। परंतु मिश्रके लोग पिरामिड बनाना भूल
अफ्रिकाके जंगली लोग तथा अमेरिकाके मूल-निवास
ज्ञान भूलकर असभ्य हो गये। ये सब बातें बतलात
ज्ञानका विकास नहीं होता, अन्यथा ज्ञानसम्पन्न
कालान्तरमें असभ्य हुई नहीं पायी जातीं। ज्ञानका
होता है।

ज्ञान अपौरुषेय

जोन्स बोसनने अपने अन्वेषणके पश्चात् स्वीकार
कि—'ज्ञानका विकास नहीं होता, प्रत्युत ह्रास
है।'—जब ज्ञानका ह्रास ही होता है, तब
सम्पूर्ण होना चाहिये। उसे मनुष्यने किससे
क्योंकि मनुष्य तो सिखाये बिना कुछ सीख नहीं
यहाँ हमें देखना है कि ज्ञान मनुष्य सीखता कैसे है।
सुकरातका कहना है—'कोई किसीको नया ज्ञान नहीं सि
केवल भूले ज्ञानकी स्मृति कराता है।' बात ठीक है
ज्ञान था नहीं, उसे ज्ञान दिया कैसे जा सकता
आनन्दकी ही भाँति अन्तरात्मामें निहित है। वह
स्वरूप है। आज भी सोचनेके लिये, भूली बातक
करनेके लिये एकाग्रता आवश्यक होती है। महात्म
संत तुकाराम आदि पढ़े-लिखे नहीं थे। इतनेपर भ
वाणियोंमें गम्भीर तत्त्वज्ञान है। यह ज्ञान उन्हें किसने सि
उसीने, जिसके द्वारा महान् आविष्कारकोंके ज्ञानका उद
है। सब जानते हैं कि वैज्ञानिककी तन्मयता एवं शरीर
से ही उसका ज्ञान प्रकट होता है। इसका अर्थ ह
मनुष्यके लिये ज्ञानके दो मार्ग हैं। सामान्य मार्ग है, कु



गोदावरी-तट, नासिक



नर्मदा-तट, ओंकारेश्वर, शिवपुरी



गोमती-द्वारिका



पुष्कर तीर्थ

ौर विशेष मार्ग है, मनको एकाग्र करके अन्तःकरण-
त करना। हम दूसरोंसे जो सीखते हैं, वह भी हमारे
ाका ज्ञान ही है। दूसरे उसे जाग्रत् करनेमें निमित्तमात्र
क्योंकि हम देखते हैं कि एक ही उपदेशको अनेक
क अर्थोंमें लेते हैं। वक्ताका भाव उपदेशके शब्दोंमें
यह वक्ता ही जानता है। श्रोताओंके हृदयमें तो
शब्द हृदयके अनुरूप ज्ञान जाग्रत् करते हैं। हृदयों-
विभिन्न होनेसे उपदेशके अर्थ भी भिन्न हो जाते
लेखक, चित्रकारादि भी अपनी मौलिकता एकाग्रता-
ासे ही प्राप्त करते हैं।

न्दका अक्षय निवास हृदयमें है और वहीं अनन्त
र भी है। हृदयकी एकाग्रतामें ही दोनोंको उपलब्ध
सकता है। हिंदू-शास्त्र यही सदासे कहते आ रहे हैं
ग्दानन्दघन तो एकमात्र परमात्म-सत्ता है और वह
के हृदयमें निवास कर रही है। अपनेको अन्तर्मुख
और उसे प्राप्त करो! विश्वके समस्त सुख तथा
न उसी आनन्दघन एवं चिद्घनकी एक रश्मि हैं।
ासे ही आते हैं। जैसे रंगीन शीशेमें सूर्यका प्रकाश
ा पड़ता है, वैसे ही हृदयके विकारोंसे वह आनन्द
विकृत होकर वैषयिक सुख तथा भ्रान्त धारणाका
ता है।'

मात्र अपौरुषेय है, यह अब समझानेकी आवश्यकता
गयी। केवल इतना स्मरण रखना चाहिये कि
दयमें ही ज्ञानका पूर्ण वास्तविक रूप प्रकट होता
में मल होंगे तो ज्ञानकी ज्योतिसे वे भी प्रकाशित
। और भ्रम होगा कि वे ही ज्ञानके रूप हैं—जैसे
शेके रंगको प्रकाश प्रकाशित कर देता है और इससे
ही रंगका भ्रम होता है। क्योंकि ज्ञानमात्र अपने
में अपौरुषेय है, अतएव शुद्ध ज्ञान-भंडारको ही
। जाता है। 'वेद' शब्दका अर्थ ज्ञान ही होता है।

विशुद्ध ज्ञानमात्र वेद है, तब शुद्धान्तःकरण
के समस्त उपदेश वेद क्यों नहीं माने जाते? सभी
पदेशकोंकी वाणियाँ क्यों वेद न स्वीकार की जायँ? इस
यह जान लेना चाहिये कि महापुरुषोंका ज्ञान विशुद्ध
ी इसलिये वेद नहीं कहा जाता कि वह वस्तुतः
नहीं है। वह ज्ञानकी पुनरुक्तिमात्र है। आदिसृष्टिमें
ाय ज्ञान मनुष्यको प्राप्त हुआ, उस ज्ञानमें कुछ बढ़ा

उसी ज्ञानको 'वेद' कहा जाता है। महापुरुषोंने
दूसरोंसे प्राप्त किया हो या अपने हृदयकी एकाग्रत
अनुभव किया हो, वह है उसी ज्ञानकी पुनरावृत्ति
मैक्समूलर कहते हैं—'आदिसृष्टिसे लेकर आजतक
बिल्कुल नया धर्म नहीं हुआ।' मैडम ब्लैवेट्स्कीने
स्पष्ट किया है—'ये धर्मप्रवर्तक भी केवल धर्मके पुनरु
मूलशिक्षक नहीं।' यह बात अन्वेषकोंसे छिपी न
किस प्रकार वैदिक धर्मसे पारसी धर्म पृथक् हुआ औ
धर्मकी परम्परा ही यहूदी, ईसाई, इस्लामतक आयी

महात्माओंद्वारा उपदिष्ट ज्ञान विशुद्ध होनेपर भी
होता है और साथ ही वह ज्ञानका एकांश ही ह
मनुष्यकी शक्ति सीमित है। कोई कितना भी प्र
कितना भी शुद्ध-चित्त हो, उसकी शक्तिकी ए
है। अतएव मनुष्य चाहे जितना विशुद्ध-हृदय हो
हृदयकी एकाग्रतामें उदित ज्ञान शुद्ध होनेपर भी
एकांश ही होगा। पात्रमें भरा गङ्गाजल यद्यपि विशुद्ध
ह, फिर भी वह गङ्गाजी नहीं है। सृष्टिके आदिमें म
अनन्त ज्ञानराशि पाता है, वह मनुष्यके हृदयकी ए
प्रयत्न नहीं है। वह ईश्वरकी ओरसे आया ज्ञ
वह सर्वशक्तिमान्, सर्वसमर्थ ही पूर्ण ज्ञानस्वरूप
उसीकी ओरसे पूर्ण ज्ञान आ सकता है। अतएव वे
पूर्ण अपौरुषेय, ईश्वरीय ज्ञानको ही कहते हैं।

भाषा अपौरुषेय

वेद ईश्वरकी ओरसे मनुष्यको प्राप्त हुए, इसक
भाषा है। यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि प्रति
कलाकार मौलिक कल्पना करते हैं, वैज्ञानिक नवीन उ
करते हैं, अपठित संतोंने गूढ़ तत्त्व अपनी वाणियों
किये हैं, किन्तु भाषा किसीने नवीन नहीं बनायी है।
एकाग्रतामें ज्ञानोपलब्धि तो मनुष्य कर लेता है अ
तथा धर्मप्रवर्तकोंने विशुद्ध ज्ञान इसी मार्गसे पाया
मनुष्य अपने ज्ञानको प्रचलित भाषामें, जो भाषा व
है, उसीमें व्यक्त करता है। अपठित संतोंकी व
अध्ययन करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके प
शब्द न होनेसे उन्हें अपने भाव अनेक रूपकोंमें
रीतिसे व्यक्त करनेको बाध्य होना पड़ा है। अन्तरकी ए
वे शब्द नहीं पा सके हैं। यदि वे पठित होते
इतने गूढ़ दृष्टान्तोंका आश्रय न लेना पड़ता।
एकाग्रता उसे ज्ञानानुभूति ही देती है। भाषा तो

ाषा-शास्त्री कहते हैं कि 'मनुष्य पहले बहुत दिनोंतक था और संकेतोंसे अपने काम चलाता था। पीछे क शब्दोंसे उसने अपनी भाषाका विकास किया।' लरने पूछा है कि 'मनुष्य क्या व्यर्थ ही संकेत करता सने संकेतोंका अर्थ कैसे समझा?' आज गूँगे इसलिये कर पाते हैं; क्योंकि उन्हें संकेत करना सिखाया जाता ; सिद्ध हो चुका है कि अधिकांश गूँगे इसलिये गूँगे वधिर हैं। वे कोई शब्द सुन नहीं सकते, अतः ी नहीं सकते। अब ऐसा यन्त्र बन गया है और हो गया है, जिससे बहरे सुन लेते हैं। इस यन्त्रके ए गूँगे बोलने लगे हैं। उन्हें शिक्षा दी जाती है। नुष्य भाषा बनानेमें समर्थ होता तो सृष्टिके आरम्भसे गूँगोंने कोई भाषा बना ली होती। उनके मुखके यन्त्र तो ठीक हैं ही। इन सब बातोंसे यह सिद्ध कि मनुष्य स्वयं कोई भाषा नहीं बना सकता।

षा और अर्थका नित्य सम्बन्ध है। आप एक अर्थके ब्दका पर्यायवाची शब्द तो गढ़ सकते हैं, परन्तु नये ाया शब्द नहीं बना सकते। क्योंकि जो शब्द आप उसका अर्थ यदि सुननेवाला पहलेसे न जानता हो का बोलना व्यर्थ होगा। उसे समझानेके लिये आपको ाब्दका पर्याय दूसरा शब्द बोलना पड़ेगा। इसका कि आपका शब्द नया नहीं रहा। वह केवल पुराने ही सूचक है।

प देखते हैं कि शब्द और अर्थका नित्य सम्बन्ध बिना शब्दके आप अपना ज्ञान दूसरेतक पहुँचा कते। अतएव मानना पड़ेगा कि ज्ञान मनुष्यको ओरसे मिला और मिला भाषाके साथ।

दवादी वैज्ञानिकोंके इस तर्कमें भी कोई तथ्य नहीं मनुष्यने भाषा हर्ष-शोकादिके स्वाभाविक उद्गारोंसे । गूँगेको किसीने 'हाय हाय!' या 'आह! ओह!' हीं सुना। ये उद्गार तो वही प्रकट करते हैं, जिनके ब्द हैं। दूसरे, शब्दका अर्थ कल्पित करके बिल्कुल शब्द बनाना शक्य नहीं—यह सिद्ध हो चुका। -भाषा मनुष्यको सृष्टिके आदिमें प्राप्त हुई और वह । भाषा और ज्ञानका नित्य सम्बन्ध है। अतएव साथ ही पूर्ण ज्ञान भी मनुष्यको सृष्टिके आदिमें ा। हृदयकी एकाग्रतामें मानव ज्ञान तो पाता है,

आदिमें मनुष्यने जो पूर्णज्ञान पूर्णभाषाके साथ प मानव-एकाग्रताका परिणाम नहीं था। वह ईश्वरकी उसे प्राप्त हुआ था। अतएव वही पूर्णज्ञानमयी ईश्वरी 'वेद' नामसे कही जा सकती है।

सृष्टिके प्रारम्भमें मनुष्यने सम्यक् पूर्ण भाषा उ पूर्ण ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया? भाषाके इतने उनके अर्थके साथ वह सहसा कैसे जान गया? इन्ही समाधान न पानेके कारण भाषा-शास्त्री भाषाके सम्ब डार्विनका विकासवाद स्वीकार कर लेते हैं और फिर व विवेचनमें लग जाते हैं। ईश्वरीय सत्तापर अविश्वास वे कहीं कोई व्यवस्थित कारण दे नहीं पाते। हम कि मेस्मेरिज्म करनेवाला एक लड़केको मूर्छित कर दे चाहे लड़का उसकी भाषा न जानता हो, किंतु मूर्छित वह मेस्मेरिज्म करनेवालेकी भाषा समझता और है। यह काम संकल्प-शक्तिके द्वारा ही सम्पन्न हो इसी प्रकार सृष्टिके प्रारम्भमें ईश्वरीय संकल्पसे म सम्पूर्ण भाषा और ज्ञान प्राप्त हुआ, इसमें सन्देह कोई कारण नहीं है।

आदिभाषा

आदिज्ञान एवं आदिभाषा ईश्वरकी ओरसे म प्राप्त हुई और वही वेद है; क्योंकि वही पूर्ण है आदिज्ञान और भाषा कौन-सी है? वह अभीतक है या उसमें परिवर्तन और विकार हुए? अपौरुषेय ज्ञानका निर्णय इन्हीं प्रश्नोंपर निर्भर है।

प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं—'निःसन्देह म मूलभाषा एक ही थी।' जब भाषा मनुष्यको ईश्व तब उसमें भेद कैसे हो सकता है। मनुष्यको भाषाएँ ईश्वर क्यों प्रदान करने लगा।

मूल-भाषा संस्कृतसे ही समस्त भाषाएँ निकली मनुष्य भारतसे ही विश्वमें चारों ओर जाकर बसे हैं ही मानव-परिवारकी भाषाका मूल एक ही होना चा ये बातें दूसरे निबन्धोंमें स्पष्ट करनेकी हैं। यहाँ इ जान लेना चाहिये कि ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, जेंद, चीनकी एक भाषा सामोपेडिक—इन सबमें सं भाँति स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्गके भेद हैं वचन भी तीन हैं और स्त्रीलिङ्ग-शब्दोंमें कहयोंमें

ं। कइयोंमें संस्कृतकी भाँति आठ विभक्तियाँ भी हैं।
ल-भाषा एक होनेपर भी अनेक भाषाएँ विकृत होकर
। ये विकार कई प्रकारसे होते हैं। एक तो अपठितोंके
-दोषके कारण, दूसरे अक्षरोंकी कमीके कारण—जैसे
त' को 'ट' बोलते हैं। व्यापारके लिये, राजनैतिक
साङ्केतिक भाषा भी बना ली जाती है। साङ्केतिक
सी परम्परामें नहीं होती। आज 'कोडवर्ड' बहुत
। महाभारतमें भी ऐसी साङ्केतिक भाषाकी चर्चा
दोंके अज्ञानके कारण पदार्थों या क्रियाओंके लाक्षणिक
रख लिये जाते हैं; जैसे लेडीफिंगर (स्त्रीकी अँगुलियाँ)—
डीका नाम है। गन्नेको शुगरकेन (चीनीकी छड़ी)
। ऐसे साङ्केतिक एवं लाक्षणिक शब्दोंको किसी
ं नहीं पाया जा सकता। इन शब्दोंको छोड़ दें
स्पष्ट हो जाता है कि मूल-भाषाएँ किसी एक ही
ी थीं।

न्य मूल-भाषाओंमेंसे आदिभाषा कौन-सी है ? इसके
लिये विद्वानोंमें बहुत विवाद नहीं है। भाषा-शास्त्री बिना
प्रायः मानते हैं कि संस्कृत (वैदिक संस्कृत) से
मूल-भाषाएँ निकली हैं। इसे प्रमाणोंसे सिद्ध करना
ठन नहीं है। मूल-भाषामें दूसरी भाषाओंके विकृत
हीं होने चाहिये। दूसरी भाषाओंमें उसके शब्द ज्यों-
और विकृतरूपमें भी होने चाहिये। दूसरी सभी
के लाक्षणिक एवं सांकेतिक शब्दोंको छोड़कर शेष
दोंके मूलरूप उसमें मिलने चाहिये। वर्तमान सभी
की विकृतियोंका उसमें मूलाधार होना चाहिये। वह
टिल होनी चाहिये। सबसे अधिक उसमें अक्षर
हिये।

टेन, ग्रीक, हिब्रू आदि मूल-भाषा कही जानेवाली
ं संस्कृतके शब्द भरे हैं। संस्कृत शब्दोंसे विकृत
। उनके शेष शब्द भी बने हैं। संस्कृतमें ४७,
षामें ३५, फारसीमें ३१, तुर्की और अरबीमें २८,
ं २७, अंग्रेजीमें २६, फ्रेंचमें २५, लैटिन और
०और बाल्टिकमें १७ अक्षर हैं। चीनी भाषामें
बदले शब्द हैं, अतः उनकी गणना यहाँ करना
होगा। ऊपरकी भाषाओंमें कई अक्षर ऐसे हैं, जिनका
एक ही है। अंग्रेजीके समान कुछ भाषाएँ कई

एक अक्षर भी व्यर्थ नहीं है। इस प्रकार हम दे
मूल-भाषा संस्कृत ही है।

वैदिकभाषा अविकृत

वेद विश्वके प्राप्त साहित्यमें प्राचीनतम हैं और
भाषासे समस्त विश्वभाषाएँ निकली हैं, इतना
भाषाशास्त्री एवं अन्वेषक स्वीकार करते हैं। मुख्य
यह है कि वेद उसी रूपमें हैं, जिसमें ईश्वरीय ज्ञान
मिला था—यह कैसे प्रमाणित हुआ। वेदमें विकृति न
यह कैसे जाना जाय ?

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न त
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽप

अनादिकालसे ऋषियोंने यह नियम बनाया है
मन्त्र स्वरसे, वर्णसे हीन या भ्रान्तरीतिसे प्रयुक्त होने
अर्थका बोध नहीं कराता। अशुद्ध उच्चारणसे यजमान
होता है।

जटा माला शिखा लेखा ध्वजो दण्डो रथो घन
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा मनीषिभि
(विकृतवल्ली

जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ औ
ये मन्त्र-विकृतिके आठ भेद हैं। वेदपाठकी
रीतियाँ हैं। इनमेंसे एक-एक रीति अपनी विशेष
है। कौन-सा अक्षर किसके साथ है, कौन-सा कि
है, कौन-सी मात्रा कहाँ है, कौन-सा स्वर ह्रस्व, दीर्घ
है—इन पाठ-भेदोंसे यह स्पष्ट हो जाता है। किसी भ
विकार उच्चारण-भेदके कारण आता है। वेदोंके उ
ये पाठपद्धतियाँ नित्य परिष्कृत रखती हैं। उसमें
अवकाश ही नहीं है।

'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति'—अशुद्ध मन्त्रोच्चार
भाँति यजमानका नाश कर देता है—यह कोरी व्यव
है, यह सत्य है। वृत्रका नाश स्वरदोषसे हो गया, य
उदाहरण है। ऋषियोंका इसपर पूर्ण विश्वास था।
शुद्ध मन्त्रपाठकी पूरी व्यवस्था की गयी थी। यदि
मानसिक परिस्थिति चञ्चल हो जाय तो शुद्ध पाठ
सकेगा। वेदपाठके अनध्यायकी व्यवस्था देख
आकाशमें बादल हों, आँधी आ जाय, कोई पशु य

तियोंमें अनध्याय रखनेका अर्थ ही है कि मनकी
ग्रतिसे पाठ अशुद्ध न हो।

वेदपाठके अनधिकारी

गों तथा शूद्रोंको वेदपाठ करनेका अधिकार नहीं है।
ठये आज्ञा है कि वेदपाठ सुनें भी नहीं। यज्ञोपवीत
जनका नहीं होता, उनका अधिकार वेदमें नहीं है।
कर आजकी विचारधाराके लोग आक्षेप करते हैं।
यह नहीं सोचते कि अशुद्ध वेदपाठसे हानि होती
नधिकारी वे ही बतलाये गये हैं, जो शुद्धपाठ करने-
र्थ हैं। स्त्रियोंका कण्ठ कोमल होता है। उदात्त,
ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदिके भेद उनके कण्ठसे
हीं सकते। अतएव उनके द्वारा शुद्ध वेदमन्त्रोंका
हीं हो सकता। एक आर्यसमाज-गुरुकुलके मन्त्रीने
ष्चर्य बतलाया था कि अन्त्यज एवं शूद्र लड़के उनके
प्रयत्न करनेपर भी सस्वर शुद्ध वेदपाठ नहीं कर
षाका सम्बन्ध भी रक्तसे है, इस सम्बन्धमें एक
छले दिनोंमें 'स्टेट्समैन'में डाक्टर डार्लिंगटनकी
नेकला है। उसका संक्षिप्त सारांश निम्न है—

'महायुद्धके फलस्वरूप यूरोपमें विभिन्न देशोंके बच्चों-
-परिवर्तन हुआ। ऐसे समय प्रश्न उठा कि विश्वके
गोंकी भाषणशक्ति समान है या नहीं? यदि चीनी
सीसी घरमें पले तो शुद्ध फ्रेंच बोल सकेगा या
ज्ञानिक डाक्टर डार्लिंगटनने अनुसन्धान किया और
रेणामपर पहुँचे कि भाषाका बहुत-सा सम्बन्ध रक्तसे
का मुख्य विभाग सात श्रेणियोंमें होता है और
कर वे २० सहस्रतक भेद बनाते हैं। अँगूठेकी
मान स्पष्ट नहीं, पर एक सीमातक रक्तसे मनुष्य
जा सकता है। उसके कुलका पता लग जाता है।
बारण 'ओ' नामक रक्तविशेष रखनेवालोंकी विशेषता
पकी ५० प्रतिशत जातियाँ सीधे जीभ लपेटकर
' नहीं बोल सकतीं।'

अनुसन्धान कहाँतक ठीक है, कहा नहीं जा सकता;
ा तो इससे पता लगता ही है कि वेदोंके कठिनतम
सभी रक्तवालोंके लिये शक्य नहीं। आर्यसमाज-
अनुभव भी कुछ ऐसे ही हैं। अतः शूद्रोंको वेद-
धिकार केवल इसलिये नहीं दिया गया कि अशुद्ध
से अपनी ही हानि करेंगे। ...

वेदोंका काल

वैदिकभाषा आदिभाषा है और ईश्वरकी ओरसे
प्राप्त हुई है। वेद ही ईश्वरीय पूर्णज्ञानके स्वरूप
मान लेनेपर भी यह प्रश्न रह जाता है कि वेदोंको
कब प्राप्त किया? यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य
ह्रास ही होता है। अतएव यह निश्चित है कि
आदिमें ही मनुष्य पूर्ण ज्ञानी था और उसे वह ज्ञान
भाषाके साथ ईश्वरकी ओरसे प्राप्त हुआ था।
मनुष्यसृष्टिके प्रारम्भका ही वह ज्ञान होना चाहि
वेद मनुष्यसृष्टिके प्रारम्भके ही हों तो निश्चय वेद
वाङ्मय हैं।

सृष्टि कब बनी? इसके विभिन्न उत्तर हैं। ईस
अनुसार सृष्टिको हुए लगभग सात हजार वर्ष हुए।
विज्ञानके विशेषज्ञोंने सर्दी, गर्मी, प्रकाशादिके तार
परिणामका हिसाब करके सृष्टिको चालीस लाख व
माना है। भूगर्भविद्याके पण्डितोंने भूमिके स्तरोंके
कालसे तथा समुद्र-जलकी बढ़ती हुई क्षारतासे गणि
पृथ्वीकी आयु दस करोड़ वर्ष निश्चित की।
अनुसार उसकी किरणोंसे बने तत्त्वोंके गणितपर
आयु सात अरब, पचास करोड़ वर्ष कही जात
वैज्ञानिक कहते हैं कि रेडियमके गणितका यही परि
पर है आश्चर्यजनक। हमारे यहाँ पञ्चाङ्गोंपर स
होता है। यह संवत् प्रत्येक वर्ष एक-एक बढ़ता जा
इसके अनुसार इस समय सृष्टि-संवत् १, ९५, ५८, ८
है। अभी सृष्टिकी आयु २, १६, ००, ००, ०
और शेष है। यह सृष्टि-संवत् वैवस्वत मनुसे प्रारम्भ
इस श्वेत-वाराह कल्पके आदिमें भगवान्ने वाराह
पृथ्वीको समुद्रसे बाहर निकाला था। पृथ्वी तो उ
भी थी। अतः रेडियमवाली संख्या, जो पृथ्वीकी
सम्बन्धमें है, हिंदू-शास्त्रोंके वर्षोंका विरोध नहीं
हमारा सृष्टि-संवत् मानवसृष्टिके प्रारम्भसे आरम्भ
और मनुके जल-प्रलयके समय नौकापर बच रहनेव
हमारे पुराणोंके समान ही दूसरे धर्मोंमें भी ज्यों-की-त
वेदोंमें मनुकी इस जल-प्रलयकी कथाका कोई वर्ण
है। पुराणोंमें ही यह वर्णन है। अतएव वेद वर्तमा
भी प्राचीन है, यह विद्वान् स्वीकार करते हैं। मनुष्य

ात्त्य विद्वानोंने वेदोंका समय पहले ईसासे दो हजार
बताया। इनके ईसाईधर्ममें क्योंकि पृथ्वीकी आयु
ग सात सहस्र वर्ष है, अतः वे सब बातें खींच-खाँच
अवधिमें चरितार्थ करना चाहते हैं। लोकमान्य तिलक-
'ओरायन' ग्रन्थमें पाश्चात्त्य मतका प्रमाणपूर्ण खण्डन
। किंतु श्वान नक्षत्रको लेकर कालनिर्णय करनेके
कमान्यको भी भ्रम हुआ है। उन्होंने श्वानको एक
ना है, परंतु श्वान तो दो नक्षत्र हैं। ज्यौतिषशास्त्रमें
सदा दो बताया गया है।

सांवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्यत्फाल्गुनी पौर्णमासी ॥

(शतपथ ६। २। २। १८)

ें फाल्गुन पौर्णमासीसे संवत्सरका प्रारम्भ माना
लोकमान्यने सप्रमाण सिद्ध किया है कि वैदिक
वसन्त-सम्पातसे प्रारम्भ होते हैं। गणित करनेसे
्णिमाको वसन्त-सम्पात लगभग २२००० वर्ष
। है; क्योंकि क्रान्तिवृत्तकी एक प्रदक्षिणामें २६०००
हैं। भूगर्भशास्त्रके अनुसार उत्तरी ध्रुव-देशमें
दस सहस्र वर्षोंपर पृथ्वीकी केन्द्रच्युति होनेसे
होता है। प्रथम हिमपात वहाँ लाखों वर्ष पूर्व
ा। वेदोंमें प्रथम हिमपातका वर्णन है। लोकमान्य-
किया है कि ऋग्वेदके देवता, ऋषि, सूक्त—सब
म प्रथम हिमपातसे पूर्वके हैं, हिमोत्तर कालके
बू श्रीअविनाशचन्द्रदास एम्० ए० ने 'ऋग्वेदिक
बाबू श्रीउमेशचन्द्र विद्यारत्नने 'मानवेर आदि जन्म-
और नारायण भवानराव पावगीने 'आर्यावर्तातील
जन्म-भूमि' पुस्तकें बड़ी खोज करके लिखी हैं।
हिंदू-संस्कृतिकी केन्द्रभूमि सरस्वती नदी आदिसे
ताया है कि वेदोंमें लाखों-वर्ष पुरानी बातें हैं।

के समयके सम्बन्धमें खोज करनेवाले विद्वानोंका
तक मन्त्रोंके उस अंशपर नहीं गया है, जिसमें
उत्पत्तिका वर्णन है। वेदोंमें इस सौर जगत्के समान
्ह्माण्डोंकी चर्चा है, उनका सङ्केत है। ब्रह्मकी एक-
ूतिमें यह निखिल ब्रह्माण्ड और त्रिपाद्विभूतिमें
ित्यलोकोंका वर्णन पुरुषसूक्तमें है। ज्योतिर्विज्ञानके
जानते हैं कि आकाशगङ्गाके किसी-किसी तारेके
[illegible]

प्रकाश यन्त्रोंमें कितने अरब-खरब प्रकाश-वर्षोंमें प
यह संख्या न तो लिखी जा सकती और न सोच
वेदोंमें इस समस्त सृष्टिके आदिका वर्णन है, इ
सृष्टिके प्रलयका वर्णन है। अतएव वेदोंके काल
करना बालबुद्धिका प्रयत्न है। वेद अनादि और नि
कालकी परिधिसे परे।

वेदोंका स्वरूप

शाश्वत परमात्माका ज्ञान एवं उनकी वाणी ।
इसमें तो कोई सन्देह करने-जैसी बात नहीं है; परंतु
मनुष्यपर कैसे प्रकट हुई? उसका मूलरूप क्या वर्तम
वेद ही हैं? २—वेद तो त्रयी कहे जाते हैं; फिर
कैसे? ३—वेदोंकी तो बहुत-सी शाखाएँ कही
उनमेंसे अधिकांश लुप्त हो गयी हैं। अतएव
ईश्वरीय ज्ञानके रूपमें विद्यमान हैं, यह किस प्रकार
प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः देना ठीक होगा।

वेदोंको वेद इसलिये कहा जाता है ि
शब्दका अर्थ ज्ञान है और वेद ईश्वरीय पूर्णज्ञान है
मन्त्रोंका दूसरा नाम श्रुति है। श्रुतिका अर्थ
हुआ। जो नित्य ज्ञान है, वह अनादि-
श्रवणके द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। वेद
निःश्वास हैं। सृष्टिके आदिमें स्रष्टाने उन ज
निःश्वासोंको सुना। स्रष्टासे आदि प्रजापतियों
और इसी क्रमसे वह ज्ञान चलता रहा। इस श्रवण-
कारण वह 'श्रुति' कहा जाता है। आज भी शब्दमा
कानोंको बंद करके अनाहतनाद सुनते हैं। यह अ
ही अव्यक्त प्रणवध्वनि है। शास्त्रोंने स्पष्ट कह
प्रणवसे ही गायत्री तथा गायत्रीसे समस्त वेद
हुए हैं—इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रणवनाद (अनहद
में प्रकाण्ड संयम, दीर्घकालीन संयमसे श्रुतिका
श्रवण शक्य है, यद्यपि इतना विशाल संयम
मनुष्यके लिये अशक्य ही है। ऋषियोंने भी इसे
सुना; क्योंकि ब्रह्माको सहस्रों वर्षके तपके पश्चात्
श्रुतिका श्रवण प्राप्त हुआ था।

वेद—ईश्वरीय ज्ञान एक ही है। उसमें कोई
[illegible]

ुर्था उपयोगसे कहे गये हैं। त्रेतायुगमें जब मनुष्य-
तप एवं ध्यान न होकर यज्ञ हुआ, तब यज्ञकार्यकी
लिये एक ही वेदको चार भागोंमें बाँट दिया
न्हीं भागोंको ऋक्, साम, यजुः तथा अथर्व कहते
ारों भाग अनादि हैं और एकमें ही पहले थे।

त्रेदेन होता करोति, यजुर्वेदेनाध्वर्युः
सामवेदेनोद्गाता अथर्वैर्वा ब्रह्मा।

ं होता ऋग्वेदसे, अध्वर्यु यजुर्वेदसे, उद्गाता
और ब्रह्मा अथर्ववेदसे अपने अंशका कर्म पूर्ण
। जो लोग त्रयी नाम सुनकर अथर्ववेदको पीछेका
उन्हें 'त्रयी'का ठीक अर्थ ज्ञात नहीं है। अथर्ववेदके
हैं—अथर्व, आङ्गिरस, छान्दस। और ये नाम चारों
ाते हैं। महाभारतमें चारों वेदोंमें त्रयीविद्याका
ा है—

विद्यामवेक्षेत वेदे सूक्तमथाङ्गतः।
सामवर्णाक्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा॥
(शान्तिपर्व १३५)

चारों वेदोंका नाम लेकर उसमें त्रयीविद्या है, यह
। वेदत्रयी कहे जानेका एक कारण और है; मन्त्र
कारके हैं—(१) विनियोगके, (२) गानेके, (३) गद्य।
प्रकारके मन्त्रोंके कारण तथा उपासनात्रयके प्रतिपादनके
ारों वेदोंको त्रयीविद्या कहते हैं। जो लोग प्राचीन
चारों वेदोंका नाम ही देखना चाहते हैं, उनके लिये
कोपनिषद्का यह मन्त्र पर्याप्त होना चाहिये—

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो
सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।

के मन्त्रभागको 'संहिता' कहते हैं। संहिताका अर्थ
न्त समीपता। 'परः सन्निकर्षः संहिता' अष्टाध्यायीकी
भाषाके अनुसार पहले संहिताओंमें मन्त्राक्षर पृथक्-
हीं थे। वे सब एकमें ही थे। सब सन्धियुक्त थे।
मन्त्रोंमें शब्दको पृथक् करनेमें जब कठिनाई होने
ब एक अक्षर या एक शब्दका दूसरे शब्दके साथ पढ़े
जानेका भ्रम होने लगा, तब मन्त्रोंके पदच्छेद किये
स प्रकार सन्धिसहित और पदच्छेदयुक्त—इस प्रकार
हिताकी दो शाखाएँ हो गयीं।

-जैसे मनुष्यकी [illegible]

सब मन्त्र एकत्र कर लिये। इस प्रकार देवताक्रमसे
क्रम रक्खा। किसीने ऋषिक्रमसे मन्त्र सजा
मन्त्रद्रष्टा ऋषिके सब मन्त्र एकत्र करके याद किये—
विषय-क्रमसे और किसीने छन्दःक्रमसे। इस प्र
वेदोंको तो पृथक्-पृथक् रक्खा गया, पर एक-एक
क्रम बन गये। इनके अनन्तर पाठ-क्रमसे शाखा
घन, जटा आदि वेद-पाठकी आठ पद्धतियाँ पहले
हैं। एक-एक शाखा इनके कारण आठ-आठ भाग
गयी। ये शाखा-क्रम बढ़ते गये। पुराणोंमें इसक
वर्णन है कि किस ऋषिके शिष्योंने किस वेदकी
शाखाएँ बनायीं। इसीलिये विभिन्न ग्रन्थोंमें
शाखाओंकी संख्या एक-सी नहीं है। कूर्मपुराणके
ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी १०
अथर्ववेदकी ९ शाखाएँ—इस प्रकार वेदोंकी कुल
शाखाएँ हैं।

ऊपरके वर्णनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि
शाखाएँ वेदोंका कोई भाग या खण्ड नहीं हैं
शाखामें पूरा वेद है। शाखाओंका भेद केवल
सम्पादन-क्रमके भेदके कारण है। अतएव शाख
मिलनेसे कोई वेदांश अप्राप्य नहीं हुआ है। वे
सम्पादन-क्रम अप्राप्य हो गये हैं। यदि चारों वेद
एक शाखा भी निर्विवादरूपमें शुद्ध प्राप्त हो तो
मूल ईश्वरीय वाणीके रूपमें ही प्राप्त हैं—यह न
कोई कारण नहीं रह जायगा। आज भी ऋग्वेद
एवं वाष्कल शाखा, यजुर्वेदकी माध्यन्दिनीय
सामवेदकी कौथुमी शाखा और अथर्ववेदकी शौनक
मूल एवं शुद्ध रूपमें प्राप्त होनेके विषयमें किसीको
नहीं है। अतः इन शाखाओंके रूपमें चारों वेद
वाणीके वास्तविक रूपमें ही आज भी उपलब्ध हैं।

वेदोंके शब्द, मन्त्र नित्य हैं, उनके अक्षर
किन्तु मन्त्रोंका क्रम मनुष्यकृत है। मण्डल, अष्टक
अध्याय—इन क्रमोंमें सुविधानुसार ऋषियोंने फेर-
है। इस सम्पादनक्रमसे ही शाखाएँ बनीं। ऐस
भी न तो एक मात्रा घटायी गयी और न बढ़ी। वेद
महीधर भी यही कहते हैं कि वेदोंके छन्द और

वेदमन्त्रोंके ऋषि

क वेदमन्त्रके साथ उसके ऋषिका नाम होता
यो मन्त्रद्रष्टारः'—ये ऋषि मन्त्रद्रष्टा कहे जाते हैं।
मन्त्रः'—जिसका अर्थ मननसे स्पष्ट हो, वह मन्त्र
है। जिस ऋषिने हृदयकी गम्भीर एकाग्रतामें जिस
नर्थका साक्षात् किया, वह उस मन्त्रका द्रष्टा कहा
न्त्र तो श्रुति हैं। वे परम्परासे सुने गये हैं। उन
मन्त्रोंका अर्थ व्याकरण या निरुक्तसे नहीं होता।
करण या निरुक्तसे वेदार्थ हो सकता तो एक-एक
ाथ उसके मन्त्रद्रष्टा ऋषिका नाम न लगा होता।
होना इतने गौरवकी बात न होती और न उसे
नगण मन्त्रके साथ स्मरण रखनेका विधान बनाते।
दो वेदोऽयम्'—वेद परोक्षवाणी है। वेदान्तके विद्वान्
हैं कि उच्चतम अधिकारीके लिये **'तत्त्वमसि'**
का गुरुद्वारा श्रवण ही पर्याप्त होता है। मननके
स्वतः उसका तात्पर्य निकाल लेता है। भगवान्ने
बुद्धि दी है। अतएव उसे मनन करना चाहिये।
-आदिस्रष्टाने सहस्रों वर्ष तप करके वेदार्थका साक्षात्
उसीके ज्ञानसे उन्होंने सृष्टिरचना की। ऋषियोंने
ःकरणमें एकाग्र होकर मन्त्रार्थका दर्शन किया है।

द्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग-
वंभूतरुतज्ञानम्।

क प्राणीको उसकी वाणी ईश्वरकी ओरसे ही प्राप्त
। अतएव जिस प्रकारके अन्तःसंयमसे वेदवाणीका
क्षात् होता है, उसी प्रकारके संयमसे प्रत्येक
भाषाका ज्ञान हो सकता है। उपर्युक्त योग-
हर्षि पतञ्जलिने यही बताया है कि शब्द, अर्थ और
नके पृथक्-पृथक् स्वरूपमें मनःसंयम करनेसे समस्त
ी भाषाओंका ज्ञान हो जाता है। जिस प्रकारका
मस्त प्राणियोंकी भाषाका ज्ञान करा देता है, उसी
संयम वेदमन्त्रके अर्थोंका भी दर्शन कराता है।
रका संयम जो भी करेगा, वही मन्त्रार्थका दर्शन कर

ना सब ठीक होनेपर भी मन्त्रद्रष्टाका नाम रटते
क्या लाभ? बात यह है कि वेदार्थ तो हो सकता
दभाष्यकी प्रथा तो रावणसे चली और फिर खण्डन-

हैं और समझ नहीं पाते कि दर्शनशास्त्रोंके निर्मात
तत्त्वज्ञ ऋषियोंने भी क्यों बार-बार वेदोंकी दुहाई
उनको इतना महत्त्व दिया। वेदकी जिस ऋचाके
मन्त्रद्रष्टा हैं, उस ऋषिके निर्मित शास्त्रोंमें उस
अर्थ स्पष्ट हुआ है। मन्त्रके साथ ऋषिके स्मरण
उद्देश्य यह है कि इस मन्त्रके लिये इस ऋषि
देखने चाहिये।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति

'इतिहास तथा पुराणके द्वारा वेदमन्त्रोंका उप
अर्थविस्तार करना चाहिये। अल्पश्रुतसे वेद डरते
यह हमें नष्ट करेगा।' वेदार्थके सम्बन्धमें यह आदे
ऋषियोंके निर्मित ग्रन्थोंको 'स्मृति' कहते हैं। '
अर्थ है—जो स्मरण करके लिखी गयी हो। ऋषियो
अन्तःकरणमें वेदमन्त्रके जिस अर्थका दर्शन
एकाग्रतासे उत्थित होनेपर उसका स्मरण करके
किया। वही उपदेश 'स्मृति' कहलाया। भगवान
महाभारत एवं पुराणोंमें ऋषियोंके उन्हीं उपदेशोंको
कर दिया। इनमें पुराने उपदेश एवं चरित संकलित
ये ग्रन्थ 'पुराण' कहलाये। अतएव वेदोंका अर्थ या
मनःसंयम करके जाना जा सकता है, अथवा स्मृ
भारत तथा पुराणोंमें उसे देखा जा सकता
वेदके वास्तविक भाष्य हैं। मन्त्रोंका किसी भी प्र
करनेके प्रयत्नमें भ्रान्त होनेका ही भय है।

मन्त्रोंके देवता

'या तेनोच्यते सा देवता।'

'सर्वानुक्रमणी'में देवताका यह अर्थ बताया गया
मन्त्रके द्वारा जिसका वर्णन हुआ है, वह उस मन्त्र
है। अर्थात् जिस मन्त्रका जो देवता है, उस मन्त्र
स्वरूप, आराधना, प्रभाव एवं स्थूल जगत्में उस
वर्णित है। निरुक्तने इस बातको और स्पष्ट किया है

यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छ
प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।

ऋषिलोग जिस देवताकी जिस मन्त्रसे उस
दर्शनकी इच्छासे स्तुति करते हैं, वही उस मन्त्र
है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने मन्त्रार्थके दर्शनके लिये प्र

ज्ञान शब्द, अर्थ एवं ज्ञानके स्वरूपादिमें मन एकाग्र होता है। जिस पशुकी वाणीमें आप मन एकाग्र स पशुकी भावना साथ रहेगी। यदि यह भाव न यह अमुक पशुकी वाणी है, तो ज्ञानका व्यवस्थित होगा। इसी प्रकार मन्त्रमें मन एकाग्र करते समय ताकी भावना आवश्यक है। क्योंकि मन्त्रमें देवता- र्णन है।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

दर्शनने बतलाया कि प्रत्येक मन्त्रका एक अधिष्ठाता ता है। मन्त्रके गम्भीर स्वाध्यायसे उसके इष्ट- सान्निध्य प्राप्त होता है। अतः मन्त्रस्वाध्यायके मन्त्रसे किस दैवत-शक्तिका साक्षात् होगा, यह नेके लिये मन्त्रोंके देवता निश्चित किये गये हैं। से मन्त्र ऐसे हैं, जिनके ऋषि और देवता एक ही दो कारणोंसे हुआ है। कुछ मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने राध्य देवतासे एकात्मता प्राप्त कर ली—

यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

एव उनका स्वतन्त्र नाम लोकमें प्रचलित नहीं सरे, अनेक बार मन्त्रको आधार न बनाकर श्रद्धालु- न-प्राप्तिके लिये देवाराधन किया। प्रसन्न होकर उन्हें किसी मन्त्रका रहस्य उपदेश किया। अतएव देवता ही अपने मन्त्रके द्रष्टा भी हुए।

मन्त्रोंके छन्द

एवं देवताके समान हम वेदोंके छन्दोंको भी ते हैं। वेदोंके छन्द बड़े विचित्र हैं। यदि मन्त्रों- स्वरमें पद-पाठसहित पढ़ा जाय तो उनके सब न जान पड़ते हैं। यदि ऐसा न करके उनको त पढ़ा जाय तो चरण घट-बढ़ जाते हैं। वेदपाठमें भी एक बड़ा दोष है। छन्दोंके द्वारा स्वरका निश्चय है। शाखा-भेदसे मन्त्रोंका सम्पादन-क्रम होनेके ई मन्त्र एकमें मिल गये हैं। ऐसे मन्त्रोंके दो, तीन जाते हैं। इसका यही अर्थ है कि विषयकी दृष्टिसे त्र कर दिये गये, परंतु उनका मूल-स्वर बना हिये। उसका जितना भाग जिस छन्दका है, उतना में पढ़ा जाना चाहिये।

के स्वरात्मक रूपकी रक्षा तो छन्दसे होती ही है, छन्द बात है कि यजुर्वेदका बहुत बड़ा भाग गद्यमें है, किं उन मन्त्रोंके भी निश्चित हैं। बात यह है कि छन्द है विशेष प्रकारका स्वर। स्वर एक कम्पन-स्तर उत्पन्न है। यह स्वरजन्य कम्पन मनको उस भाव-स्तरमें है, जो मन्त्र-देवताका भाव-स्तर है। यहीं मन्त्रार्थक होता है। जैसे प्रणवके ध्यानके लिये—

'दीर्घघण्टानिनादवत्'

—ध्वनिमें मन एकाग्र करनेका आदेश है। कम्पन स्तर तथा देवताका परस्पर सम्बन्ध देवतावादके विस्तृत किया जा सकता है। यहाँ इतना ही सम चाहिये कि प्रत्येक पदार्थ या ध्वनिका व्यक्तरूप परिणाम है और प्रत्येक कम्पन एक शक्तिस्रोत तथा अव्यक्तमें एक साकार आकृति बनाता है। यहं आकृतिका शक्तिस्रोत उसका अधिष्ठाता देवता है।

छन्दोंके सम्बन्धमें इतनी बात और जान लेनी कि एक ही छन्दमें बहुत-से मन्त्र तनिक हेर-फेरसे रूपमें चारों वेदोंमें आये हैं। जहाँ कुछ परिवर्तन तो वह मन्त्र कुछ विशेषता लेकर आया है—यह किंतु जहाँ ज्यों-का-त्यों आया है, वहाँ या तो दूसरे आया है या उसी अर्थमें वहाँ उसे आना आवश्य एक ही वाक्य या शब्द अनेक अर्थोंमें लौकिक भी बार-बार आता है। गम्भीर ग्रन्थोंमें एक ही अनेक बार विषयको स्पष्ट करनेके लिये दुहरानी पड़ ऐसे स्थलोंको पुनरुक्ति नहीं कहा जा सकता और मन्त्रोंको वहाँसे हटानेका प्रयत्न करना चाहिये।

वेदोंमें इतिहास-भूगोलादि

वेद अनादि एवं नित्य हैं, वे ईश्वरीय वाणी हैं दशामें उनमें ऐतिहासिक घटनाओं, ऐतिहासिक व भूगोलसम्बन्धी घटनाओं तथा ज्यौतिषादिका वर्ण होना चाहिये—ऐसी मान्यता लेकर कुछ लोग वेदों इतिहास-भूगोलादिपरक शब्दोंका दूसरा अर्थ करते कुछ लोग वेदोंके इतिहास, भूगोल तथा ज्यौतिष मानकर वेदोंको मानवकृत मान लेते हैं और उनका कब हुआ—यह निर्धारण करनेमें लग जाते हैं। ये बातें इसलिये होती हैं कि वेदोंको अर्थ करनेका वि लिया जाता है। मन्त्रदर्शनकी शक्ति तो रही नहीं, व्य

ोंको केवल यज्ञ, उपासनाके समय पाठका विषय—
ग्र करके ज्ञानप्राप्तिके कारण-सूत्र मानें तो मानना
; पुराणादि वेदभाष्य हैं। पुराणोंमें भी इतिहास-
, यह भूला नहीं जा सकता।

णोंका स्वरूप तथा उनके वर्ण्य विषयकी सत्यताका
तो स्वतन्त्र निबन्धका विषय है; किंतु हम पहले महात्मा
। यह वाक्य उद्धृत कर आये हैं कि 'कोई किसीको नवीन
देता। ज्ञानदाता केवल विस्मृत ज्ञानकी स्मृति कराता
न ज्ञान देना सम्भव नहीं है। तब आजके ये आविष्कार,
क ज्ञानके अनेकों अनुसन्धान—यह सब क्या नवीन
यह विस्मृत ज्ञानकी पुनः स्मृति ही है। अवश्य
अनुसन्धानों और सिद्धान्तोंका भ्रमपूर्ण भाग नवीन
वके अन्तःकरणका दोष है। इनका सत्य तो पुरातन
के सत्य कभी नवीन नहीं होता। ज्ञानके विस्मरण
णका चक्र संसारमें चलता ही रहता है।

ज्ञान नवीन नहीं होता, वैसे ही विचार भी नवीन
। विचारसे ही ज्ञान होता है। मनुष्य नित्य नवीन
हीं कर सकता। विचारके कुछ निश्चित स्तर हैं।
न उनमेंसे जिस स्तरमें होता है, उसी स्तरकी विचार-
नमें आ जाती है। पदार्थ एवं घटनाएँ विचारके
हैं, यह आप जानते हैं। मनमें आये बिना न कोई
ा और न किसी पदार्थ या घटनाका निर्माण। अब
गे बढ़ जाइये। इस निबन्धके प्रारम्भमें यह विस्तार-
गया है कि सृष्टि स्वतः नहीं हो गयी। कोई
सृष्टिकर्ता है। उसके समीप मन है। उसके मनकी
तारतम्य ही सृष्टिमें लक्षित होता है। सृष्टिकर्ताका
ी सृष्टिके रूपमें परिणत होता है। सृष्टिकर्ता भी
ार नहीं करता। क्योंकि नया ज्ञान, नया विचार
सकता। उसका मन भी मानस-स्तरोंसे ही विचार
रता है। उन्हीं स्तरोंमें उसका मन घूमता रहता
ः सृष्टि उन स्तरोंकी व्यक्त अभिव्यक्तिमात्र है।

'यथापूर्वमकल्पयत्'

ने सृष्टि पूर्वकी भाँति ही बनायी। श्रुतिने यह स्पष्ट
कर दिया। पूर्वकी भाँतिका अर्थ क्या? समस्त पृथ्वी
सब परिवर्तन, सृष्टिकी समस्त आकृतियाँ और सब
केवल पुनरावृत्ति करती हैं। एक तृण नवीन नहीं।
नवीन ढंगसे नहीं हिलता। क्योंकि नवीन विचार
सकते—न व्यक्तिके मनमें और न समष्टि-कर्ताके म

जो अविश्वासी हैं, मैं उनकी बात नहीं करता। ज
हैं, वे जानते हैं कि ज्योतिषी ग्रहोंकी स्थितिकी गणि
सन्तानके बिना देखे उसका रूप, रंग, उसका स्वभाव
काल तथा जीवनकी उन्नति-अवनति सब बता देते
वह सत्य होता है। फलित ज्योतिष सत्य सिद्धान्त
कुछ नवीन हो सकता तो उसे पहलेसे न बताया जा
यदि सब पहलेसे निश्चित न होता तो कोई सर्वज्ञ न ह
क्योंकि जो अनिश्चित है, उसका ज्ञान पहलेसे नहीं हो
ईश्वर तो कम-से-कम सर्वज्ञ है ही। ज्यौतिषके ग्रह-नक्ष
रखते हैं। अतः उनकी स्थितियोंकी संख्या है।
निश्चित कालके पश्चात् पुनः उसी स्थितिकी आवृत्ति
चाहे वह काल कितना भी लंबा हो। ज्यौतिषके अ
ग्रह-नक्षत्र एक पूरा चक्कर करके पुनः पहली स्थिति
ठीक आवृत्ति करने लगते हैं, विश्वकी आकृतियाँ एवं
भी आवृत्ति करने लगती हैं। ऐसा न हो तो फलित
कभी सत्य न प्रकट कर सके।

जब इतिहास नित्य है, तब नित्य-ज्ञानस्वरूप वेदों
होना ही चाहिये। वेदोंमें वे नित्य इतिहास एवं
हैं, जो परिवर्तित नहीं होते। अर्थात् इतिहासकी
वहाँ है। यह उसी प्रकार है, जैसे मनुष्योंकी उ
समानता या चित्रकारके चित्रकी बाह्य रेखा। वेद
इतिहास-भूगोलादि न केवल आगेके हैं, भविष्यके :
अतः वहाँ इतिहास नहीं है, यह प्रयत्न या उसके
उनका कालनिर्णय—दोनों बालचेष्टा हैं। पुराण भी उ
इतिहासादिको स्पष्ट करते हैं। सम्पूर्ण ज्ञानके सू
निहित हैं। वेद ईश्वरीय मूल-ज्ञानके रूप हैं और उन
एवं शब्द नित्य हैं। उनसे अतिरिक्त ज्ञान और है ह
इसीसे हिंदूधर्म वेदोंको परम प्रमाण मानता है।

भारतकी आध्यात्मिक सम्पत्ति

'संसारके देशोंमें भारतवर्षके प्रति लोगोंका प्रेम और आदर उसकी बौद्धिक, नैतिक और आ
: कारण है।' —प्रो० [illegible]

हिंदू-संस्कृति और दर्शनशास्त्र

धर्में भारत अपने दर्शनशास्त्रोंके लिये अभी भी श्रद्धा
दरका भाजन है। भारत विश्वगुरु था और अब भी
पूत ऋषियोंके सूक्ष्म ज्ञानकी सम्पत्तिको पाकर ही।
मनुष्यकी विशेषता है विचारपूर्वक प्राप्त ज्ञान। अतः
आदर्श स्थिर करते समय ज्ञान ही एकमात्र हमारा
हो सकता है। आज विश्वमें 'वाणी तथा लेखनकी
—विचार-स्वातन्त्र्य'का आन्दोलन किया जाता है,
इसलिये कि जातियों एवं राष्ट्रोंके कृत्रिम आदर्शोंसे
बंदी न बनाया जाय। मनुष्यत्व विचारकी
है, अतः उसे व्यक्त करनेके लिये कोई सीमाबन्धन
ना चाहिये। भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ अति-
कालसे विचार-स्वातन्त्र्य मनुष्यको प्राप्त था। इस
विचारोंपर कभी बन्धन नहीं लगा था
अब लगा है तो वह पाश्चात्त्य प्रभावसे। यहाँ
सम्बन्धमें मानव कभी असहिष्णु नहीं बना।
नियमों—जीवनके प्रत्येक कार्यमें धर्मका कठोर
होनेपर भी विचारस्वातन्त्र्यके कारण भारतमें
निशास्त्र और मत-मतान्तर विस्तृत हो सके।

क व्यक्ति अपनी बुद्धिके अनुसार ही विचार कर सकता
की बुद्धि तथा विद्वान्‌की बुद्धि समान नहीं हो सकती।
र एक न्यायाधीश और एक कसाईके विचार अपराधके
एक-जैसे नहीं हो सकते। इसके लिये आवश्यक
कि अपरिपक्व एवं भ्रान्त विचारोंको कार्यरूपमें
न होने दिया जाय। कोई शिशु अपनी
अनुचित कार्य नहीं करता, किंतु आप उसे
था फोड़नेके लिये पुस्तकें और शीशेके बर्तन नहीं
। विचारका क्षेत्र बौद्धिक क्षेत्र है। वहाँ तो हमें
होनी चाहिये; किंतु हमारे विचारको तबतक
में नहीं आना चाहिये, जबतक वह सत्यका साक्षात्
ले। आज विचार-स्वातन्त्र्यकी माँग करनेवाले भी
करते हैं कि विचार-स्वातन्त्र्य वहींतक हो, जहाँतक
र्यमें आकर कोई अव्यवस्था उत्पन्न न करे।
जने आचारको सदा कठोर रक्खा। आचारमें तनिक
या प्रमाद करनेवाला क्षमा नहीं किया गया। साथ
के विचारोंके सम्बन्धमें उसके प्रति असहिष्णुता नहीं
हानिकर भी लगता है; तब भी हमें आचारके क्षेत्र
आचारको नष्ट करनेका अधिकार नहीं। वहाँ हमें
भाँति अनुशासनका पालन करना है। प्रत्येक सैनि
अपने विचारसे व्यवहार करने लगे तो सेनाका क्या
यही दशा समाजकी है। हमारे लिये यह जानना पय
चाहिये कि नियमोंके निर्णेता हमसे विशुद्ध एवं
निःस्वार्थ हैं और भारतीय ऋषियोंके त्याग, ज्ञान,
सन्देहको स्थान ही नहीं है।

आचरणके सम्बन्धमें शास्त्र प्रमाण हैं। शास्त्रों
करनेवाला व्यक्ति चाहे जितना उच्च एवं तपस्वी हो
आज्ञा पालनीय नहीं होनी चाहिये। इसके साथ ही व्यक्ति
तप आदिका निरादर भी नहीं होना चाहिये। हिंदू
यह मान्यता इतनी परिमार्जित है कि उसमें
लिये अवकाश ही नहीं। जो व्यक्ति किसी प्रकार
जाता है, वह उन सभी विषयोंपर अपनी सम्मति
लगता है, जिनके सम्बन्धमें वह सामान्य ज्ञान भी नहीं
समाज प्रसिद्धि या त्यागसे प्रभावित होकर उस
धारणाओंको अपनाने लगता है और वह भी इसीव
करता है। हिंदू-समाजका आदर्श इससे सर्वथा
अवतार होनेपर भी भगवान् बुद्धके आदेश इसलि
नहीं हुए कि वे शास्त्रविरुद्ध थे। आदेश न मान
भगवान् बुद्धकी हम जयन्ती मनाते हैं, उनकी
हैं। जो व्यक्ति त्याग-तितिक्षादिसे उच्च है, उसक
होना चाहिये; किंतु उसके आदेश शास्त्रके विपरीत
पालन करने योग्य नहीं हैं। यह हमारी संस्कृतिका अ

आचारके सम्बन्धमें जहाँ हिंदू-समाज शास्त्रके
भगवान्‌के आदेश भी सुननेको प्रस्तुत नहीं, वहीं
सम्बन्धमें यहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता है। विचार कर
स्वतन्त्रता होनी चाहिये और दूसरेको भी। हमर
सहिष्णुता होनी चाहिये कि हम दूसरेके विरोधी
सह सकें। मनुष्यका अहङ्कार उसे उभाड़ता है कि वह
है, उसकी जाति, धर्म, राष्ट्र, विचार सर्वश्रेष्ठ हैं। उ
लोग निम्नकोटिके हैं, अज्ञानी हैं। यह अहङ्कार
विचारको कुण्ठित कर देता है और विचार कुण्ठित
मनुष्य पशु हो जाता है। उन्मुक्त विचार ही मनुष्यत

यी । सुकरातको विष पिला दिया गया । मंसूरकी
गयी । ये सब महापुरुष तथा ऐसे ही दूसरे उच्च
ानिक यूरोपमें मार डाले गये । यह सब इसलिये
ा समाज उनके विचारोंको सह नहीं सका और पशु
। अभी पिछले वर्षोंमें जापानियोंने मान लिया था कि
ही मनुष्य हैं और शेष सभी मनुष्य पशु हैं ।
ी एक वर्गने पिछले उपद्रवोंमें जापानियोंकी इस
अपना लिया । अपनेको ही मनुष्य कहनेवाले ये
मोहित वर्ग पशुसे भी हीन हो जाते हैं जब वे शेष
हत्या, उन्हें लूटना, उनपर अत्याचार करना
र्तव्य मान लेते हैं और इस कर्तव्यका विभिन्न तर्कोंसे
करने लगते हैं । वे जब किसीकी हत्या या उसे
उसपर दया करना बताने लगते हैं, तब कदाचित्
ी उनसे घृणा करता होगा । इस प्रकार मनुष्यका
उसे मनुष्यत्वसे गिरा देता है !

ू-धर्मको छोड़कर विश्वमें जितने भी धर्म, समाज, वर्ग
ी एक ही मान्यता है कि उनका मत, उनकी पद्धति
हीन है; केवल उसीसे मनुष्यका कल्याण हो सकता
ावादी अर्थ-पद्धतिसे लेकर अहिंसा-प्रधान धर्मोंकी भी
है । इसका परिणाम यह होता है कि वे शेष मानव-
ाति दयालु होकर उसे अपने मतमें लानेका प्रयत्न
। यह दया उपदेशतक ही रहे तो कोई बात नहीं;
ाकी प्रेरणा इतनी तीव्र होती है कि छल-कपट,
बलप्रयोग तथा हिंसासे भी वे हिचकते नहीं—
ातिका कल्याण जो करना है ! यदि अबोध मानव
ा 'दुराग्रह करे तो उसके हितके लिये कठोरता भी
है । इस प्रकार सभी अपनी दृष्टिसे मनुष्य-जातिके
नमें लगे हैं । मनुष्य-जाति इन हित-साधकोंके
ाड़ी है और प्रत्येक उसे क्रूर पशु प्रतीत होता है !

ू-धर्मका हित-साधन-प्रकार ही विश्वके समस्त धर्मों
से भिन्न है । यहाँ किसीको हिंदू तो बनाना है ही
चारोंका प्रसार करना है । और सीधी बात है कि जो
वहींसे अन्तर्मुख होनेका प्रयत्न करे । साधन सब
यदि वे स्वार्थसे कलुषित न हों । स्वार्थसे ऊपर उठकर
पूर्णता करनेमें सबका कल्याण है । हिंदू किसीको
नहीं बनाना चाहते, किंतु मनुष्य अवश्य बनाना
बनना है तो उसे हिंदुत्व नहीं, हिंदुत्वकी धारण
करनी होगी । उसे दूसरोंके प्रति सहिष्णु बनना है
दूसरोंके विचारों, साधनोंकी महत्ताको स्वीकृति देनी

यह बात विश्वमें अत्यन्त स्पष्ट है कि दूसरोंपर
संघर्ष या दूसरोंके प्रति असहिष्णुता वही लोग प्र
हैं, जो अपने सिद्धान्त तथा आचारपर भी चल
स्वार्थ ही जिनका आचार है, उनकी बात तो ह
चाहिये; पर स्वार्थसे ऊपर उठकर जो अपने आचार
जितनी दृढ़तासे करेगा, वह दूसरेके आचार एवं
प्रति उतना ही सहिष्णु होगा । असहिष्णुता उन्हीं
प्रकट होती है, जो अपने आचार एवं सिद्धान्तकं
बड़े उच्च स्वरमें घोषित करते रहते हैं, किंतु उस
नहीं । आचार उनका स्वार्थ-प्रेरित होता है । जिस
धर्मके नियम जितने दृढ़ हैं, आचारकी च्युतिका व
ही कम अवकाश है । हिंदू-धर्मने पूरे जीवनको
सीमित कर दिया, अतः वहाँ आचारकी च्युतिका
रहा ही नहीं । फलतः विचारोंकी असहिष्णुता व
नहीं हुई । विचारोंकी असहिष्णुता उन्हीं देशों और
में हुई, जहाँ जीवनको अनियन्त्रित होनेका अवकाश

आज कहा जाता है कि 'जाति', 'सम्प्रदाय' आ
झगड़ोंकी जड़ हैं । सभी जातियों, वर्णों तथा धर्मोंको
हो जाना चाहिये । इससे विवाद एवं संघर्ष मिट
बात देखनेमें प्रलोभनकारी होनेपर भी भ्रमपूर्ण है ।
कारण जाति या धर्म न होकर स्वार्थ है । वस्तुतः,
उनके आचारोंकी उपेक्षासे ही संघर्ष बढ़ा है ।
प्राचीन कालसे उन्हीं जातियोंमें अधिक हुए, जहाँ जा
भेद नहीं थे । जहाँ आचारपर बल नहीं दिया ग
विचारोंकी असहिष्णुता उत्पन्न हुई । आचारके ब
करनेसे स्वार्थ बढ़ेगा । एक प्रकारके वर्ग मिटेंगे
प्रकारके बनेंगे । संघर्ष तो बढ़ेगा ही । संघर्ष मिटा
तो विचारोंकी सहिष्णुता आवश्यक है और हिंदू-धर्म
युगकी सहिष्णुता इसका प्रमाण है कि वह आच
प्राप्त होती है ।

हिंदू-समाजके आधारभूत शास्त्रोंको देख डालि
आचारकी एक-सी व्यवस्था है । आचारका मुख्य
स्मृति-ग्रन्थ हैं । स्मृतियोंमें युगानरूप आचारकी

आचार एक है। आचारकी मान्यताएँ एक हैं। विचारोंका बहुत बड़ा भेद है। कोई साधन, कोई कोई कला ऐसी नहीं, जो अपना स्वतन्त्र दर्शनशास्त्र हो। व्याकरणका दर्शनशास्त्र पृथक् और ज्यौतिषका उपासनाका एक और योगका दूसरा। आयुर्वेद, चित्रकला—सबके दर्शनशास्त्र हैं। कहीं ऐसा नहीं ा विचारसे पृथक् हो गयी हो। मनुष्यकी विशेषता —वह विचारहीन होकर कार्य करे तो पशु हो मनुष्यकी वह मनुष्यता हिंदूसमाजके प्रत्येक भागमें ागरूक मिलेगी। उपासना, ज्ञान तथा योगकी ड़ दीजिये; वे तो दर्शनके आधारसे ही प्रवृत्त परंतु भाषा, वाद्य, नृत्य, चित्र, संकेत—यहाँतक कि ा, उठना-बैठना, विवाह आदि सब अपना दर्शन बिना दर्शनशास्त्रके कहीं गति नहीं।

ात्त्य जगत्‌का दार्शनिक ज्ञान ही अभी अधूरा है और वीकार करते हैं कि उन्हें भारतसे बहुत कुछ इस ीखना है।

ात्त्य देशोंमें धर्म, राजनीति, जीवन, दर्शनशास्त्र—ये ार भिन्न हैं। वे केवल यही समझ सकते हैं क विज्ञान इन सबमें व्यापक है। वैसे ही भारतमें त्र जीवन या राजनीतिकी सत्ता नहीं। दर्शनशास्त्र ापक है। वह स्वतन्त्र विद्या न होकर जीवनके त्रका आधार है—आश्रय है।

ज्ञान पूर्ण था। उसीके अंशोंको लेकर आवश्यकता, प्रमादके कारण अनेक विचारोंका प्रादुर्भाव हुआ। से लेकर पुराणोंतकमें वह एक ही आदिज्ञान एक ग्रमान है। पुराण तो वेदोंके भाष्य ही हैं। निषदोंका ज्ञान पुराणोंमें स्पष्ट हो गया है। उसी- न्न दृष्टिकोणसे ग्रहण करनेके कारण अनेक दर्शन- उत्पत्ति हुई है—यह स्पष्ट है। बहुत संक्षिप्त शब्दों- के उस अनादि ज्ञानको इस रूपमें कहा जा सकता है—

 अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत सत्ता है। रूप हैं—एक निर्गुण, निर्विकार निराकार स्वरूप और खेल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, अचिन्त्यानन्त सद्गुण- ाम स्वरूप। एकके ही ये सगुण स्वरूप अनेक हैं। उनके निर्गुण स्वरूप विभु है, वैसे ही सगुण स्वरूप भी है। सभी सगुण रूप, सभी लीलाएँ सदा, सर्वत्र देश-कालकी कल्पना वहाँ नहीं जाती।

वह शाश्वत सत्य शक्ति एवं शक्तिमान्—उभ शक्ति एवं शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भी भि भिन्न होकर भी अभिन्न हैं। वस्तुतः वे अभिन्न क्रीडाके लिये ही उनका भेद है। इसी भेदसे निर्गुण तत्त्वमें सत्, चित्, आनन्दका भाव है औ साथ यही शक्ति सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी त्रिविध रूपमें उपस्थित होती है। सगुण रूपकी ये शक्तियाँ भी नित्य, परस्पर अभिन्न तथा श अभिन्न हैं।

मायाशक्ति व्यापकतत्त्वके एक पादमें है औ समस्त ब्रह्माण्ड हैं। शेष तीन पादोंमें योगमायाव है। वहाँ नित्य धाम हैं, जहाँ वही निर्गुण ब अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ सगुण, साकार होकर क्री है। ह्लादिनी शक्तिके ही सीता, राधा, लक्ष्मी, त्रिपु रूप हैं।

व्यापकतत्त्वके सत्, चित्, आनन्द मायामें प्रति भाँति गृहीत होते हैं और वे क्रमशः तम, रज एवं नाम पाते हैं। प्रकृति नित्य इन तीनों गुणोंसे यु है। सत्त्वगुण निर्मल होनेसे उसीमें पहले दिव्य अभिव्यक्ति होती है। दिव्य (सत्त्वात्मक) जगत सृष्टि है। जैसे सूर्यसे किरणें, किरणोंसे प्रतिबिम्ब, नित्य धामसे भावस्तर और उनसे दिव्य जगत्। य जगत् मूर्त जगत्‌के रूपमें व्यक्त होता है।

मूर्त जगत्—यह हमारा जगत् भावरूप है, जैसे जल प्रतिबिम्बकी छाया दर्पणमें पड़ी हो। दर्पणमें सूर्यक उष्णताका अंश भले हो; पर वहाँ दर्पण और जल दोष आये हैं। प्रभाव विकृत और अल्प हो ग वहाँ सूर्यकी सत्ता कल्पित है। इसी प्रकार सम्पू जगत् कल्पित है, भावरूप है। दिव्य जगत भावात्मक अभिव्यक्ति है। स्वरूपतः यहाँके देश, का

त् मिथ्या है—रस्सीमें सर्पकी भाँति, सीपमें चाँदीकी
रुस्थलमें जलकी भ्रान्तिकी भाँति। यहाँके सब दृश्य एवं
प्नकी भाँति मानसिक हैं, कल्पित हैं। जैसे स्वप्नके सारे
भाव व्यापक है—भाव ही वहाँ मूर्तिमान् हो गया है,
दृश्य-जगत्‌में दिव्य जगत् (भाव-जगत्) व्यापक
ी यहाँ मूर्तिमान् हो गया है। वह दिव्य या भाव-
ो सत्य नहीं है। ब्रह्मलोकतकके सब पदार्थ कल्पित
की भाँति ही हैं। वे भी प्रतीति हैं।

ान अनेकताका कारण नहीं होता। अज्ञानका धर्म
है। घटाभाव और पटाभावमें कोई अन्तर नहीं।
समस्त दृश्यको एकाकार कर देता है। अतः दृश्य-
यह सब भेद केवल अज्ञानमूलक नहीं हो सकता।
सर्पका भ्रम तभी होता है, जब रस्सी और सर्प
ार्थोंकी सत्ता हो, दोनोंका हमें ज्ञान हो, दोनोंमें कुछ
ो। दृश्यके नाना रूपोंका जहाँ भान होता है, वह
क है। नित्यलोकोंकी विभिन्न लीलाओंकी ही यहाँ
ं प्रतीति है और भावरूप कुछ सादृश्य भी है।
—दिव्य जगत्‌की भावरूप किरणें, यही दिव्य जगत्‌में
देवता होती हैं। देवताओंकी हमारे मनमें अभिव्यक्ति
र है और बाहर वे ही भाव स्थूलरूपमें प्रकट होकर
बन जाते हैं। पदार्थकी मूर्त सत्ता मानसिक
ी परिणाम है।

, चित्, आनन्द—तीनों उसी व्यापकतत्त्वके अभिन्न
। उसके सगुण एवं निर्गुण रूपमें कोई भेद नहीं।
क्रियाएँ उसीके लीलाविलासकी प्रतिच्छाया हैं;
ा नित्य रूपकी उपलब्धिके लिये यहाँकी कोई
या भाव साधन हो सकता है, यदि उसे नैष्ठिक
नाया जाय—मन उसीमें पूर्णतः स्थित हो सके। योगके
ाके स्रोतको पकड़कर, क्रियाकी शान्तिसे निर्विकल्प
ाप्त होती है और ज्ञानके द्वारा पदार्थ-जगत्‌के
प्रतिबिम्बोंसे बिम्बकी प्राप्ति होती है। योग
ा दोनोंमें मायाका विश्लेषण है, उनके द्वारा व्यापक-
कात्मता उपलब्ध होती है; क्योंकि मायाके त्रिगुण तो
त्त्वके सच्चिदानन्दकी छाया हैं। ज्ञानके द्वारा प्रतीतिका
होकर वस्तुकी प्राप्ति होती है। दृश्यकी सत्ता तो
अतः दृश्यका विवेचन उसका निरास कर देता है।
साधनोंमें दृश्यके कारणका विवेचन है। फलतः माया

तीसरा मार्ग उपासनाका है। भाव ही जब
हुआ है, तब भावके सहारे अपने उस नित्य स्वरूप
धाममें प्राप्त करना, जिसका यह वर्तमान स्वरूप प्रतिबि
दूसरे शब्दोंमें भावके आधारपर सगुण-साकार रूपमें शाश्व
उपलब्धि उपासनाका लक्ष्य है। भाव उतने हैं
भावस्तर हैं। भावसे भिन्न न पदार्थ हो सकता है, न विच
न देवता; क्योंकि भाव जो नित्य जगत्‌की किरणें हैं,
मूर्त हुए हैं। अतः प्रत्येक भाव सत्य है, नित्य है, दि
सम्बद्ध है। प्रत्येक भावसे उसकी प्राप्ति हो सकती है

शक्ति एवं शक्तिमान्‌के भेदसे उपासनाके दो भेद
एक तो शक्तिको आराध्य मानकर चलनेवाला औ
शक्तिमान्‌को प्रधान मानकर। स्वरूपभेदसे इनके भ
भेद हैं। ये भेद साधनके लिये अधिकारके अनु
सबका प्राप्तव्य एक ही है। शक्ति-शक्तिमान्‌के अभेद
सभी स्वरूपोंका भी अभेद है। वैसे स्वरूपकी दृष्टिसे
स्वरूप नित्य है। उसे पानेवाला उसे शाश्वतरूपमें ही
करता है; किंतु जैसे रुचिके कारण कोई चीनीक
पसंद करता है और कोई घोड़ा; दोनों प्रभाव,
सबमें एक ही हैं, वैसे ही सम्पूर्ण सत्ता समग्ररूपसे एक

नित्य अभेद और नित्य भेद तथा अभेदमें भे
भेदमें अभेदका यह शास्त्रीय ज्ञान ईश्वरीय वरद
अपौरुषेयरूपमें ही वह मनुष्यको प्राप्त हुआ है।
मानव-ज्ञान, चाहे वह कितना भी उच्च क्यों न हो
किसी-न-किसी अंशकी अस्पष्ट या स्पष्ट व्याख्याम
हिंदूसमाजका मूल दर्शनशास्त्र, जो वेदों, उपनिषदों,
वर्णित हुआ है, संक्षेपमें यही है। इसके भेद उनके
आगे स्पष्ट होंगे।

नास्तिक-दर्शन

उपनिषदोंमें ही इन्द्र एवं विरोचनकी कथा है।
तथा दैत्यराज दोनों लोकपितामह ब्रह्माजीके पास त
प्राप्त करने गये। ब्रह्माजीने मननका अवसर देनेके
बतलाया कि 'जो जलोंमें, दर्पणोंमें, नेत्रोंमें दिखायी
वही आत्मा है।' बड़ी सीधी बात थी कि शरीरका जै
दर्पणादिमें प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है, वैसे ही श
प्रतिबिम्ब है। इस शरीरका जो मूल बिम्ब नित्यधाममें
आत्मा है। असुरराज विरोचनकी बुद्धि इतनी सूक्ष्म न

। इन्द्र बराबर विचार करते रहे। उन्होंने कई
एँ कीं और अन्तमें पितामहसे उन्होंने तत्त्वज्ञान
।
चनने अपने तत्त्वज्ञानका असुरोंमें प्रचार किया।
ात्मवादी हो गये। यद्यपि प्रह्लादादिने वस्तुतः
ाप्त किया, तथापि असुरोंने उसे देवताओंका सङ्गदोष
। अधिकतर वे शरीरको मुख्यता देते रहे।
ग ही उनका लक्ष्य रहा। यही आसुरी सभ्यता
देशोंमें विस्तृत हुई। शरीरको मरनेपर भी सुरक्षित
रणा देहात्मवादसे ही मिली। भारतमें देहात्मवादकी
ा चली और पाश्चात्त्य देशोंमें दूसरी।
सदा भ्रान्तिहीन है। विचार कभी किसीको भ्रममें
रते, यदि उन्हें कुण्ठित न कर दिया जाय।
देशोंमें देहात्मवाद गया तो सही; किंतु उसपर
चार होता रहा। छान-बीन होती रही। यद्यपि
वाद अब भी उसी 'कामोपभोगपरमाः' की भूल आसुर
ो है और मनुष्यका जैसे-जैसे बौद्धिक ह्रास होता जा
वैसे-वैसे वह दर्शनके उच्च विचार ग्रहण करनेमें
ोनेके कारण तथा आचारहीन होनेसे, स्थूल एवं
धानता देनेवाले आसुर विचारोंको अपनाता जा
र इसीसे यह जडवाद संसारमें व्यापक होता जा
रंतु यूरोपमें जो सच्चाईसे अन्वेषण करते रहे हैं, उन्हें
ा स्वीकार करनी पड़ी है।
रात, कांट, शेली, शोपनहॉरकी चर्चा मैं नहीं
ये तो दार्शनिक थे और उनपर भारतीय विचारोंकी
छाया है; परंतु जडवादी डार्विन, हेंकलेकी वैज्ञानिक
अब अपने अन्वेषणसे सर ऑलिवर लॉज और
नतक पहुँच गयी है। आइन्स्टीनका सापेक्षवाद जडवाद-
णकी सीमा है। जड-तत्त्वके अन्वेषणद्वारा विज्ञान चेतन-
धमें इससे अधिक सङ्केत नहीं दे सकेगा। आइन्स्टीन
ता है—'क्या है' यह जाननेका कोई मार्ग नहीं। जो
लयी पड़ता है या किसी प्रकार जाना जा सकता
सब अपेक्षाकृत है। देश, काल, पदार्थ—सब एक-
अपेक्षासे इस रूपमें प्रतीत हो रहे हैं।
। है? यह तो अनुभूतिका विषय है। जडके
में तो 'न इति, न इति'—इस प्रकार सबका निषेध ही

लोकायत-दर्शन (चार्वाक-सिद्धान्त)

पाश्चात्त्य देशोंमें मार्क्सके जिस तत्त्वज्ञानको आज ब
दिया जा रहा है, भारतमें उस देहात्मवादकी आसु
भी आदि कालसे है। चार्वाक-दर्शनके नामसे को
उपलब्ध नहीं है; परंतु देहात्मवादके ये सिद्धान्त
व्यापक होनेसे इस दर्शनका नाम 'लोकायत' पड़
इसके एक आचार्य बृहस्पति कहे जाते हैं। ये
बृहस्पतिसे भिन्न हैं। चार्वाकका ही दूसरा नाम
है, ऐसा भी कुछ लोगोंका मत है।

चार्वाक-दर्शन केवल प्रत्यक्षको प्रमाण मानता
दर्शनका कहना है कि 'जैसे गन्धकादि कुछ पदार्थोंके मेल
अग्नि उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी-जल-अग्नि-वा
से चेतना उत्पन्न होती है।' यह दर्शन आकाशको
मानता। इमें स्मरण रहना चाहिये कि पाश्चात्त्य
भी पहले चार ही तत्त्व मानते थे। वे इसी परम्परामें

चेतना शरीरसे भिन्न कोई तत्त्व नहीं। वह
साथ ही नष्ट हो जाती है। पुरुषार्थ इतना ही है
जैसे बने—उचित या अनुचितका विचार छोड़कर
सुख प्राप्त किया जाय। परलोक—स्वर्ग या नरक, सब
कल्पना है। ईश्वर कोई सत्ता नहीं। धर्म, कर्म, सदा
सब अज्ञानियोंको भुलावेमें रखनेके उपाय हैं। पू
श्राद्धादि मूर्खताके सूचक हैं। शास्त्रोंका निर्माण पा
धूर्तोंने अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये किया है
कृत्वा घृतं पिबेत्'—चाहे जैसे हो, सुख भोगो! संस
और काम ही मुख्य हैं। आजका प्रगतिवाद
भिन्न कोई तर्क रखता है? आजके जडवादको
बदले चार्वाकका आभारी होना चाहिये। वही उनके त
के आदि आचार्य हैं। आजका समाज इसी त
ओर लुब्ध है!!

बौद्ध-दर्शन

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदय-हृदय-दर्शित-पशुघातम्॥
केशव धृतबुद्धशरीर······॥ (गी

भगवान् बुद्धके जीवनपर विचार करनेसे पता
कि पिताके राजभवनमें उनके लिये सब प्रकारके मनो

वे स्वयं जीवन-तत्त्वके चिन्तनमें प्रवृत्त हुए। ापर विश्वास था और वे तपमें ही पहले प्रवृत्त भी ओर तपके अनन्तर उन्होंने 'युक्ताहारविहार' का र्ग अपनाया और उसीको सर्वश्रेष्ठ बतलाया।

वान् बुद्धको अपने गृहत्यागके अनन्तर जिन । संसर्ग मिला, वे निरे तार्किक थे। अनुभव-मबोध उनमें नहीं था। एक सच्चे आत्मशोधककी ाँ नहीं हो सकती थी। इस प्रकार शास्त्रोंके प्रति अवकाश ही नहीं मिला। पूरे जीवनको पढ़नेसे पता कि भगवान्‌को बराबर हिंसाका विरोध करना पड़ा। ाय राजस-तामस यज्ञोंका बोलबाला था। उनका ावश्यक था। स्वयं भगवान्‌को तप एवं चिन्तनके मार्गसे । पड़ा था; अतः उन्होंने इन्हींको प्रधान माना। ामपर जो राजस-तामस कृत्य—पूजनादि प्रचलित थे, त्व प्रेरणा नहीं देता—यह जाननेका प्रयत्न करके उस ाथ्यको प्रसारित करनेके बदले अपने अनुभूत सत्यको ासे प्रसारित करना सरल था। सभी इतिहासज्ञोंकी ै कि बुद्ध सदा यह मानते रहे कि वे शुद्ध सनातन प्रचार कर रहे हैं।

ान् बुद्धने चार आर्य सत्योंको स्थिर किया था। नके शिष्योंने उनके मतका भाष्य किया। ह हुआ कि बौद्ध-धर्म तीन प्रधान भागोंमें हो गया—हीनयान, महायान और वज्रयान। मत श्रीगौतम बुद्धको एक महापुरुष मानता था, साधनद्वारा निर्वाण प्राप्त किया। यह निवृत्तिप्रधान इसका लक्ष्य एवं आराध्य 'अर्हत्' था। महायान भक्ति-र्ग हुआ। हीनयान मतके भावुक भक्तोंने इसका ाया। हीनयान मतके ग्रन्थ पाली भाषामें थे। ा संस्कृतमें विस्तृत साहित्य बना। इस मतके बोधिसत्त्व' हैं। भगवान् बुद्ध सामान्य महापुरुष अवतार माने गये। बौद्ध-धर्ममें आगे तान्त्रिक प्रचलित हुई। उनको प्रधानता देनेवाली शाखा नामसे प्रसिद्ध हुई।

्-धर्मके प्रकाण्ड विद्वानोंने उसका दर्शनशास्त्र ाया। भगवान् बुद्धने ही प्रत्यक्षसे आगे अनुमानको ा मान लिया था। बौद्धदर्शनमें यही दो प्रमाण । दर्शनोंकी दृष्टिसे बौद्ध-धर्मके चार विभाग हैं।

मध्यम दर्शन—विश्वके सभी पदार्थ क्षणि किसीका कोई रूप स्थिर नहीं। परमाणुओंकी अविरल प्र ही आकृतियाँ बनाती हैं। परमाणु भी क्षणिक हैं। स्वभाव ही सत्ता है। क्रियाके साथ सत्ताकी समाप्ति है। क्षणिक होनेके साथ सब दुःखरूप है। यह द्व कैसा है—यह बताना शक्य नहीं; यह स्वलक्षण है—वैसा ही है। इससे भिन्न समान सत्ता न होनेसे इस लक्षण शक्य नहीं। सब शून्य है, क्योंकि किसी सत्-असत् आदि कुछ भी कहना शक्य नहीं। इस मतके बौद्धिक ज्ञान सत्य है। बाह्य जगत् शून्य है। अप्राप्तके लिये शङ्का करना—'पर्यनुयोग' ही योग माना गया है उपदेश स्वीकार करना आचार है। शून्यत्व, क्षणिक रूपतादिकी भावना करके शून्यमें विलीन हो मुक्ति—निर्वाण माना गया है। यही परम प्राप्य है। लिये 'योग' और 'आचार' दोनों अनुष्ठेय हैं।

योगाचार—भगवान्‌के जिन शिष्योंका सन्तोष आचारसे न हुआ, उन्होंने योगकी साधनाएँ कीं। दर्शनशास्त्रको अपना रूप दिया। यह दर्शन मान 'बुद्धिका ग्राह्य कोई पदार्थ नहीं। बाह्य रूपोंमें स्वयं मूर्त हुई है। वस्तुतः ग्रहण करनेवाला, ग्रहणकी क्रि ग्रहण होनेवाले पदार्थ(जगत्)—ये परस्पर अभिन्न ज्ञान-ही-ज्ञान है। बुद्धि (ज्ञान) स्वयं अनुभूत है। न प्रतीति भेदकी वासनाके कारण है और यह वास अविच्छिन्न है। देखा यह जाता है कि हमारा सन्तोष तृप्ति सदा साकार पदार्थोंसे ही होती है। पदार्थके भाव (ध्यान) से तृप्ति नहीं होती। बाहरके पदार्थ ज्ञान-ही-ज्ञान है, इसका साक्षात्कार—बाह्य जगत्‌से निवृ अन्तःकरणमें उसकी उपलब्धि मुक्ति है। ज्ञान माननेसे इस दर्शनको 'विज्ञानवादी' कहा जाता है।

सौत्रान्त्रिक—मध्यम दर्शनने भावस्तरसे अभिव्यक्तिको व्यक्त किया था। योगाचारने भावस्तर भाव-जगत्‌का भी साक्षात्कार किया। तर्कके तथा यो इससे ऊपर जानेकी सम्भावना नहीं है। सौत्रान्त्रिक प्रवृत्ति ही भिन्न हो गयी। उसमें शाक्त-दर्शनका प्रभाव वह भुक्ति-मुक्ति दोनोंका साधक बनने लगा। व तान्त्रिक मार्ग सभी दर्शनको मानता है। इस दर्शनकी

का शुद्ध रूप 'अहं' है। बाह्य पदार्थोंमें 'अहं'-
िनेसे उन्हें ज्ञानरूप अर्थात् अन्तरका ज्ञान ही बाहर
है, यह नहीं कह सकते। 'इदम्' का ज्ञान केवल
ां स्वप्न-दशामें ही रहता है। सुषुप्तिमें उसका लोप
है। अतएव वह 'अहं' के समान निर्बाध ज्ञान नहीं
एव 'अहं' और 'इदम्'—ये दोनों ज्ञान भिन्न-भिन्न
बाह्यपदार्थकी सत्ता न हो तो 'इदम्' ज्ञान नहीं
स प्रकार ज्ञाता ही ज्ञेय नहीं बनता। 'इदम्' यह
नहीं है। इसी प्रकार 'इदम्' से प्रतीयमान बाह्य
। शून्य नहीं है। 'इदम्' ज्ञानसे ही बाह्य पदार्थकी
अनुमान होता है। आलय-विज्ञान (अहं) के रहते
त-ज्ञान (इदम्) रहता है। अतः वह उससे भिन्न
एक सत्ता दो रूपोंमें एक ही समय नहीं रह सकती।
ज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार—ये ज्ञानके
ध (अङ्ग) हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ और उनके विषय रूप हैं।
तथा इदं-बोध विज्ञान हैं। इन ज्ञानोंसे उत्पन्न
ादि वेदना हैं। इस वेदनासे उत्पन्न राग-द्वेषादि
। विश्वमें जो नाम-भेद हैं, यह संज्ञा है। इन पाँचों
स्तृत ज्ञानवृक्ष ही आत्मा है। इस वृक्षके ये पाँच
दुःखरूप हैं। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, उनके पाँच विषय,
बुद्धि—ये दुःखके द्वादश आयतन (दुःखके स्थान)
ा-द्वेषादि संस्कार-समुदाय दुःखके साधन हैं। सब
, यह भावना ही इस दुःखसे परित्राणका मार्ग है।

षिक—बाह्य पदार्थ और आन्तर पदार्थ दोनोंकी
ननेके कारण इस दर्शनको 'सर्वास्तिवाद' कहा
यह दर्शन जडवादकी ओर लौट आया। शास्त्रको
केवल प्रत्यक्ष एवं अनुमानपर आधारित होनेसे
विकारी प्रकृति तर्कके सहारे उसे भोगोंको ही सत्य
लेये प्रेरित करे, यह स्वाभाविक है। भुक्ति-मुक्ति दोनोंकी
लगनेपर सौत्रान्तिकोंका वज्रयान अन्तमें अनाचार
, यह इतिहाससिद्ध बात है। चार्वाकके जडवादको
बौद्धिक रूपमें यह दर्शन स्वीकार करता है। इसकी
है—द्वादश आयतन (पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ और मन,
च विषय तथा बाह्येन्द्रियोंसे अग्राह्य विषय) से
ा मान्य नहीं है। आत्मा इनमेंसे कोई नहीं, अतः
त्ता मान्य नहीं। जगतकी स्वतन्त्र सत्ता प्रत्यक्षगम्य

आर्हत (जैन)-दर्शन

यदि सब क्षणिक हो तो कर्मोंका कर्ता भी
होगा। एक कर्मका जो कर्ता था, दूसरे क्षण वह न
अतः पूर्वकर्मका फल किसे मिलेगा? अतः कर्ता क्षा
है। फलका भोक्ता स्मरण करता है कि वह अपने
कर्मका फल भोग रहा है; अतः वह स्थिर
सिद्ध होता है। स्मृति, अनुभव एकाधारमें हो
आत्मा स्थिर है। यह जगत् अनादि है। सत् क्षा
है। वह उत्पत्ति-विनाशसे रहित है।

जगत्‌में चित् तथा अचित्—दो तत्त्व हैं।
ठीक-ठीक विचार ही विवेक है। अन्य वस्तुओंक
काममें लाना—यह चेतनका लक्षण है और इससे भिन्न
जड है। विश्वमें पाँच अस्तिकाय (सत्ता रखनेवाले
हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल। जी
कोटियाँ हैं—मुक्त और संसारी। संसारी जीवोंमें भी कुछ
(त्रस और स्थावर) तथा कुछ मनवाले प्राणी हैं।
देनेवाला तत्त्व आकाश है। मुक्तिका साधन धर्म
धर्माचरणसे जीव आलोकाकाशमें जानेपर मुक्त हो ज
मुक्तिका प्रतिबन्धक तत्त्व अधर्म है।

स्पर्श, रस और वर्णवाला तत्त्व पुद्गल है।
और स्कन्धभेदसे द्विविध है। इसका अणुरूप
लिये अशक्य है। पृथ्वी, जल, वायु और तेज—ये च
हैं। दूसरे जैनी सात तत्त्व मानते हैं—जीव, अजीव,
बन्ध, संवर, निर्जर और मोक्ष। इनमें जीव औ
(आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल) का वर्णन
हो चुका। जो बन्धका हेतु है, वह आस्रव है। काय, व
मनमें आस्रव स्फुरित होता है। मिथ्या दर्शन, ः
प्रमाद और कषायके कारण जीवमें आस्रवके द्वार
पुद्गलसे योग होता है। यह सम्बन्ध ही बन्ध है। आस्रवरू
प्रवाहको ढकनेवाला संवर है। यही संवर मोक्षक
है। संवरका स्वरूप है गुप्ति (अशुभसे शरीर, मन
रोकना), समिति (अहिंसा), निर्जरण (तपसे सञ्चि
का नाश)। सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र, सम्यक्
तीन मोक्षके मार्ग हैं।'

जैन-धर्मका साहित्य एवं दर्शन अत्यन्त वि

ः जैनधर्मके नित्य आत्मा अर्हत्से भिन्न होकर भी रखता है। अहिंसाका जैनधर्मवाला तत्त्व ही बौद्धधर्म-या। जैन-धर्ममें तपस्यापर बड़ा जोर दिया जाता है। ें भगवान् बुद्धने भी उग्र तप किया था।

ैनधर्म बौद्धसे प्राचीन है, इसीसे हम उसमें शास्त्रोंके ंश अंश ज्यों-के-त्यों पाते हैं। आलोकाकाश, दिव्य आदिके सम्बन्धमें बौद्ध दर्शनोंकी अपेक्षा यहाँ कुछ : है। वैसे बौद्धधर्म एवं जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें वादका मौलिक भेद है। जैनधर्म सनातनधर्मसे कम अन्तर रखता है कि वैवाहिक सम्बन्धादि भी होते हैं। बौद्ध-धर्म उससे कुछ और दूर हुआ। नादिका विषय न होनेसे निर्गुण तत्त्व तथा दिव्य तो श्रुति-शास्त्रद्वारा ही जाननेयोग्य हैं।

आस्तिक दर्शन

ो वेदोंको प्रमाण न माने, वह नास्तिक है।' शास्त्रकारों-तककी यही परिभाषा की है। इस परिभाषामें ईश्वर-परलोकको मानने-न-माननेका प्रश्न ही नहीं आता। ाभाषा 'नास्तिक' शब्दके वर्तमान भावसे भिन्न है। ास्तिक केवल उसे कहते हैं, जो शरीरसे भिन्न जीवको न करे। मरणोत्तर जीवनमें जिसका विश्वास न हो, ाज नास्तिक माना जाता है। यहाँ 'नास्तिक' और क' शब्दोंका पुराना भाव ही लिया गया है।

स्तिक दर्शनोंको हम शास्त्र कहते आये हैं। षट्-अभिप्राय छः दर्शनोंसे ही सदा रहा है। ये दर्शन-शास्त्र रभेदसे तत्त्व-प्रतिपादनकी शैली निर्धारित करते हैं। हर्षियोंके तत्त्वज्ञानमें न तो कोई अन्तर है और न ुति-पुराणोंके समग्र दर्शनको उन्होंने नहीं समझा भी बात नहीं; किंतु सब एक-से अधिकारी नहीं बकी बुद्धि समान सूक्ष्मग्राहिणी नहीं होती। निम्न-अधिकारीको स्थूल तर्कोंसे समझाना पड़ता है—जैसे-उन्नत होता है, तर्क सूक्ष्म होते जाते हैं—जैसे ासे उन्नत कक्षाओंकी पाठ्य पुस्तकोंके विषय।

नशास्त्रका उद्देश्य है जगत् एवं जीवके तत्त्वको समझा ह जगत् क्या है ? किसने इसे बनाया और क्यों इसके नियम क्या हैं ? हम किसलिये जगत्में ह जिज्ञासा स्वाभाविक है और न स्वाभाविक हो तो हेये। हम जहाँ काम करने चले हैं, उस क्षेत्रका

अब जो जैसा अधिकारी होगा, उसे उसकी बुद्धिके अ समझाना पड़ेगा। ऋषियोंने इस दृष्टिसे दर्श निर्माण किया। वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पू और उत्तरमीमांसा—ये दर्शन-शिक्षाकी उत्तरो कक्षाएँ हैं। इनमें जो भेद प्रतीत होता है, वह नहीं है। अतएव दूसरे दर्शनोंके भेदोंकी भाँ ह्रास-विकासकी भावना असंगत है।

दर्शनशास्त्र श्रेणी-क्रमसे अधिकारीको श्रुतियोंके दर्शनतक ले जाते हैं। अतएव उनका विवरण उनक के क्रमसे ही देना उचित होगा। इनमें स्थूल बुद्धिके अधिकारीके लिये महर्षि कणादने वैशेषिक दर्शनकी की है।

वैशेषिक-दर्शन

'ईश्वर और जीव—ये नित्य तत्त्व हैं। जीवका कर्तव्य है कि वह धर्मका पालन करे। धर्म वही अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी सिद्धि करे। धर्माचारका वेदोंमें है। वेद ईश्वरीय वाणी है। वेद धर्मोंका वर्णन (नाम-निर्देश), विभाग तथा लक्षण (वस्तु-धर्म-निर से करते हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, और अभाव—ये सात पदार्थ हैं। पञ्चमहाभूत, काल, आत्मा और मन—ये नौ द्रव्य हैं। ये द्रव्य ही क्रिया, आश्रय तथा समवायी कारण हैं। स्पर्श, रूप, रस, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अ सुख, दुःख, बुद्धि, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द—ये चौबीस गु इनमें रूप (रंग) सात प्रकारका, रस छः प्रकारका, दो प्रकारका (सुगन्ध-दुर्गन्ध) तथा बुद्धि दो प्रकार संशयात्मिका तथा निश्चयात्मिकारूप होती है। निश्चया बुद्धि प्रमा (विद्या) है। अनिश्चयात्मिका बुद्धि (अविद्या) के तीन रूप हैं—संशय, विपर्यय (उलटा और स्वप्न। प्रमा-बुद्धि प्रत्यक्ष एवं अनुमानके आ रहती है। संस्कार तीन प्रकारके होते हैं—भावना और स्थितिस्थापक। कर्म पाँच प्रकारका होता उत्सर्पण, अपसर्पण, आकुञ्चन, प्रसारण और गति। पदार्थोंमें जो एकता है, वह सामान्य-तत्त्व है। परमाणु स्थित अतीन्द्रिय तत्त्व, जो उनकी पृथक्ताका कारण है, है। पदार्थोंका नित्य सम्बन्ध समवाय है।

न्यायदर्शन

ाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, र निग्रहस्थान—इन सोलहकी यथार्थ प्रमा (ज्ञान) का हेतु है । ज्ञानके चार साधन हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द । आत्मा, आयतन (देह), इन्द्रिय, अर्थ), मन, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख वर्ग—इनका ज्ञान ही मोक्षका कारण है । इच्छा, द्वेष, ुख, दुःख तथा ज्ञान—ये आत्मा (जीव) के चिह्न या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि त्न—ये आत्मा तथा ईश्वरके गुण हैं । शरीर चेष्टा, तथा विषयोंका आश्रय है । अर्थ सब परमाणुरूप हैं । कर्मसे शरीर बना है । पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ पञ्च- ूक्ष्मांशसे बनी हैं । मन अणुरूप अन्तरिन्द्रिय है । ाल ज्ञानोपलब्धिमात्र है, वह अनित्य है ।

र्षि गौतमने जल्प-वितण्डा आदिको यथार्थतः समझ- ासे सावधान रहने योग्य बननेकी प्रेरणा दी है । स्थूलरूप और गुणोंसे उठकर उनके परमाणुरूपका किया है ।

सांख्य

र्षि कपिलने परमाणुवादसे ऊपर उठकर प्रकृति- पादन किया । सांख्यमें जाकर जगत्की विवेचना ामापर पहुँच गयी । आजकल सांख्यदर्शनके जो ते हैं, उनको विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते । सांख्य- ईश्वरकृष्णकी कारिका ही प्रामाणिक मानी जाती है ।

तः दो अनादि तत्त्व हैं—प्रकृति तथा पुरुष । जगत्में विकृति, प्रकृति-विकृति तथा उभय-भिन्न—चार पदार्थ हैं । प्रकृति किसीका कार्य नहीं है, अतः वह ्कृति है । प्रकृतिसे महत्तत्त्व, उससे अहंकार और े पञ्चतन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं । तन्मात्राओंसे पञ्च- उत्पन्न होते हैं । महत्तत्त्व, अहंकार और तन्मात्राएँ ्कृतिस्वरूप हैं । ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत —ये केवल विकृति हैं । जीव उभयभिन्न है । वह है । पुरुष चेतन है और प्रकृति अचेतन । पुरुषके । प्रकृतिमें चेतनाकी प्रतीति होती है । प्रकृति-पुरुषके

प्रकृति है । सत्त्वगुणका धर्म सुख, रजोगुणका दु तमोगुणका मोह है । यह सम्पूर्ण जगत् प्रकृतिसे होने त्रिगुणात्मक है । अहंकार त्रिविध होता है सात्त्विक अंशसे मनके साथ ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रि तामस अंशसे तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं । राजस अं अंशोंका प्रेरक है । एक प्रकृति; महत्, अहं उ तन्मात्राएँ—ये सात प्रकृति-विकृति; और पञ्चमहा इन्द्रियाँ तथा मन—ये सोलह विकृति—इस प्र चौबीस तत्त्व हैं । पचीसवाँ तत्त्व पुरुष है ।

पुरुष अनन्त हैं । वे परस्पर भिन्न हैं । पु है, भोक्ता है । वह प्रकृतिके कर्तृत्वको अपनेमें मा जब पुण्योदयसे पुरुष त्रिविध दुःखोंके नाशकी इच्छ है, तब प्रकृति उसकी इच्छा सफल करती है भोगेच्छा न होनेपर प्रकृति स्वतः शान्त हो जाती है प्रकृतिकी चेष्टा पुरुषके उपभोगके लिये ही है, अ नहीं; अतः वासना-नाश होनेपर प्रकृति बन्धन नहीं कर सकती ।

बौद्ध-दर्शन असत्से सत्की उत्पत्ति मान न्याय सत्से असत्की उत्पत्ति बतलाता है । सत्से सत्की ही उत्पत्तिका प्रतिपादन किया । का मूल तर्क है कि किसी पदार्थसे विरोधी पदार्थक सम्भव नहीं है । जो पदार्थ जिस पदार्थसे अन्वित है, उसका कारण भी वही (व्यापक) है । पदा नहीं होता । उसका केवल तिरोभाव होता है ।

योगदर्शन

महर्षि पतञ्जलिका योगदर्शन सेश्वर सांख्यदर्शन योगदर्शन सांख्यसे विचारमें कोई भेद नहीं सांख्यके पच्चीस तत्त्व योगको भी मान्य हैं । इनके पुरुषविशेष ईश्वरको छब्बीसवाँ तत्त्व माना गया है दर्शन क्लेश-नाशका एक व्यावहारिक साधनमार्ग दे प्रवृत्त हुआ है ।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनि जीवके पाँच क्लेश हैं । इनसे नित्यमुक्त, कर्मवि आशय-सम्पर्कसे शून्य, अद्वितीय, ज्ञानरूप ईश्वर संसार दुःखमय एवं हेय है । चित्तकी वृत्तियोंके

ासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और -ये चित्तवृत्ति-निरोधरूप योगके आठ अङ्ग हैं।

पूर्वमीमांसा-दर्शन

यदर्शनका तत्त्वज्ञान तो उत्तरमीमांसा-दर्शनमें आगे ु सांख्य, योग और उत्तरमीमांसा—तीनों ही दर्शन ़ लिये पुण्यकर्मोंका उदय आवश्यक मानते हैं। र्मोंका विचार करनेके लिये पूर्वमीमांसा-दर्शनकी मेनिने रचना की।* योगशास्त्रने कर्मके एक रूपका ़्या। उत्तम कर्माधिकारीके लिये योग है। कामना-ु पुरुष वैराग्य तथा साधनके अभ्याससे समाधिलाभ ़ होगा; किंतु जो विरक्त नहीं है, उसकी उधर ़ोगी। उसको तो उपभोग चाहिये। उसके लिये ा-दर्शन कर्म-सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है। ीमांसा-दर्शनको ही लोकमें मीमांसादर्शन कहा जाता त्तरमीमांसा-दर्शन वेदान्तदर्शनके नामसे प्रख्यात है। नित्य हैं। उनके मन्त्र ही देवता हैं। वेदोंके विधि, मन्त्र, स्मृति और नामधेय—ये पाँच अङ्ग हैं। थ है। शब्दोंमें इन पाँच ही अङ्गोंकी अभिव्यक्ति। वेदादि किसी ग्रन्थका तात्पर्य समझनेके लिये उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, और उपपत्ति—इन सात बातोंपर ध्यान देना ़ है। प्रत्येक वाक्य किसी व्यापार या कर्मका होता है और उसका कुछ फल होता है। फलोत्पादनमें समर्थ हैं।

फलका विधान, कर्मभेद आदिका वर्णन 'धर्म' के ़ साथ किया गया है। पूर्वमीमांसा-दर्शनका उद्देश्य प्रबल निष्ठा उत्पन्न करके अधर्मकी निवृत्ति तथा वृत्ति करना है।

उत्तरमीमांसा-दर्शन

वान् व्यासके इस दर्शनको वेदान्तदर्शन कहते हैं। जेज्ञासाके लिये इसकी प्रवृत्ति है और ब्रह्मका लक्षण **ग्रस्य यतः**'—जिससे सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं। ा इसी लक्षणकी व्याख्या है। पुराणोंमें श्रुतिसे जो दर्शन-शास्त्र आया है, पुराणकारने उसीको इन सूत्रोंमें ़ कर दिया है। भगवान् व्यासके इस उत्तरमीमां (ब्रह्मसूत्र) को लेकर आचार्योंने अपने-अपने ़ उसका भाष्य किया है। सम्प्रदायोंकी प्रतिष्ठा उन आधारपर ही है। ब्रह्मसूत्र (न्याय-प्रस्थान); उपनिषद् (श्रुतिप्रस्थान) तथा गीता (स्मृति-प्रस्था ये तीन ग्रन्थ प्रस्थानत्रयीके नामसे विख्यात हैं। इन भाष्य करके ही सम्प्रदाय पहले चले हैं। वर्तमान की भाँति कल्पित सम्प्रदाय भारतमें पहले च सकते थे।

अद्वैतवाद

दृश्य-जगत् केवल प्रतीतिमात्र है। यह अज्ञानके कारण है। एक ही निर्गुण, निराकार, ़ चेतन सत्ता है। दृश्य-जगत् उससे भिन्न नहीं है। ़ ब्रह्मसत्तामें अध्यस्त है। समस्त दृश्य परिणामी अनित्य हैं। सबका द्रष्टा एक है। ज्ञेय भी सोपाधिक रूप है। नाम तथा रूप—ये मनकी वृत्ति जगत् नाम-रूपके अतिरिक्त और कुछ नहीं। न रूपकी प्रतीति मायासे है। माया अनिर्वचनीय ़ अनादि होते हुए भी ज्ञानके द्वारा उसका अन्त उसकी सत्ता नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है सजातीय, विजातीय अथवा स्वगत—किसी प्रकार भेद नहीं है।

भगवान् शङ्कराचार्यने जगत्की प्रतीति रस्सीमें भ्रमके समान विवर्तसे बतलायी। अद्वैतवादमें दृ वाद और अजातवाद-जैसे कई प्रक्रियाभेद हैं। प्रतीतिको लेकर ही ये सिद्धान्त बने हैं। इनमें बौद्ध तर्कोंका अनेक बार प्रकारान्तरसे उपयोग हुआ है अद्वैत सत्ता और जगत्के मिथ्यात्वको सभी मानते है प्रक्रिया भिन्न होनेसे कोई मौलिक भेद उनमें नहीं है

जगत् प्रतीति है, मिथ्या है, अध्यास या विवर्त है—तो शास्त्रका पूर्वोक्त समग्र दर्शन ही है। भगवान् शङ्क व्यावहारिक एवं पारमार्थिक—दो प्रकारके सत्यका ़ किया है। उन्होंने '**ईश्वरानुग्रहादेव पुमान द्वैतवासनः** ईश्वरीय कृपा अपेक्षित मानी है एवं उपासना, भक्ति तथा को महत्त्व दिया है। संसार प्रतीति है; वह कल्पना है; पर

---

* महर्षि जैमिनिकृत इस पूर्वमीमांसा-दर्शनके अतिरिक्त महामण्डलके द्वारा एक श्रीभरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शन

है और समष्टिका लय समष्टिकर्ताके अंशमें । जब
के सत्य किसीकी प्रतीतिको आत्मसात् कर लेता है;
व्यावहारिक सत्यके बन्धन उसके लिये नहीं रह जाते—
रुपयेके नोटमें रुपया उठ गया, उसके लिये नोट
टुकड़े हैं ।

बौद्धधर्म अपने वज्रयानके स्तरपर उतर आया था ।
की भावनाएँ भी अनाचारमें बदल गयी थीं । तर्कने
जडवादी बना दिया था । इसी वातावरणमें भगवान्
र्यका प्रादुर्भाव हुआ । वैभाषिक बौद्धदर्शनका
जडको सत्य मानना था। भगवान् शंकराचार्यने
उत्थित की । जड दृश्य जगत् केवल प्रतीति है ।
नके ही मध्यमाचारसे यह मत मिलता है । बौद्ध
शाङ्करदर्शनका भेद यह है कि उसमें श्रुति, शास्त्र एवं
ताकी प्रतिष्ठाके साथ ज्ञानको आचारकी अपेक्षा महत्ता
। उस समय जो वामाचार, कापालिक आचार आदि
ताएँ आचारके नामपर प्रश्रय पा गयी थीं, उनका
आवश्यक ही था । मानवको उस समय रुककर शुद्ध
करना परमावश्यक था ।

विशिष्टाद्वैतवाद

द्वैतवाद साधन-चतुष्टय, श्रवण-मनन-निदिध्यासनसे
अनुभूतिका प्रतिपादन लेकर प्रवृत्त हुआ; किंतु
कृति तो अधोगामिनी है । आचारसे ज्ञानकी श्रेष्ठताके
ने केवल बौद्धिक ज्ञानको महत्त्व दे दिया ।
छूट गया । इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन तो व्यवहार
ने लगा और बुद्धिको महत्ता मिल गयी । अद्वैतबोध
भूतिसे उठकर दूसरी विद्याओंकी भाँति एक बौद्धिक
गया । जीव नित्यमुक्त शुद्ध ब्रह्म है, उसे कोई
बाधित नहीं करता । विषयोपभोगादि तो व्यवहार है,
है, अज्ञानकी प्रतीति है । सदाचार, उपासनादि सब
हो गये । देहात्मवादी नास्तिक तथा बौद्धिक
केवल यह अन्तर रहा कि एक मूलतत्त्वको जड
, दूसरा चेतन । शेष मान्यताएँ दोनोंकी एक हो
'कलौ वेदान्तिनः सर्वे'—शास्त्र ऐसे ही वेदान्तको
र्म बतलाता है । आज वह प्रत्यक्ष है ।

हार एवं व्यावहारिक सुख जबतक अपेक्षित हैं,
नकी प्रतीति है, तबतक जिसकी कल्पनाने उनका
या है, हम उसके अधिकारक्षेत्रमें हैं । यदि ये
करना पड़ता । हम कल्पनासे उनकी सृष्टि कर लेते
कल्पना-क्षेत्रमें हम व्यवहार चलाते हैं, वह हमार
है । हम उसकी कृपासे उस क्षेत्रसे बाहर हो स
उसके क्षेत्रमें रहकर उसके नियमोंको भंग करने
मिलेगा ही । इस सत्य एवं आचारकी प्रतिष्ठ
महाप्रभु रामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैत-मतका प्रवर्तन ।

चित्-अचित्-विशिष्ट समग्र तत्त्व ही ब्रह्म है
चेतन अंशसे चित् (जीव) और अचित्से जड (
हुई है । ब्रह्म जगत्का निमित्त तथा उपादान क
जीव ब्रह्मका ही अंश है । भगवान् नारायण ही इ
जड-चेतन सत्ताके स्वामी हैं । वे निखिलगुण
नित्यवैकुण्ठविहारी हैं । उनकी शरणमें जानेसे ह
मुक्ति होती है । प्रपत्ति (शरणागति) ही मोक्षका
साधन है । जीव ज्ञाता है । ज्ञान जीवका धर्म
ज्ञानस्वरूप नहीं है । जीव और ईश्वर नित्य भि
यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान ही प्रमा है । नि
और सविकल्प दोनों प्रकारके ज्ञान विशेषतायुक्त त
होते हैं । जिसमें कोई विशेषता न हो, उसका ज्ञ
होता । आत्मा, मन, इन्द्रिय तथा विषय-संयोग—
हेतु हैं । जो कर्म-सम्बन्धी ज्ञानसे सम्पन्न है
ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी है ।

'ब्रह्म सगुण एवं सविशेष है; क्योंकि उसका ज्ञान ह
यह श्रुतिका मत है । जगत् ब्रह्मका परिणाम है । उ
अज्ञानकी निवृत्ति ही जीवका प्रयोजन है
श्रीनारायण अपनी योगमाया-शक्तिसे समन्वित
कर्मफलदाता, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी ईश्वररूपसे
उत्पत्ति, स्थिति, संहारके कारण हैं । पर, व्यूह,
अन्तर्यामी और अर्चा—इन विग्रहोंमें जीवको उनकी उ
होती है । उन श्रीनारायणके अवतार कर्मके कारण नहीं
वे स्वेच्छासे ही अवतार धारण करते हैं । उनमें
नहीं होता । जीव चेतन, अणुरूप तथा ब्रह्मका शर
जीव और ब्रह्ममें स्वगत-भेद है । जीव और ब्रह्म
चेतन, स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय, नित्य, देहादिसे भि
जीव कर्ता, भोक्ता, ब्रह्मका शरीर तथा दास है ।
ब्रह्मसे कभी अभिन्नता नहीं होती । अप्राकृत चिन्मय
वैकुण्ठधाममें निवासकी प्राप्ति ही मुक्ति है । यह मुक्ति
कृपासे उनकी प्रपत्तिद्वारा ही प्राप्त होती है ।

के अनुकूलका संकल्प और प्रतिकूलका त्याग प्रपत्तिका माननेका यह निर्विवाद अर्थ हो गया कि शास्त्र-समस्त कर्म त्याज्य हैं और शास्त्राचार ही विहित के शास्त्र ही भगवान्‌के आदेश हैं। शास्त्रके अतिरिक्त ी अनुकूलता जान सकें, इसका कोई उपाय ही नहीं। बड़ा उच्च है; किंतु मनुष्यका स्वभाव नियमका करना—ह्रासोन्मुख होना है। आचार्यमतके बदले यह ोंका मत कहा जाने लगा। प्रपत्ति—शरणागतिका ंश—भाव गौण हो गया और क्रिया ही प्रधान हो ास्त्रका बाह्याचार अपनी सीमाको पार कर गया और उपेक्षा हो गयी। फलतः उपासना, जो मुख्य लक्ष्य शेष प्रकारकी क्रियाओंमें बद्ध हो गयी। इस स्थितिमें गव मतोंका प्रसार हुआ।

द्वैतवाद

ाप्रभु श्रीमध्वाचार्यद्वारा प्रसारित द्वैतवाद पूर्णप्रज्ञ-हा जाता है। इस मतका संक्षिप्त सार है—'जीव ।—ये दो नित्य पृथक् सत्ताएँ हैं। जीव अणु एवं दास ब्रह्म सगुण, सविशेष, स्वतन्त्र। जीवका परमार्थ यादि मुक्तियोंमें किसीकी प्राप्ति। जीव एवं ब्रह्ममें भ्रम एवं अपराध है। दृश्य-जगत् सत्यसे अभिन्न है। और परिवर्तनशील होनेपर भी जगत् मिथ्या नहीं के असत्यका ज्ञान नहीं हुआ करता। ज्ञान ज्ञाता के आधीन है। ज्ञानकी चिन्तनसे भिन्न स्थिति नहीं ज्ञान सदा सविकल्प ही होता है। ज्ञान आपेक्षिक ही ज्ञेयका प्रतिपादक एवं प्रधान प्रमाण है। ब्रह्म ्य है। वह पूर्णतः वाणीका विषय नहीं होता। , गुण, क्रिया, जाति, विशेषत्व, विशिष्ट, अंशी-ादृश्य और अभाव—ये दस पदार्थ हैं। भाववस्तु दो है—चेतन और अचेतन। परमतत्त्व ब्रह्म भगवान् । भक्ति, त्याग, ध्यान—ये साधन हैं जीवके लिये; र मुक्त होता है।

द्वैताद्वैतवाद

प्रभु श्रीनिम्बार्काचार्यने द्वैत एवं अद्वैत दोनोंका करनेवाला प्रकाश जंगत्‌को दिया—जगत् ब्रह्मका है। ब्रह्ममें परिणाम होनेपर भी वह विकृत नहीं

पृथक् भी है और अपृथक् भी। जगदतीतरूपमें ब्रह है। ब्रह्म जगत्‌का निमित्त-उपादान कारण है। जी अंश है, उससे भिन्न भी और अभिन्न भी। स्वरूप अणु है। मुक्त जीव अपनी तथा जगत्‌ अभिन्नताका अनुभव करता है। मुक्तिका साधन उपासना है।

शुद्धाद्वैतवाद

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने जगत्‌के मिथ्यात्वका करके उपासनाकी प्रतिष्ठा की है। श्रीकृष्ण हैं। वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता, गुणातीत, समस्त विरुद्ध धर्मोंके आश्रय, धर्मोंसे रहित तथा जगत्‌के उपादान हैं। जग है। वह कार्य है। ब्रह्मसे अभिन्न उसकी परिणति है ब्रह्म अविकृत परिणामी है। जगत्‌में पदार्थोंका अ एवं तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणु जीवके लिये ब्रह्मसे प्रीति करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। इस चरम परिणति है श्रीकृष्णमें पतिभावकी प्राप्ति। यह भग (पुष्टि) से होती है। ब्रह्मका विवेचन शास्त्रके सम्भव है।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद

श्रीकृष्ण सत्य हैं, इतना जानना ही जीवके लि है—महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके इस भावको श्री पादोंने अचिन्त्यभेदाभेदवादका दार्शनिक रूप महाप्रभुने श्रीमद्भागवतको ही गीता, उपनिषद् त सूत्रोंका भाष्य माना था; अतः प्रस्थानत्रयीपर करके भागवतरूप भाष्यसे ही यह दर्शन पुष्ट हुआ है पीछे जाकर ब्रह्मसूत्रपर भाष्य भी रचा गया।

ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म—ये पाँच शास्त्र वाचक हैं और ईश्वर वाच्य। ईश्वरका ज्ञान ही होता है। ब्रह्मतत्त्व सगुण सविशेष श्रीकृष्ण ही स्वतन्त्र, सर्वज्ञतादि समस्त गुणोंसे युक्त, जीवको एवं मोक्ष देनेवाले हैं। वे निर्गुण हैं, क्योंकि उनमें कोई गुण नहीं। उनमें सभी अप्राकृत गुण हैं। संवित्, सन्धिनी ह्लादिनी—ये तीन शक्तियाँ हैं उन सच्चिदानन्द ब्रह्म श्री की। जगत् ब्रह्मका परिणाम है। यह सत्, किंतु अनि

ईश्वरकी शक्तिरूप हैं। जीव अणु है। वह ब्रह्मका
। प्रेमके द्वारा श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त कर लेना ही
मुक्ति है।

द्वैतवादके अतिरिक्त शेष सब वैष्णव दर्शन उपासना-
ष्टके लिये हैं। अतः इनमें जगत्‌की सत्यता तथा
सविशेषरूपका प्रतिपादन है। प्रस्थानत्रयीके ही ये
य हैं, अतः भाष्यरूप दर्शनोंमें मौलिक समानता तो
ो चाहिये। आचार्योंने साधनोंकी पुष्टिके लिये दर्शन-
ार किया है। अद्वैतवाद ज्ञानयोगकी पुष्टिके लिये
णवदर्शन उपासनाकी पुष्टिके लिये हैं। इनमेंसे प्रत्येक
अपनी अनादि परम्परा मानता है। आद्याचार्यका
ाल उस मतका प्रस्थानत्रयीपर भाष्य करके प्रचार
महापुरुषसे है। उन्होंने सिद्धान्तकी सृष्टि की, ऐसा
ानते और न उनके अनुयायी। सत्य दस बीस प्रकारका
सकता; किन्तु जब हम वाणीमें उसे व्यक्त करते हैं,
र दृष्टिकोण एवं वाणीके भेदसे वह विविधरूप हो
। अचिन्त्यरूपा माया-शक्ति, अवाङ्मनसगोचर
त्र—ये सबको मान्य हैं। इनकी उपलब्धि, इनकी
के मार्ग भिन्न-भिन्न होंगे अधिकारीके अनुरूप।
ाधिकारका प्रतिपादन होगा, उसके दृष्टिकोणसे
व्यक्तीकरण भी होगा। जैसे अधिकार-भेदसे बने
परतत्त्व कहीं शिव, कहीं शक्ति, कहीं विष्णुके
र्वोपरि प्रतिपादित हुआ है, वैसे ही आचार्योंके
ाका भेद भी अधिकार-पुष्टिके लिये है। उनमें
कोई अन्तर नहीं।

शैव-दर्शन

विशेष ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले दर्शनको छोड़
सविशेष-ब्रह्म-प्रतिपादक दर्शनोंके शैव एवं वैष्णव—
य भेद रह जाते हैं; यों तो सौर, शाक्त, गाणपत्य—
ार भेद हैं। इनमें वैष्णव-दर्शनोंकी चर्चा हो चुकी
द्वैतवाद निर्विशेष ब्रह्मका प्रतिपादक दर्शन है। उसमें
ं वैष्णव—दोनों प्रकारके उपासक हुए हैं। आजकल
सना अद्वैतवादियोंमें मुख्यता प्राप्त कर चुकी है; किन्तु
कभी भी वैष्णव उपासनाका न तो अद्वैतवादसे विरोध
न श्रीकृष्णके उपासकोंका अद्वैतवादियोंमें अभाव
ा और वैष्णव दोनों दर्शनोंमें ब्रह्मको सविशेष माननेपर
महत्ता मानी गयी है।

प्रमाण माननेकी है। उपासनाके लिये निगम (
शास्त्रों) के साथ आगम (तन्त्रों) का दक्षिणाचार
स्वीकार किया गया है; किन्तु परम प्रमाण श्रुति ही
शैव-दर्शन आगम (तन्त्र) को निगमके समान
प्रमाण मानकर प्रवृत्त हुए हैं। उपासनाके क्षेत्र
प्रवृत्ति आगमकी ओर है। वे निगमको गौण म
आगमके दक्षिणाचारके साथ उन्होंने वामाचारको
दिया है।

पाशुपत-दर्शन

तीन नित्य पदार्थ हैं—पति, पशु और पा
परमेश्वर है। वह कर्मादि-सापेक्ष कर्ता है। जीव (प
वही फल देता है। वह शरीरी तथा संसारका कारण है
तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं सद्योजात—ये मन्त्र ह
उसके सिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरण हैं। वह
है। पतिके इन पाँच रूपोंमें ईशानरूप क्षेत्रज्ञ एवं भ
तत्पुरुष प्रकृतिरूप है। अघोर धर्मादि आठ अङ्
बुद्धि है। वामदेव अहङ्कार है और सद्योजात मनस्त

जीव ही पशु है। वह अपरिच्छिन्न, दुर्ज्ञेय
है। पाश चार हैं—मल, कर्म, माया और रोध
अपवित्रता मल-पाश है। इसमें बद्ध जीव नि
कहलाता है। असमाप्तकलुष जीव साधनासे मन्
प्राप्त करता है। तथा कलुष समाप्त होनेपर वह वि
पाता है। धर्म एवं अधर्म—ये कर्म-पाश हैं। इन पा
मलपाशसे बद्ध जीव प्रलयाकल कहा जाता है। इ
जीव पाश-द्वयके पक्व होनेपर मुक्त हो जाते हैं। सभी प
जीवोंकी संज्ञा जीवसकल है। जिसके अंदर प्रलयमें
समा जाते हैं और सृष्टिमें जिससे प्रकट होते हैं, वह
पुरुषकी गतिमें बाधा देनेवाले कर्म रोध-शक्ति हैं।
जीवोंमें अपक्वपाशद्वय जीव पुर्यष्टक-देह धारणकर नाना
में जन्म लेते हैं। पुर्यष्टक-देहमें अन्तःकरणचतुष्टय,
पञ्चभूतात्मा (तन्मात्राएँ), दस इन्द्रियाँ, पाँचों
विषय, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति, गुण औ
साधनकला—ये छत्तीस तत्त्व होते हैं।

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन

काश्मीरमें श्रीअभिनवगुप्ताचार्यने शैवदर्शनका
उपस्थित किया, वही प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा गया—

[illegible] भगवान् शङ्करका हलाहल पान



ः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् । अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभा

(श्रीमद्भा

) और अपरा सिद्धि (अभ्युदय)—ये देवलोक-
: बाह्य क्लेश एवं आन्तरिक क्लेशोंके बिना ही
ताकी प्राप्तिसे सिद्ध होते हैं । परमेश्वरका दासत्व
ो पराकाष्ठा है । यद्यपि ईश्वर स्वभावतः नित्य सिद्ध
पि मायावश अंशतः ईश्वररूपकी अप्रकाशमानता
में जीवत्व है । शास्त्रोंकी पूर्ण सहायतासे ईश्वरकी
केका ज्ञान होता है । पूर्णशक्ति परमात्मा जब
सम्मुख प्रकट होते हैं, तब उनकी शक्तिके प्रति-
ज्ञान होता है । उस ज्ञानसे ईश्वर और अपनेमें
ोध होता है ।

श्वर निर्विकल्प एवं निर्विकार हैं । परंतु उनमें शक्ति-
ान है । निस्तरङ्ग परमात्माकी निर्विकल्प सर्वतोमुखी
स्पन्द है । ब्रह्ममें ज्ञान तथा क्रिया है । चिद्-
अनवच्छिन्नविमर्शत्व, अन्योन्यमुखत्व तथा आनन्द-
ही महेश्वरत्व है । वे भावात्मा तथा समस्त पदार्थोंके
ं । उनकी इच्छासे ही जगत्की सृष्टि हुई है ।

श्वर निरावरण चैतन्यस्वरूप, अनवच्छिन्न, अद्वितीय,
कप्रमाण, शक्तिचक्रेश्वर, आत्मचिन्तामणि, उपेय
मेधेय हैं । उनकी स्वाभाविक शक्ति ही प्रकृति
की इस स्वात्मभूता प्रकृतिमें कभी व्यभिचार नहीं
महेश्वर कर्ता, ज्ञाता तथा अनादिसिद्ध स्वात्मा
चेतन, पर अनीश्वर है । वह प्रत्यगात्मा परमेश्वरसे
। मोहाच्छन्न होनेसे कर्ममें बद्ध होकर वह संसारी
। जीव महेश्वरका दास है । महेश्वरके साथ एकत्व
होनेपर वह सब विषयोंको ग्रहण करनेकी पूर्ण
ता है । सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्वरूप महेश्वरत्वकी प्राप्ति
है । ज्ञान प्रकाशस्वरूप, चित्स्वरूप, सर्वप्रकाशक,
और एक है । प्रत्यभिज्ञा (जीवेश्वरका अभेद-बोध)
का साधन है ।

शिवाद्वैत

(महेश्वर) आराध्य हैं और धर्माचरण उनकी
है । फलेच्छात्यागपूर्वक कर्म करनेसे पापोंका नाश
। पापनाशसे चित्त शुद्ध होनेपर ज्ञान होता
एवं ज्ञानके समुच्चयसे ही मुक्तिकी सिद्धि होती
का परम पुरुषार्थ शिवकी समानगुणतारूप मुक्ति
। यह शिवकृपासे ही सिद्ध होती है । इस
के शिवका प्रसाद है । यह प्रसाद उपासनाद्वारा प्राप्त

ब्रह्म (शिव) सगुण, सविशेष, ज्ञानानन्द-शक्ति
जगत्रूप होनेवाले, मनके द्वारा आनन्द भोगनेवाले
जीव अनादि, अज्ञानवासनाबद्ध, परवश, विभु, चेतन,
परिच्छिन्न, कर्ता, भोक्ता है । जीवमें कर्तृत्व स्वाभावि
वह किसीका प्रकाश्य नहीं । मुक्त जीव भी अन्त
समन्वित रहता है । पाश नष्ट होनेसे वह अखण्ड आ
उपभोग करता है । ब्रह्मकी परमाशक्ति (चिच्छक्ति—
काश) में जगत्का बीज है । वही प्रपञ्चका कारण बनती है
परिणामी है और जगत् परिणाम । जन्म, स्थिति,
तिरोभाव, अनुग्रह—ये ब्रह्मके पाँच कृत्य-प्रपञ्चक है ।

शिवत्वकी प्राप्ति ही मुक्ति है । कर्म, उ
या ब्रह्मविद्यासे शिवत्वकी प्राप्ति होती है । शूद्रका अ
ब्रह्मविद्यामें नहीं है । सत्कर्माचरण तथा पुराणादि-
उसका पाप नाश हो जाता है ।

लकुलीश पाशुपत-दर्शन

पशुपतिने बिना किसी कारण एवं साधनके ही ज
निर्माण किया । इस संसारसे मुक्ति दो प्रकारकी होती
एक तो दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति और दूसरी पारमे
प्राप्ति । पारमैश्वर्य है दृक्शक्ति (सर्वज्ञता) और क्रि
—इच्छित वस्तुकी प्राप्ति । भगवद्दासत्व एक प्रकारका
है । व्रत, भस्मादि-धारण तथा उपहार—एकान्तमें
नाम लेकर हँसना, रोना एवं जपादि तथा द्वार (
विपरीत चेष्टा—पागलका-सा आचार)—ये साधन हैं धम

शक्ति-दर्शन

पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरीसे ही शब्द एवं वस्तु
उत्पत्ति हुई है । परमतत्त्व शिव हैं । शक्तिके स्
धारण करनेपर शिवने उसमें तेजस्-रूपसे प्रवेश कि
विन्दुका प्रादुर्भाव हुआ । शिवमें शक्तिके प्रवेशमें
तत्त्व—नाद व्यक्त हुआ । ये ही दोनों तत्त्व (नाद वि
मिलकर अर्धनारीश्वर हुए । यही कामतत्त्व है । पुंतत्त्व
एवं नारीतत्त्व लाल है । दोनोंसे कलाकी उत्पत्ति हुई है
काम एवं कलाके तथा नाद एवं विन्दुके योगसे ही सृष्टि ह
मूलतत्त्व अनन्त एवं अव्यक्त है । सृष्टिके प्रत्येक वि
उस शिवतत्त्वका आगम है । उस शिवकी अजा आद्या श
प्रकृतिरूपा हैं ।

जीवके उद्धारके लिये वेद, वैष्णव, शैव, दक्षिण,
सिद्धान्त तथा कल—ये सात आचार हैं । दिव्य भावके अ

द्र होती है। आराधनाके लिये महाशक्तिके दस
ास्वरूप हैं—महाकाली, उग्रतारा, षोडशी (त्रिपुर-
), भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी,
और कमला। इन शक्तियोंके साथ परतत्त्वके दस
रूपोंकी उपासना होती है। क्रमशः उनके नाम हैं
, अक्षोभ्य पुरुष, पञ्चवक्त्र रुद्र, त्र्यम्बक, कबन्ध,
ूर्ति, एकवक्त्र रुद्र, मतङ्ग, सदाशिव और विष्णु। जीव
लन एवं आराधनासे, शक्तिकी कृपासे शिवत्वको
के पाशमुक्त हो जाता है।

कुछ अन्य दर्शन

दर्शनोंके अतिरिक्त भक्तिके स्वरूप, साधन और
साक्षात्कार करनेवाले नारद तथा शाण्डिल्यकृत
भी भक्तिदर्शनके रूपमें विख्यात हैं। ये बड़े ही
तथा भक्तितत्त्वका निरूपण करनेवाले दर्शन हैं।
ावा- वैद्यक-शास्त्रका अपना पृथक् दर्शनशास्त्र है।
ं प्रारब्धको मानकर उसमें चिकित्साका क्या
यह इस दर्शनशास्त्रका विषय है। इसी प्रकार
दर्शन है। इस दर्शनकी मान्यता है कि 'परमतत्त्व
। शिव एवं पार्वतीका वह मूलभाव स्थूल जगत्में
ं अभ्रक रूपसे व्यक्त है। पारद आनन्दकी मूर्त
क है। पारद ही रस है। सृष्टिसे पार करनेवाला
े पारद कहा जाता है। पारदकी सिद्धिसे शरीर
र विजय पा लेता है। इसी प्रकार ज्यौतिषका
ा भी पृथक् है। उसका सारांश इस प्रकार है—

ूर्ण जगत् और उसकी घटनाएँ नक्षत्र-जगत्पर
त हैं। नक्षत्रोंकी गति, स्थिति एवं संयोग ही
समस्त रूपों, क्रियाओं तथा गुणोंके कारण हैं।
जो अभिव्यक्ति पृथ्वीपर क्रिया और पदार्थके रूपमें
समष्टिमें नक्षत्रोंके रूपमें है। प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक
पूर्वनिश्चित है। अवश्य ही उसमें स्थित जीव
रहता है। सभी आकृतियाँ, क्रियाएँ, शब्दादि
। उनका बराबर आविर्भाव, तिरोभाव होता रहता
प्रकार संसारका इतिहास अपनेको बार-बार ज्यों-
दुहराता है। प्राणीके कर्म संकल्पपूर्वक ही होते
ल्प ही कर्मका कारण है। संकल्प भावस्तरोंकी
क है। यही भाव सारे ग्रहोंके भी संचालक हैं।
ं सदा ग्रहोंके अनुसार ही होंगे। प्रारब्धवाद और
कोई भेद नहीं है। मनुष्यका कर्म उसे फल देनेमें

ज्यौतिषकी भाँति ही व्याकरणका भी दर्शन
इस दर्शनको स्फोटवाद या शब्दाद्वैतवाद कहते
पाणिनि इसके उद्भावक हैं। यह दर्शन कहता है
अनादि और सनातन है; जितने दृश्य हैं, वे
या विचारकी छाया, उन्हींके मूर्तरूप हैं। दृ
अवास्तविक है। शब्दके बिना ज्ञान स्वयंप्रकाश
शब्द और ज्ञान—ये परस्पर अविभेद्य हैं। शब्द
ही श्वासादि समस्त क्रियाओंका कारण है। शब्द
शक्तिसे युक्त है। संसार अर्थसे बना है। शब
ज्ञान देता है। वाचकताका अधिष्ठान प्रणव है। वही
मूल कारण है। नाम-रूपात्मक ही विश्व है। वि
ब्रह्मका परिणाम नहीं, विवर्त है। शब्दका अर्थ
सम्बन्ध नहीं, नित्य सम्बन्ध है। व्यक्त शब्दकी वाणी
में परा, नाभिमें पश्यन्ती, हृदयाकाशमें मध्यमा औ
वैखरी रूपसे प्रकट होती है। प्रणवोपासना, योग,
सत्य भाषण शब्दब्रह्मकी अनुभूतिमें सहायक हैं।

इसी प्रकार योगके अनेक मार्गोंने शरीरको ज्ञान
का मन्दिर मानकर नेती, धोती आदि षट्कर्मसे
शुद्धिका प्रतिपादन किया है। षट्चक्र-वेधका कुण्ड
भी एक दर्शनशास्त्र ही है। ब्रह्म, विष्णु
ग्रन्थियोंको वेदान्तके मल, विक्षेप, आवरणकी भाँति
उनके वेधनके लिये प्रवृत्त होनेवाली तन्त्रसाधन
एक दर्शन है। ये सभी आस्तिक दर्शन सा
अधिकारीके भेदसे ही भिन्न हैं। वस्तुतः इनका
दर्शन है और वही उनका लक्ष्य भी है।

भारतीय दर्शन और व्यवहार

एकत्वमें अनेकताकी अभिव्यक्ति और अनेकता
का दर्शन, यही भारतीय दर्शनकी विशेषता है
हिंदीके सम्मान्य विद्वान्ने अभी कहा है—'विश्व
विभिन्नताओंमें एकताका जितना पूर्ण एवं सार्थक
भारतने किया, वैसा कोई देश और कोई जाति
सकी; किंतु हमारे देशमें जितना श्रेणीभेद है, उ
कहीं नहीं है।' यह आश्चर्य आपको साम्यवादक
धारणाके कारण हुआ। नहीं तो अनेकतामें एकता
ही भारतीय परम्परा है। अनेकतामें एकत्वका
न सम्भव है और न आदर्श। पशु, मानव,
एकत्वका दर्शन करके यदि एक-सा आहार भी सब
जाने लगे तो उसमें सबकी हानि होगी। लाभ

। एकत्वसे बहुत्वका उत्थान भी भारतीय दर्शनने ही है। जिस कर्म, अधिकार, भावादि भेदसे बहुत्वका , उसके अनुरूप व्यवहार ही व्यक्ति एवं समाजके लिये री है । अतः व्यवहारमें दूसरे देशोंकी अपेक्षा धिक श्रेणी-भेद अधिकार-निरूपणका परिणाम है। कारी है और एकत्वका अविरोधी है । भारतीय गम्भीरताके साथ उसकी यह मौलिक विशेषता समझे बिना हम उसकी व्याख्या करते समय भ्रममें प पदार्थ-विज्ञान तथा आलोचनाके क्षेत्रमें हम प्रत्यक्ष यह देखते हैं कि ज्ञान जितना सूक्ष्म होगा, पदार्थोंके एवं श्रेणी-भेद बढ़ेंगे और अज्ञान श्रेणी-भेदोंका लो है । विचार जहाँ व्यावहारिक श्रेणी-भेद बढ़ाता मूल एकत्वका दर्शन कराता है; पर अज्ञानमें, श्रेणियां होनेके साथ बौद्धिक भेद बढ़ता है।

हिंदू-संस्कृति और उपनिषद्

(लेखक—पं० श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदी)

नेषद् हिंदू-संस्कृतिकी अमूल्य और कहीं भी, किसी या भाषामें न मिलनेवाली अतुलनीय अध्यात्म- । आज हम इससे पराङ्मुख हैं, इसीलिये परमुखा- । और नाना प्रकारके सङ्कटोंसे ग्रस्त हैं। अपने घरकी को सम्हालें और समझ लें तो हमारे सारे दुःख-संकट दूर हो सकते हैं।

ञ्जल महाभाष्य (पस्पशाह्निक) में लिखा है— ी २१, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी १००० और की ९ शाखाएँ हैं। अर्थात् सब मिलाकर चारों वेदोंकी ाखाएँ हैं।' प्राचीन साहित्यसे यह भी पता चलता तनी शाखाएँ थीं, उतनी ही संहिताएँ थीं, उतने ही ौर आरण्यक थे, उतने ही कल्पसूत्र और उपनिषदें हमारे दुर्भाग्यसे इन दिनों कोई भी विभाग पूरा-का-पूरा ता । प्रत्येक शाखाकी एक विशिष्ट उपनिषद् थी; ११३० उपनिषदें उपलब्ध होनी चाहिये । परंतु हैं १०८, जो उपनिषत्साहित्यकी सारभूत हैं पनिषद् १४४)। मुक्तिकोपनिषद् (प्रथम अध्याय)से वेदित होता है कि '१०८ में १० ऋग्वेदसे, १९ दसे, ३२ कृष्णयजुर्वेदसे, १६ सामवेदसे और ३१ से सम्बन्ध रखती हैं।' हाँ, इनके अतिरिक्त ा० वेलवलकरने पहले-पहल बाष्कल्य, छागल्य, और शौनक नामक उपनिषदोंको सानुवाद किया है । जर्मन भाषाके अनुवादके साथ ६० उपनिषदोंको प्रकाशित किया है। इस ह कई संस्करण हो चुके हैं। नारायणस्वामी मने अंग्रेजी-अनुवादके साथ ३०-३० उपनिषदोंको ११ और कहीं ९ उपनिषदें इकट्ठी छापी गयी हैं । शा बड़े बेटे दाराशिकोहने भी फारसी-अनुवादके साथ कई उपनिषदोंको छपाया था । इधर अड्यार (मद्रास थियासाफिकल सोसाइटीने तो लगभग २०० उ छापी हैं ।

'उप' और 'नि' उपसर्गोंवाले 'सद्' धातुसे 'क्विप् करनेपर 'उपनिषद्' शब्द बनता है । इसका तात्वि ब्रह्मविद्या है । प्रायः इसी अर्थमें यह शब्द रूढ़ है। पनिषद्के उपोद्घातमें श्रीशङ्कराचार्यने लिखा है कि मुमुक्षुओंकी संसार-बीज भूत अविद्या नष्ट होती है, जो उन्हें ब्रह्मप्राप्ति करा देती है और जिससे दुःखोंका शिथिलीकरण हो जाता है, वही अध्यात्मविद्या उपनि इसका मुख्य अर्थ तो ब्रह्मविद्या ही है, गौण अर्थ ब्र प्रतिपादक ग्रन्थविशेष है । परंतु कुछ उपनिषदें स्वरूपके विचारसे परिपूर्ण हैं और कुछमें विष्णु, शक्तिकी उपासनाएँ भी भरी पड़ी हैं।

उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता और व्यासकृत सूत्रोंका नाम आचार्योंने 'प्रस्थानत्रयी' रक्खा है । प्र ही हिंदू-धर्म और हिंदू-दर्शनकी विशेष आधारशि परंतु गीता और ब्रह्मसूत्रका मूल-स्रोत उपनिषदें हैं, संस्कृत-साहित्यमें सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपनिषदें मा हैं। जिस सम्प्रदायकी भाष्य-टीकाएँ उपनिषदोंपर वह नगण्य माना जाता है। इसीलिये प्रायः सभी सम उपनिषदोंपर टीकाएँ लिखी हैं ।

वेदोंके जो मन्त्र और ब्राह्मण नामके दो भाग हैं,

ंके विस्तृत विवरण दिये गये हैं और नाना उपाख्यान हैं। तपोधन ब्राह्मणोंने ब्राह्मण-भागका संकलन और किया है; इसीलिये इस भागका नाम 'ब्राह्मण' या ग्रन्थ' है। ब्रह्मका एक अर्थ यज्ञ भी है; इसलिये ादक होनेके कारण भी इसका नाम 'ब्राह्मण' पड़ा। पिने, जिनके वंशने या जिनके शिष्योंने जिस ब्राह्मण-उपदेश दिया है, उन्हींके नामपर प्रायः उस ग्रन्थका ा भी हुआ है। ब्राह्मणोंके जो अंश अरण्य या विपिनमें ौर उपदिष्ट हैं, उनका नाम 'आरण्यक' है और इन या आरण्यकोंके जो भाग गहन-गम्भीर हैं और ान-चिन्तनसे परिपूर्ण हैं, उनका नाम 'उपनिषद्' है।

न-संकोचके कारण यहाँ उन्हीं बारह उपनिषदोंका संक्षिप्त परिचय लिखा जायगा, जिनपर श्रीशङ्कराचार्य-य लिखा है। इन बारहों उपनिषदोंको वेदान्तसूत्रके भाष्यमें शङ्कराचार्यने वेद कहकर बार-बार पुकारा। छः उपनिषदोंका भी शङ्कराचार्यने उल्लेख किया उनपर भाष्य नहीं लिखा है। छान्दोग्य और ाक सबसे बड़ी उपनिषदें हैं। कुछ गद्यमें हैं, कुछ र कुछ उपनिषदें गद्य-पद्यात्मक भी हैं। ऋषियोंके ाक अनुभव सूत्ररूपसे उपनिषदोंमें ग्रथित हैं; इसलिये ं कहीं-कहीं सामञ्जस्यका अभाव होना स्वाभाविक है। पदेशोंकी महानतामें कोई कमी नहीं आती।

वेदका जो कौषीतकि या शाङ्खायन आरण्यक इस लब्ध है और जिसे ए० बी० कीथने अंग्रेजीमें भी और सम्पादित कर प्रकाशित किया है; उसमें पंद्रह ाये जाते हैं। इसी आरण्यकके तीसरेसे छठे अध्यायोंका षीतकि-उपनिषद्' है। इस उपनिषद्के प्रथम चित्र गार्ग्यायणि नामके क्षत्रिय राजाने उद्दालक नामके विद्वान् ब्राह्मणको परलोकविषयक उपदेश दूसरे अध्यायमें महाप्राण अर्थात् परब्रह्मका और के सस्नेह सम्बन्धका विवरण है। तीसरेमें इन्द्रने दिवोदासको प्राण और प्रज्ञाका उपदेश दिया है, काशिराज अजातशत्रुने बालाकि नामके ब्राह्मणको शिक्षा दी है।

ेदीय 'ऐतरेय आरण्यक'में पाँच भाग या आरण्यक ाको प्रसिद्ध वेदज्ञ सत्यव्रत सामश्रमीजीने सायण-ाथ प्रकाशित किया है। इनमें द्वितीय आरण्यक तन्त्र द्वितीय भागके चौथेसे छठे अध्यायोंको 'ऐतरेयो-पनिषद्' कहा जाता है। इसके प्रथम अध्यायमें सृष्टि, दूसरेमें जीवोंके जन्म और तीसरेमें परब्रह्मकी स

सामवेदकी कौथुमी शाखाका ब्राह्मण चालीस परिपूर्ण हुआ है। इसके पचीसवें भागको पञ्चविंश या ब्राह्मण', छब्बीसवेंसे तीसवें भागोंको 'षड्विंश इकतीसवेंसे बत्तीसवें भागको 'मन्त्र ब्राह्मण' और चालीसवें भागको 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है। सामश्रमी, ए० सी० वेदान्तवागीश, के. क्लेम, एच. एफ़् आदिने इन ब्राह्मणग्रन्थोंको अत्यधिक व्यय करके ा और प्रकाशित किया है।

छान्दोग्योपनिषद् एक विशाल ग्रन्थ है। इस और दूसरे भाग या प्रपाठकमें ओंकार, उद्गीथ औ आलोचना है। तीसरेमें परब्रह्मकी विभूति है। इस देवकीनन्दन श्रीकृष्णकी भी कथा है। श्रीकृष्ण घोर उ से धर्मकथा सुनकर भूख-प्यास भूल गये थे। चौथे काम जाबालकी कथा है। सत्यकामने बाल्यकालकी स कार्यपरम्पराको ही देखकर परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त कि पाँचवेंमें लिखा है—श्वेतकेतु आरुणेय नामके श ब्राह्मणने प्रवाहण जैबलि और अश्वपति कैकेय र परमात्माका उपदेश पाया था। इन्हीं श्वेतकेतुने अप उद्दालक आरुणिसे परब्रह्मका ज्ञान पाया था—यह छठे भागमें है। सातवेंमें उल्लेख है कि सन नारदजीने नाम, वाक्य, मन, सङ्कल्प, चित्त, ध्यान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्र परमात्माके सम्बन्धमें उपदेश प्राप्त किया था। आठ या प्रपाठकमें परब्रह्म और प्रजापतिके सम्बन्धमें अ जटिल और निगूढ़ आलोचनाएँ हैं।

सामवेदकी ही तलवकार शाखाकी 'केनोपनिष यह इस शाखाका नवम अध्याय है। परंतु यह तलवकारोपनिषद्से भिन्न है। इसके प्रथम और खण्डोंमें परब्रह्मका विवेचन है। तीसरे और चौथेमें है—देवोंके सामने परमात्मा प्रकट हुए। परंतु देवों पहचाना नहीं। अनन्तर हैमवती उमाने देवोंसे कह ब्रह्म हैं। इन्हींकी शक्तिसे तुम्हें महिमा मिली है।' इस व्याजसे यह बताया गया है कि वायु, अग्नि आदि शक्तियाँ परमात्मशक्तिका ही विकासमात्र हैं।

कृष्णयजुर्वेदका 'तैत्तिरीय आरण्यक' दस प्रप विभक्त है। इनमें सातवें, आठवें और नवें प्रपा

ोपनिषद्' कहा जाता है। प्रथम प्रपाठक या वल्लीमें
तथा 'भूः, भुवः, स्वः' शब्दोंका प्रकृत अर्थ बताया
और धर्मानुष्ठानका पवित्र सदुपदेश किया गया है।
लीमें परब्रह्मका समीक्षण किया गया है। तीसरीमें वरुण-
पुत्रको परमात्माका उपदेश किया है। कृष्णयजुर्वेद-
ाठक-संहिताकी 'कठोपनिषद्' है। इसमें छः वल्लियाँ
में नचिकेताकी प्रसिद्ध कथा है। नचिकेताने मृत्यु-
रमें जाकर मृत्युसे ही परमात्माकी शिक्षा ली है।
ात्मा और जीवात्माके विषयमें बहुत ही सुन्दर उपदेश
ी वेदकी 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' है, जिसमें सांख्य,
ौर वेदान्तका रहस्य भरा पड़ा है।
्यजुर्वेदकी वाजसनेयसंहिताके चालीसवें अध्यायको
योपनिषद्' कहा जाता है। इसमें परमात्मविषयक
क अद्भुत और अनूठे उपदेश हैं। इस वेदकी जो
। (माध्यन्दिन) और काण्व नामकी दो संहिताएँ
, उन दोनोंके ब्राह्मणोंका नाम 'शतपथब्राह्मण' है।
। बड़ा ब्राह्मण-ग्रन्थ है और इसे जे० एगलिंग, ए०
माध्यन्दिन) तथा डब्ल्० कैलेण्डर (काण्व) ने
पये व्यय करके सायणभाष्यके साथ प्रकाशित किया
ध्यन्दिन शाखाके शतपथब्राह्मणमें चौदह काण्ड हैं
काण्डोंमें एक सौ अध्याय हैं। इसीलिये इसका
ातपथ' रक्खा गया है। इसके चौदहवें काण्डको
कहा जाता है और इस आरण्यकके अन्तिम छः
ा नाम 'बृहदारण्यकोपनिषद्' है। इसके पहले
सृष्टि और सृष्टिकर्ताका परिचय दिया गया है।
जातशत्रुसे गार्ग्य-बालाकिने परमात्मज्ञान प्राप्त किया
ारेमें उल्लेख है—विदेहराज जनकने एक विराट्
, जिसमें कुरु, पाञ्चाल आदि प्रदेशोंके अनेकानेक
पधारे। सभामें सबको राजा जनकके पुरोहित याज्ञ-
पराजित करके राजपुरस्कार प्राप्त किया। सभामें
चक्नवी नामकी महाविदुषी महिला भी उपस्थित थीं;
भी याज्ञवल्क्यसे परास्त हो गयीं। चौथेमें जनक
वल्क्यके बीच परब्रह्मके बारेमें एक-से-एक विकट
र्क देखे जाते हैं। इसी अध्यायमें अपनी पत्नी
याज्ञवल्क्यने परमात्माका उपदेश दिया है। पाँचवें-
और प्रजापति, वेदत्रय और गायत्रीका वर्णन है।
हा गया है—उद्दालक आरुणिने प्रवाहण जैवलि नामक

काठको भी यदि ऐसा अमृतमय उपदेश दिया
उसमें भी टहनियाँ और पत्ते निकल आयें।'

अथर्ववेदकी उपनिषदें तो अगणित बतायी
परंतु तीन अत्यन्त प्राचीन हैं—प्रश्नोपनिषद्, मुण्डक
और माण्डूक्योपनिषद्। प्रश्नोपनिषद्में परमात्मवि
प्रश्न और उनके उत्तर हैं। मुण्डकोपनिषद्में तीन
मुण्डक हैं और सबमें परमात्मरहस्य विवृत हैं। म
ब्रह्मकी सर्वव्यापकता प्रतिपादित की गयी है।

यही उन बारह उपनिषदोंका अतीव संक्षिप्त
है, जिनपर भगवान् शङ्कराचार्यने अपना अपूर्व भाष्
है। इनमें भी सामवेदीय केनोपनिषद्पर आचार्यच
भाष्य लिखे हैं—एकका नाम पदभाष्य है और दूसरे
वाक्यभाष्य है।

ब्राह्मणों और आरण्यकोंको कर्मकाण्ड कहा जाता
उपनिषदोंको ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्डकी चर्चा तो इ
नाममात्रकी ही है; क्योंकि इसके आधार जो यज्ञ
तो विलुप्त-से हो गये हैं अथवा रूपान्तर प्राप्त कर
परंतु ज्ञानकाण्डमें कोई भी परिवर्तन नहीं हु
उपनिषदोंमें जो परमात्मा, आत्मा, सृष्टि, पुनर्जन्म
धर्म आदिका विवरण दिया हुआ है, वह आजतक
त्यों है; बल्कि हिंदूधर्मका आजतक वही आधार म
है। इसीलिये प्रत्येक हिंदू उपनिषदोंके प्रत्येक
मन्त्रवत् सुनकर विमुग्ध और आनन्दनिमग्न हो ज
उपनिषदोंपर अबतक जितने भाष्य, वृत्तियाँ और
लिखी गयी हैं, कदाचित् ही किसी दूसरे साहित्यप
हों। शङ्कराचार्य, आनन्द भट्टोपाध्याय, अन
ब्रह्मानन्द, शङ्करानन्द, विद्यारण्य, सुरेश्वराचार्य,
विज्ञानभागवत, आनन्दगिरि, मुनि नित्यानन्द, रङ्ग
दिगम्बरानुचर, मध्वाचार्य, जपतीर्थ, व्यासतीर्थ, रघूत्त
ब्रह्मयोगी, नारायणमुनि, भास्करानन्द, अरविन्
महादेव शास्त्री, श्रीशचन्द्र वसु, भगवद्दत्त, भीमसेन
शास्त्री आदि-आदिकी जो उपनिषदोंपर भाष्य-टी
वे इस बातका समर्थन करती हैं। यही नहीं, विदेश
भी उपनिषदोंकी चमत्कारिता, सरलता, सुकुमारता,
मृदुता और मञ्जुलतापर मुग्ध तथा आसक्त हैं। ऑ
जी० ए० जेकब, ओर्टल, मैक्समूलर, ऑटो

दि-आदिने अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओंमें
पर जो टीकाएँ लिखी हैं और उनके अनुवाद किये
उपनिषदोंकी महिमा और गरिमा सारे संसारमें फैली
विख्यात जर्मन विद्वान् शोपेनहारने लिखा है—
सारमें ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है, जो उपनिषदोंके
उपयोगी और उन्नतिकी ओर ले जानेवाला हो। वे
बुद्धिकी उपज हैं। आगे या पीछे एक दिन ऐसा
है कि यही जनताका धर्म होगा।' मैक्समूलरने
—'उपनिषदें वेदान्तके आदि-स्रोत हैं और ये ऐसे
, जिनमें मुझे मानवीय उच्चभावना अपने उच्चतम
पहुँची हुई मालूम पड़ती है।' सचमुच उपनिषदों-
वचन वह अमर और प्रतापमयी वाणी है, जिसे पढ़कर
सके अनुसार आचरणकर कितने ही विद्वान् सिद्ध
कितने ही पुरुष योगी हो गये, कितने ही जीवन्मुक्त
ने ही ब्रह्ममें विलीन हो रहे।

नेषदें ज्ञानभंडार हैं और इन्हींसे सारे दर्शन, सब
न तर्क, अखिल युक्तियाँ, समस्त तन्त्र, समूचे पुराण,
ार्थ, विज्ञान और निखिल विद्याएँ निकलकर मानव-
आनन्द और शान्तिकी विमल मन्दाकिनीमें बहा
इस प्रपञ्चमय संसारके सारे दुःख-दारिद्र्य, पाप-ताप
य-हैन्यको मार भगानेके लिये उपनिषदें जादूकी
।

निषदें क्रियात्मक विद्या हैं, काल्पनिक नहीं। मनुष्य
वनमें उपनिषद्-शिक्षाको व्यावहारिक रूपमें लाकर
ज्ञानको प्राप्त कर सकता है और समाजको भी
शिखरपर पहुँचा सकता है। उपनिषदोंके उपदेशके
मनुष्य कामादि षड्रिपुओंसे दूर रहकर, ब्रह्मचर्य-
नकर तथा शम, दम आदि साधन-चतुष्टयसे सम्पन्न
ं आत्मज्योति पा लेता है और दिव्य तेजसे समाज,
तेको भी उद्भासित कर देता है। उपनिषदें बताती
ुष्य अमृत-पुत्र है, वह संयमी रहकर बड़ी सरलता-
ा प्राप्त कर सकता है और हर एक प्रजाका ऐहिक
और पारलौकिक उन्नयन कर सकता है। कर्मफलका
के अथवा उसे ईश्वरार्पण करके निष्काम कर्मयोगी
कसंग्रही बननेकी शिक्षा उपनिषदोंका प्रत्येक वचन
केवल मीठा-मीठा चिल्लानेसे मुँह मीठा नहीं हो
इसीलिये उपनिषदें कहती हैं—'केवल पुस्तकें रटने-

पहले उपदेश सुनो या ग्रन्थ पढ़ो, उसके बाद उसका
करो, एकान्त शान्तिमें उसपर खूब विचार करो औ
अनन्तर चित्तवृत्तियोंको समेटकर अर्थात् अन्तर्मुख
मनको एकाग्र करके बराबर ध्यान धरो; तभी तुम्हें म
अखण्ड आनन्द और सनातन शान्तिकी प्राप्ति होगी
सिवा उपनिषदोंका यह भी उपदेश है कि जिस
उपदेश नहीं लेना चाहिये; पूर्ण संयमी बनकर
ब्रह्मनिष्ठ और तपोधन गुरुसे ही उपदेश लेना चाहिये

बृहदारण्यक (५ । २ । १—३) में ए
उपाख्यानके द्वारा दान, दम और दयाकी शिक्षा
है। छान्दोग्य (३ । १७ । ४) ने दान, आर्ज
और तपको अध्यात्म-मार्गका साधन बताया है।
(१ । २ । १—३) ने गुरु और माता-पिता
स्वाध्याय और धर्माचरणका उपदेश दिया है।
एक दूसरे स्थल (४ । ४ । १—५) पर सत्यकी
अनिवार्य बताया है। प्रश्नोपनिषद् (६ । १) और
निषद् (३ । १ । ६) में भी ये ही बातें हैं। बृहद
एक स्थानपर (४ । ४ । २३) ज्ञान-साधनके लिये
और वैराग्यको आवश्यक बताया है। मुण्डक (
१२) ने भी इसका समर्थन किया है। बृहदारण्यक
४ । ५) और छान्दोग्य (८ । १६) ने मनुष्यको
करने और कर्म करनेमें स्वतन्त्र बताया है। मुक्ति
(२ । ५ । ६) ने पुरुषार्थ करनेपर विशेष बल
कठोपनिषद् (४ । ११) ने बन्धनका कारण एक
अभावको बताया है। श्वेताश्वतर (३ । ८) ने जन
विकट चक्रको पार करनेका उपाय आत्मसाक्षात्कार
है। मृत्युके अनन्तर कर्मानुसार मार्ग पानेकी बात
है (बृहदारण्यक ६ । २; छान्दोग्य ४ । १५;
१ । २-३)। बृहदारण्यकका यह भी मत है (४
कि जिस समय मनुष्यकी सारी वासनाएँ छूट जाती
समय इसी लोकमें वह ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।
निरन्तर ध्यानसे 'निगूढ़-देव दर्शन' की बात कही
(श्वेताश्वतर १ । १४) तथा आत्मोपलब्धिको 'भूमा'
है। 'जहाँ न तो दूसरेको देखता है, न दूसरेको सुनता है,
जानता है, वह है भूमा। भूमा ही अमृत है; इसके
जो है, वह मर्त्य और अनित्य है।' (छान्दोग्य ८

इस तरह चाहे जिस दृष्टिसे देखिये, उपनिषदोंक

ातिके लिये भी गौरवकी वस्तु हैं। उपनिषदोंके अनुसार अपनेको बना लीजिये; आपको वह दिव्य और शक्ति प्राप्त हो जायगी, जिसकी मुट्ठीमें समूची प्रकृति है। आप सारे सौरमण्डलकी नकेल पकड़ लेंगे। ज्ञान आपको खिलवाड़ जँचेगा, विद्या आपकी बखानेगी और मृत्यु आपकी दासी बन जायगी। देख देंगे, वह देवता बन जायगा; आप जहाँ पैर वहाँ सोना हो जायगा; आप जिसपर कृपा कर देंगे, ध्वंसी भीम हो पड़ेगा। यदि आप उपनिषदोंके अपनेको विलीन कर सकें, तो पृथ्वी आपका न जायगी, आकाश आपका रङ्गमञ्च हो जायगा और वन संगीतमय हो रहेगा। आपकी प्रत्येक गतिमें ा अट्टहास होगा। आपकी हरएक दृष्टिमें लक्ष्मीका र आवास होगा; आपकी प्रत्येक कथामें कलाकी कमनीय काकली कूजेगी और आपकी प्रत्येक क्रियामें 'स सुन्दरम्' का मेघमन्द्र निनाद होगा। चर और अ और चेतनकी राई-रत्ती कथा कहनेवाली उप उपदेशमें और तदनुसार आचरणमें जिन्होंने अपन दिया है, उनके उपदेश अमोघ महामन्त्र हैं, वे ब्रह्मा तिलक हैं, वे ईश्वरीय दूत हैं। विश्वमें ऐसे मह अवतरण और संचरण आनन्द और शान्तिकी मन्दाकिनी बहानेके लिये है। ऐसे पुरुष जिधर चलते ही चन्दनवाही मलयानिल बहता है, उधर ही दी उधर ही श्री—सम्पत्ति हाथ जोड़े खड़ी रहती है, सौन्दर्य और सौकुमार्यकी नवल-धवल ज्योत्स्ना थिर इनकी प्रत्येक गति लोककल्याणके लिये है, ये ही उ और साधुसंरक्षण करते हैं, इन्हींका उद्देश्य कलियुग युगकी ओर ले जाना है।

हिंदू-संस्कृतिका प्राकार !

गर्भवासमें मिलती शिक्षा, होते थे सोलह संस्कार।
बाहर आते ही माता भी सिखलाती थी शौचाचार॥
सदाचारकी सत्-शिक्षा सबको मिलती थी बारंबार।
नित्य-नियमसे होता रहता देवाराधन, धर्माचार॥ १॥

सन्ध्या-तर्पण, नित्य श्राद्धकी वेदध्वनिका मधु गुञ्जार।
नित्य होम, स्वाध्याय हो रहा, अतिथी-अभ्यागत-सत्कार॥
अर्चा-पूजा प्रेमभावसे, करते सब सात्त्विक आहार।
व्रत-उपवास, कथामृतरसको पीते, करते तत्त्व-विचार॥ २॥

काम्य कर्म ही वे नर करते, होता जिन्हें भोग-सुख-प्यार।
किंतु विचक्षण बुद्धिमान् नर करते कामशून्य आचार॥
सत्य, दया, तप, दान, यज्ञमें रहते थे वे धर्माकार।
ज्ञान, ध्यान, हरि-गुण-गायन ही होता था उनका आधार॥ ३॥

आज्ञा-पालन, पातिव्रत ही उनका था आदर्श विचार।
एकपत्नीव्रत थे वे मानव, जिन्हें सुहाता नहिं कुविचार॥
करते सबसे निश्छल, निर्मम, किंतु प्रेमपूरित व्यवहार।
दृढ़ रहकर स्वधर्मपालनमें करते रहते धर्म-प्रचार॥ ४॥

इस प्रकार होते नर-नारी, करते सदा विमल आचार।
अन्तकालमें मरकर जाते देवयानसे शुभ अविकार॥
निर्मल ब्रह्मधामको पाते अनुपम सुख अनन्त आगार।
धार्मिक पुरुषोंका शाश्वत यह हिंदू-संस्कृतिका प्राकार॥ ५॥

—वासदेव

हासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
त्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥

तहास और पुराणोंके द्वारा ही वेदार्थका विस्तार
हिये । जिन्होंने शास्त्रोंका सम्यक् श्रवण नहीं किया
वेदोंको भय होता है कि ये हमपर प्रहार
करेंगे ।' आज यही हो रहा है । पाश्चात्त्य विद्वानोंने
रम्भ किया कि वेद तो गड़रियोंके गीत हैं ।
अच्छे शास्त्रज्ञ विद्वान्ने कहा—'गीता तथा दूसरे
देोंका इतना महत्त्व क्यों है, यह मैं नहीं समझ पाता ।
ं जो दर्शनशास्त्र, भाव या विज्ञान है, उससे तो
ी बातें बहुत स्पष्ट ढंगसे महाभारतमें ही हैं ।'
र श्रुतिपर आक्षेप इसलिये होता है कि हम
र व्याकरणके आधारपर मन्त्रोंका अर्थ करने लगते
भूल ही जाते हैं कि मन्त्र उन्हें इसीलिये कहा गया
ान करनेके लिये हैं । उनके देवताके आधारपर उनके
में मन एकाग्र करनेसे उनके मन्त्रार्थका दर्शन होता
इसलिये नहीं कि उनका अर्थ किया जाय । इतिहास
णोंमें उन्हीं मन्त्रोंका अर्थ विस्तृत किया गया है;
जेस मन्त्रका अर्थ जानना हो, उसको लेकर या तो
करना चाहिये, अथवा उस मन्त्रके ऋषिके
ाथा इतिहास और पुराणमें उस मन्त्रके देवताके
जो कुछ वर्णन आया है, उस सबको उस मन्त्रका
ाना चाहिये । जैसे वेदोंमें इन्द्रके बहुत-से मन्त्र हैं ।
के अर्थके सम्बन्धमें पुराणोंमें, स्मृतियोंमें, शास्त्रोंमें
ातना चरित है, सब देखना होगा । जिस मन्त्रके
हैं, उनकी वाणी पुराणादिमें जहाँ है, वहीं इस
र्थ भी है ।

क अध्ययनका अधिकार केवल यज्ञोपवीत-धारियोंको
और शूद्र सस्वर उच्चारणमें असमर्थ होनेके
दके अधिकारी नहीं हैं । वेद ईश्वरीय ज्ञान है ।
मात्रके लिये सर्वेश्वरकी ओरसे दिया गया है । उससे
तिके एक बड़े वर्गको वञ्चित नहीं रहना चाहिये ।
ं उनका अधिकार नहीं है तो उन्हें ज्ञान कैसे प्राप्त
ोंने सृष्टिके आदिमें ज्ञान कैसे प्राप्त किया ? क्योंकि
कर्मके विभागसे चारों वर्णोंकी रचना अनादि है ।

सृष्टिके प्रारम्भसे वह चला आ रहा है । अतए
प्रारम्भमें जब मनुष्योंको ईश्वरीय ज्ञान मिला, तब क्या
शूद्रोंको भगवान्ने मूर्ख ही छोड़ दिया ? ज्ञान स्व
नहीं किया जा सकता, वह दूसरेसे सीखा जाता है—
वेदोंके प्रसङ्गमें बता आये हैं । जो वेदोंके
नहीं हैं, उन्हें तो वेद मिले न होंगे । तो क्या
मन्त्रोंका अर्थ-दर्शन करके ऋषियोंने उसे अपन
प्रकट नहीं किया, स्त्री-शूद्र मूर्ख और गूँगे रहे ?

बात ऐसी नहीं है । नियम यह है कि जो जैसा
होता है, उसे उसी प्रकार समझना पड़ता है । जो
सकते थे, जो मन्त्रद्रष्टा हो सकते थे, जो सस्वर
समर्थ थे, उन्हें परमात्माकी ओरसे सम्पूर्ण ज्ञानके
हुए । ये ईश्वरीय सूत्र ही मन्त्र हैं । इन मन्त्रोंमें ज्ञा
है—**'परोक्षवादो वेदोऽयम् ।'** इस प्रकार सूत्ररूपसे
होनेका कारण यह था कि ज्ञान अनन्त है । उसके
थोड़े ही हो सकते हैं, किंतु उसका अर्थ-विस्तार
ज्ञानसूत्रोंकी तो सम्यक्-रक्षा सम्भव है, किंतु अर्थ
रक्षा नहीं हो सकती । सृष्टिमें आगे अनेक बार
विस्मरण-स्मरण-चक्र चलेगा, यह सर्वज्ञ प्रभुसे अवि
था । ऐसी परिस्थितिमें यदि मूल सूत्र रक्षित रहे
मन्त्रद्रष्टा पुनः हो सकते हैं । अर्थ-विस्तार उन्हें
फिर प्राप्त हो जायगा । ज्ञानका बीज नष्ट न होगा
भी यही—हम देखते हैं कि गीतामें भगवान्ने
कहा कि 'मैंने यह ज्ञान सूर्यको दिया था । सू
इक्ष्वाकुके क्रमसे आगे बढ़कर बहुत दिनोंमें इस
लोप हो गया । अब मैं उसी अनादि ज्ञानका तु
उपदेश कर रहा हूँ ।' इसी प्रकार इतिहास और
पुनः सङ्कलन द्वापरके अन्तमें भगवान् कृष
बादरायण व्यासने किया । आज महाभारत और पुर
रूपमें उपलब्ध हैं । अतः जो ज्ञानसूत्रको समझ
उसकी रक्षा करनेके अधिकारी थे, उन्हें ईश्वरीय
सूत्रोंके रूपमें प्राप्त हुआ ।

जो ज्ञानसूत्ररूप मन्त्रोंमें मन एकाग्र करने
दर्शनमें समर्थ नहीं थे, जो सस्वर उच्चारण नहीं क
थे, जिनकी बुद्धि परोक्षवाद नहीं ग्रहण कर सक

ही उन्हें इतिहास और पुराणका ज्ञान ब्रह्माजीसे—सी प्रकार ऋषि-परम्परासे प्राप्त हुआ, जिस प्रकार ोंको वैदिक ज्ञान। दोनोंमें कोई अन्तर नहीं था। क सूत्ररूप था और दूसरा भाष्यरूप।

प्रथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं ऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः ऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः व्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि।

(बृहदारण्यक० २।४।१०)

े गीले ईंधनमें अग्नि लगानेसे धुआँ निकलता है, र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आङ्गिरस अथर्ववेद, पुराण, विद्या (धनुर्वेदादि), उपनिषद्, श्लोक, ाविवरण तथा अर्थवाद—वे इस महद्भूत (परमात्मा) नेःश्वास हैं।' इस प्रकार श्रुतिने पुराणादि समस्त अपौरुषेय, अनादि बतलाया है। यह ईश्वरीय ज्ञान मिला। उनसे—

हासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
भ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥

(श्रीमद्भा० ३।१२।३९)

ेहास और पुराणरूप पाँचवें वेदको उन समर्थ, ााजीने अपने सभी मुखोंसे प्रकट किया।'

णं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
न्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदा अस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्यपुराण)

स्त शास्त्रोंमें ब्रह्माजीने सर्वप्रथम पुराणोंका उपदेश किया। पीछे उनके मुखोंसे वेद प्रकट हुए।'

यपुराणके इस वचनने स्पष्ट कर दिया कि ज्ञानकी ष्यको ईश्वरकी ओरसे सर्वप्रथम स्पष्ट एवं विस्तृत । उस स्पष्ट रूपके सभी अधिकारी थे। पीछे के मूलसूत्र, जो सूत्र समझने और उनकी रक्षा मर्थ थे, उनको प्राप्त हो गये।

प्रकार पुराण भी अनादि ईश्वरीय ज्ञान ही हैं। ाँति ही पुराणोंकी भी परम्परा प्राप्त होती है और मूल पुराण अधिकारि-भेदसे शाखा-भेदके रूपमें ुआ, यह भी पुराणोंसे ही ज्ञात होता है। भगवान जो बीचमें अस्त-व्यस्त हो गयी थी, व्यवस्थित अपनी वाणीमें उसे सजाया, अष्टादश पुराणोंका दिया। आज जो पुराण प्राप्त हैं, वे यही द्वापरके भगवान् व्यासद्वारा व्यवस्थित किये पुराण हैं। आगे देखेंगे कि ये पुराण भी कुछ अस्त-व्यस्त हो ग उनमेंसे कितनोंके बहुत अंश अप्राप्य हैं।

वेदोंको ऋषियोंने घन-जटादि अनेक प्रकारके व्यवस्था करके ज्यों-का-त्यों बनाये रक्खा। उन मात्रातक घटी-बढ़ी नहीं। अतः वेदवाणी अपौरु केवल मन्त्रक्रम अर्थ तथा स्मरण-सुविधाके लिये ब और क्रमको अपौरुषेय नहीं माना जाता। सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं रह सकी। वेदार्थ अत्यन्त था। उसे ज्यों-का-त्यों स्मरण रखना सम्भव नह करोड़ों वर्षोंमें वह अनेक बार विस्मृत हो गया बार उसके अनेक अंश अज्ञात हो गये। बार-बार मन्त्रोंमें मनोनिग्रह करके मन्त्रार्थविस्तारद्वारा ज्ञानको प्रकट करते रहे। इसीसे किसी-किसी वे पुराने द्रष्टा दूसरे ऋषि थे और अब दूसरे ऋषि म हैं। द्वापरके अन्तमें भगवान् व्यासने देखा कि वेदार्थ ऋषियोंकी वाणीमें बहुत विस्तृत और अ हो गया है। उन्होंने उस सम्पूर्ण ज्ञानका सङ्कलन ि अठारह पुराणों तथा महाभारतके रूपमें लिखा। अनेक स्थल ज्यों-के-त्यों ऋषियोंके, शास्त्रोंके रख ि हैं। इस प्रकार पुराणोंकी रचना भगवान् व्यासकी ि उनका समस्त वर्णन, पूरे उपदेश तथा घटनाएँ अन इस प्रकार पुराणकी वाणी तो व्यासकृत है; किंतु उनक ज्ञानादि अपौरुषेय है, नित्य है।

पुराणोंमें वेदार्थ-विस्तार

वेदोंमें समस्त ज्ञान सूत्ररूपसे है और परोक्ष वर्णित है। पुराणोंने उसी ज्ञानको स्पष्ट एवं विस्तृ है। पुराणोंमें जो इतिहास-भूगोल तथा प्राणियोंके व पुराणोंको आधुनिक या किसी कालविशेषकी रच बतलाते। भगवान् व्यास अपने ज्ञात इतिहास-लिखने नहीं बैठे थे। उन्होंने स्वयं लिखा है—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचर
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदि

अधिकार नहीं है। कर्म-जगत्में वे 'कल्याण किसमें
: जाननेमें मूढ़—अज्ञ हो रहे हैं। अतएव इससे
ारत तथा पुराणोंमें) उनका कल्याण होगा।'
। प्रकार महाभारत और पुराणोंमें वे वेदके
ारियोंके लिये वही अनादि अपौरुषेय ज्ञान, जो लुप्त
ख्खरा हुआ था, एकत्र करनेमें प्रवृत्त हुए थे।
ुराणोंके अर्थके सम्बन्धमें उन्होंने बताया है—

ाणव्याख्या त्रिधा, आधिभौतिकी आधिदैविकी
मकी च।

ाणोंकी तीन प्रकारकी व्याख्या होती है, अर्थात्
एक साथ तीन वर्णन चलते हैं—
ातिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। ये तीनों
। वस्तुतः तो आध्यात्मिक नित्य जगत्के अनुसार ही
वक भाव-जगत् है और उसीसे आधिभौतिक स्थूल
क्त हुआ है। तीनों जगत् परस्पर सर्वथा अनुरूप हैं।
कोई एक व्याख्या सत्य होनेपर तीनों ही सत्य
जो लोग यह कहते हैं कि रामायण एवं महाभारत
होनेवाले दैव एवं आसुरभावोंके संघर्षके रूपक हैं, वे
जगत्की घटनाएँ नहीं हैं, वे यह नहीं समझते कि
ात् ही स्थूल जगत्में व्यक्त होता है। अतएव जो
ात्का सच्चा रूपक है, उसकी घटनाएँ ठीक
ाक ही होंगी। जो स्थूल जगत्की सत्य घटनाओंको
रूपक बनाने चलेगा, वह अन्तर्जगत्का ठीक
र नहीं सकता। क्योंकि अन्तर्जगत् स्थूल जगत्से
ादृश्य—असमानता नहीं रखता।

ोंमें इतिहास है, भूगोल है, ज्यौतिष है, मनुष्य-
। वर्णन है, मनुष्य एवं पशु-जातियाँ हैं। जो कुछ
हो गया, हो रहा है या होनेवाला है, वह वेदोंमें
भी घटनादिके मूलरूप श्रुतिमें न हों तो उसमें
ा है, यह कहा न जा सके। नित्य इतिहास वेदमें
नित्य भूगोलादि भी—इतिहास और भूगोलादिका
्य अंश जो प्रत्येक सृष्टिमें आवृत्ति करता है।
वेदोंके उसी रेखाचित्रमें रंग भरकर उसकी
ो स्पष्ट किया है। जैसे वेदोंमें अपरिवर्तनीय
है। पुराणोंने कल्पभेदसे उनमें जो परिवर्तन
। उनको भी स्पष्ट कर दिया है। यही दशा
ाकी है।

श्रीकृष्णचरित एवं यदु-दुष्यन्त आदिका बहुत-सा
यह सब वर्णन वहाँ विस्तृत नहीं है।
केवल उतना अंश है, जितना प्रत्येक कल्पमें सम
है। पुराणोंमें, इतिहासमें तथा दूसरे शास्त्रोंमें
अनेक प्रकारसे वर्णित हैं। एक ग्रन्थ एक या
कल्पकी बात कहता है। इस प्रकार चरितोंका अन्त
भेदसे होता है। रामावतार तो प्रत्येक त्रेतामें होग
चरितमें कुछ अन्तर पड़ेगा। यह अन्तर पुराणादि
वर्णित है। एक प्रलयके पश्चात् फिर दूसरा क
है। उसमें वही चरित अधिकांश ज्यों-के-त्यों होते हैं
उस कल्पका पुराण भी वही होता है, जो आज है।
पुराण भी नित्य ज्ञान हैं।

पुराणोंका स्वरूप

पुराण अठारह माने जाते हैं। ये महापुराण है
अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं। किसी कल
पुराण महापुराण समझा जाता था और किसीमें वह
माना गया। इस कारण पुराणोंमें महापुराण और उप
निर्णय करनेमें भेद पड़ता है। श्रीमद्भागवतके
अठारह पुराण अपनी श्लोक-संख्याके अनुसार निम्न

१	ब्रह्मपुराण—दस	हजार
२	पद्मपुराण—पचपन	,,
३	विष्णुपुराण—तेईस	,,
४	शिवपुराण—चौबीस	,,
५	श्रीमद्भागवत—अठारह	,,
६	नारदीयपुराण—पचीस	,,
७	मार्कण्डेयपुराण—नौ	,,
८	अग्निपुराण—पंद्रह	हजार चार सौ
९	भविष्यपुराण—चौदह	,, पाँच ,,
१०	ब्रह्मवैवर्तपुराण—अठारह	हजार
११	लिङ्गपुराण—ग्यारह	,,
१२	वाराहपुराण—चौबीस	,,
१३	स्कन्दपुराण—इक्यासी	हजार एक सौ
१४	वामनपुराण—दस	हजार
१५	कूर्मपुराण—सत्रह	,,
१६	मत्स्यपुराण—चौबीस	,,
१७	गरुडपुराण—उन्नीस	,,

कल्प-भेदसे इनमेंसे कुछ पुराण उपपुराण माने जाते
निम्न पुराणोंमेंसे कोई उनके स्थानपर महापुराण
हैं—

देवीभागवत

-वायुपुराण

दो पुराणोंको भी पुराण मान लें तो शेष सत्ताईस
प्रसिद्ध हैं। ये पुराणोंके समान ही प्रामाणिक हैं।
गा ठीक नहीं कि ये पुराणोंके पश्चात् रचे गये।
छ तो पुराणोंके परिशिष्ट हैं, जैसे हरिवंश-पुराण महा-
परिशिष्ट है। कुछ उपपुराण पुराणोंके भगवान् व्यास-
लित होनेसे पूर्वके हैं। उनके उद्धरण पुराणोंमें हैं और
प्रकार वेदार्थका विस्तार करते हैं, जिस प्रकार
इन पुराणोंके नाम हैं—१. सनत्कुमार, २. नरसिंह,
ारदीय, ४. शिवधर्मोत्तर, ५. दुर्वासस, ६. कापिल, ७.
८. उशनस्, ९. वारुण, १०. आदित्य, ११. कालिका,
ब, १३. नन्दिकेश्वर, १४. सौर, १५. पाराशर, १६.
१७. वाशिष्ठ, १८. भार्गव, १९. आदि, २०. मुद्गल,
स्क, २२. देवी, २३. महाभागवत, २४. बृहद्धर्मोत्तर,
नन्द, २६. पशुपति, २७. हरिवंश। इनके अतिरिक्त
हापुराणोंमें जब किसीको उपपुराणोंमें गिनते हैं, तब
, ब्रह्माण्डपुराण, भागवत, देवीभागवत, वायुपुराण—
ोई एक या एकाधिक उपपुराण माने जाते हैं।

णोंके लक्षण करते हुए कहा गया है कि उनमें निम्न
ण होने चाहिये—

सर्ग (सृष्टि-विस्तार);

विसर्ग (विशेष सृष्टि— मानस सृष्टि, देवता, कारक
);

-स्थान (सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संनिवेश);

-पोषण (जीवोंका धर्म, उनके कृत्य—सदाचारादि,
इनके समाज चलते हैं);

-ऊति (जीवोंकी कर्मवासना और उनकी स्वर्ग-
गतियाँ)।

-मन्वन्तराधिपतियोंके चरित, उनका वंशविस्तार;

-भगवान्‌के अवतार-चरित;

-निरोध (आत्मसंयमके शम-दम-योगादि मार्ग);

-मुक्ति (ज्ञानयोग, दर्शनशास्त्र);

-आश्रय (भगवान्का आश्रय— अधिष्ठान)।

अथवा

१—सर्ग (सृष्टि-विस्तार);

२—विसर्ग (विशेष सृष्टि);

३—वंश (प्रमुख वंशावली—नित्य इतिहास)।

४—मन्वन्तर।

५—वंशानुचरित।

महापुराणों और उपपुराणोंमें इनमेंसे ऊपरके
निम्न पाँच लक्षण होते हैं। वस्तुतः नीचेके पाँचमें ही
के दसों लक्षणोंका अन्तर्भाव हो जाता है। ये दस
पुराणोंमें व्यापक होते हैं। ऐसा नहीं कि उनके एक
या स्कन्धमें एक लक्षणका विस्तार हो। इन दस
अनुसार पूरा ग्रन्थ होता है। दस लक्षणोंके भीतर
समस्त ज्ञान आ गया, यह स्पष्ट समझा जा सकता है।

पुराणोंका वर्तमान स्वरूप

नारदपुराणमें सभी पुराणोंकी विषय-सूची दी ग
उपलब्ध पुराणोंमेंसे भविष्यको छोड़कर शेष पुराण उस
मिल जाते हैं। सूचीके अनुसार पुराणोंकी श्लोक-संख्
कम पड़ती है। जो पुराण प्राप्त हैं, उनमें सूचीके
विषय नहीं मिलते। इससे यही जान पड़ता है
पुराणोंके बहुत अंश लुप्त हो गये हैं। बँगला 'विश्
अनुसार महापुराणोंका परिचय इस प्रकार है—

१. ब्रह्मपुराण—इस पुराणकी जो प्रति बंबईसे
उसकी अपेक्षा विश्वकोषमें दी हुई सूची अधूरी है। इस
२४५ अध्याय हैं। किन्हीं पुराणोंके मतसे इसमें १
श्लोक होने चाहिये। यह वैष्णव पुराण है।

२. पद्मपुराण—प्राप्त पद्मपुराणमें चार खण्ड हैं-
खण्ड, भूमिखण्ड, पातालखण्ड और उत्तरखण्ड। इस
दो संस्करण प्राप्य हैं—गौड़ीय और दाक्षिणात्य।
कथाओंमें कुछ अन्तर है। दोनोंमें समान अध्याय
हैं। प्राप्त पद्मपुराणमें ४८,४५२ श्लोक मिलते हैं।
खण्ड' तथा 'क्रियायोगसार' इसीके भाग बताये जाते हैं
जोड़नेसे छः खण्ड और श्लोक-संख्या ५५,००० ह
है। पद्मपुराणसे तीर्थमाहात्म्य, पर्वमाहात्म्यकी बहुत-स
छोटी पुस्तकें पृथक् की गयी हैं।

३. विष्णुपुराण—विष्णुपुराणका बहुत-सा भाग लुप्त
है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा ब्रह्मोत्तरखण्डको, जो इसके
जाते हैं, मिलानेसे इसकी श्लोक-संख्या १६ ... के

लोक फिर भी नहीं मिलते। ब्रह्मगुप्तने ब्रह्मोत्तरसिद्धान्त-
में विष्णुधर्मोत्तरसे ज्यौतिषका अंश लिया था, पर वह
पुराणमें नहीं मिलता। बहुत-सी छोटी-छोटी पुस्तकें
की अङ्गभूत बतायी जाती हैं, पर पुराणमें नहीं हैं।
वे लुप्त अंशके भाग हों।

शिवपुराण—कुछ लोग शिवपुराण और वायुपुराणको
तलाते हैं; पर वायुपुराणसे भिन्न शिवपुराण उपलब्ध
समें श्लोक-संख्या भी पूरी है। यह प्रति बंबईमें

श्रीमद्भागवत—श्रीमद्भागवतकी प्राप्त प्रतियाँ श्रीधरी
नुसार प्रमाण मानकर छपी हैं। श्रीधरजीकी टीका
ोपर है, उनकी संख्या अठारह हजार नहीं है।
।' की टीकामें जो अध्याय और श्लोक भागवतके बताये
जोड़ देनेपर श्लोक-संख्या पूर्ण हो जाती है।

ारदीयपुराण—इस पुराणकी प्राप्त प्रतिमें १८,११०
ते हैं। शेष ६,८९० श्लोक लुप्त हो गये जान पड़ते
ारदीयपुराण उपपुराणोंमें है। नारदीय पुराणके
। पुराणमें मिलते हैं।

ार्कण्डेयपुराण—इसमें नौ हजार श्लोक होने चाहिये,
ातिमें केवल ६,९०० श्लोक हैं। बाकी सब बातें
की सूचीसे मिलती हैं। कुछ चरित नारदसूचीके
सही अंश लुप्त होंगे।

ग्निपुराण—यह पुराण विद्याओंका विश्वकोष है।
रव्याकरण बड़ा सुन्दर संस्कृत-व्याकरण है। वैद्यक,
नुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यकला, साहित्य, दर्शन—
हैं और यह यथावत् प्राप्य है।

विष्यपुराण—भविष्यपुराणकी चार स्थानोंसे प्रकाशित
ाँ उपलब्ध हैं। नारदपुराणमें जो विषयसूची है,
की प्रति पूर्णतः नहीं मिलती। इनमेंसे एक प्रति तो
की सूचीसे सर्वथा भिन्न है। शेष तीनके भिन्न-
ा उस सूचीसे मिलते हैं। यदि नारदपुराणकी
लनेवाले अंश एकत्र किये जायँ तो कदाचित्
का कुछ व्यवस्थितरूप उपलब्ध हो। इस पुराणमें
ना खूब मिलायी गयी जान पड़ता है।

ब्रह्मवैवर्त—यह पुराण नारदीय पुराणके अनुसार

११. **लिङ्गपुराण**—नवलकिशोर प्रेसकी पुस्त
पुराणकी सूचीसे ठीक मिलती है; किंतु इसमें इस
ईशान-कल्पका बताया गया है और नारदपुराणके
इसे अग्निकल्पका होना चाहिये। हलायुधने 'ब्राह्म
में बृहत्-लिङ्गपुराणका उद्धरण दिया है; पर
प्राप्य नहीं है।

१२. **वाराहपुराण**—यह पुस्तक अधूरी छपी है
केवल २१८ अध्याय हैं। इनमें दस हजारसे कुछ
श्लोक हैं। प्रकाशकने स्वीकार किया है कि उसे ग्रन्थ
मिला है। एशियाटिक सोसायटीकी प्रतिमें भी
श्लोक हैं।

१३. **स्कन्दपुराण**—इस पुराणमें भारतके प्राय
तीर्थोंका माहात्म्य है। इसकी श्लोक-संख्या अधिक
इसका कारण कदाचित् ग्रन्थके संकलनमें हुई आधुनिक
क्योंकि अनेक स्थल दो बार छपे हैं। इन पुनर
निकाल देनेपर श्लोक-संख्या ८१,१०० हो जाती है

१४. **वामनपुराण**—यह पुराण नारदपुराणमें
विषय-सूचीसे मिलते हुए रूपमें उपलब्ध है। कु
कम हैं।

१५. **कूर्मपुराण**—नारदादि पुराणोंमें इसकी श्लो
सत्रह हजार बतायी गयी है; पर प्राप्त प्रतियोंमें छः
लगभग श्लोक हैं। डामर, यामल आदि तन्त्रोंमें कु
इस पुराणके मिले हो सकते हैं; क्योंकि नारद
सूचीसे तन्त्रोंके वे भाग ठीक-ठीक मिलते हैं।

१६. **मत्स्यपुराण**—यह पुराण अपने प्राचीन
उपलब्ध है, ऐसा प्रायः सभी अन्वेषक मानते हैं।

१७. **गरुडपुराण**—गरुडपुराणकी पूर्ण पुस्तक
नहीं है। बँगला विश्वकोषकारको भी जो ग्रन्थ मि
उसमें सात हजार श्लोक कम थे। वर्तमान ग्रन्थ
खण्डमात्र है। इस पुराणका प्रेतखण्ड बहुत प्रचलित

१८. **ब्रह्माण्डपुराण**—इस पुराणकी उपलब्ध
अध्यात्मरामायण तथा ललितोपाख्यान, जो इसीके
जाते हैं, मिला देनेसे श्लोक संख्या पूरी हो जाती है।

इस विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश
कुछ अंश ही लुप्त हुए हैं। एक भविष्यपुराण ही

णोंके वर्तमान प्राप्त रूप प्रामाणिक हैं, इसमें सन्देह जाता।

पुराणोंमें वर्णन-भेदके कारण

र्ववेदमें आया है—

ः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

(११।४।२४)

दोग्य उपनिषद्का मन्त्र है—

होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेद-चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।

(७।१।१-२)

प्रकार अनादि अपौरुषेय श्रुतिमें पञ्चम वेद कहकर जिस [पु]राणकी चर्चा की गयी है, वह अनादि एवं अपौरुषेय। उस ईश्वरीय ज्ञानका एक ही रूप होना चाहिये। एक ही कथा बार-बार आती है। किसी पुराणमें ; किसीमें शक्तिको, किसीमें शिवको, किसीमें सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि माना है। यह भेद अपौरुषेय ों होना चाहिये?

सूत्र, मनुस्मृति, महाभारत तथा अन्य प्राचीन देखनेसे पता लगता है कि पुराण कभी एक ग्रन्थ इनमें सदा बहुवचनमें पुराणोंका वर्णन है। अतः नेक सदासे थे। वर्तमान पुराणोंमें कल्पभेदसे दमें जो अन्तर पड़ता है, उसका स्पष्टीकरण हुआ दो पुराणोंमें प्रायः एक कल्पकी कथा नहीं है। पुराणोंमें कल्पोंके चरित हैं। प्रत्येक कल्पकी सृष्टि किसी नेत्यलोकके सान्निध्यसे नहीं होती। किसी कल्पमें त्यलोकसे सृष्टि-प्रवाह चलता है और किसीमें जिस कल्पमें जिस नित्यलोकसे सृष्टिप्रवाह प्राप्त होता कल्पमें उस लोकके अधिष्ठाताकी प्रधानता होती है। का वर्णन करनेवाला पुराण उसी अधिष्ठाताकी ा स्वभावतः वर्णन करेगा। इस प्रकार आदिमें भी रहे होंगे, उनमें इसी प्रकार कल्पभेदोंके चरित ष्ठाताओंका वर्णन होगा। भगवान् व्यासने पुराणों-और उनके वर्णन अपनी ओरसे नहीं बदले। बदलना ो नहीं है। क्योंकि जिस वेदार्थको स्पष्ट करनेके लिये पुराण थे, उन्हें बदला कैसे जा सकता है। सच्चा इतिहास ने शब्दोंमें भले लिख दे, पर उसमें बदलनेको

साधकको उसके अनुरूप आध्यात्मिक मार्ग प्राप्त होना सबके स्वभाव एक-से नहीं हो सकते। अतएव अधिकार भी एक-से नहीं हो सकते। ईश्वरीय ज्ञानमें लिये साधन न हो, यह शक्य नहीं। पुराणोंमें वेदार्थ होनेसे उन साधननिष्ठाओंका परिपाक हुआ है। कोई शैव निष्ठाका, कोई वैष्णव निष्ठाका, कोई सौर, कोई कोई ब्राह्म तथा कोई गाणपत्य निष्ठाका परिपाक कर जिस पुराणमें जिस कल्पका वर्णन है, उसमें उस सृष्टि जिस दिव्य लोकसे उद्भूत हुई है, उसके अधि प्रधानता तथा उनकी उपासनाका समर्थन, पोषण है। ये सभी अधिष्ठाता एक ही भगवान्की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार पुराणोंमें न तो पुनरु है और न उनकी यह संख्या तथा आकार मूल अपौरुषेय रूपसे भिन्न ही है।

पुराणोंकी उपासना-पद्धति

पुराणोंका मुख्य विषय अवतारवाद तथा दे है। वेदोंके समस्त मन्त्रोंका यज्ञमें विनियोग होना यह श्रुतिका मत है। यज्ञका अर्थ उपासना ही हो यज्ञमें देवाराधन ही किया जाता है। पुराणोंमें वेदोंकी जो वहाँ परोक्षरूपसे वर्णित थी, विस्तृत एवं स्पष्ट हु शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय संहिता, ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद्—इन अवतारोंके पूरे चरित आ जाते हैं। ब्राह्मणादि भागोंको तो भी मूल-संहिताओंमें सभी अवतार-चरित हैं। उद लिये श्रीकृष्ण-चरितको ले लीजिये—

'स्तोत्रं राधानां पते' (ऋग्वेद १।३

'त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भ

(ऋग्वेद ३।१५

'गवामप व्रजं वृधि' (ऋग्वेद १।१०

आधुनिक अन्वेषक कहते हैं कि श्रीकृष्ण-श्रीराधाकी कल्पना जयदेवने की। श्रीमद्भागवतमें य न देखकर उन्हें यह भ्रम होता है; पर भागवतकारने किसी गोपीका नाम नहीं दिया। मूल-संहितामें श्रीरा नाम तो है ही, उनके पिता वृषभानुजीका नाम भी है; वर्णन भी है। इस प्रकार दूसरे अवतार-चरित भी हैं।

पुराणोंमें शिव, शक्ति, गणेश, विष्णु और

रूप तथा लीलाओंका वर्णन है। पुराणोंमें सूर्य, अग्नि, ...न वैदिक देवताओंके पुराण ही हैं। ऐसे एक भी ... वर्णन पुराणोंमें नहीं है, जिसका नाम मूल-...न हो।

...क अवतारचरित तथा देववर्णन उसी प्रकार पुराणोंमें ... है, जैसे वैदिक इतिहास स्पष्ट हुआ है। अतएव ...रितोंसे पुराणोंके चरितोंमें कुछ भिन्नता प्रतीत हो ...। वेदोंमें नित्यचरित है, सृष्टिके चरितकी रूपरेखा-... पुराणोंमें एक-एक कल्पके चरित हैं। कल्पभेदसे बहुत कुछ अन्तर भी पड़ा है।

एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है। पुराने ...जिसकी जो निष्ठा होती थी, वह उसीके अनुरूप पढ़ता था और वैसा ही आचरण करता था। दूसरे उसे कोई मतलब नहीं था। इसका प्रमाण यह है ...द्वीपमें सब शिवोपासक हैं। वे अबतक ब्रह्माण्ड-...ही एकमात्र पुराण जानते हैं। शेष सत्रह पुराणोंका ... नहीं है। इस पुराणको वे अत्यन्त गुह्यशास्त्र ... आज अधिकार एवं निष्ठामें विपर्यय होनेसे ये ...ान्त आक्षेप उठते हैं।

पुराणोंके विचित्र वर्णन

...णोंका सबसे अद्भुत भाग है उनके विचित्र वर्णन— ... दस मस्तकोंके मनुष्य, सहस्रतक भुजाएँ, सहस्रतक ... प्रकारकी आकृतियोंके साथ कुम्भकर्ण-जैसी ...योंको भी गिन लेना चाहिये। आकृतिके अतिरिक्त ...नर, नाग आदि जातियाँ और इनके मनुष्योंसे ...-ये ऐसी बातें हैं, जिन्हें आजकलके लोग सत्य नहीं ...उनके मतमें ये कल्पनाएँ हैं या रूपक हैं।

...णोंके अनुसार द्वापरतक अतिरिक्त हाथ, पैर, नेत्र, ...ग होते थे। समाजमें इनकी संख्या सत्ययुगमें बहुत ..., पीछे बराबर घटती गयी। इतना होनेपर भी ...के पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उस समयतक भी ...ऐसी आकृतिका पुरुष होना आश्चर्यकी बात नहीं ...ती थी। शिशुपालके जन्मके समय चार हाथ तथा ... थे। बहुत दिनोंतक वह इसी अवस्थामें रहा। ...को इससे कोई आश्चर्य न हुआ। आज भी विचित्र ...पन्न होनेके समाचार आते हैं। बेल्जियमकी एक ...रपर एक महिलाके एक साथ ३६० बच्चे होनेकी ...खके साथ छपी है। ऐसे बच्चोंके समाचार भी पत्रोंमें

छपते हैं, जो उत्पन्न होते ही बोलने-चलने लगते हैं ... अब इतनी विपरीत हो गयी है कि ऐसे बालक जी... रहते। प्रकृतिमें कितनी विशेषताएँ हैं, यह मनुष्यकी परेकी बात है। शास्त्रोंमें सर्वज्ञ महर्षियोंने जो कुछ वह अक्षरशः सत्य है। उसमें न तो रूपक है कल्पना ही।

राक्षस, रीछ, वानर, नाग जातियोंका जहाँ वर्णन आता है, उस अंशका अर्थ आजके विद्वान् क... ये मनुष्योंकी जंगली तथा असभ्य जातियाँ थी... पुराणोंके वर्णन बतलाते हैं कि ये सुसभ्य, उन्नत, प... थे। वाल्मीकीय रामायणमें किष्किन्धाके लिये कहा ग...

प्राप्ताः स्म ध्वजयन्त्राढ्यां किष्किन्धां वालिनः पु...

'वालीकी राजधानीमें ध्वजाएँ फहरा रही थीं पुरी शतघ्नी आदि यन्त्रोंसे रक्षित थी।' यह और दू... भी बतलाते हैं कि ये जातियाँ सुपठित, चतुर, बुद्धिम...

जहाँ भी पुराणोंमें इन जातियोंका वर्णन है... विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं—

१–ये सब जातियाँ कामरूप थीं अर्थात् इनके इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति थी।

२–इनकी स्त्रियाँ साधारण मानवी स्त्रियों-जै... सुन्दरी थीं तथा इनका मनुष्योंसे वैवाहिक सम्ब... था। मनुष्योंकी स्त्रियाँ इनके यहाँ और इनकी ... यहाँ ब्याही जाती थीं।

३–इन जातियोंके केवल पुरुष ही रीछ, वानर, राक्षसोंके आकारके थे। इन आकारोंमें भी वे वस्त्रादि... थे; पर उनका आचार इन पशुओंका-सा था।

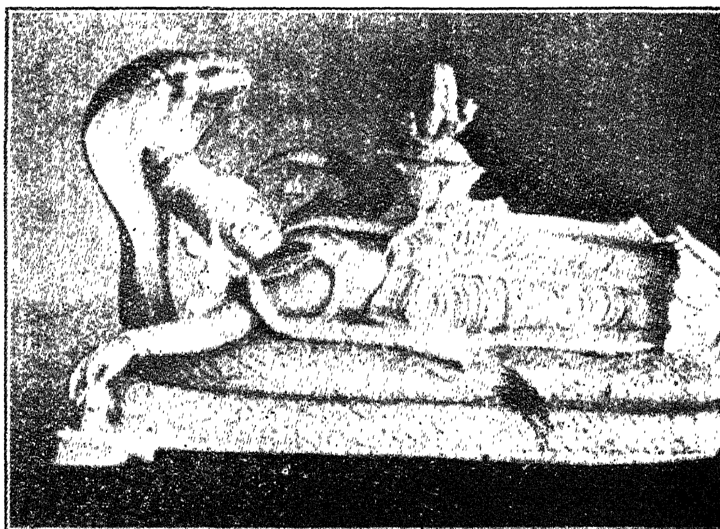
इन बातोंसे यही परिणाम निकलता है कि कु... मानव-जातियाँ थीं, जिनमें पुरुषोंकी आकृति पशु... मिलती थी—जैसे वानरोंके पूँछें और नागोंके विषद... इन जातियोंके पुरुषोंको उन पशुओंके आचार प्रिय कामरूप होनेके कारण वे प्रायः उन पशुओंके ही आकार... थे। वैसे वे सुसभ्य मानव थे। कालक्रमसे उन ज... इच्छानुसार वेष बदलनेकी शक्ति नष्ट हो गयी। ... साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध बढ़ता गया, इससे आकृतिगत विशेषता भी नष्ट हो गयी। वे पूरे मनु... गये। द्वापरके अन्तमें इन जातियोंके जाम्बवन्त, ...



ाल (प्रस्तरमूर्ति, हलेविद)

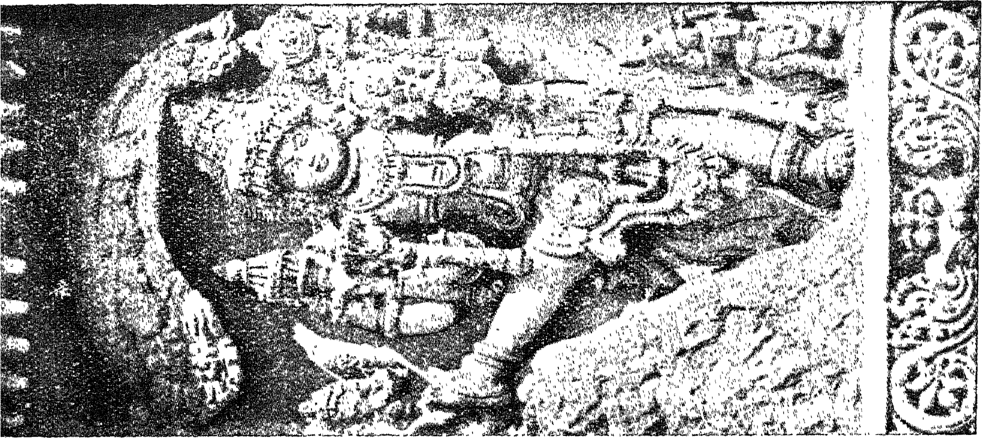


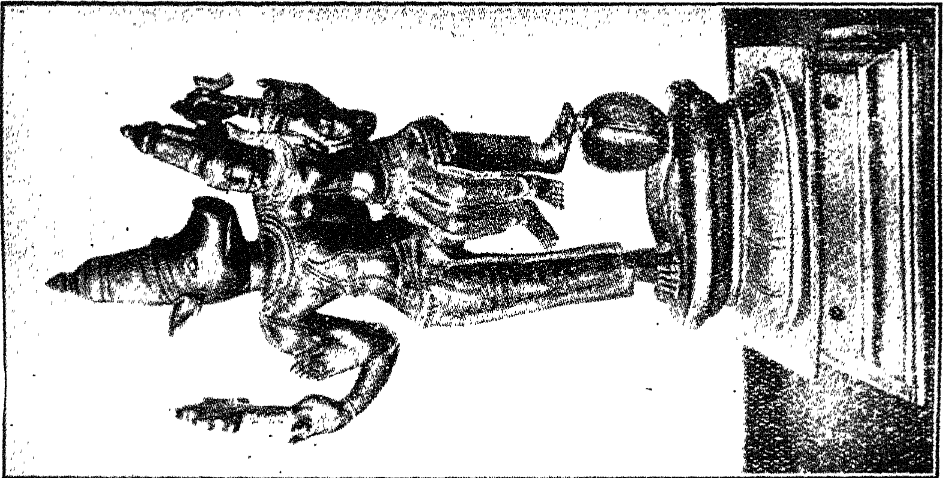
स्थाणु नरसिंह (कांस्यमूर्ति, मद्रास-संग्रहालय)

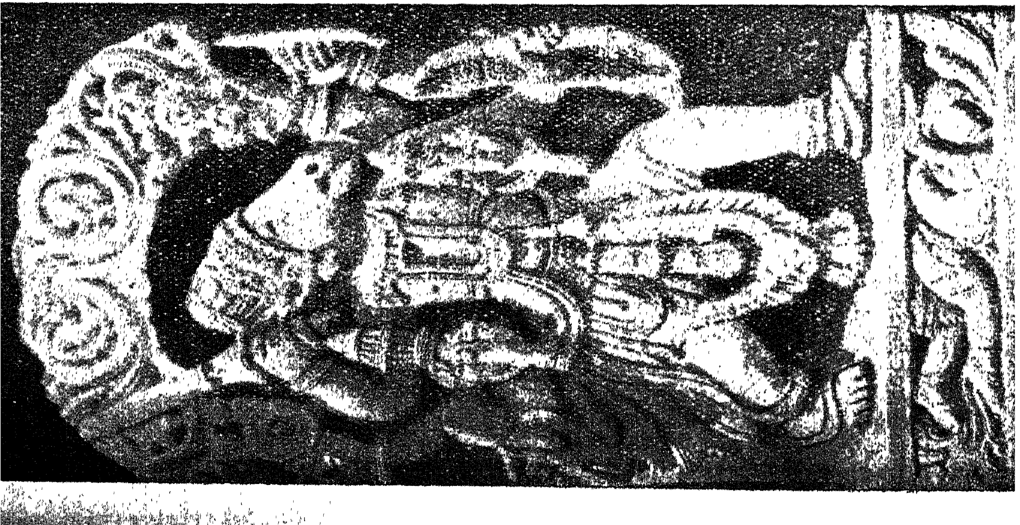


योगशयन मूर्ति (हाथीदाँत, त्रिवेन्द्रम्)

[त्रिवाङ्कुर-कोचीन सरकारके







नके वंशज मनुष्य हैं। मध्यप्रान्त तथा दक्षिण भारतमें
ातियोंके गोत्र वानर, रीछ आदि हैं और नागगोत्रीय
ो नागा जाति तो प्रसिद्ध ही है।

पुराणोंका इतिहास

जके विद्वान् बड़ी सरलतासे कह देते हैं कि
लोग ठीक-ठीक इतिहास लिखना नहीं जानते थे।
प्राप्त इतिहास बहुत अस्त-व्यस्त है।' लेकिन वे
चते कि इतिहासमें प्रत्येक मानवके चरितका वर्णन
हीं है। आज भी जिन जातियोंके इतिहास प्राप्य हैं,
ाजा, राजकुल, प्रसिद्ध विद्वान् तथा मुख्य-मुख्य
ि पुरुषोंके ही वर्णन हैं। इतिहासका उद्देश्य प्रत्येक
संग्रह नहीं है। उसका उद्देश्य केवल उन घटनाओंका
ना है, जो समाज और संस्कृतिको प्रभावित करती
के अतिरिक्त जिन जातियोंके इतिहास कुछ ही सौ
उनके लिये राजाओं, मन्त्रियों, राजनैतिकों, विद्वानोंका
रखना सम्भव और स्वाभाविक भी है; परंतु भारतीय
तो करोड़ों वर्ष पुरानी है। यहाँका पूरा इतिहास
ा होता तो क्या दशा होती, यह स्वर्गीय प्रोफेसर
गौड़के शब्दोंमें सुनना ठीक है—

रतका इतिहास इतना प्राचीन है कि यदि आदि-
ाजतकका इतिहास वर्तमान होता और अत्यन्त
लिखा जाता और सौ-सौ बरसके लिये केवल एक
ा जाता तो एक करोड़ छानबे लाख छिआसी हजार
इक्तीस पृष्ठ होते। यदि एक हजार पृष्ठकी एक
ती तो उन्नीस हजार छः सौ आठ मोटी-मोटी जिल्दें
ादि एक पृष्ठमें पचीस पङ्क्ति मान लें और यह
लें कि कोई एक मिनटमें एक पृष्ठ पढ़ लेगा और
रोज लगातार पढ़ना मान लें तथा यह भी मान लें
नेमें पचीस दिन पढ़ना ही होगा तो पूरे ग्रन्थको
दो सौ सत्रह वर्ष लगेंगे। इतनी लंबी परम्पराका
रका इतिहास होना असम्भव है, जिस तरहकी इन
न राष्ट्रोंकी कल्पना है; और हो भी तो इस युग
रके लिये नितान्त निरर्थक है।............घटनाएँ तो
एक ही प्रकारकी बार-बार घटती रहती हैं। इतिहास
बार-बार दोहराता है।............सब प्रकारकी
को बारंबार दोहरानेके बदले एक भारी महत्त्वकी

पुराण, इतिहास आदिमें मुख्य घटनाएँ देकर
निर्धारित हुआ है। इस सूत्रको निश्चित रूप
करनेके लिये प्रत्येक कल्पकी विभिन्नताको स्पष्ट कर
है। यह करनेमें भी पुराणोंमें एक ही प्रकारकी घ
पुनरावृत्ति है। यद्यपि यह पुनरावृत्ति उनके
अन्तरको बतानेके लिये है; फिर भी यदि सम्पूर्ण घटना
होता तो कितनी निरर्थक पुनरावृत्ति होती, यह इन
जा सकता है। इसके अतिरिक्त पुराणों तथा दूसरे
इतिहास प्राप्त करते समय आजके अन्वेषक यह भूल
कि सब ग्रन्थोंकी घटनाएँ एक ही कालकी नहीं हैं।
एक साथ मिला देनेसे भ्रममें पड़ना ही पड़ेगा। जो
जिस कल्पकी है, जो जीवन-गाथा जिस कल्पमें वर्णित
वहीं रखकर विचार करना चाहिये। एक ही क
ग्रन्थोंके वर्णन तो मिलाकर देखे जा सकते हैं; परंतु
कल्पोंकी घटनाओं, चरितों, नियमोंमें सामञ्जस्य
व्यर्थ है। बैलका सींग घोड़ेके सिरपर रखकर संसा
पशु ढूँढ़ना जैसे बुद्धिमानी नहीं, वैसा ही यह कार्य भ

पुराणोंके इतिहासको देखते समय हमें इतिहा
भारतीय परिभाषाको भी ध्यानमें रखना ही चाहिये
तो इतिहासका अर्थ है व्यक्तिके जन्म-मरणकी तिथि
घटनाओंको निश्चित उद्देश्यके रंग-रूपमें उपस्थित
निश्चित उद्देश्यके जो चरित समर्थक न हों, वे
महत्त्वपूर्ण हों, उन्हें छोड़ देना। भारतमें अंग्रे
इतिहासके पाठ्य-ग्रन्थ रक्खे, वे उनके लाभकी दृ
अब इतिहास 'नये' दृष्टिकोणसे बनाया जा रहा
भारतीय 'इतिहास' की निश्चित परिभाषा है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते
(म

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके उपदेशसहित तथ
चरितोंसे युक्त ग्रन्थको इतिहास कहा जाता है।'

आर्यादिबहुव्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुतधर्मयुक्

विष्णुपुराणकी टीकामें श्रीधराचार्यजीने यह
उद्धृत किया है। इसके अनुसार ऋषियोंद्वारा कहे ग
उपदेश, देवता तथा ऋषियोंके चरित तथा अद्

क पुराणोंका इतिहास देवलोक एवं मर्त्यलोकका इतिहास है। देवलोकादिके सम्बन्धमें विवेचनका यहाँ ां; किंतु इतना जान लेना चाहिये कि जैसे आवागमनके आज यह स्थिति उत्पन्न कर दी है कि किसी घटना या व्यक्तिका इतिहास आज एक देशमें ना शक्य नहीं, उसका कोई-न-कोई अंश दूसरे देशोंसे हो जाता है और तब वहाँकी भी सम्बन्धित ये बिना इतिहास पूर्ण नहीं होता। इसी प्रकार द्वापरके अन्ततक मनुष्यका देवलोकसे प्रत्यक्ष ा। देवता यहाँ पधारते थे और मनुष्य देवलोककी त्रा कर आते थे। फलतः इतिहासमें पृथ्वी और मिला-जुला वर्णन है। इस भेदको न समझकर ास भूमिपरका मानकर जो देवताओंको भी राजा या ष माननेका प्रयत्न करते हैं; वे घटनाओंका समाधान उन्हें कल्पित कहने लगते हैं। आज मानव हीनवीर्य, हीनसंकल्प हो गया है। अतः वह देवलोककी ही सोच नहीं पाता; किंतु भारतीय केवल पाच सहस्र क उस दिव्यलोकके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें रहे हैं। पुराणोंके ो यह समझकर ही देखनेसे ठीक तात्पर्य ज्ञात

बात यहाँ और स्मरण रखनेकी है कि भारतीय पौराणिक या भूगोलमें वर्णन तो समस्त विश्वका है, परंतु तारादि केवल भारतवर्षका ही है। दूसरे देशोंमें ाग गये, युद्धोंमें वहाँके नरेश सेना लेकर सम्मिलित सब वर्णन है; परंतु घटनाएँ, कुल-परम्परादिका वर्णन केवल भारतका ही है। इसी प्रकार भूगोलके वर्णन पूरे ब्रह्माण्डका है; किंतु विस्तृत वर्णन भारतका इसके दो कारण हैं। भारतसे ही विश्वमें मानव-र सभ्यताका विस्तार हुआ। अतएव भारतके पूर्ण बके वर्णन आ जाते हैं। दूसरा कारण यह कि भारत ही है। लौकिक वर्णन ऋषियोंको अभीष्ट नहीं था। पुण्यतीर्थों और पुण्यपुरुषोंका वर्णन ही करना चाहते बात केवल भारतमें ही उपलब्ध थी।

हासके सम्बन्धमें पुराणोंकी दीर्घकालीन तपस्याएँ, ा, दीर्घ आकृतियाँ, विशाल संख्याएँ भी लोगोंको डालती हैं। दीर्घायके सम्बन्धमें तो कुछ कहना है नहीं। छप चुकी हैं। आज भी डेढ़ सौ वर्षके व्यक्ति उपलब्ध तब भी समाजमें साठ-सत्तर वर्ष लंबी आयु मानी जब सौ-पचास वर्षोंमें यह स्थिति है, तब लाखों वर्ष स्थिति रही होगी—यह श्रद्धापूर्वक अनुमान तो सकता है; लेकिन ह्रास होता है, यह देखकर करनेवालेको सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। सम्बन्धमें भी यही बात है। हम प्रत्येक देशमें हैं कि मनुष्य खर्वाकार होते जा रहे हैं। यूरोप मनुष्योंकी जो खोपड़ियाँ मिली हैं, वे आजके खोपड़ीसे लगभग ढाईगुनी बड़ी हैं। कुछ देशोंमें सुरक्षित शरीर भी मिले हैं। दिल्लीके पास ही एक खोपड़ी मिली थी, जिसके नेत्रोंके छिद्रोंसे मनुष्यका सिर सरलतासे निकल सकता था। अत दीर्घाकृतियाँ हमारी समझमें भले न आयें, किंतु बाहरकी नहीं हैं। उनकी सत्यताका अनुमान सकता है।

संख्याके सम्बन्धमें आजकी यह मान्यता कि मनुष्य संख्या पहलेसे बढ़ी है, नितान्त भ्रमपूर्ण है। आज कहा जाता है, वह केवल क्षारसमुद्रसे घिरा पृथ्वीका सौवाँ भाग जम्बूद्वीप है। इसमें भी अफ्रिकाके वन, मध्य एशियाके मरुस्थल तथा दक्षिणी ध्रुवप्रदेश किसी स नगरोंसे पूर्ण थे। वहाँ सभ्यताके अवशेष मिल रहे जिन्हें हम महासागर कहते हैं, जिन्होने पृथ्वीका तीन डुबा दिया है, वे पहले थे ही नहीं। यह सिद्ध हो ग अफ्रिका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और यूरेशिया एशिया) कभी मिले हुए थे। यह एक ही भूख इनके मध्यमें समुद्र नहीं था। इन सभी समुद्रोंके नी मग्न पर्वतश्रेणियाँ हैं। कहीं-कहीं नगरोंके ध्वंसा जैसे जापानके दक्षिण-पूर्व। ये पर्वतश्रेणियाँ, जो ज भूमिकी पर्वतश्रेणियोंसे सम्बद्ध हैं। अतः पहले पूरा जम्बूद्वीप आजकी पृथ्वी तथा सागरके साथ जन मनुष्योंकी संख्या बहुत अधिक थी।

पुराणोंका भूगोल

सबसे बड़े आक्षेप हैं पुराणोंके भूगोलवर्णनको लेक द्वीप, सात सागर, सुमेरु, शेषके मस्तकपर अचलरू

हैं। पर सत्य बात तो यह है कि वैज्ञानिक भी अँधेरेमें
हैं अबतक। एक पृथ्वीकी आकृतिको ही लीजिये।
आकार कैसा है? झटसे कोई भी कह देगा कि
समान गोल; लेकिन वैज्ञानिकोंके लिये अब इसका
हुत टेढ़ा हो गया है। उनके सामने नीचेकी बातें
श्न खड़ा करती हैं—

हवाई-जहाज जब बहुत ऊपर उड़ जाता है, तब वहाँसे
उन्नतोदर न दीखकर नतोदर दिखलायी पड़ती है।
इजसे शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शकोंद्वारा लिये गये चित्रोंमें
का चित्र नतोदर आता है।

जैसे समुद्रमें जहाजका मस्तूल (ऊपरी भाग) पहले
पड़ता है और शेष भाग क्रमशः दीखता जाता है,
सपाट मरुस्थलमें नहीं होती। वहाँ दूरपर आता हुआ
ठा व्यक्ति धुँधला पर ऊँटके साथ पूरा ही एक साथ
पड़ता है। अतः समुद्रमें पानीके कारण प्रकाशकिरणें
जाती हैं, जहाजके क्रमशः दिखलायी पड़नेका यह
ना चाहिये।

कर्क-रेखापर देशान्तर-रेखाका एक अंश लगभग
की दूरी रखता है और मकर-रेखापर लगभग ७५
गे यह दूरी देशान्तर-रेखाओंकी घटती नहीं, कुछ
जाती है।

भूमध्य-रेखासे ४० अक्षांश उत्तरपर उषःकाल ९०
होता है और ४० अक्षांश दक्षिणपर केवल ५
।

एक चन्द्रग्रहण ३० अगस्त सन् १९०५ को लगा
कनाडा (उत्तरी अमेरिका), साइबेरिया (उत्तरी
) तथा मिस्र (उत्तरी अफ्रिका) से साथ-साथ देखा

दक्षिणी अक्षांश ७० पर शेटलैंड द्वीपमें वर्षका बड़े-
दिन १९ घंटे ५३ मिनटका होता है; किंतु उत्तरी
० पर नार्वेके हेमरफास्ट स्थानपर वर्षका बड़े-से-बड़ा
तीन महीनेका होता है।

उत्तरी ध्रुवके यात्री बतलाते हैं कि वायुके दबावके
हाँ ५० सेर भार कठिनतासे उठाया जा सकता है
कका शब्द २० फुटतक किसी प्रकार सुना जा
[illegible]

८—कहा जाता है कि कैप्टेन जे० रोस दक्षि
पर्याप्त भीतरतक गये। उन्होंने लिखा है कि उन्होंने
बर्फकी दीवाल देखी। उसकी चौड़ाई अज्ञात है। उसक
भाग पूरा समतल था और उसमें एक भी गड्ढा या दरार
उसके सहारे पृथ्वीके चारों ओर घूमनेका उन्होंने प्रय
वर्तमान नक्शोंके अनुसार वहाँ पृथ्वीकी परिधि
आठ सौ मील होनी चाहिये, परन्तु चालीस हजा
यात्रा करके भी वे उस हिमभित्तिकी परिक्रमा न क
उन्हें लौटना पड़ा।

९—पृथ्वी भी दूसरे ग्रहोंके समान एक ग्रह है।
है कि चन्द्रमाका सदा एक ही भाग पृथ्वीसे दिखायी प
लिये हुए चन्द्रमाके चित्र यही बतलाते हैं। यदि
अपनी धुरीपर चारों ओर घूमता तो उसका दूसरा
कभी-न-कभी पृथ्वीके सामने आता। इसी प्रकार
यदि ग्रह है तो उसका भी एक ही भाग चन्द्रमा
सम्मुख रहना चाहिये। वह धुरीपर घूमनेवाली नहीं हो

ये तो बड़े-बड़े प्रश्न हैं, जो सबकी समझमें आ
इनके अतिरिक्त नहरोंकी गोलाई, हवाई जहाजकी
पृथ्वीकी गति और गोलाईका प्रभाव, ज्वार भाट
सम्बन्ध रखनेवाले सूक्ष्म गणितके बहुत से प्रश्न हैं, जो
गोलाकार सिद्ध नहीं करते। वैज्ञानिकोंका कहना है
रेखा पृथ्वीकी वास्तविक मध्यरेखा नहीं है। देशान्त
उत्तरी ध्रुवकी ओर संकुचित तथा दक्षिणकी ओ
जाती हैं। पृथ्वी केन्द्रकी ओर सिकुड़ी और ऊपर फै
इसका स्पष्ट अर्थ है कि पृथ्वी नतोदर है। वह तश्तरी
गहरी है और नीचे केन्द्रमें सिकुड़ी है।

पद्मपुराणके अनुसार पृथ्वीकी आकृति खिले
समान है। उसकी कर्णिकापर सुमेरु पर्वत है और
ब्रह्माजी हैं। नियम यह है कि जैसा ब्रह्माण्ड,
पिण्ड; जैसा सौरमण्डल, वैसे ही परमाणु बनावट
हैं। इस नियमके अनुसार पृथ्वीकी आकृतिके
द्वीप होने चाहिये। हमारे जम्बूद्वीपकी आकृति भी
समान हुई। नीचे केन्द्रमें संकुचित, ऊपर फैलता
आकार कमलका होता है। यही बात वैज्ञानिक भी क
सातों द्वीप एक दूसरेके ऊपर पँखुड़ियोंके
भाँति हैं। उनके मध्यमें समुद्र हैं। जम्बूद्वीप सबसे

र जम्बूद्वीप क्षार समुद्र, प्लक्षद्वीप इक्षुरससागर, द्वीप सुरासमुद्र, कुशद्वीप घृतसमुद्र, क्रौंचद्वीप , शाकद्वीप दधिसमुद्र, पुष्करद्वीप निर्मल जल- ये क्रमशः एकसे दूसरे दुगुने बड़े हैं और एक दूसरे- ए हैं। अन्तिम पुष्करद्वीपको छोड़कर शेष छः ात-सात मुख्य भाग, सात-सात मुख्य पर्वत और बड़ी नदियाँ हैं।

ोलका यह वर्णन ठीक कमलके समान है। मध्यमें कर्णिकाकी भाँति है। इसीपर सुमेरु प्रतिष्ठित क दल-मण्डलके मध्यमें सागर है। प्रत्येक दल- सात-सात दल हैं। केवल कर्णिकाका द्वीप एक क कमलदलमें सात पर्वत (उनके उन्नत अग्रभाग-) और सात नदियाँ (उनके दलोंकी मुख्य समान) हैं। यह तो मुख्य वर्णन है। इसमें टे पर्वत तथा नदियाँ होंगी। भूमिमें परिवर्तन भी होते पुराणोंने ऐसे परिवर्तनोंका बहुत स्पष्ट वर्णन नहीं वहाँ भूगोलवर्णनमें भूमिकी नित्य आकृतिका वर्णन ो द्वीपमें भूमिसम्बन्धी परिवर्तन नहीं होगा, ऐसी कहीं नहीं कही गयी। इस जम्बूद्वीपमें ही तीन- ाग डूब गया और बाहरी क्षारसमुद्र वहाँ फैल गया हम देखते ही हैं। ऐसी दशामें हम जम्बूद्वीप- सात पर्वत और सात नदियाँ कैसे पा सकते हैं। यहाँ बड़ा परिवर्तन हो चुका।

तक समुद्री या हवाई जहाजसे पृथ्वीके चारों ओर र्वसे पश्चिम या पश्चिमसे पूर्वकी ओर ही घूमा जा । यह घूमना ऐसा ही है, जैसे कुएँमें मेढक एक ा लेता है। कमलाकार पृथ्वीके भीतर ऐसा ही चक्कर । गोल पृथ्वी हो तो उसके उत्तरसे दक्षिण भी ाना सम्भव होना चाहिये। यह काम तभी सम्भव उत्तरी या दक्षिणी-ध्रुव प्रदेश पार किया जा सके— दक्षिणी-ध्रुव देश। अभीतक कोई ध्रुव-देश पार नहीं ा सका और न उसकी सम्भावना ही है। उत्तरी पार करनेपर कदाचित् इस भूकमलकी कर्णिका । दक्षिणी-ध्रुव प्रदेश पार करके हम उत्तरी गोलार्ध- जायँगे, यह नितान्त भ्रमपूर्ण कल्पना है। हमें न्धकारपूर्ण क्षार-सागर मिलेगा और यदि किसी वीसे द्विगुण विस्तारका वह समुद्र पार किया जा सके क्षद्वीपमें पहुँच सकेंगे।

आज जिसे पृथ्वी कहते हैं, यह पृथ्वीका सौवाँ भाग सहाराके रेगिस्तान, अफ्रिकाके जंगल, हिमालयका भाग, दोनों ध्रुव-देश, समुद्र—अभी सब अज्ञात हैं भी हम पौराणिक भूगोलका उपहास करने बैठते हैं तो ध्रुव-प्रदेशके बाहर वास्तविक क्षारसमुद्र है। तो यहाँ द्वीपके भागमें भर आये हैं। ऐसी स्थितिमें ज्ञान वैसा ही है, जैसे किसी जंगली ग्रामके पाँच, स बालककी विश्वके सम्बन्धमें धारणा। सुमेरु, और पृथ्वीके आधार भगवान् शेषको पानेके लि मण्डूकबुद्धि मानवको इस कूपसे निकलनेमें बहुत वि अभी तो वह इतना भी कठिनतासे समझ पा रहा कमलाकार गहरी भूमिमें ही अबतक चक्कर काट और उसीको गोल पृथ्वी कहता रहा है।

स्वर्गीय प्रोफेसर रामदास गौड़का, उन्हीं सम्पादित 'विज्ञान' पत्रके फरवरी सन् १९३६ वे 'प्राच्य और पाश्चात्त्य खगोल-विस्तार'के सम्बन्ध लेख निकला था। उसमें उन्होंने शेषशय्याके तथा पृथ्वीसे उसकी दूरीका अनुमान किया है। यह भाव हम दे रहे हैं—

पुराणोंके अनुसार ब्रह्माजी उत्पन्न होनेपर जिस उत्पन्न हुए थे, उसके आधारका पता लगानेके लिं नाल-छिद्रमें प्रविष्ट होकर ३६ हजार वर्षतक नीचे च जब नाल समाप्त न हुआ, तब हताश होकर लौट मान लीजिये कि ब्रह्माजी एक टेमें केवल एक मील उतरे होंगे। इस प्रकार ३१ करोड़ मील जाकर भी नालका मूल नहीं पा सके थे। ब्रह्माजी एक घंटें मील उतरे, यह अज्ञात है; परंतु उनकी शक्ति, उत् का ध्यान रखना होगा। इस दृष्टिसे सोचनेपर नालक की संख्या बुद्धिसे बाहर हो जाती है। यदि नालकी शतांश भी कमलकी चौड़ाई हो तो नालकी ऊप कल्पित लंबाईके हिसाबसे ही उसकी चौड़ाई सा हजार मीलसे अधिक होती है। नालकी वास्तविक कल्पना करनेपर कमलकी चौड़ाई करोड़ों योजन यह भी ध्यान रखनेकी बात है कि ब्रह्माजी उस कर्णिकापर ही उत्पन्न हुए थे और उसके नालछिद्र हो गये थे। इस दृष्टिसे भी कमलका परिमाण बहुत होगा। जिसकी नाभिसे वह कमल निकला, वह तो अनन्त ब्रह्माण्डोंको लय कर लेता है। उसका आका और उसकी जो शेष-शय्या है, उसका विस्तार य

म यह है कि आकर्षण-शक्तिके कारण छोटा ग्रह
ो परिक्रमा करता है। वैज्ञानिकोंने जब जम्बूद्वीपको
मान लिया, तब सूर्य उन्हें बहुत बड़ा ज्ञात हुआ।
माना कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है। यह
भी उनकी अपनी नहीं है। यह मान्यता उन्होंने
ज्यौतिषके सौर-सिद्धान्तसे ली है। भारतमें चान्द्र,
ईस्पत्य, प्राजापत्य और ब्राह्म ज्यौतिषोंका वर्णन
आता है। इनमेंसे चान्द्र ज्यौतिष पृथ्वीको स्थिर
को चलता हुआ मानता है। सौरसिद्धान्त सूर्यको
र पृथ्वीको चलती हुई मानता है। बार्हस्पत्यसिद्धान्त-
ति स्थिर हैं और शेष सब गतिमान्। प्राजापत्यमें
तारा स्थिर और ब्राह्ममें सभी गतिमान् माने
। इन सिद्धान्तोंके गणित उत्तरोत्तर जटिल हैं।
और ब्राह्मसिद्धान्तका तो नाम ही कहीं मिलता
इन्स्टीनने सिद्ध कर दिया है कि हम ग्रहोंकी
ठीक नहीं जान सकते। हमारी ग्रह-गतिकी कल्पना
। ही रहेगी। जो पृथ्वीपर है, उसे सूर्य गतिशील
और जो सूर्यपर है, उसे पृथ्वी। वास्तविक बात सब
क् हुए बिना नहीं जानी जा सकती।

तिषके सिद्धान्त तो परिणामकी अपेक्षासे बने हैं;
णकार सर्वज्ञ महर्षियोंको सत्यका वर्णन करना था।
दिव्य शक्तिसे निरपेक्ष सत्यका साक्षात् करनेमें समर्थ थे।
क अधूरी भ्रान्तिपूर्ण खोजके आधारपर पुराणोंके किसी
गलत नहीं ठहराया जा सकता, सो भी ऐसी दशामें जब
दूसरे वर्णन क्रमशः निर्भ्रान्त सत्य सिद्ध होते जा रहे हैं।

। जब कि मनुष्य-समाजमें ऐसा पुरुष मिलना असम्भव-
या है, जो मनको एकाग्र करके वेदके किसी भी एक
अर्थ-दर्शन कर सके, समाजके लिये वेदार्थ जाननेका
साधन पुराण ही रह गये हैं। पुराण दिव्य, अपौरु-
षेय ज्ञानके आकर हैं। वे ही हिंदू-संस्कृतिके प्रेरक,
आधार तथा भंडार हैं। उनमें न तो विकृति आयी
। उनकी कोई बात कोरी कल्पना ही है। पुराणोंके
हाँ रूपक हैं, वहाँ उनको स्पष्टरूपसे रूपक बता
या है—जैसे श्रीमद्भागवतका पुरञ्जनोपाख्यान।
न अक्षरशः सत्य हैं। वे रूपक नहीं हैं।

-संस्कृतिमें महर्षियोंने कभी भौतिकताको महत्त्व नहीं
भारतने मनुष्य-जीवनका एकमात्र लक्ष्य अन्तर्मुख
त्मोपलब्धि करना माना। विश्वके दूसरे सब कार्य, सब
चेष्टाएँ इसी लक्ष्यको प्रेरणा दें—यह ऋषियोंकी स
रही। प्रत्येक राष्ट्र अपना इतिहास इसी दृष्टिकोणसे
है कि उसका उद्देश्य उससे पुष्ट है। महर्षियोंने भ
इतिहास, व्यक्ति, घटना आदिका इसी दृष्टिसे वर्ण
जो स्थल, घटनाएँ या व्यक्ति समाजके लिये आध्याति
देनेमें किसी प्रकार सहायक हो सकते थे, वे चाहे
दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण हों, उनका वर्णन किया ग
जो इस लक्ष्यमें प्रेरक नहीं थे, वे चाहे जितने
रहे हों, उनकी चर्चा नहीं है। जैसे पुराणोंमें यह
नहीं लगता कि जम्बूद्वीपका बड़ा भाग कब, क्यों
जलमग्न हुआ।

पुराणोंमें अनेक ऋषियों या प्रधान पुरुषोंके
सम्बन्धी त्रुटियोंके वर्णन हैं। ऐसी त्रुटियोंके कर
आदेश तो है नहीं; लेकिन सत्यको छिपाया भी
है। इस सम्बन्धमें साधारण दृष्टि और महापुरुषों
ही अन्तर होता है। महापुरुषोंका दृष्टिकोण हो
उनकी त्रुटियाँ प्रकट हो जानेसे समाज सावधान रहेग
समझ लेंगे कि इतनी उच्च स्थितिमें भी ऐसे विकार
हैं; वे प्रमाद नहीं करेंगे। पुराणोंमें महर्षियोंने
दृष्टिकोणसे त्रुटियोंको छिपाया नहीं है।

मनुष्यके मनमें अनन्त शक्ति है। आज मन
हो गया है। इतनेपर भी मनोवैज्ञानिक मानते हैं
संकल्पमें स्थूल पदार्थको प्रभावित, रूपान्तरित तथ
पुनर्निर्मित करनेकी शक्ति है। आरम्भिक युगोंमें म
थी। संकल्प बलवान् थे। इसी प्रकार प्रकृति
शक्तियोंका भी अत्यधिक ह्रास हुआ है। उस समय
भी अद्भुत अभिव्यञ्जक शक्ति थी। आज भी अनेक
ऐसी हो जाती हैं, जो तर्कसे सिद्ध नहीं हो पातीं।
प्रकृति और पूर्णशक्ति संकल्पके समयमें विचित्र ब
ही रहती थीं। उस समय वे साधारण ही थीं।
ऐसे वर्णन बहुत हैं। उनको देखकर उछल-कूद
व्यर्थ है। वे सत्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।

भारतीय ज्ञान, भारतीय दर्शन, भारतीय कला,
समाज-व्यवस्था—सबके आधार पुराण हैं। आधुनिक
को भी इनके लिये पुराणोंकी ही शरण लेनी पड़
ऐसी दशामें उनका पुराणोंपर आक्षेप और उनकी
उपहासास्पद ही है। पुराणोंका आदर, उनकी रक्षा तथ
ज्ञानके प्रसारमें ही हिंदू-संस्कृतिकी रक्षा एवं प्रतिष्ठा है

रामायणमें हिंदू-संस्कृति

(लेखक—श्रीशान्तिकुमार नानूराम व्यास, एम्० ए०)

ीकीय रामायणमें तत्कालीन भारतीय समाजका
ेशद एवं सर्वाङ्गपूर्ण चित्र उपलब्ध होता है।
खमें उस प्राचीन संस्कृतिका संक्षिप्त परिचय देनेकी
जाती है।

सामाजिक व्यवस्था

यणकालीन आर्योंकी सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रमकी
अवलम्बित थी। वर्ण चार थे। वेदोंका अध्ययन,
मका पालन, यज्ञोंका अनुष्ठान तथा दान—ये प्रथम
(द्विजों) के साधारण धर्म थे। स्वाध्याय, अध्यापन,
र प्रतिग्रह ब्राह्मणोंके विशिष्ट कर्म थे। पुरोहित और
बननेका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको था। अपने
योंके अतिरिक्त ब्राह्मणोंको अन्य जातियोंके कर्मोंद्वारा
ह करनेकी स्वतन्त्रता थी। तत्कालीन ब्राह्मणोंके उनके
र पाँच विभाग किये जा सकते हैं—(१) देव
-जो प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, जप, होम, अतिथि-देव-
बलिवैश्वदेव करते तथा बड़े सत्यवादी और सदाचारी
) मुनि ब्राह्मण—जो वनमें रहकर तपस्या करते,
से निर्वाह करते तथा दैनिक श्राद्ध करते थे। (३)
ण—जो वेदान्तका अध्ययन करते और अनासक्त
ख्य तथा योगका चिन्तन करते थे। (४) क्षात्र
-जो क्षत्रियोंकी भाँति शस्त्र धारण करते और युद्धोंमें
थे, उदाहरणार्थ भार्गव परशुराम। (५) वैश्य
-जो कृषि और गोपालनद्वारा जीवन-निर्वाह करते
हरणार्थ ब्राह्मण त्रिजट। कहना न होगा कि जाति
थी, न कि कर्मसे। क्षात्र अथवा वैश्यवृत्तिसे
ब्राह्मण भी ब्राह्मण ही कहलाते थे।

णोंका वध वर्जित था। दोषी ब्राह्मण भी अवध्य
ह्मणका धन हरनेवाला कठोर दण्डका भागी बनता
ह्महत्या महापातक थी। ब्राह्मणोंका व्यक्तित्व गौओं
ाओंके समान पवित्र माना जाता था। दैनिक जीवनमें
ो सर्वदा अग्रिम स्थान मिलता था। राजालोग
े प्रति प्रभूत सम्मान प्रदर्शित करते थे। श्रीरामको

और परामर्शदाता था। दशरथ और श्रीरामके शास
वसिष्ठको जो सम्मान और महत्त्व प्राप्त था, उससे
महान् गौरवका पता चलता है। ब्राह्मणोंकी इस अ
महत्ता और अलौकिक मान-प्रतिष्ठाका रहस्य था-
त्याग-भावना, ऐहिक वस्तुओंके प्रति अनासक्ति,
और धर्म-सेवामें तत्परता, निःस्वार्थ राजकीय सेवा,
बौद्धिक प्रतिभा एवं संगठन-शक्ति।

क्षत्रियका प्रमुख कर्तव्य प्रजाकी रक्षा करना था।
अनुसार क्षत्रिय धनुष इसलिये धारण करता है कि
'आर्त' शब्दका अस्तित्व ही न रहे—

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदि
(३।

ब्राह्मण, गौ और शरणागतकी रक्षा उसका वि
था। क्षत्रिय दान लेनेका नहीं, केवल दान देनेका
था। परशुराम और कार्तवीर्य अर्जुन, वसिष्ठ और
शुक्र और ययाति तथा वसिष्ठपुत्र और त्रिशङ्कु-जैसे
के अतिरिक्त ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके पारस्परिक
सौहार्दपूर्ण थे। क्षत्रिय ब्राह्मणोंको शीर्षस्थानीय
उन्हींका अनुगमन करते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय
कर-भारसे मुक्त थे।

वैश्यलोग कृषि, गोपालन और वाणिज्य-व्यवस
थे। वे ही अधिकतर कर चुकाया करते थे। अयो
अन्य नगरोंमें उनके लिये पृथक् और प्रशस्त निवास
थे। अपनी संख्या और ऐश्वर्यके कारण वैश्य
सबसे प्रभावशाली नागरिक थे। वैश्योंके व्यापा
'श्रेणी,' 'गण' और 'नैगम' कहलाते थे।

तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका विहित कर्म
यज्ञोंमें उपस्थित होनेका अधिकार था, यज्ञोंके
करनेका नहीं। वेदाध्ययन और तपस्या करनेका भी
नहीं था। चाण्डाल तत्कालीन समाजके अस्पृश्य
नीलवर्णके होते और नीले ही वस्त्र धारण करते थे
शरीरमें चिताकी राख लिपटी रहती और लोहेके

त्रेय विश्वामित्रका ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेना कुछ
के मतानुसार यह सूचित करता है कि उन दिनों
रिवर्तन कोई असम्भव बात नहीं थी। किंतु सच
र तो हमें इस घटनाको मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे आँकना
। ब्राह्मणवर्ण, जो स्वभावतः सत्त्वगुणप्रधान है,
धान क्षत्रिय वर्णका विरोधी है। विश्वामित्रको
काम-क्रोधसंयुक्त राजसी स्वभाव सात्त्विक वृत्तिमें
करनेके लिये अत्यन्त कठोर मानसिक अनुशासनका
तक अभ्यास करना पड़ा था। जब उनका हृदय
र क्रोधके प्रभावसे सर्वथा विशुद्ध हो गया, तभी उस
र्वश्रेष्ठ ब्राह्मण वशिष्ठने उन्हें 'ब्रह्मर्षि' के नामसे
। किया। इससे जाति-परिवर्तनका नियम सिद्ध नहीं
यह एक अपवादमात्र है।

ों वर्णोंके पारस्परिक सम्बन्ध सद्भावनापूर्ण थे।
'स्वकर्मनिरत' थे, अतः वर्ण-विद्वेष नामको भी
। अयोध्याके वर्णनमें कहा गया है कि क्षत्रिय
ो अपना नेता मानते, वैश्य क्षत्रियोंकी आज्ञा
रते और शूद्र अपने कर्तव्यका पालन करते हुए
ोंकी सेवामें संलग्न रहते थे। एक सर्वथा सुखी
-समाजकी स्थापना और उसका धर्मपूर्वक पालन
। राजाओंका मुख्य लक्ष्य था।

-व्यवस्थाके सहायक रूपमें ही ब्रह्मचर्यादि आश्रमों-
। है। वर्णाश्रमकी यह व्यवस्था व्यक्ति और समष्टि
पारस्परिक हितरक्षाके लिये पर्याप्त थी। वर्ण-
प्रत्येक व्यक्तिको एक सामाजिक प्राणी मानकर
र्व्यों और अधिकारोंका इस प्रकार निरूपण करता
उसके पारिवारिक वातावरण और सामूहिक हित
ष्टियोंसे समीचीन हों। दूसरी ओर आश्रम-सिद्धान्त
क्तिको एक अलग इकाईके रूपमें देखता है और
ाता है कि उसका आध्यात्मिक लक्ष्य क्या है, उसे
ीवन-यापन किस प्रकार करना चाहिये तथा अपनी
के लिये क्या उद्योग करना चाहिये।

कौटुम्बिक स्थिति

ीन भारतमें संयुक्त परिवारकी प्रणाली थी, जिसका
पिता होता था। पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की
। परिवारमें ज्येष्ठ पुत्रका अधिकारपूर्ण स्थान था।
का उत्तराधिकारी और उत्तरक्रिया करनेका पात्र
ु' नामक नरकसे बचने और पारलौकिक सुखकी
प्राप्तिके लिये पिता पुत्रकी कामना करते थे। दीर्घ
सदाचारी जीवन तथा धार्मिक अनुष्ठानोंके परिण
ही सुयोग्य पुत्रकी उपलब्धि हो सकती है। ि
पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करनेके कई उदाहरण मिल
परम्परागत रूढ़ियों और संस्कारोंका पालन
सदस्योंका परम धर्म था।

प्राचीन आर्य-संस्कृतिकी उत्कृष्टताका रहस्य
पारिवारिक जीवनकी श्रेष्ठता है। इसका समुज्ज्वल
रामायणमें चित्रित है। पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, पति
देवर-भौजाईमें, सास-पतोहूमें बड़े स्नेहसिक्त और अ
सम्बन्ध होते थे। कुटुम्बके अनुशासनमें तरुणवर्ग स्व
निश्छल प्रेम और सेवाभावना-जैसे आदर्श गुणोंको ह
करता था।

विवाह

पारिवारिक स्थिरता, लौकिक सुख और पा
कल्याण (मुक्ति) की दृष्टिसे विवाह प्रत्येक प्राणीके लिये
और वाञ्छनीय माना जा चुका था। कन्याके लिये तो वह
था; पाणिग्रहण उसका द्वितीय जन्म था। कन्याका
उसकी 'पतिसंयोगसुलभ' अवस्थामें और पुत्रका विव
'समुपस्थितयौवन' हो जानेपर हुआ करता था।
पूर्व वर-वधूमें परिचय नहीं रहता था। सीता, शान
मन्दोदरीने विवाहसे पूर्व अपने पतियोंके दर्शन नहीं
फिर भी वे पतिपरायणा निकलीं।

कन्याओंको पति-वरणमें स्वतन्त्रता नहीं थी। इ
में वे 'पितृवशा' थीं। राजाओंमें स्वयंवरका उल्लेख होनेप
स्वेच्छासम्मत नहीं था। जब वायुने कुशनाभकी क
विवाहका प्रस्ताव किया, तब उन्होंने कहा कि हमारे प
होंगे, जिन्हें हमारे पिता हमें अर्पित करेंगे।
भी विवाह पिताके आज्ञानुसार करना पड़ता था।
करनेके बाद सीताका स्वयं पाणिग्रहण करनेका अधिक
पर भी श्रीरामने दशरथकी आज्ञा न पानेतक सीताको
करनेसे इनकार कर दिया था। सन्तानके विवाहमें
सत्ताका इतना अधिकार होते हुए भी केवल इस
विवाहोंके दुःखमय होनेके उदाहरण नहीं मिलते
और मन्दोदरीके पतियोंका चुनाव उनके पिताओं
है। फिर भी उन्हें पतिप्रेम पर्याप्त मात्रामें मिला
श्रीरामकी प्रिया इसीलिये थीं कि वे उन्हें पिता द
अनुमतिसे प्राप्त हुई थीं—

तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ।
(१ । ७७ । २६)

धनके रूपमें पुत्रीको बहुत-सा उपहार देनेकी प्रथा
राफाल्गुनी नक्षत्र विवाहके लिये माङ्गलिक माना
। शास्त्रोक्त विधिसे सम्पन्न विवाह अविच्छेद्य था ।
पिता आदिके द्वारा जो कन्या जिस पुरुषको अपने
सार जलसे संकल्प करके दी जाती है, वह मरनेके
कमें भी उसीकी स्त्री होती है । स्वामीका त्याग,
कैसा भी हो, स्त्रीके लिये महान् अधर्म है । पर दुष्टा
रित्यागके उदाहरण मिलते हैं । राजाओं और धनी
विवाहकी प्रथा प्रचलित थी, पर श्रीरामने एकपत्नीव्रत-
णीय आदर्शकी स्थापना की ।

आदर्श उत्कृष्ट होते हुए भी व्यावहारिक था ।
पारस्परिक अनुरागको ही महत्त्व दिया गया है ।
और अप्रणय दोनों ही अनुचित हैं । अपनी पत्नीके
नुरागका रामायण समर्थन नहीं करती । कामपरायण
प्रशंसाकी बात नहीं है । विशेषकर स्त्रियोंके लिये
त्त' सर्वथा अनुचित है । वाल्मीकिने अविवाहित
यत प्रेमको बारंबार निन्दित और दण्डित किया
यणने 'स्वदारनिरत' होनेका ही आग्रह किया है ।
य व्यक्तिका नाश अवश्यम्भावी है । विवाहकी
--पत्नीत्वकी सफलता—प्रणय एवं सन्तान-प्राप्तिमें
है ।

स्त्रियोंकी स्थिति

के विवाहकी चिन्ता, उसके भावी जीवनको सुखी
उत्कट लालसाके कारण 'कन्यापितृत्व' सभी
लोगोंके लिये दुःखदायक था । किंतु कन्याओंसे घृणा
करनेका कहीं प्रमाण नहीं मिलता । उनका लालन-
पूर्वक किया जाता था । परिवारमें वे उपेक्षाका विषय
थीं । अविवाहित कन्याओंको माङ्गलिक और उनकी
को शुभ शकुन माना जाता था । रामायणके प्रमुख
की समीक्षासे यह स्पष्ट है कि विवाहके पूर्व उन्हें
में समुचित शिक्षा मिल चुकी थी । क्षत्रिय-कुमारियाँ
पौराणिक साहित्य, ललितकला तथा विभिन्न भाषाओंसे
थीं ।

हके पश्चात् कन्या वधूरूपमें पतिगृहमें प्रवेश करती थी,
पतिका प्रगाढ प्रेम और सास-ससुरका हार्दिक स्नेह
में प्राप्त होता था । पातिव्रत्य-धर्मका आदर्श अत्युच्च
था । स्त्रीके लिये पति ही देवता और पति ही प्रभु है ।
को अपने पतिके प्रिय और हितमें संलग्न रहकर सदा
सेवा करनी चाहिये, यही स्त्रीका लोक और वेदमें
सनातनधर्म है । अप्रतिम सौन्दर्य और एकनिष्ठ पाति
रामायणके अनुसार आदर्श पत्नीका मापदण्ड है । नारी
की 'सहधर्मचारिणी' थी, 'समान-सुखदुःखिनी' थी ।
यज्ञ-यागादि कर्मोंमें पति और पत्नी दोनोंका संयुक्त
होता था । वैदिक श्रुतियाँ पत्नीको पतिकी अभिन्न
बतलाती हैं । पतिपर स्त्रीके मुख्यतः तीन अधिकार
भरण-पोषणका अधिकार, स्त्रीधनका अधिकार तथा
एकनिष्ठाका अधिकार । पुरुषके पारिवारिक एवं बाह्य
उसकी सुयोग्य पत्नी सब प्रकारसे सहयोग देती थी ।
तारा और कैकेयी-जैसी तेजस्वी नारियोंने अपने
राजनीतिक घटनाओंको बहुत प्रभावित किया ।

नारीके पत्नीत्वकी सफलता उसके मातृत्वमें थी
कालमें आचार-विचारकी पवित्रता मनोऽनुकूल सन्तानके
के लिये आवश्यक थी । गर्भकी रक्षाके लिये मन्त्रानुष्ठ
जाते थे । भ्रूणहत्या महापातक थी । माताका अपने
प्रति निश्छल ममत्व था और पुत्र भी उसका असी
करते थे । यद्यपि वैधव्य स्त्रीके लिये घोरतम विपत्ति
तथापि विधवाएँ अनादरका पात्र नहीं थीं । द
विधवा रानियाँ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं ।

स्त्रियोंको पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी । उ
राज्याभिषेकमें, यज्ञोंमें, सामूहिक भोजोंमें, श्राद्धकर्ममें,
क्रियामें स्त्रियाँ सम्मिलित होती थीं । अपने पतिकी वे 'क्री
थीं । विविध वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो वे अपने-अपने
साथ देश-विदेशमें भ्रमण करतीं । न्यायालयोंमें
भाँति स्त्रियाँ भी प्रवेशकर शिकायत कर सकती थीं ।
अनुसार स्त्रियोंके लिये न घर, न वस्त्र, न दीवारें
राजसत्कार ही वैसी आड़ करनेवाला है, जैसा कि उनका
सदाचरण । स्त्रियोंके प्रति उच्च शिष्टाचारका पालन किया ज
उन्हें सभी प्राणियोंके हाथों अवध्य माना गया था ।
चढ़ते समय स्त्रियोंको पहले स्थान दिया जाता था
महिलाएँ आगेकी ओर बैठायी जाती थीं । परायी
ओर देखना असभ्यता थी । स्त्रियोंके सामने अपने
निवारण कर लेना चाहिये । महात्मालोग स्त्रियोंके प्र
दारुण कार्य नहीं करते ।

आहार-विहार

पणकालीन आर्य अपने आहारमें बड़े सुरुचिपूर्ण थे। पक्वान्नोंका बहुतायतसे प्रयोग करते थे। अतिथियों-कोटिके भोजनसे स्वागत करना उन्हें विशेष प्रिय नके चार प्रकार थे—भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और गोंका प्रमुख आहार गेहूँ और चावल था। चावलसे न्नोंमें हविष्यान्न (घीमें उबाला हुआ चावल), दूधकी खिचड़ी), मोदक (चावल, दाल और चीनी- , मृष्टान्न (चावलके मालपूए) और पायस (खीर) थे। दूध और दूधसे बने पदार्थोंका प्रचुर व्यवहार होता , क्षीर (खोआ या छेना), कृशर, कपित्थ (मट्ठा) और ीर)के रूपमें दूधका सेवन किया जाता था। घृतका स्थल-उल्लेख मिलता है। स्नेह अथवा तेल, लवण और जैसे नमक, उपदंश और निष्ठान जैसे मिर्च-मसालों म्लरस-जैसी खटाईका प्रयोग भी देख पड़ता है। ाके रसोइये पाकविद्यामें बड़े प्रवीण थे और वे कुण्डल रके भोजन परोसते थे। आम्र, बदरी, दाडिम, इक्षु, खर्जूर, कदली, नारिकेल और पनस-जैसे फलोंका चलित था। मधु और फलासव पेयके रूपमें स्वीकार ते थे। ब्राह्मण प्रायः शाकाहारी थे। मांसाहारकी तुलनामें को ही श्रेष्ठ माना गया है। विशालरूपमें सामूहिक यः किये जाते थे, जहाँ असंख्य नर-नारी आकर ते और जहाँ खाद्य एवं पेय पदार्थोंका अटूट स्तुत रहता। ऐसे अवसरोंपर किसीका अनादर या हीं की जाती थी। भोजनका कृत्य एक यज्ञ था, र्पण-क्रिया थी, जिसका उद्देश्य मुख्यरूपसे देवताओं, ों, मित्रों और सम्बन्धियोंको तृप्त करना था और ते अपना प्राणधारण।

नका समुचित आनन्द उठानेके लिये मनोरञ्जनके ाधन प्रस्तुत थे। आध्यात्मिक और भौतिक दोनों आर्योंने समानरूपसे उन्नति की। कोसल प्रदेशको नारीकः समाजोत्सवशोभितः' (२। १००। ४४) ा है। गोष्ठियों और समाजोंमें मनोविनोदके विविध मौजूद थे। हास्यकार और कथाकार राजाओंका विनोद । राजप्रासादोंमें पालतू पशु-पक्षी रानियोंके विनोदके े। द्यूत, शतरंज, संगीत, नृत्य और नाटक, उद्यान-

जीवन, संयम, अहिंसा, विलासके साधनोंका सीमित उप इन आदर्शोंका ध्यान रक्खा जाता था।

वस्त्र और आभूषण

सूती, रेशमी, ऊनी, सुनहरे, चमकीले, रंग-बिरं का नागरिकोंमें बहुत व्यवहार होता था। वनवासी लो चीर और वल्कल धारण करते। पवित्र कार्योंमें क्षौम (वस्त्रोंका प्रयोग होता था। स्त्री-पुरुष दो वस्त्र धार थे—उत्तरीय और अधोवस्त्र। ब्रह्मचारीगण एक धारण करते थे। स्त्रियाँ अपने अधोवस्त्रको कि रशनासे कस लेती थीं। उत्तरीय उनके कन्धों और व पर पड़ा रहता था और आवश्यकता होनेपर शीघ्रतासे जा सकता था। साड़ी पहननेकी 'कच्छ' शैलीका र उन दिनों व्यवहार नहीं था। सीनेकी कला थी। सिरपर साधारण लोग मुकुट धारण कर राजागण किरीट। पगड़ी (उष्णीप) का भृत्यवर्गतक सीमित था। पैरोंमें लकड़ीकी पादुकाएँ य के उपानह धारण किये जाते थे। राजा हेमभूषित पहनते थे। नर-नारी दोनों आभूषणप्रिय थे। सैनि भी आभूषणोंसे सज्जित होकर जाते। हाथियों, घो गौओंको आभूषणोंसे सजानेकी प्रथा थी। शरीर अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें मनोहर आभूषण धारण किये जाते जवाहरातोंका भी प्रचुर व्यवहार था। और मालाओंका आभूषणोंकी भाँति व्यवहार होत सौन्दर्यकी वृद्धिके लिये दैनिक शृङ्गार (प्रतिकर्म) था। चन्दन और अङ्गरागका बहुतायतसे उपयोग हो

शिष्टाचार

रामायण-काल सभ्यता, शिष्टता, मधुर संवाद व्यवहार और आदर्श शिष्टाचारका युग था। रामाय शिष्टाचार भारतीय शिष्टाचारका सदासे आदर्शभूत पञ्च महायज्ञोंमें अतिथि-सत्कारका विशिष्ट स्थान था। अ का पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, गौ और आसनद्वारा स्वा जाता। क्या तपस्वी और क्या राजा, आतिथ्यमें अप के अनुसार सारे साधन जुटा देते थे। ऋषियोंकी अ में आतिथ्य-भार उनकी पत्नियोंपर आ पड़ता था। क्रियाके पश्चात् कुशल-सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाते।

ओंसे उनके राष्ट्र, कोश, सुहृत्, बन्धु-बान्धव, मन्त्रिगण
ओंके दमनके बारेमें जिज्ञासा करते थे। आसन ग्रहण
य बड़े-छोटोंके यथान्याय बैठनेकी परिपाटी थी।
प्राञ्जलि, अञ्जलि-पुट, प्रणिपात, नामोच्चारण
क्षिणाद्वारा छोटे बड़ोंके प्रति सम्मान अभिव्यक्त
। गुरुजन छोटोंका आलिङ्गन कर, उनका मस्तक
और उन्हें आशीर्वाद देकर अपना स्नेह प्रकट करते
यस्क मित्रोंमें आलिङ्गन और हस्त-संपीडन सामान्यतः
अभिवादन-प्रणाली थी। चलते समय बड़े आगे
र छोटे उनका विनीत भावसे अनुसरण करते।
सम्बोधन-प्रणाली बड़ी शिष्ट और गौरवपूर्ण थी।
के लोग संस्कृतमें ही संभाषण करते थे। उपकारोंके
ज्ञता प्रकट करनेकी तथा अपराधोंके लिये क्षमा-
रनेकी प्रथा प्रचलित थी।

चार या लौकिक समयका पालन वाञ्छनीय था।
से सभी डरते थे। संशयकी दशामें पूर्वजों या श्रेष्ठ
ार्गका अनुसरण ही श्रेयस्कर माना जाता था।
या आश्चर्यकारी कृत्योंके सम्पादनपर साधुवाद या
जाती थी। यज्ञ या राज्याभिषेकके अवसरपर
निमन्त्रण दिये जाते और अभ्यागतोंके स्वागत-
सुन्दर प्रबन्ध किया जाता। विशिष्ट व्यक्तियोंके
र लेकर जानेकी रीति थी। मित्रता अग्निको साक्षी
जाती थी। तत्कालीन राजकीय जुलूस बड़े सुव्यवस्थित
द्योतक थे। अपने वचनोंकी प्रामाणिकता घोषित
ये अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुकी शपथ ली जाती
ने सत्य पक्षका आग्रह करनेके लिये 'धरना' देनेका
। सार्वजनिक विरोध या दुःख प्रकट करनेके लिये
ओरसे 'हड़ताल' की जाती थी। रथ या वाहनपर
य उसकी पूजा-प्रदक्षिणा की जाती थी। किसी उक्ति
ा महत्त्व बढ़ानेके लिये उसकी तीन बार पुनरुक्ति की
। मुहूर्तमें, दैव अथवा भाग्यमें, शकुनोंमें, स्वप्नोंमें,
व-जीवनकी सौ वर्षकी अवधिमें लोगोंका दृढ़ विश्वास
पर आ पड़नेवाली विपत्तिका कारण राजाका ही कोई
ाना जाता था।

शिक्षा-दीक्षा

ाका स्तर बहुत ऊँचा था। अयोध्यामें कोई
पण, क्रूर, मूर्ख अथवा नास्तिक पुरुष देखनेको
मिलता था। शिक्षाको राजकीय प्रोत्साहन प्राप्त
था। वाल्मीकिके अनुसार जन्म-जन्मान्तर्गत संस्कार
को अच्छा या बुरा बनाते हैं, चाहे फिर उसे शिक्ष
ही क्यों न दी जाय। रावणकी माताने विश्रवा मु
कुसमयमें गर्भाधानके लिये प्रार्थना की, जिसके परि
रावण और कुम्भकर्ण बड़े क्रूर औ दुराचारी
उनके ब्राह्मणत्व, वेदाभ्यास और कठोर तप
वास्तविक जन्मगत कुसंस्कारोंको बदलनेमें असम
मुनियोंके आश्रम ही तत्कालीन पाठशालाएँ थीं। गुरुकी
रहकर शिष्य वैदिक ज्ञान, शिष्टाचार, सदाचार आदिको
करता था। गुरुकी शुश्रूषा उसका परम धर्म था।
अनध्यायका दिन था। अयोध्या नगरी शिक्षाका मह
थी। वहाँ उपाध्याय सुधन्वाका सैनिक शिक्षालय था,
कुमार शस्त्राभ्यास करते थे। वासिष्ठों, तैत्तिरीयों, काठकों
तथा अगस्त्य और कौशिक ऋषियोंके शिक्षालयोंमें
गत शिक्षाकी व्यवस्था थी। सूतों और मागधोंद्वारा
पौराणिक पाठशालाएँ भी अनेक थीं। यज्ञ-समारम्भों
प्रसारमें बड़ी सहायता मिलती थी। शिक्षण-व्यवस्थाके
चार भाग थे—शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक औ
शारीरिक शिक्षामें धनुर्विद्या, मृगया, अश्वचर्या,
बाहुयुद्ध, गदायुद्ध तथा मल्लयुद्धका समावेश था।
शिक्षाके अन्तर्गत वेद, वेदाङ्ग, काव्य, साहित्य,
पुराण, ललित कलाएँ, अर्थशास्त्र, राज
विषय थे। व्यावहारिक शिक्षणमें व्यापार,
कौशल, आयुर्वेद तथा अनेक प्रकारके उद्यो
समावेश था। नैतिक शिक्षाद्वारा बालकको सदाचारी
बनाया जाता। अनेक प्रकारकी रहस्यमयी विद्याएँ भी
थीं। अध्ययन-अध्यापनकी प्रणालियोंमें मौखिक
कण्ठाग्र अभ्यास, कथा-वार्ता, पाठ, स्वाध्याय तथा
तर्क-वितर्क आदि प्रचलित थे। लिखनेकी कला भलीभ
थी। आश्रमोंमें महिलाओंकी उपस्थिति और शिक्ष
सूचना मिलती है। श्रीरामकी शिक्षा सर्वाङ्गपूर्ण थी।
आदर्श ये थे—गौ, ब्राह्मण, चातुर्वर्ण्य, कुटुम्ब औ
रक्षाके लिये पर्याप्त शारीरिक बलका संपादन; सर्वाङ्गी
एकाङ्गी ज्ञानकी अपेक्षा; पुस्तकीय विद्याकी अ
सांस्कृतिक उत्थान, विचार-स्वातन्त्र्य, शिक्षाके नैति
धार्मिक पहलुओंपर आग्रह, चरित्र-गठन, व्यक्तित्वका
विकास तथा सामूहिक (सामाजिक) कर्तव्योंका

आर्थिक स्थिति

। देशका प्रमुख उद्योग था । राजाको 'कृषिगौरक्ष्य-
की सुविधाओंका विशेष ध्यान रखना पड़ता था ।
द्धिपूर्ण थी । श्रीरामके पूर्व देशपर दो दुर्भिक्ष आ
द्यपि लंबे राम-राज्यमें दुर्भिक्षका नामतक नहीं था ।

साधनोंमें प्राकृतिक साधनोंके अतिरिक्त कृत्रिम
भी सङ्केत मिलता है । खेत (क्षेत्र अथवा केदार)
न'के पश्चात् उसकी जुताई और बुवाई की जाती ।
वर्षा उपजके लिये बड़ी लाभकारी थी । यव
। गोधूम (गेहूँ), शालि (चावल), चणक
इक्षु (ईख), कुलित्थ (कुलथी), माष (उड़द), तिल,
मुद्ग (मूँग) की खेती बहुतायतसे होती थी ।
ई औजार प्रयुक्त होते थे—जैसे हल, कुदाल, लाङ्गल,
ल, टंक आदि । खेतीकी प्रणाली वैदिक कालकी
धिक उन्नत थी कृषिके अतिरिक्त उद्यानचर्या
द्योग भी प्रचलित थे । गोपालन और गोसंवर्धनके
घोड़ों और हाथियोंकी अच्छी नस्लें उत्पन्न करनेका
व्यवसाय था । पशुपालनद्वारा दुग्ध, दुग्ध-पदार्थ,
। और चमड़ेका व्यवसाय होता था । जंगलोंकी
नव-उपयोगमें लायी जाती । खानोंसे खनिज पदार्थ
जाते । लोहा, ताँबा, पीतल, काँसी, सोना, चाँदी,
ौर टीन-जैसे खनिज पदार्थोंका उल्लेख मिलता
ातुओंसे बनी वस्तुओंका दैनिक जीवनमें पर्याप्त प्रचार
स्त्रोद्योग भी प्रचलित था । लाक्षाराग या कुसुमरससे
गे जाते थे । व्यापारकी स्थिति बड़ी ही समृद्ध थी ।
भी व्यापार होता था । समुद्री व्यापारके भी
ाण मिलते हैं । सोना, चाँदी, आभूषण, हीरे-जवाहर,
ते, चावल, मिर्च, रेशमी वस्त्र तथा लाक्षा-जैसी
विदेशोंको निर्यात की जाती तथा कम्बोज आदि
घोड़े, ऊनी वस्त्र, रेशम, कस्तूरी, याक बैलके
ादि आयात किये जाते थे । विनिमयका माध्यम
। निष्क नामक सिक्के भी प्रचलित थे । नाप-तोलों-
हार होता था । रामायणमें लगभग ८० प्रकारके
उद्योगोंका स्पष्टतः उल्लेख है । थल, जल और
ीनों मार्गोंसे यातायात होता था । रथ, शिविका,
शु, नाव और विमान यातायातके साधन थे । देशकी
स्थिति बड़ी ही वैभवशाली और समृद्धिपूर्ण थी ।
ौर ग्रामोंके निवासी दीर्घजीवी, नीरोग, प्रसन्न और
धन-धान्यसम्पन्न थे । इस आर्थिक सुव्यवस्थाका रहस्य र
धनका संतुलित बँटवारा था, जिसमें आर्योंकी व
व्यवस्था विशेषरूपसे सहायक थी ।

नगर, ग्राम और आश्रम

रामायणकालीन नगर-संनिवेश स्थापत्य-कलाका
उदाहरण है । प्रायः सभी नगरोंकी प्रतिष्ठा दुर्गोंके
होती । बाहरी आक्रमणोंसे रक्षाके लिये वे विशाल
और दुर्गम खाइयोंसे घिरे रहते । प्राकारोंपर रक्ष
प्रत्याक्रमणके अनेक साधन प्रस्तुत रहते । सैनि
नगर अभेद्य बनाये जाते थे । फिर भी कला और
की उपेक्षा नहीं की जाती थी । नगर प्रायः नदियोंके
नीरोग वातावरणमें बसाये जाते । उनका आकार क
दलके समान, कभी अर्धचन्द्राकार और कभी अष्टके
होता था । सुन्दर विमानाकार भवन, चौराहे, उद्यान,
सुव्यवस्थित बाजार तथा वृक्ष नगरोंकी शोभा बढ़
रास्तोंपर छिड़काव होता और फूल बिखेरे जाते । रा
नगरके मध्यमें होता और वहाँसे चारों दिशाओंमें
जाते । नगरके बाहर आमोद-प्रमोदके लिये आर
विहार बने रहते । तत्कालीन सुन्दर नगरोंमें अयोध्य
किष्किन्धा, तक्षशिला, पुष्कलावती और मधुपुर
उल्लेखनीय हैं । राजा और प्रजा दोनों नगरोंकी शोभ
तत्पर रहते थे । नागरिकताकी भावनासे वे ओतप्रो

ग्रामों और नगरोंमें साहचर्य था । दोनों आ
साधनोंसे जुड़े रहते, जिससे पारस्परिक विकासमें
मिलती थी । किसानोंकी बस्तियाँ 'ग्राम' और
बस्तियाँ 'घोष' कहलाती थीं । उनके निवासस्था
संवास' कहलाते थे । गाँवोंके बाहर जुते हुए
दृश्य दिखलायी पड़ते थे । बड़े गाँव 'महाग्राम'
थे । अयोध्यामें ग्रामवासियों (जानपदों) की
का कई बार उल्लेख मिलता है ।

रामायणकालीन संस्कृति मुख्यतः तत्कालीन न
आश्रमोंकी देन है । ऋषियोंके आश्रम ही उस
सांस्कृतिक केन्द्र थे, जहाँकी रीति-नीति नगरोंको प्रभा
थी । ये आश्रम प्रायः 'एकान्त' या 'विविक्त' स्थलों
कोलाहलसे दूर रमणीय स्थानोंमें बसाये जाते थे
वृक्षोंकी शाखाओं, पत्तों, मिट्टी, घास और रस्सि
बनाये जाते थे । एक आश्रममण्डल या तपोवनका

'कुलपति' होता था । असमयमें आने-जानेपर रास्तों-
[illegible]नके लिये ऋषिलोग ऊँचे वृक्षोंमें अपने चीर बाँध
पुण्यात्मा महर्षियोंद्वारा सेवित ये आश्रम आध्यात्मिक
[illegible]ागार होते थे, जहाँ मनुष्य पापाचरणकी ओर
ही प्रेरित नहीं होता था । वनवास कष्टपूर्ण होते
[illegible]ण्यसंचयके लिये आवश्यक माना जाता था । वनवासी
[illegible]ना समय देवपूजा, सन्ध्या, तर्पण, होम, श्राद्ध,
स्वाध्याय और तपस्यामें व्यतीत करते । वे नियता-
जितेन्द्रिय रहते, फल-मूलोंपर निर्वाह करते,
[illegible]क जीवन-साधनोंका ही उपयोग करते और नाना
[illegible]ारीरिक कष्ट स्वेच्छासे उठाकर सहिष्णु और तितिक्षु
[illegible]रन्तर प्रयत्न करते थे। साथ ही भारतके प्राचीन ऋषि-
[illegible]ळ एकान्तवासी तपस्वी ही नहीं थे, अपितु परि-
अनार्य राज्योंमें आर्य-संस्कृतिके प्रसारक और
[illegible]मी थे ।

साहित्य और कला

[illegible]यण एक कवि-कलाकारकी मनोहर रचना है । राम-
[illegible] अलौकिक विषयको एक अनूठी, संगीतमय, छन्दो-
[illegible]दनशील शैलीमें प्रस्तुतकर वाल्मीकिने अपने
[illegible]ाहित्यकारोंके लिये एक अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत
—

[illegible]नयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः ।

[illegible]यण महाकाव्यका तत्कालीन समाजने हार्दिक स्वागत
[illegible]ामायण-गान उसके लिये एक नूतन, चमत्कारी और
अनुभव सिद्ध हुआ । श्रीआनन्दवर्धनाचार्यके अनुसार
रसकी प्रथम उद्भूति रामायणमें वर्णित क्रौञ्च-वध-
[illegible]ुई है । काव्यके अतिरिक्त उस युगमें आख्यान,
और दर्शनका भी सेवन होता था । नक्षत्रविद्या,
आयुर्वेद, प्राणिशास्त्र, अङ्कगणित, रेखागणित-जैसे
विषयोंसे सम्बन्धित सामग्री भी रामायणमें यथेष्ट
[illegible]लती है ।

[illegible]ीकिकी रचना कविकी कलात्मक अभिरुचिकी
है । उसमें स्थापत्यकला, चित्रकला, वास्तुकला,
नाट्यशाला और नृत्य-जैसे कलात्मक विषयोंपर
सामग्री उपलब्ध है । कलाका अनुशीलन करनेमें योग
[illegible]क्तिका आश्रय लिया जाता था । योगद्वारा कवि

मूर्तरूप देनेको कटिबद्ध होता । रामायण-रचनामें [illegible]
मार्गद्वयका अनुसरण किया है ।

धार्मिक जीवन

रामायणकालीन संस्कृति धर्मद्वारा पूर्णतया [illegible]
थी । वेदोंका प्रमुत्व सर्वव्यापी था । धार्मिक [illegible]
वे प्रमाणभूत थे । नये घरमें प्रवेश करनेसे पूर्व 'वा[illegible]
नामक कृत्य संपादित किया जाता था । नयी फ[illegible]
लानेसे पहले 'आग्रयण' कृत्यद्वारा नये धानसे दे[illegible]
प्रसन्न किया जाता था । प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य आर[illegible]
के अवसरपर स्वस्त्ययन क्रिया की जाती थी । दैनिक
धार्मिक कार्य 'आह्निक कृत्य' कहलाते थे—जिनमें स्ना[illegible]
तर्पण, मार्जन, प्राणायाम, गायत्री-जप, अग्निहोत्र औ[illegible]
[illegible]र्चन सम्मिलित थे । रामायणकालके आर्य उपयुक्त
सन्ध्योपासन करनेमें बड़े जागरूक रहा करते थे ।
क्रियामें प्रेतकार्य, उदक-क्रिया, पिण्डदान, निर्वाप-क्रि[illegible]
श्राद्धकर्म किये जाते थे तथा १० दिनका अशौ[illegible]
जाता था । प्रार्थनाद्वारा इष्टसिद्धिमें लोगोंकी बड़ी श्र[illegible]
मन्दिरोंका स्थल-स्थलपर उल्लेख मिलता है । विभिन्न [illegible]
के विग्रहोंकी स्थापना हो चुकी थी । सारे संस्कार [illegible]
सम्पन्न हुआ करते थे । तीर्थ-स्थानोंकी यात्रा भी [illegible]
थी । गौकी पवित्रता सर्वमान्य थी । अनेक प्रकारके
अनुष्ठान किया जाता था, जिनमें शास्त्रीय विधिके
पूर्ण ध्यान रक्खा जाता । अनेक देवी-देवताओं
प्रचलित थी, जिनमें त्रिमूर्तिको विशेष स्थान प्राप्त था
और विष्णुके भक्तोंमें कोई विरोध नहीं था । गङ्गा
आदि नदियाँ, नदियोंके संगम, वटवृक्ष, गया-[illegible]
चित्रकूट और हिमालय-जैसे पर्वत पुनीत मान्य हो [illegible]
नैतिकताका स्तर बहुत ऊँचा था । अयोध्यापुरी[illegible]
करनेवाले सभी मनुष्य धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ, [illegible]
अपने धनसे ही सन्तुष्ट रहनेवाले, संयमी तथा शील और
की दृष्टिसे महर्षियोंकी भाँति विशुद्ध थे । प्रति[illegible]
सत्यवादिता, कृतज्ञता, इन्द्रियनिग्रह तथा दान[illegible]
वाल्मीकिने स्थल-स्थलपर आग्रह किया है । कर्म-सिद्धान्त
विश्वास था । यह संसार एक कर्म-भूमि है, जहाँ मनु[illegible]
[illegible]

था। धर्म जीवनके समग्र उत्कर्षका मूल स्रोत था—

ण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।

(३ । ९ । ३०)

वक और दैवी जीवनकी ओर प्रेरित करनेवाली धर्मके अन्तर्गत थीं। रामायणके चरित्र-चित्रणमें कार मूर्तियाँ, धर्मके ज्वलन्त आदर्श विद्यमान हैं। शरणागत-धर्मका, हनुमान्‌में सेवकधर्मका, ख्यधर्मका, दशरथमें पितृधर्मका; श्रीराममें पुत्रधर्म, और राजधर्मका; कौसल्यामें स्त्रीधर्मका, सीतामें र्मका तथा भरत और लक्ष्मणमें भ्रातृधर्मका आदर्श सन्निहित है।

रामायणका हिंदू-संस्कृतिपर प्रभाव

संस्कृतिके सभी क्षेत्रोंमें रामायणका अपरिमित ड़ा है। वाल्मीकिके चरितनायक श्रीरामकी पूजा ा अमिट अङ्ग है। रामानुज, रामानन्द, कबीर सीदासने श्रीरामका एक आदर्श राजा और ईश्वरीय रूपमें प्रचार किया, जिससे हिंदू जनता अत्यधिक हुई। भारतीय नैतिकताका तो रामायण उद्गम- है। रामायणके आदर्शोंका अनुकरण भारतीय समर्थकों और उन्नायकोंका सदासे लक्ष्य रहा है। ाव्यों तथा नाटकोंके कथानक रामायणके पर्याप्त । मुरारिके शब्दोंमें 'समस्त कविरूपी व्यापारियोंके ीकिने एक सामूहिक पूँजी प्रस्तुत कर दी है'—

अहो सकलकविसार्थसाधारणी खलु इदं वा सुभाषितनीवी।

आधुनिक समयमें होनेवाली रामलीलाएँ भी र कथानकके प्रति लोकरुचिकी द्योतक हैं। भारतीय रामायणद्वारा प्रभावित है। राजपूत-शैलीकी चि रामायण-सम्बन्धी चित्रोंका बाहुल्य है। जोधपुर-म्यु सैकड़ों वर्ष प्राचीन ९१ रामायण-सम्बन्धी चित्रोंक संग्रह विद्यमान है। प्राचीन भारतीय स्थापत्यकलाके नमूनोंपर रामायणकी छाप देख पड़ती है। साँची, अ भारहुत, उदयगिरि, बुद्धगया, नासिक, मथुरा और प्राचीन अवशेषोंपर रामायणमें वर्णित प्रासादों और तथा सजावट और निर्माणकलाका प्रभाव प्रत्यक्ष प होता है। कुमारगुप्त प्रथमकी एक उपलब्ध मुद्रापर अयोध (२ । २ । २२) के उस वर्णनका चित्र अङ्कित है हाथीपर सवार होकर श्रीराम राजमार्गसे जा रहे हैं, औ सिरपर छत्र तना हुआ है। गुप्तकालीन दशावतार- तथा विजयनगरकालीन हजारा श्रीराम-मन्दिरमें रामाय दृश्य खुदे हुए हैं। पहाड़पुर (बंगाल) के आठवीं श मन्दिरमें रामायणकी कई घटनाएँ खुदी हुई हैं। अनेक प्राचीन शिलालेखोंमें रामायणके शब्दों, भा श्लोकार्धोंको उद्धृत किया गया है। यही नहीं, बृहत्तर देशोंकी कला, साहित्य और संस्कृतिपर भी वाल्मीकीय का प्रभाव आज भी स्पष्ट झलकता है।

हिंदुओंकी धर्मनिष्ठा और सचाई

'हिंदू-धर्मका आचार-निर्माणकारी प्रभाव इतना विशाल था कि केवल उच्चवर्णके ही लोग नहीं, वरं तिके लोग भी शास्त्रोपदिष्ट युद्धकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म परम्पराओंका पालन करते थे।' रातको लड़ना अथवा करना लोग जानते ही नहीं थे। हिंदू लोग सच्चे वीर थे, तभी तो शत्रुके प्रति उनके मनमें लेश रहता था। इसीलिये विश्रामकालमें वे एक ही नदीमें स्नान करते तथा एक दूसरेको पान-सुपारी

'दिये हुए वचनके प्रति साधारणसे भी साधारण हिंदू-सैनिकका इतना विलक्षण आदर था कि जब प्रतिज्ञाबद्ध करके छः मासके लिये छोड़ा जाता था, तब यदि वे मुक्ति पानेके लिये माँगे हुए नहीं कर पाते तो अपने-आप वापस आ जाते थे। उनमें अपकीर्तिको सदा मरणसे भी अधि ाता था। सत्यनिष्ठाके प्रति पूरी सावधानीका अभाव तथा शत्रुकी किसी प्रतिकूल परिस्थितिसे ल इनको अपमानजनक समझा जाता था। —पुर्तगाली लेखक

हिंदू-संस्कृति और श्रीरामचरितमानस

(लेखक—मानसराजहंस पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

-उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय करनेपर
ागम होनेसे 'संस्कृति' शब्द सिद्ध होता है, जिसका
'सम्यक् रूपसे अलङ्कृत बनावट', या यों कहिये कि
ानपूर्वक गुणाधान'। इसमें सन्देह नहीं कि
स्त्रोंमें इस शब्दका एकाधिक अर्थोंमें प्रयोग हुआ है;
हेंदू-संस्कृति' शब्दका अर्थ 'हिंदुओंद्वारा गृहीत
न-गुणाधान-परिपाटी' ही होना चाहिये।

जगत् गुण-दोषमय है। शुद्ध गुण या शुद्ध दोषका
आँखतले नहीं आता। गुणमें दोष मिला हुआ है,
में गुण मिला हुआ है—यथा 'बिधि प्रपंच गुन अवगुन
मानुषी बुद्धि इसके वर्गीकरणमें सर्वथा असमर्थ है।
(रसायनशाला) में भी इनका विश्लेषण नहीं हो
अतः गोस्वामीजी कहते हैं—

गनि गुन दोष बेद बिलगाए।

गुण-दोषसे सने हुए प्रपञ्चमेंसे गुणों और दोषोंका
वेदादि शास्त्रोंने किया। अतः इनका निर्णेता
शास्त्र है। कहना नहीं होगा कि प्रचलित मत-
ने भी रूपान्तरसे उसी निर्णयको स्वीकार किया है।
ा समय, जब कि ईश्वरपर विश्वास करना असभ्यता
ताका द्योतक माना जाता है, वेदादि शास्त्रोंकी कथा
है। आज छोटी-सी-छोटी बातें विवादास्पद हो
शब्द तथा उनके अनादि-सिद्ध अर्थोंमें स्वेच्छा-
ा बोलबाला हो रहा है, रुचिके अनुसार गुण-दोषकी
ी जा रही है, तदनुसार ही वेदादि शास्त्र भी निर्दयता-
ोड़े-मरोड़े जा रहे हैं! ऐसी स्थितिमें 'हिंदू-संस्कृति' जैसे
था गम्भीर विषयपर विवाद उठना इस समय कोई
ी बात नहीं है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है
ू-संस्कृति क्या है? और उसके शुद्धरूपका दर्शन
ायसे सम्भव है?'

त जिज्ञासुके लिये इसका उत्तर कुछ बहुत कठिन
। इस समय जितनी संस्कृतियाँ प्रचलित हैं, उनका
०० वर्षोंके भीतरका है। इससे पहलेकी संस्कृति ही
[illegible]

क्योंकि व्याख्याताकी विप्रलिप्सासे उसमें भी अर्थक
किया जा सकता है।

परंतु श्रीरामचरितमानस हिंदीमें है। वह 'ना
निगमागमसम्मत' है, उसे सभी सम्प्रदायके लोग
दृष्टिसे देखते हैं। उसमें कथा भी उस समयकी है,
इन विभिन्न संस्कृतियोंका गन्ध भी नहीं था, जिनके
हिंदू-संस्कृति विप्रतिपत्तिका विषय हो रही है। उस
मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र हैं, जिन्हें संसार
नरपतिरूपसे स्वीकार करता है, और उसके रचयि
वीतराग महात्मा हैं, जिनपर पक्षपात, विप्रलि
स्वार्थ-परायणतादि दोषोंका आरोप नहीं किया जा
अतः श्रीरामचरितमानस ही एक ऐसा ग्रन्थ है
हिंदू-संस्कृतिके विशुद्ध रूपका दर्शन बड़ी आसा
सकता है।

उसमें उपादेयरूपसे जिस भाँति हिंदू-सं
कथन है, उसी भाँति हेयरूपसे लङ्काकी संस्कृति
तथा कलि-खल-अघ-अवगुण-कथन भी है; अतः
उक्तियोंमें हिंदू-संस्कृति निखरी हुई-सी दिखायी
सुतरां हिंदू-संस्कृतिके सम्यक् ज्ञानके लिये मैं
श्रीरामचरितमानसके अध्ययनके लिये अनुरोध
यहाँपर तो उसका अधूरा स्थूल मानचित्र भी देना क

श्रीरामचरितमानसमें दो समृद्ध देशोंका वि
वर्णन है, एक श्रीअयोध्यापुरीका और दूसरा लङ्का
अयोध्यापुरीका राज्य वंशपरम्परागत है, और
शासक रघुवंशी क्षत्रिय हैं, जिनका प्रजापालन स्व
उनके शासनमें आधुनिक वादोंके सभी गुण थे
एक भी नहीं। उनकी प्रजा स्वतन्त्र होनेपर भी मन
राजा प्रजाका आराधन करता था, उसके हृद्गत
दूतोंद्वारा जानकर उनकी तुष्टिके लिये अपनी
सती साम्राज्ञीको त्याग सकता था। और प्रजा राज
राजाके लिये अपने प्राणोंको निछावर करनेके लिये प्रस्
थी। शासकने धर्मभावना इतनी प्रबल बना रक्खी
लोग पापसे भयभीत रहते थे, अपराध या विरोधक
ही उनमें नहीं थी। वहाँ एक ही आन्दोलन चलता
[illegible]

जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
हु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज ॥

रहिं परसपर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥

लोग अपना-अपना काम ईश्वरार्पणबुद्ध्या करते की कामना किसीको नहीं; अतः बिना मूल्य दिये में सौदा मिलता था ।—'बस्तु बिनु गथ पाइए ।' भी नया काम करनेके पहले राजा प्रजासे सम्मति ा, यहाँतक कि श्रीरामचन्द्र-ऐसे पुत्रको गद्दी देनेके राज दशरथ प्रजाजनोंसे कहते हैं—

हि मत लागै नीका । करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥

शमात्र कहकर अब मैं विरोधी संस्कृति (लङ्काकी) का रूप कुछ दिखलाता हूँ । लङ्काके शासक बड़े ब्राह्मण रावण थे, अतः राज्यशासन उनका स्वधर्म । लङ्का उनकी पराक्रमार्जित थी । उन्होंने भी ाजको सुखी कर रक्खा था। सम्पूर्ण संसारको लूटकर ोनेकी लङ्का बना रक्खी थी, यथा—

कि राख्यौ रासि सब जाँगर जहान भो ।

अपनी रायसे राज्य करते थे, मन्त्रीकी भी नहीं । राजाको मन्त्री चाहिये, इसलिये मन्त्री रख छोड़ा ा—

बरु बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र ।
ीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र ॥

ट् रावण वेद-पुराणको विद्रोहात्मक समझते थे, से बहुत चिढ़ते थे; जिस भाँति धर्म निर्मूल हो, वैसी ही ी आज्ञा निकाला करते थे । धर्मके मूल गौ, ब्राह्मण ताओंके विरोधमें नित्य आन्दोलन चलता था ।

े होइ धर्म निर्मूला । सोइ सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥
ं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर ग्राम पुर आगि लगावहिं ॥
चरन कतहुँ नहिं होई । देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
जोग धर्म ब्रत दाना । सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥

यह हुआ कि अतिशय धर्मकी ग्लानि देखकर पृथ्वी भयभीत होकर व्याकुल हो उठी; क्योंकि धर्मविरोधी होनेसे आसुरी प्रकृतिके लोग बहुत ो गये । वे माता-पिता और देवताको नहीं मानते थे, साधुओंसे सेवा लेते थे । दूसरेके धन और पर लम्पट खल, चोर और जुआरियोंकी वृद्धि हुई; अव्यवस्था फैल गयी ।

ऐसा समय भी जिस उपायसे पलटा जा उसका भी निर्देश श्रीगोस्वामीजीने वहीं कर दिया उपाय वेद-शास्त्रसम्मत है और सहस्रों बारका पर कभी व्यर्थ जानेवाला नहीं है । वह यही है कि इस भाँति संसार सङ्कटाकीर्ण हुआ है, तब-तब इकट्ठे होकर भगवान्‌की शरणमें गये हैं, और प्रार्थना की है । प्रार्थनाका महाप्रभाव अचिन्त्य द्रवीभूत होकर परमेश्वर भक्तोंके मनोरथको पूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वीने उसी उपायका अवलम्बन किय देवताओंकी शरणमें गयी, उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थन

उसी प्रार्थनासे द्रवीभूत होकर भगवान्‌ने उक्त महाराज दशरथके घरमें अवतार धारण किया औ द्वारा लङ्कावाली विरोधिनी संस्कृतिका नाश होक हिंदू-संस्कृतिकी पुनः स्थापना हुई ।

भौतिक उन्नति यद्यपि उपेक्षाकी वस्तु नहीं है, वह संस्कृति नहीं है । संस्कृति उससे कहीं ऊँची भौतिक उन्नतिका सदुपयोग या दुरुपयोग हाथमें है । लङ्कामें जो उन्नति हुई थी, उसे पढ़क होता है । वायुयान वहाँ थे, गोले वहाँ शत्रु-सेना जाते थे । रणाङ्गणमें दिनको सिनेमाके ऐसे- दिखाये जाते थे, जिन्हें देखकर शत्रुकी सेना युद्ध- होती थी । विज्ञान इतना बढ़ा था कि बनावटी श दिखलाकर उसकी पत्नीको विपत्ति-सागरमें डाल पर इन सबसे संसारका हित नहीं हुआ, क्यों संस्कृति कुत्सित थी ।

यह संसार है; एक रंगसे न कभी रहा, अनेक प्रकारकी उन्नति और अवनतियाँ आया-ज हैं । इसमें हिंदू-संस्कृति यही है कि किसी भी स्वधर्मका परित्याग न करे; क्योंकि धर्म ही प्रभुका है । यथा—

सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमा
तुलसी धरमु न छाड़िये कहि करि गए सुजा



रामायणमें हिंदू-संस्कृति

(लेखक—स्व० कवि-सम्राट् पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')

स प्रान्तके लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् और वक्ता श्रीयुत ऐयरने एक बार अपने एक प्रसिद्ध व्याख्यानमें —'हमारा राज्य छिन जाय, ऐश्वर्य धूलमें मिल जाय, -दलित हो, सम्पत्ति हर ली जाय, हम सर्वप्रकार हो जायँ, सर्वस्व गँवा दें, तो भी हम निःस्व न रामायण और महाभारत-जैसे हमारे अलौकिक रत्न ह सके।' इस कथनका रहस्य क्या है ? वास्तवमें है कि जातिकी संस्कृति ही उसका जीवनसर्वस्व कोई जाति अपनी संस्कृति खोकर जीवित नहीं । संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे नका विशाल प्रासाद निर्मित होता है। जिस दिन शिला स्थानच्युत होगी, उसी दिन पुष्ट-से-पुष्ट भहरा पड़ेगा। संसारमें कुछ निर्जीव जातियाँ जीवित हैं; किंतु अपनी संस्कृतिको खोकर वे ण हैं, उनको मरी ही समझिये—चाहे आज मरें, । कारण यह है कि संस्कृति ही किसी जातिके पता देती है; यही वह चिह्न है, जो उसके पूर्व न् आदर्श और लोकोत्तर कार्य-कलापद्वारा संसारकी तेयोंसे उसको पृथक् करती है। जिस समय चारों न्धकार होनेके कारण वह अवनति-गर्तकी ओर ती रहती है, उस समय उसीके आलोकसे आलोकित उचित पथ ग्रहण करती है और उस समुन्नति- चढ़ने लगती है, जो उसको उत्थानके समुच्च आरूढ़ कर देता है। भारतमें यवन, शक, हूण ी-बड़ी बलवान् जातियाँ आयीं। परम पराक्रान्त वह जाति आयी, जिसने जहाँ शासन किया, वहीं अपने वेजय-दुन्दुभि बजायी, जिसके द्वारा देशका देश मेंं दीक्षित हो गया। किंतु रामायण और महाभारत- संस्कृतिके बलसे हिंदू-धर्म आज भी जीवित है। ही नहीं, उसने अपनी वह अलौकिक महत्ता कि जिसके बलसे संसार-विजयिनी करवाल भी ड़े हो गयी। जिस समय भारतव्यापी मुसलमान- उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा था और उसकी ...

जायगी, हिंदू-धर्म लुप्त हो जायगा, हिंदू-जाति ना जायगी और भारतभूमिका अपार विभव मुसलमा विशाल उदरमें समा जायगा, उस समय कतिप आत्माओंमें कुछ ऐसी संस्कृति जाग्रत् हुई, जिसने वर्षकी काया ही नहीं पलट दी, हिंदू-जातिका पु भी कर दिया। यह बात इतिहास जाननेवालोंको नहीं। यह कौन संस्कृति थी? वही रामायण-महाभा उस रामायण और महाभारतकी, जो हिंदू-संस्कृतियों हैं। मैं समझता हूँ, अब मद्रास प्रान्तके उपर्युक्त कथनका रहस्य आपलोगोंकी समझमें आ गया होगा

भारतमें समय-समयपर विभिन्न विचारके बड़े-ब आये, कुछ कालतक उनके प्रबल वेगके सामने वह विसर्जन करता दिखलायी पड़ा। परंतु उसके धै स्थानच्युत कभी नहीं हुआ। वह सदा सँभला और भारतीयताकी धारामें उसने सबको विलीन कर लिया महान् संस्कृति ही उसकी इस सफलताका कारण है। पुङ्गव वाल्मीकिकी महिमामयी लेखनी जिस प्रकार संस्कृतियोंका उल्लेखकर धन्य हुई है, उसी प्रकार तुलसीदासकी कलामयी कवितामें भी उनका चमत्कार दृष्टिगत होता है। गोस्वामीजीका वर्णन स लिये है, इसलिये उन्हींकी रामायणसे कुछ ऐसी सं का वर्णन यहाँ किया जाता है, जो हमारे सामाजिक संजीवनी शक्तियाँ कही जा सकती हैं। गोस्व रामायण आर्यसभ्यता और संस्कृतिका अलौकिक जहाँ देखिये, वहीं उनकी लेखनी इस विषयमें मार्मिकतासे चलती दिखलायी पड़ती है। उनकी रा 'गेहे-गेहे, जने-जने' प्रचार क्यों है ? इसीलिये कि हि जिन आदर्शोंको देखकर पुलकित होता है, जिन उल्लसित और रससिक्त बनता है, उसमें उन्हीं आद भावोंका बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण है। गोस्व लेखनीका चमत्कार यही है कि वह मूर्तिमन्त आ है; यह मूर्तिमत्ता कहीं-कहीं इतनी मनोहर और ...

ता है। वही कविता मर्मस्पर्शिनी होती है, जिसमें
य सुन्दरतासे सामने आते हैं, जिनको हम प्रायः
ते अथवा जिनका अनुभव प्रतिदिन करते रहते
ामीजी इसी प्रकारकी कविताओंके आचार्य हैं।
'ख'-पुष्प तोड़ते हैं न अगम-अगोचरका व्यापार
न अधरमें प्रासाद-निर्माण ही; वे मानव-चरित्रमें
की महत्ताका प्रदर्शन करते हैं और नित्यके कार्य-
ही 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'की कल्पना। इसीलिये वे
कहते हैं, उसको हृदय स्वीकार कर लेता है। कुछ
रकी कृतियाँ आपके सामने उपस्थित की जाती हैं।
की आज्ञा शिरोधार्यकर भगवान् श्रीरामचन्द्र वन-
लिये प्रस्तुत हैं, श्रीमती कौसल्यादेवीकी सेवामें
होकर उनसे अनुनय-विनय कर रहे हैं; इसी समय
दया विदेहनन्दिनी वहाँ आयीं। गोस्वामीजी
:—

चार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥

के द्वितीय भागमें कुल-ललनाकी कितनी मर्यादाशीलता
ई है, यह अविदित नहीं। भगवती जानकी सीधे
गवान् श्रीरामचन्द्रके सामने नहीं खड़ी हो गयीं।
थोपकथन नहीं प्रारम्भ किया, क्यों? इसीलिये कि
मती कौसल्यादेवीका तिरस्कार होता। आर्यजातिकी
ति है कि बड़ोंकी उपस्थितिमें बहुएँ लज्जा त्यागकर
म्भाषण नहीं करतीं, उनसे बोलतींतक नहीं।
कुलीनोंमें यह परम्परा प्रचलित है। फिर आदर्श
तादेवी ऐसा क्यों करतीं। वे आयीं और सासकी
ना करके, सिर नीचा करके बैठ गयीं। कितना
व है! 'बैठि सिरु नाइ' लिखकर गोस्वामीजीने जो-
कता दिखलायी है, यही उनकी विशेषता है। यह
रु नाइ' जानकीजीके हृदयका प्रतिबिम्ब है।
द्वारा उन्होंने अपनी मर्यादाशीलता, अपनी आकुलता
नी अशक्तताका ही प्रदर्शन नहीं किया, दैन्य
र सहायताकी भिक्षा भी माँगी। सम्भव है, आज-
शिक्षिता ललनाएँ इसको पराधीनताकी कुत्सित बेड़ी
किंतु यह मर्यादाशीलताकी वह मौक्तिकमाला है,
[illegible]

वह अपने सुख-विलासमें ही जीवनकी सार्थक
समझतीं; वह तभी कृतकृत्य होती हैं, जब
आत्मीयजन, अथवा अन्य उपकार-कामुक जनोंकी
आत्मोत्सर्ग कर पाती हैं। वे उच्छृङ्खलता एवं
मर्यादाशीलताको और संकीर्णहृदयता एवं म
सहृदयताको उत्तम समझती हैं। इसीलिये शा
आदेश हैं कि जिनसे इस प्रकारके संस्कारोंका उ
कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेवि
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बल
(मनु० २

भगवान् मनु कहते हैं, 'जो अभिवादनशील औ
वृद्धसेवातत्पर हैं, उनकी आयु बढ़ती है, तथा उन
यश और बल प्राप्त होता है।'

विवाहकालके समय सप्तपदीमें स्त्री यह प्रतिज्ञा क

कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा तं मञ्जुभाषिण
दुःखे धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साब्रवीद्व

'कुटुम्बकी रक्षा करूँगी, सदा मधुरभाषिणी रहूँग
धीर और सुखमें आनन्दित रहूँगी।'

१—गुरुषु सखिषु भृत्ये बन्धुवर्गे च भर्तु-
र्व्यपगतमदमाया वर्तयेत् स्वं यथा
२—भार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भा देववत्पतिमानुकूल
तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामात्मनि सन्निवेशयेत्।
३—श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या तत्पारतन्त्र्यमनुत्तरवादिता
प्रचण्डालापकरणमनुच्चैर्हासः तत्तु प्रियाप्रियेषु
प्रियेष्विव वृत्तिः। (व

१—पतिके गुरुजनोंसे, सखाओंसे और बन्धु
सेवकोंसे निरभिमान रहकर यथायोग्य बर्ताव करे।

२—भार्याको चाहिये—पतिको देवताके स
उसकी इच्छाके अनुकूल जीवन व्यतीत करे
सम्मतिके अनुसार कुटुम्बीजनकी चिन्तामें लीन रहे

३—कुलवधू सास-ससुरकी सेवा करे, उनकी
रहे, उनकी परतन्त्र बने, उनकी बातोंका जवाब न
भाषण करे, जोरसे न हँसे। उनके प्रिय-अप्रिय
प्रिय-अप्रियके समान समझे।

ीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥

पद्यमें यथावसर 'मृदु बानी' शब्दका कितना सुन्दर
। यदि दोहेका 'पद कमल बंदि बैठि सिरु नाइ'
जानकीके विनय-नम्र हृदयका सूचक है, तो यह
नी' शब्द कौसल्यादेवीके कोमल वात्सल्यपूर्ण हृदयका
है। इसके उपरान्त श्रीमती कौसल्यादेवीके हृदय-
अवस्था हुई, इसकी सूचना यह अर्द्धाली देती है—
कुमारि देखि अकुलानी।' कितनी स्वाभाविकता है!
शीघ्र अपनी पुत्रवधूके हृदयमें प्रवेश कर गयीं।
जी सासके समीप सिर नीचा करके बैठ तो गयीं,
न खुला; वे कुछ कह न सकीं। कैसे कहतीं, सङ्कोचने
द जो कर रक्खा था। यही नहीं; हृदयमें दुःखकी
त्र घनघोर घटा उठ रही थी; वे सोच रही थीं—

मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥
हत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
न कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना॥
नख लेखति धरनी। ....॥

आपने, सामयिक अवस्थाकी कितनी सुन्दर वर्णना
नमित मुख' से 'चारु चरन नख लेखति धरनी'
भावमय शब्द-विन्यास हैं। उनसे श्रीमती जानकी-
ङ्कोचमय दशा, उनके चिन्ता-नाट्य, उनके दृढ़
वित्र प्रेम आदिपर कितना सुन्दर प्रकाश पड़ता है।
जो घटा धूमसे उठ रही थी, नेत्रोंके सहारे वह बरस
स्वामीजीने लिखा—

मंजु बिलोचन मोचति बारी।

ल्यादेवी पहले ही सब समझ गयी थीं, नेत्रोंके
नको और आर्द्र कर दिया; इसलिये दूसरी अर्द्धाली
गयी—

बोली देखि राम महतारी॥

महतारी' का कितना सार्थक प्रयोग है! पुत्रपर
अधिकार तो सूचित हुआ ही, साथ ही उनके
महत्ता और द्रवणशीलता भी उससे विदित हुई।
री क्या बोलीं, अब उसे भी सुनिये—

सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहि पिआरी॥
जनक भुपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रति
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह प
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ र
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ कि

करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि
बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि

बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि
सुर सर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंस
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत

श्रीमती कौसल्यादेवी आदर्श माता ही नहीं,
सास भी हैं। सासका पतोहूके प्रति वह सच्चा और
स्नेह जो गृहको स्वर्ग बनाता है, गार्हस्थ्य-धर्मको
कर कुटुम्बको सुख-शान्तिमय कर देता है, वे उसक
थीं। भावमय शब्दोंमें उनके हृदयका प्रेम जिस
व्यञ्जित हुआ है, वह बड़ा ही गम्भीर, उदात्त एवं द्रा

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्र
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन

इन पंक्तियोंमें कितनी ममता भरी है, इनमें
आदरभाव और प्यार है, कितना प्रेम और वात
कितनी करुणा और द्रवणशीलता है, क्या यह बतलाना
कौन सहृदय है, जो इन भावोंको इनमें छलकता न प
जब कौसल्यादेवी कहती हैं—

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि
बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख
कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि

तब जानकी देवीकी सरलता, कोमलता, उनके स्व
भोलापन और उनकी भीरु प्रकृति आँखोंके सामने फि

हती रहतीं, उनके सुखसे रहनेका ध्यान न रखती उनके मुखसे इस तरहकी बातें न निकलतीं। इन उनकी व्यथा ही मूर्तिमन्त होकर विराजमान उनकी वह वाञ्छा भी झलक रही है, जो पुत्रवधूके क्लेशोंको देखकर भी विचलित होती है—

र रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी॥
भग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥

ष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥

ी पुत्रवधूके पक्षमें अपने पुत्रसे कोई सास इससे गैर इससे उत्तमतासे क्या कह सकती है। इन एक कुल-बालाका हृदय खोलकर उसके प्रियतमको गया है, और साथ ही यह भी सूचित किया गया एक पतिप्राणाके वियोग-विधुरा बननेपर उसका ा सङ्कटापन्न हो सकता है। इनमें कौसल्यादेवीकी जितनी सुन्दरतासे स्फुटित हुई है, उतनी ही ावुकता, सहृदयता और मार्मिकता भी। एक ओर धूकी गम्भीर मनोवेदना, उसकी वन-गमनकी आदिका आवरण हटाती हैं, और दूसरी ओर ाँखें खोलती हैं; और उसे उचित कर्तव्यके लिये करती हैं। ऐसे अवसरपर वे अपने उत्तरदायित्वको भूलतीं; वे पुत्रके महान् कर्तव्यों, उनके असीम ौर दैवदुर्विपाकको समझती हैं।

एव यह आज्ञा नहीं देतीं कि अपनी स्त्रीको ाथ लेते जाओ, केवल इतना ही कहती हैं—

चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
ारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥

व्यथित और विरहकातरा होकर यह कह पड़ती हैं—

भवन रहैं कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥

अन्तिम पद्य उनके व्यथामय आन्तरिक भावका । पुत्र जाय तो जाय, किंतु विनयशीला पुत्रवधूको त्यागना चाहतीं। फिर भी कलेजेपर पत्थर रखकर आत्मसुखको तिलाञ्जलि दी, और जानकीदेवीकी ोंकी ही मरहम-पट्टी करनेकी पूरी चेष्टा की; नकी महत्ता और महानुभावता, यहीं 'राम महतारी' ी सार्थकता हुई है। आर्य-संस्कृतिकी ही यह श्रीमती जानकी-जैसी पुत्रवधुएँ दिखलायी पड़ें, जिस पवित्र गृहोंमें पाश्चात्त्य कलुषित प्रभावोंका अशुभ प्रवेश न

माताकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्र हुए। पहले तो विवेकमय वचन कहकर उन्होंने समझाया। इसके उपरान्त जानकीजीसे कुछ कहना परंतु मर्यादा बाधक हुई, माताका सङ्कोच हुआ। समय देखकर उन्हें उनसे कुछ कहना ही पड़ा। गो लिखते हैं—

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं प्रबल कालसे उनकी भी न चली। श्रीमती जान उन्होंने जो कुछ कहा, उसे सुनिये—

राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कह
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखौं

कैसी उचित और मार्मिक बातें हैं! भगवान् श्री जैसे विनय-नम्र और मर्यादाशील पुत्रके मुखसे दूस बात निकलती। उन्होंने यह भी कहा—जो कुछ मैं हूँ, वह गुरु एवं श्रुतिसम्मत है; अतएव इस ध बिना कष्टका अनुभव किये लाभ करना चाहिये।

गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस

श्रुति कहती है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव

शास्त्र कहता है—

प्रत्यक्षदेवता माता·····················

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

स्मृति कहती है—

संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी
कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्पर

(याज्ञ

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता

ा, पिता और आचार्य देवता हैं।' 'माता प्रत्यक्ष
। जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ हैं।'
ंयतोपस्कर (थोड़े गहनोंवाली), दक्ष, हृष्ट और
पराङ्मुखी होना चाहिये। पतिमें रत रहकर सदा
की सेवा करना उनका धर्म है।' 'उपाध्यायसे
ाचार्यका, आचार्यसे शतगुण पिताका और पितासे
गौरव माताका है।'

ाधान धर्मकी शिक्षा देनेके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्र-
भयङ्करताओं और वहाँकी असुविधाओंका बड़ा ही
र्णन किया है। पाठक रामायणमें उनको देख सकते
कांश वर्णन बड़ा ही भावमय और सुन्दर है, कवित्व
कूट-कूटकर भरा है। कुछ पङ्क्तियाँ देखिये—

ार गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥
तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
केलि सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥
; बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥

पंक्तियोंमें कितनी स्वाभाविकता और भावुकता है,
ा स्वयं उसका अनुभव करें। कुछ पाश्चात्त्य
ा मत है कि श्रीमती जनकनन्दिनीका चरित्र जिस
रतीय कवियोंने अङ्कित किया है, वह कल्पित है; उसमें
ताका लेश नहीं। 'उनपर विपत्तिका पहाड़ टूट
परंतु उस अवस्थामें भी उनको कुछ कहते नहीं
ता। ज्ञात होता है कि उनके मुखमें जीभ नहीं, या
नके मुखपर मुहर लगा दी है। वे बड़े-से-बड़ा दुःख
परंतु उफ् भी नहीं करतीं। वज्र टूट पड़ता है, किंतु
; नहीं। ऐसी प्रस्तर-प्रतिमा हो सकती है, कोई
णी नहीं।' ऐसी-ही-ऐसी तर्कनाएँ करके वे दिलके
ोड़ते हैं, और इस प्रकारकी और कितनी ही
बातें कहते रहते हैं। वास्तव बात यह है कि
तावरणमें उनके हृदयका विकास हुआ है, जो दृश्य
ोंके सामने उपस्थित होते रहते हैं, पति-पत्नीके जिन
; व्यवहारोंका उनको अनुभव है, वैसी ही उनकी
रम्परा और मननशैली है। यूरोपकी स्त्रियोंमें
यणता अधिक होती है, वे उतनी पतिप्रेमिका और
नहीं होतीं, जितनी एशिया—विशेषतः भारतकी
नाएँ होती हैं। वे पतिपरायणा तभीतक रहती हैं,

यह प्रवृत्ति बहुत ही प्रबल हो गयी है। पतिकी
रहना, उनकी सेवाके लिये आत्मोत्सर्ग करना, उनक
आत्मविक्रय है। विवाह-बन्धन उनकी दृष्टिमें उतन
नहीं, वे बातकी बातमें उसे तोड़ सकती हैं। उनका
उग्र, असंयत और प्रायः उच्छृङ्खल होता है। इस
प्रवृत्तिको वे तेजस्विता कहती हैं। उनकी स्वतन्त्रताक
इतनी तीव्र होती है कि पतिके सामने यदि थोड़ा भ
पड़े, तो वे उसे परतन्त्रता मान बैठती हैं। जिस दे
समाजके ऐसे आदर्श हों, उस देश और समाजमें प
मनुष्य यदि सीतादेवीको अधिक धीर, गम्भीर
आत्मत्यागकी मूर्ति और पतिप्राणा देखकर उनके
तथाकथित विचार प्रकट करे तो क्या आश्चर्य। मेरे
यह मतलब नहीं कि यूरोपमें पतिपरायणा स्त्रियाँ
नहीं; ऐसा कहना और सोचना अन्याय होगा। मिल्ट
स्थानपर 'ईव' के मुखसे इन शब्दोंको कहलवाया है।
उन्होंने आदमसे कहे हैं—

"What thou bidd' st, unargued
So God ordains, God is thy law,
mine."

'जो आपकी आज्ञा होती है, उसे मैं बिना
सुने स्वीकार करती हूँ। ईश्वरीय इच्छा यही है
नियन्ता ईश्वर हैं और मेरे आप।'

संसारमें जितनी सती-साध्वी स्त्रियाँ होंगी, प्रा
हृदयका भाव ऐसा ही होगा। यदि यूरोपकी स्त्रि
भाव न पाया जाता तो मिल्टनकी लेखनीसे ऐसे शब्द
ही नहीं, अभावमें भाव नहीं होता। यूरोपकी
रजोगुण और तमोगुण ही होता है, सत्त्वगुण नहीं—ऐ
अस्वाभाविक होगा। वहाँ स्वाभाविकताका लोप हो
कृत्रिमता ही शेष है—यह भी नहीं कहा जा सकत
यह परम सत्य है कि आजकल धार्मिकताका स्थान स्वेच्
ग्रहण कर रही है, इसीलिये वहाँका वायुमण्डल विशेष
हो गया है। यूरोपमें सती-साध्वी स्त्रियोंका अभ
किंतु वे उँगलियोंपर गिनी जा सकती हैं। क्षेत्र इ
ही स्त्रियोंके हाथमें है, जिनका चित्रण ऊपर
आजकल हमारे यहाँ भी पढ़ी-लिखी स्त्रियोंने यूरोपकी
अनुकरण आरम्भ कर दिया है। अतएव उन्हींके
लोग प्रभावित हैं, और वैसे ही असंगत विचार

श्रीमती सीतादेवी भारतकी सती-साध्वी स्त्रियोंकी ाणि हैं। उनको आर्य-संस्कृतिकी दिव्य मूर्ति कह सकते हैं। मुखमें जिह्वा है, किंतु बड़ी ही संयत। उनके मुहर कभी नहीं लगी। वे समयपर बोलती हैं, किंतु शब्द तुले हुए और गम्भीर होते हैं; उन शब्दोंमें ावता भरी होती है, पर साथ ही हृदयकी विशालता कटु वचन कहना, उद्धत बन जाना उनके स्वभावके है। जैसी मर्यादाशीलता और सदाशयता उनमें दृष्टिगत है, अन्यत्र नहीं। और बातोंकी तरह सभ्यताके भी ाते हैं। पहले वह उतनी उदात्त, संयत और गम्भीर ोती, जितनी उन्नतावस्थामें। सांसारिक अन्य पदार्थोंकी सका भी क्रमशः विकास होता है। जो जातियाँ पहले के समान जीवन व्यतीत करती थीं, आज वे ऊँचे-ऊँचे रहती हैं, और वैज्ञानिक आविष्कारोंद्वारा जगत्‌को करती हैं; यह उनकी सभ्यताके क्रमशः विकासका ही । आर्यसभ्यता संसारकी सब सभ्यताओंसे प्राचीन लगभग पूर्णताको पहुँची हुई है; इसलिये वह श उदात्त गुणोंका आधार है। भगवती जानकी के विषयमें इसका प्रमाण हैं। स्त्री-जातिके हृदयका र्ष उनमें देखा जाता है। उनकी महानुभावता संसारकी ्वी स्त्रियोंका आदर्श है। विभिन्न हाथोंमें पड़कर वैचित्र्यके कारण कहीं-कहीं उनका चरित्र विकृत हो किंतु उनकी महत्ता कहीं खर्व नहीं हुई। दिङ्नाग द्वान् था। उसने 'कुन्दमाला' नामक एक नाटक है। प्रकरण उसका 'वैदेही-वनवास' है। विपिनमें लौटते समय लक्ष्मणजी जनकनन्दिनीसे सन्देशकी करते हैं, उस समय नाटककार उनके मुखसे ये वाक्य हैं—

ा निष्ठुरो नाम सन्दिश्यत इत्यप्रतिहतवचनतैषा प्र, न सीताया धन्यत्वम्।

ो अविश्वसनीयता प्रकृतनिष्ठुरभावानां पुरुष-म्।

े निष्ठुरके लिये मैं जो सन्देश देना चाहती हूँ, क्ष्मणके वचनका आदर है, सीताका सौभाग्य नहीं।'

ही निष्ठुरभावपूर्ण पुरुष-हृदयकी अविश्वसनीयता ।' ऐसे ही एक अवसरपर भवभूति कौन-सा पथ ाते हैं, उसे भी देखिये। ...

भगवान् श्रीरामचन्द्रके विषयमें यह वाक्य कहला

'अयि देव! किं परं दारुणः खल्वसि

'देव! आप सचमुच बड़े निष्ठुर हैं।'

यह सुन सीतादेवी अपनी पतिप्राणताका प हुए क्या कहती हैं, उसे भी सुनिये—

'सखि वासन्ति! किं त्वमेवंवादिनी भवसि, सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः।'

'सखी वासन्ती! तुम ऐसा क्यों कहती हो? आर्य पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।'

दिङ्नागकी जनकनन्दिनी देवी नहीं, मानवी हैं धैर्यच्युति है। वे धैर्यच्युत होकर पतिदेवको निष्ठुर हैं, साथ ही पुरुषजातिमात्रको स्वभावसे ही नि कह डालती हैं। इस कथनमें स्वाभाविकता है चित्तकी वह विशालता नहीं, जो मनुष्यको देवता ब है। विपत्ति ही मनुष्यकी कसौटी है, इसपर दिङ्नागकी सीतादेवी ठीक नहीं उतरीं। भवभूतिकी वास्तवमें देवी हैं, वे आत्मचिन्ताशून्य हैं, सच्चे प्राणा हैं; वे 'विपदि धैर्य' का आदर्श हैं। उन्होंने स्वाभा पर विजय प्राप्त कर ली है, उनमें प्रतिहिंसा-वृत्ति है ई वे स्वयं तो भगवान् श्रीरामचन्द्रको देखकर कुछ ही नहीं, सखीके कटु वचनको भी नहीं सह उनका यह वाक्य बड़ा ही मार्मिक है—'आर्यपुत्र पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।' यह सीत वास्तविक रूप है, यह रूप बुधजन ही नहीं—वि वन्दनीय है। उनका यही रूप आर्य-संस्कृतिका सर्व गोस्वामीजी उनके इसी रूपके उपासक हैं। श्रीरामचन्द्रकी बातोंको सुनकर सीतादेवीने क्या कह उसको उन्हींके शब्दोंमें सुनिये।

कौसल्यादेवीके सामने जनकनन्दिनीको सीधे बातचीत करनेमें मर्यादा बाधक थी। अतएव उन्हींका सहारा ढूँढ़ा, किंतु इसमें उनको सफलता न भगवान् श्रीरामचन्द्रने ऐसी बात कहीं कि उन्हें बे नौबत आयी। इसलिये पहले उन्होंने—

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अविनय

इस पद्यमें कितनी मर्यादाशीलता है। 'छमबि देवि अविनय मोरी' में उनके सरल और विनम्र हृदयकी

पतिदेवसे जो कुछ कहा, उसमें पतिप्रेमका प्रवाह
ाड़ता है। उसका एक-एक शब्द बड़ा ही भावमय है,
छ पंक्तियाँ देखिये—

मुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥
बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥
। भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
र गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥
नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
ग्रामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
गम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

हकालमें सप्तपदीके समय पत्नी प्रतिज्ञा करती है—

आर्ते भविष्यामि सुखदुःखविभागिनी।
ज्ञां पालयिष्यामि पञ्चमे सा पदे वदेत्॥

र्त होनेपर आर्त हूँगी, सुख-दुःख-भागिनी हूँगी
ारी आज्ञाका पालन करूँगी।' कहा जा सकता है
प्रतिज्ञाके अनुसार उनको वही करना चाहिये था,
कहा; क्या यह अमर्यादा नहीं? पहली बात यह
त्काले नियमो नास्ति।' दूसरी बात यह कि उन्होंने
ा की? कोई आज्ञा होनेपर उसके पालन करनेमें
एँ उपस्थित होंगी, क्या उनका निवेदन करना आज्ञा
है? आज्ञा माननेकी अपेक्षा पतिकी दुःख-सुख-
ाना, उनके लिये जीवन उत्सर्ग करना क्या अधिक
ीं? सीतादेवीकी चेष्टा यही तो है। स्त्रीका सर्वस्व
ी है, फिर यहाँ तो प्राणकी बाधा उपस्थित है।
अ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।

ी अवस्थामें उन्होंने जो कुछ निवेदन किया, उसमें
त्त क्या? जो स्त्री-धर्म है, जो शास्त्रसंगत बात है,
े कह रही हैं।

स्त स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
। शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
णिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
लोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम्॥
(मनु०)

भार्या या गृहे दक्षा या भार्या या प्रजावती।

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुत
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत्सद
(
पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्। (चाणक्य०

'स्त्रीको न तो कोई यज्ञ करनेकी आवश्यक
व्रत-उपवासकी। पतिकी सेवा करनेसे ही वह स्वर्गमें
है। पतिलोककी कामना करनेवाली साध्वी स्त्री, चाहे ज
हो चाहे मृत, उसका अप्रिय कभी न करे।' 'भार्य
जो गृह-कार्यमें दक्ष हो, सन्तानवाली हो, पतिप्रा
पतिव्रता हो।' 'पिता, भ्राता, पुत्र थोड़ा देनेवाले
कुछ देनेवाला पति ही है। इसलिये वह सदा सत्कारय
'स्त्रियोंका गुरु एक पति ही है।'

श्रीमती जानकी देवीके निवेदनमें आर्य-सिद्धान्तों
सिवा और क्या है? हाँ, उनके हृदयके समान उनक
उक्तियाँ अवश्य हैं। इस कथनमें कितनी सत्यता है
बियोग सम दुखु जग नाहीं।' इसीलिये 'तनु धनु ध
पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू' है, औ
रोग सम भूषन भारू' है। जब 'रघुकुल कुमुद बि
'सुरपुर नरक समान' है, तब 'जम जातना सरिस सं
होना क्या आश्चर्य? फिर वे क्यों न कहतीं 'प्रानन
बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।
'मातु पिता भगिनी' इत्यादि बड़े-बड़े सम्बन्धियों
सुन्दर विशेषणोंके साथ गिनाकर यह कहती हैं, '
नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु
तब वे किस ज्वालाकी ओर संकेत करती हैं, क्या यह
होगा? विरह-ज्वालाकी बातें कौन नहीं जानता। वि
कौन नहीं जलाता। चाहे यह उसकी मानसिक आ
फल हो, उसको अनुभव ऐसा ही होता है।
सुधाकर-किरणें भी अग्निमयी ज्ञात होती हैं, और म
शेष-श्वास। और अधिक क्या कहें, उन्होंने यह बात
दूरकी कही, 'जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसि
पुरुष बिनु नारी।' सत्य है, पुरुष स्त्री-देहका प्राण
कामिनी-कल्लोलिनीका सलिल। किन्तु इस बातको स
सदृश पतिप्राणा देवी ही समक्ष और कह सकती हैं।

इसके उपरान्त उन्होंने यह कहा—

बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
सलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥
फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥

ाजकल 'खाओ, पीओ, आराम करो' का वज्र-निर्घोष यी पड़ रहा है। ऐसी अवस्थामें सीतादेवीकी बातों- सत्य स्वीकार करेगा? खग-मृगको परिजन, वनको ल्कलको विमल दुकूल, पर्णशालाको सुरसदन-समान कौन मानेगा? क्या ऐसा माना जा सकता है? ये नी-चुपड़ी बातें हैं। वनदेव, वनदेवी सास-ससुर न सकते। 'कुस किसलय साथरी' 'मनोज तुराई' नहीं सकती, न तो कंद-मूल-फल अमृतमय आहार हो और न अवधके सैकड़ों सौधोंके समान पहाड़; एवं बुद्धिमती स्त्री ऐसा कह सकती है। हाँ, यह कवि- हो सकती है।

य सबके पास है, जीभ सबके मुँहमें है; जो जिसके ाये, कह सकता है; जो चाहे सोच सकता है। ह अक्षरशः सत्य है कि जो कुछ श्रीजानकी देवीने आर्यललनाके हृदयका सच्चा उद्गार है। यदि हम आँखें खोल लें, तो भारतीय कुलबालाके मानस- यह भाव बहुत ही स्पष्टरूपमें प्रतिबिम्बित दिखायी मती सीतादेवी स्वयं इसके लिये प्रमाण हैं,—जिन्होंने देन नहीं, लगभग चौदह वर्ष भगवान् श्रीरामचन्द्रके भावसे व्यतीत किये। उनके उद्गारोंका प्रतिपादन खित पद्य बड़ी ही दृढ़तासे करते हैं—

सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥
प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥
चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥

ाविक सुखका सम्बन्ध हृदयके भावोंसे है, किसी थवा वस्तुविशेषसे नहीं—इन पद्योंको पढ़कर इस त्य प्रेमका पथिक भलीभाँति समझ सकता है। प्रेम ये होता है, सुख-उपभोगके लिये नहीं। जो प्रेम नापर उत्सर्गीकृत है, वह प्रेम नहीं; प्रेमका आडम्बर सच्चे प्रेममें कष्टकी अनुभूति होती ही नहीं। कहती हैं—

नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
कलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

ठहर नहीं सकता; उसको अवलोकनकर सेवाभा अवश्य विकसित होता रहता है। भगवती जानकीमें कितना जाग्रत् है, देखिये—

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानप
सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि

इन पंक्तियोंमें कितना आत्मनिवेदन है, अमायिकता और सरलता है, कितनी हितकाम सहानुभूति है; यह निर्बल हृदयकी अवतारणा नह चित्तकी उदात्त भावमयी सुन्दर प्रस्तावना है। प्र मानसकी प्ररोचना नहीं, 'मनस्येकं वचस्येकं क्रिया सत्यतामयी विभावना है। स्वार्थसाधनकी कपटभरी नहीं, कर्तव्यज्ञानकी भक्तिभरी साधना है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने विपिनकी भयंकरता विशद वर्णन किया था, और यह भी कहा था—

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपटबेष बिधि कोटिक

सीतादेवी इसका कितना सुन्दर और गम्भीर उ हैं, सुनिये—

बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक

इस उत्तरमें कितना आत्मविश्वास और कितनी निर्भरता है, कितनी प्रीतिपरायणता और तेजस्विता है— अनुभव प्रत्येक सहृदय प्राणी कर सकता है।

श्रीरामचन्द्रजीने यह भी कहा था, 'हंसगवनि नहिं बनजोगू।' इसका उत्तर बड़ा ही हृदयग्राही मर्मस्पर्शी है। कहीं भी जानकीदेवीने व्यंगसे काम नहीं बहुत धीर भावसे संयत उत्तर ही देती चली गयी हैं। इस पंक्तिका उत्तर बड़ा ही व्यञ्जनामय है; साथ ही इतनी स्वाभाविकता है कि पढ़कर चित्त लोटपोट हो है। उत्तर यह है—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ

इस वचन-रचनाकी बलिहारी। इसीको कहते हैं, ' पर रख दिया है कलेजा निकालकर।' कितनी मीठी चुट साथ ही कितनी प्रेमभरी!

समझती है और बिना कहे उसकी पूर्ति करती है। ने मुँह खोलकर कुछ कहा और तब स्त्रीने कोई कार्य तो वह सहधर्मिणी कहाँ रही। जिस स्त्रीने पतिके हृदयको जाना, उसके कर्तव्यको नहीं समझा, जो उसकी जीवन-अनुकूल अपनेको नहीं बना सकी, किसी स्थलविशेषपर क्या धर्म है—जो इसकी मर्मज्ञ नहीं, वह सहधर्मिणी दावा नहीं कर सकती। विवाहके समय वर कन्यासे —

े ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु।
वमेकमना जुषस्व, प्रजापतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

' व्रतकी ओर तुम्हारा हृदय खिंचे, मेरे चित्तके तुम्हारा चित्त हो, एकमना होकर मेरी बात मानो, तुमको मुझसे सम्बन्धित करें।'

हके अन्तमें कन्याको ध्रुवका दर्शन कराया जाता है, को देखकर कहती है, **ध्रुवमसि ध्रुवं त्वां पश्यामि।** व! तुम अचल-अटल हो, मैं तुम्हें देखती हूँ।' इसका है कि 'विवाहकार्यमें पतिके द्वारा मुझसे जो प्रतिज्ञाएँ यी हैं, अथवा मैंने स्वयं जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनपर समान अचल-अटल रहूँगी।' सप्तपदीके समय वह कहती है—

होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह।
र्थकामकार्येषु वधूः षष्ठे पदे वदेत्॥

ज्ञ, होम और दानादिमें, धर्म, अर्थ और काममें मैं हारे साथ रहूँगी।' इसीलिये 'अर्धं भार्या मनुष्यस्य' है। स्त्री अर्धाङ्गिनी है और इसीलिये सहधर्मिणी। में इस संस्कृतिका एक बड़ा ही उत्तम निदर्शन है। जी लिखते हैं—

ढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
तरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥

स्वामीजीकी इस उक्तिमें कि 'प्रभुहि सकुच एहि नहिं न्हा' बड़ा स्वारस्य है। 'प्रभु' शब्दका प्रयोग सार्थक है! साधारण जन होते तो इस विषयमें वे कुछ ही भी कर सकते; किंतु 'प्रभु' का ऐसा करना बड़ा चेत था। बड़ी ही मर्यादाविरुद्ध बात थी। फिर ाथ, जो जीभ नहीं हिला सकता। बड़े लोगोंके लिये अकिंचनोंकी सहायता करनेके लिये इस प्रकारके अवसर बड़े ही सुन्दर होते हैं। सेवा करनेवाला बड़ोंसे बड़ी रखता भी है। कम-से-कम भगवान्को निषादकी मूँठी भर देनी चाहिये थी; किंतु कहाँ, वे तो कुछ न दे तापस-वेषमें उनके पास था ही क्या। फिर उनके जी क्यों न लगती, और वे क्यों न संकुचित होते। स सतीशिरोमणि हैं, सच्ची सहधर्मिणी और अर्धाङ्गि उन्होंने पतिदेवके हृदयकी बात जान ली और मुदित मनसे मणिजटित मुँदरी उतार दी। गोस्व शब्दोंकी मार्मिकता देखिये—

'पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उ

कैसी मुँदरी उतारी? मणिजटित। कैसे उतारी मनसे। स्त्रियोंको गहना बड़ा प्यारा होता है; उन अलग करते बड़ी कठिनता होती है, पीड़ा भी होती आसानीसे उसे किसीको देना नहीं चाहतीं। जब्र कर भले ही ले ले। यह साधारण गहनोंकी बात है मणिजटित गहना! वह तो कलेजेमें छिपाकर रखने है। उसका तो नाम ही न लीजिये। किंतु सीतादेवी ही अँगूठी उतारी। और वह भी मुदित मनसे; तेवर भी नहीं बदला, पेशानीपर शिकन तक नहीं क्योंकि उनका सर्वस्व तो उनका जीवनधन है, सौन्दर्य तो उनके हृदयका सौन्दर्य है। जो आभूषणसे आभूषित है, उसको भूषणोंकी क्या आव जिसे पतिकी अनुकूलता वाञ्छनीय है, जो पति भूखी है, गहनोंपर उसकी लार नहीं टपकती। यह नि आर्यसंस्कृति है, भगवती जनकनन्दिनी इसका आदर्श हैं।

आधुनिक कालमें भी इस प्रकारके आदर्शोंका नहीं, एक प्रसंग आपलोगोंको सुनाता हूँ। दयासागर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका पवित्र नाम आ सुना होगा। उनकी स्त्री बड़ी साध्वी थीं। वि महोदयकी उदारता लोकविश्रुत है। एक बार एक उनकी सेवामें उपस्थित हुआ और उसने विनय की कन्यादायसे आकुल हूँ; यदि आपने कृपा नहीं की निर्वाह होना कठिन है।' उसने दो सौ रुपयेकी आ बतलायी। उस समय उनके पास कुछ नहीं था, वे हुए। ब्राह्मणको बाहर बैठाया और आप अंद सामने उनकी सहधर्मिणी आ गयीं। उन्होंने पतिके

और पूछा 'आप चिन्तित क्यों हैं?' उन्होंने
ाक ब्राह्मण कन्यादायग्रस्त है और दो सौ रुपयेकी
ावश्यकता है; परंतु इस समय तो मैं बिल्कुल
हूँ।' साध्वीके नेत्रोंमें जल आ गया; उन्होंने कहा,
ाक सोनेके कड़े किस काम आयेंगे?' यह कहकर
पने कड़े उतारे, और पतिदेवके हाथपर उनको
। अपनी पत्नीकी यह उदारता देखकर उनके
होने लगा, वे अश्रुविसर्जन करते ही बाहर आये
ल्ल हृदयसे उन्होंने कड़े ब्राह्मणदेवको सादर देकर
न्हें मेरी स्त्रीने आपको अर्पण किया है।'

यणकी संस्कृतिकी बातें सुनाते-सुनाते एक अन्य
मैंने आपलोगोंके सामने उपस्थित कर दिया—
विचारसे कि जिसमें आपलोग आर्य-संस्कृतिकी
का अनुभव कर सकें। आर्य-संस्कृति बहुत उदात्त है और
प्रतिकूल कालमें भी वह बहुत व्यापक है। हिंदू-
ोंमें उसका प्रभाव है ही, यहाँकी मुसल्मान जाति
ाइयोंपर भी उसका असर देखा जाता है। कारण
ह है कि उनमें अधिकांश हिंदू-सन्तान ही हैं।
क संस्कार नाश होते-होते होता है। तत्काल अथवा
यमें उसका सर्वथा नाश नहीं होता। यह सच है
की प्रतिकूलताका सामना उसे करना पड़ रहा है,

पाश्चात्त्य विचार भी उसे दबा रहे हैं; किंतु सूर्य
बादलोंमें छिपा रहेगा। काल पाकर बादल टलेंगे अ
फिर वैसा ही जगमगाता दिखलायी पड़ेगा। दूसरी बा
कि आर्य-संस्कृतिके भाव उदात्त और सर्वदेशी हैं। ए
उनमें कम है। इसलिये पञ्चभूतके समान ही वे
हैं। आवश्यकतानुसार उनका कुछ रूप बदल सकत
सर्वथा परित्यक्त नहीं हो सकते। रामायण और मह
अनेक अंश और अनेक उपदेश जैसे हिंदू जातिके
और शिक्षक हैं, वैसे ही संसारकी अन्य जातियोंके
हैं। यूरोपमें भी उनके अनुवाद आदरसे पढ़े गये
विजातीय सहृदयोंने भी उसकी दिल खोलकर प्र
है। ऐसी अवस्थामें उनकी उपयोगिता अप्रकट
रामायणकी संस्कृतियोंका संकलन कर यदि उनप
डाला जाय, और उनपर मननपूर्वक लेख लिखे जायँ
विचार है कि वर्तमानकालमें उससे बड़ा लाभ हो सक
अन्तमें अपनी निम्नलिखित सवैयाद्वारा गोस्व
गुणगान करते हुए मैं इस लेखको समाप्त करता हूँ—

बन राम-रसायनकी रसिका रसना रसिकोंकी हुई स
अवगाहन मानसमें करके जन-मानसका मल सारा
बनी पावन भावकी भूमि भली, हुआ भावुक-भावुकताका
कविता करके तुलसी न लसे, कविता पा लसी तुलसीकी

आत्म-ज्योति

भटको नहीं! अनिश्चयमें मत बहो!

भटकनेसे पतन ही होगा। अनिश्चयमें बहनेसे निर्बलता ही आयेगी।

विचारो और एक निश्चयपर पहुँचो!

निश्चयपर पहुँचनेके बाद उसे कार्यान्वित करो—अडिग, अटल, दुःख झेलते हुए, त्याग करते हुए।

तभी ध्येयतक पहुँचोगे। तभी अपनी मानवता सार्थक प्रमाणित करोगे।—भले ही तब तुम्हारे पैर लहूलुहान हों, मन टूक-टूक हो; आखोंमें तो आत्म-गौरव और आत्म-सन्तोषकी जगमग ज्योति होगी।

आज दुनियाको यही ज्योति चाहिये। धनकी चकाचौंधमें तो उसकी आँखें खुल ही नहीं पातीं।

उसे स्निग्ध, मनोरम ज्योति दो, जिससे उसकी आँखें खुल सकें।

—बालकृष्ण बलदुवा

आर्य-संस्कृति और श्रीमद्भगवद्गीता

(लेखक—पं० श्रीजीवनशङ्करजी याज्ञिक, एम्० ए०)

ब किसी देश या जातिकी संस्कृतिका विचार किया
ै, तब प्रायः उसकी सामाजिक व्यवस्था, रीति-रिवाज,
ौशल, व्यापार-वाणिज्य, साहित्य-विज्ञान आदिकी
देखी जाती है। परंतु प्रकृतिका ऐसा नियम नहीं है
क्षेत्रोंमें उन्नति कर लेनेपर भी कोई जाति नष्ट होने-
ाय। बहुत-सी प्राचीन जातियाँ उन्नति कर लेनेपर भी
हो गयीं और उनकी कृतियोंके भग्नांश पुरातत्त्व-
की खोजकी सामग्री रह गयी हैं। सर हेन्री सम्नर
तानुसार थोड़ी-सी पाश्चात्त्य जातियाँ ही प्रगतिशील
शेष सब रूढ़ियोंसे बँधी होनेसे गतिहीन हैं या नष्ट
हैं। उनकी दृष्टिमें व्यक्तिका अधिकाधिक वर्ग या
तन्त्र होना उन्नतिका प्रमाण है। और दूसरा प्रबल
क्ष प्रमाण है विज्ञानकी शोध, और उसके द्वारा प्रकृतिके
उद्घाटन कर ज्ञान-वर्धनके साथ प्रकृतिकी शक्तिको
व्यवहार और उपयोगमें लाना। संस्कृतिका आर्य-
इससे भिन्न है; परंतु सांसारिक उन्नतिसे उसका विरोध
हमारी संस्कृतिके जन्मदाता अरण्यवासी ऋषि-मुनि
ा-दीपको प्रज्वलित करनेवाले भगवान् वेदव्यास हैं।
श्चात्त्य सभ्यताका जन्म नगरोंमें हुआ है। एकपर
ृति और अनन्तकी खोजकी छाप पड़ी है, तो
राजस्व एवं भौतिक सुखकी खोजका प्रभाव है।

ाक प्राचीन जातियाँ कालके गालमें समा गयीं। उनकी
नक उन्नति भी रक्षा न कर सकी और आर्यजाति
ाचीन होते हुए भी जीवित है और उसने अपनी
और विचारधारासे संसारको विशेषरूपसे समृद्ध
। इस बातका इतिहास साक्षी है। अन्य जातियोंने
ः अङ्गोंकी तो भली प्रकार पुष्टि की, परंतु उनको
त करनेवाली संजीवनी शक्तिकी अवहेलना की।
अनिवार्य था। आर्यजातिने अधिक महत्त्व प्राणको
र वह है सनातनधर्म। यही कारण है कि उसकी
ानी हुई है और वह आज भी जीवित है। गति-
कारण प्रत्यक्ष हैं; परंतु उत्थानके लक्षण भी दिखायी
अपनेको बलवती बनानेकी सामर्थ्य और अवरोधको
शक्ति उसीमें निहित है।

तनधर्म हमारा रक्षक है, पोषक है और भविष्यके
लिये हमें इसीका एकमात्र आश्रय है; परंतु खेद तो
समाजके गण्यमान व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो धर्मानुसार
कर सनातनधर्मको ही अपनी सुविधा और स्वे
परिवर्तन करना चाहते हैं। भारतवर्षका विधान ब
रहा है। वह कैसा? धर्मनिरपेक्ष, जिसमें ईश्वरके न
बहिष्कार किया गया है। हमारे बहुसंख्यक वि
दृष्टिमें धर्म ही अवनतिका कारण है!

ऋषि-मुनि, आचार्य—यहाँतक कि किसी अवत
यह दावा नहीं किया कि वह सनातनधर्मका जन्मद
समस्त शास्त्रोंका एक ही लक्ष्य रहा है और वह
व्याख्यान और उसके द्वारा मनुष्यकी कल्याणकामन
मद्भगवद्गीता सर्वशास्त्रमयी है। उसीके आधारपर
धर्म-प्राण संस्कृति तथा आर्यजातिके कुछ आदर्शोंको
की चेष्टा की जाती है। भली प्रकार विचार करने
पड़ेगा कि हमारी संस्कृतिके सभी मौलिक सिद्धान्त
अथवा सूत्ररूपसे गीतामें मिलते हैं। यहाँ तो इन
विचार करना है।

'धर्म' शब्दसे गीताका श्रीगणेश होता है और एक
कहा जा सकता है कि जिन बातोंको उपदेशरूप
गया है, वे सब धर्मके ही अन्तर्गत हैं; क्योंकि श्रीभगव
कहते हैं—**इमं धर्म्यं संवादमावयोः**। और अ
धर्मसंमूढचेताः होकर उपदेशका प्रार्थी हुआ था
प्रकार अर्जुनको जो शिक्षा दी गयी, वह हमारे आद
संस्कृतिकी मूलभूत शिक्षा कही जा सकती है। जब
युद्धविमुख हुआ, तब श्रीभगवान्ने उसके समस्त
खण्डन तीन ही शब्दोंमें कर दिया—**अनार्यजुष्ट**
मकीर्तिकरम्। उपदेशमें विधि और निषेध दोनों अ
होते हैं। यहाँ निषेध स्पष्ट है। **अनार्यजुष्टम्**—
जो आर्यलोगोंके आचरणविरुद्ध हो या उनके आ
अनुमोदित न हो और परम्पराको भङ्ग करनेवाला हो।
लक्षण योगवासिष्ठमें बतलाया है—

> कर्तव्यमाचरन् कामं अकर्तव्यमनाचरन्
> तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य इति स्मृतः
> यथाशास्त्रं यथाचारं यथाकामं यथास्थितम्
> व्यवहारमुपादत्ते यः स आर्य इति स्मृतः

ात् आर्य वह है, जो स्वभावसे ही करनेयोग्य कार्य
ै और न करनेयोग्य नहीं करता । प्रायः
दण्डभयसे अपराध या पाप नहीं करते;
ार्यके लिये शुद्धाचरण और निषिद्धका त्याग
ा होता है। और उसके कार्य सदा शास्त्रानुकूल होते
ादा और परम्पराकी रक्षा बनी रहती है। यह
अन्तःकरणकी शुद्धिसे प्राप्त होती है। और शुद्ध
ग हो जानेपर उसकी प्रेरणा प्रमाणरूप हो जाती है।
स्कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में राजा दुष्यन्त
के रूपपर मोहित होकर कहता है—

ं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

ात् राजाका शुद्ध मन भी शकुन्तलापर रीझ गया
नेश्चय है कि उसका क्षत्रियसे विवाह हो सकता है—
षिकन्या नहीं हो सकती। क्योंकि सज्जनोंके मनमें
ापर शङ्का हो, वहाँ जो कुछ उनका मन कहे, वही ठीक
ा चाहिये। अपने अन्तःकरणकी गवाहीपर ऐसा दृढ़
आर्यका लक्षण है। भगवान् श्रीरामने जब जनक-
ा प्रथम दर्शन पुष्पवाटिकामें किया, तब उनके मनपर
क्रिया हुई, उसको, और तो और, अपने अनुजसे कहनेमें
सङ्कोच न हुआ—'सहज पुनीत मोर मनु छोभा।'
न स्वयं ही मर्यादाकी रक्षा करता है, उसको नियन्त्रणमें
चेष्टा अनावश्यक है। तभी तो एक कविने कहा
ोंकी प्रशंसामें—'जो तेरा नितकर्म था, औरोंका
र्म था।' हमारा सहज स्वभावसे किया कर्म दूसरोंके
दर्शरूप था। कारण एक ही था—जीवनका प्रत्येक
र्मसे मर्यादित था। साथ ही परम्पराकी रक्षाका भी
रक्खा जाता था। आर्योंद्वारा आचरणयोग्य कर्ममें
लक्षित है; क्योंकि जो परम्पराके विरुद्ध हो, वह कार्य
द्ध हो सकता है।

न्य धर्मोंमें मोक्षकी कल्पना नहीं है और न जन्मान्तर
वादका सिद्धान्त स्पष्टतः बताया गया है। गीतामें
हे गये हैं और आर्यका सबसे महान् आदर्श यही
ाया है कि आवागमनके चक्रसे निकलकर मनुष्य
ाप्त करे। यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है और शास्त्रोंकी
उपाय बतानेमें महत्ता है। हिंदुओंपर प्रायः ये

रखनेसे अकर्मण्य हो जाते हैं। फिर यह भी कहा
कि मुक्तिका आदर्श स्वार्थमूलक है; क्योंकि वह तो व्य
कल्याणकी बात है। ये सब आक्षेप निराधार हैं।
निर्बलता शास्त्र या धर्मके माथे मढ़ना अनुचित है। व
स्वतन्त्रता तो यहाँतक मान्य है कि वर्णाश्रम-मर्यादामें
वास्तविक उद्देश्य ही यह है कि मनुष्य अन्तमें पू
स्वतन्त्र हो जाय। संन्यास आश्रमका अधिकारी हे
कार्योंके दायित्वसे मुक्त हो जाना है। परमोच्च अव
मनुष्य उन्मत्तवत्, पिशाचवत्, जडवत् या बाल
व्यवहार करे तो वह महात्मा ही है और हमारे देशमें
अब भी वैसा आदर होता है। इससे बढ़कर व्य
स्वतन्त्रता क्या हो सकती है। सब दिगम्बर इस
पागल नहीं माने जाते, न उनसे पागलों-जैसा बर्ताव
जाता है। फिर मोक्ष-प्राप्तिका साधन वैयक्तिक ही हो
है। एक साथ हजारों आदमियोंके नमाज पढ़ने-जैस
नहीं है। जीवन्मुक्तको स्वार्थी बताना अज्ञान है;
ज्ञानकी परम्परा उन्हींसे बराबर चलती रहती है।
शिक्षासे बढ़कर लोकोपकार हो नहीं सकता, फिर लोक
आदर्श भी तो गीताने बताया है। ब्रह्मज्ञान या
उपलब्ध होनेपर मनुष्यके लिये कोई विधि-निषेधका ब
किसी कार्यका दायित्व नहीं रहता; परंतु फिर
भावना रहती है कि स्वयं संसार-सागरसे पार हो
दूसरोंको भी पार उतारनेमें सहायता करें। यही
परवशता है—

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना-
नहेतुनान्यानपि तारयन्त
(विवेकचूडाम

मन्द वैराग्य या अकर्मण्यता और संसारसे उ
हमारा धर्म नहीं सिखाता। शिक्षाका दोष नहीं—यदि
वश उसका दुरुपयोग किया जाय। गीता स्पष्ट क
कि एक क्षण भी मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह स
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् (३
प्रश्न यह है कि 'संसार कुरुक्षेत्र या कर्मक्षेत्र है। इ
करनेकी क्या युक्ति है, जिससे अनिवार्य कर्म करते

ा अभिमानी अल्पज्ञ जीव है अर्थात् जीव उसका । यदि जीव अपने प्रकृत स्वरूपको जान ले तो वह ा क्षेत्रज्ञ हो जाता है । अर्थात् स्वार्थकी मात्रा जितनी होगी, उतना ही संकुचित मनुष्यका कर्मक्षेत्र होगा। र्तृत्व-भोक्तृत्वका अभिमान भी बलवान् रहेगा । जैसे- 'धैव कुटुम्बकम्'का भाव तीव्र होगा, क्षेत्र प्रशस्त होता जब यह ज्ञान हो जायगा कि सर्वव्यापक और विभु एक । है, तब कुरुक्षेत्र और धर्मक्षेत्र भी एक हो जायँगे । अन्त होकर एकत्वमें प्रतिष्ठा हो जायगी । इस सामने आक्षेप निराधार ठहरता है । संसारको जैसा वह है, वैसा देखनेमें क्या दोष हो सकता है । ुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् (गीता ९ । ३३)— ंमें निर्विवाद वस्तुस्थितिका वर्णनकर श्रीभगवान् चिरशान्तिका मार्ग बताते हैं । जिनकी ंसार ही सब कुछ है, उनको भी यह तो सतत होता रहता है कि उनकी कामना नहीं होती । अकर्मण्यता सिखाना एक बात सारके वास्तविक स्वरूपका सदा ध्यानमें रखनेकी ी बात है । भौतिक उन्नतिमें गीता कोई बाधा नहीं की हानि बिना किये उन्नति उपादेय है । संसार- एक किनारा धर्म है और दूसरा मोक्ष है । इन र्यादा सुरक्षित रखकर अर्थ और कामकी प्राप्तिका ं है । आधुनिक जगत्में शक्तिवृद्धिकी चिन्ता तो हैं और पाश्चात्त्य देश तो इसीमें रत हैं । शक्ति- ाथ धर्म-भावकी वृद्धि न होनेसे नियन्त्रण नहीं परिणाम भयङ्कर होता है । महादेवजीने असुरको डाला तो वह उन्हींके सिरपर हाथ रख उन्हींको भस्म ये उद्यत हो गया । यही दशा आज विज्ञान-जगत्में ननेको मिलती है। मनुष्यके आविष्कार उसीके नाशक । और यहाँकी शिक्षा है कि योगविभूति प्राप्त हो उसका भी उपयोग सांसारिक प्रसंगोंमें करना है। दुर्योधनकी आसुरी वृत्ति स्वार्थान्ध होकर यहाँतक उसका नाश ही करके शान्त हुई । धर्मभीरु अर्जुन- कृपा प्राप्त हुई । मनुष्यमें दैवी और आसुरी प्रकृतिका है—जिसको चाहे, उसे बढ़ाये । अर्जुनका पक्ष भी किया और दुर्योधनके भी सहायक थे । जैसे व्यक्ति समाज होगा । अतएव व्यक्तिके विकासपर बल

अर्जुनको राज्य, सुख, भोग-प्राप्तिके लिये युद्ध करने श्रीभगवान् स्वयं देते हैं; परंतु युद्ध कौशलसे करनेक है । अर्थात् भगवान् अपने विधानको यन्त्रवत् पूर और निर्लिप्त होकर समस्त भोग भोगनेकी आज्ञा देते

> **यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि य**
> **यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्**
> (गीता ९

यह उदासीनता या झूठे वैराग्यका उपदेश नहीं है कैसा भाव रखना, इसीकी शिक्षा है । अतएव धर्मके सुरक्षित रखकर संसारके भोग प्राप्त करनेमें कोई हानि वेदव्यासजी तो यहाँतक कहते हैं कि अर्थ और काम हो तो भी धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि धर प्राप्त होते हैं—

> **धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यत**

श्रीभगवान्‌ने **अनार्यजुष्टम्** कहकर जो आक्षेप तर्कपर किया, वह बड़ा सारगर्भित है और उसमें अपने सनातन आदर्शकी सुन्दर झाँकी मिलती है होना ही महान् गौरव है और उसके साथ उत्तरदा वैसा ही महान् है । अन्य मनुष्यजातियोंसे जो रखनेकी आशा नहीं की जा सकती, उसको आर्य करे—यही शिक्षा है ।

दूसरा आक्षेप था **अस्वर्ग्यम्** । यदि सुख-भोगकी प्रबल है और सकाम कर्ममें प्रवृत्ति बलवती है ऐसे कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे चिरकालत प्राप्त हो सकें । संसारके सुख अनित्य हैं, थोड़े ही पश्चात् कालका ग्रास बनना पड़ेगा, और संस्कार होनेसे भोगेच्छा नीची योनिमें भी ले जा सकती है । ऐसी चेष्टा करना उचित है कि जिसके द्वारा संसारके बढ़कर और अधिक स्थायी स्वर्गके भोग प्राप्त हो सकें लिये पुण्य करना आवश्यक है । यज्ञ, तप, दानसे प्राप्ति होती है; इनसे जीवन पवित्र भी होता है औ कामीकी भोगेच्छा भी कालान्तरमें पूर्ण होती है यह प्रवृत्तिमार्ग निवृत्तिमार्गकी तरह अक्षय शान्ति आवागमनसे मुक्ति नहीं दिला सकता । क्योंकि—

> **आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**

। भगवान्‌ने पुनर्जन्मका सिद्धान्त और उसके चक्रसे
ा उपाय भी बता दिया। परंतु मृत्युके पश्चात् जन्म
ड़े तो यह श्रेयस्कर है कि वह अच्छे कुलमें हो या स्वर्ग,
आदिकी प्राप्ति हो। अतएव जो निष्कामभावसे
संसारसे छुटकारा पानेके अधिकारी नहीं हो सकते,
क्ष प्राप्त न हो तो कम-से-कम उनकी अधोगति तो
ऐसा आचरण करना उचित है। अन्य धर्मोंमें स्वर्गसे
या ऊँचा कोई लोक नहीं बताया जाता; परंतु हम-
मोक्ष-पदसे निम्न श्रेणीके कई लोक बताये जाते
र मोक्षकी चर्चा तो अन्य धर्मोंमें है ही नहीं।
स्वर्गकामी होना कोई बड़े आदर्शकी बात नहीं है।
लिये इससे बढ़कर कोई कल्पना नहीं।

प्रकार **'अस्वर्ग्यम्'** कहकर श्रीभगवान्‌ने हमारे आदर्श-
ौर दृश्य भी दिखा दिया। परंतु वह **'अनार्यजुष्टम्'**
श्रेणीका है। अधिकारभेदसे उसे भी कहना पड़ा
के साथ कई सिद्धान्तोंपर भी संकेत कर दिया।

रा आक्षेप श्रीभगवान्‌का है—**'अकीर्तिकरम्'**।
ातीतकी बात 'अनार्यजुष्टम्' से कही और 'अस्वर्ग्यम्'
ककी। **'अकीर्तिकरम्'** से इस जगत्‌की ओर संकेत
भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—**'यशो लभस्व'**। युद्धमें
मारकर विजय प्राप्त करो और यशस्वी बनो।
नकालमें ख्यातिसे प्राप्त होता है और मरनेके बाद
र्ते कहा जाता है। ऐसा भेद गीताने किया है।
श कीर्ति हो जाता है। यश प्राप्त होता है पुरुषार्थसे
-सेवा या लोक-संग्रहसे। कठिन कार्य—जो किसीसे न
उसे सफलतापूर्वक करना यशःप्राप्तिका कारण होता
निष्कामभाव न हो और निवृत्तिमार्गका अनुसरण न
तो मनुष्यको स्वर्गकामी होना चाहिये। और यदि स्वर्ग-
साधन भी उपलब्ध न हों तो कम-से-कम यश तो
जीते-जी मिले—ऐसा उद्योग होना चाहिये। कालसे
तो कोई उपाय नहीं। शरीर तो जायगा ही; परंतु
तथा कीर्तिकी रक्षा की जा सकती है। जिसकी कीर्ति है,
कारसे जीता है—चाहे उसका शरीर न भी रहा हो।
का भी भागी मनुष्य न बने तो कम-से-कम अपयशसे
कलङ्कित न करे। यशस्वीको स्वर्गप्राप्ति भी हो सकती
तिसे कलङ्कितके लोक-परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं।
ीर्तिकरम् से व्यक्ति और समाजका सम्बन्ध भी
[illegible]

समाजको मिलना चाहिये। वैसे वे एक दूसरेके पो
दुर्योधनकी भावना है कि उसको किसी प्रकार भी
राज्य प्राप्त हो, उसके लिये भले ही असंख्य
अपने प्राणोंकी आहुति देनी पड़े। वह बड़े अ
कहता है—**'मदर्थे त्यक्तजीविताः'**। द्रोणाचार्य अ
भी मर जायँ तो दुर्योधनको उसकी चिन्ता नहीं। र
रहे। दूसरी ओर अर्जुन है, जिसका पक्ष न्याय्य है;
कहता है—

> **अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्**
> **यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः**
> **यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः**
> **धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्**
> (गीता १। ४

दोनों व्यक्ति विपरीत भावनाओंके नमूने हैं
नेताने स्वराज्य दिलाया, महान् कार्य किया। किंतु
महत्ता उन्होंने तब दिखायी, जब यह घोषणा की कि सत
देकर स्वराज्य लेना अस्वीकार है। यह हमारे देशका

आजकल व्यक्ति-स्वातन्त्र्यको आदर्श माना जाता
जगह समानता, समानाधिकारकी चर्चा सुनायी देती
इस समस्यापर भी प्रकाश डालती है। समानताका जो
आदर्श है, वह स्वभाव और प्रकृति दोनोंके
अतएव अव्यवहार्य है। बलपूर्वक उसको बर्तनेसे अ
है। कोई दो व्यक्ति संसारमें एक-से नहीं। भिन्न
नानात्व प्रकृतिका नियम है। जहाँ असमानता है, उ
करना गीता सिखाती है। आँख बंद कर लेनेसे
सूर्य कहीं अस्त थोड़े हो जायगा। गुण और स्वभावके
भेद प्रत्यक्ष है। हाँ, एकता आत्मामें है। उसीपर लक्ष
का गीता आदेश देती है। सबमें अन्तर्यामीरूपसे एक
है और उसका लक्ष्य रखनेवाले पण्डित समदर्शी
'पण्डिताः समदर्शिनः' शब्द विचारणीय हैं। 'स
नहीं कहा, **'समदर्शिनः'** कहा है। कुत्ते, चाण्डाल,
से समान व्यवहार करना मूर्खता होगी। उनमें एक
को देखना पाण्डित्य है। परंतु संसारमें आज समा
की दुहाई दी जा रही है। गुण, कर्म, स्वभावके
समताका राग अलापना और समान बर्तावकी योज
अनर्थकारी हो रहा है। हमारी शिक्षा यह है कि एक
का प्रादुर्भाव हुआ है। इस नानात्वमें एककी प्रतिष्ठा
सब साधनोंका ध्येय है।

न हुआ तो। धर्मका मूल विश्वास एवं श्रद्धा है, न
ाभय। हिंदू-धर्म विचारोंकी पूर्ण स्वतन्त्रता देता
बुद्धिको श्रद्धा या विश्वाससे ऊँचा स्थान देनेमें
नहीं करता। हमारे शास्त्रोंने तर्कद्वारा जैसी बालकी
काली है, वैसी किसी धर्ममें सहन भी नहीं की जा
प्रश्न करना, सन्देह मनमें लाना ही कुफ्र समझा
। सनातनधर्ममें अधिकारानुसार सबको स्थान प्राप्त
मनुष्यको अपनी बुद्धि दौड़ानेके लिये अनन्त क्षेत्र।
ण है कि अन्य धर्मावलम्बियोंको शुद्ध कर या बलपूर्वक
र्ममें लेनेकी आवश्यकता नहीं समझी गयी। हमारा
आचारपर है, न कि विचारपर। विचारमें स्वतन्त्रता
चारमें समानता मान्य है। सनातनधर्मकी सहिष्णुता
क विशेषता है, जो बिल्कुल निराली है। इस प्रकार
तन्त्यको जो स्थान यहाँ प्राप्त है, वह अन्य धर्मोंमें
। है।

तक गीताके तीन शब्दोंको लेकर—**'अनार्यजुष्टम्, , अकीर्तिकरम्'**—सनातनधर्मसे अनुप्राणित हमारी
कुछ पहलुओंपर विचार किया गया; परंतु उपदेशकी
लये विधि और निषेध दोनोंका निर्देश आवश्यक
गीताने विधिको भी मन्त्रवत् तीन ही शब्दोंमें बताया
है—**'ॐ तत्सत्।'** गीताने इस वाक्यकी बड़े संक्षेपसे
की है; परंतु एक प्रकारसे कहा जा सकता है कि
रूपसे कर्मबन्धनमें पड़े हुए मनुष्यको कल्याणका जो
ताने विस्तारसे बताया है, उसीको अतिसूक्ष्मभावसे
त्' द्वारा सूत्ररूपमें दे दिया है। १७वें अध्यायका
कर २७वें श्लोकतकका अंश द्रष्टव्य है। जैसे निषेधात्मक
ोंकी व्याख्या की गयी, वैसे ही **'ॐ तत्सत्'** की भी
चित है; परंतु लेखके विस्तारभयसे ऐसा नहीं किया
। त्रिविध परमात्माके नाम हैं, जिनकी भावना सदा
ननेमें प्रत्येक कर्मका रूप यज्ञ, दान और तप हो
। ॐ वाचक है ब्रह्म और ईश्वर दोनोंका, अर्थात्
अपर ब्रह्मका। सब प्रेरणाएँ उसीसे होती हैं—'मत्तः
ते।' अतएव ॐके उच्चारणके साथ कर्तृत्वाभिमान
ना चाहिये। हम यन्त्र हैं, हृदयस्थ प्रभु यन्त्री हैं।
रणसे फलाभिसन्धिके त्यागकी भावना दृढ़ होती है और
सक्तिका त्याग होता है।**'अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति'**
इस भूलसे मनुष्य बच जाता है। और कर्म करते हुए
च्छा न रखनेसे कर्मका बन्धन नहीं होता। संसारमें
रहते हुए इस विधिके अनुसार कर्म करते हुए भी
प्राप्तिका मार्ग खुल जाता है। इस प्रकार विधि-निषेध
से गीताने बताये हैं और इनके अनुसार जीवन
करना आर्य-आदर्श है।

एक बात प्रायः बड़े दावेसे कही जाती है कि संस
भी संस्कृति अपने असली और शुद्ध रूपमें कहीं नह
है। परस्पर संघात और सम्मिश्रणसे उसकी प्रगति हो
है। और इस प्रकार अनेक विचारधाराओंके संगमसे
जातिका आदर्श-क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और उ
लाभ होता है। अतएव संस्कृतिपर बाह्य प्रभावको
मानना चाहिये। उसका स्वागत करना उचित है
सिद्धान्त इस बातको नहीं मानता। हमारी संस्कृतिके
इतने महान् हैं और उसका प्रत्येक अङ्ग ऐसी उदात्त भ
पर स्थित है कि उनको अधिक उन्नत नहीं बनाया जा
वे ऐसी मौलिक हैं कि मनुष्यकी कल्पनाशक्ति भी
उच्चतर बनानेमें असमर्थ है। सुधार अपना करना
धर्मप्राण परम आदर्शरूप संस्कृतिका। औरोंकी
न्यूनता है; क्योंकि वह अपूर्ण है और किसी अङ्ग
ही महत्त्व देती है। रही परस्पर संघात और आदा
की बात; उसमें प्रथम तो यही निश्चय करना कठिन
कि औरोंसे क्या लेना है और क्या त्याज्य है। फिर
वही चाहिये, जो हमारे पास न हो। अग्निमें कोई वस
से या तो वह प्रज्वलित होकर अग्निरूप हो जाती है
को बुझा देती है। हमें संकर-संस्कृति नहीं चाहि
अञ्जन किस कामका, जिससे आँख ही फूट जाय
स्वभाव और स्वरूप खो देनेसे न हमारा उपकार होगा
की सेवा।

आदर्शोंकी महत्तामें और संस्कृतिकी श्रेष्ठतामें
कोई भी जाति आर्यजातिसे तुलना करनेयोग्य नहीं
गर्भा भारतभूमिने अगणित महापुरुषोंको जन्म दिय
उन्होंने आदर्शोंको पूर्णरूपेण चरितार्थ कर दिखाया है
समान महात्मा अन्य देशोंमें इने-गिने भी नहीं हु
ऋषि-मुनियोंने जन्म ही नहीं लिया, उनके उत्पन्न करने
भी बतायी गयी है। मनुष्यको देव-दुर्लभ स्थिति प्राप्त
सफल युक्ति बतायी गयी है और वह उपाय भी कहा
जिससे साक्षात् ईश्वरको मानवस्तरपर अवताररूपसे प्र
जा सकता है। इसीलिये वेदोंने आर्यलोगोंको '
पुत्राः' कहा है।

हिंदू-संस्कृति और साहित्य

(लेखक—साहित्यवारिधि कविसार्वभौम कविशिरोमणि देवर्षिभट्ट श्रीमथुरानाथजी शास्त्री)

कृति और सभ्यता यदि किसी समाजकी उन्नति और कारण हो सकते हैं तो आपको मानना पड़ेगा कि ज इसके लिये सबसे अधिक भाग्यवान् है। आज क देश सभ्यताका दावा रखते हों और सभ्य होंगे को इसमें विवाद नहीं; किंतु सभ्यता और संस्कृतिके इतिहासकी यदि आप खोज करेंगे तो आपको स्पष्ट ो जायगा कि इस विषयमें हिंदू-समाजकी टक्करमें ा कोई समाज नहीं निबटेगा। सभ्यताकी ज्योतिका प्रकाश पहले-पहल भारतीय आर्योंने ही दिखलाया। नहीं, समुद्र-पारके रहनेवाले पश्चिमी विद्वानोंतकने ा है कि सभ्यताके पदाङ्कोंको पहले-पहल दिखलानेवाले ही हैं। जिस समय और-और जातियोंको सभ्यताका काश दूरसे दिखलायी दे रहा था, उस प्राचीन समयमें -जाति सभ्यताकी रोशनीसे चमचमा रही थी।

हित्य ही इस संस्कृतिके सोनेको परखनेकी कसौटी ार्योंके साहित्यको निष्पक्षपात दृष्टिसे यदि आप ो आपको मालूम हो जायगा कि सभ्यता और संस्कृति जमें कबसे चली आ रही हैं। इसकी खोजमें बहुतोंको इसलिये मालूम होगी कि इसके लिये आपको उस ाषाकी शरण लेनी पड़ेगी, जिसको हम पश्चिमी ी लहरमें बहुत कुछ दूर छोड़ चुके और अब भी ले जा रहे हैं। संस्कृत-भाषा ही संस्कृति और ी आदि जन्मदात्री है। हमलोगोंको जाने दीजिये, विद्वानोंने भी वर्षोंके परिश्रमसे यह खोज निकाला है ारभरका आदिम ग्रन्थ ऋग्वेदसंहिता है। वेदसे ग्रन्थ (पुस्तक) आजतक भूमण्डलमें नहीं देखा ौर इस तथ्यको सभी सभ्य आजतक मानते चले हैं। अब दुनियाके आदिम ग्रन्थ वेदसे लेकर आज-ाहित्य और व्यवहारमें आप देख लीजिये कि ा इस हिंदू-समाजमें क्या स्थान है।

वेद हमारे लिये ही नहीं, भूमण्डलभरके लिये ग्रन्थ गिने जाते हैं, उनका प्रधान उद्देश्य है ा उपदेश। पहले-पहल संस्कृति वहींसे हमने सीखी, नेयाभरकी धारणा है। अपने स्वार्थके लिये एक-छुरी चलना जहाँ पैंड-पैंडपर सामने आता है, उस मानवजगत्‌में 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' (किस हिंसा मत करो) यह आदेश वहींसे आरम्भ होता पूर्व और क्या पश्चिम, चारों दिशाओंके सभी सर्वसम्मतिसे त्याज्य और पाप समझते हैं, उस 'झूठ भगवान् वेदोंने ही उपदेश क्या, आज्ञा दी है- ब्रूयात्' (झूठ मत बोलो)। विस्तार करनेसे कोई 'संस्कृति' पदका अनुवाद आजकलके सभ्य महोदय (आचार-व्यवहार) किया करते हैं। अब देखिये- क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये चार वर्ण और ब्रह्मचारी वानप्रस्थ, संन्यासी—ये चार आश्रम, इनका विभ जैसा जिसका अधिकार है, उसको वैसे ही आचरण वेदसे ही तो मानी जाती है। फिर भी वेदोंमें लिये क्या ढूँढ़-ढाँढ़ करनी पड़ेगी? समाजके आचार-व्यवहारमें कितनी सुन्दर व्यवस्था चाहते हैं- बातसे ही मैं समझा देना चाहता हूँ। थोड़ेमें परख ईश्वरसे मनुष्य वही माँगता है, जो उसको सबसे अ होता है। वेदोंमें हमारी प्रार्थना होती है—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दो वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठ युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे नि पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योग कल्पताम्॥

पण्डित श्रीरामशर्मा रूँथलाद्वारा निर्मित 'वै गीत' नामक नयी प्रकाशित पुस्तकमें इसका पद्यानु

'ब्रह्मन्! हमारे राष्ट्रमें द्विज तेजयुत होते रहें,
राजन्य भी आयुध-कुशल, अति शूरमाँ
होवें महारथ शत्रुनाशक, शत्रुभेदक वे सदा;
गौएँ यहाँ पयधारिणी हों, राष्ट्रमें सु
कृषि-कर्मके साधन सबल हों, बैल वाहक भारके
हों अश्व गतिमें तेज सब, गन्ता पुनः
जयशील आरोही रथोंके, नारियाँ हों सुंदरी;
हो प्राप्त सुत यजमानको, वर वीरगण
यजमानसुत निज शत्रुनाशक, सभ्य हो, सामर्थ्ययुत
निज कालपर फल-औषधी हमको करें अति

मयपर वृष्टि भी सबको सुखी करती रहे,

सुखसे हमारा ईश ! योग-क्षेम भी चलता रहे ॥

नुवादमें टिप्पणीकी आवश्यकता है—विशेषतः 'सुंदरी याँ' इस स्थानपर । 'सुन्दरी' पदसे ऊपरी सुन्दरता ही जाती । मूलमें पद है 'पुरन्ध्री', जिसका कोषोंमें 'सुचरित्रा' । अर्थात् नारियाँ ऐसी हों, जो आचार-के कारण सब तरह सुन्दर समझी जाती हों । समाज जिस अवस्थामें जैसा आचार-व्यवहार चाहता है, ारियोंमें वैसे ही आचार हों । देशमें ज्ञान फैलानेवाली रक्षा करनेवाली ताकतें जब सब तरह समर्थ होंगी, ावश्यकता किस बातकी रह जायगी ? रही धन-की समृद्धि, उसके लिये भूमि-सम्पत्ति समयपर ो रहेगी । ईश्वरीय सहायता या कृपा वृष्टिके द्वारा गयी । अब समाजमें आचार-व्यवहारकी आप क्या चाहते हैं ? और तो क्या, गाय-बैल-घोड़े आदि ंके संस्कार, आचार-व्यवहार आप सुन्दररूपसे बाँध हते हैं; भला, इससे बढ़कर संस्कृतिमें बारीकी क्या

से आगे आते हैं उपनिषद् । ये आर्यजातिके ज्ञानकी (चरम उन्नति) हैं, हिंदुओंके सर्वस्व हैं । इनमें 'की व्याख्या कैसी और कितनी है, मैं समझता हूँ शिक्षितोंको समझानेकी जरूरत नहीं । हालमें ही 'का 'उपनिषद्-अङ्क' प्रकाशित हो चुका है । कुछ ीजिये—

मनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदि- । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृ- न प्रमदितव्यम् ।'

स्थको अपना जीवन कैसा बनाना चाहिये, इस बातको के लिये इस तैत्तिरीयोपनिषद्का यह 'अनुवाक' होता है । आचार्य अपने शिष्यको वेदका भलीभाँति कराकर आगे गृहस्थ-धर्म-पालनकी शिक्षा देते हैं— ा सदा सत्यभाषण करना, आपत्ति पड़नेपर भी झूठका ा लेना । धर्मसे कभी मत डिगना । अपने वर्ण-अनुकूल जो तुम्हारा कर्तव्य हो, उसमें कभी प्रमाद । गुरुके लिये उनकी रुचिके अनुसार भेंट देकर, उनकी आज्ञासे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके संतान-प सुरक्षित रखना । अर्थात् विवाहित धर्मपत्नीके साथ सहवास करके सन्तानोत्पत्तिका कार्य अनासक्तिसे लौकिक और शास्त्रीय—जितने भी कर्तव्यरूपसे प्र कर्म हैं, उनकी कभी उपेक्षा नहीं करना । यह सब ध्य रहनेपर भी धन-सम्पत्तिको बढ़ानेवाले उन्नतिके प्रति भी तुम्हें उदासीन नहीं होना चाहिये । पढ़ने औ का जो मुख्य नियम है, उसकी कभी अवहेलना नहीं इसी प्रकार अग्निहोत्र और यज्ञादिके अनुष्ठानरूप तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्योंमें भी कभी आल नहीं करना ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेव अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवि नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयोप नो इतराणि ।

'तुम मातामें देवबुद्धि रखना, पितामें देवबुद्धि आचार्यमें देवबुद्धि रखना । अतिथिमें भी देवबुद्धि जगत्में जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हींका तुमक करना चाहिये । निषिद्ध कामोंका आचरण कभी न (और तो क्या) हमलोगोंके (गुरुजनोंके) भी उ आचरण हैं (जिनके विषयमें जरा भी शङ्काका स्थान उन्हींका तुमको सेवन करना चाहिये, औरोंका नहीं ।

श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयादेयम् । श्रिया ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ।

'अपनी शक्तिके अनुसार दान करनेके लिये स रहना चाहिये । किंतु जो दिया जाय, वह श्रद्धापूर्व चाहिये, अश्रद्धासे नहीं—विना श्रद्धाके किये हु आदि कर्म असत् गिने जाते हैं (गीता १७ । लज्जापूर्वक देना चाहिये । (अर्थात् सारा धन भगव मैंने इसे अपना मानकर भगवान्का अपराध किया सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित भगवान्की सेवामें ह उचित था, मैंने ऐसा नहीं किया । मैं जो कुछ दे रह भी बहुत कम है । यों सोचकर संकोचका अनुभ हुए देना चाहिये । सर्वत्र भगवान् हैं । अतः दान और लेनेवाले भगवान् ही हैं । उनकी बड़ी कृपा है दान स्वीकार कर रहे हैं । यों विचारकर भगवा मानते हुए दान देना चाहिये ।)'

कहिये, आचार-शिक्षामें कुछ कमी रही ? य

ाचार-व्यवहारके सम्बन्धमें शिक्षा देनेकी रह गयी हो
हें इसके सम्बन्धमें संदेह रहता हो तो—

तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा
ाःस्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन्‌। तथा तत्र वर्तेथाः।

। ब्रह्मदर्शी, उत्तम विचारवाले, उचित परामर्श देनेमें 'आयुक्त'—कर्म और सदाचारमें पूर्णतया लगे हुए, वभाववाले, एकमात्र धर्मपालनकी ही इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण हों, वे ऐसे प्रसंगोंपर जिस प्रकार आचरण ां, उसी प्रकारका आचरण तुम्हें भी करना चाहिये। देश, उपदेश और वेदोंका रहस्य है।'

। 'सूत्र' और 'स्मृतियों' को लीजिये । ये सूत्र ' कहलाते हैं। जिस समाजके घरोंमें जैसा आचार- उचित समझा जाकर परम्परासे चला आता है, उसकी आगे भी रक्षित रहे, इसलिये उन आचारोंका न उनमें रहता है । आजतक सभी वर्ण उसीके आचरण करते चले आ रहे हैं । अब उनमें 'को खोजने कहाँ जाना है? स्मृति (धर्मशास्त्र) यवहारके खजाने हैं। मनु-याज्ञवल्क्यादि महर्षियोंने ही नहीं, यावन्मात्र मनुष्य-जातियोंके लिये अपने- ाचार-व्यवहारकी शिक्षा देनेका बीड़ा उठाया है। हैं—

देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं चरित्रं शिक्षेरन्‌ पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

रतमें पैदा हुए विद्वान्‌ ब्राह्मणसे पृथिवीमेंके सब ापने-अपने आचरण सीख लें।' भगवान्‌ याज्ञवल्क्यने ार्य ही नहीं, मनुष्यमात्रके लिये कर्तव्य सुझाये हैं—

हिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
ां दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्‌ ॥

णियोंको पीड़ा नहीं पहुँचाना, सच बोलना, बिना ा कुछ न लेना (चोरी न करना), शरीर और मनकी न्द्रियोंको वशमें लाना, यथाशक्ति दान, विपत्तिमें की रक्षा करना, मनको वशमें करना, अपना अपकार पर भी क्रोध प्रकट न करना—ये सबके लिये हैं।' मनु और याज्ञवल्क्य ही क्या, गौतम, वसिष्ठ, लिखित, हारीत, पराशर आदि सभी स्मृतिकारोंने इस ढ़कर किस तरह व्यवहार-निर्वाह हो सकता है— ग्ये आचरण बतलाये हैं, जिनको लिखकर यहाँ

अब आइये पुराणोंपर । ये हमें 'मित्र' समझाते हैं कि तुम्हारे वे आचरण होने चाि दुनियाँमें दूसरेको न अखरें । अच्छे आचरणवाा ऋषि और राजा आदि हो चुके हैं, जिनकी जनताप लिये धाक बैठ गयी । जिन-जिनने अपने अ स्वतन्त्रताको अधिक अपनाया, वे—क्या राजा और क्या ऐसे हो गये, जिन्हें एक दिन समाजसे नीचे गिरना प दुर्दशाग्रस्त होकर पछताना पड़ा । सब धर्मोंका स इस प्रकार सूचित करते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्‌
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्‌

'सब धर्मोंका सार सुनिये और सुनकर याद रा जो अपनेको बुरा लगे, वैसा आचरण दूसरेके साथ करे।' दुटप्पेमें अठारहों पुराणोंका सार सुन लीजिये—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्‌
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्‌

'अठारहों पुराणोंमें भगवान्‌ व्यासके दो ही वच रूप सिद्ध होते हैं कि दूसरेके साथ बुरा बर्ताव पाप अच्छा आचरण करना पुण्य गिना जाता है।' क्या इससे संक्षेपमें आचार-व्यवहारकी शिक्षा किसी जातिके ा दी होगी?

अस्तु, अब इस साहित्यको छोड़कर असली ' संज्ञावाले साहित्य यानी 'अलङ्कारशास्त्र' (रीतिशास आ जाइये । यहाँके ब्रह्मा अपनी डोंडी पिटवाते हैं—

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः
यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते

अपार इस काव्यसंसारका ब्रह्मा कवि है। वह जैसा पसंद करता है, संसार वैसे ही बदल जाता है।' ब्रह्मासे डेढ़ हाथ आगे बढ़नेका दावा है कि नहीं? ब्रह्माने ज ब्रह्माण्ड बनाया हो; कवि यदि वैसा नहीं करता तो वह अपनी रुचिके अनुसा दूसरा ही बना देता है और विश्वको वैसा बनना पड़ कितनी स्वतन्त्रता है, यह कुछ ठिकाना? किंतु 'संस आगे ये भी सिर झुकाते हैं, यह आपको मानना ' बहुत-से आदमी कह सकते हैं कि कवि यहाँ भी स्व बरतते हैं; सम्भव है वे कुछ उदाहरण भी ढूँढ़ लायें यह कवियोंके सर्वमान्य साहित्य (अलङ्कारशास्त्र

यं रसमें आविष्ट होकर सुननेवालोंको भी तन्मय
ा है। उसके 'नवरसों'में सारी दुनिया आ जाती
ांतक कि 'बीभत्स' भी—जिसमें 'जुगुप्सा', घृणा,
आदिसे अन्ततक (स्थायीभाव) रहता है—एक रस
यकी आत्मा माना जाता है। किंतु 'संस्कृति' यानी
ो वहाँ भी आदर्श माना जाता है। जिसके साथ
वहार-वर्णन उचित है, वहाँ उससे विरुद्ध वर्णन
दायका उल्लङ्घन है। विस्तारकी जरूरत नहीं।
सर्वमान्य, साहित्य-संसारके मार्गदर्शक, ध्वनिकार
द्वर्द्धनाचार्यने कवियोंको आज्ञा दी है—

ौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
चित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

चित्य अर्थात् जिसके साथ जैसा आचार होना
उसके उल्लङ्घनसे बढ़कर रसभङ्गका और कोई
हीं। और औचित्यका निर्वाह रस-सम्प्रदायका परम
,

क्यों, काव्य और साहित्यकी जिसके लिये सृष्टि हुई,
'संस्कृति' को सबसे आगे लेकर बढ़ना पड़ता है।
प्रभुसंमित उपदेश (शासककी स्वतन्त्र आज्ञा),
ृति आदि-जैसे सुहृत्संमित उपदेश (मित्रके समान
ा), वैसे ही काव्य कान्तासंमित उपदेश (स्त्री
इ अपने पतिको प्रेमचर्यासे प्रसन्न करके फिर उसे
सुझाती है) कहे जाते हैं। काव्योंका मूल उद्देश्य
शिक्षा।

ामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्।

ात् प्रत्येक काव्यका यह ध्येय है कि वह अपने
सुननेवालोंको शिक्षा दे कि दुनियामें सदा अच्छे
चलना चाहिये, जिससे प्रत्येक आदमी अपने
पहुँच सके। रामका चरित्र अच्छा होनेसे सबको
ाता है और रावणके आचरणोंसे अन्तमें घृणा होती
सलिये रामका आदर्श लेना चाहिये, रावणका
जब 'काव्य'-सृष्टिका यह मूल उद्देश्य है, तब आप
लीजिये कि 'संस्कृति'के उपदेशमें काव्यने कितना
या। प्रभु और मित्रका उपदेश किसी आदमीपर
सर न करता हो, किंतु प्रेममें मस्त बनाकर
'के तौरपर दिया हुआ पत्नीका हितोपदेश रग-रगमें
र जाता है। प्रसिद्ध है कि रात-दिन जनानेमें

सुनकर जनानेसे बाहर निकल आता है औ
उपदेशोंको बड़ी कदरदानीसे सुनता है। अब
कह सकेंगे कि काव्य-साहित्यमें 'संस्कृति'का अनु
रक्खा जाता। बल्कि यह कहना पड़ेगा कि 'सं
रक्षामें सबसे अधिक प्रभाव काव्योंका ही पड़ा है
करता है।

साहित्यकारोंका तो सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि,
और क्या गद्य, सभी काव्य किसी शिक्षाके उद्देश्य
बनने चाहिये। आजकलकी 'कहानी', जो पश्चिमी
बनने लगी है, कदाचित् केवल मनोविनोदके
किंतु भारतीय दृष्टिकोण यहाँ भी यही रहा है कि
आख्यायिकाएँ भी किसी चरित्र-शिक्षाको लेकर
चाहिये। मनोविनोद जरूर उसमें पूर्ण मात्राका
व्यङ्ग्य अर्थात् कथाका चरम उद्देश्य किसी अच्छी
पहुँचाना ही होना चाहिये। अब आप ही देख ली
अनादि साहित्य वेदसे लेकर आजकलके काव्यतकमें
यानी चरित्र-रक्षाका कितना अनुरोध रक्खा
व्यवहारमें भी आप देखेंगे कि हिंदू-समाजकी एक
स्त्री भी अपने बच्चेको यही समझायेगी कि—'क्यों
दुःख देता है? चार आदमी तुझको भला कहें,
उसी तरह तू चलता है?' अब आप ही कहिये कि हि
एड़ीसे लेकर चोटीतक 'संस्कृतिमय' है, यह क्यों
जा सकेगा? 'संस्कृति' से अलग हो जानेपर वह
नहीं रहेगा, यह आप देखेंगे।

अनादिकालसे आजतक बराबर चली आ
हिंदू-संस्कृतिपर आज कुछ महोदयोंकी दूसरी दृष्टि
जो सुधारके नामसे एकदम इसका उद्धार ही
चाहते हैं। किंतु याद रहे, ईश्वरकी प्रेरणासे अन
वैदिक समयसे लेकर आजतक जो हिंदू-संस्कृति
परिपक्क बनती गयी, अनवरत व्यवहारके कारण जो स
सिद्ध हुई, अनेक कुठाराघात होनेपर भी अ
सत्य साबित हुई, उसमें सहसा परिवर्तन कर दे
आसान नहीं। त्रिकालदर्शी ऋषियोंने, आगे-पीछे
सोच-समझकर जो 'संस्कृति' सिद्धान्तरूपसे स्वीका
उसमें सुधार करनेके लिये कइ शताब्दियोंका
चाहिये।

हाँ, अबतक दृढ़ बनी हुई इस हिंदू-संस्कृति
भित्तिपर नये-नये 'बिल' बनाकर हम इसे जर्

समाज 'संस्कृतिप्राण' सिद्ध हुआ है, उसकी संस्कृति देना मानो उसे प्राणहीन बना देना है। खैर, यह यकी बलिहारी है। अवसर समझकर अन्तमें इस संस्कृतके दो घनाक्षरी छन्द भेंट करता हूँ—

मुपनीता पूर्वपद्धतिः प्रवीणैरद्य
चलिता चतुर्दिङ् नवशैली निरुपेहितम्
म्बरमात्रं वंशमर्यादामवैति जनो
वादायैव संप्रदायवृत्तमधुनेरितम्।
नुनाथ मीलति मनस्वी निजमानसेऽद्य
कस्मै कथयेत निजवृत्तमिदमेधितं
त्खलजाले बत वर्तमानकाले कलौ
भद्रजनभाले भूतभर्त्तः! किमालेखितम्॥१॥

च्छे-अच्छे आदमियोंने अपनी पुरानी रीति छोड़ ों ओर बेरोक-टोक नयी चाल चल पड़ी। लोग वंशकी मर्यादाको ढोंग समझते हैं। कहा गया है कि व आदि सम्प्रदायोंका वृत्तान्त आजकल कलहका जाता है। मनस्वी पुरुष मन-ही-मन घुला जाता है, इस वृत्तान्तको बेचारा किसको कहे। चालाकोंको चारों ओरसे चैन देनेवाले इस कलिकालमें हे स्वा आदमीके कपालमें आपने यह क्या लिखा है?'

स्पृश्यास्पृश्यताया बत संकीर्णो विचारो भाति
सदृशोऽधिकारो नरनारीभ्यः प्रदी
'धर्मस्योपदेशे वृद्धविप्रा एव नाधिकृता
योग्यतास्मदीयाप्यत्र निर्भरमुदीयते
उद्वाहं चतुर्दशाद्धि वर्षाद्वनितानां जगुः
प्रामाण्याय चेङ्ग्लिशानुवादः सद नी
त्वङ्गति तरीतुं शास्त्रसागरमलाबूबलात्
सेयं नवबाबूमञ्जुमण्डली महीय

'स्पृशास्पृश्यका विचार संकीर्णता है। न नारियोंको समान अधिकार दिया जाता है। कहा कि—'धर्मके उपदेशमें पुराने ब्राह्मणोंका ही अधिक हमारी भी योग्यता इस विषयमें पर्याप्त है।' चौ आगे ही कन्याओंका विवाह कहा जाता है। इसके लिये सभाओंमें स्मृतियोंका अंग्रेजी अनुवाद सा जाता है। नवीन यह बाबूमण्डली धन्य है, जो सागरको तूँबेके बलपर तैरना चाहती है।'

हिंदुत्वका व्यापक स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री)

' शब्दपर कुछ हिंदुओं और अधिकांश सिक्खों तथा ी सज्जनोंको यह आपत्ति है कि 'यह शब्द हमारी ोधक नहीं है; क्योंकि संस्कृतके विशाल साहित्यमें नहीं पाया जाता।'

लोग यह भी कहते हैं कि "यह शब्द घृणासूचक लिये मुसल्मानोंने हमारा यह नाम रक्खा और इसका श, चोर, बदमाश' आदि है।"

दल यह भी कहता है कि 'हिंदू नाममें क्या रक्खा ा मोह ही क्यों किया जाय? इसकी जगहपर हिंदुस्थानकी जगहपर 'भारत' या 'आर्यावर्त' दिया जाय।'

तरह हिंदुत्व और उसके व्यापक स्वरूपपर छोटी-शङ्काएँ और भी उठायी जाती हैं। इस लेखमें ओंपर संक्षिप्त विवेचन किया जायगा।

तके एक-दो नहीं, अनेक ग्रन्थोंमें 'हिंदू' शब्द पाया अद्भुतरूपकोषमें लिखा है—

हिंदुर्हिंदूश्च पुंसि द्वौ दुष्टानां च विघर्ष

अर्थात् 'दुष्ट लोगोंको रगड़नेवालोंको हिंदू अ कहा जाता है।' ये दोनों शब्द पुँल्लिङ्ग हैं। 'हेमन्तक की उक्ति है—'हिंदूर्हि नारायणादिदेवताभक्तः।' 'हिंदू उसे कहा जाता है, जो नारायण आदि देवोंका 'रामकोष'की उक्ति है—

हिंदुर्दुष्टो न भवति नानार्यो न विदूषक
सद्धर्मपालको विद्वान् श्रौतधर्मपरायण

तात्पर्य यह कि 'हिंदू न तो दुर्जन होता अनार्य होता है और न निन्दक ही होता है। ज धर्मका पालक, विद्वान् और वेदधर्ममें निरत है, वही हि

संस्कृतभाषाके विराट् और प्रामाणिक कोष कल्पद्रुम' में भी 'हिंदू' शब्द और इसकी व्युत्पत्ति है। आठवीं शताब्दीके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मेरुतन्त्र' (३ में लिखा है—

हिंदूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिन
हीनं च दूषयत्येव हिंदूरित्युच्यते प्रिये

र्थात् 'शक, हूण आदि चक्रवर्ती राजा हिंदूधर्मका नाश
ः होंगे। जो दुष्टको दोष देता है, उसे हिंदू कहा
।'

कि विद्वानोंका मत है कि मेरुतन्त्रसे भी प्राचीन
'कालिकापुराण' है। उसमें लिखा है—

ठेन बलिना नूनमधर्मकलिते कलौ।
नैर्वोरमाक्रान्ता हिंदवो विन्ध्यमाविशन्॥

र्थात् 'बली कलिके कारण धर्मशून्य कलियुगमें विदेशियों-
आक्रमण होनेपर हिंदूलोग विन्ध्यपर्वत चले गये।'

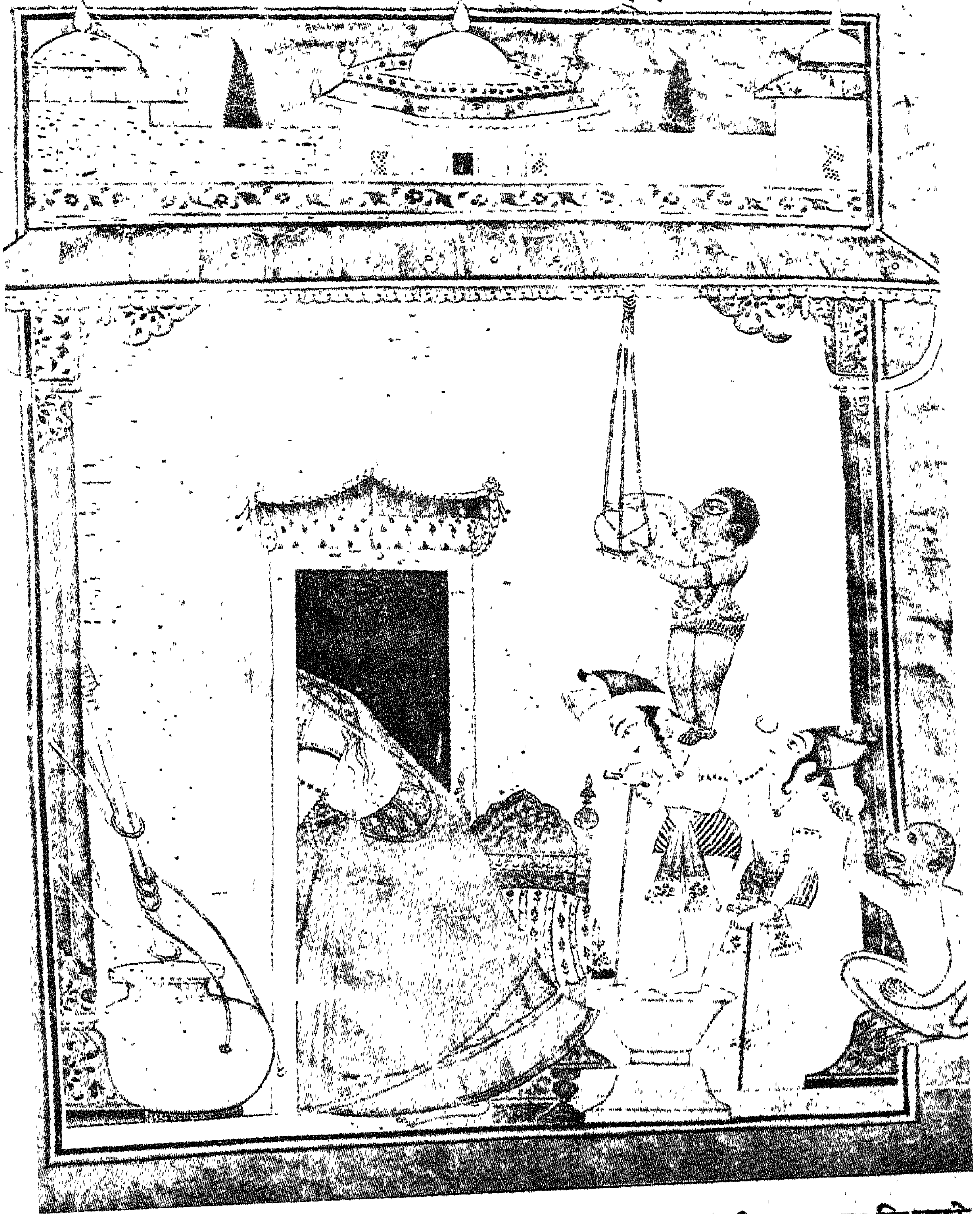
रके इन श्लोकोंसे स्पष्ट विदित होता है कि संस्कृत-
एक नहीं, अनेक स्थलोंपर 'हिंदू' शब्दका उल्लेख
शब्दका जो लक्षण किया गया है, 'हिंदू' शब्दकी
ाषा दी गयी है, उससे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि
र्यका ही नाम है। हिंदू वह है, जो दुष्टनाशक,
ा, वेदधर्मानुयायी, नारायण-भक्त और विद्वान् है।
लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि आर्य और हिंदू एक हैं
जातिका नाम ही हिंदू-जाति है। इसलिये पहली
एकदम निरर्थक है। ऊपरके एक श्लोकसे यह भी
ता है कि 'हिंदु' और 'हिंदू'—दोनों ही शब्द शुद्ध हैं।
ी आपत्ति तो और भी निरर्थक है। मुसल्मानोंकी
अलग रही; जिन दिनों महम्मद साहबका जन्म भी
ा था और अरबजातिका इतिहास भी कालके अगाध
, उन्हीं दिनों बादशाह सिकंदर भारतवर्ष आया
उने अपने मन्त्रीसे 'हिंदूकुश' (हिंदूकूट) पर्वत
च्छा प्रकट की थी। यह बात उसके जीवनचरितमें
कि ईसासे भी सैकड़ों वर्ष पूर्व 'हिंदू' शब्द था, तब
जा सकता है कि हिंदू नाम मुसल्मानोंका रक्खा

ंदरसे भी सैकड़ों वर्ष पहले पारसियोंका धर्मग्रन्थ
बना था। उसमें वेदके हजारों शब्द पाये जाते
ं 'हिंदू' शब्दका उल्लेख है। उसी समयसे सिन्धुके
बसनेवालेको हिंदू कहा जाता है। 'बलख'
ाम भी पहले 'हिंदवार' था। वस्तुतः 'हिंदू' शब्द
शब्दका तद्भव रूप है। पारसी भाषामें 'स' को
जाता है। 'सप्त', को 'हप्त', 'सरस्वती' को 'हरहवती'
ुर' को 'अहुर' कहा जाता है। भाषा-विज्ञानके

इरावती और सिन्धुको अर्थात् 'सप्तसिन्धु'को 'हप्तहिं
शुरू किया। (भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, अध्याय
'हप्तहिंद' शब्दोंका उल्लेख आया है।) अनन्तर
'हिंदू' कहने लगे और अन्तको हिंदू या सिन्धुके ः
रहनेवालोंको—सारे भारतवासियोंको हिंदू कहने लगे
विदेशोंमें सारे भारतवासी इसी सिन्धुके रास्ते जाते थे
विदेश जानेका एकमात्र यही रास्ता था। इसलि
सबको हिंदू ही कहने लगे। बल्कि आजतक ईरा
ईराक, अफगानिस्तान और अन्य देशोंमें भारतवर्ष
और प्रत्येक भारतवासीको 'हिंदी' कहा जाता है—
हिंदू हो, मुसल्मान हो या कोई हो। अमेरिकावा
भारतीयको—हिंदू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी, यहूद
हिंदू कहते हैं। इसलिये यह कहना सत्यका अपमा
है कि 'हिंदू' शब्द मुसल्मानोंका दिया हुआ है।
यह 'सिन्धु' शब्दसे निकला है, जिसका
कितनी ही बार उल्लेख है। इस सिन्धु नदकी
बड़ी ही प्रशंसा लिखी है। इसे आर्यलोग परम पवि
थे। सिन्धुके तटपर ही ऋषियोंने अनेक वैदिक
तपःपूत अन्तःकरणमें आविष्कार किया था। इस तरा
वैदिक प्रयोग है और उसके तद्भव 'हिंदु' शब्द
संस्कृति भरी हुई है।

यूनानी भाषामें 'ह' का लोप हो जानेके कार
या ग्रीसमें 'इन्द' और 'इन्दु' शब्द प्रचलित हुए
आदि यूरोपियनोंने 'द' का 'ड' बना दिया औ
जगह 'इंड', 'इंडो' और 'इंडिया' बना डाला। ः
'हिंदू' लिखना भी पड़े, तो वे 'हिंडू' ही लिखेंगे, हिं
उनकी भाषामें 'द' की जगह 'ड' ही है। 'इंड' श
उन्होंने 'इंडीज़', 'ईस्ट इंडीज़', 'वेस्ट इंडीज़', 'ः
'इंडियन ओशन' आदि शब्दोंको रच डाला। के
'सिन्धु' या 'हिंदू' शब्दकी विदेशियोंने इतनी दुर्गति
है। हम पसंद करें या न करें, परंतु अंग्रेज हमें 'इंडि
कहेंगे। आर्यसंस्कृतिसे शून्य विदेशियोंतकको वे
कारण 'रेड इंडियन' कहते हैं। परंतु वे पसंद क
करें, हम भी तो उन्हें 'फिरंगी' और 'अंग्रेज' ही क
'इंगलिशमैन' नहीं। जर्मनीवाले अपनेको 'डोइट्
अपने देशको 'डोइट्शलैंड' कहते हैं; परंतु इन्हें ह

माखन-लीला



[भारतीय पुरातत्त्व-विभागके

पहाड़ी) चित्रशैली १८ वीं शती]

दानलीला



[...स्थानी चित्रशैली १८ वीं शती] [भारतीय पुरातत्त्व-विभागके

कहते हैं। इतना लिखनेका तात्पर्य यह है कि
ोषसे और देश, काल, पात्रकी विभिन्नताके कारण
के कई रूप हो जाते हैं। परंतु मूल शब्दमें ही
ाका इतिहास और संस्कृति रहती है। फलतः मूल
ा 'हिंदू' शब्द वैदिक है, परम पवित्र है और हमारी
स्कृतिसे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ू' शब्दके 'काला' 'चोर' आदि अर्थ द्वेषवश किये
जो विधर्मी हिंदूसे डाह और जलन रखता है, वह
ऊटपटाँग अर्थ करेगा ही। हिंदू सुरके पूजक हैं
ी असुरके। दोनोंमें विरोध भाव ज्यादा बढ़ गया,
ो 'हिंदू' शब्दके अर्थका अनर्थ करने लगे। हिंदू-
में शत्रुता बढ़ गयी, तब मुसल्मान इसका अर्थ
', 'काफिर' आदि करने लगे। परंतु 'हिंदू' शब्द न
ाका है न अरबीका; इसलिये 'हिंदू' शब्दके झूठे अर्थ
कभी गृहीत नहीं हुए। खुद मक्का और मदीनावाले
मुसल्मानोंको 'हिंदू' और 'हिंदी' कहते हैं तो क्या
ये अर्थके अनुसार मुसल्मान 'नास्तिक' और 'काफिर'
लिये यह कहना सरासर असत्य है कि 'यह शब्द
ाका दिया हुआ है और इसके अर्थ बुरे हैं।' संस्कृत-
' शब्दका अर्थ तो अच्छा नहीं है, तो क्या पारसी
द' को छोड़ देंगे?

लोग यह कहते हैं 'नाममें क्या रक्खा है?' उनके
ीबूका नाम लीजिये, नीबूके नामका कीर्तन कीजिये,
ी जीभपर पानी जरूर आ जायगा। क्या महाराणा
नाम लेनेपर गर्वसे छाती नहीं फूल उठती? तब फिर
ोह क्यों नहीं किया जाय?

। वस्तुतः ध्वनिरूप आकार है। अपनी सारी
ाओंको मनुष्य नामरूपी एक शब्दमें प्रकट कर देता
ममें इतने संस्कार, भावनाएँ और स्मृतियाँ मिली
कि नाम और वस्तु एक ही हो रहते हैं। इसीसे
महाप्रभु नाम और नामीमें एकता समझते थे। उन्होंने
—'अभिन्नत्वान्नामनामिनोः।' अर्थात् नाम और
एक हैं। इसलिये नामको नामवालेसे हटाया नहीं जा
शरीरका अङ्ग न होते हुए भी बहुत बार शरीर
शरीरसे भी अधिक महत्त्व नामका हो जाता है।
विनष्ट हो जाता है, परंतु नाम कभी विनष्ट नहीं
शङ्कराचार्यका शरीर नहीं है; परंतु उनका नाम

बिल्कुल वाहियात है कि 'नाममें क्या रक्खा है?' प्रत्यु
कहना अधिक उपयुक्त है कि 'नाममें ही सब कुछ है।'

आज हजारों वर्षोंसे 'हिंदू' नाममें इतना विराद इ
इतनी सम्पन्न संस्कृति, इतने उदात्त आदर्श, इतनी रह
भावनाएँ, इतने समर्थ जीवन और इतने स्वस्थ तेज
मिले हैं कि यह शब्द प्राणोंसे भी प्यारा हो गया है
शब्द हमारे अगणित सत्कार्योंका दर्पण हो गया है
नामके लिये असंख्य योगी, यति, कवि, दार्शनिक,
नायक और महापराक्रमी अपनी जानतक दे चुके
यह नाम इतिहासका महाकोष बन चुका है। ये ही क
कि 'हिंदू' नाममें हमारा इतना मोह और इतनी ममता

यद्यपि यह निर्विवाद है कि आर्यलोग सदासे
निवासी हैं, तथापि विदेशी विद्वान् और उनके शिष्य भ
विद्वान् इस देशमें आर्योंका आदि निवास नहीं मान
कहते हैं कि 'आर्यलोग एशिया माइनर, स्कांडेनेवि
तिब्बतसे आये हैं।' यदि यह बात मान ली जा
भी यह मानना ही पड़ेगा कि विदेशीलोग यहाँके
निवासियों—द्रविड़, आदि द्रविड़, कोल, भील,
सन्थाल आदि—को हिंदू कहते थे। मूल नाम हिंदू
जैसा कि ऊपरकी पंक्तियोंसे प्रमाणीकृत है। स
'ह' के स्थानपर 'स' और 'ध'के स्थानपर 'द' क
'हिंदू' की जगह 'सिन्धु' कहने लगे। नामोंके परिम
अभ्यास आर्योंको था ही। वे अलेक्जेंड्रियाको 'अ
और सेल्यूकसको 'सुल्व' कहते थे। यदि यह बा
हो तो मानना पड़ेगा कि इस देशके लिये 'आर्य'
भी प्राचीन नाम 'हिंदू' है। जिस समय भारतवर्ष
इतिहास नहीं था, उसी समयका—प्रागैतिहासिक
'हिंदू' नाम है। इसका प्राञ्जल रूप अपनी प्रिय नदीके
सिन्धु रक्खा गया अवश्य।' परंतु जनसाधारणमें 'हिंदू
ही प्रचलित रहा और आर्य भी हिंदू कहलाने लगे
चलकर 'हिंदू' शब्द इतना व्यापक हो गया कि सं
पुस्तकोंमें भी इसका प्रयोग धड़ल्लेसे होने लगा। इ
तो यह शब्द समूची वसुन्धरामें व्याप्त हो गया है और
ही साथ यहाँके सभी विभिन्न धर्मवालोंको भी संस
ही कहता है। सातवीं शताब्दीमें अनेक गिरि-कन्द
लाँघकर चीनी यात्री ह्वेनत्सांग यहाँ आया था और व
भारतमें रहा; परंतु उसने भी हमें 'हिंदू' ही लि
द्राविडवी प्रयोग केवल कुछ पारसी करते थे। वे

ज्वल वैदिक स्मृतियोंको जगानेवाला है, इसलिये
र हमें सबसे अधिक उपयुक्त जँचा। 'सिंधुस्थान'
थानको 'उत्तम राष्ट्र' माना गया—

न्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्।

(भविष्यपुराण प्र० प० २)

न्धु' शब्दके दो अर्थ हैं—नदी और समुद्र। इस
श्चिममें सिन्धु (नदी) है ही। उत्तरमें भी हिमालय-
ति सिन्धु ही सीमाका निश्चय करती है। पूर्वमें
ब्रह्मपुत्र निकली है। कुछ लोग इसे सिन्धुकी
और कुछ लोग इसको सिन्धुकी ही पूर्वी धारा मानते
तरह पूर्वमें भी सिन्धु हुई। दक्षिणमें तो सिन्धु या
ागर विस्तृत ही है। इस तरह भगवान्ने ही
को पूर्णतः सिन्धुस्थान या हिंदुस्थान बना रक्खा
रे देशके लिये इससे बढ़कर दूसरा उपयुक्त शब्द
नहीं।

वेद (९। ३३। ६ और १०। ४७। २) में चार
उल्लेख है। इन समुद्रोंमें हमारे पूर्वज जहाजों और
ारा यात्रा करते थे और विविध देशोंमें व्यापार करके
ऐश्वर्यसे अपने देशको सम्पन्न करते थे। (१।
१। ५६। २; १। ११६। ३; ४। ५५। ६; ५।
७। ८८। ३) भूगर्भशास्त्री कहते हैं कि बलख
सके उत्तरी भागमें और तुर्किस्तानके पश्चिमी
एक विस्तृत समुद्र था, जो प्राकृतिक कारणोंसे
कृष्णह्रद (Black Sea), काश्यपह्रद
ean Sea), आरलह्रद (Sea of Aral)
ाराह्रद (Lake Balkash) के रूपोंमें परिणत
है। किसी समय पञ्चनद (पंजाब) के दक्षिण,
र पूर्वमें समुद्र विद्यमान था। श्रीएच. जी. वेल्सने अपने
e of History' ग्रन्थमें लिखा है कि 'ऐसे
अस्तित्व आजसे पचीस हजार वर्षसे लेकर पचास
के भीतर हो सकता है।' इस तरह स्पष्ट ज्ञात होता
रे देशके चारों तरफ चार समुद्र थे। सप्त सिन्धु,
गान्धार (अफगानिस्तान), बिलोचिस्तानके उत्तर
र तुर्किस्तानके पश्चिम आदिमें हमारे पूर्वज रहते
दाचित् इसी कारण उन्होंने अपने देशका नाम
न' या हिंदुस्थान रक्खा था। इस प्रकार कम-से-
इजार वर्षोंसे इस दिव्य देशका नाम हिंदुस्थान

ग्रीक, रोमन, चीनी और इजिप्शियन आदि
प्राचीनतम जातियोंका अस्तित्व भी नहीं था।

खेदकी बात है कि देशके कुछ लोगोंने
हिंदू और हिंदुस्थानके पूर्ण महत्त्वको नहीं समझा है
वह दिन दूर नहीं, जब हम ही इन पावन शब्द
सिर नहीं झुकायेंगे, सारा विश्व सिर झुकायेगा और
महाव्यापक स्वरूपके अमर गीत गायेगा।

इसी हिंदुस्थानके प्रत्येक ग्राममें देवपुरुषोंका
प्रत्येक प्रान्तमें यज्ञ होता था, घर-घरमें खजाना भ
था और हर एक मनुष्यमें धर्मका निवास था—

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो देशे देशे स्थितो मख
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जन

(भविष्यपुराण, प्रति

उस समय एक ही संस्कृति थी, एक-सी प्रथ
एक राष्ट्र-भाषा संस्कृत थी और सम्पूर्ण राष्ट्रके
अद्भुत आनन्द था। पशु-पक्षीतक स्वतन्त्र विचरा क

ये ही सब कारण हैं कि 'हिंदू' और 'हिंदुस्थान'
महत्त्व अनेक विदेशी भी समझते थे। यहूदी
हिंदू कहते थे। अरबी ग्रन्थ 'सोहब मो अलक' में
है—'भाई-बन्धुओंका अत्याचार हिंदू-तलवारसे भी
घातक होता है।' अरबीमें एक कहावत है—'हि
देना', जिसका मतलब है 'शत्रुपर कड़ी चोट करना
तलवार और शूरताकी ऐसी ही धाक थी। बेबीर
बढ़िया बागको 'सिन्धु' कहते थे। यह इसलिये
ही बागोंके पौधे देते थे। वहाँकी भाषामें 'हिंदू' का
देशका निवासी है। कोई बुरा अर्थ नहीं है।

हिंदीकी प्राचीनतम कविता चंदबरदाईके पित
की जो पायी जाती है, वह बारहवीं सदीकी है।
राजा पृथ्वीराजके पिताको लक्ष्य करके यह काव्य लि
है। इसमें हिंदु, हिंदुवान और हिंदका कई बार ना
है, जिससे विदित होता है कि ये शब्द उन दिनों
आदरणीय और पूजनीय थे। उन दिनों मुसल्मा
पहल आये हुए थे। वे राजपूतोंके पक्के शत्रु थे।
सम्भव था कि अपने शत्रुओंके रक्खे घृणित नामको
तुरंत अपना लेते और उसे पूजनीय मान लेते? चन्द
तो अपने 'पृथ्वीराजरासो' में अगणित बार 'हिंदु'
प्रयोग बड़े गर्व और गौरवके साथ किया है।

कहीं भी हिंदुस्थान अर्थ नहीं है। 'महाभारत' । समर्थ रामदासने भी अपने काव्योंमें राष्ट्रिय भरे 'हिंदू' और 'हिंदुस्थान' शब्दोंका उल्लेख किया ाकवि भूषणने छत्रपति शिवाजी और बुंदेल-सालके सम्बन्धमें कविताएँ बनायी थीं, उनमें हिंदू स्थानकी बार-बार प्रशंसा की है। गुरु तेगबहादुर गोविन्दसिंह तो 'हिंदुत्व' के लिये ही जिये और दू-धर्म और हिंदू-राज्यके लिये पेशवा वीर महाकालका रूप धारण करके मुसल्मानोंसे लड़े थे। सुजानसिंह, राणा बप्पा, राणा साँगा, राणा प्रताप आदि वीर-हिंदुत्वकी रक्षाके लिये मद-मत्त शत्रुओंको रौंद ।

पनको हिंदुत्व कहा जाता है। हिंदूपनके भीतर हिंदू-मर्यादा, हिंदू-संस्कृति, हिंदू-सभ्यता, हिंदू-हिंदूकला आदि-आदि सब आ जाते हैं। हिंदुत्वका स्वरूप ापक है कि इसकी रक्षाके लिये वे भी प्राण देनेको जो हिंदुत्वकी दो-ही-एक बातें मानते हैं। दक्षिणके कहानेवाले अब्राह्मण (आदि द्रविड़) भी अपनेको नेमें गर्वका अनुभव करते हैं। आर्यसमाजी, सिक्ख, द्व आदि सब हिंदूमहासभामें सम्मिलित हैं। यहाँके नास्तिक भी अपनेको हिंदू कहते हैं। गोआके प्र ईसाई हिंदू-देव-देवियोंकी अबतक पूजा करते हैं ही मुसल्मान भी हिंदू-त्योहार मनाते और दे मुण्डन-संस्कारतक कराते हैं। जिनपर हिंदुत्वकी गयी है, वे मुसल्मान गोमांसके पासतक नहीं जाते। भी अपनेको छाती फुलाकर हिंदू बताता है। औघड़ परम वैष्णवतक हिंदुत्वाभिमानी है। सूअरकी गोंठकर मुसल्मानकी बनायी हुई रोटीको लेक छकनेवाले' गुरु गोविंदसिंह भी हिंदू हैं और गुरुजी भी हिंदू हैं। वर्णाश्रमी भी हिंदू हैं और द्रोही भी हिंदू हैं। ईश्वर-द्रोही बौद्ध भी हिंदू हैं, जैन भी हिंदू हैं और मूर्तिपूजाद्रोही आर्यसमाजी हैं। चाण्डाल और चमार भी हिंदुत्वके लिये जा और कोल, भील भी हिंदुत्वकी रक्षाके लिये कट म कन्धार और काबुलसे आकर गङ्गा-स्नान करनेवाले भी के हिमायती हैं और गङ्गातटपर रहकर गङ्गाकी स करनेवाले भी हिंदू हैं। हिंदुत्वने ही बौद्धधर्मको ज है; इसलिये बौद्धधर्म माननेवाले जापानी, चीनी, मंगोल, तिब्बती, सिंहली, बर्मी आदि भी हिंदू हैं भिक्षु उत्तमा हिंदूमहासभाके सभापति भी हुए थे।



मनमें बसते

उसीके मन बसते भगवान।

काम, कोप, मद, लोभ, छोड़ जो करता सबसे प्यार।
कभी न अपने मनमें आने देता बुरे विचार॥
जिसे नित रहता सत्‌का ध्यान। उसीके०॥

दुखी देखकर किसी जीवको होता तुरत दयाल।
फाँस न सकता जिसे कभी भी मायाका जंजाल॥
सदा जो करता हरि-गुण-गान। उसीके०॥

रखता सदा प्रेम हरि-पदमें, जान जन्मका सार।
और समझता है प्रपंचमय यह सारा संसार॥
त्यागकर अहंकार, अभिमान। उसीके०॥

जिसको सुपथ बताते रहते सदा स्वयं भगवंत।
योग-क्षेम वहन करते नित, खिलते फूल बसंत॥
फैलती सौरभ मधुर महान। उसीके०॥

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्याभूषण, विद्यानिधि)

१. एक कल्प एवं सृष्टि-संवत्सर

तत्सद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे
भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते कुमारिकानाम-
स्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि-
बौद्धावतारे ....

त्यादि सङ्कल्पको सनातनधर्मी प्रत्येक शुभ कृत्यमें
इसके द्वारा सृष्टिसंवत्सर सरलता तथा संक्षेपसे
ाता है ।

: यह जानना चाहिये कि ब्रह्माजीकी अपने मानसे
आयु होती है । ब्रह्माण्डकी सृष्टिसे लेकर महा-
तना समय व्यतीत होता है । ब्रह्माजीका पूर्वपरार्ध
नकी आयुके पचास वर्ष बीत गये हैं । द्वितीय
थम कल्प (दिन) यह वर्तमान है, जिसका नाम
कल्प' है । अर्थात् आजकल ब्रह्माजीका ५१ वें वर्षका
चल रहा है और उसकी १३ घड़ियाँ, ४२ पल,
४३ प्रतिविपल बीत चुके हैं । इसपर 'श्रीमद्भागवत'
माण इस प्रकार है—

> विधेरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ।
> क्षितमिवास्यापि (ब्रह्मणः) परमायुर्वयःशतम् ॥
> मायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ।
> परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥
> (३ । ११ । ३२-३३)

> तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ।
> इति विख्यातः........ ॥
> (३ । ११ । ३६)

प्रकार 'मार्कण्डेयपुराण' (४६ । ४२-४३-४४)
ा है ।

कल्पमें एक हजार चतुर्युग होते हैं; उन एक सहस्र
चौदह मन्वन्तर होते हैं । सत्य, त्रेता, द्वापर,
चार युग हैं । चौदह मन्वन्तरोंके नाम ये हैं—
व, २ स्वारोचिष, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत,
, ७ वैवस्वत, ८ सावर्णिक, ९ दक्षसावर्णिक,

भागवत पुराणके अष्टम स्कन्ध (१, ५, १३ अध्य
मनुस्मृति (१ । ६१-६२-६३) में, विष्णुपुराण (
में तथा श्रीहरिवंशपुराण (१ । ७) में
सकता है । स्वा० दयानन्दजीने भी मन्वन्तरोंके
सम्भवतः पुराणोंसे ही लेकर अपनी 'ऋग्वेदादिभाष
के २१ पृष्ठमें उद्धृत किये हैं । इसी प्रकार 'सूर्य
भी इस विषयमें साक्षी है (देखिये उसके १ । १३,
१६, १८, १९, २०, २१, २२, २३वें पद्य)। तदनुसा
मन्वन्तरके (जो आजकल चालू है) ७१ महायुग
सत्ययुग, २८ त्रेता, २८ द्वापर तथा २७ कलियुग बीत
अब अट्ठाईसवाँ कलियुग चालू है, जिसका आज-कल प्र
(चतुर्थांश) वर्तमान है; उसमें भी आज (सं०
५०५० वर्ष बीत चुके हैं ।

एक मन्वन्तरमें ७१ चतुर्युग होते हैं । प्रत
सन्ध्या तथा सन्ध्यांश हुआ करता है । एक क
मिलानेसे ब्रह्माजीका एक दिन हुआ करता है । ए
वर्ष ४, ३२, ००, ००, ००० होते हैं । आ
२००६) तक इस कल्पके १, ९७, २९, ४९, ०
बीत चुके हैं तथा २, ३४, ७०, ५०, ९५० वर्ष शे

यह विषय भी श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें
इस विषयमें कुछ प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

> कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युग
> * दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम्

* यहाँपर युगोंके वर्ष 'दिव्य' कहे गये हैं । देवता त
की वर्ष-व्यवस्था भिन्न-भिन्न हुआ करती है । यथा—'दैवे
वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्य
णायनम्' ॥ (मनु० १ । ६७)। 'सूर्यसिद्धान्त' (१ । १
यही बात कही गयी है। यहाँपर स्पष्ट कहा है कि मनुष्योंका वर्ष
का दिन-रात होता है । तब 'श्रीमद्भागवत' के 'दिव्यैर्द्वा
(३ । ११ । १८) तथा 'मनुस्मृति' के "एतद् द्वादशसाह
युगम्' (१ । ७१)—इस पद्यमें १२,००० वर्ष देवत
गये हैं । इनके मनुष्य-वर्ष बनानेके लिये ३६० अ
करना पड़ेगा अर्थात १२,०००×३६०=४३,२०,०००-

ारि श्रीणि तु चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।
शतानि सहस्राणि त्रिगुणानि शतानि च ॥
यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः।
महायुगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥
ेक्या युगसाहस्रं बहिरब्रह्मणो दिनम्।
ैव निशा तात यस्मिसीलति विश्वसृक् ॥
यवसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते।
देवं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश ॥
स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम्।
(३। ११। १८–२०, २२–२४)

बात 'मनु मृति' (१। ६८ से ७४, ७९-८०)
हाभारत' के वनपर्व (१८८। २२ से २४, २६)
न्तपर्वके मोक्ष-धर्मपर्व (२३१। १६-१७, १९ से
से ३१) में भी स्पष्ट की गयी है।

हम इनका विवरण लिखते हैं। 'कल्याण' के विश
ध्यानपूर्वक देखें—

०६ वि०, कलियुग ५०५०, सन् १९४९-५०)

(भुक्तकल्पके वर्षोंका विवरण)

न्वन्तरोंके वर्ष—	१, ८४, ०३, २०, ०००
त सन्धियोंके वर्ष—	१, २०, ९६, ०००
वन्तरके गत २७	
युगोंके वर्ष—	११, ६६, ४०, ०००
गीके भुक्त वर्ष—	३८, ८८, ०००
र्तमान कलियुगके भुक्त वर्ष	५, ०५०
के वर्षोंका योग	१, ९७, २९, ४९, ०५०

बादका सत्ययुग भी समाप्तप्राय हो गया; क्योंकि तदनुसार वर्षसंख्या १२०० बतायी गयी है और सतयुग ४८०० का माना गया है। एवं महाभारत-युद्धकालसे प्रारम्भ हुए पाँच सहस्र वर्ष बीत चुके हैं, यह सर्वसम्मत बात है। अतएव वर्षोंको मानुषवर्ष मानना कदापि युक्तिसंगत और यथार्थ नहीं ये मन्वादि-लिखित वर्ष दिव्य (देववर्ष) ही हैं, यह जानना न्हें ३६० अङ्कोंके साथ गुणा करनेसे मानुषवर्ष बनते हैं। मनुने तुसार सत्ययुगके ४८०० वर्ष, त्रेताके ३६०० वर्ष, द्वापरके र्ष तथा कलिके १२०० वर्ष माने हैं। इन्हें जोड़नेपर एक वताओंके १२,००० वर्ष होते हैं। इनको ३६० से गुणा तुर्युगोंके मनुष्यवर्ष ४३,२०,००० होते हैं। 'मासेन स्या-पैत्रः, वर्षेण दैवतः' (अमर० १। ४। २१), 'एकं वा

(भोग्य कल्पके वर्षोंका विवरण)

आगेके सात मन्वन्तरोंके वर्ष—	२, १४, ७०, ४
उनकी आठ सन्धियोंके वर्ष—	१, ३८, २
आगेके ४३ चतुर्युगोंके वर्ष—	१८, ५७, ६
वर्तमान कलियुगके शेष वर्ष—	४, २
कल्पके अग्रिम वर्षोंका योग—	२, ३४, ७०, ५

इस हिसाबसे—

कल्पके भुक्तवर्ष—	१, ९७, २९, ४
,, भोग्यवर्ष—	२, ३४, ७०, ५
कल्प (ब्रह्माका दिन)	४, ३२, ००, ०

ये एक कल्पके वर्ष हैं।

एक कल्प ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्मा उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है। उसके समाप्ति होनेपर उतनी ही रात्रि होती है। उसमें होता है।

ब्रह्माका दिन—४,३२,००,००,०००
,, की रात्रि—४,३२,००,००,००० } मानु

दिन-रात्रिका योग—८,६४,००,००,०००

इतने वर्षोंसे ब्रह्माका दिन-रात होता है। इन्हें ३० अङ्कोंसे गुणा करनेपर २,५९,२०,००,००,०० ब्रह्माका एक मास होता है। इन्हीं अङ्कोंको १२ से गुण ब्रह्माका एक वर्ष बनता है। अर्थात् ३१,१०,४०,००, वर्षोंका एक ब्राह्मवर्ष होता है। फिर इन अङ्कोंको गुणा करनेपर ३१,१०,४०,००,००,००,००० ब्रह्माकी सौ वर्षोंकी आयु समाप्त होती है। इस ब्रह्माकी आजतक १५,५५,२१,९७,२९,४९,०५० वर्ष बीत

अब चारों युगोंके दिव्य तथा मानुष वर्ष ए सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दिखलाये जाते हैं—

चारों युगोंके दिव्य वर्ष

युगोंके नाम	सन्ध्या		नियतकाल		सन्ध्यांश	
१—सत्ययुग	४००	+	४०००	+	४००	=
२—त्रेतायुग	३००	+	३०००	+	३००	=
३—द्वापरयुग	२००	+	२०००	+	२००	=

चारों युगोंके मानुष-वर्ष

र	सन्ध्या	नियतकाल	सन्ध्यांश	सर्वयोग
ग	१४४०००+	१४४००००+	१४४०००=	१७२८०००
ग	१०८०००+	१०८००००+	१०८०००=	१२९६०००
ग	७२०००+	७२००००+	७२०००=	८६४०००
ग	३६०००+	३६००००+	३६०००=	४३२०००
चार युगोंके वर्षोंका योग				४३,२०,०००

पसे यह जानना चाहिये कि कलियुगके ४,३२,००० होते हैं। उससे दुगुना द्वापर है। कलिसे तिगुना है और चौगुना सत्ययुग होता है। इस प्रकार ४३,२०,००० वर्ष होते हैं। इस प्रकारके युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इस मन्वन्तरके २०,००० मनुष्य-वर्ष होते हैं। एक कल्पमें १४ होते हैं, उनके वर्ष ४,२९,४०,८०,००० होते हैं। रमें 'सूर्यसिद्धान्त' (१। १९ पद्य) के अनुसार याँ होती हैं। उनमें एकका परिमाण सत्ययुगके बराबर ८,००० वर्ष) होता है। इस प्रकार सब सन्धियोंके ९,२०,००० होते हैं। स्वामी दयानन्दजीने भी अपनी देभाष्यभूमिका' में 'आर्यसृष्टिसंवत्सर' दिखलाते हुए सा ही माना है। पर वे मन्वन्तरोंकी वर्षसंख्यामें वर्ष मिलाने भूल गये हैं, जिससे उनकी गणनामें ल रह गयी है। उनकी पुस्तकोंके बाहर आर्यसृष्टि-हमारे ही हिसाबसे लिखा हुआ रहता है। १४ के ४,२९,४०,८०,००० वर्षोंमें उनके सन्धि-९,२०,००० मिला देनेपर कल्प (ब्रह्माके दिन) के संख्या मनुष्यवर्षानुसार ४,३२,००,००,००० हो। इस प्रसङ्गमें पूर्व जो सङ्कल्प लिख चुके हैं, स्वा० जीने भी 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के २२ वें पृष्ठमें प्रमाणित किया है।

के पाश्चात्य लोग सृष्टिको केवल पाँच हजार वर्ष पुरानी थे। आर्कबिशप उशरका मत है कि सृष्टि आजसे वर्ष पूर्व हुई थी। अन्य ईसाईलोग सृष्टिका प्रारम्भ वर्ष पूर्व मानते थे। परंतु कई अत्यन्त प्राचीन अस्थि-देखकर उन लोगोंकी धारणा परिवर्तित हो गयी,

उत्पत्ति चालीस लाख वर्षोंसे मानने लगे। इव विशारदोंने पृथ्वीकी आयु दस करोड़ आँकी। प्रो० समुद्र-जलका खारीपन देखकर उससे निर्णय किया कि समुद्र दस करोड़ वर्षोंसे बह रहा है।

प्रो० एस्. न्यू. कोम्ब सृष्टिको एक करोड़ वर्ष है (पापुलर ऐस्ट्रॉनमी, पृष्ठ ५०९), प्रो० हिल्नार वर्षोंसे सृष्ट्यारम्भ मानते हैं (सीक्रेट डॉक्ट्रिन, पृ० ६९४)। प्रो० काल महाशय ७ करोड़ वर्ष पूर्व (क्लाइमेट इन टाइम, पृ० ३३५)। चीननिवासी सृष्टिको ९,६०,०२,४२३ वर्षोंसे मानते हैं। सर रामसन १० करोड़ वर्ष पूर्व मानते हैं (सीक्रेट डॉक्ट्रिन, पृष्ठ ६९४)। प्रसिद्ध अस्थितत्त्ववेत्ता डाक्टर विलि डाक्टर स्मिथ एडवर्ड आदि पृथ्वीकी उष्णताके करके उसकी आयु दस करोड़ वर्षकी मानते हैं। हीलियम, बोलोनियम आदि धातुओंके परीक्षक २४ करोड़ वर्षोंसे ३० करोड़ वर्ष मानते हैं। प्रो० ३५ करोड़ वर्षोंसे सृष्टिनिर्माण मानते हैं (सीक्रेट पृष्ठ ६९४)। प्रो० रेड सृष्टिकी आयु ५० करोड़ वर्ष म प्रो० हक्सल १ अरब वर्षोंसे सृष्टि मानते हैं (वर्ल्ड ८ २८७)। कोई और एक अरब ६० करोड़ वर्षोंसे म

ये वैज्ञानिक अभी अभ्यासशील विद्यार्थी हैं समयपर इनके मत बदलते रहते हैं। अन्ततः ये पौर आकर विश्राम लेते हैं। अतः हमें विश्वास है कि १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार सृष्टिको प्रारम्भ हुए मान लेंगे। इस कल्पका निरू चुके। यह श्वेतवाराह कल्प है। इस प्रकार न मालूम कल्प तथा कितने ब्रह्मा हो चुके। ब्रह्माके एक सहस्र विष्णुकी एक घड़ी होती है। विष्णुकी १२ लाख रुद्रकी आधी घड़ी होती है। इस गणनासे रुद्र २, २३, ९४, ८८, ०० ०० ०० ०० ०० ०० ०० वर्षोंकी होती है। रुद्रकी आयुमें अनेक विष्णु ह अन्तर्धान हो जाते हैं। 'बृहत्पराशरस्मृति' में सङ्केत मिलता है—

तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिति स्मृत
मन्वन्तरद्वयेनेह शक्रपातः प्रकीर्ति

दिवसमानेन कालवर्षेण तत्क्षयः ।
क्षयत्रिगुणोऽष्टामी रुद्रस्य त्रुटिरुच्यते ॥
माब्दिकमानेन अयातेऽब्दशते द्विजाः ।
आत्मनि लीयेत निरालम्बे निरामये ॥

(२ । १८८—१९१)

प्रकार हिंदु-संस्कृति अनादि अथवा प्राचीनतम । अन्य स्थानोंमें इसीके एक देशको आधार बना- संस्कृतियाँ उत्पन्न हुई, कई नष्ट हो गयीं । अतः कृति ही अन्य संस्कृतियोंकी आदि जननी है । शेष ी संस्कृतिमें इतना काल-परिमाण नहीं मिलता । संस्कृतियाँ आदिमती हैं, हिंदु-संस्कृतिकी भाँति हीं ।

ाखा तथा यज्ञोपवीतका वैज्ञानिक रहस्य

(क) शिखा

ा-यज्ञोपवीत आदि हिंदु-संस्कृतिके उपयोगी यों तो शास्त्रमूलक एवं अदृष्टमूलक हैं, अतः उनके लिये नोंकी आवश्यकता नहीं; तथापि आजकलका समय । प्रयोजनोंको भी पूछा करता है; तत्पूर्त्यर्थ निम्न ।—

े इसमें वैदिक प्रमाण भी जान लेने चाहिये । कहा है—

कर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
मेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥

(२ । ३५)

पर वेदके कहनेसे शिखाका रखना कहा गया ेके दो भाग हैं—मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग । त्रभागका प्रमाण यह है—

बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

(शुक्लयजुः वा० सं० १७ । ४८)

शिखाः'का भाव है—'गोखुरके परिमाणकी ा । दूसरा मन्त्र यह है—

मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम
मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
। न शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा

यहाँपर 'श्री' के लिये शिखा धारण करना यहाँपर शिखाके बालोंको सिंहके लोमसे उपमा दी ग

अब ब्राह्मणभागका प्रमाण देखिये—

अथापि ब्राह्मणम्—रिक्तो वा एषोऽनपिहितो तस्य एतद् अपिधानं यद् शिखा ।

(आपस्तम्बधर्मसूत्र १ । १

यहाँपर शिखारहितको शून्य अर्थात् श्रीहीन अन्य प्रमाण भी इस विषयमें बहुत हैं; पर स्थान नह इसका रहस्य समझना चाहिये । यजुर्वेदीय 'तैत्तिरीय के शिक्षाध्याय नामक प्रथम वल्लीके छठे अनुवाक कण्डिकामें कहा है—

अन्तरेण तालुके । य एष स्तन इवावलम्बते योनिः । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते । व्यपोह्य शीर्षक

अर्थात् तालुके मध्यमें स्तनकी तरह जो केशराजि है, वहाँ केशोंका मूल है । वहाँ सिरके कपालका भे 'इन्द्रयोनि'—इन्द्र अर्थात् परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग नाड़ी है ।

योगीलोग सुषुम्णा नाड़ीको प्रबुद्ध करके उस साक्षात्कार करते हैं । यह नाड़ी अपने मूलस्थानसे ललाटके मध्यमें विचरती है । योगीलोग जिसे मूलस्थान कहते हैं, वैद्यलोग उसे 'मस्तुलिङ्ग' 'मस्तुलिङ्ग' के साथवाले अग्रभागको योगविद 'ब्रह्मरन्ध्र' कहते हैं; वैद्य उसे 'मस्तिष्क' कहते हैं ।

वैद्योंका यह अभिप्राय है कि सारे शरीरमें प्र है सिर । सब शरीरमें व्याप्त नाड़ियोंका सिरसे सम मनुष्य-जीवनका केन्द्र भी सिर ही है । सिरमें दो रहती हैं—एक ज्ञानशक्ति, दूसरी कर्मशक्ति । शक्तियोंकी परम्परा नाड़ियोंद्वारा सारे शरीरमें फै इसलिये शरीरमें भी ज्ञान और कर्म—ये दो विभाग दोनों विभागोंका मूलस्थान वही सुषुम्णाका मूलस्थान तथा मस्तिष्क है । मस्तुलिङ्ग कर्मशक्तिका केन्द्र मस्तिष्क ज्ञानशक्तिका । मस्तिष्कके साथ ज्ञानेन्द्रिये नाक, आँख, जीभ, त्वचाका सम्बन्ध है औ पैर, गुदा, इन्द्रिय, वाणी—इन कर्मेन्द्रियोंका म सम्बन्ध होता है । मस्तिष्क तथा मस्तुलिङ्ग जितने स्वस्थ या सामर्थ्यवान होंगे, ज्ञानेन्द्रिय तथा क

तेकी विलक्षण महिमासे दोनों ही स्थलोंकी प्रकृति
है। मस्तिष्क ठंडक चाहता है, मस्तुलिङ्ग गर्मी।
ो ठंडकके लिये क्षौर बनवाया जाता है, तैल,
ठ,वायु आदिका सेवन करना पड़ता है। शिरोवेदनामें
ल कटानेसे वेदना शान्त हो जाया करती है।
मस्तुलिङ्गका प्रश्न है कि उसमें कितनी गर्मी
है। गर्मीकी न्यूनाधिकतासे नाड़ियोंमें प्रकोप हो
उससे कई हानियाँ सम्भव हैं। अतः उसमें चाहिये
र्मी। वह गर्मी कपड़े आदिसे नहीं जा सकती;
उनके गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः उनसे पूर्ण
ाव नहीं।

बात भी निश्चित है कि जो वस्तु जिससे उत्पन्न
वही उसकी वास्तविक सहायक होती है। जैसे कि
से बनता है; उस घड़ेके प्रत्येक अवयवकी पूर्ति भी
हो सकती है, जल-अग्नि आदिसे नहीं। 'मस्तुलिङ्ग'
ा एक भाग है; उसकी रक्षा भी सिरसे उत्पन्न
ी हो सकती है, टोपी-हैटसे नहीं। शिरोजात पदार्थ
अतः वहाँ गोखुरके परिमाणके बाल ही मध्यम गर्मी
हैं, अन्य बाल नहीं। यह पहले ही कहा जा चुका है
ष्क शैत्य चाहता है और मस्तुलिङ्ग उष्णता। तो
ी शीतलताके लिये वहाँके केश थोड़े चाहिये; पर
की उष्णताके लिये वहाँ घनीभूत केशोंकी आवश्यकता
इस कारण मस्तुलिङ्गमें सदा ही गहरे बाल रहें,
ोंसे उनकी विशेषता या उच्चता रहे; इसलिये उसका
म भी 'शिखा' रक्खा गया है। कर्मप्रवर्तक होनेसे
म्बन्ध धर्मके साथ है। इधर सन्ध्या आदिके
परमात्माकी कृपा शिखाद्वारा ही हमारे अंदर
; तभी नंगे-सिर होकर सन्ध्या करनेका नियम है। इसी
त्तिरीयोपनिषद्' ने इस स्थानका नाम 'इन्द्रयोनि'
।

ासमें शिखाका त्याग अपवाद है। सामान्यतया
विधान ७५ वर्षोंके बाद होता है। तब आयुकी
जानेसे शरीरकी पूर्णता हो जानेके कारण 'अधिप'
(शिखास्थान) की त्वचा कठोर हो जाती है, शिखा-
ा भी पचहत्तर वर्षतक प्राप्त होकर सारे शरीरमें
जाते हैं। तब शिखा छोड़नेपर भी कोई हानि नहीं
ा कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्डके समाप्त हो जानेसे
शिखा-सूत्रका त्याग ठीक भी है।

शिखाके विषयमें कई एक विद्वान् अन्य उपपत्ति
हैं। सारी सृष्टिका मूल अग्नि ही है; अग्निका स्वरू
शिखासे व्यक्त होता है। अग्निको संस्कृतमें 'शि
जाता है। अग्नि यदि शिखारहित हो तो उसमें हव
माना गया है। जब वह शिखी होता है, तब किसीको श
कि उसका स्पर्श कर सके। उसके उस स्वरूप (ि
के नष्ट होनेपर तो भस्म भी उसे आच्छन्न कर दि
है। हम सब अग्निके उपासक हैं, अग्निसे ही उ
अग्निसे ही हम 'तन्वं मे पाहि' (पारस्करगृ०
'तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा' (
३२। १४) आदि प्रार्थनाएँ करते हैं।

जो जिसकी उपासना करता है, अन्तमें वह उस
को प्राप्त होता है। उपासक भी ऐसा चाहता है।
उपास्यके स्वरूपकी प्राप्तिके लिये उपास्यके ही चि
करता है—जैसे शैव भस्म-रुद्राक्षमाला आदिको, वैष्ण
माला आदिको। इसलिये शुक्लयजुर्वेदके 'शतपथ
आया है—'देवो भूत्वा देवानेति' (१४। ६। १०
इसी प्रकार तीनों आश्रमोंमें अग्निके उपासक हम
अग्निका चिह्न 'शिखा' रखते हैं। संन्यासमें
त्याग होनेसे उसके चिह्न शिखाका भ
कहा है। अग्निसेवन (यज्ञ) तथा उसके आ
'यज्ञोपवीत' का भी त्याग कहा है। इस प्रकारक
उसका अग्निमय संसारसे भी सम्बन्ध न रहनेसे मृ
संन्यासीको अग्निसे नहीं जलाया जाता।

(ख) यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीतसे पूर्व ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य 'एकज'
फिर उस समय गायत्रीके उपदेशसे 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भ
न्यायसे उन्हींको आचार्य द्विज कर देता है। उन तीन
एकजोंको वह तीन दिन अपने गर्भमें रखता है। ती
अनन्तर उन तीनोंका द्वितीय बार जन्म होनेसे वे द्वि
हैं। इसीलिये 'अथर्ववेद'में कहा है—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते ग
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति, तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति
(शौ० सं० ११।

यज्ञोपवीतका सम्बन्ध यज्ञसे है, यज्ञका सम्बन्ध
जैसे कि 'न्यायदर्शन'में कहा है—'यज्ञो मन्त्र
(वेदस्य) विषयः' (४। १। ६२)। वेदका
वेदाधिकारी द्विजोंसे है। बिना यज्ञोपवीत हुए द्विज

ध्ययनाधिकारी नहीं हो सकता; तब उसके अनधिकारी ध्ययनमें कैसे अधिकृत हो सकते हैं।

पवीत किस प्रकार पुरुषपर वेदका भार रखता है, त्रियोंको कितना वेद आवश्यक है, यज्ञोपवीत त्रैवर्णिक क्यों होता है—इत्यादि बातोंका उत्तर यज्ञोपवीत-ही देता है; वह हाथकी चार अँगुलियों (चव्वा) नबे बार लपेटा जाता है। वेद ११३१ शाखाओंमें है; उसमें कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड—ये होते हैं। इनके सब मन्त्र एक लाख हैं। यथा—

ग्रो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंमितः।

(वायुपुराण ६० । ७)

णव्यूह'में भी कहा है—

ं तु वेदाश्चत्वारो लक्षं भारतमेव च।

(५ । १)

में कर्मकाण्डके मन्त्र ८० सहस्र कहे जाते हैं, उपासना-१६ सहस्र। शेष ४ सहस्र ज्ञानकाण्डके मन्त्र माने। यही बात निरुक्तकार भी सूचित करते हैं—

स्त्रेविधा ऋचः—परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता क्यश्च। परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृताश्च मन्त्रा भूयिष्ठाः आध्यात्मिक्यः। (७। ३। १)

क्ष' शब्दसे 'कर्मकाण्ड' इष्ट है; क्योंकि कर्मकाण्ड फलका प्रतिपादक होता है। 'प्रत्यक्ष' शब्दसे उपासना-इष्ट है; वह प्रत्यक्षफलका निदर्शक है। 'आध्यात्मिक' ज्ञानकाण्ड इष्ट है; क्योंकि आत्मसाक्षात्कार ही ता है। ज्ञानकाण्डकी अल्पतासे ज्ञानकाण्डको कर्म-हीन न समझ लेना चाहिये; क्योंकि हीनता या संख्यापर निर्भर नहीं होती। एक ही सूर्य लाखों तारोंसे ही होता है। ज्ञानकाण्ड कर्मकाण्डकी अपेक्षा होना प ही चाहिये। युद्धमें सेनापति 'ज्ञान' होता है, र्म' । पर जितनी संख्या सैनिकोंकी होती उतनी सेनापतियोंकी नहीं। यदि सभी सेनापति' बन जायँ, तो विजय कभी होगी ही नहीं। ी ज्ञानी बहुत हो जायँ, तो सबकी भिन्न-भिन्न बुद्धि वे जनताको कर्ममें प्रवृत्त कर ही न सकें। इसीलिये जैसे ज्ञानी या नेता थोड़े होते हैं, परंतु उनकी आज्ञामें के कर्मिष्ठ—जो उनकी आज्ञा बिना विचारे ही मान लें पेक्षित होते हैं, वैसे ही वेदमें भी ज्ञानकाण्ड थोड़ा कर्मकाण्डकी संख्या उसकी अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इधर कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्डकी अपेक्षा अवर हुआ भी सर्वथा अवर नहीं हो जाता। यदि कर्मकाण्ड तो ज्ञान निराधार हो जाय। नेता व्यर्थ हो जाता है कर्मनिष्ठ जनता न हो, यद्यपि जनता नेताकी अपेक्ष होती है। फलतः तीनों काण्डोंके मन्त्र एक लाख हैं।

यह यज्ञोपवीत चव्वेपर छियानबे बार लपेटा ज इसीलिये ये ११३१ शाखात्मक चार वेदोंमें कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्डके ८०+१६=९६ सहस्र यह अधिकारपट्ट 'चपरास' की भाँति द्विजको अर्पण जाता है। शास्त्रने केवल कर्मकाण्ड-उपासनाकाण्डके अ तक ही यज्ञोपवीत नियत किया है। वे छियानबे सह चारों वेदोंके हैं, इसीलिये चार अँगुलियोंपर उतनी सूत्र लपेटा जाता है; फिर जो इसे तिगुना करके ऊप ओर लपेटा जाता है, उससे इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, इन तीन वर्णोंका अधिकार बताया जाता है। फिर इ लड़ीवाले सूत्रको तिगुना करके जो पुनः दाहिनेसे नी जाता है, उससे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ—इन तीन अ इसमें अधिकृत बताया जाता है।

फिर इस नवसूत्र डोरेको इस प्रकार तिगुन जाता है कि जिससे तीनों सूत्रोंकी योजना सिरमें एक हो इस समयकी त्रिगुणता ऋषि-ऋण, देव-ऋण, पितृ सूचित करती है। इस यज्ञोपवीतसूत्रसे सनात पारमार्थिक अद्वैतवाद भी सिद्ध हो रहा है। इसमें सूत्रसे यज्ञोपवीतकी रचनाका प्रारम्भ होता है; एक तीन सूत्र बन जाते हैं, अन्तमें एक ही ब्रह्मग्रन्थिमें समाप्ति हो जाती है। मध्यमें ही केवल त्रिगुण चक्र

संन्यासाश्रममें मोक्षप्राप्त्यर्थ केवल ज्ञानकाण्डका करना पड़ता है, इस कारण उस समय छियानबे सह उपासनाके मन्त्रोंके इस अधिकारपट्टको छोड़कर सहस्र मन्त्रोंके मननका क्रम प्राप्त होनेसे यज्ञोपव छोड़ना पड़ता है। अभीष्ट स्थानको प्राप्त हो जानेप अपना टिकट देकर स्टेशन पार हो जाता है। गृहस्थ श्रौत-स्मार्त दोनों कर्म करने पड़ते हैं; अतः उसे धर्मसूत्र' (३। १। १), 'वृद्धहारीतस्मृति' (८ तथा '**यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्म** हेमाद्रिके अनुसार दो सूत्र धारण करने पड़ते हैं।

(ग) कानपर यज्ञोपवीत रखनेका रहस्

यज्ञोपवीतको शौचादिके समय कानपर रख

है—'निवीती दक्षिणे कर्णे यज्ञोपवीतं कृत्वा ……मूत्र-
सृजेत्' (वैखानसधर्मप्रश्न २ । ९ । १ शौचविधि);
तं शिरसि दक्षिणकर्णे वा कृत्वा' (बोधायनगृह्य-
१ । ६ । १); '……कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। कुर्या-
षे तु……'(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, ब्रह्मचारि-
१६ वाँ पद्य); **'कर्णस्थब्रह्मसूत्रो मूत्रपुरीषं विसृजति'**
श्ययगृह्यसूत्र २ । ६ । ८) इत्यादि ।

त्रके समय यज्ञोपवीतसूत्रको दाहिने कानपर रखनेमें
: है—

नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ।

(मनु० १ । ९२)

ष नाभिसे ऊपर पवित्र है, नाभिके नीचे अपवित्र
प्रमाणसे नाभिका निचला भाग मल-मूत्रधारक
शेषतः शौचके समय अपवित्र होता है । इसलिये
पवित्र यज्ञोपवीतको वहाँ न रखकर—

न्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयम्भुवा ।

(मनु० १ । ९२)

इस प्रमाणसे अत्यन्त पवित्र तथा ज्ञानका भंडार होनेसे
अनुसार सिरपर अथवा अन्योंके अनुसार सिरके
नपर रक्खा जाता है । दाहिने कानकी पवित्रता
क्षाके समय आचार्यद्वारा गुप्तमन्त्रोपदेश होनेसे

ः सोम इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ तथैव च ।
सर्वे च विप्रस्य श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥

(गोभिलगृह्यसंग्रह २ । ९०)

ु, चन्द्रमा, इन्द्र, अग्नि, मित्र तथा वरुण—ये सब
ह्मणके दाहिने कानमें रहते हैं ।'

इत्यादि प्रमाणोंसे देवनिवासके कारण सूचित होती है ।

निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।
तानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥

(गृह्यसंग्रह २ । ८९)

ने, थूकने, दाँतके जूँठे होने, मुहँसे झूठी बात निकलने
तोंसे बातचीत करनेपर अपने दाहिने कानका स्पर्श
हिये । इसी कारण अपराधी लोग भी अपनी शुद्धिके
ने कानको पकड़ते या छूते हैं ।

बात यह है कि हमारे शरीरमें पार्थिव इन्द्रिय नासिका,
न्द्रिय जिह्वा, तैजस इन्द्रिय आँख, वायव्य इन्द्रिय
था आकाशीय इन्द्रिय कान है । देश-कालादिके
अनुसार श्मशानादिरूपमें पृथिवी, मद्यादियोगसे गङ्
रूपमें जल, श्मशानाग्निरूपमें तेज, पुरीषालयादिरूपमें
ये चार भूत अशुद्ध हो जाते हैं; पर आकाश किसी
अपवित्र नहीं होता । हमारे शरीरमें उसकी प्रति
इन्द्रिय कान है । उससे शौचादिके समय यज्ञ
सम्बन्ध कर देनेसे वह अशुद्ध नहीं होता । यही य
सम्बन्धी वैज्ञानिक रहस्य जान लेने चाहिये ।

३. यज्ञसे देवताओंकी और श्राद्धसे पितरोंक
का रहस्य

(क) वेदका विषय यज्ञ है, यह कहा जा चु
वेदमें उपास्य देवता हैं, यज्ञमें भी उपास्य देवता
इसीलिये 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' इस यज्ञ
भूत 'यज' धातुका मुख्य अर्थ भी देवपूजा ही हो
देवता परमात्माके ही अङ्ग हुआ करते हैं; अङ्गे
अङ्गीकी पूजा नहीं हो सकती । अतएव देवपूजन भग
ही है । यही बात ब्राह्मणभागात्मक वेदमें कही गयी है

तद् यद् इदमाहुः—अमुं यज, अमुं यज—इ
देवम्, एतस्यैव सा विसृष्टिः, एष उ ह्येव सर्वे देवा

(शतपथ १४ । ४ । २

अर्थात् देवता परमात्माका ही विस्तार है, वह
सर्वदेवमय है । इस प्रकार 'मनुस्मृति' में भी कहा है

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितः

(१२ ।

यहाँपर श्रीकुल्लूक भट्टने लिखा है—

इन्द्राद्याः सर्वदेवताः परमात्मैव, सर्वात्मत्वात् परम

फलतः देवयजन भगवदाराधन है ।*

अब प्रश्न यह है कि यज्ञ, जो देवपूजनात्मक है,
क्यों किया जाता है ? इसपर 'कल्याण' के पाठक नि
देखें । ऋग्वेदमें कहा है—**'न ऋते त्वाममृता**
(शा० सं० ७ । ११ । १)—'हे अग्नि ! तेरे बिना देवता
होते ।' **'आ अग्ने ! वह हविरद्याय देवान्'** (ऋ० ७ । ११
यहाँ स्पष्टरूपसे अग्निको देवताओंके निमित्त हवि धार

---

* भगवद्गीतामें जो देवपूजनके द्वारा परमात्माका अवैध
'यजन्त्यविधिपूर्वकम्' (९ । २३)—कहा है, उसक
यह है कि देवताओंको परमात्माका अङ्ग न समझकर
स्वतन्त्रतासे पूजना है, वह भी है तो परमात्माका पूजन ही, प
पूर्वक है।

ा है। 'अग्निर्हि देवानां मुखम्' (शतपथ ३। ७)—
अग्निको देवताओंका मुखस्थानीय कहा है,
ाओंकी हविका अग्निमें डालना भी युक्त सिद्ध हुआ।

का प्रयोजन केवल वायुशुद्धि नहीं होता; उसका
क्ष्य है देवताओंको तृप्त करना। यदि यज्ञका
क्ष्य वायुशुद्धिमात्र होता, तो उसमें बहुत महँगे
पयोग व्यर्थ था; उससे भी सस्ते पदार्थोंसे वायुकी
सकती थी। और फिर वह कार्य दुर्गन्धित स्थानोंपर
ड़ता। उस समय वेदमन्त्रोंके पढ़नेकी आवश्यकता
थी। वस्तुतः यज्ञ देवताओंको तृप्त करनेवाला होता
ताओंका भक्ष्य घृत हुआ करता है। जब देवाप्सरा
रूरवाके पास आकर रही थी, और उससे उसके खानेके
ा गया, तब उसने उत्तर दिया था—'घृतं मे वीर
ात्' (श्रीमद्भागवत ९। १४। २२)। इससे देवताओं-
घृत सिद्ध होता है।

ल पुराणमें ही नहीं, यही बात ब्राह्मणभागात्मक वेदमें
गयी है—'घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नाम्, तामेव
ृपाणा चरामीति' (शतपथ ११। ५। १। १०)।
भी कहनेवाली उर्वशी ही है। केवल यहीं नहीं, किंतु
ात्मक वेदमें भी यही बात कही गयी है—घृतस्य
ृदह्न आश्नाम्' (ऋ० १०। ९५। १६)। इस मन्त्रमें
ृषि (वक्त्री) है और पुरूरवा देवता (प्रतिपाद्य)।
रण देवपूजनात्मक यज्ञमें भी देवताओंकी तृप्तिके
प्रयुक्त किया जाता है। तभी 'शतपथब्राह्मण' में कहा
ाद् वै देवानां प्रियं धाम, यद् आज्यम् (घृतम्),
३। ६। ३) 'आज्येन जुहोति' (शतपथ
। ६। २)। इससे स्पष्ट हुआ कि यज्ञाङ्ग हवनमें
की तृप्तिके लिये ही घृत डाला जाता है। वेदमन्त्र
पढ़े जाते हैं कि यज्ञ वेदका विषय है। यज्ञ होता
ार्थ, तब वहाँ वेद-मन्त्रोंकी आवश्यकता भी होती है;
वेदमन्त्रोंके विषय देवता भी होते हैं। इसलिये
में यज्ञके समय देवताका मनसे ध्यान करना
ा है—'यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्, तां मनसा
(८। २२। ११)। इसी प्रकार 'ऐतरेयब्राह्मण'
८। १) में भी कहा है। जब यज्ञ किये जायँगे, तब
हविको अग्नि, वायु, सूर्यचन्द्रादि देवता किरणोंके
ींचकर मेघ बनाकर वृष्टि तथा मनोरथकी वृष्टि कर

मुख्य उद्देश्य देवताओंका पूजन या तृप्ति ही है। इ
'श्रीमद्भगवद्गीता' ने भी कहा है—

> सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति
> अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधु
> देवान् भावयतानेन [यज्ञेन] ते देवा भावयन्तु व
> परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्य
> इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभावित
> (३। १०

इससे यज्ञ देवपूजाका पर्यायवाचक सिद्ध होता है

(ख) श्राद्धसे पितरोंकी तृप्ति

पितृश्राद्ध प्रतिमास कृष्णपक्षमें हुआ करता है,
अथर्ववेदमें कहा है—'पितृभ्यो मासि उपमास्यं ददाति
सं० ८। १२। ५)। 'मनुस्मृति' के 'पित्र्ये रात्र्यहनि
(१। ६६)—इस वचनके अनुसार मनुष्योंका महीना
एक दिन-रात होता है। इस प्रकार प्रतिमास श्राद्ध
पितरोंको वह भोजन प्रतिदिनकी तरह मिलता है। कृ
श्राद्ध इसलिये किया जाता है कि कृष्णपक्ष पितरं
होता है, शुक्लपक्ष रात्रि।

इसमें कारण यह है कि—

> विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः
> स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति
> पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वं
> दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदैषा
> (सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना श्लो

इससे पितृलोक चन्द्रलोकके ऊपर सिद्ध हो
शुक्लपक्षमें चन्द्रमा सूर्यसे दूर होता है; तब पितृलो
दिन निरन्तर एक रात्रि होती है। कृष्णपक्षमें चन
क्रमशः निकट हो जाता है, अतः पितरोंका उन १
निरन्तर एक दिन होता है। अमावस्याको जब
एक राशिमें होते हैं, तब हमारे अपराह्णकालमें सू
लोकके सिरपर होनेसे उस समय पितरोंका भोज
मध्याह्न होता है।

यहाँसे मरकर गये हुए हमारे पितरोंक
पितृलोकमें हुआ करती है, जैसा कि वेदमें कहा है—

> अधा मृताः पितृषु सं भवन्तु। (अथर्व० १८।
> पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः। (अथर्व० १२।

पितृलोक चन्द्रलोकके ऊपर है, यह कहा जा

—ये सब (सूर्य, चन्द्र, तारे) भूगोललोक। इनमें द प्रजा भी रहती है। कुछ-कुछ आकृतिमें भेद सम्भव है (स० प्र० समु० ८, पृष्ठ १४४)। इस यदि यहाँसे मरकर पितर चन्द्रलोकमें जन्म लें तो वे देये अन्नादिको अपनी आकर्षणशक्तिसे खींच लें—यह है। इससे श्राद्धसे पितरोंकी तृप्ति प्रत्यक्षमूलक बन । अस्तु,

मावास्या चन्द्रलोकस्थ पितरोंका मध्याह्न एवं ल होता है, यह कहा जा चुका है। अब हमें मध्याह्नकालमें उन्हें भोजन पहुँचाना है, और न करना है। उसका साधन श्राद्ध है। उसके दो —एक तो यह कि हमें उनके नामसे अग्निमें हवन हिये। तभी मृत पितरोंको खिलानेके लिये आह्वानार्थ ार्थना की गयी है। जैसे कि—

निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
ग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे।'
(अथर्व० १८। २। ३४)

रा प्रकार यह है कि अग्निके सहोदरभूत ब्राह्मणकी में ब्राह्मणके मुखके द्वारा उन पितरोंके नामसे या जाय।

ातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु।
(मनु० ३। ९८)

ा और ब्राह्मणकी सहोदरतामें प्रमाण यह है कि था अग्निकी विराट् पुरुषके मुखसे उत्पत्ति कही गयी कि **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** (यजुः० वा० सं० ११); **'मुखाद् अग्निरजायत'** (३१। १२)। शास्त्रोंमें ब्राह्मणको आग्नेय या अग्नि कहा गया है। मांसादर्शन' (१। ४। २४ सूत्र) के शाबरभाष्यमें वै ब्राह्मणः' पर प्रकाश डालनेके लिये इस श्नोत्तरप्रक्रिया दी गयी है—

०) अथाग्नेयेषु (ब्राह्मणेषु) आग्नेयादिशब्दाः ण? (उ०) गुणवादेन। (प्र०) **को गुणवादः?** **अग्निसम्बन्धः।** (प्र०) **कथम्?** (उ०) **नकत्वात्** (**अग्निब्राह्मणयोः**)। (प्र०) **किमेकजातीय-** **तयोः**] ? (उ०) **प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेय-** **स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत। तमग्निर्देवता**

मुखतोऽन्वसृज्यन्त' यहाँपर अग्नि और ब्राह्मणकी एक स्पष्ट शब्दोंमें कही है।

कुछ अन्य प्रमाण भी द्रष्टव्य हैं—**'अग्न** **विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्'** (मनु० ३। २१२)। न हो तो ब्राह्मणको कव्य दे दे। इसमें हेतु यह **'यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते'** (३ 'गोपथ-ब्राह्मण'में भी कहा है—**'ब्राह्मणो ह वा** **वैश्वानरं बभार'** (१। २। २०)। 'कठोप ब्राह्मणका अग्नित्व इस प्रकार कहा है—**'वैश्वानरः** **तिथिर्ब्राह्मणो गृहान्'** (१। १। ७)। 'भविष्य भी कहा है—**'ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु'** (ब्राह्मपर्व १३ इसका ऐतिहासिक प्रमाण 'महाभारत'में मिलता है। निषादके आचारवाले भी ब्राह्मणको निगलनेके समय कण्ठमें अग्निदाह होने लगा (आदिपर्व, २९ वाँ अ **'सास्य देवता'** (पा० ४। २। २४) इस व्याख्यानमें 'सिद्धान्तकौमुदी' में कहा गया है—'अ **ब्राह्मणो देवतया।'** इसपर 'बालमनोरमा' कहती है—' **यो देवताजातिविशेषो लोकवेदप्रसिद्धः, तदभि** **ब्राह्मणः।'** अस्तु,

ऐसा करनेपर पूर्व प्रकारसे साक्षात् अग्नि उ प्रकारसे ब्राह्मणस्थ वैश्वानर अग्नि उस कव्यको सू पितरोंको पहुँचाता है। वे पितर उस सूक्ष्म कव्यसे जाते हैं; क्योंकि वे स्वयं सूक्ष्मशरीरात्मक होते कारण उनके लिये स्थूलसे सूक्ष्मभूत भोजनकी आ होती है, उसीसे उनकी तृप्ति होती है।

इस बातको इस प्रकार समझना चाहिये। ह मुखद्वारा स्थूल भोजनको अपने पेटमें भेजते हैं; हमारा आत्मा सूक्ष्म है। उसके लिये सूक्ष्म भोजन है। उस समय उस स्थूल भोजनको हमारी जाठरा करके हमारे सूक्ष्म अन्तरात्माको सौंप देती है। उ तत्त्वसे हमारा सूक्ष्म आत्मा तृप्त हो जाता है। वह अग्नि स्वयं ही इस कार्यको करने लगती है, ह चिन्ता नहीं करनी पड़ती। इसी प्रकार सूक्ष्म पितर दिये हुए स्थूल भोजनके अग्नि या ब्राह्मणाग्निद्वारा सूक्ष्म तत्त्वको प्राप्त करके तृप्त हो जाया करते हैं। ब्राह्मणाग्नि महाग्निके साथ मिलकर स्वयं ही उस करने लगती है; उसके लिये ब्राह्मणको कोई व्याप

ांपर पूर्व प्रकारसे समझना चाहिये—जैसे यज्ञसे तृप्त
ता वृष्टि करते हैं, वैसे यहाँपर भी जानना चाहिये।
पत्ति यह है कि जब हम अग्निमें हव्य डालते हैं,
ऊ अग्नि उस हविको जलाकर सूक्ष्म कर देती है और
ोकर स्वयं भी सूक्ष्म हो जाती है। तब वह सूक्ष्म अग्नि
साथ मिलकर उस सूक्ष्म हविको लेकर अपने मित्र
देकी सहायतासे आकाशाभिमुख जाती है तथा आकाशमें
न-उन देवताओंको वह हवि पहुँचा देती है। वे देवता
वसे तृप्त होकर प्रजाके हितके लिये एवं धान्य
उत्पत्त्यर्थ वृष्टि कर देते हैं (मनुस्मृति ३। ७६)।
इ श्राद्धमें भी जब कव्यको अग्निका सहोदर ब्राह्मण या
र प्राप्त करता है, तब वह ब्राह्मणकी अग्नि अथवा स्वयं
कव्यको सूक्ष्म करके स्वयं भी सूक्ष्म होकर महाग्निके साथ
ी है तथा आकाशमें जाकर चन्द्रलोकस्थ पितरोंको सौंप
पितर उससे तृप्त होकर श्राद्ध करनेवालेके धान्य-सन्तान
व्यवस्था अपने माहात्म्यसे कर देते हैं। जैसे देवताओंको
स्वाहा, वरुणाय स्वाहा'इत्यादि मन्त्रोंद्वारा दी हुई
सूर्य खींचता है, वैसे ही पितरोंके उद्देश्यसे दी हुई
चन्द्रमा खींचता है, अथवा सूर्य खींचकर अपनी
श्मिसे प्रकाशित चन्द्रलोकमें भेज देता है। जैसे
सूर्यकी उस रश्मिको खींच लेता है, वैसे ही सूर्यकी
स्थित पूर्वोक्त उस सूक्ष्म अन्नको भी खींचकर
पितरको सौंप देता है। वे सूक्ष्म पितर भी उस
वैसे हमारे सूक्ष्म आत्माकी तरह तृप्त हो जाते हैं।
रण है संकल्पकी महिमा; क्योंकि हम उस हविको
तरके उद्देश्यसे सङ्कल्पित करके दिया करते हैं।
ा हमारे मानसिक संकल्पको जान लिया करते हैं।
इसका अनुमोदन करता है, जैसे कि—

**। देवा मनुष्यस्या जानन्तीति, मनसा सङ्कल्पयति,
मपिपद्यते, प्राणो वातं वातो देवेभ्यऽआचष्टे यथा
नः।** (शतपथब्रा० ३। ४। २। ६)।

प्रकार 'अथर्ववेदमें' भी कहा है—'**मनसा
ते, तद् देवानभिगच्छति**' (शौ० सं० १२।
)। सूर्य आदि देवता सब लोगोंका वृत्त जानते हैं,
नुस्मृति'की साक्षी भी देखिये—

तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः।
(८। ८५)

**द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिला
रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम्**
(८

यहाँपर सूर्य-चन्द्रके सम्बन्धमें भी लोगोंका वृत्त
ज्ञान कही है। इधर चन्द्रमा तो मनका ही देवता म
है। श्राद्धमें संकल्प प्रसिद्ध ही है। उक्त मनुपद्यके
श्रीकुल्लूक भट्टने कहा है—

**दिवादीनाम् (द्युगतसूर्यादिदेवानाम्) अधिष्ठातृ
त्वा च शरीरिणी एकत्र अवस्थापिता तत्सर्वं जानाति
आगमप्रामाण्याद् वेदान्तदर्शनमङ्गीकृत्य इदमुक्तम्**

जिस प्रकार वह सर्वाधिष्ठाता देव जड कर्म
उनके कर्ताओंको प्राप्त कराता है, वैसे ही उन-उन दे
अधिष्ठातृत्वमें उस-उस पितरको श्राद्धका फल प्राप्त क
इस प्रकार श्राद्धद्वारा मृतक पितरोंकी तृप्ति सिद्ध हु
और श्राद्ध दोनों हिंदु-संस्कृतिके मुख्य अङ्ग हैं—
भूलना चाहिये। इन्हींसे हिंदु-संस्कृतिकी सुरक्षा होगी

४. हिंदु-संस्कृति और परलोकवाद

हिंदु-संस्कृति सर्वादिम संस्कृति है, उसके सर्वो
वेद हैं; उनके अनुसारी वेदाङ्ग तथा धर्मशास्त्र हैं। इ
परलोकको बहुत स्पष्टरूपसे माना है। जो परलो
मानते, वे नास्तिक माने गये हैं।

अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः (४। ४

—इस पाणिनिसूत्रके 'महाभाष्य'में लिखा है—

अस्ति इत्यस्य मतिरास्तिकः नास्तीत्यस्य मतिर्नास्ति

इसके 'प्रदीप'में कैयटने स्पष्टीकरण किया है—

**अस्ति इत्यस्य इति परलोककर्तृका सत्ता विज्ञे
विषये लोके प्रयोगदर्शनात्। तेन परो लोकोऽस्तीति
स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।**

आप्नोति इमं लोकम् आप्नोति अमुम्।
(शौ० सं० ९। ११

'अथर्ववेद' के इस मन्त्रमें '**इमं लोकम्**' से 'य
और '**अमुं**' से परलोक सिद्ध हो रहा है। इसी प्रकार-

इमं च लोकं परमं च लोकम्' (अथर्व० १९। ५

—यहाँ 'परमलोक' का 'परलोक' अर्थ है, जैसे

यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे। (अ० १३। ३

—यहाँपर 'परमस्य' का अर्थ 'परस्य' है। '
ब्राह्मण' में स्पष्टतया कहा है—

य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने, इदं च परलोक-
। (१४ । ७ । १ । ९)

ोपनिषद्की—

ं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे (यमस्य)।
(१ । २ । ६)

-इस श्रुतिमें भी स्पष्टरूपसे परलोकको माना गया है।

लोकसहायार्थम्' (मनु० ४ । २३८)

मुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।'
(मनु० ४ । २३९)

इत्यादि स्मृतिपद्य तो इस विषयमें बहुत हैं। इन्हींको पाश्चात्त्य विद्वानों तथा हमारे यहाँके विद्वानोंने द्या निकाली है और इस विषयमें वे उत्तरोत्तर र रहे हैं। अब तो वे असाध्य रोगियोंका भी उपचार किस्थ जीवोंसे पूछकर करते हैं, और प्रायः सफल रहे हैं। इसका कारण यह है कि जीवात्मा स लोकके स्थूल शरीरसे युक्त रहते हैं, तबतक उनमें सीमित रहती है। पर जब वे स्थूलशरीरको सूक्ष्म होकर पितृलोकमें जाते हैं, उनकी शक्ति बढ़ ी है। जैसे दीपक जब घड़ेमें रक्खा रहता है, तब उसका गित हो जाता है; घड़ेसे दीपकको बाहर कर देने- प्रकाशशक्ति बढ़ जाया करती है, वैसे ही यहाँपर ना चाहिये। 'वेदान्तदर्शन' के ३ । २ । ६ सूत्रके आचार्य शङ्करस्वामीने लिखा है—

पि तु जीवस्य ज्ञानैश्वर्यतिरोभावो देहयोगाद् देहे- बुद्धिविषयवेदनादियोगाद् भवति । अस्ति चात्र यथा अग्नेर्दहनप्रकाशनसम्पन्नस्यापि अरणिगतस्य शने तिरोहिते भवतः, यथा वा भस्माच्छन्नस्य प्रकाशने तिरोधीयेते, तथा स्थूलदेहाच्छन्नस्य पि ज्ञानैश्वर्यतिरोभावो जायते।

ास्कने 'निरुक्त'में 'प्रमदक' (नास्तिक) की **'योऽय- लोको न पर इति प्रेप्सुः'** (६ । ३२ । १) यह मानी है। 'शतपथब्राह्मणमें देवलोक (१४ । ७ ।), गन्धर्वलोक (३७), ब्रह्मलोक (१४ । ७ ।) तथा पितृलोक, मनुष्यलोक (३ । ७ । १ । २५) त आता है। **'मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्'** (१९ ।७१। ाथर्ववेदके इस मन्त्रमें 'ब्रह्मलोक', **'विष्णोर्यत् परमं** सामवेद, उत्तरार्चिक १८ । २ । १ । ५) में विष्णुलोक, **'ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लो वदन्ति'** (अथर्व० ११ । १ । ७) में स्वर्गलोक, **लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः'** (अथर्व० १२ । २ । पितृलोक, **'अथाहुर्नारकं लोकम्'** (अथर्व० १२ । ४ में नरकलोक, **'सर्वान् कामान् यमराज्ये'** (१२ । ४ में यमलोककी बात आयी है। अतः परलोककल्पना वे मोदित है।

५. यम, यमलोक एवं पितृलोक

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा स
(अथर्व० १८ । ३

यहाँपर यमको विवस्वान्का पुत्र तथा उसके पुरुषोंका जाना कहा है।

विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते। (ऋ० १० । १

—इस मन्त्रमें यम देवता है, उसके पिताको विवर गया है।

यमो वैवस्वतो राजा इत्याह तस्य पितरो विशः।
(शतपथ० १३ । ४ ।

'यमाय पितृमते स्वधा नमः' (अ० १८ । ४

'यमराज्ञः पितॄन् गच्छ' (अ० १८ । २

—इत्यादि वेदके स्थलोंमें यमको पितृपति कहा

'वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्' (अथर्व० ८ । २

—यहाँपर यमदूतोंका वर्णन है।

'मोष्वेषामसवो यमं गुः। (अ० १८ । ३

अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत
वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यम

—यह कृष्णयजुर्वेदका मन्त्र स्वामी श्रीदय अपनी 'संस्कारविधि' के अन्त्येष्टिसंस्कारमें दिया है मृत्युका अधिष्ठाता देव यमराज सूचित होता है।

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य द्वौ पथिरक्षौ
(अथर्व० ८ ।

—इस मन्त्रमें यमराजके दो कुत्तोंका वर्णन है

यमस्य लोके अधिरज्जुरायत्। (अथर्व० ६ । ११

इदं यमस्य सादनम्। (ऋ० १० । १३

यहाँपर यमलोकका वर्णन है।

दक्षिणा तिष्ठन् यमः। (अथर्व० ९ । ७

यहाँपर यमलोकका दक्षिण दिशामें होना बताया है।
का वर्णन पूर्व किया जा चुका है।

६. नामकी महत्ता

का महत्त्व निष्कारण नहीं है। नाम-नामीके निरन्तर उनका सम्बन्ध भी हमारे चित्तमें गहरे रूपसे सन्निविष्ट है। उस नामके साथ इतने संस्कार, इतनी भावनाएँ तेयाँ इकट्ठी हो जाती हैं कि नामका महत्त्व नामीके केसी भी तरह न्यून नहीं ठहरता। नाम और नामी हो जाते हैं। जो मधुरिमा उस नियत नाममें हुआ वह उससे भिन्नमें नहीं होती। नामकी महत्ता बहुत नामकी महिमा नामीकी महिमासे भी बढ़कर हुआ। यह नाम विशाल आदर्शका सजीव प्रतिनिधि होता कारण हमारी हिंदु-संस्कृतिमें परमात्माके नामकीर्तनका ार है। यदि सच कहा जाय तो इसी नामकीर्तनने स्कृतिको मुसल्मानी कठोर राज्यमें भी बचाया। वेदविरुद्ध भी नहीं है, किंतु वेदने ही इसका या है। कुछ मन्त्र इस विषयमें दिये जाते हैं—

नाम महद्यशः। (यजुः ३२। ३)

यहाँपर परमात्माके नामको यशोजनक माना है।

ते नाम स्वयशो विवक्मि।

(सामवेद २०। ३। ४। २)

यहाँपर परमात्माका नामकीर्तन कहा गया है।

र्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णाति आयुषे।

(अथर्व० ६। ७६। ४)

यहाँपर नामका ग्रहण आयुके लिये माना गया है।

महे चारु देवस्य नाम। (ऋ० १। २४। १)

ो अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।

(ऋ० ८। ११। ५)

नाम वन्दमानो दधाति। (ऋ० ५। ३। १०)

ा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि।

(ऋ० १०। ६३। १)

न्द्रस्य नाम। (ऋ० ९। १०९। १४)

ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियम्। (यजु० ५। ९)

ानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।

(अथर्व० २०। १९। ३)

सततं कीर्तयन्तो माम्। (९

'अथर्ववेद'में कहा है—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरा उषसः

(१०। ७

इसका आर्यसमाजके विद्वान् पं० श्रीराजारामजी इस प्रकार अर्थ किया है—'वह (भक्त) सूर्यसे पहले पहले (परमेश्वरके एक) नामके साथ (दूसरे) पुकारता है।

यत् ते नाम सुहवं। (अथर्व० ७। २०

नाम उपास्स्व। (छान्दोग्योपनिषद् ७।

—यहाँपर नामोपासना बतायी गयी है। यदि ना में शक्ति नहीं तो 'दुरात्मा' शब्द कहनेमें दूस क्रुद्ध होकर हमसे लड़ता है? 'महात्मा' शब्द कह हमपर दूसरा प्रसन्न हो जाता है? जब इस प्र नामोच्चारणका प्रभाव दिन-रात देखते हैं, तब ईश्वर स्तुतिके उच्चारणका प्रभाव क्यों न होगा? जो ले हैं कि मिश्री-मिश्री कहनेसे मुँह मीठा नहीं ह उन्हें याद रखना चाहिये कि सब पदार्थोंमें समा नहीं हुआ करती। कई पदार्थ नामस्मरणसे प्रभ हैं, कई खाने-पीनेसे और कई स्पर्शमात्रसे। इ पदार्थोंकी विचित्र-विचित्र शक्तियाँ हुआ करती हैं खानेसे उसका स्वाद मालूम होता है, पर नाम नहीं जाता। अतः मिश्रीका दृष्टान्त विषम है। नाम लेनेसे भी मुखमें खट्टापन मालूम होता है कीर्तन या स्मरण ही हुआ करता है। पूर्वोक्त वे को ही आधार बनाकर श्रीमद्भागवतपुराणमें कहा गय

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम य
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानल

(६। २

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्
अजामिलोऽप्यगाद् धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्

(६। २

७. हिंदु-संस्कृतिमें देवतावाद

हिंदु-संस्कृतिमें आदिकालसे ही वेदोंके प्रति वि है। देवतावादके प्रसारक वेद ही हैं; अतः इस

देवपूजा हिंदु-संस्कृतिका एक अङ्ग है। इन देवताओं-
लौकिक शक्ति रहती है। यदि परमार्थदृष्टिसे देखा जाय
सम्पूर्ण संसारका भरण-पोषण देवताओंपर आश्रित
ताओंके अनुकूल होनेपर ही संसार सुखका श्वास ले
है। अदूरदर्शी लोग देवताओंको जड मानते हैं; पर
सिद्धान्तके अनुसार देवता चेतन हैं।

मी श्रीशङ्कराचार्यने देवतावादपर अच्छा प्रकाश डाला
समाजके विद्वान् पं० श्रीराजारामजी शास्त्रीने अपने अथर्व-
की भूमिकामें उसका निष्कर्ष सुन्दर ढंगसे लिखा है।
लाभके लिये हम उसे उद्धृत करते हैं—

मेश्वरकी सृष्टिमें देहधारी जीवोंकी सृष्टि नाना प्रकारकी
भूलोकमें ही शैवाल, तृण, घास आदि नाना प्रकारके
और पशु-पक्षी आदि नाना प्रकारके जङ्गम हैं। ये
विशेष हैं। मनुष्य इन सबसे ऊँची श्रेणीका जीव है;
त्माकी सृष्टि यहींतक समाप्त नहीं है। मनुष्यसे कई
ऊँचा पद रखनेवाले जीव भी उसकी सृष्टिमें
हैं, जो मनुष्योंकी भाँति चेतन हैं। वे अपनी शक्ति
नमें इतने ऊँचे पहुँचे हुए हैं कि मनुष्यकी शक्ति
न उनके सामने तुच्छ हैं। इस अनेक प्रकारकी
ष्टिमें सबसे ऊँचा स्थान देवताओंका है। देवता चेतन
नुष्योंसे ऊपर और परमेश्वरसे नीचे हैं। परमेश्वरकी
नको भिन्न-भिन्न अधिकार मिले हुए हैं, जिनका
करते हैं। देवता अजर और अमर हैं; पर उनका
र होना मनुष्योंकी अपेक्षासे है, वस्तुतः उनकी भी
पनी आयु नियत है। ब्रह्माण्डकी दिव्य शक्तियोंमेंसे
शक्तिपर एक-एक देवताका अधिकार है; जिस शक्ति-
का अधिकार है, वही उसका देह है, जो उसके
।

ते हमारे देहमें एक जीवात्मा है, जो इस देहका अधिपति
प्रकार उस शक्तिके अंदर भी एक जीवात्मा है, जो
धिपति है। जैसे हमारे अधीन यह देह है, वैसे ही
ताके अधीन सूर्यरूपी देह है। हम एक थोड़ी-सी
देहके स्वामी हैं, वह एक बड़ी शक्तिवाले
स्वामी है। वह अध्यात्म-शक्तियोंमें इतना
है कि अपनी इच्छाके अनुसार जैसा चाहे, वैसा
र जहाँ चाहे, वहाँ जा सकता है। वही देव सूर्यका
कहलाता है और सूर्यके नामसे ही बुलाया जाता
हैं। देवताओंका ऐश्वर्य बहुत बड़ा है, पर व
परमेश्वरके अधीन हैं। एक-एक देवता एक-एक दि
का नियन्ता है। पर उन सबके ऊपर उन सबक
परमेश्वर है। इसलिये सभी देवता मिलकर जगत्‌
उसी प्रकार कर रहे हैं, जिस प्रकार राजाके अधी
भृत्य उसके राज्यका प्रबन्ध करते हैं।

'देवताओंकी उपासनाओंसे उन कामनाओंकी सि
है, जिनके कि वे मालिक होते हैं।······वे तबत
शरीरको धारण किये रहते हैं, जबतक उनका वह
समाप्त नहीं हो लेता, जिस अधिकारपर उनको
लगाया है। अधिकारकी समाप्तिपर वे मुक्त हो
और उनकी जगह दूसरे आ ग्रहण करते हैं, जो म
ही उपासनाद्वारा उस पदके योग्य बन गये हैं। दे
ऐश्वर्यके दर्जे हैं। सबसे ऊँचा दर्जा ब्रह्माका है।' (पृ

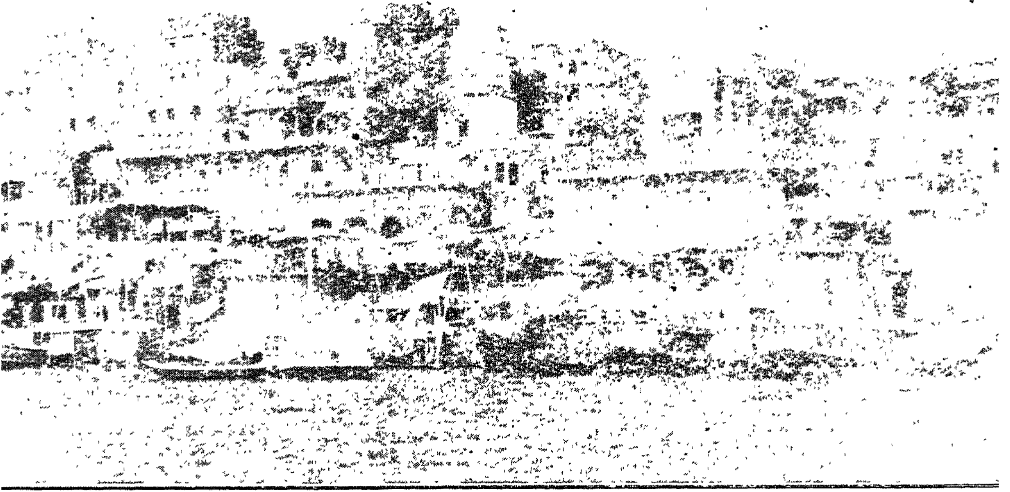
वेदमें परमात्माके वर्णनका प्रकार

"वेद दो प्रकारसे परमात्माका वर्णन करता
बाहरके सम्बन्धोंसे अलग हुए उसके केवल स्वरूपक
बाहरके जगत्‌से सम्बन्ध रखते हुएका।······जगत्‌
रखकर उसके निज रूपको देखें, तो वह उसके शुद्ध
दर्शन है; और जगत्‌का अन्तर्यामी होकर उसपर शास
हुआ देखें, तो वह उसके विशिष्ट रूपका दर्शन है।

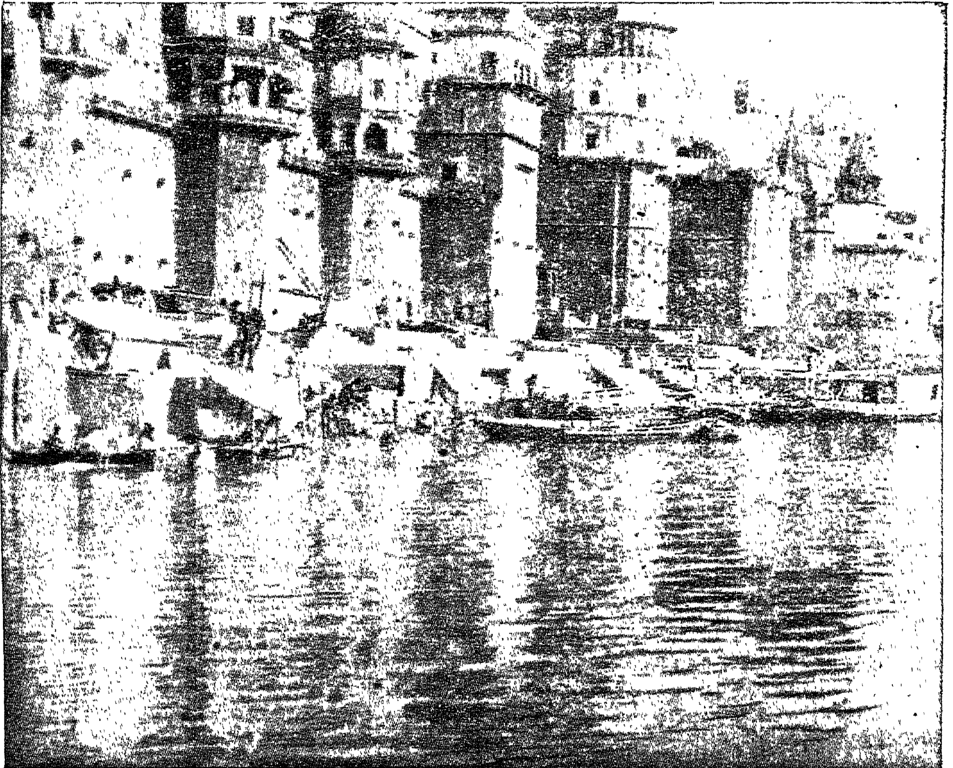
शुद्ध ज्ञेय और विशिष्ट उपास्य है

"अब उसका शुद्ध स्वरूप तो सच्चिदानन्दस्
नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव अथवा 'नेति-नेति' वे
किसी प्रकारसे वर्णित नहीं हो सकता; और
एवं अचिन्त्य होनेसे न हमारे जीवनपर
कोई प्रभाव पड़ता है, न हम अपनी त्रुटियाँ पू
और अपनेको उच्च अवस्थामें लानेके लिये उससे प्रा
सकते हैं। क्योंकि किसी मानुषी गुण, प्रेम, दयालुत
का हम शुद्धके साथ सम्बन्ध नहीं कर सकते,
प्रकारसे उसकी पूजा कर सकते हैं। यह बात याज्ञ
गार्गीको शुद्ध-स्वरूपका उपदेश करते हुए बतलायी

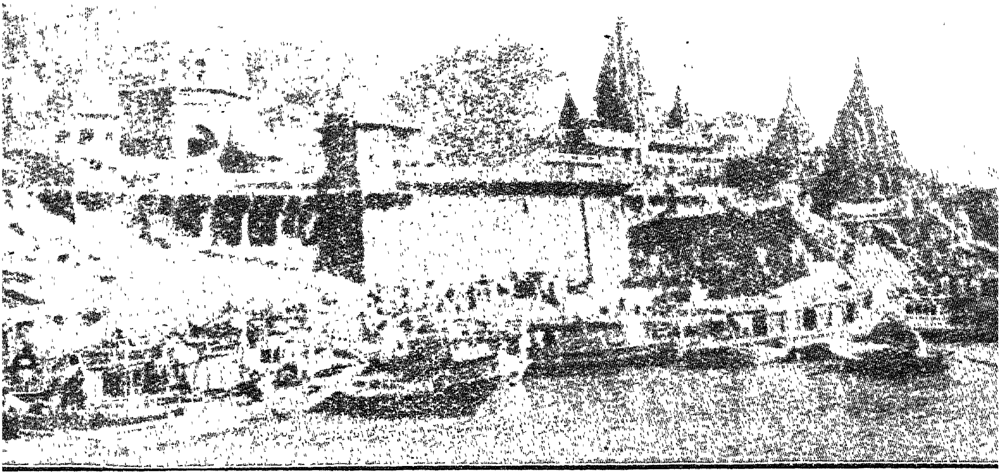
**स होवाचैतद् वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा
वदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायम
स्वाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवाग
जस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति**



श्रीकाशी—दशाश्वमेध घाट



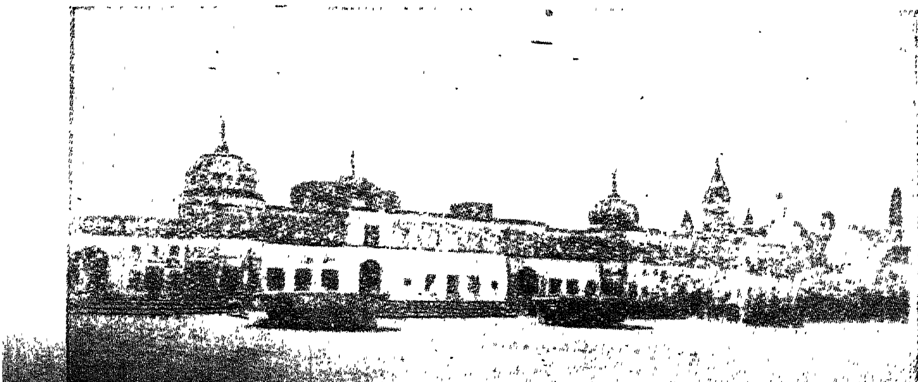
काशी—गंगातट



काशी—मणिकर्णिका घाट [पृष्



त्रिवेणी-संगम, प्रयाग [पृष्



"इसका अभिप्राय यही है कि इस रूपमें न हम उसको अर्पण करते हैं, न वह हमारे जीवनपर कोई प्रभाव । है। या यों कहें कि इस रूपमें वह हमारे ज्ञानका लक्ष्य तो हो सकता है, पर उपास्य नहीं। उपास्य वह विशिष्ट रूपमें ही है।

...शिष्ट रूपमें उसकी अनेक रूपोंमें उपासना

'मनुष्यके हृदयमें उसके जिस रूपके लिये भक्ति, पूजा उपासना है, वह उसका विशिष्ट रूप ही है। और यह ...सका अनेक रूपोंमें पूजा जाता है; इन्हीं रूपोंको देवता हैं, जो वेदमें अग्नि, इन्द्र, वायु, सूर्य, मित्र, वरुण, ...ादि नामोंसे वर्णन किये गये हैं।

...नुष्य पहले-पहल इन अलग-अलग विशिष्ट रूपोंमें उसका ... कर सकता है और जब वह उसकी महिमाको अलग-... अनुभव कर चुकता है, तब फिर उसका हृदय एक ...रे विश्वमें उसकी महिमाको अनुभव करता हुआ उसका ... और पूजन करता है। इस समष्टिरूपको अदिति, ...तं, पुरुष, हिरण्यगर्भ आदि नामोंसे वर्णन किया गया है।

...ष्ट रूपों (देवतारूपों) में परमात्माको जाननेकी आवश्यकता

पहले-पहल केवल शुद्धरूपमें परमात्मा दुर्ज्ञेय है। उसका ... जगत्में ही सम्भव है, वह भी अनेक विशिष्ट रूपों ...रूपों)में। क्योंकि उसकी महिमा, जो इस जगत्में ...ती है, इतनी बड़ी है कि समष्टिरूपमें उसका ज्ञान ...क्तिसे बाहर है। इसलिये अग्नि, वायु, सूर्य, सविता, मित्र, ...वापृथिवी, अश्वि, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, वास्तोष्पति, क्षेत्र-...ादि परिमित रूपोंमें उसकी महिमा वेदमें कही गयी ... स्तुति, नमस्कार और पूजाद्वारा उन सब रूपोंके ...रा सम्बन्ध करनेका उपदेश है।" (अथर्ववेदभाष्य-...पृ० १२-१३)

...ाँपर पं०श्रीराजारामजी शास्त्रीने वैदिक देवतावादके ... बहुत स्पष्ट कर दिया है; यद्यपि यह उन्होंने अपना ...तव्य बताया है, तथापि वस्तुतः यही हिंदु-संस्कृतिका ...्य है। देवता मनुष्यके सुखजनक हैं; अतः मनुष्यों-...की उपासना करनी चाहिये—इस विषयमें वेद भी ...। 'कल्याण' के पाठकगण देखें—

मर्डिता (सुखजनकः) विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु देवगणोंके सदृश सुखदायक दूसरा कोई नहीं है; मेरी कामनाएँ देवताओंमें हैं। **'सर्वान् स देवा पिपर्ति'** (अथर्व० ११ । ५ । २)—यहाँपर दे... तपस्यासे प्रसन्नता बतायी गयी है। **'यजाम दे... शक्वाम'** (ऋ० १ । २७ । १३)—यहाँपर देवताओंकी पूजा करना बतलाया है। **'सपर्यन् देवान्, नमसा उपशिक्षन्'** (ऋ० ५ । ४० । ८)—... में देवताओंकी स्तोत्र एवं नमस्कारसे पूजा बतायी... **'तेन मा देवास्तपसावतेह'** (अथर्व० १९ । १)—यहाँ देवताओंसे रक्षार्थ प्रार्थना की गयी है। **...अभ्यर्चाम देवान्'** (ऋ० ९ । ९७ । ४)—यहाँपर ... देवपूजा कही गयी है।

एष ह वाऽअनद्धा पुरुषो यो न देवान पितॄन्।' (शतपथ० ६ । ३ । १ । २४)

—यहाँपर देवपूजा एवं पितृपूजा न करनेवाले... निन्दा की गयी है। **'देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे'** ... १० । ६५ । १५)—यहाँपर वेदने देवपूजनमें ... इतिहास भी दिखलाया है। **'तस्माद् देवान् यज'** ... १ । ८ । २ । १४)—यहाँपर स्पष्टरूपसे देवपूजन वि... गया है। इसी मूलको लेकर 'मनुस्मृति'ने भी दे... बल दिया है—

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद् देवर्षिपितृतर्पणम्
देवताभ्यर्चनं चैव ....

(२ ।

८. अश्वत्थ तथा तुलसीका महत्त्व

हमारे शास्त्रोंमें अश्वत्थ (पीपल) की महिमा ... गयी है। 'अथर्ववेद'में **'अश्वत्थो देवसदनः'** (शौ... ५ । ४ । १) पीपलको देवताओंका घर ही कहा है। ... उसकी पूजासे भी देवताओंकी पूजा होती है। **'अश्वत्थ वृक्षाणाम्'** (भगवद्गीता १० । २६)—इस पद्यमें भ... पीपलको अपनी विभूति माना है। लौकिक दृष्टिके ... भी यह पुत्रप्रदाता माना गया है, इसमें आयुर्वेदके ... स्त्रीके वन्ध्यत्वदोषके हटानेकी अद्भुत क्षमता है।

तुलसीके महत्त्वको बतानेवाले ये पद्य प्रसिद्ध हैं—

तुलसीकाननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते
तद्गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिङ्कराः।
तुलसीविपिनस्यापि समन्तात् पावनं स्थलम्

से तुलसीके आस-पासका स्थान पवित्र माना गया है;
लेरियाकी विषाक्त वायुको दूर करनेकी अद्भुत क्षमता
के समय भी तुलसीमिश्रित गङ्गाजल पिलाया जाता
से आत्मा पवित्र हो और सुख-शान्तिसे लोकान्तरको
। विषाक्त वायु तुलसीसे स्वच्छ हो जाता है। मलेरिया-
नमें सहायक मच्छर इससे दूर भागते हैं। यह सब
ज्वरोंको हटाकर स्वास्थ्य देती है। जिन रोगियोंको
गङ्गातटके पास जानेमें सुविधा न हो, उन्हें तुलसी-
श्रममें रक्खा जाता है; वही लाभ उन्हें वहाँ मिल जाता
पूर्वज जडोपासक नहीं थे, जड वस्तुओंके अधिष्ठातृ-
नकर उनकी पूजा किया करते थे। स्वास्थ्यके होनेसे ही
में प्रवृत्ति हो सकती है; अतः स्वास्थ्यवर्धक वस्तुका
न्ध अनुचित भी नहीं है।

९. सदाचार एवं शौचाचार

-संस्कृतिमें जितने सदाचार या शौचाचार रक्खे गये
क होनेसे उनका परलोकसे सम्बन्ध तो है ही;
उनका लौकिक लाभोंसे भी सम्बन्ध होता है। हम
छका निरूपण करते हैं। विज्ञ पाठकगण ध्यान दें।
वीन-अर्वाचीन विद्वानोंके विचारोंका मिश्रण होगा।

मन्दिरमें जाना—जहाँ इसमें देवपूजा लक्ष्य
वहाँपर शारीरिक तथा मानसिक लाभ भी हुआ
। देवालय जानेके लिये हम सूर्योदयसे पहले उठते हैं,
दियसे पूर्व ही स्नान करते हैं। इससे रूप, तेज,
मेधा, आयु आदिकी वृद्धि होती है। देवमन्दिर
रसे बाहर होते हैं। वहाँ कोई बगीची होती है।
लिये वहाँपर हम फूल चुनते हैं। इमें शुद्ध वायु मिलती
शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्तिका लाभ
। चन्दन लगानेसे मस्तिष्क तथा दृष्टिकी शक्ति बढ़ती
न, दीप आदि सुगन्धित द्रव्योंके कारण मन्दिरके
र दिव्य शक्तिका सञ्चार रहता है, जिससे भूत-बाधा-
त्ति तथा विषयुक्त कीटाणु-शक्तिका ह्रास होता है, शुद्ध
लके प्रभावसे कुविचार अंदर नहीं रह पाते। पुरुष-शरीर
निर्मित होता है। भिन्न-भिन्न शरीरोंमें भिन्न-भिन्न
प्रधानता रहा करती है। इसलिये हमारे यहाँ पाँच
अपने-अपने रुच्यनुसार पूजा कही गयी है। ये देव भी
तत्त्व प्रधानतासे धारण करते हैं। इधर मन्दिरमें
विषयका प्रभाव भी होता है। उसी मन्दिरमें शङ्ख
किया जाता है। उससे फेफड़ोंकी शुद्धि तथा छातीकी
सम्पन्न होती है। कीटाणुओंका नाश होता है
मन्दिरस्थ वस्तुएँ—पञ्चगव्य, तुलसी आदि सभी पदा
प्रद होते हैं। इस प्रकार देवमन्दिरमें जाना **'जीवेम
शतम्'** इस वैदिक उक्तिको अपनाना है।

चरणामृतका वैज्ञानिक महत्त्व—उसी देवमन्दि
हम चरणामृत लेते हैं, जिसका माहात्म्य **'अकालमृ
सर्वव्याधिविनाशनम्'** प्रसिद्ध ही है। वह हमारे लि
ओषधिका काम देता है। पूजाके समय ताम्रपात्रमें
शालग्रामकी प्रतिमाका मन्त्रोपचारसे गङ्गाजलद्वारा संस्न
है। तुलसीदल, केशर, चन्दन, कस्तूरी आदि पदार्थ उस
रहते हैं। शालग्राम गण्डकी नदीका पदार्थविशेष है;
छोटे-छोटे सुवर्ण-कण मिले रहते हैं। वेद सुवर्णसे सं
आयु बताता है। ताँबेका प्रभाव तो विज्ञानप्रसिद्ध
उसमें रक्खा हुआ जल रोगनाशक होता है, फिर गङ्
कीटाणुनाशिनी शक्ति तो विश्वविदित ही है। तुलसीद
विविध व्याधियोंको दूर करनेकी सामर्थ्य है। केशर,
कस्तूरीका तो बहुत रोगोंमें उपयोग किया ही जाता है।
वेदमन्त्रोंकी शक्ति हिंदु-संस्कृतिमें प्रसिद्ध ही है। इ
जल शङ्खमें डाला हुआ और भी शक्तिसम्पन्न हो ज
तब वह जल एक अमृतका काम करता है। उससे
अकालमृत्यु नहीं होने पाती। इधर मन्दिरमें प्रातःक
पड़ता है, इस व्याजसे प्रातः-भ्रमण भी हो जाता है
भ्रमणके लाभ भी जगत्प्रसिद्ध हैं। और फिर उ
हमारे पालक भगवान्‌से हमारी एकता हो जाती है।
घृतका चतुर्मुख दीपक, उसका शुद्ध आलोक इत्य
पदार्थ हमारी अकालमृत्युको दूर करते हुए—**'विष्णु
पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते'** इस पद्यको चरिताथ
करते हैं। यह बात अर्थवाद न होकर सत्य है; क्य
अवसरकी निष्काम भगवद्भक्ति मुक्ति देकर हमारे पु
हटा देती है। इस प्रकार चरणामृतपानसे श
मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ होते हैं।

शङ्खनाद—श्रीजगदीशचन्द्र वसुने अपने वैज्ञानिक
द्वारा सिद्ध कर दिया है कि जहाँतक शङ्खका नाद
जहाँतक रोगके अनेक विषाक्त कीटाणु नष्ट हो जाते

भी सूक्ष्म भूतोंके अन्तर्गत होते हैं। इधर यह शङ्ख
भाषणशक्ति प्रदान करता है। इसलिये छोटे-छोटे
गलेमें छोटे-छोटे शङ्खोंकी माला पहनायी जाती है।
च्चे जल्दी बोलने लग जाते हैं, उन्हें दृष्टिदोष भी
ता। इसकी श्रेष्ठता होनेसे ही मन्दिरोंमें आरतीके समय
शङ्खका जल डाला जाता है। यूरोपीय वैज्ञानिकोंने भी
मनुष्यहितकारिणी विद्युत्‌ मानी है। शङ्खमें यदि
को सिद्ध करके पिलाया जाय, तो कीटाणुमूलक सब
हो सकते हैं। इसमें कोई विशिष्ट व्यय भी नहीं
इसके अनेक लाभोंको देखकर प्राचीन कालमें स्त्रियाँ
चूड़ियाँ पहनती थीं, अब भी बंगालमें पहनती हैं,
—

ुभियोगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत्।

(४। ९)

—इस 'सांख्यदर्शन' के सूत्रमें संकेत किया गया है।

-पाठ—प्रत्येक विशिष्ट शब्द एक विशिष्टता रखता
कारण वेदके शब्दोंकी आनुपूर्वीमें परिवर्तन नहीं
जाता; क्योंकि उसके शब्दोंको उसी आनुपूर्वीसे
लाभ विशेष होता है। उसी आनुपूर्वीका मेघोंपर भी
ड़ता है, वृष्टि हो जाती है। सूर्यादि देवोंपर प्रभाव
, जिससे वे प्रसन्न होकर लाभ पहुँचाते हैं।

स देशकी प्रसिद्ध वैज्ञानिक महिला मैडम फिनेलाङ्ग
हैं; उसने शब्दके विषयमें पर्याप्त अनुभव किये हैं।
विशिष्ट अनुभवके लिये उसने बिजलीके तारोंको
नमें जोड़ा। साथ ही एक चाकका टुकड़ा भी बाँध
ौर काला बोर्ड भी रख दिया। निकटमें ही वह
पर बैठकर गाने लगी। कुछ समयके बाद मुखको
के उसने देखा और हैरान हो गयी। उस बोर्डपर
ची थीं। उस बोर्डको उसने साफ कर दिया।
वह अपने प्रेमीके विषयमें गाने लगी। साथ ही
ा कि उस स्वरसे बिजलीके तार काँप रहे हैं, और
पर आकृति बन रही है। यह जानकर वह प्रसन्न
शब्दोंका आभ्यन्तरिक भावोंसे गहरा सम्बन्ध है।
द्ध है कि मृग आदि पशु तथा सर्प भी गाने या
नमें मस्त होकर खेलते हैं। युद्धमें विशिष्ट गानसे
आवेश आ जाता है। वे कटते हुए युद्धमें अग्रसर

यत्न किया। वह रोमन कैथलिक गिरजागृहमें प्रार्थ
गयी। वहाँ भी उसने बिजलीका वह यन्त्र लगा
प्रार्थना समाप्त हो गयी, तब बोर्डपर एक स्त्री त
लड़केकी आकृति बन गयी। इन आकृतियोंका सम्ब
तथा उसकी माँसे था।

फिर भी वह सन्तुष्ट न हुई। पैरिसके एक महा
में एक बङ्गाली विद्यार्थी पढ़ता था। उसे उसने कोई
गाना गानेके लिये कहा। वह विद्यार्थी नये वायुमण्डल
होनेसे धार्मिक गानोंसे अनभिज्ञ था। हाँ, बाल्यावस्था
ने उसे भैरवाष्टक सिखलाया था। जब उसने वह स्तो
स्वरसे सुनाया, तब उस काले बोर्डमें भैरवकी मूर्ति बन
इन बातोंसे स्पष्ट है कि जप वा उच्च स्वरसे पाठ
कितनी शक्ति है। इसी सिद्धान्तसे ग्रामोफोन
आविष्कार हुआ।

जपना १०८ बार क्यों?—हमारे श्वास प्रत्येक
निकलते हैं। २॥ पलोंके एक मिनटमें हमारे १५ श्वास
हैं। इस हिसाबसे एक घंटेमें ९०० तथा दिनभरके १२
१०,८०० श्वास हमारे निकलते हैं। एक दिनके
श्वासोंमें हमें अपने इष्टदेवको याद करना चाहिये।
लोकयात्रामें इतना सम्भव नहीं, अतः १०,८०० के
दो शून्योंको हटाकर १०८ बार इष्टदेवका जप
जाता है।

अथवा इसमें एक अन्य रहस्य है। मायाका
होता है और ब्रह्मका ९ अङ्क। मायामें परिवर्तन या प
होता है, ब्रह्ममें नहीं। देखिये ८ का पहाड़ा। ८ × १
८ × २ = १६ (१ + ६ = ७)। यह आठका
दुगना होनेपर ७ हो गया है। ८ × ३=२४ (२ + ४=
अब वही ६ हो गया है। इसी प्रकार आगे भी क्रम-क्रमसे
होता जाता है। जैसे—८×७=५६(५+६=११, १+१=
यहाँपर २ ही रह जाते हैं। ८ × ९ = ७२ (७ + २=
यहाँ वही बढ़कर ९ हो जाता है। पर ब्रह्मका अङ्क ९ उस
में रहता है। जैसे कि ९ का पहाड़ा देखिये—९ × १
९ × २ = १८ (१ + ८ = ९); ९ × ३ =
(२ + ७ = ९); ९ × ७ = ६३ (६ + ३ =
इत्यादि। इसमें कोई विकार नहीं हुआ।

हिन्दू-जाति गायत्रामें ही पर्याप्त रही है, इसलिये

की १०८ मणियाँ होती हैं। सूर्यके १२ भेद होते
ा बारहवाँ भेद विष्णु है। सूर्यकी १२ राशियाँ होती
सूर्य ब्रह्मरूप है—'तदेवाग्निस्तदादित्यः' (यजुः
३२। १)। ब्रह्मका अङ्क ९ है, यह पहले कहा
है। १२ अङ्कवाले सूर्यके साथ ९ अङ्कवाले ब्रह्मको
नेसे १०८ संख्या होती है। इस कारण सूर्यात्मक
जप भी १०८ बार होता है। १०८ का योग
= ९ होता है। ९ अङ्क ब्रह्मका प्रतीक होता है,
ही जा चुका है। इसलिये ब्रह्मवित् संन्यासियोंके
थ भी 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' इस न्यायसे ब्रह्मका
'श्री १०८' लिखा जाता है।

म-उत्तरमें सिर करनेका निषेध—

स्वकीयान्यजिनानि सर्वे
संस्तीर्य वीराः सुषुपुर्धरण्याम्।
त्यशास्ताम् (दक्षिणाम्) अभितो दिशं तु
शिरांसि तेषां कुरुसत्तमानाम्॥

(महाभा० १। १९४। ८-९)

पर युधिष्ठिर आदिका सोते समय दक्षिण दिशाकी
करना दिखलाया है।

गुत्तरशिराश्च न स्वपिति। (३। १। ४)

ानसगृह्यसूत्र'के इस वचनमें पश्चिम तथा उत्तरमें सिर
ेका निषेध किया गया है। इसका कारण विज्ञान यह
कि उत्तरीय ध्रुवसे दक्षिण ध्रुवकी ओर इस प्रकार-
चलती हैं, जो मस्तिष्कको हानि पहुँचाती हैं। इस-
र दिशाकी ओर शवका ही सिर किया जाता है।

ाम दिशामें सिर करनेके लिये 'शतपथ'में निषेध
—

तस्माद्‌ु ह न प्रतीचीनशिराः शयीत।
(३। १। १। ७)

का कारण यह है—'प्राची हि देवानां दिक्' (शत०
३। १८)—पूर्व दिशा देवताओंकी दिशा है; उधर
नेसे देवताओंका अपमान होता है। पूर्व दिशाकी
र रखनेसे देवताओंके सम्मानकी बात आयुर्वेद भी
—

यां दिशि स्थिता देवास्तत्पूजार्थं च तच्छिरः।
(सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान १९। ६)

ग्रहणमें भोजनादिका निषेध—सूर्य-चन्द्र
समयमें बहुलतासे कीटाणु फैल जाते हैं—यह बात अ
यन्त्रसे देखी जा सकती है। इसीलिये ऋषियों
कुश डालनेकी बात कही है, जिससे सब कीटाणु उसमें
हैं। ग्रहणके बाद वह कुश बाहर फेंक दी जात
शुद्धयर्थ पात्रोंमें अग्नि भी डाली जाती है। अपने भीत
कीटाणुओंके हटानेके लिये ग्रहणके बाद ऋषियोंने
व्यवस्था की। स्नान करनेसे शरीरके भीतरसे ऊष्मा
होता है, जिसके कारण भीतर-बाहरके कीटाणु नष्ट
हैं। ग्रहण-समयमें जूऑलजी-विषयके प्रोफेसर मि० ट
पर्याप्त अनुसन्धान करके सिद्ध किया है कि सू
ग्रहणके समय पेटकी पाचनशक्ति कम हो जाती है। त
करनेपर शारीरिक या मानसिक हानिकी आशङ्का रह

मिट्टीसे हस्तशुद्धि—पुरीषालयसे आकर हाथों
तथा मिट्टीसे शुद्धि करनी पड़ती है—यह प्राचीन व्यव
परंतु आजकलके सुधारकलोग प्राचीन सभी उ
घृणित मानते हैं। वे साबुनका उपयोग करते हैं;
नहीं जानते कि साबुनसे मलके परमाणु नष्ट नहीं हो
परमाणुओंके सर्वथा नाश करनेकी शक्ति मिट्टीमें ही
इसलिये हमारे प्राचीन मुनि आज्ञा देते थे कि गाँव
शौचार्थ जाओ, वहाँ गड्ढा करके मलत्याग करो; उ
फिर मिट्टीसे ढक दो। उसमें यही रहस्य था कि मि
कीटाणुओंको नष्ट कर देती है। प्राकृतिक चिकित्सा
आधुनिक आविष्कारक श्री लूई कूनेने विविध
मिट्टीका प्रयोग करके बड़ी सफलता प्राप्त की थ
भी प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टीका सफल प्रयोग
मिट्टीमें रोगनाशक शक्ति है। सर्पदंशतकमें मिट्टीसे ल
देखा गया है। यहाँ जैसे मिट्टीकी जगह साबुनक
अयुक्त होगा वैसे ही हाथ आदि धोनेमें समझना च

साबुनमें चिकनाहट होती है। अतः वह मलके प
को दूर नहीं कर सकता, प्रत्युत उसमें मलके पर
जाते हैं। इधर उसी साबुनको अन्य भी प्रयुक्त कर
प्रकार मलके परमाणु बढ़ जाया करते हैं। साबुन
पदार्थ है कि उसकी एक टिकियाका एक ही
प्रयोग करना चाहिये, अन्यथा एक दूसरेके परम
होकर एक दूसरेमें संक्रान्त हो जाते हैं। इधर साबु
खर्च भी होता है। अतः इस अवसरपर मिट्टीका

रके छोड़नेको भी असामयिक मृत्युके कारणोंमें गिना स्पष्ट है कि आचारके पालनेसे मनुष्य पूर्णायु होता ऽये **'आचारः प्रथमो धर्मः'** (मनु० १ । १०८) है ।

ड्रषविधान—मलत्यागके बाद हस्तशुद्धि करके कुल्ला करने) का विधान भी आया है । वह भी रहस्य- हम किसी गलीमें जा रहे हों, और वहाँ मल पड़ा तो हम उस स्थलको पार करके मुँहसे थूक गिरा देते ा कारण है कि हमारे मुखमें दुर्गन्धके परमाणु ते हैं, उन्हें निकालनेके लिये थूका जाता है । इस ुरीषालयमें कुछ देर रहनेसे मुखमें गये गंदे ोंको हटानेके लिये साधारण थूकसे काम नहीं ाब बारह बार कुल्ला किया जाता है, जिससे मुखकी ः हो जाय । इसी प्रकार मूत्र-त्यागके बाद भी कुल्ले हिये ।*

ानशुद्धि—भोजन सात्त्विक, न्यायोपार्जित धनसे प्राप्त त्विक एवं शुद्ध पुरुषका बनाया होना चाहिये । इस ावहेलना करनेसे भी शारीरिक-मानसिक हानि होती है ।

ऽस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ।

(मनु० ५ । ४)

ांपर अन्नदोषको भी असामयिक मृत्युका कारण बताया छान्दोग्य उपनिषद्में कहा है—

ामशितं त्रेधा विधीयते; तस्य यः स्थविष्ठो धातुः, षं भवति; यो मध्यमस्तन्मांसम्; योऽणिष्ठस्तन्मनः ।

(६ । ५ । १)

ांपर भोजनके सूक्ष्म अंशको मन कहा गया है । प्रसिद्ध है—

जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन ।

हारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, म्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।

(छा० ७ । २६ । २)

ामयꣳ हि सोम्य ! मनः । (छा० ६ । ५ । ४) ।

इस प्रकार अन्नकी अशुद्धि होनेसे मनको हानि है । भीष्मपितामहने दुर्योधनका अन्यायोपार्जित पापि ग्रहण किया था; इसीसे द्रौपदीके वस्त्र-हरणके समय ठीक देनेमें उनका ज्ञान लुप्त हो गया ।

१०. प्राचीन साहित्यमें स्त्रियोंका स्थान

'प्राचीन साहित्यमें स्त्रियोंपर अत्याचार किया विधवा होनेपर उन्हें विवाहकी आज्ञा नहीं । उनके लि उपवास आदि अधिक नियत किये गये हैं । उनको अ करनेका आदेश नहीं दिया जाता, उनको पर्देमें- बंद रक्खा जाता है, उनकी विशिष्ट रक्षा की जाती है, विश्वास नहीं किया जाता, उन्हें स्वतन्त्रता नहीं दी उन्हें विद्या पढ़नेका आदेश नहीं, बच्चेके पालन कष्ट उन्हें दिया जाता है ।' आजकलके ये प्राचीन सा आक्षेप हैं । वस्तुतः वस्तुस्थितिपर विचार नहीं किया हमारा प्राचीन साहित्य किसीका भी द्वेषी नहीं रहा वह हितैषी रहा है ।

इसपर यह जानना चाहिये कि स्त्रीजातिकी पा ही देशका उद्धार तथा स्त्री-जातिके पतनमें देशव अनिवार्य है; इसीलिये हिंदु-जातिके साहित्यमें अपेक्षा कन्या वा स्त्रियोंकी रक्षापर अधिक ध्यान गया है । सन्तानमें पिताकी अपेक्षा माताका प्रभाव पड़ता है । स्त्री-जातिकी अपवित्रतासे सम्पूर्ण ही अपवित्र हो सकती है । चाकू खरबूजेपर गिरे, खरबूजा चाकूपर गिरे; दोनों ही प्रकारसे खरबूजेकी है । इस प्रकार स्त्री विकारको प्राप्त होकर अन्य आसक्त हो जाय, अथवा पुरुष विकारयुक्त होक स्त्रीमें आसक्त हो जाय, दोनों ही प्रकारसे स्त्रीव अवश्यम्भावी है । इसलिये भगवद्गीतामें अर्जु कहा है—

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रिय
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकै
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन

---

* हमारे यहाँ भोजनके उपरान्त कुल्ले करनेकी प्रथा है । इससे ान्नकण नहीं रहनेसे दन्तरोग प्रायः नहीं होते । यूरोपादि

ने भी कहा है—

' अवेद्यावेदनेन च। ··· जायन्ते वर्णसङ्कराः।

(१०। २४)

से स्पष्ट है कि स्त्रीकी दुष्टतासे सारी जातिका पस्थित हो जाता है। वर्णसंकरताको हमारे शास्त्रकार न्दित समझते थे।

लिये हमारे सुदक्ष प्राचीन शास्त्रकारोंने स्त्रियोंके र नियम रक्खे हैं। इस प्रकार उन्होंने स्त्री- सुरक्षित कर दिया। स्त्री-जातिकी सुरक्षासे ही असम्भव हो जाता है। हमारी स्त्री-जातिका जीवन है। ऐसी दशामें शास्त्रकारोंपर आक्षेप व्यर्थ शास्त्रकारोंने ही स्त्रीको कष्ट दिया है, यह । उनको कष्ट प्रकृति स्वयं देती है। प्रतिमास वे ही धारण करती हैं, दस मास गर्भ-धारणका प्राप्त करती हैं, प्रसव-कष्ट—जिसमें दाईके प्रमादसे संशयमें पड़ जाते हैं—वे ही सहती हैं। देक भी स्त्रियोंके ही होते हैं। स्वाभाविक दुर्बलतासे न्हें ही घेरे रहते हैं। इन सबका कारण क्या है? ग है पूर्वजन्मके कर्म। हिंदु-संस्कृति कर्मव्यवस्थाको । पूर्वजन्मके कुछ कर्मविशेषसे—जिसका वर्णन जाता है किंतु यहाँ जिसका वर्णन अशक्य है—पुरुष- त होकर जीव स्त्री-योनिमें जाता है। तत्प्रयुक्त ही कष्ट को मिलते हैं। कर्मोंका क्षय भोगसे ही हुआ करता स्या कष्टप्राप्त्यर्थ हुआ करती है, उस कष्टसे मोंके दुष्कर्मोंका क्षय हो जाता है, उसके फलस्वरूप ोंमें अधिक सुखकी प्राप्ति होती है। वैसे ही स्त्रीका तपस्यारूप है। उसमें भी अनिवार्य कष्टोंके मिलनेसे कर्मोंका क्षय हो जाता है। अग्रिम जन्म उनका होता है। हिंदु-संस्कृति दूरदृष्टिवाली है, उसकी ष्यत्पर रहती है; अदूरदर्शी सम्प्रदायोंके व्यक्ति तिको व्यर्थ ही कलङ्कित करते हैं। वे लोग वर्तमान देखते हैं; न पूर्वजन्मका विचार करते हैं न जन्मका। वे उन्हें एकान्त सुख देकर, उनका पूर्वजन्मका पुण्य भी क्षीण करके, इस जन्ममें स्यसे छुट्टी दिलाकर—जिससे कि उनकी सद्गति है—उन्हें अग्रिम जन्ममें सीधा पशुयोनिमें भेजना

दवाईको छुड़ाकर यदि रोगीके हितैषी बननेवाले मिठाइयाँ खानेको देते हैं, तो स्पष्ट है कि वे लोग अवशिष्ट बल भी समाप्तकर उसे राजयक्ष्माका शिका चाहते हैं। वे बन्धु हैं या उसके शत्रु—यह सोचना काम है। वे लोग **'यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे** (गीता १८। ३८) तथा **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृ** (१८। ३७)—इन सुखोंके तारतम्यको नहीं सोच

फलतः सन्तान शुद्ध हो, धर्मात्मा हो, वर्णसङ्कर एतदर्थ विधवाविवाहादि अथवा परपुरुषसङ्गका निषे गया है। इसीलिये स्त्रियोंका कार्यक्षेत्र 'घर' बता है, 'बाहर' नहीं। वेद उसे 'गृहपत्नी' (ऋ० १० २६), **'गार्हपत्याय जागृहि'** (अ० १४। १। २१ **वै गार्हपत्यः'** (शत० १। ७। ४। १८) कहक क्षेत्रमें ही रहनेको कहता है और घरेलू काम देता कपड़ोंका बुनना (अ० १४। २। ५१), पानी भात पकानेके लिये जल लाना (३। १२। ८, ११। १ घड़ा उठाना (अ० ११। १। १४), भोजन तैयार (११। १। २३), घरमें रहना (१४। २। १३ वपन करना (१४। २। १४), पतिके अनुसार उसवे नियुक्त होना, सन्तानका उत्पादन करना (१४। १ इत्यादि।

स्त्रीको विद्याके कार्यमें प्रवृत्त न करने तथा बच्चोंके आदि कार्यमें नियुक्त करनेका रहस्य यह है कि प्रकृतिने अबला बनाया है। उसका कारण यह है कि पिता शुक्र तथा माताके अधिक रजसे कन्याका शरीर बन शुक्र सप्तम धातु होता है, रज तृतीय धातु होता है रज शुक्रकी अपेक्षा निर्बल होता है। शुक्रसे अस्थि कठोर तथा शरीरको सबल करनेवाली वस्तुएँ बन कन्याके शरीरमें अस्थि आदि कठोर वस्तुओंकी गौणत है, रजोमूलक कोमल वस्तुओंकी अधिकता होती है; अतए पुरुषकी अपेक्षा प्रकृतिसे निर्बल है। परंतु कन्याओंको शि दी जाय तो परीक्षा देनेके समय अत्यन्त परिश्रम करना पड़ हर समय अपनी या अपनी छात्राओंकी उत्तीर्णता या अनु की चिन्ता रखनी पड़ती है। तो अब सोचनेकी बात उन अबलाओंका प्रबल परिश्रम, रजस्वलात्वके समयमें

। प्रभाव गर्भाधान अथवा प्रसवपर एवं सन्तानके शरीर
कपर न पड़ेगा? फिर स्तनन्धयोंकी पुष्टि कैसे होगी?
ने-पढ़ाने जानेके समय उन स्त्रियोंके बच्चोंका पालन
अधीन हो जाता है। वेतनग्राही नौकर उस बच्चेकी सेवा
गा? वह मातावाला हृदय कहाँसे लायगा? थकी हुई
स्तन्य भी उस बच्चेकी पुष्टि क्या करेगा? इधर खाद्य
नेस्सार मिल रहे हैं; तब बालकोंकी आयु बढ़ेगी या
अध्यापिकाएँ बनकर धन इकट्ठा कर **'ममेयमस्तु**
अथर्व० १४। १। ५२)—इस वैदिक विवाहके
विरुद्ध वे 'पोष्या' न बनकर 'पोषक' बन रही
हाँ पहले वे 'गृहस्वामिनी' बनती थीं, वहाँ अब
का बनकर पर-पुरुषों (संस्थाके मन्त्री, प्रधान आदि) की
बनती हैं और पतिलोग **'स्त्रीवित्तेनाधमाधमाः'**
ये चोपजीवन्ति प्राप्तास्ते मृतलक्षणम्' के विरुद्ध
हैं; दोनोंमें समानता आ जानेसे स्वस्वामिभाव हट
और विवाद बढ़ रहे हैं।

र स्त्रीको वेदादि पढ़ाना जहाँ शास्त्रविरुद्ध है, वहाँ
दृष्टिसे भी उचित नहीं प्रतीत होता; क्योंकि स्त्रियोंका
उन्हें प्रायः अपवित्र दशामें रहनेके लिये बाध्य करता
ो वेदादिके मूल यज्ञोपवीतके नियमोंका पालन भी उनके
ठिन पड़ जाता है। प्रतिमास रजस्वला होनेपर,
में तथा प्रतिसमय नवजात शिशुओंके मल-मूत्र
नेमें ही स्त्रियोंका समय व्यतीत होता है। स्त्रीके जिस
पर ब्रह्मसूत्रको लटकाया जायगा, वह तो धूलि-
मलमूत्रदिग्धाङ्ग नवजात शिशुका दिन-रात स्तनपानके
ीडा-स्थल बना रहेगा। क्यों न वह उस डोरीके
साथ कुतूहलसे किलोल करेगा? तब पवित्रता

अविश्वासका कारण यह है कि—**'पुरन्ध्रीणां
कुसुमसुकुमारं हि भवति'** (उत्तररामचरित ४। १
स्वामी श्रीदयानन्दजीने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्र
लिखा है—'प्रायः स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृ
है' (समुल्लास ४, पृष्ठ ४७)। 'स्त्रियोंको प्रिय वही होत
स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोगमें फँसा हो।' (समु० ११, पृ० २
'स्त्री-पुरुषकी कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुषसे
[कामचेष्टा] अधिक होती है (समु० ११, पृ० २
इन सब कारणोंसे स्त्रियोंके हर एकके द्वारा बहकाये
आशङ्का होती है। इसीलिये उनपर सब रहस्य
नहीं किया जाता, क्योंकि कोई कही गयी गु
उनसे प्रायः छिपायी नहीं जा सकती। इसमें स्वाभावि
स्वाभाविकतामें निन्दा वा हीनताकी बात नहीं होती
उनपर विश्वास न करनेका रहस्य है।

फलतः निष्पक्ष शास्त्रकारोंने स्त्री-जातिपर
अत्याचार नहीं किया; किंतु जो कुछ उनके लिये
किया है, वह उनके हितैषी बनकर। उसी शास्त्रमें
स्थान सबसे बड़ा माना गया है। **'स्त्रियः समस्ताः
भेदाः'** यह सिद्धान्त रक्खा गया है, स्त्रियोंको पतिका
माना गया है। उनको घरकी स्वामिनी माना गया
परिवारकी निरीक्षिका माना है। उनके पातिव्रत्यको भार
मुख उज्ज्वल करनेवाला माना गया है।

(विद्वान् लेखकने अन्य कई विषयोंपर भी अपने
पूर्ण विचार प्रकट किये थे, परंतु स्थानाभावसे वे प्रका
किये जा सके। एतदर्थ हम उनसे क्षमाप्रार्थी हैं।—स

भारतीयोंका आचार

'भारतीयोंके प्रति सेवाका कार्य कर देनेवाला कोई भी व्यक्ति उनकी कृतज्ञताका सदा विश्वास कर
ंतु उनका अपराध करनेवाला उनके प्रतिशोधसे बच भी नहीं सकता। उनका अपमान कर
कलङ्क मिटानेके लिये प्राणोंतककी बाजी लगा देते हैं। यदि कोई कष्टमें पड़ा हो और उसकी
वे अपने आपको भी भूलकर उसकी सहायताके लिये दौड़ पड़ेंगे।

'जब उन्हें किसी अपकारका बदला चुका लेना होता है, तब वे अपने विरोधियोंको सचेत क

हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी 'डाँगीजी')

ू' शब्द प्राचीन शास्त्रोंमें नहीं मिलनेसे व्याख्या- गहरे मतभेद हैं; पर मेरी मान्यता है कि भारतवर्षमें नातनधर्मपर अधिष्ठित सभी सम्प्रदाय हिंदू-संस्कृति- ह्लत हैं। जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि सम्प्रदाय अपने हंदू भले ही न मानें; पर वे सनातनधर्मपर अधिष्ठित पराके अङ्ग होनेसे हिंदू ही हैं। हाँ, उस सनातनधर्म- ष्ठित हिंदुत्वकी तीन धाराएँ हैं—एक पारमार्थिक, दक और तीसरी लौकिक। पारमार्थिक धाराको हम धारा भी कह सकते हैं। वैदान्तिक धारा उपनिषदों- १ रखती है—जो परमार्थपर अधिक जोर देनेसे रायण धर्मका प्रचार करती हैं। वैदिक धारा अधिक जोर देती है, पर उसका तात्पर्य निवृत्ति ही क धारा व्यवहारकी प्रधानतापर खड़ी है। इस तीनों धाराओंमें प्रवाहित होनेवाली हिंदू-संस्कृति सारको परम कल्याणका सन्देश सुनाती रही है।

सनातनधर्म हिंदू-संस्कृतिकी आत्मा है। जैन धर्म ह बौद्ध धर्म बुद्धि है, सिक्ख धर्म बाहु है, वैष्णव धर्म शैव धर्म मस्तक है, शाक्त धर्म वीर्य है, गाणपत्य है, सौर धर्म तेज है और अन्य-अन्य धर्मोंको भि भिन्न-भिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्ग मान लेना चाहिये। इस प्र संस्कृति अपने भिन्न-भिन्न साधनोंसे दुर्वृत्तियोंके करनेकी चेष्टा करती है, वही हिंदू-संस्कृति है—

हिनस्ति दुर्वृत्तीः इति हिंदुः।

जो अपने बलके अनुसार भिन्न-भिन्न दुर्वृत्तियोंको हनन करनेकी चेष्टा करता है, वही हिंदू यह चेष्टा निष्काम भावसे, शुद्ध पारमार्थिक दृष्टिकी विचार करें, तो सदासे भारतवर्षमें ही होती आयी है। हम भारतीय संस्कृतिके संस्थापक भागवतके ॠ भरत, रामायणके राम-भ्राता भरत और महाभारतके श भरतको प्रणाम करते हैं।

त्याग तथा भोगका समन्वय

(लेखक—श्रीसत्यदेवजी विद्यालङ्कार)

ू-जीवन और हिंदू-समाज-व्यवस्थामें त्याग और जैसा समन्वय किया गया है, वैसा सम्भवतः किसी भी वन और अन्य सामाजिक व्यवस्थामें नहीं है। :' इसलिये कि कदाचित् किसी जीवन अथवा में ऐसा विधान किया गया हो, तो उसका हमें ज्ञान नहीं ने सीमित ज्ञान एवं अनुभवके आधारपर यह कहनेका नवश्य किया जा सकता है कि मानव-जीवनको केन्द्र जितनी भी सामाजिक व्यवस्थाओंकी रचना या की गयी है, उनमें त्याग और भोगका ऐसा समन्वय क्या जा सका, जैसा कि हिंदू-जीवन और हिंदू- क व्यवस्थामें किया गया है। हिंदू-दर्शनशास्त्रके यह सारी सृष्टि प्रभुकी रचना है। 'एकोऽहं बहु स्याम्' नासे एक ब्रह्ममेंसे ही यह अनेकविध सृष्टि उत्पन्न हुई की सन्तान होनेसे ही इस सृष्टिमें मानव-जीवन और क व्यवस्थाका रूप ब्रह्मके ही अनुरूप होना चाहिये। यदि परमात्माका ही रूप है, तो उसके लिये जीवनका

क्रम और सामाजिक व्यवस्थाका स्वरूप भी परब्र अनुरूप होना चाहिये। आस्तिक हिंदूकी श्रद्धा और स्वाभाविक रूपसे परमात्मामें इतना अधिक है कि व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही जीवनोंपर छायाका पड़ना अनिवार्य था। वैसा ही हुआ भी विष्णु, महेशके रूपमें एक ही परब्रह्मको इस सृष्टिक धर्ता-हर्ता माना गया है। कर्मफलका नियन्ता हो मानवोंके भाग्योंका खेल उसीके हाथका खिलौना है श्वास-निःश्वासके साथ सृष्टिके विधि-विधानका सारा सञ्चालन एवं संरक्षण जुड़ा हुआ है। इस सृष्टिमें रमा होनेपर भी ब्रह्म उससे सर्वथा अलिप्त है। वास सर्वथा शून्य है। कामनासे वह सर्वथा ऊपर है व्यवहारसे वह सर्वथा रहित है। बस, यही तो त भोगके समन्वयकी सर्वोत्कृष्ट स्थिति है। सृष्टिके खेल लीन होनेपर भी वह उससे सर्वथा अलिप्त है। य सारा खेल केवल उसकी छाया है, जो उसका प्रतिबि

सको छू नहीं सकती। इस लाग-लपेटसे सर्वथा
पुरुषकी कल्पना हिंदू-शास्त्रकी सर्वोत्कृष्ट कल्पना है,
न्दर्यतक दूसरोंका पहुँचना भी कठिन है। हिंदू-धर्म,
, हिंदू-जीवन और हिंदुओंकी सामाजिक व्यवस्था इस
अनुसार प्राणिमात्रके सम्मुख त्याग और भोगके
। उच्चतम आदर्श उपस्थित करते हैं। अवतारी
के जीवनमें यह आदर्श इसलिये पूर्णताकी चरम
हुँचा हुआ मिलता है कि उनमें ईश्वरीय अंशकी
धिक किंवा पूर्णताको लिये हुए होती है। आजकलकी
कहें तो अवतारी महापुरुष ईश्वरकी छाया, प्रतिबिम्ब
टो ही होते हैं। इसीलिये उनमें ईश्वरीय गुणोंका
भी असाधारण मात्रामें रहता है। श्रीकृष्णकी लीला
ते कितना ऊँचा आदर्श उपस्थित करती है! भोग,
ा कामनाकी वहाँ यत्किञ्चित् गन्ध भी नहीं है।
जीवनका पराकाष्ठाको पहुँचा हुआ कितना ऊँचा,
पवित्र, कितना महान् यह एक ही उदाहरण
र्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रने किष्किन्धा और
जीतकर अपने अधीन नहीं किया। अपना
ई गवर्नर या शासक भी नियुक्त नहीं किया। वहाँके
गोंको ही वहाँका शासन सौंप देना उस रामराज्यका
ह था, जिसकी नींव भोगपर न डालकर त्यागपर
यी थी। शोषण, उत्पीड़न तथा दमनसे वह सर्वथा
था। इसी प्रकार राजा जनककी जिस विदेहस्थितिका
खान किया गया है, उसका मर्म भी यही था कि
नक जनकपुरीके राज्यके मालिक होते हुए भी उसका
किसी वासनाप्रधान भावनासे नहीं करते थे। वे
ते हुए भी 'भोक्ता' नहीं थे। त्यागभावसे राज्यका
।, नियन्त्रण एवं संरक्षण उसी आदर्शके तो अनुरूप
ससे भगवान् इस संसार अथवा सृष्टिका सञ्चालन,
ग एवं संरक्षण करते हैं। यह साधना साधारण नहीं
मलका पत्ता निर्जीव, वासनारहित और कामनाशून्य
जलमें रहता हुआ भी उससे स्निग्ध नहीं होता; किंतु
लिये संसारमें रहकर अलिप्त रहना तभी सम्भव है,
वह भोगके साथ त्यागका समन्वय करके भोगको
अधीन रख सकता है। भर्तृहरिका यह कहना
सत्य है—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
[illegible]
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम्

'विश्वामित्र तथा पराशर-सरीखे महामुनि भी
केवल पानी, पत्तों तथा हवापर निर्भर थे, जब क
समान सुन्दर स्त्री-मुखको देखते ही मोहमें फँस गये
जो लोग दूध, घीसे मिले हुए चावलका सेवन
हैं, उन लोगोंका यदि इन्द्रिय-संयम हो जाय, तो यह
चाहिये कि विन्ध्य पर्वत भी सागरमें तैर सकता है।
स्थितिसे मानवका उद्धार करनेके लिये ही तो हिंदू-संस्
त्याग और भोगका यह समन्वय किया गया है।

आत्मा परमात्माकी छाया होनेपर भी मानव पर
इस आदर्शसे दूर क्यों चला जाता है? केवल आस्तिक
ही उसके आदर्शको क्यों अपना सका? इन और ऐसे
का समाधान बिल्कुल स्पष्ट है। एक ही पिताके स
अपने पिताके अनुरूप नहीं होते। एक पिताका एक
सदाचारी बनकर संयमका उच्चतम आदर्श उपस्थित कर
तो दूसरा कदाचारका निकृष्टतम उदाहरण उपस्थितकर
को और अपने माता-पिताको भी लज्जित कर देता है
गरीब घरमें जन्म लेकर सम्पन्न बन जाता है, तो
सम्पन्न घरमें जन्म लेकर भी कंगाल बन जाता है।
गान्धी और लोकमान्य तिलकके पुत्र यदि अपने पिता
ऊँचा नहीं उठ सके, तो इसका दोष इन महापुरुषों
दिया नहीं जा सकता। पिता अपने जीवनसे और
उपदेशसे अपनी सन्तानके सामने उच्चतम आदर्श उ
करता है; किंतु उसपर आचरण करना तो सन्तान
निर्भर होता है। इसी प्रकार परब्रह्म परमात्माने
सामने अपने व्यवहारसे जो परम पुनीत आदर्श उपस्थि
और अवतारी तथा सिद्ध महापुरुषोंके जीवनसे
उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत कर दिया, उसका उप
उसने अपनी वाणी 'वेद'के रूपमें दे दिया। य
चालीसवें अध्यायमें कहा है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्

'इस दृश्य जगत्में जो कुछ भी है, वह स
भगवान्, परब्रह्म परमात्मासे ओतप्रोत है। उस
भोग त्यागभावसे ही करो। कभी किसीका ध
छीनो।' कितना सुन्दर यह आदेश अथवा उप
[illegible]

ोड़े भाषणों तथा प्रस्तावों, संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाकी ौड़ी शस्त्र-योजनाओं, रूसकी रक्तरञ्जित साम्यवादी धारा और अन्तर्राष्ट्रिय जगत्में 'मुँहमें राम बगलमें ी तरह चली जानेवाली कुचालों तथा इसी आधारपर नेवाली कूटनीतिपूर्ण सन्धियों एवं सुलहनामोंके बिना ारमें चिर शान्ति, स्थायी सुख और स्थिर व्यवस्था हो सकती है। इसके न अपनाये जानेका दुष्परिणाम आजका मानव भोग रहा है। दुःख यह है कि आजके भी इसमें उतनी आस्था नहीं रही और उसका : भी उसके सर्वथा विपरीत अथवा प्रतिकूल हो । वह भी भोगवादी बनकर त्यागमय जीवनसे दूर हुत दूर चला गया है!

का यह अर्थ नहीं कि आजका हिंदू यदि अपनी र कायम नहीं है, तो उस प्राचीन मर्यादाका कुछ व नहीं है। संसारमें यदि सत्यका व्यवहार अथवा ा कम हो चला है, तो उसका यह अर्थ तो कदापि सकता कि सत्य और सदाचरणका कुछ भी महत्त्व । मानवका आचरण कैसा भी पतित क्यों न हो जाय, सत्यकी निष्ठा, सत्यके आचरण और सत्यके व्यवहार-व तो मानवके जीवनके लिये बना ही रहेगा। इसी ंदू-जीवनके प्राचीन आदर्श और प्राचीन मर्यादाका ी कम होना सम्भव नहीं है। त्याग और भोगके की आधारशिलापर ही हिंदू-जीवनकी प्राचीनतम र्वप्रथम मर्यादा अथवा व्यवस्थाकी रचना की गयी न त्यक्तेन भुञ्जीथाः' ही उसका मूलमन्त्र था। इसका अर्थ किया जाता है कि 'उस भगवान्‌द्वारा त्यागे वा दिये हुएका ही भोग करो।' अर्थात् यह समझो ा अपना कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है, वह सब वान्‌का ही दिया हुआ है, जो इस सारे संसारमें । है। किसी भी पदार्थमें अपनेपनकी, अपनी ी, अपने प्रभुत्वकी भावनाका पैदा न होना भी भावकी ही पराकाष्ठा है। भले ही वह सांसारिक दृष्टिसे ार्जित किया हुआ ही क्यों न हो! आत्मोपार्जित ग भी भगवान्‌का दिया हुआ ही मानकर किया मनुष्यमें स्वामित्व अथवा प्रभुत्वकी भावनासे पैदा अहङ्कार पैदा ही न हो। भगवान्‌ने गीतामें मानवको भ्रष्ट करनेवाले बुद्धिनाशका कारण जो मोह या बताया है, वह भी स्वामित्व या प्रभुत्वकी इसी

आजके विश्वकी सारी व्याधियोंका मूलभूत कारण है जड़मूलसे नष्ट करना तो दूर रहा, उसके पैदा हो सम्भावना ही न रहे—इस दूरदृष्टिसे बनायी गयी और व्यवस्था कितनी पवित्र, कितनी सात्त्विक, कित और कितनी महान् रही होगी—इसकी कल्पना क कठिन नहीं होना चाहिये।

वह मर्यादा और व्यवस्था क्या थी? वर्णाश्रम उसीका नाम है। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' के मू सामने रखकर इसका निर्माण किया गया था। व्यवस्थाका सम्बन्ध मानवके व्यक्तिगत जीवनके साथ वर्ण-व्यवस्थाका सम्बन्ध था सामाजिक जीवनके आश्रमोंकी व्यवस्थामें मानवके जीवनको चार भागों कर अभ्युदयके उत्कर्षपर पहुँचनेके लिये चार सीढ़ि दी गयी थीं। आयुकी न्यूनतम अवधि सौ वर्ष पहले भागको ब्रह्मचर्य, दूसरेको गृहस्थ, तीसरेको वानप्र चौथेको संन्यास नाम देकर चारोंके लिये पचीस-पचीस अवधि नियत की गयी थी। इसी प्रकार समा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार भागों गया था। आश्रमोंमें व्यक्तिगत जीवनकी दृष्टि वर्णोंमें सामाजिक किंवा सामूहिक दृष्टिसे जो-जो कर्तव्य अथवा जिम्मेवारियाँ सौंपी गयी थीं, उनका आधार यही त्यागमय भोगका मूलमन्त्र था। यह वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी विस्तृत व्याख्या करनेकी नहीं लिखा गया है। फिर भी यहाँ यह बताना आव कि यह व्यवस्था मानवके भोगमय स्वभावको त्यागमय अथवा भोगकी ओर पानीकी धाराकी तरह स्वाभावि बहनेवाली वृत्ति अथवा प्रवृत्तिपर त्यागका कठोर रखनेके लिये ही की गयी थी, जिससे मानव-ज भोग और त्यागका समन्वय होकर मनुष्य 'देव' बन दानवताकी ओर होनेवाली मनुष्यकी स्वाभाविक प्र त्यागका कठोर नियन्त्रण किंवा 'ब्रेक' लगाकर उसको बनानेके लिये ही यह सारी व्यवस्था थी।

ब्रह्मचारीमें शिक्षा प्राप्त करनेपर कितना अहङ्का हो सकता है, यह आजके विद्यार्थियोंके निरङ्कुश उ सहजमें मालूम हो जाता है। इसीलिये तो ब्रह्मचारीको चरणोंमें आत्मसमर्पण करके, आश्रममें जीवन बिताने भिक्षा-वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करनेके लिये कहा गया। रा

स्थामें विकार पैदा हो गया। शिष्य गुरुके पास न
(रुका शिष्योंके पास आना आवश्यक हो गया।
हम सबके सामने है। द्रोणने भी यदि कौरव-
ो शिक्षा-दीक्षा विश्वामित्र अथवा वाल्मीकिकी तरह
ाश्रममें ही दी होती, तो इतना अनर्थ न हुआ होता।
रणोंमें आत्मत्याग करनेवाला विद्यार्थी या ब्रह्मचारी
भिमान या अहङ्कारके वशीभूत नहीं हो सकता।
सब आश्रमोंका वैसे ही आधार बताया गया है,
यु सब प्राणियोंका आधार है। मनु महाराजने
—

ा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
ा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥
(३।७७)

ा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
ावाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥
(६।९०)

ीलिये यह भी कहा है—

ात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
स्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥
(३।७८)

तथा अन्नसे तीनों आश्रमोंके पालनका भार गृहस्थी-
कर उसको अनुभव कराया गया है कि जैसे नदी
ाना जल नहीं पीती और प्राणिमात्रके लिये उसका
ा रहता है, वैसे ही उसको भी अपने उपार्जित धनका
स्वयं नहीं करना है और अपने घरका द्वार सदा ही
ाकर भिक्षाके लिये आनेवाले ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी
यासीका पालन करना है। त्यागमय भावनासे गृहस्थको
र ओतप्रोत कर दिया गया है। वानप्रस्थी और
ा जीवन तो है ही त्यागमय। उनके पास तो भोगके
ा भी छोड़ा नहीं गया। यहाँतक कि संन्यासीको
समस्त सम्मानका अधिकारी बनाकर भी उसको मान-
सदा दूर रहनेको ही कहा गया है। उसके लिये
ा है—

सम्मानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तु तपःक्षयः।

सम्मानसे उसके तपकी वृद्धि होती है और सम्मानसे
ाश।'

ी-व्यवस्थाका सौन्दर्य भी ऐसा ही है। एक ओर तो
[illegible]

अधिकारी ठहराया गया है, दूसरी ओर उसको यह
दिया गया है—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वद

'ब्राह्मण सम्मानको विष मानकर उससे
उदासीन रहे और अपमानको अमृत मानकर सदा
इच्छा करे।' भोगकी दृष्टिसे संसारका सारा सम्मान
चरणोंमें अर्पण होना चाहिये। किंतु त्याग यह है
उसको विष मानकर उससे उदासीन रहे। इसीलिये
गया है—

अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धगौरिव सीदति

'जिस ब्राह्मणकी पूजा, प्रतिष्ठा तथा सम्मान कि
है, वह दुही हुई गौकी तरह सूख जाता है।'
सत्ता, उसका सञ्चालन एवं संरक्षण क्षत्रियवर्गको सौं
है—उपभोगके लिये नहीं, किंतु सदैव सिर
रखकर त्यागका उत्कृष्टतम आदर्श उपस्थित करनेके
राजा सिंहासनपर बैठता था और राष्ट्रपर संकट
होनेपर आत्मोत्सर्ग करनेके लिये वह सबसे आगे यु
प्रस्थान करता था। वैश्यके हाथोंमें व्यापार
और उद्योग-धंधे आदि सब इसलिये नहीं सौंपे जा
वह व्यक्तिगत सम्पत्तिके अर्जनमें लग जाय। उसका
कर्तव्य राष्ट्रको समृद्ध बनाना होता था। सामूहिक, स
अथवा समूचे राष्ट्रकी दृष्टिसे वह सारा उपार्जन करता
भामासाहकी तरह उसको राष्ट्रके लिये न्यौछावर
तैयार रहता था। शूद्रका तो सारा जीवन ही त्याग
यजुर्वेदके ३१वें अध्यायके ११वें मन्त्रमें वर्णव
निर्देश किया गया है। वह मन्त्र यह है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृत
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो अजायत

समाजरूपी महापुरुषकी कल्पना इस मन्त्रके
यह की जा सकती है कि ब्राह्मण उसका मुख, क्षत्रि
बाहु, वैश्य उसका पेट और शूद्र उसके पैर हैं।
शरीरका सारा व्यवहार अङ्ग-प्रत्यङ्गके उस व्यवहारप
निर्भर है, जिसका आधार त्याग और भोगका स
है। कोई भी इन्द्रिय इस देहमें केवल अपने लिये क
करती। ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा सम्पादित होनेवाला ज्ञान सा
काम आता है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियोंका कर्म भी सा
लिये होता है। ज्ञान एवं कर्मके रूपमें वे जो कुछ

ा सम्पादन करती हैं, उसका त्याग समूचे देहके
ऽ देती हैं। तभी तो देहका व्यापार निर्विघ्नरूपसे
है। उदाहरणके लिये भोजनकी व्यवस्था लीजिये।
रा मुखके अर्पण किया गया भोजन सहसा पेटमें
ाता है। पेटमें पचन होकर उसका रक्त-वीर्य बनकर सारी
थावत् समा जाता है। पानीसे हाथ और मुँहको तथा
ल्यासे पेटको इतना साफ कर देना आवश्यक है कि
ास कुछ भी जमा न रह जाय। जमा हुआ कि दाँत
ायँगे और पेटमें कब्ज पैदा होकर सारी देह
आक्रान्त हो जायगी। देहका सारा व्यापार रुक
। समाजरूपी महापुरुषका काम भी चल नहीं सके
ृ भी बीमार पड़ जाय, यदि ये चारों वर्णरूपी अङ्ग
र्तव्यका यथावत् पालन न करें और त्याग तथा
समन्वयके सिद्धान्तके अनुसार सारा काम न हो।
ही तो स्थिति है। सारा समाज बीमार है और उस
ा कुछ उपचार भी तो सूझ नहीं पड़ता। यहाँ गीताके
अध्यायमें दी गयी उस व्यवस्थाका उल्लेख करना
क है, जिसमें यह कहा गया है कि काम करते हुए भी
अलिप्त कैसे रहा जा सकता है। उसमें कहा
—

ायुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
र्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥
(५।७)

जसने अपनेको योगमय कर लिया है, जिसने आत्मशुद्धि
है, जिसने आत्मनियन्त्रण करके इन्द्रियोंपर भी काबू
। है, जिसने अपनेको सबके साथ तन्मय कर लिया है,
। करते हुए भी उससे लिप्त नहीं होता।'

व किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
श्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपञ्श्वसन्॥
लपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
न्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥
(५।८-९)

मदृष्टि रखनेवालेको तो यह समझना चाहिये कि 'मैं
। नहीं करता।' उसे यह मालूम होना चाहिये कि
सुनने, स्पर्श करने, सूँघने, खाने, चलने, सोने, श्वास
लने, देने, लेने, उन्मेष एवं निमेष करने अर्थात्
खोलने और बंद करनेकी जितनी भी क्रियाएँ हैं,

इन्द्रियोंका अपना व्यापार करना है। आगे तो यहाँत
गया है कि 'सब कर्मोंको ब्रह्मके अर्पणकर और
आसक्ति न रखकर जो कर्म करता है, वह वैसे ह
लिप्त नहीं होता, जैसे कि पानीमें रहनेपर भी कमल
उससे गीले नहीं होते।' वेदमें यह भाव इन शब्दों
गया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे

सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा रखते हुए भी जो क
रहता है, उसमें अन्यथा बुद्धि, नास्तिक वृत्ति
निराशाकी भावना नहीं पैदा होती और वह कर्मोंमें
नहीं होता। त्याग और भोगके समन्वयसे पैदा ह
यह स्थिति कितनी ऊँची, पवित्र और महान् है!
कर्मकाण्डमें 'इदं अग्नये—इदं न मम' आदिमें
मम' अर्थात् 'यह मेरा नहीं है' की भावनाको
कितनी बार पुष्ट किया जाता है। गीताके सारभूत इस
भी आशय यही है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि

हिंदू-जीवनकी इस व्यवस्थासे दूर हटनेका दुष
आज हिंदू-समाज भोग रहा है। मानवका यह
कि जब वह भटककर मील, दो मीलका
गलत चला जाता है, तब उसे वापस
भारी जान पड़ता है। वह किसी छोटे रास्तेसे उस
परिमार्जन करना चाहता है। पर उसका परिमार्जन त
करना ही पड़ता है। भले ही वह भूल कर चले
रास्तेको उलटकर फिरसे चले अथवा किसी छोटे
पगडंडीसे फिर ठीक रास्तेपर आ जाय। हम तो अपने
मार्गसे न मालूम कबके भटके हुए हैं! नि
उसको सहस्रों वर्ष बीत चुके हैं। हिंदू-शास्त्रका
छूट गया। हिंदू-आदर्शका दीपक भी सामने रहा
पुरातन परम्पराएँ भी निर्जीव होकर ऐसी हो गयीं कि
सहारा भी हाथसे जाता रहा। गुरुजनोंके आदेश तथा
में श्रद्धा न रही। वह भी सहायक नहीं हो रहा। भ
उलटे मार्गको पार करके ठीक रास्तेपर पहुँचनेके लि
रास्तोंकी जितनी भी पगडंडियाँ ढूँढ़ी गयीं, वे सब
भिन्न सम्प्रदाय बनकर रह गयीं। चार्वाक और

करके जिन पगडंडियोंका पता लगाया, वे अन्तमें एकाङ्गी हो गयीं। आचार्य शंकरने उनके सर्वथा जगत्को मिथ्या बताकर ईश्वरका प्रतिपादन करते ैतवादकी जिस पगडंडीको ढूँढ़ निकाला, वह भी एकाङ्गी ही बन गयी। अद्वैत और विशिष्टाद्वैतके ययुगके संतोंने फिरसे द्वैतका प्रतिपादन एक स्वरसे लेकिन उन सबके नामसे अलग-अलग पन्थ अथवा याँ कायम हो गयीं। उनके बाद तो यह प्रवृत्ति अधिक बढ़ गयी कि हिंदू-धर्मके वास्तविक रूपको । सम्प्रदायोंने ऐसा ढक लिया कि वह हमारी दृष्टिसे हो गया और हम सब इन पगडंडियोंमें ही लग गये। दुर्भाग्यकी पराकाष्ठा यह है कि मैं जिस र खड़ा हूँ, उसीको मैंने असली, ठीक और अन्तिम तव्य मार्ग मान लिया है। इस भारी भ्रमको वास्तविक न्तिम तथ्य मान लेनेवाला 'सत्य' पर पहुँचे तो कैसे यही सबसे बड़ी कठिनाई है। यदि कहीं भ्रमसे

स्वीकार किये गये उपार्जित मतके प्रति हठ न रहकर भावनाका समावेश हो जाय और हिंदू-समाजमें त्य भोगकी, परस्पर आदान-प्रदानकी और विचार-वि उदात्त एवं सहिष्णु भावनाकी प्रतिष्ठा हो जाय तो व अपना उद्धारकर संसारके उद्धारका भी कुछ निमित्त समर्थ हो सकता है। प्रकृतिमें जैसे दिन-रातका सम और मानव-जीवनमें जैसे सोने-जागनेका समन्वय । उसी प्रकार हिंदू-धारणाके अनुसार हिंदू-जीवन औ समाज-व्यवस्थामें त्याग और भोगका समन्वय स्वाभाविक रूपसे ही किया गया था। उसकी फिरसे करके ही वर्तमान बीमारीका उपचार बहुत अंशोंमें ि सकता है। इसी समन्वयका दूसरा नाम है अपरिग्र जैन-जीवन-व्यवस्थामें सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्व गया है। उस व्यवस्थाके एकाङ्गी हो जानेसे वह व्या प्रभावशाली नहीं हो सकी। वैसा अपरिग्रही, कहते जन्मका भी पता पा सकता है।

हिंदू-धर्ममें त्यागका स्थान

(लेखक—श्रीएस० वी० दांडेकर एम्०ए०)

ा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
(कैवल्योपनिषद्)

मेंसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, त्यागसे कोई-मृतत्वको प्राप्त होते हैं।'

ाग'का सांगोपांग विचार जितना हिंदू-धर्ममें हुआ । वैदिकेतर धर्मोंमेंसे बहुत थोड़े धर्मोंने किया होगा। दो सहज प्रवृत्तियाँ हैं—एक भोगकी और दूसरी । यदि यह कहा जाय कि जीवनकी चरितार्थता वृत्तियोंका योग्य समन्वय करनेमें है तो अनुचित न हिंदू-धर्मकी यह विशेषता है कि उसने त्यागका मूल्य जानकर मनुष्योंसे त्यागका आचरण करानेके ऐसी अपूर्व सामाजिक पद्धति चला दी है कि अनुकरणकर पृथ्वीके सभी मनुष्य लाभान्वित हो ।

एक धर्मने त्यागका महत्त्व पूर्णरूपसे जाना है। इस ऊपर जो औपनिषद वाक्य उद्धृत है, उसमें उत्कृष्ट ाजःपूर्ण भाषामें त्यागका महत्त्व बतलाया गया है।

की प्राप्ति यदि कोई चाहता है तो उसे स्थू उपाधियोंका त्याग करना ही होगा। उसीसे वह आत प्राप्त होगा, यही वेदान्तशास्त्र अर्थात् उपनिषदोंका मत है। भोगसे इस स्वरूपकी प्राप्ति नहीं हो सकती लिये त्यागका होना ही आवश्यक है। आत्यन्तिक प्राप्तिके लिये आत्यन्तिक त्यागका होना उचित है तुकाराम बाबा कहते हैं—'कोई लाभ यों ही नहीं होता कुछ किये जीवका उद्धार नहीं होता।' उपनिषदों वचन है—

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैष वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं च
(बृहदारण्यक० ३ । ५

'पूर्वोक्त इस आत्माको ही जानकर ब्राह्मण पु वित्तैषणा और लोकैषणासे ऊपर उठकर भिक्षासे निर्वाह करते हुए विचरते हैं।'

भगवान्‌को पानेके लिये त्याग करना पड़ता है सिद्धान्त प्रायः सभी धर्मोंमें स्वीकृत है। ईसाने

don all and follow me.) बौद्ध-धर्म तो
णेकम्, सर्वं दुःखम्' कहकर भिक्षु बन जानेका
करता है। हिंदू-धर्मकी यह विशेषता है कि इसने
भावको ठीक-ठीक समझकर यह सिखलाया है कि
स प्रकार किया जा सकता है। वैदिक धर्मकी
यवस्था' का उद्देश्य ही क्रमशः त्याग करनेकी शिक्षा
'आश्रमव्यवस्था' शब्दोंसे भी 'अल्प श्रमसे गन्तव्य
पहुँचानेवाली व्यवस्था' यही अर्थ सूचित होता है।
क धर्ममें ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—
ाश्रम हैं। पहला आश्रम ब्रह्मचर्य है। इसमें जीव
न करे, पीछे अपनी मानसिक, बौद्धिक आदि
अनुसार आगे बढ़े।

:-धर्मके समान हमारा धर्म सबसे त्याग करनेको
ा। संन्यासमें सबका अधिकार नहीं है, सब ब्राह्मण
सके अधिकारी नहीं होते। संन्यास ग्रहण करके
चा भी नहीं सकते। जो पचा नहीं सकते, उनका
के लिये एक भोग बन जाता है। अतः हमारा धर्म
मानरूपसे त्याग या भोग करनेको नहीं कहता।
जितनी सच है, उतनी ही सच यह बात भी है कि
, ज्ञानेश्वर महाराज अथवा स्वामी विवेकानन्द-जैसे
महापुरुषोंसे, जो आरम्भसे ही त्याग करनेको प्रस्तुत
हमारा धर्म भोगका आग्रह नहीं करता। उनसे तो
कहता है कि 'ब्रह्मचर्यादेव परिव्रजेत्' अर्थात्
आश्रमके बाद ही संन्यास लेकर बाहर निकल
दूसरोंके लिये धर्मका यह उपदेश है कि 'ब्रह्मचर्य
: गृही बनो।' यह जो लचीलापन है, इसीमें हमारे
क महान् विशेषता है।

जन्मार्जित संस्कारोंके कारण बचपनमें ही जिनका
रकी ओर लग जाता है, उनसे हमारा धर्म गृहस्थाश्रम
करनेको नहीं कहता। श्रीरामकृष्ण परमहंससे
र्म यह नहीं कहता कि आप पाठशालामें अध्यापकी
र कर्म-मार्गका ही अनुसरण करें। सतीका बाना
ग करे, जो उसे निबाह सके। वह हर किसीका काम नहीं
किसीको धर्म उसका उपदेश नहीं करता। सब
एक ही साँचेमें ढालनेका अशास्त्रीय उद्योग वैदिक धर्म
ा। सबका परम गन्तव्य स्थान एक ही है; तथापि यह

है, वहींसे उसे आगे बढ़नेको कहना उचित है।
त्रिगुणात्मक है। वह एक साथ एक-सा सत्त्वगुणा
जाय, यह सम्भव नहीं है।

भोगोंका त्याग करनेको सबसे कहना स्वयं बु
पसंद नहीं था। मैंने एक कथा कहीं पढ़ी है ि
बार बुद्धदेवकी माताकी यह इच्छा हुई कि संघमें
प्रवेश हो। उन्होंने बुद्धदेवसे प्रार्थना की, 'मुझे सं
लीजिये।' बुद्धदेवने कहा—'मैं आपको संघमें नहीं ले स
तब माताजीने बुद्धदेवके किसी पट्ट-शिष्यकी मार्फत संघमें
लाभ किया। बुद्धदेवने उनका प्रवेश स्वीकार किया; पर
दिया कि इसका फल यह होगा कि इसी देशमें य
हजार, पाँच सौ वर्षमें अपना अस्तित्व खो देगा।

सबको 'भिक्षु' बनाना असम्भव जानकर वैदिक
ब्रह्मचर्यके बाद गृहस्थके लिये दूसरा आश्रम रक्खा
धर्मकी यह दूसरी विशेषता है। भोगत्यागका महत्
ज्ञात था, पर वस्तुस्थितिकी उसने उपेक्षा नहीं की।
काम या भोगकी वासनाका होना स्वाभाविक है। स
अपने तरङ्गोंके साथ ही रहता है अथवा चन्दनवृक्षके
जैसे साँप रहता है, वैसे मनके अंदर काम रहता है।
अब जिस बातको कहा है, उसे हमारे शास्त्रकार पहलेसे
थे और उसे उचित स्थान देनेके लिये उन्होंने गृहस्थ
एक पवित्र आश्रम माना। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण
अपनी विभूति बतलाते हैं, पर वह काम 'धर्माविरुद्धः'—
अविरुद्ध होना चाहिये। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भा
एकादश स्कन्ध, पञ्चम अध्यायका ग्यारहवाँ श्लोक प्रसि

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र च
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्ति

'संसारमें देखा जाता है कि मैथुन, मांस और
सेवनमें प्राणियोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसके
कोई वेदाज्ञा नहीं हुआ करती। (कहीं-कहीं) विवाह, य
सौत्रामणि यज्ञ आदिमें इनके लिये जो अवकाश दिया ज
उसका हेतु उच्छृंखलताका निवारणकर मर्यादा स्थापित
होता है। निवृत्ति ही वास्तवमें इष्ट है।'

पैठणके प्रसिद्ध महात्मा श्रीएकनाथ महाराज
श्लोकका बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण अपने ग्रन्थमें वि
इसमें कहीं कुछ अश्लीलताकी गन्ध आ सकती है; पर

में नियत कर दिया। वेदोंकी इस विषयमें जैसी आज्ञा तुम्हें सुनाता हूँ। मैथुनके विषयमें योनिभ्रष्टोंको करनेके लिये विवाह-संस्था प्रतिष्ठितकर वरिष्ठ पनी निष्ठामें नियत किया। ब्राह्मणको धोबिनके कड़वा नहीं लगता, न धोबीको ब्राह्मणीके पास ा लगता है। चाहे जिस जातिकी स्त्री और चाहे तेका पुरुष—ऐसे मैथुनसे योनिसंकर होता है। उससे लेये वेदोंने विवाहका नियम लगा दिया। ऋतुकालमें मन करते हैं, ऐसे पुरुष पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं। निवृत्तिपरक हैं। त्यागरूपसे ही वे भोगका नियमन 'आत्मा वै पुत्र नामासि।' उस पुत्रके होनेपर वेद भोगविषयक अपनी आज्ञाका त्याग कराते हैं।

थाश्रममें गृहस्थ-धर्मकी अनुज्ञासे प्राप्त भोग भोगे, सक्त न रहे। 'धन्यो गृहस्थाश्रमः' कहकर उसका ाया गया है। पर गृहस्थको इस आश्रमसे प्राप्त —'वैराग्यका अचल पद'; यह बात वह न भूले। को परमार्थ-पथपर चलना है, यह सही है। पर थ हमारे धर्मकी यह शिक्षा है कि इस पथपर चलते दूसरोंका भी कल्याण-साधन करे। ज्ञानदेवका दिया सुन्दर दृष्टान्त दोहराकर यों कहा जा सकता है कि समुद्रसे मिलने चलती हैं, पर रास्तेमें कितने ती-करती चलती हैं। पापियोंके पाप-ताप नष्ट , तटवर्ती वृक्षोंको सींचती हैं; इस तरह बहता ल समुद्रमें जा मिलता है।' इसी प्रकार मनुष्य नेक जीवोंका कल्याण-साधन करता हुआ अपने ाप्त हो, यही हमारे धर्मकी शिक्षा है।

ा आश्रम पूँजी इकट्ठी करनेके लिये है और दूसरा सी पूँजीको समाजकी सेवामें लगानेके लिये है। में भोग विधेय है, पर उसके साथ बहुत बड़ा त्याग भी कहा गया है। कुटुम्बका पालन करना, समाज- करना इत्यादि गृहस्थाश्रमके ही मुख्य कर्तव्य हैं। भोगसे वासनाओंका क्षय होनेपर ही वह वान- ग्रहण करनेका अधिकारी होता है। 'त्याग' होना चाहिये, ऊपरी त्याग मिथ्या होता है और ारण बनता है। गीता जिसे 'मिथ्याचार' कहती है, सकी परिणति होती है। इससे न उस व्यक्तिका

इसकी शिक्षा देकर इसके लिये तैयार करता है उपनिषद् और सब साधु-महात्मा यही उपदेश करते 'सब विषयोंका त्याग सर्वथा मनसे ही करना न अन्यथा विषयोंका ध्यान बना रहा तो उलटा ही होगा, यही गीता बतलाती है। वासनाक्षय होने वानप्रस्थाश्रममें सहधर्मिणीको सङ्ग लेकर वनमें रहे 'संयोगी वियोग' पद्धतिसे। ऐसे कठिन अनुशासन से तपकर उज्ज्वल हुआ गृहस्थाश्रमी संन्यासका होता है।

संन्यासाश्रम हमारे आश्रममन्दिरका शिखर है। वह पवित्र और उच्च है। 'संकल्प'का त्यागकर जो होता है, वही सच्चा संन्यासी है। वैदिक धर्ममें स्थान कितना ऊँचा है, यह बतलानेवाली एक बा सामने है। मनुष्य जब मर जाता है, तब वैदिक उसकी लाश जलायी जाती है। पर संन्यासीका मृ गाड़ा जाता है, उसपर उसका समाधि-मन्दि और वहाँ उसकी पूजा की जाती है। सर्वस्वका जिसने अपना जीवन त्यागमय बना लिया, जिस शरीर, मन और इन्द्रियोंके संकल्प-पङ्क धोकर उ कर लिया, वैदिक धर्म उसे इतना सम्मान देता है।

इन सब बातोंसे पाठकोंके ध्यानमें यह बात होगी कि हमारे धर्मकी आश्रमव्यवस्थाने भोग क त्यागका ध्येय लाभ करनेका मार्ग दिखा दिया होनेके लिये आश्रमसंन्यास लेना ही होगा, ऐसा आग्रह हमारे धर्ममें नहीं है। सनक-सनन्दनादिके जनकादिकोंके भी उदाहरण इसने जगत्के सामने र वैदिक धर्मकी यह बहुत बड़ी महत्ता है। गीतामें 'सब कुछ करके भी कुछ न करना, अकर्ता बने कहा गया है। यहीं भोग और त्यागपूर्ण समन्वय हुआ है।

वैदिक धर्मकी आश्रमव्यवस्था निर्माण ऋषियोंको आधुनिक मनोविज्ञानके सिद्धान्त जानने अवसर मिलना सम्भव ही नहीं था। तथापि जो व्यवस्था उन्होंने निर्माण की, वह मानव-मनोविज्ञान अध्ययनकर आजके मनोवैज्ञानिकोंने जो सिद्धान्त हैं, उनकी कसौटीपर ठीक ही उतरती है। हमारे

la Rasa) है। इंग्लैंड तथा अन्य पाश्चात्त्य देशों-
ग़लतक इस मतका बड़ा बोलबाला था। पीछे मनो-
मानव-मनका ज्यों-ज्यों अधिक गम्भीर अध्ययन
, त्यों-त्यों उनकी समझमें यह बात आने लगी कि
नहीं है जैसा कोई कोरा कागज हो, बल्कि पहलेसे
कुछ संस्कार अङ्कित रहते हैं और इन संस्कारोंके
मनुष्यका जन्म होता है। पाश्चात्त्योंमें डेकार्टका मत
प्ययुक्त था। उसके अनुयायियोंने पीछे उसके असली
बहुत कुछ बदल डाला, यह बात दूसरी है।
मैकडूगलने अपनी 'दि ग्रूप माइंड' नामकी पुस्तक-
है—'विभिन्न वंशोंमें परस्पर संस्कारजन्य भेद होते
संस्कारोंको कुछ न माननेका मत जो लॉकेने चलाया,
चला कि असली चीज दब गयी और उसके कुफल
चखने पड़े। हमारे भारतीय समाजकी दृष्टिसे तो
के विचार बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। भारतवर्षका
न करते हुए अंग्रेजोंने मनोविज्ञानके कुछ अप-
को मानकर जैसे कानून चलाये, उनसे राष्ट्रमें एकता
ख-समृद्धिके बदले एक तरहका अंधेर मचा हुआ
(१९२० में ही इस महान् व्यक्तिने यह भविष्य
लखा था। उसकी पुस्तकसे कुछ महत्त्वपूर्ण अवतरण
ते हैं—

हज गुणोंकी कोई सार्थकता न माननेवाला यह मत
मयके मुख्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तके अनुरूप और
निर्धारित था। लॉकेके समयसे यह मत चला। इस
अनुसार नवजात शिशुका मन बिना किसी संस्कारका,
कोरा और सब मनुष्योंमें एक-सा होता है; कोई
विशेष प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ उसमें नहीं होतीं, जो
गीय हों। इस कोरे मनपर वैयक्तिक अनुभूति अङ्कित
और विचार-साहचर्यके सिद्धान्तानुसार उसका सम्पूर्ण
साधन करती है।

अंग्रेजोंने अपने अधीनस्थ देशों और उनके अधि-
के साथ, विशेषतः भारतवर्षके साथ जिस नीतिका
म्बन किया, उसमें स्पष्ट या अस्पष्ट रूपसे यह मत बहुत
प्रतिफलित हुआ है। मतका व्यवहारपर कितना प्रभाव
है और मतकी इस कार्य-कारिताकी उपेक्षा करनेसे
[illegible]

यह स्पष्ट कर लेना चाहिये कि हमारे क्या-क्या मत हैं—
हम अपने आपको व्यवहारमें सर्वथा उन्हींके द्वारा परि
न होने देते हों।' (पृ० १०९)

'मानव-शिशुका मन कोरा कागज नहीं है,
आन्तरिक रचनामें बहुत-सी सहज वासनाएँ, बहुत-सी
प्रवृत्तियाँ होती हैं जिनकी विचार, भाव और कर्मके स
में एक विशेष दिशा निश्चित रहती है। इस बातकी म
से यह मत स्वीकृत होता है और इन विभेदोंको ठीक
लक्षित करानेका एक आधार मिल जाता है।' (पृ०

भारतके अंग्रेजी शासनमें 'जातिके नाते जाति
महत्त्व है, उसकी उपेक्षा की गयी और संस्कृति तथा सं
द्वारा गठनका जो कार्य होता है, उसको अत्यधिक
प्रदान किया गया—जैसा कि लार्ड मेकालेके एत
सुन्दर प्रतिपादनसे व्यक्त होता है। इसीका यह फल
आजसे ८० वर्ष पहले इंग्लैंडने भारतके करोड़ों म
अपनी संस्कृति और संस्थाओंसे विभूषित करनेका
आरम्भ किया। यह काम पूरा जोर लगाकर नहीं किय
जैसे-तैसे जो कुछ हुआ, उतनेसे ही इस प्रयासका जो
हुआ, उसका अनौचित्य हम कुछ देख सकते हैं
निरीक्षकोंका यह कहना है कि यदि यह काम पूरा हु
और प्रातिनिधिक शासनके सूत्र देशके अधिवासियोंके
सौंप दिये गये होते तो कुछ ही वर्षोंमें सारे देशमें
और अराजकता मच जाती। हमलोगोंने इस देशक
हालतमें पाया था, वैसी ही हालत फिर हो जाती
दूसरे लोग इससे भी आगे बढ़कर यह कहते हैं औ
इस कहनेमें सत्यका कुछ आभास भी है कि पाश्चात्त्य
भारतीय मति और नैतिक प्रकृतिके लिये वस्तुतः हा
है।' (पृ० ११७-११८)

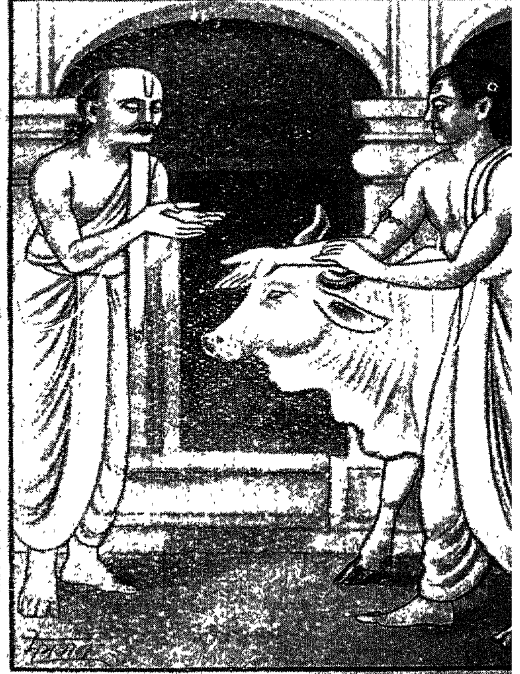
जब कोई श्रेष्ठ पुरुष दुर्भाग्यसे किसी अर्ध
प्रतिपादन करने लगते हैं, तब उसका परिणाम समस
और राष्ट्रको भोगना पड़ता है। पशुकी अपेक्षा
विशेषता यह है कि मनुष्यमें बुद्धि है। इस बु
जितना भयङ्कर और व्यापक परिणामवाला अपराध क
है, उतना जानवर नहीं कर सकता। इसी प्रकार
बुद्धिमान् पुरुषोंकी प्रमादशील विचार-पद्धतिका भी
दुष्परिणाम होता है और वह सारे राष्ट्रको भोगन

सांस्कृतिक प्रातःकाल



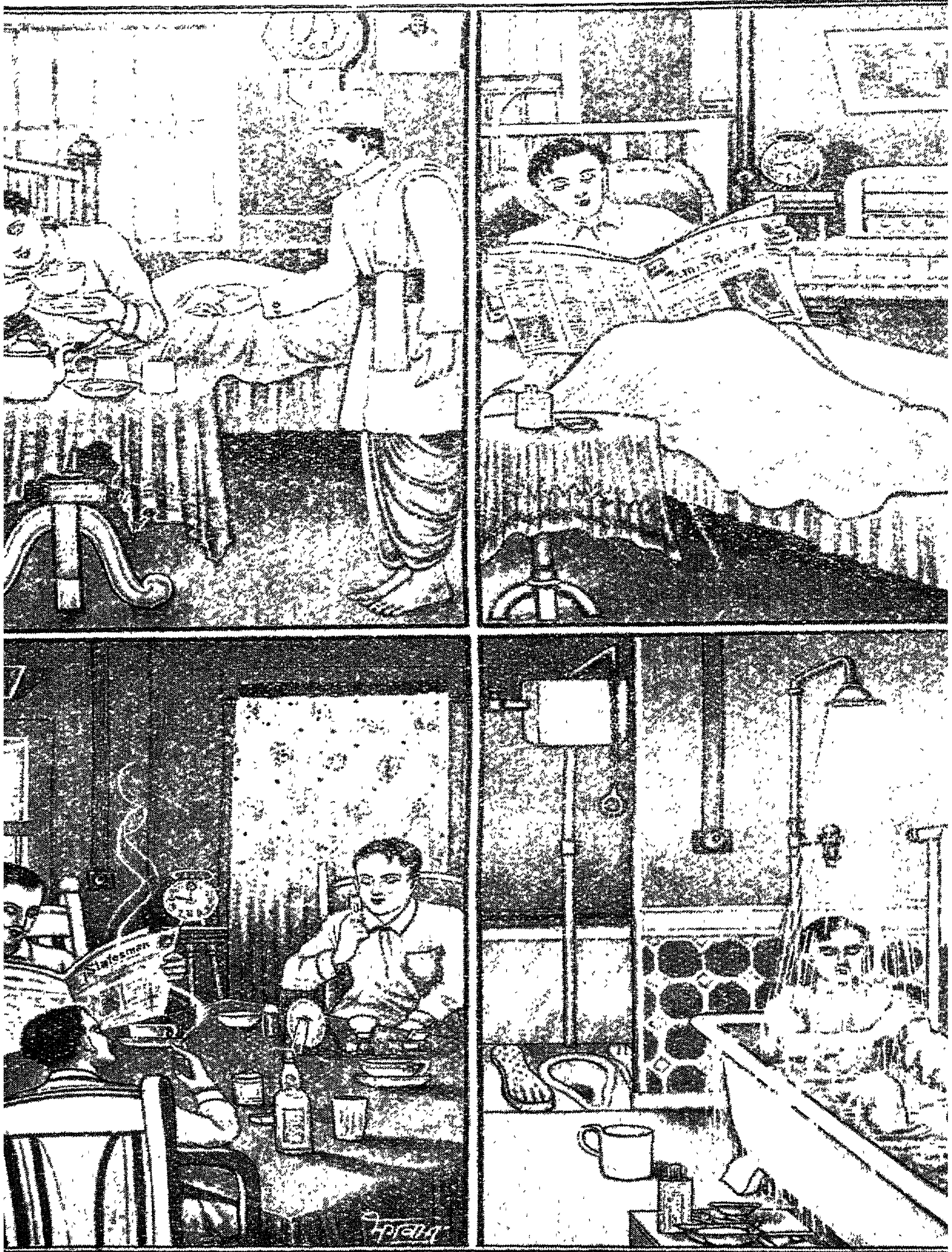






पहले प्रातः-स्नान और फिर संध्या-वंदन, पूजा-ध्यान ।
नित्य होम करते गृहस्थ सब, श्रद्धासे देते गोदान ॥

असांस्कृतिक प्रातःकाल



दिन चढ़ आया, खुली नींद अब, पीने लगे 'बेड टी' (Bed-tea) लेट ,
हाथोंमें अखबार आ गया, मुँहमें सुलग रही सिगरेट ।
काफी, चाय, सिगार दोस्तको दे फिर आप बनाते बाल ,
नहा-नहा हो रहे निहाल !

ो। भारतके स्वाधीन होनेपर भी अंग्रेजोंकी यह
ाग्यक्रमसे भारतके नेताओंके ध्यानमें न आयी और
ातीय राष्ट्र बनानेके काममें लगे हैं। परंतु यह
शास्त्रीय है और इसके दुष्परिणाम राष्ट्रको भोगने
मैकडूगल प्रभृति महान् मनोवैज्ञानिकोंका यही मत
ओर भारतके नेताओंका ध्यान दिलाना आवश्यक है।
्क धर्मने संस्कारोंपर ध्यान रखकर मनुष्योंके
राजसिक और तामसिक—त्रिगुणात्मक विभाग किये

हैं और इसपर वर्णाश्रम-व्यवस्था खड़ी की है
जिसका अधिकार है, वैसा ही उसके लिये उपदेश है
भार जो उठा सकता है, उतना ही उसपर रक्खा ज
यही व्यवस्था इस सिद्धान्तका आधार है। हर
'शनैः-शनैः' त्याग करना सिखलाकर व्यक्ति और
उन्नत अवस्था प्राप्त करानेका प्रयत्न हमारे धर्म
है। अन्यत्र कहीं ऐसा प्रयत्न नहीं देख पड़ता, य
अन्यथा न होगा।

धर्म-शब्दका लक्षण और रहस्य

(लेखक—पं० श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा, बी० ए०, एम्० आर० ए० एस्०)

में लिखा है—'धर्मं चर', धर्म करो; 'धर्मेण
त', धर्मसे सुख होता है; 'धर्मान्न प्रमदितव्यम्',
ाद या असावधानी नहीं करनी चाहिये। अब देखना
क वह धर्म क्या है, जिससे सुख मिलता है। इसका
रनेके लिये सबसे पहले 'धर्म' शब्दके अर्थकी ओर
ा चाहिये।

र्म' शब्द व्याकरणकी रीतिसे 'धृञ् धारणे' धातुके
न्' प्रत्यय लगानेसे बनता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन
ो सकती है—

ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः—जिससे लोक धारण
य, वह धर्म है।

धरति धारयति वा लोकम् इति धर्मः—जो लोकको
े, वह धर्म है।

ध्रियते यः स धर्मः—जो दूसरोंसे धारण किया जाय,
है। महाभारतमें धर्मका यह लक्षण बताया
—

> णाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
> स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥
> (कर्ण० ६९। ५८)

रण करनेसे लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म
धारण करता है। जो धारणके साथ रहे, वह धर्म
निश्चय है।'

से सिद्ध होता है कि 'धर्म' बहुत व्यापक शब्द है।
कारके अनुसार 'धर्म' शब्दके अनेक अर्थ हैं;
१ सुकृत या पुण्य, २ वैदिक विधि-यागादि, ३ यमराज,

अन्य कोषोंमें धर्मके ये अर्थ लिखे मिलते हैं—१
कर्मके अनुष्ठानसे उत्पन्न होनेवाले भावी फलका सा
शुभ अदृष्ट या पुण्यापुण्यरूप भाग्य, २ श्रौत अ
धर्म, ३ विहित क्रियासे सिद्ध होनेवाला गुण या
अदृष्ट, ४ आत्मा, ५ देहको धारण करनेसे
आचार या सदाचार, ६ वस्त्रका गुण, ७ स्वभाव,
९ याग आदि, १० अहिंसा, ११ न्याय, १२ उपनि
धर्मराज या यमराज, १४ सोमाध्यायी, १५ सत्
धनुष, १७ ज्यौतिष-मतमें लग्नसे नवम स्थान या भा
१८ दान आदि।

किंतु 'धर्म' शब्दका धातुगत अर्थ तो 'धार
ही होता है। निरुक्तमें 'धर्म' शब्दका अर्थ 'नियम
गया है। इन दोनोंके मेलसे 'धर्म' शब्दका यही
अर्थ होता है कि जिस नियमने इस लोक या संसार
कर रक्खा है, वही धर्म है।

आगे बताया जायगा कि वह नियम कौन-सा
इस लोक या संसारको धारण कर रक्खा है
नियमोंके अनुसार चलनेसे सुख होता है; क्यों
लिखा है कि धर्मसे सुख होता है। लोकमें भी
—'धनाद्धर्मं ततः सुखम्', धनसे धर्म
और धर्मसे सुख होता है। यह सुख दो प्रकारका
तो इस लोकका सुख और दूसरा परलोकका सुख।
जिससे इन दोनों प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति हो, वही
सभी लोग सुखके लिये ही प्रयत्न करते हैं और उस
धर्म है: अतएव वैशेषिक दर्शनके रचयिता

गुण, रजोगुण और तमोगुणके लक्षण श्रीमद्भगवद्गीतामें
र कहे हैं—

ं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
तमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥
(१४।९)

भरतवंशिन्! सत्त्वगुण सुखमें आसक्त करता है; कर्ममें प्रवृत्त करता है और तमोगुण ज्ञानको प्रमाद, आलस्य और निद्रामें लगाता है।'

विषयको स्पष्ट करनेके लिये एक उदाहरण दिया। एक पुरुष दिनको नींद लेता है। दिनमें नींद होगा अथवा अधर्म, इसका निश्चय करनेमें हमें जानना चाहिये कि दिनमें सोनेसे किस गुणकी वृद्धि स गुणकी हानि होगी। दिनमें सोनेसे तमोगुणकी ा अनिवार्य है; क्योंकि तमोगुणका फल अज्ञान है, जो मोहित करता है और प्रमाद, आलस्य और बन्धनका कारण होता है। इसलिये तमोगुणकी रनेके कारण दिनमें सोना जीवकी क्रमोन्नतिमें रता है। अतएव यह दिनको सोनारूप कर्म कारण हुआ। क्योंकि जीवमें जितना तमोगुण या र्श करेगा, उतना ही जीव जडताको प्राप्त होता और जो कर्म जितना ही सत्त्वगुणकी वृद्धि करेगा, जीव चैतन्यको प्राप्तकर मुक्ति अथवा लयकी ओर ा।

प्रकार सभी प्रकारके कर्मोंको इस कसौटीपर उनके विषयमें धर्म और अधर्मका निर्णय सहजमें सकता है। इसी सिद्धान्तपर स्थूल और सूक्ष्म भेदसे अधर्मका विवेकद्वारा निश्चयकर मनुष्यको प्रत्येक वृत्त होना चाहिये। यही धर्मका रहस्य है। इसी नियमसे सारी सृष्टिका प्रवाह चलता है। भगवान् र्मरूप हैं। भगवान्ने स्वयं कहा है—

ऽहं वृषरूपधृक्। (भा० ११।१७।११)

, शौच, दया और सत्य नामके चार पैरोंवाले धारण करनेवाला धर्म मैं (भगवान्) स्वयं हूँ।'

ुसहस्रनाममें भी लिखा है—

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी।

की रक्षा करनेवाले, धर्मको बनानेवाले और

इसीलिये शास्त्रोंमें लिखा है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षि

'धर्मका परित्याग करनेपर वह उस पुरुषका नाश है और रक्षा या पालन किया हुआ धर्म इस पुरु करता है।'

भगवान् धर्मके स्वयं प्रभु—चलानेवाले या स्वा

आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्यु

'धर्म आचार या सदाचारसे उत्पन्न होता है धर्मके अच्युतभगवान् प्रभु या चलानेवाले या रक्षक

इसलिये धर्म सदा पालन करनेयोग्य वस्तु हँसी या मजाक उड़ानेकी चीज नहीं है।

शास्त्रोंमें लिखा मिलता है—

धर्ममूलं हि भगवान् सर्वदेवमयो ह

सर्वदेवतामय भगवान् धर्मकी जड़ या आ भगवान् स्वयं धर्म और धर्मके जाननेवाले हैं। यथा

धर्मो धर्मविदुत्तमः।

भागवतमें लिखा है कि भगवान् धर्मकी रक्ष अवतार लेते हैं—

धर्मावनायोरुकृतावतारः। (६।८

भगवान्ने ही धर्मरूपी नियमको बनाया है, उसकी पाबंदी रखते हैं तथा औरोंसे रखवाते हैं—यह वे धर्मकी हानि देखकर स्वयं अवतार धारण क जैसा कि गीतामें डंकेकी चोट कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे
(४

'जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि तब-तब मैं अवतार लेकर आता हूँ। साधुओंक दुष्टोंके नाश और धर्मकी पुनः स्थापना—इन तीन लिये मैं प्रत्येक युगमें प्रकट होता हूँ।'

ईश्वरकृत नियमोंमें न तो कभी आजतक अन्त न पड़ता है और न कभी पड़ेगा। यह सब

वक्षःस्थल गंगाजल,
हिम-गिरिका मुकुट भालः
पद पूजत स्वर्ण पुरी-
त रत्नाकर विशाल;
है प्रकृति अनुचरी जिसकी,
जिसके मातृ-प्रेमके देव भक्त,
उस भारत माताकी संतति
पैंतीस कोटि हम एक-एक।
प्रशस्त सम्पूर्ण सहज
अनादिसे विद्यमान;
हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
संतत स्वाभिमान !
सब भाषाओंका प्रथम स्रोत,
यह वैदिक संस्कृत कल्पतरुः
जिसपर त्रिलोकतक न्योछावर,
है सहज हमारा ही प्रयत्न।
विकासके सर्वप्रथम
आदि-मंत्र साक्षात्कार,
ह्म-लीन हमने विरचा
दिव्यतम निर्विकार।
प्रति गति-विधिके पूरक अखण्ड,
हम स्वयं-सिद्ध सुखमय सुजान;
हम हिंदू हैं हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान॥
वन, वन कर व्याप्त शांति,
ोग, शक्ति, तपके प्रभाव,
हार्दिकमें प्रेम भरा,
उनका हर वैर-भाव !
हमसे पालित सत्-न्याय-नीति,
माया-ममता कर खण्ड-खण्ड;
है प्रजा-शांति-बाधक सुत-वनिता-
को भी हमने दिया दण्ड।
सर्व-भूत-हित-रत अनुदिन,

कर प्राणायाम त्रिधा
युग-युगतककी लेकर
हम रहते अविचल, अज
आती समीप है नहीं
हमसे शरीर-सुख-संवर्द्धक
चौरासी आसनकी प्रयुक्तिः
हम ब्रह्म-रंध्रसे प्राण त्याग,
जब चाहें वर लें त्वरित मुक्ति।
साकार रूपमें निर
लाये हम कर सा
हम हिंदू हैं, हिंदू-ज
हमको संतत स्वाभि
हम जीवमात्रमें मोद, शांति
रखनेको रहते हैं अधीरः
अवतरे हमारे यहाँ ब्रह्म
झष, कमठ, कोलतक धर शरीर।
हमने शरणागत-र
अपने प्राणोंको दिया
जो पीठ दिखा देता,
हम कभी नहीं करते
रिपुओंको रणमें बाँध किया
हमने उनको जीवन प्रदान;
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान॥
हम सफल चक्रवर्ती
हमसे घोषित आ
भू-मंडलके मंड
भूगर्भित निःसृत य
हम पूर्ण भगीरथ कर प्रयत्न
लाये शिव-सिर सुरधुनी-धार;
रच अश्वमेध हमने पहनी
त्रिभुवन-जयमाला बार-बार !
हमने शर-शय्या ले

शिक्षित कपि लड़े समर,
समुद्रपर सेतु-कर्म
ाण, पुरी-दहन दर्शित
नुमतका वीर-धर्म !

मिट्टीकी मूर्ति हमारी रच,
उससे लेकर शिक्षा अलक्ष,
पढ़ अद्भुत धनुर्वेद वनचर
तक लक्ष्य-वेधमें हुआ दक्ष !

ातकको तर्क-शास्त्र-
से समुचित हुआ ज्ञानः
हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
संतत स्वाभिमान !

हम गणित-शास्त्र-पारंगत हमसे—
पद्म-शंखतक प्रकट अङ्कः
हमने ज्यौतिषमें ग्रह-गतिकी
गणना दिखलाई निष्कलंक !

त वेलामें तथापि
प्रभावसे ही समस्त,
शि,कुज,बुध,गुरु,भृगु,शनि,तम
रहते हैं उदय-अस्त !

हो चौर इंद्र, पाताल वस्तु
ग्रह-बल यथार्थ हम दें बखानः
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान !

ास्त्रमें भी हमसे
कौशल दर्शित अतीवः
हमारी स्वर-लहरी-वश
ते सब वन्य जीव !

गाते वसंत, छाता वसंतः
असमयमें गाते घन-मलार,
घन-गर्जन, विद्युत-चमचम-युत
होती वर्षा मूसलाधार !

ग करते दीप-राग,
दीपक ...

हमने लेकर फरसा प्रचण्ड,
कर-कर अचूक अविचल प्रहार,
अन्यायी-कुल-संहार किया
प्रण कर, रण कर इकीस बार !

जो हिल न किसीसे स
जिसको त्रिलोक रह गय
उठ हस्त हमारे भं
वह हिमगिरि-सा शिवका

हम अंजलिमें लेकर अपनी
कर गये निमिषमें सिंधु-पानः
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान !

पय अहिको देते, पर
यदि फैलाये विषकी
तो भेद सहस्र फनोंव
हम करते उसका अ

सुरपति भी लेकर प्रलय-मेघ
यदि करना चाहे कुछ अनिष्ट,
तो पड़े क्षुब्ध उसको रहना
इतना हममें पौरुष विशिष्ट !

हँसते कनिष्ठिकापर
रख पर्वत हम रचते
हम हिंदू हैं, हिंदू-ज
हमको संतत स्वा

बढ़ते सुत सिंह समान हमारे
देख विपक्षी-गज-समूहः
अगणित रिपु सिद्धहस्त हों,
पर वह कर अकेले भंग व्यूह !

शिशु करते आत्म-विनोद
सिंह-मूँछ कर क
खेला करते सिंह
पीते छौनेको छीन

वर वीर हमारे-ही-जैसे
हैं ...

है प्राणोंका उत्सर्ग सह्य,
पर धर्म-धैर्य तजते न रंच;
हैं पुत्र हमारे ही, जिनपर
चल सका न जगका कुछ प्रपंच!

ही गर्भ-कालतकमें
अपूर्व शिक्षित प्रवीण,
द्ध विकट, पौगण्ड पुत्र
करते हैं योधा धुरीण!

पितु होते, उनके लोहेको
हम गये समरमें स्वयं मान;
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान!

सुर वह, सुर-गण रहते
इच्छाओंके अधीन;
पति वह, सुरपति रहते
सम्मुख हैं निरे दीन!

हम धनपति वह जिनपर कुबेर-
की न्यौछावर निधि बार-बार;
हम सेवक वह स्वर्गोपरि 'भारत'
जिनकी सेवाका शृंगार!

प्रबलाएं हममें—जिनके
पर रति, श्री, शची म्लान;
हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
संतत स्वाभिमान!

तज वंश हमारा कहाँ प्रकट
हो सका पतिव्रतका प्रताप!
जिसने कर-भोजन-लालायित
हरि, हर, विधिको शिशु किया आप!

हमारी युद्धस्थलमें
प्रबल दाहिना हाथ;
को जीवित कर न सकीं,
सती तब साथ-साथ!

रुख देख हमारी ही महिलाओं-
का होना [illegible]

दिग्-विजय-करण-अभिलाषासे—
प्रेरित होकर, हो युद्ध-लग्न,
चल पड़ा सिकंदर कर फारस,
काबुल, बख्तर स्वातंत्र्य भग्न!

पर पहुँचा ज्यों ही भारत
हमने झेलम-तट समर
यूनानी दल दल-विचलि
उसके प्राणोंपर किया

निज मरण देख, वह शरण हुआ
पलटा हमसे पा अभय-दान;
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान!

भारत वैभव अपहरण
छल, बल, रण-कौशल कर
जब स्वामीके ही भाँति सिल
रणमें हमसे गया हार

तब सुता-सहित काबुल, कँधार,
दे संकुल अफगानी प्रदेश,
हेरात, बिलोचिस्तान भेंट,
वह चला गया अपने निवेश!

नत-मस्तक होकर चरण
लगा पूजने फिर
हम हिंदू हैं, हिंदू-जी
हमको संतत स्वाभि

जब वैयक्तिक लोलुपतावश
हमसे समाजका हुआ लोप
शासन-प्रकाशपर हुआ
अचानक म्लेच्छ-पतंगोंका प्रकोप!

पर स्नेह-क्षीणतातक
अपनी ज्वलंत ज्वाला
हमने निज लपटोंमें
उन तुच्छ पतंगोंका वि

हम आप बुझे, पर प्रथम भेज रिपु
[illegible]

बढ़ चला विधर्मी अनाचार,
जन, धन, लज्जाकी मची लूट;
सह सके असह अन्याय न,
मंदिर गिरे, मूर्तियाँ गईं फूट!

रिया सज लड़े समर,
ुईं देवियाँ चिता-क्षार;
छातीपर जमकी
ींच कंचुकीसे कटार!

जीवन सतीत्वके साथ रहे,
यह वनिताओंको रहा ध्यान;
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान!

भारती सीमातक
ा प्रखर अपना प्रताप;
हो अकबर'का नारा
बम' ध्वनि बन गया आप!

फिर कुटिल काल-दुर्वासाके
पड़ कूट-नीति-व्यवहार साथ,
होकर स्वतंत्र हम हुए पुनः
परतन्त्र हाय अंग्रेज हाथ!

ंग्रेजोंको याद हमारी
सत्तावनकी कृपाण;
ंदू हैं, हिंदू-जीवनका
संतत स्वाभिमान!

चित चाह वसंती-चोलाकी
दे-दे पूर्णाहुति मुक्ति-हेतु,
हम खेले फाँसी, गोलीसे
फहरानेको राष्ट्रीय-केतु!

गंगा-यमुनाके गायन,
ारत माकी भव्य मूर्ति,
'चलो दिल्ली' कहते,
अक्षय स्वातंत्र्य-पूर्ति!

हिल उठी ब्रिटिश इम्फालभूमि-
तक देख हमारा अधिष्ठान;

यद्यपि कुछ देश-द्रोहियोंवश
हम सके नहीं कृत समर जीत;
पर भारत-शासन तजनेको
अंग्रेज हुआ उद्यत सभीत!

फिर भी निज पुनराग
उसने छिप-छिपकर चल
जिसका फल पाकिस्तान
अपना अघ, दैवी गति

पर इस अरिष्ट-उन्मूलनका
चल रहा हमारा अनुष्ठान;
हम हिंदू हैं, हिंदू-जीवनका
हमको संतत स्वाभिमान!

यह हमें न विचलित कर
षडयंत्र दुष्ट-दलका
उठ रहे आत्मरक्षार्थ
आज संगठित बा

हम हैं अनायके नहीं शत्रु,
यदि वह न करें हमसे विरोध;
पथ-कंटकका ही हैं करते हम
सब विधि उन्मूलन-विशोध!

हमसे आदृत रसखान,
इब्राहिम खाँ-से मुस
हम हिंदू हैं, हिंदू-
हमको संतत स्वा

अस्तित्व हमारा है अनादिसे
जैसे, वैसे ही अनंत;
इसके विनाशपर तुले शत्रु-
का नियत श्रुतायुध-तुल्यअंत!

भय, सङ्कट, पीड़ाएँ युग
हममें भरती हैं
साक्षी अक्षय-वट शे
कर सका नष्ट कब मह

हम ईश्वरीय लीला-अथ-इति-

हिंदूधर्मका व्यापक स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न)

देशके प्रज्ञतम युगमें यहाँके निवासी आर्य आशिष्ठ, ालिष्ठ, सुन्दर, श्रद्धालु और आमोद-प्रमोदमय जीवन रनेवाले थे। वे सदाचारी, निर्भीक, उदार और विशाल लीलाक्षेत्रके रहस्योंसे परिचय प्राप्त करनेके उत्सुक थे। उन्होंने विमल-सलिला सरिताओं, वनराजियों, उत्तुङ्ग अचलों, अगाध सलिलाशयों, —नानाविध प्राकृतिक सम्पत्तियोंका सदुपयोग करके ा विज्ञान प्राप्त किया, जो अद्यावधि अपनी के कारण भूवलयमें विश्रुत है। सात्त्विक जीवन- एवं शम, दम आदि सद्गुण-गणने उनके हृदयमें सञ्चार किया और अपनी उस अनुभूतिको उन मेधावी महर्षियोंने मन्त्रोंके रूपमें अपनी सन्ततिको ाया। मन्त्रराशिका नाम वेद है।

में लिखा है कि इस विश्वकी सृष्टि होती है और के ईश्वर आदि अनेक नाम हैं। जीवोंका होता है। जबतक आत्मसाक्षात्कार नहीं होता, तब- र्न्म और पुनर्मरण होता रहेगा। पुनः-पुनः जन्म ः-पुनः मृत्युसे विकल होकर जीव जब साधना करता संसार-पाशसे उसका निस्तार हो सकता है। इसी परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

र्जन्म और मुक्तिवाद आर्यधर्मकी प्रधान सम्पत्ति थी सम्पत्ति अभीतक इस देशमें सुरक्षित है। इस ाचीन नाम आर्यावर्त था, किंतु यहाँके सप्तसिन्धु- सभ्यता और संस्कृतिसे मुग्ध होकर विदेशवासियोंने सेन्धुस्थान' कहना प्रारम्भ कर दिया। भाषाशास्त्रके 5 अनुसार संस्कृतका सकार विदेशियोंकी बोलीमें न गया और महाप्राण धकार और थकारके स्थानपर ल्पप्राण दकार और तकार होनेसे 'हिंदुस्तान' शब्द ा। और यहाँके निवासी 'हिंदु' अथवा 'हिंदू' ।

ंक्त भारतीय महर्षिगण आस्तिक थे, क्योंकि इस ननन्तर भी वे देहीकी अर्थात् आत्माकी सत्तामें विश्वास रखते थे। कुछ ऐसे भी हिंदू थे, जो आत्माके अस्तित्वमें—पुनर्जन्म और मुक्तिमें—श्र रखते थे। ये हिंदू नास्तिक हिंदू कहलाये।

आस्तिकोंमें भी एक दल ऐसा था, जो उ पुनर्जन्म और मोक्षमें तो विश्वास करता था; किंतु साहित्य उसे मान्य नहीं था। इस दलको 'अवैदिक हिंदू' नामसे कह सकते हैं।

नास्तिकलोग देहात्मवादी होते हैं। वे कहते 'भस्मीभूत देह फिर नहीं मिलेगा। अतएव जबतक तबतक आनन्दकी प्राप्ति—जैसे भी हो—कर लेनी ऐसे नास्तिक लोगोंके आचार्य बृहस्पति और चार्वाक हैं और उनके दर्शनको बार्हस्पत्य अथवा चाव कहते हैं।

अवैदिक आस्तिक हिंदुओंमें भी दार्शनिक च रही। तीर्थङ्कर महावीर वर्धमानद्वारा प्रदर्शित मार्गवं वाले सज्जन जैन हिंदू कहलाते हैं। जैनधर्ममें अहिंसाप महत्त्व है। यद्यपि सृष्टिकर्ता ईश्वरके लिये इस ध अवकाश नहीं है, तथापि सांसारिक वासना-त्यागरूपी बलसे जीवको पुनर्जन्म-मरणसे छुटकारा—निर्वाण सिद्धान्त इसमें सम्यक् स्थापित किया गया है।

जैन-हिंदुओंकी ही कोटिमें बौद्ध-हिंदू हैं। कि निवृत्तिपरायण राजकुमार सिद्धार्थने बुद्धत्व प्राप्त सम्प्रदायका सूत्रपात किया था। इस धर्ममें भी रचयिता ईश्वरका अस्तित्व स्पष्ट स्वीकार नहीं किया किंतु जन्मानन्तर मृत्यु और मरणानन्तर जन्मकी सिद्ध करके इस जन्म-मरणरूप संसार-चक्रसे मुक्तिव विशद रूपसे की गयी है।

जैन और बौद्ध-हिंदुओंका धार्मिक साहित्य और अधिकांशमें पाली-प्राकृतमें लिखा गया है हिंदुओंके श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेद स्याद्वाद नामक दार्शनिक सिद्धान्त बड़ा प्रसिद्ध

द्यावाभूमी जनयन् देव एकः (श्वेताश्वतर० ३ । ३;

१. जडभूतविकारेषु चैतन्यं यत्तु दृश्यते।
ताम्बूलपूगचूर्णानां योगाद् राग इवोत्थितम्॥

द्ध-हिंदुओंके हीनयान और महायान नामक भेद हैं
: दार्शनिक सिद्धान्त हैं, जिनके नाम हैं—वैभाषिक,
क, योगाचार और माध्यमिक ।

को प्रमाण माननेवाले वैदिक हिंदुओंमें दो विभाग
दल 'जगत्का स्रष्टा ईश्वर है' यह मानता था
ा दल ईश्वरको नहीं मानता था । ईश्वरको मानने-
र कहलाये और न माननेवाले निरीश्वर । निरीश्वर-
कपिल और जैमिनि मुख्य हैं । कपिलके सांख्यमतके
कृति और पुरुषके ज्ञानसे ही कैवल्यका लाभ हो
। एवं जैमिनिके मीमांसा-दर्शनके अनुसार वैदिक
नुष्ठानसे उत्तम स्थान (स्वर्ग) की प्राप्ति होती है,
खका लवलेश भी नहीं है ।

को माननेवाले वैदिक हिंदुओंमें तीन विभाग थे ।
ह, जो ईश्वरको निर्गुण-निराकार मानता था । दूसरा
उसे सगुण-साकार मानता था और तीसरा वह, जो
-निराकार मानता था । उपनिषदोंमें ऐसे अनेक
ते हैं, जिनसे इन तीनों विभागोंका समर्थन होता है ।
राकार ब्रह्मकी सिद्धिमें—

ब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

आदि मन्त्र हैं । अद्वैत-मतने ऐसे ही मन्त्रोंको मुख्य
न्त्योंको गौण माना है । आचार्य शङ्कर इस मतके
द्ध आचार्य हुए हैं । अद्वैतवादी हिंदू कर्म और
ारा अपनेको ब्रह्मज्ञानका अधिकारी बनाते हैं और
ोनेके अनन्तर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं ।

ा-निराकार ब्रह्मकी सिद्धिमें **'कविर्मनीषी परिभूः**
'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' आदि मन्त्र हैं ।
ा और आर्यसमाजमें ऐसे ही मन्त्रोंको मुख्यता दी
ब्राह्मसमाजके संस्थापक थे राजा राममोहन राय और
जके स्वामी दयानन्द ।

ग-साकार ब्रह्मकी सिद्धिमें **'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म',**
[3] **कल्याणतमं तत्ते पश्यामि'** आदि मन्त्र हैं ।
गुण-साकार माननेवाले हिंदुओंमें पाँच सम्प्रदाय
—सौर, गाणपत, शाक्त, शैव और वैष्णव ।
मण्डलमें विराजमान सूर्यके अधिष्ठाता देवताकी

उपासना करनेवाले सौर कहलाते हैं । **'हिरण्मयेन**
रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्'[1] इत्यादि मन
पासनाके हैं ।

सर्वकर्म-समारम्भमें पूजित गणेशजीकी उपास
वालोंको गाणपत कहते हैं । **'गणानां त्वा गणपतिं**
'कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्'[2] इत्यादि मन्त्र
पासनाके हैं ।

जगद्धात्री, सिंहवाहिनी शक्तिकी उपासना
शाक्त कहलाते हैं । **'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि'**[3] इत्या
शक्त्युपासनाके हैं ।

पिनाकधारी रुद्र शिवजीकी उपासना करने
कहलाते हैं । **'नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः**
मन्त्र शिवोपासनाके हैं ।

शङ्ख-चक्र-गदा-कमलधारी श्रीविष्णुके उपास
कहलाते हैं । **'महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे'** इत्य
विष्णूपासनाके हैं ।

सौर सम्प्रदायकी छः शाखाएँ हैं—१–सू
सूर्यमूर्ति माननेवाली, २–ब्रह्माजीको सूर्य माननेवा
विष्णुजीको सूर्य माननेवाली, ४–शिवजीको सूर्य मा
५–त्रिमूर्तिको सूर्य माननेवाली, ६–सूर्यमूर्तिका मस्त
आदि अङ्गोंपर अङ्कन करनेवाली ।

गाणपतोंकी छः शाखाएँ हैं—१–महागणा
उपासिका, २–कुमारगणपतिकी उपासिका, ३–हेरम्ब
की उपासिका, ४–नवनीत-गणपतिकी उपासिका,
गणपतिकी उपासिका और ६–सन्तान-गणपतिकी उ

शाक्तोंकी दो शाखाएँ हैं—१–वाममार्ग ३
दक्षिणमार्ग ।

शैवोंकी चार शाखाएँ हैं—१–शैव, २-
३–कारुणिक-सिद्धान्ती और ४–कापालिक ।

वैष्णवोंकी चार शाखाएँ हैं, जो सम्प्रदाय-नाम
हैं—१. श्रीसम्प्रदाय, २. ब्रह्मसम्प्रदाय, ३. रुद्रसम्प्र
४. सनकसम्प्रदाय । श्रीसम्प्रदायकी उपशाखा है—
सम्प्रदाय और ब्रह्मसम्प्रदायकी उपशाखा है-
सम्प्रदाय । प्रधान चार सम्प्रदायोंके आचार्य क्रमशः

---

१ ऋग्वेद १ । ३५ । २ ... २ ऋग्वेद २ ।

मध्व, वल्लभ और निम्बार्क। रामानन्दने रामानन्दी चलाया और चैतन्य महाप्रभुसे गौड़ीय सम्प्रदाय

हिंदू निर्गुण-निराकार ब्रह्मको ही परम सत्ता समझते उपासनाके लिये सूर्य, गणपति, शक्ति, शिव, विष्णु- ना मायिक रूप मानकर स्वीकार करते हैं, वे 'स्मार्त ़लाते हैं।

१ योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्' दे मन्त्रोंसे प्रतिपादित योगविद्याके अभ्यासी साधक और गी कहे जाते हैं। यह योगमार्ग कर्म-उपासना- मान ही आदृत रहा है। इससे भी पुनर्जन्मका ऱनेवाली कैवल्यदशाकी उपलब्धि होती है। नाथ- आदि योगमार्गके उपभेद हैं। नेति, धौति, वस्ति, पालभाति, त्राटक, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि—ये योगशास्त्रके पारिभाषिक और विशेष-विशेष क्रियाओंके बोधक हैं। प्रायः ू 'ध्यान' शब्दका अपनी धार्मिक भाषामें प्रयोग ।

ृणापथमें वैष्णवोंके भागवत-सम्प्रदायकी तीन हो गयीं—वारकरी सम्प्रदाय, रामदासी सम्प्रदाय त्त-सम्प्रदाय। भगवान् दत्तात्रेयसे दत्त-सम्प्रदाय हुआ और समर्थ स्वामी रामदासजीसे रामदासी ।

ीर निर्गुण-निराकारके उपासक थे। इनको माननेवाले थी हिंदू कहलाते हैं। ऐसे ही अन्य अनेक पन्थ ाकपन्थ, दादूपन्थ, लालदासी, सत्यनामी, बाबालाली, , शिवनारायणी, गरीबदासी, रामसनेही, अघोर- जिनमें मूर्तिपूजा नहीं होती, किंतु गुरुपूजाका विशेष ।

णवोंके कुछ अन्य उपसम्प्रदाय हैं—जैसे कि भी, हरिदासी, स्वामिनारायणी आदि।

ामत वा राधास्वामी पन्थ भी हिंदुओंमें प्रसिद्ध है। आगरेके राधास्वामी दयालुजी इसके प्रवर्तक थे। 'सुरत शब्दयोग' की बड़ी सरल युक्ति प्रकट कर द इस योगका अभ्यास सरल हो गया।

ब्रह्मविद्या-सभा अथवा थियॉसॉफिकल स अनुगामी बहुत-से हिंदू हैं। इस सभाके सिद्धान्तोंमें ज वाद, कर्मवाद, अवतारवाद, योगसाधना, गुरूपासना, जप, तपको स्थान मिला है। एनी बेसेंट आदि कई संस्कृतिके दृष्टिकोणसे हिंदू थे।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि—

(अ) कर्मफलमें विश्वास।

(आ) पुनर्जन्ममें श्रद्धा और

(इ) मुक्तिमें आस्था।

—ये तीन बातें हिंदूधर्मके व्यापक रूपके लक्षण जा सकती हैं; किंतु शौचाचार, वेष-भूषाका भी क नहीं है। शिखा-सूत्र, मठ-मन्दिर, सभा-समिि उपवास, पर्व-उत्सव, दान-दक्षिणा, भजन-पूजन, कथ होम-यज्ञ, जप-तप, ध्यान-धारणा, सन्ध्या-स्वाध्याय हैं, जिन्हें प्रायः प्रत्येक हिंदू अपने-अपने सम्प्रदायवे करता है। ये सब साधनकोटिकी बातें हैं और इन परस्पर वैमनस्य कदापि नहीं करना चाहिये। छुटकारा पाकर चिरन्तन, शाश्वत, अविनाशी, परम लाभ ही जब हिंदूमात्रका ध्येय है, तब साधनामें मार्गमें बाधक क्यों हो? परस्पर स्नेहभावमें रहकर अ पन्थ या सम्प्रदायके अनुसार सभी हिंदू उन्नतिवे अग्रसर हो सकते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रहको सभीने अच्छा बताया है। प्रत्येक हि विचारमें (पुनर्जन्म और मुक्तिके सम्बन्धमें) वहाँ गायके प्रति श्रद्धाकी दृष्टिसे आचारमें भी स कदाचित् ही कोई हिंदू ऐसा हो, जो गोमाताको पू न देखता हो।

इस सिन्धुस्थान आर्यावर्तकी प्राचीन संस्कृ सभ्यताको पितृ-पुत्र-परम्परासे तथा गुरु-शिष्य- बनाये रखनेवाले सभी हिंदू परस्पर भ्रातृभावापन्न हैं

हिंदुओंकी निर्वैरता

हिंदू अनुकूल आचरण करनेवाले तथा सबके प्रति दयालु होते हैं। उनका संसारमें किसीसे वैर

भारतीय संस्कृतिके मूलतत्त्व

(लेखक—श्रीदादा धर्माधिकारी)

भारतीय संस्कृति' शब्द-प्रयोग कुछ असंगत-सा जान है। क्या कोई भारतीय प्रकाश, भारतीय अँधेरा, य सूर्य और भारतीय चन्द्रमा भी कहेगा? एक दृष्टिसे तो न्द्र, प्रकाश और अँधेरेको किसी देशका कहना अज्ञानका माना जायगा; परंतु एक विशिष्ट अर्थमें हम भारतीय, भारतीय चन्द्रमा, भारतीय गणित, भारतीय विज्ञान, शक्कर और भारतीय नमक कहते हैं। सूर्य, चन्द्र, गणित, शक्कर, नमक—इन सब वस्तुओंके सामान्य संसारभरमें एक ही हैं; लेकिन भारतकी विशिष्ट ामें उनके रूपमें अन्तर दिखायी देता है। इसलिये रतका आकाश, भारतका चन्द्रमा इत्यादि शब्द-प्रयोग ।

संस्कृति' भी एक अखिल-जागतिक भाव और सार्व-त्त्व है। उसके लक्षण अखिल-जागतिक हैं। उसके मूल-ी समस्त संसारके सभी देशोंमें समान हैं। यदि ऐसा ा तो संसारमें सांस्कृतिक भूमिकापरसे न विग्रह होते धयाँ होतीं, न विवाद होते न संवाद होते, न युद्ध ा शान्तिकी चर्चा ही होती। जब दो राष्ट्रोंमें या दो ं युद्ध होता है, तब उनमेंसे हर एक दूसरेपर अन्याय ष्टताका आरोप लगाता है। अन्याय और दुष्टताकी—दोनों परिभाषा एक न होती, तो यह पारस्परिक अभियोग न होता। दोनोंकी भूमिकामें यह मूलभूत एकता है। क मनुष्य दूसरे मनुष्यसे कहता है कि मेरी 'संस्कृति' 'रहन-सहन' तुझसे श्रेष्ठ है, तब दोनोंकी 'संस्कृति'-भूत कल्पना एक ही होती है। संस्कृतिके लक्षण या याँ अगर समान न हों, तो तुलना ही सम्भव न अगर नॉर्मल 'तापमान' और बुखारकी हमारी ा एक न हो तो हमारा 'थर्मॉमीटर' भी एक नहीं और अगर 'थर्मामीटर' एक न होगा, तो किसे बुखार और किसे अधिक—इसका भी निर्णय कोई नहीं कर । हमारी 'संस्कृति', 'सभ्यता' और 'उन्नति' की ी व्याख्या एक ही है। इसीलिये हम संसारके कुछ कुछ राष्ट्रों और कुछ मानवसमूहोंको अधिक सभ्य, त और अधिक प्रगतिशील कहते हैं। संस्कृतिकी परिभाषा और लक्षणोंमें एकता है, इसीलिये वह

'संस्कृति' है, इसीलिये वह मनुष्योंको 'सभ्य' बना र सभ्यता और असभ्यताका लक्षण क्या है? हम कहते हैं, जिसमें सहूर है, तमीज है, शिष्टता और शि शिष्टताका अर्थ है—दूसरोंकी सुविधाका ध्यान; अर्थ है दूसरोंके साथ व्यवहारमें उन्हें असुविधा या में न डालनेकी वृत्ति। एक वाक्यमें सभ्यता, शिष्टता हमें दूसरोंके साथ रहनेकी सिफत, दूसरे जीनेमें आनन्द अनुभव करनेकी कला सिखाती 'संस्कृति'का आदर्श है। इसीलिये उसके मूलभ और परिभाषा एक हैं।

यही आर्यता है। आर्य वह है, जो सुसं संभावित है, शिष्ट है। अनार्य वह है, जो अनाड़ी है है, असभ्य और अशिष्ट है। प्राकृत मानव औ मानवमें अन्तर है। जो केवल प्राकृत प्रेरणाओंका उसका शरीर मनुष्यका होते हुए भी वास्तवमें एक मनुष्याकार प्राणी है। अगर पशु नहीं तो पशु उसमें प्रकृतिको मोड़नेकी या अपने अनुकूल आविष्कार करनेकी सामर्थ्य नहीं होती। प्राकृत जी जीवन या सभ्य जीवन नहीं है। 'आर्य' की प 'तिष्ठति प्राकृताचारे' तो कहा है; परंतु साथ-साथ ' चरन् कार्यम्' और 'अकर्तव्यमनाचरन्' भी क विकार और वासना भी तो प्राकृतिक हैं। जो वि वासनाका अनुसरण करता है, वह भी प्राकृत आ करता ही है। फिर उससे अकर्तव्यके अनाचरणक कैसे की जा सकती है। स्पष्ट है कि यहाँ 'प्राकृताचार कुछ और ही है। कर्तव्य करना और अकर्तव्य न जिसके लिये प्राकृताचार है, जिसकी प्रकृति बन सहज प्रवृत्ति हो गयी है, वह आर्य है। उसमें औपचारिकता, बाह्य प्रदर्शन नहीं है; उसके स्वाभाविक प्रेरणा ही सद्भावसम्पन्न या सद्व्यवहार गयी है। 'बालिशता' और 'बालभाव'में, 'चाइल्डिश 'चाइल्डलाइक सिंप्लिसिटी'में, छोकरेपन और निष्पापतामें, बहुत बड़ा और मूलगामी भेद है। उ प्राकृत जीवन और अकृत्रिम या निर्व्याज जीवनमें ब भेद है। सत्प्रवृत्ति और असत् प्रवृत्ति—दोनों प्राकृ

का निर्विशेष रूपसे अनुसरण करता है, वह 'प्राकृत' असत् प्रवृत्तियोंका निराकरण और सत् प्रवृत्तियों- षण करनेमें यत्नशील है, वह आर्य है, वही सुसंस्कृत भ्य जीवनका साधक है। 'कर्तव्यमाचरन् कार्यम्', मनाचरन्' उसीके लिये लागू है।

त्व यह कि किसी भी विवाद या संवादकी यह शर्त है कि दोनों पक्षोंके पदार्थलक्षण एक हों। ा कि 'संस्कृति' शब्दका लक्षण संसारभरमें एक ही की अभिव्यक्ति और आविष्करणकी पद्धतियों और भेद अवश्य होता है। आकारमें भेद हो सकता है, रूप एक ही होता है।

सार्वभौम और मानव्य व्यापक संस्कृतिकी अभि- ार आविष्करण भारतवर्षके साहित्य और जीवनमें ासे हुआ है। हमारे दर्शन और साहित्यमें दो शब्द उसके वाचक और बोधक हैं—'अद्वैत' न्वय'। इन दो शब्दोंमें संस्कृतिके साध्य और अन्तर्भाव है। सांस्कृतिक जीवनका ध्येय अद्वैतकी और उसका साधन समन्वयकी नीतिका नैष्ठिक है।

ल्य' या 'ऐक्य' की जगह 'अद्वैत' शब्दका प्रयोग ्चक' है। कैवल्य या ऐक्यमें भेदका मान या न्यता भी नहीं है। अद्वैतमें द्वैतका निराकरण है, दोंका नहीं। द्वैत द्वन्द्वका सूचक है। हम हिंदीमें ' कहते हैं, उससे बचना चाहते हैं। 'द्विधा' या की मानसिक अवस्थामें भी हम अस्वस्थ और होते हैं। द्वैतमें विषमता और दूसरेपनकी, ी, अनात्मीयताकी भावना है। भेदमें हमेशा या विरोध नहीं होता। अनात्मभाव नहीं होता। विषमता या विरोध हो, उसके परिहारका नाम है। अविरोध-सिद्धि अर्थात् विविधतामेंसे विषमताके नेराकरण ही समन्वयकी पद्धतिका सार है। समन्वयका झौता' नहीं है। समझौता एक बाह्य और यान्त्रिक । उसमें आदान-प्रदान है। हम कुछ इष्ट अंशका के कुछ अनिष्ट अंशका स्वीकार करते हैं। इसमें ोंका समाधान नहीं होता। एक अंशमें दोनोंको होता है और एक अंशमें दोनोंको असन्तोष।

संवाद नहीं है। इसमें समान 'अन्वय' नहीं है। स विसङ्गति और विप्रतिपत्तिका परिहार है। इसलिं समान सम्मति और समान सन्तोष है। इसीलिये सिद्धि समन्वयकी प्रक्रियासे होती है।

विषमताके निराकरणके बिना अद्वैतकी सिद्धि न होगी। अद्वैत एक मनोवृत्ति, चित्तकी एक अवस निष्ठा है; परंतु मनुष्यकी सारी कर्म-प्रणाली उसकी निष्ठा बनाने और उसे स्थिर रखनेके लिये है। इसे कहते हैं। अभ्यास यानी आदत डालनेकी चेष्टा, करनेका अविरत प्रयत्न। यही आचारधर्मका उद्दे हमारे सारे नीतिधर्म और आचारधर्मका हेतु द्वैतका नि विषमताका निवारण, भेदमेंसे अभेदकी ओर जानेक होना चाहिये। हमारी बुद्धिगत निष्ठा और हृदयगत हमारे व्यवहारमें व्यक्त होनी चाहिये। वृ कृति, दर्शन और वर्तन, विचार और आचारमें अभे सङ्गति होनी चाहिये। यही समत्वकी साधना है। साधन, उसकी कला 'योग' है। साध्य और साधनके सिद्धान्तके अनुसार 'समत्व' ही 'योग' है। जीवनके क्षेत्रमें, दैनिक व्यवहारकी हर एक क्रियामें अभ्यास ही 'समत्वयोग' है। अद्वैत केवल एक नहीं है, वह जीवनका एक विज्ञान भी है। दोनोंको निष्ठा बनती है। निष्ठामें बौद्धिक असंदिग्धता और प्रत्यय होता है। भारतीय संस्कृतिके इन दो श अद्वैत और समन्वयमें—समाज-जीवनके आद सामाजिक साधनाका सङ्केत है।

विप्रतिपत्ति, प्रतियोगिता, जय-पराजय प्राकृ लेकिन इनका निराकरण करना ही पुरुषार्थ है। चार हैं। उनको गिनाते हुए आरम्भमें धर्मको र है और अन्तमें मुक्तिको। बीचमें अर्थ और काम। धर्ममूलक और मुक्तिसाधक न हो, तो वह अनर्थ है। काम यदि धर्ममूलक और मुक्तिका साधक तो वह सारे जीवनका 'प्रणाश' करता है। अर्थ और अधिष्ठान धर्म हो और उसकी परिणति मोक्षमें आध्यात्मिक बलपर इन शब्दोंका अर्थ चाहे जो हो व्यावहारिक सत्ताके बलपर धर्मका अर्थ है विषमताका हितोंकी विप्रतिपत्तिका निवारण, समत्वकी सिद्धि

र एक व्यक्ति स्वाभाविकरूपसे स्वतन्त्र होता है। ते और संघर्षके अभावमें एक-दूसरेपर आक्रमण दूसरेके जीवनमें बाधा पहुँचानेके लिये कोई प्रयोजन र नहीं रह जाता। सबके समान हित और सबके खमें सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। समान श्रम ान प्रतिफलका सिद्धान्त आर्थिक क्षेत्रमें चरितार्थ है।

नके क्षेत्रमें भी काम जब धर्ममूलक होता है, तब उसमें ावनाके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। वह जब ा होता है, तब उसमें स्त्री और पुरुष एक-दूसरेकी ौर उपभोगके विषय नहीं रह जाते। स्त्रीके मोहसे ुक्त हो जाता है और पुरुषके आक्रमणके भयसे क हो जाती है। दोनों एक-दूसरेकी तरफसे सुरक्षित हैं। कामके क्षेत्रमें यह मुक्ति है।

र्थिक क्षेत्रमें धर्मका नाम अस्तेय और अपरिग्रह है, ाध्य आर्थिक 'संविभाग' है। कामके क्षेत्रमें धर्मका चर्य है। और उसका ध्येय स्त्री-पुरुषका वासना-ुरक्षित सहजीवन है।

ेत और समन्वयके व्यापक विनियोगके दृष्टान्त में जितने ऊँचे मिलते हैं, उतने शायद ही और कहीं ों। भूतदया सभी धर्मोंका मूल है, लेकिन जितना वृत्त-मांस जनसमुदाय इस देशमें है, उतना ौर कहीं नहीं है। पूछा यह जायगा कि मांस खाने- संस्कृतिका क्या सम्बन्ध है? जवाब थोड़ेमें इस —

ष्य जबतक मृगयाजीवी था, तबतक वह प्राकृतिक माना जाता था। वह आखेटके द्वारा अपने खाद्यका और उपादान करता था, लेकिन उत्पादन और नहीं कर सकता था। जब वह शिकारीसे हरवाहा रवाहा बना, तब उसकी सांस्कृतिक उन्नतिका ुआ।

ारसे खेती अगर सांस्कृतिक जीवनमें अगला कदम ासाहारसे अन्नाहार भी अगला कदम समझा जाना शटलैंड और आइसलैंडमें शटलैंडर्स और एस्किमो खेती कर पाते हैं और न अन्य उत्पादन। मांस चमड़ा पहनते हैं। हम कहते हैं, बेचारोंको

जैसे-जैसे अन्य प्राणियोंके साथ आत्मीयताका अनु है, वैसे-वैसे उसके जीवनका विकास होता जाता है अहंता उतनी व्यापक हो जाती है। अहंता जब हमा बाहर निकलकर अपना क्षेत्र बढ़ाने लगती है, तब व न रहकर आत्मीयतामें परिणत हो जाती है। क्षेत्रमें अद्वैत-भावनाके प्रयोगका नाम ही मानवेत धारियोंके साथ आत्मीयता है।

मानवीय संस्कृतिके भारतीय संस्करणका स्वरूपवर्णन यहाँ किया है। दावा यह किया जा भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है, भौतिक न आध्यात्मिकताका क्या लक्षण है? यह बतल अधिकार नहीं है। इतना अवश्य कह देना हूँ कि अध्यात्म परोक्षज्ञानका विषय नहीं है अनुभूतिका विषय है। वह केवल एक बौद्धिक मनोवृत्ति नहीं है—एक जीवन-निष्ठा है, जो हमार और व्यवहारमें प्रकट होती है। आज हमारे आध्यात्मिकताका कहीं पता भी नहीं। आध्यात्मि भी शालग्राम-शिलाकी अपेक्षा हीरे, मूँगे और महत्त्व अधिक है। यहाँ किसीको उस स्पर्शमणि नहीं है, जो आसुरी मनोवृत्तियोंको मङ्गलमय बना यहाँ भी उसी पारसपत्थरकी खोज है, जो लोहे बनाता है। आध्यात्मिक भारतका जीवन भी ' पात्रेण' अपिहित है। कारण यह है कि हमने केवल एक वस्तुगत अवस्था माना है। एक र स्थिति समझा है। तरङ्ग समुद्रका अंश है—यह सत्य है; लेकिन तरङ्गको उसकी कोई प्रतीति न दूसरे तरङ्गोंके साथ आत्मीयता अनुभव करनेव कोई आकाङ्क्षा नहीं है। भेदमेंसे अभेदकी तरप होनेकी कोई प्रेरणा उसमें नहीं है। अद्वैतदर्शन इस बाह्य वस्तुस्थिति नहीं है। आज हमारे सामाजिक जीव तत्त्वज्ञानके आदर्शमें जो विप्रतिपत्ति पैदा हो गयी है कारण यह है कि हमने पारमार्थिक सत्ताका व्यावहारि साथ कोई अनुबन्ध नहीं माना। इन दोनों सत्ता समानान्तर प्रवाहोंकी तरह बिल्कुल भिन्न माना। यह हुआ कि भारतवर्षके अध्यात्मवादी व्यक्तियों व्यक्तित्वका विकास हुआ। एक ही विग्रहमें दो विरोधी व्यक्ति रहने लगे। एकका मुँह संसारोन्

। दूसरेके व्यवहारका कोई मेल नहीं; कोई संगति
जो व्यक्तिके विषयमें हुआ, वही सामाजिक जीवनमें
ा । हमारे दिव्य आदर्शोंका हमारे जीवनकी सरणीसे,
ामाजिक व्यवहारकी परिपाटीसे कोई अनुबन्ध नहीं
। है । तत्त्वज्ञान द्युलोकमें रहता है और व्यवहार

मृत्युलोकके भी अनुरूप नहीं है । मुक्त तो हम
पाये, दूसरी कोटि 'पशु'की तरफ वेगके साथ बढ़
इसलिये भारतीय संस्कृतिके हार्दकी तरफ संकेत
आवश्यक समझा । इसी नम्र आकाङ्क्षासे यह
किया गया है । इसके गुण-दोष सभी श्रीकृष्णाप

वैदिक राज्यशासन

[हिंदुओंकी प्राचीन राज्यशासन-व्यवस्था]

(लेखक—पं० श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर, वेदाचार्य, साहित्यवाचस्पति, गीतालङ्कार)

१. श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्म

ू सदासे अपना धर्म श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त मानते
और अपनी समाजव्यवस्था तथा शासनसंस्था भी
कार श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त समझते हैं । इसलिये
ी प्राचीन राज्यशासन-व्यवस्थाका अर्थ श्रुतिके
तपादित राज्यशासन-व्यवस्था ही है । इसी व्यवस्थाको
में बताना है । श्रुतिका अर्थ वेद और वेदमें संहिता,
आरण्यक तथा उपनिषद्का समावेश परम्पराको
ोंकी दृष्टिसे होता है ।

रेय ब्राह्मण ऋग्वेदका ब्राह्मण है और ऐतरेय
ी रचनासे वह प्रसिद्धिमें आया है । इसमें वैदिक-
ी शासनविषयक एक घोषणा है, जो यहाँ देखने
—

२. ऋषियोंकी घोषणा

**स्त । साम्राज्यं, भौज्यं, स्वाराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठ्यं
ाराज्यं, आधिपत्यमयं, समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौमः
ः आन्ताद् आ परार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया
इति ॥** (ऐ० ब्राह्मण)

में ऋषियोंकी तपस्यासे उस समय जितने राज्य-
ाचलित हुए थे, उनकी गणना है । साम्राज्य,
स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्य, महाराज्य,
मय, समन्तपर्यायी—इन आठ प्रकारके राज्योंका
इस वचनमें है । इनके अतिरिक्त जनराज्य,
ज्य), गणराज्य, राज्य—इनका भी वर्णन वेदमें है ।
केवल थोड़ा-सा उल्लेख ही आता है; पर किस
राज्य भारतवर्षके किस भागमें अथवा भारतवर्षके

ग्रन्थोंमें है अर्थात् यह एक इतिहासकी घटना है
कविकल्पना नहीं है ।

इस वचनमें जिन आठ राज्योंका उल्लेख है,
स्वरूप हम आगे देखेंगे; परंतु इस वचनमें जो ऋ
घोषणा है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । अतएव सब
उस घोषणापर विचार करना आवश्यक है । वह घोषणा य

पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराट् ।

**'समुद्रपर्यन्त जितनी सब पृथ्वी है, उस
भूभागका एक ही आर्य राजा हो ।'** सम्पूर्ण पृथ्वी
वैदिक शासनसे शासित हो । सम्पूर्ण पृथ्वीपर एक ह
राज्य हो और सब पृथ्वीपर एक ही आर्य-परिवार—**'वसु
कुटुम्बकम्'**—हो । **'कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्'** इस व
वचनका यही स्पष्ट अर्थ है । यह था ऋषियोंका
ऋषि इस महान् ध्येयको सत्य-सत्य सृष्टिमें लाने
यत्न करते थे । पर यह ध्येय इस समयतक सत्य
उतरा नहीं है; इतना ही नहीं, प्रत्युत आर्योंका—हिंदुओं
भारतवर्षियोंका संकोच ही होता चला आया है ।

३. हिंदुओंका संकोच

संक्षेपसे ही देखिये—कैलास पर्वत पौराणिक
हमारा था, वह आज नहीं रहा । गान्धार देश भार
साम्राज्यमें था, वह आज नहीं है । इस समय तो सिं
भी भारतराज्यमें नहीं रही ! इस वर्ष और भी
संकोच हो गया है । गत पाँच सहस्र वर्षोंसे लगातार
संकोच हो रहा है । हम अपनी समाज-व्यवस्थाकी
भी प्रशंसा करें, पर आर्योंके राज्य-क्षेत्रका संकोच ह
है—इसमें संदेह नहीं है ।

र्य सम्राट् बनानेकी और सब भूमि वैदिक शासनसे करनेकी थी। वे स्वर्गसे हमारे संकोचको होंगे और अपने अन्तःकरणमें तड़पते ही होंगे। चाहिये था और क्या बन रहा है !

समय यूरोपमें 'राष्ट्रसङ्घ' बना है। पर उनका था स्वार्थसे भरपूर है। उनके विषयमें यहाँ अधिक ना ही अच्छा है। पर वह ऋषियोंका ध्येय कदापि तपस्वी ऋषियोंका ध्येय तो संयममय ही हो सकता हम देखेंगे कि पूर्वोक्त वचनमें जो इतने राज्य- हे गये हैं, उनका ध्येय और स्वरूप क्या है—

साम्राज्य—सबसे प्रथम साम्राज्य है, पर यह आज- म्राज्य-जैसा राक्षसी साम्राज्य नहीं। उदाहरण- हम यहाँ दो ही साम्राज्योंका उल्लेख करते हैं। रामचन्द्रजी महाराजने रावणके साम्राज्यका नाश रंतु रावणके राज्यको अपने राज्यमें नहीं मिलाया। ज्यको उसके भाई विभीषणके अधीन करके उसे धान' (Aryan constitution) देकर तथा इस ानके अनुसार अपना राज्यशासन चलानेकी आज्ञा स्वयं वापस आ गये और अयोध्यामें अपना राज्य । शत्रुको परास्त करना और उसे आर्य-विधान चीन कालमें इतना ही साम्राज्यका अर्थ था। श्रीरामचन्द्रने लंकाकी लूट नहीं की थी। वे तो लंका ये भी नहीं। आर्य-विधान देकर विभीषणको पूर्ण परंतु अपना आज्ञाङ्कित, आर्य-विधानसे बाहर न य आज्ञाङ्कित करके रक्खा। किसीके स्वातन्त्र्यका करनेकी नीति उस समय नहीं थी।

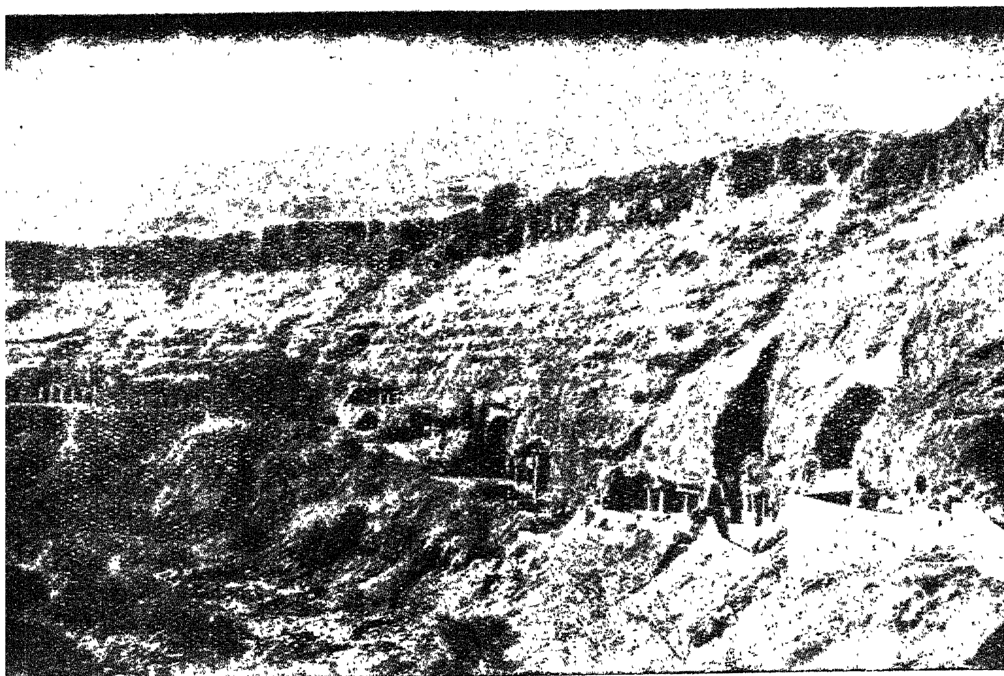
गका साम्राज्य उस समय बुरे-से-बुरा समझा जाता वणने राजाओंको परास्त किया था, लूटा भी की स्त्रियोंका हरण भी किया था; परंतु जो स्त्री अनुरक्त होती थी, उसीको वह अपने अन्तःपुरमें ा। इसीलिये वाल्मीकि मुनिने लिखा है कि जो अनुरक्त न हुई हो, ऐसी एक भी स्त्री उसके में सती सीतादेवीको छोड़कर दूसरी नहीं थी। आर्योंकी -मुनियोंकी दृष्टिमें रावण बुरे-से-बुरा था; पर उसने के राज्योंका हरण नहीं किया और किसी स्त्रीपर भी नहीं किया। इस रावणमें दूसरे राज्योंको लूटना, अपहरण करना और उनको वश करके अन्तःपुरमें

इसके पश्चात् हम देखते हैं कि मुसल्मानोंने साम्रा किये, अंग्रेजोंने किये, पोर्तुगीज आये। इन सबोंने हरण किया, स्त्रियोंपर अत्याचार किये, लूट की, प बुरी तरहसे दबाकर रक्खा। ये सब बातें इतिहासमें प्र इनको यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

आजका 'साम्राज्यवाद' और प्राचीन ऋषि- 'साम्राज्यकी कल्पना' इसमें आकाश-पातालका अ हम यहाँ जिस 'साम्राज्य' शब्दका प्रयोग कर र ऋषियोंका शब्द है, 'आधुनिक साम्राज्यवाद' का न

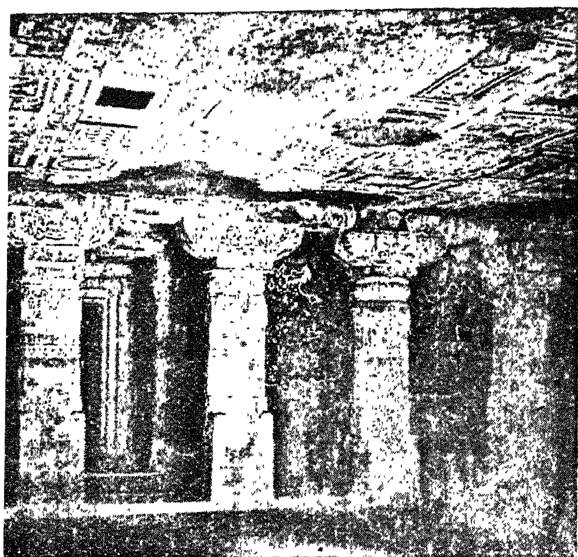
ऋषियोंके साम्राज्यमें एक समर्थ राजाका दू राजाओंको परास्त करना, उनको अपना माण्डलिक और उनको 'आर्य-विधान' देकर इस विधानके अपना राज्य चलानेका आदेश देना—इतना ही ह मुसल्मानों और ईसाइयोंके आधुनिक साम्राज्यवादमें व था, वह भारतवर्षके गत इतिहाससे प्रसिद्ध है। ऋषियोंका सुसंयत साम्राज्य था। इसमें प किसी तरह अत्याचार नहीं होते थे। परंतु प उन्नति करनेके लिये उनको अधिक उत्तम शास दिया जाता था।

२. भौज्य—यह दूसरा राज्य-शासन है। इसके मुख्यतः होते हैं। 'भु-ज'—पृथ्वीकी नैसर्गिक म परिवेष्टित राज्य। जिस तरह भारतवर्ष—यह उत्तरमें और दक्षिणमें समुद्रसे वेष्टित है। अतः यह भौ चूँकि निसर्गकी इस देशके लिये मर्यादा है, अतः यह इतने ही भू-विभागपर राज्य करे और बाहरके आक्रमण न करे। इंग्लिस्तान समुद्रसे मर्यादित है, अंग्रेज उतने ही टापूमें रहे। इस तरह कई ऋषियोंने नियम निर्धारित किये थे। भौज्यका दूसरा अर्थ ऋषिमण्डलसे निर्धारित हुआ था, वह था 'भुज' भ्यवहारयोः (To protect and govern)— भोजनप्रबन्ध करना और उनको सुरक्षित रखकर उन करना। इस अर्थमें प्रजाको खानेके लिये पर्या ओढ़नेके लिये पर्याप्त वस्त्र और रहनेके लिये सुखद देने तथा उनकी अन्तर्बाह्य सुरक्षितता सम्पन्न करनेका भ शासनपर आता है। राजा जितनी प्रजाका यह भार उ उतनी ही प्रजापर वह राज्य कर सकता है। इस अ

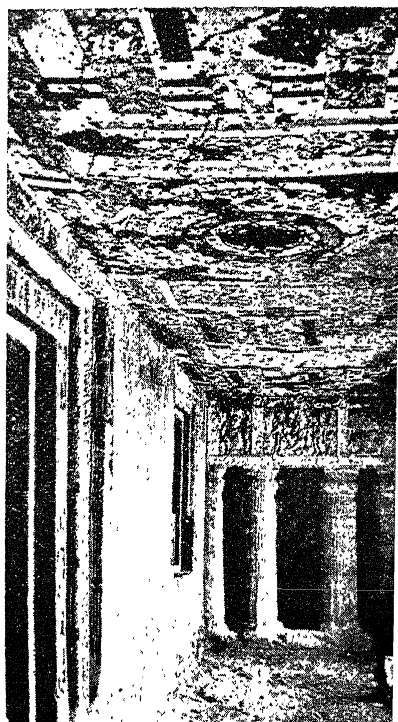


अजन्ता-गुफाओंका विहङ्गम दृश्य [पृ

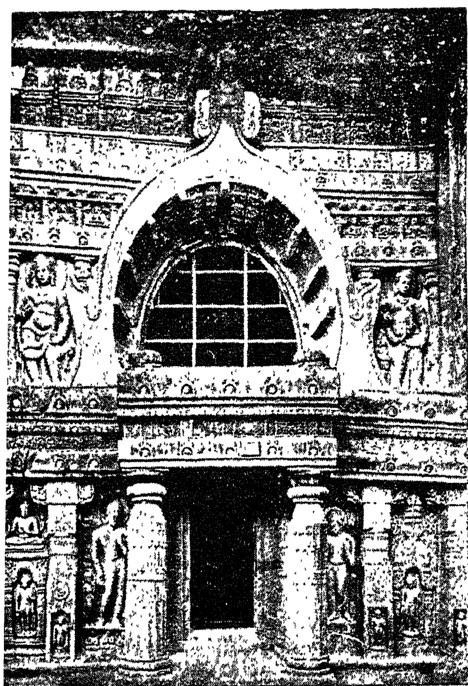
अजन्ताकी दीवारके दो प्रसङ्गदृश्य [पृ

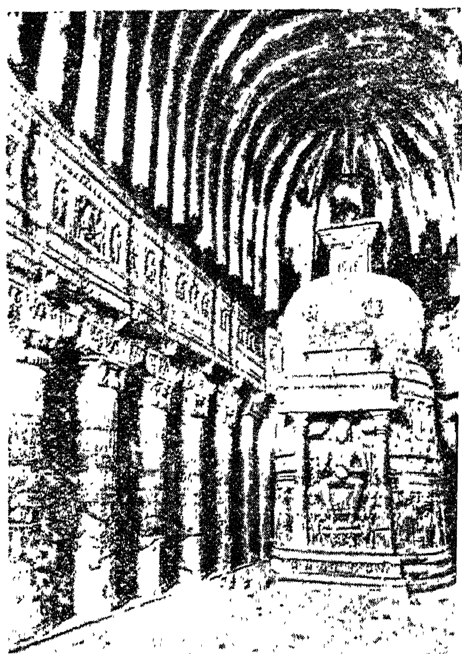


न्ताका अभ्यन्तर--भीतरी छतकी चित्रकारी और
सुन्दर उत्कीर्ण स्तम्भ



अजन्ता—बरामदा और छतका भीतर





सुबोधताके लिये हम इसका विचार अन्तमें करेंगे।

'वैराज्य'का विचार करते हैं—

वैराज्य—(विगतराजकं वैराज्यं) जिसमें कोई राजा [illegible], सब जनता ही मिलकर अपना शासन चलाती [illegible] वैदिक राज्यपद्धतिके अवशेष अब भी भारतवर्षमें [illegible]राष्ट्रमें इसका नाम 'दैव' होता है। वह जाति [illegible] अपनी ही जातिपर अपना अधिकार चलाती है। [illegible] राजा, शासक, नियामक, अध्यक्ष अथवा प्रधान [illegible]। सम्पूर्ण जाति एक स्थानपर जमा होती है और [illegible]करती है, उस निर्णयका पालन वे लोग करते हैं। [illegible]में ऐसी वन्य जातियाँ भी हैं, कि जो इस 'वैराज्य'के [illegible]को आज भी बताती हैं। इसमें दोष यह है कि इस [illegible] शासन बहुत बड़े भू-भागपर नहीं हो सकता। छोटे-[illegible]थानोंपर थोड़ी संख्यामें चलनेवाला यह शासन है। [illegible]दमें कहा है—

[illegible]राड् वा इदमग्र आसीत्।

(८ । १० । १)

(अग्रे) प्रारम्भमें (वि-राज्) राजा अथवा शासक [illegible]।' इसीका नाम 'वैराज्य' है। सब जनता, अपने [illegible]धियोंद्वारा नहीं, अपितु स्वयं जो अपना प्रबन्ध [illegible] है, वह 'वैराज्य' कहलाता है। यह (अग्रे आसीत्) [illegible]समाजकी प्रारम्भिक अवस्थामें ही होना स्वाभाविक [illegible]र वैसा ही था।

[illegible]सके पश्चात् 'पारमेष्ठ्य राज्य'का नाम है। इसका [illegible] भी हम लेखके अन्तमें करेंगे।

४. महाराज्य—अनेक छोटे-छोटे राज्य स्वकीय इच्छासे [illegible]ोते हैं और एक विधानके अंदर अपने-आपको रखते [illegible] 'महाराज्य' कहलाता है। इसमें किसीपर जबर्दस्ती [illegible]घात नहीं, परंतु इसमें सबका लाभ ही है। जगत्की [illegible] में छोटे-छोटे राज्य रह नहीं सकते, इसलिये उनका [illegible]र्तन महाराज्यमें होना युक्त ही है; इसी तरह परिवर्तन होते समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका एक विशाल महाराज्य हो [illegible] है और यदि इसमें स्वार्थ न बढ़ा, तो सबको अत्यन्त [illegible] भी मिल सकता है।

५. आधिपत्यमय—पति और अधिपति—ये राज्यके [illegible]कारियोंके नाम हैं। इनकी सम्मतिसे जो राज्य चलता है, [illegible] आधिपत्यमय राज्यशासन है। अंग्रेजीमें इसका नाम [illegible]रेक्रसी' है। और स्वार्थ बढ़ जानेके कारण इसका भी आज बहुत ही घृणित अर्थ हो गया है। पाठक उस घृ[illegible] भावको इसमें न देखें और इतना ही समझें कि इसमें रा[illegible]धिकारियोंके अधीन ही शासन-तन्त्र रहता है।

६. समन्तपर्यायी—(सामन्त-पर्यायी राज्य) जो [illegible] शासन सामन्तोंके अधीन रहता है, उसका यह नाम[illegible] सामन्त माण्डलिक राजाओंका नाम है। उनके अधीन[illegible] राज्य-शासन रहता है। एक आर्य-विधानके अनुसा[illegible] सामन्त राज्य करेंगे, उनका शासन इतना निन्दनीय न[illegible] सकता। भरत और भगवान् रामचन्द्रके अधीन भी [illegible] सामन्त थे। पर उनके होते हुए भी वह '**रामराज**[illegible]' कहलाया और इस समयतक उसकी प्रशंसा गायी ज[illegible] है। पर आज तो यह सामन्त-मण्डलका राज्य भी [illegible] अर्थसे दूषित हो गया है।

७. पारमेष्ठ्य राज्य—परमेष्ठी नाम प्रजापतिक[illegible] परमेश्वरका यह नाम है। सबपर परमेश्वरका राज्य-शा[illegible] यह जानकर इसके अनुकूल अपना राज्य-शासन चला[illegible] सामन्त-राज्य हो अथवा अधिपति-मण्डलका राज्य हो[illegible] वे पारमेष्ठ्य राज्यको सर्वोपरि मानकर अपना राज्य च[illegible] तो वह निर्दोष हो सकता है।

वैदिक समयमें ऐसा ही होता था। सब आ[illegible] वेदानुशासनके नीचे रहकर पारमेष्ठ्य राज्यको सर्वोपरि [illegible] अपना कर्तव्य निष्काम भावसे करते थे। इसलिये [illegible] स्वार्थके कारण जिन दोषोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावन[illegible] दोष उस शासनमें नहीं होते थे।

४. स्वाराज्य-शासन

८. स्वाराज्य—(स्वराज्य) स्वराज्य-शासन भी [illegible] समयका एक उत्तम राज्य-शासन है। आज भी इसी स्[illegible] प्रयोग हम करते हैं। परंतु यह '**स्वाराज्य**' है और आ[illegible] 'स्व-राज्य' है। इस स्वरभेदको पाठक स्मरण रक्खें [illegible] स्वरभेदके कारण जो विधान-भेद और अनुशासन-भे[illegible] है, वह बड़ा भारी है। यहाँ उसका परिपूर्ण विवरण[illegible] लिये स्थान नहीं है, परंतु संक्षेपसे '**स्वाराज्य**'में [illegible] **शुद्धिपर अधिक ध्यान दिया जाता है और 'स्व-राज्य-शासनके अधिकार अपने अधीन रखनेके लि[illegible] यत्न होता है।**

५. आत्मशुद्धि या अधिकारमद

पाठक विचार करके देखेंगे तो उनको पता ल[illegible]

राज्य-शासनमें आकाश-पातालका अन्तर हो जाता
-राज्य'में 'स्व' की शुद्धता, पवित्रता और निर्दोषता
थवा करनेका यत्न होता है और ऐसे संयमी पुरुष
धिकारपर रक्खे जाते हैं; इसलिये सम्पूर्ण राज्य-
रेशुद्ध रहता है। रिश्वतखोरी, दम्भ, असत्य, लोभ,
लेप्सा आदि उक्त 'स्वा-राज्य'-शासनतन्त्रमें नहीं

॒ जो 'स्व-राज्य' है, उसमें 'स्व'की शुद्धिकी उपेक्षा
य' तन्त्रकी शक्तिसे स्वकीयोंके सुखका संवर्धन
यत्न होता है। इसलिये गुटबंदी उत्पन्न होती है।
दूसरे गुटको दबानेका प्रयत्न करता है और सर्वत्र
वायुमण्डल बढ़ता जाता है। आजकल हम सर्वत्र
रहे हैं। जनतन्त्र राज्य-शासन करनेकी घोषणाएँ
रहती हैं, पर अंदर-अंदरसे अपने गुटोंको
करना और दूसरोंको दबाना ही सब देशोंमें चल
अपना भारत देश भी आज इसी मार्गपर चल रहा
आदर्श इस समय 'आर्य-आदर्श' नहीं है, यूरोप-
के विधानको ही इसने अपना आदर्श मान रक्खा है।
ानका इसको पता ही नहीं और जो बल महात्मा
'आत्मशुद्धि' पर देते थे और जिस प्रकार अधिकार-
र रहते थे, वह भाव अब दूर होता जा रहा है। इससे
' और 'स्व-राज्य'का भाव ठीक तरहसे पाठकोंके
ा जायगा। 'स्वा-राज्य' शासन वह है, जिसमें
वित्र धर्मनिष्ठ निष्पक्ष निष्काम पुरुषोंके अधीन
कार रहते हैं; और 'स्व-राज्य' शासन वह है,
ने लोगोंके अधीन राज्य-शासन रहता है और
परिशुद्धतापर कोई सच्चा बल नहीं दिया जाता।

ज्यका यह भाव पाठक ध्यानमें धारण करें 'स्वराज्यमेव
'—स्वराज्य ही स्वाराज्य है; परंतु इसमें आत्मशुद्धिपर
्य रहता है।

नमें स्वराज्यकी वैदिक कल्पना इस विवरणसे
ध्यानमें आ सकती है। उन दिनों यम-नियमोंका
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदिकी
म्भसे ही, विद्यार्थी-दशामें ही दी जाती थी। गुरुगृहमें
ोग यम-नियमसम्पन्न हो जाते थे और वे

यम-नियमकी शिक्षा है, न आत्मसंयमकी ओ
है और न निष्काम सेवाकी ही कल्पना है। सर्वत्र
भोगलालसा, इन्द्रियचरितार्थता, अर्थ-पैशाचिक
घोरतम स्वार्थपरताका प्रसार हो रहा है। इसीलिये
समयमें 'स्व' की पूर्णतापर बल था और आ
की शक्तिपर बल है। इसी कारण प्राचीन
'रामराज्य' बन सका; इस समय उसमेंसे
चला गया और केवल 'राज्य' ही हाथमें आ

अस्तु! अधिक विवरणकी आवश्यकता न
स्वाराज्य और स्वराज्य दोनों स्वराज्य ही हैं। दोनों
ही हैं, पर एकमें व्यक्ति-सुधारपर बल दिया जात
दूसरेमें शासनशक्ति हाथमें रखनेपर बल दिया जाता

६. जानराज्य

वैदिक समयमें 'जान-राज्य' शब्द भी थ
'जान' अर्थात् जनताके सुधारपर बल है
दूसरा 'जनराज्य' है। इसमें राज्यव्यवस्थापर ब
भी वैसे ही शब्द हैं और वैसा ही गम्भीर भाव
हैं। बोलनेमें जिस पदके जिस स्वरपर जोर दिया
वही पद उस वाक्यमें मुख्य भाव बतानेवाला
स्वरशास्त्रका यह नियम जैसा वैदिक समयमें था
इस समय भी विद्वत्संमानित है। इसीलिये
में 'स्व' पर जोर है अथवा 'राज्य' पर जोर
देखना चाहिये। वैदिक समयमें जो स्वराज्य थ
'स्व' पर जोर था, और आत्मशुद्धिका विचार प्रब
शिक्षाका प्रारम्भ ही आत्मशुद्धिसे होता था। य
पालन करनेवालोंको ही सब विद्याएँ प्राप्त होत
आर्योंकी प्रणाली यही थी। असुरोंकी प्रणाली भ
थी, जिसका विस्तार रावणराज्यके रूपमें हमें मि
जिसको देखना हो, वह देखे।

७. स्वराज्यके अधिकारी

इस तरहसे वैदिक स्वराज्यकी यह परिशुद्ध
सदा वन्दनीय ही है। इसीलिये वैदिक समयके
भी स्वराज्यशासनमें यत्न करते रहनेकी अभिला
थे। अत्रिगोत्रके रातहव्य ऋषिका मन्त्र ही इस
देखिये—

मन्त्रके 'स्वराज्ये' पदके स्वर भी 'स्व-राज्ये' ऐसे
ादमें सर्वत्र स्वराज्यके 'स्व' पर ही बल दिया गया
त् जहाँ आत्मशुद्धिपर ही विशेष बल दिया जाता
यह स्वराज्य है। इस मन्त्रका मुख्य वाक्य

ष्टे 'बहु'-पाय्ये 'स्व'-राज्ये आ यतेमहि।

तृत और बहुतोंद्वारा जिसका पालन होता है, ऐसे
ासनमें हम जनताकी भलाईके लिये यत्न करते

तो इस मन्त्रभागका शब्दार्थ है। इसका
र्थ ध्यानमें लानेके लिये इस वाक्यके प्रत्येक
वचार करनेकी आवश्यकता है।

ष्ट—विस्तृत, व्यापक, सर्वतोगामी, संकुचित
समें नहीं है, अर्थात् जो राज्य-शासन जनताके
नुष्यको अर्थात् धर्मानुसार आचरण करनेवाले
यक्तिको सुख देनेका प्रयत्न करता है, अपना
अपनी जाति, अपने मतवाले आदिका पक्षपात
ीं है, प्रत्येक वस्तुमें समानतया ईश्वरभाव देखकर
ार होता है, उस असंकुचित व्यापक भावका नाम
है। वैदिक स्वराज्यमें पक्षान्धता, गुटबाजी आदि
यह भाव इससे स्पष्ट हो जाता है।

पाय्य—बहुतोंद्वारा बहुसम्मतिसे जिसका पालन होता
ासन यहाँ अभीष्ट है। एककी सम्मतिसे कितना भी
ासन हुआ, तो भी वह अनेक आत्मसंयमी पुरुषोंके
अधिक अच्छा नहीं हो सकता; इसलिये बहुतोंकी
पालन होनेवाला राज्य ही श्रेष्ठ होता है। स्वराज्यके
लिये ही यह विशेषण वेदमें लगाया है।

दो विशेषणोंसे वैदिक 'स्व-राज्यका अर्थ विशेष
ष्ट हो जाता है। **जहाँ संकुचितताका भाव नहीं है
ाँ बहुसम्मतिसे राज्यका संचालन होता है, वही**
है। जिसमें ऋषिलोग (आ यतेमहि) 'हम अखिल
हितार्थ प्रयत्न करेंगे', ऐसा भाव मनमें धारण
थे। इस मन्त्रभागमें 'हम प्रयत्न करेंगे' यह
। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यहाँके 'हम' कौन
न राष्ट्रकल्याणका प्रयत्न कर सकते हैं? कौन
ण करनेके सच्चे अधिकारी हैं? किनके प्रयत्नसे

८. राष्ट्रकल्याण कौन कर सकेंगे?

हे ईयचक्षसा! मित्र! सूरयः (एते) वयं आ यतेमहि।

'हे **व्यापक** दृष्टिवालो! हे मित्रत्वका
करनेवालो! आप दोनों और हम **सब विद्वान्**
उक्त स्वराज्यमें सबके कल्याणके लिये प्रयत्न करेंगे।

इस मन्त्रभागमें स्वराज्य-शासन चलानेके लि
योग्य हैं, यह दिखलाया है। (१) **व्यापक**
अर्थात् जिनमें संकुचित दृष्टि नहीं है, अपने पक्षवाले
अपनी जातिका ही हित करना और अपने पक्ष
मतवालोंको कुचलना—यह दुष्टभाव जिनमें नहीं
सबके हितकी व्यापक दृष्टि रखते हैं, उनका नाम **'ई**
है। इनको व्यापक दृष्टिवाले कहते हैं।
स्वराज्यशासन चलानेके अधिकारी हैं।

(२) दूसरे **'मित्र'**वत् व्यवहार करनेवाले
मित्र, जो सबका कल्याण करनेमें दत्तचित्त रहते
कभी किसीसे द्वेष नहीं करते, वे मित्रवत् व्यवहार
स्वराज्यशासन चलानेके अधिकारी हैं।

(३) तीसरे **'सूरयः'** अर्थात् ज्ञानी, सत्यज्ञानसे
होनेवाले विद्वान्, यथार्थ ज्ञान धारण करनेवाले—ये भी
शासन चलानेके अधिकारी हैं।

इसका फलितार्थ यह हुआ—

स्वराज्यके अधिकारी	**स्वराज्यके लिये**
१. व्यापक दृष्टिवाले	१. संकुचित दृष्टि
२. मित्रवत् व्यवहार करनेवाले	२. शत्रुता बढ़ाने
३. ज्ञानी	३. अज्ञानी

जो स्वराज्यके लिये योग्य हैं, वे ही स्वराज्यमें
सकते हैं। अर्थात् वैदिक स्वराज्यमें व्यापक
मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और ज्ञानियोंको ही अधिका
प्राप्त हो सकते हैं; परंतु जो संकुचित दृष्टिवाले
करनेवाले और अज्ञानी हैं, उनको वैदिक स्वराज्य
धिकार भी नहीं होगा।

९. सबको मताधिकार

आज हमारे नेता कह रहे हैं कि 'सभी प

ावश्यकता नहीं है, व्यापक दृष्टिकी कोई योग्यता नहीं, व्यवहार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ-विद्याकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। देखिये वैदिक और आजका स्वराज्य कैसा है—

ैदिक स्वराज्यके मताधिकारी	आजके स्वराज्यके मताधिकारी
यापक दृष्टिवाले	१. केवल १९ वर्षकी आयुवाले
मित्रवत् व्यवहार करनेवाले	२. सज्जन और दुर्जन
ानी, विद्वान्	३. विद्वान् और मूर्ख
ात्मसंयमी	४. सबको मताधिकार

ैदिक धर्मके स्वराज्यमें 'स्व' की उन्नतिपर ध्यान दिया ; इसीलिये यम-नियम-पालन, व्यापक दृष्टि, मित्र-र सत्यज्ञानवालोंको ही मताधिकार दिया जाता था। स्वराज्यमें 'राज्याधिकार' प्राप्त करना ही सबका लक्ष्य ल्ये केवल आयुकी ही मर्यादा रक्खी गयी है। यह ी भेद है वैदिक स्वराज्यमें और आजके स्वराज्यमें। -भेदसे 'स्वा-राज्य' अथवा 'स्व-राज्य' लिखा जाता क ही विचार करें कि 'स्व' की शुद्धिपर बल देना चाहिये राज्यका शासनाधिकार ही केवल प्राप्त करना । किससे जनताका सच्चा कल्याण हो सकता है ?

१०. विश्व-कल्याणका ध्येय

ैदिक ऋषि जनताके सच्चे कल्याणका ही ध्येय अपने रखते थे—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विद-
स्तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं
तदस्मै देवा उपसं नमन्तु ॥

(अथर्व० १९।४१।१)

'ब जनताका कल्याण करनेकी इच्छा रखनेवाले नी ऋषियोंने प्रारम्भमें दीक्षा लेकर तप किया। ष्ट्र, बल और ओजका निर्माण हुआ; अतएव सब स राष्ट्रकी भक्ति करें।'

षियोंकी तपस्यासे राष्ट्रभावकी उत्पत्ति हुई है, नासे राष्ट्रिय बल बढ़ता है और बड़ी शक्ति प्राप्त

जिनका राष्ट्र है, उनमें बल और ओज होंगे; जो ोंसे परतन्त्र होंगे, उनमें राष्ट्रिय भावना नह सात्त्विक बल भी नहीं होगा और ओज भी नहीं रह

ऋषियोंकी तपस्यासे जिस राष्ट्रियताकी उत्पत्ति ह राष्ट्रियता यम-नियम-पालनके बिना कदापि विकसित सकती। इसीलिये ऋषियोंद्वारा जो पूर्वोक्त अनेव शासन निर्माण हुए, उनकी शासन-प्रणालीमें यम-निय करनेवालोंके लिये ही स्थान है। इसमें 'सब धान पसेरी' या 'टके सेर खाजा और टके सेर ही भ अनुसार सज्जन-दुर्जन सब एक ही मापसे मापे सकते। उसमें इन्द्रियलोलुप, उच्छृङ्खल, द्वेष-दम्भ दुष्कृत्यरत लोगोंको स्थान नहीं।

वैदिक स्वराज्यशासनका यही महत्त्व है औ वैदिक स्वराज्यकी विशेषता है। देखिये—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति
(अथर्व० ११।

'ब्रह्मचर्यरूप तप करके ही राजा और राष्ट्रपुरु पालन-व्यवहारके अधिकारी होते हैं।' ब्रह्मचर्य 'यम-नियम' आ गये हैं। यह वैदिक राज्यशासन है। ऋषियोंके तपका यह फल है। जिस शासन- जनताका सच्चा सुख बढ़ सकता है, वह यही शासन

सम्पूर्ण तरुणोंको अथवा प्रौढ़ोंको मताधिका बहुसम्मति तो मूढ़ोंकी ही सम्मति होगी, इसमें सन्देह नहीं हो सकता। जनतामें मूढ़ ही बहुसं और सच्चे ज्ञानी अल्पसंख्यक हैं। इसलिये वेदने जा ज्ञानियोंका ही अधिकार रक्खा है, सदाचारिय अधिकार रक्खा है। लोक ज्ञानी बनें, सदाचारी ब स्वराज्यशासनमें अपना कर्तव्य करनेके अधिकारी हों

इतने प्राचीन समयमें जिन ऋषियोंने इतने उ राज्यशासनोंके नामाभिधान रक्खे और उनका पृथ निर्देश किया, उनको राज्यशासन-विषयक कल्पना न और जो सब-की-सब जनताको शासनाधिकार देते हैं शासनतन्त्रका ज्ञानविशेष है—यों कई यहाँ कहेंगे इसका निर्णय तो अनुभवसे ही हो सकेगा।

वैदिक राज्यशासन 'गुणी और धार्मिक स

आदर्श राज्यानुशासन-विज्ञान

(लेखक—पं० श्रीराजमङ्गलनाथजी त्रिपाठी एम्०ए०, एल्-एल्० बी०)

मान युगमें समस्त विश्वके मानवमात्र सुख-शान्तिकी अथक परिश्रम कर रहे हैं और विविध ज्ञान-विज्ञान- ोनेके लिये सचेष्ट हैं; तथापि कठिनाइयोंसे मुक्ति त्ती, दुःख और क्षोभ बढ़ता ही जा रहा है। 'ज्यों- झि भज्यो चहत, त्यों-त्यों उरझत जात।' भीषण ै! यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, राजा, प्रजा, शासनव्यवस्था स्त विभूतियोंकी प्राप्तिके साधन हैं; परंतु कष्टोंकी ा बढ़ती ही जा रही है। कल्याणका मार्ग दृष्टिपथमें नहीं। आये भी कैसे? बबूलका बीज वपन करके प्राप्त करना असम्भव है। आधुनिक जगत्के पास तका मूल बीज ही नहीं है। आइये, त्रिकालदर्शी तरत तपोनिष्ठ भारतीय ऋषियोंके द्वारा प्रदर्शित अनुसरण करें। वही कल्याणका, सुख और शान्तिका उन्होंने शासन-सत्ताको ही कालनियामक स्थिर किया शासन-सत्ता चाहे राज-सत्तात्मक, प्रजा-सत्तात्मक, सत्तात्मक अथवा किसी भी प्रकारकी हो, शासना- मस्त क्रियाओंका दायित्व उसीपर होता है। शासनके होनेसे प्रवृत्तिका निरोध और निवृत्ति या अनासक्ति- ग होता रहता है। अतः राजा-प्रजा दोनोंमें सुख- ौर शान्तिकी अभिवृद्धि होती रहती है। अधर्म- ासनमें निवृत्तिका निरोध और प्रवृत्तिका पोषण अतः परिणाम होता है—काम, क्रोध, लोभ, दुःख, शान्ति इत्यादि। धर्म ही आर्योंके राज्यानुशासन- आधारशिला है। राम-राज्य आदर्श धर्ममूलक का प्रतीक है। भारतभूमिके कण-कणमें राम- वेभूति अन्तर्हित है; परंतु पश्चिमकी अधर्ममूलक अन्धानुकरणके मोहसे विमुग्ध नर दुःख-दैन्यसे लेये दुःखद मार्गको ही प्रश्रय दे रहा है। यह सबसे डम्बना है। भारतीय राम-राज्य-शासन-पद्धतिमें ो प्रतिष्ठा है। **'नराणां च नराधिपम्', 'रामः शस्त्रभृतामहम्'** इत्यादि भगवान्के स्वमुखसे उच्चा इस दिशामें निरन्तर प्रकाश दे रहे हैं। धर्ममूलक व्यवस्था स्थापित करनेके लिये शुद्ध धार्मिक भावसे, भावसे युद्धादिमें प्रवृत्त होनेपर भी दुर्भावनाएँ नहीं भगवान्ने अर्जुनको इसीलिये समझाया था—

> **यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्य**
> **हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्य**
>
> (गीता १८

राम-राज्यकी महिमा अवर्णनीय है। उसका पूर्ण प्राप्त करनेके लिये रामायण-महाभारतादि आर्ष अवलोकन करना आवश्यक है। परंतु केवल परि क्या होगा। समस्त दुःखोंसे मुक्ति पानेके लिये राम स्थापना ही एकमात्र उपाय है। इस महान् यज्ञमें प्राप्तिके लिये त्याग, तप आदि तो आवश्यक हैं ह सबसे अधिक आवश्यक है—भगवान्की सत्ता, श कृपामें अटूट श्रद्धा और अनन्य विश्वास। श्र विश्वाससे ही हमें वह बल मिल सकेगा, जिससे हम दुःखद विधानोंमें परिवर्तन कर सकें। महाभागवत गान्धीने प्राणोंकी बाजी लगाकर सन्मार्गका प्रदर्शन यह जगद्विदित है; तथापि अभी मोहनिद्रा भङ्ग नहीं है। जीवनका वह सर्वोदय-दिवस होगा, जिस ि सर्वात्मना अपनेको भगवच्चरणमें अर्पणकर उ आगसे स्वयं भगवान्को इतना द्रवीभूत कर देंगे अपनी—

> **अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपास**
> **तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यह**
>
> (गीता ९

—इस प्रतिज्ञाकी पूर्तिके द्वारा राम-राज्यकी स्था ही पड़े। समस्त प्रजाके योगक्षेमवहनका यह स्व हिंदू-संस्कृतिके आदर्श शासनविज्ञानका यह रहस्य है

भारतीयोंकी निष्कपटता

'भारतवर्षके करोड़ों व्यक्ति वहाँके साधु-संतोंकी ही भाँति रहते आये हैं—सहजरूपसे सरल, ौर ऋणरहित।'

—प्रो० ि

हिंदू राजाके लक्षण और कर्तव्य

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

१-राजाकी आवश्यकता

पतिका कहना है कि लोकमें जो धर्म देखा जाता मूल कारण राजा ही है। राजासे डरनेके कारण एक दूसरेको नहीं सताती। जब प्रजा मर्यादाको ाती है और लोभके वशीभूत हो जाती है, तब राजा द्वारा उसमें शान्ति स्थापित करता है। यदि राजा थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियों और नीरव वनमें पक्षियोंके समान प्रजा भी आपसमें लड़-झगड़कर ातमें नष्ट हो जाय। बलवान् लोग निर्बलोंकी ंको छीन लें और वे यदि सीधे-सीधे न दें तो वे ोंके ग्राहक बन जायँ। साधारण मनुष्योंके पास जो त्र, अलङ्कार और तरह-तरहके रत्न हों, उन्हें पापी- लें। यदि राजा रक्षा न करे तो धर्मात्माओंको का शस्त्राघात सहना पड़े, पापका ही प्रचार होने पापीलोग माता, पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और भी दुःख देने लगें; धनवानोंको मौत और बन्धन- भोगना पड़े, कोई भी मनुष्य किसी वस्तुपर अपना मान सके, लोग अकालमें ही कालके गालमें जाने में दस्युओंकी ही प्रधानता हो जाय, व्यापार मिट्टी- ाय, नीति और कर्मकाण्डका लोप हो जाय, बड़ी- क्षणाओंवाले यज्ञ देखनेको भी न मिलें और न समाजका ही सङ्गठन रहे। यदि राजा प्रजाका पालन सारे संसारमें त्रास फैल जाय, सबके हृदय डाँवा- जायँ, सब ओर हाहाकार मच जाय और क्षणमात्र- रे संसारका नाश हो जाय। दधिमन्थनका व्यवसाय अहीरोंके टोले नष्ट हो जायँ। फिर तो ब्रह्महत्यारा से ऐन्द्रिय सुख भोगता रहे, चोर हाथों-हाथ ीजें उड़ा ले जायँ, धर्मकी सारी मर्यादा टूट जाय, यभीत होकर इधर-उधर भागने लगें, जगत्में फैल जाय, प्रजा वर्णसङ्कर हो जाय और देशमें दुर्भिक्ष गे। इसीसे देवताओंने प्रजाके पालन करनेवाले ृष्टि की है—

मूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।

राजा ह्येवाखिलं लोकं समुदीर्णं समुत्सुक
प्रसादयति धर्मेण प्रसाद्य च विराजते
यथा ह्यनुदके मत्स्या निराक्रन्दे विहङ्गमा
विहरेयुर्यथाकामं विहिंसन्तः पुनः पुनः
हरेयुर्बलवन्तोऽपि दुर्बलानां परिग्रहा
हन्युर्व्यायच्छमानांश्च यदि राजा न पालयेत
यानं वस्त्रमलङ्कारान् रत्नानि विविधानि
हरेयुः सहसा पापा यदि राजा न पालयेत
मातरं पितरं वृद्धमाचार्यमतिथिं गुरु
क्लिश्नीयुरपि हिंस्युर्वा यदि राजा न पालयेत
न यज्ञाः संप्रवर्तेयुर्विधिना स्वाप्तदक्षिण
न विवाहाः समाजो वा यदि राजा न पालयेत
न नृपाः संप्रवर्तेरन्न मथ्येरंश्च गर्गर
घोषाः प्रणाशं गच्छेयुर्यदि राजा न पालयेत
हस्ताद्धस्तं परिमुषेद् भिद्येरन् सर्वसेतव
भयार्तं विद्रवेत्सर्वं यदि राजा न पालयेत
अनया संप्रवर्तेरन् भवेद्वै वर्णसङ्क
दुर्भिक्षमाविशेद्राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत
एतस्मात्कारणाद्देवाः प्रजापालान् प्रचक्रि

किंतु इस तरहके राजा तो सब कोई नहीं हो राजाओंमें बहुत-सी शारीरिक, मानसिक तथा विलक्षणताएँ होती हैं, जो साधारण मनुष्यो होतीं। राजाके स्वभाव, व्यवहार तथा शारीरिक क्या विलक्षणता होती है—यहाँपर संक्षेपमें इसीक किया जायगा।

२-राजा शब्दकी व्युत्पत्ति तथा मुख्य

'राजृ दीप्तौ' इस धातुसे **'राज्ञावारपाराद् घखौ'** द्वारा 'घ' प्रत्यय करनेसे 'राजा' शब्द निष्पन्न होता है अर्थ है चमकनेवाला अर्थात् प्रतापवान्। श ५९ वें अध्यायमें युधिष्ठिरद्वारा यही प्रश्न उठाय कि यह 'राजा' शब्द कैसे उत्पन्न हुआ। इसका उत्त ने बड़े विस्तारसे इसी अध्यायमें तथा ६९ वें अध्याय है और अन्तमें बतलाया है कि सारी प्रजाको प्रसन्

ताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते ।
(महा० शा० रा० प० ५९ । १२५)

द्भागवतका कहना है कि अपनी चेष्टाओंसे प्रजाके ानन्द देनेके कारण ही उसे राजा कहा गया ।

यिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ।
ामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥
(श्रीमद्भा० ४ । १६ । १५)

का कहना है कि विचारकर दण्ड देनेसे सारी प्रजा ती है—

ेक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ।
(मनु० ७ । १९ । ३)

ेदासने रघुके विषयमें कहा है कि जिस तरह सभी- ादन कर चन्द्रमाने अपना नाम सार्थक किया और ापाकर सूर्यने अपना नाम सार्थक किया, वैसे ही प्रजाका रञ्जन करके अपना 'राजा नाम' सार्थक कर

प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
त्र सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥
(रघु० ४ । १२)

भारतका कहना है कि जिसके मरनेपर जिसके कार्यकी य सादर प्रशंसा करें, वही राजा राजा है—

ा वृत्तं नमस्यन्ति स्वर्गस्थस्यापि मानवाः ।
जानपदामात्याः स राजा राजसत्तमः ॥
(शा० प० २५ । ३६)

यत्र इसी ग्रन्थमें कहा गया है कि जिसमें धर्म विराजता ो राजा कहते हैं—

म्नन् धर्मो विराजेत तं राजानं प्रचक्षते ।
(शा० प० ९० । ३१८)

ने यहाँके शब्द कुछ कारण लेकर ही रचे गये हैं । शब्दका अर्थ प्रजाका रञ्जन करनेवाला, धर्म- तथा दीप्तिमान् है, तथा यही उसका सर्वप्रधान लक्षण व्य है । पर आजकी हवा विचित्र है, आजके समझे जानेवाले लोगोंको इस 'राजा' शब्दसे बड़ा द्वेष हो गया है और इन्हें इस शब्दमें तानाशाही cracy की बू मिलती है, पर 'राष्ट्रपति' या ' शब्द, जिसमें स्पष्ट ही 'पति' शब्दद्वारा स्वामित्वका

३-राजाके गौण लक्षण

भगवान् श्रीरामका कहना है कि राजकुलमें शील, अवस्था, सत्त्व (धैर्य), दाक्षिण्य, क्षिप्रकारि भक्तित्व, अविसंवादिता (सत्यप्रतिज्ञता), कृतज्ञ सम्पन्नता (भाग्यशालिता), अक्षुद्रपरिवारता, दी पवित्रता, स्थूललक्ष्यिता (दानशीलता), धार्मिकता, सत्य और उत्साह आदि गुणोंसे सम्पन्न व्य राजा होने योग्य है—

कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारित
अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञत
दैवसम्पन्नता बुद्धिरक्षुद्रपरिवारत
शब्दसामन्तता चैव तथा च दृढभक्तित
दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्षित
विनीतत्वं धार्मिकता साधोश्च नृपतेर्गुणा
(अग्निपु० रामोक्तनी० २३९ ।

याज्ञवल्क्यका कहना है कि राजाको महान् स्थूललक्ष (अत्यन्त दानी), कृतज्ञ, वृद्धसेवी, वि धैर्ययुक्त, कुलीन, सत्यवादी, पवित्र, अदीर्घसूत्री, स अक्षुद्र परिवारवाला, धार्मिक, अव्यसनी, पण्डित, रहस्यवित् होना चाहिये । उसे अर्थगोपनमें चतुर, अ तथा राजनीतिमें निपुण, लाभके उपाय तथा तीन प्रवीण होना चाहिये—

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवव
विनीतः सत्त्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचि
अदीर्घसूत्री स्मृतिमानक्षुद्रपुरुषस्तथ
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित
स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिप
(याज्ञ० आचार० राजधर्म० ३०९–

कामन्दकका कहना है कि पहले तो अपनेको ग करना चाहिये, फिर दूसरोंको । महात्मा, पृथ्वीक स्वरूप, अकृतात्माओंको दुष्कर, आत्मसंस्कारसम्पन्न ही राजा होने योग्य है—

आत्मानमेव प्रथममिच्छेद् गुणसमन्वितम
कुर्वीत गुणसंयुक्तस्ततः शेषपरीक्षणम

का कहना है कि पूर्वजन्मके तपके कारण ही व्यक्ति
ा है। पिछले जन्ममें वह जैसी तपस्या कर चुका होता
5 अनुरूप वह सात्त्विक, राजसी या तामसी होता
राजा सात्त्विक तप किये होता है वह धर्मनिष्ठ,
5, यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, शत्रुविजेता, दानी,
, शूरवीर, निर्लोभी तथा विषय और व्यसनोंसे
ता है और वह सात्त्विक राजा अन्तसमयमें मोक्ष-
होता है—

: स्वप्राक्तनाद्धृते तपसा च महीमिमाम्।
त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं तपः।
क् तपति योऽत्यर्थं तादृग्भवति स नृपः॥
हि स्वधर्मनिरतः प्रजानां परिपालकः।
च सर्वयज्ञानां नेता शत्रुगणस्य च।
शौण्डः क्षमी शूरो निःस्पृहो विषयेष्वपि॥
कः सात्त्विकः स हि नृपोऽन्ते मोक्षमन्वियात्।

(शुक्रनीतिसार १। २०, २९—३१)

प्रकार नारद तथा कात्यायनने भी राजाके लक्षण
हैं। किंतु कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रके 'मण्डल-
ामिक छठे अधिकरणमें अत्यन्त विस्तारसे विचार
। उनका कहना है कि 'राजाके १६ आभिगामिक,
४ उत्साहके तथा ३० आत्मसंपत्‌के गुण हैं, जिनमें
ा, भाग्यशाली, मेधावी, धैर्यशाली, दूरदर्शी,
सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, महादानी, महान्
क्षिप्रकारी, दृढ़निश्चय, समीपवर्ती राजाओंको जीतनेमें
ार परिवारवाला और शास्त्रमर्यादाको चाहनेवाला—
१६ आभिगामिक गुण हैं—

कुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसम्पन्नो वृद्धदर्शी
त्यवागविसंवादिकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहोऽ-
शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को विनयकाम
ामिका गुणाः। (कौटिल्य० ६। १। ३)

ुषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह, तत्त्व
ानिवेश—ये आठ प्रज्ञाके गुण हैं। शौर्य, अमर्ष,
ाथा दक्षता—ये ४ उत्साहके गुण हैं। इसी
ात्मसंपत्‌के विषयमें कौटिल्य कहते हैं कि
(अर्थ-पूर्ण भाषण करनेमें समर्थ), प्रगल्भ
बोलते समय कम्परहित), स्मृति, मति तथा

अपनी विपत्तिमें सेनाकी रक्षा करनेवाला, किए
उपकार या अपकार किये जानेपर उसका प्रतिक
वाला, लज्जाशील, दुर्भिक्ष और सुभिक्ष आदिमें :
ठीक-ठीक विनियोग करनेवाला, लंबी और दूरकी
वाला, अपनी सेनाके युद्धोचित देश, काल, उत्साह, श
कार्यको प्रधानतया देखनेवाला, सन्धिके प्रयोगको
वाला, प्रकाश-युद्ध आदि करनेमें चतुर, सुपात्रको
वाला, प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर ही गुप्तरूपसे
बढ़ानेवाला, शत्रुके अंदर मृगया-द्यूत आदि व्यसनों
कर उसपर तीक्ष्णरस आदि प्रयोग करनेमें समर्थ
मन्त्रको गुप्त रखनेवाला, दीन पुरुषोंकी हँसी न उ
टेढ़ी भौंह न करके देखनेवाला, काम, क्रोध, लो
चपलता, उपताप और पैशुन्यसे सदा आगे रहनेवा
बोलनेवाला, हँसमुख तथा उदार भाषण करनेवाला अ
के उपदेश तथा आचारका माननेवाला राजा होना
ये ही राजाकी आत्मसंपत् हैं—(कौ० ६। १। ४-
'मत्स्यपुराण' तथा 'महाभारत'में भी ये लक्षण कुछ
तथा कुछ विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

४-राजाके दोष

नारदजीने कहा है कि नास्तिकता, मिथ्याभाष
प्रमाद (अकर्तव्यका आचरण और कर्तव्यका
दीर्घसूत्रता, ज्ञानवान् पुरुषोंसे न मिलना, आलस्य,
परायणता, अकेले ही समस्याओंपर विचार करना,
लोगोंके साथ मन्त्रणा करना, मन्त्रणामें निश्चित
आरम्भ न करना, मन्त्रणाको गुप्त न रखना,
कार्योंका प्रयोग न करना, और एक ही साथ
शत्रुओंके साथ विरोध करना। राजाको परीक्षापूर्वक इ
दोषोंसे बचना चाहिये—

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च चिन्तनम्
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम्
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वत
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश

(महा० सभा० ५। १०७—

५-ज्यौतिष-शास्त्रानुसार राजाके लक्षण

विशेषतः ४ । १० का भाव है) विष्णुके स्थान भावोंके स्वामियोंका परस्पर सम्बन्ध होनेसे राजयोग विशेषतः नवमेश-दशमेशके संयोगमें राजा— न होता है—

ीस्थानं त्रिकोणं च विष्णुस्थानं च केन्द्रकम् ।
ः सम्बन्धमात्रेण राजयोगादिकं भवेत् ॥
शस्य तु योगेन राजा साचिव्यतामियात् ।
धर्मेशयोर्योगे राजा वै राजवन्दितः ॥
कर्माधिपौ चैव व्यत्यये तावुभौ स्थितौ ।
श्चेद्वै तदा वाच्यः सर्वसौख्यसमन्वितः ॥

(बृ० पा० पू० खं० राजयो० २८ । ३७–४०)

हमिहिरका कहना है कि मङ्गल, शनैश्वर, सूर्य स्पति—ये चारों ग्रह अपने उच्च स्थानोंमें स्थित होकर त हों तो राजा होता है । इन्हीं चारों ग्रहोंमेंसे अपने उच्च स्थानोंमें स्थित होकर आपसमें प्रत्येक प्त हों और चन्द्रमा अपने स्थानमें स्थित हो तो होता है—

कार्कजार्कगुरुभिः सकलैस्त्रिभिश्च
स्वोच्चेषु षोडशनृपाः कथितैकलग्ने ।
काश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने
स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः ॥

(बृहज्जा० राज० ११ । २)

डव्यका कहना है कि मकर राशि लग्नमें स्थित हो में शनैश्वर हो तथा मीन राशिमें चन्द्रमा, मिथुनमें कन्यामें बुध और धनमें बृहस्पति हों तथा सूर्य —ये दोनों कहीं भी स्थित हों तो इस योगमें पैदा व्यक्ति इन्द्रके समान राजा होता है—

लग्ने सौरस्तिमियुगगतः शीतकिरणः
ो युग्मे नार्यां शशभृतसुतश्चापधरगः ।
ईत्येज्यार्कावभिमतगतौ चारवशतः
तौ यस्यासौ भवति नरपः शक्रसदृशः ॥

क-पारिजातका मत है कि कन्या, मीन, मिथुन, , कुम्भ और धनमें सब ग्रह स्थित हों तो वह मनुष्य स्वी एवं प्रतापी राजा होता है तथा उसके पास ी सेना होती है—

ामीननृयुग्मगोहरिधनुःकुम्भस्थितैः खेचरैः
ामत्तमतङ्गवाजिविपुलो राजा यशस्वी भवेत् ॥

सारावलीकी उक्ति है कि एक भी ग्रह परमोच्च वर्गोत्तमांशमें हो और बली मित्रसे दृष्ट हो तो जा होता है—

एक एव खगः स्वोच्चे वर्गोत्तमगतो य
बलवन्मित्रसंदृष्टः करोति पृथिवीपतिम्

फलदीपिकाकारका मत है कि जिसके जन्मर ग्रह नीच राशिमें प्राप्त हो, उस नीच राशिका स उस ग्रहके उच्चस्थानका स्वामी लग्नसे या चन्द्रमासे केन्द्र हो, वह धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा होता है—

नीचे तिष्ठति यस्तदाश्रितगृहाधीशो विलग्नाद्य
चन्द्राद्वा यदि नीचगस्य विहगस्योच्चर्क्षनाथोऽथव
केन्द्रे तिष्ठति चेत् प्रपूर्णविभवः स्याच्चक्रवर्ती नृपं
धर्मिष्ठोऽन्यमहीशवन्दितपदस्तेजोयशोभाग्यवान्

जातकाभरणका मत है कि जिसकी कुण्डली ग्रह अपने-अपने उच्चमें बैठे हों तो वह सार्वभौम (च राजा होता है—

नभश्चराः पञ्च निजोच्चसंस्था यस्य प्रसूतौ स तु सार्व

(जातकाभ० ६

पराशरजीका मत है कि 'नवमेश और दशमेश— पारिजातांशमें प्राप्त होकर भोग करते हों तो वह रा शिक्षक होता है । यदि ये ही दोनों गोपुरांशमें चले तो वह राजा राजाओंसे भी वन्दित होता है अ पृथ्वीका पालक—चक्रवर्ती होता है । श्रीरामच श्रीकृष्णचन्द्रकी कुण्डलियोंमें पाँच ग्रह उच्चस्थ थे तथा मनुपुत्र उत्तम, बलि, युधिष्ठिर आदिकी कुण्डलियों तथा दशमेश परस्पर सम्बन्ध रखते हुए गोपुरांश थे। नागार्जुन और विजयाभिनन्दनकी कुण्डलियोंमें योग रहेंगे । भगवान्‌के सभी अवतारोंमें ये ही ग्र देवलोकांशमें प्राप्त हुए होते हैं । द्वितीय देव इन्द्रादिकोंका तथा प्रथम ऐरावतांशमें स्वायम्भुव मनु हुआ था ।'

अस्मिन् योगे हरिश्चन्द्रो मानवश्चोत्तमस्तथ
बलिर्वैश्वानरो राजा अन्ये चैव तु चक्रपा
कलौ युगे तु भविता तथा राजा युधिष्ठिर
भविता शालिवाहश्च तथा विजयनन्दन
नागार्जुनस्तथा भूपस्तदन्ये चैव गोपु

ल्पे तु प्रथमे हरेश्चैवावतारणम्।
यादिकल्किपर्यन्ताः सर्वे वर्गोद्भवा मताः॥
ोये देवलोके तु ज्ञेयाश्चेन्द्रादयः परे।
न्ते च प्रथमे जातः स्वायम्भुवो मनुः॥

(बृहत्पाराशर होरा० पूर्वभाग० २८। ४१। ४८)

की प्राप्ति कब होगी, इसका वर्णन करते हुए भगवान्
कहते हैं कि जो ग्रह कर्मस्थ हो या लग्नस्थ हो या
न्त बली हो, उसीकी अन्तर्दशामें राज्यकी प्राप्ति
–

कर्मगो वा स्यादथवा प्रबलोऽपि यः।
स्यात्स्वान्तर्दशाकाले राज्यदः प्रबलो यदा॥

६-राजाके सामुद्रिक लक्षण

भगवती श्रीसीताजीने हनुमान्‌जीसे पूछा कि 'भगवान्
लक्ष्मणकी आकृति कैसी है ?' तब हनुमान्‌जीने
द्रिक रीतिसे भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन किया।
हा कि 'उनके तीन अङ्ग मजबूत हैं, तीन लंबे हैं,
र हैं, तीन ऊँचे हैं, तीन लाल हैं, तीन चिकने हैं
गम्भीर हैं।'

थरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः।
ाम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः॥
(वा० रा० सु० ३५। १७)

द्रिक-शास्त्रमें बतलाया गया है कि राजाकी जाँघ,
र मुट्ठी मजबूत होती हैं। भौंहें, मुख और बाहु लंबे
केशाग्र, बाहु तथा वृषण बराबर होते हैं। वक्षःस्थल,
अन्तिम भाग और उदर ऊँचे होते हैं। नेत्रोंके कोने,
र हाथ-पैरके तलवे—ये तीन वस्तुएँ लाल होती हैं।
ो रेखाएँ, सिरके बाल तथा मणि चिकने होते हैं एवं
ठ और नाभि गम्भीर होती हैं। भगवान् श्रीरामके
लक्षणोंको हनुमान्‌जीने संक्षेपमें वर्णन किया था—

श्च मणिबन्धश्च मुष्टिश्च नृपतेः स्थिराः।
म्बा यस्य स धनी त्रयो भ्रूमुखबाहवः॥
ाग्रं वृषणं जानु समं यस्य स भूपतिः।
यन्तःकुक्षिवक्षोभिरुन्नतैः क्षितिपो भवेत्॥
न्तनखपाणश्चङ्घ्रितलैस्ताम्रस्त्रिभिः सुखी।
ग्धा भवन्ति वै येषां पादरेखाः शिरोरुहाः॥
[illegible]

अन्यत्र कहा गया है कि जिसके हाथ-पैरोंमें हा
मत्स्य, पुष्करिणी, अंकुश और वीणाके चिह्न हों,
होता है—

चेद्वारणो वाऽऽतपवारणो वा
वैसारिणः पुष्करिणी सृणिर्वा
वीणा च पाणौ चरणे नराणां
ते स्युर्नराणामधिपा वरेण्याः

'जिसका गोल सिर, चौड़ा मस्तक, कर्णान्त
नीलकमल-सदृश नेत्र और घुटनेतक लंबी भुजा हो,
भूमण्डलका स्वामी होता है।'

सुवृत्तमौलिस्तु विशालभाल-
श्चाकर्णनीलोत्पलपत्रनेत्रः
आजानुबाहुं पुरुषं तमाहु-
र्भूमण्डलाखण्डलमार्यवर्याः

'अग्निपुराण'के २४३वें अध्यायमें तथा 'स्कन्द
काशीखण्ड, पूर्वभागके स्त्रीलक्षण-वर्णनाध्यायमें रा
रानियोंके लक्षण विस्तारसे लिखे गये हैं। जिज्ञासुओंको
देखना चाहिये। असलमें, जैसा राजाके प्रधान लक्षणों
गया है, उसकी तपस्या ही उसके राजत्वका कारण होती है
का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि 'अपने पूर्वजन्मके तप
ही व्यक्ति राजा होता है।' अपने यहाँके राजाओंमें स्वाय
ध्रुव, प्राचीनबर्हिष्, इक्ष्वाकु, मुचुकुन्द, विदेह, गा
अम्बरीष, गय, सगर, मान्धाता, अलर्क, रन्तिदे
अमूर्तरय, दिलीप, शिबि, प्रह्लाद एवं विभीषणादि ही
हैं। यह स्पष्ट है कि धर्म तथा तपके कारण राज्यभ्र
भी राज्यारूढ़ हो गये हैं, इसके विपरीत धर्मभ्र
राज्यारूढ भी राज्यच्युत होता देखा गया है—

बहवोऽविनयाद् भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे
(मत्स्य० २१५

यहाँ 'विनय' शब्द 'इन्द्रियजय' का द्योतक है।

विनयो ह्यीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्मही
(अग्नि० रामोक्तनी० २३

भगवान्‌की शरणागति तो सब धर्मोंमें श्रेष्ठ
विशेषकर आजकलके युगमें तो एकमात्र यही धर्म
[illegible]

र वेन या रावण-सा आचरण करने लगता है, तब ख संपति प्रभुताई । गई रही पाई बिनु पाई ॥' हो

७-राजाका कर्तव्य

ारणतया राजाके गौण लक्षणोंमें ही उसके कर्तव्यकी आ गयी है। उसके कर्तव्योंके विस्तृत वर्णनमें पूरी ही आ जाती है। 'मत्स्यपुराण' के २१५ वें अध्यायमें संक्षेपमें राजाके कर्तव्यका विचार है । फिर अध्यायोंमें उन्हींका विस्तार है। पर प्रधानतया राजाका र्मरक्षण' ही है। सभी शास्त्रों, इतिहास-पुराणों तथा े ग्रन्थोंमें इसीको विस्तारसे बतलाया गया है। तो धर्मरक्षणके अतिरिक्त राजाका कोई अन्य ी नहीं होता । यही कारण है कि हरिश्चन्द्र ाओंने धर्मके कारण राज्यश्रीतकको त्याग दिया। वान्‌ने बुद्धि दी है, वे दूरतक विचार करते हैं; फिर वे े हैं कि इस नश्वर विश्वमें आजतक कितने राजा हुए गये—यह पृथ्वी कितनोंकी हुई और भाग निकली, ैसे बहुत-से राजाओंके नामतकका पता नहीं है, इसलिये रणकर लोक—भगवान् तथा महात्माओंको क्यों असन्तुष्ट किया जाय ? इसके अतिरिक्त समय पर भगवान् तो धर्मकी रक्षा करा ही लेते हैं। उन अध बादमें निन्दा भी कम नहीं होती। इसलिये भगवान् रा ही कहा है कि कोई भी बुद्धिमान् राजा इन बातोंके हुआ पापाचरण न करेगा—

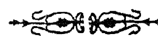
आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने
को हि राजा शरीराय धर्मापेतं समाचरेत

(अग्नि० २३

'आधि-व्याधिसे ग्रस्त तथा आज या कल ही नष्ट इस शरीरके लिये कौन राजा धर्मविरुद्ध आचरण करेग

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्व-
मापातमात्रमधुरा विषयोपभोगा
प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां
धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीय

'यह पृथ्वीका आधिपत्य हवामें उड़नेवाले समान है, विषय-भोग केवल आरम्भमें ही मधुर हैं, प्राण तिनकेके अग्रभागमें स्थित जलविन्दुके धर्म ही मनुष्योंका सनातन सुहृद् है, उसके विपरीत नहीं करना चाहिये।'



संस्कृतिकी मीमांसा

(लेखक—डा० श्रीजयेन्द्रराय भ० दूरकाल, एम्०ए०, डी०एस्-सी०, विद्यावारिधि)

स्कृत' और 'संस्कार' शब्द पुरातन और बहुशास्त्रप्रयुक्त कृति' शब्द इनकी अपेक्षा नया है। अमरकोश अथवा कोशमें यह नहीं है । अंग्रेजी 'कल्चर' और जेशन' शब्दोंका अर्थपरिचय करानेके लिये इस प्रयोग होता है; परंतु इन अंग्रेजी शब्दोंका अर्थ भी नहीं है। इसी प्रकार 'संस्कृति' शब्दका अर्थ भी । इसकी कोई शास्त्ररूढ़ परिभाषा नहीं है, पर बनानेका प्रयत्न है। ऐसी ही परिस्थिति 'हिंदू' शब्दकी संस्कारी मानव-समाजके लिये पुरातन शब्द 'आर्य' सेन्धु नदीके समीप या पारका देश सिन्धुस्थान, ा (अथवा इंडस नदीके नामपर इंडिया) कहलाया ाँके लोग हिंदू कहलाये। इस प्रकार 'हिंदू' शब्द पर-

देशकी भाषाओंमें सामान्य रूपसे इन शब्दं प्रयोग होता है, उसपरसे अर्थ-भावना करके यों हैं कि शुभ, शुद्ध अथवा सुसम्बद्ध करनेकी जो वह है संस्कार, और जिसका संस्कार होता है संस्कारी । संस्कार-समुच्चयका स्थायी भाव है सं देशगत या समाजगत संस्कारिताका व्यापक प्रस्त संस्कृति । इसी अर्थमें हिंदू-संस्कृति, यूरोपीय ब्राह्मण-संस्कृति इत्यादि प्रयोग किये जाते हैं। 'हिंदू हम यदि धर्मवाचक अर्थात् धर्मप्रधान लक्षणवाला धर्मको विशिष्ट शास्त्र-ग्रन्थोंद्वारा उदित और निश्चि जीवनका पुण्य मार्ग समझें तो 'हिंदू' शब्दमें जैन देवसमाजी, ब्राह्मसमाजी, बौद्ध आदि नहीं समा सकते

' ऐसा मान लें तो हिंदूमें मुसल्मान और ईसाई भी
ो। इससे अतिव्याप्ति दोष होगा। 'हिंदू' शब्दको
क कहें तो अव्याप्ति दोष आ जायगा; क्योंकि
ोल, भील भी हिंदू कहलाते हैं और आर्य जातियाँ भी
ाती हैं। 'हिंदू' शब्दका वृत्त (घेरा) विस्तृत करनेके
वादी बौद्ध, जैन, सिख, ब्राह्मसमाजी इत्यादिको
रेगणित करना चाहते हैं। पर ऐसा करनेसे हिंदू या
अथवा हिंदू-संस्कृतिका कोई स्थायी सिद्ध स्वरूप नहीं
रण, इनमेंसे कोई देवी-देवताओंको नहीं मानता, कोई
ा नहीं मानता और कोई धर्मशास्त्रका ईश्वरोदित होना
ना। कितने अवतार, मन्त्रशास्त्र, श्राद्ध, तीर्थ आदि
त, जो हिंदू-समाजके विशेष चिह्न हैं। अतः सब
वेचार करके 'हिंदू' शब्दका अर्थ हम इस प्रकार
ते हैं कि वेदादि-शास्त्रोदित धर्मव्यवस्थाका जो
करता है, वही हिंदू है, ऐसे हिंदुओंसे बना हुआ
दू-समाज है और ऐसे समाजमें जो संस्कृति व्यापक है,
संस्कृति है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि
ति वेदादि सनातन धर्मशास्त्रोंपर फलित होनेवाली
है; और वेदादि शास्त्र मानव-जातिके पुरातन
ुण्यग्रन्थ होनेसे यही संस्कृति पुरातन संस्कृति,
कृति और सनातन संस्कृति है।

ृतिके लिये कभी-कभी 'सभ्यता' शब्दका भी
ता है। दोनोंमें यह भेद है कि संस्कृति मनुष्यके
ीवनको संस्कारित करती है और सभ्यतासे केवल
लक्षित होता है। संस्कृति जीवनव्यापिनी चेतना
। शरीरपर धारण किये हुए आभूषण। इसी दृष्टिसे
देशोंके सुधारोंको संस्कृति न कहकर सभ्यता कहा
संस्कृतिकी भावना बहुत ऊँची होनेसे पश्चिमकार-
ावालोंको संस्कृतियुक्त कहनेमें हिचक होती है।
कुछ देशोंकी द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और विज्ञान-
ाल होनेसे ये अपनी ही बात दुनियासे मनवाते
तर संस्कृतिका आदर्श रखनेवाले देशोंको पिछड़े
मानते और मनवाते हैं। ये लोग ऐसी नीतिसे
जिससे इन्हींकी सभ्यताकी प्रशंसा हो और ये संसारमें
ाने जायँ। इनकी ओरसे पैरवी करनेवाले इनके
ं कोई विषय-सुखके साधनोंकी अभिवृद्धिको,
न्य मानव-जीवनमें बढ़ती हुई संकीर्णताको और

हम पहले सूचित कर आये हैं कि हिंदू
अथवा आर्य-संस्कृति ही सनातन और पुरातन संस्
सकती है। इस सनातन मानव-संस्कृतिके सम्बन्ध
भ्रमोंका निवारण पहले ही कर लेना अच्छा होगा।
यूरोपीय लेखकोंने पहले यह कल्पना की थी कि मान
पाँच-छः हजार वर्षोंसे इस पृथ्वीतलपर है। पर हमा
और आधुनिक विज्ञान भी यह बतलाते हैं कि मान
पृथ्वीतलपर करोड़ों वर्षोंसे इसी प्रकार चली आ
अर्थात् यह सनातन मानव-संस्कृति भी करोड़ों वर्षों
आयी है। इस बीच कितने ही उलट-फेर हो ग
उपर्युक्त ईसाई भ्रमके कारण उन लेखकोंने मानव-इति
पाँच-छः हजार वर्षोंमें जकड़कर अति संकुचित कर
और प्राचीन ऐतिहासिक विवरणों और सत्य घट
अविश्वसनीय कहकर उड़ा दिया है। मनुष्य-बुद्धिव
कल्पनाकी दीनता और पामरता इतनेसे ही ध्यान
सकती है कि आजसे सौ वर्ष पहले जिन चीजोंको अ
और केवल काल्पनिक समझा जाता था, वे चीजें—
टेलीवीजन, अणुबम आदि आज प्रत्यक्ष हैं। अतः
बुद्धिकी त्रिज्या-रेखामें कोई सच्ची वस्तु या घटना यदि न
तो यह बुद्धिकी क्षुद्रता है, इतिहासकी अतथ्यता
हमारे पुराण-इतिहासकारोंका सत्यका आदर्श इतना
और निर्मल था कि उन पुराणेतिहासोंका पठन करने
चित्त भी सत्यके उपासक बन जाते हैं। हमारे इन पुराणे
ग्रन्थोंमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि
इतिहासका कभी स्पष्टतया भिन्न-भिन्न रूपसे और
मिश्ररूपसे कथन किया गया है। इसी प्रकार लोक-लो
की कथाएँ भी उनमें आती हैं, फिर अनेकों युगों
मन्वन्तरोंमें उनका विस्तार होता है। इन कथ
समझनेमें यह बात ध्यानमें रखनी पड़ती है कि इस
इतिहासमें विश्वके स्थायी तत्त्वोंका विवेचन हुआ है औ
कारण इसमें प्रयुक्त भाषाके शब्द व्यक्तिवाचककी
जातिवाचक अर्थमें अधिकतर प्रयुक्त देखनेमें आते
इससे यह होता है कि शब्दोंकी अभिधाशक्तिसे लो
होता है, साथ ही उनकी व्यञ्जनाशक्तिसे विद्वान्
शरणागतिके मार्गपर आ जाते हैं। उदाहरणार्थ, ज
परमात्मा शिव अपने लिङ्ग अर्थात् विश्वके
आग्रह करते हैं। इसमें कितनी उदार भावना प्रतिष्ठित

य है ! चामुण्डा चेतनाशक्ति हैं, जिनके बिना यह शरीर
। इसपर चेतना देवी बैठकर इसे जीवित करती हैं; तभी
लने-फिरने, दौड़ने-उड़ने और काम करने लगता है ।
का यही मनोहर सत्य है ।

नुष्य-जातिकी भाषाओं, इतिहासों और गणना-
ोंको देखकर यह पता लगता है कि मानवजाति
एक ही थी । मानव, मैन आदि शब्द, पुराणोंमें
इतिहास तथा संख्या, वार इत्यादिका साम्य इस
मोटे तौरपर समर्थन करता है। इतिहाससे भी यह प्रकट
ानवजाति बाल्यकालमें बहुत ही सरल, निर्मल और
थी । पीछे युग-युगमें जो परिवर्तन होता गया,
र्मका अंश घटता गया और अधर्मका अंश बढ़ता
कितने ही यूरोपीय विद्वानोंने इसमें उलटी ही भावना
ासवाद अथवा उत्क्रान्तिवादकी कल्पना की और
। लिया कि संसार उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नति कर
और हमलोग किसी दिन उन्नतिके शिखरपर जा
पर पिछले दो महायुद्धोंने तथा जगत्की वर्तमान
तिने भी इन विचारोंकी अयथार्थता दिखला दी है ।
यहाँतक अधःपात बढ़ चला है कि कोई भी मनुष्य
ी ५०, ६० वर्षोंके जीवनमें संसारकी अधोगति
ता है । यह स्पष्ट ही समझमें आता है कि युग-युग
ास होता है—यह सिद्धान्त विश्वसनीय और वास्तविक
तो सब जानते ही हैं कि सत्य, दया, तप और
धर्मके ये चार पाद हैं और मोह, दुःसंग एवं
न तीन अधर्मांशोंके द्वारा उनका ह्रास होता है ।
में अपने-अपने कर्म करके सब लोग कृतकृत्य रहते
ायुगमें दुष्टोंसे उनका परित्राण करनेके लिये धर्म खड़ा
। द्वापर इन दोनोंसे विचित्र है—परस्परभिन्न
ण्डवोंके समान भले-बुरेका इसमें मिश्रण रहता है ।
लियुग तो कलि, कलह और कुमतसे ही परिपूर्ण
। आर्य ऋषियोंने युगोंको यथार्थरूपमें देखकर
से ही नाम भी रक्खे हैं ।

ारी हिंदू-संस्कृति यथार्थमें सनातन मानव-संस्कृति
ष बात इतनी ही है कि हम आर्योंने इस संस्कृतिको
रूपमें सुरक्षित रक्खा है और अन्य लोगोंने अपनी
...

निकलीं और दुनियामें फैलीं । इन विविध सं
सत्य, दया, तप और पवित्रताके आचार-
रूपान्तर देख पड़ता है । पर मुख्य तात्त्विक बा
कि जहाँ ये चारों न्यूनाधिकरूपमें सर्वत्र देख पड़ते
आर्य-संस्कृतिमें इन चारोंकी गहराईमें उतरकर
सम्पूर्ण आचार-विचारका आयोजन किया गया है ।
अन्य लोगोंको यह वस्तु बहुत अद्भुत मालूम ह
कोई उसे 'अतिशयता' मानते हैं, कोई चकित
चुप बैठते हैं, कोई भ्रम अथवा जंगली आदर्शका
या कल्पनाकी एक विचित्र सृष्टि कहकर सन्तोष कर
यथार्थमें आर्योंकी सत्यमूलक ऐतिहासिक दृष्टि कित
और असामान्य है, यह दिनमें तीन बार देश, क
क्रियाका सङ्कल्प करनेकी रीतिसे ही स्पष्ट हो जा
कालगणनामें सुभीतेके टट्टूपर सवार न होकर प्रत्ये
और महीनेके ग्रहोंके योगानुसार यथार्थ सृष्टि-सत्त्वे
निर्णय करनेवाली प्रजाकी सत्यनिष्ठा कितनी बलव
चाहिये । जिनकी संस्कृत भाषामें सत्य, संयम औ
इतनी भरी हुई है कि कोई भाषा उसकी बराबरी
सकती, जिनकी यह भाषा लाखों वर्षोंसे ऐसी ही प्रति
और जीवन्त है और जिनका साहित्य सब स
अद्वितीय और अप्रतिम है, उन आर्योंकी विद्याशक्ति
जोख कौन कर सकता है ! आर्योंकी यह संस्कृति
है । इसलिये नहीं कि यह हमारी संस्कृति है । वस्
समस्त मानवजातिकी संस्कृति है और ईश्वरोदित
प्रतिफलित हुई है । मानवजातिकी मूल भाषा सं
मानवजातिका मूल ज्ञानग्रन्थ वेद है, मानवजाति
साहित्य पुराण है, मानवजातिका मूल धर्म श्रुति
प्रतिपादित आर्यधर्म है । मानवजातिकी मूल संस्कृ
आदि महर्षियोंद्वारा स्मृतियोंमें निर्दिष्ट व्यवस्थावाली
है । इस संस्कृतिके इतिहासके निर्मल दर्पणवत् तीन
ग्रन्थ हैं—रामायण, महाभारत और भागवत । मानव
इस प्राचीन संस्कृतिमें पीछे किस प्रकार धीरे-धीरे
आ गयी—इसका भी तथ्य इन ग्रन्थोंमें मिलता है ।

सामान्य दृष्टिसे देखते हुए कह सकते हैं कि
तीन प्रकारकी होती है—(१) ईश्वर-प्रधान स
(२) पुरुष-प्रधान संस्कृति और (३) नारी

विशेष और तितिक्षा तथा शौर्यका प्राधान्य होता
ी-प्रधान संस्कृतिमें तमोगुण विशेष और मोह
ाका प्राधान्य होता है । आर्य-संस्कृति ईश्वर-प्रधान,
ा इंग्लैंडकी संस्कृति पुरुष-प्रधान और फ्रान्स
शोंकी संस्कृति नारी-प्रधान कही जा सकती है ।
ृति अथवा हिंदू-संस्कृति अथवा वास्तविक
ातन मानव-संस्कृतिमें ईश्वर ही परम आप्त और
है । ईश्वरोदित शास्त्र आचार-विचारके आप्त ग्रन्थ
उनमें उद्घोषित धर्म ही परम विधेय कर्तव्य है ।
रा मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक कल्याणका
होकर सुख, शान्ति और समृद्धि अर्थात्
पुरुषार्थ सिद्ध कर सकता है । इस संस्कृतिमें
पुरुषार्थोंकी ऐसी व्यवस्था है कि 'धर्म' प्रधान
और 'मोक्ष' प्रधान साध्य । इनके बीचमें 'अर्थ'
ा आवश्यक व्यवहार) ऐसा हो कि वह 'धर्म' के
हो और काम (विषय-भोग) ऐसा हो कि वह
के अविरुद्ध हो । इस संस्कृतिमें रागी-सकामीके
त्तिमार्ग और संसारसे थके हुए विरागीके लिये
र्ग है । यह संस्कृति तीन काण्डोंमें विभक्त है—
, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड । संसारके रागी जन
के अधिकारी हैं, विरागी ज्ञानकाण्डके अधिकारी
ग एवं त्यागके बीचमें झूलनेवाले अधिकांश
पासनाकाण्डके अधिकारी हैं । आर्य-संस्कृतिके धर्म-
स्त मानव-जातिके हितार्थ होनेसे उनमें अधिकार-
वेक मुख्य है । जन्मभूमि, गुण और कर्मके अनुसार
प्रकृतिकी विविधता होती है और उसके अनुसार
और उनके साथ आदर्शोंकी, आचारोंकी, वृत्तियों
रश्रेणियोंकी विविधता आप्त ग्रन्थोंमें रक्खी गयी है ।

अधिकार-भेदको अच्छी तरहसे समझनेके लिये
राईमें उतरना होगा । अच्छे-बुरे, साधु-असाधु,
और जडबुद्धि, सदाचारी और दुराचारी,
और दुर्बल, चतुर और सरल, विवेकी और पामर,
और मूर्ख—सब प्रकारके मनुष्य होते हैं । इन
मान ही समझनेकी भूल मुख्यतः फ्रांसकी क्रान्तिके
रोपमें चालू की गयी । ईश्वरको उड़ाकर उसके
'रीज़न' (बुद्धिवाद) की प्रतिमा स्थापित की
ईश्वरके साथ ईश्वरदत्त शास्त्र भी गये । शास्त्र-

कैसे जाना जाय ? जाना जाय मनुष्योंको पूछकर । मनु
यदि अलग-अलग हों तो ?—उनका बहुमत
माना जाय । प्रत्येक मतका मूल्य कैसे आँका जाय
मतोंको समान मूल्यका समझकर । क्योंकि मूल्य
जा नहीं सकता । इस प्रकार सब मनुष्योंको समान
बात आयी । पीछे व्यवहारमें और विचारमें यह
अव्यवहार्य और अशक्य जँचने लगा । साम्य
आर्थिक समानतावाली माँगमें संस्कृतिके निम्नस्तर
अमेरिकाकी रेड इंडियन-जैसी जातिके) लोगों
एक-सा बर्ताव करना कठिन हो गया । अखिल
यूरोपीय चक्र डगमगाने लगा । तब समानताके
शब्दछल होने लगा । किसीने कहा कि राजनी
देनेभरकी यह समानता है, किसीने कहा कि
संपत्तिकी समता है और किसीने कहा कि विका
अवकाशकी समता है । और भी अनेकानेक
इसपर लदने लगे । पर जिसके मूलमें ही नग्न
उसका कहाँ ठिकाना लगेगा ? अभीतक कोई समा
हुआ, मामला उलझता ही जा रहा है । त्रि
जगत्में एक-एक वस्तु और एक-एक व्यक्तिकी
विशेष सत्ता है और भिन्नता ही उनका प्रधान
इन भेदोंमेंसे होकर परमात्मतत्त्वमें अभेद साधन
यही आर्य-संस्कृतिके संस्कारी मानवकी साध
श्रद्धामयी उपासना है ।

जीव भगवान्की ओर गतिमान् हों
प्रगति, धर्म तथा अधिकारयुक्त सदाचार कहा
और यदि विरुद्ध दिशामें गतिमान् हों
पतन अथवा दुराचार कहा जायगा । प्रत्येक
स्थिति अन्य प्रत्येक जीवसे पृथक् है । इसी
लिये जो आचार प्रगति या उन्नतिका साध
है, वही दूसरेके लिये पतनरूप हो सकता है
गरीब मनुष्य यदि लखपती हो जाय तो यह (
उन्नति है । पर कोई करोड़पती यदि लखपती
तो यह अवनति हुई । ब्राह्मण-समाज सत्त्वप्रधान
समाज सत्त्वरजःप्रधान, वैश्य-समाज रजस्तमःप्रध
शूद्र-समाज तमःप्रधान होता है । अतः ब्राह्मण
जो अकार्य है, क्षत्रियके लिये वह कार्य हो स
उदाहरणार्थ- ब्राह्मण क्षत्रि ...

ग्र हैं। इन समस्त धर्म-कर्म और वृत्तियोंके
विभाग और व्यवस्था आर्योंके आप्त ग्रन्थोंमें की
युगोंके बीत जानेपर भी वह व्यवस्था कितने ही
अभीतक बनी हुई है और इसीसे हमारे चारों
समाज और समस्त आर्य आचार-विचारके लोग
ज्वलन्त और चिरजीवी बने हुए हैं। इसीसे इस
अवतीर्ण महापुरुषोंकी इतनी अबाधित और
रम्परा है और इसका इतिहास इतना उत्कृष्ट और
रहा है। यह किसीका नाश नहीं चाहती।
र्षोंके बाद आज भी इसकी शक्ति प्रखर और
। इस प्रकार अधिकार-भेद और अधिकार-भेदके
धर्म-भेद आर्य-संस्कृतिका एक प्रधान सिद्धान्त
। इसे ध्यानमें रखनेसे आर्य-संस्कृतिको समझना
ल हो जाता है।

र्य-संस्कृतिके जीवनव्यापारकी प्रधान भावना यज्ञ
भगवान्‌का यजन है। प्रत्येक जीवन-कार्य इसी
करना होता है। नित्यके जीवनमें अग्निहोत्रादि
ञ्चमहायज्ञोंके द्वारा इसीका विधान किया गया है।
विश्वके कल्याणार्थ ये यज्ञ किये जाते हैं। इसीलिये
हायज्ञ' कहते हैं। इन महायज्ञोंको करके शेष
ा भाग भक्षण करनेवाले सब पापोंसे मुक्त हो जाते
ण्य-पापकी भावना सभी धर्मपन्थोंमें है। जो कर्म
के अधिक समीप ले जाय, वह पुण्य और उससे
ख करा दे, वही पाप है। इस अधिकारभेद और
ाके समान ही हिंदू-संस्कृतिका एक परम आवश्यक
है—अनासक्ति अथवा निष्कामता। जो-जो कर्म
ाय, वह परमेश्वर-प्रीत्यर्थ ही हो; उसमें कोई
या कामना न हो। इससे कर्मकी भूमिका बहुत
ो जाती है और उसकी सिद्धि भी अपूर्व होती है।
ीजभूत सिद्धान्त मनुष्यको निवृत्तिकी ओर ले जाना
त्ति जीवमात्रमें स्वाभाविक होती है। पर निवृत्तिसे
न्नति और कल्याणको प्राप्त होता है। संयम आदिसे
बढ़ती हैं। व्यवहारमें तथा कवित्व और कलाके
भी यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। इस प्रकार निवृत्तिकी
ानेके लिये वाणी, मन, प्राण, इन्द्रियसमूह और
। संयम आर्य-संस्कृतिमें विशेष रूपसे है। योगकी

होता है। भेद केवल उनके रूप और मात्राका रह

इस प्रकारके सिद्धान्तोंका विविध संस्कृतियों
होनेपर भी उनकी क्रियासिद्धिमें दीखनेवाले भेदके
कारण दो हैं—कुछ तो इसमें प्रमाणभूत कारण
और उसकी आज्ञा' को अर्थात् आप्त वाक्यको म
दूसरे कुछ मनुष्य बुद्धिके तर्कको मानते हैं। ईश्वर-वाक
व्यवधानरहित सर्वज्ञकी ओरसे आनेके कारण विशेष श्रद्धे
अपरिवर्तनीय होता है, वहाँ मानव-बुद्धिजन्य मन्तव्य
परिणामिता, निर्बलता और प्रचुर भिन्नताके कार
श्रद्धेय और परिवर्तनीय होता है।

पवित्रताके सम्बन्धमें बाह्य शौच, आन्तर शौच
शौच और अर्थ-शौच इत्यादि रूपसे बहुत ही गम्भीर
आर्य-संस्कृतिमें सम्पादित हुई है। वह इतनी
है कि उसीसे भारतवर्ष सतीत्वमें प्रामाणिकता औ
चारमें संसारका एक आदर्श बना हुआ था और
कितने ही अंशोंमें संसारमें सबसे अधिक सात्त्विक
परिचय दे रहा है।

हमारी इस संस्कृतिमें गुणोंके तारतम्यसे सम
वर्णोंमें विभक्त है। लाखों वर्षोंसे यह समाज-व्यव
ही चली आयी है—यह बात पुराणेतिहाससे ज्ञात ह
इस व्यवस्थामें विकृति होनेपर तदनुरूप विविध
बन गयीं। कुछ संकर जातियाँ भी उत्पन्न हुई
कारोंने इनके भी धर्म और वृत्तियाँ निर्णीत की हैं
संकर बहुत बड़ा दोष माना गया है। कारण,
गड़बड़से फिर अव्यवस्थाका ही विस्तार आगे हो
है। पर संकर जातियाँ यदि अपने-अपने धर्म
अपना-अपना धंधा करती रहें तो वह किसी प्रक
नहीं है। भोजनके समय यदि चाण्डाल अ
आये तो उसका भोजनादिसे सत्कार ही करनेको
कहा है।

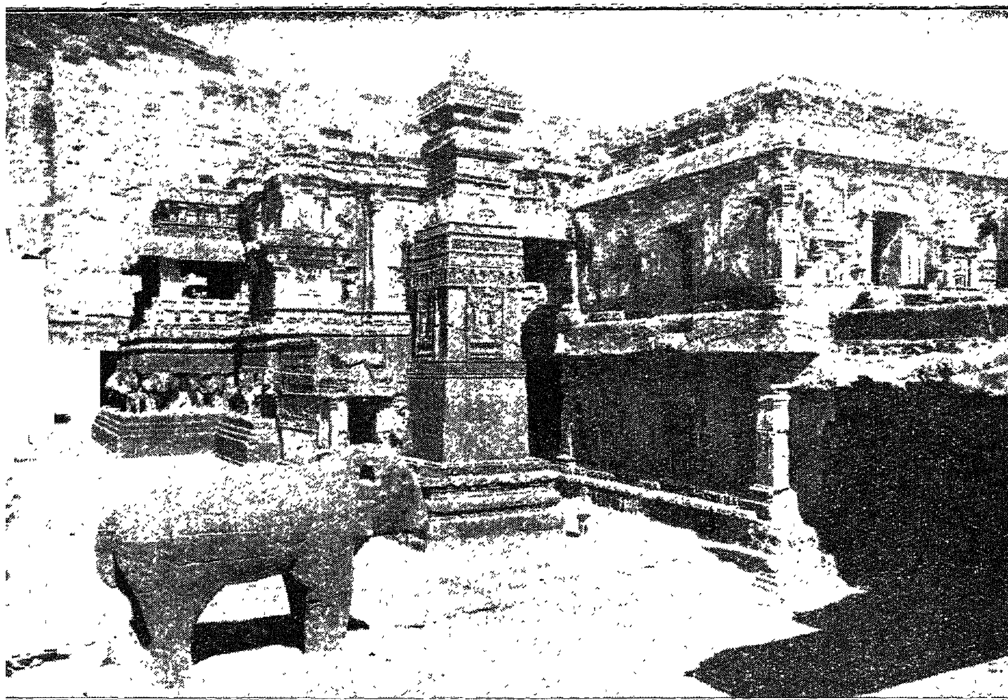
इस संस्कृतिमें बीज-शुद्धिका विचार विशे
अपने-अपने वर्णमें विवाह करना नितान्त आवश्
समान संस्कार और समान आचार-विचारवालोंमें ह
सर्वत्र इष्ट माना जाता है। बीज-शौचके महत्त्वसे
संस्कृतिमें स्त्रियोंके सतीत्वका इतना महत्त्व है, जि
गाते हमारे शास्त्रकार और साहित्यकार नहीं

त्वके आदर्शके कारण आज भी यूरोपके कौटुम्बिक हमारे यहाँका कौटुम्बिक जीवन उच्चतर और सुखद है। आजकल एक नया तत्त्वज्ञान यह चला ंयमकी आवश्यकता ही क्या है, स्वच्छन्दता ही क और सुखकारक है।' इस नयी फिलॉसफीकी धिक न करके इतना ही कहना अलं होगा कि ख गतिवाली नरप्रधान या नारीप्रधान संस्कृतियों-लल-जलूल बातें आर्य-संस्कृतिको स्वीकार नहीं हैं।

जकल सर्वराष्ट्रिय जगत्में जनसमूहके अंदर क जागरण उत्पन्न करनेकी एक हवा चली है। ई जिस प्रकार एक दूसरेकी निन्दा करके एक नीचा दिखानेका यत्न करते हैं, उसी प्रकार धर्म-पन्थ एक दूसरेकी निन्दा करके मानो सभी श्रद्धा ही उठा देनेका यत्न करते हैं। जगत्के क नेता सर्वराष्ट्रिय मण्डल स्थापित करने चलते हैं; राग-द्वेष ही बढ़ाने और अपना-अपना स्वार्थ ही यत्न होता है। विज्ञानके द्वारा तो ऐक्यके बदले और विनाशके साधन ही बढ़ रहे हैं। कारण यह वज्ञान अनधिकारियों और धनलोलुपोंके हाथमें पड़। श्रुतिके समान विज्ञान भी मानो यही पुकार रहा है अनधिकारियोंके हाथोंमें मत सौंपो, क्योंकि वे मुझे लेंगे। अब संस्कृतिपर इन लोगोंकी दृष्टि पड़ी है। ुरानी संस्कृतिसे इनका काम नहीं चलेगा। सब गोंको मिलाकर उस खिचड़ीसे ये एक नयी बनावटी तैयार करेंगे। विभिन्न संस्कृतियोंके समान अंश लेनेके इस प्रयत्नका यह फल होगा कि कुछ सामान्य हाथमें आयेंगे। ये भी धर्मपर प्रतिष्ठित न होकर खोजपर निर्भर रहेंगे। मानव-जीवनके बाह्य के लिये ये उपयोगी होंगे। आन्तर जीवनको परिप्लावित ली कोई बात इनमें न होगी। इसी प्रकार भारतीय की भी एक नयी कल्पनाकी हवा बह रही है। धर्मके र बन्धुत्वका भाव संसारमें प्रतिष्ठित हो सकता है। व्यापक संभावनाको भुलाकर स्थूल दैशिक भावनाके ऊपर ीन संस्कृति कल्पित हो रही है, उससे सत्यका तिरोधान क नये पाखण्डका उपस्थान बन सकता है। सब मत-ो संस्कृतियोंमेंसे व्यापक अंशोंको लेकर एक नवीन

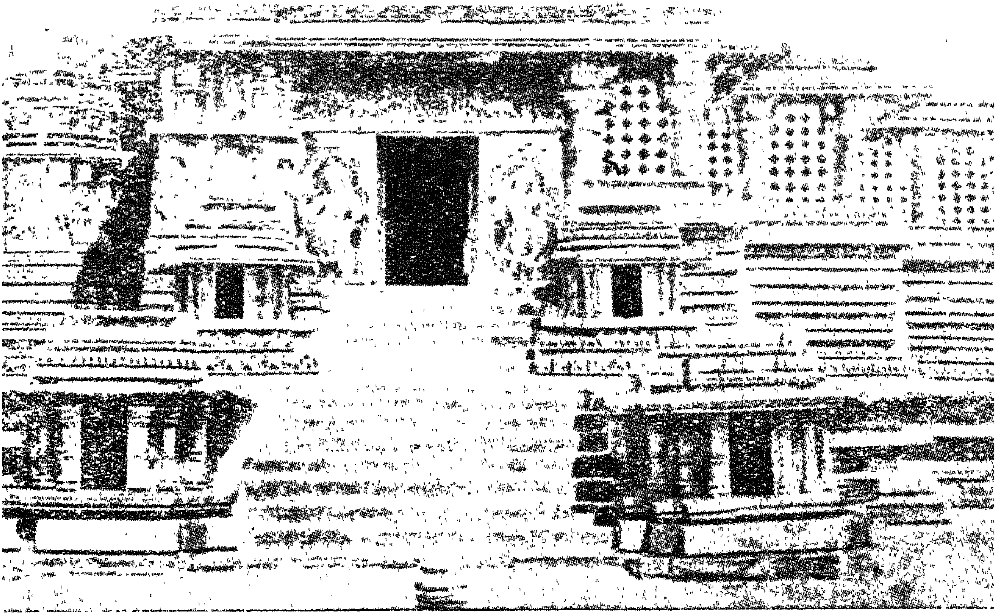
सच पूछिये तो जिस संस्कृतिको आर्योंने जगत्के अक्ष भंडारके समान बचा रक्खा है, उस आद्य मानव-संर साथ अन्य शाखा-संस्कृतियोंकी कोई तुलना ही नहीं हो स कारण, यह आद्य संस्कृति ईश्वरोदित है, सर्वाङ्गसम सनातन और चिरजीवी है—इतिहास इसकी सर्वोत्त साक्षी है। इसे हिंदू या हिंदी संस्कृति कहना भी इसके स्वरूपको लघु करना है। वस्तुतः इसे 'आद्य मानव-सं ही कहना चाहिये। इसके विधायक शास्त्र हैं, अर्थनियामक व्याकरणादि ग्रन्थ हैं। इसकी कलाअं अपर विद्याओंके आधार ग्रन्थ हैं। इसके जीते-जागते भारतीय समाज और भारतके पूज्य साधु-महात्मा संस्कृतिके सर्वोत्कृष्ट होनेमें सन्देह ही क्या है। पर और धर्मपरिपन्थी शिक्षाने हमारे कितने ही भाइयोंकी इसपरसे श्रद्धा हटा दी है। इसी विच्छिन्न यह परिणाम है कि हमारी धारासभाओंमें भी संस्कृतिके विघातक विधान और कानूनोंके मसवि होते हैं और उनको स्वीकार किया जाता है। यह प देशके लिये महान् हानिकारक है। देशके हि उन्नतिका वास्तविक उपाय तो यही है कि इस स विशुद्ध आर्यरूपमें सबकी श्रद्धा जाग्रत् की जाय इस धर्ममूलक संस्कृतिके नियम बहुत विस्तृत औ हैं, तथापि इसके प्रधान सिद्धान्त और प्रेरणातत्त्व नि उन्हींके आधारपर इसे अखिल मानव-जातिकी सं वह पद (जो कि वास्तवमें इसका पद है) प्रदान प्रयत्न किया जा सकता है। और यह प्रयत्न जितने सफल होगा, उतने ही अंशोंमें वह संसारको सुख, शां समृद्धि प्राप्त करानेमें तथा परम कल्याणकी सहायक होगा। भारतवर्षसे अखिल जगत्की मान जो आशा रखती आयी है, वह इस प्रकार आद्य संस्कृतिके पुनरुत्थानसे ही पूर्ण होगा।

कुछ लोग धर्मको 'जनताके लिये अफीम' उसकी निन्दा करते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि केन्द्रशक्तिको छोड़नेके बाद ही—फ्रान्सकी महाक्रां ढाई सौ वर्षके भीतर ही—ऐसा नास्तिकवाद फैल कुछ कहनेकी बात नहीं और इसका परिणाम यह हु

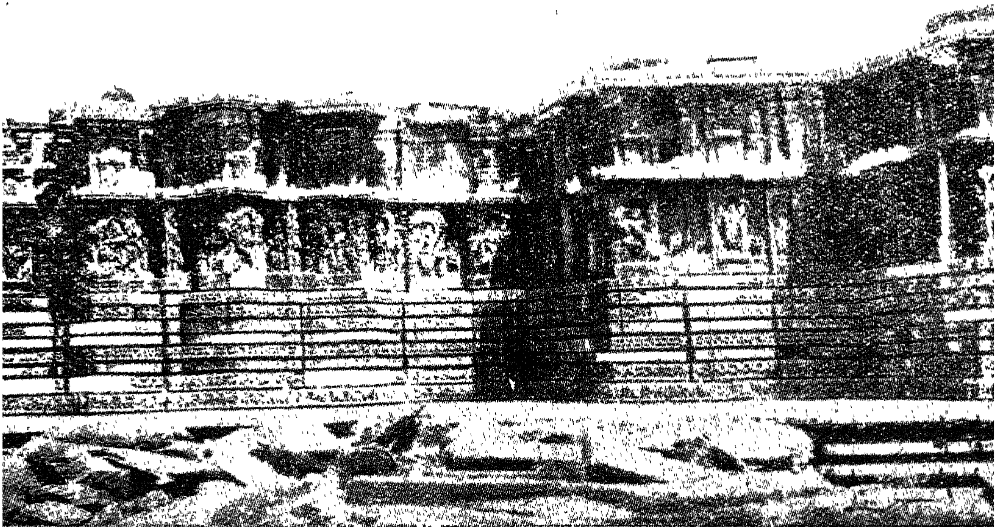


इलोरामें चट्टान काटकर बनाया हुआ कैलास-मन्दिर

अङ्कुर-वट, कम्बुज



हौसलेश्वर-मन्दिर, हलेबिद



केदारेश्वर-मन्दिर, दक्षिण भाग, हलेबिद

नहीं मिलता। इस दुःस्थितिसे संसारका उद्धार स्कृतिकी आमूल साधनाके द्वारा ही हो सकता है।

मूल-सिद्धान्त

विविध कार्य-क्षेत्रोंमें अपनी इस संस्कृतिकी कैसी है, उसे तथा उसके मूल-तत्त्वोंको हमलोग देखें। र इस संस्कृतिकी मूल सिद्धान्त व्यवस्था, समाज-सदाचार-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, अर्थनीति-व्यवस्था इत्यकला-व्यवस्थाके प्रेरक सूत्र हमें मिलेंगे। मौलिक कका प्रेरक सूत्र हमें भगवती श्रुतिके महावाक्यमें य भगवद्वचनोंमें इस प्रकार मिलता है—

खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।

(श्रुतिः)

सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

(शिवः)

दं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
रं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम्॥

(श्रीकृष्णः भागवते ११।७।७)

वान् शंकर भगवती पार्वतीसे कहते हैं कि 'ब्रह्म जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है—कोई अपर ीं।' भगवान् श्रीकृष्ण भी उद्धवको ज्ञानदान : कहते हैं कि 'जो कुछ मनसे, वाणीसे, चक्षुसे णादिसे ग्रहण किया जा सकता है, वह सब नश्वर मयामय, मनोमय जानो।' भगवती श्रुति भी कि 'यह सब कुछ ब्रह्म है, नाना पदार्थरूपसे : कुछ भी नहीं है।' यह अद्वैत-वेदान्तका सिद्धान्त १से समग्र संसारप्रपञ्चके दृष्ट-फल, अफल और यत्न व्यर्थ हो जाते हैं और स्वप्नके पदार्थोंको सत्य ी सारी फिलॉसफी जागनेके साथ ही झूठी हो सब भ्रम समाप्त हो जाते हैं। कारण, इस जगत्का : है। इस तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् संसारमें ा, द्वेष, अभिनिवेश और आग्रह नहीं रखते—अवधूत-वृत्तिसे रहते हुए परम शान्ति भोग करते ज्ञान ऐसा नहीं है, जो सबको प्राप्त हो सके। परंतु ान् समाज-नेताओंको इसकी यथार्थ उपलब्धि हो जाय । अखिल समाजको एक दिव्य प्रकाश प्राप्त होता उससे जनताके काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार ख-दुःख तथा राग-द्वेषादि द्वन्द्व भी बहुत शिथिल हो पड़नेसे पहले भारतीय समाजकी ऐसी ही स्थिति कहीं कुछ अंशोंमें आज भी है। यह बात समझने है कि अहंता, ममता और भेद-बुद्धिकी जितनी वृ उतनी ही आधि-व्याधि और उपाधियाँ बढ़ेंगी। यह निश्चय हो जाता है कि 'यह सारा दृश्यमा मुझसे भिन्न नहीं है, मैं एक ही इन सब रूपोंमें। तब इसके लिये शोक और मोह क्या? यह एक म है, एक महान् तत्त्वचिन्तन इसके पीछे है। पर इ मात्र या आभासमात्र भी यदि समाजमें व्यापक हो अभी जो वैर-वैमनस्य, राग-द्वेष, दुष्कृति-दुष्टता और आदि घोर दुर्भाव बढ़ते जा रहे हैं, उनका बहुत कु हो जाय। जगत् त्रिगुणात्मक है, अतः थोड़ी-बहुत तो कुटुम्बसे लेकर राष्ट्रतक सदा चलती ही रहे आधुनिक मिथ्यावादसे मानव-जाति इस समय जिस दुःस्थितिमें जा गिरी है, उससे तो इसका इस उपाय हो सकता है। इस तत्त्वचिन्तनका महान् सत्य कुत ल्पानेवाला नहीं है। सामान्य रीतिसे इसका समझना है। गुरु और शास्त्रसे ही इसे पाना सुकर होता है यह सब तर्कोंके ऊपर अजेय होकर बैठता है। वाक्यकी असाधारण कल्याणकारिणी शक्तिसे वेद-शास्त्र होते और आर्य-संस्कृति जगदुद्धारक हो जाती है। नाना परितापोंका यह अमोघ शमनोपायरूप महावाक संस्कृतिवालोंका ही नहीं, सब संस्कृतियोंके विद्वानों वाक्य बन सकता है। इसका रहस्य समझानेवाले ग्रन्थोंका भंडार भारतकी सभी भाषाओंमें भरा हुआ है

समाज-व्यवस्था

अब आर्य-संस्कृतिकी समाज-व्यवस्थामें कौन-स तत्त्व, कौन-सी प्रेरक शक्ति है—यह देखना चाहिये रथके मुख्यतः दो पहिये हैं—नर और नारी। नर और नारी भोग्य है। नर रक्षक और पराक्रमशील रक्षित और पातिव्रत्यशील है। दोनों पहिये एक ह चलें, इसके लिये एकका दूसरेके अधीन रहना आवश् पुरुष सदाचारका सेवन करे और स्त्री सतीत्वका अ स्त्री और पुरुष परस्पर स्पर्धा करनेवाले नहीं; परस्पर और सहायक हैं। दोनों समान भी नहीं हैं; कारण लक्षण समान नहीं हैं। स्त्री और पुरुष दोनोंमेंसे कोई नहीं है। कारण, काल-कर्म-गुण आदिके अधीन

ास्त्रानुकूल—धर्म अथवा परम आमोदित सदाचारके —चलानेका प्रयत्न कर्तव्य है। इस सारी जीवनचर्या त्र भी तत्त्वदर्शनके सिद्धान्तमेंसे ही फलित होता ा जगत्में अल्पातिअल्प प्रवृत्ति ही भली है—

यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः।
धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः॥
(श्रीमद्भा० ११।२१।१८)

स-जिससे मनुष्य निवृत्त होता है, उस-उससे वह मुक्त है। शोक, मोह और भयको मिटानेवाला यही कल्याणरूप धर्म ।' इसीलिये कामना, इच्छा, तनी कम हो, इनका नियमन जितना अधिक हो, अच्छा यह संकोच और नियमन योग्यतापुरस्सर हिये, किसी तरह कूद-फाँद करने-जैसा न हो। पूर्ण व्यवस्थाके लिये अनेकविध विशेष धर्म हैं। हम- हें सामान्य धर्म कहते हैं, अर्थात् सत्य, अहिंसा, व्रता—ये सब भी किसी-किसी अंशमें और संयोगवश र्म माने गये हैं और अधिकार-भेदसे उनके पालनमें यका विधान किया गया है। इनके साथ वर्ण- लगी हुई है। वर्ण जन्मसे है या गुण-कर्मसे, इस अधिक विस्तार न करके इतना ही कहना पर्याप्त वर्णकी यथार्थ सिद्धि इन तीनोंसे है, केवल जन्मसे ल गुणसे नहीं, केवल कर्मसे भी नहीं। ये वर्ण समाजके मस्तक, हस्त, ऊरु और पादस्थानीय हैं लिये इनके स्वभाव, स्थान और कर्म भी इसी विवेकके भिन्न-भिन्न हैं। सभी वर्ण अपने-अपने कर्माचरणके । सिद्धि लाभ करते हैं। वर्णव्यवस्थासे जिस प्रकार वस्थित किया गया है, उसी प्रकार आश्रम-व्यवस्थाके ाधिकार व्यक्ति-जीवनको उच्चतर बनाते चलनेकी ी गयी है। युगके प्रभावसे वर्ण और आश्रम दोनों थाओंमें बहुत-सी विशृङ्खलता आ गयी है। तथापि ाजोंकी तुलनामें हमारा यह आर्य जनसमाज आज व्यवस्थित, सुग्रथित और अधिकांशतः सदाचारी भी बना रह सका है। यूरोपादि देशोंकी स्थिति देखनेसे ही प्रकट हो जाता है। समाजके भिन्न-भिन्न वर्ण के अपने-अपने सहज कर्म और अधिकारमें निष्ठावान् को गुण कहते हैं और इसके विपर्ययको दोष। सब

तेल, रेड़ीका तेल, बेलेका तेल, केरासीन तेल—सभी अतः समान हैं—यह कहकर सब तेल मिला दिये क्या परिणाम होगा? ऐसा तेल किस काम आये एकमें मिला हुआ तेल न खानेमें काम आयेगा न न सिरपर लगानेमें और न लालटेन जलानेमें ही। ते सब तेल समान होनेपर भी उनके काम अलग-अ अभिप्राय यह कि योग्यताके अनुसार वर्ग-रचना—य विवेकका तथा संसारकी व्यवस्थाका एक प्रसिद्ध, और अनुभव-सिद्ध नियम है। गाय, घोड़े, कुत्ते आदि प आम, अमरूद, केले आदि फलोंमें और गेहूँ, चाव धान्योंमें—सभीमें अनेक जातियाँ होती हैं। ए अनेकों जातियाँ हैं। इन भेदोंको समझने और अनुसार उनकी योजना करनेमें मानव-बुद्धिका वि पड़ता है और उन सबको एक साथ मिला देनें अविवेकका ही प्रदर्शन होता है।

इस विषयमें एक खास बात ध्यानमें रखनेयोग कि प्रत्येक देशकी जनतामें किसी-न-किसी प्रकारका व तो होता ही है। कहीं धनके आधारपर होता है, क शक्तिके आधारपर, कहीं काम-धंधोंके आधारपर, कहं आधारपर, कहीं किसी आधारपर और कहीं कि आधारपर। यही वर्गीकरण यदि सदाचारके आदर्शके पर धर्ममूलक जन्मसे ही हुआ करे तो यह व्यवस्था होती है। क्योंकि जन्मको ही कर्म या धर्मका मूल मा ईर्ष्या-असन्तोषके लिये कोई अवकाश नहीं रहता अपने समाजमें सभी अग्रसर होकर अपनी महत्त्वाकाङ्क्ष कर सकते हैं और सम्पूर्ण जनताको गुणोंके विशेष आ विकासके लिये असाधारण लाभ होते हैं। इस प्रका वर्ण आध्यात्मिक धार्मिकताका, क्षत्रिय दयायुक्त श वैश्य परोपकारयुक्त द्रव्यार्जन-कुशलताका और शूद्र साथ सेवाशक्तिका महान् विकास कर सकते हैं। अन्य किसी प्रकारके वर्गीकरणसे यह कार्य किसीने क दिखाया है।

सदाचार-व्यवस्था

अब हमलोग आर्य-संस्कृतिकी सदाचार-व्यवस्था सदाचारके सम्बन्धमें सभी धार्मिक संस्कृतियोंका य नियम है कि उनके धर्मशास्त्रने जिसे सदाचार कहा

सरके अनुरूप विकल्प माना जाय । यही नियम आर्य-
ो सदाचार-व्यवस्थामें भी है धर्मविहीन नींवपर
कृतियोंमें कहीं तो लाभकी दृष्टिसे, कहीं स्वच्छन्दताके
कहीं समाजके मतके आधारपर और कहीं लोकहित
राष्ट्रहितको प्रधानता देकर सदाचारका निर्णय किया
फिर, ऐतिहासिक पद्धतिको माननेवाले कुछ विद्वान्
र देशों और समयोंमें सदाचारके भिन्न-भिन्न मान
दाचारको एक अनिश्चित और काल्पनिक वस्तु
। इन सारी पद्धतियोंमें सदाचार-सम्बन्धिनी नीति
याङ्कनकी कोई निश्चितता नहीं रहती और ऐसी
सदाचार-नीतिका प्रभाव भी कम ही पड़ता है ।
सबके साथ स्वतन्त्रताकी लहर भी चलती है। अतएव
द्धतियोंमें स्वच्छन्दताका ही प्राधान्य रह जाता है ।
री स्वच्छता, नियमितता, उत्साह, साहस, अध्यवसाय,
लबंदी आदि उभयपदी गुणोंपर ही सारा भार
ता है । यूरोपमें १७८९ ई० में फ्रांसकी महाक्रान्ति
बमे इस धर्महीन अर्थात् तर्कजनित सदाचारकी
युगारम्भ माना जा सकता है । तबसे इन डेढ़ सौ
स कल्पनासे मानव-जातिकी क्या दशा हो गयी,
तहास रक्ताक्षरोंमें लिखा हुआ है । हालमें नैतिक
(मॉरल रिआर्मामेंट) की बात चली है । इसके
तिक उत्थानकी बात सोची जा रही है और उसके
ाष्ट्रिय समितियाँ स्थापित की गयी हैं । पर मूलके बिना
नहीं उगता, वैसे ही धर्मके आधार बिना काल्पनिक
नीतिका उगना—जीवनपर यथार्थ असर होना
है । सच्ची बात यह है कि धर्म सांसारिक जीवनसे
बनेकी चीज नहीं है । धर्म ही संसार-जीवनके
सदाचारका मार्ग है । यहीं ईश्वरोदित और मनः-
भेद है । ईश्वरोदित कोई चीज ही नहीं है, यह नास्तिक
; पर उससे वास्तविक स्थिति तो बदल नहीं सकती ।
तव्योंका मूल्याङ्कन काल और प्रकृति दोनों करते
हैं । सन्मार्गका पुरस्कार सुख और शान्ति और
का दण्ड, दुःख और विनाश—यह विधान
ल ही रहा है । पुराणोंमें सदाचाररूपी वृक्षका मूल
तलाया गया है । धनको उसकी शाखा, कामना-
पुण्य और मोक्षको उसका फल कहा गया है । समस्त

ईश्वरकी ओर ले जानेवाली प्रवृत्ति ही सदाचार है
प्रवृत्ति उसके विमुख है, वही दुराचार है । कोल्हू
भाँति ईश्वरसे दूर रहते हुए संसारचक्रमें फिरते रहने
को व्यवहाराचार कहा जा सकता है । सदाचारकी
दैवी और दुराचारकी सम्पत्तिको आसुरी सम्प
गया है । दैवीसे मोक्ष और आसुरीसे बन्धन होता है
सम्पत्तिसे आरम्भमें चाहे सुख या स्वतन्त्रता दिखायी
उसका परिणाम तो विषरूप ही होता है ।
स्वतन्त्रताका इतना गुणगान होता है, उसके लि
प्रयत्न होते हैं; पर 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दव
अनुसार समाजकी परतन्त्रताकी बेड़ियाँ तो बढ़ती ही जा
काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, दुःख, वैर और अशा
वृद्धि हो रही है । इससे यह समझना चाहिये कि धर्मरहित
और स्वच्छन्दतामूलक स्वतन्त्रतासे मानव-जातिका
हित नहीं हो सकता । स्वेच्छाचार दुःख और अ
कारण है, धर्ममूलक सदाचार और संयम ही सुख
महान् साधन है ।

राज्य व्यवस्था

अब राज्यप्रकरणमें आर्य-संस्कृतिके सर्वमान्
सामान्य और प्रचलित आदर्शोंको देखें । इस विषयके
तत्त्व-सम्बन्धी दो-तीन शास्त्र-वचन नीचे दिये जाते हैं

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भया
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभु
(मनु०

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालन
शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानि
(श्रीमद्भा० १ । १७

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे सम
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा
(म

इन श्लोकोंमें राज्यकी उत्पत्ति, राजाका कर
राजाका नैतिक प्रभाव—इन तीनों ही बातोंपर
डाला गया है । सृष्टिके आरम्भकालमें जब सभ
अपने-अपने कर्तव्योंका पालन करते थे, तब
आवश्यकता नहीं थी । पर पीछे जब चारों ओर

रके रहनेवालोंकी रक्षा करे और दूसरे जो आपत्काल-
उलटे रास्तेपर चलते हों, उन्हें शास्त्रानुसार दण्ड
जा धार्मिक हो तो प्रजा धर्मिष्ठ होती है; राजा यदि
तो प्रजा पापी होती है। प्रजा राजाके पीछे-पीछे
। 'यथा राजा तथा प्रजाः' । इस प्रकार प्रजाको
ान्ति और समृद्धि देनेवाली धर्मव्यवस्थाका रक्षक
ता है; इसीलिये उसे अनेक देवोंका निवासरूप
य कहा गया है। इस प्रकार आर्य-संस्कृतिके
में धर्मका और श्रेष्ठ राजाका प्राधान्य होनेसे वह
र्मराज्य' अथवा 'रामराज्य'के नामसे परिचित होता
र्मिक संस्कृतिकी रक्षा करनेके हेतु एक व्यक्तिका—
राजाका तथा आनुवंशिक परम्पराका विधान करनेमें
हान् तत्त्व समाविष्ट हैं। बहुमतानुसरणसे आचार,
ौर चरित्रके सम्बन्धमें जो अनर्थ होते हैं, राजतन्त्र-
निषेध हो जाता है। प्रजा स्वार्थ-साधकोंके हाथोंमें
ती और करादिके द्वारा प्रजाका कर्षण या शोषण
म्भावना कम होती है। राजाको उसके कर्तव्यों
ादर्शोंकी शिक्षा देनेकी अनुकूलता रहती है।
ी राजाओंके स्वैराचारोंसे या बदलती हुई प्रजाके
ुए मतोंसे मानवजातिके ज्ञान, चरित्र और उत्तम
नष्ट न हों—इसकी भी योजना इसमें है। इस
राजा भी धार्मिक संस्कृतिको तोड़-फोड़ नहीं
ा बदल सकता है। कानून भी वे ही चलते हैं,
ास्त्रके आधारपर बने हुए होते हैं। राजा सुयोग्य
सलाहसे राज्य करता है। प्रजाका पुत्रवत् पालन
प्रजाकी फरियाद सुनता है, समय-समयपर उसकी
ो नियमितरूपसे सुनता है। भूमिपर षष्ठांश और
दशांशसे अधिक कर नहीं लेता। प्रजाकी अन्य
जाओं और सत्ताधारियोंसे रक्षा करता है। प्रजाका
ीं करता—उसे चूसता नहीं। प्रजा स्वधर्मनिष्ठ
। मनचाही वर्षा होती है। वनस्पतियाँ उत्तम
ूलती-फलती हैं। राज्य धन-धान्यसमृद्ध होता है,
ख और शान्ति विराजती है। राजाकी राज्य-
यही प्रमाण है। वह आस्तिक-नास्तिक सभी
ों और विचारवादियोंकी यथान्याय रक्षा करता
ईश्वरोदित मानव-संस्कृतिमें किसीसे द्वेष रखने या
ष्ट कर डालनेकी प्रवृत्ति वर्जित है। राज्यमें विविध

राज्यको धर्महीन, जडवादी, नास्तिक या देहात्म
देना आर्य-संस्कृतिको स्वीकार नहीं है। इस संस्कृ
प्रधान अभिमान या राष्ट्रियताका भी प्राधान्य
कारण, इससे अन्य आदर्शोंको दबाना पड़ता है।
नहीं, उससे अनेक जातियोंके ईर्ष्या-द्वेष, दुरा
दुराचरण राज्यको ले डूबते हैं। राष्ट्रियताके
थॉर्स्टीन वेब्लेन (Thorstein Veblen) का
स्मरण रखने योग्य है—Born in iniqui
conceived in sin, the spirit of natic
has never ceased to hand human
tions to the service of dissensic
distress. (अन्यायमें जन्मा और पापसे प्र
राष्ट्रियताका भूत मानव-संस्थाओंको कलह और क
सेवामें लगाये रखता है, उससे कभी विरत नहीं
आर्य-संस्कृतिमें राष्ट्रकी भी महत्ता है, पर वह है
नाते। देशको आगे बढ़ानेके भ्रममें संस्कृतिकी
एकता और विशुद्धिको नष्ट कर देनेकी उसमें
नहीं है।

आधुनिक लोकतन्त्रमें, जिसमें एक बड़े देशप
वोटोंसे चुने हुए प्रतिनिधियोंका बहुमत राज्य
बहुत-से दोष प्रसिद्ध हैं। एक बड़ा दोष यह है कि
द्वारा अल्पमतको कुचल दिया जाता है। जिम्मे
जानेके कारण, प्रजासे किस प्रकार कर वसूल करन
व्यय करना और साथ ही उक्त कार्यके दोषोंसे ि
बच निकलना—इन सबकी एक मनोहर कला ब
है। लोकतन्त्र एक शराब-जैसा व्यसन है। ज्यों-
जाता है, त्यों-ही-त्यों उसका नशा चढ़ता जाता
इच्छा बढ़ती जाती है। साथ ही उसकी मदोन्म
बढ़ती जाती है। फिर, जैसे शराब पीनेवालेका
बढ़ जानेपर कोई बलवान् परिचित उसके हाथ-का
कर रास्तेपर लाता है, वैसे ही वह प्रजा डिक
कुलसत्ताधीशके हाथोंतले आ जाती है। इसमें
हानि यह है कि जनता उच्च आदर्शोंसे गिरकर र
गंदे कीचड़में अधिक-से-अधिक गहराईमें धँसती
आर्य-संस्कृतिकी राज्य-पद्धतिमें लोकमतका अनादर
पर वस्तुतः उसमें लोगोंके अपने जीवनके लिये स्
स्वीकार किये हुए धर्म-सिद्धान्तोंके अनुसार लोक

मान लेना भूल है। इच्छाओंकी विविधता महत्त्वकी
। भारी-भारी कर लगानेवाले, करोड़ोंका ऋण लेने-
गैर प्रजानाशक महायुद्धोंका निर्माण करनेवाले
त्रमें समस्त प्रजाके इच्छानुसार कार्य हो रहा है—
ानना ठीक नहीं है। धर्महीन राजनीति लोकतन्त्रका
श्रय लेती है और लोकतन्त्रको सुधारनेके क्रमसे
ाकत्व या डिक्टेटरशिपकी अधीनतामें आ जाती है।
कृतिके राज्यतन्त्रमें सदाचारके प्रतीकके तौरपर
।, सत्यके आधारके तौरपर वेदोंका और जीवन-
भावनाके तौरपर यज्ञका प्राधान्य है। धर्म इसका
है और राजा इसका रक्तशोधक और रक्तवाहक
। इसकी व्यवस्था संख्याके आधारपर नहीं, प्रत्युत
के आधारपर प्रतिष्ठित है और योगी महात्मा समय-
इसका नियमन करते हैं। जनताके अस्थायी मतके
र नहीं, प्रत्युत ध्रुवनीतिके सिद्धान्तके आधारपर
। चलता है और यह संस्कृतिकी रक्षा कर जनताकी
ता है।

अर्थ-व्यवस्था

आर्य-संस्कृतिकी अर्थ-व्यवस्था और आर्थिक
र भी एक दृष्टि डालें। यह व्यवस्था प्रेयस् और
ोनोंकी साधक हो, इस बातका पूरा ध्यान रक्खा
। इस संस्कृतिकी भावना यह है कि धर्म ही सच्चा
। लोकोक्ति है कि 'पैसा तो हाथका मैल है।'
दर्शके अनुसार धनवान् अपना धन लोकोपकार,
ण्यमें व्ययकर अपनेको कृतकृत्य अनुभव करते
जा भी धनका उपयोग परमात्माको प्रसन्न करनेमें,
ा विस्तार करनेवाले यज्ञोंमें और प्रजाके लिये
ाधन निर्माण करनेमें करते थे। राजसूय और
यज्ञोंमें बहुत द्रव्यबलकी आवश्यकता होती थी।
क तरफ जनतामें धनका वितरण होता था और
तरफ आर्य-संस्कृतिका विजयध्वज दिग्दिगन्तमें
था। धनको ही प्रधान माननेवाला पूँजीवाद या
इस संस्कृतिमें स्वीकृत नहीं है। प्रत्युत जितना बड़ा
उतनी ही ऊँची कक्षा उसकी मानी जाती है। एक
ग्रान्य घरमें भर रखनेवाले ब्राह्मणकी अपेक्षा एक
ही धान्य रखनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है। पंद्रह

है। धर्म और त्यागके कारण ही ब्राह्मणको
मूर्धन्य स्थानमें रक्खा गया है। हमारे ही नहीं, र
और समाजोंमें त्यागी, सदाचारी और विद्वान् म
जाते हैं। फिर कोई सम्पूर्ण वर्ग या वर्ण वैसा
वह वैसा ही पूज्य होता है। किसीमें लक्षण तो ब्राह्मण
पर वह ब्राह्मणके हक माँगता हो तो जनसमाज
आदर नहीं करता। प्रख्यात रूसी ग्रन्थकार
कहते हैं कि कलाओंकी वृद्धिसे कोई कल्याण ह
देख पड़ता; व्यवहारकी उपाधियोंको बढ़ानेकी
उन्हें कम ही करना अच्छा है; जीवनका अपूर्णा
पूर्णाङ्क उसकी गुणक संख्या बढ़ानेसे जितना ब
उससे उसकी भाजक संख्या कम करनेसे और अधि
है। अर्थात् अधिक कमानेके लिये प्रयास करने
आवश्यकताओंको कम करनेकी जीवन-पद्धति अधि
है, व्यक्तिके लिये और समाजके लिये भी। इस
विपरीत यूरोपादि देशोंकी प्रचलित मान्यता यह
भोग-विलास, आमोद-प्रमोदके साधनोंकी वृद्धि जि
अधिक होती है, उतनी ही वहाँ सांस्कृतिक प्रगति है
तर्कपरम्परा यह समझमें आती है कि इन्द्रियोंके
सुख ही वास्तविक और प्रत्यक्ष सुख है, इस सुख
साधन है धन और प्रधान क्षेत्र है स्त्री। अतः
मुख्य प्राप्तव्य हैं; इनकी प्राप्तिमें जो विघ्न-बाधाएँ
उड़ा देना चाहिये। आर्य-संस्कृति विषयोंका अ
प्राप्त होनेवाले सुखका तिरस्कार नहीं करती। वेद
मन्त्रमें 'मुझे गौ मिले, अश्व मिले, लक्ष्मी मि
भावना है। पर धन और विषय-सुखको निम्न
रक्खा है। आत्मानन्दकी महत्ता और उपादेयत
और विषय-सुखकी लोलुपताको भयस्थान कहकर
चेताया है। जहाँ विषय-सुख स्वीकारनेकी आज्ञा
उसे त्यागनेकी भी आज्ञा है। जीवनको सादा
हेतु है। खान-पानमें, पहनने-ओढ़नेमें, घर-बाहर
सादगी ही आर्य-संस्कृतिका मानो मूल-मन्त्र है
इत्यादि स्थानोंमें शिष्ट ब्राह्मण केवल एक धो
और एक दुपट्टा ओढ़े सर्वत्र आते-जाते हैं। अप
स्त्रियोंका मुख्य पहिरावा साड़ी ही है। कितने
सीया हुआ कपड़ा नहीं पहनते। सभी बातों

सभी बातोंमें अधिक टिकनेवाले होते हैं। हमारे
ानी जातियाँ ऐसी हैं, जो विशिष्ट वृत्तियों और
ी अनुसरण करती हैं, जिससे कोई नयी औद्योगिक
स्थापित करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। उन
ुनाव और नियमन उसीसे हो जाता है और
ोमें संख्याकी कमी या असाधारण वृद्धि सामान्यतः
पाती। धन उनका प्रधान ध्येय न होनेसे उसे
नेकी वृत्ति संयत रहती है, उसके लिये पापकर्मोंमें
वृत्ति भी नहीं होती। इससे उनपर मजूरीका
ार नहीं आता, न बहुत धन ही उनके पास एकत्र
। इससे राज्यको भी लोगोंके पाससे धन खींचनेके
उपाय नहीं करने पड़ते। राष्ट्रके खर्चमें भी इस
ागी आ जाती है और कर लगानेकी मर्यादाके
य नियमित और नियन्त्रित हो जाता है। खेतीसे
ा और व्यापारसे एक दशमांशमात्र लेना राज्यके
ेय होता है। सब लोग अपनी-अपनी संस्कृतिके
रहते हैं और राज्यका हस्तक्षेप कम-से-कम हो
। जो राज्य कम-से-कम राज करता है, वही उत्तम
ता है। यूरोपादि देशोंमें और उनकी देखा-देखी
में भी आजकल प्रगतिके नामपर बड़ी-बड़ी खर्चीली
उपस्थित की जा रही हैं। इस तरह राज्य मनुष्यको
राधीन बनाता चला जा रहा है। जनताकी प्रत्येक
आज राज्य सिरपर चढ़ बैठा है। स्वतन्त्रताको
हुआ मनुष्य आज धर्मके तन्त्रसे बिछुड़कर अधिक-
दुःखप्रद परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें ही जकड़ा जा
। कोई भी राजा स्वप्नमें भी जैसे कर लगाने और
'जो हुक्मी' चलानेका विचार नहीं कर सकता,
कर और 'जो हुक्मी' अब प्रजाके सिरपर लद रहे
ारे आजके इस लोकतन्त्र-राज्यका खर्च भी किस
ल-उछलकर बेतरह बढ़ा जा रहा है, इसके आँकड़े
ी श्रीमनु सूबेदारने सप्रमाण प्रकाशित किये हैं
ः कहा है कि वर्तमान भारतीय अर्थतन्त्र मूलमें ही
है। देखिये फ्री प्रेस जर्नल २५-८-४९—

...कारका खर्च	सन् १९३८-३९	सन् १९४८-४९
...वस्थाका खर्च	··· १६५ (करोड़)	··· ६१२ (करोड़)
...र्च	··· ४६ ,,	··· १५५ ,,

ये आँकड़े अच्छी तरहसे आँखें खोलनेवाले हैं
परिणाम यह है कि अंग्रेजोंके जानेके समय सरकारके पास
पूँजी थी, उसमेंसे आज अधिकांश समाप्त हो गयी है औ
अर्थसंकट उपस्थित है। अपनी संस्कृतिके आदर्शोंको छो
ही भारतपर अनेक महाविपत्तियाँ उपस्थित हुई हैं
मालिकों और मजूरोंमें विग्रह उपस्थित है। धर्मही
तन्त्रमें ऐसा होना ही ठहरा। इससे यूरोपके स
और साम्यवादका महाभय भी उपस्थित हो ग
यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि आर्य-संस्कृतिमें
निन्दा नहीं है। लक्ष्मी जगदम्बाका एक स्वरूप
उसकी पूजा होती है। गृह-लक्ष्मी और राज्य-लक्ष्मी
कलाएँ हैं। लक्ष्मीजी सामान्यतः दुराचारीके य
जातीं और कभी जाती भी हैं तो अधिक समय
ठहरतीं। उनका स्थान भगवान् श्रीविष्णुके चर
और उनका विनियोग भी इसी महास्थानमें होता है। इस
अनुसार भारतसे खींची हुई लक्ष्मी अंग्रेजोंके पाससे
कर महासागरमें निवास करने चली गयी हैं।

साहित्य-कला-विज्ञान

अब साहित्य, कला और विज्ञानके सम्बन्ध
संस्कृतिका दृष्टिकोण देखें। इन तीनों विषयोंमें आर्य-
ईश्वर और धर्म-भावनाको परम उपास्य मानकर
क्रम निर्धारित करती है। श्रीमद्भागवतने साहि
आदर्शका इस प्रकार वर्णन किया है—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयो
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्
(१।५

'मनुष्यके तप, पाण्डित्य, यज्ञ-यागादि, दान ए
साहित्यका अविनाशी प्रयोजन कवियोंने उत्तमश्लोक भ
गुणानुवर्णनको ही बताया है। भगवद्गुणानुकी
वाङ्मय जनतामें मलिनताका प्रसार करता है।
संस्कृतिके सभी महान् ग्रन्थ—वेद, रामायण, म
भागवत आदिमें भगवान्का गुणानुवाद ही व्यापक
उसके द्वारा अवान्तर रूपसे आर्य-संस्कृतिका विस्तार
यह बात विख्यात है कि ऐसे महाकाव्य अन्य किसी
नहीं हैं। कलाका विनियोग भी आर्य-संस्कृतिमें सर्व
और धर्मके कार्यमें हुआ दिखायी देगा। म
अजन्ताकी गुफाओंमें, मूर्तियोंमें, रविवर्माके

से प्रभुकी सेवामें ही हुआ है। प्रसिद्ध गायक
गुरुके विषयमें यह आख्यायिका प्रसिद्ध है कि वे
जनके सिवा और कुछ गाते ही न थे। आज भी हमारी
गिनी यूथिका राय अपने मधुर कण्ठ और उत्तम
विनियोग भजनोंमें ही करती हैं। प्रसिद्ध गायना-
विष्णुदिगम्बरजीके जीवनका अन्तिम काल केवल
तथा संत-महात्माओंके पदगान और नाम-संकीर्तनमें
। उनकी सारी संगीत-शिक्षा संतोंके पद तथा 'रघुपति
ाराम' के इस नामधुनद्वारा ही होती थी। श्रीगाँधीजीपर
प्रभाव पड़ा था। गुजरातकी स्त्रियाँ भी नवरात्रमें
का आराधन गरबोंके द्वारा करके अपनी कलाका
रती हैं। मद्रास प्रान्तके संगीतमें भी भक्तिका ही स्रोत
। कहावत है, 'कृष्ण बिना गाना कैसा।'
सीदासजी कहते हैं—

चित्र सुकबिकृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

ान और विद्या-शिक्षाके क्षेत्रमें भी यही भावना
आदर्श प्रतिबिम्बित है। प्राचीन शिक्षापद्धतिमें
न्थ ही मुख्य थे और विज्ञान, भाषाशास्त्र, गणित,
धनुर्वेद, स्थापत्य आदि सब शास्त्र धर्मग्रन्थोंके
ही प्रतिष्ठित थे। इसीसे इन सब विद्या-कलाओंमें
ा थी। यथार्थमें परा और अपरा दोनों ही विद्याएँ
का अवलम्बन करती थीं। और पदार्थविद्याओंका
न भी अप्रतिहत-दृष्टिसम्पन्न ऋषियोंकी योगशक्तिमें
इसीसे इन विद्याओंमें यथार्थता थी और इनका
ार था। हालमें प्रख्यात वैज्ञानिक डाक्टर जगदीश-
ुने यह आविष्कार किया है कि जड माने जानेवाले
भी चेतना है। यह अपनी संस्कृतिके अनुरूप ही
ार्य-संस्कृतिकी मुख्य भाषा संस्कृत और उसका
साहित्य, ये दोनों मानव-जातिकी ज्ञाननिधि और
ह अमूल्य मूलधन हैं। संस्कृत भाषाकी संतति
जराती, मराठी, बङ्गाली आदि भाषाएँ आर्य-संस्कृति-
ारा और आदर्शको जगाते रहनेमें सदा ही यत्नवान् हैं।
कवि गोस्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस आर्य-
ा अद्वितीय कीर्तिस्तम्भ है। देश, काल, परिस्थिति
ितने बदला करें; पर जबतक संस्कृत भाषा और

इतिहासका यह सूर्य सत्यको सदा प्रकाशित करता

इस प्रकार हमलोगोंने अपनी सनातन भारतीय
के विविध शाखा-विस्तारोंका किञ्चित्-किञ्चित् अ
किया। सहस्रों ग्रन्थोंसे भी उसका सम्पूर्ण दर्शन,
और मीमांसा नहीं हो सकती; कारण, परमात्मामें ही
होनेसे यह जितनी विशाल और अगाध है, उ
अविनाशी है। जो कोई यथाधिकार इसका अनुसर
है, वह जगत्के अन्धकार और परितापसे तर जा
अमृतत्व लाभ करता है। इस संस्कृतिकी सत्-शक्ति
शक्ति और आनन्द-शक्ति ऐसी है कि जो कोई
आश्रय लेता है, वह भी उसीमें समा जाता है। इस सं
भावना-सृष्टि इस विश्वको और मानव-समाजको विरा
भगवान्के अङ्गरूपमें प्रकाशित करती है।
झंझावातमेंसे निवृत्तिकी शान्तिमें ले जानेवाली इस स
मानवजीवनके लिये कर्तव्य, उपास्य और ज्ञातव्यकी
एवं कल्याणकर व्यवस्था की है। इतिहास-कथाओं उ
कथाओंमें, सत्यपर बिना कोई परदा डाले, प्रभुके माय
रूप विश्वका वर्णन है। पुरुषमें सदाचार और स्त्रीमें
के आदर्शकी महिमा गायी गयी है। काल, कर्म अ
के वशीभूत एवं स्वभाव, शक्ति तथा स्थूल देह
असमान रहनेवाले मनुष्योंकी स्वच्छन्दता और
केवल मिथ्याभास है—यह चेतावनी इस संस्कृतिसे
रहती है। कृतज्ञताकी भावना इस संस्कृतिमें अस
ऋषि-ऋण, देव-ऋण, पितृ-ऋण इत्यादिका मर्म
करके इसमें जगत्की संस्कृतिके संरक्षकोंके लिये पञ्च
का विधान किया गया है। शासनविधानमें भी इसके
ने जनताको चिरजीवित्व, सुख, शान्ति और समृ
की है। ब्राह्मण, वेद और यज्ञोंकी पूजाके द्वारा दैवी
आधार प्रतिष्ठित किये गये हैं। जिस गौके दूधसे
पले हैं, उसे हमारी संस्कृतिने मातृरूपमें प्रतिष्ठित अ
किया है। समस्त विश्वको उसके एकमात्र मह
समाविष्टकर तात्त्विक एकताका, अद्वैतका अमूल्य दर्श
है। इस संस्कृतिके मूल, धड़, शाखा, पत्र, पुष्प
सबमें परमात्मा ही अनुस्यूत रूपसे विलास कर र
इसीसे इस संस्कृतिके अनुयायी कृतकृत्य होते हैं
श्रुति कहती हैं—

सांस्कृतिक वैशिष्ट्य

(रचयिता—श्रीप्रताप रस्तोगी)

जागृतिके स्वर्णिम प्रहरोंमें हो रहा नवल किरणोन्मेष ! जग रहा शुभ्र तन्द्रित स्वदेश !!

इस प्रथम रश्मिके साथ-साथ ले रही दीनता अँगड़ाई
आशा-हिमजलसे स्नात आज उल्लसित राष्ट्रकी अमराई
खगकुल-कलरवके सँग अजान, गुञ्जित अभिनव जागरण-गान
जागो जीवनका ज्वार लिये, आ रहा इंद्र-धनुषी विहान

जगको देती थी ज्योतिदान जो बन अनिंद्य आकाशदीप
जग शलभरूप बन मँडराया जिस ज्योतिरूपिणीके समीप
उस अभ्रविचुम्बी भारतीय संस्कृति-मंदिरका कलश भग्न
हा ! अपना भाग्य-विधान हुआ कितना अस्फुट, कैसा प्रतीप

नश्वर भौतिकतापर विजयी जिसका सदैव अध्यात्मवाद
जड जगतीकी शुचितपोभूमि ! जो चिर अविनश्वर, अप्रमाद
भ्रुकुटीमें प्रलय-अमर्ष लिये, स्मितिमें संसृति-उत्कर्ष लिये—
जो पूरित-पुष्कल-स्वर्ण-राशि, जो ज्ञान-पुञ्ज, चिर निर्विवाद

हिमगिरि-सा अति उत्तुंग भाल, जिसकी गरिमाका स्तम्भ-रूप
जिसके कौशलके परिचायक साँची, मदुराके भग्नस्तूप
मणि-रत्नोंकी मंजूषा-सी जो शील-दयामयि ऊषा-सी
उसका यह क्षणिक स्खलन निश्चय ही उन्नतिका आरंभ-रूप

विष पीकर सुधा लुटाना ही जिस संस्कृतिका आधारमूल
सिंचन अपलक, सर्जन अनथक, जिसके जगपर उपकार स्थूल
जिसकी अजस्र सभ्यता-धार छाई अब भी मेखलाकार—
उसके विनाशके स्वप्न अहो, जड मस्तिष्कोंकी महाभूल

विस्मृतिका गहरा अंधकार, अवसादोंका आवर्त पीन
जीवनका दारुण दैन्यरूप, संस्कृति विनष्ट गत पुराचीन
विध्वंसोंका यह महाकार परिव्याप्त राष्ट्रके आर-पार
निष्क्रियता तज मेरे अनूप ! जागो बनकर संस्कृत-नवीन

जिसने संसृतिको प्राण दिये, प्राणोंमें स्पंदन भर गति दी
जिसने चिर अगत रहस्योंका विश्लेषण कर प्रज्ञा-मति दी
शंकर दे, तपी तथागत दे, निश्चित दर्शन-सिद्धांत दिये
यश-लोकोज्ज्वल इतिहास दिया, मंगलप्रद हिंदू-संस्कृति दी

युग-चट्टानोंसे ध्वस्तशेष, खंडित, अपमानित मलिनवेष ! जग रहा शुभ्र तन्द्रित स्वदेश !!



श्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
श्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥
(गीता २ । २२)

ाई आश्चर्यके साथ इसे देखनेका प्रयत्न करता है, कोई
र्क इसके सम्बन्धमें वार्तालाप करता है, कोई इसके
बातें आश्चर्यचकित होकर सुनता है; किंतु यह है
इतने प्रयत्नके पश्चात् भी कोई जान नहीं पाता।'
मद्भगवद्गीतामें उक्त बात आत्माके सम्बन्धमें कही
ठीक यही बात भारतीय संस्कृति अथवा भारतीयता-
धमें भी कही जा सकती है। आत्माके सम्बन्धमें
दों, स्मृतियों एवं पुराणों तथा काव्योंतकमें सर्वत्र
वाद, प्रवचन आदि हैं। प्रत्येक प्राचीन ग्रन्थमें
न प्रकारसे आत्माको समझानेकी चेष्टा की गयी है।
ही अर्थ था कि आत्माकी समस्या हल नहीं हो पायी,
दमित्थं' रूप स्पष्ट नहीं हो पाया और इसीलिये
सके समझनेका नवीन प्रयत्न हुआ। प्रारम्भसे लेकर
गोंको आत्माके सम्बन्धमें वर्णन करते-करते 'अवाङ्-
रम्' कहकर उसका वर्णन समाप्त करना पड़ा।
रुने शिष्यको अनेक साधन बताकर तथा आत्माके
समस्त सम्भव कल्पना देकर अतृप्त असन्तुष्ट
'श्रद्धत्स्व वत्स' कहकर ही सन्तोष करना पड़ा।
समय कहना पड़ा कि 'मनमें प्रश्न लेकर आत्माको
त आओ; क्योंकि वह अतर्क्य है। अतएव अनुभवसे
साक्षात्कार करो।' गुरुने जब स्वयं मौन धारण कर
ज्योतिका साक्षात्कार किया, उससे एकरसता—
प्राप्त किया, तब उसे देखनेमात्रसे शिष्योंके संशय
गये, उन्हें आत्माको प्राप्त करनेके मार्ग मिल गये
भूतिके द्वारा ही उन्होंने आत्मदर्शनके लिये साधना
ो।

तीय संस्कृतिका भी अनुभूतिके द्वारा साक्षात्कार
सकता है, तर्कके द्वारा उसका चित्र नहीं खींचा
—दर्शन नहीं कराया जा सकता। शरीरके किस
अनुप्राणित करता है, शरीरको किन साधनोंके द्वार
प्रदान करता है—सक्रियताकी प्रेरणा देता है—
करना जितना दुष्कर है, उतना ही दुष्कर यह बता
कि भारतीय संस्कृति भारतीय जीवनके किस अङ्गमें उ
होती है, भारतके कितने निवासियोंके जीवनमें है—
नहीं है, हमारे जीवनके कार्योंको वह किन साधने
समय प्रेरणा देती है, हमारे अंदर वह किस प्रकार
रूपसे पूर्णतः व्याप्त है इत्यादि।

आत्माके सम्बन्धमें समझानेके लिये अधिकतः दो
का अवलम्बन किया गया है। पहले अभावात्मक प्र
'आत्मा पुत्र-स्त्री-धन नहीं है; क्योंकि अपने अ
भान इनके नष्ट होनेपर भी बना रहता है। वह
श्रवण आदि कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रिय नहीं है; क्योंकि गूँ
बहरेको भी चैतन्यका बोध रहता है। वह मन नहीं है
संकल्प-विकल्पकी वृत्ति शान्त रहनेपर भी चेतना
ही है। वह बुद्धि नहीं है; क्योंकि निश्चयात्मिका
कार्य नहीं करती, तब भी शरीरको प्रेरणा और सभी
प्रकाश अविच्छिन्न गतिसे मिलता रहता है। वह अह
नहीं है; क्योंकि जो 'त्वम्' को अपनेसे अलग को
देखता ही नहीं, उसे 'अहम्' का भाव कहाँ? वह जाग्र
सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाएँ भी नहीं है; क्योंकि ये त
करणकी वृत्तियोंकी अवस्थाएँ हैं, चिन्मात्र आत्माव
क्या प्रयोजन?'

'तो वह है क्या?'……'शून्य?' यह प्रश्न
होनेपर भावात्मक प्रकारसे उत्तर दिया जाता है।

आत्मा सर्वस्व है। उसे अलग करके नहीं दि
सकता। वह जीवमें 'अहम्' का भाव जाग्रत् करनेवाला,
निश्चय करनेकी क्षमता देनेवाला, मनको विचार
प्रेरणा देनेवाला, इन्द्रियोंको शब्द-स्पर्श आदिका
करने तथा कर्म करनेकी सामर्थ्य देनेवाला, अपने अ
शरीरादि समस्त विश्वका अस्तित्व बनाये रखनेवाला है

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते

'जिसकी तर्कना मन नहीं कर सकता, किंतु जिससे [illegible]

केंतु शरीरादिके रूपमें वह अभिव्यक्त अवश्य है। कारण है, प्रेरक है, सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान् गरका नाशक ज्योतिःस्वरूप है।'

भी वह क्या है?' इसका उत्तर अनुभव और ल्ता है, तर्कोंसे नहीं; जीवनको शुद्धतर बनाकर ओर ले जाना ही साक्षात्कारका उपाय है। साधनोंकी है। किसी भी विचार-प्रणालीमें यहाँ दो मत नहीं प्रारम्भिक कालमें उपर्युक्त अभावात्मक और तर्क देना आवश्यक है।

उसी प्रकारसे प्रश्नकर्ता जब पूछता है कि 'भारतीय या है?' तो उसे भी पहले उपर्युक्त दो प्रकारोंसे प्रयत्न हो सकता है।

ीय संस्कृति किसी भी अन्य संस्कृतिकी विरोधिनी योंकि अन्य संस्कृतियोंसे प्रसङ्गवश आया हुआ प्रारम्भ नहीं हुआ, तब भी भारतीय संस्कृतिका यी अस्तित्व था और विरोध समाप्त होनेपर भी रन्तन चिरञ्जीवी रूप बना रहा। और न भारतीय किन्हीं विशेष कर्म, भाषा, उपासना, वेश-भूषा, उपासना, जीवन-प्रणालीकी सीमामें ही आबद्ध है। विभिन्न रुचि, स्थिति और स्वभावके अनुसार लाये हुए साधन हैं।

के द्वारा भारतीय संस्कृति भिन्न-भिन्न कालमें प्रकट साधनके रूपमें अलग करके उन्हें नहीं देखा जा योंकि भारतीय समाजने जो-जो साधन समय-समयपर , उन सभीमें वह प्रस्फुटित हुई है। वह भारतीयोंके मायी हुई है। वेश, भाषा, कर्म आदिमें युगके रिवर्तन आ सकता है; किंतु युगके अनुरूप साधन साधनके द्वारा भारतीय संस्कृति अभिव्यक्त होती ती रहेगी। हाथकी अँगुली प्राण नहीं है; किंतु अँगुलीमें । पाँचसे छठी अँगुली भी निकल सकती है या जहरीला ानेपर अस्पतालमें एक-दो अँगुलियाँ काटी भी जा किंतु जितनी अँगुलियाँ बचेंगी, जिस रूपमें रहेंगी, रूपमें प्राण अभिव्यक्त होगा। अँगुली कटनेसे प्राण उसमें परिवर्तन आनेसे प्राणमें परिवर्तन नहीं ह पाँचसे बढ़कर छः अँगुलियोंमें अभिव्याप्त हो वा तीनमें ही रह गया; किंतु प्राण फिर भी प्राण

संसारमें जिसे मानववाद कहा जाता है—अर्थात् सभी प्राणियोंको आत्मवत् मानकर उनके प्रति प्रेम उपकार, क्षमा, अहिंसा और सहिष्णुताका भाव रख लिये अपने व्यक्तिगत जीवनके स्वार्थ, सुखोपभोगक यश और प्रतिष्ठाकी चाहका परित्याग (संन्यास दूसरेके विनाशमें अपना निर्माण देखनेकी लिप्स करना; घृणा, विद्वेष, असहिष्णुता और मतान्धता जीवनमें न आने देना तथा सामाजिक जीवनमें फैलने देना; इन्द्रियोंको संयमसे कसकर अन्तःकरणकी की ओर बढ़ना, सत्त्वशुद्धिके लिये ही उपयुक्त जीवन-निर्माण करना और द्वन्द्वोंसे ऊपर उठते हुए निष्का कर्म करनेकी क्षमता प्राप्त करना—यही भारतीय सं मनुष्यकी पशुता मिटाकर उसे मानव बनाना ईश्वरत्वकी ओर उसे पुरस्सर करना भारतीय कार्य है।

किंतु इस मानववादकी चर्चा तो संसारके संस्कृतियोंने की है, संसारके समस्त समाजोंके अने लोक-कल्याणकी भावना जाग्रत् करनेका प्रयत्न किय मानववादको हम भारतीय संस्कृति क्यों कहें? संसा समाजका व्यक्ति यदि चारित्र्यशील तथा लोक भावनासे प्रेरित हो तो क्या हम उसे भारतीय संस्कृतिक कह सकेंगे?' यह प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

प्रथमतः यह कह देना आवश्यक होगा कि मा सिद्धान्तकी घोषणा सबसे पहले भारतीय समाजने— तपस्वी ऋषि-महर्षियोंने की और अन्य समाज जब वस्त्रकी प्रारम्भिक समस्या सुलझा रहे थे—जब उनके जंगलीपन था, तभी भारतीय समाज मानववादके सि केवल चर्चाका विषय ही नहीं बना चुका था, उन्हें व्यवहारमें उतार चुका था। आज भी संसारके अपेक्षा भारतीय समाज मानववादमें सबसे आगे मानववादके साथ-साथ भारतीय संस्कृति कुछ औ जिसे हम भारतीयता कहते हैं। भारतवर्षकी भूमिपर जनके हृदय और जीवनमें जो मानववाद भाषा, जीवन-प्रणाली आदिके साधनोंको अपनाकर अना

् साथ-साथ भारतवर्षको अपनी तपोभूमि, यज्ञभूमि,
और जन्मभूमि समझता है—भारतमाताको अपनी
ास्य देवीके रूपमें देखता है। भारतवर्षकी गोदमें
स देशके जनसमाजका आसुरी तथा विदेशी
े उद्धार करनेवाले महापुरुषों—भगवान् श्रीराम,
चन्द्रगुप्त मौर्य, विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप,
गुरु गोविन्दसिंह, लोकमान्य तिलक आदि वीरोंको
नके दुःखोंसे उद्धारका उपाय बतानेवाले महापुरुषों—
ङ्कराचार्य, बुद्ध, महावीर, समर्थ रामदास, तुलसीदास,
विवेकानन्द, महात्मा गान्धी आदि संतोंको अपने
ी पूर्वज मानता है। भारतवर्षमें उद्भूत और
मत-प्रणालियों एवं जीवन-प्रणालियोंको आत्मीयताके
ञता और स्वीकार करता है तथा विदेशोंसे आयी
णालियों एवं जीवन-प्रणालियोंको—जो कि आज-
ीय जीवनमें समरस न हो सकीं, अपितु बडवानलकी
के अन्तःकरणमें खौलती रहीं—अपच बन गयीं,
न भी विदेशी, अतएव अग्राह्य मानता है।

क युगोंमें भारतीय संस्कृतिका बाहरकी अनेकों
ोंसे संघर्ष होता आया है। उन संघर्षोंकी ओर इङ्गितकर
ऐसा भी कहा गया है कि भारतीय संस्कृतिके
बननेवाले दूसरी संस्कृतियोंके प्रति असहिष्णु रहे हैं
। किंतु वस्तुस्थिति दूसरी ही है। भारतीयोंने
का विरोध किया है, संस्कृतिका नहीं। आक्रमणका
करना अपने जीवनकी श्रेष्ठता स्थिर रखनेके लिये
क था। वहाँपर क्षमा और अहिंसाके नामपर आत्म-
कर देना कायरता हो जाती। यूनानियोंने जब भारतपर
। किया, तब एक सुसंघटित शक्ति निर्मितकर उन्हें
दिया गया। परंतु उनके साथ सन्धि होते ही सब प्रकारके
स्थापित कर लिये गये तथा कला-कौशलका भी आदान-
किया गया। शक और हूण जब आक्रमणका रूप लेकर
तब उनसे शताब्दियोंतक टक्कर ली गयी; पर जब वे
मेपर बस गये, तब उन्हें क्षत्रिय बना लिया गया।
हजारोंकी संख्यामें हमारे देशमें आकर आज हजारों
। आनन्दपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। उन्हें आज हम
य ही मानते हैं; क्योंकि भारतके बाहर अब उनका कुछ
नकी स्फुरणभूमि भारतभूमि ही है। आज जब

समरस हो जायँगे—ऐसा हमारा विश्वास है। जो अपनी संस्
के ही अवयव जैन, बौद्ध, सिख आदि हैं, उनके बारेमें
कुछ कहना ही नहीं; वे तो हमारे हाथकी छठी अँगुली
हैं, जिनकी उत्पत्तिके साथ-साथ ही प्राणने आगे बढ़कर
अभिव्याप्त कर लिया है।

ईसाकी आठवीं शताब्दीसे प्रारम्भ होकर क्रमशः
शताब्दियोंतक इस्लाम-संस्कृतिके उपासकोंने भारतीय सं
पर लगातार आक्रमण किया और भारतीय संस्
पुजारियोंके विघटन, प्रमाद और अशक्तताके कारण उ
विजय प्राप्त की तथा देशपर अधिकार कर लिया। किं
उनकी अन्तिम विजय नहीं थी; भारतीय पराजित हुए
उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया था। उन्होंने सह
व्यापी लोमहर्षण संग्राम किया—अपने अस्तित्वके लिये,
संस्कृतिकी रक्षाके लिये हजारों युद्ध किये, लाखोंकी
चढ़ायी, कितने ही जौहर कर डाले। एक काल म
उदयका समय आया, जब यह चित्र स्पष्ट दृष्टिगत
भारतीयोंके शौर्यके कारण ऐसा जान पड़ा कि अब इ
संस्कृतिसे हमारा पीछा छूट जायगा, भारतीय संस्कृ
पराजित कर देगी; परंतु ईसाई संस्कृतिके मदान्ध उपा
दुर्भाग्यवश तत्काल सांघातिक आक्रमण हुआ और
संस्कृति पुनः दासतामें डूबी। इस दासताके कालमें
संस्कृतिने भारतीय संस्कृतिको समाप्त करनेके लिये ए
तीक्ष्ण विषका प्रयोग किया—हमारी जीवन-प्रणाल
बदल डालनेके लिये हमारे मनमें विदेशी रुचि उत्प
गत दो सौ वर्षोंकी पराधीनताका काल भारतमें
संस्कृति और भारतीय संस्कृति दोनोंके लिये था।
समान विरोधका आधार लेकर दोनोंमें गठबन्धन होने
पक्षीय चित्र अवश्य दिखलायी पड़ा। किंतु ईसाई स
प्रतिनिधि अंग्रेजोंको जब यहाँ रहना कठिन जान पड़
तब कूटनीति खेलकर उन्होंने इस्लामके भक्तोंको अप
मिलाकर पाकिस्तानका निर्माण कर डाला, जहाँ वह
इस्लाम सदा फलता-फूलता रहे और ईसाई संस्कृ
भारतके लिये प्रवेशद्वार बना रहे।

आज भारतका पूर्व और पश्चिमका एक भाग
आक्रमकोंकी सम्पत्ति बन गया है, तो भी शेष
भारतीय संस्कृतिके पनपनेके लिये एक मुक्त व

मर्पण कर देगी और केवल उपासनाकी एक पद्धति-
ह जायगी। उपासनाकी किसी भी पद्धतिसे भारतीय
ने कभी विरोध प्रकट नहीं किया; इसलिये आगे
ईसाई संस्कृति या तो स्वतः समाप्त हो जायगी या
उपासक भारतीय जीवनसे समरस होकर भारतीय
में घुल-मिल जायँगे, जैसा कि वे पहले थे; किंतु
संस्कृतिके साथ भारतीय संस्कृतिका संघर्ष अभी
हीं हुआ है। इस्लामके उपासकोंके दो स्वरूप हैं।
प मुसल्मानोंकी धर्मान्ध आक्रमक वृत्तिमें—उनके
प्रकट हुआ है, जो भारतमें आज भी जीवित एवं
है। इस स्वरूपके उपासकोंमें भारतमें आज भी
सभ्यता, भाषा, वेश-भूषा, वहाँके वीर और संत,
जीवन-प्रणाली, यहाँतक कि खाद्य पदार्थोंके लिये भी
समान है। वे उनसे स्फूर्ति लेते हैं; महमूद, चिंगेज,
अलाउद्दीन और औरंगजेबको वे अपने पूर्वज,
केन्द्र मानते हैं। उन्हींका-सा दृष्टिकोण रखते हैं और
गमें कायदे-आजम जिन्ना उनके आराध्य बन गये
वे अपने विजयके कालमें भारतीय संस्कृतिको समाप्त
तो भारतमें एकमेव इस्लाम संस्कृति ही व्याप्त हो
स्कृति-संघर्षका प्रश्न मिट जाता; परंतु उनके घोर
श्चात् भी विशाल एवं चिरञ्जीवी भारतीय संस्कृति
होकर निकल आयी। संघर्ष मिटनेका दूसरा मार्ग
कि इस्लाम-संस्कृतिके उपासक गत शताब्दियोंमें
र्णकर भारतीय जीवनसे समरसता प्राप्त कर लेते;
भी नहीं हुआ। इसीलिये आज भी वे भारतीय
अलग दिखायी देते हैं। इस पृथक्त्वका कारण
संस्कृतिमें सहिष्णुताका अभाव नहीं, किंतु उनके
जीवनमें घोर असहिष्णुता, मतान्धता और दूसरोंके
का भाव है। यह आज भी ज्यों-का-त्यों है और
ी भारतके विभाजन-कालमें एक अभूतपूर्व विभीषिका
कर चुका है। इस्लामका दूसरा किंतु ऊपरी स्वरूप
की एक पद्धति-विशेष। उपासनाकी पद्धतिसे विरोध
कारण भारतीय जीवन इस्लामकी उपासनाको स्थान
व तैयार रहा है और आज भी है। यह भारतीय
उदारता और सहिष्णुता है। कांग्रेसने हिंदू-मुस्लिम
जो प्रयत्न किया, वह यही समझकर कि मुसल्मान
विशिष्ट संस्कृतिका उपासक-मात्र है; किंतु उस

नहीं भूला था; इसलिये वह पास तो आया ही नहीं
चुनौतियाँ दीं और अपना अलग राज्य निर्माण कर
यदि आगामी कालमें भारतीय संस्कृति प्रभावशा
सकी तो आजके बचे-खुचे भारतके मुसल्मान अपने
स्वरूपको भूलनेका प्रयत्न करेंगे और उनका उपास
विकसित होकर कालान्तरमें भारतीय जीवनसे ए
सकेगा; और यदि भारतीय संस्कृति शक्ति-सम्पन्न एवं
नहीं बन सकी तो उनका आक्रमक स्वरूप आगे
अवसरकी खोज करता हुआ पुनः प्रकट हो जायगा

इस स्थानपर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि
बन्धनसे मुक्त होते ही भारतीय संस्कृतिके ऊपर ए
संस्कृतिके आक्रमणका प्रश्न उपस्थित हो गया है इ
है स्लाव संस्कृति। भौतिक सुखोपभोगके आधारपर
प्रणालीकी रचना इसकी विशेषता है; रूसमें ज
असहिष्णुता और घृणाके आधारपर यह अपना वि
रही है; देशका दारिद्र्य इसके पौधेको सींच रहा है
निर्माणके लिये ध्वंस और अराजकता उपस्थित कर
मार्ग है; आध्यात्मिक जीवन-प्रणालीका विनाश इसके
परिणाम है; आगामी संघर्ष निश्चित है—प्रतिफल
क्षमतापर अवलम्बित है।

भारतीय संस्कृति एक विशेष प्रकारका दृष्टिक
उदाहरणस्वरूप—जो अभारतीय संस्कृतियाँ है
विवाह एक समझौता है; किंतु भारतीय संस्कृतिमें
पवित्र धार्मिक संस्कार है। भारतीय संस्कृतिके अ
जो जीवन-प्रणाली निर्मित हुई है, उसकी प्रगति आध्या
की ओर, पूर्णत्वकी ओर, ईश्वरत्वकी ओर है। हमारे
लक्ष्य होता है ईश्वरको अपने कर्म समर्पण करते हुए
परम शान्तिकी प्राप्ति। सुखोपभोगके लिये भौतिक
जुटाना नहीं, अभ्युदयके लिये—ऐहिक जीवनमें
श्रेष्ठता प्राप्त करना; आशावाद लेकर सब प्रकारसे
सभ्यताका विकास करना; सुख, सौभाग्य, गौरव और स
बढ़ाते जाना—यह हमारा कार्य है। निःश्रेयसके
अभ्युदय-कालमें अर्जित सौभाग्य और सम्पत्तिका
व्यक्तिगत सुखके लिये न कर, उसे देशके लिये, स

ं साहसके साथ सामना करना, किंतु संसारकी समस्त लेयों तथा उपासनाकी पद्धतियोंके प्रति उदारता एवं ाका भाव रखना हमारा जीवन है। इसी आध्यात्मिक (जीवन-प्रणालीका निर्माण करके ही संसारके अन्य देश भी शान्ति-लाभ कर सकेंगे, भौतिक आधारपर न हमारा दावा है।

इस भारतीय संस्कृतिका साक्षात्कार शुष्क तर्कोंसे मनन, अनुभूति और श्रद्धाके बलपर किया जा सकत

भारतीय संस्कृतिकी व्यापकता

(लेखक—विद्यारत्न पं० श्रीविद्याधरजी शास्त्री, एम्० ए०)

निश्चित है कि संस्कृति किसी देशविशेषकी सीमा-त नहीं होती। निरन्तर प्रगतिशील मानवजीवन ौर मानवसमाजके जिन-जिन असंख्य प्रभावों और ' संस्कृत और प्रभावित होता रहता है, उन सबके ूहिक स्वरूपको ही आज हम संस्कृतिके नामसे करते हैं। ये संस्कार किसी एक निश्चित काल अथवा ; देशविशेषके नहीं होते। युगोंसे मानव अनवरत ौर अनवरत कर्मके व्यापारमें व्याप्टत रहता आया ा यह चिन्तन और इसके ये कर्म कभी प्राकृतिक ाभावित, कभी आन्तरिक प्रेरणासे प्रेरित एवं कभी के निवासियोंके पारस्परिक सम्पर्कसे सम्पन्न होते हैं। में भले, बुरे, सुन्दर और असुन्दर—सब तरहके काम हैं। प्रत्येक कामको ही हम संस्कृति नहीं कहते; कामोंकी किसी देशविशेषके समस्त समाजपर एक ' छाप लग जाती है, वह छाप ही अन्तमें उस देश स देशके निवासियोंकी एक पृथक् संस्कृति बन

तीय संस्कृति भी संस्कृतिके इस नियमसे रहित ारतके मानवने भी वही किया है, जो दूसरे देशोंके ने प्रारम्भिक अथवा परिपक्व चिन्तनके बाद करते है तो केवल यही है कि जहाँ किसीका चिन्तन गोंमें व्याप्त है, वहाँ किसीका अनुभव केवल कुछ ही सीमित रह जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य ार्वत्र एक ही रूपमें प्रभावित नहीं होता। भारतीय यह विशेषता है कि इसने प्रकृति और मानवकी अनुभूत करनेका सबसे अधिक सौभाग्य प्राप्त यह महासागरों, महापर्वतों और महारण्योंके प्रत्येक

यहाँके आदि निवासियोंमें मानवसमाजके विभिन्न होनेवाले प्रायः समस्त धार्मिक, आर्थिक और रा परिवर्तनोंकी आवृत्तियोंका कोई पार दिखायी नहं इसके अकल्पनीय अतीतका यह वैचित्र्य है कि इसने इ घटनेवाली पुनरावृत्तियोंको एक बार नहीं, पर शत-देखा है। इसकी तपश्चर्या और इसकी नव-निर्माण-कोई मापदण्ड नहीं। आजके सैकड़ों-हजारों वर्ष पहले यहाँके महान् विचारक किसी बातको कहते हैं तो उ यही कहते हैं कि यह बात मुझसे पहले अनेक कह चुके हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदु

अर्जुनको जिस योगका उपदेश दिया जा रह नवीन नहीं अपितु परम्पराप्राप्त है। यदि यह ५०५० वर्ष पहलेकी है तो जिनके समयका आज निर्णय न कर सका, वे वेद भी इसके प्राचीन धर्मो करते हुए यही प्रतिपादित करते हैं—

तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

संक्षेपमें कहनेका तात्पर्य यही है कि इसके सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञानको किसी कालकी मर्यादामें नहीं किया जा सकता। भारतीय संस्कृति इस ज्ञान-विज्ञानकी ही देन है और अतएव इसमें पर त्रिकालव्यापी शाश्वत सिद्धान्तोंके दर्शन होते संस्कृति-प्रेमियोंका कर्तव्य है कि वे मूलविहीन केवल के नामपर अपने इस महान् अक्षुण्ण भण्डारकी अव कर इसके गुप्त रत्नोंको प्रकाशित करनेका प्रबल प्रय प्रतिदिन सवितासे नयी-नयी प्रेरणाके लिये प्रार्थना व भारत उनकी नवीनताका विरोधी नहीं, अपितु उसके

(लेखक—श्रीप्रेमसागरजी शास्त्री)

तके प्राचीन तपोनिष्ठ महर्षियोंने राष्ट्र एवं विश्वकी
सुस्थिर बनानेके लिये अपनी कुशाग्रमतिसे जो प्रयत्न
वह रचनाक्षेत्रमें महान् एवं प्रशस्यतम है। उन्होंने
त्मक पदार्थोंके अन्तःस्थलमें विद्यमान एक-
खोजकर उसके आधारपर मनुष्यकी वैयक्तिक तथा
रचना की, जिससे जायमान सभी विवाद और
त हो सकें—मानव-जीवनकी सर्वाङ्गीण उन्नति,
वनका मौलिक सुधार तथा उसका विशुद्ध और
हो सके।

क रचना—उन्होंने मनुष्यकी आयुके चार भाग
म भागात्मक ब्रह्मचर्य-जीवनमें अध्ययनादि कर्तव्य
की आयुका यही समय प्रारम्भिक उच्चशिक्षाका होता
ये उस समय 'सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव'
वशिक्षाएँ दी जाती थीं, जिनके अभावसे आज
त्र भ्रष्टाचार फैला हुआ है। अपने आपको
माननेवाले बड़े-बड़े नेतालोग भी इसी दिशामें
दन कर रहे हैं; किंतु उन प्रारम्भिक उच्च-
कारण वे लोग समाज और राष्ट्रके लिये सुयोग्य
र सच्चे सुधारक तथा पथप्रदर्शक सिद्ध होते थे।
विद्या समाप्तकर गृहस्थजीवनमें प्रवेश करते थे।
जीवनमें (जिसे लघु समाज-निर्माण कह सकते हैं)
अच्छी तरहसे उसका पालन करते थे। और
ा करते हुए समाजकी विविधोन्नतिमें सहायक होते
बाद अपनी आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ-जीवनमें
जाता था। सम्पूर्ण भार अपनी सन्तानको देकर
उन्नत्यर्थं ईश्वरोपासनामें तत्पर हो जाते थे।
चतुर्थ भागमें संन्यासजीवन लेकर संसारकी सर्व-
सक्तिको छोड़कर 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस
अनुसरण करते हुए मनुष्य-जीवनके चरम लक्ष्य
की खोज करते और उसकी अनन्ततामें प्रवाहित हो

वैयक्तिक रचना ही आश्रमव्यवस्था है। संक्षेपमें कहा
ा है कि इस वैयक्तिक रचनासे मनुष्य अपने चरम

उत्पन्न ही नहीं हो सकती। दूसरेकी वस्तुओंको
भी उन्हें भोगनेकी इच्छा होती है, यही कामना
पिशाची है। उन वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तथा उन
को स्थायी रखनेके लिये हमें अनेक दोष करने
यह कामनाका ही परिणाम है। अस्तु, उक्त दोषोंके
समाज और राष्ट्रकी स्थितिमें थोड़ा भी अन्तर
सकता। इसलिये वस्तुतः यह वैयक्तिक रचना मा
की सर्वाङ्गीण उन्नतिकी पराकाष्ठा एवं राष्ट्र और
मौलिक सुधार था।

सामाजिक रचना—सभी मनुष्योंको इस विशाल
पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्ग समझकर वह समाज विशाल
भवनके रूपमें असंख्य झंझावातोंको झेलता हुआ
खड़ा रहे, अतः भारतीय महर्षियोंने मनुष्यकी प्रकृति
के आधारपर भागचतुष्टयरूप चार स्तम्भोंसे उसे
बना दिया, जिससे उसका कोई भी भाग विकृत न
यह एक प्राकृतिक नियम (Natural Law
मानसिक या बौद्धिक उन्नतिमें सबका बराबर स्थान
सकता और सबकी प्रकृतिमें भी एकता नहीं दीख
अतः सभी मनुष्योंको एक ही कार्य न सौंपकर उ
उत्कर्षमें प्रवृत्त करनेके लिये तथा सामाजिक सुव्यवस
उनकी जन्मगत वृत्ति एवं मानसिक स्थित्यनुसार भि
कार्य ही उन्हें सौंपे जाने चाहिये। भारतीय महर्षियों
वर्ष पूर्व इस तथ्यको समझा और विशिष्ट एवं
समाजका निर्माण कर दिखाया। उन्होंने वेद-भगवा

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृ
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजाय

—इस आज्ञाके अनुसार सबसे पहले बुद्धिश
मनुष्यों (ब्राह्मणों) का वर्ग रक्खा। यह वर्ग आजीवन
और ज्ञान-वितरणका कार्य करता था। समाज इसकी उ
प्रबन्ध करता था और यह इतनेमें ही सन्तुष्ट था।
विचार-शक्तिप्रधान तथा सामाजिक व्यवहारोंसे निरपे
कारण सामाजिक नियम बनानेकी पात्रता एवं क्षमता
अतः सामाजिक नियन्तृत्वका भार उन्हें सौंपा गय

ग्रासम्बन्धी कार्योंको वही वर्ग करता था। प्रथम
अपेक्षा यद्यपि इसमें त्यागभावना कम है, तो भी
ा धर्मकी भीरुतासे एवं ब्राह्मणनियन्तृत्वसे यह
र नहीं कर सकता था। तीसरा इच्छाशक्तिप्रधान
रक्खा गया। कृषि-गौरक्ष्य-वाणिज्य आदि कर्तव्य
गया। यह वर्ग अपने कर्तव्यद्वारा सारी प्रजाका
ता हुआ अपने व्यवसायको देश और विदेशमें
ा। गृहीत धनराशिको अपने पास रखता हुआ यह
कीय कोषाध्यक्षकी भाँति सामाजिक कोषाध्यक्ष
था और शूद्रोंका चौथा वर्ग शारीरिक श्रमसाध्य
करता था। शिल्पादि कलाएँ इसीके हाथमें थीं।

हैं भारतीय सामाजिक रचनाके चार भाग, जो
श्रित थे। इनमें ईर्ष्या और द्वेषके लिये स्थान ही
सबके तदीय मनोरचनाके आधारपर कर्तव्य निश्चित
हैं। समाज-सत्ता किसी व्यक्ति या दलके हाथमें नहीं
। एक वर्गके पास विधान (Law) बनानेकी
र शिक्षाविभाग है, तो दूसरेके पास राज्याधिकार
के पास कोष और उत्पादन या जीवन-निर्वाहके
(Means of Subsistence), और चौथेके
शक्ति (Labour Power) और शिल्पादि कलाएँ
र्योंकी अधिकार-सत्तापर ब्राह्मणोंका, तथा दोनोंकी
ता-पूर्तिपर वैश्योंका अधिकार है। और तीनोंके
ूद्र हैं। इस प्रकार विभक्त होते हुए भी ये परस्पराश्रित
गये, जिससे किसी प्रकारका संघर्ष न हो सके।
न्योन्याश्रयभावको लक्ष्यमें रखकर वायुपुराणमें

—

ते ब्राह्मणा न स्युर्ज्ञानयोगवहाः सदा।
योर्लोकयोर्देवि स्थितिर्न स्यात्समासतः॥
निःक्षत्रियो लोको जगत्स्यादधरोत्तरम्।
ात्क्षत्रियैरेव जगद्भवति शाश्वतम्॥
त्र देवि वैश्याश्च लोकयात्राहिताः स्मृताः।
ा तानुपजीवन्ति प्रत्यक्षफलदा हि ते॥

... ...

श्च यदि ते न स्युः कर्मकर्ता न विद्यते।
पूर्वे शूद्रमूलाः सर्वे कर्मकराः स्मृताः॥

हमारी सामाजिक रचनासे सभी अपना-अपना कार्य
समाज और राष्ट्रके भव्य जीवनके लिये लाभकारी
ते थे। इस विषयमें विवाद नहीं कि
जिसके पूर्वज दीर्घकालसे जो कार्य करते आ रहे हों
रक्तमें भी तत्कार्यसम्बन्धी गुण अवश्य आयँगे। ः
वर्ग अपने कार्यको करता हुआ निश्चय ही अन्य वर्गों तथ
अपेक्षा स्वकार्यमें कुशल होकर समाज और राष्ट्रकी तत्स
उन्नतिमें विशिष्ट एवं महान् सहायक हो सकता है
लिये इस सामाजिक रचनाके आधारपर हमारा यह म
वृद्ध भारत-देश भूतकालमें ज्ञान-विद्या-बुद्धि-कला-वैभव
गुणोंमें कितना अग्रसर था—यह किसीसे छिपा नहीं

अब देखना यह है कि हमारी इस सामाजिक
कौन-सा सिद्धान्त मार्क्सवादके उपयोगी सिद्धान्तसे
मार्क्सवादका स्थूलरूपसे मौलिक सिद्धान्त यह है—

'प्रत्येक व्यक्ति कार्य करे और सबको उसकी आ
के अनुसार प्राप्त हो।'

हम यदि ज़रा गम्भीरतासे विचार करें तो
हो जायगा कि भारतीय सामाजिक रचनाके मूल
प्रकारका श्रमविभाग है। उसमें कार्यहीन कोई भ
समाजके ऊपर भाररूप नहीं हो सकता। अ
स्वकार्यको करते हैं, और आवश्यकतानुसार प्राप्त क
और जो यह संघर्ष हो रहा है—यथा एक
देना नहीं चाहता और दूसरा वर्ग सब कुछ लेना न
एवं धन, भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त धनीव
दारिद्र्यपीडित एवं ईर्ष्योत्तेजित श्रमिकवर्ग मनुष्यता
कर राष्ट्रिय एवं सामाजिक जीवनको संकटपूर्ण बना
जिसका कि उपाय मार्क्सवादने सर्वविध सम्पत्तिका
करण सोचा है—उसका अन्त इसी सामाजिक र
सकता है। हमारी सामाजिक रचनामें धनीवर्गका क
प्रकार निश्चित किया गया है कि जो कुछ भी धन
प्राप्त करता है, उसके ऊपर उसका निजी स्वामि
अपितु वह समाजका है। समाजके लिये सर्ववि
न्यायोचित उत्पादन, उसका संग्रह और संवर्द्धन
कर्तव्य है। इस प्रकार धनीवर्गकी भाँति जब सभी व
अपने कर्तव्यपर आरूढ रहेंगे, तब वर्गसंघर्ष हो ही नह
और सभी वर्ग अपने-अपने कर्तव्यपर कैसे स्थित रहें
पीछे 'अन्योन्याश्रय' से बताया जा चुका है। अतः
हो गया कि इस विषयमें भारतीय सामाजिक रचन
विशालता और श्रेष्ठताके कारण मार्क्सवादसे कहीं
महत्त्व रखती है। एवं वह सर्वथा निर्दोष है।
वादकी सामाजिक रचनामें तो कई ऐसे भयानक

ो मनुष्यका पतन करके छोड़ते हैं। यथा—
प्रथम मार्क्सवादीय समाजरचना मनुष्यकी नैसर्गिक
ोरचनाके अनुसार नहीं है।
में मनुष्य-जीवनके चरम उद्देश्य (भगवत्प्राप्ति) की
र ध्यान ही नहीं रक्खा गया, जिससे यह मानव-
वनकी सर्वाङ्गीण उन्नतिका साधन तो होता ही
ीं वरं द्वेष, हिंसा, वैर आदिके सेवनसे उसे अवनत
देता है।
में वैयक्तिकी शासनसत्ताका सर्वथा अभाव है,
ससे मनुष्यके अन्तःकरणके स्वाभाविक दुष्ट भाव काम-
धादिकों तथा तदुत्पन्न दोषोंके नियन्त्रण तथा दूर
नेका कोई उपाय ही उसके पास नहीं रह जाता।
ापि निजी स्वामित्वको नष्टकर स्वार्थमूलक
ोंको दबानेका प्रयत्न किया गया है, तथापि उसके
ऐसा कोई प्रवर्तक हेतु नहीं बनाया, जिससे मनुष्य
आत्मविकासके लिये प्रयत्न करे, अथवा सम
स्वपरिश्रमकी पराकाष्ठा दिखला सके।

परंतु हमारी वैयक्तिक रचना इन सब दोषोंसे सर्व
है और राष्ट्रके वर्तमान एवं भावीजीवनका सर्ववि
करनेमें समर्थ है। इस सामाजिक रचनासे आधुनिक
कलह शान्त हो सकते हैं। सबको उचित काम औ
पारिश्रमिक (Real Wages) मिल सकता है।
अधिकारके साथ तत्तुल्य कर्तव्य (Duty) निश्चि
जा सकता है। और समाजके सभी वर्गोंका कार्य
(Division of Work) होते हुए भी वे पूर्वोक्त
इस तरह परस्पराश्रित किये जा सकते हैं कि एव
दबानेका कभी अवसर ही न प्राप्त हो सके, प्रत्युत
और आदरके साथ रहनेके लिये विवश हों। इ
क्रमशः समाज, राष्ट्र एवं विश्वभरकी स्थिति सु
सकती है।



संस्कृतिका अन्वेषण

न इतिहास, कला, साहित्य एवं समाजके आचार-
अन्वेषण पाश्चात्त्य सभ्यताकी एक महती विशेषता
स्वीकार करना ही होगा कि अन्वेषणकी यह प्रवृत्ति
देन है। प्राचीनताकी छान-बीनकी यह अभिनव
वर्तमान अनेक साधन यूरोपसे विस्तीर्ण हुए हैं
को इतना अधिक महत्त्व मिला है कि प्रत्येक राष्ट्र
यका एक बड़ा भाग इसपर व्यय करता है।
त चाहे प्राचीनताका इस प्रकार अन्वेषक न रहा
हम सदासे उसके विश्वासी और अनुगामी रहे हैं।
ये प्राचीनता केवल जिज्ञासाकी वस्तु नहीं, वह
राध्य है। सनातन-शाश्वत धर्म एवं आदि संस्कृति
ो नित्य आदर्श रही है। अवश्य ही मध्यकी
की रक्षा तथा उनका अन्वेषण भारतको प्रिय नहीं
जिस जातिका लक्ष्य भौतिकताके ठीक प्रतिकूल
ता हो, वह बाह्य विकृतियोंकी छान-बीनमें लग भी
ती।
तक गवेषणाका सम्बन्ध है, वह सदा ज्ञानदायिनी
है। यूरोपकी इस प्रवृत्तिकी प्रशंसा करनी पड़ेगी।
यह प्रवृत्ति [illegible]
सङ्केत तो अवश्य ही करेगी। यूरोपमें, विकासवादकी
इंग्लैंडमें ही इस प्रकारके विशुद्ध अन्वेषक हैं
वैज्ञानिकोंने विकासवादका थोथा सिद्धान्त अस्वीकार
है और स्वीकार कर लिया है कि 'डार्विनका सि
बिल्कुल असत्य और विज्ञानके विरुद्ध है' (प्रोफेसर
वैटसन)। सायन्स इस बातका स्पष्ट साक्षी है कि 'मनुष
दशासे उन्नत दशाकी ओर चलनेके स्थानमें उलटा उ
ओर जा रहा है। मनुष्यकी आरम्भिक दशा उ
(सिडनी कालेट)। 'आदि सृष्टि अमैथुनी होती है
अमैथुनी सृष्टिमें उत्तम और सुडौल शरीर
(जस्टिस टी० एल्० स्टैंज)।

'चेतनके प्रभावके बिना जड़ पदार्थोंमें चेतना
नहीं सकती, विज्ञानका यह नियम मुझे पृथ्वीके उ
नियमकी भाँति ही अटल प्रतीत होता है।'*

---

* *The Development of Creation on the*
p. 17.

Dead matter cannot become living coming under the influence of matter pı living. This seems to me as sure a teac

स्वीकार कर लेनेपर भी यूरोपीय वैज्ञानिकों तथा
की स्वदेश एवं स्वसंस्कृतिकी परिस्थिति यह है कि
ासे सभ्य हुए हैं। मनुष्यकी मूल-उत्पत्तिके स्थानसे
नेपर वे वहाँकी शिक्षासे भी वञ्चित हुए। काल-
नका ज्ञान लुप्त हो गया। वे असभ्य हो गये। धीरे-
ं जब वे अपनेसे अधिक सभ्य जातियोंके सम्पर्कमें
ब उनकी सभ्यता एवं ज्ञानका विकास हुआ। फलतः
तिहास विकासवादका इतिहास है। थोड़े-से अत्यल्प
रुषोंको छोड़कर मनुष्यका अहङ्कार स्वभावतः उसे
स्वीकार करने देता कि कभी वह किसीसे किसी
हीन रहा है और उसने दूसरोंसे कुछ सीखा है।
अन्वेषक भी इसी वृत्तिसे विवश होकर स्वतः
समर्थन करते हैं। उनमें जो साहसी और तटस्थ
ने आदि पूर्ण संस्कृतिका सिद्धान्त स्वीकार किया है,
न अन्वेषण-प्रणालीको सर्वथा भ्रान्त घोषित कर

ात्त्य शिक्षाके प्रभावसे भारतीय अन्वेषकोंमें दो भाग
। एक भाग तो विकासवादकी भावना लेकर चलता
नके प्रत्येक क्षेत्रमें विकास हुआ। साहित्य, चित्रकला,
, समाज-व्यवस्था, धर्मभावना प्रभृति समस्त क्षेत्रोंमें
क्रमशः उन्नति की। अधिकांश आलोचक—चाहे वे
हों, साहित्यिक हों, पुरातत्त्वके हों या दूसरे किसी
—जो भी पाश्चात्त्य शिक्षाके प्रभावसे प्रभावित हैं, वे
उसी पुरानी भावनाके समर्थक हैं। वे नहीं देखते
के उच्च वैज्ञानिक उसे दो सदी (वैज्ञानिक सदी)
क भ्रमपूर्ण कल्पना कहते हैं और भारतके सम्बन्धमें,
का निरन्तर ह्रास हुआ है, जहाँ संस्कृतिकी परम्परा
ादिकालसे अनवच्छिन्न है, यह सिद्धान्त सर्वथा
।

ासवादकी यह भावना भारतमें अत्यन्त व्यापक है।
नी शिक्षा-संस्थाओंके पाठ्य ग्रन्थ इसी भावनासे
हैं। फलतः नवीन शिक्षित समुदाय भी इसी
साँचेमें ढलता जा रहा है। उपनिषदोंका महान्
सूत्रग्रन्थोंका अलौकिक दर्शनशास्त्र, आचार्योंकी
प्रतिभा, साहित्यमें कालिदास, सूर, तुलसी, विहारीके
दुर्लभप्राय प्रतिभा, प्राचीन मूर्ति एवं चित्रकलाकी
ामा—इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्रमें प्रत्यक्ष ह्रास देखकर
ार करके भी यह वर्ग अस्पष्ट, भ्रमपूर्ण, जटिल

समाजकी अध्ययनकी प्रवृत्ति घटती जा रही है
स्वास्थ्य, शरीर, कला—सबमें दुर्बलता, अपूर्णता
है। इसी अपूर्णताको, उच्छृङ्खलताको, ह्रासको आज
का नाम दिया जाता है। बच्चोंके-से स्थूल एवं तथ्यहीं
पुरातनका परिहास किया जाता है और माना जात
हमारा विकास हो रहा है।

विकासवादके प्रभावका मूल पाश्चात्त्य शिक्षा ए
है। जिन विद्वानोंमें भारतीयताका गर्व एवं उसके प्रति
है, वे भी इस पाश्चात्त्य शिक्षासे भ्रमग्रस्त हुए
विद्वानोंका एक बहुत श्रेष्ठ, ख्यात एवं सम्मानित व
यह तो स्वीकार करता है कि हमारे शास्त्र, ऋषिप्रणी
श्रेष्ठ एवं भ्रमहीन हैं, किंतु वह श्रेष्ठताकी धारणा
जगत्से लेता है। फलतः जो बातें, जो ज्ञान, जो
पाश्चात्त्य जगत्में श्रेष्ठ मानी जाती हैं, उनके विषयमें वह
'हमारे यहाँ ये बातें पहलेसे हैं।' शास्त्रोंके अद्
करके वह उन्हें सिद्ध करता है। जो बातें, नियम
पाश्चात्त्य जगत् हीन मानता है, वे यदि हमारे ग्रन्थों
इस वर्गके अनुसार 'वे अंश पीछेसे मिलाये हुए प्रक्षि
हैं, मध्यकालकी विकृतियाँ हैं।' इस प्रकार यह
आदर्श तो पाश्चात्त्य सभ्यताको ही मानता है।

इस वर्गमें संस्कृतके बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान् है
यह है कि जिन्होंने पहले पाश्चात्त्य शिक्षा प्राप्त की
धारणा उसके अनुसार बन गयी। प्रारम्भिक शिक्षा
अपक्व बुद्धिको अपने साँचेमें ढालती है। अतः उन
पाश्चात्त्य-विचारप्रधान हो गयी। इसीलिये प्रारम्भिक
अपनी भाषामें अपनी संस्कृतिके अनुरूप आवश्य
है। बुद्धि पक्व होनेपर विदेशीय शिक्षा ज्ञानवर्द्धनक
हो सकती है, परंतु प्रारम्भमें तो वह भ्रम ही
करती है।

पाश्चात्त्य शिक्षाके प्रभावसे जो भारतीय विद्वाने
पाश्चात्त्य धारणाओंको अपने यहाँके ग्रन्थोंमें सिद्ध
प्रयत्न करता है, वह चाहे जितना उच्च बौद्धिक वर्ग हो
यह अहङ्कारकी प्रेरणासे ही है। अहङ्कार ही व्यक्तिक
करता है कि अपनेमें वह सभी गुणोंका आरोप
दोषोंके लिये दूसरोंको दोषी ठहराये। 'हमारे यहाँ अ
नहीं थी!' पाश्चात्त्य दृष्टिमें सभ्य बननेके लिये
मनमाना अर्थ करके यह सिद्ध करनेकी अपेक्षा 'अ

श्रेष्ठ है तो उसे स्वीकार करना चाहिये; परंतु बात उलटी है। 'हमारे यहाँ अस्पृश्यता थी और वह हिये। वह श्रेष्ठ है।' उसके मर्मको न समझकर सभ्यताने उसे बुरा माना। पाश्चात्त्य प्रभावसे हम छाईको बुराई मान लें और तब कहें कि यह हमारे ां थी, यह कोई बुद्धिमानी नहीं है। अस्पृश्यताकी तिभेद, मूर्तिपूजा, देववाद, अवतारवाद, श्राद्धादि एवं सिद्धान्त भी हैं, जो सत्य हैं, शाश्वत हैं। शास्त्रोंको अस्वीकार करनेवाला 'प्रगतिवादी' वर्ग स्त्रोंसे पाश्चात्त्य मान्यता सिद्ध करनेवाला 'बुद्धिवादी' नों ही उस अन्वेषणकी प्रणालीसे प्रभावित हैं, जो वैज्ञानिकोंने अपनायी है। भूमिमें खोदनेपर मिली तें, मूर्तियाँ, सिक्के तथा दूसरे पदार्थ, प्राचीन दानोंमें पत्थरोंमें प्राप्त सैकड़ों वर्ष पुराने जन्तुओंके अवशेष, मरुस्थल या हिमप्रान्तमें मिले सुरक्षित पिरामिडों एवं कबरोंकी सामग्रियाँ, यही सब वैज्ञानके अन्वेषणके साधन हैं। इन्हींके आधारपर ां एवं सभ्यताओंका इतिहास निर्धारित किया जाता है।

कासवाद' पर विचार करते समय इन साधनोंकी र विस्तारसे विचार किया जा सकता है। सभी यह स्वीकार के सम्पूर्ण पृथ्वी एक अनिश्चित गहराईतक कभी ी जा सकेगी। इस समय जितना भाग खोदा या सका है, वह उस भागका एक सहस्रवाँ भाग भी तका खोदा जाना अत्यावश्यक जान पड़ता है। अनेक ा बार-बार मिलते हैं, जो पुराने स्थिर किये नियमों- सिद्ध कर देते हैं। इस प्रकार अभीतक ऐसा कोई र्धारित नहीं हुआ, जिसके सम्बन्धमें यह आशा की के वह निरपवाद रहेगा। अन्वेषणसे प्राप्त सामग्री ाल्प और अपूर्ण है, यह इससे समझा जा सकता है।

लीजिये कि पृथ्वीका वह भाग जिसे खोदा जा और पुरातत्त्व-विभाग जिसका खोदना आवश्यक कुछ सौ शताब्दियोंमें खोद लिया गया। क्या तब समस्त प्रमाण उपलब्ध हो जायँगे? पहली बात नगरों, वनों, खेतों, पर्वतों और समुद्रोंके नीचे तब ा अधिक भाग अज्ञात रहेगा। वहाँ कुछ नहीं है, से कहा जा सकता है। दूसरी बात यह कि भूमिका बराबर धूल, मिट्टीसे ढकता है। इसीसे प्राचीन

प्राचीन होकर सड़ती हैं। लकड़ी, कपड़ा, कागज शीघ्र सड़ता है; पर पत्थर, लोहा तथा दूसरी धातु परिवर्तन होते हैं। हम आशा नहीं कर सकते कि भू दस-बीस-लाख वर्ष पुरानी कोई वस्तु पा सकेंगे, पृथ्वीको रेडियमने अरबों वर्ष पुरानी बता दी है। ऊपरी स्तर जैसे-जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे ही न वस्तुओंपर दबाव बढ़ता जाता है। बहुत नीचे पृथ्व टूटकर एकाकार हो गये हैं। वहाँ किसी पदार्थका सम्भव नहीं। यदि वहाँ कुछ रहा हो तो वह भूमिसे हो गया। इस प्रकार उपलब्ध सामग्री एक निश्चित पीछेकी हो नहीं सकती। इस सामग्रीमें भी का अधिक लंबा होगा, पदार्थ उतने सड़े, दुर्बल होंगे पदार्थ मिलेंगे, जो सड़नेसे बच रहे। यदि हमें प्राच के वस्त्र और कागज नहीं मिलते तो इसका अर्थ कि वे थे ही नहीं—उस समय केवल पाषाण या उपयोग होता था। ये 'पाषाणयुग' तथा 'धातुयु काल्पनिक हैं। उस समयके काष्ठको पानेकी हम अ कर सकते हैं।

जो पदार्थ हमें खोदनेसे मिले हैं या मिलते हैं किसी समयके सचमुच प्रतीक हो सकते हैं? विचारणीय विषय है। ऐसा तो कोई स्थान अभी क नहीं है, जहाँ खोदनेपर केवल पत्थर या केवल सामग्री मिली हो। सभी सामग्रियाँ कुछ-न-कुछ मि मिलती हैं। आज साधुओंकी रहन-सहन, गरीबोंक सहन, विद्वानों और सम्पत्तिशालियोंकी रहन-सहन क है? क्या एक भीलोंके ग्राम और नगरमें समान सामग्र है? क्या भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें ही अन्तर नहीं

कल्पना कीजिये कि कोई पुरानी समाधि खोद वह साधुकी, बौद्ध भिक्षुओंकी हो तो वहाँ मिट्ट साधारण पाषाणके बर्तन तथा कुल मिट्टी, पत्थर या की बहुत सामान्य वस्तुएँ निकलेंगी। क्या इसका होगा कि उस समय लोग कारीगरी नहीं जानते थे? खोदनेपर टाटानगरकी भाँति कोई औद्योगिक न तो यह परिणाम निकलेगा कि उस समय सारे संसार लोहा ही प्राप्त था?

आज जहाँ भी खोदनेका काम होता है, यह कोई साधन नहीं रहता कि उस समयके समाजमें

विशिष्ट सामग्रियोंसे उस समयके पूरे मानव-समाजकी करते हैं। यह कल्पना वैसी ही है, जैसे कोई उजड़े छोटे ग्रामकी दीवालों तथा खपरैलके टुकड़ोंको पूरे देशकी संस्कृतिका वर्णन करने लगे।

इ प्रकार आधुनिक अन्वेषणके सब आधार अपूर्ण और पूर्ण हैं। अत्यल्प, सन्दिग्ध प्रमाणोंपर किये हुए कोरे तथ्यहीन अनुमान ही हैं। ऐसे अनुमानोंने को बहुत भ्रमपूर्ण कर दिया है। विकासवादकी धारणा उस भ्रमको और भी जटिल बनाती है। यद्यपि संग्रहालयोंके अध्यक्ष अब स्वीकार करने लगे हैं कि संग्रहालयोंमें ऐसा कुछ नहीं, जो विकासकी धारणाको , फिर भी पाश्चात्त्य शिक्षाके प्रभावसे प्रभावित विद्वान् धूरे प्रमाणोंके अतिरिक्त और कोई आधार अपने का न पाकर उसी अन्धकारमें भटक रहे हैं।

न्वेषणकी पाश्चात्त्य प्रणाली उसके भौतिकवादपर निर्भर मान लिया गया है कि पदार्थोंका स्थूल रूप सत्य है। पदार्थोंको पृथ्वीके भीतर गड़ा हुआ या आकाशमें रूपमें किसी-न-किसी रूपमें मिलना ही चाहिये। जो कुछ पृथ्वीमें मिलता है, उसी कंकालके आधारपर का काल्पनिक चित्र बनाया जाता है।

दू-संस्कृतिके अन्वेषणमें ये कंकड़-पत्थरोंके प्रमाण ी प्रकार प्रमाणकोटिमें लेने योग्य सिद्ध ही नहीं होते। स्कृतिकी परम्परा इतनी प्राचीन है कि उसकी प्राचीनता-त्का कोई पदार्थ अपने रूपमें बना रहेगा, ऐसी नहीं की जा सकती। कालकृत इस दीर्घताकी बाधाके क दूसरी बाधा सिद्धान्तकी है। भारतीय दर्शनोंके तोंमें पदार्थोंकी व्यक्त सत्ताको अमान्य किया गया है। एवं उसके पदार्थोंका आविर्भाव तथा तिरोभाव दर्शनको मान्य है। जब पदार्थकी स्थूल सत्ता ही ब स्थूल पदार्थके प्राचीन चिह्न मिलने कैसे सम्भव हैं।

थूल पदार्थोंके आधारपर हिंदू-संस्कृतिके अन्वेषण करने-कठिनाइयाँ तो द्वापरके अन्त और आजकी स्थितिके यमें ही इतनी बढ़ जाती हैं कि वे कोई ठीक समाधान र पाते। द्वापरके अन्तको पाँच सहस्रसे कुछ ही वर्ष हुए हैं। महाभारतका युद्ध द्वापरके अन्तमें हुआ हाभारत तथा पुराणोंके वर्णनोंका आजकी सामाजिक, सेक, भौगोलिक, सभी बातोंसे सामञ्जस्य नहीं होता।

इन तीन सहस्र वर्षोंका विवरण विश्वस्तरूपसे प्रा जाता है। पाँच सहस्रसे तीन सहस्रके मध्यके दो सहर ऐसी कौन-सी महान् घटना विश्वमें हुई, जिसने समस्त भूगोल एवं इतिहास-क्रमको भंग कर दिया—इस पता नहीं।

महाभारतके वर्णनके अनुसार भारतका उस समयं भूमण्डलके देशोंसे सम्बन्ध था। पृथ्वीके वर्तमान सभी भाषा, आचार, कलाकृति आदिमें ऐसे अंश पर्याप्त हैं, उ भारतसे सम्बन्ध सूचित करते हैं। यह सम्बन्ध क टूट गया, इतिहास इसे बतानेमें असमर्थ है। इस भारतीय रथों, दिव्यास्त्रों आदिका लोप भी एक सम

सर्पके मस्तककी मणि, गजमुक्ता, स्वयं प्रका —इन सबका वर्णन इतने विस्तारसे प्राचीन शास्त्रोंमें है। केवल कवि-कल्पना नहीं कहा जा सकता। इसके भी सत्य है कि आज संसारमें ऐसा कोई रत्न या म जो अन्धकारमें थोड़ा भी प्रकाश कर सके। वह केवल से अपनी स्थितिमात्र सूचित कर दे, यही पर्याप्त है कहीं कोई सर्पके सिरका मणि नहीं और न कहीं मस्तकसे निकला मोती ही उपलब्ध है।

भारतमें जिस अपार ऐश्वर्य एवं सम्पत्तिका व है, क्या सब काल्पनिक है? स्फटिकके भवन, स्वर्ण नगर-जैसे यज्ञ-मण्डप, रत्नोंकी राशियाँ, क्या हुई सब का पाश्चात्त्य सभ्यतामें दीक्षित अन्वेषक तो कह देग सब कवियोंके स्वप्नकी बातें हैं। क्योंकि पदार्थोंकी स्वीकार कर लेनेपर उसके लिये दूसरा कोई मार्ग रह नहं

भारतीय शास्त्र इस सम्बन्धमें मौन नहीं हैं। हैं कि विश्वमें कोई महान् घटना हुई हो या न पदार्थोंका तिरोभाव होना तो सहज ही है। पदार्थों सत्ता केवल भ्रान्ति है। सभी पदार्थोंके अधिदेवता पृथ्वीपर किसी पदार्थको पानेके योग्य अधिकारी जाते, तब वह पदार्थ तिरोहित हो जाता है। जब फिर उत्पन्न होंगे, तब व्यक्त हो जायगा। वह भूमि या समु में छिप नहीं जाता। स्थूल जगत्से ही लुप्त हो यही बात कला, विद्या और दूसरे दिव्यास्त्रादि साध शास्त्रोंके सम्बन्धमें कही गयी है। पदार्थ जब तिरे गया, तब पृथ्वी खोदने या समुद्र छाननेसे उसका लगेगा।

। इसीसे वस्तुका अन्वेषण, उसका हिसाब वहाँ
। वहाँ भूमिसे मिले पदार्थ इतिहासके आधार माने
ातों, घरों, दूकानों, गोदामोंमें चूहे, कीड़ों तथा
भोजनका हिसाब किया गया। इस हानिसे बचनेके
के वधके उपाय किये गये। बराबर उन उपायोंका
। रहा है। भारतने पदार्थकी स्थूल सत्ता अस्वीकार
ार्थ भावरूप हैं। वे भाव-जगत्से हमारे अधिकारके
व्यक्त होते हैं। अतः यहाँका अन्वेषण पदार्थोंके
कंकालपर निर्भर नहीं। यहाँ दूसरे जीवोंसे ईर्षा
र न उनको मिटानेका प्रयत्न ही है। हिसाब चाहे
किंतु भारतीय शास्त्र कहते हैं, डरनेकी कोई बात
मारे भागकी उपलब्धि हमें होगी ही। चूहे, कीड़े,
ऽ अपना भाग लेते हैं। वे हमारा भाग नहीं ले सकते।

आजके मनुष्यका हृदय इतना संदिग्ध हो गया है
विश्वास नहीं कर पाता कि पक्षियोंके मनमाना खानेपर
उसके भागका फल रहेगा ही, चूहे उसके भंडारमें
नहीं सकते, रक्षाका पूरा प्रयत्न करके वह जितना
उतना सबको पूरी छूट देकर भी उसे मिलेगा।'
। प्रकार स्वतः-प्रकाश रत्नों, मणियों, दिव्यास्त्रों तथा
ाद्याओंके सम्बन्धमें भी उसे सन्देह हो गया है।
षयमें मनुष्य स्थूल गणित, स्थूल प्रमाण चाहता है।

क बार इन्द्रजाल करनेवाले भावरूप पदार्थका दर्शन
हैं। ऐसे महात्माओंके वर्णन हमें पढ़नेको मिलते
ो मानसिक पूजाके पदार्थ बाहर किसी कारणसे प्रकट
इन प्रकट पदार्थोंकी स्थूल सत्ता कहाँसे आयी?
ादार्थ भावकी प्रगाढ़तासे मूर्त ही तो हुए। इसी
ी पदार्थ सृष्टिकर्ताकी भावनाके ही मूर्तरूप हैं।
ीवोंके अधिकारके अनुरूप उनका आविर्भाव तथा
होता रहता है। महाराज पृथुके समयमें पृथ्वीने
ाद्योंको तिरोहित कर दिया था, यह बात पुराणोंमें
गयी है।

र्थ केवल तिरोहित ही हो जायँ, ऐसी बात नहीं।
र उनका स्वरूप इस प्रकार परिवर्तित हो जाता है
पहले रूपसे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं जान
इस परिवर्तनका कोई प्राकृतिक कारण देना या
यः शक्य नहीं होता। तीर्थोंमें स्फटिकशिला, रत्न-

कोयला हीरा बन सकता है, सेक्रीन बन सकत
पता नहीं क्या-क्या बन सकता है; किंतु ये परिवत
हैं, अतः हम इन्हें पहचान लेते हैं। किंतु राग
भय, हिंसा, घृणा आदि किसी रूपमें बदलता है
मनोवैज्ञानिक भी उसे कठिनाईसे ही विश्लेषित कर
भावरूप पदार्थोंमें जब भाव-जगत्से कोई परिवर्तन
हम स्थूल नियमोंसे उसे जान नहीं सकते। फल
पदार्थ एवं स्थूल सिद्धान्त प्राचीन इतिहास तथा
अन्वेषणमें सदा असमर्थ एवं भ्रामक रहते हैं। उनक
मानकर चलनेसे भ्रमकी ही वृद्धि होती है।

बिहार प्रान्तके माननीय गवर्नर श्रीमाधव श्री
महोदयने कहा है—'ईंट और ठीकरोंमें भारतीय इ
खोज हास्यास्पद है। वास्तविक भारतीय इतिहास
पुराणों और उपनिषदोंमें ही मिल सकता है।' वास्त
यही है। मनुष्यका ज्ञान एवं भाषा ही अपनी अन
परम्परा रखती है। संस्कृतिका ठीक रूप हम उन्हीं
कर सकते हैं।

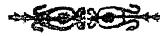
मनुष्यके ज्ञानका साधारण सर्वमान्य नियम
वह कालक्रमसे विस्मृत होता जाता है। उसका ह्रा
है और निमित्तोंके द्वारा वह जाग्रत् होता है। ये नि
स्थानसे आते हैं, जहाँ ज्ञानका स्तर ऊँचा हो। इ
ज्ञान अपनी परम्परा बनाये रखता है। क्योंकि मान
विद्या, कला, संस्कृति—सब उसके ज्ञानपर निर्भर हैं,
अनुगामिनी हैं; अतः उनमें भी समष्टिरूपसे ह्रास ही ह

भाषाओंके सम्बन्धमें हम प्रत्यक्ष देखते हैं
भाषाएँ अपनी शक्तिके लिये अपनी मूल भाषापर निर्भ
हैं। दूसरे शब्दोंमें, वर्तमान भाषाओंसे उनकी मूल भ
अधिक शक्ति और क्षमता है। आज जिन्हें मूल
माना जाता है, वे भी एक भाषाकी विकृतियाँ मात्र हैं
भाषा एक ही है और वह संस्कृत है। इस प्रकार
इतिहास भी हमें ह्रासकी ही सूचना देता है।

मूलभाषा संस्कृत तथा उसमें सुरक्षित मूलज्ञान
हमें प्राप्त है। श्रुति, स्मृति, पुराणसे यह ज्ञान क्रमशः
ओर चला है। मूलतः इस बातको भली प्रकार ह
करके यदि मानवज्ञान एवं भाषाओंकी छान-बीन

संस्कृति, अपितु मिस्र, यूनान, बैबीलोनिया, चीन, , दक्षिण अफ्रिकादिकी सभी प्राचीन संस्कृतियोंका ेषण इसी पथसे सम्भव है; क्योंकि यह सिद्ध हो क विश्व-मानवकी आदि जन्मभूमि और आदिसंस्कृति

एक ही है। वह पुण्यभूमि भारत ही है, जहाँ पृथ्वीमें फैल गया और अपने साथ यहाँके संस्कारोंको काल एवं परिस्थितिके प्रभावसे वही संस्कार अनेक स के रूपमें व्यक्त हुए।



देहतत्त्व-विज्ञान

(लेखक—प्रो० श्रीक्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०)

के साथ देहका अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह केवल म्भीर ही नहीं, रहस्यमय भी है। देहको ज्ञान ।, और जीव कोई ऐसा नहीं होता, जिसे कभी र्ग ही प्राप्त न हो। ऐसे जीवकी हम कल्पना भी सकते, जो सदाके लिये देहसम्पर्कसे हीन हो, जिसे रका स्पर्श न करना पड़े। देह-बद्ध और देह- ुक्त—दो प्रकारके जीव या पुरुष होते हैं। जीव ंश है—'**अंशो नानाव्यपदेशात्**' (वेदान्तसूत्र ४२)। गीतामें भी कहा है—

वांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(१५ । ७)

र्भावके पहले जीव ब्रह्मके अन्तर्गत रहता है, ह्म ही रहता है। जीवके आविर्भावके साथ-साथ है। देह नहीं तो जीव नहीं। जीवका अर्थ है वा त्यक्तदेह या देहमुक्त।

की उत्पत्तिके लिये देह आवश्यक है। ब्रह्मसे पृथक् ।-सहस्र जन्म-जरा-मरणके प्रवाहमें, परम्परा-क्रमसे देह धारण करके तथा उनका त्याग करके, सुख-दुःख, पाप-पुण्य तथा धर्म-ज्ञानसे अभिज्ञता जीवकी जीवनयात्रा सुर-नर-तिर्यक् आदि नाना ोटि-कोटि वर्ष व्याप्त होकर एक दिन अवसानको । है। जीव लौटकर पुनः परब्रह्ममें मिल जाता है। जीव ब्रह्मसे अलग होकर कभी नहीं रहता और रहना उसके लिये सम्भव ही है। तथापि वह इस त्रामें देश-देशान्तर, दिग्-दिगन्तर परिभ्रमण करते भिन्न होते हुए भी भिन्नवत् प्रतीत होता है। निश्चय ब अज्ञानवश होता है।

जो अविरत तीर्थयात्रा है ... ...

आवागमन है, अविरत यातायात हो रहा है, तब देहसे युक्त रहेगा—देहसे पृथक् नहीं होगा। दे जिस दिन टूट जायगा, उसी दिन इस दीर्घ व्यापारका अन्त हो जायगा। जीव मुक्त हो जायगा। प्राकृत देह है, त्रिगुणनिर्मित देह है, नश्वर शरी

मघवन् मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युन

परंतु जीव जब मुक्त होकर अमृत बनता है, अशरीरी, अमूर्त्त नहीं हो जाता—गुणमय देहसे मु दिव्य देह, चिन्मय देहसे युक्त होता है। वही देह ि मय आत्माके चिदानन्दघन उपादानसे उत्पन्न हो इसीलिये आत्मसत्ता और देहसत्ता भिन्न नहीं होत ही सत्ताके दो विभाव होते हैं—आत्मा और देह अविनश्वर है और आत्मा सच्चिदानन्द, सत्यकाम सङ्कल्प है। श्रुतिमें कहा है—

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय प रूपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।

मुक्त आत्मा अपने स्वतन्त्ररूपमें अभिनिष्पन्न अर्थात् प्रतिष्ठित होता है। वह वहाँ भ्रमण करता है करता है, हँसता है, अतएव देहविशिष्ट है (छान्द १२ । ३)। मुक्त होकर जीव ब्रह्ममें विलीन हो ऐसी कल्पना अद्वैतवादी करते हैं। हमारी बुद्धिके वेदान्तदर्शन अर्थात् बादरायणसूत्रोंमें ऐसी कोई बा निरञ्जन परम साम्यको प्राप्त होता है, ब्रह्मधाममें प्रवे है, नाम-रूपसे विमुक्त होकर परात्पर पुरुषको प्राप्त हो उपनिषद्गत वाक्य जीवके ब्रह्ममें विलीन होनेकी बात नह सहस्रशः कामनाएँ और वासनाएँ निवृत्त हो जाती हैं ब्रह्मके केवल अनुभवानन्द तथा सर्वसिद्धि-सम्पद्के प्राप्त होता है—इसी अर्थमें 'ब्रह्मनिर्वाण' और 'ब्रह्म

भावसाम्यके द्वारा विलीनप्राय हो जाता है ।
की दिव्यभावमें स्फुरणा होती है, कभी जाग्रद्वत्
स्वप्नवत्—इत्यादि बातें बादरायण मुनिने स्पष्ट
दी हैं' (वे० सू० ४ । ४ । ८–१५) ।

अमृत और अविनश्वर है । जीवके नित्यत्वमें
घात नहीं होता । यह सारे शास्त्रोंका सिद्धान्त है ।
द्वानोंने इसे स्वीकृत किया है । यदि वह अरूप
र्त्त होकर ब्रह्ममें विलीन हो जाय तो उसका नित्यत्व
जायगा । अद्वैत ब्रह्मका नित्यत्व जीवके नित्यत्वको
र लेगा । जलबिन्दु सिन्धुमें मिलकर फिर जलबिन्दु
। अतएव निर्वाणको माननेपर जीवको नित्यतासे
पड़ेगा । वह अनित्य हो जायगा । निर्वाणका
केवल कल्पनामात्र है, यह बौद्ध सिद्धान्त है ।
ख्यने निन्दा की है—'अपवादमात्रमबुद्धानाम्' ।
के नित्यदेह, सिद्धदेह, दिव्यदेह रहती है । यही
का सिद्धान्त है ।

जीवोंके सिद्धदेह भिन्न-भिन्न होते हैं । किसी
की सिद्धिसे जीवकी मुक्ति होती है । सिद्धदेह
वके अनुसार होता है । उसी भावानुबन्धिरूपमें
फुरणा होती है । प्रत्येक जीव एक-एक सुन्दर,
तन्त्र भावमूर्ति होता है, अलग-अलग परम सुन्दर
होता है । श्रुतिने कहा है कि जीव परम पुरुषके
है । उनके प्राण-प्राणमें गुँथा है । जब बद्ध जीव
सखा है, तब मुक्त जीव तो निश्चय ही होगा ।
राकार अर्थात् अशरीरी नहीं होता । दिव्यदेह-
रुष या रमणीरूपमें अभिनिष्पन्न होकर अनन्त
राज्यमें निःशेष सुखसम्पद्का आस्वादन करते हुए
ास करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये ही जीव
नता है । परब्रह्मका यही उद्देश्य है, सृष्टिका यही
है, इसीके लिये लाखों-लाखों वर्ष जन्म और मरणके
दुर्दशाग्रस्त होना पड़ता है । लाखों कल्पोंके दुःख-शोक
जाते हैं चिद्देहमें अमृत-जीवनका प्रारम्भ होनेपर ।
जीवके चार देह हैं, तीन नहीं—(१) कारण-
कारण-शरीर, (२) लिङ्ग-देह या लिङ्ग-शरीर,
ूक्ष्म-देह या सूक्ष्म-शरीर, (४) स्थूल-देह या स्थूल-
जीव इससे लिप्त होता है, इसीलिये इसे 'देह' कहते

अध्यात्मसाधनाके प्रभावसे यह देह क्रमशः क्षीण होकर
जाता है । इसी अर्थमें इसे 'शरीर' कहते हैं । आत्म
और जीव—एक ही तत्त्वके तीन नाम हैं । जीवके
वर्णन सुविशदरूपसे भागवतमें किया गया है—

> **अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः पर**
> **प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वित**
> (३ । २

यह निर्गुण, ज्योतिर्मय, अनादि आत्मा
प्रभावमें प्रवेश करता है । इस प्रकृति-प्रवेशका,
भीतर जानेके सम्बन्धका, इस व्यापारका अवलम्बन
पुरुष पुरुष होता है, स्वतन्त्र आत्मा बनता है,
है । अन्यथा जीव या पुरुष नामकी वस्तु कहीं नह
केवल ब्रह्म । इसी कारण जीव प्रकृति-प्रविष्ट होक
प्रकृतिके अधीन होकर स्वतन्त्र कब हुआ, स्वकर्मोंके
उत्तरदायित्व कब उसने ग्रहण किया—यह व
जानता । ब्रह्म भी नहीं जानता । परंतु फिर भ
विद्वान् भगवान् कपिलजीने स्वतः समाधिदृष्टिसे उ
की एक दिव्य भावमूर्ति अङ्कित की है । त्रिगुणमयी
त्रिगुण स्वभावके द्वारा त्रिगुणमय उपादानोंसे निर
नयी सृष्टि करती है—अत्यन्त विचित्र, अत्यन्त
ब्रह्मसागरसे फुल्ल-रञ्जित तरङ्गकी भाँति जाग्रत् है
ब्रह्मकी ही भावान्तररूपा उस सृष्टिकारिणी प्रकृति
देखकर प्रफुल्ल हो उठा, विमोहित हो गया, ज्ञान
उसने प्रकृतिको आत्मसमर्पण कर दिया ।

> **विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहर**
> (श्रीमद्भा० ३ ।

समष्टि-पुरुष समष्टि-प्रकृतिका अवलम्बन करके
हिरण्यगर्भ और ईश्वर होते हैं, और व्यष्टि-पुरु
प्रकृतिका अवलम्बन करके विश्व, तैजस और
होते हैं ।

पुरुष अर्थात् जीवने प्रकृतिके भीतर प्रवेश कि
प्रकृतिके साथ सम्मिलित हुआ । इससे अव्यक्त
जो आद्य भावान्तर या रूपान्तर प्राप्त हुआ, अर्थात्
जिस रूपमें अभिव्यक्त होकर सृष्टिके आदिमें जीवको
दिया, वह रूप ही 'महत्तत्त्व' है । इसीके व्यष्टि-

। (the primordial cause of the
evolution) इसीका नाम शरीर है; क्योंकि यह
ो एक दिन शीर्ण होकर नष्ट हो जायगा। यही
ग्रते हृदयग्रन्थिः' । इसीका नाम 'आनन्दमय कोष'
के सत्त्वगुणकी प्रधानताके कारण इसमें आनन्दकी
। कोष इसलिये कहते हैं कि आधारपात्रके समान
। जीवनको धारण करता है । इसका एक नाम
है; क्योंकि जाग्रत्-स्वप्नादि अवस्थाएँ इसीमें
लीन होती हैं ।

ा है लिङ्ग-शरीर । पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय,
, पञ्च तन्मात्रांश तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार—इन
क्ष्म समन्वय (subtly incorporated) ही
र कहलाता है । वस्तुतः यह तेईस अवयवों या
होता है । पञ्च प्राणोंको छोड़ दें अथवा पञ्च
ंका हिसाब न रक्खें तो इसके अठारह अङ्ग माने
। संसारी जीवके जीवन-यापनके लिये, उस
ाटिल और मिश्रित क्रिया-परम्पराके सम्पादनके लिये
। आश्चर्यमय ज्ञान-चैतन्य यन्त्र (the wonder-
complex mechanism) है, वही 'लिङ्ग-
हलाता है । गीतामें कहा है—

: प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।

। विज्ञान, वितर्क, विचारादिसे युक्त, सङ्कल्प, विकल्प,
संस्कार, स्मृति आदिसे सम्पन्न जिस दुर्गम दुर्ज्ञेय
ठकर मायाश्रित जीव सांसारिक जीवन यापन करता
ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यादि तथा इनके विपरीत
ज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यादिका साधन करता
प्रकोष्ठका नाम ही 'लिङ्ग-शरीर' है । इसको हम
ीर' कह सकते हैं । लिङ्ग-शरीर जीव-जीवनका स्वतः
विवरण-यन्त्र है तथा सर्ववृत्तान्तोंका आधार (an
orking automatic record machine)
ण मन-वाणी और शरीरसे, जाने अथवा अनजाने,
। अनिच्छासे जीवनमें जो कुछ किया जाता है, सोचा
ा अनुभूत होता है, सब कुछ लिङ्ग-शरीरके भीतर
ा है, लिपिबद्ध हो जाता है, अङ्कित और चित्रित
है । लोग जो चित्रगुप्तके हिसाबकी बात कहते हैं,
शरीर ही है । जन्मों-जन्मों संस्कार इस लिङ्ग-

है । कर्माशय, कर्मवासना, आशा-निराशा, अतीत, वर्त
भविष्यत्—सब-के-सब लिङ्ग-देहरूपी फलक (तर
खुदे हुए रहते हैं । जन्म, जाति, स्वभाव, चरित्र, मा
रुचि, प्रवृत्ति—सबका निरूपण और निर्णय होता
शरीरके द्वारा । अङ्ग-अवयव, आकार-वर्ण आदि
रचना लिङ्ग-शरीर करता है । लिङ्गके शीर्षस्थान
बुद्धि-अहङ्कारके छायालोकके आसनपर बैठी है
निर्विकार पुरुषकी चञ्चल छायामूर्ति । उसीका 'पुरुष
परिचय दिया जाता है । पातञ्जलदर्शनमें कहा गय

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः । (२

जो प्रत्ययानुपश्य है, वही पुरुषाकारा बुद्धि अथव
पुरुष (Reflection spirit) है । यह यथा
नहीं है, छाया-पुरुष है । यह छाया-पुरुष लिङ्ग-शरीर
और मोहित हो रहा है । सारी क्रियाएँ प्रकृतिकी हैं
इसे न समझकर अपनेको कर्त्ता मानता है ।

कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते
(श्रीमद्भा० ३ । २

—यही प्रत्ययानुपश्य है ।

लिङ्ग-शरीर पुरुषकी अनादि भ्रान्ति और मोह
अवस्थित है । जीव-जीवन भी एक भ्रान्तिका प्रवाह
संसार एक विशाल विमोह है, चिरकालतक
भूल (a long-lasting mistake) है । जबत
भङ्ग नहीं होता, तबतक लिङ्ग-देहका पतन नहीं होत
भंगको ही दूसरे शब्दोंमें 'विवेकख्याति' या 'परमप्र
(the supreme understanding i
ing realization of the spirit's fr
from nature) कहते हैं । इस मोहभङ्ग त
भङ्गके लिये लाखों-लाखों कल्प अतिवाहित हो स
फिर तीव्र संवेगसे अनन्य साधनाके फलस्वरूप एक ही
लिङ्ग-शरीरका पतन होकर मोक्ष प्राप्त हो सकता है
नाम अर्थपूर्ण है—**'लयं गच्छति, इति लिङ्गम्'**
शरीर कोटि-कल्पस्थायी होनेपर भी इसका ध्वंस
है । एक दिन यह छिन्न होगा ही । जितना ही दृढ़,
ही टिकाऊ (tenacious) हो—टूटेगा ही । यह
नहीं है—इस बातको सदा याद रखनेके लिये ही
इसका नाम रक्खा है 'लिङ्ग-शरीर' ।

क्तिविशिष्ट मनोमय कोष कामनाका केन्द्र है, सङ्कल्प
ाकल्पका साधक है। अनुभव (perception and
ıg), स्मृति और संस्कार आदिका आधार मन है।
' कोष क्रियाशक्तिशाली है। साधारणतः लोग 'मन' और
करण' शब्दोंसे जो समझते हैं, वह लिङ्ग-शरीर ही है।
रीरके भीतर तन्मात्राओंकी विशेष वृत्ति रहती है,
क्रिया-साधकता रहती है। मन-इन्द्रिय आदि करण-
निरवयव, अदेशव्यापी होकर भी जो तन्त्र-ग्रन्थि-बद्ध
state of cohesion) रहती हैं, प्रायः अङ्गाङ्गि-
क्त रहती हैं—इसका कारण यही है कि ये
ओंका आधार लेकर रहती हैं, तन्मात्राओंमें लगी
। तन्मात्राएँ सूक्ष्म भूत (original subtle
ial substances) हैं। जिस प्रकार तन्मात्राएँ
मक हैं, इन्द्रिय-मन आदि भी उसी प्रकार त्रिगुणात्मक
द्रय, मन और बुद्धि स्वच्छ (translucent)
चेदालोकको रश्मिके प्रतिबिम्बको ग्रहण कर सकते
भूत स्थूल और अस्वच्छ हैं, वे ग्रहण नहीं कर
तन्मात्राओंकी स्थिति दोनोंके मध्यमें है। इन्द्रिय
समान चित्-प्रतिबिम्बको ग्रहण नहीं कर सकतीं;
क्ष्म स्वभावके कारण इन्द्रियादिको स्थूल-देहके साथ,
हको मांसशोणितमय शरीरके साथ युक्त करनेकी
रखती हैं। तन्मात्राओंकी यह अत्यावश्यक वृत्ति
ction) है।

सरा है सूक्ष्म-शरीर। यह लिङ्ग-शरीरके समान
क शरीर नहीं है, ज्ञान-करण अथवा अन्तःकरण-शक्ति
है; यह है सूक्ष्म पाञ्चभौतिक शरीर। रक्त और
शरीर जैसे भोग-शरीर होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म
ी भोग-शरीर होता है। लिङ्ग-शरीरमें सुख-दुःखका
हीं होता। लिङ्ग-शरीर सुख-दुःखको नियन्त्रित करता
-दुःखका विधान करता है। मानसिक दुःखका कारण
हता है। परंतु भोग (suffering) सूक्ष्म देहमें
। स्वर्ग-नरकादिके सुख-सम्भोग, दुःख-दुर्दशा, ज्वाला-
—सबका अनुभव सूक्ष्म-देहमें होता है, मानस शरीरमें
ता।

त्युकालमें जीवात्मा देह छोड़कर मुक्त नहीं हो जाता।
साहित्यिक और दार्शनिक लोग जो यह समझते हैं
नेके बाद आत्मा अनन्तमें मिलकर आनन्त्य प्राप्त

अपने-अपने उपयुक्त लोकमें सुख-दुःखका भोग कर
चला जाता है। सूक्ष्म-देह स्थूल-देहके भीतर चि
रहता है, उसकी नयी सृष्टि नहीं होती। सूक्ष्म-शरी
'आतिवाहिक' शरीर है। इसी शरीरमें रहकर जीव ल
गमन करता है, उत्क्रमण करता है।

अभिनव दूसरा देह ग्रहण किया जाता है द
बाद, जब पुनः जन्म होता है तब—मृत्युकाल
मृत्युकालमें जीव सूक्ष्म-देहमें बद्ध होकर महायात्रा क

सांख्यकारिकामें इस सूक्ष्म-देहके विषयमें विशे
मिलता है। वहाँ इसका नाम 'विशेष' शरीर है।
शरीरके बिना लिङ्ग-शरीर टिक नहीं सकता, प्रति
हो सकता।

चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो यथा विना छाया
तद्वद्विना विशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्ग

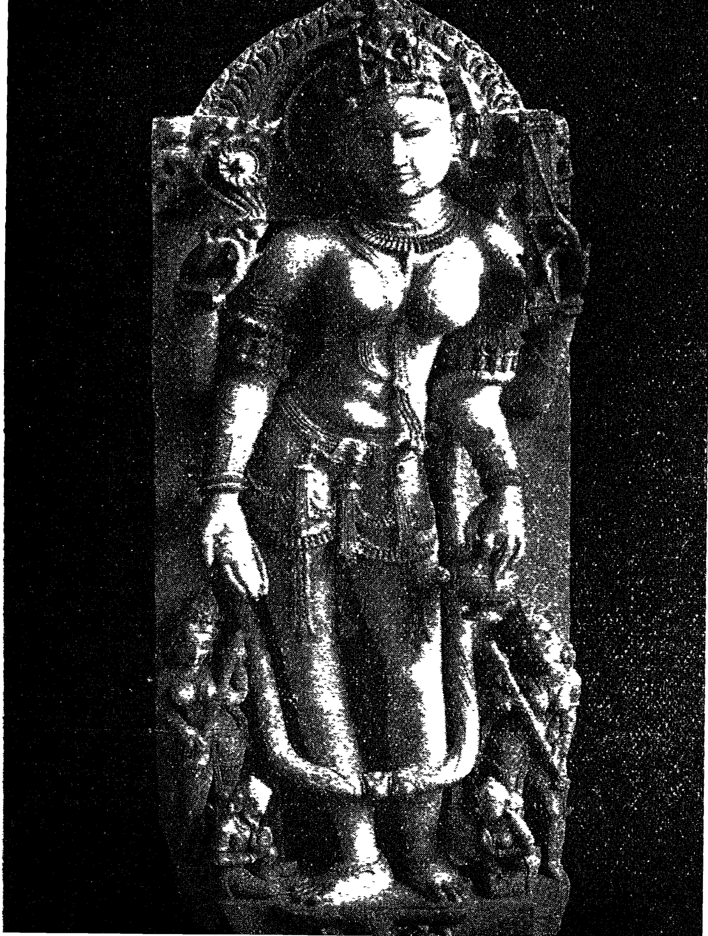
लिङ्ग-शरीर स्वयं निराश्रय है, सूक्ष्म-शरीर लिङ्
आश्रय है। सूक्ष्म-शरीरको अंग्रेजीमें astral bod
हैं। प्रेततत्त्व-विद्यामें इस विषयकी विशेष आल
जाती है।

नारकी पापात्माओंके सूक्ष्म-देहमें और म
स्वर्गलोकमें जानेवाले पुण्यात्माओंके सूक्ष्म-देहमें बहु
होता है। पापात्माओंके दुर्भोग-देह भूत-प्रेत-
कुत्सित आकारवाले वायुप्रधान देहके समान होते
प्रकारकी असहनीय यन्त्रणाओंके कारण उनकी बड़ी
मूर्ति होती है। दूसरी ओर—

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगा

—जिनके विषयमें गीतामें यह बात कही
उनके देह होते हैं देवदेहके समान तेजस्
ज्योतिर्मय, सुन्दर और सुरम्य।

सूक्ष्म-देहका आकार स्थूल देहके अनुसार ही ह
इसके अनेक प्रमाण हैं। संसारमें इसके सैक
उदाहरण पाये गये हैं। सद्य ही लोकान्तर
आत्मीयजन नरलोकके आत्मीय जनोंको दिखलायी
हैं—इसके अनेकों वृत्तान्त सभी देशोंके ग्रन्थोंमें लि
जाते हैं। जिस रूपमें, जिस मूर्तिमें मनुष्य जी
मर्त्यलोकमें विचरण करते हैं, उसी रूपमें प्रेतलोग



शिशुसहित मातृमूर्ति (भुवनेश्वर)



-देह सङ्कोच-प्रसारशील होता है, उसका आकार होता है, उसमें घनत्व और कठिनत्व नहीं होता। स्थागामी होता है, स्थूल-देहके अन्तर्गत होकर धीरे-गे प्राप्त होता है। परंतु जिस प्रकार स्थूल-देह सारे नियमोंके अधीन रहता है और नैसर्गिक विधानके वृद्धिको प्राप्त होता है, सूक्ष्म-देह उन नियमोंके हीं होता—अग्नि-जल, शीत-उष्ण आदिके द्वारा ीं होता, क्षतिग्रस्त नहीं होता।

ा है स्थूल-देह। यही देह सांसारिक जीवनके षय-व्यापार और व्यवहारका क्षेत्र है। साक्षात् रकी क्रियाओंके चलानेवाले यन्त्र इसी देहके हैं। दर्शन, श्रवण, घ्राण, आस्वादन आदि साधक चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा आदि इन्द्रियोंसे क, ग्रीवा, वक्षःस्थल, उदर, बाहु, हस्त, जङ्घा ादिसे युक्त विचित्र अस्थि-संस्थानके अवलम्बनसे या गया नाना प्रकारके अवयवोंसे युक्त देह ही नकी भित्तिभूमि है। नाना प्रकारकी वृत्ति-प्रणालीसे ह मानव-शरीर है। श्वास-प्रश्वास-प्रणाली, रक्त-गाली, शक्ति-सञ्चरण-प्रणाली, स्नायुजालके द्वारा स्वकी वेदनाकी अनुभव-प्रणाली, परिपाक-प्रणाली, ण-प्रणाली—इत्यादि प्रणालियोंको लेकर यह ेह-यन्त्र बना है। मस्तकमें भाग-भागमें मस्तिष्क-क्षःस्थलमें हृत्पिण्ड, फुफ्फुस, पञ्जरास्थि-विधान, यकृत् आदि हैं, इसके पश्चात् जननेंद्रिय है। भण्डारमें छोटे-छोटे यन्त्रोंका अन्त नहीं है। ं, मांस, रक्त, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र—ये आठ हमें हैं।

शरीरको लेकर मनुष्य व्यापृत है, व्यस्त और ो रहा है। हृदय-मन, आत्मस्वरूप, विवेक-विचार ान—मनुष्य सबको भूल जाता है इस देहके महा-ङ्कर। वह देहको ही सर्वस्व मान लेता है, इतर भावोंसे युक्त हो जाता है। ज्ञान-विज्ञानमें भी ी हो जाता है, देह-सुखका अन्वेषण करता रहता तिरिक्त किसी सूक्ष्म तत्त्व, आत्मा आदि किसीको हीं करता। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'—इस ल जाता है। शरीर धर्मसाधनका, परम पुरुषार्थके प्रधान उपाय है—यह ज्ञान उसको नहीं रहता। आदिसे रहित देह-सुखके अनुभव-प्रवाहमें बहता

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति

—इत्यादि प्रदीप्त उपदेशोंको वह तुच्छ सम सुख-लालसामें उन्मत्त हो जाता है। देह व्याधिग्रस्त विकल हो जाता है, सड़ने, गिरने और गलने लगत भी उसे चेत नहीं होता कि सुख आत्माकी वस्तु है नहीं। योगशास्त्रविद् ऋषि कहते हैं—

मांसास्थिस्नायुमज्जादिनिर्मितं भोगमन्दिरः
केवलं दुःखभोगाय स्नायुसन्ततिगुम्फितम्

सुख-कामनामें उन्मत्त मनुष्य इस दिव्यवाणीको पाता। देहमें ही आत्मसमर्पण करके अधःपतनको प्र है, अन्धकूपमें निमज्जित होता है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना

देहात्मवादी लोग आत्मघाती होते हैं, वे निः नरकगामी होते हैं।

अस्थि, मांस, शोणित, स्नायु और पेशियोंसे यह शरीर प्रायः सम्पूर्णरूपेण तामसिक है। इ प्राण-स्पन्दनक्रिया है, उसमें रजोगुण काम करता आच्छन्न, लुप्त है। इस संघातमय तमःपुञ्जभूत स गम्भीर और घने तमोराशिके अन्तस्तलमें एक अपूर्व ज्योतिर्मूर्तिमय राज्य है। संसारके किसी देशकी ध विज्ञान या दर्शनसम्बन्धी कोई विद्या-बुद्धि इस नि घन तमोराशिको भेदकर उस दिव्य ज्योतिका प पा सकी है। उसकी कल्पना भी किसी ज्ञानी-वि दार्शनिकने नहीं की, इसका स्वप्न भी नहीं देखा स्वर्गसे भी समुज्ज्वल सम्पद्-राशिका आविष्कार भारतके योगी, ऋषि और मुनियोंने—अध्यात्म-वि शक्तिसाधनसिद्ध तान्त्रिकोंने। भारतवर्षकी अ संस्कृति एक अत्याश्चर्यमय व्यापार है। भारतवर्ष सहस्र मानवोंका आश्चर्यमय देश (a wonderl Supermen) है। यहाँकी शिक्षा-साधना और स तुलना संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं है।

कैसी सुदूरगामिनी, दूरदिगन्तप्रकाशिनी थी, और है—भारतवासियोंकी! मानवदेहके व्यापारसमूहोंका जो आविष्कार तन्त्रविज्ञानशास्त्रने उसके सामने काव्योपन्यासकी कल्पना-छटा अति तु अज्ञ, ह्रस्वदृष्टि, लघुचित्तवाले व्यक्ति इस नित्य सत्य उत्कट कल्पना कहकर अविश्वास कर सकते हैं। इस

ण्डके एक ओर एक 'इडा' नामकी नाड़ी है। भा चन्द्रमाके समान है। दूसरी ओर एक और उसका नाम है पिङ्गला; वह सूर्यके समान ज्योतिर्मयी दण्डके अन्तर्देशको भेदकर ऊपरको गयी है श्चर्यमयी नाड़ी—उसका नाम है सुषुम्णा। वह रश्मिमयी है। यह चन्द्र-सूर्य और वह्निप्रभा है, दिव्य प्रभा-प्रणालिका है। तामसिकताके बीच जो ध्यात्मशक्तियाँ हैं, प्रधानतः इस ज्योतिः-प्रणालीके उनका जाना-आना होता है। गुह्य और लिङ्गके में, मेरुदण्डके निम्नप्रान्तमें एक त्रिकोणास्थि- है, उसमें एक पद्माकारका स्नायुगुच्छ है। इसका नाम मूलाधार पद्म या आधारचक्र है। बाह्यदृष्टिसे अंग्रेजी नाम 'Sacral plexus' है। सुषुम्णा इस आधारपद्मदलसे उठकर मेरुदण्डके मार्गसे —स्तरपरम्पराके शिरोदेश सहस्रदल कमलमें अवस्थित वशक्तिकी मूर्तिके अङ्कमें जा मिलती है। आधार- वर्ण है, इसमें चार दल हैं; वह अधोमुख होकर हो रहा है। चार दलोंमें चार वर्ण हैं— ष, स। उनकी तप्तकाञ्चन-सदृश आभा है। आधारपद्म त्त्वकी अध्यात्मशक्तिका स्थान है। क्षितितत्त्वका —'लं'। उसमें एक देवमूर्ति है; वह चतुर्भुजी है, लङ्कारोंसे भूषित है, इन्द्रके समान है, ऐरावतारूढ़ देवताके अङ्कमें एक शोणितवर्ण बालक है, वह हैं। सुषुम्णा नाड़ीके अन्तर्गत एक और नाड़ी उठती है, उसका नाम है वज्रा। वज्रा नाड़ीके मुख- , मूलाधार पद्मकी कर्णिकामें एक त्रिकोण यन्त्र है। वैद्युत्के समान दीप्तिमान् है। वह सुकोमल विलास- मय है। सुधा-सञ्चरणशील समीर-प्रवाहके समान एक शक्तिका स्थान है यह कमलकेन्द्र। इस शक्तिका है कन्दर्पशक्ति। कन्दर्प-समीर जीवात्माको घेरकर त हो रहा है, यह गुणातीत पुण्यशक्ति है। इसका राजसिक क्षेत्रमें कुत्सित काम है। कन्दर्पप्रभा र-रश्मिको भी विनिन्दित करती है। वह रक्तवर्ण है। न्त्रके मध्यमें अधोमुख स्वयम्भूलिङ्ग विद्यमान है। ले हुए स्वर्णके समान कोमल है। उसकी किरणें न्द्रवत् हैं, वर्णमें नवपल्लवकी आभा है। स्वयम्भू - [illegible] जगन्मोहिनी महामाया हैं। वज्रा नाड़ीके

वह प्रज्वलित दीप्तिराशि-स्वरूपा हैं। नवीन तडित्- सदृश उनकी कान्ति है। सर्पिणीके समान साढ़े तीन मारकर स्थित हैं। यही विद्वानोंकी सुप्रसिद्ध कुलकुण्डलिनी हैं। यह तेजःपुञ्जवती कुल-कुण्डलिनी मूलाधार निवास करती हैं। जीवनमें जितने रूप-राग-रस, काव्य शोभा-सौन्दर्य, प्रबन्ध-रचना आदि कार्य हैं, सभी कुण्डलिनीकी कृपा है। वह आधारपद्मदलमें निभृत मत्त मधुपकी गुञ्जारके समान अव्यक्त मधुर ध्वनि हैं। वह समस्त प्राणियोंको जीवन प्रदान कर र त्रिगुणमयी प्रकृति कुलकुण्डलिनीके शासनके अधीन है विश्वकी अधीश्वरी हो रही है।

आधारपद्मके ऊपर सुषुम्णाके सूत्रमें एक अ है, जो लिङ्गमूलमें स्थित है। वह सिन्दूरके लोहितवर्ण है, षड्दलविशिष्ट है, उसका नाम स्वा पद्म है। उसके ऊपर समसूत्रमें अवस्थित मणि नाभिदेशमें है; वह दशदलविशिष्ट है। नवीन समान नीलवर्ण है। सुषुम्णा नाड़ी जहाँ हृद्देशमें मि वहाँ वह एक सुन्दर सुमनोहर कमल धारण करती है कमल द्वादशदल है, बन्धूक-कुसुमके समान उसव है। उसका नाम अनाहत पद्म है। उसके ऊपर क विशुद्ध नामक षोडशदल कमल है। वह गहरा है। उसके आगे ललाटदेशमें आज्ञापद्म है; वह द्वि चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण है, योगिजनोंके योगबल स्थापनका स्थान है। इसीको लक्ष्य करके गीतामें कह

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्।

इसके आगे शिरोदेशमें स्थित, प्रत्येक दलमें वर्ण-विन्यस्त, नित्य सुखस्वरूप सहस्रदल पद्म है।

प्रत्येक पद्म या चक्र एक-एक सुमहती अध्यात्म क्रीड़ा-विलासका राज्य है। विश्वजीवनकी यात्राके विशेष विभावोंके ऐश्वरीय नियन्त्रणका क्षेत्र है, इ और राजधानी है। क्षिति, अप्, तेज, वायु, अ इन पञ्च प्राकृत भूततत्त्वोंके अप्राकृत अध्यात्म हैं—लिङ्गाधोदेश, लिङ्गोर्ध्वदेश, नाभि, हृदय और प्रत्येक कमलक्षेत्रमें नाना रूप और वर्णमयी, अपूर्व भावच्छटामयी, आश्चर्यजनक शोभा-सौन्दर्य-सम्पत

करती हैं, धूलिधूसरित, कुटिल, कलुषित और
सारके लोभ और मोह-मायाको काट देती हैं ।
मृत-आलोकके लिये लालायित हो उठता है ।
देह-व्यूहको भेदकर आनन्द-ज्योतिर्मय लोकके
लित होना ही शिक्षा-साधनाकी सफलता है ।

ार्थ-साधनाके समस्त पर्याय, समस्त मार्ग,
अनजाने, तान्त्रिक साधकोंकी षट्चक्र-साधनाके
प्रकारसे, नाना व्यवधानमें संयुक्त हैं । जैसे-जैसे
और तमोगुणकी वृत्तियोंका प्रभाव निवृत्त होता जाता
-वैसे पार्थिव कामनाओंकी शृङ्खला क्रमशः टूटती
मन-बुद्धि और चित्त निर्मल होते जाते हैं । साधक
द्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मस्वरूप स्वर्गकी प्राप्तिके लिये
ता है, ठीक उसी मात्रामें आधारपद्ममें सोयी हुई
लिनी जागती जाती हैं । कुल-कुण्डलिनी जागकर
ोहण करती जाती हैं । साधककी अध्यात्मशक्तिकी
ाथ-साथ, चित्त-शुद्धिके परिमाणके साथ-साथ,
गमें उज्ज्वलतर ज्ञान-भक्तिके आलोक-विकासके
, सारे संशय दूर होते जाते हैं, हृदयकी ग्रन्थि
होती जाती है । कुल-कुण्डलिनी जब ऊर्ध्वगमन
ती है, तब आधारसे आरोहण करके स्वाधिष्ठानमें
ती है, स्वाधिष्ठानको भेदकर मणिपूरमें आरोहण
मणिपूरको भेदकर अनाहतमें आक्रमण करती
ाहतको भेदकर विशुद्धमें, और विशुद्धसे
आज्ञामें और आज्ञासे सहस्रारमें जाती है । सुख
सुख, आनन्दके बाद आनन्द और उद्दीपन
उद्दीपन प्राप्त होता है । उल्लास, उत्साह और
होता है । आकाशमें आरोहण करना, आलोकमें
दिव्य सुरापान, सुधा-स्नान प्राप्त होता है । सभी
सभी पूर्ण, प्राणमय, गानमय और ज्ञानमय हो
अमृत-स्रोतमें सन्तरण होता है, शत-शत सुर-त
श्रवण, कोकिल-कूजन और भ्रमर-गुञ्जनका
अनुभूत होता है । देह, मन और प्राण सभी
हो जाते हैं । वहाँ पाप-पुण्य नहीं होता । सभी सु
प्रवाहित होते हैं । इस प्रकार स्थूल-देहके तमः
जीतकर, अमृतभावनामें मर्त्यदेहको क्षयकर,
और बाहर परमानन्द-पुरुषका अन्वेषणकर
छोड़कर और उसके भीतर स्थित चित्-देहका पत
धीरे-धीरे निष्कामपथमें लिङ्ग-देहको क्षीणकर, अ
अन्तराराम, अन्तर्ज्योति, आत्मरति, आत्मतृप्त
भगवन्मय मनःप्राण होकर, श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें
समर्पण करके मानव कृतकृत्य हो जाता है ।
चतुर्व्यूह छिन्न-भिन्न होकर मिल जाते हैं । पृ
साधनाके अनुसार पृथक्-पृथक् सिद्धि लाभ होती है
तत्त्वको भारतवर्ष जानता है, और कोई भी देश नहीं
इसीलिये भारतीय संस्कृति समस्त पृथ्वीके लिये अ
आकाश-प्रदीपके समान है ।





हिंदू-संस्कृति तुम्हें प्रणाम

कर्ता-धर्ता हैं भगवान ।
मैं तो केवल हूँ अभिमान ॥
करनेको हैं शास्त्र विधान ।
धरने सत्य सनातन ज्ञान ॥
'सत् चित् आनँद' अति कल्याण ।
प्रभु निमित्त स्वामी जग-प्रान ॥
आदि अनादि अमर अम्लान ।
हिंदू-संस्कृति विश्व प्रधान ॥
आर्योंके गौरव गुण-ग्राम ।
हिंदू-संस्कृति तुम्हें प्रणाम ॥

—डा० श्रीदुर्गेश्वर नन्दे



पुनर्जन्म

(लेखक—डा० सदाशिव कृष्ण फड़के, डी० ओ० सी०)

ाका पुनर्जन्म मृत्युके पश्चात् तुरंत इसी लोकमें होता
लोक जाकर तब उसे लौटना पड़ता है, यह प्रश्न
ो उपस्थित होता है। शास्त्रोंमें ऐसे वचन हैं, जिनसे
निकलता-सा प्रतीत होता है कि मृत्युके पश्चात्
त इस लोकमें दूसरे शरीरमें जन्म लेता है। 'जैसे
इनेवाला कीड़ा दूसरे तृणका आश्रय लेकर ही पहले
ाड़ता है' (बृहदारण्यक० ४ । ४ । ३)। 'मृत्यु-
सी बुद्धि होती है, वैसा ही अगला जन्म होता है'
: । ५-६)। इसी प्रकार जातक-ग्रन्थोंमें कहा गया
यु-घड़ीमें ही अगले जन्मकी जन्म-कुण्डली तैयार

ानन पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।

इस जन्म-मृत्युपरम्पराके विधानका यही भाव मालूम
के मृत्युके पश्चात् तुरंत पुनर्जन्म होता है। कोई-
भी कहते हैं कि 'यदि जीवका परलोक जा
य विकास ही न हुआ हो तो तुरंत भूलोकमें उसका
ा। मानव-जातिकी प्रारम्भिक असंस्कृत अवस्थामें
श्चात् तुरंत पुनर्जन्म हुआ करते होंगे। मरनेवालों-
की ओर अत्याकर्षण भी मरणोत्तर तुरंत पुनर्जन्म-
हो सकता है। कुछ बच्चे बचपनमें अपने पूर्व-
ृति प्रकट करते हैं और अपने पूर्वजन्मके माता-पिताको
न लेते हैं। इससे यह मालूम होता है कि बचपनमें
नविकसित जीव और अकस्मात् जिनकी मृत्यु होती
ोत्तर तुरंत जन्म लेते हैं। इसके विपरीत यह भी
: कि पूर्ण विकसित महात्मा भी परलोकगतिको
क जान भगवत्कार्य अथवा लोकोद्धारके लिये मरणके
रंत जन्म ग्रहण करते हों।' ('लाइफ डिवाइन'
', थिआसोफी एक्सप्लेंड)।

प्रकार मरणोत्तर तुरंत जन्म तर्क-सम्भव होनेपर भी
: ऐसा नहीं होता, यही शास्त्रोंका मथितार्थ और
सङ्गत भी मालूम होता है। अन्न खानेपर पुनः
का समय प्राप्त होनेतक खाये हुए अन्नका पाचन
जरूरी होता है, वैसे ही मृत्यु होनेके बादसे पुनः

परलोकगतिके सम्बन्धमें बृहदारण्यकोपनिषद् (४
२) में है। तृणके कीड़ेके दृष्टान्तमें छोड़ने और
तृण तृणरूपमें दोनों समान होते हैं। ऐसा देहान्तर
सम्भव नहीं है। आवेश अथवा सञ्चारमें ही वह स
अतः बृहदारण्यकके उपर्युक्त ४ । ४ । ३ में जिस दे
वर्णन है, वह स्थूल-देह छोड़कर तुरंत सूक्ष्म-देहसे
जाना ही है। बृहदारण्यकके ४ । ४ । ४ में यही
दीख पड़ता है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्मलोकका अ
ब्रह्मात्मा और भूलोकका अन्नमय भूतात्मा, जीवात्मा
ये ही दो अवस्थाएँ नहीं हैं। इन दो अन्तिम अव
बीचमें प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय अव
(तैत्तिरीय० २ । ३)। इन पिण्डगत अवस्थाओंके
ब्रह्माण्डमें भी वैसे ही लोक हैं। उन सूक्ष्म लोकों
सूक्ष्म अवस्थाओंमेंसे होकर जीवका ऊपर जाना और
के लिये फिर नीचे आना युक्तियुक्त प्रतीत होता है
जब कल्पके आरम्भमें सृष्टिकी उत्पत्तिमें पूर्वकल्पके
प्राप्त कर्मसंस्कारों और अपूर्णतासे पूर्णताको प्राप्त
अन्तःप्रेरणाको कारण मानना ही पड़ता है, तब पु
प्रक्रियामें भौतिक और आध्यात्मिक तथा व्यष्टिपर
समष्टिपरक उभयविध क्रमोन्नतिके भाव होंगे
दृष्टिसे देखा जाय तो इस क्रमोन्नतिके अर्थ दृश्य इ
अपेक्षा मरणोत्तर अदृश्य लोकमें ही जीवका बहुत
वास होता है। (लाइफ डिवाइन, थिआसोफी एक्स

पुनर्जन्मका प्रयोजन

इच्छा, ज्ञान, क्रिया जीवकी सहज प्रवृत्ति है।
पूर्णकी ओर जाना, दुर्निवार सहज अन्तःस्फूर्ति है
चरण करके जगत्में भले कहलाना सभी शीलवान्
चाहते हैं। पुत्रैषणादि एषणाएँ, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋ
ऋणोंका विमोचन—ऐसी सभी प्रेरणाएँ सत्प्रवृत्त
होती हैं। कर्म, उपासना, योग, ज्ञान इत्यादि विविध
द्वारा साधक परमार्थ-प्राप्तिकी इच्छा करते हैं।
अध्यापन, शास्त्र-संशोधन, लोकसेवा, लोकसंग्रह, रा
कलाभिवृद्धि, व्यापार, उद्योग आदि विविध ध्येय क

ौर कुछ खुलती हुई अनेक प्रेरक शक्तियाँ हैं। घड़ीमें पीछे जैसे उसका स्प्रिंग होता है, वैसे ही जीवके श इन लपेटी हुई शक्तियोंके करंडक होते हैं। जड-ाह समझते हैं कि जडसे ही चेतनकी उत्पत्ति होती : वे यह नहीं समझते कि जड़में यदि अन्तर्निहित न हो तो वह कहाँसे उद्भूत होगा। अभावसे भावकी कैसे होगी? सारी सृष्टि व्यक्ताव्यक्तका खेल है। कर्म, कर्मसे वासना और उसका फल, कर्म और फल, पीछे दिन, सङ्कोच और विकास, इहलोक-वास और -वास, अन्न-सेवन और उसका पाचन, सृष्टिक्रमके ख्य द्वन्द्व-आन्दोलन हैं। इन्हींमें मृत्यु और पुनर्जन्म ः द्वन्द्व है। इसका रहस्य कर्मदेव और क्षेत्रज्ञ आत्मा है और इसीलिये उत्क्रान्ति तथा विकासके योग्य, बाह्यतः ी परिस्थितिमें, अन्तरात्मा देहात्माके द्वारा पुनर्जन्म रता है। कोई भी देहात्मा विकलाङ्गोंसे युक्त देहमें, में, दुःशील माता-पिताके यहाँ, निकृष्ट जातिमें, पर-ों स्वेच्छासे जन्म नहीं ले सकता। परंतु ऐसी ही तेमें जन्म लेनेसे प्राक्कर्मोंका परिशोध होगा और जीवका होगा, यह अन्तरात्मा जानता है। इसीलिये वह क्षेत्रज्ञ मा जान-बूझकर ऐसा जन्म लेना स्वीकार करता है। बच्चा -पुढ़कता चलना सीखता है, सुखका मूल जाननेके खका अनुभव आवश्यक होता है। प्रतिकूल परिस्थितिके ङ्घर्ष करते हुए जीवकी सामर्थ्य, वैराग्य, विवेक-: गुणोंका संवर्धन होता है। पुनर्जन्मका यह गूढ़ न्मे हुए देहात्माको ज्ञात नहीं होता। इसीसे वह दैव ईश्वरको कोसता है। ईश्वरीय योजना तो कुछ ऐसी त होती है कि जीव सब प्रकारके अनुभवोंसे ज्ञानी बने। भव और ज्ञान पूर्णरूपसे प्राप्त करनेके लिये अनेक ने पड़ते हैं। यही पुनर्जन्मका प्रयोजन है। इस रहस्य-र्यामी विज्ञानात्मा जानता है। इसीसे विज्ञानात्माका न्हें प्राप्त होता है, वे साधु-संत चाहे जैसी बाह्य में भी सुखस्वरूप ही रहते हैं।

मान्य स्पन्दन, संवेदना, विषय-ग्रहण, सहज प्राकृत र्कबुद्धि, विचार, भाषा, ग्रन्थ, शाब्दिक ज्ञान, विषया-ाह्य जीवनार्थ कलह, भेदबुद्धि, स्वार्थका मोह, स्वस्वरूप-वृति, पशुवृत्ति, अधःपतन—यह सारा लौकिक सुधार-

इसके साथ ही ऐहिक स्वार्थ, बर्बरता और धर्म-विरो चरमावधि हुई है। स्वैराचारने सत्-शील, शुभ वास पवित्र भावनाको पैरोंतले कुचल डाला है। यन्त्रों कौशलका अन्त किया है। कानूनबाजीने न्याय-नी धर्मको अपदस्थ किया है। जगत्के वर्तमान नेता उनकी अनुयायी जनताके अनेक पुनर्जन्म होनेके यह स्थिति चाहे तो सुधर सकती है। अन्यथा को आज नहीं दीख पड़ता।

एक दूसरी दृष्टिसे विचार करते हुए ऐसा दीख कि इस विचित्र संसारमें अलौकिक कलाकार और प्रति विद्वान् प्रायः व्यवहारज्ञानशून्य होते हैं। जो विर उन्हें लोकसंग्रह नहीं भाता। शरीरतः बलिष्ठ कसरती अप्रबुद्ध होते हैं, धनवान् प्रसङ्गावधान और प्रायः रहित होते हैं। शाब्दिक विद्वानोंमें उतनी भी यथार्थ बु होती, जितनी पशुओं और वनमानुषोंमें होती है। पक्षि स्वतन्त्रता होती है, वह मनुष्योंमें नहीं देखी जाती। पास एक वस्तु है, तो दूसरी नहीं। यह जो मायाका खेल है, इससे जीव अनुभव प्राप्त करते-करते परमोच्च प्राप्त हों, यह एक जन्ममें सधनेवाली बात नहीं है जन्ममें, एक शरीरमें, एक परिस्थितिमें सब कुछ सध यह सम्भव ही नहीं है। एक जन्ममें देहात्माका पूर्ण होनेके लिये कई वर्ष लगते हैं, इसी प्रकार क्षेत्रज्ञ पूर्ण विकासके लिये अनेक पुनर्जन्म आवश्यक होते हैं। दीर्घजीवनमें एक जीवन एक दिनके समान है। श्रेणियोंकी सृष्टिके इस विद्यालयमें एक जीवन एक श्रे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—तीनों प्र पूर्णता प्राप्त करनेकी अन्तःस्फूर्त एषणा जीवमें ही हो ब्रह्मके सिवा इस जगत्में और कुछ नहीं है। फिर भी दशामें स्थूल, सूक्ष्म शरीर और उनके स्थूल, सूक्ष्म व्यवहार बन्धवत् प्रतीत होते हैं। यह अज्ञान दूर हो-लिये बार-बार इनका अनुभव प्राप्तकर, इन्हें आत्मसात् सहजावस्थामें आ जानेके लिये इहलोकमें यथावश्यक पु ग्रहणकर कर्म, उपासना, ज्ञान आदि योग-साधन आवश्यक होता है। पुनर्जन्मका यह एक व्यापक हेतु

पुनर्जन्मके प्रमाण

स्थूल दृष्टिसे विचार करते हुए पुनर्जन्मके च

.; कौपीतकि०, मनुस्मृति १२ । १९–२२; गीता ४ ।
७; गरुडादि पुराण, जातकादि ज्यौतिष-ग्रन्थ, चरकादि
ग्थ)—यह सब शब्दप्रमाण है। २–माता-पितासे सर्वथा
भावके सन्तानोंका उत्पन्न होना। चरकसंहितामें
न्मका प्रत्यक्ष प्रमाण कहा है। ३–फल-बीजन्यायके
पिछले जन्ममें किये हुए कर्मके फलरूप पुनर्जन्मका
ुमानप्रमाण है। ४–बोये हुए बीजका फल बीजके ही
होगा, उससे भिन्न नहीं हो सकता—यह इसमें युक्ति
कसूत्र ११ । ३० से ३३)। भृगुसंहितादि ज्यौतिष-
पुनर्जन्मके फलादेश मिलते हैं। इन फलादेशोंको कोई
न माने; पर इनसे यह तो प्रमाणित होता ही है
ंहितादिको पुनर्जन्म मान्य है। जातक-पारिजातमें
न है कि मृत्युसमयके लग्नमें अमुक ग्रहयोग होनेसे
त्युलोक प्राप्त होता है अर्थात् पुनर्जन्म होता है
१ । १८ । १९)। ५–पुनर्जन्म कार्यानुमेय है।
नाएँ ऐसी हैं, जिनका कार्य-कारण-सम्बन्ध पूर्वजन्म
र्जन्म माने बिना समझमें ही नहीं आ सकता। ऐसी
ोंका निर्देश करते हैं। पूर्वजन्म सिद्ध होनेसे पुनर्जन्म
सिद्ध होता है। (क) नन्हे बच्चे नींदमें पूर्वजन्मकी
कभी हँसते, कभी डरते दिखायी देते हैं। रेंडीके
नगोकर कपड़ेकी चूसनी बनाकर नन्हे बच्चेके मुँहमें
ा तो बच्चा मुख फेर लेता है। शहदकी चूसनी
दी जाय तो उसे सुखपूर्वक चूसने लगता है। यह
जन्मकी स्मृतिका ही सूचक है। नवजात बच्चेके
ारीक-सी कोई छड़ी दी जाय और उसका सहारा-सा
च्चेको लिया जाय तो बच्चा कुछ क्षणोंतक छड़ी
हीं छूटने देता। इसमें भी पूर्वजन्मका संस्कार ही
। माताका स्तनपान करनेकी ओर उसकी स्वाभाविक
होती है, यह सहज बुद्धि पूर्वानुभवका होना सूचित
। (ख) किसी-किसी बालकको पूर्वजन्मकी स्मृति
आती है।* योगियोंको भी पूर्वजन्मकी स्मृति होती
है। यह प्रमाण निरुत्तर करनेवाला है। पूर्वजन्म
स्मृतियोंको उपस्थित मनुष्यों और पदार्थोंसे मिला
सकते हैं (मनुस्मृति ४ । १४८, १४९;
Rents in the veil of time; Stu
Consciousness; Harmsworth P
Science, Vol. VI; Occult Review, July
देहात्मा प्रत्येक जन्मका भिन्न होनेसे सबको पू
स्मृति नहीं होती। जिनको होती है, उन्हें क्षेत्रज्ञकी
होती होगी। (ग) भिन्न-भिन्न मनुष्योंके भौतिक
नैतिक भावना-मान एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न
(घ) शील-सदाचारसम्पन्न कुलोंमें दुराचारी
दुराचारियोंके कुलोंमें सदाचारी उत्पन्न होते समय
दीख पड़ते हैं। (ङ) मा-बाप और बेटोंके बीच
रुचि और बुद्धिका बड़ा अन्तर दीख पड़ता है।
लोकोत्तर प्रतिभासम्पन्न कवि, तत्त्ववेत्ता, शास्त्रज्ञ,
ग्रन्थकार, साधक, सत्पुरुष हीनचरित्र कुलमें भी उ
दीख पड़ते हैं। (छ) लोकोत्तर प्रतिभासम्पन्न मात
बुद्धिहीन, दुराचारी सन्तान भी देखे जाते हैं। (ज)
माता-पितासे उत्पन्न यमज सन्तान भी एक दूसरेसे
शील आदिमें सर्वथा भिन्न होते दीखते हैं। ऐसे
आनुवंशिकताका सिद्धान्त काम नहीं देता। (झ) भि
व्यक्तियोंकी परिस्थितियाँ, उनकी आधि-व्याधियाँ, उनकी
जन्मसिद्ध अंगविकलता, उनकी सामर्थ्य, उनके भ
ऐश्वर्य, उनके विकासके लिये प्राप्त अवसर कितने ए
भिन्न होते हैं—यह सभी देखते हैं। इस भिन्नताका
जन्ममें नहीं मिलता। (ञ) किसी-किसीपर आनेवाली अ
आपत्तियाँ—उदाहरणार्थ बाल-वैधव्य, असाध्य रोग
मार या डाका, जलप्रलय, अग्निप्रलय, दरिद्रता,
अपघात आदिका भी कोई कारण इस जन्ममें
मिलता। इन सबका कारण पूर्वजन्मकृत कर्म न
तो ईश्वरको घोर अन्यायी, स्वेच्छाचारी और अत्या
मानना पड़ेगा। (ट) मृत्युकी पहेली पुनर्जन्मवा
समझमें आती है। (ठ) ईश्वरके न्याय-निष्ठुर
साथ ही दयामय होनेका मेल पुनर्जन्मवादसे ही बै
(ड) हमारी बुद्धि और वासना तथा हमारी आकाङ्क्षा
परिस्थिति—इन सबके झगड़े पुनर्जन्मवाद माने बिना
होते। (ढ) जीवात्माके अमरत्वपर जिनका वि

* अभी कुछ ही दिनों पहले युक्तप्रान्त, बदायूँ जिला, बिसौली-
मीडियट कालेजके प्रोफेसर श्रीबाँकेलालजी शर्मा एम० ए०,
नन्हेसे पुत्रने अपने पूर्वजन्मका अपना, घरवालोंका, फर्मका
ताकर तथा सम्बन्धियोंको पहचानकर सबको आश्चर्यमें
ा था। (देखिये—'भारत' प्रयाग २७ । ८ । ४९)
ी प्रकार गोला गोकर्णनाथके ठाकुर श्रीशिवनन्दनलालजी

ये धन, ऐश्वर्य, सुखभोग प्राप्त हों अथवा इसके
सारा जीवन सतत उद्योग और सत्कर्ममें लगाकर भी
न हो और अन्तमें कष्टमय अवस्थामें मृत्यु हो,
जन्म माने बिना कर्म और कर्मफलकी सङ्गति लगती
ही मानना पड़ता है कि एकके जन्मसे ही ऐश्वर्यका
उसका पूर्वजन्मकृत पुण्य है और दूसरेके सतत उद्योग
कर्मका फल अगले जन्ममें मिलनेवाला है। (त)
तत्प्रवृत्त कर्मियों और भावुक उपासकोंको अपने ध्येय-
नेके लिये एक जन्म पर्याप्त नहीं होता। उन्हें दूसरा
ा ही पड़ता है। (थ) बहुत-से बच्चे बचपनमें ही
हैं, बहुत-से जंगली लोग अविकसित यानी अज्ञानकी
ही मरते हैं। ईश्वरके न्यायमूलक राज्यमें हर किसीका
स होना ही चाहिये। अतः इनके विकासके हेतु
ये अनेक पुनर्जन्म मानने पड़ते हैं। (द) कुछ
ा और उनके सन्तानोंमें, कुछ सगे भाइयोंमें, कुछ
त्रोंमें परस्पर अत्यन्त विरोध पाया जाता है। इस
त विरोधका कारण नहीं दीख पड़ता। (ध) कुछ
ो देखते ही उनके लिये चित्तमें प्रेम और आदर
ता है और कुछको देखते ही चित्त खिंच जाता है।
जन्मके सम्बन्ध ही कारण मालूम होते हैं। (न)
वयोवृद्ध, कर्तृत्वसम्पन्न पुरुष, कलाकार, संशोधक,
वेद् आदि महान् व्यक्ति अनुभव और ज्ञानकी
पर जब मरते हैं, तब उनके उस ज्ञान और अनुभव-
इहलोकके अन्य लोगोंको भी हो—इसके लिये
इस न्यायमूलक राज्यमें उनका पुनर्जन्म मानना पड़ता
) रावण और विभीषण, धृतराष्ट्र और विदुर,
प और अकबर, शिवाजी और सम्भाजी, पद्मिनी
गाकुमारी, अहल्याबाई और लक्ष्मीबाई, स्टालिन
लर, गान्धी और जिन्ना इत्यादिकोंके यश-अपयशका
क जन्ममें होनेवाला नहीं है।

क वृक्षमें पत्ते लगते, बढ़ते और फिर झड़ जाते हैं।
वृक्षमें नवपल्लव आते हैं और वे भी कालक्रमसे
ा हैं। इन्हीं पेड़-पत्तोंके विकासके समान क्षेत्रज्ञ
देहात्माके पल्लव निकलते, बढ़ते और फिर झड़ जाते
स प्रकार क्षेत्रज्ञ आत्माकी तथा देहात्माकी जन्म-
प्रगति होती चले, यह युक्तियुक्त मालूम होता है।

जो कुछ हो, सृष्टि कोई जड यन्त्र नहीं है। उसमें
इच्छापूर्वक क्रिया है। जडमें ज्ञान और इच्छा
सम्भव नहीं। संवर्धन, पुनरुत्थान, हेतु, आगेकी व
जीवनेच्छा, अमृतत्वकी आकाङ्क्षा आदि चेतनके अ
धर्म हैं। ये गुण धर्म जडके नहीं हैं। अतः जिस
प्रयोजनसे चेतन जीवका ही पुनर्जन्म होता है, के
देहका नहीं।

पुनर्जन्मकारक अन्य बातें

जीवका पुनर्जन्म कहाँ, किस प्रेरणासे अथव
संगमें हो सकता है—इसकी कुछ निर्णायक बातें बत
सकती हैं—१-माता-पिताकी सन्तानसम्बन्धिनी ती
और जन्म लेनेवाले जीवकी जननेच्छा—ये दोनों
परस्पर आकर्षण करती हैं। २—ईश्वरीय योजनाके
क्षेत्रज्ञ जीवात्माकी स्वविषयक विकास-दृष्टि भी अ
३—इस दृष्टिके अनुकूल अथवा प्रतिकूल जो प्राक्त
जीवके हो सकते हैं अथवा उनकी जो प्रतिक्रिया
हैं, ये दोनों बातें स्पष्ट ही निर्णायक अङ्ग हैं। इस
जीवके समग्र संचित कर्ममेंसे जो कर्म फलोन्मुख
अथवा कर्मदेवताने जीवके भोगके लिये आगे रक्खा
जीवका प्रारब्धकर्म ही तात्कालिक प्रेरक होगा।
जन्ममें प्रेम, ऋण, हत्या, वैर इत्यादि प्रकारके
सम्बन्ध बन गये हों, पुनर्जन्म उन सम्बन्धोंसे
व्यक्तियोंको एक जगह फिर ला छोड़ता है।
कारणोंका अनुसन्धान करते हुए यह दीख पड़ता है
कभी समानधर्मा जीव परस्पर आकर्षित होते हैं। व
विषमधर्मा भी परस्पर प्रतिक्रियारूप संघर्ष करने
होते हैं। संसारमें हम यह भी देखते हैं कि
मनोमोहक लावण्य एवं बनने-ठननेमें एक प्रकारकी
होती है। इसके विपरीत पतिव्रताकी सादगीमें प
रहता है। कितने ही सुन्दर चित्रोंकी पार्श्वभूमि क
है। उससे चित्रका सौन्दर्य खिल उठता है। इस
हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद-जैसे पुनर्जन्मके विसंगत
देखनेको मिलते हैं। पुनर्जन्म लेनेवाला जीव योग्य
पिता चुन लेता है, यह बात ऊपर आयी है; पर योग्य
परखनेकी यह दृष्टि देहात्माकी नहीं है। यह काम
विधायक दैवीशक्ति, समष्टि मन अथवा कर्मदेव और ज

प्रक्रियामें भी ग्रहोंके योग माने जाते हैं। (जातक-
, आधान जन्म अ० ३; सन्तान-दीपिका, बृहज्जातक
जीवकी गर्भकुण्डली अथवा जन्मकुण्डलीसे जन्म-कर्म-
जाना जाता है। मृत्युक्षणमें बनायी हुई कुण्डलीसे
जाना जा सकता है । भृगुसंहितामें जन्मलग्न-
भी पुनर्जन्म बतलाये गये हैं। यहाँके जीवोंका अन्य
जन्म अथवा अन्य खगोलोंके जीवोंका यहाँ जन्म
सम्भव है।

पुनर्जन्म और विकासवाद

ासवाद आधुनिक विज्ञानकी देन है । सनातन-
हिंदू-संस्कृतिको कुछ लोग उसके विपरीत मानते
नकी भूल है (हिंदूइज्म ऐण्ड ब्राह्मणिज्म, पृ० १२;
दकृत 'री-इनकार्नेशन') । किञ्चित् विचार करनेसे
पड़ेगा कि हिंदू-संस्कृतिका पुनर्जन्मवाद आधुनिक
दको अनायास हजम कर सकता है। यह उससे
धेक पूर्ण और निर्दोष सिद्धान्त है। आधुनिक
द देहका अथवा अधिक-से-अधिक देहात्माका विचार
। विकासवादमें परिवर्तन-प्रवृत्तिका एक सिद्धान्त
। है। पर इस परिवर्तन-प्रवृत्तिका कारण क्या है,
चार विकासवादी नहीं करते । पुनर्जन्मका सिद्धान्त
। परिवर्तन-प्रवृत्तिका वास्तविक स्वरूप भी सिद्ध नहीं
कासवादी यह भी नहीं बतला सकते कि मनुष्योंमें
सी पशुबुद्धि और दूसरी सात्त्विक सदसद्-विवेकी
ह दो प्रकारकी बुद्धि कैसे सम्भव होती है। एक ही
अलौकिक प्रज्ञावान् पुरुष और अत्यन्त अप्रबुद्ध
नुष्य दोनों रह सकते हैं। वानरसे नरका विकास
तो हम देखते हैं कि लाखों वर्षोंसे असंख्य वानर
ख्य मनुष्य एक साथ रहते चले आये हैं। इसका
धान विकासवादी नहीं कर सकते। सृष्टिके आदिमें
नेवाले सनत्कुमार-जैसे ईश्वरके मानसपुत्रोंको कोई
और जंगली कहे और ऐटम (परमाणु) बमसे
पराध मनुष्योंको भस्म करनेवाले आजके मनुष्योंको
ंस्कृत और ज्ञानी कहे तो ऐसा विकासवाद किसीके
। करने योग्य नहीं है। आधुनिक विकासवादमें
तेकी कोई भावना नहीं है। योग्यका वरण, जीवनके
, बलिष्ठकी स्थिति आदि विकासवादके सिद्धान्तोंके

उन्माद, डाकेजनी, हिंसात्मक राजनीति—इन्हीं सब
दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि हो रही है। आजकी
वृत्ति 'धर्मनिरपेक्ष' अथवा धर्म-विरोधी अर्थ औ
दम्भ और कपटमें छिपी बैठी है। इस आधुनिक वि
के 'योग्यका वरण' और 'जीवनार्थ कलह'—जैसे
कपट, हिंसा, क्रूरता, अत्याचार आदि पशुवृत्तियोंके
होना ही अनिवार्य है। एक तरहसे धर्मनिरपेक्ष
जंगलीपनको ही मानव-विकास समझा जा रहा है।
केवल आत्मामें है, उसे बरबस विषम स्वभाववाले
आनेका हास्यास्पद प्रयत्न ही आजकी विकसित
प्रधान लक्षण माना जा रहा है। इस विकासवादके
मनुष्योंका यह कर्तव्य होता है कि मनुष्य स्वार्थप्रेरि
को वरण करें और जीवनसंग्राममें दुष्ट और बलिष्ठ
और दुर्बल लोगोंको मारकर स्वयं जीयें और भे
इसमें नैतिक और धार्मिक वृत्तियोंके संवर्धनके वि
प्रेरक हेतु ही नहीं रह जाता। इसके विपरीत पुनर्ज
यह सिद्धान्त गृहीत है कि क्रमसे जीवकी सत्त्वसंशु
जाती है। हिंदू-संस्कृतिके पुनर्जन्मवादमें ऐहिक शारी
अथवा विषयासक्ति ध्येय नहीं है। उसका रहस्य
और दिव्य है। हमारे पुनर्जन्मवादकी सात्त्विक वृत्ति
रजस्तमोमय वरण-क्रिया और जीवनार्थ कलहवाले
आधुनिक विकासवादका अन्तमें पराभव करनेवाली है
का सच्चा पुरुषार्थ धर्मके द्वारा ही अर्थ और काम सा
अन्तमें मोक्ष प्राप्त करना है। इस साध्य-साधनमें पु
उपयोगिता स्पष्ट है।

विकासवाद अज्ञानसे ज्ञानकी ओर, अभावसे भ
ओर अनन्त विकास ही मानता है। उसमें किसी
पुनर्जन्म मनुष्यसे हीन किसी योनिमें होना माना
सकता । परंतु यह एकाङ्गी विकासवाद हमारे
पुनर्जन्मवादको आमूलाग्र छोड़े हुए है। पुनर्जन्म
समर्याद व्यक्त उपाधिमें प्रादुर्भाव है। मूलमें जो
है, वह पुनर्जन्ममें भी सम्भव नहीं है। अज्ञानसे
अभावसे भाव हिंदू-संस्कृतिके तत्त्वज्ञानमें नहीं है
२ । १६)। विकासका होना बाहरसे किसी नवीन
पैदा होना नहीं है। वह अन्तस्सत्तासे अंदरसे
प्रकट होना है। पुनर्जन्म कोई नया जन्म नहीं है

त्यवायके दूर होते ही व्यक्त होने लगता है। जो
गमें न हो, वह कार्यमें उत्पन्न हो ही नहीं सकता
। ४ । २-३)। अपूर्णसे पूर्णकी ओर जानेकी जो बात
ो है, वह प्रत्यवायभूत उपाधिकी अपेक्षासे कही

र्षका गगनचुम्बी पर्वत आरोहण करनेमें बीचमें
उतार भी होते हैं। उसी प्रकार जीवके कर्मानुरूप
अधःपतन अथवा पशुकोटिमें पुनर्जन्म होना भी
सिद्धान्तमें गृहीत है। कारण, इस त्रिगुणात्मिका
जस्तमके उतार भी मार्गमें आते हैं। त्रिगुणात्मक
र्मका विपाक अत्यन्त गूढ़ है। भरतको मृगका जन्म
। नलकूबर-मणिग्रीव वृक्ष बने। पुनर्जन्म-परम्परा-
व-उतार चढ़ते-उतरते अन्तको यह सोपाधिक अपूर्ण,
में उपाधियोंका पूर्ण बाध होनेपर, अपने पूर्णत्वके
होता है। यह मूल स्थितिका विकास नहीं है।
तो पूर्णत्वकी ही है। आत्मानात्मविवेक बुद्धिका
। नीति-धर्म निःस्वार्थ होनेकी शिक्षा देते हैं।
साथ एकात्मता आध्यात्मिक पूर्णताका लक्षण है।
देहात्मवादियोंके विकासवादमें आध्यात्मिक पूर्णता-
ष्ठ प्रणालीको कोई अवसर नहीं है। वे देहात्माका
त चाहते हैं। परंतु अन्तर्यामी विज्ञानात्माका
ससे सर्वथा भिन्न और सूक्ष्म हुआ करता है। उसका
में पूरा होना अति दुर्घट है। यही पुनर्जन्मका
है।

ास भी किस ल्ये? यह आधुनिक विकासवादी नहीं
कते। कारण, आधुनिक विकासवाद एकाक्ष और
है। स्वाभाविक गुणोंका ह्रास कहीं-कहीं क्यों होता
? मनुष्यकी अपेक्षा निकृष्ट योनियोंमें कहीं-कहीं
द्धि और इन्द्रियज्ञान अधिक कैसे दीख पड़ते हैं?
प्रश्नोंके उत्तर यान्त्रिक विकासवादमें नहीं हैं। अथाह
की ज्ञान-तरङ्गोंको ग्रहण करनेमें मस्तिष्कका
क समर्थ होना वस्तुतः मस्तिष्कका विकास नहीं है।
ुनर्जन्मोंके द्वारा होनेवाला यह जीवविकास है।
जीवका एक करण है। पुनर्जन्मका प्रयोजन मस्तिष्क-
न नहीं, इसकी अपेक्षा वह अधिक दिव्य है।

मारे शास्त्रानुसार विकासवाद युक्तियुक्त और सत्य नहीं

बाध्य होकर उच्च-नीच विविध योनियोंमें जन्म ग्रह
पड़ता है (बृहदारण्यक ४। ४। ५ तथा छान्दोग
१०। ७ देखिये)। गीताके—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (२

—के अनुसार मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र
भोगमें परतन्त्र है। गीताका—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही
(२

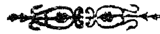
—'जैसे पुराने वस्त्रोंको त्यागकर मनुष्य नये वस्त्रों
करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्याग
शरीरोंको प्राप्त होता है' यह सिद्धान्त भी ठीक है।
बाद जीवको उसी समय दूसरी देह मिल जाती है,
स्थूलदेह नहीं होती। वह तेजः-प्रधान या वायु-प्रधान
वाहिक' देह होती है, जिसको ग्रहण करके जीव अ
पापानुसार विविध देवलोकोंमें अथवा पितृलोकके
स्तरोंमें पहुँचता है और वहाँ सुख-दुःखका भोग व
नियन्ताके विधानसे यथायोग्य स्थूल देहको प्राप्त हो

इस प्रकार जीवका पुनर्जन्म अवश्यम्भावी है औ
हेतु है 'कर्म'।]

उपसंहार

अज्ञानमें अन्तःक्रान्ति और जीव-जगत्के मूल
ओर उत्क्रान्ति या विकास—इस प्रकारका यह खनि
देवकोटितक सृष्टि-क्रम अनादि कालसे अनन्त कालत
ही रहेगा। अर्जुनको भगवान्‌ने गीतोपदेश सुनान
किया, तब दूसरे ही श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जु
हैं—'इस बातको समझो कि मैं पहले कभी नहीं
बात नहीं है; इसी प्रकार तुम और ये राजालोग
थे, यह बात भी नहीं है। यह भी नहीं है कि हम
न होंगे।' यह पुनर्जन्मपरम्परा इसी प्रकार त्रिकाल
रूपसे चलनेवाली है। महाराष्ट्रके कीर्तनकार कथा हो
अन्तमें संतश्रेष्ठ तुकारामका 'हेंचि दान देगा दे
अभंग गाया करते हैं। इसमें तुकारामजीने भगव
विनय की है—'भगवन्! मुझे मुक्ति या धन-सम

ुणगान करनेमें मेरा मन रँगा हुआ हो। सत्संगतिका । होता रहे। इतना दो। फिर भले ही पुनर्जन्म ।' निवृत्ति-साधक विरक्त जीव पुनर्जन्मसे बचनेकी रत होंगे, पर लोकसंग्रही संत पुरुष पुनर्जन्म-का भय या तिरस्कार नहीं करते। भारतीयोंको उ यही उपदेश रहा है कि ज्ञान, उपासना, कर्मके इस संगमपर आनन्दके साथ पुनर्जन्म लेकर संसारमें धर्मका पालन करते हुए सुखपूर्वक रहो।



कर्मकी प्रतिक्रिया

के महत्त्वको आज सारा संसार भूल गया है। र्वव्यापकता, कर्मकी दुर्लङ्घनीय शक्ति और प्रत्येक था प्रत्येक जातिपर कर्मका प्रभाव कैसा नियमित इसकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं है।

गवान्‌ने निज मुखसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है— ा स्वभाव सच्चिदानन्दमय' एकरस है। उसी अलौकिक याग करके जो भूतोंकी उत्पत्ति कराते हैं, उसको । हैं।

भावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

(८।३)

ति त्रिगुणमयी है। रजोगुणके कारण प्रकृतिका दा होता रहता है। वह परिणाम कभी सत्त्वसे तमकी : कभी तमसे सत्त्वकी ओर स्वभावसे होता है। तमें त्रिगुणका होना स्वभावसिद्ध है, उसी प्रकार यह भी स्वभावसिद्ध है। इसी स्वभावसिद्ध स्पन्दनको हैं।

ांसाकारोंने कर्मके तीन भेद कहे हैं, यथा—सहजकर्म, ौर ऐशकर्म। सहजकर्म प्राकृतिक स्पन्दनके साथ-ही- : होता है। आदिसृष्टिमें ब्रह्माण्डगोलकका बनना, ा उद्भिज्जरूपसे उत्पन्न होना—यह सब सहजकर्मके हैं। सहजकर्मके बलसे जीव उद्भिज्जयोनि, ने, अण्डजयोनि, जरायुजयोनिमें होता हुआ पूर्णावयव मनुष्ययोनिमें पहुँच जाता है। मनुष्य- र्णावयव होनेके कारण पाप और पुण्यकी णी हो जाती है। उस समय जीवमें जैवकर्मका ोता है। तब मनुष्य आवागमनचक्रमें घूमता तयोनि, नरकलोक, स्वर्गलोक, असुरलोक तथा कमें आता-जाता रहता है। इसी आवागमन- स्थायी रखनेवाला ही जैवकर्म कहाता है। इस वकी कर्मोन्नतिके लिये वेद, पुराण, स्मृति,

ऐशकर्मका साक्षात् सम्बन्ध देवलोकसे है औ सम्बन्ध मृत्युलोकसे है। मनुष्यको क्रमशः अ चक्रसे छुड़ाकर देवलोककी परिधिमें पहुँचाना ही कार्य है। नचिकेताका एक जन्ममें ही दे प्राप्त होना, नन्दिकेश्वरका देवत्व प्राप्त होना, बलि राजपद प्राप्त होना—यह सब ऐशकर्मका ही प्र ऐशकर्मके बलसे देवता और असुर दोनोंके सब कार्य रहते हैं। शास्त्रोंसे पता लगता है कि इसी ऐशकर्म मनुपदधारी और इन्द्रपदधारी तथा नाना छोटे-बड़े दे गण अदल-बदल जाते हैं। इसी ऐशकर्मके बलसे लाख कलियुग, लाखों वर्षोंका द्वापरयुग, लाखों वर्षोंका त्रे लाखों वर्षोंका सत्ययुग, चारोंका मिलकर एक महायुग ७१ महायुगोंका १ मन्वन्तर होता है, जिसमें सब दे बदल जाते हैं। यह सब ऐशकर्मकी महिमा है।

कर्मकी महिमाको देखकर कोई-कोई कर्ममीमांसक ही ईश्वररूप मानते हैं। जैन और बौद्धधर्मके अ भी इसी कारण कोई-कोई ईश्वरको न मानकर कर्म हैं। कोई जाति या व्यक्ति अपने किये हुए कर्म क्रियासे बचा नहीं सकता। इस समय यूरोप अधःपतित दशा हो गयी है, बृटिशजातिकी शक्ति क्षय हो गया है, यह उस जातिके पूर्वकृत समष्टिक परिणाम है। इस समय हिंदुस्थानरूपी भरतखण्ड अस्त-व्यस्त दशा दीख पड़ती है, समस्त पृथ्वीमें हलचल देखनेमें आती है, वह मनुष्यजातिके समा ही फल है। अतः इस समयके राजनीतिक समाज-संस्कारक नेतृवृन्द और सब श्रेणीके नेतृवृन्दक सत्-असत् भावोंकी ओर तीव्रदृष्टि होनी चाहिये। औ अपने-अपने शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धि की ओर पूरा ध्यान रखकर कर्मक्षेत्रमें अग्रसर होना च

ि-संस्कृतिमें गोत्र और प्रवरका विचार रखना
ाना गया है । सनातनधर्मी आर्यजातिकी सुरक्षाके
बड़े-बड़े दुर्ग हैं । प्रथम गोत्र और प्रवर, जिनके
ानी पवित्र कुल-परम्परापर स्थिर लक्ष्य रहता है ।
ोवीर्यशुद्धिमूल वर्णव्यवस्था, जिसमें जन्मसे जाति
दृढ़ आज्ञा है और तपःस्वाध्यायनिरत ब्राह्मण
नेतृत्वमें संचालित होनेकी व्यवस्था है । तीसरा
ेकी व्यवस्था, जिसमें आर्यजाति सुव्यवस्थित रूपसे
प्रवृत्ति-मार्गपर चलती हुई भी निवृत्तिकी
र पहुँच जाती है । और चतुर्थ दुर्ग सतीत्वमूलक
ी सहायतासे आर्यजातिकी पवित्रता है । इन चार
ोंमें गोत्र और प्रवरपर सदा लक्ष्य रखनेवाला प्रथम
ना महान् और परमावश्यक है, उसको इस समय
करनेकी बड़ी आवश्यकता है । गोत्र और प्रवरका
और उसकी परम आवश्यकताका ज्ञान कुछ भी न
ाजकलके राजकर्मचारी और प्रजावर्ग बहुत ही
ी हो रहे हैं । उनके अन्तःकरणमें इतना अज्ञान
है कि प्रवरको तो वे भूल ही गये हैं और सगोत्र-
कानूनद्वारा चलाना चाहते हैं । आर्यजातिका प्रधान
ह है कि वह सृष्टिके आरम्भसे अबतक अपने रूपमें
है । चतुर्युगी सृष्टि और मन्वन्तर-सृष्टिकी तो बात
है, कल्पादि और महाकल्पादिकी आदि सृष्टि-
-साथ गोत्र-प्रवर-सम्बन्ध है; क्योंकि ब्रह्माजीकी
साथ ही उनके मानस पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए
ही गोत्र-प्रवरका सम्बन्ध चला है । यह गोत्र-प्रवरके
ही महिमा है कि हिंदू-जाति तबसे अबतक जीवित
समयसे लेकर अबतक पृथ्वीकी लाखों जातियाँ प्रकट

हुईं और कालके गालमें चली गयीं; परंतु दैवी
विश्वास करनेवाली, वर्णाश्रमधर्म माननेवाली, अपनी प
रक्षा करनेके लिये गोत्र-प्रवरकी शृङ्खलाके
चलनेवाली सनातनधर्मी प्रजा अभीतक अपने अ
रक्षा कर रही है । जिस मनुष्य-जातिमें वर्णाश्रम-व्यव
है, गोत्र-प्रवरकी सुव्यवस्थाका विचार नहीं है, उस
जातिपर अर्यमा आदि नित्य पितरोंकी कृपा न होनेसे
जीवित नहीं रह सकती । हमारे वेदोंमें, वैदिक क
तथा स्मृति और पुराणोंमें गोत्र-प्रवर-प्रवर्तक म
चर्चा है तथा उससे आर्यजातिको सुरक्षित रखने
दृढ़ आज्ञा है । अतः आधुनिक अहम्मन्य ने
द्वारा इस व्यवस्थाका नाश न होने देना चाहिए
समयकी क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियोंमें
पुरोहितके गोत्रसे गोत्र-प्रवर माननेकी व्यवस्था प्रच
इस कारण उक्त जातियोंमें इस व्यवस्थाकी कुछ ि
पड़नी सम्भव है; परंतु ब्राह्मण-जातिमें वे
शास्त्रोंमें वर्णित गोत्र एवं प्रवरकी व्यवस्था यथाव
चाहिये । आजकल ब्राह्मण-जातिमें जो अनेक
पतनके लक्षण दिखायी देते हैं, उसका प्रधान कार
कि ब्राह्मण-जाति गोत्र और प्रवरकी महिमाको भूल
वास्तवमें गोत्र और प्रवरकी महिमाके प्रभावसे ही
ब्राह्मण-जातिमें कहीं-कहीं ब्रह्मतेज दिखायी देता
वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्थापर गोत्र-प्रवर-महिमाका बड़ा भा
पड़ता है । अतः जिनमें स्वजातीय अभिमान है,
स्वधर्मका गौरव समझते हैं, जो जन्मान्तर-विज्ञान
और जो रजोवीर्यकी शुद्धताका गौरव समझते हैं, उ
समय प्रमादग्रस्त न होकर चेतना चाहिये । सूर्योदय



हिंदुओंकी विद्या

'ध्यानकी प्रणालीको उन्हीं लोगोंने जन्म दिया है । उनमें स्वच्छता एवं शुचिताके गुण वर्तमान
गोंमें विवेक है तथा वे वीर हैं ।'

'ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद एवं अन्य विद्याओंमें हिंदूलोग आगे बढ़े हुए हैं । प्रतिमा-निर्माण, चि
ादि कलाओंको उन्होंने पूर्णतातक पहुँचा दिया है । उनके पास काव्य, दर्शन, साहित्य तथा
ंगार है ।'

—अलजहीज / आठवीं श

भक्ति-रहस्य

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्०ए०, डी०लिट्०)

र्तमान युगमें भक्ति-साधन और उसकी उपयोगिताके कुछ कहनेकी आवश्यकता है, ऐसा मैं नहीं समझता। भी विश्वास करते हैं तथा शास्त्र-वाक्य और महापुरुषोंके इस विश्वासका समर्थन करते हैं कि दुर्बल मनुष्यके त्वप्राप्तिका, एकमात्र न होते हुए भी, प्रधान उपाय धना है। परंतु सच पूछा जाय तो भक्ति-साधनाका बके लिये सुपरिचित नहीं है। रहस्य जाने बिना किसी तत्त्वका माहात्म्य हृदयङ्गम नहीं हो सकता। इस प्रबन्धमें भक्ति-तत्त्वके रहस्यके सम्बन्धमें अपने : अनुभवके अनुसार संक्षेपमें कुछ कहनेकी चेष्टा

नाके समस्त मार्गोंको आलोचनाकी सुविधाकी दृष्टिसे गोंमें विभक्त किया जा सकता है। इसके एक-एक नाकी एक-एक स्थितिके द्योतक हैं। प्रथम भागका र्तक-अवस्था, द्वितीय भागका नाम साधक-अवस्था य भागका नाम सिद्धावस्था है। प्रवर्त्तक-अवस्थामें एकके दो स्थितियोंका विकास स्वीकृत किया गया है। उसी धक-अवस्थामें भी दो क्रमिक स्थितियोंकी अभिव्यक्ति आती है। परंतु सिद्धावस्थामें इस प्रकारका कोई भेद नहीं पाया जाता। प्रवर्तक-अवस्थामें प्रथम नाम-साधन। नामकी महिमा भारतवर्षकी भक्त- किसीको अविदित नहीं है। वाचक शब्द और र्थमें जिस प्रकार नित्य सम्बन्ध रहता है, उसी प्रकार : नामीमें एक प्रकारका नित्य सम्बन्ध विद्यमान है। जके साथ जिस प्रकार वृक्षफलका सम्बन्ध है, उसी गवान्के नामके साथ भगवत्स्वरूपका सम्बन्ध जानना भगवन्नाम प्राकृतिक वस्तु नहीं है, यह अप्राकृत गौर अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न है। भगवान् जिस प्रकार मय हैं, उनका नाम भी उसी प्रकार चिदानन्दमय ; नाममें चिद् और आनन्दकी अभिव्यक्ति नहीं धनाके प्रभावसे क्रमशः ये अभिव्यक्त होते हैं। उसमें पहलेसे ही अव्यक्तभावसे निहित रहते हैं। न्त शक्तियोंका भंडार है। जाग्रत् महापुरुषके निकले हुए नामकी तो बात ही क्या, साधारणतः नाममें भी निजशक्ति विद्यमान रहती है। नाम-

दाताकी शक्तिके साथ योग होनेपर नामकी नि आवरणमुक्त होकर उज्ज्वल रूपमें फूट पड़ती है हो तो वह नाम यथार्थ नाम नहीं होता, नामाभास प्रकटित होता है। नामकी महिमा अनन्त है; नाम व्यर्थ नहीं जाता, उसका भी सुफल होना अनि वस्तुतः भगवान्का नाम अर्थात् जाग्रत् नाम क बलसे कर्तृत्वाभिमानपूर्वक नहीं उच्चारण कर सकता ऊपर नामकी कृपा होती है, नाम स्वयं ही उसके अवलम्बन करके ध्वनित हो उठता है। जो स्वतः चैत उसके लिये बाह्य प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं होत नामाभासमें उच्चारणकर्ताका कर्तृत्वाभिमान रहता है दीर्घकालतक विधिपूर्वक गुरूपदेश अथवा आन्तर्वि प्रेरणाके अनुसार उच्चारण करते-करते नामाभास भ किसी भाग्यवान्के कण्ठमें नामरूपमें परिणत होकर अ ध्वनित हो उठता है।

दीर्घकालतक नियमितरूपमें नाम-साधना करते यथासमय भगवान्की करुणाका उद्रेक होता है, पथप्रदर्शक गुरुके रूपमें नाम-साधक भक्तके सामने : होते हैं। नाम-साधनाके द्वारा चित्त-शुद्धि तथा : यथासम्भव अवश्य ही होती है; परंतु जबतक भक्त बीजको प्राप्तकर अपने अशुद्धबीज देहको शुद्ध परिणत नहीं कर पाता, तबतक वास्तविक साधनाका नहीं हो सकता। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि शरीरमें भगवत्साधना नहीं होती। प्राकृत शरीर : विकारके अधीन है, इसके द्वारा अप्राकृत और । भगवत्तत्त्वकी साधना सम्भव नहीं है।

बीज-साधनाके फलस्वरूप क्रमशः बीजकी अ तथा उसके प्रभावसे मलिन सत्ताको दूर करना स जाता है। पाञ्चभौतिक उपादानोंका आश्रय लेकर अनुस्यूत जो हमारा अशुद्ध शरीर विद्यमान है, उस तक संस्कार नहीं होता, तबतक उसके लिये प्रकृत मार्गमें प्रविष्ट होना दुष्कर है। गुरुदत्त साधनाके फ भूत और चित्त शुद्ध अवस्था धारण करते हैं; अतए स्थित अशुद्ध शरीर विगलित हो जाता है और अप भावके अनुसार एक अभिनव शरीरका आविर्भाव हो

वका शरीर होता है, इसीका पारिभाषिक नाम है—
' । यह देह निर्मल, अजर और अमर होता है तथा
ासा, काम-क्रोध प्रभृति प्राकृतिक धर्मोंसे वर्जित
। इस भावदेहको प्राप्तकर भक्त प्रवर्तक-अवस्थासे
वस्थामें उपनीत होता है। साधारणतः 'जगत्में
साधना कहते हैं, वह प्रकृत साधना नहीं है। स्थूल
भिनिवेश या तादात्म्यबोधके रहते हुए कोई भी
यों न की जाय, वह अकृत्रिम स्वाभाविक साधनाके
ेगणित नहीं हो सकती। भावका साधन ही यथार्थ
। अभावके शरीरमें भावकी साधना नहीं हो सकती।
प्रवर्तक-अवस्थामें अभावके शरीरको भावके शरीरमें
करनेकी चेष्टा करनी पड़ती है। नाम और मन्त्र—
नक चेष्टामें सहायक होते हैं।

होंने भक्तितत्त्वका अनुशीलन किया है, वे जानते हैं
रूपा भक्ति क्रमशः फलरूपा भक्तिमें पर्यवसित होती
ंक-अवस्थामें जो कुछ किया जाता है, वह क्रिया-
ी अन्तर्गत है। कोई-कोई इसे साधन-भक्ति भी
। परंतु वास्तविक साधन-भक्ति यह नहीं है, यह
ाधन-भक्ति है; क्योंकि प्राकृत-देहाभिमानके रहते
त साधन-भक्तिका उदय नहीं हो सकता। जिस
क्तिकी बात भक्तलोग कहते हैं, तथा भक्त-
में जिसका साधन देखनेमें आता है, वह भी वस्तुतः
वस्थाका ही व्यापार है। इन सभी अनुष्ठानोंके पीछे
ात्मबोधमूलक कृत्रिम अहंभावकी क्रीडा विद्यमान
। भाव कैसे उदित होता है, इसकी आलोचना करते
चार्योंने कहा है कि भावका प्रथम आविर्भाव कर्म
पासे लक्षित होता है। कर्मसे अर्थात् कृत्रिम साधन-
अनुष्ठान करते-करते साधन-भक्ति भावभक्तिके रूपमें
ो सकती है। परंतु कहीं-कहीं पूर्ववर्ती साधनके
होनेपर भी भावभक्तिका उदय होते देखा जाता है,
में कृपाको ही मूल कारण मानना पड़ता है। यह
ात् भगवान्‌की भी हो सकती है अथवा सिद्ध
क्की भी। कुछ लोगोंकी यह भी धारणा है कि
कार्य-कारणभावका विचार करनेपर कृत्रिम भक्ति-
कहीं भी भक्तिका वास्तविक कारण नहीं माना जा
यह क्षेत्र-विशेषमें भक्तिकी यथार्थ कारणता

भक्ति ह्लादिनी शक्तिकी एक विशेष वृत्ति है
शक्ति महाभावस्वरूपा है। अतएव शुद्ध भक्ति
महाभावका अंश है, इसमें कोई सन्देह नहीं।
भावरूपा भक्ति चाहे साधनपूर्वक हो अथवा वृ
वह वस्तुतः महाभावसे ही स्फुरित होती है। अतए
साधन-भक्तिकी प्रयोजनीयता स्वीकार करनेपर भी
उदयको सभी साधनद्वारा दुष्प्राप्य मानते हैं
साधनाके मूलमें जीव रहता है; परंतु भक्ति जीवका
सिद्ध धर्म नहीं है, क्योंकि महाभाव अथवा भाव
शक्तिकी वृत्ति होनेके कारण स्वरूपशक्तिके विल
भगवत्स्वरूपके साथ संश्लिष्ट है। जीव कर्म कर र
परंतु भावको प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह
भावमय नहीं है। कर्म करते-करते भाव-जगत्‌से उसं
अनुप्रवेश हुआ करता है।

इस प्रकार भावका उदय भावजगत्‌की प्रेरण
है। मायिक शरीर भावग्रहणके लिये उपयोगी न
अतएव इस देहमें भावका आविर्भाव नहीं होता
आविर्भाव होता है भाव धारण करनेयोग्य आधा
आधार शुद्ध देह या भावदेहके नामसे परिचित है
देह साधनाके प्रभावसे शुद्ध होकर अन्तमें भावदेह
प्रकट होता है। पाञ्चभौतिक प्राकृत देहका अव
यदि भावका विकास हो तो भावदेह मिश्ररूपमें अ
सकता है। इस अवस्थामें वह अपने पृथक् स्वरू
करता रहता है। अथवा भावके विकासके साथ-सा
देहका त्याग होनेपर, विशुद्ध भावदेह भा
विराजित होता है और वहाँ कार्य करता रहता है
उदयके पूर्व यदि मृत्यु हो, अर्थात् कृत्रिम साध
अनुशीलनके समय बीचमें ही देहत्याग हो जाय त
जगत्में गति प्राप्त नहीं होती। जब भावका उदय
तब समझना चाहिये कि भावदेह कार्य कर रहा है।
कार्य करते समय प्राकृत देह जडवत्, स्थिर तथा
रूपमें पड़ा रहता है। भावकी तीव्रतामें यह अवश्य ह
आ जाता है। यदि भाव उतना तीव्र न हो तो प्राकृ
उसका उतना प्रभाव देखनेमें नहीं आता। परंतु
वह स्वरूपमें ठीक-ठीक कार्य करता रहता है
सन्देह नहीं।

होती रहती है, उस समय भावका विकास नहीं होता। इस अवस्थामें बाह्य शास्त्र-वाक्य, बाह्य गुरुवाक्य नुसार महापुरुषोंके वचन और तन्मूलक विधि-निषेध । मानकर चलना पड़ता है। परंतु स्वभावका विकास बाहरसे किसी प्रकारकी शिक्षा ग्रहण करनेकी आवश्य- ीं रहती। जिसका जो स्वभाव होता है, वह उसके ही चलता है। उस समय स्वभाव ही प्रेरक होता र समय स्वभाव ही गुरु, स्वभाव ही शास्त्र तथा । निर्देश ही विधि-निषेध होता है। बाहरसे कोई करनेवाला नहीं रहता। गम्भीर आन्तर राज्यकी ां बाह्य जगत्की किसी भी वस्तुका कोई स्थान नहीं तथापि वहाँ भी कोई शक्ति अन्तर्यामीरूपसे भीतर भक्तको परिचालित करती है। इसीको स्वभाव ।

देह बाह्य देहके अनुरूप नहीं होता। ऐसा भी । है कि बाहरसे जो वृद्ध दीख पड़ते हैं, जिनके केश हैं, दाँत गिर गये हैं और दृष्टि क्षीण हो गयी है, भावदेहमें ठीक इसके विपरीत हों। हो सकता है । भावदेह उज्ज्वल, ज्योतिर्मय, किशोरवयस्क, सर्वाङ्ग- ौर माधुर्यमय हो। बाह्यदेहके साथ भावदेहका कोई ां होता। अवश्य ही यह प्रथमावस्थाकी बात कही आगे चलकर योग- प्रतिष्ठित हो सकता है। यह विषय है। भक्त शुद्ध वात्सल्यभावका साधक ावा सख्य, दास्य या उज्ज्वल भावका, उसका तदनुरूप ही होगा। स्वभावसिद्ध देहके स्वभावका कर स्वभावकी साधना चलती है। यदि कोई मातृ- ाधक हो तो स्पष्ट ही देखनेमें आयेगा कि उसका ठीक शिशुके आकारका हो जाता है। आकृति और रस्पर अनुरूप ही हुआ करती हैं। जो प्रकृतितः वभावतः शिशु हैं, और इस शिशुभावसे ही 'मा-मा' कारते हैं, वे आकृतिसे भी शिशु क्यों नहीं होंगे ! ाह्य शरीर जरा-जीर्ण होनेपर भी उनका भावदेह रहता है, इसमें सन्देह ही क्या हो सकता है ! जिस प्रकार शिक्षा नहीं दी जाती कि वह किस को पुकारे अथवा माके साथ व्यवहार करे—वह भावके द्वारा ही नियमित होता है, ठीक उसी

उसका भजन है। रागात्मिका भक्तिमें बाह्य शास्त्र नियमावलीकी आवश्यकता नहीं होती।

जगत्में अनन्त भाव विराजित हैं। महाभाव होनेपर भी खण्डभाव असंख्य हैं। प्रत्येक भावकी है, और उसकी एक सार्थकता होती है। एक भावके भावकी शबलता अथवा सांकर्य भावसाधकके लिये है। स्वभावके मार्गसे इसके होनेकी सम्भावना नहीं परंतु जो लोग कृत्रिम भावकी भावनाके द्वारा भाव मार्गमें अग्रसर होते हैं, उनसे भूल या भ्रान्ति अनिवार्य है। वस्तुतः यह अकृत्रिम साधनाका अभिनयमात्र है। एक वृक्षके हजारों पत्तोंमें जि साम्यके होते हुए भी प्रत्येक पत्तेमें एक विशेषता उसी प्रकार प्रत्येक भावमें भी एक विशेषता ह भावको मर्यादा दिये बिना भावसाधनामें कोई अ हो सकता। बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य जिस प्रकार पृथ होते हैं तथा उनका आचरण और तन्मूलक व्यवि भी पृथक्-पृथक् होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक भावके और विलास भी पृथक्-पृथक् होते हैं। अतएव भाव बाहरसे कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता। भाव लिये गुरु-आज्ञाकी आवश्यकता नहीं। उसके अ भावकी प्रेरणा ही उसको परिचालित करनेके लिये होती है।

एक भावके साथ दूसरे भावका व्यक्तिगत भेद त इसके सिवा उनमें गुणगत तथा मात्रागत भेद भी रह

भावका विकास ही प्रेम है। भावसाधना क स्वभावतः ही प्रेमका आविर्भाव हो जाता है। जब उदय नहीं होता, तबतक भगवान्का अपरोक्ष दर्शन सकता; भावके उदयके साथ-साथ आश्रयतत्त्वकी अ होती है। परंतु जबतक प्रेमका उदय नहीं होता विषयतत्त्वका आविर्भाव नहीं हो सकता। यद्यपि भाव प्रेम एक ही वस्तु हैं, तथापि अपक्व और पक्वभेद अवस्थाओंमें कुछ पार्थक्य है। भावजगत्में प्रवेश साथ भक्त अपनेको अर्थात् अपने विशिष्ट स्वरूप होता है। उसके पश्चात् साधनाका और अधिक होनेपर भक्तिका विषयभूत भगवत्-स्वरूप प्रत्यक्ष ह

भगवत्-स्वरूप भी सम्बद्ध रहता है। जबतक प्रेमकी
क्ति नहीं होती, इष्ट भगवत्-स्वरूपका आविर्भाव नहीं

त यह है कि प्रवर्तक-अवस्थामें दो आवरण अभिन्न-
वेद्यमान रहते हैं। इन दोनों आवरणोंमेंसे एक तो
निजी स्वरूपको आच्छन्न किये रहता है और दूसरा
स्वरूपको आच्छन्न करता है। प्रवर्तक-अवस्थाके
भावदेहके विकासके साथ-साथ प्रथम आवरण कट
परंतु दूसरा आवरण तब भी रहता है। अर्थात्
पने भावदेहमें जाग उठनेपर ही इष्ट वस्तुको नहीं
ता। जबतक भावका विकास नहीं होता, तबतक
प्रमेयका आवरण उन्मुक्त नहीं होता। भावके विकाससे
न्धान और अन्वेषण आरम्भ होता है तथा प्रमेयका
कट जानेपर अन्वेषण भी समाप्त हो जाता है, क्योंकि
हो जाती है। यही प्रेमकी अवस्था है। भावमें
साथ-साथ अभावके जगत्से ज्योतिर्मय भावजगत्में
नेपर अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हो जाता है।
स्थानसे इष्ट वस्तुका अन्वेषण चलने लगता है। इस
न्तर्जगत्में क्रमशः अधिकतर गुह्य स्थान प्राप्त होते-होते
वस्थामें अन्तरतम विन्दुमें प्रवेश प्राप्त होता है। तब
रूप उन्मुक्त हो जाता है और भक्तको भगवत्-
र सिद्ध होता है। अन्तर्जगत्में प्रवेशके पश्चात्
अन्तिम विन्दुतक अनवच्छिन्न भावसे अग्रसर होना
। इसीका नाम है साधनाका क्रम-विकास। आवर्त्त-
तके मध्यविन्दुमें स्थिति प्राप्त करनेपर बहिर्जगत्
न्तर्जगत्का भेद दूर हो जाता है। तब साधनाकी
हो जाती है। इसीका नाम रसका उदय है।
क्त महाजनोंने सिद्धावस्थाके नामसे निर्देश किया है।

तक जो कुछ कहा गया है, उससे धामतत्त्वका
छ-कुछ समझा जा सकता है। भावके विकासके
मतत्त्व अभिव्यक्त नहीं हो सकता। जबतक काया-
स नहीं होता, तबतक उस कायाकी स्थिति और
लिये उपयोगी धामका आविर्भाव कैसे होगा?
हेत भक्त बहिरङ्ग होनेके कारण धामके बाहर
लिये बाध्य होता है। इसीसे प्रवर्तक-अवस्थामें
वेश प्राप्त नहीं होता। धाममें प्रवेश प्राप्त करनेके

अधिकार नहीं पाता। जबतक इस देहका त्याग क
देह ग्रहण नहीं किया जाता, तबतक धाममें प्रवेश न
जा सकता। मायिक देहका त्याग होनेपर ही धाम
हो जायगा, ऐसी बात नहीं; क्योंकि ऐसी अवस्था
जब मायिक देह निवृत्त हो जाता है, फिर भी
भावदेहकी प्राप्ति नहीं होती। यह कैवल्यकी अव
इस अवस्थामें भगवद्धाममें प्रवेशकी सम्भावना नह
क्योंकि यह विदेह स्थिति है। भक्तलोग इसे कैवल्य
निर्देश करते हैं। केवली जीव भगवद्धामके बाहर
प्रान्तरमें सुप्तवत् विद्यमान रहता है। यह मायातीत
होते हुए भी वस्तुतः पाशविक अवस्था है। इस
भगवद्धाममें प्रवेशका अधिकार नहीं मिलता
मात्र भगवदनुगृहीत जीव ही धाममें प्रवेश कर स
दूसरे नहीं।

भगवद्धाम एक होनेपर भी भावके अनुसार
हैं। कुण्ठाहीन होनेके कारण वैष्णवलोग इस धामको
वैकुण्ठ कहते हैं। यह विशुद्ध सत्त्वमय है। अतः
रजस, तमस तथा मलिन सत्त्व इस स्थानमें कार्य न
सकते। जिस कालके प्रभावसे प्राकृतिक जगत्की
स्थिति, संहार और नाना प्रकारके परिणाम संघटित
वह काल भगवद्धाममें कार्य नहीं कर सकता। उस
भी एक प्रकारका काल होता है। वह कालातीत क
वह भगवान्‌का लीला-सहचर है और वह भगवत्
अनुवर्ती होकर कार्य करता रहता है। ज्योतिर्मय
सत्त्व भगवद्धामका उपादान है। उस
लीलाकी उपकरणभूत अनन्त वस्तुएँ—भोग्य,
और भगवान्‌के लीलाविग्रह, सभी विशुद्ध सत्त्वसे रचित
यही आगम-शास्त्रोंके विन्दुका स्वरूप है तथा इस धाम
है—'वैन्दव जगत्।' विशुद्ध सत्त्व मायासे सर्वांशमें भि
है। अर्थात् माया अशुद्ध है और यह शुद्ध है।
माया अनादि और सान्त है, परंतु विशुद्ध सत्त्व
और अनन्त है। भगवद्धाम और भगवद्विग्रह तथा
का निजी विग्रह—सभी अन्तहीन हैं।

भाव स्थायी और सञ्चारी भेदसे दो प्रकारका हो
यह पहले कहा जा चुका है। सञ्चारी भाव आविर्भूत
कार्य करके तिरोहित हो जाता है। परंतु स्थायी भाव नि

वना होती है। सञ्चारी भाव भाव-देह प्राप्त करनेके
जीव हृदयमें कार्य करता रहता है; परंतु वह
सम्पन्न नहीं होता, अतएव उससे फलोद्गमकी
नहीं होती । वास्तविक भक्त वही है, जो भावकी
अवस्थासे स्थायी अवस्थामें पहुँच सकता है ।
ये भक्तलोग नाम और मन्त्रसाधनाकी उपयोगिता
रते हैं। स्थायी भाव वस्तुतः भावदेहका ही नामान्तर
के विकासके साथ-साथ हृदयमें प्रवेश प्राप्त होता
अन्तरङ्ग हृदयकमल अष्टदलोंसे विभूषित है, इसलिये
व भी मूल अष्टभावमें विवर्तित होकर प्रकाशित
इस अष्टदल कमलका एक-एक दल एक-एक भाव-
है। भावमें प्रविष्ट होकर उसे महाभावमें परिणत
ता है । यही भावसाधनाका रहस्य है । वस्तुतः
ही भावसाधनाका लक्ष्य है; परंतु महाभावमें
लिये, भाव कुछ मध्यवर्ती अवस्थामें होते हुए
होता जाता है । इसकी आलोचना क्रमशः की
जिन आठ अङ्गरूपी भावोंकी बात कही गयी है,
क लोग उनका अपनी-अपनी परिभाषाके अनुसार
करते हैं; परंतु भावका साधक अपनी दृष्टिभूमिसे
प्त हो सकता है, उसके लिये दूसरोंकी दृष्टिभूमिका
करना आवश्यक नहीं होता । वास्तवमें तो प्रत्येक
भक्तको इन आठों भावोंको एक-एक करके जगाना
नहीं तो जिस किसी भावको उसके चरम
अवस्थापर्यन्त अभिव्यक्त (स्फुटित) नहीं
सकता । कमलके विकासके लिये जिस प्रकार एक
पूर्ण सरोवर और उसके साथ पृथ्वीकी आवश्यकत
उसी प्रकार दूसरी ओर ज्योतिर्युक्त तेजोमण्डल त
साथ आकाश भी आवश्यक होता है। नीचे रस
रविकिरण—इन दोनोंका एक साथ संयोग होने
स्फुटित होता है, अन्यथा स्फुटित नहीं हो सकता
विकासके लिये भी उसी प्रकार एक ओर लक्ष्योन्मेषरू
ज्ञानस्वरूप चिदाकाशमें स्थित सूर्यमण्डल आवश्यक
और दूसरी ओर रसोद्गमका मूल कारण स्थायी भाव
होता है; क्योंकि सञ्चारी भावका विकास नहीं हो
भावका ही विकास होता है ।

भावके विकासके पहले तदुपयोगी क्षेत्र निम
है । नाम-साधनाके बाद तथा मन्त्रसाधनाकी समा
धीरे-धीरे यह क्षेत्र तैयार होता रहता है । तैय
समय यह लक्षित नहीं होता; परंतु पीछे दृष्टिके
साथ-साथ यह दिखलायी देने लगता है । तब य
आ जाता है कि कब और किस ढंगसे उसकी रचना
यह क्षेत्र ही वस्तुतः एक कुण्ड या सरोवर है, प
सन्देह नहीं कि यह जलहीन सरोवर है । जबतक
नहीं होता, तबतक खेचरीभाण्ड अथवा अमृ
अमृत-क्षरण नहीं होता । लक्ष्योन्मेषके साथ-साथ अ
प्रारम्भ हो जाता है । तब पूर्वोक्त शुद्ध कुण्ड
सरोवरके रूपमें शोभायमान होता है । किसी-किसी
भक्तने इसको काम-सरोवरके रूपमें वर्णन किया है
से यहाँ अभिप्राय शुद्ध प्रेमसे है । परंतु वस्तुतः वह
प्रेमरूपमें परिणत नहीं होता । उपर्युक्त लक्ष्योन्मेष
सूर्यका ही उदय है । कामकला-तत्त्वके जानने
विशेषरूपसे जानते हैं । भाव-सरोवरमें पहले भाव
रूपमें प्रकट होता है । पश्चात् सूर्यकी किरणें उसे प्रे
रूपमें विकसित कर देती हैं। जब भावका विकास
अर्थात् कमल प्रस्फुटित हो जाता है, तब वह
ऊपर उठ आता है; वह फिर सरोवरमें नहीं रहत
नाल अथवा मृणालके द्वारा सरोवरके साथ उसक
सम्बन्ध रह जाता है । यह नाल भी जब छिन्न हो जाता

यह गुप्त कमल है । षट्चक्रके अन्तर्गत जो द्वादशदलरूपी
है, उससे यह पृथक् है; क्योंकि द्वादशदलका भेद
त पीछे आज्ञाचक्रका भेद करनेपर अन्तर्लक्ष्यकी प्राप्ति
परंतु जबतक लक्ष्योन्मेष नहीं होता, अष्टदलमें प्रवेश
होता । इसी कारण मध्ययुगके बहुतेरे संत अष्टदलको
सहस्रदलके साथ अभिन्न समझते थे, तथा कोई-कोई
स्रदलके अन्तर्गत मानते थे । वस्तुतः इस अष्टदलको
ज्य मान लें तो प्रचलित द्वादशदलको भावका आभास
सकता है । इससे ज्ञानके बाद भक्ति होती है या
ज्ञान होता है—इस प्रश्नका समाधान हो जायगा ।
बाद लक्ष्यका उन्मेष होता है, यह प्रचलित सिद्धान्त
तसे भक्तिके बाद ज्ञानका उदय होता है । परंतु वस्तुतः
के बाद जिस भाग्यवान् भक्तको अष्टदलकी प्राप्ति होती
दृष्टिमें ज्ञानके बाद ही भक्तिका स्थान है—यह स्वीकार
होगा। भक्तिके दो भेद हैं—अपरा और परा भक्ति, अथवा



शक्ति-शक्तिमान्का प्रेमस्वरूप

ाथ-साथ सत्यरूपमें अष्टदलकी प्राप्ति होती है। लकी रचना अति अद्भुत होती है। अष्टदलकी रूपमें जो विन्दु है, वही अष्टदलका सार है। दूसरा नाम है 'महाभाव'। वस्तुतः अष्टदल महा-ी अष्टधा विभक्त स्वरूपमात्र है; इसे महाभावका भी कहा जा सकता है। प्रश्न हो सकता है कि यदि विन्दु है, तो इन आठ भावोंके साथ या सम्बन्ध होगा?' इसका उत्तर यह है कि ये । महाभावके स्वगत आठ अङ्गमात्र हैं। इन आठ ी समष्टि महाभावका स्वरूप है। प्रत्येक भाव महा-ाथ संश्लिष्ट है। वस्तुतः प्रत्येक भावका जो पूर्ण , वही महाभाव है। भावसे महाभावकी ओर जानेके । मार्ग हैं। एक आवर्त-क्रमसे और दूसरा साक्षात् ल रूपसे। आवर्तमार्गका अवलम्बन करते समय अथवा परिक्रमा करके भावसे भावान्तरमें चलते-क्रमशः महाभावमें पहुँचा जाता है। इस मार्गसे में उपस्थित होनेपर महाभावका पूर्ण स्वरूप प्राप्त परंतु आवर्तमार्गसे न जाकर सरल गुप्त मार्गसे ावमें पहुँचा जाता है। लेकिन इस मार्गसे महाभावका रूप अधिगत नहीं होता। क्योंकि इस मार्गसे साथ केवल उस विशिष्ट दलका ही सम्बन्ध होता है, का सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता।

बातको और भी स्पष्ट करके बतलाना है। माता और ाठ सन्तान विद्यमान हैं। माता प्रत्येक सन्तानकी । अतएव उसका सम्बन्ध आठोंमेंसे प्रत्येकके नरूपसे है। अतः यह सत्य है कि वह एक है, उसकी आठ सन्तान हैं। इस प्रकार उसका स्नेह-दे प्रत्येक सन्तानके लिये ही प्राप्य होनेके कारण ोंमें विभक्त हो जाता है। दूसरी ओरसे, सन्तानके माताके सिवा दूसरा कोई नहीं है। माता जानती है ी आठ सन्तान हैं, और प्रत्येक सन्तान जानती है ी एक ही माता है। सन्तान यदि अपनेको आठ े एक मानकर माताको प्राप्त करनेकी इच्छा करता इ सम्पूर्ण माताको प्राप्त न करके उसके एकदेशको करेगा। क्योंकि सम्पूर्ण माताको ग्रहण करनेकी उसमें नहीं है; कारण कि वह अपनेको आठ सन्तानों-समझता है। यहाँ सम्पूर्ण माताको प्राप्त करनेके ो आठमेंसे एक न बनकर आठोंके समष्टिरूपमें

उसकी अगली सन्तानके भावमें तथा उसके आ अगली सन्तानके भावमें और इस प्रकार भावान्तरमें प्रवेश करते-करते अष्टम सन्तानके भावमें प्रस्फुटित कर डालना होगा। तब वह आठ सन्तानोंके भूत तथा अष्ट भावोंके प्रतिनिधिरूपमें मध्य विन्दु भावरूपिणी माताके पास पहुँचनेका अधिकार प्राप्त इस प्रकार आधार पूर्ण होनेपर वह पूर्णरूपसे प्राप्त हो सकेगा। यह हुआ एक मार्ग। दूसरी दृ सन्तान अपनेको माताकी आठ सन्तानोंमेंसे एक न केवल अपनेको ही माताकी एकमात्र सन्तान माने पूर्वोक्त आवर्तमार्गमें पूर्णता प्राप्त नहीं करेगा; उसके सरल मार्ग है और वह गुप्त है, इसे चाहे तो यो मार्ग कह सकते हैं। अर्थात् वह साक्षात्रूप स्थानसे ही सरल मार्गद्वारा माताको प्राप्त हो सक उसे विभिन्न सन्तानोंके भावको ग्रहण करके प्राप्ति नहीं करनी पड़ेगी। वह जहाँ अवस्थित है माताका दर्शन कर सकता है और माताको प्राप्त हो स इस मार्गमें उसको बाधा देनेवाला कोई नहीं है, प्रतिबन्धक नहीं है। वह जानता है कि एकमा माताकी सन्तान हूँ। और माता भी जानती है एकमात्र मेरी सन्तान है। अतएव इस क्षेत्रमें वह मा स्नेह और प्यारका दावा करता है, और उसे कर लेता है। माताके इस स्नेह और प्यारमें उस सन्तानका भाग नहीं होता। अन्य सन्तान इस नहीं जानती और जान भी नहीं सकती। ये आच्छादनमें माता और सन्तानका यह विचित्र और आनुषङ्गिक लीला प्रकाशित होती है। प्रत्येक लिये यह व्यवस्था एक ही प्रकारकी होती है। परं विकास होनेमें समय लगता है। यहाँ माताको व्यक्तिगत भावसे प्राप्त होनेपर भी उसे सर्व जननीके रूपमें समष्टिभावसे पाना नहीं बनता आस्वादनकी यह भी एक दिशा है।

इसमें और भी अनेक रहस्य हैं। प्रथम दृष्टा सन्तानके विषयमें उल्लेख किया गया है, उसकी गतिके मूलमें आत्मलोप-अवस्था रहती है, अर्था अवस्थासे द्वितीय अवस्थामें जानेके साथ-साथ प्रथम द्वितीय अवस्थामें परिणत हो जाती है, यह जानने है। इस प्रकार आवर्तन पूर्ण होनेपर-आगे-आगे पा

है, यह जान लेना चाहिये। तब उस अष्टम
पूर्ण विकास प्राप्त हो जानेके पश्चात् माताको
प्राप्त किया जाता है। परंतु इसके सिवा समष्टि-
एक और भी प्रणाली है; वह आत्मविकास है,
। नहीं। उसके फलस्वरूप प्रथम अवस्थामें ही
अवस्था आकर लीन हो जाती है, और उसके बाद
ासके साथ-साथ सारी अवस्थाएँ उसीमें लीन हो जाती
कार अष्टम सन्तानके भावके लीन हो जानेके बाद जिस
। अभिव्यक्ति होती है, वही इस मार्गमें समष्टि
वकी पूर्ण अभिव्यक्ति है। इसके पश्चात् माताकी
तदनुरूप ही होती है। वस्तुतः समष्टि-मार्गके
द्वारा ही प्रकृत समष्टि-पथकी प्राप्ति होती है।

प्रकार व्यष्टिभावकी प्राप्ति भी समझनी चाहिये;
व्यष्टिभावमें भी स्वयं माताके आकर्षणसे आकृष्ट
ताके समीप जाना तथा अपने आकर्षणसे माताका
होकर आना और सन्तानको गोदमें लेना—ये दो
दिशाएँ रहती हैं। व्यष्टिभावमें भी प्रकृष्ट पथ इन
ोंके समन्वयके ऊपर प्रतिष्ठित है।

से यह समझा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति
सारी विकासभूमिका—चाहे वह अनुलोम-क्रमसे
प्रतिलोम-क्रमसे—अनुभव न करके भी अपने
स्थानसे ही महाभावके साथ युक्त हो सकता है।
हाभावको अपने साथ युक्त कर सकता है। लीलाके
की दिशासे व्यक्तिगत दिशाका यह एक वैशिष्ट्य
मानना पड़ेगा। मूलतः व्यक्तिका व्यक्तित्व यदि
ो तो कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तिके स्थानपर अधिकार
सकता; क्योंकि एक व्यक्तिमें जो वैशिष्ट्य होता है,
ं नहीं हो सकता। अतएव क्रमविकासके मार्गसे
ह व्यक्तिके व्यक्तित्वका मार्ग नहीं होगा—यह कहनेकी
ता नहीं। इस स्थलमें व्यक्तित्वकी रक्षा करके ही
 मानना होगा। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति, अपने
विद्यमान रहते हुए भी, समष्टिमें आत्मप्रसार कर
। इस प्रकार समष्टिके साथ अथवा उसके एक-
थ उसको तादात्म्यकी प्राप्ति भी हो सकती है;
 भी उसका व्यक्तिगत स्वभाव अक्षुण्ण ही रहता
प्रसंगमें यह भी याद रखना चाहिये कि विकासाभि-

लय अनिवार्य हो जाता है। भावसे महाभाव पर्य
राज्यका विस्तार है। महाभावके साथ भावातीतका
बिना लीलाका उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। ख
भावातीतमें ठीक तौरपर स्थिति प्राप्त नहीं होती।
खण्डभावका महाभावके द्वारा भेद करके ही भावाती
सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है।

प्रचलित दृष्टान्तके द्वारा इस विषयको समझान
करते हैं। हमारे परिचित भक्तिशास्त्रोंमें शान्त
सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य—इन पाँच मुख्य भत्ति
वर्णन प्राप्त होता है। प्रत्येक भावका एक वैशिष्ट्य
सभी स्वीकार करते हैं। भावके वैशिष्ट्यके अनुसार
जिस प्रकार भक्तका वैशिष्ट्य निरूपित होता है, दू
उसी प्रकार भावकी परिपक्व अवस्थामें आविर्भूत भ
भी वैशिष्ट्य निरूपित होता है। शान्त भक्त जिस
होता है, उसके सामने प्रकटित भगवत्स्वरूप भी
ही होता है।

यहाँ प्रश्न यह होता है कि शान्तभक्ति एक है
उसमें असंख्य प्रकार-भेद हैं—इस बातको
स्वीकार करते हैं। इस प्रकारके भेदोंके अन्तर
अवान्तर प्रकार-भेद हैं। जो जितना ही विश्ले
सकेगा, वह उतने ही सूक्ष्म भेद करनेमें समर्थ
परंतु इन समस्त सूक्ष्म भेदोंको मान लेनेपर भी उ
व्यक्तित्वकी समस्याका समाधान नहीं होता। क्यों
चाहे जितने प्रकारके हों, सर्वत्र ही व्यक्तिगत भेद
स्थान रहेगा। अतएव प्रश्न यह है कि एक दृ
शान्तभाव अन्यनिरपेक्ष और पूर्ण है, दूसरी अ
प्रकार एक दृष्टिसे पूर्ण होते हुए भी दूसरी दृष्टिसे
लिये भावान्तरकी अपेक्षा करता है। शिशुरूप
निरपेक्ष पूर्ण होता है; तथापि उसका एक क्रम-परि
जिसके फलस्वरूप वह बालकरूपमें, किशोररूप
युवकरूपमें परिणत होता है। इसी प्रकार शान्तभ
शान्तभावकी एक निरपेक्ष पूर्णता है, यह सत्य है
शान्तभावकी परिणतिमें दास्यभावका विकास, दा
परिणतिमें सख्यभावका विकास इत्यादि भावोंका क्र
अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक-एक भावके
साथ-साथ एक-एक गुणकी भी अभिव्यक्ति होती है।

न्तर्गत अवान्तर श्रेणी-विभागमें भी इसी प्रकार
ा निहित है। परंतु मूल प्रश्न यह है कि व्यक्तिका
इस समस्त विकासमें भी अक्षत रहता है।
ी महिमा अतुलनीय है। लीलास्वादनके अन्तर्गत
समें इसका विशिष्ट स्थान है।

तभावके दृष्टान्तस्वरूपमें 'क' और 'ख'को ग्रहण
'क' एक व्यक्ति है और 'ख' एक दूसरा व्यक्ति
लीजिये कि दोनों शान्त भक्त हैं। व्यक्तिभेदके वश
: 'ख'के भाव एक पर्यायके होते हुए भी परस्पर
। यह जो पार्थक्य है, वह अक्षुण्ण रूपमें चिरकाल-
ा है। अर्थात् शान्तभक्तिके बाद यदि 'क' और
ों दास्य-भक्तिके स्तरमें पहुँचते हैं, तो वैसा होनेपर
का यह व्यक्तिगत वैशिष्ट्य बना ही रहेगा। इस
धुर्यपर्यन्त क्रमोत्कर्ष प्राप्त कर लेनेपर भी 'क' 'क'
। वह 'ख' या कोई दूसरा नहीं बन जायगा; और
'ख' ही रहेगा, 'क' या कोई दूसरा नहीं बनेगा।
तना ही नहीं, माधुर्य भावके अन्तर्गत अवान्तर
ा भेद करके महाभावमें प्रवेश कर लेनेपर भी यह
पार्थक्य लुप्त नहीं होगा। इस प्रकार समझना
के वृत्तके अन्तर्गत प्रत्येक विन्दु केन्द्ररूपी मध्य-
प्रविष्ट होनेपर तथा उसके साथ अभिन्न होनेपर भी
पने वैशिष्ट्यकी रक्षा करता है। ऐसा न करनेपर
दनका माधुर्य नहीं रहता। एक जिस प्रकार
में सत्य है, उसी प्रकार वह अनन्त रूपमें भी सत्य
कि वहाँ भी तो वह एक ही तद्रूपमें खेल करता है।
ैसे अनन्त है, वैसे ही अनन्तमें एक है—यही
रहस्य है।

ले भी यह कहा जा चुका है कि भाव ह्लादिनी
वृत्ति-विशेषका नाम है; यही भक्तिका स्वरूप है।
अवस्थामें इसीका नाम प्रेम है। यह अनन्त प्रकारका
बात भी जानी गयी। परंतु इस अनन्त प्रकारके
कारमें व्यक्तिगत अनन्तत्व रहता है। उसके बिना
खेल नहीं चल सकता। इस व्यक्तिमें ही स्वातन्त्र्य
और इसी कारण कोई एक व्यक्ति अपने सजातीय
क्तिके समान नहीं होता। कुछ स्वातन्त्र्य अनिवार्य
में रहता है। स्वरूप-शक्ति और तटस्थ-शक्तिके

आश्रय स्वरूपशक्तिकी वृत्ति नहीं, तटस्थ-शक्तिका
अर्थात् जीव है। अतएव रागात्मिका भक्ति जीवकी नहीं
जीवको तो रागानुगा भक्ति ही प्राप्त होती है। अर्था
विशेषके जीव-विशेषमें अभिव्यक्त होनेपर उसे जो
प्राप्त होता है, अन्य जीवमें उसी भावविशेषके अ
होनेपर उसे ठीक वही वैशिष्ट्य नहीं प्राप्त
यही व्यक्तित्वकी महिमा है। इसीके कारण लीला ली
अन्यथा वह अनुकरणात्मक कृत्रिम अभिनयमात्र होत

जीवरूपी अणु भावका आश्रय है; परंतु
सम्बन्धकालमें जीव अन्तःकरणके साथ विजडित
प्रकाशित होता है। चाहे जिस कारणसे हो, सांसारिक ३
जीव और अन्तःकरण तादात्म्यसूत्रमें आबद्ध हैं।
भावका अवतरण जीवमें होनेपर भी वह प्रथम ३
अन्तःकरणकी वृत्तिके रूपमें प्रतिफलित होता है
वस्तुतः वह अन्तःकरणकी वृत्ति नहीं है, अन्त
प्रतिफलित होकर वह समस्त देहको अनुप्राणित कर
लौकिक भावका यही नियम है। परंतु प्रवर्तक
देह और अन्तःकरण शुद्ध होनेपर जब उसके बाद
विकास हो जाता है, तब इस प्रकार स्थूलदेहके सा
सम्भव नहीं होता; क्योंकि उस समय यह भाव
पृथक् भावदेहके रूपमें अभिव्यक्त होता है। यह
भावरूपी या शुद्ध सत्तात्मक कार्य एवं चिदणुस्वरू
रूपी प्राण—इन दोनोंका सम्मिलित स्वरूप होता है

भाव अथवा भक्तिसाधनाकी चरम परिणतिमें
रसकी अभिव्यक्ति होती है और दूसरी ओर म
विकास होता है। रसका जो विशुद्धतम और पूर्णत
है, उसकी प्राप्ति अथवा उपलब्धि महाभावके विका
नहीं हो सकती। परंतु महाभावका विकास भावकी
अभिव्यक्तिके ऊपर निर्भर करता है। भावके नाना
भेद हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है। इन समस्त
अन्तर्गत एक पारस्परिक क्रमानुगत सम्बन्ध है—
ठीक है और प्रत्येक भाव स्वतन्त्र और परस्पर निर
यह भी सत्य है। सृष्टिकालीन जीवके स्वरूपगत वै
कारण इस प्रकारका भेद होता है।

भाव क्रम-विकासके फलसे हो या अक्रमविकासके
...नमें ...में परिणाम प्राप्त हुए बिना, अथवा

तिबन्धक दूर न किया जा सके तो भावकी गति
ः मार्गसे महाभावतक नहीं पहुँचती; क्योंकि मधुर
सामञ्जस्य और साधारणत्व प्राप्त न हो तो उसमें
ा उदय नहीं होता। इसका विशेष विवरण पीछे
ायगा।

न-साधनाकी दो दिशाएँ हैं। एकमें गुणवृद्धिके साथ-
न्तसे दास्य, दास्यसे वात्सल्य इत्यादि क्रमपूर्वक पूर्ण
के साथ माधुर्यका विकास होता है। ठीक इसी प्रकार
ाप्त करके सामञ्जस्य और साधारणत्वका परिहार
ावश्यक होता है। उसके पश्चात् इसीके अनुरूप
का ठीक-ठीक अवलम्बन करनेपर महाभावकी ओर
ोना सम्भव होता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं
कविशेषमें कृपादि निमित्तसे अथवा स्वभावतः
ाद्यमान रहनेपर उपयुक्त साधन-क्रमका गुरुत्व बहुत
हो जाता है। दूसरी दिशामें, गुण-वृद्धिकी चेष्टा न
ाने गुणमें आबद्ध रहना तथा अपनी भूमिमें रहते
भावको प्रेममें परिणत करनेकी चेष्टा करनी पड़ती
ाभाव शान्त रहते हुए ही प्रेममें परिणत हो सकता है।
ो दास्यभावमें अथवा तदनुरूप अन्य भावमें विकास
नहीं होता। प्रेमावस्थापर्यन्त भावकी परिपक्वता
ावके विषयभूत श्रीभगवान्‌के दर्शनोंकी प्राप्ति प्रत्येक
ारा ही हो सकती है। उसके लिये भावान्तरका
ावश्यक नहीं होता। परंतु यह सत्य है कि भगवान्-
होनेपर भी तथा भविष्यमें रसकी अभिव्यक्ति और
नधिकार होनेपर भी उसे एक ही भावकी सीमामें
पड़ेगा।

ऽ जिस अष्टदल कमलकी बात कही गयी है, वह
र आन्तर-भेदसे दो प्रकारका समझना चाहिये।
ोण कमल 'विन्दु'-स्वरूप होता है, और बाह्य
स विन्दुकी आठ दिशाओंके आठ दलोंकी समष्टि
होता है। इस बाह्य कमलको भावराज्य ही समझना
इसमें निरन्तर आठ भावोंका खेल चल रहा है।
ये मौलिक अष्टभाव ही अष्टकालीन लीलाके व
आठ विभाग हैं। प्राकृतिक नियमोंसे इन आठ
परिक्रमा पूर्ण कर लेनेपर मध्यविन्दुमें प्रवेश प्राप्त हो
मध्यविन्दु माधुर्यमय है। मध्यविन्दुका विश्लेषण
देखा जाता है कि वह भी स्थूलतः आठ भागोंमें विभ
इन आठ भागोंमेंसे प्रत्येक भाग मध्य विन्दुका अ
है, जिसे 'कला' कहा जाता है। इन आठ कलाओं
है 'अष्टसखी'। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इ
बाह्य और आभ्यन्तर भेद है। इन अष्ट भावोंका जो
या निर्यास है, वह यथार्थ महाविन्दु अर्थात् महाभ
महाभावमें भी उत्कर्षगत तारतम्यके भेदसे विकासको
रहता है। इस विकासकी जो चरम परिणति है,
वैष्णव शास्त्रोंमें, विशेषतः अन्तरङ्ग महापुरुषोंकी अ
'श्रीराधा-तत्त्व' नामसे वर्णन किया गया है। भाव-
फलस्वरूप जीव बाह्य अष्टदलोंके प्रथम दलसे आवर्तित
क्रमशः महाभावके चरम विकासतक पहुँच सकता है। उ
पूर्णतम रसकी उपलब्धिमें पूर्णतम मिलन और सामरस्य
बाह्य अष्टदल तथा अष्टकलारूपी भीतरके अष्टदल—इन
बीच असंख्य अवान्तर स्तर हैं। जिस रसके विषय
गया है, उसकी अभिव्यक्ति भावराज्यमें सर्वत्र ही हे
है; परंतु भावके अन्तर्मुखी विकासकी आवश्यकता
ही स्वीकार करनी होगी। अर्थात् यदि कोई भाव
स्वरूपमें विशुद्ध रूपसे स्थित हो तो उसके प्रेमरूपमें
होनेपर साथ-ही-साथ, अपने स्वभावके अनुसार, भ
दर्शन और रसकी उपलब्धिके क्रमसे, तदनुरूप ली
आविर्भाव हो सकता है। परंतु इस रसका पूर्ण
मधुरत्व तभी सम्भव है, जब भावोंकी गुणवृद्धिसे होने
अन्यान्य प्रकारके विकास भी सम्पन्न होते रहें।

भारतीयोंका शील

'समस्त भारतीय—चाहे वे प्रासादोंमें रहनेवाले राजकुमार हों अथवा झोंपड़ोंमें बसनेवाले प्रजाजन—
शीलसम्पन्न लोग हैं, मानो यह उनका जातिगत धर्म हो। उचित और न्याय्य व्यवहारका प्रत्
ते हैं तथा दयालुता एवं महानुभूतिके किसी कर्मको भूलते नहीं।'
—लार्ड वि

प्राणायाम

(लेखक—स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)

यष्टाङ्गयोगेद्धब्रह्ममात्रप्रबोधतः ।
ोनो यत्पदं यान्ति तत्कैवल्यपदं भजे ॥

ायाम अष्टाङ्गयोगका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है । ष्टाङ्गयोगका प्रचार हिंदू-संस्कृतिके सञ्चालक । युगारम्भसे ही किया है । सत्ययुगमें पारमार्थिक वाहनेवालोंकी संख्या भारतवर्षमें अत्यधिक थी । । सामान्य जनताका जीवन भी संयमशील था । ंयम और इन्द्रियोंका दमन करनेकी शिक्षा दी । संयम न रखनेवाला समाजमें पतित माना जाता ग व्यावहारिक छल-प्रपञ्चसे सर्वांशमें मुक्त थे । ीवन सत्य-सदाचारमय था । धर्मशास्त्रकथित और चार आश्रमोंका पालन आग्रहपूर्वक किया ।

युगकी जनताके जीवनमें सत्य, सदाचार और ाभाविक होनेसे अष्टाङ्गयोगका अभ्यास विधिवत् । सद्गुरुका जीवन भी परोपकारपरायण होता था । ष्योंका अभ्यास निर्विघ्न चलता रहता था । दुष्ट या भ्रम-प्रमादवश यदि कुछ हानि पहुँचती तो ने मानस बलसे तुरंत उसे सम्हाल लेते थे और अभ्यास पूर्ण होनेपर उन्हें घर जानेकी अनुमति

युगके पश्चात् त्रेतायुगमें जन-समाजमें सत्य, और संयमकी मात्रा कुछ कम हुई । सत्य-सदाचारादि- करनेवाले तो बहुत थे और आज कलिमें भी हैं, य पालन करनेवाले संयमशील मनुष्योंकी संख्या गयी थी । त्रेतायुगकी अपेक्षा द्वापरमें सत्य- युक्त संयमशीलोंकी संख्या और कम हुई और ससे भी बहुत कम हो गयी । इस समय कलि- गभग ५००० वर्ष व्यतीत हुए हैं, इतनेमें ही ; कंट्रोल-कानूनकी कृपासे तो सत्य भारतवर्षके से प्रायः विदा होता जा रहा है !

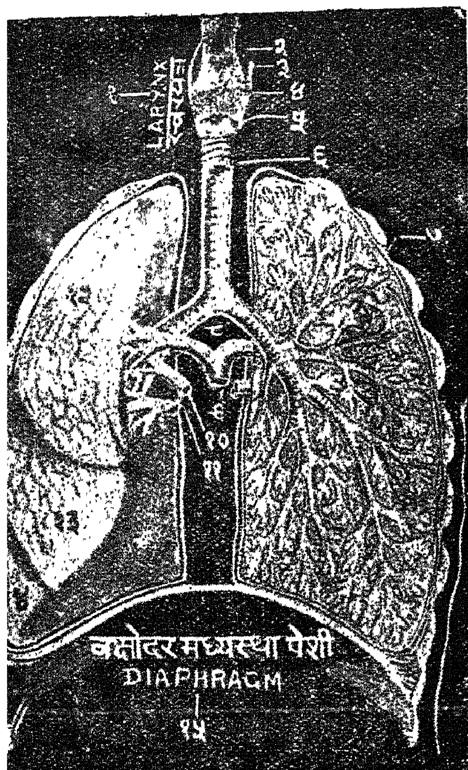
य, सदाचार और संयमका ज्यों-ज्यों ह्रास होता गया,

योगाभ्यासकी इच्छावाले मुमुक्षु सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये पत्र-व्यवहार करते रहते हैं । कई मुमुक्षुजन स्वार्थी, अ वाले योगाभ्यासीके कथनानुसार अभ्यास करके रोगपीड़ि हैं । उपनिषदोंमें वर्णित या भगवान् पतञ्जलिकथित प्राप्त योगी इस युगमें भी कहीं होंगे, किंतु वे साधारण ज परिचयमें नहीं हैं । साधारण जनताको अपूर्ण ज्ञ आश्रयसे ही योगाभ्यास करना पड़ता है । ऐसी प्राणायामका अभ्यास करनेकी इच्छा रखनेवालोंको कु निर्देश प्राप्त हो, इसके लिये अपने अनुभवके अनुसार लिखनेका प्रयास करता हूँ ।

प्राणायामसे शरीर-शुद्धिके अतिरिक्त मनोबल होती है । इसीसे महर्षियोंने सन्ध्यावन्दनके सा प्राणायामका विधान किया है । 'प्राणायामसे प जाते हैं । यह संसार-समुद्रको पार करनेके लिये म है ।'* इस प्रकारका फल सुननेपर बहुतोंके मनमें करनेकी इच्छा जाग उठती है । पर विधिवत् उन्हींको करना चाहिये, जो वस्तुतः अधिक अनधिकारीको नहीं । अन्यथा उल्टे इतनी हा सकती है कि फिर वे व्यवहार सम्हालनेमें भी अ जाते हैं ।

प्राणायामका तात्पर्य—प्राणायामका अर्थ है- व्यायाम । श्वसन-क्रियामें अपानवायुको जो बाहरसे किया जाता है और प्राणवायुको जो बाहर निकाला इसी क्रियाको विधिवत् करनेका नाम प्राणाय विधिके अनुसार आकर्षणको 'पूरक', धारणको 'कुम त्याग—बाहर निकालनेको 'रेचक' कहते हैं; इन क्रियाओंका सम्मिलन ही प्राणायाम है ।

भीतर जो वायु आकर्षित की जाती है, वह बृहत् श्वासनलिका और विभाजित श्वासनलिकाओं फुफ्फुसोंके भीतरवाले वायुको वायुकोष्ठोंके अंद कराती है । इसका कुछ परिचय चित्र देखने



फुफ्फुसकोषोंमें वायु कुछ अंशमें सदा भरी रहती
वेतावस्थामें कभी भी वे बिल्कुल खाली नहीं होते ।
ो वायु प्रवेश करती रहती है और पहलेकी दूषित वायु
कलती जाती है। प्राणायाम होनेपर वे शुद्ध हो जाते हैं।

ाजित श्वासनलिकाओंमेंसे शाखा-प्रशाखा होकर
न प्रणालिकाएँ बन जाती हैं। उनके भीतरका मार्ग
म रहता है । उनका अन्तिम सिरा वायुकोष्ठोंसे
खता है। ये वायुकोष्ठ अर्धगोलाकार हैं । उनपर
ापक स्नायु-सूत्र लपेटा हुआ है । इस स्नायु-सूत्रके
वे बार-बार फैलते और सिकुड़ते हैं । जिस प्रकार
ली वायु भरनेपर फूलती है और वायु निकाल देनेपर
तेमें आ जाती है, उसी प्रकार वायुकोष्ठ वायुका
ेपर फूलते हैं और रेचन होनेपर उनका फुलाव दूर
है । इन कोषोंकी स्थिति-स्थापक शक्ति बाल्यावस्थामें
ारा शनैः-शनैः बढ़ायी जा सकती है, युवावस्थामें
शक्ति मर्यादित परिमाणमें बढ़ सकती है और

किया जाता है, तो उससे रोगोत्पत्ति होती है।
वायुकोष्ठ-प्रसारण (Emphysema) हो जात
फिर कफ, कास, श्वासकृच्छ्रता, थोड़ेसे परिश्र
भर जाना, रक्तमें विष रह जानेसे शिराओंका रंग
जाना, शारीरिक कृशता, अग्निमान्द्य और हृदयमें
आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

प्राणायामके अधिकारी—'त्रिशिखब्राह्मणोपनि
अनुसार यम, नियम और आसनोंसे जिसने
शुद्धि की हो, वे ही प्राणायामके अधिकारी माने ज
'हठयोगप्रदीपिका'कारने लिखा है कि जिसका
दृढ़ हो गया है, जिसने मन और इन्द्रियोंको व
रक्खा है तथा जो हितकर, पथ्य भोजन परिमित मात्र
है, वह प्राणायामका अधिकारी है ।† जो मुमुक्षु नि
सत्य, सदाचार और संयमका पूर्ण पालन करता हो,
अधिकारी माना गया है । आहार-विहारमें स्वच्छन्द
अनियमितता बिल्कुल नहीं होनी चाहिये । तंबाकू, भाँ
चाय आदिका व्यसन नहीं होना चाहिये
रोग-पीड़ित होनेपर नाड़ियोंकी शुद्धि नहीं रह
अवस्थामें भी प्राणायामका अभ्यास नहीं करना
पाचन-संस्था और श्वसन-संस्थाका कोई रोग नहीं होना

पाचन-संस्थाके रोगोंमें जीर्ण मलावरोध,
वमनादि तथा श्वसन-संस्थाके रोग—श्वास, कास, रा
होनेपर भी प्राणायाम करनेसे वायुका प्रवेश या
यथोचित नहीं हो सकता । यदि किसी श्वासप्रणा
वायुकोष्ठमें वायुका रोध होगा तो फिर उसमेंसे वह ब
बाहर निकलेगा । अतः शरीरमें रोग हो तो
औषधोपचार या षट्कर्म और आसनोंके द्वारा
कर देना चाहिये । सबल नीरोगी मुमुक्षुको अभ्याससे
लाभ मिल सकता है, उतना निर्बल या रोगी
मिल सकता ।

जिसे मस्तिष्कविकृति, हृदयविकृति, व
रक्तदबाववृद्धि, उपदंश, सुजाक, मधुमेह अथवा
पाण्डु या कामलारोग हो, उसे प्राणायामका अभ्य
करना चाहिये । जिनकी छाती जन्मसिद्ध निर्बल हो,

---

* यमैश्च नियमैश्चैव ह्यासनैश्च सुसंयुतः ।
नाडीशुद्धिं च कृत्वाऽऽदौ प्राणायामं समाचरेत ॥

ामें मृदुस्थि (Rickets) रोग हो गया हो,
ड़ी हो जानेके कारण जिनकी नाड़ियों और
की स्थिति-स्थापक शक्ति दूर हो गयी हो, उनको भी
के वे प्राणायामका अभ्यास न करें ।

धकारियोंमें भी आयुभेदसे उत्तम, मध्यम और
तीन प्रकार होते हैं । ८ से २० वर्षतककी आयुवाले
२१ से ४० वर्षतकके मध्यम और इससे बड़ी
को कनिष्ठ अधिकारी समझना चाहिये । उत्तम
के वायुकोष्ठ अधिक आघात सहन कर सकते हैं,
उससे कम और कनिष्ठके बहुत ही कम । उत्तम अधिकारी
अधिक परिमाणमें कर सकते हैं, मध्यम परिमित
तथा कनिष्ठ अधिकारी तो कुम्भक बढ़ा ही नहीं
इस अधिकारको लक्ष्यमें रक्खे बिना कुम्भक
प्रयत्न किया जायगा तो फुफ्फुसोंके वायुकोष्ठोंकी
पक शक्ति नष्ट हो जायगी, फिर दूषित वायुके शोधनका
रुरूपसे नहीं हो सकेगा ।

ासस्थान—अभ्यास-स्थान शहरसे दूर शुद्ध वायुयुक्त
छ होना चाहिये । वहाँ मच्छर आदिका उपद्रव नहीं
हिये । एकान्त हो, बाहरसे मशीन आदिकी या
आवाज न आती हो । क्योंकि अकस्मात् आयी
ाज बलपूर्वक वायु बाहर निकालकर हानि पहुँचा

व्य—अधिकारियोंको चाहिये कि निःस्वार्थी, क्रिया-
सद्गुरुके आश्रममें रहकर उनके आज्ञानुसार
करें । दूर रहकर अभ्यास करनेपर अभ्यास ठीक
या उसमें कोई भूल हो रही है, यह विदित नहीं
। जो साधक केवल शास्त्र पढ़कर अभ्यास करने
वे बहुधा हानि उठाते हैं ।

कोंको चाहिये कि अभ्यास उतना ही करें कि जिससे
ति क्षय न हो । प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेके समय
त्साह रहना चाहिये, थकावट बिल्कुल न रहनी
जल्दी अधिक लाभ मिल जाय, इस आशासे जो
भ्यासका अतियोग करते हैं, उनके बलका क्षय होता
अकस्मात् फुफ्फुसरोग, वातविकार अथवा हृदयरोग
है, जो औषधोपचारसे भी दूर नहीं हो सकता ।

ायामके समय मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध और जालन्धर-

पार्ष्णिभागके गुदद्वारके पास सीवनपर लगानेसे ग
(Rectum) का आकुञ्चन होकर अपानवायुकी
हो जाती है । इस क्रियाको 'मूल-बन्ध' कहते हैं
ऊपर और नीचेके उदरप्रदेशको, पीठकी ओर
करनेसे वायुपूरित फुफ्फुसोंके नीचे आधार मिल
जिससे फुफ्फुसोंको वायुके आघातसे हानि नहीं पहुँच
रेचन-क्रिया उचितरूपसे होती है । इस क्रियाको '
बन्ध' कहते हैं । गलबिलका आकुञ्चनकर चिबुक
को कण्ठभागसे नीचे और हृदयप्रदेशके ऊपर
करनेसे फुफ्फुसगत वायुमें चञ्चलता आनेपर भी हा
पहुँचती तथा मस्तिष्कमें संगृहीत प्राणशक्ति (प्रा
रूपान्तरित विद्युच्छक्ति) का व्यय नहीं होता । इस
'जालन्धरबन्ध' कहते हैं ।

प्राणायामके अभ्यासके पहले देहमें अति मे
कफ, अति मल या आम रहा हो, अथवा मस्तिष्क
फुफ्फुसादि प्रदेशमें अधिक दोष रहा हो तो नेति
भाति, धौति, नौलि, बस्ति और त्राटक—इन षट्क्रि
आवश्यक क्रिया करके प्राणमार्गको शुद्ध और देहन
प्राणधारणक्षम बना लेना चाहिये । लेखका कलेवर ब
भयसे षट्कर्मोंका वर्णन यहाँ नहीं किया जाता ।

प्राणायाम-प्रकार—अनुलोम-विलोम, सूर्यभेदी,
सीत्कारी, शीतली, भस्त्रा, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्ल
प्राणायामके ये नौ प्रकार हैं । इनमेंसे रोगहीन
देहके स्वाभाविक मलके शोधन और धारणशक्तिके
लिये अनुलोम-विलोम प्राणायाम कराया जाता है
सिद्धि होनेपर शेष आठ प्रकारोंमेंसे अनुकूल प्रकारक
लिया जाता है ।

अनुलोम-विलोम प्रकारके प्राणायाममें दोनों फु
सहन हो सके उतने परिमाणमें व्यायाम होता रहत
बीच-बीचमें क्रमशः दोनोंको विश्राम मिलता जाता है
प्रणालिकाओंका मार्ग शुद्ध होता है और वायुकोष्ठोंकी
शक्ति शनैः-शनैः बढ़ती जाती है । इस प्रकारमें हानि प
भय बहुत कम रहता है । इस हेतुसे प्राणायामके
प्रारम्भमें अनुलोम-विलोमका विधान किया गया है ।

अनुलोम-विलोम-विधि—अनुलोम-विलोम
विशेषतः पद्मासन लगाकर किया जाता है । इतर आ

रहता है; किंतु जिन साधकोंका पद्मासन ठीक न दोनों पार्ष्णिभाग नाभिके दोनों ओरके उदर-प्रदेश- रूपसे न लगाते हों, उनको मूलबन्ध या स्वस्तिकासन सुखासनसे बैठाकर अभ्यास कराया जाता है।

ायाम प्रारम्भ करनेके समय गणपतिका पूजनकर, ो नमस्कारकर, पूर्वदिशा या उत्तर दिशामें मुख दु आसनपर पहले चन्द्रनाड़ी (वाम नासापुट) ग्रहण करना अर्थात् पूरक करना चाहिये। उसे यथा- रण करें अर्थात् कुम्भक करें। फिर सूर्यनाड़ी नासापुट) से रेचन करें अर्थात् वायुको बाहर । (यह एक प्राणायाम हुआ।) फिर सूर्यनाड़ीसे के कुम्भक करें और चन्द्रनाड़ीसे रेचन करें अर्थात् ापुटसे रेचन करें, उसी नासापुटसे पूरक करें। रा प्राणायाम हुआ।)

प्राणायामके अभ्यासमें पूरक, कुम्भक और रेचक—ये याएँ विधिवत् होती हैं, मनगढ़ंत रीतिसे नहीं। तने समयतक करना चाहिये कि रेचन-क्रिया शान्ति- तरशक्तिके बलसे हो सके। बलात्कारसे वायु बाहर जाय, इसकी सावधानी रक्खें। यदि रेचक जल्दी ा, तो वायु-प्रणालिकाओंमें आघात पहुँचनेकी होगी। कुम्भक यदि शक्तिसे अधिक कालतक रह तो वायुकोष्ठोंका स्थिति-स्थापक गुण कम हो जायगा। थोचित सिकुड़ नहीं सकेंगे। परिणाममें रोगोत्पत्ति ।

लोम-विलोम प्राणायामके प्रारम्भकालमें बारह मात्रा ोलह सेकंड) का कुम्भक करनेका शास्त्रोक्त विधान 'कनिष्ठ प्राणायाम' कहा है। मध्यम प्राणायाममें मात्रा (सवा तैंतीस सेकंड) का और उत्तम में छत्तीस मात्रा (पचास सेकंड) का कुम्भक ता है। यह सामान्य नियम है। किंतु साधकको ह सेकंडका कुम्भक करना ही चाहिये, ऐसा आग्रह । वायुकोष्ठोंकी धारणशक्ति जितनी कम होगी, कम कुम्भक हो सकेगा। इस धारणशक्तिको ः बढ़ाना चाहिये। वायुकोष्ठोंकी धारणशक्ति जल्दी आशासे अधिक कालतक कुम्भक नहीं रखना अन्यथा रेचन-क्रियापर अधिकार नहीं रह सकेगा।

इस तरह क्रिया सतत करते रहना चाहिये। बीचमें त देना चाहिये। यदि अधिक श्रम होनेके कारण क्रि सकती हो, तो उस समय उतनेमें ही क्रिया समाप्त चाहिये। दूसरे समयपर कुम्भक कम करें, जिस धारावाहिक हो सके।

प्रारम्भमें ५, ७, १०, १५, २०, २५ कुम्भ तरह शनैः-शनैः बढ़ायें। शास्त्रकारोंने अस्सी प्राण बढ़ानेका और दिनमें चार बार अभ्यास करनेका किया है; किंतु वर्तमान समयमें सामान्यतः पचीस प्र तक बढ़ायें और प्रातः-सायं दिनमें दो ही बार अभ्या शास्त्रकारोंने तीन मासमें नाड़ीशुद्धि और उत्तम प्रा सिद्धि होनेका वर्णन किया है। उसके स्थानपर वर्तमा अभ्यास करें तो एक वर्ष लग सकता है। किंतु शान्तिपूर्वक और शक्ति-अनुसार अभ्यास करने होनेका कोई भय नहीं रहता।

कनिष्ठ प्राणायामके अभ्यासकालमें स्वेद अधिक मध्यम प्राणायाममें कम्प होता है और उत्तम प्रा प्राण उत्तम स्थान (ब्रह्मरन्ध्र) को प्राप्त होते हैं।* वायु जो वायुकोष्ठोंमें प्रवेश करता है, उसमेंसे (Oxygen) रक्तमें आकर्षित हो जाता है, वह ध से रक्ताभिसरण-क्रियाद्वारा मस्तिष्कमें पहुँच जाता है कुछ अंशका परिवर्तन प्राणतत्त्व (विद्युत्) रूपमें है। यह विद्युत् धारण हो सके, उससे अधिक बढ़नेप भी कुछ-कुछ आती रहती है, शीतकालमें औ वस्त्रोंमें अधिकतर प्रतीत हो जाती है। अन्धकारमें या सूतके वस्त्रके दो पर्त अलग करनेपर चट-चट होकर नीला तेजस्वी प्रकाश उत्पन्न हो जाता है।

बाहरसे जो शुद्ध वायु आकर्षित की जाती है, व प्रवेश करनेपर रक्ताभिसरण-क्रियाद्वारा तीव्र गर्मी शरीरकी धमनियों (Arteries) और शिराओं (V में पहुँच जाती है और वहाँके मल, विष, आम, (Plasma) और अपक्षय-प्राप्त रक्ताणुओं (तपा) कर स्वेदद्वारा बाहर निकाल देती है। जि विषमज्वरमें उष्णता बढ़नेपर कीटाणु-विष जलकर बाहर निकल जाता है, इसी प्रकार प्राणायाममें भी

* कनीयसि भवेत् स्वेदः कम्पो भवति मध्य

का निवारण हो जाता है। फिर भी साधकावस्थामें
दे रोगोंको निकालनेके लिये प्राणायामका प्रयोग नहीं
कारण, रोगसे उत्पन्न मल, जो स्थूल होता है,
करनेपर रक्त-मांसादि धातुओंमें प्रवेश करके
को प्राप्त हो जाता है और मस्तिष्क आदि सारे शरीर-
ाता है। साधकावस्थामें कुम्भक कम होता है और
री शुद्धि नहीं हो सकती। इसी हेतुसे ज्वर आदि
लीन होनेवाले मलका बल बढ़ जाता है। इसलिये
का निषेध है।

प्राणवायु चारों ओर रक्तमें फैलता है, वह रूपान्तरित
णशक्ति (विद्युत्)-रूप बन जाता है। फिर वह
 केन्द्र और वात-नाडियोंमें फैल जाता है। रक्तमेंसे जो
जल जाता है, उस स्थानपर रससंस्थामेंसे नया रस
हो जाता है तथा जीर्ण रक्ताणुओंका स्थान नूतन
क्ताणु ग्रहण कर लेते हैं। फिर उसी शुद्ध और
मेंसे मांस, मेद, शुक्रादि धातुएँ उत्पन्न होती हैं,
भी शुद्ध और सबल बनती हैं।

में अशुद्धि अधिक होती है तो स्वेद अधिक आता है
धक दिनोंतक आता है। अशुद्धि कम होती है, तो
होता है और कम दिनोंतक आता है। रक्तशुद्धि
थ-साथ प्राण-वायुके धारणकी शक्ति बढ़ती जाती
तरह कनिष्ठावस्थामेंसे मध्यमावस्थाकी प्राप्ति होती
अवस्थामें स्वेद बहुत कम हो जाता है; किंतु
 अधिक उत्पन्न होती रहती है। उसका धारण
ड़ोंसे यथोचित नहीं होता, जिससे स्थान-स्थानपर
 कम्प (Spontaneous Convulsion) होता
। यह कम्प भी ज्यों-ज्यों वातनाडियाँ सबल होती
ों-त्यों कम होता जाता है।

उत्तमावस्था प्राप्त होनेपर शनैः-शनैः प्राणशक्ति
धक धारण होती जाती है। मस्तिष्कमें प्राणशक्तिका
ग्रह होनेपर प्रारम्भमें मस्तिष्कमें भारीपन आता है,
ो घंटेमें दूर हो जाता है। फिर मस्तिष्कस्थ प्राण-
न सबल बननेपर शनैः-शनैः भारीपनवाली अवस्था
ाती है, नादानुसन्धान होने लगता है और मानसिक
ी सिद्धि होने लगती है। पश्चात् अभ्यास-वृद्धि और
 आदिके पालनके अनुरूप उत्तरोत्तर लाभकी वृद्धि
ी है।

है। किंतु वायुका वेग तेज न होना चाहिये; अन्य
उचित मात्रामें बाहर नहीं निकल सकेगा, फलतः शो
ठीक नहीं होगी। अतः खिड़की नीची हो तो ब
चाहिये। स्वेद आये, उसे कपड़ेसे पोंछकर दूर
शरीरपर मल दे। इससे देहमें लघुता आयगी, त्वच
बनेगी और मांसपेशियाँ दृढ़ बनेंगी।*

(२) अभ्यास प्रारम्भ करनेपर प्रथमावस्थामें
दूध-भात लेनेका विधान है। दूध-भातका सरलता
हो जाता है। उसमेंसे विशेषांशका पाचन अ
ही हो जाता है। बहुत कम अंशका पाचन अन्त्र
है। जिन साधकोंको आमाशय निर्बल हो
अनुकूल न पड़ता हो, वे ताजे दहीका मट्ठा बनाकर
हैं। भात अनुकूल न हो, तो वे गेहूँका दलिया
हैं। केवल दूध या केवल मट्ठेपर रहा जाय तो विशेष

(३) साधकके लिये जितना दूध (
हितकारी है, उतना मट्ठा नहीं। दूधसे वात, पि
धातुएँ आवश्यक परिमाणमें बनती हैं और सब ऋतुअ
वह समान उपकारक है। मट्ठा लेनेपर उससे कफ
उत्पत्ति कुछ अधिक न हो जाय, शरदृऋतु या ग्री
दही खट्टा न हो जाय, और वात या पित्तका प्रकोप न हो
इस बातको सम्हालना पड़ता है। मट्ठा लेनेपर सेंधा नम
और काली मिर्च मिलानी पड़ती है। दूध-सेवनके
अभ्यासमें प्रगति भी कुछ कम होती है। फिर भी
पहले संग्रहणी या पेचिश हो गयी हो, अथवा जो
अर्शके रोगी हों, उनको दूध अनुकूल न होनेपर
पड़ता है।

(४) चावल कुछ साधकोंको अनुकूल नहीं
जिसके आमाशयका पित्त तेज हो, जिसके मूत्रकी
अम्ल हो अथवा जिसने देशमें चावल खानेकी प्रथा
पहलेसे गेहूँ या ज्वारका सेवन किया हो, उस साधक
का दलिया या ज्वारकी रोटीपर रखना पड़ता है
जो शरीरको अनुकूल हो और पचनेमें भारी न हो,
पच जाय, उसीका सेवन करना चाहिये। यह निय
प्राणायामकी दृढ़ता होनेतक है। फिर जब कुम्भकमें
प्रगति हो जाती है, तब भोजनमें अधिक आग्रह ना

---

* जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत्।
दृढता लघुता चापि तस्य गात्रस्य जायते॥

फिर भी रजोगुणी और तमोगुणी भोजनकी तो नहीं होनी चाहिये। अपथ्य भोजन भी नहीं करना

.) जिस प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि पशु शनैः- होते हैं—बलात्कार करनेपर नहीं, उसी प्रकार ;) प्राणायामका अभ्यास शनैः-शनैः युक्तिपूर्वक ायु वशमें होता है। युक्तिका त्याग तो साधकको है अर्थात् मनगढ़ंत रीतिसे प्राणायामका अभ्यास गा तो उससे हिक्का, श्वास, कास, सिरदर्द, कर्णरोग -विकारादि नानाविध रोगोंकी उत्पत्ति हो जायगी न्त कष्ट होगा।

) इस प्राणायामके अभ्यासमें 'मूलबन्ध'को सतत या जाता है तथा पूरकके अन्तमें 'जालन्धरबन्ध' कके अन्तमें (रेचकके आरम्भमें) 'उड्डियानबन्ध' ता है। ये बन्ध न लगाये जायँगे अथवा ये उचित- लगाये जायँगे, तो प्राणायामकी सम्यक् सिद्धि नहीं हो सकेगी। उपर्युक्त विवेचनके अनुसार पूरी स के साथ शास्त्र-विधिके अनुरूप अभ्यास करते रह नाड़ीशुद्धि हो जाती है अर्थात् रक्तवाहिनियोंमें प्रा प्रधानता हो जाती है; आंगारिक वायु, विष, दूषित कीटाणु आदिका नाश हो जाता है तथा रक्ताभिस सबल बनती है, तब वायुका यथेष्ट धारण होता है प्रदीप्त होती है, नादकी अभिव्यक्ति होती है और अ प्राप्ति होती है। उस समय मेद, कफ आदि ज शरीर कृश प्रतीत हो जाता है, किंतु स्फूर्ति आदि व होते।

नाड़ीशुद्धि होनेके पश्चात् कुम्भक बढ़ा कुण्डलिनीके प्रबोधार्थ, केवल कुम्भकके प्राप्त्यर्थ राजयोगमें प्रवेशार्थ कितने ही साधक सूर्यभेदी आदि प्र तथा खेचरी आदि मुद्राका आश्रय लेते हैं। स्थानाभा उन प्राणायामोंकी विधि तथा खेचरी आदि मु विवेचन नहीं किया जा सका।

संस्कृति

(रचयिता—श्रीरघुनाथप्रसादजी शास्त्री 'साधक')

जय हो! जय हो!!
प्राचीन सुसंस्कृति! तेरी सदा विजय हो।

धर्म-भाव भूतलमें छाये,
कर्म-भाव जनतामें आये,
'निष्कामी-जीवन' फल पाये,
विश्वास अटल, मन स्वस्थ, नितांत अभय हो।
तेरी सदा विजय हो ॥ १ ॥

'सत्य-सनातन' नित्य प्रचारें,
शुभ कृतियोंके तथ्य विचारें,
निज मानसके दोष सुधारें,
वाध्याय निरन्तर, पाप सभीके क्षय हों।
तेरी सदा विजय हो ॥ २ ॥

ऊँच-नीचके भाव विसारें,
कलुष, कामना सकल निवारें,
समता-भाव समाज प्रसारें,
' हो ध्येय हमारा, आर्य-जाति जग 'नय' हो।

'सदाचार'की शिक्षा पायें,
'उञ्छ-वृत्ति'की भिक्षा भायें,
'यज्ञ-शेष' सब मिलकर खायें,
पूर्णकाम हों, पियें सुधासम प्रतिगृह गोरस प
तेरी सदा विजय हो ॥ ४ ॥

शम-दम-त्याग-तितीक्षा धारें,
दया-क्षमा-संयम विस्तारें,
निज सर्वस्व 'राष्ट्र' पर वारें,
जीवन्मुक्त बनें अधिवासी, वह अध्यात्म-निल
तेरी सदा विजय हो ॥ ५ ॥

आत्म-शक्ति विस्तार करें हम,
दीनोंका उद्धार करें हम,
शरणागतको प्यार करें हम,
इष्ट-साधना 'साधक'का नवयुग पुनरपि अभिन
तेरी सदा विजय हो ॥ ६ ॥

भारतकी प्राचीन सुसंस्कृति! तेरी सदा विज

मायातत्त्व-विज्ञान

(लेखक—आचार्य श्रीक्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०)

ना, अनुमान तथा तर्क-वितर्कके द्वारा विचार-
—इन सबको हेतु बनाकर ही पाश्चात्त्य दर्शनकी व्यापार-
प्त हो जाती है। यूरोपके दार्शनिक ज्ञान-विज्ञान तथा
न्त इन्हीं सबपर प्रतिष्ठित हैं। पाश्चात्त्य दर्शन
की विविध विलासितामात्र है। 'फिलासफी' शब्दकी
भी यही अर्थ निकलता है। भारतीय दर्शनका
दिव्य दृष्टिसे तत्त्वदर्शन करना', निर्भ्रान्त सत्यकी
करना। सहस्रों तर्क-वितर्कोंके द्वारा भी जिसका
डन नहीं हो सकता, जिसे असत् प्रमाणित नहीं किया
—वही इन्द्रियातीत अप्राकृत और अतिमानसिक
है, दिव्य-दर्शन है; यह तत्त्वविज्ञान योगज समाधि-
प्राप्त होता है। शुद्ध सात्त्विक ऐकान्तिक एकाग्र
रा इन्द्रिय और चिरचञ्चल मनोवृत्तिको वशीभूत
तःपुरमें हृत्पद्मके कोशमें जिस अपूर्व विज्ञानालोकका
होता है, उस सर्व रहस्योंको समुद्भासित करनेवाले
जो सत्य-तत्त्व-रत्नावली प्रकाशित होती है, वे तत्त्व-
भारतीय दर्शन-विज्ञानके भण्डारमें प्रत्येक स्तरमें
सुसज्जित हैं; और जिस प्रकार मधुचक्रमें मधु सञ्चित
उसी प्रकार ये तत्त्व वेद, उपनिषद्, पुराण तथा
सुचारुरूपसे सञ्चित हैं। ये अशेष हैं, अपार हैं।

तीय दर्शन-विज्ञान तथा भारतीय शास्त्रग्रन्थ—वेद-
को जो लोग इस दृष्टिसे नहीं देखते, उनको चाहिये
रतीय दर्शनके साथ पाश्चात्त्य दर्शनकी तुलना करने-
चेष्टा ही न करें। विश्व, विश्व-विधान, विश्व-
और विश्व-जीवन—इन समस्त तत्त्वोंको भारतीय
जिस गम्भीरभावसे समझा और विशदरूपसे लिपि-
रक्खा है, वैसा संसारमें अन्यत्र कहीं किसीने
या। इस महासत्यको हृदयङ्गम किये बिना
ारतकी स्वातन्त्र्य-प्राप्तिकी सार्थकता सिद्ध न होगी।
ुक्तिकी बातें हम सदा कहते हैं और सुनते हैं।
-मनोवृत्ति हमारे दिन-प्रतिदिनके सामाजिक और
वनमें जिस प्रकार विद्यमान है, हमारे मानसिक और
क जीवनमें उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विद्यमान है।

अत्यन्त दरिद्र हैं। और यह सम्पत् मानवजीवनके
व्याधियोंकी महौषध है, अमृतत्व और चिदा
सामग्रीकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। इसके स्वल्प
जीवनमें कार्यान्वित होनेपर जीवन धन्य हो जाता है

विश्वके विज्ञान-भण्डारके लिये भारतकी असंख्य
उनमें सर्वश्रेष्ठ और सर्वापेक्षा गहन-गभीर मायातत्त्व-वि
यह महामाया परब्रह्मकी शक्ति (योगमाया) है। अनन
मान् ब्रह्मकी यह शक्ति सर्वश्रेष्ठ है, जिसके प्रभावसे
परमात्मा, पुरुष और भगवान् हैं। यह उनकी परा
स्वरूपशक्ति है, अन्तरङ्गा शक्ति है। इसके बाद उनकी
है, जिसके द्वारा वे अनन्तकोटि जीवोंको प्रकट क
इसी शक्तिके प्रभावसे विश्वके चर-अचर असंख्य जीव
हैं। उनकी तीसरी शक्ति माया (जगन्माया) है। इ
द्वारा वे विश्वका सृजन करते हैं, विश्वके जीवोंको धा
हैं, सृजन करते हैं, पालन करते हैं और संहार क

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्ग

भगवान्के साथ छायाके समान रहती हुई सृ
और संहारका साधन करनेवाली एकमात्र शक्ति दुर्ग
भुवनोंका पालन करती हैं। यह अपरा शक्ति है
केवल अपरा ही नहीं, पराशक्ति भी हैं। क्योंकि दुर्गा
में लिखा है—

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वर
(१

'पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्व
हो।' गीतामें जीव-शक्तिको भी परा शक्ति कहा गय

···प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां···।

भगवत्तत्त्वका निर्णय करते समय उनमें नी
क्रम बतलाना सम्भव नहीं है; परंतु श्रीभगवान्की मा
विभिन्न वैभव, नाना भावों और रूपोंमें उसकी
और क्रियाशीलता, उन सबकी नाना मात्रा और ना
अवस्थितिकी विभिन्नता आदि विषयोंपर हम य

अर्थ है सामर्थ्य, कोई कुछ करनेकी योग्यता। गवत्-शक्ति केवल सामर्थ्यमात्र नहीं है, 'सामर्थ्यमयी त्ता' (Person) है। भगवान्‌की सभी शक्तियाँ , प्राणमयी, ज्ञानमयी और शक्तिमयी देवियाँ हैं अथवा रुप हैं। यह भारतीय दर्शनका सिद्धान्त है। न्याय, ौर पातञ्जलयोग पढ़नेसे यह बात जाननेमें नहीं आती। न्तमें प्रतिभासित और पुराणमें प्रकाशित है। भगवान् र भी बहु रूपोंमें आविर्भूत होते हैं मूर्तिमती शक्तिके । शक्तिकी व्यक्तिविशिष्टताके द्वारा ही वे अनेक वान् एक हैं, यह कहनेसे भगवान्‌का कुछ भी प्रति- हीं होता। एक रूपमें भगवान् सन्मात्र हैं, शक्ति- । अतएव भागवतमें कहा गया है---

ऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥

(३ । ५ । २४)

न्होंने चित्स्वरूप होकर भी अपनेको शक्तिहीन और हीन समझ लिया था।' शक्तिके प्रकाशके साथ ही ब्रह्म- पताका प्रकाश हो गया—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।'

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'

-यह उनकी शक्ति है।

क और शक्तिमान् अभिन्न हैं और भिन्न भी हैं, ढ़ रहस्य है। भगवत्-तत्त्व-दर्शन अद्वैत, द्वैत, और विशिष्टाद्वैत है। परंतु अचिन्त्यभेदाभेद- सर्वश्रेष्ठ है। मायाशक्ति ब्रह्मसे भिन्न है, परंतु वह ी अभिन्न भी है; क्योंकि वह छिन्न नहीं है, खण्डित परब्रह्म अखण्डमण्डल हैं। अतएव भेदवादका ड़ा ही नहीं हो सकता। परंतु हम विश्वको तो और विश्वात्माको नहीं देखते। विश्व और विश्वात्मा -यह बात समझमें नहीं आती, कहनेमें नहीं आती; गवत उन्हें विश्व, अविश्व, विश्वद्रष्टा तथा विश्वहेतु १६। ४८) बतलाती है। गीता कहती है—

ञानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।

रे प्राणी मुझमें हैं और मैं उनमें अवस्थित नहीं ी अचिन्त्य-भेदाभेद है। वे विश्वसे पृथक् नहीं हैं नके अन्तर्गत भी नहीं हैं। यही मायाका रहस्य है।

है, व्यतिरेक नहीं होता—यह साधारण नियम परंतु मायाशक्तिमें एक व्यतिरेक-व्यापार भी है। यत्प्रतीयेत' (श्रीमद्भा० २ । ९ । ३३)। अ अर्थशून्य या तत्त्वशून्य होते हुए भी प्रतीयमान हो जैसे सरोवरमें चन्द्र-प्रतिविम्ब। उसमें चन्द्रकी प्रती परंतु चन्द्र नहीं है। माया सत्य है और मिथ्या है सत्य भी नहीं है और मिथ्या भी नहीं है, 'स मनिर्वचनीया' है। परंतु कार्यतः कार्यकारणात्मिका है, सदसदात्मिका है। भागवतके प्रारम्भमें ही वाक्-कौ कहा गया है कि 'ब्रह्म वह वस्तु है, जिसमें मायाकी अर्थात् भूत, इन्द्रिय और देवता—यह तीन प्रका सत्य और मिथ्या है। 'यत्र त्रिसर्गो मृषा', 'यत्र त्रिसर्गो ब्रह्मका प्रतिभास विश्व है। विश्वोपलब्धिके साथ भित्तिरूपमें यदि ब्रह्मोपलब्धि हो तो विश्व सत्य है विश्वकी उपलब्धि होती हो पर ब्रह्मकी नहीं होती ऐसी अवस्थामें विश्व मिथ्या है, शून्यमय है। ब्रह्म तिरोहित होनेपर बौद्ध राज्यमें 'शून्यं तत्त्वं भावो वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य'—अर्थात् तत्त्व शून्य है; भावका नाश होता है, विनाशका वस्तुरूपमें प्रकट हो है—इस प्रकारके उत्कट दर्शनवादका प्रादुर्भाव हु

श्रुतिमें विश्वके मूलकारण ब्रह्मतत्त्वके निरूपणके कहा गया है—'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्'। परमात्मस्वरूप ब्रह्म अपनी गुणमयी मायाके द्वारा छिपाये रखते हैं। माया आवरण-शक्ति है। परं ब्रह्मको पूर्णरूपेण निरुद्दिष्ट नहीं कर देती—शून्यमय देती, बल्कि इसके बदले यत्किञ्चित् प्रकट कर जो कुछ प्रकट करती है, वही सृष्टि है। ग्रह-नक्षत्र नदी, वन-कानन, जीवसमूह—अनुपपन्न अनुद्दिष्ट शून्यप्राय स्थानको पूर्ण करके जो अवस्थान करते हैं, व है। मायाकी इस विश्व-प्रकटन-शक्तिका नाम विक्षे है। यह एक इन्द्रजाल फैलानेवाली शक्ति है। स्वरूपर तथा नाना-विचित्र-भाव-विभाविनी—स्वरूपको छि और विभिन्न विचित्र भावोंको अभिव्यक्त करनेवाल है। जो सत्य है, तत्त्व है, वह इससे छिप जाता है सत्यके स्थानमें असत्य अथवा अन्य कुछ सत्यका

* जहाँ शक्ति है, वहाँ शक्तिमान् है ...

काशित होता है। यही मायाकी शक्ति है। माया घटना-पटीयसी है। माया वस्तुतः मायाविनी है। नाना ञ्जित बाष्पजालमें ब्रह्मज्योतिको आच्छादितकर कोटि-कारकी रूपमूर्तियाँ—देव-मानव, पशु-पक्षी, कीट-जापति, मन-प्राण, सुख-दुःख, भाव-रङ्ग-रस, अश्रु-रु-लता, पत्र-पुष्प, शोभा-सौरभ—विभासित हो रही त स्रोत प्रवाहित हैं। दिग्दिगन्त प्रकाशित हो उठे टित होते हैं, और टूटते जा रहे हैं। श्रीमद्भागवतमें इसी व्यापारको लक्ष्यमें रखकर कहा है—

ादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
.......................।
येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपियत् सदिवावभाति ॥
(१०।१४।२२)

जगत् अनन्त है, प्रायः स्वरूपतत्त्वसे शून्य है, पर रूपके आश्रयसे शून्य नहीं है। जो आत्मा हैं, जो व हैं, जो परमपुरुष हैं, वे नित्यसुखोपलब्धिमय हैं, घन-शरीर हैं। यह जगत्‌रूपी प्रपञ्च-पहेली, यह की मनोहारिणी छायामूर्ति उन्हींकी निर्मल ज्योति-रन्तर माया-प्रभाववश उद्भासित हो-होकर उन्हींमें रही है। किसकी क्षमता है, जो इस जगत्‌को मिथ्या ानो नित्य-सत्य प्रकाशका प्रवाह है; वैशाखकी सुदूर दिङ्‌मण्डलमें प्रखर रश्मि-स्रोतका प्रवाह है; ोचिका नहीं है, मृगतृष्णिका है। पिपासाको संदीप्त प्रशमन नहीं करती। ब्रह्म, माया और विश्व—इन बन्धमें निगूढ़ सङ्केत इस श्लोकमें दिया गया है। यह अन्तरतम सिद्धान्त है। ब्रह्माकी इस विश्व-उपलब्धि-स्यमय द्वैतभावना है। माया और ब्रह्म—इन दोनोंका यहाँ अनुभूत होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी ं यह द्वैत नहीं है, अभिनव भक्तिमय द्वैताद्वैत है।

यत शुनि श्रवणे सकलि कृष्ण नाम।
सकल भुवन देखों गोविन्देर धाम ॥

माया दूरीभूत होकर तिरोहित हो जाती है, रसब्रह्म ब्रह्म प्रकाशित होते हैं—यहाँ तत्त्वब्रह्म अर्थहीन कृष्णवर्णका एक शिशु मुरली बजा रहा है, यही यहाँ गुणमयी माया नहीं है, मोहमयी माया है, माया है, प्रेममयी माया है; इसका नाम है योगमाया। ् इस विषयमें आगे विचार किया जायगा। मायाके

अब मायाके वैज्ञानिक या वास्तविक विभावके विष समझनेकी चेष्टा करें। वास्तविक, मानसिक, नैतिक त्मिक जीवनके जितने विभाग हैं, जितने विभाव हैं माया है। सब कुछ माया है। स्थूल, सूक्ष्म, कार्य, व सब कुछ माया है, सभी मायाका कार्य है। परंतु सर्वव्यापी है, अनन्त है। अतएव वह मायाके समस्त को व्याप्त करके विद्यमान है। ब्रह्मके भी समस्त वि व्याप्तकर द्विरूपा माया विराजमान हो रही है। ' पूरितमम्बयैतत्', हे माता! एक तुमसे ही यह परिपूरित है। यह जगत्‌के विषयमें कहा गया है जगत् ब्रह्मके एकांशमें स्थित है।

दुर्भेद्य पर्वतादि सभी कुछ माया है। सुकोम सुरम्य पुष्प-सौरभ माया है, चन्द्र-सूर्य माया है। इ मायाका विलास है। मेघमाला आकाशमें सर्वत्र विचर हुई मायाकी ही कहानी कहती रहती है। विद्युत्‌की प्रभा भी आकाश-पटपर मायाके मनकी बात लिख परंतु हम पढ़ नहीं पाते। स्रोतस्विनी निरन्तर कलक जो गान गाती रहती है, वह मायाके ही प्राणोंकी अनु आकाशमण्डल, वायुमण्डल—समस्त मायाके विपुल वि मायाके श्वास-प्रश्वासके प्रवाह हैं। इन्द्रिय माया है, म है, मायाका लीला-क्षेत्र है, बुद्धि मायाकी निरूपण-श अहङ्कार मायाका स्वर्णसिंहासन है, चित्त मायाका आल है, काम-क्रोध-लोभ-मोह मायाके किङ्कर हैं। कामना, आशा-निराशा मायाके अन्तहीन जाल हैं। क्षुधा-तृष दुःख, स्नेह और प्रीति-प्यार, छल-प्रवञ्चना, हास्य-र समस्त मनोवृत्तियाँ मायाके प्रभावसे उत्पन्न मायाके विल

एक मायाके ही इतने अचिन्तनीय और अनन्त वैभव हैं। यह विपुल कार्य-कलाप, क्रीड़ा और व्यापार, यह अभावनीय प्रकाश-परम्परा कैसे सम्भ हैं? माया त्रिगुणमयी है, यह त्रिगुणात्मिका शक्ति ही अशेष सृजन-शक्ति है, अनन्त उद्दीपिनी-शक्तिका है सत्त्व, रज और तम—ये तीन शक्तियाँ हैं।

अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः

तीनों गुण एक दूसरेको अभिभूत करते हैं, एक आश्रय लेकर कार्य करते हैं, एक दूसरेका पोषण औ करते हैं, परस्पर मिल जाते हैं तथा विरुद्धाचरण करते दूसरेको पराजित करते हैं। रजस क्रियाशक्ति (Dyn

साम्य-सुषमा-शान्तिशक्ति है। रजसे चेष्टा उत्पन्न उद्यम-उद्योग होता है, काम-क्रोधादि होते हैं। तमसे आलस्य, निद्रा, भूल-भ्रान्ति, मोह और सब प्रकारकी उत्पन्न होती है। सत्त्वसे ज्ञान-विज्ञान, विद्या, सत्य-और न्यायनिष्ठता, सारे सद्भाव—प्रेम, मैत्री, करुणा ोते हैं। ये तीन गुणोंकी पृथक्-पृथक् वृत्तियाँ हैं। तीनों गुण कभी विच्छिन्न नहीं होते, नाना प्रकारसे कर, और हिंसा-द्वेष, विवाद-विरोध करते हुए चलते ने प्रकारसे, कितनी मात्रामें, कितने भावोंमें, कितने ुणत्रयका योग-वियोग, विरोध-मिलन संघटित होता ातें देवबुद्धिके लिये भी अगम्य हैं। तीनों गुणोंकी संयोग-साहचर्य तथा द्वन्द्व-संघर्ष निरन्तर चलता । इनके ही विपुल व्यापारोंसे विश्व-जगत्‌के प्रपञ्च-ंसिद्ध होते हैं। जहाँ निश्चल पत्थर है, वहाँ गम्भीर ानता है, सत्त्व और रजो-वृत्ति रुद्ध हैं। जहाँ ालोक प्रवाहित होता है, वहाँ रजोवृत्तिकी निर्मल । झंझावात रजोमय होता है। प्रत्येक गुणके साथ गुणोंका यत्किञ्चित् सम्बन्ध रहेगा ही। कवि जब ा करता है, तब उसका चित्त सत्त्वप्रधान होता सेक क्रिया हो रही है, इसलिये यह समझना होगा ्ति है। यहाँ तमोगुण प्रतिहत है। परोपकारी ं दूसरोंके हितार्थ उद्यम करते हैं, वहाँ रजस् सत्त्व-र वृत्तिमान् होता है। जगत्‌के स्वार्थ-समुत्साहमें और तमोगुण होते हैं, सत्त्व प्रतिहत होता है। सारे भ्रम-प्रमादरूप भाव-विपर्यय तमोजन्य होते ; विविध गुणवृत्तिवैचित्र्य तथा नाना वृत्तियोंका ाओंमें साङ्कर्य अर्थात् सम्मिश्रण जगत्-वैचित्र्यका ारण है।

ातिक जीवनमें जो कुछ दोषयुक्त, निन्दनीय और ार्य हैं, सब रजोगुण और तमोगुणके व्यापारसे ते हैं। रज और तम उसी प्रकार मित्रभावापन्न हैं, । और जल। ये सहज ही घुल-मिलकर काम करते हैं। सत्त्वके विपरीत पथपर चलते हैं। सत्त्व पराजित हो इसी कारण संसारमें इतने पाप हैं। सब गुणोंमें शक्ति —$\frac{१}{३}+\frac{१}{३}+\frac{१}{३}$। रजोगुण और तमोगुण मिलते हैं तो दूने शक्तिशाली हो जाते हैं। संसारमें सद्भाव, न्याय, यकी प्रवृत्ति लुप्त हो जा सकती है, ऐसा होना ही [illegible]

है; परंतु ऐसी बात नहीं, ऐसा होता भी नहीं। इ बहुत बड़ा कारण है। सत्त्व एक विशाल शक्तिभण्डा महान् प्रभाव-प्रस्रवणसे शक्तिसञ्चय करता है। सत्त्व स्वरूप परमपुरुषके साथ अनायास ही योगयुक्त हो सामर्थ्य संग्रह कर सकता है। रजोगुण और तमोगुणके सम्भावना बिल्कुल नहीं है। सत्त्व जब परमेश्वरक लेता है, तब सहस्रों रजोगुण और तमोगुणकी शक्तिय चलायमान नहीं कर सकतीं। भगवान्‌के पादपद्म ज मङ्गलमयी भूमिमें स्थापित हो जाते हैं, तब अधर्म अमङ्गल, सारे अन्धकार दूर हो जाते हैं। जगत् क परिप्लुत होकर अन्धतमस्‌में विलुप्त नहीं होता। इस है भगवान्‌का सत्त्व-सान्निध्य, सत्त्व-संयोग। अवत रहस्य इसीमें निहित है। दुर्गासप्तशतीके प्रथम यह रहस्य विस्मयजनक रूप धारण करता है। भगव हीन शुद्ध चरित्रका कोई विशेष मूल्य नहीं है, उ विश्वास नहीं है—इस आलोकमें यह नीति भी समझ है, तमोगुणको दूर करनेके मार्गमें रजोवृत्तिको सत्त्वके करनेके लिये जो प्रयास होता है, जो साधना होती नैतिक साधना या चरित्र-साधना है। यह साधना असफल हो जाती है, यदि साधक भगवान्‌का आ लेता, यदि साथ-ही-साथ भगवान्‌को आत्मसमर्पणक नहीं करता। यही मानव-चरित्र-दर्शन है, पा उत्थान-पतनका तत्त्वदर्शन है। यह त्रिगुण तत्त्वके स घनिष्ठरूपमें संयुक्त है। त्रिगुणमयी मायाकी वृत्ति औ फलाफल कुछ कहा गया। परंतु अब भी मायाके कुछ भी समझा नहीं गया।

माया है, इसीलिये हम भगवान्‌का चिन्तन न और भगवान्‌को नहीं जानते। यह सत्य है। प माया न होती तो भी हम भगवान्‌को नहीं जान जानने या न जाननेका प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि न रहनेपर हम कोई भी नहीं होते। कुछ भी नहीं 'नान्यत् किञ्चन मिषत्'। कहीं किसीका स्फुरण नह ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान एक हो जाते, अर्थात् कुछ भी न ब्रह्मकी मायाशक्तिका प्रयोग—प्रवृत्ति ही वह व्यापार एक ओर लाखों-लाखों ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, कोटि-कोटि आकांक्षा, विद्या-बुद्धि, सुख-दुःख, शोक-हर्ष, विरह [illegible]

है, और दूसरी ओर ज्योतिराशि परब्रह्म अन्तर्हित है—जिस ज्योतिकी तुलनामें अखिल ब्रह्माण्ड वत् है। भागवतकी भाषामें—

ं तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।

भीर रजनीमें कुहरेके समान और दिनके आलोकमें समान वह ज्योति अदृश्य हो जाती है।'

जगत्‌को प्रकट करनेमें कारणरूपिणी मायाका नाम। यह प्रकृति जो कुछ प्रकाशित करती है अर्थात् द्वारा प्रकाशित यह विश्व-ब्रह्माण्ड न तो ब्रह्म है न न्द; बल्कि नाना प्रकारसे, सरल-कुटिल नाना पथमें प्रतिभासित करनेवाला है। अर्थात् यह विश्व तिभास है। ब्रह्मके बिना जगत्‌की स्थिति नहीं हो ब्रह्मकी रश्मियाँ जगत्‌में ओतप्रोत हैं। परंतु वे स्वच्छ नहीं हैं, तमसाच्छन्न हैं, नाना रूपोंमें विकृत भी वे ब्रह्मके अस्तित्वका पता बतलाती हैं। साथ ही ो छिपाये रखती हैं। जो लोग ज्योति चाहते हैं, नके लिये ज्योतिकी रेखासे पूर्ण है और जो नहीं । चूहे अथवा कृमि-कीटादिके समान अन्धकारको । मान लेते हैं। उनके लिये जगत् ब्रह्मके किरण-ान है।

तिके दो कार्य हैं—भोग और अपवर्ग। जीवमात्रको परिचय प्रदान करना और विषय-भोगमें सहायता तेका कार्य है। इस विषय-भोगके मोहसे उसे मुक्त सके वासना-बन्धनको काटना—यह भी प्रकृतिका परब्रह्मके अनन्त आनन्दलोकमें प्रत्येक जीव प्रवेश क जीव मुक्त हो जाय—यह महामायाकी एकान्त। जो समझते हैं कि माया चिरकालतक जीवको फँसाये रखना चाहती है, वे भ्रान्तिमें हैं; बहुतेरे संस्कारवश ऐसा मानते हैं। जिनको मुक्तिकी कामना तो केवल भोग-चिन्तनमें ही जीवन-यापन करते हैं, या भटका-भटकाकर मारती है—विभ्रामयति; उनके । भ्रान्तिमयी अविद्या है। जो लोग मुक्ति या भक्तिके वान्‌का आश्रय लेते हैं, उनके लिये माया विद्यादायिनी ी महाविद्या है—

विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।

कलहका खेल जिस शक्तिके द्वारा खेलते हैं, वह माया है।

प्रकृति चेतनामयी है, यह बात सहज ही क बनती। प्रकृति अचेतन है, यह बात सत्य भी नहीं मिथ्या भी नहीं है। 'तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव —सांख्यकारिकाकी यह उक्ति, तथा सांख्यसूत्रका धानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्' एवं पुराणोंका 'योग —इन सबको एक साथ मिलाकर देखनेपर समझमें है कि प्रकृतिकी अचेतनता कल्पनाके द्वारा गृहीत भी कार्यतः नहीं सिद्ध होती। क्योंकि ब्रह्मकी श ब्रह्मसे विरहित नहीं हो सकती। अतएव वह ब्रह अतएव ज्ञानमयी और चैतन्यमयी है। क्योंकि ब्रह्म है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। माया सत्य शक्ति है संघटन करती है, समानयन करती है, परंतु स्वयं मि है। वह अप्रतिहत ज्ञानसे स्फुरित होती है। अतएव है। अनन्तसे उत्पन्न होती है, अतः स्वयं अनन्त है

पहले कहा जा चुका है कि माया शक्तिमात्र, नहीं है, व्यक्तिभूता है; वह देवी भगवती, दुर्गा और है; वह प्रथम ब्रह्म-ज्योति है, ब्रह्म-तेज है, उसी हुई है, आविर्भूत हुई है, दिव्य तेजस्विनी रमणीके

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्
एकस्थं तदभूनारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा

ब्रह्मशक्ति जडशक्ति नहीं हो Mechanical force नहीं हो सकती। व ज्ञान-विज्ञानशक्ति है, सर्वार्थसाधिका शक्ति है, सर्व शक्ति है, प्रेम-कारुण्यमयी शक्ति है, दैत्यसंहारिणी श आद्या शक्ति मूर्तिमती परमेश्वरी है, कोटि विद्युद्दाम प्रभामयी है, सिंहवाहिनी है। देवीका सिंह जडशक्तिमें मूर्तिमन्त हो रहा है।

यह रूप काल्पनिक नहीं है, ध्रुव सत्य है सत्य है; जो लोग इस महा-शक्तिस्वरूपिणी देवीके समझते हैं, वे बड़े ही भाग्यहीन हैं, ज्ञानहीन तो देवी अनन्तशक्तिधारिणी हैं; प्रत्येक शक्ति ही अनुचरी और किङ्करी है।

'कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्
'......अनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे

षडैश्वर्यशाली, अशेष रूप-रस-लावण्य-समन्वित
ान् परमेश्वर भगवान् । जगज्जननीने 'उनको
ग है'—यह बात जिस प्रकार सत्य है, उसी
ह भी सत्य है कि 'उसने उनको विश्व-पटपर
र रक्खा है ।' जबतक वह सन्तानको परमेश्वरके
ा-सुधा-सौन्दर्यके सुविमल राज्यके ऐश्वर्य-माधुर्यके
ोग्य नहीं बना देती, तबतक उसको शान्ति नहीं ।
ो जन्मसे मरण और मरणसे जन्मके हिंडोलेपर
झुलाती रहेगी और सोचती रहेगी कि इसको कब
ाी ।

देवीको दानवदलिनी और असुरसंहारिणीके रूपमें
संलग्न देखते हैं । देवीका वह रूप जैसे बहिरङ्ग
ही अन्तरङ्ग भी है । एक ओर देवी रणाङ्गणमें
ो रण-चञ्चला हैं, और दूसरी ओर अन्तरके
हृत्पद्मदलमें समासीना, शान्तिमयी, दिव्यरूप-
ो, चिन्मयी हैं, सुधासिन्धुके बीच मणिमण्डपमें
पर सिंहासनासीन हैं, पीताम्बर धारणकर कनक-
से सुशोभित हो रही हैं ।

ातीकी अनन्त विस्तार करनेवाली प्रतिभाका यह
त है, उनका अन्य प्रान्त समस्त जागतिक तत्त्वोंका
कारणस्वरूप है । उपादान-कारणरूपमें महामायाका
न है, जगत्-कर्त्रीरूपमें वे प्रकृति हैं, और जगत्से
रूपमें वे अव्यक्त हैं, त्रिगुणरूप हैं। माया त्रिगुण तत्त्व
सत्य है । परंतु यह सत्यका एक क्षुद्र अंशमात्र है ।
भगवती केवल त्रिगुण मात्रात्मिका नहीं हैं; वे
अधीश्वरी हैं, वे त्रिगुणकी अधिष्ठात्री देवी हैं—

किञ्चित्क्वचिद्वस्तु .... ।
सर्वस्य या शक्तिः सा त्वम् .... ॥

(दुर्गासप्तशती १ । ८२-८३)

ानिकोंने मायाका जो विवरण दिया है, वह शुष्क
(abstraction) है । सचमुचकी माया,
माया, प्राणवती-ज्ञानवती माया प्रकाशित हो रही
में ।

ामविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।
तथा प्रधानं .... ॥

सत्यका अधिक प्रकाश है । महिषासुरने देवीको प
था सृष्टिके आदिमें—

स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बरा
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिस्वनेन ताम्
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिता

(दुर्गासप्तशती २ । ३

यह महामायाका नित्य-सत्यरूप है, विश्वव्यापी

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपा
स भूमिं सर्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्

—इस श्रुतिके द्वारा प्रकाशित रूपके अनुरूप ह
स्वरूप है, एक ही विश्वतत्त्वका अन्यतर विभाव है
विभिन्न हैं, प्रकाश विभिन्न हैं, दोनों ही—पुरुष औ
सत्य हैं । सप्तशतीमें पुरुष अन्तर्गत है, श्रुति
अन्तर्गत है । दोनोंमें कोई विरोध नहीं है । दर्श
ज्ञानदृष्टि है । ज्ञानदृष्टिमें छायाकी छाया दीख प
श्रुतिकी दृष्टि और पुराणकी दृष्टि भक्तिदृष्टि है
आलोकमें सर्वतोभावेन जीवन्त तत्त्व आविर्भूत ह
दर्शनके द्वारा प्रतिपादित समस्त माया-तत्त्व
स्पष्टतररूपसे प्रतिभात होता है । परंतु सप्तशतीमें दे
तत्त्वात्मिका नहीं हैं; वहाँ देवी लीलामयी हैं, सर्वा
रूपमें प्रकट हो रही हैं; वे रूपवती हैं, गुण
रस-रङ्गमयी हैं । वे ही सचमुचकी महामाया हैं ।
इनकी ही काल्पनिक कङ्कालमाला दृष्टिगोचर होती है ।
भक्तिग्रन्थ है । शोणित-स्रोतके साथ-साथ रक्तवर्ण
बह रहा है सप्तशतीकी प्रत्येक पंक्तिमें, प्रत्येक श्लोकमें

महामायाकी दो विपरीत शक्तियाँ या वृत्तियाँ है—
और अवरोहिणी । वृक्षसे टूटे हुए शुष्क
बालुका-कणरूपमें माया अवरोहिणी होती हैं ।
आकाशसे उतरकर आती हैं और हीनता स्वीकार
यह बात तो कहते नहीं बनती । क्योंकि जो स
उनमें हीनता-दीनता या गुरु-गौरव आदि भेद नहीं

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः

आरोहण-प्रणालीमें वे इन्द्रादि देवोंकी भी

हैं। ब्रह्म सर्वव्यापी है, सर्वस्वरूप है, ब्रह्मके
कुछ भी नहीं है। तब भी हमको ब्रह्मानुभव
ा। ग्रह-नक्षत्र, गिरि-नदी, तरु-लता, पशु-पक्षीको
ते हैं। यह जो ब्रह्मातिरिक्त दर्शन है, यह जो
क भिन्न प्रकाश है, यह जो दीर्घकालीन भ्रान्ति
जो वञ्चना है, सो मायाका प्रभाव है। परंतु ब्रह्मवेत्ता,
ी साधना करनेवाले ऋषियोंने सर्वत्र नव-नव-
ब्रह्मका दर्शन किया; उनको ब्रह्मातिरिक्त कुछ
नहीं हुआ। माया उनकी ब्रह्मानुभूतिको प्रतिहत
ती और न उसमें बाधा उपस्थित करती है।
को नित्य नये-नये रूपमें, रसमें, भावमें, वर्णमें
करके प्रकाशित करती है। श्रुति कहती है—

कोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।

जो अवर्णका नाना वर्णोंमें उपस्थित होना,
अनन्त रूपोंमें वैचित्र्यके साथ प्रकट होना है—यह
प्रभाव है।

त्रोंमें मायाके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी विपरीत
प्त होती हैं—

विद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
मोहा च भवती महादेवी महासुरी॥

—

श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः॥

कृतिनाम्' तथा 'पापात्मनाम्' इन दो भेद-वाक्योंमें
ाद—वैपरीत्य निहित है। मायाके प्रभावसे विभिन्न
ग हैं। विभिन्न चित्तवृत्ति, मति-गति और चरित्रोंके
भिन्न प्रकारसे मायाका प्रभाव है। वे देवी हैं,
; वे लक्ष्मी हैं, अलक्ष्मी हैं; वे मेधा हैं, मोह हैं;
विस्मृति हैं; ज्योति हैं, तम हैं; वे रक्षाकारिणी हैं,
गी हैं। विचित्र भाव, रूप और क्रिया ही माया-
हैं। अनहोनीका होना, असम्भवका सम्भव होना,
ेयका आविर्भाव मायाकी क्रियाशक्तिके अन्तर्गत
ायाशक्तिहीन ब्रह्म केवल स्थावर ही नहीं, मानो
ेहीन है। ब्रह्म है और सद्वस्तु है, इसका प्रमाण
है। माया ही उसके अनन्त, अमृत, अचिन्त्य
एकमात्र आश्रय है। इसी कारण दुर्गाजी कहती हैं—

मायाविहीन होनेपर जो ब्रह्म रहता है, उ
महामृत्यु है। तथापि वह 'आनन्दरूपममृतं यद्वि
आनन्दरूप अमृतके समान प्रकाशित है। मा
ब्रह्मको ही श्रुतिने 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' तथा
मग्राह्यमगोत्रवर्णम्' कहा है। वह एक प्रचण्ड नकार (A
negation) है। मायायुक्त होनेपर वही मनोमय
और शरीरका नेता है, सर्वकर्मा है, सर्वकाम है
और सर्वगन्ध है। नीलपतङ्ग, हरित और लोहि
और इसी प्रकारके नये-नये रूपोंमें प्रकाशित होता रह

माया ब्रह्मकी निजी शक्ति है। उस शक्ति
भगवान्‌को विच्युत करनेके लिये, शुद्धाद्वैत भाव
करनेके लिये हृदयहीन पण्डितगण घोर दुराग्रह क
हैं—यह परब्रह्म ही जाने। यह भी मायाका ही प्र
जीवमात्र ही ब्रह्म-रश्मि हैं, ब्रह्मकण हैं या चित
परंतु ये चित्कण भिन्न-विभाविनी मायाशक्ति, अथ
प्रकाशिनी मायाविनी प्रकृतिके किसी एक भाव
द्वारा सम्पुटित (incased, ensheathed) र
चित्कण क्षेत्रज्ञ हैं। मायाकण अथवा प्रकृतिपुट
इन दोनों (spirit and matter) के योगसूत्र
होता है प्राण और जीवन। मायाशक्ति ब्र
(spirit) से स्फुरित होकर सूक्ष्मसे स्थूलभाव धा
करते जड (matter), प्रस्तर आदिमें परि
जाती है। बीचमें इन्द्रिय आदिकी सृष्टि होती
कुछ मायाशक्तिका विकार है। सारे विकारोंको प्र
महामाया स्वयं अविकृत रहती हैं जगदात्मशक्तिः
(सप्तशती ४। ३)।

मायाकी यह जो अन्तहीन क्रियाशीलता है, चि
है—इसका गम्भीर उद्देश्य है जीवोंका आविर्भाव
उनका धारण, रक्षण, प्रतिपालन तथा जन्म-मृत्
सञ्चालन करना। इसके अन्तर्गत और भी गम्भीरत
है, जिसके लिये सुविस्तृत सृष्टि-प्रवाह चलता है
चिर परिवर्तनमय, निरन्तर परिणामशील, सुख
भीषण तरङ्गोंवाले भवसिन्धुके मध्य मृत्युमय जी
कराते हुए, जीवोंको चिदानन्दस्वरूप भगवान्‌के रस
राज्यमें अनन्तकालके लिये प्रतिष्ठित कर देना ही म
दूसरा उद्देश्य है। यह उद्देश्य ही जीव-जीवन
रहस्य (the deepest Romance) है।

क नाम है नटेन्द्र—नटवर। 'रङ्गे यथा नटवरौ क्व च
।' महामायाके इस महातत्त्वदर्शनके भीतर प्रवेश
ना विश्व-जीवनके रहस्यका कहीं भी समाधान नहीं
ना। सहस्रों अकल्याणसे भरे हुए जीव-जीवनकी
परिणति, परम पर्यवसान (the final con-
ition), चिरकल्याणमय, चिरसुख-सौन्दर्यमय
वनमें होता है। विश्व-प्रकृतिके अन्तरमें विद्युदक्षरों-
उद्देश्यका महामन्त्र अङ्कित है, इसीलिये प्रकृति
 करती है। देवीकी अनन्त करुणा 'चित्ते कृपा समर-
 दृष्टा' है, उनके चित्तमें कृपा और युद्धभूमिमें निष्ठुरता
ी है। जीव दुःख पाते हैं अपने दोषोंसे। आलोक-
छोड़कर अन्धकारमें जाते हैं अहङ्कारके वश होकर,
श होकर। मायाका आलोकराज्य भी खुला हुआ
अन्धकारका पथ भी खुला है। जीवकी जहाँ इच्छा
जाता है। माया परीक्षा करती है, सत्-असत्को
करती है। जीवको संसारमें जो स्वाधीनता मिली
उसका जन्मसिद्ध अधिकार है; माया उस अधिकार-
रण नहीं करती। जो स्वाधीनतापूर्वक मङ्गलमार्गमें
देवी आनन्दसे उसकी सहायता करती हैं। और
धीनतापूर्वक अमङ्गलके मार्गमें जाता है तो वे
ीं देतीं, अमङ्गलके अन्धकारमें ही उसे जाने देती
ङ्गल और अमङ्गल सब उसीके हैं। यह समझते ही
क्षीण होने लगता है—'क्षिणोत्यभद्रम्।'

ामें भगवान्ने कहा है—

ामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

न्ति'का अर्थ 'मायाके अतीत हो जाना' नहीं है,
कल्याण-प्रभावसे मुक्त हो जाना है। इन्द्रधनुषमें
जिस प्रकार रविकी किरणोंके सुरम्य वर्णोंको खोल
विश्वरूपी मायादर्पण भी उसी प्रकार ब्रह्मकी अनन्त
पत्को विभासित कर देता है। विश्वमायाका दर्पण
क है। इस दर्पणमें हम जो कुछ देखते हैं, अथवा
-मुनियोंने जो कुछ देखा है, वह ब्रह्मकी एकपाद-
है, एकांशमात्र है, निकृष्ट अंश है, वैकारिक अंश
न्तर गिरता, पड़ता, बह जाता है। फिर प्रस्फुटित
, फिर टूटता है और फिर विकसित होता है। जो
दृश्यकी अधीश्वरी माया है, वह जीवमाया है,

है, उसी प्रकार वियोग-साधन करनेवाली वियोगिनी
भी है। प्रधानतः यह 'वियोगमाया' है।

महामायाका एक सुदिव्य, सुनिर्मल, सर्वसुषम
विभाव है। उस विभावमें उनका नाम पड़ता है 'यो
वे परब्रह्मकी स्वरूपशक्ति हैं; पाञ्चभौतिक, प
मृत्यु-शासित विश्वको जो प्रकाशित करती हैं, वे
हैं और जीवमाया हैं। परंतु जो चिन्मय, चिर-अ
दिव्य प्रेम-सौन्दर्यमय, अमृतमय विश्वको प्रकाशित
वे हैं 'योगमाया'। जिस प्रकार मनुष्यके जीव
हेतु यह दृश्यमान जगत् है, उसी प्रकार श्रीभगवा
ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्वमाधुर्यमय जीवन-यापनका हेतु
अत्याश्चर्यमय, सर्वमनोरम, सर्वचित्ताकर्षक जगत्
कोटि-कोटि कल्पोंमें भी विनाशको नहीं प्राप्त होता
कालतक तरुण, शोभनीय, सुकुमार और सुरम्यरूपमें
मान रहता है। श्रीमद्भागवतमें इसका कुछ आभास मि

भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते
लसद्विमानावलिभिर्महात्मना
विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः
सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभ
(२।

—यह भगवान्की स्वरूपैश्वर्यमय त्रिपाद्विभूि

जिस प्रकार जीवकी आत्मोपलब्धि आवश्यक
प्रकार परब्रह्म परमेश्वर भी आत्मोपलब्धि
Realization) की इच्छा करते हैं। आत्म
लिये वे दो महाशक्तियों, दो इन्द्रजालशक्तियों
करते हैं। वे 'नित्यावाप्तसमस्तकामः'—नि
काम हैं। वे अपने अनन्त कामना-भण्डारको खोल
दो महाकाशोंके मार्गसे, दो प्रणालियोंसे।
कामनाओंकी पूर्णता-प्राप्तिसे भगवान्का अन्तर
है। फिर वे उसी सम्पूर्ण भण्डारको अपूर्ण (खाली
फैला देते हैं पुनः पूर्ण करनेके लिये, पुनः प्राप्त कर
वे नित्य पूर्ण होते हुए भी नित्य अपूर्ण हैं। सदा
सम्प्राप्त होकर भी स्वरूपानुसन्धानमें व्यस्त रहते है
निगूढ़ कारण यही है कि वे प्रेमस्वरूप हैं, र
अखिल-रसामृतमय हैं। वे आनन्दघन हैं, केवला
स्वरूप हैं। अर्थात् वे निबिड़ प्रेमानुराग-निभृता

रते हैं। इस व्यापारमें उनकी सहायता करनेवाली
धिका'—उनके सर्व अर्थोंको साधन करनेवाली, उनके
ककी सूत्रधरी महामाया, दुर्गा भगवती हैं।

विश्वलीलासे उनके हृदयकी आशा पूरी नहीं होती।
सं विश्वराज्यके परे एक अनन्त, असीम, चिन्मय,
ोतिर्मय अपूर्व राज्य प्रकाशित कर रक्खा है। उसी
नकी परमतम आत्मोपलब्धि होती है। उसी राज्यमें
षोत्तमका अमृत-मधुर प्रणय-लीला-प्रवाह अनन्त-
चलता रहता है। उसी राज्यमें सर्वार्थसंसाधिनी,
म्पादनकारिणी महाशक्ति योगमाया विराजित हैं;
(क्रियाशीला, क्रीडामयी हैं; चिन्मयी वहाँकी भूमि
(-नदी, वन-कानन, पशु-पक्षी प्रभृतिसे पूर्ण उस
र स्वरूप-राज्य अनन्त विस्तृत है। जो कुछ है, सब
गुणातीत चिन्मय है। पिता-माता, आत्मीय-स्वजन,
न्मित्र हैं, लाखों-लाखों भावमयी और रस-रङ्गमयी
ङ्चरी, प्राणप्रिया हैं। परम पुरुषकी स्वरूपाशक्तिरूपा
भगवती निखिल रस-सम्बन्धका विधान करती
। वै सः।' अर्थात् वे केवल आनन्द हैं, केवल प्रेम
ठ सौन्दर्य हैं, निरन्तर लीला-विलास-परायण हैं; वे
—एक हैं, परंतु दुरन्त रसकी प्रेरणासे अनन्त रूप,
भावमूर्ति, अनन्त सम्बन्धोंको धारण किये हुए हैं।
द्वैत, ब्रह्मभावमात्रकी उपलब्धि प्रबल प्रणय-वेगसे
रल तरङ्गोंमें सञ्चारित हो जाती है; प्रत्येक तरङ्ग
होती है, लीलामृत-स्रोतस्विनी दिग्दिगन्तमें प्रवाहित
परब्रह्मकी आत्मोपलब्धि हो जाती है, आत्मविस्मृतिके
ात्मोपलब्धि होती है।

स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया।
.................योगेश्वरेश्वरः—

ा—

ां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः।
ङ्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह॥
ागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम्॥

(श्रीमद्भा० १०।२२।९-१०)

ायोगेश्वर आत्माराम, स्वराज्यलक्ष्मीके द्वारा
ाप्तकाम श्रीभगवान्की आत्मोपलब्धि अथवा चिदानन्द-
पानका यह एक मनोहर चित्र है। जिस महाशक्तिके
यह निगूढ़ चिदानन्द-समारोह सम्भव होता है, उस
ही नाम योगमाया है। और इस परमानन्द-समारोहमय

चिज्ज्योतिर्मय है, अमृतानन्दमय है, सुन्दर, सुर
सुरम्य है। यह विश्व उसी राज्यका विकृत, विभ्र
प्रतिभास है। यह विश्व विश्वके जीवोंकी शिक्षा और र
क्षेत्र है, शत-सहस्र परीक्षाओंका क्षेत्र है। महामाया ि
हैं, परीक्षाविधायिनी हैं, उद्धारकारिणी हैं;
असद्बुद्धि अभक्त असुरगणके लिये भीषण द
हैं, ध्वंसकारिणी हैं। योगमाया चिदानन्दके आ
विधान करनेवाली हैं। माया महारहस्यमयी हैं, अन
जाल-विद्याकी विदुषी हैं। उसी इन्द्रजालके द्वारा
प्रकाश होता है। मायासे भिन्न ब्रह्म शून्यमय है, अ
है—'असद्वा इदमग्र आसीत्।' मायाके प्रभावसे ब्र
होता है। ब्रह्म-विस्मरणका हेतु है माया-मोह
करुणामयी कल्याणमयी जननी है, इस बातको भूल
माया-मोहके वशीभूत होना पड़ता है। विद्या तथ
अवबोध भी माया ही है, अविद्या तथा अज्ञान और
माया ही है। जो जिसको चाहता है, उसीको पाता है

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी

संसारमें यदि केवल ज्योति होती तो उस ज्योति
प्राप्त नहीं करता; वह न रहनेके समान ही होती।
प्रतिष्ठाके लिये तमस्की आवश्यकता है। अस्तित्वकी
रूपमें जो द्वैत है, माया उसका विधान करती
त्रिगुणात्मक जडके द्वारा—और गोलोकमें रसवैचित्र्य
के द्वारा, चित्सामग्रीसमूहके द्वारा।

मायाको समझे बिना जगत्का तत्त्व समझमें
सकता। संसार एक अत्यन्त सुदुर्गम समस्या (Sp
Riddle) है; मायाके विज्ञानालोकमें विश्व-जगत् य
बोधगम्य होता है। माया-तत्त्वके साथ जन्मान्तर-तत्त्
तत्त्व अथवा अदृष्ट-तत्त्वका अनुशीलन करना आवश
इन दोनों तत्त्वोंको पृथ्वीपर केवल भारतवर्षमें
जाना है; और किसी दूसरी जातिको इनका प
पृथ्वीकी विभिन्न मानव-जातिके लिये भारतकी य
देन है। ये दोनों तत्त्व महाशिक्षाकी प्रणाली हैं; ये द
ज्ञान-विज्ञान-रत्न-प्रदीप हैं। इन रत्नोंका अनाद
संसारके सारे ज्ञान व्यर्थ हो जाते हैं। स्पाइनोजा,
कान्ट और हेगेलका क्या मूल्य है? वे तो मूलसे ह
चलते हैं। इसे हम भ्रमके सोनमें नहीं कह सकता

च्छा, तुम आ गईं, लेकर निज परिवार !'
। जलद-गम्भीर स्वर गूँज गया,
ा-विनिन्दक स्वर दूसरा साथ ही—
'आर्यपुत्र उत्थित हुए—धन्यभाग !
प्रणत है सेविका—
चाहते आशीर्वाद—
सारे शिशु वनके ये !'
सुकुमार—चल स्वर्ण-लतिका—
फल-कंचुकी, भूर्जपत्र-अधोवस्त्र
धारण किये,
सुमन-गुच्छ-गुम्फित अलकजाल,
पुष्पांजलि चरणोंपर सादर समर्पितकर
नेत्रोंमें मन्द हास्य,
ग्रीवा नत करके
ो थी समीप ही—मंजुल सलज्ज भाव ।
: एक बार देखा निज परिवार—
ा थे मयूर संग थन गन नाचते,
ो थे शुक-पिक कूजते,
गूँजते अलि-वृन्द आये थे,
कृष्ण सर्प फणा फैलाये मत्त,
झूमते-झूमते मत्त गज आये थे।
मूषक-शशक कूदते-फुदकते—
पक्षी चहकते हुए साथ-साथ आये थे।
। केहरी संगिनी साथ लिये—
जृम्भणसे लाल जिह्वा लप-लप करता।
ृग आये थे चड़मड़ करते—
कूदते चकित-से आये मृग-शावक भी।
चपल कपि, रोमश ऋक्ष-दल भी,
आया हिमधवल वृषभ,
आई सुरभियाँ—
कूदते चपल वत्स संग-संग आये सब।
ामस्त क्षुद्र-महत् पशु-पक्षीवृन्द—
आज जैसे कोई महोत्सव या मेला हो,
र आये थे मानवीके संग-संग।
मानवी—दयामयी जगन्माता मानवी.

त्याग रोष-द्वेष, कलुष, जाति शत्रु साथ-साथ
आये थे भूलकर—त्याग सब
मानवका वात्सल्य—
सत्वका समृद्ध भाव—
डूब गया उसमें रजस्-तमस् कहाँ
मानव उठा—मत्त गजराज ज्यों चल
दीर्घ बाहु, विशद भाल,
विशद वक्ष दीर्घकाय,
क्षीण कटि,
अलक जाल—स्निग्ध मृदु मेच
अनावरित स्वर्णगौर,
हृष्ट-पुष्ट, सुगठित
अरुण कर चरण अधर
पद्मदल-विशद नयन ।
सादर प्रणति मिली वृषभ-सुरभियोंको,
वत्सोंको पुचकार—
केसरीको थपकी;
किसीपर दृष्टिपात, किसीको मुस्कान—
देता स्नेह-दान जैसे पिता निज पु
स्रष्टाकी कृतिका सर्वश्रेष्ठ निर्माण—
मानव, निमज्जित हुआ निर्झ
आया—ज्यों अन्तरका स्नेह हुआ बाह्य
झूमी लतिकाएँ;
पुष्प-राग हुआ भूषित वह,
करती प्रतीक्षा थी मानवी गृहिणी,
स्वागत-संभार लिये ।
किसलय-डालियाँ लाये गजराज थे,
आसन ब
नारिकेल-पात्रमें रीछोंका उपहार—
पद्म-मधु, मधुर सुगन्धित मृदुल व
कपियोंने हरित नारिकेल दिये जलको,
चू पड़े पक्कफल पाणिपद्म देखके
तरुओंने भाग्य माना इस आ
भाग मिला सबभीको.

लियाँ चबा लीं व्याघ्र केहरीने कड़-कड़,
रीछ और कपियोंने छिलके उठा लिये;
ावने सबको भाग देकर आहार किया,
धोया कर निर्झरमें—
मत्स्योंका अन्तिम भाग।
नगर नहीं, ग्राम नहीं,
रोध ठाम-ठाम नहीं;
ग्रा नहीं मल-कलुष,
धूम्र-कलुष वायु नहीं;
त कानन ही धरणीपर चारों ओर।
पत वल्लरियाँ, झुके फल-भार विटपी,
पवन मन्द-मन्द शान्त।
। दृष्टि गयी—
ण मृदुल किसलय-पूरित अश्वत्थमूल—
उज्ज्वल, सुचिक्कन विशाल शिला-तलपर।
' मन्द क्षोभ लुप्त-लुप्त हो चला—
गया सुस्थिर-सुबद्ध पद्म-आसनसे,
क्रोड़ीमें करतल-द्वय विकसित पद्म ज्यों,
विधिके करोंकी पूर्णतम कलाकृति—
साँचेमें ढली-सी मूर्ति,
स्थिर स्वर्ण-प्रतिमा।
पद्मदृग पलकोंमें अर्ध-मुकुलित-से,
दण्ड-सा देह सौम्य,
कम्बुकण्ठ भवका,
वैखरी कृतार्थ हुई शुद्ध परा वाणीसे,
नाभिसे प्रणवनाद गूँजा शंख-ध्वनि-सा,
भ्रूमध्य भासित हुआ कोटि-कोटि मार्तण्ड,
मानवके दीर्घपलक स्थिर-निद्र हो गये।
मानवीने शुभ्र पुष्प-अंजलि दी चरणोंपर—
एक निःश्वास—देखा अपने आराध्यको,
वन-पशु-पक्षी शान्त, मन्द वायु मन्दतर,
न्त—शान्ति—स्निग्ध शान्ति मानवके मन-सी।
कह सकता है—
दिन-सप्ताह-मास-ऋतु या वर्ष-युग

ग्रीष्म-शीत-पावस, हिम-झंझा-लू-उपलवृ
व्यर्थ—वह सुदृढ़मूर्ति अविकृत सर्वथ
अन्तरमें मधुरिम कोमलतर प्रतिमा—
बाह्य हिमवान-सी दुर्गम अस्पृश्य अच
ऋषि नहिं, मुनि नहीं, त्यागी-तपस्वी नहीं
आदियुग मानव-गृही,
भारतका जन-जन।
आज भी संस्कृति 'वह' पावन प्रतीक लिये
उच्च किये मस्तक है ज्योतिर्मय सर्व
भारतके अन्तरमें अब भी प्रतिष्ठित है—
भव्य मूर्ति वही आदर्श आदिमानवकी
आजका मानव
यह विडम्बना—विकासकी।
शीत एवं ऊष्मासे ठिठुरता-पिघलता,
क्षुद्रतम कीटाणु रुग्ण जिसे करते—
शंकित, भीत, बंदी कीट
निज भवन-कन्दरामें,
भीति-आशंका लिये जीवनमें पद-पद,
क्षीणकाय, क्षीण-सत्व,
दिन-दिन क्षीणतर—
तन-मन-स्वास्थ्य जहाँ,
दुबल, बर्बर, क्रूर,
भीरु, रक्तपायी छल-छद्मरत
मृत्यु-दूत
पैशाचिक संघर्ष, पाशविक आचार,
शृंग-पुच्छ-हीन—
यह आजका द्विपद पशु।
समझे-न-समझे
वह भारतीय संस्कृतिका पावन प्रती
किंतु—
वह आप ही पूर्णतम सर्वथा
अन्तर एवं बाह्यसे—
भारतका अरण्यानी-
मानव—

राज्यसे सम्बन्धयुक्त शब्दको 'मन्त्र' कहते हैं। देवा
ुक्त शुभाशुभ-फलप्रद पदार्थविशेषको 'यन्त्र' कहते
' शब्दका अर्थ यों तो बहुत विस्तृत है; क्योंकि वेद,
ुराणोंकी तरह तन्त्रशास्त्र भी बड़ा विषय है—
ासे सदाशिवने कहा है—'सप्त सप्त सहस्राणि
ुर्वरानने।' परंतु तन्त्रशास्त्रका रूढ़ार्थ टोटका भी
अद्भुत कार्य देखनेमें आते हैं।

ोंमें भगवन्नामवाचक मन्त्र सर्वश्रेष्ठ होते हैं। पूज्यपाद
कहा है कि सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्‌का सबसे बड़ा नाम
ाक प्रणव है। प्रणव त्रिगुणात्मक है। उसमें सृष्टिकर्ता
ष्टिपालक विष्णु और संहारकर्ता तथा मुक्तिदाता शिव
हैं। इस कारण प्रणवका जप करनेसे और उसके
भावना करनेसे साधक भगवान्‌के चरणकमलोंतक
ता है। मन्त्र-शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि प्रणव
ु है; जैसे रास्तेको सरल करनेके लिये नदी-नालों-
नाये जाते हैं, वैसे ही प्रणवसे युक्त मन्त्र दैवी जगत्-
नेके लिये सब बाधाओंसे मुक्त हो जाते हैं, पूर्ण शक्ति
ते हैं। प्रणव आदिमन्त्र होनेसे इसके स्वरूपको
ी विशेष आवश्यकता है। मन्त्रतत्त्वज्ञ योगीजन
ो स्वरूप बताते हैं—एक वर्णात्मक, दूसरा ध्वन्यात्मक।
' और 'म' के संयोगसे ओंकारका जो स्वरूप अक्षरात्मक
ता है और जिसका उच्चारण हर एक मनुष्य कर
वह शब्दात्मक है। ध्वन्यात्मक प्रणवके विषयमें
कहता है कि वह तैलधाराके समान अविच्छिन्न
घंटेके नादकी तरह है और उसका कोई अङ्ग मुख-
उच्चारित नहीं हो सकता। केवल योगयुक्त अन्तः-
ाने चित्ताकाशमें उसको सुन सकता है। प्रणवकी
ा महिमा वेदों, उपनिषदों, पुराणों और तन्त्र-
ुहुत कुछ पायी जाती है। वैदिक दर्शनशास्त्र यह
ते हैं कि जहाँ कुछ कार्य है, वहाँ कम्पन है और
न है, वहाँ शब्द अवश्य होता है। इस सिद्धान्तके
साम्यावस्था प्रकृति, जो परम पुरुषके साथ एकरस
जब विषमावस्थामें परिणत होती है, तब जगत्‌का
ते-लयकार्य हुआ करता है। जिस समय एकरस

प्रथम ध्वनिको प्रणव कहते हैं। अतः योगिराजक
करण जब इस प्रकृतिकी वैषम्यावस्था-प्राप्तिके म
पहुँचता है, तब प्रणव सुनायी देता है। इस परम
प्रणवके बाहरकी ओर शब्दरूपात्मक जगत् है अ
ओर परम विष्णुपद है। 'तद्विष्णोः परमं पदम
मन्त्रप्रणवकी जितनी महिमा कही जाय, उतनी थोड़

जैसे प्रणव परमात्माका वाचक होनेके कारण
चरणकमलोंमें पहुँचा देता है, वैसे ही मन्त्रशास्
बीजमन्त्र भी दृश्य और अदृश्यरूप दोनोंसे
कराके तत्तद् बीजसे सम्बन्धयुक्त देव-देवियोंक
साधकको पहुँचा देते हैं। दर्शनशास्त्रने सिद्ध
है कि अन्तःकरण विश्वका माध्यम है और वह
तथा समाहित होनेसे विश्व-ब्रह्माण्डके कोने-कोनेमें पहुँ
है। मन्त्र बीजसे युक्त, शाखा-पल्लवसे युक्त—कई त
हैं। पुनः, मन्त्र वैदिक और लौकिक भेदसे दो प्रक
हैं। बीज-शाखा-पल्लवसे युक्त वेद-पुराण और तन्त्रा
जानेवाले मन्त्र वैदिक मन्त्र कहाते हैं और लोगों
शाबरमन्त्र आदि लौकिक हैं। शाबरमन्त्र नाना प्रक
हैं—यहाँतक कि वे मारण-वशीकरणादि कर्मोंमें
आते हैं। वे अर्थशून्य, विभक्तिशून्य होते हैं। ऐस
भी उनको सिद्ध करनेकी प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न है
बिना वे काम नहीं दे सकते। आजकल वै
लौकिक किसी मन्त्रका प्रभाव नहीं दीख पड़ता
कारण यह है कि उसके साधक परिश्रमसे जी चु
वैदिक मन्त्रोंकी अनेक प्रकारकी साधनविधि पायी
इसी तरह लौकिक मन्त्रोंकी सिद्धि करनेमें भी कई
साधन और तपकी आवश्यकता होती है। इन सब
साधनावस्थामें ही साधक विश्वास और दृढ़ श्रद्धाके
प्रयत्न करता है, तभी सफलताकी प्राप्ति होती है। इस वि
कमी रह जाय तो सफलता नहीं होती। अतः वर्तम
की विफलता देखकर मन्त्रोंमें लोग सन्देह करते
ऐसे सन्देहके लिये कोई गुंजाइश नहीं है। साधकोंकी
कमी रह जानेसे ही विफलता दीख पड़ती है। त
यह भी रूपान्तरसे कहा है कि अपवित्र अन्न एवं

के सदृश हो जाता है और अन्तःकरण सदा विषयासक्त समाहित नहीं हो सकता। इसी कारण कलियुगमें सिद्धि दुर्लभ हो गयी है।

गहन विषयोंको समझनेके लिये अन्तःकरणके स्वरूप- और व्यापकतापर कुछ प्रकाश डालनेकी आवश्यकता ःकरणके चार भेद हैं—मन, बुद्धि, अहंकार और चारों मिलकर अन्तःकरण-चतुष्टय कहाते हैं। भगवान् तःकरणके प्रधान अधिदैव हैं। अन्तःकरणके चार बुद्धि और मन मुख्य हैं। और चित्त तथा अहंकार इन्द्रियोंको जो चलाता है, वह इन्द्रियराज मन है। सद्विचारके अनुसार जो मनको समाहित करती नका गुरु बुद्धि है। नाना वृत्तियोंद्वारा जो मनको ; वह चित्त कहाता है और प्रत्येक जीवपिण्डमें यक्तित्व स्थापन करके सर्वव्यापक आत्मतत्त्वको जो रता है, उसको अहंकार कहते हैं। अहंकार बुद्धिका ग है। क्योंकि अहंकारके बिना बुद्धि कार्य नहीं ो। शुद्ध अहंकार आत्मतत्त्वतक पहुँचा देता है और हंकार तथा अशुद्ध बुद्धिके द्वारा जीव जगत्के सब ा करता है। इसलिये अहंकार गौण है और बुद्धि चित्त एक ऐसा तत्त्व है, जिसमें स्मृति भी रहती है। पूर्वस्मृतिके अनुसार नाना विषयोंको लेकर मनको करता है। इससे मन एक क्षण भी निश्चल नहीं ञ्चल बना रहता है।

शास्त्रके साथ अन्तःकरणका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध कारण तन्त्रशास्त्रमें कहा है कि जो मनका त्राण करे, है। मन्त्रमें जो शक्ति निहित रहती है, वह शक्ति ाश्रयसे अन्तःकरणमें प्रकट हो जाती है। लकड़ी- रहती है; परंतु वह अरणीके द्वारा मथी जानेपर ही ती है। इसी तरह योगयुक्त अन्तःकरणमें व्यवस्थित त्रका कार्य होते रहनेसे वह शक्ति प्रकट होकर कार्य करने । निर्गुण प्रणव-मन्त्र हो अथवा सगुण शक्ति-बीज, ा आदि हो अथवा शाखा-पल्लवसे युक्त मन्त्र हो, तत्तन्मन्त्रसम्बन्धी सारी शक्ति विद्यमान रहती पञ्चाक्षरी, द्वादशाक्षरी आदि वैदिक मन्त्र और मन्त्र दोनोंके विनियोगमें शक्तिके विकासका रहता है। वेदोक्त और तन्त्रोक्त जो अलौकिक मन्त्र हैं। निष्काम साधकको इन मन्त्रोंसे लाभ लिये विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता, परंतु सब उनके उपयोगकी सिद्धि प्राप्त करनेके लिये विशेष आवश्यकता होती है। जो मिश्र मन्त्र होते हैं, जिनमें और लौकिकत्व दोनों मिले हुए हैं, ऐसे मन्त्रोंकी रि करनेके लिये विशेष अनुष्ठानकी आवश्यकता होती मन्त्रसे कार्य-सिद्धि नहीं होती।

अन्तःकरण सर्वव्यापक है और योगयुक्त हो जगह काम कर सकता है। इसका प्रधान कारण य पिण्ड तीन प्रकारके होते हैं—१. उद्भिज्जादि सहज पिण्ड, अधिकारोंके पूर्णावयव जीवरूपी मानवपिण्ड, और ३ श्रेणीके देवताओंके देवपिण्ड। देवपिण्डोंमें भूत-प्रेत दानव-असुरादि पिण्ड भी आ जाते हैं। अन्तःकरण स होनेसे वह इन सब पिण्डोंमें विद्यमान है। इस कारण यदि शक्तिशाली हो और उसका अन्तःकरण हो तो वह चतुर्दश भुवनोंके सब स्थानों और पिण्डों बलसे बलवान् होकर कार्य कर सकता है। यही म शास्त्रका तात्पर्य है और वह अधिदेववत् अष्टाङ्गयोग द्वारा, विधिपूर्वक जपयज्ञद्वारा, अन्यान्य प्रकारके अनुष्ठानोंद्वारा प्राप्त हो सकती है। तन्त्रशास्त्रोंमें इसके प्रकारकी विधियाँ पायी जाती हैं, जो विश्वास, श्रद्ध सेवा और अन्तःशुद्धि तथा बहिःशुद्धिके सम्पादन अन्तःकरण-विज्ञानपर सदा स्थिर दृष्टि रखनेसे अ जगत्पर पूर्ण निर्भर रहनेसे सफल होती हैं।

यन्त्र और तन्त्रके सम्बन्धमें भी कुछ समझन है। यन्त्र दो प्रकारके होते हैं—नित्ययन्त्र और भाव नित्ययन्त्र उसको कहते हैं, जिसमें दैवीशक्ति स्व रूपसे निहित रहती है—जैसे शालग्रामशिला, नर्मदेश्वरशि अपराजिता, कमल आदि पाँच यन्त्रपुष्प। इनमें आवाहन, विसर्जनकी आवश्यकता नहीं। इनमें हर एक की पूजा हो सकती है। इन नित्ययन्त्रोंमें दैवी श निहित रहती है, यह केवल योगीजन ही अनुभव क हैं। दूसरे प्रकारके यन्त्र भावयन्त्र कहाते हैं। भाव समझनेके लिये भाव क्या है, यह समझ लेना आवश्य योगशास्त्रमें लिखा है कि मन और चित्तके संयोगसे उत्पन्न होती है और अहंकार तथा बुद्धिके संयोगसे भ का उदय होता है। शुद्ध और अशुद्ध रूपसे भाव दो

चाकर शान्ति प्रदान करता है। भावयन्त्रमें शुद्ध-
ो प्रधानता रहती है। श्रीयन्त्र, आद्यायन्त्र, नृसिंहयन्त्र
देक यन्त्र अथवा अन्य प्रकारके तान्त्रिक यन्त्र बनाते
द्धिप्राप्त महापुरुष तत्तदनुयायी शुद्धभावके अवलम्बन-
न्त्रादिका यन्त्रमें प्रयोग करते हैं और अन्तःकरण-
व्यापक होनेसे तत्तद्भावोंमें प्रयुक्त होकर तत्तदुपयोगी
उन यन्त्रोंमें उदित होती हैं। इसका कारण चाहे

नित्ययन्त्र हो, चाहे भावयन्त्र—समाहित अन्तःकरणकी
से और उन यन्त्रोंकी शक्तिके सहयोगसे सिद्धि प्राप्त
इसीलिये यन्त्र तत्तद्देवतारूपी माने जाते हैं। अ
लौकिक और अलौकिक स्तरोंमें सब तरहकी सफलता
सकती है। इसी प्रकार जैसे यन्त्रोंसे दैवी सहायता
है, वैसे ही टोटका आदि तन्त्रोंसे भी समाहित अन्त
सहायतासे यथायोग्य सफलता मिलती है। सूर्योदय

हिंदू-संस्कृति और यज्ञानुष्ठान

-संस्कृतिके साथ यज्ञानुष्ठानका बड़ा ही घनिष्ठ
है। आज हमें अपनी संस्कृतिके विषयमें जो
न वस्तु प्राप्त होती है, वह है वेद-संहिता। वेद-
में सर्वप्रथम ऋग्वेदका नाम लिया जाता है, और
के सबसे प्राचीनतम ग्रन्थके रूपमें स्वीकार करनेमें
भी विवाद नहीं। ऋग्वेदका प्रथम मन्त्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।

में अग्निदेवकी स्तुति की गयी है, आठ-आठ
तीन पाद अर्थात् चौबीस अक्षरोंके सुप्रसिद्ध गायत्री
मधुच्छन्दा ऋषि स्तुति करते हैं—'मैं अग्निदेवकी
रता हूँ, याचना करता हूँ। वे पुरोहित, ऋत्विक्,
ाता, देवताओंके आह्वाता हैं और श्रेष्ठतम रत्नोंकी
वे हमें श्रेष्ठतम रत्नोंको प्रदान करें।' निरुक्तके
इस ऋक्की यही व्याख्या है।

तुतः विचार करनेपर यह पहला मन्त्र ही हमारी
ा प्रतीक जान पड़ता है। देव और यज्ञका
श्रय सम्बन्ध है। देव नहीं तो यज्ञ नहीं, और यज्ञ
देवाराधना नहीं; यज्ञका मुख्य उद्देश्य ही है देवाराधना।
ानमें जो आदर्श संस्कार हैं, वे देव और देवाराधनासे
ित हैं। ऋषियोंने हिंदू-जीवनमें यज्ञ-विधानके द्वारा
य भावनाकी सुर-सरिता प्रवाहित की, वह अविरत
ऋजु-वक्र पथमें सृष्टिके आदिकालसे आजतक बहती
है और उसमें अवगाहनकर इस देशके तथा विदेशोंके
। पुण्यवान दिव्य जीवनके भागी हुए हैं, हो रहे हैं

यज्ञका प्रसार आर्य-जीवनमें था और अग्निदेव यज्ञके
यज्ञमें ऋत्विक् और होता उपस्थित रहते थे। अ
सिद्ध होता है कि यजुर्वेदका यज्ञ-विधान इस ऋचार्क
पहले था, अथवा यज्ञानुष्ठानमें ऋक् और यजुःक
प्रयोग होता था। अर्वाचीन तथाकथित पुरातत्त्वके
का यह कहना कि ऋग्वेद पहलेकी रचना है और
पश्चात् रचा गया है, केवल मनगढ़न्त और कोरी
मात्र है। यज्ञानुष्ठानमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवे
त्रयीका युगपत् प्रयोग होता है। अतएव यज्ञके सा
नीर-क्षीरवत् अटूट सम्बन्ध है।

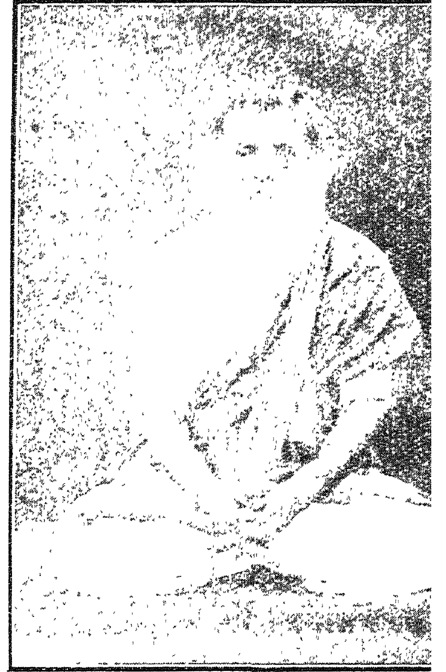
और वेदोंकी अलग-अलग संहिताएँ करनेसे उ
दूसरेसे पूर्णतः भिन्न भी नहीं समझा जा सकता।
मन्त्रोंमें यज्ञका तथा यज्ञाङ्गोंका वर्णन होने तथ
उद्गीथ-गान आदिका उल्लेख होनेके कारण यजुः औ
उत्तरकालीन मानना असंगत है। यजुः और साममें
मन्त्रोंकी प्रचुरता देखकर ही आधुनिक बुद्धिवादियं
हुआ है, ऐसा जान पड़ता है।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्कि
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ (ऋ० सं० १।

'हे गाथिनः! सामगान करनेवालो, तुम
ही बृहत्-सामके द्वारा स्तुति करो। तुमलोग भी, हे
ऋचाओंके द्वारा इन्द्रकी ही स्तुति करो; और हे अ
तुमलोग भी यजुर्मयी वाणीके द्वारा इन्द्रकी ही स्तुति
दैवतकाण्डके उपोद्घातमें यास्कने उपर्युक्त ऋचाकी
व्याख्या की है। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेदके मन्त्र

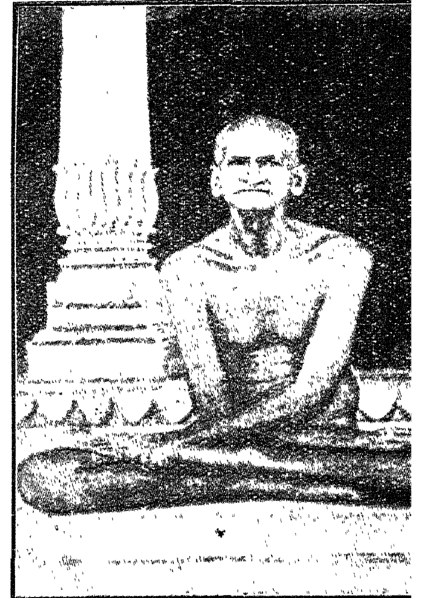


स्वामी श्री विशुद्धानन्दजी



स्वामी श्री विशुद्धानन्दजी परमहंस





स्वामी श्रीभास्करानन्दजी सर



ाननना भी युक्तिसंगत नहीं है। आधुनिक ग्रन्थोंके
ंहिताओंको पृथक् ग्रन्थ मानकर वैज्ञानिक अन्वेषणके
 में अनेकों पौरस्त्य और पाश्चात्य तथाकथित विद्वान्
रचनाका कालनिर्णय करके अपने अविवेकका ही
दे गये हैं!

चाकी रचनासे हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि
लविशेषमें आधुनिक काव्यके समान मन्त्रोंकी रचना
यह तो वेदोंका काल-निर्णय करनेवाली आधुनिक
खोखलापन दिखलानेके लिये एक छोटी-सी युक्ति
है। तत्त्वतः हिंदू-संस्कृतिमें देवता मन्त्रस्वरूप
ता है। इस प्रथम ऋक्के देवता हैं अग्निदेव।
यह मन्त्र अग्निस्वरूप ही है। अग्निकी रचना
गा? अग्निका आदि नहीं, अन्त नहीं। अतएव
ो अनादि और अनन्त हैं।* इसीलिये वेदको
कहते हैं; और इसे नित्य और सनातन मानते हैं।
ना भी नित्य और सनातन है। हिंदू-संस्कृति या
र्मका वास्तविक स्वरूप भी यही यज्ञ-भावना है।
सी भी कालमें अभाव नहीं हो सकता। यज्ञ ही धर्म
धर्मसे ही प्रजाका धारण हो रहा है। अतएव
ष्टिसे यज्ञकी महिमा सर्वोपरि है, और इसके
कुछ भी आलोचना करना सुसङ्गत ही है। धर्मका
रते हुए महर्षि कणाद कहते हैं—

ाऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

सके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि
हो, वह धर्म है।' अभ्युदयका हेतु है कर्मानुष्ठा
निःश्रेयसका हेतु है ज्ञान-साधना; अतएव कर्म औ
समन्वय ही जीवनमें धर्मका स्वरूप है। जो लोग
उपेक्षा करके केवल ज्ञानकी रट लगाते हैं और
श्रुतिमार्गावलम्बी कहते हैं, उनकी प्रतारणाके लिये
महर्षि जैमिनिने अपने पूर्वमीमांसादर्शनमें क
स्तुत्यात्मक अर्थवादकी अवतारणा करते हुए कहा है

आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्
(जै० सू० १।२

'आम्नाय अर्थात् वेद यज्ञानुष्ठानके लिये हैं;
यज्ञभावनासे हीन जो विषय हैं, वे अनर्थक हैं।'
लक्षणोऽर्थो धर्मः'—इस सूत्रके द्वारा धर्मकी वैदिक
निषेध-मूलक परिभाषा देकर महर्षि जैमिनिजीने यज्ञ
उपकारक होनेके कारण ही सदाचारको धर्मस्वरू
है। अतएव यज्ञविहीन सदाचार भी वस्तुतः सदाच
है; वह अधर्म ही है, जो धर्मके कञ्चुकमें छिपा हु
भुलैयामें फँसानेके लिये मायाजाल बिछाये हुए है

जब यज्ञ ही धर्म है, तब यज्ञस्वरूपका ज्ञान तथ
अनुष्ठान करना परम आवश्यक हो जाता है इस
मानव-जीवनकी सफलताके लिये। भगवान् वे
जो इस विषयमें चेतावनी दी थी कि 'धर्म एव हर
धर्मो रक्षति रक्षितः,' उसकी सत्यताको गत सहस्रों
हमारी पराधीनता, दुःख-दारिद्र्य और राष्ट्रिय
डंकेकी चोट सिद्ध कर रहे हैं। धर्मकी उपेक्षा
वस्तुतः हम मारे गये, अत्यन्त अधःपतनको प्राप्त हो
दुर्दशाकी भी सीमा हो गयी, आज आर्य-सन्तान यज्ञ
तक नहीं जानती। यज्ञीय जीवन ही हमारा
जीवन है—भारतका स्वर्णयुग है। यज्ञीय जीवनको
हमने अपने आदर्शको छोड़ दिया, आर्य-सन्तानने
वञ्चित होकर आसुरी भावनाओंकी दासता स्वीक
ली। आज यज्ञानुष्ठानके विषयमें—इस दुर्ज्ञेय और
विषयकी कुछ चर्चा चलानेकी जो मैं धृष्टता कर रहा हूँ
लिये विद्वान् लोग क्षमा करेंगे। साधारण पाठकोंको यज्ञ-
थोड़ा-सा सांकेतिक ज्ञान हो सकेगा, इसी आशा
अनधिकार प्रारम्भ किया जा रहा है।

सबसे पहले प्रश्न यह होता है कि यज्ञ किसे कह
महर्षि कात्यायन अपने सूत्रोंमें 'अथ यज्ञं व्याख्या

---

* यहाँ प्रश्न हो सकता है कि मन्त्रोंको कार्यरूपमें देखकर
तत्तत्कारणपूर्वकम्'—इस न्यायके अनुसार उन्हें नित्य
जा सकता। इसका उत्तर यह है कि 'मन्त्र' कार्य
नित्य हैं और वाणीके रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है
अन्तःकरणमें। ऋषि मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं, मन्त्र-रचयिता
यं ऋचा कहती है—

वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
(ऋ० सं० १०।७१।३)

अर्थात् यज्ञके द्वारा ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर मन्त्र
प्राप्त होते हैं। यास्काचार्य कहते हैं—

ृञ्चावचैरभिप्रायैर्ऋषीणां मन्त्रदृष्टय भवन्ति।
में तत्तत् वस्तुको अभिप्रेत करके ऋषियोंको मन्त्रदृष्टि प्राप्त
अर्थात् ऋषियोंके पुनीत अन्तःकरणमें देवस्वरूप मन्त्रोंका

द्रव्यदेवतात्यागः ।

य, देवता और त्याग—ये तीन यज्ञके लक्षण हैं।'
त नामक ग्रन्थमें द्रव्य कौनसे पदार्थ हैं, इसका
करते हुए लिखा है—

दधि पयः सोमो यवागूरोदनं घृतम् ।
ुलाः फलमापश्च दश द्रव्याण्यकामतः ॥

न्यतः तेल, दही, दूध, सोमलता, यवागू (चावल
लपसी), भात, घी, कच्चे चावल, फल और
दस द्रव्य ही वैदिक यज्ञोंमें देवताओंके प्रीत्यर्थ
आते हैं । देवता आधिदैविक शक्तियाँ हैं, जो यज्ञको
ाप्त करके मन्त्ररूपमें अभिव्यक्त होती हैं। निरुक्त-
े हैं—

ाम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं
तद्दैवतः स मन्त्रो भवति ।

स कामनासे ऋषि जिस देवताके प्रति अपने
ो सफलताकी इच्छा करते हुए स्तुतिका प्रयोग
उसी देवताका स्वरूप वह मन्त्र होता है।'

प्रकार नाना प्रकारके अभिप्रायोंके साथ ऋषिकी मन्त्र-
ाना प्रकारकी होती है। मन्त्रोंमें जो स्थान-स्थानपर रथ,
अश्व, इषु आदिका उल्लेख आता है, वे सब पदार्थ
के स्वरूपभूत ही हैं, उनसे पृथक् नहीं । अतएव आ-
पदार्थान्तरको देखकर मन्त्रोंके विषयमें अन्यथा
ीक नहीं । यास्काचार्य इसी कारण कहते हैं—

मैवैषां रथो भवत्यात्मा अश्व आत्मायुधमात्मेषव
र्वं देवस्य देवस्य ।

ताके स्वरूपके विषयमें शङ्काएँ की जाती हैं कि वह
है या साकार, जड है या चेतन। परंतु ये द्वन्द्वात्मक
आधिभौतिक सृष्टिमें होते हैं। आधिदैविक लोककी
के विषयमें ये प्रश्न नहीं उठते। देवता यह सब
या कुछ नहीं हैं—अथवा इस 'हैं-नहीं' से परे
र हैं। जो हो, उपासकके लिये तो मन्त्ररूपमें ही
ुछ प्रदान करते हैं। यज्ञ एक विधान है, जिसके
वताओंको तृप्तकर यजमान अपने अभिलषित
ो प्राप्त करता है । स्वर्गलोककी प्राप्ति यज्ञानुष्ठानका
य उद्देश्य होता है। यह स्वर्ग है क्या ?

'जिसमें दुःखका सम्पर्क नहीं, उपभोगके पश्
दुःखग्रस्त नहीं होता तथा इच्छामात्रसे बिना प्रयत
जो प्राप्त होता है, इस प्रकारका सुख स्वर्ग कहलाता

स्वर्गके उच्चावच अनेक भेद हैं । वेदोंमें
प्रकारके यज्ञोंका विधान है । परंतु यज्ञ मुख्यतः पाँच
होते हैं—अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुय
सोमयाग । इसके अतिरिक्त अवान्तर भेद बहुत हो
जैसे सोमयागके भेदोंमें अश्वमेध, नरमेध, सर्वमेध
और अहीनयाग । दो दिनसे लेकर एकादश रा
अहीनयाग होते हैं, और त्रयोदश रात्रियोंसे लेकर
संवत्सरपर्यन्त असंख्य प्रकारके याग होते हैं, जो सत्र
हैं । गौतम-धर्मसूत्रमें कहा गया है—

औपासनहोमः, वैश्वदेवः, पार्वणः, अष्टका, मासि
श्रवणा, शूलगव इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः; अ
दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढप
सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त
संस्थाः; अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी,
अतिरात्रः, आप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः ।

(गौ० ध०

—इस प्रकार प्रथम पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और
भेदसे तीन प्रकार दिखलाकर प्रत्येकके सात-सात
२१ प्रकारके यागोंका उल्लेख किया है । वस्तुतः
काल इतना विस्तृत है कि आज हमारे सामने व
साधन नहीं कि उसकी गणनाकी चेष्टा करें । हिंदू
दृष्टिसे यह युग लाखों-लाखों वर्षोंतक व्याप्त रहा है
असंख्य भेद भी इस बातको प्रमाणित करते हैं ।

प्रारम्भमें मुख्यतः वैदिक यज्ञोंके उपर्युक्त पाँच
थे । यजुर्वेदका पहला मन्त्र 'इषे त्वोर्जे त्वा०' का
दर्शपौर्णमास यज्ञके पलाश-शाखा-छेदन विधिमें
और पहले तथा दूसरे अध्यायके सारे मन्त्र दर
यज्ञकी विधियोंमें ही विनियुक्त होते हैं; अतएव
यज्ञकी विधिके ऊपर एक संक्षिप्त दृष्टि दी जा
प्रत्येक अमावास्या और पूर्णिमाको अनुष्ठित होने
इस यज्ञका नाम दर्शपौर्णमास यज्ञ पड़ा । प्र
होनेके कारण इसी यज्ञका पहले विधान हुआ है ।
तात्पर्य यहाँ उस यागसे है, जो अनुष्ठानके स

विधिसे उपकृत होते हैं; अतएव यजुर्वेदमें पहले के मन्त्रोंका विधान है।

यागमें पहले व्रतोपायनविधि अर्थात् उपवास करके और उसकी पत्नीको संयमपूर्वक रात्रि व्यतीत करनी शतपथ ब्राह्मणके प्रारम्भमें इस व्रतोपायनविधिका जाता है। दूसरे दिन यज्ञका सर्वाङ्ग अनुष्ठान किया अमावास्याके दिन अग्निदेवताके लिये पुरोडाश, इन्द्र- ये दधिद्रव्य तथा इन्द्रदेवताके लिये पयोद्रव्यके त्याग- । याग होते हैं। पूर्णिमाको पहला अग्निदेवतासम्बन्धी वाला पुरोडाश याग, दूसरा अग्नि और सोम- न्धी आज्यद्रव्यवाला उपांशु याग और तीसरा सोम-देवतासम्बन्धी एकादश कपालवाला पुरोडाश है। इस प्रकार दर्शपौर्णमास यज्ञमें कुल छः याग अनुष्ठान-विधि इस प्रकार होती है—

अग्नि-उद्धरण—जिसमें गार्हपत्य-अग्निसे आहवनीय णाग्निको पृथक् किया जाता है।

अग्नि-अन्वाधान—जिसमें तीनों अग्नियोंमें छः-छः का दान किया जाता है।

ब्रह्मवरण—जिसमें यजमान ऋत्विकको वरण ।

प्रणीता-प्रणयन—जिसमें चमसमें जल भरकर उसको नमें रखते हैं।

परिस्तरण—अग्निके चतुर्दिक् कुश आच्छादन

पात्रासादन—यज्ञीय पात्रोंको यथास्थान रखना।

शूर्पाग्निहोत्रहवणीका प्रतपन।

शकटसे हवि ग्रहण करना।

पवित्रीकरण।

. पात्रहविः-प्रोक्षण—हविष्य एवं पात्रोंको प्रमार्जन करना।

. फलीकरण—जिसमें तण्डुलमेंसे कणोंको दूरकर धन किया जाता है।

. कपालोपधान—दो अङ्गुल ऊँचे किनारेवाले मिट्टीके ल कहलाते हैं, उनको यथास्थान रखना।

. उपसर्जनीका अधिश्रयण—पिष्ट-संयवनके लिये को उपसर्जनी कहते हैं, उसको नीचे रखना।

. वेदिकरण।

१६. स्रुवा, जुहू, उपभृत् और ध्रुवा आदि क यज्ञपात्रोंका संमार्जन।

१७. पत्नीसन्नहन—मुञ्जकी रज्जुसे पत्नीको बनाना।

१८. इध्म, वेदी और बर्हिकाका प्रोक्षण।

१९. प्रस्तर-ग्रहण—(यहाँ कुशमुष्टिको प्रस्तर कह

२०. वेदिका-स्तरण—वेदीपर कुशाच्छादन करन

२१. परिधि-परिधान—वेदीके चारों ओर परिधि

२२. इध्मका आधान।

२३. विधृति-स्थापन।

२४. जुहू आदिको वेदीपर रखना।

२५. पञ्चदश-सामिधेनी-अनुवचन।

२६. अग्निसम्मार्जन।

२७. आघार अर्थात् वह्निके एक छोरसे दूसरे आज्यकी धार प्रक्षेप करना।

२८. होतृ-वरण।

२९. पञ्च प्रयाज—(पाँच प्रकृष्ट याग)।

३०. आज्यभाग—(अग्नि और सोमदेवताके नि

३१. प्रधान याग—फलके उद्देश्यसे विहित प्रधान देवता होते हैं, उनके निमित्त किया जानेवाला

३२. स्विष्टकृत्—(प्रधान यागको शोभन ब याग-विधि)।

३३. प्राशित्रावदान—(ब्रह्माका भाग प्राशित्र उसका ग्रहण)।

३४. इडावदान आदि।

३५. अन्वाहार्य-दक्षिणा—(ऋत्विक्का भोज्य अन्वाहार्य कहलाता है)।

३६. तीन अनुयाज—(अनुयाज अर्थात् प जानेवाले याग)।

३७. व्यूहन अर्थात् जुहू आदि पात्रोंको हटान

३८. सूक्तवाक। } स्तुतिविशेष।
३९. शंयुवाक। }

४०. पत्नी-संयाज—(पत्नी-देवताके निमित्त च

४१. दक्षिणाग्नि-होम।

४२. बर्हि-होम।

४३. प्रणीता-विमोक।

४४. विष्णु-क्रम।

त प्रकार मन्त्र-सहित प्रधान विधियोंके द्वारा दर्श-
ा याग समाप्त होता है। इनमें जो दूसरी अवान्तर
हैं, उनका उल्लेख शतपथ ब्राह्मणके प्रथम काण्डमें
दिके महीधर-भाष्यमें भी मन्त्रोंके प्रसङ्गमें उनका
न्या गया है। यह दर्शपौर्णमास याग मासमें दो दिन
कारण सुगमतापूर्वक अनुष्ठित हो सकता है। दूसरे
द्रव्यसाध्य तथा क्लिष्ट हैं। अतएव यहाँ दर्शपौर्ण-
रेमें ही किञ्चित् आलोचना की गयी है। यदि आज
ात्मसाधनके द्वारा अपवर्गको प्राप्त करनेमें असमर्थ
ई कारण नहीं कि यज्ञानुष्ठानोंके द्वारा स्वर्गप्राप्तिकी
नहीं की जाय। आज यदि कुछ सम्पन्न भारतीय
ौर्णमास यज्ञके अनुष्ठानमें रत हों तो हमारे देश और
देवत्वकी प्रतिष्ठा होगी और संस्कृतिकी रक्षाके साथ-
इहलोक और परलोकको उज्ज्वल बना सकेंगे।
के द्वारा स्वर्गको प्राप्त हुआ एक याज्ञिक कहता है—

सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
मस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥

(ऋग्० ८।४८।३)

ने सोमपान किया, अमृत हो गया, स्वर्गलोकमें आया,
को जान लिया। अब शत्रु मेरा क्या करेंगे। और
रलोकको प्राप्त व्यक्तिके लिये जरा क्या कर
।'

लोकमें कोई भय नहीं, इच्छा करते ही सब सुखोप-
। हो जाते हैं, इच्छामात्रसे सारे पितर अथवा प्रिय-
स्थित होते हैं और उनके साथ स्वर्गीय सुखोंका
मिलता है, सदा नवयौवनका आनन्द रहता है।
का कहीं नाम नहीं रहता।

थली आधिभौतिक लोकके मध्य एक आधिदैविक
ान होती है। यज्ञकी वेदी, समिधा, हवि, दर्भ,
त तथा अन्यान्य यज्ञाङ्गभूत उपकरण—सब-के-सब
त होनेके कारण देवत्वमय हो जाते हैं। इस दिव्य
के मध्यमें बैठे हुए यजमान, उसकी पत्नी तथा
ऋत्विक् भी देवत्वमय हो जाते हैं। व्रतके प्रारम्भमें
ग्निकी ओर देखकर व्रत ग्रहण करता है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे
। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।

[illegible]

मैं अनृत अर्थात् मनुष्यत्वसे सत्य अर्थात् देवत्वको
रहा हूँ।' 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—इस न्यायके
अनुष्ठानमें लगनेपर मनुष्यको देवत्वमें परिणत हो
है। इस प्रकार दैवी कर्मानुष्ठानके परिणामस्वरूप
होता है। नास्तिकलोग शङ्का करते हैं कि यज्ञका
स्वर्ग है तो यज्ञोपरान्त तुरंत स्वर्गकी प्राप्ति क्यों
जाती। उत्तर यह है कि कर्म करनेके बाद उसक
बनता है, अर्थात् कर्मकी सूक्ष्म शक्ति अदृष्टरूपमें
होती है। और जब कर्मफल परिपाकको प्राप्त होत
वही अदृष्ट स्वर्ग-प्रदानका हेतु बनता है। यज्ञ
दिव्यकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्गकी प्राप्ति युक्तिसंगत ही

परंतु यज्ञानुष्ठानका अभाव होनेसे हमारी संस्कृति
हानि हुई है और उसके पुनः-प्रसारसे उसकी उन्नति अव
है। संसारके सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोपदेष्टा भगवान् श्रीकृष्ण
अमृतमयी वाणीकी हमने उपेक्षा कर दी है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुव

(गीता ३

प्राचीन कालमें प्रजापतिने यज्ञके साथ प्रजाकी र
यज्ञ और मन्त्रका प्रजाके जीवनके साथ अटूट सम्बन्ध
सृष्टिके आदिसे ही इनका अस्तित्व था, अरबों वर्ष
यज्ञ अनुष्ठित होते आये हैं। प्रजापतिने सृष्टि करके
'यज्ञोंके द्वारा तुम फलो-फूलो, ये तुम्हारी इष्ट
प्रदान करेंगे।'

भगवान्‌की अमृतवाणी और प्रजापतिके प्रथम
को भूलकर हमने बहुत कष्ट उठाये। क्या भारतके इस
स्वातन्त्र्यके साथ यज्ञानुष्ठानका अरुणोदय होगा? 'क
के 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क'से, आशा है, पाठक सांस्कृतिक उ
क्रियात्मक भाग लेनेकी प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

जबतक भारतवर्षमें यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहा,
प्रजा सब प्रकारसे उन्नत और समृद्ध थी। कोई
नहीं था। देवताओंके साथ हमारा पारिवारिक सम्बन्ध
गया था। यज्ञोंके द्वारा परितृप्त देवगण हमारी सारी का
की पूर्ति करते थे। यज्ञ हमारे सामाजिक जीवनका
स्वरूप था; इस जीवनकी पवित्र झाँकी श्रौतसूत्रों,
और आरण्यकोंमें मिलती है। उस दिव्यजीवनकी

आर्य-संस्कृति और पीठविज्ञान

नान समयमें पीठविज्ञान और आर्यधर्मके प्रधान ङ्गोंके रहस्यको अच्छी तरह न समझनेसे अमार्जनीय भूलें भारतखण्डके नेतृवृन्दोंके द्वारा हो रही हैं। उन दूर करनेके लिये एक उदाहरण दिया जाता है। कृतिके अनुसार आर्यजाति सर्वव्यापक दैवी सत्ताकी ोंमें उपासना किया करती है। योगशास्त्रकी मन्त्रयोग- सगुण-उपासनाके आश्रयरूप दिव्य देशस्वरूप लह भेद माने गये हैं। यथा—

। गवां सर्वशरीरजं पयः
पयोधरान्निःसरतीह केवलम्।
। परात्माखिलगोऽपि शाश्वतो
विकाशमाप्नोति स दिव्यदेशकैः॥
ेषु दिव्यदेशाः षोडश प्रोक्तास्तथात्र कथ्यन्ते।
यम्बुलिङ्गवेद्यो भित्तीरेखा तथा च चित्रं च॥
लविशिखैर्नित्ययन्त्रं पीठं च भावयन्त्रं च।
र्विभूतिनाभी हृदयं मूर्द्धा च षोडशैते स्युः॥

र्ात् जिस प्रकार दुग्ध गौके सर्व शरीरमें व्यापक ी केवल स्तनद्वारा क्षरित होता है, उसी प्रकार 5 व्यापक होनेपर भी उनका विकाश दिव्य देशोंमें । दिव्य देश तन्त्रोंमें सोलह कहे हैं; यथा— म्बु, लिङ्ग, स्थण्डिल, कुड्य, पट, मण्डल, विशिख, , भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय । यद्यपि ये सभी पीठ हैं, फिर भी यहाँ 'पीठ' शब्द या है; वह तीर्थके लिये आया है। क्योंकि तीर्थके शेष स्थानमें विशेष-विशेष शक्तिका आविर्भाव माना —जैसे 'भारतवर्ष' शब्द पृथ्वीका बोधक है, किंतु भारत भारतखण्ड अर्थात् हिंदुस्थानका बोध होता है। ारतवर्ष (पृथ्वी) में (हिंदुस्थान) की प्रधानता प्रकार 'पीठ' शब्दसे उपर्युक्त सोलह वस्तुओंका है; किंतु यहाँ 'पीठ' शब्दका अलग प्रतिपादन किया गया है कि जिससे तीर्थोंकी महिमा सूचित र्थ' शब्दसे नगर या ग्रामविशेषसे तात्पर्य नहीं है, स्थानविशेषसे तात्पर्य है। उपर्युक्त दिव्य देशोंमें ; दैवी सत्ताका पीठमें प्राणप्रतिष्ठा करके आविर्भाव ता है—जैसे मूर्तिमें अथवा भावयन्त्रादिमें जिस- ी शक्तिका आविर्भाव प्रबल होता है, पहले न्तःकरणको शुद्ध करके उस पीठस्थानको भी शुद्ध-

पीठमें देवताका आविर्भाव कराना होता है। म पीठाविर्भावके अनेक भेद पाये जाते हैं। वैदि शास्त्रोंमें आकर्षण और विकर्षणशक्तिका जहाँ होता है, वहाँ पीठकी उत्पत्ति होती है—ऐसा माना आकर्षणशक्ति रजोगुणप्रसूत है और विकर्षणशक्ति प्रसूत है। दोनोंका जहाँ समन्वय होता है, वहाँ ही है और उसी सत्त्वगुणमें धर्मकी धारिका शक्तिका होता है, तथा वहाँ ही पीठ बना रहता है। इसी के अनुसार ग्रह-नक्षत्रादि जिस कक्षामें भ्रमण क उस कक्षासे अलग नहीं जाते; वही उन है। समाहित अन्तःकरणकी शक्ति, मन्त्रशक्ति द्रव्यशक्ति—इन तीनोंकी सहायतासे ऊपर कथित दिव्य देशोंमें देवशक्तिका आविर्भाव किया जाता उस शक्तिके लघुत्व और गुरुत्वके विचारसे तत्-तत् वह शक्ति अल्पकालतक या बहुत कालतक विद्यमा है। इसी विज्ञानके अनुसार तीर्थविशेषमें अथवा प मूर्तिविशेषमें दैवी सत्ता बनी रहती है और इसी दैवी अनुसार तीर्थोंमें और मूर्तिविशेषमें विशेष दैवी शक्ति रहती है तथा श्रद्धालु भक्तोंका कल्याण करती है। तारकेश्वर, नाथद्वारा आदि तीर्थों और विग्रहोंमें प्रकारके चमत्कारोंका वर्णन सुननेमें आता है, उस कारण है। नाना पीठोंमें नाना चमत्कारोंका व जाता है, इसका कारण प्रत्येक पीठका अलग-अलग ही है। जैसे व्यक्तिविशेषमें संस्कार-पार्थक्य रहता ही प्रत्येक पीठमें भी अलग-अलग संस्कार रहता है मनुष्यके संस्कारविरुद्ध कार्य करनेसे उसको कष्ट उसी प्रकार पीठके संस्कारविपरीत कार्य होनेसे शक्तिमें धक्का लगता है और पीठाभिमानी देवता होते हैं। इतना ही नहीं, पीठस्थ संस्कारके विरु होनेपर व्यक्ति, जाति तथा देशको भी क्षतिग्रस्त होन है। इसलिये जिस पीठमें जिस तरहका संस्कार पूर्व चला आ रहा है, उसका नाश करना उचित नहीं नूतन स्थापित पीठोंमें नया संस्कार चलाया जाय हानि नहीं। पीठरहस्य और मूर्तिपूजा आदि लिये अपनी मनमानी कल्पनासे काम नहीं करना जैसा कि अंग्रेजी-शिक्षासे शिक्षित नेतृवृन्द किया क दैवी जगत्पर श्रद्धा, वैदिक दर्शनशास्त्रोंका अध्यय मन्त्रशास्त्रका अनुशीलन करनेसे यह बात पूरी तरह

भारतीय संस्कृतिका प्रतीक गायत्रीमन्त्र

(लेखक—पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा महामहोपाध्याय)

देशमें गायत्रीकी गरिमाका गान द्विजातियोंद्वारा
ालसे होता आ रहा है। यह मन्त्र त्रयीमें प्रतिष्ठित
ेदके ३।६२।१०वें मन्त्रमें ऋक्-रूपसे; यजुर्वेदके
वें, ३०।२२ एवं ३६।३२ मन्त्रमें यजुःरूपसे
ेदके उत्तरार्चिकके १३ वें अध्यायके तृतीय खण्डके
े सामरूपसे उपलब्ध है। इस मन्त्रप्रवरके ऋषि
हैं और देवता सविता हैं। अन्यान्य वैदिक मन्त्रों-
यह भी एक मन्त्र है; किंतु गायत्रीछन्दमें ग्रथित
रण यह 'गायत्री' नामसे ही लोकमें विश्रुत हुआ है;
ासे सम्बद्ध होनेके कारण यह सावित्री भी कहलाता
मन्त्रमें तीन पद हैं। अक्षर चौबीस होने चाहिये;
कम होनेसे इसकी संज्ञा[2] निचृद्गायत्री है। तथापि
शब्दको 'वरेणियम्' पढ़कर इसमें चौबीस अक्षर
विद्वानोंकी सम्मति रही है।

त्रीमन्त्रका सुगम अर्थ यह है कि 'हम सब जगत्-
देवताके वरण करने योग्य तेजका ध्यान करते हैं,
बुद्धियोंको प्रेरित करे।'

तिके साम्राज्यमें बुद्धिकी सत्ता सर्वशिरोमणि है।
ंगियोंको इसीकी कुशाग्रतासे त्रिवर्गकी प्राप्ति सुलभ
है एवं निवृत्तिमार्गियोंको इसीकी निर्मलतासे
वी भी अनायास मिल जाती है। दोनों मार्गवाले
नने भावनानुसार परमात्मासे प्रेरित-बुद्धि होकर
व लाभ करते हैं।

मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी पञ्चमुखी और दशभुजा
आराधकोंकी सकल कामनाओंकी पूरिका हैं।

तपथ ब्राह्मण[3] और तैत्तिरीयारण्यकमें भी गायत्रीकी चर्चा
है। उपनिषद्में भी इसकी उपासना है। छान्दोग्य
२।१) का वचन है कि यह जो कुछ है, सब गायत्री
गायत्रीके चमत्कारसे प्रभावित होकर ऋषि-मुनियोंने

गायन्त त्रायते। (निरुक्त)
ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ। (पिंगलसूत्र)
गायत्र्यस्येकपदी इत्यादि।

इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। आदिकवि वाल्मीकि
रामायणके चौबीस सहस्र श्लोकोंकी रचना गायत्री
वर्णोंको लेकर की; वेदव्यास कृष्णद्वैपायनने अप
मुकुटमणि श्रीमद्भागवत महापुराणमें गायत्रीका वर्ण
तथा दर्शनशिरोमणि वेदान्तदर्शनने[1] गायत्रीद्वारा पर
प्रतिपादनको सिद्ध किया। मनु महाराजकी सम्म
तीन वर्षोंतक सावधान होकर गायत्रीका जप क
जापकको परब्रह्मकी प्राप्ति होती है[2]। इस मन्त्रको ज
प्रणव और तीन व्याहृतियोंको भी मन्त्रसे पूर्व
सनातन सम्प्रदाय है। प्रणव परमात्माका आदिम
जिसका अर्थ है 'रक्षा करनेवाला'। तीनों व्या
अर्थात्[4] भूः-भुवः-स्वः का क्रमशः अर्थ है सत्-चित्-
प्रपन्नरक्षाविचक्षण सच्चिदानन्द जगदुदयलील प
ध्यान करते हुए गायत्रीका जप करनेवाले साधक वि
होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

परमात्माका ध्यान अभेद-भावनासे भी कि
है और भेद-भावनासे भी। अभेदवादी विद्वान् ज
भेदको अविद्याजनित मानते हुए अभेदको ही तात्त्वि
हैं और गायत्रीके जपके समय इसी वृत्तिको लेकर ब्र
परायण होते हैं[5]; एवं भेदवादी भावुक भक्त

१. छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदा
दर्शनम्। (वेदान्तसूत्र १।१
गायत्र्याख्यच्छन्दोद्वारेण तदनुगते ब्रह्मणि चेतसो
समाधानमनेन ब्राह्मणवाक्येन निगद्यते। (शां

२. योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रि
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिम
(मनुस्मृति

३. तस्य वाचकः प्रणवः। (

४. भवतीति भूः सत्। भावयतीति भुवः चित्। स्व
इति स्वः।

यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्
अभिलाषोपनीतं यत्तत् सुखं स्वःपदास्पदम्।

ार्द मानते हुए उपास्यदेवकी ध्यानमयी उपासनामें हैं। वे—

: सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
वान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

इस श्लोकके अनुसार आदित्यके अन्तर्यामी, कमला-कटक-कुण्डल-किरीट-केयूर-विभूषित, हार पहने शङ्खचक्र-धारी, पीताभ, परमात्मा श्रीमन्नारायणका ते हुए गायत्रीका जप करते हैं।

ृति वही उज्ज्वल है, जिसमें मानवमात्रको ऐहिक अभ्युदयका लाभ हो तथा आमुष्मिक आनन्द या की प्राप्ति हो। भारतकी संस्कृतिकी मूलभित्ति थी संसारके अर्थमय एवं काममय सुखमें संयत प्रोज्ज्वलता लाता हुआ अन्तमें जीवको परमानन्द करा देता था। गायत्री उसी संस्कृतिका प्रतीक है।

निरीश्वरवादमें बनी हुई अच्छी-से-अच्छी मनुष्यको भौतिकताके गर्तसे बाहर नहीं निकाल प्राचीन वैदिक संस्कृतिमें ईश्वरवाद ओतप्रोत था। कालीन ऋषि-मुनि उस जगत्प्रसवित्री शक्तिके सम्मु मस्तक होकर अपने कल्याणकी कामना करते थे। जैसे अपनी बुद्धिको ईश्वराधीन कर दिया हो।

आज राजनीतिके आकाशमें ईश्वरपराङ्मुखताकी प्रेरित अविश्वासकी घटाएँ घिर रही हैं, जिनसे अ वर्षाकी आशंका है। संस्कृतिकी रक्षा चाहनेवालों सामूहिकरूपमें गायत्रीजपका आयोजन कराना चाहिये परिणामस्वरूप मङ्गलमय श्रीभगवान् देशकी बुद्धिको प्रेरित करें।

गायत्रीका स्वरूप और मूर्ति

(लेखक—डा० श्रीमहानामव्रतदास ब्रह्मचारी एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

ायत्री छन्दसामहम्' (श्रीगीता १० । ३५)

ख्यात जर्मन दार्शनिक इमैन्युएल काण्ट (Im-l Kant) साहबने गम्भीर तत्त्वों और विचारोंसे रे ग्रन्थ प्रणयन करनेके बाद उपसंहारमें कहा है संसारमें दो वस्तुओंको देखकर मुझे भय लगता है; क है 'नक्षत्रखचित आकाश' (Starry Heaven), रा है 'विवेककी अनुभूति'—सदसद्का अन्तर्ज्ञान (Conscience)."

दोनों वस्तुओंसे उनको भय क्यों होता था, इसका काण्ट साहबने बतलाया है। उन्होंने कहा है कि रातमें जब मैं नक्षत्रखचित आकाशकी ओर देखता हूँ तो मेरा मन कहता है कि 'कौन हो तुम महा पुरुष, जो इस अगणित सृष्टिमय विश्व-ब्रह्माण्डका कर रहे हो? जिस प्रकार बालक गेंद खेलते हैं, उ खेल-खेलमें तुम अनन्त ब्रह्माण्डोंको अपने-अपने क रहे हो। तुम कितने महान् हो, कितने विराट् हो तुम्हारे सामने मैं कितना क्षुद्र हूँ! कितना क्षुद्राति कीटादपि कीट हूँ।' यह सोचते ही मन विस्मयाविष्ट है, और भय लगता है। उसकी महत्ता और अपनी के बीच जब इतना विशाल व्यवधान पाता हूँ, त अभिभूत हुए बिना मैं नहीं रह सकता।'

दूसरी वस्तु, जो काण्ट साहबके लिये भयज

अ) भेदव्यपदेशाच्चान्यः (वेदान्तसूत्र १ । १ । १७) । (आ) भेदव्यपदेशात् (वेदान्तसूत्र १ । ३ । ५) ।

अ) य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते (छान्दोग्य०) । (आ) अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् (वेदान्तसूत्र १ । १

इ) अन्तः आदित्य······यः पुरुषः प्रतायते स जीवादन्यः परमात्मैव (श्रीभाष्य) । (ई) सवितृमण्डलादिषु विशेष स्थितः पर ईश्वरः (वेदान्तसूत्र ४ । ४ । १८ पर शांकरभाष्य) ।

त्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरणं मुक्तिश्च (ऋक्परिशिष्ट) ।

है अन्तरमें विवेककी वाणी या अन्तर्यामीका अनुभव। ध्यमें वे कहते हैं कि "मैं जब कोई अनुचित कार्य तब मानो कोई मेरे भीतरसे बिजली-सा कड़ककर कि 'तुम यह अनुचित कर रहे हो!' तब सोचता कौन है, जो मेरे ही भीतर रहता है पर मुझसे बड़ा है, कुम चलाता है, मेरे विचारोंके ऊपर अपनी राय उसकी बातें स्पष्ट सुनायी पड़ती हैं, उनमें ननु-नच सकी बातोंमें एक कठोर (Imperative) अनुशासन झको अपने आदेशके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त करनेके करता है। उसकी इस सुस्पष्ट आदेश-वाणीको नता हूँ, तब भय लगता है। मुझे जैसा बनना ा, वह उसे बतला देता है। तब मुझे जैसा वत था और मैं जैसा कुछ बन गया हूँ, उस आदर्श) और यथार्थ (Actual) के बीच जो व्यवधान री आँखोंके सामने आ जाता है। वह व्यवधान ा है कि उसका विचार करते ही मेरे प्राण भयके हो जाते हैं। आदर्शकी अपेक्षा मैं कितना नीचे ा छोटा हूँ—इसका विचार करते ही मैं भयभीत हूँ।"

के बाद काण्ट साहब कहते हैं कि 'मालूम होता है ये तुएँ यथार्थमें दो नहीं हैं। नक्षत्रखचित आकाशके में जो शक्ति है और मेरे भीतर छिपी हुई जो शक्ति है, वे दोनों मेरे मन एक ही जान पड़ती ट कहते हैं कि 'ये दोनों शक्तियाँ एक हैं, ऐसा मेरा होता है। परंतु निश्चयपूर्वक ठीक-ठीक कह नहीं क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। ऐसी नहीं कि किसी दिन इसका प्रमाण मिल जायगा।'

ट साहबकी इस उक्तिके समान उच्च तत्त्वज्ञान र्शनमें अधिक नहीं है—यों कहें तो अत्युक्ति न श्चात्त्य विचारकोंकी आध्यात्मिक गवेषणाकी सीमान्त- आकर विलीन हो जाती है। अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक हबकी आध्यात्मिक गवेषणाके साथ भारतीय आर्य- ी गम्भीर अनुभूतिका एक विशेष सादृश्य दिखलायी

र्य-संस्कृतिके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ वेद हैं। वेदका सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म-गायत्री। इस गायत्री-मन्त्रमें ही आर्य-ऋषि-

है, भारतीय ऋषियोंने गायत्री-मन्त्रमें भी उसी चरम बात कही है। उन्होंने कहा है कि 'भूः, भुवः, स्वः चतुर्दश भुवनात्मक इस समस्त ब्रह्माण्डके जो प्रसवित हैं, उनकी वरणीय ज्योतिका हम ध्यान करते हैं। व हैं? उनके साथ हमारा सम्बन्ध क्या है? वे हमारी प्रचोदयिता अर्थात् प्रेरणकर्ता हैं। जो ब्रह्माण्डके चाल ही हमारी बुद्धिके चालक हैं।'

काण्टके साथ वैदिक ऋषिकी अनुभूतिका य और दोनोंमें पृथक्ता भी है। वह यह है कि क कहा है कि दोनों वस्तुएँ एक ही हैं, यह उनका अन् है, वे निश्चय करके कुछ भी नहीं कह सकते। भारत कहते हैं कि दोनों एक हैं, इस बातको हम सुनिश् जानते हैं। 'वेदाहमेतम्'। हमने उनको देखा है। अ उस पार उस परमज्योतिकी सत्ताका हमने प्रत्यक्ष कि हमारे ज्ञानमें सन्देह, भ्रम और प्रमाद नहीं है; क्यों साथ एकात्मता प्राप्त करके हमने उसको अपरोक्ष अ जाना है।

काण्टकी बात और भारतीय ऋषियोंकी बा पृथक्ता नहीं है। एकके लिये सत्य अनुमानमा ference) है, और दूसरेके लिये अनुभूति (R tion) है। काण्टके लिये सत्य-निर्णयका पथ है—R या तर्क-वितर्क। आर्य-ऋषियोंके लिये सत्यानुभूतिका साधना या तपस्या। तर्क-वितर्क तो केवल बुद्धिका साधना समस्त जीवनका कार्य है। तर्क-वितर्कसे आंशिक ज्ञान होता है, और साधनाके द्वारा सत्य तादात्म्य लाभ होता है। इसी कारण पाश्चात्त्योंका सत्या खण्ड-खण्ड (Fragmentary) है, और ऋषियोंकी तत्त्वानुभूति समग्ररूपमें, सामग्रिक (Integ

भारतीय ऋषिकी परम तपस्याका चरम फल ब्र है, जो ऋक, साम और यजुः—तीनों वेदोंमें उद्घोषित लेकर समस्त उपनिषद्की साधना चलती है, आज कोटि-कोटि हिंदू नर-नारी जिसके जप-ध्यानमें निम प्रतिदिन नित्यकर्मका अनुष्ठान करते हैं। इसीसे परम धन है—ब्रह्मगायत्री, देवी वेदमाता।

गायत्री-मन्त्रमें तीन वस्तुओंका पता लगा

ोनोंका प्रचोदनात्मक सम्बन्ध । एक अनन्त ब्रह्माण्ड-
है, दूसरा व्यष्टि जीवका जीवन-केन्द्र है और तीसरा
के बीच प्रणोदन अर्थात् प्रेरणामूलक आन्तर सम्बन्ध
तीन तत्त्वोंके ऊपर ही विश्वके समस्त दर्शन और
ातिष्ठित हैं । भारतीय शास्त्रोंके समग्र अनुशीलनका
ह ब्रह्मगायत्री। इसी कारण भगवान् श्रीमुखसे कहते हैं
ोंमें मैं गायत्री हूँ' (गायत्री छन्दसामहम्) ।

के दो रूप हैं—एक निर्गुण और दूसरा सगुण । एक
 (Abstract) और दूसरा वस्तुनिष्ठ (Concrete) ।
दो मिलकर चार होते हैं, यह गणितशास्त्रका एक
त्य है । और दो वस्तुएँ तथा दो वस्तुएँ मिलकर
ुएँ हो जाती हैं—यह व्यावहारिक जीवनमें वस्तुनिष्ठ
्य है । इन दोनों रूपोंके द्वारा सत्यका पूर्ण विकास
सत्यकी इस सम्पूर्णताकी अनुभूति भारतीय ऋषियों-
हुई, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं हुई ।

क साधनामें गायत्री-मन्त्रका निर्गुण स्वरूप तो प्राप्त
। अब उसकी सगुण—सविशेष मूर्ति चाहिये ।
 जीवनमें जबतक उसकी वस्तुनिष्ठ मूर्ति प्रकट नहीं
बतक सत्यका पूर्ण दर्शन सिद्ध नहीं होता । वह मूर्ति
है—कुरुक्षेत्रके युद्धक्षेत्रमें ।

घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर भगवान्‌ने अर्जुनकी
बागडोरको हाथमें लिया, तब ऋषियोंने देखा कि
ोंके समान 'दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता'
अङ्गज्योति है, वही वरणीय-भर्ग पुरुष आज
बुद्धिके प्रचोदयिता हैं । यहीं गायत्री-मन्त्रकी
सगुण मूर्ति प्रकटित है । महाभारतमें, भारतसमरके
में यह मूर्ति प्रकट होती है । भारतीय नर-नारीके
रके मध्यस्थलमें भी यह मूर्ति विराजमान रहे, यही
षियोंकी शिक्षा है । जिसके जीवन-समरके मध्यमें यह
 है, वही यथार्थ भारतीय है । वही महाभारतका—
ारतका सार्थकनामा नागरिक है ।

ीमान् गायत्रीमन्त्रको हम प्रणाम करते हैं—

न्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये ।
मुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥

मन्त्रके ज्ञानमय प्रदीपको जिन्होंने प्रज्वलित कर

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्र नेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥

गायत्रीमन्त्रकी मूर्ति देखी गयी, अर्जुनके
प्रचोदनाका फल हुआ—सप्तशतश्लोकमयी गीता ।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृत

ऋषिगण पुकार उठे—'किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः'
व्यासने भी सोचा—ठीक तो है, गीता मिल गयी है,
शास्त्रोंके विचारकी आवश्यकता ही क्या ? यों विच
सरस्वती नदीके तीरपर जाकर ध्यान करने लगे; परंतु
मन नहीं लगता, मानो कोई कार्य शेष रह ग
वे स्वयं कुछ निश्चय नहीं कर सके । श्रीमद्भगवद्गी
हो गयी, फिर कौन-सा काम बाकी रह सकता है ? वे
साधनाका अन्त हो गया, फिर भी चरम तत्त्वकी प्र
हुई। इसीलिये भगवान्‌की कृपाशक्ति देवर्षि नारदका
करके आयी । चरम सत्य साधन-लब्ध वस्तु नहीं है,
कृपालब्ध धन है ।

देवर्षि नारदने महर्षि वेदव्याससे कहा—'आपके
शान्ति क्यों नहीं है ? जान पड़ता है आप इसका का
समझ सके हैं । गायत्रीमन्त्रकी जो परमातिपरम मूर्ति
अबतक जगत्‌को नहीं दिखलायी गयी ।' महर्षिने
बात नहीं समझी । तब देवर्षिने समझाकर कहा—

"ब्रह्मगायत्री-मन्त्रमें यह तथ्य है कि 'वे हमा
प्रेरित करते हैं ।' परंतु किस ओर करते हैं और कि
करते हैं—इसका कोई उल्लेख नहीं है । समझना च
वे सर्वोत्तम उपायोंसे तथा सर्वश्रेष्ठ दिशामें ही प्रेरि
हैं । वे अर्जुनकी बुद्धिको सञ्चालन करते हैं—उपदेशके
बलपूर्वक या कानून बनाकर सञ्चालन करनेकी
उपदेशके द्वारा सञ्चालन करना श्रेष्ठ है; परंतु यह
नहीं है । निर्मल विशुद्ध प्रेमके द्वारा जो कर्म-प्रवर्त
है, वह उपदेशकी अपेक्षा भी सौगुनी अधिक उ
कार्यकारी है । उपदेशके द्वारा होनेवाली प्रेरणामें कु
भाव है । प्रेमके द्वारा जो प्रेरणा होती है, वह
आन्तरिक होती है । उपदेशका आवेदन (ap
विचार-शक्ति (thinking) के ऊपर होता है ।
आवेदन (appeal) भावनाशक्ति, इच्छाशक्ति,

जीवनके ऊपर होता है । इसी कारण यह
थापक और निबिड़ होता है ।

हुई सर्वोत्तम उपायकी बात; अब यह निर्धारण
कि सर्वश्रेष्ठ दिशा क्या है । अर्जुनकी बुद्धिका
भगवान्‌ने किया था कर्तव्यकी ओर, स्वधर्मकी
ह श्रेष्ठ दिशा तो है, परंतु सर्वश्रेष्ठ दिशा नहीं है ।
ग़ामें वे ऐश्वर्य-माधुर्यकी पराकाष्ठाके रूपमें स्वयं—
वेराजमान हैं, वही दिशा सर्वश्रेष्ठ दिशा है । परम
विशुद्ध प्रेमके द्वारा किसीके जीवनको प्रचोदित
. अपने असमोर्ध्व स्वरूपकी ओर चलाते हैं, तभी
त्र पूर्णाङ्गरूपमें मूर्तिमान् होता है ।

क्या कहीं हुआ है ? महर्षि वेदव्यासकी यह
इच्छा समझकर श्रीनारदजीने कहा—'हाँ,
क्यों, क्या आप नहीं जानते कि वृन्दावनमें यमुनाके
ग लीला हुई है ? जिस दिन केवल विचारमय
द्वारा नहीं, बल्कि प्रेममयी मुरलीके द्वारा व्रज-
जीवन-यौवनको, किसी धर्म-कर्म या कर्तव्यकी ओर
: समस्त धर्मकर्मोंकी ओरसे हटाकर (सर्वधर्मान्
) अपने सर्वातिशायी माधुर्यकी ओर दौड़ाया गया था,
। गायत्रीमन्त्रने पूर्णाङ्गता प्राप्त की थी ।'

व्यासने नया प्रकाश प्राप्त किया । यह परम और चरम
नकी अपनी साधनाका फल नहीं था, परम कृपाका
। कृपाके बिना इस प्रकाशके राज्यमें प्रवेश करनेकी
केसीमें भी नहीं है । कृपाशक्तिसे शक्तिमान् व्यासने
नव-प्राप्त सत्यको रूप प्रदान किया श्रीमद्भागवतमें ।
नौ स्कन्धोंमें भूमिका लिखकर दशम स्कन्धकी
रासपञ्चाध्यायीमें ब्रह्मगायत्री-महामन्त्रको सर्वाङ्गीण मू
की । इसीलिये तो श्रीमद्भागवतको कहा गया है—

गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहित

श्रीमद्भागवतको प्राप्तकर ऋषिवर्ग आनन्दसे
होकर पुकार उठे—

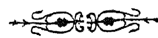
राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सताङ्ग
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम

सारे पुराणोंका आदर तभीतक है, जबतक भ
साक्षात्कार नहीं होता । केवल सारे पुराण
नहीं—सारे धर्म-कर्म, साधन-भजन, राष्ट्र, समाज,
नेतृत्व, कर्तृत्व, पाण्डित्य—सबका तभीतक आदर है
यह मुरलीमनोहर मुरलीकी तानसे बुद्धिको प्रचो
करता ।

श्रुति, स्मृति और पुराण—यही हिंदू-संस्कृति
है । श्रुतिमें ब्रह्मगायत्री निर्गुण है । स्मृति (भगव
ब्रह्मगायत्री सगुण मूर्तिमें प्रकटित है । पुराण (श्रीम
में ब्रह्मगायत्री अप्राकृत गुणातीत भूमिकामें नित्य
मूर्तिमें विराजित है । यही भारतीय संस्कृतिका सर्वस्व

यदि कोई पूछे कि 'आप क्या समस्त भारतीय
साधनाकी बात एक वाक्यमें बतला सकते हैं ?' तो
दूँगा कि 'हाँ, बतला सकता हूँ ।' यह संस्कृति
(Synthetic whole) जो है । इसीसे
लाखों-लाखों वाक्योंमें नहीं व्यक्त की जा सकती, वह
वाक्यमें व्यक्त की जा सकती है—

ॐ भूः भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ ॥





मुसकान लगी

(रचयिता—पं० श्रीरूपनारायणजी चतुर्वेदी 'निधिनेह')

केते प्रभात लखे नहिं आजु लौं, पै जा प्रभातकी काह कहौं छबि ।
कूजत कोकिल कीर कपोत, लसैं नभमें जु नए उनए रबि ॥
देखि उदीची प्रभा कमनीय कुबेरके दंत गई अँगुरी दबि ।
ह्वै गयो सोर दिगन्तके अन्त लौं, भक्ति सौं देवन सीस गए नबि ॥
अवलोकि निसा अवसान अली मन कंज कली खिलि जान लगी ।
लहरान लगी अति सीतल पौन, सुगंध पटी फहरान लगी ॥
चहुँ ओरन मोद पमोद लगो नव ज्योति भली जगि जान लगी ।



सन्ध्योपासना और ब्रह्मविद्या

(लेखक—पं० श्रीश्यामसुन्दरजी झा न्याय-वेदान्ताचार्य)

विषय अति गहन किंतु उपयोगी है। आर्योंके सर्व-ात्मक कर्मका नाम सन्ध्योपासना है। इसकी भावना, शब्दशक्तिका भी विचार करना महत्त्वपूर्ण है। रमे राजविद्या, अध्यात्मविद्या आदि नामसे व्यवहृत सर्वविद्याओंकी माता महाविद्या है। अतएव इसके वेशालताके विषयमें कहनेकी जरूरत नहीं है। जो र्वभावनाओंके बीजभूत संस्कारोंके प्रेरकरूपसे आज शिष्टजनोंद्वारा उपासित है और उपनिषद्गम्य विद्या-ईश्वर, गुरु तथा शास्त्रके प्रसादसे मुमुक्षुजन जिसके तत्त्वको जानकर अपने जीवनको सर्वथा कृतकृत्य कर उस पुण्यकर्म और महाविद्याकी महाकक्षामें क्या नहीं। यहाँ इन दोनोंका दिग्दर्शनमात्र विहङ्गावलोकन-रके दोनोंका परस्पर सम्बन्ध दिखानेका यत्किञ्चित् या जाता है।

नयन-संस्कारके अनन्तर द्विजमात्रका अत्यावश्यक कर्म सना है और मुमुक्षुजनोंके लिये परमार्थसिद्धिका साधन ब्रह्मविद्या है। इन दोनोंकी उपयोगिता।

अहरहः सन्ध्यामुपासीत।

श्रुति भगवतीका यह पुण्य विधान है। इस अध्यात्म-के न जाननेवालेको उपनिषद् 'कृपण' शब्दसे वर्णन।

एतदविदित्वा प्रयाति स कृपणः।

ात्मविद्या परम शान्ति एवं परम पुरुषार्थरूप मोक्ष-न्तिक साधन है; तथापि अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना थाध्ययन केवल वाग्विलासार्थ ही सिद्ध होनेसे मोक्ष-हीं हो सकता। सन्ध्योपासना वेदमूलक नित्यकर्म अन्तःकरणशुद्धिका मुख्य साधन है। अतः परम-लम्बी सभी सम्प्रदायोंमें सामान्यरूपसे मान्य है। ाखाभेदसे मन्त्रादि-प्रक्रियामें कुछ भेद अवश्य है, ह पुण्यकर्म सबको सुसम्मत है। स्नान, सन्ध्या, जप, पूजन, आतिथ्य तथा वैश्वदेव—विप्रके इन नित्य षट्-न्ध्यावन्दन सबसे मुख्य है। प्रातःकालसे अहोरात्र-

पर ईश्वरस्मरणादि विहित क्रिया करनेसे सन्ध्योप फल मिलता है।

वर्तमान समयमें ब्रह्मविद्याकी ओर तो साधारण देखी जाती है, किंतु सन्ध्योपासनामें अधिकांश लोग शि दिखलाते हैं। इसके अनेक कारणोंमें एक यह भी आजकल प्राचीन प्रणालीके विरुद्ध कालेजोंमें इतिहासा सदृश ही वेदान्ताध्ययन भी सकलसाधारण बन गः दूसरा कारण यह भी सम्भव है कि विद्या बुद्धिका और कर्मकाण्डमें कर्मकी आवश्यकता है। ज्ञानका सम्बन्ध अन्तर्जगत्के साथ है और क्रियाका बाह्य साथ। ज्ञान पुरुषपर और क्रिया प्रकृतिपर अवलम्बित है। ज्ञान स्वयं-वेद्य और क्रिया प्रत्य है। नूतन शिक्षणसे उत्पन्न वातावरणमें व्यक्ति-स्व की ओर विशेष झुकाव है। अतएव आज्ञापूर्वक क्रिया यदि नित्य हो तथा इसमें आत्मसंयमकी आवश्यकता हो तो इस ओर कुछ उपेक्षावृत्ति हो है। तथापि अन्तर्जगत् तथा बाह्य जगत्में साक्षीरूप ओतप्रोत है। निःश्रेयस-प्राप्तिमें आत्मज्ञानका प्राधान्य अभ्युदय और लोकसंग्रहार्थ सत्क्रियाकी आवश्यक बाह्य जगत्का चित्तवृत्तिमें लय होनेपर क्रियाकी नहीं रहती; पर इससे पूर्व क्रियाकी अपेक्षा है। इ नहीं, सन्ध्योपासनादिरूप सात्त्विक क्रिया तो ज्ञान अधिकारी होनेमें अत्यन्त उपयोगी और चित्तशुद्धिद्वारा शुद्धि-साधनमें भी परम सहायक है।

सन्धिकाल अनेक रीतिसे गहन होता है। मानव-अवस्था-सन्धि विकट होती है। प्रजा-जीवनमें भी संस्कृतियोंका, भिन्न समाजोंका और भिन्न समुदायोंका प्रसङ्ग गहन होता है। सन्धिसमयकी विषमता और इसलिये है कि इन समयोंमें नूतन-नूतन बलोंका प्राकट्य कारण मानवसमाजकी भावना किस दिशामें प्रवाहित यह तत्तत्समय-संयोगसे विदित होता है। अभी अपने पौरस्त्य और पाश्चात्य संस्कृतियोंका सन्धिकाल है।

योपासनामें सावित्रीद्वारा सवितादेवकी उपासना है। इति सविता' अर्थात् जिससे जगत्की उत्पत्ति आदि वह सविता है।

था इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति भिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म। (श्रुति)

जगत्कारणादि ईश्वरकी प्रत्यक्ष विभूति सविता देव तिक शक्तिके महासागर, चरमोत्कर्ष हैं। तेजःपुञ्जके । चैतन्यशक्तिके मानो स्रोतोवाही समुच्चय और प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। सन्ध्योपासनामें मूर्तद्वारा अमूर्त का प्रत्यक्षानुभव करके व्यष्टिमें व्यापक सविता- उपासना सिद्ध की जाती है।

दिन कालसन्धिके समयमें ही सन्ध्या करनेका ऋषि- विधान है। रात्रि-पूर्वाह्णिका, पूर्वाह्ण-पराह्णिका, पराह्ण- और पूर्वरात्रि-परारात्रिका—ये चार मुख्य सन्धिकाल हैं। इन चार सन्ध्याओंमें मध्यरात्रिकी सन्ध्याकी तो योगी तथा मन्त्रसाधक करते हैं। साधारणतया लिये प्रातः, मध्याह्न और सायंकालकी सन्ध्या विहित :सन्ध्यामें रक्तवर्णा, बाला, ब्रह्मदैवत्या, हंसारूढ़ा त्रीकी भावना है। मध्याह्नसन्ध्यामें श्वेतवर्णा, युवती, , रुद्रदैवत्या गायत्रीदेवीकी भावना है। एवं सायं- कृष्णवर्णा, वृद्धा, गरुड़वाहना, विष्णुदैवत्या, सरस्वती- भावना है। इन तीनों सन्ध्याओंमें अनुक्रमसे भूर्लोक, स्वर्लोक तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी भी हैं। सन्ध्यावन्दनमें देवपरायणताद्वारा कालसन्धि संकेत है। इन कालसन्धियोंमें सम्यक् प्रकारसे सविता, सन्ध्या, सगुणब्रह्म अथवा अहंग्रहके उपासकोंकी याँ स्वभावतः पुष्ट होती हैं और इससे अपूर्व मनोबल है। इस विषयमें महाभारतमें जरत्कारुमुनिद्वारा दर्यवती पतिव्रता पत्नीके त्यागका प्रसङ्ग जैसे है, वैसे कमनीय भी है। ईश्वर अपने नैष्ठिक तथा ोंके लिये क्या नहीं कर सकते? सन्ध्योपासनामें प्रधानता तो है ही। परंतु यह नित्यकर्म इतना और उपकारक है कि कदाचित् काल-लोप भी हो भी कर्मलोप नहीं होना चाहिये—ऐसा वेददिदोंका ।

अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः।

[illegible]

दिवा वा यदि वा रात्रौ यदज्ञानकृतं भवे
त्रिकालसन्ध्याकरणात् सर्वं तद्विप्रणश्यति
(याज्ञ

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्

सन्ध्यावन्दन भोगप्राप्तिके लिये नहीं है। वास के शुभाशुभरूप दो प्रवाह हैं। सन्ध्यावन्दनका शुभमार्गमें इसे योजन करनेका है। इस पुण्यक भक्ति और ज्ञान—तीनों योगोंका अद्भुत एवं मनो करण है। आचमन-संकल्प-प्राणायामादिमें क्रियाक उपस्थान और जपादिमें उपासनाका तथा प्रणवादि ज्ञानका तत्त्व विशेषरूपसे दृष्टिगोचर होता है।

सन्ध्योपासनाके लिये प्रशस्त स्थान जलाशय तट, तीर्थस्थान, मन्दिरादि माने गये हैं। ऐसे स्थाने अपना विविध सौन्दर्य और वैभवोंका विशेष विक हुई-जैसे सृष्टिसान्निध्यमें रहती है। ऐसे स्थानकी होनेपर घरपर ही सन्ध्योपासन करना चाहिये।

सन्ध्योपासनामें अनेक मन्त्र हैं। इनमें प्रणव है और गायत्री प्रधान मन्त्र है। प्रणव वेदत्रय, तथा क्रियात्रयका सारभूत एवं वेदोंका सर्वव्यापी, सर्व सनातन बीज है। गायत्रीमन्त्रमें भगवान् सविता भर्गका ध्यान और बुद्धिको सन्मार्गमें प्रेरणा करनेक है। भस्मधारण, संकल्प, प्राणायाम और अघमर्षणा भी शब्दार्थकी अप्रमेय, अद्भुत शक्तिके निवास ये मन्त्र बहुधा वेदविभूतियाँ ही हैं। वेद अव्यक्त व्यक्त स्वरूप है। प्रातिभासिक परमाणुओंके नृत्यका रास श्रुतिभगवतीके बीजरूप प्रणवके एक देशमात्रक है। सन्ध्योपासनामें योग्य देश, काल, क्रिया और इस तरह विनियोग है कि इसके सम्यक् प्रयोग करणकी निर्मलता, जीवनकी विशुद्धि, भावनाओंक और ज्ञानसिद्धिकी योग्यताके साथ-साथ आयुकी होती है।

सन्ध्योपासनामें प्राणायाम भी मुख्य वस्तु है। तीन प्रकारके हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक। इसमें को नियमित करनेकी प्रक्रिया है। नाभिकमलमें शेषशायी

करके वामपुटद्वारा श्वास खींचनेसे पूरक होता है। ो नाभिसे उत्पन्न कमलपर चतुर्मुख ब्रह्माका हृदयदेश- करते हुए उक्त जपपूर्वक मध्यम-अनामिका अंगुलियों- को भी बंदकर श्वास रोकनेसे कुम्भक होता है। में साम्बशिवका ध्यान करते हुए उक्त जपपूर्वक टद्वारा श्वास उतारनेसे रेचक होता है। नाभि, हृदय ट क्रमसे सत्त्व, रज और तमोगुणके स्थान हैं। अतः धान देवका तत्तत्स्थानमें ध्यान करनेकी विधि है। र तीन बार करनेसे नौ प्राणायाम हो जाते हैं। ो प्राणिमात्रके शरीरयन्त्रमें घटीयन्त्रके सदृश अमुक के लिये एक ही बार प्राणवायुकी चाभी भर दी है। ायुका श्वास-क्रियाद्वारा नियमित व्यय होनेसे नियत ोग होता है, अधिक व्ययसे आयु घट जाती है प व्ययसे दीर्घ आयु होती है—इसमें तनिक भी ीं। अतएव ऋषि-महर्षिगण प्राणायामके द्वारा प्राण- रोककर समाधिस्थ हो जाते थे और दीर्घकाल- च्छित आयु भोगते थे। आज भी इने-गिने ऐसे हैं; वाहें आज भी इस प्रक्रियासे मर्त्यायुका अतिक्रमण कर । सन्ध्यो (ईशो) पासनाके त्याग और अनियमित र्या होनेके कारण ही आज भारतीय प्रजाकी आयु क्षीण होती जा रही है।

ब्रह्मविद्याका कुछ दर्शन करें। जो इस चराचर जगत्का है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् दृश्यमान हो रहा ो देश-काल-वस्तुसे अबाधित और सजातीय, विजातीय त-भेदसे रहित है, उस आत्मतत्त्वका निरूपण करने- द्याको ही राजविद्या अथवा ब्रह्मविद्या कहते हैं। यह त्त्व कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रियसे अप्राप्य होकर भी न्न अधिकारीके लिये सुप्राप्य है—

ाचानभ्युदितम्;' 'यन्मनसा न मनुते;' 'दृश्यते बुद्ध्या;' 'मनसैवेदमाप्तव्यम् ।' (श्रुति)

विद्याकी प्राप्तिके लिये अधिकारविशेष अपेक्षित विषयमें कुछ महानुभाव विचित्र और अविचार- ाङ्का किया करते हैं; किंतु भलीभाँति विचार करने- स्पष्ट ज्ञात होता है कि हृदयस्पर्शी, आदर्शस्पर्शी ारित्र्यस्पर्शी ज्ञानके प्रति प्रधान साधन अन्तःकरणकी [illegible]

क्यों न हो ? हृदय-परिवर्तनके साथ-साथ जहाँ द होने लगता है, वहाँ गुणोंकी प्रतीति भी होने लगती राजर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षिपदके योग्य बन जाते हैं। वस्तुत तत्त्व नित्य प्राप्त है; अतः इसकी प्राप्ति वैसे ही होती गलेमें पड़े हुए परंतु भूले हुए हारकी स्मरण आते हो जाती है। इसलिये यह बड़ी सहज है। तथापि द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि और भक्तिके द्वारा एकाग्रता हुए बिना ऐसा सम्भव नहीं । क्योंकि अचिन्त्य मायाशक्तिकी विभूति रूपा विद्याके आवरणसे जगत्का ज्ञान आच्छादित है। मानव-जीवनका परम मोक्ष है। ज्ञानसे मोक्ष होता है। ज्ञानके साधन ि तथा एकाग्रता हैं और चित्तशुद्धि तथा एकाग्रताक तथा प्रबल साधन सन्ध्योपासना है। चित्तरूपी वृक्षके प्रा और वासना—ये दो बीज हैं। दोनों अथवा एक निरोध हो जानेपर चित्त-वृक्षका उद्भव ही नहीं है प्राणस्पन्दनका नियमन हठयोगमें और वासनाका राजयोगमें परिगणित है। सन्ध्योपासनामें प्राणाय निष्कामताका अवलम्बन होनेसे इसमें दोनों सङ्कलन है।

सन्ध्योपासना ब्रह्मविद्याप्राप्तिका सहज साधन ह ही नहीं, किंतु सन्ध्या, सावित्री तथा ब्रह्मविद्या जगज्जननी जगदम्बा भगवतीके स्वरूपभूत ही हैं—

'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी
'त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी पर

विचार तथा शास्त्रदृष्टिबिन्दुसे सन्ध्या, सावि ब्रह्मविद्यामें आधिदैविक एकता है। जैसे सन्ध्योपास शुद्धि और शान्ति मिलती है, वैसे ही ब्रह्मविद्यासे दे गलित होता है—'यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र स ऐसी धन्य अवस्थाकी प्राप्ति होनेसे हृदयग्रन्थि टूट समस्त संशय विलीन हो जाते हैं और सारी शिथिल हो जाती है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराव

पाठक इससे समझ गये होंगे कि सन्ध्योपा ब्रह्मविद्याका पारमार्थिक तथा लाक्षणिक ऐक्य है। [illegible]

नामें चित्तशुद्धिके लिये अनेक शक्तियोंका विनियोग है। मार्जन, अघमर्षणादिमें भावशक्ति; गायत्री-जप, नादिमें मन्त्रशक्ति; आचमन, भस्मधारणादिमें एवं प्राणायामादिमें क्रियाशक्तिका विनियोग करके सेद्ध करनेकी योजना इस पुण्यकर्ममें स्पष्ट व्यक्त होती अपूर्व शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इसके नित्य एक प्रकारकी आत्मश्रद्धाके साथ मनमें प्रभु-श्रद्धा होती है। वर्तमान समयमें धार्मिक क्रियाकी क्षा तथा आक्षेप साधारण बात हो गयी है; इसमें प्रतीत होती है। तथापि उपनीत द्विजमात्रको शिखा-सूत्र-सन्ध्या और द्विजेतरको शिखा-ईश्वरस्म उपासनाका रहस्य जानकर अपने-अपने परमहितमें त सर्वथा उचित है। भारतके लिये यह सन्ध्याका अतएव इस समय सबके लिये यथाशक्ति ईश्वरोपास परम आवश्यक है। आदर्श भारतीय देशका दैवत आदर्श महान् है। इसमें विलासिता, मान-सम्मान तथा अर्थलोलुपतादिको अवकाश नहीं है। इस नित्य नियमित सेवन करनेसे कुल, धर्म, देशके अभ्युदयके साथ ही दुर्लभ ब्रह्मविद्याकी भी प्राप्ति शिष्ट पुरुषोंका अनुभव इसमें साक्षी है।

हिंदू-संस्कृति और नवमतवाद

(लेखक—डा० श्रीसदाशिव कृष्ण फड़के)

नवमतवादी और सनातनी विद्यार्थियोंका संवाद

मार्गे निर्मलं ब्रह्मवृन्दं
वृन्दे वृन्दे तत्त्वचिन्तानुवादः।
वादे जायते तत्त्वबोधः
बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः॥

संस्कृति और नवमतवादका परस्पर संघर्ष दिनों-ा जा रहा है। देशके विद्वानोंमें इस समय तीन पक्ष ते हैं—(१) कट्टर नवमतवादी, जो हिंदू-संस्कृतिका षेध ही किया करते हैं; (२) मध्यम सुधारक का यह कहना है कि भारतीय संस्कृतिका मूल-त्यन्त उदात्त है, पर दुराग्रही सनातनियोंने अपने क सम्प्रदायोंके द्वारा उसका रूप बिगाड़ दिया है। , चूल्हा-चौका, जप-तप, सन्ध्या-पूजा, वर्ण-भेद, , खान-पान और व्याह-शादीके विधि-निषेध, व्रताचरण—एवंविध अदृष्टफलक और अन्धश्रद्धेय ो ही जो वे भारतीय संस्कृति मान लेते हैं, यह है। यथार्थमें सोवियट रूसका साम्यवाद, नवमतवाद वतावाद ही प्राचीन भारतीय संस्कृतिका परिणत । भारतीय संस्कृतिके सूचक समता, अद्वैत, मोक्ष पारिभाषिक शब्दोंके वास्तविक अर्थ प्रत्यक्ष और क हैं। सनातनियोंने उनपर पारमार्थिक अर्थ लादकर ऐहिक व्यवहारका ही नाम है। अदृष्ट धर्म अथवा तत्त्व-ज्ञानके साथ उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं विवेचनकी पुष्टिमें सुधारकलोग शास्त्रों और संतोंके दिया करते हैं। (३) तीसरा पक्ष सनातनियोंका है यह कहना है कि हिंदू-संस्कृति हिंदू-धर्मसे कोई भि नहीं है। हिंदू-धर्मका रहस्य अत्यन्त गूढ़ है। अत संप्रदायकी परम्परा और विहित-कर्मानुष्ठानसे ही जाता है। हिंदू-धर्म-संस्कृतिके सब विधि-नि विवेकसे ही सुनिश्चित किये गये हैं। आप्तवचन प्रमाण हैं। 'आचारप्रभवो धर्मः' यही हिंदू-धर्मका है। विशुद्ध भारतीय संस्कृतिको नवमतवादका रंग आधुनिकोंने विशुद्ध वैदिक संस्कृतिकी छीछालेद आरम्भ किया है। जिन शास्त्रों अथवा संत-वाणि लोग समग्ररूपसे नहीं मानते, उन्हींके कुछ संदर्भहीन प्रमाण देकर ये अपने मतोंकी पुष्टि किया करते हैं यह सर्वथा अप्रामाणिक व्यवहार है। सनातनियोंकी साधक दृष्टिसे ही शास्त्रका रहस्य निश्चितरूपसे सकता है। आधुनिकोंकी व्यभिचारी भ्रमरवृत्तिसे वि पूर्ण सत्यका पता चलना असम्भव है। अर्धसत्य अस अधिक भ्रामक होता है। अतः भारतीय संस्कृतिका

हते हैं, उसी प्रकार भारतीय संस्कृतिको अव्यवहार्य
पनिक मानवतावादके शब्दाडम्बरमें समाप्त कर देंगे।

विवादग्रस्त परिस्थितिमें एक कालेजके मुख्याध्यापकने
शिक्षाके तुलनात्मक विचारको प्रोत्साहित करनेके
ने कालेजके दर्शनशास्त्राध्यायी विद्यार्थियों और
परम्पराके वेद-शास्त्रविद्यापीठके स्नातकोंके बीच एक
ने कालेजमें पूर्वोत्तर-पक्ष-चर्चा (डिबेट) करायी।
शुद्ध सात्त्विक और व्यक्तिनिरपेक्ष हो और इसलिये
रके वक्ता सर्वथा निःसंकोच होकर खुले दिलसे
रें—इसकी सूचना मुख्याध्यापकने पहलेसे सबको दे
। विषयान्तर्गत विवादकी प्रत्येक बातकी चर्चाके
धक-से-अधिक दस मिनटका समय दिया गया था।
न्तिके साथ हुआ और बहुत उद्बोधक रहा। उसी
कुछ मुख्य पूर्वोत्तर पक्ष आधुनिक और सनातनीके
ाथ आगे दिये जाते हैं।

(१) धर्मातीत राज्य

ुनिक—हमारे देशमें धर्म-भेदोंके कारण बहुत बड़ी
ो रही है। इसलिये धर्मातीत राज्यका होना ही हम-
लिये इष्ट है। वर्तमान बुद्धिवादी जगत्में ऐहिक,
दृष्टि और मानवतावादको ही बढ़ानेवाली हमारी
होनी चाहिये।

तनी—धर्मसे किसीकी हानि नहीं हुआ करती।
ती है धर्मके विपर्याससे। धर्म वस्तुस्वभाव है।
का धर्म ही उस वस्तुका विशेषत्व है। इस विशेषत्वके
र उस वस्तुकी स्वसत्ता ही नहीं रह जाती। सनातन
र्म संस्कृतिनिष्ठ भारतका वस्तुविशेष है। इस देशका
है। इस धर्म-प्राणताके कारण ही अनादिकालसे
अनेकानेक क्रान्तियोंका अतिक्रमणकर आज भी
वप्रधान संस्कृतिके बलपर जगत्में अपना मस्तक
ये खड़ा है। गीता-जैसे धर्म-ग्रन्थ, शङ्कराचार्य-जैसे
हात्मा गान्धी-जैसे सत्त्वप्रधान पुरुषको जो अनन्य
त हुआ, इसका संपूर्ण यश हिंदू-धर्म-संस्कृतिको ही
हिंदू-धर्म-संस्कृतिका उज्ज्वल अभिमान सब प्रकारसे
होगा। सात्त्विक अभिमान और तामस परद्वेष एक
हैं। सात्त्विक अभिमान शरीरके मेरुदण्डके समान
आवश्यक है। ...

होने दे सकती। इस देशके अधिकसंख्यक लोग
हैं। यहाँके अल्पसंख्यक मुसल्मान बहुसंख्यक हिंदु
न करें, इसके लिये हिंदुओंसे हिंदुत्वका ही अभिमा
कराना वैसा ही है, जैसे कोई नौकर अपने मालिकके
वाले मच्छरोंके प्रतीकारार्थ अपने मालिककी ही ह
डाले! देशमें धर्म-द्वेष न बढ़े, यह देखना शासकोंक
है और इस सम्बन्धमें उन्हें सदा सावधान रहना
पर इसके लिये राज्यको ही धर्मातीत कर डालनेक
करनेमें कोई तुक नहीं है। धर्मातीत बना चाहनेवाले
ऐसी कोई स्पष्ट घोषणा भले ही न हो कि राज्यके
धर्महीन हो जायँ; तो भी जब राजसत्ता ही धर्मनिर
केवल ऐहिक, भौतिक स्वार्थोंको ही बढ़ानेवाली बन
तब 'राजा कालस्य कारणम्' के सिद्धान्तानुसार प्रज
धीरे-धीरे धर्महीन बन जाना अनिवार्य ही है। धर्म
साथ राष्ट्राभिमानका होना भी आवश्यक है। इस वि
स्वार्थरत जगत्में राष्ट्रवादको मानवतावादमें विलीन
चेष्टा अव्यवहार्य है। कम-से-कम जगत्के राष्ट्रोंकी
मनोभूमि इसके सर्वथा प्रतिकूल है। यदि हमारे वर्तम
निरपेक्ष राज्यकी घोषणाका यह अभिप्राय नहीं है वि
देशके लोग राष्ट्राभिमान और स्वधर्माभिमान अप
करणसे निकाल दें तो हर तरहसे ऐसा प्रयत्न करन
कर्तव्य है कि हम सच्ची निष्ठाके साथ ऐसा राष्ट्राभि
स्वधर्माभिमान जगायें, जिसमें परद्वेषका लेश भी न
ऐसे सब उपाय करें, जिनसे राष्ट्राभिमान और स्वध
सदाचारसम्पन्न, समुज्ज्वल, तेजस्वी और आत्मोन्नति
बनें। परंतु कम-से-कम आज तो हमारे स्वराज्य
रुखमें वैसी कोई बात नहीं देख पड़ती, यह बड़े
विषय है। हमारे वर्तमान नेताओंके त्याग, विद्व
लोकहित-साधनकी शुभेच्छा और कर्तृत्व आदि गु
उन सबके प्रति मेरे हृदयमें भी बहुत आदर है।
महोदयकी आज्ञाके अनुसार हमें व्यक्ति-निरपेक्ष और ि
भाषण करना है। इसलिये मेरी अल्पबुद्धिमें जो ब
जँचती है, वैसी ही स्पष्ट रूपसे कहनेका मैंने साहस ि
इसे कोई 'छोटे मुँह बड़ी बात' समझें तो मैं ला
किसी भी नेताके प्रति अनादर प्रकट करना मेरा
नहीं है। प्रतिपक्ष कृपाकर इस बातका ध्यान रक्खे।

ारक वेदान्त आधुनिक भारतीय संस्कृतिका अत्यन्त
ार्य और समाजको आलसी, निराश और दुर्बल बनानेवाला
अतः अब यह होना चाहिये कि (१) हमारे यहाँ
त्रकी आचार-विचार-स्वतन्त्रतापर ऐसे किसी धर्मका
धन न रहे, जिसका फल अदृष्ट है और जो केवल एक
क उपाधिमात्र है। (२) योग्यताके अनुसार सबको
ौर आवश्यकतानुसार सबको वेतन मिले । सर्वत्र
। यही दण्डक माना जाय । डोम-चमार और मन्त्री,
और सेनापति, प्रान्तका गवर्नर और उसका चपरासी—
ानकी कम-से-कम आवश्यकताओंके अनुसार समान
या जाय । यदि किसी प्रान्तका गवर्नर, मान लीजिये
है कि उसके कोई बाल-बच्चे नहीं हैं और उसका
चार पुत्रोंका पिता है तो गवर्नरकी अपेक्षा उस अर्दली-
अधिक हो । (३) प्रधानमन्त्री और सामान्य
धनी और दरिद्र, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी,
और किसान, हिंदू और मुसल्मान, ब्राह्मण और
ा, स्त्री और पुरुष इत्यादि जो ऊँच-नीच और अपने-
ह हैं—ये सर्वथा मिट जायँ । यही हमारी इष्ट भारतीय
ा सच्चा साम्यवाद और मानवतावाद है । यही एक-
द्वैत है । (४) खान-पान और शादी-ब्याहके
सब प्रतिबन्ध उठा दिये जायँ, ताकि इस देशका
जन-समाज एक और अखण्ड हो जाय। अन्नकी
समान ही जननेन्द्रिय-सम्बन्धी क्षुधाका होना भी
है । अतः हर किसीको यह आजादी होनी चाहिये
अपनी रुचिके अनुसार इस क्षुधाका शमन कर ले ।
र किसीको अपना उत्कर्ष साधन करनेके लिये हर
ान अवसर मिले । (६) संस्कृतिके विषयमें धर्मकी
ार्वथा त्याज्य है । पूर्ण समत्वसे युक्त भारतीय
ी हमारे देशके लिये इष्ट और भूषणभूत है । ऐसी
ी किसी भी बाह्य आक्रमणसे देशकी रक्षा करनेमें
सकती है । (७) वर्णभेद, जातिभेद, कर्मभेद,
ज्ञानभेद, ज्ञान और कर्ममें भेद इत्यादि असंख्य
ऊ-भावदर्शक भेद उत्पन्न करनेवालोंने हिंदूसमाजको
ा और खोखला बना डाला है । इससे देशमें सर्वत्र
फैला है । इसीसे बार-बार इस देशपर बाहरवालोंके
हुए और यह देश दूसरोंका गुलाम बनता रहा । इस

यह कहकर साम्यवाद ही स्थापित करती है । ड
बढ़ई-लुहार, चोर-साहुकार—सबको वन्दन करना ह
रुद्राध्यायकी शिक्षा है ।

सनातनी—हिंदू-धर्म-संस्कृतिके व्यवहार अ
ज्ञानको यथावत् न समझनेके कारण ही इस प्रकारक
हुआ करता है । अजातवाद और मायावादका
तत्त्वज्ञान व्यक्ति या समाजके ऐहिक या भौतिक
बाधक नहीं है; परंतु मनुष्यके सुदीर्घ जीवनका वि
हुए परलोकको विचार-दृष्टिके ओझल कैसे किया जा स
फिर मनुष्यका परम ध्येय भी निरे भौतिकवादमें
सकेगा । मनुष्य केवल देहधारी भूतात्मा न
प्रत्यगात्माका रूप और उसकी भूख पारमार्थि
पारमार्थिक अथवा आध्यात्मिक और आधिभौतिकका
जोड़नेवाली जो आधिदैविक सत्ता है, उसकी भी उ
की जा सकती । भौतिक तत्त्व जगत्का स्रष्टा न
नियन्ता ही है । यह बात अनायास ही विचारवानोंके ध्य
सकती है । आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्या
इन तीनों ही दृष्टियोंसे हिंदू-संस्कृतिमें विचार कि
है । हिंदू-धर्म-संस्कृतिके परिपालनमें आलस्य,
और दुर्बलताके लिये कोई अवसर नहीं है । ह
पराधीनताके कारण हमें अन्यत्र ढूँढने पड़ेंगे ।

अनुशासन, संयम और बन्धन—यही शक्तिका
स्वरूप है । विद्युत्-शक्तिका निरोध करनेसे प्रकाश
होता है, भापको रोक रखनेसे ही इञ्जन चलता है
प्रकार प्राणायाम, चित्तवृत्ति-निरोध, वैराग्य, ब्रह्मच
निरोधक साधनोंसे चाहे जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । दे
ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण, भूत-ऋण आदि ऋण-बन्ध
मनुष्योंकी विभिन्न स्वाभाविक एषणाएँ पूर्ण और
सिद्ध होते हैं । हिंदू-संस्कृतिके बन्धनोंसे ही समाज
धारणा होती है । मनुष्यकी बुद्धि असंस्कृत र
स्वभावतः विषयासक्त और भ्रान्त हुआ करती है
नियन्त्रणके बिना उसका संस्कार नहीं होता । रथके
लगाम सारथिके ही हाथमें होनी चाहिये ।

रूसका साम्यवाद अव्यावहारिक है । वह बहु
नहीं ठहर सकेगा । व्यक्तिकी योग्यताका आर्थिक मू
कुछ भी न रहे तो उस योग्यताके सम्पादनके लि

ो रक्षा अर्थसे ही होती है। गायके खानेकी खली-
थवा ऊँटके खानेके काँटे समताके नामपर किसी
मानव अतिथिके खानेके लिये परोस दिये जायँ तो
वाद होगा या समत्वका उपहास? किसी गायना-
िकदान धोनेवालेको जो वेतन दिया जाता है, वही
गायनाचार्यको देनेमें उस कलाका क्या आदर रहा
क्या प्रोत्साहन मिला? न्यायाधीश और न्यायालयमें
वाला दोनोंका आर्थिक मूल्य यदि समान माना जाय
न झाड़ू देनेवालेको न्यायाधीशके उच्चासनपर बैठाकर
के हाथमें झाड़ू दी जाय? यह न समत्व है, न
हीं। योग्यतानुरूप व्यवहार ही हिंदू-संस्कृतिका
और यह शिष्टाचार या सदाचार है। कर्मेन्द्रिय और
नोंकी योग्यताओंमें बड़ा अन्तर है। बुद्धिजीवी और
—दोनोंको एक ही पैमानेसे नहीं नापा जा सकता।
तिमें केवल एक ब्रह्म ही सम है। उस ब्रह्मके
ासनेवाले इस नाम-रूपात्मक जगत्में स्वभावसे ही
म्य है। त्रिगुणात्मक प्रकृतिका स्वरूप ही भेदात्मक
साम्य तो प्रकृतिका प्रलय है। वेरुलकी गुफामें
देवालयकी सीढ़ियाँ, सिंहासन, शिव-पार्वती और
सभी एक ही पत्थरकी चट्टानके अंदर खुदे हुए हैं।
योंपर मनुष्य पैर रखकर ऊपर चढ़ता है और भव-
मूर्तियोंके सामने राजाओंके राजमुकुट भी नत
पत्थरोंकी जाति एक होनेपर भी सभी पत्थर समान
ने जाते। मानवतावादकी समता इसी प्रकार इस
जगत्में केवल अव्यवहार्य और अयुक्तिक है।
ाओंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियों और निम्न कक्षाओंके
में योग्यताकी समता भला कैसे हो सकती है। यह
र्यकी बात है कि हिंदू-संस्कृतिको अयुक्तिक और
समझनेवाले नवमतवादी अपने मानवतावाद और
की अव्यवहार्यता नहीं समझ पाते। ईसाई जगत्में
नहीं, खान-पानका विधि-निषेध नहीं, शादी-ब्याह-
में कोई निर्बन्ध नहीं; फिर भी क्रूरतामें हिंस्र
भी लजानेवाले जागतिक युद्ध उन्हीं ईसाई राष्ट्रोंके
बन पड़े? अतः मिश्रविवाहोंसे और सहभोजनोंसे
ापित होती है, यह समझना केवल भ्रम है। कौरव-
या यादवोंमें परस्पर भेदकी कोई बात ही नहीं थी:

न सूअरकी पीठपर मोतियोंकी झूल डालनेसे उसे
महत्ता प्राप्त होती है।

यथार्थमें धनिकवर्ग समाजपुरुषका उदर है।
की धनवत्ता एक बहुत ही उपादेय केन्द्रीभूत श
यही शक्ति आजतक अनेकानेक लोकोपकारक का
चली आयी है। इसीकी बदौलत नानाविध कल
विद्याओंकी वृद्धि हुई है। धनिकोंकी धनवत्ताके सा
आदर्श है; पर इस ओर ले जानेवाले साहस और
प्रवृत्तिमें द्रव्यैषणाका होना आवश्यक है। इसी प्रकार
वर्ग समाजपुरुषका हृदय, बुद्धि अथवा मज्जातन्त्र है।
जैसे अभ्युदयशाली देशके इतिहासमें मध्यम वर्ग
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना गया है। इस वर्गक
सुखी और समृद्ध होना समाजके लिये बहुत ही
है। श्रमजीवी वर्ग समाजपुरुषका कर्मेन्द्रिय-समूह है।
स्वास्थ्यके लिये इस वर्गकी भी बहुत बड़ी आवश्य
हिंदू-संस्कृतिमें तीन गुणों और चार वर्णोंके अनुसार
वर्गोंका यथायोग्य महत्त्व माना गया है। पिछड़े हुए
वर्गकी सुख-सुविधा और अभ्युदयके साधनमें आस्थ
सर्वथा उचित है; परंतु साम्यवादके मोहमें पड़कर
वर्गोंको नष्ट करने, विशेषतः श्रमजीवियोंके हितार्थ
वर्गको नष्ट करके धनिक वर्गको रसातल पहुँचाया च
दुष्ट वृत्तिको समतावाद या उदार-धर्म कहना
विडम्बना और विचारोंकी बगावत है। हिंदू-स
उद्यानमें बढ़े हुए, फल-फूल देनेवाले महान् वृक्षोंको
बगलके छोटे-छोटे पौधोंके बराबर कर देनेके लिये यह
कि एक हाथसे ऊँचे जितने पेड़ हों, सब काट डाले
कितनी बड़ी मूर्खताकी सूझ है! सर्वत्र समता स्थापि
के लिये ब्राह्मण अपने वर्णकी श्रेष्ठता गँवाकर भं
चमारके काम करनेके लिये होड़ बदकर दौड़ पड़ें, य
राजसत्ता अथवा समतावादका उपदेश विवेक-भ्रष्ट
एक प्रदर्शनमात्र है! ब्राह्मण्यके संस्कार प्राप्त कर
समय लगता है, पर उन्हें गँवा देनेके लिये अविवेक
घड़ी पर्याप्त होती है। नवमतवादियोंका यह क
स्त्रियों और शूद्रोंके लिये पराधीन सेवा-धर्म ही विहि
उनके साथ बड़ा अन्याय किया गया, बिल्कुल ग

दे वर्णोंके लोग अपने कर्तृत्वसे संत-पदवीतक पहुँचे
उत्कर्ष-साधनमें हिंदू-संस्कृति किंचित् भी बाधक
। पर हिंदू-संस्कृतिका यह कहना है कि सब कर्मोंकी
समान समझना तारतम्य-बुद्धिका अभाव है। ज्ञान
को समान देखना अविवेक है; वर्णभेद, जातिभेदादि
मिटाना संकर उत्पन्न करना है। संकरसे फिर विनाश
है। संकरसे श्रेष्ठ गुणोंका उत्कर्ष, उत्कृष्ट संस्कारोंकी
पात्रताका परिपोषण, ओज-मेधादिका संवर्द्धन—यह
सब हो जाता है। संस्कृतिका क्रमशः लोप होनेसे प्रजा
असंस्कृत बन जाती है। प्रकृति स्वयं ही भेदरूप
कोई संस्कृति अभेद नहीं बना सकती। सैन्यकी
के लिये विभिन्न श्रेणियों और कर्माधिकारोंकी
अलग पलटनें तैयार करनी पड़ती हैं। केवल मिट्टी
। ढेर लगा देनेसे दीवार नहीं खड़ी होती। उसके
पत्थरके अलग-अलग जोड़ कुशलताके साथ एकमें
ड़ते हैं। वर्णभेद कहिये या वर्गभेद, भेदोंका होना
है। इन विभिन्न वर्गोंको एकत्र जोड़ना हिंदू-
जेतना और किसीसे भी नहीं बन पड़ा। हिंदू-
कारण ही, अनेक भेदोंके होते हुए भी, भारतवर्ष
अखण्ड था। इसे खण्डित किया नवमतवादी
ही! गीतोक्त स्थितप्रज्ञ ब्रह्मवेत्ताका समदर्शन,
में वर्णित अन्तर्यामीकी समता, श्रीकृष्ण और संतों-
केक चरित्र स्थूल भौतिकवादियोंके अव्यवहार्य
को कोई आश्रय नहीं दे सकते। भारतीय संस्कृति-
तत्त्वज्ञान दर्शन है, वर्तन नहीं।

ाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कुत्रचित्।
तं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह॥*

(श्रीमच्छङ्कराचार्य)

ाधिक व्यवहारमें अद्वैत—साम्यवाद सम्भव नहीं।

(३) वर्णाश्रमधर्म

ाुनिक—सनातनियोंका यह दावा है कि हिंदू-संस्कृति-
माजको सुसंघटित रक्खा। हमारा यह कहना है
संस्कृतिकी वर्णाश्रमव्यवस्था चाहे पहले कभी उपकारक
पर आज तो उससे समाजका नाश ही हो रहा है;
अब इसे उठा देना ही आवश्यक हो गया है।

ब्राह्मणोंको ही वेदोंका अधिकार हो, शूद्रोंको नहीं; ब
अध्यापनके अधिकारी हों, शूद्रातिशूद्र नहीं; पौरोहि
ही करें, अन्य लोग नहीं—यह सब मालूम होता है
स्वार्थवश कुटिलतासे अपना ही इजारा कायम ि
न्यायतः उचित तो यही है कि अभ्युदय और निःश्रे
करनेमें सभीको समान अवसर मिले। जाति-भेदको
मिटा देना है। वर्णभेद भी जन्मसिद्ध माननेका क
नहीं है। मानना ही हो तो जन्मके बाद यथासंप्रा
कर्म देखकर मानना चाहिये। इसी प्रकार आश्रमोंमें
और संन्यास—ये दोनों निवृत्तिप्रधान आश्रम
व्यर्थके भारमात्र हैं, इन्हें उतारकर समाप्त ही करन
इनके स्थानमें मनुष्यके तीसरे और चौथेपनके लिये स
ही एक आश्रमधर्म माना जाय; क्योंकि इसी वयस
ज्ञान और अनुभवसे समाज लाभ उठा सकता है।

सनातनी—हिंदू-संस्कृतिकी वर्णव्यवस्था यदि
समाजधारक थी तो अब वह समाजविदारक हो ज
सम्भव नहीं है। वर्णद्वेष और जातिद्वेष विदेशियोंकी
ने और उन्हीं विदेशियोंका अन्धानुकरण करनेव
विवेकहीन समाजसुधारकोंने ही बढ़ाये हैं। 'जात-
दो' यह जो आवाज उठी है, इसीसे जातिद्वेष बढ़
वर्णाश्रमधर्मकी-सी सयुक्तिक और सुव्यवहार्य समा
पृथ्वीमें अन्यत्र कहीं भी नहीं है। वृत्तिभेद और
भेदसे जातिभेद आप ही उत्पन्न होते हैं। इनमें अ
शक्ति और कुशलता संचित होनेसे, बचपनसे ही
धंधोंकी शिक्षाकी एक उत्तम व्यवस्था बन जाती
यान्त्रिक युगमें इसका महत्त्व कम नहीं है। विभिन्न
के विशिष्ट गुण-कर्मभेद प्राक्संस्कारानुरूप जन्म
हुआ करते हैं। जन्मके पश्चात् यथाप्राप्त गुण-कर
समाजकी वर्णव्यवस्था निश्चित करनेकी बात सर्वथा अ
है। ऐसा प्रयत्न यदि किया जायगा तो उससे समा
बार कुटुम्ब-विच्छेदके प्रसंग उपस्थित होंगे और
उत्पन्न होगी। जन्मसिद्ध वर्णभेद मानना प्राक
समुचित ही है और इस प्रकारके वैषम्यके लिये क
को दोष भी नहीं लगा सकता। हर कोई जन्मके साथ
कर्मानुसार प्राप्त परिस्थितिको सन्तोषके साथ स्वीक
है। जातिद्वेषका हौआ खड़ा करके हमारे ही ि

---

* चित्तमें सदा सबके साथ अद्वैतकी भावना रक्खे, पर कहीं

न्धे करने या लखपती और करोड़पती बननेकी
ा रखनेवाले ब्राह्मण विरले ही होंगे। वेदाध्ययन,
और पौरोहित्यमें कोई ब्राह्मण धनाढ्य हुआ हो,
ाहरण बड़ी कठिनाईसे मिलेगा। ब्राह्मणधर्मके व्रता-
ल्पसन्तोष और तप आदि सबके लिये सुसाध्य नहीं
र भी विदेशी राजसत्ताने व्यर्थ ही ब्रह्मद्वेष उत्पन्न
ब्राह्मणोंने न किसीसे द्वेष किया; न किसीके अभ्युदयमें
ा डाली। हिंदू-संस्कृतिका आश्रय लेनेवाले अन्त्य-
धर्म-पालन करके रैदास; चोखामेला आदिके समान
क उन्नतिकी पराकाष्ठा प्राप्त कर सकते हैं और अपने
से प्राप्त कर्मके द्वारा ब्राह्मणोंसे अधिक वैभवसम्पन्न
ा हैं। ब्राह्मणके जन्म और कर्म किसीसे द्वेष करने
क्सी क्षुद्र ऐहिक स्वार्थके लिये हैं ही नहीं।

ाको मानव-जीवनका महत्कर्तव्य मानें तो हिंदू-
; चारों आश्रमोंमें गुरुसेवा, कुटुम्बसेवा, समाजसेवा,
ईश्वरसेवा आदि हुआ ही करती है। वानप्रस्थ और
जो हिंदू-संस्कृतिके परमोच्च आदर्श हैं, अपने
और सद्विचारोंद्वारा समाजकी जो सेवा करते हैं,
ल्य कौन आँक सकता है?

?) विकासवाद और ऐतिहासिक दृष्टि

धुनिक—विकासवाद और ऐतिहासिक दृष्टि ज्ञान
अव्यर्थ निकष हैं। यदि सनातनी इन्हें न मानेंगे तो
ृतिका मूल्याङ्कन आज और आगे भी असम्भव
न दोनों निकषोंको न मानना एक तरहका अज्ञान
कोई भी विज्ञ पुरुष परम्परा अथवा सुसंगतिके
ीं बने रहते। सत्यका स्वरूप देशकालानुरूप बदला
यही सब विद्वानोंकी मान्यता है। किसी भी राष्ट्रकी
अनेकानेक संस्कृतियोंके सङ्गमसे विकसित हुआ
मूल भारतीय संस्कृतिका स्वरूप हमारी वर्तमान हिंदू-
नहीं रह गया है। इस अपूर्ण संस्कृतिको मानवता-
नवसंस्कृतिमें रूपान्तरित करना इसका विकास ही
। इसी ऐतिहासिक दृष्टिसे भविष्य कालके लोग
ंस्कृतिकी ओर देखेंगे। परिवर्तनशील संसारमें
ही चिपके रहना बुद्धिमानीका लक्षण नहीं है।
जो वस्त्र शरीरमें ठीक बैठता था, वह वयस्क
से बैठ सकता है। कालप्रवाहके साथ संस्कृतिमें

दृष्टि दोनों ही कुछ खास विषयोंमें अपना महत्त्व रख
पर ज्ञानके ये सच्चे निकष नहीं हैं। आधुनिक वि
काल्पनिक, एकदेशीय और अपूर्ण है। इसी प्रकार ऐ
दृष्टिके आधार बहुधा सन्दिग्ध और अधूरे होते
अनुमान प्रायः प्रमादयुक्त हुआ करते हैं। अतः वि
और ऐतिहासिक दृष्टिमें इतनी योग्यता नहीं है कि
सत्यता अथवा इष्टानिष्टता जाँच सकें। मनुष्यकी आवश्य
का बढ़ना, यान्त्रिक उत्पादनका बढ़ना, युद्धकलाका
भौतिक सुख-साधनोंका बढ़ना, नगरोंकी आबादीक
यातायातके साधनोंका बढ़ना, स्त्रियों-बच्चों, किसान
मजदूरोंकी स्वाधीनताका बढ़ना इत्यादि विकास मान
दृष्टिसे इष्ट हैं या अनिष्ट—क्या विकासवाद इसका स
उत्तर दे सकता है? आजकलके विज्ञ यदि आचार-वि
सुसंगत परम्पराका कोई महत्त्व नहीं मानते और
दृष्टिमें यदि सत्य देशकालानुसार बदलनेवाली चीज
उनका कोई भी आचार-विचार प्रमाण नहीं माना जा
कारण, जिस सत्यको जब कभी वे देखेंगे, वह अपूर्ण ही

हिंदू-संस्कृति यह कुछ भी स्वीकार नहीं
आत्मप्रत्यय, गुरुप्रत्यय और शास्त्रप्रत्ययका सम
सत्यज्ञानका एकमेव सच्चा निकष हिंदू-संस्कृतिमें स्वीकृ
सत्य वही है, जो त्रिकालाबाधित हो। सत्य विक
या परिवर्तनशील नहीं है। सत्यका आदि-अन्त नह
वह परिवर्तनोंका इतिहास नहीं है। इसीलिये वह प्रम
तात्पर्य, सत्य विकासवाद अथवा ऐतिहासिक दृष्टिका
ही नहीं है। विकासवादकी मान्यता यह है कि मूल
ज्ञानकी ओर विकास हो रहा है और उस ज्ञानकी कोई
समाप्ति या अन्त नहीं है। विकासवादका यह
हिंदू-संस्कृतिमें स्वीकृत नहीं है। सृष्टिके मूलमें
नहीं, प्रत्युत स्वयं ज्ञान है। उस मूल ज्ञानस्वरूप
विकास नहीं होता; कारण, वह स्वरूपतः पूर्ण है।
आवरण हटते ही वह स्वयं प्रकाशपूर्ण ज्ञान वहाँ है ह
मूल ज्ञानका जिस प्रकार कोई विकास नहीं है, उसी
कोई इतिहास नहीं है। वही बात आनन्द अथवा
है। अपूर्णतामें दुःख भासता है। पर मूल ब्रह्म पूर्ण
कारण सुखस्वरूप है। आधुनिक आत्माका विकास
हैं। ...

ृतिके रहस्यमय सिद्धान्त स्वतःप्रमाण अपौरुषेय
तिष्ठित होनेसे त्रिकालाबाधित हैं, विकासवाद अथवा
क दृष्टिके विषय नहीं । विशुद्ध हिंदू-धर्म-संस्कृति
संस्कृतियोंके सङ्गमसे विकसित नहीं हुई है ।
तो यह कहते हैं कि प्राचीन भारतीय संस्कृति आधुनिक
संस्कृतिमें रूपान्तरित हुई है; पर इस रूपान्तर
नको विकास नहीं कहते । फिर ये लोग यह भी
कि समाजसत्तावाद, साम्यवाद, मानवतावाद आदि
विकसित रूप जब हमें प्राप्त हैं, तब इन्हें छोड़
ओर पीछे फिरकर उस पुरातन अविकसित वैदिक
पैठनेकी चेष्टा करनेसे बढ़कर अविवेक और क्या
स प्रकार ये आधुनिक एक ओर प्राचीन भारतीय
गीत गाते हैं तो दूसरी ओर उन्हीं वेदोंको किसी
र पुराने बाल्युगकी तोतली बातें कहकर उनका
रते हैं । आधुनिक विकासवाद और ऐतिहासिक
इ एक निर्बन्ध वाग्विलासमात्र है ।

(५) धर्म और कानून

ुनिक—धर्मविरोधी कानूनोंके सम्बन्धमें आजकल
ोंने बड़ा कोलाहल मचाया है । सबके समान
और विभिन्नधर्मावलम्बी समाजोंको सुव्यवस्थित
ब हमारी संकुचित वृत्तिवाला धर्म असमर्थ हुआ,
बातें कानून बनाकर करनी पड़ीं । आज तो
न माननेमें किसीकी भी रुचि नहीं है । ऐसी
समाजहितके उपाय कानूनोंके द्वारा करा लेनेके सिवा
ही क्या है ? राजकाजमें दण्डनीतिका अवलम्बन
पड़ता है ।

तनी—दण्डनीति राज्यशासनका एक अङ्ग हुआ
दमननीतिके कानूनोंकी जैसी आवश्यकता एक
कारको परकीय भावके कारण पड़ी, वैसी अपनी
तो न पड़नी चाहिये थी । पर आजकल तो
टकसालसे रोज-रोज नये-नये दमन-कानून ही
हैं ! ऐसी दमननीतिके राज्यको लोकमतका राज्य
जाय । स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज-जैसे सर्व-
सर्वसङ्गपरित्यागी महात्मा और उनके धर्मसङ्घद्वारा
अत्युज्ज्वल धर्मसत्याग्रह तथा हिंदू-संस्कृतिकी
ष्ठा और कर्मशक्तिसे प्रेरित 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ'का

आज अपनी सरकारके सामने बहुत-सी व
उपस्थित हैं—अन्नकी कमी, नवीन शासनविधानका
पाकिस्तानकी खुराफातोंसे नित्य नये पैदा होनेवाले
पाकिस्तानके ही कारण उत्पन्न निर्वासितोंका तथा
प्रश्न, कम्यूनिस्टोंकी उपद्रव-नीति, तृतीय वि
तैयारी—इन सब अति विकट प्रश्नोंके सामने रहते हु
चुपकेसे इनसे समय निकालकर जल्दी-जल्दीमें बि
जिम्मेदार ढंगसे धर्मविरोधी कानूनोंके बाणोंसे सन
हृदयोंपर आघात करती है ! इसके बिना सरकारका
काम रुका था ? गोवध रोकनेके लिये कानून व
बनाती ? आयुर्वेदिक औषधालयों और कारखान
भी सरकार क्यों पड़ी है ?

हिंदू-धर्म यदि परिवर्तनीय हो और आयुर्वेदिक
सुधारका अवसर हो, तो भी जिन लोगोंने उन-उन
साम्प्रदायिक पद्धतिसे आस्थापूर्वक दृढ़ अभ्यास कर
नैपुण्य और अनुभव प्राप्त किया है, उन्हींके
आधारपर कोई सुधार न सोचकर ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे—
निर्णय करने बैठ जायँ, यह कहाँकी बुद्धिमानी और
न्याय है ? सरकारी व्यवस्थापक सभाओंमें ऐसे
भला, कितने होंगे ? सच्चा धर्मज्ञान अखण्ड गुरु-पर
प्राप्त होता है । कालेजोंमें वह शिक्षा नहीं मिल
प्राच्यविद्यासंशोधकोंके ग्रन्थ पढ़नेसे ही उसका व
होता है । केवल आधिभौतिक ज्ञानसे अथवा वि
उपयोगितावादसे हिंदू-धर्म-संस्कृतिका वास्तविक ज्ञ
होना असम्भव है । हमारी धर्म-संस्कृति सर्वतोमु
उसकी विचार-पद्धतिमें स्थूल आधिभौतिकके
आधिदैविक, आधियाज्ञिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि
समाविष्ट रहते हैं । उन दृष्टियोंसे रहित हमारी नवम
बहिर्मुखी राज्यव्यवस्थाके दमनकारी कानूनोंके आ
धर्म और आयुर्वेदकी क्या गति होगी ? उनका शुद्ध
इस अवस्थामें टिकना असम्भव हो जायगा । हिंदू-सं
होनेवाले इस प्रहारसे सनातनी हिंदू जनताके हृदय
होनेके सिवा और क्या प्राप्त करेंगे ?

इसी प्रकार अन्त्यजों और अन्य पिछड़े हुए
आर्थिक दुरवस्था दूर करनेका उपाय करना स्वराज्य
का कर्तव्य है, इस विषयमें सबका एकमत है । इ

रना भी आवश्यक ही है। पर इन सब बातोंमें
 जबर्दस्तीके कानून बनाकर जो क्षोभ उत्पन्न किया
; वह राजसत्ता और कानून बनानेके अधिकारका
प्रयोग है। देवमन्दिरोंमें प्रवेशका कोई अधिकार
 न चाहा था न माँगा था; फिर भी जिन्होंने मन्दिर-
व्यवस्थापक-सभाओंमें उपस्थित किये और अट्टहासके
ी जनतापर उन्हें लादना चाहा, क्या उन्होंने कभी
ा विचार किया था कि देवमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा
है अथवा इन मन्दिरोंमें वर्षानुवर्ष सतत विधि-
ेव-पूजा और धर्मानुष्ठान होते हैं, उनसे किस प्रकार-
ंस्कार वहाँ केन्द्रित होते हैं और उनके पावित्र्यकी
र रक्षा की जाती है? अन्त्यजोंके मन्दिर-प्रवेशसे
पहलेसे अधिक पवित्र हो गये—यह जो लोग निधड़क
 हैं, क्या उन्होंने मन्दिरोंके द्वार अन्त्यजोंके लिये
के पश्चात् कभी उन मन्दिरोंकी ओर झाँका भी था
ा अन्त्यजोंके चित्तमें ही वहाँ जाकर भगवान्के
नेकी कभी प्रेरणा हुई थी? ये दोनों ही बातें यदि
तो बिना सोचे-समझे मन्दिर-प्रवेशकी जो उतावली
, उससे सनातनी हिंदू-जनताके हृदयपर कठोर प्रहार
वा उन्होंने और क्या पा लिया? उससे अन्त्यजोंकी
उन्नति हुई? अन्त्यजोंका मन्दिर-प्रवेश होनेके लिये
ाले इन नेताओंने क्या कभी इन देवमन्दिरोंकी
 रक्षा, उद्धार और उत्कर्षके लिये कोई उपाय
नमें ज्ञान-कर्म-भक्तिके सत्र चलाने और भक्तिप्रेमके
ाकर जनतामें भगवद्भक्तिका प्रचार करनेका कोई
ा? यदि नहीं तो मन्दिरोंकी पवित्र परम्परापर यह
नेका क्या मतलब है? इसी प्रकार कारखानोंके
ौर खेती करनेवाले किसानोंको कानून बनानेके
धिकारके जोरपर यह कहकर जो उभाड़ा जा रहा है
रो! कारखानोंके मालिक तो तुम्हीं हो, ये पूँजीपति
ारे विश्वस्त हैं' अथवा 'किसानो! तुम्हें हम इन
लिक बना देंगे', इससे मजदूरों और किसानोंका
र चरित्र बिगड़ रहा है। इनके शील और चरित्र
ड़नेपर हम उन्हें सुधारना चाहेंगे तो पछतावा ही
ा जगा। इसी प्रकार स्त्रियोंकी अमर्याद स्वतन्त्रता,
ौढ़ातिप्रौढ़ विवाह और विवाह-विच्छेदके कानून
हनेवालोंने क्या कभी यह सोचा है कि इनके द्वारा

पातिव्रत्य, सतीत्व आदि गुणोंको उत्पन्न कर
बिगाड़ना सहज है, बनाना बहुत कठिन।

वैयक्तिक और सामाजिक सुनीतिकी रक्षा और
काम हिंदू-धर्म-संस्कृतिके परम्परागत सुदृढ़ संस्का
सकते हैं। कानूनके द्वारा ऐसे सामाजिक सुधार करा
अन्याय और अत्याचार है। जहाँ कानूनोंका ही
और भरोसा होता है, वहाँ उनसे बचनेके उपाय भ
आते हैं। धर्मका शास्ता ईश्वर सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिम
सारे जगत्का नियन्ता होता है। उसकी आँख बचाक
भागना किसीके लिये सम्भव नहीं होता। कानून ब
मनुष्योंको धोखा दिया जा सकता है, ईश्वरको नहीं
बहिर्मनका बाह्य प्रयोग है। धर्म हृदयसे संलग्न र
उसका सहसा विस्मरण नहीं हो सकता। ईश्वरका जी
सहज अन्तर्गत सम्बन्ध है। वही धर्मपटका धागा है
अथवा दण्डनीतिके द्वारा जो शासक-शासित-सम्बन्
जाता है, वह कृत्रिम बलप्रयोग है। यह कहना कि
धर्मका शासन कोई नहीं मानता, सच्ची बातको
कहना है। धर्मानुशासनको स्थिर करनेके लिये
राजसत्ताकी भी आवश्यकता होती है। पहले यदि
की राजसत्ता थी तो अब धर्मातीत राजसत्ता है; त
शासन स्थिर कैसे हो? उदाहरणार्थ, धर्मबाह्य आचर
वालेको पहले जातिसे अलग किया जाता था। पर ऐ
यदि आजकी सरकारके कानूनमें अपराध हो
धर्मानुशासन मिटानेका ही प्रयत्न समझा जायगा।

(६) सर्वराष्ट्रिय प्रतिष्ठा

आधुनिक—यातायातके साधनोंकी वृद्धि, व्यापा
और समाचारपत्रोंकी बहुलता तथा जागतिक युद्धों
सब राष्ट्र परस्पर सम्बद्ध हो गये हैं। ऐसी अवस्था
निवृत्तिप्रधान संस्कृति लेकर भारतवर्ष संसारसे अल
वेदपाठ अथवा जप-तप-अनुष्ठान करता बैठा रहे,
कोई काम नहीं चलेगा। सर्वराष्ट्रिय नेताओंकी
भारतको भी उच्च स्थान मिलना चाहिये। यह तभी
है, जब वह अपने ही राष्ट्र और अपने ही धर्मको लेकर न
बल्कि इस संकुचित व्यावर्तक अभिमानको त्यागक
विज्ञानको ही एकमात्र अभ्युदयकारक शास्त्र और मान
को ही एकमात्र व्यावहारिक विश्वधर्म जानकर स्वीक

ातिके कारण ही आज भी ऊँचा है। (अभी पिछले
नारे माननीय प्रधान सचिव पं० श्रीनेहरूजी भी
जाकर इस संस्कृतिकी ही गौरव-गाथा साभिमान
ा हैं।) इस देशकी यह अनन्य-साधारण विशिष्टता ही
ासकी महत्ता स्थिर रखनेमें समर्थ है। इसीमें हमारा
ाका भी कल्याण है। झुंडमें शामिल न होनेवाले
सिंहने सबसे अलग रहकर अपनी धाक सबपर जमायी
दस झुरमुट हैं, वहाँ ग्यारहवें यदि हम भी हो गये
क्या रक्खा है ? एक-ही-एक गगनचुम्बित वृक्षराज
ी महत्ता है। स्वाभिमान त्यागकर दूसरोंके साथ
जानेसे कभी कोई महान् नेतृत्व नहीं प्राप्त होता।
ंक्तिके समान किसी समूहमें न रहनेवाला मोर मोर
और अपनी स्वतःसिद्ध महिमा और वैभवसे
ही दीखता है।

हारकी पूर्तिके लिये भौतिक विज्ञानोंका अर्जन अवश्य
ाहिये। पर भौतिककी अपेक्षा आधिदैविक
यात्मिकका महत्त्व बहुत अधिक है। पाश्चात्त्य जगत्
पीछे पड़ा है, इसलिये हम भी वैसे ही बन जायँ—
ना तो विचारशून्य अन्धानुकरण है। हमारा कार्य
हम हिंदू-संस्कृतिके आधिदैविक और आध्यात्मिक
ात्को दीप्त करें। यही सच्चा पुरुषार्थ है।

ो अपने राज्यको 'धर्मातीत' कर डाला और
को खुश करनेवाली राजनीति स्वीकार कर ली; फिर
स्तान दुलत्ती ही झाड़ रहा है और सर्वराष्ट्रिय
कट्टर इस्लामधर्माभिमानी पाकिस्तानकी ही पीठ
रही है। प्रत्यक्ष अनुभव तो यही है। आजके
राजनीतिक सम्बन्ध अति नीच स्वार्थ और अत्यन्त
ाजनीतिसे ग्रस्त हैं। ऐसी स्थितिमें अपने देशका
र व्यक्तित्व किसी बातमें है तो वह अपने समुज्ज्वल
ा उत्कट अभिमान ही है। राष्ट्रोंके स्वार्थप्रेरित
कलह, ऐटमबम आदिकी तैयारियाँ, परस्पर घोर
—इन सब चीजोंको साफ-साफ देखते हुए भी मानवता
ाधर्मकी बातें करना कल्पनाजालमें समुद्रकी लहरों-
नेके समान ही अव्यवहार्य और हास्यास्पद है।
ातू बातोंमें पड़कर हम अपने राष्ट्र और अपनी हिंदू-
तेका अभिमान छोड़ बैठें, इससे बढ़कर मूर्खताकी

जगद्व्यवहारमें उसकी प्रतीति असम्भव है। इसलि
सींग तुड़वाकर बछड़ोंमें मिल जानेवाली गौके सम
दिव्य संस्कृति और उज्ज्वल धर्मनिष्ठा त्यागकर अ
की कुटिल राजनीतिके साथ समरस हो जानेकी व
अन्ध अविचार है। हमारी श्रेष्ठ धर्म-संस्कृति जो
एकाकी तपस्वीकी हिंस्र पशुओंसे रक्षा करती है, व
भारतवर्षकी भी रक्षा करेगी। संत-मुनियोंके आश्र
हिंस्र पशु अपना क्रूर स्वभाव त्याग देते हैं तो अन
राष्ट्र हमारे साथ शान्ति और सौजन्यका ही व्यवह
यदि हम अपनी संस्कृति और धर्मनिष्ठामें सच्चे
ही आत्मविश्वास राष्ट्रमें जगाना चाहिये, यही श्रेयस्क

(७) लोकतन्त्र और राजतन्त्र

आधुनिक—राज्यकी प्रातिनिधिक संस्थाओंके ि
देशके सब बालिग मनुष्योंको मत (वोट) देनेका
देकर सबके समान अधिकारोंकी नींवपर जो लोकत
स्वराज्य-सरकारने खड़ा किया, उसके प्रखर तेजके स
देशी राजतन्त्रोंके राजमुकुट पिघलकर रसातलको च
यह लोकतन्त्रकी कितनी बड़ी विजय हुई ! अब
ही हमलोगोंकी संस्कृति है, अन्य किसी संस्कृतिको
लिये हमलोग तैयार नहीं हैं। भारतीय संस्कृति प्राच
राज्योंके समान लोकतन्त्रकी मान्यता स्वीकार करती
वह लोकमतपर निर्भर रहकर आगे जी सकती है,
यहीं उसका अन्त है।

सनातनी—कुछ इतिहाससंशोधक यह बतल
प्राचीन भारतीय संस्कृतिमें पहले गणराज्य थे; पर ये ग
रूप लोकतन्त्र किस प्रकारके थे और वे राजतन्त्रमें क्यों ि
गये, यह निश्चितरूपसे जाननेके पर्याप्त साधन आज
नहीं हैं। पर राजतन्त्र हिंदू-संस्कृतिमें स्वीकार्य न हो, ं
बात उसके प्राचीन साहित्यसे नहीं प्रतीत होती। राजत
ऐश्वर्य और सूत्रैकता विद्यमान रहती है, वह लोकतन
रहती। फिर राजाको उसकी प्रजा भगवान् विष्णुके
रूपमें, ऐश्वर्यके आदर्शरूपमें देखना चाहती है।
वृद्ध-वनिता—सभी जिस लोभनीय और दर्शनीय
इच्छुक रहते हैं, वह राजैश्वर्य आजके लोकतन्त्रमें
दीख नहीं सकता। अपने देशका यह नवस्थित्यन्तर
हिंदू-संस्कृति तो अश्रुपात ही करेगी ! फिर

के सैकड़ों नामधारी प्रतिनिधियोंको नहीं हो सकती। तन्त्रका उद्दण्ड और स्वैराचारी होना सम्भव हो । पर राजापर नियन्त्रण रखनेवाले उसके विचारशील तो होते ही हैं। इसके विपरीत नामधारी लोकतन्त्र बेजिम्मेदार और बायें हाथके खेलके बराबर बहुमत-स्वैर अधिनायकतन्त्र बन जाता है—यह तो आजका नुभव ही है।

मान लोकतन्त्रके मुख्य-मुख्य दोष देखना हो तो ताधिकारकी वर्तमान पद्धतिमें देख लीजिये कि से-कैसे झूठे आश्वासन और प्रलोभन दिये जाते हैं, टेल नीति बरती जाती है, कैसी झूठी परनिन्दा मश्लाघा की जाती है, कैसे-कैसे लालच दिलाये जाते, की जाती और रिश्वतें दी जाती हैं और (२) कैसे व्यर्थके अनर्थकारी संघर्ष उत्पन्न किये जाते, त्य एवं अविवेकको उभाड़ा जाता है। फिर अपने जा अशिक्षित होनेसे उसे मत देते हुए यह पूरा पता ा कि किसको किसलिये वोट दिया जाता है। समझ-जिम्मेदारीके साथ वोट देनेवाले कितने होते हैं। स्थामें बालिग-मताधिकारसे किया जानेवाला निर्वाचन होता है और वह भी झूठ और धोखाधड़ीसे भरा तीसरा दोष इस निर्वाचन-पद्धतिमें यह क प्रत्येक र यही महामन्त्र उचारा करता है कि 'मैं बुद्धिमान् वोट दो।' उम्मेदवारीकी शर्तें और चुनावके या जानेवाला घटाटोप, यह सब अशिष्टताका ही एक होता है। कितने ही महान् योग्यतावाले पुरुष ऐसी उम्मीदवार होना अपनी शिष्टता और सुजनताके मझते हैं। इस कारण उनकी अमूल्य सेवा और से जनता वञ्चित ही रह जाती है। इन सबसे नन्दनीय और अनर्थकारक मिथ्याचार और विश्वास-में यह होता क लोग जिसे अपना प्रतिनिधि चुन वह चुन जानेपर अपने निर्वाचकोंको भुला देता व्यवस्थापक-सभाओंमें वह उनका मत नहीं बतलाता पना मत या अपने दलविशेषका मत उनपर लादकर थ विश्वासघात करता है!

लेकी ग्रामपंचायतोंमें निर्वाचनके क्षेत्र बहुत छोटे-

को पंच चुनते थे। राजा अपने मन्त्री स्वयं ही करता था। सदाचारसम्पन्न विज्ञलोग राज्यकी धुरा ध यही अन्तःस्थ नीति थी। राजाको मन्त्रणा देनेवालों जैसे अथवा समर्थ रामदास-जैसे धर्माध्यक्ष हुआ व बालिग-मताधिकार तत्त्वतः चाहे जो कुछ भी हो, अव्यवहार्य और संघर्षकारक है।

समारोप

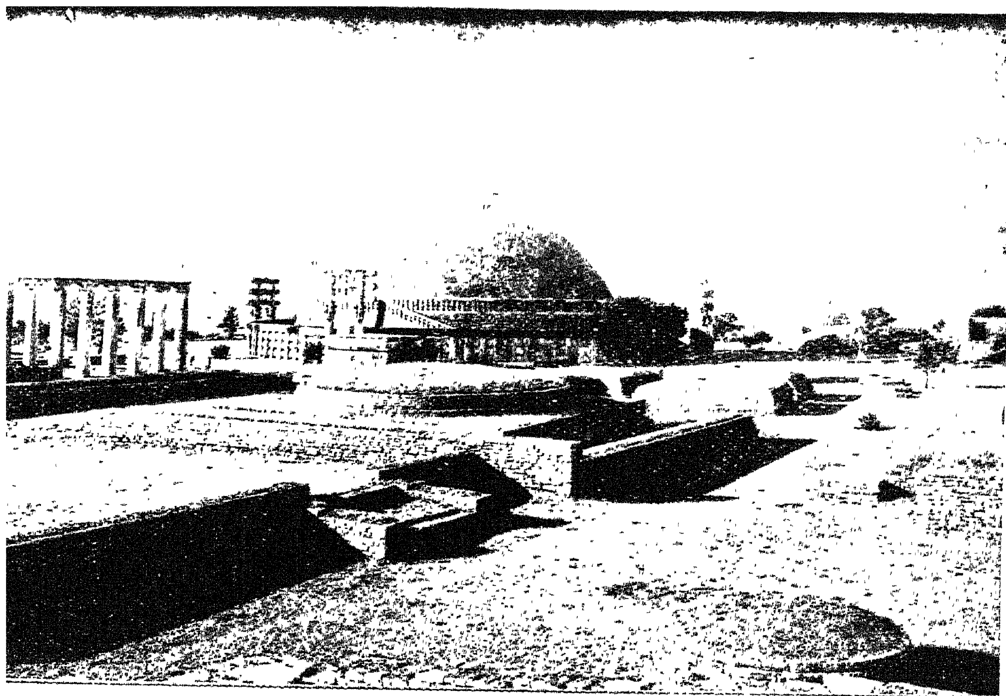
मुख्याध्यापक—मेरे युवक विद्यार्थियो! तुमलोग जो चर्चा की, उसका सुस्थिर, शान्त और संयत ढंग दे बड़ी प्रसन्नता हुई। नवमतवादी वक्ताने हिंदू-संस्कृति अपने आक्षेप संक्षेपमें बतलाकर उनके समाधान अधिक अवसर दिया, यह उनका सौजन्य है और इ हृदयसे मैं उन्हें बधाई देता हूँ। चर्चाके लिये प्रश्न सामने रक्खे गये थे, उनका स्वरूप इतना व्या गहन है कि पूर्णरूपसे उनका आकलन करना तु अनुभवरहित बुद्धिके लिये सम्भव नहीं था। प्रत्ये पूर्वोत्तर पक्षके लिये दस मिनटका समय रक्खा वह भी पर्याप्त नहीं था। परंतु मुझे एक प्रयो देखना था, इसीके लिये मैंने यह प्रसंग उपस्थित आजकल समाचारपत्रोंमें प्रायः नवमतवादका ही पाठकोंके सामने रक्खा जाता है। इससे हिंदू-सम्बन्धी मतभेदकी बातें सबको मालूम रहती है इन बातोंका सनातनी दृष्टिसे क्या समाधान जाननेका कोई अवसर पाठकोंको नहीं मिलता सनातनियोंके समाचारपत्र बहुत थोड़े और संक्षि इसका भी कारण यही है कि हमारे आचार-विचारों संस्कृतिकी जबर्दस्त छाप पड़ी है। यह जो कुछ प था, हुआ। पर अब हम सबके सौभाग्यसे अप अपना राज्य स्थापित हो गया है। अतः अब और संस्कृतिका गम्भीर अध्ययन आस्थाके स चाहिये। परकीय शासन-कालमें जो वकील-बैरिस्ट कानूनके जानकार लोग थे, उन्हींमेंसे आगे बढ़े लोगोंने परकीयोंके साथ वाद-विवाद करनेमें कुशलता वे ही हमारे नेता हुए और हमारे बालकों और नव

ो और सुनते रहते हैं । इन विचारोंमें स्वधर्मके
ा: अज्ञान और अनास्था—ये दोष मुख्यतया रहते
ये दोष उन्हें ज्ञात नहीं रहते । यही सोचकर मैंने
संवाद प्रयोगके तौरपर कराया । यह सुख-संवाद
के तौरपर प्रकाशित करनेके योग्य हुआ, इसका
तुम विद्यार्थियोंको ही है । जो सुविज्ञ नेता और
चारशील पाठक अपने मतका दुराग्रह छोड़कर
मन और शान्त चित्तसे इस संवादका मनन करेंगे,
ं बहुत-से विचार चिन्तन करने योग्य मिलेंगे ।
के इस संवादमें निर्णयात्मक विवेचन विशेषरूपसे
मिले; पर इससे इतना तो मालूम हो ही जायगा
नवमतवादी नेता जो कुछ कहते हैं, उसका एक
भी है । आजके संवादमें सनातनी प्रौढ़ विद्यार्थीने

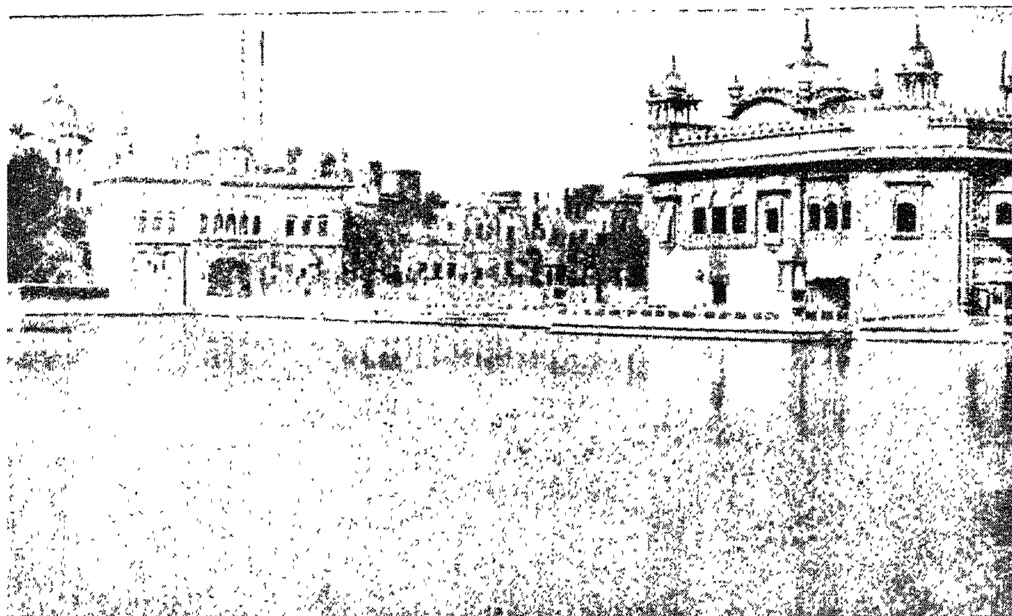
जो उत्तर पक्ष किया, उससे यह विश्वास होता है
प्रौढ़ विद्यार्थियोंके सनातनी ज्ञानवृद्ध गुरुके समीप
उनसे आस्थापूर्वक सावकाश विचार-विनिमय किया
तो हिंदू-संस्कृतिके अनेक गुप्त रत्न प्रकट होंगे ।
अपनी राज्यशासनपद्धति और शिक्षापद्धतिका
करते हुए परकीय संस्कृतिकी शासनपद्धति और शिक्ष
का तो विशेष आस्थाके साथ अध्ययन और अन्ध
तक करते हैं पर अपनी संस्कृतिको साम्प्रदायिक निष्ठा
समझनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं करते—यह अत्यन्त द
और अनर्थकारक अपराध आजके हमारे नेता कर
ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि दें और यह छोटा-सा संवाद
वृत्तिको अन्तर्मुख करनेका निमित्तमात्र कारण ब
मेरी आशा-कामना है ।

मैं कौन ?

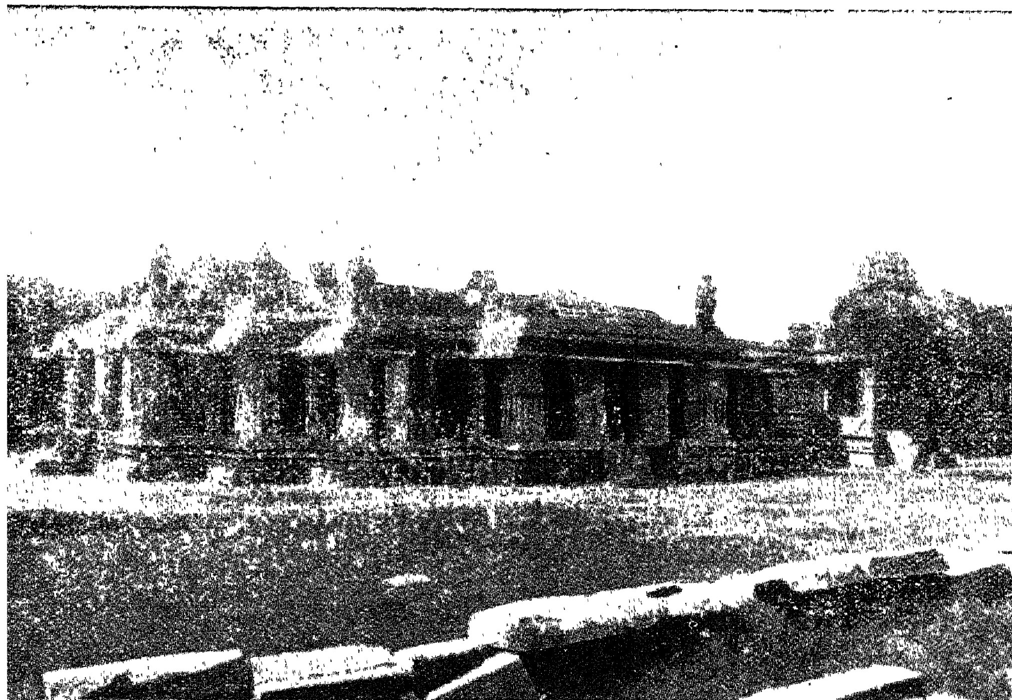
मैं हिंदू-कुलकी कुल-देवी, कबतक अदृश्य औ मौन रहूँ ?
अपना अनर्थ अपमान सहूँ ? फिर आज क्यों न 'मैं कौन' कहूँ ?
मैं हूँ अदृश्य, लेकिन घर-घर मेरी प्रतीक है गो-माता !
जिसकी पूजा हिंदू-समाज कर ऋद्धि-सिद्धि सब कुछ पाता ॥
गोपाल-बाल बन, दुष्ट-दलन माधवने जब मुरली टेरी ।
तत्काल विश्वमें स्वर-लहरी बन फैल गयी महिमा मेरी ॥
संस्कृत, प्रशस्त मेरा मुख है, स्मृतियाँ मेरी वाणी अक्षय ।
जिसमें सज्जन-गण मज्जन कर, कलि-कल्मषका कर देते क्षय ॥
ऋक्-साम-अथर्व-यजुर्वेदोंको मेरी चार भुजा जानो !
वृष-शङ्ख-चक्र-स्वस्तिक-अम्बुज मेरे कर-धृत आयुध मानो ॥
अभ्युदय और निःश्रेयस ही सुर-नर-मुनि-वन्दित पद पावन ।
विचरण करती हूँ निष्कण्टक, युग धर्म विमल मेरा वाहन ॥
शम-दम-यम-नियम-व्रतोंको रख, करते बुध-जन मेरा अर्चन ।
अध्यात्म-वेदिकापर रखते नित प्रेम-दया-सद्भाव-सुमन ॥
मम तुष्टि-हेतु निशिदिन होतीं अगणित प्राणोंकी आहुतियाँ ।
उन वीरोंकी गाथा-मिष ही गायी जातीं मेरी स्तुतियाँ ॥
धृति-सुकृति-सुमति-सद्गति-सुखदा मैं हूँ हिंदू-संस्कृति देवी !
संसृति पूजे या मत पूजे, भारत मेरा सच्चा सेवी ॥
जबतक जगमें अक्षुण्ण बना. मेरा यह वर्णाश्रम-मन्दिर !



साँचीका स्तूप



अमृतसरका स्वण-मन्दिर



विट्ठल-मन्दिर, विजयनगर

रामराज्य

(लेखक—श्रीशान्तिकुमार नानूराम व्यास, एम्० ए०)

ीय संस्कृतिमें राम-राज्य सदासे सुराज्यका पर्यायवाची राम-राज्यका वह युग सचमुच अतिशय समुन्नत एवं (नीतिपर आधारित भारतीय शासन-व्यवस्थाका एक था। तत्कालीन राजनीतिके आदर्श आज भी हमारी ाहर हैं। तब वे शासनतन्त्रके निरन्तर व्यवहारमें दैनिक सूत्र थे। आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक शासन- भी बहुत-से संकेत हमें उस समयकी राज्य-व्यवस्थामें ही प्राप्त हो जायँगे।

शासनतन्त्रका स्वरूप

ायणकालीन भारतमें कई स्वतन्त्र राज्य थे—जैसे काशी, कोसल, केकय, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, सांकाशी, वङ्ग, अङ्ग, मगध और मत्स्य। हिमालय व्य पर्वतोंके मध्यका भूभाग आर्यावर्त था। विन्ध्य- क्षिणमें वानरों और राक्षसोंके प्रदेश थे। उस समय ोई एकच्छत्र साम्राज्य नहीं था। पर अयोध्याके त्ता निकटवर्ती सामन्त राजाओंपर पर्याप्त थी। । 'नतसामन्तः' कहा गया है। विश्वामित्र उनसे कि 'क्या आपके सामन्त राजा तथा शत्रुगण आपके ?'

। ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः।

(१। १८। ४६)

राज्यमें प्रचलित शासनतन्त्रके स्वरूपको मर्यादित (Limited Monarchy) कहा जा सकता है। रकारके अभावमें होनेवाली अराजकताके दोषोंसे ारिचित थी। जनताका एक वैधानिक शासकद्वारा ुदृढ़ शासन-व्यवस्थामें परम विश्वास था।

ाका पद कुल-परम्परागत था। फिर भी नया शासक ाजा तथा मन्त्रिमण्डलके द्वारा प्रस्तावित किया जाता ा (धारासभा) के द्वारा चुना जाता था। श्रीरामको ानानेके पूर्व दशरथने अपनी सभाकी स्वीकृति प्राप्त ी। वालीकी अनुपस्थितिमें सारे मन्त्रियोंने सुग्रीवको लिया था। राजा नृगने अपनी सभाके समक्ष अपने त्तराधिकारी बनानेका प्रस्ताव किया था। ज्येष्ठ पुत्र राज्य ग्रहण करनेके लिये कहा, तो भरतने उत्तर ज्येष्ठ पुत्रके जीते-जी उसके छोटे भाई राजा कभी सकते। किंतु इस नियममें अपवाद भी थे। ज्येष्ठ ! या जनमतद्वारा अधिकारच्युत किया जा सकता था। ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज रास्तोंसे बालकोंको उठाकर नदं दिया करता था। प्रजाजनोंकी प्रार्थनापर सगरने अ पुत्रको वनमें निर्वासित कर दिया। राजा ययातिने ' यदुको राज्य न देकर अपने आज्ञाकारी कनिष्ठ पुत्र ही राज्य दिया। पुत्रके अभावमें राजाका भाई बनाया जाता था। श्रीरामके राज्याभिषेकके पश्चात् युवराज बनाया गया, क्योंकि उस समयतक श्रीरामके नहीं था।

अन्तर्वर्त्ती कालमें नये राजाके चुनावका प्रबन्ध मण्डलके सदस्य करते, जो 'राजकर्ता' कहलाते थे। की मृत्युपर ब्राह्मण अमात्यों, मन्त्रिमण्डलके सद राजपुरोहितने राजपद रिक्त होनेसे उत्पन्न होनेवाली स पर विचार किया। मन्त्रिमण्डलकी सहमतिसे मुख वसिष्ठने सभाकी ओरसे रामके दूसरे भाई भरतको बुल रामद्वारा छोड़े गये राज्यको स्वीकार करनेको ३ किया। भरतने नियम-विरुद्ध राज्य ग्रहण करनेसे इनव और वे रानियों, नागरिकों, सभाके सदस्यों और पु साथ ले श्रीरामको लौटानेके लिये चित्रकूट गये। जब दशरथ और कैकेयीके समक्ष की गयी राजत्यागक प्रतिज्ञा तोड़ना अस्वीकार कर दिया, तब भरतने आज्ञासे चौदह वर्षांतक उन्हींके नामसे कोसल देश प्रबन्धक (Regent) के रूपमें शासनभार सँभाल

राजागण प्रजाद्वारा ईश्वरीय विभूतिके रूपमें और प्रगाढ भक्तिके पात्र माने जाते थे। श्रीरामने व था कि 'राजालोग दुर्लभ धर्म, जीवन और लौकिक के देनेवाले होते हैं। अतः उनकी निन्दा, हिंसा त प्रति आक्षेप नहीं करना चाहिये। वे वास्तवमें देवत मनुष्यरूपसे इस पृथ्वीपर विचरते हैं।' मनुष्य पा यदि राजाके दिये हुए दण्डको भोग लेते हैं तो वे शु पुण्यात्मा पुरुषोंकी भाँति स्वर्गलोकमें जाते हैं।

देवताओंके स्वरूपको धारण किये रहते हैं; इसलिये
ा पाँचोंके गुण—प्रताप, पराक्रम, सौम्य स्वभाव,
ौर प्रसन्नता—विद्यमान रहते हैं। अतः सभी
ोंमें राजाओंका सम्मान और पूजन करना चाहिये।

आदर्श राजाके लक्षण

मीकिके अनुसार आदर्श राजा गुणवान्, पराक्रमी,
पकार माननेवाला, सत्यवक्ता, दृढप्रतिज्ञ, सदाचारी,
णियोंका हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली, प्रिय-
नपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला,
ा, अनिन्दक और संग्राममें अजेय योद्धा होता है।

द्वारा वर्णित आदर्श राजाके लक्षण शारीरिक,
और नैतिक विशेषताओंमें विभाजित किये जा सकते
रिक दृष्टिसे आदर्श राजाका व्यक्तित्व आकर्षक एवं
ादक होता है। उसके कंधे मोटे, भुजाएँ बड़ी-बड़ी,
के समान, ठोढ़ी भरी हुई, छाती चौड़ी, गलेके
हड्डी मांससे छिपी हुई, भुजाएँ घुटनोंतक लंबी,
न्दर, ललाट भव्य, चाल मनोहर, शरीर मध्यम और
देहका रंग चिकना, वक्षःस्थल भरा हुआ और आँखें
ी हैं। मानसिक दृष्टिसे वह बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता,
द-वेदाङ्गके तत्त्वको जाननेवाला, धनुर्वेदमें प्रवीण,
ता, अखिल शास्त्रोंका मर्मज्ञ, स्मरणशक्तिसे युक्त
भासम्पन्न होता है। नैतिक दृष्टिसे वह धैर्यवान्,
, सत्यप्रतिज्ञ, पवित्र, यशस्वी, श्रीसम्पन्न, अच्छे
ौर उदार हृदयवाला होता है।

ान्के अनुसार आदर्श राजा पूर्णचन्द्रके समान
खवाला; पद्मपत्रके समान विशाल नेत्रोंसे युक्त; रूप
ार्यसे सम्पन्न; तेज, क्षमा, बुद्धि और यशसे युक्त;
धर्म और चातुर्वर्ण्यका रक्षक; परम प्रकाशस्वरूप;
पूर्ण शिक्षित; ब्राह्मणोंका उपासक; ज्ञानी, शीलवान्,
ेद-वेदाङ्गका परिनिष्ठित विद्वान् और सामुद्रिक
नुसार शुभ अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे युक्त होता है।

ध्याकी जनताके अनुसार आदर्श राजा वीर्यवान्,
विद्वान्, सभी विद्याओं और वेद-वेदाङ्गोंको भली-
ननेवाला, मधुरभाषी, सज्जन, ईर्ष्या, असूया और
दूर, वृद्धों और ब्राह्मणोंका प्रतिपूजक, सदैव शान्त,
ाचारी, शीलसम्पन्न, मार्दव और कोमलतासे युक्त,
अर्थ और कामका ज्ञाता, गम्भीर, मन्त्रको गुप्त र
भाषा-ज्ञानमें निपुण, सङ्गीत, वाद्य और चित्रकारीका
शत्रुपर आक्रमण और प्रहार करनेमें कुशल, सेना-
निपुण, दोषदृष्टिसे रहित, अमित तेजस्वी, रूपवान्,
बाहर और भीतरसे शुद्ध, युक्तियाँ देनेमें बृहस्पति
नीरोग, तरुण, असाधारण वक्ता, सुन्दर विग्रहसे
देश-कालके तत्त्वको समझनेवाला और दीनतासे रहित
रामायणके अनुसार उपर्युक्त सभी लक्षण श्रीराम
होते थे।

राजकुमारोंकी शिक्षा

रामायण-कालमें राजकुमारोंको दी जानेवाली
अनुमान श्रीरामके शिक्षणसे किया जा सकता है।
हाथी और घोड़ेकी सवारी, रथचर्या, धनुर्वेद, घोड़ेप
शिकार, धनुष और तलवारका प्रयोग, सैन्य-सञ्चालन
आक्रमण और प्रहारकी शैली, राजनीति, सङ्गीतशा
और चित्रकारी, वेद-वेदाङ्ग तथा उस समयके स
और कलाओंकी शिक्षा दी गयी थी। उपाध्याय
उन्हें सैनिक शिक्षा दी थी तथा वसिष्ठपुत्र सुयज्ञने वैदि
ब्रह्मचर्य धारणकर श्रीरामने समग्र शिक्षाक्रमका नि
अभ्यास किया था। विद्वान् गुरुओंने उन्हें
शिक्षित और अनुशासित किया था। शब्दवेधी
राजकुमारोंको पारङ्गत बनाया जाता था। मुनिकुमा
दशरथने तथा ताटकाके वधमें श्रीरामने अपनी शब्दवेधी
प्रवीणता दिखलायी थी।

युवराजको सैन्य-सञ्चालनका अभ्यास करानेके
उच्च सैनिक पदाधिकारियोंके साथ रक्खा जाता था।
अपने सेनापति नीलको आदेश दिया था कि सेनावे
करणमें युवराज अङ्गदको जाम्बवान् तथा अन्य उ
अधिकारियोंके सम्पर्कमें रक्खा जाय। अपने विवाह
युवराज श्रीराम राज्य और प्रासादके प्रबन्धमें अपन
सहायता किया करते थे। उन्हें कई सैनिक कार्रवाइ
सञ्चालन करना पड़ता था। राजकुमारोंका विवाह उनक
और सैनिक शिक्षाके अनन्तर होता था। राजालोग
सङ्गीत, नृत्य, कथा-वार्ता तथा हास्य-गोष्ठीद्वारा
मनोरञ्जन करते थे।

राज-प्रासाद

ध्यमें होती थी। महलसे नगरको जानेवाले मार्ग
कहलाते थे। इन मार्गोंपर धनिकोंके मकान, दूकानें
र होते थे। महलोंमें कई चौक होते थे, जिनमें
ग द्वार होते थे। अयोध्याके राज-प्रासादमें पाँच
। आरम्भके तीन चौकोंको रथसे पार किया जा
। शेष दोमें पैदल चलना पड़ता था।

का व्यक्तिगत निवासस्थान या रनिवास 'अन्तःपुर'
था। अन्तःपुरमें तीन कक्ष्याएँ होती थीं। बाह्य-
ाजाकी सभा लगती थी, जहाँ बैठकर वे अपना
कार्य करते थे। मध्य कक्ष्यामें राजा अपने भाइयों,
और मन्त्रियों आदिके साथ गुप्त मन्त्रणा किया करते
तम कक्ष्यामें राजाकी रानियाँ रहती थीं, जहाँ राजा,
रों, नपुंसकों तथा द्वाराध्यक्षोंके अतिरिक्त किसीको
नेकी अनुमति नहीं थी। इसी कक्ष्यामें रानियोंके
र्थ एक अशोकवाटिका लगी रहती थी। स्त्रियाँ
मध्य कक्ष्यामें नहीं आती थीं। राजमहलके द्वारपाल-
प्रवेश करनेवालोंपर कड़ी निगाह रखनी पड़ती थी,
र्त अथवा शत्रुके चर अंदर न आ सकें। राज-
लिये अलग निवासस्थान बनाये जाते थे। दशरथके सभी
ापने पृथक् और समृद्ध राजमहलोंमें रहते थे।
गृहं कुबेरभवनोपमम् १। ७७। १४)।

राजाके कर्तव्य

को व्यक्तिगत हितकी अपेक्षा जनहितका विशेष ध्यान
ड़ता था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—राजा
ापनी जनताके कल्याणके लिये अपने दुष्ट पुत्रको
कर देना पड़ा था। श्रीरामने प्रजाकी प्रसन्नताके लिये
यभार्या सीताका परित्याग कर दिया। राजाको जन-
क्ष झुकना पड़ता था।

समस्त देशका संरक्षक था। धर्मानुसार न्यायवितरण
ाका कर्तव्य था। उसका यह एक लक्ष्य था कि चारों
र्मनिरत हैं या नहीं। प्रजा राजाको अपनी आयका
(बलिषड्भाग) कर-रूपमें देती थी। बदलेमें
ुष्टोंके दमन और साधुओंके रक्षणका भार आ पड़ता
राजा दण्ड देनेमें प्रमाद कर जाय तो उसे दूसरोंके
पाप भी भोगने पड़ते हैं।

रथके अनुसार राजाको काम और क्रोधसे उत्पन्न
दुर्व्यसनोंका सर्वथा त्याग करना चाहिये; स्वयं जाँच-
पड़तालकर तथा गुप्तचरोंद्वारा पता लगाकर समुचि
करना चाहिये; मन्त्री, सेनापति आदि अधिकारि
समस्त प्रजाको प्रसन्न रखना चाहिये, तथा भण्डा
शस्त्रागारमें उपयोगी वस्तुओंका विशाल संग्रह रखना
राजाका आचार-व्यवहार आदर्श होना चाहिये; क्यं
राजाके पदचिह्नोंका ही अनुसरण करती है। वालीके
इन्द्रियनिग्रह, मनका निग्रह, क्षमा, धर्म, धैर्य, परा
अपराधियोंको दण्ड देना—ये राजाके गुण हैं। र
स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिये। नीति और विनय, द
अनुग्रह—इनका अविवेकपूर्वक उपयोग करना उ
उचित नहीं है। उन्हें अनावश्यक हिंसा नहीं करनी
एकके अपराधके लिये अनेकका संहार अनुचित है
न्यायप्रिय और लोकप्रिय बनना चाहिये। राजकाज
सक्रिय योग देना चाहिये। जब सुग्रीवने राज्य
मन्त्रियोंको सौंप दिया और उनके कार्योंकी स्वयं देख
नहीं करने लगे, तब हनुमान्ने उपालम्भ देकर उ
किया था।

राजाका दैनिक कार्यक्रम क्या होना चाहिये, इसका
श्रीरामकी दैनिकचर्यासे प्राप्त होता है। प्रतिदिन
पूर्व वन्दिगण आकर स्तुति और सङ्गीतद्वारा राजाको ज
उठनेके पश्चात् राजा स्नान करते, वस्त्राभूषण धारण क
कुलदेवता, पितरों और विप्रोंकी पूजा करते थे। तत्पश्चा
बाह्य कक्ष्यामें जाकर सार्वजनिक कार्योंको निपटाते थे
अमात्यों, पुरोहितों, सैनिक अधिकारियों, जानपदों
राजाओं, ऋषियों तथा पौरवर्गोंके साथ सभाक
सञ्चालन करते थे। पौरकार्यमें व्यस्त न होनेपर वे
धर्म-प्रवचनोंका श्रवण करते थे। अपराह्णका समय श्री
अन्तःपुरके अशोकवनमें सीताके साथ व्यतीत क
दिनके शेष समयमें वे मध्यकक्ष्यामें गुप्तचरों औ
महत्त्वपूर्ण मन्त्रणा करते थे।

राजाको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उसके
सभी वर्ग उससे सरलतापूर्वक मिल सकें। स्त्री-पुरुष
अपनी शिकायतें कहनेके लिये राजाके पास प्रातःकाल
अवसर मिलना चाहिये। प्रतिदिन राजाको राजोचित वे
सभागृहमें बैठकर जनताको दर्शन देना चाहिये।

अपनी प्रजाके दोषों और पापोंके लिये राजा ही उ
था। राजाको दूसरोंसे दान लेनेका अधिकार न
लोकापवादका भय राजाओंको अनाचारमें प्रवृत्त होने

ाकीय कार्योंमें वे वंशगत परम्पराओं और संस्कारों-
यन्त्रित रहते थे। अपनी अनुपस्थितिमें राजाको
ासन-व्यवस्थाका समुचित प्रबन्ध कर देना चाहिये।
खोजमें जानेसे पहले श्रीरामने लक्ष्मण और भरतको
ा शासन-भार सौंप दिया था। राजाकी आज्ञा बिना
ो नगर छोड़नेका अधिकार नहीं था। वृद्ध हो जाने-
अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्यभार सौंपकर स्वयं वानप्रस्थ
र लेते थे। अवसर-ग्रहणकी आज्ञा सभासे प्राप्त
ती थी। अयोध्याकाण्डके १०० वें सर्गमें श्रीरामने
ाजधर्मका सारगर्भित उपदेश दिया है।

आदर्श शासन-प्रबन्ध

र्श शासन-प्रबन्धके अन्तर्गत देशकी समृद्धि होनी
ही थी। राजा दशरथके शासनकालमें सारे अयोध्या-
न्न, धर्मात्मा, धन-धान्यसम्पन्न तथा निर्लोभ थे। वे
रके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित रहते, मालाएँ और
धारण करते तथा बहुमूल्य खाद्य और पेय पदार्थोंका
ते थे। अपवित्र अन्न भोजन करनेवाला, दान न
तथा मनका निग्रह न करनेवाला मनुष्य तो वहाँ
ायी ही नहीं देता था। अयोध्यापुरीमें एक भी
ा नहीं था, जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो।
र, दुराचारी अथवा वर्णसंकरका तो वहाँ नाम भी
। सभी मनुष्य स्त्री, पुत्र और पौत्र आदि परिवारके
से रहते थे।

ाज्यका वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय
का विलाप नहीं सुनायी पड़ता था, सर्पादि दुष्ट-
भय नहीं था, रोगोंकी आशङ्का नहीं थी, कोई
था, पापका कोई स्पर्श भी नहीं करता था तथा
ालकोंके अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करने पड़ते थे।
प्रसन्न थे, सभी धर्मपरायण थे तथा श्रीरामको
एक-दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे। उस समय
र्घजीवी और पुत्र-पौत्रसम्पन्न होते थे तथा उन्हें
ारका रोग या शोक नहीं होता था। वृक्षोंकी जड़ें
ोती थीं और वे सर्वदा फल-फूलोंसे लदे रहते थे।
ा होते ही वर्षा करते थे और वायु सुखकारी
सन्तुष्ट और पुष्ट थी। दुर्भिक्षका भय नहीं था। ि
सुहागिनी और पतिव्रता थीं। आग लगनेका कि
भय नहीं था। कोई प्राणी जलमें नहीं डूबता था
ज्वर या क्षुधाका डर नहीं था। सभी नगर और
धान्यसे सम्पन्न थे।

सभा

रामराज्यकी लोकसभाको परिषद्, समिति, संसद्
सभा कहते थे। उसका महत्त्व बहुत-कुछ आधुनिक ऐ
ही समान था। सभाका अध्यक्ष राजा स्वयं होता था
अनुपस्थितिमें राजपुरोहित। सभापतिका आसन
परमासन या धर्मासन कहलाता था। सभाके सदस्य,
विभिन्न वर्गोंके प्रतिनिधि होते थे, प्रकृति, सभासद्
मिश्र कहलाते थे। आर्य या आर्यमिश्र नामसे उन्हें
किया जाता था। नगर और ग्राम दोनोंका प्रतिनिधि
वाली सभा पौरजानपद (सभा) कहलाती थी।

सभामें सरकारी और गैर-सरकारी दो प्रकारके
होते थे। सरकारी सदस्योंमें अमात्यगण अथवा मन्त्रि
सदस्य होते थे तथा गैर-सरकारी सदस्योंमें नगर औ
प्रतिनिधि होते थे। राजधानीके प्रतिनिधि 'पौर'
शेष राष्ट्रके प्रतिनिधि 'जानपद' थे। पौर-जानपदोंमें
और 'श्रेणीमुख्य' भी सम्मिलित थे। 'नैगम' व्यापा
प्रतिनिधि थे तथा 'श्रेणीमुख्य' नगर-स्वायत्त-स
अध्यक्ष थे। पौरों और जानपदोंके लिये राजधानी
निवासस्थान बने थे। यद्यपि रामायणमें यह स्पष्ट
गया है कि पौर और जानपद सरकारद्वारा नियुक्त ह
जनताद्वारा चुने जाते थे, फिर भी 'नैगमाः', 'ग्रामघोषम
'श्रेणीमुख्याः', 'गणवल्लभाः', 'जनमुख्याः'-जैसे नामों
न-किसी प्रकारका चुनाव ध्वनित होता है।

वर्णों, हितों तथा प्रदेशोंकी दृष्टिसे भी सभामें प्रति
की सूचना मिलती है। ब्राह्मण वर्ण और आध्यात्मि
प्रतिनिधि पुरोहित और ब्राह्मण मुनि हुआ करते थे।
और आर्थिक हितोंका प्रतिनिधित्व राजधानीकी ओ
और गणवल्लभ (व्यापारिक श्रमिक संघोंके प्रतिनि
प्रान्तोंकी ओरसे 'ग्रामघोषमहत्तराः' (किसानों और
प्रतिनिधि) करते थे। क्षत्रिय वर्ण और सैनिक

पस्थितिका कोई संकेत नहीं मिलता। राजा स्वयं ही तरक्षक था। प्रादेशिक दृष्टिसे सारा देश दो भागोंमें गया था—पौर (राजधानी) और राष्ट्र अथवा शेष प्रदेश)। जब दशरथने युवराजका चुनाव करनेके नी सभाका अधिवेशन बुलाया, तब उन्होंने सामन्त राजधानी और प्रान्तीय नगरोंमें रहनेवाली प्रजा दवासियोंके प्रतिनिधियोंको आमन्त्रित किया था।

का यह अधिकार था कि वह राजाके ज्येष्ठ पुत्रको किसीको उसका उत्तराधिकारी चुने। सभासदोंको पना पृथक् चुनाव-अधिकार किसी एक सभासद्को देनेका अधिकार था, जिसकी नैतिकतामें उनका स था। दशरथकी मृत्युके पश्चात् बुलायी गयी दस्योंने उत्तराधिकारी चुननेके अपने अधिकार सौंप दिये थे। सामान्यतः शासनसम्बन्धी सभी प्रश्नोंपर—जैसे राजा या युवराजक चुनाव, युद्धकी राजाके राज्यत्याग या अवसरग्रहणपर—सभाका बुलाया जाता था। सभासदोंको उपस्थित होनेकी न्देशवाहकों या भेरीवादकोंके द्वारा पहुँचायी जाती पति और सभासद् उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित ते थे। बैठनेके आसन न्यायानुसार लगाये जाते थे। सद् राजाकी ओर मुँह करके बैठते थे। सभामें शिष्टाचारका पालन आवश्यक था। भाषणकी अनुमति ही सभासद् सभाको सम्बोधित करते थे। सभाके अनुसार 'वह सभा सभा नहीं, जहाँ वृद्ध न हों; वे नहीं, जो धर्मयुक्त बात न कहते हों; वह धर्म धर्म सत्य न हो और वह सत्य सत्य नहीं, जो निश्छल : प्रेरित न हो।'

मन्त्रिपरिषद्

त्रपरिषद्के दो भाग थे—(१) अमात्यमण्डल, दस्य अमात्य या सचिव कहलाते थे। प्रत्येकके में एक विभाग था। अमात्यगण सम्भवतः क्षत्रिय । इनका कार्य दैनिक शासनकार्यका सञ्चालन करना २) मन्त्रिमण्डल, जो 'गुरवः' भी कहलाते थे। यह रामर्शदात्री समिति थी, जो किसी कार्यविशेषपर त की जाती थी। इसके सदस्य ब्राह्मण थे। अन्तर्वर्ती 'राजकर्तारः' (King-makers) का कार्य करते

मण्डलमें सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, तथा ऋत्विग्द्वय वसिष्ठ और वामदेव थे। अमात्यम मन्त्रिमण्डल दोनों सम्मिलितरूपसे मन्त्रिपरिषद् कहल

दशरथके अमात्यगण मन्त्रके तत्त्वको जाननेव बाहरी चेष्टा देखकर ही मनके भाव समझ लेनेवाले बड़े यशस्वी और गुणवान् थे, सदा ही राजा-प्रजाके हितमें लगे रहते थे। उनके स्वभाव और विचार ब थे तथा राजकीय कार्योंमें वे निरन्तर संलग्न रहा क दशरथके मन्त्रिगण परम्परागत थे। उनमेंसे कोई ऐ था, जो काम, क्रोध या स्वार्थके वशीभूत होकर कभी बोलता हो। अपने या शत्रुपक्षके राजाओंकी कोई भ उनसे छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या करते कर चुके हैं और क्या करना चाहते हैं—ये सभी बा गुप्तचरोंके द्वारा मालूम रहती थीं। वे सभी व्यवहारोंमें थे। उनके सौहार्दकी अनेक अवसरोंपर परीक्षा हो चु वे मौका पड़नेपर अपने पुत्रको भी उचित दण्ड देने हिचकते थे और अपराध न होनेपर शत्रुकी भी हि करते थे। सबमें शौर्य और उत्साह था। सभी रा अनुसार काम करते और अपने राज्यके भीतर सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहते थे।

मन्त्रियोंका यह कर्तव्य था कि वे राजाको कु बननेसे बचायें। अश्वमेध करनेके समय, युवराजको बाहर कार्यवश भेजनेके समय, युवराजके योग्य वधू करते समय, सभाके समक्ष किसी प्रस्तावको रखनेसे पू घोषणा करनेसे पूर्व तथा अन्य कठिन समस्याओंका हल समय राजा मन्त्रिपरिषद्से परामर्श करता था। ब्राह्मणने, जिसका पुत्र असमयमें ही मर गया था, शासन-कुव्यवस्थाका दोषारोपण किया, तब श्रीराम मन्त्रिपरिषद्से परामर्श किया था।

आय-व्यय

दशरथके मन्त्रिगण राजकीय कोशको समृद्ध कर जागरूक रहते थे (कोशसंग्रहणे युक्ताः १ । ७ । ११ ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको कष्ट न पहुँचाकर यथोचि राजाका खजाना भरते थे। दशरथके सिद्धार्थ औ

॥ था । करका भार अत्यधिक नहीं था और न वह
। वसूल ही किया जाता था । आयका अन्य स्रोत
राजाओंसे प्राप्त होनेवाले उपहार थे । श्रीरामको
द राजाओंने घोड़े, सवारियाँ, रत्न, मतवाले हाथी,
न्दन, दिव्य आभूषण, मणि, मोती, मूँगे, रूपवती
बकरियाँ, भेड़ें और तरह-तरहके बहुत-से रथ भेंट
। अयोध्याके राजाको उपहार अर्पित करनेवाले राजा
र थे—केवल (जो राज्य नहीं करते थे), अपरान्त
देशोंके राजा थे) और सामुद्र (जो समुद्रपारके
ासक थे) । राजाको आयके विविध उपायोंसे तथा
चित साधनोंसे परिचित रहना चाहिये (आयकर्म-
: संदृष्टव्ययकर्मवित् २ । १ । २६) । राजाका
ा, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रोंके
त्रे होता था ।

न्याय और कानून

ामका शासन परम्परागत राजधर्मके अनुसार होता था ।
तरणका सर्वोच्च सिद्धान्त यह था कि निरपराध व्यक्ति-
नहीं मिलना चाहिये; क्योंकि निरपराध होनेपर भी
मेथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उन मनुष्योंकी
जो आँसू गिरते हैं, वे पक्षपातपूर्ण शासन करनेवाले
ुत्र और पशुओंका नाश कर डालते हैं । राजाको यह
ना पड़ता था कि योग्य न्यायाधीशोंद्वारा जाँच कराये
थेत अपराधीको दण्डित न किया जाय । चित्रकूटपर
रतसे पूछते हैं कि 'कभी ऐसा तो नहीं होता कि कोई
केसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुषपर भी दोष
और शास्त्रज्ञानमें कुशल विद्वानोंद्वारा उसके विषयमें
कराये बिना ही लोभ आदिके कारण उसे दण्ड दे दिया
जो चोरीमें पकड़ा गया हो, जिसे किसीने चोरी करते
खा हो, पूछताछसे भी जिसके चोर होनेका प्रमाण
या हो तथा जिसके विरुद्ध चोरीका माल बरामद
ादि और भी बहुत-से सबूत हों, ऐसे चोरको भी तुम्हारे
धनके लालचसे छोड़ तो नहीं दिया जाता ? यदि
र गरीबमें कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्यके
यमें निर्णयके लिये आया हो, तो तुम्हारे मन्त्री

न्यायाधीश धर्मपालक कहलाते थे । व्यवहार अ
सम्यक् ज्ञानके कारण ही वे इस पदपर नियुक्त किये
सभागृहको ही न्यायालयका रूप दे दिया जाता
बैठकर प्रतिदिन प्रातःकाल राजा स्त्री-पुरुषोंकी शि
फैसला किया करता था । अध्यक्ष (राजा) के
न्यायालयके सदस्य ये हुआ करते थे—पुरोहित वसि
शास्त्रमें पारङ्गत तथा व्यवहारनिपुण ब्राह्मण मुनि;
और लोकाचारके ज्ञाता, वृद्ध और अनुभवी
'व्यवहारज्ञ' और 'धर्मपारग' मन्त्रिगण, क्षत्रिय अ
सभाके नीतिज्ञ सभ्य; नैगम तथा राजाके भाई । अप
शिकायतें लानेवाले कार्यार्थी कहलाते थे ।

अविलम्ब न्यायप्राप्ति ही आदर्श न्याय-व्यवस्था
है । राजा नृगने अपने द्वारपर दो ब्राह्मण कार्यार्थिये
देरतक ठहरा रक्खा और अपने सामने नहीं आने दि
अपराधके लिये नृगको शापका भागी बनना पड़ा ।
पूर्वज राजा निमि उस समय सो रहे थे, जब वसि
शिकायत सुनाने उनके यहाँ आये थे । न्यायाल
प्रवेश न पानेपर वसिष्ठने राजाको शाप दे दिया ।
न्याय-शासनकी विशेषताएँ ये थीं—सरलतापूर्वक, कि
बिना न्यायप्राप्ति; पेशेवर वकीलों, कोर्टफीस त
नियमोंका अभाव; राजाद्वारा व्यक्तिगतरूपसे न्यायक
राजाके समीप पहुँचनेकी सुविधा; अविलम्ब और
न्यायप्राप्ति और इस कारण लोगोंद्वारा एक दूसरेके
और स्वत्वोंका सम्मान तथा फलस्वरूप न्यायालय
अत्यल्पता ।

राजमार्गोंकी व्यवस्थाके लिये पुलिसका प्रब
हनुमान्ने लङ्कामें डंडे लिये कई व्यक्तियोंको
करते हुए देखा था । इन्हें 'दण्डायुधधराः' कहा
जो आधुनिक अर्थमें पुलिसका पर्यायवाची है । ल
बाद जब श्रीराम अयोध्या लौटे, तब भरतने रास्तोंमें
हटानेके लिये सैकड़ों आदमियोंको तैनात करनेका
आदेश दिया था । स्पष्टतः यह संकेत यातायातके
सुव्यवस्थाके लिये नियुक्त पुलिस कर्मचारियोंकी अ
पुलिसके अतिरिक्त एक गुप्तचर-विभाग भी काम क

स्वायत्तशासन—म्युनिसिपैलिटी

नगरोंका स्वायत्तशासन कई स्थानीय समितिये

ल्लभ' तथा 'पौर' और 'श्रेणीमुख्य' जैसी स्वायत्त-
ाँ। राजधानीकी नगर-व्यवस्था 'पौर' समितिके अधीन
ार-व्यवस्थाको 'पौरकार्य' कहते थे। अपने विवाहके
ाम पौरकार्यमें दशरथकी सहायता करते थे। राजा या
ही नगर-प्रबन्ध-समितिका अध्यक्ष होता था। क्षत्रिय
धिकारी, वैश्य व्यापारी, विभिन्न उद्योग-धंधोंमें लगे
राजाकी उदारतापर निर्वाह करनेवाले कतिपय ब्राह्मण,
में संलग्न शूद्र तथा दासलोग ही अयोध्याकी जन-
मुख्य अङ्ग थे। नगर-प्रबन्ध-समितिके कार्य ये थे—
निवेश, राजमार्गोंकी देख-रेख, मरम्मत और छिड़काव;
जलकी व्यवस्था (अयोध्यामें शुद्ध, मधुर और स्वच्छ
मात्रामें उपलब्ध था; जलप्राप्तिके स्रोत सरित्, नदी,
वण, निर्झर, वापी, कूप, तटाक, पल्वल, सरस्
और नलिनी थे); नगरमें प्रकाशके लिये दीपों और
की व्यवस्था, यातायात (Traffic) का नियन्त्रण,
अवसरपर नगरकी सजावट, उद्यान लगाना और
वस्था आदि।

युद्धके नियम

क-विभागकी व्यवस्था राजा स्वयं मन्त्रियोंकी सहायतासे
। दशरथके मन्त्रियोंको 'दृढविक्रमाः', 'युक्ता बलस्य
' और 'वीराः' कहा गया है। सम्भवतः सैनिक
मन्त्रियोंका संयुक्त उत्तरदायित्व था। युद्ध या
घोषणा करनेका अन्तिम अधिकार राजाको ही था।

ालीन नगर दुर्गोंके रूपमें बनाये जाते थे। ये दुर्ग
रके शस्त्रास्त्रों, आक्रमण-प्रत्याक्रमणके साधनों तथा
(तहखानों, तिलस्मों) से युक्त थे। दुर्ग चार प्रकारके
-नादेय (समुद्र या नदीसे घिरा हुआ, जैसे लङ्का),
पहाड़ियोंसे घिरा हुआ, जैसे किष्किन्धा), वन्य
लसे घिरा हुआ, जैसे लङ्का) और कृत्रिम (चहार-
था खाईसे घिरा हुआ—जैसे अयोध्या, लङ्का और
)।

के चार भाग होते थे—पैदल, घुड़सवार, रथी और
सीलिये वह 'चतुरङ्गबल' कहलाती थी। सैनिकोंकी
ी चार प्रकारकी थीं—मित्रबल (मित्र राजाओंके
आटवीबल (जंगली जातियोंके सैनिक), मौलबल
रागत सैनिक) (Standing army), भृत्यबल
सैनिक) और द्विषद्बल (शत्रुको छोड़कर आये हुए

था। आवागमनका मार्ग, तम्बू, पुल आदि बना
एक दल सेनाके आगे जाया करता था। खाद्यसा
अन्य आवश्यक सामग्री एक अन्य दलके सुपुर्द थी। से
व्यापारी, सैनिकोंकी स्त्रियाँ, दासवर्ग आदि रहते

रामराज्यके आदर्श सैनिकसे वेदों और अस्त्र
अपेक्षित था। हाथी, रथ और घोड़ेपरसे युद्ध करने
शिक्षा दी जाती थी। साम, दान, दण्ड और भे
अभ्यस्त रहना पड़ता था। अयोध्या, किष्किन्धा औ
सैनिक प्रायः विवाहित थे। विवाहित सैनिकोंसे सेनाक
बनी रहती थी; क्योंकि गृहस्थ सैनिक देश और राज
ही नहीं, अपने परिवारके लिये भी शत्रुका सामन
लिये उद्यत रहेंगे। सैनिकोंको दान, मान और प्र
प्रसन्न और सन्तुष्ट रक्खा जाता था। श्रीरामने भरतसे
कि 'सैनिकोंको देनेके लिये नियत किया हुआ समुचि
और भत्ता तुम समयपर दे देते हो न? देनेमें वि
नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दि
हैं तो सैनिक अपने स्वामीपर बहुत असन्तुष्ट रहते
इसके कारण बहुत अनर्थ हो जाता है।' लङ्काके सै
घर बड़े समृद्धिपूर्ण और वैभवशाली थे।

युद्धके नियम आदर्श थे। युद्धसे पराङ्मुख होक
जाना अपनी कीर्तिमें बट्टा लगाना था और राजाके
युद्धभूमिमें प्राण त्याग करना बड़ा पुण्योत्पादक था।
युद्धमें सक्रिय भाग न लेनेवालों (भयके मारे छिप जाने
तथा शान्तिकी याचना करनेवालोंको मारना पापपू
किंतु युद्धका आमन्त्रण स्वीकार करना प्रत्येक स्वामि
लिये अनिवार्य था। अकारण ही किसीपर वार करना
नियमोंके विपरीत था। भागते हुए व्यक्तिकी पीठप
करना निन्दनीय क्रूरता थी। किसी अन्य व्यक्तिसे
संलग्न पुरुषको मार डालना सैनिक नियमोंका भङ्ग कर
नीलके साथ लड़ते हुए रावणपर वार करना हनुमान्ने उ
समझा। मदविह्वल, सोते हुए, शस्त्रास्त्रोंसे हीन, थ
नशेमें चूर या स्त्रियोंसे घिरे हुए शत्रुपर वार करना उ
था अर्थात् शत्रुकी कमजोरियोंसे लाभ उठाना अनुचि
जब रावण थक गया तो श्रीरामने उसे घर लौट जा
विश्रामके पश्चात् नये रथमें नया धनुष लेकर आने

नदेशमें स्थायी शासन-व्यवस्था कर जाय। दूतको
ाना जाता था।

उपसंहार

र्युक्त पङ्क्तियोंमें रामराज्यका संक्षिप्त राजनीतिक चित्रण
ा है। इससे पता चलता है कि उस समयके राज-
सेद्धान्त एक सुसंस्कृत और समुन्नत राज्यके सर्वथा
ये तथा उस समयकी शासन-व्यवस्था पिछड़ी हुई न
ो ही उन्नत, व्यवस्थित, न्यायपूर्ण और धर्मसंगत थी।
ालीन शासन-व्यवस्था वैदिक राजनीतिका ही एक
और परिष्कृत स्वरूप थी। रामराज्यमें प्रजातन्त्रात्मक

संस्थाओंके महत्त्वको भलीभाँति समझ लिया गया था
कि तत्कालीन सभा तथा पौर और जानपद स
अस्तित्वसे प्रकट है। ये संस्थाएँ राजाके निरङ्कुश
प्रतिबन्धस्वरूप थीं। स्वायत्त-शासनके भी चिह्न उस
पर्याप्त दृष्टिगोचर होते हैं। रामराज्यमें सदाचार, नि
न्यायप्रियता, वैभव, सुख, समृद्धि आदिकी जो
दीख पड़ती है, तथा अपराध, वर्ग-द्वेष, अशान्ति, क
दुःख, शासकवर्गके प्रति असन्तोष आदिकी जो शू
अल्पता पायी जाती है, वह आजके इस वैज्ञानिक युगमें
परम अनुकरणीय आदर्शरूपमें हमारे सम्मुख चिरप्रतिष्ठि

रामराज्य

(लेखिका—श्रीशान्तिदेवीजी शुक्ल)

राज्यका सर्वप्रथम लक्षण श्रीरामजीकी कृपासे यही
ावश्यक है कि किसी भी प्राणीको रामराज्यमें दैहिक,
था भौतिक ताप न व्यापे।

समय भी महात्मा गांधीका रचा हुआ भारतमें एक
कहा जाता है। महात्मा गांधीके सिद्धान्तानुसार
ारतमें सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा न्यायका आचरण
ाहिये; परंतु ऐसा रामराज्य बिना भगवान्‌की कृपाके
सकता। इस समय महात्मा गांधीका प्रत्यक्ष 'सत्सङ्ग'
। बिना सत्सङ्गके विवेक हो नहीं सकता। सत्सङ्ग
वेक प्राप्त होनेके लिये रामकृपाकी आवश्यकता होती
त्मा तुलसीदासजी अपने रामचरितमानसमें लिखते हैं—

सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

-भक्तिकी शिक्षा हमें डाक्टर बाटनसे मिलती है।
ादशाह शाहजहाँकी राजकुमारीकी ओषधि करके उसे
किया और बादशाहसे अंग्रेजोंके लिये बिना रोक-टोक
करनेकी आज्ञा प्राप्त की। अवधप्रान्तके ग्रामोंमें
डकैती, कत्ल, व्यभिचार, अनाचार, अत्याचार प्रायः
करते हैं। ग्रामवासियोंका जीवन अशान्ति, दुःख,
और बड़े कष्टसे बीत रहा है। इस बीसवीं शताब्दीमें
भाव ग्रामीण बाजारोंमें एक रुपयेका सात पाव है।
ी एक रुपयेका ढाई छटाक मिल रहा है और सरसों-

से कम नहीं लगते। जूता भी करीब नौ
रुपयेको मिलता है। एक छातेके लिये करीब नौ
रुपये देने पड़ते हैं। निम्न श्रेणीका स्वार्थ तो इ
गया है कि आज पत्नी पतिका, भाई भाईका और पु
पिताका घृणित अनिष्ट करनेमें जरा भी नहीं हिचकते

सत्य, शौच, दया और दानके स्थानपर हिं
स्त्री-सङ्ग, मद्यपान तथा धनके लोभका आचर
करते हैं।

रामराज्यमें कोई दुखी और दरिद्र नहीं होता औ
मूर्ख और शुभ लक्षणोंसे रहित होता है। रामराज्यकी
यह होनी चाहिये कि जड-चेतन सारे जगत्‌में का
स्वभाव और गुणोंसे उत्पन्न हुए दुःख किसीको भी
हों—इनके बन्धनमें कोई नहीं रहे।

रामराज्यमें सभी प्राणी दम्भरहित और धर्मपरा
पुण्यात्मा होते हैं। स्त्री-पुरुष सभी चतुर तथा
होते हैं। रामराज्यके निवासी प्रायः सभी पण्डि
ज्ञाननिष्ठ, साथ ही सरलहृदय होते हैं। कपटपूर्ण
तथा धूर्तता किसीमें नहीं होती। सब पुरुषोंमें
निःस्वार्थ प्रीति और सात्त्विक नीतिका बर्ताव होत
सभी स्त्री-पुरुष परम गतिके अधिकारी होते हैं।

रामराज्यमें सब प्रकारसे सुख-सम्पदा रहती है

तिकी सेवा करती हैं । सभी प्राणियोंका मन सहज
: रहता है ।

सि मधु टपकता है । गौएँ मनचाहा दूध देती हैं ।
दा खेतीसे भरी रहती है । पर्वतोंसे अनेक प्रकारकी
। खानें प्रकट होती हैं । सभी नदियोंमें स्वादिष्ट
तिल जल बहा करता है । समुद्रोंकी लहरोंद्वारा
न होते रहते हैं । चन्द्रमासे अमृतमयी किरणें
हैं और पृथ्वीको परिपूर्ण कर देती हैं । मेघोंसे
र जल प्राप्त होता है । रामराज्यमें सदा वसन्त-
आनन्द रहता है । सभी प्राणी परमात्माका स्मरण
ते हैं । बाजारोंमें वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिल
। रामराज्यके राजा साक्षात् भगवान् लक्ष्मीनारायण
हैं । रामराज्यमें अणिमादि आठों सिद्धियाँ और
ख-सम्पत्तियाँ प्रकट रहती हैं ।

ामचरितमानसकी चौपाई रामराज्यके सम्बन्धमें इस
—

हिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥

एक सर्वप्रथम लक्षण रामराज्यका होना आवश्यक
मराज्यके बाजारोंमें चीजें बिना मूल्य प्राप्त हुआ
। रामराज्यकी बाजारका वर्णन इस प्रकारसे महात्मा
ने रामचरितमानसमें किया है—

र रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए ।

ात्मा भगवान् श्रीरामकी कृपासे 'भारतमें निरन्तर
राज्य हो, और इस रामराज्यसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों-
सब प्रकारकी शिक्षा और दीक्षा प्राप्त होती रहे ।

र्षि महात्मा वसिष्ठने भगवान् श्रीरामको शिक्षा दी थी
रूपी पक्षीके दो पंख होते हैं—एकसे कर्मका अभ्यास
और दूसरेसे ज्ञानका । जीवन सफल बनानेके लिये
र कर्मकी आवश्यकता है । रामराज्यके निवासी,
तथा संचालक युक्ति और शक्तिसे राज्य-सञ्चालन-
ं तो नित्य सफलता प्राप्त रहेगी और सर्वत्र सब
प्रकारसे विजय, विभूति, श्री और नीति स्थायीरूपसे

आध्यात्मिक चिन्तनके बिना मनुष्यको शील
होता । प्रार्थनाहीन जीवनसे कुछ लाभ नहीं होत
ज्ञान और भक्तिके विनीत भावकी प्राप्ति नहीं होती
जबतक प्रथम अपने आपको पूर्ण रीतिसे सुधार न
तबतक दूसरोंको शिक्षा ही क्या दे सकता है । अ
तथा अनधिकारी सुधारक एवं शासक संसारका
होता है । सुधारकों तथा शासकोंको प्रायः अहंकार
अपने कार्योंका और वे यह चाहते रहते हैं ि
कार्योंकी सब लोग प्रशंसा करते रहें और उनके अ
चलते रहें । इस अभिमानसे जनसाधारणमें शत्रु
रहती है । अभिमान ही मृत्युका मुख्य कारण हुआ क
अहंकारसे ही विनाश होता है । अहंकारयुक्त अ
लोक-सेवा लोक-विनाशक हो जाती है । परमहंर
रामतीर्थ कहा करते थे—जिस क्षण कोई सुधारव
है, उसी क्षण वह लोकविनाशक हो जाता है
moment you become a Reformer of the
the very moment you become a De
of the world.) । परमात्माकी कृपा और महा
दयासे भारतमें अखण्ड रामराज्य स्थापित रहे ।

महर्षि वाल्मीकिजीकी उक्ति है—

लोके न हि स विद्येत यो न राममनुव्रत

अर्थात् लोकमें ऐसा कोई हुआ ही नहीं, ज
अनुगामी न हो ।

श्रीमद्भगवद्गीताके अन्तिम सिद्धान्तपर ध्यान
हमारे वर्तमान शासक सच्चे रामराज्यकी व्यवस्थ
शासक तथा संसार-सुधारक स्वयं सुख-शान्ति प्राप्त
देशको सुख-शान्ति और नित्यानन्द परमात्मा श्रीराम
प्रदान करें । यही मेरी विनीत प्रार्थना है ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम

सत्यमेव जयते । ॐ तत्सत् ।

हिंदुओंकी प्रामाणिकता

हिंदू इतने ईमानदार हैं कि न तो उन्हें अपने दरवाजोंमें तालोंकी आवश्यकता है और न को
ो जानेपर उसकी प्रामाणिकताके लिये किसी लिखा-पढ़ी की ।'

हिंदू-हिंदुस्थान

(रचयिता—श्रीसूर्यबलीसिंहजी 'दशनाम' साहित्यरत्न)

(१)

दू हैं, यह हिंदुस्थान हमारा।
के प्रिय हैं और हमें यह प्यारा ॥टेक॥
दि निवासी आदिकालसे रहते।
ह्ले आर्यावर्त इसे थे कहते ॥
र्य-सभ्य हैं, आर्य-सभ्यता रखते।
ार्योंका साहित्य-संहिता रखते ॥
ने-कण्ठोंने एक साथ उच्चारा।
दू हैं, यह हिंदुस्थान हमारा ॥

(२)

ुना-गोमती-गंडकी-वरुणा ।
ोहित्या-वेत्रवती-सरि-कृष्णा ॥
त्तोया-महानदी-कावेरी ।
ोदावरि-शोण, सिन्धु युत-चेरी ॥
हैं कलकल कल निनादके द्वारा।
दू हैं, यह हिंदुस्थान हमारा ॥

(३)

-मलय-गिरिनील-महेन्द्राचलवर ।
ारियात्र श्रीऋक्षवान धरणीधर ॥
ाल विस्तृत विपुल वृक्ष-वृन्दोंसे।
सुमेरु समुच्च शिखर वृन्दोंसे ॥
हिमालय लगा रहा है नारा।
दू हैं, यह हिंदुस्थान हमारा ॥

(४)

दरद काश्मीर पंचनद कोशल।
कलिंग कर्णाटक केरल कुन्तल ॥
कच्छ सौराष्ट्र निषध मरु मणिमन।
ङ्ग पौण्ड्र प्रागज्योतिष मिथिला शोभन ॥
। शृंगीनाद किया स्वीकारा।
दू हैं, यह हिंदुस्थान हमारा ॥

(५)

दंडक द्वैतादि सुरंजन कानन।
े हैं जो तुरत प्रफुल्लित आनन ॥
ो करता मानसहित सर मानस।
भर देता मनमें पुण्य-सुधा-रस ॥
झरने झर झार [illegible]।

(६)

मथुरा माया पावन प्रयाग अ
सुखदा अवन्तिका पुरी काञ्चिका
द्वारिका बदरिका सेतुबन्ध रा
इस युगमें भी है नया धाम कृष्ण
सबसे निस्सृत हो रही यही ध्वनि
हम हिंदू हैं, यह हिंदुस्थान ह

(७)

भाषाओंका अध्ययन किया जाता
साहित्योंका आकलन किया जाता
धर्माचारोंका मूल लिया जाता
जग-तत्त्वोंका भी शोध लिया जात
तब सबका प्रादुर्भाव हमारे
हम हिंदू हैं, यह हिंदुस्थान ह

(८)

हमने ही इसके लिये कठिन रण
इसकी रक्षाका भार लिया सुख
वह वीर विक्रमादित्य, शकोंका
सिल्यूकसका अभिमान भंग क
नृप चन्द्रगुप्तका कण्ठ यही लल
हम हिंदू हैं, यह हिंदुस्थान ह

(९)

अन्तिम हिंदू सम्राट प्रबल थ
थे किये समर घनघोर चन्द कवि
बाप्पा, साँगाने युद्ध-दाक्ष्य दिख
यवनोंको करके मर्दित मार भ
राणा प्रतापसे बजा प्रताप-
हम हिंदू हैं, यह हिंदुस्थान ह

(१०)

फिर वीर शिवाजी हुए तुरंग
मुगलोंके छक्के छूट गये वि
रच दिया जिन्होंने महाराष्ट्र बल
चोटी-बेटी रख लिया समूर्ति शि
'दशनाम' [illegible]

चतुर्युग एवं उनके आचार

का आदिकाल कैसा था, इस विषयपर भारतीय
त्त्य मान्यतामें मौलिक भेद है। पाश्चात्त्य वैज्ञानिक
कि आदिकालका मनुष्य असभ्य, मूर्ख, जंगली
रेक स्वार्थरत था। उसके मनमें अपने स्वार्थकी
था क्रूरता थी। धीरे-धीरे वह सामाजिक प्राणी
नुष्यका ज्ञान, विद्या, बुद्धि, आचार—सब विकसित
होते जा रहे हैं। सभी दिशाओंमें मनुष्यने उन्नति की
शरीरकी दृष्टिसे मनुष्य प्रथम युगमें अधिक सशक्त
जैसे-जैसे वह प्रकृतिसे दूर होता गया, उसका जीवन
ोता गया और उसकी शारीरिक शक्तिका ह्रास

तीय ऋषियोंने इससे सर्वथा भिन्न यह तथ्य प्रकट
नियम सब कहीं समान होते हैं। शरीरका ह्रास
बुद्धिका विकास नहीं हुआ। मनका स्वभाव ही
वं सद्गुणयुक्त है। काम, क्रोध, द्वेष, क्रूरतादि
क्योंकि इनमें दूसरेकी अपेक्षा होती है। विकार
वस्तुमें क्रमशः आते हैं। मूलमें तो वह शुद्ध ही
अतः आदिमानव शुद्ध, सात्त्विक एवं सद्गुण-
ा। सरल, दयाशील, त्यागयुक्त था वह। दोष
छे आये और बढ़ते जा रहे हैं। इसी प्रकार ज्ञान
वस्तु नहीं। वह तो ईश्वरीय है और सृष्टिके
ानवको सर्वात्माकी ओरसे प्राप्त होता है। धीरे-धीरे
स्मृति एवं भ्रान्ति ही आती हैं। इस प्रकार
से मानव एवं समस्त जड-चेतन जगत् शारीरिक,
बौद्धिक एवं आचारादि सभी दिशाओंमें ह्रासकी
रहा है। जगत्का ह्रास ही हुआ है।

ात्त्य धारणाकी आलोचनाका यह स्थल नहीं। यहाँ
योंने ह्रासकालका जो रूप निर्देश किया है, उसीको
ा है। प्रत्येक पदार्थके ह्रासकी एक सीमा होती है।
पर पहुँचकर वह परिवर्तित होता है। उसमें स्फोट
ौर तब वह अपने प्रथम स्वरूपमें आ जाता है।
मूलमें शुद्ध होता है। धीरे-धीरे विकार आते हैं और
कर वह अपने विशुद्ध बाष्प (परमाणु) रूपको
लेता है। इसी प्रकार जगत्के ह्रासकी भी एक
उस सीमापर पहुँचकर व्यक्त मूर्त जगत् नष्ट हो
। पुनः आदियुगका क्रम चलता है। जगत्के इस

ह्रासकालको ऋषियोंने चार भागोंमें विभक्त किया
विभागोंको युग कहते हैं। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और क
इनमें सत्ययुग सबसे अधिक दीर्घकालीन है और क
समय सबसे छोटा। विकारका नियम भी यही है।
पहले विकार बहुत धीरे-धीरे होते हैं। पदार्थकी नि
विकारका विरोध करती है। जैसे-जैसे काल व्यतीत
विकारकी गति तीव्र होती जाती है। अन्तमें तो
विकृतिकी गति तीव्रतम हो जाती है। जगत्के
भी यही नियम है। अतः सत्ययुगका काल दीर्घ त
सब क्रमशः अल्प होते गये हैं। विकारके स्तरोंकी
काल-भाग किये गये हैं। इन युगोंकी परिस्थिति, म
विचारधारा तथा आचार एवं समाजमें स्पष्ट भेद
भेद ही युगोंके स्वरूपका परिचायक है।

सत्ययुग

आदियुगको शास्त्रोंने सत्ययुग कहा है। इ
सत्त्वगुण सृष्टिमें प्रधान था। मनुष्यमें त्याग, तप,
सत्य, अहिंसादि शम-दम स्वभावसे थे। शरीर सु
अतः शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंसे भय नहीं था। मन सम
था। फलतः संकल्पको मूर्त होनेके लिये कोई दूसरी
पदार्थकी आवश्यकता नहीं थी। संकल्प करते ही
मूर्त (अभीष्ट पदार्थ या स्थिति) बन जाता थ
आश्चर्यकी बात नहीं है। पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिक एवं
मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं कि सन्देहहीन विचार (
निश्चयपूर्ण होता है। एक पाश्चात्त्य संतने कहा है-
तुम आल्प्स पर्वतसे कहो—'जा, भूमध्यसागरमें डू
तो तुम्हारी आज्ञाका पालन होगा। केवल तुम्हें अपनी
पालन होनेमें स्वयं सन्दिग्ध नहीं होना चाहिये।''
सन्देहका मनमें लेशतक नहीं था, फलतः संकल्प
था। शारीरिक भोगोंमें प्रवृत्ति नहीं थी। अन्तर्मुख
पृथ्वीपर जनसंख्या कम थी और वन अधिक थे
तरु—सब अत्यन्त उर्वर थे। फलतः मनुष्यको आ
चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं थी। संग्रह करनेव
न होनेसे स्थानका प्रश्न भी नहीं था।

सत्ययुगमें न नगर थे और न ग्राम। मनुष
नीचे या गिरि-गह्वरोंमें रहते थे। वे मूर्ख नहीं—प
थे। निःस्पृह होनेके कारण उन्होंने समाज नहीं

नुष्यमें स्वार्थ, विषयेप्सा, क्रोधादि दुर्गुण नहीं थे। हें नियमबद्ध करनेकी आवश्यकता भी न थी। उनके ंके विधि-निषेधका विधान सोचना उपयोगी नहीं स समय मनुष्य शान्त, वैरहीन, सर्वसुहृद् और थे। वे शम-दम-सम्पन्न थे। तपस्यामें उनकी रुचि थी। शुक्लवर्ण, जटाधारी, चतुर्भुज, वल्कल ष्ण मृगचर्म ओढ़े, यज्ञोपवीत धारण किये, दण्ड डलुधारी भगवान् श्रीनारायण उस युगके आराध्य थे। ो यह तपोमयी मूर्ति ही उस समयके मानव-स्वभावके ी। हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, मपुरुष, अव्यक्त और परमात्मा—भगवान्‌के ये नाम ं कीर्तित होते थे। ये भगवन्नाम भी उस युगके रुचि एवं मानसिक स्थितिको व्यक्त करते हैं; माज नहीं बना था, अतः वर्ण एवं आश्रमके धर्म ोकर भी व्यवहृत नहीं हो रहे थे। रक्षा, वाणिज्य की आवश्यकता ही नहीं थी। वेदत्रयी अनादि उसका तप एवं ज्ञानकाण्ड ही व्यवहारमें आते लिये शास्त्रोंमें उस समय एक ही वर्ण, एक ही था एक ही वेदका वर्णन आता है। वेदत्रयी तथा अनादि होनेपर भी व्यवहारमें न आनेसे वहाँ गये। सत्ययुगके साधन ध्यान एवं तप रहे।

त्रेतायुग

युगके अन्तमें यज्ञ होने लगे थे। विकार काम कर जोगुण प्रधान होने लगा। मनुष्यके मनमें पहली मान एवं स्वर्गकी जाग्रत् हुई। यज्ञ और दान धन बने। मनोबल कुछ क्षीण हुआ। अब मनुष्यको द्धके लिये यज्ञकी आवश्यकता हुई। यज्ञमें उस ता प्रत्यक्ष हो जाते थे। स्वयं यज्ञेश भगवान् विष्णु ो और यजमानकी कामना पूर्ण करते थे। यज्ञके मनुष्य संग्रह करते थे। यज्ञ एवं दान ही संग्रहका । संग्रह भोगके लिये नहीं किया जाता था। फलतः र्यतः एवं भावतः पवित्र था। मन निर्मल था और द्धा थी। यज्ञ करानेवाले ऋषिगण सत्ययुगके समाजके त्यागी, वासनाहीन, निर्लोभ एवं तपस्वी थे। फलतः -सफल होते थे। वेनके अभिमानने आध्यात्मिक व्यवस्था उत्पन्न की, फलतः अकाल पड़ा। जनसंख्या

थी। परिणामतः जंगलोंपर निर्भर नहीं रहा जा सक महाराज पृथुने, जो आदिनरेश थे, नगर-ग्रामादि पृथ्वी समतल करायी और कृषि होने लगी। महाराज यज्ञीय अग्निके तीन भाग किये। यज्ञ पुरूरवाके समय होने लगे। उससे पूर्व वे भगवत्प्रीत्यर्थ ही होते थे।

समाज बननेपर नियम भी लागू हुए। वेदत्रयी हुई। वर्णाश्रम-धर्म प्रत्यक्ष व्यवहारमें आया। इस भी मनुष्यमें शारीरिक भोगेच्छा नहीं आयी थी, शारीरिक आचारका कठोर नियन्त्रण आवश्यक नहीं क्योंकि नियन्त्रणका उद्देश्य शरीर नहीं, मन है। संस्कृतिमें मनकी शुद्धि ही सदा सम्मुख रक्खी ग त्रेतामें मनुष्य स्वभावतः धर्मात्मा थे और वेदोंमें अविचल श्रद्धा थी। उस समय अरुणवर्ण, चतुर्भुज सूत्रोंकी मूँजकी मेखला धारण किये, स्वर्णवर्णकी जूटवाले, वेदात्मा, स्रुक्-स्रुवादि हाथोंमें लिये भगवान की उपासना यज्ञके द्वारा होती थी। मनुष्योंको उ भगवान्‌के विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वेश्वर, उरुक्रम, वृ जयन्त, उरुगाय (उत्तमश्लोक)—ये नाम प्रिय थे

द्वापरयुग

त्रेताके अन्ततक मनुष्यकी दुर्बलता सभी क्षेत्रोंमें ब महाराज दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञके लिये शृङ्गी ऋषिको पड़ा और यज्ञके अन्तमें अग्निने ही प्रकट होकर हा उस समयतक देवताओंका यज्ञमें आना कम हो गया स्वयं यज्ञेश भगवान् कदाचित् ही प्रकट होते थे। द्व इस शब्दका अर्थ है सन्देह। तमोगुणका प्रवेश मनुष्यके मनमें सन्देह, अविश्वासका बीज आ जमा। अ ने संकल्पको हीनवीर्य कर दिया। इस युगमें मनुष्यमें श सुखकी वासना आ गयी। कष्ट-सहिष्णुता एवं त्याग होने लगा। भोग लक्ष्य हो गया मनुष्यका। अतः दान करनेवाले यज्ञ सम्भव नहीं रह गये। भोगेच्छासे प्रवृत्ति बढ़ी। पदार्थोंका अभाव संग्रह-प्रवृत्तिसे हो था; क्योंकि वासनाका तो कहीं अन्त नहीं। पदार्थोंक भोगेच्छुको कभी पर्याप्त प्रतीत नहीं होता। जन-संख बढ़ गयी थी। इन सबका परिणाम यह हुआ कि रागके कारण सन्देह उत्पन्न हुआ। उसके क्षयकी हुई। मनुष्य तब भी धर्मभीरु था। उसका उपार्जन

उपभोग करना चाहता था; किंतु उसका उपार्जन
। मनुष्यमें शरीरसुखकी बहिर्मुखवृत्ति आ गयी थी ।
रमें मनुष्य यज्ञीय त्यागके अयोग्य हो गया । उपार्जन-
उपभोग करना चाहता था । यज्ञमें सन्दिग्ध मन
मूर्त करनेमें बाधक था और उसमें जो नियमादिके
। भी सह सके—इतना सक्षम शरीर नहीं रह गया
ोच्छा जाग्रत् हो गयी थी । फलतः उसे नियन्त्रित
ावश्यक था । द्वापरके लिये शास्त्रकारोंने नियम कठोर
स समयतक भी मनुष्यमें श्रद्धा थी । फलतः द्वापरमें
ग्धान हुआ । उपार्जन पवित्र था—न्यायपूर्ण था,
ाद्धा थी; अर्चाके लिये यही आवश्यक होता है ।
ो सेवाके लिये, भगवान्की पूजाके लिये पदार्थोंका
एवं संचय किया जाय और भगवान्को निवेदित
प्रसादको ग्रहण किया जाय—इसमें लोक-परलोक
नेर्वाह था । मनुष्यमें तबतक छल, कपट, दम्भ
। अतएव भगवान्के नामपर विषय-सेवन एवं
ोंके पोषणकी आशंका नहीं थी । विशुद्ध श्रद्धा
वकी पूर्णता हो जाती थी ।

तथा पाञ्चरात्रादि सात्त्विक तन्त्रोंमें वर्णित विधिसे
म तत्त्वकी प्राप्तिके लिये श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी,
-गदा-पद्म लिये, श्रीवत्सादि चिह्नोंसे युक्त, निखिल-
ायक, पार्षदादि-सेवित भगवान् विष्णुकी आराधना
। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन
त्मक रूपोंमें उस समय भगवान्की आराधना होती
ग्ण, ऋषिरूपधारी नर, श्रीहरि, पुरुषोत्तम, परमात्मा,
विश्वरूप, सर्वभूतात्मा—ये भगवान्के रूप एवं नाम
ाय थे । मनुष्य अत्यन्त विस्तृतरूपसे अर्चा करते थे ।

कलियुग

रके अन्तमें सत्त्वगुणका ह्रास प्रायः हो चुका था ।
तमोगुण प्रधानता ग्रहण करने लगा और वह बढ़ता
। द्वापरके अन्तमें ही छल, कपट, अन्यायको
अपनाया । शास्त्रोंमें भगवान्को त्रियुग बताया गया
का अर्थ है कि कलिमें यज्ञ एवं अर्चाके द्वारा
त्व्य नहीं होता । यह केवल तीन युगोंमें होता है ।
लिमें मनमें पाप आनेसे संकल्प नितान्त हीनवीर्य
वैसे भगवान कालके वशमें नहीं और न भाव-

है, भावभूमिमें नहीं । क्योंकि भावभूमि सदा
अस्पृष्ट है ।

कलिका अर्थ है कलह—युद्ध । इस युगके लिये
कितना सार्थक है, यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं । प
स्वजनोंमें, ग्राममें, जातिमें, प्रान्तोंमें, धर्मोंमें, देशोंमें
एवं श्वेत जातियोंमें, वर्गोंमें, सिद्धान्तोंके अनुयायियों
प्रकार व्यक्तिसे लेकर सम्पूर्ण विश्वमें प्रत्येक स्थान
प्रत्येक दृष्टिकोणसे आज कलह व्याप्त है । ग
विश्वयुद्धोंकी परम्परा चल रही है और कोई नहीं ज
इनका अन्त कहाँ है । यह कलह केवल स्वार्थजनित है
सिद्धान्त, जाति, देश, समाज, आदर्श—ये सब बह
जाते हैं । यह एक सर्वमान्य स्पष्ट सत्य है कि बड़ी
ओटमें सत्ता, शक्ति एवं सम्पत्तिके लिये ही ये सं
रहे हैं । सब जानते हैं कि संघर्षसे हानि है—हमारे उसी
हानि है, जिसके लिये हम प्रयत्नशील हैं; किंतु दू
ही नहीं दिखायी पड़ता । हम उसी ओर जा रहे
कलिका स्वरूप है !

स्वार्थ—शारीरिक स्वार्थ—केवल अपना स्वार्थ
गया । मनोबल, बुद्धिबल, शरीरबल नष्ट हो गया ।
नाशसे विषयेच्छा बढ़ी । आचार एवं धर्मका ध्या
श्रद्धा-विश्वास समाप्त हुआ । बुद्धिबलके नाशसे वि
प्रवृत्ति हुई । हम सोचतेतक नहीं कि हमारा प्रयत्न
है और उससे उद्देश्य सिद्ध भी होगा या नहीं । विष
लिये उद्योग है और वे विषय भी दुर्लभ एवं बहुमूल्य
रहे हैं । विश्वके उच्चतम बुद्धिमान् संहारके साधनके
दिन-रात्रि एक कर रहे हैं । शरीरकी दुर्बलतासे रोगों
आयुका ह्रास तथा अनेक कृत्रिम आवश्यकताओं
हो गयी । फलतः न्याय-अन्यायका प्रश्न ही उठ गय
प्रकार दूसरोंकी आँखमें धूल झोंककर, दूसरोंका गल
संग्रह करना है—यही उद्देश्य हो गया । इसमें
अनिवार्य है ही ।

पदार्थोंके सम्बन्धमें भावशुद्धिकी बात ही
आज तो सम्पत्ति ही श्रेष्ठताका प्रमाण है । घोर
किसी प्रकार सम्पत्तिका उपार्जन ही योग्यता है
संचय प्रायः अन्यायपूर्ण है । स्वरूपतः पदार्थ विकृत
हैं । शुद्धरूपमें किसी पदार्थको प्राप्त करना अत्यन्त

ा ही नहीं। बुद्धि चञ्चल एवं तर्कदूषित हो गयी में तपःस्थैर्य है नहीं। फलतः तप एवं ध्यान हो ते, यज्ञके लिये उतने साधन नहीं और हों भी तो एवं स्वरूपदोषसे दूषित हैं। यज्ञमें जो एकाग्रता क्षा अपेक्षित है, वह भी नहीं। पूजनमें अविचल वं शुद्ध सामग्री चाहिये। यज्ञकी भाँति दिनोंकी नहीं ो एकाग्रता एवं तितिक्षा वहाँ भी अपेक्षित है। क्षणों भी एकाग्र नहीं रहता। श्रद्धा-विश्वास नहीं अलग। ऐसी स्थितिमें अर्चा भी इस युगका साधन तका अर्थ यह नहीं कि इस युगमें कोई यज्ञ, ध्यान, , दान, पूजन न करे या कर नहीं सकता अथवा ा निष्फल होते हैं। ये परम पवित्र साधन हैं, सदा थे और किये जाते हैं। इनके द्वारा महत्फल भी ा ही है। लेकिन गिने-चुने व्यक्ति ही इनको कर जिनके समीप साधन हों, जो सक्षम हों, उन्हें इनका करना चाहिये। लेकिन सार्वजनिकरूपसे इनका आजके समाजमें शक्य नहीं। जन-साधारण इनका करनेमें असमर्थ हो गये हैं।

ठयुगमें सबके उद्धारका साधन है भगवन्नाम। भगवान्-मय दिव्य नामोंका जप एवं संकीर्तन इस युगके । इनमें न त्याग-तितिक्षाकी अपेक्षा है, न पदार्थोंकी एकाग्रताकी ही। एकाग्रता तो स्वतः सम्पन्न होती है। ाव न होनेपर भी, प्रत्येक दशामें भगवान्‌का नाम ठकारी है। भगवन्नाम-संकीर्तन ही कलिके प्राणियोंके याणका साधन है। इस युगके आराध्य हैं मर्यादा-भगवान् श्रीराम। उज्ज्वलकान्ति, हरिताभ नीलवर्ण, ायुधों एवं श्रीहनुमान्‌जी, लक्ष्मणजी प्रभृति भाइयों तथा सेवित मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र इस आराध्य हैं। उनके मंगलमय उदार चरितों तथा ाम नामोंका कीर्तन, श्रवण, चिन्तन, जप ही इस ाणीको जीवनका परम लक्ष्य प्रदान करनेवाले हैं।

लेयुगमें स्वाभाविक श्रद्धाका अभाव हो गया। मन गया और नितान्त विषयलोलुप हो गया। फलतः की गयी। जो अधिक रोगी होता है, उसीके लि संयमकी आवश्यकता होती है। भारतीय संस्कृतिमें आदर्श निर्मल एवं संयत मन माना गया है। का में जितना विकार आया, उतना ही संयम आवश्य इस युगमें—जब श्रद्धा-विश्वास रहा नहीं है, बुद्धिमें निवास हो गया है, मर्यादाका सम्यक् आदर्श निरन्त रहना नितान्त आवश्यक है। मर्यादापुरुषोत्तमका मर्यादाका आदर्श स्थापित करनेके लिये हुआ था वही आराध्य हैं। शास्त्रोंने युगाराध्यके रूपमें उन्हीं किया है।

आजकी भौतिक उन्नति, वैज्ञानिक साधनोंको उन्नतिका भ्रम होता है। लगता है, मनुष्यने बड़ी है। जहाँतक आचारका प्रश्न है, उसका ह्रास ही हु यह स्वीकार करनेमें किसीको बाधा नहीं होनी वैज्ञानिक आविष्कारोंकी उन्नति आसुरी है। ऋषियों यन्त्रवृद्धिको सर्वदा हेय दृष्टिसे देखा है। इससे बहि बढ़ती है। विषयेच्छाको बल मिलता है। मनुष्य मार्गपर जाता है। वैसे पूर्व युगोंमें असुरोंके पा अत्यधिक उन्नत भौतिक साधन थे। विमानादिक संग्रह था उनके पास; किंतु भारतीय आर्यजातिने महत्त्व नहीं दिया।

आज भी पदार्थ पहले मनमें आता है और प होता है; परंतु संकल्प इतना हीनवीर्य हो गया है कि मूर्त (पदार्थ) के मूर्तको व्यक्त नहीं कर पाता। आविष्कारों एवं यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। ज मूर्त हो सकता था, महर्षि कर्दमने संकल्पसे ही सम प्रकट कर लिया था। यज्ञादि सूक्ष्म साधनोंसे अ हो जाता था। सात्त्विक या राजस साधनोंसे ही उ होता था, अतः आविष्कार एवं यन्त्रके घोर तामस उस समय आवश्यकता ही नहीं थी।

कलियुगके अन्तमें तमोगुण इतना प्रगाढ़ हो ज सचराचर प्राणि-जगत् जडप्राय हो जाता है। क्षीण होते-होते नष्ट हो जाती हैं। पराकाष्ठापर पहुँचे स्फोट होना ही है। उस समय सत्ययुगके दिव अवशिष्ट कलपुरुष पुनः सृष्टि-विस्तार करते हैं। इ

हिंदू-संस्कृतिमें शिष्टाचारके कुछ नियम

(लेखक—पं० श्रीरामनारायणजी मिश्र)

संस्कृतिका आधार सदा धर्म ही रहा है। उसमें बालक-बालिका और अतिथि आदिके साथ परस्पर व्यवहार सदा नैतिक रहा है। शारीरिक और की स्वच्छताको भी इस संस्कृतिके प्रवर्तक लोगोंने रूप दिया है, यद्यपि उसमें वैज्ञानिक सिद्धान्त ।

नमें नीचे लिखे सदाचार और शिष्टाचारसम्बन्धी नियमोंसे यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जायगी—

) प्रातःकाल और सायंकाल जितनी देर निभ सके— चाहिये। सांसारिक काम करते हुए भी मनुष्य सकता है। मनको संसारसे ऊपर उठाना चाहिये। ना, स्वाध्याय आदिसे मानसिक शक्ति बढ़ती है। के तो घरमें इनके लिये अलग जगह बना रक्खो।

) प्रार्थनाके समय आँखें बंद रक्खो। मन स्थिर से ईश्वरकी ओर लगानेकी चेष्टा करो।

) हर वक्त, हर जगह, राह चलते और हर एक हाथका बनाया हुआ भोजन कर लेनेकी आदत

) भारतीय संस्कृतिमें बच्चोंके सुन्दर और प्यारे नेकी प्रथा है। इस प्रथाको मत बिगाड़ो।

) किसी मित्र या रिश्तेदारके घर जाओ तो उनके अपने प्यारका परिचय दो।

) विशेष अवसरपर किसीको निमन्त्रित करो तो ों (बाल-गोपाल) को बुलाना मत भूल जाओ।

) बच्चोंको धार्मिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक स्थान दिखलाते रहना चाहिये।

) बच्चोंको अपने समयके महापुरुषों, विद्वानों, संतों ओंके पास तथा कथा-कीर्तन आदिमें कभी-कभी चाहिये, जिससे उनमें सत्संगकी और आध्यात्मिक त्पन्न हो।

) भोजन या जलपानके समय कोई अतिथि, संन्यासी आ जायँ तो, हो सके तो, उनसे भी भोजन

बतलाये जो सज्जन अकस्मात् आ जाते थे, उन्हें (मेहमान) कहते थे। मेहमानदारीका यह ऊँचा आदः

(१०) जब कोई अतिथि हमारे यहाँ भोजन उचित यही है कि हम उन्हें अपने हाथसे भोजन परे उनके भोजन कर लेनेके बाद खायँ। साथ भोजन अवस्थामें भोजन पहले उनके सामने रखना चाहिये।

(११) किसी ऐसे स्थानमें जायँ, जहाँ हमारा सत्कार हो और हमारे साथ कोई मित्र या अतिथि उसको भूल न जाना चाहिये; उसको भी यथासम्भव आदर-सत्कारमें सम्मिलित करना चाहिये।

(१२) जबतक जान-पहचान न हो, मर्द स्त्र आँख करके बातचीत नहीं करे। परायी स्त्रीसे बात जरूरत पड़ जाय तो स्त्रीके पैरोंकी तरफ देखना च कि आँखोंकी तरफ। उनके शरीरको छूना या उनसे करना बहुत बड़ी असभ्यता तथा पाप है।

(१३) स्त्रियोंको माला पहनानी हो तो स्वयं कर किसी स्त्री या बालकसे कहो कि उनको माला प इसी प्रकार किसी भी स्त्रीके द्वारा माला मत पहने आदिमें कोई स्त्री माला पहनानी चाहें तो पहले हाथ मालाको हाथमें ले लो।

(१४) साधारणतः परायी स्त्रीके साथ एक या चारपाईपर कभी मत बैठो।

(१५) स्त्रियोंको अबला मत समझो। उन कहकर सम्बोधित करो। उनको और बच्चोंको वी और वीराङ्गनाओंकी कथा सुनाओ।

(१६) बड़ोंको प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही जब पहले-पहल उनका सामना हो जाय, प्रणाम करो

बहुत-से अच्छे घरोंमें सन्ध्याको दीया जलनेके प्रणाम करनेका नियम है।

(१७) पत्र-व्यवहारमें भी प्रणाम आदि लिखने प्रथा है—उसका पालन करो।

(१८) रोगीके पास उन्हींको ठहरना चाहिये, जं

९) दूसरोंकी सेवा इस भावसे मत करो कि उसके ुछ इनाम मिले या कोई मतलब सिद्ध हो। सेवा भावसे करनी चाहिये ।

:०) किसीको दान या इनाम दूरसे, घमण्डसे, घृणासे विनय तथा प्रेमपूर्वक और मुस्कराते हुए दो। ना बड़प्पन प्रकट करते हुए मत करो, विनीत ो ।

१) कथा या व्याख्यान या भजनके बीचमेंसे न ठना हो तो जो प्रसंग चल रहा है या भजन हो रहा माप्त हो लेने दो । बीचमें उठ जाना अपनी अधीरता ना है और बोलनेवाले विद्वान् या गानेवालेका एक नादर करना है ।

२) सभा समाप्त हो जानेपर विशिष्ट अतिथियोंको, स्त्रियोंको पहले वहाँसे चली जाने दो । उनके रास्तेमें गाओ ।

:३) व्याख्यान, कथा आदिमें बातचीत नहीं करनी जो देर करके आ उन्हें पीछे बैठना चाहिये । ीका रोग हो, उसे वहाँ बैठकर विघ्न नहीं डालना जो शान्तिपूर्वक न बैठ सकें, ऐसे बच्चोंको साथ ा चाहिये । वहाँ ऊँघने लगना भी ठीक नहीं ।

:४) रातको घरसे बाहर साधारणतः देरतक नहीं ाहिये। वह समय घरवालों और बच्चोंके साथ ाहिये ।

:५) शौचादिके लिये पानी कम मत ले जाओ । के बाद भी पानीका प्रयोग करो । जिस जगह रो, वहाँ पहले और पीछे पानी गिरा दो । अङ्गको—विशेषकर बच्चोंके अङ्गको—खोलकर धोते हिये ।

:६) मैदानमें शौच जाओ तो उठनेके बाद मलको क दो । खुर्पीसे जमीनमें गढ़ा खोदकर उसीमें मल- ना और पीछेसे मिट्टीसे ढकना सबसे अच्छा है । में शौच मत जाओ । जहाँ उठव्वा पाखाने हैं, वहाँ में थोड़ी सूखी मिट्टी जमा रक्खो । शौचके बाद पर मिट्टी डाल दो या उसको रद्दी कागजसे ढक दो ।

:७) प्रातःकाल उठते ही एक बार शौच अवश्य हिये । मल-मूत्रका वेग कभी रोकना नहीं चाहिये ।

(२८) शौचादिके बाद साफ सूखी मिट्टीसे प हाथ धो डालो और तब दोनों हाथ । उसके बाद जि से आबदस्त लो, उसको माँज डालो। इस कामके लि अलग रक्खा हो तो उसे भी कभी-कभी माँजते रहना अपना हाथ पहले धोकर तब वह बर्तन माँजो ।

(२९) हर जगह लघुशंका करने मत बैठ इसके लिये कहीं आड़में उचित स्थान ढूँढ़ लो । घ जानेके पहले और घर लौटकर लघुशंका करनेक डालो, तब साधारणतः बाहर जरूरत ही न पड़ेगी । बाद और सोनेसे पहले लघुशंका कर लेना अच्छा है

(३०) नदी, नाले या तालाबमें आबदस्त लेक पानी गंदा मत करो । जहाँतक हो सके, पानी साथ ले आबदस्त बायें हाथसे लेना चाहिये ।

(३१) हाथ धोने या बर्तन माँजनेके लिये ह मिट्टी इस्तेमाल मत करो । देख लो कि जहाँकी हो, वह जगह लोग गंदी तो नहीं करते । साफ मि कर काममें लाओ । जमीन खोदकर नीचेकी मिट्टी तो अच्छा है । मिट्टी जमा करो तो उसको हंडी या रक्खो; जमीनपर रखनेसे बिल्ली आदि जानवर उसको देते हैं । बर्तन आदि मलनेके लिये मिट्टीके बदले राख इस्तेमाल करना अच्छा है ।

(३२) नदी या तालाबमें कुल्ला नहीं करना उसमें मल-मूत्र, कूड़ा-कंकड़, काँटा या शीशेके टुक फेंकना बहुत ही बुरा है ।

(३३) सबेरे उठकर कुल्ला करो । ताजी या दतवनकी जिस कूचीसे दाँत साफ करो, उसको मसूड़ोंपर भी रगड़ो और दतवनके दो टुकड़े कर जीभ साफ कर लो; तब उसे धोकर कूड़ेकी टोकरीमें दतवन बिना धोये मत फेंको । दतवन और कुल्ला करो कि दाँतके आगे और पीछेका हिस्सा, जीभ आदि भी साफ हो जायँ । दाँतसे कुचलकर दतवन बनानेसे मसूड़ोंकी कसरत होती है । जीभको अ साफ कर लेना बहुत जरूरी है ।

(३४) हर जगह थूकनेकी आदत बुरी है बीमारी फैलती है। रोगके कारण थूकना जरूर पीकदान आदि रक्खो । हर जगह नाक भी नहीं

रास्तेमें यदि थूकना पड़े तो बीच सड़कमें या उसके
[illegible] मत थूको, कहीं नालीमें या कोनेमें जाकर थूको।
[illegible]र गलीमें, सड़कपर, दीवार, फर्श आदिपर थूकना
[illegible]।

[illegible]५) लिफाफा थूक लगाकर नहीं बंद करना चाहिये,
थूकसे टिकट चिपकाना चाहिये और न पोथीके
लगाकर उलटने चाहिये।

[illegible]६) भोजन करनेसे पहले हाथ-मुँह धोना चाहिये
[illegible] भी हाथ धोकर कुल्ला करना चाहिये; जरूरत हो
[illegible] दाँत साफ कर लेना चाहिये। इसके लिये नीमकी
[illegible]त अच्छी है। फर्शपर हाथ-मुँह धोना हो तो
रख लो।

[illegible]७) एक ही थालीमें दो आदमियोंको साथ बैठकर
खाना चाहिये। एक ही ग्लास या कटोरेका पानी या
आदमियोंको नहीं पीना चाहिये। किसीका बचा
[illegible] या जमीनपर गिरा हुआ पदार्थ मत खाओ। मेवा,
पान-सुपारी आदिको ऊपरसे खाना चाहिये। मुँहमें
[illegible]लकर हाथको जूठा नहीं करना चाहिये।

[illegible]८) मशकका पानी मत पियो। हर एक तालाब या
[illegible]नी मत पियो। पानी उबालकर और छानकर पीना
। पीनेका पानी साफ और गन्धरहित होना चाहिये।
हुई सुराहीमें रखना चाहिये। जूठे या गंदे हाथसे
[illegible]तुका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

[illegible]९) महीनेमें दो-तीन बार बिना खाये या कम
[illegible] जाना अच्छा है। महीनेमें दो दिन, विशेषकर
[illegible]खवारेकी एकादशीका व्रत करना और रविवारको
[illegible]कका भोजन करना अच्छा है। कभी-कभी दूध और
[illegible]र ही रहना चाहिये।

[illegible]०) भोजनका स्थान साफ और हवादार होना
उसके अंदर मक्खी जाना रोकना चाहिये। चारपाई
पर खाना रखकर या बैठकर मत खाओ।

[illegible]१) भोजनके समय मरने आदिका समाचार नहीं
[illegible]ाहिये; न ऐसी बातें या ऐसा व्यवहार करना चाहिये
[illegible]क, वैमनस्य, क्रोध या गंदगी प्रकट हो। जब लोग
[illegible]र रहे हों, तब दाँतमें खरका नहीं करना चाहिये;
[illegible]ा चाहिये। भोजनके समय मौन रहना और मन-ही-

(४२) बर्तन या खाने-पीनेकी चीज किसी [illegible]
रखनेसे पहले उस जगहको धो डालो या साफ कर [illegible]

(४३) रहनेका मकान बहुत साफ रखना
उसमें रोज कम-से-कम एक बार झाड़ू देना चाहिये; [illegible]
लगा हो तो छुड़ा देना चाहिये। उसका फर्श [illegible]
धुलाना चाहिये। मकान कच्चा हो तो उसको लिप[illegible]
चाहिये। सालमें एक बार बरसातके बाद दीपावलीके
मकानमें सफेदी करानी चाहिये।

(४४) मकानकी सजावटमें विलासिताका [illegible]
होना चाहिये। मकानमें देवी-देवताओं, महापुरु[illegible]
पुरुषों और सती-साध्वी स्त्रियोंके तथा वीराङ्गनाओंके [illegible]
चाहिये।

(४५) घरमें हर जगह जूता नहीं ले जाना
सीढ़ीपर या कमरेके बाहर एक तरफ उतार देना
भोजनालयमें और देवालयमें जूता ले जाना बुरा
जूता बाहर उतार दिया जाय, वहाँ जूतेकी रक्षाक[illegible]
रखना चाहिये।

(४६) जिस बर्तनमें एक बार पानी लो या [illegible]
लो या कोई दूसरा पानी पी ले या खाना खा ले
माँजकर तब काममें लाओ। जब बर्तन जूठा हो
उसको अलग एक तरफ रख दो। बर्तन मिट्टी या
हो तो उसको एक ही बार इस्तेमाल करके फेंक दो
बर्तन भी दूसरेका इस्तेमाल किया हुआ काममें [illegible]
चाहिये।

(४७) डोल, बालटी या घड़ेके पास हाथ धो[illegible]
हमेशा भरा हुआ लोटा रखना चाहिये। खाली हो[illegible]
फिर भर देना चाहिये। पानीसे भरे हुए डोल, [illegible]
घड़ेमें हाथ नहीं डालना चाहिये। हाथकी कलाईसे [illegible]
करके पानी लेना चाहिये, उसमें भी हाथ नही[illegible]
चाहिये। हाथ इस प्रकार धोना चाहिये कि हाथका
गंदा पानी बर्तनमें न चला जाय, न छींटे ही लगें।

(४८) जिस कपड़ेको पहनकर शौचादि [illegible]
हजामत बनवाओ, उसको धो डालना अच्छा है।

(४९) दूसरेकी पहनी हुई धोती, जबतक [illegible]
न हो जाय, काममें मत लाओ।

(५०) एक ओढ़नेमें दो आदमी मत सोओ।
[illegible]ही अलग-अलग सोनेकी आदत डालो। दूसरेके

(१) जूता या जूठे बर्तन छूकर हाथ धोना चाहिये। पान आदि भी जूठे हाथोंसे किसीको नहीं देना पान मुँहमें डालकर भी हाथ धो लेना चाहिये।

(२) प्रतिदिन सबेरे, और हो सके तो शामको भी से नहाना चाहिये। नहाते समय बदनको हाथसे या खूब रगड़ना चाहिये। टबमें नहाना पड़े तो उसका ी-जल्दी बदलते चलो। नहानेके बाद सूखे तौलिये-से बदन पोंछना चाहिये। जिस तौलियेसे बदन पोंछ बराबर साबुन लगाते चलना चाहिये।

(५३) बहते पानीमें, नदीमें नहाना बहुत अ हर एक गढ़े, तालाब या पोखरेमें नहाना ठीक नहीं।

(५४) मोजा पहनकर मत सोओ।

(५५) लँगोट बाँधनेकी आदत अच्छी है।

हिंदू-समाजके शिष्टाचार

भी समाजके शिष्ट पुरुष जिस प्रकारके व्यवहारको ानते हैं, वही व्यवहार उस समाजका शिष्टाचार है। प्रत्येक समाजके शिष्टाचारमें वहाँकी आकाङ्क्षा, था मर्यादाएँ होती हैं। बहुधा एक ही आचार एक सभ्यता माना जाता है और दूसरेमें वही शिष्टाचार इन आचारोंमें समयके अनुसार बहुत परिवर्तन होते हिंदू-समाज एक ऐसा समाज है, जो बिना धर्म और छ नहीं करता। यहाँ प्रत्येक आचार धर्मपर संतुलित और दार्शनिक तथ्य रखता है। फलतः हमारे शिष्टाचार ऐसा नहीं, जो केवल कल्पना कर लिया उसकी आधारभूमि बहुत दृढ़ है। अवश्य ही परिस्थितियोंने उसे बहुत प्रभावित किया है; किंतु विकृतियाँ ही हैं। उनको अपनानेकी अपेक्षा उनका ी अभीष्ट होना चाहिये।

अभिवादन

जैसे ही किसी दूसरेके सम्पर्कमें आते हैं, एक दूसरेका न आवश्यक होता है। यहींसे शिष्टाचारका प्रारम्भ वादन दो प्रकारका होता है; छोटा अपनेसे बड़ेको और समान व्यक्ति एक दूसरेको करते हैं। र बड़ेका निर्णय हिंदू-समाजमें सर्वप्रधान त्यागके होता है। समाजका उद्देश्य त्याग होनेसे जो जितना वह उतना महान् है। शुकदेवजीके त्यागके कारण ता व्यासजीने ही उन्हें अभ्युत्थान दिया और प्रणाम त्यागके अनन्तर विद्या, फिर वर्णका विचार होता श्चाका विचार तो अपने ही वर्णमें होता है, यदि र त्यागका तारतम्य न हो।

'जो गुरुजनोंको नित्य प्रणाम करता तथा उ करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल होती है।'

अपनेसे बड़ेके आनेपर उसे देखते ही खड़े चाहिये और स्वयं आगे बढ़कर उसे प्रणाम करना यदि कोई विशेष स्थिति न हो तो उसके समीप प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। यह सभी जानते हैं वि शरीरमें एक प्रकारकी विद्युत्शक्ति है। प्रबल विद्युत अपनी ओर आकर्षित करती है। शास्त्र कहते हैं अपनेसे बड़ेके आनेपर प्राण ऊपर उठते हैं। उठकर खड़े हो जानेसे उनमें विकृति नहीं आती। देखते ही अविलम्ब खड़े हो जाना चाहिये।

अभिवादनकी सर्वश्रेष्ठ पद्धति है साष्टाङ्ग प्रणाम बल भूमिपर दोनों हाथ आगे फैलाकर लेट जाना; मस्तक, भ्रूमध्य, नासिका, वक्ष, ऊरु, घुटने, कर पैरोंकी अँगुलियोंका ऊपरी भाग—ये आठ अङ्ग भूि करते हों; इसके अनन्तर दोनों हाथोंसे सम्मान्य चरण-स्पर्श करके घुटनोंके बल बैठकर उसके चरणों भालका स्पर्श कराना और उसके पादाङ्गुष्ठोंका हाथ करके अपने हाथोंको अपने नेत्रोंसे लगा लेना— प्रणामकी पूरी विधि है। घुटनोंके बल बैठकर चरणोंसे स्पर्श कराना इसीका अर्धरूप है। दो जोड़कर मस्तक झुका देना, इस प्रणामका सांकेतिक र बिना दोनों हाथ जोड़े और मस्तक झुकाये प्रणाम न एक हाथसे, हाथकी एक अँगुलीसे, छड़ीसे या टोपीसे प्रणाम भारतीय नहीं हैं। तनिक-सा मस्तक हि [illegible]

उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। साष्टाङ्ग प्रणामकी
। हो तो आदरणीय व्यक्तियोंको घुटनोंके बल बैठकर
पादस्पर्श करना ही पर्याप्त है। एक हाथसे झुककर
ना ऐसी विचित्र प्रथा है, जैसे एक भार टाला जा रहा
ने समान लोगोंको तथा जो चरण-स्पर्श करने न
उन्हें दोनों हाथ जोड़कर, अञ्जलिको ठीक मध्य
से लगाकर मस्तक इतना झुकाया जाय कि नासिका
स्थित अञ्जलिका स्पर्श करे—इस प्रकार प्रणाम करना

: अपना शरीर शुद्ध न हो, स्वयं स्नान किये न हों
। करते समय गुरुजनका स्पर्श नहीं करना चाहिये।
णोंके समीप भूमिपर ही मस्तक रख लेना चाहिये।
ते समय, शौचादिके समय, क्षौर कराते समय, दतवन
य, तेल लगा लिया हो और स्नान न किया हो तो
लगानेपर स्नान करना ही चाहिये, यह शास्त्रोंका
। तेल लगानेसे शरीर अपवित्र हो जाता है।) तथा शव
समय प्रणाम नहीं करना चाहिये। स्वयं इन
। हो तो प्रणाम न करे और जिसको प्रणाम करना
न स्थितियोंमें हो, तो भी प्रणाम न करे। श्मशानमें,
में और देव-विग्रहके सम्मुख केवल मानसिक प्रणाम
चाहिये। इन स्थानोंपर शारीरिक प्रणाम करना
नना किया है। इसी प्रकार स्त्रीको किसी भी पर-
रण-स्पर्श कभी नहीं करना चाहिये। पतिके अतिरिक्त
। पुरुषोंको बिना स्पर्श किये ही दूरसे प्रणाम करना

यह सिद्ध हो गया है कि हमारे हाथों तथा पैरोंकी
से निरन्तर एक प्रकारकी विद्युत्किरणें निकलती रहती
मेरिज़्ममें हाथकी किरणोंका उपयोग 'पास' देनेमें
। मस्तकके भालप्रदेश तथा हाथोंकी अँगुलियोंमें
को ग्रहण करनेकी शक्ति है। अपने समान व्यक्तिके
नों हाथ जोड़कर भ्रूमध्य अञ्जलिके अङ्गुष्ठ-भागसे
ो हम परस्पर प्रभाव-विनिमयसे बच जाते हैं।
ावका विनिमय लाभकारी तो होगा नहीं, प्रकृति-
कारोत्पादक हो सकता है। अपनेसे श्रेष्ठके चरणोंपर
ा हाथ रखकर हम उनका प्रभाव ग्रहण करते हैं।
में भी दोनों हथेलियोंको मस्तकपर रखकर या

गुरुजनोंको प्रणाम करते समय अपने गोत्र, पिताका
अपना नाम लिया करते थे—'अमुक ! गोत्रिय अमु
अमुक-नामक मैं प्रणाम करता हूँ।'

मानितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदां

शास्त्र स्पष्ट ही कहते हैं कि जिसको बहुत अधि
प्रणाम करते हैं, जिसे बहुतोंको आशीर्वाद देना
उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। इसीलिये बहुत-से
एवं साधक चरण-स्पर्श करने नहीं देते। परस्प
करनेके बदले भगवत्स्मरण कर लेते हैं। यहाँतक
ठीक है; किंतु केवल किसीको सम्बोधित कर लेना ह
मान लिया जाय, यह प्रमाद है। इस प्रकारका
शिष्टाचारके अनुकूल नहीं है।

आशीर्वाद

प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं
विधीयते साधु मिथः सुमध्य
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा
गुहाशयायैव न देहमानि

(श्रीमद्भा० ४। ३

भगवान् शङ्करने श्रीसतीजीको बतलाया—'अ
विनम्रता एवं प्रणाम सज्जनलोग जो परस्पर करते
चित्तमें स्थित ज्ञानस्वरूप परमपुरुषके लिये ही व
शरीर और शरीरमें अभिमान करनेवाले अहङ्कारको नह

इसी आदर्शके कारण हिंदू-समाजमें धन, ऐश्वर्य,
बड़प्पनके कारण नहीं माने गये। अपने वर्णमें स
धनी पुरुष भी एक स्ववर्णके वृद्ध दीन पुरुषको पह
करे, हिंदू-शिष्टाचार यही है। यदि शिष्टाचारके विरुद्ध
कोई अपनेसे बड़ेको प्रणाम न करे तो बड़ेको पह
नहीं करना चाहिये और न बिना प्रणाम किये किसी
आशीर्वाद ही देना चाहिये। जब बड़ा पुरुष छोटेक
करता है या बिना प्रणाम किये आशीर्वाद देता है, त
तेज, आयु, कीर्ति एवं लक्ष्मीका ह्रास होता है। उ
उसे बुरा भी लगे, तो भी उसीके हितके लिये बड़े
नहीं करना चाहिये।

जिसे प्रणाम किया जाता है, उसे समझना चा

द्धिका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि प्रणाम
शरीरके लिये नहीं ले रहा है। यदि शरीरकी दृष्टिसे
र करता है तो इसका अर्थ है कि प्रणाम उसने अपने
दृष्टिसे स्वीकार किया है। इससे उसके तेज आदिकी
ी है। प्रणाम करनेपर उसे तो मर्यादाके अनुसार
देना ही चाहिये। यह आशीर्वाद वह देहस्थ
की ओरसे देता है। किसीके प्रणाम करनेपर भी
न देना, मौन रहना, संकेतसे स्वीकृति सूचित करना
है।

हाथोंकी अञ्जलि सम्मुख करके आशीर्वाद देना
ष्ट है। दोनों हथेलियोंको प्रणतके मस्तकपर
करके आशीर्वाद देना आशीर्वादका पूर्णरूप है।
से 'आशीर्वचन' का उच्चारण आशीर्वादका संक्षिप्त
समान व्यक्ति परस्पर प्रणामके बदले प्रणाम ही
यदि चरणोंमें प्रणाम करनेवाला व्यक्ति श्रद्धावश
मस्तक रक्खे रहे तो उसे उठनेकी प्रेरणा देना या
ाहिये।

यदि कोई किसी भगवन्नाम-स्मरणसे अभिवादन
तो हमें भी उसी नाम-स्मरणसे उत्तर देना
'जै रामजी' करनेवालेका उत्तर 'जै श्रीकृष्ण' कोई
नहीं है। इसी प्रकार दूसरे सम्प्रदायके लोगोंसे
करते समय प्रणामादिका ऐसा ही रूप होना चाहिये,
क्लेशप्रद तथा चिढ़ानेवाला न हो।

अङ्कमाल

ीन समयसे स्नेहकी अभिव्यक्तिके लिये परस्पर
देनेकी प्रथा है। गुरुजन प्रणाम करते हुए स्नेह-
यजनोंको और मित्र, सम्बन्धी, सुहृद् एक
अङ्कमाल देते हैं। अङ्कमाल कभी अपरिचितको नहीं
। इसी प्रकार पत्नीके चरणस्पर्श करनेपर भी
सम्मुख उसे आलिङ्गन देना भारतीय शिष्टाचारके
है।

तीय शिष्टाचारमें चुम्बनके लिये कोई स्थान नहीं
कामशास्त्रका ही अङ्ग माना गया है। आजके
शेषज्ञ भी बड़े कठोर शब्दोंमें बच्चोंके चुम्बनका
रते हैं। यह प्रथा बच्चेके स्वास्थ्यके लिये बहुत
है। माता-पिता तथा दूसरे सम्बन्धी- जिनका किसी-

अभिव्यक्तिका उत्कृष्ट बाह्य प्रतीक हिंदू-समाजमें रहा
बच्चोंको चूमनेकी प्रथा जो चल पड़ी है, वह हा
और सड़कोंपर, स्टेशनपर सार्वजनिक स्थानोंमें
सम्मुख, युवा बेटी, बहिन, माता, पत्नी आदिको
भारतीय शिष्टाचारके सर्वथा विपरीत है।

आसन

अतिथि, सम्मान्य जनके आनेपर उन्हें अ
फिर आसनपर बैठाकर चरण धोनेकी प्रथा थी।
पाद्यका तो लोप हो गया। अब आसन ही बच
किसीसे भी यदि विवशता न हो तो खड़े-खड़े बा
करनी चाहिये। आगत व्यक्तिको पहले बैठाना
जो अपनेसे बड़े हैं, उनके सम्मुख उच्चासनपर न
चाहिये। उनके बराबर भी जहाँतक हो सके,
चाहिये। गुरुजन खड़े हों तो स्वयं बैठे या
शिष्टाचारके विपरीत है।

देवविग्रहके सम्मुख विग्रहसे अधिक ऊँच
किसीको नहीं देना चाहिये। कथा, कीर्तन, पूज
आराध्यके श्रीविग्रहके सम्मुख किसीके आनेपर
एवं आसन देनेकी व्यस्तता प्रकट करना आव
है। वहाँ आनेवाले अपनी श्रेणीके लिये निश्चि
स्वयं स्वीकार कर लें, यही वहाँका शिष्टाचार है
कीर्तनादि स्थानोंमें वक्ताको छोड़कर किसीको दे
सम्मुख तथा गुरुजनोंके सम्मुख 'व्यासासन' से
चाहिये। पैर फैलाकर या उकडूं भी नहीं बैठना

कोई कितना भी गरीब हो, आगतके लिये
उसके बैठनेके लिये कुछ थोड़े तृणोंका अभाव
सकता। आगतको आसन देकर उसके बैठ जाने
चाहिये। जो हमसे छोटे हैं, हमारे लिये उचित
आसन ग्रहण करके उनसे भी बैठनेका अनुरो
गुरुजनोंके सम्मुख तथा सभास्थलोंमें जहाँतक स
स्थिर बैठना चाहिये। बार-बार आसन नहीं
चाहिये।

भोजन, शौच, लघुशंकादि—सबके लिये
प्रकारके आसन निश्चित हैं। इन कार्योंको दूसरे
करना असभ्यता समझी जाती है। इन कार्योंके

के साथ एक आसनपर नहीं बैठना चाहिये। स्त्रियोंको
ं पतिके साथको छोड़कर शेष समयमें किसी भी
सम्मुख पुरुषके समान या ऊँचे आसनपर नहीं बैठना
। एकान्तमें माता, बहिन और कन्याके साथ भी
आसनपर नहीं बैठना चाहिये और एकान्त न हो तो
न्य सदाचार यही है कि पुरुषके सम्मुख स्त्री, चाहे
कोई सम्बन्ध हो, उच्चासन, समानासन तथा एकासन-
ठे।

वार्तालाप

ष्टाचारका सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है बोलना। इससे
योग्यता, स्वभाव, शील—सबका आभास मिल
। मित, मिष्ट और हित—ये तीन वार्तालापके मूल
तत्त्व हैं। किसीके साथ बोलते समय हमें स्वयं ही
ऊते जाना चाहिये। अनाप-शनाप बातको बढ़ाते
जाना चाहिये। जहाँतक सम्भव हो, दूसरेको
अवकाश देना चाहिये और स्वयं सुनना चाहिये।
सर्वथा चुप्पी साधना भी गर्व, उपेक्षाका सूचक है।
ः जितना हो, उतना बोलना ही चाहिये। जो भी
य, उसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वह असत्य
टु न हो, उससे किसीको उद्वेग न हो और किसीका
होता हो।

ः बोला जाय। न तो इतने धीरे कि दूसरोंको सुननेमें
का अनुभव हो और न इतना उच्च स्वरसे कि चिल्लानेका
। भाषा शुद्ध होनी चाहिये। शब्द इस प्रकार बोले
। भावको ठीक-ठीक प्रकट कर सकें। हिंदू-समाजका
म शिष्टाचार यह है कि हम गुरुजनोंके साथ पाण्डित्य-
षाका प्रयोग न करें। पहले विद्वान् स्त्रियाँ और
प्राकृत भाषाका ही प्रयोग करते थे। ऐसी भाषाका
जिसमें पाण्डित्य-प्रदर्शन हो, सामाजिक शिष्टाचारके
है। सभामें, दौत्यकर्ममें या जहाँ विद्वत्ताकी आवश्यकता
ल भाषाका प्रयोग होना चाहिये। परस्पर बातचीतमें
लनेवाला जिस प्रकारकी भाषाका उपयोग कर रहा
सम्भव हो तो उसी या उससे सरल भाषामें हमें
ाहिये। ग्राम्य भाषाका उत्तर शुद्ध भाषामें, हिंदीका
कृत या अंग्रेजीमें—यह तभी क्षम्य होता है, जब हम
ाओंको न जानते हों। इसके विपरीत संस्कृत या

बोलते समय भाषामें व्याकरणके दोषसे भाष
हो जाती है। हिंदीमें सम्बोधनके लिये आप और तु
हैं। अपनेसे बड़ोंको 'आप' और छोटोंको 'तुम' कहा
'तू' किसीको भी कहना उचित नहीं। सम्मान्य
नामोल्लेख 'श्री' तथा 'जी' के साथ ही करना
केवल नामोल्लेख अशिष्टताका द्योतक है। दूसरोंको
करते समय उनके पद, मर्यादा आदिका ध्यान रखन
है। अपनेसे छोटोंको अनेक बार आप कहना उ
व्यंग हो जाता है।

जहाँ कई व्यक्ति हों, वहाँ दो व्यक्तियोंका व
करना या किसी ऐसी भाषाका उपयोग करना, जि
न समझ सकें, असभ्यता है। परस्पर परिहासका ए
है और शिष्ट-परिहास-कुशल व्यक्ति लोगोंका प्रिय
बन जाता है। लेकिन परिहास इस प्रकार करना कि
किसीपर आक्षेप हो, किसीको कष्ट, ग्लानि या संकोच
हो—अशिष्टता है।

भाषा ऐसी होनी चाहिये, जो सरल हो, स्पष्ट
न प्रतीत हो। हम आगतके सम्मुख मौन न बैं
दूसरेकी उपस्थितिमें बातचीत चलाना एक योग्य
साथ ही हमें दूसरोंको अधिक-से-अधिक बोलनेका
देना चाहिये। जहाँ दो व्यक्ति एकान्तमें बातचीत करते
जाना मूर्खता बतलाया गया है। इसी प्रकार दो
परस्पर बातें कर रहे हों तो बीचमें बहुत आवश्यक
न हो तो नहीं बोलना चाहिये। बिना पूछे सम्मा
शिष्टाचारके विपरीत है। किसीसे एक साथ बहुत-से प्र
देना, किसी मार्ग चलतेसे अकारण उसका प
पूछना, आगत व्यक्तिको आसन दिये बिना ही परि
उद्देश्य पूछना शिष्टाचार नहीं है। आगत व्यक्ति ज
स्थितिमें बैठ जाय, जलादि पी चुके, सुस्ता ले, तब प्रश्न
चाहिये।

परिचित व्यक्तियों, घरके उन सदस्यों या सम्बन्धि
जो बाहरसे आये हों, बाहरके समाचार जाननेकी उ
स्वाभाविक है। हिंदूसमाजका शिष्टाचार है कि आगतके लि
उसके बैठने, स्नान, भोजनादिकी व्यवस्था कर देनी च
यदि वह निद्राक्रान्त हो तो भोजनोपरान्त उसे भली प्रकार

व्यक्ति कुछ दिनोंके पश्चात् मिला है, उससे हमारे शिष्टाचारके अनुसार पहले कुशल-प्रश्न किया जाता रेचित अतिथिसे भी कुशल ही पहले पूछी जाती चयके अनन्तर दोनों परस्पर कुशल पूछते हैं। आदेशके अनुसार ब्राह्मणसे 'कुशल' पूछनी चाहिये। 'निरुपद्रवता' अर्थात् सब कार्य शान्तिसे होते हैं, ना चाहिये। वैश्यसे आर्थिक पूर्णताका प्रश्न करना ौर शूद्रसे स्वास्थ्य पूछना चाहिये। कुशल-प्रश्न ानेपर ही प्रयोजनकी चर्चा होनी चाहिये।

अतिथि-सत्कार

समाज अतिथिप्राण है। हिंदूधर्ममें अतिथिसत्कार नहीं, वह तो मुख्य धर्म है। अतिथि साक्षात् नारायण- प माना जाता है। गृहस्थ-जीवनकी सफलता ही सके द्वारा अतिथिसेवा हो। अतिथिका वर्ण, आश्रम, ोग्यता नहीं देखनी चाहिये। वह तो आराध्य है। द्धसे ही उसकी सेवा होनी चाहिये। जिस गृहसे नेराश लौटता है, उस गृहस्थके समस्त पुण्य वह ले ौर अपने सब पाप वहीं छोड़ जाता है। वे गृह ावास-बिलोंके समान त्याज्य एवं घृणित हैं, जहाँ । स्वागत नहीं होता।

ात अतिथि (अपरिचित) हो या अभ्यागत ो), उसे आसन देकर जलके लिये पूछा जा सकता ठीक है कि इस कपटयुगमें गृहस्थको बहुत सावधान ता है; किंतु किसीको आनेपर नम्रतापूर्वक बैठनेके रोध करना, उसे और कुछ सम्भव न हो तो जल ा, आज भी निर्बाध है। केवल प्रमाद और अहंकार- ातिथिकी उपेक्षा होती है।

ाथिके लिये भी कुछ शिष्टाचार हैं। यदि कोई धार्मिक । हो तो किसीके आतिथ्यका आमन्त्रण अस्वीकार शेष्टता है। जिसके यहाँ अतिथिको ठहरना है, उसके उसकी सुविधा, उसकी मर्यादाका उसे ध्यान रखना ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये, जिससे उसे या उसके ो कष्ट हो। हम जिसके यहाँ ठहरे हैं, उसे हमारी कम-से- ता करनी पड़े, हमारे लिये कम-से-कम व्यय एवं ना पड़े—इसका सावधानीसे ध्यान रखना चाहिये। ा उसके परिजनोंको जहाँतक सम्भव हो, हमारे द्वारा

नित्यकर्म

हिंदूसमाजमें जीवनका प्रत्येक भाग शास्त्रीय संयुक्त है। कहीं भी उच्छृङ्खलताके लिये अवकाश अतएव जीवनके प्रत्येक कार्यमें शिष्टाचारका ध्या पड़ता है। प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें ही शय्या त्याग देनी सूर्योदयके पश्चात् भी सोये रहना निन्दनीय माना शय्याके वस्त्रादि उठते ही व्यवस्थित कर देने चाहिये पश्चात् भी देरतक बिस्तर ज्यों-के-त्यों पड़े रहें, यह के लक्षण हैं।

शौच, स्नान, सन्ध्या, भोजनादिके सम्बन्धमें 'हि की दिनचर्या' का पूरा आह्निक कृत्य शास्त्रोंमें सुनिश्चित है क्रियामें शिष्टाचारका यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई न बनाया जाय। साथ ही दूसरे परिहास करेंगे, यह भी कर्मोंका त्याग न किया जाय। आजके समाजमें जो एवं उच्छृङ्खलता बढ़ती जा रही है, उसे दूसरों करनेके लिये अपनाना हानिकर है और हिं मान्यताओंके प्रतिकूल है।

वस्त्र

समाजमें बातचीतके पश्चात् वस्त्रका बड़ा म व्यक्तिका प्रभाव दूसरोंपर शरीरकी आकृतिसे, अनुगामियों या साथियोंसे, वाणीसे और गुणसे पड़ता स्वच्छ होने चाहिये और सादे। तड़क-भड़क तथा ठाट-ब स्थान एवं अवसरपर चाहे आवश्यक हो सकता साधारणतया तो वह गर्व एवं विलासिताका ही सू हिंदूसमाज नग्नताका समर्थक नहीं है, पर गर्मियोंमें पतलून या कुर्तेपर चद्दर डालनेका समर्थन भी नहीं हिंदू-संस्कृति त्यागकी पोषिका है। अतएव हमारे शि त्याग महत्त्वपूर्ण माना जाता है और विलासिता नि

पुरुषके लिये अधोवस्त्र धारण कर लेना पर्याप्त म है। गृहस्थ भी लँगोट लगा लेनेपर भारतीय समाजमें माना जाता। अवश्य ही स्त्रियोंको पर्याप्त वस्त्र पहनने भारतीय नारीका वस्त्र साड़ी ही उपयुक्त है। पाश्चा में पुरुष वस्त्रोंसे अपनेको ढके रहता है और नारी प्राय रहती है। भारतमें नारीका सर्वाङ्ग आच्छादि शिष्टता है और पुरुषका प्राचीन राजसभाका वस्त्र

कोमल शरीरका विकास खुली वायु, धूप एवं मिट्टी
भली प्रकार होता है। उन्हें अनावश्यक वस्त्रोंमें लपेटे
उनके स्वास्थ्यके लिये हानिकर है। बालकोंको दो-तीन
केवल शीत-रक्षाके लिये ही, शीतकालमें ही वस्त्र
क होते हैं। पाश्चात्त्य देशोंकी भाँति शिशुओंको सिरसे
वस्त्राच्छादित रखना और उनमें भी नग्नताका विचार
ारतीय परम्पराके अनुकूल नहीं है।

ोंके तथा पुरुषोंके वस्त्र तड़क-भड़कके नहीं होने
। वस्त्र फटे हों तो कोई हानि नहीं, पर उन्हें स्वच्छ
होना चाहिये। अपनी योग्यता तथा आर्थिक स्थितिसे
ातिके सूचक वस्त्र उपहास एवं अपमानके कारण हो
।

जनोंकी अनुपस्थितिमें भी उनके वस्त्र, आसन, शय्या-
ंतक हो, उपयोग नहीं करना चाहिये। दूसरेके धारण
त्र तथा अपने एक बार पहने अधोवस्त्र बिना धोये
ं पहनने चाहिये। स्त्रियोंके वस्त्रोंका पुरुषको स्पर्श
ना चाहिये। सूखते वस्त्रोंकी छाया अपनेपर नहीं
ा चाहिये और न दूसरेके धोये जाते वस्त्रोंके छींटे ही।
 ही वस्त्रके पहननेकी भिन्न-भिन्न परिपाटियाँ होती
नी जाति एवं समाजके अनुरूप ही वस्त्र धारण करना
है। इसी प्रकार विभिन्न अवसरोंपर वस्त्र-धारणकी
जो मान्यताएँ हैं, उनका भी आदर करना ही चाहिये।
ति, दूसरे उद्योग तथा दूसरे धर्मके लोगोंका अनुकरण
म्बन्धमें उचित नहीं है।

सत्य और शुद्ध व्यवहार

ृ-शिष्टाचारका एक प्रधान और अन्यतम अङ्ग है—
ौर शुद्ध व्यवहार।' किसी भी क्षेत्रमें किसी भी हेतुसे
ी साथ छल-कपटका बर्ताव न करना, किसीको धोखा
और विश्वासघात न करना। मान-सम्मान, पद-
और धन-सम्पत्ति अथवा अन्य किसी भी स्वार्थके
र कभी असत्य और अशुद्ध आचरण न करके सदा
थ तन-मन-वचनसे सत्य और शुद्ध व्यवहार करना।
न, परस्त्री और परनिन्दाको सांघातिक विषके समान
एवं इनके प्रति मनमें तनिक-सा भी आकर्षण हो तो
पतन और पाप मानना एवं सावधानीके साथ इनसे
रहना। सबको सुख पहुँचे, सबका हित—हो ऐसा

जहाँ ये बातें सहज स्वभावरूप थीं, वहाँ आज इनक
अभाव हो चला है और छल-कपट, धोखा-विश्वास
चोरी-ठगीको जीवनका साधन मानकर भारतीय जन
साथ असत्य और अशुद्ध आचरण कर रहे हैं!

सामान्य शिष्टाचार

सबके सामने अकारण बार-बार हँसना, ऐसी
करना जो घृणासूचक हो या अश्लीलताकी द्योतक हो,
थूकना, कूड़ेको इधर-उधर बिखेरना, कागजके टु
आदि कूड़ेके स्थानको छोड़कर चाहे जहाँ बिखेर देन
वस्त्र तथा गृहको ठीक प्रकारसे सजाकर न रखना—ये
शिष्टाचारके विपरीत बातें हैं। खाँसी, छींक तथा जम्हा
मुखको वस्त्रसे आच्छादित कर लेना चाहिये। दूसरों
समीप मुख ले जाकर बातें करना भी असभ्यताका परिच

चलते समय मार्गमें पड़े ठोकर लगने योग्य कंक
या ऐसा कोई पदार्थ हो, जिससे दूसरेको कष्ट हो स
हटा देना चाहिये। रोगी, भार लिये हुए, स्त्री, छोटे
वृद्ध, किसी सवारीपर बैठे व्यक्ति तथा अपनेसे श्रेष्ठ
लिये मार्ग छोड़ देना चाहिये। गुरुजनोंके आगे नहीं
चाहिये। मार्गमें अनावश्यक दौड़ना नहीं चाहिये
इस प्रकार साथियोंके साथ चलना चाहिये, जिससे दूसरे
को बाधा पड़े।

देव-विग्रह, गौ या पूज्य पुरुषको सदा अपने
रखकर चलना चाहिये। मार्गमें मन्दिर या मूर्ति
उसे मस्तक झुकाकर ही आगे बढ़ना चाहिये। इ
शास्त्रोंने यात्रामें जिन स्थानोंमें जिस समय जाना म
है, उस समय वहाँ न जाना चाहिये। दो गधोंके
होकर नहीं निकलना चाहिये।

सन्ध्याके समय शयन-भोजनादि शास्त्रवर्जित हैं।
वर्ण एवं आश्रमके लिये जो निश्चित आचार हैं,
पालन शिष्टाचार है। इसी प्रकार पिता-पुत्र, भाई-बहि
सम्बन्धियोंके लिये शास्त्रमें जो आचार है, उसीका अ
शिष्टाचार है।

स्त्रियोंके लिये शिष्टाचार

नारीको सर्वदा अपने पूरे शरीरको ढके रहना च
लज्जा ही नारीका भूषण है। स्नान, नित्यकर्म, भोजन

ल्ये घरसे बाहर नहीं निकलना चाहिये ।
ोको पुरुषोंके सामने हँसना या आलस्यका भाव
रना सर्वथा अनुचित है । पर-पुरुषके साथ हास-
नहीं करना चाहिये । सार्वजनिक स्थानोंपर छोटे
रोने या उछलकूद करनेसे संयत रखना चाहिये ।
शौचादि सदा लोगोंकी दृष्टि बचाकर कराना चाहिये
नको स्वच्छ कर देना चाहिये ।

। स्वयं अपनेको अस्तव्यस्त न रक्खे और गृहको सजाये
उसे पति तथा पतिके सम्बन्धियोंको अपनी सेवा, शील,
ारसे सन्तुष्ट रखना चाहिये । उच्च स्वरसे बोलना,
जोरसे हँसना और दौड़ना—ये सब कार्य नारीके लिये
के द्योतक हैं । उसे इनसे सर्वदा बचना चाहिये ।
ामयी, सेवापरायण, परिश्रमशील, बुद्धिमती, सुशील
ो स्वर्ग बना देती है और ईर्ष्यालु, द्वेषिनी, आलसी,
सहनशील नारी उसी गृहको कष्ट एवं कलहसे पूर्ण
डालती है । घरकी शान्ति नारीपर ही निर्भर है ।
सदा संयम एवं सावधानीसे काम लेना चाहिये ।

आचारके अपवाद

धर्ममें अपवाद होते हैं, वैसे ही शिष्टाचारमें भी
होते हैं । बच्चे, वृद्ध, गर्भिणी स्त्रियाँ, प्रसूता स्त्रियाँ,
क्त तो अपवाद होते ही हैं । इसके अतिरिक्त कष्ट-
नयातुर, किसी कारण शीघ्रतामें पड़े व्यक्ति, उद्विग्न-
ा भी अपवाद होते हैं । ऐसे व्यक्तियोंसे शिष्टाचारके
ाका उल्लङ्घन अशिष्टता नहीं माना जाता ।

त्ति-कालमें, यात्रामें, विदेशमें, किसी पर्वपर शिष्टा-
यमोंमें बहुत कुछ फेरफार होता है । जैसे रेलके डिब्बे-
छूट रही हो तो किसीको साष्टाङ्ग प्रणाम नहीं भी
सकता है । ऐसे समय अपवादके होते हैं । अपवाद-
जो त्रुटि होती है, वह सदा क्षम्य होती है । वैसे जो
अवसरोंपर भी त्रुटि नहीं करते, वे प्रशंसाके पात्र हैं ।

हिंदू-शिष्टाचारकी विशेषता

में सामान्यतः शिष्टाचारकी दो धारणाएँ नहीं हैं;
सम्पत्ति एवं त्यागका प्रश्न आता है, वहीं हिंदू-
दूसरे देशों एवं जातियोंकी धारणासे पृथक् हो जाता
े वस्त्र, अच्छा भवन, बोलने, चलने, मिलनेकी
नयमबद्ध परिपाटीका ज्ञान, तड़क-भड़कका जीवन—
यह पाश्चात्त्य सभ्यता है । व्यक्ति चाहे चोरी करे
मार्केटसे पैसे एकत्र करे, वहाँ शिष्टता (सभ्यत
सम्बन्धित नहीं है । वह तो ऐश्वर्यपर अवलम्बित है
के साथ समाजके खाने, पीने, रहने, मिलने, बोलने
नियमोंका ज्ञान एवं व्यवहार बहुत आवश्यक नहीं
बड़े धनियोंके वेश, मिलने-जुलनेके नियम ही सभ्यत
बना करते हैं ।

भारतीय सभ्यता—शिष्टाचार इससे सर्वथा भिन्न
व्यवस्थित है । यहाँकी सभ्यता धनकुबेरोंसे न तो प्रभा
और न वे शिष्टाचारके आदर्श माने जाते हैं । यहाँके
के आदर्श तो अरण्यवासी ऋषि हैं । यहाँ एक
या अरबपति असभ्य हो जायगा, यदि उसने शास्त्रीय
का त्याग किया और एक लँगोटीधारी दरिद्र
जायगा, यदि वह धार्मिक मर्यादाओंका पालन करता है
सभ्यता—शिष्टाचार धनियोंका है । दरिद्र वहाँ जेन्टि
हो सकता । भारतीय सभ्यता मनुष्यमात्रकी है । यह
धारी अकिंचन सर्वश्रेष्ठ सभ्य हो जाता है । यहाँके
नियम परिवर्तित नहीं हुआ करते । वे सुनिश्चित हैं,
पूर्वक स्थिर किये हुए हैं ।

सभ्यताका अर्थ है शिष्टाचार और भारत शि
मूल सद्गुण एवं सदाचारको मानता है । सद्गुण,
स्वच्छता, संयम—ये मनुष्यमात्रको अभीष्ट हैं । संस्
सर्वथा भिन्न तत्त्व है । मानवसभ्यता—मानवशिष्टाचा
किया जा सकता है और उसे एक होना ही चा
संस्कृति आन्तर एवं बाह्य संस्कारोंकी परम्परा है
जाति अपनी एक परम्परा रखती है । इन परम
उच्छेद किये बिना उनकी एकताका केवल एक मा
सबको उनके मूलकी ओर उन्मुख किया जाय । जि
संस्कृतिसे सब अपनी विकृतियोंके कारण पृथक् हुई है
पुनः एकत्व प्राप्त करें । ऐसी दशामें सबको किस संस्कृ
होना होगा, यह उत्तर बहुत स्पष्ट है; पर विश्व
संस्कृति अपनेको अपने उद्गममें विसर्जित करने
नहीं है । आज तो मानवसभ्यता सदाचारके आधारपर
यही पर्याप्त है । भारतको, हिंदूजातिको अपने शि
आदर्श विश्वको भेंट करना है । हमें इसके लिये पहल
को शिष्ट बनाना होगा ।

ब्रह्मा विष्णु महादेव



आर्य-संस्कृतिकी श्रेष्ठता

(लेखक—पण्डित श्रीमदनमोहनजी विद्यासागर)

नीति-वाक्योंको लेकर कुछ विद्वान् सब धर्मोंकी समर्थन प्रारम्भ कर देते हैं। पर जैसे इन्द्रियोंके ा होनेसे सब मनुष्य बराबर नहीं होते, वैसे बात है। महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द, यानन्द, महात्मा बुद्ध आदि पुरुषोंके भी पञ्च और पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ थीं। इनकी देह भी पाञ्च- ो। साधारण चोर उचक्केके पास भी ये ही दस इन्द्रियाँ ी देह भी पाञ्चभौतिक है। इतना ही क्यों, 'पशु' य दर्शन करनेसे ये बातें उसमें भी मिलेंगी। क्या ह परिणाम निकाल लें कि ये सब बराबर हैं?

ारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है। इनकी समानतासे क्या पशु य सर्वथा समान हैं? तो आगे 'धर्म या विवेक' ठकर भेद क्यों कर दिया? आश्चर्य यह है कि ा दावा लेकर चार पदार्थ आगे बढ़े और भेदका र एक। इस एक (विवेक) का इतना प्रभाव है को पशु कहनेमें वह गाली समझकर अपमानित है।

ः यही नियम सभ्यताओंको तुलनात्मक दृष्टिसे करनेवालोंको समझ लेनी चाहिये। सभ्यताओंमें ः ऐसा तत्त्व है, जो आर्य-संस्कृतिको अन्य संस्कृतियों- एवं श्रेष्ठ सिद्ध करता है। जहाँपर अन्य धर्म, मत- सम्प्रदाय-संस्कृतियाँ किसी एक मनुष्यसे सम्बद्ध हैं, री आर्य-संस्कृति 'विवेक' से सम्बन्ध रखती है। संस्कृतिमें तर्क ऋषि है; अन्योंमें तो 'बाबावाक्यं ात्' ही है। यह भेद है, जिसे हमें सदा सामने रखना

े, जो नीतिवाक्य हैं, उनको जीवनमें लागू करनेका ी देखना चाहिये। उससे हम यह समझ सकेंगे ाब्दका क्या अर्थ उन लोगोंने समझा है।

ः) 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के अर्थवाले वाक्य में मिलेंगे। पर आर्य इस 'सर्व' शब्दके अर्थमें णेमात्र' को आश्रय देता है, जब कि पश्चिमीय उच्चाति- लिये अन्य प्राणियोंका विनाश करनेमें जरा भी नहीं हि और एक मुसलमान तो 'सर्व' का अर्थ 'सब मुसलमान' ही है। क्योंकि अन्य सब तो काफिर हैं, जिनपर कुफ्र किसी-किसीने तो काफिर ही नहीं, अन्यधर्मावलम्बियों तक बताया है!

(२) 'ब्रह्मचर्य'। स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य-व्रत विवाह करें। इस विवाह-विधिका विधान सर्वत्र है। विवाहके बाद भी 'ब्रह्मचर्य' से रहो तथा पच्चा पश्चात् वानप्रस्थमें जाकर पुनः तपःस्वाध्यायद्वारा ब्र पालन करो, ऐसा अर्थ है। पर अन्योंमें कहींपर भी ब्र ऐसा व्यापक एवं उदात्त अर्थ नहीं। चार स्त्रियाँ लेनेका विधान देनेपर उनकी गति ब्रह्मचर्यकी ओर सकती है। दूसरे, वानप्रस्थ तो कहीं है ही नहीं। वि ब्रह्मचर्य-पालनका ही एक अङ्ग है, साधन है, पवित्र अर्थ और कहाँ है?

एक और बड़ी विचित्र बात है। आर्यधर्ममें रिश्ता' बहुत दूरतक माना गया है। यहाँतक कि ए होना 'बहिन' बना देनेके लिये पर्याप्त है। आजसे वर्ष पहले यदि एक व्यक्ति ऐसे ग्राममें पहुँच जहाँ कि उसकी कोई ग्रामवासिनी कन्या वधू बनक हो, तो वह उसके घर जाकर उसके लिये कुछ-न-कु अवश्य दे आता था। इसका परिणाम यह होता व्यभिचारकी मात्रा हिंदुओंमें बहुत ही कम थी। प कई धर्मोंमें बहिनका रिश्ता बहुत ही संकुचित है। बहिनके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी विवाह हो सक इसीसे वहाँ व्यभिचार अधिक है, स्त्रियोंकी अत्यधिक पर स्त्रियोंकी लूट और उन्हें बेचना—ये बातें हिं अत्यन्त गर्हित मानी जाती हैं।

ये दो उदाहरण मैंने इसलिये दिये कि हम सकें कि किसी 'नीतिवाक्य' का वास्तविक अर्थ क करता है—यह उसको जीवनमें लागू करते समय प है। वहींपर भेदकी दीवार खड़ी होती है। जब उसे मिटा नहीं देते, तबतक एकता असम्भव है। हमारे प्राचीन ऋषियोंने 'समानं नो मनः', 'सह चि

'स्लोगन्स' (नारों) की समतासे ही उद्देश्यकी
हीं हो जाती। क्योंकि 'एक-जैसे नारे' में भी सबने
नने अर्थ डाल रक्खे हैं। नारा एक है, अभिप्राय
परिणामतः चालमें (संस्कृतिमें) भेद । जबतक
कता नहीं आ जाती, संस्कृतिमें एकता नहीं। और
कृतिमें भेद है, तब फिर साम्प्रदायिक एकता
? संस्कृतिभेदसे ही विभिन्न सम्प्रदाय बनते
विभिन्न सम्प्रदाय प्रत्यक्ष हैं; परिणामतः
में भेद अवश्य होना चाहिये । इसलिये एकता-
निवेदन है कि 'सांस्कृतिक भेदों'को दूर करें।
ी' को राष्ट्रभाषा बनानेवाले आर्य-संस्कृतिके
को यह बात अधिक गम्भीरतासे सोचनी चाहिये।

प्रायः महाजनोंसे, विद्वानोंसे यह प्रश्न किया
कि 'जब सब-के-सब धर्म एकता, स्नेह,
ा उपदेश करते हैं—आपकी दृष्टिमें विश्वकी सब
में कोई भेद नहीं, तब फिर भिन्न-भिन्न भाव, भिन्न-भिन्न
भिन्न-भिन्न आचार-विचार, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण कैसे
सचमुच वेद, गीता, कुरान, बाइबिल और पुराणादिकी
ं भेद नहीं तो ईसा और मुहम्मदने नये पन्थ क्यों
न चलाते तो क्या था ? इतने झगड़े तो न होते।'
कतावादी इस प्रश्नको सुनते ही 'तुम सम्प्रदायी' हो
देने लग जाते हैं। सत्य तो यह है कि संस्कृतियोंमें
हन-सहन, वेश-भूषामें भेद है । कोई भी इनको
हीं चाहता। इनके एकताके प्रयत्न समीप लानेके स्थान-
जानेवाले तथा सत्यका विनाश करनेवाले सिद्ध हुए हैं।
ादीने कहा 'दो और दो—चार।' दूसरेने कहा 'दो
' इन बुद्धिमानोंने कहा, 'चलो, जाने दो; दो और दो
।' मूर्खके लिये तो कुछ घाटा ही नहीं, क्योंकि
से ही रहा। पर प्रेमका अन्धा प्रचारक भी मूर्ख
। ये सब कम्प्रोमाइजके प्रयत्न ऐसे ही हैं । सत्यमें
।' का अभिप्राय ही क्या है ?

ब एकताके प्रयत्न ऊपरी हैं। दो झगड़तोंपर यदि
दें तो पर्देकी एकता उन्हें मिला नहीं देती। एक
कैदी एक नहीं हुआ करते । होटलकी मेजपर
व्यक्ति एक (united) नहीं । कराची या
कानफरेन्स करनेवाले भारत और पाकिस्तानके

इस एकताके पागलपनमें हिंदूधर्मशास्त्रोंके स्थानपर कु
ली थी और निस्सन्तान होनेपर दो मुस्लिम बालिका
थीं, कहा—"देखो भाई ! एक व्यक्तिके सिरपर रूमी
देते हैं, गलेमें क्रॉस लगा देते हैं, हाथमें गीता पकड़ा दे
बाजारमें जाता है, वहाँ एक अबला पड़ी है। यह एकता
प्रचारक मानवमात्रका हितेच्छु आकर कहता है 'बहि
क्या कष्ट है ?' समझिये कि वह बहिन हिंदू है। सि
देखते ही उसके सामने वह दृश्य आ जाता है जिसमें ''
समझिये कि वह मुसल्मान बहिन है। हाथमें गीता, ग
देख वह भी सन्देह करती है। यदि वह बहिन ईसाई
भी यही हाल होता है। परिणामतः उस एकताप्रचार
विश्वास नहीं करता। वह किसीको भी एक न कर
क्योंकि उसके प्रयत्नमें बाह्यरूपकी प्रधानता थी । स
एकताका तो उसमें लेश भी नहीं है।'' मेरी इस
समझकर भी वह अपने दुराग्रहसे हटा नहीं।

× × ×

अब पाठक प्रश्न करेंगे कि यदि सचमुच ही भे
उनको समझाइये।

यद्यपि आजकल विवेकबुद्धिसे अच्छे-बुरेमें,
अपकारीमें भेद बतानेवाला साम्प्रदायिक कहा जाक
किया जाता है, तथापि—

यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः

—के अनुसार धर्मजिज्ञासु बनकर मैं य
दिग्दर्शन कराता हूँ । पाठक मुझे भूलसे भी
न समझें । यह भेद बताकर मैं पाठकको सत्य
ले जाना चाहता हूँ। क्योंकि सत्यके समीप आये बिन
'सर्वभूतदया' या 'आत्मौपम्य'का अधिकारी बन
सकता।

× × ×

भेदको समझनेके लिये हम सोदाहरण चल
(१) पाश्चात्त्य सभ्यता विनाशात्मक है।

एक पेन्सिल है । उसमें चारों ओर लकड़ी
सीसा है । आप उसको तभी काममें ला सकते हैं,
सारी लकड़ीको चाकूसे कतरकर फेंक दें । चा
कटनेका डर। लकड़ीपर दो पैसे व्यर्थ खर्च। पेन्सि

ा पड़ेगा । आँखोंसे परिश्रम अधिक, परिणामतः
शक्ति कम।

के विरोधमें भारतीय सभ्यता पत्थरकी पट्टी (स्लेट)।
स्लेटी। लिखो, स्मरण कर लो। मस्तिष्ककी उचित
आँखोंका अनुचित परिश्रमसे बचाव।

इयाँ देखिये। चार आनेकी दवा। बाजारमें कीमत
या। एक रुपया व्यर्थका भार। दूसरे प्रकृतिका
ह है कि जो मनुष्य जहाँ रहता है, उसके स्वास्थ्यकी
मग्री वहीं एकत्रित होती है। विलायती दवाइयोंका
र कैसे हो।

:) अब जरा वेश-भूषाको लीजिये। पाश्चात्त्य वेश-
ट, पैंट, टोप प्रधान हैं। भारतवर्षमें धोती, उत्तरीय—
ोपी या पगड़ी। वास्तवमें तो सिर नंगा।

आदमी बाजारमें लहू-लुहान पड़ा है। पाश्चात्त्य-
सज्जित व्यक्ति पाससे गुजरता है। उसका हृदय
है। पर बीमारके सिरपर पट्टी कैसे बाँधे? क्या चीज
ूसरी तरफ एक भारतीय आता है। चार-पाँच गजकी
। चार इञ्च पट्टी फाड़ दे या आधा गज कपड़ा फाड़
का नुकसान नहीं होता। उसको भार नहीं मालूम
एक स्थानपर पोशाकने सेवा करनेमें बाधा डाली
रे स्थानपर वही सहायक बन गयी।

रे, इस पोशाकने गरीब-अमीर, छोटे-बड़ेके भेदको
दिया है! साधारण मनुष्य 'बाबू' के पास जानेमें ही
है। तीसरे, इस पोशाकमें मनुष्य सर्वत्र स्वतन्त्रतासे जा
ता। उसके उठने-बैठनेके लिये विशेष प्रकारके स्थान,
एवं परिस्थितिकी जरूरत है। दूसरी ओर ऐसी बात
चौथे, इस पोशाकमें अतिथि बनकर जाइये तो गृहस्थके
ार पड़ता है। सोना हो तो पोशाक दूसरी चाहिये।
ोट-पैंटमें बल पड़ जानेका डर है।

प्रकार यह स्पष्ट है कि यह सभ्यता मनुष्यको मनुष्य-
करती है, जब कि पूर्वीय सभ्यता मानवको मानवका
बनाती है।

३) सजावट—पाश्चात्त्य सभ्यतामें बाहरी तड़क-
स्थान ज्यादा है। फर्नीचर न हो तो मनुष्य
समझा जाता है। पाश्चात्त्य भावनाओंने इतना प्रभाव
कि 'सभ्य' कहानेके लिये इन व्यर्थकी वस्तुओंका होना
-सा हो गया है।

कमरा ऐसा सजाया जाता है कि साधारण आद
आनेसे ही घबराते हैं—शायद कालीन खराब हो
फर्नीचर मैला हो जाय। मनुष्य मनुष्यके पास बैठनेसे
है। पर अमरजीवी बाबूकी चटाई किसीको अपने पा
से नहीं रोकती।

(४) पाश्चात्त्य सभ्यतामें सौन्दर्यके लिये स्नो
पाउडर, लिपस्टिक आदि हैं। भाँति-भाँतिके, बालोंक
करनेवाले तैलादि हैं। ये सब ऊपरी टीम-टामके
हैं जो कि चमड़ेको खराब करते हैं, खुरदरा करते हैं
ओर भारतीय गृहिणी उबटन, शुद्ध तैल, घृत मर्दन व
जो रोमकूपोंके द्वारा शरीरके अंदर जाकर शरीरकी
स्निग्ध, तेजस्वी, लचकीली बनाते हैं। कम खर्चमें
आरोग्य।

इससे एक इस रहस्यका भी पता चलता है कि
सभ्यता अन्तर्दृष्टि रखती है, अंदरसे अधिक सा
चाहती है। इसके सर्वथा विपरीत पाश्चात्त्य सभ्यता बाह
श्रृङ्गार और बनावटको पसंद करती है। शायद यही ए
है कि पाश्चात्त्य राजनीतिकी टोकरी खोलें तो उसके
षड्यन्त्र और काले कारनामे ही दिखायी पड़ते हैं।

यही बात अन्य प्रकारके श्रृङ्गारोंकी है। पुष्पों
भारतीय सभ्यताका एक विशेष भाग है।

(५) खान-पानके तरीकेको देखिये। भारतीय
में मद्य-मांसका सर्वथा निषेध है; क्योंकि प्राणिमा
इसका मूलमन्त्र है।

शं द्विपदे, शं चतुष्पदे । शं नो ग्रावाण

इसके विपरीत हिंसक वृत्तिवाले ये लोग मद्य-म
भरपूर प्रयोग करते हैं।

एक और मजेकी बात है। चार मित्र बैठे ए
हैं। गिलासमें चाय लेकर एक दूसरेकी स्वास
करते हुए स्वयं पीते हैं। स्वास्थ्य दूसरेका बढ़ा
स्वयं पान करनेसे कैसे बढ़ेगा? दूसरी ओर भारतीय
आत्मसन्तोषके लिये 'अतिथि' को खिलाती है।

(६) प्रकृतिद्रोह पाश्चात्त्य-सभ्यताका विशेष
प्रकृतिने हमको नाना प्रकारके अन्न-वनस्पति, दुग
दिये हैं। उनका वैसा ही प्रयोग सर्वोत्तम है। पानी
के रूपमें पीना सर्वोत्तम; पर ये लोग पानीकी बर
बनाकर पुनः इससे पानीको ठण्डा करवाकर प्रयो
सिखाते हैं। परिणामतः अपव्यय और मन्दाग्नि।

के विपरीत भारतीय सभ्यता वास्तवमें शाक-मूलाहारकी है । प्रकृतिने जैसा दिया है, उसमें कम-से-कम करके उपयोग करनेको कहती है ।

) चिकित्साशास्त्रके दृष्टि-कोणमें भी स्पष्ट भेद है । द्देश्य सेवा नहीं, रुपया कमाना है । बीमारको दवा हीं दी जाती कि उसे देना कर्तव्य है; पर इसलिये फीस दी है ।

तीय सभ्यता क्योंकि त्यागवादकी पोषक है, इस-का मूलमन्त्र चिकित्सामें 'उपवास' है । क्योंकि सभ्यता भोगवादी है, इससे उसमें उपवास नहीं ।

तीय सभ्यतामें 'शौच'—शुद्धि जीवनकी उन्नतिका अङ्ग है; परिणामतः सर्वप्रथम ही शुद्धीकरण, विरेचन त्य चिकित्सा-प्रणाली बीमारीको दबाती है, निकालती

) शिक्षणमें सदाचार, व्यायाम, खेल-कूदको इतना । कल्चर, सैक्रिफाइस, सर्विसका कोई स्थान नहीं । उद्देश्य रुपया कमाना है, उपाधि प्राप्त करना है; ारतीय सभ्यताका मूलमन्त्र है—

ा ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
त्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥*

ात्त्य विद्याविधान बहुत खर्चीला है । यह सिस्टम ियल भावनाओंसे भरा पड़ा है; जब कि भारतीय —पेड़ोंके नीचे श्रेणियाँ, जंगलोंमें झोपड़ियोंमें निवास। भ्यतामें स्टडी, राइटिङ्ग, रीडिङ्गका स्थान ज्यादा का कम । वे यह कहते हैं—एक झूठा भी यदि सत्य दस लाभ बताता है और सच्चा यदि दो तो इन झूठा 'बेस्ट स्टूडेण्ट' है । विद्याका जीवनके साथ जोड़कर वे दिमागसे जोड़ते हैं ।

) 'स्वावलम्बन' का शब्द दोनों प्रयोग करते हैं । अभिप्रायमें दोनोंका महान् भेद है ।

तीय सभ्यता शरीर और मनसे परिश्रम करके यथा-ब आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओंका उत्पादन ना सिखाती है । इसके विपरीत पाश्चात्त्य सभ्यता इस भी व्यापार-बुद्धि लाकर यन्त्रवादका प्रचार करती है।

जबतक दुनियामें यन्त्रवाद है, तभीतक पूँजी पूँजीवादके कारण ही यह सब अशान्ति है । यन्त्रवाद प्रकृतिकी उपज है, जो कि पाश्चात्त्य सभ्यताके हर ए में छिपी है ।

(१०) पाश्चात्त्य जीवनका उद्देश्य क्या है, नहीं । शायद 'खा, पी और मौज कर' हो । भारत सोद्देश्य है ।

'मनुर्भव' (ऋग्वेद)—तू सच्चा मनुष्य बन लिये यम-नियमादिका पालन, पञ्चमहायज्ञोंका विधान व्यवस्था आदिका विधान है । परंतु ऐसा कोई पाश्चात्त्य सभ्यतामें नहीं ।

(११) हर बातमें प्रोफेशनलिज्म या कमर्शि रंग है; जब कि इधर सेवा, त्याग, विद्याका ख्याल

(१२) 'मनुष्य'को जीवनमें क्या चाहिये ? 'अ निवास, विद्या ।' फिर जिस सङ्घमें वह रहता है, उस नाम । 'अन्न-वस्त्र-विद्या-निवास' पर दोनोंके दृ भेद है, ऊपर निदर्शन किया जा चुका है । इसमें दृष्टि व्यापारिक नहीं है, वह व्यावहारिक है—अर्थात् के पूर्ण विकासके लिये आवश्यक हैं । इसमें व्यापा अत्यन्त नीच भावना है । क्योंकि मेरा शिशु मेरे दू जीवित नहीं रह सकता, इसलिये मैं उससे कुछ रिटर्न क्या कोई जननी ऐसा सोचती है ? वह समझती है जरूरी है, इसमें व्यापार-बुद्धि अमानवीय है ।

परंतु पाश्चात्त्य सभ्यता व्यापारिक है । परिणामत निर्माण'से उसका ध्यान हटकर 'समाजनिर्माण' प है । उसका ध्यान मनुष्यका 'मानसिक, शारीरिक' कैसे हो—इसपर इतना नहीं, जितना कि साङ्घिक— समिति-सम्बन्धी कार्यवाहियोंपर है। इसलिये उसकी च ऐसी चीज नहीं, जो मनुष्यकी आवश्यकता पूर्ण कर पूर्ण विकास करा सके । परिणामतः मनुष्य कमजोर र

भारतीय सभ्यतामें 'उत्तम मनुष्य' बनान कर्तव्य है । जब मनुष्य उत्तम बनता है, तब स्वभ उत्तम समाज बन जाता है; क्योंकि मनुष्योंके र नाम ही तो समाज है । इस सूक्ष्म भेदको भी समझना

---

*द्या विनय सिखलाती है, विनयसे पात्रता (योग्यता)

ान बहुत ऊँचा है। क्योंकि सात्त्विक अभिवृद्धिके लिये
ावश्यकता है। जीवनके लिये रुपया जरूरी नहीं
पाश्चात्त्य सभ्यताका केन्द्रविन्दु रुपया ही है। जीवन
के, शारीरिक शक्तियाँ घटा करके भी रुपया कमाना
त्य है। समय खर्च करके रुपया कमाना। एक बार
त्रके साथ दूसरे दर्जेमें बैठा मद्राससे देहली आ रहा
बात-बातमें कहने लगे कि इससे अच्छा तो सीधे
ा पहुँच जाना है। मैंने पूछा—'क्यों?' कहने लगे कि
समय इसमें लगेगा, उतनेमें मैं कई सौ रुपया कमा
।' उनके पास लाखोंकी सम्पत्ति है।

दिनमें वे निस्सन्देह अपनी व्यापारिक वृद्धि करके
समाजमें स्थान है, उसे बढ़ा लेंगे; पर सोचना तो
उन्होंने अपना अर्थात् अपने शरीर और मनका
नाश किया। उतना रुपया कमानेमें कितना असत्य
ा!

य सभ्यतामें 'रुपये'का इतना प्राधान्य नहीं, इसका
ो क्या? व्यक्तिगत जीवनविकास मुख्य, सात्त्विक
ास नहीं। 'शतायुर्वै पुरुषः।' इसीलिये—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

की प्रार्थनाएँ हैं।

के लिये इतनी हवड़-धवड़, आपाधापी, आडम्बर
ा एक मित्र यूरोपसे आया। कहने लगा कि 'लंदन-
ऐसा है, जिसमें कोई किसीसे बात करता नहीं
सब इधर-उधर दौड़ते नजर आते हैं। बड़े 'बिजी'
'

पूछा कि 'क्या किसीको किसीसे कोई मतलब
हने लगे—'बिल्कुल नहीं।'······'किसीको किसी-
ोचनेकी फुर्सत नहीं।'

क्या सबको अपनी पड़ी है?'

'हाँ! हाँ!!'·····················

कृपया पाठक लंदनबाजारकी मनोवृत्तिको
कोशिश करें।

(१४) पाश्चात्त्य सभ्यतामें स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध
चतुष्टयकी सिद्धिके लिये न होकर 'कामसिद्ध्यर्थ' है
'अर्थ', 'मोक्ष'में स्त्री-पुरुषका परस्पर कोई सहकार

एक मेरे मित्र अमेरिकासे वापस आये, तब उ
मुलाकात हुई। जब उन्होंने समाचारपत्र खरीदन
तब मैंने अपना देकर कहा, 'काहेको खरीदते हो
पास है।'

कहने लगे—'देखो, भाई! वहाँ तो पति
समाचारपत्र खरीदे तो पत्नी अपना अलग लेगी
सबके अकाउन्ट्स अलग, कमरे अलग······यह अ
अलग।'·····'पृथक्त्वकी भावना।

साथ ही यह 'काम-सिद्ध्यर्थ' सम्बन्ध भी
नहीं। इसमें दीर्घता न होकर सर्वत्र तलाक-ही-तलाक

इसके विपरीत विशुद्ध भारतीय सभ्यतामें वि
है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध अच्छेद्य—अटूट है।

भारतीय सभ्यता न केवल स्त्री-पुरुषके 'पति-पत्नी'
दीर्घता एवं व्यापकताको मानती है पर पारिवारिक ब
शृङ्खलाको भी दृढ़ मानती है। 'संयुक्त-कुटुम्ब
आत्मौपम्यका एक बड़ा सुन्दर उदाहरण है।

× × × ×

मैं यदि इस प्रकार उदाहरण देता जाऊँ तो
बहुत लंबा हो जायगा। पाठकके सामने इतने उदाह
दिखलानेके लिये पर्याप्त हैं कि इन दो सभ्यताओंमें
है, हमारी सभ्यता श्रेष्ठ क्यों है।

यदि मेरे इस छोटे-से निबन्धसे कुछ पाठक
संस्कृति-सभ्यतासे प्रेम करना सीख गये तो मैं अपना
सफल समझूँगा।

समस्त प्राणियोंमें एकात्मबोध

'भारतीय चरित्रकी आन्तरिक दयालुता, उनके स्वभावकी सुन्दरता और सरलता ही उनको व
ो भावना प्रदान करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें गहराईसे पैठा हुआ समस्त प्रा

मेरी संस्कृति

(लेखक—श्रीमदनगोपालजी सिंहल)

दिखलाऊँ तुम्हें अपना दिव्य भूतकाल—
ार्णिम अतीत,
दिगन्तरके राजे-महाराजे सभी
णि-मंडित स्वर्णमुकुटोंके साथ-साथ
ुका देते थे,
ाते ही मेरे पुरखाओंके—
दिग्विजय-केतु नभमें फहराता था,
जय-जयकी ध्वनि विश्वमें गूँजती थी।
मेरा देश
स्वामी था,
दिव्य धर्म
ा भूषण था,
वेद-ज्ञान
मुखरित था,
ता था घोष
संस्कृतिका—
पश्चिममें, दक्षिणमें, उत्तरमें,
दिशाओंमें,
कण-कणमें।
न संस्कृतिके एकच्छत्र शासनमें—
राजा थे,
राज्य रामराज्य
जन-जनके सपनोंका राजा है।
भारतके
क्या भूतलके—
न चाहते हैं,
न चाहते हैं—

एक बार फैले फिर, वो ही दिव्य र
सारे भूमण्डलपर।
ऐसा वह धर्म-राज्य
निर्मित किया था इस आर्यकी संस
हिंदूकी संस्कृतिने,
भारतकी संस्कृतिने।
इसकी ही देन था वह।

× ×

'स्वयं भी जीओ और दूसरेको जीने
ये ही सिद्धान्त था मेरी इस संस्कृ
इसके अनुयायियोंने—
भारतके हिंदुओंने
विश्वको दिया था ज्ञान वाणीके द्वार
हाथोंमें वेद और वाणीमें वेद-घोष
'वैदिक'का चिह्न था।
धर्म और ज्ञानके प्रकाशके प्रदानमे
हमने न हाथोंमें खड्ग कभी थामी थ
हमने तो संस्कृतिकी पावन सु-वेदी
मरना ही सीखा था—
जिसके परिणामरूप,
कितने ही नन्हे लाल
भीतोंमें चुन गये,
नींवोंमें दब गये,
आरोंसे कट गये,
टुकड़ोंमें बट गये।
और फौलादी युवा
'हर हर'का घोषकर

-खेतोंमें
ा भारतके एक-एक चप्पेपर।
ठनाओंने
ते कोमल उन पुष्पोंकी कलियोंने,
कमलकी उन दिव्य पाँखुरियोंने—)
धधकती हुई अग्निकी लपटोंका
गा आलिङ्गन—
बार नहीं,
त बार नहीं,
कड़ों ही बार।
भव्य रूप मेरी दिव्य संस्कृतिका।

× × ×

: जानता था—
इस भारतमें
ो संस्कृति है,
है, सभ्यता है,
कर्म है,
यह हिंदु जाति
, अमर है,
ट सकती नहीं
वारसे भी।
र, यही जान
मेटानेमें ही
ं शक्ति सब
। एक साथ।
मिटाया इसे,
ने मिटाया इसे,
र—
मिटाया इसे,

इसे जो न जानते थे
सच्चे स्वरूपमें,
और जो प्रभावित थे
दूसरोंकी बातोंसे।
किंतु सब सहते हुए
अबतक यह जीवित है;
यही तो विशेषता है मेरी इस संस्कृतिकी-
इसको मिटानेवाले
स्वयं मिट जाते हैं।

× × ×

आज यह मेरा देश
बन्धनसे मुक्त है।
भौतिक परतन्त्रताकी इसकी सभी श्रृंखलाएँ
टूटकर गिर पड़ी हैं।
ऐसे पुण्य-युगमें हम
आज ले रहे हैं श्वास;
अतः कर्तव्य है हमारा यह सर्वप्रथम—
अपनी इस संस्कृतिका भूतलपर प्रसार करें
जगको दिखलायें, बतलायें और समझायें
इसकी महत्ता दिव्य,
जिससे अशान्तिमय जगतीमें शान्ति हो—
छूटकर गिर पड़ें भूतलके हाथोंसे
घातक सभी अस्त्र-शस्त्र,
काल-रूप 'ऐटम बम'।
और कह उठे विश्व
कोटि-कोटि कण्ठोंसे—
'जय हो देश भारतकी !
'भारतके हिंदूकी !
हिंदूकी संस्कृतिकी !



आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणालीकी श्रेष्ठता

(लेखक—आयुर्वेदाचार्य कविराज श्रीकृष्णपद भट्टाचार्य आयुर्वेद-सरस्वती, काव्य-व्याकरण-पुराण-सांख्य-तीर्थ)

:सहस्र वर्षोंके बाद भारत वैदेशिक परतन्त्रताके कठोर मुक्त हुआ है; पर पूर्ण स्वतन्त्रता हमें उसी समय जब हमारी संस्कृति, भाषा एवं चिकित्सा-पद्धति प्रभावसे मुक्त होंगी। यों तो स्वाधीनता एक व्यापक एवं उसमें सभ्यता, संस्कृति, धर्म, भाषा, भोजन, चिकित्सा—सभी समाते हैं; पर इन सातोंमें तीन भाँति संस्कृति, भाषा एवं चिकित्सा ही किसी जातिकी को जीवित रख सकती हैं। सभ्यता और धर्म वस्तुएँ हैं; एवं भाषा, भोजन, वस्त्र और चिकित्सा—ो आत्मनिर्भर बननेके लिये प्रेरणा देती हैं। इस-यता और धर्मरक्षाके लिये संस्कार या संस्कृतिकी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता ग्रन्थिबन्धनके षाकी भी है; क्योंकि भाषाके बिना सभ्यतासे क सभी ग्रन्थिविहीन हैं। अस्तु, अब चिकित्साके भी कुछ प्रकाश डालना चाहिये। मानव-जीवनके -प्रवेशके साथ भोजन और ओषधिकी आवश्यकता अतः भोजन और ओषधिको एक ही पर्यायमें रतके लिये कौन-सी प्रणाली श्रेष्ठ है, इसे अब प्रदर्शित यगा। भोजन और ओषधिको एक ही पर्यायमें इस-या जा रहा है कि मानव-शरीरके लिये जो भोज्य वही ओषधि है; और जो ओषधि है, वही भोज्य है। महर्षि सुश्रुत भी कहते हैं—

नमूलं बलं पुंसां बलमूलं हि जीवनम्।

-भोज्यपदार्थ ही बल-रक्षा या शरीर-रक्षाका मूल कारण जीवन बलाधीन है।

महर्षि चरक भी कह रहे हैं—

णा हि प्राणिभूतानामन्नं लोकोऽभिधावति।
र्णप्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्॥
ष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।
किकं कर्म यद् वृत्तौ स्वर्गतौ यच्च वैदिकम्॥
मोक्षापवर्गे यच्चोक्तं तच्चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम्।

अन्न ही प्राणि-समूहके लिये प्राणस्वरूप है, सर्वलोक अन्नके आग्रहशील हैं; वर्ण, सुस्वरता, जीवन, प्रतिभा, सुख, आजीविकाके लिये लौकिक कार्य, स्वर्ग-लाभके लिये क्रियानुष्ठान एवं मुक्ति-साधनके लिये जो पारमार्थिक की जाती हैं, सभी अन्नपर प्रतिष्ठित हैं।'

आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणालीकी सृष्टि ब्रह्माने की पृथ्वीमें मनुष्योंको रोग-कातर देखकर भरद्वाजादि म देवराज इन्द्रसे प्रार्थना करने जाकर यही कहा 'भूमण्डलमें मानव रोगपीड़ित हो रहे हैं एवं उन रोगियोंकी रक्षाके लिये हम सेवाकार्य करना चाहते लिये आप हमें अष्टाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा दीजिये।'

उन महर्षियोंका उद्देश्य आजकी भाँति f व्यवसाय करनेका नहीं था, यह तो हम चरक और इतिहास-भागमें देखते हैं।

आयुर्वेदप्रचारका उद्देश्य था चतुर्वर्गकी फ धन-संग्रहके लिये इसका उपयोग प्राचीन आचार्यों नहीं किया, इसीलिये आयुर्वेदमें कहा गया है—'धर्म मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।' इसी मूलमन्त्रमें हम संस्कार, धर्म, भाषा, भोजन और वस्त्रको प्रत्य अनुमानद्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

आज पृथ्वीमें जो पाँच प्रकारकी चिकित्सा-पद्धति हैं—जिन्हें 'होम्योपैथी, ऐलोपैथी, साइकोपैथी, ने और हाईजीजम' के नामसे पुकारते हैं—उनके मूल आयुर्वेदके पञ्च निदानमें महर्षियोंने लिखा है—

हेतु-विपरीत, व्याधि-विपरीत, हेतु या व्याधि हेतुसम एवं व्याधिसम औषध, अन्न और विहारका शरीरके लिये सुखदायक या आरोग्यकारक है।

महर्षियोंकी गम्भीर दृष्टि चारों ओर घूमा क आजकी होम्योपैथिक—लाक्षणिक एवं एलोपैथीकी चिकित्सापद्धति तथा नेचरोपैथी या प्राकृतिक साइकोपैथी या मानसिक चिकित्सा और हाईजीजम या चिकित्सापर महर्षियोंने उत्तम रीतिसे विचार भी महर्षि चरकने रसायन-अधिकारमें दीर्घ जीवनके कुटी-प्रावेशिक, द्रोणी-प्रावेशिक, वातातपिक एवं रसायनकी व्यवस्था की थी, उसमें पाञ्चभौतिक दे

ा नाश होता है, कहाँकी मृत्तिका रोग हरती है, कहाँ- रोगापहारक है, सूर्य-तेजद्वारा किस ऋतुमें कौन-सा होता है—इस तत्त्वपर व्यापक रूपमें दृष्टि डाली थी। की दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या एवं ब्रह्मचर्य- धि ही सम्भवतया विश्वमें सर्वोत्कृष्ट प्राकृतिक चिकित्सा- है। उत्तरायण या दक्षिणायन-भेदसे सूर्यके आदान, ौर विसर्गकालमें जीव-जगत् एवं पदार्थोंपर उसका व पड़ता है—इसकी लौकिक और आध्यात्मिक ढंगसे क, प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा महर्षि चरकने मीमांसा

ीन आचार्यगण धर्म-शास्त्रके साथ चिकित्साको भी शास्त्र ही मानते थे; क्योंकि भोजनद्वारा मनुष्यकी परीत भावको प्राप्त कर लेती है, इस गम्भीर तत्त्वको ले 'एतद्देशप्रसूत अग्रजन्मा' महर्षिगण ही जान पाये अनुमानद्वारा सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। आज लिये प्रत्यक्ष है। वैदेशिक प्रभावमें पड़कर वैदेशिक अभ्यस्त व्यक्ति भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषा तीय चिकित्सासे घृणा रखते हैं; नहीं तो आज भारत हिष्णु और संयमहीन कैसे हो गया।

तु, अन्नके सम्बन्धमें आयुर्वेदसे प्रमाण दिये जा चुके उसी अन्नको जब पथ्यके रूपमें महर्षियोंने निर्देश तब कहते हैं—

ापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
तु पथ्यविहीनानां भेषजानां शतैरपि॥

थ्यद्वारा ही रोग आरोग्य हो सकता है, पथ्य- कड़ों ओषधियोंसे भी रोग आराम नहीं हो सकता।' । यहाँ भी आयुर्वेद अन्नपर ही चिकित्साको स्थापित है।

ीन आचार्य पञ्चभूतात्मक देहकी प्राकृतिक ढंगसे ये सदैव प्रयत्नशील थे; आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सक ो या हाइड्रोपैथीके नामसे जो पद्धतियाँ चल रही मूलतत्त्वमें आयुर्वेद ही है।

गः शमयेद् व्याधिं यो नैवान्यमुदीरयेत्।
ो विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

स ओषधिके प्रयोगसे रोगकी शान्ति होती है एवं किसी व्याधिको उत्पन्न नहीं करता, वही शुद्ध

आधारपर चलते थे। 'स्वल्पाहारी स जीवति'—स्वल्पाह जीवनका उपाय है। महर्षि चरक सूत्रस्थानके पाँचवें लिख रहे हैं—

मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबल यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाका गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति।

मिताहारी होना चाहिये, मिताहारसे ही प्रकृ रहती है। परिमित आहारके सम्बन्धमें जैमिनि-दर्श जनश्रुति प्रचलित है। एक बार महर्षि जैमिनि आश्रमम थे। उस समय वृक्षशाखामें एक पक्षी बोल उठा—'के यानी कौन अरोगी है? उत्तरमें जैमिनिने कहा—'हि यानी जो हितकर, पुष्टिकर और विशुद्ध आहार क पक्षी फिर बोला—'कोऽरुक्?' जैमिनिने भी उत्त 'मितभुक्!' यानी परिमित आहार करनेवाला, जिससे न हो! इसी प्रकार पक्षी फिर जब बोल उठा—'के तब जैमिनिने कहा, 'हितभुक्-मितभुक्।' यानी जो अग्निबल एवं द्रव्योंके गुणागुण तथा इन्दु औ आदान-विक्षेप एवं विसर्गकालको जानकर समयानुकू पोषणयोग्य आहार करता है, वही व्यक्ति नीरोग रह जीवन लाभ करता है।

आयुर्वेदका मूल सिद्धान्त इसी नीतिपर आ मनुष्य प्रकृतिको आश्रय करते हुए अन्न, पा सदाचारद्वारा अपने जीवन एवं शरीरको सुरक्षित इसी ध्येयपर आयुर्वेद अनादिकालसे चला आ रहा

आयुर्वेदके सिद्धान्तोंको जब हम भूल गये, त 'नीरोग' शब्दको भी भूल गये हैं, एवं 'शरीरं मन्दिरम्' तत्त्वको पाश्चात्य वैश्यजनोंसे ग्रहण कर लि

महर्षि पतञ्जलिकी वाणी 'मरणं विन्दुपातेन विन्दुधारणात्' को चरकने रसायनमें लेकर आचा बनाया था और हम उस आचार-रसायनको पाश्चा भूमिके अनाचार-रसायनमें रूपान्तरित करते हुए सुखके लिये अपार्थिव अवदानपर स्वयं ही गालियाँ

त्यागव्रती एवं महान् ऋषियोंने भारतको धर्म, अ मोक्ष—इस चतुर्वर्गका फल एक ही साथ प्राप्त करा वेद, उपनिषद् एवं दर्शन-शास्त्रसे सम्बन्ध रखकर अ प्रचार किया था। इसीमें था—'विद्ययामृतमश्नुते,' ि

पार्थिव एवं पारमार्थिक सुख देता था। यदि भारतीय उन लोगोंका विश्वास न होता तो याज्ञवल्क्यपत्नी यणा नारी मैत्रेयी यह नहीं कहती—'येनाहं नामृता किमहं कुर्याम् ।' अर्थात् जिससे अमृतत्व लाभ नहीं से लेकर क्या करूँगी ? इसीलिये विष्णुपुराणमें कहा —

ापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
ा हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः ॥

ात्‌में भारत ही श्रेष्ठ भूमि है, क्योंकि यह कर्मभूमि ाके सिवा सारी भूमि भोगभूमि है ।'

ा प्रमाण हम आज चारों ओर ही देख रहे हैं। भौतिक विज्ञान मानवको सुखी बनानेके लिये अणुबम Bomb)तक पहुँच गया है। ध्वंसके कराल मुखमें मानव- पहुँचानेके लिये एवं स्वयं सुखी बननेके लिये यह सारी । पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञान पेटेन्ट ओषधियोंद्वारा वको ग्रास करनेके लिये जो व्यावसायिक क्रमकी सृष्टि से करता आ रहा है, उसका परिणाम केवल जन- ही नहीं, बल्कि संस्कृतिपर चोट पहुँचानेके साथ-साथ पराधीनतामें भी भारत-जैसे देशको अनन्त कालतक रख सकता है। भारत-जैसे षड्ऋतुप्रधान देशमें ात्यदेशीय ओषधियाँ निर्विचार सभी रोगोंमें चल ा नहीं—इस सम्बन्धमें भारतीय वैज्ञानिक ध्यान देना हीं समझते ।

ों मास मद्य, मांस एवं अण्डे सेवन करनेवाले शीत- देशकी ओषधि, पथ्य एवं इंजेक्शन भारत-जैसे धान—विशेषतया ग्रीष्मप्रधान देशमें सभी ऋतुओंमें हैं या नहीं—इस ओर यदि सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे चें तो कम-से-कम हमें स्वास्थ्यकी दृष्टिसे तो सोचना । जहाँ गर्मीके कारण ग्रीष्म ऋतुमें रक्तका उतार- हुत ही शीघ्र होता रहता है, वहाँ शीतदेशीय ा प्रभाव स्नायु और धमनीपर किस ढंगसे पड़ता है—इसे हम नहीं समझते; पर त्रिकालदर्शी महर्षि जानते थे एवं सारी पृथ्वीके लिये ही चरकने लि 'यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम् ।' क्या प्रमाणित नहीं होता कि आयुर्वेद ही श्रेष्ठ चिकित है ? यदि हमें संस्कृति एवं स्वास्थ्यकी रक्षा कर आयुर्वेदकी राष्ट्रियताके लिये तथा उसकी श्रेष्ठता उसे विश्वसभामें आसन दिलानेके लिये आगे बढ़ना ही

अस्तु, आयुर्वेद-प्रणालीकी श्रेष्ठताके सम्बन्ध हम ऐतिहासिक निर्णयपर जाना चाहें तो हमें जानन कि पाश्चात्त्य देशोंके बहुत-से मनीषी आयुर्वेदकी मानते थे एवं आज भी मानते हैं। जब भारतसे यूनान एवं अरबमें गया था, एवं वहाँसे अनुवादि पाश्चात्त्य देशोंमें छा गया था, उस समयके इतिहाससे कोई विशेष लाभ नहीं। पिथागोरस, हिपोक्रेटीज़, डा० वाइज़, कलब्रोथ, ब्लूमफील्ड, जार्ज कुक—सभी श्रेष्ठता मानी है, पर अवनति-कालमें हमें गालियाँ भं अब पुनरभ्युदय-कालमें हमें आयुर्वेदके लिये वि आसन प्राप्त करनेके लिये देशके प्रमुख नेता, वैज्ञा आम जनताको आयुर्वेदकी ओर आकर्षित भगीरथ-प्रयत्न करना चाहिये। आयुर्वेदमें काष्ठौ रसौषधिकी दो पद्धतियाँ ही एक सीमाके अंदर का आ रही हैं; इसलिये गरीब-से-गरीब जनता एवं धनी राजातक भारतकी सभी जनता आयुर्वेदसे ही लाभ सकती है, जिसमें प्राकृतिक विधान, सदाचार-विधा नैसर्गिक विधि-निषेधका भण्डार भी पूर्णतया विद्यमान है अभिमान प्रत्येक जातिको ही है; इसी दृष्टिसे चि राष्ट्रियताके लिये आयुर्वेदके स्थान-निर्णयद्वारा हमें अ श्रेष्ठता विश्वके सम्मुख उपस्थित करनेके लिये वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करना च शारीर-तत्त्वमें जो वैज्ञानिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तका हुआ है, यह आधुनिक भौतिक विज्ञानके लिये एक स्वप्न

नमस्कार

हे प्राचीन भारतभूमि ! हे मानव-जातिकी पालन करनेवाली ! हे पूजनीया ! हे पोषणदात्री ! तुझे ा ाब्दियोंसे लगातार चलनेवाले पाशविक अत्याचार आजतक तुझे नष्ट नहीं कर सके । तेरा स्वागत ा, कला और विज्ञानकी जन्मदात्री ! तुझे नमस्कार है । —ऐम० लुई जेकोलियट

आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणालीकी श्रेष्ठता

(लेखक—आयुर्वेदाचार्य कविराज श्रीहरिवक्षजी जोशी काव्य-सांख्य-स्मृति-तीर्थ)

'कित्सा' शब्दका अर्थ रोग-निवृत्ति करना है। गापनयने' धातुसे 'चिकित्सा' शब्द बना है। जितने प्राणी उत्पन्न हुए हैं, चाहे वे स्थावर हों , रोग सबको होता है। इन रोगोंकी निवृत्ति नाम चिकित्सा है। चिकित्साशास्त्र अनेक नेक प्रकारसे विस्तृत और प्रचलित हैं। मनुष्योंकी ो क्या—पशु, पक्षी, बन्दर, नकुल आदि जानवरोंको शास्त्रवेत्ताओंने अपनी चिकित्सा करते हुए देखा नकुल जब किसी बलवान् सर्पसे युद्ध करते हुए ता है, दूसरा नकुल उसको आकर कोई जड़ी सुँघाता है जीवित होकर दूसरे नकुलकी सहायतासे सर्पपर लेता है। गाय-भैंस आदि पशु बीमार पड़नेपर लंघन । अपथ्यका परिहार और पथ्य वनस्पतियोंका यं जंगलमें कर लेती हैं। ऐसी ही बहुत-सी धारणाएँ त्रियोंकी हैं। खैर, जो भी कुछ हो, दुःखके के लिये थोड़ी-बहुत बुद्धि सृष्टिकर्ताने सबको दी है तो मानना ही पड़ेगा। हमारा आजका विषय मानव-शास्त्रसे सम्बन्ध रखता है। यद्यपि चरक, सुश्रुत र्ष-ग्रन्थोंमें चिकित्साशास्त्रका विषय प्राणिमात्रको ही तथापि उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें जो चिकित्सा लिखी पुरुष (मानव) को ही इङ्गित करके लिखी है। शामें लिखते हैं—

मात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत् ।
कस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
पुमांश्चेतनं तच्च स चाधिकरणं स्मृतम् ।
स्यास्य तदर्थं च वेदोऽयं सम्प्रकाशितः ॥

(चरक—सू० स्थान, अध्याय १)

स्मिन् हि शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानम् । कस्मात्, लोकस्य ात् । लोको हि द्विविधः । स्थावरो जङ्गमश्च । तत्र भूतग्रामः । स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायुजसंज्ञः । ः प्रधानम् । तस्योपकरणमन्यत् ।

(सुश्रुत, शारीरस्थान, प्रथम अध्याय)

चिकित्सा लिखी है। परंतु चिकित्साशास्त्रका विषय आत्मा और शरीर—इन तीनोंके संयोगसे तिपाई अन्योन्याश्रित प्राणिमात्र ही है। इन सबकी चिकि जाती है। शालिहोत्र (अश्वायुर्वेद), हस्त्यायुर्वेद ग्रन्थ इनके विषयमें स्पष्ट प्रमाण हैं। और भी न ज विषयके कितने ग्रन्थरत्न समय और आक्रान्ताओंके द्व नष्ट हो गये होंगे। तात्पर्य यह कि प्राणि चिकित्साकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये आस्तिक विद्वानोंकी यह दृढ़ धारणा है कि जिस सृष्टिकी रचना करनेके पहले उसके सम्यक् सञ्चालन ईश्वरने वेदोंको प्रकट किया, उसी प्रकार आयु नित्यसिद्ध ईश्वरीय ज्ञान है। कहीं भी किसी भी जहाँ आयुर्वेदकी सम्प्रदाय-परम्पराका वर्णन किया यही लिखा है कि इस ईश्वरीय ज्ञानको ब्रह्माने स्मर प्रजापतिको दिया, वहाँसे क्रमानुसार शिष्य-प्रशिष्य द्वारा यह सर्वसाधारणतक पहुँचा।

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं तेऽत्रिपुत्रादिकान् मुनीन्

इसलिये सुश्रुतकारने कहा है कि इसे मन्त्रकी त कोई शङ्का किये प्रयोग करो। ज्ञानपूर्वक अ ओषधियाँ प्रयोग करनेपर फलमें सन्देहका काम 'मन्त्रवत् संप्रयोक्तव्यम्'।

न्यायदर्शनकारने तो वेदकी प्रामाणिकता सिद्ध लिये आयुर्वेदकी सत्यताको प्रमाणरूपमें उपन्यस्त ऐसे ही वेदोक्त सब कर्मों एवं उनके फलोंकी प्रमाणित की है—'मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यम्।' अ प्रकार मन्त्र सत्य है, आयुर्वेद सत्य है, उसी प्रकार सत्य है। कहनेका तात्पर्य यह है कि वेदकी तरह भी ईश्वरीय ज्ञान है और यह किसी-न-किसी रूपमें प्रा ही अन्तर्हित रहता है।

भारतमें इस आयुर्वेदकी अष्टाङ्गचिकित्सा अन अविच्छिन्नरूपसे चलती आ रही थी; परंतु इसके बहु मसल्मानी बर्बर आक्रान्ताओंकी बर्बरताके भेंट होकर

ंट हो गये। परंतु इसपर भी जो उपलब्ध हैं, वे
लनामें संसारकी किसी भी चिकित्सा-प्रणालीको
ागे नहीं बढ़ने देते।

प्रान्तकी सरकारने आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-
पुनः-सङ्गठन-समिति स्थापित की है। उस समिति-
रिपोर्ट पेश करते हुए लिखा है कि 'यह सर्वविदित
क अंग्रेजोंने अनेक दुरुपायोंसे न केवल हमारे देशपर
विजय प्राप्त की, किंतु हमारी आत्माको चिरदासता-
ठमें बाँधनेके कुत्सित उद्देश्यसे हमारी प्राचीन
भाषा, साहित्य एवं विज्ञानको नष्ट करने तथा
नित्व सिद्ध करनेका भी सतत प्रयत्न किया,
का वास्तविक महत्त्व स्वयं हमारी ही दृष्टिमें गिर
न्होंने हमारी कला और विज्ञानके उन्नति-मार्गमें
कानेके सभी प्रयत्न अपनी शक्तिभर किये और
हो सका, हमारे प्राचीन साहित्य और विज्ञानकी
ो राजकीय सहायता और मान्यता नहीं दी।
यह हमारे विदेशी शासकोंकी नीतिका मूल था
लोपैथीकी तुलनामें अपने अन्य शास्त्रोंकी भाँति
भी घृणा करने लगे।

ज व्यापारी थे। व्यापारीको अपने व्यापारके
लिये हर एक भला-बुरा उपाय काममें लाना पड़ता
ो जनतामें अज्ञानता बढ़े या उसके स्वास्थ्यपर बुरा-से-
र पड़े, इसकी व्यापारीको परवा नहीं होती।
चारक यहाँतक प्रचार करते हुए देखे गये हैं कि
ाय कलेजेको ठण्डा करती है।' डाल्डा (जमे हुए
प्रचारमें पहलवानका छायाचित्र देकर लिखा
क इनकी रसोई डाल्डासे बनायी जाती है। जब अपने
देशके व्यापारियोंमें स्वार्थकी इतनी कुत्सित भावना
तब विदेशी, अत्यन्त चतुर अंग्रेज व्यापारियोंने हमारे
लिये नहीं, अपने व्यापारको फैलानेके लिये करोड़ों
ौजार, यन्त्र, ओषधिके मार्केट भारतमें तैयार करनेको
केवल स्वस्थावस्थामें, अपितु आतुरावस्थामें भी हमें
बनानेको यह सब किया, तो आश्चर्य ही क्या है।
जीका भी ऐसा ही मत था। उन्होंने एक बार
या' (Young India) में लिखा था, 'अंग्रेजोंने
ी चिकित्सा-व्यवसायका उपयोग हमें दासतामें
नेके लिये सफलतापूर्वक किया है। पाश्चात्त्य
ास्त्रका अध्ययन करना हमारी दासता

बढ़ाना है। यह प्रणाली बहुत खर्चीली है, इसे स्व
भी जानते हैं। इसमें रोग-परीक्षाके लिये रक्तपरीक्ष
परीक्षा, मूत्रपरीक्षा, कफपरीक्षा आदि कितनी ही
परीक्षाएँ चलती हैं, जिनपर काफी खर्च पड़ ज
डाक्टरोंकी फीसें बहुत लंबी होती हैं। इसक
यूरोपीय देशोंमें हुआ है; उन्हीं देशोंके जलवायुमें
जनताके रहन-सहन, आहार-विहारको दृष्टिमें रखक
बनायी गयी है। परिणामस्वरूप ये ओषधियाँ
जनताकी प्रकृति, जलवायु-सम्बन्धी दशाओंके
अनुपयुक्त सिद्ध हुई हैं। रोगियोंपर इनका कुप्रभाव
आता है। ऐलोपैथिक ओषधियोंके तैयार करनेमें प्र
सुरा, स्पिरिटका उपयोग होता है, जिसका प्रयोग प्रा
यहाँ निषिद्ध माना जाता है। ओषधियोंका प्रयोग रोग
लिये किया जाता है। रोग-परीक्षामें भूल हुई तो
परिणाम अवश्यम्भावी है। यह दोष आयुर्वेदमें नहीं है
इसमें दोषोंके विपरीत औषध-प्रयोग होता है। अत
नाम निश्चित न होनेपर भी दोष-विपरीत ओषधि
देती है।

यदि राष्ट्रके स्वास्थ्यको सुधारना है और देशके
भागोंमें निवास करनेवाले दरिद्रतम व्यक्तिके
चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता सुलभ करनी है तो शी
आयुर्वेदके आधारपर, जो चिकित्सा, स्वास्थ्य और दी
क्षेत्रमें हमारे पूर्वपुरुषोंकी सर्वोपरि सिद्धि है और जो ए
या अन्य चिकित्सा-प्रणालियोंमें विद्यमान दोषोंसे स
है, हमारे राष्ट्रकी चिकित्सा और स्वास्थ्यके
भवन गढ़ा जाना चाहिये। इसे अविलम्ब 'राष्ट्रिय-
प्रणाली' स्वीकृत कर लेना चाहिये। यों करनेसे
इस प्रणालीका उच्चतम विकास होगा।

भारतवर्षके लिये विशेष करके आयुर्वेदीय चि
उपयुक्त है; क्योंकि:—

(१) यह उन्हीं जड़ी-बूटियोंके आधारपर
है, जो प्रायः भारत या उसके पड़ोसी समान ज
मुल्कोंमें पैदा होती हैं। यह अटल सत्य है कि जि
में जो प्राणी पैदा होता है, उसी भूमिमें उत्पन्न औ
अन्न उसके लिये विशेष उपयुक्त होता है।

(२) आयुर्वेदीय ओषधियाँ सर्वसुलभ एवं स

(३) आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणालीमें द्रव्योंका
सम्पूर्णरूपसे होता है, न कि कार्यकारी तत्त्वोंका।

) आयुर्वेदकी रोग-परीक्षा-प्रणाली सहज, स्वल्प-
एवं अकाट्य-युक्तिपूर्ण है।

) आयुर्वेदमें रोगोंकी चिकित्सा दोषानुबन्ध होनेसे
र्ग परिचय न होनेपर कुपित दोषका उपशम कर देने-
निवृत्त हो जाता है।

क्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत्।

) आयुर्वेद-चिकित्सा सत्त्व-रजः-तमः-प्रधान
आधारपर है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड-न्यायसे जो
व्याप्त तत्त्व हैं, वे ही पिण्डमें हैं। इन तत्त्वोंका
वृद्धि होना ही रोग है। उन्हें सम अवस्थामें कर
'चिकित्सा' है। उनमें विषमता न हो, ऐसे उपाय
ही 'स्वास्थ्याभिरक्षण' है। अतः आयुर्वेदमें जैसा
या गया है, वैसा अन्यत्र कहीं किसी भी चिकित्सा-
नहीं मिल सकता। आयुर्वेदज्ञकी चिन्ताधारा ही

शरीरे धातूनां वैषम्यं न भवेदिति।
नां चानुबन्धः स्यादित्यर्थं क्रियते क्रिया॥
कि—

स्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।
साम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्॥

) आयुर्वेदमें हेतु-व्याधि-विपरीत चिकित्साका वर्णन
ल ऐलोपैथिककी तरह व्याधि-विपरीत चिकित्साका
कारण है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणालीसे
कराकर स्वस्थ हुए रोगी पूर्ण स्वास्थ्य-सुखका स्थायी
करते हैं; क्योंकि उनकी बीमारी केवल उग्र ओषधि
क्शनोंसे दबायी नहीं जाती, किंतु समूल नष्ट की
जिससे न तो वह दूसरे रूपसे, न अपने रूपसे फिर
सकती है।

) आयुर्वेदमें शरीर-शुद्धि करनेके लिये पञ्चकर्म-
वर्णित की गयी है—जिसमें स्नेह, स्वेद, वमन,
नस्य, अनुवासन, धूमपान आदि सब ऐसी वैज्ञानिक
हैं, जिनके द्वारा शरीरमें सञ्चित सभी प्रकारके विकार,
में मिथ्या आहार-विहारसे सञ्चित हो जाते हैं, शरीर-
म बाहर निकाल दिये जाते हैं और शरीरको शुद्ध
जाता है। ऐसी प्रणाली अन्य चिकित्सा-शास्त्रमें नहीं
आयुर्वेद जब अपनी उन्नत अवस्थामें था, यहाँके
व्यग्र नहीं रहते थे, तब प्रतिवर्ष वसन्त, शरद् औ
उक्त प्रणालीके द्वारा शरीर शुद्ध करा लिया करते थे
वे रोगरहित होकर पूर्णायु प्राप्त करते थे। जैसे—

शीतोद्भवं दोषचयं वसन्ते
विशोधयन् ग्रीष्मजमभ्रकाले
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्
प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु

(९) ऋतुचर्या—किस ऋतुमें कौन दोष प्रब
है और उसके उपशमके लिये क्या आहार-विहार करना
कैसे वस्त्र पहनने चाहिये, कब सोना चाहिये, कैसे
रहना चाहिये इत्यादि भिन्न-भिन्न ऋतुओंकी भि
चर्या इतनी महत्त्वपूर्ण है, जो अन्य चिकित्सा-प्रण
कहीं भी नहीं मिल सकती।

(१०) ऐसे ही इसकी दिनचर्या, रात्रिचर्या,
विधि, आहार-विज्ञान, पथ्यापथ्य-विज्ञान अपूर्व हैं।

(११) आयुर्वेदका औषध-भण्डार तो इतना
है कि जिसकी गणना करना ही मानवशक्तिके बाहरकी
चरकने लिखा है कि 'नानौषधं जगति किञ्चित्' अर्थात
ऐसा कोई भी पदार्थ (वस्तु) नहीं है, जो औषधं
न आता हो। रस चखकर अज्ञात ओषधियोंके गुण
की जो विधि आयुर्वेदमें बतलायी है, वह आयुर्वे
विशिष्टता है।

(१२) आयुर्वेदकी औषध-निर्माण-प्रणाली
वैज्ञानिक है कि इसमें कोयलेसे लेकर हीरकपर्यन्त
द्रव्य, स्वर्णादि धातु, सींगीमोहरा (वत्सनाभ)
कालकूटपर्यन्त विष, सब प्रकारके रत्न, पारद, गन्ध
रसोंका शोधन-मारण करके वे इतने सात्म्य (शरीरमें
लायक) बना दिये जाते हैं जो कभी भी कोई वि
पैदा करते और जिस उद्देश्यके लिये उनका प्रयो
जाता है, उसे पूर्ण कर देते हैं।

(१३) वाजीकरण ओषधियोंका जितना सु
आयुर्वेदमें है, वह बहुत ही उपयोगी और आशुफल

(१४) जरा-व्याधिको दूर करनेवाले दिव्य
इसीमें विद्यमान हैं।

आयुर्वेदके जो कुछ उपादेय अंश समयके प्र
अनभ्याससे अदृश्य हो गये हैं, वे ऐलोपैथिक या अ

अङ्गोंकी पूर्ति कर लेनी चाहिये । जैसे व्रणकी ऐलोपैथीमें की जाती है, आयुर्वेद उससे अपनी भिन्नता रखता है; यथा—वातिक व्रण, पैत्तिक व्रण, ग, द्वन्द्वज व्रण, सान्निपातज व्रण—इस सबकी धोने- करनेकी, लेपकी, विदारणकी, विम्लापनकी, चीरने- न-भिन्न ओषधियाँ एवं भिन्न-भिन्न प्रकार हैं । शस्त्रावचरणका अभ्यास डाक्टरोंसे ले लेना इसी प्रकार शालाक्य और प्रसूतितन्त्रमें, आँख, क, गला, दाँत, आदिकी चिकित्सामें तथा बच्चा पैदा भी अभ्यास-पाटव डाक्टरोंसे सीख लेना चाहिये । र्वेदीय चिकित्सा पूर्ण सत्य ज्ञान है, लाखों वर्षोंकी है । इसमें ऐलोपैथिककी तरह प्रति तीसरे वर्ष बदल ओषधियाँ नहीं हैं, जो विज्ञानके नामपर प्रचार करके रोगियोंके शरीरमें उँडेल दी जाती थोड़े ही दिनोंके बाद अज्ञानके गर्तमें समा जाती हैं । पूर्व एम० बी० ६९३ (M. B. 693)को निमोनिया- अचूक माना जाता था । उसका व्यवहार अब कितना कम हो गया है ! उसके स्थानमें सल्फो- ग्रूपकी अन्य दवाइयाँ निकल गयी हैं । अब सुना के अमेरिकाके यूनाइटेड स्टेट्ससे चिकित्सकोंके नाम फुलर (विज्ञप्ति) निकला है, जिसमें पेनिसिलिन ग्रूपकी ओषधियोंका स्वल्प व्यवहार करनेका आदेश के टीकेका वहाँ कितना भयङ्कर विरोध किया जाता है ! सारांश कि मानव-ज्ञान सदा अधूरा एवं है—खासकर उन सूक्ष्म विषयोंमें, जो इन्द्रिय-ग्रा हैं । ऐसे विषयोंमें तो आप्तोपदेश ही प्रमाण है कौन है ?—

> **रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये**
> **येषां त्रैकालममलं ज्ञानमव्याहतं सद**
> **आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां वाक्यमसंशय**
> **सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तम**

'तप एवं ज्ञानके बलसे जो रज एवं तमसे स हो गये हैं, जिन्हें त्रिकालका ज्ञान है और वह निर्मल तथा अव्याहत है, वे ही आप्त हैं, वे ही विबुद्ध कहलाते हैं । इन आप्त पुरुषोंके वचन संशय सच्चे होते हैं । वे रज एवं तमसे मुक्त आप्त पुरु क्यों कहेंगे ?'

चिकित्सा-जैसे सूक्ष्म विषयमें इन महापुरुषोंकी एवं अमोघ प्रणाली यदि भारतकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके राष्ट्रिय चिकित्सा-प्रणाली नहीं ठहरायी जाय, प्रत्युत परिवर्तनशील और प्रयोगात्मक ऐलोपैथिक प्रणाल के स्वास्थ्यको बलिदान किया जाय तो यह महान् बात होगी । आशा है हमारी राष्ट्रिय सरकार केवल प्रचारोंके फेरमें न पड़कर देशके अनुभवी वैद्योंकी इसे शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रिय चिकित्सा स्वीकार करेगी ।

प्रार्थना

[छप्पय]

सब कुछ दिया विसार, आज तुमको पाया है !
और समय यह बहुत समयपर अब आया है !
जबतक तुमसे युक्त, विश्व सब मुझमें ही है !
यदि टूटा सम्बन्ध, पराया फिर तन भी है !
मिले आप तो सब मिला, गये आप तो सब गया !
मम तन-मनके प्रानधन ! हरदम रखना निज दया !

—नयनजी

सात्त्विक आहार-विवेक

(लेखक—श्रीस्वामी कृष्णानन्दजी)

ु:सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ।
ाः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

ाद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी कहते हैं कि र स्वादु, स्निग्ध (घृतमय), स्थिर गुणप्रद और नोहर)—इन सब विशेषणोंसे युक्त हो तथा जिसके आयु, सात्त्विक बुद्धि, शरीर-बल, इन्द्रियोंका बल, शरीर-सुख, मानस सुख और प्रीति (मन-इन्द्रियोंकी)—इन सबकी विशेष वृद्धि हो, ऐसा आहार सात्त्विक मनुष्यको रुचिकर होता है, अर्थात् ऐसे गुणयुक्त सात्त्विक कहते हैं।

ागवद्गीताका यह वचन साधकोंको व्यावहारिक ालनके साथ पारमार्थिक कल्याणकी प्राप्ति करानेके लिये : इस मन्त्रका तात्पर्य भी उसके अनुरूप ही होना केवल जिह्वास्वाद या इन्द्रिय-मनकी तृप्ति अथवा सुखके निमित्त सात्त्विक आहार नहीं है। हमारे आहारसे , आरोग्यरक्षा, आरोग्यकी उन्नति, मानसिक शान्ति, वृत्ति, सदाचार-पालनमें प्रीति आदि परिणामकी , तभी उस आहारको सात्त्विक कह सकेंगे।

सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंसे युक्त है, ायुर्वेदकी दृष्टिसे वात, पित्त, कफ—त्रिधातुमय ान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि जिस प्रकार इस ।चन्द्र, सूर्य और वायु त्याग, ग्रहण और संचलनरूप धारण कर रहे हैं, उसी तरह सब प्राणियोंके देहको त और वात धारण करते हैं।* संक्षेपमें कफ- षण, पित्तसे पाचन और वात-धातुसे विद्युत्-शक्तिकी ी है। अतः मनोरम और स्वास्थ्यरक्षक आहारका करनेके लिये प्रकृति, देश, काल, स्वभाव और श्रति आदिके भेदसे आहारमें कुछ भेद करना पड़ता है गुण, रजोगुण और तमोगुण—इन तीनों गुणों और त, कफ—तीनों धातुओंकी समताका रक्षण करना अन्यथा देह स्वस्थ नहीं रह सकता और भगवद्- र ऐसे आहारको सात्त्विक नहीं कहा जा सकता।

योगाभ्यासी और भक्तजनोंको नाड़ियोंको मुलायम लिये और वासनाओंके दमनार्थ सत्त्वगुणी आहारकी अ है। रजोगुणी आहार न मिलाया जाय, तो अच्छ भी दुराग्रह नहीं रखना चाहिये। यकृत्पित्त आमाशयरसस्राव यथायोग्य न होता हो, तो उत मिर्च-लवणादिकी आवश्यकता रहती है। अदरखके नीबूका रस निचोड़कर सेंधानमक मिला लेनेसे लालास्राव और आमाशय-रसस्राव अधिक होता है लौंग, सोंठ, अजवायन, मेथी आदि उष्णद्रव्योंसे यकृत्पित्तका स्राव अधिक होता है। पाचन-क्रि होनेपर भी मसालोंका यथायोग्य उपयोग नहीं किया तो कुछ वर्षोंतक तो निभ जायगा; किंतु कभी रोग कीटाणुओंका आक्रमण होगा, तब रक्षा नहीं हो सकेगी धीरे पाचन-क्रिया अत्यन्त मंद हो जायगी। फिर योग्य पाचन नहीं होगा। शरीर-बल अत्यन्त क्षीण हो और स्वास्थ्यका भी पतन हो जायगा।

स्वस्थ मनुष्य किसे कहना चाहिये—इस भगवान् धन्वन्तरिजीने कहा है कि 'जिसके देहमें वा कफ—तीनों दोष (Temperaments), अग्नि रक्तादि सप्त धातु और धातुओंकी मल-क्रिया—ये हैं तथा जिसकी आत्मा, मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न स्वस्थ कहलाता है।*

शास्त्रके ध्येयानुसार देहमें रोगकी प्रतीति न हो पूर्ण स्वास्थ्य नहीं माना जाता। बहुतोंके रोग न रहनेपर भी बल, विचारशक्ति और शक्तिमें न्यूनता, विषय-सेवनकी अति लालसा लोभ, ईर्ष्या, क्रोध, क्रूरता, शठता, शोक, निराशा अ संस्कारोंकी प्रबलता दृष्टिगोचर होती है। उनकी बुद्धि और इन्द्रियोंमें प्रसन्नता नहीं रह सकती। अतः अ मतानुसार उनको अस्वस्थ ही कहना पड़ेगा। पूर्ण स्व प्राप्तिमें न तो दुष्ट संस्कारादि रहते हैं और न प्रस प्रसादमें ही त्रुटि रहती है। जबतक ऐसे पूर्ण स्वास्थ्य

---

* ...गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ।
...न्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥

* समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते

ी, तबतक दुःखका अभाव और सच्चे सुखकी
ी नहीं हो सकती ।

: उपर्युक्त स्वास्थ्यको सँभालनेकी दृष्टि नहीं रक्खी
केवल 'रस्याः स्निग्धाः'आदि गुणयुक्त आहारको ही
मानकर नियमित ग्रहण किया जायगा, तो देहमें
न हो जायँगे, देह-बलका ह्रास हो जायगा, मन चिन्तातुर
ा, आयु कम हो जायगी, भावी जीवन दुःखरूप बन
ा अकालमृत्युकी प्राप्ति हो जायगी । इनके अतिरिक्त
ान या वंशज रोगी और निर्बल जन्मेंगे । इन सब
बचनेके लिये स्वास्थ्यकी रक्षा करनेवाले सात्त्विक
सेवन करना चाहिये ।

ावस्थामें जीवनी-शक्ति (Vitality) को, स्वास्थ्य-
तिरिक्त देहके प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्गकी उन्नति भी
ती है । इसके लिये वातवाहिनियाँ (Nerves),
याँ (Blood-vessels), मांसपेशियाँ
les), मांसपेशियोंकी बन्धनियाँ (Ligaments)
स्थि (Bones) आदिको मृदु और स्थितिस्थापक
icity)-गुणोंसे युक्त रखना पड़ता है । अतः बाल्या-
ा ब्रह्मचर्याश्रममें रहनेवालोंको मिर्च आदि रजोगुणी
तथा लहसुन आदि तमोगुणी कामोत्तेजक भोजनका
त्कुल नहीं करना चाहिये, अन्यथा मृदु और
पक गुणका ह्रास या नाश हो जायगा । परिणाममें
ी आयुकालतक नहीं निभ सकेगा ।

वस्थामें देहोन्नतिके भारका वहन जीवनी-शक्ति शनैः-
कर देती है । उस समय वातवाहिनी आदिमें
र स्थितिस्थापक गुण स्वाभाविक कम होता जाता
नैः-शनैः कठोरता बढ़ती जाती है, जिससे स्वास्थ्य-
बाल्यावस्थाकी अपेक्षा अधिक परिश्रम पड़ता है ।
हेतुसे जिनके यकृत् आदि पाचन-अवयव निर्बल
ो भोजनके सम्यक्-पाचनकारी रसादि धातुओंका
र्माण कराने और अन्तर्गत कीटाणु और आमको
लिये यकृत्पित्तस्रावी द्रव्य—मिर्च आदि
न्यूनाधिक अंशमें आवश्यकता रहती है । यदि
र्वथा मसालारहित भोजन दिया जायगा, तो उनका
ीर्घकालपर्यन्त नहीं टिक सकेगा ।

वस्थामें जीवनी-शक्तिका क्षय होता जाता है । वात,
—तीनों दोष निर्बल बनते जाते हैं । रोग-निरोधक
mmunity) यथायोग्य कार्य नहीं कर पाती ।

इन हेतुओंसे कफ-प्रकोप, कास, श्वास, मांसशोष,
मान्द्य, बहुमूत्र, वातप्रकोप, निद्रानाश और स्मरण
ह्रास आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं । इन
उत्पत्तिको रोकने, उत्पन्न रोगोंको दूर करने और
वृत्तिका संरक्षण करनेके लिये जो आहार पथ्य और
हो, उसीको विवेकपूर्वक ग्रहण करना चाहिये ।

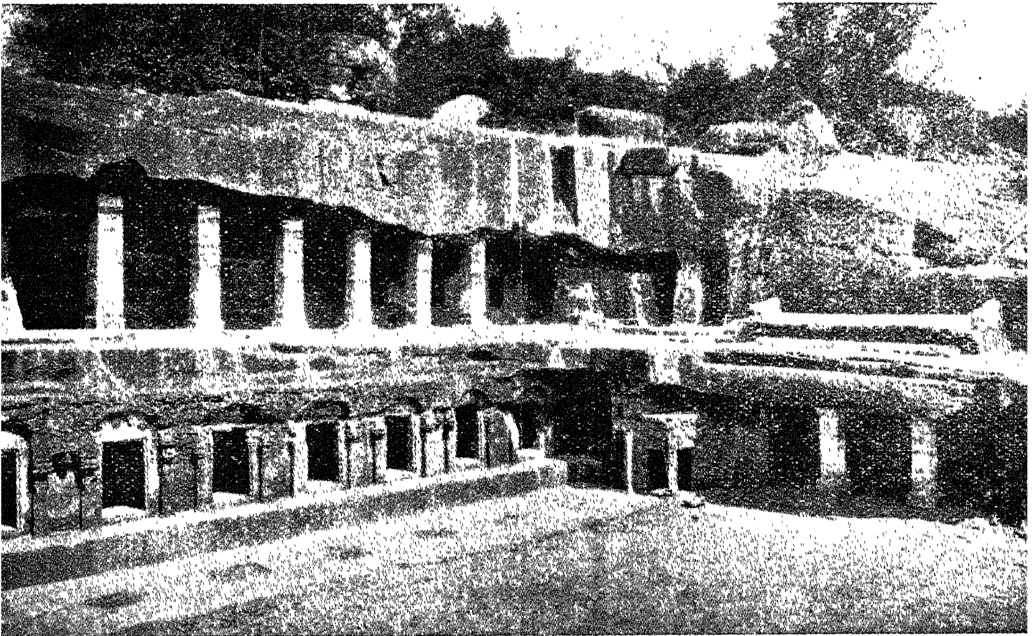
हमलोग जो आहार ग्रहण करते हैं, उससे शर
प्राण और वाणीपर असर होता है—इन्हें पोषण ि
अथवा इनका शोषण होता है । भोज्य पदार्थको पचाकर र
करनेके लिये मुखमें स्थित लालास्राव करानेवाली
आमाशय, यकृत्, अग्न्याशय (Pancreas)
अन्त्रस्थ अनेक ग्रन्थियोंमेंसे स्राव निकलता है । व
तरह आहारमें मिल जानेके पश्चात् आहारका स
होने लगता है और मल भागको आगे ढकेल दि
है । फिर शोषित रसको धात्वग्नि शुद्ध करती है ।
रस, रक्तादि धातुएँ निर्मित होती हैं । यदि इन रसें
यथायोग्य न हो या अतिभोजन हुआ हो अथवा
(प्रकृतिके प्रतिकूल) भोजन किया गया हो, तो रसः
धात्वग्निसे पाचन-क्रिया ठीक नहीं होती और
स्वास्थ्यका पतन हो जाता है ।

स्वास्थ्यकी रक्षा और रोग-निवारणके लिये
प्रकृति और ऋतु आदिके भेदसे भिन्न-भिन्न रसोंके
आवश्यकता रहती है । इस सम्बन्धमें आयुर्वेदने विस
विवेचन किया है । उसमेंसे यहाँ संक्षिप्त विचार कि
है । किस रसमें कौन-सा मूर्त द्रव्य प्रधान है और वह किस
शमन या वर्द्धन करता है, इतना जान लेनेपर भी र
सहायता मिल जाती है ।

१. मधुर—पृथ्वी-जलप्रधान, वात-पित्त-शामक, कफ
शीतल, साधकोंके लिये मुख्य ।
२. अम्ल—पृथ्वी-अग्निप्रधान, पित्त-कफवर्द्धक, वा
उष्ण, साधकोंके लिये गौण ।
३. लवण—जल-अग्निप्रधान, कफ-पित्तवर्द्धक, वा
उष्ण, साधकोंके लिये गौण ।
४. तिक्त (कड़वा)—वायु-आकाशप्रधान, कफ-पित्त
वातवर्द्धक, शीतल, आवश्यकतापर सेवन
५. कटु (चरपरा)—वायु-अग्निप्रधान, वात-पित्तवर्द्धक
उष्ण, साधकोंके लिये गौण ।
६. कषाय—वायु-पृथ्वीप्रधान, कफ-पित्तहर, वातव
शीतल, आवश्यकतापर सेवनयोग्य ।



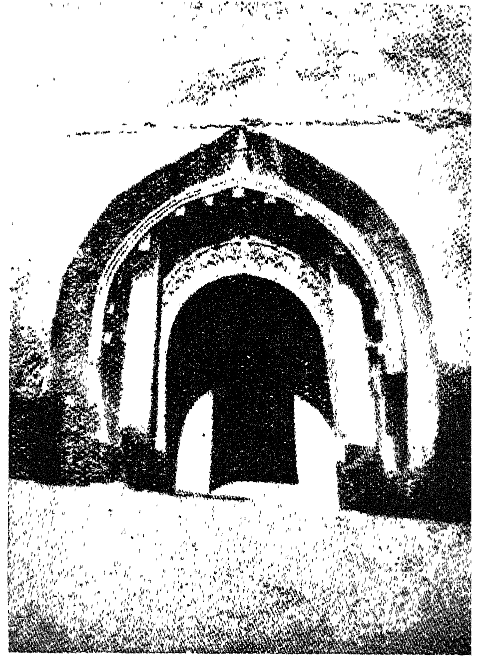
महाबलीपुरके पल्लव-गुफा-मन्दिर
(यह मन्दिर छेनीसे पत्थर काटकर बनाये गये हैं)



उदयगिरि-गुफा—रानी नौरके बायीं तरफका साधारण दृश्य



श्रीअमरनाथ-गुफा

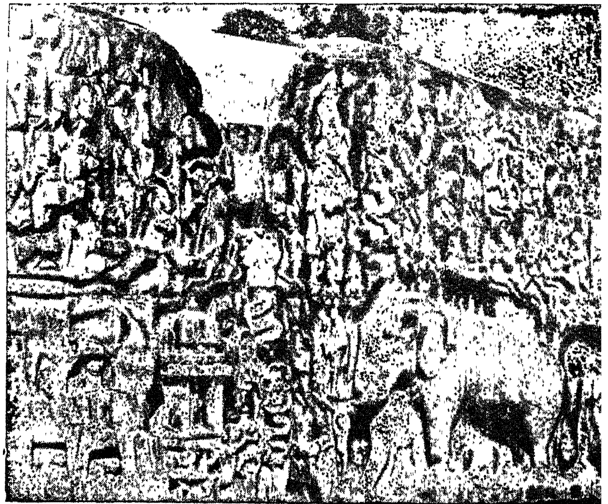


बराबर पहाड़ीपर मौर्य-सम्राट
दशरथके द्वारा बनवायी हुइ लोमश-गुफ

[पृ



रिकी पाँचवीं गुफामें प्राप्त वाराह-मूर्ति



 महाबलीपुरमें अर्जुनकी तपस्याका स्थान [पृ

; द्रव्य और गुणोंका कथन सामान्यरूपसे है। ' उक्त नियमका भंग भी हुआ है। जैसे हरीतकी युक्त होनेपर भी वात-वृद्धि नहीं करती। कुचिला ोपर भी पित्तनाशक नहीं है। इसका विशेष विचार । विपाक, वीर्य और प्रभाव-विवेचनमें किया है।

दोग्य-श्रुतिने कहा है कि जो अन्न खाया जाता है, .थूल अंश मल और मध्यम अंश मांस बनता है के सूक्ष्म अंशसे मनको पोषण मिलता है। जो जल पिया , उसका स्थूल अंश मूत्र और मध्यम अंश रक्त-प्राप्त होता है तथा उसके सूक्ष्म अंशसे प्राणको पोषण है। तेजरूप घृत-तैल आदिका स्थूल अंश अस्थि-ार मध्यम अंश मज्जारूपमें परिवर्त्तित होता है तथा ा वाणीको पुष्ट बनाता है। संक्षेपमें मन अन्नमय, ञमय और वाणी तेजोमयी है। *

ान्यतः दूध, दही, मक्खन, घी, मिठाई आदि भोजन माने जाते हैं। परन्तु ये सबके लिये समान नहीं हो सकते। आयु, प्रकृति, प्रतिदिनका अभ्यास, ास विकृति, देश, काल, अनियमित समय और संयोग-दि कारणोंसे सात्त्विक द्रव्य भी असात्त्विक बन जाते हैं। तेरिक्त नूतन अन्न, बासी भोजन, सड़ा हुआ भोजन, त्रमें रक्खा हुआ भोजन, अपवित्र या जूठा भोजन, ार-प्रेरित भोजन, दुष्ट धनसे या दुष्ट जनसे प्राप्त -इन सबसे सात्त्विक संस्कारकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

—यह आयुर्वेदकी दृष्टिसे मृत्युलोकका अमृत है। सब प्रकारके जीवन-सत्त्वों (Vitamins) से युक्त, ्रपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, सप्त धातुओंका ुद्धिवर्द्धक, हृद्य, कान्तिवर्द्धक और आयुवर्द्धक ोंसे युक्त है। वात-विकार, पित्त-विकार, विषप्रकोप, दाह, रक्त-पित्त, जीर्ण-मंद-अतिसार, चक्कर आना, मद, हृद्रोग, हृदयविकारज श्वासावरोध, वृद्धावस्था प्रकोप, मानसिक व्यथा, जीर्णज्वर, तृषारोग, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, पाण्डु, शूल, क्षयरोग, अतिश्रम, विषमाग्नि, गर्भपात, योनिरोग, नेत्ररो वातरोगादिमें हितकारी है। फिर भी; वह सब प्रकृति सर्वभावसे उपकारक नहीं है। यदि उक्त रोगोंके सा प्रवाहिका, नूतन अतिसार, रक्तार्श, आमप्रकोपके स ज्वर, आमाशयकी शिथिलता, अम्लपित्त, उदरक्र ताम्रविषादि रोगोंमेंसे कोई हो तो दूध अनुकू रहता। दूध सेवन करनेपर रोग बढ़ता है और ब है। अग्निमान्द्यवालोंको कच्चा दूध अनुकूल नहीं र बहुत उबालकर गाढ़ा किया हुआ दूध भारी तथा सत्त जानेसे पचता नहीं। बहुत गरम-गरम दूध जिसमें डालनेपर जलती हो, वह तो किसीके लिये भी हि है। उससे आमाशय-नलिका, आमाशय, लघु अ बृहदन्त्र—इन सबकी श्लैष्मिक कला (M membrane) जलती है। परिणाममें अग्निमान्द्य, (आमाशयमें गैस उठना), विष्टब्धाजीर्ण, मलावरो मस्तिष्कमें उष्णता, रक्तचापवृद्धि, वातनाडी-क्रिय हृत्स्पन्दवर्द्धन, अति स्वेदस्राव और बुद्धिमान्द्यादि उत्पत्ति होती है। ताँबे या पीतलके कलईरहि दूध उबालनेपर उसमें नीलाथोथा मिल जानेसे दू बन जाता है। मिट्टीके बरतनमें उबालनेपर जो ि लग जाता है, वह जलकर दूधमें दुर्गन्ध उत्पन्न क मिट्टीका पात्र पुराना होनेपर मिट्टीमें लीन द्रव्य सम्मिलित होकर दूधको दूषित कर देते हैं। दूध पात्रमें पवित्र निर्धूम अग्निपर तपाया जाय और ए उफान आनेपर उतार लिया जाय, फिर गुनगुना अधिकारी जनोंको पिलाया जाय तो दूधका सच्चा ला सकेगा। उसे स्वास्थ्यकर और सात्त्विक आहार कह

दही—इसमें मधुर रस, कफ-धातुके लिये कीटाणुनाशक, पाचन-संस्थाशोधक, तृषाहर, बल वीर्यवर्द्धक, सारक, विपाकमें मधुर, मेदोहर, श्र वातशामक और पित्तशामक आदि गुण अवस्थित मनुष्यके लिये अति उपकारक है। अन्त्रगत विकृति, म अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, अपच, अर्श, उ उदरशूल, अफारा, अन्त्रक्षत, अन्त्रक्षय, अन्त्रं

---

* अन्नमशितं त्रेधा विधीयते। तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् ते यो मध्यस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः।
: पीतास्त्रेधा विधीयन्ते। तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः।
ऽशितं त्रेधा विधीयते। तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति सा मज्जा, योऽणिष्ठः सा वाक्।
नयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति।

ा आदिपर यह पथ्य है। भोजनके अन्तमें तक्र बनाकर
ोजनको सरलतापूर्वक पचाता है । ये सब गुण
भी इसका बिना विचार किये उपयोग नहीं हो
अम्लपित्त, रक्तपित्त, कफप्रकोप, नूतन प्रतिश्याय,
स, ज्वर, शोथ, संधिवात, फिरंग और सुजाक
गोंमें बहुधा दही अनुकूल नहीं रहता । ऐसे
लिये दहीका प्रयोग सात्त्विक नहीं माना जायगा।

—रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, लघु,
क, स्निग्ध, रसायन, रुचिकर, चक्षुष्य, कान्तिवर्द्धक,
द्धिप्रद, वयःस्थापक, शुक्रल और हृदयपौष्टिक है
र, पित्तशामक तथा कफघ्न है । उन्माद,
, रक्तपित्त, उरःक्षत, विसर्प, हिक्का, दाह, क्षत,
कास, अर्श, कास, श्वास, जीर्णज्वर, अपस्मार,
ी, नेत्ररोग, कर्णरोग, शोथ, उदरकृमि, कुष्ठ और
दे रोगोंमें हितकारक है। फिर भी जिनका यकृत्
अथवा यकृत्में रक्तसंग्रह, यकृत्प्रदाह, यकृद्वृद्धि,
यकृद्विद्रधि, यकृत्में अर्बुद, पित्ताशयप्रदाह,
मरी या यकृत्में कोई अन्य रोग हुआ हो, तो घृत-
का पाचन ठीक तौरपर नहीं हो सकता । अपच,
, नूतन ज्वर और सन्निपातादि व्याधियोंमें घृत-
नि पहुँचती है; एवं नूतन प्रतिश्याय, कफप्रकोप,
, अग्निमान्द्य, अरुचि, मदात्यय, जीर्ण मलावरोध,
त्रकृच्छ्र, मूत्राघात और वृक्कशूलादि रोगोंमें तथा
में घृतका सेवन कम मात्रामें कराया जाता है ।
दाँत आनेके पहले प्रायः उनका यकृत् बड़ा और
ा है। अतः उन्हें घृत नहीं दिया जाता, अन्यथा
र्ल रह जाता है। फिर युवावस्थामें उनकी पाचन-
ल बन जाती है । अतः इस नियमके अनुसार
अनधिकारीका विवेक करके घृतका उपयोग करना
अन्यथा घृत असात्त्विक बन जायगा ।

ा—रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध,
क, रुचिकर, चक्षुष्य, मूत्रल, सप्तधातुपोषक,
ान्तिप्रद, बल्य, वृष्य और सारक है। तृषा, मोह,
तक्षय, रक्तपित्त, पाण्डु, वातरोग, पित्तविकार,
शोष और दाहरोगमें हितकर है; किंतु नूतन ज्वर,
उदरकृमि, मधुमेह, प्रमेह, रक्तविकार, कण्डू और
र, कामला आदि रोग भी साथमें हों तो शक्करका
अत्यन्त सँभालकर करना चाहिये। इन रोगोंमें शक्कर
आरोग्यप्रद या बलवर्द्धक नहीं है, न्यूनाधिक अंशमें
पहुँचाती है ।

शक्कर जलमें मिलाकर पिलानेपर मूत्रल गुण
होती है, और उष्णता-विषविकार आदि बाहर नि
हैं; अन्यथा विकारकी वृद्धि होती है। शक्कर चबाकर
उष्णताकी वृद्धि होती है। इन सब गुणों और रोगों
करके शक्करका उपयोग करनेपर ही लाभ मिल सकता

नूतन अन्न—ज्वार, मकई, बाजरा, चावल, मूँग
उड़द आदि जो अन्न शरद् ऋतुमें उत्पन्न होते हैं, उन
शरद् ऋतुमें ही किया जाता है, तो पित्तप्रकोप होता
आमाशयके रसमें लवणाम्ल (Acid Hydroch
की उत्पत्ति अत्यधिक होती है; फिर खट्टी डकार, ख
अपच (विदग्धाजीर्ण), अतिसार और आमज्व
रोगोंकी प्राप्ति होती है । बहुधा निर्बल स्वास्थ्यवालों
हो जाते हैं । वसन्त ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले अन्न
चना, ज्वार, जौ आदि भी निर्बल मनुष्योंके लिये
हितकर नहीं माने जाते । नया अन्न पौष्टिक
जिनकी पाचनक्रिया सबल हो और जो शारीरिक श्रम
करते हों, उनके लिये हितकर है, योगाभ्यासीके लि
दो मास व्यतीत हो जानेपर वे अन्न सौम्य बन
जिह्वास्वादके लिये अधिकारी न होनेपर भी यदि उन
किया जायगा, तो वासनाकी वृद्धि होगी, स्वास्थ्य गि
रोगोत्पत्ति होगी । अतः ऐसे रोगियोंके लिये वे
माने जायँगे ।

जल—सामान्यतः प्रत्येक जीवके लिये जलकी
आवश्यकता रहती है, परंतु जलके उपयोगमें
चाहिये। सामान्यतः स्वस्थ मनुष्योंके लिये नदी, ताल
आदिका ताजा जल—जो क्षार, दुर्गन्ध, तैल या मला
हो—हितकर है। किंतु वर्षाऋतुमें नदीका जल मलिन
है; उस समय उसे उबालकर या शुद्ध करके लेना चाहि
ज्वर, सन्निपात, कफप्रकोप, श्वास और आमप्रको
जलको उबालकर शीतल करके ही देना चाहिये । प्र
छः माससे कम आयुवाले शिशुको जल देना हो,
उबालकर देना चाहिये । नियम-भङ्ग करनेपर क
बालकोंको हरे-पीले दस्त और बलह्रास होता है, जि
वह जल सात्त्विक नहीं रह जाता ।

भोजनके समयमें अनियमितता—कभी भोजन
कभी १० बजे या १२ बजे, दोपहरको २ बजे, कभ

कभी चार बार या अधिक बार; कभी पहलेका चनेके पहले, कभी क्षुधा लगकर निवृत्त हो जानेपर— भोजनकालमें अनियमितता होती रहेगी, तो रस्य-गुणयुक्त भोजन भी आरोग्यप्रद नहीं रह सकेगा। ो जो संस्कार और सत्त्वकी प्राप्ति होगी, वह असात्त्विक

:-प्रभाव—संसारकी समस्त ओषधियों, भोज्य पदार्थ णमात्रमें स्थित वात, पित्त, कफ—तीनों धातु ासे बढ़ते-घटते रहते हैं। इनके संचय, प्रकोप और समय निम्नानुसार है—

वात—ग्रीष्ममें संचय, वर्षामें प्रकोप और शरद्‌में

पित्त—वर्षामें संचय, शरद्‌में प्रकोप और वसन्तमें

कफ—हेमन्तमें संचय, वसन्तमें प्रकोप और वर्षामें

ेसे जो प्रकोपक ऋतु है, उसमें प्रकोपक-धातुप्रधान सेवन नहीं करना चाहिये। उदाहरण—वर्षामें ा होता है, अतः वातप्रकोपक मटर आदि द्विदल धान्य ा-गुणयुक्त भोजन नहीं करना चाहिये। शरद्-ऋतुमें ् आदि पित्तवर्द्धक पदार्थ तथा वसंत-ऋतुमें मधुर, ौर भैंसका दूध आदि कफवर्द्धक भोजनका अतियोग ा चाहिये। अन्यथा पवित्र होते हुए भी ये गीताके ार सात्त्विक नहीं माने जायँगे।

:-भेद—कौटुम्बिक स्वभाव और देशभेदसे अपथ्य य बन जाती है और पथ्य अपथ्य हो जाती है। ार्थ—मद्रास जिलेमें इमली खाना अनुकूल रहता है। सियोंके भोजनमेंसे यदि इमली निकाल दी जाय तो ास्थ्य गिर जायगा। उनके लिये मर्यादामें सेवन की ली रजोगुणी संस्कार नहीं दे सकेगी। गुजराती, ाड़ी और कच्छवासियोंके लिये मर्यादित तिलके तैलसे संस्कार नहीं मिल सकेगा। वर्तमान कालमें अनेक स्थानोंमें दि मसालोंका सेवन बढ़ गया है, छोटे—दो-दो वर्षके मिर्च खिलायी जाती है। उनको बड़ी आयुमें आहार लेना हो, तो भी कुछ-न-कुछ अंशमें मसाला ा पड़ेगा; अन्यथा उनका स्वास्थ्य दीर्घकालपर्यन्त ों रह सकेगा। अतः उनके लिये थोड़ा मसाला होते आहारको असात्त्विक नहीं कह सकेंगे।

मध्यप्रान्त, बरार आदि देशोंमें विशेषतः ज्वार रिवाज है। वहाँके लोग गेहूँका सेवन बहुत कम करते हैं अभ्यासियोंका अन्त्र युवावस्थामें या उतरती आयुमें सेवन करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक प्रसारित हो जा फिर वे ज्वारको तमोगुणी मानकर छोड़ दें और गेहूँक प्रारम्भ करें तो उनको गेहूँ अनुकूल नहीं रह सकेगा तरह गेहूँ खानेवाले ज्वारपर रहना चाहेंगे, तो उन पहुँचेगी। चावल खानेवाले बंगालके लिये गेहूँ, बाज गेहूँ खानेवाले पंजाबके लिये चावलमें भी यही बात है सात्त्विक-असात्त्विककी मर्यादा स्थिर करनेके लिये स्वभाव, देश, काल, आर्थिक स्थिति, अवस्था और आश्रम भी लक्ष्यमें रखना पड़ेगा।

संयोगविरोधी भोजन—कुछ पदार्थ हितकर होने रसभेद, गुणभेद, विपाकभेद और वीर्यभेदके कारण एक साथ ग्रहण नहीं हो सकता। जैसे दूध और द और खट्टे फल, दूध और मूली तथा आम-प्रकोपवाले और केला—ये सब हितकर होनेपर भी परस्परविरो ताम्र-भस्मके साथ दूधका सेवन हानिकर है। इन धर्मवाले पदार्थोंका सेवन होनेपर पाचनक्रिया दूषि है। फिर अपच, ज्वर, अतिसार, अफारा, वमन, ि और रक्तविकार आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

बासी, अपक्षयप्राप्त भोजन—फल, फूल और ब मिठाई आदि वस्तुएँ कुछ समयके पश्चात् बिगड़ने ल इस प्रकारकी अपक्षयावस्था प्राप्त होनेपर सात्त्विक असात्त्विक बन जाती है। इनका सेवन होनेपर इनमें कीटाणु-विषको नष्ट करनेके लिये पाचन-क्रियापर भा है। पित्तादि पाचन-रसका अति उपयोग करना पड़ फिर वे अवयव थक जाते हैं। कभी-कभी कीटा बल अधिक होनेपर वमन, अतिसार, अफारा, उदर व्याकुलता आदि उपद्रव भी उपस्थित होते हैं।

अन्यायोपार्जित अन्न—जो खाद्य सामग्री चोरी विश्वासघात, परस्वापहरण आदि असत् अन्यायपूर्ण द्वारा उपार्जित धनसे प्राप्त होती है, वह सदा ही असा उसके सेवनसे बुद्धि तथा मन बिगड़ते हैं। भाव दू हैं और मनुष्यका पतन हो जाता है।

सात्त्विक संस्कार-प्राप्त्यर्थ स्मृतिकथित वि

१. म्लेच्छ, पतित, चाण्डाल, कृपण, वेश्या, दुराचारी, जुआरी, शिकारी, षण्ढ, कुलटा, स्त्री

ाक्षी बनाने और अन्यायका पक्ष लेनेवाले] वकील, राजा, दुराचारी राजकर्मचारी, मृत व्यक्तिके निमित्त ा दान लेनेवाले, अन्यायपूर्वक दूसरेकी संपत्ति प्राप्त और संक्रामक रोगसे पीड़ित व्यक्तियोंका अन्न नहीं िये ।

अन्यायोपार्जित धनसे प्राप्त, दुष्ट मनुष्योंके द्वारा बनाया :-संस्कार-प्रेरित, दूषित पात्रमें रक्खा हुआ, अपवित्र नाया हुआ तथा केश, कृमि, कीटाणु आदिसे जन नहीं करना चाहिये ।

देव (भगवान्) को निवेदन किये बिना अन्न करना चाहिये ।

धोतीको सिरपर लपेटकर, गीले वस्त्र पहने और जूता ोजन नहीं करना चाहिये।

दक्षिणकी ओर मुख रखकर भोजन नहीं करना चाण्डाल, दुष्ट, रजस्वला, नपुंसक, क्षुधापीड़ित, ा और शूकर आदिकी दृष्टिके सामने भोजन नहीं हिये ।

रात्रिके शयनकाल हो जानेपर, ठीक दोपहरको ातः-सायं ठीक सन्ध्याकालमें भोजन नहीं करना । चन्द्र-सूर्यके ग्रहण-कालमें, कुटुम्बमें किसीकी ामाचार मिलनेपर और स्नेही, सम्बन्धी, धर्म, गौ और ादिपर सङ्कट उपस्थित होनेपर भोजन नहीं करना

उकड़ू बैठकर, हथेली टेककर, पाँव फैलाकर, पैर-ढ़ाकर, सोते-सोते, खड़े-खड़े, चलते-चलते, झूलेमें थवा जलमें बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये ।

फटे आसनपर बैठकर, बिना आसन बैठकर या सनपर बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये ।

भोजनपात्रको गोदमें रखकर या जमीनपर रखकर एवं में दूसरा भोजनपात्र रखकर, अन्नको हथेलीमें ा गंदे पात्रोंमें रखकर भोजन नहीं करना चाहिये । लाशके पत्ते या छपे हुए कागजपर रखकर अथवा यमके पात्र, लौहपात्र या फूटे बरतनमें रखकर भी हीं करना चाहिये

. भोजन करते समय अन्नकी निन्दा न करें, क्रोध न न बिगाड़ें और दूसरोंको शब्दवेधी बाण न मारें में भी बुरे विचार न आने दें ।

११. रोटी आदि मुख्य अन्नको छोड़कर अ पदार्थोंमेंसे क्षुद्र जीवोंके लिये थोड़ा उच्छिष्ट छोड़ वह उन प्राणियोंको ही दिया जाय ।

१२. बासी, फिरसे गरम किया हुआ, बिग पशु या चाण्डाल आदिसे दूषित किया हुआ भोजन

१३. किसी मनुष्यको उच्छिष्ट भोजन न दें । स साथ या अन्य किसीके साथ भी एक ही पात्रमें कभ न करें ।

१४. मस्तिष्कसे कार्य करनेवाले संयमी चाहिये कि वे प्याज, लहसुन आदि निषिद्ध शा निषिद्ध अन्नका सेवन कभी न करें । प्याज, कामोत्तेजक और निद्राप्रद गुण होनेसे संयमीके लिये हानिकर हैं ।

१५. रात्रिको दही, सत्तू न खायँ । शरद्-ऋत अम्ल द्रव्य तथा कफसंचयावस्था अथवा माघ मा या क्षारप्रधान अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये ।

१६. दूध, नारियलका जल, शहद, ईखका दही और नीबू आदि अम्ल-रसयुक्त पदार्थोंको तॉंबे या पीतलके बरतनमें रखकर सेवन नहीं करना

१७. वर्षाऋतुमें नदीका जल नहीं पीना चा पीना पड़े तो उबालकर शुद्ध करके पीना चाहिये ।

आयुर्वेदके मतानुसार कतिपय उपयोगी

१८. मनको प्रिय, पवित्र, ताजा, अति गरम ऐसा पथ्य-भोजन हितकारी है । पहले मधुर, बीच और लवण रस तथा अन्तमें शेष पथ्य रसयुक्त भोजन करना चाहिये ।

१९. कमलकी डंडी, मूल, शालूक, कन्द औ सेवन भोजनके पहले करना चाहिये ।

२०. भोजन खूब चबा-चबाकर शान्तिपूर्व चाहिये । भोजन एक बार करनेके पश्चात् उसका पाच पहले दूसरी बार भोजन नहीं करना चाहिये । नियमि टल जानेपर भोजन करनेसे बलका क्षय होता है औ वायु प्रकुपित होती है, फिर अग्नि नष्ट होती है और देर होती है ।

२१. होटलोंका भोजन, हलवाईकी मिठाई प्रकारके पेय और स्टेशनोंपर मिलनेवाले खानेके प सब रोगप्रचारके प्रबल साधन होनेके कारण इनका सेवन

हिये । सूक्ष्म कीटाणु, मक्खियाँ, मच्छर, चींटियाँ आदि जन्तु खुले रक्खे हुए भोजनको दूषित कर ऐसे आहारका सेवन करनेपर विषूचिका, प्रवाहिका, : और रक्तविकारादि रोगोंकी संप्राप्ति हो जाती है ।

. अपचके कारण जिनकी अग्नि मन्द हो गयी है, तःकाल भोजन नहीं करना चाहिये; अन्यथा अफारा, मलावरोध, अतिसार, वमन, ज्वर, श्वासप्रकोप, य, प्रमेह और स्वप्नदोष आदि उपद्रव उत्पन्न

. यकृत् निर्बल हो और मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, मट्ठा, खट्टे पदार्थ, घृत, तैल, तले हुए पदार्थ, गुड़ लका सेवन कम करना चाहिये । वृक्कोंकी क्रिया नेके कारण प्रातःकाल नेत्र या मुखमण्डलपर शोथ ो, रात्रिको बार-बार लघुशंका होती हो, मूत्रमें (Albumin) या रक्तस्राव होता हो, तो चावल, दही, गरम-गरम चाय और गरम मसालाका सेवन हीं करना चाहिये ।

'. रात्रिको भोजन न पचता हो, मूत्रमें अम्लता हो और शुक्राशय निर्बल हो—ऐसी अवस्थामें, या उदर और मलावरोध होनेपर भी भोजन किया जाय स्वप्नदोष हो जायगा ।

२५. रात्रिको भोजन करनेका स्वप्न आये, तो प्रा लघु भोजन करें या भोजन न करें । जलाशयमें डूबने : स्वप्न आये तो मूत्रसंस्था कार्य करनेमें असमर्थ हुई मानकर अधिक नमक, अधिक मसाला, अधिक घृ अधिक खटाईका सेवन नहीं करना चाहिये । स्वप्नमें दर्शन हो, तो भीतर दाह हो रहा है—यों मानक मसालोंका सेवन कम करना चाहिये । आकाशमें : स्वप्न आये तो वात-विकृति मानकर वातवर्द्धक द्विद और कन्द-शाक आदिका सेवन कम कर देना चाहिये

उक्त नियमोंका शक्ति और समयानुसार पालन रहनेसे स्वास्थ्यकी रक्षा होती है । श्रीहरि समस्त जनोंको सुमति और सुविधा प्रदान करें और वे सब : नियमोंको भलीभाँति समझें, आग्रहपूर्वक पाल तथा स्वास्थ्य-रक्षाके साथ पारमार्थिक कल्याणको प्राप्त यह हार्दिक प्रभु-प्रार्थना है ।

आयुर्वेदमें देवार्चन

(लेखक—श्रीदीनदयालुजी वैद्य 'उपमन्यु')

युर्वेदकी उपवेदोंमें गणना है । मन्त्रसंहिता, , उपनिषद्, ब्राह्मण, सूत्र एवं अङ्ग-उपाङ्गोंसे युक्त य अनादि वाङ्मय श्रुति कहलाता है । इस प्रकार का मूल श्रौत ज्ञान है । इसे अथर्ववेदका उपवेद माना । समस्त श्रौत ज्ञान ईश्वरीय है, अतएव सभीमें तथा उनकी दिव्य विभूतियोंकी आराधनाका वर्णन युर्वेद तो शारीरिक स्वास्थ्यको लेकर प्रवृत्त होता है; प्राणधारियोंकी समस्त एषणाओंमें—अर्थ, धर्म, काम, आदिकी इच्छामें प्राणैषणा—शरीर एवं शरीरके की रक्षाविषयक कामना मुख्य है । 'शरीरमाद्यं खलु नम् ।' यह शरीर जहाँ अनेक स्थूल तत्त्वोंसे प्रभावित होता उसे अनेक अदृश्य दैवी शक्तियाँ भी प्रभावित करती हैं । आयुर्वेदके प्रधान आचार्य चरक, सुश्रुत, वाग्भटादिने संहिताओंमें स्पष्ट आदेश दिया है कि 'देवार्चनपूर्वक सेवनसे ही मानसिक तथा शारीरिक व्याधियाँ शान्त

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः

'दूसरे जन्ममें किया हुआ पाप प्राणियोंको रोगों पीड़ा देता है । उसकी शान्ति औषध, दान, जप, ह देवार्चनसे होती है ।'

जपहोमादि भेषजम् ।

ये जप, हवन, देवार्चनादि भी रोगोंकी औषध आयुर्वेदकी मान्यता है । प्रायः सभी प्राचीन संहित प्रारम्भमें मङ्गलाचरण रहता है और उस मङ्गल प्रयोजन बताया गया है—'मङ्गलाचरणं चेति वर्गः जयेत् ।' अर्थात् मङ्गलाचरण, स्तवन तथा 'वर्ग' मनुष्य समस्त ज्वरोंको जीत लेता है । 'वर्ग' के गीता-विष्णुसहस्रनाम, दुर्गासप्तशती आदि ग्रन्थों तथा श्रवण, देव-विप्र-गुरु-वृद्धोंका पूजन,

ारणकी गणना है। इनके द्वारा सभी प्रकारके विजय बताया गया है।

चार्य वङ्गसेनने अपने ग्रन्थमें उद्धरण देते हुए इस ा स्पष्टीकरण किया है कि जिस नक्षत्रमें रोग हो, उस अधिष्ठाता देवताकी सन्तुष्टिके लिये उसके उपयुक्त इवन करनेसे रोग-शान्ति होती है। जैसे—

श्विनां तेजसेत्यश्विन्यां गुडमोदनं जुहुयात्।
यम इति भरण्यां तण्डुलान् जुहुयात्।
ग्मूर्धा इति कृत्तिकासु घृतं जुहुयात्, इत्यादि।

यज्ञीय कर्मका माहात्म्य बतलाया गया है—'तेन व्याधिः शान्तश्च न पुनर्भवेत्।' आजके भौतिकवादके युगमें ध तथा अनेक सुरा-मांसादि-मिश्रित अपवित्र औषधों- करते हुए भी बार-बार रोगोंका आक्रमण होता है; परंतु आस्थाहीन हो चुके हैं कि 'शान्तश्च न पुनर्भवेत्'— ग एक बार शान्त होकर फिर न हो, रोग-निवारणके घ उपचारोंका आज परिहास किया जाता है। आज एवं धर्मके नाशक उपचार ही सर्वत्र आदर पा रहे । यह प्रत्यक्ष है कि इनके द्वारा रोगनिवारणके स्थान- नये रोग ही उत्पन्न हो रहे हैं।

चार्य वङ्गसेनने आगे 'जरा' (बुढ़ापा) तथा 'अकाल- निवारणार्थ 'हरगौरीं प्रपूजयेत्' का विधान किया मस्त राजरोगोंकी निवृत्तिके लिये दैनिक सन्ध्या तथा भास्करको अर्घ्य-दानके साथ 'आशुतोष-माहेश्वर ारणका वर्णन किया है। आयुर्वेदके इस क्त कवचका विस्तारपूर्वक वर्णन है। अपस्मार एवं योषापस्मार (हिस्टीरिया) की निवृत्तिके लिये वेधान करते हैं कि— .

रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां विशेषतः।

'भगवान् रुद्र और विशेषतः उनके गणोंकी पूजा हिये।' अभी केन्द्रीय सरकारके स्वास्थ्य-विभागकी श्रीमती राजकुमारी अमृतकौरने एक सभामें बताया तमें प्रति मिनट एक मृत्यु यक्ष्मा (तपेदिक) से । इसकी निवृत्तिके लिये आपने पच्चीस हजार डाक्टरों की आवश्यकता बतलायी। इसपर अपार धन व्यय यह सब करके भी कौन कह सकता है कि यक्ष्माका वारण हो ही जायगा। लेकिन आयुर्वेदने इस रोगराज-

स्पष्ट असाध्य घोषित करते हुए भी उसके निवारणव साधन बताया है—

सत्येनाचारयोगेन रविमण्डलसेवर
वैद्यविप्रार्चनाच्चैव रोगराजो निवर्त

'सत्यभाषणसे, सदाचारसे, सूर्यमण्डलकी तथा वैद्य एवं ब्राह्मणोंके पूजनसे रोगराजकी नि जाती है।'

इसी प्रकार अनेक रोगोंके सम्बन्धमें आयुर्वेद स्थानपर देवार्चनका विधान है। बाल-रोगोंमें तो देव-बाधा मानी गयी है, अतएव शिशुकी चिकित्स दान तथा पूजन ही प्रमुख हैं। आज शिशुओंकी मृ बेतरह बढ़ी हुई है और पाश्चात्य प्रणालीसे जहाँ मृत्यु-संख्या घटी, वहीं सन्तानोत्पत्तिका भी ह्रास ह वहाँ जनसंख्या-वृद्धिके विविध उपाय सोचे जा रहे है भारतमें शिशु-चिकित्साके सम्बन्धमें सावधानीसे व्यव चाहिये। शिशु-चिकित्सा प्रायः देवार्चनप्रधान है उसे यहाँ दिया नहीं जा रहा है।

प्रायः सभी आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें कहीं 'लक्ष्म प्रपूजयेत्' और कहीं 'रुद्रं प्रपूजयेत्'का आदेश है गृह-देवता, स्थानीय देवता, ग्रामदेवता तथा 'ि दुर्गाके यजनका विधान है। कहीं-कहीं सूर्य, चन्द्र वायु आदिके प्रणामकी विधि है। ये आदेश बहुत जैसे—

युक्तोऽतिसारी स्मरतु प्रसह्य
गोविन्द गोपाल गदाधरेति

जो 'गोविन्द, गोपाल, गदाधर'—इस प्रकार भग का स्मरण करता है, वह अतिसारका रोगी हो तो उस को नाम-स्मरण नष्ट कर देता है।

श्रीधन्वन्तरिजीका यह वचन तो प्रसिद्ध ही है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन नामोंके उच्च ओषधिसे समस्त रोगोंका नाश होता है, यह मैं स कह रहा हूँ।'

हिंदू-संस्कृति अध्यात्मप्रधान है। चेतन परमा

ता है, यह हिंदू-धर्मकी अविचल मान्यता है। अतएव भौतिक कार्य बिना देवाराधनके सर्वाङ्गपूर्ण नहीं होता, यह सच्चे हिंदूका दृढ़ विश्वास है। आयुर्वेद इस की सत्यताकी घोषणा पद-पदपर करता है।*

अन्तःकरण-चिकित्सा

(लेखक—डॉ० श्रीदुर्गाशंकरजी नागर)

य दुखी क्यों होता है ? दुःखका कारण क्या है ? उत्पन्न होता है ? वासनामयी भावना ही दुःखका । वासनाकी भावनामें डूबकर, उसमें घुलकर मनुष्य त्मतत्त्व खो बैठता है। आत्मा खो जानेसे सर्वस्व खो यह आर्यशास्त्रकारोंका मत है।

ात्य मानसवेत्ताओंके कथनानुसार (१) अनुकूल- (२) प्रतिकूल-भावना, (३) निरालम्ब भय, तन द्रव्यका असाधारण क्षोभ—ये चार कारण हैं। कारोंके अनुसार भेदभावना, रागवासना, द्वेषवासना, ी वासना, अभिनिवेशकी वासना—ये सब वासनाएँ ानी हैं।

ी भूमिकामें भूख-प्यास केवल शरीरनिर्वाहक । आगे चलकर मनोभावका प्रदेश आता है। इसके हैं—भय, क्रोध, स्नेह, अहंकार, काम। इन सबकी तन द्रव्यमें होती है। इनमें बुद्धि सम्मिलित नहीं है। सामान्य लक्षण प्रतिकूलताका अनुभव करनेवाली स्थिति है। दुःख दो प्रकारके हैं, शारीर और मानस। पीड़ा और दुःखको सब कोई जानते हैं और भौतिक ारा उसकी चिकित्सा की जाती है। उसमें भौतिक ो प्रधानता रहती है। किंतु मानसिक रोगोंके लिये तथा आध्यात्मिक चिकित्साकी आवश्यकता होती है।

ाजकल मनुष्यका मन इतना संवेदनशील और दुर्बल ि, संसारकी विपरीत परिस्थितिसे तथा सहन करनेकी अभाव होनेसे, बाहरी क्षोभसे ज्ञानतन्तुओंके मर्मव्यूह- अप्रतिहत आघात होता है तथा क्षोभका प्रवाह मेरुदण्ड- प्रदेश-चक्रोंमेंसे होकर मस्तिष्कको ऐसा जड और कर देता है कि मनका सन्तुलन नहीं रहने पाता— विचारशक्ति नष्ट हो जाती है। आत्मविश्वासका अ जाता है; मनुष्य साहसहीन, उत्साहहीन हो जाता है।

मानसशास्त्रका यह सार-सिद्धान्त है कि चिन्त श्रम, राग, द्वेष, क्षोभ, विक्षेप, शोक, विषाद, भ क्रोध, घृणा, संकोच, लज्जा, अहंकार और आत्म भावनाओंका अधिक चिन्तन करते रहनेसे मनुष्य मस्तिष्कपरसे अधिकार खो बैठता है, जिससे अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अत्यधिक श्रम व्यापार-धंधेमें आर्थिक हानिसे, प्रियजनके वियोगसे डूबे रहनेसे, अनुकूल परिस्थिति प्राप्त न होनेसे, वि भारसे दब जानेसे, अपने विचारोंको भीतर-ही-भीत रहनेसे मनुष्यको अनुत्साह, उदासीनता, विषाद, होने लगती है; फिर विषादपूर्ण उन्माद हो जाता प्रकारके मानसिक रोगीको इतनी मानसिक अशान्ति कि एकान्तमें जाकर आत्मघात करनेकी इच्छा प्रबल है। ऐसे मानसिक रोगी निराशामें इतने डूब जाते हैं बातमें उन्हें रस नहीं मालूम होता, जीवन भाररूप प्र लगता है। अन्य प्रकारके कुछ मानसिक रोगियोंके मन तिरस्कारकी भावना आरूढ़ रहती है। वे विचार हैं कि मैंने बड़े पाप किये हैं और यह सब दुःख उ का ही परिणाम है।

भारतके एक सुप्रसिद्ध दैनिक पत्रके सम्पादक मेरे हैं। उनको एक जबर्दस्त मानसिक ग्रंथि है—वे अक गालियाँ बका करते हैं, शेष सब व्यवहार ठीक तरह वे अच्छी तरह जानते हैं कि समाजमें रहकर इस प्र हरकत बुरी है। किंतु अनैच्छिक अचेतन मनके ब यह मनोव्यथा है, जिसे उनका चेतन मन रोक नह

---

* हमने देखा है, पुराने निपुण वैद्य रोगीके लिये औषधका विधान करनेके साथ ही देवार्चन या अनुष्ठान भी क -कोई तो स्वयं अनुष्ठान करते थे। हमारा अपना कई बारका यह अनुभव है कि देवाराधन—देवताओंके अनुष्ठान ाम्रत्युञ्जय, रामायण, रामचरितमानस आदिके पाठ एवं जाप) से बड़े-बड़े कठिन रोग नष्ट हो गये हैं। —सम्

नके चेतन मनका आधिपत्य वे खो बैठे हैं। इसी
प्रकारकी अस्वाभाविक चेष्टा करनेमें विवश हैं।
ग्रत् मन बलवान् होता जायगा तो वे अपने अन्तर्मनके
अनैच्छिक आवेगपर अधिकार कर सकेंगे।

ी एक महिला भी यहाँ आयी हैं, जो रात्रिके समय
ल) को एक कपड़ेमें बाँधकर अपने पतिके सिरहाने
हैं और पश्चात् पूछनेपर कहती हैं—मुझे कुछ
यद्यपि यह क्रिया वह नित्य करती हैं। वह नहीं
मैं ऐसी गंदी हरकत करूँ; किंतु उनके मस्तिष्कसे
प्रबल आवेग बलात्कारसे, उनकी अनिच्छा और
ऐसी क्रिया करवाता है—जिसका उन्हें पता नहीं है।
प्रयोगसे उनका जाग्रत् मन अब इतना बलवान् हो
अब यह मलिन क्रिया वह नहीं करतीं। अब वह
च्छक मनोवेगके वशीभूत नहीं हैं।

सशास्त्रियोंका यह कथन अक्षरशः सत्य है कि रोग
रोगका कारण भी मनमें है। मारता भी मन है
ाता भी मन है। आजकल अनेकानेक ऐसे असाध्य
और मानसिक रोगोंसे लोग ग्रस्त हैं और सब
वैज्ञानिक चिकित्सा होनेपर भी वे रोग निर्मूल नहीं
कित्सक उन रोगोंका वास्तविक कारण स्थूल निदान-
ान सकते; क्योंकि उनका मूलकारण मनोमयकोष और
ोषमें है।

य खाता-पीता है। जिन पदार्थों और प्राणियोंसे
रखता है, जिन विचारोंमें डूबा रहता है, उन सबसे
स्वरूप बनता है। जड और चेतन सब पदार्थोंसे
लहरें निकलती हैं और बहती हैं, इसलिये उन सबका
वश्य पड़ता है। प्राणका नाड़ीतन्त्रसे निकट सम्बन्ध
मयकोषमें विकार होनेसे प्राणमयकोषमें गड़बड़
प्राणमयकोषमें अस्तव्यस्तता होनेसे मनोमयकोषमें।
चिकित्सामें प्राण-विनिमयका ही चमत्कार है। पाश्चात्त्य
ानसिक रोगोंको दूर करनेके लिये मनोविश्लेषणका
ार है। जुंग, ऐडलर, फ्रायड आदि मानसशास्त्र-
लगभग पचास हजार पृष्ठोंमें इस विषयपर बड़ा ही
र्ण, गवेषणात्मक और उपयोगी साहित्य लिखा है।
ी इसका प्रचार होने लगा है; किंतु देखना है कि
योग हम किस प्रकार करें। उन्होंने कामवासनाके दमन
सनाकी अपूर्तिको ही मानसिक रोगोंका कारण माना है।
ोविश्लेषणकी प्रणालीके [illegible]

वातावरणमें हम स्त्रियोंसे उस प्रकार प्रश्नोत्तर नहीं क
स्त्रियाँ उसके लिये तैयार न होंगी और भारतीय
इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं कर सकता।

गीताके दो श्लोकोंमें मनोविज्ञानका निष्कर्ष भरा
अर्जुनके पूछनेपर कि यह मनुष्य किसकी प्रेरणासे प
है, कौन इसे पापमें लगाता है, उत्तरमें भगवान् कह

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव
(३

रजोगुणसे पैदा हुआ यह 'काम' है और यह
है। इसीने ज्ञानको ढक रक्खा है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजाय
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायत
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रम
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति
(गीता २ । ६

विषयोंका निरन्तर ध्यान करनेसे आदमीका उन
हो जाता है, लगाव अर्थात् सङ्गसे काम अर्थात् उन्हें प्र
की इच्छा उत्पन्न होती है। कामसे क्रोध पैदा होता है
भूल होती है, भूलसे स्मृति बिगड़ती है, स्मृति
बुद्धिका नाश और बुद्धिका नाश होनेसे मनुष्यका
हो जाता है। विचार-शास्त्रका यह कैसा सुन्दर सिल

विषयोंमें चित्त लगानेसे नाड़ियोंके द्वारा सूक्ष्म
मस्तिष्कमें पहुँचता है, फिर सूक्ष्मशरीरमें, प्राण
और वहाँसे मनोमयकोषमें, जहाँ विषयका ज्ञान होता
प्रणाली सदा प्रचलित रहती है। ध्यानसे चित्त विष
जाता है और उसी प्रकारका हो जाता है।

मनोविश्लेषण-चिकित्साद्वारा मानसिक रोगीकी
विस्मृत भावनाको—जिस कारण मानसिक रोग उत्प
है, उसको चेतन मनके स्तरपर या स्मृतिपर लाना
जिससे मस्तिष्कका खिंचाव हलका हो जाय। फिर आत
द्वारा मनको बलवान् बनाकर आध्यात्मिक उच्चस्तरप
करना होता है, जिससे फिर आत्महीनताकी भावना अ
प्रवेश न कर सके।

प्राचीन आध्यात्मिक चिकित्सा-प्रणाल

हमारे प्राचीन ऋषिलोग मानसिक स्तरसे बहुत
थे और आध्यात्मिक चिकित्साके महत्त्वको अच्छी प्रक
[illegible]

ोन है, जिनमें आध्यात्मिक उपचार बताया है। संसार-
ही ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें अपनी शक्तिका परिचय
।, जप, प्रार्थनासे जब मनुष्य अपने वास्तविक तत्त्वको
है, तब उसमें प्रबल सङ्कल्पशक्ति जाग्रत् हो जाती
प्रत्येक व्यक्तिमें एक स्वाभाविक विचित्र
क विद्यमान रहती है, जो दूसरोंके दुःखों और
्र कर सकती है। इसको जगानेके लिये ध्यानके
ल्मय परमात्मापर—जो सदा-सर्वदा तुममें विद्यमान
ो एकाग्र कर दो; अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको
और एकाग्रताके साथ स्मरण करो। ऐसा करनेसे
और राजसिक वृत्तियोंके प्रवाहसे तुम्हारा सम्बन्ध-
हो जायगा, सात्त्विकता और पवित्रताकी धारा तुममें
गी और तुम्हारा सम्बन्ध आनन्द, शान्ति और
स्रोतके साथ हो जायगा। तुम सारी बाधाओं और
नर विजय प्राप्त कर लोगे और दूसरोंके दुःखोंको
निवारण कर सकोगे।

उपचार

ई भी जो मानसिक रोग या अन्य रोगसे पीड़ित हो,
त्तरकी ओर पाँव करके लेट जाने दो। शरीरके सब
ो ढीला करा दो—शिथिल करा दो, कहीं जरा भी
हो—मृतवत् करा दो। स्त्री हो तो उसकी बायी ओर,
ुरुष हो तो उसकी दाहिनी ओर बैठकर उपचार करो।
ी रोगीकी चिकित्सा करनेके पूर्व प्रार्थना करना
 है। प्रार्थनामें अद्भुत शक्ति है, अपार शक्ति है।
न, एकाग्रता—ये सभी प्रार्थनाके रूपान्तर हैं।

र्थना करते समय रोग और रोगीका नाम लेकर
प्रकाशमय जगत्में देखो—इस प्रकार भावना
क वह प्रकाशमय जगत्में है और प्रकाश
भीतर भरा है। इस प्रकार रोग और
देखनेसे तत्काल शान्ति और विश्रामका अनुभव
यह क्रिया ध्यानस्थ होकर करनी चाहिये। प्रार्थना
र हाथ फेरकर रोग दूर करो। कम-से-कम २१ बार
सिरसे पैरतक, उसे बिना छुए हुए, हाथ फेरो। इस
ध्यान रक्खो कि रोगीका स्पर्श करते हुए हाथ फेरने-
केत्साके पश्चात् हाथ धो डालो। निम्नलिखित वैदिक
धीरे-धीरे बोलकर दृढ़ भावनाका संचार करो।

वैदिक आत्मसूचना-पद्धति

(अथर्ववेद २। ६

ॐ अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते

हे रोगी मनुष्य! मैं तेरी दोनों आँखों, दोनों
दोनों कानों, ठुड्डी, सिर और जिह्वासे भी रोगों
देता हूँ।

ॐ ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्या
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि

हे व्याधिग्रस्त जीव! तेरे गलेकी १४ सूक्ष्म नाड़ि
हँसली, एवं वक्षःस्थलकी नाड़ियों, दोनों कन्धों, दोनों
और जिसमेंसे क्रमशः सब हड्डियाँ निकलती हैं—
रोगोंको दूर करता हूँ।

ॐ हृदयात्ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्या
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामि

हे रोगी! मैं तेरे हृत्कमलसे, पित्ताधारोंसे, दोनों
गुर्दोंसे, प्लीहा और यकृत्से रोगका निवारण करत

ॐ आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि

हे व्याधिग्रस्त प्राणी! मैं तेरी आँतों, गुदाके
नाड़ियों, उदर, दोनों कोखोंकी थैली और न
स्नायुजालसे रोग निवृत्त करता हूँ।

ॐ ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्या
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि

हे रोगग्रस्त जीव! मैं तेरी जंघाओं, घुटनों, एड़ि
के पंजों, कूल्हों—नितम्बों, कमर और गुह्य स्थानों
दूर करता हूँ।

ॐ अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि

हे रोगी! मैं तेरी हड्डियों, मज्जा आदि, पट्ठों
और हाथों, अँगुलियों तथा नखोंसे सब रोग दूर क

ॐ अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणि
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृह

हे रोगसे दुखी प्राणी! तेरे ऊपर न कहे हु
अंगमें, संपूर्ण रोमकूपोंमें और प्रत्येक जोड़में जो रो
है, उस रोगको मैं दूर करता हूँ और तेरी त्वचामें

ाये हैं, उन्हें दूर करता हूँ। तेरे नेत्र आदि संपूर्ण अंगोंमें ागको महर्षि कश्यपके विबर्ह मन्त्रसे दूर करता हूँ।

भयके रोगसे मुक्ति और रक्षाका मन्त्र

भयं मित्रादभयममित्रा-
दभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
भयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वाः आशा मम मित्रं भवन्तु ॥
(अथर्व० १९। २। १५)

न मित्रोंसे तथा जो मित्र नहीं हैं, उनसे भी निर्भय ो हुए और न जाने-देखे हुए पुरुषों और स्थानोंसे में और रात्रिमें भी, निर्भय हो। सब दिशाएँ तुम्हारी रही हैं। परमात्मा सब प्रकारसे तुम्हारा सहायक और । तुम परम निर्भय हो।'

भावनाको बीस बार दुहराओ, रोगीके अन्तर्मनपर प्रभाव पड़ता है। ध्यानसे चिकित्सा करनेके समय अपने हृदयको परमात्माके प्रेमसे खूब भर लो, जि आरोग्य, शक्तिकी धारा तुम्हारे शरीरसे रोगीमें होने लगे।

ओषधि खाऊँ न बूटी लाऊँ, ना कोई बैद बुला
पूरण बैद मिले अबिनासी, वाही को नबज दिखा

परमात्मा ही परम वैद्य है। उसीकी शरण औ चिकित्सार्थ स्वयंको और सबको शरणागत कर दें—नि निश्चिन्त रहें। धन्वन्तरि महाराज कह गये हैं—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन परमात्माके उच्चारणरूपी ओषधिसे सब रोग नष्ट होते हैं; मैं स हूँ, मैं सत्य कहता हूँ।'

ॐ आरोग्यम् ॐ आरोग्यम् ॐ आरोग्यम् ॐ श
ॐ आनन्दम् ॐ आनन्दम् ॐ आनन्दम् ॐ श

आयुर्वेदोक्त भौतिक नाड़ी

(लेखक—डा० श्रीयुत बी० भट्टाचार्य्य, एम्०ए०, पी-एच०डी०, राज्यरत्न, ज्ञानज्योति)

ारभरके चिकित्सकोंमें अपने रोगियोंकी नाड़ी देखने- सामान्य प्रथा है। प्रत्येक वैद्य नाड़ी देखकर भिन्न- र्थका ग्रहण करता है। कोई एक ही अँगुलीसे नाड़ी है और कोई तीनसे; कोई उसके आघातोंकी संख्या तो कोई गतिका विचार करते हैं। जहाँतक मुझे , भारतको छोड़कर अन्यत्र किसी देशमें इस विज्ञान- ीरतापूर्वक अध्ययन नहीं किया गया। नाना प्रकार- ियोंकी परीक्षा और उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण यहीं- है। संस्कृतमें नाड़ियोंके भेद बतलानेवाले कम-से- ० ग्रन्थ होंगे। इन ग्रन्थोंमें लगभग छः सौ प्रकार- ियोंका वर्णन है और उन सबके अत्यन्त सूक्ष्म फल बताये गये हैं। बड़े अचम्भेमें डालनेवाला विषय है। ने आश्चर्यकी बात है कि नाड़ी-जैसे बहुत ही महीन सौ प्रकारकी विभिन्न गतियाँ हैं। और ये सब अलग-अलग पहचानी जा सकती हैं, सबके अलग- ठ भी बताये जा सकते हैं!

के इन ६०० प्रकारोंमें दो बहुत ही विचित्र हैं।

को भौतिक नाड़ी कहते हैं—अर्थात् वह नाड़ी, लगा है। जब किसी रोगीको भूत या प्रेत लगत उसकी नाड़ीकी गतिमें बड़ा परिवर्तन दीख पड़ता परिवर्तनको ही भौतिक नाड़ी कहते हैं।

अपने बहुत-से पाठकोंकी भाँति मैं भी एक शिक्षि होनेके कारण पहले इस प्रकारकी किसी नाड़ीके बात नहीं मानता था और इन द्विविध नाड़ियोंकी केवल एक वाग्विनोद समझता था। पर अपने ३ दीर्घ चिकित्साकालमें लगभग तीन लाख रोगियोंकी देखनेके बाद मुझे तीन रोगी ऐसे मिले, जिनकी देखनेपर मालूम हुआ कि वे भौतिक नाड़ियाँ ही हैं। प्राचीन ऋषियोंकी बुद्धिकी गहराईका पता चला। ज्ञानकी रक्षाके निमित्त ही बिना किसी अत्युक्तिके रोगियोंका हाल यहाँ लिखता हूँ। मैं जो कुछ कहूँ केवल उन्हीं लोगोंके लिये है, जिन्होंने अपने म कपाटोंको बंद करके नहीं रखा है और जो सत्य ए प्रति किसी भ्रान्तधारणासे ग्रस्त नहीं हैं। भौतिक बात, विशेषतः आजकल, विचित्र-सी लगती है।

बाधावाली नाड़ीका एक लक्षण यह है कि अँगुली
कुछ देरतक तो यह स्वाभाविक रीतिसे एवं
प्रकारसे चलती मालूम पड़ती है, किंतु फिर एकाएक
गती है। कई आघातोंका और कभी-कभी एक साथ
। पता नहीं चलता। रोगी जब कि देखनेमें स्वस्थ है,
आघात न जाने कहाँ गायब रहते हैं। नाड़ीकी
इस प्रकार लुप्त हो जाना दस मिनटमें प्रायः पाँच
गायी पड़ता है। भूताविष्ट नाड़ीका यह एक प्रकार
ो मैं बताऊँगा—ऐसी अवस्थामें रोगी प्रायः जीवित
किंतु भूताविष्ट होनेके कारण शरीरकी स्वाभाविक
ं अव्यवस्था दिखायी देती है।

ीकी एक दूसरे प्रकारकी गति है, जिससे यह पता
कि रोगी तो मर चुका है, पर उसके शरीरको किसी
प्रेतात्माने दखल कर लिया है। ऐसी अवस्थाओंमें
गति अस्वाभाविक और असाधारण हो जाती है।
खनेपर यह नाड़ी अत्यन्त तीव्र गतिसे चलती हुई
ड़ती है। इसकी गतिमें क्रमबद्धताका नितान्त
हता है। एक अँगुलीसे दूसरी अँगुलीतक बिजलीकी
ड़ती मालूम देती है। अँगुलीमें ऐसा अनुभव होता
बेजलीके एक ऐसे तारको छू रही हो—जिसमें ११०
पर्यायक्रमसे परिवर्तनशील विद्युत्धारा प्रवाहित हो
। ऐसी नाड़ीको देखकर डाक्टरलोग पाँच मिनटमें
मृत्यु हो जानेकी घोषणा कर देते हैं, पर रोगी हँसता
। ऐसा रोगी अपनी रोग-शय्यापर पड़ा-पड़ा घरमें
हो रहा है—सब जानता रहता है, मानो उसे दिव्य
हुई हो। रोगी ठीक-ठीक बता देगा कि भण्डारमें
ाह कौन-सी खानेकी वस्तु रक्खी है। डाक्टर जब
र रोगीको देखने आता है तो आश्चर्यचकित रह
ौर उसके पाँच मिनटमें मर जानेकी फिर घोषणा करता
बार-बार कहनेपर भी डाक्टरकी यह भविष्यवाणी
ीं होती। आयुर्वेदिक ग्रन्थ चिकित्सकको आदेश
कि भूत-व्याधिकी चिकित्सा करनेकी चेष्टा स्वयं न
से रोगीको किसी मान्त्रिकके हाथोंमें सौंप देना
क्योंकि भूत-प्रेतोंपर दवा काम नहीं करती, तन्त्र-
तुरंत वशमें हो जाते हैं।

। मैं पहले कह चुका हूँ, मुझे भूतग्रस्त तीन रोगियों-
नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। दो रोगी तो पहले
थे और तीसरा दूसरे प्रकारका।

पहला दृष्टान्त खोजा जातिकी एक लड़कीका
मेरे एक बहुत पुराने मित्रकी गोद ली हुई लड़
बीमार होनेके पहले वह दो बार डर चुकी थी। ए
तो सन्ध्या-समय एक वृक्षके नीचे और दूसरी बार ए
स्त्रीके छाया-रूपके दर्शनसे, जो इस लड़कीके हाथ कु
चाहती थी। क्रमशः उसकी नींद मारी गयी और र
रात लगातार कुछ बड़बड़ाती हुई घूमा करती। उस
तथा आवश्यक कृत्य करना छोड़ दिया। मनके अ
उग्र होनेके लक्षण दिखायी देने लगे और उसका
लोकविलक्षण होने लगा। रोगिणी मेरे पास
लिये लायी गयी। उस समय उसका व्यवहार
और वह मेरे प्रश्नोंका समझके साथ विशुद्ध अंग्रेजी
उत्तर दे रही थी। साथमें आये हुए अभिभाव
बताया कि घरसे बाहर जानेपर उसका व्यवहार सु
है, पर घरमें आते ही वह फिर पूर्ववत् बिल्कुल
जाती है। जब मैंने उसकी नाड़ीपर हाथ रक्खा तो
रह गया। थोड़ी देरके लिये एकाएक नाड़ी बिल्कु
हो जाती, फिर स्वाभाविक ढंगसे क्रमपूर्वक आघ
लगाते। मैं बहुत देरतक नाड़ी पकड़े रहा, वह पर
चलती और लुप्त होती रही। जिन लोगोंने थोड़ा
नाड़ीका अनुभव किया होगा, उनके लिये यह जानन
नहीं होगा कि इस प्रकारकी नाड़ी बहुत कम देखने
और अत्यन्त सन्दिग्ध होती है। ऐसे रोगीका सु
चिकित्सा नितान्त कठिन है। संस्कृतमें इसको
नाड़ी कहते हैं, यद्यपि इसे 'पर्यायक्रमसे अदृश्या
अधिक ठीक होगा। इसे भूत-व्याधिका निश्चित
मानना चाहिये।

मैंने लड़कीके पितासे कहा कि इसे भूत लगा
लिये किसी ऐसे व्यक्तिको दिखाना चाहिये, जो भू
भगाना जानता हो। ये महाशय अत्यन्त आधुनिक
होनेके कारण मेरी बात माननेको तैयार नहीं हुए
कोई यत्न न करके निपुण डाक्टरों और वैज्ञानिकों
चिकित्सा कराते रहे। पर वे रोगका सिर-पैर कुछ
न सके। रोगिणीकी दशा उत्तरोत्तर खराब ही होत
उसमें पागलपनके अधिकाधिक उग्र लक्षण दीख
प्रायः तीन सहस्र रुपये खर्च हो चुके। और उ
रखनेके लिये लगभग आधा सेर ब्रोमाइड भी उसको
जा चुका, परंतु फल कुछ नहीं हुआ। लड़कीके पित

थे कि संयोगसे उनसे मेरी दूसरी बार भेंट हो गयी
। उन्हें किसी ओझासे सलाह लेनेकी राय दी। इस
ुरंत तैयार हो गये और बी० बी० ऐंड सी० आई०
स्थित नवसारीके पास खरसदमें एक अद्भुत स्त्री
को उन्होंने खोज निकाला। यह स्त्री गुजरातमें
ताके नामसे विख्यात है। प्रत्येक रविवार एवं
को सैकड़ों व्याधिग्रस्त प्राणी उसके पास पहुँचते
सके पास एक नारियल ले जाते हैं, जिससे वह रोगी-
कथा जान लेती है। रोगीको एक बार भी वह
ाती, पर रोगका निदान और उसके विशिष्ट लक्षणों-
-ठीक वर्णन कर देती है और भूत-प्रेतकी बाधाकी
कित्सा भी कर देती है। उसने ऐसे-ऐसे अद्भुत
त्कारपूर्ण इलाज किये हैं कि यदि आजकलके किसी
डाक्टरने वैसा एक भी चमत्कार किया होता तो
ध्र-ख्यातिके आसनपर कूदकर जा बैठता और
विषयमें नोबेल पुरस्कारका उम्मीदवार बन जाता।
महिमामयी स्त्री नित्य ही ऐसे अनेक चमत्कार कर
ौर उनसे सहस्त्रों व्याधिग्रस्त परिवारोंका दुःख-मोचन
है; यद्यपि समाचारपत्रका कोई अदना रिपोर्टर
ी कोई खबर नहीं रखता।

मंची माताके पास एक दिन रविवारको वह दुःखके
लड़कीके पिता एक नारियल लेकर गये और अपनी
नेकी बाट देखने लगे। जब उनकी बारी आयी,
महिमामयी स्त्रीने ढेरमेंसे उनके नारियलको उठाकर
ानोंके पास अच्छी तरहसे हिलाया और फिर रोगीका
के रोगके लक्षणोंका वर्णन करना आरम्भ कर दिया।
ताया कि कैसे वह लड़की डरी, कैसे उसके साथ
हार नहीं हुआ और न उसका ठीक उपचार हुआ।
ताया कि रोगिणीको भूतबाधा है और एक सप्ताहमें
ल चंगी हो जायगी। उसने उसकी भुजामें बाँधने-
एक काला सूत्र दिया तथा एक मुट्ठी चावल दिये,
कुछ दाने रोज उस बर्तनमें डाल देनेको कहा—जिसमें
ाना पकता। उसने इसके अतिरिक्त और कुछ
ा, न कोई शुल्क लिया। कितने आश्चर्यकी बात है
ही दिनोंमें रोगिणीकी स्थिति स्वाभाविक हो गयी
। दिनोंके बाद तो रोगका कोई नाम-निशानतक
। वह आज भी जीवित है। उसका विवाह भी
र अब कई बच्चोंकी माँ है। भौतिक नाड़ीका
यह पहला दृष्टान्त है। मैं यहाँ यह बता दूँ कि ऐसी
में नाड़ीके बीच-बीचमें लुप्त हो जानेमें तथा अजी
नाड़ीके लुप्त हो जानेमें बहुत अन्तर है। अजीर्णमें
कभी दो-तीन आघात नहीं मिलते। पर यहाँ औ
तो कम-से-कम आठ-दस आघातोंतक नाड़ीका
नहीं चलता।

दूसरा दृष्टान्त मेरे पासके ही गाँवकी एक सोल
लड़कीका है। मेरे एक पुराने मित्र होमियोपैथिक
करानेके लिये उसे मेरे पास ले आये। पहलेवाली
भाँति इसमें कोई उग्र लक्षण नहीं थे। कुछ मह
उसे थोड़ा ज्वर हुआ था; पर जब वह अच्छी हुई, त
बोली बंद हो गयी। वह सुन सकती थी, बोलने
भी करती; पर शब्द ही न निकलते और वह रोने
उसके बाह्यरूप एवं सामान्य स्वास्थ्यको देखते हु
लक्षण दुःसाध्य, भयानक अथवा चिन्ताजनक नहीं प्र
थे। पर जब मैंने नाड़ीपर हाथ रक्खा तो दंग र
कम-से-कम आठ-दस आघातोंतक नाड़ी बिल्कुल
जाती थी। थोड़ी देर और परीक्षा करनेपर मैंने देखा
पर्यायक्रमसे ऊपर बतायी हुई रीतिके अनुसार मिल
फिर छूट जाती। अपने पूर्व अनुभवके आधारपर
भौतिकी नाड़ी ही माना और अपने मित्रको उसे
मंची माताके पास जानेकी सम्मति दी, जिससे वि
दिन मङ्गलवारको प्रातःकाल उनसे मिल सके।
बातका पूरा विश्वास तो नहीं हुआ और यदि दूसरे
कहा होता तो वे वहाँ जाते भी नहीं। अस्तु, वे
लेकर खरसद गये और उस प्रसिद्ध स्त्रीके दर्शन क
वह नारियल थमा दिया। उसने इस बार भी रोगका
ठीक-ठीक वर्णन कर दिया और बताया कि
बोलने लगनेमें लगभग एक महीना लगेगा। कुछ
दाने देकर उन्होंने कुछ आदेश दिये—जिनका अक्षरः
किया गया। पाँच सप्ताह बाद मेरे मित्र मुझसे क
मिले और रोगिणीके अच्छे हो जानेका सुसंवाद
उसकी बोलनेकी शक्ति बिल्कुल ठीक हो गयी औ
पहली सगाई, जो प्रायः छूट चुकी थी, फिरसे पक्की
जिससे सब सम्बन्धीलोग बड़े प्रसन्न थे। भौतिकी
यह दूसरा उदाहरण है। इन दोनों उदाहरणोंमें रो
जीवित तो थीं, पर प्रेतात्माओंद्वारा उनकी स्वाभाविक
में बहुत अन्तर पड़ गया था।

। मैं आपको एक ऐसा उदाहरण सुनाऊँगा, जिसमें—
ई विश्वास करें या न करें—रोगिणी वास्तवमें तो मर
, पर एक क्षुधार्ता स्त्रीकी मृतात्मा उसे—मृत शरीर-
त रक्खे हुई थी।

एक अत्यन्त संभ्रान्त महिलाका वर्णन है। उनके
नें थीं। वे बहुत दिनोंसे अल्व्युमिनेरियाका कष्ट
थीं और सब तरहकी चिकित्साएँ करा चुकी थीं
त दिनोंतक स्थानीय अस्पतालमें भी रह आयी थीं।
ीसे कोई लाभ होता नहीं दिखायी दिया। यहाँतक
थोड़े दिनोंकी और मेहमान बताकर सब डाक्टरोंने
दिया।

रोगिणीके अभिभावकोंने होम्योपैथीका स्मरण किया
ाग्यसे उनकी श्रद्धा मेरे ऊपर ही आकर टिकी। उनके
अस्वीकार करनेमें असमर्थ होनेके नाते मैं रोगिणीके
और बहुत देरतक उनकी खाटके पास बैठकर उनकी
तथा दशाका अध्ययन करता रहा। मैं कहूँगा कि
विषयकी प्रत्येक बात विचित्र और सन्देहास्पद प्रतीत
। मुझसे बताया गया कि डाक्टरोंको यह आशा नहीं
रात काट ले जायँगी; पर उनकी आँखोंकी ओर
मुझे उनमें एक असाधारण क्या, एक लोकोत्तर-सी
खायी पड़ी। शरीरका तापक्रम सामान्य था, बात-
वह साधारणतया स्वाभाविक ढंगसे कर रही थीं
के इन्द्रियद्वारोंसे निकले मल-विष्ठादिमें भी न तो कोई
, न कोई विशेषता। सच पूछा जाय तो रोगिणीमें
ई बात नहीं थी, जिससे उनकी दशा भयसूचक समझी
ानेके लिये वह अत्यन्त आतुर थीं, नाना प्रकारकी
स्तुओंकी माँग रही थीं। इतना ही नहीं—परिचारकों-
भी बता रही थीं कि घरमें वे वस्तुएँ कहाँ रक्खी हुई
सब होते हुए भी उन्हें उसी रातको मर जाना था।
ने सामान्य अभ्यासके अनुसार मैंने उनकी नाड़ीपर
ा। मैं आपसे क्या बताऊँ? अँगुलियोंके नीचे
गतिका अनुभव करके आश्चर्यका एक ऐसा झटका
सा जीवनमें पहले कभी नहीं लगा था। मैं तो ऐसा
हो गया, मानो किसी भूतसे पाला पड़ गया। मैं उस
कभी नहीं भूलूँगा। किसी जीवित व्यक्तिकी नाड़ी
रकी नहीं होती। ऐसी नाडीवाला व्यक्ति तो तरंत

नाड़ी सूतकी तरह पतली थी, और कभी यहाँ,
आघात करती हुई एक अँगुलीसे दूसरी अँगुलीतक
भाँति उछलती चल रही थी। उसकी गतिमें कोई
नहीं थी, बल्कि अत्यन्त उच्छृङ्खल और एक प्रकारसे
पूर्ण क्रमहीनता वर्तमान थी। अपने जीवनमें मैंने
नाड़ियाँ देख डाली हैं, पर ऐसी नाड़ी कहीं नहीं
मिली थी। सौभाग्यसे मुझे नाड़ीशास्त्रका एक वा
आ गया, जिसमें इसे 'विद्युल्लता—चपलाकी कौंधके समा
वाली नाड़ी' संज्ञा दी गयी थी। शास्त्रमें यह आदेश
चिकित्सकके हाथमें जब ऐसी नाड़ी आये तो उ
रोगीको किसी ओझाके हाथमें सौंप देना चाहिये।

मैंने कोई दवा न देकर उन्हें किसी योग्य ओझ
लेनेकी राय दी। कठिनतासे एक योग्य व्यक्ति उ
मिले और रोगिणीको घर आकर देख जानेके
किसी तरह प्रस्तुत किया जा सका। वे वहाँ गये,
देखा-भाला। उनके साथ प्रश्नोत्तर करके उनकी प
और फिर निम्नलिखित वक्तव्य दिया। 'रोगिणी जि
अस्पतालमें थी, उसके बगलके कमरेमें एक और
वह वृद्धा थी और किसी दरिद्र परिवारसे आयी थी
जीवनमें उसने कभी भरपेट अच्छा भोजन भी नहीं
फिर सुस्वादु वस्तुओंकी तो बात ही क्या। अच्छे औ
भोजनकी उसके मनमें बड़ी लालसा थी, और मरनेके
दुर्बल रोगिणीको पास ही पाकर उसके शरीरमें
गयी। लगभग दो मास पूर्व असली रोगिणी तो
पर उसके शरीरको भूखी बुढ़ियाकी आत्मा जिलाये
इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है कि मूल रोगिणी अ
घरकी लड़की तो मर चुकी है और उसके फिरसे
अब कोई सम्भावना नहीं है। जबतक उसकी क्षु
शान्त हो जाती, बुढ़िया इस देहमें रहेगी और पि
इच्छासे इसे छोड़ देगी।'

इस समाचारसे, अधिक क्या कहूँ, परिवारके
काँप उठे और सबने मिलकर यही तय किया कि इ
अब अपने बीचमें और नहीं टिकने देना चाहिये, बल्कि
उपायद्वारा उसे भगा देना ही ठीक है। ओझाने एक
के टुकड़ेपर एक मन्त्र लिखकर उसे एक ग्लास पानी
कर दिया और परिचारकोंसे कहा कि 'इस जलमें

ीस घंटोंके बाद रोगिणी निस्तब्ध हो गयी और उसमें कोई चिह्न शेष नहीं रहा।

तीनों विवरणोंसे यह अनुमान किया जा सकता है शास्त्र एक रहस्यपूर्ण विज्ञान है और इसपर अधिकार ा कोई हँसी-खेल नहीं है। किंतु इस कारणसे इस विभागकी खोज बंद न हो जानी चाहिये। ाड़ीपरीक्षाका विषय अत्यन्त सूक्ष्म होते हुए भी प्रत्येक व्यक्तिको अपनी योग्यताके अनुसार उसका करना चाहिये और मैं बिना किसी संकोचके कह कि किसी भी चिकित्सकको—चाहे वह डाक्टर हो, हो हो, हकीम हो या वैद्य हो—इससे लाभ ही होगा औ मर्यादामें भी अभिवृद्धि होगी। यदि नाड़ीके स्प लिख लेनेके लिये रेडियो-परिचालित संवेदन-ग्राहकय जायँ तो नाड़ीविषयक ज्ञान बहुत दूरतक आगे बढ़

अङ्कविद्या, गणित और ज्योतिषका मूलस्रोत भारत

(लेखक—पं० श्रीशुकदेवजी पाण्डेय, एम्० एस्-सी०)

ीन भारतीय इतिहासके अवलोकनसे प्रत्येक निष्पक्ष स निष्कर्षपर पहुँचेगा कि प्राच्य-विद्या-विशारदोंने भी संसारके विद्याकोषमें बहुतसे अमूल्य रत्न समर्पित गणित विज्ञानकी उद्घाटिका है। विज्ञानकी उन्नति गणितपर निर्भर है। पश्चिमके आद्य विद्वानोंने, ईसासे ोंने ज्योतिषमें जो विज्ञता प्राप्त की थी, इसका केया है। इन विद्वानोंमें बेली, लैपलेस, प्लेफेयर विलियम जेम्स मुख्य हैं। हरमन हेकल ब्राह्मणोंको णितका आदि रचयिता मानता है। शतोत्तर गणना तीय मस्तिष्ककी देन है। उत्तरकालीन विशेषज्ञ ह्विटनी, वेबर, थीवो, कैन्टर, हीथ हिंदुओंकी सकी परछाहीं देखते हैं। काये, जिन्होंने भारतीय कुछ लेख लिखे हैं, प्राच्य विद्वानोंमें सुनिश्चितता नताकी कमीका दोष लगाते हैं। कैजोरी वेल तथा इन्हींकी भाँति हिंदुओंका लोहा माननेके लिये तैयार त्यके खोजीको तो निष्पक्ष होकर खोज करनेकी ता है। जाति, वर्ग, देश, प्रदेश, काले तथा गोरेके से दूर रहकर उसे सच्चे मार्गपर चलना है। भारतको बेड़ीमें जकड़ा देख, साम्राज्यवादके भँवरमें पड़ कुछ हिंदुओंको उनका यथेष्ट स्थान देनेमें बहुतसे वाद-प्रश्नोंको सामने रखकर उनकी अन्वेषणबुद्धिपर पन्न करा दी तथा यह प्रचार किया कि हिंदुओंने मिस्र तथा अरबके लोगोंके सम्पर्कसे ही गणितका ा किया। ऐसे विद्वानोंने जो युक्तियाँ हिंदुओंको विद्वानोंकी विलक्षण बुद्धिमत्ता तथा उन्होंने जो गणि दक्षता प्राप्त की थी, उसको स्वीकार कर लिया है।

पुरातन शिला-लेखोंसे तथा मोहन-जो-दड़ोमें मि सिक्कोंसे यह निश्चित हो गया है कि मिस्र, यूनान आ पूर्व भारतवासी संख्याओंको अङ्कोंद्वारा लिखते थे। प्रकार अब लिखे जाते हैं, वे पुराने अङ्कोंसे कुछ भिन्न समयपर लिखनेके ढंगमें परिवर्तन होता रहा। अ भी अङ्कोंके चिह्नोंमें महान् परिवर्तन हुए हैं। मुख्य हिंदुओंने इस विषयमें संसारको दी, वह है 'शून शतोत्तर गणना—संख्याओंको लिखनेकी आधुनिक अङ्कोंको भिन्न-भिन्न चिह्नोंद्वारा प्रदर्शित करनेक बड़ी संख्याओंको लिखनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती भिन्न-भिन्न प्रकारसे ये संख्याएँ लिखी जाती थीं। उ फिनिशियन रीतिसे ९ को ||| ||| ||| नौ लंबी ल लिखते थे दसको ⌒ चिह्नसे, १९ लिखने ||| ||| ||| ⌒ लिखना पड़ता था, ४० को चिह्न था H H और ९० को ⌒ H H

भारतवर्षमें लेखनकला चिरकालसे विद्यमान थी धर्मसूत्रमें लिखित पत्रोंको कानूनी गवाही माना है। भी एक स्थानपर यह मिलता है कि 'मुझे सहस्र जिनके कानमें ८ लिखा हो', 'सहस्रं मे ददतो अ (१०।६२)। पाणिनीय व्याकरणमें (७०० वर्ष ईस लिपिकारोंका जिक्र है। वेदोंमें कई स्थानोंपर 'अक्षर', (शब्द) शब्दोंका प्रयोग यह सिद्ध करता है कि

१००००००००००० (एकपर बारह शून्य—दस खरब) ख्याका उल्लेख है ।

। मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च, दश च शतं च सहस्रं च, सहस्रं चायुतं चायुतं च च, नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्युर्बदं च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः ासुष्मिंल्लोके ।

तरीयसंहिता, मैत्रायणी तथा काठकसंहितादि ग्रन्थोंमें शतोत्तर गणनाका उल्लेख है। ईसाके पूर्व पाँचवीं ों इस रीतिके अनुसार बड़ी संख्याओंद्वारा गणनाका भारतमें था। ईसाके पूर्व एक शताब्दीके एक बौद्ध-लितविस्तर' में गणितज्ञ अर्जुन तथा कुमार गौतम त्व) का वार्तालाप वर्णित है। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें बाद बोधिसत्व गणनाका निम्न प्रकार बतलाते हैं—

१० कोटि = अयुत
१० अयुत = नियुत
१० नियुत = कंकर
१० कंकर = विवर
१० विवर = क्षोभ्य
१० क्षोभ्य = निवाह
१० निवाह = उत्संग
१० उत्संग = बहुल
१० बहुल = नागबाल
१० नागबाल = तितिलम्ब
१० तितिलम्ब = व्यवस्थानप्रज्ञप्ति
१० व्यवस्थानप्रज्ञप्ति = हेतुहील
१० हेतुहील = करहु
१० करहु = हेतुविन्द्रीय
१० हेतुविन्द्रीय = समाप्तलम्भ
१० समाप्तलम्भ = गणनागति
०० गणनागति = निरवद्य
०० निरवद्य = मुद्राबाल
०० मुद्राबाल = सर्वबाल
०० सर्वबाल = विषमज्ञगति
०० विषमज्ञगति = सर्वज्ञ
०० सर्वज्ञ = विभुतंगमा
०० विभुतंगमा = तल्लाक्षण

जैनग्रन्थ 'अनुयोगद्वारसूत्र' ईसासे १०० वर्ष है। गणना असंख्यतक की गयी है, जिसका परिमाण (दसपर एक सौ चालीस बिंदु) के बराबर है। इस मनुष्योंकी संख्या 2^{96} दी है। एक दूसरे जैनग्रन एक बड़ी संख्याका उल्लेख है जो ७४,००,०० बराबर है। हिंदुओंने आर्किमिडीज (Archimedes पाश्चात्य वैज्ञानिकसे शताब्दियों पूर्व ऐसी बड़ी संख्याओंकी की, जो न केवल पृथ्वीके समान बड़े रेतके ढेरके कणोंके हों, बल्कि सारे ब्रह्माण्डके समान बड़े रेतके ढेरके कणोंके हो सकती हैं।

यूनानके लोगोंकी बड़ी-से-बड़ी संख्याका नाम (Myriad) था, जो १०००० (दस सहस्र) थी औ लोगोंकी बड़ी-से-बड़ी संख्याका नाम मिल्ली (Mill जो १००० (सहस्र) थी।

शून्यका उपयोग पिङ्गलने अपने छन्दःसूत्रमें ईसाके वर्ष पूर्व किया था। दूसरी बहुत-सी पुरानी गणित तथा पुस्तकोंमें इसका प्रयोग पाया जाता है। बख्शाल लिखित ग्रन्थोंमें (२०० ईस्वीमें) शून्यका प्रयोग मिलता है। पञ्चसिद्धान्तिकामें भी, जो ५०५ ईस्वीका शून्यका कई बार प्रयोग किया गया है। जिनभद्र ५२९–५८५) ने, जो वराहमिहिरके समकालीन थे, यह रूपसे सिद्ध कर दिया कि शून्यका प्रयोग संख्याओंको किया जाता था। भास्करने (ईस्वी ५२५) अपने भास्करीयमें शून्यका प्रयोग किया है। आर्यभट्टीयकी भी शून्य पाया जाता है। सिद्धसेनने 'तत्त्वार्थाधिगम टीकामें शून्यका प्रयोग बड़ी संख्या लिखनेमें प्रदर्शित है। हिंदुओंके अङ्कगणित एवं बीजगणितमें शून्यके परिच्छेद पाये जाते हैं।

भारतीय विद्वानोंके अथक परिश्रम तथा खो सामग्री प्राप्त हुई है, उससे यह निर्विवाद सिद्ध हो गय संसारको संख्याएँ लिखनेकी आधुनिक प्रणाली भारत डाक्टर श्रीविभूतिभूषण दत्त तथा डा० श्रीअवधेश सिंहलिखित 'हिंदू-गणितके इतिहास'में भारतने जो ज्ञानकोषमें, विशेषतः अङ्कगणित तथा बीजगणितमें दिया है, उसका विस्तारपूर्वक उल्लेख है।

यूरोपमें किस प्रकार और कब यह भारतीय गणि फैला, इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

हैं। सेबोख्त (ईस्वी ६५०) के लेखोंसे विदित
कि हिंदूअङ्कोंकी चर्चा यूरोपमें उनको प्रयोगमें
वर्षों पूर्व हो चुकी थी। बगदादमें हिंदूअङ्क आठवीं
मध्यमें प्रयोगमें लाये गये। यह अनुमान किया
कि शतोत्तर गणना तथा ज्यौतिषकी सारणियाँ,
, जो ७७३ ईस्वीमें खलीफा आलम नसूरके दरबारमें
अपने साथ ले गये। ये आर्यभट्टकी भी पुस्तकें
ले गये थे। १३ वीं शताब्दीके आरम्भमें पिसाके
ने, जिन्होंने मिस्र, सीरिया, यूनान तथा इटलीमें बहुत
और सब देशोंकी अङ्कोंको लिखनेकी प्रणालीका
किया, हिंदुओंकी प्रणालीको उत्तम पाया और यूरोपमें
र करनेका महान् प्रयत्न किया। हिंदूअङ्कप्रणालीका
श्रमी यूरोपमें पंद्रहवीं शताब्दीके मध्यसे आरम्भ
सत्रहवीं शताब्दीतक समस्त यूरोपने इसे अपना

ोगद्वारसूत्र (ईसाके १०० वर्ष पूर्व) में 'मूल'
योग है। उस समयके गणितके ग्रन्थोंमें भी इसका
ा जाता है। आर्यभट्ट, महावीर, श्रीपति, श्रीधर,
र्य आदि गणितज्ञोंने वर्गमूल निकालनेकी रीतियाँ
। स्मथका कहना है कि 'आर्यभट्टकी रीति अलै-
(Alexandria) से मिलती है।' दोनोंकी
मनन करनेसे मालूम हो जायगा कि इस बातमें कोई
है। वास्तवमें यूनानके लोग वर्गमूल निकालना
न थे। यदि वे जानते तो यूरोपके लोगोंको इसका
। आर्यभट्टने आर्यभट्टीयमें जो रीति ४९९ में दी
ूरोपमें पंद्रहवीं शताब्दीमें पहुँच पायी, जैसा कि
(१४२३-१४६७), चूके (१४८७), लारोशे
), केटेनियो (१५४६) आदि विद्वानोंके ग्रन्थोंसे
ा है।

ूल निकालनेकी रीति भी हिंदुओंने संसारको बतायी।
में इसका उल्लेख है। सम्भव है, आर्यभट्टके
तीय गणितज्ञोंने यह रीति निकाली हो। आर्यभट्ट
इस बातका श्रेय नहीं लेते कि वर्गमूल या घनमूल
ो रीति उन्होंने ही आविष्कार की। ये रीतियाँ
ताब्दीके मध्यमें भारतवर्षसे अरबोंके पास पहुँचीं
द्वारा अन्य देशोंमें गयीं। प्राचीन अरबी विद्वानों—
वहशीय (८५५ ई०), जहीज (८६० ई०),

हिंदुओंने बीजगणितमें भी बड़ी दक्षता प्राप्त
बड़े गणितज्ञोंमें मुख्य आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्क
श्रीधराचार्य इस विषयके बड़े विद्वान् थे। 'इनसाइक्लो
के अनुसार हिंदू बीज-गणितज्ञोंको यूनानके बीजगणित
फैन्टस्से कहीं अधिक विषयका ज्ञान था। हिंदू '
करण'के दो मूल मानते थे और कुछ उच्चघातके समी
हल कर सकते थे। अनिर्णीत समीकरणोंका इन्हें डाय
से, जो इसका विशेषज्ञ समझा जाता था, अधिक ज्ञ
डायोफैन्टस् (Diophantus) को केवल एक ही
प्राप्त हो सका था; पर हिंदुओंने उस रीतिको मालूम
प्रयत्न किया, जिससे ऐसे समीकरण हल किये ज
इसमें इनको पूर्ण सफलता मिली। हिंदुओंने अप
और यर=अप+बर+स तथा सर^2=अप^2+बके कई
किये। इनमें अन्तके समीकरणकी एक विशिष्ट स्थिति
१ को हल करनेमें यूरोपीय विद्वानोंने बड़ा परिश्रम
फर्मा (Fermat) ने यह प्रश्न बैसी (Ber
F de Bessay) को दिया और १६५७ ईस्वीमें वह ग
सामने रक्खा गया। १६५८ में जॉन वालिस तथा लार्ड ब
एक बड़ी लंबी रीतिसे इसे हल किया। जॉन पैलने १
अपने बीजगणितमें इस हलको दिया और यह समीक
समीकरण कहलाने लगा। इस समीकरणका वास्त
हिंदू-समीकरण होना चाहिये था, क्योंकि इसको ब
यूरोपसे करीब एक हजार (हजारों) वर्ष पूर्व हल कर दि

π का मान—आर्यभट्टने वृत्तकी परिधि तथा
निष्पत्तिका यथार्थ मान ३$\frac{१७७}{१२५०}$=३.१४१६ निकटतम
दशमलवतक निकाला। कायेने अपने लेखमें इस
माना है। उनका कथन है कि 'यदि आर्यभट्टने इस
निकाला था तो स्वयं उन्होंने इसका प्रयोग क्यों नहीं
कायेने स्वयं भारतीय विद्वानोंके ग्रन्थोंका मनन नहीं
इस कारण उन्होंने अपने लेखोंमें बड़ी भारी भूलें
वराहमिहिरने आर्यभट्टीय π के मानका प्रयोग ५०५
किया और लल्लने, जो आर्यभट्टका शिष्य था, ५७
भटोटपालने वराहमिहिरकी 'बृहत्संहिता' की टीकामें
ईस्वीमें π का प्रयोग किया। 'पौलिश सिद्धान्त'में भी
प्रयोग है। मुहम्मद इब्न मूसाने ८२५ ईस्वीमें π
$\frac{६२८३२}{२००००}$ देते हुए यह लिखा है 'यह मान हिंदू ज्यौतिषा
दिया हुआ है।'

। 'शुल्बसूत्र'में वर्ग-आयत बनानेकी विधि दी हुई से कर्णका सम्बन्ध, वर्गके समान आयत, वर्गके त आदि प्रश्नोंका इस ग्रन्थमें विचार किया गया है। का काल निश्चित नहीं। विद्वानोंके मतोंमें बड़ा अन्तर क्समूलर इसका काल ईसाके पूर्व ५०० से २०० ते हैं। श्रीरमेशचन्द्र दत्त ईसासे ८०० वर्ष पूर्व, ईसासे ४०० वर्ष पूर्व और श्रीमैकडोनल मैक्समूलर-ो मानते हैं।

तिषमें हिंदुओंने संसारको बहुत अमूल्य रत्न भेंट वेलीका मत है—'ईसाके हजारों वर्ष पूर्व हिंदू रूपसे ग्रह-गणना करते थे।' लैपलेसके मतसे ईसाके ३००० वर्ष पूर्व हिंदू ग्रहोंका स्थान १″(१ विक निकाल लेते थे। प्लेफेयर इस मतसे सहमत हैं। सर जेम्सके अनुसार हिंदू ईसासे ११८० वर्ष पूर्व ग्रह गणना करनेमें समर्थ थे। कतिपय विद्वानोंने इ विरोध किया है। कुछ विद्वान् अब भी यह शङ्का कि 'भारतका ज्ञान तो यूनान या ईजिप्टसे लिया ग बहुत अंशोंमें यह मत अब निर्मूल सिद्ध हो चुका अब भी इस दिशामें बहुत कुछ करनेकी आवश्यक आशा है ऐसे गणितके विद्वान्, जिनको संस्कृतका ज्ञान है और पश्चिमीय तथा प्राच्यगणित दोनोंके ज्ञात शङ्काओंको मिटानेमें सहायक होंगे।

प्रत्यक्ष विज्ञानोंके क्षेत्रमें हिंदुओंकी कृतकार्यता

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीप्रसन्नकुमार आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०)

-तत्त्वज्ञान-विषयक साहित्यके लिये इतिहासकारोंमें ुकता देखनेमें आयी, वैसी उनके वैज्ञानिक साहित्य- नहीं उत्पन्न हुई। इसका कारण अंशतः यही है कि जगत्के अन्य प्राचीन राष्ट्रोंके समान हिंदुओं- क्षेत्रमें कोई विशेष उन्नति नहीं की। इसके सिवा गभग सौ वर्ष पहले, जब संस्कृत, पाली और प्राकृत इतिहास लिखे जाने लगे, तबतक आधुनिक जगत् अनुसन्धानमें इतनी आश्चर्यजनक उन्नति कर चुका हलेके भारतीय-तत्त्वानुसन्धित्सु विद्वान् हमारे वैज्ञानिक विचार करनेकी ओर उत्साहित नहीं हुए। जबतक द्रनाथ शीलने अपना 'प्राचीन हिंदुओंके प्रत्यक्ष ामका ग्रन्थ नहीं लिखा और सर प्रफुल्लचन्द्र रायने हेंदु-रसायन-शास्त्र' ग्रन्थ प्रकाशित नहीं किया, केसी विद्वान्को उस आयुर्वेदके क्षेत्रमें भी कोई न करनेका साहस नहीं हुआ, जिसकी चर्चा प्राचीन- ं भी आती है। इसी प्रकार वास्तुशास्त्र, पाकशास्त्र, ास्त्र, शस्त्रनिर्माणशास्त्र, आभूषणादि बनाने और नेर्माण करने आदिके विविध शास्त्र विद्वानों ाहासकारोंकी दृष्टिसे प्रायः ओझल ही रह गये। और शिल्पविद्याओंकी चर्चा अवश्य ही प्राचीनतम हित्यमें आती है।

ुनिक वैज्ञानिकोंने (जैसे डाक्टर पी. सी. घोषने अपने में) निश्चितरूपसे यह दिखाया है कि एकमात्र पाटी ही ज्ञान था, जो हिंदुओंने दूसरोंको दिया। उन्होंने तकके मूल अङ्कों और शून्यका भी आविष्कार वि दशमिक संकेत कहते हैं। पर यह बात संदिग्ध दशमलव-पद्धति भी जानते थे। उन्हें योग (वियोग (बाकी), पूरण (गुणा), वर्ग, घन औ आदि अष्टाङ्गपद्धति ज्ञात थी। भागकी आधुनिव हिंदुओंद्वारा आविष्कृत हुई थी। त्रैराशिकका भी उ हिंदुओंने किया। आर्यभट्टने अपने ग्रन्थमें इसका किया है। वे भग्नाङ्क और उसकी जोड़-बाकीकी व पद्धति जानते थे, जो महावीर (९ वीं शताब्दी) के 'ग संग्रह'में 'निरुद्ध'के नामसे प्रसिद्ध है। वे परिमि संहतिकी वह पद्धति भी जानते थे, जिसे 'छन्द-गणि हैं; क्योंकि पिंगल (ईसाके पूर्व दूसरी शताब्दी) सूत्रमें वैदिक छन्दोंके विवेचनमें इसका प्रयोग आर्यभट्टने भी गणित और ज्यामितिके 'श्रेणीव्य उल्लेख किया है। भास्कराचार्यकी 'लीलावती'में यह किया गया है कि जब किसी अङ्कको शून्यसे भाग दि है, तब उसका फल अनन्त अङ्क आता है। 'लीलाव 'बीजगणित' भास्कराचार्य (११५० ई०) कृत ' शिरोमणि'के दो भाग हैं। यह चमत्कृतिजनक भास्कराचार्यने अपनी वयस्के ३६ वें वर्षमें लिखा थ

सका ज्ञान मूसा-अल-ख्वोयोरेजमी (८२५ ई०) के
ओयल-मुकाबिला'से प्राप्त किया था। पर अरबोंने
हिंदुओंसे लिया। चीनी और यूनानी भी इसके
थे। 'ऐलजेबरा'के हिंदू-नाम बीजगणित और
णित हैं। हिंदुओंने धन और ऋण संख्याओंका
ष्कार किया। ब्रह्म-गुप्त (६२८ ई०) ने 'समीकरण'
ाला। इसके चार प्रकार 'एकवर्ण,' 'अनेकवर्ण,'
ण' और 'भावित' प्रयोगमें थे। आर्यभट्टके कथना-
कवर्ण समीकरण' कूटतमको हल करनेकी प्रक्रिया
भट्ट, ब्रह्मगुप्त, श्रीधर, पद्मनाभ और भास्कराचार्य
के ऐसे-ऐसे प्रश्न हल करते थे, जैसे १७ वीं और
ताब्दीके पहलेतक यूरोपके गणितज्ञ नहीं कर पाते थे।
मितिसे बीजगणित उत्पन्न हुआ और बीजगणितने
त उत्पन्न किया। पहले-पहल बौधायन और
ने अपने शुल्ब-सूत्रोंमें (ईसाके ८०० वर्ष पहले)
दिक यज्ञोंके लिये आवश्यक विविध वेदियोंके स्थापत्य-
त किये। यूनानका प्रसिद्ध ज्यामितिशास्त्रज्ञ पिथागोरस
शास्त्रके इस सिद्धान्तका आविष्कर्ता माना
कि समकोण त्रिभुजकी समकोणवाली भुजापर स्थित
त्र अन्य दो भुजाओंपर स्थित वर्गोंके क्षेत्रोंके योगके
ोता है; परंतु बौधायनने पिथागोरससे बहुत पहले ही
ान्त स्थापित किया था। उन्होंने यह प्रमेय भी सिद्ध
आयतके एक कोणसे दूसरे कोणतककी तिरछी रेखा-
वर्गका क्षेत्र आयतके क्षेत्रसे द्विगुण होता है।

सी त्रिकोणके बराबर वर्ग खींचना—ऐसा वर्ग खींचना
ो वर्गका द्विगुण, त्रिगुण अथवा एक तृतीयांश हो,
त बनाना, जिसका क्षेत्र उपस्थित वर्गके क्षेत्रके बरा-
—इत्यादिकी रीतियाँ भी शुल्बसूत्रमें बतायी गयी हैं।
त्रिकोणका क्षेत्रफल उसकी भुजाओंसे जाननेकी रीति
शताब्दीके 'सूर्यसिद्धान्त' ग्रन्थमें बतायी गयी है।
ा ज्ञान यूरोपको क्लैवियसके द्वारा सोलहवीं शताब्दीमें
ुआ। ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य दोनों किसी चतुर्भुज
क्षेत्रफल उसकी भुजाओंसे निकाल लेते थे। बौधायन
आपस्तम्ब दोनोंने वर्गकी कोण-से-कोणपर्यन्त-
तिरछी रेखा और उसकी भुजाओंका अनुपात
ाकार फैलाया है—१:१·४१४२१५६ $\left(१+\frac{१}{३}+\ldots+\frac{३}{३\times४\times३४}\right)$। यह परिणाम आधुनिक रीतिसे

त्रिकोणमितिके क्षेत्रमें हिंदुओंने जो काम किया है
बेजोड़ और मौलिक है। इन्होंने ज्या, कोटिज्या
उत्क्रमज्या आविष्कृत की। इनके विवरण हमारे यहाँके
ज्यौतिष ग्रन्थोंमें रहते हैं। चौथी शताब्दीके 'सूर्यसि
ग्रन्थमें इस विषयका जो विवरण है, उसका ज्ञान यू
ब्रिग्सके द्वारा सोलहवीं शताब्दीमें मिला।

भास्कराचार्यकी 'लीलावती'में किसी वृत्तमें बं
समभुज और समकोण त्रिकोणकी तथा चतुर्भुज, पञ्चभुज
भुज, सप्तभुज, अष्टभुज और नवभुज आकृतियोंकी भुज
लंबाई उस वृत्तके व्यासकी अपेक्षासे जाननेकी रीति
हुई हैं। आधुनिक फारमूलासे ये रीतियाँ मिलती हैं
फारमूला उपर्युक्त आठों प्रकारमें क्रमशः इसी प्रक
है—व्यासका क्रमशः ·८६६०२५, ·७०७१०८३, ·५८
·५, ·४३३७९१६, ·३८२६८३ और ·३४१९२५ द्वारा

हिंदू ज्यौतिषशास्त्रमें इससे भी अधिक विशेषज्ञत
हुई है। इस शास्त्रका अध्ययन प्रारम्भिक वैदिक
ही आरम्भ हुआ। कालका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश
कहलाता है। यह एक सेकंडके ३४००० अंशोंमें
अंशके बराबर होता है। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म क
भास्कराचार्य अपनी गणनामें लाये हैं। वैदिक त्र
जानते थे कि सूर्य चन्द्रको प्रकाशित करता है।
जानते थे कि चन्द्र २७ दिनमें अपनी परिक्रमा पू
फिर उसी स्थानमें आ जाता है। एक पूर्णिमा अथवा अम
दूसरी पूर्णिमा अथवा अमावस्यातक ३० बार सूर्योदय हो
कर ३० दिनोंका मास माना जाने लगा। ३६५ दिनों
माना गया। पर यह देखा गया कि तीस-तीस दिन
चान्द्र मासोंसे वर्षके ३६५ दिन पूरे नहीं होते। अत
और सौर वर्षोंका हिसाब ठीक रखनेके लिये प्रति ती
एक मलमास जोड़ा गया। पृथ्वी घूमती है—इस का
और रातका भेद होता है—इस तथ्यको पहले उ
(सन् ९५० ई० में) जाना। इसके एक सहस्र
यूरोपमें कोपार्निकके द्वारा इसका आविष्कार हुआ।
सूर्य और चन्द्र-ग्रहणोंके कारण जानते थे, इसमें को
नहीं। उन्होंने यह भी कहा था कि चन्द्र तथा अ
अपना कोई प्रकाश नहीं है। सूर्यके प्रकाशसे वे प्रका
हैं। ये ग्रह भी पृथ्वीके समान सूर्यकी परिक्रमा करते

र वृत्त न माना जाय तो इस कथनका कुछ
ा रह जायगा कि सूर्योदयके पूर्व उषःकाल होता
प्राचीन कालसे हिंदू ज्योतिषियोंका यह प्रयास
के पृथ्वीकी परिधि और व्यास जानें। ब्रह्मगुप्त,
ार्य और सूर्यसिद्धान्तने पृथ्वीका व्यास क्रमशः
१५८१$\frac{1}{24}$ और १६०० योजन माना है।
न यदि ३२००० क्यूबिट या ९$\frac{1}{11}$ मीलके बरा-
ो इस हिसाबसे पृथ्वीका व्यास ७९०५ मील होता
ुनिक वैज्ञानिक गणनासे पृथ्वीका व्यास ७९१८ मील
ों गणनाओंका फल प्रायः एक ही है। हिंदुओंने
नको पृथ्वीका केन्द्र माना था। पर इस समय ग्रीन-
सका स्थान ग्रहण किया है। इससे ज्यौतिष-गणना-
विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। पृथ्वीके ऊपर वायुमण्डल-
रके सम्बन्धमें भी हिंदुओं और आधुनिक ज्योतिषियों-
बहुत कुछ मिलता है। हिंदू-गणनाके हिसाबसे यह
१२ योजन अर्थात् ५५ मील है और आधुनिक
५० मील।

याकर्षणका आविष्कार न्यूटनके नामपर प्रसिद्ध है।
से बहुत काल पहले ही भास्कराचार्यके 'सिद्धान्त-
ण' ग्रन्थमें यह लिखा जा चुका था कि भारी पदार्थ
भारसे) पृथ्वीपर गिरते मालूम होते हैं; पर यह
आकर्षण है, जो उन्हें नीचे खींच लाता है। अतः
यह अर्थ हुआ कि पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य
रेको आकर्षण करते हैं और इस पारस्परिक आकर्षणके
ब अपनी-अपनी कक्षामें बने रहते हैं।

ससे यह मालूम हो जाता है कि हिंदुओंको वह पदार्थ-
ज्ञात था, जिसके विवेच्य विषय हैं—प्रकाश, उष्णता,
आकर्षण-धर्म और विद्युत्। (रसायनशास्त्रविषयक
का कार्य उनके वैद्यकशास्त्रमें स्पष्ट है।) सूर्य-किरणों-
न्द्रीभूत करनेके लिये वे गोल और अण्डाकार लेन्स
करते थे।

द्यकशास्त्रके क्षेत्रमें हिंदुओंका कार्य विशेष और
। मौलिक था। ऋग्वेदमें रोग-चिकित्सकोंकी चर्चा
है। अथर्ववेदके एक भागका नाम आयुर्वेद है। इसमें
के द्वारा, जड़ी-बूटियोंके द्वारा तथा शस्त्र-प्रयोगके द्वारा
र करनेके प्रकार बताये गये हैं। ईसाके पूर्व तीसरी

वनस्पतियाँ उगायी जाती थीं। यूरोपमें पहला अ
इसके सात सौ वर्ष बाद पैरिसमें ईसाकी चौथी श
कायम हुआ।

ओषधि-चिकित्सामें चरकसंहिता और शल्य-चि
में सुश्रुतसंहिता ईसाके पूर्व ४ थी या ५ वीं श
प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। पर इससे भी पहले इस शास्त्र
बड़े आचार्य हो गये हैं; क्योंकि चरकका निर्माण अ
काश्यप, हारीत, भेल और भारद्वाजके पश्चात् ही हु
बौद्धोंकी गाथाओंमें जीवककी चर्चा आती है। वे
आत्रेयके शिष्य थे। बच्चोंकी बीमारियोंके इलाजमें ये
थे। चाणक्यने भी वैद्यकका कोई ग्रन्थ लिखा था।

पश्चिमोत्तर प्रदेशके तक्षशिला-विश्वविद्यालयमें
शास्त्रका विधिपूर्वक अध्ययन कराया जाता था।
आदि विभिन्न देशोंके वैद्य वहाँ जुटते थे। इन
संस्थाओंद्वारा वैद्यक-सम्बन्धी विविध प्रश्नोंके निर्णय ह
मालूम होता है, चरकसंहितामें इन निर्णयोंका संग्रह हु
वेदोंमें शारीर-शास्त्र और भ्रूणविज्ञानके विषय अ
इसी वेदोक्त ज्ञानपर चिकित्सा-पद्धति स्थापित है।
में चिकित्साके आठ अङ्ग (अष्टाङ्ग) वर्णित हैं—

(१) शल्यतन्त्र (सामान्य शस्त्रक्रिया),
शालाक्यतन्त्र (कन्धेके ऊपरके आँख, कान, नाक
होठ आदिके रोगोंमें विशेष शस्त्रक्रिया), (३
चिकित्सातन्त्र, (४) भूतविद्यातन्त्र, (५) कौ
तन्त्र (बच्चोंके रोगोंकी चिकित्सा), (६) अ
(साँप, बिच्छू आदिके काटनेपर इलाज), (७)
तन्त्र और (८) वाजीकरणतन्त्र।

मूल चरकसंहिता पुनर्वसु आत्रेयके शिष्य औ
सहपाठी अग्निवेशद्वारा रचित विविध तन्त्रोंसे संकलि
८ वीं या ९ वीं शताब्दीमें काश्मीरके दृढ़बलने चर
का शोधन किया था। पीछे ईरानी भाषामें इसका
हुआ और उसके बाद अरबीमें। इसके आठ
प्रथम—सूत्रस्थानमें ओषधियों, पथ्यों और वैद्यके
विवरण है। द्वितीय—निदानस्थानमें आठ मुख्य रोगों
है। तृतीय—विमानस्थानमें रोगोंके निदान और भैष
हैं। चतुर्थ—शारीरस्थानमें शरीर-रचना और
है। पञ्चम—इन्द्रियाभिधानस्थानमें रोग-परीक्षा औ
अनुमान करनेकी पद्धति है। षष्ठ—चिकित्सितस्था

ुत आत्रेय और हारीतके समकालीन थे । ८वीं
में उनका ग्रन्थ पूर्वमें कंबोडियातक और पश्चिममें
प्रसिद्ध था । १३वीं शताब्दीमें चक्रपाणिदत्तने उसे
और चन्द्राटने संशोधित किया । सुश्रुतसंहिताका आरम्भ
थानसे होता है । सूत्रस्थानमें चिकित्सासम्बन्धी विविध
सामान्यरूपसे वर्णित हैं । द्वितीय—निदानस्थानमें
के लक्षण बतलाये गये हैं । तृतीय—शारीरस्थानमें
ज्ञान और भ्रूणविज्ञान है । चतुर्थ—चिकित्सितस्थानमें
ोगोंकी चिकित्साका वर्णन है । पञ्चम—कल्पस्थानमें
ारनेके प्रयोग हैं । शेष तीन खण्ड उत्तरतन्त्रमें हैं
के विविध विषयोंके पूरक हैं ।

य ग्रन्थ भी हैं । भेल-संहितामें ऐसे ही विषयोंका
है । वृद्ध वाग्भटने तथा बालवाग्भटने अपने अष्टाङ्ग-
चरक और सुश्रुत—दोनोंके वचन उद्धृत किये हैं ।
अन्य ग्रन्थ हैं, जिनमें पालतू पशुओंके रोगों और
चिकित्साका वर्णन है । वैद्यक शास्त्रकी व्यापकता और
कारण इसके अनेक कोष भी बन गये । ओषधि-
ौर शल्यतन्त्रके क्षेत्रमें हिंदू यूनानियोंसे बहुत आगे
थे । कितनी ही वनस्पतियोंके प्रयोग यूनानने
सीखे ।

ई भी रोग त्रिधातु—वात, पित्त, कफका सामञ्जस्य
ा होता है । रोगमात्रका यही कारण है, यह बात
हुई । ऋतुओंका भी आरोग्यपर प्रभाव पड़ता है—
मानी गयी । ज्वर तथा अन्य रोगोंकी तीन
; औषधके शीत और उष्ण, अथवा शुष्क
नग्ध उपचार; विषम ओषधियोंके द्वारा रोग दूर
रकार; सद्वैद्यके लक्षण और शिष्टाचार—इत्यादिमें
ा मान कार्य-कौशलकी दृष्टिसे तथा नैतिक दृष्टिसे
भी बहुत ऊँचा था । रोज आनेवाला ज्वर, ति
चौथिया आदि ज्वरोंके प्रकार वर्णित हैं और
चिकित्साका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है ।
सर्वथा नवीन है । यह बात मानी जाती है कि ‍
अवयवोंका गठन एक साथ ही होता है; नरसंतान
दायीं तरफसे रहता है । यमज सन्तानोंके होनेका
बतलाया गया है; यह माना गया है कि ८ मही
जीयेगा, सात महीनेका नहीं जी सकता । मृत भ्रूण
निकालनेकी रीति भी बतायी गयी है ।

चीरफाड़के काममें भी हिंदू-वैद्यकने बड़ी उन्न
सुश्रुतसंहितामें मनुष्यशरीरकी चीरफाड़का वर्णन
फाड़के शस्त्रोंका वर्णन (जिसमें दाँत उखाड़नेका
परिगणित है) दो अध्यायोंमें हुआ है । एक
चीरफाड़की रीतियाँ वर्णित हैं । पथरीके लिये
विधान था । खूनी बवासीरका इलाज बहुत अ
किया जाता था । दूषित खून निकालनेके लिये १८
जोंक लगायी जाती थी । चक्षुपीड़ामें दाहिनी आँख
में बायें हाथका उपयोग करना हिंदू-वैद्यकको
साँपके काटने तथा अन्य विषों और उनकी चिकि
वर्णन सुश्रुतमें है । सर्पदंशवाले अङ्गका रक्त चू
खींच लेना, उस अङ्गको चीरकर उसमेंसे रक्त निका
उस अङ्गको जला देना—सर्पदंशपर ये उपाय निर्दिष्ट
हैं । मच्छरके काटनेसे मलेरिया हो जानेकी बात भी
विषसंचार करनेवाले १८ प्रकारके चूहे, ८ प्रकार
६ प्रकारकी मक्खियाँ और चींटियाँ, ५ प्रकारके म
५ प्रकारके साँप बताये गये हैं । विभिन्न प्रकारके
सर्पों और सर्पिणियोंके विभिन्न प्रकारके विष
उनकी चिकित्साके भिन्न-भिन्न प्रयोग भी बतलाये

हिंदुओंकी ईमानदारी

जिस (भारतीय) सभ्यताको अपने उच्च वर्गके लोगोंके अत्यन्त विशाल वैभव-विलासपर गर्व
रीको लोग जानते ही नहीं थे । क्या कहींपर भी कोई हिंदुओंकी ईमानदारीके एक जरासे अंशके
ोकी कल्पना कर सकता है ?

—मेगेस्थनीज (प्रसिद्ध यूनानी

ग्रीक दर्शनमें भारतीय प्रभाव

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

सिद्ध भारत-तत्त्व-वेत्ता अध्यापक कीथ (A.B. Keith) के 'प्राचीन ग्रीक दर्शनका भारतीय दर्शनके ऊपर व पड़ा था, ऐसा अनुमान करना भ्रमपूर्ण है। अन्य यकी विवेचना न करें, तो भी यह सुस्पष्ट हो जाता है वर्षमें दर्शनकी चर्चाके प्रारम्भ होनेके बहुत बाद ग्रीस निविद्याका अनुशीलन प्रारम्भ होता है। ऋग्वेदके ी भारतीय दार्शनिक विचारोंका सूत्रपात हुआ है। के पश्चात् भारतीय दर्शनका इतिहास क्रमशः उन्नति-र अग्रसर होता है' ।'

प्रसंगमें यह उल्लेखयोग्य है कि ऋग्वेदके सूक्त--से-कम ईसासे २००० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। और नके पिता थेलस् (Thales) का जन्म ६४० वर्ष र्व एशिया माइनरके अन्तर्गत आरूयोनिया प्रदेशके नगरमें हुआ था। अतएव यह सिद्ध है कि भारतीय विचारके सहस्रों वर्षतक क्रमोन्नतिके पथपर अग्रसर द ग्रीसमें तत्त्व-विद्याका केवल श्रीगणेश होता है।

ापक गार्बे (Garbe) का अनुमान है कि हेराक्लीटस् klitos) एम्पेडोक्लस (Empedocles) रस (Anaxagoras)डिमाक्रीटस्(Demokritas) क्यूरस (Epicurus) के दार्शनिक सिद्धान्त भारतीय नके द्वारा प्रभावित हैं।पीथागोरस (Pythagoaras) दर्शनके द्वारा प्रभावित हुआ था, इसमें भी सन्देहके वकाश नहीं है। तथा Gnostic और atonic दर्शन भी भारतीय दर्शनके द्वारा विशेष-भावित हुए थे। अध्यापक विन्टरनीज /internitz) ने इस बातको मुक्तकण्ठसे स्वीकार ।

ीन भारत और प्राचीन ग्रीसके दार्शनिक विचारोंके ो तुलनात्मक पर्यालोचना करनेपर दोनों देशोंके दार्शनिक विचारोंमें अनेक स्थलोंमें खूब सादृश्य आता है। प्रधान-प्रधान Eleatic दार्शनिकोंके मत और विश्व अभिन्न हैं, परिदृश्यमान नानात्वकी वास्तवि नहीं है। भारतवर्षके वेदान्तदर्शनमें भी इसी प्रकारके प्रतिपादित हुए हैं। ग्रीक दार्शनिक एम्पेडोक्लस(Emped के मतसे 'जो असत् है, उसकी उत्पत्ति सम्भ है; तथा जो सत् है, उसका कभी विनाश नहीं हो स इसके साथ सांख्य-सिद्धान्तका अच्छा मेल खात हेराक्लीटस् (Heraklitos) के अग्नितत्त्वके साथ मतका सादृश्य विशेषरूपमें वर्तमान है।

हेराक्लीटस् (Heraklitos) ने अग्निके सम्बन्ध शब्दोंका प्रयोग किया है, तदर्थवाचक सभी शब्द पाये जाते हैं।

ग्रीस देशमें किंवदन्ती है कि Thales, Empe Anaxagoras, Demokritos तथा अन्यान दार्शनिक दर्शनशास्त्रके अध्ययनके लिये प्राच्य देशमें भारतीय दार्शनिकोंकी विचारधाराने पारस लोगोंके यहाँ ग्रीस देशमें प्रवेश प्राप्त किया, यह बात सम्भव जान प प्राचीन पारसी जातिके साथ ग्रीस देशका सांसारिक समान विचार-राज्यमें भी आदान-प्रदान चलता उत्तर भारतके कुछ अंशोंमें जब पारसी जातिका प्र उस समय पारसी लोगोंके साथ भारतीयोंका भी ग्री आना-जाना होता था। और ग्रीसके साथ भारतीय वि भी आदान-प्रदान चलता था। ईसासे पूर्व छठी श पारसी राजा दारा (Daruis) ने पंजाबका कु जीत लिया था और ग्रीसपर भी चढ़ाई की थी।

दाराके समय तथा उसके पहले साइरस प्रभृति कालमें पारसकी राजसभामें ग्रीक और हिंदू दोनों जा आना-जाना होता था। पारस-सम्राट्की जो महत ग्रीस देश जीतने गयी, उसमें भारतीय वेतनभोगी थी। आर्टाजाराक्सेस (दाराके पौत्र) की सभामें नामक एक ग्रीक चिकित्सक थे, उन्होंने भारतवर्षके स एक ग्रन्थ लिखा है। अतएव गौतम बुद्धके समय

The Religion and Philosophy of the and Upanishads. By A. B. Keith, Vol. II,

आक्रमणके समय ग्रीक और हिंदुओंका पारस्परिक
ारिचय हुआ तथा उसके बाद बौद्ध प्रचारकोंकी
ानों जातियोंमें घनिष्ठता स्थापित हुई।

सिद्ध ग्रीक दार्शनिक पीथागोरस (ईसाके पूर्व छठी
) के ऊपर भारतीय दर्शनका प्रभाव बहुत कुछ
; हुआ था। आजकल पीथागोरसके सिद्धान्तके नामसे
प्रचलित है, वह समस्त धार्मिक, दार्शनिक तथा
ान्धी मतवाद ईसासे पूर्व छठी शताब्दीमें भारत-
ालित था। आत्माका पुनर्जन्म, पाञ्चभौतिक तत्त्व,
ईश्वर-सान्निध्य प्राप्त करना—पीथागोरसीय
; ये समस्त सिद्धान्त भारतवर्षमें प्रचलित दार्शनिक
ा पूर्णतया अनुसरण करते हैं। पीथागोरसने
विषयमें जो मत प्रकट किया है, उसके पूर्व पाश्चात्य
। मतको और किसीने प्रकट नहीं किया। यह मत
ग्रीसमें गया था, इस बातको ग्रीक लोग भी स्वीकार
मिस्रदेशसे उनके लिये इन सिद्धान्तोंको प्राप्त करना
ाहीं था; क्योंकि प्राचीन मिस्रदेशमें पूर्वजन्मवाद
न था।

ाधुनिक यूक्लिडकी ज्यामितिकी ४७ वीं प्रतिज्ञा, जो
सके उपपाद्य (Pythagoreas Theorem) के
ासिद्ध है, बौधायन-शुल्बसूत्रसे ली गयी है। इसके
: पीथागोरसने जो साधु-सङ्घ स्थापित किया था, उसके
ाधान—ब्रह्मचर्य, मौनव्रत, अहिंसा, ध्यान-धारणा,
ायपरम्परा-क्रमसे दीक्षा-दानकी पद्धति इत्यादि
। भारतीय आदर्शके अनुसार व्यवस्थापित हुआ था।
ासकी शिक्षाने ग्रीस, इटली और एशिया माइनरमें
शताब्दियोंतक क्रियाशील रहकर यूरोपीय विचार-
विशेषरूपसे प्रभावित किया था। पीथागोरसके
ामें भारतीय प्रभाव कितना था, इसका विचार करनेपर
' विचारधाराके ऊपर भारतीय प्रभाव किस प्रमाणमें
ासका अनुमान किया जा सकता है।

क्समूलर कहते हैं कि सुकरातके समय (ईसासे पूर्व
:९९ वर्ष) भारतीय दार्शनिक एथेंस नगरमें आते-
ो। एक भारतीय दार्शनिकका एथेंस नगरमें
के साथ विचार-विनिमय हुआ था। सुकरातने कहा
'मनुष्यके जीवनके विषयमें अनुसन्धान करना ही
दर्शनका उद्देश्य है।' इससे भारतीय दार्शनिकको हँसी
यी और वे बोले, 'पहले ईश्वरतत्त्वको समझे बिना
[illegible] नहीं समझ सकता।'

यूरोपके दार्शनिक विचारोंके इतिहासमें प्लेटो (
३४५ वर्ष ई० पू०) ने अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त कि
प्लेटोके ऊपर भारतीय अध्यात्म-तत्त्वका विशेषरूपसे
पड़ा था—इस बातको मैक्समूलर, इमर्सन आदि म:
एक मतसे स्वीकार किया है। प्रो० ई. जे.
(Prof. E. J. Urwick) स्वलिखित 'The M
of Plato' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं, 'प्लेटो:
'Republic' नामक ग्रन्थमें जिस सिद्धान्तकी स्था
है, वह भारतीय सिद्धान्तकी प्रतिध्वनिमात्र है।
दार्शनिक भाषाके साथ कहीं-कहीं उपनिषदोंके
समानता देखकर मैक्समूलरने यह अनुमान किया
प्लेटोका भारतीय दर्शनके साथ घनिष्ठ परिचय था। उ
जीवको रथी तथा इन्द्रियोंको अश्वके रूपमें वर्णन
(कठ० १।३।३-४)। प्लेटोने अपने (Phae
नामक ग्रन्थमें अक्षरशः इसी रूपकका प्रयोग किया है

ग्रीसके अभ्युदयके परवर्ती कालमें मिस्रका रि
(Alexandria) नगर संसारके एक श्रेष्ठ विद्याके
परिणत हो गया था। प्राच्य तथा पाश्चात्य जातिके
केन्द्रमें मिलकर अपने भावोंका आदान-प्रदान करते थे
ई०में ग्रीसके लाइकोपोलिस शहरमें प्लाटिनस् (Plo
ने जन्म लिया और दर्शनशास्त्रमें पारङ्गत होने
२८ वर्षकी उम्रमें वह सिकन्दरिया गया। उस
Neo-Platonism यानी अभिनव प्लेटोवादके
के प्रवर्तकरूपमें प्रसिद्धि प्राप्त की। प्लाटिनस् औ
अनुयायी दार्शनिकोंने प्लेटोके द्वारा प्रवर्तित
सिद्धान्तके प्रतिवादमें इस अभिनव सिद्धान्तका प्रसार
इस अभिनव प्लेटोवाद (Neo-Platonism)
पहुँचकर ग्रीकदर्शन चरम उन्नतिको प्राप्त होता है
मर्मी साधकों (Christian Mystics) के ऊ
परवर्ती यूरोपीय विचारधाराके ऊपर अभिनव प्ले
विशेष प्रभाव पड़ा। पुरातत्त्वके ज्ञाताओंने प्रमाणि
है कि प्लाटिनस्ने भारतीय अध्यात्मतत्त्वकी भित्तिके
अपने सिद्धान्तको प्रतिष्ठित किया था।

विलियम राल्फ इंगे (William Ralf I
द्वारा दी गयी 'The Philosophy of Pl
विषयपर 'Gifford Lectures (1917-18)
व्याख्यानमालामें इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवा
मूल्यवान् तथ्य पाये जाते हैं।

पाश्चिमके दार्शनिक सिद्धान्तके [illegible]

र ई० ब्रेहिएर (E. Brehier) ने स्पष्टरूपसे र किया है कि प्लाटिनस्ने उपनिषदोंके तत्त्व-ज्ञानसे नये सिद्धान्तवादके लिये प्रेरणा प्राप्त की थी।

जीन प्रजिलुस्की (Dr. Jean Przyluski) त किया है कि ईरानी साधक Mani ने भारत-वर्षमें जाकर भारतीय अध्यात्मवादके साथ घनि प्राप्त किया था। २४० ई० में वह अपने देश लौट प्रचारमें लग गया। प्लाटिनस्ने भी प्रायः इसी काल देशमें जाकर Mani के समीप भारतीय त दीक्षा ग्रहण की।*

हमारे पुराण—एक समीक्षा

(लेखक—डा० श्रीयुत अ० द० पुसाळकर, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

ओंके धार्मिक तथा तदतिरिक्त साहित्यमें पुराणोंका ष स्थान है। वेदोंके बाद इन्हींकी मान्यता है। के साथ इन्हें पञ्चम वेद[1] कहा गया है। इनका और अन्तःस्वरूप प्रायः रामायण, महाभारत और समान ही है। इन पुराणोंको समष्टिरूपसे प्राचीन कालीन हिंदुत्वका—उसकी धार्मिक, दार्शनिक, क, वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्कृति-कसंमत विश्वकोष ही समझना चाहिये।

ाण' पदका अर्थ ही है 'वह, जो प्राचीनकालसे ो'।

ात्पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन हि स्मृतम्।
क्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(वायुपुराण १ । २०३)

चीनकालसे प्राणित होनेके कारण पुराण कहा जाता इसकी व्याख्या जानता है, वह सब पापोंसे मुक्त है।'

वा यह भी कह सकते हैं कि—

तनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।
(मत्स्यपुराण ५३ । ६३)

'पुरातन कालकी घटनाओंको पण्डितजन पुराण क

इस प्रकार एक विशिष्ट प्रकारके साहित्यके अर्थमें शब्दका प्रयोग जबतक नहीं होता था, तबतक इस अर्थ 'प्राचीन कथा' अथवा 'प्राचीन विवरण' था औ आदिकालसे, वेदोंके प्रकट होनेके भी पहलेसे, इ पुराण विद्यमान थे। अथर्ववेदमें[2] पुराणोंका नाम अ उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उस समय ये पुराण रूपमें भी रहे हों। पर छान्दोग्य उपनिषद् और सू यह स्पष्ट होता है कि असली पुराण उपनिषदों और समयमें आये।

'पुराण' की साहित्यिक परिभाषा अमरकोश पुराणोंमें की गयी है और उसके पाँच लक्षण बतलाये

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (लय और पुनः वंश (देवताओंकी वंशावलि), मन्वन्तर (मनु विभाग) और वंशानुचरित (राजाओंके वंशवृत्त)— ये पाँच लक्षण हैं।

* The Journal of the Greater India Society, Vol. 1, No. 1, January 1934, pp. 1-10

१—ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः। इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥ 'ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नामके चार वेद कहे गये हैं। इतिहास-पुराण पञ्चम वेद कहा जाता है।'

२—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ (अथर्व० ११। 'ऋक्, साम, छन्द, पुराण, यजुर्वेद, दिव्य लोकका आश्रय करके रहनेवाले देवता—सब यज्ञके उच्छिष्टसे उत्पन्न हुए

३—स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम्। चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदमिति॥ (छान्दोग्य० ७।

उसने कहा, 'हे भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहासपुराण, वेदोंका वेद जानता

स्थित पुराणोंमें कोई भी पूर्णरूपसे इस परिभाषाके
नहीं है। कुछ पुराणोंमें तो इनसे कई विषय अधिक
कुछमें इनकी प्रायः कोई चर्चातक नहीं है, अन्य
ुत-से हैं। फिर यह पञ्चलक्षण उपस्थित पुराणोंका
छोटा अंश है। इससे यह मालूम होता है कि
उन पुराणोंके मूल उद्देश्योंमें नहीं था, न इनकी
रचनाका कोई साम्प्रदायिक हेतु ही था। पीछेकी
ो पुराणकी परिभाषामें लानेके लिये स्वयं पुराणोंने
हा है कि पञ्चलक्षण केवल उपपुराणके लिये हैं,
होनेके लिये तो उसमें दस लक्षण होने चाहिये।
पञ्चलक्षणके अतिरिक्त अन्य लक्षण ये हैं—वृत्ति,
धरावतार), मुक्ति, हेतु (जीव) और अपाश्रय
।

ऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥
र्भलक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
त्पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया॥
(श्रीमद्भा० ११।७।९-१०)

णवित् पुराणको इन दस लक्षणोंसे युक्त मानते हैं—
सर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित,
ु और अपाश्रय। कोई पाँच ही लक्षण मानते हैं—
व्यवस्थासे ऐसा होता है (अर्थात् महापुराणोंके दस और
के पाँच लक्षण होते हैं)।

ग्रपुराणने इसमें ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रकी
ष्टिका लय और स्थिति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—
ंको और जोड़ा है।

विष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
हारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके॥
र्श्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
ष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम्॥
(मत्स्य० ५३।६६।७)

ह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रका माहात्म्य, सृष्टिके लय
ितिका माहात्म्य, पाँच विषयोंका वर्णन करनेवाले
वर्णित हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका कीर्तन
सब पुराणोंमें है और इसके विरुद्ध जो कुछ है, उसका
वर्णित है।'

एक-सा ही है। इसमें केवल दो-एक परिवर्तनोंको
रूपता ही है। नामावलि यह है—ब्रह्म, पद्म, वि
भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैव
लिङ्ग, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और
निम्नलिखित अनुष्टुप्में पुराणोंकी पूरी नामावलि
गयी है—

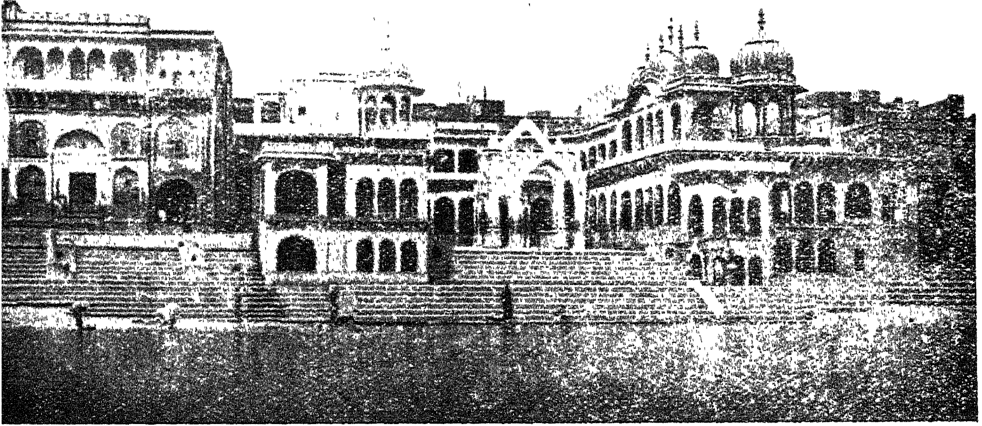
मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टय
नालिंपाग्निपुराणानि कूस्कं गारुडमेव
(देवीभागवत

आदि अक्षर 'म' वाले २, 'भ' वाले २,
३, 'व' वाले ४, 'ना' वाला १, 'लिं' वाला १,
१, फिर अग्निपुराण १, 'कू' वाला १, 'स्कं' वा
गरुड़पुराण १।

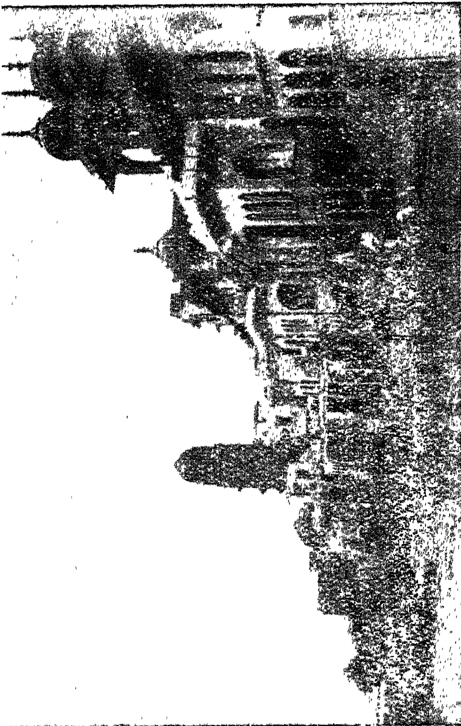
उपपुराणोंकी गणनामें एकरूपता नहीं है।
इन उपपुराणोंकी अबतक अपेक्षाकृत उपेक्षा रही
पुराण महापुराणोंसे पीछेकी रचनाएँ हैं, इनका
अधिक साम्प्रदायिक है और इनमें कई विषयोंका
कई स्थानोंमें मिली हुई इनकी नामावलियोंको मिला
से १८ उपपुराण ये निश्चित होते हैं—सनत्कुमार
नन्द, शिवधर्म, दुर्वासस, नारदीय, कपिल, वामन
मानव, वरुण, कलि, महेश्वर, साम्ब, सौर, पराश
और भार्गव।

कौन पुराण ठीक-ठीक पञ्चलक्षणयुक्त हैं और
हैं, यह देखकर इनके प्राचीन और प्राचीनोत्तर—
जा सकते हैं। इस कसौटीके अनुसार वायु, ब्रह्मा
और विष्णु प्राचीन पुराण मालूम होते हैं। मह
फिर और एक वर्गीकरण उनमें विशेषरूपसे वर्णि
शिव और अन्य देवताओंके विचारसे किया ग
वैष्णव दृष्टिसे उन्हें सात्त्विक, राजस और तामस कह

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभ
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध

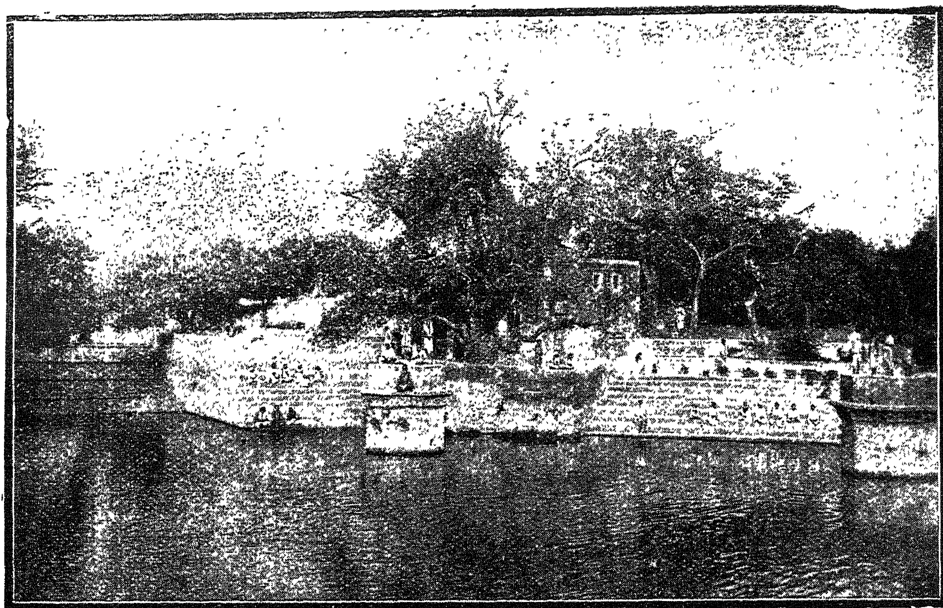


विश्रामघाट, मथुरा

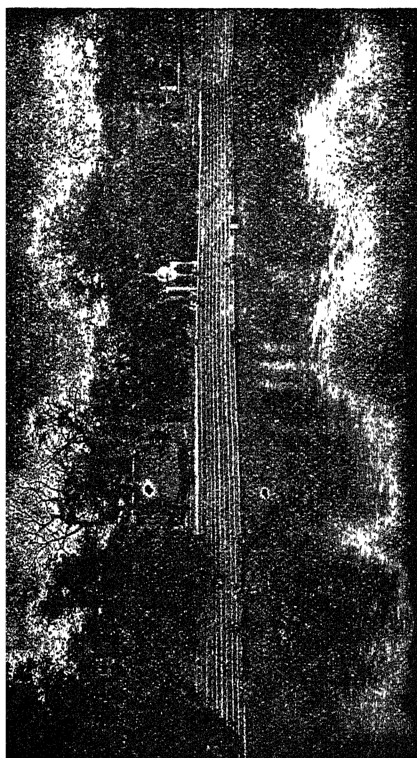


विश्रामघाट नं० २

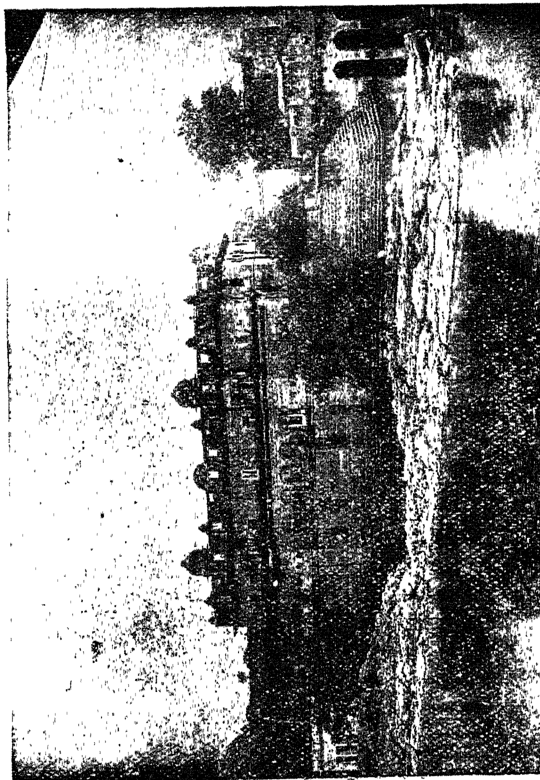




प्रेम-सरोवर, बरसाना



राधाकुण्ड



मस हैं। विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म,
। सात्त्विक पुराण हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय,
वामन, ब्राह्म—ये राजस हैं।

पुराणमें अग्निका माहात्म्य वर्णन करनेवाले पुराणों-
। और सरस्वती तथा पितरोंका माहात्म्य वर्णन करने-
णोंको संकीर्ण कहा है।

त्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
सेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः॥
ग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
र्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते॥

(मत्स्य० ५३। ६८-६९)

त्त्विक पुराणोंमें श्रीहरिका माहात्म्य विशेष है,
राणोंमें ब्रह्माका, उसी प्रकार तामस पुराणोंमें अग्नि
वका। संकीर्ण पुराणोंमें सरस्वती और पितरोंका
वर्णित है।

और तरहका वर्गीकरण स्कन्दपुराणमें इस प्रकार

ादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
र्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः॥

(स्कन्द० केदारखण्ड १)

ारह पुराणोंमें दसमें शिव-स्तुति है, चारमें ब्रह्मा-
दोमें देवी तथा हरिकी है।

णोंमें वर्णित विषयोंका पूर्ण और आलोचनात्मक
करनेके पश्चात् विषयविभागके अनुसार पुराणोंके
किये गये। प्रथम वर्गमें साहित्यका विश्व-कोष
में गरुड़, अग्नि और नारदपुराण आते हैं। द्वितीय
ख्यतः तीर्थों और व्रतोंका वर्णन है। इसमें पद्म,
ौर भविष्य पुराण आते हैं। तृतीय वर्ग ब्रह्म,
और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणोंका है। इनके दो-दो संस्करण
हैं। इनका मूल भाग वही है, जो इनका केन्द्रस्थ
है। इनके दो बारके संस्करणोंमें आगे-पीछे बहुत
ड़ा गया है। चतुर्थ वर्गमें, जो ऐतिहासिक
है, ब्रह्माण्ड और वायुपुराण आते हैं। साम्प्रदायिक
। पञ्चम वर्ग है। इसमें लिङ्ग, वामन और मार्कण्डेय-
आते हैं। अन्तमें षष्ठवर्ग उन वाराह, कूर्म और
णोंका है, जिनके पाठोंका संशोधन होते-होते मूल
ही नहीं गया है। तमिळ ग्रन्थोंमें पुराणोंके ये पाँच

सूर्य—ब्रह्मवैवर्त्त; (३) अग्नि—अग्नि; (४) शिव
स्कन्द, लिङ्ग, कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मत्स्य,
और ब्रह्माण्ड; और (५) विष्णु—नारद, भागव
और विष्णु।

पुराण भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपनी उत्पत्ति बत
विष्णुपुराणमें यह वर्णन है कि वेदव्यासने वेदोंक
करनेके बाद प्राचीन कथाओं, आख्यानों, गीतों
श्रुतियों तथा तथ्योंको एकत्रकर एक पुराण-संहिता[1]
और अपने शिष्य सूत रोमहर्षणको उसकी शिक्षा दी
छः प्रकारकी व्याख्याएँ लोमहर्षणने अपने शिष्योंको
रोमहर्षणकी यह संहिता और तीन संहिताएँ उनके
मिलाकर पुराणोंकी चार मूल संहिताएँ कही जा
इनमेंसे इस समय कोई संहिता विद्यमान नहीं है। ए
ही विवरण वायुपुराणमें इस प्रकार है कि ब्रह्माने
शास्त्रोंके पुराणका स्मरण किया, पीछे उनके मु
निकले।[2] पुराणोंका संरक्षण करनेका कार्य सूतोंको सौ
था। मूल सूत प्रथम यज्ञसे योगशक्तिके द्वारा उ
और पुराण-परम्पराकी रक्षा उन्हें सौंपी गयी।

अथर्ववेदमें 'पुराण' शब्दका एकवचनमें प्रयोग
में दी हुई वंशावलियोंकी भाषाका सर्वत्र एक-सा हो
यह परम्परागत जनश्रुति कि आरम्भमें केवल एक
था—इन बातोंसे जैक्सन तथा अन्य विद्वानोंको य
हो गया कि आरम्भमें केवल एक ही पुराण
परंतु एकवचनका प्रयोग पुराणोंकी समष्टि पुराण-
वाचक है। वंशावलियोंकी यह बात है कि

---

१. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभि
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः
(विष्णुपुराण ३। ६

'आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिके साथ
विशारद (व्यास) ने पुराणसंहिता रची।'

२. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृत
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता
(व

'सब शास्त्रोंके पुराणका ब्रह्माने पहले स्मरण किया
उनके मुखोंसे वेद निकले।'

३. पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ॥ (यह व
पुराणोंमें है।)

ोभिन्न वंशावलियोंके साथ आरम्भ होते और
ामयोंमें समाप्त होते हैं, तथा विभिन्न स्थानोंमें उनका
हुआ है। अतः एक ही पुराण नहीं था—जैसे एक
हीं है, न एक ही ब्राह्मण है।

गोंकी जो परिभाषा पहले दी जा चुकी है, उसके
ुराणोंमें सर्ग, प्रतिसर्ग, देवताओं और ऋषियोंके
मन्वन्तर और राजवंश वर्णित होते हैं। इनमेंसे
ान विषयोंमें प्राचीन धर्म, आख्यान और तत्त्वज्ञान
-वर्णन—ये विषय आ जाते हैं। पिछले दो विषयोंमें
वंशवृत्त और इतिहासकी सामग्री मिलती है।
ारिक्त धार्मिक शिक्षा, कर्मकाण्ड, दान, व्रत, भक्ति,
ष्णु और शिवके अवतार, श्राद्ध, आयुर्वेद, संगीत,
साहित्य, छन्दःशास्त्र, नाट्य, ज्यौतिष, शिल्प-
ार्थशास्त्र, राजधर्म इत्यादि उन सभी बातोंका इनमें
होता है, जिनका जीवनके धर्म, अर्थ, काम और
न चतुर्विध पुरुषार्थोंके साथ सम्बन्ध है।

हम पुराणोंके तत्त्वज्ञान और उपास्य, वंशवृत्त,
; पृष्ठभूमि तथा काल-सम्बन्धी पौराणिक भावनाका
वेचार करेंगे।

ज्ञान—विश्वोत्पत्ति—जगदुत्पत्तिके सम्बन्धमें पुराणों-
; प्रकारके वर्णन हैं। एक वर्णन ऐसा है कि स्वतः-
मूलतः और तत्त्वतः एक होनेपर भी एकके-बाद-एक
नेवाले पुरुष, प्रधान और काल—इन त्रिविध रूपोंमें
रता है। जब परमपुरुष पुरुष और प्रधानमें प्रवेश
तब प्रधानसे महान् अथवा बुद्धि-तत्त्व उत्पन्न होता
द्धसे अहङ्कार और अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्रा, पञ्च-
और एकादश इन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। पञ्चीकृत
तोंसे घटित ब्रह्माण्ड समुद्रपर ठहरा है और आप,
यु, अहङ्कार, बुद्धि और प्रधान—इन सात आवरणों-
है। देवाधिदेव ब्रह्माने रजोगुणका आश्रय लेकर
जीव-जगत् उत्पन्न किया, वही देवाधिदेव सत्त्वगुण-
य लेकर विष्णुरूपसे सबका पालन करते हैं और
ा आश्रय लेकर सबका संहार करते हैं।

दूसरा विवरण ऐसा है, जिसमें नौ प्रकारकी सृष्टिका
। प्रथम तीन महत-सर्ग, भूत-सर्ग और ऐन्द्रिय

पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृत
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृ
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापते
(विष्णुपुराण १। ५।

एक और विवरण इस प्रकारका है कि ब्रह्म
बाद-एक चार रूप धारण किये और उनसे अ
पितृ और मनुष्य उत्पन्न हुए। पीछे उन्होंने रा
गन्धर्व, अन्य सब जीव, प्राणी और वनस्पति
उत्पन्न किया। तब मानस पुत्र उत्पन्न हुए, जो ऋ
और देवता उत्पन्न हुए, जो रुद्र कहलाये। इ
स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी सृष्टि हुई। इनके
हुए—प्रियव्रत और उत्तानपाद, और एक कन्या
इस कन्याके साथ विवाह किया। इनके चौबीस
हुई, जिनमेंसे तेरह धर्मको ब्याही गयीं, इनके प्रेम
मूर्तिमान् भाव उत्पन्न हुए। दस कन्याएँ अन्य मा
पितरों और अग्निको ब्याही गयीं। और एक कन्या
विवाह शिवके साथ हुआ।

यह सारी सृष्टि ब्रह्माके एक दिनतक रहती है
एक दिन चौदह मन्वन्तरोंका होता है। प्रत्येक
अन्तमें निम्नकोटिके जीवों और निम्नस्तरके
जीवनका अन्त हो जाता है। अखिल
सत्तत्त्व बना रहता है—देवता और साधु-संत सुर
हैं। चौदहवें मन्वन्तरके अन्तमें अर्थात् ब्रह्माका
बीतनेपर नैमित्तिक प्रतिसर्ग होता है। इसमें अ
जलके द्वारा सब पदार्थोंका अन्त होता है, केव
सृष्टि बनी रहती है और इसके साथ तीन गुण
ऋषि इत्यादि। एक कल्पके परिमाणकी ब्रह्माकी रा
होनेपर ब्रह्मा जागते हैं और अपनी सृष्टि फिरसे आ
हैं। समस्त प्राकृत सर्गका प्राकृत प्रलयमें ही अन्त
यह प्रलय ब्रह्माकी आयु समाप्त होनेपर ही होता
तब सब देवता और सब रूप संहारको प्राप्त होते हैं
महाभूत मूल प्रकृतिमें मिल जाते हैं। मूल प्रकृति
केवल एक ब्रह्मसत्ता रहती है।

उपास्यवर्णन—पुराणोंमें उपास्य देवोंकी
है। वैदिक देवताओंकी अपेक्षा लौकिक देवताओं
विशेष है। वैदिक देवताओंमेंसे केवल इन्द्र औ

ई मित्रसे बिछुड़ गये हैं । पुराणोंमें मित्रका पता
कुछ पुराणोंमें सूर्यकी स्तुति बहुत की गयी है,
उपासनाविधिका विवरण भविष्यमें मिलता है ।
ोंके अधीश्वर यम नरकोंमें पापियोंको दण्ड देते हैं।
ौर अप्सराएँ स्वर्गके गायक और परियाँ हैं ।
चार भेद बताये गये हैं—असुर, दैत्य, दानव
स ।

वोंमेंसे ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, विष्णु पालनकर्ता और
ारकर्ता । साम्प्रदायिक पुराणोंमें कोई विष्णुको
ाते हैं । कोई शिवको श्रेष्ठ बतलाते हैं । पर
: प्राचीनतर पुराण एकको श्रेष्ठ बताकर दूसरेकी
 करते हैं । इसका परम उत्कर्ष एकेश्वरवादमें
 जहाँ तीनोंका एकत्व प्रतिपादित होता है और यह
 जाता है कि उपासक अपनी इच्छाके अनुसार
केसीकी भी उपासना कर सकता है । अधिकांश
 विष्णुके दस अवतार बतलाये गये हैं । इनमेंसे
 कूर्म, वराह, नरसिंह और वामन—ये
ाणिक हैं; परशुराम, राम, कृष्ण और बुद्ध—ये चार
क हैं और एक कल्कि अभी आनेको हैं । इनमेंसे
रसिंह और वामनके अवतारत्वके बीज वैदिक
 हैं । ये अवतार दिव्य कहाते हैं और अन्य अवतार

णु क्षीरसागरमें रहते हैं, अवतारके समय अवतार
 पर शिव पार्थिव देव हैं । पार्वती, माता भवानी
त्य संगिनी हैं । स्कन्द और गणेश इनके पुत्र हैं ।
सम्प्रदाय इन्हींका उपासक है । शैवपुराणोंमें इनकी
 । लिङ्ग-सम्प्रदाय और शाक्त-सम्प्रदाय भी पीछेके
 आते हैं ।

रोंकी भी उपासना पुराणोंमें है । पितरोंके साथ वर्ग
के समान ही इनके पूजनका भी विधान पुराणोंमें
 आता है । प्रत्येक मन्वन्तरमें देवताओंके साथ ही
 होते हैं । पितरोंका सम्बन्ध श्राद्धसे है, जिसका
पुराणोंमें दिया गया है ।

ावृत्त—पुराणोंके वंशवृत्त मनुके साथ आरम्भ होते
ने ही प्रलयकालमें मानवोंकी रक्षा की थी । पहले
स्वत मनुके दस पुत्र थे । समस्त देश इन दस

उनके दो पुत्र हुए, सौद्युम्न और ऐल । इक्ष्वाकु
देशका राज्य मिला । उनकी राजधानी अयोध्
उनके पुत्र विकुक्षिने सूर्यवंशकी मुख्य इक्ष्वा
चलायी । उनके दूसरे पुत्र निमिसे विदेह उत्पन्
यमुनादेशपर राज्य करनेवाले नाभागके वंशधर रथीत
जिनको 'क्षत्रोपेता द्विजातयः' कहा जाता था
धृष्टकवंश चला, जिसका राज्य पंजाबमें था । श
मूल पुरुष शर्याति आनर्त (वर्तमान गुजरात) के र
उनकी राजधानी कुशस्थली (द्वारका) थी । ना
वर्तमान तिर्हुतपर राज करते थे । इस वंशके राजा
वैशाल वंश चलाया । करूषसे कारूष उत्पन्न हुए,
योद्धा थे और जिन्होंने बघेलखण्ड दखल किया ।
और प्रांशुके बारेमें कोई विशेष विवरण नहीं
पृषध्रको सम्भवतः उनका अंश नहीं दिया गया ।

इलाके पुत्र पुरूरवा ऐल प्रतिष्ठान (वर्तमान पीह
पैठण)पर राज करते थे । उन्होंने ऐल या चन्द्रवंश
उनके पुत्र आयु पिताके पीछे प्रतिष्ठानके राजरि
बैठे और दूसरे पुत्र अमावसुने कान्यकुब्जवंश च
उनके पाँच पुत्रोंमेंसे नहुष आयुके पीछे राजगद्दीके
हुए । क्षत्रवृद्धने काशीमें अपना राज्य स्थापित कि
अनेनसने क्षत्रधर्माओंको उत्पन्न किया । नहुषके
छः पुत्र थे । ज्येष्ठ पुत्र यति संन्यस्त हो गये औ
यज्ञकर्ता ययाति पितृराज्यके उत्तराधिकारी हुए ।
देवयानी और शर्मिष्ठासे विवाह किया । देवयानी
यदु और तुर्वसु—दो पुत्र हुए और शर्मिष्ठासे अनु,
पूरु । इन सबके वंश खूब बढ़े । पूरुने वंशकी मुख्
चलायी । उनसे पौरव उत्पन्न हुए, जो कौरव-
पूर्वपुरुष थे । यदुसे यादव-वंश चला—जिसमें हैहय,
वृष्णि, सात्वत आदि शाखाएँ सम्मिलित हैं । अनुसे
वंश चला । आनवोंकी यौधेय, सौवीर, कैकय आदि
फैलीं । द्रुह्युके वंशधर भारतके बाहर म्लेच्छदेशों
और तुर्वसुकी शाखा पीछे पौरवोंमें मिल गयी ।

मनुसे भारतीय युद्धतक लगभग ९५ पीढ़ियाँ
गयी हैं । भारतीय युद्धके उत्तरकालीन वंशोंके लि
भविष्य कालकी क्रियाका प्रयोग करते हैं और उन्हें
गिनते हैं । इनका वर्णन केवल सात ही पुराणोंमें है

हम वेदों और पुराणोंका ऐतिहासिक मूल्य तुलनात्मक
ानेका यत्न कर सकते हैं। इस विषयमें इतिहासज्ञों-
ड़ा मतभेद है। कीथको पुराणोंका ऐतिहासिक
ननेमें बहुत सन्देह होता है। ऋग्वेदमें जिसका
निर्देश नहीं मिलता, ऐसी किसी भी पौराणिक
ऐतिहासिकता माननेमें उनका मन निस्सन्देह नहीं
ार्जीटरकी दृष्टि इससे सर्वथा विपरीत दूसरे छोरपर
। वे वेदोंकी अपेक्षा पौराणिक कथाओंको अधिक
मानते हैं। वेदोंकी बातोंको वे ब्राह्मण-परम्परा कहते
त्रिय नाम धारण किये हुई परम्परा भी इतिहासका
हो, ऐसी बात तो नहीं है। वेदोंके पक्षमें दो
य ही प्रबल हैं; वेद एक तो पूर्वकालीन हैं और
के पाठ ज्यों-के-त्यों सुरक्षित हैं। फिर भी, पुराणोंमें
अविश्वसनीय बातोंके होते हुए भी, ऐतिहासिक
राणोंको अप्रमाण कहकर त्याग नहीं दिया जा
यह समझना बहुत बड़ी भूल है कि पुराणोंके
सत्यको निर्वासित कर दिया है।

, यथार्थमें वेदों और पुराणोंकी बातोंमें परस्पर
ध नहीं है। जिस रूपमें आज ऋग्वेद उपलब्ध है,
पाञ्चालकी देन है। इसमें स्वभावतः उस देशके
मुख्यतया वर्णन है, दूसरोंका वर्णन केवल
ा गया है। वेदोंमें जिन राजाओंके नाम आते हैं,
ाणोंमें नहीं मिलते, वे सम्भवतः छोटे-छोटे वंशोंके
रदार थे और इस कारण पुराणोंकी वंशावलियोंमें
ाये। यह भी सम्भव है कि एक ही पुरुषका भिन्न-
से इन दोनोंमें वर्णित वंशावलियोंमें निर्देश हुआ हो।
वंशावलियाँ जिन अंशोंमें खण्डित हैं, वहाँ ऋग्वेदमें
जा बैठाये जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि
वंशावलियोंका संशोधन करनेमें ऋग्वेद ही साधन
जब हम देखते हैं कि पुराणगत वर्णन वैदिक
मलता है, तब यह उचित ही है कि जिस विषयमें
ौन है, उस विषयमें पुराणोंका कथन सत्य माना
म्परागत इतिहास लिखनेकी ठीक पद्धति यही होगी
और पुराणों—दोनोंका संयुक्त प्रमाण माना जाय,
के वर्णन मिलते हैं; और जहाँ दोनोंके परस्परविरोधी
लें, वहाँ सामञ्जस्य स्थापित करनेका यत्न किया

पुराणोंकी भौगोलिक पृष्ठभूमि—प्रथम मनुके
उनके राज्यान्तर्गत जगत्का वर्णन आता है
निर्द्धारणके समान इस वर्णनका बहुत-सा भाग काल्प
जगत्का इस प्रकार वर्णन है कि इसमें सात
द्वीप हैं। प्रत्येक द्वीप एक-एक समुद्रसे घिरा है
इन समुद्रोंमें कोई घृतका समुद्र है, कोई दूधका;
विविध द्रव्योंके समुद्र हैं। इन द्वीपोंमें मध्यवर्ती
है, जिसके चारों ओर क्षारसमुद्र है। जम्बूद्वीपका मु
भारतवर्ष है। भरतकी संतानोंके नामपर यह देश
कहलाया। इसके उत्तर भागमें हिमालय है और
समुद्र। इसमें सात मुख्य पर्वत हैं—महेन्द्र, मल
शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र। भार
ओर किरात रहते थे, पश्चिम ओर यादव औ
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। हिमालय
समुद्रोंसे निकलनेवाली नदियोंके नाम तथा विविध
रहनेवाली विविध जातियोंके नाम दिये गये हैं।
तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी ऐसी ही नामावलियाँ
यवन, शक और पह्लवोंका जिक्र है। ये लोग ई
दूसरी और पहली शताब्दियोंमें भारतवर्षमें आये
भी जिक्र है। हूणोंने ईसाकी छठी शताब्दीमें गुप्त
ध्वंस किया। पुराणोंमें इनका वर्णन यह सूचित
कि भौगोलिक नामावलियाँ समय-समयपर नये नाम
पूरी की गयी हैं।

कालसम्बन्धी पौराणिक भावना—पुराणोंमें सृ
के जो विविध वर्णन हैं, उनसे युग-मन्वन्तर
विचार करना आवश्यक होता है। मनुष्योंका
देवताओंका एक दिन और रात है। १२००० दिव
अर्थात् मनुष्योंके ४३,२०,००० वर्षोंका एक च
महायुग होता है। इस महायुगके कृत, त्रेता, द्वा
कलि—ये चार युग होते हैं। इनकी वर्षसंख्याक
तारतम्य यथाक्रम ४:३:२:१ इस हिसाबमें बैठ
प्रत्येक युगके आगे और पीछे एक-एक सन्धिच
युगके दशमांशके बराबर होता है। एक सहस्र
(अर्थात् १०००×४३,२०,००० मानुष वर्षोंका)
एक दिन और रातके बराबर होता है। इस एक दि
कल्प कहते हैं। प्रत्येक कल्पमें मानव-जातिके आ

ानोंने इस विषयमें अनेक वाद प्रतिपादित किये हैं। तक मन्वन्तर-चतुर्युगके रहस्यका कोई समाधान-उद्घाटन नहीं हुआ। पार्जीटर कृत, त्रेता, द्वापर रूपसे युगोंके विभाजनका कोई ऐतिहासिक मूल अनुमान करते हैं। भारतीय युद्ध द्वापरके अन्तमें के बाद कलिका आरम्भ हुआ माना जाता है। दाशरथि राम त्रेता और द्वापरके बीचमें हुए। नाशके साथ कृतयुगका अन्त और सगरके राज्यके का आरम्भ हुआ।

णोंका समय—पुराणोंके समयके सम्बन्धमें बहुत है। कुछ समय पहले यह सोचा जाता था कि हित्यमें पुराणोंका निर्माण सबके पीछे हुआ है त एक सहस्र वर्षोंके अंदर यह सारी रचना हुई पुराणोंके जो उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलते हैं, ह विचार कट जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं पुराण अपने वर्तमान रूपमें किसी एक ही हीं रचे गये हैं; किसी पुराणके कोई-कोई अंशतक र समयके रचे दीखते हैं। पुराणोंमें घटाना-बढ़ाना, करना, मिश्रण करना इत्यादि क्रम बराबर चलता है। अतः पुराणोंका समय निर्द्धारित करनेमें हमें र्वतन अंशोंका ही समय विचारना होगा, बहुत ंशोंका समय नहीं। पुराणोंके प्राचीनतम रूप युद्धके समय निस्सन्देह विद्यमान थे, मेगास्थनीजके थे ही। साहित्य और शिलालेखोंके आधारपर यह सकता है कि वर्तमान पुराण ईसाके पूर्व और पश्चात्-म्भिक शताब्दियोंके हैं।

णोंका ऐतिहासिक मूल्य—पुराणोंके वर्तमान रूप हैं र पीछेके; पर इनमें वंशपरम्पराका जो इतिहास वह प्राचीनतम है और इसकी बहुत-सी सामग्री ौर मूल्यवान् है। अतः पुराणोंका प्रमाण सर्वथा त्याज्य ा कोई कारण नहीं है। पुराणोंके सम्बन्धमें विद्वानोंका रुख समय-समयपर बदलता रहा है। कलाओं और ऐतिहासिक घटनाओंका गड्डमगड्ड था 'युगों' के सम्बन्धमें उनकी कुछ विचित्र ही होनेके कारण भारतीय इतिहासके संशोधनके आरम्भ-ईसाके १८वीं शताब्दीके अन्तिम दशकों तथा

(कुशद्वीप) जाकर नील नदीके उद्गमस्थानका पत और उससे पुराणोंके वर्णनका समर्थन हुआ। तब आस्था जमने लगी थी। ताम्रपत्रों और मुद्राओंसे ऐ तथ्य ढूँढ़ निकालनेकी प्रवृत्ति इसी समय उदय हु पुराणोंका मूल्य घटने लगा और कहीं-कहीं परम्पराका इतिहासवृत्त अयथार्थ भी प्रमाणित हु बातोंमें बौद्ध ग्रन्थोंने भी पुराणोंकी बातें काट प्रकार सन्देह बढ़नेसे पुराणोंपर अविश्वास उत्पन्न पिछली शताब्दीके आरम्भिक दशकोंमें विल्सनने पद्धतियुक्त अध्ययन किया और विष्णुपुराणका अनुवाद प्रकाशित किया। इसकी एक बहुत बड़ी भूमिक लिखी थी और आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक ि भी जोड़ी थीं। इससे संस्कृत-साहित्यके इस महान् ओर यूरोपियन विद्वानोंका ध्यान विशेषरूपसे हुआ। पुराणोंकी अबतक जो अनुचित उपेक्षा हे उसका अन्त हुआ और स्वतन्त्र प्रमाणद्वारा सम होनेकी हालतमें पुराण विश्वास-स्थापनके योग्य सम लगे। पर पुराणोंका विशेष अध्ययन तो इसी श आरम्भमें पार्जीटरने किया। उनके धैर्य और अध्यव अनुसन्धानका यह फल हुआ कि पुराणोंकी ऐ सामग्रीका एक पर्यालोचनात्मक विवरण जगत्‌वे आया। पुराणोंमें जो ऐतिहासिक वर्णन हैं, उनका बहुत प्रबल हुआ है। स्मिथने यह प्रमाणित कि मत्स्यपुराणमें आन्ध्रोंका जो वर्णन है, वह प्रायः इतिहासके विद्वानोंने अब यह जाना है कि मौर्योंवे विष्णुपुराणका और गुप्तोंके विषयमें वायुपुराणका वर्ण नीय है। पुराणोंकी ओर अबतक जो कुछ ध्यान दि था, उससे कहीं अधिक ध्यान देनेके पात्र वे अब सम हैं। पुराण अब भारतके परम्परागत इतिहासवृत्तके ए बड़े प्रमाण माने जाने लगे हैं। ऐतिहासिक खोजके लिये आजकल पुराणोंका विशेषरूपसे अ त्मक अध्ययन होता है। आधुनिक इतिहासकार औ तत्त्ववित् रैप्सन, स्मिथ, जायसवाल, भांडारकर, राय प्रधान, रंगाचार्य, आळतेकर, जयचन्द्र आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों, समीक्षाओं, प्रबन्धों और पौराणिक सामग्रीका उपयोग किया है। भारतीय और सभ्यताके व्यापक इतिहासके लिये पुराणोंका ब है। क्योंकि इनमें अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, शासन

इतिहासकारको विविध आख्यानों और उपाख्यानोंसे तिहासिक और सांस्कृतिक तथ्य अलग करके निकाल । ।

त दो सहस्र वर्षोंसे भी अधिक कालसे रामायण भारतके साथ पुराण भी भारतीय जीवनको अपने आदर्श पुरुषोंके चरित्रोंसे अनुप्राणित और प्रभावित आ रहे हैं। राम, कृष्ण, हरि, शिव आदि नाम करोड़ों मनुष्योंके जीवनधन हैं। दीन-दुखी जनता-वेच्छिन्न स्नायुओं और भग्न हृदयोंको बल देकर में आशा-विश्वासका संचारकर पुराणोंने उन्हें उबारनेका काम किया है। पाश्चात्य शिक्षाके ऐसे लोग पहले निकले, जो पुरातन तथा परम्परा वस्तुकी हँसी उड़ाना ही जानते थे। उनकी दृष्टिमें मूल्य कूड़े-करकटसे अधिक नहीं था। यह महान् शुभ कि पुराणोंके सम्बन्धमें अब आधुनिकोंकी दृष्टि बदल गीताप्रेस और 'कल्याण'ने हमारी पूर्व परम्पराकी रक्ष बहुत बड़ा काम किया है। यह दुर्भाग्यकी बा पुराणोंके पाठ बहुत भ्रष्ट हो गये हैं। हम यह आशा हैं कि पाठपरीक्षणके पाश्चात्य मानके अनुसार जाँ पुराणोंके संशोधित संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होंगे

आदर्श भ्राता

(श्रीलक्ष्मण और भरत)

(रचयिता—पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

मान रामको सदैव अनुगामी रहे,
राम-प्रेममें ही प्राण रहता प्रवण-सा।
सुखी तो सुखी, रामके दुखोंसे दुखी,
रामकी ही सेवाका सदैव लिये प्रण-सा।
त तज सहे आतप विपिन वात
रामहित हेतु किये जीवनको पण-सा।
ह प्रेरणा सुपुत्रने जहाँसे, ऐसी
माई हो सुमित्रा, लघु भाई हो लषण-सा॥

(२)

चञ्चरीक चम्पा-सी, जनक-जननीसे प्राप्त
राज-सम्पदा भी तृण-तुल्य ठुकर
भाईके विरहमें सुहाई ठकुराई नहीं,
गूढ़ प्रेमसिन्धुमें असीम बाढ़ अ
राम-वनवासमें भी हेतु अपनेको मान,
शोचवश लोचनोंमें अश्रुधार छ
क्षण-क्षण वेदन अपार अधिकाई अहो!
भारतमें भरत-सदृश कौन भा

(३)

सेवारत होके बन्धु-चरण पयोद पेख
चातक चतुर-सा महान मोद पाता जो।
लायक लषण-सा सहायक सतत रह
भाईके सुयशकी पताका फहराता जो।
तन, धन, प्राण—सब बन्धु-चरणोंमें चढ़ा
पादुका पदोंकी सिर ऊपर उठाता जो।
क्लेश सह कठिन निदेश पालता है सदा,
भ्राता वही भायप भरत-सा निभाता जो॥



* इस निबन्धके परम आदरणीय विद्वान् लेखक वर्तमान युगके एक प्रसिद्ध अन्वेषक और बड़े ही विचारशील पुरुष हैं।

कर्म-विज्ञान

(लेखक—रायबहादुर पंड्या श्रीबैजनाथजी, बी० ए०)

ृतिमें कारण और कार्यका नियम सब लोकोंमें व्याप्त
येक कारणका परिणाम कोई-न-कोई अवश्य होगा।
ा नियम है कि क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया समान
केंतु विपरीत दिशाकी होती हैं। यह नियम सब लोकोंमें
है। हमारे प्रत्येक कार्यमें स्थूल कार्यके अतिरिक्त भाव
ाचारकी भी क्रिया होती है। प्रथम हम किसी कार्यके
सोचते हैं, तब वह विचार सोची वस्तुपर पहुँचकर
ा करता है। उस विचारके आते ही हमारे मनमें—
हमें वैसा भाव—क्रोध, लोभ, स्नेहादि वैसे भाव
ोते हैं और बाहर निकलकर दूसरोंपर वैसा प्रभाव
। इतनी क्रिया सूक्ष्मरूपसे हो चुकनेपर स्थूलकर्म अपना
ूल जगत्‌में करता है। इस प्रकार प्रत्येक कर्मका
स्थूल-देहमें, वासना-देहमें तथा मनोमय कोशमें
ागा। यदि भली प्रकार उछलनेवाली रबरकी गेंद
ो सीधे धरतीपर मारें तो वह उतने ही वेगसे उछल-
: हाथमें उतनी ही शक्तिसे लगेगी। यह साधारण
स्थूल फल हुआ। इसके साथ-साथ भाव और विचारका
होता है। मान लें कि दो व्यक्तियोंने दो उद्यान
हेतार्थ म्युनिसिपलबोर्ड (नगर-प्रबन्ध-समिति) को
दिये। उनमेंसे एकके मनमें केवल परोपकारका भाव
दूसरेके मनमें यह बात थी कि इस सेवाके कारण
मुझे अधिक पुरस्कार या उपाधि मिलेगी। ऐसी
थूल कार्यका फल तो दोनोंको समान मिलेगा; पर
ाव और विचार भिन्न होनेसे उनके भावों तथा
ा विपाक दोनोंके फलोंमें भेद कर देगा। जिसकी
ार्थपूर्ण है, उसे उस दानसे चित्तमें आनन्द, शान्ति
रेत्रिक उन्नति प्राप्त नहीं होगी, पर दूसरेको अवश्य
ो।

के तीन भेद कहे जाते हैं—प्रारब्ध, सञ्चित और
। हमारे समस्त पूर्व कर्म सञ्चित हैं। उसमेंसे जितना
देवता इस जन्ममें हमसे भुगतवाना चाहते हैं, वह
न गया है। उसे हमें अवश्य भोगना पड़ता है।
सञ्चित आगे जाकर क्रमशः प्रारब्ध बनेगा।
वह है, जिसे हम अभी कर रहे हैं। एक ही कर्म
र परिस्थितियोंमें किये जानेपर पृथक्-पृथक्
न करता है।

कर्मका साधारण फल इस प्रकार होता है—उ
कार्योंका फल सुख और अच्छी परिस्थितिका मिलना,
हानि करनेसे बुरी परिस्थिति या पीड़ा, ऊँची-नीची इ
वैसी योग्यता या सामर्थ्यकी प्राप्ति, दीर्घकालीन विच
स्वभाव बनना, अनुभवसे ज्ञान होना, दुःखपूर्ण उ
पुण्य-पाप-विवेकिनी बुद्धिकी वृद्धि, निःस्वार्थ सेवाक
आध्यात्मिकताकी प्राप्ति आदि।

ऊँचे लोकों (अन्तर्जगत्) में भलेबुरे कर्म
बहुत बड़ा होता है। भूलोक (स्थूल जगत्) मे
जो शक्ति है, उसी कर्मकी वासना (इच्छा) क
भुवर्लोक (वासनादेह) में उससे पाँचगुनी और
कोषमें—विचारकी शक्ति पचीसगुनी। इस प्रक
अधिक काम करती है। उच्च विचार कारण-देहमें
पाँचगुना अर्थात् १२५ गुना काम (प्रभाव) क
यदि हमारे कर्मसे किसी दूसरेके जीवनमें विशेष उ
विशेष बाधा पड़ती है, तो वह हमारे पास स्वतः
लेनेको आकर्षित होगा। स्वार्थपरायणतासे मनुष्यक
रुक जाता है। निःस्वार्थ प्रेम और वैसी ही सेवा
हमारी उन्नति बहुत शीघ्र होती है। इसीलिये हमें
इन दोनों सद्गुणोंका सदैव अभ्यास करते रहना चाहिये
विपरीत निर्दयतासे चिरस्थायी बीमारी होती है औ
दुःख मिलते हैं। यदि निर्दयता जान-बूझकर की
पागलपन भी हो सकता है।

ईश्वरको कर्माध्यक्ष कहा गया है। कर्मका निय
उसकी इच्छा है। प्रकृतिके सब बल उसीसे निक
यह कर्म-नियम भी उसीसे निकला है। जब हम
दुःखका समानभावसे ग्रहण करके केवल जगत्-ह
लिये श्रीकृष्णार्पण-भावसे कर्म करेंगे तो
विपाकके नियमसे मुक्त हो जायँगे। भगवान्‌ने बता
अध्यात्म-मार्गका थोड़ा-सा भी आचरण महाभयसे ब
है (गीता २। ४०)। साधारण अज्ञानी मनुष्य पा
धर्म-अधर्म, भलाई-बुराईको अच्छी प्रकार नहीं स
उनके कर्म मिश्रित रहते हैं; पर अध्यात्मविद्याके ज
इन बातोंको भली प्रकार समझ-बूझकर कर्म करते हैं।

हमारे चरित्रमें जो बुराई हो, उसे हमें अभीसे स

ाहिये। उसे जीत लेना चाहिये। नहीं तो हमारे दुर्गुण ोंतक बने रहेंगे। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें 'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्' (२। ३३)। अर्थात् मिटानेके लिये उनके विपरीत गुणोंका मनन और ा करना चाहिये। यदि हममें हिंसात्मक भाव है तो

अहिंसाका मनन और अभ्यास करना चाहिये। असत्यकी आदत मिटानेके लिये सत्यका अभ्यास, स्वभाव दूर करनेके लिये अस्तेयका मनन और अभ्य चाहिये। ऐसे ही विपरीत सद्गुणोंके आश्रयसे दुर्गु करना चाहिये।

उपासनाका तत्त्व

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी)

ओंकी सभी प्रकारकी संस्कृतियोंका मूलस्रोत वेद है, ऐहिक एवं पारलौकिक—सभी प्रकारके कल्याणोंका ापने काण्डत्रयके द्वारा करता है। कर्म, ज्ञान और —ये वेदके काण्डत्रय हैं। सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् । १ की श्रुति है—

खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।

ात् यह सब निश्चय ब्रह्म ही है (सारा जगत् —ब्रह्मका शरीर है; अतएव सब ब्रह्म ही है)। उसी ब्रह्मके द्वारा उत्पन्न होता है, उसीमें इसका ा है और यह उसीमें चेष्टा करता है; इसलिये शान्त होकर उसीकी उपासना करनी चाहिये। इसी हदारण्यक० ३। ७। ३-२२ में भी जगत्को ब्रह्मका ा गया है। एवं—

त् सर्वं शरीरं ते। (वाल्मी० ६। ११७। २५)

यह रामायण-वाक्य है। भगवान् विराट्-रूप-प्रदर्शनमें को अपने शरीररूपमें दिखाते हैं।

प्रमाणोंसे निष्पन्न है कि जैसे मनुष्यके हाथ-पैर और (सभी अङ्ग उसके सेवक रहते हैं, यथा—

ेवक कर पद नयन से मुख सो साहेबु होइ।
(मानस अयो० ३०६)

वैसे ही यह सारा जगत् ब्रह्मका शरीर होनेसे उसका इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' खण्डके साथ ही उसकी उपासनाकी व्यवस्था भी करती कहती है कि यह जगत् उसी ब्रह्मके द्वारा उत्पन्न होता लीन होता है और उसीमें चेष्टा करता हुआ यह ा है—अर्थात उसीके द्वारा इसकी पालन-व्यवस्था

तात्पर्य यह कि जैसे किसी खेतको जो बोता है रक्षा (पालन) करता है और जिसके यहाँ उस खेत अन्न जाता है, वही उस खेतका स्वामी माना जाता वही उस खेतमें उत्पन्न हुए अन्नोंका भोक्ता होता खेतसे उत्पन्न अन्न उसीके लिये रहता है, वह स्वेन अन्नका उपभोग करता है—उसी प्रकार जगत्की पालन और लय-व्यवस्थाका आधार होनेसे सच्चि ब्रह्म श्रीरामजी ही इस जगत्के जीवोंके स्वामी हैं औ हैं। जगत् उक्त अन्नवत् उनका परतन्त्र-भोग्य परतन्त्रभोग्यत्वको 'शेषत्व' एवं 'दासत्व' कहा ज यों विचारकर जगत्के सभी जीवोंको ईश्वरकी करनी चाहिये।

श्रीगोस्वामीजीने भी उक्त तीनों व्यवस्थाएँ कह ही उपासना करनेकी बात कही है—

दूरि न सो हितू हेरि हिएँ ही है
……जगदीस, जीवन जीव को, जो साज सब सब को
हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो
सोइ जानकीपति मधुर मूरति, मोदमय मंग
ठाकुर अतिहि बड़ो, सील, सरल सुठि।
ध्यान अगम सिवहू, भेंट्यो केवट उठि॥
……स्वामी को सुभाव कह्यो……
जपि नाम करहिं प्रनाम, कहि गुन ग्राम, रामहि धरि
बिचरहिं अवनि अवनीस चरन सरोज मन मधुकर
(बिनय०

पदके इस प्रसङ्गमें पहले अन्तर्यामी श्री जगदीश कहा गया है; फिर 'हरिहि हरिता' इस पदसे श्री पालनद्वारा केशवा और श्रीशिवजीका तत्व-

ो आदि त्रिदेवोंकी शक्तियोंके कार्योंका आधार भी जीको ही बताया गया है। उनकी मोद-मङ्गलमयी मूर्ति उनके सौलभ्य आदि माधुर्य-गुणोंका वर्णनकर उनके होनेके योग्य स्वभावका वर्णन किया गया है, तब चरणमें उपासना करनेकी रीति कही गयी है। इस कको पढ़कर उपास्यदेवके ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों गुणोंको समझना चाहिये।

स प्रकार ईश्वरके स्वरूपपर विचार करनेसे जीवोंको उपासना करनेकी व्यवस्था ज्ञात होती है—

मैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५। ७)

गवान् अर्जुनसे कहते हैं कि मेरा ही सनातन अंश ।

अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

(मा० उ० ११६)

र्थात् ईश्वरका अंश जीव अविनाशी और सच्चिदानन्द- है। अंशका अर्थ भाग (हिस्सा) होता है। यथा—

अंशभागौ तु वण्टके। (अमरकोष)

र्थात् अंश, भाग और वण्टक—ये तीन भागमात्र ाँक आदि बाटोंके नाम हैं। जो वस्तु जिसके भाग) की होती है, वह उसकी ही होकर रहती है और उपभोगके लिये समझी जाती है। जैसे किसी पिताने ार पुत्रोंको एक रुपया दिया, तो उसके चार-चार त्येक पुत्रके भागके हुए। वे भागवाले पैसे पुत्रोंके हैं, पभोगके लिये हैं। उसी प्रकार ईश्वरके अंश होनेसे रके भोग्य हैं। अतएव इन्हें हर अवस्थामें उसीके (सेवक) होकर रहना चाहिये। यही स्थिति है।

गोस्वामीजीने भी जीवको ईश्वरका चरण-सेवक ही —

ंघ्रि सेवक बिभीषण बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।

(बि० ५८)

हे श्रीरामजी!) यह जीव स्वरूपतः आपके सेवक है; परंतु यह प्रवृत्तिरूपी लङ्कापुरीमें विभीषण- ान मोहरूपी रावणके परिवार कामादि दुष्टोंके बीचमें त रहता है। भाव यह कि यह स्वरूपतः आपके

जानेसे अत्यन्त दुखी है। इसका यह दुःखभार इस स्वरूप-प्रयुक्त भगवदुपासनाको भुला देनेसे आ प

यथा—

मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि……

सब प्रकार मल भार लाग निज नाथ चरन बिसराए

(बि

तथा—

बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल

भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे क

अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति न

(मा० उ०

इस प्रकार जीव-स्वरूपका विचार करनेपर हरि-उ इसका स्वरूपप्रयुक्त धर्म निश्चित होता है।

उपासनाके भेद

यह जीव अपनी (उपर्युक्त) स्थितिसे च्युत होकर मोहित हो रहा है। इसके उद्धारार्थ उपासनाके द बतलाये गये हैं—एक भगवान्‌की उपासना और प्रत्यगात्मा (प्रकृतिवियुक्त जीवात्माके शुद्धस्वरूप उपासना। इन दोनों उपासनाओंके विषयमें अर्जुनने भ से पूछा है—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः

(गीता १२

इस प्रकार निरन्तर प्रयत्नमें लगे हुए जो आपकी भलीभाँति उपासना करते हैं और जो अव्यक्त (आदि इन्द्रियोंसे प्रकट न होनेवाले) अक्षर (प्रत्यगा जीवात्मा) की उपासना करते हैं, उनमें उत्तम ये कौन हैं?

इस श्लोकमें दोनों उपासनाओंकी बात कही ग इसके आगेके श्लोक २, ६-७ में भगवान्‌की उपासना श्लोक ३, ४, ५ में जीवात्म-उपासनाका वर्णन है। श्रीरा भाष्य देखिये।

अर्जुनका प्रश्न यहाँपर भगवदुपासना और जी साक्षात्कारके परस्पर तारतम्य-ज्ञानके लिये है कि किससे मोक्ष-प्राप्ति होती है। इसपर भगवान्‌ने जीवात्म-साक्षात्क अपेक्षा भगवदुपासनाको ही सुगम और शीघ्र फ

दोनों उपासनाओंके सम्बन्धमें श्रुति-प्रमाण भी हैं—

मेव विदित्वाति मृत्युमेति

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।

(श्वेता० ३ । ८)

मेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति-
ः स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः ।

(छान्दो० ८ । १२ । ३)

इत्यादि श्रुतियाँ भगवदुपासनाको मोक्षोपाय कहती हैं।

—

ं त्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये श्रद्धां तप इत्युपासते तेऽर्चिष-
वन्ति ······ (छान्दो० ५ । १०१)

ऱ एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धाः सत्यमुपासते
सम्भवन्ति ······ (बृह० ६ । २ । १५)

इत्यादि श्रुतियोंमें पञ्चाग्निविद्योपासककी मोक्षप्राप्ति
है । पञ्चाग्निविद्या तो जीवात्माकी ही उपासना है ।
त्यगात्माकी ब्रह्मात्मरूपसे उपासना की जाती है ।
के उपबृंहणरूप रामायणमें ये दोनों उपासनाएँ
रूपमें हैं ।

—

या ज्ञानं तथोपास्यमिति शक्तित्रयीशितुः ।
ैका बहुविस्तारा फलस्कारा प्रमात्मिका ॥
सां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका ।
नशक्तिश्च कौसल्या वेदो दशरथो नृपः ॥
यायां कलहो दृष्टो दृष्टा प्रीतिरुपासने ।
ानेनात्मसुखं नित्यं दृष्टं निर्हेतु निर्मलम् ॥

(शिवसंहिता १८ । ४५-४७)

—अर्थात् राजा दशरथ वेदस्वरूप हैं, उनकी तीनों शक्तियाँ
याँ) काण्डत्रय (कर्म, ज्ञान, उपासना)-रूपा हैं ।
क्ति (कर्म) श्रीकैकेयीजी, उपासना-शक्ति श्रीसुमित्रा-
र सरस ज्ञान (पराभक्ति)-रूपा श्रीकौसल्याजी हैं ।
कलह देखी जाती है, इससे श्रीकैकेयीजीके द्वारा
हुआ । उपासनामें प्रीति होती है, इससे श्रीसुमित्राजीमें
ी ही व्यवस्थाएँ हैं । और ज्ञानमें शुद्ध आत्मसुख
, इससे श्रीकौसल्याजीमें अलौकिक विवेकद्वारा सुख-
स्था है ।

नमें उपासनाशक्ति श्रीसुमित्राजीके दो पुत्र हैं—एक
णजी ब्रह्म श्रीरामजीके उपासक हैं, और दूसरे श्री-

शत्रुघ्नजी प्रकृतिवियुक्त जीवात्मस्वरूप श्रीभरतजीके
हैं । उपासनाकी उक्त दोनों वृत्तियाँ ही यहाँ उनके पु
हैं । अतः भगवदुपासनाके आदर्शस्वरूप श्रीलक्ष्मणजी
प्रकृति-वियुक्त शुद्ध जीवात्म-उपासनाके आदर्श श्री
जी हैं ।

भगवदुपासना

श्रीलक्ष्मणजीने भगवदुपासनाकी रीति इस
दिखायी है—

बारेहि तें निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति

इस प्रकारसे सत्ताईस वर्षकी अवस्थातक इन्होंने
में रहते हुए सामान्य धर्मके साथ-साथ अपनी उपास
निबाही । जब इन्होंने देखा कि अब स्वामी वनको
हैं, अतः अब सामान्य धर्मको साथ रखनेपर मेरी
धर्मरूपा शरणागतिपुरस्सर स्वामीकी उपासनाका निव
होगा, तब इन्होंने सामान्य धर्म छोड़कर विशेष ध
आश्रयण किया । अतः स्वामीके साथ रहकर
शेषत्व (उपासना)-लाभके लिये इन्होंने प्रभु श्रीर
शरणागति की ।

श्रीगोस्वामीजीने श्रीलक्ष्मणजीके इस प्रसंगको इ
लिखा है कि पहले श्रीरामजीने अपनी (सामान्य
दृष्टिसे श्रीलक्ष्मणजीको माता-पिताकी सेवा एवं प्र
आदि (सामान्यधर्म) की शिक्षा दी थी और साथ
धर्मकी प्रशंसा भी की थी; [क्योंकि श्रीरामजी सामा
प्रकाशक हैं, श्रीलक्ष्मणजी विशेष धर्म (आर्त्त-प्रप
उपासना) के, श्रीभरतजी विशेषतर धर्म (दृप्त-प्रप
उपासना) के और श्रीशत्रुघ्नजी विशेषतम धर्म (
सेवा-निष्ठा) के प्रकाशक हैं ।] तब श्रीलक्ष्मणजीने
विशेष धर्मकी दृष्टिसे उसकी विवेचना करते हुए क

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुला
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसा

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम अपनी
नरबर धीर धरम धुर धारी । निगम नीति कहुँ ते अ
मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला । मंदरु मेरु कि लेहिं
गुर पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ प
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम नि
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंत
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय

रुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
मुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ समीत ॥७२॥
बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
(मा० अयोध्या०)

ोसुमित्राजीने उपासनाकी रीतिका जिस प्रकार वर्णन ै, यह उन्हींके मधुर वचनोंमें सुनिये—

ुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
ु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
ानप्रिय जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
यँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
रे भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥ ७४ ॥
जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
ाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥
भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
कृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
ु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥
यहु जेहिं तात तुम्हरें राम सिय सुख पावहीं।
ातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
उ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥
(मा० अयोध्या०)

भगवान्‌की उपासनाका तत्त्व है, जो साक्षात् ाक्तिके द्वारा वात्सल्य-दृष्टिसे प्रिय पुत्रके लिये में कहा गया है। श्रीलक्ष्मणजीने इसी आदेशके चौदह वर्ष वनमें भगवान् श्रीरामजीकी उपासना की वनवासके समान भगवान् अर्चारूपमें सर्वत्र प्राप्त क्त उपदेशके अनुसार आराधनाकर कृतार्थ होना।

में शक्ति-बाधासे चैतन्य होनेपर श्रीलक्ष्मणजीने

हृदयँ घाउ मेरें पीर रघुबीर।
पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराइ
मोहि कहा बूझत पुनि-पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ केवल कांति मोल
तुलसी सुनि सौमित्रि बचन सब धरि न सकत धीरौ
उपमा राम लखन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै
(गी० लं०

भावार्थ—'मोहि कहा बूझत ····'—इस पूरे श्रीलक्ष्मणजीने सुग्रीव आदिसे उपासनाके तत्त्वका किया है। जब वे शक्ति लगनेपर संजीवनीद्वारा चैतन्य तब उनसे श्रीसुग्रीव आदिने पूछा कि 'अब घावक कैसी है?' इसपर उन्होंने कहा है कि 'इसकी पीड़ा श्रीर जीसे पूछिये। घाव तो मेरे हृदयपर दीखता है; परन्तु पीड़ा उन्हींको है, जिनकी वस्तुरूप मैं हूँ। मुझमें ज सेवाके गुण हैं, जिनपर रीझकर स्वामी मेरी बाधापर रो वे गुण वस्तुतः उन्हींके द्वारा मुझे प्राप्त हैं। जैसे पाठकके द्वारा पाठ प्राप्त होता है और फिर वह पाठक सुनकर रीझता है, वैसे ही स्वामी मुझपर प्रसन्न हुए इसमें मेरे गुण-वैभवका प्रभाव नहीं है।' आगे अपनी कहते हैं—

जैसे किसी हीरेमें यदि कान्ति और मोल (रहते हैं तो राजा उसे धारण करता है और फिर उस धारण करनेका सुख एवं उसकी शोभा तथा उसके फूट चोरी जाने आदिकी हानिकी चिन्ता उस राजाको ही है, वैसे उपासकमें उपासनासम्बन्धी विवेकरूपी एवं सेवा-निष्ठारूपी मोल रहनेपर उपास्य उसकी रखता है (उसका योग-क्षेम वहन करता है)। उपा अपनी चिन्ता नहीं करनी पड़ती; परंतु हीरेके समान राजारूपी स्वामीके परतन्त्र-भोग्य (शेषत्व) रूपमें ही स्थिति रहनी चाहिये

इन रीतियोंसे श्रीलक्ष्मणजीने उपासनाशक्तिके उ मार्गपर स्वामीकी उपासना की है। वनवासके उ स्वामीके राज्यग्रहण करनेपर इन्हें फलरूप नित्य शेषत्व हुआ; यथा—

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
(मा०

। इन्हें नित्य शेषत्वकी प्राप्ति है । इसी भावको
रनेके लिये श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामजीकी परधाम-
ष्टरूपमें नहीं लिखी ।

प्रकार भगवदुपासनाकी रीति श्रीलक्ष्मणजीने प्रकट की।

प्रत्यगात्म-उपासना

र लिखा गया कि उपासना-शक्ति श्रीसुमित्राजीके
सें एक श्रीलक्ष्मणजी भगवदुपासक हैं और उनके दूसरे
शत्रुघ्नजी प्रत्यगात्मस्वरूपके उपासक हैं । श्रीलक्ष्मण-
पासना कुछ लिखी गयी । श्रीशत्रुघ्नजीकी आगे कुछ
ती है—

त्रुघ्नजीने प्रकृति-वियुक्त शुद्ध प्रत्यगात्मस्वरूप
की उपासना की । उपर्युक्त क्रिया-शक्ति श्रीकैकेयी-
त्र धर्मफल-स्वरूप श्रीभरतजी हैं । शुद्ध निष्काम
अनुष्ठानसे प्रकृति-वियुक्त प्रत्यगात्माके स्वरूपका
र होता है, उसकी स्थिति श्रीभरतजीके समान है ।
ब्ध-भोगकी अवशिष्ट आयुमें जब इसकी प्रकृतिरूपी
परिणामरूपी शरीरकी अङ्गभूता दस इन्द्रियाँ तथा
द्धि, चित्त और अहङ्कार—इन चौदहोंकी भोग-स्पृहा
ोती है, जैसे कैकेयीजीने अपने पुत्रके लिये चौदह
राज्य-भोग चाहा था, तब यह प्रकृति-वियुक्त
श्रीभरतजीकी वृत्तिसे रहकर अपने स्वरूपकी रक्षा
। यह अपनेको श्रीरामजीका अङ्ग मानकर उनके
शेष)-रूपमें ही प्रकृति-भोगोंसे पीठ देकर श्रीरामजी
पर अङ्कित उनके चौबीस चरण-चिह्नोंके लक्ष्यपर—
त्वमें व्यापक भगवत्स्वरूपके आधारपर अपनी स्थिति
। इस वृत्तिसे अवधि (आयु) पूरीकर भगवान्‌का
त्व पाता है, जैसे श्रीभरतजीने चौदह वर्षोंकी पूर्तिपर
या ।

त्रुघ्नजीने श्रीभरतजीकी आराधना करके उस प्रकार-
वियुक्त प्रत्यगात्माकी उपासनाकी रीति दिखायी]।
श्रीभरतजीके साथ ही उनके समान भगवान् श्री-
रामजीके शेषत्व (नित्य परिकररूपता) को प्राप्त

भगवदुपासक श्रीलक्ष्मणजी, प्रत्यगात्मोपासक श्र
जी तथा शुद्ध प्रत्यगात्म-स्वरूप श्रीभरतजी—इ
उपासनाकी रीतिसे ही तत्क्रतुन्यायसे मुक्तावस्था प्रा
अतः जीवात्माकी भगवत्-शेषत्वमें ही स्वरूप-
यह उपर्युक्त वाक्य सिद्धान्तरूपमें निष्पन्न हुआ ।

श्रीमद्भगवद्गीताके परम अधिकारी श्रीअर्जु
भगवान्‌की सख्यभावसे उपासना की और तदनुसार
शेषत्व (सेवकत्व) रूप मुक्ति ही पायी । स्वर्गारोहण
श्रीयुधिष्ठिरजीने दिव्य शरीरसे परधाममें देखा—

ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मेण वपुषान्वितम्
दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम्
चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहै
उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा
(महा० स्वर्गा० ४ ।

भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ अपने ब्रह्मशरीरसे
उनका शरीर देदीप्यमान है । उनके समीप च
दिव्य अस्त्र तथा और भी घोर दिव्य अस्त्र दिव्य पु
धारण करके उनकी उपासना (सेवा) कर रहे
महान् तेजस्वी वीर अर्जुनके द्वारा भी भगवान् सेवित है

इस प्रकरणसे भी सिद्ध है कि गीता-तत्त्वके
सुनने, समझने और धारण करनेका यही परम फल
गीताके अनुष्ठानसे अर्जुनके समान इन्द्रिय-संयमी
त्यागी और परम विवेकसम्पन्न होकर उसे भगवान्
सेवक एवं शिष्य आदि भावोंकी प्राप्ति एवं तदनुसा
उपासनात्मक ही मुक्ति होनी चाहिये ।

इस प्रकार श्रुति एवं इतिहासश्रेष्ठ श्रीमद्रामा
महाभारत आदिके आधारपर उपासनाके तत्त्वपर कु
गया है और यह बताया गया है कि जीवमात्रका यही स्व
धर्म है । अतः सभीको उक्त रीतियोंसे उपासनामार्गप
होकर कृतार्थ होना चाहिये ।



सेवाधिकार

भजहिं भावयुत जे सदा भक्त और भगवंत ।
प्रभु-पद-सेवा विमल ते पावहिं दुर्लभ संत ॥



संस्कृतिका महत्त्व

(लेखक—महामहोपाध्याय, काव्य-सांख्य-वेदान्ततीर्थ, साहित्यवाचस्पति पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा)

कृति' शब्दमें 'कृ'के पहले सकार है, उसका अर्थ है
र अलङ्कार—भूषण । जिस कर्मसे समाजकी शोभा
और समुदाय बनता है, वह संस्कार है—संस्कृति
अष्टाध्यायी कहती है—'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे
त्र ।' संस्कारको बनानेवाली वस्तु अथवा जीवको
कहते हैं । यह शब्द बड़ा व्यापक है । लोग इसका
स्कृत भाषाके प्रचारके समय भिन्न-भिन्न प्रकारसे
और उसके पचासों रूप होते थे ।

ार कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे तीन
है । इनमें मानसिक संस्कार प्रधान है । इसका दूसरा
ना है । कपिलजीने सांख्यसूत्रमें लिखा है कि
भावना) जब प्रबल हो जाता है, तब मन विशुद्ध
है । तब उसका किया हुआ कार्य यथार्थ-सा बन
—

नोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।
(सांख्यसूत्र)

ं जो विचार अथवा भावना होती है, वह सच-झूठ
रकी होती है । सच्ची भावना बराबर एक-सी रहती है,
तेक है । जो भावना असत्य है, अभ्यासवश दृढ़ होती
और संस्कारका स्वरूप धारण करती है, उसका
प्रकृतिसे करना कठिन हो जाता है । योगसूत्रमें
ोने उसके पाँच भेद—अविद्या, अस्मिता, राग,
अभिनिवेश (मरणभय) किये हैं । ये झूठे हैं और
ाले हैं—

द्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ।
(योगसूत्र)

का नाम चित्तवृत्तियाँ है, इनसे दूर रहना चाहिये ।
रोधी संस्कार ध्यान है । ध्यानसे झूठे संस्कार नष्ट
-

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः । (

वेदका एक अङ्ग कल्प है, उसके दो भेद हैं—
और श्रौतसूत्र । पहलेमें गर्भाधानसे लेकर मरण
संस्कारोंका वर्णन रहता है । दूसरेमें यज्ञोंकी चर्च
मीमांसादर्शनमें याज्ञिक कर्मोंके सम्बन्धमें संस्कारका व
ज्योतिष्टोम यज्ञमें एक प्रकरण है कि स्थाणु (ठूँठ) व
हवन होता है । वह उसका अथवा उससे बने
(खम्भे) का सुधार—शुद्धता होती है । यह कार्य
है । निश्चय है कि यूपका संस्कार होता है—

अपि वा शेषभूतत्वात् तत्संस्कारः प्रतीयेत
(मीमांस

कल्पके अनुसार जड-चेतन—दोनोंका संस्कार ह
लौकिक बोल-चालमें 'संस्कार' शब्दका प्रयोग प्रायः
जैसे किसीने बुरा काम बार-बार किया, तब कहते हैं,
संस्कार वैसा हो गया है ।' जब छोटे लड़के पढ़नेमें
लगाते हैं, तब अध्यापक कहते हैं कि ये 'संस्कारी हैं

न्यायशास्त्रमें वेग और स्थितिस्थापक आ
गुणोंकी चर्चा है । वे भी संस्कार हैं ।

'संस्कार' संस्कृत साहित्यमें कई अर्थोंमें प्रयुक्त
पर संशोधन और सुधार—ये ही मुख्य हैं ।

योगके अविद्यादिक क्लेश मनपर प्रभाव डाल
मन अथवा आत्माके यथार्थ गुण नहीं हैं, किंतु
हैं । अनादि वासनास्वरूप हैं । उनपर वासनाका
संस्कार है । अतएव उनकी गिनती संस्कारमें है ।

शाण्डिल्यभक्तिसूत्रमें लिखा है कि परमेश्वर
शक्ति करुणा है—'मुख्यं हि तस्य कारुण्यम् ।'

जो उसकी करुणापर आस्था रखता है, उ
करुणामय संस्कारवाला हो जाता है और उद्धार पा

भारत कल्याण

जो चाहौ भारत-कल्यान, तौ सब मिल भारत सन्तान ।
जपौ निरंतर एक जबान, हिंदी हिंदू हिंदुस्थान ॥

—प्रताप नारायण मिश्र

विद्या और विज्ञान

(लेखक—श्रीरने गेनों)

(फ्रेंच भाषासे अनुवादित)

[श्रीरने गेनों फ्रांसके एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् हैं । सनातनधर्मके सम्बन्धमें आपका विशाल अध्ययन है । आपने अ
पयोगी ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें चार ('East and West', 'The Crisis of the Modern World', 'Introduc
dy of the Hindu Doctrines', 'Man and His becoming according to the Vedanta')-का तो
भी श्रील्युज़क कम्पनी, लंदनके द्वारा प्रकाशित हो चुका है । यह लेख उन्हींके एक लेखका अनुवाद है, जो उनकी
; पाठकोंके लिये काशीनिवासी एक दूसरे फ्रेंच विद्वान् श्रीशिवशरणजीके द्वारा किया गया है ।—**सम्पादक**]

ारम्परासे आयी हुई सनातन संस्कृति ज्ञानमूलक है । र्थ यह है कि वेद या श्रुतिके आधारपर स्थित होनेसे न्तप्रधान है; अनेक विद्याएँ इसके अनुगत—इसके ी जाती हैं ।

जगत वर्ण-व्यवस्थादिके रूपमें यह अनुवर्तिता स्पष्ट इ विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाली विद्याएँ भी ऐसी में तत्त्वज्ञानका अङ्ग मानी जाती हैं एवं तत्त्वज्ञानके स्थित रहती हैं ।

ाओंमें तारतम्य माना जा सकता है । गौण विषयोंका अवश्य है; परंतु अप्रधानको प्रधानता देना उचित सकता । कारण, तत्त्वसे अत्यन्त दूर होनेके कारण ; मूल्यमें तारतम्य अवश्य ही आता है ।

ाकल विद्याके महत्त्वके विषयमें दो अत्यन्त भिन्न रविरुद्ध दृष्टियाँ दिखायी पड़ती हैं । एक सनातनी ूसरी आधुनिक दृष्टि । सनातनी सिद्धान्तोंके आधार- विद्याओंपर हम बहुत लिख चुके हैं । सनातनी ीन समय एवं मध्यकालतक अनेक देशोंमें विद्यमान ाजकल उसकी परम्परा केवल पूर्वीय देशोंमें जीवित ाधुनिक पश्चिमी लोग उसकी चर्चा भी नहीं सुनते । ड़ता है कि प्रत्येक संस्कृतिमें इन विद्याओंका स्वरूप ल आदिकी भिन्नतासे भिन्न-भिन्न हो जाता है । ऐसा निवार्य है; क्योंकि साधारण विद्याओंका विषय परम- है, बल्कि तत्त्वके अनुगत जड स्वरूप है । फिर भी स्वरूप देश-काल आदिके अनुसार एवं जाति, व्यक्ति मानसिक शक्तिके अनुसार भिन्न हो जाता है । प्रत्येक ं देशके इतिहासमें देखा जाता है कि समय-समयपर

अन्तर नहीं पड़ता । ब्रह्मविद्याके विवरणके प्रकारमें की सम्भावना है, विषयमें नहीं । जैसे किसी उरि भाषासे दूसरी भाषामें अनुवाद हो सकता है, वैसे ही ब्रह्मविद्या दूसरे-दूसरे शब्दोंमें भिन्न-भिन्न उप सहायतासे समझी जा सकती है । ब्रह्मविद्याके व विकास हो सकता है; किंतु उसका ब्रह्मरूप विषय है, उसमें भिन्नताका प्रसङ्ग नहीं आ सकता; क्यों भेदरहित है ।

आत्मविद्याके अधीन रहते हुए भी अन्य वि बात दूसरी है । विद्याएँ एवं समाज आदिका स्व संसारसे सम्बन्ध रखनेके कारण ये अनेक रूप धा हैं । यहाँ स्वभावसे भिन्नता अनिवार्य है । फल यह कि विषय एक होनेपर भी रूपान्तरके कारण भिन्न बनती हैं । नैयायिकोंकी दृष्टिमें विद्या अपने विषयकी से सीमित रहती है; परंतु यह परिभाषा अति सर साथ-साथ अपूर्ण भी है । कोई विज्ञान किस दृष्टि विषयको ग्रहण करता है, यह बात भी किसी परिभाषामें आनी चाहिये । विज्ञानोंकी संख्या अ एक ही वस्तु अनेक विज्ञानोंके अध्ययनका विषय ह है । दृष्टियोंकी अति भिन्नतासे, साधन एवं लक्ष्यकी विज्ञानोंमें भिन्नता आती है । विभिन्न संस्कृति एवं आदिकी परम्परासे आये हुए विज्ञानोंके बारेमें यह बा कि उनके कई अंशोंमें अवश्य ही सादृश्य होगा; परं अन्तरसे उनका रूप इतना भिन्न हो सकता है लिये एक नाम भी नहीं रक्खा जा सकता । जब विद्याओं एवं अर्वाचीन विज्ञानोंकी तुलनाका प्रयत्न

लक्ष्यमें इतना अन्तर होता है कि किसी भी दृष्टिसे
कता नहीं दिखायी जा सकती। इस बातको स्पष्ट
लिये कुछ दृष्टान्त देना अनुचित न होगा।
के भौतिक विज्ञान (Physics) को ही लें।
देशोंके इतिहासकी सीमामें रहनेपर भी एतद्विषयक
एवं अर्वाचीन दृष्टिमें गम्भीर भेद दिखायी पड़ता है।
जिक्स' अर्थात् 'भौतिक विज्ञान' शब्दका अर्थ
ज्ञान है। इसमें कोई परिच्छिन्नता नहीं है। भौतिक
कालका विज्ञान है; क्योंकि प्रकृति एवं काल वास्तवमें
हीं हैं—यही अरस्तू आदि यूनानी दार्शनिकोंका
। इस भौतिक विज्ञानके अन्तर्गत प्रकृतिके अङ्ग-
ा अन्वेषण करनेके उद्देश्यसे कई खण्ड-विज्ञान हैं,
क विज्ञानके अङ्गभूत विज्ञान हैं।

मान संस्कृतिमें 'भौतिक विज्ञान' अनेक विज्ञानोंमें
भूत विज्ञानका नाम हो गया। यह बात आधुनिक मनः-
ा द्योतक है, क्योंकि अन्य विज्ञानोंका विषय भी
संसार है। इससे वर्तमान विज्ञानकी एक विलक्षणता
ो जाती है। यह विभाग करने एवं सामान्यको छोड़-
शेषपर ध्यान देनेकी वृत्ति है, जिसके प्रभावसे मनुष्य
क एक ही आधारभूत विद्याके अस्तित्वकी कल्पना-
हीं कर सकता। पश्चिममें भी बहुत-से विद्वान् इस
न्न दृष्टिकी एवं इसके परिणामभूत विचार-संकोचकी
ा दिखला चुके हैं। परंतु जान पड़ता है कि उस
ाको समझनेवाले भी दूसरे मार्गको नहीं देख सके;
विज्ञानके विभाग करनेकी आदतसे भिन्न-भिन्न
की संख्या इतनी बढ़ गयी और उनका क्षेत्र इतना
या कि कोई भी मनुष्य उन सबको ग्रहण नहीं कर
और न उनके समग्र विषयको एक दृष्टिसे देख ही
है। उन लोगोंके लिये यह बात समझना कठिन है
से इन विज्ञानोंकी आधारभूत एकताका सिद्धान्त छोड़
गया, तबसे इन सब विज्ञानोंका कोई महत्त्व नहीं रह
क्योंकि भौतिक विषयोंके बारेमें भी एकताका दर्शन
ष्टि अथवा विशिष्ट दृष्टिकी अपेक्षा अत्यन्त फलदायक
सके अतिरिक्त इन सब विशेष विज्ञानोंकी मूलभूत
को ग्रहण करनेमें हम इसलिये असमर्थ हैं कि जब
में एकत्वका ज्ञान छोड़ दिया जाता है, तब बहुत्वके
ापर मूलभूत एकत्वका प्रमाण मिलना असम्भव-सा हो

प्राचीन भौतिक विद्यासे जब वर्तमान भौतिक विज्ञ
(जिसके अन्तर्गत सभी भूत-सम्बन्धी विज्ञानोंकी ग
उचित है) तुलना की जाती है, तब तो सबसे पहले यह
दिखायी पड़ती है कि वर्तमान विज्ञान एक दूसरेसे सम्ब
रखकर अपने-अपने विशेष क्षेत्रमें आबद्ध रहते हैं। कुछ लो
धारणा यह है कि यदि इन सब विभिन्न नूतन विज्ञा
एकत्र किया जा सके तो फिर प्राचीन तत्त्व-विद्या उ
हो सकती है। परंतु ऐसा कभी नहीं हो सकता; व
प्रत्येक बातमें सनातनी विद्या एवं नवीन विज्ञानकी द
अत्यन्त भिन्न हैं। प्राचीन सनातनी दृष्टिमें सम्पूर्ण वि
एक आधारभूत तत्त्व-विद्याकी अङ्गभूता मानी जाती
प्रकृतिकी विशेषताओंके अनुसार वे एक ही विद्याके
प्रयोजन हैं। इस बातको माननेके लिये वर्तमान
तैयार नहीं है। अरस्तूकी दृष्टिमें भौतिक विद्या भूते
वेदान्तका अङ्ग मानी जाती थी। वेदान्तका विषय पर
है। प्रकृतिमें परम तत्त्वका प्रतिबिम्ब पड़ता है। इस अ
से प्रकृतिका वास्तविक रूप समझमें आ सकता है
आभास ही भौतिक विद्याका विषय है। पश्चिमी मध्य
सृष्टि-नियम-मीमांसा (Cosmology) की दृष्टि यही

आधुनिक विज्ञान भिन्न-भिन्न विज्ञानोंको अ
रखनेका प्रयत्न करता है। वह इन विज्ञानोंके विष
परे है, उसको नहीं मानता या अज्ञेय कहता है।
तत्त्वमें अविश्वास यों तो बहुत दिनोंसे चल रहा है
थोड़े समयसे उसे एक दार्शनिक सिद्धान्तका रूप
गया है। उसे पारमार्थिक 'तत्त्वनिराकरणवाद' (Positi
या 'अज्ञेयवाद' के नामसे वर्तमान विज्ञानका आ
सिद्धान्त बनाया गया है। यह दृष्टि है तो पुरान
उन्नीसवीं शताब्दीके पहले ऐसे लोग नहीं मिलते थे,
अज्ञानको गर्वका विषय मानते हों; क्योंकि अपनेको
वादी बतलाना या अज्ञानी कहना एक ही बात है
ही नहीं, ये अज्ञेयवादी लोग औरोंको भी ज्ञानसे
रखना चाहते हैं। यह पश्चिमी देशोंकी मानसिक अ
सूत्रपात है।

विभिन्न विज्ञानोंको उनके विषयसे अतीत तत्त्वसे
रखनेका वर्तमान प्रयत्न ज्ञानकी दृष्टिसे उनको निर
मूल्यहीन बनानेके समान है; क्योंकि वह अत्यन्त
क्षेत्रोंमें उन विज्ञानोंको बाँध रखता है।*

संकुचित क्षेत्रके भीतर जो खोज हो रही है, उसकी
नतिसूक्ष्म रहस्योंकी ओर नहीं है, जैसा बहुत लोगों-
ता है। वह तत्त्वका स्पर्श नहीं करती; परंतु अपने
अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको छाँटने और उन्हींके विश्लेषणके
प्रयासमें समाप्त हो जाती है। ऐसा विज्ञान तत्त्वरहित
और वास्तविक ज्ञानका साधन नहीं बन सकता।
कहना पड़ेगा कि पश्चिमी विज्ञानका उद्देश्य ज्ञान
सत्यको जाननेके उद्देश्यसे उसकी खोज नहीं होती।
ज्ञानका एकमात्र प्रयोजन अर्थ है। इसको समझने-
यह देखना होगा कि पश्चिमके लोग विज्ञान एवं
ारम्भमें कोई भी अन्तर नहीं देखते। उनके लिये
ज्ञानिकका सर्वश्रेष्ठ रूप है।

नके इस आधुनिक रूपमें उसकी गम्भीरता चली
: उसकी स्थिरता भी नष्ट हो गयी; क्योंकि निर्विकार
बन्धसे, जहाँतक उसके विषयकी सीमामें इसकी
होती है, विज्ञानमें निर्विकारताका आभास आता
; यह न होनेसे विकाररूप संसारमें सीमित होनेके
ज्ञानका कोई स्थिर आधार नहीं रहता। तब कोई
श्चित न होनेसे विज्ञान कल्पनामात्र हो जाता है।

ये यदि कभी वर्तमान विज्ञान किसी वक्र मार्गसे
ापर पहुँचे, जो प्राचीन विद्याओंके निश्चयसे मिलता-
तीत हो, तो उससे प्राचीन विद्याओंकी वास्तविकता
ाणित नहीं हो सकती; क्योंकि प्राचीन विद्याओंकी
पाटीके सामने आधुनिक प्रमाण-प्रणालीका कोई
ं है। जब ये दोनों दृष्टियाँ परस्परविरुद्ध हैं, तब
न्वय करनेका प्रयत्न व्यर्थ है। आधुनिक विज्ञानकी
ाली काल्पनिक एवं अयुक्तिसङ्गत है। कुछ ही
द इस विज्ञानद्वारा सिद्ध प्रत्येक सिद्धान्तको छोड़ना

रस्पर असम्बद्ध मानने लगे। अवश्य ही यह मानना
दोनों विषय भिन्न हैं एवं उनका क्षेत्र भी भिन्न है, जैसे
र्म विज्ञानके क्षेत्र भिन्न हैं। परंतु उन्हें परस्पर असम्बद्ध
अवच्छेद-दृष्टिवाले मनकी भ्रान्त धारणाका परिणाम है;
न्न होना एवं असम्बद्ध होना एक बात नहीं है। इससे
ह निकलता है कि जब लौकिक शासन धर्मसे अलग हो
तब न्याय-विरुद्ध एवं अधिकारहीन हो जाता है। यही
[illegible]

ही पड़ता है।* वर्तमान विज्ञान कल्पनाके ऊप
करता हुआ चलता है, परम्परासे आयी हुई प्राची
ऐसी नहीं थीं; क्योंकि वे प्रमाणित किये हुए सूक्ष्म
के परिणामोंका ही रूपान्तर थीं।†

क्लॉड बर्नर्ड (Claude Bernard)-जैसे
सिद्ध विज्ञानके उपपादकोंको मानना पड़ा कि प्राकृत
समझनेके लिये पूर्वकल्पनाकी आवश्यकता होती है
वस्तुओंके अनुभवसे कोई भी सिद्धान्त अपने-आप
हो सकता और विज्ञानका उनसे कोई काम नहीं बन

अनुभव-वादके प्रसङ्गमें यह प्रश्न करना अ
होगा कि वर्तमान संस्कृतिमें इन्द्रियोंके प्रत्यक्ष अ
चलनेवाले विज्ञानोंका क्यों इतना विस्तृत विकास हो
जैसा पहले कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। इस
यह है कि आधुनिक विज्ञान इन्द्रियगत दृश्य संसारक
है, स्थूलका विज्ञान है, जिसके प्रयोगसे यन्त्र आदि
प्राप्त हो सकते हैं। इस विज्ञानके विकासके साथ
प्रत्यक्ष वस्तुओंमें अन्धविश्वास होने लगा है। यह
संस्कृतिकी प्रधान विशेषता है। दूसरे युगोंमें विषयो
इतना लोभ नहीं था, जिससे उन्नत विद्याओंको छोड़
स्थूल विज्ञानोंके पीछे दौड़ते। हमारे कहनेका यह अ
कि अमुक ज्ञान स्वरूपतः अच्छा नहीं या त्याज्य है
जब मनुष्यका पूरा जीवन अप्रधानकी खोजमें लग
जैसा आजकल दिखायी दे रहा है, तब उससे अव
होती है।

* धर्मके विषयमें यही प्रश्न सामने आ रहा है
बदलनेवाले विज्ञानके प्रमाणित सिद्धान्तोंसे धर्मके
मिलानेका प्रयत्न चालू है। यह व्यर्थ परिश्रम है, जि
अन्त नहीं होता। इससे लाभकी अपेक्षा हानिकी
सम्भावना है; क्योंकि निश्चयरहित निरन्तर विकारशील
निर्विकार एवं प्रमाणकी कसौटीपर कसे हुए धार्मिक सिद्धान
मेल नहीं हो सकता।

इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक उ
है; वह है हिंदू-दर्शनोंमें एवं वर्तमान विज्ञानमें आक
भावना।

† आजकलकी प्रायोगिक विज्ञान-पद्धतिमें यह एक वि
समाया हुआ है कि किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्तको अनुभ
आधारपर सिद्ध किया जा सकता है; परंतु यथार्थमें इन उ
[illegible]

कल्पना की जा सकती है कि किसी संस्कृतिमें सिद्धान्तोंसे अन्य विद्याओंकी भाँति अनुभवसिद्ध ा भी सम्बन्ध हो सकता है। इससे उन विज्ञानोंका ूल्य भी होता है। वास्तवमें यदि ऐसा नहीं हुआ ा कारण यह है कि मनुष्य-जातिकी मनःप्रवृत्ति र रही है। बात भी यह है कि अन्य युगोंमें जब सारका अन्वेषण करनेकी आवश्यकता होती थी, भवकी अपेक्षा अन्य उपायोंद्वारा उसकी खोज करनेमें ुविधा होती थी।

कह रहे थे कि इस युगकी एक विशेषता यह है कि उन रूपोंको, जो अन्य युगोंमें गौण समझकर छोड़ थे, आज अवकाश मिला है। यह अनिवार्य था; ुगका चक्र पूर्ण होनेके पहले उन गौण विषयोंको ाश मिलना चाहिये। उनकी बीजरूपमें स्थिति होनेसे ी-न-कभी प्रकट होनेका अवकाश मिलना अनिवार्य पिछली एक-दो शताब्दियोंमें इन्द्रियानुभवसिद्ध ो उत्पत्ति देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। कुछ ्मान विज्ञानरूप भी हैं, जो प्राचीन विद्याओंके अंशमात्र हैं। उन विद्याओंके स्थूलतम अंश ह्रासके न्य अंशोंसे अलग हो गये। ये स्थूल अंश युगकी अनुसार नवीन विज्ञानका आधार बन गये; परंतु रिणाम यह हुआ कि नवीन विज्ञान अपने आधारभूत वेद्यासे बिल्कुल अलग हो गया। इसलिये यह कथन ान ग्रह-तारक-विज्ञान एवं रसायन-विज्ञान (Astro- and Chemistry) प्राचीन ज्यौतिष एवं से निकले हैं, अयथार्थ है। इसमें सन्देह नहीं कि क दृष्टिसे वर्तमान ग्रह-विज्ञान प्राचीन ज्यौतिषके बाद और उससे सम्बद्ध है; परंतु यह सम्बन्ध विकास, ादिके रूपमें नहीं है, जैसा कि लोग कहते हैं; बल्कि का ह्रास है, उसकी अवनत दशा है। आगे इस बात- और स्पष्ट करना आवश्यक मालूम होता है।

ले यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि 'फलित ज्यौतिष' ology) और 'गणित ज्यौतिष' (Astronomy) शब्द भिन्न-भिन्न अर्थोंके वाचक हालमें ही हुए हैं, हीं थे। प्राचीन यूनानमें दोनों शब्द अभिन्नरूपसे पूर्ण शास्त्रके लिये प्रयुक्त होते थे, जिसके ये दोनों । आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति विषयविशेषकी करती है। उसीका यह भी एक उदाहरण है कि मूल ही शास्त्रके जो दो अङ्ग थे, उन्हें इसने दो अल विज्ञान बना दिया। इसमें भी फिर यह विशेष बात एक अङ्ग अर्थात् वह अङ्ग जो इस शास्त्रका स्थूल ग था, उसकी तो स्वच्छन्दताके साथ वृद्धि हुई; पर दूसरा ज्यौतिपरूप इसका अङ्ग सर्वथा नष्ट हो गया। य पश्चिमी देशोंमें यहाँतक हुआ कि प्राचीन फलित ज्यौ रहा होगा, यह अब वहाँ कोई भी नहीं जानता और उसे फिरसे निर्माण करनेका प्रयत्न भी किया, उन प्रयत्नके फलसे उसका केवल एक विकृत रूप ही आया। कुछ लोगोंने विभिन्न ग्रहस्थितियोंके फलों रखकर तथा उससे अमुक ग्रहोंके अमुक फल अनुमानकर फलित ज्यौतिषको नवीन प्रायोगिक रूपमें ढालना चाहा। इनकी यह विचारपद्धति ऐसी प्राचीन अथवा मध्ययुगीन लोगोंकी तो कदापि नहीं थी। कुछ दूसरे लोग भविष्यकथनके एक ऐसे प्रकारके लगे, जो प्रकार पहलेका होनेपर भी फलित ज्यौतिषका चुकनेके बादका उसीका एक विपर्यास था, जिसे हम अ अधिक फलित ज्यौतिषका एक निकृष्ट प्रकार कह सक इसका कोई महत्त्व नहीं माना जा सकता। पूर्वीय दे आज भी देख पड़ता है।

रसायनविज्ञानकी बात और भी स्पष्ट और विल प्राचीन रसविज्ञानके बारेमें आधुनिकोंका अज्ञान ज्यौतिष-सम्बन्धी अज्ञानसे किसी प्रकार कम नहीं है। रसविज्ञान यथार्थमें विश्वब्रह्माण्डकी रचनाका ही और पिण्ड-ब्रह्माण्डके समानधर्मी होनेके नाते यह भी प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त इस विज्ञानका नि उद्देश्य सामने रखकर किया गया कि भौतिक क्षेत्रमें इसका उपयोग पीछे आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी किया ज इसीसे इसका लक्ष्यार्थसूचक विशेष महत्त्व है विज्ञानका इतना गौरव है। परम्परागत विज्ञानोंमें ए और पूर्ण विज्ञानके तौरपर इसकी गणना होती है। रसायनविज्ञान इस प्राचीन रसविज्ञानसे नहीं उत्पन्न न इसके साथ उसका कोई मेल ही है। मध्यका ऐसे रासायनिक हुए, जो इस विज्ञानका लक्ष्य भूलकर और प्रत्येक रसक्रियाका स्थूल अर्थ लेकर प्रयोग करनेमें लग गये। वास्तविक रसविज्ञोंने 'धौंकनी धौंकनेवाले' (blowers) और

ज्या है। ये धौंकनी धौंकनेवाले और कोयला फूँकनेवाले
ान रासायनिकोंके पूर्वाचार्य हैं। इस तरहसे
विज्ञान प्राचीन विद्याके उच्छिष्ट—अज्ञानियों एवं
रियोंके लिये परित्यक्त जूठनसे प्रादुर्भूत हुआ।

ीन रस-विद्याके पुनः स्थापन करनेवाले आजकल भी
। मिलते हैं, जिनकी दृष्टि अत्यन्त भ्रष्ट है। उनकी
फल प्राचीन रस-विद्यासे उतना ही दूर रहता है,
ाचीन ज्यौतिष प्राचीन ज्यौतिष-शास्त्रसे भिन्न है।
यह कहा जा सकता है कि वर्तमान पश्चिमी संसारमें
विद्याओंका लोप हो चुका है।

क विद्याओंके क्षेत्रमें ऐसे ही उदाहरण दिये जा
। सबमें विद्याका ह्रास दृष्टिगोचर होगा। इसी तरहसे
ानस-विज्ञान, जो कि मनकी गति-विधिका अध्ययन
जी अनुभवैकप्रामाण्यवाद एवं १८वीं शताब्दीकी
तका फल है। यह दृष्टि प्राचीन विद्वानोंके लिये
ाण्य थी कि कभी उसका विचार करनेका प्रसङ्ग
भी उससे कोई विशेष विज्ञान निर्माण करनेकी बात
सोच सकता था; क्योंकि इसमें जो कुछ भी उपयुक्त
। है, वह उससे अति उच्च विद्याओंमें शुद्ध एवं उन्नत
लता है।

मान गणित-विज्ञान भी प्राचीन पिथागोरसके गणितकी
लके सिवा और कुछ नहीं है। संख्याका महत्त्व
आधुनिक लोगोंकी समझके बाहर है। यहाँ भी
उच्च सिद्धान्तोंका लोप हो जानेसे उसका प्रयोगमात्र
है। जो बात ज्यौतिषके बारेमें हुई, वही यहाँ भी
ई। वही बात एक दूसरेके बाद सभी विज्ञानोंके
देखी जा सकती है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि यह
वर्तन, जिससे वर्तमान विज्ञानकी उत्पत्ति हुई, बुद्धिको
ी ओर न ले जाकर ह्रासकी ओर ले जाता है।

ातनी दृष्टिसे किसी विद्याका मूल्य स्वरूपतः उतना
जितना ब्रह्मविद्याका अंश होनेके नाते है।* विज्ञान
क्षेत्रमें अवश्य उपयोगी है, जबतक वह अपने
स्थित रहता है। यह सुगमतासे समझमें आ सकता
ो कोई व्यक्ति ज्ञानकी उच्च भूमिकापर पहुँच चुका है,
ठये निम्नश्रेणीके साधारण विज्ञानोंका विशेष मूल्य नहीं
रहता। यह भी कहा जा सकता है कि वास्तविक विद्या
ब्रह्मविद्याके इच्छुक व्यक्तिके लिये विज्ञानोंका मूल्य वह
जहाँतक उनका ब्रह्मविद्यासे सम्बन्ध है अर्थात् जबतक
अपने क्षेत्रमें तत्त्वदृष्टि रखते हैं एवं जिज्ञासुओंके लि
विद्याकी प्राप्तिका मार्ग बन सकते हैं। क्योंकि
अस्थिर फलके लिये शाश्वत एवं सर्वव्यापक विद्याको
मूर्खतामात्र है।

इसलिये प्राचीन प्रधान विज्ञानोंका नाम 'उपवेद' रक्खा
ससे स्पष्ट होता है कि वेदमूलक होनेसे ही उनका मूल्य

सनातनी विद्याओंके दो परस्पर सहकारी कार्य है
तो तत्त्वविद्याके अंश एवं विशेष अङ्ग होनेसे संसारके
क्षेत्रोंकी आधारभूत एकता इनके द्वारा प्रकट होत
दूसरा कार्य यह है कि विशेष व्यक्तियोंके लिये उनकी
शक्ति एवं अधिकार, समय, स्थान आदिके अ
विद्याएँ ब्रह्मविद्याकी ओर ले जानेवाले मार्ग बन सक
वे ऐसी सीढ़ियोंका काम देती हैं, जिनके द्वारा बुद्धि
जड संसारको छोड़कर ब्रह्मविद्याकी ओर अग्रसर हो सक

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि
प्रयोजनविषयक उक्त दोनों दृष्टियोंसे वर्तमान विज्ञान
वे जड विज्ञानमात्र हैं; परंतु प्राचीन विद्याएँ तत्त्वदृष्टि
कारण सनातनी सिद्धान्तका अङ्ग मानी जाती हैं।

विद्याओंके इन दोनों मुख्य प्रयोजनोंमें कोई
विरोध नहीं है, यद्यपि स्थूल दृष्टिसे वैसी कल्पन
सकती है। इसपर भी कुछ और विचारकी आवश्य
कहा जा सकता है कि यहाँ दो दृष्टियाँ हैं—एक अधो
दूसरी ऊर्ध्वगामिनी। पहलेवाली दृष्टिमें तत्त्वसे
विद्याका पर्यवसान प्राकृत प्रयोजनोंमें होता है (
उसकी गति केन्द्रसे परिधिकी ओर होती है); दू
जड विषयोंसे ज्ञानप्रधान विद्याकी ओर प्रवृत्ति
अर्थात् परिधिसे केन्द्रकी ओर गति होती है। य
जडसे चेतनकी ओर प्रवृत्त होनी चाहिये या चेतन

* हम अपने 'दाँतेकी रहस्यविद्या' (Esoter
Dante) नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त सीढ़ियोंके रहस्यमय
विषयमें लिख चुके हैं। प्रत्येक परम्परामें सीढ़ियाँ प्रती
प्रकट होती हैं। कहींपर एक-एक विद्या एक-एक सीढ़ी म
है, कहीं जड स्थितिसे मोक्षपर्यन्त प्रत्येक भूमिका सीढ़ी
रूपमें दिखायी देती है। इससे भी स्पष्ट है कि इन
लोग आजकलके मनुष्योंकी भाँति जड न मानकर तत्त्ववि

स प्रश्नकी चर्चा नहीं और इस प्रश्नकी ही चर्चा द्याका आधार तत्त्वज्ञान होना चाहिये या इन्द्रिय-यक्ष ज्ञान; क्योंकि ऐसा प्रश्न केवल लौकिक दृष्टिसे ता है, जैसा कि प्राचीन यूनानके दार्शनिकोंने । सनातनी विद्याकी दृष्टिसे ऐसे प्रश्नकी सम्भावना क्योंकि धार्मिक विद्या सर्वव्यापक सिद्धान्तोंके आधारपर ती है। इसके अतिरिक्त धार्मिक विद्याके मुख्य प्रमाण यक्ष हैं; जो अन्य ज्ञान-साधनोंकी अपेक्षा अत्यन्त एवं शङ्कारहित हैं एवं मन-बुद्धि आदि साधनोंसे नहीं हैं।

ातन-सिद्धान्तानुकूल वास्तविक विद्याएँ उन ऋषियों-दुर्भूत हुई हैं, जिनको तत्त्वका पूर्ण ज्ञान हो चुका कि उनको छोड़कर कोई भी दूसरा व्यक्ति सनातनी के अनुसार देश और कालकी आवश्यकता समझकर ाओंके स्वरूपमें परिवर्तन नहीं कर सकता था।

। विद्याके किसी रूपकी स्थापना ऊपरसे नीचेके क्रमसे तब उसकी शिक्षा नीचेसे ऊपरके क्रमसे हो सकती प्रकार अनेक विद्याएँ एक तत्त्वके दर्शनमें दृष्टान्त-ाती हैं, जिनकी सहायतासे विविध प्रकारकी बुद्धियोंको न करनेमें सुविधा हो । बहुविध प्रकृतिके वशमें ए जीवकी बुद्धि बहुत्वमें लीन रहती है। इसलिये एकत्वकी ओर ले जानेके लिये बहुविध रूपोंकी लेनी पड़ती है। सर्वोच्च ज्ञानके मार्गोंकी प्रारम्भिक एँ अनेक प्रकारकी हैं; परंतु जीव लक्ष्यके जितना हुँचता है, विभिन्न मार्ग उतने ही अधिक एक दूसरेमें ते जाते हैं। यह कहना भी ठीक है कि इन निम्न ओंकी आत्यन्तिक आवश्यकता नहीं है; परंतु ामें जीवको उनसे बहुत सहायता मिलती है। फिर वन एवं लक्ष्यमें कोई समानता नहीं होती। कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनमें भक्तिकी प्रधानता होनेके ऐसे साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती, उनको बिना ही तत्त्वदर्शनका सौभाग्य मिल जाता है; परंतु यह रण बात है, साधारण जीवोंको क्रमशः उन्नत अवस्थाकी लना पड़ता है। इसको समझनेके लिये संसार-चक्रका भी दिया जा सकता है । केन्द्रके बिना परिधिका स्तित्व नहीं है। फिर भी परिधिपर स्थित व्यक्तियोंको ओर जानेके लिये अपने-अपने स्थानसे भिन्न-भिन्न मार्गोंका अनुसरण करना पड़ता है।

सभी वस्तुओंकी तात्त्विक एकताके कारण ज भी तत्त्वकी प्रतिमा एवं तत्त्वदर्शनका आधार बन सक यही बात प्रत्येक विद्याके विषयमें सत्य है। कोई आत्मविद्याकी प्रतिमा बन सकती है। यही सनातनी का मुख्य अर्थ एवं प्रयोजन है।

कोई भी विज्ञान, उसका विषय चाहे कैसा आत्मविद्याकी प्रतिमा बन सकता है, यदि उसका सनातनी सिद्धान्तके अनुसार हुआ है। फिर भी तारतम्यसे विज्ञानोंमें भी तारतम्य होना अनिवार्य है उनमें भूमिकाका भेद होनेपर भी सनातनी दृष्टि प्रयोजन एवं विशेषताएँ एक ही रहती हैं। यह बात के विषयमें भी सत्य है, क्योंकि कला प्रतीकोंका उ एवं ध्यान आदिका आश्रय प्रतीक होता है। क नियम आदि अन्य विद्याओंके नियमोंकी भाँति-आधारभूत धर्मके आभास हैं। इस प्रकार विद्याओंके साथ-साथ सनातनी कलाएँ भी हैं, जिनका पाश्चात्त्योंको कोई ज्ञान नहीं है।†

कोई भी लौकिक क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो धर्मके क्षे हो सके, जैसा कि आधुनिक लोग मानते हैं। फिर लौकिक दृष्टि अवश्य ऐसी है, जो अज्ञानकी दृ नहीं है।‡ इसलिये वर्तमान विज्ञानको 'अज्ञानरू कहा जा सकता है। वह जड ज्ञानरूप है और जड अतीत सूक्ष्म लोकोंसे किसी प्रकार भी परिचित नहीं एक ऐसा विचित्र ज्ञान है, जो अपनी सीमासे परे वस्तुओंके अस्तित्वतकको नहीं मानता, किसी भी उ तत्त्वको नहीं जानता एवं अपने उद्देश्यको छोड़ दूसरा लक्ष्य नहीं देख सकता, जिसके आधारपर

---

* इस प्रकार ज्यौतिषका भी अनेक सम्प्रदायोंने उप है। इससे प्राचीन ज्यौतिषकी महत्ता समझी जा सकती

† मध्यकालीन शिल्प-कला सनातनी कलाओंका नमूना है; क्योंकि इस कलामें प्रत्येक शिल्प-सम्बन्धी विद ज्ञान स्पष्ट है।

‡ इसको समझनेके लिये 'जगत्सृष्टि-मीमांसा' जैसे विज्ञानोंपर आधुनिक विद्वानोंका विचार देखना चाहिये। मीमांसा बाइबल और सभी सम्प्रदायोंके सार-ग्रन्थ प्रधान अंश है। इसपर जो वर्तमान विचार होते प्राचीन विचारोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। विषय पर भी दृष्टिमें कोई साम्य नहीं होता।

स्वरूपमें निम्न-से-निम्न स्थान भी दिया जा सके। परंतु
ग्रा एवं परम सत्यसे उसका कोई सम्बन्ध न होनेके
ह विज्ञान निरर्थक एवं भ्रान्त प्रत्ययके अतिरिक्त
; वह न कहींसे आता है न कहीं जाता है। इन्द्रिया-
जड सीमाओंसे घिरा हुआ यह नव विज्ञान अपनेको
मानता है।

युक्त विवेचनसे आधुनिक विज्ञानकी त्रुटियाँ विदित
। वह विज्ञान, जिसपर वर्तमान संसार इतना गर्व
वास्तविक विज्ञानका—जो आत्मविद्या या सनातनी
विद्यासे भिन्न नहीं है—एक उच्छिष्ट भ्रमपूर्ण
है। वर्तमान विज्ञान ज्ञानको अधम जड
अध्ययनमें आबद्ध करके निरर्थक एवं बुद्धिहीन
है। आधुनिक तर्कप्रधानवादी (Rationalists
बुद्धि एवं तर्कशक्तिको एक मानते हैं, आत्मज्ञानकी
नहीं मानते। इस भ्रमका एवं वर्तमान कालकी अन्य
दृष्टियोंका मुख्य कारण अहंकार है। यह अहङ्कार
धर्म-विरुद्ध दृष्टिका नामान्तर है। यही इस युगके
संभ्रम आदिका प्रधान कारण है।



नया संसार

(रचयिता—श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए०, डिप्० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

एक नया संसार, बसा ले एक नया संसार।

१

जहाँ प्रेमका अटल राज्य है, कलुषित स्वार्थ-सिंधुके पार।
जहाँ न है मानव-जीवनमें दारुण मूक व्यथाका भार।
मानवताके स्वच्छ गगनमें, जहाँ न तृष्णाका विस्तार।
तिमिरमयी रजनीमें आँखें जिसे खोजतीं बारंबार।
पशुताके भग्नावशेषपर मानवताका कुसुम खिला।
मणि-मंडपकी स्वर्ण-रश्मिमें जीवनका वरदान मिला।
दानवताका, काम-क्रोधका, जहाँ न हिंसाका चीत्कार।
जहाँ न होती अन्तस्तलमें माया-वीणाकी झंकार।
जहाँ त्यागका क्रीड़ास्थल है, स्वार्थ-हीन सेवा-संचार,
वहीं बना ले मधुमय, सुन्दर, एक नया सुरभित संसार॥

२

मानवताकी पुण्य-भूमिमें कर्मयोगका है आधार।
सत्य, अहिंसा, न्याय, दयाका संयम, सदाचार आगार।
भगवत्सेवा-शरणागतिका सद्यः-विकसित मधुमय हार।
ज्ञानयोगकी मधुर रश्मिमें वासुदेवका रूप अपार।
श्रीभागवत-धर्मकी धारा जहाँ मनोरम लहराती।
दिव्य विशिष्टाद्वैत-पताका विश्व-गगनमें फहराती।
भक्ति-प्रपत्ति-स्वर्ण-मंदिरमें निष्कलंक निर्मल आचार।
अहङ्कार, पाषंड, वासना, कलुषित प्रेम जहाँ निःसार।
श्रीमन्नारायण-करुणाका जहाँ न कुछ भी पारावार,
मन-मोहनके निकट बना ले एक नया सुन्दर संसार॥



हिंदूधर्मके आधार-स्तम्भ

(लेखक—श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी एम्० ए०, काव्यतीर्थ)

ारमें हिंदूधर्मके अतिरिक्त जितने भी इतर धर्म हैं, वे किसी समय किसी-न-किसी मनुष्यके द्वारा प्रवर्तित और उनमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिनको माननेसे ा उनके अनुयायी कहे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ ा मुसल्मान धर्मोंको लीजिये। ईसामसीहके द्वारा प्रायः : वर्ष पूर्व खिष्टधर्मका प्रवर्तन हुआ था, तथा साढ़े वर्ष पूर्व मुहम्मदसाहबके द्वारा मुसल्मान-धर्मका प्रवर्तन । ईसाइयोंका विश्वास है कि ईसामसीहमें विश्वास ः मानवमात्रके सारे पापोंको उन्होंने पहले ही भस्म- : दिया है, एवं मुसल्मानोंकी धारणा है कि मुस्लिम- ाश्वास नहीं करनेवाले सारे मानव काफिर (धर्महीन) उनके लिये दोज़ख (नरक) में स्थान निश्चित है। के लिये गिरजाघरमें और मुसल्मानोंके लिये मस्जिदमें ामुकामुक समयमें प्रार्थना करना, शिखा नहीं रखना बाह्य पद्धतिका अनुसरण करना पक्के तत्तद्- म्बियोंके लिये अनिवार्य है। हिंदू (आर्यसनातन)- सारी मनुष्यकृत पद्धतियोंसे मुक्त है।

प्राकृतिक धर्म है, बनावटी नहीं। यह सब देश और ठके लिये है, यह मनुष्यमात्रके लिये है। इसी ाके कारण आजतक हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति और ताका सर्वथा विनाश नहीं हुआ है; जबतक प्रकृति क सृष्टि-चक्र चल रहा है, तबतक यह चलता रहेगा।

किसे कहते हैं, धर्मका प्रयोजन क्या है ? विज्ञ छ सकते हैं कि हिंदू-धर्मको विशिष्ट लक्षणोंसे रहित, मान लेनेपर तो हिंदू-धर्म विशाल जंगल-सा हो जाता में न किसी दिशाका और न किसी सीमाका पता । उत्तरमें निवेदन है कि हिंदू-धर्म विशाल जंगल तो स जंगलमें प्रत्येक पौधेका हिसाब है, उसका परिचय उसका अलग-अलग उपयोग है। इसमें एक भी छोटे- ौधा नगण्य और निष्प्रयोजन नहीं है, इस जंगलके —हिंदू-धर्मके तत्त्ववेत्ता आचार्योंकी पैनी दृष्टि जंगलके ाधेके पत्ते-पत्तेपर जा चुकी है और उसका सुन्दर-से- पयोग उन्होंने किया है एवं विश्वनियन्ताकी इच्छाका करनेका मार्ग इस सनातन धर्मके अनुयायियोंको समय-समयपर बतलाया है। धर्मका अर्थ है—'ध मित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।' एक मनुष्यका दूसरे साथ ऐसा बर्ताव, जिससे सबका कल्याण हो, जिससे रूपमें सामूहिक जीवन-निर्वाहका क्रम चल सके और प्रवाह ईश्वरेच्छानुसार चल सके,—उसे धर्म कहते सनातन धर्मके प्रवाहको अबाध रूपसे चलानेके लिये वेदोंसे लेकर हिंदू-धर्मके पारदर्शी तत्त्ववेत्ता आचार्यों समयपर जो शास्त्र रचे हैं, वे मनुष्यमात्रके लिये परम साधन हैं, निर्भ्रान्त तथा निरपेक्ष हैं। उन्हें स्वार्थी ब्र कपोल-कल्पित पोपलीलाएँ बतलानेवाले आधुनिक पण्डितमानी अपना एवं दूसरोंका अहित कर रहे निर्विवाद सत्य एकाधिक बार स्पष्ट हो चुका है विश्वहितकारी सनातन धर्मके मुख्य स्तम्भोंपर विज्ञ ध्यान आकृष्ट करना इस निबन्धका लक्ष्य है।

सनातन हिंदू-धर्मका प्रथम स्तम्भ है—वर्णाश्र वर्ण-व्यवस्था तथा आश्रम-व्यवस्थाके द्वारा आचार्योंने मात्रके ऐहिक तथा पारलौकिक कृत्योंकी पूर्तिका सुल सम्पादित किया था। निर्धारित सीमाके भीतर कौलिक पुरुषार्थोंके द्वारा जीविकोपार्जन करना तथ कलाओंके सूक्ष्म अनुसन्धानोंके द्वारा समाजका हित करना वर्ण-व्यवस्थाका उद्देश्य था। ब्राह्मणोंका सर्वविध ज्ञानोंको उपार्जन करके अनासक्त जीवन साथ-साथ समाजमें विशुद्ध ज्ञानका प्रसार करना तथ धार्मिक कृत्योंके सम्पादनमें अधिकारानुसार सब सहायता करना। ऐसे ब्राह्मणोंके भरण-पोषणका समाजपर था, कृषि तथा गोरक्षाके अधिकारी वैश्यों दुःखपर्यवसायी तुच्छ इन्द्रिय-सुखोंकी ओर दुर्लक्ष तपोमय, अध्यात्मचिन्तनशील जीवन व्यतीत करते हु और सदाचारी ब्राह्मणलोग समाजमें कथा-प्रवचनों सदाचारका प्रचार सदा करते रहते थे। द्रव्योपार्जनार्थ सन्मार्गका त्याग नहीं करते थे और न आजकी भाँ ग्रहण करके भृतकाध्यापन करते थे। मानसे दूर र तभी तो राजालोग उनकी अँगुलियोंके इशारेपर न और सारा समाज उनके पैरपर नतमस्तक रहता थ हिंदू-धर्म और हिंदू-समाजकी उत्कृष्टताकी पराकाष्ठा

ातिसे आज ब्राह्मणोंमें वह तेज और अनासक्तिमय
ीं रह गया है और उनमेंसे अधिकांश तमोऽभिभूत
हात्मवादी होकर ऐहिक सुख-साधनमें संलग्न हो रहे
(भी इस विकराल कलिकालमें भी लोकमान्य
हामना श्रीमालवीयजी, पण्डित मोतीलालजी-सरीखे
द्वान् कर्मयोगी ब्राह्मण हो चुके हैं। ब्राह्मणेतर वर्णोंमें
वेकानन्द-जैसे ब्रह्मज्ञानी, अरविन्द-जैसे योगी
धी-जैसे अनासक्त कर्मठ आत्मज्ञानी पुरुष हुए हैं
इससे हमें आशा करनी चाहिये कि आर्योंके जिस
न-भण्डार उपनिषद् तथा दर्शनशास्त्रोंसे प्रकाश प्राप्त
रतके इन सपूतोंने अवनतिके इस युगमें भी अपने
धर्मके ध्वजको दूर-दूर विदेशोंमें भी ऊँचा किया,
नेधि जबतक हमारे पास है, हम किसी क्षण अपने
को प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु,

त्रियोंका काम था सैनिक तथा उपसैनिक (पुलिस)
बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओंसे देश और समाजकी
ा। न्यायकी तुलापर अपने विचारको तौलकर सर्वथा
होकर वे सैनिक रक्षाका काम करते थे। आजकी
। तरह वे पापमें डूबे नहीं थे। उन्हें लोभ छूतक
था। दुर्बलों और सताये हुए व्यक्तियोंकी रक्षा
संसारका कोई भी प्रलोभन उन्हें विमुख नहीं कर सकता
ीतामें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनको दिया हुआ
कर्मका सदुपदेश प्रत्येक क्षत्रिय सैनिकके लिये मार्ग-
ा। क्षणभङ्गुर शरीरको सदा कर्तव्यकी वेदीपर वे
रये हुए रहते थे। आजकी भाँति वे द्रव्यार्थ सेनामें
ीं होते थे। सेनामें ही अथवा घरमें क्षत्रियमात्रको
ाक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी और देशपर संकट
वे युद्धके मैदानमें आ खड़े होते थे। सम्मुख समरमें
को प्राप्त करना क्षात्र-जीवनका परम लक्ष्य था।
भारतमें ऐसे देशरक्षकोंका पुनः आविर्भाव हो
।

त्तमोत्तम ढंगसे खेती करके प्रचुर अन्न उपजाकर और
के द्वारा प्रचुर दूध उत्पन्न करके समाजको अन्न तथा
पुष्ट करना वैश्योंका काम था। आजके अव्यवस्थित
जीविकाविहीन असंख्य मनुष्य आँख मूँदकर खेतीकी
ड पड़े हैं। भूमिकी व्यवस्था भी नष्ट हो गयी है।
शासनमें इसकी नहरोंकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी
नये अधिकारपत्रमें अधिकांश परती—गोचर जम
व्यक्तिविशेषोंका अधिकार लिपिबद्ध कर दिया गय
जनसाधारणको सार्वजनिक कामोंमें बड़ी बाधाओंक
करना पड़ रहा है। प्रचुर गोचरभूमिके अभावमें
दुष्कर हो गया, जिससे प्रचुर दूधका सर्वथा अभाव ।
इत्यादि अस्तव्यस्तताके कारण आज अन्नकी समस
हो रही है और विदेशोंसे प्रतिवर्ष लाखों टन अ
जाकर देशवासियोंकी उदरपूर्ति बड़ी ग्लानिके साथ
रही है, फिर भी पुराने समयकी कृषि-व्यवस्थाकी श
हमारा देश अन्नसंकटसे पार पा सकता है। चतुर
हाथमें—समुचित सिंचाई-व्यवस्थाके साथ बड़े-बड़े
खेतीके प्रबन्ध तथा प्रचुर गोचर-भूमिके साथ-सा
गोपालनके प्रबन्धसे एक बार पुनः यह भूमि अन्न उ
भर दी जा सकती है। इस यज्ञमय भारत-वसुधाके
सर्वथा सम्भव है। उस व्यवस्थामें न तो आजके चो
का स्थान रहेगा और न घूसखोरोंका ही अस्तित्व
व्यापारमें भी प्राचीन भारतके गौरवको पुनः प्रा
चतुर वैश्योंका ही काम है। पराधीन भारतमें चि
भारतीय व्यापारी केवल दलाली करते रहे हैं।

शूद्रोंका काम था समाजकी हर प्रकारसे सेवा
उनमें अहङ्कारकी मात्रा नहीं थी। सेवा-धर्मको वे प
मानते थे। 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्य
समाजमें उनकी भी मान्यता थी। समाजके वे पैर स
थे, जो गाड़ीके पहियेके समान परमावश्यक अङ्ग है
भी ज्ञानियोंका ब्राह्मणोंसे बढ़कर आदर था—जैसे
विदुरका। स्वाधीन भारतमें ऐसे सेवाव्रती, समाजके उ
समुदायकी बड़ी आवश्यकता है।

उपर्युक्त प्रकारकी सुन्दर वर्णव्यवस्था सुन्दर
व्यवस्थापर अवलम्बित थी—जैसे कोई सुन्दर प्रासा
न्यासपर अवलम्बित रहता है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य,
और संन्यास—इन चार भागोंमें प्राचीन भारतमें
जीवन विभक्त थे। तत्तद् वर्णोंके लिये उपयुक्त वि
गुरुकुलमें सामान्य आहार-विहारके साथ नियत काल
प्राप्त करना द्विजाति बालकोंके लिये अनिवार्य था।
तथा पच्चीस वर्षकी आयुतक बालक गुरुकुलमें रहते थे।

। बड़े-बड़े लक्ष्मीपात्रोंके लड़के भी वहाँ अपने निर्धन
ोंके साथ समान दिनचर्याका पालन करते थे और
ोजन तथा समान शय्याका उपयोग करते थे। विवाह-
में आजकी कुरीतियोंका लेश भी नहीं था। वर-
आयु तथा गुणका विचार ही प्रधान नियामक था।
में कई प्रकारकी कुरीतियाँ आ गयी हैं। इनकी ओर
ल हिंदुओंका प्रबल ध्यान अविलम्ब जाना चाहिये
हमारे दुर्भाग्यसे हिंदू-कोड-बिल-जैसे सत्यानाशी बिलों-
जोरोंसे चल रही है—जो हमें रसातलको पहुँचाकर
ी। भगवान् हमारी रक्षा करें।

ा आश्रम है—गृहस्थाश्रम। यह सब आश्रमोंमें
है, क्योंकि गृहस्थोंसे ही ब्रह्मचारियोंकी उत्पत्ति
और गृहस्थोंमेंसे ही वानप्रस्थी और संन्यासी
जाते हैं और भरण-पोषण प्राप्त करते हैं। कलिकालमें
ही आश्रम रह गया है, सम्प्रति ब्रह्मचर्याश्रमका तो
ा ही हो गया है। आजके स्कूल, कालेजोंमें दी
शिक्षा तथा वहाँ पढ़नेवाले और पढ़ानेवाले छात्र
ापक पुराने ब्रह्मचर्याश्रमके प्रहसनमात्र हैं। अधिकतर
के विद्यार्थी विवाहित रहते हैं और उनकी केश-वेशकी
वेलासी पुरुषों-जैसी रहती है। अधिकांश छात्र और
धूम्रपायी होते हैं। ज्ञानार्थ विद्यार्जनकी भावना
न ही रहती है। बाजारू विद्योपार्जन करके येन केनो-
धिकाधिक द्रव्योपार्जन करके विलासितामय जीवन
ी आजकी शिक्षाका एकमात्र लक्ष्य है। स्कूल-कालेजमें
कन्याएँ गृहकार्यके लिये सर्वथा अयोग्य होकर अनेकों
ागाड़ चुकी हैं। और ऐसी शिक्षा पायी हुई गृहिणियोंसे
कितने घर बिगड़ेंगे—भगवान् ही जानें। शिक्षा-
समस्या देशके सामने विकट हो रही है। नित्य नयी-
नाएँ बनती हैं और असफल सिद्ध होती हैं। पर
र अध्यापकोंको एक साथ रखकर (Residen-
stern) उनके पारस्परिक निकट सम्पर्कसे चरित्र-
योजना भी अभीतक सफल नहीं हुई है और न द्रव्या-
र्वभौम शिक्षा-प्रचारकी योजना ही कार्यान्वित हो पायी
दशामें पुनः ब्रह्मचर्याश्रमकी शरण लिये बिना देशमें
चिन्तनशील ज्ञानी-विज्ञानी पुरुषोंका सर्वथा अभाव
। इसको कार्यान्वित करना कर्तव्यशील सद्गृहस्थोंका
है। प्राचीन भारतके गृहस्थोंका जीवन कितना त्याग-
—इसकी आज लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।
ार्जित द्रव्यका प्रचुर भाग गृहस्थलोग लोकोपकारी

भी गृहपति या गृह-स्वामिनी स्वयं भोजन नहीं कर
इसी कारण देशाटनार्थी लोग कभी अपने साथ
पाथेय लेकर नहीं चलते थे और न कहीं होटल
प्रथा थी। साथ ही अकारण अकर्मण्य रहकर परान्न-भो
लोग महापाप समझते थे। इसी हेतु कृत्रिम भिक्षार्थि
आजकी तरह भरमार नहीं थी।

भारतीय गृहस्थकी ऐसी एक भी नित्य या नैमित्ति
नहीं होती थी, जिसमें लोकहितके साथ-साथ परलो
अंश नहीं रहता हो। शरीरकी क्षणभङ्गुरता तथा
नित्यताका ध्यान सदा उनके हृदयपटलपर अङ्कित रह
यम-नियमके पालन द्वारा वे अपने जीवनको अपा
बनाकर न्यूनातिन्यून सामग्रियोंसे जीवन-यापनका नित्य
करते-करते अन्तमें ममता तथा अहन्तासे शून्य होक
और भौतिक शरीरका त्याग सुखपूर्वक करते थे। ऐ
किस प्रकार दूसरोंके द्रव्य या द्वारपर सतृष्ण दृष्टि र
हैं। समाजमें विवाह-योग्य वयस्के सारे पुरुष अ
कन्याओंके लिये विवाह-बन्धनमें अपनेको बाँधना
था। साथ ही पुरुषोंमें एकपत्नीव्रत और
सतीत्वका महत्त्व लोकोत्तर रूपमें था। इस प्रकारक
वैवाहिक जीवन आर्य-संस्कृतिका मेरुदण्ड था। विव
योग्य सन्तान उत्पन्न करना लोग धार्मिक कृत्य सम
पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रके द्वारा वंशको अक्षुण्ण रखना लोक-
लिये परमावश्यक था। 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' में
दृढ़ विश्वास था। वंशच्छेदको परम दुर्भाग्य समझा ज
समाजमें सत्कारका माप-दण्ड धन नहीं था, वरं चरि
धनसे सुखकी प्राप्तिकी भावना समाजमें नहीं थी।
लोग अपनेको सुखी समझते थे। अपात्रोंके हाथमें
भी नहीं पाता था। इस विषयमें पश्चिमीय सभ्यता
सभ्यताका सर्वथा वैमत्य है। वहाँ ठीक इसके विपरीत
है। वहाँ धन ही समाजमें आदरका साधन है।
सुख माना जाता है। उसी सभ्यताके सम्पर्कसे आज
भी सब लोगोंमें धनकी लिप्सा असीम बढ़ गयी है।
इस घुड़दौड़में अशान्त और चिन्तित हैं। दूसरोंकी
तथा कमाईको हड़पनेकी फिक्रमें अधिकांश लोग रह
कचहरियोंका अस्तित्व भी अधिकांशमें इसी हेतु है।
और कारखानोंमें तथा स्कूल-अध्यापकोंमें नित्य हड़
सिलसिला भी इसीलिये चल रहा है। जबतक देशमें
लौकिक सुखका साधन माननेकी कुबुद्धि चलती रहेगी,

रामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
ात इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥
ा ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
त्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

-संस्कृति और हिंदू-धर्मको लुप्त करनेका सबसे प्राचीन क प्रयत्न चार्वाकोंने किया था; जिनका सिद्धान्त था—

ज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
ोभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

कोई प्रमाण नहीं मिलता कि भौतिकवादी चार्यके थोड़े भी अनुयायी हुए हों । उसके ौद्धोंने इसपर आघात किया । उससे आगे नेक प्रकारके अनाचार, व्यभिचार फैल गये । ' पश्चात् कुमारिल भट्टने और पुनः श्रीशङ्कराचार्यने उस अनाचारको दूर किया । समाजको प्राचीन ध विचलित और विशृङ्खलित करना ही बौद्ध देशसे पतनका तात्कालिक अन्तिम कारण हुआ । अम्बेदकर-जैसे देहात्मवादी तथाकथित हिंदू आ और संस्कृतिको विकृत करनेकी चेष्टामें लगे हैं ! धर्मावलम्बी असंख्य नर-नारियोंका दृढ़ विश्वास है कि द्रोहियोंका स्वयं पतन होगा और निकट भविष्यमें भारतमें पुनः एक बार त्यागी, धर्मपरायण आर्योंके प्राचीन आर्य वैदिक सभ्यता चमक उठेगी और शान्तिका प्रचार करेगी—जैसा उसने पूर्वमें किया था दिशाओंमें भ्रान्तिजनक भौतिकवादसे जनता ऐन्द्रियि मृगतृष्णाके पीछे द्रुतगतिसे दौड़ी जा रही है, उसे करके शान्तिसरोवरमें स्नान करा देना इसी देशका

हिंदू-संस्कृतिकी अखण्डता

(लेखक—आचार्य श्रीक्षितिमोहन सेन)

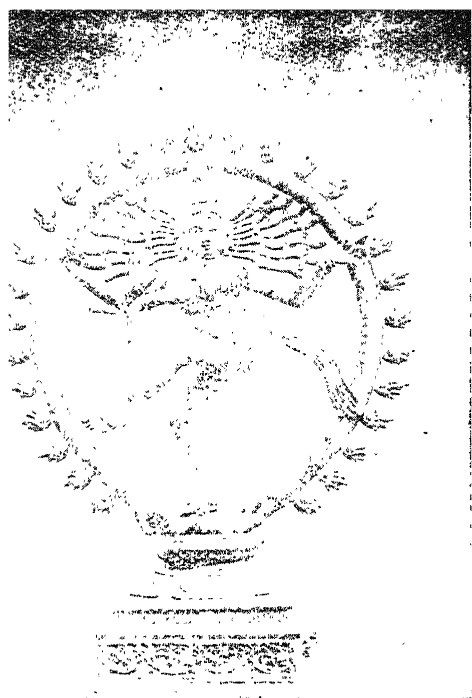
त भारतमें सभी दिनमें तीन बार एक ही गायत्रीकी करते हैं । एक ही शिव, विष्णु और देवी नाना नामोंसे सर्वत्र पूजित होते हैं । एक ही रामायण, , पुराण और भागवतका विभिन्न प्रदेशोंमें पाठ होता है । ाया तीर्थमें सबके मुख्य पितृकृत्य होते हैं । एक ही बके द्वारा प्रधान शिवार्चना होती है । एक ही हरिद्वार ग सबके लिये तीर्थस्थान हैं । समस्त भारतमें एक ही न्दका गान होता है । कृष्णकर्णामृतके रचयिता बिल्वमङ्गल तो हम सभीके अपने हैं । महाप्रभु त्रोंको बहाकर दक्षिण देशसे इसी कृष्णकर्णामृत संहिताको संग्रह करके लाये थे । श्रीराम और समस्त भारतमें सर्वत्र पूजित होते हैं । एक ही दशकर्म सर्वत्र प्रचलित हैं । प्रादेशिकताकी बाधा कहाँ है ?

ी भी देवताकी पूजा क्यों न करें, चारों धामोंके उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम समस्त भारतके चौरासी जलसे इष्टदेवताका अभिषेक कराये बिना हमारा पूर्ण नहीं होता । शङ्कराचार्यने सम्पूर्ण भारतके लिये ानामी सम्प्रदायकी स्थापना की । उन्हींके चार मठ

तान्त्रिक तो समस्त भारतवर्षको एक ही ज पुण्यदेह जानकर बावन पीठोंमें बावन अङ्ग मानते पीठस्थानोंमें हिंगलाज बलोचिस्तानमें है और आसाममें । कन्याकुमारीसे ज्वालामुखीतक सर्वत्र ही दे हैं । उस देवीके अखण्ड देहको क्या हम खण्डित हैं ? एक ही शिव, एक ही विष्णु भारतकी चारों चौरासी क्षेत्रोंमें विराजित हैं । उसको हम खण्डि करें ? तन्त्र कहता है कि बावन पीठ हमारी ही देह कैसे अपनेको खण्डित कर सकते हैं ?

इसीसे यह सिद्ध है कि इस देशमें प्रादेशिक स्थान नहीं है । जो प्रादेशिकताका प्रचार करते हैं, वे चिरन्तन साधना और संस्कृतिसे परिचित नहीं हैं उसके प्रति उनके मनमें दर्द नहीं है । अंग्रेज हमें यह विष दे गये हैं । हमने इसको आदरपूर्वक यही आश्चर्यकी बात है ।

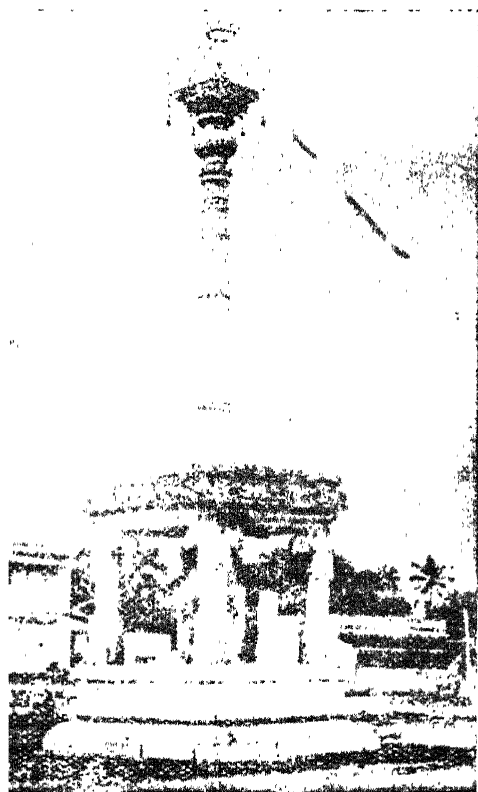
अंग्रेजोंके दिये हुए इस विषको यदि दूर कर हमें सब प्रकारकी साम्प्रदायिकता और प्रादेशिकत

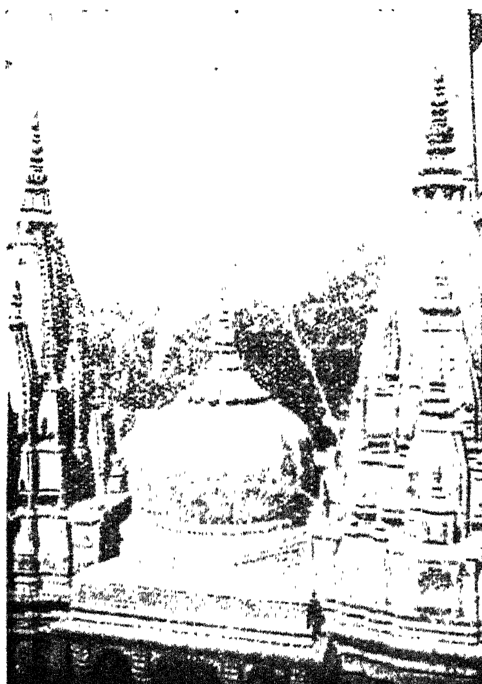


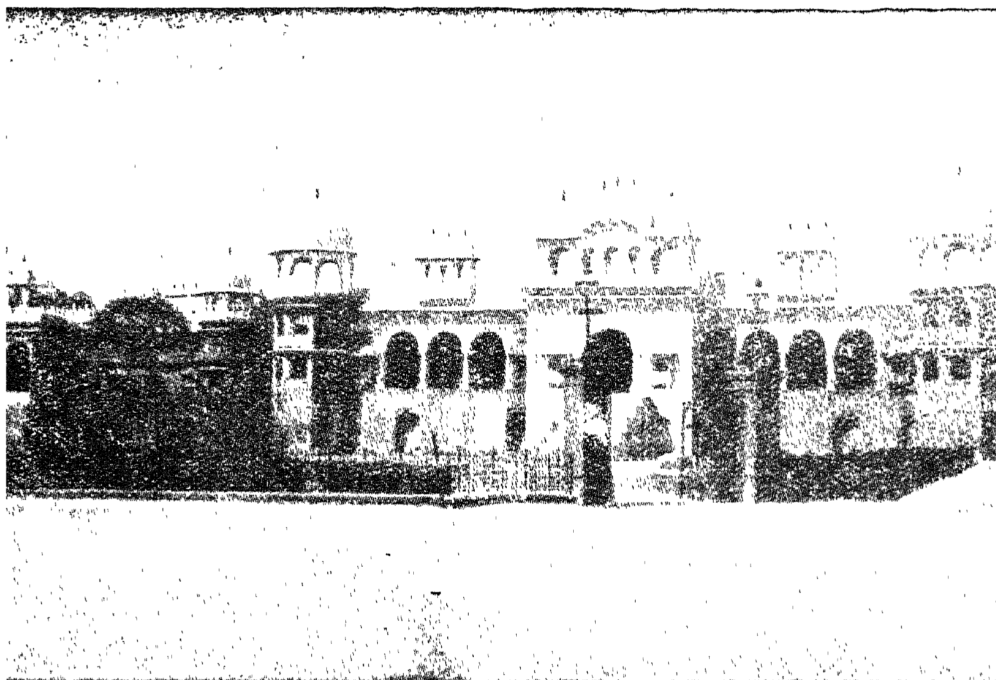
नटराज



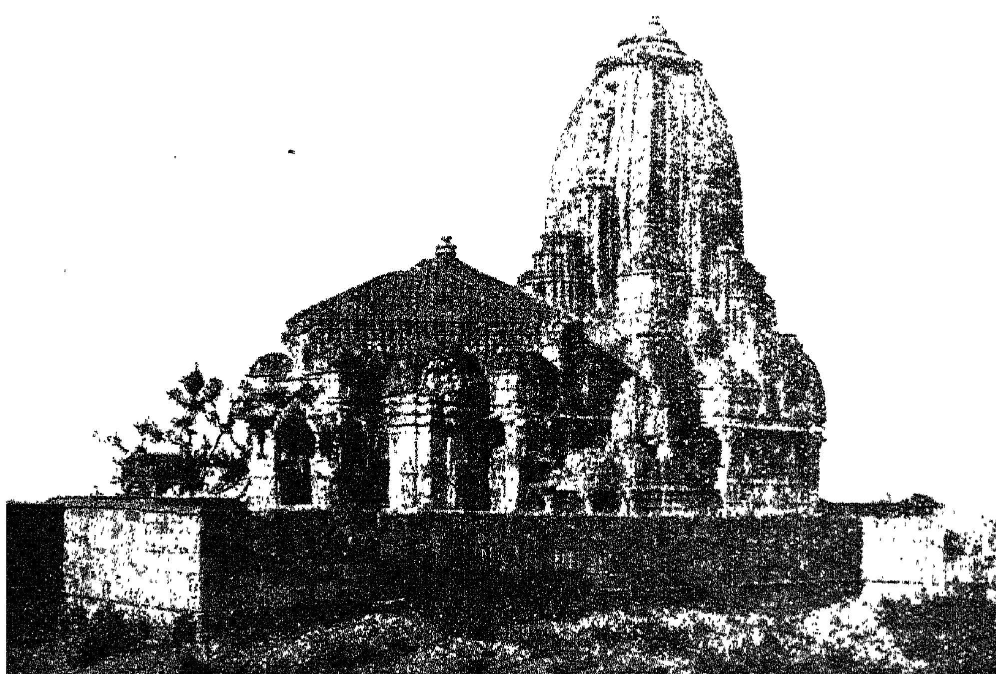
रामपुरवाके अशोकस्तम्भपर वृषमूर्ति







श्रीरतनबिहारीजी का मन्दिर, बीकानेर



हिंदू-संस्कृतिका आदिस्रोत भारत

(लेखक—श्रीविष्णु हरि वडेर एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

्-देशका अति प्राचीन नाम भारत है । सामान्य
ाह है कि दुष्यन्त और शकुन्तलाके पुत्र भरतसे इस
ाम भारत प्रसिद्ध हुआ । पर इन भरतसे पहले दो
र हुए हैं । प्राचीन वंशावलियोंमें ऋषभ और उनकी
न्तीके नाम आते हैं । इनके १०० पुत्र थे । सबसे
ा नाम भरत था । इन्हींके नामपर इनके राज्यका नाम
हुआ (भागवत ५ । ४; वायुपु० १ । ३३, ५२;
ु० २ । १४; लिङ्गपु० १ । ४७, २४; विष्णु-
१ । ३२) । त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपकी कन्या पञ्च-
नका विवाह हुआ और ५ पुत्र हुए—सुमति,
सुदर्शन, आवरण और धूमकेतु । इन भरतकी
श्चात् इनका राज्य इनके पाँचों पुत्रोंमें बँट गया ।
ले इस देशका नाम अजनाभवर्ष था । पृथु नाम
ाहित्यमें आता है । इन्हें आदि राजा कहते हैं ।
ामपर इस धरतीका नाम पृथ्वी पड़ा । ये अपनेको
ते थे । इनके बाद तीसरे दौष्यन्ति भरत हुए ।
कई स्थानोंमें भरत नामके कुलों या वंशोंका उल्लेख
वंश ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और
आरण्यकमें इनके यज्ञसमारम्भोंका वर्णन है । भारती
की कुलदेवी थी । इन्हें सरस्वती भी कहते थे ।
नदीसे भी इसका कुछ सम्बन्ध रहा होगा । पञ्चजन,
ाजा, भरतासः आदि नाम तृत्सु, द्रुह्यु, अनु, यदु
आदिके वंशजोंके लिये आया है । जिन दिवोदासने
ीके पश्चिम तटसे पूर्वकी ओर दिग्विजय किया, वे
े ही राजा थे । ये दौष्यन्ति भरतसे दस पुरुष
। ऋग्वेदका अधिकांश भाग दाशराज-युद्ध और
बीच समयका है । यह दाशराज-युद्ध ऋग्वेदके
ीन मन्त्रोंसे बहुत पहलेकी घटना है ।

युद्धसे पहलेके राजाओंके इतिहासकी बहुत-सी सामग्री
तथा पुराणोंसे मिल सकती है । दाशराज-युद्धसे
ितिहास तैयार करनेमें भी उससे बड़ी मदद मिल
। उस इतिहासकी इतनी झलक तो आज भी मिलती
हमारे पूर्वज उस समय संस्कृतिके उच्च शिखरपर
नकी शासनसंस्था भी उत्कृष्ट थी । श्रीरामचन्द्रने
और सामाजिक संघटन भी बहुत अच्छा था । दाशर
साथ जो ऋषि सम्बद्ध थे, उनके नाम पुराणोंमें ः
ऋग्वेदके तीसरे और सातवें मण्डलोंमें तृत्सु और
साथ तथा छठे मण्डलमें दिवोदासके साथ भारतों
आया है । हमारी प्राचीन आर्यसंस्कृतिके चिह्न उत्त
मध्य एशिया, काकेशस पर्वत, ईरान तथा हिंदूकु
आदि स्थानोंमें अब भी मिलते हैं । इस संस्कृतिका
जीवित रूप भारतवर्षमें ही विद्यमान है, यद्यपि का
अबतक इसमें बहुत परिवर्तन हो चुका है ।

हमारे नित्य-नैमित्तिक कर्मोंमें रोज ही पढ़े
सङ्कल्पमें भारतसम्बन्धी दो शब्द 'भारतवर्षे' और 'भ
एक साथ आते हैं । इससे यह मालूम होता है कि भा
विस्तार बहुत बड़ा था और भरतखण्ड उसका
था । इसे ही हम अब भारत या हिंदुस्थान कहते हैं

हमारे इस देशपर विदेशियोंके अनेक आक्रमण
विदेशियोंके संसर्गसे समय-समयपर बहुत गड़बड़ भी
पर हमारी आर्यसंस्कृति बनी रही । हमारे धर्माच
दार्शनिक सदासे इसकी रक्षा करते चले आये है
संस्कृतिकी संस्कृत वाणीका सर्वविध व्यापक साहित
सम्पूर्ण और विविध संस्कृतिका निदर्शन है ।

यही वह पुण्यमय भारत देश है, जिसकी संस्कृ
सब संस्कृतियोंकी मूल निधि है । संसारमें फी
बैबिलन, सुमेरिया, मिस्र और चीनकी संस्कृतिय
विख्यात हुई । ये सभी आर्य-संस्कृतिकी शाखाएँ
अपने मूलसे पृथक् होकर पीछे विनष्ट हो गयीं ।
पणियोंका वर्णन आता है । ये समुद्रके रास्ते व्याप
थे । ये वरुणादि देवोंको पूजते थे । ये ही देशान्तर
फीनिशियन कहलाये और इनका बसाया हुआ दे
शिया । चाल्डिया अथवा बाबिलनकी संस्कृति
इतिहास यही है कि समुद्रयात्रियों और समुद्रके
रहनेवालोंने चाल्डिया अर्थात् मेसोपाटामियाको उन्नत
इस संस्कृतिपर हिंदू-संस्कृतिकी अमिट छाप थी ।
शब्द 'बभ्र'से निकला है । बाबल 'बभ्र'का अपभ्रंश

के शिष्य थे, जिन्होंने अपने गुरुसे अथर्वसंहिता (भागवत १२ । ७ । १-३) । तीसरे विश्वामित्रके बाबिलनके लोगोंको हिंदू बब्रेरु (बाभ्रव्याः) नामसे । पंजाब तथा दक्षिण हिंदुस्थानके साथ इनका म्बन्ध था । ज्यौतिषशास्त्र इन्होंने हिंदुओंसे मेरियन, जिन्होंने बाबिलनकी संस्कृतिकी नींव डाली, की एक शाखा थे । असीरियाके लोगोंका विश्व-न्धी ज्ञान वैदिक ज्ञानसे मिलता-जुलता है । ये क देवताओंको ही पूजते थे । मिस्रकी प्राचीन । यही इतिहास है । चीनका पुराणेतिहास यह है योंके पहले राजाका नाम यू था । ये चन्द्रवंशी राजा राज थे । इन्होंने चीनमें वैदिक संस्कृतिका प्रचार कालिदासके रघुवंशमें रघुके दिग्विजयका वर्णन है । त्तर-पूर्व चीनको जीतकर अपना करद राज्य बनाया । संस्कृति आर्य-संस्कृतिकी ही चीनको देन थी, में आधुनिक विद्वान् भी एकमत हैं । ज्योतिर्विद् Biot) ने यह हिसाब लगाया है कि ईसाके र्ष पूर्व कृत्तिका नक्षत्रमें जब वसन्त-संपात होता था, नेयोंने अपनी वर्षगणना आरम्भ की । डा० वेबरके मतसे यह काल ईसाके २७८० वर्ष पूर्वका अ जो कुछ हो, यह निश्चित है कि महाराज आयु अथ कोई पुत्र चीनमें गये थे और वहाँ उन्होंने अपना स्थापित किया । इन्हींके द्वारा वहाँ हिंदू-संस्कृतिक हुआ । यह बात विक्रम-संवत्के पूर्व तृतीय सहस्राब्द आयु चन्द्रवंशी राजा पुरूरवाके पुत्र और ययाति पिता थे । चीनकी संस्कृति इस प्रकार हिंदू-संस्कृ प्रवर्तित हुई । पीछे कनफ्यूशियस तथा बौद्ध मतोंके उसका रूप बहुत कुछ बदल डाला । तात्पर्य, ज सभी प्रसिद्ध संस्कृतियाँ हमारी आर्य-संस्कृतिरूप शाखाएँ थीं । इनमेंसे कोई संस्कृति अब अपने रूपमें नहीं है । पर आदि संस्कृति अर्थात् हमा संस्कृति आज भी अपने देशमें सुरक्षित है ।

हमारी इस संस्कृतिपर भी विदेशियोंके द संसर्गसे कुछ अनिष्ट प्रभावोंकी छाया पड़ी हुई दे है । हमारा यह कर्तव्य है कि इन अनिष्ट प्रभावोंको दें और अपनी संस्कृतिको सर्वथा विशुद्ध रक्खें । अमूल्य सम्पत्ति है, जो हमारे पूर्वपुरुष परम्परासे स हुए आगेकी परम्पराके लिये छोड़ गये हैं ।

हिंदू-संस्कृति-रक्षक पंचीस प्रतिज्ञाएँ

(लेखक—श्रीनारायण पुरुषोत्तमजी सांगाणी)

ीपर जितने भी प्राणी हैं, सभी सुखकी आकाङ्क्षा । सभी प्राणियोंके लिये अपेक्षित वह सुख उन्हें रनेकी शक्ति एकमात्र हिंदू-संस्कृति—हिंदूधर्ममें योंकि इस धर्मका निर्माण साक्षात् विश्वकर्ता श्रीहरिने । हिंदूधर्मके सिद्धान्त, प्रथाएँ, प्रणालियाँ इतनी णीकी और निर्दोष हैं कि वे किसीकी मान्यतामें बाधक नहीं होतीं और अपकार करनेवालेका भी करती हैं । हिंदू-संस्कृतिका स्पष्ट उद्घोष है कि ख-शान्ति एवं आनन्द केवल प्रभु श्रीहरिके श्रीचरणों- । जो मनुष्य उन प्रभुके बनाये वर्णाश्रम-धर्मका पालन करके नाशवान् शरीरके नष्ट होनेसे पहले ही रिकी निष्काम एवं अनन्यभावसे आराधना करता है, प्रभुकी प्राप्ति होती है और उसके जन्म-मरणका हो जाता है । वे विश्वनियन्ता श्रीहरि सर्वत्र सबमें न हैं; अतः मन, वाणी एवं कर्मसे किसी भी प्राणीको सर्वोद्धारक संस्कृति एवं धर्मका पोषण एवं रक्षण बदले, अत्यन्त खेदकी बात है कि, वर्तमान समयके प्राप्त साधनोंका दुरुपयोग करके उस धर्म एवं स जड़मूलसे उखाड़नेकी अनेक चेष्टाएँ दिन-रात कर

यथार्थ रीतिसे विचार किया जाय तो लोककल्य तप, भक्ति, यज्ञ-याग, दान-पुण्य, योग, अनुष्ठान, पवित्रता, शुद्ध खान-पान, गोरक्षण तथा वर्णाश्र पालन और वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, गीता, म रामायण, भागवत, शुक्रनीति आदि प्रामाणिक उपदेशके अनुसार बर्ताव करनेमें ही है; परंतु इन भूलकर, नष्टप्राय कर, हिंदुओंके प्रबल विरोधके हिंदूकोड बिल, मन्दिरप्रवेश, सगोत्रविवाह, तलाक बिल बहिष्कार-प्रतिबन्धक बिल तथा वर्णान्तरवि भयङ्कर, संस्कृति एवं धर्मनाशकके कानूनोंको पास करके अस्त-व्यस्त करने तथा प्रजापर विपत्तिके बादल

करनी चाहिये और दूसरोंको समझाकर उनसे चाहिये एवं ऐसा करके हिंदू-संस्कृति तथा धर्मकी ; कृतकृत्य होना चाहिये। यदि हिंदू अधिक समय-स्य एवं प्रमादमें रहेंगे तो हिंदू-संस्कृति एवं हिंदूधर्म-का तो महान् प्रयत्न होगा ही; साथ ही ऐसा होनेपर ौर सारे संसारका भी अन्त आ जायगा, यह बात हीं चाहिये। अतः, हिंदुओ! उठो! जागो! प्रतिज्ञा सरोंसे लिवाकर उनके अनुसार बर्ताव करनेके लिये हो जाओ।

प्रतिज्ञाएँ

मैं मानता हूँ कि लोकपितामह ब्रह्माजीने यह जो ाकारकी सृष्टि रची है, वह भगवान् श्रीनारायणकी श्रीनारायण भगवान्‌की क्रीड़ाके लिये है।

मैं मानता हूँ कि सृष्टिके लोग ठीक नियमोंके अनुसार रें और अपनी ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति कर के लिये श्रीहरिने ही वेद-शास्त्र एवं पुराण तथा धर्मकी रचना की है।

मैं मानता हूँ कि इस प्रकारके ईश्वरकृत वेद-शास्त्र श्रम-धर्मके सिद्धान्तोंमें कभी कोई परिवर्तन नहीं ा; क्योंकि वे त्रिकालाबाधित हैं।

मैं मानता हूँ कि यह ईश्वरनिर्मित अनादि धर्म ही र्म कहा जाता है। इस धर्म तथा इसके अङ्गभूत ाण, भक्त तथा सती नारियाँ जब संकटग्रस्त होकर के लिये पुकार करती हैं, तब भगवान् श्रीहरि अजन्मा नी अवतार धारणकर दुष्टोंको दण्ड देकर धर्मकी पुनः करते हैं। अतः संकट आनेपर भी किसीको स्वधर्म-ज़त नहीं होना चाहिये, अपितु प्रह्लादकी भाँति दृढ़ ाय करना चाहिये।

मैं मानता हूँ कि भारतवर्ष—हिंदुस्थान ही हिंदुओंका श है, जिसमें चार धाम, सात पुरियाँ, गङ्गा-यमुनादि दियाँ एवं हिमालय-गोवर्धनादि दिव्य पर्वत हैं। इसी । यह देश कर्मभूमि—पुण्यक्षेत्र माना जाता है, जिसमें ादि भगवदवतारोंने प्रादुर्भूत होकर जगदुद्धारक लाएँ की हैं, उस नन्दनवनके समान कामधेनुस्वरूप भेद्य—अखण्ड रहना चाहिये और उसका नाम भी ते है, वही 'भारतवर्ष' ही रहना चाहिये।

चाहिये, जिससे संस्कृतद्वारा हमारी संस्कृतिकी सहज हो सके।

७—मैं मानता हूँ कि पातिव्रत्य—सतीधर्मसे ही मोक्षकी अधिकारिणी शुद्ध संस्कारी सन्तति उत्पन्न है और ऋषि-मुनियोंकी उत्पत्ति हो सकती है; अतएव को चाहिये नरक देनेवाली वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न विवाहविच्छेद (तलाक) तथा वर्णान्तर-विवाहके को धिक्कार देकर निकाल दें।

८—मैं मानता हूँ कि शास्त्रानुसार अन्त्यज तथा स्त्री देवमन्दिरमें प्रवेश नहीं कर सकते। यदि बला मन्दिरमें प्रविष्ट कराये जाते हैं तो मन्दिरकी देवकला राजा-प्रजामें विप्लव तथा लोगोंकी दुर्दशा होती है— समय हो रही है; अतः देशरक्षाके लिये ही ऐसे रोकनी चाहिये।

९—मैं मानता हूँ कि किसी मनुष्य या किन्हीं अनुकूल न होनेसे ही कोई ईश्वरकृत या ऋषि- नियमोंको मिटाकर अपने मनके नियम प्रजापर न सकता। ऐसा होनेपर भी इस समय जिन मनमाने देशपर लागू करनेका अनुचित प्रयास हो रहा धर्मविरुद्ध नियमोंका मैं कभी अनुसरण नहीं बल्कि उन्हें रद्द होनेपर ही शान्तिकी साँस लूँगा।

१०—मैं मानता हूँ कि हिंदुओंकी जातियाँ वर्णा मुख्य आवश्यक अङ्ग हैं। जातियोंके अस्तित्वके हिंदूजाति विदेशी, विधर्मियों तथा नास्तिकोंके सैकड़ों से अबतक सुरक्षित रह सकी है और अपनेको विशु रख सकी है; अतः मैं अपनी जातिको सुव्यवस्थित यत्न करूँगा और विवाहादि व्यवहार अपनी जा शास्त्रीय प्रथाके अनुसार करूँगा।

११—मैं मानता हूँ कि गौ-माता परम पवित्र एवं पर प्राणी है। उसमें तैंतीस करोड़ देवताओंका निवास मैं सदैव हर प्रकारसे उसका रक्षण, पोषण तथा सेवन

१२—मैं मानता हूँ कि दान पात्र तथा अपात्रव करके सुपात्रको ही देना चाहिये। परंतु मोहवश ले विचार किये बिना द्रव्य तथा मत (वोट) उनको उसके पात्र नहीं थे; इसीका यह विषम परिणाम [illegible]

:—मैं मानता हूँ कि जहाँ अपूज्यका पूजन और पूज्यका होता है, वहाँ दुष्काल, भय और मृत्युकी प्राप्ति जो इस समय देशमें हो रही है; अतः अबसे मैं श्रीहरि, ऋषि-मुनिगण, माता-पिता-गुरु तथा धर्मात्मा का ही सम्मान करूँगा।

—मैं मानता हूँ कि इस समय जो देशमें नियमित ं होती और लोग अन्न-वस्त्रके लिये विह्वल हो दुष्काल, अतिवृष्टि, भूकम्प, महामारी, बेकारी, लूट-द्रव, असह्य महँगाई आदि आपत्तियोंके कारण जो मचा है और लोग दुखी हो रहे हैं, इसका कारण यह ग यज्ञ-याग, हवन, ब्रह्मभोज आदि सत्कर्म करके ो सन्तुष्ट नहीं करते; अतएव अबसे मैं व्यर्थ उपायों-धाओंको दूर करनेका प्रयत्न न करके यथाशक्ति यज्ञ-नादि जिस प्रकार विधिपूर्वक हों—ऐसा ही यत्न करूँगा।

—मैं मानता हूँ कि इस समय जो जहाँ-तहाँ बहुमतकी ा आन्दोलन चल रहा है, वह अत्यन्त अविचार-घातक पद्धति है। शास्त्र कहता है कि राग-द्वेषके दस सहस्र मूर्खोंका निर्णय नहीं मानना चाहिये, पर शास्त्रके ज्ञाता विद्वान्‌का अभिप्राय स्वीकार करना इसके अनुसार धारासभा आदि संस्थाओंके सदस्य ास्त्रके ज्ञाता नहीं हैं, हिंदू-संस्कृति एवं हिंदूधर्मके जो अनधिकार अनुचित प्रस्ताव स्वीकृत कर कभी भी स्वीकार करने योग्य नहीं माने जा सकते।

—मैं मानता हूँ कि पुण्यसे स्वर्ग, पापसे नरक और ःकरणकी अनन्य भक्तिसे प्रभुपद—मोक्ष प्राप्त हो। इसी प्रकार शास्त्र विधान करता है कि इस ें नवधा भक्तिमेंसे एक कीर्तनसे ही भगवान् केशव न्न होते हैं। अतः मैं शास्त्रनिषिद्ध पापकर्मोंसे दूर त साधनोंका प्रभुप्रीत्यर्थ परमार्थके कार्योंमें उपयोग र चित्तको भगवच्चिन्तनमें ही लगाये रहूँगा।

—मैं मानता हूँ कि मेरा मनुष्ययोनिमें जन्म होना और रतवर्षमें हिंदूघरमें, यह भगवान्‌की महान् कृपाका ही इसका उपयोग कौए-कुत्तेकी भाँति खाने-पीने अथवा के व्यर्थ कर्मोंसे भवाटवीके दुःखोंको बार-बार प्राप्त ा नहीं होना चाहिये। अतएव अबसे मैं अपने मन द्रयोंको नियन्त्रणमें रक्खूँगा। चाय, बीडी, सिगरेट, शौच-स्नानसे शुद्ध होकर नित्य भगवत्सेवा, पाठ-पूज युधिष्ठिर, अम्बरीष, नारद, अङ्गिरा, भामाशाह, शिवा प्रताप आदिके समान धर्म एवं संस्कृतिके रक्षकोंका-स बनानेका यत्न करूँगा। श्रेष्ठ भावका आश्रय करके ध काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ सिद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा

१८—मैं मानता हूँ कि स्वदेशके कल्याणकी इच्छ वालेको केवल तोतेकी भाँति रटे हुए कुछ शब्दोंका ई नहीं करना चाहिये, बड़ी लगनके साथ अपनेको संय भाषामें, भावमें, पोशाकमें, आहार-विहारमें, रहनी संस्कृति एवं धर्ममें उसे स्वदेशी बनना चाहिये और के कला-कौशल, व्यापार, उद्योग, विज्ञानादिकी लिये स्वदेशीय जनताकी आवश्यकताके सब पदार्थ उत्पन्न करनेका प्रबन्ध करना चाहिये।

१९—मैं मानता हूँ कि पहले अपना भारतवर्ष शिखरपर था, हिंदू नरेश चक्रवर्तीके पदपर आसीन ऋषि-मुनियोंने तपोबल तथा योगविद्याके प्रभावसे ज्ञान कल्पनातीत उन्नति की थी। परंतु पीछे राजा तथा ः स्वधर्म छोड़कर कर्तव्यभ्रष्ट हो गये, इससे सम्पूर्ण तथा ऐश्वर्यको खोकर देश पराधीन हो गया। अत सम्पन्न पुरुषोंको इस ज्ञान-विज्ञानके पुनरुद्धारके लिये को प्राप्त करनेकी व्यवस्था करनी चाहिये और धर्म महानुभाव विद्वानोंको संयम, नियम तथा निःस्वार्थवृत्ति भारतमें ही उनके अभ्यास, अनुसन्धान, अनुशीलन, ः अनुष्ठानादिमें लग जाना चाहिये और फिरसे भारतवर्ष श्रेष्ठरूपमें विश्वमें प्रतिष्ठित करना चाहिये।

२०—मैं मानता हूँ कि जाति जन्मसे ही है। हि का पुरुष ही यज्ञोपवीत धारण करके वेदोंका अभ्य सकता है। दुर्भाग्यवश जो हिंदू स्त्री-पुरुष अत्या विधर्मी बनाये गये हों, उन्हें प्रायश्चित्त कराके अपन सकता है—इस सम्बन्धमें तो कोई प्रश्न ही नहीं; किंतु म्लेच्छ, यवन आदिके साथ उच्चवर्णके हिंदुओंका स या विवाहादि व्यवहार सर्वथा नहीं हो सकता। ऐसी मर्यादाके होते हुए भी एकता या उद्धारके नामपर इस के अनुचित प्रयासका आदर करके यदि कोई शास्त्र-ि का अतिक्रमण करता है तो उसका परिणाम अधो होता है। एकाकार, वर्णसंकरता या भ्रष्टतासे ऐक्यक

ामें ही रहना चाहिये। क्योंकि पूर्वजन्मके कर्मानुसार ो विभिन्न योनियोंमें जन्म प्राप्त हुआ है। और यदि अपने जातिविहित कर्मोंसे प्रभुकी आराधना करता भी उसकी सद्‌गति होगी। ऐसा होनेपर भी मनुष्य- अपने उद्धारकी ही अभिलाषा हो तो भगवद्भक्तिसे तेसे उसका उद्धार हो सकता है। यह भक्ति करनेकी ळये छूट है। इसमें मन्दिरप्रवेश, सहभोज, ा विवाहादि निरर्थक कर्मरूप दावाग्नि प्रदीप्त करके हसलिये सन्तप्त करना उचित है? अर्थात् ऐसा नहीं चाहिये।

–मैं मानता हूँ कि नेतागण जनताके सेवक हैं, स्वामी प्रजासत्ता या प्रजातन्त्रकी दुहाई देते हैं, अतः जाकी इच्छा जानकर उसीके अनुसार तन्त्र चलाकर ी चाहिये या अपने विचारोंको लोगोंपर जबरदस्ती ाहिये? सच्चा रहस्य तो यह है कि नेताओंके स्वयं ार और आचरण होते हैं, वे उन्हींके अनुरूप ानेकी स्वाभाविक चेष्टा करते हैं। अतएव अपने अनुसार सुख, अभ्युदय, उन्नति, उद्धारकी इच्छा गोंको निर्भय, निःस्पृह, पवित्र, सदाचारी, धर्मज्ञ, ुण, व्यवहारकुशल पुरुषोंको ही नेता—अगुआके नेयोजित करके देशकी बागडोर तथा उत्तरदायित्व- उन्हींके सुपुर्द करने चाहिये।

–मैं मानता हूँ कि बालकोंको सुयोग्य संस्कारसम्पन्न बनाना या दुर्जन बनाना, यह माता-पिताके हाथमें है। ककके उदित और विकसित होते हुए कोमल हृदयमें ही उत्तम संस्कारोंके सिञ्चन करनेका प्रयास माता- और अपने कुटुम्बीजनोंको नित्य सायंकाल या रात्रि- एकत्र करके भागवत, महाभारत, रामायण, गीता कथा-वार्ता शङ्का-समाधानके साथ सुनायें और दुर्गुणोंसे दूर रहनेकी पक्की व्यवस्था करें तो वे ाढ़ावस्थामें निःसन्देह महान् निकलेंगे।

–मैं मानता हूँ कि जिसे विद्या कहा जाता है और जिससे समस्त बन्धन दूर होकर सार्वभौम स्वराज्य होती है, उन पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष, ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—ये चौदह विद्याएँ साथ विद्यार्थियोंको स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय यथाधिकार पढ़ायी जायँ तो भारतवर्षका स्वरूप ब ही बन जाय। आजकी प्रायः समस्त शिक्षा-संस्थाएँ निकम्मी भारस्वरूप खर्चीली हानिकारक शिक्षा दी कि उसे प्राप्त करके विद्यार्थी अपनी जाति, धर्म, तथा गुरुजनोंका अनादर करनेवाले गुलाम मनोवृत्तिके (क्लर्क) मात्र तैयार होते हैं। अतएव देशकी उद्धारके लिये उपर्युक्त चौदह विद्याओं तथा अपने पूर्वजोंके आदेशोंको लक्ष्य बनाकर स्वतन्त्र ऋ ब्रह्मचर्याश्रमों एवं विद्यालयोंकी स्थापना करनी चाहि विद्यमान स्कूल-कालेजोंमें विशेष पाठ्य पुस्तकें तथा तैयार करके उनके द्वारा शिक्षा दी जाय, ऐसा प्रयत्न चाहिये।

२४–मैं मानता हूँ कि हिंदूमात्रको शास्त्रविधिके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए दण्ड-बैठक, लाठी, कुश्ती व्यायाम तथा सूर्यनमस्कार करके सशक्त, बलवान् बनन और अपना, अपने कुटुम्बका, गौओंका, मन्दिरोंका, तथा निर्बल-निराधार लोगोंका आततायियोंसे रक्षा चाहिये। भगवती श्रुति भी स्पष्ट आज्ञा देती है कि को आत्मसाक्षात्कार अथवा परमात्माकी प्राप्ति नहीं 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः–' अतः छोटे-बड़े सभी घर या अखाड़ेमें व्यायाम, कुश्तीकी शिक्षा लेकर भाँति अपने तथा दूसरोंके लिये उपयोगी बनना

२५–आत्मकल्याण तथा हिंदू-संस्कृति एवं हिंदूधर्म एवं देशकी हितरक्षाके लिये मैं सर्वदा विशेष निकालकर शुद्ध होकर बहुत नहीं तो प्रतिदिन ए अपने इष्ट—आराध्य प्रभुके नामकी एकाग्रचित्तसे और गीताजीके एक अध्यायका अवश्य पाठ करूँगा

हरिनाम

जैसे प्यारे लागत दाम।
ऐसे रसिक अनन्य न लागत प्यारे स्यामास्याम।
काया-जाया सौं रति बाढ़ी कौन कहै निष्काम॥
राग-तान-तालहिं मन दीनौं लेइ न हरिगुनग्राम।
पापहरन सुचिकरन ब्यास पतितनकौ है हरिनाम॥

श्रीकृष्णाष्टक

(रचयिता—श्रीकेदारनाथजी बेकल, एम्० ए०, एल्० टी०)

(श्रीकृष्ण-जीवनसे शिक्षा)

मनमोहन दीनदयाल हरे
गोविन्द हरे गोपाल हरे
जगदीश्वर जन-प्रतिपाल हरे
गोविन्द हरे गोपाल हरे
सुन्दर तन, बाहु विशाल हरे
गोविन्द हरे गोपाल हरे
उर ललित कलित वनमाल हरे
गोविन्द हरे गोपाल हरे
परेश, सुभाल हरे अखिलेश, अशेष, अकाल हरे
हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोपाल हरे

कुछ ऐसा मधुमय आकर्षण
श्रीकृष्ण नाममें पाते हैं,
जड-चेतन श्रवन-मनन-गुन-गन
कर रस-विभोर हो जाते हैं
जन-मन-रञ्जन श्रीमनमोहन
नित लीला नयी दिखाते हैं
'मामेकं शरणं व्रज' घोषित-
कर प्रेमतत्त्व समझाते हैं
ग्वालसखा-व्रजधन-गोपीवल्लभ नँदलाल हरे
हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोपाल हरे

गो-सेवा, मातृ-पितृ-सेवा
ब्राह्मण-सेवा, परिजन-सेवा
अर्जुनका रथ रणमें हाँका
की पाण्डव-पायक बन सेवा
था परम धर्म कंसारीके
जीवनका जीवन-धन सेवा
सेवक सम्राट बने हियके
यह है आदर्श चरण-सेवा
ार, गोचार, चतुर, चिन्तामणि, चाल मराल हरे
हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोपाल हरे

अर्जुनको माया-मुक्त किया
रणमें पथ-परिचायक बनकर
निष्फल नारायण-अस्त्र किया
शरणागत-भय-हारक बनकर
जब-जब अधर्म फैला, आये
सद्धर्म-सुसंस्थापक बनकर
जूएके दुष्परिणाम हरे
परिजन-पातक-दारक बनकर
ार अन्तरयामी, अति नीति-कुशल, जनपाल हरे
हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोपाल हरे

अरि-सूदन जगद्गुरू आये
जीवन-रहस्य दर्शानेको
मानव निज भाग्य-विधाता है—
यह अटल सत्य समझानेको
भय-जरा-मरण बिसरानेको
कायरका नाम मिटानेको
श्रम-जीवन-तत्त्व सिखानेको
परहित सहर्ष मर जानेको
गुरुवर, विज्ञान-निधान, पूर्ण ज्ञाता, ज्ञाता, त्रय-
गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गो

वे स्वर्ग बनाने आये थे
सन्तप्त, द्वन्द्वमय भूतलको
सोतोंको जगाने आये थे
जाग्रत् करके अन्तर बलको
शुभ कर्म सिखाने आये थे
धोकर कायरताके मलको
भू-भार उठाने आये थे
वह अखिल विश्वके मङ्गलको
रस-मय, जीवनदाता, रसज्ञ, उत्साही-वीर-र
गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गो

वह पाञ्चजन्यका महानाद
वह वंशीध्वनिका अमर राग
वह अनासक्तिका दिव्य घोष
वह विश्व-प्रेमकी मधुर लाग
वह कर्म-योगका महामन्त्र
वह फलासक्तिका कठिन त्याग
वह मानवताका सकल यज्ञ
वह जीवन-कुसुमोंका पराग
गीतावक्ता, युगसञ्चालक, युगपरिवर्तक, युग
गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गो

तुम पूर्ण सिंधु, मैं एक बिंदु
तुम दीनबन्धु, मैं दीन-हीन
तुम दया-धाम, मैं महा-अधम
तुम निर्विकार, मैं विषयलीन
तुम प्रेम-पुञ्ज, मैं पाप-पुञ्ज
तुम तेज-पुञ्ज, मैं मन-मलीन
बेकल अनाथ कीजे सनाथ
श्रीचरणोंमें करके विलीन
हे गोप कृष्ण ! हे श्याम कृष्ण ! काटो समूल भव-
गोविन्द हरे गोविन्द हरे गोविन्द हरे गो

भारतीय साधना

(लेखक—प्रो० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, एम्० ए०)

त्र सत् और असत्—दो तत्त्वोंके मिश्रणसे बना है। सत् अंश उसे स्थिर और अविनश्वर रखता है तथा ंश अस्थिर और विनश्वर। एक चेतन है, दूसरा जड। ानसिक पक्ष है, दूसरेमें पार्थिव। कतिपय दार्शनिक क्षको मानसिक पक्षका ही रूपान्तर मानते हैं। इनके ान्तरिक विचारधारा, भावना तथा संस्कार बाह्य और शारीरिक विकासमें प्रकट हुआ करते हैं। दूसरे ठीक इसके विपरीत कहते हैं। इनके मतमें मानसिक ाह्य शारीरिक चेष्टाओंकी परिणाम हैं। कुछ हो, निश्चित है कि विश्व इन दोनों तत्त्वोंसे मिलकर

तीय ऋषियोंके चिन्तनका केन्द्र प्रायः विश्वका सत् ेतन अंश रहा है। असत् अंशकी उन्होंने उपेक्षा । उनकी दृष्टिमें मल-मूत्र-मात्र, अस्थि-चर्मावयव- ार्थिवताका कोई महत्त्व नहीं है—यह तो साधन है। तु इससे भिन्न है। हमारे ऋषियोंने इस साध्य वस्तुको कहा है और उच्चस्वरसे घोषित किया है—

त्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो सितव्यः।'

त्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।'

ात् 'आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय और मननीय है। का चिन्तन करना चाहिये।' 'उसीके लिये अन्य ाय लगती हैं।'

तीय ऋषि परमार्थप्रिय थे। प्रत्यक्षसे नहीं, वे ाम करते थे। परोक्ष सिद्ध हो गया तो प्रत्यक्ष अपने- जायगा। अतः वे अन्तर्मुखी बनकर प्रत्यक्षसे परोक्ष- चलते थे। जाग्रत् अवस्थाके अन्नमय तथा प्राणमय ोड़कर वे चितिके सहारे स्वप्नावस्थाके मनोमय कोष से सुषुप्ति-अवस्थाके आनन्दमय कोषतक पहुँचते कोषको भी छोड़कर वे तुरीयावस्थाकी सहज आनन्द- अनुभव करते थे। प्रत्यक्ष प्रकृति है, माया है, । परोक्ष आत्मा है, चित् है। प्रत्यक्ष चलायमान है, ील है, अतः नाशवान् है। आत्मा अचल है, , अतः अविनाशी है। प्रत्यक्ष दुःखका हेतु है। ानन्दरूप है। आनन्दकी कामना सभीको होती है।

दुःखकी इच्छा कोई भी नहीं करता। अतः हमारे स्पष्टरूपसे यही मन्तव्य था कि मानवके पुरुषार्थ लक्ष्य दुःखोंसे निवृत्ति और आनन्दकी प्राप्ति करना

आनन्दकी यह उपलब्धि अभ्युदय और निः द्विविध रूपवाली है। †अभ्युदय प्रवृत्तिमूलक है और निवृत्तिप्रधान। प्रवृत्तिमार्ग साधनाके क्षेत्रमें कर्मका द्योतक है। निवृत्ति-पथमें ज्ञान एवं उ प्रधानता है। इस प्रकार भारतीय ऋषियोंकी साध कर्म एवं उपासना—इन तीन धाराओंमें प्रवाहित त्रिपथगा गङ्गाके समान है। इन्हीं तीन मार्गोंपर चलक अपने अभीष्टको प्राप्त करता है। अनेक आचार्यों ए एक पथकी सम्पूर्ण उत्तीर्णताको भी अभीष्ट-प्राप्तिक माना है; पर सर्वमान्य सिद्धान्त यही रहा है कि तीनों समन्वय ही सम्यक् सिद्धिका हेतु है। उपनिषदोंकी श्रीमद्भगवद्गीतामें भी ज्ञान, कर्म एवं उपासना— विवेचन पाया जाता है; पर प्रधानता उसने निष्का दी है, जो ज्ञान और उपासनाके बिना सम्भव नहीं।

ज्ञान बुद्धिसे सम्बन्धित है और उपासना श्र विश्वासपर अवलम्बित है। प्रत्येक कार्यके मूलमें इन होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार कर्मके और उपासना, बुद्धि और श्रद्धा-विश्वासकी आवश्य उसी प्रकार ज्ञानार्जनके लिये कर्म (तप) और (श्रद्धा) तथा उपासनाके लिये ज्ञान और कर्म अपे

उपासनासे पूर्व भक्तिकी भूमिकामें स्तुति तथा आते हैं। स्तुतिमें प्रभुके गुणोंका कीर्तन होता है। गुणोंका ज्ञान उसके स्वरूपको समझनेमें अधिक सहा है। अतः स्तुति (गुण-कीर्तन) ज्ञानकाण्डके अन्त प्रार्थनामें प्रभुसे पापके प्रक्षालन और पुण्यकी प्राप्ति याचना की जाती है। दानवताका दमन और दैवी वि विकास कर्मकी अपेक्षा रखते हैं। अनवरत कर्म, सतत के द्वारा ही उनकी सिद्धि सम्भव होती है। इस प्रका भक्ति भी ज्ञान (स्तुति), कर्म (प्रार्थना) और उ पावन त्रिवेणीके सङ्गमका रूप धारण कर लेती है।

---

* त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः। (कपिल-

† [illegible] (कणाद—

स्तिक आर्योंकी विश्वासी बुद्धिके अनुसार वेद ब्रह्मकी । उसमें समस्त साधनाओंके, कर्तव्योंके सूत्र संकलित वेद ऋक् अर्थात् स्तुतिपरक है । आदिकालीन तोता थे । ऋग्वेद इन्हीं स्तोताओंकी ऋचाओं तुतियोंसे भरा पड़ा है । इन स्तुतियोंद्वारा अग्नि, ां, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, अदिति, ऋत, सत्य, मेध गुण-दोषोंका विवेचन हुआ और विश्वकी नाना शक्तियोंके सम्बन्धमें प्रचुर ज्ञान-राशि सञ्चित हो ऋग्वेदको इसीलिये ज्ञानकाण्डका वेद कहा जाता है । प्रथम मन्त्रमें ही श्रेष्ठतम कर्म करनेका आदेश दिया यह वेद यजुस् अर्थात् कर्मकाण्डका वेद है । साम-के रागात्मक अंशसे सम्बन्ध रखता है । यह उपासना-वेद है । अथर्ववेद पूर्वोक्त वेदत्रयीसे समन्वित होकर ब्रह्मविद्याका प्रकाश करता है तो दूसरी ओर लौकिक ी भण्डार बना हुआ है । इसी हेतु इसे ब्रह्मवेद । देवर्षि पितामह ब्रह्माने इस ज्ञान, कर्म और ो त्रिवेणीमें स्नान करके मानवोंके लिये साधना-क्षेत्र- बना दिया । *

प्रकार साधनाका पथ हमारे आदिकालीन साहित्यसे त अथवा सम्बद्ध होकर अनवच्छिन्नरूपसे आजतक थ चला आया है । इस साधनपथकी अन्तिम चरम सीमा, प्रधान लक्ष्य आत्मतत्त्वकी प्राप्ति अथवा चरम उत्कर्ष आनन्दकी उपलब्धि है । उपनिषद्के स अवस्थाको 'भूमा' नाम दिया है और कहा है—

> **चेदवेदीदथ सत्यमस्ति**
> **न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।**
> (केन० २ । ५)

। प्रकार वेदत्रयी अथवा ज्ञान, कर्म एवं उपासनाका रतीय साधनाकी एक विशेषता है, उसी प्रकार प्रवृत्ति ृत्तिकी समन्विति भी । यह ठीक है कि किसी समय प्रधानता रही है और किसी समय निवृत्तिकी; परंतु साधकोंने प्रवृत्तिमें निवृत्ति और निवृत्तिमें प्रवृत्तिके को सदैव आदरकी दृष्टिसे देखा है । उन्होंने अंदर रकी एकताको अनुभव किया है । †

साधनाका एक अत्यन्त सामान्य रूप सन्ध्या है, जि है—अपने लक्ष्य, अपने इष्टदेवका सम्यक् प्रकारसे ध्या इस सन्ध्यामें भी प्रवृत्ति एवं निवृत्तिके समन्वयकी ओर दृष्टि रहती है । वह अङ्गन्यासद्वारा अपनी इन्द्रियोंक और यशस्विनी बनानेकी प्रार्थना करता है और परि उन्हें पवित्र बनानेकी भावनामें लीन होता है । यही को निवृत्तिकी ओर मोड़ना और निवृत्तिको प्रवृ अग्रसर करना । साधनाके क्षेत्रमें प्रवृत्तिपरायणता ए परायणता जब एक दूसरेमें मग्न हो जाती हैं, तब साध अवस्थामें पहुँच जाता है । भारतीय साधनाकी विशेषता है ।

भारतीय साधनाकी तीसरी विशेषता द्वैतमें स्थितिको हृदयङ्गम करना है । विश्वमें विविधरू गोचर होती है, पर इस विविधरूपताके अन्तरसे एक ही तार इसे एकरूप भी बनाये हुए है । यह आत्मतत्त्व है, जो स्वतः आनन्दरूप है । नाना मनो धारण करनेवाले प्राणी इसी एक तत्त्वकी ओर जा चले जा रहे हैं । सबकी आकांक्षा आनन्दरूप बन सबकी भूख इस आनन्दरूपका उपभोग करनेके लि हो रही है । सब आनन्दमय बनना चाहते हैं । ओर उन्मुख यह प्रवृत्ति विश्वके नानात्वको एकत प्रेरित कर रही है । भारतीय साधकने, बिना किसी उ इस विविधरूपतामें एकरूपताके दर्शन किये हैं । ईश का ऋषि कहता है—

> **यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति**
> **सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्स**

भारतीय साधनाकी चौथी विशेषता प्रत्येक अवस्थाके अनुसार उसे साधनामें प्रवृत्त करना है । एक ही स्थितिमें नहीं हैं । जो प्राणी जिस कोटि, स्थितिमें है, वह उसी स्थितिमें रहता हुआ साधना क है । वृत्तका केन्द्र एक है, पर उसकी परिधिके विन्दु और वे सब एक-एक सीधी रेखाके द्वारा उससे जाते हैं । जो विन्दु जहाँ है, उसे वहाँसे किसी दू अथवा उसके मार्गका उल्लङ्घन नहीं करना पड़ता । अपने स्थानसे चलकर केन्द्रविन्दुके साथ एक हो इसी प्रकार जो प्राणी जिस अवस्थामें है, वह वह

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुःसामलक्षणम् ॥ (मनु०)

तीय साधना गुरुकी महत्ताको स्वीकार करती है। यह
चवीं विशेषता है। वैसे तो सब गुरुओंका आदि-
रमतत्त्व ही है जिसे ब्रह्म, ईश्वर, प्रभु, परमात्मा
नेक नामोंसे पुकारा जाता है। पर साधनाके क्षेत्रमें
उस पथके चीर्णव्रत, पथक्रान्त, द्रष्टा पथिकोंसे भी
में पर्याप्त सहायता मिल जाती है। पथ तो उसे स्वयं
रना होता है; पर उस पथको दिखलानेवाला, मार्गमें
कण्टकरूप विघ्नोंसे सावधान करनेवाला और
ता पड़नेपर हाथ लगाकर आगे बढ़ानेवाला एक
-प्रदर्शक चाहिये ही। गुरुका महत्त्व इसी कारण है।
वेकी साधककी आँखोंमें ज्ञानका अञ्जन तथा भक्तिका
ाकर उसे विवेकसम्पन्न द्रष्टा बना देता है। दीपक
र कहता है—'इसके प्रकाशमें आगे बढ़े चलो।'
कहीं स्खलन होता है तो तुरंत मार्गपर चलनेके
कर देता है, व्यवधान आनेपर समाधान करता है
कको उसके गन्तव्य स्थलतक पहुँचा देता है।

वमें हम सब यात्री हैं, पथके पथिक हैं। जबसे
से पृथक् हुए हैं, तबसे चल ही रहे हैं और तबतक
गे, जबतक अपने घर फिर नहीं पहुँच जाते।
भारतीय साधना हम सब पथिकोंको उसी घरतक प
प्रयत्न करती है। वह सत्से चित् और चित्से आनन
ले जानेवाली है। 'आनन्दाद्धि खल्विमानि भूतानि
—आनन्दरूप उस महाचितिसे ही हम पृथक् हु
पृथक् होनेके पश्चात् उत्तम, मध्यम, अधम आ
आवरणोंमें उलझते गये। भारतीय साधना इन
आवरणोंको चीरती हुई, दुःखोंसे दूर करती हुई स
आनन्दरूप अवस्थातक पहुँचा देती है। यह अ
अवस्था ही परम धाम है, गुह्यतम गति है, तत्त्वोंका त
वह परोक्ष तार है, जो प्रत्यक्षकी विविधतामें व्याप्त है।
ऋषियों, मनीषियों, साधकोंके चिन्तन, मनन और
यही केन्द्रबिन्दु है। यही उत्से उत्तर और उत्त
ज्योति है, जिसे हम पथिकोंको प्राप्त करना है। यही
श्रवणीय, मननीय, अचल और अविनाशी परम आत्म

वेद इसीकी व्याख्यामें संलग्न हैं। तपस्वी इस
तप करते हैं। वीतराग यतियोंकी यही विश्राम-भ
ब्रह्मचारी इसीकी कामना करते हैं। यही सबसे श्रेष्ठ
ज्येष्ठ और सबसे प्रेष्ठ अक्षर ब्रह्म है।

भारतीय साधनाका यही चरम लक्ष्य है।

हिंदू-संस्कृति और परलोक

(लेखक—डा० श्रीसदाशिव कृष्ण फड़के)

वः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च।
लोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्तिताः॥

(अग्निपुराण)

पूर्वपक्ष

ोककी कल्पना आद्य मानवमें तथा सभी धर्मोंमें दृष्टि-
ती है। पर हिंदू-संस्कृतिमें इस विषयमें जैसी मत-
, कल्पनाकी सूक्ष्मता और व्यापक दृष्टि देख पड़ती है,
धर्मोंमें नहीं देख पड़ती। हिंदू-संस्कृतिमें इसकी जितनी
है, उतनी ही गूढ़ता है। आधुनिक संस्कृतिका यह
के मनुष्यको इसी लोकका विचार करना चाहिये,
विचार करना व्यवहारकी दृष्टिसे अपनी बुद्धि और
केवल अपव्यय करना है। परमार्थकी दृष्टिसे परलोक-
र करना चित्तकी विक्षिप्ततामात्र है। नवसंस्कृतिने
को मानो आधिभौतिक और आध्यात्मिक—इन्हीं दो
बाँटा है। आधियाज्ञिक और आधिदैविक विभागों-
की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं देख पड़ती। परलोक-
पर जीवकी मरणोत्तर-सत्ताके विषयमें ही जब मन
नहीं है, तब 'आप मरे, जग डूबा' जैसी वृत्ति ही ज
जाती है और उसमें परलोकके विषयमें कोई आ
रहती। मृत्यु एक बहुत ही अशुभ घटना है, इस क
विषयकी चर्चाको एक प्रकारका तिरस्करणीय
प्राप्त हुआ है। इसके सिवा, व्यावहारिक उपयुक्तता
स्थूल स्वार्थ ही नवयुगका प्रेरक होनेके कारण मरणोत्त
वस्थाकी ओर आज कोई झाँकना भी नहीं चाहता।

ऐकान्तिक विचार

परलोकके सम्बन्धमें ये नास्तिक अथवा भ्र
विचार हिंदू-समाजमें पहले किसी समय न रहे हों—
नहीं है। चार्वाकदर्शन और वेदान्तदर्शन प्राचीन हिंदू
के दो चरम बिन्दु हैं। अजित केशकम्बली और ल
मतानुसार परलोक है ही नहीं।

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिक

(चार्वा

क गमनागमनके समान अविद्यात्मक भ्रम है*
यकारिका ३ । ९)। इसी प्रकार तृणकी जोंक दूसरे
ाधार मिले बिना पहले तिनकेको नहीं छोड़ती—इस
न्यायसे जीव आगेका शरीर (जन्म) मिले बिना
नहीं छोड़ता, इस बृहदारण्यकके दृष्टान्तसे परलोक-
र्गात् परलोकगमनवाद आपाततः बाधित होता-सा
ें। महाभारतके सनत्सुजातपर्व (अ० ४२) में
ो सत्ता नहीं है। अपने स्वरूपके विषयमें अज्ञानको
कहा है। इसी प्रकार भागवत (११ । १२ । ३८)
म आत्यन्तिक विस्मृतिका है। योगवासिष्ठ (३ ।
। ५५) में कहा है कि परलोक-संचार प्रत्येक
। मृत्युरूप महानिद्राका पृथक् स्वप्न है। विशुद्ध
ह्मकी सत्ता पारमार्थिक और अन्य सबकी प्राति-
भ्रमरूप) मानते हैं।

परलोक-सत्ता

आधुनिक जगत्के अश्रद्धालु धर्मनिरपेक्षवादसे अथवा
गत्के पारमार्थिक ऐकान्तिक विचारोंसे परलोककी
क सत्ता मेटी नहीं जा सकती। जिस तरह इहलोक
तरह परलोक भी है। जैसे दृश्य है, वैसे ही अदृश्य
ही चाहिये और वह है ही। और तो क्या, दृश्यकी
दृश्यका, इहलोककी अपेक्षा परलोकका विस्तार
क है—यह बात परम्परासे प्रसिद्ध है और युक्ति-

अब इस परलोकका स्वरूपनिश्चय, संख्यानिश्चय
ानिश्चय किस प्रकार किया जाय—यह प्रश्न अति
जटिल है। परलोक चाहे कैसे भी हों, कितने भी
कहीं हों—वे जब हैं, उनकी व्यावहारिक सत्ता है
ेक जीवको मृत्युके बाद उन लोकोंमें जाना ही
तब उन ज्ञाताज्ञात परलोकोंका विचार दृष्टिके सामने
व्यर्थ और निन्द्य समझना समझदारीका परिचय देना
भौतिक जडवादी और कट्टर वेदान्ती भले ही इस

विषयमें जो चाहें कहा करें। परलोकके सम्बन्धमें हिंदू
का सम्पूर्ण विवरण एक बड़े ग्रन्थमें भी पूरा नहीं
तथापि इस छोटे-से लेखमें उसकी कुछ विशिष्ट बातोंक
मात्र किया जाता है।

वैदिक त्रैलोक्य

परलोकके सम्बन्धमें इह और पर, इस प्राथमि
समान पृथ्वी और द्यौ—ये दो ही लोक वेदोंमें प
हैं। स्वर्ग और मृत्यु, द्यावापृथिवी—यह द्वैत ह
पहले देख पड़ता है। विश्वके मा-बाप ये ही हैं
१ । १५९-१६०)। इस द्वन्द्वमेंसे ही मध्यस्थ अ
तीसरा लोक आप ही सिद्ध हुआ। इस प्रकार ः
भावना रूढ़ हुई। मातृत्वका पद तब अन्तरिक्षरू
आकाशरूप अदितिको प्राप्त हुआ। वामनके ती
द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष—ये तीन लोक ही हैं (
१० । १५४)। वेदोंके मन्त्रभागमें परलोकके सम्बन्धमें
भावना ही मुख्य है (ऋग० १० । १६ । ३)
ब्राह्मणमें इन्हींको भूः, भुवः, सुवः कहा है। ये
क्रमसे अधिकाधिक श्रेष्ठ हैं (ऋग० १० । १५ । १)
संहिताभागमें जीवोंके मरणोत्तर गमनके देवयान और
दो मार्ग बताये हैं (ऋग० १० । ८८ । १५; १
७)। इसी प्रकार उसमें पाताल (ऋग्० १०
अगाध स्थान अथवा नरक (ऋग्० ४ । ५ । ५;
२ । १४ । ३), यमलोक (ऋग्० १० । १४),
(ऋग्० १० । १५; अथर्व० १८ । २ । ४९),
(ऋग्० ७ । ८८), असूर्यलोक (यजुः० ४० । ३
(ऋग्० १ । ३५) आदिके उल्लेख प्रसंगसे हुए
मुख्य भावना त्रैलोक्यकी ही दीखती है।

औपनिषदिक लोक

उपनिषदोंमें परलोकोंकी गणना बहुत बढ़
उदाहरणार्थ, बृहदारण्यक (३ । ६) के याज्ञवल्क्य-गार्गी
'अन्तरिक्षलोकको गन्धर्वलोकमें, गन्धर्वलोकको आ
में, आदित्यलोकको चन्द्रलोकमें, चन्द्रलोकको नक्ष
नक्षत्रलोकको देवलोकमें, देवलोकको इन्द्रलोकमें, इ
प्रजापतिलोकमें, तथा प्रजापतिलोकको ब्रह्मलोकमें

केवलाद्वैतमें दो सत्ताएँ मानी गयी हैं—पारमार्थिक और
। व्यावहारिक सत्तामें सब कुछ है। पारमार्थिकमें तो
। नहीं है, तब परलोककी बात ही क्या।

सिद्धान्त ठीक है। बिना शरीरके जीवात्मा रह नहीं सकता।
मरणोत्तर-शरीर स्थूल ही हो, यह आवश्यक नहीं है। वह
पितृलोकादिके योग्य तैजस या वायुप्रधान आतिवाहिक

र उपनिषदोंमें जो अनेक परलोकोंके नाम आये हैं, नेदोंमें कदाचित् श्रुतिका कोई विशेष अभिप्राय न उक्त याज्ञवल्क्य-गार्गी-संवादमें अक्षरब्रह्मकी महत्ता ।कता बतलाना ही मुख्य आशय प्रतीत होता है। ।क अक्षरब्रह्ममें व्याप्य लोक कौन-कौन-से हैं—यह रूपसे बतलाना वहाँ अभिप्रेत न होगा। उपनिषदोंमें यभावना ही मुख्य है (बृहदारण्यक० ३। ९। ८); ठ-दृष्टिसे देखते हुए कह सकते हैं कि मन्त्रभागमें । जो माहात्म्य है, वही आगेके वाङ्मयमें लोकको ।ा है।

पुराणोक्त ब्रह्माण्डरचना

। पौराणिक वाङ्मयमें परलोकभावना अधिक विस्तृत ।ष्ट है। इसमें द्विविधता, त्रिविधता, पञ्चविधता, ।—विविधताके ये विविध प्रकार हैं। तथापि सप्त- । सर्वप्रधान देख पड़ती है। उदाहरणार्थ सप्तद्वीप[१], सप्तावयव[३], सप्तलोक[४], सप्तपाताल[५], सप्तावरण अथवा ।ाकाश[६] इत्यादि सप्तविधताका विस्तृत वर्णन ब्रह्म- में है (श० ब्रा० हिंदीविज्ञानभाष्य, पुस्तक हिंदू-संस्कृतिकी पिण्ड-ब्रह्माण्डभावना बहुत विलक्षण के सदृश किसी भी वस्तुकी प्रभा या सूक्ष्म सत्ता ।नी ही विस्तृत और व्यापक मानी जाय, हमारी ष्टेमें उसका आकार गोल ही होता है। अखिल ।मी, जिसकी परिधिका कोई पता नहीं, इस प्रकार (ही कल्पनामें आता है। पर ब्रह्माण्डका शास्त्रोक्त छ और ही है। सृष्ट्युन्मुख हुए अव्यय पुरुषने 'मैं होऊँ' ऐसा जो आद्य सङ्कल्प किया, उस संकल्पात्मक मानो पुरुषरूपाकृति ही धारण की। 'पिण्डमें सो ब्रह्माण्डमें' इस न्यायसे इस मानव-पिण्डके समान ही की सगुण रूपाकृति सिद्ध हुई। अर्थात् हमारे पिण प्रकार श्रेष्ठ-कनिष्ठ अङ्ग और असंख्य कोषाणु प्रकार इस मायाशबल विराट् पुरुषके शरीरमें श्रे लोक और असंख्य क्षुद्र ब्रह्माण्ड या लोक निर्मा (सूर्योदय, जून १९४२ का अङ्क)

विविध कल्पना

वेद अपौरुषेय होनेके कारण हिंदू-संस्कृतिमें स्वत माने जाते हैं। पर इसके बादके वाङ्मयका प्रामाण्य यह प्रश्न आप ही उपस्थित होता है। हमलोगं केवल परलोकके सम्बन्धमें ही इस बातका विचार क परलोकसम्बन्धी ज्ञान प्राचीन ऋषि-मुनियोंने योगबल किया होगा, यह स्पष्ट है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्॥ २६॥

(पातञ्जल योग दर्शन, वि॰

परलोकसे सामान्यतः हमलोग उन्हीं अदृश्य समझते हैं, जहाँ देव, पितर, गन्धर्वादि रहते हैं; प संस्कृतिनिष्ठ आधुनिक विद्वानोंकी लौकिक दृष्टिमें समाज इहलोकके ही हैं। इस मतके अनुसार ब्र देव, क्षत्रिय ही मानव, वैश्य ही पितर, भूत-प्राणी हिमालयके अधिवासी ही गन्धर्व हैं। कुछ दूसरे वैदिक प्राङ्मेरुभूको ही त्रिलोक मानते हैं। तदनुसार दक्षिण हिमालयपर्यन्त पृथ्वीलोक, हिमालयसे उत्तर ओर पर्वततक वायुलोक अथवा अन्तरिक्ष, और उसके तरफ साइबेरियामें ऐन्द्रलोक या स्वर्गलोक बनता लोगोंके मतसे इस भूलोकके अन्तर्गत प्रेतलोक, और पितृलोक ही परलोक हैं।

चतुर्दश भुवन

इन तीनों प्रकारकी मान्यताओंके कुछ आधा ही होंगे। पर विस्तारभयसे उनका विचार यहाँ न है। इसी प्रकार अनन्त आकाशके अगणित तारागण असंख्य ज्ञाताज्ञात खगोल हैं, उनका भी विचार इस नहीं किया जायगा। जो लोक सामान्यतः इन्द्रियगो हैं, दूरवीक्षण यन्त्रसे भी जो दिखायी नहीं दे सक हिंदू-संस्कृतिसम्मत सूक्ष्म और व्यापक लोकोंका नि

जम्बुः, प्लक्षः, शाल्मलिः, कुशः, क्रौञ्चः, शाकः, पुष्करः।

लवणोदः, ऐक्षवोदः, सुरोदः, घृतोदः, क्षारोदः, दधि-मण्डोदः, स्वादूदकः।

आवह, प्रवह, संवह, परिवह इत्यादि।

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल।

रौरव, तान, विमोहन, कृमीश, लालाभक्ष, अधःशिरा,

१४ भुवन या लोक हैं—७ ऊर्ध्वलोक और ७
; । इनमें अधोलोकोंको विलस्वर्ग भी कहा है।
पृथ्वीके गर्भमें भूमिके नीचे हैं। इनका वैभव ऊर्ध्व-
ति स्वर्गकी अपेक्षा भी किञ्चित् अधिक वर्णित हुआ
ाँ दिन और रातका भेद नहीं है। अतः सुखोपभोग-
प्रत्यवाय नहीं है । इन सप्तपातालरूप विवरोंमें
जीव सदा आनन्दमें रहते हैं। यहाँके सुखोपभोग
न्दर्यविलासको असुरोंकी कपटविद्या और मायाने
द्ध किया है। इन भूगर्भगत सात स्तरोंमेंसे (१)
मयासुरपुत्र वल स्वामी है, (२) वितलमें हाटकेश्वर
ानीके साथ युग्मभावसे रहते हैं, (३) सुतल
बलिराजाका स्थान है। ये तीनों स्तर आपोमय माने
। (४) तलातलमें मयासुरका राज्य है, (५)
क्रोधवश नामक सर्प-समुदायका निवास है, (६)
दैत्य और दानव रहते हैं। ये तीन स्तर अग्निमय
ते हैं। (७) पाताल प्राणाग्निमय है और यहाँ
अधिपति रहते हैं । (विष्णु-भागवत ५ । २४,
हिंदीविज्ञानभाष्य ३)

स्वर्ग—सात ऊर्ध्वलोकोंमें (१) भूर्लोक और
भुवर्लोकको भौमस्वर्ग कहते हैं। इन दोनोंके भीतर
न्द्र, ध्रुव, नक्षत्र, पृथ्वी आदि सब स्थूल लोक आ
(भागवत ५ । २०)। इनके ऊपर स्थित दिव्य
(३) तीसरे स्वर्लोकको माहेन्द्र स्वर्ग कहते हैं,
महर्लोकको प्राजापत्य स्वर्ग, (५) जनलोक, (६)
और (७) सत्यलोक—इन तीन लोकोंको ब्राह्म
ते हैं । इन पाँच दिव्य स्वर्गोंमें सात्त्विक अंशकी
है और वे एक-से-एक बढ़कर हैं (भारतवर्षका
)।

जम्बुद्वीप

ोकके अन्तर्गत जो अनेक भाग या उपलोक हैं, वे
स्थूल मृत्युलोकसे सूक्ष्म और इस कारण सामान्यतः
होनेके कारण इहलोकसे भिन्न परलोक माने
उनमें उपरिनिर्दिष्ट सप्तद्वीप और सप्तसमुद्र स्थूल
तु पृथ्वीके चारों ओर सूक्ष्म द्रव्यके विभाग हैं।
१) जम्बुद्वीप केन्द्र है और उसके गर्भमें पृथ्वी
। जम्बद्वीपके (१) इलावत, (२) भद्राश्व,

ये नौ वर्ष यानी विभाग हैं। इनमें भारतवर्ष ही
और अन्य सब देवलोक हैं। इनमें इलावृत बीः
और उसके नाभिस्थानमें मेरुपर्वत है । यह प
पाषाणमय नहीं, बल्कि एक शक्तिमय आधारस्त
इन नौ वर्षोंके उपास्यदेव यथाक्रम (१) श्रीशंक
श्रीहयग्रीव, (३) श्रीमारुति, (४) श्रीनर-नारायण
श्रीनृसिंह, (६) श्रीकामदेव, (७) श्रीवैवस्वत म
श्रीकूर्मावतार और (९) श्रीयज्ञपुरुष वाराह हैं
जम्बुद्वीपमें (१) नरकलोक, (२) पितृलोक औ
प्रेतलोक स्थित हैं। इस प्रकार हमारे ब्रह्माण्डके १
७ द्वीपों, ९ वर्षों और ३ लोकोंमें मृत्युलोक यानी
अखिल ब्रह्माण्डका १९७६ वाँ अंश है और
विभागोंमेंसे एक आर्यावर्त्त अर्थात् भारतद्वीप
हिंदुस्थान है (तन्त्रालोकः अष्टमाह्निकम्; विष्
५ । १६ । १९; विष्णुपुराण २ । २; मत्स्यपु
११४)।

नरकलोक

जम्बुद्वीपके नौ वर्ष निर्दिष्ट हुए। अब उसीके
नरकलोक, प्रेतलोक और पितृलोकके विवरण आगे
इस जम्बुद्वीपके चतुर्दिक् इतना ही बड़ा वातावरणरू
समुद्र है । उसीके साथ भारतवर्षके नीचे मुख्य सा
लोक हैं। इन्हें आवरणलोक कहते हैं। इनके सूर्य-
हिसाबसे ७, और २७ नक्षत्रोंके हिसाबसे २७ तथा
मिलाकर २८ विभाग माने गये हैं। इनमें ये २१ मु
(१) तामिस्र—इसमें परस्त्री-परधन-हरणका
भोगना पड़ता है, उससे जीव मूर्छित हो जाते हैं।
अन्धतामिस्र—इसमें धोखा देकर परस्त्री-परधन-हर
का यह दण्ड मिलता है कि बुद्धिनाश और दृि
जाता है और विविध यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।
रौरव—इसमें देहाभिमान, परपीड़ा और अन्याय
यह दण्ड मिलता है कि उसे कृमियोंका आहार बनना प
(४) महारौरव—इसमें परद्रोहके दण्डस्वरूप
क्रव्याद प्राणी खाते हैं। (५) कुम्भीपाक—इसमें
पशु-पक्षियोंको उबालनेके पापका यह फल मिलता
जीव तेलमें तले जाते हैं। (६) कालसूत्र—इस
ब्राह्मण और पिताका द्रोह करनेके पापमें अग्नित

ते काटे जाते हैं। (८) सूकरमुख—इसमें अन्यायी
ो ऊखकी तरह पेरा जाता है। (९) अन्धकूप—
न्य प्राणियोंको पीड़ा पहुँचानेवाले उन-उन प्राणियों-
ड़ित किये जाते हैं। (१०) कृमि-भोजन—इसमें
ज्ञ न करनेवालोंको कृमियोंपर निर्वाह करना पड़ता
१) संदंश—इसमें चोरीके अपराधमें लाल पलीतों-
हैं। (१२) तप्तसूर्मि—इसमें व्यभिचारके पापमें
ोसे बाँधकर मारते हैं। (१३) वज्रकण्टकशाल्मलि
पश्वादिगमनके पापमें काँटोंपरसे खींचते हैं। (१४)
—इसमें धर्मविरोधी राजाओं और राजसेवकोंको विष्ठा-
आदि अमङ्गल प्रवाहोंमें डाल दिया जाता है।
पूयोद—इसमें कर्मभ्रष्ट और शूद्र-स्त्री-समागम करने-
मङ्गल विष्ठा-मूत्रादिमें गिरकर वही भक्षण करते हैं।
प्राणरोध—इसमें हिंसादि निषिद्ध कर्म करनेवाले
ो यमदूतोंद्वारा हिंसा की जाती है। (१७)
—इसमें मांसभक्षणके लोभसे यज्ञ-याग करनेवाले
यमदूतोंद्वारा काटे जाते हैं। (१८) लालाभक्ष—
पर बलात्कार करनेके पापमें रेतः-प्राशन करना पड़ता
१९) सारमेयादन—इसमें प्रजापीड़न करनेवाले
र राजसेवक कुत्तोंद्वारा नोचे जाते हैं। (२०)
—इसमें झूठ बोलनेवालोंको पत्थरपर पटककर उनके
ये जाते हैं। (२१) अयःपान—इसमें मद्यपान
ब्राह्मणके मुँहमें लोहेका गरम पानी छोड़ा जाता है।
क्षारकर्दम—इसमें विद्वानोंका अपमान करनेके
बहुत कठिन यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। (२३)
ोजन—इसमें नर-मांस खानेवाले कुल्हाड़ीसे तोड़े
(२४) शूलप्रोत—इसमें विश्वासघात करनेवालेको शूली-
ा जाता है। (२५) दन्दशूक—इसमें प्राणियोंको
ुँचानेवालोंको साँपोंसे पीड़ा पहुँचायी जाती है।
अवटनिरोधन—प्राणियोंको बंद करनेके पापमें
र धूएँसे गला घोंटा जाता है। (२७) पर्यावर्त्तन
थकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखनेके पापमें पक्षियोंसे
ड़कर निकलवायी जाती हैं। (२८) सूचीमुख—
घ्नता, कृपणता, द्रव्यलोभ इत्यादि दोषोंके फलस्वरूप
रकी भयङ्कर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं (भागवत ५।
अन्य पुराणोंमें ऐसे ही सैकड़ों नरक बताये गये हैं।

विस्तार उचित नहीं जँचता। लोग पापकर्मोंसे ि
यही इस वर्णनका अभिप्राय मालूम होता है।

पितृलोक

नरकलोकके समीप ही यमलोक है। उसे
कहते हैं। भूलोकमें ही दक्षिण और पृथ्वीके
अतललोकके ऊपर नित्य-नैमित्तिक पितृगण
(देवीभागवत)। नित्य पितर अमर होते हैं। म
भिन्न हैं। इनकी उत्पत्ति पृथक् और स्वतन्त्ररूप
(तैत्तिरीय ब्रा० ८। ३। ८। २)। इन्हें देव भी
यहाँसे मृत होकर ऊपर गये हुए जो पितर हैं, वे
हैं। पितरोंमें यम प्रथम पितर माने गये हैं। मृत जी
की यथायोग्य व्यवस्था करना इन्हींका काम है।
मार्गदर्शक हैं (ऋग्० १०। १४)। नित्य-नैमित्ति
में इहलोकका नियमन करनेकी सामर्थ्य है, इसीसे ि
का विशेष महत्त्व है। ऋग्वेदसे लेकर पुराणोंतक ि
का वर्णन स्थान-स्थानमें आया है। स्वर्गलोकका द्वार
है और पितृलोकका द्वार आग्नेय दिशामें। देवों औ
के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं (ऋग्० १०। २। ७; ऋग्
८८। १५; शतपथ ब्रा० ६। ६। २। ४)।
अनेक वर्ग हैं। ये सब एक ही स्थानमें हों,
मालूम होता। वेदोंमें इस आशयकी प्रार्थनाएँ
पितर पृथ्वीपर हैं, वे उन्नत स्थानको प्राप्त हों;
अर्थात् उच्च स्थानमें हैं, वे वहाँसे कभी च्युत न हों
मध्यम स्थानका आश्रय लिये हुए हैं, वे उन्नत प
हों (ऋग्० १०। १५। १)। इस प्रकार श्राद्ध
कर्त्ता और पितर दोनोंका ही उपकार करनेवाले हो
श्राद्धकर्ममें की जानेवाली प्रार्थनाओंसे स्पष्ट होता है।

प्रेतलोक

भारतवर्षके चारों ओर निकट अन्तरिक्षमें
स्थित है। जो जीव मृत्युके पश्चात् भूकर्षित होते
विभिन्न वासनाओंके वश नीचे आकर्षित होते हैं;
काल प्रेतलोकमें रहते हैं। प्रेत वायुरूप होते हैं और
कब्रिस्तान, अन्धकार, शून्य और उजड़े हुए स्थानोंमें
मनुस्मृति अ० १२ में मरणोत्तर प्रेतत्व प्राप्त होनेके
कुछ उदाहरण दिये हैं। पर इनके सिवा और भ
हो सकते हैं। भूत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, ब्रह्मग्रन्थ,

ात्रसे तृप्त होते हैं। मानसिक रूपसे भी कुछ
य तो इन्हें मिल जाता है। अन्त्येष्टि, श्राद्ध, गयामें
न, नारायण-नागबलि आदि विधियोंसे प्रेतलोकसे
उद्धार होता है। प्रेतयोनि क्लेशकारक ही मानी गयी
कभी आकार धारण किये देख पड़ते हैं। कभी
वाला, आवाज, उत्पात, किसीके शरीरमें सञ्चार आदि
गोचर होते हैं। शङ्ख-घण्टा-ध्वनि, भगवान्‌की आरती,
, नाम-स्मरण, शास्त्रचर्चा, पवित्र वातावरण, कुछ पवित्र
दिसे प्रेत स्थान छोड़कर चले जाते हैं। प्रेतलोकके
ाड़ी अशान्ति, तीव्र मनोविकार, प्रबल वासना और
होनेसे प्रेतयोनि बहुत कष्टदायक होती है।

सप्तद्वीप

तक भूलोकान्तर्गत जम्बुद्वीपका वर्णन हुआ। इस
के चतुर्दिक् वातावरणरूप लवणसमुद्र है। उसके
उससे द्विगुण प्लक्षद्वीप है। जिस प्रकार जम्बुद्वीप
ामुनके वृक्षके नामपर है, वैसे ही प्लक्षद्वीपमें प्लक्ष
ाकरका वृक्ष माना है। यहाँके उपास्यदेव सूर्य हैं।
के चौतरफ उतना ही बड़ा इक्षुरस-समुद्र है। उसके
उससे द्विगुण शाल्मलिद्वीप है। वहाँ चन्द्रमाकी
होती है। इसके चौतरफ सुरासमुद्र है। उसे घेरे
से द्विगुण कुशद्वीप है। यहाँके लोग अग्निकी
करते हैं। इसके बाहर घृत-समुद्र है और उसे घेरे
द्वीप है। यहाँ क्रौञ्च नामक पर्वत है। यहाँके लोग
ाके पूजक हैं। इसके चौतरफ क्षार-समुद्र है
घेरे हुए शाकद्वीप है। यहाँ वायुकी उपासना होती है।
तरफ दधिमण्ड-समुद्र है और उसे घेरे हुए पुष्करद्वीप
रद्वीपके चौतरफ शुद्धोदक समुद्र है। यहाँके लोग
के पथपर विचरते हैं। इस द्वीपके परे लोकालोक-
इन द्वीपोंमेंसे प्रत्येकके सात-सात विभाग हैं। यहाँकी
पर्वतों और लोकसमाजोंका वर्णन पुराणोंमें है।
 वर्णन लाक्षणिक है।
का इतिवृत्त; पिडिग्री आफ मैन; विष्णुभागवत ५। २०)

सप्तलोक

तक सप्तलोकान्तर्गत भूलोकका वर्णन हुआ। इसके ऊपर
र्वलोक भुवर्लोक है। यह भू और सूर्यके बीचमें
सिद्ध और मुनि निवास करते हैं। ...

इनके ऊपर ध्रुवकी परली तरफ एक कोटि योजन
महर्लोक है। यहाँ एक कल्पतक जीवित रहनेवाले
रहते हैं। इसके ऊपर दो कोटि योजन जनलोक है
शुद्धान्तःकरण ब्रह्मकुमार सनन्दनादि महात्मा रहते हैं
ऊपर इससे चतुर्गुण तपोलोक है। वहाँ देहरहि
आदि देवता रहते हैं। तपोलोकके ऊपर उससे
सत्यलोक है। वहाँ सिद्धादि मुनिजन निवास करते
जनन-मरणसे मुक्त हैं (ब्रह्मपुराण)। महर्लोकमें
राज्यपर अधिकार, जनलोकमें इन्द्रियसुखसे
तपोलोकमें बुद्धिराज्यपर और सत्यलोकमें प्रकृतिराज्यपर
होता है। ये इन चार लोकोंकी अपनी-अपनी
हैं। ये लोक साधारण मनुष्योंको नहीं प्राप्त होते। प्र
लोक सबके आश्रय लेने योग्य हैं। (महाभारत-

वैज्ञानिक पृथ्वीमण्डलको भूर्लोक, चन्द्र
भुवर्लोक, सूर्यमण्डलको सुवर्लोक, परमेष्ठिमण्डलको
और जनलोक तथा स्वयम्भूमण्डलको तपोलोक और
मानते हैं। और खगोलीय त्रैलोक्यका इस प्रकार वि
हैं—उत्तरी ध्रुवसे दक्षिणमें २४ अंशतक स्वर्ग, उ
४२ अंशतक अन्तरिक्ष और उसके आगे ४८ अं
उसके नीचे दक्षिण ओर ४२ अंश पितृलोक औ
नीचे २४ अंश नरकलोक।

असंख्य लोक

यहाँतक हिंदू-संस्कृति-सम्मत परलोकोंका मुख्य
अत्यन्त संक्षेपसे दिया गया। वस्तुतः परलोके
गणना करना असम्भव है। शाक्त ग्रन्थोंमें शुद्धाशुद्ध
शान्त्यतीतादि पञ्चकलाओंके २४० भुवन माने
('कल्याण'—शक्ति-अङ्क)। पुराणोंमें इन्द्रसभा,
इत्यादि सभाओंके नामोंसे लोकवर्णन किये गये हैं
अग्नि, विद्युत् आदि विभिन्न तत्त्वोंके लोक, सूर्य, चन्
वरुण, यम इत्यादि देवताओंके लोक, उसी प्रकार त
सृष्टि, विश्वामित्र-सृष्टि, सिद्ध-ऋषि-मुनियोंकी वि
सङ्कल्पसृष्टि आदि असंख्य लोक-प्रकार पुराणोंमें व
इनमें चतुर्दश भुवनोंकी उपपत्ति सुनिश्चित और मुख
उन्हींका विवरण दिया गया।

हिंदू-संस्कृतिके पुराणग्रन्थ, पुरोभ्य, ग्राद- ...

दृष्ट और गूढ़ विषयके वर्णनोंमें सन्दिग्धता और
ा दिखायी दे तो आश्चर्यकी बात नहीं। इस दुर्ज्ञेय
यथार्थ ज्ञान होनेके लिये योगसाधन और तद्विदोंका
ा—ये ही दो मार्ग प्रशस्त हैं। पर ये भी दुस्साध्य
मेरे लिये तो असाध्य ही हो गये। ऐसी अवस्थामें
विषयमें अपनी अनेक शङ्काओंके समाधानके लिये
ुरुकी अन्तःस्थ प्रेरणाका भरोसा करके आधुनिक
वेद्या-प्रयोगोंका अवलम्बन किया और परलोकके
ंख्या और स्थानके विषयमें परलोकमें स्थित स्वधर्मी
तथा परधर्मी परलोकगत व्यक्तियोंसे आधुनिक परल
साधनोंके द्वारा बातचीत करके कुछ उद्बोधक तथ्य प्रा
परंतु आधुनिक पद्धतिसे अदृष्ट व्यक्तियोंके साथ
इन संवादोंको हिंदू-संस्कृतिके वाङ्मयमें समाविष्ट कर
आजकी हिंदू-संस्कृतिनिष्ठ जनता तैयार नहीं हो सकती
प्रामाण्य कम-से-कम अभी तो विवादास्पद है। ि
वादग्रस्त विषयमें विशेष अभिरुचि हो, वे काशीके '
पत्रमें मेरी 'परलोकविद्या' विषयक लेखमाला पढ़ें;
गतवर्षसे उस पत्रमें लिख रहा हूँ।

अन्त्येष्टिक्रिया-संस्कारका रहस्य

(लेखक—जगद्गुरु श्रीमद्रामानुजश्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी भागवताचार्यजी महाराज)

ुओंमें शरीरोपयोगी तथा अध्यात्मविकासके लिये
ादि अनेक संस्कार शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं, जिनमें
संस्कारको 'अन्त्येष्टि-संस्कार' कहा जाता है। यह
रणके पश्चात् मृत शरीरको अग्नि प्रदान करके वैदिक
ा दाह-क्रियासे सम्पन्न किया जाता है। वर्ण और
अनुसार दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध, सपिण्डी-
दि क्रियाएँ भी इसी संस्कारके अन्तर्गत हैं। पाँच
, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राणवायु, मन और बुद्धि—
वस्तुओंका सूक्ष्मशरीर लेकर जीव स्वकर्मानुसार
क स्थूलशरीरमें प्रवेश करता है। वहीं प्रारब्धको
जब उपर्युक्त सत्रह वस्तुओंको लेकर स्थूलशरीरसे
ठता है, उस समय जीवको सूक्ष्मशरीरके रक्षार्थ एक
शरीर मिलता है। इसीसे वह अपने कर्मानुसार कृष्ण
गतिको प्राप्त होता है। षाट्कौशिक स्थूलशरीरसे
ी तत्काल वह वायवीय शरीरको ग्रहण करता है।
ा जीवकी प्रेत-संज्ञा पड़ती है अर्थात् वह अधिक चलने-
र हल्का जीव बन जाता है। स्थूलशरीरमें अधिक
निवास होनेके कारण शरीरके साथ उसका विशेष
श हो जाता है। अतएव जीव बारंबार वायुप्रधान
ारा पूर्वशरीरके सूक्ष्मावयवों (परमाणुओं) की तरफ
ष्टा करता रहता है। इसलिये इसी प्रेतत्वसे छुटकारेके
ात्रादि श्राद्धक्रियाएँ शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं। मूर्ख,
सर्मीके लिये 'प्रेतत्वविमुक्तिकामः' ऐसा श्राद्ध
उससे जीवकी मुक्ति हो जाय, इसलिये हिंदुओंमें मृत
जलानेकी प्रथा प्रचलित हुई है। अग्निसंस्कारसे मृत
पार्थिवतत्त्व कण-कण जलकर रूपान्तर ग्रहण करता है
भस्मरूप (फूल) पार्थिवतत्त्व भगवती भागीरथीक
वारिधारामें प्रवाहित कर दिया जाता है। वह परम प
उन भस्मकणोंको स्वस्वरूपमें परिवर्तित कर लेता है
मृत आत्माका सम्बन्ध पूर्व शरीरसे विच्छिन्न हो ज
और शास्त्रविहित श्राद्धादिक क्रियाके द्वारा प्रदत्त जलादि
तृप्त होकर वह प्रेत-शरीरको छोड़ देता है। संन्यासिये
शरीरके लिये अग्निसंस्कार शास्त्रमें नहीं बतलाया ग
क्योंकि कामनानुबन्धी कर्मोंको तथा कृतकर्म-फलोंको
से और श्रीभगवच्चरणारविन्दोंमें गाढ़ अनुराग होनेसे
स्त्री, पुत्र, परिवार, धनादिकी वासना जीवन-दशामें
जाती है। अतएव शरीरसे निकली हुई संन्यासियोंकी
शीघ्रातिशीघ्र शुक्ल-गतिसे प्रयाण कर जाती है। मृत
ओर आकर्षण करनेवाली सामग्री ही नहीं रह जाती,
संन्यासियोंके लिये श्राद्धादिकी कल्पनाएँ नहीं की ग
हिंदुओंमें छोटे बालकोंका शरीर भी नहीं जलाया
उसे भूमिके अंदर गाड़ दिया जाता है। सूक्ष्मशरीरके सा
शरीरमें प्रविष्ट आत्माका गाढ़ सम्बन्ध (अभिनिवेश
शरीरमें अल्प दिनोंमें नहीं होता। अतएव बालकोंकी मृत
पूर्व-शरीरका सम्बन्ध शीघ्रातिशीघ्र त्यागकर सञ्चित
नुसार अपर शरीरको प्राप्त करती है। इसी कारण अल्प
बालकोंके लिये यह संस्कार नहीं बतलाया गया है

ं भी जहाँपर शरीर गाड़ा जाता है, वहींपर उनके
में कुछ क्रियाएँ बतलायी गयी हैं। उन्हीं जातियोंमें
सिद्धान्त बतलाया गया है कि जबतक प्रलय नहीं
बतक जीव मृत शरीरके पास ही सुख-दुःख भोगा
।

योनि—प्रसंगतः यहाँपर यह भी कह देना उचित है
सी लाख योनियोंमें एक प्रेतयोनि भी मानी गयी है।
का परिणाम भोगनेके लिये प्रेतयोनि मिलती है।
कर मरनेवाला, अग्निमें जलकर मरनेवाला, वृक्षसे
रनेवाला, किसीके ऊपर अनशन करके मरनेवाला
ष्य प्रेतयोनिमें जाते हैं। वहाँपर भी मृत आत्माओंके
-प्रधान शरीर मिलता है। प्रेतोंके हृदयमें यह इच्छा
ी रहती है कि जहाँपर उनका धन है, उनके शरीरके
माणु हैं, उनके शरीरसम्बन्धी परिवार हैं, वहींपर
ं सम्बन्धियोंको अपनी तरह बनायें। सभी भौतिक

पदार्थोंकी सञ्चय करनेकी सामर्थ्य वायुतत्त्वमें रहती
कारण है कि प्रेत वायु-शरीरप्रधान होनेसे जिस योनि
करता है, वही साँप, बैल, भैंस आदि शरीरको ग्रहण
है; परंतु कुछ ही समयतक वह शरीर ठहर सकता
सब पार्थिव परमाणु शीघ्र ही बिखर जाते हैं।
अन्त्येष्टि-संस्कार शास्त्रविहित क्रियाओंसे नहीं किय
वह प्राणी कुछ दिनोंके लिये प्रेतयोनि प्राप्त व
शास्त्रोक्त विधिसे जब उसका प्रेत-संस्कार, दशगात्र
षोडश श्राद्ध, सपिण्डन विधान किया जाता है, तब
शरीरसे छूट जाता है। मनुष्यसे इतर योनियोंमें जीव
पञ्चकोशोंका विकास पूर्णरूपसे नहीं रहता है। इसी
पक्षियोंकी आत्मा पूर्व-शरीरके साथ गाढ़ सम्बन्ध (अ
नहीं कर पाती, वहाँपर प्रकृति-माताके सहारेसे शी
अन्य योनिको जीव प्राप्त कर लेता है। अतएव तिर्यग्
के लिये दाहादि संस्कार नहीं बतलाये गये हैं।



हिंदुओंके प्राण-प्रयाणकालिक एक कृत्यका रहस्य

(लेखक—राज्यज्योतिषी पण्डित श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र ज्योतिषाचार्य)

ग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा।
न्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता॥
(ग० पु०)

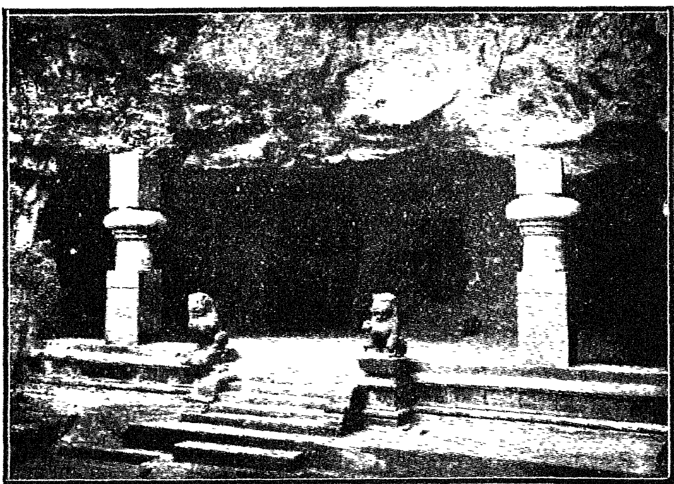
बात शास्त्रसिद्ध है कि प्राणवियोगके समय यदि
दयमें सद्विचारोंका उदय हो तो सद्गति, अन्यथा
अवश्य होती है। इसीलिये धर्मप्राण हिंदुओंमें
प्त शुद्ध भूमिपर मरणासन्न व्यक्तिकी भूशय्याके
द्गतिप्राप्त्यर्थ सुपूजित भगवान् शालग्रामकी श्याम-
आसन रखनेकी प्रथा है। बहुत-से परम श्रद्धालु
जीवके अन्तकालमें नाड़ीस्थानसे हटते ही तुलसीकी
र इस दिव्य प्रभावमयी मूर्तिको हृदयपर भी रखते
प्राणवियोगानन्तर पञ्चगव्यसे स्नान करवाकर यथा-
न देते हैं। इसका गुह्य रहस्य यह है कि महात्मा
अतिरिक्त प्रायः सभी संसारासक्त प्राणियोंके प्राण-
य न्यूनाधिकरूपसे अनेक शुभाशुभ विचारयुक्त

स्वप्न-जैसी अचेत-सी अवस्था हुआ करती है। उस अचे
में जो असद्गतिकी ओर खींचनेवाले अनेक अशुभ वि
हृदय-पटपर साम्राज्य-सा बना रहता है, उन्हें यह
की असल प्राकृतिक प्रतिमा अपने ईश्वरीय अलौकिक
से दूरकर मरणासन्न व्यक्तिके हृदयमें शुभ संकल्पों
कर देती है, जो शुभलोकावाप्त्यर्थ आवश्यकीय है।

यदि किसी महानुभावको इस विषयमें सन्देह
अचेतावस्थामें सद्विचार स्फुरण होनेमें क्या प्रमाण
उन्हें चाहिये कि शयनके समय अपने सिरहाने इसे
अनुभव कर लें। निद्रावस्थामें अशुभ विचार—बुरे स
होंगे तो वे कभी न आयेंगे और न स्वप्नावस्थामें
होनेवाला कोई भय ही पास फटकेगा। किं
अन्तकालिक शुभ संकल्पोदयार्थ दयालु महर्षियोंने
क्रान्त प्राणियोंके उद्धारार्थ इस सुलभ कृत्यका उपदे
है, जो श्रद्धापूत मनसे ही समझा जा सकता है।*

---

* इसी प्रकार मरण-समयमें गीता, विष्णुसहस्रनाम, भगवन्नाम सुनाये जाते हैं। शुद्ध धूप तथा कर्पूर जलाये जाते है
जाता है। गोपीचन्दन अथवा भस्म लगाये जाते हैं। ये सभी आवश्यक और परम लाभदायक हैं।

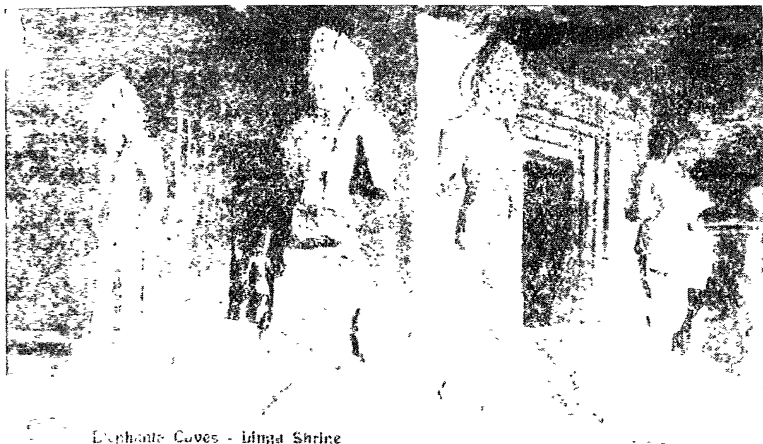


धारापुरी गुफाका द्वार



धारापुरी गुफाका अभ्यन्तर





Elephanta Caves - Linga Shrine



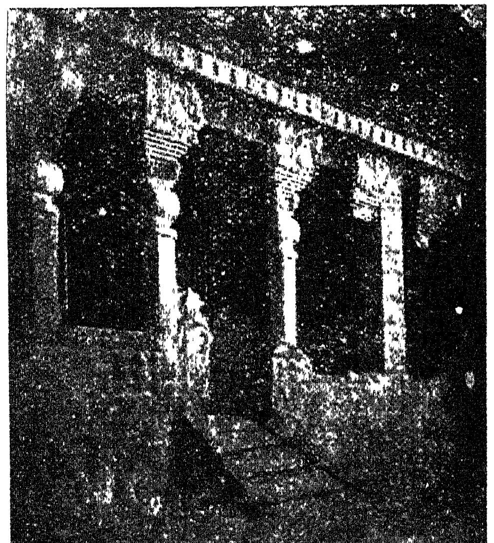
अजन्ताकी गुफामें उड़ते हुए गन्धर्वोंका दृश्य

[पृ



अजन्ताके कला-मण्डपका
एक कल्पना-चित्र

[पृ० ६८८



नासिकमें राजा गौतमीपुत्रका बनवाया हुआ

श्राद्धकी महत्ता

(लेखक—याज्ञिक पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य, वेदरत्न)

ःकी महत्ताका उल्लेख करते समय सर्वप्रथम 'श्राद्ध' शाब्दिक व्युत्पत्तिका ध्यान होता है । 'श्रद्धा' श्रद्धया कृतं सम्पादितमिदम्', 'श्रद्धया दीयते यस्मात् (', 'श्रद्धार्थमिदं श्राद्धम्', 'श्रद्धाया इदं श्राद्धम्' दे अर्थोंमें 'अण्' प्रत्यय करनेपर 'श्राद्ध' शब्दकी होती है । भावार्थ यह है कि अपने मृत* उद्देश्यसे श्रद्धापूर्वक किये जानेवाले कर्म-विशेषको ते हैं ।

र्षि पराशरने श्राद्धका लक्षण इस प्रकार किया है—

काले च पात्रे च विधिना हविषा च यत् ।
र्दर्भैश्च मन्त्रैश्च श्राद्धं स्याच्छ्रद्धया युतम् ॥

ा, काल तथा पात्रमें हविष्यादि विधिद्वारा जो , यव और दर्भ (कुशा) आदिसे और मन्त्रोंसे ः किया जाय, उसे श्राद्ध कहते हैं ।'

र्षि मरीचि श्राद्धका लक्षण यों करते हैं—

न् पितॄनप्युद्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः ।
या दीयते यत्तु तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥

। पितरोंके निमित्त अपनेको प्रिय भोजन जिसमें होकर दिया जाय, उसे श्राद्ध कहते हैं ।'

र्षि बृहस्पति श्राद्धका लक्षण इस प्रकार करते हैं—

कृतं व्यञ्जनाद्यं च पयोमधुघृतान्वितम् ।
या दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते ॥

स कर्म-विशेषमें अच्छी प्रकारसे पकाये हुए उत्तम दुग्ध, घृत और शहदके साथ श्रद्धापूर्वक पितृगणके ब्राह्मणादिको प्रदान किया जाय, उसे श्राद्ध कहते हैं ।'

पुराणमें भी श्राद्धका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् ।
नुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् ॥

ा, काल और पात्रमें श्रद्धाद्वारा जो भोजन पितरोंके ब्राह्मणोंको दिया जाय, उसे श्राद्ध कहते हैं ।'

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः ॥

शास्त्रोंमें श्राद्धके अनेक भेद कहे गये हैं; किंतु उन्हीं श्राद्धोंका उल्लेख करेंगे, जो अत्यन्त आवश्‍ अनुष्ठेय हैं ।

मत्स्यपुराणमें तीन प्रकारके श्राद्ध लिखे हैं—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्य

'नित्य, नैमित्तिक और काम्य-भेदसे श्रा प्रकारके होते हैं ।'

यमस्मृतिमें पाँच प्रकारके श्राद्धका उल्लेख मिल

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम्
पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पञ्चविधं बुधैः

'नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध और पा पाँच प्रकारके श्राद्ध विद्वानोंने कहे हैं ।'

प्रतिदिन किये जानेवाले श्राद्धको 'नित्य श्राद्ध' ः

एकोद्दिष्ट प्रभृति श्राद्धको 'नैमित्तिक श्राद्ध' व

स्वाभिलषित कार्यसिद्ध्यर्थ किये जानेवाले 'काम्य श्राद्ध' कहते हैं ।

वृद्धिकालमें अर्थात् पुत्रजन्म, विवाह आदिमें किया जाता है, उसे 'वृद्धिश्राद्ध' कहते हैं ।

अमावास्या तिथिमें अथवा पर्वके समयमें जो श्र जाता है, उसे 'पार्वण श्राद्ध' कहते हैं ।

उपर्युक्त पाँच प्रकारके श्राद्धोंका उल्लेख ः और बृहस्पतिसंहितामें भी किया गया है ।

भविष्यपुराणमें—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनः
पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमः
कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृत
यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतः

'नित्य श्राद्ध, नैमित्तिक श्राद्ध, काम्य श्राद्ध, वृ सपिण्डन-श्राद्ध, पार्वण श्राद्ध, गोष्ठी-श्राद्ध, शुद्ध्य कर्माङ्ग-श्राद्ध, दैविक श्राद्ध, यात्रार्थ श्राद्ध और पुष्ट्यर्थ ये बारह प्रकारके श्राद्ध कहे गये हैं ।'

इनमेंसे पाँच प्रकारके श्राद्धोंकी व्याख्या ऊपः

सम्मेलन किया जाय, उसे 'सपिण्डन श्राद्ध' कहते शालामें जो श्राद्ध किया जाता है, उसे 'गोष्ठी-श्राद्ध' हैं। शुद्धिके निमित्त जिस श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन जाता है, उसे 'शुद्धयर्थ श्राद्ध' कहते हैं। नमें, सोमरस-पानमें, सीमन्तोन्नयनमें और पुं- जो श्राद्ध किया जाता है, उसे 'कर्माङ्ग श्राद्ध' कहते हैं। द् तिथियोंमें विशिष्ट हविष्यके द्वारा देवताओंके जो श्राद्ध किया जाता है, उसे 'दैविक श्राद्ध' कहते हैं। उद्देश्यसे देशान्तर जानेके समय घृतद्वारा जो किया जाता है, उसे 'यात्रार्थ श्राद्ध' कहते हैं। अथवा आर्थिक उन्नतिके लिये जो श्राद्ध ता है, उसे 'पुष्टयर्थ श्राद्ध' कहते हैं।

र्युक्त सभी प्रकारके श्राद्ध श्रौत और स्मार्त- ों प्रकारके होते हैं। 'पिण्डपितृयाग'* को 'श्रौत हते हैं और एकोद्दिष्ट, पार्वण तथा तीर्थ-श्राद्धसे णतकके श्राद्धको 'स्मार्त श्राद्ध' कहते हैं।

। श्राद्धमें केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रोंका प्रयोग और स्मार्त श्राद्धमें वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक शास्त्रादिके मन्त्रोंका प्रयोग होता है।

युक्त पिण्डपितृयागको 'प्रकृतियाग' और स्मृत्युक्त दिको 'विकृतियाग' कहते हैं।

ओंके धर्मप्राण ग्रन्थ वेद हैं। वेदोंमें यद्यपि कर्मकाण्ड, काण्ड तथा ज्ञानकाण्ड—इन तीनोंका वर्णन मिलता ने इनमें मुख्य स्थान कर्मकाण्डको ही प्राप्त है। के अन्तर्गत ही वेदोक्त विविध यज्ञोंकी अनुष्ठान- हैं, जिनमें 'पितृयज्ञ' का भी महत्त्वपूर्ण वर्णन किया । इस पितृयज्ञका दूसरा नाम श्राद्ध है। अर्थात् श्राद्ध' शब्दका वाच्यार्थ है। पितृयज्ञका मतलब के पिता-माता आदि पारिवारिक मनुष्योंकी मृत्युके की तृप्तिके लिये श्रद्धापूर्वक किये जानेवाले पिण्डो- मस्त कर्म 'पितृयज्ञ' अथवा 'श्राद्ध' शब्दसे व्यवहृत

के गर्भसे मानव-शरीरधारी प्राणीके भूमिष्ठ होनेके लेकर मृत्युके अनन्तर भी उस प्राणीके मङ्गलार्थ को सर्वदा श्राद्धके साथ सम्बन्धित रहना पड़ता है। जो लोग श्राद्धसे सम्बन्धित नहीं रहते, वे श्रा कारण एक क्षण भी अपना ब्राह्मण्य धर्म सजीव सकते। अतः ब्राह्मण्य धर्मको सजीव रखनेके f करना आवश्यक है।

प्राचीन कालके मनुष्योंमें श्राद्धके प्रति जैसी अ भक्ति थी, वैसी वर्तमान कालके मनुष्योंमें नहीं आजकलके अधिकांश मनुष्य श्राद्धको व्यर्थ समझ नहीं करते। जो लोग श्राद्ध करते हैं, उनमें कुछ तो य यथानियम श्रद्धाके साथ श्राद्ध करते हैं; बाकी प्रतिशत तो केवल रस्म-रिवाजकी दृष्टिसे श्राद्ध वस्तुतः श्रद्धा-भक्तिद्वारा शास्त्रोक्त विधिसे किया हुआ सर्वविध कल्याणको देनेवाला है। अतः प्रत्येक श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त समस्त श्राद्धोंको यथासमय कर चाहिये। जो लोग शास्त्रोक्त समस्त श्राद्धोंको न उन्हें कम-से-कम वर्षमें एक बार आश्विन मासके* पित अवश्य ही अपने मृत पितृगणकी मरण-तिथिके ि करना चाहिये। पितृपक्षके साथ पितरोंका विशेष रहता है, अतः शास्त्रोंमें पितृपक्षमें श्राद्ध करनेव महिमा लिखी है। महर्षि जाबालि कहते हैं—

पुत्रानायुस्तथाऽऽरोग्यमैश्वर्यमतुलं तथ
प्राप्नोति पञ्चमे कृत्वा श्राद्धं कामांश्च पुष्कला

'पितृपक्षमें श्राद्ध करनेसे पुत्र, आयु, आरोग्य ऐश्वर्य और अभिलषित वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।'

जो लोग आश्विन मासके पितृपक्षमें अपने मृत के प्रति श्राद्ध नहीं करते, उनके पितरलोग उन्हें का देते हैं। जैसा कि महर्षि कार्ष्णाजिनिने भी कहा है—

वृश्चिके समनुप्राप्ते पितरो दैवतैः स
निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम

'कन्याराशिके बाद वृश्चिक राशिके आनेपर अथ पक्षमें पितृगण श्राद्ध न पानेपर निराश होकर दीर्घ श्व करते हुए गृहस्थको दारुण शाप देकर पितृलोकमें वा जाते हैं।'

जो लोग श्राद्धके वास्तविक रहस्यको न समझकर ि निमित्त श्राद्ध नहीं करते, उन्हें शास्त्रोंमें 'मूर्ख' कहा महाभारतकी विदुरनीतिमें धृतराष्ट्रसे विदुरजीने कहा

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति··················
······················तमाहुर्मूढचेतसम्

अमावास्यायां पिण्डपितृयागः' इस वचनके अनुसार ाग' अमावास्याके दिन होता है। इस यागको करनेका

मनुष्य अपने पितरोंके निमित्त श्राद्ध नहीं करता,
द्धिमान् मनुष्य मूर्ख कहते हैं।'

सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः।
द्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते॥

(आदित्यपुराण)

मनुष्य दुर्बुद्धिवश पितृलोक अथवा पितृगणको न
श्राद्ध नहीं करता, उसके पितर उसका रक्तपान
'

: मनुष्यको पितृगणकी सन्तुष्टि तथा अपने कल्याण-
श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। इस संसारमें श्राद्ध
के लिये श्राद्धसे बढ़कर और कोई वस्तु कल्याणकारक
इस विषयकी पुष्टि महर्षि सुमन्तु भी करते हैं—

द्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्।
स्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः॥

सारमें श्राद्धसे बढ़कर और कोई दूसरा कल्याणप्रद
ं है। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध
ाहिये।' श्राद्धकी आवश्यकतापर अनेकों ऋषियोंके
लते हैं।

र हम अनेक ऋषि-महर्षियोंके उन वचनोंको उद्धृत
जिनसे 'श्राद्धकी महत्ता' का सुन्दररूपसे परिचय
ा।

येन विधिना श्राद्धं कुर्यादेकाग्रमानसः।
पेतकल्मषो नित्यं याति नावर्तते पुनः॥

(कूर्मपुराण)

ो प्राणी जिस किसी भी विधिसे एकाग्रचित्त होकर
रता है, वह समस्त पापोंसे रहित होकर मुक्त हो
और पुनः संसारचक्रमें नहीं आता।'

युः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
शून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

(गरुडपुराण)

ितृपूजन (श्राद्धकर्म) से सन्तुष्ट होकर पितर मनुष्यों-
आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, वैभव,
ख, धन और धान्य देते हैं।'

ायुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः॥

(मार्कण्डेयपुराण)

पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृभक्तितः

(महा० अनुशा

'पितरोंकी भक्ति करनेसे पुष्टि, आयु, वीर्य तथा
की प्राप्ति होती है।'

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति

(ब्रह्

'जो मनुष्य शाकके द्वारा भी श्रद्धा-भक्तिसे श्राद्ध
है, उसके कुलमें कोई भी दुखी नहीं होता।'

उद्धृतेष्वपि पिण्डेषु याश्चाम्बुकणिका भुवि
ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः
ये चादन्ताः कुले बालाः क्रियायोगा ह्यसंस्कृताः
विपन्नास्ते तु विकिरसम्मार्जनजलाशिनः
भुक्त्वा चाचमनं यच्च जलाद्यच्चाङ्घ्रिशोधनम्
एवमाप्यायनं वत्स बहूनामपि बान्धवैः
श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाप्सु शाकैरपि हि जायते

(ब्र

'श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक किये हुए श्राद्धमें
गिरी हुई पानीकी नन्ही-नन्ही बूँदोंसे पशु-पक्षियोंकी यो
हुए पितरोंका पोषण होता है। जिस कुलमें जो बाल
ही मर गये हों, वे सम्मार्जनके जलसे ही तृप्त हो
श्राद्धका महत्त्व तो यहाँतक है कि श्राद्धमें भोजन कर
जो आचमन किया जाता है तथा पैर धोया जाता है
बहुत-से पितृगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। बन्धु-बान्धवे
अन्न-जलसे किये गये श्राद्धकी तो बात ही क्या है
श्रद्धा-प्रेमसे शाकके द्वारा किये गये श्राद्धसे भी
होते हैं।'

यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितः
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानव
ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्यानलसुमारुतान्
विश्वेदेवान् पितृगणान् पर्यग्निमनुजान् पशू
सरीसृपान् पितृगणान्यच्चान्यद्भूतसंज्ञिता
श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत्

(ब्र

'जो मनुष्य अपने वैभवके अनुसार विधिपूर्वक श्र
है, वह साक्षात् ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त प्र

अग्नि), वायु, विश्वेदेव, पितृगण, मनुष्यगण,
समस्त भूतगण तथा सर्पगणको भी सन्तुष्ट करता
पूर्ण जगत्को सन्तुष्ट करता है।'

सम्यग् गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा।
पूज्या हव्यकव्येन अन्नेनापि स्वबान्धवाः॥
त्र च परां पुष्टिं लोकांश्च विपुलान् शुभान्।
द्धकृत्समवाप्नोति यशश्च विपुलं नरः॥

(ब्रह्मपुराण)

प्रकार गृहस्थको चाहिये कि वह हव्यसे देवताओंका, तृगणोंका तथा अन्नसे अपने बन्धुओंका सत्कार तथा। श्रद्धापूर्वक देव, पितृ, बान्धवोंके पूजनसे मनुष्य पुष्टि, विपुल यश तथा उत्तम लोकोंको प्राप्त।'

ायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः।
न्ति तेन चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु॥
ापा विशुद्ध्यन्ति ब्राह्मण्यमुपयान्ति ते।
णानां तथैवान्ये न तृप्तिं प्रापयन्ति वै (तैः)॥
ाचत्वमनुप्राप्य कृमिकीटत्वमेव च।
ये यजमानस्य यच्च तेषां द्विजन्मनाम्॥
ाजलादिविक्षेपः शुचिरुच्छिष्टमेव वा।
न्येन प्रकारेण तत्तद्योन्यन्तरं गताः॥
न्त्याप्यायनं वत्स सम्यक् श्राद्धक्रियावताम्॥

(स्कन्दपुराण)

यायसे उपार्जित धनसे भी किये हुए श्राद्धसे पुल्कस आदि योनियोंमें भोगवश पहुँचे हुए न्तुष्ट होते हैं। इतना ही नहीं, वे पितृगण पाप- र ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी उपायान्तरसे नहीं हो सकती। यजमान अथवा -किसी भी द्विजके पितृगण यदि पिशाच हो गये हों कोड़े हो गये हों तो उन सबके निमित्त तर्पणका जल च्छिष्ट हो, परंतु वह तत्तद् योनियोंमें पड़े हुए न्तोषके लिये पर्याप्त हो जाता है। अतः श्राद्धकर्म रना चाहिये।'

द्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः।
यन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेषु तर्पिताः॥
ानं गर्भिणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा।

'वसु, रुद्र, आदित्यगण, पितर और श्राद्ध-दे मनुष्योंसे सन्तुष्ट होकर पितरोंकी तृप्ति करते हैं। जि गर्भवती स्त्रियाँ दोहद (गर्भ) की रक्षाद्वारा अपनी रक्षा उसी प्रकार देवगण श्राद्धद्वारा अपनी तथा मनुष्य करते हैं।'

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान्
विश्वेदेवानृषिगणान् वयांसि मनुजान् पशू
सरीसृपान् पितृगणान् यच्चान्यद्भूतसंज्ञक
श्राद्धं श्रद्धान्वितं कुर्वन् तर्पयत्यखिलं हि त

(वि

'श्रद्धायुक्त होकर श्राद्धकर्म करनेसे केवल पि तृप्त नहीं होते, बल्कि ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, दोनों अश्वि सूर्य, अग्नि, अष्ट वसु, वायु, विश्वेदेव, ऋषि, मनु पक्षी और सरीसृप आदि समस्त भूतप्राणी तृप्त होते

यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वास
तस्य संवत्सरं यावत् संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्

(हेमाद्रि, ना

'जो मनुष्य एक दिन भी श्राद्ध करता है, उसके वर्षभरके लिये सन्तुष्ट हो जाते हैं—यह निश्चित है।'

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहा

(याज्ञवल्

'श्राद्धकर्मसे सन्तुष्ट होकर पितर मनुष्योंके लि संतति, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और राज्य प्रदान क

ये यजन्ति पितॄन् देवान् ब्राह्मणांश्च हुताशना
सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति त

(य

'जो लोग देवता, ब्राह्मण, अग्नि और पितृगण करते हैं, वे सबकी अन्तरात्मामें रहनेवाले विष्णुकी करते हैं।'

अरोगः प्रकृतिस्थश्च चिरायुः पितृपुत्रवा
अर्थवानर्थयोगी च श्राद्धकामो भवेदिह
परत्र च परां तुष्टिं लोकांश्च विविधान् शुभा
श्राद्धकृत् समवाप्नोति श्रियं च विपुलां नर

(देव

सन्तोष प्राप्त करता है और पूर्ण लक्ष्मीकी प्राप्ति
।'

न् पितामहांश्चैव द्विजः श्राद्धेन तर्पयेत् ।
ण्यं स्यात् पितृणां च ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥
(व्यासः)

द्विजाति श्राद्धद्वारा अपने मृत पितृ-पितामहादि सन्तुष्ट करता है, वह पितृ-ऋणसे मुक्त होकर ो जाता है ।'

वा भ्रातरो वापि दौहित्रः पौत्रकस्तथा ।
कार्यप्रसक्ता ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥
(अत्रिसंहिता)

ा, भाई, पौत्र अथवा दौहित्र यदि पितृकार्यमें ाद्धानुष्ठानमें संलग्न रहें तो अवश्यमेव परम गतिको ो ।'

महाभारतके अनुशासनपर्व (८७ । ९—१७) में से लेकर अमावास्यातक प्रत्येक तिथिमें श्राद्ध करनेक अलग फल युधिष्ठिरजीसे भीष्मजीने बतलाया है ।

इसी प्रकार ब्रह्मपुराणमें भी प्रतिपदासे लेकर अ तक श्राद्ध करनेके विभिन्न फल बतलाये गये है अतिरिक्त ब्रह्मपुराणमें विभिन्न नक्षत्रोंमें श्राद्ध कर भिन्न-भिन्न फल लिखा है ।

उपर्युक्त श्राद्धकी महत्ताको सूचित करनेवाले प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि श्राद्धका फल केवल तृप्ति ही नहीं है, अपि तु उससे श्राद्धकर्ताको भी विशिष्ट प्राप्ति होती है । अतः द्विजातिमात्रको अपने परमाराध्य के श्राद्धकर्मद्वारा आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधि उन्नति प्राप्त करनी चाहिये ।

विदेशियोंकी दृष्टिमें श्राद्धका महत्त्व

(लेखक—श्रीएस०कान्त बी०ए०, एफ०बी०आई०)

के विषयमें एक संस्कृतके विद्वान् अंग्रेजने अपनी महानता' नामक पुस्तकमें लिखा है— में श्राद्धकी प्रथा बड़ी प्राचीन है और आधुनिक समय- पवित्र तथा शुभ मानी जाती है । यह ईसाई मत- ्र रबानी' (Holy Communion) के सदृश नेःसन्देह हिंदू अभीतक पितरोंके प्रति श्राद्ध तथा मोंको विशेष श्रद्धा और आदरभावसे करते हैं । ार है कि हमारे ईसाई मतमें पूर्वजोंकी स्मृति न क त्रुटि है । किसी-किसी देशमें श्राद्ध करनेकी प्रथा रिणत हो गयी है; परंतु वास्तवमें उस कार्यक्रममें के हृदयोंमें अपने पूर्वजोंके प्रति अगाध श्रद्धा और ा निहित रहता है, ऐसे भाव प्रशंसनीय ही नहीं, ो प्रोत्साहित करना भी सर्वथा उचित है । ईसाई- म्भिक कालमें उस मतके अनुयायी अपने पूर्वजों- आत्माओंके कल्याण तथा सद्गतिके लिये प्रार्थना ते थे । दक्षिण देशमें तो वर्तमान कालमें भी तथा आत्माओंका दिवस' (All Saints and uls Day) अपने मनकी शान्ति और कामनापूर्तिके नाया जाता है । मेरा मत है कि इस प्रकारकी प्रथा धर्मानुयायियोंमें होना आवश्यक है । पुराने मनुष्योंका यह दृढ़ विश्वास कि यदि वे अपने र्जों और सम्बन्धियोंकी आत्माओंको उनकी मनाकी प्रार्थना प्रतिदिन करके सन्तुष्ट न अथवा उनकी तृप्तिके निमित्त दान देनेमें उपलब्धिमें बाधक बनेंगी, सर्वथा सारहीन नहीं

हिंदुओंके श्राद्ध करनेकी प्रथाकी सराहना मुरि शाहजहाँने भी की है । उसका पुत्र सम्राट् औरंगजेब शासक हुआ है; परंतु उसका सबसे निकृष्ट कलङ्क अप को पूरे सात वर्ष कारागारमें रखना है । प्रत्येक इति इस घटनाका उल्लेख किया है; परंतु आकिल खाँ 'वाकेआत आलमगीरी'में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन और साथ ही शाहजहाँका अपने पुत्रके नाम निम्न उद्धृत किया है—

'बाबा बखश बाहदरे मन सलामत । दीरोजे साहि बुदम, इमरोज बारकाबदारी शक्से मोहताज, चे लश्करे मुसलमान हिमा अज़ करदाए खुद परीमान ख्वा हंद शु

ऐ पिसर तू अजब मुसल्मानी,
ब पिदर जिंदा आब तरसानी
आफरीन बाद हिंदवान सद बार,
मैं देहंद पिदर मुर्दाराना दायम आ

इसका अर्थ है 'अभी कलतक नौ लाख (अर्थात अश्वारोही सैनिक मेरे अधीन थे, परंतु आज म अश्वारोहणके लिये भी दूसरोंका आसरा लेना पड़ता है मुझे विश्वास है कि हिंदू तथा मुस्लिम सैनिकोंको, मेरे साथ विश्वासघात किया है, अपने कुकृत्यपर करना पड़ेगा ।'

'हे पुत्र ! तू भी विचित्र मुसल्मान है जो अपने पिताको जलके लिये भी तरसा रहा है । शत-श

महात्मा गान्धी और हिंदू-संस्कृति

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे)

-संस्कृतिकी दृष्टिसे महात्मा गान्धी हिंदू-संस्कृतिके
प्रतीक थे । हिंदू-संस्कृतिको जिस रूपमें जगत्
र्तमान मनोभूमिकामें समझ सकता था, वही रूप
मानो हिंदू-संस्कृति ही महात्मा गान्धीके रूपमें अवतीर्ण

त्मा गान्धी इस बातके प्रमाण हैं कि हिंदू-संस्कृति
म्प्रदायिक' चीज नहीं है। यह इतनी सार्वभौम है,
कोई भी चीज सार्वभौम हो सकती है। हम जिसे
कहते हैं, वह भी कोई साम्प्रदायिक धर्म नहीं है।
ो देश, काल या व्यक्तिसे बँधा नहीं है—सार्वभौम
न है और प्राणिमात्रके लिये है। 'हिंदू' नाम अवश्य
क है । परप्रत्ययसे हो या स्वप्रत्ययसे, इस देशका
हू है । पर यह देश विश्वको अपनेसे अलग नहीं
महात्मा गान्धीका नाम भी एक व्यक्तिका नाम है।
ामका जो नामी व्यक्ति है, वह किसी मानव-समाजको
अलग नहीं करता । महात्मा गान्धीको इस बातका
कि हम हिंदू हैं। वे अपनेको सनातनी हिंदू कहा
पर इसमें कोई साम्प्रदायिकताकी गन्ध नहीं थी, कोई
यक अहङ्कार नहीं था। वे इस बातके प्रमाण थे कि
प्रदायिक नहीं होता । उसके हृदयमें सबके लिये
ल प्रेम होता है, जो अपने देश या जातिवालोंके लिये
महात्मा गान्धी अपनेको हिंदू कहते हुए अपने आप-
, मुसल्मान, पारसी—सब कुछ अनुभव करते थे।
पर आये हुए सङ्कटके कालमें उनका हृदय
के हृदयके साथ एक हो गया। ज़ेकोस्लोवाकियापर
जब आक्रमण किया, तब ज़ेकोस्लोवाकियाका नेतृत्व
लिये वे तैयार हो गये। ब्रिटेनके प्राण जब जर्मन-
के धक्कोंसे सङ्कटमें पड़ गये, तब अशस्त्रपाणि
ान्धीके प्राण ब्रिटेनके मर्मस्थानमें पहुँच गये। कराची-
ब अली-भाइयोंसे मिलनेके लिये बाबा गुरुदत्तसिंह
तब धर्मकी चर्चा करते हुए मौलाना महम्मद अलीने
हा था कि 'संसारमें कहीं भी मुसल्मानोंपर कोई
ा जाय तो हर मुसल्मानका यह फर्ज होता है कि उन

'सिखोंका यह धर्म है कि कहीं भी किसी मनुष्यपर—
सिख, मुसल्मान, ईसाई, पारसी, कोई क्यों न ह
अन्याय या अत्याचार होता हो तो उसकी मददके लि
दौड़ जाय।' बाबा गुरुदत्तसिंहने सिख-धर्मके नामसे
धर्मकी ही बात बतलायी थी। पर हिंदू-धर्म केवल मानव
का ही नहीं, वह तो अखिल प्राणि-जगत्‌का सङ्कट दू
लिये है।

हिंदू-धर्मका यह मर्म महात्मा गान्धीके हृदय
आनुवंशिक संस्कार था। यदि वे स्वतन्त्र भारतमें ज
होते तो जगत्‌की पीडित मानव-जनताके उद्धारमें
जीवन लगता और उनके पीछे अखिल भारत अपनी
शक्तिके साथ खड़ा होता । परंतु उन्होंने जन्म
पराधीन भारतमें । अतः उनके विश्व-प्रेमी हृदयमें
स्वाधीन करनेका ही धर्म सर्वप्रथम अभ्युदित हुआ
अफ्रिकामें वे असहाय पराधीन भारतवासियोंकी
लड़नेके लिये गये थे । तबसे भारतकी पूर्ण रा
स्वाधीनता सिद्ध होनेतक उन्होंने कई लड़ाइयाँ ल
सब लड़ाइयाँ, ये सब अहिंसात्मक संग्राम भारतको रा
स्वाधीनता दिलानेके ही मानो विविध कार्यक्रम थे
सारे संग्रामोंकी यह खूबी थी कि उनके विश्व-प्रेमी
थोड़ी देरके लिये भी किसीके प्रति कोई शत्रुभाव नहीं
हुआ । गीतामें भगवान्‌ने अपने भक्तका यह
बतलाया है कि वह 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण
होता है। अर्थात् वह विश्व-प्रेमी होता है, किसी प्रा
द्वेष नहीं कर सकता, सबका हितू और सबपर दया क
होता है । साधु-महात्माओंमें यह चीज होती है। प
प्रसङ्गमें ऐसे विश्व-प्रेम, मैत्री और करुणाकी बात अ

महात्मा गान्धीका अपने जीवनमें अपना कोई स्व
था । बार-बार उन्होंने अपने लेखों और व्याख्यानों
है कि मेरे जीवनका उद्देश्य मोक्ष, आत्मज्ञान अथव
प्राप्ति है । भारतको राजनीतिक स्वाधीनता दिलान
प्राप्तिके साधनमार्गका ही एक पड़ाव था। वे अपने

था। उनकी राजनीति ईश्वरके साथ योगकी एक
थी। जिस हिंदू-संस्कृतिमें वे पले थे, उसीने उन्हें
दिया था। हिंदू-संस्कृतिके सिवा यह चीज उन्हें
न दे सकता था; हिंदू-संस्कृतिमें ही प्रत्येक मनुष्यके
परम लक्ष्य ईश्वरको पाना है। हिंदू-समाज-
इसी लक्ष्यके आधारपर प्रतिष्ठित है। हिंदू-धर्मनीति,
, समाजनीति और विविध शास्त्र, काव्य और कलाएँ
माजको उसी ओर ले चलती हैं। इसीलिये हिंदुओं-
पुण्यमयी कर्मभूमि धन्य है और धन्य है उसकी वह
जिसमें जगदुद्धारके इस महामन्त्रका उपदेश करने-
ापुरुष सदासे होते चले आये हैं। अकेली एक
मिने किसी एक ही समय जगत्‌को इतने महामानव
दिये हैं, जितने अन्य सब देशोंने सब समय मिलाकर
दिये हैं। परम्परा तो वही है, इसमें सन्देह नहीं।
क क्षेत्रमें तो यह साधुता और महात्मापन निश्चय ही
; परंतु महात्मा गान्धीकी ईश्वरनिष्ठा देखिये कि वे
स्वाधीनताको भी छोड़ देनेको तैयार होते हैं यदि
ंसाके रास्तेसे न मिलती हो। पर वह निष्ठा ही क्या,
ङ्का उपस्थित हो। सन् ३७ के आरम्भमें एक अंग्रेज
कारने उनसे प्रश्न किया था—

ा आपको यह विश्वास है कि अंग्रेज आपके
क आन्दोलनके सामने झुककर आपके देशका राज्य
ौंपकर इस देशसे शान्तिके साथ चले जायँगे?'
त्मा गान्धीने उत्तर दिया, 'हाँ, मैं ऐसा ही समझता

—'आपके इस विश्वासका आधार क्या है?'
र—'ईश्वर और उसकी न्यायकारितापर मेरा
है।'

कार उनके इस उत्तरसे चकित और मुग्ध हुआ।
ा, 'हमलोग ईसाई कहलाते हैं। पर अधिक सच्चे
आप हैं। मैं आपके ये शब्द बड़े-बड़े अक्षरोंमें
'

त्माजीने कहा, 'अवश्य छापिये। यदि ऐसा न
भगवान् प्रेमके भगवान् नहीं रहेंगे, हिंसाके भगवान्
।'

क्या सच्ची ईश्वरनिष्ठा कभी निष्फल हुई है? ...

इतिहासमें यह पहली घटना है कि किसी देशने
बलपर एक विदेशी साम्राज्यका अन्तकर अपना
स्थापित किया हो। महात्मा गान्धीके व्यक्तित्वसे
होकर लोग उनके पीछे चलते थे। पर बहुत कम
यह विश्वास हुआ होगा कि अंग्रेज यहाँसे शान्तिके स
जायँगे। सत्य और अहिंसा क्या किसी राजनीतिके उ
सकते हैं? इन तार्किक प्रश्नोत्तरोंका कोई अन्त नहीं
पर महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें पराधीन भारतकी अहि
सत्यके भरोसे स्वाधीनताके किनारे लग गयी, इसक
तो आजका सारा जगत् ही है।

सत्यपर प्रतिष्ठित राजनीति और अहिंसापर
रणनीति ही महात्मा गान्धीकी जगत्‌को सबसे बड़ी दे

ईश्वरनिष्ठाके बिना भी भारतकी इस अद्भुत स्वा
सम्बन्धमें विचार करनेका एक राजनीतिक तरीका है
अनुसार यह कहा जा सकता है कि द्वितीय म
फलस्वरूप जगत्‌की सर्वराष्ट्रिय परिस्थिति इतनी बद
और अंग्रेजोंके लिये रूसकी बढ़ती हुई शक्ति, आज
फौजकी घटनासे उत्पन्न होनेवाला भविष्यके लि
१९४२ की क्रान्तिसे प्रकट होनेवाली भारतकी तैयारी
मुकाबले अपना साम्राज्य सँभालना इतना कठिन मा
कि हिंदुस्थानको छोड़ देनेमें ही उन्होंने अपनी
समझी। पर इन ऊपरी तर्कोंमें अपने सहारेकी क
नहीं है, न यह महात्मा गान्धी और उनकी ईश्वरनि
समझना है। हाँ, महात्मा गान्धीकी-सी ईश्वरनि
देशके नेतृत्वमें बनी रहेगी तो उससे जो विजय अ
प्राप्त हुई है, वह बाहर बड़े-बड़े राष्ट्रोंके अखाड़ेमें
होगी। ईश्वरनिष्ठारहित सत्य और अहिंसाकी कोरी ब
अर्थ नहीं रखतीं, न कोई महत्कार्य साधन करनेमें
सकती हैं। महात्मा गान्धीकी अमोघ शक्तिका रहस्य
ईश्वरनिष्ठा है। ईश्वरके अनेक नाम और रूप हैं।
गान्धी उस ईश्वरको सत्यके नामसे जानते थे और सत्य
सत्यआचरण, सत्यभाषणके रूपमें उन्हें देखते थे
सत्यसे उनका अहिंसाव्रत और ब्रह्मचर्यव्रत निकला
ईश्वरनिष्ठा हिंदू-संस्कृतिका मूल आधार है। इसी
उत्पन्न होनेवाला इसका दूसरा आधार धर्म है।
प्राप्ति लक्ष्य है, धर्म साधन है। इनके बीचमें रहक

: आधारपर महात्मा गान्धीने अपने जीवनका निर्माण किया था।

्-धर्मपर उनकी निष्ठा कैसी थी, यह उन्हींके शब्दोंमें ग्य है। महात्माजी कहते हैं—'मैं अपने-आपको हिंदू कहता हूँ; क्योंकि—

:) 'मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों और सभी हिंदू-धर्मग्रन्थोंको मानता हूँ······'

:) 'मैं वर्णाश्रम-धर्मको भी मानता हूँ······'

:) 'गोरक्षाधर्मपर भी मेरा विश्वास है······।'

') 'मूर्तिपूजापर मेरा अविश्वास नहीं है।'

(यंग इंडिया २९ सितंबर १९२०)

त्मा गान्धी पूर्वजन्मके संस्कार और आनुवंशिक ो भी मानते थे। वर्णविभागको वे जन्मसे मानते थे; यदि ऐसा न माना जाय तो वर्णव्यवस्थाका कुछ हीं रहता।' महात्माजी वर्णधर्मको मनुष्यका 'सहज ी जन्मके साथ ही उत्पन्न हुआ धर्म मानते थे। हा था कि 'इस सहज धर्मका यदि पालन किया समाजमें जो उपद्रव आज हो रहे हैं, एक-दूसरेके द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा बढ़ रही है, धन इकट्ठा करनेके लिये उठाये जा रहे हैं, असत्यका जो प्रचार हो रहा है युद्धके साधन तैयार किये जा रहे हैं, वे सब शान्त । इस नीतिका पालन सारा संसार करे अथवा न करे, करें या न करें; पर जितने लोग इस व्यवस्थापर तना लाभ तो संसारको होगा ही। मेरा विश्वास जाता है कि वर्णधर्मसे ही जगत्का उद्धार होगा।' । आधुनिक समाजवाद या साम्यवादके कायल नहीं का तो था धर्मवाद, ईश्वरवाद, हिंदू-संस्कृतिका द। इस सनातनवादके सामने समाजवाद या -जैसे अल्पजीवी वादोंका कोई महत्त्व नहीं रहता। गान्धीके सामने समाजवादी, साम्यवादी—सभी थे। वादी अपने समाजवादमें महात्मा गान्धीका तेज पाते थे। उन्हें महात्मा गान्धीके अनुयायी होकर ता था। और साम्यवादियोंके लिये महात्मा गान्धीके ड़े होनेके सिवा और कोई गति नहीं थी। हिंदुस्थान-या गान्धीवाद ही; क्योंकि वह हिंदू-संस्कृतिके था। हिंदू-संस्कृति ही उसकी मूल प्रेरणाशक्ति थी।

कोई चीज अपने मूलसे कटकर अलग नहीं रह हिंदू-संस्कृतिसे विच्छिन्न होनेके कारण ही बौद्धमत इर ठहर नहीं सका, यद्यपि बौद्धमतकी वे आधारभूत वस बौद्धमतकी प्राणशक्ति थीं, हिंदू-संस्कृतिमें पहले भी आज भी हैं। गान्धीवादकी जीवनी शक्ति यथार्थ संस्कृति ही है, यह कभी नहीं भूलना चाहिये।

गान्धीजीकी कुछ बातें अवश्य ही सनातनी हिंदू दृष्टिमें अशास्त्रीय थीं। ऐसा होना स्वाभाविक है। कोई सन्देह नहीं कि ऐसी बातोंमें भी महात्मा गान्धी अ कोणके अनुसार हिंदू-संस्कृतिके आधारपर ही खड़े होते थे बातोंमें मतभेदका होना आश्चर्यकी बात नहीं है। उदा महात्मा गान्धी वर्णधर्म और वर्णव्यवस्थाको मानते खान-पान और शादी-ब्याहके सम्बन्धमें वर्तमान प्रति नहीं मानते थे। पर इस सिद्धान्तको तो वे मानते ही विवाह-बन्धन समान संस्कृतिके लोगोंमें ही ठीक है। खान-पानके विषयमें शुचि और संयत रहना उ अभीष्ट था। इसमें सन्देह नहीं कि खान-पान और सम्बन्धोंके विषयमें शास्त्रीय व्यवस्था कोई ऐसी चीज जो तोड़ी जाय। 'शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः' वि मानवसमाजके लिये मङ्गलकारक नहीं हो सकता। भाइयोंके विषयमें तथा मुसल्मानोंके विषयमें भी उनकी पद्धति संस्कारमूलक अधिकारभेदके अंशमें शास्त्रीय छोड़ हुई थी, ऐसा कोई शास्त्रज्ञ पुरुष कहे तो उसका य कदापि असंगत नहीं है, तथापि अन्त्यजोंको हरिजन तथा सच्ची हिंदू-मुस्लिम-एकता स्थापित करनेकी उनकी काङ्क्षा सदा ही वन्दनीय रहेगी। इन दोनों समस्याओंको सु की कोई शास्त्रानुकूल विधि निकाली जा सके तो वह गान्धीकी महान् सेवाके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेका करेगी। महात्मा गान्धी कहते हैं कि 'दुनियामें संस्कृतिका भण्डार इतना भरा-पूरा नहीं है, जितना संस्कृतिका है। हमलोगोंने उसे अभी जाना नहीं है उसके अध्ययनसे दूर रक्खे गये हैं, हमें उसके गुण और माननेका मौका ही नहीं दिया गया। हमने अनुसार चलना करीब-करीब त्याग दिया है।' यह राजके समयकी हमारी दशाका वर्णन है। पर

ौर अपनी सब जटिल समस्याओंके समाधान उसीमेंसे
 चाहिये । समाजवादी समाधान काम नहीं देंगे ।
जवाद और गान्धीवादमें वही अन्तर है, जो पाश्चात्त्य
और भारतीय संस्कृतिमें है । समाजवादमें भारतीय
 चतुर्विध पुरुषार्थोंमेंसे केवल दो ही पुरुषार्थ हैं—
ौर 'काम', जिनका 'धर्म' और 'ईश्वर'के साथ
न्ध नहीं है । समाजवादकी आर्थिक व्यवस्था उद्योग-
केन्द्रीकरण है, गान्धीवादमें उद्योग-धंधोंके केन्द्री-
निषेध है । कारण, उससे जनता गरीब हो जाती है,
 कुछ थोड़े-से मनुष्योंके हाथोंमें इकट्ठी होती है,
ाही बढ़ती है, बहुत लोग बेकार हो जाते हैं । इससे
और मजदूरोंमें वर्गयुद्ध चलता है, परस्पर द्वेष फैलता
धीवाद उद्योग-धंधोंको सारी जनतामें बाँट देता है ।
ी ही बँट जाती है, धनका अनायास ही एक प्रकारसे
ण होता है और वर्गयुद्धका कोई कारण नहीं रहता ।
वर्ण-व्यवस्थामें यही खूबी है—न कोई वैसी व्यापारिक
ता रहती है, न बेकारी ही बढ़ती है । वर्ग-युद्ध,
षम वितरण और बेकारी—इन सब बुराइयोंकी जड़
रमें महायन्त्रों (बड़े-बड़े कल-कारखानों) का उपयोग,
हिंदूस्मृतिकारोंने निषेध किया है । मनुस्मृतिमें
सेवनकी उपपातकोंमें गणना की गयी है । महात्मा
ारम्भसे बड़े-बड़े कल-कारखानोंका विरोध ही करते
इसी सिलसिलेमें उन्होंने हाथके कते सूतसे हाथका
र पहननेकी प्रथा चलायी । अन्न और वस्त्र, कम-से-
दो अत्यावश्यक पदार्थोंके सम्बन्धमें भारतका प्रत्येक
नी आवश्यकता स्वयं पूरी कर ले—यही उनका मुख्य
जो निश्चय ही हिंदू-संस्कृतिके अनुरूप था । स्वाधीनता
के बादसे उद्योग-धंधोंके इस विकेन्द्रीकरणकी उपेक्षा
 रही है और गान्धीवाद बहुत पिछड़ता-सा दीख रहा
लक्षण अच्छा नहीं है । राष्ट्रकी आर्थिक व्यवस्थामें
का उपयोग वहींतक ठीक है, जहाँतक सर्वराष्ट्रिय
का सामना करनेमें उनकी आवश्यकता हो—
र्थ, युद्ध-सामग्री आदि तैयार करनेमें । घरकी आर्थिक
 महायन्त्रोंका वर्जन ही ठीक है ।

न चोरबाजारी, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार जितने
तने किसी समयमें भी नहीं थे । यह सही है कि यह
धःपतन अंग्रेजी राज्यकी अनीति-परम्परासे प्राप्त हुआ

स्वाधीन होनेके साथ ही हम इस नैतिक अधःपतन
नहीं कर सके; बल्कि स्वाधीनतामें इसकी और भी वृ
इसका कारण क्या है ? क्या यही तो इसका कारण न
महात्मा गान्धीके सीधे-सरल रास्तेपर चलना छो
सर्वराष्ट्रिय प्रतिष्ठा-लाभके लोभमें पड़ गये ! स
आदर्शोंको जल्दी-से-जल्दी सिद्ध कर दिखानेके म
अभिभूत कर लिया ? हमारे ठाट-बाट और शाहीर
गये; सादगी, सेवा और त्यागकी भावना हुकूमतके
हवा हो गयी ! महात्मा गान्धीके बार-बार कहनेपर
हमने कंट्रोल उठा दिया, पर जनतामें वह जाग
करनेकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, जो धर्मबुद्धिसे
किया जा सकता था । कंट्रोल उठा देनेको 'जूआ'
गया और यह प्रतीक्षा की जाने लगी कि कंट्रोल उ
नीति कब विफल होती है और कब हम फिरसे कंट्रो
हैं । महात्मा गान्धीकी मृत्युके बाद कंट्रोल उठा देनेक
विफल होनेमें देर नहीं लगी और फिरसे कंट्रोल बैठ ग
तो कंट्रोल और भी बढ़ा है ! चोरबाजारी और भ्रष्टा
ही हैं । कंट्रोलके तो ये नित्य सहचर हैं । यह बात
निश्चित नहीं है कि देशमें अन्नकी कमी है । अधिकां
और वस्त्रकी कमी चोरबाजारीसे ही उत्पन्न हुई दी
है । फिर सुशासनका यह लक्षण तो नहीं है कि
जीवनके हर चीजपर सरकारी कंट्रोल हो । उत्तम श
कहा जा सकता है, जिसमें जनताको स्वाधीनताका अ
और उसमें धर्मबुद्धि जागे, नैतिकताका विकास हो
गान्धी यदि जीवित होते तो इस जडयन्त्रवत् शास
विलक्षण चैतन्य उत्पन्न हुआ होता । उनकी स्म
चैतन्य अब भी उत्पन्न किया जा सकता है । बहुत
लोगोंकी सादगी, निःस्वार्थ सेवा और त्यागकी
निर्भर है, जिनके हाथोंमें देशके शासन-सूत्र हैं ।

महात्मा गान्धीने देशके राजनीतिक नेताओं अ
कर्ताओंका विदेशी वेश उतरवाकर उन्हें विशुद्ध ख
दिया । यह सचमुच ही विदेशी पथपर चले हुए रा
महान् संस्कार था । अब इस विशुद्ध वेशके अंदर व
संस्कृति आ जानी चाहिये, जिसके मूलतत्त्व हैं ईश्वर अ
महात्मा गान्धीको हिंदुस्थानपर अंग्रेजोंका बोझ उ
अखरता था, जितना अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृतिका
वेशमें यह विदेशी सभ्यता बहुत जगह छिपी हुई है । र

ले यह लिख रक्खा था कि 'अभी इससे बचनेकी कोई
हो सकती है; पर जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, वक्त
नकलता जा रहा है ! मुझे तो धर्म प्यारा है—इसलिये
:ख तो मुझे यही है कि हिंदुस्थान धर्मभ्रष्ट होता जा
यहाँ धर्मसे मेरा मतलब उस धर्मसे है, जो सब धर्मोंका
है। सच तो यह है कि हमलोग ईश्वरसे विमुख होते जा

महात्मा गान्धी स्वयं सदा ईश्वरके सम्मुख रहते थे।
प्रेरणाके बिना वे कोई काम नहीं करते थे। उनपर
जका दबाव नहीं पड़ता था। दुनियाके किसी वाद,
ा भौतिक बल-वैभवका उनपर कोई प्रभाव नहीं
। यही उनकी राष्ट्रनीतिकी मौलिकताका कारण है।
बल राम' कितने प्रबल हैं, इसका वे अपने हृदयमें
करते थे और जगत्में उसका तेज प्रसृत होता था।
थे, सारा देश ईश्वरसम्मुख हो। इसलिये उनके
ग और आन्दोलन उपवास और ईश्वर-प्रार्थनासे
होते थे। अब तो विधान-परिषद्में ईश्वर-प्रार्थना
र्य आरम्भ करनेके प्रस्तावको ही ठुकरा दिया है!
ईश्वर-प्रार्थना और उपवास ही सबसे महान् आश्रय
तकी शिक्षा उन्हें बचपनमें माता-पितासे मिली
दुओंके घर-घरमें आज भी जहाँ सनातन हिंदू-धर्मकी
है, यह शिक्षा किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान है।
गान्धीने इसे जगाया अपने राष्ट्रको ईश्वरके सम्मुख
ाये। श्रीमद्भगवद्गीताको वे माता कहते थे। उन्होंने
लिखा है—'मुझे जन्म देनेवाली मेरी पार्थिव माता
यीं, पर इस शाश्वती (गीता) माताने उनका स्थान
पूरा किया है। यह तबसे सदा मेरे साथ रहती है।
ी कोई बदल नहीं हुआ, कभी इसने मुझे असहाय
ा। जब कोई कठिनाई या दुःख सामने आता है,
सकी गोदमें जा बैठता हूँ।' सभी सद्ग्रन्थोंके प्रति
ादर था, पर गीताग्रन्थ उनका इष्ट था। भगवान्के
ामनाम उनका इष्ट था और भक्तिग्रन्थोंमें था
रेतमानस। मुसल्मानोंको समझानेके लिये कि
ीम—सभी नाम उस अल्लाहके हैं; किसी भी
ई उसका स्मरण करे, स्मरण होता है उसी एक
—इसलिये वे अपनी सार्वजनिक प्रार्थनाओंमें रामके
न, कृष्णके साथ करीम, ईश्वरके साथ अल्लाह नाम
थे (यद्यपि इसमें सन्देह है कि सामान्य मुस्लिम
इसका क्या प्रभाव पड़ता होगा।) पर उनका तो

नाम था राम ही। 'रघुपति राघव राजाराम प
सीताराम' की ही उनके यहाँ धुन लगती थी। सूर
मीरा, नरसी आदिके भजन उनकी प्रार्थनाओंमें गाये
यह सारा प्रयत्न इसीलिये था कि देश भगवान्के स
हिंदू और मुसल्मान भगवान्के सम्मुख होकर सच्चे भ
इस देशमें रहें। पर हिंदू-संस्कृति और मुस्लिम-
कोई विलक्षण भेद होनेसे हिंदू-मुस्लिम-एकतामें दी
विलम्ब अनिवार्य है। हाँ, यह नामनिष्ठा हिंदू-
परम्परासे चली आयी है। अर्थमूलक आधुनिक
उसे बहुत कुछ दबा दिया है। महात्माजीने उसे
जो प्रयत्न किया है, वह उनके बाद भी जारी रहेग
बहुत दूर नहीं है, शीघ्र ही देश ईश्वरके सम्मुख
महात्मा गान्धीकी बदौलत आज रेडियोके सब
रामधुन और संतोंके भजन सुननेको मिलते हैं। पर
फैशनके तौरपर केवल जडयन्त्रमें ही न रह जाय, इ
विशेष ध्यान देना आवश्यक है। (अब तो रेडियोमें
रामचरितमानसपर भी रोक लग गयी है!) देशमें, स्था
जो तीर्थ हैं, जहाँ-जहाँ जो सत्संग, ईश्वरके भजन और भ
कीर्तन होते हैं, वे सब अज्ञात रहकर भी निःस्वार्थभ
महत्कार्य कर रहे हैं। इस बातको समझना और
इसमें प्रोत्साहित करना सरकारका एक मुख्य काम होन
यदि महात्मा गान्धी जो मार्ग दिखा गये, उसप
विश्वास है। देशकी सच्ची सेवा शासनविधान या
कानून बनानेमें उतनी नहीं होती, जितनी जनतामें
जगानेसे होती है। महात्मा गान्धीके प्रयत्नोंकी
और उनकी आकर्षणशक्ति इसी ईश्वर-सम्मुखतामें है

महात्मा गान्धी बहुत जल्दी चले गये! उन
जीवनमें जितना किया, उतना कोई कर नहीं सक
उनके संकल्पमें अभी बहुत कुछ करना बाकी था।
देशमें रामराज्य स्थापित हुआ देखना चाहते थे। स
तो मिल गयी, अशोकका चक्र भी आ गया; पर
युधिष्ठिरका किला हमारी राजधानीमें अभी उजड़ा हुआ
है। उन पाण्डवोंकी कीर्तिका गान अभी हमारी रा
नहीं सुनायी दे रहा है, जिनके विषयमें कहा गया है—

धर्मो विवर्द्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन

ग्रान् श्रीकृष्णने स्वयं जिन महाराज युधिष्ठिरको इन्द्र-
नसिंहासनपर बैठाकर आदर्श धर्मराज्य स्थापित किया,
उनके राज्यकी पावन स्मृति अभीतक हमारे किसी
कर्में नहीं आयी है। युधिष्ठिरका वह धर्मराज्य
ा ही जीर्णोद्धार था। उसी परम्परामें महात्मा गान्धी
ामराज्य स्थापित करना चाहते थे, जिसमें सब मतों
ोंका समन्वय एक धर्मवादमें होता और सब अपने-
में निरत होकर स्नेहपूर्वक एक दूसरेका सुख-
रते और कोई भी प्राणी दुखी न होता। भारतीय प्रकृति
कृतिकी वह एक अनोखी वस्तु होती, जिसे देखकर
त् प्रफुल्लित होता और फिर एक बार जगत्के सब
र वादोंको अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा इस देशमे
महात्मा गान्धी तो चले गये! अब तो हम सबके
तना ही है कि उनकी स्मृतिको हम सदा जगाते
र जिस संकल्पको पूरा करनेके लिये वे जीते, उसे
करें—अपने देशमें अपनी दिव्य, उदार, ईश्वराभिमुख
के अनुसार रामराज्य स्थापित करें—जिसमें कोई अधर्म,
र या अनीति न रह जाय।

त्मा गान्धीका जीवन हिंदू-संस्कृतिके अनुरूप जीवनका
ेष्ठ दृष्टान्त है। हिंदू-संस्कृतिमें जिस प्रकार इस
अनुशासन है कि मनुष्यको कैसे जीना चाहिये, उसी
स बातका भी अनुशासन है कि मनुष्यको कैसे मरना
। जीवनका प्रथम क्षण जन्म है, उससे मनुष्यका धर्म
होता है। अन्तिम क्षण मृत्यु है, उससे उसकी भावी
श्रित होती है। इस गतिके परापर अनेक भेद हैं।
ते स्वयं भगवद्धाम है। वही मानव-जीवनका परम
। महात्मा गान्धीके जीवनका वही परम ध्येय था।
म ध्येयका वाचक प्रणव अर्थात् 'ॐ' या 'राम' है।
द्वारा उस परम ध्येयको प्राप्त करनेमें गीताका यह
न है—

मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

काक्षर ब्रह्म ॐ का उच्चारण और भगवान्का स्मरण

सामान्य मनुष्योंके लिये सहसा यह साध्य नही
कारण, जीवनमें जिस वस्तुका कोई अभ्यास नहीं, वह
क्षणमें कहाँसे टपक पड़ेगी। कहते हैं, बड़े-बड़े ता
मृत्युक्षणमें डिग जाते हैं। 'जनम जनम मुनि जतन
अंत राम कहि आवत नाहीं॥' पर महात्मा गान्धी मृ
भी महात्मा ही थे। 'हे राम' यही उनका अन्तिम श्व
'हे राम' कहकर उनके प्राण निकल गये। अपने समग्र
साररूपसे यही 'राम' शब्द जगत्को देकर वे प
सिधार गये।

उनकी सारी कहानी, उनकी सारी शिक्षा, उन
प्राणशक्ति इसी एक शब्दमें आ गयी है। इससे बढ़
मनुष्य किसी मनुष्यको कोई चीज नहीं दे सकता। य
दिया, उसने सब कुछ दिया। इस रामनामका, कृष्ण
भगवान्के किसी नामका हम आश्रय लें तो महात्मा
संकल्पका रामराज्य हम स्थापित कर सकते हैं। रा
महिमाके विषयमें महात्मा गान्धीने 'नवजीवन'में लि
'रामनामके प्रतापसे पत्थर तैरने लगे, रामनामके बल
सेनाने रावणके छक्के छुड़ा दिये, रामनामके सहारे
पर्वत उठा लिया और राक्षसोंके घर अनेक वर्ष रह
सीता अपने सतीत्वको बचा सकी। भरतने चौदह
प्राण धारण कर रक्खा, क्योंकि उनके कण्ठसे रामना
दूसरा कोई शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये तुल
कहा कि कलिकालका मल धो डालनेके लिये रामना
······ मैं अपना अनुभव सुनाता हूँ। मैं संसारमें
होनेसे बचा हूँ तो रामनामकी बदौलत। ···
मुझपर विकट प्रसंग आये हैं, मैंने रामनाम लिया है
बच गया हूँ। अनेक संकटोंसे रामनामने मेरी रक्ष
·········करोड़ों हृदयोंका अनुसन्धान करने औ
ऐक्यभाव पैदा करनेके लिये एक साथ राम-नामकी
दूसरा कोई सुन्दर और सबल साधन नहीं है।' हम
हैं कि महात्मा गान्धीकी अनन्य रामनाम-निष्ठा
होकर रामने ही भारतको यह राजनीतिक स्वाधीनत
अतः अब हमारा उद्योग भी राम-कार्योंमें ही होना चाहि

हिंदू-संस्कृतिमें गौका स्थान

(लेखक—श्रीशिवभगवानजी गोयनका, बी० ए०)

ो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
द्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
ा गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
ा ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥

न्त्र भारतके लिये गो-वध सबसे बड़ा कलङ्क है । ा विषय है कि इस प्रश्नको साम्प्रदायिक प्रश्न ारी 'धर्म-निरपेक्ष' सरकारद्वारा अभीतक टाला जा ह प्रश्न धार्मिक एवं आर्थिक तो है ही । साथ-ही-साथ सांस्कृतिक भी है । इसी तथ्यका प्रतिपादन इस धान लक्ष्य है ।

ोंके अनुसार गाय धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—चारों देनेवाली है । पुराणोंमें लिखा है कि जगत्में सर्व- ़, अग्नि, गाय तथा ब्राह्मणकी रचना हुई । लिये वेदोंमें यज्ञानुष्ठान बताया गया है । 'कर्म विद्धि' एवं ब्राह्मणोंके द्वारा ही वह विधि सम्पन्न होती नरूपी मुखसे देवताओंको यज्ञकी आहुतियाँ प्राप्त —'अग्निमुखा हि देवा भवन्ति' और गायसे को समर्पण करने योग्य हवि प्राप्त होता है । यही कि गायको 'हविर्दुघा' (हविको देनेवाली)

ं जौ, तिल आदि जिस अन्नकी आवश्यकता होती ा पैदा करनेके लिये गौकी सन्तान अर्थात् बैलकी ता होती है ।

की वेदीको स्वच्छ एवं पवित्र करनेके हेतु गो-मूत्र रकी आवश्यकता होती है । यज्ञाग्निको जलाने तथा करनेके लिये गोबरके कंडे (उपले) की ता होती है ।

गव्यका महत्त्व तथा यज्ञमें यजमानद्वारा पञ्चगव्य- ा सर्वविदित है ।

यात्मिक दृष्टिसे गायका महत्त्व अवर्णनीय है । महा- अनुशासन-पर्वमें महर्षि च्यवनने राजा नहुषसे इस वर्णन करते हुए कहा है—

ोस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत ॥
नं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ।
प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम् ॥

'मैं इस संसारमें गौओंके समान दूसरा कोई समझता । गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन-श्रवण का दान तथा उनका दर्शन—इनकी बड़ी प्रशंसा की ये समस्त कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करके परम क प्रदान करनेवाले हैं ।'

प्रजापति ब्रह्मा, जगपालक विष्णु तथा भगवा द्वारा भी कामधेनुकी स्तुति की गयी है । यथा—

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारण
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदान
(स्कन्द-ब्रह्म-धर्मारण्य १०

'हे पापरहिते ! तुम समस्त देवोंकी जन तुम यज्ञकी कारणरूपा हो, तुम समस्त तीर्थोंकी मह तुमको सदैव नमस्कार है ।'

गायके विश्वरूपका वर्णन अथर्ववेद, ब्रह्मा महाभारत, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण एवं भविष है । अथर्ववेदमें गायके रोम-रोममें देवताओंका नि गया है । वेदने तो यहाँतक कहा है, 'एतद् वै विश्व रूपं गोरूपम् ।' यहाँपर गायके रूपको सारे ब्र रूप बताया गया है ।

सर्वगुणसम्पन्न पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णकी बा का सम्बन्ध तो गायके साथ अविच्छिन्न एवं अ गो-पालक गोपालके सरस वर्णनमें तो व्रजभाषा-साहि के सूर्यसे अद्यावधि उद्दीप्त है । आनन्द-कन्द भग कृष्णके द्वारा इन्द्र-पूजनकी प्रथाको बंद कराके पूजाका प्रारम्भ इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि गोक कितनी उपादेयता है, गायका हमारे जीवनमें क्या स्थ

गो-मन्त्र-जपसे पापका नाश हो जाता है । जो निम्नलिखित मन्त्रका प्रतिदिन प्रातः-सायं आचमन क करता है, उसके दिनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं—

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवा
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे
घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठित
घृतं सर्वेषु गात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्

चम्य जपेत् सायं प्रातश्च पुरुषः सदा।
ा ·कुरुते पापं तस्मात् स परिमुच्यते॥

(महाभारत अनुशासन० ८० । १-४)

घी और दूध देनेवाली हैं। घृतको उत्पन्न घृतकी नदी और घृतका भँवररूप हैं। घृत सदा ं रहे, मेरी नाभिमें रहे, मेरे सारे अङ्गोंमें रहे और स्थित रहे। गौएँ सर्वदा मेरे गृहमें निवास करें। गायें आगे-पीछे रहें, मेरे चारों ओर रहें तथा मैं गायोंके स करूँ।'

भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्यरूपोंका ते हुए 'धेनूनामस्मि कामधुक्' कहा है। गायोंसे ाप्ति होती है। गाय ही यज्ञके फलोंका कारण है में ही यज्ञकी प्रतिष्ठा है। यथा—

ो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः'

(महाभारत)

तक जनताका तो यहाँतक विश्वास है कि यदि स्वप्न-दर्शन हो जाय तो उससे कल्याण-लाभ एवं व्याधि-है। वैसे तो यदि कोई काली वस्तु स्वप्नमें दिखायी अपशकुन माना जाता है; किंतु यदि स्वप्नमें काली नि हों तो वह शुभ माना जाता है।

घासे लक्ष्मीकी प्राप्ति बतायी गयी है। यथा—

सेवा तु कर्तव्या गृहस्थैः पुण्यलिप्सुभिः।
सेवापरो यस्तु तस्य श्रीर्वर्धतेऽचिरात्॥

अतिरिक्त गायके गोबर तथा गो-मूत्रमें लक्ष्मीजी-भी एक कथामें वर्णित है। (गोबर-गोमूत्रकी ुर अन्नरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति प्रत्यक्ष है।)

वासे पुत्र-प्राप्ति होती है। कुल-गुरु ब्रह्मर्षि वसिष्ठ-ा दिलीपको सुरभिनन्दिनीकी सेवाकी आज्ञा हुई। फलस्वरूप ही दिलीपके रघु हुए। पुत्र-कामी राजा जाबालि मुनिके आज्ञानुसार गो-सेवा की और उनके परम भक्त सत्यवान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ही कहा गया है—

ोः प्रसादो गोश्चापि शिवस्याप्यथवा पुनः।

वान् विष्णु, गौ और भगवान् शङ्करकी कृपासे से होती है।'

ाऽहं बहु स्याम्'की घोषणाके अनुसार ईश्वरकी सृष्टि-भी जीवके प्रति हिंसा उस जीवमें बसनेवाले स्वयं ईश्वरके प्रति हिंसा है। इस सिद्धान्तके आधारपर ही ज की हिंसाका हिंदू-धर्म विरोध करता है। ऐसी अव

'मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्र

—के वधकी तो कल्पना करना ही पाप है। इतना ह वध तो बहुत ही बड़ी बात है; हमारे यहाँ तो ि गायको कष्ट मिलता हो, उसको नरककी प्राप्ति बतायी ग

यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नर

धार्मिक दृष्टिसे ही नहीं, अपितु व्यावहारिक दृ गायका महत्त्व कम नहीं है। 'तीन एकड़ भूमि ए गाय' सर्वदासे भारतका यही स्वर्ण-विधान रहा है तथा मस्तिष्क—दोनोंका अत्युत्तमरूपसे पोषण आहारके कारणरूपमें गाय सार्वभौमिक राष्ट्रिय आर्थिक तथा शिक्षाप्रणाली दोनोंका केन्द्र बन गयी।

गुरुकुलों तथ ऋषिकुलोंमें ब्रह्मचारियोंको गुरुकी से यज्ञसमिधा एकत्रित करनेके अतिरिक्त गुरुकी गायें भी करनी पड़ती थी। प्रत्येक आश्रमकी अपनी गा थीं, जिनकी सेवा वहाँके विद्यार्थी करते थे और इ आभीरकर्म (Dairy-farming) में भी वे सुशि जाते थे। गो-सेवामें फुटबाल, हॉकी, बैडमिन्टन त कई आधुनिक व्यायामोंसे अधिक परिश्रम पड़ता है अधिक स्वास्थ्य-लाभ होता है।

गो-मूत्र और गोबर वैज्ञानिक दृष्टिसे भी पा स्वच्छता प्रदान करनेवाला है। ग्रामीण जनता अभी गृहोंको प्रतिदिन गोबरसे लीपकर पवित्र करती है।

यन्त्रोंकी अपेक्षा बैल ही अधिक लाभदायक है की दृष्टिसे खेत जोतना तथा खाद देना, ये दो कार्य हैं। कोई भी यन्त्र ये दोनों कार्य नहीं कर यन्त्रसे खेत जोते जा सकते हैं, किंतु खाद प्राप्त नहीं हो बैलसे खाद भी मिलती है। वैज्ञानिक रीतिसे प्रस्तुत खाद (Fertilizer) की तुलनामें बैल और गाय अधिक उत्कृष्ट है। गोबरमें, शरीरकी आँतोंकी क्रिया अत्यधिक परिमाणमें नाइट्रोजन उत्पन्न होता है उत्कृष्ट खाद तैयार करता हुआ हरी वनस्पतियोंमें दृष्टिसे निरर्थक कार्बोहाइड्रेट्सको शक्तिमें परिवर्तितक काम मुफ्तमें कर देता है। बैलोंमें यह बहुत ही वि है। स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्रकी किसी भी दृष्टिसे बैलका स्थान कोई भी यन्त्र ग्रहण नहीं कर सकता बाहरसे मँगानेमें भारतवर्षका करोड़ों रुपया विदेश जायगा। **इसके अतिरिक्त कुछ भूमि-विशेषज्ञोंका**

ावर्षकी सब भूमि ट्रैक्टरोंसे जोतनेके लायक भी नहीं न्त्रिक खाद (Fertilizer) की अपेक्षा बैलकी । अन्न उपजता है, वह अधिक पौष्टिक और सुस्वादु

ो सर्वाधिक हानि यह होगी कि मशीनरीके अवगुण ीन-युगके अवगुणोंका प्रवेश हमारे कृषि-कार्यमें यगा और सरल किसान भी उस प्रपञ्चका शिकार ', जिसके चक्रमें मजदूर फँसा हुआ है। बहुत-से । बेकारीका सामना करना पड़ेगा।

रेकाके 'होर्ड्स-डेयरीमैन' नामक पत्रके सम्पादककी त पंक्तियाँ हमारे उन बन्धुओंकी आँखें खोलनेके त होनी चाहिये, जो 'गो-वध बंद करो' के नारेको उसमें संकीर्ण साम्प्रदायिकताकी गन्ध अनुभव करने 'गाय हमारे दुग्ध-भुवनकी देवी है। वह भूखोंको है, नंगोंको पहनाती है और बीमारोंको अच्छा करती ो ज्योति चिरन्तन है।'

तीय संस्कृति तथा गौका सम्बन्ध अविच्छिन्न है, । भारतीय संस्कृतिका स्वरूप गौसे पृथक् स्थिर नहीं '। इस संस्कृतिको स्थिर रखनेके लिये हमें कानूनद्वारा र्वथा बंद करवाना ही पड़ेगा। बूढ़ी गायों या सूखी देनेवाली) गायोंके वधकी आशाका बना रहना ायोंके वधको नहीं रोक सकेगा। जिस देशमें, जिस ों, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वज णीय महाराज दिलीपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठकी ो रक्षाके लिये सिंहको अपना शरीर अर्पण कर दिया, ते-जी उसकी हत्या न होने दी तथा जहाँ पाण्डव-पार्थ अर्जुनने गायके लिये द्वादश वर्षोंतक वनवासकी तना स्वीकार की, उसी देशमें आज लाखोंकी संख्यामें ो रहा है और हम उफ़तक नहीं करते! यह कितनी है। हम स्वतन्त्र हैं, केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मन्त्रिगण ानिधि हैं; हमको उनसे स्पष्ट शब्दोंमें यह कह देना के यदि आप हमारी 'गो-वध बंदी' की माँगको करनेमें आनाकानी करते हों तो आप भारतीय बाधक हैं, हमारे देशकी आर्थिक उन्नतिके अनुकूल कर रहे हैं। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें 'अधिक ाओ'के आन्दोलनमें सचेष्ट हैं। गो-रक्षा इस आन्दो- ड़ है। रीढ़की रक्षा नहीं हो सकेगी तो शरीर भी

और बुद्धिमानीसे कार्य करेंगे। जिस भारतव और दूधकी नदियाँ बहती थीं, वहाँके आँकड़ोंपर तथा साथ आप विश्वके अन्य राष्ट्रोंके आँकड़ोंपर तुलना डालें तो स्थिति और भी स्पष्ट हो जायगी।

विश्वका एक तिहाई पशुधन भारतवर्षमें है। सन् की गणना (Census) की रिपोर्टके अनुसार भारतमें बीस करोड़, बयासी लाख दूध देनेवाली पशु (cattle) थे। देशविभाजनके पश्चात् तीन करीब दूध देनेवाली जातिके पशु पाकिस्तानमें ही गाय और भैंस दोनों मिलाकर भारतवर्षमें २ करोड़, टन प्रतिवर्ष दूध देती हैं। भारतवर्षमें ३ से ४ आ प्रतिमनुष्यको प्राप्त होता है, जब कि डेनमार्कमें ४० आस्ट्रेलिया और अमेरिकामें ३५ आउंस अ ब्रिटेनमें ३९ आउंस प्रतिमनुष्यको दुग्ध प्राप्त है औसतन प्रतिकिसानके पास भारतवर्षमें २-३ बैल हैं इंगलैंड और अमेरिका दोनोंमेंसे प्रत्येकमें प्रायः प्रति पास २७ बैल हैं। भारतवर्षमें औसतन प्रतिगाय २ पौंड दूध देती है, जबकि न्यूजीलैंडमें १४ पाउण्ड, में १५ पाउण्ड तथा हॉलैण्डमें २० पाउण्ड दूधका प्रतिगायका औसत बैठ जाता है। ऊपर दिये हुए स्पष्ट है कि विदेशोंमें भारतवर्षकी अपेक्षा गो-दुग्ध मात्रामें प्राप्य है। हमें भी भारतमें इसी भाँति वृद्धि करनी चाहिये। इसी प्रसङ्गमें विदेशोंमें कि आभीर-कर्म (Dairy-Farming) होता है, व सीखना चाहिये।

गो-वध बंद करनेसे ही कार्य नहीं चलेगा। स गोचरभूमि छोड़े जानेकी और बूढ़ी बेकाम गायोंके लि जगह गोसेवा-सदन स्थापित करवानेकी अत्यावश्यक गायोंकी नस्लमें भी सुधार शीघ्र ही होना चाहिये। अ साँड़ ज़्यादा संख्यामें छोड़नेकी आवश्यकता है। बीमा इलाजके लिये समुचितरूपसे अस्पतालों (Vet Hospitals) की व्यवस्था होनी चाहिये।

केवल भाषणों तथा सभाओंसे प्रचार-मात्र कि है, ठोस कार्य नहीं। गो-रक्षा हमको अपने घरोंसे प्रार चाहिये और उसका श्रेष्ठ उपाय है गो-पालन। जि सम्पन्न व्यक्ति मोटरप्रभृति प्रसाधन रखते हैं, उ यदि गौएँ भी रक्खें, गो--शालाओंमें योगदान दें, हे चलायें तो इस दिशामें बहुत कुछ कार्य हो स

हिंदू-संस्कृति और गो-रक्षा

(लेखक—लाला श्रीहरदेवसहायजी)

ङ्कृति स्वाभाविक गुण है, यह शिक्षाप्रचार या
उत्पन्न नहीं होता। जिस तरह अग्निका गुण उष्णता,
ीतलता तथा पृथ्वीका गुरुता है, उसी प्रकार
ंदूका स्वाभाविक गुण है। हिंदू-संस्कृतिको जाननेका
ाधार गोरक्षा है। जो लोग गोरक्षाको मुख्य कर्तव्य
ं, वे ही हिंदू हैं। जैन, सिख आदि (जो हिंदू-धर्मकी
ा-विशेष हैं) ही नहीं, आर्यसमाजी, सनातनधर्मी,
तथा देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें बसनेवाले सभी
आचार-व्यवहार, रहन-सहन, जन्म-मरण, विवाह
कृत्य अलग-अलग ही हैं। कितनी ही बातोंमें उनका
वेरोध भी रहता है। पर गोरक्षाके बारेमें सब एकमत
र्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजी सरस्वती,
वादको नहीं मानते, सुधारक कहे जाते हैं—उन्होंने
महत्त्वको बतलानेके लिये अलग 'गोकरुणानिधि'
ठखी तथा एक गायसे हजारों मनुष्योंके भोजनका
रताते हुए 'गोकृष्यादिरक्षिणी सभाएँ' स्थापित
आदेश दिया। जैन-धर्मावलम्बी वेदों तथा हिंदुओंके
न्थों और उनमें लिखे संस्कारोंको महत्त्व नहीं देते,
ान समयमें जैनधर्मावलम्बी अपनी सम्पत्तिकी गणना
संख्यापर करते थे। व्रज और गोकुल उसके आधार
नगृहके महाशतक तथा काशीके चूलनि पिताके पास
ास्सी हजार गायें थीं। गोहत्या तथा गोभक्षणके सम्बन्धसे
पापके बाबत श्रीमहावीर स्वामीजीने उज्झियके कष्टोंकी
ख्वी है। श्रीहरिविजयसूरिजीने अकबर बादशाहसे
गोवध बंद करवाया। हरियाना, बागड़ तथा
के कुछ जिलोंमें रहनेवाले विष्णोई, जो चोटी नहीं
मूमिमें गाड़े जाते हैं, पर गोरक्षा परमधर्म मानते
के गुरु श्रीजम्भेश्वर महाराजने ग्वाला बनकर गायोंको
था। सिखोंके पूज्य धर्मशास्त्री भाई गुरुदासजीने
को पवित्र और गोहत्याको पातक माना है।

र गामूत्र परमपवित्र भये। (कवित्त २०१)
ण गाय बंस घातक करारे॥ (वार २४, पौडी १६)

१०८ श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी महाराजने गोरक्षार्थ
प्रभु-प्रार्थनामें कहा है—

गुरु नानकदेवजीने स्वयं गायोंकी सेवा करके
आदर्शकी शिक्षा दी। श्री १०८ गुरु रामसिंहजी
माननेवाले नामधारी सिखोंने तो अंग्रेजी राज्यके बुरे
भी गोरक्षाके लिये बड़ा त्याग किया। कितने ही फाँ
जेल गये।

संस्कृति तथा साहित्यका आधार-आधेय-सम्ब
हमारे प्राचीन ग्रन्थ गोमहिमासे भरे पड़े हैं। ब्राह्म
गौ दोनोंको बड़ा महत्त्व दिया गया है। राजा
अपना मूल्य गायके बराबर स्वीकार करके महर्षि
गायके महत्त्वको राज्य तथा संसारके सब पदार्थोंसे
बताया। चक्रवर्ती राजा दिलीप गोरक्षाके लिये
शरीरतक देनेको तैयार हुए। पूर्णकला-अवतार
श्रीकृष्णने स्वयं गो-चारण करके हमारे सम्मुख
आदर्श रक्खा। हमारे शास्त्रोंमें गोवंशके महत्त्वका
उपयोगिताके बाबत भी बहुत कुछ वर्णन मि
पारस्कर-गृह्यसूत्रके तीसरे काण्डकी नवीं कण्डिका
तथा बुरे साँड़ोंके लक्षण लिखे हैं। ब्रह्मवैवर्त, अग्नि,
पद्म, मत्स्य आदि पुराणोंमें गायोंके इलाज, गो-
गुण स्थान-स्थानपर दिये हैं।

धनं च गोधनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैव हि

—कहकर गोवंशको हमारे अर्थशास्त्रका मुख्य
बतलाया गया है। गोवंशसे हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध
आर्थिक व्यवस्था, शारीरिक स्वास्थ्यका आधार होनेके
हमारे यहाँ गायकी आवश्यकता समझी गयी। बाबर
तो गोवंशको राज्यके स्थायी रखनेका मुख्य साधन
अपने पुत्र हुमायूँको गोरक्षाकी विशेष आज्ञा देकर
महत्त्व भी दिया। किसी जातिको शेषप्राय कर
उसकी संस्कृतिको नष्ट करना जरूरी है। हिंदू-संस्कृति
करनेके लिये रावणने अपने अनुचरोंद्वारा गाय
ब्राह्मणोंको नष्ट करनेका यत्न किया था। श्री
तुलसीदासजीने रामायणके बालकाण्डमें लिखा है—

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आगि

अंग्रेजोंने भी इस प्राचीन संस्कृतिको नष्ट करने

ादि पृथ्वीतलपर गो-दुग्ध न होता तो विधाताकी
ही नहीं बढ़ती । विधिवश यदि किसीका जन्म भी
। तो वह रूक्ष, निर्वीर्य, शक्तिहीन, अतिकृश और
ोता ।'

ब दुर्दान्त दानवोंने पृथ्वीपर उत्पात आरम्भ किया,
थ्वीने गोमाताका रूप धारण करके भगवान्‌के सम्मुख
करुण कहानी सुनायी और भगवान्‌ने दानवोंका
था । जिस तरफ देखिये, उसी तरफ भारतीय संस्कृति
के उपकारोंसे सर्वतोभावेन ओतप्रोत है । इसीलिये
ा है—

न्या इति गवां नाम क एनां हन्तुमर्हति ।

दे उद्धरणोंकी आवश्यकता हो तो हजारों श्लोक हमारे
न्थोंसे 'गो-महिमा'के सम्बन्धमें यहाँपर लिखे जा
। इसी प्रकार बौद्ध, जैन आदि ग्रन्थोंमें भी गो-
के असंख्य उदाहरण उपलब्ध होते हैं । यही नहीं,
विद्वानोंने भी गो-महिमाका बड़ा विशद गान किया
हाँ उनमेंसे कुछ सम्भ्रान्त गो-भक्तोंके नाम लिख
पर्याप्त होगा; क्योंकि इनके विस्तृत वक्तव्यका
दिया जायगा तो यह लेख बहुत बढ़ जायगा ।
० डामर, मैलकम आर० पेटर्सन, (भूतपूर्व गवर्नर आफ
राल्फ ए० हेने आदि गोमाताको दूध देनेवाली देवी
मानते, बल्कि इनके पवित्र दर्शनको बड़ा महत्त्व

ीन कालमें हमारा देश पूर्णतया गोभक्त था और
-सेवा हुआ करती थी और घी, दूधकी नदियाँ हमारे
ाम-ग्राममें बहा करती थीं । मुसल्मानी राज्य-कालमें
वश्य आरम्भ हुआ । परंतु स्थान-स्थानपर बादशाही
ारा इसका निषेध भी किया गया है । अंग्रेजी
ळमें फौजोंको गोमांस भोजनके लिये देनेके उद्देश्यसे
ढ़ा और मुसल्मानोंको उनके पर्वोंपर गोवध करनेकी
दी गयी । इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि हिंदू-
में सदाके लिये वैमनस्य बना रहे । गत दो महायुद्धों-
नी अधिक मात्रामें इस देशके गोधनका नाश किया
सम्भवतः इसकी पूर्तिमें बहुत अधिक समय
इस समय गो-दुग्ध और घृतकी इतनी कमी हो
और इस प्रकारकी मिलावट इन दो मुख्य खाद्य
बढ़ गयी है कि देहातोंमें शुद्ध दुग्ध और घी मिलना

और खली, बिनौला आदिकी मँहगी भी गो-दुग्धके
बहुत कुछ बाधक हो गयी हैं । आज नगरोंमें प्रति
गायें कूड़ा-करकट खाती हुई दिखायी देती हैं ।
अन्य देशोंमें इस समय गो-दुग्धकी खपत औसत
सेर-डेढ़ सेर मानी गयी है । परंतु हमारे देशमें
डेढ़ छटाँकका औसत पड़ता है । सभी वैज्ञानिक
मत है कि कम-से-कम आधसेर दूध प्रतिमनुष्यको
मिलना चाहिये । दूध न मिलनेके कारण ही तर
बीमारियाँ हमारे देशमें बढ़ती जा रही हैं । पाश्चात्
यदि परमायुका औसत ६० वर्ष है तो हमारे देशमें
माना गया है । छोटी उम्रके बच्चोंकी मृत्यु-संख्या अ
में हजारमें ५० है तो हमारे यहाँ हजारमें २००
होती है ।

प्रथम महायुद्धके बाद पेरिसमें खाद्य-सम्बन्धी अ
के लिये एक बृहत् सम्मेलन हुआ था, जिसमें सर्व
निश्चय हुआ था कि 'यदि पर्याप्त मात्रामें गो-दुग्ध
तो अन्य पौष्टिक द्रव्योंकी कोई आवश्यकता नहीं
इसलिये हमारा प्रथम कर्तव्य है कि हमलोग सङ्घ
गो-वधके निवारणके लिये देश-व्यापी आन्दोलन
करें । इस समय हमारे देशके ग्राम-ग्राममें पञ्चायतोंका
हो गया है । प्रत्येक पंचायतका यह मन्तव्य होना च
उनके गाँवका गो-धन किसी अपरिचित व्यक्तिके हा
न पड़ने पाये । जो व्यक्ति गो-वधका व्यवसाय कर
हमारे ही घरसे तो भुलावा देकर या लोभमें डालकर
ले जाते हैं। शहरोंमें फूँकाद्वारा दूध निकालनेका घृणित
भी हमारे देशमें प्रचलित है ! असंख्य गौएँ एक
देनेके बाद निर्जीव बनाकर वधिकोंके हाथ बेची जाती हैं !
का घृणित व्यवसाय भी हमारे ही देशमें चल रहा है
द्वारा गो-हत्याके साथ-साथ भ्रूण-हत्या करके वत्स-चर्म
में भेजा जाता है !

हमको प्रत्येक नगरमें और इसके अनन्तर ग्रा
प्रचार करना है, जिससे कि वधिकोंके हाथों हमारी गो
न जाय । हमको अपनी गौओंको हृष्ट-पुष्ट और
मात्रामें दूध देनेवाली बनानेके लिये उनकी वंश-प
उन्नति भी करनी है । स्थान-स्थानपर विस्तृत गोच
छोड़नेका प्रबन्ध करना है । कानूनके द्वारा गो-वधव

जीवन-निर्वाहकी भी समुचित व्यवस्था सरकारके
त्र करवानी है । इस प्रकार यदि हम सुव्यवस्थित
ो-वंशकी रक्षामें लग जायँ तो वधिकोंके हाथमें गो-
ाना असम्भव हो सकता है । जनताके सङ्गठित मत-
र चलती है । यदि हमारे देशकी जनता एकमत हो

गो-वध-निषेधके प्रस्तावको सरकारके सम्मुख रक्खेगं
सब्रेर वह उसे अवश्य स्वीकार करेगी । स्वतन्
हो जानेके बाद भारतीय संस्कृतिका पुनरुत्थान औ
का हृष्ट-पुष्ट होकर भारतके उज्ज्वल भविष्यका
करना गो-माताके आशीर्वादपर ही निर्भर है ।

आदर्श पुत्र भीष्म

(रचयिता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

ारी 'देवव्रत' नामधारी धीर
ान्तनुके सुत शान्त संत थे, उदार थे;
ामाके, सद्गुणोंके, त्यों सुशीलताके
ास, अवतार थे कि वसु-अवतार थे ।
मार-से, पराक्रमी कुमारसे भी,
ेवक पिताके मानो श्रवणकुमार थे,
न हारें सुर, तो भी ये न हारें
ऐसे शौर्यके धनी ये सुरधुनिके कुमार थे ॥

(२)

मन्त्रियोंसे राजकुअँर सुधीवरने
तट यमुनाके एक धीवर-कुमारी है ।
पेता हैं उसे, ब्याहते न लज्जावश;
किंतु उर-भीतर वियोग-व्यथा भारी है ।
तुरंत दासराजसे की प्रार्थना, जो
सुन उसने भी युक्ति कठिन विचारी है—
सुताको, यदि राजा हो इसीका पुत्र;
ाधा किंतु तुम और संतति तुम्हारी है ॥

(३)

बोले मुझसे या मेरे वंशजोंसे बाधा यदि;
तो लो सुनो मेरी सत्य अविचल बा
तोष-हित माताके, पिताके परितोष-हित
छोड़ता हूँ राज्य, नहीं लूँगा राजध
बाल-ब्रह्मचारी मैं रहूँगा सदा जीवनमें,
मनमें न लाऊँ कभी रानी-महा
रक्षामें प्रतिज्ञाकी लगा मैं रोम-रोम दूँगा;
होम दूँगा संयमकी आगमें जवा

(४)

सुन यह बात हुई स्तब्ध-सी समूची सृष्टि,
पुष्प-वृष्टि होने लगी शान्तनु-सु
ऋषि, मुनि, साधु सभी साधुवाद देने लगे,
नाविक चकित हुआ कठिन वच
भीष्म है प्रतिज्ञा, तुम भीष्म हो नरेश-पुत्र !
गूँज उठी वाणी देवताओंके व
विगत-विषाद ले निषाद-नन्दिनीको साथ
भीष्मने झुकाया माथ तातके चर

(५)

अधर-सुधामें सुन्दरीके अनुरागे नहीं,
विष-सम त्यागे भोग भार वसुधामाके;
व्रत देवव्रतने अखंड ब्रह्मचर्यका ले
देखे नहीं दृगसे सरस रंग रामाके ।
मानसमें काम-आदि सेंध न सके थे लगा,
बेध न सके थे नैन-बाण किसी वामाके;
बाँध न सके थे हाव-भाव किसी भावतीके,
बाँध न सके थे भुजपाश कभी श्यामाके ॥

ब्राह्मण-महत्त्व

(लेखक—स्वामीजी श्रीविशुद्धानन्दजी परिव्राजक)

ाखाध्यायी, तपस्वी, सदाचारी, स्वाध्यायशील ब्राह्मणों-
ते आजका समाज अनभिज्ञ होता जा रहा है। कुछ
ो तो 'ब्राह्मण' नामसे ही चिढ़ हो गयी है। यह स्थिति
लिये अधःपतनकी सूचना है; क्योंकि बुद्धिहीन,
न, धर्महीन और अशिष्ट मनुष्य पूज्योंका तिरस्कार
त्र नष्ट हो जाते हैं—ऐसा शास्त्रकारोंका मत है।
विमूढ़ राजा धृतराष्ट्रसे परम धर्मात्मा एवं नीतिज्ञ
समाजनाशकी पूर्वसूचना देनेवाले आठ लक्षण
उनसे बचनेका उपदेश किया है। वे आठ लक्षण

पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ाणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥
ाणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
ने निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति॥
ान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
ान् दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसर्जयेत्॥

ति् 'विनाशको प्राप्त होनेवाले पुरुषमें ये आठ
पहले आ जाते हैं—१-वह ब्राह्मणोंसे द्वेष
लगता है। २-ब्राह्मणोंसे विरोध करता
ाह्मणोंका स्वत्व छीन लेता है। ४-ब्राह्मणोंको मारता
ण्ड देता) है। ५-ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेमें सुख
। ६-ब्राह्मणोंकी प्रशंसाका समर्थन नहीं करता।
ाम) कार्योंके करनेके समय ब्राह्मणोंका स्मरण नहीं
उनसे सम्मति नहीं लेता और न उन्हें बुलाता है)
ब्राह्मण यदि उससे कुछ माँगते हैं तो उनकी भर्त्सना
। बुद्धिमान् पुरुषको इन दोषोंको जानना चाहिये
ाकर इन्हें छोड़ देना चाहिये।'

ाणका अतिक्रमण और उनकी वृत्तिका अपघात
यातनादायी और इस लोकमें धन एवं यशका नाशक
जो ब्राह्मण दोनों समय सन्ध्या करके वेदमाता
जप करते हैं और दृढ़ आचारनिष्ठ हैं, उन महाभाग
पूजित होकर प्रसन्न होनेपर सारे अमङ्गलोंका नाश
है और उनके रुष्ट होनेपर विनाश होता है।

ाणो हि परं तेजो ब्राह्मणो हि परं तपः।
ाणान् हि नमस्कारैः सूर्यो दिवि विराजते॥

'ब्राह्मण स्वयं परम तेजोरूप हैं, ब्राह्मण स्वयं प
स्वरूप हैं, ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेके प्रभावसे ह
आकाशमें स्थित हैं।'

ब्राह्मण अपने आचारकी विशेषतः रक्षा कर
जो ब्राह्मण सदाचार-सम्पन्न हैं, वे क्षीण एवं दरिद्र
भी पुष्ट तथा ऐश्वर्यशाली हैं और जिनका सदाचार
गया, उन्हें तो नष्ट हुआ ही समझना चाहिये।

अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हत

आचारनिष्ठ ब्राह्मणके लिये यदि सभी ग्रह वक्र
तो भी उसके आचारके प्रभावसे वे सब ग्रह उसके लि
एवं सुखदायी हो जाते हैं। उस परम धार्मिक विप्रकी
भी अमङ्गल, अपग्रह, भूत-प्रेत-ब्रह्मराक्षसादि स्पर्श
सकते। कुशिष्यके अध्यापन, अपात्रका यज्ञ कर
कदाचारीके प्रतिग्रह (दान) आदि दोषसे सदाचारी वे
शील ब्राह्मण अपने सत्कर्मके द्वारा ही छूट जाता है

यथा श्मशाने दीप्तौजाः पावको नैव दुष्य
एवं विद्वानविद्वान् वा ब्राह्मणो दैवतं मह

'जैसे प्रदीप्त अग्नि श्मशानमें होनेपर भी दूषित न
वैसे ही ब्राह्मण सदा ही परमदेवता हैं—चाहे वे विद्व
विद्या-विहीन।'

दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृताः संस्कृतास्तथ
ब्राह्मणा नावमन्तव्या भस्मच्छन्ना इवाग्नय

भगवान् व्यास कहते हैं—'ब्राह्मण वेद पढ़े हों या
संस्कारसम्पन्न हों, या उनका कोई संस्कार न हुआ हो—
दशामें उनका अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि
आच्छन्न अग्निकी भाँति हैं।'

वेदज्ञ, सदाचारी, ज्ञानी, तपस्वी, ब्राह्मण, आ
देवता, अग्नि और तीर्थ—ये सब सदा सम्मानके योग्य
लोग स्वर्गके सोपान-समान अपने गुरुजनों, पूज्योंक
करके भगवद्विमुख, नास्तिक, अधर्मी लोगोंकी सेवा
वे जघन्यमार्गको अपनानेवाले दण्डपाणि यमराजद्वा
होते और नरकोंमें यातना भोगते हैं। जिस प्रकार
धैर्यको एवं कायरता सुयशको नष्ट कर देती है, उ
अपमानित क्रुद्ध ब्राह्मण राष्ट्रको नष्ट कर देता है।

क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ।

ास्त्रोंमें स्पष्ट उल्लेख है—

रमानयन् हि मानार्हान् वातापिश्च महासुरः ।
नेहतो ब्रह्मदण्डेन तालजङ्घस्तथैव च ॥

सम्मानयोग्य विप्रोंका अपमान करनेके कारण महासुर ब्रह्मदण्डद्वारा मारा गया और यही दशा तालजङ्घकी इस प्रकार न जाने कितने महाशक्तिशाली, बलाभिमानी दैत्येन्द्र ब्राह्मणोंके अपमानरूप प्रदीप्त अग्निमें भस्म हैं। देवराज इन्द्रके पदको पाकर भी नहुष ब्राह्मणोंके से सर्प-योनिमें गिरे। जो लोग संसारके कपट-प्रपञ्चमें हैं, वे अधर्माचरणमें भी निपुण होते हैं। वे मान्यजनों-ान नहीं करते। वे नहीं जानते कि ब्राह्मणोंका शस्त्र वाणी (शाप) ही है। वे उनका अपमान करके में पतित होते हैं। महाभारत स्पष्ट आदेश करता है—

न्युप्रहरणा विप्रा न विप्राः शस्त्रयोधिनः ।
हन्युर्मन्युना विप्रा वज्रपाणिरिवासुरान् ॥

ाह्मण अपने क्रोधसे ही आघात करनेवाले होते हैं। वे कर युद्ध करनेवाले नहीं होते। ब्राह्मण अपने क्रोधसे कार (अपराधीको) मार देते हैं, जैसे इन्द्र वज्रके सुरोंको। तात्पर्य यह कि जैसे इन्द्रका वज्र अमोघ है, ब्राह्मणका क्रोध भी व्यर्थ नहीं जाता।'

यद्यपि इस समय ब्राह्मण अत्यन्त आपत्तिग्रस्त एव दशामें हैं, फिर भी उन्हींसे आपद्धर्मके अनुसार बत हुए पूरी शक्ति लगाकर हिंदू-संस्कृति तथा वर्णा रक्षाके लिये आशा की जा सकती है। सनातनधर्मका कभी हो नहीं सकता। बुद्धिमान् मनुष्यको समझना कि विश्वके सारे पदार्थ, समस्त ऐश्वर्य क्षणिक हैं, नाश केवल धर्म ही नित्य है। अतः लोकगत ऐश्वर्यादि मत्त होकर धर्मका अपमान कभी नहीं करना चाहिये। मर्यादाओंका उल्लङ्घन उचित नहीं है। जो बाह्य चाव पीछे मदमत्त होकर दूसरोंकी देखा-देखी अपने परम्परागत मर्यादासे पृथक् हो गये हैं, हमारे उन भ्रान्त को भगवान् सद्बुद्धि प्रदान करें—जिससे वे अपनी महत्त्वको समझें और उसका पालन करके अपना त एवं समाजका उत्कर्ष साधन कर सकें।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ।

'(हे प्रभो !) समस्त विश्वका कल्याण हो ! दु सुधर जायँ ! सभी प्राणी परस्पर—एक दूसरेके क भावना करें ! हम सबके मन कल्याणमें लगें ! हमा निष्कामभावसे श्रीहरिका भजन करती हुई उन्हींमें ल

संस्कृति-विनय

(रचयिता—श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-लॉ)

कृष्ण आकर, मुरली मधुर बजा दे ॥ टेर ॥
दिव्य गाना, वे भव्य भावनाएँ ।
सुरीले स्वरसे, भारतको फिर सुना दे ॥ १ ॥
से तपाकर, मन मैलको मिटाकर ।
पियूष धारा, शुचि स्नेहकी बहा दे ॥ २ ॥
लिमा कलहकी, सब ओर छा रही है ।
ते रीति केशव, इस देशको सिखा दे ॥ ३ ॥
ा नीच कोई, मानव सभी बराबर ।
परिवार विश्व सारा, है प्राणिमात्र प्यारा
एकात्मताके मोहन, मृदु मन्त्रको सुना दे
आदर्श सब गुणोंमें, यह देश था हमारा
वह दिव्य ज्योति फिरसे, भारतमें जगमगा दे।
संसारका शिरोमणि, था शान्तिका निकेतन
भारतको फिर दयामय, आसन वही दिला दे।
धनधाम सब समर्पित, तन मन करें निछावर
स्वदेश-धर्म-हितकी, दिलमें लगन लगा दे।
निष्काम कर्म करना, दुखियोंके दुःख हरना।

यज्ञोपवीत और वैज्ञानिक रहस्य

(लेखक—आचार्य पं० श्रीरामानन्दजी शास्त्री)

-दुर्विपाकसे इस समय हिंदू-संस्कृतिपर कुठाराघात
जनोंके द्वारा ही विशेष हो रहा है। कतिपय सज्जन
भौतिकवादके बाह्यरूपसे प्रभावित होकर इसपर
त कर रहे हैं—शिखा क्यों धारण करें ? यज्ञोपवीत
नें ? आदि। उनकी दृष्टिमें भारतके पतनका मुख्य
पवीत ही है। अतः इस लघुकाय लेखके द्वारा उनके
ष्टयर्थ यह निवेदन कर रहा हूँ कि यज्ञोपवीतका
ी विज्ञान ही है। जिस प्रकार भारतीय शासनके
तेरंगे झंडेका कोई विज्ञान है,—इसमें तीन रंग
? मध्यगत चक्रका क्या तात्पर्य है ? इत्यादि—
ार यज्ञोपवीतका भी रहस्य है।

ोपवीत ९६ चौआका होता है। ब्रह्मवर्चस्वी होनेके
के बालकका उपनयन-संस्कार पाँचवें वर्ष करना
जब बालक चार वर्ष व्यतीतकर पाँचवें वर्षमें पदार्पण
ी उपनयन युक्त है। इसका रहस्य यह है कि एक
ी आयु सौ वर्ष निर्धारित है, उसमें यह बालक चार
त कर चुका है। अब इसे ९६ वर्ष और जीवित रहना
: ९६ चौआका यज्ञोपवीत धारण करता है, वही
है। अतः सब अवस्थामें उसीको धारण किया
जाता है। यज्ञोपवीत 'नौ गुण' का होता है—
अथर्ववेदके अनुसार 'अष्टचक्रा नवद्वारा' है; अतः
नवद्वारका प्रतीक है। यज्ञोपवीतमें तीन तागे
बताता है कि जन्मतः मनुष्य तीन ऋणोंसे ग्रस्त हो
जिन्हें पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋणके
पुकारते हैं। इसलिये तीन तागे तीन ऋणोंके स्मरण
उन तीन ऋणोंके उद्धारार्थ पाँच महायज्ञोंका विधा
गया है, जिन्हें मनुने अनिवार्य बताया है। अत
पाँच ग्रन्थि लगाते हैं। इन तीन ऋणों एवं पाँच
हृदयसे स्वीकार करना चाहिये। मनुष्यके शरीरमें
वाम भागमें स्थित है, अतः यज्ञोपवीत बायें कंधे
ओर धारण किया जाता है। यज्ञोपवीत त्याग
मनुष्य व्रतोंका पालन कर सकता है; किंतु वह उ
होगा, जिस प्रकार कोई राष्ट्र अपने राष्ट्रिय प्रती
शून्य हो। एवं जब यज्ञोपवीत-संस्कार होता है, तब
समझने लगता है कि अब मेरे ऊपर उत्तरदायित्व
है। वह आत्मपवित्रताका अनुभव करने लगता है। इ
वह हिंदू-संस्कृतिका चिह्न है, युगोंसे आया हुआ स
जिसके द्वारा हम ऋषिचरित्रका स्मरण करते है
द्विजके लिये यज्ञोपवीत अनिवार्य है।

ज्योति जगा

(रचयिता—पु० श्रीप्रतापनारायणजी)

आडम्बर क्या है? यह वन क्या है, यह घर क्या है।
ो के सभी एक हैं—सभी एक हैं जो अनेक हैं॥
सब जंजालों को अपने मन से दूर भगा।
तू अंदर की ज्योति जगा॥ १॥

, मंत्र-जप सारे—उसे ढूँढ़ने में हैं हारे।
ालक सभी उत्तम हैं—पर ये बाहर के मरहम हैं॥

मन्दिर भी पावनतायुत है, जो कुछ देखा वहा
तुझ में ही वह तो अच्युत है, तू उसका सुन्दरतम
तू फिर मानव होकर के भी क्यों जाता है य
तू अंदर की ज्योति जग

इन दिवसों में, इन रातों में—जीवन जाता है
अपनी नाव तझे खेना है, जग से क्या लेना-दे

हिंदू-संस्कृतिमें विवाहका आदर्श

(लेखिका—श्रीमती विद्यादेवीजी महोदया)

ोकी अन्य सब जातियोंसे हिंदू-जातिकी अपनी कुछ है । इस विशेषताकी आधारशिला इसकी कतामें निहित है । हमारे त्रिकालदर्शी पूज्यपाद मनुष्यके वैयक्तिक और सामूहिक जीवनका सच्चा ो शान्ति और सच्चे आनन्दका तत्त्व अपनी दिव्य ध लिया था । इस कारण उन्होंने हिंदू-जातिके ्या-कलाप, आचार-व्यवहार एवं प्रत्येक चेष्टाको क दृष्टिकोणसे कुछ नियमोंद्वारा नियन्त्रित कर दिया । ण हिंदू-जातिकी सामान्य-से-सामान्य क्रियामें भी सम्बन्ध बाँधा गया है । हमारा सोना, उठना, न करना, हँसना-बोलना, मल-मूत्र त्याग करना ो शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक चेष्टाओंको इस प्रकार नियन्त्रित किया गया है कि इनको हम जिस दशामें हैं, उससे नीचे न गिरें और स्वास्थ्य, सुख-शान्ति और दीर्घायु प्राप्त करते हुए अभ्युदय तथा सुख-शान्तिको भी प्राप्त कर सकें, में अपनी आध्यात्मिक उन्नतिद्वारा पूर्णता प्राप्त कर म प्रिय सखा एवं सुहृद् भगवान्के मङ्गलमय चरणोंका कर कृतकृत्य हो सकें । हमारे सब वेद-पुराण और का सारा प्रयास मनुष्यजीवनके इसी लक्ष्यकी ये हैं । हिंदू-जाति इन्हीं शास्त्रीय नियमोंसे नियन्त्रित एवं त संस्कारजनित संस्कृतिके कारण करोड़ों-अरबों वर्षोंसे ली आ रही है । समय-समयपर आनेवाले अनेक उथल- झंझावात एवं विदेशी आक्रमण उसका कुछ भी नहीं के, आज भी वह अपने स्वरूपमें विद्यमान है । यों तो ्यके व्यक्तिगत जीवनमें उत्थान-पतन, विपत्ति-सम्पत्ति ्या करते हैं, उसी प्रकार जातीय तथा राष्ट्रिय भी उत्थान-पतन प्राकृतिक नियमसे स्वतः हुआ क्योंकि संसारकी कोई वस्तु सदा एक-सी नहीं रह ही सकती है । इसी नियमसे किसी समय हिंदू- मस्त पृथ्वीका शासन करती थी, इधर सैकड़ों ाधीन रही; अब पुनः भगवान्की कृपासे उसकी तन्त्रताकी जंजीर तो टूट गयी है, परंतु अभी उसकी तथा बौद्धिक परतन्त्रता दूर नहीं हुई । क्योंकि । एक समय [illegible] गया, विदेशीय रहन-सहन एवं

विदेशीय तथा विजातीय आदर्शोंका स्वप्न देखता है हृदय विदेशी है । अस्तु, जिसका आधार ही असत वस्तु कभी स्थायी नहीं हो सकती, जैसा भगवान् कहा ही है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते स

'असत्का भाव नहीं होता और सत् अभाव नहीं होता ।' इसी सिद्धान्तके अनुसार पृथ्व प्राचीन हिंदू-जाति आज भी विद्यमान है; क्यों संस्कृति सत्यपर अवलम्बित है—जहाँ अन्य कितनी ह काल-कवलित हो चुकीं, उनका पृथ्वीपर नाम-नि नहीं रहा ।

हिंदू-संस्कृतिमें विवाह प्रवृत्तिका एक सबसे बड़ है और उसका कुछ विशेष लक्ष्य भी है । पृथ्वीकी जातियोंमें विवाह केवल इन्द्रियोंकी तृप्ति और भोग मात्र है; क्योंकि उनके जीवनका लक्ष्य 'Eat, drink merry,' 'खाओ, पीओ, मौज करो' है । उनक उनको यही सिखाती है । हमारी हिंदू-संस्कृतिमें क्या लक्ष्य या आदर्श है, यही यहाँ विचारणीय विष

मीमांसा-शास्त्रमें सिद्ध है कि सृष्टिके प्रार स्त्रीधारा एवं पुरुषधारा—ये दो स्वतन्त्र धाराएँ स कर्म-मीमांसादर्शनमें—

'द्वे धारे स्वतन्त्ररूपत्वात्' (धर्मपाद,

भगवान् मनुने भी कहा है—

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभव
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्र

सृष्टिके प्रारम्भमें परमात्माने अपनेको दो विभक्त किया, वे आधेमें पुरुष और आधेमें नारी ह

भगवान्ने भगवद्गीतामें भी कहा है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभाव

इन दोनोंमें कौन भाग पुरुष और कौन-सा बना, इस विषयमें भी देवीभागवतमें कहा है—

स्वेच्छामयः स्वेच्छयायं द्विधारूपो बभूव

छामय भगवान् स्वेच्छासे दो रूप हो गये, वाम
ंशसे स्त्री और दक्षिण भागके अंशसे पुरुष बने।
सब प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि सृष्टिके प्रारम्भसे ही स्त्रीधारा
धारा—ये दो धाराएँ पृथक्-पृथक् चलीं। ये ही
द्भज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनियोंमें स्त्री
के रूपमें आगे बढ़ती-बढ़ती मनुष्य-योनिमें पहुँचती
दोनोंके सहयोगसे ही सृष्टिका विस्तार होता आया
कारण सृष्टिके प्रत्येक स्तरमें स्त्रीशक्ति और पुरुषशक्ति
हैं। स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज योनियोंमें
धारा प्रत्यक्ष ही है। उद्भिज्ज अर्थात् वृक्षादिमें भी
धाराएँ हैं; किसी-किसी उद्भिज्जमें दोनों अलग-अलग
किसीमें एक ही वृक्षमें ये दोनों शक्तियाँ हैं। इनके
एवं पुं-परागका सम्मिलन भ्रमरोंद्वारा या वायुद्वारा
नकी सृष्टि आगे बढ़ती है। ये ही दोनों
जडराज्यमें भी देखी जाती हैं—जैसे विद्युत्-
आकर्षण-शक्ति (negative) और विकर्षण-शक्ति
ive) दोनों विद्यमान हैं। ये दोनों शक्तियाँ
लग रहनेसे कार्यकारिणी नहीं होतीं; किंतु दोनोंको
देनेसे पंखे चलते हैं, बत्ती जलती है तथा
नेक अद्भुत कार्य सम्पन्न होते हैं। मीमांसा-
यह भी सिद्धान्त है कि ये दोनों धाराएँ जबसे
हुई, मनुष्ययोनितक बराबर अलग-अलग चली आयी
ययोनिमें आनेपर भी साधारण क्रममें ऐसा नहीं
स्त्री पुरुष हो जाय, अथवा पुरुष स्त्री बन जाय।
यह भी विज्ञान-सिद्ध और प्रत्यक्ष भी देखा जाता
ना दोनोंके सहयोगके सृष्टिका कोई भी कार्य सम्पन्न
ता है, दोनों अलग-अलग रहकर कुछ भी नहीं
—जैसे मूलमें देखा जाता है कि परम पुरुष
बिना अपनी शक्तिके निष्क्रिय बन जाते हैं। उनका
र्य, सौन्दर्य, माधुर्य उनकी शक्ति प्रकृतिके कारण
बिना शक्तिके वे कुछ भी कर सकनेमें असमर्थ हैं।
भगवान्ने इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है, यथा—

कृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।'
कृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥'

इसी प्रकार उनकी शक्ति भी बिना भगवान्के सान्निध्यके
जाती है। वह जो कुछ संसारका सृजन करती है,

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्
'मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति चराचर
उत्पन्न करती है।' इस प्रकार यही देखा जाता है कि
पुरुष परमात्मा शिव बिना अपनी प्रकृतिके निष्क्रिय
बन जाते हैं और उनकी शक्तिरूपिणी प्रकृति
उनके अधिष्ठानके कार्यकारिणी नहीं होती, क्योंकि
है। अतः ईश्वरकी ईश्वरता उनकी शक्तिपर अवलम्बित
और शक्तिकी तो सत्ता ही शक्तिमान्पर अवलम्बित
इससे यह भी सिद्ध होता है कि दोनों एक दूसरेके पू
दर्शनशास्त्रका यह भी सिद्धान्त है कि स्त्रीधारा पुरुष
होकर ही कैवल्यकी अधिकारिणी होती है। यथा—

स्त्रीधारा पुंधारामयी कैवल्याधिकारिणी
(कर्ममीमांसादर्शन, धर्मपाद,

मनुष्ययोनिमें आनेतक ये दोनों धाराएँ नियमित
प्राकृतिक नियमसे क्रमशः आगे बढ़ती रहती हैं
मनुष्ययोनिसे पहलेकी योनियोंके जीव अपनी शारीरिक,
और बौद्धिक असम्पूर्णताके कारण असमर्थ रहते हैं
प्रकृतिके नियमोंका उल्लङ्घन नहीं कर पाते। इ
उनकी क्रमोन्नति अबाधितरूपसे होती रहती है, उसी क्र
क्रमसे वे मनुष्ययोनिमें पहुँच जाते हैं। मनुष्ययोनिमें
दोनों पूर्णावयव स्त्री तथा पुरुष बन जाते हैं। य
अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आ
कोषोंका पूर्ण विकास हो जाता है; साथ ही उनको
नियमोंपर बलात्कार करनेकी शक्ति भी आ जाती
यहाँ प्रकृतिके नियमोंका उल्लङ्घनकर अनर्गल आ
रूपसे विषयोंका भोग और मनमाना आहार-विहार
इनकी अधोगति होने लगती है। विवाहका प्रथम
स्त्रीधाराको पुरुषधारामें मिलाकर उसे मुक्तिकी अ
बनाना तथा दोनोंकी अनर्गल अनियन्त्रित पशु-प्र
नियन्त्रित कर दोनोंकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, ऐ
पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करना औ
मधुर समन्वयसे दोनोंकी पूर्णता सिद्ध करना एवं सांसा
शान्ति प्राप्त करना है। इस विवाह-संस्कारके द्वारा
पुरुष दोनों अपनी-अपनी अनर्गल भोग-प्रवृत्ति
दूसरेमें केन्द्रीभूत एवं नियन्त्रित कर आत्मसं
आत्मत्यागके अभ्यासद्वारा एक दूसरेकी आध्यात्मिक

ाहका दूसरा प्रधान उद्देश्य उत्तम धार्मिक सन्तानकी
ारा पितृ-ऋणसे उऋण होना तथा प्रजातन्तुकी रक्षा
। यह केवल पुरुषजातिके लिये है । पुरुषजातिके
-ऋण, ऋषि-ऋण तथा पितृ-ऋण—ये तीन ऋण हैं,
वान् मनुजीने कहा है—

णानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
नों ऋणोंको शोधकर मनको मोक्षमें लगाना चाहिये ।'
ोत्य विधिवद्वान् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥

-वेदाङ्गोंके स्वाध्यायसे ऋषि-ऋण, यज्ञोंके अनुष्ठानसे
और धर्मानुकूल पुत्रोत्पादनद्वारा पितृ-ऋणसे उऋण
में मन लगाये ।' इन्हीं उद्देश्योंसे भगवती श्रुति
है—

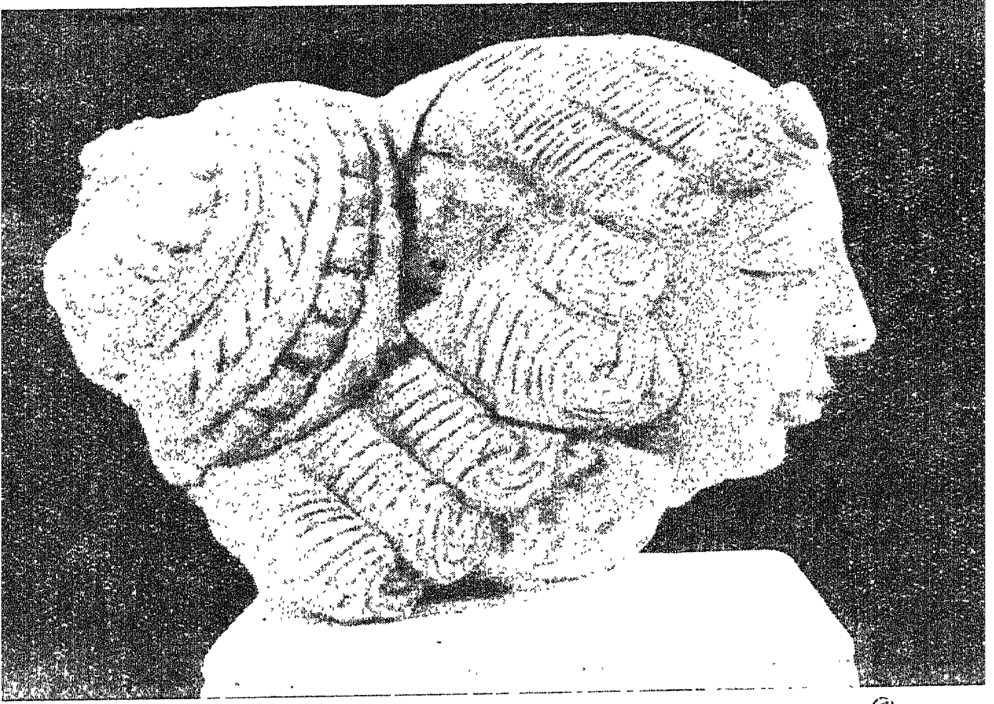
प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः ।
तन्तु उच्छिन्न मत करो ।' इत्यादि ।

हका तीसरा उद्देश्य स्त्री एवं पुरुषके मधुर पवित्र
तथा सामञ्जस्यद्वारा पारिवारिक, सामाजिक तथा
वनकी सुव्यवस्था एवं सुख-स्वास्थ्य-शान्तिकी रक्षा
। विवाहके इन तीनों प्रधान उद्देश्योंमें प्रथम
नोंके लिये समान है, दूसरा केवल पुरुषके लिये है
रा व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र तीनोंके लिये है ।

। कि ऊपर कहा गया है, स्त्री एवं पुरुषजातिमें
भेद होनेसे दोनोंकी प्रकृति और प्रवृत्तिमें भी
भेद है । जैसे मूल प्रकृति परम पुरुषके अधीन है,
कार उसकी अंशभूता स्त्रीजातिका पुरुषजातिके
हनेका स्वभाव है; वह कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकती ।
ण स्त्रीजातिके लिये पातिव्रत्य-धर्मका विधान है,
। प्रकृति और प्रवृत्तिके अनुकूल भी है और यही
लिये सीधा सरल सुरक्षित उन्नतिका मार्ग है ।
ग भगवान् मनुने स्त्रीजातिकी स्वतन्त्रताका निषेध
। लोक-व्यवहारमें भी देखा जाता है कि जो स्त्रियाँ
होकर पिता, भ्राता, पति, पुत्र आदि स्वजनोंका
हीं मानतीं, या जिनका ऐसा कोई संरक्षक नहीं है,
तरूपसे किसी अन्य पुरुषका नियन्त्रण मानती
विपथगामिनी हो जाया करती हैं; क्योंकि स्वतन्त्र
का स्वभाव ही नहीं है । हजारोंमें कोई एक स्त्री

हैं; परंतु यह साधारण नियम नहीं, अपवादम
विवाहरूपी पवित्र संस्कारके द्वारा स्त्री अपनी र
प्रकृति, प्रवृत्ति और अधिकारके अनुकूल पतितन्
अपनी आध्यात्मिक उन्नति करती है और पुरु
उच्छृङ्खल पशु-प्रवृत्तियोंको धर्मानुकूल नियोजितकर
ऋषि-ऋण तथा पितृ-ऋणसे मुक्त होकर अन्तमें नि
अधिकारी बन जाता है । विवाह-संस्कारके समय व
प्रतिज्ञाओंके साथ वरको आत्मसमर्पण करती है और
स्वीकार करता है, उनमें भी इन्हीं सिद्धान्तोंकी ए
है । यथा—

तीर्थव्रतोद्यापनयज्ञदानं
मया सह त्वं यदि किन्नु कुर्या
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद वाक्यं प्रथमं कुमार
हव्यप्रदानैरमरान्पितॄंश्च
कव्यप्रदानैर्यदि पूजयेथ
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं द्वितीयः
कुटुम्बरक्षाभरणे यदि त्वं
कुर्याः पशूनां परिपालनं
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं तृतीयम्
आयव्ययौ धान्यधनादिकानां
पृष्ट्वा निवेशं च गृहे निदध्या
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं चतुर्थम्
देवालयारामतडागकूप-
वापीर्विदध्या यदि पूजयेथा
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं च पञ्चमम्
देशान्तरे वा स्वपुरान्तरे वा
यदा विदध्याः क्रयविक्रयौ त्वम्
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं च षष्ठम्
न सेवनीया परपारकीया
त्वया भवोद्भाविनि कामिनीति



अहिच्छत्र-पार्वती (मृण्मय मूर्ति)



अहिच्छत्र-शिव-पार्वती (मृण्मय मूर्ति)

([illegible])

ित् तीर्थ, व्रतोद्यापन, यज्ञ, दान, हव्यदानद्वारा
का पूजन, कव्यदानद्वारा पितरोंका पूजन, कुटुम्बकी
पालन, पशुपालन, आय-व्यय आदिकी व्यवस्था,
बाग, तड़ाग, कूप, वापी आदि बनवाना, स्वदेश या
क्रय-विक्रय—जो कुछ तुम करोगे, सबमें मैं तुम्हारी
ङ्गिनी रहूँगी । तुम कभी परकीया स्त्रीका सेवन नहीं
त्यादि । और भी—

धान्यं च मिष्टान्नं व्यञ्जनाद्यं च यद् गृहे ।
धीनं च कर्तव्यं वधूराद्ये पदे वदेत् ॥
र्वं रक्षयिष्यामि सदा ते मञ्जुभाषिणी ।
धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साब्रवीद्वचः ॥
भक्तिरता नित्यं क्रीडिष्यामि त्वया सह ।
न्यं न नरं मंस्ये तृतीये साब्रवीदियम् ॥
ष्यामि च केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
नैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये सा पदे वदेत् ॥
आर्ता भविष्यामि सुखदुःखविभागिनी ।
ज्ञां पालयिष्यामि पञ्चमे सा पदे वदेत् ॥
होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह ।
र्थकामकार्येषु वधूः षष्ठे पदे वदेत् ॥
ये साक्षिणो देवा मनोभावप्रबोधिनः ।
नं न करिष्यामि सप्तमे सा पदे वदेत् ॥

कहती है कि 'धन-धान्य, मिष्टान्न आदि जो कुछ
सब मेरे अधीन रहेगा; मैं सदा मधुरभाषिणी,
रक्षा करनेवाली, दुःखमें धीर और सुखमें प्रसन्न
पतिपरायणा होकर तुम्हारे ही साथ विहार करूँगी,
वा अन्य किसी पुरुषको पुरुष ही नहीं समझूँगी ।
ला, लेपन-भूषण आदिसे तुम्हें सदा प्रसन्न करूँगी ।
तुम्हारे दुःखमें दुःखिनी, सुखमें सुखिनी हो तुम्हारी
पालन करूँगी । यज्ञ, दान, होम तथा अन्य
, अर्थ, कामके साधक कार्योंमें सदा तुम्हारे साथ
मेरी इन प्रतिज्ञाओंमें अन्तर्यामी देवतागण साक्षी
कभी तुम्हारी वञ्चना नहीं करूँगी ।' इत्यादि प्रतिज्ञाएँ
गमनके समय वधू करती है; अनन्तर वर उनको इन
स्वीकार करता है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि
मम चित्तमनु चित्तं तेऽस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व
मदीयचित्तानुगतं च चित्तं
सदा ममाज्ञापरिपालनं च
पतिव्रता धर्मपरायणा त्वं
कुर्याः सदा सर्वमिमं प्रयत्नम् ।

'अपना हृदय मेरे काममें लगाओ, अपना
चित्तके अनुरूप करो, तुम मेरे मनमें अपना मन
मेरे वचनका पालन करो । प्रजापति तुम्हें मुझे प्रसन्न
प्रवृत्त करें । तुम पतिव्रता, धर्मपरायणा, सदा मद्गतचि
आज्ञाकारिणी और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य
तत्पर रहो ।'

इस प्रकार विवाहरूपी पवित्र संस्कार-सूत्रमें ब
आबद्धकर दोनोंकी उच्छृङ्खल, अनर्गल भोगप्रवृ
संयत और नियन्त्रित किया जाता है तथा
धर्मानुकूल काम-अर्थका सेवन तथा धर्मार्जनमें प्रवृ
जाता है । वस्तुतः पति-पत्नीमें पवित्र प्रेम तथा एक
ही गार्हस्थ्य-जीवनकी सुख-शान्ति, उत्तम सन्तानकी
और दोनोंकी आध्यात्मिक उन्नति होती है । पर
अटूट प्रेम दोनोंकी प्रकृति-प्रवृत्तियोंके मेलसे ही स
इसी कारण हमारे धर्माचार्योंने विवाहके पहले
लक्षण, कुल, शील, वय, जाति तथा जन्मपत्र मिला
अनेक विषयोंपर विचार करनेका विधान किया
कारणोंसे हमारे यहाँ असवर्ण-विवाह, स्वगोत्र-विव
अधिक वयवाली कन्यासे विवाह, विधवा-विवाह अ
विरुद्ध होनेसे वर्जित हैं । महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है

अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहे
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्

'ब्रह्मचारी गृहस्थ होनेके लिये अपने
अपनेसे भिन्नगोत्रीया, अपनेसे अल्पवयस्का तथा
पहले किसीके साथ विवाह न हुआ हो, ऐसी कन्या
विवाह करे ।' स्मृतिशास्त्रोंमें आठ प्रकारके विवाहों
पाया जाता है । यथा मनुस्मृतिमें—

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुर
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर,
राक्षस और पैशाच—ये आठ प्रकारके विवाह होते हैं
लक्षणोंके विषयमें मनुजीने कहा है कि कन्याक
अलङ्कारादिसे सुसज्जितकर विद्वान्, शीलवान् वरको
कन्यादान करनेका नाम ब्राह्म-विवाह है । यज्ञमें

ाह है। यज्ञादि धर्मकार्यके लिये वरसे एक या एक
ल या गौ लेकर विधिपूर्वक कन्यादान करनेको
ग्राह कहते हैं। 'तुम दोनों मिलकर गृहस्थ-धर्मका
करना' यों कहकर विधिवत् वरकी पूजा करके
। करना प्राजापत्य विवाह कहाता है। अपनी इच्छा-
के कुटुम्बियोंको या कन्याको धन देकर जो कन्यासे
किया जाता है, उसका नाम आसुर विवाह है। कन्या
के परस्पर अनुरागसे जो संयोग होता है, उसको
विवाह कहते हैं। कन्याके सम्बन्धियोंको मार-काटकर,
र तोड़कर रोती हुई और किसी रक्षकको पुकारती
को बलपूर्वक हरणकर विवाह करना राक्षस विवाह
निद्रिता, मद्यपानसे विह्वला अथवा किसी अन्य तरहसे
स्त्रीके साथ एकान्तमें सम्बन्ध करके जो विवाह किया
उसको पैशाच विवाह कहा जाता है। इन आठ
विवाहोंमेंसे केवल प्रथम चार प्रकारके विवाहोंको
हा गया है। शेष चारकी निन्दा की गयी है।

ादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः।
वर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः॥
सत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः।
सभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥
ेषु च शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
न्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः॥
न्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
न्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥

ब्र, दैव, आर्ष, प्राजापत्य—इन चार प्रकारके
जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह ब्रह्मतेजसे युक्त
प्रिय होती है। ऐसी सन्तान सुन्दर, सात्त्विक,
यशस्वी, पर्याप्त भोगसम्पन्न और धार्मिक होती है
वर्षोंतक जीवित रहती है। शेष चार प्रकारके विवाहों-
मिथ्यावादी, धर्म और वेदके द्वेषी पुत्र उत्पन्न होते
निन्दित स्त्री-विवाहसे अनिन्दित सन्तान और निन्दित
हसे निन्दित सन्तान उत्पन्न होती है। अतः निन्दित
त्याग करना चाहिये।'

ऊपर लिखित आठ प्रकारके विवाहोंमेंसे ब्राह्म,
और प्राजापत्य—केवल इन चार प्रकारके विवाहों-
ाहके जो तीन उद्देश्य या लक्ष्य हैं, उनकी सिद्धि
शेष गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच विवाहोंके
ृङ्खल पाशव प्रवृत्तियोंकी ही वृद्धि होती है। उनसे
उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति नहीं होती, न उनसे कौ
सामाजिक या राष्ट्रिय जीवनके सुख-स्वास्थ्य एवं
रक्षा होती है। अतः वे निन्दनीय तथा त्याज्य कहे
यही हिंदू-संस्कृतिमें विवाहका आदर्श है।

आजकल विवाहका जैसा ढंग चलने लगा
विवाहकी पवित्रता पहले ही समाप्त हो जाती है।
वर्षकी अवस्थातक लड़कियोंको अविवाहित रखनेसे
हृदय पातिव्रत्य-संस्कारके उपयुक्त नहीं रह जाता
शास्त्रोंमें विवाहका काल ऋतुदर्शनके पहले है। इस
सभी स्मृतिकार एकमत हैं कि कन्याका विवाह र
पहले हो जाना चाहिये। इसका कारण थोड़ा ई
करनेसे स्पष्ट हो जाता है। ऋतु होना कन्याके
पूर्णताका सूचक है। स्त्रीत्वकी पूर्णता होते ही
दृष्टि पुरुषकी ओर जाना स्वाभाविक और प्रकृतिके
अनुकूल ही है। अतः कन्या अपनेको स्त्रीरूपमें
करते ही पुरुषरूपमें अपने पतिको ही देखे, अन्य
उसकी भोग-बुद्धि उत्पन्न ही न होने पाये—इस
सतीत्वकी रक्षाके लिये रजोदर्शनसे पूर्व कन्याका वि
देनेकी आज्ञा सब महर्षियोंने दी है। कन्याकालमें
विवाह-संस्कार होनेसे ही आदर्श सतीत्वकी रक्षा होत
है, अन्यथा नहीं। विदेशीय अनुकरणसे शिक्षित
युवती-विवाहकी प्रथा चलने लगी है; उससे न तो
धर्मकी पूरी रक्षा हो सकती है, न पति-पत्नीमें वैसा
प्रेम हो सकता है और न पारिवारिक तथा सामाजि
शान्तिकी रक्षा होना सम्भव है। इसका स्वरूप
सामने आने भी लगा है।

कुछ थोड़े विदेशी तथा विजातीय सभ्यता-
पक्षपाती लोगोंको छोड़कर शेष करोड़ों मनुष्य जो
संस्कृतिके पक्षपाती हैं और अपने ऋषि-मुनियोंकी
का अनुसरण करनेवाले हैं, उनको भी कानून बनाव
किया जा रहा है कि कन्याओंको युवती बनाकर विव
अतः इस अवस्थामें संस्कारकी रक्षाके लिये व
वाग्दानकी प्राचीन प्रथा दृढ़ करनी चाहिये। अब
किसी-किसी भागमें वाग्दानकी प्रथा प्रचलित है। इ
आपत्कालके अनुसार कन्यावस्थामें अथवा रजोद
यदि कन्याका विवाह न किया जा सके तो कन्याका
करके इस पवित्र संस्कार एवं प्राचीन मर्यादाकी र
चाहिये।

भारतीय संस्कृतिमें नारीका स्थान

(लेखिका—आयुर्वेदाचार्या श्रीमती शान्तादेवी वैद्या)

तेस्मृतिपुराणैश्च स्तुता कल्याणदायिनी ।
वहारात्मिका पुण्या आदिमा सैव संस्कृतिः ॥*

रतीय संस्कृतिके अन्वेषणमें उसका आदि स्रोत पर विराजमान शिवा-शिवके दर्शनोंसे उपलब्ध होता नकी पवित्रता, आचारनिष्ठा और व्यवहारप्रियता ही संस्कृतिका उद्गम-स्थल है ।

मान्तरीयसम्बन्धस्तथा पाणिपवित्रता ।
:प्रधाना नार्यश्च कन्यादानस्य श्रेष्ठता ॥
यः प्रसादाय कृतिः जायात्वमेकरूपता ।

न्मान्तरका सम्बन्ध, पाणि (हाथ) की पवित्रता, तपोमय स्वरूप, कन्यादानकी श्रेष्ठता, स्त्रीको प्रसन्न यत्न, जाया-पद तथा दम्पतिकी एकरूपता—ये सर्वोच्च आदिम आर्य-संस्कृतिके अन्तर्गत हैं, जो वनकी पूर्णता और दाम्पत्य-प्रेमकी पवित्रताके ।

जन्मान्तरीय सम्बन्ध

का शिवरूपी चिदाभास जब अन्तःकरणकी बुद्धिरूपा प्रतिबिम्बित होता है, तभी जीवकी उत्पत्ति होती है जीव-संसृति मोक्ष या महाप्रलयतक निरन्तर संसार-गती रहती है । अमैथुनी सृष्टिके बाद प्राणि-जगत्के र्थ पुरुष-स्त्री-सम्बन्ध आवश्यक हो गया। चौरासी लाख विभिन्न भेदोंसे यह विद्यमान है। जीव-सृष्टिके उद्भिज्ज, अण्डज और जरायुज —ये चार मुख्य भेद हैं। जरायुज श्रेष्ठ है, और जरायुजोंमें मानव श्रेष्ठ है। ो असंस्कृत और संस्कृत भेदसे संस्कृत मानव श्रेष्ठ जीव और जीवनके रहस्यको जानते हैं। महाप्रलय-नर्जन्म या आवागमनको मानते हैं। उन्हीं संस्कृत का दाम्पत्य-जीवन संस्कृति है। वे दम्पति संसार-ाथ-साथ रहते हैं, यही जन्मान्तरीय सम्बन्ध है। पदा भव' कहते हुए भूलोकसे सत्यलोकपर्यन्त कोंमें साथ-साथ विचरण करते हैं । दम्पतिके धर्मानुष्ठान और सत्कार्योंका फल सम्मिलित अथव विभक्त हो जाता है । इसीलिये जन्मान्तरमें भी साथ-साथ रहते हैं। कभी कोई असहधर्मी विक्षेपके युगल-जोड़ीका बिछुड़ना भी हो जाता है; किंतु वह होता है । कालान्तरमें वे फिर आकर मिल जाते हैं वियोगकाल भी आदर्श और कल्याणकारी होता है। कालमें ये एक दूसरेकी प्रतीक्षा करते हैं। इसीका ना रस है । संयोगकालमें दोनों धर्मनिष्ठ, आचारनि अपनी जीवन-यात्राको सजाते हैं । इसीका नाम रस है। मा सतीका वियोग होनेपर—

यदैव पूर्वे जनने शरीरं
सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज
तदा प्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः
पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत्

'पूर्वजन्ममें सुन्दर दाँतोंवाली सतीजीने दक्ष होकर जब अपने शरीरका त्याग किया था, तबसे शिव विषय-संगरहित होकर पत्नीशून्य हो गये ।' किस इच्छा नहीं की । तो किया क्या ?

स्वयं विधाता तपसः फलानां
केनापि कामेन तपश्चचार

'स्वयं तपका फल देनेवाले शङ्करभगवान् जन्मान्तरीय सती-सम्मिलनकी कामनासे स्वयं तप करं

इधर मा सतीने पर्वतराज हिमालयके घर पा अवतार ग्रहण किया और तारुण्यपूर्व ही पिताकी आ तप करने शैलशिखरपर चली गयीं । वहाँ उन्ह तपस्या की—

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः

'अपने-आप सूखकर गिरे हुए पत्तोंको खाकर धारण करना तपस्याकी पराकाष्ठा होती है; किंतु पा पर्णाहार भी त्याग दिया था । अतः पुराणवेत्ताओं 'अपर्णा' नामसे अभिहित किया ।' दम्पतिमें यह जन्म

---

* ुतियों, स्मृतियों और पुराणोंने जिसकी सराहना की है, जो याण प्रदान करनेवाली, परम पवित्र तथा व्यावहारिक है, म आर्य-संस्कृति है ।

नका प्रतीक्षाकाल तपस्यापूर्ण रहा । यह है भारतीय का 'जन्मान्तरीय दम्पति-सम्बन्ध !'

पाणि-पवित्रता, तपोमय स्वरूप

नादि कालसे ही भारतीय ललनाओंकी पाणि-पवित्रता यी है । उनका पाणिग्रहण पति ही करता है ।

र्वतीजीकी घोर तपस्या देखकर शङ्कर भगवान् वटु—री'का रूप धरकर पार्वतीजीके तपस्याश्रममें आये । ने बहुमान-पुरस्सर ब्रह्मचारीजीका आतिथ्य-सत्कार वे पार्वतीजीसे मिलना और बातचीत करना चाहते खियोंने कहा—'भगवन् ! गृहीतनियमा गिरिजाका र्त बाद नियम समाप्त होगा । तबतक आप प्रतीक्षा । फिर हमारी सखीसे धर्मवार्ता कीजियेगा ।'

श्रम-शोभा देखनेके व्याजसे ब्रह्मचारीजी इतस्ततः रते हुए एक जलकुण्डमें गिर पड़े और तारस्वरसे लगे—'कोई समर्थ मेरा उद्धार करे; दौड़ो, दौड़ो ।' सखियाँ दौड़ी आयीं । उन्होंने कुण्डसे निकालनेके ने हाथ बढ़ाये—

> चुक्रोश ततो गाढं दूरे दूरे पुनः पुनः ।
> ं स्पृशाम्यसंसिद्धां स्त्रियं वा साम्प्रतं त्वहम् ॥

[illegible]चारीने [illegible]नका हाथ नहीं पकड़ा और ऊँचे [illegible] कहा—'दूर रहो, दूर रहो; मैं सिद्धिरहित [illegible] नहीं करूँगा, [illegible] [illegible] मर जाऊँ ।' [illegible] पार्वतीजी [illegible] और [illegible] हाथ ब्रह्मचारीको निकालनेके लिये बढ़ाया । [illegible]चारीने कहा—

> ! यन्नशुचि नैव स्याद्यच्चैवावज्ञया कृतम् ।
> पेण कृतं यच्च तदादद्यां न कर्हिचित् ॥
> ं चाशुचि ते हस्तं नावलम्बामि कर्हिचित् ।

भद्रे ! जो पवित्र नहीं है, जो अपमानसे किया गया जो दोषयुक्त किया गया है, उसको मैं कभी भी ग्रहण [illegible] । तुम्हारा बाया हाथ, जो स्वभावतः अपवित्र है, मैं [illegible] नहीं लूँगा ।'

> [illegible] पार्वती प्राह नाहं हस्तं च दक्षिणम् ।
> [illegible] ! देवदेवाय कल्पितम् ॥
> [illegible]
> [illegible]

दायाँ हाथ तो मैंने देवदेव महादेवको समर्पित क सङ्कल्प कर रक्खा है; अतः अपना दाहिना हाथ दूँगी । मेरे दाहिने हाथको ग्रहण करनेवाले पूर्व स्वामी भगवान् शिव ही होंगे । इस उग्र तपस्या उन्हींका चिन्तन कर रही हूँ । यह सत्य बात कही है ।'

यह सुनकर ब्रह्मचारी बोले—

> यद्येवमवलेपस्ते गमनं केन वार्य

'यदि तुमको महादेवजीपर इतना गर्व है त कौन है ? जाओ, अपनी प्रतिज्ञाका यत्नपूर्वक और मुझे यों ही मरने दो । किंतु रुद्रके लिये कैसी, जो मरते हुए ब्राह्मणको उसी दशामें छोड़ करती हो ? ब्राह्मणको नहीं मानती हो तो मेरी दृ जाओ; और यदि पूजनीय मानती हो तो मु निकाल लो ।'

पार्वतीजी बड़े धर्मसङ्कटमें पड़ गयीं । फि सोच-विचारकर निश्चय किया और—

> विप्रस्योद्धरणं सर्वधर्मेभ्योऽमन्यताधिक
> ततः सा दक्षिणं दत्त्वा करं तं प्रोज्जहार

'ब्राह्मणके उद्धारको सब धर्मोंसे अधिक अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर ब्राह्मणको ऊपर निकाल जब दो धर्म परस्पर एक दूसरेके विरोधी होकर अड़ तब अपनी [illegible] करके भी एक धर्मका त्याग अपेक्षाकृत प्रबल धर्मका ग्रहण करना पड़ता है । पर-पुरुषको दक्षिण हस्तसे स्पर्श करना अधर्म पार्वतीजीने ब्राह्मणके प्राणरक्षार्थ इसे स्वीकार किया

> नरं नारी प्रोद्धरति मज्जन्तं भववारिध
> एतत्संदर्शनार्थाय तथा चक्रे भवोद्भव

(स्कन्दपुराण, कुमा

'स्त्री भव-सागरमें डूबते हुए पुरुषका उद्धार है, इस बातको भलीभाँति दिखानेके लिये संसार करनेवाले भगवान् शिवने यह लीला की ।'

पार्वतीजीने ब्रह्मचारीको निकालकर विषम धर्म किया, किंतु इस कर-ग्रहणसे अपने शरीरको उच्छि अतः स्नान करके वे योगासनपर जा बैठीं और इस [illegible] ब्राह्मणके स्पर्शद्वारा अशुद्ध हो

ह्मणकी इच्छासे कोई बातचीत करके अपना
ूरा करो ।'

तीजीने शरीर-त्यागके पहले एक मुहूर्त (दो घड़ी)
के लिये दिया। बातचीतमें ब्रह्मचारीने उनकी उच्च
वर्णन करते हुए शिवजीके प्रति कुछ निन्दा-
। सखियोंके द्वारा निवारण करनेपर भी ब्रह्मचारी
े। तब पार्वतीजीने सोचा कि 'निन्दक तो पापी
है, निन्दा सुननेवाला भी पापका भागी होता है।
यहाँसे हट जाना ही ठीक है।' ऐसा निश्चय करके
करके तुरंत वहाँसे चल दीं।

छद्मरूपसे ब्रह्मचारी बने हुए भगवान् शिवजीने
व्य शंकरस्वरूप प्रकट कर दिया और हँसते हुए
ई पार्वतीजीको पकड़ लिया। तथा कहा—

प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
य सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते॥

अवनताङ्गि ! आजसे मैं तुम्हारा तपस्याद्वारा क्रीत
।' पार्वतीजीका सारा क्लेश जाता रहा। कार्य सिद्ध
ष्ट भी आनन्दस्वरूपमें परिणत हो जाता है।'
तीजीने अपनी पाणि-पवित्रता सुरक्षित समझी। यह है
ोवन और पाणि-पवित्रतारूपी उच्च भारतीय संस्कृति!

कन्या-दान

ूल्य निधि, सर्वोच्च पवित्र वस्तुका व्यावहारिक क्रय-
देन-लेन या सामयिक नियमानुबन्ध नहीं होता।
ो परम पुण्यरूप दान ही होता है।

भगवान् शिवने पार्वतीजीसे कहा—

तां च महादेवो दासोऽस्मि तव शोभने।
द्रव्येण क्रीतश्च समादिश यथेप्सितम्॥

भने ! मैं तुम्हारा तपोद्रव्य-क्रीत दास हूँ; जो इच्छा
श करो। पालन करनेके लिये सत्वर प्रस्तुत हूँ।'

पार्वतीजी बोलीं—'मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। मन
से ही आपको समर्पण कर चुकी हूँ। अन्तःकरणके तीन
चित्त, बुद्धि और अहंकार अब समर्पण करती हूँ।
शरीर जन्मदाता और पालक माता-पिताका है। इसे
से ही दानस्वरूप लेकर उनका सम्मान और इष्ट-

मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो ! दत्तं तच्च मया त
वपुषः पितरावेतौ सम्मानयितुमर्हसि
(स्क

यह है कन्यादानरूपी भारतीय संस्कृति।

भगवान् शिवने 'तथास्तु' कहकर पार्वतीजीको
और स्वयं कैलास चले गये।

पार्वतीजीका स्वयंवर हुआ। हिमाचलने देव
निमन्त्रणपत्र भेजे। श्रीविष्णुभगवान्ने उत्तरमें लिख

मातास्माकं हि सा देवी मेरौ गत्वा नमामि ताम

'पार्वतीदेवी मेरी माता हैं; मैं मेरु पर्वतपर पहुँचक
प्रणाम करूँगा।' श्रीब्रह्माजीने पुरोहिती करनेके लि
स्वीकार किया। ऐसे ही अन्य देवोंके भी स्वीकृतिपत्र
समयपर सब देव स्वयंवर-समारोहमें उपस्थित हुए
पार्वतीजीने भगवान् शिवके गलेमें जयमाला डाली और
सिर अर्पण किया। ब्रह्माजीने विधिवत् विवाह कराया

लाजाहोम

हिमाचलका एकमात्र पुत्र मैनाक इन्द्र-व
समुद्रमें छिपा था। लइभुजवा (लाजाहोम) भाई ह
है। नगराजको चिन्ता हुई, तब भगवान् विष्णुने क

अत्र चिन्ता न कर्तव्या नगराज कथंच
अहं भ्राता जगन्मातुरेतदेवञ्च चान्यथा

और भगवान् विष्णुने लाई भूनी।

जायापदकी प्रतिष्ठा, दम्पतिकी एकरूपत पत्नीको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायं
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुन

इस अध्यात्म-संस्कृतिकी प्रतिष्ठार्थ शिव-लीला दे

शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वज
उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव भगवान् भव
जायेति तत्पदं ख्यातुं तस्य सत्यार्थमीश्वर

जायात्वकी उच्च प्रतिष्ठाके स्थापनार्थ भगव
लीलासे ही बालरूप होकर पार्वतीजीकी गोदमें स
यह उत्संग-संस्वप्न भारतीय संस्कृतिमें अब भी
रहा है। पति भार्यामें प्रविष्टकर गर्भ होकर जो
पुनः उत्पन्न होता है, वही जायात्व है। इसी अ
संस्कृतिकी रक्षार्थ भगवान् शिवने ऐसी लीला की

उनके सुख-सुविधार्थ शंकर भगवान् जरा-जरा-सी
र भी कितना ध्यान रखते थे, इसका उदाहरण
रीश्वररूपमें देखिये—

आल्मीयं चरणं दधाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि
स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशङ्कया ।
तल्पे किं च मृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजै-
र्न्तःप्रेमभरालसां प्रियतमामङ्के दधानो हरः ॥

प्रेम-पूरित अन्तःकरणवाली अपनी प्रियतमा पार्वतीको
अर्धाङ्ग) में धारण किये हुए अर्धनारीश्वर भगवान्
पार्वतीको परिश्रमसे बचानेके लिये सब काम अपने—
ागके अङ्गोंसे ही लेते हैं। चलते समय आगेकी
ऊँची भूमिपर पहले अपना ही पैर रखते हैं। गिरिराज-
थक न जायँ—इस आशङ्कासे वे अपने ही हाथ
वृक्षसे फूल तोड़ते हैं तथा मृगचर्म बिछायी हुई
शय्यापर शयन करते समय अपने ही भागके अङ्ग
रखकर नींद लेते हैं।'

शिवा-शिव-दाम्पत्य भारतीय संस्कृतिमें सर्वोच्च है
उत्तमोत्तम भोग्य पदार्थ हैं, वे सब शिवने पार्वतीज
और स्वयं क्या लिया, यह भी देख लीजिये—

मन्दारमालाकुलितालकायै
कपालमालाङ्कितशेखराय
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय

'भगवती पार्वती और भगवान् शिवको
है। पार्वतीजीकी अलकावलीमें पारिजात पुष्पोंक
गुथी हुई और भगवान् शिवके मस्तकपर खोपड़ियो
सजी है। पार्वतीजी तो दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित
शिवजी दिगम्बर हैं—उनके शरीरपर एक भी वस्त्र न

प्राचीन भारतके सामाजिक जीवनमें स्त्रियोंका स्थान

(लेखिका—श्रीप्रियंवदा माथुर बी० ए०, सरस्वती)

श्चात्त्य शिक्षा एवं प्रचारके प्रभावसे भारतमें भी आज
अधिकारका आन्दोलन चल पड़ा है; पर वस्तुतः
अधिकार माँगने और देनेके प्रश्नसे बहुत ऊपर है।
नारीका प्राचीन इतिहास इस विषयके लिये एक
प्रतीक बनकर आज भी हमारे समक्ष उपस्थित है।
किस प्रकाशमें देखते हैं, यह हमारे अपने दृष्टिकोणपर
; परंतु उस जीवनकी सरलतायुक्त ज्ञानगम्यता,
युक्त दृढ़ता और त्यागमयी उपभोगप्रियता आदि
का एक ऐसा सर्वाङ्गसम्पूर्ण सुधासुन्दर सरस चित्र
रते हैं, जो सर्वांशमें पूर्ण है, जिसे संसारसे कुछ लेना
। वह हमारी देवी अन्नपूर्णा है—देना ही जानती
ो आकाङ्क्षा उसे नहीं।

सेवाको अपना अधिकार समझती है, इसलिये देवी है;
करना जानती है, इसलिये सम्राज्ञी है; विश्व उसके
य अञ्चलमें स्थान पा सकता है, इसलिये जगन्माता
ɸ, परिवार, समाज, देश, संसार—सभीको अपना-
ाग मिलता है नारीसे; फिर वह सर्वस्वदान देनेवाली
नारी समाजमें अपना स्थान माँगने नहीं गयी थी,
खड़े होकर अपने अभावोंकी माँग पेश करनेकी आव
उसे कभी प्रतीत ही नहीं हुई और न विविध संस्थाएँ
करके उनमें नारीके अधिकारोंपर वाद-विवाद करने
अवकाश ही मिला। उसने अपने महत्त्वपूर्ण क्षेत्रको
था, जहाँ खड़ी होकर वह सम्पूर्ण संसारको अपनी
सेवा और त्यागके सुधा-प्रवाहसे आप्लावित कर सक
नारीकी सरलता और मातृत्वका गौरव लेकर वह
भावसे अपने कर्तव्यमें लीन रहती थी। समाजमें उसक
अलौकिक स्थान था। आजकी नारी उपभोगकी वासन
समाजके समक्ष आती है अपना अधिकार माँगने—
विच्छेदके नियम बनते हैं, सम्पत्तिमें नारीको अधिकार
है। परंतु समाजके लिये नारीका यह रूप अभिन
नहीं है। उसे आज समाजमें स्थान अवश्य मिला है;
मिला है वासनाओंकी मोहावृत प्रतिमूर्तिके रूपमें, पू
स्वर्गादपि गरीयसी माताके रूपमें नहीं। और इसीके फल
आजकी सामाजिक संस्थाएँ हैं—क्लब, कालेज तथा

नेवार्य है; परंतु जीवनके मौलिक सिद्धान्तोंमें विभेद
ापि इष्ट नहीं। स्रष्टाकी रचनामें नारी और पुरुष
ही महत्त्व है। वे एक दूसरेके पूरक हैं और इसी रूपमें
वनकी सार्थकता भी है। यदि नारी अपने क्षेत्रको
ः देकर पुरुषके क्षेत्रमें अधिकार माँगने जायगी तो
ा निश्चित ही है। यदि उस सर्वद्रष्टा यन्त्रीको नारी
षके क्षेत्रमें विभिन्नता नहीं रखनी होती तो बूढ़े
। नारी-पुरुषकी शरीर-रचनामें इतने प्राकृतिक विभेद
कौन-सी आवश्यकता थी। नारीकी कोमलता और
ओज गुण-विशिष्टतामें समान होते हुए भी समान धर्म
जा सकते।

री प्राचीन हिंदू-संस्कृतिमें गृहस्थ-जीवनको एक
रूप दिया गया था और उस यज्ञमें स्त्री अर्धाङ्गिनीके
षको सहयोग प्रदान करती थी, जिसका अत्यन्त
। हमें कवि-कुलगुरु महाकवि कालिदासके शब्दोंमें यों
—

ः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
ासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्॥
(रघुवंश १। ५६)

र्न वनस्थलीमें ऋषिराज वसिष्ठ अपनी भार्या
के साथ सायंकालकी होम-क्रिया सम्पन्न कर रहे हैं।
ाका कैसा देदीप्यमान उदाहरण है! अशिक्षित नारी
प्रकार सहयोग प्रदान करनेमें समर्थ हो सकती थी?
ा स्थूल स्वरूप था। परंतु इसी यज्ञकी भावना जब
। हो जाती है, तब नारीका समस्त जीवन ही यज्ञमय
क पवित्र साधनाका रूप धारण कर लेता है। भगवान्
यदि व्रत धारण किया था पितृ-वचन-पालनका तो
ाने उस यज्ञको पूर्ण करनेके लिये उनका अनुगमन
र अन्तमें सीता-वनवास भी क्या सीताके पक्षमें
हीं था? प्रजापालक राम क्या सीताकी त्याग-भावना-
में राम-राज्यका ऐसा सुन्दर चित्र समुपस्थित करनेमें
ते? वह उनके जीवन-यज्ञकी अर्धाङ्गिनी थी। त्याग-
नका गौरव था और अपने प्राप्यको उसने कठिन
रके ही पाया था, राज्याधिकारियोंके समक्ष फरियाद
ी।

ुतः प्राचीन भारतीय नारीके जीवनकी सफलताका
ागमें—तपश्चर्यामें है, उपभोगमें नहीं। जगन्माता
नारीके आदर्शका मानो यथार्थ चित्र उपस्थित कर र

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेउ मुनिबर बि
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे स
हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम
(राम०

उस पवित्र त्यागमय जीवनकी पवित्रताका अनु
क्या आजके वातावरणमें लगाया जा सकता है—ज
पार्वती पतिकी अनुकूलतामें वासनाओंकी तृप्ति न
उनसे लोकहितकारी राम-कथा सुननेकी अभिलाषा रखत

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोली प्रिय
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूँछन चह सैल
(रामचरि

काम उनके जीवनकी सौम्यताका विनाश करने
नहीं था। उसने उनके जीवनमें यज्ञका स्वरूप धार
था और फलस्वरूप महात्मा कार्तिकेय और अ
गणपतिका जन्म हुआ, जिनकी गौरव-गरिमा आजतक
बनी हुई है। यही था मदन-मर्दनका रहस्य और
उस अज अनवद्य महादेवकी विभूति, जिसके समक्ष
अनेक जन्मोंकी तपस्याको भी यथेष्ट नहीं मानती—

जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न त रहौं
(रामचरि

यह था प्राचीन हिंदू-संस्कृतिमें नारीका पत्नीरूप
कोई प्रतिद्वन्द्विता, कोई संघर्ष नहीं है। एक अनुग
है, जो मानो विश्व-चक्रकी पूर्तिके निमित्त नारीद्व
स्वाभाविकरूपसे अपना लिया गया था। पतिमें प्र
प्रतिष्ठित करके वह अपने अपनत्वका समर्पण कर
और वह आत्मनिवेदन इतना पूर्ण, इतना गम्भी
व्यवस्थित होता था कि कोई परिस्थिति, कोई सङ्
विपद् उसे उसकी स्वात्मस्थितिसे च्युत करनेमें स
थी। यही उसके जीवनकी साधना थी और इसी
आश्रय लेकर जब वह इस क्षुद्र अहंकी सीमाको ल
थी, तब प्रकृति उसके आगे शीश झुकाती थी; ब्र
समस्त शक्तियाँ उसके अलौकिक तेजके समक्ष व्यर्थ
हो जाती थीं। सृष्टि उनके इङ्गितपर नाचती थ
स्थितिमें यदि कुष्ठरोग-पीड़ित पतिकी साध्वी स्त्री
सूर्यकी गति रोक दे तथा उसके प्रभावसे वह महासा

। यदि वचनबद्ध होकर सावित्रीके स्वामीके जीवनको
ें तो इसमें विस्मय ही क्या ।

ाधुनिक युग आपत्ति कर सकता है कि ये सब सत्य-
बातें हैं, कलियुगमें इनकी सम्भावना नहीं; परंतु
नेका स्वर्ण-इतिहास आज भी विलुप्त नहीं हुआ है ।
। सरदारकी नवोढ़ा पत्नीका अपूर्व बलिदान आज भी
ोंमें जगमगा रहा है । नारीका सहयोग पुरुषको
नहीं, मुक्तिके रूपमें मिलना चाहिये । सौन्दर्यकी
र कोमलताकी प्रतिमा वह सरदार-पत्नी अपने जीवन-
महत्ताको मधुरतम क्षणोंमें भी विस्मृत नहीं कर सकी
क्षणिक सौन्दर्यका क्या मूल्य है और उसका
ा किस प्रकार किया जा सकता है, इसे वह जानती
फलस्वरूप उसकी मुण्डमाल सरदारके जीवनकी
नकर उसे देशके प्रति अपना कर्तव्य निष्पन्न करनेमें
कर सकी । कितनी दृढ़ता थी उस कोमल
! परंतु ये देवियाँ देह और प्राणकी सङ्कुचित सीमाओं-
उठी हुई थीं । इन्होंने अपने पतिसे अभिन्न
स्थापित किया था एक ऐसे धरातलपर, जहाँ वियोगकी
ा नहीं, जहाँ स्थूल-शरीरका विच्छेद उनकी अभेद
बाधक नहीं बन सकता । ऐसे कितने ही उदाहरण
ूतानेके इतिहासमें उपलब्ध हो सकते हैं और वहाँके
ने तो मानो नारीकी पवित्रताको अग्निमें तपाकर
ुज्ज्वल स्थायी प्रभा प्रदान कर दी है ।

राजपूतानेके इतिहासको भी शताब्दियाँ बीत चुकी
प्रातःस्मरणीया मा शारदा और कस्तूरबा तो आधुनिक
ी ज्योतिष्मती देवियाँ थीं । वे अशिक्षिता थीं,
की कोई भी उपाधि उनके पास नहीं थी; परंतु अपने
। अनुराग-सुधासे विश्वको आप्लावित करके वे
ाज भी मानो भारतीय नारी-आदर्शकी संरक्षा कर
ये माताएँ समाजमें अपना स्थान खोजने नहीं गयीं
समाज ही वात्सल्यका भिखारी होकर उनके आँचलकी
अभयदान माँगने जाता था । वासना और उसकी
उनके जीवनमें कोई स्थान नहीं था । महात्मा गान्धी
करते हैं कि उनके 'महात्मापन'का श्रेय उन्हें नहीं,
ो है । अस्तु,

का पत्नीरूपसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली
उसके मातृत्वमें । मातृत्वमें मानो पत्नीत्व पूर्णत्वको
ाता था; परंतु वह मातृत्व मोहका बन्धन बनकर
वास्तविक प्रगतिमें बाधक नहीं बनता था । माता
। वात्सल्यमय कोमल हृदय यद्यपि राम-वियोगकी
शतधा विदीर्ण हो रहा था, तथापि उनका मातृत्व
उन सभी कोमल भावनाओंसे ऊपर रामको आदेश दे र

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बं
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध

और माता सुमित्रा—

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सु
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुत तें हि
(रामचरि

—अपने तरुण, नव-विवाहित पुत्र लक्ष्मणको
गामी बनाकर वनवासकी अनुमति प्रदान करती हैं ।
त्याग सराहनीय है; परंतु इसका श्रेय लक्ष्मणको नहीं, उ
सुमित्राको है, उनकी नवोढ़ा पत्नी उर्मिलाको है,
अनुरागकी वेलामें विरागको, संयोगके स्वर्णक्षणमें दीर्घ
अपना सौभाग्य समझकर प्रसन्नतासे वरण कर लिया

हमारी पुरातन माताएँ अपनी सन्तानोंका निर्मा
थीं, उन्हें आदर्शके साँचेमें ढालती थीं और तब उन्हीं
यथार्थकी सम्भाव्यतामें मुखरित हो उठता था । कुन्ती
अपने पुत्रोंको प्रेरित किया था क्षत्रिय-नारीके स्तनपानक
भूमिमें सार्थक बनानेके लिये । माता मदालसाका वह र

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमायापरिवर्जितोऽसि

—उसके पुत्रोंके लिये एक स्थायी प्रेरणा बन ग
इस संसारकी वास्तविकताको पहचानकर वे जीवन्मुक्तकी
को प्राप्त हुए । मदालसाका मातृत्व सफल हो गय
अनेक उदाहरण हमें हिंदू-संस्कृतिके प्राचीन इ
मिलेंगे । वीर शिवाजीकी माता जीजाबाई और स
रामदासकी पूजनीया माताके उपदेश विस्मृत नहीं
सकते । क्या आजकी माता कोई भी निश्चित आदर्श
अपनी सन्तानका पालन करनेमें प्रवृत्त होती है
भारतवर्ष दरिद्र है—इसलिये नहीं कि उसके पास धन
शस्यकी कमी है; वरं उस पवित्र पत्नीत्व और म
अभाव हो गया है, जिसकी दिव्यतापर प्राचीन भारतकी
शान्त और प्रोन्नत अवस्था आश्रित थी । आजकी
नारीमें उस आध्यात्मिक तत्त्वका प्रायः अभाव है, जिस
मात्र धरातलपर जगत्‌की यावत् सफलताएँ निर्भर कर

पत्नीत्व और मातृत्व—यह नारीका प्रकृतिप्रदत्त
जिसमें रहकर वह एक सुदृढ़ और सुसंगठित राष्ट्रका
करती थी । समय पड़नेपर बाह्य क्षेत्रमें भी उनकी ये
अपूर्व चमत्कार हमें प्राचीन इतिहासमें देखनेको मिल
महारानी दुर्गावती और लक्ष्मीबाईके जगत-विख्य

के लिये उपस्थित किये जा सकते हैं और राजपूतानेके
तो वीराङ्गनाओंके व्यवस्थित राज्य-सञ्चालन और
-कौशलकी अगणित गाथाएँ छिपी पड़ी हैं। इसके
गार्गी-जैसी विदुषी महिलाएँ भी भारतके पुण्यक्षेत्रमें
हुई थीं, जिन्होंने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर
पठन-पाठन और ब्रह्मानुभवमें जीवन व्यतीत कर
कुछ भी हो, प्राचीन भारतीय नारीके सभी स्वरूपोंमें
वकता थी, एक सौम्यता थी, एक दिव्यत्व था, जो
शिरोभागको विभूषित करता था; और इस स्थानको
नेके लिये उसे कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता था,

वरं अपने प्राकृतिक गुणोंकी सहज अभिव्यक्तिमें स्वभ
उसे वह पुण्यपद प्राप्त था। दुःख है कि आजकी
सभ्यताने नारीके इस तपःपूत स्वभावको उसे मा
करके बुरी तरहसे छीन लिया है। अथवा यों कहें
बाह्य संसारकी चकाचौंधसे प्रभावित होकर उसे स्वयं
दिया है। अन्यथा भारतीय समाजमें नारीके स्थानके वि
दीर्घकालीन युगोंके पहले ही महाराज मनु व्यवस्था कर ग

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः
(मनु० ३



हिंदू-नारी

है कितना गौरवशाली पद वसुधामें हिंदू-नारीका !

त्रमें, दुखमें, रणमें, बनमें
या पतिकी बन जाती है;
नी कोमल उँगलीको
-चक्केकी कील बनाती है;

कालीसी मतवाली बनकर
अरिदलका रक्त बहाती है;
अन्यायी, आततायियोंकी
दल देती पलमें छाती है;

गत करती बाणों, प्राणोंसे
छी और कटारीका।
कितना गौरवशाली पद
ुधामें हिंदू-नारीका ॥ १ ॥

जिसके उज्ज्वल तपके आगे
झुक जाया करता इन्द्रासन,
लख जिसका अनुपम शौर्य
डगमगाने लगते हैं सिंहासन;

वीपर गिरते राजमुकुट
त्र करके जिसका वीरासन,
मिट जाता वसुधापरसे
यायी क्रूर कुटिल शासन;

थक जाता दस सहस्र गज-बल,
पर अन्त न मिलता सारीका।
है कितना गौरवशाली पद
वसुधामें हिंदू-नारीका ॥ २ ॥

पाताल-लोक भूलोक तथा वह—
स्वर्गलोक जल जाता है,
क्रोधानलसे जिसके क्षणमें
रवि-शशि-मंडल झुलसाता है;

तारक, विद्युत, बादलका क्या
कहना जब नभ थर्राता
सागर गिरि सरिता म
समीरका चिह्न न रहने पाता

जिसके चरणोंपर झुका शीश
यमपुरके भी अधिकारीका।
है कितना गौरवशाली पद
वसुधामें हिंदू-नारीका ॥ ३ ॥

रणमें जाकर डट गयी क
अरिदलको मार भगाने
चंडीका प्रबल प्रचण्ड
दुनियाको याद दिलाने

या झटपट उद्यत हुई स्वयं ही
अनल-ज्वाल धधकानेको;
लपटोंमें जा छिप गई कभी
जो अपना धर्म बचानेको;

इसके ही कारण मान व
जौहर-व्रतकी चिनगारी
है कितना गौरवशाली
वसुधामें हिंदू-नारीका

हिंदू-धर्ममें पति-पत्नी-सम्बन्ध

(लेखक—कविविनोद, वैद्यभूषण प० श्रीठाकुरदत्तजी शर्मा वैद्य)

ति-पत्नीका क्या सम्बन्ध है; पति-पत्नीमें कौन बड़ा, छोटा है; पति-पत्नीका गृहस्थमें क्या स्थान है, एकका : क्या अधिकार है—इत्यादि विषयोंपर बहुत विचार रहता है। वस्तुतः इसपर हमारे आर्य-धर्ममें बहुत किया गया है। और उसमें पत्नीका स्थान बहुत ही र्ण है। अवश्य ही आधुनिक हिंदू-समाजमें नारीकी बहुत ते हुई है—यहाँतक कि लोग कहने लगे—'स्त्री की जूती है; जब चाहा, उतार फेंकी और दूसरी ली।' परंतु इस मूर्खताकी बातको छोड़कर देखा जाय तो जो पति-पत्नी-सम्बन्ध सब हिंदुओंको है और जिसका वेदोंमें वर्णन किया गया है, त्में सुख-शान्ति स्थिर रख सकता है और सब ो उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। रूढ़ि कुछ इस समयतक भी विवाह-सम्बन्धमें पढ़े जानेवाले ो वही आदर्श सामने रखते हैं। विवाह हो जानेके सप्तपदी होती है, जिसमें वर-वधू सात पग इकट्ठे चलते स्थियोंको सुखी बनानेके लिये जो कुछ भी चाहिये, सब ही मन्त्रोंमें वर्णित है। सातवाँ पग उठाते समय पति —'ओं सखा सप्तपदि भव।' सात पग उठा लिये, आपसमें सखा हैं—मित्र हैं। सखा मित्रसे भी हितचिन्तक होता है।

ोंमें परमेश्वरको भी अपना सखा कहा गया है। जब वर-वधू बैठते हैं तब कहा जाता है—

ं समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ'

न दोनों जो आप सब विद्वन्मण्डलीके सामने विवाह लेये आये हैं, हमारे हृदय इस प्रकारसे मिले हैं दो पानी मिलकर एकस्वरूप हो जाते हैं।' क्या ं मन्त्रोंसे पति-पत्नीका स्थान निश्चय नहीं होता? इससे अधिक समानताकी बात और क्या कही जा स

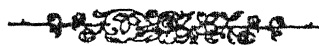
इतने समानाधिकारके होते हुए भी कुछ क तो होने चाहिये और वैदिक धर्ममें विशेषता यह यहाँ कर्तव्यका अधिकारको अपेक्षा अधिक ध्या गया है।

हमें तो धर्मशास्त्रोंके पढ़ने-सुननेसे ऐसा प्रत है कि गृहस्थमें पति-पत्नीका वही स्थान है जो ि राजा और मन्त्रीका होता है। सब शासन मन्त्रीकी होता है, परंतु आज्ञा राजाकी ही होती है। मन्त्र अधिकार होते हुए भी राजाका मान रखना उसक होता है।

महर्षि दयानन्द, जिन्होंने स्त्रीजातिको पूजनीय वे भी अपनी संस्कार-विधिमें लिखते हैं—'जब-जब सायं या परदेशसे आकर मिलें तब-तब 'नमस्ते' इस नमस्कार कर स्त्री पतिके चरणस्पर्श और पाद आसन दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ानेवा आदि व्यवहारोंसे वर्तनकर आनन्द भोगें।'

हिंदू-सभ्यतामें दोनोंके समान अधिकार होते हु का कर्तव्य है कि सदा पत्नीको प्रसन्न रक्खे, उसक करे, उसे वस्त्र-आभूषणसे सन्तुष्ट रक्खे और सब कार्य सम्मतिसे करे, उसको घरकी सम्राज्ञी समझे। और कर्तव्य है कि पतिको सदा प्रसन्न रक्खे और प्र उसकी सेवा करे।

सार यह है कि वेद पति-पत्नीको सखा कहकर अधिकार देता हुआ उनका घरमें सम्बन्ध राजा और र रखता है। हम इसको ठीक समझ लें तो ं बेड़ा पार है।



भार्याके बिना पुरुष कुछ नहीं कर सकता

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः। अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु॥

जैसे एक पहियेका रथ नहीं चल सकता और एक पाँखकी चिड़िया नहीं उड़ सकती, वैसे ही केला पुरुष कोई भी कार्य नहीं कर सकता।

हिंदू-संस्कृतिमें नारी-धर्मका उत्कर्ष

(लेखक—कविभूषण श्रीजगदीशजी विशारद)

तके संतों और आचार्योंने जहाँ वैराग्यकी प्राप्तिके
ारी-निन्दा की है, वहाँ उन्हीं संतों और आचार्योंने
ो प्रशंसा करनेमें भी कोई कोर-कसर नहीं रक्खी ।
सबसे बड़ा गुण पातिव्रत्य-पालन है । पतिको वह
 रूपमें देखती है । वह उसकी तन-मन और वचनसे
 तथा भक्तिभावसे पूजा-अर्चना करती है । उसके
 कदापि उल्लङ्घन नहीं करती ।

ी ही पतिव्रता स्त्रियोंका संसारमें आदर होता है और
ारपर राज्य करनेकी क्षमता रखती हैं । घोर वनको
ाजप्रासादोंसे अधिक सुखकर बनानेमें समर्थ होती
राज मनुने कहा है—

नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

स घरमें स्त्रियोंकी पूजा होती है, वहाँपर अवश्यमेव
ाते हैं ।'

के वास्तविक आभूषण उसके सुन्दर गुण हैं ।
स्त्री दीन-हीन मनुष्यके घरको साकेततुल्य बना देती
प्रकार पाटलप्रसून अपनी कण्टकमय डालीको रम्य
ाता है । ऐसी देवी बाहरी शोभा-सुन्दरताकी परवा
ी । उसका हृदय इतना सुन्दर होता है कि उसकी
दरतासे सभी कुछ सुन्दर हो जाता है । महात्मा
 ऐसी देवीकी स्तुति इस प्रकार की है—

व्रता मैली भली, गले काँच की पोत ।
सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससिकी जोत ॥

ष्यको पृथ्वीसे स्वर्गतक पहुँचानेके लिये एकमात्र
तिव्रता नारी हैं । इस संसारमें अन्य पदार्थ तो
करनेसे प्राप्त हो जाते हैं, परंतु पवित्र सुशील और
र्णा स्त्री तो प्रभुकी असीम कृपासे ही उपलब्ध होती है ।
स्त्रियोंने अपने धर्मकी रक्षा करनेमें कितने कष्ट सहे हैं,
ता इससे अपरिचित नहीं हैं । यदि भारतवर्षकी नारी
अपना धर्म परित्याग कर देती तो आज आर्यावर्त
विश्वकी दृष्टिमें कभीका गिर गया होता । यदि दे
तो हमारे देशकी आन-बान-शान नारीसमाजने ही रक
सोवेलके शब्द नारी-धर्मकी उत्कृष्टता बतलानेके लि
अंशतक न्यून नहीं हैं । वे कहते हैं, 'मैं नारीव
इसलिये नहीं मानता कि विधाताने उसे सुन्दर बना
उससे इसलिये प्रेम करता हूँ कि वह प्रेमके लिये उ
गयी है । मैं तो उसे इसलिये पूज्य मानता हूँ कि मनुष्य
उसीमें जीवित है ।' कविकुलचूडामणि महात्मा तुल
रामायणमें स्त्रियोंका उल्लेख निम्न प्रकार किया है—

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं । बेद पुरान संत अस
उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष ज
मध्यम पर पति देखहिं कैसें । भ्राता पिता पुत्र निज
धर्म बिचारि समुझि कुल रहहीं । सो निकृष्ट तिय श्रुति अस
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि ज

× × ×

नारी सृष्टिकी उत्पादिका—प्रतिपालिका है औ
सान्त्वना देनेवाली है । और कण्टकाकीर्ण मार्गको सुग
का एकमात्र साधन भी वही है । वह दाम्पत्य-स्नेह
सरिताका उद्गम है । और अपने पतिके दिवंगत होनें
जौहर रचकर देहका उत्सर्ग करनेवाली है ।

हिंदू-नारीकी महिमा कहाँतक वर्णन की जाय
यहाँ गार्गी-जैसी विदुषी नारियाँ उत्पन्न हुईं, जिन
तककी ऋचाएँ निर्मित कीं । पद्मिनी-जैसी वीराङ्गनाओं
रचकर पतिव्रत-धर्मका प्रतीक प्रस्तुत किया, जिसकी
कविवर केसरीसिंह सोन्याणाने लिखा—

पदमिन तेरे रूप को रह्यो अनूपम हा
के निरख्यौ रावळ रतन, के जौहर की ज्वा

धन्य है हिंदू-नारीको और उसके त्याग-तपोमय

लक्ष्मीका निवास

द् गृहे रमते नारी लक्ष्मीस्तद् गृहवासिनी । देवताः कोटिशो वत्स न त्यजन्ति गृहं हि तत्

जिस घरमें सद्गुणसम्पन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती है, उस घरमें लक्ष्मीजी निवास करती
करोड़ों देवता भी उस घरको नहीं छोड़ते ।

—।

द दोपहरतक न रहे तो वह 'खण्डा' होती है, उसमें ारम्भ और समाप्ति दोनों वर्जित हैं। और सूर्योदय-तपर्यन्त रहनेवाली तिथि 'अखण्डा' (या पूर्णा) । यदि गुरु, शुक्रका अस्त एवं बालत्व और वृद्धत्व उसमें व्रतका आरम्भ अच्छा है। जिस व्रतसम्बन्धी ठये शास्त्रोंमें जो समय नियत है, उस समय यदि ाथि मौजूद हो तो उसी दिन उस तिथिके द्वारा व्रत-कार्य ठीक समयपर करना चाहिये। तिथिका क्षय व्रतका निश्चय करनेमें कारण नहीं है।

८) जो तिथि व्रतके लिये आवश्यक नक्षत्र और क्त हो, वह यदि तीन मुहूर्त हो तो भी सम्पूर्ण श्रेष्ठ । जन्म और मरणमें तथा व्रतादिकी पारणामें तिथि ग्राह्य मानी गयी है; किंतु बहुत-से व्रतोंकी विशेष निर्णय किया जाता है। जिस तिथिमें सूर्य अस्त हो, वह तिथि स्नान, दान, जपादिमें सम्पूर्ण होती है। विशेषकर देवकार्योंमें सूर्योदयकी और में सूर्यके अस्तकी तिथि उपयोगी होती है। मन्वादि, ग्रहणद्वय, व्यतीपात और वैधृत्यमें तत्कालव्यापिनी जाती है।

९) 'वार' आजके सूर्योदयसे आरम्भ होकर सूर्योदयपर्यन्तकी ६० घड़ियोंमें १ वार होता है और

उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यगा।
ता खण्डा न व्रतानां स्यात्तत्रारम्भः समापनम् ॥
(सत्यव्रत)

अखण्डव्यापिमार्तण्डा सा ह्यखण्डा भवेत्तिथिः।
व्रतप्रारम्भणं तस्यामनष्टगुरुशुक्रयुक् ॥
(वृद्धवसिष्ठ)

कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥
(वृद्धयाज्ञवल्क्य)

। तिथिर्ऋतुसंयुक्ता या च योगेन नारद।
मुहूर्तत्रयमात्रापि सापि सर्वा प्रशस्यते ॥
(गोभिल)

रणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता।
(नारद)

दिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ।

वारोंका गणनाक्रम १ सूर्य, २ सोम, ३ भौम, ४ बृहस्पति, ६ शुक्र और ७ शनि—इस प्रकार है। ग्रन्थोंमें वारप्रवृत्ति देश-भेदके अनुसार कभी सूर्योद और कभी पीछे बतलायी है; परंतु वास्तवमें सूर्योदयपर्यन्त यथार्थ है।

(२०) 'नक्षत्रव्रत'में नक्षत्रका अथवा त देवताका पूजन करके व्रत किया जाता है। अधिष्ठाता के अश्विनीकुमार, भरणीका यम और कृत्तिकाका अ हैं। उपोषितव्य जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त हो, उर करके व्रत करना चाहिये। यदि वह नक्षत्र निशीथ (उ में हो तो चन्द्रमाके साथ पूजन करके व्रत करना स्मरण रहे कि नक्षत्रके उपवासमें जो तिथि हो, नक्षत्रके एकभुक्त या नक्तव्रतमें लेनी चाहिये। न व्रत अनिष्टकारी देवताकी शान्ति अथवा अभीष्टदात प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं।

(२१) 'चान्द्रायण'—यह व्रत चन्द्रमाकी चन्द्रलोककी प्राप्ति अथवा पापोंकी निवृत्तिके लिये कि है। इसमें अन्नका परिमाण चन्द्रकलाके समान बढ़ता अ है। जैसे—अमावसके बादकी शुक्ल प्रतिपदाको १, द्वित और तृतीयाको ३—इस क्रमसे बढ़ाकर पूर्णिमाको भोजन करे। फिर पूर्णिमाके बादकी कृष्ण प्रतिपदा द्वितीयाको १३ और तृतीयाको १२ के उत्क्रमसे चतुर्दशीको १ और अमावसको निराहार रहनेसे एक च होता है। यह 'यवमध्य' है। इसका दूसरा प्रकार य

(२२) अमावसके बादकी शुक्ल प्रतिपदाको १४, को १३ और तृतीयाको १२के उत्क्रमसे घटाकर प १, और पूर्णिमाके बादकी कृष्ण प्रतिपदाको १, द्वि २ और तृतीयाको ३के क्रमसे बढ़ाकर अमाके चतुर्दशीको १४ ग्रास भोजन करे और अमावस्याको रहे। यह दूसरा चान्द्रायण है। इसको 'पिपीलि कहते हैं।

(२३) 'प्राजापत्य' १२ दिनोंका होता है, उसमें के पहले ३ दिनोंमें प्रतिदिन २२ ग्रास भोजन क ३ दिनतक प्रतिदिन २६ ग्रास भोजन करे। उसके दिन आपाचित (पूर्ण पकाया हुआ) अन्न २४ ग्रास

२४) उप क्त व्रत मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, करण, समय और देवपूजासे सहयोग रखते हैं। वैशाख, भाद्रपद, कार्तिक और माघके 'मास-व्रत'। और कृष्णके 'पक्ष'-व्रत। सूर्य, सोम और भौमादिके त। श्रवण, अनुराधा और रोहिणी आदिके 'नक्षत्र' तीपातादिके 'योग'-व्रत। भद्रा आदिके 'करण-व्रत'। णेश, विष्णु, सरस्वती और रमा आदिके 'देवव्रत' व्रत हैं।

२५) बुधाष्टमी—सोम-भौम-शनि-त्रयोदशी और मी आदि 'तिथि-वार' के; चैत्र शुक्ल नवमी, भौम, मेषार्क और मध्याह्नकी 'रामनवमी' तथा भाद्रपद ष्टमी, बुधवार, रोहिणी, सिंहार्क और अर्धरात्रिकी न्माष्टमी' आदिके 'सामूहिक' व्रत हैं। कुछ व्रत जिनमें उपर्युक्त तिथि-वारादिके विभिन्न सहयोग ा प्राप्त होते हैं। इन सबके उपयोगी वाक्योंका अथवा अनुसन्धान 'व्रत-परिचय' में किया जा चुका मशः कई वर्ष पूर्व 'कल्याण'के अङ्कोंमें निकल चुका है।

२६) 'व्रतोपयोगी ज्ञातव्य विषय' आजके सूर्योदय-से सूर्योदयतक एक दिन होता है। उसके दिन त्रि दो भाग हैं। पहले भाग (दिन) में प्रातः-और मध्याह्नसन्ध्या तथा दूसरे भाग (रात्रि) ह्न और निशीथ हैं। त्रेधा विभक्त दिनमें पूर्वाह्न मध्याह्न मनुष्योंका और अपराह्न पितरोंका समय है। जो समय हो, उसका पूजनादि कर्म उसी समयमें चाहिये। कुछ ग्रन्थोंमे पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न सायाह्नरूपमें ४ भाग माने गये हैं और व्यासजीने बतलाये हैं।

२७) सूर्योदयसे तीन-तीन मुहूर्तके प्रातःकाल, सङ्गव, अपराह्न और सायाह्न—ये पाँच भाग हैं। तीस गणके दिनमानका पंद्रहवाँ हिस्सा एक मुहूर्त होता दि दिनमान ३४ घड़ीके हों तो सवा दो और २६ तो पौने दोका मुहूर्त होता है। निर्णयमें मुहूर्त और भाग आवश्यक होते हैं।

२८) 'प्रदोषकाल' सूर्यास्तसे दो घड़ीतक माना गया ालने तीन घड़ीका बतलाया है। उषःकाल सूर्योदय-से पहले रहता है। दानादिमें पूर्वाह्न[1] देवोंका, मनुष्योंका, अपराह्न पितरोंका और सायाह्न राक्षसोंका; अतः यथायोग्य कालमें दानादि देनेसे यथोचित फल ह

(२९) व्रतके[2] अधिकारी कौन हैं? इस धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है कि जो अपने वर्णाश्रमके विचार (या धर्म-कर्म) में रत रहते हों, निष्कपट, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले, अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहलेसे निश्चय करके कर्म करनेवाले हों, ऐसे मनुष्य व्रताधिकारी होते हैं।

(३०) उपर्युक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, स्त्री और पुरुष—सभी अधिकारी हैं। केवल सौभ स्त्रियोंके लिये यह विधान है कि पतिकी सेवाके उनके लिये न कोई यज्ञ है, न व्रत है और न है। वे पतिकी सेवासे ही स्वर्गादि अभीष्ट लोकों सकती हैं। फिर भी वे चाहें तो पतिकी अनुमा करें। क्योंकि[5] पत्नी पतिकी आज्ञा माननेवाली हो अतः उसके लिये पतिका व्रत ही कल्याणकारी है। शास्त्रकारोंकी व्रतादिके विषयमें यह आज्ञा है कि आरम्भ श्रेष्ठ समयमें किया जाय।

(३१) शुक्र और[6] बृहस्पतिका अस्त तथा अस के पहलेके तीन दिन वृद्धत्वके और उदय होनेके तीन दिन बालत्वके व्रतारम्भमें वर्जित हैं। ऐसे

---

१. पूर्वाह्णो दैविकः कालो मध्याह्नश्चापि मानुषः
अपराह्णः पितॄणां तु सायाह्नो राक्षसः स्मृतः। (

२. निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः
अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः। (

३. ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तम
अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु। (

४. नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्
भर्तृशुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि। (

५. पत्नी पत्युरनुज्ञाता व्रतादिष्वधिकारिणी। (

६. अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे।

आरम्भ और उत्सर्ग (उद्यापनादि) नहीं हिये । इनके सिवा भद्रादि कुयोग और मलमासादि हैं ।

२) किसी भी व्रतके आरम्भमें सो १, शुक्र, और बुधवार हों तो सब कामोंमें सफलता प्राप्त । और इनके साथ अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, रा, अनुराधा और रेवती नक्षत्र—प्रीति, सिद्धि, शुभ, शोभन और आयुष्मान् योग हों तो सब सुख देते हैं ।

३) 'व्रत करनेवाला' व्रतारम्भके पहले दिन कराये—मस्तकके तथा मुखमण्डलके सब केश -और शौच-स्नानादि नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर दिनमें जो व्रत किया जाय, उसके उपयोगी व्यवस्था ाह्नमें (हविष्यान्नके भोजनसे) एकभुक्त व्रत त्रेमें सोत्साह शयन करे । दूसरे दिन उषःकालमें यसे दो मुहूर्त पहले) उठकर शौच-स्नानादि तःकालका भोजन किये बिना ही सूर्य और व्रतके अपनी अभिलाषा निवेदन करके व्रतका आरम्भ करे।

१४) 'आरम्भ'में गणपति, मातृका और पञ्चदेवका रके अभ्युदय-श्रा करे । और व्रत-देवताकी ो मूर्ति बनवाकर उसका पञ्चोपचार, दशोपचार या ार पूजन करे । मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्रादि- का व्रत हो, उसका अधिष्ठाता ही 'व्रतका देवता' । अतः प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीयादिके यथाक्रम ह्मा, गौरी आदि और अश्विनी, भरणी, कृत्तिकादिके नासत्य (अश्विनीकुमार), यम और अग्नि आ वारोंके सूर्य, सोम, भौमादि अधिष्ठाता हैं ।

(३५) उपर्युक्त प्रकारसे (जिस अवधिका उस अवधितक) यथाविधि व्रत करके उसके समाप्त वित्तानुसार उद्या १न करे । उद्यापन किये बिना व्रत निष है । कौन व्रत किस प्रकार किया जाता है, किस व्रतकी अवधि होती है और किस व्रतका कैसा उद्यापन कि है—ये सब बातें मेरे लिखे हुए 'व्रत-परिचय'में दी ग

(३६) व्रतीको इस बातका ध्यान रखना च व्रत आरम्भ करनेके बाद यदि क्रोध, लोभ, आलस्यवश उसे अधूरा छोड़ दे तो तीन दिनतक त्याग करके फिर उस व्रतका यथापूर्व आरम्भ करे ।

(३७) 'व्रतके समय' बार३-बार जल पीने, दि ताम्बूल चबाने और स्त्रीसहयोग करनेसे व्रत बिगड़ व्रतके दिनोंमें स्तेय (चोरी) आदिसे वर्जित रह दया४, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्नि सन्तोषका आचरण करना उचित है ।

(३८) जल, फ५ल, मूल, दूध, हवि, ब्राह्मण ओषधि और गुरु (पूज्यजनों) के वचन—इन अ नहीं बिगड़ते । होमावशिष्ट खीर, भिक्षाका अ

सोमशुक्रगुरुसौम्यवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः ।
(रत्नमाला)

हस्तमैत्रमृगपुष्यत्र्युत्तरा अश्विपौष्णशुभयोगसौख्यदाः ।
(मुक्तकसंग्रह)

अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः ।
सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥
(देवल)

व्रतारम्भे मातृपूजां नान्दीश्राद्धं च कारयेत् ।
(शातातप)

स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः ।

१. कुर्यादुद्यापनं चैव समाप्तौ यदुदीरितम् ।
उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् ॥
(नि

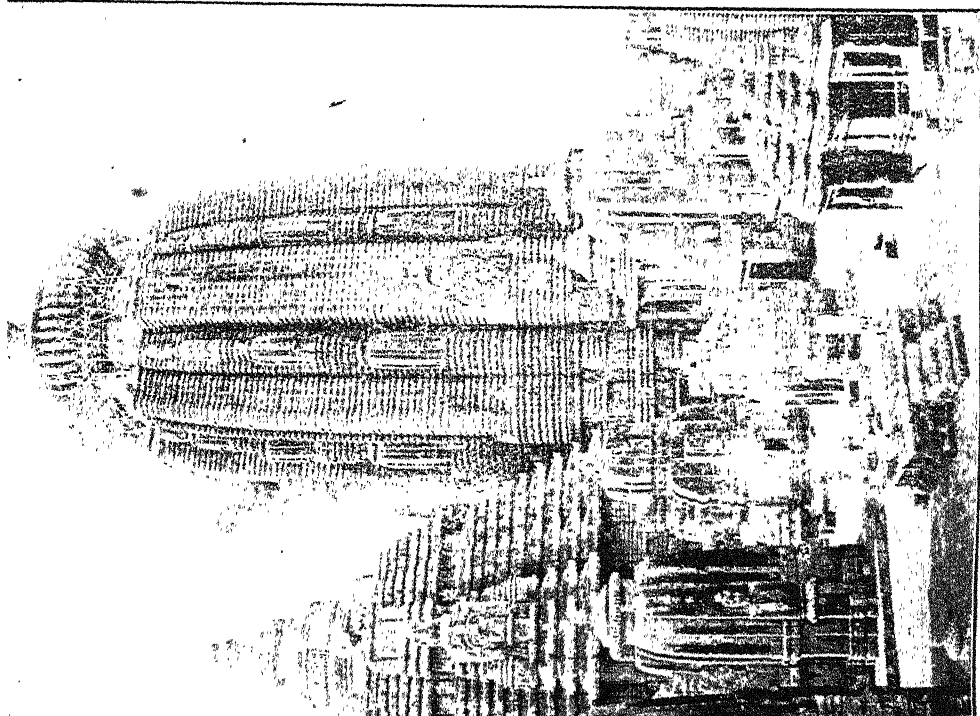
२. क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।
दिनत्रयं न भुञ्जीत ....(गरुड़) ।
पुनरेव व्रती भवेत् ॥ (व

३. असकृज्जलपानाच्च दिवास्वापाच्च मैथुनात् ।
उपवासः प्रणश्येत सकृत्ताम्बूलभक्षणात् ।

४. क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः ।

५. अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः

कंडरिया महादेव, खजुराहो



श्रीलिङ्गराजजीका मन्दिर—भुवनेश्वर

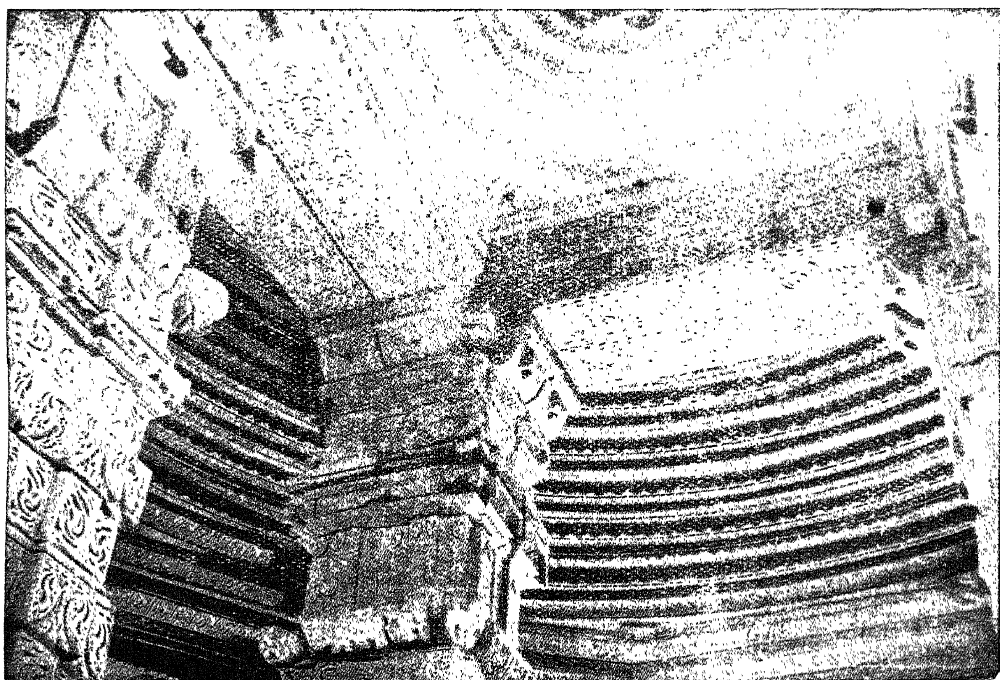
[पृष्ठ ६७०





ाथ-मन्दिर पाटनके दक्षिण भागकी कारीगरी

[पृष्ठ ६६८



सास-बहू (सहस्र-बाहु) मन्दिरके गुंबजकी भीतरी कारीगरी, ग्वालियर

[पृ

ए जौका चूर्ण) कण (गोरैड़ या तृण-पुष्प); जौकी लपसी); साग (तोरी, ककड़ी, मेथी आदि); दधि, घृत, मूल, आम, नारंगी, अनार और (केला) आदि खाने योग्य हैं।

९) व्रतमें गन्ध, पुष्प, माला, वस्त्र और व्रतयोग्य दे ग्राह्य हैं। व्रत, पूजा या हवनादिमें केवल एक वस्त्र गादि) पहनकर या बहुत वस्त्र (धोती, टोपी, कुर्ता, आदि) धारणकर मन्त्रादिका जप करना या होमादि चेत नहीं। व्रत करनेवाला पुरुष हो या सुवासिनी हो, सम्पूर्ण व्रतोंमें लाल वस्त्र और सुगन्धित सफेद ण करे।

१०) वर्णभेदसे ब्राह्मणोंके लिये सफेद, क्षत्रियोंके जीठके समान रंगके, वैश्योंके लिये पीले और लिये नीले अथवा बिना रंगके वस्त्र अनुकूल । और धोती त्रिकच्छ (जिसमें नीचेका पल्ला और आगेके पल्लेका ऊपरका हिस्सा नाभिके र नीचेका हिस्सा बाँयें पसवाड़ेमें लगाया जाता है) गनी गयी है। इस प्रकार धोती बाँधनेवाले ब्राह्मण हैं। इसके अतिरिक्त ध्वजप्रयुक्त, ग्रन्थियुक्त और समान दोनों पल्ले खुली हुई धोती वर्जित है।

४१) व्रत करनेवाले मोहवश बिना आचमन किये , तो उनका व्रत वृथा होता है। नहाते, धोते, खाते, पीते, सोते और छींक लेते समय और गलियोंमें घूमकर बाद, आचमन किया हुआ हो तो भी दुबारा आचम यदि जल न मिले तो दक्षिण कर्णका स्पर्श कर ले। आच समय दाहिने हाथकी अँगुलियोंको मिलाकर सीधी उनमेंसे कनिष्ठा तथा अँगूठेको अलग रखकर आच अथवा दाहिने हाथके पेरुओंको बराबर करके गौके कान-जैसा बनाकर आचमन करे। (लोकव्य आचमनादिके भूल जानेपर दाहिना कान छुआ करते

(४२) अधोवायुके निकल जाने, आक्रन्द (क्रोध करने, बिल्ली और चूहेसे छू जाने, जोरसे हँस झूठ बोलनेपर जल स्पर्श करना आवश्यक होता है। उ और श्राद्धमें दतौन नहीं करना चाहिये। यदि अधिक आव हो तो जलके बारह कुल्ले कर लें। अथवा आमके जल या अँगुलीसे दाँतोंको साफ कर ले। व्रत करं बैल, ऊँट और गदहेकी सवारी नहीं करनी चाहिये

(४३) बहुत दिनोंमें समाप्त होनेवाले व्रतक सङ्कल्प कर लिया हो तो उसमें जन्म और मरणका सू

[Footnotes]

…ध्यसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलादीनि हविष्याणि। (गौतम)

गन्धालङ्कारवस्त्राणि पुष्पमालानुलेपनम्। (वृद्धशातातप)

सर्वेषु तूपवासेषु पुमान् वाथ सुवासिनी।
धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च॥ (विष्णुधर्म)

ब्राह्मणस्य सितं वस्त्रं माञ्जिष्ठं नृपतेः स्मृतम्।
पीतं वैश्यस्य शूद्रस्य नीलं बलवदिष्यते॥ (मनु)

वामकुक्षौ च नाभौ च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्।
त्रिकच्छेन समायुक्तो द्विजोऽसौ मुनिरुच्यते॥ (याज्ञवल्क्य)

. स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद् वासो विपरिधाय च॥

१. संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत् (

२. आयतं पर्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्करम्
एतेनैव विधानेन द्विजो ह्याचमनं चरेत् (

३. अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधसम्भवे
मार्जारमूषकस्पर्शे प्रहासेऽनृतभाषणे
निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् (

४. उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम्। (
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्॥

५. पर्णोदकेनाङ्गुल्या वा दन्तान्धावयेत्। (स्मृ

६. गोयानमुष्ट्रयानं च कथंचिदपि नाचरेत्
खरयानं च सततं व्रते चाप्युपसङ्करम् (स

७. बहुकालिकसङ्कल्पो गृहीतश्च पुरा यदि
सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति

इसी प्रकार किसी कामनाके व्रतमें सूतक आ
। दान और पूजनके सिवा व्रतमें बाधा नहीं आती।
ऐसे हैं, जिनमें दान, व्रत और पूजन—तीनों होते
ा गणेशचतुर्थी, अनन्तचतुर्दशी और अर्कसप्तमी
तेश्वरकी पूजा, बायन आदिका दान और अभीष्टका
ों हैं। ऐसे व्रतोंमें आशौच आनेपर व्रत करता
न और पूजा न करे। इसी प्रकार—

४) बड़े व्रतका प्रारम्भ करनेपर[२] स्त्री रजस्वला
तो उससे भी व्रतमें कोई रुकावट नहीं होती।
मानमें सपिण्ड, सकुल और सगोत्र—इन तीनों-
ा आवश्यक होता है। तीन पीढ़ियोंतक सपिण्ड,
कुल और इससे आगे सगोत्र माने जाते हैं। इनमें
नसे सपिण्डमें दस दिन, सकुलमें तीन दिन और
१ दिन अथवा स्नानमात्र सूतक रहता है। लंबे
से बाधा नहीं होती।

९) व्रतमें तथा तीर्थयात्रामें, अध्ययनमें[३] तथा विशेष-
में दूसरेका अन्न लेनेसे, जिसका अन्न होता है,
सका पुण्य प्राप्त होता है। आपत्ति अथवा असामर्थ्य-
और व्रतादि धर्मकार्य अपनेसे न हो सकें तो पति,
ष्ठ पुत्र, पुरोहित, भाई या मित्रको प्रतिहस्तक
धे या एवजी) बनाकर उनसे कराये। उपर्युक्त
प्राप्त न हो तो वह काम ब्राह्मणसे हो सकता है।

६) प्रातः, सायं (सन्ध्या) और सन्धियोंमें; जप,
भोजन और दातौनमें; मूत्र और पुरीषके त्याग
कार्य तथा देवकार्यमें और दान, योग तथा गुरुके
मौन रहनेसे मनुष्यको स्वर्ग मिलता है। 'मौनं
साधकम्।' दान, होम, आचमन, देवार्चन, भोजन
और पितृतर्पण—ये 'प्रौढ़पाद' (उकड़ू) बैठकर

(४७) प्रौढ़पाद तीन प्रकारका[२] होता है।
कि पैरोंके तलवे आसनपर रखकर दोनों घुटने
पींडियोंको जाँघोंसे लगाकर बैठे। दूसरा—दोन
आसनपर लगाकर एड़ियोंपर आरूढ़ हो और त
कि दोनों टाँगें सीधी फैलाकर जाँ आसनपर ल
तीनों ही निषिद्ध हैं।

(४८) कन्या, शय्या[३] (सुखशय्या), मक
और स्त्री—ये एकको ही देने चाहिये। बहुतोंको देने
होनेसे पाप लगता है। व्रती रहकर प्राणरक्षाके अ
पीये। फल, मूल, दूध, जौ, यज्ञशिष्ट तथा हवि खा
पीड़ामें वैद्यकी बतलायी हुई शुद्ध औषध ले और
अभिलाषा सिद्ध करे तथा गुरुकी आज्ञाको माने तो इ
व्रत भङ्ग नहीं होता।

(४९) दीर्घ या अदीर्घ—सभी व्रतोंकी पारण
और उद्यापनसे समाप्ति जाननी चाहिये।

(५०) पारणाका निर्णय और उद्यापनका
'व्रत-परिचय' में प्रत्येक व्रतके साथ लिखा गय
इनके सिवा विशेष बातें पुराणों, धर्मशास्त्रों और व्रत
स्वतन्त्र ग्रन्थोंसे जाननी चाहिये। यहाँ कुछ ऐसे
विवरण देना प्रासङ्गिक प्रतीत होता है, जो उदाहर
या आदर्श हैं।

पाँच महाव्रत

(१) संवत्सर—यह संवत् विक्रमके नामसे प्र
इसका आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होता है। संसारके

ाम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके।
त्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्॥
(कूर्मपुराण)

ारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्।
न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन॥
(सत्यव्रत)

ते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः।
रान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्॥
(टोडरानन्द)

र्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखापि च।
त्रायां धर्मकार्येषु कर्तव्याः प्रतिहस्तकाः॥
(मदनरत्न)

न्ध्ययोरुभयोर्जापे भोजने दन्तधावने।
तृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः॥
रूणां सन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः।
[illegible]

१. दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥
(शा

२. आसनारूढपादस्तु जान्वोर्वा जङ्घयोस्तथा।
कृतावसिक्थको यश्च प्रौष्ठपादः स उच्यते॥
(शा

३. कन्या शय्या गृहं चैव देयं यद्दोस्त्रियादिकम्।
[illegible]

अपेक्षा इसका महत्त्व अधिक है। ब्रह्माजीने त्पादनका आरम्भ इसी दिन किया था। इस कारण ; शुक्लपक्ष और प्रतिपदा तिथि सर्वोत्कृष्ट होनेसे आरम्भ इसी दिन होता है।

; व्रतादिमें उदयव्यापिनी प्रतिपदा ली जाती है। दो दिन हो तो पूर्वदिन और दोनों दिन न हो तो देन लेना चाहिये। इसमें अमाविद्धा होनेका दोष दि यह सायाह्नव्यापिनी हो तो 'सम्मुखी' होनेसे ष्ठ होती है और पूर्वविद्धा तो सर्वमान्य है ही।

दिन सूर्योदयके समय जो वार हो, वही वर्षका राजा। संवत्सरके पूजनमें सर्वप्रथम 'ब्रह्माजीका पूजन' हिये। उसकी विधि यह है कि वस्त्राच्छादित वेदी पर अक्षतोंका अष्टदल बनाये। उसपर यथाविधि पन करके गणपतिपूजनपूर्वक ब्रह्माजीका षोडशोपचार। यथा—

ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि, अक्षतानि समर्पयामि, पादयोः पाद्यम्, अर्घ्यम्, यम्, स्नानम्, वस्त्रम्, यज्ञोपवीतम्, गन्धम्, अक्षतम्, धूपम्, दीपम्, नैवेद्यम्, आचमनीयम्, ताम्बूलम्, ए, नमस्कारम्, पुष्पाञ्जलिम्, प्रार्थनां समर्पयामि।

प्रकार पूजन करनेके अनन्तर—

ाय, निमेषाय, त्रुट्यै, लवाय, क्षणाय, काष्ठायै, सुषुम्णायै, नाडिकायै, मुहूर्ताय, निशाभ्यः, ेभ्यः, पक्षाभ्याम्, मासेभ्यः, षड्ऋतुभ्यः, अयनाभ्याम्, रिवत्सरेडावत्सरानुवत्सरवत्सरेभ्यः, कृतयुगादिभ्यः, ः, अष्टाविंशतियोगेभ्यः, द्वादशराशिभ्यः, करणेभ्यः, भ्यः, प्रतिवर्षाधिपेभ्यः, विज्ञानेभ्यः, सानुयात्र-भ्यः, चतुर्दशमनुभ्यः, पञ्चपुरन्दरेभ्यः, दक्षकन्याभ्यः,

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
(ब्रह्मपुराण)

तिथीनां प्रवरा यस्माद् ब्रह्मणा समुदाहृता।
प्रतिपद्यापदे पूर्वे प्रतिपत्तेन सोच्यते॥
(भविष्योत्तर)

उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात्।
(ज्योतिर्निबन्ध)

प्रतिपत्सम्मुखी कार्या या भवेदापराह्णिकी। (स्कन्द०)

देव्यै सुभद्रायै, जयायै, भृगुशाखाय सर्वा बहुपुत्रपत्नीसहिताय, वृद्ध्यै, निद्रायै, धनदाय स्वामिने, नलकूबरयक्षेभ्यः, शङ्खपद्मनिधिभ्याम्, भ सुरभ्यै, वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यासंस्थायिभ्यः, नागयक्षसु गरुडाय, अरुणाय, सप्तद्वीपेभ्यः, सप्तसमुद्रेभ्यः, स उत्तरकुरुभ्यः, ऐरावताय, भद्राश्वकेतुमालाय, इ हरिवर्षाय, किंपुरुषेभ्यः, भारताय, नवखण्डेभ्यः पातालेभ्यः, सप्तनरकेभ्यः, कालाग्निरुद्रशेषेभ्यः, क्रोडरूपिणे, सप्तलोकेभ्यः, पञ्चमहाभूतेभ्यः, तमसे प्रकृत्यै, रजसे, रजःप्रकृत्यै, प्रकृतये, पुरुषाय, अभि अव्यक्तमूर्तये, हिमप्रमुखपर्वतेभ्यः, पुराणेभ्यः, गङ्ग नदीभ्यः, सप्तमुनिभ्यः, पुष्करादितीर्थेभ्यः, वितस्ता गाभ्यः, चतुर्दशदीर्घाभ्यः, धारिणीभ्यः, धातृभ्यः, वि छन्दोभ्यः, सुरभ्यै, रावणाभ्याम्, उच्चैःश्रवसे, धन्वन्तरये, शस्त्रास्त्राभ्याम्, विनायककुमाराभ्याम्, शाखाय, विशाखाय, नैगमेयाय, स्कन्दगृहेभ्यः, स्कन्द ज्वराय, रोगपतये, भस्मप्रहरणाय, ऋत्विग्भ्यः, वाल् काश्यपाय, अगस्तये, नारदाय, व्यासादिभ्यः, अ सोमपदेवेभ्यः, असोमपदेवेभ्यः, तुषितेभ्यः, द्वादशा सगणैकादशरुद्रेभ्यः, दशपुण्येभ्यः, विश्वेदेवेभ्यः, अ योगिभ्यः, द्वादशभृगुभ्यः, द्वादशाङ्गिरोभ्यः, तपस्विभ्यः, दस्राभ्याम्, अश्विभ्याम्, द्वादशसाध्येभ्यः, द्वादशपौ एकोनपञ्चाशद्मरुद्गणेभ्यः, शिलाचार्याय, विश्वकर्मणे, वाहनेभ्योऽष्टलोकपालेभ्यः, आयुधेभ्यः, वाहनेभ्यः, आसनेभ्यः, दुन्दुभिभ्यः, देवेभ्यः, दैत्यराक्षसगन्धर्वपि सप्तभेदेभ्यः पितृभ्यः, प्रेतेभ्यः, सुसूक्ष्मदेवेभ्यः, भाव

और

बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने नमः परमा मावाहयामि स्थापयामि—

इस प्रकार स्थापन करके उपर्युक्त विधिसे पू और नीराजनके अनन्तर—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषत

—इस मन्त्रसे प्रार्थना करे।

पूजनके पश्चात् नवीन पञ्चाङ्ग श्रवण

१. शकवत्सरभूपमन्त्रिणां रसधान्येश्वरमेघपातिना श्रवणात्पठनाच्च वै नृणां शुभतां यात्यशुभं सहाश्रिय

ानोंको ध्वजे-पताकादिसे सुशोभित करके 'ध्वजारोपण' देश तथा देवीपूजनके स्थानमें घटस्थापन करे । साथ भद्र' (नीम) की कच्ची कोंपलोंमें जीरा, हींग, अजमोद और काली मिर्च मिलाकर भक्षण करे और ो उत्तम पदार्थोंका भोजन कराके स्वयं एकभक्त रे ।

२) रामनवमी—यह व्रत चैत्र शुक्ल नवमीको किया । इसमें मध्याह्नव्यापिनी शुद्धा तिथि ली जाती है । दो दिन मध्याह्नव्यापिनी हो या दोनों दिनोंमें ही न हो व्रत करना चाहिये । इसमें अष्टमीका वेध ग्राह्य मीका त्याज्य है । यह व्रत नित्य, नैमित्तिक और तीन प्रकारका है । इसको निष्कामभावसे भक्ति और साथ आजन्म किया जाय तो अनन्त फल होता विधि यह है—

के पहले दिन (चैत्र शुक्ल अष्टमीको) प्रातःस्नानादि श्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रका स्मरण करे । दूसरे दिन शुक्ल नवमीको) नित्यकृत्य करनेके बाद—

ष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव ।
प्रीतो भव त्वं भोः संसारात्त्राहि मां हरे ॥

इस मन्त्रसे भगवान्‌के प्रति व्रतकी भावना प्रकट करे । मन्दिर या अपने मकानमें पूर्वाभिमुख बैठकर 'मम तेकामनया (वा अमुककामनया) रामजयन्ती-व्रतमहं करिष्ये' से सङ्कल्प करके काम-क्रोधादिसे र व्रत करे ।

साथ ही ध्वजा-पताका आदिसे सुशोभित हुए मध्यमें सर्वतोभद्रकी वेदीपर 'रामपञ्चायतन'—रा लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और हनुमान्‌जीकी मूर्ति स्था षोडशोपचार पूजन करे और दिन-रात्रिमें भगवान् पाठ, जप, भजन या संकीर्तनादिसे स्मरण करता र दशमीको पारणा करे । यदि सामर्थ्य हो तो सुवर्णमय दान करे और ब्राह्मणभोजन कराये ।

(३) कृष्णजन्माष्टमी—यह भाद्रपद कृष्ण होता है । जिस प्रकार रामनवमीमें चैत्र शुक्ल नवमी सूर्य, पुष्य (पुनर्वसु) नक्षत्र और मध्याह्नका य माना गया है, उसी प्रकार इसमें भाद्रपद कृष्णाष्टमी सूर्य, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र और अर्धरात्रि ग्रहण है । इसके शुद्धा, विद्धा दो रूप हैं । उदयसे उ शुद्धा और इसके अन्तर्गत सप्तमी या नवमी होने होती है । इसमें भी समा, न्यूना और अधिकाके होनेसे अठारह भेद हो जाते हैं; परंतु सिद्धान्तरूपसे (अर्धरात्रि) व्यापिनी अधिक मान्य होती है । वह हो या दोनों ही दिन न हो तो भी (सप्तमीविद्धा त नवमीविद्धा व्रत करना चाहिये । यह व्रत स्त्री-पुरुष, यु सबके करनेका है; न करनेसे पाप होता है । यह है—

व्रतके पहले दिन लघु भोजन करके जितेन्द्रिय अष्टमीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् सूर्य, सोम, यम सन्धि, भूत, पवन, दिक्पति, भूमि, आकाश, खेचर और ब्रह्म आदिको नमस्कार करके व्रतका सङ्कल्प र शुद्ध स्थानमें सूतिकागृह निर्माण करके अर्धरात्रिमें भ प्रकट होनेकी भावना कर, श्रीकृष्णमूर्तिका भ षोडशोपचार पूजन करे । पूजनमें देवकी, वसुदेव, बलदेव, नन्द, यशोदा और लक्ष्मीका यथाक्रम नाम पूर्वक पूजन करना चाहिये । अन्तमें—

प्रणमे देवजननीं त्वया जातस्तु वामनः
वसुदेवात्तथा कृष्णो नमस्तुभ्यं नमो नमः
सपुत्रार्घ्यं प्रदत्तं मे गृहाणेमं नमोऽस्तु ते

—से देवकीको अर्घ्य दे और—

धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गो

प्राप्ते नूतनवत्सरे प्रतिगृहं कुर्याद् ध्वजारोपणं
स्नानं मङ्गलमाचरेद् द्विजवरैः साकं सुपूजोत्सवैः ।
देवानां गुरुयोषितां च विभवालङ्कारवस्त्रादिभिः
सम्पूज्यो गणकः फलं च शृणुयात्तस्माच्च लाभप्रदम् ॥
(उत्सवचन्द्रिका)

पारिभद्रस्य पत्राणि कोमलानि विशेषतः ।
सपुष्पाणि समादाय चूर्णं कृत्वा विधानतः ॥
मरिचं लवणं हिङ्गु जीरकेण च संयुतम् ।
अजमोदायुतं कृत्वा भक्षयेद्रोगशान्तये ॥
(पं० पारिजात)

अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकाङ्क्षिभिः ।
न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन ॥
(दीक्षित)

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं व्रतं वेति विचार्यते ।
निष्कामानां विधानात्तु तत्काम्यं तावदिष्यते ॥

-से श्रीकृष्णको 'पुष्पाञ्जलि' अर्पण करे । तदनन्तर
ो अर्घ्य देकर गायन, वादन, सङ्कीर्तनादिके द्वारा रात्रि-
ग करके दूसरे दिन व्रतका विसर्जन करे ।

( ) शिवरात्रि—यह व्रत फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको
ता है । इसको प्रतिवर्ष करनेसे यह 'नित्य' और
करनेसे 'काम्य' होता है । फा० कृ० १४ को अर्ध-
मय—

व्लिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ।

-शिवलिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ था । इस कारण यह शिव-
ी जाती है । और इस व्रतको वर्ण और वर्णेतर सब कर
। यदि न करें तो पाप होता है । जिस प्रकार
ण, वामन और नृसिंह—चारों जयन्ती और एकादशी
हैं, उसी प्रकार शिवरात्रि उपोष्य है । और इसका
-निर्णय भी उसी प्रकार किया जाता है । सिद्धान्तरूप-
त्यसे सूर्योदयपर्यन्त रहनेवाली चतुर्दशी शुद्धा और
द्वा होती है । उसमें भी प्रदोष और निशीथ
त्रे)-व्यापिनी ग्राह्य होती है । स्कन्दपुराणमें फा०
र्दशीको अर्धरात्रिके समय शिवपूजन करनेका महाफल
। यदि यह (शिवरात्रि) त्रिस्पृशा (१३-१४-३०
की) हो तो अधिक उत्तम होती है । इसमें भी
ोमवारका योग विशेष अच्छा है । व्रतीको चाहिये
दिन प्रातःस्नानादिके पीछे दिनभर शिवस्मरण
सायङ्कालमें फिर स्नान करके भस्मका त्रिपुण्ड्रतिलक
क्षकी माला धारण करके गन्ध-पुष्पादि सभी प्रकारकी
ग्रीसहित शिवके समीपमें पूर्व या उत्तरमुख
वजीका यथाविधि पूजन करे और नीराजन करके
णा तथा प्रार्थना करे । अन्तमें—

कृतान्यनेकानि पापानि हर शंकर ।
रात्रौ ददाम्यर्घ्यमुमाकान्त गृहाण मे ॥

से अर्घ्य देकर—

रक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर ।
द सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

से प्रार्थना करे । इस प्रकार चारों प्रहरका पूजन किया
अधिक फल होता है ।

) दशावतार—यह व्रत भाद्रपद शुक्ल दशमीको
तर्पण करे । और घृत-शर्करामिश्रित गोधूमचू
अपूप—पूए बनाये । और १ मत्स्य, २ कूर्म,
४ नरसिंह, ५ त्रिविक्रम, ६ राम, ७ कृष्ण, ८
९ बुद्ध और १० कल्कि—इन दस अवतारोंका
पूजन करके नैवेद्यमें अपूप अर्पण करे । और उन
देवताओंके, दस ब्राह्मणके और दस अपने
एकभक्त भोजन करे । इस प्रकार दस वर्ष करनेके
अपूप, घेवर, कसार, मोदक, सुहाली, सकरपारे,
गुणा, कोकर और पुष्पकर्ण—इन दस पदार्थोंमेंसे
एक-एक पदार्थ—दस-दसकी संख्यामें देव-ब्राह्मणादि
करे । इस प्रकार प्रीतिपूर्वक करनेसे विष्णुलोक प्राप्त

व्रत, पर्व और त्यौहारपर कुछ विचा

(१) सूक्ष्म दृष्टिसे विचारकर देखा जाय तो
तीनों विषय त्रिगुणात्म और परस्पर ओतप्रोत—मि
विशेषता यह है कि प्रत्येकमें एक-एक गुण प्रध
दो-दो आंशिक रूपसे मिश्रित हैं । यथा—'व्रत' में
प्रधान और रज-तम अंशतः मिश्रित हैं । 'पर्व'
प्रधान और सत्त्व-तम अंशतः मिश्रित हैं । और
तम प्रधान और रज-सत्त्व अंशतः मिश्रित हैं । वि
हैं, यह इनका स्वरूपज्ञान होनेसे ज्ञात हो सक
उदाहरणार्थ—

(२) किसी देव, देवी या पञ्चदेवका व्रत कीजिये
'सात्त्विक' गुण प्रधान होनेसे आपका मन सांसारिक
विरक्त होकर व्रतसम्बन्धी नियमोपनियमोंका पालन
संलग्न हो जायगा । साथ ही शाकाहारादि सामग्री
करनेमें 'राजस' और आरम्भसे समाप्तिपर्यन्तकी
या विधानमें लोम-विलोम होनेसे 'तामस' मिल
इसी प्रकार—

(३) पर्वोत्सव मनानेमें उसके उपयोगी
सामग्री, गायन-वादन, सुप्रकाश, पूजासामग्री और
वितरणादिमें सर्वप्रथम 'राजस' प्रधान होगा । उस
ही उत्सवकार्यमें सम्मति, सहायता या सहयोग दे
प्रति कृतज्ञता प्रकट करने आदिमें 'सात्त्विक' अं
आयगा और कदाचित् वस्तु-विधान या दान-म
त्रुटि हुई तो 'तामस' का मिश्रण होगा । और—

। देखनेसे 'तामस' का प्राधान्य प्रतीत होगा। साथ ही सरके उपयोगी वेश-भूषा, बर्ताव-व्यवहार और पुरस्कार आदिमें 'राजस' संयुक्त रहेगा और गङ्गोपाङ्ग सम्पन्न होनेमें 'सात्त्विक' का अंश स्वतः ग। इस प्रकार—

) उपर्युक्त तीनों विषयोंके सम्पन्न करनेमें तीनों भाव प्रधान रूपमें या आंशिक रूपमें अवश्य प्रस्तुत स्तु, व्रत, पर्व और त्यौहारोंसे केवल हिंदुओंका —वर्णेतरोंका और द्वीपान्तरनिवासियोंतकका कार होता है। हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियोंने व्रत संसारहितके अनेक गुण गुम्फित देखकर इनका व्यापक प्रचार किया था।

) किस कामनाके निमित्तसे किस देव-देवी या कौन-सा व्रत-उपवास या उपासना फलदायी होगी का मानव-शरीरपर किस प्रकारका कैसा प्रभाव में पड़ेगा—ये सब बातें अपनी दिव्य दृष्टिसे और रके अनुभवसे निश्चय करके उनको विधिबद्ध या गया था। अतएव व्रत, पर्व और त्यौहार—ये त्रिगुणात्मक सृष्टिके लिये हितकारी हैं। और इन ोते रहनेसे संसारका बड़ा भारी उपकार होता है।

) यद्यपि आयोजनकी दृष्टिसे व्रत स्वल्पतम या । है और व्रतकी अपेक्षा पर्व तथा पर्वकी अपेक्षा अधिकाधिक भव्य आयोजनोंसे सम्पन्न होनेवाले हैं, त्त्वकी दृष्टिसे व्रतमें उक्त दोनों (पर्व और त्यौहारों) । अनेक प्रकारके हितकारी तत्त्व अधिक हैं। और ाङ्गोपाङ्ग सम्पन्नता भी व्रतसे ही पूर्ण होती है।

) व्रत देखनेमें सामान्य साधन प्रतीत होता है। एक बार भोजन करनेसे 'एकभक्त', किसी एक ही एक बार परिमित भोजन करनेसे 'एकभुक्त', सायंकालमें रनेसे 'प्रदोष', रात्रिमें भोजन करनेसे 'नक्तव्रत' ोरात्र निराहार या अल्पमात्रामें सूखा मेवा, फल ाकाहार करनेसे उपवास हो जाता है। इसमें किसी कठिनाई या दुःसाध्यपना नहीं आता; परंतु इस और सरलसाध्य व्रतसे मनुष्योंके मन, चित्त, अथवा अस्थि, मज्जा, मांस और रक्तपर किस प्रकारका प्रभाव पड़ता है—इस बातका विचार किया जाय तो ड़े भाई पर्व और त्यौहार अनेक अंशोंमें छोटे हो

(९) व्रत एक प्रकारका सरल-साध्य 'तप' है सावयव शरीरकी बाह्य और आन्तरीय शुद्धि हो संतप्त आत्माको शान्ति मिलती है। मन-मधुप स्मरणमें संलग्न होता है। आचार-विचार या स वृद्धि होती है। छोटे-बड़े या सब प्रकारके महापाप हैं। अरुचि, अजीर्ण, उदरशूल, वातव्याधि, क्षत मन्दाग्नि-जैसे घातक रोग निर्मूल होते हैं। व्रतारम्भ ही मनुष्यके हृदयमें सात्त्विक भावका साम्राज्य हो ज और व्रतके परायण हुए पीछे शक्ति घटती नहीं, ब बुद्धि विकसित होती है और मस्तिष्ककी स्फु बलवती होती है।

(१०) व्रतके दिन कई दिनोंके रुके हुए क करनेमें मन लगता है। और बहुत-सी जटिल समस् दिन सुलझ जाती हैं। अधिक क्या, यदि शास्त्रीय साथ व्रत किया जाय तो व्रतसे मनुष्य ऋणमु है। सुत-दारा और सम्पत्तिका सुख प्राप्त करता है देशमें गया हुआ आत्मीय वापस आ मिलता देव-दानव या मनुष्य प्रसन्न होते हैं।

(११) व्रत अनेक हैं, और उनके करनेके विधान या व्यवस्था भी सबकी पृथक्-पृथक् है। मनुष्यमात्रके अनायास उद्धारके लिये एक सुग है। और तो क्या, तल्लीन होकर व्रत करनेसे मन ईश्वरके चरणोंमें संलग्न होता है और ऐसा । लोकमें सुख तथा परलोकमें स्वर्गकी प्राप्ति होती निष्काम भावसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ व्रताचरण मोक्ष या भगवच्चरणोंमें अहैतुक प्रेमकी प्राप्ति होती

पर्व

(१२) 'पर्व' व्रतका बड़ा भाई है। व्रत स्वाधीनरूपमें अकेला या जनसमुदायके साथ कर परंतु पर्वमें यदा-कदा अगणित मनुष्य हो जाने स्थानादिमें जाने आदि कारणोंसे उसका स्वरूप भ व्यापक बन जाता है। और साथ ही पराधीनताक हो जाता (परदा पड़ जाता) है।

(१३) संवत्सर, ग्रहणपर्व, संक्रमण, सोमवती, या तीर्थस्नान-जैसे अवसरोंमें अपने देश, ग्राम, देहातसे शत-सहस्रायुत-लक्ष ही नहीं, आबाल- अगणित नर-नारी संवतारम्भपर राजद्वारमें, रामजन्म

ें या यमुनाजीपर; गङ्गादशमीपर हरिद्वार, सोरों,
वर, काशी, प्रयाग और गङ्गासागरमें; सिंहस्थपर
आश्विन-चैत्र गयामें, मकरार्कपर प्रयागमें, भानु-
कोणार्कमें और सोमवती आदिपर गणेश्वरमें जाते
यथाशक्ति स्नान, दान, पूजापाठ, दर्शन, हवन
ाण-भोजनादि करते हैं।

४) चैत्रशुक्ल प्रतिपदाको ब्रह्माजीने सृष्टिका आरम्भ
ा और यही संवत्सरके आरम्भका दिन है। अतः
संवत्सरके साथमें सर्वप्रथम ब्रह्माजीका और तदनन्तर
, दानव, ग्रह, नक्षत्र, ऋषि, महर्षि, पञ्चदेव, पञ्चमहा-
दिक्पाल, सुख-दुःख, रोग-दोष और उनके प्रशामक
चारादिका पूजन किया जाता है और प्रवर्तमान
; लिये सुख-शान्तिदायी होनेकी प्रार्थना की जाती है।

५) इसके अतिरिक्त 'जयन्ती-चतुष्टय' (राम, कृष्ण,
नरसिंहकी) है। और सीतानवमी, राधाष्टमी
यतृतीया-जैसे आराध्य देव-देवियोंके जन्मोत्सवादिपर
न्दिरों या अपने निवासस्थानोंमें पर्वोत्सव मनाते,
ाते, भगवान्का पूजन करते, भेंट चढ़ाते और
ते हैं। और नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं।

६) इस प्रकारके पर्वोत्सवोंसे केवल स्थानीय
ही नहीं, देश-देशान्तरके अगणित मनुष्योंको अनेक
लाभ होता है। अनेक देशोंके व्यापार-व्यवहार,
।, पहिराव, बोली, विद्या, बर्ताव, कला-कौशल,
ाके विविध विधान, कौतूहलजनक क्रीड़ा-कौशल्य,
म, महादुर्ग और अनेक प्रकारके शिक्षाप्रद, लाभ-
ा अदृष्टपूर्व प्राणी, पदार्थ और वस्तुएँ देखनेमें
और उनसे तत्सम्बन्धी ज्ञान या अनुभव होता है।

—

७) स्वदेश छोड़कर विदेशमें जानेवाले हजारों-
ात्रियोंका मार्गव्यय, भोजन-सामग्रीका आटा-दाल,
, डाक, ताँगे, हलवाई, पड़चूनी ढाबे, होटल, खोंचे,
।, याचक, भिक्षुक, अपाहिज, पण्डित, पुरोहित,
और गङ्गागुरु आदिके देय द्रव्य, दान, दक्षिणा,
उपहार और पुरस्कार आदिमें जो करोड़ों रुपये
ते हैं, उनसे स्थानीय तथा देश-विदेशके व्यापारी,
या अन्य आशार्थी लोग पूर्णरूपसे लाभान्वित

त्यौहार

(१८) 'त्यौहार'—पहले सूचित हो :
कि किसी अंशमें व्रत, पर्व और त्यौहार एक ही है
उपासकोंके न्यूनाधिक्य और साधनाके भेदसे उन
सूक्ष्म, दीर्घ और महत्तम हो जाते हैं। व्रत स
है। जप, पूजा और उत्सवसमारोह न्यूनाधिक स
हैं। और हँसना, खेलना, गाना-बजाना या ईश्व
संलग्न होना भी सबमें होता है। केवल—

(१९) व्रतमें स्वल्पतम, त्यौहारमें :
(न्यूनाधिक) और पर्वमें यदा-कदा सर्वाधिक मनु
होते हैं। व्रत विशेषकर स्वस्थानमें, पर्व तीर्था
मन्दिरोंमें और त्यौहार घर-बाहर सर्वत्र सम्पन्न होते

(२०) राजपूतानेमें श्रावणकी तृतीया (
गणगौर, महाराष्ट्रमें गणेशचतुर्थी और बंगालमें
(आश्विन) के सार्वजनिक त्यौहार बड़े समारोहसे मनाये

(२१) त्यौहारमें व्रतोत्सवके सिवा स्वल
अधिकाधिक मिष्टान्नादिका आयोजन अवश्य होता
यही उसकी विशेषता है। कोई भी त्यौहार हो, अ
चाहे किसी देवताकी पूजा हो और कैसी भी श
हो, कुछ-न-कुछ मिष्टान्न अवश्य बनेगा। दशह
दीपावली आदिकी तो बात ही क्या—छोटे-छोटे त्यौ
मुख मीठा तो किया ही जाता है।

(२२) त्यौहारोंमें शीतलाष्टमी ही एक ऐसा त
जिसमें सर्वमान्य देवताको 'पर्युषितान्न' (बासी भोज
लगाया जाता है और तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे ऐसा करना ह
आवश्यक और लाभदायक है; परंतु जो लोग पू
समय 'सेड़का पुजापा' (कुछ पूए-पूड़ी) अल
गर्मागर्म आप खा लेते हैं, वह अच्छा नहीं। इसमें
उच्छिष्ट बन जाता है और उसका भोग लगा
निषिद्ध या पापमूलक है।

(२३) इस प्रकार पृथक-पृथक् त्यौहारोंमें
प्रकारके भोजन-पदार्थ बनाते और त्यौहारके अ
भोग लगाते हैं। अधिष्ठाता संवत्सरके ब्रह्मा, ग
उमा, अष्टमीकी महाशक्ति, नवमीके राम; अक्षयाके
नर-नारायण, हयग्रीव; नृसिंहचतुर्दशीके नरसिंह
दशमीके भगीरथ, निर्जलाके विष्णु, रथयात्राके
आषाढीके व्यासगुरु, तीजकी गौरी, रक्षापूर्णिमाके
जन्माष्टमीके वसुदेव, वासुदेव; चतुर्थीके चन्द्र,

ह गणेश, दूजा और विजयादशमीकी दुर्गा और न्द्र; दीपावलीकी लक्ष्मी, अन्नकूटके गोवर्धन, गोपाष्टमीकी करार्कके भानु, वसन्तके कामदेव; भानुसप्तमीके सूर्य, त्रके महादेव और होलीके प्रह्लाद हैं।

२४) इस प्रकार त्यौहार और उनके अधिष्ठाता कई : उनके रूप, विधान या आयोजन भी बहुतोंके बहुत ' मेरे लिखे 'हिंदू-त्यौहार' नामक निबन्धमें विस्तार-देये हैं) । यहाँ स्थानाभावके कारण संक्षेपसे परिचय जाता है । अन्य त्यौहारोंकी अपेक्षा श्रावणी, विजया- दीपावली और होली यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्रोंके त्यौहार माने जाते हैं । परंतु इनमें यह विशेषता इन चारोंको चारों वर्ण मानते हैं और चारोंमें चारों मलित होकर सहयोग देते हैं । भारतीय विशुद्ध वर्ण-के ये आदर्श हैं ।

२५) त्यौहार कोई भी हो, उसको सम्पन्न करनेके । कई दिनों पहलेसे आरम्भ हो जाते हैं और मनाने- अतिरिक्त उनसे द्रव्योपार्जन करनेवाले (या कमाकर े भी) वस्त्र, शस्त्र, आभूषण, मिठाई, खेल, खिलौने, और विविध प्रकारकी व्यवहार्य वस्तुएँ बनाकर सजाते त्यौहारोंके मार्गप्रतीक्षणमें उद्ग्रीव रहते हैं । भी यह लिखना अनुचित नहीं कि वर्तमानमें 'हिंदू- कुछ विकृत बन गये हैं और उनके सम्पादक भी प्रति भक्तिभाव रखनेके बदले उदासीन भाव ।

२६) श्रावणीकी दुर्लभ और आदरणीय 'रक्षा-' के स्थानमें (जो सर्षप, दूर्वा, मदनफल और वेदमन्त्रोंके । सम्पन्न होती थी) अब बाजारकी राखी दो पैसेसे व सौ रुपयेतकमें आती है और धर्मरक्षाके लिये भोली ।ससे भाईको आबद्ध करती है । 'विजयादशमी' लेये भूखे, निर्धन और अतिवृद्ध क्षत्रिय भी सशस्त्र ाबली शत्रुको पश्चात्पद करते थे, अब वह विजया विजयलक्ष्मीके साथ विलायतोंकी सैर करती है औ जूएसे मुक्त वृषभकी भाँति विश्राम लेते हैं ।

(२७) दीपावलीमें तिलतैलके अगणित नेत्रसुखद अखण्ड दीपावली नवीन विचारोंके वा हो गयी और उसके स्थानमें बिजलीकी बत्तियोंके भव में महालक्ष्मीका पूजन होता है । और होली वि 'नवान्नेष्टि' यज्ञ था, जिसके लिये वर्तमानका प्रह्लाद 'य खेरे-खाँडे-बरकूले 'समिधा' और जौ, गेहूँ तथा दंगी 'हवनीय सामग्री' थे । अब ये सब होलीके रूप हो गये और वेदमन्त्रोंका उच्चारण 'केश्या' आदि गायनोंमें परिणत हो गया !

(२८) इसी प्रकार तोड़कर लायी हुई ब पूजनमें सावित्री; दाल, ककड़ी और सत्तू खाने तृतीया; पञ्चामृत बाँटने और भेंट लेनेमें राम, कृष्ण और नरसिंहजयन्ती; आयी हुई अधभूखी गायको दूध निकालनेमें गोपाष्टमी, निम्बपत्रप्राशनमें संवत पूए आदि खानेमें नागपञ्चमी और शीतलाष्टमी ठंढाई, दूध, फल-फूल और सुशीतल जल पीनेमें स्नानमात्रमें गङ्गादशमी और एक सौ परिक्रमा देनेमें जैसे पुण्यप्रद पर्व, त्यौहार और व्रत सम्पन्न हो इनके गुण, रूप, व्यवस्था और प्रयोजन आदिको ले जाते हैं । अब तो शिक्षित कहलानेवाले नर-नारी नहीं करते !

(२९) उचित तो यह है कि प्रत्येक सद्गृ अपने इन व्रत, पर्व और त्यौहारोंके असली स्वरूप और वृद्ध सज्जनोंसे मालूम करके प्रत्येक त्यौहारको य सम्पन्न करें और यथापूर्व प्रचलित रक्खें । त्यौहार खेल नहीं हैं, बड़े महत्त्वके हैं । इनमें अनेक गुम्फित हो रहे हैं, जिनसे हमारे आयु, आरोग्य, आदर धर्म, कर्म, सम्पत्ति और सुख-सौभाग्यादि स्वतः हैं । आशा है, हिंदू-सन्तान इस ओर ध्यान देंगे ।

जीवित ही मरेके समान

र्म धर्माय न विरागाय कल्पते । न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ (भागवत ३ । २३

इस संसारमें जिसका कर्म न तो धर्मके लिये होता है, न वैराग्यके लिये और न तीर्थपाद भ ाके ही लिये होता है, वह जीते जी भी मरे हुएके समान है ।

हिंदू-धर्मका इस्लामपर प्रभाव

(लेखक— श्रीहजरत साज रहमानी 'फिरदोसी बाबा')

़ू-धर्म ही संसारमें सबसे प्राचीन धर्म है'—यह एक ौर प्रत्यक्ष सचाई है। कोई भी इतिहासवेत्ता आज-' अधिक प्राचीन किसी धर्मकी खोज नहीं कर सके । यही सिद्ध होता है कि हिंदू-धर्म ही सब धर्मोंका मूल ान है। सब धर्मोंने किसी-न-किसी अंशमें हिंदू माका ही पान किया है। जैसा कि गुसाईं तुलसीदासजीका वचन । किसान सर वेद निज मते खेत सब सींच।' अर्थात् सरोवर है, जिसमेंसे (भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरोंके पण्डितरूपी किसान लोग अपने-अपने मत (सम्प्रदाय)-को सींचते रहते हैं।

; सिद्धान्तानुसार इस्लामको भी हिंदू माताका ही ना पड़ता है। वैसे तो अनेकों इस प्रकारके ऐतिहासिक . जिनके बलपर सिद्ध किया जा सकता है कि ' आधार ही हिंदू-धर्म है; परंतु विस्तारभयसे इस न उठाकर यहाँ केवल इतना ही बताना चाहता ूलतः हिंदू-धर्म और इस्लाममें वस्तुतः कोई है, दोनों एक ही हैं। इस्लामके द्वारा अरबी सभ्यता-रण होनेके कारण ही दोनों परस्पर भिन्न हो गये हैं। ाविक सिद्धान्त तो यही है कि किसी देशकी सभ्यता कृति पूर्णरूपसे धर्मानुकूल ही हो; परंतु भारतके और किसी भी देशमें इस सिद्धान्तका अनुसरण ा जाता। वरं इसके विपरीत धर्मको ही अपने चलित सभ्यताके ढाँचेमें ढालनेका प्रयत्न किया जाता किसी धर्मप्रवर्तकने सभ्यताको धर्मानुकूल बनानेका या भी तो उसके जीवनका अन्त होते ही उसके ोंने अपने देशकी प्रचलित सभ्यताकी अन्धी प्रीतिके र्मको ही प्रचलित सभ्यताका दासानुदास बना दिया। ्जीके ज्योति-में-जोत समानेके पश्चात् इस्लामके साथ र्ताव किया गया। केवल इसी कारण हिंदू-धर्म ाममें भारी अन्तर जान पड़ता है।

ीन अरबी सभ्यतामें युद्धवृत्तिको विशेष सम्मान इसी कारण जब अरबके जनसाधारणके चित्त ष्कने इस्लामके नवीन सिद्धान्तोंको सहन नहीं किया, े खड्ग और बाहुबलसे दबानेपर उद्यत हो गये—ारिणाम यह हुआ कि कई बार टाल जाने, और लड़ने-भिड़नेसे बचे रहनेकी इच्छा होते हुए भी युद्धका प्रवेश हो गया; परंतु उसका नाम 'जहाद फ उल्ला' अर्थात् 'ईश्वरी मार्गके लिये प्रयत्न' रखकर द्वेषकी बुराइयोंसे शुद्ध कर दिया गया।

श्रीमुहम्मद्जीके स्वर्गगमनके पश्चात् जब इस्ला सभ्यताका अनुयायी हो गया, तब जेहाद ही मुस विशेष कर्तव्य मान लिया गया। इसी अन्ध-श्र विश्वासके प्रभावमें अरबोंने ईरान और अफगानि अपनी धुनमें मुस्लिम बना लेनेके पश्चात् भारतपर बोल दिया। यहाँ अरबोंको शारीरिक विजय तो अव हुई; परंतु धार्मिकरूपमें नवीन इस्लामकी प्राचीन टक्कर हुई, जो अधिक पक्का और सहस्रों शत ंस्कृत होनेके कारण अधिक मजा हुआ था। अ धर्मके युक्ति-युक्त सिद्धान्तोंके सामने इस्लामको परा हुई। इसी सत्यको श्रीयुत मौलाना अल्ताफ हुसैन इन शब्दोंमें स्वीकार किया है—

वह दीने हिजाजीका बेबाक बेड़ा।
निशां जिसका अक्साए आलममें पहुँचा।
मजाहम हुआ कोई खतरा न जिसका।
न अम्मांमें ठटका न कुल्जममें झिझका॥
किये पै सिपर जिसने सातों समुंदर।
वह डूबा दहानेमें गंगाके आकर।

अर्थात् 'अरब देशका वह निडर बेड़ा, जिस विश्वभरमें फहरा चुकी थी, किसी प्रकारका भय मार्ग न रोक सका था, जो अरब और बलो मध्यवाली अम्मांनामी खाड़ीमें भी नहीं रुका ३ लालसागरमें भी नहीं झिझका था, जिसने सातों समु ढालके नीचे कर लिये थे, वह श्रीगङ्गाजीके दहाने डूब गया।'

'मुसद्दए हाली' नामका प्रसिद्ध काव्य, जिसमें उत्त लिखी हैं, आजतक सर्वप्रशंसनीय माना जाता है। इन प किसीने कभी भी आक्षेप नहीं किया। यह इस बातक प्रमाण है कि इस सत्यको सभी मुस्लिम स्वीकार परंतु मेरे विचारमें वह बेड़ा डूबा नहीं, वरं उसने डुबकी लगायी थी। तब अरबी सभ्यताका मल दूर करके

रँग जानेके कारण वह पहचाना नहीं गया।
ाचार-व्यवहार-अनुसार तो हिंदू-धर्म और इस्लाममें
ही नहीं था। अरबी सभ्यता यहाँ आकर उसपर भोंड़ी-
ी लगी; क्योंकि हिंदू-धर्म और हिंदू-सभ्यता एक
ानुकूल हैं और यहाँ सैद्धान्तिक विचारों, विश्वासों
ाचरणमें अनुकूलता होनेके आधारपर ही किसी
सम्मान किया जाता है। अतः इस्लामपर हिंदुओंके
का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि सर्वसाधारणके
यवहारमें कोई भेद-भाव न रहा। यदि विशिष्ट
ः हृदय भी पक्षपातसे उपराम हो जाते तो अरबी
सी भाषाओंके स्थानमें हिंदी और संस्कृतको इस्लामी
साधन बना लिया जाता और अरबी संस्कृतिको
म कल्पित न कर लिया जाता तथा भारतीय
ः माथेपर हिंदू-मुस्लिम-दंगोंका भोंड़ा कलङ्क न लगा
ोंकि वास्तवमें दोनों एक ही तो हैं।

ंतों और संतोंके मार्गमें प्रत्येक सम्प्रदायमें सदासे
द चला आया है। यही दशा इस्लाममें भी है।
आलिम) लोग तो शाब्दिक गोरखधंधोंमें उलझे
विद्याके अभिमानमें—पक्षपातमें अंधे होते हैं। लोक-
ास और रूढ़ियोंके अनुयायी होते हैं। कर्मकाण्डके
नहीं जानते। परंतु संतजन तत्त्वदर्शी होते हैं,
श्रीकृष्णके कथनानुसार—'उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयो-
ाभिः ॥' अर्थात् इन दोनों (सत्य और असत्य)
अन्त तत्त्वदर्शियोंद्वारा देख लिया गया है।
लोगोंसे तो कुछ भी छिपा नहीं। जैसा कि कबीर-
है—

ू तो कहत है पुस्तक-लेखी।
मैं कहता हूँ आँखों देखी॥

कारण संतमतमें मतभेद नहीं होता। मौलाना
मसनवीको पढ़ देखो, गीता और उपनिषदोंके
के कोष भरे हुए मिलेंगे, जब कि मौलाना रूम हिंदू
ाहित्यसे सर्वथा अपरिचित थे। संतमतके सम्बन्धमें
कथन है—

मिल्लते इश्क अज़ हमां मिल्लत जुदास्त।
आशिकां रा मजहबो मिल्लत खुदास्त॥

र्थात् 'भक्तिमार्ग सब सम्प्रदायोंसे भिन्न है।
सम्प्रदाय और पन्थ तो भगवान् ही है।' संतजन
देश, काल और बोलीके बन्धनोंसे मुक्त मानते हैं।
'समझेका मत एक है, का पंडित, का शेख॥' वे
प्रकट करना चाहते हैं। इसीसे जनसाधारणकी बोल
वाणी कहते हैं। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है

का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करै कमाच॥

इसी सिद्धान्तके अनुसार मुसल्मान संतोंने भी कु
शिक्षाको जनताकी बोली अर्थात् हिंदी भाषाके दोह
भजनोंके रूपमें वर्णन किया, तो उसे सबने अपन
क्योंकि उनके द्वारा ही दोनों धर्मोंकी एकता सिद्ध ह
थी। बाबा फरीदके दोहोंको 'श्रीगुरु ग्रन्थ साहब'-जैस
पूज्य धार्मिक पुस्तकमें स्थान प्राप्त हुआ। निज़
औलियाने स्पष्ट कहा है—मीसाक़के रोज़ अल्लाहका
हिंदी ज़बानमें हमकलाम हुआ था। अर्थात् 'मुझे
भेजनेसे पूर्व जिस दिन भगवान्ने मुझसे वचन लि
तो मुझसे हिंदी बोलीमें ही वार्तालाप किया था।'
मुहम्मद जायसी, बुल्लेशाह इत्यादि अनेकों मुसल्मान
हिंदीमें ही इस्लामी सत्यका प्रचार किया, जो आज भ
ही लोकप्रिय है। अरबी भाषाके पक्षपातियोंने ईरान
मुस्लिम देशोंमें भी संतोंकी वाणीके विरुद्ध अ
किया था। मौलाना रूमकी वाणी (मसनवी) क
स्वर्गीय मीर अब्बासने इन शब्दोंमें की है—

ईं किताबे सूफियाने शूम नेस्त।
मसनवीये मौलवीये रूम नेस्त॥

वे अपनी रचना मसनवी मन्नो सलवाका वर्ण
हुए मौलाना रूम और सब सूफियोंको लक्ष्य करके व्य
हैं—'यह (मेरी रचना) अभागे सूफियों (संतो
वाणी नहीं है। मौलाना रूमकी मसनवी नहीं है।'

दूसरे मौलवियोंने मसनवीकी निन्दा करते हुए क

नेस्त जिकरो बहसे इसरार बुलंद।
किह दवानंद औलिया आं सू कमंद॥
जुमला सर तासर फिसानास्तो फिसूँ।
कोदकाना किस्सह बेरूनो दरूँ॥

अर्थात् 'मसनवीमें बहुत ऊँचे विचारों और
उक्तियाँ नहीं हैं कि जिसकी ओर पण्डितलोग ध
सर्वथा किस्से-कहानियाँ ही भरी हुई हैं। अंदर औ
सब बच्चोंको बहलानेकी कथाएँ ही हैं।' इसी प्र
भारतीय मुसल्मान संतोंपर भी मौलवियोंने कुप्र

होनेकी व्यवस्थाएँ) लगाये । इसी खींचातानीका यह हुआ कि वास्तविक इस्लाम न जाने कहाँ भाग लाना हालीने इन शब्दोंमें कहा है—

यह दीं, जिससे तौहीद फैली जहाँमें ।
हुआ जल्वागर हक जमीं आस्मांमें ॥
रहा शिर्क बाकी न वहमो गुमांमें ।
वह बदला गया आके हिंदोस्तांमें ॥
हमेशहसे इस्लाम था जिस पै नाजां ।
वह दौलत भी खो बैठे आखिर मुसलमां ॥

त् 'वह सम्प्रदाय, जिसके द्वारा संसारमें अद्वैत-चार हुआ, और पृथ्वी तथा आकाशमें सत्य ही हो गया, कहीं भी भ्रम बाकी नहीं रहने पाया, वह सम्प्रदाय) भारतमें आकर परिवर्तित हो गया । पत्तिपर इस्लामको सदासे अभिमान था, अन्तमें वह भी खो बैठे ।'

का कारण यह था कि तअस्सुब (पक्षपात)-ने गोंको अंधा कर दिया था । इसकी व्याख्या मौलाना सुनिये । वह कहते हैं—

हमें वाइजोंने यह तालीम दी है ।
कि जो काम दीनी है या दुनयवी है ॥
मुखालिफकी रीस उसमें करनी बुरी है ।
निशां गैरते दीने हक्का यही है ॥
न ठीक उसकी हरगिज कोई बात समझो ।
वह दिनको कहे दिन तो तुम रात समझो ॥

र्थात् 'हमें उपदेशकोंने यह शिक्षा दी है कि धार्मिक सांसारिक—कोई भी काम हो, उसमें विरोधियोंका करना बहुत बुरा है । सत्य धर्मकी लाजका यही कि विरोधीकी किसी बातको भी सत्य न समझो । दिनको दिन कहे तो तुम उसे रात समझो ।'

म गर रहे रास्त[1] पर उसका पाओ ।
तो तुम सीधे रस्तेसे कतराके जाओ ॥
इसमें जो दिक्कतें, वह उठाओ ।
लगें जिस कदर ठोकरें इसमें, खाओ ॥
निकले जहाज उसका बचकर भँवरसे
तो तुम डाल दो नाव अंदर भँवरके ॥
र मसख[2] हो जाए सूरत तुम्हारी ।
बहायममें[3] मिल जाए सीरत[4] तुम्हारी ॥

बदल जाए बिलकुल तबीअत[5] तुम्हारी ।
सरासर बिगड़ जाए हालत तुम्हारी
तो समझो कि है हक[6] की इक शान यह भी ।
है इक जल्वाये नूरे[7] ईमान यह भी
न औजार[8]में तुमसे निस्बत[9] किसीको ।
न इखलाक[10]में तुमपै सबकत[11] किसीको
न हासिल[12] यह खानोंमें लज्जत[13] किसीको ।
न पैदा यह पोशिश[14], यह जीनत[15] किसीको
तुम्हें फज्ल[16] हर इल्म[17] में बरमला[18] है ।
तुम्हारी जहालत[19] में भी इक अदा है
कोई चीज समझो न अपनी बुरी तुम ।
रहो बातको अपनी करते बड़ी तुम
हिमायत[20]में हो जब कि इस्लामकी तुम ।
तो हो हर बदी[21] और गुनहसे[22] बरी तुम
बदीसे नहीं मोमिनोंको[23] मुजर्रत[24] ।
तुम्हारे गुनह और न औरोंकी ताअत[25]

अन्तिम दो पंक्तियोंमें कहा गया—'मुसलमानोंव (यदि वे किसीसे बदी करें तो उनकी) कोई हा तुम्हारे पाप और दूसरोंकी भक्ति दोनों भगवान् स्वी करेंगे !'

मुखालिफ[26] का अपने अगर नाम लीजे ।
तो जिक्र[27] उसका जिल्लत[28] से, ख्वारीसे की
कभी भूलकर तरह[29] इसमें न दीजे ।
कयामत[30] को देखोगे इसके नतीजे
गुनाहों[31] से होते हो गोया मुबर्रा[32] ।
मुखालिफ पै करते हो जब तुम तबर्रा[33]

अन्तिम पंक्तिमें कहा गया—'जब तुम विरोधी देते हो (सताते हो) तो मानो अपने अपराध होते हो !'

---

५. स्वभाव, ६. सत्य (धर्म), ७. धार्मिक शोभा, ८. आकृति, ९. सम्बन्ध, १०. आचार, ११. १२. प्राप्त, १३. स्वाद, १४. वस्त्राभूषण, १५. सम् बड़ाई, १७. विद्या, १८. कुशलता, १९. मूर्खता, २१. बुराई, २२. पाप, २३. श्रद्धालुओं, २४. हानि, २ २६. विरोधी, २७. वर्णन, २८. निन्दा, हीनता, ३०. अन्तिम परिणाम, ३१. पापों, ३२. पवित्र, ३३

मौलवियोंके इन्हीं सिद्धान्तों और बर्तावोंने हिंदू-
को पराया बनानेका प्रयत्न किया, जिसका भयानक
आज विद्यमान है ! नहीं तो, हिंदू-धर्मने कट्टर
बादशाहोंके राज्यमें भी जनसाधारणपर ऐसा प्रभाव
कि मुसल्मान लेखक अपनी हिंदी-रचनाओंमें
य नमः', 'श्रीरामजी सहाय', 'श्रीसरस्वतीजी', 'श्रीराधा-
कृष्णजी सहाय' आदि मङ्गलाचरण लिखनेको कुफ्र
ता) नहीं समझते थे। प्रमाणके लिये अहमदका
, याक़ूबख़ाँका 'रसभूषण' आदि किताबें देखी जा
। अरबीके पक्षपातियोंकी दृष्टिमें भले ही यह पाप
'कुरआन'की आज्ञासे इसमें विरोध नहीं है।

ल्लहु लाइ इलाह इल्ला हुवल्लहुलस्माउ उल्हुस्ना ।

त् 'केवल अल्लाह ही अर्चनीय है, और सब
ा उसीके लिये हैं।'

्लिदूऊ अल्लह अविदूऊर्रहमान अय्यंम्मा तदूऊ
ाउ उल्हुस्ना ।

त् (ऐ मेरे दूत !) कह दे कि उसे अल्लाह कह-
अथवा रहमान (दयालु)—जो इच्छा हो, कहकर
ब अच्छे नाम उसीके हैं।

लिल्लाहिल्अस्माउ उल्हुस्ना फादूऊहुबिहा व ज़रू अल्लज़ीन
क़ीउ अस्माउ इही ।

त् सब अच्छे नाम अल्लाहके लिये ही हैं। इन
कारो और उन लोगोंकी सङ्गति न करो, जो भगवान्-
बिगाड़ते हैं।

ानकी इन्हीं आज्ञाओंको मानकर ईरानके एक
ङ्गलाचरणका यह पद पढ़ा है—

आंकिह कि ऊ नामे नदारद ।
बहर नामे के ख्वानी सर बरारद ॥

ात् उसके नामसे आरम्भ करता हूँ कि जिसका
नहीं है; अतः जिस नामसे पुकारो—काम चल

पक्षपाती और कट्टर मौलवी ऊधम न मचाते, संसार
जाता। क्योंकि हिंदू-धर्मके पवित्र प्रभावसे मँज-
म चमक उठा था। सत्याग्रही और न्यायशील
ो तो मुसल्मान शब्दको भी 'हिंदू' शब्दका समर्थक
इसी कारणसे सर सय्यद अहमदख़ाँने कई बार

लिया जाय, जिसपर उन्हें अपने लिये काफ़िरकी
ग्रहण करनी पड़ी।

यदि दोनों धर्मोंमें सैद्धान्तिक एकता सिद्ध न
तो निबन्ध अधूरा रह जायगा; परंतु वास्तवमें
आवश्यकता ही नहीं; क्योंकि जैसे हिंदू-धर्म कि
सम्प्रदायका नाम नहीं है, वरं मानवधर्मके अनुयायी सभी
हिंदू कहलाते हैं—कारण कि मानव-धर्मका ही एक न
धर्म भी है, और ईश्वरके अस्तित्वको न माननेवा
समाज-जैसे सम्प्रदाय भी हिंदू ही कहलाते हैं—उसी
इस्लाममें भी अनेकों सम्प्रदाय विद्यमान हैं। ख़ुदा
(ईश्वरका अस्तित्व) न माननेवाला नेचरी फ़ि
मुसल्मान ही कहलाता है। कारण कि इस्लाम भी म
ही है; कुरआन ही इसकी साक्षी देता है, जो अनेकों
पर पुकार-पुकारकर कहता है 'याअयुहन्नास-
'ऐ मनुष्यो !' वरं कुरानका एक नाम—ब्यानन्नास
मनुष्योंका वर्णन भी है।

पक्षपाती और कट्टर मुसल्मानोंको जिस तौहीद (
पर सबसे अधिक अभिमान है और जिसे इस्ला
विशेषता माना जाता है, उसके विषयमें जब हम कु
यह आज्ञा देखते हैं—

कुल आमन्ना बिल्लाहि व माउंज़िल अ़लैना व मा उंज़ि
इब्राहीम व इस्माईल व इस्हाक़ व यअ़क़ूब वालस्बाति व
मूसा व ईसा वन्नबीय्यून मिर्रबिहिम ला नुफ़र्रिकु बैन अह
व नह्नु लहु मुस्लिमून ।

अर्थात् (ऐ मेरे दूत ! लोगोंसे) कह दो कि हम
पर विश्वास कर लिया और जो (पुस्तक अथवा वाणी) हम
है, उसपर और जो ग्रन्थ इब्राहीम, इस्माईल, इसहाक़
और उसकी सन्तानोंपर उतरी, उसपर भी तथा मूसा,
(इनके अतिरिक्त) अन्य नबियों (भगवान्से
करनेवालों)-पर उनके भगवान्की ओरसे उतरी
सबपर (भी विश्वास रखते हैं) और उन (पुस्त
नबियों)मेंसे किसीमें भेद-भाव नहीं रखते,
उसी एक (भगवान्) को मानते हैं।

—और इस आज्ञाके अनुसार तौहीदको समझने
हिंदू-सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करते हैं, तो जान पड़ता है कि
लोग तौहीदको जानते ही नहीं। यदि जानते
स्वर्गीय स्वामी श्रीश्रद्धानन्द, महाशय राजपाल

ही बनता। पंजाब और बंगालका घृणित हत्याकाण्ड
में न आता। यदि मौलाना रूमके इस पदपर
स होता कि—

चूं बदर करदम यके दीदम दो आलिम रा।
बीनम यके जोयम यके ख़ानम यके दानम॥

त् 'जब मैंने द्वैतको मनसे निकाल बाहर कर
व दोनों लोकोंको एक ही देखा। अब एक ही
, एक ही ढूँढ़ता हूँ। एकको ही भजता हूँ
को ही जानता हूँ।' यह है वास्तविक तौहीद
, जैसा कि रामायणमें भगवान् शंकर मा पार्वतीजी-
हैं—

जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

, जहाँतक मैंने खोज की है, मौलवियाना इस्लाममें यह
दिया' लेकर ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलती; हाँ, संतोंके
इसीका नाम तौहीद है।

आज़ार कसे व हर चिन्ह ख़ाही कुन।
दर तरीक़ते मन गैर अज़ीं गुनाहे नेस्त॥

त् 'किसीको दुःख देनेके अतिरिक्त और तेरे जीमें
भी आये, कर; क्योंकि मेरे धर्ममें इससे बढ़कर
पाप ही नहीं।'

दिल बदस्तारद कि हज्जि अकबरस्त
अज़ हज़ारां कआबा यक दिल बेहतरस्त

अर्थात्—दूसरोंके दिलको अपने वशमें कर
काबाकी परम यात्रा है; क्योंकि सहस्रों काबोंसे
ही उत्तम है। कुरआनमें भगवान्‌ने बार-बार क

इनल्लाह ला यहुब्बुल्ज़ालिमीन (अथवा मुफ़्सिदीन—

अर्थात् भगवान् अत्याचारियों (अथवा फि
से प्रसन्न नहीं होता।

शेख सादीजीने तो यहाँतक कहा है—

बनी आदम आजाए यक दी गरन्द
कि दर आफ़रीनद ज़ि यक जौहर अन्द

अर्थात् आदि उत्पत्तिमें एक ही तत्त्वसे उत्प
कारण सब मनुष्य एक दूसरेके अङ्ग हैं। एक
भी आया है—

अल्ख़ल्कु इयालु अल्लाहि फ़ा हुब्बुलख़ल्क इला
मनहसन इला इयालिही।

अर्थात् सब प्राणी भगवान्‌के कुटुम्बी हैं
प्राणियोंसे भगवान्‌के लिये ही अच्छा वर्ताव करो
अच्छा कि अपने कुटुम्बवालोंसे करते हो। इस इस
हिंदू-धर्ममें कोई भेद नहीं।

दो चित्र

(रचयिता—कुँवर श्रीहरिश्चन्द्रदेवजी वर्मा 'चातक' कविरत्न, साहित्यालङ्कार)

स्कृतिके निर्माणकर्ता महाराणा प्रतापकी प्रतिज्ञा

हे सुधाकर उतर नभसे
अग्नि बरसाने लगे—
हे दिवाकर शीत हो
निशि सौख्य सरसाने लगे—
हे महीको दे डुबा
तज सिन्धु निज मर्यादको—
हे भले ही भूल जाये
सिंह भीषण नादको—
हे गगनमें सुमन सुन्दर
सुरभियुत खिलने लगें—

तो भी नहीं पीछे पड़ेगा
पाँव बीर प्रतापका
होने न दूँगा मैं कलङ्कित
नाम अपने बापका

हिंदू-संस्कृतिके ध्वंसकर्ता राजा जयच आत्म-ग्लानि

जय-चन्द्र मत मुझको कहो,
मैं तो कलङ्कित चन्द हूँ
मैं हूँ पराभव देशका—
मैं भाग्य उसका मन्द
धिक्कार दो मुझको कि
पृथ्वीराज ...

हिंदू-संस्कृति और सिक्ख-सम्प्रदाय

(लेखक—ज्ञानी संतसिंहजी प्रीतम, बी० ए०, बी० टी०, हिंदीप्रभाकर)

-संस्कृति एक धारा है, जिसका प्रवाह सृष्टिके जन्मसे
ारूपसे चल रहा है। इस प्रवाहको रोकनेवाले स्वयं
ावाहमें बह गये। हिंदू-धर्म या भारत-धर्म एक
जिसमें भक्ति, योग, कर्म, उपासना, ज्ञान इत्यादि
विद्यमान हैं। मुगल-साम्राज्यके समय हिंदू-संस्कृतिकी
लये भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे एक भक्तिकी
ी। पंजाबमें इसके जन्मदाता बाबा नानक हुए।
ापनी तपस्या, भक्ति और ज्ञानके प्रभावसे हिंदू-
ा सिक्का मक्का, बगदाद तथा दूसरे देशोंमें भी
उस समयकी दशाका वर्णन स्वयं गुरुजी इन
करते हैं—

काती राजे कसाई धर्म पंखकर उडि रया।
अमावस सच चंद्रमा दीसे नाहीं कहि चढ़िया॥

ा गणेशसिंहजी वेदी अपनी रचित नानक-जन्म-
गुरुजीके जन्मका हेतु इसी प्राचीन विचारधाराकी
ाते हैं—

ाश भयो नृप हिंदुन, फैल पर्‌यो जगमें तुरकाना।
ादिक पातक पुंज सु होन लगे उतपात महाना॥
ाम गयो छपि कै, कलि काम औ क्रोध भयो परधाना।
ो मति अंध महा, निरखै न कछू न सुनै कछु काना॥

ार सङ्कट देख गुरु गोविन्दसिंहजीने इस भक्ति-
ो एक शूरवीरोंकी सेनामें परिणत किया। इनको
भारतीय संस्कृतिका रक्षक बनाया। यह सम्प्रदाय
ाचास वर्ष पहलेतक अपने-आपको देशकी स्थायी
ाता था। परंतु विदेशियोंकी कुटिल नीतिके चक्करमें
ा राज्यसत्ताके लोभसे कुछ सिक्ख भाई अपने-
पृथक् मानने लगे। गुरु तेग़ बहादुरजीने हिंदू-
ो रक्षाके लिये ही देहलीमें शीश दिया था; उस
यं गुरु गोविन्दसिंहजी दसम ग्रन्थमें लिखते हैं—

तेलक जञ्जू राखा प्रभु ताका।
कीन्हा बड़ा कलूमें साका॥
ाधन हेतु इती जिन करी।
सीस दिया, पर सी न उचरी॥

ग्रन्थसाहिबमें लिखा है कि यदि सुन्नतसे ही पुरुष
मुसलमान होता है तो स्त्री मुसलमान नहीं हुई। अर्द्ध
तो छोड़ दिया गया। भई, हम तो हिंदू ही भले।

सुन्नत किये मुसलमान जे होयेगा, औरतका क्या करि
अर्द्ध शरीरी नार जो त्यागी, ताते हिंदू ही रहि

हिंदू-धर्मकी जाग्रतिके लिये काली मैया भगवती
प्रार्थना करते हैं—

सकल जगतमें खालसा* पंथ गाजै।
जगै धर्म हिंदुन, सकल धुंध भाजै॥

हिंदू-धर्मके मुख्य-मुख्य अङ्गोंका प्रतिपादन
लिये यदि गुरु ग्रन्थसाहिबसे प्रमाण दिये जायँ तो
ही हिंदू-संस्कृति-अङ्क बन जाय; परंतु नीचे हिंदू-धर
विषयोंका प्रतिपादन गुरुसाहिबकी निज रचनाओंसे किय

१. ओंकार-महिमा

ओंकारकी महिमा शास्त्रोंमें भूरि-भूरि गायी
इसे सब मन्त्रोंका सेतु माना गया है—'मन्त्राणां प्रणव
इसी प्रकार गुरु ग्रन्थसाहिबका आरम्भ भी एक ओंक
है—जैसे एक ओंकार सत्त नाम कर्ता पुरुष इत्यादि।

हरि जू सदा ध्याए तू गुरु मुख एक ओंका
ओंकार ब्रह्मा उत्पत, ओंकार बेद निर्मा
जल थल महिथल पूरिया स्वामी सिरजनहा
अनिक भाँति होइ पसरिया नानक एक ओंका
ओम् अख्खर सुनहु बिचार, ओम् अख्खर त्रिभुवन सा
प्रणवो आदि एक ओंकारा, जल थल महियल कियो पसा

२. गौ-महिमा

गुरु गोविन्दसिंहजीकी प्रतिज्ञा

(च्छके छन्द पातशा

यही देह आज्ञा, तुर्क गहि खपाऊँ।
गऊ घातका दोख जग सो मिटाऊँ
यही आस पूरण करौ तुम हमारी।
मिटै कष्ट गौअन, छुटै खेद भारी
ब्राह्मण-गौऊ-वंश-घात अपराध करारे
(ग्रन्

* खालसा पंथ अर्थात् शुद्ध मनुष्यताका पथ दिखानेवा

गवादिक पातक पुंज सु होन लगे उत्पात महाना ।

(जन्मसाखी)

३. अवतारवाद

गोविन्दसिंहजी ईश्वरके अवतारका हेतु दसम ग्रन्थमें
त्ववाक्से करते हैं—

होत अरिष्ट अपारा । तब तब देह धरत करतारा[1] ॥
रूप अनन्तन धरहीं । आपन मध्य लीन पुन करहीं ॥

सारकी रचना और भगवतीका प्रादुर्भाव

गोविन्दसिंहजी दसम ग्रन्थमें लिखते हैं—

प्रथम काल सब जगको ताता,
तातें तेज भयो विख्याता ।
सोई भवानी नामु कहाई,
जिन यह सगली सृष्टि बनाई ॥

५. कर्म और ज्ञानका मेल

साहिब—

फलके कारण फुली वनराए ।
फल भया तो फूल बिलाए ॥
ज्ञानके कारण कर्म अभ्यास ।
ज्ञान भया तो कर्मै नाश ॥

६. तीर्थ-महिमा

तीरथ, तप्प, दया दतु दान ।
जे को पावे तिलका मान ॥

(जपुजी)

स्नान, तपस्या, दया और दान इत्यादिका फल
करनेसे मन[2] हो जाता है। तथा—

रथ व्रत और दान कर मनमें धरे गुमान ।
नक निष्फल जात है ज्यों कुंजर अस्नान ॥

(ग्रन्थसाहिब)

—

तीर्थ नहावाँ, जे तिस भावाँ,
बिन भाने क्या नहाये करी ।

(ग्रन्थसाहिब)

न तीर्थोंमें इसी लिये नहाते हैं कि जिससे उसके
बनें; उसके प्रिय नहीं बने तो नहाकर क्या किया ।'

---

[1] ईश्वर । [2] चालीस सेरका मन ।

७. श्राद्ध-महिमा

आप ने देहि चुलू भर पानी,
तेहि निंदहिं जे गंगा आनी ।

(ग्रन्थ

कलिमें ऐसे पुरुष भी हैं, जो स्वयं अपने पूर्वज
एक चुल्लूभर जल नहीं दे सकते; परंतु उस राजा भ
निन्दा करते हैं, जिसने पूर्वजोंके उद्धारके लिये
अवतरण किया ।

८. वेदान्त

ईश जीवमें भेद न जानो ।
साधु, चोर सब ब्रह्म पहचानो ॥
हसती चींटी तृण लों आदं ।
एक अखंडत बसै अनादं ॥
चाप ज्ञान कर जाहि बिराजै ।
छाया द्वैत सगल उठ भाजै ॥
लिवलीन भये आतम मध्य ऐसे ।
ज्यों जल जलहि भेद कहु कैसे ॥
वासुदेव बिन अवर न कोऊ ।
नानक ओं सोऽहं आतम सोऊ ॥

(गुरु

९. योग

प्रभुके सिमरन निश्चल आसन ।
प्रभुके सिमरन कमल विगासन ॥
प्रभुके सिमरन अनहत झुंकार ।

(ग

झुनतकार अनहद घनघोरं ।
त्रिकुटी भीतर अति छब जोरं ॥
जानत योगी इह रस बाता ।
सोऽहं शब्द अमी रस माता ॥

(पैंतीस

१०. राम-महिमा

सिक्ख-सम्प्रदायकी नींव ही राम-नाम है । गु
साहिबमें स्थान-स्थानपर राम-नामकी महिमा लि
राम तो गुरु नानकजीके पूर्वज ठहरे । गुरु नानकज
वंशावली लिखते हैं—

सूरजवंशी रघु भया, रघुकुल वंशी राम
रामचंद्र के दोए सुत, लऊ कुशू तहि नाम

ह हमारे बड़े हैं जुगां-जुगां अवतार ।
सखा सब तज गये, कोऊ न निबहो साथ ।
नानक इस विपतमें टेक एक रघुनाथ ॥
सब ते ऊँच राम परकाश ।
निस बासर जप नानक दास ॥
राम नामं महा मंत्रं ।
न ओ मरें न ठागे जाहिं ॥
जिनके राम बसे मन माहिं ।

रामायण-महिमा दसम ग्रन्थसे

कथा जुग-जुग अटल सब कोउ भाखत नेत ।
िवास रघुवर किया सगली पुरी समेत ॥
जो यह कथा सुने अर गावे
दूख पाप तह निकट न आवे ।
वेष्णु-भक्तकी यह फल होई
आधि ब्याध छ्व सके न कोई ॥

११. कृष्ण-महिमा

ाकी वार—
एक कृष्णं सर्वं देवा देव देवात आत्मः
आत्मं श्रीवासुदेवस्य जे को जानस भेव
नानक ताका दास है, सोई निरंजन देव ॥
गोपी, आपे कान्हा, आपे गऊ चरावे वाना ।
उपावे, आप खपावे, तुध लेप नहीं इक तिल रंगा ॥
(ग्रन्थसाहिब)

ीलाकी समीक्षा करते हुए गुरु नानकजी लिखते प्रभु कृष्ण! आप ही गोपी हो, आप ही कृष्ण हो। गौ हो और आप ही गौ चरानेवाले हो। आप ही रके कर्ता और संहारक हो, परंतु इसमें आप ं।

हरि-हरि करत पूतना तरी,
बाल-घातनी कपटहिं भरी ।
सी कंस मथन जिन कीया,
जीय दान कालीको दीया ।
णवे नामा, ऐसो हरी,
जास जपत भय-अपदा टरी ॥
(ग्रन्थसाहिब)

म ग्रन्थमें गुरु गोविन्दसिंहजी कृष्ण-स्तुति लिखते हैं—

पापनके तेउ पातकमें,
कविशाम भनै, कबहू न जरैंगे
चिन्त समै मिटहै जु रही,
छिनमें तिनके अघवृन्द टरैंगे
जो नर श्याम जुके परसे पग,
ते नर फेर न देह धरैंगे

दसम ग्रन्थमें गुरु गोविन्दसिंहजी-कृत मुरल

यह कविता प्रकृतिमें भी रस पैदा कर रही
रूखनं ते रस चूवन लाग, झरै झरना गिरि ते सुख
वास चुगै न मृगा बनके; खग रीझ रहे, धुन जा सुन
देवगँधार बिलावल सारँगकी रिझ कै जिह तान बस
देव सभै मिल देखत कौतक, ज्यौं मुरली नँदलाल बज

१२. भगवती-महिमा

च्छके गुरु गोविन्दसिंहजी—

नमो उग्रदन्ती अनन्ती सवैया,
नमो जोग-जोगेश्वरी जोगमैया
नमो केहरी-वाहनी शत्रु-हंती,
नमो शारदा ब्रह्मविद्या पढ़ंती
नमो ऋद्धिदा, सिद्धिदा, बुद्धि-दैनी ।
नमो कालके कालको काल-छैनी ।
नमो ज्योति-ज्वाला तुम्हें वेद गावै ।
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावै ।

१३. नाम तथा भक्ति-महिमा

बसंत महला ५ घर १,
सुन साखी मन! जप प्यार,
अजामल उधरिया कहि एक बार ।
बालमीकि होया साधू संग,
ध्रूको मिलिया हरी निसंगु ।
तेरियाँ सन्तां याचों रेन,
ले मस्तक लावों करि कृपा देन ।
गणिका उधरी, हरि कहै तोत,
गजेन्द्र ध्यायो, हरि कीयो मोख ।
विप्र सुदामे दालदु भंज,
रे मन! तू भी भजु गोविन्द ।

१४. यममार्गका वर्णन

साहिब—

मात पिता सुत मीत न भाई,
मन ! उहाँ नाम तेरै संग सहाई ॥
महा भयान दूत यम दलै,
तह केवल नाम तेरै सँग चलै ।
मारग एह जात इकेला,
तह हरका नाम सँग होत सुहेला ॥
मारगके गने जाहि न कोसा,
हरका नाम उहाँ संग तोसा ।
जिह पैंडमें अन्ध गुबारा,
हरका नाम संग उजयारा ॥
जह महा भयान तपत बहु घाम,
तह हरके नामकी तुम उपर छाम ।
सभ ते उत्तम हरिकी कथा,
नाम सुनत दारद दुख लथा ॥

गुरुजीके इन शब्दोंसे मैं इस लेखको समाप्त और अपने सिक्ख भाइयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि मूलको न भूलें और अपने देश तथा संस्कृतिके रक्षक

काल तुही, काली तुही, तुही तेग़ अर ती
तुही निशानी जीतकी, तुही आज जग बीर

संस्कृति-सौष्ठव

(रचयिता—विद्याभूषण कविवर श्रीओंकारजी मिश्र 'प्रणव'शास्त्री, सं० उपाध्याय)

प्रभा-प्रतिभाके पुञ्ज प्रधान, ईशके वैदिक वन्द्य विधान।
आर्य (हिंदु) संस्कृति हे अखिल-उदान, विश्वमें तेरा जय-जय-गान ॥ १ ॥
'प्रणव'के नैगम नव्य-निनाद, महामुनि मङ्गलमय मर्याद।
साधना-सुषमाके संवाद, सृष्टिके श्रेयस्कर पन्थान ॥ २ ॥
अलौकिक आलोकोंके लोक, शोकके हर्ता मञ्जु अशोक।
अवनि बन जाये तेरा ओक, सुधा-धाराका कर-कर पान ॥ ३ ॥
स्वऋग्-यजु-साम-अथर्वाधार, ज्ञानयुत कर्मोंका विस्तार।
उपासनका हो प्रचुर प्रचार, बढ़े वर वेद-विटप-विज्ञान ॥ ४ ॥
साङ्ख्य, मीमांसा, न्याय, नितान्त, योग शुभ वैशेषिक, वेदान्त।
कर रहे शङ्काओंको शान्त, त्रित्वका देकर प्रबल प्रमाण ॥ ५ ॥
समुज्ज्वल सूत्रोंका सञ्चार, सुखद शुचि स्मृतियोंका अवतार।
उपनिषद्वीणाकी झङ्कार, सुनाती 'श्रेय प्रेय'की तान ॥ ६ ॥
अमर युग-दीपक लोक-ललाम, प्रकाशित जहाँ राम, घनश्याम।
धरामें सर्वोन्नत, अभिराम, सरलतासे सिञ्चित-उद्यान ॥ ७ ॥
उदधि सम ज्ञान-राशि गम्भीर, हिमाचल-सी यह अविचल धीर।
गङ्ग सम पावन तारन तीर, भर रही लोकोंमें कल्याण ॥ ८ ॥
दे रही शान्ति-सौख्य-सन्देश, सर्गके सभी दूरकर क्लेश।
विश्व-बन्धुत्व, वीरता देश, देशको देती है वरदान ॥ ९ ॥
विचरते जीव जहाँ स्वच्छन्द, न होता जगज्जन्य दुख-द्वन्द्व।
मुक्ति-महलोंकी वीथि बुलंद, बताते स्वयं वेद भगवान ॥ १० ॥
पानकर चारु चन्द्रिका प्यार, धर्मसे धवलित हो संसार।
उड़े नभमें गुरु-गौरव धार, हिंदु (आर्य) संस्कृतिका विशद विमान ॥ ११ ॥

भारतीय संस्कृतिका शत्रु—गंदगी

(लेखक—बाबा श्रीराघवदासजी)

तीय संस्कृतिमें स्वच्छताका सर्वप्रथम स्थान है । शुद्धताके लिये वाणीकी शुद्धताके साथ शरीर और तथा आसपासके वातावरणकी स्वच्छताका सदा खा गया है । हमारे समाजमें न केवल प्रातःकाल वश्यक था; बल्कि आजकलकी भाँति उठकर बिछौना- ed-tea) लेना नहीं—उठते ही शौच, मुखमार्जन, , स्नानादि नित्यक्रियाएँ आवश्यक थीं और आज अधिकांश भारतीय आवश्यक समझते हैं । त्रिकाल- पासना—ये हमारे जीवनके अङ्ग थे । गृहदेवियाँ उठते वं बाहरका स्थान झाड़ूसे स्वच्छ करके यहाँ पानीसे करती थीं । शौचके लिये दूर जंगलमें जाना, मलको ानेके लिये खुरपीका उपयोग, हवन, पुष्पोंका उपयोग बातें स्वच्छताके लिये ही थीं । रोज बर्तन मलना, ा, अलग थालीमें भोजन, पानीके लिये सबके लग पात्र आदि स्वच्छताकी पूर्णताके लिये ही थे । ा धोतियोंका उपयोग हमारे समाजमें इसीलिये है कि धोया जा सके । इस स्वच्छताके कारण ही भारतीय चिरस्थायी हो सकी । स्वच्छता ही इसका प्राण है ।

े हम गुलाम हुए, स्वच्छताकी ओर हमारा दुर्लक्ष्य । हमने विदेशियोंसे स्वच्छतासम्बन्धी कम बातें र उनका स्नान न करना, देरसे सोकर उठना, बिछौनेपर चाय पीना, धूम्रपान, स्नान-ध्यानका रना हमने सीख लिया । इसीसे महात्मा गान्धीजी- ने अपनी शिक्षा-पद्धतिमें सर्वप्रथम स्थान सफाईको ुचिताके बिना मनकी प्रसन्नता कहाँ ? और उसके ा कैसी ? इसीलिये तो महात्माजीको भंगीका काम ने सर्वप्रथम पाया, जो काम स्वच्छताकी जड़ है ।

आज स्वच्छताके अभावमें हमारे गाँव न केवल गंदे हैं, और उनमें चारों ओर पेशाब, कूड़ा, मल देता है; बल्कि भीतर भी गंदी नालियों, नाबदानों की दुर्गन्धि उनमें भरी होती है । इसके कारण हमा रोग-दुःखमय हो गया है । प्लेग तो गंदगीसे पैदा है; हैजा, काला ज्वर, चेचक, मलेरिया आदि बीमारियाँ इसी गंदगीसे उत्पन्न होती हैं । इन मह प्रतिवर्ष लाखों स्त्री-पुरुष और बच्चे मृत्युके शिकार यदि थोड़े-से लोग अकालमें मरते हैं, यदि कुछ ह साम्प्रदायिक दंगोंमें मारे जाते हैं तो हम उबल पड़ते इन महामारियोंने जो कहर ढाया है, उसे हम नहीं । गत वर्ष श्रीअयोध्याजी-ऐसे तीर्थस्थान होकर हैजेने केवल बस्ती जिलेमें हजारों स्त्र अल्पकालमें कालके द्वारपर भेज दिया । सन् १९१८ ज्वरने साठ लाख स्त्री-पुरुष एवं बालकोंकी भेंट ली गंदगीके कारण । इसी प्रकार यह गंदगी अने प्रतिवर्ष लाखों प्राणोंकी बलि लेती है । तीर्थस्थानों कुष्ठ रोग फैलानेके लिये हमारे देशमें प्रख्यात है ।

जहाँ यह गंदगी एक ओर इतना अनर्थ करत दूसरी ओर यदि उसे ठीक सँभालकर उपयोगमें ि तो वह खादके रूपमें धरती माताकी खुराक है—भ उसीसे श्रीमाता अन्नपूर्णा प्रसन्न होती हैं । आज अन्नका दुर्भिक्ष इस समय अन्नपूर्णाकी अकृपासे ही तो है

सबेरेका भूला यदि शामको घर आ जाय तो कहा जाता । इसी प्रकार यदि हम अब भी इस गंदगीको दूर हटानेमें लग सकें तो हमारे पूर्वज हमें आशीर्वाद देंगे ! वह आशीर्वाद होगा सदु सदुद्योग करनेकी क्षमता ।

सभी निर्मल और पवित्र हों

जीवन, तन, मन, वचन, धन, भोजन, जन-व्यवहार ।
अति निर्मल सुपवित्र हों, वस्तु सभी आचार ॥

—'अकिञ्चन'

भारतीय शिक्षाका आदर्श

(लेखक—पं० श्रीरामदत्तजी शुक्ल, एम्० ए०)

ह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
ावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै। (कठ०)

ासे अमृतत्वकी उपलब्धि और अविद्यासे सब प्रकार-
की प्राप्ति होती है। इस शाश्वत शास्त्रीय तत्त्वको
करनेवाले वेदमहर्षियोंने धर्म, अर्थ, काम और
पुरुषार्थचतुष्टयको अधिगत करनेके लिये अन्य
ानुष्ठानोंसे पूर्व संस्कार और शिक्षापर विशेष बल
क्योंकि 'संस्कारदोषादिन्द्रियदोषाच्च अविद्या'—
ोष और इन्द्रिय-दोषके कारण अविद्या उत्पन्न होती
ाविद्यासे ही अभिभूत होकर मनुष्य अनेक प्रकारके
वं पापोंकी ओर अग्रसर होता है। अविद्याजनित
ा समस्त विघातक प्रवृत्तियोंसे परिरक्षित रखते हुए
त समस्त उन्मुखी प्रवृत्तियोंकी ओर प्रेरित करते
ये जो चिरकालिक सत्र है, उसीको शिक्षा कहा
इस सत्रकी सफल और पूर्ण समाप्तिपर पुरुषार्थ-
उपलब्धिके अनुरूप विद्या-व्रत-स्नातकरूपमें
ा सर्वशक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंका विकास ही भारतीय
प्रयोजन है।

ातीय शिक्षासत्रको मुख्यतया तीन श्रेणियोंमें विभाजित
ा सकता है—प्रथम माताके प्रभावसे होनेवाली
ार संस्कार, दूसरी पिताके प्रभावसे होनेवाली और
ाचार्यके प्रभावसे होनेवाली शिक्षा। यों तो गर्भाधानकी
र्व भावी माता और पिता दोनोंके लिये ही विद्या एवं
क बनकर अविप्लुत ब्रह्मचर्य-साधना करना आवश्यक
के आदर्श सन्तान उत्पन्न करनेके लिये ही एक
ाँ भगवान् मनुका उत्कृष्ट अनुशासन यह है कि—

ानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
वेप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥

-वहाँ उस आदर्शके परिपालनार्थ भगवान् श्रीकृष्ण
नकी पत्नी रुक्मिणीकी श्रेष्ठ साधना देखिये—

ाचर्यं महद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
मवत्पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥
ानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
त्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

(महा० सौप्तिक १२। ३०-३१)

इस उग्र साधनाके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृ
रुक्मिणीने प्रद्युम्नको प्राप्त किया। इस उदाहरणसे स्पष्ट है
माता-पिताकी गर्भावस्थाके पूर्व संस्कारबलोपेत सन्तान
करनेके लिये किस प्रकारकी साधना करना आवश्यक
साधना सम्पन्न होनेके उपरान्त नौ मास माताके गर्भमें
बालक या बालिकाका न केवल शरीर ही निर्मित होता
प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि-आदि समस्त अ
शक्तियोंका विकास अथवा विनाश माताके
भावनाओं, चेष्टाओं, संकल्पों और व्यवहारोंके
होता रहता है। संस्कार और शिक्षा—दोनों
शक्तियोंसे सुसम्पन्ना माताएँ अपने गर्भस्थ बाल
विकासके हेतु असाधारण सावधानीके साथ अपने
मासिक जीवनकालको अनेक व्रतों और नियमोंके
व्यतीत करती हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टासे बालकका स्वर
वित होगा—इस दृष्टिसे संकल्प, भावना और विच
क्षुद्रता, निम्नता अथवा पतनोन्मुख प्रवृत्तियोंको कि
आश्रय नहीं देतीं। गर्भाधान, पुंसवन और
न्नयनपूर्वक उदीयमान शिशुका जन्म होता है
'वेदोऽसि' इस पवित्र मन्त्रसे सर्वप्रथम सम्बोधित व
पिता-माताके द्वारा उत्पादित शिशुकी सुशिक्षाक
जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, कर्णवेध
कर्मादि संस्कारोंके समयमें होता रहता है। माताके
सतत रहते हुए भी समय-समयपर पिताके साक्षात्
सदुपदेश और सुशिक्षासे वंशानुगत संस्कारजन्य उ
शक्तियोंका विकास बालकमें होने लगता है। बालककी
प्रवृत्ति, अभिरुचि और चेष्टाओंसे प्रकट होने लग
अब उसको अपने भावी जीवन-निर्माणके लिये किस
आचार्यकी आवश्यकता है। अत्यन्त तेजस्वी बाल
वर्षकी आयुमें, किंतु अन्य प्रकारके बालकोंका आ
आयुमें अनुकरणीय-चरित्र आचार्यके द्वारा उपनय
करनेका विधान शास्त्रकार मनोवैज्ञानिक आधारपर
यह उपनयन-संस्कार उपवासपूर्वक करनेका विधान है।
तया उपवासका अर्थ अनाहार और उपनयन
समारोहके साथ तीन तागेका सूत्र या यज्ञोपवीत धार
मात्र समझा जाता है। वस्तुतः दोनों शब्दोंमें उप

ाप्य है; समान है; और वस् एवं नी—इन दोनों
' भी 'रहना' तथा 'लाना' लगभग समानार्थ ही है।
दोंमें आचार्यका सामीप्य इतना घनिष्ठ हो जाय कि
र माताकी भाँति अन्तेवासी एवं आचार्यमें अभेद
ने लगे। इतना ही नहीं, अपितु माता और पिता
भिन्न एकत्वकी प्रतिष्ठा आचार्यमें हो जाती है। इसी
म्बन्धको आथर्वण श्रुतिने अपने अमर शब्दोंमें इस
क्त किया है—

उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

बालकका आचार्य उपनयन करता है, उसको तीन
। अपने गर्भमें परिरक्षितरूपमें रखता है और इस
चार्यके गर्भमें परिपालित होकर जायमान गुणोपेत
ो अवलोकन करनेके लिये अनेक प्रकारके देवगण
वस्तुतः जो ब्रह्मचारी अपने आचार्यकी अनुकम्पाका
अपनेको भाजन बनानेमें समर्थ होता है और
चरणोंमें बैठकर उनके अनुकरणीय चरित्रसे
वेत्र जीवनसे अनुप्राणित होनेका सुयोग प्राप्त
क्षमता अपने संस्कारजन्य जीवनमें रखता है,
ारम्भसंस्कारसे संस्कृत होकर समावर्तन-पर्यन्त
ून द्वादशवर्षव्यापी ब्रह्मचर्यके घोर व्रतका
करके पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धिके निमित्त 'आयु-
हि, अमृतत्वमाचार्याय' इस श्रुतिवाक्यको कहनेका
बन जाता है। आचार्यके आश्रममें, पर्वत और
भूपित सरिताके सान्निध्यमें, ओषधि, वनस्पति,
वीरुध्, गवादि पशुसङ्घके मध्य सूर्य, चन्द्र,
ग्नि, वायु, जल और आकाशके प्रभावसे प्रभावित
कह सकता है—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः,
पुत्र हूँ, भूमि मेरी माता है।' इन्हीं पवित्र आर्य-
आश्रमोंमें विकासोन्मुख ब्रह्मचारी पवित्र पावमानी ऋ
आत्मसात् करनेका अभ्यास करता है; और ऐसे अ
लिये, 'तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्' यह
कामधेनु बनकर चारों पदार्थोंको अनायास प्रस्तुत क
इस प्रकारसे जब शिक्षा-सत्र सम्पन्न होता है, तब आच
अन्तेवासी दोनों सगर्व एवं यथार्थ कह सकते हैं—

सह नौ अवतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं क
तेजस्वि नौ अधीतमस्तु, मा विद्विषावहै॥

अर्थात् हम दोनों परस्पर एक दूसरेकी रक्ष
अधिगत विद्याप्रसादको परस्पर मिलकर उपभोग करें
मिलकर अविद्यान्धकारको दूर करनेके लिये प्रयत्न क
दोनोंके द्वारा अधिगत विद्या तेजस्विनी हो और ह
परस्पर कभी किसी प्रकारसे द्वेष न करें। इस श्रु
में दिये हुए पाँच प्रयोजनोंको जब कभी जहाँ कहीं
और अन्तेवासी पारस्परिक व्यवहारमें लानेमें समर्थ
वहीं प्राप्त विद्या वस्तुतः वीर्यवती होकर वि
अविच्छिन्नरूपसे अमर बनाती है, आचार्य और
दोनोंकी साधना सफल होती है।

शिक्षासत्रके पूर्ण होनेपर आचार्यका अपने
अन्तेवासीके लिये उपदेश होता है—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
प्रमदितव्यं धर्मान्न प्रमदितव्यं कुशलान्न प्रमदितव
न प्रमदितव्यं स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव
पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेव
आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। (तैत्तिरीय० शि

जबतक यह आदर्श शिक्षासत्र भारतके आचार
ब्रह्मचारियोंमें अनुष्ठित होता रहा, तबतक भारतमें
और निःश्रेयस दोनोंकी समुचित उन्नति होती रही।

हिंदू-देवियोंका बलिदान

पति-अनुराग लिये आगमें समाई शीघ्र हाहाकार त्याग घोर घनकी गरजमें।
हिंदू-देवियोंके बलिदानकी कथाएँ पढ़ो दुर्गमें चितौरके लिखी जो रज-रजमें॥
ठाट ठठरीकी काशमीरघाटियोंमें छोड़ उड़के अकाशमें मिलीं जो ईश-अजमें।

संस्कृत-व्याकरणशास्त्रका संक्षिप्त परिचय

(लेखक—श्रीयुधिष्ठिरजी मीमांसक)

तीय संस्कृतिका मूल आधार उसका प्राचीन वाङ्मय
ीय प्राचीन वाङ्मय संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश
क आदि अनेक भाषाओंमें पल्लवित है। भारतका
चीन वाङ्मय वैदिक संस्कृत भाषामें विद्यमान है
है वेद, उसकी शाखाएँ और ब्राह्मण आदि ग्रन्थ-
। वेदके सम्यक् अध्ययन, ज्ञान और प्रयोगके लिये
ऋषियोंने शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द
तिष—इन छः वेदाङ्गोंको समाम्नात किया।[1] यद्यपि
नके लिये निरुक्त शास्त्रकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति हुई तथापि
ज्ञान बिना व्याकरणके सम्भव नहीं। इसलिये
व्याकरणका स्थान गणनाक्रमसे तृतीय होते हुए
ार्थज्ञानमें प्रधानतम साधन है।[2] बिना व्याकरणज्ञानके
समझना न केवल दुष्कर ही है अपितु असम्भव
ाकरणज्ञानशून्य व्यक्तिकी निरुक्तमें भी प्रवृत्ति नहीं
।[3] अतः भारतीय संस्कृति और उसके आधारभूत
ाङ्मयकी रक्षामें वैयाकरणोंका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग
के ग्रन्थोंके अध्ययनसे हम वेदार्थज्ञानमें कुछ समर्थ
इसलिये हम इस लेखमें भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके
धन संस्कृत-व्याकरणशास्त्रकी प्रवृत्ति, विकास और
क्षेपसे प्रकाश डालेंगे।

तीय ऐतिहासिकोंका सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि
स्कृतिसे सम्बद्ध प्रत्येक शास्त्रका आदिस्रोत वेद है।[4]
पतञ्जलिने व्याकरण-शास्त्रका आविर्भाव वेदसे माना
ञ्जलिने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें **'चत्वारि शृङ्गा०, ाक्०, उत त्वः सक्तुमिव०, सुदेवोऽसि०'**—ये पाँच
उद्धृत किये हैं। पतञ्जलिसे प्राचीन यास्क (२८००
) ने भी निरुक्त १३।२ में **'चत्वारि वाक्०'** मन्त्रकी
व्याकरणशास्त्रपरक की है[5]। वैदिक मन्त्रोंमें अनेक
प्रत्ययोंकी धातुमूलक व्युत्पत्तियोंका निर्देश मिलता है।

स्तोतृभ्यो मंहते मघम्। (ऋ० १।११।
ये सहांसि सहसा सहन्ते। (ऋ० ६।६६।
धान्यमसि धिनुहि देवान्। (यजुः १।२
केतपूः केतं नः पुनातु। (यजुः ११।
येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा
(साम० उ० ५।२।
तीर्थैस्तरन्ति। (अथर्व० १८।४।

इन उद्धरणोंसे व्यक्त है कि व्याकरणके मूलभूत
का आदिस्रोत वेद है।

व्याकरणशास्त्रकी उत्पत्ति

व्याकरणशास्त्रकी उत्पत्ति कब हुई, इसका निण
अत्यन्त कठिन है। भारतीय इतिहासके अनुसार सर्व
के आदि प्रवक्ता आदि विद्वान् ब्रह्मा हैं। व
विषयमें ऋक्तन्त्र-व्याकरण १।४ में लिखा है—

**ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इ
द्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः।**

आदितन्त्रप्रणेता

ऋक्तन्त्रके उपर्युद्धृत वचनमें व्याकरणके क्रमश
बृहस्पति, इन्द्र और भरद्वाज प्रवक्ता कहे गये हैं। म
ज्ञात होता है कि बृहस्पतिने इन्द्रको प्रतिपदपाठद्वा
पदेश किया था। उस समयतक लक्षणात्मक शास्त्रक
नहीं हुई थी। इन्द्रने प्रतिपदपाठद्वारा व्याक
प्रक्रियाकी दुरूहताका अनुभव किया और अपने सम
शाब्दिक आचार्य वायुकी सहायतासे एक ऐसी प्रक्रिया
किया, जो न्यूनाधिकरूपसे आजतक व्यवहृत है।
ऐतिहासिक घटनाका निर्देश तैत्तिरीय संहिताके नि
मिलता है—

**वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुव
नो वाचं व्याकुर्विति। सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यं चैवैष
सह गृह्याता इति। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याक**

इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य सायण
भाष्यके उपोद्घात (पृष्ठ २६, पूना संस्क०) में लि

---

[1] बेल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।
(निरुक्त १।२०)

[2] प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्।
(महाभाष्य अ० १, पाद १, आ० १)

[3] नावैयाकरणाय (निर्ब्रूयात्)। (निरुक्त २।३)

[4] देखो हमारा 'संस्कृत-व्याकरणशास्त्रका इतिहास', पृष्ठ ६।

[5] नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः।

।खण्डां वाचं मध्ये विच्छिद्य प्रकृतिप्रत्ययविभागं ोत् ।

ध्यान रहे कि तैत्तिरीय संहितामें उल्लिखित इन्द्र यु ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, आलङ्कारिक नहीं ।

व्याकरणशास्त्रका रचनाकाल

य़पि व्याकरणशास्त्रकी उत्पत्तिके वास्तविक कालका करना कठिन है, तथापि तैत्तिरीय संहिताके उक्त वचनसे स्पष्ट है कि इसके आदि तन्त्रप्रणेता 'इन्द्र' थे । अब ीय है कि ये इन्द्र कब हुए ।

ऋक्तन्त्रके पूर्वोक्त वचनके अनुसार व्याकरणप्रवक्ता र्योंकी परम्परामें इन्द्रका तृतीय स्थान है । इसलिये ये अत्यन्त प्राचीन व्यक्ति हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

संसारके प्रायः समस्त धर्मग्रन्थोंमें मनु (नूह) के जल- का उल्लेख मिलता है । उसी जलप्लावनके अनन्तर क्रमशः बृहस्पति और इन्द्र हुए । यह जलप्लावन कब हुआ, यह क विचारणीय समस्या है । महाभारत और पुराणोंके ोकन और विमर्शसे हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि । जलप्लावन इस चतुर्युगीके प्रारम्भमें हुआ था । चारों का सन्ध्या और सन्ध्यांशसहित काल क्रमशः ४८००, ०, २४०० और १२०० दैववर्ष है (देखो मनुस्मृति ६८-७०) । दैववर्ष मानुषवर्षसे ३६० गुना माना । है । हमारा विचार है, यह कल्पना ठीक नहीं । वस्तुतः र्ष सौरवर्ष हैं । सौरवर्षमें चान्द्रवर्षके समान न्यूना- ता नहीं होती । अतः कालगणना सौर—दैव वर्षसे ही की ी है । द्वापरयुगकी समाप्तिको आज ५०५० वर्ष हुए, यह तीय इतिहासानुसार निश्चित है । किन्हीं पुराणपाठोंमें रके अनन्तर १२०० वर्ष परिमाणके कलियुगकी समाप्ति जानेपर कलिवृद्धिका उल्लेख मिलता है । वह हमारे विचार- पोषक है ।[1]

पुराणोंके पाठसे हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि इन्द्रका ल सत्ययुगके अन्त और त्रेताके प्रारम्भमें था । तदनुसार द्र आजसे लगभग (५०५० कलि+२४०० द्वापर+३६०० त्रेता=११०५०) लगभग ग्यारह सहस्र वर्ष प्राचीन हैं भारतीय काल-गणनानुसार इन्द्रका यह न्यूनतम काल है (दैववर्षकी दूसरी मान्यताके अनुसार इस इन्द्रका व २१,६५,०५०—लगभग इक्कीस लाख पैंसठ हजार होता है ।)

व्याकरणशास्त्रके तीन विभाग

इन्द्रके अनन्तर इतने सुदीर्घ कालमें कितने व्याक ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ, यह अज्ञात है । इस समय व्याक शास्त्रके जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उन्हें हम तीन विभा बाँट सकते हैं । यथा—

१. वैदिक-शब्दविषयक—प्रातिशाख्य आदि ।
२. लौकिक-शब्दविषयक—कातन्त्रादि ।
३. उभयविध-शब्दविषयक—आपिशल, पाणि आदि ।

व्याकरणप्रवक्ताओंके दो भेद

इस समय व्याकरणके जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, सबसे प्राचीन पाणिनीय व्याकरण है । पाणिनि मुनि उ व्याकरण-प्रवक्ता आचार्योंमें सबसे अर्वाचीन हैं । इ समस्त व्याकरणप्रवक्ता आचार्योंको हम दो विभागोंमें सकते हैं—पाणिनिसे प्राचीन और पाणिनिसे अर्वाचीन

प्राचीन आचार्योंके दो भेद

पाणिनिसे प्राचीन व्याकरणप्रवक्ता आचार्योंके विभाग हैं—एक छन्दोमात्रविषयक प्रातिशाख्य ः प्रवक्ता, दूसरे सामान्य व्याकरणशास्त्रके प्रवक्ता ।

प्रातिशाख्य-प्रवक्ता

प्राचीन कालमें वैदिक शाखाओंके जितने च[1] उन सबके प्रातिशाख्य रचे गये ।[2] उनमेंसे इस सम प्रातिशाख्य उपलब्ध होते हैं—

१. ऋक्प्रातिशाख्य—शौनकप्रणीत ।
२. वाजसनेय प्रातिशाख्य—कात्यायनप्रणीत ।
३. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य ।

---

१. यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढं महर्षयः ।
तदा नन्दात् प्रभृत्येव कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥
(वि० पु०, भाग० पु०)

१. शाखा चरणोंके अवान्तर भेदका नाम है । देखो (१२ वीं शताब्दी) का ताम्रपत्र—जमदग्निप्रवराय ः चरणाय यजुर्वेदकण्वशाखाध्यायिने ।
[illegible] भाग १, पृष्ठ ७१ पर उद्धृत

सामप्रातिशाख्य ।
अथर्वप्रातिशाख्य ।
मैत्रायणीय प्रातिशाख्य ।
ें मैत्रायणीय प्रातिशाख्य अभीतक अमुद्रित है।
तिरिक्त—
आश्वलायन-प्रातिशाख्य—आश्वलायनकृत ।
बाष्कल-प्रातिशाख्य ।
चारायण-प्रातिशाख्य ।
प्रातिशाख्य यद्यपि इस समय उपलब्ध नहीं हैं, ो प्राचीन ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र उद्धृत हैं। अतः इनकी ोई सन्देह नहीं।

अन्य छन्दोव्याकरण

तिशाख्योंके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्याकरण-ग्रन्थ हैं, जिनकी गणना प्रातिशाख्योंमें न होनेपर भी म्बन्ध वेद और उनके शाखा-विशेषोंके साथ है।

ऋक्तन्त्र—शाकटायन या औद्व्रजिकृत ।
लघुऋक्तन्त्र ।
सामतन्त्र—औद्व्रजि या गार्ग्यकृत ।
अक्षरतन्त्र—आपिशलिकृत ।
अथर्व-चतुरध्यायी—शौनक या कौत्सप्रणीत ।
प्रतिज्ञासूत्र—कात्यायन ।
भाषिकसूत्र ।

प्राचीन व्याकरण-प्रवक्ता

र्वोल्लिखित प्रातिशाख्य आदि वैदिक व्याकरणके २७ व्याकरणप्रवक्ता आचार्योंके नाम उपलब्ध होते प्राचीन आचार्योंके नाम पाणिनिने अपनी अष्टा- लिखे हैं। इनके अतिरिक्त तेरह आचार्य ऐसे हैं, उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता है। यदि हम प्राति- उद्धृत आचार्योंको छोड़ भी दें, तब भी पाणिनिसे २३ आचार्योंके नाम हमें निश्चितरूपसे ज्ञात हैं। —१. इन्द्र २. वायु ३. भरद्वाज ४. भागुरि रसादि ६. चारायण ७. काशकृत्स्न ८. वैयाघ्रपद्य न्दिनि १०. रौढि ११. शौनकि १२. गौतम डि १४. आपिशलि १५. काश्यप १६. गार्ग्य १७.

इनमें अन्तिम दस नाम पाणिनीयाष्टकमें हैं। प्रारम्भके १३ आचार्य यद्यपि पाणिनिसे प्र तथापि पाणिनीयाष्टकमें इनका उल्लेख नहीं है।

इन २३ आचार्योंमेंसे इन्द्र, भागुरि, काशकृत्स्न रसादि और आपिशलि—इन पाँच आचार्योंके अ तथा मत प्राचीन ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं[१]। सबसे अधि आपिशलि-व्याकरणके मिलते हैं।

काशकृत्स्न व्याकरणमें तीन अध्याय थे[२]। व्याकरणमें पाणिनीय व्याकरणवत् आठ अध्या उसकी सूत्र-रचना पाणिनीय सूत्र-पाठसे प्रायः मि पाणिनीय व्याकरणके सदृश आपिशल व्याकरणके गणपाठ, उणादिकोष—ये खिलपाठ भी रचे गये

पाणिनीय व्याकरण

पाणिनीय व्याकरणकी रचना विक्रमसे लगभग वर्ष पूर्व हुई थी। यह हमने अपने 'संस्कृत-व्याकरण इतिहास' ग्रन्थमें अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है समय प्राचीन आर्ष व्याकरणोंमें एकमात्र यही उपलब्ध होता है।

भारतीय इतिहासके अनुसार मनुष्योंकी आ धारणा-शक्तिके ह्रासके कारण प्राचीन विस्तृत उत्तरोत्तर संक्षेप हुआ है। तदनुसार पाणिनीय व्या प्राचीन आर्ष व्याकरणोंका संक्षिप्त संस्करण है। कहा है—

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवा
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे

इसलिये आधुनिक वैयाकरणोंका **'उत्तरोत्त प्रामाण्यम्'** इस स्वकल्पित नियमके अनुसार अपाणिनीय प्रयोगोंको अपशब्द कहना चिन्त्य है। ' साधु, छन्दोवत् कवयः कुर्वन्ति' आदि क प्रकारान्तरसे उन्हें अपशब्द समझना है। सोलहवीं

१. देखो 'संस्कृत व्याकरणशास्त्रका इतिहास' ग्रन् प्रकरण।

२. त्रिकं काशकृत्स्नम् (काशिका ५। १। ५८) वृत्ति ३। २। १६१—त्रिकं काशकृत्स्नीयम्।

३. अष्टका आपिशल-पाणिनीयाः। जैन-शाकटायन

प्रक्रियासर्वस्वके रचयिता भट्ट नारायणने अपने
ीयप्रामाणिकता' ग्रन्थमें इसपर भली प्रकार विचार
। प्राचीन आचार्योंके प्रयोगोंकी कथा तो दूर रही;
अपने सूत्र-पाठमें भी **'जनिकर्तुः, तत्प्रयोजकः'**
नेक प्रयोग ऐसे हैं, जो पाणिनिके अपने लक्षणानुसार
ीं होते। क्या वे भी अपशब्द हैं? क्या पाणिनि-
करण भी अपशब्दोंका प्रयोग करेगा? 'शान्तं पापम्,
म्।'

ानीय व्याकरणके पाँच ग्रन्थ हैं—शब्दानुशासन,
गणपाठ, उणादिसूत्र और लिङ्गानुशासन।
दानुशासन अर्थात् अष्टाध्यायी मुख्य है, शेष
ोंके खिल या परिशिष्ट हैं। अष्टाध्यायीमें आठ
ौर प्रति अध्यायमें चार-चार पाद हैं। अष्टाध्यायी-
ग ४००० सूत्र हैं।

ध्यायीकी रचना इतनी सुसम्बद्ध है कि इसमें एक
यतिक्रमसे अर्थका अनर्थ हो जाता है। इस ग्रन्थ-
लोकन करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति इसके रचना-
देखकर इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करता है।
सूत्रोंकी बालकी खाल निकालनेमें अत्यन्त पटु
पतञ्जलिने भी लिखा है—

ामर्थ्ययोगान्न हि किञ्चिदस्मिन्
पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्[1]।

ध्यायीके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंके कुछ उद्गार
हैं—

-प्रो० मोनियर विलियम्स—पाणिनीय व्याकरण
स्तिष्ककी प्रतिभाका वह आश्चर्यतम नमूना है, जिसे
ाने अबतक सामने नहीं रक्खा[2]।

-सर विलियम हण्टर—संसारके व्याकरणोंमें
ा व्याकरण चोटीका है। उसकी वर्णशुद्धता, भाषाका
सिद्धान्त और प्रयोग-विधियाँ अद्वितीय एवं
।······यह मानवमस्तिष्कका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण
ा है[2]।

ो० टी० शेरवात्सकी—पाणिनीय व्याकरण इन्सानी
सबसे बड़ी रचनाओंमें एक है[3]।

महाभाष्य ६।१।७७।

'महान् भारत' में पृष्ठ १५९, १५० पर उद्धृत।

० जवाहरलालंलिखित 'हिंदुस्तानकी कहानी' पृष्ठ १३१।

सम्प्रति समस्त भारतवर्षमें पाणिनीय व्याक
मुख्यरूपसे पठन-पाठन होता है। लगभग पाँच शत
पाणिनीय व्याकरणका पठन-पाठन पाणिनिविरचित
छोड़कर प्रक्रियाक्रमसे होता है। यह सर्वथा अस
है। प्रक्रिया-ग्रन्थोंके आधारपर व्याकरण
चिरकालमें भी उतना ज्ञान नहीं होता, जितना अष्ट
क्रमसे स्वल्पकालमें होता है। इतना ही नहीं,
सूत्रके साथ-साथ उसकी चार, पाँचगुनी वृत्ति भ
पड़ती है। अष्टाध्यायीके क्रमसे पढ़नेमें वृत्ति
महान् परिश्रम नहीं करना पड़ता। छात्रको केवल
सम्बन्धका ज्ञान करानेसे वृत्ति गतार्थ हो जाती है।
अध्ययन करनेपर पूर्वापरक्रमका ज्ञान न होनेसे 'वि
परं कार्यम्, असिद्धवदत्राभात्, पूर्वत्रासिद्धम्,
परं बलीयः' इत्यादि विधियोंके विषयमें ग्रन्थमात्रवे
रहना पड़ता है। प्रक्रियानुसार व्याकरणाध्ययनमें
यह भी है कि इन ग्रन्थोंमें गुण, वृद्धि, इडाग
प्रकरणोंके सूत्र विभिन्न स्थानोंमें बँटे हुए हैं;
इनके विषयमें सन्देह होनेपर योग्य छात्र भी
नहीं हो पाता। अष्टाध्यायीमें सब प्रकरणोंके सूत्र एक
संगृहीत होनेसे साधारण छात्र भी तत्तत् प्रकरण
करके स्वल्पकालमें सन्देहमुक्त हो सकता है। हमने
व्याकरणकी उभयविध अध्ययनप्रणालीका परिशील
है और अनेक छात्रोंको व्याकरण पढ़ाया है।
इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि प्रक्रियाग्रन्थोंके
अपेक्षा पाणिनीय अष्टाध्यायी-क्रमका अनुसरण
अध्येताके लिये उपकारक है।

अब हम पाणिनीय व्याकरणपर लिखे गये
व्याख्याग्रन्थोंका संक्षेपसे वर्णन करते हैं—

वार्तिक—पाणिनीय सूत्रपाठपर कात्यायन
अनेक आचार्योंने वार्तिक-पाठकी रचना की। उनमें
निम्न सात वार्तिककारोंका नाम महाभाष्य तथा अन्य
ग्रन्थोंमें मिलता है—१. कात्यायन २. भारद्वाज ३
४. क्रोष्टा ५. वाडव ६. व्याघ्रभूति ७. वैयाघ्रपद्य।

पतञ्जलिके महाभाष्यका मुख्य आधार
विरचित वार्तिक ही हैं, तथापि वे कहीं-कहीं अन्य
कारोंके वार्तिक भी उद्धृत करते हैं। कात्यायन
विक्रमसे लगभग २७०० वर्ष पूर्व है। अन्य वार्ति
विषयमें हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते।

ों के अतिरिक्त **गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, कुणारवाडव,** **वान्** आदि आचार्योंके मत भी महाभाष्यमें उद्धृत ई टीकाकार गोनर्दीय और गोणिकापुत्र पतञ्जलिके र मानते हैं, परंतु हमें ये भिन्न व्यक्ति प्रतीत ।

ाभाष्य—पाणिनीय व्याकरणपर सबसे महत्त्वपूर्ण तञ्जलिविरचित महाभाष्य है । महाभाष्यकी भाषा सरल, सरस और स्वाभाविक है । ग्रन्थरचनाकी दृष्टिसे दर्शभूत है । पतञ्जलि शुङ्गवंश्य महाराज पुष्यमित्रके क और उनके पुरोहित माने जाते हैं । पुष्यमित्रका श्चात्त्य विद्वानोंके मतानुसार विक्रमसे लगभग १५० ं है, परंतु भारतीय पौराणिक काल-गणनानुसार का काल विक्रमसे लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व है ।

ाभाष्यकी टीकाएँ—महाभाष्यपर अनेक वैयाकरणोंने थ लिखे । इन टीकाग्रन्थोंके दो विभाग हैं । एक ग्रन्थ हैं, जो सीधे महाभाष्यपर लिखे गये और हैं, जो कैयट-विरचित महाभाष्यप्रदीपपर रचे गये । पर जो टीका-ग्रन्थ लिखे गये, उनमेंसे इस समय बीस समग्र या असमग्र ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इसी महाभाष्यप्रदीपपर रचे गये लगभग पंद्रह ग्रन्थ इस त हैं ।

टीकाग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचित **'महाभाष्यदीपिका'** है । पाश्चात्त्य विद्वान् काल विक्रमकी आठवीं शताब्दी मानते हैं । उनके मुख्य आधार इत्सिंगका वह लेख है, जिसमें उसने मृत्यु चालीस वर्ष पूर्व लिखी है । इत्सिंगका लेख है । यह हमने **'भागवृत्तिसंकलनम्'** की भूमिकामें दर्शाया है । वस्तुतः महाभाष्यदीपिका और यके रचयिता भर्तृहरि लगभग विक्रमके सम- हैं । वे विक्रम-सं० ४०० से अर्वाचीन तो किसी नहीं हैं, इतना निश्चित है ।

ृरि-विरचित महाभाष्यकी टीकाका उल्लेख महाभाष्य- गरत्नमहोदधि आदि अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है । गणरत्न- ं महाभाष्यदीपिकाका परिमाण तीन पाद लिखा है ।[1] कमात्र हस्तलेख बर्लिनके पुस्तकालयमें है । वह प्रथम ङ्क्ष्व (१ । १ । ५३) सूत्रपर समाप्त हो जाता है । उसके आदिके भी दो पत्रे खण्डित हैं । इस हस्तलेख से प्रथम परिचय देनेका श्रेय डा० कीलहार्नको है । लेखकी एक प्रतिकृति (फोटो) लाहौर यूनि पुस्तकालयमें थी । सन् १९३० में हमारे आचार्य महा पं० श्रीब्रह्मदत्तजी जिज्ञासुने उस प्रतिकृतिको प्रा उसकी एक प्रतिलिपि कर ली थी । वह उनके सुरक्षित है । सम्भवतः इसकी एक प्रतिकृति मद्रासके हस्तलेख-पुस्तकालयमें भी है । यह टीका अत्यन्त प्रौ महत्त्वपूर्ण है । इसका सम्पादन हमारे आचार्यजीने सन् में प्रारम्भ किया था, परंतु विशेष कारणसे उसके फार्म (३२ पृष्ठ) ही मुद्रित हो सके । अब हम इस प्रकाशित करेंगे ।

भर्तृहरिकी महाभाष्यदीपिकाके अनन्तर महत्त्वपूर्ण व्याख्या कैयटविरचित महाभाष्यप्रदीप व्याख्या अत्यन्त सरल और पाण्डित्यपूर्ण है । महाभाष्य-जैसे दुरूह ग्रन्थके समझनेमें यही मुख्य सा इसकी इतनी उपयोगिताको देखकर अनेक वैय महाभाष्यकी व्याख्याएँ न लिखकर इसीकी टीकाएँ उनमेंसे लगभग १५ व्याख्याएँ पूर्ण या आंशिकरूपसे के विभिन्न पुस्तकालयोंमें विद्यमान हैं ।

वृत्तिग्रन्थ—पाणिनीय सूत्रपाठपर अनेक वैय वृत्तिग्रन्थ लिखे । स्वयं पाणिनिने भी अपने सूत्रोंकी ए लिखी थी, यह हमने अपने 'संस्कृत-व्याकरणशास्त्रका ग्रन्थमें अनेक प्रमाणोंसे दर्शाया है । इस समय अष्टा जितनी वृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं, उनमें काशि ही सबसे प्राचीन है । **कुणि** तथा **माथुर** आदिकी वृत्तियाँ महाभाष्यसे पूर्व लिखी जा चुकी थीं उनमेंसे इस समय एक भी उपलब्ध नहीं है । विरचित वृत्तिका उल्लेख भर्तृहरिविरचित महाभाष्य (पृष्ठ ३०९, हमारा हस्तलेख) और महाभाष्यप्रदी १ । ७५ में मिलता है । माथुरी वृत्तिका एकमात्र पुरुषोत्तमदेवविरचित भाषावृत्ति (१ । २ । ५ उपलब्ध होता है । इनके अतिरिक्त काशिकासे प्राचीन भट्टि, निर्लूर आदि कुछ वृत्तियोंके नाम प्राचीन टीका मिलते हैं ।

अष्टाध्यायीकी जितनी वृत्तियाँ इस समय उ हैं, उनमें सबसे प्राचीन और प्रामाणिक व

---

[1] भर्तृहरिर्वाक्यपदीयप्रकीर्णयोः कर्ता महाभाष्यत्रिपाद्या

चार न केवल भारतवर्षमें ही हुआ अपितु अति-
भारतसे बाहर भी इसके पठन-पाठनका प्रचार
। चम्पाके राजा इन्द्रवर्मा (सन् ९११ ई०) के
एक शिलालेखमें लिखा है—

············षट्तर्कजिनेन्द्रसूर्मिः
सकाशिकाव्याकरणोदकौघः ।[१]

पि काशिकामें कहीं-कहीं महाभाष्यके मतकी अवहेलना
है, तथापि उसका वह लेख अप्रामाणिक नहीं है ।
के ऐसे समस्त लेख अष्टाध्यायीकी प्राचीन वृत्तियोंपर
हैं । काशिकाका जो संस्करण वर्तमानमें उपलब्ध
। उसमें आदिके पाँच अध्याय जयादित्यविरचित
अन्तके तीन अध्याय वामनकृत हैं । चीनी यात्री
लेखानुसार काशिकाकी रचना विक्रमकी सातवीं
ं हुई है । जिनेन्द्रबुद्धिविरचित न्यास (३ । १ ।
; तथा अन्यत्रके पाठोंसे व्यक्त होता है कि जयादित्य
मन दोनोंने पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण अष्टाध्यायीकी वृत्तियाँ
ं । जयादित्य और वामन दोनोंकी वृत्तियोंका
। कब और क्यों हुआ, यह अज्ञात है; परंतु इतना
कि न्यासग्रन्थकी रचनासे पूर्व ही यह सम्मिश्रण हो
। न्यासनाम्नी व्याख्या दोनोंके सम्मिश्रित संस्करणपर
गवृत्तिके जो उद्धरण विभिन्न ग्रन्थोंमें उपलब्ध होते
के अनुसार भागवृत्तिकी रचनासे पूर्व जयादित्य और
वृत्तियोंका सम्मिश्रण हो चुका था । भागवृत्तिका
ल विक्रम संवत् ७००—७०५ के मध्य है। काशिका-
त्वपूर्ण ग्रन्थपर अनेक व्याख्याग्रन्थ लिखे गये ।
जिनेन्द्रबुद्धिविरचित **न्यास** अपरनाम **काशिका-
ञ्जिका** सबसे प्राचीन और विशद ग्रन्थ है । उसके
हरदत्तविरचित **पदमञ्जरी**का स्थान है । हरदत्तने
पर एक **महापदमञ्जरी** भी रची थी (पदमञ्जरी, भाग
७२)। यह इस समय अप्राप्य है । न्यासका रचना-
क्रम-सं० ११०० से पूर्व है। हमारा विचार है वह
। आठवीं शताब्दीमें रचा गया है। पदमञ्जरीकी रचना
। १२ वीं शताब्दीमें हुई है । काशिकाके अनन्तर
का स्थान है । भाषावृत्तिके व्याख्याता सृष्टिधराचार्यके
र भागवृत्तिके रचयिता भर्तृहरि थे । ये भर्तृहरि
दीपिका और वाक्यपदीयके रचयिता आद्य भर्तृहरिसे
। कुछ लेखक भागवृत्तिके रचयिताका नाम विमलमति

लिखते हैं । हमारा विचार है कि भागवृत्तिके र
वास्तविक नाम विमलमति है और उनके प्रौढ़ वैयाकर
भर्तृहरि उनका उपनाम है । भागवृत्तिकी रचना
महाराज श्रीधरसेन चतुर्थके कालमें वि०-सं० ७००-७०५
हुई है, यह हमने '**भागवृत्तिसंकलनम्**' की भूमिकामें
से दर्शाया है । इनके अतिरिक्त पुरुषोत्तमदेवकी भ
और शरणदेवकी **दुर्घटवृत्ति** भी उपयोगी ग्रन्थ हैं
अतिरिक्त अष्टाध्यायीपर लगभग २५ वृत्तियाँ और
हैं । इनमेंसे अभीतक केवल अन्नम्भट्टकी मि
ओरम्भट्टकी **व्याकरणदीपिका** और स्वामी दयानन्दव
ध्यायीभाष्य—ये तीन ग्रन्थ मुद्रित हुए हैं ।

प्रक्रिया-ग्रन्थ—हम पूर्व लिख चुके हैं कि ल
शताब्दियोंसे पाणिनीय व्याकरणका पठन-पाठन
अष्टाध्यायी-क्रमको छोड़कर प्रक्रिया-क्रमसे होता है ।
ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन धर्मकीर्तिका **रूपावतार** ग्रन्थ
धर्मकीर्ति न्यायबिन्दुके रचयिता धर्मकीर्तिसे भिन्न
हैं । इनका काल विक्रमकी बारहवीं शताब्दी य
कुछ पूर्व है । पाणिनीय व्याकरण-प्रक्रियानुसारी अ
रचे गये । उनमेंसे रामचन्द्रविरचित **प्रक्रिय**
भट्टोजिदीक्षितरचित **सिद्धान्तकौमुदी** और नाराय
प्रक्रियासर्वस्व ग्रन्थ मुख्य हैं । रामचन्द्रका काल
सोलहवीं शताब्दीका प्रथम चरण, भट्टोजिदीक्षितका
शताब्दीके द्वितीय, तृतीय चरण और नारायणभट्टका
शताब्दीका उत्तरार्ध है । इन प्रक्रियाग्रन्थोंपर भ
टीकाएँ लिखी गयीं । प्रक्रियाकौमुदीपर शेषकृष्ण उ
कारके पुत्र विठ्ठलकी व्याख्याएँ प्रसिद्ध हैं । सिद्धान्त
ग्रन्थकारकृत **प्रौढमनोरमा**, वासुदेवकृत **बालमनोरमा**,
सरस्वतीरचित **तत्त्वप्रबोधिनी** और नागेशभट्टकी **लघु**
शेखर व्याख्याएँ मुख्य हैं । बालकोंके व्याकरणप्रवे
लघुकौमुदी और **मध्यकौमुदी** ग्रन्थोंकी रचना हुई ।

पाणिनिसे अर्वाचीन शब्दानुशासन

पाणिनिके अनन्तर अनेक वैयाकरणोंने शब्द
ग्रन्थोंकी रचनाएँ कीं। उनमें कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र,
विद्याधर, अभिनवशाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण
सारस्वत, जौमार और मुग्धबोध मुख्य हैं ।

कातन्त्र—कातन्त्रके दो भाग हैं—तद्धितप्रक
पूर्वार्ध और कृदन्तप्रकरणरूपी उत्तरार्ध । तद्धिता

ृहद्वृत्तिके रचयिता हैं। अनुश्रुतियोंके अनुसार कातन्त्रकी
महाराज सातवाहनके कालमें मानी जाती है, परंतु यह
ग उससे बहुत प्राचीन है। हमारा विचार है कि कातन्त्र-
ृतान्त भाग पातञ्जल महाभाष्यसे भी प्राचीन है।
ृत्तिकार दुर्गसिंहके मतसे कृदन्तभागके रचयिता
न हैं। ये कात्यायन अपरनाम वररुचि महाराज
ी सभाके सभ्य तथा उनके पुरोहित थे। कातन्त्र-
ाके अत्यन्त सरल होनेसे इसका प्रचार बहुत हुआ।
र बौद्धमतावलम्बियोंको संस्कृतका ज्ञान करानेमें यही
ा मुख्य साधन था। उनके द्वारा इस व्याकरणका
भारतसे बाहर भी पर्याप्त हो गया था। कीथ अपने
साहित्यके इतिहासमें लिखते हैं—'कातन्त्रके कुछ
ध्य एशियाकी खुदाईसे प्राप्त हुए थे।' कातन्त्रका
तिब्बती भाषामें अभीतक उपलब्ध है।
की देशी पाठशालाओंमें अभी पिछले दिनोंतक
ो प्रारम्भमें पाटीपूजाके अनन्तर **'सीधो वरणा
ाया'** की सीधी पाटी पढ़ायी जाती थी। वह कातन्त्रके
ादका विकृत पाठ है। कहीं-कहीं पाँच पाटियाँ (पाँच
ढ़ानेका क्रम है। बुन्देलखण्डमें भी 'ओनामासीधम्'
बालकोंको ये पाटियाँ पढ़ायी जाती हैं। सम्प्रति
ा पठन-पाठन केवल बंगालतक सीमित है। सुकुमार-
ारोंको संस्कृतका ज्ञान करानेके लिये कातन्त्रकी
ई है। इसलिये इसका एक नाम कौमार भी है।
ण और गरुडपुराणमें कातन्त्रको कुमार अर्थात्
क कहा है।

न्त्रपर इस समय सबसे प्राचीन वृत्ति दुर्गसिंहकी उपलब्ध
हमारा विचार है ये दुर्ग और निरुक्तके वृत्तिकार दुर्ग
क हैं। हमने इनकी एकता अपने व्याकरणशास्त्रके
ं अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध की है। धातुवृत्तिकार सायण-
सार यह दुर्गवृत्ति काशिकासे प्राचीन है। काशिका
९३ में दुर्गवृत्तिका खण्डन है (देखो धातुवृत्ति, पृष्ठ
ाशी-संस्करण)। दुर्गवृत्तिपर दुर्गसिंह, उग्रभूति,
दास और काशिराज आदि अनेक वैयाकरणोंने टीका-
े हैं। कातन्त्रपर जिनप्रभसूरि और जगद्धरभट्टने भी
लखी हैं।

[illegible]

राजतरङ्गिणीसे ज्ञात होता है कि चन्द्रगोमीने
महाराज अभिमन्युके आदेशसे विनष्ट महाभाष्यका
किया था और अपना व्याकरण रचा था।[1] भर्तृहरि
वाक्यपदीयसे भी इसकी पुष्टि होती है।[2] महाराज अ
काल-विषयमें ऐतिहासिकोंमें वैमत्य है। पाश्चात्य विद्वा
विक्रम पूर्वसे ४०० विक्रम पश्चात्‌तक विविध कालकी
करते हैं।[3] कल्हणके गणनानुसार अभिमन्यु विक्रमसे
सहस्र वर्ष प्राचीन है।

चान्द्रव्याकरणमें सम्प्रति छः अध्याय मिलते हैं।
अध्यायोंमें केवल लौकिक भाषाके शब्दोंका अन्वाख्
आजसे लगभग ८०० वर्ष पूर्व वैयाकरणोंका भी य
रहा है कि चान्द्रव्याकरण केवल लौकिकभाषाका व्याक
परंतु चान्द्रव्याकरणका सम्पादन करते हुए हमें उसकी
वृत्तिमें अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे सिद्ध होत
चान्द्रव्याकरणमें स्वरप्रकरण भी था। चान्द्रव्याकरण १
१३४ की वृत्तिमें स्वरप्रकरणका **'अनौ वसः'** सूत्र भी
है। स्वरशास्त्रका मुख्य प्रयोजन वेदमें पड़ता है। अत
होता है कि चन्द्रगोमीने वैदिक भाषाविषयक सूत्र
थे। चान्द्रव्याकरण १। १। १४५ की वृत्तिके **'स्व
मष्टमे वक्ष्यामः'** पाठसे विदित होता है कि चान्द्रव्
भी आठ अध्याय थे। इस पाठसे यह भी प्रती
है कि स्वरप्रकरण आठवें अध्यायमें था। अतः
अध्यायमें वैदिक प्रकरण रहा होगा, यह सिद्ध है
विवेचनासे विदित होता है कि चान्द्रव्याकरणके स्व
प्रकरणविषयक अन्तिम दो अध्याय चिरकालसे नष्ट हो
चान्द्रव्याकरणके मुख्य आधार पाणिनीय शब्दानुशास
पातञ्जल महाभाष्य हैं, परंतु चन्द्रगोमीने अनेक स
उनकी उपेक्षा करके प्राचीन व्याकरणोंका भी आश्र
है। चान्द्रसूत्रोंकी एक वृत्ति रोमन अक्षरोंमें छपी
धर्मदासकी कही जाती है, परंतु ग्रन्थके आन्तरि
बाह्य साक्ष्योंसे वह चन्द्रगोमीकी स्वरचित वृत्ति
होती है।

जैनेन्द्र—इस व्याकरणकी रचना आचार्य दे

१. राजतरङ्गिणी १। १७४—१७६।

२. वाक्यपदीय २। ४८८-४८९।

[illegible]

पूज्यपादने की है। पूज्यपादने पाणिनीय शब्दानु-
शब्दावतार नामक एक न्यास भी रचा था। पूज्य-
ाल विक्रम-संवत् ५००—५५० के मध्य है। जैनेन्द्र-
ो इस समय दो संस्करण उपलब्ध होते हैं। एक
वह है, जिसपर अभयनन्दीकी महावृत्ति रची गयी है;
ा संस्करण वह है, जिसपर गुणनन्दीने शब्दार्णव-
ी रचना की है। इनमें महानन्दी-स्वीकृत सूत्रपाठ
पाठ कहाता है और दूसरा दाक्षिणात्य। औदीच्य
ाणात्य पाठकी अपेक्षा लघु है। शब्दार्णवचन्द्रिकाके
पं० श्रीलाल शास्त्रीने दाक्षिणात्य पाठको
मूल पाठ माना है, परंतु यह ठीक नहीं है।
ाकरणका मूल पाठ वह है, जिसपर अभयनन्दीकी
है। इस विषयपर पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने
हेत्य और इतिहास' ग्रन्थमें विस्तारसे लिखा है। इन
ठोंकी आन्तरिक तथा बाह्य परीक्षासे हम भी इसी
र पहुँचे हैं कि औदीच्य पाठ ही जैनेन्द्रका मूल पाठ
न्द्रके औदीच्य पाठपर अभयनन्दी, प्रभाचन्द्राचार्य
ाचन्द्र प्रभृति अनेक वैयाकरणोंने वृत्तियाँ लिखी हैं।
वनन्दीने भी अपने सूत्रपाठपर एक जैनेन्द्रसंज्ञक
रचा था।

श्रान्तविद्याधर—इस व्याकरणकी रचना वामनने की
कृत वाङ्मयमें वामन नामके अनेक ग्रन्थकार प्रसिद्ध
द्ध जैन तार्किक मल्लवादी सूरिने विश्रान्तविद्याधर-
न्यासग्रन्थ रचा था।[1] राजशेखरकृत प्रबन्धकोशके
मल्लवादीका काल वि०-सं० ३७५ है।[2] प्रबन्धकोशके
ः जिनविजय मुनिने इसे वि०-सं० ५७३ माना है।
ामनका काल वि०-सं० ६०० से पूर्व है, यह निश्चित है।
विद्याधर-व्याकरणका उल्लेख गणरत्न-महोदधि और
न्यास आदि अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है, परंतु यह ग्रन्थ
ाय अप्राप्य है।

ाभिनवशाकटायन—इस व्याकरणकी रचना जैन आचार्य
ीर्तिने की है। पाल्यकीर्ति महाराज अमोघवर्षकी
सभ्य थे। इसलिये उन्होंने अपने व्याकरणकी स्वोपज्ञ
नाम अमोघा रक्खा है। अमोघवर्षका राज्यकाल वि०-
७१—९२४ तक माना जाता है। पाल्यकीर्तिविरचित
शासनका नाम शाकटायन क्यों प्रसिद्ध हुआ, यह
अज्ञात है। सम्भव है जैन वैयाकरणोंमें पाल्यकीर्तिके
साधारण वैयाकरण होनेसे इसका उपनाम शाकटायन प्रसि
गया हो; क्योंकि वैदिक-मतावलम्बी वैयाकरणोंमें शाक
सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण माने जाते हैं। शाकटायनकी स्वोप
अभीतक प्रकाशित नहीं हुई। इसपर यक्षवर्माकी
चिन्तामणि नामक लघु वृत्ति काशीसे प्रकाशित हुई है

सरस्वतीकण्ठाभरण—धाराधिपति महाराज भो
सरस्वतीकण्ठाभरण नामका एक शब्दानुशासन रचा है
शब्दानुशासन अत्यन्त विस्तृत है। ग्रन्थकारने ग
परिभाषापाठ और लिङ्गानुशासन आदि सबका सू
ही सन्निवेश कर दिया है। इस शब्दानुशासनके मुख्य
पाणिनीय और चान्द्रव्याकरण हैं। महाराज भोजका स
कण्ठाभरण नामक एक साहित्यका भी ग्रन्थ है।
भोजका काल वि० सं० १०७५—१११० तक है। स
कण्ठाभरणपर दण्डनाथकी **हृदयहारिणी** टीका है। य
सबसे प्राचीन है। देवराज यज्वाने निघण्टु-भाष्यमें इ
किया है। यह टीका चतुर्थ अध्यायतक छप चुकी है
महत्त्वपूर्ण टीका कृष्णलीलाशुक मुनिकी है। यह
अमुद्रित है।

हैम शब्दानुशासन—इसकी रचना जैन-सम
आचार्य हेमचन्द्र सूरिने की थी। हेमचन्द्रका जन्म वि
११४५ में 'धुन्धुक' (अहमदाबाद)में हुआ था
स्वर्गवास सं० १२२० में हुआ। **हैम शब्दानुशासनमें**
और प्राकृत दोनोंका अनुशासन है। प्रारम्भके सात अ
संस्कृतका और आठवेंमें प्राकृत भाषाका व्याकरण है
व्याकरणकी रचना पाणिनीय, चान्द्र, जैनेन्द्र और जैन
यन आदि प्राचीन शब्दानुशासनोंके ढंगकी नहीं है
रचना कातन्त्रके समान प्रकरणानुसारी है। हेमचन्द्र
सूत्रपाठपर लघ्वी और बृहती दो वृत्तियाँ लिख
बृहद् वृत्ति अभीतक पूर्ण प्रकाशित नहीं हुई। कहा
कि हेमचन्द्रने अपने व्याकरणपर ९० सहस्र श्लोक प
'बृहन्न्यास' भी लिखा था। हेमचन्द्रने अपने व्य
धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र और लिङ्गानुशास
खिलपाठोंकी भी रचना की थी। इनपर ग्रन्थकारकी
वृत्तियाँ भी मिलती हैं। मेरुतुङ्गाचार्यकृत प्रबन्धचिन
लिखा है कि हेमचन्द्रने सवा लाख श्लोक परिमाणक
व्याकरण एक वर्षमें रचा था।[1]

. प्रभावकचरित, मल्लवादीप्रबन्ध।

३. हेमचन्द्राचार्यैः श्रीसिद्धहेमाभिधानमभिनवं

वत—इस व्याकरणके रचयिताका नाम अनुभूति-
ि है। अनुभूतिस्वरूपका काल वि०-सं० १३००
है। क्षेमेन्द्रने अपनी सारस्वतप्रक्रियाके अन्तमें इसे
की रचना लिखा है।[1] तदनुसार कई विद्वान्
कर्ता नरेन्द्राचार्यको मानते हैं। नरेन्द्राचार्यका प्रक्रिया-
ादि अनेक ग्रन्थोंमें उल्लेख हुआ है। एक नरेन्द्रसेन
करण प्रमाणप्रमेयकलिकाके रचयिता हैं। नरेन्द्रसेनके
लेखा है कि उनका चान्द्र, कातन्त्र, जैनेन्द्र, ऐन्द्र
नीय शब्दानुशासनोंपर अधिकार था। नरेन्द्रसेनके
सेन और उनके अजितसेन थे। इन नरेन्द्रसेनका
९७५ अर्थात् वि०-सं० ११११ है। क्या नरेन्द्रसेन
ाचार्य दोनों एक हैं? वस्तुतः सारस्वतसूत्रोंका
है, यह एक समस्या है। अनुभूतिस्वरूपने सारस्वत-
थ भी रचा है। सारस्वत-प्रक्रियापर अनेक लेखकों-
लिखी हैं। उनमें चन्द्रकीर्तिकी सुबोधिनी सबसे
काशीनाथने सारस्वतपर भाष्य रचा है। काशीनाथ-
वि०-सं० १६६७ के लगभग है।

ार—इसकी रचना क्रमदीश्वरने की है। इसका अपना
क्षसार' है। कइयोंका कहना है कि क्रमदीश्वरका
ा था, जुमरनन्दीने उसे पूरा किया। हमारा विचार
दीने इसकी वृत्ति लिखी और इसका प्रवचन किया।
ा यह जौमारके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जुमरनन्दीकी
ाम 'रसवती' है। इस व्याकरणपर गोपीचन्द्रने भी
ी है। जुमरनन्दीका काल संवत् १२०० के लग-
ा जाता है। आफ्रेक्ट इन्हें बोपदेवसे प्राचीन
और कोलब्रुक बादका।

बोध—यह बोपदेवकी रचना है। बोपदेवके पिता-
केशव' और गुरुका नाम 'धनेश' था। धनेशने
की एक टीका लिखी है। बोपदेवका काल विक्रमकी
शताब्दीका पूर्वार्ध है। मराठा-साम्राज्यके कालमें
का विशेष प्रचार हुआ था। सम्प्रति इसका पठन-पाठन
ालतक सीमित है। यह व्याकरण बहुत संक्षिप्त है।
के अतिरिक्त सुपद्म, हरिनामामृत आदि अनेक व्याकरण
ये। ये प्रायः अप्रसिद्ध और एकदेशीय तथा
हैं। अतः इनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया। वस्तुतः
ासन-रचयिताओंकी समाप्ति हेमचन्द्रपर हो जाती है।
विक रूपमें व्याकरण कहा जा सके। सारस्वत, मुग्धबे
सुपद्म आदि बालकोंके खिलवाड़ हैं। इनके अध्ययन
व्यक्ति वैयाकरण नहीं बन सकता। संस्कृत भाषा औ
नियमोंका कुछ बोध हो जाना और बात है।

व्याकरणके परिशिष्ट

प्रत्येक शब्दानुशासनके रचयिताको धातुपाठ अ
पाठकी रचना करनी पड़ती है। कई वैयाकरणोंने उ
और लिङ्गानुशासनकी भी रचना की है। ये चारों
शासनके खिल अर्थात् परिशिष्ट कहाते हैं। इन पाँचों अ
समूह पञ्चाङ्ग, पञ्चपाठी आदि नामोंसे व्यवहृत होता

धातुपाठ—संस्कृत-व्याकरणशास्त्रका मुख्य
प्रत्येक पदके प्रकृति-प्रत्यय-विभागको दर्शाना है।
यन प्रभृति वैयाकरणोंने समस्त नाम-शब्दोंको अ
=धातुज माना है। अतः धातुपाठ व्याकरण-शास्त्रक
अङ्ग है। उपलब्ध धातुपाठोंमें पाणिनिका धातुपा
प्राचीन है। पाणिनिसे प्राचीन आपिशलिके धा
उल्लेख भी अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता है।
धातुपाठपर क्षीरस्वामी, मैत्रेयरक्षित और सायणकी
उपलब्ध हैं। चान्द्र धातुपाठपर पूर्णचन्द्रकी वृ
कातन्त्रका धातुपाठ तिब्बती-भाषामें उपलब्ध हो
जैनेन्द्र, जैन शाकटायन और हैमशब्दानुशासनके अ
पृथक् धातुपाठ विद्यमान हैं। हेमचन्द्रने अपने ध
'पारायण'नामकी वृत्ति लिखी है।

गणपाठ—शब्दानुशासनके सूत्रपाठको संक्षिप्त
लिये गणपाठकी रचना हुई है। उपलब्ध गणपाठ
प्राचीन पाणिनिका गणपाठ है। आपिशलिके ग
उल्लेख भर्तृहरिने महाभाष्यदीपिका १।१।२७
है। पाणिनीय गणपाठ काशिका आदि वृत्तिग्रन्थोंमें प
और पृथक् स्वतन्त्ररूपसे भी मिलता है। चन्द्रका गणप
वृत्तिमें छपा है। इसी प्रकार जैनेन्द्र और शाकटायन
भी अपने-अपने स्वतन्त्र गणपाठ विद्यमान हैं।
गणपाठको तत्तत् सूत्रोंमें ही पढ़ दिया है। गणपा
विद्वान् वर्धमान सूरिका **'गणरत्नमहोदधि'** ग्रन
उत्कृष्ट है। इसमें प्रायः सभी गणपाठोंकी विवे
पाणिनीय गणपाठपर भट्टयज्ञेश्वरकी **'गणरत्नावल**
टीका मिलती है। इसका एक हस्त-लेख हमारे संग्रह

{उ}त्तरवर्ती आचार्योंने अपने शब्दानुशासनके परिशिष्ट- उणादिसूत्रोंकी रचना की । अब ये प्रायः सभी ोंके अङ्ग बने हुए हैं । प्राचीन उणादिसूत्र दो मिलते हैं । एक पञ्चपादी और दूसरे दशपादी । तुलनासे स्पष्ट है कि दशपादीकी रचना पञ्चपादीके र हुई है । पञ्चपादी उणादिसूत्र शाकटायनविरचित ते हैं, परंतु यह भूल है । नारायणभट्टने प्रक्रिया- उणादिप्रकरणमें पञ्चपादीको पाणिनिविरचित कहा । हमारा विचार है पञ्चपादी आपिशलिकी कृति दशपादी पाणिनिकी । पञ्चपादी उणादिसूत्रोंपर २० टीकाएँ ज्ञात हैं । उनमें श्वेतवनवासी, उज्ज्वल- र स्वामी दयानन्दकी वृत्तियाँ श्रेष्ठ हैं ।[1] दशपादीपर ाचीन अज्ञातनामा वृत्तिका हमने सम्पादन किया व्याकरणके अनेक ग्रन्थोंमें उद्धृत है । इसके अतिरिक्त र दो वृत्तियाँ और हैं । एक विठ्ठलकी प्रक्रिया- ादान्तर्गत और दूसरी अज्ञातनामा । दूसरीका एक हमारे पास भी है । कातन्त्र, चान्द्र, सरस्वती- ा, हैम और सारस्वत व्याकरणोंके भी अपने-अपने त्र हैं । इनपर अनेक टीकाएँ भी उपलब्ध हैं । त्र और उनकी वृत्तिका इतिहास हमने **'दशपादी त्ति'** के उपोद्घातमें विस्तारसे लिखा है ।

ानुशासन—इस समय सबसे प्राचीन पाणिनिका ासन प्राप्त है । व्याडिविरचित लिङ्गानुशासनके ्धरण प्राचीन ग्रन्थोंमें उपलब्ध होते हैं । **वामन, शाकटायन, वररुचि** और **हेमचन्द्र**के लिङ्गानुशासन समय प्राप्त हैं । इनपर कई टीकाएँ हैं । चान्द्र ासन कई ग्रन्थोंमें उद्धृत है । संस्कृत भाषामें । अत्यन्त दुष्कर है, अतएव प्रत्येक वैयाकरणने ना ग्रन्थ रचा है ।

व्याकरणके दार्शनिक ग्रन्थ

हम व्याकरणके दार्शनिक ग्रन्थोंका उल्लेख न करें निबन्ध अधूरा ही रहेगा । अतः हम उनका भी नेदर्शन कराते हैं ।

ह—व्याकरणका सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'संग्रह' है । यह आचार्य व्याडि अपरनाम की रचना है । भर्तृहरिके लेखानुसार इसमें दस सहस्र पदार्थोंकी परीक्षा की गयी है ।[2] दाक्षायण पाणि थे । यह हमने अपने 'व्याकरण-शास्त्रका इतिहा भली प्रकार दर्शाया है । अन्य विद्वान् इन्हें पाणिनि भाई मानते हैं । शब्दब्रह्मवादके आदि प्रवर्तक व्याडि माने जाते हैं । महाभाष्यमें 'संग्रह'का दो उल्लेख मिलता है । वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्डकी स्वोप संग्रहके दस वचन उद्धृत हैं । कुछ वचन हमें अन्य भी मिले हैं । हमने 'संग्रह'के समस्त उपलब्ध वच व्याकरणके इतिहासके 'संग्रहकार व्याडि' नामक संगृहीत कर दिये हैं । वाक्यपदीयके द्वितीय काण होता है कि 'संग्रह' चिरकालसे उत्सन्न हो गया था ।

वाक्यपदीय—यह आचार्य भर्तृहरिकी कृति है तीन काण्ड हैं । **ब्रह्मकाण्ड, पदकाण्ड** और प्रकी प्राचीन परम्पराके अनुसार प्रकीर्णकाण्ड वाक्यपदीयक नहीं है । वर्धमानने लिखा है—

भर्तृहरिर्वाक्यपदीयप्रकीर्णयोः कत

(ग० र० महोदधि,

वाक्यपदीयके प्रथम दो काण्डोंपर ग्रन्थकारक विवरण है । रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौरद्वारा इसके ब्रह्मकाण्डकी और आधे पदकाण्डकी स्वरचित व्या चुकी है । द्वितीय काण्डपर पुण्यराज और तृतीय (काण्डपर हेलाराजकी व्याख्या काशीमें मुद्रित हो चुकी

लघुमञ्जूषा—वाक्यपदीयके बाद लघुमञ्जूषा है । यह नागोजिभट्टकी रचना है । इसपर क विद्यमान हैं । नागेशने इसका एक संक्षिप्त संस्क लिखा है, वह **परम** लघुमञ्जूषाके नामसे प्रसिद्ध है

इनके अतिरिक्त कुछ और भी दार्शनिक ग्रन्थ मुख्य ये तीन ग्रन्थ ही माने जाते हैं ।

व्याकरण-शास्त्रका प्राचीन वाङ्मय बहुत विशा सङ्केत हम पूर्व कर चुके हैं । व्याकरणके सम्प्रति वाङ्मयका पूरा परिचय देनेके लिये अनेक वि ग्रन्थोंकी अपेक्षा है । तथापि हमने इस लेखमें व्याकरणशास्त्रके प्रधान-प्रधान लेखक और उनके संक्षिप्त परिचय देनेका प्रयत्न किया है ।[3] आशा संस्कृत-भाषाके व्याकरणपर लिखे गये ग्रन्थोंका कुछ अवश्य प्राप्त होगा ।

हिंदू-संस्कृतिसे संस्कृत-भाषाका अविच्छेद्य सम्बन्ध

(लेखक—पं० श्रीरामाधीनजी पाण्डेय साहित्याचार्य, व्याकरण-शास्त्री, काव्यतीर्थ, विशारद)

-संस्कृतिके मूलाधार हैं वेद, पुराण, शास्त्रादि सद्ग्रन्थ। । ग्रन्थोंकी रचना आर्योंकी आदिभाषा संस्कृतमें ौर आज भी वह भारतीय ग्रन्थोंके पृष्ठोंपर समुद्भासित । अनेक उथल-पुथल हुए, भाषाओंके कितने हुए; फिर भी यह उसी रूपमें वर्तमान है। इसका ी रहा है कि हम अभीतक अपनी संस्कृतिसे पृथक ाये हैं। साथ-साथ महान् परिवर्तनके युगोंमें भी ति अक्षय रूपसे विद्यमान रही और इसपर किसी आँच न लगी। इसका श्रेय यदि किसीको है तो इस शाको ही। हम तो नयी रोशनीवाली कान्त-कामिनियों- नित्य-नूतन तरुणी सभ्यताओंके फेरमें पड़कर अपनी को सर्वथा भूल बैठे थे; फिर भी यह वात्सल्य- ्ति कसक और वेदनाकी घड़ियोंमें दिन काटती, सोये हुए अपने प्यारे लाड़लोंके सिरहाने बैठी सिर चली आ रही है। सारांश यह कि हिंदू, हिंदी तथा की जन्मदात्री, पोषिका और प्रकाशिका यदि कोई संस्कृत-भाषा ही—इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति कती। आज भले ही हमारे बीच इसका सम्मान हो पर था वह एक समय, जब कि देशके कोने-कोनेमें ती बोलती थी, सर्वत्र इसीके शुभ गीत गाये जाते श्रेणियोंके नर-नारी, बाल-वृद्ध, मनुज-दनुज इसी परम भक्त बने रहते थे। इतना ही नहीं, यहाँके तोते और सुग्गे भी इसी पवित्र भाषाके आश्रयणमें द्ध वैदिक ज्ञान एवं परिमार्जित शब्द-साधनोंके ं ही लीन रहा करते थे, जिसे देख भगवान् शङ्करा- ो विस्मयविमुग्ध हो जाना पड़ा था—दूसरोंकी अलग रहे। जिस समय यह भाषा भारतवर्षकी के आसनपर आसीन थी, सम्पूर्ण देशमें इसीका विकास तथा प्रचार था, अटकसे कटक तथा हिमालयतक इसी सर्वतन्त्रात्मिका भाषाकी सत्ता न थी। हमारा सांस्कृतिक विकास उन्नतिके उस समुन्नत पहुँच चुका था, जिसे देख विदेशी विज्ञशिरोमणि खाते और भरि-भरि प्रशंसा किया करते थे।

अनुपम विश्राम प्राप्त करनेके लिये लालायित रहा भाषा तथा संस्कृतिके इतिवृत्तोंके अध्ययनसे यह प है कि इसी देववाणीकी अटूट सेवाके फलरूप वृद्ध भ सम्पूर्ण विश्वका नेतृत्व तथा सभी देशोंमें जा-जाक सभ्यताका उत्तरोत्तर विकास किया था। उस सम अबाधगति थी। अस्तु, सभी क्षेत्रोंमें पहुँच-पहुँच असभ्योंको सभ्य, मूकोंको वाचाल, पङ्गुओंको जानुचल दिगम्बरोंको दिव्याम्बराभूषित और वनचरोंको अपन बना साहित्य, संगीत, शिल्प, कृषि तथा वास्तुक विविध कलाओंका ज्ञान कराया था। आज भले ही माने या न माने; पर बड़े-बड़े पश्चिमीय विद्वानोंने बाहु हो यह प्रमाणित किया है कि भारतवर्ष केवल धर्म तथा संस्कृतिका ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण जगत्के संस्कृतिका आदि स्रोत था। साथ-ही-साथ बड़े अभिमा यह भी उद्घोषित किया है कि सारे भूभागकी भाषा कभ संस्कृत ही थी। बड़े ही दुःखकी बात है कि आ की छाया पड़ जानेके कारण आज हम भी यह कहने भी नहीं हिचकते कि संस्कृत-भाषा भारतकी ए विशेषकी भाषा है तथा इसमें न कोई इतिहासका भौगोलिक विश्लेष; न ज्ञान है न विज्ञान; फिर कैसे लिये हितकर एवं उपयुक्त कही जा सकती है। हड़ताल फेरनेवाले सहृदय वृन्द यदि गम्भी अनुसन्धान करें और विचारें तो सहज ही यह सकता है कि वे तथ्यसे कितनी दूर खड़े हैं तथा और भी दूर होते चले जा रहे हैं।

जिस समय देशकी तिल-तिल भूमि संस्कृत सुरसरि-धारासे परिप्लावित होती थी, भारतवर्षने दार्शनिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक, इतिहासकार, कल कवियोंको समुत्पन्न किया था, जिनके पावन संस हम धन्य हो जाते हैं तथा जिनकी कीर्ति-गाथाओंको सुन नहीं समाते और आज भी सभ्य-जगत्में गर्वोन्नत उठाकर चल रहे हैं। दुर्दान्त कालके कुचक्रसे इस

ार्पण हुआ था, हम भारतीय इनकी दृष्टिमें निरे पशु
ड़े और लाठियोंके बल हाँके जाते थे; पर इन्हें जब
र्वाणीके एक छोटे-से सेवक कवि कालिदासकी कृति
नशाकुन्तल तथा रघुवंश महाकाव्यका दर्शन हुआ, तब
ा रह जाना पड़ा। इन ग्रन्थोंकी और विशेषताओंके
थ गालवका कण्व ऋषिके यहाँ आकाशमार्गसे गमन
शि-दिवाकी सुमेरु-प्रदक्षिणा आदि वैज्ञानिक रहस्योंने
ाश्चर्यचकित कर दिया। भारतीय विज्ञानके एक
रहस्यको भी समझनेमें उनका माथा ठनकने लगा और वे
ाँतले अँगुली दबाने। हमारे सांस्कृतिक विकास-
अन्तर्गत संस्कृत-ग्रन्थोंमें ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक एवं
; रहस्य मिलेंगे, जिनकी छायाको छूनेमें भी आजका
विकासवाद मुख मोड़ लेता है, वहाँतक पहुँचनेकी बात
ा दूर है ही। आज नये जगत्‌की नयी सभ्यता और
कासवादकी ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं, तब हमें
ं एक अनोखी विशिष्टता, नवीनता, पूर्णता एवं
आभास मिलता है। हमारे नेत्रोंके समक्ष ऐसी
ा उपस्थित हो जाती है कि उसकी नयी चमक-दमक-
र्षित हो हम उसी ओर लपक तो पड़ते हैं; पर क्या
मारा वह नैतिक एवं सामाजिक स्तर ऊँचा
, जो हमारे प्राचीन सांस्कृतिक विकासवादसे सम्भव
दापि नहीं। इससे हमारे चर्मचक्षु भले ही अभिभूत
हमारा बाह्य जीवन देखनेमें भले ही आदर्श-सा प्रतीत
पर अन्तर्जीवन तो सदा ही उस चमत्कारपूर्ण रहस्यकी
हेगा, जिसके आश्रयमें पलकर हमारे पूर्वज वास्तविक
भ्युदयिक उन्नति, अनन्त सुख, शान्ति तथा विश्राम-
उपलब्धिमें सतत निमग्न रहा करते थे। सच तो
नवीनतम विकासवादके ऐन्द्रजालिक रंगमें सराबोर
पने वास्तविक रूपको सर्वथा खो बैठे हैं, जिससे
: असली रूप दीख ही नहीं पड़ता। हमें तो उसी
अन्वेषण करना चाहिये, उसी तत्त्वका पता लगाना
जिससे हमारा सर्वदेशीय जीवन उसी प्राचीन आदर्शपर
; हमारा देश, समाज तथा हमारी जाति पुनः उसी

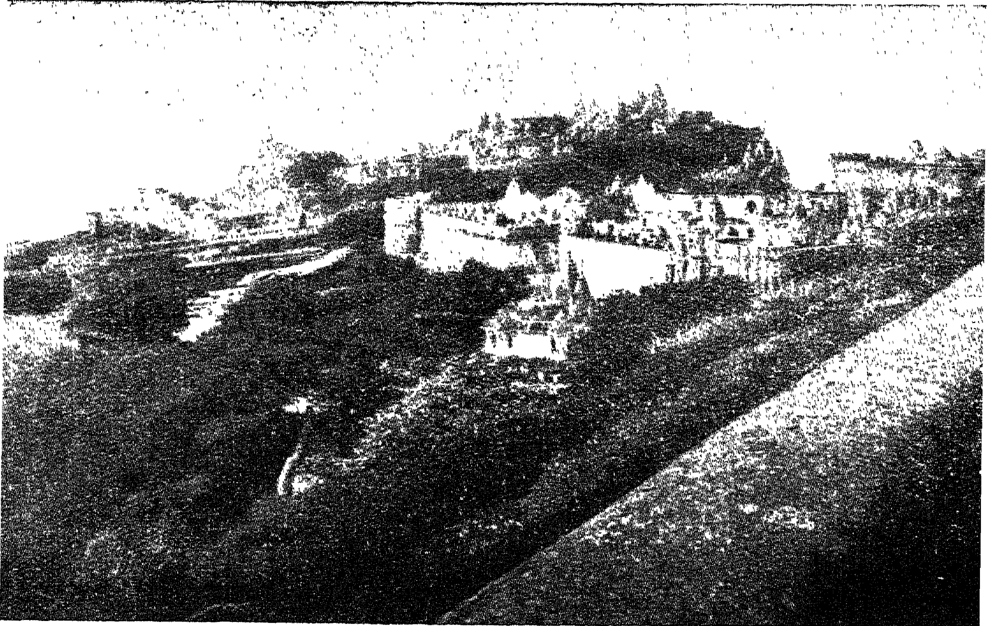
पदपर आरूढ़ हो सके; न कि पाश्चात्त्य देशोंकी नकल
समाज और जातिकी नैयाको भ्रमपूर्ण विकासवादके ग
विस्तृत आवर्तमें ही चक्कर काटती रहने दें।

हिंदू-जाति संस्कृत-भाषाकी अवमानना तथा
संस्कृतिकी अवहेलना करनेसे जिस अभावको प्राप्त ह
है, उसे पूरा करनेमें इसे बहुत संयम, नियम, ध
अदम्य उत्साहका अपनेमें समावेशकर पल-पलकी
करनी होगी। इस अभावकालमें हिंदू-जातिको तो अ
नित्य-नूतन प्रलोभिनी सभ्यताओंके बवंडरमें सर्वथा
हो जाना चाहिये था; पर कैसे आज भी यह तथाग
ही सुव्यवस्थित है, यह कोई कम आश्चर्य तथा कुतूह
नहीं है। आज जब कि हमारे देशकी भूमि, वायु और
परतन्त्रतासे मुक्त हैं, तब क्या कारण और अधिकार
संस्कृतिके ऊपर उसकी छाप बनी रहे और हम
स्वीकार करनेमें अपना अहोभाग्य समझें। यदि व
यही बात सत्य होती जा रही है तो इसका एकमा
कारण हो सकता है कि अभी भी हम अपनी प्र
तम भाषासे उदासीन ही हैं और उसके सुविशाल
पलनेको तैयार नहीं। अपनी संस्कृतिको खोकर
स्वतन्त्रता उपलब्ध हो तो यह हमारे लिये अभिर
समुन्नतिका वरदान नहीं। पूज्य महात्माजीका यह आदे
'प्रत्येक हिंदूको अपनी संस्कृति तथा सभ्यतासे उसी
लिपटे रहना चाहिये, जिस प्रकार बच्चा अपनी मासे
रहता है' किसी भी अवस्थामें हमें विस्मृत नहीं
चाहिये। हमारे लिये यह महामन्त्र होना चाहिये और
सार्थकता तभी सम्भव है, जब कि इस देशके अणु-परम
संस्कृत-भाषारूपिणी जाह्नवीके तीर्थ-सलिलसे पुनः एक
परिक्षालितकर पावन तथा भावन बना दिया जाय। क्या
वर्षका ऐसा सुसमय फिर आयेगा जब कि राजप्रासादोंसे
झोंपड़ियोंतक तथा प्रशस्त राजपथोंसे लेकर संकीर्ण वीथियों
घर-घरसे यह ध्वनि सुनायी पड़ेगी—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम

भजो रे भैया ! राम गोविंद हरी।
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खरचत नहिं गठरी॥

आबूपर्वतपर विमलशाहका जैन-मान्दर



शत्रुञ्जय पहाड़ी

आबूपवतपर तेजपाल-मन्दिर

प्राचीन भारतकी तीन महान् शिक्षण-संस्थाएँ

(लेखक—पं० श्रीईश्वरबोधजी शर्मा)

ोन भारतमें शिक्षाके तीन महाकेन्द्र तक्षशिला, और विक्रमशिला विश्वविद्यालय थे, जिनके ध्वंसा- ी भी देखनेमें आते हैं। इनमें पहला विश्वविद्यालय और शेष दो मगध (बिहार) में थे। इनका विशद । भारतके इतिहासमें मिलता है। विदेशी यात्रियोंने ण्ठसे इनकी प्रशंसा की है।

(१) तक्षशिला विश्वविद्यालय

तकी प्राचीनतम शिक्षण-संस्था पंजाबप्रान्तके ो शहरसे प्रायः १८ मीलकी दूरीपर (अब निर्जन ान स्थान) तक्षशिला नामकी नगरीमें थी। यहाँकी ंसारकी सर्वोत्तम और पुरातन सभ्यताओंमेंसे एक गक्य-जैसे राजनीतिज्ञ और भृत्य कौमारजीव-जैसे केत्सक (सर्जन) यहीं अध्यापक थे। यहाँ देश- बड़े-बड़े विद्वान् वेद आदि अठारह विद्याएँ— से अर्थशास्त्र, राजनीति और आयुर्वेदके अध्ययनके ते और उसमें अच्छी जानकारी प्राप्त करते थे।

ी भाषामें तक्षका अर्थ है पहाड़ और तक्षशिला है भी पहाड़ोंके बीच। इतिहासकारोंका कथन है कि दो पुत्र थे—तक्ष और पुष्कर। पुष्करने पुष्करावर्त्त ने तक्षशिला बसायी थी।'

ी सन्‌के पाँच सौ वर्ष पूर्वसे लेकर छठी शताब्दी- क्षशिला बहुत ही उन्नतिशील रही। इसके बाद हूण- कारियोंने तक्षशिलाका सर्वनाश कर दिया। फिर ढाई हजार वर्षोंके अनन्तर वैज्ञानिकोंके कठिन ानके पश्चात् वहाँकी खुदाई हुई। और वहाँ उस जमानेके ड़े, जिनमें छोटे-छोटे बर्तनोंसे लेकर चार-चार फुटके ो हैं, तथा कलम, दावात, थाली, लोटा, हीरक-हार, तम्भ, कसौटी-पत्थर और सुरमेदानी ही नहीं, अपितु कलाके सर्वोत्कृष्ट नमूने एवं बौद्ध भिक्षुओंके अवशेष भी मिले हैं। इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मी' और 'खरोष्ट्री' ं लिखे शिला-लेख भी पाये गये। ये सभी सामान म्यूजियम'में रक्खे गये हैं।

रिचस्तूप आदि इलाके पास ही एक-दो मीलकी दूरीपर ः हैं, जिन्हें अच्छी तरह देखे बिना यहाँकी सभ्यत तरह हृदयङ्गम नहीं की जा सकती। भिड़माउण्ड की राजधानी थी। जौलियामें बौद्धोंका निवासस्था यहाँ उनके व्यवहारकी वस्तुएँ चक्की, घड़ा तथा थाल मिलती हैं। यहाँ उन भिक्षुओंके भांडागार, बिह स्नानागार बने थे, जिनके अवशेष और विशेषकर कलाकी उत्कृष्टतम मूर्तियाँ दर्शकोंके चित्तको मोह ले रिचस्तूपमें कनिष्कने ईस्वी सन्‌के पूर्व एक स्तूप बनवा इनके अतिरिक्त तक्षशिलामें ब्राह्मण-बौद्ध दर्शन, अर्थशास्त्र एवं वैद्यकके ग्रन्थ भी लिखे गये थे। उर एक महान् देशकी समृद्धिशालिनी सभ्यताका महान् निहित है।

(२) नालन्दा विश्वविद्यालय

तक्षशिलाके बाद नालन्दा-विश्वविद्यालयका स्था है। सचमुच यह संसारभरका ज्ञानपीठ था। इसीने जगत्‌को भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र, साहित्य कला, शिल्प, सभ्यता और संस्कृति आदिका दान दि यहाँके स्नातक प्रकाण्ड पाण्डित्यमें अपना सानी नहीं जब बौद्ध-धर्मकी विजय-पताका सारे एशियाखण्डमें थी, भारतीय ज्ञान-विज्ञानका मूलस्रोत नालन्दा ही था। में अध्ययन किये बिना शिक्षा अधूरी ही समझी जा

नालन्दाकी स्थितिके बारेमें इतिहासकारोंके वि हैं। 'पालि-साहित्य'में नालन्दा राजगृहसे आठ दूरीपर बताया गया है। चीनी यात्री 'फाहियान'की सम्मति है। और दूसरे चीनी यात्री ट्वान्-ध्वाङ्के क नालन्दा वर्तमान बिहारशरीफ शहरके दक्षिण-पश्चि एक आमका बगीचा था। उस बगीचेमें 'नालन्दा एक नागराज रहता था। यह भी कहा जाता है कि बुद्ध पूर्वजन्ममें वहाँ 'बोधिसत्त्व'के रूपमें पैदा हु खैर जो कुछ हो, खंडहरोंकी खुदाई हो जानेपर अनु कल्पनाकी कोई गुंजाइश ही न रही। नालन्दाका

है। अगर यह प्रतिमा शून्यवादी नागार्जुनकी मान ली तो इससे यह साबित होता है कि नालन्दा दूसरी शताब्दी-में एक सुप्रतिष्ठित शिक्षा-केन्द्र था। क्योंकि नागार्जुन नके प्रवर्तक थे और नालन्दा महायानियोंका गढ़।

हाँ कभी नालन्दा-विद्यापीठके सुन्दर-सुदृढ़ भवन थे, ब 'बड़गाँव' नामकी एक बस्ती है। इसके निकट-विस्तृत और सुदूरव्यापी नालन्दाके ध्वंसावशेष—ऊँची-उजाड़ दीवारें, अनगिनत टीले, प्राचीन तालाब आदि प्राचीनतम गौरवमय दिनोंकी महत्ताके सूचक हैं।

ालन्दा विश्वविद्यालयमें सुदूरवर्ती चीन, जापान, मध्यएशिया, तिब्बत, श्याम, अनाम, बर्मा, मलय अनेक देशोंसे ज्ञान-पिपासु व्यक्ति अध्ययनार्थ आते हाँ अठारह बौद्धनिकाय-ग्रन्थोंके अतिरिक्त वैद्यक, साहित्य, कला, ब्राह्मण एवं जैन दर्शन आदिकी भी ी जाती थी। खंडहरोंकी खुदाईके सामान यह कह क केवल किताबी शिक्षा ही पर्याप्त नहीं थी, हस्त-ी शिक्षाका भी सुप्रबन्ध था।

ाँके चीनी स्नातक ह्वेनसांगके अनुसार नालन्दामें रसे अधिक छात्र पढ़ते थे और अध्यापकोंकी संख्या र थी। प्रधानाध्यापक शीलभद्र थे। विश्वविद्यालयके द्वारमें आठ विस्तृत कक्ष और तीन सौ प्रकोष्ठ थे। न दस भागोंमें विभक्त था। शिक्षार्थियोंके रहनेके न्न-भिन्न तीन सौ छात्रावास-भवन थे। तीन विशाल य—रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरञ्जक नामके थे। कालयोंमें हीनयान, महायान, वज्रयान आदि बौद्ध यान्य सम्प्रदायोंके विविधविषयक ग्रन्थ मौजूद थे।

क्षा-विभागमें जिनमित्र, शीघ्रबुद्ध, चन्द्रपाल, , स्थिरमति, प्रभाकरमित्र, धर्मपाल, भद्रसेन, शान्त-ादि प्रथम श्रेणीके प्रकाण्ड विद्वान् थे—जिनमें शान्तरक्षितका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके नालन्दाकी कीर्ति अखिल विश्वमें परिव्याप्त हो ।

न्दा केवल मगधका ही ज्ञान-भण्डार नहीं वरं समस्त ज्ञान-विज्ञानका पथप्रदर्शक था। नालन्दाके अन्तिम घोर वज्रयानका विकृत-से-विकृत रूप जनतामें किया जा रहा था। इन्हीं आन्तरिक दुर्बलताओं स्मानोंके आक्रमणने नालन्दाको मिट्टीमें मिला दिया। ने बड़ी निष्ठुरतासे इस विद्यालयको लूटा। इसके —वहाँकी जली ईंटें, चौखटें, चावलके जले हुए ादि। भारतीय स्थापत्य-कलाके उत्कृष्टतम नमूने बर्बाद किये गये! यदि भयंकर अमानुषिक प्रहारोंसे का नाश न हुआ होता तो वहाँके ग्रन्थ-संग्रहालय दुनियाको यह बतला सकते कि उस समय नालन्दा विस्तृत एवं गम्भीर ज्ञान-समुद्र था, उसका ज्ञान भूमण्डलपर कैसा अद्वितीय था।

(३) विक्रमशिला विश्वविद्यालय

भारतके तीसरे विश्वविद्यालय विक्रमशिलाके विषयमें इतिहासकारोंके विभिन्न मत होते हुए भी तिब्बती बौद्धग्रन्थोंके अनुवादके बाद, उसके अ वर्तमान भागलपुर जिलेके सुलतानगंजको 'विक्रम निश्चित किया गया है।

इस विश्वविद्यालयके चारों ओर चार तोरण थे। प्रवेशद्वारपर एक-एक प्रवेशिका-परीक्षागृह था। इन द्वारोंपर एक-एक दिग्गज विद्वान् थे। जो प्रवेशार्थ पढ़ने आते थे, उन्हें पहले इन्हीं द्वारस्थ पण्डितोंको प सन्तुष्ट करना पड़ता था।

अध्यापन-विभागमें रत्नवज्र, लीलावज्र, कृष्णसम तथागतरक्षित, दीपंकर श्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित नरेन्द्र श्रीज्ञान—ये आठ महापण्डित और १०८ पण्डि आचार्य 'दीपंकर श्रीज्ञान' थे। इस विश्वविद्यालयमें साहित्य, दर्शन, न्याय आदिके अतिरिक्त विशेषरूपसे शास्त्रकी शिक्षा दी जाती थी। नालन्दा-जैसे प्राचीन विक्रमशिला-जैसे नवीन विश्वविद्यालयोंमें तन्त्रशास्त्र प्रधानता थी। यहाँके महापण्डितोंमें मैत्री या डोम स्मृत्याकर आदि 'सिद्ध' ही थे।

विक्रमशिलामें भारतीय छात्रोंके अतिरिक्त ब विदेशी छात्र भी विद्याध्ययनके लिये आते थे। छ निवास एवं भोजनादिका प्रबन्ध विश्वविद्यालयकी ही था।

दीपंकर श्रीज्ञानके समयमें यहाँके संघस्थविर 'रत्न थे। बिहारके मध्यमें 'बोधिसत्त्व'की मूर्ति थी। तान्त्रिक देवालय थे। विदेशी छात्रोंको विशेष सुविधा प्राप्त

सन् ११९३ ईस्वीमें पालवंशी राजाओंके अधःप साथ-साथ ये विश्वविद्यालय भी सदाके लिये अन्धक विलीन हो गये। विजय-मदान्ध मुसल्मानोंने महम्मद-अख्तियारके नेतृत्वमें गोविन्द पालको मारकर नालन्दा विक्रमशिलाको खूब लूटा। हजारों विद्यार्थी और अध्य तलवारके घाट उतारे गये! विजेताओंने लगभग दो वर्षके पुराने धर्म और भारतीय सभ्यताको इस बर्बरतासे किया कि पुनः उसका उद्धार न हो सका!!

भारतके प्रसिद्ध मन्दिरोंका शिल्पदृष्टिसे आलोचन

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम्० ए०)

तमें प्राचीन कालमें मन्दिर प्रायः काष्ठके बनते थे, कल नैपाल, तिब्बत, चीन तथा जापानमें बनते हैं। । है कि अत्यन्त प्राचीन कालके मन्दिर इस समय प्रायः ते ।

ीन मन्दिरोंमें शक्तिके तथा शिवके मन्दिर बहुत अधिक ।-मन्दिरोंके विषयमें पाठकगण कल्याणके 'शक्ति-अङ्क' शत मेरे लेखमें उल्लेख पायेंगे तथा इस विषयपर येंगे कि शक्ति-मन्दिरोंके निर्माणका प्रधान कारण । शिव-उपासना भी परम प्राचीन है और इसको मझना भूल है। शिव तथा शक्तिकी उपासना संसारके । धर्मोंमें पायी जाती है—यथा मिस्र, फिनीशिया, टेन इत्यादि देशोंमें। भारतमें भी यही उपासना । कालान्तरमें वैष्णव आचार्यों तथा संतोंके प्रभावसे उपासना भी बहुत बढ़ी। इस समय भारतमें मन्दिर इन्हीं तीन श्रेणियोंमें आते हैं। प्राचीन ारतमें सूर्य-उपासना भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। कहा सकता कि सूर्यकी पूजाके लिये मगलोग बाहरसे क्यों ाये गये। कालान्तरमें सूर्य-उपासना भारतमें बहुत यी और साथ-ही-साथ मेक्सिकोके मयलोगोंमें बहुत उस देशमें मयलोगोंके बनाये हुए सूर्य-मन्दिरोंके ध्वंसावशेष मिलते हैं। अनेक प्रदेशोंमें सूर्यकी ों नरबलितक दी जाने लगी थी। गणेश-उपासना केवल महाराष्ट्र देशमें ही कुछ स्थानोंपर मिलेगी। हिंदुओंके पञ्च-देव हैं।

तके वर्तमान मन्दिर सब-के-सब बड़े-बड़े राजाओंके ए हैं। इन मन्दिरोंका निर्माण रूपमण्डन इत्यादि ग्रन्थोंके आधारपर हुआ है। और इन मन्दिरोंमें मिलने-क बातें जो देखनेमें साधारण मालूम पड़ती हैं, वे सब-की-मेतरूपसे बनी हुई पायी जायँगी। जिज्ञासु पाठकोंको ाथरावकृत 'Hindu Iconography' नामक पुस्तक देखनी चाहिये। इसमें शिव, देवी, विष्णु देवताओंके विविध रूपोंका वर्णन है और मन्दिरोंके विषयमें भी बहुत कुछ लिखा है। इसके अतिरिक्त नमेंटद्वारा प्रकाशित 'श्रीतत्त्व-निधि' नामक संस्कृत र्तियोंके विषयमें द्रष्टव्य है। अनेक देवता ऐसे हैं, जिनके मन्दिरके समीप तालाब अथवा कूप होना अन्यथा जनताका अनिष्ट हो सकता है। ऐसी मूर्तियाँ काली इत्यादि उग्र देवताओंकी हैं। मन्दिरोंमें भद्रपीठ श्रेणियोंका स्तर एक मुख्य वस्तु है। अर्थात् मन्दिर भूमिपर अधिकतर सोलह स्तर ऐसे होते हैं, जिनमें ऊपर एक स्तरमें नानाविध पशु-पक्षी तथा मनुष्योंकी दिखलायी जाती हैं। मन्दिरके शिखरके विषयमें भी नियम हैं कि किस मन्दिरमें कितने शिखर होने च विष्णु-मन्दिरोंके बाहर विष्णुके कौन-कौनसे अवतार कि स्थानपर दिखलाये जायँ, इसका भी नियम है। शिव-म बाहरकी ओर गणेश, गौरी तथा कार्तिकेयकी मूर्तियाँ जाती हैं। शिव-मन्दिरोंके भीतर भी यही मूर्तियाँ स्थानोंपर बनायी जाती हैं। अनेक मन्दिरोंमें बाहर छोटे-छोटे मन्दिर उपदेवताओंके बनाये जाते हैं। मन्दिरोंमें यथा खजुराहोके विशाल चन्देल मं भुवनेश्वरके मन्दिरोंमें, पुरीके जगदीश-मन्दिरमें, ध्वस्त सूर्य-मन्दिरमें तथा काशीके नेपाली मन्दिरमें ओर कई नियमित स्थानोंपर अश्लील मूर्तियाँ मिल इनके विषयमें अनभिज्ञ समालोचकोंने मन्दिरोंको बन राजाओंको तथा उनको बनानेवाले शिल्पियोंको बुरा-भ है। पर यथार्थमें इन अश्लील मूर्तियोंका प्रयोजन म वज्रपातादिसे रक्षा करना है। नये मकान बनाते स स्थानोंपर झाड़ू, डलिया इत्यादि इसलिये लटका दी कि किसीकी 'नजर' न लगे। मैंने स्वयं तो नहीं देख पढ़ा है कि Roman Catholic मन्दिरोंमें बात मिलेगी। इस बातके प्रमाणस्वरूप नीचे कुछ दिये जाते हैं। यथा—

वज्रपातादिभीत्यादिवारणार्थं यथोदितम्
शिल्पशास्त्रेऽपि मण्यादिविन्यासं पौरुषाकृतिम्
(उत्क

अधःशाखाचतुर्थांशे प्रतीहारौ निवेशयेत्
मिथुनै रथवल्लीभिः शाखाशेषं विभूषयेत्
(अग्नि

मिथुनैः पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत्
(बृहत

क्षिणके अनेक मन्दिरोंमें कासव नामक एक चबूतरा
हता है, जिसपर सिर रखकर यात्री लोग देवताको
करते हैं। दक्षिणके मन्दिरोंमें मन्दिरकी परिधिके
एक तालाब होता है, जिसमें देवताकी चलमूर्ति उत्सवोंके
र समारोहके साथ नौकामें घुमायी जाती है। ऐसे
को तेप्पाकुलम् कहते हैं। इन मन्दिरोंमें अधिकतर
को मुख्य मूर्तिका स्पर्श नहीं करने दिया जाता।
की ओरसे मन्दिरके सेवकगण द्रव्य लेकर मूर्तिकी
देते हैं। कई मन्दिर ऐसे भी हैं, जहाँ शिवलिङ्गपर
चढ़ाया जाता, केवल तेलका लेप करते हैं।

ा कि ऊपर कहा गया है, भारतके प्रसिद्ध मन्दिर
राजकुलोंद्वारा बनवाये गये हैं। मन्दिरके निर्माणमें
प्रधान है। यथार्थमें भगवान् प्रत्येक मनुष्यके घट-
ास हैं; पर प्रत्येक भावुक भक्त भगवान्के साकार
ूजा, अर्चा इत्यादि करके अपने अन्तःकरणको सुख
वास्तवमें मूर्तियाँ एक प्रकारके दिव्य आदेश कहे
हैं, जिनके द्वारा भक्त अपनी साधना पूरी करते हैं।

—

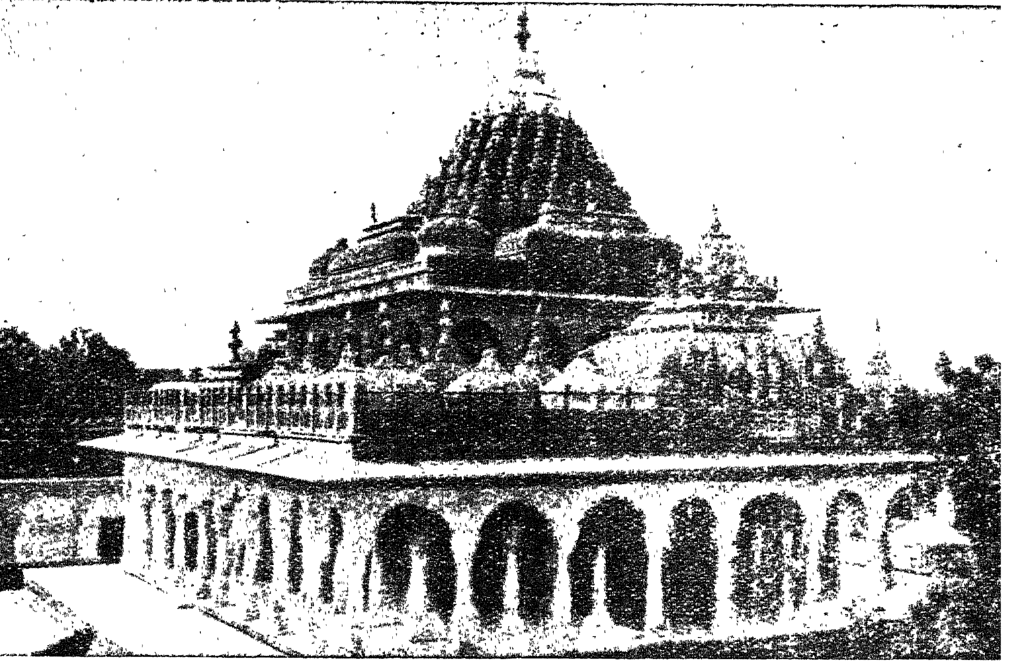
तेमामन्त्रतीर्थेषु दैवज्ञे भैषजे गुरौ।
दृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

र वास्तवमें यह सब भावका ही खेल है।
of the Golden Flower नामक अंग्रेजी
चीनियोंकी ध्यान-विधि वर्णित है। इस पुस्तककी
सुप्रसिद्ध जर्मन-विद्वान् Jung ने लिखी है। उसमें
लेखा है कि जबतक मनुष्य भक्तिमें इतना सराबोर
जाता कि असम्भाव्य बातोंका भी विश्वास करे, तबतक
वान्का साक्षात्कार नहीं होता। अतः जिसे हम
ास कहते हैं, कुछ नियमोंके अनुसार होनेके कारण
उत्कट भक्तिका रूप धारण कर सकती है। हिंदुओं-
क देवी-देवताओंकी पूजा प्रचलित होनेपर भी
ारमें हिंदूलोग मूर्तिपूजक नहीं कहे जा सकते।
graphy शब्द मूर्तियोंके वर्णनके लिये आता है। यह
on से निकला है। प्राचीन कालमें फिनीशियन लोग
ी मूर्तियाँ (Icon) अभिचार, मारण इत्यादिके लिये
। अतः मन्दिरोंका निर्माण भक्तोंकी भावना प्रकट
मित्त और 'स्वान्तःसुखाय' कहना चाहिये। प्राचीन
त्य-गीतादि भी देवमूर्तियोंके सम्मुख होते थे और

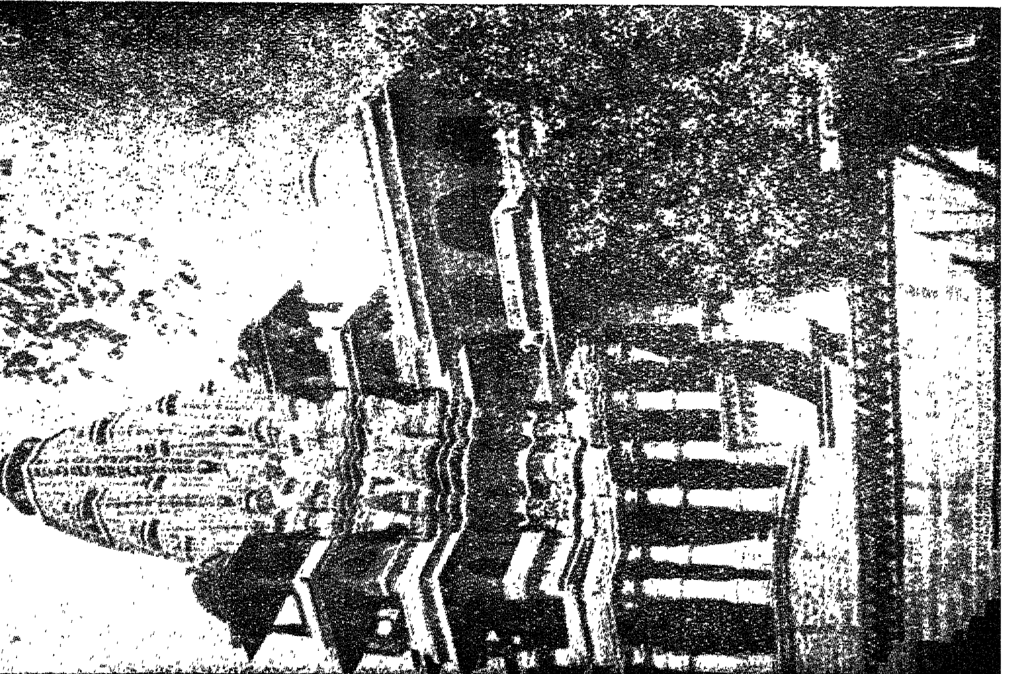
कारण इन बड़े-बड़े मन्दिरोंमें जगमोहन, मण्डप
मन्दिरके मुख्य अङ्ग माने गये हैं। शक्ति-
जीव-बलिकी प्रथा तथा दक्षिण और वाम उपासना, शि
अनगढ़ लिङ्गोंकी स्थिति अथवा नर्मदेश्वरकी स्था
विष्णुमन्दिरोंमें शालग्राम इत्यादिकी स्थिति गूढ़ और
विषय हैं, जिनपर विचार करनेके लिये यहाँपर स्था
मन्दिर पहले गुफाओंमें बनते थे, जैसा काश्मीरके
तथा कालिंजरके मन्दिरोंमें दिखलायी पड़ता है। का
पत्थरके मन्दिर बनने लगे। नाना प्रकारके पत्थरोंक
मन्दिरोंके निर्माणमें हुआ है। कहीं-कहीं तो केवल सं
ही-संगमरमर लगाया गया है। मन्दिरकी रक्षाका प्र
एक मुख्य विषय है, जो ध्यानमें रक्खा गया है।
मन्दिरोंके चारों ओर सात-सात परकोटेतक बने हैं
अतिरिक्त भक्तोंने अनेक प्रकारसे मन्दिरोंको सुसज्जित
प्रयत्न किया है। जैसे, पंजाबके सुप्रसिद्ध महाराजा रणजी
काशीविश्वनाथ, ज्वालाजी तथा अमृतसरके सुप्रसिद्ध
सुवर्ण-मन्दिरपर सोनेका पत्र चढ़वाया, जो अबतक
है। कहा जाता है कि इन्हीं महाराजाने प्रसिद्ध कोह
श्रीजगन्नाथजीको अर्पण करनेकी इच्छा प्रकट की थी, प
यह इच्छा कई कारणोंसे उनके देहावसानके उपरा
नहीं की गयी। प्रातःस्मरणीया अहल्याबाईने भी
मन्दिरोंका निर्माण कराया है और सम्भवतः काशीविश्
वर्तमान मन्दिर भी उन्हींका बनवाया हुआ है।

कुमार दाराशिकोहने एक पुस्तक 'रिसाला ह
नामक लिखी थी, जिसका अंग्रेजी अनुवाद प्रयागके
आफिससे प्रकाशित हुआ है। बड़ी सुन्दर पुस्तक है।
मुसल्मानोंके चिश्तिया सम्प्रदायके अनुसार प्राणायाम-
वर्णन है। इसमें भी भावोंके गूढ़ स्तरोंका विशेष
किया गया है। मन्दिरोंकी स्थापना विशिष्ट भक्तकी
निर्भर होती है। और इसीसे सिद्धि भी प्राप्त होती है।
योगीजनोंका सम्बन्ध भी ऐसे मन्दिरोंकी स्थापनामें होत

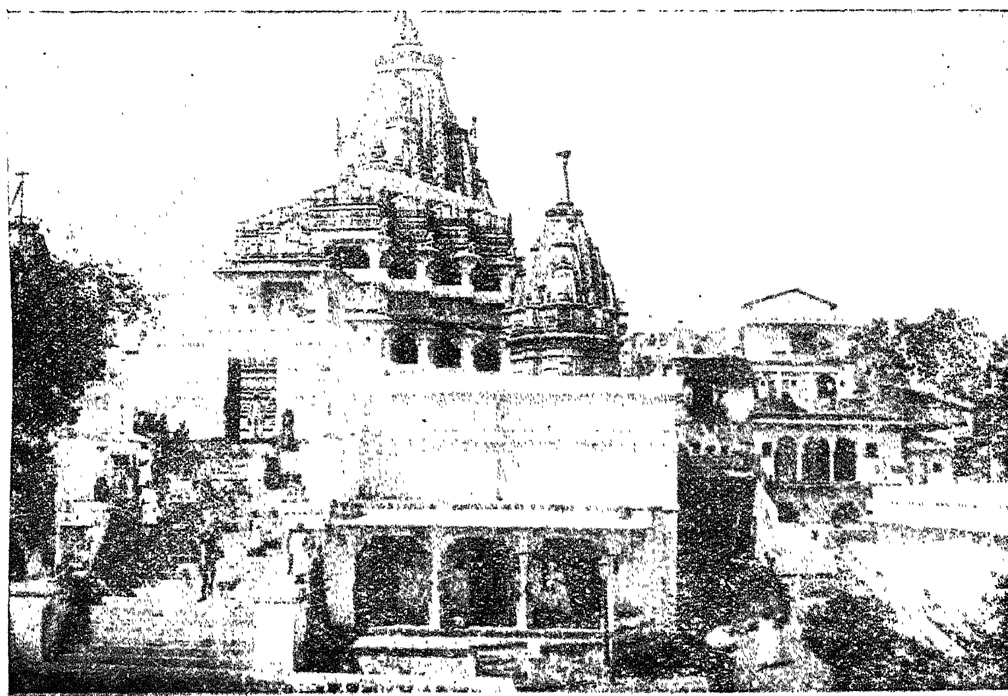
उत्तरी भारतमें मुसल्मानोंके आक्रमणके कारण
सब पुराने मन्दिरोंकी बहुत क्षति हुई है। सोमना
मुसल्मानोंने प्रायः सम्पूर्ण मन्दिर ही नष्ट कर दिया।
विश्वनाथके दो मन्दिरोंको यवनोंने नष्ट कर दिया। क
दुर्गके मन्दिरोंको यथासाध्य नष्ट-भ्रष्ट करके छोड़ा।
अयोध्या और मथुराके भी असंख्य मन्दिरोंको इन्हों



महामन्दिर, जोधपुर



श्रीएकलिङ्ग-मन्दिर, कैलासपुरी



अपरिचित न होंगे। उड़ीसा अथवा उत्कलप्रदेशमें
न्नाथजीके मन्दिरपर कई बार मुसल्मानोंके आक्रमण
र कोणार्कके सुप्रसिद्ध सूर्य-मन्दिरके ध्वस्त होनेकी
भी इन यवनोंका ही हाथ बतलाया जाता है! इन्हीं
उत्तर भारतमें बहुत कम प्राचीन मन्दिर मिलते हैं;
मिलते भी हैं, उनमें कलाका कोई विशेष प्रदर्शन नहीं

जपूतानेमें यवनोंका प्रवेश अधिक न हो पाया। इसी
हाँ कुछ प्राचीन मन्दिर मिलते हैं। मारवाड़ अथवा
में दो अत्यन्त सुन्दर मन्दिर विद्यमान हैं। पहला
ग्रानमंडीमें 'महामन्दिर' नामसे विख्यात है। इसमें
म्भवाला सुन्दर जगमोहन बना हुआ है। जगमोहनके
गशीयुक्त तथा अत्यन्त सुडौल बने हैं। मन्दिरके
क मुख्य तथा अन्य छोटे-छोटे कई शिखर इस मन्दिर-
को बढ़ाते हैं। दूसरा मन्दिर एक शिखरवाला है;
पि इसमें पहले मन्दिरका-सा जगमोहन नहीं है, तथापि
में पहले मन्दिरसे बहुत ही सुन्दर हैं। इस मन्दिरमें
विशाल गवाक्ष तीन ओर बने हैं। ठीक ऐसा ही
उज्जैनमें महाकालेश्वरका भी है।

यपुर राज्यमें भी दो बड़े सुन्दर मन्दिर मिलते हैं।
न्दिर उदयपुर राजधानीसे बारह मील उत्तर एक
वेत संगमरमरका बना हुआ एकलिङ्गजीका विशाल
। इस मन्दिरके पीछे चौबीस गाँव लगे हुए हैं। मन्दिर-
ट एक विशाल पर्वतकी-सी है, जिसमें चोटियोंकी जगह
खर ऊपर-नीचे दीखते हैं। कहते हैं कि एकलिङ्गजी-
की स्थापना मेवाड़के आदिपुरुष बाप्पा रावलके
हुई थी और ईसाकी पंद्रहवीं शताब्दीमें महाराणा
इस मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया था। खास उदयपुर-
दीशजीका मन्दिर भी देखने योग्य है। यह मन्दिर
एकलिङ्गजीके मन्दिरकी ही तरह बना है। इसका
बड़ा ही सुन्दर बना है। इसके स्तरोंमें नाना प्रकारके
हाथी-घोड़े तथा मनुष्य बने हैं। बहुत बारीक
काम किया गया है। और मनुष्योंकी बनावट
स्वाभाविक तथा बारीक है।

बू पर्वतपर कई बड़े ही सुन्दर संगमरमरके जैन-मन्दिर
जिनमें करोड़ों रुपयोंकी लागत उस समय लगी थी।
चारों ओर बड़ा ही सुन्दर काम दीखता है। स
छतको लेते हुए कोई भी कोना कारीगरीसे खाली
काठियावाड़ प्रान्तमें पालीताणा राज्यमें शत्रुञ्जय नाम
इन जैन-मन्दिरोंसे परिपूर्ण है तथा द्रष्टव्य है। जैनी
श्रद्धासे इन तीर्थोंकी यात्रा करते हैं।

राजपूतानेके पूर्वी कोनेपर ग्वालियरका सुप्रसिद्ध
किला बना है। इसमें सास-बहू (सहस्र-बाहु) क
अत्यन्त सुन्दर बना है। ग्वालियरका किला अत्यन्त
है और इसमें बने हुए महल तथा मन्दिर बादके प्र
हैं। सास-बहूका मन्दिर सातवीं या आठवीं शताब्
प्रतीत होता है और कहा नहीं जा सकता कि इ
देवताकी प्रतिष्ठा हुई थी। मन्दिर तीन खण्डका है अ
चारों ओर द्वार-ही-द्वार हैं। इसमें बहुत ही बारीक
भीतरकी ओर की गयी है। छतमें तथा प्रत्येक
बेल-बूटोंकी बनावटसे कोई स्थान खाली नहीं। और
भी साधारण नहीं, किंतु बड़े ही सुन्दर बने हैं।

मध्यभारतके चन्देल मन्दिर खजुराहोमें बने
खजुराहो इस समय एक छोटा-सा गाँव है; परंतु कि
यह जझोती प्रान्त (यजुर्होती) की राजधानी थी अ
अनेक विद्वान् तथा धनी लोग रहते थे। इस समय
छतरपुर स्टेटमें है। महोबासे खजुराहो चौंतीस मील,
सत्ताईस मील तथा पन्नासे पचीस मील है। यहाँ जा
मोटर-लारियाँ मिल जाती हैं; केवल थोड़ी ही दू
चलना पड़ता है। महोबाके चन्देल राजपूत राजा च
आठवीं शताब्दीमें चन्देल राज्यकी नींव डाली, तबसे
पाँच शतकतक चन्देल राजाओंका राज्य रहा। चन्देल
मुख्य स्थान कालिंजरका दुर्ग था, और उनके रहने
स्थान महोबा था। खजुराहोमें उनके सुप्रसिद्ध मन्दि
इनमें कंडरिया महादेवका सुप्रसिद्ध मन्दिर है। यह
अनुमानतः दसवीं शताब्दीमें राजा धंगदेवने बनवा
खजुराहोमें कुल तीस मन्दिर हैं, जिनमेंसे आठ जैनिय
जनरल कनिंघमने गंठाई नामक मन्दिरको बौद्ध म
है, परंतु उनकी धारणाके आधार पुष्ट नहीं हैं। जित
कंडरिया महादेवका मन्दिर है, उतने बड़े यहाँ लगभग
दस मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिर एक ऊँचे चबूतरेपर
कंडरिया महादेवका मन्दिर एक सौ सौ फुट लंब

ाने हैं। मन्दिरकी छतमें बहुत अच्छा काम किया हुआ मन्दिरका कोई भाग ऐसा नहीं है, जिसमें पत्थरको ूर्तियाँ न बनायी गयी हों। इस मन्दिरमें कनिंघमने र्तियाँ दो और तीन फुटके अंदर ऊँची गिनी थीं। र्तियाँ तो सहस्रोंकी संख्यामें हैं। अनेक मूर्तियाँ ाव्यञ्जक भी हैं। देवी-देवताओंकी जितनी मूर्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। मन्दिरके गवाक्ष भी अत्यन्त ही ा प्रभावोत्पादक हैं। मन्दिरके शिखरपर तथा मण्डप शिखरपर एक-एक आमलक बना है। इनमें एकके शिखर उत्तरोत्तर ऊँचे बड़े ही आकर्षक हैं। इस । मन्दिर बनवानेमें कम-से-कम बीस-पचीस लाख गे।

ः बाद उड़ीसाके मन्दिर आते हैं। उड़ीसामें तीन दर हैं—भुवनेश्वरमें श्रीलिङ्गराजका मन्दिर, पुरीमें थका मन्दिर और कोणार्कमें श्रीसूर्यनारायणका इस प्रान्तके मन्दिरोंकी बनावट अपने ढंगकी निराली र चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। पहला दर या विमान, जिसमें प्रधान देवमूर्ति स्थापित होती ो लगा हुआ सामनेकी ओर जगमोहन होता है, जिसे प, मुखशाली तथा भद्रक भी कहते हैं। मण्डपसे एक रकी ओर जाता है और इसीसे दर्शकगण भीतर ान देवमूर्तिका दर्शन करते हैं। जगमोहनके आगे न्दर होता है, जिसमें नृत्य तथा कीर्तनादि किये जाते य-मन्दिरके आगे भोग-मन्दिर होता है, जहाँ रखकर ाया जाता है।

नेश्वर केशरी राजाओंकी राजधानी रहा है। केशरी चौथी शताब्दीके उत्तर भागसे लेकर ग्यारहवीं ः पूर्व भागतक छः सौ सत्तर वर्ष और चौवालीस क उत्कल प्रदेशपर राज्य किया। जलवायुकी उत्तमताके वनेश्वर फिर उड़ीसाप्रान्तकी राजधानी होने जा रहा जाता है कि केशरी राजाओंने इस स्थानपर सात हजार नवाये थे। इस समय भी यहाँ लगभग पाँच सौ ो होंगे ही। इनमें ईसाकी पाँचवीं सदीसे लेकर सदीतकके मन्दिर विद्यमान हैं। काशीको छोड़कर कदाचित् ही कोई ऐसा स्थान हो, जहाँ इतने अधिक र एक साथ विद्यमान हों। इन मन्दिरोंमें मुख्य श्रीलिङ्गराजका है, जिसे ललाटेन्दु केशरी (६१७ से

एक सौ अस्सी फुट ऊँचा है। मन्दिरकी बनावट कि उसका कोई भी बाहरी भाग पशु-पक्षी त नारियोंकी बड़ी तथा बारीक मूर्तियोंसे खाली नहीं है। बाहर तीन छोटे-छोटे मन्दिर गणेश, कार्तिकेय तथ हैं, जो विमानसे लगे हुए हैं। गौरीकी प्रतिमा इतने ः से सजायी गयी है और ऐसे सुन्दर काले पत्थरकी ब देखते ही बनता है। मूर्तियोंमें हाथी, घोड़े, हिर इत्यादिकी जो मूर्तियाँ बनी हैं, उनमें सजीवताका भा रूपसे उल्लेख्य है। इनके अतिरिक्त राजभवनकी सम्बन्धी तथा राजा-रानी और सिद्धोंके दरबारर्क विशेषरूपसे दर्शनीय हैं। मन्दिरके चारों ओर नामक सिंह उभड़े हुए बने हैं। इस मन्दिरमें भ मूर्तियाँ अश्लील कही जा सकती हैं। यहाँसे समु लगभग पचीस मील दूर है और समुद्रकी रूखी वा अनेकानेक मूर्तियाँ नष्ट-सी होती जा रही हैं। फिर बूटे बहुत ही सुन्दर बने हैं।

श्रीजगन्नाथपुरीका वर्तमान मन्दिर, जिसका राजा अनङ्गभीमदेवने तेरहवीं शताब्दीमें कराया जहाँकी मूर्तियाँ तीसरी शताब्दीकी कही जाती हैं, के ही ढंगपर बना है। इस मन्दिरपर मुसल्मानोंने आक्रमण किया और कई बार मन्दिरकी मरम्मत कारण शिल्पकी दृष्टिसे इस मन्दिरकी मूर्तियाँ बहुत हैं। हाँ, मराठोंने लगभग तीन सौ वर्ष हुए भोग-जीर्णोद्धार कराया था और इस भोग-मन्दिरकी दाक्षिणात्य शिल्पके अनुसार उत्तम कही जा सकती बातका कोई प्रमाण नहीं कि मराठोंने यह भो कोणार्कसे मूर्तियाँ लाकर बनाया है। इस भोग-मूर्तियोंको देखनेसे इतना अवश्य मालूम पड़ता दाक्षिणात्य शिल्पमें वज्रपातादि-निवारणार्थ अश्लील अत्यन्त सुसभ्य ढंगकी होती हैं। उड़ीसाके मन्दिरों इधर वाममार्गके प्रचारसे तथा अन्य विशिष्ट कारणों अश्लीलरूपमें बनी हैं। यहाँ 'मिथुन' को 'मैथुन लिया गया है।

जगन्नाथजीके मन्दिरके विमानभागमें दक्षिण जो नया द्वार बना है, वह हालमें ही एक मैनेजरने था। अन्यथा विमानभागमें एकसे अतिरिक्त अ द्वार नहीं होता।

ा है। इस मन्दिरकी मूर्तियोंकी कला इतनी सुन्दर है कि कहते हैं कि एशियामें इतना सुन्दर मन्दिर नहीं है। गवर्नमेंटने भी कई लाख रुपये लगाकर मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया है। कहा जाता है न्दिरके विमान-भागके शिखरपर एक बहुत बड़ा छड़ लगा हुआ था, जिसके कारण पासमें जानेवाले र खिंच आते थे। इसी कारण कहा जाता है कि नाविकोंने चुम्बक निकालनेके लिये मन्दिरको तोड़ मेरा मत यह है कि यदि ऐसा चुम्बक मन्दिरके लगा हुआ था तो उसका प्रयोजन यह था कि वह लोहेकी शहतीरोंको ठीक स्थानपर स्थित रक्खे; स विशाल मन्दिरमें लगभग पचीस ऐसी शहतीरें गज लंबी अबतक मिलती हैं और इनमेंसे प्रत्येकका गभग डेढ़ सौ मन होगा। जगमोहनके पीछेका थवा मुख्य भाग ध्वस्त हो गया है। जगमोहन ान-भाग मिलाकर एक विशाल रथकी योजना की जिसके पहिये अबतक विद्यमान हैं। जगमोहनके गमें जो मूर्तियाँ बनी हैं, वे पुरुषाकार हैं। इसीसे विस्तारका कुछ अनुमान हो सकता है। जगमोहनका गभग दो सौ फुट ऊँचा है और इस विशाल भवनके होनेपर आदमीको अपनी तुच्छताका अनुभव होता मोहनकी चौखटके द्वार क्लोराइट नामक नीले पत्थरके जसे यहाँ मुगनी कहते हैं। इसपर बने हुए बेल-बूटेका ना सुन्दर है कि वैसा और कहीं नहीं देखनेको वैसे तो सारा मन्दिर ही मूर्तियोंसे भरा पड़ा है, पर पहियोंकी बनावट विशेषरूपसे द्रष्टव्य है। प्रत्येक ढ़े दस फुट ऊँचा है और ऐसे चौबीस पहिये बने इन पहियोंमें कोई भी स्थान बेल-बूटे तथा मूर्तिकारीसे है। सूर्यकी सुन्दर मूर्तियाँ भी इसी मुगनी पत्थरकी हैं। यहाँका अरुणस्तम्भ, जो पैंतीस फुट ऊँचा तथा त्थरका बना है, इस समय जगन्नाथजीके मन्दिरके गा है। यहाँ मन्दिरोंके द्वारपर नवग्रह बनानेकी था नाग-कन्याओंकी मूर्तियाँ भी अनेक स्थलोंपर

मोहनके आगे नाट्य-मन्दिर अभी बालूसे खोदकर गया है। इसकी शोभा अपूर्व है। यह मन्दिर नवीं ा बना हुआ माना जाता है और सोलहवीं शताब्दी-

वर्षतक यह बालूके ढेरमें ढका हुआ पड़ा थ

दक्षिण भारतके मन्दिर उत्तरके मन्दिरोंकी बिलकुल भिन्न हैं। दक्षिणमें पहले सबसे नीचेके पाण्ड्य राजाओंका आधिपत्य था, जिसमें मदुरा तथा ि जिले अन्तर्गत थे। पूर्वी घाटकी ओर चोलर अधिकार था और पश्चिमी घाटकी ओर चेर राज ईसाकी तीसरी शताब्दीमें एक चौथे राज्यका उदय पल्लवोंका राज्य कहा जाता है। इनका राज्य आठवीं तक था और इस कालमें पल्लवलोग ही दक्षिणव अधिष्ठाता थे। कालान्तरमें चालुक्य राजाओंके उदय पल्लवोंने अपनी राजधानी काञ्चीपुर अथवा कां बनायी। और इसी समयमें इन लोगोंने अपने मुख बनाये। नवीं शताब्दीमें चोल राजाओंने पल्लवोंको किया। पल्लव लोग पहले बौद्ध थे और कालान्तरमें गये। इन्होंने मामल्लपुर नामक स्थानमें पत्थरोंके काटकर मन्दिर बनानेकी प्रथा प्रचलित की। य समुद्रके किनारे ही है और यहाँपर पञ्चपाण्डवोंके रथ तथा त्रिमूर्ति, वराह और दुर्गाके मन्दिर भी बने हैं स्थानपर एक चट्टानके ऊपर विंसेंट स्मिथके अर्जुनकी तपस्या तथा कुमारस्वामीके मतानुसार गङ्गा दृश्य बना है। इन मन्दिरोंमें सातवीं सदीकी पल्लव-मूर् बहुत सुन्दर नमूना मिलेगा।

कालान्तरमें शैव तथा वैष्णव आचार्योंके उदय दक्षिणमें शैव तथा वैष्णव मन्दिर बनने लगे। इन म शैली एक-सी ही थी। इनमें चार विभाग होते थे विभाग विमान कहा जाता था और चतुष्कोण हो इनके शिखर Pyramidal अर्थात् पर्वताकार होते इनकी छत एक या अधिक खण्डोंकी होती थी। दूसर मण्डपका होता था, जो विमानके सामने होता था और होकर दर्शनार्थी भीतर जाते थे। तीसरा विभाग नामक द्वारका होता था। ये गोपुरम् भी पर्वताकार और ये उन घेरोंके बाहर लगाये जाते थे, जो वि मण्डपके चारों ओर बने होते थे। प्रत्येक मन्दिरमें घेरे, एकके भीतर एक, शिल्पशास्त्रोंमें लिखे हैं। केवल एक ही स्थानपर अर्थात् श्रीरंगम्के श्रीरंगजीके मिलेगा और चौथा भाग चोल्ट्री या अनेक स्तम्भोंके होता था, जो लोगोंके ठहरनेके काममें आता था।

महामखम् मेला, कुम्भकोणम् [पृ

[illegible]

णम् इत्यादिके मन्दिर ऐसे हैं कि इनमें गोपुर ही
ा मुख्य भाग लगता है। ये गोपुर इतने ऊँचे हैं,
चोल-मन्दिरोंमें विमान बनते थे।

दहवीं शताब्दीमें मुसल्मानोंके आक्रमण होने लगे और
राज्य छिन्न-भिन्न होने लगे। इसी समय विजयनगर
स्थापना तुङ्गभद्राके दक्षिण-तटपर १३३६ ईस्वीमें
विजयनगरकी मन्दिर-शैली अपनी अलग ही थी। इन
ें मण्डप ही प्रधानता पाने लगे और मन्दिरका मुख्य
ा गये। किष्किन्धा नामक स्थानपर होसपेटसे सात
ी हाम्पी गाँवके पास विरूपाक्ष शिवका सुप्रसिद्ध
ै। यह मन्दिर भी कलाकी दृष्टिसे बड़ा ही सुन्दर है।
ापर अनेक मन्दिर हैं, जो ध्वस्त अवस्थामें पड़े हैं।
ोंने इन मन्दिरोंको तोड़-फोड़कर बिल्कुल नष्टप्राय
ा है।

र प्रान्तमें होसाल राजाओंके समयके कई बहुत ही
न्दिर दो-तीन स्थानोंपर विद्यमान हैं। इन मन्दिरोंकी
रतके अन्य मन्दिरोंसे अनोखी ही है। कहा जाता है
राजाओंके प्रसिद्ध शिल्पकार गृह-निर्माण-विद्यामें
डंकनाचारीने बारहवीं शताब्दीमें इन मन्दिरोंको
ा। इन मन्दिरोंमें बड़ा ही बारीक, सुन्दर तथा
म किया हुआ है, जिसकी समता अन्यत्र नहीं मिलती।
पुरमें प्रसन्न-केशवका मन्दिर, जिसमें प्रसन्न-केशव,
तथा जनार्दन भगवान्‌के मन्दिर हैं, बना है। इस
तीन शिखर बड़े ही सुन्दर और ध्यानसे देखने
। मन्दिरमें नीचेसे ऊपरतक शिल्पकारीका सुन्दर
ा हुआ है। चारों ओरकी बाहरकी नींवोंपर महाभारत,
तथा भागवतकी बहुत-सी कथाओंकी घटना पत्थरोंमें
है। हलेबीद नामक स्थानपर हौसलेश्वर तथा केदारेश्वरके
मन्दिर बने हैं। हौसलेश्वरका मन्दिर प्राचीन है।
क बहुत ही ऊँची कुर्सीपर बना है और इसकी
और बनावट विचित्र है। केदारेश्वरका मन्दिर
के मन्दिरसे बहुत छोटा है; किंतु इसकी कारीगरी
अधिक बारीक है। इसकी नींवसे लेकर शिखरतक
ातराशीका काम है। बेलूर नामक स्थानपर, जिसे
मयमें दक्षिण-काशी भी कहते थे, चिन्नके शवका विशाल
ना है। इस मन्दिरमें दो उत्तम गोपुर भी बने हैं।

मन्दिर और जगमोहनमें संगतराशीका काम बहुत
है। मैसूर गवर्नमेंटने हालमें ही इन मन्दिरोंकी
प्रबन्ध किया है और इन स्थानोंकी पथ-प्रदर्शक
भी सचित्र प्रकाशित की हैं।

राष्ट्रकूट राजाओंके समयमें बने हुए सुप्रसिद्ध
नामक गुफा-मन्दिरका उल्लेख भी इस
आवश्यक है। ऊपरसे प्रायः डेढ़ सौ फुट
एक समूचे पहाड़को छेनीसे काटकर प्रायः डेढ़ स
यह मन्दिर बना है। निजाम स्टेटके औरंगाबाद शह
ही वेरूल अथवा इलोरा नामक स्थानपर प्रायः ती
मन्दिर बौद्धों, हिंदुओं तथा जैनियोंके बने हैं और
मन्दिरोंमें यह मन्दिर सबसे अधिक उत्तम है। यह
आठवीं शताब्दीमें बना था। मन्दिर चार खण्डका
इसमेंका कुल काम केवल छेनीसे ही हुआ है अथ
इमारत और मूर्तियाँ पत्थर एवं पर्वतको काटकर ही
गयी हैं। बड़े-बड़े हाथी, सिंह, घड़ियाल, हरिण,
बैल चट्टान काटकर बनाये गये हैं। शिव, विष्णु
बहुत-सी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ बगलके मन्दिरोंमें बनी
मन्दिरमें पुराणकी कथाओंकी मूर्तियाँ इतनी अधि
हुई हैं कि यदि कोई व्यक्ति केवल इस एक मन्दिरकी मू
कथाएँ समझ जाय तो वह महान् पण्डित हो जायगा

भारतके विशाल मन्दिरोंकी चर्चा इस छोटे-से
पूर्णरूपसे नहीं की जा सकती। जिज्ञासु पाठकोंको इन
को प्रत्यक्ष देखकर तथा प्रामाणिक पुस्तकोंको पढ़कर
मर्म समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। इस स्थानपर इ
देना आवश्यक मालूम पड़ता है कि मिस्र देशके
मन्दिर कदाचित् दक्षिण भारतके मन्दिरोंकी शैलीपर
हैं और उनके द्वार-भाग तो मानो निश्चय ही गोपुरोंक
हैं। कम्बोडिया देशमें किसी समय दक्षिण भारतके
शैव तथा वैष्णव धर्मोंकी बड़ी उन्नति की थी। उस
बने हुए अंकुरवट नामक सुविशाल मन्दिरका एक चि
लेखके साथ दिया जाता है। प्रारम्भमें यह मन्दिर वि
मन्दिर था। इस मन्दिरमें दीवारोंपर महाभारत तथा रा
की कथाएँ अब भी खुदी हुई हैं। पाठकगण देखेंगे।
मन्दिरका भी घेरा दक्षिणके मन्दिरोंकी ही पारपाटीप
है। इस विशाल मन्दिरका निर्माण कम्बुजके राजा स
द्वितीयके राज्यकालमें प्रायः ११२५ ई० में हुआ था।

* इस लेखके साथ सम्पर्क रखनेवाले इस अंकमें प्रकाशित चित्र रेलवे बोर्डके सौजन्यसे प्राप्त हुए हैं, अतः लेखक उन
ा कृतज्ञ है।

हिंदू-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीभास्करनाथजी मिश्र, एम्० ए०)

ोकके समयसे लेकर आजतकके भारतीय जीवन और
ाका जो अमूल्य सङ्कलन यहाँकी कलापूर्ण रचनाओं-
हुआ है, उसके लिये विश्व भारतका ऋणी है। किसी
राष्ट्रने, प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन, इतनी उच्च
निर्माण नहीं किया। किसीने भी धर्मको जीवनका
ानेमें इतनी सफलता नहीं प्राप्त की। यहाँतक कि
ी मानवीय ज्ञानको इतना समृद्ध एवं शक्तिशाली
या।'[1] श्रीहैवेलके इन शब्दोंमें एक निष्पक्ष हृदयसे
ई ऐसी गूँज है, जो भारतीय शिल्पकलाके प्रेमियों
ोंको इसकी परख करनेके लिये आवाहन करती है।
ौर बर्गसकी भाँति उन्होंने यूरोपीय पक्षको प्रधानता
ारतीय शिल्पकलाकी मौलिकताका समुचित ज्ञान
है और इस प्रकार भारतीय कलाके प्रति ही नहीं,
चे एशियाके प्रति यथोचित न्याय किया है।

तीय कलाके इतिहासमें शिल्प-कलाका सर्वमान्य
स्थान है। इसीकी प्रचुर सामग्रीसे वर्तमान संग्रहालय
ौर लगभग १५०० वर्षोंसे यह कला हमें नित्य-
ा देती रही है।

के शिल्पकी अनमोल कृतियाँ यहाँके नागरिकके लिये
ोरञ्जनका सामान नहीं रहीं; उनका जन्म 'कला-कलाके
े सिद्धान्तपर नहीं हुआ, वे कोरी भावना और
खातिर नहीं गढ़ी गयीं, बल्कि उनकी उपस्थितिने
जीवनके शुष्क कलेवरको अपनी मौलिकता और
ौन्दर्यद्वारा अनुप्राणित किया है। शिल्पकारकी तीक्ष्ण
र्मम पत्थरोंको मोमकी भाँति छीला और उसपर
विचार-पद्धति, भारतीय वेश-भूषा, भारतीय वाता-
ं भारतीय जीवनके विविध अङ्गोंके विहंगम तथा
चित्र आँके। उसकी संजीवित कलाने उसे देशों-
मे अजर-अमर कर दिया और वह भारतीय कलाका
कहा जाने लगा।

तीय जीवनके दर्शन और संस्कृतिको अपना सर्वोच्च
ाकर उसने राष्ट्रके पवित्रतम स्थान चुने और वहाँ
ीवन होमकर ऐसे-ऐसे विशाल भवन निर्माण किये,
जो विश्वकी शिल्पकलाके इतिहासमें अद्वितीय हैं
देखकर दर्शककी मानवबुद्धि चकरा जाती है।
चट्टानोंको तोड़कर उसने दूधिया और मूँगिया पत्थर
भूख-प्यासकी परवा न करके उन्हें तराशा और अप
देन राष्ट्रके चरणोंपर चढ़ायी। जनता-जनार्दनने देश
गर्भगृह अथवा गूढ़ मण्डपोंमें अपनी संस्कृति
प्रतीक प्रस्थापित किये और शङ्खनाद करके अपने क
अक्षय कीर्तिको चतुर्दिक फैला दिया।

मन्दिर-निर्माणकी इस भावनाका प्रत्यक्षारम्भ
इसपर अनेक मत-मतान्तर हैं; किंतु श्रीरायकृष्ण
शब्दोंमें 'मन्दिर-स्थापत्यका विकास स्वतन्त्ररूपसे औ
के पहलेसे ही हुआ जान पड़ता है।'[1] है भी ऐसा
शास्त्रमें, नगरके भीतर कई देवताओंके मन्दिर बनाने
है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसे मन्दिरों
चाणक्यके पहलेसे चली आती थी, जिसके कारण
शास्त्रमें स्थान मिला। श्रीकृष्ण-पूजा पाणिनि (८वीं
पू०)के समयमें विद्यमान थी और चन्द्रगुप्त-का
प्रचलित थी। ई० पू० २री-३री सदीमें तो
फैल गयी थी कि ऐसे पूजा-स्थानोंके तीन-तीन
अकेले उदयपुर राज्यमें मिले हैं।'[2] इससे स्प
ब्राह्मण-सम्प्रदायके मन्दिर-वास्तुपर जैन, बौद्ध य
वास्तुकलाका प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि वे ही उससे
मात्रामें प्रभावित हैं। हिंदू-शिल्पकलाकी प्रसिद्ध
और स्वस्तिक, कमल तथा अमलक आदि प्र
प्रतीकोंका प्रयोग ही इस पहेलीको सुलझानेके लिये प

शुंगकालमें हिंदू-देव-मन्दिरोंकी प्रचुरता थी।
इससे प्रभावित होकर बुद्ध-सूचक चिह्नोंपर शिखरवा
मन्दिर बनाये। बिहारमें इस कालका एक ऐसा टि
है, जिसपर शिखरवाले मन्दिरकी आकृति पायी गयी
टिकरा पकायी हुई मिट्टीका बना है। इसी मन्दिर
प्रताक भद्रासन स्थापित किया गया देख पड़ता है
मन्दिरोंके पर्वतशिखरोंकी भाँति बौद्धोंने शिखरकी भा
भौम घरोंसे ली। वे न तो अपने मन्दिरोंमें नयी

. E. B. Havell: 'A Study of Indo-Aryan
ion, 1915, p. 220.

१. रायकृष्णदास—भारतीय मूर्तिकला, पृ. ४४.
२. वही पृ. ८७.

और न खुलकर हिंदू-मन्दिरोंका अनुकरण ही कर सके; ; ब्राह्मणमन्दिर पर्वतके नमूनेपर अवलम्बित थे और ासनामें पर्वतके लिये कोई स्थान न था ।

ृषाण-सातवाहनकालमें अग्नि-मन्दिरोंको एक कुषाण-करा डाला था । और उनके स्थानपर बौद्ध-मन्दिर थे । महाभारत, वनपर्व, अध्याय १८८ और १९० में है—'वे (कुषाण) देवताओंकी पूजा वर्जित कर देंगे हड्डियोंकी पूजा करेंगे । ब्राह्मणोंके निवासस्थानों, ोंके आश्रमों, देवस्थानों, चैत्यों और नागमन्दिरोंकी एड्डक बन जायँगे और सारी पृथ्वी उन्हीं (एड्डकों) ृत हो जायगी । वह देवमन्दिरोंसे विभूषित न '

रशिव-वाकाटक काल (तीसरी-चौथी सदी) में नाग-मन्दिर बने । वे सादे होते थे और 'उनकी छेंकन होती थी, जिसपर शिखर भी चौकोर होते थे, जो ऊपरकी ओर सँकरे होते चले जाते थे ।' शुंगकालीन का ही यह क्रमिक विकास आगे बढ़ा और शकोंके र सामने आया । इन मन्दिरोंके अलङ्करणमें खर्जुर नाग-चिह्न) अधिकतासे मिलता है । भारशिवोंके ही गङ्गा-यमुना आदि नदी-देवियोंकी प्रतिमाएँ ोरणोंके चौखटोंपर बनने लगीं । भूभराके मन्दिर ारकी चौखटवाले हैं । देवगढ़का मन्दिर भी इसी है ।

र्यावर्त और दक्षिणापथकी संस्कृतिको 'भारतवर्ष' न्तर्गत लानेका श्रेय वाकाटक वंशको ही है । इनके अनेक शिवमन्दिर बने, जिनमें एकमुखी लिङ्ग और लिङ्गोंकी स्थापना हुई । इन मन्दिरोंसे ही वास्तु-ौर अलङ्करणकी प्रथा आरम्भ हो जाती है । भार-के चौकोर शिखरमें चारों ओर कैलासशिखरोंके-से दिये जाते हैं और पार्वतीके मन्दिरमें हिमालयसूचक मिलने लगते हैं; क्योंकि पार्वती हिमालयकी पुत्री मन्दिरोंका प्रमुख केन्द्र नचना है, जो भूभरासे १३-पर स्थित है । नचनाके मन्दिर गुप्तकालीन मन्दिरोंकी ासे काफी साम्य रखते हैं—मानो वे भूभरा और ी कलाओंको जोड़नेवाली कड़ी हैं । वाकाटक-मन्दिर गुप्तकालके ही हैं । हाँ, परस्पर सम्प्रदाय-भेद तो नागवाकाटकोंके सब मन्दिर शैव-सम्प्रदायके तथा

गुप्तकालका कोई मन्दिर अब पूरी तरह सुर पाया जाता । बम्बईप्रान्तके ऐहोलीके गुप्त-मन्दिर नमूने नहीं माने जाते । एरण (जिला सागर) में रा समुद्रगुप्तकी राजमहिषीका बनवाया हुआ विष्णुमन् कहीं सुन्दर है । देवगढ़ (ललितपुर, जि० झाँसी बाहरी दीवारोंपर एक ओर शेषशायी विष्णुके चर चापती हैं, और विष्णुके नाभिकमलपर ब्रह्मा बैठे हैं ही योगिराज शिव खड़े हैं । ऊपरसे देवगण इस दर्शन कर रहे हैं । इसी दृश्यके नीचे विष्णुके छः पा दूसरी ओर नर-नारायणकी अखण्ड तपस्याका हुआ है ।

पूर्व मध्यकाल (६००-९०० ई०) के वेरूल (इलौरा) के मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । ब्राह्मण-मन्दिर कैलास सबसे विशाल और सुन्द इसके सभी भाग निर्दोष और कलापूर्ण हैं । इसकी लगभग १४२, चौड़ाई ६२ और ऊँचाई १०० फुट है स्थानपर द्वारों, झरोखों, सीढ़ियों तथा अलङ्कृत स पंक्तियाँ निर्मित की गयी हैं । मन्दिरसे लगे हुए तीन प्रति हैं, जिनमें ४२ पौराणिक दृश्य उत्कीर्ण हैं । एक रावण कैलास पर्वतको उठा रहा है; भयत्रस्त पार्वती विशाल भुजदण्डकी शरण ले रही हैं और उनकी भाग रही हैं; किंतु शिव अडिग हैं और अपने कैलासको दबाकर रावणके श्रमको निरर्थक किये दे मन्दिरके एक बाह्य पार्श्वमें त्रिपुर-दाहका विहङ्गम-नि है । मन्दिरका दीपस्तम्भ भी दर्शनीय एवं मनोर यहाँके अन्य मन्दिरोंमें नृसिंहावतारका दृश्य, भैरवकी पूर्ण मूर्ति, इन्द्र-इन्द्राणीकी लवलीन मूर्तियाँ, शिव-पा विवाह, मार्कण्डेयका उद्धार आदि अनेक पौराणिक खचित हैं । कैलास-मन्दिरका निर्माण राष्ट्रकूट राजा (लगभग ७६०-७७५ ई०) ने कराया था ।

इस कालका दूसरा कला-केन्द्र ऐलिफैंटाके गुफा-हैं । यह स्थान बम्बईसे प्रायः छः मील दूर एक टापू टापूका वास्तविक नाम धारापुरी है (भारतीय मूर्ति पृ० १०८) । यहाँका शिव-पार्वतीके विवाहका दृश्य वेरू दृश्यसे बढ़कर है । पार्वतीके आत्मसमर्पणका भाव और

द्र-तटपर मामल्लपुरम्में चट्टानोंसे काटे गये विशाल
। हैं । इन्हें संसारकी अद्भुत वस्तुओंमें गिना जाता
की शैली छाजनदार वास्तुकी है और इनके
दरोंके एक समूहको 'सप्त-रथम्' कहा गया है ।
रोंको पल्लवराज महेन्द्रवर्मा प्रथम (लग० ६००-
) और उसके पुत्र नरसिंहवर्मा (लग० ६२५-
) ने बनवाया था । इनमें आदि वराहके रथ-
महेन्द्र और उसकी पटरानियोंकी तथा धर्मराज-
में नरसिंहकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं । धर्मराज-रथ
७०० ई०) शैव-सम्प्रदायका सर्वोत्तम मन्दिर-
है । भीमरथ सातवीं सदीका एक उत्कृष्ट
ाहरण है । यह मन्दिर दोमञ्जिला भवन है
इट* पत्थरसे बना है। इसकी लंबाई ४८, चौड़ाई
ऊँचाई २६ फुट है; किंतु अन्य रथोंकी भाँति यह रथ
ी ही रह गया । महिष-मण्डपम् मन्दिरमें शेष-
ष्णुकी मूर्तिपर आक्रमण करते हुए मधु-कैटभ नामक
खाये गये हैं । एक अन्य स्थानपर महिषमर्दिनी
क भव्य मूर्ति भी चित्राङ्कित है ।

र मध्यकाल (९००-१३००) के मन्दिर-
ललितकलाकी विशेषता छोड़कर शिल्पीमात्र रह
। उनकी कला रूढिग्रस्त हो गयी और उसमेंसे
का लोप हो गया । इसी समयसे मन्दिर-वास्तुकी
अलङ्कृत शैलीका क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता
ाएव इनकी कृतियोंमें कला नहीं, कलाभास है ।
यसे देवताओंकी मूर्तियोंका यह उद्देश्य कि वे
कुल-पर्वतोंमें देवताओंके आवासका भान करायें
ााता है । अलङ्करण बढ़ा, किंतु उद्देश्यहीन ही रहा ।
ते हुए भी यही एक ऐसा काल है, जिसकी वैभव-
स्मृतियाँ आजतक भारतीय शिल्पकलाके कोषस्वरूप
हैं। मोटे तौरपर इस कालको निम्नलिखित मण्डलोंमें
सकता है—

१) उड़ीसा, (२) बुन्देलखण्ड, (३) मध्यभारत,
ुजरात-राजस्थान, (५) तामिलनाड, (६) काश्मीर,
नेपाल, (८) बंगाल-बिहार ।

(१) उड़ीसा-मण्डल

उड़ीसा ब्राह्मण-सम्प्रदायकी कलाका अनूठा और
केन्द्र है, जिसपर विजातीय कलाओंका प्रभाव नहीं
यहाँके मन्दिर-वास्तुके दो प्रधान भाग हैं—(१)
(Towered Sanctuary) और जगमोहन (Aud
Chamber)। विमान और जगमोहन दोनों ही व
निर्माण किये गये हैं। (२) भुवनेश्वर और जगन्ना
मन्दिरोंमें दो विशेषताएँ और हैं—(३) नाट्यमन्दिर
रङ्गमण्डप, और (४) भोगमन्दिर—जहाँ दान आदि
जाता है । साधारण मन्दिरोंका टिकाव सीधा ज़मीनपर
किंतु बड़े और महत्त्वपूर्ण मन्दिर चबूतरोंपर अवस्थि
यह कहना भ्रमपूर्ण है कि उड़ीसाके सभी मन्दिर च
रहित होनेके कारण बूचे लगते हैं । कोणार्कके मन्दिरव
चबूतरा अभीतक अपनी मनोहरता लिये हुए विद्यमा

उड़ीसाके मन्दिरोंको एक-दूसरेसे पृथक्रूपमें
करनेके लिये पार्श्वस्तम्भ या थमलों (Pilasters) व
करनी आवश्यक है । ये एक प्रकारके स्तम्भ हैं, जो
आकारवाले होते हैं और मन्दिरके बाह्य पार्श्वमें हो

उड़ीसाके मन्दिरोंको निम्नलिखित श्रेणियोंमें ब
सकता है—

(१) एकरथ देवल—इसमें पाग-स्तम्भ नहीं

(२) त्रिरथ—जिसमें बीचमें एक रथपा
और दो कोनकपाग-स्तम्भ होते हैं ।

(३) पञ्चरथ—इसमें एक रथपाग-स्तम्भ, दो
पाग-स्तम्भ और दो अनर्थपाग-स्तम्भ अथवा
स्तम्भ होते हैं ।

(४) सप्तरथ—इसमें केन्द्रीय रथपाग-स्त
कोनकपाग-स्तम्भ, चार अनर्थपाग-स्तम्भ (जिनमें
अनर्थपाग-स्तम्भ भी हैं) ।

(५) नवरथ—इसमें केन्द्रीय रथपाग-स्तम
कोनकपाग-स्तम्भ (जिनमें दो परिकोनकपाग-स्तम्भ

इन मन्दिरोंमेंसे नवरथ ब्राह्मणोंके लिये, सप्तरथ
के लिये, पञ्चरथ वैश्योंके लिये और त्रिरथ शूद्रों
व्यवहृत होते हैं । नवरथ-मन्दिरका कोई उदाहरण
मिलता ।

---

* ग्रैनाइट उस पत्थरका अंग्रेजी नाम है, जो धरतीके भीतर

ङ्गराज-मन्दिरके विभिन्न अङ्गोंके नाम दिये जा रहे हैं, अधिकांश अन्य मन्दिरोंमें भी पाये जाते हैं—

तीय शिल्पकलाकी प्रमुख प्रणालियाँ तीन हैं— गाली, चालुक्य-प्रणाली और आर्य-प्रणाली (Indo-) द्रविड़-प्रणालीमें मन्दिरकी बनावटका खाका होता है और शिरोभाग पिरामिडके शिखरकी तरह। गालीमें बनावटका खाका वर्गाकार होता है और शिखर ऊँचे पर्वतके नुकीले शिखरकी शक्लका। प्रणालीमें खाका नक्षत्राकार होता है और शिरोभाग के शिखरका-सा। दक्षिणापथमें द्रविड़ और चालुक्य- ंका प्राधान्य है और उत्तरापथ (आर्यावर्त) में गालीका।

१) विमान—जङ्घा, बरण्डी, बन्धन, उत्तर बरण्डी, ङ्घा।

२) जगमोहन—जङ्घा, बरण्डी, बन्धन, उत्तर उत्तर जङ्घा।

३) नटमन्दिर—जङ्घा, बरण्डी, बन्धन, उत्तर बरण्डी, ङ्घा।

टे तौरपर ये ही अङ्गोपाङ्ग उड़ीसाके मन्दिरोंके हैं; कहीं-कहीं भोग-मन्दिर भी साथ-ही-साथ रहते हैं, नन्त-वासुदेव-मन्दिरमें।

क्तेश्वर और परशुरामेश्वर-मन्दिरोंको छोड़कर प्रायः न्दिर पूर्वाभिमुख हैं। उपान (चबूतरा) वाले के उपानका उपरला भाग खुर-पृष्ठ और निचला भाग कहा गया है।

ड़ीसाके मन्दिरोंमें दक्षिणापथके-से अद्भुत विशाल के दर्शन नहीं होते। तो भी भोगमण्डप अथवा नके आधारस्वरूप स्तम्भ हैं अवश्य। कोणार्कके भोग- ा आधार चार स्तम्भ हैं, जिनके उपपीठ (Pedestal) १० इंच ऊँचे हैं।

न्दिरोंकी दीवारें पत्थरोंके बड़े-बड़े शिला-खण्डोंसे यी हैं। शिलाखण्डोंकी परस्पर जुड़ाई लोहेके मोटे- ाँकुड़ोंसे की गयी है और चूना, गारा या बजरीका नहीं किया गया। श्रीमनमोहन गाङ्गुलीका कथन है नहीं मिला है। कोणार्कमें हालकी खुदाई कराते ईंटोंका भी एक ध्वस्त मन्दिर मिला है।[२]

(अ) भुवनेश्वर-मन्दिर

लिङ्गराज-मन्दिरके पूर्वमें स्थित सहस्रलिङ्ग ता चारों ओर लगभग १०० मन्दिर हैं। इनमेंसे ७७ ३ अच्छी हालतमें हैं। लिङ्गराजके ही उत्तरमें बिन् नामक विशाल तड़ाग है, जिसका क्षेत्रफल १३००› वर्गफुट है। इसके बीचमें एक टापू है और टापू सुन्दर-सा मन्दिर है। इसी प्रकार अन्य प्रमुख मं अपने-अपने तालाब हैं—यमेश्वरताल, रामेश्वरताल, गौरी केदारेश्वरताल, चल-धुआकुण्ड, मुक्तेश्वर और ब्रह्मेश्वर, दक्षिणमें मरीचिकुण्ड है। मरीचिकुण्डका जल चैत्रके अच्छे दामोंमें बिकता है; क्योंकि अत्यन्त पवित्र औ होनेके कारण लोग इसे खूब खरीदते हैं।

भुवनेश्वरके ये मन्दिर ब्राह्मण-सम्प्रदायकी शिल् अनूठे उदाहरण हैं। इनका प्रभाव ऐहोली-स्थानके दुर इच्छीमल्लिगुडीके मन्दिरोंपर विशेषकर तथा अन्य मं भी पड़ा है। वैसे तो इन मन्दिरोंका काल ठीक नहीं आँका जा सकता; किंतु कहा जा सकत यहाँके प्रमुख मन्दिर १० वीं शताब्दी ई० से लेकर शताब्दी ई० तकके बीच निर्मित हुए हैं।

भुवनेश्वरमें और उसके आसपास लगभग ५०० म जिनमेंसे उल्लेखनीय ये हैं—मुक्तेश्वर, केदारेश्वर, परशुरामेश्वर, गौरी, उत्तरेश्वर, भास्करेश्वर, रा नायकेश्वर, ब्रह्मेश्वर, मेघेश्वर, अनन्त वासुदेव, गो सावित्री, लिङ्गराज सरिदेवल, सोमेश्वर, यमेश्वर, कोहि इहकेश्वर, कपालमोचनी, रामेश्वर, गोसहस्रेश्वर, शि कपिलेश्वर, वरुणेश्वर, चक्रेश्वर आदि।

मुक्तेश्वरको फर्गुसनने उड़ीसा वास्तुशिल्पका है। इसकी स्थिति वन-उपवनके बीच ऐसी बन प देखते ही बनता है। प्रकृतिका ऐसा निखरा सौन्दर्य को छोड़कर भारतमें अन्यत्र शायद ही हो। य ब्राह्मण-स्थापत्य-कलाका सर्वोत्तम नमूना है। "It appropriately be called a dream in stone adapting the immortal phras

:olonel Sleeman regarding Taj Mahal. eems that the artist must have owed all his care and skill to make perfect, well-proportioned model of san architecture." अर्थात् 'ताजमहलकी भव्यता- हे गये कर्नल स्लीमनके अमर वाक्योंको यह मन्दिर ाँति चरितार्थ करता है । लगता है कि कलाकारने ुन्दर अनुपातयुक्त और सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण बनानेमें अपना ौशल व्यक्त किया है ।'*

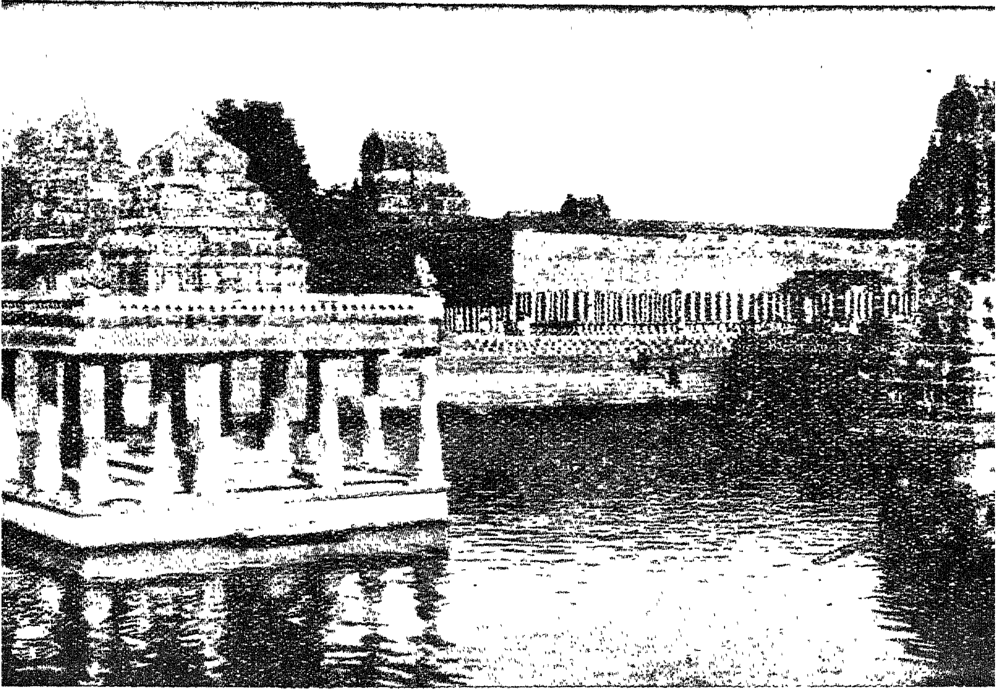
ांच भूमियोंवाला यह पञ्चरथ देवल राजारणिया नामक पीतवर्ण पत्थरसे बना है । बाहरसे इसके विमान और नका माप २६×१५ वर्गफुट है, और उपपीठ १ फुट ऊँचा है । जगमोहनके झरोखे चटाईदार मोहरोंके हैं और हैं । गङ्गा-यमुना, नन्दी और महाकाल तथा उड़ते न्धर्वगण इसके विमान और जगमोहनकी शोभा हैं । हाथीको रौंदते हुए शार्दूल देखते ही बनते हैं । ी शोभा नाग-मूर्तियाँ हैं । बंदरोंके फुदकते-उछलते श्य मनको मोह लेते हैं । पार्श्वोंमें, कोनकपागोंमें ाण समाधिरत अथवा उपदेश देते दिखायी देते हैं । रहपागमें अङ्कित मृगयाका अद्भुत दृश्य बड़ा ही ापूर्ण है । कुछेक मृग पीछे घूम-घूमकर देखते जाते ग्राध नजदीक आ पहुँचा क्या ।

ारा उल्लेखनीय मन्दिर परशुरामेश्वरका है । यह छठी शताब्दी ई० का है और भुवनेश्वरके सबसे प्राचीन ेंसे है । सामान्य उड़ीसा-मन्दिर-पद्धतिसे यह मन्दिर ात्र है और पश्चिमाभिमुख है । यह मन्दिर पीठ th) पर स्थित नहीं है । इसका विमान त्रिरथ देवल ाता है और चौड़ाई अधिक होने और ऊँचाई कम ारण स्थूलकाय लगता है । इसके जगमोहनका आकार- अन्य मन्दिरोंसे अच्छा है । कलाकी दृष्टिसे यह भी दर्शनीय है । टप्पादार नकाशी, सूर्याकृतिके ौर कोनकपागोंमें आमलकी पद्धति अत्यन्त शोभनीय ाव-चुनावमें यह मन्दिर बहुत कुछ मुक्तेश्वरका-सा है ।

हरे, लहलहाते हुए खेतोंसे परिवेष्टित राजारानी अपनी एक निजी छटा है । विमानमें चारों ꣿ दिक्पालोंका सुन्दर दिग्दर्शन है । आलोंमें पार्श्व- स्थापन नहीं हुआ । इसके बारेमें यही कहा जा कि इसके मनोहर जगमोहनके तोरणद्वारपर लक्ष्म नवग्रहोंकी स्थापना इस बातका प्रमाण है कि य पूजा-अर्चामें भी प्रयुक्त होता रहा होगा । मन्दि सम्प्रदायका है और इसका निर्माण राजारणिया पत्थ है । विमान और जगमोहन दोनों ही अत्यन्त अल विमान रेखा-देवलकी पद्धतिका है और दोमंजि जगमोहनके स्तम्भोंपर नागिनियोंकी आकृतियाँ खुद इसके तोरणद्वारोंकी रक्षा द्वारपालगण करते हैं पद्म-पंखुड़ी, दली, जलबाई आदि अनेक प्रकार उत्कीर्ण हैं । मन्दिरके कोनेके खम्भे या पाग अत्यन हैं और उनकी बनावट अद्भुत है । इन पागोंपर मूर्तियाँ भारतीय कलाके इतिहासमें बेजोड़ हैं । पद्म-पं पर बैठे वाहनारूढ़ अग्नि और नन्दीश्वर शिव हा लिये बड़े शोभायमान हैं । यहाँकी युवतियोंकी अपनी उपमा नहीं रखतीं । राष्ट्रिय म्यूजियम, नयी इसी मन्दिरकी तीन स्त्री-मूर्तियाँ प्रदर्शनार्थ रक्खी हैं । एक स्त्री दर्पणमें मुख देखती हुई श्रृङ्गार कर रही है पृष्ठभागमें एक तरु है, जिसपर फल लदे हैं और बं तोता उन्हें आनन्दसे चख रहे हैं । दूसरी मूर्ति अपने पुत्रको हलरा रही है और तीसरी मूर्तिकी युव भाव-भंगीसे अपने प्रियतमको पाती लिख रही है स्त्रियाँ साड़ियाँ पहने हैं । साड़ियोंके किनारे चौ बेलदार हैं । उत्तरीय-पटको भी तीनोंने बड़े कलात्मक ओढ़ रक्खा है । इन्हें देखनेमें दर्शक कभी नहीं उसे आज फिर अपने कुशल शिल्पी पूर्वजोंकी आती है ।

भास्करेश्वर-मन्दिर शैव-सम्प्रदायका है । उसमें लिङ्गकी ऊँचाई यहाँ ९ फुट है, जिसका आयास १ १ इंच है । इसकी बनावट अनलङ्कृत है औ पश्चिमाभिमुख है ।

लिङ्गराज-मन्दिर अन्य मन्दिरोंसे बड़ा है और मु मन्दिरकी भाँति ब्राह्मण-कला-पद्धतिका सर्वोत्तम प्रमा इसके स्थानका परिमाण ५२०×४६५ वर्गफुट है और ६ इंच मोटी दीवारसे घिरा है । दीवारमें तीन तोरणद्व [illegible]

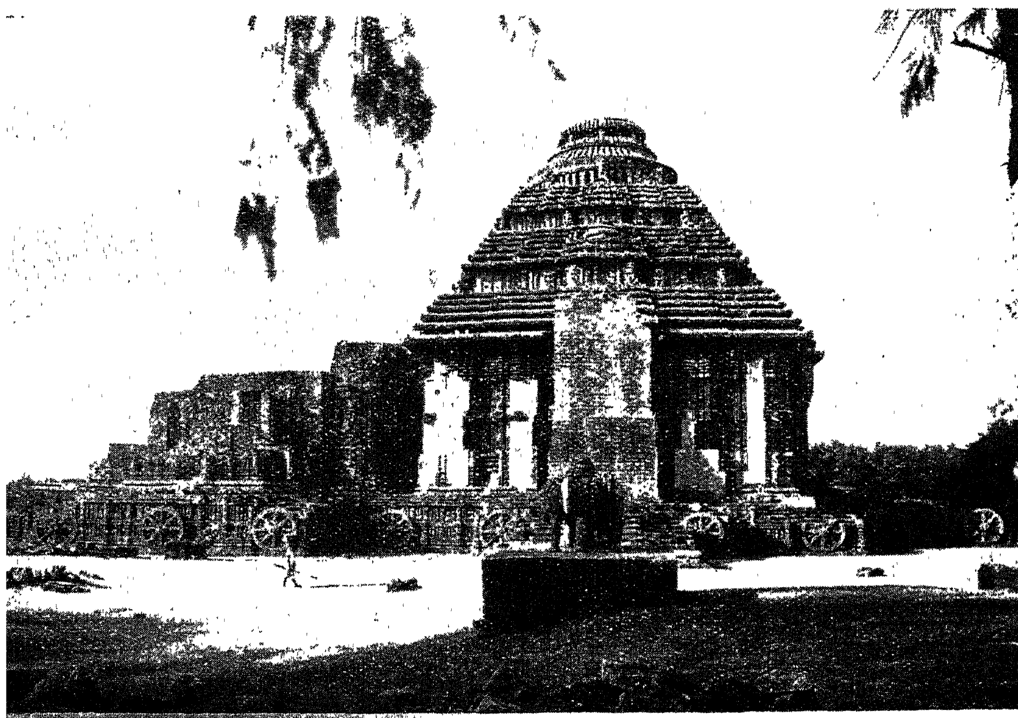


श्रीवरदराज-मन्दिर विष्णुकाञ्ची

श्रीशिवकाञ्ची-मन्दिरका बाहरी दृश्य

पुरीका श्रीजगन्नाथ-मन्दिर

[इसमें विमान, जगमोहन, नाट्य-मन्दिर तथा भोग-मन्दिर सब साफ दीखते हैं]



ठके ही होती है। यह दशभूमिका मन्दिर है।
न्दरता पार्श्वदेवता, दिक्पति और लक्ष्मी बढ़ाते हैं।
रामायण और महाभारतकालीन दृश्य प्रदर्शित हैं।
। स्वर्गारोहण अत्यन्त भव्य बन पड़ा है। कलशतक
रकी ऊँचाई १४३.०३ फुट है और इसके जगमोहन-
ई लगभग ९० फुट है। यह मन्दिर नवीं शताब्दीमें
आ था।

मन्दिरोंमें वैताल-मन्दिर उल्लेखनीय है। यह
ण्डा नामक पत्थरसे बना है और एकरथ देवल
ता है। इसके भाग हैं—वैताल-पाद (रेखा, बरण्डी
ा) और वैताल-मस्तक। वैताल-पादपर गजारोहियों-
ाङ्कन है। वैताल-पाद और वैताल-मस्तकके बीचमें
जाली-पञ्जरका काम है। वैताल-मस्तकपर तीन अमलक
के नुकीले त्रिशूल-शिखर दर्शनीय हैं। मस्तकपर
किया हुआ है। मन्दिरके जगमोहन और विमानके
एक अलङ्कृत आला मुकुटाकार स्थित है। इसके
ागमें नटराज शिवकी और निचले भागमें नारायण-
है। मन्दिरमें कपालिनीकी प्रतिमा स्थापित है।
र मन्दिरकी तरह यह मन्दिर भी ५वीं-६ठी शताब्दी-
र बौद्धशिल्पकलासे प्रभावित है।

ोसाके मन्दिरोंके विभिन्न अङ्गोंका अध्ययन बड़ा ही
है। यदि ऊपरसे नीचेतक उनके अङ्गोंका वर्णन
य तो मोटे तौरपर निम्नाङ्कित भाग होंगे—

(ब) जगन्नाथपुरीका मन्दिर*

मन्दिरकी वास्तुकलापर बौद्ध-प्रभाव है। बौद्धोंके
-बुद्ध, धर्म और सङ्घकी भाँति मन्दिरमें जगन्नाथ,
और बलरामकी मूर्तियाँ हैं। बौद्धोंने धर्मको
माना है, इस दृष्टिसे जगन्नाथ और सुभद्राका
ढ यहाँ बैठाया गया है—यह उल्लेखनीय है। जब
-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी और ब्रह्मा-सावित्री आदिका
पुरुष और प्रकृतिके रूपमें हुआ है, तब यह भाई-
दिग्दर्शन यहाँ बौद्धोंकी दृष्टिसे ही ठीक बैठ
।

न्नाथपुरीकी रथ-यात्रा तो प्रसिद्ध है ही। फाहियान-
सका विशद वर्णन किया है। मन्दिरका विमान

हिंदू देवी-देवताओंकी मूर्तियोंसे शोभित है। राहु, ज
बलराम, सुभद्रा, हनुमान् आदिकी भव्य मूर्तियाँ अङ्कि
कहीं-कहींपर कालिय-दमनलीला, गरुड़-वाहन, न
नृसिंह-लक्ष्मी, हरि-हर, गोपालकृष्ण, गोवर्धन-लीला
रावण-युद्धका दृश्य आदि ऐतिहासिक तथा धार्मिक
सुन्दर समावेश है। रहपागोंके आलोंमें वामन, व
नृसिंह आदिकी मूर्तियाँ हैं। विमानकी पूरी ऊँचाई २
८ इंच है।

जगन्नाथ-मन्दिरका जगमोहन पञ्चरथपीड़ देवल
६ फुट ३ इंच ऊँचे पीठपर यह स्थित है। जगमोहनके
पार्श्वमें मन्दिरका कोश सुरक्षित रहता है। जगमो
लगा हुआ नटमन्दिर है, जो भुवनेश्वरके लिङ्गरा
मन्दिरसे साम्य रखता है। नटमन्दिरकी छतके आ
स्तम्भ हैं और यह ६७ फुट चौड़ा है। जगन्नाथमन्दिरक
मण्डप भी पञ्चरथ पीड़ देवली है और पीतवर्ण पत्थर
हुआ है। इसका उपपीठ ६ फुट ४ इंच ऊँचा और
१ फुट ५ इंच ऊँचा है।

जगन्नाथ-मन्दिरके आस-पास बहुत-से मन्दिर हैं
मुक्ति-मण्डप, विमलादेवीका मन्दिर, लक्ष्मी-मन्दिर,
(सूर्यनारायण) का मन्दिर, पातालेश्वर, ल
मार्कण्डेयेश्वर, सत्यवादी मन्दिर आदि अत्यन्त प्रसिद्ध

(स) कोणार्क-मन्दिर

कोणार्क-क्षेत्र जगन्नाथपुरीके उत्तर-पूर्वमें २१
दूरीपर स्थित है। इस क्षेत्रको अर्क-क्षेत्र तथा पद्म
कहते हैं। कोणार्क-मन्दिरके दक्षिण-पूर्वमें २
बंगालकी खाड़ी लहरें मारती दिखायी देती है।
उत्तरमें लगभग आध मीलपर चन्द्रभागा नदी बहती

कोणार्क-मन्दिरके तीन भाग हैं—विमान,
और भोगमण्डप। जगमोहन और भोगमण्डप परस्प
अलग हैं। गर्भगृहकी देव-प्रतिमाका सिंहासन यह
बन पड़ा है। इसका निचला भाग छोटे-छोटे ह
मूर्तियोंसे अलङ्कृत है। मन्दिरका विमान और जग
दोनों एक-एक फुट ऊँचे पीठोंपर स्थित हैं। पीठ
हाथियोंकी कतारदार मूर्तियोंसे सजा हुआ है। तल
खुरपृष्ठ मिलाकर उपपीठकी ऊँचाई १६ फुट ६ इंच है
[illegible]

ह एक रथवाला मन्दिर देवताकी सवारीके लिये है।
हिया एक है। सम्भवतः अपनी पूर्व दशामें इस
मन्दिरको खींचनेके लिये सात घोड़े भी थे।

दरका विमान अब गिर गया है और बहुत-सी विचित्र
इस सम्बन्धमें प्रचलित हैं। मन्दिरका जगमोहन एक
ाला विशाल भवन है, जो ऊँचाईमें ३९ फुट १० इंच है।
अपना निजी भोगमन्दिर भी है; किंतु वह बादका
किया हुआ है।

(२) बुन्देलखण्ड-मण्डल

लखण्ड-मण्डलके शिल्पकला-प्रतिनिधि खजुराहोके
। खजुराहो बुन्देलखण्ड प्रान्तके वर्तमान छतरपुर
है और उन सड़कोंके सन्धि-स्थानपर स्थित है, जो
सागर और नौगाँवसे सतना जाती हैं। महोबासे
मील दक्षिण और छतरपुरसे २७ मील पूर्वमें है।

लोंकी इस पवित्र भूमिके इतिहाससे विदित होता
व होते हुए भी उन्होंने अन्य धर्मों तथा सम्प्रदायों-
विद्वेष न जताकर सराहनीय सहिष्णुता दिखायी।
र्म, जैन-धर्म, शैव-धर्म तथा बौद्ध-धर्म आदि विभिन्न
अनुयायियोंने पूरी स्वतन्त्रताके साथ अपनी संस्कृतिके
म मन्दिर निर्माण किये।

जुराहोके ऊँचे-ऊँचे टीले और भग्नावशेष विस्तार-
ले हैं और नगरका लगभग आठ वर्गमील क्षेत्र
लावके अन्तर्गत आता है। अब यह नगर एक छोटा-
मात्र रह गया है, जो खजुराहो-सागर या निनोरातालके
र्वी किनारेपर स्थित है।

नोराताल, खजुराहो गाँव और पास ही स्थित शिव-सागर
इर्द-गिर्द प्राचीन समयमें ८५ मन्दिर थे। उनमेंसे
गभग २० ही शेष हैं। इन मन्दिरोंको सुगमतापूर्वक
णियोंमें विभाजित किया जा सकता है—(१) पश्चिमी,
पूर्वी तथा (३) दक्षिणी।

श्चिमी श्रेणीके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधियोंमें प्रथम चौसठ
योंका मन्दिर है। इसके भीतरका आँगन १०४×
है, जिसके चारों ओर ६५ कमरे हैं। इनमेंसे अब केवल
अवशिष्ट हैं। यह मन्दिर नवीं शताब्दीका है।
रा मन्दिर है कंडरिया महादेवका। यह चौसठ

१०१।-९″ है। इसके प्रवेशद्वारका तोरण अभिन
है। इसपर देवी-देवताओं, गन्धर्वों आदिका अङ्क
अर्धमण्डप और मण्डपकी छतें अनोखी कलासे प
हैं। इनकी चित्रकारी और बेल-बूटेका काम आबूके
मन्दिरोंसे किसी कदर कम नहीं। मण्डपसे आगे
महामण्डप मिलता है। इसकी छतकी सुन्दरताका
शब्दोंसे परे है। सम्पूर्ण छत चौकोर आकारवाली है
मध्यमें एक बड़ा-सा वृत्त है। इसके चारों ओर आठ अ
हैं। इन आठों वृत्तोंके भीतर ताशके चिड़ी पत्तोंके-से
चिह्न अङ्कित हैं। इन वृत्तोंके बाहर मुग्धकारी बेल-बूटे
किये गये हैं। इस अलङ्करणके बाद आता है एक द
जो इन सब वृत्तोंको अपने अन्तरमें समेटे है। इस द
चारों कोनोंपर अनोखी बेलें हैं, जो समूचे दीर्घवृत्तकी
चार चाँद लगा देती हैं। तदनन्तर एक चतुर्भुज बन
छतके मध्यभागको देदीप्यमान किये है। इस चतुर्भुज
ओर तो तीन-तीन मङ्गलकर्ता पुष्प हैं, जो सरसोंके
पुष्पोंकी भाँति खिले हुए छतका शृङ्गार किये हैं
कोरोंमें और मध्यमें कुछ छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। स
कर छत वर्णनातीत है और वे दर्शक धन्य हैं, जि
इस छतवाले कंडरिया मन्दिरकी प्रदक्षिणा कर आये हैं

अन्तमें महामण्डप पार करके गर्भगृह आता है
प्रवेश-द्वारपर लता-चित्रोंके साथ-साथ तपस्वियों और
के ध्यानावस्थित चित्र भी प्रदर्शित किये गये हैं
स्तम्भोंपर गङ्गा और यमुना नदियाँ अपने-अपने
समेत विराजती हैं। गङ्गाका वाहन है मकर और
कच्छप। गर्भगृहमें संगमरमर-निर्मित एक शिवलिङ्
देखनेमें दूध-ऐसा श्वेत और स्पर्शमें हिमानी-जैसा
लगता है। मन्दिरकी बहिर्मुख दीवारोंपर नीचे आठों दि
की मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिम
पर स्तम्भाधारित बड़े-बड़े आलय हैं, जिनमें ब्रह्मा, वि
महेशकी साक्षात् मूर्तियाँ अथवा उनके अवतारोंकी
स्थापित हैं। मन्दिरभरमें अप्सराओं और किन्नरियोंके
विध नृत्य-मुद्राएँ और भाव-भंगियोंका दिग्दर्शन है
लगता है मानो वे अपने लुभावने सौन्दर्यसे मुनि
तपस्वियोंको आकर्षित कर रही हैं और उन्हें उनक
समाधिसे डिगानेका प्रयत्न कर रही हैं। मन्दिरके
क्रमशः अमलक बड़े होते चले गये हैं। सर्वोच्च

ा महत्त्वपूर्ण मन्दिर है लक्ष्मण-मन्दिर, जो कंडरियाके ीमें स्थित है। इसकी निर्माणकलाकी तुलनामें ा कोई मन्दिर नहीं ठहरता। इस मन्दिरके एक ुरु और उसके चारों ओर बैठे हुए विद्यार्थियोंका ाया गया है। लक्ष्मण-मन्दिरके तीन ओर प्रदक्षिणा-

न्त पवित्र मन्दिर मतङ्गेश्वर महादेवका है। इसमें की ४ फुट ५ इंच ऊँची शिवलिङ्ग-मूर्ति है और इसका फुट ४ इंच है। इसकी चमक अद्भुत है। मूर्तिपर कई उत्कीर्ण हैं, जिनमें एककी भाषा फारसी है तथा शेषकी इसी मन्दिरके सामनेकी वराह-मूर्ति ८' फुट ९ इंच×५ फुट आयतकी है और एक ही शिलाखण्डसे गढ़ी गयी काल पहले वराह-मूर्तिके बायें दाँतपर अवस्थित ीकी मूर्ति भी थी, जिसके अवशेष आधार-शिलापर -चिह्न हैं।

श्रेणीके महत्त्वपूर्ण मन्दिरोंमें हनुमान्-मन्दिर है। र्षकालीन राज्यवर्ष ३१६=९२२ ई० का एक है। यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है।

रा मन्दिर है जवारि। इसके गर्भगृहमें चतुर्भुज भगवान् शुचितामयी मूर्ति है।

क्षिणी श्रेणीके मन्दिरोंमें दूला-देवमन्दिर प्रसिद्ध है। ास्तु-विधान सराहनीय है। इसका दूलादेव नाम क्यों ह विवादपूर्ण विषय है। कहा जाता है कि एक समय त इस मन्दिरके पाससे ज्यों ही गुजरी, त्यों ही वर सवारी-चे गिर पड़ा और परम गतिको प्राप्त हो गया। तभी-रको दूलादेवका मन्दिर कहा जाने लगा।

 श्रेणीमें जत्कारि-मन्दिरकी विष्णु-मूर्ति ९ फुट ऊँची है भयमुद्रामें है।

जुराहोके मन्दिर शिल्पकलाके महान् प्रतीक हैं। ारकी सूझ-बूझ, विशाल सदाशयता तथा टाँकीका नुपम उदाहरण है।

(३) मध्यभारत-मण्डल

वालियर (मालवा) में प्रसिद्ध सास-बहूका एक मन्दिर १०९३ ई० का बना है[1]। वास्तु-कलाका यह नूठा और मौलिक नमूना है। उदयादित्य परमारका बनवाया हुआ उदयेश्वर महादेवका मन्दिर, जो उ (भिलसाके पास) स्थित है, लाल पत्थरका है और प्रदेशके मन्दिरोंमें सर्वश्रेष्ठ है। इसके शिखरसे चा पट्टियाँ चारों दिशाओंमें चलकर तलपादतक पहुँचती सिद्ध करती हैं कि यह मन्दिर अपने ढंगका अनोखा पट्टियोंके बीचमें मुठियादार पाँच-पाँच मुठियों (शि की सात कतारें हैं, जो मन्दिरके विमान और जग जोड़तक नीचे पहुँचती हैं। पट्टियों और मुठियादार या अण्डकोंके उपरले सिरेपर एक कलशपीठ है, त्रिकोणाकार आमलकी-शिखर है। इसके जग अलङ्करण भी अद्भुत है। यह ६-७ मंजिलकी है औ अङ्ग-प्रत्यङ्गपर कलाकारने अपना तन-मन न्यौछावर क है। जगमोहन और विमानके जोड़पर ही एक मु विशाल तथा अत्यधिक अलङ्कृत आला है, जिसके उप पर एक विशालकाय सिंहकी मूर्ति स्थापित है। इ मन्दिरकी शोभा और भी बढ़ जाती है। इस मुकुट एक नमूना बैताल-मन्दिर (भुवनेश्वर) में भी इसे 'भोस' कहा गया है।

मध्यप्रान्तके ग्वालियरका तेलीका मन्दिर भी इस एक सुन्दर उदाहरण है। अन्य मन्दिरोंमें जिन्हें राजाओंने बनवाया था, चौसठ जोगिनियोंका मन्दि ऐसा उत्कृष्ट नमूना है, जो अबतक विद्यमान है।

(४) गुजरात-राजस्थानमण्डल

इसके अन्तर्गत जोधपुर, मुटेरा, डभोई और पाटनके मन्दिर आते हैं। ओसिया (जोधपुर) मन्दिरोंकी संख्या १२ है। 'गिरनार' और (पालीताणा) के देवनगर (अर्थात् जहाँ मन्दिरोंके बसे हैं, जिनमें आदमी रातको नहीं टिकने पाता) इ के उदाहरण हैं[1]।'

इस मण्डलके सोमनाथ-मन्दिरको भारतीय जो महिमा और गरिमा प्राप्त है, वह पश्चिमी भार किसी भी मन्दिरको नहीं प्राप्त है। इसकी गणना बारह ज्योतिर्लिङ्गोंमें होती है, जो सिन्धसे आसाम हिमालयसे कन्याकुमारीतक फैले हुए हैं। यह म भी अपने उन्नत एवं प्रशस्त आकारसमेत का दक्षिणी समुद्री किनारेपर स्थित है और सोमेश्व प्राचीनतम स्थान है।

---

१. ... के अनुसार इसका निर्माण-काल १०६० ई० है

न पड़ता है कि भीमदेव प्रथम (१०२२—१०७२) त्चीन मन्दिरका जीर्णोद्धार किया था, क्योंकि उसके ालके पहले ही महमूद तथा उसके सिपहसालारने । ध्वस्त कर दिया था।

त होता है कि मन्दिरमें एक दीर्घाकार मण्डप (गूढ़- था, जिसमें तीन द्वार थे। शिव-लिङ्ग इसी मण्डपके भागमें स्थापित था। लिङ्गके चारों ओर काफी चौड़ा पथ भी बना था। मन्दिरकी रक्षा करनेवाले तथा ी-प्रसंगपरायणोंकी सभाके लिये एक 'सभामण्डप' भी न्दरके बाहरी भागपर जो संगतराशी विद्यमान थी, बहुत कुछ नष्ट हो चुकी है। आक्रमणकारियोंने ते घोर अन्याय किया है, यहाँतक कि दीवारोंपर कुछ मूर्तियोंको पहचाना ही नहीं जा सकता। दीवारों- यणके कुछ प्रसिद्ध कथा-दृश्य भी प्रदर्शित किये कहा जाता है कि सोमनाथ-मन्दिरके दरवाजे चन्दनकी बने थे और महमूद गजनवी उन्हें अपने साथ गया।

ठेयावाड़के मध्यकालीन मन्दिरोंमें घुमली (बारदा-) का नवलाखा मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। यह के मन्दिरसे पहलेका है; किंतु वास्तु-पद्धति लगभग है। इसे देखकर सोमनाथ-मन्दिरकी सजीव मूर्तिका किया जा सकता है।

(५) तामिलनाड-मण्डल

मण्डलमें हिंदू-कलाका एक नया रूप देख पड़ता है, विकास ठीक उसी प्रकार हुआ है, जैसे यूनानी ाका विकास इटलीमें हुआ था। दक्षिणके ं द्रविड़-पद्धति अर्थात् शैव-सम्प्रदायके मन्दिरोंका । निर्माण हुआ। बौद्धधर्मके पतनके बाद ही शैव- ासार दक्षिणमें अधिक हुआ। उत्तरी भारतकी तरह दीसे लेकर १० वीं सदीतकके दीर्घकालमें ही इन ा निर्माण किया गया। मामल्लपुरम्के शैल-मन्दिर के प्रथम केन्द्र हैं तथा बादमें बादामी और पट्टडकलके आते हैं। बहुधा मन्दिरोंका निर्माण उन्हीं स्थानोंपर जो ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त प्रख्यात । भारतीय मन्दिरकी यह एक बड़ी विशेषता है। के विरूपाक्ष-मन्दिरकी स्थापना भी प्रेमी ही सहायतासे निर्मित हुआ-सा लगता है। जब यह । इसीके अवशेषोंपर शिला-खण्डोंकी सहायतासे विशा बनाया गया। मामल्लपुरम्के अर्जुनरथ और मन्दिरोंकी-सी बनावट इस मन्दिरकी भी है; ि अन्तरालकी छत बड़ी ऊँची है। अन्तरालके सामने मण्डप है, जो १६ स्तम्भोंपर आधारित है। इस प्रवेश-द्वारोंको गो-द्वार या गोपुरम् कहा गया है। मन्दिरवाले मण्डपसे यह मण्डप दुगुना बड़ा है।

इन धार्मिक भवनों अथवा मन्दिरोंका इतिह पुराना है। सुविधाके लिये यहाँ कलामर्मज्ञ जॉन अनुसार शिल्पकलाके पाँच निम्नाङ्कित विभाग किये ज

(१) धार्मिक . (Devotional) —स मन्दिर।

(२) स्मारक (Memorial)—साँचीके स

(३) नागरिक (Civil)—दीवाने खास य आम।

(४) Military (सामरिक)—गढ़ औ

(५) वैयक्तिक (Domestic)—राजभव

अन्तिम चार विभागोंके अवशेष अब कम ह हैं और जो हैं भी, वे हिंदू-शिल्पकलासे सीधा सम्ब रखते; किंतु धार्मिक भवनोंकी प्रचुरताके लिये भा विख्यात है।

यद्यपि विरूपाक्ष-मन्दिरकी स्थिति अब जीर्ण- चली है, तो भी वास्तु-कलाका यह मनोरम उदा मण्डपके सामने ब्रह्माकी मूर्ति है और शिवका वाह भी इसी मूर्तिके पास है।[1] श्रीहैवलका कथन है— temple was not an archaeological but a sermon in stone, suggesting symbolism the rhythm of the (teaching the lessons of the un life, and recording the sacred tra of the Indian people."[2] समस्त भारतीय साथ-साथ दक्षिणापथके मन्दिरोंपर भी यही निय होता है। यह मन्दिर ऊँचे उपान (Plinth) पर स जगतीपीठका चौड़ा वक्ष सुडौल हाथियोंकी अलङ्कृत है।

रके चारों ओर परकोटेकी बड़ी-सी चौकोर दीवार
। और दीवारमें पूर्वी तथा पश्चिमी पार्श्वोंमें
ने हैं। इन्हीं दीवारोंकी छायामें आचार्य ब्राह्मण और
ष्य पठन-पाठन करते थे। यात्रियोंके विश्राम लेनेका
हीं दीवारोंकी मोटी चद्दरोंके नीचे था। दक्षिणके
न्दरोंकी भाँति विरूपाक्ष-मन्दिरका विमान-शिखर भी
ण्डपोंसे बहुत ऊँचा है। मन्दिरका वर्तमान खाका
न्त विशाल लगता है; किंतु अब गिरने-फूटनेसे
सा हो गया है। अब वह धूमिल और भद्दापन लिये
। अतएव इसकी रक्षाकी ओर मद्रास-सरकारको
ीघ्र ध्यान देना चाहिये।

ोरकी महिमा उसके विशाल और बहुविध अलङ्कृत
कारण है। यदि किसीने गयाके विशाल बौद्ध-
ो देखा हो तो वह तंजौरके मन्दिरका अंदाजा लगा
। चौकोर पीठपर खड़ा हुआ यह मन्दिर क्रमशः सँकरा
ा एक चौकोर शिखरतक चला गया है। इस
शिखरके चारों कोणोंपर नन्दीकी मूर्तियाँ स्थापित
ीं मूर्तियोंके मध्यमें एक गुम्बजाकार कलश-सा है,
त्रिशूल स्थित है। मन्दिरके अलङ्करणमें सूर्याकृतियोंके-
वोंसे काम लिया गया है। मन्दिरपर एकके ऊपर एक
१३ मंजिली छतें हैं। मन्दिरके अलङ्करणकी दूसरी
है विष्णु-सम्प्रदायकी मूर्तियोंका गोपुरोंमें प्रयोग,
अन्यत्र शिवकी ही महिमाका अलङ्करण है। वैष्णव
ैव-सम्प्रदायका यह पारस्परिक मेल प्रशंसनीय है।
सन कहते हैं—"It is only an instance of
xtreme tolerance that prevailed at
ge at which it was erected, before
religions became antagonistic."*

ाव-मन्दिरके परकोटेमें ही शिवके पुत्र सुब्रह्मण्यका
मन्दिर है। इसकी बनावट एकदम भिन्न है।
के साथ-साथ छोटे आकार-प्रकारका किंतु अलङ्कृत
जुड़ा हुआ है। गोपुरम्में गणेशमूर्तिकी स्थापना है
वेमानके अन्तरालमें सुब्रह्मण्यकी। शिव-मन्दिरका
लगभग चौदहवीं शताब्दी और सुब्रह्मण्यका पंद्रहवीं
ी है।

तिरुवल्लूर

[illegible]

मन्दिरोंका निर्माण बड़ी ही निराली पद्धतिका है
लंबा-चौड़ा परकोटा है, जिसमें चारों ओर मन्दि
गोपुरम् बने हैं, जिनमेंसे होकर भीतर मन्दिरमें जाया
है। यह परकोटा ९४०फुट×७०१ फुट है। भीतरके
आँगनमें ही मन्दिरकी स्थापना है, जिसमें शिव-प
मूर्तियाँ हैं। किंतु यह सब होते हुए भी मन्दिरके
भाग इतने दूर-दूर बनाये गये हैं कि उन्हें देखकर विस्
भाव नहीं उत्पन्न होता।

श्रीरङ्गपट्टन

यहाँका मन्दिर दक्षिणके समस्त मन्दिरोंमें बड़
वास्तु-कलाका सर्वोत्तम नमूना है। यहींपर मन्दिर
सहस्र १६×७० स्तम्भोंवाला मण्डप है, जिसका
४५०फुट×१३० फुट है। यहाँके गोपुरम् और मन्दि
अलङ्करण दक्षिणमें और कहीं नहीं मिलता। कुण्ड
झपकती हुई बेलें, पुष्पाकृतियाँ, छाजन और चक्रार्ध
सब मिलाकर अनोखी छटा उत्पन्न करते हैं; किंतु तिरुव
सी बेढंगी निर्माण-पद्धति यहाँ भी अपनायी गयी है
मन्दिरके विभिन्न भाग दूर-दूर रक्खे गये हैं। यदि
चारों गोपुरम् केन्द्रस्थ मन्दिरके पास ही चतु
स्थापित किये जाते तो वास्तु-कलाके एक ठोस और
दृश्यके दर्शन होते।

चिदम्बरम्

दक्षिणके अत्यन्त प्राचीन मन्दिरोंमें इस मन्दिर
है। इसमें चिदम्बर शिवकी मूर्ति प्रस्थापित है।
एक बड़े परकोटेके भीतर है, जिसके मध्यमें एक ताल
तालाबके उत्तरी पार्श्वमें पार्वती-मन्दिर, दक्षिणी
सहस्रस्तम्भ मण्डप और पश्चिमी पार्श्वमें शिव-गर्भगृ
स्तम्भ-कलाकी दृष्टिसे चिदम्बरम्का मन्दिर अत्यन्त
है। स्तम्भोंकी अलङ्कृतशोभा मण्डपोंमें है। नीचेसे
उनमें अनेकविध अलङ्करण है और शिरोभागका
और धाजननुमा भाग, जो छत भी सँभालता है, शोभ
ये स्तम्भ ४१×२४ के हिसाबसे स्थित हैं। वर्तमा
मन्दिरका विमान ध्वंस हो चुका है।

रामेश्वरम्

दक्षिणमें द्रविड़-कलाका सर्वोत्तम प्रतिनिधि रा
बहुश्रुत शिव-मन्दिर है। दक्षिणके अधिकांश

यह मन्दिर लगभग ११-१२ वीं शताब्दियोंका है। ःइ०×४० के आकारका है। इसके अन्तरालके चारों नन्दीकी मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिससे लगता है कि -मूर्तिकी ही स्थापना पहले-पहल हुई होगी।

से मन्दिरके चारों ओर एक परकोटा खिंचा है, फ़ुट ऊँचा और ४ गोपुरोंसे युक्त है। इनकी बनावट ानिक है कि श्रीफर्ग्युसनके शब्दोंमें भूचाल ही इन्हें त कर सकता है, और कुछ नहीं।

श्वर-मन्दिरकी पहली खूबी यह है कि श्रीराम-चरित्रकी ्यावलियाँ इसके अन्तरङ्ग और बहिरङ्गपर अङ्कित दूसरी खूबी इसके भीमाकार बरामदों, दालानों दरियोंकी है। कहीं-कहीं ४००० फुटतककी लंबी ां हैं, जिनकी चौड़ाई २० फुटसे ३० फुटतक है ई ३० फुटसे भी अधिक है। इनकी छतोंका मध्य-ङ्कृत वृत्तोंसे परिपूर्ण है, जो एक-दूसरेको स्पर्श करते त किये गये हैं। छतोंका आधार अनोखी कलावाले हैं। स्तम्भोंका पद-पीठ मध्यदण्डसे अवश्य कुछ किंतु शिरोभाग क्रमशः वजनदार, अधिकाधिक और विस्तृत होता गया है, जिससे छतके किनारे-ोंका भार वहन कर सके। उन बारादरियोंमें, जो पार्श्वभागोंमें स्थित हैं, मूर्ति-अलङ्करणको स्थान गया है।

मदुरा

तिरुमल्ल नायक (१६२१–१६५७ ई०)-द्वारा निर्मित एक अत्यन्त वैभवशाली मन्दिर है, जिसकी बारादरियाँ भ उल्लेखनीय हैं। उदाहरणार्थ एक बारादरी : × १०५ आयतमें है और स्तम्भोंकी चार कतारों-छत आधारित है। प्रत्येक स्तम्भकी अपनी छटा, द्युति और अपनी शैली है। मन्दिरका निर्माण-काल ४५ ई० है, अर्थात् मन्दिर २२ वर्षोंमें बनकर ा। इसके स्तम्भोंका निर्माण और श्रृङ्गार रामेश्वरम्-रोंके समान ही है। स्तम्भोंके बीच-बीचमें ा रौंदते हुए शार्दूल खड़े हैं और कहीं-कहीं भी स्थित हैं। अश्वोंके खुरोंको पदातियोंकी ढालें । ये अश्वारोही कहीं शत्रुओंका हनन करते दिखाये कहीं सिंहका शिकार करते हुए दिग्दर्शित किये

का मन्दिर दक्षिणके अनुपम मन्दिरोंमेंसे एक माना ज द्राविड़ मन्दिर-कलाकी सभी विशेषताएँ इसमें हैं। चौकोर आकारका है और लंबाई ७२०—७२९ ु ८३४–८५२ फुटतक है। इसके परकोटेमें ९ गोपुर चार बड़े और पाँच छोटे। परकोटेमें एक मनोहर त है। एक सहस्र स्तम्भ (१०×१००) वाला सभामण मन्दिरमें भी है और रामेश्वरम्‌के मन्दिरकी स्तम्भ-क बढ़-चढ़कर है। अन्तरालमें १५ स्तम्भोंसे परिवेष्टित स्थानीय देवी मीनाक्षीकी स्थापना है।

इसी प्रकारका एक मन्दिर काञ्जीवरम्‌में भी द्राविड़ी कलाका अत्यन्त सुन्दर प्रतिनिधि कहा जा यहाँके मन्दिरमें भी एक सहस्र स्तम्भवाला सभामण जिससे मिले हुए बहुत-से उपमण्डप और तड़ाग हैं।

वेलौर और पेरूर

यहाँके मन्दिर वास्तु-कलाकी दृष्टिसे दक्षिणके म द्वितीय श्रेणीके हैं; किंतु प्रवेश-द्वारों और की जैसी शोभा यहाँ बन पड़ी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है दुर्गके अंदर स्थित मन्दिरके परकोटेको अंग्रेजोंने छावनी बनाकर बड़ी क्षति पहुँचायी है। यहाँके प्रवे पर बहुधा शार्दूल-राक्षसों और अश्वारोहियोंकी मूर्ति मण्डपोंके स्तम्भोंका कटाव-बनाव यहाँ अनोखा है अपने बहुरूपिया रूपमें स्तम्भोंके अङ्गपर कलाकारके से छन-छनकर छपी है। ये स्तम्भ इतने सुन्दर हैं इन्हें प्रत्यक्ष देखे इनकी भव्यताका अनुमान नहीं लग सकता। मन्दिरका निर्माण-काल फर्ग्युसनके अनुसार १४ वीं शताब्दियोंका मध्यान्तर है।

विजयनगर

राजधानीके स्थानीय देवता विठोबाके (जो अवतार माने जाते हैं) स्थापनार्थ विठोबा-म अच्युत रावलने (१५१९–१५४२) बनवाया था, मन्दिर पूरा नहीं बनाया जा सका। मन्दिरकी भव्यता मण्डपमें है। ग्रैनाइट पत्थरका इसके निर्माणमें प्रयोग किय और अपने श्रृङ्गारमें यह मण्डप बेजोड़ है। द्राविड़ पूरा प्रभाव इसकी कलापर अङ्कित है। व्याल यहाँ भी प्रवेश-द्वारोंपर स्थित हैं और उनपर नर आरोहित हैं।

श-द्वार और कोण-अलङ्करण अनन्यतम सौन्दर्य-
।

(६) काश्मीरी मण्डल

ाँके मन्दिर विशाल तो नहीं कहे जा सकते, किंतु शैली-
से अनोखे और स्थानीय ग्राम-गृह-निर्माण-कलासे भली-
भावित हैं। पहली विशेषता इनकी है कई परतोंवाली
ानका भाव काश्मीरी मकानोंकी लकड़ीकी छतोंसे लिया
। दूसरी विशेषता छतोंमें खिड़कियोंका होना है।
न्दिरोंमेंसे मार्तण्ड-मन्दिर है। यह इस्लामाबादसे पाँच
र्गमें स्थित है और काश्मीरी वास्तु-कलाका प्रतिनिधि
एक ऊँचे पठारपर अवस्थित है और दूरसे ही देखा
ता है। वर्तमान मन्दिरकी छत एकदम नष्ट हो गयी
न्दिरका विस्तार २२० × १४२ वर्गफुट है। मन्दिर-
ङ्करण सादा और सुलझा हुआ है। कमलाकृतियाँ,
, समानान्तर रेखाएँ आदि अलङ्करणके साधन लिये
इसका निर्माण-काल ८ वीं शताब्दी है।

नन्तर अवन्तिपुरके मन्दिर आते हैं। ये लगभग
ताब्दीके हैं। इनकी निर्माणपद्धति मार्तण्ड-मन्दिर-
है और २०० × १६० × १७० फुटके क्षेत्रमें ये
। इनके स्तम्भोंकी एक विशेषता यह है कि उनपर
ृतियोंके अलङ्करण हैं; वैसे भी अलङ्करणकी दृष्टिसे ये
ार्तण्ड-मन्दिरसे बढ़-चढ़कर हैं।
श्मीरमें अधिकांश सूर्य-मन्दिर हैं।

(७) नेपाल-मण्डल

ालकी जनता इतनी धार्मिक है कि उसने घरोंसे
मन्दिर ही बनाये हैं। नेपाली वास्तुकलाका इतिहास
तकी गाथाओंको लेकर आरम्भ हुआ है। बौद्ध-
ागे-पीछे नेपालियोंने ब्राह्मण-धर्मको भी प्रमुखता दी
इसीलिये शिव, विष्णु तथा अन्य हिंदू देवताओं
वयोंके लिये मन्दिरोंकी स्थापना की।

ाँके मन्दिरोंकी बनावट विचित्र है। नीचेको झुकती
कोर कई मंजिलोंवाली छतें इन मन्दिरोंपर होती हैं।
मता चीन और जापानके पगोडा ही कर सकते हैं।
दर अधिकांशतः शिव-सम्प्रदायके हैं, जिनमें शिव और
 मन्दिर आते हैं। भटगाँवका भवानी-मन्दिर पाँच-

महादेव-मन्दिरसे कुछ हटकर उत्तरमें कृष्ण-मन्दिर
खजुराहोके मन्दिरोंके विमानोंके समान है। यह ए
मन्दिर है, अपने आपमें पूर्ण है। इसकी पद्धति व
काश्मीरी मन्दिरोंकी-सी है।

(८) बंगाल-बिहार मण्डल

पालवंशीय वास्तुकलाके प्रमाण मूर्तियोंके रूपमे
मिलते हैं; किंतु बंगालमें मुगलकालीन शासनने
अवशेषतक नहीं छोड़े। यही कारण है कि इस
मन्दिर-कलापर कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
मन्दिर, उदाहरणार्थ कन्तनगर (दीनाजपुर) का नौ
वाला मन्दिर प्रसिद्ध हैं; पर वे बहुत बादके हैं अ
आधुनिकताकी पूरी-पूरी छाप है।

ऊपरके कुछ पृष्ठोंसे अनुमान लगाया जा सक
हिंदू-मन्दिरका विकास क्रमशः कैसे हुआ, उसका निम
हुआ और किस प्रकारकी निर्माणपद्धति अपनायी
कलाकी दृष्टिसे फर्ग्युसन-जैसे यूरोपीय कलाके ह
भारतीय कलाका लोहा मान गये हैं। इस
उनके शब्द स्पष्ट और उचित ही हैं। वे कह

'भारतवर्षका अध्ययन करनेसे जैसे सुन्दर प्र
आशा की जा सकती है, वैसी आशा सम्भवतः किसी
देशके अध्ययनसे नहीं की जा सकती—कम-से-कम
बाहर तो कोई देश ऐसा है ही नहीं, जिसका अध्यय
लाभदायक सिद्ध हो। ऐसा कोई भी देश नहीं
प्राकृतिक विज्ञान अथवा कला-सम्बन्धी सारी समस्य
स्पष्ट एवं इतने सुखद रूपमें हमारे सामने उपस्थित हो
कहीं भी प्रकृति ऐसे भव्य एवं मोहक रूपोंमें हमारे
प्रकट नहीं होती और किसी भी भूभागमें मानव-
स्थिति यहाँकी अपेक्षा अधिक वैचित्र्यमयी एवं अधिक
दायक नहीं है।' पाश्चात्य-कला-मर्मज्ञ इस बातको
करते हैं कि 'भारतीय कलाएँ अधिक मौलिक एवं
वैविध्यपूर्ण हैं और यहाँकी सभ्यताके प्रकारोंमें भी नि
वैचित्र्य है, जैसा अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं
भारतीय कलाको जीवनका रूप देते हुए वे लिखते हैं—
का स्थापत्य आज भी एक जीती-जागती कला है।'
शिल्पी एवं भारतीय शिल्पीकी तुलना करते हुए वे
निर्णय देते हैं कि 'भारतीय स्थपतियोंका ध्यान तो

। सकते हैं। यूरोपीय पद्धतिमें यह बात अधिक समझी जाती है कि जिस भवनका वहाँ निर्माण किया वह हूबहू किसी दूसरे मकानकी नकल हो—खासकर ग़ी बातोंमें तो उसके सदृश हो ही, भले ही वह उत्तम अथवा अपने उद्देश्यके अनुकूल न हो। यही णाममें अन्तर होनेका।'

; यही गौरवपूर्ण कला १० वीं शताब्दीके पश्चात् अवनति-गिरने लगी। शुद्ध आर्यत्व और ब्राह्मणधर्मकी मूल भावनाका गलत अर्थ लगाया जाने लगा। कलाकारको णोंकी प्रेरणा न मिली। वह इस प्रेरणासे वञ्चित अपनेमें ो कलाके दायरेमें ही सिकुड़ा रह गया और बार-बार कलाकी पुनरावृत्ति करने लगा। उसकी नयी सूझका लोप और साथ ही भारतीय कलाके विकासपर भी पटाक्षेप हो गया। अकबर-कालतक लगातार यह पुनराव् शान्त वातावरण पाकर खूब हुई। तदनन्तर जो कलाके नामपर बना-बनाया था, उसपर म्लेच्छोंके पर-आक्रमण होने लगे। सोमनाथ, कन्नौज, बंगाल वृन्दावन, सारनाथ, नालन्दा और लखनौतीको दुर्भा देखने पड़े। चारों ओर इस्लामकी धर्मान्धताका चलने लगा!

इतनेपर भी भारत और भारतीय कला आजत है। अपने बचे-खुचे अवशेषोंपर ही उसे गर्व है। अवशेष ही विदेशियोंकी आँखें खोल देते हैं। संस्कृतिकी नींव न हिलायी जा सकी है और न हि सकती है। इसकी भित्ति एक ऐसा विशाल समा भारतके सात लाख गाँवोंमें बसा है।

भारतके प्राचीन गुफा-मन्दिर

(लेखक—श्रीत्रिलोकीनाथजी मेहरोत्रा, बी० ए०, एल्-एल्०-बी०, एल्० एस्० जी० डी०)

ीन कालमें अरण्यवासी लोग विचित्र तरहसे गुफाएँ । मिर्जापुरसे रीवाँ जानेवाली Great Deccan (ग्रेट डेकन रोड) पर मिर्जापुरसे प्रायः पैंतालीस 'लहोरिया दह' नामक गाँवके पास ऐसी अनेक सिक कालकी गुफाएँ सड़कके पास ही विद्यमान हैं। पथरी', 'मोरहना पथरी', 'बागा पथरी' तथा थरी' नामकी पहाड़ियोंमें प्रायः एक सौ ऐसी गुफाएँ इन गुफाओंके अंदर लाल, पीले तथा सफेद र-पाँच हजार वर्ष पुरानी चित्रकारी अब भी मिलती के अध्ययनसे प्राचीन परिस्थितिका अच्छा ज्ञान हो । कुछ लोगोंका ख्याल है कि इन चित्रोंमें अनेक दूके लिये बनाये गये थे। एक स्थानपर सुसज्जित ोतर एक चोंचदार आदमी बैठा दिखलाया गया है सके सामने दो व्यक्ति उसकी पूजा-सी कर रहे हैं। ! कि गुफा-मन्दिरोंके प्राचीनतम कालमें इसी प्रकारके नते थे।

के बाद काश्मीरकी सुप्रसिद्ध 'अमरनाथ गुफा' में ावलिङ्गका युग आता है। अमरनाथकी यात्रा वर्षमें क दिन होती है। इस गुफामें ऊपरसे जल टपकनेके

भारतवर्षमें सबसे प्राचीन गुफाएँ गयासे पटना लाइनपर बेला स्टेशनसे आठ मील पूर्व स्थित गुफाओंको 'बराबर पहाड़ीकी गुफाएँ' कहते हैं। सिद्धेश्वरनाथका प्राचीन मन्दिर तथा पातालगङ्गा झरना है। इस स्थानकी गुफाएँ बड़े-बड़े कमरोंके रू हैं। कहीं-कहीं दो कमरोंके रूपमें अथवा एक बड़े रूपमें बनी हैं। गुफाएँ सात-आठ हैं और इनवे 'वज्रलेप' नामक सुन्दर पालिस की हुई है। यह वह है, जो अशोकके स्तम्भोंपर मिलती है। इसमें कहीं-आदमी अपना मुखतक देख सकता है। प्रायः सभी लेख हैं, जिनमें सम्राट् अशोक, सम्राट् दशरथ आदि गुफाओंका निर्माण आजीवक ब्राह्मण साधुओंके निमि गया लिखा है। इन गुफाओंके नाम सुदामा, लोमः रामाश्रम, विश्वझोपड़ी, गोपी, वेदाथिक इत्यादि गुफाओंके कारण यहाँकी नागार्जुनी पहाड़ी सतघर पुकारी जाती है। निश्चय ही ये गुफाएँ ईसासे बहु की बनी हुई हैं।

काठियावाड़में जूनागढ़ स्टेटमें 'खपराखोड़िया गुफाएँ भी बहुत ही प्राचीन हैं। ये गुफाएँ प्राची

दर ग्यारह फुट ऊँचा है। ऊपरके खण्डमें एक और उसके चारों तरफ गली इत्यादि हैं। यहाँके विषयमें डा० बरजेसका कहना है कि कदाचित् ऐसे म्भ कहीं नहीं हैं। गिरनार पर्वतपर जानेके लिये ारपर 'बाबा प्यारा' नामक गुफाएँ हैं। ये गुफाएँ कके समयकी बनी हुई हैं और बहुत ही प्राचीन हैं।

र्लेका सुप्रसिद्ध गुफा-मन्दिर बंबई-पूना लाइनपर मलवली तीन-चार मील पूर्व है। यह गुफा पहाड़के मध्यमें ायः दो फर्लांग ऊँचेपर बनी है। यह गुफा चैत्यके ी है और इसके बगलमें कई छोटे-छोटे विहार भी इसके भीतर एक धातु-गर्भ अर्थात् स्तूप बना है और ों ओर सुन्दर स्तम्भ तथा परिक्रमा बनी हैं। बाहर-उन राजाओं तथा रानियोंकी मूर्तियाँ बनी हैं, जिनके गुफाएँ पत्थरको छेनीसे काटकर बनायी गयी थीं। ागमें निश्चय ही काठकी बड़ी-बड़ी शहतीरें लगी ब नष्ट हो गयी हैं। गुफाके बाहर एक सुन्दर थरका बना है। इस गुफामें कई लेख हैं, जिनसे ा है कि ईसासे दो सौ वर्ष पूर्व उशवदत्तने यह दर बनवाया तथा अजमित्रने इस स्तम्भकी स्थापना यह गुफा आन्ध्रवंशी राजाओंके समयमें बनायी ।

कालमें बनी हुई नासिककी सुप्रसिद्ध 'पांडुलेण' । आगरा-बंबई रोडपर नासिकसे पाँच मील आगे ायीं ओर त्रिरश्मि पर्वतपर प्रायः सड़कसे एक फर्लांग गुफाएँ बनी हैं। इनमें कुछ तो चैत्य अर्थात् ! और कुछ विहार अर्थात् बौद्ध भिक्षुओंके रहनेके गुफाएँ भी आन्ध्रवंशी राजाओंकी बनवायी हुई हैं ं कई विस्तृत लेख भी विद्यमान हैं। विद्वानोंका कि ये गुफाएँ ईसासे एक या दो सौ वर्ष पूर्वसे के बादकी दूसरी शताब्दीकी बनी हुई हैं। इनमें बड़े विहार और एक चैत्य विशेषरूपसे दर्शनीय गुफाओंमें जो मूर्तिकारी मिलती है, उसको देखनेसे ाओंके समयकी वेश-भूषा, उन राजाओंकी श्रद्धा के विजय किये हुए देशोंके नाम मिलते हैं। राजाओं तथा पुलमावी राजा इत्यादिके वर्णन तथा ष्टरूपसे दृष्टव्य हैं। ये गुफाएँ हीनयान नामक बौद्ध

ही मिलती है। पीछेकी अर्थात् महायान मतकी अनेकानेक मूर्तियाँ बनी हुई मिलेंगी।

ऊपर लिखे हुए मलवली स्टेशनके प्रायः अ पश्चिम सुप्रसिद्ध 'भाजाकी गुफाएँ' पर्वतपर नीचे सड़ ही ऊपर बनी हैं। भाजाकी गुफाएँ भी ईसासे दो-ती पूर्व बनी हुई मानी जाती हैं। यहाँपर अठारह ग जिनमें बीचका चैत्य बहुत ही प्राचीन तथा क दृष्टव्य है। इस चैत्यमें अब भी प्राचीन समयकी शहतीरें लगी हुई मिलती हैं। सम्भव है कि इन ढाई हजार वर्षतक विद्यमान रहनेका कारण यह हो वि वर्षतक ये गुफाएँ मिट्टीके अंदर दबी थीं। इस एक बहुत ही प्रसिद्ध विहार भी है, जिसमें मूर्तिकारी विचित्र है। इसमें भीतरकी ओर एक मनुष्य बन हाथमें पहुँची पहने हुए तथा विचित्र तरहसे भाले ि है। विहारके बाहर बरामदेमें और भी विचित्र चित्र एक मूर्तिमें एक पुरुष हाथीपर बैठा दिखलाया जिसके बारेमें कुछ लोगोंका मत है कि यह इन्द्रकी है। दूसरी प्रतिमामें एक पुरुष बड़ी पगड़ी बाँधे ए जा रहा है, जिसके नीचे बड़े-बड़े दैत्य आ गये लोगोंका कहना है कि यह मूर्ति सूर्यकी है। इनके यहाँपर कई और मूर्तियाँ भी मिली हैं, जिनके विषयमें का अभीतक कोई निश्चित मत नहीं स्थापित हुआ है मूर्तिकारी इस देशमें केवल यहीं मिलती है।

उड़ीसामें भुवनेश्वरसे चार-पाँच मील पश्चिम उ खण्डगिरि तथा नीलगिरिकी गुफाएँ भी अत्यन्त ही कही जाती हैं। ये जैन-गुफाएँ हैं। कुल मिलाकर दो ६६ हैं। यहाँकी गुफाएँ दो-एकको छोड़कर स कष्टसे रहने लायक बनी हैं। तपस्वियोंके लिये उपयुक्त भी था। कहीं-कहींपर गुहाद्वार इतने छो कि प्रवेश बहुत कठिनाईसे हो सकता है। इनमेंसे ईसासे तीन सौ वर्ष पूर्व बनी थीं। इन पहाड़ियोंके पास बहुत घना जंगल है। यहाँ कल्पवृक्षकी पूजा क दिखलायी गयी है और रानी-गुम्फा तथा गणेश-गुम् दृश्य पार्श्वनाथके जीवनसे सम्बन्ध रखते हुए मि 'हाथी-गुम्फा' नामक गुफामें सम्राट् खारबेलका एक लेख ईसासे १५५ वर्ष पूर्वका मिलता है, जिससे

ऍं भिलसाके पास स्टेशनसे चार मीलकी दूरीपर स्थित हैं,
गिरिकी गुफाएँ कहलाती हैं। यहाँकी गुफाएँ प्रायः सब-
ाह्मणधर्मकी हैं। उदयगिरि पहाड़ीका पत्थर बलुआ है,
छोटी-छोटी कोठरियोंमें मूर्तियाँ खुदी हैं। इन गुफाओंमें
संस्कृतमें हैं, जिनमें प्रसिद्ध गुप्त राजाओंका उल्लेख
-धर्मके देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ प्रायः अच्छी ही
पाँच नंबरकी गुफामें एक विशाल मूर्ति वराह-
की है। भगवान्‌की सूँडके पास पृथ्वीकी मूर्ति है और
के बायें पैरके नीचे शेषकी मूर्ति है। अनेक देवता-
ावान्‌की स्तुति कर रहे हैं। कदाचित् इतनी विशाल
तें और कहीं नहीं बनी है। गुफा-सं० १३ में एक
तें शेषशायी विष्णुकी है, जो वर्षाके कारण कुछ खराब
है; परंतु गुप्तकालीन शिल्पकलाका वह एक अच्छा
।

जंताकी गुफाओंके विषयमें पाठकगण जानते ही
अजंताकी पहाड़ी निजाम स्टेटके उत्तरमें जलगाँव
पास स्थित है। अथवा पाचोरा-जामनेर लाइनपर
ामक स्टेशनसे सात मील दक्षिण पड़ती है। अजंतासे
म ग्राम फर्दापुर पड़ता है, जहाँसे चार मीलकी दूरीपर
पर्वतकी सुन्दर घाटीमें २९ गुफाएँ बनी हैं।
ंके पास विस्तृत पारिजातके वन हैं। इन गुफाओंका
काल ईसासे पूर्वकी द्वितीय शताब्दीसे लेकर ईसाके
छठी शताब्दीतक माना जाता है। यहाँपर पहाड़ी
न्द्राकार है और उसीके बीचमें अर्थात् धरतीतल तथा
के मध्यमें ये गुफाएँ बनी हैं। इन गुफाओंके चारों
हाड़की ऊँची-ऊँची दीवारें हैं। गुफाओंके सामने
नदी बहती है। ऐसे शान्त स्थानमें ये गुफाएँ बनी हैं
स समय लोगोंने इनको १८१८ में देखा, उनमें व्याघ्र
रहने लगे थे। इन २९ गुफाओंमें ९, १०, १९ और
नंबरकी गुफाएँ चैत्य हैं और शेष विहार हैं। इन
ोंमें बौद्ध भिक्षु रहते थे और चैत्यमें पूजा करनेके लिये
होते थे। इन गुफाओंमें अनेक चित्रकारोंने वर्षोंतक
काम किया है। उनमेंसे एक ग्रिफिथ्स (Griffiths)
। उन्होंने एक कल्पना-चित्र इस बातको दिखलानेके लिये
ा है कि अपनी ऊर्जित अवस्थामें ये गुफाएँ कैसी रही होंगी।
फाओंमें मिट्टी, भूसा इत्यादि मिलाकर पत्थरकी दीवारों-
प किया जाता था और उसके ऊपर जातक-कथाओंके

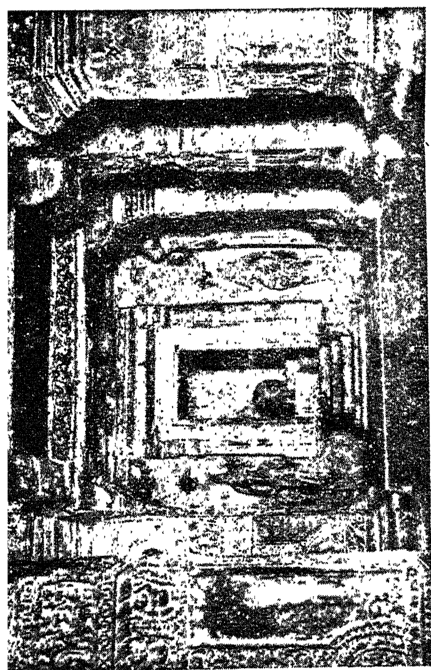
बने हैं कि उनका वर्णन करना कठिन है। स्त्रियोंके
आभूषण, उनके तरह-तरहके केश-कलाप तथा उनकी
हस्तमुद्राएँ दर्शनीय हैं। आश्चर्य तो यह है कि इतनी
मूर्तियोंको देखते हुए भी चित्तमें किञ्चित् विकार नहीं
स्त्रियोंकी नेत्रमुद्राएँ विशेष रूपसे द्रष्टव्य हैं। अ
दम्पतियोंके प्रेमालापके भी चित्र हैं; परंतु वे फूल-से
हैं। बैलों, हाथियों, कमलों तथा आभूषणोंका दिखाव
ही रोचक है। अजंताकी कलासे मध्य एशियाकी क
प्रभावित हुई थी, भारतकी कलाओंका तो कहना ही क
आजकल भी अजंताके चित्रपट—जब कि अनेक चित्र
क्षत-विक्षत हो गये हैं—अपना वही स्थान रखते हैं, जं
रखते थे।

१, २, ९, १०, १२, १६, १७, १९ तथा २६
की गुफाएँ विशेषरूपसे द्रष्टव्य हैं। व्यार इनकी चि
मूर्तिकारी तथा शिल्पकला विशेषरूपसे अध्ययन
योग्य हैं।

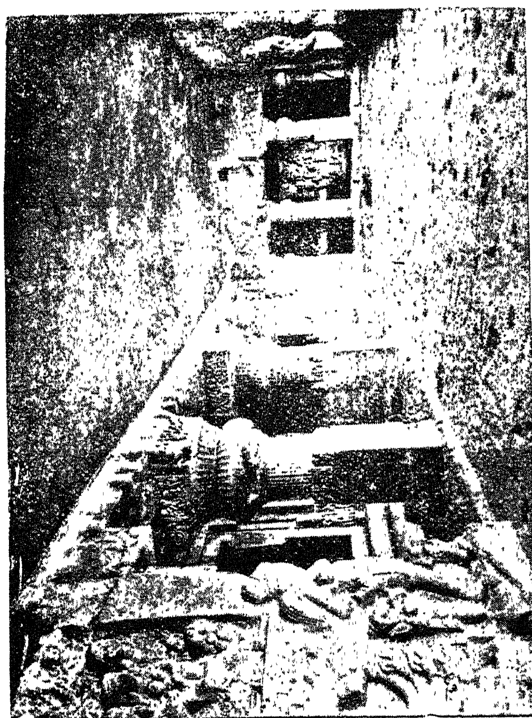
ग्वालियर स्टेटमें मांडूसे ३० मील पश्चिम बाघ
हैं। गुफाओंतक सुन्दर सड़क बनी है और
जगह-जगह 'रेस्ट हाउस' बने हैं। महू स्टेशनसे
इत्यादिका प्रबन्ध हो सकता है। ये गुफाएँ विन्
बाघ नदीके ऊपर बनी हैं। यहाँपर बाघेश्वरी देवी
प्राचीन मन्दिर है। यहाँपर ९ गुफाएँ थीं, जिनमें २
गिर पड़ी है और उनसे गुफाओंका रास्ता बंद हो ग
इन गुफाओंमें भी अजंताकी तरह सुन्दर चित्रकारी
है। इन गुफाओंको लोग 'पञ्चपाण्डव गुफाएँ' क
गुफाएँ बौद्ध धर्मके महायान-सम्प्रदायसे सम्बन्ध
और इनका निर्माण-काल ईसाकी ७ या ८ वीं शताब
गया है। सब गुफाएँ विहार या मठ हैं। प्रत्येक
पीछेकी ओर एक छोटा-सा चैत्य या मन्दिर बना हु
भिक्षुओंके रहनेकी कोठरियाँ बगलमें बनी हैं। लो
गुफाओंके नाम 'गोसाईंकी गुफा', 'हाथीखाना' इत्य
दिये हैं। यहाँकी चित्रकारीमें बुद्धदेवकी पूजा, रा
सवार, भिक्षु तथा सेवकगण दिखलाये गये हैं।
शेषशायी विष्णुके मन्दिर भी पासमें ही हैं।

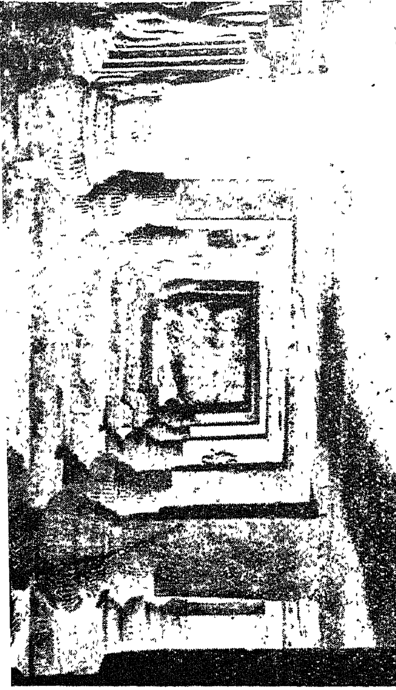
मद्रासके पास महाबलीपुर नामक स्थानमें पल्लव-
के नमूने अनेक गुफा-मन्दिर हैं। इनमें पञ्चपाण्ड
अर्थात मन्दिर तथा त्रिमूर्ति, वराह और दुर्गाके

इलोरा—कैलाश-मन्दिर



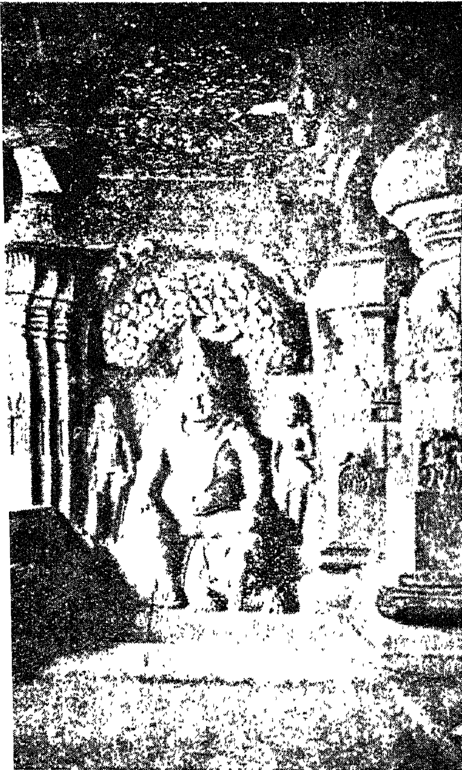
इलोरा–कैलाश, मध्य-मन्दिरका मण्डप





इलोरा—गर्भगृहके सम्मुख सस्तम्भ मण्डप





इलोरा—इन्द्र-सभा



इलोरा—ढेढवाड़ा गुफाका प्रवेशद्वार

ाम स्टेटमें औरंगाबादसे प्रायः १६ मील दूर एक
ड़कपर 'इलोराके गुफा-मन्दिर' बने हैं। इस स्थानपर
गुफाएँ बौद्ध-सम्प्रदायकी, इनके बाद १७ गुफाएँ
र्मकी और अन्तमें ५ गुफाएँ जैन-धर्मकी हैं। अजंता-
ँ खड़ी पहाड़ीमें बनी हैं। इस कारण उनके सामने
ान-सा स्थान नहीं मिलता। पर इलोराकी गुफाएँ
ए पहाड़को काटकर बनायी गयी हैं और प्रायः
ही हैं। प्रत्येक गुफाके सामने कुछ स्थान मिलता
ुफाएँ दन्तिदुर्ग इत्यादि राष्ट्रकूट राजाओंके समयमें
छठी और सातवीं शताब्दियोंमें बनी हुई हैं। बौद्ध
एक तीन खण्डका विशाल महल बना है, जिसमें
सम्प्रदायकी अनेकानेक मूर्तियाँ पुरुषाकार बनी हैं।
येक गुफामें एक विशाल बौद्ध मूर्ति पूजाके स्थानपर
हिंदू-गुफाओंमें प्रसिद्ध 'कैलास-मन्दिर' है, जो इन
ओंमें अथवा भारतके सम्पूर्ण गुफा-मन्दिरोंमें सर्व-
एक समूचे पहाड़को छेनियोंसे काटकर चार खण्डका
नाया गया है। और इसके तीन ओर सैकड़ों दृश्य
कथाओंके मन्दिरसे बाहर चारों तरफकी दालानमें बने
मन्दिरमें बैलों, सिंहों तथा हाथियोंका अच्छा दिखाव
ान् शङ्करकी लीलाएँ अधिकतर मूर्तियोंमें बनी हैं।
न्दिरके भीतर सुन्दर चित्रकारी भी थी, जिसके बहुत
अब भी बचे हैं। 'रामेश्वर' तथा 'सीताकी नहानी'
और प्रसिद्ध गुफाएँ हैं। 'सीताकी नहानी' को देखते
की प्रसिद्ध एलीफेंटा गुफाओंका स्मरण होता है।
ओंमें छोटा कैलास, इन्द्रसभा तथा जगन्नाथसभा
से द्रष्टव्य हैं। इनमें गोमटेश्वरकी सुन्दर मूर्तियाँ
ौर यह दिखलाया गया है कि ये ध्यानमें इतने मग्न
कि लताएँ इनके पैरोंमें लिपटकर बढ़ने लगीं।

ंगाबादमें ही पंचक्की नामक स्थानके पास एक
छोटी-छोटी कई बौद्ध-गुफाएँ बनी हैं, जो देखने
। कुल ९ गुफाएँ बनी हैं। इनमें दो ऐसी हैं,
ीतर प्रवेश करते ही मालूम पड़ता है कि दोनों ओर
र स्त्रियाँ बैठे हैं। बात यह है कि पुरुषाकार मूर्तियाँ
ान्का पूजन करती हुई दिखायी गयी हैं। इनके
प भिन्न प्रकारके हैं और द्रष्टव्य हैं। एक गुफामें
ोकितेश्वरकी बड़ी-सी मूर्ति बनी है। और उसके
र छोटी-छोटी मूर्तियाँ विविध प्रकारकी आपदाओंसे
्योंकी दिखलायी गयी हैं। इनको देखकर मार्कण्डेय-

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि य
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्व

बंबई शहरके पास कई गुफाओंकी श्रेणियाँ हैं
धारापुरी (एलीफेंटा), योगेश्वरी, कन्हेरी, मरो
मण्डपेश्वरकी गुफाएँ हैं। धारापुरीकी गुफाएँ बंबईके
समुद्रमें स्थित एलीफेंटा टापूपर हैं। इस स्थानको रो
लॉन्च जाता है। इस टापूपर पहले एक पत्थरक
था, जिसको देखकर पोर्चगीज लोगोंने इस टापूको "ए
नाम दिया। वह हाथी अब बंबईके विक्टोरिया
अजायबघरमें रख दिया गया है। इस टापूका प्राच
गिरिपुर है और कुछ विद्वानोंका यह ख्याल है कि य
गुप्त राजाओंकी राजधानी था। इस टापूपर कुछ
ऐतिहासिक चिह्न भी विद्यमान हैं; परंतु इलोराकी ग
साथ बनी हुई ७ वीं अथवा ८ वीं शताब्दीकी हिं
देखने योग्य हैं। कुल पाँच गुफाएँ हैं, जिनमें एक स
है। इसमें सुन्दर मूर्तिकारी तथा शिल्पकला दीख
कहीं-कहीं प्राचीन चित्रकारीके अवशेष भी मिलते
प्राचीन ग्रन्थोंके अवलोकनसे मालूम होता है कि वि
इस सम्पूर्ण गुफामें सुन्दर चित्रकारी विद्यमान थी
प्रत्येक गुफामें शिवलिङ्ग स्थापित हैं। पोर्चगीजोंद्वारा
को बहुत क्षति पहुँची है और उन्होंने गुफाओंके अ
चलाकर बहुत-सी मूर्तियाँ नष्ट कर दी हैं। इस गुफा
विचित्र बनावटके हैं। जलका प्रबन्ध भी अच्छा है
शङ्कर भगवान्‌की लीलाएँ कई स्थानोंपर बनी हैं—य
योगी, नटेश्वर, भैरव, पार्वतीपरिणय, गङ्गावतरण, अर्द्ध
पार्वती-मान, कैलासके नीचे रावण तथा महेश-मूर्ति
भ्रमवश त्रिमूर्ति कहते हैं। यथार्थमें तीनों मूर्तियाँ
शङ्करकी ही हैं और उन्हींके तीन रूप इस मूर्तिमें
गये हैं।

योगेश्वरीकी गुफाएँ जोगेश्वरी नामक स्टेशनके
हैं। यह स्टेशन बी० बी० सी० आई रेलवेपर बंबईसे
है। यह गुफा प्रायः भूगर्भमें ही बनी है अर्थात्
नीचेको बनी है, इसका पत्थर भुरभुरा है।
कारण बहुत-सी मूर्तियाँ और खंभे कालकी गा
हो गये हैं। यह गुफा भी ब्राह्मण-धर्मकी है औ
समय वही है, जो धारापुरीकी गुफाओंका। इस

रोलकी गुफाएँ योगेश्वरी गुफाके पास ही पर्वतके दूसरी । प्रायः २० गुफाएँ होंगी । ये गुफाएँ पृथ्वीतल र्वतके शिखरके मध्यमें हैं । इनका पत्थर भी बहुत ही है और यही कारण है कि इनमेंसे बहुत-सी गुफाएँ हो गयी हैं । ये गुफाएँ बौद्ध गुफाएँ लगती हैं ।

ण्डपेश्वरकी गुफाएँ भी बंबईके पास माउंट पोयसर unt Poisur) नामक स्टेशनके पास ही हैं । ये भी ब्राह्मण-गुफाएँ हैं और ८ वीं सदीकी बनी हुई ती हैं । रोमन कैथलिक लोगोंने इस स्थानपर अपना र स्थापित किया और योगियोंको वहाँसे हटा दिया । कि १६ वीं सदीमें जब यहाँ गिरजा स्थापित हुआ, ०० योगी रहते थे ।

सिद्ध कन्हेरीकी गुफाएँ टाँडाँ तथा बोरेवली स्टेशनोंसे ऊपर स्थित हैं । यह स्थान भी बंबईके पास ही है । ये ो ९वीं शताब्दीमें बनी हुई मानी जाती हैं । यहाँ- बौद्ध-गुफाएँ हैं । पर इनमें एक ही गुफा मुख्य है, कि नमूनेपर बनी है । इनमें महायान-सम्प्रदायकी वेद्यमान हैं । इनमें भी सुन्दर चित्रकारी की गयी थी, पर पत्थरकी खराबीसे इनकी बहुत-सी चित्रकारी गयी है ।

ऊपर भारतकी केवल प्रसिद्ध गुफाओंका ही व गया है और वह भी बहुत ही सरसरी तौरपर । गुफाओं' की पालिस, अजंताकी गुफाओंकी चित्रक इलोराकी गुफाओंकी मूर्तिकारी एक बार देखनेपर हृदय-पटलसे विस्मृत नहीं हो सकतीं । जिस समय इलोराकी दशावतार नामक ब्राह्मण-गुफा देख रहे उसमें बनी विशाल मूर्तियोंका अवलोकन कर रहे थे, लोगोंने देखा कि एक अमेरिकन बुढ़िया खड़ी रो पूछनेपर मालूम हुआ कि वह इस कारण रो रही है मूर्तिकारी उसने जीवनभरमें कहीं नहीं देखी । उस एक और कारण था और वह यह था कि इतने बड़े-ब जिन्होंने ऐसे गुफा-मन्दिर बनवाये थे, वे सब-के-सब न और उनकी बनायी हुई गुफाओंमें लोग जूता पहनक लगे । आशा है कि पाठकगण उपर्युक्त विवरणसे इन को देखनेकी अभिलाषा करेंगे और कालकी गतिका करेंगे * ।

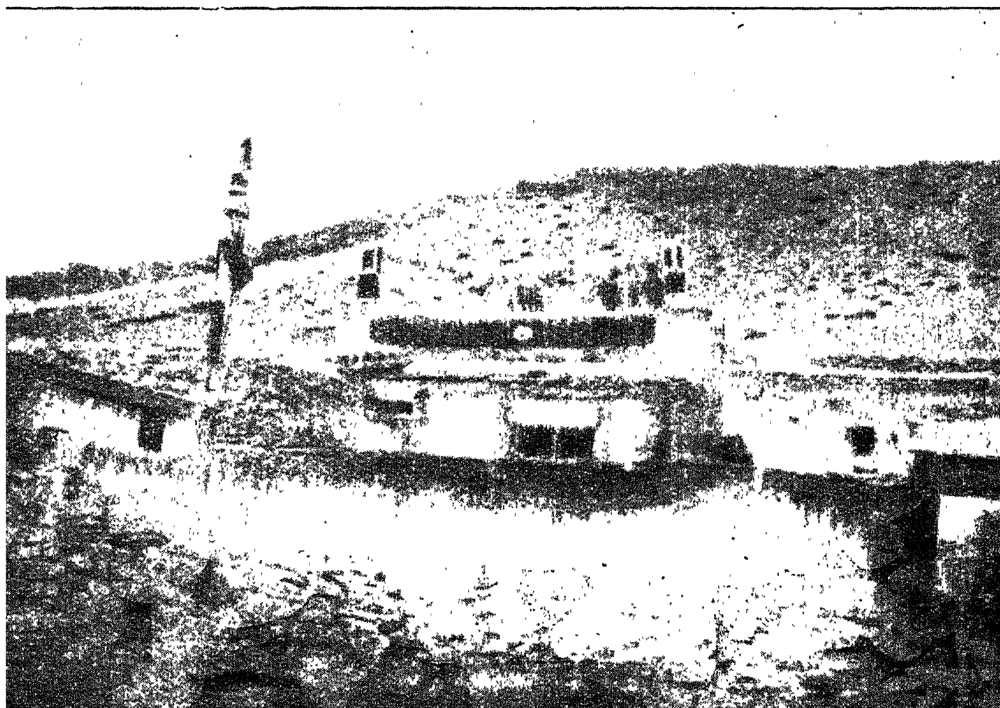
हिंदुओंके प्रिय जलतीर्थ

(लेखक—श्रीवैकुण्ठनाथजी मेहरोत्रा एम्०ए०, एल्-एल्० बी०, एल्०एस्०जी०डी०)

महात्मासे किसीने पूछा कि हिंदू-जातिका कोई एक बतलाइये, जो अन्य जातियोंसे भिन्न हो । महात्माने —'जलप्रियता' । यथार्थमें हिंदुओंके प्रत्येक उत्सव- थ नदी, तड़ागादिमें स्नान करनेकी प्रथा प्रचलित कारण है कि हमारे अधिकांश तीर्थ विशिष्ट नदियों वरोंके रूपमें तथा उन्हींसे सम्बद्ध हैं । इन नदियोंके सी धारणा की जाती है और यह धारणा वैज्ञानिक स्थित है कि विशेष नदियोंका जल विशेष गुण और ता है । सब जल एक-से नहीं होते । सब नदियोंका क-सा नहीं होता अर्थात् किसी नदीके जलमें कृमि ो हैं, किसीमें देरसे पड़ते हैं और किसीमें पड़ते ही ालयका पश्चिमी-प्रदेश, जहाँ मानससरोवर स्थित है, प्लक्षप्रस्रवण प्रदेशके नामसे विदित था । कहा जाता प्रदेशमें कल्पवृक्ष था और देवतालोग रहते थे । राजपूताना, पंजाब इत्यादि जलमें डूबे हुए थे । काश्मीर भी अपनी झीलमें डूबा हुआ था । संयुक्त बिहार, बंगाल इत्यादि भी जलमग्न थे । हिमालयके भी जल-ही-जल था । कालान्तरमें पृथ्वीकी उथल- उत्तरी भारतके प्रदेश जलसे बाहर निकले । उस समय भारतकी नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें हमारी मुख्य हैं । ये सब नदियाँ एक प्रकारसे मानस-सरोवर निकली हैं । सिन्धु तथा पंजाबकी अन्य नदियाँ, जिनमें सरस्वती भी सम्मिलित थी, और ब्रह्मपुत्र तो प्रत्य मानस-सरोवरसे सम्बन्ध रखती हैं । शारदा, गङ्गा यमुना भी अन्तःसलिला होकर उसी मानस-सरोवरसे निक गङ्गाजीको इस प्रदेशमें लानेका श्रेय महाराज भगीरथको हुआ । अवश्य ही इतने ऊपर हिमालयसे नीचे के आनेमें विकट प्रयत्न करना पड़ा होगा और अवश्य भगवान् शङ्करकी अनुकम्पाके बिना उनकी जटाओं व हिमालयकी विकट घाटियोंसे भगवती भागीरथीका निय

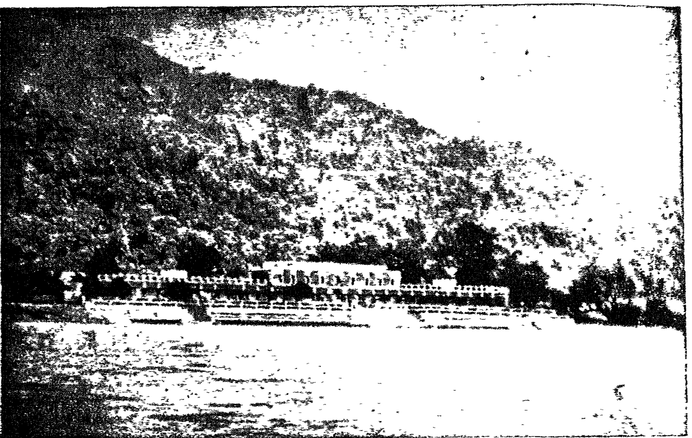


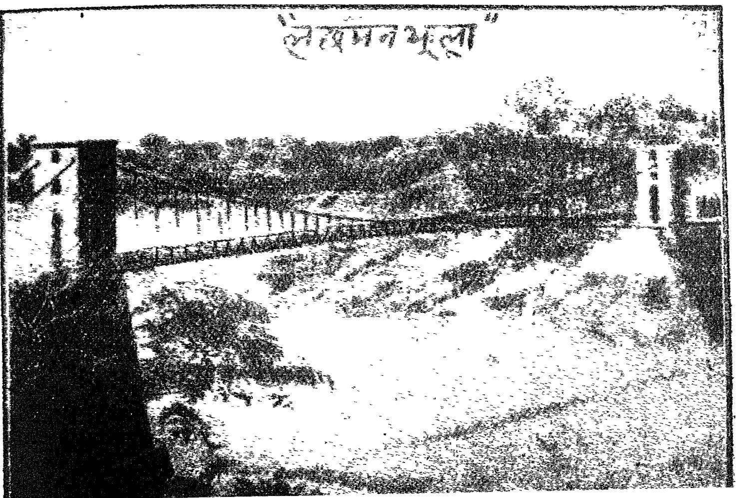
मानसरोवर





हरिद्वारके घाटोंका विहंगम दृश्य





ोगा। यही घटना गङ्गावतरणके नामसे विख्यात है। त् भगवती भागीरथी ऐसी शिलाओंपरसे बहती हैं कि वेकृत जलमें भी कभी कृमि नहीं पड़ते। गङ्गामें स्नान लोंका वर्ण भस्मावलेपित भगवान् शङ्करके शरीर-सा जाता है। यमुनामें स्नान करनेवालोंका वर्ण किञ्चित् ोता है। गोमतीमें, जो एक बहुत ही प्राचीन नदी है, करनेवालोंका वर्ण विशेष श्याम तथा पुष्ट होता है। ् जलमें स्नान करनेवाले लोगोंका वर्ण गङ्गामें स्नान लोंसे किञ्चित् ही न्यून होता है। पाठकोंने विविध ो रेणुकाएँ (बालू) देखी होंगी। किसी बालूमें सुवर्ण-ते हैं, किसीमें रजत-कण, किसीमें ताम्र-कण तथा लौह-कण। विविध वस्तुओंकी बालूकी तौल भिन्न-ोती है। बुन्देलखण्डकी केन नदीमें ऐसे पत्थर मिलते नके ऊपर मूर्ति अङ्कित हो गयी होती है। गण्डकीमें ा मिलते हैं अर्थात् यह नदी ऐसे स्तरोंसे होकर ै, जहाँ अधिक सुवर्ण है; क्योंकि शालग्रामकी हिरण्य-र्तिमें सुवर्ण ही होता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक जलचर भिन्न-भिन्न प्रकारके हैं। इसका अर्थ यह है में, विशिष्ट चट्टानोंपर बहनेसे, वात, पित्त तथा कफकी आ जाती है और उसीके अनुसार जीव-जन्तु उस उत्पन्न होते हैं। कई वर्ष हुए मेरे पिताजी हमीरपुरमें कलेक्टर थे। हमीरपुरमें डेढ़ ही मीलके अंदर दो यमुना तथा बेतवा दो तरफ पड़ती हैं। उनमें यमुना-वायुकारक तथा गरिष्ठ होता है और बेतवाका धिरहित और पाचक। बेतवामें धुले हुए वस्त्र भी साफ होते थे। अस्तु, मेरा तात्पर्य यह है कि इस ताके अंदर हमारे महर्षियोंके विशाल अनुभव तथा नींव है।

के अतिरिक्त पूजामें भी प्रायः हर अवसरपर आचमन, स्नान इत्यादिके लिये जलकी आवश्यकता होती है। णमें भी जलका होना परमावश्यक है।

व मैं भारतकी कुछ प्रसिद्ध नदियोंसे सम्बद्ध तीर्थों-न करूँगा। भगवती भागीरथी लक्ष्मणझूलेके पास पृथ्वीपर आती हैं। इसके बाद ही ऋषिकेश तथा इसके तटपर पड़ते हैं। इन स्थानोंमें गङ्गाके जलमें छोटे-छोटे कण बहुत रहते हैं और उनके कारण जलको पीकर थोड़ी देर रखकर पीना चाहिये। आजकल ऐसे स्थानोंकी तो बात ही क्या है। इस तीर्थमें पाखण्ड तथा आडम्बर बढ़ जानेपर भी सन्ध्याके समय नेक स्त्रियों तथा पुरुषोंको गङ्गाजीकी सच्चे भावसे करते मैंने देखा है। हरिद्वार ही गङ्गा-द्वार है और महर्षि वेदव्यासने अपने तपोबलसे महाभारतमें मरे हु तथा अन्य वीरोंका साक्षात्कार उनके कुटुम्बवालोंके था। पास ही कनखलमें दक्ष-यज्ञका स्थान है।

काशी दूसरा परम प्रसिद्ध स्थान है, जो गङ्गापर ब है। गङ्गाजीका जल फर्रुखाबाद जिलेतक अन्य नदि दूषित जलोंसे अछूता मिलता है और प्रायः इस पहुँचते-पहुँचते जलमें मिले हुए पाषाण-कण भी नी जाते हैं। इसी कारण कहा जाता है कि फतेहगढ़ नगरमें लोगोंकी आयु अधिक होती है। इस बात सरकारी पुस्तकोंद्वारा भी होती है। सरकारी पुस्तकों बात चुनारके विषयमें भी लिखी है। काशीका मुख अथवा प्राचीन नगर कंकड़की एक लंबी पहाड़ीपर ब यह पहाड़ी तीन अथवा चार मील लंबी है। यही कि गङ्गा काशीके नीचे सदा ही बहती हैं। महा कहना है कि उस कंकड़की पहाड़ीमें पुराने घरोंकी नीचे टाँकोंमें अनेक महायोगियोंके जीवित समाधि शरीरोंके अवशेष विद्यमान हैं। काशीके प्रायः पाँ लंबे घाट अधिकांश मरहठोंके समयमें तीन सौ बनने शुरू हुए थे। ओङ्कारेश्वर, विश्वेश्वर तथा के नामक तीन खण्डोंमें यह काशी नामक पहाड़ी विभ काशीमें अब भी अनेक देवस्थान ऐसे हैं कि जहाँ पहुँ मनुष्यकी वृत्ति अनायास ही सात्त्विक हो जाती है। इस भी पाखण्ड, आडम्बर इत्यादिके आ जानेपर भी अब त्वकी कुछ-कुछ आभा विद्यमान है ही। भावनाके क तीर्थमें भगवान्‌ने भक्तोंको विविध रूपोंमें दर्शन दि विद्वान् अब भी काशीमें विद्यमान हैं। काशीमें ग सुलभ तथा निरापद-सा है। यही कारण है कि य प्रायः दो-तीन बजे रातसे ही गङ्गा-स्नान प्रारम्भ कर सबसे पहले जो लोग स्नान करते हैं, उनको लोग अच देख और पहचान नहीं पाते। कहते हैं कि देवताल समय आते हैं। इतना तो निश्चय ही है कि इस सम वाले व्यक्ति देवभावसे विशेषरूपमें परिपूरित हो काशीमें अनेक तीर्थ—यथा नीलकण्ठेश्वर, मणिका इत्यादि पृथ्वीतलसे बहुत नीचे बने हैं और इसीसे प्राची

को काशी ज्योतिर्मय दिखलायी दी और यथार्थमें
ीन नगरकी विभूतियोंका वर्णन करना कोई सरल
।

ीसे पहले प्रयाग नामक तीर्थ भागीरथी तथा
संगमपर बसा है। गङ्गाको नगरकी ओर आनेसे
लेये कहते हैं कि सम्राट् अशोकने एक सुदृढ़ बाँध
था, जिसे सम्राट् अकबरने फिरसे ठीक करवाया।
में शान्ति विशेष होनेपर भी काशीवाली बात नहीं
पर संगम-स्नान यहाँ विशेष महत्त्वकी चीज है। इस
अनादि कालसे राजाओं तथा अन्य लोगोंने महान्
किये हैं। यहाँपर माघ मासमें अनेकानेक व्यक्ति
करते हैं अर्थात् गङ्गातटपर ही रहते हैं और मास-
अपनी कुटियाको भी दान कर देते हैं। यद्यपि यहाँ भी
ा गया है, तथापि इस पुण्यक्षेत्रमें विशिष्ट महात्मा-
र्शन हो ही जाते हैं। और सबसे बड़ी बात तो उन
र-नारियोंके भक्ति-भावकी है, जो भारतके कोने-
त पुण्यस्थानपर आते हैं। १९३० के कुम्भकी बात
थानपर ४० लाख यात्री निवास कर रहे थे। हमलोग
ोके साथ उस अवसरपर यहाँ आये थे। हमलोग स्नान
: रहे थे कि हमलोगोंने देखा काठियावाड़ प्रान्तकी
रियाँ रास्तेके दोनों ओर लगे हुए रस्सोंको तोड़कर
आना चाहती थीं। हमलोगोंको इस बातसे कुछ
आ; अतः वहीं खड़े होकर हमलोग देखने लगे कि
है। उस समय नागा लोगोंका अखाड़ा निकल रहा
के निकल जानेपर वे स्त्रियाँ, कड़ी रुकावट होनेपर
पर आ गयीं और उन्होंने उस मार्गकी धूलिको अपने
लगाया तथा थोड़ी-सी रज अपने आँचलमें भी बाँध
। है ऐसा निःसीम भक्तिभाव।

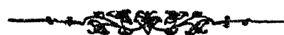
ा नदीके तटपर मुख्य नगर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र-
की लीलाभूमि मथुरा है। इस स्थानपर भी प्राय
व्यक्तियोंके दर्शन हो जाते हैं। यहाँके घाट काशीवे
सुन्दर तो नहीं, किंतु सदा यात्रियोंसे परिपूरित र
व्रजभूमिमें अनेक रमणीय स्थान अब भी विद्यमा
उनमेंसे अनेकोंके विषयमें किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

मध्यभारतमें नर्मदा बड़ी ही पुनीत मानी ज
और जहाँतक ज्ञात है, इसमें किसी नगरकी गंदगी न
है। कलियुगमें नर्मदाकी तुलना गङ्गासे की जाती है
व्यक्ति भिक्षुकका वेश धारणकर इस महानदीकी परिक्र
हैं और अपनी अनन्य भक्तिके अनुसार सिद्धि-ल
हैं। धायवी-कुण्ड नामक स्थानसे नर्मदेश्वर नामक
दूर-दूरतक जाते हैं। नर्मदाजीपर एक प्रसिद्ध तीर्थ
मान्धाता है। यह स्थान बड़ा ही तेजःपूर्ण है। जब
इस पुण्यतीर्थमें पहुँचे, तब हमलोगोंने देखा कि श्रीओ
समीप ही नर्मदाजीका जल धीरे-धीरे ऊपर आ रहा
कि नदीका जल लगभग तीस हाथ नीचे था। अ
यह स्थान सिद्धोंसे परिपूर्ण है और विशेष शान्तियुक्त

गोदावरीके तटपर नासिकक्षेत्रमें इस आधुनिक
प्रचारसे वह छटा नहीं आ पाती, जो अन्य बड़े-बड़े
मिलती है। इस तीर्थके आसपास बड़े-बड़े सुन्द
रमणीक स्थान हैं। त्र्यम्बकेश्वर एक जाग्रत् स्थान है
ऐसे ही महत्त्वपूर्ण स्थान पञ्चवटीके आगे भी हैं।

अजमेरके पास पुष्कर तीर्थमें भी कुछ तीर्थक
छाया दृष्टिगोचर होती है, यद्यपि वहाँपर और तरह
भी चित्तमें आते हैं। ब्रह्माजीका मन्दिर, कहा ज
केवल इसी स्थानपर है।

मैंने बहुत ही थोड़े तीर्थोंका वर्णन बड़े ही संक्षेप
है। आशा है कि भावुक भक्त तत्त्वको ग्रहणकर अन्य
पर विशेष ध्यान न देंगे।



हिंदू-धर्म सर्वश्रेष्ठ है

मैंने यूरोप और एशियाके सभी धर्मोंका अध्ययन किया है, परंतु मुझे उन सबमें हिंदू-धर्म ही
देता है × × × × × मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत्‌को सिर

श्रीगङ्गा और यमुनाका जल

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम्० ए०)

गङ्गाजलकी महिमा

ङ्गाजलकी महिमाका कहना ही क्या है, उसके नसे बड़े-बड़े पाप दूर हो जाते हैं। उसके सम्बन्धी गुणोंका भी प्राचीन कालसे उल्लेख मिलता रकने, जिनका काल आधुनिक विद्वानोंद्वारा आजसे दो हजार वर्ष पहले माना जाता है, लिखा है से निकलनेवाले जल पथ्य हैं—**हिमवत्प्रभवाः** इसमें विशेषरूपसे गङ्गाजलका ही सङ्केत है; क्योंकि नके आगे ही आता है—**पुण्या देवर्षिसेविताः**। कृत 'अष्टाङ्गहृदय' में, जिसका निर्माणकाल ईसवी आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है, इसको या गया है—

मवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः।

क्रपाणिदत्तने भी, जो सन् १०६० के लगभग हुए, कि हिमालयसे निकलनेके कारण गङ्गाजल पथ्य है—

ोक्तलक्षणहिमालयभवत्वादेव गाङ्गं पथ्यम्।

डारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूनामें अठारहवी का एक हस्तलिखित ग्रन्थ है—'भोजनकुतूहल'; हा गया है कि गङ्गाजल श्वेत, स्वादु, स्वच्छ, अत्यन्त पथ्य, भोजन पकानेयोग्य, पाचनशक्ति बढ़ानेवाला, ोंको हरनेवाला, प्यासको शान्त तथा मोहको नष्ट ा, क्षुधा और बुद्धिको बढ़ानेवाला होता है—

ादु स्वच्छमत्यन्तरुच्यं पथ्यं पाक्यं पाचनं पापहारि।
ृध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम्॥

तरह गङ्गाजलके स्वास्थ्यसम्बन्धी गुणोंपर बराबर हाँ जोर दिया गया है। इन्हीं गुणोंपर मुग्ध होकर और अहिंदुओंको भी इसे अपनाना पड़ा।

बतूताने सन् १३२५–५४ में अफरीका तथा एशियाके ोंकी यात्रा की थी। वह भारत भी आया था। यात्रा-वर्णनमें लिखता है कि सुलतान मुहम्मद- लिये गङ्गाजल बराबर दौलताबाद जाया करता के वहाँ पहुँचानेमें ४० दिन लग जाते थे (गिब्स- 'आईने अकबरी' में लिखता है कि 'बादशाह ग 'अमृत' समझते हैं और उसका बराबर प्रबन्ध लिये उन्होंने योग्य व्यक्तियोंको नियुक्त कर रक्ख बहुत पीते नहीं हैं, पर तब भी इस ओर उनका रहता है। घरमें या यात्रामें वे गङ्गाजल ही पीते हैं। कुछ पात्र लोग गङ्गातटपर इसीलिये नियुक्त रहते हैं कि गङ्गाजल भराकर और उसपर मुहर लगाकर बराबर भे जब बादशाह सलामत राजधानी आगरा या फतेहपुर रहते हैं, तब गङ्गाजल सोरोंसे आता है और ज जाते हैं, तब हरिद्वारसे। खाना पकानेके लिये व यमुनाजल, जिसमें थोड़ा गङ्गाजल मिला दिया जाता लाया जाता है।' अकबरके धार्मिक विचार दूसरे थे; इसलिये उन्हें यदि गङ्गाजलमें श्रद्धा हो तो को नहीं। पर सबसे मजेकी बात तो यह है कि कट्टर औरंगजेबका भी काम बिना गङ्गाजलके न चलत फ्रांसीसी यात्री बर्नियर, जो भारतमें सन् १४५९- रहा था और जो शाहजादा दाराशिकोहका चिकि अपने 'यात्राविवरण' में लिखता है कि 'दिल्ली और औरंगजेबके लिये खाने-पीनेकी सामग्रीके साथ गङ्ग रहता था। यात्रामें भी इसका प्रबन्ध रहता था। स्वयं ही नहीं, दरबारके अन्य लोग भी गङ्गाजलका व्यव थे। बर्नियर लिखता है कि ऊँटोंपर लदकर यह बर रहता था। प्रतिदिन सबेरे नाश्तेके साथ उसको सुराही गङ्गाजल भेजा जाता था। यात्रामें मेव मिठाई, गङ्गाजल, उसको ठंडा करनेके लिये शोरा बराबर रहते थे।'

फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियरने भी, जो उन्हीं दिन आया था, लिखा है कि इसके स्वास्थ्यसम्बन्धी देखकर मुसल्मान नवाब इसका बराबर व्यवहार क कप्तान एडवर्ड मूर, जो ब्रिटिश सेनामें था औ टीपू सुलतानके साथ युद्धमें भाग लिया था, लि कि सबन्नर (शाहनवर) के नवाब केवल गङ्ग पीते थे। इसको लानेके लिये कई ऊँट तथा (आदम

केमनने गङ्गाजलके बराबर कोई दूसरा जल नहीं है,
ही दिनोंतक रक्खे रहनेपर भी यह बिगड़ता नहीं।
श्वर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, 'तिरुपति' की पत्रिका
स) के खण्ड १ भाग ३ (सितम्बर १९४०)
के श्रीगोडका 'मुसल्मान शासकोंद्वारा गङ्गाजलके
पर एक अच्छा लेख है। किसी भावसे सही, गङ्गा-
व्यवहारसे अहिंदुओंका भी हित ही हुआ होगा।

र्नियरके यात्रा-विवरणसे यह भी पता लगता है कि
ं हिंदुओंमें विवाहके अवसरपर भोजनके पश्चात्
को गङ्गाजल पिलानेकी चाल थी। इसके लिये बड़ी-बड़ी
ाजल मँगाया जाता था। जो जितना अमीर होता
ा ही अधिक गङ्गाजल पिलाता था। दूरसे गङ्गाजल
ख़र्च भी बहुत पड़ता था। टैवर्नियरका कहना है कि
कभी-कभी इसपर दो-तीन हजार रुपयेतक खर्च हो
पेशवाओंके लिये बहँगियों (कावड़ी) में रखकर गङ्गा-
जाया करता था। मराठी पुस्तक 'पेशवाईच्या
(पूना १९३७) से पता लगता है कि काशीसे पूना
लिये एक बँहगी गङ्गाजलका खर्च २० रुपया
से श्रीरामेश्वरम् ले जानेके लिये ४० रुपया पड़ता
हुत नहीं कहा जा सकता। गढ़मुक्तेश्वर तथा हरिद्वार-
ावाओंके लिये गङ्गोदक जाता था। श्रीबाजीराव
बतलाया गया था, गङ्गाजलके सेवनसे ऋण-मुक्त
—'श्रीतीर्थसेवन करून महाराज चिकर्त-परिहार
रते समय गङ्गोदक देनेकी चाल तो सुदूर दक्षिणमें
। विजयनगरके राजा कृष्णरायको, जब वे सन्
मृतप्राय थे, गङ्गोदक दिया गया और वे अच्छे
जयनगर, थर्ड डायनेस्टी १९३५)। भूटानयुद्धका
र तिब्बतके तूशीलामाने वारेन हेस्टिंग्जके पास एक
र गङ्गातटपर कुछ भूमि माँगी और वहाँपर एक मठ
न्दिर बनवाया; क्योंकि 'गङ्गा हिंदुओंके लिये ही
द्धोंके लिये भी पुनीत है।' यह मठ और भूमि जो
न' के नामसे प्रसिद्ध है, तूशीलामाने श्रीपूर्णगिरिको

कोई गङ्गाका इतिहास लिखे, जैसा कि श्रीलुडविग-
दीका लिखा है, तो कितना रोचक हो!

गङ्गा-यमुनाके गुण

यह दिखलाया गया है कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे
स्वास्थ्य-सम्बन्धी गुणोंका कुछ और पता लगा है। वि
श्रीहैनबरी हैंकिन किसी समय युक्तप्रान्त तथा
की सरकारोंके 'रसायन-परीक्षक' (केमिकल एकजामि
आपने 'पासचर इंस्टीट्यूट' की फ्रांसीसी
सन् १८९६ में एक लेख लिखा था। उसक
अनुवाद राँचीसे निकलनेवाले 'मैन इन इंडिया'
त्रैमासिक पत्र, जिल्द १८, अङ्क २-३ (अप्रैल-
१९३८) में प्रकाशित हुआ था। उस लेखका
दिया जा रहा है। श्रीहैंकिनसाहब लिखते हैं कि
तथा यमुनाको हिंदू जैसा पवित्र समझते हैं, वह
ज्ञात है। विदेशियोंको और बहुत-से अंग्रेजी-
हिंदुओंको उनकी यह श्रद्धा अविवेकपूर्ण जँचती
किसी बड़े नगरके समीप इनके गंदे और मटीले
हजारों लोगोंको नहाते और पशुओं तथा कपड़ों
हुए कोई देखता है, जब वह यह याद करता है
अधजली लाशें इसमें फेंक दी जाती हैं, तब उ
यह सोचना स्वाभाविक ही है कि इन नदियोंका
कितना खतरनाक है और हिंदुओंमें इनके प्रति
भक्ति है, वह उनके शुद्धतासम्बन्धी नियमोंके
प्रमाण है।' हैजाके अधिक प्रकोपका अभीतक
विद्वान् यह एक कारण मानते रहे हैं। उनकी रायमें
गङ्गाद्वारा फैलाया जाता है, क्योंकि उसका जल इसके की
का घर है। परंतु हालकी वैज्ञानिक खोजने यह प्र
दिया है कि गङ्गा तथा यमुनाका जल अन्य नदियों
कहीं अधिक शुद्ध है।

अणुवीक्षणयन्त्र (माइक्रॉसकोप)-द्वारा साधारण
ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इन नदियों तथा यूरोपीय
जलोंमें कितना अन्तर है। यूरोपीय नदियोंके जलोंमें कि
सड़ी तथा हरी घासें मिलती हैं, मृत तथा जीवित ज
संख्या भी कम नहीं दिखायी देती। परंतु गङ्गा तथा
जलोंमें ऐसी वस्तुएँ बहुत कम पायी जाती हैं; जो
भी देती हैं, वे प्रायः घाटीके पास या बड़े शहरोंसे अ
कर। बालू या अभ्र (माइका) के कणोंसे प्रायः इनके
मैलापन दिखायी देता है। सन् १८९४ में जो '
मेडिकल कांग्रेस' हुई थी, उसमें पढ़े गये 'अ
माइक्रोब्स ऑफ इंडियन रिवर्स' (भारतीय नदियोंके

क्ष्म परीक्षा करनेसे कीटाणुओंसे इनका जल शुद्ध
कारण जान पड़ते हैं। यूरोपकी तरह इन नदियोंमें
के बड़े-बड़े नल नहीं गिरते। बड़े-बड़े शहरोंमें
त्य ऐसे कुछ नल बन गये हैं, परंतु तब भी उनकी
भी कम है। इसी तरह यूरोपकी अपेक्षा इनके तटों-
क कल-कारखाने नहीं हैं, जिनका रासायनिक पदार्थोंसे
ा जल इनके जलोंको गंदा करता हो। इनके जलों-
का एक और कारण है। इनके प्रायः दोनों तटोंके
मील या दो मील ऊसर जमीन पड़ी रहती है, जिनमें
कगारे होनेके कारण आबादी बहुत कम रहती है। आगरासे
ल नीचेतक केवल दो गाँव यमुनाके तटपर हैं। ऊपर-
२३ मीलकी दूरीमें केवल तीन गाँव हैं। इनमेंसे
आबादी ५००से अधिक नहीं है। इन नदियोंको
जो गंदगी प्राप्त होती है, वह इन सब ऊसरोंमें जज्ब
है। ये दोनों नदियाँ बालूकी तलहटियोंमें बहती हैं।
कई महीने कड़ी धूप और खुली हवासे भी इनका
होता रहता है। यूरोपकी नदियोंका जल वर्षाके
ाता है; परंतु इन नदियोंको हिमालयसे जल निरन्तर
रहता है, जो स्वभावतः शुद्ध होता है।

िके दिनोंमें आगरासे ५ मील ऊपर यमुना-जलके एक
ीमीटरमें ७५-७६ कीटाणु देखे गये। आगरासे
ऊपर इनकी संख्या ७००–७५० मिली और नगर-
यह संख्या बढ़कर २५,०००तक पहुँच गयी। परंतु
२॥ मीलकी दूरीपर यह संख्या घटकर १३० से ८०
गयी। इससे स्पष्ट है कि जलमें स्वतः शुद्ध करनेकी
। हैजेके सम्बन्धमें प्रायः कहा जाता है कि यह बंगालसे
तरफ चलता है, नीचेकी ओर कभी नहीं गया। यदि
ीके बहावके साथ फैलता है, तो फिर यह कैसे सम्भव
न नदियोंके तटपर जब किसी मेलेमें हैजा फैलता है,
नीचेकी ओरके गाँवोंमें क्यों नहीं पहुँचता? उत्तरमें
ं कहा जा सकता कि इसके कीटाणु जलतक नहीं
। यह ठीक है कि प्रायः हिंदू इन नदियोंके बिल्कुल
मल-त्याग नहीं करते; परंतु कपड़ा धोने और नहानेसे
ीटाणुओंका प्रवेश हो ही जाता है। सबसे बड़ी बात
है कि हैजेके रोगियोंके शव इन नदियोंमें फेंके जाते हैं।
लाशें अधजली होती हैं और कहीं वैसे ही फेंक दी
ं। इस दृष्टिसे इन दोनों नदियोंके जलोंकी रासायनिक

तत्त्व हैं, जिनमें हैजेके कीटाणुओंको नष्ट कर देनेकी श
पहली परीक्षामें जल आध घंटेतक गरम किया गया
गङ्गा, यमुना तथा आगरेके नलके पानीको बराबर
लेकर नलियोंमें भरा गया और उनमें कीटाणु छोड़े
परिणाम इस प्रकार हुआ—यमुना-जलमें १२,५००
४८ घंटेमें ५००० ही रह गये, नलके पानीमें १
कीटाणु उतने ही कालमें १५,००० हो गये और ग
१०,००० के ११,००० हो गये। इसके बाद गङ्गाज
कुआँजलको बिना गरम किये हुए, केवल अच्छी तर
(फिल्टर) कर परीक्षा की गयी, तो फल इस प्रकार
गङ्गाजलमें ५,५०० कीटाणु तीन घंटेमें ही साफ हो ग
कुआँजलमें ८,५००के ४९ घंटेमें १५,००० हो गये
यह सिद्ध हुआ कि गङ्गाजलको गरम करनेसे उसमें की
को नष्ट करनेकी शक्ति जाती रहती है। इसीलिये गङ्
गरम करना दोष माना जाता है। यमुनाजलमें
बात पायी गयी; दो ही घंटोंमें ४,२०० कीटाणु स
नष्ट हो गये। परीक्षा करनेपर यह भी पता लगा
जलको नलियोंमें भरकर बिल्कुल बंद करके गरम कि
है तो फिर जलकी कृमिनाशक शक्ति नष्ट नहीं होत
जलोंकी, वर्षा छोड़कर प्रायः सभी ऋतुओंमें, परीक्षा
और उनमें यही बात पायी गयी। गर्मीके दिनोंमें
जल प्रायः दिल्लीके पास नहरमें जमा हो जाता है
फाटक भी बंद कर दिया गया; तब भी देखा गय
जलकी कृमिनाशक शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हुई। इससे
लगता है कि हिमालयसे बर्फ गलनेपर जलमें जो शा
है, वह बादमें भी बहुत कुछ बनी रहती है, नदीके
वह बराबर बढ़ती जाती है। गङ्गाजलमें भी यही ब
गयी है। आगरेसे ऊपर और नीचेके जल तथा ऐ
भी, जिसमें मुर्दे फेंके जाते हैं, परीक्षा की गयी। इ
गया कि यमुना-जलमें आगराके ऊपर १,२०० कीटाणु
२०० ही रह गये और दो घंटेमें बिल्कुल नष्ट हो गये
ओर १,५०० कीटाणु घंटेभरमें ही खतम हो गये।
हुए मुर्देके पासके पानीमें १,५०० कीटाणु
५० रह गये और दूसरे घंटेमें एकदम नष्ट
परंतु कूपजल गरम करनेपर देखा गया कि १,२०
बढ़ते-बढ़ते २१ घंटेमें ३,००० और ४५ घंटेमें १६,
बढ़ गये। इस परीक्षासे यह भी स्पष्ट होता है कि
भी इन जलोंकी कृमिनाशक-शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हो

: हैजा रोकनेके लिये यह आज्ञा निकाल देनी चाहिये
ोंका जल बिल्कुल बंद करके केवल इन नदियोंका
दिया जाय।

ेतक हिंदुओंका तो विश्वास है कि श्रीगङ्गा-यमुनाका जल मन तथा शरीर दोनोंके मलका हरण करता है बात नवशिक्षितोंकी ही समझमें नहीं आती। स्वास्थ्यके लिये विदेशी 'मिनरल् वाटर' चाहिये। अच्छा होता यदि भारतीय वैज्ञानिक भी इस ओर ध



हमारे पथ-प्रदर्शक

जब अकबरकी गहन अँधेरी हमको ग्रसने आयी।
उसकी कूटनीतिमें फँसकर भाई रहा न भाई॥
किसको अपना कहें, न अपना देता कहीं दिखाई।
तब भी जिसने निडर अकेले अपनी असि चमकाई॥
वह वीरोंका वीर, व्रती, राणा सिरमौर हमारा हो।
धर्मानलमें शलभ-सदृश जलना ही हमको प्यारा हो॥ १॥

गुरू तेगकी टेक, गुरू गोविन्दसिंहका पानी।
बच्चोंको जीवित चुनवा देनेकी करुण कहानी॥
आज याद आया है हमको वह बन्दा बैरागी।
देश-जातिके लिये प्राणकी ममता जिसने त्यागी॥
गर्म चीमटोंसे जब उसका मांस गया नुचवाया था।
तब भी धर्म-विमुख हो करके जीना जिसे न भाया था॥ २॥

जिसने बाजी तानाजी-से अगणित वीर बनाये।
मुट्ठी भर युवकोंसे जिसने दुर्गम दुर्ग जिताये॥
जिसके गौरवगीत अमर-कवि भूषणने हैं गाये।
जिससे सदा पराजित होकर मुगल-तुर्क थर्राये॥
दिल्लीमें भी दिल्लीपतिको जिसने सिर न झुकाया था।
स्वतन्त्रताका मूल्य चुकाना उसने हमें बताया था॥ ३॥

जिसके हित सदियोंसे सीखा हमने रक्त बहाना।
पहना बार-बार जिसके हित प्रिय केसरिया बाना॥
स्वतन्त्रताकी देवि! वही आयी हमने पहचाना।
दुनियावालो! समझ-बूझ अब उसपर आँख उठाना॥
उसकी पूजाके हित हमने जीवन-थाल सँवारा है।
इन वीरोंकी अमर ज्योतिसे ज्योतित मार्ग हमारा है॥ ४॥

—शिवदुलारे मिश्र, बी० ए०

चौसठ कलाएँ

(लेखक—पं० श्रीदुर्गादत्तजी त्रिपाठी)

ीन कालमें भारतीय शिक्षा-क्रमका क्षेत्र बहुत व्यापक ामें कलाओंकी शिक्षा भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान । कलाओंके सम्बन्धमें रामायण, महाभारत, पुराण, ादि ग्रन्थोंमें जाननेयोग्य सामग्री भरी पड़ी है; का थोड़ेमें, पर सुन्दर ढंगसे विवरण शुक्राचार्यके ' नामक ग्रन्थके चौथे अध्यायके तीसरे प्रकरणमें । उनके कथनानुसार कलाएँ अनन्त हैं, उन सबके नहीं गिनाये जा सकते; परंतु उनमें ६४ कलाएँ कलाका लक्षण बतलाते हुए आचार्य लिखते हैं ो एक मूक (गूँगा) व्यक्ति भी, जो वर्णोच्चारण कर सकता, कर सके, वह 'कला' है—

। मूकोऽपि यत् कर्तुं कलासंज्ञं तु तत् स्मृतम् ।

दे श्रीबसवराजेन्द्रविरचित 'शिवतत्त्वरत्नाकर' में य ६४ कलाओंका नामनिर्देश इस प्रकार किया है—द, २ आगम, ३ काव्य, ४ अलङ्कार, ५ नाटक, व, ७ कवित्व, ८ कामशास्त्र, ९ दुरोदर (द्यूत), भाषालिपिज्ञान, ११ लिपिकर्म, १२ वाचन, क, १४ व्यवहार, १५ स्वरशास्त्र, १६ शाकुन, द्रिक, १८ रत्नशास्त्र, १९ गज-अश्व-रथकौशल, ास्त्र, २१ सूपकर्म (रसोई पकाना), २२ भूरुहदोहद नी), २३ गन्धवाद, २४ धातुवाद, २५ रससम्बन्धी २६ बिलवाद, २७ अग्निसंस्तम्भ, २८ जलसंस्तम्भ, व:स्तम्भन, ३० वय:स्तम्भन, ३१ वशीकरण, कर्षण, ३३ मोहन, ३४ विद्वेषण, ३५ उच्चाटन, ा, ३७ कालवञ्चन, ३९ परकायप्रवेश, ४० पादुका-१ वाक्‌सिद्धि, ४२ गुटिकासिद्धि, ४३ ऐन्द्रजालिक, ा, ४५ परदृष्टिवञ्चन, ४६ स्वरवञ्चन, ४७ मणि-मन्त्र-की सिद्धि, ४८ चोरकर्म, ४९ चित्रक्रिया, क्रेया, ५१ अश्मक्रिया, ५२ मृत्क्रिया, ५३ दारुक्रिया, क्रेया, ५५ चर्मक्रिया, ५६ अम्बरक्रिया, ५७ अदृश्य-८ दन्तिकरण, ५९ मृगयाविधि, ६० वाणिज्य, ाल्य, ६२ कृषि, ६३ आसवकर्म और ६४ लाव-ादियुद्धकारक कौशल ।

ायनप्रणीत 'कामसूत्र' के टीकाकार जयमङ्गलने

शास्त्राङ्गभूता' और दूसरी 'तन्त्रावापौपयिकी' दोनोंमेंसे प्रत्येकमें ६४ कलाएँ हैं। इनमें कई समान ही हैं और बाकी पृथक् । पहले प्रका कर्माश्रया, २० द्यूताश्रया, १६ शयनोपचारि ४ उत्तर कलाएँ,—इस तरह ६४ मूल कलाएँ भी अवान्तर और कलाएँ हैं, जो सब मिलकर ५१८

कर्माश्रया २४ कलाओंके नाम इस प्रकार हैं—२ नृत्य, ३ वाद्य, ४ कौशल-लिपिज्ञान, ५ उ ६ चित्रविधि, ७ पुस्तकर्म, ८ पत्रच्छेद्य, ९ मा १० गन्धयुत्यास्वाद्यविधान, ११ रत्नपरीक्षा, १२ १३ रङ्गपरिज्ञान, १४ उपकरणक्रिया, १५ मानविधि, १६ ज्ञान, १७ तिर्यग्योनिचिकित्सित, १८ मायाकृतपाषण्ड १९ क्रीड़ाकौशल, २० लोकज्ञान, २१ वैचक्षण्य, २२ २३ शरीरसंस्कार और २४ विशेष कौशल ।

द्यूताश्रया २० कलाओंमें १५ निर्जीव और ५ स निर्जीव कलाएँ ये हैं—१ आयु:प्राप्ति, २ अक्षविधान संख्या, ४ क्रियामार्गण, ५ बीजग्रहण, ६ नयज्ञान, दान, ८ चित्राचित्रविधि, ९ गूढ़राशि, १० तुल ११ क्षिप्रग्रहण, १२ अनुप्राप्तिलेखस्मृति, १३ १४ छलव्यामोहन और १५ ग्रहदान । सजीव ५ हैं—१ उपस्थानविधि, २ युद्ध, ३ रुत, ४ गत और

शयनोपचारिका १६ कलाएँ ये हैं—१ पुरुषका २ स्वरागप्रकाशन, ३ प्रत्यङ्गदान, ४ नख-दन्त नीवीस्रंसन, ६ गुह्याङ्गका संस्पर्शनानुलोम्य, ७ कौशल, ८ हर्षण, ९ समानार्थताकृतार्थता, १० अनु ११ मृदुक्रोधप्रवर्तन, १२ सम्यक्क्रोधनिवर्तन, १३ क्रु १४ सुप्तपरित्याग, १५ चरमस्वापविधि और १६ गु

४ उत्तरकलाएँ ये हैं—१ साश्रुपात रमणको २ स्वशपथक्रिया, ३ प्रस्थितानुगमन और ४ पु रीक्षण । इस प्रकार दूसरे प्रकारकी भी सर्व लिये उपयोगिनी ६४ कलाएँ हैं ।

श्रीमद्भागवतके टीकाकार श्रीधरस्वामीने भी के दशम स्कन्धके ४५ वें अध्यायके ६४ वें टीकामें प्रायः दूसरे प्रकारकी कलाओंका नामनिर्दे

दिया है, उनमें कुछ तो उपर्युक्त कलाओंसे
ं, पर बाकी सभी भिन्न हैं। यहाँपर जयमङ्गल-
ूसरे प्रकारकी कलाओंका केवल नाम ही पाठकोंकी
ि लिये देकर उसके बाद 'शुक्रनीतिसार'के क्रमा-
लाओंका दिग्दर्शन कराया जायगा। जयमङ्गलके
६४ कलाएँ ये हैं—१ गीत, २ वाद्य, ३ नृत्य,
य, ५ विशेषकच्छेद्य (मस्तकपर तिलक लगानेके
ज, पत्ती आदि काटकर आकार या साँचे बनाना),
ल-कुसुमबलिविकार (देव-पूजनादिके अवसरपर
के रँगे हुए चावल, जौ आदि वस्तुओं तथा रंग-
लोंको विविध प्रकारसे सजाना), ७ पुष्पास्तरण,
सनाङ्गराग (दाँत, वस्त्र तथा शरीरके अवयवोंको
९ मणिभूमिका-कर्म (घरके फर्शके कुछ भागोंको
ग आदि रत्नोंसे जड़ना), १० शयनरचन (पलंग
, ११ उदकवाद्य (जलतरङ्ग), १२ उदकाघात
(हाथों या पिचकारीसे जलकी चोट मारना),
गाश्च योगाः (जड़ी-बूटियोंके योगसे विविध
सी तैयार करना या ऐसी औषधें तैयार करना
से मन्त्रोंका प्रयोग करना जिनसे शत्रु निर्बल हो या
नि हो), १४ माल्यग्रथनविकल्प (माला गूँथना),
रकापीड़योजन (स्त्रियोंकी चोटीपर पहननेके विविध
के रूपमें पुष्पोंको गूँथना), १६ नेपथ्यप्रयोग
े वस्त्र, आभूषण, पुष्प आदिसे सुसज्जित करना),
त्रभङ्ग (शङ्ख, हाथीदाँत आदिके अनेक तरहके
भूषण बनाना); १८ गन्धयुक्ति (सुगन्धित धूप
, १९ भूषणयोजन, २० ऐन्द्रजाल (जादूके खेल),
ुमारयोग (बल-वीर्य बढ़ानेवाली ओषधियाँ बनाना),
लाघव (हाथोंकी काम करनेमें फुर्ती और सफाई),
विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकार-क्रिया (तरह-तरहके
कढ़ी, रस, मिठाई आदि बनानेकी क्रिया),
करस-रागासव-योजन (विविध प्रकारके शर्बत, आसव
नाना), २५ सूचीवान कर्म (सुईका काम, जैसे
रफू करना, कसीदा काढ़ना, मोजे-गंजी बुनना),
क्रीडा (तागे या डोरियोंसे खेलना, जैसे कठपुतलीका
२७ वीणाडमरुकवाद्य, २८ प्रहेलिका (पहेलियाँ
), २९ प्रतिमाला (श्लोक आदि कविता पढ़नेकी
क रीति), ३० दुर्वाचकयोग (ऐसे श्लोक आदि

समस्यापूरण, ३४ पट्टिकावेत्रवानविकल्प (पीढ़ा,
कुर्सी, पलंग, मोढ़े आदि चीजें बेंत वगैरे वस्तुओंसे ब
३५ तक्षकर्म (लकड़ी, धातु आदिको अभीष्ट
आकारोंमें काटना), ३६ तक्षण (बढ़ईका
३७ वास्तुविद्या, ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा (सिक्के, रत्न
परीक्षा करना), ३९ धातुवाद (पीतल आदि ध
मिलाना, शुद्ध करना आदि), ४० मणिराग
(मणि आदिका रँगना, खान आदिके विषयका
४१ वृक्षायुर्वेदयोग, ४२ मेषकुक्कुटलावक
(मेंढे, मुर्गे, तीतर आदिको लड़ाना), ४३ शुक
प्रलापन (तोता-मैना आदिको बोली सिखाना), ४४
संवाहन, केशमर्दनकौशल (हाथ-पैरोंसे शरीर दबान
का मलना, उनका मैल दूर करना आदि), ४५ अ
का-कथन (अक्षरोंको ऐसी युक्तिसे कहना कि उस
जाननेवाला ही उनका अर्थ समझे, दूसरा नहीं; मु
द्वारा बातचीत करना, जैसे दलाल आदि कर ले
४६ म्लेच्छित विकल्प (ऐसे सङ्केतसे लिखना, जिसे उ
को जाननेवाला ही समझे), ४७ देशभाषा-विज्ञान,
शकटिका, ४९ निमित्तज्ञान (शकुन जानना),
मातृका (विविध प्रकारके मशीन, कल, पुर्जे आदि
५१ धारणमातृका (सुनी हुई बातोंका स्मरण
५२ संपाठ्य, ५३ मानसी काव्य-क्रिया (किसी श्लो
हुए पदको मनसे पूरा करना), ५४ अभि
५५ छन्दोज्ञान, ५६ क्रियाकल्प (काव्यालङ्कारोंक
५७ छलितक-योग (रूप और बोली छिपाना), ५८
(शरीरके अङ्गोंको छोटे या बड़े वस्त्रोंसे यथायोग्य
५९ द्यूतविशेष, ६० आकर्ष-क्रीडा (पासोंसे ख
६१ बालक्रीडनक, ६२ वैनयिकी-ज्ञान (अपने औ
विनयपूर्वक शिष्टाचार करना), ६३ वैजयिकी-ज्ञान
प्राप्त करनेकी विद्या अर्थात् शस्त्रविद्या) और ६४
विद्या। इनका विशेष विवरण जयमङ्गलने व
व्याख्यामें किया है।

शुक्राचार्यका कहना है कि कलाओंके भिन्न-भि
नहीं हैं, अपितु केवल उनके लक्षण ही कहे जा
क्योंकि क्रियाके पार्थक्यसे ही कलाओंमें भेद होत
व्यक्ति जिस कलाका अवलम्बन करता है, उसकी ज
कलाके नामसे कही जाती है। पहली कला है नृत्य (न

ा की जाती है। नृत्यके दो प्रकार हैं—एक नाट्य, ाट्य। स्वर्ग-नरक या पृथ्वीके निवासियोंकी कृतिका 'नाट्य' कहा जाता है और अनुकरण-विरहित नृत्य । यह कला अति प्राचीन कालसे यहाँ बड़ी उन्नत ी। श्रीशङ्करका ताण्डवनृत्य प्रसिद्ध है। आज तो का पेशा करनेवाली एक जाति ही 'कत्थक' नामसे । वर्षाऋतुमें घनगर्जनासे आनन्दित मोरका नृत्य देखा होगा। नृत्य एक स्वाभाविक वस्तु है, जो सन्नताका उद्रेक होते ही बाहर व्यक्त हो उठती है। ाविद् पुरुषोंने इसी स्वाभाविक नृत्यको अन्यान्य विशेषोंसे रँगकर कलाका रूप दे दिया है। जंगली-और सभ्य-से-सभ्य समाजमें नृत्यका अस्तित्व किसी-रूपमें देखा ही जाता है। आधुनिक पाश्चात्योंमें नृत्य-प्रधान सामाजिक वस्तु हो गयी है। प्राचीन कालमें की शिक्षा राजकुमारोंतकके लिये आवश्यक समझी । अर्जुनद्वारा अज्ञातवासकालमें राजा विराटकी कन्या बृहन्नलारूपमें इस कलाकी शिक्षा देनेकी बात त'में प्रसिद्ध है। दक्षिण-भारतमें यह कला अब भी ुत विद्यमान है। 'कथाकलि'में उसकी झलक मिलती ादयशङ्कर आदि कुछ कलाप्रेमी इस प्राचीन कलाको त् करनेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं।

अनेक प्रकारके वाद्योंका निर्माण करने और उनके ज्ञान 'कला' है। वाद्योंके मुख्यतया चार भेद हैं—२ सुषिर, ३ अवनद्ध और ४ घन। तार अथवा जिसमें उपयोग होता है, वे वाद्य 'तत' कहे जाते हैं वीणा, तम्बूरा, सारङ्गी, बेला, सरोद आदि। जिसका भाग सच्छिद्र (पोला) हो और जिसमें वायुका होता हो, उसको 'सुषिर' कहते हैं—जैसे बाँसुरी, ा, शहनाई, बैण्ड, हार्मोनियम, शङ्ख आदि। चमड़ेसे आ वाद्य 'अवनद्ध' कहा जाता है—जैसे ढोल, तबला, मृदङ्ग, डफ, खँजड़ी आदि। परस्पर । बजानेयोग्य वाद्य 'घन' कहलाता है—जैसे झाँझ, करताल आदि। यह कला गानेसे सम्बन्ध रखती है। ाद्यके गानमें मधुरता नहीं आती। प्राचीन कालमें वाद्योंमें वीणा मुख्य थी। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध होता है। सरस्वती और नारद-

उनमें अनेक वाद्योंके परिमाण, उनके बनाने और करनेकी विधियाँ मिलती हैं। राज्याभिषेक, यात्रा, विवाह, उपनयन आदि माङ्गलिक कार्योंके अवसरोंपर भिन्न वाद्योंका उपयोग होता था। युद्धमें सैनिकोंके शौर्यको बढ़ानेके लिये अनेक तरहके वाद्य बजाये जाते

३—स्त्री और पुरुषोंको वस्त्र एवं अलङ्कार सुच पहनाना 'कला' है। ४—अनेक प्रकारके रूपोंका अ करनेका ज्ञान 'कला' है। इसी कलाका उपयोग हनुम श्रीरामचन्द्रजीके साथ पहली बार मिलनेके समय ब्राह्म धारण करनेमें किया था। ५—शय्या और आस्तरण (बि सुन्दर रीतिसे बिछाना और पुष्पोंको अनेक प्रकारसे 'कला' है। ६—द्यूत (जूआ) आदि अनेक क्रीड़ाओंसे का मनोरञ्जन करना 'कला' है। प्राचीन कालमें द्यूतके प्रकारोंके प्रचलित होनेका पता लगता है। उन सबमें क्रीड़ा (चौपड़) विशेष प्रसिद्ध थी। नल, युधिष्ठिर, आदि इस कलामें निपुण थे। ७—अनेक प्रकारके आर सुरतक्रीड़ाका ज्ञान 'कला' है। इन सात कलाओंका 'गान्धर्ववेद'में किया गया है।

८—विविध प्रकारके मकरन्दों (पुष्परस) से आ आदिकी कृति 'कला' है। ९—शल्य (पादादि अङ्ग काँटे) की पीड़ाको अल्प कर देना या शल्यको निकाल डालना, शिरा (नाड़ी) और फोड़े आदि फाड़ करना 'कला' है। हकीमोंकी जर्राही और ड सर्जरी इसी कलाके उदाहरण हैं। १०—हींग अ (मसाले) से युक्त अनेक प्रकारके अन्नोंका पकाना है। महाराज नल और भीमसेन-जैसे पुरुष भी इस निपुण थे। ११—वृक्ष, गुल्म, लता आदिको लगाने विविध प्रकारके फल, पुष्पोंको उत्पन्न करने एवं उन का अनेक उपद्रवोंसे संरक्षण करनेकी कृति 'कला' है संस्कृत-ग्रन्थोंमें सुरम्य उद्यान, उपवन आदिका बहुत प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण तथ नीतिसारमें इस विषयपर बहुत प्रकाश डाला गया है मालूम होता है कि बहुत प्राचीन कालमें भी यह क दशामें थी। १२—पत्थर, सोने-चाँदी आदि ध (खानमेंसे) खोदना, उन धातुओंकी भस्म बनान है। १३—सभी प्रकारके इक्षु (ईख) से बनाये जा स

ोषधियोंको परस्पर मिश्रित करनेका ज्ञान (सिनथेसिस) । १५–मिश्रित धातुओंको उस मिश्रणसे अलग-कर देना (अनालिसिस) 'कला' है । १६–धातु मिश्रणका अपूर्व (प्रथम) विज्ञान 'कला' है। ण (नमक) आदिको समुद्रसे या मिट्टी आदि निकालनेका विज्ञान 'कला' है । इन दस कलाओंका सम्बन्ध है, इसलिये ये कलाएँ आयुर्वेदके अन्तर्भूत आधुनिक बॉटनी, गार्डनिङ्ग, माइनिङ्ग, मेटलर्जी, आदि आ जाते हैं ।

–पैर आदि अङ्गोंके विशिष्ट सञ्चालनपूर्वक (पैंतरा ए) शस्त्रोंका लक्ष्य स्थिर करना और उनका चलाना । १९–शरीरकी सन्धियों (जोड़ों) पर आघात या भिन्न-भिन्न अङ्गोंको खींचते हुए दो मल्लों नों) का युद्ध (कुश्ती) 'कला' है । इस कलामें प्राचीन कालसे अबतक सर्वश्रेष्ठ रहा है । श्रीकृष्णने गके चाणूर, मुष्टिक आदि प्रसिद्ध पहलवानोंको इस गड़ा था । भीमसेन और जरासन्धकी कुश्ती कई चलनेका उल्लेख 'महाभारत' में आया है । आज आदिके नाम जगद्विजयी मल्लोंमें हैं । पंजाब, मथुरा ल्ल अभी भी इस कलामें अच्छी निपुणता रखते हैं। ा एक भेद 'बाहुयुद्ध' है । इसमें मल्ललोग किसी प्रयोग न कर केवल मुष्टिसे युद्ध करते हैं। इसे मुक्काबाजी' (बाक्सिंग) कहते हैं। काशीके दुर्गा-र्तिकमें होनेवाली मुक्की सुप्रसिद्ध है । बाहुयुद्धमें नेवालेकी शुक्राचार्यने निन्दा की है। वे लिखते हैं—

य तस्य न स्वर्गो यशो नेहापि विद्यते ।
र्पविनाशान्तं नियुद्धं यशसे रिपोः ।
त्स्यासीद्धि कुर्याद्वै प्राणान्तं बाहुयुद्धकम् ॥

युद्धमें मरनेवालेको न तो इस लोकमें यश मिलता ोकमें स्वर्ग-सुख । किंतु मारनेवालेका यश अवश्य योंकि शत्रुके बल और दर्प (घमण्ड) का अन्त युद्धका लक्ष्य होता है । इसलिये प्राणान्त (शत्रुके क) बाहुयुद्ध करना चाहिये ।' ऐसे युद्धका उदाहरण के साथ विष्णुका युद्ध है, जो समुद्रमें पाँच हजार ाता रहा था—

टभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥
रक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥
र्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
(सप्तशती १ । ९२–९४)

२०–कृत और प्रतिकृत आदि अनेक तर भयङ्कर बाहु (मुष्टि)-प्रहारोंसे अकस्मात् शत्रुपर किये गये आघातोंसे एवं शत्रुको असावधान पाकर ऐ उसको पकड़कर रगड़ देने आदि प्रकारोंसे जो जाता है, उसे 'निपीड़न' कहते हैं और शत्रुद्वारा ऐसे 'निपीड़न' से अपनेको बचा लेनेका नाम 'प्रति अर्थात् अपना बचाव करते हुए शत्रुपर केवल भयङ्कर आघात करते हुए युद्ध करना 'कला' है । २ लक्षित देश (निशाने) पर विविध यन्त्रोंसे अस्त्रों और किसी (बिगुल, तुरही आदि) वाद्यके संके रचना (किसी खास तरीकेसे सैन्यको खड़ा करने करना 'कला' है । इससे पता चलता है कि म जानेवाले अस्त्र—आजकलके बन्दूक, तोप, मशीनगन आदिकी तरह—प्राचीन कालमें भी उपयोगमें लाये होंगे । किंतु उनसे होनेवाली भारी क्षतिको देखकर उन कम कर दिया गया होगा । मनुने भी महायन्त्र-निषेध किया है । २२–हाथी, घोड़े और रथों गतियोंसे युद्धका आयोजन करना 'कला' है । १ तककी पाँच कलाएँ 'धनुर्वेद' से सम्बन्ध रखती हैं ।

२३–विविध प्रकारके आसन (बैठनेका प्र मुद्राओं (दोनों हाथोंकी अँगुलियोंसे बननेवाली अ धेनु आदिकी आकृतियों) से देवताओंको प्रसन्न करना इस कलापर आधुनिकोंका विश्वास नहीं है, तो भी कहीं-क जाननेवाले व्यक्ति पाये जाते हैं । इसका प्राचीन स प्रचार था । संस्कृतमें तन्त्र एवं आगमके अनेक ग्र आदिका वर्णन देखनेमें आता है । हिप्नॉटिज्म जा कुछ मुद्राओंका प्रयोग देखा जाता है । वे मुद्राद्व शक्तिका संक्रमण अपने प्रयोज्य—विधेयमें क २४–सारथ्य—रथ हाँकनेका काम (कोचवानी) ए घोड़ोंको अनेक तरहकी गतियों (चालों) की 'कला' है । इसकी शिक्षा किसी समयमें सभी राजकुमा आवश्यक समझी जाती थी । यदि विराटपुत्र उत्तर इ निपुण न होते तो जब दुर्योधन आदि विराटकी अपहरण करनेके लिये आये, उस समय अर्जुनका कैसे कर सकते थे । भारत-युद्धमें श्रीकृष्ण अर्जुनका हाँक सकते या कर्णका सारथ्य शल्य कैसे कर स आज भी शौकीन लोग सारथि (ड्राइवर) को पीछे स्वयं मोटर आदि हाँकते हुए देखे जाते हैं । २

पत्थर और पीतल आदि धातुओंसे बर्तनोंका बनाना है। यह कला भी इस देशमें बहुत पुराने समयसे दशामें देखनेमें आती है। इसका अनुमान जमीनकी निकले हुए प्राचीन बर्तनोंको 'वस्तु-संग्रहालय' यम) में देखनेसे हो सकता है। २६—चित्रोंका ा 'कला' है। प्राचीन चित्रोंको देखनेसे प्रमाणित कि यह कला भारतमें किस उच्चकोटितक पहुँची हुई ाचीन मन्दिर और बौद्ध विहारोंकी मूर्तियों और आदि गुफाओंके चित्रोंको देखकर आश्चर्य होता है। ई शताब्दियोंके व्यतीत हो जानेपर भी वे ज्यों-के-त्यों ी पड़ते हैं। उनके रंग ऐसे दिखलायी पड़ते हैं कि जैसे रीगरने उनका निर्माणकार्य समाप्त किया हो। प्रत्येक रों विदेशी यात्री उन्हें देखनेके लिये दूर-दूरसे आते प्रयत्न करनेपर भी वैसे रंगोंका आविष्कार अबतक सका है। यह कला इतनी व्यापक थी कि देशके कोनेमें घर-घरमें इसका प्रचार था। अब भी घरोंके णेराजी आदिके चित्र बनानेकी चाल प्रायः सर्वत्र ती है। कई सामाजिक उत्सवोंके अवसरोंपर स्त्रियाँ और जमीनपर चित्र लिखती हैं। प्राचीन कालमें स्त्रियाँ इस कलामें बहुत निपुण होती थीं। बाणासुर- ा ऊषाकी सखी चित्रलेखा इस कलामें बड़ी सिद्धहस्त ; एक बार देखे हुए व्यक्तिका बादमें हूबहू चित्र ती थी। चित्रकलाके ६ अङ्ग हैं—१ रूपभेद (रंगों- वट), २ प्रमाण (चित्रमें दूरी, गहराई आदिका ा और चित्रगत वस्तुके अङ्गोंका अनुपात), ३ भाव वण्यकी योजना, ४ सादृश्य, ५ वर्णिका (रंगोंका) और ६ भङ्ग (रचना-कौशल)। 'समराङ्गणसूत्रधार' चीन शिल्पग्रन्थोंमें इस कलाका विशदरूपसे विवरण होता है।

—तालाब, बावली, कूप, प्रासाद (महल और देव- आदिका बनाना और भूमि (ऊँची-नीची) का ाबर) करना 'कला' है। 'सिविल इंजीनियरिंग' का ा समावेश किया जा सकता है। २८—घटी (घड़ी) मयका निर्देश करनेवाले यन्त्रों एवं २९—अनेक वाद्यों- ाण करना 'कला' है। प्राचीन कालमें समयका माप लिये जलयन्त्र, वालुकायन्त्र, धूप-घड़ी आदि साधन ा घड़ीके बन जानेसे यद्यपि उनका व्यवहार कम हो

विवाह आदिके अवसरपर जलयन्त्रद्वारा ही सूर्यो कालका साधन करते हैं। एवं कई प्राचीन राजाओंव पर अब भी जलयन्त्र, वालुकायन्त्र या धूप-घड़ीके समय-निर्देशक घण्टा बजानेकी प्रथा देखनेमें अ आश्चर्य है कि इन्हीं यन्त्रोंकी सहायतासे प्राचीन ज्यो सूक्ष्मातिसूक्ष्म समयके विभागका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त करते थे। और उसीके आधारपर बनी जन्मपत्रिका की घटनाओंका ठीक-ठीक पता लगा लिया जाता था

३०—कतिपय रंगोंके अल्प, अधिक या सम (मिलावट) से बने विभिन्न रंगोंसे वस्त्र आदि व रँगना—यह भी 'कला' है। पहले यह कला घर-घ किंतु इसका भार, अब मालूम होता है, रँगरेजोंके छोड़ दिया गया है। यहाँके रंग बड़े सुन्दर और होते थे। यहाँके रंगोंसे रँगे वस्त्रोंका बाहरके देश आदर था। अब भी राजपूतानेके कई नगरोंमें कुशल रँगरेज हैं कि जो महीन-से-महीन मलमलको दो से दो विभिन्न रंगोंमें रँग देते हैं। जोधपुरमें कपड़ेव स्थानपर बाँधकर इस तरहसे रँग देते हैं कि उसमें अ और बेल-बूटे बैठ जाते हैं।

३१—जल, वायु और अग्निके संयोगसे उत्पन्न बा के निरोध (रोकने) से अनेक क्रियाओंका सम्पाद 'कला' है—

जलवाय्वग्निसंयोगनिरोधैश्च क्रिया कल

भोजदेव (वि० सं० १०६६-९८) कृत 'स सूत्रधार' के ३१ वें अध्यायका नाम ही 'यन्त्रविधा उस अध्यायमें २२३½ श्लोक हैं, जिनमें विलक्षण विविध यन्त्रोंके निर्माणकी संक्षिप्त प्रक्रियाका दिग्दर्श गया है। इससे तो यह बात स्पष्ट रीतिसे जानी जा स प्राचीन भारतके लोगोंको भापके यन्त्रोंका ज्ञान था उन यन्त्रोंसे अपने व्यावहारिक कार्योंमें आजकी तरह लिया करते थे।

३२—नौका, रथ आदि जल-स्थलके आवागमनके का निर्माण करना 'कला' है। पहलेके लोग स्थ यातायातके साधनोंका—अच्छे-से-अच्छे उपकरणोंसे अश्व, रथ, गौ (बैलों) के रथ आदिका बनाना ते ही थे; साथ ही अच्छे-से-अच्छे सुदृढ़, सुन्दर, उ सर्वसाधनोंसे सम्पन्न बड़े-बड़े जहाजोंका बनाना भी

दूर-दूरके देशोंके साथ अच्छा व्यापार होता था। से आने-जानेवाले मालपर कर आदिकी व्यवस्था थी। सी तरह यहाँके मल्लाह भी बड़े साहसी और यात्रामें ते थे; किंतु पाश्चात्त्य शासकोंकी कृपासे अन्यान्य की तरह भारतमें यह कला भी बहुत क्षीण हो

-सूत्र, सन आदि तन्तुओंसे रस्सीका बनाना 'कला' -अनेक तन्तुओंसे पटबन्ध (वस्त्रकी रचना) 'कला' ा भी बहुत प्राचीन समयसे भारतमें बड़ी उन्नत दशामें में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के शासनके पहले यहाँ ऐसे जबूत, बारीक वस्त्र बनाये जाते थे, जिनकी बराबरी कोई दूसरा देश नहीं कर सका है। 'ईस्ट इण्डिया समयमें यहाँके वस्त्र-निर्माण एवं वस्त्र-निर्यातके ो पाश्चात्त्य स्वार्थी व्यापारियोंने कई उपायोंसे नष्ट ।

-रत्नोंकी पहचान और उनमें वेध (छिद्र) करनेकी ान 'कला' है। प्राचीन समयसे ही अच्छे-बुरे रत्नों- न तथा उनके धारणसे होनेवाले शुभाशुभ फलका ज्ञान गोंको था। ग्रहोंके अनिष्ट फलोंको रोकनेके लिये त्नोंको धारण करनेका शास्त्रोंने उपदेश किया है। ुसार रत्नोंको धारण करनेका फल आज भी प्रत्यक्ष देता है। पर आज तो भारतवर्षकी यह स्थिति है ांश लोगोंको उन रत्नोंका धारण करना तो दूर रहा, दुर्लभ है।

-सुवर्ण, रजत आदिके याथात्म्य (असलीपन) का ला' है। ३७—नकली सोने-चाँदी और हीरे-मोती ोंको निर्माण करनेका विज्ञान 'कला' है। पुराने ोंकी बातें सुननेमें आती हैं। वे कई वस्तुओंके योगसे ली-जैसा सोना-चाँदी आदि बना सकते थे। अब तो नकी बातें ही सुननेमें आती हैं। रत्न भी प्राचीन कली बनाये जाते थे। मिश्रीसे ऐसा हीरा बनाते थे जौहरी भी उसको जल्दी नहीं पहचान सकते थे। लूम होता है कि 'इमिटेशन' हीरा आदि रत्न तथा मोतियोंका आविष्कार पाश्चात्त्योंने कुछ नया निकाला बात नहीं है। किंतु यह भी मानना ही पड़ेगा कि इन नकली वस्तुओंका व्यवसाय आजकलकी तरह स्तृत नहीं था। देशके सम्पन्न होनेके कारण उन्हें थी। पर आजकी स्थिति कुछ और है, इसीसे इन व्यवहार अधिक बढ़ गया है। ३८—सोने-चाँदीके बनाना एवं लेप (मुलम्मा) आदि (मीनाकारी 'कला' है—

स्वर्णाद्यलङ्कारकृतिः कलालेपादिसत्कृति

३९—चमड़ेको मुलायम करना और उससे उपयोगी सामान तैयार करना और ४०—पशुओंके चमड़ा निकालकर अलग करना 'कला' है—

मार्दवादिक्रियाज्ञानं चर्मणां तु कला स्मृत
पशुचर्माङ्गनिर्हारक्रियाज्ञानं कला स्मृत

आज तो यह कला भारतके लोगोंके हाथसे विदेशियोंके हाथमें चली गयी है। यहाँ केवल घरोंमें कुछ अवशिष्ट रही है; किंतु वे भी चमड़ोंके विदेशियोंके मुकाबलेमें उन्हें मुलायम करना नहीं जान

४१—गौ, भैंस आदिको दुहनेसे लेकर दही मथना, मक्खन निकालना तथा उससे घी बनाने क्रियाओंका जानना 'कला' है। इसे पढ़कर हृदयमें एक टीस उठ जाती है। वह भारतका सौभाग्य-का जब घर-घरमें अनेक गौओंका निवास था, प्रत्येक इस कलासे अभिज्ञ होता था, दूध-दहीकी मानो नदि थीं, दूधके पौसरे बैठाये जाते थे—जहाँ लोग पानी मुफ्तमें दूध पी सकते थे। और कहाँ आजका समय! घी-मक्खनका तो दर्शन दूर रहा, बच्चे भी मिलना कठिन है। कहाँ वह श्रीकृष्णके समय वृन्दावनका दृश्य, और कहाँ आज बड़े-बड़े शहरोंके बूचड़खानोंमें प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें वध कि वाली गौ माता और उनके बच्चोंका करुण क्रन्दन!

४२—कुर्ता आदि कपड़ोंको सीना 'कला' है—

सीवने कञ्चुकादीनां विज्ञानं तु कलात्मक

४३—जलमें हाथ, पैर आदि अङ्गोंसे विविध तैरना 'कला' है। तैरनेके साथ-साथ डूबते हुए बचाना चाहिये, थका या डूबता हुआ व्यक्ति यदि बचानेके लिये आये व्यक्तिको पकड़ ले, तो वैसी किस तरह उसने अपनेको छुड़ाकर और उसे लेकर पहुँचना चाहिये—इत्यादि बातोंका जानना भी आवश्यक है।

। घरकी स्त्रियाँ ही करती थीं, आज भी कई घरोंमें
ळ है; परंतु अब बड़े घरानोंकी स्त्रियाँ इसमें अपना
समझती हैं। ४५—वस्त्रोंका संमार्जन (अच्छी तरह
ाफ करना) 'कला' है ४६—क्षुरकर्म (हजामत
) 'कला' है। आजकल यह बड़ी उन्नतिपर है।
ानाके घाटों, बाजारोंमें चले जाइये, आपको इस
उदाहरण प्रत्यक्ष देखनेको मिल जायगा। कोई
ा आधुनिक सभ्य पुरुष प्रायः ऐसा न मिलेगा,
ाह्निकमें अपना 'क्षुरकर्म' सम्मिलित न हो!—

ञ्रसम्मार्जनञ्चैव क्षुरकर्म ह्युभे कले।

—तिल, तीसी, रेंड़ी आदि तिलहन पदार्थ और
तेल निकालनेकी कृति 'कला' है। ४८—हल
जानना और ४९—पेड़ोंपर चढ़ना जानना भी
है। हल चलाना तो कृषिका प्रधान अङ्ग ही
ंपर चढ़ना भी एक कला ही है। सभी केवल
त्रसे ही पेड़ोंपर चढ़ नहीं सकते। खजूर, ताड़,
सुपारी आदिके पेड़ोंपर चढ़ना कितना कठिन
देखनेवाला ही जान सकता है। इसमें जरा-सी भी
ानी होनेपर मृत्यु यदि न हो तो भी अङ्ग-भङ्ग
मूली बात है।

—मनोऽनुकूल (दूसरेकी इच्छाके अनुसार उसकी)
नेका ज्ञान 'कला' है। राजसेवक, नौकर, शिष्य
लिये इस कलाका जानना परमावश्यक है। इस कलाको
ावाला किसीको प्रसन्न नहीं कर सकता। ५१—बाँस,
ाजूर, सन आदिसे पात्र (टोकरी, झाँपी आदि)
कला' है। ५२—काँचके बरतन आदि सामान बनाना
। मालूम होता है कि यह कला भारतमें प्राचीन समयसे
किंतु मध्यकालमें यहाँसे विदेशियोंके हाथमें चली
त्रयोंका सौभाग्य-चिह्न चूड़ियाँतक विदेशोंसे आने लगीं!

—जलोंसे संसेचन (अच्छी तरह खेतोंको सींचना)
४—संहरण (अधिक जलवाली या दलदलवाली
जलको बाहर निकाल डालना अथवा दूरसे जलको
क स्थानपर ले आना) 'कला' है। ५५—लोहेके
त्र बनानेका ज्ञान 'कला' है। ५६—हाथी, घोड़े,
र ऊँटोंकी पीठ-सवारीके उपयुक्त पल्याण (जीन,
बनाना 'कला' है। ५७—शिशुओंका संरक्षण
) और ५८—धारण (पोषण) करना एवं ५९—बच्चों-
ोंके लिये तरह-तरहके खिलौने बनाना 'कला' है—

शोः संरक्षणे ज्ञानं धारणे क्रीडने कला।

—अपराधियोंको उनके अपराधके अनुसार ताड़न

देशोंकी लिपिको सुन्दरतासे लिखना 'कला' है।
इस कलामें बहुत उन्नत था। ऐसे सुन्दर
लिखे जाते थे कि उन्हें देखकर आश्चर्य हो
लिखनेके लिये स्याही भी ऐसी सुन्दर बनती थी कि
वर्षोंकी लिखी हुई पुस्तकें आज भी नयी-सी मालू
हैं। छापनेके प्रेस, टाइपराइटर आदि साधनोंका
होता जा रहा है, जिससे लोगोंके अक्षर बिगड़ते जा
स्थिति यहाँतक पहुँची है कि कभी-कभी अपना ही
हुआ अपनेसे नहीं पढ़ा जाता। पहले यह कला इतन
थी कि 'महाभारत-जैसा सवा लाख श्लोकोंका बड़ा पोथा
अन्ततक एक ही साँचेके अक्षरोंमें लिखा हुआ
आता है। कहीं एक अक्षर भी छोटा-बड़ा नहीं हो प
स्याही भी एक-जैसी ही है—न कहीं गहरी न कहीं
विशेष आश्चर्य तो यह है कि सारी पुस्तकमें न तो ए
गलत लिखकर कहीं काटा हुआ है न कहीं कोई घ
है। ६२—पानकी रक्षा करना—ऐसा उपाय करना कि
पान बहुत दिनोंतक न सूखने पाये, न गले-सड़े, 'कल
आज भी बहुत-से ऐसे तमोली हैं, जो मगही पानको
तक ज्यों-का त्यों रखते हैं। इस तरह ये ६२ कलाएँ
अलग हैं; किंतु दो कलाएँ ऐसी हैं, जिन्हें सब क
प्राण कहा जा सकता है। यही सब कलाओंके गुण
जा सकती हैं इन दोमें पहली है ६३-आदान औ
६४-प्रतिदान। किसी कामको करनेमें आशुकारित्व (
फुर्तीसे करना) 'आदान' कहा जाता है और उस
चिरकाल (बहुत समय) तक करते रहना 'प्रतिदा
बिना इन दो गुणोंके कोई भी कला अधिक उपयुक्त
सकती। इस तरह ६४ कलाओंका यह संक्षिप्त विव

यह पाठ्यक्रम कितना व्यापक है! इसमें प्राय
विषयोंका समावेश हो जाता है। इसी अङ्कमें
प्रकाशित 'हिंदू-संस्कृतिका आधार' शीर्षक लेख
३२ विद्याओंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है, उन
इसी पाठ्यक्रममें समावेश है। शिक्षाका यह उद्देश
जाता है कि उससे ज्ञानकी वृद्धि हो, सदाचारमें प्र
और जीविकोपार्जनमें सहायता मिले। इस क्रममें इन
ध्यान रक्खा गया है। इतना ही नहीं, पारलौकिक
भी नहीं छोड़ा गया है। संक्षेपमें धर्म, अर्थ, काम,
इन चारों पुरुषार्थोंको ध्यानमें रखकर ही शिक्षाका
निश्चित किया गया है। इससे पता लगता है कि उस
की शिक्षाका आदर्श कितना उच्च तथा व्यावहारि
श्रीकृष्णानन्दको इन सभी विषयोंकी पूरी शिक्षा दी

ीम आदि पाकविद्यामें निपुण थे। परशुराम, ी-सरीखे ब्राह्मण धनुर्वेदमें दक्ष थे। इससे जान कि गुरुकुलोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके बालकोंको । सभी विषयोंकी थोड़ी-बहुत शिक्षा दी जाती रही ारंतु इस शिक्षासे ऐसा न हो कि जो काम जिसके जीमें ने लगा, जैसा कि आजकल होता है—इसका भी खा गया था। क्योंकि ऐसा होनेसे सारी समाज- ही बिगड़ जाती, श्रेणी-सङ्घर्ष और बेकारीकी ोती, जैसा कि आजकल देखनेमें आ रहा है। सब ' स्वभाव एक-सा नहीं होता, किसीकी प्रवृत्ति किसी किसीकी किसी ओर होती है। जिसकी जिस ओर उसीमें अभ्यास करनेसे कुशलता प्राप्त होती है। शुक्राचार्यने लिखा है—

ां कलां समाश्रित्य निपुणो यो हि मानवः।
यकरणे सम्यक् तां तां कुर्यात् स एव हि ॥

गत कलाके सीखनेमें कितनी सुगमता होती है, । है। एक बढ़ईका लड़का बढ़ईगिरी जितनी और सुगमताके साथ सीखकर उसमें निपुण हो उतना दूसरा नहीं; क्योंकि वंश-परम्परा और बालकपनसे ही उसके उस कलाके योग्य संस्कार हैं। इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंके आधारपर प्राची क्रमकी रचना हुई थी। उसमें आजकलकी-सी घ थी, जिसका दुष्परिणाम आज सर्वत्र देख पड़ प्रायः सभी विषयोंमें चञ्चुप्रवेश और कि विषयकी, जिसमें प्रवृत्ति हो, योग्यता प्राप्त करनेसे शिक्षा और यथोचित ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है पाश्चात्त्य विद्वान् भी प्रचलित शिक्षा-पद्धतिकी अनेव का अनुभव कर रहे हैं; परंतु हम उस दूषित पद्धति करनेकी ही धुनमें लगे हुए हैं। वर्तमान शिक्षासे अपने वंशागत कार्योंसे घृणा तथा अरुचि होती रही है और वे अपने बाप-दादाके व्यवसायोंको बड़ छोड़ते चले जा रहे हैं। शिक्षित युवक आफिसमें छं नौकरियोंके लिये दर-दर दौड़ते हैं, अपमान सहते हैं की ठोकर खाते हैं और जीवनसे निराश होक आत्मघात कर बैठते हैं। यदि यही क्रम जारी रहा विनाश सामने है। क्या ही अच्छा होता, यदि हमारे आयोजकोंका ध्यान एक बार हमारी प्राचीन शिक्षा- ओर भी जाता!

हिंदू-संस्कृतिमें अतिथि-सत्कार और सच्चा त्याग

(रचयिता—श्रीआत्मारामजी देवकर साहित्यमनीषी)

व्रके योगेशको
राजर्षिने आसन दिया।
हने लगे कृतकृत्य मुझको
आज प्रभुने है किया ॥ १ ॥

स जन्मका यह पुण्यबल है
आप ही कह दीजिये।
वा करूँ क्या आपकी
आदेश मुझको कीजिये ॥ २ ॥

तिथि बनकर नाथ आये
स्वयं मेरे द्वारपर।
ध होता हूँ हरे!
इस प्रेमके आचारपर ॥ ३ ॥

ण बोले सत्य ही है
आपने जो कुछ कहा।
पका औदार्य ही है
पुष्टि इसकी कर रहा ॥ ४ ॥

ती-तनयकी प्राण-भिक्षा
माँगनी थी आपसे।
दग्ध होता है हृदय पर
शोकके संतापसे
कैसे कहूँ मुखसे उसे
उपदेश सत्वर दीजिये
धर्म रखकर प्राणप्रिय
आतिथ्य मेरा कीजिये।

भक्तिमय हो भीष्म बोले—
धन्य यह संयोग है
आपकी यह शीलता, बस
आप ही के योग्य है।
मेरा निधन ही भक्तवत्सल
वह सुपथ दिखलायेगा
आतंक कुन्तीका उसीसे
आप ही मिट जायेगा।

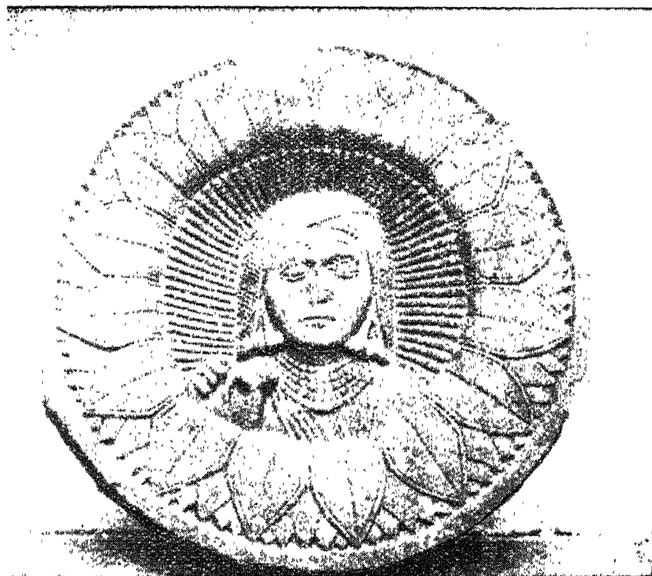
है शीश अर्पित है विभो
तृण तुच्छ वन, निस्सार है
पूज्यवर ले लीजिये यह
अतिथिका सत्कार है।

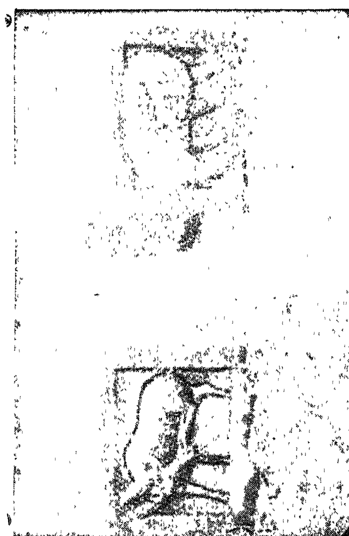


श्रीमारुति (संगमर्मर प्रतिमा)

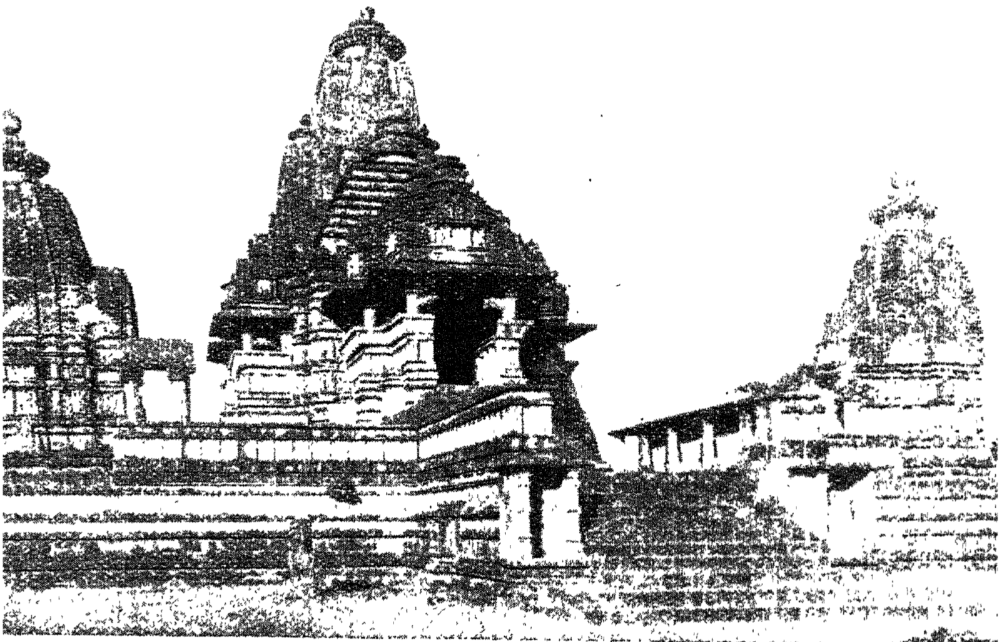


ग्राम्य देवता





वामन-मन्दिर खजुराहो (पूर्वीभित्तिकी कलाकृति) पृष्ठ ७



भारतीय मूर्ति-कला

(लेखक—श्रीशारदाप्रसादजी)

मन्दिरके बाहर पड़ी एक पुरानी मूर्तिका खण्ड
एक मित्रने मेरा ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया ।
यह बौद्धकालीन मूर्ति !' मुझे हँसी आ गयी—
धिकांश हिंदू पुरानी मूर्तिको बौद्धकालीन समझते हैं ।
'ये तो महादेव बाबा हैं । मस्तकका तीसरा नेत्र
करा रहा है । और है मध्यकालीन कलाका एक
मूना । शायद चौदहवीं सदीका होगा ।' मेरे मित्रने
'आपने तो मूर्तिका समय भी बता दिया । क्या
ंवत् खुदा है कहीं ? तीसरा नेत्र दिखाकर तो
द्ध कर दिया कि मूर्ति बुद्ध भगवान्‌की न होकर
ी है । पर आपके तिथि-निर्णयका क्या आधार है ?'

ने कहा कि 'विद्वानोंने पूर्ण परिश्रम करके भारतीय
का इतिहास तैयार कर लिया है । विभिन्न समयकी
रूप रेखाका उन्होंने अध्ययन किया है और यह
गया है कि एक समयकी मूर्तिका आकार-प्रकार
मयकी मूर्तिके आकार-प्रकारसे सर्वथा भिन्न है ।
देखते ही यह कहा जा सकता है कि मूर्ति गुप्तकालीन
आदि महाराजाओंके समयकी । भगवान् विष्णु या
ो मूर्तियाँ कहीं रख दीजिये; तुरंत पहचान हो जायगी,
मूर्ति चौथी-पाँचवीं सदीकी गुप्तकालीन है और कौन
न ग्यारहवीं-बारहवीं सदीकी है । पहचानमें भूल
दोनोंके चेहरे-मोहरेमें वैसा ही प्रकट भेद है, जैसा
तथा शिवशङ्करके चेहरोंमें है ।' अस्तु,

स सम्बन्धमें एक बात बड़ी दुःखद है । हमारी
का उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है । ग्यारहवीं सदीकी मूर्ति-
से चौदहवीं सदीकी मूर्तिकी कला निकृष्ट है ।
न तथा गुप्तकालीन मूर्तियाँ बड़ी मनोमोहक हैं ।
न ग्यारहवीं-बारहवीं सदीतककी मूर्तियाँ भी बहुत
। बादमें तो ह्रास ही हो गया मानना होगा ।

रतीय मूर्तिकलाके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान अति सीमित
लयमें अथवा पुस्तकोंद्वारा कुछ विशेष प्राप्त हुआ
जो कुछ भी जान पाया था विद्वानोंके साथ कुछ
स्थलोंके देखनेमें । इस कारण इस लेखमें अखिल-
होंगे । अवश्य ही वे अखिल-भारतीय कलाके प्रतीक
अधिकांशमें अप्रकाशित हैं ।

सबसे प्राचीन प्रस्तर-मूर्तियाँ भरहुत, बुद्धग
साँचीकी मिलती हैं । ये ईसापूर्व तीसरी सदीकी मा
हैं । भरहुत तथा साँचीके स्तूपोंके तथा बुद्धगयाके
परिक्रमा-पथकी बाड़ (परकोटा—रेलिंग) में ये थीं ।
तो अधिकांश सुरक्षित है । भरहुत तथा बुद्धगयाका
ही बचा है । इनमें भी भरहुतकी कला कुछ श्रेष्ठ है
उदाहरण साथमें प्रकाशित हैं । यह बौद्धक
शुंगकालीन । कमलके बीच रानीकी मूर्ति बहुत सुन्द

गुप्तकाल (चौथी-पाँचवीं सदी) भारतका
था । उस समयकी मूर्तियाँ भी बहुत सुन्दर थीं ।

पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि प्राचीन
मनुष्याकृति बनानेमें निपुण थे, पर वे पशुओंकी म
बना सकते थे । हमारे दिये हुए एक चित्रमें हिरन तथ
दो मूर्तियोंको देखनेपर उन्हें अपना यह मत बदलना
वे चाहे मूर्तिकला चाहे चित्रकलाकी दृष्टिसे विचार क
उत्कृष्टता स्वीकार करनी होगी ।

मध्यकाल (दसवींसे चौदहवीं सदीतक) की
कला अच्छी थी । परंतु इसके बाद यह नीचे स्तरमें
हमारे पास इसके कई उदाहरण हैं ।

आधुनिक पौराणिक मूर्तियोंके दर्शन तो नित्य
मिलते ही हैं । उनमें केवल चेहरा ठीक बनानेक
किया जाता है । शेष शरीरको तो कारीगर किसी प्र
सीधा-सादा गढ़ देता है । दर्जीकी कला उनकी
पूर्ति कर ही देगी । मूर्तिको तो कपड़ोंसे ढक
जायगा । इधर कुछ दिनोंसे कलामें पुनः उन्नति प्रा
है । रामवनकी श्रीमारुति-मूर्ति, जो अभी दो व
निर्मित हुई थी, इसका उदाहरण है । मूर्तिको कपड़ों
लज्जा मालूम होती है । अवश्य ही कलाने अभी गु
गरिमा नहीं प्राप्त की है, पर निकृष्टतासे काफ
उठ गयी है ।

हमारी मूर्तिकलाके क्रमिक ह्रासका कारण विचार

के काफिले थे । उनकी अपनी चलती-फिरती समाज
नके लोभसे मूर्ति-निर्माण नहीं करते थे । जब कहीं
नवानेका निश्चय हुआ, इन समाजोंसे बात की जाती
ो समाज खाली होती, आकर वहीं बस जाती थी ।
लि उनके रहने, भोजन, वस्त्र आदिका भार उठा
प्रमुख कारीगर पूजा-पाठ-ध्यानमें लग जाते थे ।
आदि करने लगते थे । इस प्रकार उनको ध्यानमें
होते थे । जो मूर्ति उनके सामने सम्मुख प्रकट
उसीके अनुसार बनानेका वे उद्योग करते थे । जब-
ारको देव-दर्शन प्राप्त नहीं होता, वह तबतक ध्यान
ही लगा रहता था । बनवानेवाला यह नहीं कहता
, पाँच वर्ष बीत गये; तुमने एक दिन भी छेनी
ीं ली । हम तुम्हारा वेतन क्यों दें' वेतन ? वेतन-
म ही नहीं था । इस प्रकार धर्मात्मा कारीगरोंकी
तैयाँ क्यों न कलामें उत्कृष्ट हों । ऐसी ही एक मूर्तिके
काशीप्रसाद जायसवालने कहा था कि 'इस मूर्तिके
तौलका सुवर्ण दिया जाय, तब भी इसका मूल्य
।'

तो दैनिक वेतन या ठेकेपर मूर्तियाँ बनती हैं ।
ल्दी बने, उतना अधिक पैसा मिले । पैसे-ऐसी
स्तुसे जिसका मूल्य अङ्कित किया जाता है, वह
से हो ।

समाप्त करनेके पूर्व मध्यकालीन मूर्तिकलाके स्वर्ग
कुछ उदाहरण देनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर
खजुराहो विन्ध्यप्रदेशमें है । अबतक छतरपुर
ा । कहते हैं यहाँ ८४ मन्दिर थे । शायद २२ तो
ैं । मन्दिर इतने विशाल और सुन्दर हैं कि एक-
ते रहिये, मन न भरेगा । यहाँके कारीगरोंने अनेक
संवत् खोद दिये हैं । सं० १००० से १४०० तक-
याँ यहाँ हैं । ४०० वर्षतक बराबर काम जारी रहा ।
राजनैतिक बाधाएँ न पड़तीं तो शायद यहाँका
समाज आगे भी काम करता जाता । साक्षात् कुबेरकी
भी ऐसे मन्दिर बनवा नहीं सकती । वे तो प्रेमसे
हैं । राजकुलसे तो समस्त समाजके कुल खर्च तथा
ही व्यवस्था रही होगी ।

देखिये खजुराहोका एक विशाल मन्दिर तथ
प्राङ्गणके कोनोंके दो छोटे मन्दिर । यह ल
मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है । मन्दिरनिर्माणके शास्त्री
पालन खजुराहोमें किया गया है । उन्हें वर्णन करनेका यह
नहीं है । कुल मन्दिरोंकी कुल दीवालें मूर्तिमय हैं
कोने, पत्थर-पत्थरमें मूर्ति या नक्काशी मिलेगी । व
मन्दिरकी दीवालका एक थोड़ा-सा अंश भी चित्रमें
मन्दिरोंके भीतर गर्भगृहके चारों ओरका परिक्रमा-प
इतना कम चौड़ा है कि दो आदमी एक साथ
सकते । पर दोनों ओरकी दीवालें यहाँ भी मूर्ति

अपनी भग्न दशामें खजुराहो देशका माथा
रहा है । हिंदू-संस्कृतिके नामपर गला फाड़नेवालोंके
चार जन्मतक अध्ययन करनेको सामग्री प्रस्तुत कर
हमने ताजमहलको संसारके सात आश्चर्योंमें गिन
खजुराहोको समझेंगे, तब संसारका वह सर्वप्रथम
आश्चर्य माना जायगा । मुझे तो सन्देह है कि स्वर्गी
स्थलको अभी किसीने देखा ही नहीं है ।

इस छोटे-से लेखमें रामवनमें संगृहीत दो-एक
तथा खजुराहोमें स्थित कुछ मन्दिरोंका अति संक्षिप्त व
गया है । केवल विहङ्गम-दृष्टिपात हुआ है । भारत
बहुत बड़ा है । भारतीय मूर्तियोंकी सुरक्षा तथ
प्रकाशनका प्रबन्ध हो जाय तो संसारकी चकाचौंध
पड़ेगा । हिंदू-संस्कृतिकी रक्षामें हिंदू-मूर्तियोंका
ऊँचा स्थान है, यह तो सहज ही समझा जा सकता है

भारत हमारा है

रामकी प्रसिद्ध जन्मभूमि है अयोध्या यहीं, यहीं हरिद्वार-चित्रकूट सुखराशी है ।
व्रज मथुरा है द्वारिका है कृष्ण-लीला-भूमि, यहीं है प्रयाग और शंकरकी काशी है ॥
'शारद' समस्त पाप-ताप-नाशिनी महान, बहती यहींपे गंगधार अविनाशी है ।
वेदके निनादसे निनादित प्रसिद्ध देश भारत हमारा हम भारतके वासी हैं ॥

—श्री'शारद'

भारतीय शिल्प एवं चित्रकलामें काष्ठका उपयोग

(लेखक—मुनि श्रीकान्तिसागरजी)

तके प्रतिभासम्पन्न कलाकारोंने अपनी सात्त्विक और उत्प्रेरक भावनाओंको धातु, प्रस्तर और कागज- साकारकर न केवल कलाके उपकरणोंकी रक्षा ही तु यह भी प्रमाणित कर दिखाया कि अन्तर्भावनाओंके एवं स्थैर्यके लिये अमुक प्रकारका अलङ्करण ही हो, ऐसी बात नहीं है। कलाकी उत्कट भावना ो प्रकारके उपकरणद्वारा व्यक्त की जा सकती है। व्योंमें ही कला और सौन्दर्यका समुचित विकास ता है। प्रस्तुत निबन्धमें मैं कलाके एक उपकरण ोर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ; क्योंकि चीन कालसे यहाँके साधारण जनसमूहसे लेकर के कलाकारोंतकने काष्ठका व्यापक उपयोगकर अपने के दैनिक आवश्यक कार्योंकी पूर्ति तो की ही, साथ-ही- । श्रेणीके प्रतीकोंका भी सृजनकर उसे सजीव प्रतीकोंकी श खड़ा किया।

सभी जानते हैं कि वैदिक युगमें यज्ञ-यागोंकी प्रधानता मित्त मण्डपोंकी बहुत बड़ी आवश्यकता रहती थी। उसमें न, चर्या, गीत, नृत्य आदि आध्यात्मिक एवं जनरञ्जक हुआ करते थे। ये मण्डप अत्यधिक द्रव्य व्यय न्दर-से-सुन्दर बनाये जाते थे। कहीं-कहीं पारस्परिक के कारण भी वर्ग अपनी धन-सम्पत्तिके बलपर अधिक-से-अधिक सजाता था; परंतु इन मण्डपोंका क्षणिक—निर्धारित समयके लिये ही होता था। इतने और विपुल अर्थ-व्ययसे तैयार होनेके बाद भी ये के सौभाग्यसे वञ्चित रह जाते थे। समयने पलटा स्वाभाविक भी है कि जैसे-जैसे आवश्यकताएँ बढ़ने वैसे-वैसे ही समाजमें क्रान्ति और संघर्ष शुरू हो वर्णित मण्डपोंके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर कुछ लोग से पक्के मण्डप बनवाने लगे। कमान आदि और लङ्करणोंका क्रमिक विकास होने लगा। इन सब के बाद भी आखिर वह काष्ठ ही तो ठहरा। भला वह टिक सकता। शीत, धूप और वर्षा आदिसे [illegible]

गये। इससे हमें यह तो मानना ही होगा कि शिल्पकलामें वैदिक कालसे ही काष्ठका उपयोग प्रचुर होने लगा था। उस कालके शिल्पियोंमें कल्पना औ शक्ति अद्भुत थी। उनका जीवन कलाकारका ए था। वे सांसारिक होते हुए भी जब कलाकी जुटते, अलिप्त हो जाते थे। धनिकवर्गद्वारा कर समुचित सम्मान भी होता था। इस सम्मानके पीछे में अपनी-अपनी प्रतिभाके तत्त्व थे, जिनके बलपर में वे समादृत होते थे। न कि अर्थसे उनको खरीदा जाता था। क्योंकि उस समय भारतका जीवन ही कुछ ऐसा बन गया था कि शायद ही ऐसा रहता, जिसपर सुरुचिपूर्ण कलात्मक अङ्कन गया हो। बिना सूक्ष्म खनन (कोरनी) के गृ और अपशकुनजनक माना जाता था। लकड़ी रहने देनेसे काष्ठोपजीवी वर्ग स्वयं इन्कार कर गृह-कार्यमें आनेवाले झूले, पलंग, चौकी, बालकोंके बेलन, पेटियाँ और प्रधान वाहन, रथ भी कारीग तथा रंगीन रहा करते थे। इस साधारण वस्तु-नि कलाकार अपना श्रम लगाकर उसे जीवित प्रतीक दिया करते थे। तात्पर्य यह कि घरकी कोई भी न रह पाती थी, जिसमें कलात्मक अभिव्यक्ति किसी भी देशका आर्थिक विकास सामयिक महत्त्व परंतु कलात्मक विकास तो शताब्दियोंतक देशकी गरिमा बनाये रखता है।

यज्ञस्तम्भ काष्ठके गढ़वाये जाते थे, जिन उदाहरण देनेका लोभ संवरण नहीं किया जा बिलासपुर (सी० पी०)-जिलान्तर्गत चन्द्रपुर तालुकेमें नामक ग्राममें 'हीराबन्ध' जलाशयमेंसे १८०० व एक प्राचीन काष्ठका यज्ञस्तम्भ उपलब्ध हुआ है। सलईका प्रतीत होता है। इसपर जो लिपि है, वह पूर्वकी है। मैंने इसे नागपुर आश्चर्यगृहमें देखा स्तम्भमें विशेषकर उन दिनोंके राजनैतिक कर्म [illegible]

पू० छठी सदीमें महाश्रमण भगवान् महावीरकी
ष्ठपर मूर्ति खोदी गयी थी। उसे उज्जैनीके राजा
तनने बनवाया था। गत वर्ष जब मैं पटनामें था,
ीन पाटलिपुत्रकी खुदाईके अवशेष एवं भूमिको
सुअवसर आया था; वहाँपर बड़े-बड़े काष्ठके
पटरे पड़े हुए थे, जिनमें कुछ अधजले भी थे।
में विस्तृत आग लगनेके उल्लेख बौद्ध-साहित्यमें
। मौर्यकालमें काष्ठका उपयोग व्यापकरूपसे हो
तक्षण-कलामें तो होता ही था। पटनाके संग्रहालयमें
बहुत-से काष्ठावशेषोंमें एक रथका पहिया भी है।
अशोकके रथका चक्र बनाया जाता है। इसमें
त्य है सो पता नहीं; पर पहियेकी बनावटसे इतना
कोचभावसे कहा जा सकता है कि यह ई० पू० का
त ही है। रचनाकौशल प्रेक्षणीय है।

म बुद्धने अक्षरारम्भ करते समय चन्दनकाष्ठ-पट्टिका-
ग किया था। इस उदाहरणसे ज्ञात होता है कि
लेखनकलाके विशेष अभ्यासमें काष्ठका सुचलन
। 'ललितविस्तर' और 'कटाहक-जातक' इसके
हैं। यद्यपि प्राचीन और मध्यकालीन जितने भी
प्रतीक मिले हैं, वे प्रायः सभी प्रस्तरोंके हैं, तथापि
प्रमाणित नहीं होता कि उस कालमें गृह-निर्माणादि-
काष्ठका प्रयोग नहीं होता था। 'वसुदेव हिंदी' जो
सदीका एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है,
क काष्ठशिल्पीकी एक रोचक कथा आती है।
सकी काष्ठनिर्माणकलापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया
य समाजका प्रतिबिम्ब है; ऐसी दशामें मानना पड़ेगा
मकालीन तथा इतः पूर्व कुछ शताब्दियोंके पूर्व
काष्ठको कलात्मक उपकरणनिर्माणमें अवश्य ही
थान मिला था। भागवतमें मूर्तिनिर्माणविषयक
की जहाँपर चर्चा की गयी है, वहाँपर काष्ठकी मूर्तियाँ
स्पष्ट विधान है। ठीक, इसी प्रकारके एकाधिक
जैन-शिल्पके ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं। जैनमूर्तियाँ
ने कई जगह देखी हैं। (कलकत्ता- विद्यालयान्तर्गत)
म्यूजियममें काष्ठकी विशाल जैनमूर्ति है, जो
(विहार) से प्राप्त की गयी थी। नैपालमें
सुन्दर काष्ठमूर्तियाँ बनानेकी विशिष्ट प्रथा थी।
ियोंके निर्माणमें वहाँके सौन्दर्यप्रेमी कलाकारोंने जो

देखकर कल्पना नहीं होती कि ये प्रतिमाएँ काष्ठकी
विशेषकर बौद्धतन्त्रोंसे सम्बन्धित मूर्तियाँ मिलती
भी नैपाल पहाड़ी प्रदेश होनेके कारण काष्ठ-शिल्पमें क
रहा है। और भी पहाड़ी प्रदेशोंमें काष्ठका उपयोग
अच्छे रूपमें होता है।

पश्चिम भारतके विशाल भवन और देव-
निर्माणमें बहुत कुछ अंशोंमें पत्थरका स्थान काष्ठ—ल
रक्खा था। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि विवक्षित
काष्ठके ऊपर कलात्मक रेखाएँ शायद ही खचित
हों, जैसे पत्थरोंपर खींची जाती थीं।

सोमनाथका मन्दिर वैदिकोंकी दृष्टिमें ऊँचा स्थान
है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें उसकी परिगणना है। ि
प्राचीन तक्षणकलामें अभिरुचि रखनेवालोंके ि
मन्दिरकी रचनाशैली महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरका प्रथम
किस पद्धतिसे हुआ होगा, यह कहना कठिन ही न
असम्भव है। कारण, उतनी प्राचीन कोई सामग्री न
उपलब्ध ही हुई है और न अन्यत्र उल्लेख ही वर्त
परंतु बारहवीं सदीके प्राप्त ऐतिहासिक उल्लेखोंसे यह
कहा जा सकता है कि परमार्हत महाराजा कुमारपालकृ
द्धारके समय सम्पूर्ण मन्दिर काष्ठका था। इसकी वि
काष्ठके ५७ मजबूत खम्भोंपर आधृत थी, वे खा
तौरसे अफ्रीकासे लाये गये थे। इस मन्दिरको महमूद
ने बुरी तरह क्षत-विक्षत कर दिया था। अतः भीम
महाराजा कुमारपालने (जैन होते हुए भी) इसका
करवाया था, जो धार्मिक सहिष्णुता तथा प्रेमका
उदाहरण है। कुमारपालने तारंगा हिलपर भगवान
नाथजीका एक मन्दिर बनवाया था; इसमें ऐसे
उपयोग किया गया था कि जिससे अग्निस्पर्श कराये
जल निकलता था। ऐसा प्रवाद आज भी है। मैं
सकता इसमें सत्य कितना है।

प्राचीन नीतिविषयक ग्रन्थोंमें काष्ठका उपयोग ि
तक बिना तैलके जलनेवाली मशालके रूपमें आया है
नीतिमें मैंने इसका वर्णन देखा है।

प्राचीन कालमें तिब्बत और चीनमें जिस प्रक
लिखित ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये काष्ठफलकोंका प्र
लगा था एवं कलाकारोंद्वारा उनपर कई प्रकारकी न
काम प्रारम्भ हुआ था, ठीक उसीके अनुरूप भा

पूर्व भी हुआ हो। दोनोंमें अन्तर केवल इतना ही
तिब्बत और वर्माके कलाकारोंने अपने सम्पुटके ऊपरी
कलात्मक रेखाओंद्वारा सुन्दर बनानेपर अधिक ध्यान
उनपर अपने धर्ममान्य विविध भावोंका उत्खनन
र वेल-बूटोंके समूह अङ्कित किये। इनके पीछे धर्म-
ो थी ही; परंतु वह समाजमूलक थी, प्रकृतिगत थी।
क्षकोंके लिये इतनी ही सामग्री काफी है, इतनेपरसे
की जनताके मनोभावोंका हलका पता तो लग ही
इनके विशाल संग्रह बर्मा, चीन और बोडलियन-
ीमें विद्यमान हैं। मुझे पता चला है इस प्रकारके
निर्माणमें लामा लोग चन्दनका उपयोग—शायद
होनेके कारण करते थे। चन्दनका व्यवहार बौद्धोंने
भी किया था। गोपालके पुत्र धर्मपालने (बिहार-
ामें) एक विशाल विहार बनवाया था, इसमें
अवलोकितेश्वरकी प्रतिमा चन्दनकी स्थापित की
विहारकी यात्रा ह्वेनसांगने की थी। अस्तु,

ास भारतमें जैनोंने तालपत्रके ग्रन्थोंको चिरकालतक
रखनेमें सहायक काष्ठफलकोंके बाह्य भागोंपर तनिक
न दिया, जैसा बौद्ध लोग देते थे। परंतु भीतरी
ाधिक ध्यान दिया। अन्तर्भागको भलीभाँति स्वच्छ-
र जैन-साहित्यके कथाविभागसे सम्बन्धित भावोंका
ीर्थङ्कर एवं उनके अधिष्ठाता-अधिष्ठातृदेवियोंके
ङ्कित किये जाते थे। कभी-कभी ग्रन्थलेखक या
वालेके द्वारा अपने आत्मीय पूज्याचार्योंके जीवनकी
ेतिहासिक घटनाका तथा सर्वप्रिय महात्माओंके चित्र
त करवानेके पर्याप्त उदाहरण मिले हैं। यों तो इस
काष्ठफलक बहुत-से ज्ञानागारोंमें मिलते हैं; परंतु
ज्ञातपट्टिकाएँ जैसलमेरके ज्ञानभण्डारकी अच्छी
ती हैं। इनका दो दृष्टियोंसे महत्त्व है—एक तो
की दृष्टिसे और द्वितीय ऐतिहासिक घटनावलीसे।
ाका प्रकाशन भारतीय विद्या—सिंघी स्मृति अङ्कमें
जिनमेंसे कुछका परिचय इस प्रकार है—

) दूसरी पट्टिकामें आचार्य श्रीजिनदत्त सूरि
ा हैं। सम्मुख पण्डित जिनरक्षित गुणचन्द्राचार्य एवं
विकाएँ बैठी हैं। काष्ठपट्टिकाके भागपर भगवान्
। प्रतिष्ठोत्सव बतलाया गया है, जो त्रिभुवनगिरिमें
श्रीजिनदत्त सूरिद्वारा सम्पन्न हुआ था। पट्टिकाके

और भी काष्ठ-पट्टिकाएँ जैसलमेरमें होनेकी सम्भ
कुछ तो जैन-समाजके गुरु कहलानेवाले यतियोंने
मोल विदेशियोंके हाथों बेच दीं। तिब्बतमें भी इस
काष्ठ-फलक प्रज्ञापारमिताकी पोथियोंमें पाये जाते हैं
भारतमें भी तालपत्रोंपर खरोंचकर लिखा जाता था
भी पश्चिम भारतके समान ही कलापूर्ण काष्ठ-फलक
होंगे; परंतु दक्षिण भारतमें अभीतक प्राचीन-ग्रन्
समुचित अन्वेषण नहीं हुआ।

(२) आचार्य वादिदेव सूरि और कुमु
शास्त्रार्थ महाराज सिद्धराजकी सभामें हुआ था। प्रस्तु
फलकपर इसी शास्त्रार्थके पाँच-छः प्रसङ्गोंपर प्रकाश ड
भाव अङ्कित हैं। संगीतके तीनों अङ्ग बड़ी खूबीसे
गये हैं।

उपर्युक्त काष्ठपट्टिकाओंपर जो कला अवतरित
यों तो वह धर्ममूलक है; परंतु मध्यकालीन भारतीय चि
की दृष्टिसे भी इनका कम महत्त्व नहीं। कारण कि
पूर्व विकसित चित्रकलाके उदाहरण अद्यावधि अत्यल्प
हुए हैं। जितने मिले हैं, वे जैनोंद्वारा पोषित कलाके
हैं। अतः इन पट्टिकाओंको यदि राजपूत-पूर्व विकसि
कलाका आदि रूप कहें तो अत्युक्ति न होगी।

प्रश्न हो सकता है कि काष्ठ-फलकोंपर जिन रे
कलाकारोंने अङ्कित किया है, उनकी प्रेरणा उन्हें कह
थी। कलाकी दृष्टिसे यह विषय इतना गम्भीर है कि
तद्विषयक तत्कालीन प्रचुर सामग्री उपलब्ध नहीं हो
तबतक निश्चितरूपसे कुछ भी कहना कठिन है। शि
चित्रकलाका रेखाओंकी दृष्टिसे अभिन्न सम्बन्ध है
परस्पर एक-दूसरेमें प्रतिबिम्बित हैं। प्राचीन तिब्बती
कलाके विकासकी कल्पना जैसे हम तात्कालिक
चित्रोंसे करते हैं, उसी प्रकार वहाँपर भी ८ वीं
सदीके विकसित शिल्प-कलात्मक अवशेषोंसे अ
कालीन चित्रकलाकी रेखाओंकी दृष्टिसे विकासकी कर
सकते हैं। 'शान्तिनिकेतन' के आचार्य श्रीनन्दलाल
इस सम्बन्धमें मेरी बातचीत हुई थी। उनका अ
कि जैनाश्रित चित्रकलाके विकासके बहुत कुछ तत्त्व इ
शिल्पकलामें निहित हैं। अर्थात् जैनाश्रित कल
इलोराकी शिल्प-रेखाओंसे प्रेरणा प्राप्त की। इलोराकी
कला और विवक्षित जैनाश्रित फलकवाले चित्रोंका तुल
दृष्टिसे देखनेसे उस महोदयका उपर्युक्त कथन स

नी भी प्राचीन काष्ठपट्टिकाएँ उपलब्ध हुई हैं, १४२९ वाली दो हैं। दोनों "३३×३" साइजकी र श्रमण-संस्कृतिके परमोन्नायक भगवान् पार्श्वनाथ दशीभव और पञ्च-कल्याणक चित्रित हैं। यद्यपि असावधानीसे चित्रोंका बहुत-सा भाग तो नष्ट हो ो भी अवशिष्ट भाग भी कलाकी अभिव्यञ्जनाकी लिये सं० १४५४ की तालपत्रीय सूत्रकृत्यङ्गवृत्ति नामक उपलब्ध हुई है। इसकी काष्ठ-पट्टिकापर श्रमण महावीरके २७ भवोंमेंसे कुछ भवों और पञ्च-के चित्र अङ्कित हैं। काष्ठ-पट्टिकाओंका ह्रास जब तालपत्रालेखन-पद्धति जैन-समाजसे उठ गयी। दीके बादकी तालपत्रीय प्रतियाँ नहींके बराबर। कागजकी पोथियोंके विकासके साथ काष्ठ-फलक-ङ्कन किया जाता था, वह चित्रोंके रूपमें परिवर्तित अर्थात् दीवालोंपर लगे काष्ठपर चित्राङ्कन-पर्व-सूत्रपात हुआ। अहमदाबाद, सूरत, राधनपुर और आदि नगरोंके जैन-मन्दिरोंमें अच्छे-से-अच्छे प्रतीक उपलब्ध हुए हैं। वे प्रतीक धर्ममूलक होते ध्यकालीन भारतीय चित्र-कलाके क्रमिक विकासपर काश डालते हैं।

वीं सदीके बाद कुछ ऐसी भी लकड़ीकी पट्टियाँ , जिनपर सम्पूर्ण वर्णमाला, संख्या और संयुक्ताक्षर हैं। इनके दूसरे भागमें अपने-अपने धर्ममान्य भाव ते हैं। इस प्रकारकी पद्धतिके विकासके पीछे दो भावनाएँ ो हैं। बालकोंकी लिपि प्रारम्भसे ही साधु रहे और ाचीन लिपिकी मरोड़का भी समुचित ज्ञान हो योंकि प्राचीन कालमें समाजके पास ग्रन्थाध्ययन-ाधन स्वल्प थे। आजकल प्राचीन संग्रहालयोंमें रकी कई पट्टिकाएँ प्राप्त होती हैं और आज भी न लिपियोंसे परिचय रखनेके लिये जैन मुनियोंको ड़ती हैं। मुझे भी इस कोटिमें छुटपनमें आना पड़ा था। तिके ये उपकरण शोषित समाजके रहे हों चाहे ; परंतु इतना सच है कि साधारण श्रेणीके मनुष्य ाधन रहनेके बावजूद भी उन दिनों अक्षर-ज्ञानसे हीं रहते थे।

दिनों मैं त्रिपुरीमें था, मुझे चन्दन काष्ठकी तीन

मूल्यवान् हैं। प्रथम काष्ठपट्टिका ९६ इंचकी है एक स्त्री भूषणोंसे विभूषित बैठी है। ये छत्तीसगढ़मे आभूषणोंसे मिलते हैं। बायीं ओर तलवार एवं कटार है। कानोंके जेवर विलक्षण हैं। मस्तकके हैं। सम्भवतः यह कोई गौड़ राजकुमारी रही होग किसी सतीका प्रतीक हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

दूसरी पट्टिका १०"×५" की है। अश्वपर स्प वाला पुरुष अधिष्ठित है। निम्नभागमें ये शब्द 'कल्याणसिंह समवत् १६९६ वः सुना।' मेरी रायमें योद्धाका चित्र है।

उपर्युक्त तीनों काष्ठ-शिल्पके अध्ययनसे मैं इस पहुँचता हूँ कि ये १६वीं, १७वीं सदीकी महाकोस सुन्दर उदाहरण हैं।

चाँदवड (जिला नासिक) में अहल्याबाई एक विशाल राजमहल है, इसके निर्माणमें ४०० से अ स्तम्भ लगे हैं। ये स्तम्भ ऐसे हैं कि जिन्हें दोनों व्यक्ति मिलकर अङ्कमें लेना चाहें तो नहीं ले सकते काष्ठकी कड़ियोंपर जो नक्काशी की गयी है, वह सदीकी अच्छी कारीगरीके नमूनोंमें है। यद्यपि अह यह महल इतिहासकी दृष्टिसे बहुत प्राचीन नहीं सकता, फिर भी प्राचीन भारतीय गृह-निर्माण-कल अन्तिम कड़ी है। अहल्याबाईका धर्मप्रेम भारत-प्र जिस हालमें वे बैठा करती थीं, उसकी विस्तृत द दोनों ओर रामायण और महाभारतके चित्र महारा अङ्कित हैं। इन चित्रोंका अध्ययन सम्भवतः अभी है।········टीपू सुल्तानने श्रीरंगपट्टनका सम ही काष्ठका बनवाया था। १७वीं-१८वीं सदीका म विशाल काष्ठ-सिंहासन दीवानबहादुर श्रीराधाकृष्ण (पटना) के संग्रहालयमें है। इसपर सुनहरी स्याही गयी है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भगवान् बुद्धकी विशिष्ट जीवन-घटनाएँ एवं लामाओं की आकृतियाँ खचित हैं। साथ-ही-साथ भिन्न-भिन्न उभरे हुए पुष्प प्रेक्षकोंका ध्यान खींच लेते हैं। यह तिब्बतीय कलाका अनुपम प्रतीक है। बर्मामें विस्तृ निर्मित राज्यसिंहासनसे शायद ही कोई अपरिचि उपर्युक्त जालान महोदयके संग्रहालयमें काष्ठकी क

गमें उत्कर्ण शिखर भुवनेश्वरकी शिखाकृति है। प्नोंका जमाव होनेसे और मध्यमें कलशाकृति स्पष्ट नेःसन्देह यह किसी जैन-मन्दिरका ही भाग है।
अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा आज भी कलाके उपकरण-ष्ठका व्यवहार व्यापकरूपसे होता है। फिर भी वहाँ-ग जनताका जीवन सर्वथा कलाविहीन नहीं है। र्थमें भी वे अपनी कला-क्षुधा शान्त कर सकते हैं। ी भी देहातमें चले जाइये, वहाँ जगन्नाथके मन्दिर । बने हुए मिलेंगे। इनमें विष्णुके दशावतारोंके चित्र ात एवं रामायणसे सम्बन्धित चित्र लकड़ीपर खुदे ते हैं। इन मन्दिरोंके बहाने आज भी जनताके का पोषण उड़ीसामें होता है।
वीं सदीमें हस्तलिखित ग्रन्थोंको सुरक्षित रखनेके लिये से ८″×१५″ परिमाणके बनाये जाते थे। इनपर भी जैन-संस्कृतिसे सम्बन्धित मूर्तियाँ एवं कई प्रकारकी आकृतियाँ अङ्कित मिलती हैं। मेरे संग्रहमें भी क्स हैं, जिनपर क्रमशः सरस्वती और गणेशके चित्र -गुजरातसे अभी-अभी कुछ काष्ठ-पुतलियाँ प्राप्त सौराष्ट्रमें आज भी जो बड़े-बड़े भवन बनते हैं, उनपर काफी नक्काशी पायी जाती है। सौराष्ट्र और रा के प्रदेशद्वार भारतमें प्रसिद्ध हैं।

उपसंहार

इतने लंबे विवेचनके बाद एक बातकी ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। निर्मित वस्तुएँ प्रत्यक्ष मिलती हैं, उनकी चर्चा ऊपर परंतु इस प्रकारके अध्ययनमें अजंता, बाघ गुफाओंके भित्तिचित्रोंको नहीं भुलाना चाहिये। उनमें तात्कालिक जनताके आमोद-प्रमोद-उत्सवकी घटनाओंके साथ-साथ समाजमूलक प्रवृत्तियोंमें सहा भिन्न-भिन्न वाहनोंके चित्र भी अङ्कित मिलते हैं इतना अंदाज तो लगाया ही जा सकता है कि वे क बने होंगे। इस प्रकार प्राचीन साहित्य, शिल्प एवं चित्र-भी इसके अध्ययनमें स्थान देना चाहिये। इन पंक्ति भी प्रतीत होता है कि कलात्मक भावोंको व्यक्त करने सौन्दर्यसम्पन्न उपकरण ही आवश्यक हों, ऐसी बात कला वही है, जो असुन्दर वस्तुमें सत्य, शिव, स्थापना कर सके।' भारतीय कलाकारोंपर यह पंक्ति आने चरितार्थ होती है।

हिमाचल-चित्रकला

(लेखक—डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम्० ए०, डी० लिट्०)

ाड़ा-चित्रकलाको पहाड़ी चित्रकला भी कहा जाता छ विद्वान् इसे हिमालय-चित्रकलाका नाम देते हैं। ऊमें श्रीनान्हालाल मेहताने इसके लिये 'हिमाचल-।' यह सुन्दर नाम चुना है। सन् १९१६ में ड कुमारस्वामीने विशेषरूपसे इस चित्रशैलीके सौन्दर्य का बखान किया था और अपनी पुस्तक 'राजस्थानी राजस्थानी चित्रकलाके अन्तर्गत ही हिमाचल-चित्र-भी स्थान दिया था। कुमारस्वामी भारतीय कलाके पारखी थे। छिपे हुए सौन्दर्यको उनकी पैनी आँख चान लेती थी। उन्होंने देखा कि भारतीय कलामें ड अपूर्व सोता अभीतक अनजाना हुआ पड़ा है। शैलीमें सुन्दरता और आनन्दकी जो रसलहरी है, रेचित होना मनुष्यमात्रके लिये उचित है। अतएव मीकी तेजस्वी लेखनीने दो बड़ी जिल्दोंमें राजस्थानी ीके अन्तर्गत काँगड़ा चित्रोंका सचित्र रसात्मक वर्णन मनुष्यमात्रके लिये है। इस कारण यह चित्रशैली संसार श्रेष्ठ कलाओंमें स्थान पाने योग्य है, जो मनुष्यके भावोंको रंग और रेखाके द्वारा अमर बनानेका प्रयत हैं। समयके बीतनेपर कुमारस्वामीकी यह सम्मति खरी और हिमालयकी गोदमें पली हुई यह सुकुमार आज अपने सौन्दर्यसे सहृदय पारखी व्यक्तियोंके मन और पश्चिममें एक-समान रस-सिञ्चित करनेमें सफल अंग्रेजी कलापारखी लारेंस बिनयन ब्रिटिश म्यूजियममें विभागके अध्यक्ष और विश्वकी अनेक चित्रशैलियोंके जानकार थे। काँगड़ा-चित्रोंसे जब उनका परिचय हु उनका मन किसी छिपी हुई सौन्दर्यराशिके सम्पर्कमें विचलित-सा हो उठा। उन्होंने लिखा—'वह अपू और थिरकन, जो काँगड़ा प्रदेशके चित्रोंको पहले-पहल मैंने अनुभव की, मैं कैसे भूल सकता हूँ। कैसे सम्भव हुई कि इस मोहिनी चित्रराशिका परिचय

चत्रमें दो प्रेमी चाँदनी रातमें सरोवरके तटपर मग्ध्प-
नंगीतका सुख लूटते हुए दिखाये गये थे। चित्र
याके कान्तिमय जगत्में हरे लिये जाता था; वह
तरल—पर मुक्तक गीतकी तरह चुभता हुआ था।
के जो सर्वोत्तम चित्र हैं, उन्हें देखते हुए कहना
कि काँगड़ाकी कला ठेठ आह्लादका रूप है। जो इन
ध्येय है, उससे अधिककी आशा हम उनसे न करें;
भावोंका उद्घाटन और किन चित्रोंकी रेखाओंमें
राईके साथ मिलता है? काँगड़ाके चित्रोंमें निष्कपट
के भाव उघाड़े हुए मिलते हैं। उनकी सहज छूट
है, जैसी पुराने रासोगीत या पवाड़ोंकी होती है,
ठास हृदयमें घर कर लेता है। संसारकी कलामें
बात है।' सुन्दरताके एक सच्चे पारखीके ये
र काँगड़ाशैलीके प्रति हमारे मनके उत्साहको बरबस
र खींच लेते हैं।

से टिहरी और पठानकोटसे कुल्लूतक फैला हुआ
१५० मील लंबा और १०० मील चौड़ा पहाड़ी
ाँगड़ा-चित्रशैलीका क्षेत्र है। काँगड़ेका इतिहास
। महाभारतमें इसे त्रिगर्त कहा गया है। रावी,
लज—तीन नदी-घाटियोंसे बना होनेके कारण इसका
र्त पड़ा था। रावीके उत्तरी किनारेपर चम्बा और
, जहाँ बहुत-से सुन्दर चित्र बने। रावी और ब्यासके
ौड़ी घाटीका नाम काँगड़ा है, जो बहुत ही उपजाऊ
नूरपुर, हरिपुर (गुलेर), काँगड़ा, बैजनाथनगर
शहर हैं। ब्यास और सतलजके बीचमें मण्डी,
लासपुर, बशहर आदि रियासतें कटहलके कोयोंकी
ी हुई हैं। बशहरके ठीक दक्षिण टिहरी-गढ़वाल
१९ वीं सदीके मध्यमें काँगड़ा-चित्रशैली अन्तिम बार
लुप्त हो गयी। इन रियासतोंमें प्राचीन सभ्यता बाहरी
बचती हुई अपना जीवन बनाये रख सकी। वहाँ
ते स्त्री-पुरुष अपने उमङ्गभरे जीवनमें हिमालयकी
ोटियोंको देखते हुए देवदार, कैल और चीड़के
ती हुई हवा और वनोंके पशु-पक्षियोंके साथ किलोल
। शान्ति और आनन्दका यह अध्याय बहुत ही
ंगसे चित्रात्मक कलाके रूपमें प्रकट हुआ। १७ वीं
प्रकर १८वीं सदीमें चित्रसृष्टिकी यहाँ बाढ़-सी आ
जिसके फलरूप लगभग पचास हजार चित्र यहाँ
जो आज भी अधिकांश सुरक्षित रह गये हैं।

काँगड़ा-चित्रशैलीका ध्रुवबिन्दु सुन्दर नारी है
चारों ओर इन चित्रोंका जाल पूरा हुआ है। ना
अध्यात्म और बारहमासी जीवन है, उसीके ताने-बाने
चित्रशैलीका सुरम्य पट बुना गया है। प्रेम और
संयोग और वियोग, इस किमखाबी वस्त्रको सजाव
करते हैं। काँगड़ाचित्रोंमें नारीकी दीप्तमूर्तिके अ
मनपर छप जाते हैं। पुरुषोंका अस्तित्व नारीके
विकसित करनेके लिये है। चित्रकार पुरुषके रूप-र
उतना उत्सुक नहीं जान पड़ता और न पुरुषकी वि
आकृतिका संस्कार काँगड़ा-चित्र अपने पीछे छो
किन्तु स्त्रीकी अपार सुषमा, अङ्ग-प्रत्यङ्गकी बहुविध
शरीरके लावण्य और मुखकान्तिको सैकड़ों प्रकारसे प्र
हुए वे नहीं अघाते। शायद ही नारी-सौन्दर्यकी इत
अनुभूति अन्य किसी चित्रकलामें मिलती हो। र
कवियोंने सूरसे लेकर मतिराम, देव और बिहारीके
शब्दोंके सूक्ष्म अभिप्राय रचकर स्त्री-सौन्दर्यका उ
उपस्थित किया था, उसका प्रत्यक्ष दर्शन हम काँगड़ा
पाते हैं। नायक-नायिकाओंके प्रेममय जीवनकी एक-
इन चित्रोंमें प्रस्फुटित दिखानेका प्रयत्न किया ग
चित्रकारोंकी दृष्टिमें प्रेम ही जीवनका सार है। देवो
सुन्दर स्वस्थ शरीर, भावुक तरङ्गित मन यदि कि
हो सके तो उसके लिये जीवनमें जो सबसे ऊँची
वस्तु है—वह प्रेम है। प्रेमसे ही जीवनमें विचित्र
होती है। शान्तिसे सञ्चित होते हुए जीवनको ज
मलयवात प्रथम बार छू देती है, तब वहींसे जीवनकी
का अध्याय शुरू हो जाता है। उसके आगे सं
वियोगके, मुग्ध और प्रौढ़ स्नेहके कोमल पल्लव
वनलक्ष्मीके सहचरकी भाँति प्रेमिकाके जीवनको भरते
किन्तु प्रेमकी यह आराधना भक्तिधर्मका आधा
ऊँचे स्तरपर प्रतिष्ठित हो गयी। प्रेम करनेवाले युग
स्वयं अपना कोई अस्तित्व नहीं रखते। उनका जीवन
मानवके जीवनका प्रतीकमात्र है। इसी कारण काँगड़
कार प्रेमकी सञ्चित तीव्र अनुभूतिको श्रीराधाकृष्णके
ढालकर उसके अनेक सुन्दर संस्करण सजाते हैं। श्री
की लीला, दिव्य किशोर-किशोरीका जीवन इन चित्रों
भाषा है। यह भाषा जातिगत संस्कारके रूपमें ग
पढ़े-अनपढ़—सबके लिये सुलभ थी। भागवतके दशम
श्रीकृष्णकी बाललीला और यौवनगत विलासलीलाका
मनोहर और उन्मुक्त वर्णन है, जिसे संस्कृत औ





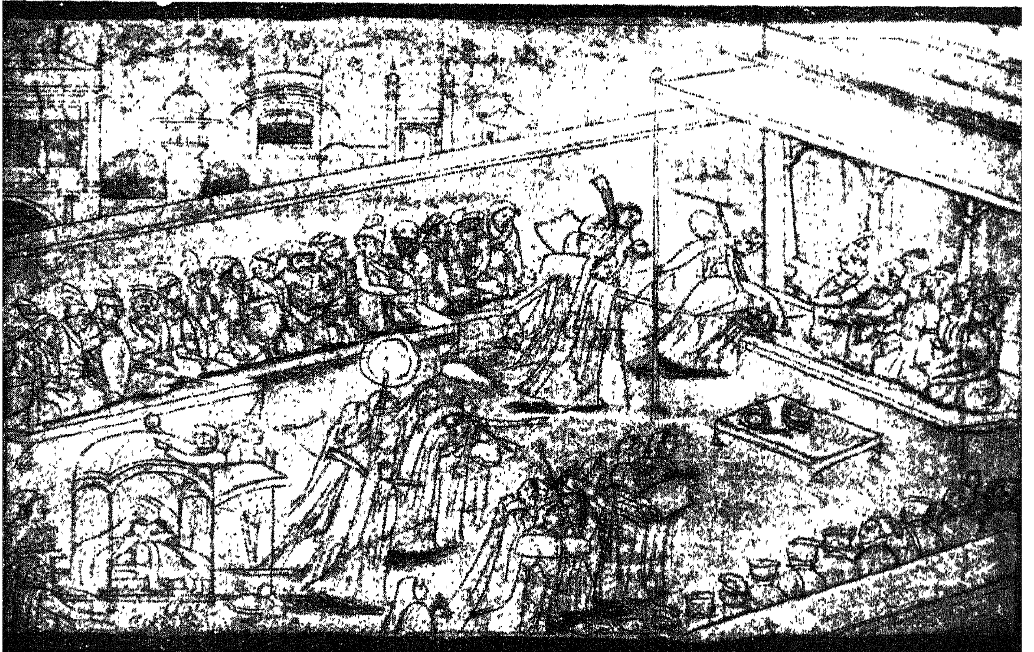
(पृष्ठ ७११)

दावानल-पान



पहाड़ी) चित्रशैली १८ वीं शती मध्यभाग]   (पृष्ठ

दमयन्ती-स्वयंवर



रससम्पन्न बनानेमें बहुत प्रयत्न किया। इन विषयोंके
ुन्दर चित्र काँगड़ा-चित्रशैलीके रत्न हैं। कृष्णका
वंशीकी मोहिनी तान, गोवर्धन-धारण, दानलीला,
नन आदि अनेक लीलाएँ चित्रोंके विषय हैं।

ईके श्रीमोदीके संग्रहमें भागवतकी एक अत्यन्त
थीके बहुत-से चित्र हैं, जो इन चित्रोंकी मँजी हुई
ादाहरण हैं। गीतगोविन्दके सचित्र और ललित
संस्करण तैयार करनेका रिवाज पश्चिमी जैनशैलीमें
दीसे ही आरम्भ हो गया था। वही परम्परा राज-
ौर पहाड़ी चित्रशैलीमें अपनायी गयी जान पड़ती है।
गलीला और नायक-नायिकासम्बन्धी चित्रोंके
काँगड़ा-चित्रशैलीके अन्य विषयोंमें रामायण,
, नल-दमयन्ती और सावित्री-सत्यवान्‌की कथाओंके
सुन्दर चित्र मिलते हैं। रामायणके चित्र अपेक्षाकृत
ौर उनमें वनप्रकृतिका चित्रण मनोहर ढंगसे हुआ
ीके सरकारी भवनमें जो भारतीयकलाप्रदर्शनी कुछ
े हुई थी, उसमें काँगड़ाका एक चित्र था। चित्रमें
मुनिके आश्रममें वीणा लिये हुए नारद पधारे हैं
मीकि उनसे रामचरित्रके विषयमें प्रश्न कर रहे हैं।
बहुत ही प्रसन्नतासे भरा हुआ है और मूल-रामायण-
भावके सर्वथा अनुकूल है। नल-दमयन्तीकी एक
ात्रावलीमें केवल रेखा-चित्र मिले हैं, जिन्हें पहली
स्वामीने प्रकाशित किया था। उसीके कुछ चित्र
राष्ट्रिय संग्रहालयकी ओरसे प्राप्त हुए हैं। पालकी-
दमयन्तीके स्वयंवरमें आनेका चित्र तरल और
ङ्गनके कारण बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। उसमें
ाल रंगकी जमीन तैयार करके चितेरेने शेष रंगोंको
ड़ दिया है फिर भी चित्र बहुत भावपूर्ण है।
के पास लोककथाओंके चित्रोंकी माँग भी रही
इसी कारण हम्मीरहठ, विक्रम-वेताल-चरित्र,
-कामकन्दला, सोनी-महीवालके चित्रोंके कई संग्रह
। राजासाहब चम्बाके यहाँ ऊषा-अनिरुद्ध-चरित्रका
र चित्राधार या मुरक्का है, जो उस समय प्रदर्शनीमें
ा था। रागमाला और बारहमासाके चित्रोंकी भरमार
शैलीमें पायी जाती है। पर काँगड़ा-चित्रशैलीमें
पेक्षाकृत कमी है।

ाड़ा-चित्रपदेशमें एक स्थान बसौली है, जो ग्तीके दाहिने

सदीतक यहाँ बहुत ही विशिष्ट चित्र तैयार होते रहे
में चम्बाने बसौलीपर हमला करके उसका अस्ति
दिया। बसौलीके चित्रकार लाल, पीले, नीले आदि स
प्रेम करते थे, जो कि गुजरात और राजस्थानी नि
मिलते हैं। इन चित्रोंमें सुकुमारताकी जगह तेज और
स्फूर्ति पायी जाती है। श्रीमेहताजीके शब्दोंमें
चित्रकार जो कुछ कहना होता है, उसे सीधी-सादी
हुई रेखाओंमें, सादे फड़कते हुए रंगोंसे रंगीन ३
द्वारा कह देते हैं। पहाड़ी चित्रोंकी अपेक्षा बसौली
ग्रामीण हैं, किन्तु इसी ग्रामीणतामें इनकी विशेषता है
बल और ओजका प्रदर्शन एक बलवती शैलीद्व
जाता है। इन चित्रोंकी रंग-विशेषताके अतिरिक्त
लेखनमें उत्फुल्ल कमलकी तरह बड़ी-बड़ी आँखें,
गाल, पीछे जाता हुआ ललाट, इस चित्रशैलीके विशे
हैं। इनकी रेखाओंमें कुछ रूखेपनके साथ भी ओज
है। रेखा और रंगका अद्भुत समन्वय होता है। इ
में एक विचित्र बात यह है कि स्त्रियों और पुरुषोंके ३
में गुबरीलेके पंखोंके चमकीले हरे रंगके टुकड़ोंका
किया गया है। मालूम होता है कि १७ वीं शता
इस शैलीमें सहस्रोंकी संख्यामें श्रीमद्भागवत, रामाय
धार्मिक ग्रन्थोंके चित्र बने। इन चित्रोंके सजीले न
चटकीले रंगोंको देखकर इनका सम्बन्ध राजपूतानेके
जान पड़ता है। एक तरहसे पुराने भित्ति-चित्रोंके ये
हैं। कला-प्रदर्शनीमें पहली बार बसौली-चित्रोंका ब
एकत्र किया गया था। इनमें वनमें हिरनोंको प्यार क
राजकुमारीका चित्र बहुत ही सुन्दर है। यह चित्र श्र
संग्रहमें है। श्रीखंडालावालाके संग्रहमें एक बसौली
है, जिसमें श्रीकृष्णके दावानलका आचमन करनेका द
यह चित्र बसौलीके बहुत ही प्राणवन्त उत्कृष्ट चि
जिसमें आकृतियोंका संपुञ्जन चित्रकौशलकी प
प्रकट करता है।

काँगड़ाके राजा संसारचन्द्र (१७७४-१८२३
चित्रकलाके लिये समुद्रगुप्त और विक्रमादित्यकी त
हैं। उनके समयमें महाभारत और कृष्णलीलाके अने
बने, जिनमें पहाड़ी चित्रशैलीकी रेखा और रंगोंक
अपनी चरम सीमाको पहुँच गया था। चित्रकारोंने आ
किसी भी विषयको छोड़ा नहीं है। राधाकृष्णको
बनाकर जीवनकी तमाम लीलाओंका इन चित्रकारोंने ३

वनवाटिका-विहार, भोजन, वसन, शृङ्गार, ताम्बूल-
आखेट, नौका-विहार, अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओं
ायके प्रसंगोंका चित्रण इन चित्रोंमें हुआ है, जो
ालीको विषयकी दृष्टिसे बहुत ही रोचक और
बना देता है।

ाड़ा-चित्रशैलीका ही क्षेत्र गढ़वालमें था, जहाँ १९वीं
व्यतक आकर्षक चित्रोंका निर्माण होता रहा। इन
चित्रोंमें मानकू, चैतू और भोलारामके चित्र प्रसि

काँगड़ा-चित्रशैली भारतमें कलात्मक सौन्दर्य
अनुपम निधि है। उसमें जितने अधिकसंख्यक सुन्द
रसात्मक चित्रोंका आलेखन हुआ, उतना अन्यत्र नहं
चित्रोंके सामूहिक संग्रह और प्रकाशनकी आवश्यक
जिससे मध्यकालीन भक्ति और शृङ्गारप्रधान जीवनव
और अन्तरङ्ग परिचय साक्षात् मिल सके।

मुगल-चित्रकला तथा उसका विवेचन

(लेखक—काव्यालङ्कार पं० श्रीमथुराप्रसादजी शर्मा 'मथुरेश')

ाकलाका आधार कपड़ा, कागज, लकड़ी, मिट्टी आदि-
ाट है, जिसपर चित्रकार अपनी तूलिका या लेखनीसे
ा प्रकारकी वस्तुओं और जीवधारियोंकी आकृतियाँ
करता है। वह अपनी तूलिकासे समतल धरातलपर
न्यूनता, दूरी, निकटता प्रदर्शित करता है। उसे देख-
ास्तविक वस्तुके मूलरूपका अनुभव करने लगते
ाकार अपनी चित्रकलाके द्वारा मानसिक सृष्टिका
रता है। चित्रकारको कोई घटना या दृश्य अङ्कित
वल उसके बाहरी अङ्गोंको ही जानना तथा अङ्कित
ाहीं होता, प्रत्युत उसे उसमें सजीवता लानेके लिये
नसिक भावोंका चित्र-सा उपस्थित करना पड़ता है।
तवासी प्राचीनकालसे ही चित्रकलाको जानते हैं,
ाके चित्रोंसे स्पष्ट है। पूर्व मध्यकालमें भी चित्रकारी
थी; किंतु कुछ मुसल्मान राजाओंकी धार्मिक कट्टरता-
उसकी समुचित उन्नति नहीं हो सकी थी। मुगलों-
मणके पश्चात् चित्रकलाने पुनर्जीवन प्राप्त किया।
के राजाओंने एक नवीन शैलीका, जो फारसी कलासे
थी, उद्घाटन किया; किंतु अन्तको वह भी
ताके रंगमें रँग गयी।

ा हुमायूँ फारससे लौटकर आया, तब वहाँसे वह
ली और अब्दुस्समद नामके चित्रकारोंको लाया, जिनके
ने प्रसिद्ध फारसी काव्य 'अमीर हमज़ा'को चित्राङ्कित
जो अत्यन्त उत्तम है। अकबरको चित्रकलामें अधिक
। उसने भारतीय और फारसी चित्रकलाओंको
करके मुगल चित्रकलाको जन्म दिया। अकबर
चित्रकारोंमें बसावन, दसवंत, सावँलदास लाल,
फारूख बेग और मुराद मुख्य-मुख्य थे। इन चि
महाभारत, बाबरनामा, अकबरनामा तथा निजामीके
चित्राङ्कित किया। उस समय कपड़ोंपर भी चित्र बन
थे। अकबर अपने चित्रकारोंको उनकी कृतिकी सु
पारितोषिक भी देता था। चित्रकारोंकी चित्रकलाको
सभी व्यक्ति उनसे प्रेम करने लगे थे।

मुगल राजाओंमें जहाँगीर चित्रकलाका अत्य
था। चित्रकलाको जाननेमें वह अत्यन्त निपुण था
दरबारी चित्रकारोंमें अबुलहसन, मंसूर अधिक प्रसि
वह पक्षियों, पौधों तथा फलोंके चित्र खींचनेमें अत्यन्
थे। विशनदास, मनोहर, गोवर्धन, दौलत, उस्त
मुराद भी प्रसिद्ध चित्रकार थे। इन्होंने चित्रकलाका
विकास किया तथा आँख, हाथ और होठोंके चित्र
मनुष्यके चरित्र और भावोंको प्रकट करनेकी
योग्यता प्राप्त की।

शाहजहाँ तथा औरंगजेबको चित्रकलासे कोई विरे
था; पर उनके कालमें चित्रकलाकी उन्नति अवश्य हुई।
जेब अपने बेटेके बीमार होनेपर उसके चित्र देखने
मँगवाया करता था, परंतु इस समय चित्रकारोंका वि
नहीं था। औरंगजेबकी मृत्युके पश्चात् मुगलकलाका
लगा था। तत्पश्चात् चित्रकार समाज और ग्राम्य
दृश्य चित्रित किया करते थे। मुगलदरबारसे
प्रोत्साहन न पानेपर चित्रकार लखनऊ और हैदराबा

नाट्यकलाकी उत्पत्ति तथा विकास

(लेखक—पं० श्रीराधाशरणजी 'मिश्र')

ी गुण या कौशलके कारण जब किसी वस्तुमें विशेष
ा और सुन्दरता आ जाती है, तब वह वस्तु
हो जाती है। कलाके दो भेद होते हैं—एक
कला और दूसरी ललित कला। उपयोगी कलामें
सुनार, जुलाहे आदिके व्यवसाय सम्मिलित हैं।
कलाके पाँच भेद होते हैं—वास्तुकला, मूर्तिकला,
, सङ्गीतकला और काव्यकला। उपर्युक्त दोनों
(उपयोगी कला और ललित कला) में ललित कला,
त कलाओंमें काव्यकला श्रेष्ठ होती है। तथा काव्य-
ी 'काव्येषु नाटकं रम्यम्', 'नाटकान्तं कवित्वम्'
रपर नाट्यकला ही सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है।

ार परिवर्तनशील है, इसके परिवर्तनशील होनेके
साथ तदाधारभूत काव्य या साहित्यमें भी परिवर्तन होना
क ही नहीं अपितु अनिवार्य-सा भी है। जैसे हम
क समाजके विकसित रूपको देखकर प्राचीन गौरव-
को दन्तकथा बतलाने लग जाते हैं, वैसे ही हमें
ाराणिक नाट्य-साहित्यपर भी अविश्वास-सा ही है।
नीचेकी पङ्क्तियोंमें एतद्विषयक विद्वानोंके बिखरे
ार संगृहीत करके लिखे जा रहे हैं।

-डाक्टर रिजवे नाटककी उत्पत्ति वीरपूजासे सम्बन्धित
हैं। उनका कहना है कि नाटक-प्रणयनकी प्रवृत्ति उन
हुए वीर पुरुषोंके प्रति आदरका भाव प्रदर्शित करने-
ही हुई है। हमारे भारतीय नाटकोंमें भी श्रीराम या
आदि वीर पुरुषोंके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाले नाटक
टेमें रक्खे जा सकते हैं।

-जर्मन विद्वान् डाक्टर पिशेल नाटककी उत्पत्ति
कानृत्यसे मानते हैं। तथा यह पुत्तलिकानृत्य सबसे
भारतमें ही प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद विदेशोंमें
का प्रचार पूर्णरूपसे होने लगा। सूत्रधार, स्थापक
शब्दोंका अर्थ इस मतका अच्छी तरहसे पोषण करता
जैसे पुत्तलिकानृत्यमें उनका सूत्र किसी सञ्चालकके
रहता है तथा एक व्यक्ति पुत्तलिकाओंको स्थापित
रहता है, वैसे ही नाटकके भी सूत्रधार और स्थापक
मानी है। छायानाटक भी आधुनिक सिनेमाकी तरह
कालमें प्रदर्शित किये जाते थे। तथा इस मतको सुपुष्ट
लिये उन्होंने प्राचीन उल्लेखोंकी भी खोज की है। पर
समीचीन नहीं प्रतीत होता। क्योंकि हमारा नाट्य-साहित
पुराना है तथा संस्कृतमें दूताङ्गद नामक नाटक अवश्य
जाता है जो कि छायानाटकके सिद्धान्तोंपर आधारि
किंतु उसमें इतनी प्राचीनता नहीं, जिससे हम उसे
भारतीय नाटकोंकी आधारशिला मान सकें।

४—अनेक भारतीय तथा पश्चिमी विद्वान् न
वेदमूलक मानते हैं। ऋग्वेदमें कई संवादसूक्त ह
जिनमें पुरूरवा और उर्वशीका संवाद विशेष प्रसिद्ध
गया है। इन संवादसूक्तोंका कथोपकथन बिल्कुल ही न
आधार-स्तम्भ कहा जा सकता है।

५—महामुनि भरत जो कि भारतीय नाट्य-स
प्रथम प्रवर्तक माने गये हैं, उनका मत है कि
मनुष्योंको आपत्तियोंसे क्लान्त देखकर इन्द्रादि दे
श्रीब्रह्माजीसे ऐसे वेदकी रचनाके लिये प्रार्थना की,
अलौकिक आनन्द सर्वसाधारणके लिये समानरूपसे
सके; क्योंकि चतुर्वेदोंके अधिकारी शूद्रादि निम्नवर्ग
नहीं माने गये हैं। इसी प्रार्थनाको दृष्टिगत करके
पितामह ब्रह्माजीने चतुर्वर्णके लिये—विशेषतः शूद्र
पञ्चम वेदका निर्माण किया। इसमें ऋग्वेदसे पा
सामवेदसे गान, यजुर्वेदसे अभिनय, अथर्ववेद
लिया गया, जो कि—

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।

(नाट्यशास्त्र अ० १ श्लो

—से सिद्ध होता है। हमारे नाट्य-साहित्यके
होनेके कारण ही भरत मुनिने नाट्य-साहित्यकी यहाँ
कर दी है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कल
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्य

(नाट्यशास्त्र १

े आदि काव्य 'वाल्मीकीय रामायण' में भी नाट्य-
ाई बातें मिलती हैं। जैसे—

राजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः।
(२।६७।१५)

ा जनपदमें राजा नहीं है, वहाँ नट और
ा नहीं दिखलायी देते।' इससे सिद्ध है कि राजा-
ोंको अपने आश्रयमें रखकर उनको नाटकका
करनेके लिये प्रोत्साहित किया करते थे। इसी प्रकार
' में भी 'नट' शब्दका कई जगह उल्लेख मिलता
रतके अन्तर्गत हरिवंशपुराणमें भी रामायणसे कथा
टक खेलनेका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वैसे ही
ण' के ३३६-४६ तकके सर्गोंमें श्रव्य तथा दृश्य
ही विवेचना की गयी है; पर उपर्युक्त ग्रन्थों-
ाल भी सन्दिग्धपूर्ण होनेके कारण हम यह निर्णय
सकते कि अमुक समयमें नाट्य-साहित्य अच्छी
रम्भ हो गया था। किंतु यह जरूर मालूम हो
कि भारतीय नाट्य-साहित्य प्राचीनतम है तथा
ी दैन है—अन्य किसी देशकी नहीं।

के तीन शताब्दी पूर्वतकका नाट्य-साहित्य अज्ञात-
। इसके बाद पाणिनिके व्याकरणशास्त्रमें शिलालिन्,
ादि नाट्यसाहित्यके आचार्योंका उल्लेख मिलता
नन्तर पतञ्जलिके महाभाष्यमें भी 'कंसवध',
न' का उल्लेख पाया जाता है। संस्कृत-साहित्यके
प्रमुख नाटककार 'कालिदास' का समय भी ईसा
शताब्दी पूर्व मान लिया गया है; इनके भी 'श
'मालविकाग्निमित्र' आदि नाटक संस्कृत-साहित्यकी
निधि समझे गये हैं। इसके बाद 'भवभूति', 'विश
'शूद्रक' और 'राजशेखर' आदि नाटककारोंने बड़े ही
एवं व्यवस्थापूर्ण नाटकोंकी रचना की। उपर्युक्त ना
नाटक पूर्ण विकसित हैं। अतः इसमें कोई स
कि इन नाटकोंके समयसे कई शताब्दियों पूर्व ह
रचना सफलतासे की जा चुकी थी।

इस प्रकार दसवीं शताब्दीतक संस्कृत-नाटकों
भरमार रही। बादमें १९ वीं शताब्दीतकका लंबा का
साहित्यकी रचनासे वञ्चित ही रहा। यद्यपि 'हनु
'प्रबोधचन्द्रोदय', 'रत्नावली' आदि नाटक इसी अ
बने थे, फिर भी उनमें नाटकत्वके नियमोंका यथाव
न होनेके कारण वे अच्छे नाट्य-साहित्यकी को
रक्खे जा सकते। पर इधर कुछ वर्षोंसे नाटकजगत
हलचल मचने लगी है। भारतेन्दु, प्रसाद, श्रीलक्ष्म
मिश्र और सेठ गोविन्ददास आदि स्वनामधन्य ना
कई मौलिक नाटक लिखे तथा संस्कृत और बंगलासे अ
भी किये हैं। अभी हिंदी-साहित्यके मौलिक
प्रारम्भिक युग या मध्य युग कहा जा सकता है।
हमारे हिंदी नाटकोंके सुशिक्षित कर्णधार भविष
हिंदी-साहित्यको अच्छे-अच्छे मौलिक नाटक
इसे सुसमृद्ध एवं महत्त्वपूर्ण बनायँगे।

हिंदू-संस्कृतिमें भगवत्प्रेम

व हिंदू-संस्कृतिका प्रेम, प्रेम-आस्पद भगवान।
रम पुरुषार्थ, प्रेमपथ यही बताते वेद-पुरान॥
श हरने हर्षित हो किया तुरंत हलाहल-पान।
ठ बन, रक्षा की, सबकी, धर उरमें हरिका ध्यान॥
मरते प्राणीको देकर महामन्त्रका दान।
भरकर हृदय प्रेमसे नारद करते नित्य ईश-गुण
ध्रुव-प्रहलाद प्रेमसे कर भगवद्दर्शन हो गये म
प्रेमदिवानी मीराजीने किया प्रेम-परवश वि
विष अमृत बन गया उसी क्षण बचे भक्त मीराके
पाता प्रेम प्रेमियोंसे वह जो तजता ममतामद

भारतीय संस्कृतिमें गान्धर्व-विद्या

(लेखक—श्रीशिवशरणजी)

रतीय दर्शन एवं अध्यात्मविचारमें नादका स्थान विलक्षण है। वाणी विचारशक्तिका वाहन है। बेना विचारका कोई भी अस्तित्व नहीं रहता—

सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
ुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥

(वाक्यपदीय)

ाकमें कोई भी प्रत्यय (ज्ञान) ऐसा नहीं, जो शब्द-प्राप्य हो। प्रत्येक ज्ञान शब्दसे अनुविद्ध होता ब्द इस लोक एवं परलोकका आधार है। यदि ईश्वरकी विचारशक्तिका एक दृश्यस्वरूप मान य तो इस दिव्यकल्पनाके स्पन्दनरूप नादको संसार-ाविका कारण मानना युक्तिसङ्गत है—

ाव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत् ।
सर्व्वममृतं यच्च मर्त्यमिति श्रुतिः ॥

कूसे समस्त (विश्व) भुवन उत्पन्न हुए। वाकूसे वं मर्त्य संसारका प्रादुर्भाव हुआ।'

ह्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः ।

(वाक्यपदीय)

नादि परम्परा जाननेवाले ऋषियोंका कहना है कि ब्दका परिणाम है।'

ने विचार प्रकट करनेके लिये जीव शब्दका दो ारसे प्रयोग करता है। वे प्रकार हैं—वर्णरूप शब्द रूप शब्द। दोनों रूप भिन्न होते हुए भी एक ही स्थित हैं। क्योंकि दोनोंमें विचार एवं भाव प्रकट ाये ध्वनिका प्रयोग होता है। आधार एक ही होने-ानिरूप स्पन्दनकी भिन्न विशेषताएँ प्रयोग करनेसे दके भिन्न मार्ग माने जाते हैं।

प्राचीन एवं वर्तमान दृष्टि

ीन भारतीय दार्शनिकोंका कहना है कि भाषा एवं क ही विद्याके दो अंश हैं। दोनोंके शास्त्रकार ; ही हैं। आधुनिक विद्वानोंने प्रायः शब्द, नाद, दिके विषयमें बहुत विचार नहीं किया। शब्दका ना समझे वे प्राचीन आचार्योंके मतको कपोल-रंग आदिके रहस्यपर विचार करनेका प्रयत्न अपनी योग्य नहीं मानते। इन विषयोंपर गम्भीर विचा विदित होता है कि इनमें कल्पना लेशमात्र भी नहीं का रहस्य समझनेके लिये वे एक उत्तम विद्याके प हैं। नादके आधारस्वरूप एवं कार्यको समझनेर शक्तिका तत्त्व एवं इस तत्त्वसे दृश्य अर्थोंके सम्बन्धव खुल सकता है।

गान्धर्व-शास्त्र

व्याकरण एवं सङ्गीतका आधारभूत तत्त्व गान विषय था; परंतु आज गान्धर्ववेद लुप्त माना ज फिर भी व्याकरणाचार्यों एवं संगीताचार्योंके प्राप्य नाद एवं ध्वनिके विषयमें बहुत विचार मिलते हैं इस विद्याके सिद्धान्त समझमें आ सकते हैं।

आधुनिक लोग भाषा एवं सङ्गीतका अर्थ मानते हैं। वे नहीं मानते कि शब्द एवं अर्थका सम्बन्ध है। उनके मतमें किसी वस्तुका नाम किस कारण एक समय दे दिया है। लोगोंने उसे याद क इसलिये वह उस वस्तुका नाम हो गया। वैसे ही अभ्याससे हमलोगोंमें भिन्न स्वर हास्य या कर उत्पन्न करते हैं।

प्राचीन शास्त्रकार इस मतके अत्यन्त विरुद्ध हैं कहना है कि स्पन्दनरूप वस्तु एवं स्पन्दनरूप बीच घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसलिये हर एक अ एक शब्द होता है। इस शब्दमें वह अर्थ उत्पन्न शक्ति भी रहती है। यह मन्त्रोंका रहस्य है। शब्दके उच्चारकमें अशुद्धि आ जाय तो वह केवल रहता है। यही बात सङ्गीतके विषयमें भी है। आदिका एक स्वाभाविक अर्थ है, जिससे रस उत्प है। फिर भी स्वरोंकी अशुद्धि होनेपर लोग इसमें बलसे कुछ अर्थ लगाते हैं। परंतु ऐसे गान सर्वसा नीरस विदित होंगे।

शब्द एवं स्वरोंका स्वाभाविक अर्थ होना म रागका कारण है। जप एवं सङ्गीतका अभ्यास मोक्षके साधन माने जाते हैं। परंतु फल देनेके लिये उनका

वादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
ज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं स गच्छति ॥
(याज्ञवल्क्यस्मृतिः)

वीणाके वादनका तत्त्व जाननेवाले हैं, श्रुतियोंकी
वाननेमें निपुण हैं और ताल जाननेवाले हैं, वे बिना
ो मोक्षको पा लेते हैं ।'

: ब्रह्म सगुण ब्रह्म है । वह प्रपञ्चका कारण माना
सगुण निर्गुणका मार्ग होनेसे मोक्षका साधन
।

गीतप्रपञ्चस्य श्रुत्यादेस्तत्त्वदर्शनात् ।
स्यात्सच्चिदानन्दरूपिणः परमात्मनः ॥
ः प्रभाप्रवृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत् ।
सन्ततयात्यन्तम्······················· ॥

की श्रुति आदिके तत्त्व-दर्शनसे सच्चिदानन्द
ो प्राप्ति वैसे ही हो जाती है, जैसे अग्निशिखाके
वृत्त पुरुषको मणिलाभ होता है ।'

ाब्द-रहस्यसे सम्बन्धित शास्त्र-ग्रन्थ

सि वर्णादिरूप शब्दोंके वास्तविक सम्बन्धका
ाकरणके प्रधान शास्त्रकारोंके ग्रन्थोंमें सुरक्षित है ।
पाणिनि, पतञ्जलि, भर्तृहरि एवं नन्दिकेश्वर

र्व-विद्याके दार्शनिक ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो चुके हैं ।
ारद, नन्दिकेश्वर, मतंग, कोहल आदिद्वारा प्रणीत
ाप्य भागसे इस विद्याका रहस्य थोड़ा-बहुत समझ-
कता है । दूसरे ग्रन्थ केवल प्रयोगसे सम्बन्ध रखते
द्वारा रस एवं विचारके प्रकट हो जानेका रहस्य
ारा शब्दब्रह्मको प्राप्त करना साधारण गायकोंकी
बाहरकी बात है । अतः इस कठिन विद्यासे
शास्त्र-ग्रन्थोंकी रक्षा गायकोंसे नहीं हो सकती ।
ाक् वर्णरूप शब्दका सूक्ष्म स्वरूप है । सङ्गीतके
आधार मध्यमा वाक् है, वैखरी वाक् नहीं । विशेष
स्पन्दन—मध्यमा वाक् पश्यन्ती नामक व्यक्त (स्पष्ट)
परिणाम है । मध्यमा वाक् नादरूप होनेसे
से ग्राह्य है, फिर भी वर्णरूप नहीं होती; इसलिये
स्वररूप नादमें अलग-अलग अक्षर नहीं होते ।
र्थ खण्डित न होनेसे एकत्रित रहता है । इसलिये

ऐतरेय ब्राह्मणका कहना है कि वेदके शब्दोंका
मध्यमा वाक्से करना चाहिये अर्थात् उनको गाना न
वेदके शब्दोंके गानेसे बुद्धि संस्कृत हो जाती है ।

तं मध्यमया वाचा शंसत्यात्मानमेव तत्संस्कुरुते

सङ्गीत एवं व्याकरणके तत्त्वसूत्र माहेश्वरसूत्र हैं
स्थानोंसे उच्चारित व्याकरणके पाँच शुद्ध स्वर अ इ उ
हैं । इनके दो मिश्रित रूप हैं 'ए ओ' और दो ऽ
जोड़े हुए रूप हैं 'ऐ औ ।' प्रथम तीन स्वरों (अ
के विकृत दीर्घरूप भी हैं । इस प्रकार स्वर १२ हो ऽ

सङ्गीतके सात स्वरोंमें भी पाँच स्वर प्रधान ः
गौण हैं । सामगानके पाँच प्रधान स्वर प्रथम, द्वितीय,
चतुर्थ और मन्द्र कहे जाते हैं । दो गौण स्वर ;
अतिस्वार्य हैं । गान्धर्व-गानमें इन पञ्चस्वरोंके नाम
गान्धार, ऋषभ, षड्ज एवं धैवत हैं । गौण स्व
एवं निषाद हैं । परंतु शैवगानमें षड्ज, ऋषभ,
मध्यम और पञ्चम प्रधान एवं धैवत, निषाद गौ
जाते हैं ।

इन सात स्वरोंके अतिरिक्त दो और मिश्रित
उनके नाम 'काकली' और 'अन्तर स्वर' हैं । सङ्गीत
मिश्रित स्वरोंका नाम साधारण अर्थात् बीचका स्वर
है । इनके अतिरिक्त तीन और स्वरोंके एक-ए
रूप हैं । इससे शुद्ध-विकृत स्वरोंकी संख्या १२ होती

व्याकरण एवं सङ्गीतके स्वरोंका अर्थ भिन्न न
उनके वास्तविक एवं सांकेतिक अर्थका समन्वय
मतंग आदिप्रणीत ग्रन्थोंमें मिलता है ।

सङ्गीतमें नादके ६६ भिन्न रूप होते हैं, जिनको
कहते हैं । उनमेंसे २२ प्रधान होते हैं । दूसरी दृष्टिसे
अनन्त कही जा सकती हैं ।

द्वाविंशतिं केचिदुदाहरन्ति
श्रुतीः श्रुतिज्ञानविचारदक्षाः
षट्षष्टिभिन्नाः खलु केचिदासा-
मानन्त्यमेव प्रतिपादयन्ति
(

व्याकरणमें भी भिन्न नादरूप ६६ व्यञ्जन हैं,
आधी संख्या ३३ साधारण प्रयोगमें आती हैं ।

श्वर-सूत्रानुसार वैखरीरूप व्यञ्जनोंकी दस जातियाँ
ह अर्थ भिन्न होते हैं।

ीतमें श्रुतियोंकी भिन्न रस उत्पन्न करनेवाली पाँच
होती हैं, जिनके नाम दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या
ा है। उन स्वर-जातियोंके दो स्वरूप हैं—एक
आधारस्वरूप, दूसरा रसका आधारस्वरूप। हम
सकते हैं कि वीणाके तारका तीसरा अंश या पाँचवाँ
से एक रस-विशेष हमारे मनमें उत्पन्न होगा अर्थात्
रा भाव या विचारके तत्त्वको गणितरूप दिया जा
। श्रुतियोंके दो रूप हैं—एक भावरूप और दूसरा
। गणितरूपके द्वारा प्रपञ्चके अनेक अर्थोंसे शब्द-
ा सम्बन्ध समझा जा सकता है। इसका फल यह है
र-रचनाका रहस्य समझनेके लिये नादविद्या एक
ाधन बनती है। विदित होगा कि स्वरोंसे देवता,
ह, नक्षत्र, रंग, छन्द आदिका सम्बन्ध निरर्थक
नहीं, बल्कि युक्तिसंगत एवं गम्भीर तत्त्वपूर्ण
सत्य है एवं प्राचीन तत्त्वदर्शक ऋषियोंकी
न है।

माहेश्वरसूत्रमें ईश्वरका रूप

के डमरूसे उत्पन्न माहेश्वरसूत्रोंसे सर्वप्रपञ्चका
हुआ है। माहेश्वरसूत्रोंका रहस्य जाननेसे सर्व-
रहस्य खुल जाता है। भाषाके स्वरोंका वास्तविक
नन्दिकेश्वरकी 'काशिका' में प्राप्य है। सङ्गीतके स्वरों-
भाषाके स्वरोंका सम्बन्ध 'रुद्रडमरूद्भवसूत्रविवरण'
ा है। माहेश्वरसूत्रका प्रथम सूत्र 'अ इ उ ण्' है।
र 'अ' कण्ठमें स्थित है, उसका उच्चारण बिना
होता है। अकार सर्वस्वरोंका आधार एवं

अकारो वै सर्ववाक्।

ा' निर्गुण ब्रह्मका द्योतक है।

कारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।
(नन्दिकेश्वरः)

अक्षराणामकारोऽस्मि। (गीता)

ङ्गीतमें 'अ' का रूप आधारभूत स्वर षड्ज है।
बिना किसी भी स्वरका अस्तित्व नहीं है।

निकालनेकी प्रवृत्ति 'इ' शब्दका कारण है। 'इ' श
प्रवृत्ति आदिका द्योतक है। उसको 'कामबी
कहते हैं—

इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात्कारणं मतम्
(नन्दिकेश

शक्तिका द्योतक होनेसे 'इ' कार सर्व वर्णोंका क

अकारो ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कला मत
(नन्दि

अकार ज्ञानस्वरूप मात्र है, इकार ज्ञानसाधन चि

शक्तिं विना महेशानि प्रेतत्वं तस्य निश्चितम्
शक्तिसंयोगमात्रेण कर्मकर्ता सदाशिवः

'शक्तिरूप इकारके बिना शिव 'शव' होता है।
संयोगमात्रसे सदाशिव कर्म कर सकता है।'

सङ्गीतमें 'इ' शिवका वाहन, वीर्य एवं शक्तिरू
होता है। उसके श्रवणसे वीर-रस उत्पन्न होता है; उस
बलवान्, शक्तिमान् विदित होता है।

जब कण्ठ, जिह्वा आदि 'इ' कारके उच्चारण
तैयार किये जायँ और बिना किसी भी अंशके बदले
उच्चारणका प्रयत्न होता है, तब फलरूप 'उ' कार
है। 'उ' कार 'इ'से परिच्छिन्न 'अ' का स्वरूप है
अर्थ होता है शक्तिपरिच्छिन्न ब्रह्म अर्थात् सगुण ब्रह्म

उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्व
(नन्दिके

उकार विष्णुनामक सर्वव्यापक ईश्वरका स्वरूप

सङ्गीतमें 'उ'कार गान्धार स्वर है (आधुनिक
का कोमल गान्धार)। वह श्रृङ्गार-रस एवं क
उत्पन्न करता है। विष्णुदर्शनकी सुन्दरताका अनुभव
स्वरसे कहा जा सकता है। गान्धार वाक्का वाहन
गन्धोंसे भरा है।

गां धारयति [गां वाचं धारयति] इति गान्धा
(क्ष

वाक्का वाहन होनेसे गान्धार कहा जाता है।

नानागन्धवहः पुण्यो गान्धारस्तेन हेतुन
(ना

तीन ग्राम

न स्वर सर्व सङ्गीतके आधार होनेसे तीन ग्रामोंके
त स्वर माने जाते हैं—

ग्रामस्त्विति विज्ञेयस्तस्य भेदास्त्रयः स्मृताः ।
'''षड्जऋषभगान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः॥

(भरतमुनिप्रणीत गीतालंकार)

न ग्राम हैं, जिनके आधार षड्ज, ऋषभ और
हैं। ऋषभ ग्राम अन्य दोनोंके बीचमें होनेसे
' या 'मध्यमग्राम' कहा जाता है।

ब्रह्म-मायास्वरूप 'ऋलक्'

श्वरसूत्रका दूसरा सूत्र नपुंसक स्वरोंका सूत्र है।
धानता नहीं होती। सङ्गीतमें दोनों स्वर 'काकली'
तर' नामसे प्रसिद्ध हैं—

त्र ते स्वराः प्रोक्तास्तेषु ऋ ऌ नपुंसकौ ॥

' मूर्धन्य स्वर है। इसका अर्थ ऋत अर्थात्
है। 'ऋ परमेश्वरः इत्यत्र'—

सत्यपरं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्' इति श्रुति-
।

तत्पदार्थं परं ब्रह्म ऋ सत्यमित्यर्थः ।

(अभिमन्यु-टीका)

ीतमें ऋ अन्तर स्वर कहा जाता है, जो आधुनिक
धार है। उसका शान्त रस है।

' दन्त्य स्वर है। यह परमेश्वरकी वृत्ति या शक्ति
मायाके सङ्केत हैं—

ाः सत्ताधरास्तत्र मायाचालक उच्यते ॥

क्तिमान् अपनी शक्तिसे अभिन्न होता है। जैसे चन्द्र
। या शब्द अर्थसे अभिन्न है, वैसे ही ऋ ऌसे
अभिन्न है।

वृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते ।
द्रचन्द्रिकयोर्यद्वद्यथा वागर्थयोरपि ॥

(नन्दिकेश्वरः ११)

ीतमें ऌ 'काली' नामसे प्रसिद्ध है। वह आधुनिक
पाद है, जिसका भाव श्रृङ्गार है। अर्थात्
काम—

सोऽकामयत ।

केवल पाँच होते हैं। वैसे ही शैव सङ्गीतमें आधार
पाँच स्वरोंके हैं।

अकार एवं इकारका मिला हुआ रूप एकार है
अर्थात् शक्तिमें अकार अर्थात् ब्रह्मका प्रवेश एकार
है। इसलिये एकार ज्ञानस्वरूप है अर्थात् प
प्राप्तिका द्योतक है। टीकाकार अभिमन्यु एकारको—

सम्प्रज्ञानस्वरूपः प्रज्ञानात्मा स्वयं प्रविश्य तद्रू
इति ।

—कहते हैं।

सङ्गीतमें एकार मध्यम स्वर कहा जाता है।
रस शान्त रस है। चन्द्रमा उसकी मूर्ति है।

'ए ओ ङ् मपौ' (रुद्रडमरू

अकार एवं उकारका मिला हुआ रूप ओ
अकार अर्थात् परब्रह्मका उकार अर्थात् उनसे उत्पन्न
प्रवेश ओका स्वरूप है।

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति ।

'अ' निर्गुण रूप है और 'उ' सगुणरूप।
निर्गुण 'ओ' का रहस्य है। अतएव 'ओ' का
बनता है। निर्गुण-सगुणकी वास्तविक अद्वितीयता
ओकार है। उसका मूर्तरूप गणपति है।

सङ्गीतमें 'ओ' पञ्चम स्वर कहा जाता है। स्व
पाँचवाँ स्वर होनेसे एवं कारण-तत्त्व आकाशक
होनेसे पञ्चम स्वरका मूर्तरूप सूर्य है। पञ्चम स्वर सुन
जीव आनन्दपूर्ण हो जाते हैं।

विश्वमें दिव्यरूप (ऐ औ च्)

'ए' कारमें 'अ' कारका मिला हुआ रूप 'ऐ'
'ओ' कारमें 'अ' कारका मिला हुआ रूप 'औ'
अतः 'ए' अर्थात् ज्ञानसे 'अ' अर्थात् परब्रह्मका
ऐकार है, सङ्गीतमें 'ऐ' धैवत स्वर कहा जाता है।

'ध नि ऐ औच्' (रुद्र

धैवत स्वरके दो रूप होते हैं। एक रूप शान्त
रस और दूसरा रूप क्रियास्वरूप है।

'औ'कार अर्थात् 'ओ'में 'अ'का मिला हुआ
विश्वमें परमतत्त्वकी व्यापकताका द्योतक है।

षीदन्ति स्वराः सर्वे निषादस्तेन कथ्यते ।
(बृहद्देशी)

उपनिषदोंका तत्त्व है, वही निषाद कहा जाता है। उसका नाम भी है ।

ी तरह व्याकरण एवं सङ्गीतके स्वरोंके अर्थका होता है । अत्यन्त संक्षेपमें उसका रूप यहाँ बतलाया । फिर स्वरोंके बाद व्यञ्जनों एवं श्रुतियोंके अर्थ भी मिलते हैं । लेख-विस्तारके भयसे इसका विस्तार किया जा सकता । फिर भी इतनेसे विदित होगा कि विद्या अत्यन्त गम्भीर विद्या है। उसके अध्य विद्याओंका रहस्य खुल जाता है । यह गान्धर्व-विद्या संस्कृतिका एक अनुपम रत्न है । उसके तेजसे मन हो जाता है और प्राचीन भारतीय ऋषियोंकी अनुप की ओर अत्यन्त आदर एवं प्रेमसे हृदय भर जाता

प्राचीन भारतके वाद्ययन्त्र

(लेखक—विद्याभूषण पं० श्रीमोहनजी शर्मा, विशारद)

वीन वाद्यविद् लोगोंने वाद्ययन्त्रों—बाजोंको चार विभक्त किया है—१. तत अर्थात् तन्त्रीगत, २. आनद्ध चर्माबद्ध, ३. शुषिर अर्थात् रन्ध्रयुक्त और ४. घन ग्रातुनिर्मित ।

त्रीगत वाद्ययन्त्रका साधारण नाम वीणा है। 'संगीत-ग्रन्थमें इसके २९ प्रकार-भेद और उनका विस्तृत देया गया है । हम नीचे 'संगीतदामोदर'के अनुसार रकी वीणाओंका नामोल्लेख करते हैं—१. अलावणी, ीणा, ३. किन्नरी, ४. लघुकिन्नरी, ५. विपञ्ची, ६. ७. ज्येष्ठा, ८. चित्रा, ९. घोषवली, १०. जया, ११. १२. कुनजिका, १३. कूर्मी, १४. सारंगी, १५. ी, १६. त्रिशवी, १७. शतचन्द्री, १८. नकुलौष्ठी, वी, २०. ऊडंबरी, २१. पिनाकी, २२. निःशंक, २३. २४. गदावारणहस्त, २५. रुद्र, २६. स्वरमण्मल, लास, २८. मधुस्यन्दी और २९. घोण ।

के अतिरिक्त नारदकृत 'संगीतमकरन्दमें' १९ वीणाओंका उल्लेख आया है और सारंगदेवके वीणा केवल ११ प्रकारकी ही है ।

ाकी पोगरी अथवा वीणाका दण्ड खोखली लकड़ी-तन्त्री ताँत, सन, सूत आदि उपकरणोंकी सहायता-की जाती है । वीणा निर्माण करनेके लिये और भी न उपकरण है, जिसे अलाबु कहते हैं । अलावणी निर्माण-प्रणाली संगीतदामोदर ग्रन्थमें नीचे लिखे र्णित है—

ष्ठिकापरिधर्द्धिमध्यच्छिद्रेण संयुतः ।
प्रष्टिमितो दण्डः खादिरो वैणवोऽथवा ॥
ःकरभवानूर्ध्वे छत्रवल्याभिशोभितः ।
निवेश्य तुम्बिकां भद्रालाबुखण्डं निवेशयेत
द्वादशाङ्गुलविस्तारं दृढपक्वं मनोहरम
तुम्बिकावेधमध्येन दण्डच्छिद्रे तु निर्मिताम
अलाबुमध्यगां डोरीं कृत्वा स्वल्पान्तु काष्ठिकाम्
तथा संवेष्ट्य तन्मध्ये काष्ठिकां भ्रामयेत्ततः
यया स्यान्निश्चलालाबुर्बन्धश्च करभोपरि
पञ्चाङ्गुलिषु संत्याज्यालाबुं स्वल्पाञ्च बन्धयेत
केशान्तनिर्मिता पट्टमयी सूत्रकृताथवा
समा सूक्ष्मा दृढा तत्र तन्त्री देया विचक्षणैः
एतल्लक्षणसंयोगादलावणी प्रकीर्तिता

दूसरे दो वाद्ययन्त्र बनानेके सम्बन्धमें भी संगी ग्रन्थोंमें विशद विवरण मिलता है ।

प्राचीन कालमें चर्माच्छादित वाद्यको आनद्ध या वाद्य कहते थे । संगीतविषयक विविध ग्रन्थोंमें इस तरहके भेदोंका उल्लेख पाया जाता है । आनद्ध वाद्य से कुछेकके नाम निम्न प्रकार हैं—

१ मुरज, २ पटह, ३ ढक्का, ४ विश्वक, ५ दर्पव घन, ७ पणव, ८ सरुहा, ९ लाव, १० जाहव, ११ त्रिवर करट, १३ कमठ, १४ भेरी, १५ कुडुक्का, १६ हुडुव झनसमुरली, १८ झल्ली, १९ ढुक्कली, २० दौंडी, २ २२ डमरू, २३ ढमुकि, २४ मड्डु, २५ कुण्डली, २६ २७ दुन्दुभी, २८ अङ्क, २९ मर्द्दल, ३० अणीकस्थ

इनमें दुन्दुभी-भेरी प्रभृति रणवाद्य हैं। संगीतश भरत आदिके मतानुसार मर्द्दल-मृदङ्ग ही सर्वोत्कृ हैं । शास्त्रमें मर्द्दलकी निर्माणप्रणालीके सम्बन्धमें है—इसका मध्यभाग स्थल और दोनों मुँह चर्माच्छादि

१२, १३ अंगुल तथा दक्षिण तरफके मुँहका व्यास भाध अंगुल कम होता है। खैरकी लकड़ीका मर्दल दूसरी जातिकी लकड़ीका निकृष्ट होता है। रक्त- लकड़ीसे तैयार किये गये मर्दलसे बहुत ही गम्भीर कलती है। भस्म, गेरू, मिट्टी, चावलका माँड, ृतिके मेलसे स्याही नामक एक प्रलेपविशेष तैयार लके दक्षिण मुँहपर लेपन करते हैं और बायें मुँहपर जाती है। सब प्रकारके वाद्ययन्त्र मर्दल या सहयोगसे बजाये जानेपर बहुत ही सुशोभन ो हैं।

ुक्त वाद्य वंशी आदिको सुषिर कहा जाता है। योंने अनेक प्रकारके सुषिर बताये हैं। उनमें ाम इस प्रकार हैं—

शी, २ प्यारी, ३ मुरली, ४ माधुरी, ५ तित्तिरी, ६ ;, ७ तोरही, ८ कक्का, ९ भृङ्गीका, १० स्वरनाभि, १२ कृपालिका।

र वाद्ययन्त्रोंमें वेणु खोखली लकड़ी, रक्तचन्दन, न, हस्तिदन्त, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह और स्फटिक नायी जाती है।

ो वर्तुल, सरल और पर्वदोषरहित होती है तथा र्भरन्ध्र कनिष्ठ अङ्गुलिके तुल्य होता है। इसके दो अंगुलके अन्तरपर स्थित फूत्कार-रन्ध्रसे ५ अंगुलके ७ छेद और इन ७ छेदोंमें परस्पर प्रायः दो व्यवधान होना आवश्यक है। इन सात छेदोंमेसे छेद छोटे-छोटे बीजके बराबर होता है।

ाङ्ग मुनिने महानन्द, नन्द, विजय और जय—इन चार वंशियोंको उत्तम कहकर निर्देश किया है और उनकी गाली ऊपर कही हुई वंशीकी निर्माणप्रणालीसे भिन्न बतायी है।

ीके फूत्कार-छिद्रपर ओठ रखकर वंशी बजानेकी । निबिड़ता, प्रौढ़ता, सुस्वरत्व, शीघ्रता एवं -ये फूत्कारके ५ गुण हैं। और शीत्कार, बहुलता, स्तब्धता, विस्वर, स्फुटितस्वर, लघुस्वर, अमधुर ६ फूत्कारके दोष हैं।

वृथावादन, प्रयोगबाहुल्य एवं अल्पता वादक-वालेके दोष हैं और स्थान तथा लयकी अभिज्ञता निपुणता, स्फुटस्वर, शीघ्रहस्तता बजानेवालेके गुण क

प्रमुक्ति, बद्धमुक्ति, युक्ति, सुस्थान, सुस्वर अंगुलिसारण—अंगुली सरकाना क्रियाके गुण हैं।

करताल आदि धातुमय बाजोंको घनवाद्य क घनवाद्य भी कई तरहके हैं। उनमेंसे कुछेकके न देखिये—

करताल, कांस्यवन, जयघंटा, शुक्तिका, कंठिका, पट्टाघोष, घर्घर, झंझताल, मञ्जीर, कर्तरी, उष्कूक करतालके विषयमें संगीतशास्त्रमें इस प्रकार उल्लेख

त्रयोदशाङ्गुलव्यासौ शुद्धकांस्यविनिर्मितं
मध्यमुखौ स्तनाकारौ तन्मध्ये रज्जुगुम्फितौ
पद्मिनीपत्रसदृशौ कराभ्यां रज्जुयन्त्रितं
करतालावुभौ वाद्यौ ने वाद्यपाटे झङ्कृति

वाद्यविद्याविशारदोंने वाद्यके २० प्रकारके उल्लेख किया है। उनके नाम—१ यति, २ उभ, ३ उ ४ अवच्छेद, ५ जोड़नी, ६ चण्डनी, ७ पद, ८ स झंकार, १० पैसार, ११ तुटकु, १२ ऊस्वर, १३ दे मलप, १५ मलपांक, १६ प्रहरण, १७ अन्तरा, १८ १९ यवनिका, २० पुष्पाञ्जलि।

किंतु 'संगीतदामोदर' ग्रन्थमें केवल १२ उल्लेख देखा जाता है। उनमेंसे आठका नाम ऊपर तालिकामें दिये गये प्रबन्धोंसे भिन्न है। हम 'संगीत से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं—

यतिरोढव्यवच्छेदो गजरो ।रूपकं ध्रुव
गनपः सारिगो नीचनादश्च कथितस्तथ
·······प्रहरणं वृन्दनञ्च प्रबन्धा द्वादश स्मृत

प्रबन्धभेदसे ही बाजोंके विविध स्वरोंकी उत्पत्ति

काम, क्रोध, लोभकी प्रबलता

भारतीय प्राचीन क्रीडाएँ

(लेखक—श्रीहरिदत्तजी शास्त्री एम्० ए०, वेदान्त-व्याकरणाचार्य)

कृति तथा सभ्यता—ये दोनों शब्द बड़े ही संग्रथित
का परस्पर अभेद्य तथा अच्छेद्य सम्बन्ध है—संस्कृति
तो सभ्यता शरीर। अच्छे-अच्छे गुणोंको आत्मामें
करना संस्कृति कहाता है तथा शरीर या पाणि-
अङ्गोंसे उसकी अभिव्यक्ति सभ्यता कहाती है। आज-
पय महानुभावोंका विचार है कि हमारे यहाँ Polo,
s, Football, Cricket आदि खेल नहीं
गरे पूर्वज इन खेलोंसे परिचित ही थे। इस वस्तु-
प्रकाश डालना अपना कर्तव्य समझ इस लेखका
केया है—

द्भागवतमें यह लिखा मिलता है—

तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने।
(१० । १८ । १६)

यतया क्रीडाओंके चार भेद किये जा सकते हैं।
श्रेणीमें वे क्रीडाएँ आ सकती हैं, जो आत्ममनोवि-
ज़ेली जाती थीं। २—दूसरी श्रेणीमें वे क्रीडाएँ रक्खी
हैं, जो प्रेक्षकोंकी प्रसन्नताके लिये की जाती थीं।
क्रीडाएँ धर्मोत्सवादिप्रधान थीं तथा ४—चतुर्थ
क्रीडाएँ मिश्रित होती थीं—जिनके प्रकारविषयमें भी
। कुछ क्रीडाओंका परिचय प्राप्त कीजिये।

१. कृत्रिम वृषभक्रीडा

जिस क्रीडामें बालक बैलका-सा कपड़ा ओढ़कर या सिंह-
र्म ओढ़कर लड़ते थे तथा शब्द करते थे, वह
षभक्रीडा' कहाती है—इसमें पशु-पक्षियोंकी बोलियाँ
ी शामिल है।

२. निलयनक्रीडा

(क) जहाँ एक बालक छिप जाय तथा दूसरा ढूँढ़े।
छ चोर बनते तथा कुछ सिपाही बनकर उन्हें
।

( ) बालक तीन श्रेणियोंमें विभक्त हो जाते हैं—
पालक, दूसरा पशुचौर, तीसरा मेषायित। मेष
नते हुए बालकको पशुचौर उठाकर ले जाता है।

३. मर्कटोत्प्लवनक्रीडा

—जिसमें बंदरकी तरह पेड़ोंपर चढ़कर बालक
अनेकों वृक्षोंपर चढ़ते हुए छिपते फिरते हैं। इ
भागवतमें वर्णन मिलता है।

४. शिक्यादि-मोषणक्रीडा

—जिसमें एक गेंद-जैसी वस्तु जिसकी है, उसे
अन्योंके पास फेंक दी जाती है तथा स्वामी दे
जाता है। जब स्वामी थककर अपनी चीज़ माँगता है
उसे दे दी जाती है।

५. अहमहमिका-स्पर्शक्रीडा

—जिसमें दूर बैठे बालकको कौन पहले छू सक
प्रण हो।

६. भ्रामणक्रीडा

—जिसमें बालक एक दूसरेका हाथ पकड़कर
उठते-बैठते हैं।

७. गर्तादिलङ्घनक्रीडा

इस खेलमें किसकी कितनी दूरतक कूदनेकी
है—यह परीक्षा की जाती है।

८. बिल्वादिप्रक्षेपणक्रीडा

—जिसमें बेल या गेंद आदि इस प्रकार फेंके
रास्तेमें ही टकरा जायँ।

९. अस्पृश्यत्वक्रीडा

इस खेलमें एक छूना चाहता है, दूसरा बचना च

१०. नेत्रबन्धक्रीडा

—(क) जिसमें पीछेसे आकर आँख मूँदे
नेत्रोंवाला बाँधनेवालेको पहचान ले।

(ख) या नेत्र बंद करनेपर छोड़ा हुआ बाल
हुए बालकोंका पता लगाता है।

(ग) या जहाँपर बँधे नेत्रवाले बालकको अन्
छू-छूकर जाते हैं तथा बद्धनेत्र उन्हें पकड़नेका यत्न करत

११. स्पन्दान्दोलिकाक्रीडा

१२. नृपक्रीडा

जिसमें एकको राजा बनाकर अन्य लोग मन्त्री आदि ार्य करें ।

१३. हरिणाक्रीडनक

गकी तरह उछलते हुए एक दूसरेसे आगे निकलनेकी ा।

१४. वाह्य-वाहकक्रीडा

जेसमें विजेता पराजितके कंधेपर चढ़कर चले ।

१५. देव-दैत्यक्रीडा

जेसमें कुछ व्यक्ति देव तथा कुछ दैत्य बनकर धूल ा-उड़ाकर खेलते हैं—जैसे शिवाजी खेला करते थे ोंको पराजित किया करते थे ।

१६. जलक्रीडा

क) जिसमें पेड़ोंपरसे कूदकर जलमें गिरते हैं एक दूसरेपर पानी उछालते हैं।

) यह क्रीडा स्त्री-पुरुषोंमें भी होती थी, जिसका वि, माघ और कालिदासने किया है ।

१७. कन्दुकक्रीडा

(क) जिसमें गेंद ऊपर फेंकी जाती है और दूसरा उसे लेता है। यदि ग्रहण नहीं करता तो वह पहले फेंकने-धेपर चढ़कर फिर फेंकता है तथा अन्य गेंदको गिरनेसे पूर्व ही ग्रहण कर लेते हैं।

ा) यह खेल बालक या कन्या सभी खेलते हैं। तपर गेंद मारकर या जमीनपर गेंद मारकर दबोचना आ जाता है । यही आजकल Volley Ball ।

१८. वनभोजनक्रीडा

लमें जाकर खेलना तथा वहींपर बाटी आदि बना-ा—जिसे आजकल Picnic 'पिक्निक्' कहते हैं ।

१९. रासक्रीडा

रेतीले मैदानमें श्रीकृष्णलीलाका अनुकरण किया जैसे आजकल रामलीला होती है । गुजरातका कुछ ऐसा ही है ।

२०. छालिक्यक्रीडा

ं खेलनेवाले मस्त होकर होलीके दिनोंकी तरह गाते- इसका वर्णन पुराणोंमें मिलता है।

२१. नियुद्धक्रीडा

—जिसमें घूँसे मारकर या कुश्ती लड़कर खेल जाता है। जरासन्ध और भीमके बीच यह क्रीडा हुई

२२. नृत्यक्रीडा

—जिसमें कुछ नाचें तथा कुछ ताली बजा लड़के या लड़कियाँ मिलकर या अलग-अलग खेलते

२३. अक्षक्रीडा

यह क्रीडा 'महाभारत'का कारण हुई—इसका निषेध मिलता है ।

२४. मृगयाक्रीडा

यह क्रीडा 'आखेट'के नामसे राजाओंमें वि प्रसिद्ध थी ।

२५. पक्षिग्रहणक्रीडा

—जिसमें श्येनकी तरह पक्षियोंका पकड़ना जाता था ।

२६. मत्स्यक्रीडा

मछली पकड़नेके प्रकार राजपुत्र नावपर चढ़कर स

२७. चतुरङ्गक्रीडा

—जिसे शतरञ्ज, चौपड़ या 'चाँदमारी'के नाम कल पुकारते हैं ।

२८. शालभञ्जिकाक्रीडा

—जिसे 'कठपुतलियोंका खेल' या गुड़ियों कहते हैं ।

२९. लतोद्वाहक्रीडा

पेड़ एवं बेलको पालकर उनका विवाह रचाने जैसा शकुन्तलाने किया था। तुलसी विवाह तो धार्मि रूपमें किया जाता है ।

३०. वीटाक्रीडा

गिल्ली-डण्डेका खेल - इसका महाभारतमें देखिये आदिपर्व (१३१ । १७)

३१. कनकशृङ्गकोणक्रीडा

'पिचकारी चलाना' ।

३२. विवाहक्रीडा

जब वर विवाह करने चला जाय, तब पीछे स्त्रियाँ वर या वधू बनकर खेल करती हैं, जिसे कहते हैं ।

३३. हल्लीशक्रीडा

एक लड़की, फिर लड़का, फिर लड़की, फिर

र बैठकर जो मण्डलाकार घूमते हैं, इसे यह क्रीडा है ।

३४. गानकूर्दनक्रीडा

-जिसमें कुछ गायें तथा कुछ कूदें—

३५. नौक्रीडा

-जो बनारसमें दशहरेपर होती है—लोग नौकाएँ ।

३६. जलक्रीडा

ामें बैठकर भोजनादि करना—जैसे दुर्योधन जल-ाद्याको जानकर करता था ।

३७. वनविहारक्रीडा

क्रीडामें फूलोंका चुनना, माला बनाना तथा भोजन मग्रीके बनाना आदि आता है । इसका दूसरा नाम ाय' क्रीडा है ।

३८. आमलकमुष्ट्यादिक्रीडा

ो बंद करके पूछना, न बतलानेपर या गलत बतलाने-ता उसे मुष्टि-प्रहारसे पराजित करता था ।

३९. दर्दुरप्लावक्रीडा

ढकोंकी तरह कूद-कूदकर चलना ।

४०. नाट्यक्रीडा

ाक खेलना ।

४१. अलातचक्रक्रीडा

ामी' जलाकर उसे घुमाना तथा आकाशमें उससे खना ।

४२. गदाक्रीडा

ावटी 'गदायुद्ध' करना; इसी प्रकार 'धनुःक्रीडा' ीडाएँ भी हैं ।

४३. अशोकपादप्रहारक्रीडा

'किसी पेड़को' सजाना तथा उसे फिर सींच बढ़ाना—और यह कहना कि मेरी जूतियाँ खाकर है । इसका वर्णन भी कालिदासने किया है ।

४४. चित्रक्रीडा

विरहादि अवस्थामें यक्षकी तरह चित्र बनाना, ing करना, ड्राइङ्ग (drawing) करना आदि

४५. काव्यविनोदक्रीडा

जिसमें 'बिन्दुच्युतक', 'मात्राच्युतक', 'समस 'प्रहेलिका', 'खड्गबन्ध', 'पद्मबन्ध' आदि काव्यों आते हैं । आज-कलकी Puzzles भी इसीमें आ

४६. वाजिवाह्यक्रीडा

घोड़ोंपर चढ़कर 'गेंद' खेलना । तुलसी गीतावलीमें इसका वर्णन किया है ।

४७. करिवाह्यक्रीडा

हाथीपर चढ़कर गेंद खेलना ।

४८. मृगवाह्यक्रीडा

हरिणके रथपर चढ़कर या 'बारहसिंगे'के रथपर दौड़ते हुए व्यक्तिको छूना ।

४९. गोपक्रीडा

यह 'रासक्रीडा'के अन्तर्गत है ।

५०. घटक्रीडा

सिरपर अनेकों घड़ोंको रखकर चलना, अङ्गारोंपर बाँस लेकर चलना, एक रस्सीपर चलना—ये सब घटक्रीडाके ही अन्तर्गत हैं । पाठकोंके मनोविनोदार्थ क्रीडा-संस्कृतिके प्रथम प्रकारका संक्षेपमें हमने वर्णन कि

एक रामतें मोर भल

रामु मातु, पितु, बंधु, सुजनु, गुरु, पूज्य, परमहित ।
साहेबु, सखा, सहाय, नेह-नाते पुनीत चित ॥
देसु, कोसु कुलु, कर्म, धर्म, धनु, धामु, धरनि, गति ।
जाति-पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति ॥
परमारथु, स्वारथ, सुजसु, सुलभ रामतें सकल फल ।
कह तुलसिदासु, अब, जब-कबहुँ एक रामतें मोर भल ॥

(कवितावली)

आर्योंके अस्त्र-शस्त्र

(लेखक—श्रीअशोकनाथजी शास्त्री)

ज हम यूरोपके अस्त्र-शस्त्र देखकर चकित और हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि ये सब नये र हैं । हमें अपनी पूर्वपरम्पराका ज्ञान नहीं है । आर्यावर्तके आर्यपुरुष अस्त्र-शस्त्रविद्यामें निपुण थे । अध्यात्मज्ञानके साथ-साथ आततायियों और दुष्टोंके लेये सभी अस्त्र-शस्त्रोंकी भी सृष्टि की थी । आर्योंकी धर्म-स्थापनामें सहायक होती थी, न कि घातक । ाल भयंकर बाणोंके आगे बम-फम क्या चीज हैं । के विस्फोटक बम और गैसोंके समान उस कालमें भी ारा अग्निवर्षा होती थी । पैराशूट भी थे, सभी कुछ ा-विद्या तो भारतमें पिछले समयतक रही । रामायण भारतमें हम जो पढ़ते आये हैं, आज वर्तमान प्रगति हमारी उस उन्नतिका एक अंश भी नहीं ।

ीनकालमें जिन अस्त्र-शस्त्रोंका उपयोग होता था, उनका । प्रकार है—(अ) अस्त्र उसे कहते हैं, जिसे मन्त्रोंके से फेंकते हैं । वे अग्नि, गैस और विद्युत् तथा यान्त्रिक चलते हैं । (ब) शस्त्र खतरनाक हथियार हैं, ारसे चोट पहुँचती है और मृत्यु होती है । ये हथियार पयोग किये जाते हैं ।

ोंको दो विभागोंमें बाँटा गया है—

) वे आयुध जो मन्त्रोंसे चलाये जाते हैं—ये दैवी क शस्त्रपर भिन्न-भिन्न देव या देवीका अधिकार ौर मन्त्र-तन्त्रके द्वारा उसका संचालन होता है । न्हें दिव्य तथा मान्त्रिक अस्त्र कहते हैं । इन बाणोंके इस प्रकार हैं—

आग्नेय—यह विस्फोटक बाण है । यह जलके समान ाकर सब कुछ भस्मीभूत कर देता है । इसका र्जन्य है ।

पर्जन्य—इस बाणके चलानेसे कृत्रिम बादल पैदा वर्षा होती है, बिजली तड़पती है और तूफान ।

वायव्य—इस बाणसे भयङ्कर तूफान आता है और छा जाता है ।

न्नग—इससे सर्प पैदा होते हैं । इसके प्रतिकारस्वरूप

५. गरुड़—इस बाणके चलते ही गरुड़ उत्पन्न जो सर्पोंको खा जाते हैं ।

६. ब्रह्मास्त्र—यह अचूक विकराल अस्त्र है । श करके छोड़ता है । इसका प्रतिकार दूसरे ब्रह्मास्त्रसे सकता है, अन्यथा नहीं ।

७. पाशुपत—इससे विश्व नाश हो जाता है । महाभारतकालमें केवल अर्जुनके पास था ।

८. वैष्णव—नारायणास्त्र—यह भी पाशुपतवे विकराल अस्त्र है । इस नारायण-अस्त्रका कोई प्र नहीं है । यह बाण चलानेपर अखिल विश्वमें कोई श मुकाबला नहीं कर सकती । इसका केवल एक ही है और वह यह है कि शत्रु अस्त्र छोड़कर नम्रतापूर्वक अर्पित कर दे । कहीं भी हो, यह बाण वहाँ जाक करता है । इस बाणके सामने झुक जानेपर यह अप नहीं करता ।

इन दैवी बाणोंके अतिरिक्त ब्रह्मशिरा और एका बाण हैं । आज यह सब बाण-विद्या इस देशके लिये घटना बन गयी । महाराज पृथ्वीराजके बाद बाण सर्वथा लोप हो गया ।

(२) वे शस्त्र हैं, जो यान्त्रिक उपायसे फेंके ये अस्त्रनलिका आदि हैं । नाना प्रकारके अस्त्र इसके आते हैं । अग्नि, गैस, विद्युत्से भी ये अस्त्र छोड़े प्रमाणोंकी जरूरत नहीं है कि प्राचीन आर्य गोल और भारी तोपें, टैंक बनानेमें भी कुशल थे । इन लिये देवी और देवताओंकी आवश्यकता नहीं प भयङ्कर अस्त्र हैं और स्वयं ही अग्नि, गैस या विद्युत् चलते हैं ।

यहाँ हम कुछ अस्त्र-शस्त्रोंका वर्णन करते हैं, प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थोंमें उल्लेख है ।

१. शक्ति—यह लंबाईमें गजभर होती है, उस बड़ा होता है, उसका मुँह सिंहके समान होता है औ बड़ी तेज जीभ और पंजे होते हैं । उसका रंग नी है और उसमें छोटी-छोटी घंटियाँ लगी होती हैं ।

तोमर—यह लोहेका बना होता है। यह बाणकी शकल-
ै और इसमें लोहेका मुँह बना होता है। साँपकी तरह
। होता है। इसका धड़ लकड़ीका होता है। नीचेकी
लगाये जाते हैं, जिससे वह आसानीसे उड़ सके।
डेढ़ गज लंबा होता है। इसका रंग लाल होता है।

पाश—ये दो प्रकारके होते हैं, वरुणपाश और
पाश; इस्पातके महीन तारोंको बटकर ये बनाये जाते
सिर त्रिकोणवत् होता है। नीचे जस्तेकी गोलियाँ
। हैं। कहीं-कहीं इसका दूसरा वर्णन भी है। वहाँ
कि वह पाँच गजका होता है और सन, रूई, घास
के तारसे बनता है। इन तारोंको बटकर इसे
।

ऋष्टि—यह सर्वसाधारणका शस्त्र है, पर यह बहुत
। कोई-कोई उसे तलवारका भी रूप बताते हैं।

गदा—इसका हाथ पतला और नीचेका हिस्सा वजनदार
इसकी लंबाई जमीनसे छातीतक होती है। इसका
मनतक होता है। एक-एक हाथसे दो-दो गदाएँ
जाती थीं।

मुद्गर—इसे साधारणतया एक हाथसे उठाते हैं। कहीं
या है कि वह हथौड़ेके समान भी होता है।

चक्र—दूरसे फेंका जाता है।

वज्र—कुलिश तथा अशनि—इसके ऊपरके तीन भाग
बने होते हैं। बीचका हिस्सा पतला होता है।
बड़ा वजनदार होत. है।

त्रिशूल—इसके तीन सिर होते हैं। इसके दो रूप

. शूल—इसका एक सिर नुकीला, तेज होता है।
भेद करते ही प्राण उड़ जाते हैं।

. असि—तलवारको कहते हैं। यह शस्त्र किसी रूपमें
ालतक उपयोग होता रहा। पर विमान, बम और
आगे उसका भी आज उपयोग नहीं रहा। पर हम
कनेवाले हथियारको भी भूल गये। लकड़ी भी हमारे
, तब तलवार कहाँसे हो।

२. खड्ग—बलिदानका शस्त्र है। दुर्गाचण्डीके सामने
न रहता है।

३. चन्द्रहास—टेढ़ी तलवारके समान वक्र कृपाण है।

१५. मुशल—यह गदाके सदृश होता है, जो दूरसे
जाता है।

१६. धनुष—इसका उपयोग बाण चलानेके लिये हो

१७. बाण—सायक, शर और तीर आदि भिन्न
नाम हैं। ये बाण भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। हमने
कई बाणोंका वर्णन किया है। उनके गुण और कर्म
भिन्न हैं।

१८. परिघ—एकमें लोहेकी मूठ है। दूसरे रूप
लोहेकी छड़ी भी होती है और तीसरे रूपके सिरेपर व
मुँह बना होता है।

१९. भिन्दिपाल—लोहेका बना होता है। इसे
फेंकते हैं। इसके भीतरसे भी बाण फेंकते हैं।

२०. नाराच—एक प्रकारका बाण है।

२१. परशु—यह छुरेके समान होता है। भगवान
रामके पास अक्सर रहता था। इसके नीचे लोहे
चौकोर मुँह लगा होता है। यह दो गज लंबा होता है

२२. कुण्टा—इसका ऊपरी हिस्सा हलके समान है
इसके बीचकी लंबाई पाँच गजकी होती है।

२३. शङ्कु बर्छी—भाला है।

२४. पट्टिश—एक प्रकारका कुल्हाड़ा है।

इसके सिवा वशि तलवार या कुल्हाड़ाके रूपमें है

इन अस्त्रोंके अतिरिक्त अन्य अनेक अस्त्र हैं, जि
यहाँ वर्णन नहीं कर सके। भुशुण्डी आदि अनेक
वर्णन पुराणोंमें है। हममें जितना स्वल्प ज्ञान है
आधारपर उन सबका रूप प्रकट करना सम्भव नहीं।

आज हम इन सभी अस्त्र-शस्त्रोंको भूल ग

---

* लगभग १५ वर्ष पहले बस्ताके प्रज्ञाचक्षु प० श्रीध
के दर्शन हुए थे। उन्होंने बतलाया था कि धनुर्वेद, धनुष
और धनुष-प्रदीप—तीन प्राचीन ग्रन्थ उन्हें याद हैं, इन
प्रत्येककी श्लोक-संख्या ६०००० है। अन्य ग्रन्थोंके साथ इन
उन्होंने एक सूची भी लिखवायी थी, जो सम्भवतः बनारसके
और सेशन जज श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव्यके पास है। इसमें
से शक्तिनिर्माणका भी वर्णन है। यह विषय संवत् १९९५ में
स्वर्गीय प्रो० श्रीरामदासजी गौड़के 'हिंदुत्व' नामक ग्रन्थमें

श्रीरामके हाथमें धनुष-बाण और भगवान् श्रीकृष्णके
,दर्शन चक्र, महादेवके हाथमें त्रिशूल और दुर्गाके
ास्त्र देखकर भी उनके भक्त बनते हैं। पर निर्बल,
ार भीरु पुरुष क्या भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण और
भक्त बन सकते हैं ? क्या रामायण, गीता और दुर्गा-
केवल पाठ करनेके ही ग्रन्थ हैं ? क्या इन अमर ग्रन्थों-
। हमें वीर, शक्तिशाली और अस्त्र-शस्त्रधारी बननेकी
हीं करते ? सच तो यह है कि हम भगवान्‌को भूल
अपने धर्म-ग्रन्थोंको भी। हम भगवान्‌को पुकार-
बुलाना चाहते हैं। पर हम कर्तव्यहीन निर्बलोंके
पास भगवान् कैसे आयेंगे। वे आये थे महाभार
उन्होंने अर्जुनको गीतामृतके द्वारा रणमें जूझ पड़
उद्यत किया था। आवश्यकता है कि रणमें क
दिखानेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र, सुदर्शनचक्रधारी
श्रीकृष्ण और महामाया दुर्गाको हम कभी न भूलें। ए
बलशाली बनकर आर्यधर्म और आर्यदेशकी रक्षा कर
हों। यदि आज हम न सम्हले, तो हमारे विनाशका अ
भारतमाता आशामय नेत्रोंसे हमारी ओर निहार रही है
पुत्र, ऋषियोंकी सन्तानें क्या एक बार फिर उठ
होंगी। 'मानव-धर्म'

यातायातके प्राचीन वैज्ञानिक साधन

(लेखक—अनुसन्धानकर्ता श्रीशिवपूजनसिंहजी कुशवाहा 'पथिक' सिद्धान्तशास्त्री, साहित्यालङ्कार)

ान समयमें रथ, यान, धूम्रशकट (रेलगाड़ी), वायु-
जलयान प्रभृति यातायातके जो कुछ भी साधन हैं,
का वर्णन प्रायः वेदोंमें पाया जाता है। प्राच्य एवं
विद्वान् भी इस मतसे सहमत हैं। यहाँ इसके कुछ
दिये जाते हैं—

—रथमें वायुका जोड़ना—

ो वायुं रथयुजं कृणुध्वम्' (ऋ० ५। ४१। ६)

ुको तुम अपने रथमें जुड़नेवाला बनाओ अर्थात् ऐसा
ो कि जिससे वायु तुम्हारे रथका सञ्चालन करे[1]।'

ला (Three-storeyd) रथ—

त्रिपृष्ठे त्रिबन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे।
······ऋषीणां सप्त धीतिभिः॥
(ऋ० ९। ६२। १७)

। ऋषि अपनी बुद्धियोंद्वारा उस (पवमान) को
ानेके लिये तीन बन्धुरोंवाले एवं तीन पृष्ठों—तलोंवाले
ते हैं[2]।

द्रथ— बिजलीसे चलनेवाले रथ—

**ता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स
ुद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो**

(ऋ० ३। १४। १)

'वह मस्त करनेवाला होता सभी ज्ञानोंका अधि
वह सच्चा याज्ञिक है, वह सर्वाधिक क्रान्तदर्शी वेधा।
जो अतिशय बलसम्पन्न होकर, प्रकाशमय अग्नि
पालक बनकर, विद्युद्रथवाला होकर पृथ्वीमें रहता है

यहाँ 'विद्युद्रथ' निर्माण करनेकी प्रशंसा की गय

चतुर्वेद-भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा वि
मीमांसातीर्थ लिखते हैं—······(विद्युद्रथः)
चलनेवाले रथका स्वामी[1]।

अनश्वरथ—

**अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः। तेना
चाकन। (ऋ० १। १२०। १०)**

'शक्तिशालियोंको इधर-उधर ले जानेवाला रथ
(घोड़े आदिसे रहित) है। उससे भी मैं बहुत चमत

पं० जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार मीमांसा
(अनश्वरथम्) बिना अश्वके चलनेवाले रथ, विमान
गाड़ी आदि रमण करनेयोग्य आनन्दप्रद यान। इस
विमान, मोटरगाड़ीका भी सङ्केत है।

त्रिचक्र-रथ (Tri-Cycle)—

**त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातम
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीर**
(ऋ० १। ११८

ाभातक ऐसा रथ बन नहीं पाया है। —लेखक
ो तलोंवाली बसें और नौकाएँ हैं, तीन तलोंवाली अभी
।······लेखक

१. ऋग्वेदसंहिता-भाषाभाष्य, तृतीय खण्ड, प्रथमावृत्ति,

विद्वान् शिल्पीजनो ! आप तीन प्रकारके बन्धनोंसे
ीन प्रकारके आवरणोंसे युक्त, तीन घेरोंवाले, उत्तम
के, तीन चक्रोंवाले रथसे सीधे जाओ । गौओंको
रो, अश्वोंकी वृद्धि करो, हमारे वीरोंको बढ़ाओ ।'

ाँ रथके साथ 'त्रिचक्र' विशेषण स्पष्ट तीन चक्रोंवाले
ऊ अथवा अन्य किसी तीन पहियोंवाले अभीतक
कृत यानका सङ्केत है ।

ैक और महाकाव्य-कालके योद्धा पदानुसार रथी,
और अतिरथी कहलाया करते थे ।

भारतकालके रथ सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों—बाण, भाला,
ण्ड, काष्ठके दण्ड, तोमर, रस्सी, यन्त्र, ढाल, लोहेके
ड्ग, छुरी, कटार, शूल, मुद्गर आदिसे परिपूर्ण होते
को बाहरसे व्याघ्रादिके चर्मसे मढ़ दिया जाता था ।
ूप एवं वर्षा आदिसे सुरक्षित रखनेके लिये ऊपरसे
जाता था । प्रत्येक रथको खींचनेके लिये सामान्यतः
ह हुआ करते थे । कभी-कभी रथको खींचनेके लिये
भी काम लिया जाता था[1] ।

सोनेकी झालर तथा मणियोंसे खूब सजे-धजे होते
अथवा किलोंकी तरह चारों ओरसे उनकी सुरक्षाका
न्ध रहता था, जिससे शत्रुगण उनपर आसानीसे
न कर सकें[2] ।

ाणके पास एक यान (यन्त्रयान) भी था, जो भूमि-
चलता था—

ृत्स्वखरसंयुक्तो रथो मेघसमस्वनः ।
(वा० रा० युद्ध० ६९ । ९)

ाणके पास सहस्र खरोंसे युक्त मेघके समान गर्जन
ा रथ था ।

र (Car) का चलाना—

े प्रासिष्यदक्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारं
स्पृहम् । (ऋ० ९ । १४ । १)

दी या समुद्रकी तरङ्गपर स्थित क्रान्तदर्शी ज्ञानी
अत्यन्त स्पृहणीय कारको समुद्रकी लहरोंपर धारण
आ सब ओर चलाता है ।'

ाजकलका 'कार' (Car) शब्द [वायुशकट,
हवागाड़ी, मोटर] वैदिक है । 'कार' का अर्थ
होता है[1] ।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्
(ऋ० ४ । ३

इसका अर्थ जयपुरके पं० मधुसूदन झा 'विद्याव
करते हैं—'बिना घोड़ोंका तीन पहियोंवाला रथ, जो अ
उड़ सके—हे ज्ञानियो ! वह प्रशंसाके योग्य है[2] ।'

ऋभुओंने एक ऐसे रथका निर्माण किया था,
जा सकता था ।

(ऋ० १ । २० । ३; १० । ३९ । १२;
२८ और १२९ । ४; ५ । ७५ । ३ और ७७ ।
२९; १ । ३४ । १२ और ४७ । २; १ । ३४ ।
११८ । १-२ तथा १५७ । ३)[3]

(वायुयान) विमान—ऋग्वेदसंहिता १ । ८ ।
१ । ८ । ८, ९, ५, १; १ । ३ । ४ । २; १ ।
१; १ । २ । ३४ । ३; १ । ६ । ९ । ४; २ । ३
१, २में नौ-विमानादि-विद्याका स्पष्ट वर्णन है ।[4]

ऋ० १ । ११६ । ३; १ । ११६ । ४; १ ।
६ । ६२ । ६; १ । ११७ । १४; १ । ११७ ।
२५ । ७ में वायुयानका वर्णन है ।[5]

क्रीडं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथे शुभ
······कण्वा अभिप्रगाय

यह मत ऋग्वेदका है । इसपर आचार्य देवपा
भाष्य है, जो कि लौगाक्षिगृह्यसूत्रोंके भाष्यके प्रस
हुआ है । आचार्य देवपालजी इस मन्त्रके सम्बन्धमें लि

1. महाभारत, उद्योगपर्व १५५ । ४—१२
2. महाभारत, उद्योगपर्व १५५ । १५—२३

१. देखिये पं० जयदेवशर्मा विद्यालङ्कारकृत 'ऋ
भाषा-भाष्य', षष्ठ खण्ड, प्रथमावृत्ति पृष्ठ ४३ ।

२. 'इन्द्रविजय' पृष्ठ ११४।

३. विस्तारपूर्वक जाननेके लिये देखिये—'वेदोंमें विम
लेख (लेखक—डा० बालकृष्णजी एम्०ए०, पी-एच्०डी०, ए
ई० एस्० का मासिक 'गङ्गा' का 'वेदाङ्क', पृष्ठ २०५

४. देखिये ऋषि दयानन्दजीकृत 'ऋग्वेदादिभा
नौ-विमानादि-विद्याविषयप्रकरण ।

५. देखिये ऋग्वेद-सायणभाष्य तथा मासिकपत्र
विज्ञान', अजमेर, वर्ष १, दिसम्बर १९३२ ई०,
पृष्ठ ९८ से १०४ तक श्रीप्रो० विश्वनाथ विद्यालङ्कार
नौका' शीर्षक लेख । —लेखक

मरुतः वः युष्माकं सम्बन्धि शर्धः बलं क्रीडं अस्मान्। कणतिः शब्दकर्मा, कणन्तीति कण्वा यूयमेव मारुतं मरुतां सम्बन्धि शर्धः प्रगायत यादृशं तदिति। कीदृशं शर्धः, रथे शुभं रथ-ेनामनुकूलं गमने, तथानर्वाणं लिङ्गव्यत्ययः, अनर्व मेत्यर्थः।

ात् 'हे (मरुतः) वायुओ! तुम्हारा जो बल है, ा क्रीडाका साधन बने। तुम कण्व हो अर्थात् शब्द वायु हो; तुम ही हमें कहो, जैसा कि, अद्वितीय ाका हुआ करता है—वह बल जो कि रथोंके निमित्त ा है अर्थात् रथ और विमान आदिके चलानेके होता है, तथा जो अप्रच्युत है, जिसका कोई नहीं कर सकता, जिसका कोई प्रतिरोध नहीं ।'

ार्य देवपालके इस लेखसे तीन परिणाम निकलते हैं—

) मरुतों या वायुओंके बलका प्रयोग इस प्रकार सकता है कि जिससे वे हमारी क्रीडाका साधन बन जकलकी मोटरें आदि रथ क्रीडाके ही साधन हैं।

( ) मरुतोंके बलको रथों तथा विमानोंके चलनेके प्रयुक्त किया जा सकता है।

) 'कण्व' शब्द वेदमें कण्व ऋषिके वंशके सम्बन्धमें होता हो, सो नहीं। श्रीसायणाचार्यने इस मन्त्रमें र्थ लिया है कण्वगोत्रके ऋषि। परंतु आचार्य यहाँ कण्वका अर्थ किया है 'शब्द करनेवाले वायु।'

यणके अंदर वायुयान (विमान) के सम्बन्धमें नपर वर्णन आता है—

सपर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम्।
ानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः॥

(वा० रा० अरण्य० ३१। १४)

ास पर्वतपर जाकर वहाँ सवारी लेकर जानेवाले मानको लाया।'

तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम्।
दावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम्॥

(वा० रा० अरण्य० ४८। ६)

ा सीतासे कहता है कि 'हे सीते! सुन्दर पुष्पकविमान विश्रवणका था, जिसे मैं बलसे जीतकर लाया हूँ। आकाशमें जाता हूँ।'

दिवं गते वायुपथे प्रतिष्ठितं
व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्मव
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं
ददर्श तद्वानरवीरसत्तम

(वा० रा० सुन्दर० ८। :

'आकाशमें उड़नेपर वायुमार्गमें विराजमान, चिह्नकी भाँति दीखनेवाले पुष्पकविमानको देखा।'

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैर्रा

(वा० रा० सुन्दर० ९

'वह पुष्पक-विमान सोनेकी जालियों और स्फटि खिड़कियोंसे युक्त था।'

जलयान—

यास्ते पूषन्नावो अन्तःसमुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे च
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छम

(ऋग्वेदसंहिता ६। ५

'हे पूषन्! जो तेरी लोहादिकी बनी नौकाएँ भीतर अर्थात् समुद्रतलके नीचे और अन्तरिक्षमें च मानो तू उनके द्वारा इच्छापूर्वक अर्जित यशको चाहत सूर्यके दूतत्वको प्राप्त कर रहा है।'

इस मन्त्रमें 'नावः' का विशेषण 'हिरण्ययी'=ा विकार वा हिरण्यसे बनी हुई ध्यान देने योग्य है। का अर्थ जहाँ सोना है, वहाँ वेदमें लोह और धा लिये भी प्रयुक्त होता है

'अन्तःसमुद्रे' का अर्थ केवल 'समुद्रमें' नहीं अर्थको तो केवल 'समुद्रे' कह सकता है। इस 'अन्तः' पद लगानेसे 'समुद्रके भीतर' अर्थ बनता है इस मन्त्रमें वायुयानों=विमानोंके साथ प (Submarines) का भी वर्णन है।

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमि

(ऋ० २। ४

'सात पहियोंके विमानका, जो सोम और पूषणकी चलाया जाय।'

रिसर्च स्कालर पं० रघुनन्दन शर्मा, साहि लिखते हैं—

'विमान नामक यन्त्र तो वैदिक कालमें ही इ

ैदिक विज्ञान', वर्ष १, सन् १९३२ ई०, संख्या ३,

है कि जो आकाशमें उड़नेकी स्थितिको जानता है, -आकाशकी नाव-विमानको जानता है।'[1]

अमेरिकन आलोचक स्वीकार करते हैं कि प्राचीन ाष्प-यन्त्र (Steam Engine) हुआ करते थे, थके नामसे प्रसिद्ध थे।[2]

के सम्बन्धमें पर्यटक अलबेरूनी लिखता है—जंगी ाविष्कार एक हिंदूने किया था, जब कि प्रलयके ं बाद वह मिस्रपर शासन करता था।'[3]

जकोलियट नामक प्रसिद्ध विद्वान् अपने "The in India" नामक ग्रन्थमें अनेक मतोंकी ाविषयक कल्पनाओंका उल्लेख करके वैदिक विचारके ा उद्गार प्रकट करता है—

stonishing fact! The Hindu revela- Veda) is of all revelations the one whose ideas are in perfect ny with modern Science as it ims the slow and gradual ion of the world."

एक बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है। ईश्वरीय धर्म- एकमात्र वेद ही ऐसा है, जिसके विचार वर्तमान साथ सम्पूर्णतया संगत हैं; क्योंकि उस (वेद) में भी अनुसार जगत्की क्रमिक रचनाका प्रतिपादन है।'

ारिकन महिला ह्वीलर विल्कॉक्स (Mrs. Wheeler) कहती हैं—

Ve have all heard and read about ıcient religion of India. It is the of the great Vedas, the most cable works, containing not only us ideas on a perfect life, but acts which all the science has proved true. Electricity, Radium, ons, Airships, all seem to be to the sires who found the Vedas."[4]

ात् 'हमलोगोंने प्राचीन भारतीय धर्मके विषयमें सुना और पढ़ा है। भारत उन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वेदों है, जिनके अंदर न केवल पूर्ण आदर्श जीवनके लिये तत्त्वोंका निरूपण है, वरं उन सचाइयोंका भी जिनको सारे विज्ञानशास्त्रने सत्य प्रमाणित किया है। ऋषियोंको विद्युत्, रेडियो, एलेक्ट्रॉन, हवाईजहाज सब बातोंका ज्ञान था—ऐसा प्रतीत होता है।'

फ्रांसके सुविख्यात योगी भी स्वीकार करते हैं कि 'वर्तमान विज्ञान केवल उन्हीं सिद्धान्तोंको पुनः प्रस्तु है, जो वेदोंमें वर्णित हैं।'

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता राल्सोविल्सनने भी जिन वेद- उद्धरण देकर प्राचीन भारतके जहाजी बेड़ेका परिचय उनमेंसे एक स्वयं अपने बलसे चलनेवाला, अन्तरिक्ष करनेवाला जहाज है।[2]

प्रो० मैक्समूलर अपने "Biographical E में लिखते हैं—

"If any historical or geogra names occur in the Vedas, al explained away because, if tak their natural sense, they would i to the Vedas historical or ten talent. To Swami Dayanand, ever contained in the Vedas was not perfect truth, but he went on further and, by their interpre succeeded in persuading others everything worth knowing—even most recent inventions of n science were alluded to in the steam-engine, electricity, talegraph wireless, morconogram were sho have been known at least in the to the poets of the Vedas."[3]

अर्थात् 'ऋषि दयानन्दने वेदोंमें आये हुए ऐ तथा भौगोलिक नामोंकी व्याख्या (यौगिक-पद्धतिसे क्योंकि वेदोंमें कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं है दयानन्दजीको दृष्टिमें जो कुछ भी वेदोंमें है, वह न वे

'वैदिक सम्पत्ति' द्वितीय संस्करण' पृष्ठ ३९४।

"Hindu Superiority' तथा 'महान् भारत' पृष्ठ

"Alberuni's India", Vol. I, page 407.

१. 'महान् भारत' पृष्ठ ३८३।

२. "Intercourse between India and the world", page 4.

अपितु उससे एक पद आगे बढ़कर ऋषि कहते हैं में ज्ञानके योग्य हर वस्तुका वर्णन है। यहाँतक कि वीन आधुनिक आविष्कारों—जैसे स्टीम इंजिन, तार, बिना तारके तार, मॉरकोनोग्रामका भी प्रतिपादन किया गया है—कम-से-कम बीजरूपमें तो अवश्य क्त वस्तुओंका वर्णन वेदोंमें है।'

ी श्रीअरविन्द कहते हैं—'वेदोंमें सृष्टि-विद्या-तत्त्वका कम आविर्भाव नहीं है।········आधुनिक पदार्थ-सत्यताएँ भी वैदिक मन्त्रोंमें प्रकटित होती हैं।'[1]

वार्य सत्यव्रतजी सामश्रमी कलकत्ता संस्कृत कॉलेजके ाहित्यके प्रोफेसर थे। पाश्चात्य तथा प्राच्य वैदिक इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। बंगाल एसियाटिक के कई ग्रन्थोंका इन्होंने सम्पादन किया है। इनके ष्ट्य', 'त्रयीपरिचय, 'निरुक्तालोचन', 'ऐतरेयालोचन' थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। आपने अपने 'त्रयीचतुष्टय' ंग्रह-ग्रन्थमें वेदोंके भाष्यकारोंके सम्बन्धमें अपनी लखी है। आप लिखते हैं—

Vhen the त्रयीसंग्रह was being compiled, ıpression grew upon me that the ıeaning of many Mantras did not out in Sāyaṇa's commentary, and esire became strong in me to ı the interpretation of Yāska and old expositors of the Veda. At a when photography, phonography, ıt, telegraph, the telephone, Railway aloons had not been introduced ıe country, how could our people tand any verses referring to these ? Our opinion is that, in Vedic our country had made extra-ry progress. In those days the sciences of Geology, Asronomy Chemistry were called "Ādhid Vidyā" and those of phys psychology and Theology "Adh Vidyā."

"Though the works embodyin scientific knowledge of those time entirely lost, there are sufficient i tions in Vedic works of those sc having been widely known in days."[2]

अर्थात् "'त्रयीसंग्रह' पुस्तकका जब सङ्कलन हो उस समय मुझे अनुभव हुआ कि सायण-भाष्यमें मन्त्रोंके यथार्थ भाव प्रकट नहीं हो सके; इसलि यह इच्छा प्रबल हुई कि यास्क तथा अन्य प्राचीन कारोंके भावार्थोंका मैं स्वयं उद्घाटन करूँ।

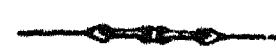
"उस समय जब कि फोटोग्राफी, फोनोग्राफी, गै टेलिग्राफ, टेलिफोन, रेलवे और हवाई जहाजोंका प्रचार न था, किस प्रकार भारतके वेदभाष्यकर्ता उन यथार्थ रहस्योंको समझ सकते थे, जिनमें इन व सङ्केत हों। हमारी सम्मति है कि वैदिक कालमें हमा देशने पर्याप्त उन्नति कर ली थी। उस समय भूग ज्यौतिष और रसायन-विद्याको आधिदैविक विद्या कह था और शरीरविद्या, मनोविज्ञान तथा ब्रह्मविद्याको अ विद्या। उस समयके वैज्ञानिक ग्रन्थ यद्यपि इस समय लुप्त हो गये हैं, तो भी वेदोंमें उन विज्ञानोंके सम्बन्धके निर्देश मिलते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वैदिक उन विज्ञानोंका पर्याप्त प्रचार था।"

अतएव इन उपर्युक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता प्राचीन भारतमें यातायातके आश्चर्यजनक वैज्ञानिक पर्याप्त मात्रामें थे। उनमेंसे कुछका तो शायद अ आविष्कार नहीं हो पाया है।



विपत्तिके मित्र

तुलसी असमयके सखा धीरज धरम विवेक।
साहित साहस सत्यव्रत रामभरोसो एक॥



—श्रीतुलसीदासजी

भारतीय नौ-निर्माणकला

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम्० ए०)

ाहास, पुराण तथा अपने यहाँके अन्य प्राचीन साहित्यमें जहाजोंकी बहुत चर्चा आयी है। रामायण 'अयोध्या- में ऐसी बड़ी-बड़ी नावोंका उल्लेख है, जिनमें सैकड़ों द्धा तैयार रहते थे—

ां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम्।
द्धानां तथा यूनान्तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत्॥

ाभारत' में तो यन्त्रसञ्चालित नावोंका भी वर्णन —

वातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्।

द्रमार्गसे विभिन्न देशोंसे बराबर व्यापार होता था। ाण' में गोकर्ण वैश्यकी कथा आती है, जो विदेशों- ा व्यापार किया करता था—

स्तत्रैव गमने वणिग्भावे मतिर्गता।
द्रयाने रत्नानि महास्थौल्यानि साधुभिः॥

डीके 'दशकुमारचरित' में रत्नोद्भव वणिक्की कथा का जहाज पटना जाते हुए डूब गया था—

सोदरविलोकनकुतूहलेन रत्नोद्भवः कथञ्चिच्छ्वशुर- चपललोचनयानया सह प्रवहणमारुह्य पुरुषपुरमभि- । कल्लोलमालिकाभिहतः पोतः समुद्राम्भस्य-

ा वणिक् मित्रगुप्त किसी द्वीपमें पहुँचा; वहाँ श्वान ाहको घेर लेते हैं, वैसे ही यवनोंकी नावोंने घेर लिया—

दतिजवा नौकाः श्वान इव
वराहमस्मत्पोतं पर्यरुत्सत।

हरिने लिखा है कि दुस्तर समुद्रके पार करनेमें म देता है—

पोतो दुस्तरवारिराशितरणे।

टलीय 'अर्थशास्त्र' के 'नावध्यक्ष' प्रकरणमें नौसेना ज्यकी ओरसे नावोंके प्रबन्धका पूरा विवरण ।

नावों और जहाजोंकी निर्माण-कलापर ज्यौतिषाचार्य

वृक्षोंमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चा हैं। लघु तथा कोमल लकड़ी, जो सहजमें जोड़ी ब्राह्मणजातिकी मानी जाती है। क्षत्रियजातिकी लक और दृढ़ होती है। वह अन्य प्रकारकी लकड़ि नहीं जा सकती। वैश्य जातिकी लकड़ी कोमल होती है और शूद्रजातिकी लकड़ी दृढ़ तथा भारी जिनमें दो जातियोंके गुण पाये जाते हैं, वे 'द्विजाति

लघु यत्कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रह्मजाति तद
दृढाङ्गं लघु यत्काष्ठमघटं क्षत्रजाति तत
कोमलं गुरु यत्काष्ठं वैश्यजाति तदुच्यतं
दृढाङ्गं गुरु यत्काष्ठं शूद्रजाति तदुच्यते
लक्षणद्वययोगेन द्विजातिः काष्ठसङ्ग्रहः

भोजका कहना है कि क्षत्रिय काठकी बनी सुख-सम्पत्प्रद होती है—

क्षत्रियकाष्ठैर्घटिता भोजमते सुखसम्पदं नौक

इसके बने हुए जहाज विकट जलमार्गोंमें सकते हैं—

अन्ये लघुभिः सुदृढैर्विदधति जलदुष्पदे नौका

दूसरी प्रकारकी लकड़ियोंसे जो नौकाएँ बन हैं, उनके गुण अच्छे नहीं होते। उनमें आराम नहीं वे टिकाऊ भी नहीं होतीं, पानीमें उनकी लकड़ी सड़ है और साधारण भी धक्का लगनेपर वे फट जाती हैं—

विभिन्नजातिद्वयकाष्ठजाता
न श्रेयसे नापि सुखाय नौका।
नैषा चिरं तिष्ठति पच्यते च
विभिद्यते सरिति मज्जते च॥

भोजने यह भी लिखा है कि जहाजोंके पेंदोंके जोड़नेके लिये लोहेसे काम न लेना चाहिये; क्योंि है कि समुद्रकी चट्टानोंमें कहीं चुम्बक हो तो वह लोहेको अपनी ओर खींचेगा, जिससे जहाजों खतरा है—

विपद्यते तेन जलेषु नौका
गुणेन बन्धं निजगाद भोजः ॥

क्तिकल्पतरु' में आकार-प्रकार, लंबाई-चौड़ाईकी नौकाओंके कई प्रकार बतलाये गये हैं। नौकाओंके ो दो विभाग किये गये हैं—एक तो 'सामान्य', जो नदियोंमें चल सकें और दूसरे 'विशेष', जो समुद्र-काम दे सकें—

मान्यश्च विशेषश्च नौकाया लक्षणद्वयम्।

ाई-चौड़ाई और ऊँचाईका ध्यान रखते हुए क्षुद्रा, भीमा, चपला, पटला, भया, दीर्घा, पत्रपुटा, मन्थरा—ये दस प्रकारकी सामान्य नावें बतलायी । क्षुद्राकी लंबाई १६, चौड़ाई ४ और गहराई या ४ हाथ होनी चाहिये। इसी तरह इन सबकी नाप है और मन्थराकी लंबाई १२०, चौड़ाई ६० और भी ६० हाथकी बतलायी गयी है। सबमें चौड़ाई ाईकी एक ही नाप है—

हस्तमितायामा तत्पादपरिणाहिनी।
देवोन्नता नौका क्षुद्रेति गदिता बुधैः॥
ः सार्द्धमितायामा तदर्द्धपरिणाहिनी।
भागेनोत्थिता नौका मध्यमेति प्रचक्षते॥
ाथ मध्यमा भीमा चपला पटला भया।
र्गा पत्रपुटा चैव गर्भरा मन्थरा तथा॥
ादशर्कामित्युक्तं राजहस्तैरनुक्रमम्।
कवृद्धैः सार्द्धैश्च विजानीयाद् द्वयं द्वयम्॥
ातिश्च प्रवीणा च हस्तादर्द्धांशलक्षिता॥

शेष' के भी दो विभाग किये गये हैं—दीर्घा और । फिर दीर्घाके दीर्घिका, तरणि, लोला, गत्वरा, तरी, जङ्घाला, प्लाविनी, धारिणी और वेगिनी—विभाग किये गये हैं। इनमें लंबाई अधिक है, पर थोड़ी और गहराई उससे भी कम है। वेगिनीकी १७६, चौड़ाई २२ और ऊँचाई १७$\frac{3}{5}$ हाथ गयी है—

हस्तद्वयायामा अष्टांशपरिणाहिनी।
केयं दीर्घिका नाम दशाङ्गेनोन्नतापि च॥
र्घिका तरणिर्लोला गत्वरा गामिनी तरिः।
ाला प्लाविनी चैव धारिणी वेगिनी तथा॥
हस्तैकैकवृद्ध्या नौकानामानि नै तथा।

उन्नताके ऊर्ध्वा, अनूर्ध्वा, स्वर्णमुखी, गर्भिणी मन्थरा—ये पाँच विभाग किये गये हैं। इनमें म ऊँचाई ४८ हाथतक रक्खी गयी है—

राजहस्तद्वयमिता तावत्प्रसरणोन्नता
इयमूर्ध्वाभिधा नौका क्षेमाय पृथिवीभुजाम्
ऊर्ध्वानूर्ध्वा स्वर्णमुखी गर्भिणी मन्थरा तथा
राजहस्तैकैकवृद्ध्या नामपञ्चत्रयं भवेत्

नौकाकी सजावटोंका भी बहुत सुन्दर वर्णन आ सजावटमें सोना, चाँदी, ताँबा और तीनोंको मिलाकर करना चाहिये। चार शृङ्ग (मस्तूल)-वाली सफेद, तीनवालीको लाल, दोवालीको पीला और ए को नीला रँगना चाहिये। नौकाओंका मुख सिंह, महि हाथी, व्याघ्र, पक्षी, मेढक या मनुष्यकी आकृतिका जा सकता है—

धात्वादीनामतो वक्ष्ये निर्णयं तरिसंश्रयम्
कनकं रजतं ताम्रं त्रितयं वा यथाक्रमम्
ब्रह्मादिभिः परिन्यस्य नौकाचित्रणकर्मणि
चतुःशृङ्गा त्रिशृङ्गाभा द्विशृङ्गा चैकशृङ्गिणी
सितरक्तापीतनीलवर्णान् दद्याद् यथाक्रमम्
केसरी महिषो नागो द्विरदो व्याघ्र एव च
पक्षी भेको मनुष्यश्च एतेषां वदनाष्टकम्
नावां मुखे परिन्यस्य आदित्यादिदशाभुवाम्

नावोंके ऊपर कोठरी, कमरा आदि बनानेकी नावोंके तीन भेद हैं—सर्व, मध्य और अग्रमन्दिरा—

सगृहा त्रिविधा प्रोक्ता सर्वमध्याग्रमन्दिरा

जिसमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक मन्दिर बना नावें सर्वमन्दिरा कहलाती हैं। ये राजाके कोष, अश्व आदि ले जानेके लिये होती हैं—

सर्वतो मन्दिरं यत्र सा ज्ञेया सर्वमन्दिरा
राज्ञां कोषाश्वनारीणां यानमत्र प्रशस्यते

जिनके मध्यमें मन्दिर है, वे मध्यमन्दिरा कहला ये राजाके सैर-सपाटेके काममें आती हैं और वर्ष लिये बहुत उपयुक्त हैं—

मध्यतो मन्दिरं यत्र सा ज्ञेया मध्यमन्दिरा
राज्ञां विलासयात्रादिवर्षासु च प्रशस्यते

जिनके आगेकी ओर मन्दिर बना हुआ है, वे अग्र

ातो मन्दिरं यत्र सा ज्ञेया स्वग्रमन्दिरा ।
राप्रवासयात्रायां रणे काले घनात्यये ॥

ल्मानोंके शासनकालमें भी भारतमें बड़े-बड़े जहाज
े । मार्को पोलो, जो तेरहवीं शताब्दीमें भारत आया
खता है कि 'जहाजोंमें दोहरे तख्तोंकी जुड़ाई होती
हेकी कीलोंसे उनको मजबूत बनाया जाता था और
ूराखोंको एक प्रकारकी गोंदसे भरा जाता था ।
ड़े जहाज होते थे कि उनमें तीन-तीन सौ मल्लाह
ो । एक-एक जहाजपर ५ से ६ हजारतक बोरे लादे
ते थे । इनमें रहनेके लिये ऊपर कई कोठरियाँ बनी
ीं, जिनमें सब तरहके आरामका प्रबन्ध रहता था ।
ा खराब होने लगता था, तब उसपर लकड़ीका एक
जड़ दिया जाता था । इस तरह कभी-कभी एकके
क ६ तहतक लगायी जाती थीं ।' पंद्रहवीं शताब्दीमें
कांटी नामक यात्री भारत आया था । वह लिखता
'भारतीय जहाज हमारे जहाजोंसे बहुत बड़े होते हैं ।
ेंदा तेहरे तख्तोंका ऐसा बना होता है कि वह
तूफानोंका सामना कर सकता है । कुछ जहाज ऐसे
हैं कि उनका एक भाग बेकार हो जानेपर बाकीसे
ल जाता है ।' वर्थमा नामक एक दूसरे यात्रीने
में जहाजोंके बननेका वर्णन किया है । वह लिखता
'लकड़ीके तख्तोंकी ऐसी जुड़ाई होती है कि उनमेंसे
पानी नहीं आता । जहाजोंमें कभी दो-दो बादबान
सूती कपड़ेके लगाये जाते हैं कि जिनमें हवा खूब
। लंगर कभी-कभी पत्थरके भी होते थे । ईरानसे
ारीतक आनेमें आठ दिनका समय लग जाता था ।'
ार्ती राजाओंके पास जहाजोंके बड़े-बड़े बेड़े रहते
श-नदियोंमें चलनेवाले हजारों नावोंके बेड़े होते थे ।
नौ-विभागका अध्यक्ष 'मीर बहर' कहलाता था ।
शिवाजीका भी अपना जहाजी बेड़ा था, जिसका
'दरियासारङ्ग' कहलाता था । डाक्टर राधाकुमुद
अपनी 'इण्डियन शिपिङ्ग' नामक पुस्तकमें भारतीय
बड़ा रोचक, सप्रमाण इतिहास दिया है । अब
है कि इस भारतीय प्राचीन नौ-निर्माणकलाको नष्ट
ा गया ।

ात्योंका जब भारतसे सम्पर्क हुआ, तब वे यहाँके
भारतमें उन्होंने 'गोघा' नामक ऐसे बड़े-बड़े जह
जो १५ सौ टनसे भी अधिकके होते थे । यूरोपीय
इन जहाजोंको काममें लाने लगीं और हिंदुस्तानी
द्वारा जहाज बनवानेके लिये उन्होंने कई कारख
दिये । सन् १८११ में लेफ्टिनेंट वाकर लिखत
'ब्रिटिश जहाजी बेड़ेके जहाजोंकी हर बारहवें व
करानी पड़ती थी, परंतु सागौनके बने हुए भारती
पचास वर्षोंसे अधिकतक बिना किसी मरम्मतके
थे ।' 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के पास 'दरिया
नामक एक जहाज था, जो ८७ वर्षतक काम दे
जहाजोंको बनानेमें शीशम, साल और सागौन—तीनों
काममें लायी जाती थीं । सन् १८११ में एक फ्रांसी
बाल्टजर सालविन्स अपनी 'ले हिंदू' नामक पुस्तकमें
है कि 'प्राचीन समयमें नौ-निर्माणकलामें हिंदू सबसे
और आज भी वे इसमें यूरोपको पाठ पढ़ा स
अंग्रेजोंने, जो कलाओंके सीखनेमें बड़े चतुर होते हैं,
से जहाज बनानेकी कई बातें सीखीं । भारतीय
सुन्दरता तथा उपयोगिताका बड़ा अच्छा योग है
हिंदुस्थानियोंकी कारीगरी और उनके धैर्यके नमू
बम्बईके कारखानेमें १७३६ से १८६३ तक ३०
तैयार हुए, जिनमें बहुतसे इंगलैंडके 'शाही बेड़े' में
कर लिये गये । इनमें 'एशिया' नामक जहाज २२८
था और उसमें ८४ तोपें लगी थीं । बंगालमें
सिलहट, चटगाँव, ढाका आदि स्थानोंमें जहाज
कारखाने थे । सन् १७८१ से १८२१ तक १,२२,६९
२७२ जहाज केवल हुगलीमें तैयार हुए थे ।

ब्रिटेनके जहाजी व्यापारी भारतीय नौ-निर्माणकल
उत्कर्ष सहन न कर सके और वे 'ईस्ट इण्डिया
को भारतीय जहाजोंका उपयोग न करनेके लिये दबा
इस सम्बन्धमें कई बार जाँच की गयी । सन् १८११
वाकरने आँकड़े देकर यह सिद्ध किया कि 'भारतीय
बहुत कम खर्च पड़ता है और वे बड़े मजबूत होते
ब्रिटिश बेड़ेमें केवल भारतीय जहाज ही रक्खे जायँ,
बड़ी बचत हो सकती है ।' जहाज बनानेवाले अंग्रेज
तथा व्यापारियोंको यह बात बहुत खटकी । डाक्टर
लिखता है कि 'जब हिंदुस्थानी मालसे लदा हुआ हिं

स नदीमें शत्रुपक्षके जहाजी बेड़ेको देखकर भी न ।' लंदन-बंदरगाहके कारीगरोंने सबसे पहले हो-हल्ला और कहा कि 'हमारा सब काम चौपट हो जायगा रे कुटुम्ब भूखों मर जायँगे ।' 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ' आफ डिरेक्टर्स' (निरीक्षक-मण्डल) ने लिखा स्थानी खलासियोंने यहाँ आनेपर जो हमारा सामाजिक देखा, उससे भारतमें यूरोपीय आचरणके प्रति जो और भय था, नष्ट हो गया । अपने देश लौटनेपर म्बन्धमें वे जो बुरी बातें फैलायेंगे, उनसे एशिया-गोंमें हमारे आचरणके प्रति जो आदर है, जिसके ही हम अपना प्रभुत्व जमाये बैठे हैं, नष्ट हो जायगा सका प्रभाव बड़ा हानिकर होगा ।' इसपर पार्लिमेंटने र्ट पीलकी अध्यक्षतामें एक कमेटी नियुक्त की । परस्पर मतभेद होनेपर भी इसकी रिपोर्टके आधारपर ८१४ में एक कानून पास किया गया, जिसके अनुसार य खलासियोंको ब्रिटिश नाविक बननेका अधिकार न रहा । ब्रिटिश जहाजोंपर भी कम-से-कम तीन चौथा खलासी रखना अनिवार्य कर दिया गया । लंदनके ब में किसी ऐसे जहाजको घुसनेका अधिकार न रहा स्वामी कोई ब्रिटिश न हो और यह नियम बना दि कि इंग्लैंडमें अंग्रेजोंद्वारा बनाये हुए जहाजोंमें ई माल इंग्लैंड आ सकेगा ।' कई कारणोंसे इस कार्यान्वित करनेमें ढिलाई हुई, पर सन् १८६३ पूरी पाबंदी होने लगी । भारतमें भी ऐसे काय बनाये गये कि जिससे वहाँकी प्राचीन नौ-निर्मा अन्त हो जाय । भारतीय जहाजोंपर लदे हुए माल बढ़ा दी गयी और इस तरह उनको व्यापारमें अलग प्रयत्न किया गया । सर विलियम डिगवीने ठीक है कि 'पाश्चात्त्य संसारकी रानीने इस तरह प्राच्य रानीका वध कर डाला !'

संक्षेपमें भारतीय नौ-निर्माणकलाको नष्ट कर कहानी है !

हमारी प्राचीन वैमानिक-कला

(लेखक—श्रीदामोदरजी झा साहित्याचार्य)

ैमान समयसे कुछ दिन पहले वैमानिक कला प्रायः हो गयी थी । बादमें पाश्चात्त्य विद्वानोंके बुद्धिविकाससे फिर इस संसारमें दिखायी देने लगे हैं । कहा जाता है ान नामकी कोई वस्तु पहले नहीं थी, बल्कि पक्षियों-काशमें उड़ते देखकर भारतीयोंकी यह निरी कपोल-थी कि विमान नामकी कोई वस्तु पहले देशमें थी, काशमें उड़ती थी एवं जिसका उल्लेख रामायणादि पाया जाता है । महर्षि कर्दमके विमानके विषयमें भी यही धारणा है; किंतु आज भी हमारे समक्ष णार्थ एक ऐसा ग्रन्थरत्न उपस्थित है, जिससे यह पड़ेगा कि विमानके विषयमें हमारे पूर्वजोंने जिस उच्च-का वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ़ निकाला था, उसे आज भी य विज्ञानवेत्ता खोज निकालनेमें असमर्थ ही हैं । वह है प्राचीनतम महर्षि भारद्वाजका बनाया हुआ त्रवस्व ।'

यह ग्रन्थ बड़ौदा राज्यके पुस्तकालयमें हस्तलिखित न है, जो कुछ खण्डित है । उसका 'वैमानिक प्रकरण' पहले प्रकरणमें प्राचीन विज्ञानविषयके पचीस ग्रन्थ सूची है, जिनमें अगस्त्यकृत 'शक्तिसूत्र', ईश्वरकृत 'सौ कला', भारद्वाजकृत 'अंशुमतन्त्र', 'आकाशशास्त्र 'यन्त्रसर्वस्व', शाकटायनकृत 'वायुतत्त्वप्रकरण', 'वैश्वानरतन्त्र', 'धूमप्रकरण' आदि हैं । वृत्तिकार लिखते हैं—

> निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भारद्वाजो महामुनि
> नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्
> प्रायच्छत् सर्वलोकानामीप्सितार्थफलप्रद
> तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम्
> नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम्
> अष्टाध्यायैर्विभजितं शताधिकरणैर्युतम्
> सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं व्योमयानप्रधानक
> वैमानिकाधिकरणमुक्तं भगवता स्वयम्

अर्थात् भरद्वाज महामुनिने वेदरूपी समुद्रक करके यन्त्रसर्वस्व नामका ऐसा मक्खन निकाला मनुष्यमात्रके लिये इच्छित फल देनेवाला है । उस

ं विमानविषयक रचनाके क्रम कहे गये हैं। वह आठ में विभाजित किया गया है, जिसमें एक सौ अधिकार ंच सौ सूत्र हैं। उसमें विमानका विषय ही प्रधान है।

ं विधाय विधिवन्मङ्गलाचरणं मुनिः।
र्वाचार्यांश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीयश्लोकतोऽब्रवीत्॥
श्वनाथोक्तनामानि तेषां वक्ष्ये यथाक्रमम्।
रायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा॥
क्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतः स्वयम्।
मानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च॥
न्त्रकल्पो यानबिन्दुः खेटयानप्रदीपिका।
ैव व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति षट् क्रमात्।
रायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः॥

र्थात् भारद्वाजमुनिने इस तरह विधानपूर्वक मङ्गलाचरण रे श्लोकमें विमानशास्त्रके पूर्वाचार्यों तथा उनके बनाये हुए नाम भी कहे हैं। उनके नाम विश्वनाथके कथनानुसार र हैं—नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि ण्डिनाथ। ये छः ग्रन्थकार हैं तथा विमानचन्द्रिका, तन्त्र, यन्त्रकल्प, यानबिन्दु, खेटयानप्रदीपिका और ार्कप्रकाश—ये छः क्रमसे इनके बनाये हुए ग्रन्थ हैं। मानकी परिभाषा बतलाते हुए कहा गया है—

थेव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम्।
समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

र्थात् जो पृथ्वी, जल और आकाशमें पक्षियोंके समान चल सके, उसका नाम विमान है। 'रहस्यज्ञोऽधिकारी।' जसूत्र अ० १ सू० २)। त—

ानिकरहस्यानि यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः।
त्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वकर्मणि॥
न यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा।
ेऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्॥
ानरचने व्योमारोहणे चालने तथा।
म्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥
ानिकरहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा।
ेऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सम्यग्विनिर्णितम्॥

ानके रहस्योंको जाननेवाला ही उसके चलानेका ी है। शास्त्रोंमें जो बत्तीस वैमानिक रहस्य बतलाये विमानचालकोंको उनका भलीभाँति ज्ञान रखना

सूत्रके अर्थसे यह सिद्ध हुआ कि रहस्य जाने बिना म चलानेका अधिकारी नहीं हो सकता; क्योंकि विमा उसे जमीनसे आकाशमें ले जाना, खड़ा करना, आगे टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे चलाना या चक्कर लगाना और विम को कम अथवा अधिक करना आदि वैमानिक रहस अनुभव हुए बिना यान चलाना असम्भव है।

विमान चलानेके जो बत्तीस रहस्य कहे गये हैं कुछ रहस्योंका यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा जिनके द्वारा यह ज्ञात होता है कि पाश्चात्य विद्वानोंकी कला प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक कलासे कितनी पिछड़ी

(३) 'कृतकरहस्यो नाम—विश्वकर्मछायापुरुषमन शास्त्रानुष्ठानद्वारा तत्तच्छक्त्यनुसन्धानपूर्वकं ता सङ्कल्पानुसारेण विमानरचनाक्रमरहस्यम्।'

अर्थात् उन बत्तीस रहस्योंमेंसे यह कृतक नामक रहस्य है। विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मयदानव विमानशास्त्रकारोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अनुशील उन-उन धातु-क्रिया आदिमें जो सामर्थ्य है—उसका होनेपर इच्छाके अनुसार नवीन विमानरचना करनी

(५) 'गूढरहस्यो नाम—वायुतत्त्वप्रकरण वातस्तम्भाष्टमपरिधिरेखापथस्य यासावियासाप्रयास शक्तिभिः सूर्यकिरणान्तर्गततमश्शक्तिमाकृष्य तत्संयो विमानाच्छादनरहस्यम्।'

अर्थात् गूढ़ नामक पाँचवाँ रहस्य है। प्रकरणमें कही गयी रीतिके अनुसार वातस्तम्भकी जो परिधिरेखा है, उस मार्गकी यासा, वियासा, प्रयासा वायुशक्तियोंके द्वारा सूर्यकिरणमें रहनेवाली जो अन्ध है, उसका आकर्षण करके विमानके साथ उसका करानेपर विमान छिप जाता है।

(९) 'अपरोक्षरहस्यो नाम—शक्तितन्त्रोक्त विद्युत्प्रसारणेन विमानाभिमुखस्थवस्तूनां प्रत्यक्ष क्रियारहस्यम्।'

अर्थात् अपरोक्ष नामक नवें रहस्यके अनुसार श में कही गयी रोहिणी विद्युत् (कोई विशेष प्रकारकी के फैलानेसे विमानके सामने आनेवाली वस्तुओंको देखा जा सकता है।

(२२) 'सार्पगमनरहस्यो नाम—दण्डवक्र

धोऽस्य पश्चात्तद्ग्राहृत्य शक्त्युद्गमनाले प्रवेशयेत् । ततः
वाक्रगाद्विमानस्य सर्पवद्गमनक्रियारहस्यम् ।'

र्थात् सर्पगमन नामक बाईसवें रहस्यके अनुसार दण्ड-
दि आठ प्रकारके वायु और सूर्यकिरणोंकी शक्तियोंको
करके यानके मुखमें जो तिरछे फेंकनेवाला केन्द्र है,
उन्हें नियुक्त करके पश्चात् उसे खींचकर शक्ति
निकलनेके नालमें प्रवेश कराना चाहिये; तब उसके वक्र
विमानकी गति साँपके समान टेढ़ी हो जाती है ।

२५) 'परशब्दग्राहकरहस्यो नाम—सौदामनीकलोक्त-
विमानस्थशब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थजना-
ादिसर्वशब्दाकर्षणरहस्यम् ।'

र्थात् परशब्दग्राहक पचीसवें रहस्यके अनुसार 'सौदामनी-
 कही गयी रीतिसे विमानपर जो शब्दग्राहक यन्त्र है,
ारा दूसरे विमानपरके लोगोंकी बातचीत आदि शब्दों-
र्षण किया जाता है ।

२६) 'रूपाकर्षणरहस्यो नाम—विमानस्थरूपाकर्षण-
ा परविमानस्थितवस्तुरूपाकर्षणरहस्यम् ।'

र्थात् रूपाकर्षण नामक छब्बीसवें रहस्यके अनुसार
में स्थित रूपाकर्षण-यन्त्रद्वारा दूसरे विमानमें रहनेवाली
का रूप दिखलायी देता है ।

२८) 'दिक्प्रदर्शनरहस्यो नाम—विमानमुखकेन्द्र-
ाकनेन दिशाम्पतियन्त्रनालपत्रद्वारा परयानागमन-
र्शनरहस्यम् ।'

र्थात् दिक्प्रदर्शन नामक अट्ठाईसवें रहस्यानुसार विमान-
केन्द्रकी कीली (बटन) चलानेसे 'दिशाम्पति' नामक
 नलीमें रहनेवाली सुईद्वारा दूसरे विमानके आनेकी
जानी जाती है ।

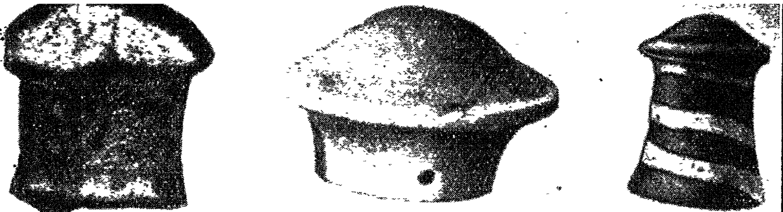
३१) 'स्तब्धकरहस्यो नाम—विमानोत्तरपार्श्वस्थ-
मुखनालादपस्मारधूमं संग्राह्य स्तम्भनयन्त्रद्वारा तद्धूम-
ात् परविमानस्थसर्वजनानां स्तब्धीकरणरहस्यम् ।'

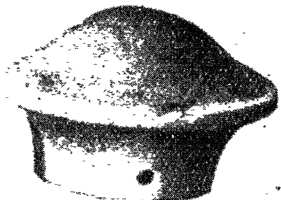
तब्धक नामके इकतीसवें रहस्यके अनुसार विमानकी
 बगलमें रहनेवाली सन्धिमुख नामकी नलीके द्वारा
ारनामक (किसी विशेष छेदसे निकलनेवाले) धूएँको
करके स्तम्भनयन्त्रद्वारा दूसरे विमानपर फेंकनेसे उस दूसरे
में रहनेवाले सब व्यक्ति स्तब्ध (बेहोश) हो जाते हैं

(३२) 'कर्षणरहस्यो नाम—स्वविमानसंहारा
विमानपरम्परागमने विमानाभिमुखस्थवैश्वानरनाला
ज्वालिनीप्रज्वालनं कृत्वा सप्ताशीतिलिङ्कप्रमाणोष्णं कृत्
तथा चक्रद्वयकीलीचालनात् शत्रुविमानोपरि वर्तुल
लाकृतिप्रसारणद्वारा शत्रुविमाननाशनक्रियारहस्यम् ।'

अर्थात् कर्षण नामक बत्तीसवाँ रहस्य है । इससे
विमानका नाश करनेके लिये शत्रुविमानोंके आनेपर वि
मुखमें रहनेवाली वैश्वानर नामकी नलीमें ज्वालिनी (
शक्तिका नाम) को जलाकर सत्तासी लिङ्क प्रमाण (
डिग्रीकी तरह किसी मापका नाम है) गर्मी हो, उतन
चक्रोंकी कीली (बटन) चलाकर शत्रु-विमानोंपर गोल
उस शक्तिको फैलानेसे शत्रुके विमान नष्ट हो जाते हैं ।

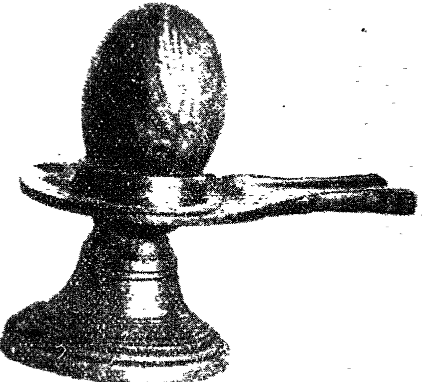
इस वैमानिक प्रकरणमें कहे गये ग्रन्थ और ग्रन्थकारों
से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज विमानशास्त्रमें
निपुण थे । इसके रहस्योंको देखनेसे यह पता लगत
आजकलके वैज्ञानिक विमानद्वारा जिन-जिन कलाओंका
करते हैं, वे सभी कलाएँ तो उन लोगोंके पास थीं ही,
जिन कलाओंकी खोजमें आज आधुनिक वैज्ञानिक
या जिनकी कल्पना भी अभी वे नहीं कर पाये हैं, उ
हमारे पूर्वज जानते थे । नवें रहस्यसे यह पता लगत
दूरबीनकी तरह कोई दूरदर्शक यन्त्र उनके पास था ।
रहस्यसे यह सिद्ध होता है कि 'वायरलेस', रेडियो भी उ
था । अट्ठाईसवाँ रहस्य बतलाता है कि आजकलके वैज्ञा
तरह दूरसे ही शत्रुविमानका पता लगा लेनेकी कला भ
पास थी । बत्तीसवें रहस्यसे यह स्पष्ट है कि जैसे ये ल
बम आदिद्वारा शत्रु-संहार करते हैं, वैसे ही वे लोग
शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते थे । छब्बीसवें रहस्यसे मा
है कि आजके वैज्ञानिकोंने टेलीफोनपर बात करनेवालेक
दिखा देनेवाले 'टेलीविजन' नामक जिस यन्त्रका आ
किया है, वह इससे अधिक चमत्कारिक रूपमें हमारे
पास था । इसमें जो विमानोंको अदृश्य करनेवाल
रहस्य है तथा उसके सदृश अन्य कई रहस्य
विस्तारभयसे यहाँ उद्धृत नहीं किये गये हैं,
विषयमें आजके वैज्ञानिक हमारी समझमें अभीतक
हीं सके हैं । 'सिद्धान्त'



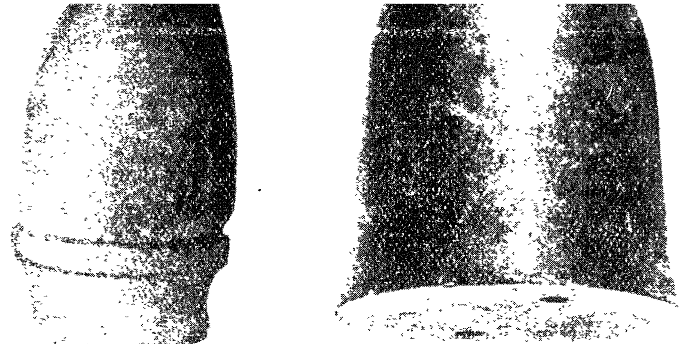


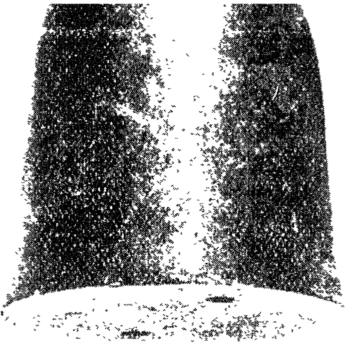




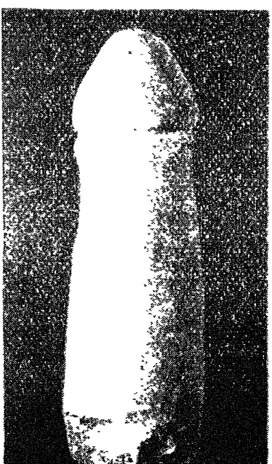


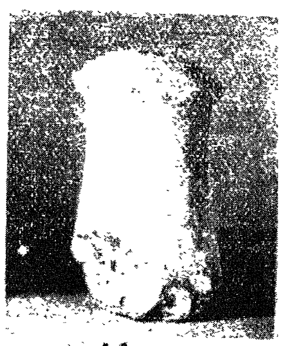


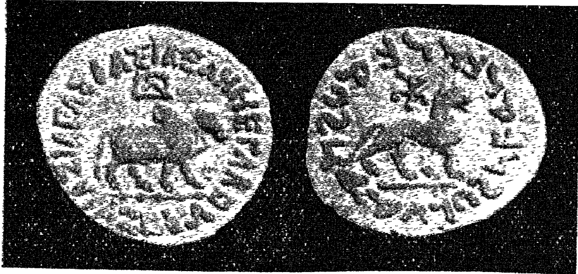




मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त विशाल शिवलिंग



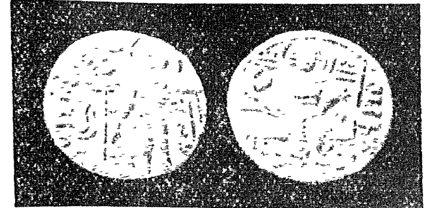




सम्राट् अयसका सिक्का
(नन्दी-चिह्न)



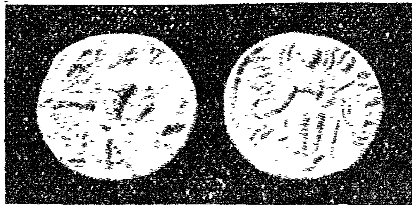
महाराज वीम कदफिसका सिक्का
(शिव-वृषभ-चिह्न)



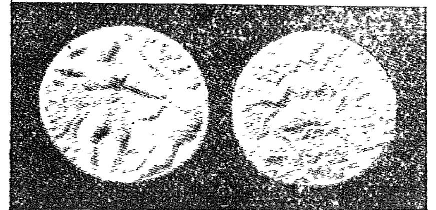
महाराज समुद्रगुप्तका सिक्का
(गरुड-ध्वज एवं लक्ष्मी-चिह्न)



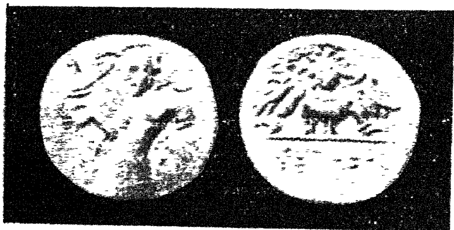
महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीयका सिक्का
(गरुड-ध्वज और कमलासना लक्ष्मी-चिह्न)

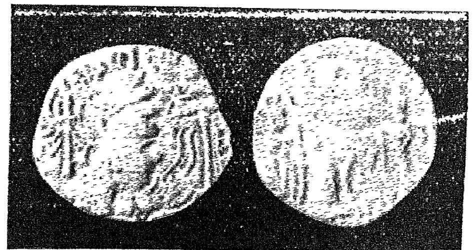


महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीयका सिक्का
(पद्महस्ता लक्ष्मी-चिह्न)



महाराज कुमारगुप्त प्रथमका सिक्का
(अम्बिका-लक्ष्मी-चिह्न)





भारतके प्राचीन सिक्कोंकी धार्मिक भावना

(लेखक—श्रीवासुदेवजी उपाध्याय एम्० ए०)

यदि भारतका प्राचीन साहित्य ज्ञान-राशिसे भरा है, तथापि क ऐतिहासिक ग्रन्थोंका हमारे यहाँ अभाव-सा ही है। क कालमें भारतका सभी प्राचीन साहित्य क्रमबद्धरूपमें न नहीं होता, तो भी भारतवासियोंके इतिहासकी अभिरुचि- ण उनमें मिलता है। भारतीय साहित्य तथा पुरातत्त्वकी ोंके सहारे सम्पूर्ण इतिहास तैयार किया जा रहा है। चीन बिखरी सामग्रियोंको एकत्रकर इतिहासका रूप वेद्वान् लगे हुए हैं। पुरातत्त्व-विषयक सामग्रियोंकी उपयोगिताको सभी मानने लगे हैं। पुरातत्त्वने भारत- ीय इतिहासको तैयार करनेमें आशातीत सहायता की है। ई विभाग हैं, जिनमें सिक्कोंको विशेष स्थान दिया गया ाँपर लेख आदि पीछे रह जाते हैं, सिक्के उस विषयको देते हैं। अतएव प्राचीन सिक्कोंके अध्ययनसे आर्थिक, क, राजनैतिक विषयोंकी जानकारीके अतिरिक्त प्राचीन धार्मिक भावनापर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भारतीय ें ऐसे काल-विभाग आते हैं, जिनका सम्पूर्ण ज्ञान बलपर ही उपलब्ध होता है। इसीके अध्ययनसे ा (गण)-शैलीके शासनका पता लगता है। उनपर तिथियोंसे राजाओंके राज्यकालका विवरण तैयार किया मुद्राओंके आधारपर उस वंशमें नये शासकोंके नामों- लगता है। इन बातोंके अतिरिक्त प्राचीन धर्मका तत्कालीन सिक्कोंसे किया जाता है। उनका अध्ययन यह है कि किस भूभागमें कौन-सा धर्म प्रधान समझा । इस स्थानपर यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि उत्कीर्ण लेखोंमें किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं परंतु उनपर खुदे चिह्नोंके आधारपर धर्मकी बातें ाती हैं। अतएव सिक्कोंपर चिह्नोंके सहारे यहाँ प्राचीन प्रचलित धार्मिक भावनाकी चर्चा की जायगी। चिह्नों- ा बड़ा इतिहासमें स्थान है, इस विषयपर विवेचन ाप्रासङ्गिक होगा; परंतु इतना कहना पर्याप्त होगा कि हासिक कालसे भारतमें प्रचलित चिह्न तत्कालीन ावनाके द्योतक हैं। मोहन-जो-दड़ोसे लेकर बारहवीं ; विभिन्न चिह्न पाँच हजार वर्षोंके धार्मिक ो बतलाते हैं।

(आहत सिक्के) के नामसे पुकारे जाते हैं, जिनके यह कहना कठिन है कि उनपर खुदे चिह्न वास्त बतलाते हैं; तो भी लोगोंकी धार्मिक विचारधाराका किया जाता है। वृक्ष, वृषभ तथा चक्र आदि प्राची प्रयोग होते रहे हैं। वृषभका चिह्न तो मोहन-ज मुद्राओंपर भी मिलता है। इसका सम्बन्ध शैवमत ही था। पञ्चमार्क (आहत) सिक्कोंपर पीपलका जाता है। शिवके वाहन नन्दीको भी वहीं स्थान दि है। ईसापूर्व सदियोंमें उत्तर-पश्चिमी भारतमें ऐसे मिले हैं, जिनपर नन्दी तथा त्रिशूलकी आकृतियाँ पा हैं। यद्यपि पश्चिमी विद्वानोंने इन प्रतीकोंको महत्त्व न था, तथापि भाण्डारकर महोदयने सप्रमाण सिद्ध कर शैवमतके प्रचारके समझनेमें उन सिक्कोंसे वास्तविक मिलती है।

नन्दीका प्रधान चिह्न

प्राचीन गणराज्यों—यौधेय, आर्जुनायन, औदुम्बर तथा मालवने जो सिक्के प्रचलित किये थे, उन सबपर नन्द मिलता है। आजकल भी मन्दिरोंपर त्रिशूल तथा शिवमन्दिरका बोध हो जाता है, उसी प्रकार पुराने नन्दीसे शैवमतके प्रचारका ज्ञान किया जाता था अतिरिक्त अयोध्या, अवन्ति, कौशाम्बी जनपदोंने भी अपना विश्वास घोषित किया और सिक्कोंपर नन्दीक दिया था। पाञ्चाल (वर्तमान रामनगरका भूभाग)- तो शिवलिङ्गकी आकृति पायी जाती है। उत्तर-पश्चिमी में इसका प्रचार इतना हो गया था कि विदेशी भी इ अछूते न रह पाये। भारतीय यूनानी राजाओंने अपनाकर उस प्रभावको दर्शाया है। उनमेंसे अन्तलदत्त मिलिन्दके सिक्कोंपर नन्दीकी आकृति मिलती है भूभागपर ईसापूर्वसे ही कई शताब्दियोंतक शैवमतका रहा। विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आनेपर इस धर्मसे प्र होते रहे। पहली सदी ईसा-पूर्वमें शकराजा मोअने गा शासन किया था। तक्षशिला उसकी राजधानीके रूपमें उसके सिक्कोंपर भी नन्दी प्रधान स्थान पा चुका था। (Maues) के उत्तराधिकारी अयस (Azes) ने उसी

लाते हैं कि शैवमत राजधर्मका रूप धारण कर चुका
राज वीम कदफिसके सिक्कोंपर भगवान् शिवकी मूर्ति
के वाहन नन्दीकी आकृति तैयार की गयी थी। उसके
महाराज राजधिराज सर्वलोक ईश्वरस्य महीश्वरस्य
फीसस' लिखा मिला है। राजाकी पदवी 'महीश्वरस्य'से
ता है कि राजा शैव-मतावलम्बी हो गया था। इसमें
स्थान नहीं रह जाता कि गान्धारमें शताब्दियोंसे
ा प्रचार था। वहाँ प्रचलित मुद्राचिह्न इसे स्पष्टतया
रते हैं। कनिष्क बौद्ध होनेपर भी हिंदू-धर्मकी प्रतिष्ठा
। यही कारण है कि उसके सिक्कोंपर अन्य देवोंके
। ओइशो (महेश) का भी नाम खोदा जाता रहा।
भी वही नीति रक्खी। बौद्ध-धर्मके प्रचारसे शैवमत-
न हो सकी। शकराजा वासुदेवने शिवको सबसे
ता मानकर शिवमूर्तिको ही सिक्कोंपर खुदवाया था।
ाथ नन्दी तथा त्रिशूलकी भी आकृतियाँ मिली हैं।
षाण तथा ससेनियन राजाओंने उसी चिह्नको अपनाया;
इ कलाकी दृष्टिसे घटकर है, यद्यपि उनपर खुदे लेख
(महेश) से सभी भ्रम दूर हो जाता है और शकराजा
ा प्रभावित सिद्ध होते हैं।

शैवमत तथा चिह्न

चीन समयमें प्रचलित सिक्कोंके आधारपर यह पता
है कि राजपूताना, मालवा तथा सौराष्ट्रमें शैवमतका
था। द्वितीय शताब्दीसे ग्वालियरके समीप नागवंशी
ासन करते रहे, जिनके सिक्के तथा लेख बतलाते हैं कि
शिवका अनन्य भक्त था। नाग-सिक्कोंपर नन्दीकी
तो मिलती ही है; परंतु उस वंशके राजा तो सिरपर शिव-
हन करते रहे हैं। यही कारण है कि उनको भारशिवके
पुकारा जाता था। तत्कालीन ऐसी मूर्तियाँ भी मिली
लेखोंमें उल्लिखित बातोंकी पुष्टि करती हैं। उस भूभागमें
का प्रचार शताब्दियोंतक रहा, जिस कारण उस कालमें
ासकोंने उसे ग्रहण किया था। हूण, मैथक तथा
लीन हिंदू राजाओंने जो सिक्के तैयार किये, उनपर शैव-
ो स्थान दिया था। गुप्तकालीन सिक्कोंके विवरणको
र जब हूण-मुद्राका अध्ययन किया जाता है, तब पता
है कि पाँचवीं सदीसे पूर्वी पंजाब तथा मध्यभारतमें
ह्नयुक्त सिक्के प्रचलित थे। यद्यपि हूण राजा मिहिरकुल
उत्कीर्ण कराया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस
विदेशी हूणको भी शैवमत अपनाना पड़ा और भारतीय स
मिल जाना पड़ा। सौराष्ट्रके शासक बलभी-नरेशोंने
प्राचीन चिह्नसे काम लिया और त्रिशूलको सिक्कोंपर खुद
शिवपूजामें अपनी आस्था प्रकट की। पूर्व मध्यकालके
राजा छोटी रियासतोंके शासक होकर भी सिक्के तैयार
रहे। उनके सिक्कोंपर नन्दीकी आकृति मिलती है,
राजपूतानेमें शैवमतके प्रचारका पता लगता है। इस
कहना कठिन है कि उन राजाओंने शैवमतको राजधर्म
दिया था या नहीं। परंतु इतना तो स्पष्ट है कि पश्चिमी
जनता शिवभक्त थी। टकसालघरोंमें शताब्दियोंसे
चिह्न-प्रयोग किया जाता रहा, जो उपर्युक्त कथनको प्र
करता है। यह भी सत्य हो सकता है कि राजपूत
सम्मुख शैवमतके अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म न था। उ
विचारधाराको ग्रहणकर स्वभावतः उन्हें शैवचिह्नोंका
करना पड़ा। तोमर, चौहान तथा नरवर रियासतों
यही हालत रही। साहित्यिक ग्रन्थ भी इस बातको प्रमाणि
हैं कि कापालिक तथा पाशुपत नामक शैव-पन्थ राज
फैले रहे। अतएव साहित्य तथा मुद्राशास्त्रके पा
पुष्टीकरणसे सब बातें प्रकाशित हो जाती हैं और
स्थान नहीं रह जाता। इसी प्रसङ्गमें एक बात कहना
प्रतीत होता है कि पश्चिमी भारतके अतिरिक्त बंग
कुछ समयतक शैवमतका विस्तार हो गया था। गौ
शशाङ्कके सिक्कोंका अध्ययन यह बतलाता है कि
शिवभक्त होनेके कारण भगवान् शिवकी मूर्ति त
नन्दीकी आकृति स्वर्णमुद्रापर तैयार करायी थी
बंगालमें यह अवस्था थोड़े समयके लिये थी।
लेकर सौराष्ट्रमें प्रचलित सिक्कोंके आधारपर यह सिद्ध
है कि उस भागमें शैवमत शताब्दियोंतक प्रधान
रहा।

सिक्कोंमें वैष्णव-परम्परा

भारतवर्षके इतिहासमें गुप्तकाल स्वर्ण युगके
विख्यात है। उस समय देशका वैभव तथा समृ
सीमाको पहुँच गयी थी। गुप्त शासकोंने वैष्णवधर्म
धर्मका स्थान दिया था और स्वयं परम भागवतकी
विभूषित किये गये थे। उनके लेखोंमें होकर

मीकी मूर्तिको प्रमुख स्थानपर खुदवाया था। सोनेके तो विष्णुके वाहन गरुड़ तथा लक्ष्मीकी आकृतियोंसे सन्तोष किया; परंतु चाँदीके सिक्कोंपर 'परम- की पदवी भी अङ्कित करायी थी। इन सब बातोंके शासकोंके विचार तथा प्रचलित धर्मका अनुमान ा सकता है। यद्यपि राजाओंमें धार्मिक सहिष्णुता : भी वैष्णवमतकी प्रधानताके विषयमें सन्देहके लिये न नहीं रह जाता। सोनेके सिक्कोंपर आकृतियाँ तथा । समयके वैष्णवमतके प्रचारका ज्ञान कराते हैं। इसके स्वयं कुछ राजाओंकी मूर्तियोंके हाथमें चक्रध्वज लायी पड़ता है। भरतपुर राज्यके बयाना-ढेरसे जो मी मिले हैं, इनमें चक्र-विक्रमका सिक्का विशेषरूपसे ोय है। उसके अग्रभागमें प्रभामण्डलयुक्त भगवान् आकृति बनी है, जो गुप्त राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यको क भेंट कर रही है। पृष्ठभागमें चक्रविक्रमका लेख । इस प्रकार सिक्कोंके अध्ययनसे यह प्रमाणित हो कि गुप्तनरेश परम वैष्णव थे और साम्राज्यमें वैष्णव- खूब प्रचार था। पिछले गुप्त-नरेशोंने पूर्वजोंका । किया, जिसके कारण वैष्णवमत शताब्दियोंतक सदीसे १२ वीं सदीतक) प्रचलित रहा। इसका ध्यभारत, संयुक्तप्रान्त तथा बिहारमें तो भलीभाँति ंमध्यकालके गहरवार, चन्देल तथा कलचूरी शासकोंने

१२वीं सदीतक उस परम्पराको कायम रक्खा और टकसालघरोंमें वैष्णवचिह्नके साथ सोनेके सिक्के बनते इन आठ सौ वर्षोंमें सिक्कोंके पृष्ठभागमें लक्ष्मीकी मूर्ति स्थान पाती रही। उस समृद्धिकालमें विभिन्न प्रकारके तैयार किये गये थे; परंतु सबपर वैष्णवचिह्न वर्तमान इस कारणसे जनतामें विष्णुपूजाके गहरे प्रभावका अ मिलता है। सभी पहलुओंपर विचार करनेसे प्रकट होता भारतवर्षके बिचले भागमें वैष्णवमतका प्रचार सीमित नन्दीका जो स्थान पश्चिम भारतके सिक्कोंपर था, वही गरुड़ तथा लक्ष्मीको मिल चुका था। उत्तर भारतके अ दक्षिण भारतके सिक्कोंपर भी स्थानीय प्रभाव दिख पड़ता है; परंतु उनके अध्ययनसे किसी प्रकारका नि स्थिर नहीं कर सकते। सातवाहन-सिक्के जिस प्रान्तमें रहे, उस स्थानके प्रचलित ढंगको उन्होंने अपनाया। चो पाण्ड्य सिक्कोंके विषयमें भी यही बात कही जा सकत अन्तमें यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि सिक्कोंके अ भारतके धार्मिक इतिहासमें नया मार्ग उपस्थित कर दि विद्वानोंका ध्यान इस ओर पूर्णरूपसे आकृष्ट नहीं ह है; परंतु भारतीय समाजके इतिहास-निर्माणमें मुद्र पर्याप्त सहायता मिलती है। जहाँतक धार्मिक इति सम्बन्ध है, प्राचीन सिक्कोंकी धार्मिक भावना उसे स सहायता देती है। उसके बिना उन मतोंका अध्ययन रह जायगा।

जगत्में धन्य कौन है ?

जो अपना समय भगवत्-तत्त्वके चिन्तन और कीर्तनमें बिताता है, जो दम्भवाद तथा विवाद ता है और जो सबके आदि ब्रह्मका आत्मसुख-संवाद करता है, ऐसा सर्वोत्तम श्रीरामचन्द्र स जगत्में धन्य है।

जो अखिल विश्वमें सदा-सर्वदा सरल, प्रिय, सत्यवादी और विवेकसम्पन्न है, तथा जो भाषण नहीं करता, वह सर्वोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका भक्त इस जगत्में धन्य है।

जिसके मनमें दुष्ट आशा तथा विषयकी आशा नहीं होती, जिसके अन्तःकरणमें भगवत ा लगी है और भगवान् भक्तिभावके कारण जिसके ऋणी हैं, ऐसा सर्वोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका ातमें धन्य है।

—समर्थ रामदा

हिंदू-संस्कृति और कालज्ञान

(लेखक—श्री... निरञ्जन)

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।
(श्वेताश्वतर० १ । २)

...तिके मूलकारणोंका निर्देश करते हुए श्रुतिने कालको सबसे ...ठ्या है । वस्तुतः बुद्धि कालकी ही एक कला है, अतएव ...लकी सीमामें बहुत ही सीमित होकर चिन्तन करती ...लातीतका चिन्तन या कल्पना करना बुद्धिकी सीमाके ...स्तु है । कालके उत्पादक हैं महाकाल शिव । अतएव ...न अथवा काल-विद्याके आदि गुरु भी महाकाल शिव ... महाकालने अनादि-अनन्त-स्वरूप काल अभिव्यक्त ...अपनी कलासे अनन्त-अनन्त प्रकृति-वैचित्र्यका उत्पादक ... ।

...ा जिस जगत्में रहते हैं, उसका नियामक काल सूर्यरूपसे ...कलाका विस्तार करता है । ग्रह-उपग्रहोंकी सृष्टि करके ...नाना प्रकारके प्राणधारियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और ...की लीला-रचनामें रत हुआ वह अतिशय प्रकाशमान है । प्रजाको उत्पन्नकर उसके कर्मोंका वही द्रष्टा है ...ही उन कर्मोंके परिपाकका हेतु है ।

...लकी कृतिको देखकर सभी हैरान हैं । अच्छे-बुरे ... निर्माण करता हुआ काल-ही-काल लीला कर रहा ...ह ही मृत्यु है, यम है; वही ब्रह्मा है, विष्णु है और ... । वही लोक है, परलोक है, सत्य है, असत्य है, शून्य ...य है—सब कुछ है । सत् और असत् कालरूप पक्षीके ... हैं, वह अनन्त शून्यरूप हो रहा है । जो साधक उस ...विलीन होनेकी चेष्टा करते हैं, उन्हें निर्वाण प्राप्त होता ...रम शान्तिके साम्राज्यमें प्रवेश करते हैं । कालकी ...अनन्त है, अगम-अगोचर है—उसका वर्णन नहीं ... सकता ।

...लको दैव भी कहते हैं । लोकमें कालके लक्षणोंके ...वज्ञ कहलाते हैं । क्योंकि कालका विधायक सूर्य ... है, अतएव कालविद्याको ज्योतिर्विज्ञान या ज्योतिः-...ी कहते हैं और इसके ज्ञाता ज्योतिषी या ... कहलाते हैं । ज्योतिर्विज्ञानमें ज्योतिर्मय लोकोंके ...

क्षेत्र अन्य विज्ञानोंकी अपेक्षा बहुत ही श्रेष्ठ है ... मानवी दृष्टिको दैवीदृष्टिमें परिणतकर मनुष्यको भौति... कलापमें प्रेरणा प्रदान करनेवाली दिव्य ज्योतिर्मय ... गतिविधिकी आलोचना करनेका मार्ग प्रशस्त करता ...

अन्य विविध विज्ञान बुद्धिके विलासमात्र हैं ... कालकी कला होनेके कारण कालगत पूर्वापर-सम्बन्... अवलम्बित होकर कार्य करती है । कालगत पूर्वापर ... ही कार्य-कारणकी भावनाका उत्पादक या स्वरूप है ... यही समस्त विज्ञान और दर्शनका हेतु है । यही क... विद्याएँ, सारी गवेषणाएँ और सब प्रकारकी खोजमें ... कारण-सम्बन्ध ही प्रबल और प्रथम हेतु होता है ... वृत्ति भी कार्य-कारणमय ही होती है, अतएव का... कलामें ही सारी ज्ञान-लीलाएँ होती रहती हैं । ... कालविज्ञान यदि मनुष्यकी राष्ट्र अथवा विश्वकी वि... धर्म-अधर्म, उत्थान-पतन, सुख-दुःख आदिका ... ज्योतिर्लोक—ग्रह-उपग्रहादिके प्रकाशके अनुसार करत... इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं । सच्चा दैवज्ञ इस ... क्रिया-कलापको नियन्त्रित अथवा प्रेरित करनेवाले ... स्थिति, गति, दृष्टि और सम्बन्धके आधारपर भूत, ... और भविष्यकी घटनाओंको हस्तामलकवत् देख सक... परंतु कालका द्रष्टा होनेके लिये कालातीत स्थितिमें ... अर्थात् आत्मस्थ होना परम आवश्यक है । प्रपञ्चमें ... रत रहनेवाला पुरुष दैवज्ञ कहलाये, यह भी एक वि... है । ज्योतिर्विद्के लिये अध्यात्मसाधन करना परम आ... है; जो दैवज्ञ इस मार्गमें जितना ही अधिक अग्रसर ... कालकी कलाओंकी लीला, ज्योतिर्लोकके विभिन्न प्रका... उनका पारस्परिक मिश्रण तथा प्रभाव-प्रपञ्च उतना ही ... स्पष्टरूपसे उसके सामने दीखने लगेंगे । साधनाविहीन ... कपट-कलेवर धारण किया हुआ पुरुष साधु नहीं कहला... उसी प्रकार दैवज्ञका बाना धारणकर प्रपञ्चके अन... भटकनेवाले पुरुषको ज्योतिर्लोकका दर्शन नहीं हो ... साथ ही ऐसे लोगोंको देखकर साधुत्व या कालज्ञानकी ... विषयमें सन्देह करना भी बुद्धिमानी नहीं है ।

ावना लेकर महाकाल शङ्करकी ओर संकेत करता
। कराल रूप धारण कर मृत्युके रूपमें प्रकट होता है;
ो ग्रास करनेवाला महाकाल है, अतएव वह महामृत्यु
ता है। वह भगवत्-स्वरूप ही है। कालाधीन होना
दुःखका मूल है। महाकालाधीन होना मुक्ति है,
है; अतएव ज्योतिर्विज्ञान मर्त्यजीवनके मूलभूत
का ही अध्ययन करता है, अमरत्वके सिद्धान्तोंका
सका समावेश अपरा विद्यामें होता है, परामें नहीं।

तीय चिन्तनका प्रवाह मुख्यतः दो ही धाराओंमें
होता है—परा विद्याकी धारा और अपरा विद्याकी
रा विद्याका विषय है अक्षर ब्रह्म और अपरा विद्याका
अर्थात् नाशवान् जगत्। श्रुतिमें इन दोनों विद्याओं-
सन्निहित है और वैदिक संस्कृतिमें इन दोनोंको
कर जगत्-जीवनको सौम्य बनानेकी चेष्टा की गयी
र्तिविज्ञान अपरा विद्याका एक अंश है।

ठकी शक्ति है कालिका। कालिका-ज्ञान विषय है
ाका। अतएव कालविज्ञानका तन्त्रविद्याके साथ
म्बन्ध है। शक्तिका एक उपासक अपनी इस स्तुतिमें
का उद्घाटन करता है—

ानो भास्वत्तामममृतनिलयो लोहितवपु-
मात्राणां सौम्यो गुरुरपि कवित्वं च कलयन्।
ौ मन्दो गङ्गाधरमहिषि कामाक्षि भजतां
ःकेतुर्मातस्तव चरणपद्मो विजयते॥

शङ्करवल्लभे! कामाक्षि! तुम्हारे चरणकमल विजयको
रहे हैं। भास्वत्ता (भास्वान् सूर्य) को धारणकर ये
निलय (चन्द्र), लोहितरूप (मङ्गल), उपासकोंके
ौम्य (बुध)-स्वरूप, गुरु (बृहस्पति) अर्थात्
क होनेपर भी कवि-(शुक्र) की कलना करते हुए,
शनि) गतिसे युक्त तथा भजन करनेवालोंके तम (राहु)
मोहान्धकारको नाश करनेवाले (केतु) हैं।'

ःतुतः शक्तिके बिना रवि-चन्द्र आदि ग्रह-उपग्रहोंका
हो ही नहीं सकता। अतएव शक्तिका उपासक इनको
अङ्गभूत ही देखता और जानता है। ज्योतिर्विज्ञानका
यदि शक्तिका उपासक और तान्त्रिक है तो वह इसके
के ज्ञानका अधिकारी हो सकता है। तान्त्रिक

होता है, वह दिव्यता साधनाके बलसे अथवा शक्तिक
इन चर्मचक्षुओंमें ही प्राप्त होती है। भारतीय ज्योति
आधार दूरबीन नहीं, दिव्यचक्षु है।

योगदर्शनमें आता है—'भुवनज्ञानं सूर्ये सं
'चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्', 'ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्।'*
सूर्यमें संयम (धारणा, ध्यान और समाधि) का
दिव्य-दृष्टिसे चतुर्दश भुवनोंको देखता है, चन्द्रमें
करनेसे तारा-व्यूहका ज्ञान होता है, ध्रुवमें संयम
ताराओंकी गतिका ज्ञान होता है। महर्षि पतञ्जलि
प्रकार योगसाधनके द्वारा दिव्य-दृष्टि प्राप्तकर ज्योति
अध्ययनका जो मार्ग प्रशस्त किया है, उसके द्वारा प्र
निर्भ्रान्त ज्ञान है। वह प्रत्यक्ष प्रमाणके आधारपर प्र
है और वह प्रत्यक्ष भी यौगिक प्रत्यक्ष है। लौकिक
भ्रान्ति हो सकती है, परंतु यौगिक प्रत्यक्ष तत्त्वदर्श
कारण सदा भ्रान्ति-शून्य होता है। आधुनिक दू
यन्त्रोंके द्वारा प्राप्त ज्ञान लौकिक प्रत्यक्ष और अ
आधारपर होनेके कारण अनाप्त (Hypothetica
है। अतएव इसमें भ्रान्ति होती है और अगले
अपने पूर्वके अन्वेषणोंके लिये बाधक होते जाते
प्रकारके संशयग्रस्त और अनिश्चित ज्ञान योगज द
प्राप्त आर्षज्ञानके सम्मुख प्रमाणकोटिमें नहीं रक्खे ज
अतएव भारतीय ज्योतिर्विज्ञानकी महिमा निर्विव
होती है।

यौगिक संयमसे केवल आकाशीय ग्रहोंका (Astron
ज्ञान ही नहीं होता, बल्कि तद्द्वारा होनेवाले जीव
शुभाशुभ कर्मफलोंका (Astrological) ज्ञान भी

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञान
(विभूति

ज्योतिष्मती प्रवृत्तिके आलोकमें संयम करनेसे
सूक्ष्म, व्यवहित और दूरकी वस्तुओंका ज्ञान होता है
योगीकी दृष्टिको देश और कालका व्यवधान बाध
सकता। उसे हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष त्रिकालज्ञान
यही नहीं, कालका एक क्षुद्र अंश है क्षण। क्षण
क्रममें संयम करनेसे विवेकजन्य ज्ञान होता है, अ
असत् आदिका योगी प्रत्यक्ष द्रष्टा हो जाता है। क
भी एक महिमा है। अतएव काल-ज्ञान लोक औ

लके क्षणोंका पूर्वापर-क्रम जिस प्रकार कार्य-कारणकी
। हेतु होता है, उसी प्रकार इन क्षणोंकी स्थिति
' भावनाको उत्पन्न करती है। कालविज्ञानके साथ
' अटूट सम्बन्ध इसी कारणसे है। शून्य अर्थात्
। कालकी क्रीड़ा होती है; इस कारण रेखागणित या
अन्य गणनाओंमें आकाशकी प्रमुखता तथा अङ्क-
। तत्प्रधान अन्य गणनाओंमें कालकी प्रमुखता हेतु
एव आकाशीय ज्योतिर्लोकोंकी गति, स्थिति और
ौकिक फलाफलके निर्णयमें गणित-शास्त्रका अटूट
हता है। आधुनिक आधिभौतिक विज्ञानोंके मूलमें इस
ज्ञानने प्रयोगात्मक सहायता प्रदान की है, अतएव
ान-विस्तारमें मूलतः कालकी ही लीला दृष्टिगोचर

ल्की महिमा अपार है। परंतु काल निरन्तर परिवर्तन-
कालके प्रतीक ज्योतिर्लोक भी क्षण-क्षण परिवर्तनके
। रहे हैं। आकाशीय ज्योतिर्लोक—ग्रह, उपग्रह,
कोंकी स्थिति बदलती रहती है। पहलेकी अपेक्षा
में बहुत परिवर्तन हो गया होगा। योग और तन्त्रके
द्वारा प्राप्त दृष्टिका आज अभाव है, अतएव काल-
उसका फलाफल-निर्णय आज कुछ सन्दिग्ध-सा हो
अविद्या अर्थात् योगमायाके इस महा-अन्धकारमय
दिव्य-दृष्टिसे देखनेका आनन्द लूटने और त्रिकाल
सौभाग्य हमें कब प्राप्त होगा ? ऋषियोंके द्वारा प्र
हुआ निर्भ्रान्त ज्ञानालोक भी दिव्य-दृष्टिविहीन हमारे नेत्र
धुँधला-सा दीख पड़ता है। स्वतन्त्र भारतके मह
युवक ऋषि-प्रदर्शित इस मार्गकी ओर अग्रसर ह
सर्वश्रेष्ठ विज्ञान—ज्योतिर्विज्ञान या काल-ज्ञानके
अपने जीवनकी आहुति देनेके लिये तैयार हों तो विश्व
परम कल्याण साधन कर सकेंगे। यह विषय बहुत ग
दुर्बोध है; यदि अवकाश मिला तो इस विषयके अ
पुनः कुछ विवेचना करनेकी चेष्टा की जायगी।

नाभिजात्यं न वै शीलं न बलं न च नैपुण
भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्च ह्यनिरोधक

'कुलीनता, शील, बल, बुद्धिमानी—ये सब
कार्य-साधनके लिये समर्थ नहीं होते। काल कुछ-का
डालता है, उसकी रेखाको कोई मिटा नहीं सकता।'

हिंदू-ज्योतिर्विज्ञान अथवा भारतीय ज्योतिःशास्त्र

(लेखक—ज्यो० भू० पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदी)

तीय ज्ञानभण्डारकी निगम, आगम और दिव्य नाम-
शतशः विद्याओंके अन्तर्गत हिंदू-ज्योतिर्विज्ञानका
स्थान है (देखिये इन्द्रविजय अ० ११)। ऋग्वेद-
। ३ । २२ । १६४) में, तैत्तिरीय ब्रा० (२ ।
में और इन्हीं मन्त्रोंके भाष्यमें सायणाचार्यने प्रणव-
पदी; व्याहृति और सावित्रीरूपा द्विपदी; वेदचतुष्टय-
ष्पदी; छः वेदाङ्ग, पुराण और धर्मशास्त्ररूपा अष्ट-
ांसा, न्याय, सांख्य-योग, पाञ्चरात्र, पाशुपत, आयुर्वेद,
गान्धर्ववेदरूपा नवपदी और अनन्त विद्याओंमें
ज्ञानका भी वर्णन है। छान्दोग्योपनिषद् (७ । १ । २)
नारदने अपनी पठित विद्याओंमें राशिविद्या, गणित
विद्या, निधिविद्या, नक्षत्रविद्या एवं फलित ज्यौतिष-
वर्णन किया है। मुण्डकोपनिषद् (१ । ५) में
ाके रूपमें चारों वेदोंके साथ ही षडङ्गमें ज्यौतिषको
है। और विष्णुपुराण (३ । ७ । २८-२९) में
कि 'तक्षशिलाके विश्वविद्यालयमें १८ विद्याओंमें
करायी जाती थी' (मौर्यसाम्राज्यका इतिहास पृ० ६
अवश्य ही जातकोंमें उल्लिखित १८ विद्याएँ वे ह
विष्णुपुराणमें कही गयी हैं और जिनमें वेदाङ्गस्वरू
ज्योतिर्विज्ञान भी है।

जिस ज्योतिर्विज्ञानकी अविच्छिन्न परम्परा ऋ
ब्राह्मण, छान्दोग्य और मुण्डकोपनिषद् तथा विष्
बौद्ध जातकों-तकके प्राचीन साहित्यमें हमको मिलत
जिसका उपयोग हमारे धार्मिक और व्यावहारिक
सनातन कालसे सतत होता आ रहा है, आज हम उ
ज्योतिर्विज्ञानके विषयमें महर्षि वात्स्यायनके सिद्धा
उद्देश्य, लक्षण और परीक्षाद्वारा किञ्चित् विचार करने ज

ज्योतिर्विज्ञानका उद्देश्य

विनैतदखिलं श्रौतस्मार्तकर्म न सिध्यति

ात् 'इस ज्योतिर्विज्ञानके बिना हमारे श्रौत और सिद्ध नहीं हो सकते। अतएव जगत्के हित-साधनके ाजीने इसकी प्रथम रचना की।' ज्योतिर्विज्ञानके रे श्रौत-स्मार्त कर्म क्यों नहीं सिद्ध हो सकते? इस निराशार्थ महर्षियोंने बहुत कुछ लिखा है, किंतु याजुषज्यौतिषके तीसरे और आर्चज्यौतिषके श्लोकमें तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणके दूसरे खण्डके अध्यायके अन्तमें (जो पितामहसिद्धान्तका अन्तिम) लिखा है—

यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद सर्वम्॥

ात् 'वेद तो विविध यज्ञानुष्ठानोंके लिये प्रवृत्त हैं तने यज्ञ हैं, उनका अनुष्ठान कालाधीन है। अतएव न् कालविधानशास्त्र—ज्योतिर्विज्ञानको जानते हैं, वे ् सब कुछ जानते हैं।' इस विष्णुधर्मोत्तरपुराणके और याजुष एवं आर्चज्यौतिषके पाठोंमें केवल न्तर है कि 'वेदास्तु'के स्थानमें 'वेदा हि' है और स्थानमें 'यज्ञान्'। शेष पाठ अक्षरशः समान है।

ांश यह कि ज्योतिर्विज्ञानके गौणरूपसे भले ही अनेक ; किंतु मुख्य उद्देश्य है 'कालविधान', जिस कालज्ञानके ुजातिके षोडश संस्कार; तिथि, वार और नक्षत्रोंके विविध व्रतोत्सव तथा मुहूर्तादिविचार; प्रश्न, एवं हायन (ताजक) सम्बन्धी होराविचार और ीसंहिताके शकुन, वायुपरीक्षा, मयूरचित्रक, , ग्रहश्रृङ्गाटक आदिके विचार ही नहीं हो सकते। नहीं, कालज्ञानके बिना दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, विषुव, आयन, गवामयन, ज्योतिषामयन आदि ्वं महालयादि पैतृक यज्ञोंके अनुष्ठान भी नहीं हो सारांश यह कि ज्योतिर्विज्ञानका मुख्य उद्देश्य है।

ज्योतिर्विज्ञानका लक्षण

त ज्योतिर्विज्ञानके ज्ञानके बिना हिंदू-जातिके नित्य- कार्य ही नहीं चल सकते, उसका लक्षण क्या है के स्वरूपमें समयानुसार कैसे-कैसे परिवर्तन हुए हैं? दू जातिका ज्योतिर्विज्ञान अपरिवर्तनशील है, जिसका ातन स्वरूपसे प्रमाण उपस्थित किया जा सकता हो?

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम्
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमम्
(नारदसंहिता

अर्थात् 'सिद्धान्त, संहिता और होरारूप स्कन्धः ज्योतिःशास्त्र वेदभगवान्‌का निर्मल नेत्रस्वरूप ३ विज्ञान है।' भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणिके गणि में सिद्धान्तका लक्षण लिखा है—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा चोत्तरा
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधै

अर्थात् 'त्रुटिकालसे लेकर प्रलयके अन्तकालतक लेखक, प्राणपल, विनाड़ी, नाड़ी, अहोरात्र, मास, अयन, वर्ष, सत्यादि चारों युग, स्वायम्भुवादि चौदह म ब्राह्म दिन, रात्रि, कल्प) की गणना और नौ कालमान (ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गुरु, सौर, चान्द्र और नाक्षत्र) के भेद; सूर्यादि ग्रहोंकी चाल और अव्यक्त गणित; दिशा, देश और कालसम्बन्धी प्रश्न तथा उनके उत्तर; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहोंके सं कक्षादि; और वेधद्वारा ग्रह-नक्षत्रादिके स्थान, क्रा आदिके ज्ञापक तथा क्षणादि अहोरात्रपर्यन्त काल तथा जल, वालुका एवं कील आदिद्वारा स्वयं विविध यन्त्रोंके बनानेकी विधि और उपयोगका जिस हो, उस गणितशास्त्रको ज्योतिर्विज्ञानका 'सिद्धा कहते हैं।'

ज्योतिर्विज्ञानके संहितास्कन्धका वर्णन आचार मिहिरने महर्षियोंके मतानुसार अपनी बृहत्संहिता (१ में विस्तारके साथ किया है, जिसका सारांश यह है कि ग्रहों, विविध केतुओं—पुच्छल ताराओं, नक्षत्रों, अगस्त्य आदि ताराव्यूहोंके स्थान, चार योग, उद के द्वारा शुभाशुभादिका वर्णन तथा विविध उत्पातों और उनके फलोंके विचार और रत्नपरीक्षा, पशुप साथ ही विविध मुहूर्तोंका वर्णन और मानवजाति व्यावहारिक विषयोंका वर्णन संहितामें रहता है। अत ज्योतिःस्कन्धका दूसरा नाम व्यवहारशास्त्र भी रक्खा

तीसरे होरास्कन्धका लक्षण सत्याचार्यने आदि

दशाभेद, अन्तर्दशादि, अरिष्ट, कर्मजीव, राजयोग, ।, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोग, प्रव्रज्यायोग, राशि- ग्र, ग्रहभावफल, आश्रम और सङ्कीर्णयोग, स्त्रीजातक, , निर्याण तथा द्रेष्काणादि फलोंका विचार—इन सब के विषयोंका वर्णन होता है। होरास्कन्धका दूसरा जातक अथवा यों कहें कि होरास्कन्धका प्रधान अङ्ग । 'जातक' शब्दके विषयमें शब्दकल्पद्रुम (जि० २, , जादिवर्ग)में लिखा है—

तं जन्म 'तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः' इत्यण्, ततः ।। यद्वा जातेन शिशोर्जन्मना कायतीति । कै + कः । कस्य शुभाशुभनिर्णायकग्रन्थः ।'

र्थात् जन्मकालके आधारपर जो शुभाशुभ फल-निर्णय ग्रन्थ हो, इसको जातक कहते हैं; किंतु होरास्कन्ध- अर्थ सारावली (२ । २–४) में कल्याणवर्माने कि 'अहोरात्र' शब्दका संक्षिप्त रूप आदि-अन्तके त्याग देनेसे 'होरा' शब्द बना है; क्योंकि अहोरात्र— दिनके द्वारा ही ग्रहोंके भगणादिकोंका स्पष्टीकरण होता उन्हीं ग्रहोंके द्वारा समस्त फलविचार होते हैं। अथवा नाम होरा है तथा लग्नार्द्धका नाम होरा है, जिसके मस्त जातकसम्बन्धी फलविचार होते हैं। इसी होरा- के द्वारा जन्म, वर्ष, प्रश्नादिके इष्टकालपर ग्रहभावादि- ष्टीकरण तथा दृष्टि, बल, दशा-अन्तर्दशादिकी गणना लोंका विचार होता है। अतएव इसको होरा, जातक यन (ताजक) भी कहते हैं।

ज्योतिर्विज्ञानकी परीक्षा

योतिर्विज्ञानके उद्देश्य और लक्षणका वर्णन हो जानेपर सकी परीक्षा होनी चाहिये। उद्देश्यके अनुसार हिंदू- विज्ञानका लक्षण मिलता है अथवा नहीं, यही विचारणीय है। ज्वलतिकर्मा 'द्युति' धातुसे 'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः' णिनिके उणादिसूत्रद्वारा जकारादेश होकर 'ज्योतिः' बनता है, जिसका अर्थ स्वयंप्रकाश ग्रहनक्षत्रादि गया है। उन्हीं सूर्यादि ग्रहों और अश्विन्यादि नक्षत्रों- णित तथा फलितका वर्णन जिस शास्त्रमें हो, उसको कृत्यकृतो ग्रन्थः' (पा० ४ । ३ । ८७) इस सूत्रद्वारा ' प्रत्यय हो जानेसे 'ज्यौतिष' शास्त्र कहते हैं, जो हिंदू र्विज्ञानके अर्थमें योगरूढ़ माना गया है।

लोगोंने 'प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रम्' की आड़में अपने कालीन अनुभव और चर्मचक्षुके बलपर दृग्गणित (सा गणनाद्वारा अनादि, अव्यय वेदाङ्ग-ज्योतिर्विज्ञानमें बीजादिसंस्कार देकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है और अयनांशकी कल्पना कर ली है, तथापि हमारे वेदचक्षु ज्योतिर्विज्ञानकी निरयण कालगणना और ग्रहगण पञ्चाङ्गपत्रकी रचना तथा उसीके आधारपर समस्त श्रौ कर्मोंका व्यवहार होता आ रहा है। वस्तुतः हमारे ज्योति के 'विज्ञान' शब्दका अर्थ इस प्रकार है—

विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्
अज्ञानमितरत्सर्वम्·····················

(कूर्मपुराण २ ।

अर्थात् 'निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अव्यय विकाररहित एकस्वरूप) जो ज्ञान है, वही विज्ञान इतर ज्ञान सब-के-सब अज्ञान हैं।' सारांश यह कि जि ईश्वरनिःश्वसित हमारे वेद अपरिवर्तनशील हैं, उस वेदभगवान्के चक्षुःस्वरूप ज्योतिर्विज्ञानका स्वर अपरिवर्तनशील, निर्मल, सूक्ष्म और अव्यय है। वृ सिद्धान्त (मध्यमाधिकार श्लो० ८)में लिखा है—

वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत्प्रधानताङ्गेषु ततोऽर्थज
अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न कि

अर्थात् 'यह ज्योतिःशास्त्र वेदभगवान्का नेत्र है। उसकी स्वतः वेदाङ्गोंमें प्रधानता है; क्योंकि अन्यान्य युक्त, परिपूर्णमूर्ति पुरुष नेत्रहीन (अन्धा) होनेसे कु है। आर्चज्यौतिष (३५) और याजुष ज्यौतिष (लिखा है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं (गणितं) मूर्धनि स्थि

अर्थात् 'जैसे मयूरोंकी शिखा और नागोंकी मा भूषण है, वैसे ही (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छ ज्यौतिषरूप) वेदाङ्गशास्त्रोंमें ज्यौतिष शिरोभूषण है

सिद्धान्त, संहिता और होराके रूपमें जिस ज्यो का इतना महत्त्व है, उसके विषयमें ऋग्वेदीय च परिशिष्टमें महर्षि शौनकने लिखा है—'चतुर्लक्षं तु अर्थात् मूल ज्योतिर्विज्ञान चार लाख श्लोकोंमें है संहिता, कश्यपसंहिता और पराशरसंहितामें ज्यो

ा मत है कि पाठशुद्धिसे ही दो नाम बढ़ जाते हैं।
पाठके अनुसार वे १८ नाम इस प्रकार हैं—
सूर्य, वसिष्ठ, अत्रि, मनु, सोम (पौलस्त्य), लोमश,
अङ्गिरा, व्यास, नारद, शौनक, भृगु, च्यवन,
र्ग, कश्यप और पराशर।'

विद्वानोंने गर्गसंहिताके—

च्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम्।

इस श्लोकको देखकर यवनाचार्यको यूनानी और लोमश=
रोमक तथा पौलस्त्य=पौलिसको सिकन्दरपौलिसकी
रके हमारे ज्योतिर्विज्ञानके प्रवर्तकोंमें विदेशियोंको प्रविष्ट
चेष्टा की है, जो सर्वथा भ्रम है। इस विषयमें विशेष
लिये अ० भा० हि० सा० सम्मेलन, प्रयागसे प्रकाशित
ान्तकी हमारी टीकाकी भूमिकाके पृष्ठ १-४६ देखने
वस्तुतः ये १८ ज्योतिर्विज्ञानके प्रवर्तक सब-के-सब
ही अमर विभूतियाँ हैं।

पि चतुर्लक्षात्मक इस ज्योतिर्विज्ञानके गणितमें सिद्धान्त,
करण तथा फलितमें संहिता—जिसके अन्तर्गत शकुन,
, शालिहोत्र, स्वर, निधिविज्ञान, दैव और मुहूर्तादि
षय हैं—और होरास्कन्ध, जिसके अन्तर्गत जातक, हायन
एवं प्रश्नादिके विषय हैं, तथापि इस ज्योतिर्विज्ञानके
ो ही भाग हैं—प्रथम गणित, दूसरा फलित। और
गोंका अस्तित्व वैदिक कालसे अबतक अविच्छिन्नरूपसे
ै। जो लोग फलित भागको आधुनिक कहते अथवा
, वे इस बातको भूल जाते हैं कि फलित और गणित-
र्थविव सम्बन्ध है। यदि गणित वचन है तो फलित
र्थ है और जिस प्रकार अर्थरहित शब्द व्यर्थ होता है—
योग कभी बुधजन नहीं करते—उसी प्रकार फलितरहित
व्यर्थ होता है, जिसके लिये हमारे ब्रह्मादि ज्योतिः-
र्तक जन सिद्धान्तादि-रचना करते—यह सम्भव नहीं।

वश्य ही गणित और फलितकी इस प्रकारकी घनिष्ठता
भी ज्योतिर्विज्ञानका फलित भाग—चाहे वह होराका
और चाहे संहिताका विषय—परतन्त्र है, गणिताधीन
गणितके उसका विचार ही नहीं हो सकता; किंतु
ाग स्वतन्त्र है। अतएव ज्योतिर्विज्ञानकी परीक्षामें यदि
तभागकी परीक्षा कर लें तो फलित भागकी परीक्षा स्वतः
ी। अतएव हमको देखना है कि ज्योतिर्विज्ञानका जो
वर्णित लक्षणोंसे हो जाती है अथवा नहीं। और इमां
सिद्धान्तके विषय वेदाङ्गज्योतिषके ही हैं अथवा किस
से लाये गये हैं।

उपर्युक्त १८ प्राचीन आचार्यांके सिद्धान्तोंमेंसे जो
इस समय प्राप्य हैं, उनमें सबसे अधिक मान्य 'सूर्यसिद्ध
वराहमिहिरकी पञ्चसिद्धान्तिका (शक ४२७)
सिद्धान्तोंका उल्लेख और कुछके वर्णन भी हैं। उस
मिहिरने लिखा है—'स्पष्टतरः सावित्रः' (पं० सि
श्लो० ४)। नृसिंहदैवज्ञने हिल्लाजदीपिकामें ६ सिद्धा
नाम दिये हैं, उनमें भी सूर्यसिद्धान्तका महत्त्व वि
दैवज्ञ पुञ्जराजने अपने शम्भुहोराप्रकाशमें सात सि
जो नाम दिये हैं, उनमें भी सूर्यसिद्धान्तकी प्रधानता
शाकल्यसंहिताके ब्रह्मसिद्धान्त (१। ९) में 'अष्ट
शास्त्रम्' लिखा है और उन आठ सिद्धान्तोंमें भी सूर
की प्रधानता है। सारांश यह कि इस समयतक सूर्य
अधिक महत्त्वपूर्ण कोई दूसरा सिद्धान्त नहीं है। अ
इस परीक्षामें सूर्यसिद्धान्तके आधारपर विचार
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त ही मूल सूर्यसिद्धान्त है, इसमें स
और उसकी गणनाके सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(१) सहस्रयुगीय कल्पके आधारपर सूर्यादि ग्रहों
उच्च, पातादिके भगणद्वारा मध्यम ग्रहगणना औ
स्पष्टीकरण।

(२) कालबोधक वर्षगणना सौरचान्द्र,
सौरचान्द्र, तिथिगणना सौरचान्द्र, वारगणना सा
घड़ी-पलादिकी गणना आर्क्षमानसे करके 'चतुर्भिर्व्य
सौरचान्द्रार्क्षसावनैः' चरितार्थ करना।

(३) पञ्चाङ्गकी गणनामें निरयण गणनाको म
हुए ग्रहण, युति, क्रान्तिसाम्यादिकी गणनामें सायन
गणनाका प्रयोग।

(४) कल्पारम्भके पश्चात् ४७,४०० दिव्य (
१,७०,६४,०००) वर्षसे अहर्गणकी गणना, जिसके
निरयण ग्रहगणना की जाती है। और नि
अहर्गणका आरम्भकाल।

(५) नाक्षत्रिक चैत्रादि मासोंके नामकी यौगि
सूर्यादि वारोंका अहर्गण-गणनामें महत्त्व।

लगमन और प्रवहवायुद्वारा भपञ्जरके दैनिक पश्चिमाभि-
की मान्यता ।

७) सूर्यादि ग्रहोंकी गतियोंमें आकर्षणशक्तिकी

-ज्योतिर्विज्ञानके उद्देश्योंमें कालविधान और श्रौत-स्मार्त
साधन ही मुख्य हैं और ज्योतिर्विज्ञान—विशेषकर
ज्यौतिषके लक्षणोंके उपर्युक्त विवरणोंसे यह सिद्ध हो
कि हिंदू-ज्योतिर्विज्ञान उद्देश्यपूर्ति करनेमें पूर्ण समर्थ
के लिये निम्नलिखित प्रमाण हैं—

इक्को वै यज्ञः' इस श्रुतिवचनके अनुसार 'अग्निहोत्र',
मास', 'चातुर्मास्य', 'पशुबन्ध' और 'सोम'
ांच प्रकारके यज्ञ होते कुछ लोग 'इष्टि', 'पशु'
म' नामसे तीन ही प्रकारके यज्ञ मानते हैं और इन तीनों
औपासन', 'वैश्वदेव', 'पार्वण', 'अष्टका', 'मासिक-
'सर्पबलि' और 'ईशानबलि' नामके सात यज्ञ; 'अग्नि-
'दर्शपौर्णमास', 'आग्रयणादि इष्टायन', 'चातुर्मास्य',
शुबन्ध', 'सौत्रामणी' और 'पिण्डपितृयज्ञ चतुर्होतृ-
' नामके सात तथा 'अग्निष्टोम', 'अत्यग्निष्टोम', 'उक्थ्य,'
', 'अतिरात्र', 'वाजपेय' और 'आप्तोर्याम' नामके
यज्ञ— इस प्रकार २१ प्रकारके यज्ञ-भेद होते हैं
पब्राह्मण ५ । २५)।

तना ही नहीं, 'शिरोयज्ञ', 'अतियज्ञ', 'महायज्ञ', 'हवि-
और 'पाकयज्ञ'के नामसे जिन पाँच यज्ञोंके वर्णन हैं,
भी एक-एकके अनेक भेद हैं तथा 'रात्रिसत्र',
सत्र' और 'संवत्सरसत्र', 'बहुसंवत्सर', 'महा-
' नामसे जिनके बहुसंख्यक अवान्तर भेद हैं, वे वैदिक यज्ञ
नके अनुष्ठानमें संवत्सर, अयन, विषुव, मास—चैत्रादि
पक्ष, तिथि और सावन दिन (वारों) के जाननेकी
यकता होती है तथा चान्द्रनक्षत्रोंका जानना भी
श्यक होता है। सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, व्यतीपातादि योग,
ादि ऋतु और विष्णुपदी, षडशीतिमुखादि सूर्य-
न्तियोंका ज्ञान भी यज्ञानुष्ठानके लिये अत्यावश्यक होता है
इन सभी कालों, नक्षत्रों और योगोंका ज्ञान एकमात्र
गगणनाके अनुसार सूर्यसिद्धान्त-जैसे आर्षसिद्धान्तीय
ोंके द्वारा ही हो सकता है और हमारे षोडश संस्कार,
मी, जयन्ती, शिवरात्रि, प्रदोष आदि व्रतों तथा हिंदू-

योग और करणके साथ ही सौर-संक्रान्तियोंके ज्ञानके बि
सकना असम्भव है और इन सबका ज्ञान हमारे निरयण सि
ज्यौतिषद्वारा ही हो सकता है। अतएव यह सिद्ध हो ज
कि हमारे श्रौत-स्मार्त कर्म हिंदू-ज्योतिर्विज्ञान—सूर्यसि
जैसे सिद्धान्तके ज्ञान बिना किये ही नहीं जा सकते ।

इसी प्रकार वास्तुरचना, विविध प्रकारके कुण्डों
वेदियोंके बनानेमें दिशाओंका ज्ञान भी आवश्यक हो
जिसका ठीक-ठीक ज्ञान ज्योतिर्विज्ञानद्वारा ही हे
(देखिये 'दिङ्मीमांसा' स्व० महामहोपाध्याय पं० श्रीसुध
द्विवेदी कृ०)। श्रौत-स्मार्त कर्मोंके आरम्भ करनेके मुहूर्त,
प्रश्नादिके लग्नादि-विचारके लिये क्षणादि कालके ज्ञान
अत्यन्त आवश्यकता होती है और ठीक-ठीक कालज्ञान
सिद्धान्तोंमें वर्णित विविध यन्त्रोंद्वारा ही हो सकता है (
यन्त्राध्याय सू०)। अतएव यह सिद्ध हो जाता है कि
ज्योतिर्विज्ञानका सिद्धान्तीय लक्षण उद्देश्यके अनुरूप है
इसमें सन्देह नहीं ।

हिंदू-ज्योतिर्विज्ञानकी अपरिवर्तनशीलत

हमारा वेदाङ्ग-ज्योतिष, जो वेदभगवान्का चक्षु
है, क्या अपने अङ्गी वेदोंके समान ही अपरिवर्तनशील है
मध्यकालीन आर्यभट्ट, लल्ल, वराह आदि विद्वानोंके म
समय पाकर उसमें अन्तर हो जाता है, जिससे समय-
उसमें बीजादि-संस्कार देकर उसकी स्थूलताकी शुद्धि
चाहिये ? जैसा आजकलके आस्तिक विचारके विद्वानें
कथन है कि 'जिस समय सूर्यसिद्धान्तादि आर्षसिद्ध
रचना हुई, उस समयमें सूर्य-चन्द्रादिका स्पष्टीकरण
होता था और उसके अनुसार तिथ्यादि-मान शुद्ध है
कालान्तरमें अन्तर पड़ता है। अतएव विदेशीय विद्वानों
भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके आकर्षण, नूत
तथा मन्दफलादि संस्कारसे सूर्यका और इसी प्रकार
उपकरणोंसे चन्द्रमाका स्पष्टीकरण जो किया है, उसीके
तिथ्यादि-साधन करना चाहिये।' किंतु यह सब वि
मात्र है, इसमें कोई तत्त्व नहीं ।

जिस आर्ष सिद्धान्तको हमारे वेदों और स्मृतियों
किया है और जिस गणनाके अनुसार तिथियोंक
करके श्रौत-स्मार्त कर्मका विधान किया है—यदि हम
हैं तो आज भी उसी गणनासे बनी तिथियों, मास

ाब अन्तर है, उतना ही (अन्तर) तब भी था। इसमें भी संशय नहीं करना चाहिये। क्या उस समयमें नहीं था, जो बड़े बलसे सूर्यको खींचता है—जिसके ई विकलाओंका विकार सूर्यमें पड़ जाता है ? और समयमें सूर्य नहीं था, जिसके खींचनेसे चन्द्रमामें विकार पड़ जाता है ?' (पञ्चाङ्ग-प्रपञ्च पृ० २) ादि ग्रह आजके ही समान सूर्यसिद्धान्तके रचना-ी थे तो सूर्यसिद्धान्तके अदृश्य गणितमें और आकर्षण-ा किये गये दृश्य गणितमें जितना अन्तर आज पड़ उतना ही अन्तर उस समय भी पड़ता था, जिसको में दिव्य दृष्टिवाले हमारे महर्षियोंने नहीं माना, अपने तिथ्यादिको ही श्रौत-स्मार्त कर्मके लिये उपयुक्त माना एव उसीको हमें भी मानना चाहिये।

ङ्गज्यौतिष और हमारे सिद्धान्त-ज्यौतिष

रे वेद-चक्षुःस्वरूप ज्योतिर्विज्ञानके इतिहासलेखक ण्डित शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितने अपने 'भारतीय ास्त्र' (मराठी) में, स्व० बा० योगेशचन्द्र रायने ामादेर ज्योतिष और ज्योतिषी' (बंगला) में, स्व० ाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदीने अपनी 'गणक-' (संस्कृत) में तथा भारतीय इतिहासके न जाने खक विद्वानोंने अपनी-अपनी रचनाओंमें स्पष्ट शब्दोंमें कि आर्च और याजुष नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थों (वेदाङ्ग-) से अधिक प्राचीन हमारे देशमें कोई ज्योतिर्ग्रन्थ ौर हमारे सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिःसिद्धान्त शक ४२१ ई० सन्‌के पूर्व ४५० वर्षके अन्तर्गत बने हुए क्षितजीने लिखा है कि वेदाङ्ग-ज्यौतिषका समय ई० े अधिक-से-अधिक १४०० वर्ष और कम-से-कम ाे है और उसके पश्चात् ई० सन्‌के पूर्व ४५० वर्ष ज्यौतिषका समय है। स्व० चिन्तामणि विनायक ाभारतमीमांसामें लिखा है कि ई० सन्‌के आरम्भमें ज्यौतिषसिद्धान्तोंकी रचना हुई है। इन सभी ख्याति-ानोंके कालनिर्णयकी मुख्य युक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

:) सिद्धान्तज्यौतिषकी गणना अश्विन्यादि है। अतएव ाय मेषके सायन सूर्य अश्विनीमें होते थे और ा अभाव था, उस समय सिद्धान्तज्यौतिषकी निरयण-ााया हुआ है।

विधान है, वह सब वारगणनाके ज्ञानके बिना हो नह और हमारे देशमें वारगणनाका समय ई० सन्‌के पू वर्ष (महाभारत-रचनाकाल) के पश्चात् माना जाता है महाभारतमें वारोंके नाम नहीं हैं।

(३) नित्यानन्दने सिद्धान्तराजमें लिखा है कि कलिगताब्दमें सूर्यसिद्धान्तकी रचना हुई है और अल अपनी पुस्तक (अलबेरूनीका भारत) में लिखा सूर्यसिद्धान्तकी रचना लाटदेवने की है। अतएव उसक शक ४०० के लगभग है।

(४) आर्यभट्टने अपने तन्त्र (शक ४२१) सिद्धान्तकी चर्चा नहीं की। अतएव उस समयतक अस्तित्व नहीं था।

(५) हमारे ज्योतिःसिद्धान्तोंकी सूक्ष्म गणना यू से ली गयी है; क्योंकि हमारी ज्योतिर्गणना तो आ याजुष ज्यौतिषगणनाके समान पञ्चवर्षीय स्थूलतर है; ३६६ सावन दिनोंका सौर वर्ष और मध्यम गण तिथ्यादि-साधनका विधान है। अतएव सिकन्दरके भार (ई० सन्‌के पूर्व ३२६ व०)के पश्चात् यूनानियोंसे होनेके बाद ज्योतिःसिद्धान्तकी रचना हुई है।

उपर्युक्त युक्तियाँ सर्वतोभावसे निःसार हैं। ज्यौतिषके नामसे प्रसिद्ध यजुर्वेद-ज्यौतिषके १६ ऋग्वेद-ज्यौतिषके १४वें श्लोकमें नक्षत्रोंके लघु वर्णनमें अश्विन्यादि नक्षत्रक्रम रक्खा है और य० ज १०वें श्लोकमें और ऋ० ज्यौ० के ९वें श्लोक सूर्यनक्षत्रोंके एक ऋतुका वर्णन वेदाङ्गकालमें भगण भागराशियोंका अस्तित्व सिद्ध करता है और यजुर्वेद ११वें श्लोकमें मासपतिके प्रसङ्गमें सात वारोंका स्प है (देखो वेदाङ्ग-ज्यौतिषका सुधाकरभाष्य पृ० ९) ही नहीं, आर्च और याजुष ज्यौतिषको ध्यानपूर्वक विदित होता है कि इनकी रचनाके समयमें हमारे ि ज्यौतिषकी सूक्ष्म गणना प्रचलित थी और गणित वैदिकोंके लिये ही ज्योतिर्विदोंने स्थूलरीतिसे दर्शपं और विषुवायन तथा तिथि-नक्षत्रादिके जाननेके लिये बना दिये थे, जिनको आजके इतिहासज्ञ वेदाङ्गके अत्यधिक महत्त्व दे रहे हैं। वस्तुतः वे हमारे मूल स सिद्धान्तके पश्चात बनाये गये हैं।

तियोंको अपमानित करने और हमारी सभ्यताके
वेरुद्ध बातें लिखनेमें ही अपना गौरव समझा है और
। बारहमाहोंके पण्डित नित्यानन्दने अपनी सारी
रोमकसिद्धान्तकी दोहाई देनेमें और निरयण गणनाके
हमारे ज्योतिःसिद्धान्तके विरुद्ध सायनवादमें ही खर्च
है। अतएव उनके लेखका कोई मूल्य नहीं माना जा
क्योंकि उनके लेख आर्ष सिद्धान्तके विरुद्ध होनेसे
अप्रामाणिक हैं।

र्यभट्टने सूर्यसिद्धान्तकी चर्चा नहीं की; किंतु उनके छः
ही बड़ी प्रशंसाके साथ इसी सूर्यसिद्धान्तकी चर्चा—
: सावित्रः' के रूपमें वराहमिहिरने की है। साथ ही
(शक ५२०) ने अन्यान्य सिद्धान्तोंकी प्राचीनता-
ख करते हुए ब्रह्मसिद्धान्तके विषयमें लिखा है—

ोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत् खिलीभूतम्।

से निश्चय हो जाता है कि आर्यभट्टके समय (शक
के बहुत पहलेसे हमारे ज्योतिःसिद्धान्त प्रचलित
समें सन्देह नहीं। दूसरी बात यह भी है कि 'भावाभाव-
ण' अत्यन्त शिथिल होता है। अतएव जिन लोगोंका
त है कि 'आर्यभट्टने सूर्यसिद्धान्तकी चर्चा नहीं की,
उस समयतक सूर्यसिद्धान्त था ही नहीं', वे सर्वथा
हैं। वराहमिहिरके समय यही सूर्यसिद्धान्त था और
नामपर वराहने कल्पकुदिनमें २८ दिन घटा दिये हैं,
गणित करनेमें लाघव होता है, और अन्तर एक सौर
वल १ विपल और २४ अतिपलका होता है। वराह-
जो पञ्चसिद्धान्तिकामें सूर्यसिद्धान्तके क्षेपकका वर्णन
, वह वर्तमान सूर्यसिद्धान्तके ही अनुरूप है। अतएव
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त ही मूल सूर्यसिद्धान्त है, इसमें
हीं।

नानियोंसे सिद्धान्त सीखनेकी कल्पना तो अब सर्वथा
सिद्ध हो चुकी है। पक्षपाती विदेशीय विद्वानोंको भी
होकर मानना ही पड़ा है कि भारतीय ज्योतिःसिद्धान्तों-
ना यूनानी अथवा किसी विदेशी गणनाके आधारपर
है—यह बात सर्वथा असत्य है। ये सिद्धान्त सर्वथा-
भारतीय ही हैं [देखिये 'हमारी प्राचीन ज्योतिष'के
–७०]। वारगणनाका अस्तित्व याजुष ज्योतिषके
श्लोकमें तथा गर्गसंहिताके निम्नलिखित श्लोकमें
या है—

ायनान्यृतवो मासाः पक्षास्त्वृक्षं तिथिर्दिनम्।

अर्थात् अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि और
दिन। इस विषयमें विशेष देखना हो तो हमारा '
कालगणनामें वारोंका महत्त्व' देखना चाहिये।

वेदाङ्गज्योतिषमें चैत्रादि चान्द्र (सौर-चान्द्र)
नाम आये हैं। दीक्षितजीने बड़े परिश्रमसे इस बात
की है और अन्तमें उनको विश्वास हो गया है
गणनामें चैत्रादि नाम यौगिक सिद्ध नहीं होते। किसी
के चैत्रादि बारहों मासोंकी पूर्णिमाएँ चैत्रादि मास-
संयुक्त नहीं मिलतीं। अतएव उन्होंने लिखा है कि
ज्योतिषकी गणनासे भी अधिक स्थूल गणना भार
प्रचलित थी, तभी ये चैत्रादि नाम रक्खे गये हैं
इतिहासज्ञ विद्वान् विदेशीय कालगणनाओंकी दुर्दशा
अपने निर्विकल्प वेदाङ्गज्योतिर्विज्ञानकी कालगणना
ग्रहगणनाकी परम्परामें भी आरम्भिक दुर्दशाका विश्वा
हैं। अतएव वे कहते हैं कि 'भारतकी प्राचीन ज्यो
वेदाङ्गज्यौतिषसे भी अधिक स्थूल थी, वेदाङ्गज्यौतिषके
यूनानियोंके संसर्गसे सिद्धान्तज्यौतिषकी सूक्ष्म
प्रचार हुआ, जिसके अनुसार अधिमास और क्षय
व्यवस्था की गयी है तथा महाभारतके जुवेके प्रणके १
पर भीष्मजीने १३ वर्ष, ५ मास और १२ दिनकी
दी थी, जो एक सौर वर्षमें ३६६॥ सावन दिनके अ
ही सम्भव था।'

अवश्य ही उपर्युक्त बातें विदेशीय विद्वानोंद्वारा
की गयी हैं और भारतीय विद्वानोंने उन्हींका पद
किया है; किंतु वे सारी कल्पनाएँ ज्योतिर्विज्ञानके मर्म न
के कारण हुई हैं। इस बातको हमने प्रथम ही दिखा
है कि हमारे ज्योतिःसिद्धान्तके गणित ही वास्तविक
हैं और वे हैं सर्वथा वैदिक साहित्यके समकालीन।
के रूपमें आप देखें कि चैत्रादि मासोंके यौगिक ना
गणनाके अनुसार नहीं, सिद्धान्तगणनानुसार ही रक
हैं, १३ वर्षके जुवेके प्रणकी व्यवस्था ठीक-ठीक सि
सूक्ष्म गणनाद्वारा की गयी है और हमारी सिद्धान्तज्यो
गणना इतनी प्राचीन है कि उतने प्राचीन कालमें
किसी भागमें ज्यौतिष ही क्या, किसी भी विद्याका
नहीं था।

जिन प्रमाणोंसे चैत्रादि मासोंका अस्तित्व
पूर्णिमाओंके नामोल्लेखसे तथा स्पष्ट मासोंके नाम

१।४।८) में 'फाल्गुनीपूर्णमास' और 'चित्रापूर्णमास', ...ण (१।१।२।८) में फाल्गुनीपूर्णिमा, ...ह्मण (२।१।३) में 'फाल्गुनीपूर्णमासी', ...ण (६।११) में भी 'फाल्गुनी पौर्णमासी' और ...न-ब्राह्मणमें तथा सामविधान-ब्राह्मणमें 'फाल्गुनी', (ज्येष्ठी) और 'पौषी' पूर्णमासीके वर्णन। इतना कौषीतकिब्राह्मण (१९।२।३) में 'तैष्यस्य ...) और 'माघस्य' और पञ्चविंश-ब्रा० (५।९।१) ...गुनः' और गृह्यसूत्र (२।१।१) में 'श्रावण्याम् ...स्याम्), (२।३।१) में 'मार्गशीर्ष्यां··· चतुर्दश्याम्' ...रस्कर गृ० सू० (३।१२) में 'मार्गशीर्ष्यां पौर्ण-...का उल्लेख है तथा इसी प्रकार वैदिक साहित्य, महा-...और मन्वादि स्मृतियोंके साथ ही चाणक्यके अर्थ-...स्पष्टरूपसे सिद्ध हो जाता है कि चैत्रादि मास ही हमारे ...स प्राचीन कालमें भी वैसे ही माने जाते थे जैसे कि हम हिंदुओंके वे राष्ट्रिय मास हैं।

...क्षितजी तै० सं० (४।४।१०) और तै० ब्रा० ...१।१) की नक्षत्रदेवताओंके प्रसङ्गमें 'रोहिणी ...न्द्रो देवता' तथा 'इन्द्रस्य रोहिणी'का स्वतः अपने ...ज्यौतिषशास्त्र'में उल्लेख करते हुए भी इस बातको ...है कि सामविधानब्रा०में 'रोहिणी'की पूर्णिमाका जो ..., वह 'रौहिणी' पौर्णमासी इन्द्रदैवत रोहिणी (ज्येष्ठा)-...क ज्येष्ठी पौर्णमासी है। अतएव फाल्गुनी, चैत्री आदि ...सियोंको उन्होंने फाल्गुन और चैत्रमासकी पूर्णिमाएँ ...ल्गुनी और चित्रा नक्षत्रोंसे युक्त पूर्णिमाएँ मान ली हैं ...ी आधारपर भ्रमवश लिख दिया है कि ब्राह्मणकालमें ...मासोंका अस्तित्व नहीं था और जिन ग्रन्थोंके जिन चैत्रादि मासोंके नाम हैं, वे ब्राह्मणकालके पीछेके हैं।

...रांश यह कि चैत्रादि नाक्षत्र मासोंके नाम वैदिक कालमें ...चलित थे, जो याजुष और आर्च ज्यौतिषके पूर्वका ...। और ये नाम यौगिक—नाक्षत्रिक हैं, जो आर्ष ...की सूक्ष्म गणनाद्वारा ही सिद्ध होते हैं—अन्य किसी ...द्वारा नहीं। दीक्षितजीने 'भारतीय ज्यौतिष' (पृ० ४२८) ...र्षके उदाहरणद्वारा देखा है कि चैत्रादि मास यौगिक ...हीं होते; वेदाङ्ग-ज्यौतिषकी गणना और सूर्यसिद्धान्तीय ...ञ्चाङ्ग (काशी) के पाँच वर्षों (वि० संवत् १९९९ से संवत्में अपने मास-नक्षत्रोंसे युक्त नहीं होतीं। ...निश्चय हो जाता है कि जिन चैत्रादि मासोंके नाम ...पूर्णिमाओंके आधारपर पाणिनिने सिद्ध किये हैं और ...सूर्यसिद्धान्त (१४।१५) में व्यवस्था है, चैत्रादि ...से वे नाम न तो दीक्षितके उदाहृत केरोपन्ती (...नुसार) शक १८०४ से १८०७ तक तथा शक ...ठीक उतरते हैं और न वेदाङ्ग-ज्यौतिषके पञ्चाङ्गके कभी भी ठीक उतरते हैं तथा काशीके सूर्यसि... विश्वपञ्चाङ्ग (वि० सं० १९९९ से २००३ तक) ठीक नहीं उतरते। वे चैत्रादि मासोंके नाम किस... गणनाद्वारा सिद्ध किये जाते हैं।

चैत्रादि मासोंके नाम तिथि और नक्षत्रोंके ... रक्खे गये हैं और तिथि एवं नक्षत्र सूर्य तथा चन्द्रम... बनते हैं। अतएव हमको देखना चाहिये कि सौरगण... चान्द्रगणनाका आरम्भ कब होता है। काल... उत्तरायण, दक्षिणायन और देवयान तथा पितृयान... है। वेदाङ्गज्यौतिषकी गणना उत्तरायणसे आरम्भ... (याजुष ज्यौ० ५-६) और सिद्धान्तज्यौतिषकी देवयान (उत्तर-विषुव) से—चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होती है (ब्रा० स्फुटसिद्धान्त १।४)। सिद्धान्... देवयानद्वारा सौर गणना आरम्भ होती है और पि... चान्द्रगणनाका आरम्भ होता है। सौरगणनाके मेष-मासोंकी गणना मासारम्भके सौरनक्षत्रोंके आधारपर अ... क्रमसे होती है और अमान्तके आधारपर चैत्रशुक्ल... से अश्विनीके सूर्यसे होती है और सूर्योदयकालसे किंतु चान्द्रगणना ठीक इसके विपरीत होती है। (देवयान) उत्तर-विषुवसे होती है, शुक्लपक्षकी होती है और सूर्योदयकालसे होती है और चान्द्रगण... विषुवसे, कृष्णपक्षसे और सूर्यास्तकाल (चन्द्रोदय) होती है। और सौरमासोंके नाम आरम्भकालकी मेषादिनामसे होते हैं और चान्द्रगणनाके मासोंके ... की अन्तिम तिथि पूर्णिमाके चन्द्रनक्षत्रके आश्विनादि क्रमसे होते हैं।

सारांश यह कि चैत्रकृष्ण प्रतिपदासे अम... देवयानके कार्यका उपक्रम करते हुए चैत्रशुक्ल... सूर्योदयकालसे। मेषसंक्रान्ति सौर अश्विनी नक्षत्रके आ...

तृयानके १६ दिनोंके महालयके उपक्रमके साथ का आरम्भ होता है और मासान्त—आश्विन शुक्ल अश्विनी नक्षत्रके नामसे ही उसका आश्विन नाम जिस प्रकार सौरगणना राशिप्रधान है और उसके म राशियोंके नामपर होते हैं, उसी प्रकार चान्द्रगणना न है और उसके मासोंके नाम नक्षत्रोंके नामपर दे होते हैं। दोनों ही गणनाएँ अश्विन्यादिक्रमसे गणना करती हैं—चान्द्रगणना चन्द्रनक्षत्रके अपने मासोंके नाम रखती है और सौरगणना न्तिके आधारपर करती है, जो सूर्यनक्षत्रसे बनती है।

ुक्त विवरणसे यह निश्चय हो जाता है कि चैत्रादि ाम जिस गणनाके द्वारा आदिकालमें रक्खे गये हैं, ्यान-गणना है और उसका क्रम आश्विनादि है, ीं। इसी बातको वेदव्यासजीने बृ० धर्मपुराणके (१५।९–१६) में दिखलाया है और कहा है—

श्विनाद्या मता मासाः सौरचान्द्रप्रमाणतः।

। देखना है कि आश्विनादि-गणनाके अनुसार क्या बारहों मासकी पूर्णिमाएँ अपने-अपने मास-नक्षत्रोंके सी एक चान्द्रवर्षमें पर्वान्तयोग करती हैं?

सूर्यसिद्धान्तानुसारी स्व० महामहोपाध्याय पं० द्विवेदीके पञ्चाङ्ग (वि० सं० १९६४-६५) के हमने विचार किया तो सं० १९६४ के आश्विन माससे ं० १९६५ के भाद्रपदमासकी बारहों पूर्णिमाएँ पने मास-नक्षत्रोंसे पर्वान्तयोग करती हैं। अतएव णित हो जाता है कि जिन चैत्रादि मासोंके नाम हमारे साहित्यसे लेकर अबतक अविच्छिन्नरूपसे श्रौत-स्मार्त यवहृत हुए हैं, उनका नामकरण यौगिक है और वे र्यसिद्धान्त-जैसे आर्षसिद्धान्तकी गणनाद्वारा रक्खे जिससे यह सिद्ध होता है कि हमारी सिद्धान्तगणना ० आदि वैदिक साहित्यके पूर्वसे—अनादि कालसे है और उस समयसे प्रचलित है, जिस समय यूनानी णितका संसारमें अस्तित्व ही नहीं था।

ारतकी भीष्मव्यवस्था और सिद्धान्तज्यौतिष

राटनगरकी चढ़ाईके समय कृष्णपक्षकी अष्टमीको जब अपना नाम लेकर कौरवोंको ललकारा था, तब कर्ण और प्रतिज्ञानुसार उन्हें पुनः १२ वर्ष वनमें रहना (विराटपर्व अ० ४७ श्लोक २–५)।' और इस प्रका विचार प्रकट करते हुए जब भीष्मसे दुर्योधनने समय- लिये व्यवस्था देनेको कहा, तब भीष्मने कला-व लेकर संवत्सरपर्यन्तके कालचक्रकी बात कहकर व्यवस्था 'ज्योतिश्चक्रके व्यतिक्रमके कारण वेदाङ्गज्योतिषकी तो १३ वर्ष, ५ महीने और १२ दिन होते ह पाण्डवोंने जो प्रणकी बातें सुनी थीं, उनको यथाव करके और अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिको निश्चयपूर्वक ही अर्जुन आपके समक्ष आया है।' (महाभारत । अ० ५२ श्लो० १–५)

भीष्मजीने ५ वर्षोंमें दो चान्द्रमासोंके अधि होनेकी बात वेदाङ्गज्यौतिषके अनुसार कही है। यदि वर्षोंमें २ मास अधिमास हो जाते हैं तो १३ वर्ष यदि स होते तो ५ महीने और ६ दिन १३ वर्षोंसे अधिक होते। लोग कहते हैं कि जिस गणनाके अनुसार भीष्मने दी है, उस गणनासे एक सौर वर्षमें वेदाङ्गज्यौतिषके ३६६ सावन दिन नहीं, ३६६ दिन और ३० घड़ी हो होता है। इसी प्रश्नको लेकर महाभारतमीमांसा (पृ० १२०)-में वैद्यजीने विदेशोंकी कालगणनाकी दुर्दशा कि स्व० महामहोपाध्याय ओझाजीने प्राचीन मालामें पृ० १९४-१९५ की सात टिप्पणियोंमें उद्धृत किया है—देखकर भारतीय ज्योतिर्विज्ञानकी ि कालगणनाकी दुरवस्थाका भी अनुमान किया ज्योतिर्विज्ञानके मर्मको न जानकर भीष्मकी व्य दुर्व्यवस्था की है, जो लोगोंका भ्रम है।

अर्जुन जिस ग्रीष्मऋतुके कृष्णपक्षकी अष्टमीव हुए, उसके प्रथम दिन सप्तमीको १३ वर्ष प्रति पूर्ण हो गये थे, जो आजके ही समान व्यावहारिक सिद्धान्तसे निष्पन्न थे। जिन विद्वानोंने प्रतिज्ञाके सौरमानके अथवा चान्द्रमानके माने हैं, उनको ज्यौतिषकी कालगणना और भारतकी सनातन काल ज्ञान ही नहीं था और व्यर्थ ही प्रपञ्च किया है। यदि १३ वर्ष सौर होते तो अष्टमीके ६ दिन पूर्व ही पूरे हो गये होते और कृष्ण सप्तमीको भीमको युद्ध हो जानेके भयसे अतिमर्त्य कर्म करनेसे धर्मराज

ातिज्ञा पूरी हो गयी होती और प्रकट होनेके डेढ़ मास
त घोर अत्याचारको, जो भरी सभामें द्रौपदीके प्रति
किया था, पाण्डव सहन न करते और प्रकट होनेसे केवल
पूर्व सुदेष्णाद्वारा विराटराजके सन्देशको सुनकर द्रौपदी
का समय न माँगती। अतएव यह निश्चय हो जाता
ण्डवोंकी प्रतिज्ञाके १३ वर्ष राष्ट्रिय कालगणनाके
का उल्लेख करनेकी आवश्यकता न थी और वह
ालगणना भारतकी सनातन कालगणना है, जिसका
हमारे ज्योतिःसिद्धान्तकी गणनामें—अहर्गणादि
होता है और वह है सौर-चान्द्रगणना। और इसीके
पाण्डवोंके १३ वर्ष पूरे होते हैं और भीष्मव्यवस्था
ार्थ हो जाती है। देखिये निम्नलिखित उदाहरण—

:) यदि द्यूतक्रीड़ाकी मिति वि० संवत् १९७१
ण ८ रविवारको मान लें तो उस दिन सूर्य होंगे
४१। २५ और अंग्रेजी तारीख १७ मई सन् १९१४
और अर्जुनके प्रकट होनेकी मिति वि० सं० १९८४
८ मं० को मान लें तो उस दिन सूर्य होंगे १।
६ और तारीख १४ मई सन् १९२७ ई०। दोनों
अन्तर होंगे—

:-चान्द्रमानसे—१३ वर्ष १ दिन (चौदहवें वर्षका
न)।

मानसे—१३ वर्ष और ६ दिन।

जी मानसे—१३ वर्ष और ७ दिन।

: वेदाङ्गज्यौतिषके चान्द्रमानसे होते हैं १३ वर्ष, ५
ार १२ दिन। यही है भीष्मजीकी व्यवस्था।

प्रकार यदि द्यूतक्रीड़ाकी मिति वि० सं० १९७३,
१९८८ अथवा १९९० की ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमीको
ो क्रमशः अर्जुनके प्रकट होनेकी मिति वि० संवत्
१९९४, २००१ तथा २००३ की ज्येष्ठ कृष्ण
ाननेपर अन्तर होते हैं—

-चान्द्रमानसे—१३ वर्ष १ दिन (चौदहवें वर्षका
न)।

मानसे—१३ वर्ष और ६ दिन।

: वेदाङ्गज्यौतिषके चान्द्रमानसे होते हैं १३ वर्ष,
और १२ दिन। यही है भीष्मजीकी व्यवस्था।

ोक्त पाँचों उदाहरण विशुद्ध सिद्धान्तगणनाके
हो जाता है कि महाभारत-युद्धकालमें भारतमें
ज्यौतिषकी गणनाका ही प्रचार था और उसी
अनुसार राष्ट्रमितिके रूपमें कालगणनाका व्यवहार अ
होता था।

पृथ्वी-परिभ्रमणका भ्रम

सिद्धान्तज्यौतिषका सूर्यपरिभ्रमण-सिद्धान्त भी
महत्त्वका विषय है; क्योंकि आज सारे संसारके गणि
वैज्ञानिक पृथ्वी-परिभ्रमण-सिद्धान्तको मानते हैं औ
वैज्ञानिकताका प्रभाव हमारे भारतीय विद्वानोंके
इतना गहरा पड़ा है कि वे अपनेपनको भूलकर अ
ज्यौतिषसिद्धान्तोंपरसे श्रद्धा हटाकर, भूपरिभ्रमण
वेदमन्त्रों और अपने ज्यौतिषसिद्धान्तोंद्वारा समर्थ
संसारके वैज्ञानिकोंके प्रति अपना और हिंदू-संस्कृति
हिंदू-ज्योतिर्विज्ञानका आत्मसमर्पण कर देनेमें ही अ
अपने देशके ज्ञान-भण्डारका गौरव समझते हैं।

हिंदू-संस्कृतिमें 'जगत्' का अर्थ ही चलने
अतएव यदि हम पृथ्वीको भी चलनेवाली मा
सिद्धान्ततः आपत्ति नहीं; किंतु सूर्यके चारों ओर अ
अक्षपर भी पृथ्वीका परिभ्रमण मानना और वेदों त
नेत्रस्वरूप हमारे ज्यौतिषसिद्धान्तोंके प्रमाणोंद्वारा दूस
मनवानेकी चेष्टा करना हमारी हिंदू-संस्कृतिके अनु
और न यथार्थ ही है। स्व० महामहोपाध्याय बापूदे
ने इसके विषयमें 'प्राचीन ज्यौतिषाचार्याशय' ना
पुस्तिका लिखी है, जिसमें इस भूभ्रमणमतको अपने
ज्यौतिषसिद्धान्तोंके अनुकूल लिखा है और स्व
महोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदीने यद्यपि 'भूभ
चलनिरूपण' नामकी पुस्तिकामें इस मतकी
आलोचना की है, तथापि पीछेसे उन्होंने भूभ्रमणमतक
ही किया है। और आर्यसमाजके संस्थापक स्वा०
सरस्वती अपनी ऋग्वेदादिभूमिकामें तथा उनके ही प
न जाने कितने विद्वान् अपने-अपने लेखोंमें 'वेदोंमें
गति' लिखते देखे गये हैं।

यदि हमारे भारतीय विद्वान् वैज्ञानिकोंके भूभ्रम
सत्य मान लें और उनका विश्वास हो कि यह सत्य है त
आपत्तिकी बात नहीं। उनको स्पष्ट शब्दोंमें कह देना
कि भले ही हमारे संस्कृत-साहित्य—वेदों और
सिद्धान्तोंमें सूर्यपरिभ्रमणका सिद्धान्त प्रतिपादित

पड़ता है, वैसा ही वर्णन किया गया है। जब ंसारको तात्त्विक दृष्टिसे मिथ्या मानते हुए भी अपने उसको सत्य मानकर ही सब कुछ करते हैं, तब । सत्य और सूर्यभ्रमणको तात्त्विक दृष्टिसे मिथ्या ए भी हमारे पूर्वज संस्कृत-साहित्यमें यदि के आधारपर सूर्यपरिभ्रमणको सत्य मानते हैं आश्चर्यका विषय नहीं; क्योंकि ज्योतिर्गणना-मतसे एक ही फल निष्पन्न होता है। ग्रहण, र्तन, दिन-रात आदि सभी विषयोंके गणितमें दोनों क ही उत्तर आता है। किंतु ऐसा न करके अपने के अर्थमें खींचातानी करके और 'गौरादित्यः' इस गैर इसके भाष्यको आँखसे ओझल करके 'गौरिति नामधेयम्' के अधूरे अर्थको अपनाकर 'वेदोंमें गति' सिद्ध करनेकी चेष्टा करना और आर्यभट्टके मर्गतिर्नौस्थः' (गी० ४) का विपरीत अर्थ करके णेनैतिकलां भम्' के पाठको बदलकर 'प्राणेनैतिकलाभूः' में 'भवांशोऽर्कः' (गी० १) को और गोलपादके—

ग्रयाल्पमर्यानिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुनाऽऽक्षिप्तः ।
क्षासमपश्चिमगोभपञ्जरः सग्रहो भ्रमति ॥ १ ॥

इ श्लोकको भुलाकर आर्यभट्टके नामपर ज्योतिर्गणितके भूभ्रमण सिद्ध करनेकी चेष्टा करना सर्वथा अनुचित है। समस्त ज्योतिर्षसिद्धान्तोंका निश्चित मत है सूर्य-णका सिद्धान्त और वैदिक मन्त्रों और यास्कके निरुक्त भाष्यका भी यही मत है। इस विषयमें विशेष देखना हो री 'कुमतिप्रकाशिका' का प्रथम (ज्योतिष) खण्ड

ज्योतिर्विज्ञानके मूलभूत कालगणनाकी ओर ध्यान देनेसे इसका महत्त्व प्रकाशमें आ जाता है। भगवद्गीता (१७), महाभारत-शान्तिपर्व (२३१ । ३१), मनुस्मृ (१ । ७३), निरुक्त (१४ । ९) और शाकल्यसंहितान्त ब्रह्मसिद्धान्त (१ । ४४-४५) में यही श्लोक आया है—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

अर्थात् एक सहस्र चतुर्युगपर्यन्त जो ब्रह्माजीका और सहस्र युगोंतककी रात्रि होती है, इस गणनाको अहो विद् ज्योतिर्विद् ही जानते हैं। इसमें जो सहस्र युगोंकी कही गयी है, उसका विवरण भी मनुस्मृति (१ । ६६ । में दिया है और इस सहस्रयुगीय कल्पगणनाके आ हमारे समस्त ज्योतिःसिद्धान्तोंकी ग्रहादि-गणना होती है निरयणगणनाके मध्यग्रहादिका निर्णय होता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे ज्योतिःसिद्धान्तकी गणना मनु यास्कके निरुक्त और गीता-महाभारतके पूर्वसे प्र है। सारांश यह कि ज्योतिर्विज्ञानके आधारभूत हमारे ज सिद्धान्तकी सूक्ष्म गणना, निर्विकल्परूपसे अति प्राचीन अथवा यों कहे कि वेदोंके समान ही अनादि कालसे प्र है और इसीके आधारपर वैदिकोंके तिथि-पर्वादि-ज्ञानके ज्योतिर्विदोंने स्थूलरूपसे चुटकुले बना दिये थे, जो इस याजुष और आर्चज्योतिषके नामसे प्रसिद्ध वेदाङ्ग-ज्योति जाते हैं और पाश्चात्त्य विद्वानोंने तथा उनके अनुयायी इतिहासलेखकोंने उन्हींको भारतके सबसे प्राचीन ज्यो कहकर हमारे हिंदू-ज्योतिर्विज्ञानरूपी सूर्यके ऊपर धूल की-सी व्यर्थ चेष्टा की है।

यदि भगवत्कृपा हुई तो कल्याणके किसी साधारण फलित ज्यौतिषके विषयमें हम अपना मत प्रकट करेंगे

शुभ शकुन कौन-से हैं ?

कुल सुदरसन, दरपनी, छेमकरी, चक, चाष। दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिल
सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल, सुहावनि बात। तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल स

नेवला, मछली, दर्पण, क्षेमकरी चिड़िया, चकवा और नीलकण्ठ—इन्हें दसों दिशाओंमेंसे किसी ना शुभ शकुन है और ये मनकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि अमृत, सा , सुन्दर पुष्प, सुन्दर फल, सुहावनी बात, श्रीसीतानाथ भगवान्की भक्ति—ये सात सुन्दर सु न हैं।

हिंदू संवत्, वर्ष, मास और वार

(लेखक—ज्योतिर्विद् पं० श्रीदेवकीनन्दनजी खेडवाल)

ी भी धार्मिक कृत्यके लिये हिंदू-धर्ममें पहले संकल्प विधान है। संकल्पमें कल्पसे लेकर संवत्, अयन, ास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्रादि सबका उच्चारण माना गया है। यह प्रथा सूचित करती है कि कालसे हिंदुओंको समयका अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान था। एवं ग्रह-नक्षत्रादिकी स्थितिसे पूर्ण परिचित रहते कालज्ञानके लिये भारतीय ज्यौतिष-शास्त्रने बहुत विचार किया है। इन संवत्, मास, तिथि आदिके शास्त्रोंकी छानबीन अत्यन्त लाभदायक है।

संवत्

-गणनामें कल्प, मन्वन्तर, युगादिके पश्चात् ा नाम आता है। युगभेदसे सत्ययुगमें ब्रह्म-संवत्, ामन-संवत्, परशुराम-संवत् (सहस्रार्जुन-वधसे) राम-संवत् (रावण-विजयसे), द्वापरमें युधिष्ठिर- र कलिमें विक्रम, विजय, नागार्जुन और कल्किके चलित हुए या होंगे। शास्त्रोंमें इस प्रकार भूत एवं कालके संवतोंका वर्णन तो है ही, भविष्यमें प्रचलित संवतोंका वर्णन भी है। इन संवतोंके अतिरिक्त जाओं तथा सम्प्रदायाचार्योंके नामपर संवत् चलाये भारतीय संवतोंके अतिरिक्त विश्वमें और भी ंवत् हैं। तुलनाके लिये उनमेंसे प्रधान-प्रधानकी दी जा रही है—

भारतीय

			वर्तमान वर्ष
ाब्द	...		१,९७,२९,४९,०५०
ृ-संवत्	...		१,९५,५८,८५,०५०
ान-संवत्	...		१,९६,०८,८९,०५०
ाम-संवत्	...		१,२५,६९,०५०
ृष्ण-संवत्	...	...	५,१७५
ाष्ठिर-संवत्	...	...	५,०५०
ृ-संवत्	...	...	२,५२४
वीर (जैन)-संवत्		...	२,४७६
ंकराचार्य-संवत		..	२,२३१
११—शालिवाहन-संवत्	...		...
१२—कलचुरी ,,	...		...
१३—वलभी ,,	...		...
१४—फसली ,,	...		...
१५—बँगला ,,	...		...
१६—हर्षाब्द ,,	...		...

विदेशीय

नाम			वर्तमान
१—चीनी	सन्	...	१,६०,०
२—खताई	,,	...	८,८८,३
३—पारसी	,,	...	१,०
४—मिस्री	,,	...	
५—तुर्की	,,	...	
६—आदम	,,	...	
७—ईरानी	,,	...	
८—यहूदी	,,	...	
९—इब्राहीम	,,	...	
१०—मूसा	,,	...	
११—यूनानी	,,	...	
१२—रोमन	,,	...	
१३—ब्रह्मा	,,	...	
१४—मलयकेतु	,,	...	
१५—पार्थियन	,,	...	
१६—ईस्वी	,,	...	
१७—जावा	,,	...	
१८—हिजरी	,,	...	

यह तुलना इस बातको तो स्पष्ट ही कर देती भारतीय संवत् अत्यन्त प्राचीन हैं। साथ ही ये दृष्टिसे अत्यन्त सुगम और सर्वथा ठीक हिसाब निश्चित किये गये हैं। नवीन संवत् चलानेकी शास्त्री यह है कि जिस नरेशको अपना संवत् चलाना हो, उ चलानेके दिनसे पूर्व कम-से-कम अपने पूरे राज्यमें

। चाहिये। कहना नहीं होगा कि भारतके बाहर
का कहीं पालन नहीं हुआ। भारतमें भी महापुरुषों-
उनके अनुयायियोंने श्रद्धावश ही चलाये; लेकिन
सर्वमान्य संवत् विक्रम-संवत् है और महाराज
त्यने देशके सम्पूर्ण ऋणको, चाहे वह जिस व्यक्तिका
वयं देकर इसे चलाया है। इस संवत्के महीनोंके नाम
संवतोंकी भाँति देवता, मनुष्य या संख्यावाचक
म नहीं हैं। ये नाम आकाशीय नक्षत्रोंके उदयास्तसे
खते हैं। यही बात तिथि तथा अंश (दिनाङ्क) के
भी है। वे भी सूर्य-चन्द्रकी गतिपर आश्रित हैं।
ह कि यह संवत् अपने अङ्ग-उपाङ्गोंके साथ पूर्णतः
सत्यपर स्थित है।

यिनी-सम्राट् महाराज विक्रमके इस वैज्ञानिक संवत्के
में प्रचलित ईस्वी सन्पर भी ध्यान देना चाहिये।
का मूल रोमन-संवत् है। पहले यूनानमें ओलिम्पियद्
, जिसमें ३६० दिनका वर्ष माना जाता था।
की प्रतिष्ठाके दिनसे वही रोमन-संवत् कहलाने लगा।
न्की गणना ईसामसीहके जन्मसे तीन वर्ष बादसे
है। रोमन सम्राट् जूलियस सीजरने ३६० दिनके
६५३ दिनके वर्षको प्रचलित किया। छठी शताब्दीमें
तयसने इस सन्में फिर संशोधन किया; किंतु फिर
वर्ष २७ पल, ५५ विपलका अन्तर पड़ता ही रहा।
५३९ में यह अन्तर बढ़ते-बढ़ते ११ दिनका
तब पोप ग्रेगरीने आज्ञा निकाली कि 'इस वर्ष
बरके पश्चात् ३ सितंबरको १४ सितंबर कहा
र जो ईस्वी सन् ४ की संख्यासे विभाजित हो
सका फरवरी मास २९ दिनका हो। वर्षका
२५ मार्चके स्थानपर १ जनवरीसे माना जाय।'
ज्ञाको इटली, डेनमार्क, हॉलैंडने उसी वर्ष स्वीकार
या। जर्मनी और स्विजरलैंडने सन् १७५९ में,
सन् १८०९में, प्रशियाने सन् १८३५में, आयर्लैंडने
३९में और रूसने सन् १८५९में इसे स्वीकार किया।
संशोधन होनेपर भी इस ईस्वी सन्में सूर्यकी गतिके
प्रतिवर्ष एक पलका अन्तर पड़ता है। सामान्य
ह बहुत थोड़ा अन्तर है, पर गणितके लिये यह ...

प्रकार यह अन्तर चालू रहा तो किसी दिन जूनका
वर्तमान अक्टूबरके शीतल समयमें पड़ने लगेगा।

सुननेमें आया है कि विश्व-राष्ट्रसङ्घमें प्रतिवर्ष
और वारको एक रखनेके लिये ग्रेगरी-कैलेंडरको
किसी एलिजाबेथ नामक महिलाने प्रार्थना की है
हुआ तो गणितकी दृष्टिसे एक बड़ी भूल होगी। क
भारतको तो इसका विरोध करना ही चाहिये।
राष्ट्रिय संवत् तो केवल विक्रम-संवत् हो सकता है,
आजतक कोई अन्तर नहीं पड़ा और न आगे
सम्भावना है। अतएव हम एक विशुद्ध वैज्ञानिक
चाहते हैं कि भारतका राष्ट्रिय संवत् विक्रम-संवत्
किया जाय। उज्जैनके समयसे दिनके समयका निर्धार
घंटा, मिनट, सेकंडके स्थानपर होरा, विहोरा, प्र
रक्खे जायँ। 'बजे'के स्थानपर 'इष्टकाल' शब्दका प्र
दिनका प्रारम्भ वर्तमान सात बजेको १ मानकर
१२ बजे दिन तथा १२ बजे रात्रिकी समाप्ति मानी ज

वर्ष

संवत्सरकी उत्पत्ति वर्ष-गणनाके लिये ही हो
ऋतु, मास, तिथि आदि सब वर्षके ही अङ्ग हैं
पित्र्य, दैव, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चा
नाक्षत्र—इन भेदोंसे नौ प्रकारकी वर्ष-गणना होती है
ब्राह्म, दैव, पित्र्य और प्राजापत्य—ये चार वर्ष क
युग-सम्बन्धी लंबी गणनाके काममें प्रयुक्त होते हैं
गौरव (बार्हस्पत्य) सौर, सावन, चान्द्र और ना
साधारण व्यवहारके लिये हैं। भारतको छोड़क
देशोंमेंसे प्रायः मुस्लिम देशोंमें चान्द्र वर्ष तथा दूस
और सावन वर्षोंसे काल-गणना की जाती है। भारत
प्रकारकी लौकिक वर्षगणनाका सामञ्जस्य सौर वर्षमें
करके बनाये रखते हैं। इस प्रकार लौकिक वर्ष-गणना
होती है। इस सौर वर्षके दो भेद हैं—सायन और
इनमें निरयण वर्ष-गणना केवल भारतमें प्रचलित
देशोंमें सायनमान एक-सा माना जाता है; क्योंकि
हस्य गणितपर निर्भर है। निरयण गणना केवल यन्त्र
ही सम्भव है; अतः निरयण वर्षके मानमें मतभेद है

सिद्धान्त				कालमान									
ई-सिद्धान्त	वर्ष	...	...	३६५	दिन	१५	घटी	३१	पल	३१	विपल	२४
ाङ्ग-ज्यौतिष	,,	...	...	३६६	,,	०	,,	०	,,	०	,,	०
र्यभट्ट	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	३१	,,	१५	,,	०
ास्फुट-सिद्धान्त	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	३०	,,	२२	,,	३०
ामह-सिद्धान्त	,,	...	...	३६५	,,	२१	,,	१५	,,	०	,,	०
लाघव	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	३१	,,	३०	,,	०
ोतिर्गणित (केतकर)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	२२	,,	५७	,,	०
क्रियर (नाक्षत्र)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	२२	,,	५२	,,	३०
क्रियर (मन्द्रकेन्द्र)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	३४	,,	३४	,,	०
क्रियर (सायन)	,,	...	...	३६५	,,	१४	,,	३१	,,	५६	,,	०
ठमी (सायन)	,,	...	...	३६५	,,	१४	,,	३७	,,	०	,,	०
ापरनिकस (सायन)	,,	...	...	३६५	,,	१४	,,	३९	,,	५५	,,	०
न (नाक्षत्र)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	४७	,,	२	,,	१०
ोलियन (नाक्षत्र)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	३३	,,	७	,,	४०
ग्रोनिद	,,	...	...	३६५	,,	१४	,,	३३	,,	३२	,,	४५
ग्रेत	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	२२	,,	५७	,,	३०
चार्य आप्टे (उज्जैन)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	२२	,,	५८	,,	०
णुगोपाल नवाथे	,,	...	...	३६५	,,	१४	,,	३१	,,	५३	,,	२५
धुनिक यूरोपियन	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	२२	,,	५६	,,	५२
न्द्र	,,	...	...	३५४	,,	२२	,,	१	,,	२३	,,	०
ान	,,	...	...	३६०	,,	०	,,	०	,,	०	,,	०
्स्पत्य	,,	...	...	३६१	,,	१	,,	३६	,,	११	,,	०
त्र	,,	...	...	३७१	,,	३	,,	५२	,,	३०	,,	०
: (जो प्रचलित है)	,,	...	...	३६५	,,	१५	,,	३१	,,	३०	,,	०

ारके वर्षोंका यदि कल्पोंतककी गणनामें उपयोग किया उनमेंसे सूर्यसिद्धान्तका मान ही भ्रमहीन एवं प्रमाणित होता है। सृष्टि-संवत्के प्रारम्भसे यदि का गणित किया जाय तो सूर्यसिद्धान्तके अनुसार नका भी अन्तर नहीं पड़ता। मैंने चैत्र शुक्ला संवत् २००२ (१३ अप्रैल सन् १९४५) को णित किया। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार उस दिन आता है और यही दिन है भी; किंतु यदि प्रचलित ; योरोपियन गणनासे इतना लंबा गणित हो तो ००० दिनोंका अन्तर पड़ेगा; क्योंकि सूर्यसिद्धान्तसे इस गणनामें साढ़े आठ पलसे भी अधिकका अन्तर

आधुनिक अयनगति ५० पल, २६ विपल होनेसे गतिक पल ३४ विपल होता है। इस प्रकार ९ पल तथा ८ पल, ३४ विपलमें केवल एक पलक होता है। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्तके मानमें (कम करके गणित करनेसे ५००० वर्षतकके सब ठीक मिलते हैं। यही बात भारतीय सूर्य पूर्णता सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। भारतीय व लिये यह अभ्रान्त सिद्धान्त ही प्रयुक्त होना चाहिये।

मास

वर्षगणनाके जैसे कई भेद हैं, वैसे ही मासगण चार भेद हैं—(१) सौर, (२) सावन, (३

ड्डार लोकमें चलता है। इनमे भी सौरमास खगोल
ोलसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। ये क्षय-वृद्धिसे रहित
ाना रखनेमें सुगम हैं। इनके नाम भी आकाशीय
अनुसार हैं। आकाशमें २७ नक्षत्र हैं, इन नक्षत्रोंके
द होते हैं। इनमेंसे नौ पादोंकी आकृतिके अनुसार
, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु,
म्भ और मीन—ये बारह सौरमास होते हैं। पृथ्वीपर
ासों (राशियों) की रेखा स्थिर की गयी है, जिसे
कहते हैं। ये क्रान्तियाँ विषुवत् रेखासे २४ उत्तरमें
८ दक्षिणमें मानी जाती हैं। उत्तरायणमें विषुवत्-
त्तर १२ अंशतक मेष, २० अंशतक वृष, २४ अंश-
न, २४ उत्तर क्रान्ति कर्करेखा और फिर उलटे
० अंशतक कर्क, १२ अंशतक सिंह तथा विषुवत्
कन्याराशि होती है। इसी प्रकार दक्षिणायनमें
खासे दक्षिण १२ अंशतक तुला, २० अंशतक वृश्चिक,
तक धन और २४ अंशको मकररेखा कहते हैं।
ठटे क्रमसे २० अंशतक मकर, १२ अंशतक कुम्भ
ुवत्‌रेखातक मीनराशि होती है। मासोंका यह स्थान
ातिके अनुसार है।

से सौरमासका सम्बन्ध सूर्यसे है, वैसे ही चान्द्रमासका
चन्द्रमासे है। उदाहरणके लिये अमावस्याके पश्चात्
जब मेषराशि और अश्विनी नक्षत्रमें प्रकट होकर
। एक-एक कला बढ़ता हुआ १५ वें दिन चित्रा
पूर्णताको प्राप्त करता है, तब वह मास 'चित्रा' नक्षत्र-
ा 'चैत्र' कहा जाता है। जिस पक्षमें चन्द्रमा क्रमशः
ुआ शुक्लता—प्रकाशको प्राप्त करता है, वह शुक्लपक्ष
समें घटता हुआ कृष्णता—अन्धकार बढ़ाता है, वह
ा कहा जाता है। मासका नाम उस नक्षत्रके अनुसार
, जो महीनेभर सायङ्कालसे प्रातःकालतक दिखलायी
र जिसमें चन्द्रमा पूर्णता प्राप्त करे। चित्रा, विशाखा,
आषाढ़ा, श्रवण, भाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका,
ा, पुष्य, मघा और फाल्गुनी नक्षत्रोंके अनुसार ही
ासोंके नाम क्रमशः चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़,
भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ
ल्गुन होते हैं। चान्द्रवर्ष सौरवर्षसे ११ दिन, ३ घड़ी,
ठ कम होता है। सौरवर्षसे चान्द्रवर्षका सामञ्जस्य
लिये ३२ महीने, १६ दिन, ४ घड़ीपर एक चान्द्र-

होनेसे लगभग १४० या १९० वर्षके बाद एक चा
क्षय माना जाता है; किंतु जिस वर्षमें क्षय-मास होता
वर्षमें क्षय-माससे तीन मास पूर्वके और तीन मास पश्च
दोनों चान्द्रमासोंकी वृद्धि होती है। इस प्रकार उस
अधिक मास भी होते हैं। क्षय-मास कार्तिक, मार्गशी
पौष—इन तीन मासोंमेंसे ही कोई होता है; क्यों
महीनोंमें सौरमास चान्द्रमाससे न्यून हो सकता है।
मास मध्यका है, अतः इसकी वृद्धि या क्षय दोनों सम
माघमास स्थिर मास है। यह न क्षय होता है, न बढ़ता
जब दो अमावस्याओंके बीचमें सूर्यकी संक्रान्ति न
तब वह चान्द्रमास बढ़ जायगा और जब दो अमाव
बीचमें सूर्यकी दो संक्रान्तियाँ पड़ जायँ तो वह
क्षय माना जायगा; क्योंकि समस्त पुण्यकर्म तिथियोंके
होते हैं, अतएव धार्मिक कृत्योंमें तो चान्द्रमास ही
आ सकता है। राजनैतिक कार्योंमें सौरमासका उपयो
चाहिये; क्योंकि उसमें तिथियोंके घटने-बढ़नेकी बात
से हिसाब ही ठीक रक्खा जा सकता है।

वार (दिन)

हिंदुओंके सात वार और उनके प्रायः वही ना
विश्वमें प्रचलित हैं। रविवारको अपनी-अपनी भा
कहेंगे सूर्यवार ही। यदि पूछा जाय कि इस
रविवार क्यों कहा जाता है और उसके पश्चात्
(चन्द्रमाका दिन)—इस क्रमसे ही क्यों दिन
कैसे अनादिकालसे सब देशोंमें उसी दिनको रविवार
है ? क्यों कोई उसे चन्द्रका दिन नहीं कहता ?
किसी दूसरे देशका ज्योतिषी केवल यह कहेगा कि
नाम और उनके क्रमका प्रचार भारतसे ही विश्वमें हु
जब हुआ हो। अतः सब कहीं ये नाम और क्रम ए
अनुकरणके अतिरिक्त कोई वैज्ञानिक कारण किसी दू
नहीं है। कालमाधव, ब्रह्मपुराण, सिद्धान्त-शिरोमणि
विदाभरणादि भारतीय शास्त्रीय ग्रन्थ इसका स
बतलाते हैं कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको जब सब ग्रह
आदिमें थे, उस समय इस कल्पका प्रारम्भ हुआ। क
सृष्टिके आदिसे ही चली। उसी दिन सर्वप्रथम सूर्योद

एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतकका काल
कहा जाता है। इसका प्रथम भाग दिन और द्वितीय
कहलाती है। कालकी सूक्ष्म गणनाके लिये दिन और

२ लग्नोंका एक अहोरात्र हुआ। लग्नके आधे भागको
कहा जाता है। 'अहोरात्र' शब्दके मध्यके दोनों
ही यह शब्द बना है। इसीको पाश्चात्त्य-प्रणालीमें
ते हैं। 'घंटा'-जैसे निरर्थक शब्दकी अपेक्षा 'होरा'
वं प्राचीन शब्द है। अपने तेजोमय रूपके कारण
थम 'होरा' का स्वामी सूर्य माना गया। इसके पश्चात्
क्षाके अनुसार ग्रह 'होरा'-अधिपति माने गये। ग्रह-
सम्बन्धमें ज्यौतिष-शास्त्रका कहना है—'ब्रह्माण्डके
ाकाश है। उसमें सबसे ऊपर नक्षत्र-कक्षा है। फिर
नि, बृहस्पति, मङ्गल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा
ो नीचे सिद्ध, विद्याधर और मेघ हैं। ऊपरके ग्रहों-
नीचेके ग्रहोंकी अपेक्षा क्रमशः बड़ी है। जब प्रथम
स्वामी सूर्य हुए, तब क्रमशः शुक्र, बुध, चन्द्रमा,
हस्पति, मङ्गल—ये छः ग्रह अगली छः होराओंके
र। आठवीं 'होरा' के स्वामी फिर क्रमानुपूर्वक सूर्य
ग प्रकार क्रमशः ये ग्रह एक-एक 'होरा' के स्वामी
। इस क्रमसे चौबीसवीं होराका स्वामी बुध होता है
प्रथम अहोरात्र समाप्त हो जाता है। पचीसवीं होरा-
ी क्रमके अनुसार चन्द्रमा है। यह पचीसवीं होरा दूसरे
के दिनकी प्रथम होरा है; अतः प्रथम होराके
ा चन्द्रमा होनेसे इस अहोरात्रका नाम चन्द्रमाका
ोमवार पड़ा। इसी क्रमसे अहोरात्रकी प्रथम 'होरा'
ाता ग्रहके नामपर अहोरात्रके नाम पड़ते गये और
ताहके दिनोंके नाम वर्तमान क्रमसे हुए। यही क्रम
प्रारम्भसे अबतक चला आ रहा है। जिस दिनके
राका जो अधिष्ठाता ग्रह है, उस दिनका वही नाम
को 'क्षणवार' भी कहते हैं। जो कर्म जिस दिन करने-
न है, उस कर्मको किसी भी दिनके उस 'क्षणवार'में
जा सकता है। जैसे यदि सोमवारको रविवारका कोई
ना है, तो सोमवारमें जिस होराके अधिष्ठाता सूर्य हैं,
में उस कर्मको किया जा सकता है। दिन-रात्रिमें
समय कौन-सी होरा, कौन-सा क्षणवार है, यह जाननेका
यौतिषशास्त्रने इस प्रकार बताया है—मेष, वृश्चिक,
मीनकी संक्रान्तिमें सायङ्कालसे; वृष, धन, कर्क, तुला-
ान्तिमें अर्धरात्रिसे और मिथुन, मकर, सिंह, कन्याकी
में प्रातःकालसे वार-प्रवेश मानकर उस दिनकी गणना
क्षणवार' निकालना चाहिये।

आरम्भ) का समय बदलता रहता है। मुसल्मान ले
का प्रारम्भ सायङ्कालसे मानते हैं; किंतु हिंदू-शास्त्रोंमें
नियमको छोड़कर और कहीं सायङ्कालसे वार-प्रवेश (दि
का वर्णन नहीं है। इसी प्रकार व्याकरणशास्त्रमें अद्यत
का प्रयोग मध्यरात्रिसे दूसरी मध्यरात्रितकके लिये ह
ज्यौतिषशास्त्रके ग्रन्थ 'सिद्धान्त-शिरोमणि' तथा 'केश
अनुसार देवताओंका अहोरात्र भी मध्यरात्रिसे बद
क्योंकि उत्तरायण देवताओंका दिन और दक्षिणायन द
की रात्रि है। मेषसंक्रान्तिके समय देवताओंका व
(दिनारम्भ) माना जाता है। इसी प्रकार पितृ-अहे
मध्यरात्रिसे बदलता है। 'पूर्णिमाको पितरोंकी अ
अमावस्याको मध्याह्न, कृष्णपक्षकी अष्टमीको प्रातःक
शुक्लपक्षकी अष्टमीको सायङ्काल होता है।' यह '
शिरोमणि' का मत है। सूर्योदयसे पूर्व सन्ध्यादि कर्म
सूर्योदयके समय आनेवाली तिथि संकल्पमें बोलनेका
है। ऐसे कर्मोंमें वार-प्रवेश अर्धरात्रिसे माना जा
निम्बार्क-सम्प्रदायमें एकादशी यदि दशमीकी अर्धरात्रि
न आकर कुछ बादमें आये तो वह दशमीविद्धा म
है। यहाँ भी मध्यरात्रिसे ही वार-प्रवेश माना गया है
वैष्णव-सम्प्रदाय एकादशी व्रतके सम्बन्धमें ब्राह्ममुहू
प्रवेश मानते हैं।

सूर्योदयसे वार-प्रवेश (दिनारम्भ)

सायङ्काल, मध्यरात्रि एवं ब्राह्ममुहूर्तसे वार-प्रवे
विशेष कार्यके सम्बन्धमें विशेष अवसरोंपर ही मान
और शास्त्रीय विधान प्राप्त होते हैं। जन्मपत्रादि सभ
सूर्योदयसे ही वार-प्रवेश माना जाता है। जन्म
सूर्योदयमें १ पलका भी विलम्ब रहा हो तो पूर्व दिन
वार ही लिये जाते हैं। समस्त भारतीय पञ्चाङ्गोंमें
ही तिथि, वार, नक्षत्र, योग आदिका काल अङ्कित
इष्टकाल भी सूर्योदयसे ही बनता है। इष्टकालसे
मुहूर्तादि सब निर्णीत होते हैं। स्मार्त मतसे सूर्योदय
१ पल भी दशमी हो तो एकादशी दशमी-विद्धा म
है। यह नियम भी सूर्योदयसे वार-प्रवेश मानकर
हुआ है। कालमाधव, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, ज्योति
प्रभृति शास्त्रीय ग्रन्थोंमें स्पष्ट कहा गया है कि 'विश्व
सूर्योदयके समय होती है। अतः वार-प्रवेश भी सूर
होता है।' सिद्धान्त-शिरोमणि, पुलस्तिसिद्धान्त त

दर्शनका नाम रात्रि है; अतः दिनका आरम्भ सूर्योदय-ता है।' इन प्रमाणोंसे सिद्ध है कि सूर्योदयसे पूर्व रात्रिके पश्चात् होनेवाले सन्ध्यादि धार्मिक कृत्योंमें रात्रिसे वार-प्रवेश माना जाता है, बाकी समस्त कर्मोंमें । वार-प्रवेशका विधान है।

दय अक्षांश और क्रान्तिभेदसे भिन्न-भिन्न स्थानोंमें न्न समयमें होता है और वर्षमें दिन तथा रात्रिके मानमें भी होते रहते हैं; परंतु अहोरात्र ६० घटियोंका ही रहता व दिन-रात्रिके क्षय-वृद्धिकी कठिनाईसे बचनेके लिये 'वार-प्रवृत्ति'से काम लिया जाता है। जब पूर्ण शून्य क्रान्तिके दिन सायनमानसे सूर्य विषुवत् रेखा ष और तुला राशियोंपर आता है, उस दिन विश्वमें दिन और रात्रि बराबर होते हैं। अतएव इस दिनके समयको स्थिर मानकर उसी समयको 'वार-प्रवृत्ति' ा गया है। ज्यौतिषशास्त्रमें इसका अच्छा स्पष्टीकरण का सारांश यह है कि अपने नगर या ग्रामके सूर्योदय-होरापर (६ बजे) 'वार-प्रवृत्ति' होती है। दुघड़िया ालहोरा, नक्षत्रहोरा, क्षण-वार आदिमें यही ६ होरापर त्त मानी जाती है। इसके अनुसार भारतमें वार-समय भारतीय विषुवत् रेखा, जो उज्जैनसे जाती है, नुसार निश्चित होना चाहिये—ब्रिटेनके ग्रीनविच कल्पित विषुवत् रेखासे नहीं। भारतका स्थिर समय टाइम) उज्जैनके समयसे निश्चित होना चाहिये, समयकी भाँति ग्रीनविचसे नहीं। अन्ताराष्ट्रिय स्थिर सम्बन्ध रखनेके लिये भारतीय स्थिर समय और के समयमें जो ५ टे, ३० मिनटका अन्तर है, उसे पूरे ६ घंटोंका अन्तर कर देना चाहिये। अर्थात् ३० मिनट और बढ़ा दिया जाय। फल यह भारतकी घड़ियोंके अनुसार आज जिसे प्रातःकाल कहा जाता है, उसे रात्रिके १२ बजे कहा जाय औ वर्तमान ६ बजेको दिनके बारह बजे। आजके प्रातःको दिनका एक बजा कहा जाय; क्योंकि उस दिन आरम्भ होता है। १२ बजनेपर दिन समाप्त हो उसके १२ घंटे पूरे हो जायँगे और रात्रिके वर्तमान रात्रिका एक बजा कहा जायगा; क्योंकि वह रात्रि घंटा है। अपने बारह घंटे समाप्त करके १२ बजे रा हो जायगी। हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे ग्रीनविच नगरमें वार-प्रवृत्ति एक बजेसे होती है, वैसे ही भी होनी चाहिये। भारतको ब्रिटेनका अनुगत न सम्बन्धमें भी स्वाधीन होना चाहिये। लड़ाईके सम समय (स्टैंडर्ड टाइम) एक घंटा बढ़ा देनेसे गड़बड़ी नहीं हुई थी, उसी प्रकार वर्तमान समयकी बदलनेमें भी कोई गड़बड़ी न होगी। थोड़ेमें इस सम्बन्धमें निम्न सुझाव हैं—

१—वार-प्रवेश प्राचीन विषुवत् रेखा (देशा माना जाय, आजके देशान्तरसे नहीं।

२—काशीके सूर्योदयके समयके ६ बजेसे वार-प्र जाय; क्योंकि काशी मध्य अक्षांशपर है।

३—वर्तमान स्थिर समय (स्टैंडर्ड टाइम) घंटा और बढ़ाकर उसी समयसे वार-प्रवेश माना जा प्रवेशका सम्बन्ध ग्रीनविचसे हटाकर उसका भार किया जाय।

जितेन्द्रियके लिये घर-वन एक-सा है

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम्॥

(श्रीमद्भा० ५ । १

जो प्रमादग्रस्त है उसे वनमें रहनेपर भी पतनका भय रहता है; क्योंकि काम, क्रोध आदि सके साथ निवास करते हैं; परंतु जो जितेन्द्रिय है और अपने आत्मामें ही रमण करनेवाला है, उ गृहस्थाश्रम भी क्या अनिष्ट कर सकता है?



ह्ामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण



महामहोपाध्याय पं० श्रीपञ्चानन तर्क



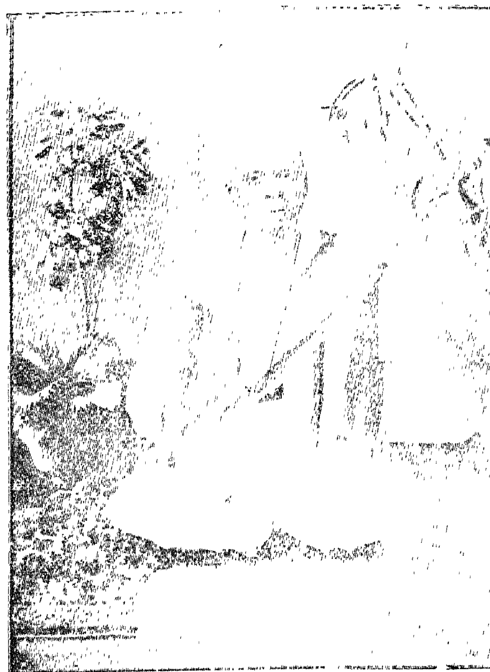
वेद्यावाचस्पति पं० श्रीमधुसूदन झा



विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीताराम शा



महोपाध्याय पं० श्रीशिवकुमार शास्त्री



महामहोपाध्याय पं० श्रीगंगाधर शास्त्री तैलङ्ग





हिंदू-संस्कृतिमें सामुद्रिक-शास्त्र

(लेखक—पं० श्रीबन्नालाल रेवतीरमणजी जोशी)

त प्रकार हिंदू-संस्कृतिमें अन्यान्य विद्याओंपर पूर्ण डाला गया है; उसी प्रकार सामुद्रिक-शास्त्रपर भी ार हुआ है। सामुद्रिक-शास्त्रका विषय बहुत गहन ठेन है। यह भारतकी प्राचीन विद्या है और पाश्चात्त्योंने से लिया है। अनेक कारणोंसे इस समय यह इस त्प्राय है और इस विषयका उपयोगी साहित्य भी ्प्राप्य हो गया है। यदि इस शास्त्रका कोई पूर्ण तो इससे सब बातें ठीक मिलती हैं। जन्मलग्नसे ानेवाले फलादेशमें भूल हो सकती है; क्योंकि समयके न्तरमें ग्रहदशा बदल जाती है। परंतु हाथकी रेखा- ओंमें किसी प्रकार भी अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि हाथके साथ ही आती है। इस शास्त्रमें तिथि, क्षत्र, योग, करण, मेषादि राशियों और लग्न हाथकी रेखाओंसे ही बता दिये जाते हैं। प्रभात- हाथका दर्शन करना पुण्यदायक, मङ्गलप्रद और ीर्थसेवनके सदृश माना गया है। इसीसे हमारे यहाँ ऽ उठते ही हाथोंके देखनेकी प्रथा है। सामुद्रिक- प्रणेताओंने बतलाया है कि मातृरेखा, पितृरेखा और —ये तीनों क्रमसे गङ्गा, सरस्वती और यमुना हैं। दर्शन त्रिवेणीसङ्गमके दर्शनके समान पुण्यदायक है।·

ृरेखा भवेद् गङ्गा मातृरेखा सरस्वती।
ूरेखात्र यमुना तत्संगस्तीर्थमक्षयम्॥
सिंहासनं साक्षात् तत्रस्थस्त्रिजगद्गुरुः।
देंदेवोऽङ्गुलैः सेव्यो जयादिदेवताजनैः॥

-शास्त्रोंके प्रणेताओंने कैसे-कैसे श्रेष्ठ शास्त्र रचे हैं, वल हिंदुओंका ही कल्याण नहीं होता, अपितु मनुष्य- ा मङ्गल होता है। सामुद्रिक-शास्त्रमें केवल रेखाओं— देखकर भूत, भविष्यत्, वर्तमानके सभी शुभाशुभ जा सकते हैं। मैं यहाँ इस शास्त्रके अन्य विषयोंको केवल रेखाविमर्शनाधिकारकी कुछ बातें संक्षेपमें करता हूँ—

कराद् गोत्ररेखा करभाद् धनतेजसोः।
ा रेखा यान्ति तिस्रस्तर्जन्यङ्गुष्ठकान्तरे॥
ास्तिस्रोऽप्यमूर्येषां सम्पूर्णदोषवर्जिताः।
े धने जीविते च तेषां वृद्धिर्न संशयः॥

हस्तरेखात्रयं चैतद् विश्वत्रयमुदाहृत
पितृरेखोर्ध्वलोकं स्यान्मातृरेखा च मानव
पातालमायूरेखा स्यादेता दक्षिणहस्तगा
धातुमूलं तथा जीवं वामे चैता विपर्यया

अर्थात् मणिबन्धसे अङ्गुष्ठ और तर्जनीके बी रेखा गयी हो, उसको गोत्र या पितृरेखा कहते हैं। उत्पन्न होकर इन्हीं अङ्गुष्ठ-तर्जनीके बीचमें जानेवाली मातृरेखा या धनरेखा कहते हैं। और तीसरी आ जीवित वा तेजरेखा कहते हैं। ये तीनों रेखाएँ किसी सम्पूर्ण और निर्दोष हों तो वे गोत्र, धन एवं आयु बतलाती हैं। पितृरेखाको ऊर्ध्वलोक, मातृरेखाको म और आयुरेखाको पाताललोक कहते हैं। इन्हीं तीनों रे धातु, मूल, जीव भी कहते हैं। पितृरेखाके स्वामी ब्रह रेखाके स्वामी विष्णु और आयुरेखाके स्वामी शिव ह इन्द्र, यम, वरुण और धनकुबेर (वैश्रवण)—ये चारों दिशाओंके क्रमसे स्वामी हैं।

पितृरेखा बाल्यावस्थाकी द्योतक है, मातृरेख वस्थाकी और आयुरेखा वृद्धावस्थाकी द्योतक है। पि वायुप्रकृति, मातृरेखासे पित्तप्रकृति, आयुरेखासे क जानी जाती है। पितृ, मातृ और आयुरेखा क्रमसे च और द्विस्वभावसंज्ञक हैं। क्रमसे पुरुष, स्त्री, नपुं नभचर, थलचर, जलचर और इसी प्रकार सत्वगुणी, और तमोगुणी भी है। इन तीनों रेखाओंमेंसे जिसके जिस रेखाकी प्रधानता हो, उसीका फल कहना चाहि और दाहिने हाथसे आवागमनका भी ज्ञान होता है। किसीके बायें हाथमें पितृरेखा स्पष्ट हो, वह पितृलोक है एवं दाहिने हाथमें हो तो वह मरनेके पश्चात् पि जायगा।

इस प्रकार रेखाओंपरसे समस्त ज्ञेय, चराचर भूत, भविष्य, वर्तमानका प्रकाश होता है। जीवनके सभी शुभाशुभ हाथकी रेखाओंसे स्पष्ट ज्ञात हो जा विस्तारभयसे प्रत्येक रेखाके फलोंको पृथक्-पृथक् न साधारणतया यहाँ केवल उन बत्तीस लक्षणोंके नाम द देता हूँ, जो सर्वथा शुभसूचक हैं। छाता, कमल, रथ, वज्र, कछुआ, अङ्कुश, बावली, स्वस्तिक, तोरण

।, चक्र, शङ्ख, हाथी, समुद्र, कलश, मन्दिर, मछली, ', स्तूप, कमण्डलु, पर्वत, चमर, दर्पण, वृष, पताका, ष्पमाला, मोर—ये लक्षण जिनके हाथमें हों, वे ण्यवान्, भाग्यवान् और धनवान् होते हैं।

द्रिक शास्त्र हिंदू-जातिका एक गौरवास्पद एवं : और मनन करने योग्य शास्त्र है। वाल्मीकि-रामायण, डके ३५ वें सर्गमें जब महावीर हनुमान्‌जीने माता दर्शन किये, तब उन्होंने कहा, 'माता! मुझे आप ीरामचन्द्रका दूत समझें। मैं उन्हींकी आज्ञासे आपका समाचार लेनेके लिये आया हूँ।' तब माता जनक आज्ञा की कि 'यदि तुम भगवान्‌के दूत हो तो उ लक्षणोंका वर्णन करो।' इसपर महावीर श्रीहनुमान्‌ने समस्त सामुद्रिक लक्षणोंका वर्णन किया है।

महाराज वीर विक्रमादित्यमें भी ये सब लक्षण वे 'परदुःख-भञ्जनहार' कहलाते थे। प्राचीन समयमें विज्ञान बड़ी उन्नत दशामें था और अधिकांश ले अच्छे जानकार थे। परंतु समयके प्रभावसे अब यह हो गया है।

फलित ज्यौतिषके प्रत्यक्ष अनुभव

(लेखक—पं० श्रीदेवीदत्तजी शर्मा ज्यौतिषाचार्य)

तिषशास्त्रके अठारह सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। करणग्रन्थ ाक फलितग्रन्थ हैं; परंतु फलविचारमें मतभेद भी फल ठीक न मिलनेसे लोगोंकी श्रद्धामें न्यूनता भाविक है।

ादेशके साथ-साथ अनुभवके आधारपर फल बतलाने- तिर्विद् अपना मान तो बढ़ायेगा ही, साथ ही इससे ास्त्रका गौरव भी उन्नत होगा। कई वर्षोंके मुझे जन्म और वर्ष-सम्बन्धी जो चमत्कारिक ाप्त हुए हैं, उनमेंसे कुछ यहाँ लिख रहा हूँ। ; ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता तथा ज्यौतिषशास्त्रमें रुचि ो जनता इससे प्रसन्न होगी; क्योंकि प्रत्येक विद्याके ाके कारण ही विद्याका ह्रास और लोप हुआ। इसके ाहरण हैं।

फलितग्रन्थोंमें बृहत्पाराशरीके राजयोग शत-प्रतिशत ते हैं।

२—जन्ममें छठे घरका चन्द्रमा प्रमेह (बीस कोई भी) रखता है।

३—सप्तम मङ्गल अर्श (खूनी बवासीर) का स

४—सूर्य-शुक्रका रिपुभावमें योग मूत्रकृच्छ्र करत

५—शुक्र, मङ्गलका अष्टम घरमें योग उपदंश व

६—लग्नके सूर्य प्रायः अर्द्धशिरकी पीड़ा देते हैं

७—सप्तम केतु पथरी, दर्द एवं गुदा आदिमें शूल

८—जन्मलग्नेश शुभयुक्त, दृष्टकेन्द्र वा त्रिकोणमें प्रायः आजीवन सुखी, मानयुक्त तथा प्रतापी बना

९—पञ्चमेश, दशमेशका सम्बन्ध प्रबल राजयोग क

१०—पत्नीका सप्तम सूर्य हो तो वह पतिद्वारा पाती है।

११—वर्षमें सप्तमेशका लग्नमें पड़कर गुरुदृष्ट हो उन्नतिका सूचक है।

कौन-सी तिथियाँ कब हानिकारक होती हैं

रबि हर दिसि गुन रस नयन मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी होइ कुजोग बिचार॥ (दोहावली)

द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया और सप्तमी—ये सातों तिथियाँ यदि क्रम

हमारी संस्कृति और नक्षत्र-विज्ञान

ात् और जीवन जितना आश्चर्यजनक है, यह ऊपर ारह ढकनेवाला आकाश उससे कम आश्चर्यप्रद नहीं। अपना प्रभाव जगत् और जीवनपर डालता है। जब ़पी नेत्रसे देखता है, तब यहाँ प्रकाश हो जाता है, सुस ाग्रत् हो जाता है, और जीवनमें गति और विकास होने ़। दुनिया कुछ-की-कुछ होने लगती है। और वह नेत्रको मूँदकर सोमरूपी अपने दूसरे नयनको खोलता चन्द्रिकाकी सुधा-धारासे जगत् और जीवन परिप्लावित हैं, ओषधियाँ और वनस्पतियाँ अमृत-स्नान करके हो जाती हैं और बल सञ्चय करती हैं। प्राणियोंको ानी योगमायाके वशीभूत करने लगती है। जब वह ़ो भी बंद कर लेता है, तब उस आकाशरूपी महा- तीसरा नेत्र असंख्य रूपोंमें बिखरा हुआ सुनसानमें ौर उसके प्राणियोंके कर्मोंका लेखा देखने लगता है। द्भुत है यह आकाश! आकाशके बीच होनेवाली ानन्त कोटि-कोटि लीलाओंका वर्णन कौन कर ।

आकाशको ऋषियोंने तीन भागोंमें विभाजित ा—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। प्रत्यक्ष- ़के कारण ऋषियोंके लिये कुछ परोक्ष न था। शुनः- ़ द्युलोकको देखकर कहते हैं—

ऋक्षा* निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुहचिद् दिवेयुः।
ने वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति॥

(ऋक्सं० १। २। १४। ५)

ऊँचे आकाशमें स्थित नक्षत्रगण रात्रिको दिखलायी तथा दिनमें कहीं और चले जाते हैं। आदित्यके कर्म ़क्त हैं; वह जिधर होकर जाता है, उधर ये नक्षत्र हो दिखलायी नहीं देते और दूसरी ओर चमकने । उसीकी किरणोंसे चन्द्रमा प्रकाशमान होकर रातको ़।'

ण अर्थात् आदित्यको देखकर वही शुनःशेप ऋषि अगले ़हते हैं—

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥

'जो आदित्य अन्तरिक्षमें उड़ती हुई चिड़ियों देखता है तथा जो समुद्रके मध्यमें जानेवाली नौ देखता है, अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षमें होनेवा घटनाओंको देखता है; जो धृतव्रतः अर्थात् नियमपूर्वक और अपनी नयी छटा दिखानेवाले बारह महीनोंको दे और उनके साथ उत्पन्न होनेवाले मलमासको भी देख

प्रस्कण्व ऋषि ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ५० कहते हैं—

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।
सूराय विश्वचक्षसे॥

'सारे संसारको प्रकाश देनेवाले सूर्यका आगमन चोरोंके समान सारे नक्षत्र रात्रिके साथ चले जाते हैं।

आगे अङ्गिराके पुत्र कुत्स ऋषि ११५वें कहते हैं—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्त

'यह पूजनीय रश्मियोंका आश्चर्यजनक समूह मि और अग्निको प्रकाश प्रदान करनेवाला आदित्य पृथिवी, और द्युलोकको अपनी रश्मियोंसे व्याप्त कर रहा समस्त स्थावर और जङ्गम जगत्का प्राण है।'

ऋग्वेदकी एक दूसरी ऋचा कहती है—

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरी अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्त चक्रे षळरे आहुर

(ऋक्सं० २। ३। १

द्युलोकके परे अर्ध स्थानमें स्थित आदित्यने ऋतुरूपी पैरवाले तथा द्वादश मासरूपी आ सबके पालक संवत्सरको प्रदान किया है। और दूस

यारकने 'ऋक्षाः'का अर्थ 'नक्षत्राणि' किया है; परंतु 'ऋक्ष' ़ालू अर्थ भी होता है। सायणने इसी दृष्टिसे 'ऋक्षा'का तारका:' किया है। इसीके अनुकरणमें पाश्चात्योंने सप्तर्षियोंको

* यास्क कहते हैं—

'इति पञ्चर्तुतया पञ्चर्त्तवः संवत्सरस्येति च ब्राह्मण शिशिरयोः समासेन।'

अर्थात् ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें हेमन्त और शिशिरको एक क

ाशमें अवस्थित अन्य सप्त ऋषियोंने (दस-दस वर्ष-
अरोंवाले अर्थात् साठ संवत्सररूपी चक्रमें सूर्यको अर्पित
अर्थात् साठ संवत्सररूप चक्रको लेकर सूर्य आकाशमें
हो रहा है। जिस प्रकार बारह महीनोंको लेकर एक
चलता है, उसी प्रकार संवत्सर-चक्रको लेकर सूर्य घूमता
ह महीनोंमें चन्द्रमाके बारह चक्कर लगते हैं और
क्रमें साठ बार सूर्य चक्कर लगाता है।

ाथ ब्राह्मणके अध्याय २ । १ । ३ । १, ३ में
—

न्तो ग्रीष्मो वर्षाः । ते देवाऽऋतवः शरद्धेमन्तः
। पितरो य एवापूर्यतेऽर्द्धमासः स देवा योऽपक्षीयते
ऽहरेव देवा रात्रिः पितरः पुनरह्नः पूर्वाह्णो देवा
पितरः ॥ १ ॥

यत्रोदङ्ङावर्तते । देवेषु तर्हि भवति देवाँस्तर्ह्यभि-
यत्र दक्षिणाऽऽवर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितॄंस्तर्ह्यभि-
॥ ३ ॥

न्त, ग्रीष्म और वर्षा—ये देवोंकी ऋतुएँ हैं, और
न्त और शिशिर—ये पितरोंकी ऋतुएँ हैं। शुक्लपक्ष
का है और कृष्णपक्ष पितरोंका है। दिनके अधिपति
और रात्रिके पितर हैं। फिर दिनका पूर्वार्द्ध देवताओंका
उत्तरार्द्ध पितरोंका।

सूर्य उत्तरकी ओर बढ़ता है अर्थात् उत्तरायणमें
ताओंका अधिपति होता है और दक्षिणायनमें
अधिपति होता है।'

संहिता और शतपथब्राह्मणके इन अवतरणोंसे स्पष्ट
है कि नक्षत्र, चान्द्रमास, सौरमास, मलमास, ऋतु-
दक्षिणायन-उत्तरायणके साथ-साथ आकाशचक्रमें
द्रमाका तात्त्विक ज्ञान ऋषियोंने हमें प्रदान किया है।
नक्षत्र-विज्ञान और आधुनिक पाश्चात्योंके नक्षत्र-
Astronomy) की पद्धतिमें अन्तर यह है कि
नक्षत्र-विज्ञान वेदका एक मुख्य अङ्ग अर्थात् नेत्र
ा था। क्योंकि वैदिक अनुष्ठानोंके लिये काल-निर्णय
क्षत्रोंकी गतिपर विशेष ध्यान दिया जाता था। दर्श-
यज्ञ तथा सांवत्सरिक अहीन याग तथा सहस्रों वर्षोंमें
नेवाले सत्रोंके अनुष्ठानमें काल-गणना करनेके लिये जो
बीच विविध स्थितियोंमें सूर्यका संक्रमण होता था,
अवलोकन करके नक्षत्र-विद्याका व्यावहारिक ज्ञान

के बीचमें संक्रमण करनेवाले सूर्यमण्डलके अन्यान्य ग्र
और स्थिति तथा उसके द्वारा होनेवाले प्रभावोंका अध्य
गया। नक्षत्र-मण्डलको राशिचक्रमें विभाजितकर प्रत
के साथ सूर्य-संक्रमणको देखकर राशियोंके नामप
द्वादश सौरमासोंका अवलोकन किया । और पू
अर्थात् पूर्णिमाकी रात्रिमें नक्षत्रविशेषके पास चन्द्रमाक
चान्द्रमासोंका ज्ञान प्राप्त किया। अर्थात् जिस मासक
चित्रा नक्षत्रसे युक्त थी, उसे चैत्रमास, विशाखासे युक्त
वाले मासको वैशाखमास, ज्येष्ठासे ज्येष्ठ, पूर्वाषाढ़ा य
षाढ़ासे आषाढ़, श्रवणसे श्रावण, पूर्वभाद्रपद या उत्तर
भाद्रपद, अश्विनीसे आश्विन, कृत्तिकासे कार्तिक, म
मार्गशीर्ष, पुष्यसे पौष, मघासे माघ, पूर्वाफाल्
उत्तराफाल्गुनीसे फाल्गुनमास नाम प्रदान किया गय

परंतु पाश्चात्य देशोंमें प्रकारान्तरसे जो कुछ
नक्षत्र-विज्ञानका अरब-ग्रीक लोगोंके द्वारा प्रसार हु
उनके एतद्विषयक ज्ञानका मूलधन था। इसी
यन्त्रयुगके विकासके साथ उन्होंने दूरवीक्षण यन्त्रोंका
आविष्कार किया। और उसके द्वारा प्रत्यक्ष उनकी
अवलोकन करनेका प्रयत्न किया। इस विज्ञानके स
गणितकी जो सम्पत्ति हमसे उनको मिली थी, उसको
बहुत कुछ समृद्ध किया—यह उनकी विशेषता है
दिन, मास, ऋतु, अयन अथवा राशि-चक्रका जो य
करण हुआ था, उसको अधूरा ही उन्होंने अपनाया। यहाँ
नाम रवि, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि प्रभृत
नामसे आबद्ध था। उसे तो उन्होंने ग्रहण किया, परंतु म
नाम उनके यहाँ अवैज्ञानिक ढंगसे रक्खा गया; च
सूर्यकी गतिके साथ जो नक्षत्र अथवा राशियाँ महीनोंका
करती हैं, उनकी पर्याप्त उपेक्षा की गयी। और
फरवरी आदि नाम ही नहीं, बल्कि इनकी स्थिति भी
सूर्यकी गतिसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखती। अतएव पाश
मास और वर्षोंकी गणना हमारे सौरवर्षके आधारपर ह
भी अनर्गल-सी है और भारतीय शैली सर्वथा पू
वैज्ञानिक है।

सूर्य जिस आकाशमार्गसे नक्षत्रमण्डलमें होकर
उसके द्वादश समान भाग करके मेष, वृष प्रभृति रा
अवतारणा की गयी। मेषराशिके प्रथम बिन्दुपर जब स
होता है, तबसे लेकर जब वह पुनः उसी बिन्दु

नक्षत्रमण्डलमें सूर्यका एक संक्रमण-काल एक कहलाता है । सूर्यसिद्धान्तमें सौरवर्ष ३६५ ६४८४ दिनोंका माना जाता है । आधुनिक युगके क्षत्रविज्ञानवेत्ता (Astronomer) डब्ल्यू० एम्० अनुसार यह संख्या ३६५·२५६४ दिनोंकी है । वर्ष इससे ·००२३ दिन अधिकका हो जाता है । के पाश्चात्त्य नक्षत्रविज्ञानके मतसे यह वर्ष अनुमानतः ५९६ दिनोंका होता है, जो भारतीय मतसे ·०००८ होता है । भारतवर्षमें जो मेष-संक्रान्तिसे वर्षगणना है, उससे साठ वर्षोंके संवत्सरचक्रका हिसाब ठीक-ता है । इन संवत्सरोंके अलग-अलग प्रभव, विभव आदि नाम दिये गये हैं ।

सिद्धान्तके अनुसार हिंदुओंके द्वारा जो काल-गणना की उसके सामने विश्वकी किसी जातिकी कोई भी काल-गणना द्ध होती है । हमारे शास्त्रोंके मतसे ४,३२,००० सौर-कलियुग होता है, द्वापरमें ८,६४,००० वर्ष होते हैं, २,९६,००० वर्ष और कृतयुगमें १७,२८,००० वर्ष इस प्रकार कुल मिलाकर ४३,२०,००० वर्षोंका एक होता है । १००० महायुगोंका एक कल्प होता है । एक कल्पमें ४,३२,००,००,००० वर्ष होते हैं । कल्पकी करनेवाले ज्योतिर्विदोंने यह भी निश्चय किया था कि ७१४ वर्षोंमें अयनान्त १०° पीछे चला जाता है । तिरिक्त वर्षमें १२ राशियाँ, एक राशिमें ३० अंश, में ६० कला, एक कलामें ३० काष्ठा और एक १८ निमेष अर्थात् पलकी सूक्ष्मतम कालगणना ज्ञात होता है कि भारतीय मस्तिष्कने इस विषयमें सफल प्रयास किया है । इतना बड़ा काल-ज्ञान दूसरे शके निवासियोंको अबतक नहीं हुआ ।

रतीय नक्षत्र-विज्ञानवेत्ताओंने क्रान्तिवृत्तको २८ भागोंमें त किया; इस प्रकार चन्द्रमाके मार्गमें पड़नेवाले २८ ह हो गये, जिन्हें चान्द्र नक्षत्रोंके नामसे पुकारते े चलकर इसमें सुधार हुआ और २८ के स्थानमें चान्द्र नक्षत्र माने गये । और क्रान्तिवृत्तके २७ भाग करके १३°, २०′ (तेरह अंश, बीस प्रत्येक नक्षत्रका क्षेत्र रक्खा गया । प्रत्येक क्षेत्रमें से अधिक चमकता हुआ तारा दीख पड़ता है, नाम योगतारा रक्खा गया । और नक्षत्रका

साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण और सुप्रकाशित ताराअ नाम और स्थान निश्चय किया गया । उनमें दक्षिणमें और अगस्त्य तथा उत्तरमें अभिजित्, ब्रह्महृद्य, अ प्रजापति मुख्य हैं । इनके सिवा क्रान्तिवृत्तके समीप दूसरे प्रकाशमान तारे, जिनकी आवश्यकता ग्रहोंके गणनामें पड़ती है, निश्चित किये गये । उनमें मघा, पुष्य, शततारका और चित्रा मुख्य हैं । रत्नमाला नामवे इन तारोंका उल्लेख आता है । पाश्चात्त्य ज्योर्ि सम्पूर्ण आकाशके ताराओंको ऐंड्रोमेडा (Andror आदि विभिन्न प्रकारके ८८ तारा-मण्डलोंमें ि किया है । यह तारा-मण्डलकी सूची बनानेकी शैल निवासियोंकी प्राचीन शैलीका अनुकरण है । अनावश्यक ताराओंकी सूची न बनाकर काल-गण सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहणादिकी स्थितिका निश्चय अपने कृत्योंके लाभार्थ किया गया था । सूर्य और चन्द्र-ग्रहण साथ चन्द्रकी गतिसे होनेवाले तारा-ग्रहणका भी भारतीयोंको था, इस प्रकार चन्द्रके द्वारा मघाका ग्रह हुआ करता है । ग्रहोंके सिद्धान्तपर भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थमें विस्तारसे विवेच है । परवर्तीकालमें आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्व इस विज्ञानके विषयमें विशेष अनुसन्धान किया है ।

नक्षत्र-मण्डलके बीच होकर भ्रमण करनेवाले के और सूर्यकी ही स्थिति और गतिका निरीक्षण आर किया; बल्कि इनके साथ-साथ मङ्गल, बुध, बृहस्पा और शनि नामक अन्य पाँच ग्रहोंकी गति और भी निरीक्षण किया । और क्रान्तिवृत्तमें इनकी गतियोंके साथ अतिचार और मन्दगतिको भी देख पाँचोंके अतिरिक्त रवि-चन्द्र तथा तमोग्रह राहु-केतु कुल नौ ग्रह माने गये हैं । पाश्चात्त्य लोगोंने चन्द्र पृथिवीको ग्रह माना है, और राहु-केतुको छोड़कर नेप्च्यून और प्लूटो—इन तीन ग्रहोंको लेकर कुल माने हैं । ग्रह-गतिके विषयमें भारतीय और गणनामें बहुत ही थोड़ा अन्तर पड़ता है ।

वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें केतु अर्थात् ताराओंका वर्णन आता है । उन्होंने पहले शुभ धूमकेतु नामसे दो भेद किये हैं और छोटे र स्निग्ध सोम्य्य, मीठे और श्वेतवर्णके केतको,

अशुभ दर्शनवाले धूमकेतु हैं । बृहत्संहितामें सूर्यादि था पृथिवी और विभिन्न नक्षत्रोंसे उत्पन्न होनेवाले केतुओंका वर्णन मिलता है, जिसमें उनकी गति, तथा उनके उदयसे होनेवाले शुभाशुभ परिणामोंका न किया गया है । सुदीर्घ कालके अध्ययनका यह है कि हमारे यहाँ धूमकेतुके इतने भेदोंका अवलोकन इसके पश्चात् होनेवाले फलोंका निरीक्षणकर उसे कर दिया गया है । पाश्चात्त्य नक्षत्र-विज्ञानने अभी ५ वीं शताब्दीसे ही इस विषयमें अनुसन्धान प्रारम्भ । पहले-पहल १४५७ ई० में दिखलायी देनेवाला जो १६२५, १८१८ और १८७३ तथा १९२८ ई० ायी दिया था और जिसके बारेमें पाश्चात्त्योंका अनुमान १९५६ ई० में पुनः उसका दर्शन होनेवाला है, ाया-विनेक-फॉर्बे (Pons-coggia-winnecke- .) के नामसे प्रसिद्ध है । कुछ दूसरे प्रसिद्ध धूमकेतु ts) जो निरीक्षण करनेवालेके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे हैं— Halley), डोनाटी (Donati), डेनियल l) और पेल्टियर (Peltier) । पाश्चात्त्योंकी जानकारीमें । धूमकेतु, जिसकी छः पूँछें थीं, सबसे बड़ा आश्चर्यजनक ा । इसके सिवा पाँच-सात और धूमकेतुओंका उल्लेख ज्योतिर्विज्ञानने किया है । परंतु बृहत्संहितामें तो भयानक रँगीली पूँछवाले अग्निकेतु, जो अग्नि- ते और विलीन हो जाते हैं, तीन पूँछोंवाले ब्रह्मदण्डकेतु, का कौङ्कुम नामक केतु, बाँसकी आकृतिवाले चन्द्रमा- के समान प्रभापूर्ण कङ्क नामके केतु इत्यादि-इत्यां धूमकेतुओंका वर्णन पाया जाता है ।

यह तो हुई धूमकेतुकी बात । उल्काओं (sh stars) के बारेमें भी बृहत्संहितामें जो वर्णन मिल आधुनिक पाश्चात्त्य ज्योतिर्विज्ञानकी अपेक्षा कहीं अ है । अन्तर केवल यह है कि वराहमिहिरने द्युलोकसे करके गिरनेवाले लोकके नामसे उन्हें पुकारा है और ज्योतिर्विद् उन्हें नीहारिका-पुञ्जके रूपमें देखते हैं । दृष्टिकोण आध्यात्मिक होनेके कारण सर्वत्र, यहे ज्योतिर्लोकोंमें भी उन्हें धर्म-तत्त्वकी ही चमक दी है; परंतु पश्चिमका विज्ञान जडवादी होनेके कार जडबुद्धिकी प्रधानताको ही द्योतित करता है । परंतु दृष्ट और अनुभूत होनेके कारण हमारा दैवी विज्ञा पूर्ण है, आकाशमें होनेवाली प्रमुख घटनाओंके विषय गणना ठीक-ठीक उतरती है । इसके विपरीत पा आसुरी विज्ञान सर्वथा अपूर्ण है । क्योंकि भारतीय विज्ञान हमारे धार्मिक जीवनके लिये उपयोगी पाश्चात्त्योंका सामाजिक जीवन इससे वञ्चित रहता है; इस विज्ञानकी महिमा वहाँ इतनी नहीं है जितनी यहाँ है । इसी कारण शास्त्रकार कहते हैं—

वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत्
प्रधानताङ्गेषु ततोऽस्य युक्ता
अङ्गैर्यतोऽन्यैरपि पूर्णमूर्त्ति-
श्चक्षुर्विना कः पुरुषत्वमेति

—अलख

किन नक्षत्रोंमें गया हुआ धन वापस नहीं मिलता

ऊ गुन पू गुन वि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिरि चढ़इ न हाथ ॥

(दोहावली)

'उ' से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), 'पू' से आरम्भ ह त्र (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद), वि (विशाखा), अज (रोहिणी), कृ (कृत्तिका), म (मघा भ (भरणी), अ (अश्लेषा) और मू (मूल)को भी इन्हींके साथ समझ लो—इन चौदह नक्षत्रोंमें हरा हु हुआ, धरोहर रक्खा हुआ, गाड़ा हुआ तथा किसीको दिया हुआ धन फिर लौटकर हाथ नहीं आ

हिंदुओंका रत्नविज्ञान

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

र्षि कश्यपका कहना है कि माणिक्यादि रत्नोंको धारण
सी प्रकारका कष्ट नहीं होता; अतएव कष्टनिवृत्ति तथा
होंकी प्रीतिके लिये क्रमशः माणिक्य, मौक्तिक, विद्रुम,
पुष्पराग, वज्र, नीलम, गोमेद तथा वैदूर्य धारण
हिये—

दीनां च संतुष्ट्यै माणिक्यं मौक्तिकं तथा।
द्रुमं मरकतं पुष्परागं च वज्रकम्॥
गोमेदवैदूर्यं धार्यं स्वस्वदढक्रमात्।

नारदीयका भी यही मत है—

मुक्ताफलं विद्रुमाख्यं मरकतं तथा।
रागं तथा वज्रं नीलं गोमेदसंज्ञकम्।
र्यं भास्करादीनां तुष्ट्यै धार्यं यथाक्रमम्॥

(पू० भा० ५६। २८२)

नपुराणके रत्नपरीक्षाप्रकरणमें बहुत-से रत्नोंके नाम
—यथा वज्र, मरकत, पद्मराग, मुक्ता, महानील,
वैदूर्य, गन्धशस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक,
कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय,
, गञ्ज, शङ्ख, गोमेद, रुधिराक्ष, भल्लातक,
थक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजङ्गमणि,
टिट्टिभ, पिण्ड, भ्रामर, उत्पल। (अग्नि० २४५ अ०)
का कहना है कि वज्र (हीरा), मोती, मूँगा, गोमेद,
वैदूर्य, पुखराज, पाचि और माणिक्य—ये नौ
हैं, ऐसा विद्वानोंका मत है—

मुक्ता प्रवालं च गोमेदश्चेन्द्रनीलकः।
र्यः पुष्परागश्च पाचिर्माणिक्यमेव च॥
रत्नानि चैतानि नव प्रोक्तानि सूरिभिः।

(शुक्रनीतिसार ४। २। १५६)

ं लाल वर्णका इन्द्रगोपके समान कान्तिवाला माणिक्य
ाय है तथा लाल, पीला, सफेद एवं श्याम कान्तिवाला
द्रमाको प्रिय है—

प्रियं रक्तवर्णमाणिक्यं त्विन्द्रगोपरुक्।
पीतसितश्यामच्छविर्मुक्ता प्रिया विधोः॥

प्रकार पीलापन लिये लाल मूँगा मङ्गलको प्रिय है
या चाषके पंखोंके समान वर्णका पाचि बुधको प्रिय
है। सोनेकी झलकवाला पुखराज बृहस्पतिको प्रिय
तारोंके समान कान्तिवाला वज्र शुक्रको प्यारा है। श
सजल मेघके समान कान्तिवाला इन्द्रनील प्रिय है;
लाल, पीली कान्तिवाला गोमेद राहुको तथा बिलावके
समान कान्तिवाला एवं लकीरवाला वैदूर्य केतुको प्रि

सपीतरक्तरुग् भौमप्रियं विद्रुममुत्तमम्
मयूरचाषपत्राभा पाचिर्बुधहिता हरित
स्वर्णच्छविः पुष्परागः पीतवर्णो गुरुप्रिय
अत्यन्तविशदं वज्रं तारकाभं कवेः प्रियम्
हितः शनेरिन्द्रनीलो ह्यसितो घनमेघरुच
गोमेदः प्रियकृद्राहोरीषत्पीतारुणप्रभः
ओत्वक्षभाश्चलत्तन्तु वैदूर्यं केतुप्रीतिकृत

(शुक्र० ४। २। १५८

शुक्र कहते हैं कि सभी रत्नोंमें वज्र (हीरा)
पर सन्तानकी इच्छावाली स्त्री इसे कभी धारण
गोमेद और मूँगा सभी रत्नोंमें नीच हैं—

रत्नं श्रेष्ठतरं वज्रं नीचं गोमेदविद्रुमः
न धारयेत्पुत्रकामा नारी वज्रं कदाच

आश्चर्य नहीं कि भगवान् श्रीरामके राज्यमें
साधारण-से-साधारण प्रजाके सभी मकानोंके द्वारों
ही किवाड़ थे और उनमें सर्वत्र हीरे जड़े हुए थे—

प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि ख

रत्नोंकी परीक्षाके लिये 'युक्तिकल्पतरु'में राजा भो
अपने 'अर्थशास्त्र'में कौटिल्यने बड़े लंबे-चौड़े
लिखे हैं। अग्निपुराणका कहना है कि जो हीर
तैर सके, भारी चोट सह सके, षट्कोण हो, इ
आकारका हो, हल्का हो या सुग्गोंके पंखके रंग
चिकना हो, कान्तिमान् तथा विमल हो, वह श्रेष्ठ है

अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्यं विमलं च य
षट्कोणं शक्रचापाभं लघु चार्कनिभं शुभ
शुकपक्षनिभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथ

(अग्निपु० २४६।

कौटिल्य कहते हैं कि मोटा, चिकना, भारी चोट
वाला, बराबर कोनोंवाला, पानीसे भरे हुए पीतल
बर्तनमें डालकर हिलाये जानेपर बर्तनमें लकीर ब

कवेकी तरह घूमनेवाला और चमकदार हीरा प्रशस्त
ाता है—

ं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं
भाजनलेखितं कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम्।
(२।११।४१)

कोण, तीक्ष्ण कोनेसे रहित तथा एक ओरको अधिक
ए कोनोंवाला हीरा दूषित समझा जाता है—

कोणं निरश्रि पार्श्वापवृत्तं चाप्रशस्तम्।'

छः स्थानोंमें उत्पन्न होता है तथा छः रंगोंवाला
यह बरार, कोसल, कास्तीर (काश्मीर), श्रीकरनक,
तथा कलिङ्ग—इन छः स्थानोंमें उत्पन्न होता है
वकी आँखके समान, सिरसके फूलके समान, गोमूत्रके
ोरोचनके समान, श्वेत वर्णके स्फटिकके समान और
फूलके रंगवाला होता है।

योंके वर्णनमें कौटिल्यने अपार बुद्धिमत्ता प्रदर्शित
उनका कहना है कि मोती तीन कारणोंसे उत्पन्न
-शङ्खसे, शुक्तिसे तथा हाथी-सर्पादिके मस्तकसे।
स्थानभेदसे इसके दस प्रकार होते हैं। मोटा,
तलरहित (चिकनी जगहपर बराबर लुढ़कते जाने-
दीप्तियुक्त सफेद, भारी, चिकना तथा ठीक मौकेपर
ी उत्तम समझा जाता है। अग्निपुराणका कहना
ी शुक्तिसे उत्पन्न होते हैं, किंतु शङ्खसे बने मोती
पेक्षा विमल एवं उत्कृष्ट होते हैं। हाथीदाँतसे उत्पन्न,
पसे उत्पन्न, वेणुनागसे उत्पन्न या मेघोंद्वारा उत्पन्न
न्त श्रेष्ठ होते हैं—

फलास्तु शुक्तिजाः·········।
ास्तेभ्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुनेः॥
दन्तभवाश्चाद्याः कुम्भसूकरमत्स्यजाः।
ागभवाः श्रेष्ठा मौक्तिकं मेघजं वरम्॥
(अग्निपु० २४५।१२-१३)

छता, वृत्तता (गोलाई), शुक्लता (उजलापन)
ता (भारीपन)—ये मौक्तिक मणि (मोती) के

वं शुक्लता स्वाच्छयं महत्त्वं मौक्तिके गुणाः।
(अग्निपु० २४६।१४)

का कहना है कि सिंहलद्वीपवाले कृत्रिम मोती भी
हैं, इसलिये मोतीकी परीक्षा करनी चाहिये। रातभर
मिले हुए गर्म जलमें रक्खे, फिर उसे धानोंमें मले।

इतनेपर भी जो मैला न हो, वह असल मोती होता है
से उत्पन्न मोतीकी कान्ति सर्वाधिक होती है—

कुर्वन्ति कृत्रिमं तद्वत्सिंहलद्वीपवासिन
तत्सन्देहविनाशार्थं मौक्तिकं सुपरीक्षयेत
उष्णे सलवणस्नेहे जले निश्युषितं हि त
व्रीहिभिर्मर्दिते नेयाद्वैवर्ण्यं तदकृत्रिमम
श्रेष्ठाभं शुक्तिजं विद्यान्मध्याभं त्वितरं विदु
(शुक्रनीतिसार ४।२।१७६

कौटिल्यने मोतियोंकी मालाओंके वर्णनमें कमा
है। वे कहते हैं कि मालाओंके गाँथनेके तरीकों
शीर्षक, उपशीर्षक, प्रकाण्डक, अवघाटक और तरलप्रब
पाँच भेद हैं। फिर मोतियोंकी संख्याके अनुसार इनके
हैं। जैसे १००८ लड़ोंकी मालाका नाम 'इन्द्रच्छन्द', ५
नाम 'विजयच्छन्द', १०० यष्टिका नाम 'देवच्छन्द',
'अर्धहार', ५४ का 'रश्मिकलाप', ३२ का 'गुच्छ',
'नक्षत्रमाला', २४ का 'अर्धगुच्छ', २० का 'माणव
दस लड़ोंकी मालाका नाम 'अर्धमाणवक' है। इन्हीं
के बीच मणि पिरो देनेसे फिर इनके ५० और भेद
जिनके बड़े-बड़े लंबे नाम हो जाते हैं—जैसे 'इन्द्रच्छन्द
कार्धमाणवक', 'इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डार्धमाणवक' इ
शुक्रका कहना है कि मोती और मूँगा—ये दो ही रत्न
जिनपर पत्थर और लोहेसे लकीर पड़ती है और जो
हल्के होते हैं, अन्यथा अन्य सभी रत्न सर्वदा ए
निष्कलङ्क रहते हैं—

नायसोल्लिख्यते रत्नं विना मौक्तिकविद्रुमात
पाषाणेनापि च प्राय इति रत्नविदो विदुः
न जरां यान्ति रत्नानि विद्रुमं मौक्तिकं विना

इसी प्रकार इन ग्रन्थोंमें तथा 'युक्तिकल्पतरु'
प्रवालादि अन्यान्य मणियोंका भी विस्तारसे लक्षण,
अवान्तर भेद तथा मूल्यादिका विस्तृत विवेच
होता है।

महाभारतका कहना है कि रत्नदानका पुण्य
महान् है—

रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं जनाधिप
(अनुशासन० दान० ६८

भारतवर्षमें पहले रत्नोंका कैसा बाहुल्य था, यह
पुराण'के रत्नाचलवर्णनमें देखते बनता है। वहाँ क
है कि १००० मोतियोंका एक जगह ढेर करे। इस

और गोमेदका ढेर रक्खे, इनमें प्रत्येककी संख्या
ानी चाहिये। इतनी ही संख्याकी इन्द्रनील और
ाणियोंको दक्षिण दिशाकी ओर रखकर गन्धमादन-
ा करे। पश्चिममें वैदूर्य और प्रवाल (विद्रुम या
ा विमलाचल बनाये एवं उत्तरमें पद्मराग और
ेर रक्खे। धान्यके पर्वत भी सर्वत्र बनाये एवं
इपर सोनेके वृक्ष एवं देवताओंकी रचना करे, फिर
ष्प-गन्धादिसे पूजा करे एवं 'यदा* देवगणाः सर्वे'
ान्त्रोंको पढ़कर इस रत्नाचलको विधिपूर्वक ऋत्विजों
र्य आदिको दान कर दे—

ाफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः।
र्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समन्ततः॥
ग वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः।
ागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः॥
र्वविद्रुमैः पश्चात्संमिश्रो विमलाचलः।
ागैः ससौवर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत्॥
यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत्।
ावाहनं कुर्याद् वृक्षान्देवांश्च काञ्चनान्॥
येत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः।
द् गुरुऋत्विग्भ्य इमान् मन्त्रानुदीरयेत्॥
न विधिना दद्याद्रत्नाचलमनुत्तमम्।

(मत्स्यपुराण ९० । १–९)

भारतका कहना है कि जो इन रत्नोंको बेचकर सौम्य
ाज्ञ करता है या प्रतिग्रह लेकर इन्हें किसी अन्यको दान
है, उन दोनोंको ही अक्षय पुण्य होता है—

ान् विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयङ्करम्।
ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै॥
योः स्यात्तदक्षय्यं दातुरादातुरेव च।

(महा० अनु० ६८ । २९-३०)

र्षि वाल्मीकिने अयोध्यापुरीका वर्णन करते हुए लिखा
ई सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और विमानाकार
शोभित थी—

ादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम्।
रत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्॥

(वाल्मीकि० बाल० ५ । १५-१६)

अपनी गीतावलीमें गोस्वामीजीने भी इसका खू
किया है—

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजू के ती
भूपावली मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर
. . . .
गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढा
चित्र बिचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगा
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम खंभ सुजो
चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि जटित दुति जगमगि
पटुली मनहुँ बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम सहित मने
नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधु

(गीता० उत्तर० १९ ।

जनकपुरीकी शोभा भी आपने ऐसे ही वर्णित
मण्डप-रचनाकी शोभामें तो आपने अपने अनूठे रत
का ज्ञान प्रदर्शित किया है—

हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फू
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भू
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहि
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकता दाम
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे

—आदिमें भला कितना ठोस रत्नविज्ञान
वाल्मीकीयका लङ्का-वर्णन भी ऐसा ही है।—

कनक कोट मनि खचित दृढ, बरनि न जाइ

इस एक ही दोहेमें गोस्वामीजीने इसकी
कह डाली है।

सचमुच भारतकी अन्तिम अलौकिक विभूति
पढ़-सुनकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।
आश्चर्य क्या, इन सभी ऐश्वर्योंका कारण इसकी
धर्मपरायणता थी; पर आज तो हम इस तरह धर्मके
गये हैं कि यह शब्द ही हमारे कानोंमें खटकने लग
धर्मविहीनता दिखलानेमें ही हम सभी प्रकार
अनुभव करने लगे हैं और इसका जो उचित परिणा
भी हमारे सामने है!

---

* यदा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः। त्वं च रत्नमयो नित्यं नमस्तेऽस्तु सदाचल॥
यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः। सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत॥

हमारा हिंदुत्व

(लेखक—ठाकुर श्रीगंगासिंहजी)

।प हिंदू हैं ?'

।'

ा प्रमाण है इसका आपके पास ?'

गण ? प्रमाण तो मैं नहीं जानता; पर मैं अपनेको ता हूँ।'

पनी इस मान्यताके सिवा और भी कोई सबूत

'

मैं गायको अपनी माता समझता हूँ और उसके लिये ोको तैयार हूँ।'

र ?'

र गङ्गामें स्नान करके मैं अपनेको पवित्र समझता हूँ।'

र ?'

र अपने धर्मग्रन्थोंको मानता हूँ।'

न किसे धर्मग्रन्थ कहते हैं ?'

का मूल तो वेद है; पर प्रधानतया गीता, रामायण वतादि पुराण भी।'

य धर्मोंके प्रति आपका क्या भाव है ?'

सबका आदर करता हूँ। किसीकी निन्दा नहीं

र ?'

र जगत् मुझे क्या कहता है, इसकी मुझे परवा नहीं। ान्का भय है। मैं उनका प्रिय बनना चाहता हूँ।'

ा आप हिंदू-कोड-बिलके समर्थक हैं ?'

ं, मुझे आप विरोधी समझें। मैं समझता हूँ कि विषयोंमें सरकारको कानून बनानेका कोई अधिकार

'

ा आप मुसल्मानोंसे नफरत करते हैं ?'

ं ! मैं किसीसे नफरत नहीं करता। हिंदूधर्ममें तो भगवान्के स्वरूप हैं या अपने आत्मा ही हैं। के पात्र हैं और आत्मोपम हैं; फिर हिंदू किसीसे और कैसे करे।'

ा आप चाहते हैं कि मस्जिदें तोड़कर उनके स्थान-र बना दिये जायँ ?'

ं। पर जहाँ पहले मन्दिर रहा हो और मुसल्मानोंने कर मस्जिद बना ली हो, उस स्थानपर मन्दिर होना और न्यायोचित समझता हूँ।'

ा आप हिंदू-धर्मको कभी बदल भी सकते हैं ?'

मुझे भगवत्प्राप्ति नहीं हुई तो भगवान् करें जन्मान्तरोंमें हिंदू ही बनता रहूँ।'

'क्या हिंदू-धर्मके अतिरिक्त अन्य धर्मोंमें भ नहीं होती ?'

'होती क्यों नहीं। पर मुझे तो हिंदू-धर्म ही प्र मैं मानता हूँ कि भगवान्के स्वरूपकी व्याख्या तथ प्राप्तिके सुगम और सरल साधन जैसे इसमें हैं, कहीं नहीं हैं।'

'हिंदू-संस्कृतिके अनुसार आदर्श व्यक्ति, आद आदर्श भाई, आदर्श स्वामी और आदर्श राजा कौन

'मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम। उनमें सारे आदर्श वे एकपत्नीव्रती हैं। पिताकी वचनरक्षा और भाई लिये उन्होंने राज्यका अधिकार छोड़ दिया और लिये तो वे सब कुछ करनेको तैयार रहते हैं।'

'आदर्श राजा कैसे ?'

'आदर्श राजा उनके समान और कौन होगा राज्यमें कुत्ते और पशु-पक्षियोंतकको न्याय मिल जिन्होंने स्वयं अपनी प्यारी प्रजाके एक व्यक्तिके न्यायपर—जिसे उसने एकान्तमें अपनी पत्नीके साम किया था—अपने सारे सुखका, अग्निद्वारा प्रमाणि निर्दोष प्राणप्रियाका परित्याग कर दिया और प्रसन्नताके लिये सदाके लिये कलङ्कको सहर्ष स्वी लिया। इसीलिये तो रामराज्यकी इतनी महिमा है।'

'आदर्श पत्नी कौन है ?'

'महारानी सीताजी, जिन्होंने दुःखमें पतिव नहीं छोड़ा। भगवान् श्रीराम उन्हें वनमें नहीं ले उनके प्राण निकल जाते। उन्हीं प्राणोंको अपने कालमें उन्होंने आर्यपुत्रकी प्रसन्नता एवं वंश-रक्षा धारण कर रक्खा।'

'हिंदुओंका आदर्श नवयुवक ?'

'वीरवर अर्जुन, जिसने एकान्तमें उर्वशी-जैसी प्रणय-प्रस्तावको अस्वीकार करके उसे मातृरूपमें दे तो उन्हें उसका विश्वविमोहन रूप लुभा सका और शाप ही उन्हें डिगा सका।'

'आपकी कसौटी क्या है ?'

'शास्त्र, संत और आत्माकी आवाज। इ कसौटियोंपर जो बात खरी उतरती है, उसे करनेमें

धनोपार्जनके वर्तमान साधन हिंदू-आदर्शके विरुद्ध हैं

(लेखक—पं० श्रीदयाशङ्करजी दुबे, एम्०ए०, एल्-एल्०बी०)

ान युग अर्थप्रधान है। संसारमें सर्वत्र अर्थके
ा-हाय मची हुई है। मजदूर और मालिक, किसान
ंदार, सरकारी अफसर और कर्मचारी, धनवान् और
सब लोग अधिकाधिक धन प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे
ः-से अपने प्रयत्नोंमें सफल न होनेके कारण आवश्यक
धन नहीं प्राप्त कर पाते, इसलिये दुखी होते हैं।
 धन प्राप्त करनेपर भी सुखी नहीं हो पाते;
ाह विचार नहीं करते कि उनके दुःखका प्रधान
ा है। हिंदू-धर्मशास्त्रने धनके उपार्जनके सम्बन्धमें
बतलाया है, यदि उसके अनुसार धन प्राप्त किया
उससे कभी भी दुःख नहीं मिल सकता। हमारे
का आदेश है कि धनका उपार्जन धर्मके द्वारा ही
हिये। धन कभी भी ऐसे साधनद्वारा नहीं प्राप्त
हिये, जिससे सत्यका हनन होता हो, दूसरोंका अहित
का शोषण हो, किसीका न्याय्य स्वत्व मारा जाता
ाने हिस्सेमें आता हो अथवा दूसरोंको दुःख पहुँचता
ज हमलोग धन कमानेकी धुनमें साधनोंका विचार
करते और जायज या नाजायज तरीकोंसे धन प्राप्त
ा हैं। जब हम धन कमानेमें दूसरोंका हक छीनकर
ी करते हैं, तब फिर हमको उससे सुख कैसे प्राप्त
है। यदि अपने प्रयत्नोंद्वारा हमने दूसरोंके लिये दुःख-
ोया है तो उसका फल दुःखके रूपमें हमको अवश्य
ड़ता है। इसमें सन्देह करनेकी कुछ भी गुंजाइश
यह संसारका अटल नियम है कि जो जैसा बीज
उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। बेईमानी या
ो धन कमाया जाता है, दूसरोंको दुःख पहुँचाकर
ाप्त होता है, वह प्रायः विलासिताकी वस्तुओंमें या
स्तुओंपर खर्च होता है। उससे केवल हमारी आदतें
बेगड़तीं, स्वास्थ्यपर भी उसका बुरा असर पड़ता है
 दिन विलासितामय जीवन व्यतीत करनेके बाद
ःख ही प्राप्त होता है। हमको स्थायी सुख तो
सुखी करके ही प्राप्त हो सकता है। यह तबतक

किसी एक कपड़ेके दूकानदारके पास ऐसा ग्राह
है, जो उसपर पूर्णरूपसे विश्वास करता है। वह दू
एक जोड़ा धोती माँगता है। दूकानदार यह जानते
उस प्रकारकी धोती अन्य दूकानदारोंके पाससे १०)
सकती है; वह उस ग्राहकसे १२) माँगता है। ग्राहक दू
१२) देकर धोती खरीद लेता है। दूकानदार इस
२) अधिक लेनेपर प्रसन्न होता है। वह यह कर्म
नहीं करता कि उसने अपने ग्राहकके साथ जो विश्वासघ
है, उसका फल उसे दुःखके रूपमें अवश्य भोगना
यदि प्रत्येक दूकानदार अपनी आमदनीके सम्बन्धमें ग
पूर्वक विचार करे तो उसे मालूम हो जायगा कि उसके
का एक बड़ा भाग विश्वासघात और बेईमानीसे ही प्र
गया है। आजकल तो जो दूकानदार सबसे अधिक
करता है, चोरबाजारी करता है, या पदार्थोंमें घटिया
की मिलावट करता है, वह सबसे अधिक योग्य और व
समझा जाता है और अन्य दूकानदार उसका अनुकरण
प्रयत्न करते हैं। आजकल दूकानदारोंमें यह भ्रम
है कि बिना थोड़ी-बहुत बेईमानी किये दूकानदार
सफलतापूर्वक चलाया ही नहीं जा सकता। यह धार
नहीं है। इस युगमें भी ऐसे दूकानदार मिल जा
अपने ग्राहकोंको कभी धोका नहीं देते और ईमानदारी
कार्य चलाते हैं। वे शीघ्र लखपती तो नहीं हो पा
अपनी ईमानदारीकी कमाईसे जो सुख और सन्तो
प्राप्त होता है, वह लखपतियोंको प्राप्त नहीं हो पात
अधिकांश व्यापारी आज धनके उपार्जनमें हिंदू-
भूल गये हैं। इसलिये उनको दुखी होना पड़ता है
सुखी होना चाहते हैं तो उनको थोड़े मुनाफेमें
करके अपने ग्राहकोंके साथ ईमानदारीका व्यवहा
चाहिये।

इसी प्रकार आजकल घूसखोरी बहुत बढ़ गयी है
उपार्जनका यह एक सरल साधन मान लिया गया है।

दे देता है। नियमानुसार यात्रीको दस रुपये देने इस प्रकार घूसद्वारा कर्मचारी दो रुपये प्राप्त कर लेता यात्री आठ रुपये बचा लेता है; परंतु टिकट जाँच । कर्मचारी क्या कभी यह भी सोचता है कि उसने र्तव्यका पालन नहीं किया, उसने अपने मालिकके साथ ात किया और अपने दो रुपयोंके लाभके लिये अपने : दस रुपयोंकी हानि पहुँचा दी। यात्री भी आठ । लेता है; परंतु इस अधर्मद्वारा बचे हुए धनसे क्या ख और शान्ति मिल सकती है? क्या रेलवे-कर्मचारी अपने कर्मके फलसे बच सकता है? अपने मालिकसे अपनी बेईमानी छिपा ले; परंतु ईश्वरीय न्यायसे वह हीं बच सकता। अधर्मद्वारा प्राप्त धनसे कर्मचारी ो दोनोंको सुख और शान्ति नहीं मिल सकती।

स-विभागके कर्मचारियोंका कर्तव्य घूसखोरी बंद । परंतु जब वे ही घूस लेते हैं, तब वे अपने पालन नहीं करते और उसका फल उनको अन्तमें ोगना पड़ता है। आजकल घूसखोरी इतनी बढ़ गयी ः उसने हकका रूप धारण कर लिया है। कुछ अब यह समझने लगे हैं कि घूसके रूपमें किसी ये एक निश्चित रकम ले लेना उनका हक है। जब क अपना दस्तावेज रजिस्ट्री कराने रजिस्ट्रारके दफ्तरमें तब उस विभागके कर्मचारी रजिस्ट्रीकी फीसके साथ- बेना अपना हक लिये उसकी रजिस्ट्री ही नहीं करते। अपने हल्केके पटवारियोंसे एक मासका वेतन प्रति- ना कानूनगो अपना हक समझते हैं। घूसको इस हक समझना और उसे वसूल करना अपने-आपको । है। धनका यह उपार्जन हिंदू-आदर्शके विरुद्ध है। ो अर्थात् अधर्मसे प्राप्त धनसे कभी भी स्थायी : शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। प्रत्येक मनुष्यको यह रहसे समझ लेना चाहिये कि धन सुखका एक साधन और जब अधर्मद्वारा प्राप्त धनसे सुख नहीं प्राप्त हो ब फिर उसे गलत साधनद्वारा प्राप्त करनेका प्रयत्न द्धिमानी नहीं है। सुख चाहनेवाले व्यक्तियोंको घूस- मेशा दूर रहना चाहिये।

ोंका शोषण करके भी धन प्राप्त होता है। जब एक अपने कारखानेमें मजदूरोंको उचित मजदूरी नहीं एक महाजन अपने कर्जदारोंसे अत्यधिक ब्याज ता है, जब एक जमींदार अपने किसानोंसे लगान और बेगार लेता है, तब मजदूरों, कर्ज- किसानोंका शोषण होता है। उनकी आर्थिक दश होती जाती है और वे बरबाद हो जाते हैं। पूँजीपति और जमींदार इस शोषणद्वारा धनवान् अवश्य हो परंतु कुछ समयके बाद उनको अपने कर्मोंका फ भोगना पड़ता है। अन्तमें दुःख ही उनके हाथ रह इनका कार्य भी हिंदू-आदर्शके विरुद्ध होता है। जब कृपासे पूँजीपतियों, महाजनों और जमींदारोंको अपने काफी धन प्राप्त हो गया है, तब उनको उसका उपयोग सुखी बनानेमें करना चाहिये। इससे उनको अधिक प्राप्त होगा और स्थायी सुख और शान्ति भी प्रा यह कार्य कठिन अवश्य है; क्योंकि लक्ष्मीजी जिस करती हैं, उसको अपना वाहन (उल्लू) बना लेती दिन होनेपर उसको अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह अपने धनका करके, दूसरोंका शोषण करके शीघ्र अधिक धनी होने करता है। उसे एक बार अधिक धन तो मिल सकता उसे अपने कर्मोंके फलोंको भी भोगना पड़ता है सुख और शान्तिके लिये वह तरसने लगता है। यदि होना चाहता है तो शोषणके सब कार्य उसे शीघ्र देने चाहिये और दूसरोंको सुखी करके ही अपने धन करनी चाहिये।

कुछ व्यक्ति मादक वस्तुओंको उत्पन्नकर या अपनी जीविका चलाते हैं। वे यह विचार नहीं उनके ग्राहकोंके स्वास्थ्यपर मादक वस्तुओंके उपभोग प्रभाव पड़ेगा। लाखों परिवारोंकी आर्थिक दशा वस्तुओंके उपयोगसे चौपट हो गयी है। क्या मादक के विक्रेता अपने ग्राहकोंकी दुर्दशामें सहायक होकर सु होनेकी आशा करते हैं? यदि वे सुखी होना चा उनको धन-उपार्जनका यह साधन त्याग देना चाहि ऐसे साधनद्वारा अपनी जीविका प्राप्त करनी चाहिये दूसरोंका भी भला हो।

कुछ लोग हिंदू होकर भी गोमांसका ठेका लेते हैं चमड़ेका व्यापार करते हैं, जिसके लिये गायें कसाईखा जाती हैं। भला बताइये, इसका अन्तिम परिणाम क्य दुःखदायी नहीं होगा।

धन-उपार्जनके लिये आजकल बड़े-बड़े कारखा जाते हैं। उनका गंदा पानी नदियोंमें छोड़ा ज

ड़ा जाता है। चीनीकी मिलोंका गंदा पानी भी
छोड़ा जाता है। इस प्रकारके कार्यसे नदियोंके
वित्रता कम हो जाती है। नदियोंके किनारे निवास
व्यक्तियोंके स्वास्थ्यपर इसका बुरा असर पड़ता है।
रका कार्य हिंदू-आदर्शके विरुद्ध है। सरकारको इन
का ऐसा नियन्त्रण करना चाहिये, जिससे इनका गंदा
दियोंमें न पहुँचने पाये। इंगलैंडकी नदियोंमें गंदा
राना कानूनद्वारा रोक दिया गया है। भारतमें भी
रा इसे रोकनेका प्रयत्न शीघ्र होना चाहिये। प्रान्तीय
मन्त्री और व्यवस्थापक-सभाके सदस्योंको इस
कानून शीघ्र स्वीकृत करा लेना चाहिये।

त गरीब देश है। इसमें धनकी उत्पत्ति शीघ्रतासे
लिये हमारी भारत-सरकार कुछ नदियोंपर बड़े-बड़े
वाकर बिजली उत्पन्न करनेकी योजनाएँ तैयार कर
इस बिजलीकी सहायतासे बड़े-बड़े कारखाने और
ग-धंधे चलाये जायँगे। नदियोंसे नहरें भी निकाली
जिससे सिंचाईमें सहायता मिलेगी और अन्नसंकट
। कोसी, दामोदर, महानदी, नर्मदा और ताप्तीपर
ये जानेकी योजनाएँ विचाराधीन हैं। धन-उपार्जनकी
एँ बहुत अच्छी हैं; परंतु इनके सम्बन्धमें एक बात
विचारणीय है। श्रीनर्मदाजीके दोनों किनारे तपो-
गये हैं। हमारे शास्त्रोंमें आदेश दिया गया है
र्मदाजीके पवित्र तटपर तपस्या करनी चाहिये। इस
अनुसार सैकड़ों संत-महात्मा आजकलके जमानेमें
र्मदाजीके किनारे गुफाओं और झाड़ियोंमें शान्तिपूर्वक
हे हैं और हजारों व्यक्ति प्रतिवर्ष बड़ी श्रद्धासे
जीकी परिक्रमा करते हैं। श्रीनर्मदाजीपर बाँधोंके बन
र किनारोंपर बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो जानेसे

श्रीनर्मदाजीके किनारेकी भूमि तपस्याके योग्य तो न
जायगी। नहर निकालकर सिंचाई करनेसे भि
परिक्रमा भी नहीं की जा सकेगी; इसलिये आजकल अ
उन्नतिका जो एक प्रधान साधन भारतवासियोंको प्रा
लुप्त हो जायगा। थोड़ी बहुत भौतिक उन्नतिके लि
आध्यात्मिक उन्नतिके साधनसे वञ्चित हो जाना पड़ेगा
वासियोंकी सर्वतोमुखी उन्नतिके लिये यह आवश्
भौतिक और आध्यात्मिक उन्नतिके साधनोंके सामञ्जस्
ध्यान रक्खा जाय। श्रीगङ्गाजीकी पवित्रता तो शह
पानीद्वारा नष्ट हो ही चुकी है। भारतमें केवल नर्मदा
ऐसी नदी है, जिसकी पवित्रता अभीतक नष्ट नहीं
है। हम भारत-सरकारसे अनुरोध करते हैं कि अ
उन्नतिके साधनको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये भारत
तपके लिये शान्तिपूर्ण स्थान सुरक्षित रखनेके उद्देश्यसे
पर बाँध बनानेकी योजनाको त्याग दे। श्रीनर्मदा
निवास करनेवाले व्यक्तियोंसे—विशेषकर मण्डला,
होशंगाबाद, हंडिया, ओंकारेश्वर, महेश्वर, बड़वानी,
चाँदोई, शुक्लतीर्थ, भड़ौंच इत्यादि स्थानोंके नि
अनुरोध करते हैं कि वे सभाएँ करके भारतसरक
योजनाको त्याग देनेकी प्रार्थना करें और अपने प्रा
द्वारा वैधानिकरूपसे आन्दोलन करें। यदि योजनाके
श्रीनर्मदाजीपर बाँध बनानेका कार्य आरम्भ हो गया
महात्माओं और परिक्रमावासियोंको बहुत कष्ट हो
देशवासियोंकी आध्यात्मिक उन्नतिमें बड़ी बाधा उप
जायगी। भौतिक उन्नति देशवासियोंके सुखका एक
और जब किसी भौतिक उन्नतिके साधनसे आध्यात्मिक
साधनमें बाधा पड़ती है, तब भौतिक उन्नतिके उस सा
धनके उपार्जनके उस तरीकेको त्याग देना ही उचित

तृष्णाके त्यागमें ही सुख है

ा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता। अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी
दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्

(महा० वन० २। ३

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठा है, सदा ही उद्वेग उत्पन्न करनेवाली मानी गयी है। उसके द्वारा अ
ही प्रवृत्ति होती है। वह बड़ी भयङ्कर है और पापकर्मोंमें ही बाँध रखनेवाली है। दुष्ट
लिये जिसका त्याग अत्यन्त कठिन है, जो मनुष्यके बूढ़े होनेपर भी बूढ़ी नहीं होती—सदा ज
ी है, जो मानवके लिये प्राणोंका अन्त कर देनेवाले रोगके समान है; ऐसी तृष्णाको जो त्याग
सुख मिलता है।

तुलसीका बिरवा

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे साहित्य रत्न)

ा-सा परिवार था गाँवका। खपरैलका मकान और ाँगन था। आँगनके बीचमें तुलसीका चबूतरा था, सीका बिरवा लगा हुआ था। हवाके झकोरेसे वह ा उठता। प्रातः होते ही गृहिणी स्नान करती ठभरा लोटा लेकर तुलसीपर चढ़ा देती। ी और पृथ्वीपर माथा टेककर प्रार्थना बच्चे उसके पीछे खड़े रहते, वे भी अपनी ाथ तुलसी मैयाके चरणोंमें सिर झुकाते। अपनी पूर्तिके लिये निवेदन करते और इसी प्रकार जब अस्ताचलकी ओर चले जाते, गृहिणी घृतका दीप लाकर तुलसीके समीप रख देती और प्रार्थना ाच्चे तब भी साथ रहते।

ि मनमें आशा थी, विश्वास था और थी दृढ़ ह मा है, जननी है, इससे हमारी सुख-शान्ति रह सकेगी। यह कल्याणकर्त्री है। इससे लोक लोक दोनों ही सुधर सकेंगे। उनका मन सात्त्विक भर जाता; उनके मनमें दया, प्रेम और दिव्य अभिवृद्धि होती। यह तुलसीकी कृपा है—यह वे रते।

र्तनशील समयने परिवारमें परिवर्तन किया। वृद्धि हुई। लड़के बड़े हुए। उन्होंने शिक्षा । वे सभ्य बने।

वहाँ खपरैलका मकान नहीं है। वहाँ पक्का न गया। कुर्सी, मेज और आधुनिक सजावटकी सामग्रियोंसे घर भर गया। गङ्गाजल अब वहाँ ही मिलता, अब तो वहाँ अंग्रेजी दवाओंकी शीशियाँ चारों ओर दीखने लग गयीं और तुलसीका ......वह तो कभी उखाड़कर फेंक दिया गय उसकी आवश्यकता नहीं थी। व्यर्थ ही आँगनमें रक्खा था उसने, शिक्षित मस्तिष्कने यही निश्चय कि तुलसी-चबूतरेसे आँगनकी शोभा कौन बिगाड़े प्रातः न तो किसीको जल चढ़ाना पड़ता है औ धूपकी सुगन्ध ही उड़ती है। सन्ध्या-समय दीप-दा न तो गृहिणी आती है और न उसके आँचलका हुए शिशु एकत्र होते हैं। पूजा गयी, श्रद्धा गयी, गयी। अब तो चाय, समाचार-पत्र और शृङ्गार आ

...और साथ ही सारा परिवार छिन्न-भिन्न ह सब अलग हो गये। सब अपने-अपने स्वार्थकी पूर्ति प्रयत्न करने लगे। अब वहाँ सुख-शान्तिके दुःख-दैन्य भर गया। जहाँ प्रेमकी सरिता प्रवाहित ह वहाँ ईर्ष्याकी अजस्र धार बहने लगी।

× × ×

धरित्रीपर पैर रखनेके लिये निशा काली चाद रही थी और उक्त परिवारकी वृद्धा गृहिणी अपने घर गयी थीं। उन्होंने देखा, वहाँ तुलसीका बिर हुआ है आँगनके बीचमें चबूतरेपर और पूजा हो घरके समस्त बच्चे एकत्र होकर सिर झुका रहे हैं। सुख-शान्तिका निवास है। दुःख-दैन्यका नाम नहीं।

गृहिणीकी स्मृति उदित हुई। उनकी आँखोंसे आँसू लुढ़क पड़े। उनके हृदयने कहा यदि मेरा अ लिया गया होता, वह आँगनका चबूतरा बचा ह उसपर होता हरा-भरा माता तुलसीका बिरवा....



तुलसी-महिमा

ुसीकाननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिङ्कराः
ुसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम्। न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी भवेन्नरः

जिसके घरमें तुलसी-वन होता है, वह घर तीर्थरूप हो जाता है, वहाँ यमदूत नहीं आते। जो ञ्जरीसे भगवान् हरि-हरकी पूजा करता है, वह फिर गर्भमें नहीं आता, वह मुक्तिका भागी हो ज

हिंदू-संस्कृति

(लेखक—पं० श्रीमल्लिनाथजी शर्मा चोमाल)

त-से विद्वानोंका मत है कि 'संस्कृति' और —प्राय: एक ही अर्थके बोधक हैं; क्योंकि ये ब्द प्राय: मिलते-जुलते-से ही प्रतीत होते हैं। परंतु े अर्थके बोधक न होकर कुछ भिन्नता रखते हैं । संस्कृति' शब्द तो किसी जाति या व्यक्तिके मानसिक, और बौद्धिक विकाससे सम्बन्ध रखता है और शब्द उसके केवल भौतिक विकाससे ।

कृत-व्याकरणके आधारपर 'संस्कृति', 'संस्कृत' और —ये तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक और मिलते- ही प्रतीत होते हैं। 'संस्कृति' शब्दसे 'संस्कृत' शब्दका ाषयमें इतना ही भेद प्रतीत होता है कि 'संस्कृत' ायोग बहुधा संस्कार की हुई वस्तुके अर्थमें ही ौर 'संस्कृति' शब्दका प्रयोग संस्कार अर्थमें । अतः और संस्कार एक ही वस्तुके नाम हैं।

ाता भी संस्कृतिमूलक ही है, सम्यताका आधार ी है; क्योंकि जन्म-जन्मान्तरोंकी संस्कृतिके आधारपर ात्मक आदर्श रक्खे जाते हैं, वे ही सभ्यता कहलाते हरण यह है कि जैसे कोई जाति या व्यक्ति किसीका कार आदि अच्छे काम करता है, तो वहाँ यही कहा के इस जातिकी या इस व्यक्तिकी संस्कृति ऐसी ही इनमें इस प्रकारकी सभ्यता चली आ रही है ।

'संस्कृति' शब्द आत्मा, बुद्धि और मनके विकासको से सूचित करता है और 'सभ्यता' शब्द उसके विकासको । अतः किसी जातिके ऐहलौकिक और क जीवन बितानेके ढंग और उस विषयके विचारों- स्कृति कहा जा सकता है । तथा इसी प्रकार उस आन्तरिक भावों और जीवन-सम्बन्धी विचारों ; उच्च आदर्शोंको भी संस्कृति कहा जा सकता है । ा संस्कृतिमूलक है ही; क्योंकि संस्कृतिरूपी बीजका ो सभ्यता कहलाता है । संस्कृतिके द्वारा ही जातियोंकी परीक्षा होती है ।

-जातिकी संस्कृति अन्य जातियोंकी संस्कृतिसे भिन्न भिन्नता ही इसकी विशेषता है। सृष्टिके प्रारम्भिक

और वशिष्ठ-जैसे ब्रह्मर्षि तथा राजा जनक और श्री जैसे राजर्षि—ये सब वैभवशाली होनेपर भी जन्मभ वृत्तिसे एवं साधुवृत्तिसे ही रहे । क्या किसी अहिं ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं ?

हिंदू-जातिने अपनी संस्कृतिरूपी निधिके ब संसारको—

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा

—का निमन्त्रण दिया था । क्या मिस्र, यूनान अ यूरोप इस बातको भूल गये हैं कि इनको संस्कृ सभ्यताका पाठ किसने पढ़ाया था ? सार यह है कि स बलपर ही हिंदू-जाति आजतक अपने अस्तित्वकी सकी है ।

हिंदू-संस्कृति मनुष्यके सामने विशाल औ आदर्शोंको रखती है । हिंदू-संस्कृति बतलाती है ि आत्मोन्नतिका साधनमात्र है; परंतु अन्य ज संस्कृतियाँ बतलाती हैं कि शरीर ही जीवनका अ एवं सर्वेसर्वा है । अर्थात् अन्य जातियोंकी संस जीवनका जो अन्तिम ध्येय है, वह हिंदू-संस्कृतिमें ध्येयकी पूर्तिका केवल साधनमात्र है ।

हिंदू-जातिको छोड़कर अन्य जातियोंमें उपासना अधिक मात्रामें पायी जाती है । वे केवल उपासिका हैं । शरीरकी उपासना ही उनका अन्तिम परंतु हिंदू-जाति केवल शारीरिक उन्नतिको अपना ल बनाती, वह शारीरिक उन्नतिको आध्यात्मिक केवल साधन या सहायक मानती है । शारीरिक उन्न हुए आध्यात्मिक उन्नति करना हिंदू-संस्कृतिका लक्ष्य है ।

हिंदू-जातिकी संस्कृतिको छोड़कर अन्य ज संस्कृतिमें आत्मविकासके लिये कोई स्थान नहीं । वे अधूरी हैं । वे यह नहीं जानतीं कि आत्मविकास जीवनमें सुख और शान्ति कहाँ है; परंतु हिंदू-सं आत्मविकासको प्रथम स्थान दिया गया है । इसीलिये संस्कृतियोंसे हिंदू-संस्कृति श्रेष्ठ और दृढ़ है, तथ

नको नियमित—नियन्त्रित करना; परंतु अन्य ोंका लक्ष्य है—आवश्यकताओंको बढ़ाना और उनको त और अनियन्त्रित करना। आवश्यकताओंके ही वे उन्नति मानती हैं। पाश्चात्त्योंमें किसी उन्नतिका निर्णय उसकी आवश्यकताओंसे होता है। तेमें आवश्यकताओंकी जितनी भी अधिकता पायी वह उतनी ही उन्नत मानी जाती है।

ू-संस्कृतिका लक्ष्य है 'जियो और जीने दो;' परंतु अन्य ोंका लक्ष्य इससे विपरीत है। वे कहती हैं कि 'हम जीयेंगी, किंतु दूसरोंको जीने नहीं देंगी।' यह लक्ष्य अ अपूर्ण है। अतः संसारकी समस्त जातियाँ जबर संस्कृतिके लक्ष्यको ग्रहण नहीं करेंगी, तबतक उन और सुख मिलना कठिन है। हिंदू-संस्कृति त श्रेष्ठताको अपने लक्ष्यके द्वारा ही प्रकट करती है—

सर्वे वै सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामय
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवे

यही नहीं, हिंदू-संस्कृतिमें ऐसे अनेक एवं असंख भरे पड़े हैं। हिंदू-संस्कृति आदर्शोंका भण्डार है।

आदर्श शिष्य

(१)

मिट्टीकी बनायी द्रोण-मूर्ति भीलने थी; उसे श्रद्धासे सजीव, भक्तिसे भी किया भव्य-सा;
साधन-निरत गुरुदेवकी दयासे हुआ विज्ञ शस्त्र-विद्यामें सदेह शौर्य नव्य-सा।
माँगा गया दक्षिणामें दक्षिण अँगूठा जब, माना गुरुभक्तने इसे भी भवितव्य-सा;
सादर अँगूठा काट द्रोणके करोंमें दिया, धन्य-धन्य शिष्य एक ही हो 'एकलव्य'-सा॥

(२)

'उपमन्यु' भी थे गुरु धौम्यके अनन्य भक्त, भूखे ही जिन्होंने गुरु वचन निभाया था;
आकके चबाके पत्र अन्ध हो गये थे, किंतु प्रतिबंध मान कभी अन्न नहीं खाया था।
'आरुणि'ने गुरुके निदेशसे शरीरको ही नीर रोकनेके लिये मेड़-सा बनाया था,
'वेद'ने भी सेवाकी अनूठी गुरुदेवजू की, तीनोंने सुयश, वरदान श्रेष्ठ पाया था॥

(३)

'कृष्ण' औ 'सुदामा' गुरुहेतु गये ईंधनको, वन घनघोरमें घटा भी घिर आई थी;
संझाके समय झंझानिलका प्रकोप हुआ, लोप हुआ दिनका, न राह दी सुझाई थी।
क्लेश सहे साथ हाथ धर एक दूसरेका, भीगते हुए ही रात वनमें बितायी थी;
उदित प्रभात, गुरु मुदित खड़े थे पास; दोनोंको अभीष्ट शुभ आशिष सुनायी थी॥

(४)

सत्य था सेवासे रिझाया 'सत्यकाम'ने भी,
रामने भी गुरुको प्रमोद पहुँचाया है;
'कौत्स'ने, 'उतंक'ने, अनेक राव-रंकने भी
गुरु-चरणोंमें प्रेम परम बढ़ाया है।
विधि-हरि-हरकी उपाधि जिनको है मिली,
जीवमें जिन्होंने ज्ञान-ज्योतिको जगाया है,
उन गुरुदेवको प्रणाम है हमारा नित्य
जनका महत्त्व श्रुतियोंने सदा गाया है॥

हिंदू-संस्कृति और जीवरक्षा

(लेखक—श्रीसैयद कासिमअली साहित्यालङ्कार)

-संस्कृतिमें यह माना गया है कि सभी चराचर जीवोंमें
त है। आज तो अधिकांश चीजोंका सजीव होना
भी सिद्ध हो चुका है। श्रीजगदीशचन्द्र वसु महोदयने
धोंमें जीवका होना सिद्ध कर दिया था यह सभी जानते
कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी और मनुष्यको तो क्रमानुसार
नते हैं। इनमें किसी-किसीके मतसे इन्द्रिय-न्यूनता
हो; किंतु हैं सभी जीवधारी। जैसे हमें चोट लगनेपर
होता है, वैसे ही प्राणिमात्रको होता है। तब इन सब-
हमें क्यों नहीं करनी चाहिये। परंतु बड़े ही
विषय है कि आज हमारे भारतमें सब प्राणियोंका
ष्य स्वयं दूसरे मनुष्यकी हिंसा करके अपने धर्म,
ाति और अपने ऐश्वर्यका साइनबोर्ड लगाये हुए हैं!
केटिंग रिपोर्टके अनुसार हमारी गौ-माताकी
१८ करोड़के लगभग थी और उसमें डेढ़ करोड़
तथा पौन करोड़ वध की जानेवाली गौओंके
विवरण है। भारत ही भूमण्डलमें चमड़ेकी
ड़ी मंडी है। गर्भिणी गौके भ्रूणोंतकके कोमल
दस्ताने, बटुए, घड़ीके फीते, चप्पल और बूट
ते हैं; बछड़ोंकी खालोंसे हैंडबेग, मनीबेग, अटैची,
केस आदि बनते हैं! काफ क्रोम-लदर केवल
खालके बनते हैं। भारतमें बारह बड़े कारखाने
जिनमें ६०० लाख खालोंका व्यय होता है तथा लगभग
र जूते प्रतिदिन बनते हैं। लाखों खालें विदेशोंको
। अभी २२ अप्रैल ४९ ई० को भारत-सरकारने
ंडको गायका कच्चा चमड़ा एक लाखकी संख्यामें देनेका
क्या है। यह कच्चा चमड़ा वध की हुई गौओंका
इसके अलावा सूखा मांस, हड्डी, सींग, खून और
भी विदेशोंमें भेजकर कई लोग लखपती बन रहे
यह निःसन्देह सत्य है कि भारतकी गोमाता और
ायक पशुधन चमड़ेके व्यापारकी घृणित बलिवेदीपर
ा है! यह बूटभक्ति और क्रोम-लदरके जूते हमारे
पशुधनको नष्ट कर रहे हैं!! पक्षी और जंगली जानवर
रूपमें अधिकांश मारे जाते हैं। धीमर और भोई
च्च घरोंमें भोजनालयकी स्वच्छता आदिका काम
, प्रतिदिन मछली पकड़कर बेचते हैं। कई
जागीरदार अपनी कृषिकी रक्षाके लिये खुद नहीं तो,

नौकरोंके द्वारा दीन-हीन पशुओंका वध कराते
साश्चर्य खेद तो यह है कि सैकड़ों पूँजीपति जन्मजात
वादी होते हुए भी ब्याज और लेन-देनके व्यवसायमें
का पतन कर रहे हैं और कई साम्प्रदायिक व्यक्ति र
ज्वारभाटेमें दिन-दहाड़े मानवोंका रक्त बहा रहे
दशामें इस प्रकारके क्रूर हृदयोंके क्रूरसमाजसे ज
आशा करना कैसे सम्भव है? साधारण बातपर अथ
पशुकी रक्षाके नामपर अथवा साम्प्रदायिक मुक्ति
के लालचमें मनुष्यका वध करने या करानेवाले कैसे
हो सकते हैं। परंतु मनुष्य साहस करे और युक्तिसे
तो कोई भी काम असम्भव नहीं है। यथार्थमें भारत
शान्ति, अहिंसा अथवा जीवरक्षाके आदर्श सिद्धान्त
सकता है; उसमें स्वार्थ, पक्षपात और लोभके
राजनीतिके दाँव-पेंचको भी छोड़ना होगा।

१—हमको इसके लिये 'जीवरक्षा-मण्डल' स्था
चाहिये। ये जीवरक्षा-मण्डल हर-एक प्रान्त, जिला
और कस्बोंतकमें स्थापित हों और इनके द्वारा
साहित्य प्रचारित हो।

२—हर-एक जीवरक्षा-मण्डलमें मांसाहारके वि
सदस्य हों।

३—हर-एक सदस्य ऐसे लोगोंको प्रोत्साहन दे,
रक्षामें सहयोग दें और पूर्ण विश्वास रखते हों त
हिंसकोंको नौकरी आदि न दिलायें और न अपने पास

४—ऐसा व्यवसाय न करें, जिससे किसी भी
असहनीय दुःख हो।

५—यदि केन्द्रीय जीवरक्षा-मण्डल कोई परीक्षा प्र
और उससे जीवरक्षक, उपकारी, कृपालु, दयासाग
उपाधि प्रदान करता रहे तो उससे भी लाभ हो सक

६—जीवरक्षक सभासद् प्रान्तीय और भारतीय
भी उनकी नीति, प्रेरणा तथा कार्यक्रमोंपर सम्मति दि

७—ऐसे अखबार, पुस्तकोंका प्रकाशन बढ़ाया ज
वह ग्रामोंकी झोपड़ियोंतक पहुँचाया जाय। इस साहित्
हिंसाकी बुराई तथा जीवरक्षाके लाभ बताये जायँ।

८—जीवरक्षक सदस्य पहले मानव-रक्षा, फिर

ाकी रक्षाकी शपथ लेकर अपना प्रण पूरा करें।
ःहातोंके सदस्य आर्थिक झमेलोंकी समस्याका भी
ामय, स्थान आदिके अनुकूल करें।
-उपयोगी और अति उपयोगी पशु तथा गौओंकी रक्षा-
प्रतिज्ञा की जाय और इनका बेचना भी रोका जाय तथा
जाय तो ऐसे लोगोंको जो कि स्वप्नमें भी वधिक-वर्गसे
ःक्खें और किसी भी लालचमें आकर उनको न दें!
-जीवरक्षक सदस्य किसी जाति-धर्मके विरुद्ध निन्दित
ें।
-जीवरक्षाके प्रेमी ग्रामपंचायत, जनपद, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड,
ःटी और कौंसिल आदिमें अपने अटल प्रतिज्ञाधारी
।
-जीवरक्षक व्यक्ति विधर्मी, विभिन्न भाषा-भाषी और
दलित तथा अछूत आदि जातियोंमें विशेष प्रचार करें।
-बाजार, मेला और सिनेमाओंके द्वारा जीवरक्षाके
लाभ तथा स्वास्थ्यवर्द्धक दृश्य विशेष रूपसे
ायँ।

१५–जीवहिंसकोंके विरुद्ध शान्तिमय प्रद
समयानुसार किये जायँ।

१६–उपयोगी और आदर्श पशुशालाएँ खोली
और भी उत्तम हो।

१७–जीवरक्षक-मण्डल लोकोपकारी कामोंमें
भाग लें।

१८–पशुओंकी बीमारी आदिको दूर करनेके
अधिक प्रयत्न किये जायँ।

१९–जीवरक्षाका कार्य रचनात्मक ढंगसे प्रार
जाय और आवश्यकतानुसार ँजीपतियोंसे सहा
ली जाय।

२०–सरकारसे भी आर्थिक सहायता आदि
सकती है।

इन बातोंसे जीवरक्षा-प्रेमियोंको अवश्य सफ
सकती है; परंतु पहले इसके सञ्चालनके लिये सं
आवश्यकता है, इसपर और पाठक भी अपने विचार प्रक

संस्कृतिका स्वार्पणयज्ञ

(लेखक—पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालङ्कार')

विद्यामें जीवनपर्यन्त रत रहनेवाले आर्योंका यह
न भारतवर्ष कहलाता है। इस देशमें एक, दो,
सौ-दो सौ नहीं; किंतु लाखों नर-नारियोंने धर्म और
लिये अपनी सत्ता, सम्पत्ति एवं मस्तकतकका
ा बलिदान कर दिया है। आज हमारे नेतृवृन्द
गोगान करते नहीं अघाते, उनसे कई-गुने अधिक
ः दृष्टान्त हमारे प्राचीन इतिहास-पुराणादिमें भरे पड़े
स्वार्पणयज्ञके अमर यजमानोंके न कीर्तिमन्दिर हैं
ो कोई स्मारक ही; एवं न उन्हें जीवनकालमें किसी
धिकारका ही लोभ था। उनका वह त्याग सच्चा

ाका त्याग और कष्ट-सहन तो एक व्यापारमात्र है,
ा-न-किसी वस्तुके बड़े प्रलोभनसे किया जाता है,
मिलनेपर क्षुब्ध हृदयसे उसे स्वत्व बतलाकर माँगा

बहुलता है, फिर चाहे उनमें और कोई योग्यता न हो
कुर्बानीकी मुहर जो लगी है! वस्तुतः विचार
निश्चय होता है कि इसमें त्यागके नामपर भोगका ही वि

हमारी आर्य-संस्कृति जो कुछ भी त्याग करने
देती है, हमारा धर्म जिस वस्तुका स्वार्पण माँगता है
स्वार्पणयज्ञ कहा जा सकता है, चाहे वह समर्पण
चीज छोटी-से-छोटी ही क्यों न हो। जिस काल
किसी भी अवस्थामें धर्म और संस्कार स्वार्पणके लि
करता है, उसी कालमें, उसी अवस्थामें माँगी हुई
प्रिय वस्तुका त्याग ही सच्चा स्वार्पण है।

हो सकता है कि हमारा धर्म, हमारी संस्
छोटे-से धागेका ही स्वार्पण चाहे और कभी
बलिदान भी माँग ले; परंतु ऐसे अवसरपर भार
नारियोंने अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु, अपनी सर्व

भावनासे परिपूर्ण भक्तजन जितनी प्रसन्नतासे एक
ा दे देते हैं, उतनी ही प्रसन्नतासे वे अपने प्राणोंतक-
ावर कर देते हैं। इसी भव्यतासे तो आजतक हमारा
चा रहता आया है।

बातको विशेष पुष्ट करनेके लिये यहाँ दो-एक
दिये जाते हैं।

ागढ़के क्षत्रिय राजा राव महिपालदेव [राव दीयास]
धराशायी हुए। शत्रुसेना मार-मार करती हुई
के अत्यन्त समीप आ पहुँची। इस समय अन्तःपुरमें
कलौता पुत्र नौघण और राजरानी चिन्तातुर होकर
। अकस्मात् एक विश्वासपात्र मन्त्रीको कर्तव्यकी
ायी पड़ी। उसने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर
कुमारको गुप्तमार्गसे बाहर निकाला और गिरनारकी
ाटियोंको पार करके वे गिरिके जंगलमें स्थित एक
ाँवमें जा पहुँचे।

में देवायत नामका एक अहीर रहता था। उसको
कार सुनायी पड़ी और उसने पतिहीना राजरानीकी
मल राजकुमारकी रक्षा करनेका वचन दिया।
ी निश्चिन्त होकर वहाँसे लौटा। बीचमें ही शत्रु-
े घेर लिया और भागी हुई महारानीसहित राज-
पता बतानेके लिये उसपर जोर डाला गया।
मन्त्रीने इस बातको बतानेसे साफ इन्कार कर
ात्रु-सेनापतिने उसे अनेकों प्रलोभन दिये और पता
र अन्तमें कत्ल कर डालनेका भय दिखाया; परंतु
ा भी विचलित नहीं हुआ। अन्तमें उसे कत्ल कर
। उसने हँसते-हँसते पुष्पमालाकी भाँति खड्गको
र अर्पण कर दिया! इसे कहते हैं सच्चा स्वार्पण-यज्ञ।
ही दिनों बाद शत्रुदलको मालूम हो गया कि रानी
जकुमार दोनों अमुक गाँवके देवायत नामके एक
संरक्षणमें रहते हैं। शत्रु-सेना वहाँ भी जा पहुँची।
ने अहीरको रानी और कुमारको सुपुर्द करनेकी
; परंतु उस अहीरने इन्कार कर दिया। अन्तमें
ने आज्ञा दी कि 'अहीरको बाँध लो और उसके
े-कोनेको छानकर कुमारका पता लगाओ।'
ायतने मन-ही-मन तुरंत अपने धर्म और कर्तव्यका
र किया। पत्नीको बुलाकर उसने नेत्रके संकेतसे कुछ

चतुर अहीरनी अपने कठिन कर्तव्यको
समझ गयी। उसने अपने इकलौते पुत्रको कुमा
पहनाकर उन अत्याचारियोंके सम्मुख उपस्थित किया
इस तरह यमदूतोंके हाथों सौंपनेमें अहीर-दम्पतिके
जरा भी विषादकी रेखा नहीं आयी। आश्चर्यकी
यह थी कि उस ग्यारह-वर्षीय अहीरपुत्रने भी अपन
निःसङ्कोच कुमार नौघणके नामसे ही दिया
सेनापतिने उस किशोर बालकको माता, पिता और ए
सी बहिनके सामने ही कत्ल कर डाला; परंतु उनमें
नेत्रसे एक आँसू भी न गिरा। सभीके मुख अपने
राजकुमारकी रक्षा हो जानेके कारण प्रसन्न थे और थ
सच्चे त्यागका सन्तोष!

(२)

अब एक दूसरा उदाहरण लीजिये। कार्ति
प्रतिपदा थी। एक गरीब किसानके खेतमें पहल
सर्वप्रथम एक ही नन्हा-सा तरबूज फला। उसे बेच
वह बाजारको चला। घरमें अन्नका एक कण भी न
बाल-बच्चे भूखे थे। तरबूजका जो भी मूल्य आये
थोड़े चावल लाकर उसे आजका नव-वर्षोत्सव मना

बाजारमें आते ही एक आदमीने उस छोटे-से
खरीदना चाहा। बीचमें एक धनी सेठ आ धमके
भी उसी तरबूजको खरीदना चाहा और तुरंत म
दिया 'एक रुपया!'

एक रुपया कितना बड़ा था उस गरीब किसान
उसने तो इकन्नीकी ही आशा रक्खी थी; परंतु
यह मामला स्पर्धामें आ पड़ा! होड़ लग गयी।
आदमीने कहा—'दो रुपये।'

बात बढ़ती ही गयी। एक ही तरबूजके सौ
दाम चढ़ गये। सेठजी चाहते थे, पहली ऋतुके पहले
सागका स्वाद लेना और सामनेवाला आदमी च
अन्नकूट-महोत्सवमें भगवान्‌को उस प्रथम तरबूज
लगे। किसान तो ताकता ही रह गया। गाँवमें दूस
उस दिन मिलना असम्भव था, मौसिमकी शुरुआत

आखिर किसानने उस साधारण आदमीसे पूछा
'भाई! सेठजी तो धनी हैं, वे तो एक हजार
पर भी इसे ले सकते हैं; आप तो इतने धनी भी नहीं

आदमीने कहा—'देखो भाई ! मेरे पास जो कुछ भी , सब भगवान्की ही तो है । फिर मेरे जीवनकी र्ग सम्पत्ति इन्हीं सौ रुपयोंमें समाप्त हो जाती है । दरमें उत्सव है । भगवान्के लिये अनेक शाक-पाक मैंने मन्दिरकी पाकशालामें देखा, सिर्फ तरबूजके । कमी है । मैं भगवान्के लिये अपना सर्वस्व देकर ठ्ये, इसे खरीदना चाहता हूँ ।'

ानने सोचा—एक ओर तो रुपयोंका ढेर है; मैं इस : चाहूँ तो दो सौ रुपये भी ले सकता हूँ । परंतु प्रति मेरा भी तो कोई कर्तव्य है ।······भगतजी कि आज भगवान्के अन्नकूटमें तरबूज नहीं है, के लिये वे अपना सर्वस्व दे देना चाहते हैं ।

ज्यों किसान सोचता गया, उसके अन्तःकरणमें ां प्रकाश बढ़ता गया । आखिर उसने निश्चय किया— । सर्वस्व भी तो एक इसी तरबूजमें है । भला मैं स सर्वस्वको भगवान्के श्रीचरणोंमें समर्पित न कर को आज खाना न मिलेगा, न सही; मैं भी भूखा र ऐसा सुअवसर भी तो रोज-रोज नहीं आता । फिर मैंने और मेरे बच्चोंने तो भरपेट खाया ही कब है ! एक दिन और उपवास सही ।' दोनों ग्राहक दे गये, वह सीधा मन्दिरमें चला गया और बड़े प्रेमसे उसने उस तरबूजको भगवान्के सम्मुख रख दिया !

तरबूज क्या था ? एक पाईकी ही तो चीज किसानका तो उसीमें सर्वस्व था । आज यदि वह तो उसी एक तरबूजके मूल्यसे वह अपने कुटुम्ब महीनोंतक लगातार मिष्टान्न खिला सकता था; पर सच्चे स्वार्पणमें स्वार्थकी दुर्गन्ध कैसी । यही कसौटी है । और वह भी जीवनमें एक बार ।

इन दोनों दृष्टान्तोंपर विचार करनेसे यह निश्च है कि पहले दृष्टान्तमें अपने मस्तकका बलिदान मन्त्रीसे, अहीरपुत्रके स्वार्पणसे और उस अही: अपने इकलौते प्यारे पुत्रके बलिदानसे, दूसरे द किसानके एक तरबूजका मूल्य भी कोई कम नहीं है किये हुए बलिदानका मूल्य समान ही होता है । क सर्वस्वका स्वार्पण है ! सो भी धर्म और संस्कृतिके ि

हमारा भारतवर्ष ऐसे ही अनेक स्वार्पण-यज्ञोंव यज्ञभूमि है । ऐसे महायज्ञोंसे ही हमारा मस्तक उन्नत रहा है और आगे भी रहेगा ।



हिंदुओंके मुख्य देवता

रे शास्त्र प्रत्येक पदार्थकी दृश्य जड सत्ताकी नियामक स्वीकार करते हैं । यह शक्ति चेतन है । यही उस अधिदेव-शक्ति है । सर्वत्र व्यापक चेतन सत्ता तो सर्वरूप है । पदार्थके स्वरूप, गुण, उपयोगके वह आधार नहीं हो सकती । पदार्थमें जिस चित्-अहंभाव हो, वही उसके गुण-रूपादिका आधार बिना चेतन आधारके जडकी कोई स्थिति नहीं हो शरीरमेंसे शरीराभिमानी चेतन जीव जब चला , तब शरीर रहता नहीं । इसी प्रकार प्रत्येक वस्तुके द देवता हैं । उनके बिना वस्तुका अस्तित्व ही नहीं

र देवताओंकी संख्या तैंतीस करोड़ कही गयी है । ो कुछ ही मुख्य हैं । त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) नकी शक्तियाँ (सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा) तथा सूर्य

आधिदैविक जगत्के मुख्य देवता अष्ट लोकपाल (इन्द्र कुबेर, यम, अग्नि, निर्ऋति, मरुत् तथा अर्यमा भग, अश्विनीकुमार तथा सोम (चन्द्र) का यज्ञोंमे होनेसे श्रुतियोंमें इनका पर्याप्त वर्णन है ।

देवगुरु बृहस्पति, देवसेनापति स्वामिकार्तिक—इ आराधना होती है । दक्षिण-भारतमें स्वामिकार्तिक धनाका प्रचार मुख्यतः है । इस समय कामदेवकी : लोप हो गया; किंतु भगवान् विष्णुके इस पुष्पधन्व आराधना तथा कामगायत्रीका कभी बहुत अधिक प्र प्रजापति दक्ष तो जगत्के प्रजापति हैं ही, यमराज उनके सहकारी चित्रगुप्तजीकी पूजाका विधान शास्त्र दैत्याचार्य शुक्रजी देवगुरु बृहस्पतिजीके समान ही देवशिल्पी विश्वकर्माजी जैसे हिंदू-शिल्पसेवीमात्रके वैसे ही दैत्य-शिल्पी मय ऐन्द्रजालिक तथा आह

मकाली तथा ग्रामनागकी यथासमय पूजा करे—ऐसा
आचार है। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकारकी काम-
पूर्तिके लिये उन कामनाओंको पूरा करनेवाले देव-
उपासना की जाती है। इन देवताओंका संक्षिप्त
हाँ दिया जा रहा है—

देवराज इन्द्र

क मन्वन्तरमें स्वर्गाधिपतिका यह पद बदलता है।
तु कहलाते हैं। सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला चक्रवर्ती
सी मन्वन्तरमें इन्द्र होता है। अबतक वर्तमान कल्पके
तर व्यतीत हो चुके हैं। यह सप्तम मन्वन्तर चल रहा है।
न्तरमें पुरन्दर देवराज हैं। इनकी पत्नी शची दैत्य-
माकी पुत्री हैं। जयन्त और जयन्ती नामके इनके
और एक कन्या हैं।

राज इन्द्र वर्षाके अधिपति हैं। वृष्टिसे ही लोकका पोषण,
लता है। वैदिक कालमें महेन्द्रके निमित्त बृहत् यज्ञ
श्रुतियोंमें परमात्माका नाम इन्द्र तो आया ही है,
इन्द्रकी भी स्तुतियाँ हैं। ये ऐरावतारूढ या मातलि-
ाये गये हरित वर्णके घोड़ोंसे जुते रथपर विराजमान
ामें वानरराज वाली और द्वापरमें अर्जुन इन्हींके
त्पन्न हुए थे। रावणपुत्र मेघनादने युद्धमें इन्हें परा-
ा था। द्वापरमें श्रीकृष्णचन्द्रने जब इनका यज्ञ बंद
या, तब रुष्ट होकर सात दिनतक ये प्रलय-वृष्टि करते
ावान्ने गोवर्द्धन धारण करके इनका दर्प मिटाया।

राज इन्द्रकी आराधना श्रुतियोंमें अनादि कालसे चली
। इन्होंने दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर ब्रह्मा-
ह्मज्ञान प्राप्त किया था। भारतीय अध्यात्मज्ञान
गत्में इन्हींकी कृपासे आया। यही आयुर्वेदके
पदेष्टा हैं। भगवान् धन्वन्तरिने इन्हींसे आयुर्वेद
्या था। अनेक शास्त्रोंका प्रवर्तन देवराजद्वारा
हुआ है। हमारी संस्कृति अधिदेवपर अधिष्ठित
में देवराजका पद अत्यन्त गौरवमय है।

राजराजेश्वर वरुण

प्रथम समस्त सुरासुरोंको जीतकर राजसूययज्ञ जला-
णजीने ही किया था। ये सम्पूर्ण सम्राटोंके सम्राट् हैं।
म दिशाके लोकपाल और जलोंके अधिपति हैं।
समुद्र-गर्भमें इनकी रत्नपुरी विभावरी है। इनका
स्त्र पाश है। इनके पुत्र पुष्कर इनके दक्षिण भागमें
स्थित रहते हैं।

अनावृष्टिके समय भगवान् वरुणकी उपासना
कालसे होती आयी है। ये जलोंके स्वामी, जलके निव
श्रुतियोंमें इनकी अनेक स्तुतियाँ हैं। कुछ आचार्यों
केवल देवराज इन्द्रका पद कर्मके द्वारा प्राप्त होता है
कुबेर, यम आदि लोकपाल कारक-कोटिके हैं। वे भ
ही स्वरूप हैं।

धनाधीश कुबेर

महर्षि पुलस्त्यके पुत्र महामुनि विश्रवाने भरद्व
कन्या इलविलाका पाणिग्रहण किया। उसीसे कु
उत्पत्ति हुई। भगवान् ब्रह्माने इन्हें समस्त सम्पत्तिक
बनाया। ये तप करके उत्तर दिशाके लोकपाल हुए।
के समीप इनकी अलकापुरी है।

श्वेतवर्ण, तुन्दिल शरीर, अष्टदन्त एवं तीन चर
गदाधारी कुबेरजी अपनी सत्तर योजन विस्तीर्ण वैश्रवण
विराजते हैं। इनके पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव भगवान्
चन्द्रद्वारा नारदजीके शापसे मुक्त होकर इनके समी
रहते हैं। इनके अनुचर यक्ष निरन्तर इनकी सेवा क

प्राचीन ग्रीक भी प्लूटो नामसे धनाधीशको मा
पृथ्वीमें जितना कोष है, सबके अधिपति कुबेरजी हैं
कृपासे ही मनुष्यको भूगर्भस्थित निधि प्राप्त हो
निधि-विद्यामें निधि सजीव मानी गयी है, जो स्वत
न्तरित होती है। पुण्यात्मा योग्य शासकके समय
रत्नादि स्वतः प्रकट होते हैं। आज तो अधिकांश म
लुप्त हो गये। कोई स्वतःप्रकाश रत्न विश्वमें नहीं,
मानव उनको उपभोग्य जो मानता है। यज्ञ-दानके उ
उपभोग हो, यह वृत्ति लुप्त हो गयी। कुबेरजी मनुष्य
कारके अनुरूप कोषका प्रादुर्भाव या तिरोभाव कर
भगवान् शङ्करने इन्हें अपना नित्य सखा स्वीकार कि
प्रत्येक यज्ञान्तमें इन वैश्रवण राजाधिराजको पुष्पा
जाती है।

परम भागवत यमराज

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे भगवान् सूर्यके पुत्र
जी, श्राद्धदेव मनु और यमुनाजी हुईं। यमराज परम
द्वादश भागवताचार्यमें हैं। ये जीवोंके शुभाशुभ
निर्णायक हैं। दक्षिण दिशाके इन लोकपालकी सं
समस्त प्राणियोंके लिये, जो अशुभकर्मा हैं, बड़ी भयप्रद
धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय

त्र, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन
नामोंसे इन महिषवाहन दण्डधरकी आराधना होती
ों नामोंसे इनका तर्पण किया जाता है।

र द्वारों, सात तोरणों तथा पुष्पोदका, वैवस्वती आदि
ादियोंसे पूर्ण अपनी पुरीमें पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर-
से प्रविष्ट होनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंको यमराज शङ्ख-
ा पद्मधारी, चतुर्भुज, नीलाभ भगवान् विष्णुके रूप-
महाप्रासादमें रत्नासनपर दर्शन देते हैं। दक्षिण-द्वार-
करनेवाले पापियोंको वह तप्त-लौहद्वार तथा पूय, शोणित
पशुओंसे पूर्ण वैतरणी नदी पार करनेपर प्राप्त होते
से भीतर आनेपर वे अत्यन्त विस्तीर्ण सरोवरोंके
त्रवाले, धूम्रवर्ण, प्रलय-मेघके समान गर्जन करने-
वालामय रोमधारी, बड़े तीक्ष्ण प्रज्वलित दन्तयुक्त,
से नखोंवाले, चर्मवस्त्रधारी, कुटिल-भृकुटि भयङ्कर-
में यमराजको देखते हैं। वहाँ मूर्तिमान् व्याधियाँ,
पशु तथा यमदूत उपस्थित मिलते हैं।

ावलीसे पूर्व दिन यमदीप देकर तथा दूसरे पर्वोंपर
ी आराधना करके मनुष्य उनकी कृपाका सम्पादन
है। ये निर्णेता हमसे सदा शुभकर्मकी आशा करते हैं।
द्वारा जीवको शुद्ध करना ही इनके लोकका मुख्य
।

चित्रगुप्त

तः! मेरा नाम क्या है? मैं कौन-सा कार्य
मेरे लिये स्थानका निर्देश करें!' पितामह ब्रह्माजी
र्य सम्पन्न करके परमतत्त्वका ध्यान कर रहे थे।
उनका ध्यान भंग हुआ, उन्होंने देखा कि उनके
प्रकट एक विचित्र वर्णका पुरुष मसिपात्र और
लिये उन्हें प्रणाम कर रहा है।

री कायासे उत्पन्न होनेके कारण तुम कायस्थ
तुम्हारा नाम तुम्हारे वर्णके अनुसार चित्रगुप्त
। जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका अङ्कन करनेके लिये
मपुरमें निवास करो!' भगवान् ब्रह्माने आदेश
।

ट्ट, नागर, सेनक, गौड़, श्रीवास्तव्य, माथुर,
ण, शकसेन और अम्बष्ठ—ये नौ पुत्र चित्रगुप्तजीके
कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको चित्रगुप्तजीकी पूजा होती
[illegible] है।

अग्निदेव

दक्षिण एवं पूर्वदिशाके मध्यका कोण अग्निके
जाता है। अग्निदेव उसके दिक्पाल हैं। विराट्
मुखसे प्रकट होकर ये देव जगत्में धर्मके
वसुभार्यासे उत्पन्न हुए। इनकी पत्नी स्वाहा हैं
इनका वाहन है। अक्षसूत्र और शक्ति इनके
हैं। अङ्गारवर्ण, पीतलोचन द्विमुख अग्निदेव
देवताओंकी आहुति वहन करते हैं।

अग्निके अनेक रूप हैं। प्राणियोंके भीतर ये
बनकर पाचन करते हैं। समुद्रमें बडवाग्निरूपसे
प्रज्वलित रहते हैं। वनमें दावाग्निरूपसे और सूर्य
दिव्याग्निरूपसे विराजमान हैं। लोकमें यही
अव्यक्त सामान्य अग्नि हैं। मेघोंमें इन्हींकी
विद्युत् होती है।

व्यवहारमें आनेवाले अग्निके भी ब्राह्म, प्र
गार्हस्थ्य, दक्षिणाग्नि और क्रव्यादाग्नि—ये पाँच
हैं। ब्राह्म अग्नि यज्ञमें अरणिमन्थनसे मन्त्रके द्वा
होते हैं। ये आहवनीय अग्नि हैं। प्राजापत्याग्नि ब्रह
अग्निहोत्रके लिये उपनयनके समय प्राप्त हो
वानप्रस्थाश्रमतक इनकी रक्षा, आराधन और
नित्य हवन उसका कर्तव्य है। गार्हस्थ्याग्नि
पश्चात् कुलमें प्रतिष्ठित होते हैं। गृहस्थके सम
हवनादि इन्हींसे सम्पन्न होते हैं। चिताके
दक्षिणाग्नि हैं। इनमें शरीरकी अन्तिम आहुति
है। अभिचार यज्ञ भी इन्हींमें होते हैं। यज्ञ
बाहर उपद्रवोंके शमनके लिये दक्षिण भागमें य
प्रतिष्ठित होते हैं। क्रव्यादाग्नि परित्याज्य हैं।

गति, तेज, प्रकाश, उष्णता, पाचन आदि
शक्तिके विविध कार्य हैं। यह वर्तमान
सिद्ध कर दिया है। इस शक्तिके अधिदेवता
हैं। इनकी आराधनासे शक्ति, तेज, स्वास्थ्य और
प्राप्ति होती है। अग्निदेव ज्ञानस्वरूप हैं
उपदिष्ट अग्निपुराण विश्वविद्याकोश कहे जाने यो
अग्निदेव अनेक भारतीय जातियोंके कुलपुरुष हैं

नैर्ऋत और निर्ऋति

नैर्ऋत्यकोणमें दिक्पाल निर्ऋत या दि
निर्ऋति [illegible] आता है।

पुण्यशील एवं अपुण्यशील दो प्रकारके प्राणी
। जो राक्षसयोनिमें जन्म लेकर भी हिंसादि नहीं
ो म्लेच्छ-चाण्डालादि होकर भी हिंसा, चोरी,
ेर पर-पीड़नसे अपनेको दूर रखते हैं, वे इस
ुण्यात्माओंके भोग प्राप्त करते हैं ।

पति निर्ऋति पूर्वजन्ममें विन्ध्याचलमें शबरोंके
पिंगाक्ष थे । वे यात्रियोंको सदा सुविधा प्रदान
ेर उनकी हिंसक जीवों तथा दस्युओंसे रक्षा
। एक बार वे अकेले वनमें घूम रहे थे ।
। एक दल उनका नाम लेकर 'त्राहि', 'त्राहि'
था । वहाँ पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि पिंगाक्षके
स्युदलको लेकर यात्रियोंको लूट रहे हैं । पिंगाक्षने
ो रोका । फलतः उनका युद्ध दस्युओंसे
इस युद्धमें वे मारे गये । दूसरोंके लिये प्राण
वे लोकपाल हो गये ।

ृत-मन्थनके समय समुद्रसे पापकी अधिदेवी
ी उत्पत्ति हुई । वे महालक्ष्मीसे पहले उत्पन्न
ारण ज्येष्ठा कही जाती हैं । उनकी प्रार्थनासे
विष्णुने निर्ऋतिको पीपलके वृक्षमें निवास दिया
ालक्ष्मी वहाँ शनिवारको अपनी अग्रजाके समीप
हैं ।

मरुत्

ामाता दिति अत्यन्त दुखी थीं । उनके दोनों
ण्याक्ष और हिरण्यकशिपुका भगवान् विष्णुने संहार
ा । दितिका रोष इन्द्रपर था । इन्द्रके लिये
उनके पुत्र मारे गये । बड़े संयम, प्रेम और
उन्होंने महर्षि कश्यपको प्रसन्न किया । पतिके
पर स्त्रीके लिये अप्राप्य क्या रहता है । दितिने
ातिदेवसे ऐसा पुत्र चाहा, जो इन्द्रका वध कर
महर्षि अपने ही पुत्रका वध कैसे स्वीकार करें !
दितिको पुंसवन-व्रतका आदेश दिया ।

ता दिति मेरे वधके निमित्त सन्तान-प्राप्तिके लिये
ी आराधना कर रही हैं ।' इन्द्रकी चिन्ता
ायी । वे व्रतस्था दितिकी सेवामें लगे थे । तनिक
द हो तो उद्देश्य नष्ट करनेका अवसर मिले, पर
त-पालनमें अत्यन्त सावधान थी । वर्ष व्यतीत
ुछ दिन ही शेष रहे थे । एक दिन सन्ध्याकालमें
ृति सो गयीं । इन्द्रने इस प्रमादसे अवसर प्राप्त
किया । उन्होंने दितिके गर्भमें जाकर गर्भको
उन्चास टुकड़ोंमें काट डाला । पर वे टुकड़े म
व्रतके प्रभावसे वे सब बालक हो गये । इन्द्र
सोमपायी देवता बना लिया ।

वायुके उन्चास रूप हैं । उनके इतने ही अ
भी हैं । किसी कल्पमें ये रुद्र और वृश्निके पु
इनके सब उपभेद मिलाकर १८० रूप होते हैं
आराधना शरीरमें स्वास्थ्य तथा जीवनमें सि
संसारमें उचित व्यवस्थाकी स्थापनाके लिये होती

पितृराज अर्यमा

अर्यमा पितरोंके अधिपति हैं । और
पितर हैं । श्राद्धमें पितरोंकी तृप्ति इन्हींकी तुष्टिसे हो
यज्ञमें मित्र और वरुणके साथ ये 'स्वाहा' क
श्राद्धमें 'स्वधा' का दिया हव्य-कव्य दोनों स्वीक
हैं । ये कश्यपजीकी पत्नी देवमाता अदितिके पुत्र हैं
जगत्में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र इनका निव
शास्त्रोंमें कहा गया है ।

अर्यमा 'मित्रता' के अधिष्ठाता हैं । मित्रकी
मित्रत्वका निर्वाह आदि इनकी ही कृपासे क
होता है । वंश-परम्पराकी रक्षाके लिये भी
आराधनाका विधान है । किसी प्रकारकी पैतृक
शान्ति (पितृकोटिके प्रेतके उपद्रवकी शान्ति)
पूजासे सहज हो जाती है ।

पूषा

ये पशुओंके अधिष्ठाता, दण्डहस्त, बकरेपर
तथा इन्द्रजाल-क्रियाके मुख्य देवता हैं । द्वादश अ
ये भी एक आदित्य हैं । सूर्यमण्डलमें स्थित
निश्चित कालमें ये जगत्का परिदर्शन करते अ
सम्पत्तिकी अभिवृद्धि करते हैं । दक्षयज्ञमें वीरभ
दाँत गिरा दिये थे; क्योंकि ब्रह्मसभामें इन्होंने
शङ्करका दाँत दिखाकर हँसते हुए अपमान किय
इनको यज्ञमें चावलका चूर्ण (पिष्टान्न) दि
है । भग ऐश्वर्यके अधिष्ठाता हैं । वीरभद्र
नेत्रहीन कर दिया । मित्र (सूर्य) के नेत्रोंसे
देखते हैं ।

अश्विनीकुमार

त्वष्टाकी पुत्री सरण्यु या संज्ञा भगवान् विवस्वान्

पतिके असह्य तेजसे व्याकुल होकर वे अपनी छाया
मीप छोड़कर अश्विनी (घोड़ी) का रूप धारण
करने चली गयीं। उनके अन्वेषणमें अश्वरूपसे
वहाँ पहुँचे। उस समय संज्ञाको दो यमज सन्तान
। माताके अश्विनीरूपमें होनेसे वे अश्विनीकुमार
हैं। उनमें एकका नाम 'नासत्य' और दूसरेका नाम
। ये आयुर्वेदके परम ज्ञाता और देवताओंके
हैं।

एवं आरोग्यके देवता हैं अश्विनीकुमार।
उपदिष्ट अश्विनीकुमारसंहिता आयुर्वेदका उत्कृष्ट
।

चन्द्रदेव

त-मन्थनके समय क्षीर-सिन्धुसे चन्द्रमा निकले थे।
लक्ष्मीजीके इसीसे वे भाई हैं और इसीसे हम-आप
'चन्दा मामा' भी हैं। ब्रह्माजीके मानस-पुत्र महर्षि
तपसे उनका ऊर्ध्वगामी रेतः सोमरूपमें परिणत
ह्माजीने अपने अंशभूत अधिदेव चन्द्रमाको उसमें
किया; क्योंकि महर्षि अत्रिको त्रिदेवोंने अपने-अपने
त्र होनेका वचन दिया था। महर्षिपत्नी अनुसूया
उज्ज्वल करनेवाले इस गर्भको रख न सकीं। पृथ्वीपर
को ब्रह्माजीने अपने रथपर बैठाया। वहाँ उस रथपर
न्द्रमाने पृथ्वीकी २१ बार प्रदक्षिणा की। उस समय
जो भाग भूमिपर गिरा, उसीसे ओषधियाँ उत्पन्न
भगवान् शङ्करकी कृपासे इन्हें चन्द्रलोक (दृश्य
ल) का राज्य प्राप्त हुआ।

तिषशास्त्र चन्द्रमण्डलको ही वृष्टिका जलाधार मानता
का ज्वार-भाटा चन्द्रमासे सम्बन्धित है, यह प्रत्यक्ष है।
लोकोंसे प्राणी पृथ्वीपर चन्द्रमण्डलसे होकर जलवृष्टिके
आता है। चन्द्रदेवने अमृत-पानके समय देववेष-
य राहुका सङ्केत कर दिया था भगवान्‌को। राहु
ङ्केतसे मारा गया। परंतु सिर धड़से अलग हो जानेपर
त पी लेनेके कारण वह मरा नहीं। इसीलिये राहु
इन्हें ग्रास करना चाहता है। जब भी वह कुछ सफल
ग्रहण लगता है।

ोपीय विद्वान् मनुष्यजातिको हेमेटिक एवं सेमेटिक—
की यही दो परम्पराएँ हैं। चन्द्रदेव समस्त वन
पोषक तथा अधिदेवता हैं। ग्रहोंमें ये सबसे तीव्रग
इनके रथमें मृग जुड़े हुए हैं। ये अमृतरूप, सुधाक
मनके अधिष्ठातृ-देवता और विराट् पुरुषके मन हैं
उपासनासे कफरोगोंकी शान्ति, वीर्यदोषकी निवृ
मनकी एकाग्रताका सम्पादन होता है। शारीरिक
प्राप्तिके लिये इनकी पूजा अब भी होती है।

आज वैज्ञानिक चन्द्रलोककी यात्राकी बात
समय ही बतायेगा कि यह आकाशकुसुम प्राप्त भी
या नहीं। वैसे चन्द्रबिम्बमें मनःसंयम करनेसे भू
समस्त घटनाओंका ज्ञान हो जाता है, यह योगशास्त्रक
अनेक परिवर्तित रूपोंमें चन्द्रमाकी उपासना यहूदि
उनकी धर्मपरम्परामें चलती रही है।

देवगुरु बृहस्पति

महर्षि अङ्गिराकी पत्नी अपने कर्मदोषसे
हुईं। प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजीने उनसे पुंस
करनेको कहा। सनत्कुमारसे व्रत-विधि जानकर मु
व्रतके द्वारा भगवान्‌को सन्तुष्ट किया। भगवान् विष्
से प्रतिभाके अधिष्ठाता बृहस्पतिजी उनको पुत्ररूपसे प्र

पीतवर्ण, तेजोमय, ज्योतिर्विज्ञानके आधार
आह्वान किये बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होता। श्रुतियोंने इन
चन्द्रका नियन्ता बताया है। सम्पूर्ण ग्रहोंमें ये सर्वश्रेष्ठ
माने जाते हैं। ये आठ घोड़ोंसे जुते अपने नीतिघ
आसीन होकर ग्रह-गतिका नियन्त्रण करते हैं। महर्
बृहस्पतिके औरस पुत्र हैं।

'बृहस्पति-संहिता' देवगुरुका इन्द्रको दिया हु
धर्मपर विस्तृत उपदेशोंका संग्रह था। उसका ब
अंश प्राप्त है। कुछ आचार्योंका मत है कि असुरं
दान, तप आदिसे च्युत करके शक्तिहीन बना
चार्वाकमतका उपदेश भी इन्हीं देवगुरु बृ
किया था।

स्वामिकार्तिकेय

षण्मुख, द्विभुज, शक्तिधर, मयूरासीन दे
कुमार कार्तिककी आराधना दक्षिण भारतमें बहुत
है। ये ब्रह्मपुत्री देवसेना षष्ठीदेवीके पति होने



षण्मुख (कांस्यमूर्ति, नल्लूर)

कासुरके अत्याचारसे पीड़ित देवताओंपर प्रसन्न गवान् शङ्करने पार्वतीजीका पाणिग्रहण किया । शङ्कर भोले बाबा ठहरे । उमाके प्रेममें वे एकान्त- गये । अग्निदेव सुरकार्यका स्मरण कराने वहाँ कपोतवेशसे पहुँचे । उन अमोघवीर्यका रेतस् धारण ? भूमि, अग्नि, गङ्गादेवी सब क्रमशः उसे धारण समर्थ रहीं । अन्तमें शरवण (कास-वन) में वह होकर तेजोमय बालक बना । कृत्तिकाओंने उसे त्र बनाना चाहा । बालकने छः मुख धारणकर छहों ोंका स्तनपान किया । उसीसे षण्मुख कार्तिकेय शम्भुपुत्र । देवताओंने अपना सेनापतित्व उन्हें या । तारकासुर उनके हाथों मारा गया ।

द-पुराणके मूल उपदेष्टा कुमार कार्तिकेय (स्कन्द) मस्त भारतीय तीर्थोंका उसमें माहात्म्य आ गया ोंमें यह सबसे विशाल है ।

मेकार्तिकेय सेनाधिप हैं । सैन्यशक्तिकी प्रतिष्ठा, यवस्था, अनुशासन इनकी कृपासे सम्पन्न होता है । क्तिके अधिदेव हैं । धनुर्वेदपर इनकी एक संहिता- मिलता है, पर ग्रन्थ प्राप्य नहीं है ।

कामदेव

भगवान् विष्णु रमा-वैकुण्ठमें भगवती लक्ष्मीद्वारा पमें आराधित होते हैं । ये इन्दीवराभ चतुर्भुज , धनुष और बाण धारण करते हैं । सृष्टिमें धर्मकी तासे इनका आविर्भाव हुआ । वैसे दैवजगत्‌में ये संकल्पके पुत्र माने जाते हैं । मानसिक क्षेत्रमें काम ही व्यक्त होता है । संकल्पके पुत्र हैं काम और ोटे भाई क्रोध । काम यदि पिता संकल्पके कार्यमें हों तो क्रोध उपस्थित होता है ।

ादेव योगियोंके आराध्य हैं । ये तुष्ट होकर मनको बना देते हैं । कवि, भावुक, कलाकार और विषयी ाराधना सौन्दर्यकी प्राप्तिके लिये करते हैं । इन के पञ्चबाण प्रख्यात हैं । नीलकमल, मल्लिका, , चम्पक और शिरीष कुसुम इनके बाण हैं । ये सौकुमार्य और सम्मोहनके अधिष्ठाता हैं । भगवान् को उत्पन्न होते ही इन्होंने क्षुब्ध कर दिया । ये तोतेके कर (मछली) के चिह्नसे अङ्कित लाल ध्वजा लगाकर करते हैं ।

वान शङ्कर समाधिस्थ थे । देवता तारकासुरसे पीड़ित थे । तारकका निधन भगवान् शिवके पुत्रसे श देवताओंने कामको भेजा । एक बार मन्मथ पुरारिके म करनेमें सफल हो गये, पर दूसरे ही क्षण प्रलयङ्करकी नेत्रज्वालाने इन्हें भस्म कर दिया । कामपत्नी रतिके स्तवनसे तुष्ट आशुतोषने वरदान दिया—'अब य शरीरके ही सबको प्रभावित करेगा ।'

कामदेव अनङ्ग हुए । द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पुत्ररूपमें ये उत्पन्न हुए । भगवान् चतुर्व्यूहमेंसे हैं । ये मनके अधिष्ठाता हैं ।

प्रजापति दक्ष

भगवान् ब्रह्माके दक्षिणाङ्गुष्ठसे प्रजापति दक्षकी हुई । कल्पान्तरमें वही प्रचेताके पुत्र हुए । स्रष्टाकी वे प्रजाकी सृष्टि करनेमें लगे । उन्होंने प्रजापति कन्या असिक्नीको पत्नी बनाया । सर्वप्रथम इन्होंने द हर्यश्व नामक पुत्र उत्पन्न किये । ये सब समान स्वभा पिताकी आज्ञासे ये सृष्टिके निमित्त तपमें प्रवृत्त हु देवर्षि नारदने उपदेश देकर उन्हें विरक्त बना दिया बार एक सहस्र शबलाश्व (सरलाश्व) नामक पु किये । ये भी देवर्षिके उपदेशसे यति हो गये । द आया । उन्होंने देवर्षिको शाप दे दिया—'तुम दे अधिक कहीं स्थिर न रह सकोगे ।'

भगवान् ब्रह्माने प्रजापतिको शान्त किया मानसिक सृष्टिसे वे उपरत हुए । उन्होंने अपनी पत्न कन्याएँ उत्पन्न कीं । इनमें १० धर्मको, १३ महर्षि २७ चन्द्रमाको, एक पितरोंको, एक अग्निको ३ भगवान् शङ्करको विवाही गयीं । महर्षि कश्यपको १३ कन्याओंसे ही जगत्‌के समस्त प्राणी उत्पन्न हु लोकमाताएँ कही जाती हैं ।

भगवान् शङ्करसे विवाद करके दक्षने उन्हें य नहीं दिया । पिताके यज्ञमें रुद्रभाग न देखक योगाग्निसे शरीर छोड़ दिया । भगवान् शङ्कर पत्न त्यागसे रुष्ट हुए । उन्होंने वीरभद्रको भेजा । वीरभ का मस्तक दक्षिणाग्निमें हवन कर दिया । देवताओंकी पर तुष्ट होकर भगवान् शङ्करने सद्योजात प्राणीके सि को जीवनका वरदान दिया । बकरेका मस्तक तत्क सका । तबसे प्रजापति दक्ष 'अजमुख' हो गये ।

दक्षता—निपुणताके रून अधीश्वरको भगवा

ोंमें श्रेष्ठ पद प्रदान किया है। देवता भी उनका रते हैं। उनकी प्रसन्नता व्यक्तिमें दक्षताका विस्तार ।

आचार्य शुक्र

र्षि भृगुके पुत्र शुक्राचार्यजीने बृहस्पतिजीसे ता रखनेके कारण दैत्योंका आचार्यत्व स्वीकार ृहस्पतिके पुत्र कचने इनसे संजीविनी विद्या पढ़ी। बलिके यज्ञमें भगवान् वामन जब भूमिदान लेने लगे, र्यने बाधा दी। दानमें बाधा देनेके अपराधसे, इनके एक नेत्रको ज्योतिहीन कर दिया। तबसे न एकाक्षताका द्योतक हो गया।

चार्य शुक्र वीर्यके अधिष्ठाता हैं। दृश्य जगत्‌में ोक शुक्र तारकका भूमि एवं जीवनपर प्रभाव ास्त्रमें वर्णित है।

चार्य शुक्र नीतिशास्त्रके प्रवर्तक थे। इनकी शुक्रनीति ोकमें महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इनके पुत्र षण्ड मर्क हिरण्यकशिपुके यहाँ नीतिशास्त्रका अध्यापन ।

विश्वकर्मा

ास नामक वसुकी पत्नी महासती योगसिद्धा इन ोंकी माता हैं। देवताओंके समस्त विमानादि तथा त्र इन्हींके द्वारा निर्मित हैं। लङ्काकी स्वर्णपुरी, द्वारिका- गवान् जगन्नाथका श्रीविग्रह इन्होंने ही निर्मित किया। क नाम त्वष्टा है। सूर्यपत्नी संज्ञा इन्हींकी पुत्री हैं। त्र विश्वरूप और वृत्र हुए। सर्वमेधके द्वारा इन्होंने सृष्टि की और आत्मबलिदान करके निर्माण-कार्य ा।

स्त शिल्पके ये अधिदेवता हैं। भगवान् श्रीरामके लिये ाण करनेवाले वानरराज नल इन्हींके अंशसे उत्पन्न । हिंदू-शिल्पी अपने कर्मकी उन्नतिके लिये भाद्रपद- ान्तिको इनकी आराधना करते हैं। उस दिन शिल्प- ः उपकरण व्यवहारमें नहीं आता। बंगालमें यह पूजा प्रचलित है।

दानवेन्द्र मय

रम शैव, परम धार्मिक, दानव-विश्वकर्मा मय भगवान् ो कृपासे सुतलमें निर्द्वन्द्व निवास करते हैं। ये दैत्य- शिल्पी हैं। इनकी कला विश्वकर्मासे किसी प्रकार कम नहीं है। इनके निर्माणने अनेक बार विश्वकर्मा तथा देवताओंको पराजित कर दिया।

मयका अद्भुत निर्माण इनका त्रिपुर था। स्वर्ण, और लौहके तीन विशालकाय नगर स्वेच्छापूर्वक उ पृथ्वी तथा जलमें चल सकते थे। ये नगर इन्होंने पुत्रोंको दे दिये। इन नगरोंका एक स्थानपर सहस्र एक बार स्वतः संयोग निश्चित था। उस संयोगके अ ही उनका विनाश हो सकता था। इन नगरोंमेंसे स्व में एक अमृत-कूप था। भगवान् शङ्करने नगरोंके कर दिया, परंतु मयकी उन्होंने रक्षा की।

मयकी पुत्री मन्दोदरी रावणकी पत्नी हुई। म पुत्र मायावी और दुन्दुभि त्रेतामें वानरराज वालीसे मारे गये। एक पुत्र व्योम द्वापरमें व्रजमें जाकर श्रीकृ द्वारा मुक्त हुआ।

अग्निकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जु रथपर बैठकर खाण्डववन अग्निदेवको भेंट करने गये समय दानवेन्द्र मय उसी वनमें तप कर रहे थे। अर्जुनक वर्षासे एक बिन्दु जल वनमें गिर नहीं पाता था। प्रयत्न करनेवाला प्रत्येक प्राणी मारा जाता था श्रीकृष्णचन्द्रकी शरण ली। उन्हें परित्राण मिला। प्र स्वरूप मयने महाराज युधिष्ठिरके लिये दिव्यस निर्मित किया।

मय मायावियोंके परमाचार्य हैं। इन्द्रजाल तथ आसुरी सिद्धियोंका इन्होंने ही प्रवर्तन किया है। मयकी आराधना तामस एवं राजस सिद्धि देती है।

देवजातियाँ

देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ—ये तीन सात्त्विक जातियाँ मानी गयी हैं। यक्ष, किन्नर और दैत्य— दिव्य जातियाँ हैं। राक्षस, नाग, प्रेत—ये तामस दे प्राणी हैं।

देवताओंमें पदार्थोंके अधिष्ठाता नित्य देवता अ शक्तियाँ, इनमें लोकपाल, प्रजापति तथा ग्रामदेवत शक्तियोंमें महाविद्या, योगिनी तथा उपनायिका ३ कालीतक आती हैं। यज्ञोंके रक्षक ऋभुगण भी दे हैं। दूसरे वे देवता हैं जो पुण्यसे स्वर्गमें केवल सुख लिये गये हैं।

गन्धर्व गानविद्याके आचार्य हैं। चित्ररथ

हैं। ये लोग देवताओंके समान सुखोपभोग करते राएँ स्वर्गकी नृत्य करनेवाली नित्य कुमारियाँ हैं। तथा गन्धर्व-कन्याएँ इनसे भिन्न हैं। उर्वशी, लोत्तमादि इनमें प्रधान हैं। यक्ष कुबेरके अनुचर क प्रकारके असुर ही हैं। किन्नर देवताओंके स्तुति- ।

। और दानव—ये दोनों अधोलोकोंमें स्वर्गाधिक ग करनेवाली दिव्य जातियाँ हैं। ये भी महर्षि कश्यपके देवताओंके ज्येष्ठ भ्राता हैं। अहङ्कार, क्रूरता तथा गकी प्रधानतासे ही ये निकृष्ट माने गये। राक्षस महाक्रूर तथा दैत्योंके सेवक हैं। नाग दिव्य जातिमें ही माने शेष, वासुकि, कर्कोटकादि दिव्य नाग अधोलोकोंमें र ग्रामदेवता, ग्रामकालीके समान ही ग्रामके अधिदेव होते हैं।

प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, वेताल, भूत विनायक, कूष्माण्ड आदि भगवान् रुद्रके गण म हैं। ये क्रूर, उत्पीड़क तथा अपवित्र स्थानों तथा रुचि रखनेवाले होते हैं। भयसे भीत होनेवालेपर इन प्रभाव पड़ता है। प्रेतादि यातना-योनिके प्राणी हैं घोर कष्टमें रहते हैं।

भारतीय संस्कृतिकी रक्षा

(लेखक—श्रीश्रीनिवासदासजी पोद्दार)

रामराज्यमें तीन बातें प्रधान थीं। दैहिक, दैविक, भौतिक ताप किसीको नहीं होता था। कारण सारी प्रजा ष्ठ और साथ ही स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करते हुए अपने कर्तव्यपर दृढ़ थी। अतः दैहिक ताप क्यों में सभीने सत्यमार्गका अनुसरणकर पशु-पक्षीतकको भी प्रेम-धारासे प्लावित कर दिया था। तब भौतिक ताप था। दैविक ताप तो कर्तव्यविमुख और अधर्मरत होनेपर ही दण्डस्वरूप प्राप्त होते हैं। अतः रामराज्य प्रयोग संन्यासियोंके हाथमें रहनेवाले धर्मदण्डके लिये ही होता था, या प्रणामके साथ साष्टाङ्ग दण्डवत् कर प्रयोग किया जाता था।

परंतु ये सब क्यों और कैसे? इसका मूल कारण था—साक्षात् भारतीय भूदेवी गोमाताका अमित प्रभाव ो गावस्ततो वयम्' और जिस स्थानमें गौके दुःख-संतप्त श्वास निकलें या गोरक्त गिरे, उस स्थानके एक योजनके बुद्धिकी प्राप्तिके लिये किये गये धर्मानुष्ठान निष्फल होते हैं।' इन वाक्योंको रामराज्यकी प्रजा, आबाल-वृ तक भी जानते थे और जब कभी राक्षसोंको देवताओंपर अपना आधिपत्य जमाना होता तो वे सर्वप्रथम नाश करनेकी ही सोचा करते थे। और इस 'यतो गावस्ततो वयम्' और गोरक्तके सात्त्विकताविनाशक लिये ही भारतमें समय-समयपर साक्षात् भगवान्ने अवतार धारण किया है।

अतः 'यतो गावस्ततो वयम्' और गौके दुःखी श्वास निकलने और खून गिरनेसे हमारी सात्त्विक वृत्तिका नाश हे मारा सर्वनाश निश्चित है। यह बात प्रत्येक भारतवासीको भलीभाँति जान लेनी चाहिये। धर्मपूर्ण रामराज्यक लताके लिये इसकी परम आवश्यकता है। मुझे दुःख है कि आज ऐसा समय आ गया, कि जिसमें हमारे जके एक दो व्यक्ति नहीं, अनेकों प्रतिष्ठित धनी पुरुष ऐसे हो गये हैं, जो वृद्ध, रोगग्रस्त अतः अनुपयोगी कर देनेकी राय रखते हैं। क्योंकि उनके खयालमें खाद्यकी कमी इसी तरह पूरी हो सकती है। पता नहीं क्या दुष्परिणाम होगा।

लेकिन पाश्चात्य शिक्षा और संग-प्राप्त इन विभ्रमित बुद्धिवाले विद्वानोंको यदि ठीक रास्ता दिखाना है ो वयम्' और गौके दुःखी श्वास निकलने और रक्त गिरनेसे सद्बुद्धिके नाशके साथ हमारा नाश निश्चित झानी होगी। पोस्टरों, लेखों और आध्यात्मिक, भौतिक विज्ञानके अन्वेषणोंद्वारा इनकी बुद्धिको सुधारनेके ड़ेगा। अतः भारतीय संस्कृति और धर्मानुयायी विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे इस विषयमें अपनी लेखनी उ आवश्यकता स्वयं अनुभव करें और दूसरे लोगोंको भी अनुभव करावें। यह पाप यों ही चलता रहा तो ी रक्षा बड़ी कठिन हो जायगी। गोरक्षामें ही भारतीय संस्कृतिकी रक्षा है।

भगवान्‌के सगुण स्वरूप और अवतार

दू-संस्कृति जिन श्रुति-शास्त्रोंपर अवलम्बित है, उनमें सच्चिदानन्दस्वरूप द्विविधरूप माना गया है। एक ाका निर्गुण, निराकार, मन तथा वाणीके अगोचर ी अपने योगकी साधनासे निर्विकल्प समाधिमें गाक्षात्कार करते हैं। ज्ञानी तत्त्व-चिन्तनद्वारा समस्त पदार्थोंसे मनको पृथक् करके द्रष्टारूपसे उसमें ा होते हैं; पर सर्वसाधारण उसके इस रूपकी भावना सकते। जगत्‌का वह उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयका तु दया करके या लीलाके लिये अनेक भावमय नित्य ान रूपोंमें नित्य लीला करता है। उसके इन सगुण, चिन्मय रूपोंके ध्यान-स्मरण, नाम-जप, लीला- मानवहृदय शुद्ध हो जाता है। मनुष्य इन रूपोंमेंसे नैष्ठिकरूपसे हृदयमें विराजमान करके संसार-सागरसे ाता है।

ण-साकार प्रभुके ये रूप नित्य सर्वेश्वर तथा अवतार- ों प्रकारके हैं। सृष्टि, स्थिति, प्रलयके लिये ब्रह्मा, महेशरूपसे वे उपासित होते हैं। उनके साथ उनकी शक्तियाँ होती ही हैं। वही सूर्य और गणेश रूपसे ा सेवित होते हैं। पञ्चदेवोपासनामें गणेश, शिव, ूर्य और विष्णु उन्हींके रूप हैं।

ात्‌में धर्मकी स्थापना, ज्ञानके संरक्षण, भक्तोंके परित्राण ततायी असुरोंके दलनके लिये एवं प्रेमी भक्तोंकी ञा पूर्ण करनेके लिये वे प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते नके ये अवताररूप दिव्य, सच्चिदानन्दघन हैं। ये लीलाएँ परम मङ्गलमय हैं।

ातारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।

वमूर्ति भगवान्‌के अवतारोंकी कोई संख्या नहीं। ा, २—कच्छप, ३—वाराह, ४—नृसिंह, ५—वामन, ६— ,७—श्रीराम,८—बलराम,९—बुद्ध और १०—कल्कि—ये र युगावतारोंके रूप शास्त्रोंने माने हैं। इनके अतिरिक्त कृष्णका अवतार पूर्णावतार कहा जाता है। उसका ाश्चित समय नहीं। पिछले अट्ठाईसवें द्वापरमें यह हुआ था। अर्थात् इस श्वेतवाराह कल्पसे पूर्व श्रीकृष्णने अवतार-विग्रह धारण नहीं किया। १२— ायण, १३—सनकादि, १४—कपिल, १५—दत्तात्रेय, १६—यज्ञ, १७—ऋषभ, १८—हंस, १९—धन्वन्तरि, हयग्रीव, २१—व्यास—ये भगवान्‌के अवतार विश्व परम्पराकी रक्षा, प्रसार तथा उसके आदर्श-स्थापन हुए। २२—पृथुरूपमें भगवान् लोक-व्यवस्थाके स लिये पधारे। २३—ध्रुवके लिये और २४—गजेन्द्र भगवान्‌का अवतार हुआ। इनके अतिरिक्त असुरोंको करनेके लिये भगवान्‌ने मोहिनीरूप धारण किया था

हिंदू-शास्त्रोंने ही इस सगुण तत्त्वके रहस्यको और स्वीकार किया। मूर्तिपूजा विश्वके प्रत्येक प्रत्येक प्राचीन जातिमें प्रचलित थी और मानव मूर्तिपूजक होनेसे किसी-न-किसी रूपमें वह मनुष रहेगी ही; परंतु मनुष्यको यह स्वभाव उस दयामय प्रदान किया? इसका उत्तर श्रुति एवं महर्षि ही दे वह स्वयं सगुण-साकार है। उसके दिव्यरूपमें हमारी ड हो तो हम समस्त कष्टोंसे परित्राण पा जायँ। अवतार- पृथक् विचार किया गया है। यहाँ भगवान्‌के नित्य रूपों एवं चरितोंका अत्यन्त संक्षिप्त स्मरण मात्र करन

भगवान् गणपति

गणपति नित्य देवता हैं; परंतु विभिन्न समयोंमें प्रकारसे उनका लीलाप्राकट्य होता है। जग लीलामयी हैं। कैलासपर अपने अन्तःपुरमें वे विराजमा सेविकाएँ उबटन लगा रही थीं। शरीरसे गिरे उबटन आदिशक्तिने एकत्र किया और एक मूर्ति बना डाली। उन मयीका वह शिशु अचेतन तो होता नहीं। उसने प्रणाम किया और आज्ञा माँगी। उसे कहा गया वि आज्ञा कोई द्वारसे अंदर न आने पाये। बालक डंडा लेकर खड़ा हो गया। भगवान् शङ्कर अन्तःपुरमें जाने उसने रोक दिया। भगवान् भूतनाथ कम विनोदी न उन्होंने देवताओंको आज्ञा दी बालकको द्वारसे हटा इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि सब उसके डंडेसे होकर भाग खड़े हुए—वह महाशक्तिका पुत्र जो था औद्धत्य उचित नहीं। भगवान् शङ्करने त्रिशूल और बालकका मस्तक काट दिया।

'मेरा पुत्र!' जगदम्बाका स्नेह रोषमें परिणत है देवताओंने उनके बच्चेका वध करा दिया था। पु



पञ्चदेव

नाता कैसे शान्त रहे। देवताओंने भगवान् शंकरकी
।।

सी नवजात शिशुका मस्तक उसके धड़से लगा दो।'
ाजका नवजात शिशु मिला उस समय। उसीका
कर वह बालक गजानन हो गया। अपने अग्रज
के साथ संग्राममें उसका एक दाँत टूट गया और
ोशजी एकदन्त हैं।

णवर्ण, एकदन्त, गजमुख, लम्बोदर, अरुण-वस्त्र,
तलक, मूषकवाहन। ये देवता माता-पिता दोनोंको
ऋद्धि-सिद्धि इनकी पत्नियाँ हैं। ब्रह्माजी जब
में कौन प्रथमपूज्य हो' इसका निर्णय करने लगे, तब
क्षिणा ही शक्तिका निदर्शन मानी गयी। गणेशजीका
सबसे आगे दौड़े। उन्होंने देवर्षिके उपदेशसे
राम' नाम लिखा और उसकी प्रदक्षिणा कर ली;
के अनुसार भगवान् शंकर और पार्वतीजीकी
की। वे दोनों प्रकार सम्पूर्ण भुवनोंकी प्रदक्षिणा
थे। सबसे पहले पहुँचे थे। भगवान् ब्रह्माने उन्हें
बनाया। प्रत्येक कर्ममें उनकी प्रथम पूजा होती
गवान् शंकरके गणोंके मुख्य अधिपति हैं। उन
की प्रथम पूजा न हो तो कर्मके निर्विघ्न पूर्ण होनेकी
म ही रहती है।

देवोपासनामें भगवान् गणपति मुख्य हैं। प्रत्येक
ारम्भ 'श्रीगणेश' अर्थात् उनके स्मरण-वन्दनसे ही
उनकी नैष्ठिक उपासना करनेवाला सम्प्रदाय भी
ण भारतमें भगवान् गणपतिकी उपासना बहुत
से होती है। 'कलौ चण्डीविनायकौ।' जिन लोगोंको
तक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें गणेशजीको शीघ्र
पाते हैं। वे मङ्गलमूर्ति सिद्धिसदन बहुत अल्प
त होते हैं।

वान् गणेश बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। वे साक्षात् प्रणव-
उनके श्रीविग्रहका ध्यान, उनके मङ्गलमय नामका
उनकी आराधना मेधा-शक्तिको तीव्र करती है।
के यदि वे लेखक न बनते तो भगवान् व्यासके
वेदसे जगती वञ्चित ही रह जाती।

भगवान् शङ्कर

अल्पशक्ति, अल्पप्राण सामान्य मानवका सामा
क्या अर्थ रखता है। उससे किसीका क्या ल
महिमामय चन्द्रचूड प्रभुके कुछ चरितोंका स्मरणमा
जा सकता है। उनका वर्णन तो समाप्त होनेवाला है
कल्पभेदसे उन सर्वाधारके दैव जगत् (आधिदैविक
में आविर्भावके अनेक प्रकारके वर्णन शास्त्रोंमें हैं
कल्पमें स्वयंभू ज्योतिर्लिङ्गरूपमें और कभी दूसरे
वस्तुतः तो वे एक ही महेश्वर जगत्की सृष्टि, पा
संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेशका त्रिविध रू
करते हैं।

वर्तमान सृष्टिके आदिमें ब्रह्माजीने सर्वप्रथम
सृष्टि की सनकादि चारों कुमारोंकी। पहले ही पुत्र
करनेकी आज्ञा अस्वीकार कर दी। ब्रह्माजीको ब
आया। उन्होंने अपने क्रोधको संयत करना चाहा
उनके भ्रूमध्यसे वह रोष नीललोहित कुमार बनकर
गया। उत्पन्न होते ही वे भगवान् भव रोने लगे।
अपना नाम और स्थान पूछा। रोनेके कारण उनका न
पड़ा। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा—'रुद्राण
श्चास्मि' और उन्होंने ही श्रीमद्भागवतमें 'रुद्राणां नील
कहा। इस प्रकार रुद्रोंमें भगवान्का नीललोहित
शङ्करस्वरूप है, यह कहा गया।

मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज,
भव, काल, वामदेव और धृतव्रत—ये एकादश
उन प्रभुके। हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु
जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तप—ये उनके ग्यारह
धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुति, सर्पि, इला,
इरावती, सुधा और दीक्षा—ये क्रमशः उनकी प
ब्रह्माजीने उन्हें सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। स्वभावानु
पिशाच, भैरव, विनायक, यातुधान, डाकिनी,
कूष्माण्ड, बेताल, विनायक, योगिनी आदिकी उन्हों
की। ये सब उनके गण हुए। ब्रह्माजीने इस विक
रोककर उनको तप करनेका आदेश दिया।

प्रजापति दक्षने अपनी पुत्री सतीका विवाह
शङ्करसे किया। ब्रह्म-सभामें दक्षके आगमनके समय
शङ्करने उनका अभ्युत्थानसे आदर नहीं किया। रु

भगवान् शङ्करको निमन्त्रण नहीं दिया गया था। जाती देवाङ्गनाओंद्वारा सतीने पिताके महोत्सवका ा। वे अनिमन्त्रित थीं, भगवान् शिव मना कर रहे भी हटपूर्वक वे पिताके घर आयीं। वहाँ देखा कि गवान् शङ्करको भाग नहीं दिया जा रहा है। पतिके वे क्षुब्ध होकर योगाग्नि प्रकट करके वे वहीं भस्म । रुद्रानुचर उत्पात अवश्य करते, पर महर्षि भृगुने नसे ऋभुगण उत्पन्न किये। उन ऋभुओंने जलती की मारसे रुद्रगणोंको भगा दिया।

वान् शङ्करको समाचार मिला। उन प्रलयङ्करने ट्टहास करके एक जटा उखाड़ी। वीरभद्र प्रकट न्होंने यज्ञ ध्वंस कर डाला। भृगुकी दाढ़ी उखाड़ ाको दन्त और भगदेवताको नेत्रोंसे हीन कर दिया। स्तक आहुति बन गया। अन्तमें सब देवता भगवान् शरण गये। भगवान्‌के आदेशसे नवजात बकरेका की देहपर रक्खा गया। वे जीवित हो गये। यज्ञ या।

वती सतीने दूसरा जन्म पर्वतराज हिमवान्‌के यहाँ या। देवर्षि नारदके उपदेशसे उन्होंने शङ्करजीको नेके लिये कठोर तप प्रारम्भ किया। वे उमा सूखे ो भी छोड़कर अपर्णा हो गयीं। देवताओंको च्छा थी कि भगवान् शङ्करका परिणय हो। असुर स्वर्गपर आधिपत्य कर लिया था। उसने ब्रह्माजीसे प्राप्त कर लिया था कि केवल शङ्करजीके औरस पुत्र ा वध कर सकेंगे। भगवान् शङ्करका विवाह हो तो । भगवान् तो समाधिमें स्थित हैं। देवताओंने कामको वसन्तका प्रादुर्भाव हुआ। उसी समय वहाँ पार्वतीजी पुष्पधन्वाके बाणसे सम्मोहनास्त्र छूटा। तनिक विकार समाधि भङ्ग हुई। विकारका कारण इधर-उधर मदन दृष्टिगोचर हुआ। तृतीय नेत्रकी ज्वालामें ने उसे भस्म कर दिया। तभीसे काम अनङ्ग हो गया।

ोपार्वतीजीकी तपस्या कामके भस्म होनेपर भी सफल हुई। शङ्करने उनका पाणिग्रहण किया। भगवान्‌के औरस ार कार्तिकने तारकको संग्राममें मारा। भगवती पार्वतीसे होकर शङ्करजीने उन्हें अपने आधे शरीरमें ही स्थान दे और अर्धनारीश्वर हो गये।

× × × ×

क्षीरोदधिका मन्थन हो रहा था। सबसे पहले प्रकट हुआ। समस्त प्राणी विषकी भीषण ज्वालासे जल प्रजापतिगणने प्रार्थना की। आशुतोष द्रवित हुए। विषको एकत्र करके वाम करतलपर उठाया और पी विष कण्ठमें अवरुद्ध कर दिया गया, अतः कण्ठ गया। भगवान् नीलकण्ठको समुद्रसे निकला शशि बनकर भूषित करने लगा।

× × × ×

मयने स्वर्ण, रजत और लौहके तीन नगर ब ये नगर गगनमें उड़ते रहते थे। मयके तीनों पु अधिपति थे। वे दानव पृथ्वीपर चाहे जहाँ नगरोंको भूतलके प्राणियोंका नाश कर डालते। गगनमें दे विमानोंको तोड़ डालते। देवलोक तथा लोकपालों पुरियाँ उन विमानोंसे ध्वस्त होती रहतीं। सबने वि भगवान् विश्वनाथकी शरण ली। पिनाकपाणि प्रभु युद्ध करने लगे।

मयने अमृत-रसका कूप बना लिया था। यु दानव कूपमें डाले जाते और जीवित हो जाते। विष्णुने गोरूप धारण किया, ब्रह्माजी बछड़े बने सुन्दर गौका मोह दानव छोड़ न सके। गौने दे कूपका समस्त रस पी लिया। देवमय रथपर भगवा विराजमान हुए। तीनों पुर आधे क्षणके लिये परस मिले। इसी समय बाण छूटा और वे भस्म हो गये।

× × × ×

अन्धक, बाणासुर, मय—सभी असुर तो भगवा आराधनासे ही सफल हुए। मयसे बढ़कर कौ नैष्ठिक सेवक रहा? सब गर्वोन्मत्त हुए, किंतु स दयामयकी दया ही प्राप्त हुई। बाणासुरके लि श्रीकृष्णसे संग्राम करने आये। रावणने कैलास ह चाहा था। अपने दस मस्तकोंकी आहुति देकर उसने का वैभव प्राप्त किया।

× × × ×

भगवान् शङ्करके अनेक रूप हैं, अनन्त नाम चरित हैं। वे कुन्दगौर शिव हैं, वे नीललोहित महाज्वालाकार प्रलयङ्कर हैं, महाकाल हैं। पुराणोंमें इतने चरित हैं कि सबकी सूची ही एक ग्रन्थ

ामय-समयपर अवतार धारणकर शैवमतकी लोकमें की है। अघोर, वामदेवादिरूपसे शैवाचार्य होकर वे धारे हैं। नैष्ठिकरूपसे भगवान् शङ्करकी आराधना सम्प्रदायोंमें होती है।

ातमें ऐसा कोई ग्राम कदाचित् ही होगा, जहाँ हिंदू-ोग हों और भगवान् शङ्करकी लिङ्गमूर्ति न प्राप्त तो पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र आदि श्रीविग्रह भी प्राचीनकाल-ाते हैं; किंतु भगवान् शिवका मुख्य उपासना-विग्रह ङ्गमूर्ति ही है। यह अनादि ऋषिपरम्परामें प्रतिष्ठित ाना श्रुति, स्मृति, पुराणसे प्रतिपादित है। स्मृतिकी ासनामें भगवान् शङ्कर इसी रूपमें अर्चित होते हैं।

ङ्गपूजा क्या है? शक्ति और शक्तिमान्‌का प्रतीक। ातिका सहज चिह्न। इसे कोई ऐन्द्रियक चिह्न मानकर ाको विकृत करे तो यह उसके भीतरका ही कलुष है। ाल्पनिक नहीं हुआ करती। वह वास्तविककी प्रति-ो है। जगत्‌में वैज्ञानिक इस मूर्तिको अणु-अणुमें ता है। ऋणात्मक एलेक्ट्रॉन या विद्युत् और धनात्मक ा विद्युत् किस आकृतिपर युक्त होते हैं? चुम्बक को खींचता है, दोनोंकी शक्तिका क्या रूप होता ातिमें वही प्रतीक है सर्वत्र। लिङ्गविग्रह शिवका न्वित प्रतीक है। वह साधकको उस परमपुरुषमें ार देता है।

× × × ×

ूर्ण विद्याओं तथा कलाओंके भगवान् शङ्कर आदि हैं। व्याकरण तो माहेश्वर सूत्रोंसे ही निकला है। नके डमरूके नादकी देन है और ताण्डव तथा लास्य ाही विधायक हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद प्रभृति समस्त के द्वारा ही मानव और देवताओंको प्राप्त हुए हैं।

ाम (श्रुति) भगवान् विष्णुकी निःश्वासभूतके हैं। तपाद्य भगवान् विष्णु हैं। वैसे भगवान्‌के दूसरे सभी ासम्मत हैं। निगमके समानान्तर ही आगम (तन्त्र) है। आगमके उपदेष्टा और आराध्य भगवान् शङ्कर ाकी भाँति ही तन्त्र भी भगवान्‌के समस्त रूपोंके ाी स्वीकृति देता है।

हैं। 'अनमिल आखर, अरथ न जापू।' न तो उन म से कोई ठीक शब्द बनता और न उनका कुछ अर्थ उनके जपका कोई बड़ा विधान भी नहीं, किंतु उच्चा वे प्रभाव उत्पन्न करते देखे गये हैं।

भगवान् विष्णु परम शैव, परम शिवाचार्य हैं और शङ्कर परम वैष्णव, परम वैष्णवाचार्य। 'सेवक स्वा सिय पी के।' वस्तुतः तो दोनों परस्पर अभिन्न हैं एक मूर्तिसे जलनिधिमें शेषशायी बने हैं और दूस हिमप्रान्तमें शेषभूषणधारी। एक रूपसे वे सृष्टिप एक रूपसे इस अपनी लीलाको संवरण करनेवाले।

हिंदू-संस्कृति निगम-आगम दोनोंको प्रमाण मान हुई है। भगवान् विष्णु और भगवान् शिव दोनों आराध्य हैं। एक यज्ञके स्वरूप हैं, यज्ञसे आराधित तो दूसरे तपोमूर्ति हैं, तपसे तुष्ट होते हैं। भगवान् तपस्वियोंके सेवक, रक्षक हैं। भगवान् शङ्कर यज्ञके भागके भोजी। 'यज्ञ और तप' इन दो शब्दोंमें सम्पू संस्कृति है। दोनोंके प्रतीक हैं—'विष्णु और शिव'

× × × ×

सर्वेश्वरत्वे सति भस्मशायिने उमापतित्वे सति चोध
वित्तेशभृत्ये सति चर्मवाससे निवृत्तरागाय नमस्त

कर्पूरगौर, विभूतिलिप्ताङ्ग, चतुर्भुज, त्रिलोचन, शेखर, गङ्गाधर, अहिभूषण, नीलकण्ठ, मुण्डमाली डमरु-त्रिशूल-वरदमुद्राकर, वृषभवाहन, वृषभध्वज, वृ श्मशानविहारी, भूतनाथ, उमापति, आशुतोष—उन ि को प्रणाम।

जिनके लिये क्रूरकर्मा असुर और सत्त्वमूर्ति सु हैं, प्रलय जिनकी सहज क्रीडा है, जीवन जिनका स्मित है, अपनी पुरी काशीमें मरनेवाले समस्त कीटादिकों मोक्ष वितरित करते रहते हैं, उन नित्य निरपेक्ष, भगवान् शूलपाणिको प्रणाम। वे आशुतोष प्रसन्न हों

महाशक्ति

श्रुतियोंने शक्ति-शक्तिमान् स्वरूप अद्वयतत्त्वका प्र किया है। वही एक तत्त्व परमपुरुष और परा श द्विविध है। वे परमपुरुष जगत्‌की सृष्टि, स्थिति, लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेशस्वरूप होते हैं तो उनकी

,' वैसे ही उन त्रिपुरसुन्दरी पराशक्तिके रमा, दुर्गा, ा रूप भी नित्य हैं। भिन्न होकर भी अभिन्न हैं वे। शक्तिकी नैष्ठिक उपासना करनेवाले शाक्त सम्प्रदायोंमें तीके विविध रूप हैं। महालक्ष्मी, महासरस्वती, महा-ेरी, काली, तारा, चामुण्डा, कूष्माण्डा, ललिता, ावती, छिन्नमस्ता, दुर्गा, मातङ्गी आदि रूपोंमें ासना भिन्न-भिन्न विधियोंसे होती है। शैलपुत्री, गी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, , महागौरी और सिद्धिदात्री—इन नवदुर्गारूपोंमें उन्हीं क्तिकी आराधना होती है। वही शाकम्भरी हैं, वही , वही कुलकुण्डलिनी हैं और वही योगमाया हैं। एवं चैत्रके नवरात्रोंमें उनकी उपासना समस्त भारतमें से होती है। महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ आदि प्रबल ैत्योंका वधकर आपने जगत्की रक्षा की थी। उनकी त्र गाथा मार्कण्डेयपुराणमें ग्रथित है। उसीका नाम है, जिसके अनुष्ठानसे लौकिक-पारलौकिक एवं क—सभी प्रकारके मनोरथ सिद्ध होते हैं।

× × × ×

लोकव्यापी अकालको अपने शरीरसे उत्पन्न शाकोंसे नेवाली वही महाशक्ति शाकम्भरी कही जाती हैं। ही असुर दुर्गको मारकर दुर्गा नाम धारण किया है। वरित पुराणोंमें, तन्त्रग्रन्थोंमें सर्वत्र व्याप्त हैं। वही ल, प्रतिभा, श्री, कान्ति आदिकी अधिष्ठात्री हैं। द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, दशभुज, शतभुज एवं ान्त अनन्त रूप हैं। वे महाकरुणामयी जगन्माता अपने शिशुओंपर नित्य प्रसन्न ही रहती हैं।

भगवान् सूर्य

गवान् विराट्के नेत्रसे जिनकी अभिव्यक्ति है, जो वनके अधिदेवता हैं, जो उपासना करनेपर समस्त रोगों, ों, ग्रहपीड़ाओंको दूर करके उपासककी सम्पूर्ण ओंको पूर्ण करते हैं, अनादि कालसे भारतीय कर्मनिष्ठ जिन्हें प्रतिदिन अपनी अर्घ्याञ्जलि निवेदित करते हैं, स्त सचराचर जगत्के जीवनदाता और सम्पूर्ण के आराध्य हैं, उन ज्योतिघन, जीवन, उष्णता और स्वरूप भगवान् सूर्यनारायणको हमारा शतशः प्रणिपात।

[illegible]

कितने ही नीहारिकामण्डल हैं। सब आकाशगङ्गा है सूर्योंसे जगमगाती हैं। कोई नहीं जानता, उनकी कितनी है। उन सब सूर्योंके अधिष्ठाता भगवान् ना हैं। श्रीसूर्यनारायणकी आराधना इसी रूपमें आराधक व

महर्षि कश्यप लोकपिता हैं। उनकी पत्नी अदितिके गर्भसे भगवान् विराट्के नेत्रोंसे व्यक्त जगत्में प्रकट हुए। सूर्यमण्डलका दृश्यरूप भौतिक उनकी देह है। विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे उनका परिण संज्ञाके दो पुत्र और एक कन्या हुई—श्राद्धदेव (वै मनु और यमराज तथा यमुनाजी। संज्ञा भगवान् तेजको सहन नहीं कर पाती थी। उसने अपनी छा पास छोड़ दी और स्वयं घोड़ीका रूप धारण क करने लगी। उस छायासे शनैश्चर, सावर्णि मनु औ नामक कन्या हुई। भगवान् सूर्यने जब संज्ञाको त देखा तो उसे तुष्ट करके अपने यहाँ ले आये। संज्ञाके (घोड़ी) रूपसे अश्विनीकुमार हुए। त्रेतामें कपिरा और द्वापरमें महारथी कर्ण भगवान् सूर्यके अ उत्पन्न हुए।

पक्षिराज गरुड़के बड़े भाई विनतानन्दन भगवान् सूर्यके रथको हाँकते हैं। रथमें सात उज्ज जुते हैं। अहर्निश यह रथ पूर्ण वेगसे चलता रहता है स्थिर हैं और पृथ्वी चलती है' वैज्ञानिक यूरोपने इस लिये काम चलानेको स्थिर किये भारतीय सिद्धान्तको रूप दे दिया। सौरसिद्धान्त भी वस्तुतः सूर्यको मानता है। विज्ञानके महान् विद्वान् अभी पर सम्बन्धमें सहमत नहीं हैं। उनका अन्वेषण चल नित्य नये सिद्धान्त वहाँ बनते जा रहे हैं।

भगवान् सूर्य अपने रथपर आसीन अविश्रा मेरुकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। उन्हींके द्वारा दि मास, ऋतु, अयन, वर्ष आदिका विभाग होता दिशाओंके भी विभाजक हैं।

भगवान् सूर्यकी उपासना बारह महीनोंमें बारह होती है। उस समय उनके पार्षद भी परिवर्तित हो इन पार्षदोंमें ऋषि, अप्सराएँ, गन्धर्व, राक्षस, नाग हैं। ऋषि रथसे आगे चलते हुए भगवान् करते हैं। गन्धर्व गान करते हैं। अप्सराएँ नाचती हैं

	भगवान् सूर्यका मास-सम्बद्ध नाम	ऋषि	अप्सरा	गन्धर्व	राक्षस	भल्ल	न
त्र)	धाता	पुलस्त्य	कृतस्थली	तुम्बुरु	हेति	रथकृत्	व
वैशाख)	अर्यमा	पुलह	पुञ्जिकस्थली	नारद	प्रहेति	ओजः	क
ष्ठ)	मित्र	अत्रि	मेनका	हाहा	पौरुषेय	रथस्वन	त
आषाढ़)	वरुण	वसिष्ठ	रम्भा	हूहू	शुक्र	चित्रस्वन	[illegible]
वण)	इन्द्र	अङ्गिरा	प्रम्लोचा	विश्वावसु	वर्य	श्रोता	ए
भाद्रपद)	विवस्वान्	भृगु	अनुम्लोचा	उग्रसेन	व्याघ्र	आसारण	श
श्विन)	पूषा	गौतम	घृताची	धनञ्जय	वात	सुरुचि	सु
कार्तिक)	क्रतु	भरद्वाज	वर्चा	पर्जन्य	सेनजित्	विश्व	ऐ
र्गशीर्ष)	अंशु	कश्यप	उर्वशी	ऋतसेन	विद्युच्छत्रु	तार्क्ष्य	मह
ष)	भग	आयु	पूर्वचित्ति	स्फूर्ज	अरिष्टनेमि	ऊर्ण	क
घ)	त्वष्टा	ऋचीकतनय (जमदग्नि)	तिलोत्तमा	शतजित्	ब्रह्मापेत	धृतराष्ट्र	कम
ल्गुन)	विष्णु	विश्वामित्र	रम्भा	सूर्यवर्चा	मखापेत	सत्यजित्	अश

वान् सूर्यकी आराधना नैष्ठिक रूपसे करनेवाले थोड़े लोग मिलते हैं। सौर-सम्प्रदाय अब व्यापक । किंतु सन्ध्या भगवान् आदित्यकी ही उपासना है और तिमात्रका अनिवार्य कर्तव्य है।

वान् सूर्य साक्षात् नारायण हैं। उन श्रुतिधामने अश्व)-रूप धारण करके महर्षि याज्ञवल्क्यको शुक्ल ' उपदेश किया। श्रीहनुमान्‌जीके विद्यागुरु भी वही तमें रविवारका व्रत खूब प्रख्यात है। अनेक आर्त ल्काम होते हैं।

भगवान् विष्णु

ासारसर्वस्व वे आदिनारायण अपनी योगमायासे उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयके लिये ब्रह्मा, विष्णु, त्रविध रूपोंमें व्यक्त होते हैं। परवैकुण्ठमें वही अष्टदल नित्य पद्मासनपर आसीन हैं। श्वेतद्वीपमें शवर्ण चतुर्भुज' रूपसे विराजमान हैं। क्षीरोदधिमें नन्तशायी हैं और रमावैकुण्ठमें भगवती लक्ष्मीके ोंका नित्यलीलाविलास चलता है।

प्रभु ब्रह्माण्डरूप विराट् पुरुष हैं और वही ब्रह्माण्डो- नारायण हैं। सम्पूर्ण जल उन्हींसे प्रकट हुआ है। न्हींके निःश्वाससे निसृत हैं। वे ही श्रुतिके प्रतिपाद्य उन्हींकी स्तुति करती है। वे ही यज्ञस्वरूप हैं। से व्यक्त हुए। वे स्वयं यज्ञके होता, ऋत्विक्, अग्नि और उपकरण हैं। यज्ञोंद्वारा उन्हीं यज्ञ-

चक्र चतुर्भुज मेघश्याम' रूपसे शेषशय्यापर विराजमा उन्हींकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ। पद्मसम्भव ब्र उसी पद्ममें निखिल लोक-कल्पना की है।

मधु-कैटभको मारकर ब्रह्मा तथा श्रुतियोंका उद्धा प्रभुने किया है। वही नाना अवतार धारणकर धराव मुक्त करते हैं। भगवान् शङ्करको भस्मासुरसे उन्होंने ब त्रिपुरका रसकूप पानकर त्रिपुरारिको विजयी किय जलन्धरके संग्राममें भी शङ्करजीकी विजय उन्हींके द्वार समस्त धर्मोंसे उन्हींकी आराधना होती है। अतः ज पत्नी वृन्दाका पातिव्रत्य उनकी ही तो अर्चा थी। वृन्दाको तुलसी बनाकर अपने वक्षपर नित्य विलसित व में स्थान दिया, अपने चरणोंकी अधिकारिणी बनाया।

वही सच्चिदानन्द प्रभु देवताओंके परमाश्रय हैं। ही समुद्रमन्थनके समय वासुकिके मस्तक और पकड़कर समुद्र-मन्थन किया। कौस्तुभरत्न उन्हींके भूषित करता है। भगवती लक्ष्मी उनके वक्षमें वास हैं। वे ही श्रीवत्सलाञ्छित प्रभु उन्मद असुरोंका दमन हैं और शरणागतोंका परित्राण करते हैं। त्रिदेवोंमें कौ है—इसका निर्णय करनेके लिये महर्षि भृगुने उनके पाद-प्रहार किया। उन नित्य आनन्दघनमें रोष-कषाय विप्रका चरण प्रभुने करोंसे मर्दित करते हुए कहा—'इस पदको कष्ट हुआ होगा।' उन शोभासिन्धुके विशाल विप्रका वह चरण-चिह्न—भृगुलता नित्य भूषण हो

त शास्त्र उन्हींका गुणगान करते हैं। उनके नाम, रेतका वर्णन, कीर्तन भगवान् शेष सहस्र मुखोंसे ते हैं। अनन्त कालमें भी समाप्त होनेवाले वे गुण नहीं .न निखिल सद्गुणगणैकधाम, सर्वरूप, सर्वमय, , सर्वपर, सर्वेश्वर, शोभाधाम, लक्ष्मीकान्त नारायणके ादपद्मोंमें शतशः प्रणाम।

नादिकालसे श्रुतियाँ उन प्रभुका गुणगान करती हैं। ष्ठिक आराधनाकी सम्प्रदाय-परम्पराएँ अनादि हैं। म्प्रदायोंको आचार्योंने न तो नूतन प्रतिष्ठित किया कुछ उसमें घटाया-बढ़ाया। द्वापरके अन्तमें ये क्षीण होने लगी थीं। 'न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदाय- ।' आचार्योंने लुप्त होती उन परम्पराओंको पुनः मात्र किया है। स्मृतियाँ श्रुतियोंकी अनुगामिनी र्त धर्म पञ्चदेवोंमें किसी एकको नैष्ठिकरूपसे आराध्य प्राणीको आदेश देता है। वैष्णव या भागवतधर्म ृति-पुराणप्रतिपादित अनादि धर्म है। हिंदू- कलाके क्षेत्रमें वैष्णव-भावनाके अपार वरदान हैं। में तो सर्वश्रेष्ठ महापुरुषोंकी वाणी भगवान्‌के ही पावन परिपूत हुई है। 'रसो वै सः।' उस रसरूपको छोड़कर वास्तविक परिपाक जो अन्यत्र नहीं होता।

भगवती लक्ष्मी

ीश्यामसुन्दर सदाके कौतुकी हैं। गोलोकमें अपने ासमण्डलमें उन्होंने अपनी शक्तिको दो रूपोंमें प्रकट या। समान वेश, समान रूप, समान सौन्दर्य। वामाङ्ग- ्र शक्ति चतुर्भुज रमा और दक्षिणाङ्गसे द्विभुज श्रीराधा। ो तुष्टिके लिये स्वयं भी दो रूपोंमें व्यक्त हो गये। ज श्रीनारायणरूपसे रमावैकुण्ठमें आ विराजे रमाके और द्विभुज श्यामसुन्दर-रूप तो नित्य गोलोकविहारी ।

महर्षि दुर्वासाके शापसे इन्द्रके साथ त्रिलोकीकी श्री गयी। अब साक्षात् श्री ब्रह्माण्डमें पधारें, तब लोकोंको , शक्ति आदि प्राप्त हों। श्रीनारायणके निर्देशसे समुद्र- ्चल रहा था। देव-दैत्य दोनों श्रान्त हो गये। वे पुरुष ही एक हाथसे वासुकिका पुच्छभाग और दूसरेसे पकड़कर मन्थन कर रहे थे। क्षीराब्धिमें महोर्मियाँ उठ थीं। प्रथम निकला कालकूट। भगवान् शङ्कर उसे पान हो गयीं। सभी मुग्ध थे, सभी उनकी कामना करते किसीने आसन दिया, किसीने वस्त्र; किसीने स्नान क किसीने अङ्गराग दिये। सबने माला, आभरण आदि उत्कृष्टतम वस्तुओंसे सत्कार किया। उन जगद् सबकी सेवाएँ स्वीकार कर लीं। सब उनके सेवक ही त

'ये बड़े क्षुद्र हैं, ये चञ्चल हैं, ये अल्पसत्त्व पराधीन हैं।' हाथमें कमलोंकी माला लेकर वे अपने पुरुषका वरण करने चली थीं। 'ये क्रोधी हैं, ये कुर ये अल्पायु हैं, ये अमङ्गलरूप हैं, ये भयानक हैं।' दैत्य, गन्धर्व, नाग, यक्ष, किन्नर, मानव, ऋषि—यहाँत लोकपाल और स्वयं सदाशिव भी उनको उपयुक्त पड़े। सबमें कोई-न-कोई खटकनेवाली बात थी।

'ये तो मेरी ओर देखते ही नहीं।' दोनों वरमाला लिये महालक्ष्मी देखती रहीं उन वनमाली पद्म लोचन परम पुरुषकी ओर। वे समुद्र-मन्थनके अपने तल्लीन थे। उन्होंने रमाको देखकर भी नहीं देखा ही सर्वगुणागार अनुकूल पुरुष और वह इतना नि लक्ष्मीजीको तो दूसरा पुरुष दीखता ही न था। जयमाल डाल दी उनके कण्ठमें और सिर झुकाकर र गयीं। उन दयामयको दया आयी। उन्होंने अपनी सहचरीको हृदयमें स्थान दिया। भगवान्‌के वक्षके भागपर जो स्वर्णिम रोमावली-आवर्त है, श्रुति उसे कहती है। वही महालक्ष्मीका अमर धाम है।

महालक्ष्मी भगवान्‌में नित्य स्थिर, कमलासना, सना या ऐरावतारूढा निखिलकल्याणधाम्नी है भगवान्‌को भूलकर जब उनकी आराधना होती है कहता है कि तब वे उलूकवाहना होती हैं। उनका उलूक होता है। वे चञ्चला बन जाती हैं।

भगवान् शेष

सहस्रफणधारी, कमल-तन्तुके समान श्वेतवर्ण मण्डितमौलि, एककुण्डलधर, नीलवस्त्रधारी भगवा संकर्षणविग्रह जगत्‌का आधार है। सम्पूर्ण पृथ्वी शेषके एक फणपर राईके समान स्थित है। प्रलयके उनके फूत्कारकी अग्निमें विश्व सूखे गोबरके सम हो जाता है।

ापने पूर्व फणसे उनके नाभिनालके लोकपद्मको, उत्तर
ुके मस्तक एवं दक्षिण फणसे उनके चरणोंको
त किये रहते हैं। वे अपना पश्चिम फण फैलाकर
व्यजन करते हैं तथा अन्य फणोंसे भगवान‍्के शङ्ख,
ा, पद्म, नन्दकखड्ग, दोनों तूणीर, धनुष, गरुड़
धारण किये रहते हैं।

ालमें नागकन्याएँ भगवान् अनन्तके महाभोगको
ारके सुगन्धित अङ्गरागोंसे उपलिप्त करती हैं।
इष्टसिद्धिके लिये उनकी आराधना करते हैं।
उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रभुका यह रूप
का अधिष्ठान है। वे समस्त बलके आश्रय हैं। वे
के परमोपदेष्टा आदिगुरु हैं।

भगवान् ब्रह्मा

कहाँ हूँ?' प्रलयाब्धिके मध्य एक सुमहत् प्रकाश-
ा कमल खिला था। उसकी कर्णिकापर एक पद्मके
' बालक बैठा था। बालकने चारों ओर देखनेकी
ा और वह चतुर्मुख हो गया। वहाँ उस कमल और
छोड़कर कुछ नहीं था। तेजःपुञ्ज पद्मके अतिरिक्त
अन्धकारमग्न थीं। बालकने कमलनालमें प्रवेश
कमलमूल जाननेकी उत्कण्ठा थी।

ा! तप! तप!' सहस्रों वर्ष कमलनालमें नीचे
ी जब उसका अन्त न मिला, तब ब्रह्माजी लौट
हसा अलक्ष्यवाणीने उन्हें तपस्याका आदेश दिया।
ापके पश्चात् हृदयमें ही उन्होंने उस कमलनाभके
िये, जो सहस्रफणमौलि हिमश्वेत शेषकी शय्यापर
; कृपापूर्वक उनकी ओर देख रहे थे।

ृष्टि तो बढ़ती ही नहीं।' ब्रह्माजीकी स्वाभाविक रुचि
में थी। वे बराबर अपने मनसे मानसिक सृष्टि कर
मानसिक सृष्टिके प्राणी कल्पान्त अमर तो हो गये,
ी प्रवृत्ति सृष्टिमें तबतक न हुई। अन्तमें स्वयं
पने दाहिने भागसे मनु और वाम भागसे शतरूपाको
या। यह जोड़ी सृष्टि बढ़ानेमें प्रवृत्त हुई। मनुकी
वहूति महर्षि कर्दमको विवाही गयीं। इस प्रकार
; सृष्टिका भी सहयोग क्रमशः मिला।

ावान् ब्रह्मा असुरोंके उपास्य रहे हैं। सृष्टिकर्ममें लगे
ो बहुत कठोर तप करनेपर ही तुष्ट होते हैं। [illegible]

रक्षाके लिये बार-बार उन्हें क्षीरसागरशायी प्रभुसे प्रार्थ
पड़ी है। पृथु या विश्वामित्रकी भाँति कोई स
सृष्टिमें व्यतिक्रम करने लगता है, तब भी उन्हें आना
है उसे समझाने। वे हंसवाहन प्रभु नित्य ही जगत
सचिन्त रहते हैं। उनके चरित पुराणोंमें बहुत औ
समस्त कार्योत्पादनके वे ही अधिष्ठाता हैं।

भगवती सरस्वती

श्वेतपद्मपर आसीना, शुभ्रहंसवाहिनी, तुषारधव
शुभ्रवसना, स्फटिकमालाधारिणी, वीणामण्डितकरा
हस्ता वे भगवती भारती प्रसन्न हों, जिनकी कृपा ही
कला, विद्या, ज्ञान तथा प्रतिभाका प्रकाश करती है
समस्त विद्याओंकी अधिष्ठात्री हैं। यश उन्हींकी धव
ज्योत्स्ना है। वे सत्त्वरूपा, श्रुतिरूपा, आनन्दरूपा हैं
सुख, सौन्दर्यका वही सृजन करती हैं।

वे अनादि शक्ति भगवान् ब्रह्माके कार्यकी स
हैं। उन्हींकी कृपासे प्राणी कार्यके लिये ज्ञान प्राप्त क
उनका कलात्मक स्पर्श कुरूपको परम सुन्दर कर
वे हंसवाहिनी हैं। सदसद्विवेक ही उनका वास्तवि
है। भारतमें उनकी उपासना सदा होती आयी है।
कालिदासने उन्हें प्रसन्न किया था। प्रत्येक कवि उन
पदोंका स्मरण करके ही अपना काव्यकर्म प्रारम्भ क
यह यहाँकी सनातन परम्परा थी।

प्रतिभाकी उन अधिष्ठात्रीके चरित तो सर्वत्र प्र
समस्त वाङ्मय, सम्पूर्ण कला और पूरा विज्ञान
वरदान है। मनुष्य उन जगन्माताकी अहैतुकी द
शक्तिका दुरुपयोग करके अपना नाश कर लेता है औ
भी दुखी करता है। ज्ञान-प्रतिमा भगवती
वरदानका सदुपयोग है अपने ज्ञान, प्रतिभा और
भगवान‍्में लगा देना। वह वरदान सफल हो
मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। भगवती प्रसन्न होती हैं

'भारतीय प्राचीन कला प्रायः मन्दिरोंमें व्यक्त
पाश्चात्त्य विद्वानोंके ये आक्षेप ठीक ही हैं।
नश्वर मनुष्य और उसके नश्वर अर्थहीन
व्यर्थ स्थायी करनेका प्रयत्न नहीं किया।
भगवती भारतीकी सदा समुज्ज्वल कृपा
मानव—अमृतपुत्र मानवको उन्होंने नित्य अमरत्व

स चिरन्तन ज्योतिर्मयसे एक होकर धन्य हो गयी। ल जगत्में भले नित्य न हो, अपने उद्गमको नित्य पहुँचानेमें सफल हुई। भगवती सरस्वतीके दिव्य न समझकर उनके मञ्जु प्रकाशके क्षुद्रांशमें भ्रान्त मनुष्य शदाका दुरुपयोग करने लगा है। अन्धकारके गर्तमें तो कदाचित् कहीं अटकता भी; पर वह तो प्रकाशमें ा है नीचे घोर अतल अन्धकारमें।

गवती शारदाके मन्दिर हैं, उपासना-पद्धति है, उनकी से सिद्ध महाकवि एवं विद्वानोंके इतिहासमें चारु । यह सब होकर भी उनकी कृपा और उपासनाका ल यश नहीं। यश तो उनकी कृपाका उच्छिष्ट है। है परमतत्त्वको प्राप्त कर लेना। इसी फलके लिये उन वाग्देवीकी स्तुति करती हैं।

भगवान् मत्स्य

से पूर्व कल्पकी बात है—भगवान् ब्रह्मा अपने दिनके ान्त होकर योगनिद्राका आश्रय ले रहे थे। श्रुतियाँ ज्ञ भावसे उनके मुखसे निकलीं। उन श्रुतिस्वरूप- से निद्रामें और प्रकट भी क्या होता। दितिपुत्र उन्हें स्मरण कर लिया। एक असुर श्रुतिका न ण कर सकता और न उसका अर्थ-दर्शन। वह लिन बुद्धिसे श्रुतियोंका अनर्थ करेगा। श्रुतियोंके लिये, उनकी परम्परा विशुद्ध रखनेके लिये भगवान् मत्स्यरूप धारण किया।

न-भास्कर विवस्वान्के पुत्र राजर्षि सत्यव्रत जल र तपमें लीन थे। प्रातःस्नान करके कृतमाला र्णके लिये उन्होंने अञ्जलि उठायी। हिलसा जातिकी एक शफरी (छोटी मछली) उसमें आ गयी थी। अञ्जलि विसर्जित कर दी।

। हम छोटी मछलियोंको आहार बना लेनेवाले बहुत उनसे डरकर मैं आपकी शरण आयी हूँ।' शफरी ीं। वह बोल रही थी। राजर्षिने उसे उठाकर जलमें रख लिया।

आपकी शरण हूँ। मेरी सुविधाका आपको प्रबन्ध हिये। यहाँ तो मैं हिल भी नहीं सकती।' आश्रममें मछलीने पुनः प्रार्थना की। वह स्वची वह गयी

कहीं कुछ मुहूर्तोंमें वह स्थान उसकी वृद्धिसे पूर्ण था। अन्तमें समुद्रमें छोड़ना पड़ा उसे।

'निश्चय ही आप सर्वेश हैं। जब आपने मुझ की है, तब अपने इस शरीर-धारणका प्रयोजन ब राजर्षिने तब प्रार्थना की, जब समुद्रमें मत्स्यने अ मगर आदिका भय बताया। भला, कोई जलजी शीघ्र यह आकार-वृद्धि कहाँ पा सकता था। भगवान ने बताया कि प्रलय सातवें दिन ही होनी है। अ आदेशानुसार राजर्षिने बहुत बड़ी नौका बनवायी सम्पूर्ण वनस्पतियोंके बीज और प्राणियोंके जोड़े किये। सातवें दिन चारों ओरसे बढ़कर समुद्रने प्लावित कर दिया। नौकामें इसी समय सप्तर्षि भी बैठ गये। प्रबल पवनसे नौका चञ्चल हो उठी। उस एक-श्रृङ्गधारी अयुत योजन विशाल स्वर्णोज्ज्वल मत्स्य प्रलय-सागरमें प्रकट हुए। नागराज वासुकी नौकामें विराजमान थे। नौका उन महासर्पके मत्स्यके सींगमें बाँध दी गयी।

भूः-भुवः आदि सम्पूर्ण लोक जलमग्न हो ग अन्धकारमें सागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गोंके बीच महामत्स विचरण कर रहे थे। नौकामें ऋषियोंका तेज प्रकाश था। राजर्षिने प्रश्न किया और भगवान्ने उत्तर भगवान् मत्स्यका वही दिव्य उपदेश भगवान् व्यासने पुराणमें संकलित किया है। प्रलयकाल व्यतीत हुआ। उतरा। भगवान्के आदेशसे हिमालयके एक श्रृङ्गमें सत्यव्रतने अपनी नौका बाँध दी। वह श्रृङ्ग अब भी बन्धन श्रृङ्ग कहा जाता है। राजर्षि सत्यव्रत इस मन्व वैवस्वत मनु हैं। भगवान् मत्स्यने हयग्रीवका वध क्योंकि सृष्टिकालमें असुरके समीप श्रुति रहना नहीं था।

यहूदियोंके धर्मग्रन्थमें, बाइबिलमें और कुरान मनुकी इस जलप्रलय और नौकारोहणका प्रकारान्तरसे है। चीनमें तथा प्राचीन आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका-निव में भी यह चरित प्रसिद्ध है। बहुत थोड़ा अन्तर इन स्थानोंमें हुआ है। कथाका सब कहीं मिलना ब है कि सब जातियाँ भारतसे गयी हैं और मनुकी संतति

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥
(श्रीमद्भा० ८ । २४ । ६१)

भगवान् कच्छप

इंकार और महज्जनोंकी उपेक्षा अनर्थोंके कारण होते महर्षि दुर्वासा प्रसन्न थे। उन्होंने ऐरावतपर जाते द्रको अपने कण्ठकी पुष्पमाला दी। महेन्द्रने उसे के मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने सूँड़से उठाकर ाला और पैरसे कुचल दिया। 'तेरी श्री नष्ट हो अपने प्रसादका अपमान देख महर्षिने शाप दिया े गये।

ाँ ऋषिके अपमानसे श्रीहीन देवता और कहाँ आचार्य द्धालु सेवक दैत्यराज बलि। दोनोंके युद्धमें देवता । स्वर्ग असुरोंका क्रीडोद्यान हो गया। बलिने तीनों अधिकार कर लिया। देवता और क्या करते, वे ी शरण गये। सबने मिलकर शेषशायी प्रभुसे की।

ाप सब दैत्योंसे सन्धि कर लें। समस्त ओषधियाँ में डालकर उसका मन्थन करें। मन्दराचलको बनावें और वासुकी नागको रस्सी। यह काम वताओंसे न होगा। पहले महाविष निकलेगा, उससे करना। वस्तुओंमें लोभ करके लड़ना मत। अन्तमें :-हारिणी सुधा प्रकट होगी।' भगवान्ने प्रकट होकर ायी।

गये दैत्यराजके समीप। कुशलतापूर्वक उन्होंने ' स्मरण कराया। अमृतके लोभसे सन्धि हो गयी। दोनोंने मिलकर मन्दराचलको उखाड़ा। पर्वत ्र न जा सका। वह गिरा, बहुतसे लोग पिस उठे। ही भक्त-भयहारी स्मरण करनेपर पधारे। एक हाथसे उन्होंने गरुड़पर मन्दराचलको रख लिया।

त क्षीराब्धि-तटपर आया। समुद्रमें डालनेपर वह ा। समस्त देवता और दैत्य मिलकर उसे सम्हालने- र्थ थे। अन्ततः भगवान्ने नियुत योजन विशाल । धारण करके मन्दराचलको पीठपर धारण किया।

निद्राका आश्रय किये हुए थे। उनके शरीरसे आद्याश हुई। उसीसे इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रव शक्ति शवरूपमें ब्रह्माके पास गयी। उसे उन्होंने च देखा, फलतः वे चतुर्मुख हो गये। विष्णुने उसे दू दिया। सौ बार शरीर बदलनेपर शिवने उसे कर लिया।

शक्ति स्थिर हो गयी; किंतु ब्रह्मा सृष्टि न कर पृथ्वी जो नहीं थी। भगवान् विष्णुने कर्णमलसे उत्पन्न किये। वे दोनों रुष्ट होकर ब्रह्माजीको मारने भगवान् विष्णुने उन्हें मार डाला। उन दैत्यों मेदिनी—पृथ्वी बनी। उनकी अस्थियाँ पर्वत बनीं। स्थिर करनेके लिये भगवान्ने कच्छपरूप धारण किय

भगवान्के अवतार नित्य हैं। वही प्रभु पृथ्वीक करते हैं, वही मन्दर धारण करके अमृत-मन्थनके ि हैं। वही मनुष्यकी धृति बनते हैं और तभी मानव धामके पथमें स्थिर होता है। सबके वही आधार हैं

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पा
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिलेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्र

भगवान् वाराह

'भगवन्! हमारे लिये स्थान निर्देश करें!' स मनुने स्रष्टासे प्रार्थना की। चारों ओर महाप्रलयका सम ले रहा था। लोकमूल कमलपर ब्रह्माजीने मानसिक सृ कर ली। मनुको सृष्टिकी आज्ञा हुई। मानव-सृष्टि स्थूल स्थान चाहिये। पृथ्वी तो जलमें डूब गयी थी

'वे सर्वेश्वर ही इसका उद्धार करें।' भगवान् देखा कि रसा तो रसातलमें है। वे ध्यानस्थ हो गये। छींक आयी। अङ्गुष्ठके बराबर एक उज्ज्वल वाराह शिशु न से निकलकर आकाशमें स्थित हो गया।

'यह क्या है?' ऋषियोंके साथ ब्रह्माजी साश्चर्य थे। वाराह क्षणभरमें हाथीके बराबर हो गया। वह जा रहा था। एक घनगर्जन-सी घुरघुराहट हुई। स सटाएँ हिलायीं और समुद्रमें प्रविष्ट हो गये।

× × ×

। हिरण्याक्ष देवर्षि नारदसे पूछ रहा था । उसने
को युद्धके लिये ललकारा था । देवता उसकी हुंकार
स्वर्गसे भाग गये थे । समुद्र उसकी क्रीड़ासे चीत्कार
था । उसे कोई चाहिये, जिससे वह लड़े । उसका बल
युद्धको चाहता था । युद्ध किये बिना उसे शान्ति नहीं
वरुणने भी कह दिया था कि वे वृद्ध हो गये हैं । उन्होंने
विष्णुभगवान्‌के पास भेजा था ।

अभी श्वेत वाराहरूप धारण करके इसी समुद्रमें सीधे
रहे हैं । तुम शीघ्रता करो तो पकड़ लोगे ।' देवर्षिने
देखा । भगवान्‌के पार्षद् जय और विजयने सनकादि-
। वैकुण्ठ-प्रवेशके समय रोक दिया था । ऋषियोंने शाप
उन्हें असुर होनेका । अब वे दितिके गर्भसे प्रकट
। उनमें एक तो यही है । देवर्षिको दया आयी ।
के हाथसे मरकर यह दूसरा जन्म ले । तीन ही जन्ममें
अपने रूपको पा लेगा । इन जन्मोंसे जितनी जल्दी
ना अच्छा ।

रे, इसे कहाँ ले जाता है ? यह तो स्रष्टाने हम रसातल-
के लिये भेजी है ।' दैत्य पाताल पहुँचा । भगवान्
पृथ्वीको अपने दाँतोंपर उठा लिया था । दैत्यको तो
करना था, पर भगवान्‌ने जैसे कुछ सुना ही नहीं । वे
लेकर चले । दैत्य पीछे-पीछे दौड़ा । 'तू इसे छोड़
तो मारा जायगा ।'

च्छा, अब तू अपने मनकी कर ले !' दैत्य पीछे
ाया । भगवान्‌ने पृथ्वीको ऊपर स्थापित करके उसे
। दोनोंमें घोर संग्राम हुआ । अन्तमें दैत्य मारा
। श्वेतवाराह-कल्पकी सृष्टि पृथ्वीकी उसी पुनः प्रतिष्ठा-
से प्रारम्भ हुई है ।

भगवान् नृसिंह

ाके उद्धारके समय भगवान्‌ने वाराहरूप धारण करके
क्षका वध किया । उसका बड़ा भाई हिरण्यकशिपु
। हुआ । उसने अजेय होनेका संकल्प किया । सहस्रों
ा जलके वह सर्वथा स्थिर तप करता रहा । ब्रह्माजी सन्तुष्ट
दैत्यको वरदान मिला । उसने स्वर्गपर अधिकार कर
लोकपालोंको मार भगा दिया । स्वतः सम्पूर्ण लोकों-
ाधिपति हो गया । देवता निरुपाय थे । असुरको किसी
। पराजित नहीं कर सकते थे ।

'इन मिथ्या भोगोंको छोड़कर वनमें श्रीहरि
करना !' बालक प्रह्लादका उत्तर स्पष्ट था । दैत्यराज
कर रहे थे, देवताओंने असुरोंपर आक्रमण किया
उस समय भाग गये थे । यदि देवर्षि न छुड़ाते तो
की पत्नी कयाधूको इन्द्र पकड़े ही लिये जाते थे ।
कयाधूको अपने आश्रममें शरण दी । उस समय
गर्भमें थे । वहींसे देवर्षिके उपदेशोंका उनपर प्र
चुका था ।

'इसे आपलोग ठीक-ठीक शिक्षा दें !' दैत्यराज
आचार्य शुक्रके पुत्र षण्ड तथा अमर्कके पास भेज
दोनों गुरुओंने प्रयत्न किया । प्रतिभाशाली बालक
धर्म, कामकी शिक्षा सम्यक् रूपसे प्राप्त की; परंतु
पिताने उससे पूछा तो उसने श्रवण, कीर्तन,
पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनि
इन नौ भक्तियोंको ही श्रेष्ठ बताया ।

'इसे मार डालो । यह मेरे शत्रुका पक्षपाती है
दैत्यराजने आज्ञा दी । असुरोंने आघात किया । भ
मुड़ गये, खड्ग टूट गया, त्रिशूल टेढ़े हो गये
कोमल शिशु अक्षत रहा । दैत्य चौंका । प्रह्लादको ि
गया; पर वह जैसे अमृत हो । सर्प छोड़े गये उ
और वे फण उठाकर झूमने लगे । मत्त गजराजने
उन्हें मस्तकपर रख लिया । पर्वतसे नीचे फेंकनेपर
उठ खड़े हुए, जैसे शय्यासे उठे हों । समुद्रमें पाषा
डुबानेपर दो क्षण पश्चात् ऊपर आ गये । घो
उनको लपटें शीतल प्रतीत हुईं । गुरुपुत्रोंने मन्त्रबल
(राक्षसी) उन्हें मारनेके लिये उत्पन्न की तो वह गुरु
प्राणहीन कर गयी । प्रह्लादने ही प्रभुकी प्रार्थना क
जीवित किया । अन्तमें वरुणपाशसे बाँधकर गुरु
उन्हें पढ़ाने ले गये । वहाँ प्रह्लाद समस्त
भगवद्भक्तिकी शिक्षा देने लगे । भयभीत
दैत्येन्द्रसे प्रार्थना की 'यह बालक सब बच्चोंको
पाठ पढ़ा रहा है !'

'तू किसके बलसे मेरे अनादरपर तुला है ?' हिर
ने प्रह्लादको बाँध दिया और स्वयं खड्ग उठाया ।

'जिसका बल आपमें तथा समस्त चराच
प्रह्लाद निर्भय थे ।

ित्र ? इस स्तम्भमें भी ?'

श्चय !' प्रह्लादके वाक्यके साथ दैत्यने खंभेपर घूसा ह और समस्त लोक चौंक गये। स्तम्भसे बड़ी र्जनाका शब्द हुआ। एक ही क्षण पश्चात् दैत्यने मस्त शरीर मनुष्यका और मुख सिंहका, बड़े-बड़े दाँत, प्रज्वलित नेत्र, स्वर्णिम सटाएँ, बड़ी भीषण खंभेसे प्रकट हुई। दैत्यके अनुचर झपटे और अथवा भाग गये। हिरण्यकशिपुको भगवान्ने या।

ने ब्रह्माजीने वरदान दिया है !' छटपटाते हुए दैत्य। 'दिनमें या रातमें न मरूँगा; कोई देव, दैत्य, शु मुझे न मार सकेगा। भवनमें या बाहर मेरी होगी। समस्त शस्त्र मुझपर व्यर्थ सिद्ध होंगे। , गगन—सर्वत्र मैं अवध्य हूँ।'

सन्ध्याकाल है। मुझे देख कि मैं कौन हूँ। यह देहली, ये मेरे नख और यह मेरी जंघापर पड़ा हास करके भगवान्ने नखोंसे उसके वक्षको विदीर्ण।

उग्ररूप—देवता डर गये, ब्रह्माजी अवसन्न हो लक्ष्मी दूरसे लौट आयीं; पर प्रह्लाद—वे तो प्रभुके त्र थे। उन्होंने स्तुति की। भगवान् नृसिंहने गोदमें उन्हें बैठा लिया। स्नेहसे चाटने लगे। प्रह्लाद हुए।

भगवान् वामन

रि जिसपर कृपा करें, वही सबल है। उन्हींकी वताओंने अमृत-पान किया। उन्हींकी कृपासे असुरों- वे विजयी हुए। पराजित असुर मृत एवं आहतों- अस्ताचल चले गये। असुरेश बलि इन्द्रके वज्रसे चुके थे। आचार्य शुक्रने अपनी संजीवनी विद्या- था दूसरे असुरोंको भी जीवित एवं स्वस्थ कर लिने आचार्यकी कृपासे जीवन प्राप्त किया था। हृदयसे आचार्यकी सेवामें लग गये। शुक्राचार्य ए। उन्होंने यज्ञ कराया। अग्निसे दिव्य रथ, ोण, अभेद्य कवच प्रकट हुए।

सुरी सेना अमरावतीपर चढ़ दौड़ी। इन्द्रने देखते लिया कि इस बार देवता इस सेनाका सामना नहीं

बना। शुक्राचार्यने बलिका इन्द्रत्व स्थिर करने अश्वमेध-यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। सौ अश्वमे बलि नियमसम्मत इन्द्र बन जायँगे। फिर उन्हें कं सकता है।

'स्वामी, मेरे पुत्र मारे-मारे फिरते हैं !' देवमाता अत्यन्त दुखी थीं। अपने पति महर्षि कश्यपसे प्रार्थना की। महर्षि तो एक ही उपाय जानते हैं— की शरण, उन सर्वात्माकी आराधना। अदितिने प शुक्ल पक्षमें बारह दिन पयोव्रत करके भगवान्की उ की। प्रभु प्रकट हुए। अदितिको वरदान मिला। गर्भसे भगवान् प्रकट हुए। शङ्ख-चक्र-गदा- चतुर्भुज पुरुष अदितिके गर्भसे जब प्रकट हुए, वामन ब्रह्मचारी बन गये। महर्षि कश्यपने ऋषियों उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। भगवान् पितासे आज्ञा लेकर बलिके यहाँ चले।

नर्मदाके उत्तर-तटपर असुरेन्द्र बलि अश्वमे दीक्षित थे। यह उनका अन्तिम अश्वमेध था। छत्र दण्ड तथा कमण्डलु लिये, जटाधारी, अग्निके समान वामन ब्रह्मचारी वहाँ पधारे। बलि, शुक्राचार्य, ऋ सभी उस तेजसे अभिभूत अपनी अग्नियोंके साथ हुए। बलिने उनके चरण धोये, पूजन किया औ की कि जो भी इच्छा हो, वे माँग लें।

'मुझे अपने पैरोंसे तीन पद भूमि चाहिये ! कुलकी शूरता, उदारतादिकी प्रशंसा करके वामनने बलिने बहुत आग्रह किया कि और कुछ माँगो ज वामनने जो माँगना था, वही माँगा था।

'ये साक्षात् विष्णु हैं !' आचार्य शुक्रने सावधा समझाया कि इनके छलमें आनेसे सर्वस्व चला जाय

'ये कोई हों, प्रह्लादका पौत्र देनेको कहकर नहीं करेगा !' बलि स्थिर रहे। आचार्यने ऐश्व शाप दे दिया। बलिने भूमिदानका संकल्प किया औ विराट् हो गये। एक पदमें पृथ्वी, एकमें स्वर्ग तथा शरीरसे समस्त नभ व्याप्त कर लिया उन्होंने। वाम पद ब्रह्मलोकसे ऊपरतक गया। उसके अङ्गु ब्रह्माण्डका आवरण तनिक टूट गया। ब्रह्मद्र ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट हुआ। ब्रह्माजीने भगवान्क

ूरा पद रखनेको स्थान कहाँ है ?' भगवान्ने
रकका भय दिखाया। संकल्प करके दान न करने-
रक होगा ही।

े मेरे मस्तकपर रख लें !' बलिने मस्तक झुका या।
हाँ चरण रक्खा। बलि गरुड़द्वारा बाँध लिये गये।
म अगले मन्वन्तरमें इन्द्र बनोगे! तबतक सुतलमें
करो। मैं नित्य तुम्हारे द्वारपर गदापाणि उपस्थित
दयामय द्रवित हुए। प्रह्लादके साथ बलि सब
लेकर स्वर्गाधिक-ऐश्वर्यसम्पन्न सुतल लोकमें पधारे।
ने भगवान्के आदेशसे यज्ञ पूरा किया।

न्द्रको स्वर्ग प्राप्त हुआ। ब्रह्माजीने भगवान् वामनको
द प्रदान किया। वे इन्द्रके रक्षक होकर अमरावतीमें
हुए। बलिके द्वारपर गदापाणि द्वारपाल तो बन
थे। त्रेतामें दिग्विजयके लिये रावणने सुतल-प्रवेश-
ा की। बेचारा असुरेश्वरके दर्शनतक न कैर सका।
ारपालने पैरके अँगूठेसे उसे फेंक दिया। पृथ्वीपर
ा दूर लङ्कामें आकर गिरा था वह।

भगवान् परशुराम

ह गौ आप मुझे दे दें।' हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन
हर्षि जमदग्निके आश्रमके पाससे निकले थे। महर्षिने
आतिथ्यके लिये निमन्त्रित किया। आश्रमकी
की कृपासे सबका सत्कार हुआ। राजाके मनमें लोभ
जब महर्षिने गौ माँगनेपर भी न दी तो बलपूर्वक
न ली। वह अपने बलके गर्वसे उन्मत्त हो रहा था।
म, तुमने अधर्म किया। हम ब्राह्मण हैं। हमें क्षमा
ाहिये।' परशुराम वनसे लौटकर राजाका अन्याय
के थे। अकेले ही परशु लेकर ससैन्य सहस्रार्जुनका
ध करके वे होमधेनु लौटा लाये थे। महर्षि जमदग्नि
हीं हुए। उन्होंने पुत्रको वर्षभर समस्त तीर्थोंमें
तस्वरूप घूमनेका आदेश दिया।

म, हा राम!' भगवान् परशुराम यात्रासे लौटे।
ाता रेणुकाका करुणस्वर उन्होंने सुना। अग्निशालामें
महर्षि जमदग्निको सहस्रार्जुनके पुत्रोंने मार दिया था।
का मस्तक लेकर भाग गये थे। भगवान् परशुरामके
अग्निवर्ण धारण किया। उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार
ीहीन कर दिया। समन्तपञ्चक स्थानमें राजाओंके

महर्षि जमदग्नि जीवित हुए। उन्हें सप्तर्षियोंमें पद
प्राप्त हुआ।

'राम! तुम अब मेरी भूमिसे चले जाओ!'
बार-बार क्षत्रियोंके गर्भस्थ बालकोंकी रक्षा करते। उ
बनाते। परशुरामजी उनका वध कर डालते। अं
जब कश्यपजीको उन्होंने समस्त पृथ्वी दान कर दी
कश्यपने उन्हें आदेश दिया कि 'अब मेरी भूमिपर क
वास न करना।' तबसे परशुरामजी महेन्द्र-पर्वतपर
करते हैं। वे कल्पान्त अमर हैं। अनेक बार योग्य
उनके दर्शन पाते हैं।

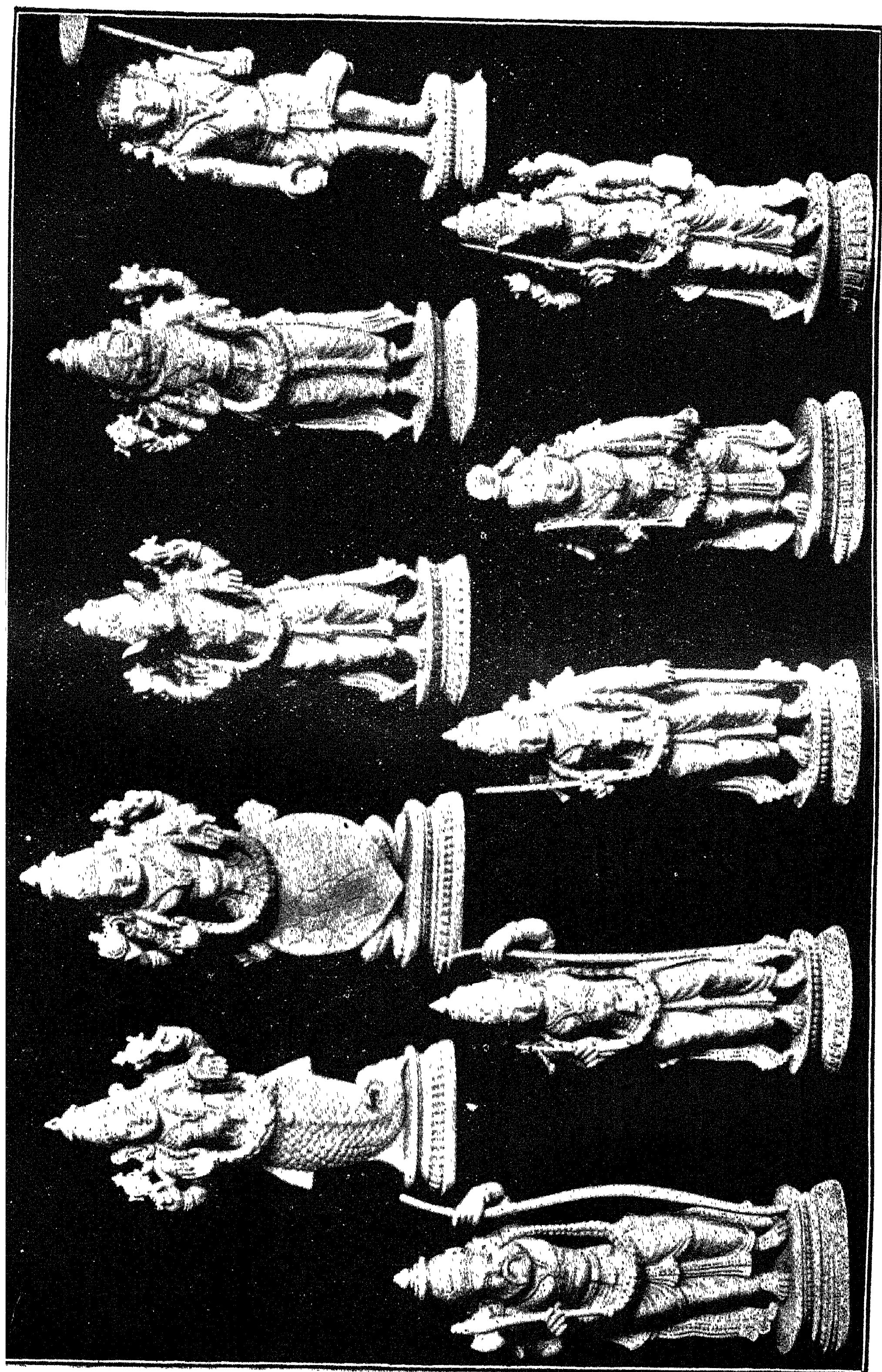
भगवान् श्रीराम

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रिय
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजा
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृ
स्त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽव

(श्रीमद्भा० ९। १

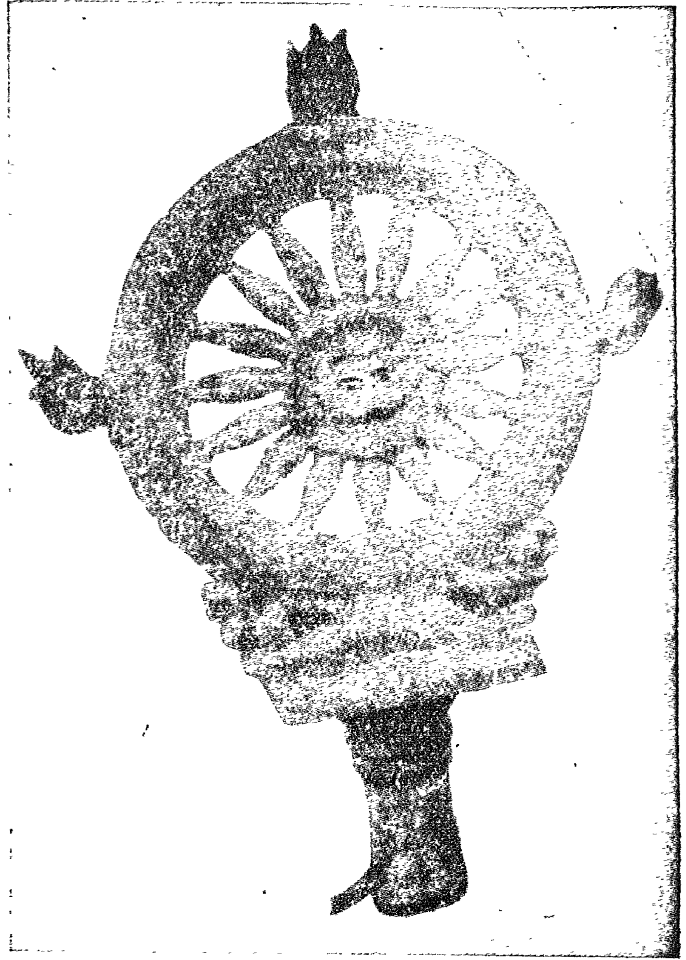
अयोध्याका सिंहासन शून्य होने जा रहा था
सन्तति-परम्पराका इस प्रकार कहीं उच्छेद हो सकत
महाराज दशरथने तीन विवाह किये, अवस्था
गयी; किंतु उस चक्रवर्ती साम्राज्यका उत्तराधिकार
रानीकी गोदमें न आया। रघुवंशके परम रक्षक
वशिष्ठ हैं। महाराजने अपने उन कुलगुरुकी शरण
गुरुदेवके आदेशसे शृङ्गी ऋषि आमन्त्रित हुए।
यज्ञका अनुष्ठान हुआ। साक्षात् अग्निदेवने प्रकट हो
प्रदान किया। उस दिव्य चरुको ग्रहण कर रानियाँ
हुईं।

देवता लङ्काधिप पुलस्त्यके पौत्र राक्षसराज
सन्त्रस्त हो गये थे। अपने ऐश्वर्यमें मत्त वह कुबेरक
भाई वेदज्ञ होनेपर भी राक्षस हो गया। दानवे
अपनी पुत्री मन्दोदरी उससे विवाह दी। श्वशुरक
उसकी प्रकृति एक हो गयी। ऋषियों, ब्राह्मणों,
तथा धर्मका वह शत्रु हो गया। यज्ञ बलपूर्वक रो
गये, पूजनस्थल ध्वस्त किये गये। तपोवन राक्षसों
दिये। ऋषि-मुनि राक्षसोंके भक्ष्य हो गये। देवत
पराजित हो चुके थे। लोकपालगण रावणकी आज्ञा





२४ गरुड़ (काष्ठ-मूर्ति, पालूर)



महाराज दशरथकी बड़ी रानी कौसल्याकी गोदमें मनवमीके मध्याह्नमें वे साकेताधीश शिशु बनकर । उनके अंश भी आये—माता सुमित्राकी गोद गौर कुमारोंसे भूषित हुई और कैकेयीजीने भावमूर्ति : वर्ण रूपराशि भरतको प्राप्त किया ।

ों कुमार बड़े हुए । कुलगुरुसे शास्त्र एवं शस्त्रकी मिली । सहसा एक दिन महर्षि विश्वामित्र आ उनके आश्रममें प्रत्येक पर्वपर राक्षस उपद्रव करते र्षिको राम-लक्ष्मणकी आवश्यकता थी । केवल दो अवधकी चतुरङ्गिणी सेनाको तपोवनमें ले जाना था । चक्रवर्ती महाराजकी चाहे जितनी अनिच्छा -समर्थ विश्वामित्रजीका आग्रह कैसे टले । श्रीरामने ाथ प्रस्थान किया । राक्षसी ताड़का मार्गमें ही एक ेंट हो गयी । मुनिवरका यज्ञ रक्षित हुआ । सदल ारा जा चुका था और उसका भाई मारीच रामके न बाणके आघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर जा ।

र्षिको तपोवनमें ही विदेहराज जनकका आमन्त्रण उनकी अयोनिजा कन्या सीताका स्वयंवर हो रहा र्षिके साथ दोनों अवध-कुमार मिथिलाको धन्य ारे । गौतमाश्रममें पाषाणभूता अहल्या श्रीरामकी का स्पर्श पाकर पतिके शापसे मुक्त हो गयी । वह तेधाम चली गयी । 'जनकपुत्री भूमिसुता उसे वरण ो शङ्करके महाधनुष पिनाकको तोड़ेगा ।' मिथिला- यह प्रतिज्ञा श्रीरामने पूर्ण की । श्रीपरशुरामजी ाराध्यदेवके धनुर्भङ्गसे क्रोधमें भरे आये और श्रीरामके क्ति, तेजसे गर्वरहित होकर लौट गये । अयोध्या- आमन्त्रण मिला । उनके चारों कुमार जनकपुरमें हुए ।

ाराज चाहते हैं, प्रजा चाहती है, गुरुदेव चाहते हैं मका राज्याभिषेक हो; परंतु राम राज्य करें तो धराका न दूर करे ? देवताओंने प्रेरणा की । माता कैकेयीको ा । 'भरत-शत्रुघ्न ननिहाल हैं और चुपचाप रामको या जा रहा है !' सन्देह स्वयं पापमूल है । 'भरतको ार रामको चतुर्दश वर्ष वनवास !' छोटी रानीने ो वचनबद्ध करके वरदान माँगा । पिताके सत्यके वंशविभूषण प्रातः वल्कलधारी होकर वनको विदा

श्रीराम भाई एवं पत्नीके साथ वन गये । प्रिय पुत्रके वियोगमें शरीर छोड़ दिया । भरत- दशा, दुःख, वेदना कौन कैसे कहे । गुरुका आदेश न चरने सुनाया था । अयोध्या आकर पिताकी अन्त्येि पड़ी । समस्त समाज लेकर श्रीरामको चित्रकूट लौटा पर वहाँसे भी चरण-पादुका लेकर लौटना पड़ा । भ भाईकी चरण-पादुका लेकर लौटे । अयोध्याका सिंहासन उन पादुकाओंसे भूषित हुआ । रामहीन अ भरत रहेंगे ? उन्होंने नन्दिग्राममें 'महि खनि कुस सँवारी ।' और 'गोमूत्र-यावक' (गोबरसे निक गोमूत्रमें पकाकर) उसके आहारपर तप करते हुए वर्ष व्यतीत करना स्थिर किया ।

श्रीराम चित्रकूटसे आगे चले । अयोध्यासे ही म दर्शनकी सुलालसा थी । प्रयागमें भरद्वाजजी, आगे वाल्मीकिके दर्शन हुए ही थे । चित्रकूटके तो मह ही कुलपति थे । आगे शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अग दर्शन करके दण्डकारण्यको पवित्र किया उन्होंने विराध चित्रकूटसे निकलते ही मिला और मार पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनी । कुछ वर्ष वहाँ शान्तिसे हुए । गृध्रराज जटायुसे परिचय हुआ ।

उस दिन रावणकी बहिन कुलटा शूर्पणख घूमती-घामती आ पहुँची । मर्यादा-पुरुषोत्तम वा दुष्टोंका निग्रह तो करते ही । नाक-कान कटनेपर उ दूषणसे पुकार की । वे असुर चौदह सहस्र सेनाके स और अकेले श्रीराघवेन्द्रके शरोंके भोग हो गये । रावणके पास पहुँची । रावणने मारीचको साथ लिय मृगके पीछे श्रीजानकीकी इच्छासे श्रीराम दौड़े । छल सफल हुआ । वह शराघातसे मरा, किंतु रावण जानकीको हरण करनेमें सफल हो गया । लङ्काके वनमें वह विश्वधातृ बंदिनी बनीं ।

श्रीराम लौटे मृगकी वञ्चनाका दण्ड देकर शून्य था । अन्वेषण प्रारम्भ हुआ । आहत जटायु वे दशाननको रोकनेके प्रयत्नमें छिन्नपक्ष हुए थे । चरणोंमें उनका शरीर छूटा । राघवने अपने हाथ अन्त्येष्टि की । कबन्ध असुरका वध और शबरीके आस्वादन करते वे पम्पासर पहुँचे । वालीसे सुग्रीवको शरण मिली और दूसरे ही दिन जब वाली

ार राघवने वर्षा व्यतीत की । शरदागममें वानर-
ान्वेषणको निकले ।

वनकुमार शतयोजन सागर पार लङ्कामें विदेह-
ा दर्शन कर आये । स्वर्णपुरी उनकी पूँछकी लपटोंमें
थी । श्रीरामने ससैन्य प्रस्थान किया । मदान्ध
ादताड़ित विभीषण उन विश्व-शरणदकी शरण आ
ागरपर सेतु बना और वह सुरासुर-अगम्य पुरी
ुओंसे धर्षित होने लगी । राक्षस-सेनानी मारे जाने
भूमिने रावणपुत्र इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्णकी आहुति
अन्तमें दशाननका वध करके श्रीरामने सुरकार्य
देया ।

। चौदह वर्षसे एक दिन अधिक प्रतीक्षा न करेंगे ।
ा इस अवधिमें आबद्ध हैं । पुष्पक सज्जित हुआ ।
ई तथा श्रीजानकी एवं सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्,
प्रधान नायकोंके साथ उस दिव्य विमानसे अयोध्या
पुरवासियोंकी, माताओंकी, भरतकी चिरप्रतीक्षा
। श्रीराम कोसलाके चक्रवर्ति-सिंहासनपर वैदेहीके
जमान हुए ।

ा-राज्य'—सुशासन, सुव्यवस्था, धर्म, शान्ति,
देकी पूर्णताके द्योतनके लिये आज भी मनुष्यके
। सुन्दर शब्द नहीं । ग्यारह सहस्र वर्ष वह दिव्य
राको कृतार्थ करता रहा । श्रीवाल्मीकीय रामायण
वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानस श्रीरामके
चरितसे लोकमें कल्याणका प्रसार करते हैं ।
व्यासके अतिरिक्त अनेक संस्कृत, हिंदी तथा
ााओंके कवियों, विद्वानोंने अपनी वाणी राम-गुण-
वेत्र की है ।

ाम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं । हिंदू-संस्कृतिकी पूर्ण
ानके चरितमें हुई है । जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके लिये
ादर्श हैं । हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप 'श्रीरामचरित'
 में ही पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुआ है । भारतका वह
आज विश्व-मानवका गेय-ध्येय बने, तभी मानव
बन सकेगा ।

भगवान् बलराम

ृष्णावतार तो पिछले द्वापरमें सत्ताईस कलियुगोंके
आ था । द्वापरमें पृथ्वीका भार हरण करने तो
वे पधारे । योगमायाने गोकुलमें नन्दबाबाके य
रोहिणीजीमें उन्हें पहुँचा दिया । इस प्रकार वे
कहलाये । इनकी गोकुल, मथुरा और द्वारकाकी क
बड़ी ही अद्भुत और आनन्ददायिनी हैं ।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर नित्य अभिन्न हैं । उन
चर्चा एक दूसरेसे पृथक् जैसे कुछ है ही नहीं ।
दोनोंकी सङ्ग-सङ्ग बालक्रीड़ा और वहाँसे वृन्दावन
बहुत थोड़े चरित हैं, जब श्यामसुन्दरके साथ उ
नहीं थे । ऐसे ही बलरामजी अपने अनुजसे पृथक्
रहे हैं ।

वह कंसप्रेरित असुर प्रलम्ब आया था । श्रीकृ
कोई साथी चाहिये खेलनेके लिये । एक नवीन गोप
देखा और मिला लिया अपने दलमें । असुरने श्या
दलन-चरित सुने थे । उसे उनसे भय लगा । अपने
वह दाऊको पीठपर बैठानेमें सफल हुआ और भ
सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका धारक है, उसे कौन ले जा स
दैत्यको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा । एक
तत्क्षण उसके मस्तकपर और फिर क्या सिर बच रह
उस दिन सखा कह रहे थे कि उन्हें पक्व ताल-फलों
लुब्ध कर रही है । सखा कुछ चाहें तो वह अप्राप्य
असुर-गर्दभ धेनुक और उसका सब गर्दभ-परिवार
नष्ट हो गये । प्रकृतिका उन्मुक्त दान कानन है ।
गर्दभोंने उसे पशुओंतकके लिये अगम्य बना दि
भगवान् बलरामने सखाओंको ताल-फल प्रदान करने
सबके लिये निर्बाध कर दिया उसे ।

कन्हैया तो महाचञ्चल है; किंतु दाऊ भैय
परमोदार, शान्त हैं । श्याम उन्हींका संकोच भी क
वे भी अपने अनुजकी इच्छाको ही जैसे देखते रहते
लीलामें जब श्यामने शङ्खचूड़को मारा, उसने सम
नारियोंके सम्मुख उस यक्षका शिरोरत्न अपने अग्रजके
रूपमें दिया । कुवलयापीड़—कंसका उन्मत्त गजरा
भाइयोंकी थप्पड़ों और घूसोंकी भेंट हुआ और म
चाणूरको श्यामने पछाड़ा तो मुष्टिक बलरामजीकी
भेंट हो गया ।

दोनों भाइयोंने गुरुगृहमें साथ-साथ निवास
जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी

जा रहे थे। जिसे सत्रह युद्धोंमें पकड़कर छोड़
ीके सम्मुखसे अठारहवीं बार भागना कोई अच्छी
थी। किया क्या जाय। श्रीकृष्णने प्रातःसे वह दिन
लिये स्थिर कर लिया था। कालयवनके सम्मुख वे
ागे। जरासन्धके सम्मुख भागनेमें इतना आग्रह
अग्रजको साथ भागना ही पड़ा।

भी कोई बात है कि केवल हँसा जाय! जो बना-
सकता हो, वह हँसे या पश्चात्ताप करे!' बलरामजीका
आ। रेवतीजी सत्ययुगकी कन्या ठहरीं। स्वभावतः
ी थीं। श्यामसुन्दर तो सदाके परिहासप्रिय हैं।
ोने पत्नीको अपने अनुरूप ऊँचाईमें पहुँचा दिया।

ाम अकेला गया है!' कुण्डिनपुरके राजा भीष्मककी
क्मिणीके विवाहमें शिशुपालके साथ जरासन्धादि
ा रहे हैं, यह समाचार तो मिल ही चुका था। वहाँ
ीकृष्ण कन्या-हरण करने गये, यह तो अच्छा नहीं
लरामजीने यादवी सेना सज्जित की। वे इतनी
चले कि श्रीकृष्ण मार्गमें ही मिल गये। श्यामसुन्दर-
रुक्मिणीजीको लेकर चल देना था। शिशुपाल और
थी तो रामके सैन्यसमूहसे ही पराजित हुए।

ष्ण! सम्बन्धियोंके साथ तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना
' बलरामजी राजाओंकी सेनाको परास्त करके आगे
रुक्मीकी सेना आ गयी। उसके साथ उलझनेमें कुछ
हुआ। आगे आकर देखा तो छोटे भाईने अपने ही
मीको पराजित करके रथमें बाँध रक्खा है। उसके
श्रु आदि मुण्डित कर दिये हैं। बड़ी दया आयी।
ाया उसको। परंतु आगे चलकर रुक्मीने अपने
श बलरामजीका अपमान किया, तब वह उन्हींके हाथों
ा।

× × ×

ोधन भी मदमत्त हो उठा था। क्या हुआ जो
के पुत्र साम्बने उसकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण किया।
लिये स्वयंवरमें कन्या-हरण अपराध तो है नहीं।
लड़केको छः महारथियोंने मिलकर बंदी किया, यह
ाय ही था। श्रीकृष्णचन्द्र कितने रुष्ट हुए थे समाचार
यदि वे नारायणी सेनाके साथ आ जाते—बलरामजीने
ंको शान्त किया। दुर्योधन उनका शिष्य था।

वह मिथिलाके समीप पहुँचकर मारा जा सका। म
वस्त्रोंमें मिली नहीं। बलरामजी इतने समीप आकर
नरेशसे मिले बिना न लौट सके। दो मासतक वहाँ
उनसे गदा-युद्धकी शिक्षा ली। वही दुर्योधन यदुव
अपना कृपाजीवी, क्षुद्र कहकर चला गया था।
बलरामके सम्मुख ही यादव महाराज उग्रसेनके प्रति
कहे उसने। क्रुद्ध हलधरने हल उठाया। हस्तिनापु
घूमने लगा। वे धराधार नगरको यमुनाजीमें फेंक
थे। 'पशूनां लगुडो यथा।' पशु डंडेसे मानते हैं
भीत कौरव शरणापन्न हुए। वे क्षमामय दण्डका
नाट्य करते हैं। उन्हें भी क्या रोष आता है।

महाभारतमें वे किस ओर होते? दुर्योधन प्रि
और दूसरी ओर श्रीकृष्ण। वे तीर्थयात्रा करने च
नैमिष-क्षेत्रमें इल्वल राक्षसका पुत्र बल्वल अपने
ऋषियोंको आकुल किये था। उस विपत्तिसे उन तप
त्राण मिला। जब वे तीर्थयात्रासे लौटे, तब महा
समाप्त हो चुका था। भीम-दुर्योधनका अन्तिम सं
रहा था। दोनोंमेंसे कोई समझानेसे माननेको उद्यत

यदुवंशका उपसंहार होना ही था। भगवान्की
अभिशप्त यादव परस्पर संग्राम कर रहे थे। भगवा
उन्हें समझाने—शान्त करने गये, पर मृत्युके वश हु
इनकी बात नहीं सुनी और नष्ट हो गये। अब लील
करना था। समुद्र-तटपर उन्होंने आसन लगाया
'सहस्रशीर्षा' स्वरूपसे जलमें प्रविष्ट हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण

'तू जिसे इतने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा है
आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा!' आकाशवाणीसे कंस
सचमुच वह अपने चाचाकी छोटी लड़की
विवाह होनेपर कितने उत्साहसे पहुँचाने जा र
दिग्विजयी कंस—मृत्युका भय शरीरासक्तको का
देता है। वह अपनी बहिनका वध करनेको ही
गया। वसुदेवजीने सद्योजात शिशु उसे देनेका वच
इतनेपर भी कंसने दम्पतिको रक्खा कारागारमें ही
करनेपर अपने ही पिता उग्रसेनको भी उसने बन्दी
वह स्वयं मथुराका नरेश बन गया।

भगवान् शेष पधारे । योगमायाने उन्हें आकर्षित गोकुलमें रोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया । अष्टम वह अखिलेश आया । धरा असुर-नरेशोंके अशुभ आकुल है, उसके आराधक उसीकी प्रतीक्षामें हो रहे हैं, तो वह आयेगा ही ।

सका कारागार, भाद्रकृष्ण अष्टमीकी मेघाच्छन्न ा—जैसे प्रकृतिने सम्पूर्ण कलुषको मूर्ति दे दी हो । के साथ श्रीकृष्णचन्द्र-प्राकट्य हुआ । बन्दियोंके नेत्र गये । वह चतुर्भुज देखते-देखते शिशु बना, स्वतः शिथिल हुई, द्वार उन्मुक्त हुआ, वसुदेवजी त्य-धनको गोकुल जाकर नन्दभवन रख आये । मेली यशोदाकी कन्या और वे योगमाया, जब कंस पर पटक रहा था उन्हें—गगनमें सायुधाभरण हो गयीं ।

कुलकी गलियोंमें आनन्द उमगा । आनन्दघन की गोदमें जो उतर आया था । कंसके क्रूर प्रयास वाहमें प्रवाहित हो गये । पूतना, शकटासुर, —सब विफल होकर भी कन्हैयाके करोंसे सद्गति । मोहन चलने लगा, बड़ा हुआ और घर-घर घूम ी—वह हृदयचोर नवनीत-चोर जो हो गया था । उल्लसित भाव सार्थक करने थे उसे । यह लीला ई अपने घरका ही नवनीत लुटाकर । मैयाने ऊखलमें दामोदर बना दिया । यमलार्जुनका उद्धार तो कंतु उन महावृक्षोंके गिरनेसे गोप शङ्कित हो गये । छोड़कर वृन्दावन जा बसे ।

ावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, व्रज-युवराजकी क्रीड़ाके चलनेमें सबने और सहायता दी । श्रीकृष्ण क बने । कंसका प्रयत्न भी चलता रहा । बकासुर, प्रलम्ब, धेनुक, अघासुर, मयपुत्र व्योमासुर आदि आते श्यामसुन्दर तो सबके लिये मोक्षका अनावृत द्वार ालियके फणोंपर उस व्रजविहारीने रासका पूर्वाभ्यास ा । ब्रह्माजी भी बछड़े चुराकर उस नटखटकी ो अन्तमें कर गये । इन्द्रके स्थानपर गोवर्धन- ूया गोपोंने और गोपालने । देव-कोपकी महावर्षासे को सात दिन अँगुलीपर उठाकर व्रजको बचा लिया । उस गिरिधारीको गोविन्द स्वीकार कर गये । कंसके ासुर, केशी आदि जब गोपालके करोंसे कर्मबन्धन-मुक्त

राजाको सन्देश मिला धोबीकी मृत्युसे पधारनेका । उस दिनका उनका अङ्गराग मार्ग ्चिर-चञ्चलने स्वीकार करके कुब्जाका कूबर दूर क कंसका आराधित धनुष उसके गर्वकी भाँति त गया । दूसरे दिन महोत्सव था कंसकी कूटनीति मण्डपके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रने महागज कुवल मारकर उसका श्रीगणेश किया । अखाड़ेमें उन श्याम-गौर अङ्गोंसे चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल चूर्ण हो गये । कंसके जीवनकी पूर्णाहुतिसे उ हुआ । महाराज उग्रसेन बन्दीगृहसे पुनः राज्य आये ।

श्रीकृष्ण व्रजमें कुल ग्यारह वर्ष, तीन मास इस अवस्थामें उन्होंने जो दिव्य लीलाएँ कीं, वे जीवनपथ तो प्रशस्त करती हैं, पर आलोचककी बुद्धि उनका स्पर्श नहीं कर सकती । वह इ बालकमें या तो उन लीलाओंको समझ न पा अपने अन्तरके कलुषमें डूबेगा । अस्तु, फिर तो पधारे ही नहीं । उद्धवको भेज दिया एक बार देने । अवश्य ही द्वारिकासे बलरामजी एक मास रह गये एक बार ।

अवन्ती जाकर श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ प्राप्त की । गुरुदक्षिणामें गुरुका मृतपुत्र पुनः आये । मथुरा लौटते ही कंसके श्वशुर ज चढ़ाइयोंमें उलझना पड़ा । वह सत्रह बार ससै और पराजित होकर लौटा । अठारहवीं बार उसके सूचनाके साथ कालयवन भी आ धमका । कहाँ प्रकार युद्धमय जीवन सहा जाय । समुद्रके मध्यमें दु द्वारिका नगर बना । यादवकुलको वहाँ पहुँचाकर पैदल यवनके सम्मुखसे भागे । पीछा करता हु गुफामें जाकर चिरसुप्त मुचुकुन्दकी नेत्राग्निसे भस्म ह उधरसे लौटते ही जरासन्ध सेना लेकर आ पहुँचा । आज रणछोड़ हो रहे थे । बलरामजीको भी साथ पड़ा । दोनों भाई प्रवर्षणपर चढ़कर भाग छूटे ।

श्रीकृष्णके विवाह तो लोकप्रसिद्ध हैं । रुक्मि उन्होंने हरण किया था । स्यमन्तकमणिकी जाम्बवन्तसे युद्ध करके उपहारस्वरूप जाम्बवती

जी उनके लिये तप ही कर रही थीं। लक्ष्मणाजीके
। मत्स्यभेद करनेमें दूसरा कोई समर्थ ही न हो सका
जित् नरेशके सातों साँड़ एक साथ नाथकर उनकी
शसे दूसरा कौन विवाह कर पाता। मित्रविन्दाजीको
स्वयं हरण किया और भद्राजीको उनके पिताने
दान किया। यह तो आठ पटरानियोंकी बात है।
भौमासुरने वरुणका छत्र, अदितिका कुण्डल
ग्या था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके
डारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो
हस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बन्दी बना रक्खी थीं,
उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना
र्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्रामें अमरावतीसे बलात्
द्वारिका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और
। हुए।

ासुरसे युद्ध विवश होकर करना पड़ा। अपनी सहस्र
मदमें वह अपने आराध्य भगवान् शङ्करका
करने लगा था। अनिरुद्धको बन्दी कर लिया था
क्तवत्सल भोलेबाबाने फिर भी युद्धमें उसका पक्ष ग्रहण
चक्रने असुरके हाथोंका वन काट डाला। वह
हो गया। पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र, शाल्व—ये सब मारे
ने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला
युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण
र शाल्व तो मय-निर्मित विमानसे द्वारिका ही नष्ट
या था। शिशुपाल भरी सभामें गालियाँ देने लगा
क क्षमा की जाय। सौ गालियोंके पश्चात् चक्रकी
या वह।

डवोंका परित्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ
ा होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता।
: वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने
द्यूतमें हारे पाण्डवोंकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी
ब भरी सभामें दुःशासनद्वारा नग्न की जाने लगी,
: धारण किया उसने। दुर्योधनने दुर्वासाजीको
ा ही था पाण्डवोंके विनाशके लिये, पर शाकका
खाकर त्रिलोकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थ-प्रिय
जो हो गया।

मयरमकी पाण्डवोंके लिये सन्निधत बनकर

युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य प
बना। संग्राममभूमिमें उस गीता-गायकने अर्जुनक
दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म, द्रो
अश्वत्थामाके दिव्यास्त्रोंसे रक्षा की पाण्डवोंकी। यु
हुआ। युधिष्ठिरको सिंहासन प्राप्त हुआ।
एकमात्र वंशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न
अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उसे प्राणहीन कर दिय
श्रीकृष्णने उसे पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रहे तो वही बलोन्मत्त हो
करेगा।' श्रीकृष्णको यह अभीष्ट नहीं था। ऋषि
तो निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलह
और आप देखते रहे। व्याधने पादतलमें बाण
उसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका पुरस्कार दिया गय
प्रकार लीला संवरण की द्वारकेशने।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे ग
भगवान् व्यासकी वाणीने श्रीमद्भागवतमें उन
लीलाओंका वर्णन किया है। शुकदेवजी-से ि
रसाम्बुधिमें मग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत
लीलाका अमृतपयोनिधि है। श्रीकृष्णका चरित
ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छः गुण—ऐश्वर्य,
शोभा, ज्ञान, वैराग्य—सब उसमें पूर्ण हैं। त्याग, प्रे
नीति—सब उन पूर्ण पुरुषमें पूर्ण ही हैं। हिं
निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्ण
निष्ठाओंकी पूर्णता होती है।

भगवान् बुद्ध

यह विवादास्पद विषय है कि पुराणों
बुद्धावतारका वर्णन है, वह महाराज शुद्धोद
अमिताभ गौतम बुद्ध ही हैं। पुराणोंका बुद्धावता
देशमें (गयाके पास) ही हुआ था, यह तो ठ
उनके पिताको वहाँ 'अजिन' कहा गया है। ज
यहाँ तात्पर्य भगवान्के उस बुद्धावतारसे है, जिस
पुराणोंमें है।

दैत्य प्रबल हो गये थे। स्वर्गपर उनका अधिक
दैत्येन्द्रने इन्द्रका पता लगाया और पूछा, 'हमार
स्थिर कैसे रहे?' इन्द्रने शुद्धभावसे उन्हें यज्ञ ए

।-राम ! तुमलोग यह क्या पाप करते हो ! यज्ञमें हिंसा होती है । अग्निमें ही पता नहीं कितने कीट ।' भगवान् विष्णुने बुद्धरूप धारण किया । वे एक ाड़ू लिये मार्ग स्वच्छ करके पादक्षेप करते पहुँचे पास । उनके वस्त्र मलिन थे । स्नान वे करते न न्तधावनके बिना दाँत स्वच्छ न थे, सबमें हिंसा । दैत्योंको उनका वह तत्त्वबोध ठीक जान पड़ा । गया । देवताओंने उन यज्ञहीन, मलिन, प्रतिरोधहीन असुरोंको पराजित करके स्वर्गसे ा ।

भगवान् कल्कि

के अन्तमें सम्भल-ग्राममें विष्णुयश ब्राह्मणके वान् कल्किका प्रादुर्भाव होगा । अभी कलिके ारसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं । इस अवतारके ाखों वर्ष अभी शेष हैं । उस समय श्रुतियोंका चुकेगा । मानव सदाचारहीन, अल्पकाय, । अत्यन्त अल्पायु होंगे ।

वान् परशुराम स्वयं कल्कि भगवान्को वेदोंका करेंगे । भगवान् शिव उन्हें शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे । अश्व एवं खड्ग प्राप्तकर भगवान् पृथ्वीके समस्त वृत्तिके प्राणियोंका वध कर डालेंगे । भगवान्के होनेके कारण नूतन संतति शुद्ध भावापन्न तथा ी । इस प्रकार सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा ।

भगवान् नर-नारायण

। ही लोककी सृष्टि है । तप ही लोकका धारण । करता है । विनाशके अधिष्ठाता भगवान् शिव तो हैं ही । आज युग शारीरिक तामस तपका है । वैसे ।—कष्टके आज भी कोई कार्य नहीं होता । तप का स्वरूप है । ऋषियोंने तपका महत्त्व जाना और आज भी सृष्टि तपकी अज्ञात शक्तिपर ही प्रतिष्ठित है। : अन्तर्मुख चित्तके उस शक्तिका अनुभव नहीं होता। ारिने सृष्टिके आदिमें धर्मकी पत्नी मूर्तिसे दो रूपोंमें धारण किया । शुक्ल-वर्ण, तापस-वेश दो शरीर होकर ार-नारायण रूप, रंग, स्वभावमें एक-से हैं । प्रकट वे उत्तराखण्डमें तपस्या करने चले आये । तपस्वियोंके

भगवान् नर-नारायण बद्रीनाथमें अविचल तप हैं । द्वापरमें भी अधिकारी ही उनके दर्शन पाते थे अधिकारी हों, वे आज भी पा सकते हैं । भगव अवतार कल्पतक तप करनेको हुआ । हमारी संस्कृ एवं तपकी संस्कृति है । भगवान् स्वयं उसका आदर्श कर रहे हैं । जहाँ पृथ्वीमें देश-भेदसे आराध्यरूपां विधान शास्त्रोंने किया है, वहाँ तपोभूमि भारतके भगवान् नर-नारायण ही कहे गये हैं ।

भगवान् कपिल

'पुत्र ! सृष्टिका अभिवर्द्धन करो । यही मेरी औ की सेवा है ।' भगवान् ब्रह्माको एक ही धुन है । वे अपने सभी पुत्रोंको उनका एक ही आदेश है । भाँति महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा अस्वीकार नहीं उसे स्वीकार करके बिन्दुसर तीर्थके समीप तप क उस समय तप ही समस्त उद्देश्योंका दाता था । भाँति कीटप्राय प्राणी उत्पन्न करना किसीको अ था । भगवान् प्रसन्न हुए । उन्होंने वरदान आदिराज मनु स्वयं आश्रममें पधारे और अपनी पुत्री का महर्षिसे परिणय कर गये ।

'कल्याणी ! तुमने मेरी सेवामें अपनेको सुखा अब तुम्हें जो अभीष्ट हो, माँग लो ।' महर्षि भोग-बुद्धिसे विवाह किया ही न था । विवाहके अपने तपमें लग गये । राजकुमारी देवहूति उनकी लगीं । समिधाएँ, कुश, फल तथा जल वनसे संग्र आश्रम स्वच्छ रखना—ये सब उनके कार्य हो ग दिन महर्षिका ध्यान पत्नीकी सेवापर गया । श्रम वे दुर्बल हो गयी थीं । मस्तकके सुगन्ध-सि कहाँ थे, वे तो अब जटा बन चुके थे । केवल वल्क तापसी थीं वे । महर्षि प्रसन्न हुए ।

देवहूतिको सन्ततिकी कामना थी । महर्षि योगप्रभाव प्रकट हुआ । दिव्य विमान, सहस्रों दास रत्नोपकरण—सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य थे विमानमें । देवहूतिके साथ विमानारोहण किया । गार्हस्थ्यमें व हो गये । नौ पुत्रियाँ हुईं । उनमें कला मरीचि अनसूयाका अत्रिसे, श्रद्धाका अङ्गिरासे, हविर्भूका

! मैं इन्द्रियोंके विषयमें मूढ़ बनी रही। मैंने
रम प्रभावको नहीं जाना। फिर भी आप-जैसे
ा सङ्ग कल्याणकारी होना चाहिये।' देवहूति अत्यन्त
ो रही थीं। उनके पति पुनः विरक्त होकर वनमें जा
इस बार वे अकेले जायँगे। यह विषयोंमें लगकर तो
र्थ चला गया। उनमें वैराग्यका पूर्णोदय हुआ।
लैभ विमान तथा उसके ऐश्वर्यमें उनका कोई आकर्षण

! व्याकुल मत हो। तुम्हारे गर्भसे परम पुरुष प्रकट
हैं। वे तुम्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे। मैं उनके
के ही यहाँसे जाऊँगा!' महर्षिको उन सर्वेशके दर्शन
आदेश लेकर तप करने गये। भगवान् कपिलने
त्त्वज्ञानका उपदेश किया। माताका समाधान करके
आज्ञासे समुद्र-तटपर गये। समुद्रने उन्हें अपने भीतर
ा। माता देवहूति उन परात्पर प्रभुको पुत्ररूपसे
न्य हो गयीं। उन्होंने उस उपदिष्ट ज्ञानमें चित्तको
र दिया। कुछ दिन दूसरोंके द्वारा उनका शरीर
क्षित होता रहा और कब वह वेणीकुसुमके समान
—इसका पता देवहूतिजीको लगा ही नहीं।

सहस्र सगर-पुत्र अश्वान्वेषणके लिये पृथ्वी खोदते
लाश्रम पहुँचे और महर्षि कपिलकी नेत्राग्निमें भस्म हो
ङ्गा-सागर-सङ्गमपर कपिलाश्रमके दर्शन तो हो जाते
; किंतु महर्षि कपिलका दर्शन तो वे जिस अधिकारी-
करें, उसे ही हो सकता है। वे सांख्य-दर्शनके
ज्ञान-मार्गके परमाचार्य प्रभु जगत्के कल्याणके लिये
ं स्थित हैं।

भगवान् दत्तात्रेय

त्के अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हों! मुझे वे अपने समान
प्रदान करें।' महर्षि अत्रि तप कर रहे थे। उनके
वल पितामहकी सृष्टि वर्द्धित करनेका आदेश था।

े एक ही जगदाधारकी आराधना की है।' महर्षिको
हुआ। उनके सम्मुख वृषभारूढ़ कर्पूर-गौर भगवान्
खर, हंसपर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान् चतुरानन
ड़की पीठपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी मेघसुन्दर
थ एक साथ प्रकट हुए थे। जगत्के तो तीनों ही

स्तुति की। तीनोंके अंशसे सन्तान-प्राप्तिका उन्हें वरदा

महासती अनसूयाकी गोद तीन कुमारोंसे भूषित
भगवान् शङ्करके अंशसे तपोमूर्ति महर्षि दुर्वासा,
ब्रह्माके अंशसे सचराचरपोषक चन्द्रमा और भगवान्
अंशसे त्रिमुख, गौरवर्ण, ज्ञानमूर्ति श्रीदत्तात्रेय प्रभु।

भगवान् दत्तात्रेय आदियुगमें प्रह्लादके उप
अजगर मुनिके वेशमें प्रह्लादजीको उन्होंने अवधूतकी
का उपदेश किया है। महाराज अलर्कको उन्होंने त
उपदेश किया। कुत्तोंसे घिरे, उन्मत्त-सा वेश बना
सिद्धोंके परमाचार्यको पहचानना बहुत उच्च-कोटिके अ
का ही काम है।

गिरिनार प्रभुका सिद्धपीठ है। दक्षिणमें दत्तात्रेयकी
का व्यापक प्रचार है। सिद्धोंकी एक परम्परा ही भगवान्
को उपास्य मानती आयी है। इनमें 'रस-सिद्धि' का बहु
था। ये सिद्धियाँ भले लोगोंको प्रलुब्ध करें और कु
कामनावश सामान्य साधक इन्हींको लक्ष्य बनाते हैं
भगवान् दत्तात्रेयके उपदेश मनुष्यको इन प्रलोभनोंसे
करते हैं। साधनके द्वारा परमपुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति है
का सच्चा लक्ष्य है। योग-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ
दत्तात्रेयके कहे जाते हैं। दक्षिणमें भगवान् दत्तकी उ
बहुत प्रचार है।

भगवान् यज्ञ

स्वायम्भुव मन्वन्तर—इस कल्पके प्रथम मन्वन्तर
अनाहारसे क्षीण हो रहे थे। देवताओंके दुर्बल होने
जगत् नष्ट होता जा रहा था। वर्षा, अन्न, अग्नि, व
पृथ्वी—सब निःसत्त्वप्राय हो चले। यमराज क्या क
यहाँ प्राणियोंका एक ही अपराध था कि वे अशक्त
प्रमाद था। उनके सम्मुख कोई व्यवस्थित कृत्य भी
था। तीनों लोक इस अवस्थासे त्रस्त हो रहे थे।

प्रभु तो सदासे आर्त-पुकार सुननेवाले हैं।
प्राणियोंकी पुकार सुनी। महर्षि रुचिकी पत्नी आकूति
हुए। उन्होंने अग्निहोत्रकी स्थापना की। उन्हींके नाम
होत्र यज्ञ कहा जाने लगा। हवनसे देवता पुष्ट हुए।
की शक्तिसे जगत् शक्तिसम्पन्न हुआ। देव-पूजा
अपनी और पदार्थोंकी शक्तिका नाश करनेवाले वर्तम
प्राणी इसे कैसे समझेंगे। पदार्थ आज चाहिये

भगवान् ऋषभदेव

राज नाभिने सन्तान-प्राप्तिके लिये यज्ञ किया । तपः
त्विजोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे यज्ञ-पुरुषकी स्तुति की ।
ा प्रकट हुए । विप्रोंने उन सौन्दर्य, ऐश्वर्य, शक्ति-
ान ही नरेशको पुत्र हो, यह प्रार्थना की । उस अद्वय-
दूसरा कहाँसे आये । महाराज नाभिकी महारानीकी
यं वही परमतत्त्व प्रकट हुआ ।

ाज नाभि कुमार ऋषभदेवको राज्य देकर वनके लिये
ाये । देवराज इन्द्रको धराका वह सौभाग्य ईर्ष्याकी
पड़ा । अखिलेशकी उपस्थितिसे पृथ्वीने स्वर्गको
दासे लज्जित कर दिया था । महेन्द्र वृष्टिके अधिष्ठाता
ी न हो तो पृथ्वीका सौन्दर्य रहे कहाँ । शस्य ही तो
म्पत्ति है । देवराजको लज्जित होना पड़ा । वर्षा बंद
। भगवान् ऋषभने अपनी शक्तिसे वृष्टि की ।
देवराजने अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह कर दिया
थसे । पृथ्वी और स्वर्गमें सम्बन्ध स्थापित हुआ ।

ौ पुत्र हुए ऋषभदेवजीको । इनमें सबसे ज्येष्ठ
रत हुए । इन्हीं आर्षभ भरतके नामपर यह देश
कहा जाता है । शेष पुत्रोंमें नौ ब्रह्मर्षि हो गये
ासी महातपस्वी हुए । भरतका राज्याभिषेक करके
वानप्रस्थ स्वीकार किया ।

, गौ, मृग, कपि आदिके समान आचरण, आहार-
वासादि जडयोग हैं । ये सिद्धिदायक हैं और संयम-
भी । भगवान् ऋषभने इनको क्रमशः अपनाया,
; किंतु इनकी सिद्धियोंको स्वीकार नहीं किया ।
श्चर्याका अनुकरण जो सिद्धियोंके लिये करते हैं, वे
परमादर्शको छोड़कर पृथक् होते हैं ।

मानन्दकी वह उन्मद अवधूत अवस्था—बिखरे
अवच्छन्न शरीर, न भोजनकी सुध और न प्यासकी
किसीने मुखमें अन्न दे दिया तो स्वीकार हो गया ।
ीरको आवश्यकता हुई, मलोत्सर्ग हो गया ।
व्यदेहका मल अपने सौरभसे योजनोंतक देशको
कर देता । जहाँ शरीरका ध्यान नहीं, वहाँ शौचा-
पालन कौन करे । यह आचरणीय नहीं—यह तो
है । शरीरकी स्मृति न रहनेपर कौन किसे सचेत

भारतके पश्चिमीय प्रदेश—कोंक, वेंक, कुटकादि
भगवान् ऋषभदेव भ्रमण कर रहे थे । उनका शरीर
किंतु अनाहारसे कृश हो गया था । वनमें दावाग्नि
देह आहुति बन गया ।

जैनधर्म भगवान् ऋषभको प्रथम तीर्थङ्कर मा
उन्हींके आचारकी व्याख्या पीछेके जैनाचार्योंने की

भगवान् हंस

'चित्त स्वयं त्रिगुणात्मक है और तीनों गुण नि
रहते हैं । इनका सम्बन्ध स्थायी है । ऐसी दशामें नि
की प्रतिष्ठा कैसे होगी ?' सनकादि कुमारोंने
प्रश्न किया । यदि चित्त गुणहीन नहीं हो सकता
किस प्रकार सम्भव है ? हिंदू-धर्मका परम लक्ष्य तो
यदि वही सिद्ध न हो तो सम्पूर्ण धर्म ही व्यर्थ हो
ब्रह्माजीने बहुत सोचा; परंतु प्रश्नमें कहाँ सन्देहका
पता न लगा । वे आदिपुरुषका ध्यान करने लगे ।

'आप कौन हैं ?' वहाँ एक महाहंस प्रकट
जैसे सहस्र-सहस्र चन्द्रज्योत्स्ना घनीभूत हो ग
कुमारोंके साथ लोकस्रष्टाने अर्घ्य निवेदित करके
जानना चाहा ।

'मैं क्या कहूँ---यह आपलोग स्वयं निर्णय
हंसकी वाणीमें विचित्र भंगी थी । 'आत्मामें कोई
कोई परिचय नहीं और शरीरकी दृष्टिसे भी स
पञ्चतत्त्व हैं । उनमें भी कोई विलक्षणता नहीं । अ
ब्रह्मज्ञानी हैं । आप स्वयं सोचें कि गुणोंमें चित्त
और चित्तमें गुण हैं; पर मुझमें तो चित्त और गु
हैं तथा दोनों नहीं हैं । स्वप्नमें देखनेवाला, देखनेव
और दृश्य—सब क्या भिन्न-भिन्न होते हैं ?' भगवान्‌ने
सन्देहका निराकरण कर दिया । ब्रह्माजीके साथ
उनकी विधिवत् पूजा की ।

भगवान् धन्वन्तरि

बात समझमें आये या न आये; पर सत्य यही
सम्पूर्ण जड-चेतन जगत् दैवी जगत्से प्रकट हुआ
परस्पर विकसित नहीं है । देवता एवं दैत्योंके स
प्रयासके श्रान्त हो जानेपर क्षीरोदधिका मन्थन स
सागरआरी कर रहे थे । हलाहल, गौ, ऐरावत, उ

हाथमें अमृतपूर्ण स्वर्णकलश लिये श्यामवर्ण, भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।

त-वितरणके पश्चात् देवराज इन्द्रकी प्रार्थनापर धन्वन्तरिने देव-वैद्यका पद स्वीकार कर लिया। उनका निवास बनी। कालक्रमसे पृथ्वीपर मनुष्य त्यन्त पीड़ित हो गये। प्रजापति इन्द्रने धन्वन्तरिजी- ा की। भगवान्ने काशिराज दिवोदासके रूपमें अवतार धारण किया। इनकी 'धन्वन्तरि-संहिता' ा मूल ग्रन्थ है। आयुर्वेदके आदि आचार्य सुश्रुत न्वन्तरिजीसे ही इस शास्त्रका उपदेश प्राप्त किया।

भगवान् मोहिनीरूपमें

ादधिका मन्थन हुआ। प्रत्येक वस्तुके लिये ले दैत्य जैसे ही धन्वन्तरि प्रकट हुए, उनके हाथसे ा छीनकर भागे। उनमेंसे प्रत्येक प्रथम अमृत- । चाहता था। किसीको किसीपर विश्वास नहीं था। ही सब पी जाय तो?' कलशपर छीना-झपटी चल देवता निराश खड़े थे। असुर भी समझ रहे थे यह द्वन्द्व न मिटा तो अमृत व्यर्थ गिरकर नष्ट हो कोई समाधान ज्ञात नहीं होता था।

हरि, हम सब महर्षि कश्यपके पुत्र हैं। हममें इस द्रवके लिये विवाद हो रहा है। तुम्हारी बड़ी कृपा ममें इसका उचित विभाजन कर दो। हमने इसके न श्रम किया है।' एक अपरूप लावण्यवती नारी क्ष हुई। सब उसके रूपसे मुग्ध थे। सब उसे रना चाहते थे। असुरोंने उसीको मध्यस्थ बनाना ब परस्पर इस निर्णयसे सहमत थे।

हैं मेरे कुल, शील आदिका पता नहीं, तुम मुझपर स कर रहे हो?' नारीने अपने कोकिल-कण्ठकी भ्रूविलास, मन्दहास्यादिसे पूर्ण कर दी। असुर ध्यानसे अधिक विश्वस्त हुए।

उचित विभाजन करूँ या अनुचित—तुमलोग धा न दो, तभी इस कार्यको करूँगी।' बात ठीक मध्यस्थके निर्णयमें अपनी सम्मति बाधा दे तो े होगा।

दैत्य दोनों वर्गोंने स्नान किया, नूतन अनाहत वस्त्र

'यह असुर है!' सूर्य एवं चन्द्रने नेत्रोंसे संकेत नारी असुरोंके समीपसे चल रही थी और दूरस्थ अमृत-पान करा रही थी। असुरोंको उससे प्रेम सम्भावना थी। वे उसकी भाव-भंगीसे मुग्ध थे स्त्रीसे विवाद न करनेकी प्रतिज्ञा करके फिर झगड़ना नहीं था। वे मौन बैठे थे। छायापुत्र स्वर्भानु (राहु न रख सका। वह देवताओंका रूप धारण करके और सूर्यके समीप जा बैठा। जैसे ही उसे अमृतघूँ दोनों देवताओंने संकेत कर दिया।

'यह तो विष्णु हैं!' असुर चौंके। नारी सहसा घनश्याम, पीताम्बरधारी पुरुष हो गयी। उन परम चक्रसे राहुका मस्तक कटा पड़ा था। असुरोंने शस्त्र देवासुर-संग्राम होने लगा।

भगवान्की यह नित्य लीला है। जगत्में भी एक रूप है। 'कामिनां बहु मन्तव्यं संकल्पप्रभ कामनाके वश पुरुषके लिये अभीष्टसिद्धि ही सब बु यह दृश्य जगत्, इसके पदार्थ, यह आकर्षण— मायापतिकी मोहिनी है। सब कामके वश उसे भूल मायारूपमें मुग्ध हैं। यह आसुर भाव अमृतसे व रहा है। वे प्रभु दया करें, तभी उनका वास्त बुद्धिमें प्रतिष्ठित हो।

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्य
कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि

(श्रीमद्भा० ८ । १

भगवान् हरि

बात अधिदेव-जगत्की है—

क्षीरोदधिके मध्यमें विशाल द्वीप है। उसपर वरुणका ऋतुमत्नामक क्रीड़ाकानन है। काननमें गजेन्द्र अपनी हथिनियों, कलभों तथा दूसरे गजों स्वेच्छापूर्वक घूमते रहते थे। महर्षि अगस्त्यको न देनेसे राजा सुद्युम्न शाप होकर इस कुञ्जरयोनि थे। उनके अमित पराक्रमके सम्मुख सिंहादि तुच्छ वे उनके गण्डमण्डलकी मदधाराकी गन्धसे ही दूर भा

रा स्वच्छ सरोवर गजोंकी क्रीड़ासे क्षुब्ध हो गया। हँसे जल उछाल रहे थे। गजेन्द्र उन्हें स्नान कराते, ड़से जल पिलाते और स्वयं उनके द्वारा स्नात होते। रवार स्नेहसे उनका सत्कार कर रहा था।

नहीं कहाँसे एक मगरने गजेन्द्रका चरण पकड़ उन्होंने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। बल लगाया। थियोंने उन्हें अपनी सूँड़से सहायता दी, हथिनियाँ में, कभी बाहर दौड़ने लगीं। कोई सफल न हुआ। हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। पराक्रम कम नहीं था। गजेन्द्र बाहर खींचना र ग्राह भीतर। जल कीचड़ होने लगा। कमल गये। जलजीव व्याकुल हो गये। सहस्र वर्षोंतक चलता रहा।

द्रका बल थकित हो गया। जलमें जलजीवसे युद्ध करें। अब डूब जायँगे—अब और नहीं टिका। शिथिल शरीर खिंचा जा रहा था। सूँड़से एक ड़कर उठाया ऊपर और पुकार की 'विश्वेश्वर! नारायण!'

वान्‌ने हरिमेधस ऋषिकी पत्नी हरिणीमें अवतार या था। वे गरुड़ारूढ़ प्रभु दौड़े। गजेन्द्र उन्हें थे, ब्रह्मादि देव गजेन्द्रके साथ उनका स्तवन कर चक्र चमका और ग्राह अपने शरीरसे छूटकर पुनः पा गया। गजेन्द्रको प्रभुने अपने हाथों उठाया। स्पर्श प्राप्तकर उनके दिव्य नित्य पार्षद हो गये।

भगवान् हयशीर्ष

कल्प भेद हरि चरित सुहाए।

ोदधिमें अनन्तशायी प्रभुकी नाभिसे पद्म प्रकट पद्मकी कर्णिकासे सिन्दूरारुण चतुर्मुख लोकस्रष्टा ए। क्षीरोदधिसे दो बिन्दु कमलपर पहुँच गये। गत्मक नाभिपद्म—दोनों बिन्दु सजीव हो गये। वे देदैत्य मधु-कैटभ थे। दैत्योंने कमलकर्णिकापर बैठे को देखा। वे एकाग्र मनसे भगवान्‌के निःश्वाससे श्रुतियोंको ग्रहण कर रहे थे। दैत्योंने श्रुतिका हरण ौर वहाँसे नीचे भाग गये। आदिमें ही अनधि- को श्रुतिकी प्राप्ति—ब्रह्माजी चञ्चल हुए। उन्होंने की स्तुति प्रारम्भ की। प्रभु प्रसन्न हुए, उन्होंने रूप धारण किया। दैत्योंको मारकर उन्होंने श्रुतिका किया।

× × × ×

दूसरे कल्पकी बात—

दितिपुत्र हयग्रीव सरस्वतीके तटपर उग्रतपमें था। महामाया प्रसन्न हुई। उन्होंने वरदान माँगनेव दैत्यको अमरत्व अभीष्ट था; किंतु कोई भी आसुर होकर अमर कैसे हो सकता है। 'मुझे हयग्रीवके कोई न मारे!' दैत्यने समझा कि मैं स्वयं अपना व करूँगा। देवीने 'तथास्तु' कह दिया। असुरक उसका छल सफल हो गया। वह अमर ही तो हो ग

सात्त्विकता न हो तो अमरत्व जगत्‌के लिये बनेगा। दैत्य हयग्रीव निःसंकोच अपनी असुरता कर रहा था। देवता उससे विजय नहीं पा सकते थे एवं मर्यादाका विनाश हो रहा था। सर्वेश्वर कब अधर्म चलने देते। हयग्रीवने देखा कि अङ्गारतप्त जैसा, मुखसे ज्वाला निकालता हयशीर्ष पुरुष प्रकट है। दैत्य उस ज्वालामें पतिंगेकी भाँति नष्ट हो गया

भक्तश्रेष्ठ ध्रुवके लिये भगवान्‌का अवत

वह ध्रुव जो समस्त मार्गनिर्देशकोंका मार्गद वह ध्रुव जो चल नक्षत्रोंमें स्थिर है, वह ध्रुव जो शुभ स्मरण किया जाता है, वह ध्रुव जिसकी समस्त नक्ष परिक्रमा करता है, भगवान्‌के उसी अविचल अधिष्ठाताकी बात है—

मनुके पुत्र महाराज उत्तानपाद अपनी छो सुरुचिपर अधिक आकृष्ट थे। बड़ी रानी सुनीतिके पिताकी गोदमें बैठ गये थे। पतिप्रेम-गर्विता बालकको गोदसे बलात् उतार दिया। 'तुझे पिता या पिताका सिंहासन चाहिये तो भगवान्‌की आराध मेरे उदरसे उत्पन्न हो। इनपर मेरे पुत्र अधिकार है।'

'तुम्हारी विमाताने ठीक ही कहा है। भगवान् पिताका सिंहासन या उससे भी श्रेष्ठ पद देनेमें सम सुनीतिके नेत्र स्वयं क्षोभसे भर आये थे। उनका पुत्र तिरस्कारके कारण हिचकियाँ ले रहा था। वे कैसे आश्वस्त करें।

'मैं वह पद चाहता हूँ, जिसे मेरे पिता, पि और किसीने भी न पाया हो!' पाँच वर्षका बालक माताके वचनोंपर विश्वास करके वनको चल पड़ा था

शिक्षा दी। जब कोई बात ध्रुवके हृदयपर न बैठ
वे द्रवित हुए। द्वादशाक्षरकी दीक्षा देकर मधुवन
) में यमुनातटपर जानेका आदेश दे दिया।

बालक सही, पर वह आदियुगकी निष्ठा और
था। पहले महीने कपित्थ (कैथ) और बेर, दूसरे
पत्ते, तीसरे महीने जल, चौथे महीने केवल वायु—
नित्य नहीं, इनको ग्रहण करनेकी अवधि भी बड़ी
। पाँचवें महीने तो वह बालक एक चरणसे खड़ा
श्वास लेना बंद कर दिया। मन्त्रके अधिष्ठाता
वासुदेवमें चित्त एकाग्र हो गया।

ा विघ्न करते हैं उसे, जो बाहर देखता है। वर्षा,
ायु, शीत, सर्प, व्याघ्र या वसन्त और काम उसका
जो श्वासतक नहीं लेता। जिसे शरीरका पता ही
देवताओंकी कठिनाई बढ़ती जा रही थी। ध्रुव
में एकाग्र होकर श्वासरोध किये हुए थे। देवताओंका
स्वतः हो रहा था। वे बहुत पीड़ा पा रहे थे।
प्रभुसे प्रार्थना की उस बच्चेको तपसे निवृत्त

यकी वह ज्योति अन्तर्हित हो गयी। व्याकुल ध्रुवने
और चकित देखते रहे। वही सुनील, सुमधुर,
वनमाली, कमललोचन, रत्नकिरीटी बाहर प्रत्यक्ष
ध्रुव अज्ञान बालक—उसने हाथ जोड़े। सुना था
ान्‌की स्तुति करनी चाहिये। क्या कहे? क्या करे?
ुछ जानता नहीं। उन सर्वज्ञने मन्दस्मितके साथ
थ बढ़ाया। करस्थ श्रुतिरूप शङ्खसे बालकके कपोल-
कर दिया। बालकके मानसमें हंसवाहिनी जाग्रत्
।

को अविचल पदका वरदान मिला था; पर वे प्रसन्न
सर्वेश्वरको प्राप्तकर फिर याचना क्या। उनको
के लिये प्राप्त किया जा सकता था। महाराज
र तो जबसे ध्रुव वन गये, निरन्तर उन्हींका चिन्तन
। अपनी भूल उनके हृदयका शूल बन गयी थी।
ताने स्वागत किया। विमाता इस प्रकार मिलीं,
उनके ही पुत्र हों। जिसपर विश्वेश प्रसन्न हों,
भी प्रसन्न रहते हैं। पिताने ध्रुवको सिंहासनपर
किया और स्वयं वानप्रस्थ स्वीकार करके तप

गये थे। कुबेरके किसी अनुचरने उनको मार डाला
की माता पुत्रशोकसे वनमें गयीं और दावाग्निमें ज
ध्रुवने कुबेरपर भ्रातृवधसे क्रुद्ध होकर चढ़ाई की।
यक्ष मारे गये। पितामह मनुने ध्रुवको शान्त किया
शान्त होनेपर कुबेरने दर्शन देकर आश्वस्त किया,
दिया।

संसारमें प्रारब्ध शेष हो गया। दिव्य विमा
ध्रुवको लेने। विप्रोंके मङ्गलपाठके मध्य ध्रुव विम
करने जा रहे थे। 'मर्त्यलोकके प्रत्येक प्राणीका
करता हूँ।' मृत्युने प्रार्थना की। प्रार्थनासे अधिकर्क
थी नहीं। ध्रुव हँसे, 'तुम्हें मेरा स्पर्श प्राप्त हो!'
मस्तकपर पैर रखकर विमानमें बैठ गये वे। मार्गमें
माताका उन्हें स्मरण हुआ। भला, कहीं ऐसे पुत्रव
मर्त्यलोकमें रहेंगी। वे ध्रुवसे आगे जा रही थीं।

वह अविचल धाम ध्रुवको प्राप्त हुआ। ध्रुव व
भी भगवान्‌की उपासना करते हैं। उत्तर दिशामें
स्थानपर स्थित वही ज्योतिर्मय ध्रुव-धाम है, जो रात्रि
गगनमें दीख पड़ता है।

भगवान् आदिराज पृथुके रूपमें

'कुपुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना ही भला
महाराज अङ्गने देवताओंका यजन करके पुत्र प्रा
और वह पुत्र घोरकर्मा हो गया। प्रजा उसके उपद्रवों
त्राहि करने लगी है। ताड़नादिसे भी उसका शासन
पाता। महाराजको वैराग्य हो गया। रात्रिमें ही वे
अज्ञात वनमें चले गये।

'कोई यज्ञ न करे! कोई किसी देवताका
करे। एकमात्र राजा ही प्रजाके आराध्य हैं! उ
करनेवाला कठोर दण्ड पायेगा।' भेरीनादके सा
ग्राममें घोषणा हो रही थी। महाराज अङ्गका कोई
लगा। ऋषियोंने उनके पुत्र वेनको सिंहासनपर
राज्य पाते ही उसने यह घोषणा करायी।

'राजन्! यज्ञसे यज्ञपति भगवान् विष्णु तुष्ट
उनके प्रसन्न होनेपर आपका और प्रजाका भी कल्याण
ऋषिगण वेनको समझाने एकत्र होकर आये थे
दर्पमत्तने उनकी अवज्ञा की। ऋषियोंका रोष हुंकार
कुशोंमें ही ब्रह्मास्त्रकी शक्ति बन गया। वेन मारा

;; कमलाक्ष पुरुषको देखकर ऋषिगण प्रसन्न राजकता होनेपर प्रजामें दस्यु बढ़ गये थे । चोरी, ; मर्यादानाश, परस्वहरणादि बढ़ रहे थे । शासक था । ऋषियोंने एकत्र होकर वेनके शरीरका रम्भ किया । उसके ऊरुसे प्रथम ह्रस्वकाय, कृष्ण- उत्पन्न हुआ । उसकी सन्तानें निषाद कही गयीं । लता रहा । दक्षिण हस्तसे पृथु और वाम बाहुसे नित्य-सहचरी लक्ष्मीस्वरूपा आदि-सती अर्चि ।

राज हम सब क्षुधासे मरणासन्न हैं । हमारी रक्षा श्वमें प्रथम राजाके सम्मुख प्रजा पुकार कर रही में पहला अकाल पड़ा था । न फल थे, न अन्न । जा रहे थे । वेनके अत्याचारसे देवशक्ति क्षुभित । देवताओंका रोष मानवके अभ्युदयका घातक होगा न आचारहीन, कुकर्मरत हो गया । त्रेताके आदिमें भोगके लिये नहीं थे । सम्पूर्ण पदार्थ यज्ञार्थ थे । ल यज्ञावशेषभोजी था । जब मनुष्यने पदार्थोंको वे समझना प्रारम्भ किया, धराने उनका उत्पादन देया ।

मेदिनी—यह मेरी अवज्ञा करती है !' पृथुने [पु]कार सुनी । धरा अन्न देती क्यों नहीं ? नेत्रोंमें ायी । आजगव धनुषपर बाण चढ़ाया उन्होंने ! मेदसे सबको तृप्त करूँगा ! लोकका धारण मेरी करेगी !' उन्हींकी योगमाया तो लोक धारण ।

, मुझे क्षमा करें । 'काँपती, भीता गोरूपधारिणी हुई ।' मुझे समान करें, जिसमें वर्षाका जल टिक योग्य वत्स हो तो मैं कामदुहा (अभीष्ट फल) हूँ ।'

ने पृथ्वीका दोहन किया । भूमि समान की गयी । प्रारम्भ हुआ । मनुष्यने तरु एवं गुफाओंका नेवास छोड़ दिया । समाज बना । नगर, ग्राम, र्वट आदि बसाये गये । इस प्रकार पृथुने प्रजाकी की ।

ने धराको पुत्री माना । तबसे यह भूमि पृथ्वी कही । वे ही प्रथम नरेश थे । मनुष्यको नगर, ग्रामादिमें वर्तमान संस्कृति एवं सभ्यताको उन्होंने ही जन्म है । उन आदि शासकका मानवके लिये यही अ जबतक मानव उनके आदेशपर चला, सुख एवं शा नित्य प्राप्त रही; आदेश भङ्ग करके वह पीड़ा एव चिन्तामें उलझ गया ।

भगवान् व्यास

महर्षि पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन भगवा हैं । उत्पन्न होते ही वे मातासे आज्ञा लेकर तप चले गये । द्वीपमें जन्म होनेसे व्यासजी द्वैपायन क उनका वर्ण घननील है, अतः उन्हें कृष्णद्वैपा जाता है ।

आदियुगमें वेद एक ही था । महर्षि अङ्गिरा सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछे संगृहीत यह संग्रह छान्दस, आङ्गिरस या अथर्ववेद कहला भाग एक ही रूपमें था । भगवान् व्यासने उसमेंसे गायनयोग्य मन्त्रों और गद्यभागको पृथक्-पृथक् किया । इस प्रकार ऋग्वेद, सामवेद और वर्तमान स्वरूप निश्चित हुआ । इस कार्यसे वे कहलाये ।

स्त्री, शूद्र तथा पतित द्विज (द्विजबन्धु) अधिकारी नहीं थे । उत्तरोत्तर द्विजबन्धुओंकी संख जा रही थी । उनका उद्धार भी होना ही चाहिये दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराण भी लुप्त हो भगवान् व्यासने पुराणोंका संकलन किया । निष्ठाके उनमें आराध्यके रूपकी प्रतिष्ठा हुई । वेदार्थ स सहज-सुलभ हो गया । अष्टादश पुराणोंके बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी उन्हींके हैं ।

पुराण बहुत विस्तृत हैं । उनमें कल्पभेदसे भेद आया है । समस्त चरित इस कल्पके अनु समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्षसम्बन्धी सिद्धान्त एक विचारसे उन्होंने महाभारतकी रचना की । पञ्चम वेद कहा गया । श्रुतिमें जो कुछ है, म भगवान् व्यासने उसको एकत्र कर दिया है । भगव बोलते जाते थे और साक्षात् गणेशजी लिख रहे प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ ।

उपासना तथा साधनकी प्रतिष्ठा दर्शनशास्त्र

B. K. Mitra

। हुआ है, कोई दर्शन उसे व्यक्त नहीं करता था। व्यासने उन सिद्धान्तोंको सूत्ररूपमें ग्रथित किया। ग्रन्थ वेदान्त-दर्शन या उत्तरपूर्वमीमांसा कहा जाता तके सम्प्रदायोंमें उसीको मानकर चलनेकी प्राचीन ।

वान् व्यास कल्पान्ततक रहेंगे। श्रीआद्य शंकराचार्यने र्शन पाये थे। और भी अनेक महापुरुषोंको उनका लाभ हुआ, यह वर्णन मिलता है। उनका

स्थानीय आश्रम बद्रीनाथ धाम है, पर वे लोक करते रहते हैं। उच्च कोटिके अधिकारी उन्हें देख

हिंदू-संस्कृतिका वर्तमान स्वरूप भगवान् सम्हाला एवं सजाया गया है। यह अनादि सनातन आज भगवान् व्यासके पुराणों, महाभारत तथा दूसरे अवलम्बित है। भगवान्ने स्वयं इस रूपमें अवता करके कलिके मानवोंके लिये श्रुतिका तात्पर्य दिया है।—सु०

कुछ आदर्श ऋषि-महर्षि

सनकादि कुमार

का आदिकाल ही था। भगवान् ब्रह्माने अपने नारायणका साक्षात्कार किया। वे सृष्टिमें संलग्न र्वप्रथम उनके चार मानस पुत्र हुए—सनक, सनातन और सनत्कुमार। चारों नित्यसिद्ध, ज्ञान-न-विरक्त। उन्होंने पिताकी आज्ञा होनेपर भी सृष्टि-कार नहीं किया। वे सदा अपने योगबलसे अथवा हरिः शरणम्' मन्त्रके जप-प्रभावसे पाँच वर्षके ही हैं। जनलोकमें निरन्तर भगवच्चर्चाको छोड़ उन्हें ई कार्य नहीं। लोकोद्धारके लिये लोक-पर्यटन भी

त्कुमारसंहिता' धर्मशास्त्रका मुख्य ग्रन्थ है। के प्रधानाचार्योंमें ये कुमारचतुष्टय हैं। देवर्षि इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया। ज्ञानमार्गके ादिप्रवर्तक हैं ही। भगवान्के ये स्वरूप ज्ञान, क्तिकी प्रतिष्ठाके लिये हैं। शैशव ही निरपेक्षावस्था व-भावके साथ वह अवस्था भी चिरस्थायी हो गयी । जय-विजय इन्हींके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः ापु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-हुए। ज्यौतिष और आयुर्वेदका भी इन्हें आचार्य है।

सप्तर्षि

र्षि-मण्डल आकाशमें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्मण्डलोंमें है। धिष्ठाता ऋषिगण लोकमें ज्ञान-परम्पराको सुरक्षित

हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें इनमेंसे कुछ ऋषि परिवर्तित हैं। इनकी नामावली (विष्णुपुराणके अनुसार) इस प्रक

प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तरमें—मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ।

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरमें—ऊर्ज, स्तम्भ प्राण, पृषभ, निरय और परीवान्।

तृतीय उत्तम मन्वन्तरमें—महर्षि वशिष्ठके सात

चतुर्थ तामस मन्वन्तरमें—ज्योतिर्धामा, पृथु चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर।

पञ्चम रैवत मन्वन्तरमें—हिरण्यरोमा, वेदश्री बाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि।

षष्ठ चाक्षुष मन्वन्तरमें—सुमेधा, विरजा, ह उतम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु।

वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरमें—काश्य वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज।

अष्टम सावर्णिक मन्वन्तरमें—गालव, द परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यश्रृङ्ग और व्यास।

नवम दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें—मेधातिथि सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवन और भव्य।

दशम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोमूर्ति, ह सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु।

एकादश धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें—वपुष्मान् आरुणि, निःस्वर, हविष्मान्, अनघ, और अग्नितेजा

द्वादश रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोद्युति, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति और तपोधृति।

१ इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमें—अग्नीध्र, अग्नि-
चे, युक्त, मागध, शुक्र और अजित ।

ऋषियोंमेंसे सब कल्पान्त-चिरजीवी, मुक्तात्मा और
ारी हैं ।

देवर्षि नारद

देवर्षिके तीसरे जन्मकी बात है—

वान् ब्रह्माकी सेवामें अप्सराएँ और गन्धर्वगण
थे । वे नृत्य एवं गीतसे उन जगत्स्रष्टाकी आराधना
। गन्धर्वश्रेष्ठ उपबर्हण अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ
त्रसौन्दर्य एवं कलाके गर्वने उन्हें प्रमत्त कर दिया
ाराधनाका भावमय सङ्गीत केवल कला ही तो नहीं
महने देखा और शाप दिया 'तुम शूद्र हो जाओ !'
ेवा— ऐन्द्रियक तृप्ति ही तो शूद्रत्वका कारण है ।
र्षिका दूसरा जन्म—

तपस्वी विप्रका आश्रम था । आश्रम-सेविका एक
सीकी गोदमें छोटा-सा बालक था । दासी और
तना ही था यह परिवार । आश्रममें प्रायः परिव्राजक
ारते । बालकका चित्त उनकी सेवामें लगता था ।
ी उसका चित्त किसी अज्ञातकी ओर आकर्षित था ।
तथा उपभोगके पदार्थोंमें रुचि थी नहीं । संतोंका
प्राप्त होता, उनकी वाणी कर्णोंको पवित्र करती,
ावाका सौभाग्य मिलता ।

संतोंने चातुर्मास्य किया उस आश्रममें । बालक
उनके समीप रहनेका प्रयत्न करता । सुशील सरल
महात्माओंका स्नेह स्वाभाविक ही था । चार महीने
ुए । उन भ्रमणशील साधुओंको प्रस्थान करना था ।
श्रद्धा, व्याकुलताने द्रवित किया । महात्माओंने
का ध्यान तथा मन्त्रका उपदेश किया ।

भी ऐसा ही बनूँगा !' जन्मसे बालककी महान् उच्च
त्रा विरक्तोंको देखकर उमड़ती थी । अब उसे एकान्त
। वन चाहिये । लेकिन माताका स्नेह—वह है भी
-पाँच वर्षका ही । भगवान्‌को कृपा करनी होती है
य नहीं देखा करते । वह शूद्रा दासी सायंकाल अन्ध-
गो-दोहन कर रही थी । एक सर्पने उसके पैरमें काट
था । अब कोई उसको घड़ी-घड़ीपर ढूँढ़नेवाला नहीं
रात्रिमें ही वह चल पड़ा ।

सुन्दर सरोवरतट, अश्वत्थका अरुण पत्तोंसे
बालकको पसंद आया । वह प्रायः चलते-चलते थ
था । पीपलकी जड़में बैठकर ध्यान करने लग
अलौकिक ज्योति हृदयमें विद्युत्‌की भाँति चमक गयी

'तुम इस जन्ममें मेरा साक्षात् नहीं पा सकते
तो मैंने अनुग्रह करके दर्शन दिया ।' बालक बराबर
व्याकुल होकर प्रयत्न कर रहा था । आकाशवाणी
उसने उस दिशाकी ओर मुख करके भूमिपर मस्तक
जिधरसे शब्द आया था । अब उसे भगवद्गुण-ग
लोकमें असङ्ग विचरण करना था ।

देवर्षिका वर्तमान स्वरूप—

सृष्टिके समय भगवान् ब्रह्माके मनसे देवर्षि उत्प
उन्होंने निवृत्तिमार्ग स्वीकार किया । भगवान् ब्रह्
वीणा लेकर बराबर भगवन्नाम-गुण गाते रहना
स्वभाव है । पहले वे आश्रम बनाकर निवास क
प्रह्लादकी माता, जब प्रह्लादजी गर्भमें थे, देवर्षिके
बहुत दिन रही थीं । प्रजापति दक्षके ग्यारह सहस्र
निवृत्तिपथमें देवर्षिने लगा दिया । इससे क्रुद्ध होक
शाप दे दिया कि वे कहीं दो घड़ीसे अधिक न ठहर
तबसे वे नित्य परिव्राजक हो गये ।

देवर्षिका एक ही व्रत है—जीवमात्रका कल्य
जैसा अधिकारी है, उसे वैसे मार्गमें लगा देते हैं
ओर वे बालक ध्रुवके उपदेष्टा हैं तो दूसरी ओर कंस
भी । सच्चे अर्थमें केवल वही अजातशत्रु हैं । दे
सभी उनका सम्मान करते हैं । सबका उनपर वि
सब उनसे सम्मति पानेको उत्सुक रहते हैं ।

भागवत-धर्मका आधार पाञ्चरात्र तो देवर्षिसे
ही, भक्तिमार्गके द्वादश आचार्योंमें मुख्य होनेके
सङ्गीत-विद्या, ज्यौतिष, आयुर्वेद, नीति आ
मुख्याचार्य हैं । उनकी संहिताएँ इन विषयोंके
आधार हैं । वे लोकपर्यटक सदा ही अधिकारीक
देते हैं । हिंदू-संस्कृतिके व्यवस्थापक भगवान्
प्रेरक हैं ।

महर्षि वशिष्ठ

स्वीकार किया । मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम-कुलगुरु होनेका सौभाग्य आपको ही प्राप्त था। श्रेष्ठ वर्तमान मन्वन्तरके आदिमें ब्रह्माजीके मानस

ष्ठजीने परशुरामजीके कोपसे रघुवंशकी रक्षा की। ने द्वेषवश उनके समस्त पुत्रोंका नाश कर दिया, ने क्रोध प्रकट नहीं किया । महर्षि वशिष्ठके पुत्र शक्तिके पराशर और पराशरजीके भगवान् व्यास हैं। सप्तर्षिमण्डलमें अपनी पत्नी अरुन्धतीजीके साथ । वशिष्ठसंहिताके अतिरिक्त वशिष्ठजीके श्रौत-सूत्र, शुल्ब-सूत्र तथा वशिष्ठस्मृति—ये ग्रन्थ भी मिलते ष्ठजी भगवान् श्रीरामके समयतक पृथ्वीपर प्रत्यक्षरूपसे न्होंने अपने तपोबलसे रघुवंशके चक्रवर्ती नरेशोंकी ो तथा हिंदू-धर्मका सुयश विस्तीर्ण किया । भगवान् साकेत पधारनेपर वे सप्तर्षिमण्डलमें ही स्थित हो

भगवान् मनुजी

ान् ब्रह्मा सृष्टिकार्यमें सफल नहीं हो रहे थे। ासिक सृष्टि ज्यों-की-त्यों थी। उसमें अभिवृद्धि नहीं हो अन्तमें स्रष्टाने अपने दक्षिण भागसे मनु और वाम ारूपाको उत्पन्न किया। इन स्वायम्भुव मनुसे ही मनुष्य-सृष्टि हुई। मनुष्योंके लिये उनके आचार-ज्ञानके नुने श्रुतिके तात्पर्यको स्पष्ट किया। आदि मनुके वे र्म-सूत्र' अब उपलब्ध नहीं हैं। आदि मनुके प्रियव्रत, प्रभृति पुत्र तथा देवहूति आदि कन्याएँ हुई।

यकल्पमें भगवान्ने मत्स्यरूप धारण करके जिन द्धदेवकी रक्षा की, वे विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र । इस मन्वन्तरके मनु हैं । महाराज इक्ष्वाकुप्रभृति पुत्र हुए। वर्तमान मनुस्मृति इन्हीं मनुकी कृति ा मूलाधार प्राचीन मानवधर्मसूत्र हैं और उनका नुने महर्षि भृगुसे प्राप्त किया था, यह मनुस्मृतिसे ा होता है। मनुस्मृति धर्मशास्त्र एवं समाजशास्त्रका ाधार है।

महर्षि याज्ञवल्क्य

र्य वैशम्पायन पितृश्राद्ध होनेके कारण ऋषियोंकी

उन्होंने अपने सब शिष्योंको आज्ञा दी—'तुम सब इसका प्रायश्चित्त कर लो।'

'ये बच्चे क्या प्रायश्चित्त करेंगे । मैं अ प्रायश्चित्त कर दूँगा।' याज्ञवल्क्यजीने अपने आचार्य वैशम्पायनजीके भानजे होनेके कारण कुछ धृष्ट हो ग

'तू ब्राह्मण-बालकोंका अहंकारवश अपमान क मेरी पढ़ायी हुई सब श्रुतियाँ त्याग दे।' वैशम्पायन रोषसे कहा। याज्ञवल्क्यने श्रुतियोंका त्याग कर ऋषियोंने तीतर होकर उन श्रुतियोंका ग्रहण किया। व यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखा हुई।

'मैं अब मनुष्यको गुरु नहीं बनाऊँगा।' याज्ञव तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यको सन्तुष्ट किया। अश्व भगवान् सूर्यने उन्हें शुक्लयजुर्वेदका उपदेश किया। इस को वाजसनेय शाखा कहा जाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्यका आश्रम मिथिलामें था। विदेहके वे योगोपदेष्टा गुरु तथा कर्मकाण्डके प्रकाण्ड म महाराज विदेहकी सभामें वाचक्नवी गार्गीसे उनका शास्त्र जब वे विदेहराजकी सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ताको दी गयी स ले जाने लगे थे।

महर्षिकी दो पत्नियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी इनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की। भरद्वाजजीको श्रीरामचरितमानसका उपदेश किया। इनकी याज्ञव स्मृतियोंमें प्रधान है । हिंदू-सम्पत्तिका उत्तराधिक निर्णीत होता है। इसके अतिरिक्त 'याज्ञवल्क्य-शिक्षा' ब्राह्मण', 'प्रतिज्ञासूत्र' और 'योगि-याज्ञवल्क्य' इनके श्रेष्ठ शास्त्र हैं। महर्षि याज्ञवल्क्यके व्याकरण, आर धनुर्वेदसम्बन्धी ग्रन्थोंके नाम भी पाये जाते हैं।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र

'मैं आपको एक सहस्र कपिला गौएँ दूँगा; यह गौ प्रदान करें।' भगवान् परशुरामके मामा महाराज ग महाराज विश्वामित्रजीने महर्षि वशिष्ठसे उनकी न माँगी। वशिष्ठजीने उस कामधेनुसुता नन्दिनीके प्र ससैन्य विश्वामित्रका तपोवनमें राजोचित सम्मान कि इतनी ऐश्वर्यमयी गौ तो राजसदनमें ही शोभा देगी

'नन्दिनी मेरी पूज्या हैं। वे सम्पत्ति नहीं, जिसक

तः ! स्वयं आप अपनी रक्षा कर सकें तो कर लें।
तीकार करनेमें असमर्थ होते हैं।' विश्वामित्र गौको बल-
ा रहे थे। गौ क्रन्दन कर रही थी। महर्षि वशिष्ठजीने भरे
की ओर देखा। नन्दिनी क्रुद्ध हुई। उनके नथुनोंसे
ास्त्र योद्धा प्रकट हुए। विश्वामित्र पराजित हो गये।
मान्य बलसे तपोबल श्रेष्ठ है। विश्वामित्रजी राज्य छोड़-
में जाकर भगवान् शङ्करकी आराधना करने
भगवान् शिवने उन्हें धनुर्वेद और दिव्यास्त्र
किये। इन अस्त्रोंको लेकर वे वशिष्ठको
ये; किंतु महर्षि वशिष्ठके तेजोमय ब्रह्मदण्डसे सब
ाये।

बलके सम्मुख अस्त्रबल व्यर्थ है। मैं ब्राह्मणत्व प्राप्त
दक्षिण दिशामें जाकर पुनः वे तपस्या करने लगे।
देव ! मैं आपकी शरण आया हूँ, मेरी इच्छा सशरीर
नेकी है।' त्रिशंकु अपने कुलगुरु वशिष्ठजीसे निराश
े। गुरुपुत्रोंने शाप देकर उन्हें चाण्डाल बना दिया
वेश्वामित्रजीकी शरण आये। तपोबलसे विश्वामित्रजीने
ीर स्वर्ग भेज दिया। स्वर्गसे देवताओंने त्रिशंकुको
ल दिया। विश्वामित्रजीने उन्हें गगनमें ही स्थिर कर
अब भी वहीं नीचे मुख किये हैं। उनके मुखकी
र्मनाशा नदी उत्पन्न हुई है।

× × × ×

ाह्मण नहीं हो सकता तो नवीन सृष्टिका ब्रह्मा बनूँगा।'
ाने पूर्व दिशामें आकर कठोर तपके अनन्तर नवीन
म्भ की। अन्न, तृण, तरु, पशु—सबमें कुछ जातियों-
ने उत्पन्न किया। भगवान् ब्रह्माने उन्हें तब आकर
ा रोक दिया, जब वे मनुष्य-सृष्टि करने जा रहे थे।
ह्मर्षि तो वशिष्ठ ही बना सकते हैं।' भगवान् ब्रह्माने
ाह्मणत्व स्वीकार करके भी एक प्रतिबन्ध लगा दिया।
त्रजीने महाराज सुदासको शाप देकर बारह वर्षके लिये
ना दिया। इस राक्षसभावमें वह वशिष्ठके सभी पुत्रों-
ग कर गया।

न्य हैं विश्वामित्र, जो इस नीरव ज्योत्स्नामें तप करते
र्षि वशिष्ठ एकान्त तपोवनमें रात्रिको अपनी पत्नीसे
कर रहे थे। विश्वामित्रजी उन्हें मारने आये थे।
में ऐसे शत्रुकी भी प्रशंसा करनेवाले ये महापुरुष—'
त्रजीने सारे शस्त्र फेंक दिये। वे जाकर महर्षि वशिष्ठके

'आपने मुझे पहले ही ब्रह्मर्षि क्यों नहीं स्वीकार वि
आज वशिष्ठजीने विश्वामित्रको 'ब्रह्मर्षि' कहकर
लगाया था।

'आज आप अपने रजोगुण और उनके प्रतीक
पृथक् हो सके हैं।' महर्षि वशिष्ठने ब्राह्मणत्वका मुख
क्षमा बताया।

× × × ×

महाराज हरिश्चन्द्रके सत्यकी परीक्षा विश्वामित्र
ली। त्रेतामें अपने यज्ञकी रक्षाके लिये वे भगवान् श्रीर
लक्ष्मणको अयोध्यासे ले आये थे। सीता-स्वयंवरमें श्
उन्होंने ही उपस्थित किया। भगवान् शंकरसे प्राप्त
दिव्यास्त्र उन्होंने श्रीरामको दे दिये। भगवान् रामके
पधारनेपर विश्वामित्रजी सप्तर्षिमण्डलमें प्रतिष्ठित हुए।

तपके द्वारा एक ही जन्ममें क्षत्रियसे ब्राह्मण
करनेका अपूर्व आदर्श विश्वामित्रजीने ही स्थापित
उनके निर्मित धनुर्वेद तथा नीति एवं धर्मके ग्रन्थोंका
मिलता है, पर ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

महर्षि दधीचि

प्रजापति कर्दमकी कन्या शान्तिके गर्भसे अथर्वा
परम तपस्वी, नैष्ठिक शिवभक्त दधीचि ऋषि-जैसी
प्राप्त हुई थी। महर्षि दधीचिने दक्षको बहुत समझाय
वे रुद्रभागसे हीन यज्ञमें प्रवृत्त हुए। प्रजापति द
उनके आदेशको स्वीकार नहीं किया, तब वे यज्ञस्थल
अपने आश्रमपर चले आये।

'दधीचि मेरा स्थान लेना चाहते हैं।'
प्रत्येक कठोर तपस्वीसे यही आशङ्का होती है।
अप्सराश्रेष्ठ अलम्बुषाको उनकी तपस्यामें विघ्न
लिये भेजा। अप्सराका सम्पूर्ण नृत्य-गान, हाव-भा
रहा। मदनके सम्मोहन शर और वसन्तकी शोभा
कोई प्रभाव न पड़ सका। अन्तमें देवताओंके साथ इ
तपस्वीको मार देनेपर उद्यत हुए। महर्षिको कोई
नहीं करना था, पर उनका तपस्तेज और उनके
त्रिशूलधारी महारुद्र अप्रमत्त नहीं हो सकते थे। व
यमदण्ड तथा इन्द्रकी अमोघशक्ति—सब व्यर्थ हुए।
होकर वहाँसे देवता लौटे।

'हम आपत्तिमें पड़कर आपसे याचना करने अ
हमें आपके शरीरकी अस्थि चाहिये।' वही इन्द्र, व

। उन उदारचेताने पिछले कृत्योंका स्मरणतक नहीं योगके द्वारा शरीर छोड़ दिया, जिसमें देवेन्द्र उनकी ले सकें। जंगली गायें उनके चर्मको चाट गयीं; तब अस्थि ले जाकर वज्र बनाया।

आदिकवि वाल्मीकि

। निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
उ क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

ादिकविके मुखसे प्रथम लौकिक श्लोक व्याधद्वारा ीके जोड़ेमेंसे एकके मारे जानेपर दयाके आवेशमें ।

रामद्वारा निर्वासिता नित्य-निष्कलङ्का रजक-लाञ्छिता नन्दिनी तमसा-तटपर महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर ही ीं। यहीं लव-कुशकी उत्पत्ति हुई। महर्षिने उन्हें आदिकाव्य रामायणका गान भी शस्त्रविद्याके साथ । वाल्मीकीय रामायण इतिहासके साथ ही संस्कृत-का अपूर्व काव्य है।

र्षि वाल्मीकि ब्राह्मणसन्तान होनेपर भी डाकुओंके संगसे गये थे। यात्रियोंको लूटकर उन्हें मार देना उनका था। हिंसा उनका स्वभाव बन गया था। एक दिन स मार्गसे आये, जहाँ वाल्मीकि लूटपाट करते थे। नुसार सप्तर्षियोंको इन्होंने पकड़ लिया। दयामय ने दया की। वाल्मीकिने समझा घरके सदस्योंसे पूछ-अपने पापके फल उन्हें स्वयं भोगने होंगे, उसमें ा नहीं लेगा।

ा मरा मरा·········।' वाल्मीकिके मुखसे 'राम' नहीं पाता था, पर उनकी निष्ठा दृढ़ थी। ानपर लगे रहे जपमें। वर्षों व्यतीत हो गये। शरीर मिट्टीमें छिप गया। अन्तमें भगवान् ब्रह्माने आदि-नेका वरदान दिया। वल्मीक (दीमककी मिट्टीके निकलनेके कारण वे वाल्मीकि कहलाये।

मार्कण्डेय मुनि

ण्डु मुनिके पुत्र मार्कण्डेयजीका जन्म होनेपर पिताको ा कि पुत्र अल्पायु है, वह केवल बारह वर्षकी ं मृत हो जायगा। जब मार्कण्डेयजी बड़े हुए, उन्होंने निश्चिन्त करते हुए कहा—'मैं मृत्युपर विजय प्राप्त ।

ब्रह्माजीद्वारा दीर्घायु दिलायी। एक कल्पमें वे विष्णुकी आराधनासे मृत्युको जीत सके। एक कल्पमें शङ्करने तपसे सन्तुष्ट होकर उनकी यमराजसे रक्षा की

मार्कण्डेयजीकी तपस्यासे भीत होकर इन्द्रने त करनेके लिये काम तथा अप्सराओंको भेजा। सम प्रयत्न व्यर्थ हुए। वे लौटकर देवसभामें महर्षिकी करनेको बाध्य हुए। भगवान् नर-नारायण इन एक के तपको सफल करने पधारे। महर्षिने वरदान माँग आपकी माया देखना चाहता हूँ।'

सायंकालका समय था। मुनि नदी-तटपर सन्ध्य थे। सहसा वेगपूर्वक घोर आँधी आयी, चारों ओर उमड़ता दीख पड़ा। पृथ्वी, नक्षत्रादि सब जल गये। उस निरालोक सागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गोंके ताड़ित एवं जलजन्तुओंसे व्यथित होते ऋषि सह तैरते रहे। सहसा महोदधिमें एक वटवृक्ष दीख पड़ा। ईशान कोणकी शाखामें पर्णपुटकमें स्थित एक ज नीलकमल-सुन्दर शिशु अपने चरणके अँगूठेको में लेकर चूस रहा था। मुनि जैसे ही उस बालकके पा श्वासके साथ विवश होकर उसकी नासिकाके छिद्रमें खि उस शिशुके उदरमें ससागरा पृथ्वी, समस्त पर्वत, प्राणी, पूरा ब्रह्माण्ड देखा उन्होंने। वहाँ भी वे सह घूमते रहे। शिशुके श्वासके साथ पुनः सागरमें फिर सहसा वट, शिशु, प्रलयसागर—सब कुछ हो गया। वे उसी नदी-तटपर थे। जैसे सब स्वप्न दे

भगवती पार्वतीके अनुरोधसे शङ्करजीने मार्कण् दर्शन दिया। उन शशाङ्कशेखरके वरदानसे मा पुराणाचार्य हुए। वे कल्पान्त अमर हैं। उनका म पुराण तो प्रचलित ही है। उनकी पत्नीका नाम धूम और उनके पुत्र वेदशिरा श्रुतियोंके द्रष्टा ऋषि प्र चार्य हुए।

महर्षि मुद्गल

'देव! आप महान् पुण्यवान् हैं। अपने इसी स्वर्गको कृतार्थ करें।' देवदूत विमान लाये थे। शि वृत्तिसे ३४ सेरसे अधिक अन्न न एकत्र करनेका व्रत केवल अमावस्या और पूर्णिमाको ही सपरिवार आहार ग्रह वाले मुद्गलजीके यहाँ पिछले छः पक्षोंसे दोनों पर्वोंपर महर्षि

न, धर्मपर स्थिर है। ऐसे महापुरुषके पधारनेसे स्वर्ग
। जायगा।

तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मुझे दुःखपूर्ण स्वर्ग या
, कुछ नहीं चाहिये।' मुद्गलजीने देवदूतको लौटा
पूछनेपर उन्हें पता लग गया था कि ऊर्ध्वलोकोंमें
, ईर्ष्या, अभावबोध आदि हैं। जो शाश्वत सुखका
ी है, वह इन तुच्छ प्रलोभनोंपर कैसे लुब्ध होता।
ाग-वैराग्यसे मुद्गलजीने परमपद प्राप्त किया।

महर्षि कणाद

षिक दर्शनसूत्रोंके निर्माता महर्षि कणादके सम्बन्ध-
अधिक और कुछ ज्ञात नहीं कि उनका वास्तविक
लूक मुनि है। वे बाजारमें क्रय-विक्रय समाप्त
श्चात् जो दाने मार्गमें सबके चले जानेपर बिखरे होते
को चुनकर लाते थे। इन 'कणों'पर अपना
करनेके कारण उनको 'कणाद' कहा जाता
। वीतराग तापससे कैसे आशा की जा सकती है कि
ा कोई परिचय छोड़ जायँगे। भारतीय संस्कृतिमें
रीरके नाम या रूपके लिये आसक्तिको स्थान कहाँ।

महर्षि गौतम

ायदर्शनके कर्ता महर्षि गौतम परम तपस्वी एवं
े। महाराज वृद्धाश्वकी पुत्री अहल्या इनकी पत्नी
महर्षिके शापसे पाषाणी बन गयी थी।

ामें भगवान् श्रीरामकी चरण-रजसे अहल्याका शाप-
ुआ। वह पाषाणीसे पुनः ऋषि-पत्नी हुई।

र्षि गौतम बाण-विद्यामें अत्यन्त निपुण थे। विवाह-
काल पश्चात् वे बाण-विद्याका अभ्यास कर रहे थे।
उन्हें दूर गये बाण लाकर देती थीं। एक बार वे
ौटीं। ज्येष्ठकी धूपमें उनके चरण तप्त हो गये थे।
के लिये वे वृक्षकी छायामें बैठ गयी थीं। महर्षिने
र रोष किया। सूर्यने ब्राह्मणके वेषमें महर्षिको छत्ता
ादत्राण (जूता) निवेदित किया। उष्णतानिवारक ये
पकरण उसी समयसे प्रचलित हुए।

हर्षि गौतम न्यायशास्त्रके अतिरिक्त स्मृतिकार भी हैं
नका धनुर्वेदपर भी कोई ग्रन्थ था, ऐसा विद्वानोंका
। उनके पुत्र शतानन्दजी निमिकुलके आचार्य थे।

महर्षि पतञ्जलि

ीरकी शुद्धिके लिये वैद्यकशास्त्रका, वाणीकी शुद्धिके
ाकरणशास्त्रका और चित्तकी शुद्धिके लिये योगशास्त्र-
का प्रणयन करनेवाले महर्षि पतञ्जलिका जन्म
गोणिकासे हुआ था। ये गोनर्द देशमें निवास क
इन्होंने योगदर्शनके अतिरिक्त पाणिनिके व्याकरण
ध्यायी) पर महाभाष्य निर्मित किया।

भगवान् शेषने उसी समय अथर्ववेदसे आयुर्वेद
लिया, जब श्रीहरिने मत्स्यावतार धारण करके वेदों
किया। भगवान् अनन्त गुप्तरूपसे पृथ्वीपर विचरण
थे। मनुष्यों तथा दूसरे प्राणियोंको शारीरिक एवं
रोगों एवं कष्टोंसे पीड़ा पाते देख प्रभुको दया आयी।
पर अवतीर्ण हुए। उन्होंने शारीरिक व्याधिकी निवृत्ति
आयुर्वेदको प्रकट किया। क्योंकि वे चरकी भाँति
पहले आये थे। आयुर्वेदकर्ताके रूपमें उनका नाम
हुआ। उन्हीं भगवान् अनन्तने 'पतञ्जलि' नाम
दर्शन और महाभाष्यका निर्माण किया।

श्रीचरकजीने आयुर्वेदमें आत्रेय ऋषिकी
प्रतिपादन किया है। आत्रेय मुनिके शिष्य अग्निवेशने
पर अनेक ग्रन्थोंका निर्माण किया था। उन सबका
चरक-संहितामें संकलित हुआ। इससे चरकसंहिता
उसके कर्ता अग्निवेश कहे गये हैं। भावप्रकाशके
भगवान् चरकको चिकित्सा-ज्ञानका संकलनकर्ता बता

आचार्य जैमिनि

आचार्य जैमिनिकी गिनती ब्रह्मवादकोंमें है।
कृष्णद्वैपायन श्रीव्यासदेवके शिष्य थे। उनसे आपने
और महाभारतकी शिक्षा पायी थी। ये ही प्रसिद्ध पूर्व
दर्शनके रचयिता हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'भारत
की भी रचना की थी, जो 'जैमिनिभारत' के नाम
है। आपने द्रोणपुत्रोंसे मार्कण्डेयपुराण सुना था
पुत्रका नाम सुमन्तु और पौत्रका नाम सत्वान्
तीनोंने वेदकी एक-एक संहिता बनायी है। हिरण्यनाभ
और अवन्त्य नामके इनके तीन शिष्योंने उन संहि
अध्ययन किया था।

महर्षि आयोद धौम्य और उनके आदर्श

महर्षि धौम्यका आश्रम सेवा, तितिक्षा और संय
प्रख्यात था। ये अपने शिष्योंको सुयोग्य बनाने
उनको तपमें लगाते थे। स्वयं महर्षि धौम्यकी तपःशक्ति
आशीर्वादसे शिष्यको शास्त्रज्ञ बनानेमें समर्थ थी।
उपमन्यु और वेद—ये तीन शास्त्रकार ऋषि महर्षि ध
शिष्य थे।

(पृष्ठ ८१९)



(पृष्ठ ८१९)

जल बहता लख खेतका स्वयं बन गया बाँध ।

(पृष्ठ ८१९)

गुरु गौतमका भक्त अति था उत्तङ्क महान ।

ारुणि, तुम कहाँ हो ?' महर्षिने अपने पाञ्चाल देशके
गारुणिको कल सायंकाल वर्षा होनेपर अपने खेतोंसे
नेकल जाय, इसलिये बाँध बनाने भेजा था। पूरी रात्रि
हो गयी और वह छात्र लौटा नहीं। स्वयं महर्षि
होकर उसका अन्वेषण करने प्रातः निकले थे।

ुरुदेव ! मैं यहाँ हूँ।' आरुणिने मेड़की बाँधके सहारे
ही उत्तर दिया। उनका शरीर शीत और जलसे अकड़-
था। मेड़ बाँधनेमें वे सायंकाल सफल न हो सके।
ग अधिक था। नवीन मिट्टी रखते ही प्रवाहमें चली
अन्तमें वे स्वयं लेट गये मेड़के सहारे। रात्रिभर स्थिर

स ! सम्पूर्ण श्रुतियाँ तुमपर प्रकाशित हों।' महर्षिने
ाद होकर शिष्यको कण्ठसे लगाया। आरुणि गुरुका
ाकर धन्य हो गये। यही महर्षि उद्दालकके नामसे
ोंमें प्रख्यात हैं। इनके पुत्र श्वेतकेतु थे। श्वेतकेतु
में प्रवीण थे। उन्होंने धर्मशास्त्रका प्रणयन किया।

× × ×

स ! तुम क्या भोजन करते हो ?' महर्षि धौम्यने अपने
पमन्युसे, जो उनकी गायें चरानेपर नियुक्त थे, पूछा।
ो कुछ देते नहीं और बिना आहारके ऐसा स्वस्थ
नहीं सकता।

ुरुदेव ! भिक्षान्नसे मेरा भली प्रकार निर्वाह हो जाता
पमन्युने सरलतासे बतला दिया।

झे निवेदित किये बिना तुम्हें भिक्षा ग्रहण नहीं करनी
।' आचार्यको तो तप कराना था शिष्यसे।

न दूसरी बार भिक्षा माँगने जाते हो, इससे दूसरे भिक्षुकों-
मारा जाता है। गृहस्थोंपर अधिक भार पड़ता है।'
जो भिक्षा लाकर गुरुदेवके सम्मुख रखते, उसमेंसे
छ प्राप्त नहीं होता। दूसरी बार वे अपने लिये भिक्षा
र उसे भी मना कर दिया गया।

छड़े बहुत दयालु होते हैं। तुम्हारे प्रेमके कारण वे
दूध फेन बनाकर गिरा देते होंगे। इससे उनकी क्षुधा-
होती होगी।' उपमन्युने भिक्षा बंद होनेपर वह
ना प्रारम्भ किया था, जो दूध पीनेपर बछड़ोंके मुखसे
था। महर्षिने यह भी मना कर दिया।

हो गयी थी। उपमन्यु वनसे लौटा नहीं। महर्षि
हुई। वे शिष्योंके साथ वनमें पहुँचे।

'बेटा ! तुम अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करो !
उपमन्यु जलहीन कूपमें गिर गया था। क्षुधाकी ज्व
सकनेमें असमर्थ होकर उसने आकके पत्ते खा लिये
पत्तोंके विषने उसे अन्धा बना दिया था।

'तुम्हारे सब दाँत स्वर्णके हो जायँ ! तुम्हारी
अबाध प्रकाशित हो !' स्वर्गके वे युगल देववैद्य
कुमार कूपमें प्रकट हुए। उपमन्यु उनका स्तवन कर
स्वयं महर्षि धौम्य ध्यान कर रहे थे। उन्हें आना ही

'समस्त श्रुतियाँ और समस्त धर्म-शास्त्र तुम्हा
प्रकाशित हों !' अश्विनीकुमारोंने बाह्य नेत्रज्योति
गुरुदेवने शिष्यको ज्ञान-नेत्र प्रदान किया। उपमन
कृपासे धर्मशास्त्रके आचार्य हो गये।

उत्तङ्क

'मैं ऋतु-स्नानसे निवृत्त हुई हूँ' आयोद धौम्य
शिष्य वेदमुनिकी पत्नीने उनकी अनुपस्थितिमें उत्तङ्कसे
कहा 'तुम्हारे गुरु बाहर गये हैं। उन्होंने अपना स
तुम्हें करनेके लिये कहा है। मेरा ऋतुकाल व्यर्थ न
तुम ऐसा प्रयत्न करो।' बड़ी कठिन परीक्षा थी।

नतमस्तक उत्तङ्कने अत्यन्त विनयसे कहा, '
नहीं हो सकेगा, मा !' उत्तङ्क परीक्षामें उत्तीर्ण हुए
गुरुपत्नीके हर्षका पार न रहा।

× × ×

'भय मत करो, उत्तङ्क !' धर्मरूपी बैलपर चढ़े
पथमें उत्तङ्कसे कहा। 'इस बैलका गोबर तुम्हारे गुरुने
तुम भी खा लो।'

इन्द्रकी आज्ञासे उन्होंने बैलका पवित्र गोबर
पान कर लिया तथा साधारण आचमन करके चल

'भीतर रानी नहीं।' उत्तङ्कने राजमहलको अच्छी
लिया था। उन्होंने पौष्यनरेशसे कहा 'आप मुझ
करते हैं।'

'स्नातक ब्रह्मचारीसे मैं विनोद नहीं करता।'
गये 'सती स्त्रियाँ उच्छिष्ट पुरुष और दुष्टको नहीं द
उत्तङ्क लज्जित हुए। उन्हें गोबर खानेके बा

जसे चौथे दिन पुण्यक नामक व्रतके अवसरपर मेरी
आपका कुण्डल पहनकर ब्राह्मणभोजन कराना चाहती
कुण्डल चाहिये ।'

ोंका राजा तक्षक इन कुण्डलोंकी तलाशमें घूमा
।' कुण्डल सहर्ष देते हुए भक्तिमती रानीने कहा,
ासे ले जाइयेगा ।'

पर नित्यकर्म करते समय तक्षकने मनुष्यके वेशमें
के लिये और पाताल-प्रवेश कर गया । इन्द्रकी
उत्तङ्कने कुण्डल ठीक समयपर गुरु-पत्नीको समर्पित
; 'तुम्हें सब सिद्धियाँ प्राप्त हों ।' गुरु-पत्नीका
मिला ।

; मेरे मित्र हैं !' उत्तङ्कका वृत्तान्त सुनकर वेदमुनिने
; गोबर अमृत था, उसीके प्रभावसे तुम पातालमें जा
तुम्हारे साहस और भक्तिसे प्रसन्न हूँ । अब तुम घर
उत्तङ्कने गुरु-पद-धूलि ली और अपने घर आ गये ।
ङ्क त्याग-वैराग्यकी मूर्ति थे । तपस्या और ज्ञानमें वे
ो निकल गये थे । महाभारत-युद्धके अनन्तर द्वारका
मय भगवान् श्रीकृष्णने इन्हें अपने विराट्रूपका
ा दिया था । —शि० दु०

महर्षि शुकदेव

ानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्रीरासेश्वरीके साथ
मसे व्रजभूमिपर पधारे । गोलोकमें नित्य-पार्षदोंका
लीलाका दर्शन किये बिना कैसे माने । श्रीराधिकाके
ने एक परम पावन शुकीके द्वारा शरीर धारण किया
ः पावन प्रदेशमें । भगवती पार्वतीको श्रीकृष्णचन्द्रकी
ा सुननी थी । भगवान् शङ्करने उस गुह्य रहस्यको
सुनाना चाहा । अमरनाथके निर्जन प्रान्तमें एक
अंडा भी है, इसपर ध्यान नहीं गया । भगवान्
ःथा सुनाने लगे । जब पार्वतीजी निद्रित हो गयीं,
ाकला शुक-शिशु 'हुंकार' देकर कथा सुनता रहा ।

ार्यक्-योनिका प्राणी इस रहस्यका अनधिकारी है !'
शङ्करने त्रिशूल उठाया और दौड़े । शुकशावक
ौर उड़ता हुआ व्यासपत्नी वटिकाके मुखमें प्रविष्ट
।

के कठोर तपसे प्रसन्न होकर उन्हें पहले ही परम तेज
होनेका वरदान दिया था ।

× × ×

'पुत्र ! तुम बाहर आओ । मैं तुम्हारा सुन्दर मु
को उत्सुक हूँ ।' बारह वर्ष व्यतीत हो गये, पर व्या
गर्भस्थ बालक बाहर नहीं आता । भगवान् व्यासने
'तुम अपनी माताको कष्ट मत दो । बाहर आनेपर
माया नहीं सतायेगी ।'

'श्रीकृष्णचन्द्र यदि आश्वासन दें तो मैं बाहर
गर्भस्थ बालक पूरा वेदज्ञ हो चुका था ; श्याम
आकर आश्वासन देना पड़ा । बालक बाहर आया ग
नाल हाथमें लेकर वनकी ओर चल पड़ा । जब
प्रभाव नहीं तो आसक्ति और मोह कैसा । उसे तो
तप करना था ।

'पुत्र !' व्यासजी विरह-कातर होकर पीछे च
सभी वृक्षोंसे उन्हें सुनायी पड़ा—'पितः !' मन्त्रोंत
उनके शुक क्या लौटाये जा सकते हैं ।'

× × ×

'तुम यह पूरा श्लोक मुझे पढ़ा दो ।' कुछ ब्रह्म
आधा श्लोक बार-बार पढ़ रहे थे । बड़ी सुन्दर श्या
शोभाका वर्णन था उसमें । शुकदेवने सुना और वे वि
के पास आये । विद्यार्थियोंको तो आधा श्लोक ही
उनके आचार्यके पास आना पड़ा ।

'मैंने ऐसे अठारह सहस्र श्लोक बनाये हैं !'
व्यासने पुत्रको सम्पूर्ण भागवत पढ़ाया । शुकदेवज
उपायसे न बुलाया जा सकता था और न रोका ही ।

'बिना गुरुके ज्ञान अधूरा रहता है । तुम महारा
अध्यात्मविद्या प्राप्त कर लो !' शुकदेवजीने पिताकी
स्वीकार की । मिथिलामें परीक्षा करके महाराज जन
लिया कि वे समस्त भोगोंमें अनासक्त हैं । ब्रह्मविद्या
अधिकारीको प्राप्त कर सार्थक होती है ।

परम विरक्त, साक्षात् नन्दनन्दनस्वरूप, गृह
गोदोहनमात्र रुकनेवाले शुकदेवजी परीक्षित्के स
पहुँचे, जब वे उपवास करके गङ्गातीरपर आ बैठे थे, उ
के शापसे सातवें दिन तक्षक उन्हें काट लेनेवाला था
मुनिमण्डलीने उठकर उन तेजोमूर्तिका स्वागत

कुछ प्राचीन आदर्श परोपकारी भक्त राजा और सत्पुरुष

महाराज इक्ष्वाकु

ान वैवस्वत मन्वन्तरके श्राद्धदेव मनुके प्रथम पुत्र
ा प्रजाके असन्तुष्ट होनेसे विरक्त होकर वनमें चले
मनुने सन्तानकी कामनासे तप किया। प्रजापतिकी
के इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक,
पृषध्र, नभग और कवि—ये दस पुत्र हुए। इनमें
मेंसे निःस्पृह होकर परिव्राजक हो गये। पृषध्र गुरुकी
क्षा कर रहे थे। अन्धकारमयी रात्रिमें गोष्ठमें व्याघ्रके
न्होंने उसे मारनेका प्रयत्न किया। प्रातः देखा गया
ि गोवध हो गया है। गुरुने शाप दिया कि इस
चाण्डाल हो जायँ। शप्त होनेपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका
ते हुए वे भगवान्के भजनमें लीन हो गये। करूषसे
इके राजाओंका वंश चला और धृष्टकी सन्तति
बलसे ब्रह्मत्वको प्राप्त हुई। नृगके वंशमें सुमति,
ति, वसु आदि हुए। नरिष्यन्तकी सन्तति-परम्परामें
ग्नदेव अग्निवेश्यके रूपमें अवतीर्ण हुए। नभगके
ागसे परम भक्त राजर्षि अम्बरीषका जन्म हुआ।
त्रका नाम भी नाभाग था। इनके वंशमें आगे
क्रवर्ती महाराज मरुत्त हुए, जिनके महायज्ञमें सहस्र
ाण्ड घृतधारा सहस्र वर्षोंतक देते रहे। इनके यज्ञमें
पकरण मण्डप आदि स्वर्णके थे। इस महान् यज्ञमें
ोमसे और अग्निको आज्य (घी) से अजीर्ण हो
र्यातिकी पुत्री सुकन्याका विवाह च्यवन ऋषिसे हुआ।
के उपर्युक्त दस पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे। मनुने
ज्य और भगवान् सूर्यसे प्राप्त ब्रह्मविद्याका उपदेश भी
ो दिया। इक्ष्वाकुने स्वयं मध्यदेशका राज्य स्वीकार किया
राज्य भाइयोंमें बाँट दिया। इनकी राजधानी अयोध्या
के सौ पुत्र हुए। सूर्यवंशीय क्षत्रियोंका इन्हींसे विस्तार
इनके मुख्य पुत्रोंमें विकुक्षि और निमिके नाम आते
कुक्षिका नाम ही आगे शशाद पड़ा। इनकी सन्तति
याकी राजगद्दीपर रही। महाराज रघुके पश्चात् इस
ाम रघुवंश हो गया। निमि मिथिलानरेश हुए।
शिष्ठके शापसे शरीर छोड़कर इन्होंने मनुष्योंके पलकों-
पाया। इनके शरीर-मन्थनसे विदेहकी उत्पत्ति हुई।
निमिके सन्तानोंमें सभी आत्मविद्याके ज्ञाता नरेश

वीरवर ककुत्स्थ

महाराज ककुत्स्थ वैवस्वत मनुके प्रपौत्र, इ
पौत्र और विकुक्षिके स्वनामधन्य पुत्र थे। देवासुर-
इन्होंने वृषरूपधारी इन्द्रके ककुत् (थूहे) पर चढ़कर
को पराजित किया था। इसीसे ये ककुत्स्थ नामसे
हुए। ये बड़े ही प्रतापी और वीर थे। इन्हींके नामप
वंशज काकुत्स्थ कहलाते रहे।

सम्राट् मान्धाता

यावत्सूर्य उदेत्यस्तं यावच्च प्रतितिष्ठति
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते
(श्रीमद्

बड़े गर्वसे अंग्रेज विद्वान् कहा करते थे 'अंग्रेजोंके
सूर्यास्त नहीं होता।' चाहे अंग्रेजोंके शासनमें सूर्यास्त
रहा हो; परंतु कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि पृथ्वीपर
समान शक्तिके प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र न रहे हों। छोटे
चर्चा छोड़ भी दें, तो भी कई महाराष्ट्र सदा ब्रिटेनके प्र
रहे ही हैं। सो भी केवल एक जम्बूद्वीप ही आजकी पृ
सप्तद्वीपवती पृथ्वीके शासक तो भारतके क्षत्रिय सम्रा
हैं। जहाँतक सूर्योदय होकर सूर्यास्त होता है, जहाँतक सूर्यक
पहुँचता है, उस समस्त स्थानके शासक सम्राट मान्ध
वह सब उनका राज्य कहा जाता था। सम्राट् मान्धा
इक्ष्वाकु, प्रियव्रत आदि अनेक चक्रवर्ती सम्राट् हो
भारतमें।

सूर्यवंशी सम्राट् युवनाश्वके कोई सन्तति नह
ऋषियोंने पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराया। यज्ञकी
हो चुकी थी। महाराज तथा सभी लोग यज्ञीय कार्यो
हो गये थे। रात्रिको महाराजको प्यास लगी। उन्होंने
को जगाना उचित नहीं समझा। जल कहीं था नहीं
कलशका जल उन्होंने पी लिया। पुंसवन-अभिमन्त्रि
पीनेसे उन्हींकी दाहिनी कुक्षि फाड़कर समयपर प
उत्पन्न हुआ। ऋषियोंके प्रभावसे युवनाश्व मरे नहीं।

'यह किसका दूध पीयेगा!' ऋषियोंकी चिन्ता

ुखमें दे दी। उससे स्रवित होते हुए अमृतको ठक पुष्ट हो गया। इन्द्रने 'मां धास्यति' कहा था, ुमारका नाम 'मान्धाता' हुआ।

धाता जन्मसे प्रबल पराक्रमी एवं परम तेजस्वी थे। यास्त्र उनके सम्मुख स्वतः उपस्थित हो गये थे। ारा उनको आजगव धनुष, अक्षय त्रोण और दिव्य ला। सम्राट् मान्धाताके प्रतापके सम्मुख रावण-जैसे ुस भी तुच्छ दस्यु हो गये थे। वे सम्राट्से नित्य हा करते थे। सम्राट्का नाम 'त्रसद्दस्यु' इसीलिये था कि उनसे सभी दस्यु त्रस्त रहते। भयके मारे अन्याय करते ही नहीं।

ाज्य भोगके लिये नहीं, सेवाके लिये है। ऐश्वर्यकी भगवान्‌की आराधनामें है। भारतके विमल हृदयोंने इस बातको सीखा था। सम्राट् मान्धाताने बड़े- किये। उनकी अतिथि-सेवा प्रख्यात है। कभी से कोई अतिथि निराश होकर नहीं लौटा।

राज शतबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमतीका सम्राट्ने पाणि- या था। उनके तीन पुत्र पुरुकुत्स, अम्बरीष और हुए थे। इन्हीं मुचुकुन्दने सहस्रों वर्षोंतक स्वर्गमें ेवताओंके पक्षमें दैत्योंसे युद्ध किया। देवताओंके गिरिगुहामें आकर वे सो गये। द्वापरमें भगवान् े उनके द्वारा कालयवनको नष्ट कराया और उन्हें दर्शन सम्राट् मान्धाताकी पचास कन्याएँ महर्षि सौभरिके वाही गयीं।

राजर्षि भरत

देश जिसे हम भारत कहते हैं, इसका प्राचीन ुनाभखण्ड या अजनाभवर्ष है। भगवान् ऋषभदेवके पुत्रोंमें सबसे बड़े भरत थे। उनके शासनकालसे यह ड या भारतवर्ष कहा जाने लगा। राजर्षि भरत समान प्रभावशाली, प्रजापालक तथा शास्त्रपरायण । यज्ञस्वरूप भगवान्‌की अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास्य, ास, सोमयाग आदि नाना प्रकारके यज्ञोंसे निरन्तर में वे लगे रहते।

ज्योपभोगका समय समाप्त हुआ। विश्वरूपकी पुत्री से उनका परिणय हुआ था। पाँच पुत्र थे उनके।

मनका कुछ ठिकाना नहीं। चक्रवर्ती सम्राट्ने अनुकूला पत्नी, सुन्दर सुकुमार सद्गुणी पुत्र तथ वैभवको तृणके समान त्यागकर काननवास किया था; हिरनमें आसक्ति जा अटकी। एक गर्भिणी मृगी जल थी। सिंहका घोर गर्जन सुनकर वह भयातुर भागी, ग गिर पड़ा। मृगी मर गयी। नवजात शावक जल तड़पने लगा। समीप स्नान करते भरतने देखा द दयावश वे उस मृगशिशुको उठा लाये। दया स्नेहमें उस मृगके पोषणमें आनन्द आने लगा। मोह हो ग यम-नियम धीरे-धीरे छूट गये, मृगकी चिन्ता रहने शरीर छूटते समय भी मृगकी ही चिन्ता थी; फल जन्म मृगदेहमें हुआ।

श्रीहरिकी आराधना व्यर्थ नहीं जाती। मृगदे था कालिंजरमें, परंतु वहाँ भी पूर्वजन्मकी स्मृति थी फिर पुलहाश्रम आये। सूखे पत्तोंका आहार करते। तक न छूते। काल-क्रमसे शरीर छूटा गण्डकी नदी जलमें। तीसरे जन्ममें ब्राह्मण-शरीर प्राप्त हुआ।

'दूधका जला छाँछ भी फूँक-फूँककर पीता है।' पि न हो जाय, अतः परम ज्ञानी भरत अपनेको मूर्ख पागल दिखलाते। लौकिक शिक्षामें उनकी कोई रुचि न पिताके शरीरान्तके समय माता सती हो गयी सौतेल पुत्रोंको इनकी इतनी चिन्ता नहीं थी। ये उनके य द्वारा बताये कार्यमें लग जाते। जो कोई कुछ दे देत स्वीकार कर लेते। खेतकी रक्षामें बैठे हुए इनको ए सेवक देवीको बलि देने पकड़ ले गये। इनको तो मोह था नहीं, पर भगवती ऐसे सर्वात्मभावापन्नकी ले लें। चण्डिकाने प्रकट होकर दुष्टोंका शिरश्छेदन सिन्धुराजके सेवक इन्हें राजाकी पालकी ढोने पकड़ वहाँ वे सौवीरनरेश इनके उपदेशोंसे तत्त्वज्ञान कृतार्थ हुए।

सम्राट् भरत

ठीक-ठीक यह कहना कठिन है कि हमारे देश भारतवर्ष भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरतके नाम या दुष्यन्तपुत्र भरतके नामपर। दोनों चक्रवर प्रतापशाली, प्रजापालक, धर्मात्मा तथा भगवद्भ शतशः बड़े-बड़े यज्ञोंके करनेवाले हुए हैं।

काको घेरकर अपने पक्षोंकी छायासे उसकी रक्षा कर फलतः बालिकाका नाम शकुन्तला हुआ। महर्षि अपने आश्रममें उठा लाये। वहीं उसका पालन-श्रा।

राज दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्वाश्रममें पहुँचे। ने उनका आतिथ्य किया। 'पुरुवंशियोंके चित्तमें सना कभी उठती नहीं।' नरेशको अपने अन्तःकरण-पर विश्वास था। मुनिकन्याके प्रति मनमें क्षोभ न्होंने परिचय पूछा और तब परस्पर सहमतिसे दोनों-र्व-विवाह हो गया।

ा राजधानीको चले गये। महर्षिके आश्रममें ही को एक पुत्र हुआ। बचपनसे वह बालक अत्यन्त ा। सिंहिनीकी गोदसे उसके शावक बलात् छीनकर थ वह खेला करता। जब मनमें आता, एक छोटी कर सिंहके मस्तकपर पीटने लगता—'तू मुख खोल, ंत गिनूँगा।' महर्षि कण्वने उसका नाम सर्वदमन

ुन्तला पुत्रको लेकर दुष्यन्तके समीप आयीं। नरेशने पने समीप रखना अस्वीकार कर दिया। वे गान्धर्व बात भूल गये थे। सहसा आकाशवाणीने दिलाया—'शकुन्तलाका अपमान मत करो, यह ही पुत्र है। इसका भरण करो।' राजाने भूल की। पुत्रका नाम इसलिये 'भरत' हुआ! क्योंकि ाणीने उसके भरणकी बात कही थी।

यन्तके पश्चात् भरत सम्राट् हुए। उन्होंने गङ्गातटपर र यमुनातटपर ७८ अश्वमेध यज्ञ किये। दिग्विजय-समय भरतने किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कंक, खश, दि अनेक म्लेच्छजातियोंको पराजित करके निर्जन भगा दिया। दानवोंने देव-कन्याओंका हरण किया था। जाकर भरतने उन देवाङ्गनाओंका दानवोंसे उद्धार सम्राट् भरत पृथ्वीके एकच्छत्र अधिपति थे। पाताल-ा उनसे भयभीत रहते थे और स्वर्गाधिपति देवेन्द्र नत्र थे।

महाराज भगीरथ

हाराज सगरका सौवाँ अश्वमेध यज्ञ अधूरा पड़ा था। श्वका पता नहीं था। महाराजकी छोटी रानी ...

कपिलाश्रममें बाँध दिया था। पिताके आदेशसे वे श खोदने लगे। भाग्यकी बात, वे पूर्व दिशासे दक्षिण खोदने लगे थे। फलतः उन्हें प्रायः पूरा जम्बूद्वी ओरसे खोदना पड़ा। जब वे दक्षिण, पश्चिम, उत्तर ईशानकोणमें लगभग वहाँ पहुँचे, जहाँसे खोदना किया था, भूमिके नीचे अश्व चरता दिखायी पड़ा। वहाँ ध्यानस्थ महर्षि कपिलको देखा। बड़ा क्रोध आ और वे चिल्लाते हुए महर्षिको मारने दौड़े—'यह च यहाँ नेत्र बंद करके आ बैठा है।'

भगवान् कपिलने नेत्र खोले। उनका रोष नेत्रसे रूपमें प्रकट हुआ। सब-के-सब वहीं भस्म हो गये। सगर खोदी वह भूमि ही सागर कहलायी। भूतत्त्ववेत्ता स्वीकार कि पहले दक्षिण-भारत, लङ्का, जावा, आस्ट्रेलिया, तथा दक्षिण अफ्रिकाको मिलाता एक पर्वतीय भूखण किसी प्राकृतिक घटनासे वह जलमग्न हो गया। उसके भाग समुद्रमें हैं। यह भूखण्ड वह रेखा सगरपुत्रोंके ईशानकोण तथा पूर्वमें खोदनेसे रह गयी

महाराज सगर चिन्तित हुए। बड़ी रानी केशिन असमञ्जसको वे निर्वासित कर चुके थे। उस निर्वासि लड़के अपने पौत्र अंशुमान्को उन्होंने भेजा। अं देवर्षि नारदने मार्गमें ही सब बातें बता दीं। वे कपिलके समीप जाकर उनकी प्रार्थना करके, उनकी अश्व ले आये। महाराज सगरका यज्ञ पूरा हुआ।

'इन सबका उद्धार गङ्गाजलके स्पर्शसे ही होगा कपिलने अंशुमान्को बताया था। महाराज सगरके जानेपर अंशुमान् नरेश हुए। जैसे ही उनके पुत्र योग्य हुए, उनको राज्य देकर गङ्गाजीको लानेके करने चले गये। दिलीपने भी पिताका अनुसरण किया दिलीपके पुत्र भगीरथ सिंहासनासीन हुए, तब उन्हें चिन्ता हुई। पितामह तथा पिता जिस उद्देश्यमें भगीरथको वह सफल करना था। उनकी प्रजा सुख देवराज इन्द्र अनेक बार उनसे सहायता ले चुके थे जाकर इन्द्रके साथ एक सिंहासनपर बैठकर वे सो चुके थे; पर उनका उद्देश्य तो गङ्गाजीको लाना था मन्त्रियोंको राज्यका प्रबन्ध सौंपकर गोकर्ण तीर्थमें वे लगे। कल्पभेदसे ऐसा वर्णन है कि उन्होंने ब्रह्माजी,

ब्रह्मा हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाको धरापर भेजनेको
ए। भगीरथने पुनः तप करके गङ्गाजीको धारण
रने भगवान् शङ्करकी स्वीकृति प्राप्त की। गङ्गाजी चलीं।
अपने वेगमें भगवान् शङ्करको बहाकर रसातल पहुँचने-
ा कर ली। भगवान् शङ्कर गङ्गाके गर्वको जानकर रुष्ट
। उन्होंने अपनी जटाओंमें उन्हें धारण कर लिया।
ङ्गाजी रुद्रकी जटाओंसे निकल न सकीं।
प्रार्थना करनेपर शङ्करजीने बिन्दुसरकी ओर गङ्गाको
ा। गङ्गाकी वहाँ सात धाराएँ हो गयीं। उनमें एक
भगीरथका अनुगमन किया।

जा भगीरथ दिव्य रथपर चढ़कर आगे-आगे चल रहे
छे गङ्गाजी आ रही थीं। सहसा राजाने देखा, पीछे
नाम नहीं है। गङ्गाजी जब जह्नु ऋषिके आश्रमके
निकलीं, उन्होंने ऋषिके पूजाके उपकरण बहा दिये।
रोषमें आकर उनको पी लिया था। भगीरथने प्रार्थना
उन परम तापसको तुष्ट किया। ऋषिने अपनी दक्षिण
गङ्गाजीको निकाल दिया और उन्हें अपनी पुत्री कहा।
ऋषिकी पुत्री होनेसे गङ्गाजी जाह्नवी कही जाती हैं।
ज भगीरथ रथसे गङ्गासागरके समीप पहुँचे। वहाँ
जलके स्पर्शसे उनके पूर्वज सगरके वे साठ सहस्र पुत्र
हो गये। भगीरथद्वारा लायी गयी गङ्गाजी भागीरथी
जाती हैं।

भगवती गङ्गा भगवान् वामनके विराट्रूपका चरणोदक
। ब्रह्माण्डके बाहरका यह चिन्मय ब्रह्मद्रव राजा भगीरथकी
ल कीर्ति-कौमुदीके रूपमें विद्यमान है। हिंदुओंकी ये
उपास्य है। ऋषियोंने इनका भूरि-भूरि स्तवन किया
'गङ्गा' इस नामके स्मरणसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं।
ोंमें जाह्नवीका अनन्त माहात्म्य है। इन्हें लानेवाले महाराज
ीरथ हिंदू-संस्कृतिके नित्य वन्द्य हैं।

महाराज रघु

'आज मैं कृतार्थ हुआ! आप-जैसे तपोनिष्ठ, वेदज्ञ ब्रह्म-
ीके स्वागतसे मेरा गृह पवित्र हो गया। आपके गुरुदेव
रतन्तु मुनि अपने तेजसे साक्षात् अग्निदेवके समान हैं।
के आश्रमका जल निर्मल एवं पूर्ण तो है? वर्षा वहाँ ठीक
यपर होती है न? आश्रमके नीवार समयपर पकते हैं तो?
आश्रमके मृग एवं तरु पूर्ण प्रसन्न हैं न? आपका अध्ययन

सौभाग्य मानूँगा।' ब्राह्मणकुमार कौत्सका महाराज
स्वागत किया था। महाराजके कुशल-प्रश्न शिष्टाचा
नहीं थे। उनका तात्पर्य था। इन्द्र, वरुण, अग्नि,
वनदेवता, पृथ्वी—सबको वे दण्डधर शासित कर सकते
तपोमूर्ति ऋषियोंके आश्रममें विघ्न करनेका साहस
देवताको भी नहीं करना चाहिये।

'आप-जैसे धर्मज्ञ एवं प्रजावत्सल नरेशके राज्यमें
मङ्गल सहज स्वाभाविक है। आश्रममें सर्वत्र कुशल है
गुरुदेवसे अध्ययनके अनन्तर गुरुदक्षिणा माँगनेका
किया। वे मेरी सेवासे ही सन्तुष्ट थे; पर मेरे बार-बार
करनेपर उन्होंने चौदह कोटि स्वर्ण-मुद्राएँ माँगीं; क्यों
उनसे चतुर्दश विद्याओंका अध्ययन किया है। नरेन्द्र!
मङ्गल हो। मैं आपको कष्ट नहीं दूँगा। पक्षी होने
चातक सर्वस्व अर्पितकर सहज शुभ्र बने घनोंसे याचन
करता। आप अपने त्यागसे परमोज्ज्वल हैं। मुझे
दें।' कौत्सने देखा था कि महाराजके शरीरपर
आभूषण नहीं है। मिट्टीके पात्रोंमें उस चक्रवर्तीने अ
अर्घ्य एवं पाद्य निवेदित किया था। यज्ञान्तमें म
सर्वस्व दान कर दिया था। राजमुकुट और रा
अतिरिक्त उनके समीप कुछ नहीं था।

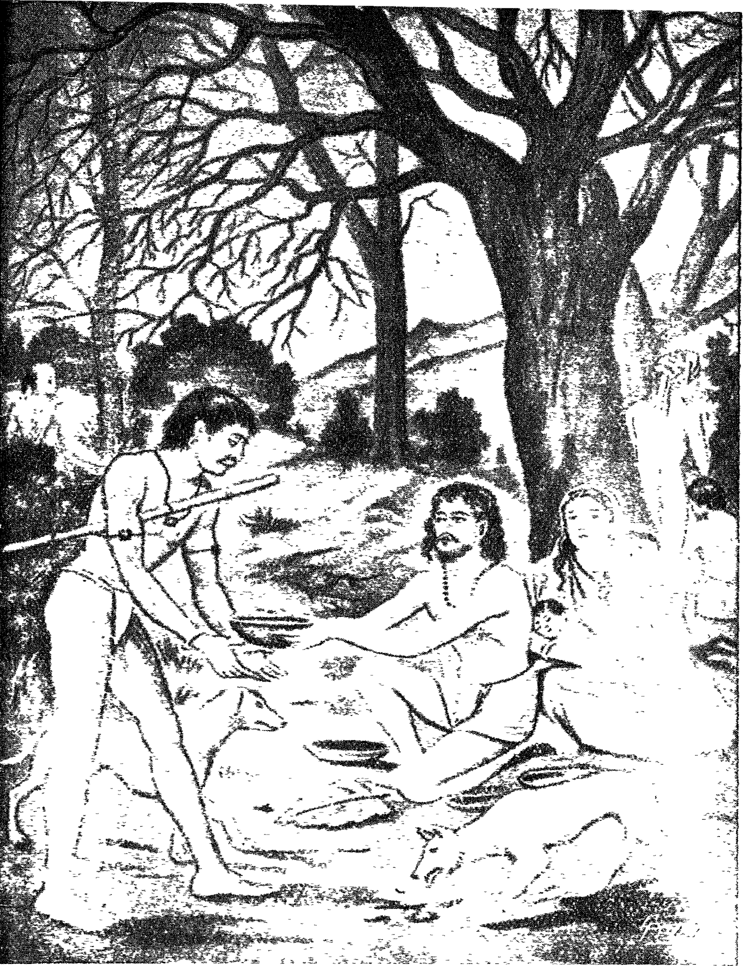
'आप पधारे हैं तो मुझपर दया करके तीन
अग्निशालामें चतुर्थ अग्निकी भाँति सुपूजित होकर
करें!' रघुके यहाँसे सुयोग्य वेदज्ञ ब्राह्मण निराश
कैसे सहा जाय। कौत्सको महाराजकी प्रार्थना स्वीक
पड़ी।

'मैं आज रथमें शयन करूँगा। उसे शस्त्रोंसे
कर दो! कुबेरने कर नहीं दिया है।' यज्ञके
सम्पूर्ण नरेश कर दे चुके थे। सम्पूर्ण कोश दान हो
अतिथिकी याचना पूरी किये बिना भवनमें प्र
अनुचित जान पड़ा। कुबेर तो दूसरे देवताओं
स्वर्गमें नहीं रहते। उनकी अलका हिमालयपर है
तब वे भी चक्रवर्तीके एक सामन्त ही हैं। कर देन
उन्हें। महाराजने प्रातः अलकापर आक्रमणका निश्च

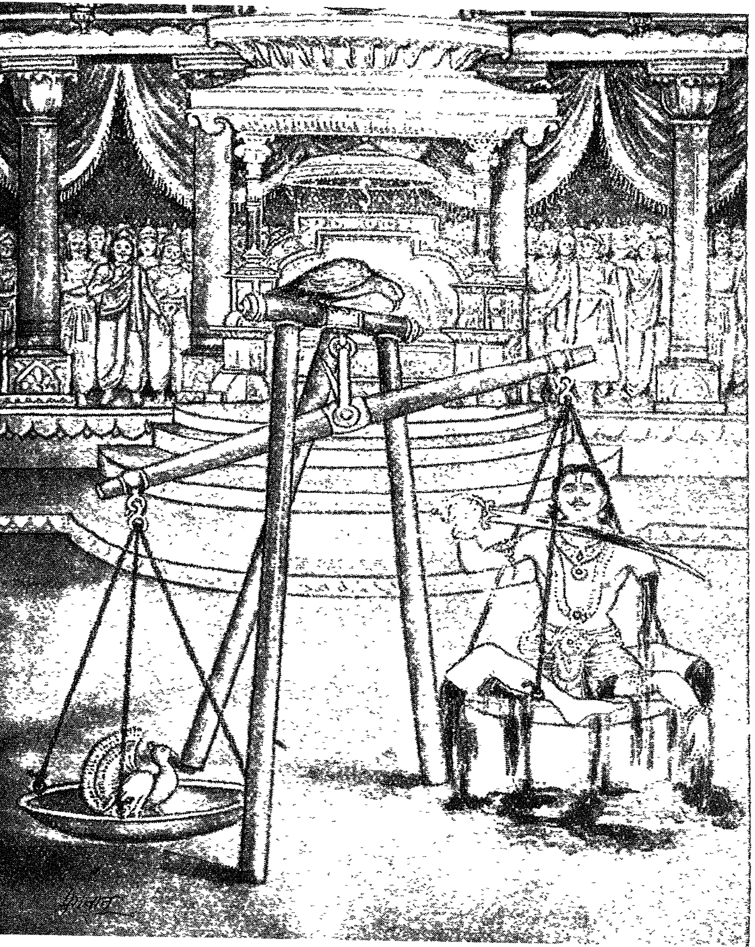
'देव! कोशागारमें स्वर्ण-वर्षा हो रही है।' ब्रा
महाराज नित्यकर्मसे निवृत्त होकर रथपर बैठे। उन
ध्वनि की। इतनेमें दौड़ते हुए कोशाध्यक्षने निवेदन

(पृष्ठ ८१७)

(पृष्ठ ८१६)



(पृष्ठ ८२४)



(पृष्ठ ८२५)

द्रव्य आपके निमित्त आया है। ब्राह्मणके निमित्त मेंसे मैं या मेरी प्रजा कोई अंश कैसे ले सकती है।' ा आग्रह ठीक ही था।

ब्राह्मण हूँ। 'शिल' या 'कण' मेरी विहित वृत्ति ाक्षिणाकी चौदह कोटि मुद्राओंसे अधिक एकका भी लिये लोभ तथा पाप है।'' ब्रह्मचारी कौत्सका कहना ा ही था। आजके युगमें, जब मनुष्य दूसरोंके स्वत्व- करनेको नित्य सोत्साह उद्यत है, यह त्यागमय विवाद ा सकेगा वह। ब्रह्मचारी चौदह कोटि मुद्रा ले गये। णोंको दान हो गयीं।

× × ×

कवि कालिदासने रघुवंशमें पुराणोंकी वंशावलीको ऽट-पुलट दिया है। पुराणोंके अनुसार खट्वाङ्गके बाहु थे और उनके महाराज रघु। रघुके पुत्र अज ाके महाराज दशरथ हुए। महाराज रघु परम पराक्रमी, ाशस्वी तथा पुत्रके समान प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। ामपर ही सूर्यवंशीय क्षत्रियोंका कुल रघुवंशी । भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम इसी महिमामय ावतीर्ण हुए।

शरणागतवत्सल महाराज शिबि

ीनर देशके महाराज शिबि अपने राजसदनमें आनन्द- ठे थे। सहसा एक कबूतर उड़ता हुआ आया और ाकी भाँति उनके वस्त्रोंमें छिप गया। दो क्षण पश्चात् ाज उसके पीछे झपटता हुआ आया। बाजने स्पष्ट मनुष्य- कहा—'यह मेरा आहार है, आप इसे छोड़ दें।'

ह मेरे शरण आया है!' महाराजने कबूतरको स्नेहसे ते हुए कहा। 'भला, कहीं शरणागतका त्याग किया ा है।'

ं क्षुधातुर हूँ। आपका धर्म मेरे आहारका हरण करना ना चाहिये।' बाजने महाराजकी ओर नम्रतासे देखा। ुम दूसरे मांससे भी जीवित रह सकते हो। कितना ाहिये तुम्हें?' क्या आवश्यकता कि बाजके लिये वह ही मरे।

महाराज! अन्ततः किसी प्राणीको तो मारा ही जायगा। तो मत पता हैं। सब आपकी शरणमें ही हैं। जब होगी।' इस बार बाजने महाराजको धर्मसङ्कटमें डाल 'मैं कोई अपवित्र मांस ग्रहण नहीं करूँगा।'

'मैं जीवित हूँ और मेरा मांस पवित्र भी है।' शिबिने सम्पूर्ण परिषद्को चकित कर दिया। 'मैं अप मांस दूँगा। तुमको कितना मांस चाहिये?'

'आप सोच लीजिये! एक कबूतरके लिये आप होकर अपना अङ्ग-भङ्ग करें, यह उचित नहीं।' गम्भीरतासे कहा। 'कैसे मैं इस कबूतरकी तौलके बरा मांस चाहता हूँ।'

काँटा मँगवाया गया। कबूतर एक पलड़ेमें गया। महाराज शिबिने तलवार उठायी। भला, दूसरा उनके सुरपूजित शरीरसे शस्त्रका स्पर्श करानेका साहस अपने हाथसे उन्होंने बायीं भुजा काटकर दूसरे पलड़ेप दी। आश्चर्य! कबूतरका पलड़ा तनिक भी नहीं महाराजके मुखपर खेद या कष्टकी रेखातक नहीं आयी।

'यह व्यर्थ है। तुम स्वेच्छापूर्वक मेरे पूरे शरीरको अपनी क्षुधा शान्त कर लो।' महाराज शिबिका शरीर लथपथ हो गया था। उन्होंने अपने एक हाथके अ कटितक दोनों पैर क्रमशः काटकर पलड़ेपर चढ़ा दिये कबूतर अब भी भारी था। उसका पलड़ा भूमिपर ह था। महाराजका चरणहीन शरीर भूमिपर रक्तकीच था। उन्होंने खड्ग पृथक् कर दिया। मुकुट, आभूष कवच तथा वस्त्र उतार दिये और स्वयं दूसरे पलड़े बैठे। अब महाराज शिबिका पलड़ा भारी होकर पहुँच गया था। उन धर्ममूर्तिकी तुलनामें समता शक्ति उस छद्मकपोतमें नहीं थी।

'महाराज! आपका कल्याण हो।' महाराज जब कहने जा रहे थे कि वह सङ्कोच छोड़कर उनका भक्ष उन्होंने देखा कि बाज साक्षात् देवराज इन्द्रके रूप गया। कपोतके स्थानपर अग्निदेव खड़े थे। म शरीर पूर्ववत् स्वस्थ हो गया था। दोनों देवता कह 'आपका धर्म महान् है। आप हमारी परीक्षासे विश्रुत होंगे।'

हिंदू-धर्ममें शरणागतकी रक्षा परम धर्म माना ग शत्रु भी शरणागत हो तो उसकी रक्षा करन आवश्यक हो तो उसकी रक्षामें प्राणोंतकको उत्सर्ग

अतिथिसेवी महाराज रन्तिदेव

ग्नतिथिदेवो भव !' श्रुतिके इस आदेशको सदा
अपने हृदयमें स्थान दिया है। अतिथि-सत्कार हिंदू-
|की महान् विशेषता है। अतिथिकी सन्तुष्टिके लिये
सर्वस्व एवं शरीरतककी बलि देनेवाले महापुरुष
इतने हुए हैं कि उनकी संख्या करना कठिन है।
यौंने मुक्तकण्ठसे भारतीय आतिथ्यकी प्रशंसा की है।
जेस घरसे अतिथि निराश लौटता है, उस घरके
पुण्य वह अपने साथ ले जाता है। जिस घरमें तृण,
ा सुमधुर वाणीसे अतिथिका सत्कार नहीं होता, वह
के बिलके समान व्यर्थ है।' शास्त्रोंके ये आदेश हिंदू-
प्राणोंमें निवास करते थे। हिंदू-गृहस्थ केवल अतिथि-
: उद्देश्यसे गृहस्थाश्रम स्वीकार करता था।

ाराज संकृतिके पुत्र महाराज रन्तिदेव तो भारतीय
के मूर्तिमान् प्रतीक हो गये हैं। उनके राज्यकालमें
जसदनमें नित्य सहस्रों अतिथि पधारते। महाराजका
ातिथिशाला बन गया था और अतिथि भी उनके
ला लगाये रहते थे। महाराजने आगतकी इच्छा
ो इच्छित वस्तु दे देनेका व्रत ग्रहण कर लिया था।
यक्तियोंमें वितरित होते-होते राज्यका कोष समाप्त हो
महाराजके पास देनेको कुछ नहीं बचा। जो एक दिन
था, वह नितान्त अकिंचन हो गया।

त्रेय नरेश भिक्षा नहीं माँग सकता। स्त्री और पुत्रके
ाराजने चुपचाप राजसदन छोड़ दिया। वे जनहीन
ार्गसे यात्रा करने लगे। कन्द, मूल, फल या कोई
गे कुछ दे दे तो वही उनकी आजीविका हो गयी।
लिये एक मुट्ठी तो कौन कहे, एक दाना अन्न नहीं।
ऐसे वनमें पहुँच गये थे जहाँ न कन्द थे, न फल
जल ही। भूख और प्याससे व्याकुल होकर कोई
चल सकता है। अन्ततः महाराज एक स्थानपर
होकर पड़ गये। सुकुमार महारानी, नन्हा-सा पुष्प-
ाजकुमार—प्यासके मारे प्राण निकले जाते थे। सब
: थे। एक-दो नहीं, पूरे अड़तालीस दिन बीत गये
ार।

ाराज रन्तिदेव तथा परिवारमें अब उठनेकी भी शक्ति
भगवान्का स्मरण करते हुए वह परम भगवद्विश्वासी
अन्तिम समयकी प्रतीक्षा कर रहा है। उनचासवाँ

पश्चात् महाराजको एक व्यक्तिने आदरपूर्वक ः
खीर, संयाव (गुजरातकी ओर प्रचलित पक्वा
और शीतल जल निवेदित किया। कोई भी समझ
कि इतने दीर्घ-उपवासी प्राणियोंको इतना स्वादि
मिल जाय तो उनके चित्तकी क्या दशा होगी।
हम-आप-जैसे प्राणी नहीं थे। महाराजने बड़ी
उस सामग्रीको भगवान्के लिये मन-ही-मन अर्पण ि
सोचने लगे—'जीवनमें आज प्रथम बार क्या बिना उ
भोजन कराये ही भोजन करना होगा ?'

'राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो ! मैं बहुत क्षुधात
महाराजको तो जैसे उनके आराध्यने वरदान दि
उन्होंने देखा कि प्रभुने उनकी प्रार्थना सुन ली ै
ब्राह्मण-देवता भोजन करने आ गये हैं। बड़
महाराजने उन्हें भोजन कराया। वे भली प्रकार भोज
तृप्त होकर, महाराजको आशीर्वाद देते विदा हुए।
जानेपर महाराजने शेष पदार्थ स्त्री तथा पुत्रको उनवे
अनुसार बाँट दिया। वे अपना भाग लेकर भोजन व
रहे थे कि एक शूद्र आ गया। वह भूखा था।
उसे भी भोजन कराया।

'महाराज ! मैं और मेरे ये कुत्ते बहुत भूखे हैं !
जाते ही एक दूसरा अतिथि आ पहुँचा। उसके र
कुत्ते थे। सचमुच कुत्ते बहुत भूखे थे। महाराज र
जितना भोजन बचा था, सब उस अतिथिको दे
भोजन पर्याप्त था। वह व्यक्ति और उसके कुत्ते तृप्त
अब महाराजके पास केवल थोड़ा-सा जल बच रहा थ
उपवाससे प्राण कण्ठगत हो चुके थे। उस जलसे ही
ने अपनी तृषा शान्त करनेका विचार किया।

'महाराज ! मैं चाण्डाल हूँ ! प्याससे मेरे प्राण ज
मुझे दो घूँट जल देनेकी कृपा कीजिये !' बड़ी क
वाणी सुनायी दी। स्पष्ट था कि आगत चाण्डा
तृषार्त है। उसने बड़े कष्टसे यह बात कही थी।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।

स्वयं महाराज रन्तिदेवके प्राण कण्ठगत हो :
निश्चित था कि अब जल दे देनेपर जीवन नहीं

: ! मैंने अतिथिरूपमें सदा आपकी आराधना की आपसे परमगति नहीं चाहता । अष्टसिद्धि या समस्त ा मुझे नहीं चाहिये ! आप मुझे मुक्त करें, इसकी ' कामना नहीं । आप मेरा निवास प्राणियोंके हृदयमें जैसे निमिका निवास पलकोंपर है) । मैं प्राणियोंके स्थित होकर उनके सब दुःख भोग लिया करूँ, ब प्राणी दुःखहीन हो जायँ ।'

ने ही सब दुख दे दे, जगजन सारे सुख पायें ।
ारोंके कलुष-भोग हों, इस जनके ऊपर आयें ॥

ाई, तुम भली प्रकार जल पीकर अपने प्राणोंको तृप्त महाराजने जलपात्र उठाया । चाण्डाल दूर खड़ा रह । बड़े साहस, धैर्यसे महाराज वहाँतक गये । उनके एक ही रट थी—

त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
मये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

सर्वसाक्षिन् ! मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं मोक्ष नहीं चाहता । मैं चाहता हूँ दुःखसे संतप्त के क्लेशका नाश ! यही मेरी एकमात्र अभिलाषा है ।

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च
दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ।
र्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तो-
र्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥

र्वव्यापी नारायण ! इस जीवनकी लालसासे व्याकुल रूपमें तुम्हीं मेरे सम्मुख उपस्थित हो ! मैं यह जल अर्पण कर रहा हूँ । जीनेकी इच्छासे व्याकुल इस प्राणी- देनेसे मेरी क्षुधा, पिपासा, मानसिक तथा शारीरिक ीनता, खिन्नता, विषाद, मूर्छा आदि सब दुःख दूर !' महाराजने चाण्डालको भरपेट जल पिला दिया । ने पूरा जल पी लिया और चला गया । धन्य है इस कातरता और त्यागको !

हाराज रन्तिदेव चाण्डालके जाते ही लड़खड़ाये, गिरे । —उन्हें किन कोमल करोंने सम्हाल लिया है ? ये स्थित अरुणवर्ण भगवान् ब्रह्मा हैं, ये गरुड़ासनासीन ाक सजल-जलदश्याम भगवान् विष्णु हैं, ये र विराजे साक्षात् दण्डधर धर्मराज हैं और सबसे

और चाण्डाल बनकर यही अतिथि आये थे उनका नैवेद्य स्वीकार करने । .

आतिथ्य-धर्मकी उन गौरवमूर्तिको लेने आये त्रिभुवनके अधीश्वर । महाराज रन्तिदेवकी परदुःख और अतिथिसेवाने उन्हें आकर्षणकर खींच लिया था आतिथेयका आतिथ्य स्वीकार करनेका लोभ वे भी ह सके थे । आतिथ्य-धर्म और उसके प्रतीक महाराज धन्य हैं ।

भक्तवर अम्बरीष

'धनोन्मत्त अम्बरीष ! तुमने मेरा अनादर कि श्रीदुर्वासाने तपोबलसे जान लिया था कि कालिन्दी-कू आनेके पूर्व ही इन्होंने श्रीहरिका चरणामृत ले लि द्वादशी केवल एक घंटा शेष थी । वर्षभरका एकादशी-व सविधि पूर्ण हुआ था । वस्त्राभूषणोंसे सुसज्ज अने दान दी गयी थीं और सादर ब्राह्मण-भोजन कराया ग पारण-विधिकी रक्षाके लिये अम्बरीषने यह व्यवस्था पर ऋषि क्रोधित हो गये । 'तू श्रीविष्णुका भक्त महा अभिमानी और धृष्ट है । आमन्त्रण देकर अनादर दण्ड दिये बिना मैं नहीं रह सकूँगा ।' ऋषिने अपन एक बाल उखाड़कर पृथ्वीपर पटक दिया ।

महाभयानक कृत्या हाथमें तीक्ष्ण खड्ग लिये उ गयी । वह अम्बरीषपर झपटी ही थी कि तेजोमय च उठा, कृत्या वहीं राख हो गयी । ऋषि प्राण लेकर वह तीव्र प्रकाशपुञ्ज उनके पीछे पड़ गया था ।

दसों दिशाओं और चतुर्दश भुवनोंमें ऋषि घू थक गये, पर कहीं आश्रय नहीं मिला और वह चक्र उनके प्राणकी क्षुधा लिये आतुरतासे पीछे ल श्रीविष्णुके चरणोंमें प्रणिपात करते ही उत्तर मिला, ' हूँ, महामुने ! अपनी रक्षा चाहते हैं तो आप अम क्षमा माँगें । वे ही आपको शान्ति दे सकते हैं ।'

'समस्त प्राणियोंके आत्मा प्रभु मुझपर सन्तु ऋषिका सङ्कट दूर हो ।' अम्बरीषने रोते हुए प्रा ब्राह्मणको अपना पैर स्पर्श करते देखकर वे काँप अत्यन्त दुःखसे एक वर्षसे वे केवल जलपर जीवन थे । ऋषिके पीछे सुदर्शन-चक्रको लगे इतना गया था ।

॰ लिये सुमन-शय्या प्रस्तुत कर देते हैं । दूसरेका सुख अपना सुख है ।'

षकी आँखें गीली हो गयी थीं और श्रीअम्बरीषका नके चरणोंपर था ।

× × ×

... वैवस्वत मनुके पौत्र महाराज नाभागके

—...

महाराज जनक

... वसिष्ठके शापसे निमिने शरीर छोड़ दिया । के ... भी वे शरीर-बन्धन स्वीकार करनेको ... हुए । राजर्षि निमिके कुलका उच्छेद नहीं होना यह सोचकर ऋषियोंने उनके शरीरका मन्थन किया । स शरीरसे एक बालक उत्पन्न हुआ । देहहीन निमिका ... वह विदेह, स्वयं उत्पन्न होनेसे जनक और उत्पन्न होनेसे मिथि कहा गया । उसने बड़े होकर राज्यकी स्थापना की । इस कुलके सब नरेश जनक ह कहे गये ।

...कुल परम ज्ञानियोंका कुल रहा । योगीश्वर ...यके अनुग्रहसे सभी मैथिल नरेश परम ज्ञानी हुए । ...नके हलकी नोकसे भूमिमेंसे सीताजीका प्रादुर्भाव ...उन भूमिनन्दिनीके पिता जनकका नाम महाराज हुआ ।

...राज जनक भगवान् शङ्करके परम भक्त थे । शङ्कर-...न्न होकर उन्हें अपना धनुष 'पिनाक' दिया था । ...ीके स्वयंवरमें इसी धनुषको मर्यादापुरुषोत्तमने ...महाराज जनक निरन्तर ब्रह्मस्वरूपमें स्थित रहते थे । ...र संसारकी आसक्तिका उनमें नाम नहीं था । बड़े-...-महर्षि उनसे ज्ञानचर्चा करने और ब्रह्मज्ञानका ...ाप्त करने आते थे ।

...रमें शुकदेवजी-जैसे परमज्ञानी, सहज वीतरागने ... व्यासके आदेशसे जनकजीसे जाकर ज्ञानोपदेश प्राप्त ... ब्रह्मज्ञानके साथ भगवद्भक्तिका अपार रससागर ...जनकके हृदयमें हिलोरें लिया करता था । श्रीरामको ...उनका वह आन्तरिक गुप्तभाव प्रकट हो गया था ।

...ारमें कुशलतापूर्वक राग-द्वेष-अहङ्कारशून्य होकर ... बर्ताव करनेवालोंके महाराज जनक आदर्श हैं । ...ने गीतामें प्रवृत्तिमार्गके आदर्शके रूपमें जनकका

भीष्म

त्रिलोकपावनी भगवती सुरसरिने नारीरूप... किया । महर्षि वशिष्ठके शापसे वसुओंको ज... करना था । पौरव चक्रवर्ती महाराज शन्तनुके ... वसु मानवयोनिमें आये । गङ्गाजी उन्हें उत्पन्न ... जलमें प्रवाहित करके पुनः उनके धाम मे... करती थीं । द्यौ नामक अष्टम वसु जब उत्प... नरेशने गङ्गाजीसे एक पुत्र माँगा । पुत्रको पि... छोड़कर गङ्गाजी चली गयीं ।

'मेरी कन्यासे उत्पन्न पुत्रको आप सिंहास... वचन दें तो मैं उसका विवाह आपके साथ क... दूँ ।' दाशराजने महाराज शान्तनुके लिये एक ... उपस्थित कर दी । महाराज दाशराजकी पो... योजनगन्धा सत्यवतीपर मोहित हो चुके थे । सद्गुणी, शूर, पितृभक्त गङ्गा-पुत्र देवव्रतको ... च्युत करना भी उन्हें प्रिय नहीं था ।

'मैं सिंहासनका सदाके लिये त्याग करत...' देवव्रतको पिताकी म्लानताका कारण ज्ञात हो ग... वे स्वयं दाशराजके समीप उन्हें सन्तुष्ट कर... गये !

'आपके पुत्र मेरी कन्याके पौत्रोंको सिंहासन... रहने देंगे ।' दाशराज तो अपनी पुत्रीकी परम्पराके लिये राज्य चाहते थे ।

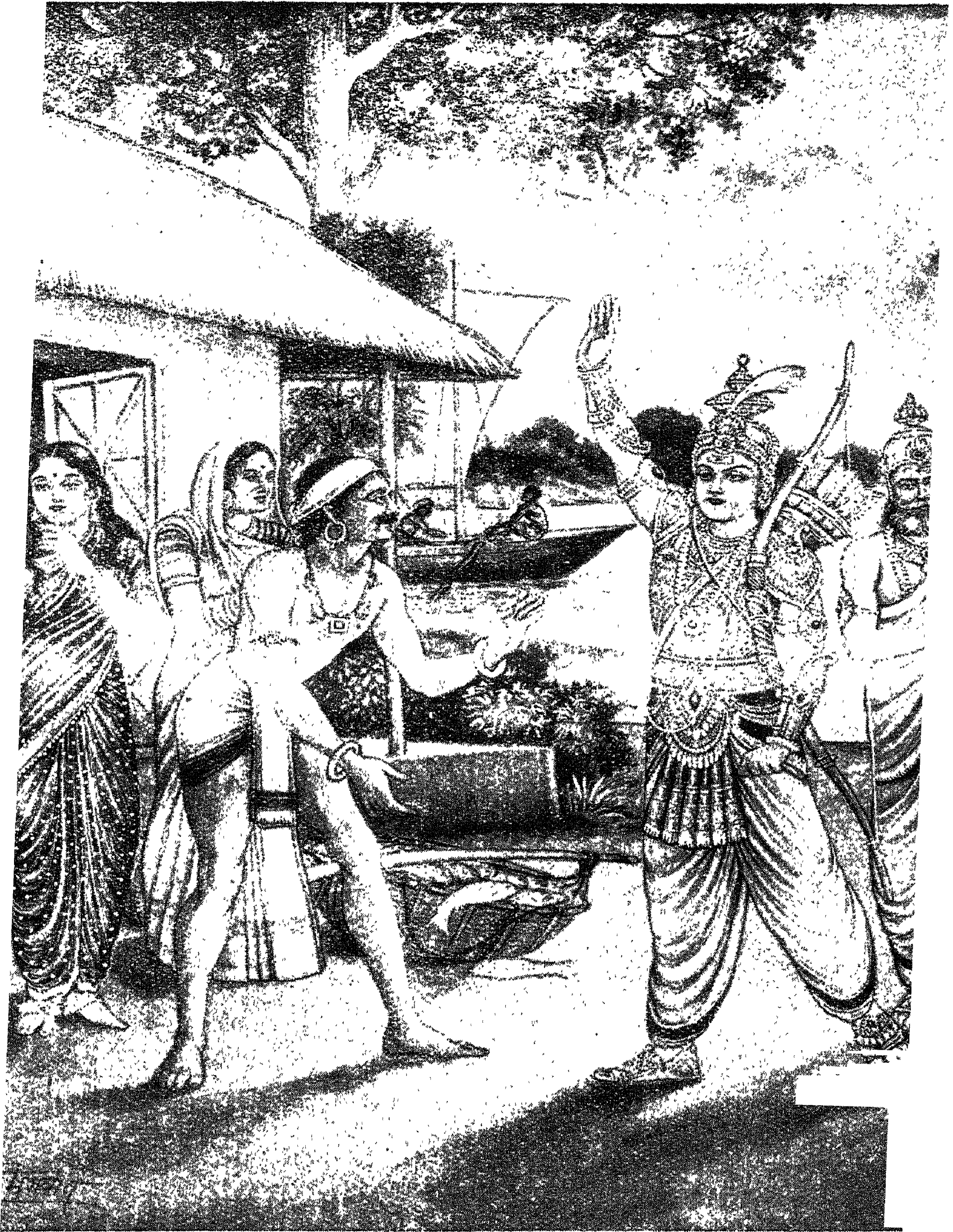
'मैं आजन्म अविवाहित रहनेकी प्रतिज्ञा कर...' देवव्रतने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य स्वीकार किया । इ... प्रतिज्ञाके कारण आकाशवाणीने उन्हें 'भीष्म...' दिया ।

'पुत्र ! तू इच्छामृत्यु हुआ । तेरी इच्छाके... मृत्यु तेरा स्पर्श नहीं कर सकेगी !' महारा... भीष्मको वरदान दिया उनकी पितृभक्तिसे प्रसन्न...

× × × ×

'भीष्म ! तुम अम्बाको स्वीकार कर...' भगवान् परशुरामने काशिराजकी पुत्रीका पक्ष... भीष्मने स्वयंवरमें काशीनरेशकी तीनों पुत्रियोंक... छोटे भाईके लिये हरण किया था । उनमें स... पहलेसे मद्रनरेशको चाहती थी । उसकी इच्छा

आदर्श पुत्र



घोर प्रतिज्ञा देवव्रतने की तब वहाँ उठाकर हाथ,
'सत्यवतीका तनय हमारे कुरु-कुलका होगा नर-नाथ।
मैं न विवाह करूँगा, अपना छोड़ रहा हूँ नृप-अधिकार'
सुन सहसा सुर चकित हो गये बोल भीष्मकी जय-जयकार!

[illegible] ॥

सरेके द्वारा हरी गयी कन्याको पत्नी कैसे बना
म्बा वहाँसे निराश लौटी । उसने भीष्मको
रना चाहा । ब्रह्मचारी भीष्मके अस्वीकार करने-
परशुरामजीके शरण गयी । परशुरामजी अपने
ाके शिष्यके समीप आये ।

य, दया, धनके लोभ या किसी भी कामनासे
ना व्रत नहीं छोड़ सकता ।' बड़ी नम्रतासे
जीको भीष्मने समझाया, परंतु परशुरामजी बराबर
करने लगे । वे धमकी देने लगे । अन्तमें
आवेश आया—'आपने अकेले पृथ्वीके समस्त
ो केवल इसलिये जीत लिया कि उस समय भीष्म
। आपकी ही कृपासे मैं आपका गर्व दूर
समर्थ हूँ ।'

नोंमें भयङ्कर संग्राम प्रारम्भ हो गया । दोनों
के मर्मज्ञ, दोनों दृढ़चित्त, दोनों मृत्युकी
से । पूरे तेईस दिन युद्ध अविराम चलता रहा ।
ने दोनोंको समझाया । भीष्मका उत्तर स्पष्ट
ैं युद्धमें पीठ दिखाकर कायरोंकी भाँति पीछेसे
प्रहार सहता हुआ हट नहीं सकता ।'
ोंको बीचमें पड़कर युद्ध बंद कराना पड़ा ।
ाजी भीष्मको पराजित नहीं कर सके ।

× × × ×

टा ! मेरी आज्ञासे तुम विवाह करके वंशकी रक्षा
और सिंहासनपर बैठो ।' सत्यवतीके दोनों पुत्र
के थे । भरतवंशका कोई आधार नहीं था ।
का सिंहासन सूना पड़ा था । पिताने पुत्रीके लिये
दानरूप व्यवस्था की, वह अभिशाप बन रही थी ।
यदि माताकी आज्ञा मान लें तो वंश बच जाय ।

ाता ! तू मुझसे यह आग्रह मत कर ! पृथ्वी गन्ध,
उष्णता, आकाश शब्द, वायु स्पर्श, जल आर्द्रता,
ीतलता, सूर्य तेज, इन्द्र बल और धर्मराज धर्म चाहे छोड़
तीनों लोकोंके राज्य या उससे भी महत्तर सुखके
भीष्म अपना व्रत नहीं छोड़ेगा ।' भारतभूमि
जो ऐसे लोकोत्तर पुरुषोंकी क्रीडास्थली बनती
।

युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अग्रपूजाका प्रश्न
पितामह भीष्मने बड़े दृढ़ शब्दोंमें अपना भाव
किया । और जब शिशुपाल उन्हें कटुवचन क
आक्रमणको उद्यत हुआ, धर्मराज भी चिन्तित
पर भीष्म स्थिर थे । 'श्रीकृष्ण ही समस्त
उत्पत्ति और विनाशके कारण हैं ।' इस निश्चयकी
उन्होंने की और अपने विश्वासपर अन्ततक हि
भाँति दृढ़ रहे ।

महाभारतके युद्धमें ये अकेले दस दिनोंतक कौरव
सेनापतित्व करते रहे, जब कि शेष आठ दिनोंमें द्रो
कर्ण और शल्य—ये तीन सेनापति बदल गये ।
दुर्योधनको अनेक बार समझाया, कर्णकी तो वे
भर्त्सना ही करते रहे । महाभारतके संग्राममें
प्रतिज्ञा कर ली । 'कल श्रीकृष्णचन्द्रको शस्त्रधारण
विवश कर दूँगा ।'

दूसरे दिन युद्ध छिड़ा । भीष्मकी बाण-वर्षा
मूर्च्छित हो गये । भक्तवत्सल प्रभुने भक्तके लिये
प्रतिज्ञा तोड़ी । श्रीकृष्णचन्द्र बार-बार सिंहनाद कर
टूटा चक्का हाथमें उठाकर भीष्मकी ओर दौड़े
चक्रधरके करोंमें वह पहिया सहस्रार चक्र बन गया
सबके हृदय बैठ गये । सब चिल्लाने लगे 'भीष्म म
भीष्म मारे गये ।'

भीष्म ? उनके तो आनन्दका पार ही नहीं था
धामने उनके लिये अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी । वे धनु
रखकर, दोनों हाथ जोड़कर, घुटनोंके बल बैठे प्रा
रहे थे—'पुण्डरीकाक्ष ! पधारो । पधारो, पुरुषोत्त
आज मेरा वध करो ! गोविन्द ! कृष्ण ! जगन्नाथ
हाथसे मरनेपर मेरा सब प्रकार कल्याण होगा ।
त्रैलोक्यमें सम्मानित हूँ । हे निष्पाप प्रभु ! मेरे
मुझपर प्रहार करो ।'

अर्जुनने दौड़कर पीछेसे भगवान्‌के पैर पकड़
उन्हें लौटाया । वे दयामय केवल भीष्मकी प्रति
पूर्ण करने चले थे । वह पूर्ण हो गयी ।

× × × ×

'मैं शिखण्डीको सम्मुख पाकर धनुष रख
अपने वधका उपाय स्वयं बताना पितामहकी ही

के प्रतिकारहीन पितामहपर शरवर्षा की । जब
से भूमिपर गिरे, उनके शरीरका रोम-रोम बिंध चुका
शरीर बाणोंपर उठा रह गया । यह थी उनकी
।

ह ! मेरे योग्य तकिया दो !' मस्तकमें बाण नहीं लगे
नीचे लटक रहा था । दुर्योधनादि कोमल सहारा
हते थे मस्तकको ! पितामहने अर्जुनकी ओर देखा ।
न बाण मारकर मस्तकको ऊपर उठा दिया । भीष्म
प्रसन्न हुए । अनेक शस्त्र-वैद्य दुर्योधनने वहाँ भेजे ।
ो निकालकर चिकित्सा करनेको प्रस्तुत थे, पर उस
न्हें लौटा दिया । क्षत्रियकी शोभा रणाङ्गणमें
ही तो है ।

× × × ×

ु ! आप किसका ध्यान कर रहे थे ?' नीरव अर्ध-
ीकृष्णचन्द्रको आसनसे बैठकर ध्यान करते देख
युधिष्ठिरको आश्चर्य हुआ । वे चुपचाप प्रतीक्षा
।

शय्यापर पड़े नरशार्दूल भीष्म मेरा ध्यान कर रहे
उन भक्तवाञ्छाकल्पतरुने भरे लोचनोंसे उत्तर

यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

-की प्रतिज्ञा जो कर रखी है उन्होंने ।

धिष्ठिर भाइयोंके साथ रणाङ्गणमें पितामहके समीप
ा प्राप्त करने गये । भगवान्‌ने भीष्मसे अनुरोध
उनके कष्ट, ग्लानि, मूर्च्छादिको अपने प्रभावसे दूर
और बताया—'मैं स्वयं उपदेश न करके इसलिये
उपदेश कराना चाहता हूँ कि मेरे भक्तकी कीर्ति
विस्तृत हो ।'

ति, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदिका जो उपदेश
भीष्मने दिया, वह महाभारतके शान्तिपर्वमें ही
योग्य है । अन्तमें उत्तरायण काल आया । चतुर्भुज,
मल-सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन एवं स्तवन करते
न्होंने शरीर छोड़ दिया । अन्तिम समयकी भीष्मकी
ति श्रीमद्भागवतमें इतनी भावपूर्ण है कि उसे मूलमें
ाकर कण्ठस्थ कर लेना चाहिये ।

श्राद्धके समय प्रत्येक हिंदू उन्हें पिण्डदान करता
शौर्य, तेज, ज्ञानके साक्षात् विग्रह थे । जीवनमें उन
एक बार प्रमाद हुआ—कौरव-सभामें द्रौपदीका व
जाते समय वे मौन रह गये थे । उन्होंने शरशय्याप
था कि यह प्रमाद दुर्योधनके अन्नके दोषसे उनमें
नित्य श्रीकृष्णमें अखण्ड अनुराग रखकर कर्तव्य
रहनेका उन्होंने उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है ।

धर्मराज युधिष्ठिर

धर्मके अंशसे देवी कुन्तीमें उत्पन्न पाण्डुके ज्ये
युधिष्ठिरके कीर्तन (-स्मरणादि) से धर्मकी वृद्धि ह
महाराज पाण्डुके वनमें परलोकगामी होनेपर भीष्म
पाण्डवोंको हस्तिनापुर ले आये । आचार्य द्रोणने उ
शिक्षा दी । धृतराष्ट्रके अन्धे होनेके कारण पाण्डु
अधिकारी हुए थे । न्यायतः पाण्डुके पश्चात् उ
पुत्रको राज्य मिलना चाहिये । वैसे भी युधिष्ठिर
बड़े थे । दुर्योधन राज्यलिप्साके कारण बचपनसे ही
द्वेष करने लगा । धृतराष्ट्र अपने पुत्रके प्रेमवश
समर्थन करते थे ।

युधिष्ठिर अजातशत्रु थे । संसारमें उन्हों
किसीको अपना शत्रु नहीं माना । भीमको दुर्योध
दिया, लाक्षाभवनमें पाण्डवोंको जलानेका प्रयत्न
राजसूय यज्ञके पश्चात् छलपूर्वक जुएमें युधिष्ठिरको
पाण्डवसम्राज्ञी द्रौपदीको भरी सभामें अपमानि
उसने । प्रत्येक दशामें युधिष्ठिर शान्त बने रहे । उन्हे
भाइयोंको नियन्त्रित रखा । सत्य और धर्मपर वे
बने रहे । वे इतने धर्मप्राण थे कि जिस देशमें र
अकाल नहीं पड़ता और प्रजा सर्वथा सुखी रहती ।

दुर्योधनको दुष्टतासे वनवास मिला । वहाँ
अपमानित करनेके लिये ससैन्य आ रहा था ।
चित्ररथने उसे बंदी कर लिया । युधिष्ठिरको
मिला । 'जो भी हो, है तो अपना भाई ही । दूसरे
हम सब एक हैं ।' उन्होंने अर्जुनको भेजकर
दुर्योधनको मुक्त कराया और बड़े सम्मानसे उसे वि

सरोवरपर जल लानेको गये हुए चारों भाई प्रा
थे । वहीं एक यक्ष दिखायी दिया । युधिष्ठिरके अ

न था। यक्ष उनकी धर्मनिष्ठासे प्रसन्न हो गया। बको जीवित कर दिया। इसी प्रकार विराटने उनके सेसे प्रहार किया था; पर वे चिन्तित थे कि कहीं देख लिया तो विराटनरेशका अनिष्ट होगा।

प्रस्थानके समय दिव्यरथ उन्हें लेने आया। उस न्होंने अपने अनुगामी कुत्तेको छोड़कर स्वर्ग जाना- वीकार कर दिया। उनकी धर्मनिष्ठा देखकर कुत्ता पमें प्रकट हो गया। इस प्रकार महाराज युधिष्ठिरका न धर्म, शान्ति, क्रोधहीनता, निर्वैरता तथा समदर्शिता- नान् आदर्श है। उनके धर्म और भक्तिसे ही भगवान् उनके अपने हो गये थे।

महारथी अर्जुन

र्जुनकी योग्यताका प्रमाण उसी दिन मिल गया, जब द्रोण कौरव और पाण्डव—सब बालकोंकी शस्त्र-परीक्षा थे। वृक्षपर कृत्रिम पक्षी बैठाया गया था। बाणसे दाहिने नेत्रका वेध करना था। आचार्यने पूछा— तुम क्या देख रहे हो?'

से पक्षीके दाहिने नेत्रको छोड़ कुछ दिखायी नहीं लक्ष्यमें जिसकी इतनी एकाग्रता हो, वही जीवनका धा हो सकता है।

र्जुनकी शूरताका ही वर्णन एक प्रकारसे महाभारतमें। उनके दृढप्रतिज्ञ होनेका वह अद्वितीय उदाहरण वे बारह वर्षके लिये स्वेच्छापूर्वक वनवास करने थे। अनेक कारणोंसे द्रौपदीका विवाह पाँचों हुआ था। विश्वमें भूमि और भामा (स्त्री)— संघर्षके मुख्य हेतु हैं। परस्पर कोई विवाद न उठ , इसलिये पाण्डवोंने द्रौपदीके साथ रहनेकी एक अवधि बना ली। यह नियम निश्चित हुआ कि यदि द्रौपदीके पास हो और दूसरा वहाँ पहुँच जाय तो ला बारह वर्षका निर्वासन स्वीकार करे।

दिन एक ब्राह्मण दौड़ता हुआ आया। उसकी स्यु बलपूर्वक लिये जा रहे थे। अर्जुनने विप्रको दिया। दस्युओंको दण्ड देनेके लिये धनुष था। धनुष द्रौपदीके अन्तःपुरमें था और वहाँ थे। अर्जुनने ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षाके लिये भीतर

'मैं तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता हूँ। द्रौपदीसे मैं सामा ही कर रहा था। तुमने ब्राह्मणकी गायें बचाक धर्मकी रक्षा की है।' धर्मराजने बहुत समझाया कि स्वीकार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

'धर्मपालनमें बहानेबाजी नहीं करनी चाहिये।' नियम-भङ्ग करना स्वीकार नहीं किया। वे स्व वर्षोंतक हस्तिनापुरसे बाहर रहे।

× × × ×

'अर्जुन मेरा अत्यन्त प्रियपात्र है। उर्वशी पुरुषश्रेष्ठको सन्तुष्ट करना चाहिये।' देवराज चित्रसेनको आदेश दिया। अपने तप एवं पराक्रमसे शङ्करको सन्तुष्ट करके अर्जुनने उनके पाशुपतास्त्रको लिया था। लोकपालोंने उन्हें अपने दिव्यास्त्र दिये थे आकर उन्होंने असुरोंका दमन किया था। आज देवसभामें जब अप्सराएँ उनके सम्मानमें नृत्य कर र महेन्द्रने देखा था कि वे बार-बार उर्वशीकी अ रहे हैं।

'मातः! देवराजको मेरा भाव समझनेमें भ्रम राजसभामें मैंने आपको देखा तो मुझे स्मरण उ आप ही हमारे भरतकुलकी जननी हैं। मैं आपको करता हूँ।' उर्वशी स्वयं अर्जुनके शौर्य एवं सौन्दर्य थी। देवराजका आदेश पाकर वह एकान्त रात्रिमें करके अर्जुनके पास पहुँची थी। स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ एकान्तमें आयी थी और निर्लज्ज होकर स्वयं कामया रही थी। अर्जुनने उसके बार-बारके अनुरोधको अ कर दिया। जिसे एक बार मातृभावसे देखा ज उसके प्रति अन्यथाभाव तो महापाप होगा। क्रु उर्वशीने शाप दिया—'तू वर्षभर नपुंसक रहेगा और नाचना-गाना सिखायेगा।'

धर्मपर स्थिर संयमीको कोई शक्ति कष्ट सकती। मङ्गलमय धर्म समस्त प्रतिकूलताओंको अनु देता है। उर्वशीका शाप अर्जुनके लिये वरदा हुआ। अन्यथा उनके-जैसा ओजस्वी शूर विरा अपनेको वर्षभरतक छिपाये रखनेमें सफल सकता था।

× × × ×

ाँगने पहुँचे। दुर्योधन कुछ पहले पहुँचे थे। ायन कर रहे थे, अतः वे सिरहाने एक आसनपर । अर्जुन पीछे पहुँचे। वे चरणोंके समीप धीरेसे भगवान् उठे । दुर्योधनका कहना था कि वे ; हैं, अतः उन्हें सहायता मिलनी चाहिये । अर्जुनको ा नहीं था। श्रीकृष्ण स्वयं कह रहे थे कि मैंने नको देखा है।

; ओरसे समस्त नारायणी सेना सशस्त्र युद्ध करेगी ी ओर अकेला मैं रहूँगा। मैं न युद्ध करूँगा और ग्रहण करूँगा।' लीलामयने निर्णय सुनाते हुए ; पहले अर्जुनको ही पसंद करनेका अधिकार है।

ण्डवोंके सर्वस्व आप ही हैं। मैं आपको छोड़कर ी शक्ति भी स्वीकार नहीं कर सकता।' अर्जुनके ोई विकल्प था ही नहीं। दुर्योधन भी प्रसन्न हो उसे नारायणी सेना ही अभीष्ट थी। चक्रधर श्रीकृष्णसे ा था; उसके मनमें यह भी था कि शस्त्रहीन श्रीकृष्ण । भला करेंगे।

र्जुन! अब भी बहुत-से महारथी हैं। तुम मुझे लेकर ोगे?' भगवान्ने हँसकर पूछा।

बहुत दिनोंसे इच्छा है कि आपके हाथोंमें अपने रथकी ः दूँ। अब आप रथ हाँकेंगे मेरा।' अर्जुन हँस पड़े। ; श्रीचरण जहाँ हैं, वहाँ और किसी वस्तुकी अपेक्षा ा है।'

सी निर्भरताने श्यामसुन्दरको अर्जुनका रथ हाँकनेवाला बनाया। दूसरे समस्त ऋषि-मुनियोंको छोड़कर ो ही भगवान्ने गीताके दिव्य ज्ञानामृतका अधिकारी यों हीं बनाया था।

× × × ×

'अर्जुन मेरा प्राण है। दारुक! तुम भली प्रकार समझ लो दि कल युद्धमें अर्जुनकी प्रतिज्ञा सफल न हुई तो मैं । प्रतिज्ञा तोड़कर चक्र उठाऊँगा और सारे कौरवदलका कर दूँगा। अर्जुनके लिये मुझे कोई कार्य करनेमें व नहीं।' महाभारतके युद्धमें अभिमन्युकी मृत्युसे ात अर्जुनने जब दूसरे दिन सूर्यास्तसे पूर्व जयद्रथका करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब भक्तवत्सल प्रभुको रात्रिभर ; नहीं आयी। उन्होंने अपने सारथि दारुकको अपना । रथ शस्त्र-सज्ज करके प्रस्तुत रहनेकी आज्ञा दी।

आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनञ्जयः।

अर्जुनके जीवनाधार श्रीकृष्ण ही हैं और श्रीकृ प्राण अर्जुनमें निवास करते हैं। यह बात दुर्योधनने स्वीकार की। महाभारतके युद्धमें श्रीकृष्णने पल-पल अ ध्यान रक्खा। अर्जुनकी रक्षाके लिये वे सतत सचे और अर्जुन तो उनके करोंमें रथके साथ जीवनको भी सौंप चुके थे।

श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्न, उन नारायणके नित्य नर ही अर्जुनके रूपमें प्रकट हुए थे। उनका शौर्य, दृढ़ निश्चय, अटल प्रतिज्ञा और सबसे बढ़कर श्रीकृ अनन्य विश्वास—ये सब गुण दूसरे किसीमें एक साथ कठिन हैं। अर्जुन नरके अवतार कहे जाते हैं। सच्च नर (मानव) के वे पूर्णतम आदर्श हैं।

वीरवर अभिमन्यु

वीरवर अभिमन्यु श्रीकृष्णसखा अर्जुनके पुत्र थे जन्म भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन महाभागा सुभद्राजीके हुआ था। अभिमन्युका विवाह मत्स्य-देशके राजा ि कन्या उत्तराके साथ हुआ। अभिमन्युने गर्भमें ही मात वार्तालापसे व्यूह भेदकर उसमें प्रवेश करनेकी कला लिया था। महाभारत युद्धके समय अभिमन्युने अ शूरत्वका परिचय दिया था। गुरु द्रोणने जब चक्र रचना की, तब युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, द्रुपद तथा धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्षके वीरोंमेंसे कं प्रयत्न करनेपर भी व्यूहमें प्रवेशलाभ नहीं कर सका अभिमन्युने उसे भेदकर उसमें प्रवेश किया और कौ असंख्य वीरोंको रणभूमिमें सुला दिया। सारी विचलित हो उठी। तब अन्तमें द्रोण, कर्ण, अश्वत्था सात महारथियोंने इनको चारों ओरसे घेर लिया बार हार खाते हुए बड़ी कठिनतासे अन्यायपूर्ण युद्ध कर वध कर सके। उत्तरा उस समय गर्भवती थीं। इ पाण्डवोंके उत्तराधिकारी महाराज परीक्षित्का जन्म हु

उद्धवजी

देवगुरु बृहस्पतिके शिष्य, भगवान् श्रीकृष्ण और मन्त्री उद्धवजी मथुरासे भगवान्का संदेश ले आये थे। उस समयका वर्णन श्रीमद्भागवत तथा सू पदोंमें भक्तिकी धारासे आप्लावित है। भगवान् निजधाम गोलोक जाने लगे। उद्धवजीको उन्होंने त

करके आदेश दिया, 'आप बद्रीनाथमें तपस्या करते नी शक्तिसे कलियुगमें मेरे भक्तोंका पोषण करें।' रजा श्रीकृष्णचन्द्रके समीपसे बद्रीनाथके लिये मार्गमें प्रेममयी व्रजभूमिने उन्हें आकर्षित किया। रूपसे वे गिरिराज गोवर्धनके समीप लता-वल्लियोंमें रह गये और दूसरे रूपसे बद्रीनाथ चले गये। के निजलोक पधारनेपर महाराज युधिष्ठिरने मथुराका श्रीकृष्णचन्द्रके प्रपौत्र वज्रनाभको प्रदान किया।

श्रीकृष्णचन्द्रकी अवशिष्ट पत्नियोंके साथ व्रज कालिन्दीके उपदेशसे गिरिराजके समीप उन्होंने संकीर्तनका आयोजन किया। इस संकीर्तनमें उद्धवजी ए। उद्धवजीने सबको एक मासमें श्रीमद्भागवतकी नायी। कथाके अन्तमें सबने नित्य-लीलामें प्रवेश ।

ने दूसरे अलक्ष्य रूपसे उद्धवजी बद्रीनाथमें तप कर उनकी तपःशिला उद्धवशिलाके नामसे वहाँ पूजित । कलिके अन्तमें वे लोकमें भागवतधर्मको पित करेंगे।

विदुरजी

वोंके नियन्ता धर्मराज महर्षि अणिमाण्डव्यके शापसे र्यकी दासीके गर्भसे भगवान् व्यासके औरस-रूपमें हुए। अन्ततक उन न्यायमूर्ति विदुरजीने बड़े भाई को नीति एवं धर्मपर चलनेका उपदेश किया। वनमें पाण्डवोंको जलानेकी दुरभिसन्धि उन्हींकी से असफल हुई। पाण्डवोंके वनवासके समय उनकी न्तीदेवी विदुरजीके समीप ही रहीं। सन्धिदूत बनकर श्रीकृष्ण जब पधारे, उन्होंने स्वतः विदुरजीका आ ग्रहण किया। दुर्योधनके द्वारा अपमान किये जानेपर वि अवधूत-वेशमें तीर्थाटन करने चले गये। उन्होंने ती करते समय उद्धवजीसे महाभारतके युद्ध और यदु उपसंहारका समाचार सुना। हरद्वारमें मैत्रेयजीसे ज्ञान प्राप्तकर वे हस्तिनापुर लौटे। उन्हींके उपदेशसे धृत वैराग्य हुआ। धृतराष्ट्रके वन जानेपर विदुरजी भी उनके श्रीविदुरजीका नीति-उपदेश 'विदुरनीति' कहा जाता विदुरजी नीतिके साथ अध्यात्मज्ञानमें भी परम निष्णात भगवान् श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग था। आदेशको धृतराष्ट्रने माना होता तो महासंहार बच जाता।

संजय

सूतजातिमें गवल्गणके पुत्र संजय महाराज धृत मन्त्री थे। भगवान् व्यासने धृतराष्ट्रको महाभारतका देखनेके लिये दिव्यदृष्टि देनी चाही। धृतराष्ट्रने पुत्रोंका निधन देखनेसे अरुचि प्रकट की। व्यासजीकी संजयको दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई। युद्धमें जो कुछ या परोक्ष होता था, वह सब संजय देख सकते थे। वे संकल्पके भी द्रष्टा हो सके थे। धृतराष्ट्रको उन्होंने ही महाभारत सुनाया।

भगवान् श्रीकृष्णके अन्तरंग विश्वासपात्र थे भगवान्के अन्तःपुरमें कोई भी नहीं जा सकते थे, वहाँ प्रवेशाधिकार प्राप्त था।

धृतराष्ट्र कुन्ती और गान्धारीके साथ जब होकर वनमें चले गये, तब संजयने हस्तिनापुर छो और वे हिमालयमें तप करने चले गये। सु०

हिंदू-समाजपर अपहृत हिंदू अबलाके दो आँसू

(रचयिता—पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी साहित्य-मनीषी)

अबलाके आँसूसे है धरा धसकती जहाँ-तहाँ।
गोकुल-पूजक हिंदू ! तुम भूले उनकी सीख कहाँ ॥
रीके पंजेसे उन्मुक्त निराश्रित अबलाएँ।
कहतीं ! हम-निरपराध, भैया मेरे अब जायँ कहाँ ॥
! कह दो, क्या नहीं तुम्हारी पुरुषहीनताका प्रसाद।
या धर्म जिसके कारण हम हैं बहिष्कृत पड़ी यहाँ ॥
रहे कुठाराघात स्वयं हिंदू-संस्कृतिपर हिंदू ही।
दय-देवता ! छिपे आज तुम कहाँ, तुम्हारी शक्ति कहाँ ॥

'शङ्कराचार्य'की ज्योति तुम्हीं, ओ 'भास्करीय'के पुज
हो प्रकट शून्य-अज्ञान-हृदय, हिंदू ! अपनालो हमें
औरस-संतति-प्रिय ओ हिंदू ! मस्तिष्क तुम्हारा आज
कर शीघ्र ठिकाने उसे आज, अपनालो हमको जह
क्यों विवशकर रहे हमें, भ्रात ! कर्तव्य मार्गसे च्युत
सन्तान वर्ण-संकर जननें, मा-बाप ! भगाते हमें
हो रही खोखली जब हिंदू-संस्कृतिकी, देखो नेत्र
कीटाणु नष्टकर फिर समाजको पनपानेकी चाह

कुछ आदर्श हिंदू-देवियाँ

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न)

सती सावित्री

द्रदेशके नरेश अश्वपति धर्मके प्राण थे । धर्मानुकूल आचरण एवं इन्द्रिय-संयमपूर्वक भगवद्भजन ही उनके ा आधार था। अठारह वर्षोंतक सावित्रीदेवीकी ना करके इन्होंने सन्तति-प्राप्तिका आशीर्वाद पाया था। ने इन्हींकी सौभाग्यवती पत्नी (जो मालवनरेशकी कन्या गर्भसे जन्म लिया था।

वित्री अपूर्व गुण-शीलवती थी। वह क्रमशः बढ़ती हुई ; योग्य हुई। उस समय वह बाह्याभ्यन्तर सौन्दर्यकी प्रतिमा-सी प्रतीत होती थी। अनुपम रूप-लावण्यके ;समें अतुलनीय तेज भी उद्भासित हो रहा था, कारण लोग उसे देवकन्या समझ लेते थे और इसी ोई भी राजकुमार उसका पति बननेका साहस नहीं कर

वित्रीको पूर्णवयस्का देखकर चिन्तित अश्वपतिने उसे (ढूँढ़नेका आदेश दिया। अत्यन्त लज्जा और । माता-पिताके चरणोंका स्पर्श कर वह वृद्ध मन्त्रियोंके ारूढ़ होकर रमणीय तपोवनकी ओर चली। कुछ बाद जब वह लौटी, तब देवर्षि नारद उसके पिताके ठे हुए मिले। चरण-स्पर्श करनेपर अश्वपतिके साथ जीने भी उसे प्रेमपूर्वक आशिष दी।

श्वपतिने सावित्रीको वरान्वेषणके लिये भेजा था, यह ीनारदजीको पहले ही बतला दिया गया था। उन्होंने े धीरेसे कहा, 'बेटी! तुमने किसे पति चुना है, बता दो।'

वित्रीने नतमुख हो अत्यन्त संक्षेपसे कहा—'शाल्व-र्मपरायण नरेश द्युमत्सेनके पुत्रका नाम सत्यवान् है। ने जन्म तो नगरमें लिया था, पर उनका लालन-पोवनमें हुआ है। मैंने उन्हींके चरणोंमें अपनेको करनेका निश्चय किया है। द्युमत्सेन नेत्रहीन हो गये उनके एक शत्रु राजाने उनका राज्य भी छीन लिया अपनी पतिव्रता पत्नी और शीलवान् तथा धर्मज्ञ साथ तपोवनमें निवास कर रहे हैं। इस प्रकार — — — — ... — है ..

उदास-मुँह होकर श्रीनारदजीने कहा—'रा अत्यन्त खेदकी बात है। निश्चय ही सत्यवान् रू और गुणोंमें अद्वितीय हैं; किंतु एक वर्षके बाद आयु समाप्त हो जायगी। वे इस लोकमें नहीं रह सके

अश्वपति बोलना ही चाहते थे कि धर्मज्ञा तुरंत कहा—'पिताजी! सत्यवान् दीर्घायु हों अथवा गुणवान् हों अथवा निर्गुण, मैंने एक बार उन्हें अप स्वीकार कर लिया। अब दूसरे पुरुषको मैं नहीं वर स

सावित्रीका निश्चय सुन लेनेपर देवर्षि अश्वपतिसे कहा—'राजन्! सावित्री बुद्धिमती और है। आप इसे सत्यवान्के हाथों सौंप दें।' देवर्षि चले

अश्वपति समस्त वैवाहिक सामग्रियोंके साथ द्यु आश्रमपर पहुँचे। द्युमत्सेनने इनका यथोचित सत्कार वे सावित्रीके गुणोंपर मुग्ध होकर अश्वपतिका आ टाल सके। उसी तपोवनमें सावित्रीका परिणय स साथ विधिपूर्वक हो गया। अत्यधिक वस्त्राभूष अश्वपति विदा हुए।

पिताके जाते ही सावित्रीने आभूषणादि वनोचित वस्त्र धारण कर लिये। वह तपस्विनी हो उसने अपने सद्गुण, विनय और सेवाके द्वारा सास-मनपर अधिकार कर लिया। वह सास-श्वशुरकी अ पुतली बन गयी। पति तो उसे प्राणकी तरह प्या ही थे।

सावित्रीसे पूरा परिवार परम सन्तुष्ट था, वह स्वयं और अत्यन्त सुखी दीखती थी; परंतु उसे श्रीनार बात याद थी। उसका हृदय प्रतिक्षण अशान्त रहता पतिकी मृत्युकी स्मृतिसे उसका कलेजा काँप जाता उधर समय सरिताकी तीव्र धाराकी भाँति द्रुतगतिसे जा रहा था।

धीरे-धीरे वह समय भी आ गया जब सत्यवान्की चार दिन शेष रह गये थे। पतिप्राणा सावित्री अधीर है

---

* दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥

े तीन रात्रिका निराहार व्रत धारण किया । चौथे प्रातःकाल ही सूर्यदेवको अर्घ्य दानकर सास-श्वशुर तथा शुभ आशीर्वाद प्राप्त किया । इसके बाद देवर्षि के वचनानुसार वही दिन आ गया, जिस दिन ो काल-ग्रास बनना था ।

ान् समिधा लेने चले, तब सास-श्वशुरकी आज्ञा लेकर स दिन उनके साथ हो गयी । वनमें थोड़ी लकड़ी ं ले पाये थे कि उनका सिर चकराने लगा; सिरकी ड़ाके कारण सत्यवान् सावित्रीकी गोदमें लेट गये । ोमल सावित्रीका हृदय हाहाकार कर उठा ।

ं देखा, सामने लाल वस्त्र पहने श्यामकाय एक तड़े हैं । चकित होकर उसने प्रणाम किया तो उत्तर ावित्री ! मैं यम हूँ । तुमने अपने कर्तव्यका पालन अब मैं सत्यवान्‌को ले जाऊँगा । इनकी आयु यी है ।'

सत्यवान्‌के सूक्ष्मशरीरको लेकर आकाशमार्गसे चल ेरा सावित्री भी उनके पीछे लग गयी । यमराजने उसे लेये कहा तो वह बोली, 'भगवन् ! पतिदेवका अत्यन्त प्रिय है । मेरी गति कहीं नहीं रुकेगी, ाथ ही चलूँगी ।'

त्रीकी धर्मयुक्त वाणी सुनकर यमने उससे सत्यवान्‌को अन्य वर माँगनेके लिये कहा तो सावित्रीने अपने त्रज्योति माँग ली, पर फिर भी उनके साथ चलती रही। के कष्टको देखकर कहा, 'अब तुम लौट जाओ;' पर रमें कहा, 'पतिके साथ आपका दुर्लभ सङ्ग छोड़कर मैं सकूँगी ।' यमने पुनः उससे सत्यवान्‌के अतिरिक्त गनेके लिये कहा । सावित्रीने अपने श्वशुरका खोया लिया ।

ं देखा वह अब भी पीछे चली आ रही है और प्रार्थना करती हुई सत्सङ्ग-महिमा तथा धर्मयुक्त बातें ी है । प्रसन्न होकर यमराजने फिर वैसे ही वरदान लेये कहा तो उसने अपने निस्सन्तान पिताके लिये पुत्र माँग लिये । चौथी बार यमराज शर्त लगाना तब उसने अपने लिये भी सत्यवान्‌के वीर्यसे सौ रदान प्राप्त कर लिया ।

पर भी उसने यमका साथ नहीं छोड़ा । सतीत्वके ाकी गति अबाध थी । उसने यमकी स्तुति करते वरदान दीजिये । इससे आपके ही सत्य और धर्म होगी । पतिके बिना सौ पुत्रोंका आपका वरदान स हो सकेगा । मैं पतिके बिना सुख, स्वर्ग, लक्ष् जीवनकी भी इच्छा नहीं रखती ।'

अत्यन्त सन्तुष्ट होकर यमने सत्यवान्‌को अपने मुक्त कर दिया और अपनी ओरसे चार सौ वर्षके आयु दे दी । सतीत्वके प्रभावसे नवीन प्रारब्ध बन ग

इस प्रकार सावित्रीने अपने सुहागकी रक्षा की तथ पातिव्रत्यसे पतिकुल और पितृकुल दोनोंको सुखी ं पतिव्रताओंकी अमोघ शक्तिको तो उसने जगत्‌के उपस्थित किया ही ।

प्रातःस्मरणीया अनसूया

पुण्यश्लोका अनसूया स्वायम्भुव मनुकी पुत्री दे दुहिता थीं । महर्षि कर्दम इनके पिता थे । सिद्धेश्वर जो भगवान् विष्णुके अवतार माने जाते हैं, इन भाई थे । श्रीअनसूयाजी अत्यन्त सत्यपरायणा, ध शीलवती, सदाचारिणी, विनयवती, लज्जावती, क्षमाशी परमसहिष्णु थीं । ये समस्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न अत्यन्त संयमी तथा तपस्विनी थीं । यही कारण ब्रह्माजीके मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रिको पतिरूपमें प्राप्त कर लिया ।

महर्षिके चरणोंमें इनकी अनन्य प्रीति थी । ऋषिके मनोऽनुकूल उनकी सेवामें लगी रहती थीं । लिये ही इन्होंने अपने जीवनका उपयोग समझा इस प्रकार ये महर्षि अत्रिको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय

इन्होंने अपने जीवनमें पतिसेवाको ही प्रधान ये सतियोंमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं । एक बार उ और ब्रह्माणीने इनके सतीत्वकी ख्यातिसे अप पतियोंको इन्हें विचलित करनेके लिये भेजा । शङ्कर, क्षीराब्धिशायी विष्णु और चतुरानन अप वाहनोंपर अलग-अलग महर्षि अत्रिके आश्रमपर वहाँ तीनों मिले । त्रिदेवोंका एक ही उद्देश्य था ।

वे साधुवेषमें भगवती अनसूयाके समीप भगवती पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय लेकर आयीं लोगोंने स्वीकार नहीं किया । 'आप विवस्त्र होकर सत्कार करें तो आपकी पूजा स्वीकार की जा सक

की अपार महिमा है । श्रीअनसूयाजीने तनिक-सा
गाया तो सब भान गयीं । उन्होंने कहा 'यदि मैं
तिव्रता हूँ, भूलसे स्वप्नमें भी कामभावसे पर-
चिन्तन न किया हो तो ये तीनों छः-छः मासके बच्चे हो

का पुराना कहना था कि त्रिदेव छः मासके बच्चे
। अब त्रिदेवको गोदमें लेकर माताने दुग्ध पान कराया ।
आकर यह दृश्य देखा तो हँस पड़े । अब त्रिदेव
त्पधर जीवन धारण कर रहे थे ।

अधिक दिन बीत जानेपर उमा-रमा-ब्रह्माणी
पने-अपने पतियोंका पता लगाने चलीं, तो महर्षि
आश्रमके समीप तीनोंका मिलन हो गया । तीनोंने
नमस्कारके क्षमा माँगी । कृपापूर्वक अनसूयाने उनके
वापस किया । ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनोंने अपने-
शसे उनका पुत्र बननेका वचन दिया ।

ताकी आज्ञासे भगवान् श्रीरामचन्द्रने जब वन-गमन
ा, तब वे महर्षि अत्रिके आश्रमपर भी ठहरे थे ।
र्षिने स्वयं अपने मुँहसे अनसूयाजीके लिये श्रीरामसे
ा कि 'ये तुम्हारी माताकी भाँति पूजनीया हैं ।
न्दिनी इनके पास जायँ, ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये
हैं ।'

सीतादेवीने आश्रममें जाकर श्रद्धापूर्वक भगवती
के चरणोंमें प्रणाम किया । पतिके साथ वनमें आनेका
पाकर श्रीअनसूयाने अत्यन्त प्रसन्न होकर सीतादेवीसे
—

रस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः ।
सां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥
शीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
णामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥

(वा० रा० अयोध्या० ११७ । २१-२२)

वासी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे—जिन
े वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली
प्राप्ति होती है । पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव
ला अथवा धनहीन ही क्यों न हो—वह उत्तम
वाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान है ।'

ीसीताजीके मुँहसे सती-धर्मकी महिमा सुनकर भगवती
। अत्यन्त प्रसन्न हुई थीं । उन्होंने श्रीसीताजीसे जो

मातु पिता भ्राता हितकारी । मितप्रद सब सुनु राजकु
अमित दानि भर्ता बयदेही । अधम सो नारि जो सेव न
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं । बेद पुरान संत सब क
उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग
मध्यम परपति देखइ कैसें । भ्राता पिता पुत्र निज
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकिष्ट त्रिय श्रुति क
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि ज
पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत
छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम क
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिब्रत धर्म छाड़ि छल
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ त

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लह
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रि

सतीत्वकी महिमा बतलानेके बाद श्रीअ
श्रीसीतादेवीको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुन्दर वस्त्राभू
अनुलेपन प्रदान किये थे और अपने सामने
करवाये थे । ऋषिपत्नीद्वारा मातृसुख पाकर
बड़ी सुखी हुई थीं । उनसे विदा होते समय श्रीसीत
आँखें बरबस गीली हो गयीं ।

श्रीअनसूयाजीने अपने तपके प्रभावसे ही श्र
एक धारा प्रकट कर दी, जो मन्दाकिनीके नामसे
एवं उसमें मज्जन-पानसे पाप-ताप शान्त हो जाते हैं

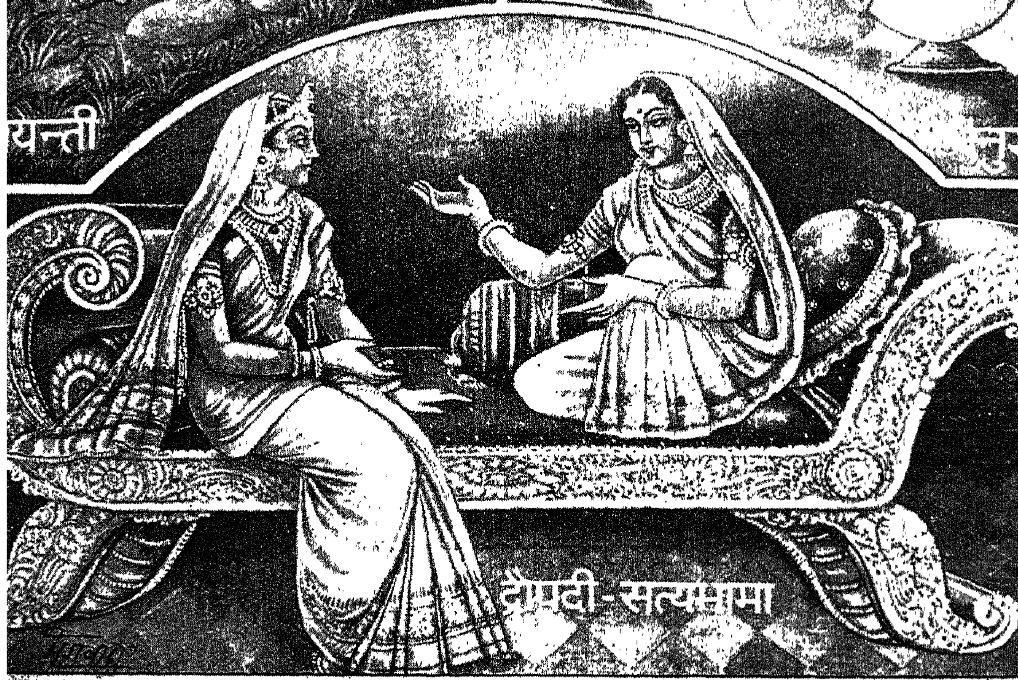
सती दमयन्ती

विदर्भनरेश भीष्मकको महर्षि दमनकी कृ
सन्तानें हुईं—तीन पुत्र और एक पुत्री । दम, द
दमन पुत्रोंके नाम थे । पुत्रीका नाम दमयन्ती रक्ख

दमयन्ती अत्यन्त रूपवती थी । वह स
सदाचारादि अनुपम गुणोंसे भी सम्पन्न थी । धीरे-
यौवनमें प्रवेश किया । उस समय एक दिव्य हंस
नरेश नलसे इनकी प्रशंसा करके उनके हृदयमें
लिये प्रेमका बीज बो दिया और उसी हंसने दमयन्ती
नलके गुण गा-गाकर उन्हें नलकी ओर आकृष्ट
नल और दमयन्ती अपने-अपने निवासस्थानमें रहते हुए ही
[illegible]


यन्ती




द्रौपदी-सत्यभामा

भ्मकने दमयन्तीको विवाहके योग्य देखकर उसके ो तिथि निश्चित की। दमयन्तीके अपूर्व लावण्य एवं प्रशंसा सुनकर देवलोकसे देवता और यक्ष तथा ो विवाहकी कामनासे विदर्भ-राज्यमें पधारे। आमन्त्रण न्य राजकुमारोंकी भाँति नल भी गये।

ादि देवोंने लोकोत्तर रूप-सम्पत्तिसम्पन्न नलको उन्हें दमयन्तीके पास अपनेको पतिके रूपमें वरण लेये भेजा। उन्होंने नलको अन्तर्धान-विद्या प्रदान थी।

उक्त विद्याके सहारे महलमें दमयन्तीके सामने पहुँच छनेपर दमयन्तीसे उन्होंने अपना स्पष्ट परिचय बता र यह भी कहा कि 'इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम से अपनी रक्षा किसी प्रकार सम्भव नहीं। अतः से किसी एकको पतिरूपमें स्वीकार कर लो।'

यन्ती रोने लगी। उसने अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त ैंने आपको पति मान लिया है। अब अन्यकी पत्नी सकूँगी।'

लौट आये। उन्होंने दमयन्तीकी सारी बातें स्पष्ट । देवता नलके वेषमें स्वयंवरमें पधारे। दमयन्ती- ानपर नलके स्वरूप पाँच एक-सरीखे देखे, पर उसने बलपर निषध-नरेशको पहचान लिया और उनके वरमाला डाल दी। अन्य सभी निराश हो गये।

यन्तीका त्याग अपूर्व था। उसने मनसे निश्चित पतिके ताओंको भी ठुकरा दिया। धर्मज्ञ देवगण इससे र और इन्द्रने यज्ञमें अपना दर्शन देनेके लिये नल- न दिया। अग्निने कहा, 'तुम्हारे स्मरण करते ही हो जाऊँगा और मेरे ही समान प्रकाशमय लोक तुम्हें ' यमराजने कहा, 'तुम्हारे हाथकी रसोई मीठी होगी' ने वर देते हुए कहा कि 'तुम्हारी इच्छासे ही जल ाया करेगा।' दमयन्ती नलकी राजरानी बनकर राज्यमें और उन दोनोंका जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा।

सद्गुणसम्पन्न थे, परंतु द्यूत-क्रीडाका उनमें एक था और यही कारण था कि कुछ ही दिन बीतने- एक दिन अपनेसे अलग रहनेवाले अपने भाई साथ जुआ खेलने बैठ गये। जूएमें सारा राज्य वे

चली। नगरनिवासी पुष्करके आदेशानुसार उन स्वागत भी नहीं कर सके।

नल तीन दिनोंतक भूखे रहे। चौथे दिन उन्हें पंखवाले कुछ पक्षी देखे। उन्हें पकड़नेके लिये उन्ह धोती उनपर फेंकी तो वे धोती लेकर उड़ गये। झाड़ीमें ही दोनों पति-पत्नी छिपकर रहने लगे।

अत्यन्त कोमलाङ्गी दमयन्तीके मनमें पति-साहचर्य यद्यपि सुखकी ही अनुभूति हो रही थी, तथापि नलसे नहीं गया। उन्होंने सोचा, 'यह सती है, सुरक्षित घर जायगी।' इस विचारसे उन्होंने उसकी साड़ीका तलवारसे फाड़ लिया और उसे सोती छोड़कर चले

निद्रा टूटनेपर दमयन्ती विलाप करने लगी। इ में एक अजगर आ गया और वह मुँह फैलाकर को निगलने लगा। यह दृश्य एक व्याधने देखा अ तुरंत अजगरको मार डाला। पर वह दुर्बुद्धि थ दमयन्तीके सौन्दर्यको देखकर अधीर हो गया अ बलात्कार करना चाहा; किंतु दमयन्तीके तेजको सह सका। वहीं भस्म हो गया।

दमयन्ती रोती हुई दैवयोगसे चेदिनरेश राजधानीमें जा पहुँची। खिड़कीसे राजमाताने इसे अ बुला लिया और दमयन्तीके पातिव्रत्यपर आँच न अ ऐसी शर्तोंपर उसे अपने पास रखना स्वीकार कर लिय ही दिनोंके बाद पता चला कि राजमाता दमयन्ती मौसी थीं। उसके बाद ही दमयन्ती अपने पित चली गयी।

उधर नल दमयन्तीको छोड़कर आगे बढ़े सहसा दावाग्नि उठी। उसके भीतर नारदजीके कर्कोटक नाग पड़ा हुआ था। नलने उसकी रक्षा नागसे उनकी मैत्री हो गयी। उसने नलको क दिया। वे काले हो गये और उसने उन्हें एक वस् दी, जिसे ओढ़ लेनेपर वे पुनः अपने पूर्वरूपमें हो स

नागकी सम्मतिके अनुसार नलने अपना नाम बा लिया और ऋतुपर्णकी राजधानी अयोध्यामें आकर दस सहस्र स्वर्णमुद्रा वेतनपर अश्वशालाके अध्यक्ष

दमयन्तीने नलको ढूँढ़नेके लिये अपने पिता अनेक ब्राह्मणोंको चतुर्दिक् भिजवा दिया। एक

करूँगी। आप कलतक आ जायँ।' यह संवाद
ऋतुपर्णके पास भिजवाया।

पर्णने बाहुकको बताया। वे चिन्तित हो गये, पर
तैयार किया और ऋतुपर्णको लेकर विदर्भके
थल हो गये। रथ हवाकी तरह इतने वेगसे उड़ा
कि ऋतुपर्णकी चादर गिरी। किंतु उसे उठानेके लिये
क रथ कई कोस दूर चला गया था। रास्तेमें ही
तुपर्णको रथ हाँकनेकी विद्या बता दी और नलने
द्यूतक्रीड़ामें विजय पानेकी विद्या सीख ली।

में अयोध्यासे सौ योजन दूर था। पर बाहुक एक
वहाँ पहुँच गया। वहाँ स्वयंवरकी कोई बात नहीं
यन्तीने प्रत्येक रीतिसे परीक्षा करके देख लिया कि
ी हैं। नलने इसे दमयन्तीके सामने स्वीकार किया
के आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। वायुदेवने
दमयन्तीके पातिव्रत्यका साक्ष्य दे दिया था।

टकका वस्त्र पहनकर नल अपने पूर्वरूपमें हो गये।
आकृतिपर दिव्यता झलकने लगी। सर्वत्र प्रसन्नता
।

दमयन्तीके साथ निषध पहुँचे और वहाँ जूएमें पुष्कर-
त किया तथा पुनः निषध-नरेशका पद प्राप्त कर
राजा होनेपर भी उन्होंने अपने उदार स्वभावके
ुष्करको निर्वासित नहीं किया।

पण विपत्तिमें भी अनुपम सौन्दर्यमयी दमयन्तीने अपने
ी रक्षा की तथा अपने पतिको प्राप्त कर लिया—यह
काम था। भारतकी इस पुण्य-नारीपर विश्वके पुरुषोंके
बलः नत हो जाते हैं।

जगज्जननी सीता

ी-शिरोमणि जगज्जननी श्रीसीतादेवी मिथिला-नरेश
जनक-जैसे परम धर्मात्मा एवं वैराग्यवान् पिताकी पुत्री
अपने त्याग और ब्रह्मज्ञानके प्रभावसे जनकने राजर्षिकी
प्राप्त कर ली थी। यज्ञके लिये ये एक बार हल जोत
उस समय चौड़े मुँहवाली सीता (हलके धँसनेसे बनी
री रेखा) से परम रूप-लावण्यसम्पन्ना तेजस्विनी कन्याका
व हुआ। वे ही सीता कहलायीं।

तेमीतादेवी दिव्य गुणोंका अक्षय आगार थीं। इनको

देख लेता मुग्ध हो जाता। ये शुक्ल पक्षके चन्द्रकी भाँ
धीरे बढ़ने लगीं और समयपर विवाहके योग्य वयको प्रा

मिथिलानरेश अपनी अनुपम पुत्रीके लिये उप
प्राप्त करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने प्रतिज्ञा की कि श्री
के धनुषको भंग करनेवाला ही सीताका पति होगा
भंग श्रीविश्वामित्रके साथ पधारे हुए अवधनरेश दशर
भगवान् श्रीरामचन्द्रने किया और सीतादेवी उनसे
गयीं। अब वे पितृकुलसे विदा होकर अयोध्यामें आ

पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये भगवान्
चतुर्दश वर्ष वनमें व्यतीत करनेके लिये प्रस्थान करना
उस समय कौसल्यादेवी अपनी पुत्रवधू सीताका मुँह
जिस प्रकार आकुल और अधीर हो गयीं, उससे स्पष्ट
है कि सीताके दिव्य एवं आदर्श सद्गुणोंसे सास-ससुर
प्रभावित थे। रोती हुई माता कौसल्याने कहा—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहि

• •

जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ

भगवान् श्रीरामने सीताके सामने वनकी भयङ्कर
का वर्णन किया तो वे अधीर हो गयीं। उन्होंने जिस
अपने आन्तरिक प्रगाढ़ प्रेम और पति-पद-पद्मोंमें
व्यक्त की थी, वह विश्वके नारी-समाजके लिये अ
उन्होंने कहा—

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद स
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ क
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु

नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
ोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
हुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥
त्रअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
बंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥

....

ारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥
उ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥

ावान् विवश हुए और श्रीसीतादेवीको साथ चलनेकी दे दी। श्रीसीता तो यही चाहती थीं। उनका यही सुख में शान्ति थी कि नित्य प्रभुके चरण-कमलोंकी भ्रमरी। भगवान् गङ्गाके पार पहुँचते हैं, वे अवध-नरेशके पर भी केवटको कुछ नहीं दे पाते, इस कारण अत्यन्त ाते हैं; पर सीता-जैसी अनुभवी और चतुरा गृहिणी तुरंत णे-मुदरी प्रसन्नमन दे देती हैं। यह सर्वोत्तम आदर्श नारी ही कर सकती है। श्रीगोस्वामीजीके मुँहसे सुन लें—

ढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
ारि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥

ाप्रिय भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणके साथ श्रीसीता-र्षि अत्रिके आश्रमपर गयी थीं। वहाँ सती अनसूयाने कर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और पातिव्रत्यके दिव्य साथ प्रेमपूर्वक वस्त्राभूषण और अङ्गराग दिया तथा ने सामने धारण कराया।

प्रकार वे जहाँ भी गयीं, उनके शील, सरलता और दिव्य गुणोंपर चराचर प्राणी मुग्ध होते गये।

सीतादेवी पतिके समीप रहकर भयङ्कर जन्तुपूरित ानमें भी पतिचरणोंके सामीप्यसे अत्यन्त सुखानुभव थीं, किंतु भगवान्को कुछ और ही लीला करनी थी। बहिन शूर्पणखा सज-धजकर पञ्चवटीमें इस त्रिमूर्तिके आयी। उसकी कुचेष्टासे विवश होकर श्रीलक्ष्मणने ाक-कान काट लिये। वह राक्षसी खर, दूषण और ो चौदह सहस्र सैनिकोंके साथ ले आयी। वे सब

श्रीसीतादेवीको चुरा लिया। श्रीसीतादेवीका कोई वश वे चिल्लाती रहीं, पर रावण उन्हें ले ही गया। वे वाटिकामें रक्खी गयीं।

इधर श्रीरामने सुग्रीवसे मैत्री स्थापित की। श्र असंख्य बंदरोंके साथ जगजननीका पता लेने चले लाँघकर श्रीहनुमान् लङ्का पहुँचे। वहाँ अशोकवाटिव देखा, तपस्विनी सीता पतिवियोगमें सूखकर काँटा हैं। वे निरन्तर रोते हुए प्रभुके ध्यानमें तल्लीन हैं

कृसतनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गु

अशोक-पल्लवकी ओटमें छिपे श्रीहनुमान्ने श्र हृदयसे उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। थोड़ी ही देर वहाँ आया और बड़ी-बड़ी युक्तियोंसे उसने सीताको करना चाहा; पर ऐसे क्रूर राक्षसके समीप एकाकी हो उन्होंने जो कुछ उससे कहा, वह सीता-जैसी अद्विती परायणा सती देवीके ही अनुरूप है। उन्होंने अत्य और क्रोधसे कहा—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहि

रावण यह वाग्बाण न सह सका। उसने कहा सिर अपने कठोर कृपाणसे काट डालूँगा, नहीं तो मान ले।' पर श्रीसीतादेवीने तुरंत कहा—

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम द
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान प

इस सच्चे प्रणकी बलिहारी! धन्य थीं सी धन्य था उनका पातिव्रत्य! अञ्जनीनन्दनके नेत्र निकल पड़े। रावणके जाते ही उन्होंने माताको प्रणा अपना परिचय दिया। फल खानेकी आज्ञा ली औ राक्षसोंका संहार करते हुए लङ्कामें आग लगा दी। उ कर राख कर दिया। यह परिणाम निशाचरोंद्वारा उन जलानेके उपक्रमसे हुआ था।

माताको सान्त्वना देकर श्रीहनुमान् श्रीरामके पास सीताका करुण-संवाद सुनकर भगवान् अधीर हो उठे सैन्यके साथ वे लङ्कापर चढ़ आये तथा समस्त निशाचरोंके साथ रावणको मृत्यु-मुखमें डाल दिया।

कुको मिटानेके ि ये किया है । तुमने राक्षसके अन्तः-
े दिनोंतक निवास किया है, इस कारण मैं तुम्हें
। नहीं रख सकूँगा । अपने इच्छानुसार तुम कहीं भी
हो ।'

ोतापर जैसे वज्र गिर पड़ा । वे कुछ नहीं बोल
मनप्राणेश और सर्वथा निर्दोष मातापर यह सन्देह
सहा नहीं था, पर वे बड़े भाईके सामने विवश थे ।
ाने लक्ष्मणसे चिता तैयार कर दी । माताने अवरुद्ध
ा—

मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

(वा० रा० युद्ध० ११६ । २५)

ि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी श्रीरघुनाथजीसे
ुआ हो तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी अग्निदेव ही सब
ी रक्षा करें ।'

लित अग्निमें श्रीसीतादेवी प्रवेश कर गयीं । इस
ख अनन्त वानर-भालू और राक्षस चीत्कार कर
काशमें देव-समुदाय एकत्र हो गया था । स्वयं अग्नि-
ट होकर उनकी निर्दोषता सिद्ध की । स्वयं दशरथ-
कर श्रीसीताकी पवित्रताका बखान करते हुए
की ।

क-विमानपर सवार होकर श्रीसीतादेवी तथा समस्त
साथ भगवान् अयोध्या पधारे । राज्यका शासन-सूत्र
ाथमें लिया । श्रीसीतादेवीके सद्गुणोंसे सभी उनके
ा-भक्ति रखते थे ।

यपर श्रीसीतादेवी गर्भवती हुईं । पर एक साधारण
कथनको गुप्तचरोंद्वारा सुनकर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने
के लिये बड़ी कठोरतासे काम लिया । उन्होंने श्रीसीता-
नमें छोड़ आनेके लिये लक्ष्मणको भेजा । लक्ष्मणने अपनी
पत्थर रखकर माताको वनमें छोड़ दिया और आँसुओं-
लेकर लौट आये ।

नमें मूर्च्छिता सीतापर महर्षि वाल्मीकिकी दृष्टि पड़ी ।
सीताको अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने आश्रममें रक्खा । वहाँ
ी फलोंपर जीवन बिता रही थीं । वहीं लव-कुश नामक
पुत्र उत्पन्न हुए । महर्षिने उन्हें सारी विद्याएँ प्रदान
।

देवीने अश्वको वापिस कर दिया और उनके सैनि
अपने सतीत्वके बलसे जीवित कर दिया ।

श्रीरामके अश्वमेध-यज्ञमें लव-कुश भी गये थे । उ
रामायण सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और जब उन्हें
कि ये मेरे ही पुत्र हैं तब बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने
पूर्वक महर्षि वाल्मीकिके साथ श्रीसीतादेवीको बुलव
उनसे शुद्धताके लिये शपथ करनेको कहा । यह सुनते
वाल्मीकि बोल उठे—

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृत
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिलं

(वा० रा० उ० ९६

'मैंने सहस्रों वर्षतक तपश्चर्या की है । यदि
आचरणवाली हों तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले

सीतादेवी बहुत दुखी थीं, वे भगवान्का दर्शन
थीं, यही उनके लिये परम सुख था । उन्होंने पृथ्वीसे
करते हुए कहा कि 'यदि मैंने मन, वाणी और क्रिया
स्वप्नमें भी भगवान्के सिवा और किसीका चिन्तन न
तो पृथ्वीमाता मुझे अपने अङ्कमें स्थान दें ।'

श्रीसीताके कहते-कहते वहाँ पृथ्वी फट गयी—
से एक दिव्य और परम सुन्दर सिंहासन प्रकट हुआ ।
महापराक्रमी नागोंने अपने सिरपर धारण कर रख
सिंहासनके साथ साक्षात् पृथ्वीदेवी भी प्रकट हुईं
सीताको अपने अङ्कमें लिया और सिंहासनसहित
रसातलमें प्रवेश कर गयीं । आकाशस्थित देवगण
जयनादका उच्च घोष करते हुए पुष्प-वर्षण कर
अयोध्यानिवासी अवसन्न दृष्टिसे देखते रह गये ।

इस प्रकार भगवती श्रीसीतादेवीने अपने जीवन
कष्ट सहते हुए भी अपने धर्मपर दृढ़ रहकर विश्वके
आदर्श रक्खा, उसका अनुकरण और अनुसरण सम
जातिके लिये अत्यन्त कल्याणप्रद है ।

देवी द्रौपदी

द्रौपदीका प्रादुर्भाव महाराज द्रुपदके यहाँ
हुआ था । ये अत्यन्त सुकुमार, सुन्दरी और परम सा
पाँचों पाण्डव इनके पति थे । कपट-द्यूतमें समस्त रा
महात्मा युधिष्ठिर इन्हें भी दावमें हार गये । तो

उन पाषाण-हृदयोंको द्रवित न कर सके । दस सहस्र
ाक्ति रखनेवाला दुष्ट दुःशासन उनकी साड़ी पकड़कर
ागा ।

दी काँप गयी । उसकी आँखें मुँद गयीं और प्राण
; समीप चले गये । भगवान्‌का वस्त्रावतार हो गया
:—

हजार गज बल घट्यौ, घट्यौ न गज भर चीर ।

ासन लज्जित होकर पसीना पोंछते हुए बैठ गया !

× × ×

ासके समयकी बात है । दुर्योधनकी प्रेरणासे अति
ेत होनेवाले महर्षि दुर्वासा अपने दस सहस्र शिष्योंके
ाष्ठिरके पास तब आये, जब भोजन समाप्त हो चुका
ुधिष्ठिरने प्रार्थना की 'स्नान कर आइये ।'

त्तिमें पड़ी द्रौपदीके आँसू छलक पड़े । एकमात्र
ीकृष्णकी पुकार हुई । नन्दनन्दन दौड़े आये ।
ी है' श्रीकृष्णके कहनेपर द्रौपदीके मुँहसे निकल
हें भी इसी समय मजाक सूझी ।'

ा हुआ रिक्तपात्र सामने रख दिया । एक पत्ता सटा
ं ! श्रीकृष्णने मुँहमें डाल लिया और डकार ले ली ।
ष्योंसहित दुर्वासाका पेट फूल आया । उलटी-सीधी
कारें आने लगीं । दुर्वासाकी आँखोंमें अम्बरीष घूम
हर-ही-बाहर प्राण बचानेके लिये सशिष्य सिरपर पाँव
ाग खड़े हुए ।

× × ×

ाभामाके साथ श्रीकृष्ण वनमें पाण्डवोंसे मिलने आये
ाभामाने द्रौपदीसे पूछा, 'बहिन, तुम्हारे पति सदा
शमें रहते हैं । ऐसा कोई व्रत, तप, तीर्थ, मन्त्र,
विद्या, जप, हवन या उपचार मुझे भी बता दो,
तेको अपने वशमें रख सकूँ ।'

ादीको सत्यभामाका यह प्रश्न अच्छा नहीं लगा ।
शान्तिसे उन्होंने कहा—'पतिको मन्त्र-यन्त्रसे वश नहीं
ता । मेरे पति जिस प्रकार प्रसन्न रहें, मेरा वही काम
का सुख ही मेरा सुख है । मैं ईर्ष्या, अभिमान और
ा नहीं करती । स्त्रियोचित उत्तम गुण ही पुरुषोंको
कर लेते हैं । सरलता, सज्जनता, सदाशयता,
सुखके लिये सतत सत्प्रयत्न ही उनको अपना बना दे

द्रौपदी परम विदुषी, सदाचारिणी, उदार, ः
और भक्तिमती थीं । इनकी गणना पञ्चकन्याओंमें है

चिरवन्दनीय मीराबाई

संवत् १५७३ के लगभग चोकड़ी नामक ग्राममें
राठौर श्रीरतनसिंहकी पत्नीके गर्भसे प्रातःस्मरणीया
देवीने जन्म लिया था । आपका विवाह उदयपुरके राण
ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुमार भोजराजके साथ हुआ ः
मीराका आन्तरिक और सच्चा सम्बन्ध वृन्दाविपि
श्रीगिरिधरलालसे था । पति कुछ ही दिनोंमें इस
छोड़ चले गये । फिर तो मीरा खुलकर श्रीकृष
करने लगीं ।

लोक-लाज और मिथ्या आडम्बरसे दूर हो आप
बीचमें पैरोंमें घुँघुरू बाँध और करताल बजाकर नाच
अपने प्रभुको रिझाने लगीं ।

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे ।
लोग कहै मीराँ भई रे बावरी, सास कहै कुळनासी

परिवारवालोंने अपने सम्मानकी रक्षाके लिये मी
चरणामृतके बहाने विष भेज दिया । मीरा उसे सम
कर गयी । उन्होंने अपने ही मुँहसे कहा—

बिष को प्यालो राणाजी भेज्यो, पीवत मीराँ हाँसी
मैं तो अपने नारायण की आपहि हो गइ दासी
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सहज मिल्या अबिनासी

अधिक असन्तोष देखकर मीरा चल पड़ीं वृ
ओर, उनके एक हाथमें एकतारा और दूसरेमें कर
उठा ।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।

—उन्होंने स्पष्ट कह दिया ।

वे जिधर गयीं, श्रीकृष्ण-प्रेमकी वर्षा होने लगी ।
का अजस्र स्रोत बह चला । आनन्दकी मन्दाकि
लेने लगीं । मीराने अनेक पद गाये । एक-एक प
श्रीकृष्ण-प्रीतिके सन्देश हैं । नरसीजीका मायर
गोविन्द-टीका, रागगोविन्द, राग सोरठ—ये चा
मीराकी कही जाती हैं । प्रेमयोगिनी मीराबाईके ः
पावन गायन, उनके स्मरण, उनके चिन्तन आज भी

रम प्रकाशमयी उज्ज्वल तारिका अब भी भक्तोंके ोकृष्ण-प्रेमके लिये प्रेरणा दे रही है और सदा देती

महारानी लक्ष्मीबाई

भूमिकी प्रेमोन्मादिनी वीराङ्गना लक्ष्मीबाईने कार्तिक ' संवत् १८११ में जन्म लिया था। इनका बाल्य-ळक नानासाहबके साथ बीता। बाजीराव पेशवाने क्षाकी सर्वोत्तम व्यवस्था कर दी थी। प्राचीन शिक्षा-अनुसार बचपनमें ही इन्होंने लिखना-पढ़ना, अस्त्र-एवं अश्वारोहण सीख लिया था। ये थीं और स्नेहशीला सुन्दरी, पर वीरत्व इनके नस-नसमें गया था। दस-पाँच शत्रुओंको एक साथ पराजित इनके लिये अत्यन्त सरल था।

समय झाँसीमें गङ्गाधरराव राज्य कर रहे थे। : इन्हींकी परिणीता पत्नी हुईं। कुछ ही समय बाद । हो गयीं। उस समय इनका जीवन संयम-नियम न्द्रजन तथा पूजा-पाठमें बीतने लगा।

७ दिनों बाद अपने दत्तक पुत्र दामोदरका इन्होंने से उपनयन-संस्कार किया। दत्तकके लिये सात लाख पयोंमेंसे अंग्रेज-सरकारने केवल एक लाख स्वीकार राज्य हड़प लेनेका अंग्रेजोंका यह कुचक्र था। लक्ष्मी-नहीं सह सकीं।

ी युद्धक्षेत्रमें उतर पड़ीं। अंग्रेजी फौजने इनसे घनघोर ा। कुछ विश्वासघाती मुसल्मान तथा कृतघ्न राजपूतोंने का साथ दिया, पर लक्ष्मीबाई भगवती काली बन गयी नकी तोपोंके गोलोंसे शत्रुके प्राण समाप्त होने लगे। । भाँति जलती-मरती अंग्रेजी फौज झाँसीके किलेमें रनेपर राखके सिवा कुछ नहीं पा सकी।

नी सुरक्षित निकल गयी थीं और इन्हींकी सहायतासे ाहबने ग्वालियरपर अधिकार कर लिया था; पर जयाजी-न्धियाने यहाँ छल किया। रत्नजटित कृपाण कटिमें नीने कर्नल स्मिथका सामना किया। अंग्रेजोंके सैनिक फाड़कर रानीके रूप और रणकौशलको देखकर चकित त्रुओंका संहार करती हुई रानी आगे चली गयीं। दो छे लगे। युद्ध करते हुए रानी पहले ही थक गयी थीं। दोनों शत्रुओंके सिर उतार लिये। रानीका शरी पड़ गया। उनके नेत्र बंद हो गये।

महारानी लक्ष्मीबाईकी पवित्र स्मृतिसे आर्यधरा पूर्ण गौरवान्वित समझती है।

सती पद्मिनी

पवित्र जौहर

'मैं अलाउद्दीनका रक्त पी जाऊँगा' चित्तौ श्रीलक्ष्मणसिंहके चचा रत्नसिंह क्रोधसे काँप उठे मुखमण्डल लाल हो गया 'अब वह प्राण लेकर ि जा सकेगा'।

'आप नीति, धैर्य तथा बुद्धिसे काम लें' सुन्दरी सती पद्मिनीने स्वामीके चरण पकड़ लिये मेरे रूपकी छायासे ही यदि सहस्रों पुरुषोंके ? स्त्रियोंके सुहागकी रक्षा हो जाय तो आपत्ति न चाहिये।'

'तुम ठीक कहती हो' कुछ सोचकर रत्नसिंह उन्होंने अपनी स्वीकृति अलाउद्दीनके पास भेज दी।

'परम बुद्धिमती पद्मिनीने अपने सतीत्व त बचा लिया और मुझे प्राण लेकर भागना प अलाउद्दीन एक क्षणके लिये भी नहीं भूल सका। किरकिरी और टूटे काँटेकी तरह यह बात उसे रही थी। फलतः यवनोंकी सजी विशाल सेन हुई चित्तौड़की ओर चल पड़ी।

वीर राजपूत युद्धमें डट गये। चार-चार मुस एक-एक राजपूतोंके हाथों वध होना वहाँ सामान्य राजपूत योद्धाओंने यवनोंके उष्ण रक्तसे चित्तौ सींच दी, पर उनकी संख्या कम थी, सैकड़ों मुस बलिदानकर श्रीरत्नसिंहने वीरगति प्राप्त की।

पद्मिनीको जैसे विश्वकी सम्पत्ति मिल गयी अत्यन्त प्रसन्न थी। सामने सूखे काष्ठके पहाड़में पहुँच गये थे। चतुर्दिक् अग्निकी विशाल ल लपटें और ज्वाला-ही-ज्वाला दीखती थी। एक-दो चित्तौड़की समस्त स्त्रियाँ हँसती हुई कूदती जा रही साथ ही पद्मिनी-सी सुकोमल और लावण्यवती प उसमें समा गयी।

अलाउद्दीनको वहाँ मिली थी एक पद्मिनी नहीं

कुछ आचार्य, महात्मा और भक्त

श्रीशङ्कराचार्य

!मैं संन्यास लेना चाहता हूँ।' सात वर्षके बालक ातासे आज्ञा माँगी। पाँचवें वर्षमें उनका यज्ञोपवीत-सम्पन्न हुआ था और केवल दो वर्ष गुरुगृहमें रहकर चारों वेद, वेदाङ्ग एवं दर्शन-शास्त्रकी शिक्षा समाप्त थी। ऐसे लोकोत्तर बालकके लिये क्या अवस्थाका सकता है?

ा सुभद्रा कैसे आज्ञा दें। वृद्धावस्थामें भगवान् आराधनासे उन आशुतोषने वरदानस्वरूप तो यह न प्रदान की उन्हें। बालक तीन वर्षका था, तभी उसके शिवगुरुजी संसार छोड़कर कैलास पधार गये। यह क्या ालक है माताकी गोदमें? साक्षात् शङ्कर ही तो पधारे हैं। की अवस्थामें मातृ-भाषाका शुद्ध स्पष्ट ज्ञान, दो वर्षोंमें ुने पुराणोंको कण्ठ कर लेना और अभी तो सात ही ए न? माता ऐसे पुत्रको छोड़ कैसे दे। कैसे नेत्रोंसे ।

! तू मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दे, तो मगर ड़ देगा!' विश्वको द्योतित करनेवाले सूर्य झोपड़ीमें ं हो सकते। माता नदीमें स्नान कर रही थीं। शङ्कर-मगरने पकड़ लिया। वे डूबते हुए भी शान्त, स्थिर। मातासे उन्होंने संन्यासकी आज्ञा माँगी।

मेरी मृत्युके समय आ जाना!' माताने आज्ञा दे ुत्रका जीवन बचता हो तो ऐसा ही सही। उन्होंने ृत्युके समय दर्शन चाहा। मगर तो उन योगिराजकी की क्रीड़ापुत्तलिका था। वहाँसे नर्मदातटपर आकर ोविन्द भगवत्पादसे आठ वर्षकी अवस्थामें संन्यास ्या। गुरुने इनका नाम भगवत्पूज्यपादाचार्य वहाँ गुरुके उपदिष्ट मार्गसे ये शीघ्र योगसिद्ध हो ुरुदेवने काशी जाकर इनसे ब्रह्मसूत्रपर भाष्य करनेकी ।

ाङ्कराचार्यके प्रथम शिष्य काशीमें सनन्दनजी हुए। म पद्मपादाचार्य हुआ। भगवान् विश्वनाथने आचार्य चाण्डालरूपमें दर्शन दिया और जब आचार्यने उन्हें र प्रणाम किया, प्रकट हो गये वे शशाङ्कशेखर। ब्रह्मसूत्र-

वह आठ दिनतक चलता रहा। पद्मपादाचार्य आ कि उनके गुरुदेवसे इस प्रकार शास्त्रार्थ करनेवाला गया। ध्यान करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ; स्वयं भगव ब्राह्मणरूपमें उपस्थित हैं। अतः उन्होंने प्रार्थना की-

शङ्करः शङ्करः साक्षाद् व्यासो नारायणः स्वयं
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते न जाने किं करोम्यहम्

आचार्यने भगवान् व्यासको पहचाना, उनक किया। व्यासजी प्रसन्न हुए—'तुम्हारी आयु केव वर्षकी है। वह समाप्त हो रही है। मैं तुम्हें सोलह देता हूँ। धर्मकी प्रतिष्ठा करो!'

भगवान् व्यासके आदेशसे आचार्य वेदान्तके सनातनधर्मकी प्रतिष्ठा और विरोधी तार्किकोंको श पराजित करनेमें लग गये। काशी, कुरुक्षेत्र, बदरि दक्षिण-भारत—रामेश्वरतककी उन्होंने यात्रा की। त्रिवेणीतटपर जब वे कुमारिल भट्टसे शास्त्रार्थ कर आचार्य कुमारिल तुषाग्नि (भूसीकी अग्नि) में बैठ चुके थे। उन्होंने कहा—'मण्डन मेरा शिष्य है पराजयसे मैं ही पराजित हुआ, इस प्रकार मानना चा

मण्डन मिश्रकी पत्नी भारती मध्यस्था हुईं। पराजित होकर मण्डन मिश्रने आचार्यका शिष्यत्व किया। उनका नाम सुरेश्वराचार्य हुआ। आचार्य फिर भी श्रीकुमारिल भट्टको श्रेष्ठ ही माना और अपने उन्हें भगवत्पाद कहकर गुरुकी भाँति सम्मानित किय

'मेरी साधनाकी सफलताके लिये एक तत्त्वज्ञ आवश्यक है। आपको शरीरका कोई मोह है नहीं दिन एकान्तमें एक कापालिकने आचार्यसे प्रार्थना क

'किसीको पता न लगे, अन्यथा लोग तुम्हें व मैं स्वतः आ जाऊँगा।' उनको शरीरका क्या मो अर्धरात्रिमें श्मशान पहुँच गये आचार्य। कापालिक विधान करने लगा। आचार्यने समाधि लगायी। सिर काटनेवाला था, इतनेमें पद्मपादाचार्यमें उनके भगवान् नृसिंहका आवेश हुआ। आवेशमें उन्होंने क को मार डाला।

सोलह वर्षकी अवस्थामें आचार्यने प्रस्थानत्रयीप

लिकोंके मतका प्राबल्य था। अधिकांश नरेश बौद्ध
थे । आचार्यने शास्त्रार्थके द्वारा बौद्ध पण्डितोंको
किया। राजाओंने प्रजाके साथ उनके पावन उपदेश-
र किया। अशास्त्रीय उग्रतर सम्प्रदायोंका दमन हुआ।
प्रभावसे देशव्यापी बौद्धमत लुप्तप्राय हो गया।
श्रुतिसम्मत सनातनधर्म प्रतिष्ठित हुआ।

ार्यने पुरी, द्वारका, शृङ्गेरी और ज्योतिर्मठ
थ) में पीठ स्थापित करके अपने एक-एक शिष्यको
की रक्षाके लिये नियुक्त किया। बत्तीस वर्षकी
केदारनाथजीके समीप उन्होंने इहलोककी लीलाका
र लिया। आचार्यके बनाये एवं भाष्य किये ग्रन्थों-
बहुत लंबी है। उनके अद्वैतवादका देशपर
भाव पड़ा। वैदिकधर्मके उद्धारके लिये उनका
द्वितीय है और इसी प्रकार उनकी सिद्धान्त-स्थापन-
विश्वके दार्शनिकोंमें अद्वितीय मानी जाती है।

त-ज्ञानकी परम्परामें प्रथम नाम श्रीगौड़पादाचार्यजी-
ा है। इनका कोई जीवनचरित प्राप्त नहीं है।
पनिषत्कारिका आचार्य गौड़पादका प्रधान ग्रन्थ है।
ाष्य आचार्य गोविन्दभगवत्पाद ही श्रीशङ्कराचार्यके
हैं। कुछ विद्वानोंकी सम्मति है कि महर्षि पतञ्जलि-
दूसरा नाम गोविन्दपादाचार्य है। आचार्य शङ्करके
शिष्योंमें पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य हैं। इनमें
र्यके बहुत अधिक ग्रन्थ हैं।

ार्य शङ्करके अद्वैत-ज्ञानकी परम्परा लोकोत्तर
पन्न विद्वानोंसे पूर्ण है। इनमें 'संक्षेप-शारीरक'-
ज्ञात्म-मुनि, वेदान्तके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भामती' के
स्पति मिश्र, 'खण्डनखण्डखाद्य' के रचयिता श्रीहर्ष,
ाचार्य, आचार्य भारतीतीर्थ, आचार्य शङ्करानन्द,
कार' स्वामी विद्यारण्य, श्रीआनन्दगिरि, अप्पय्य
स्वामी मधुसूदन सरस्वती आदि अनेक आचार्य
ायः इन सभी आचार्योंने अनेक ग्रन्थोंके भाष्य तथा
ी हैं। वेदान्तके अतिरिक्त दूसरे दर्शनों तथा धर्मशास्त्र-
इनमेंसे अनेक आचार्योंके उत्तम ग्रन्थ हैं—जैसे श्री-
जीने अपने पूर्वाश्रममें माधवाचार्यके नामसे 'काल-
'पराशरमाधव' आदि धर्मशास्त्रके ग्रन्थ लिखे हैं।
सुप्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्यजी विद्यारण्यजीके

सूची भी देना चाहें तो बहुत विस्तार होगा। श्रीशङ्क
के अद्वैतवादका देशमें एवं विदेशोंपर व्यापक प्र
है। उनके मतके सम्बन्धमें सहस्रों ग्रन्थ लिखे
विद्वानों एवं संतोंकी परम्परा अभी उसमें अविच्छि
आ रही है।—सु०

आचार्य कुमारिल भट्ट

किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति

जब भारत बौद्धप्राय हो गया था, बौद्ध
महाराज्ञी अपने अन्तःकरणकी व्यथा सचमुच कि
वेदों तथा सनातन धर्मका नाम लेना अपराध हो
उस समय निर्णयात्मक वाणीमें 'मैं वेदोंका
करूँगा' यह आश्वासन देना आचार्य कुमारि
साहस था।

बौद्धमतका खण्डन करनेके लिये आचार्य
विद्वानोंसे अध्ययन करना पड़ा और अपनी
प्रतिभाके बलपर आचार्यने बौद्ध पण्डितोंको
पराजित करके अपने वेदोद्धारकी प्रतिज्ञाको स
दिया। आचार्य कुमारिलकी विद्वत्ताके लिये उन
मण्डन मिश्रका ही परिचय पर्याप्त है, जिनके
सारिकाएँ भी शुद्ध मन्त्र-पाठ करती थीं।

'मैंने गुरुद्रोह किया है।' आचार्य कुमारिलकी
जो श्रद्धा थी, आजके युगमें उसकी कल्पना भी क
वेदोंकी रक्षा, सनातन धर्मकी स्थापनाके लिये जो कु
गया, वह ठीक था। उद्देश्य पवित्र था; किंतु जिनसे
किया, उन्हींका खण्डन तो गुरुद्रोह ही हुआ। आ
कष्टका भय था और न शरीरका मोह। उन्होंने प्राय
निश्चय किया। प्रायश्चित्त भी क्या? जब श्रीशङ्कराच
शास्त्रार्थ करने पहुँचे, वे प्रयागमें त्रिवेणीतटपर
(चावलोंकी भूसीकी आग) में बैठे थे, जो बहुत
जलाकर प्राण लेती है।

आचार्य कुमारिलका जन्म दक्षिण-भारतमें हु
वे पूर्वमीमांसाके मुख्य आचार्य हैं। उनका मत
गुरुमत कहा जाता है। पूर्वमीमांसा-दर्शनके
भाष्यपर उनकी टीका है। इनका दूसरा ग्रन्थ 'श्लोक
है। श्रीशङ्कराचार्यने अपने ग्रन्थोंमें इन्हें गुरु
भगवत्पाद कहकर स्मरण किया है।—सु०







श्रीरामानुजाचार्य



श्रीमध्वाचार्य





श्रीरामानुजका जीवन प्रारम्भसे आपत्तियोंमें उलझा और इन आपत्तियोंने उसे उज्ज्वलतर किया ण-भारतका तिरुकुन्नर ग्राम उनके आविर्भावसे पवित्र हुत छोटी अवस्थामें पिता केशवभट्ट परलोकवासी काञ्ची जाकर यादवप्रकाशजीसे ये विद्याध्ययन करने ग्य गुरु शिष्यकी प्रतिभासे प्रसन्न होता है; किंतु क्षक अपना अपमान समझने लगे कि एक लड़का कोंसे उनके तर्कोंमें दोष निकाल दे। द्वेषवश इनके ाई एवं सहाध्यायी गोविन्दभट्टको नियुक्त किया नका वध करनेके लिये। काशीयात्राके बहाने वनमें कृत्य होना था; पर वनमें क्या वे सर्वरक्षक नहीं एक व्याध और उसकी पत्नीने वनमें आचार्यकी ।

पुरुष आलवन्दार (श्रीयामुनाचार्य) ने आचार्यको या तब, जब वे श्रीनारायणके नित्यधाम पधारने चार्य श्रीरंगम् पहुँचे। इससे पूर्व ही उनका महा- ो गया। आचार्यने देखा, आलवन्दारके हाथोंकी ुलियाँ मुड़ी हुई हैं। उन्होंने संकेत समझ लिया तासे सूचित किया 'मैं ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम व्यप्रबन्धम्' की टीका अवश्य लिखूँगा या लिखवा हापुरुषके हाथकी अँगुलियाँ सीधी हो गयीं।

ार्यने श्रीयतिराजसे संन्यासकी दीक्षा ग्रहण की। ूरके महात्मा नाम्बिने इन्हें अष्टाक्षर (ॐ नमो ा) मन्त्रकी दीक्षा दी। गुरुने आदेश दिया—'यह य श्रीनारायण-मन्त्र है। अनधिकारीको इसका श्रवण ना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे अधम प्राणी भी अधिकारी हो जाते हैं।'

ो! सुनो! सब लोग सुनो और स्मरण कर लो! नारायणके इस मन्त्रके सुननेसे ही प्राणी वैकुण्ठका हो जाता है।' आचार्य मन्दिरके शिखरपर खड़े ोड़का आह्वान करके उस परम गोप्य मन्त्रकी घोषणा ी।

ानुज! तुमने यह क्या किया? मेरी आज्ञा भंग फल तुम जानते हो?' गुरुदेवने सुना तो बहुत ुए। इस प्रकार कहीं मन्त्र-घोषणा की जाती है?

देव! आपकी आज्ञा भंग करके मैं नरक

'आचार्य तो सचमुच तुम्हीं हो।' गुरुदेवने हृदयसे लगा लिया।

× × ×

आचार्यकी कीर्तिके साथ उनके शत्रु भी बढ़ थे। शत्रुओंने अनेक बार उनके वधका प्रयत्न किय भोजनमें विष मिलाया गया; पर प्रभुने सदा र आचार्यने सम्पूर्ण भारतकी यात्रा की। श्रीमहालक्ष् प्रवर्तित प्रपत्तिमार्गके अनुसार उन्होंने प्रस्थ 'श्रीभाष्य' किया। आचार्यके प्रधान शिष्य कूर (कूरेश) थे। कूरेशके दो पुत्र थे—पराशर और आचार्यकी आज्ञासे पराशरने विष्णुसहस्रनाम तथा 'दिव्य-प्रबन्धम्' की टीका की। इस प्रकार श्रीयामु तीनों इच्छाएँ आचार्यने पूर्ण कीं।

श्रीरंगम्पर उन दिनों चोळराज कुलोत्तुंगका था। ये कट्टर शैव थे। वैष्णवोंके शत्रु होनेके का आचार्यसे रुष्ट हो गये। उन्होंने आचार्यको अपने बुलाया। राजाकी दुरभिसन्धि स्पष्ट थी। कूर (कूरेश) ने गुरुके लिये बलिदान करनेका निश्चय कि आचार्यके स्थानपर स्वयं पेरियनाम्बिके साथ राज पधारे। राजा इनके वैष्णव-धर्मके समर्थनसे रुष्ट हो गय कूरेशकी आँखें निकलवा लीं। इन महापुरुषने कष्ट सहन कर लिया।

चोळराजको अपनी क्रूरतासे सन्तोष नहीं हु आचार्यकी खोज करने लगे; किंतु आचार्य उस सम राज्यमें शालग्राम नामक स्थानमें रहते थे। वहाँके नरेश परम वैष्णव थे। आचार्य वहाँ बारह वर्ष रहे। आ आज्ञासे राजाने तिरुनारायणपुरके प्राचीन मन्दिरका कराया। वहाँ श्रीरामका जो विग्रह है, वह दिल्लीके बा कन्याके पास था। आचार्यने उसे दिल्लीसे लाकर किया। राजा कुलोत्तुंगके देहान्तके पश्चात् आचार्य पधारे। वहाँ उन्होंने श्रीरंगमन्दिरका विस्तार उत्सव नियत किये। इस प्रकार एक सौ बीस वर्षकी तक श्रीरंगकी सेवा और भक्तिका प्रचार करके उनके श्रीधाम पधारे।

आचार्य श्रीरामानुजने जिस विशिष्टाद्वैत मतक किया, उसकी परम्परा पूर्वसे चली आ रही थी। द्वापरं

है। ये क्रमशः काञ्ची, महाबलीपुर और मैला-
थे। इनके पश्चात् आचार्य 'तिरुमड़िशै' (भक्तिसार)
र्भाव हुआ और फिर पाण्ड्यदेशके तिरुक्कुरुकूर नगरमें
स्वामी (नम्माळवार) का । शठकोप स्वामीके
ष्य 'मधुरकवि' अत्यन्त प्रख्यात हैं। केरळप्रान्तमें
: प्रसिद्ध आळवार हुए। विष्णुचित्त पेरि-
और उनकी पुत्री गोदा (आण्डाळ) की रचनाओं-
ळमें अत्यन्त आदर है। श्रीयामुनाचार्यसे पूर्व
र्य, गुहदेव, टंक, श्रीवत्सांक प्रभृति वैष्णवाचार्योंके
लते हैं, जिन्होंने ब्रह्मसूत्रपर भाष्य किये थे।
त-सम्प्रदायकी परम्परा श्रीमहालक्ष्मीसे विष्वक्सेन,
स्वामी, श्रीनाथमुनि, पुण्डरीकाक्ष, श्रीराममिश्र स्वामी
ामुनाचार्य—इस क्रमसे एकसे दूसरेको प्राप्त हुई है।
ार्य श्रीरामानुजकी परम्परामें महान् दार्शनिक एवं
वेद्वानोंका क्रम चलता ही आया है। श्रीदेवराजाचार्य,
ार्य, श्रीसुदर्शनव्यास भट्टाचार्य, श्रीवीरराघवदासाचार्य,
साम्बुजाचार्य, श्रीवेंकटनाथ वेदान्ताचार्य, श्रीमल्लोका-
ाचार्य वरदगुरु, वरदनायक सूरि, अनन्ताचार्य,
हाचार्य रामानुजदास, सुदर्शनगुरु, तीनों श्रीनिवासा-
च्चि वेंकटाचार्य, श्रीनिवास दीक्षित आदि आचार्योंने
न्थोंसे विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तको स्पष्ट एवं विस्तृत
। आचार्य बोधायन, आचार्य ब्रह्मनन्दी और
र्यने विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्त-ग्रन्थोंका बहुत बड़ा
वपूर्ण विस्तार किया है।

ामानुजाचार्यने शास्त्रीय आचार एवं भक्तिकी
पुनः प्रतिष्ठा की। बौद्ध एवं कापालिक धर्मसे वैदिक-
णप्राय हो गया था। श्रीशङ्कराचार्यने सनातन धर्मको
किया था, शास्त्रोंके प्रति श्रद्धा जाग्रत् कर दी थी;
स्त्रीय आचारकी ठीक प्रतिष्ठा होकर हिंदू-धर्मका
(श्रीरामानुजाचार्यद्वारा ही पूर्ण हुआ।—सु०

श्रीमध्वाचार्य

क्रम-संवत् १२९५ माघशुक्ल सप्तमीको मद्रासके
जिलेके उडूपीक्षेत्रसे कुछ दूर वेललिग्राममें भार्गव-
नारायणभट्टकी पत्नी माता वेदवतीकी गोद एक
(पुरुषके प्राकट्यसे धन्य हो गयी। पिताने बालकका
ासदेव रक्खा। बचपनमें बालक वासदेव खेलने-

पुकारते थे। पढ़नेकी रुचि हुई और अल्पकालमें ः
शास्त्र अनायास उपस्थित हो गये।

बालक वासुदेव संन्यास लेनेको प्रस्तुत हुए। मात
मोह स्वाभाविक है; किंतु जन्मसिद्ध पुत्रके चमत्का
सिद्धिके प्रभावोंको देखकर माता-पिताको स्वीकृति दे
ग्यारह वर्षकी अवस्थामें श्रीअच्युतपक्षाचार्यजीसे
लेकर वासुदेवने पूर्णप्रज्ञ नाम धारण किया।
अध्ययन तो संन्यासके पश्चात् प्रारम्भ हुआ। गुरु
पढ़ानेमें असमर्थ हो जाते। शिष्य ही गुरुके मतका र
प्रायः उन्हें ठीक अर्थ समझानेवाले हो गये।

'मैं गङ्गा-स्नान करने जाऊँगा।' आचार्य
गुरुदेवसे अनुमति माँगी। परम प्रिय शिष्यके वियोग
व्यथित हो गये।

'आप व्याकुल न हों, सम्मुखके सरोवर
श्रीगङ्गाजी पधारेंगी। अतः ये यात्रा न कर
अनन्तेश्वरजीने गुरुदेवको आश्वासन दिया। ती
सरोवरका हरिताभ जल उज्ज्वल हो गया। उसमें
हो गयीं। यात्रा रुक गयी। अबतक बारह वर्षोंमें
सरोवरमें गङ्गाजीका प्रादुर्भाव होता है।

आचार्यने कुछ दिनों पश्चात् यात्रा की। उन्हे
स्थानपर शास्त्रार्थ करके भक्ति-मार्गकी स्थापना की
स्थानपर वेद, महाभारत और विष्णुसहस्रनामके
क्रमशः तीन, दस और सौ अर्थ किये। गीता
पूर्ण करके वे श्रीबद्रीनाथ-धाम पहुँचे। वहाँ
व्यासने इन्हें शालग्रामजीके तीन विग्रह देकर भक्तिकी
का आदेश दिया।

आचार्यने अनेक श्रीविग्रहोंकी स्थापना की।
व्यासप्रदत्त शालग्राम-विग्रह सुब्रह्मण्य, उडूपी और
पधराये गये। तुलुवके समीप जलमग्न
गोपीचन्दनसे ढकी श्रीकृष्णचन्द्रकी सुन्दर मूर्ति स
अनुसार निकलवाकर आचार्यने उडूपीमें स्थापित की
और भी आठ मन्दिर आचार्यके बनवाये हैं। सरदन्त
जब आचार्य परमधाम पधारने लगे, तब उन्होंने पद्
(सोहनभट्ट) को श्रीरामजीकी मूर्ति एवं भगवा
प्रदत्त शालग्राम-विग्रह देकर द्वैतमतके प्रचारकी अ

ीमध्वाचार्यके द्वैत-सिद्धान्तको सुपुष्ट एवं प्रसारित ै ।

ाचार्य पूर्णप्रज्ञ (श्रीमध्वाचार्य) का सिद्धान्त शङ्कर-ोक विपरीत-सा हो गया है। अद्वैत-मतमें भगवान् ार्य परम उपासक थे; किंतु कालक्रमसे ब्रह्मात्मैक्यका क बौद्धिक विलास हो गया । आचार तथा परलोक ी कल्पना मान लिये गये । शास्त्रका विचित्र अर्थ ा । आचार्य मध्वने जीवकी नित्य पृथक् सत्ताका न किया । जीव अपने सञ्चालक स्वामी परमात्माकी ा करके ही नित्य शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कर सकता सिद्धान्तसे उपासना, शास्त्र, परलोक, कर्म आदि ोषण हुआ ।—सु०

श्रीनिम्बार्काचार्य

तका दक्षिण-प्रान्त आचार्योंकी जन्म-भूमि रहा है । -तटपर वैदूर्यपत्तनके पास अरुणाश्रममें श्रीअरुण-त्नी जयन्तीदेवीके गर्भसे श्रीनियमानन्दका आविर्भाव आगे यही आचार्य निम्बार्क नामसे प्रख्यात हुए । ान् इनके पिताका नाम जगन्नाथ बतलाते हैं । इनके का प्रादुर्भाव द्वापरमें मानते हैं । कहते हैं कि स्वयं रदने इन्हें श्रीगोपालमन्त्रकी दीक्षा दी ।

ावन् ! मुझे स्मरण नहीं रहा, बहुत विलम्ब हो अब आप प्रसाद ग्रहण करें ।' आचार्यचरण पास ध्रुवक्षेत्रमें निवास करते थे । एक दिन डी महात्मा पधारे । दो शास्त्रज्ञ, अनुभवसम्पन्न में परस्पर अध्यात्मचर्चा चलने लगी तो समयका ्से रहे । सायंकालके पश्चात् आचार्यने अतिथिसे ी ।

 तो सूर्यास्त हो गया ।' दण्डी संन्यासी नियमतः पश्चात् कैसे भिक्षा ग्रहण कर सकते थे ।

नारायण अभी प्रकाशित हैं ।' सहसा प्रकाश फैल जैसे बादलोंमेंसे भगवान् भास्कर निकले हों । समीप नीमके वृक्षके ऊपर सूर्यमण्डल प्रत्यक्ष प्रकट ा । आचार्यके साथ अतिथि तथा दूसरोंने भी वह ा । आचार्य गद्‌गद हो रहे थे । उनके मनमें अनाहारके कारण जो क्षोभ हुआ, उसे उनके

प्रसाद ग्रहण किया और सूर्यमण्डल अदृश्य हो गया आचार्यका नाम निम्बादित्य या निम्बार्क हो गया ।

आचार्यका एकमात्र ग्रन्थ वेदान्तसूत्रोंपर भाष्य—पारिजात-सौरभ ही इस समय मिलता है। उनके शिष्य केः अनुयायी विरक्त होते हैं और हरिव्यासके अनुयार्य होते हैं । आचार्यने प्रस्थानत्रयीके स्थानपर प्रस्थान को प्रधान माना और उसमेंसे चौथे प्रस्थान श्रीमद्भा ही परम प्रमाण स्वीकार किया । श्रीनिवासाचार्य, श्रीयादवप्रकाश, श्रीपुरुषोत्तमाचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्री चार्य, आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि आचार्य श्री के द्वैताद्वैतसिद्धान्तके प्रमुख व्याख्याता हुए हैं आचार्योंने अपनी टीकाओं, व्याख्याओं तथा स्वतन्त्र आचार्यके सिद्धान्तोंका विस्तार किया है ।—सु०

श्रीवल्लभाचार्य

दक्षिण-भारतके काँकरवाड ग्राममें आकर भरद्वाज तैलंग ब्राह्मणोंका एक सोमयाजी परिवार बस गया लक्ष्मणभट्टकी सातवीं पीढ़ीसे सोमयाग बराबर चलता आ सौ सोमयज्ञोंकी पूर्तिके उपलक्ष्में काशी जाकर ए ब्राह्मणोंको भोजन करानेके लिये पत्नी श्रीइलम्मावे लक्ष्मणभट्टजीने यात्रा की । मार्गमें चम्पारण्यमें, जो गढ़के रायपुर जिलेमें है, श्रीवल्लभका जन्म हुआ । सौ सोमयाग पूर्ण करता है, उसमें भगवदीय महा आविर्भाव होता ही है ।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही काशीमें श्रीमाधवे श्रीवल्लभने समस्त शास्त्राध्ययन पूर्ण कर लिया । वहाँ वृन्दावन चले आये और कुछ दिन व्रजवास करके ती को निकले । विजयनगरके राजा कृष्णदेवकी सभामें होकर आपने शास्त्रार्थमें बड़े-बड़े पण्डितोंको पराजित यहीं वैष्णवाचार्यकी उपाधि स्वीकार की। विजय आचार्य उज्जैन आये । वहाँ आपने जिस पीपलके निवास किया, वहाँ आचार्यकी बैठक है । विभिन्न स आचार्यपादकी ऐसी बैठकें अबतक हैं ।

श्रीश्यामसुन्दरने स्वयं प्रकट होकर आचार्यके पुत्र की इच्छा प्रकट की । अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें आ विवाह किया । श्रीविट्ठलके रूपमें स्वयं विट्ठलभगवा

ः दिन हनुमानघाटपर वे गङ्गास्नान कर रहे थे। क उज्ज्वलज्योति शिखा उठी और बहुत-से मनुष्योंने आचार्य सशरीर ऊपर उठते जा रहे हैं। इस प्रकार ी अवस्थामें आचार्यने मर्त्यलोक छोड़ दिया।

ल्लभाचार्यजी महाराजके पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथ- ।पुत्र हुए। १—गिरिधरराय, २—गोविन्दराय, ३— , ४—गोकुलनाथ, ५—रघुनाथ, ६—यदुनाथ, ७— । श्रीव्रजनाथ भट्टजीने आचार्यपादके अणुभाष्यपर ा' नामक वृत्तिकी रचना की है। गोस्वामी श्री- जी महाराजने अणुभाष्यकी बृहट्टीका 'भाष्य-प्रकाश' । श्रीविठ्ठलनाथजीके 'विद्वन्मण्डन'की भी इन्होंने था 'प्रस्थानरत्न' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। ल्लभाचार्यजी महाराज शुद्धाद्वैतसिद्धान्तके प्रतिष्ठापक ार्यके अनुसार कार्य-कारणरूप जगत् ब्रह्म ही है। नी इच्छासे ही जगत्‌रूप बना है। जगत् न मायिक ं भगवान्‌से भिन्न। यह ब्रह्मका अविकृत परिणाम ान्‌की कृपासे ही मुक्ति प्राप्त होती है। भगवान्‌का ी पुष्टि है। इसी अनुग्रहसे भक्तिका उदय होता है। के अनुग्रहरूप पुष्टिको प्रधान माननेसे श्रीवल्लभाचार्य- 'पुष्टि-मार्ग' कहा जाता है।

वल्लभाचार्यजीके समयमें ही सूरदासजी उनके शरणा- गये थे। अष्टछापके कवि वल्लभीय सम्प्रदायके ही के द्वारा हिंदी तथा हिंदू-धर्मकी जो सेवा हुई, वह ा है।—सु०

आचार्य श्रीरामानन्दजी

ापुरुषोंका जीवन सामान्य व्यक्तिके लिये आदर्श होता ापुरुष स्थूलशरीरके प्रति इतने उदासीन होते हैं उसका परिचय देनेकी आवश्यकता ही नहीं जान भारतीय संस्कृतिमें शरीरके परिचयका कोई मूल्य ।

रामानन्दाचार्यजीका परिचय व्यापक जनोंको केवल । प्राप्त है कि उन तेजोमय, वीतराग, निष्पक्ष महापुरुष- के पञ्चगङ्गाघाटको अपने निवाससे पवित्र किया। ा काशी-जैसी विद्वानों एवं महात्माओंकी निवास- कितना महत्त्व था, यह इसीसे सिद्ध है कि महात्मा सजीने उनके चरण धोखेसे हृदयपर लेकर उनके अज्ञानमूलक द्वेषभावको दूर किया। अपने तप यवन-शासकोंके अत्याचारको शान्त किया और चक्रवर्ती दशरथनन्दन राघवेन्द्रकी भक्तिके प्रवाहसे अन्तःकलुषका निराकरण किया।

द्वादश महाभागवत आचार्यके मुख्य शिष्य माने इनके अतिरिक्त कबीर, पीपा, रैदास आदि परम महापुरुष आचार्यके शिष्य हो गये हैं। आचार्यने जिस रा सम्प्रदायका प्रवर्तन किया, उसने हिंदू-समुदायकी समय रक्षा की। भगवान्‌का द्वार बिना किसी भे बिना जाति-योग्यता आदिका विचार किये सबके लि है, सब उन मर्यादापुरुषोत्तमको पुकारनेके समान हैं—इस परम सत्यको आचार्यने व्यावहारिक रूपमे किया है।—सु०

श्रीचैतन्य महाप्रभु

बङ्गालका नदिया (नवद्वीप) ग्राम बंगीय उसी दिन वृन्दावन हो गया, जब फाल्गुन शुक्ल सिंहलग्नमें श्रीजगन्नाथ मिश्रके यहाँ माता शचीदेवी में गौर-सुन्दर निमाई प्रकट हुए। श्रीजगन्नाथ मि पुत्र विश्वरूप युवा होते ही संन्यासी हो गये। शरीर पुत्र-वियोगमें टिक न सका। माता शचीके लि ही आधार रह गये। चञ्चल, चपल, नटखट, पर प्रतिभाकी मूर्ति निमाई छोटी अवस्थामें ही प्रकाण्ड हो गये। उन्होंने अपनी पाठशाला स्थापित कर ली दिन तो नवद्वीपका पण्डितवर्ग आश्चर्यमूढ़ रह ग सबसे अल्पवयस्क, बालकों-से चपल निमाई दिग्विजयी पण्डितको पराजित कर दिया।

श्रीनिमाई पिताका श्राद्ध करने गया पधारे वियोगमें उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी इहलोक छोड़ गयी निमाई लौटे, उनपर श्रीकृष्णभक्तिका पूरा रस गया था। नवद्वीप प्रेमोन्मत्त भक्तोंका निवास होने नित्यानन्द प्रभु भी नवद्वीप आ गये। माता शच अपना खोया ज्येष्ठ पुत्र प्राप्त कर लिया हो। श्रीअ वासुदेव सार्वभौम-जैसे प्रकाण्ड विद्वान् महाप्रभुकी में निमग्न हो गये। महाप्रभुने पुनः विवाह किया। प्रियाजीकी प्रेम-साधना सफल हुई। जगाई-मधाई-जै का उद्धार हुआ। वे संत बन गये महाप्रभुके प्रतापसे

ता, रोता, लुण्ठित होता और मङ्गलमय श्रीकृष्ण-चन्द्र-
कर पुकारने लगता। अनेक बार महाप्रभुमें भगवदावेश
भक्तोंने अपने आराध्य रूपोंका उनमें अनेक
त्कार किया। एक बार ऐसा आवेश पूरे अष्ट प्रहर-
रहा।

प्रभुने चौबीस वर्षकी अवस्थामें श्रीकेशव भारतीजीसे
दीक्षा ली। संन्यासका नाम श्रीकृष्णचैतन्य हुआ।
छूटा और महाप्रभुने श्रीजगन्नाथधाममें निवास
वहाँसे काशी होते हुए एक बार वृन्दावन और एक
ण एवं मध्यभारतकी महाप्रभुने यात्रा की। काशीमें
प्रकाण्ड पण्डित प्रकाशानन्द सरस्वती महाप्रभुके
हो गये। जगन्नाथपुरीसे महाप्रभु एक बार नदिया
थे।

महाप्रभु अन्ततक जगन्नाथधाममें विराजे और जब
छोड़ना हुआ, वे जगन्नाथजीके श्रीविग्रहमें लीन हो
महाप्रभुका प्रेममय जीवन हिंदीमें 'चैतन्यचरितावली'में
भाषामें 'अमिय निमाई-चरित'में देखने योग्य है। उसका
ऐसा नहीं, जो छोड़ा जा सके। यहाँ चरित देना
नहीं है। श्रीमहाप्रभुके अनुयायियोंमें श्रीनित्यानन्द प्रभु,
चार्य, राय रामानन्द, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन
श्रीजीव गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट,
दास, श्रीहरिदासजी तथा श्रीनरहरि सरकार मुख्य हैं।
महाप्रभुने ब्रह्मसूत्रपर कोई भाष्य नहीं किया। वे
वतको ही गीता एवं ब्रह्मसूत्रका भाष्य मानते थे।
स्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीजीव गोस्वामी-
भुके मतके अनुसार ग्रन्थोंका निर्माण किया। इनमें
मृतसिन्धु', 'भागवतामृत' 'षट्सन्दर्भ', आदि ग्रन्थ
आचार्य बलदेव विद्याभूषणने ब्रह्मसूत्रपर गोविन्द-
लिखा। इस प्रकार अचिन्त्यभेदाभेदवादकी पूर्ण
आचार्य बलदेवने की। श्रीमहाप्रभुने भक्ति तथा श्री-
र्तनकी धारा प्रवाहित की और वह धारा मनुष्योंको
ती अविच्छिन्न प्रवाहित हो रही है। —सु०

श्रीकण्ठाचार्य

चार्य श्रीरामानुजके विशिष्टाद्वैतसे कुछ पृथक्, पर उससे
मिलता हुआ, वैसा ही भक्तिप्रधान श्रीकण्ठाचार्यका
तवाद है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें
शङ्कर ही परम तत्त्व माने गये हैं। श्रीकण्ठाचार्यने
भाष्यमें अपने पूर्वाचार्योंके रूपमें शैवाचार्य तथा

आचार्य श्रीकण्ठ श्रीरामानुजाचार्यसे पहले हुए
श्रीशङ्कराचार्यके पूर्ववर्ती हैं, ऐसा भी कुछ विद्वान् क
दक्षिण-भारतमें ही उनका निवास था। वे महायोगी
भगवान् शङ्करके अंशावतार माने जाते थे। वे दहर
आराधक थे। ब्रह्मसूत्रका शैवभाष्य और मृगेन्द्रसंहित
उनके दो ग्रन्थ हैं। उनके भाष्यकी भाषा अत्यन्त
और अपने भावोंको थोड़े—पर महत्त्वपूर्ण शब्दोंमें
व्यक्त किया है। श्रीअघोरशिवाचार्यने श्रीकण्ठ
मृगेन्द्रसंहिताकी व्याख्या लिखी है। —सु०

श्रीअभिनवगुप्ताचार्य

प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके आचार्योंमें सोमानन्दनाथ,
सूनु, वसुगुप्ताचार्य, भट्ट कल्लटेन्दु, उत्पलाचार्य आदि
मिलते हैं; पर इन आचार्योंके ग्रन्थ नहीं मिलते
अभिनवगुप्ताचार्यका गीताभाष्य एवं शिवसूत्रोंकी
मिलती है।

महर्षि कात्यायन तथा वररुचिके वंशमें परम
सौचुकके पुत्र महात्मा भूतिराज श्रीअभिनवगुप्ताचार्य
एवं गुरु भी थे। भगवान् शङ्करका अपनी सा
साक्षात्कार करके ही आचार्य गीताभाष्यमें प्रवृत्त हु
उनके प्रत्यभिज्ञा-सिद्धान्तका संक्षिप्त सारांश 'हिंदू
और दर्शनशास्त्र' शीर्षकमें दर्शनोंके परिचय-क्रम
गया है। —सु०

श्रीभास्कराचार्य

महाराष्ट्रमें नासिकके पास एक ताम्रपत्र पाया ग
उससे पता लगता है कि भट्टभास्कर ज्यौतिषाचार्य
पूर्व-पुरुष थे। ये शाण्डिल्य-गोत्रमें उत्पन्न हुए थे
पिताका नाम त्रिविक्रम था। ये कविचक्रवर्ती कहे ज
'सिद्धान्तशिरोमणि'-कर्ता ज्योतिषी भास्कराचार्य इन
सन्तति-परम्परामें हुए। वेदान्तसूत्रपर इन्होंने भाष्य
था। इन्होंने भेदाभेदवादकी स्थापना की। ये
सगुण-निराकार मानते थे। —सु०

समर्थ रामदास स्वामी

श्रीसूर्याजी पन्तकी धर्मपत्नी रेणुका देवी धन्य हैं
प्रथम पुत्र गङ्गाधरने नौ वर्षकी अवस्थामें ही श्रीहनु
का दर्शन प्राप्त किया। आगे जाकर वे 'श्रेष्ठ' या
रामदास'के नामसे प्रसिद्ध हुए। दूसरे पुत्र नारायण

ोरामने इन्हें स्वतः दीक्षा दी और इनका नाम
रक्खा ।

ा मंगल सावधान !' महाराष्ट्र-प्रथाके अनुसार
कि विवाहके समय ब्राह्मणोंने जैसे ही 'सावधान'
मुच रामदास सावधान हो गये । वे विवाहमण्डप-
रह वर्षकी अवस्थामें ही भाग पड़े । फिर तो बारह
कसीको उनका कुछ पता नहीं लगा । पता लगे भी
ल पञ्चवटी पहुँचकर श्रीरामका स्तवन करके गोदा
नीके संगमपर टाफलीमें एक गुफामें आसन लगा
बारह वर्षकी तपस्याके पश्चात् श्रीसमर्थने तीर्थयात्रा
। उन्होंने बद्रीनाथसे रामेश्वरतक भारतके सभी
ात्रा की । जहाँ भी वे गये, उन्होंने तीर्थोंमें अपने
ापना की । उनके मठ जांब, चाफल, सज्जनगढ़,
तंजौर, डोमगाँव, मनपाडले, मिरज, राशिबड़े,
प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, द्वारिका, बद्रीनाथ,
, रामेश्वर और गङ्गासागर आदिमें हैं । ग्यारह
उन्होंने मारुति-प्रतिष्ठा की है ।

: वर्ष तीर्थयात्रा करके समर्थ गोदावरी-परिक्रमाको
। लोगोंसे माताके कष्टका वर्णन सुनकर वे घर गये ।
ोस वर्षपर माता-पुत्रका मिलन हुआ । माताको
ाका उपदेश करके उनकी आज्ञासे वे गोदावरीकी
करने गये । यह तीर्थयात्रा समाप्त करके वे माहुलीमें
। यहाँ उनसे मिलने अनेक संत आते थे । जयराम
गनाथ स्वामी, आनन्द स्वामी, केशव स्वामी और
। पाँच महापुरुष दासपञ्चायतन कहे जाते थे ।
कारामजी समर्थसे मिलने आये थे ।

मर्थने श्रीरामनवमी-महोत्सवका प्रारम्भ मसूरसे
उन्हीं दिनों चाफलके पास श्रीशिवाजी महाराजने
र्शन किये । शिवाजी महाराजने श्रीसमर्थको गुरुरूपसे
ा और जब श्रीसमर्थ परली (सज्जनगढ़) में रहने
शिवाजी बार-बार उनके दर्शनोंको आया करते । करंज-
दल श्रीसमर्थ एक दिन सतारेके राजद्वारपर पहुँचे ।
ुकारा 'जय जय श्रीरघुवीर समर्थ ।'

जतक मैंने जो कुछ अर्जित किया, सब स्वामीके
में अर्पित है ।' महाराज शिवाजीने एक पत्रपर
गुरुदेवकी झोलीमें डाल दिया । सचमुच वे दूसरे
पीड़ितोंकी रक्षा करने आया है या भीख माँगने ? राज
गया, पर तू मेरी ओरसे इसका संचालन कर ।' श्री
गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की, महाराष्ट्रका राष्ट्रध्वज गै
गया । राज्यमुद्रापर गुरुदेवका प्रतीक अङ्कित हुआ ।

संवत् १७३९ माघ कृष्ण नवमीको समस्त
अनुगत मण्डलीको समझाकर समर्थने श्रीराममूर्ति
आसन लगाया । इक्कीस बार 'हर'का उच्चारण करवे
उन्होंने 'राम' कहा, एक ज्योति उनके मुखसे
भगवान्‌के श्रीविग्रहमें लीन हो गयी ।

श्रीसमर्थके जीवनमें अनेक चमत्कारोंका उल
उनके अनेकों ग्रन्थ हैं । इन ग्रन्थोंमें 'दासबोध' बहुत
है । लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है कि औरंग
दक्षिणके मुसल्मान सूबेदारोंके उस अत्याचारपूर्ण
श्रीसमर्थने हिंदू-धर्मकी रक्षा की । इतिहासके विद्वा
हैं कि समर्थद्वारा स्थापित मठ केवल निवृत्तिनिरत
स्थान नहीं थे । उनमें भगवत्परायण, धर्मप्रेमी
सबल श्रीमारुतिके उपासक रहते थे । अत्याचार
रक्षा तथा दस्युदलसे जनताके त्राणके ये मठ अ
थे । दिल्लीसे शिवाजी इन मठोंकी सहायतासे ही
महाराष्ट्र पहुँचे थे । महाराज शिवाजीकी सफलतामें
का बहुत बड़ा भाग था । श्रीसमर्थकी संगठनशक्ति
थी और उससे अद्भुत ज्ञात होती है उनकी निर्लि
स्थितिपर विचार किया जाता है । —रा० श्री०

संत तुकारामजी

महाराष्ट्रके देहूग्राममें संवत् १६६५ में तुका
जन्म हुआ । इनके पिताका नाम बोलोजी और माता
कनकाबाई था । तेरह वर्षकी अवस्थामें रखुमाई
इनका विवाह हो गया । विवाहके पश्चात् ज्ञात हु
रखुमाईको दमेकी बीमारी है, अतः माता-पिताने इन
विवाह जिजाईके साथ कर दिया । तुकारामजीके ब
सावजी विरक्त प्रकृतिके थे; फलतः जब पिता वृद्ध ह
घरका भार तुकारामजीपर पड़ा । इनके छोटे भाई
कान्हजी था ।

इनकी सत्रह वर्षकी अवस्थामें माता-पिताका
गमन हुआ । बड़े भाईकी स्त्रीका देहान्त होनेपर
यात्रा करने चले गये । तुकारामजीका मन गृहकार्यमें

ो थी। एक बार आत्मीयोंने सहायता की, दो-एक
ुरने सहायता की; परंतु अन्तमें दूकानका
नेकल गया। एक बार मिर्च खरीदकर कोंकणमें
तो ठगोंने इन्हें पीतलके कड़े, सोनेके बताकर दे
. दाम ऐंठ ले गये। छोटी पत्नीने पितासे इनको
पये दिलाये। उसका नमक लेकर बेचनेपर पचास
ा भी हुआ, पर भाग्यसे एक दुखी पुरुष मार्गमें
ा। तुकारामजीने उसे सब रुपये दे दिये।

ा जिलेमें भयङ्कर अकाल पड़ा। अन्न-जलका अभाव
। उसी समय बड़ी स्त्री और इनका पुत्र भी चल
ामें कुछ रुक्के थे। कुछ लोगोंसे रुपया लेना था।
ोने छोटे भाईके भागके आधे रुक्के उसे दे दिये।
: रुक्के इन्द्रायणीमें फेंककर पूरे अकिञ्चन हो गये।
भर भजन, कीर्तन और स्वाध्याय चलने लगा।
ामनाथ पर्वतपर, गोण्डा पर्वत या भाण्डारा पर्वतपर
ते। सन्ध्याको गाँवमें आते और आधी राततक कीर्तन
ते। अपने हाथों पितामह श्रीविश्वम्भरके बनवाये
न्दिरका इन्होंने जीर्णोद्धार किया।

ाारामको देहू छोड़ देना चाहिये! वह शूद्र होकर
श्रुतिके अर्थ बोलता है तथा सब लोग उसकी पूजा
।' ब्राह्मणोंने स्थानीय शासकको उभाड़ा। कीर्तनके
ाारामजीके मुखसे अभङ्ग निकलते थे। उनका
ाढ़ गया था। कर्मकाण्डी पण्डितोंको यह सहन नहीं

ा अपनी इस कीर्ति-कथाको नष्ट ही कराना था तो मेरे
मने उसे प्रकट क्यों किया! तुका क्या कभी अपनी
ला है!' विठ्ठलका वह लाड़ला भक्त उनके मन्दिरके
ाक शिलापर धरना दिये रूठा बैठा था। अन्न-
; दिया गया था। ब्राह्मणोंके कहनेपर सब अभङ्ग
ामें तुकारामने फेंक दिये थे, पर अब वे अपने
ो उलझ पड़े थे। क्यों वह नटखट उन्हें इस प्रकार
ारता है!

म्हारे अभङ्ग इन्द्रायणी न डुबा सकती थी और
ार सकती थी। मैं भक्तोंको उन्हें आज ही दे आया
रह दिनोंके पश्चात् वे पण्ढरीनाथ प्रकट हुए। तुकारामके
वे दिन पत्नोंसे भी छोटे हो गये। उन नीलतमाल-

दर्शन करने जा रहे थे। मार्गमें अनगढ़शाह औ
बावलीमें डुबकी लगाते ही उनके सारे शरीरमें भयङ्क
होने लगी। वह जलन चिकित्सासे शान्त होनेवाली न
तुकारामजीकी शरणमें आनेपर ही वह दूर हुई।

छत्रपति महाराज शिवाजी श्रीतुकारामजीको गुरु
थे। तुकारामजीने ही शिवाजीको श्रीसमर्थकी शरण
आदेश दिया था। जबतक तुकारामजी रहे, उनके
निरन्तर भगवद्गुणगानकी अमृतधारा प्रवाहित होती
संवत् १७०६ चैत्र कृष्ण २ के प्रातः तुकारामजी इस
चले गये। उनका मृतदेह किसीने देखा नहीं। जो
भगवद्धाम गये हों, उनका देह किसीको मिले कैसे
और लोहगाँवमें तुकारामजीके स्मारक हैं। वारकरी सम
भक्त इन स्थानोंकी यात्रा करते हैं। तुकारामजीके
महाराष्ट्रमें सबसे अधिक प्रिय हैं। उनमें ज्ञान एवं
अनुपम सामञ्जस्य है। तुकारामजी महाराष्ट्रके भावक
हैं। उनकी वाणीमें महाराष्ट्रका निर्मल भगवन्मुख
झंकृत होता है। —सु०

संत ज्ञानेश्वरजी

श्रीविठ्ठलपन्तके तीन पुत्र तथा एक कन्या
निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव तथा मुक्ता
निवृत्तिनाथजीने गैनीनाथजीसे आत्मबोध प्राप्त किया
भाइयों तथा बहिनको उन्होंने ही दीक्षा दी। ज्ञ
अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी, जब कि उनके म
परलोकवासी हुए। चारों बालक भिक्षामें कच्चा अ
लाते। भगवच्चर्चामें ही उनका पूरा समय व्यतीत हो

'यदि पैठणके ब्राह्मण तुम्हें शुद्धिपत्र दे दें तो ह
तुमलोगोंको शुद्ध मान लेंगे।' ब्राह्मण इन बालकोंका
करानेको प्रस्तुत नहीं थे। इनके पिता विठ्ठलपन्
संन्यासी हो गये थे। गुरुके आदेशसे उन्होंने पुनः गृ
स्वीकार किया था। ब्राह्मणोंके आदेशसे प्रायश्चि
उन्होंने सपत्नीक प्रयाग आकर त्रिवेणी-तटपर
किया। इतनेपर भी ब्राह्मणलोग उनके बालकोंको
ही मानते रहे।

चारों बालक पैदल-पैदल दीर्घ यात्राका कष्ट
पैठण पहुँचे। पैठणके ब्राह्मणोंकी सभा हुई।
इन बालकोंको वेदका अनधिकारी बताया और भ

ानेश्वरजीने एक भैंसेको आत्मरूप बताया और
सके सस्वर शुद्ध वेदमन्त्रोंका उच्चारण करवा दिया।
कारसे ब्राह्मण लज्जित हुए। उन्होंने शुद्धिपत्र दे
ठणमें रहते हुए ज्ञानेश्वरजीने श्रीशङ्कराचार्यजीके
ीमद्भागवत आदि ग्रन्थ देख डाले।

द्धपत्र तथा वेदोच्चारण करनेवाले भैंसेको लेकर ये
गसे विदा हुए। भैंसेको आलें नामक स्थानमें
ो गयी। नेवासेमें ज्ञानेश्वरजीने ज्ञानेश्वरी गीताका
या। सच्चिदानन्दजीने उसे लिखा। वहाँसे ज्ञानेश्वर-
न्दी गये। वहाँ उनका बहुत सत्कार हुआ।
ने पंद्रह वर्षकी अवस्थामें 'ज्ञानेश्वरी' गीताभाष्यका
िया। अपने जीवनमें उन्होंने अनेक चमत्कार
।

यों तथा बहिनके साथ ज्ञानेश्वरजीने तीर्थयात्रा
ी। विसोबा खेचर, गोरा कुम्हार, चोखा मेला,
नार आदि अन्य संत भी उनके साथ हो गये।
ं साक्षात् विट्ठल भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिये।
रजीको साथ लेकर उज्जैन, प्रयाग, काशी, गया,
मथुरा, द्वारिका, गिरिनार प्रभृति तीर्थोंकी यात्रा
नेक स्थानोंमें ज्ञानेश्वरजीने योगके चमत्कार दिखलाये।
यके प्रख्यात योगी चाङ्गदेव भी इनके शरणापन्न

इक्कीस वर्ष, तीन मास, पाँच दिनकी अवस्थामें
३५३ मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को श्रीज्ञानेश्वरजीने
माधि ले ली। उनकी समाधिके एक वर्षके भीतर
नदेव, चाङ्गदेव, मुक्ताबाई और निवृत्तिनाथ भी
करके परमधाम चले गये। श्रीज्ञानदेवजीके चार
सिद्ध हैं—ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, हरिपाठके अभङ्ग
ङ्गदेव-पैंसठी।

ाराष्ट्रमें ज्ञानकी धारा बहानेवाले श्रीज्ञानेश्वर महाराजकी
र अब भी वहाँ मेला लगता है। उनकी 'ज्ञानेश्वरी'
समुद्र है। महाराष्ट्र-भक्तोंमें ज्ञानेश्वर महाराज
का सम्मान पाते हैं। —सु०

संत एकनाथजी

ठण महाराष्ट्रके वारकरी सम्प्रदायकी तीर्थभूमि है।
ीसूर्यनारायणजीकी पत्नी रुक्मिणीबाईने एकनाथ

किया। ६ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत हुआ। बा
ही रामायण तथा महाभारतकी शिक्षा प्राप्त हु
वर्षकी अवस्थामें तीव्र वैराग्यका उदय हो गया। आ
घर-द्वार छोड़कर देवगढ़में जनार्दन स्वामीकी शरणमें
वहाँ दत्तचित्त होकर गुरुसेवा करने लगे।

'एकनाथ, एक पाईकी भूल मिलनेसे तुम इ
हुए हो और संसार-जैसी महाभूलको अपनाये हो ?
दूर हो तो कितना आनन्द हो।' जनार्दन स्वामी
ताली सुनकर खुल गयी थी। उन्होंने हिसाब-किता
एकनाथको दे रक्खा था। उस दिन हिसाबमें
मिल नहीं रही थी। गुरुसेवासे निवृत्त होकर
एकनाथजी हिसाब मिलाने बैठे। भूलका पता
इतनी प्रसन्नता हुई कि ताली बजाने लगे थे। गुरु
उपदेश दिया, वह उनके हृदयमें प्रविष्ट हो गया।

'गुरुदेव ही दत्तात्रेय हैं और दत्तात्रेय ही गुरुदे
एकनाथजीको जब भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन हुए तो
गुरुदेवसे अभिन्नरूपमें उन्हें देखा। गुरु जनार्दन
उन्हें श्रीकृष्णोपासनाकी दीक्षा देकर शूलभञ्जन पर्वत
तप करनेकी आज्ञा दी। घोर तपके पश्चात् भगवत
करके वे लौट आये गुरुदेवके समीप। गुरु-आज्ञा
तीर्थ-यात्राको निकले। यात्रामें चतुःश्लोकी
ओवी छन्दोंमें उन्होंने एक ग्रन्थ लिखा और
उसे गुरुदेवको सुनाया।

तीर्थ-यात्रा करते हुए जन्मभूमिके समीप ए
पिप्पलेश्वर महादेवमें ठहरे थे। पितामह तथा दा
वर्षों ढूँढ़ा था। वे वृद्ध दम्पति जनार्दन स्वामीसे एक
लिये लिखित आज्ञा-पत्र ले आये थे कि एकनाथजी ग
स्वीकार करें। गुरु-आज्ञा शिरोधार्य करके एकनाथ
आये। वहाँ धूमधामसे गिरिजाबाईके साथ उनका विवा

'सब प्राणी भगवान्‌के ही साक्षात्स्वरूप हैं। गृ
की सफलता है साधु-ब्राह्मण तथा अतिथिकी
सेवामें।' एकनाथजी इस सिद्धान्तके मूर्तिमान् आ
इनके घर बराबर अन्न बँटता रहता। रात्रिमें
आनेवाले श्रोता प्रायः इनके घर ही भोजन करते
दिन रात्रिमें बहुत-से ब्राह्मण घर आये। उन्होंने दिन
नहीं किया था। अधिक वर्षाके कारण घरमें सूखा

ाब भगवत्स्वरूप हैं तो किसीपर किसी भी दशामें
े किया जा सकता है ।' गोदावरी-घाटके मार्गमें एक
न रहता था एक सरायमें । वह हिंदुओंको कष्ट देता
क़नाथजी जब स्नान करके लौटते तो उनके ऊपर
र देता । वे हँसकर पुनः स्नान करने चले जाते ।
व बार नित्य उन्हें स्नान करना पड़ता । एक दिन तो
आठ बार कुल्ले किये उसने । ये बार-बार स्नान-
ते रहे । अन्तमें लज्जित होकर वह इनके चरणोंपर
ा ।

मने ब्राह्मणोंका अनादर किया है । हम ऐसे पतितके
जन नहीं करेंगे !' पितृ-श्राद्धके समय ब्राह्मण रुष्ट
ले गये । श्राद्धके लिये जो अन्न पहले बना था,
ुगन्धसे मार्गमें चलते चार-पाँच महारों (चमारों)
लुब्ध हुआ था । 'ऐसा भोजन हमारे भाग्यमें कहाँ !'
् वे जा रहे थे । एकनाथजीने उन्हें बुलाकर भोजन
ा । दूसरा भोजन बना ब्राह्मणोंके लिये । ब्राह्मणोंने
ा अपमान माना । योगिराज एकनाथजीने पितरोंका
या । साक्षात् प्रकट होकर पितरोंने श्राद्ध-भोजन

े भगवान् रामेश्वरको ही जल चढ़ाया है !' पैदल
कन्धेपर गङ्गाजलकी काँवर लेकर रामेश्वरजीपर
जाना कितने कष्ट, तप एवं श्रद्धाका कार्य है—यह
सोच सकता है । वह जल मरुभूमिमें प्याससे तड़पते
को एकनाथजीने पिला दिया । इतने श्रमके जलका यह
देखकर उनके साथी चौंके, पर एकनाथजी तो प्रसन्न
। जल पीकर गधा चला जा रहा था और वे देख
कि उन्होंने साक्षात् गङ्गाधर रामेश्वरको तृप्त
है ।

× × ×

ाराज, क्या इस पापिनीका घर भी श्रीचरणोंसे पवित्र
है ?' कितने सङ्कोच, कितने भावसे उस वेश्याने
ी थी ! महाराजकी कथामें उसने श्रीमद्भागवतके
ख्यानकी व्याख्या सुनी थी । उसे घृणा हो गयी
वसायसे । घरका द्वार बंद किये परितापकी ज्वालामें
् कई दिन हो गये उसे । महाराज स्नान करके
े लौट रहे थे, यह उसने खिड़कीसे देखा था । नित्य

'इसमें दुर्लभ बात क्या है !' वे पतित-पावन स
गृहमें चले गये । 'राम-कृष्ण-हरि' की मञ्जुल
उसका वह घर पवित्र हो गया ।

× × ×

कीर्तनके समय भीड़में कुछ चोर आ बैठे थे
अपने अवसरकी प्रतीक्षा थी । कीर्तन समाप्त
भोजनादिके उपरान्त वे भी दूसरे भक्तोंके साथ वहीं ले
सबके सो जानेपर उन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ किया
कमरोंमें जो मिला, लेकर वे देवगृहमें घुसे । एक मन्द
जल रहा था । एकनाथजी भगवान्के सम्मुख बैठे
चोरोंने एक बार देखा और फिर तो उन्हें कुछ भी दिखा
बंद हो गया । नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया ।

'तुम्हें आवश्यकता न होती तो भला इतनी रात्रिमें
श्रम कैसे करते । यह सब ले जाओ !' एकनाथजीने
देखा । उनके नेत्रोंको अपने करस्पर्शसे दृष्टि प्रदान की
उनसे आग्रह करने लगे कि जो सामान उन्होंने एकत्र
है, अवश्य ले जायँ । महाराजने अपनी अँगुलीकी
भी निकालकर उन्हें दे दी । ऐसे महापुरुषका सा
होनेपर क्या वे फिर चोर बने रह सकते थे ।

संवत् १६५६ चैत्र कृष्ण ६ को एकनाथजीने गो
तटपर अपना शरीर छोड़ा । उस समय वे पूर्ण स्वस्थ
पहलेसे भक्तोंको परधामगमनकी बात उन्होंने कह दी
कथा, कीर्तन और हरिभक्तोंके जयनादके मध्य एव
दिव्य धाम पधारे । उनके ग्रन्थोंमें भागवत, एकादश स
भाष्य, रुक्मिणी-स्वयंवर तथा भावार्थ-रामायण
हैं । कई छोटे ग्रन्थ और भी हैं । महाराष्ट्रमें 'ए
भागवत' की प्रायः कथा हुआ करती है । —सु०

श्रीनामदेवजी

बड़े सौभाग्यसे मनुष्यकी भगवान्की ओर रुचि हो
रुचि होनेपर भी साधन होना सहज नहीं और प्रेम तो वे
प्रदान करें, तब कहीं हृदयमें आता है । कुछ ऐसे म
भी होते हैं, जो जन्मसे उस घनश्यामके अनन्य अनुरा
हैं । छीपी दामाशेटकी पत्नी गोणाईदेवीकी गोदमें
ब्राह्मणी ग्राममें संवत् १३२७ की कार्तिक शुक्ला ११ को
ऐसे ही बालकका आगमन हुआ । यह परिवार प
'विट्ठल'का भक्त था । बालक नामदेवके मुखपर '

हाथों नैवेद्य ग्रहण करना पड़ता। घरके श्रीविग्रह साक्षात् प्रभु थे।

देवजीका विवाह नौ वर्षकी अवस्थामें हो गया था। हुए, पुत्रोंकी सन्तति हुई; परंतु नामदेवजी कभी न हुए। वे गाँव छोड़कर पण्ढरपुर आ बसे थे। ही सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है। चन्द्रभागा ही पवित्रतम तीर्थ है। र रखकर ईंटपर विराजमान श्रीविठ्ठल ही परम।' नामदेवजीका यह दृढ़ विश्वास था।

रात्रिका पुण्य-अवसर था। नामदेवजी औढ़ियाँमें महादेवको कीर्तन सुना रहे थे। अभिषेक करनेवाले अपने मन्त्रपाठमें बाधा जान पड़ी। उन्होंने डाँटकर नामदेवको। वे नम्र संत चुपचाप मन्दिरके पीछे जाकर ने लगे। भगवान् विश्वनाथको मन्त्र-पाठकी अपेक्षा से निकलती अनुरागवाणी अधिक प्रिय थी। ब्राह्मण करते रहे, पर मन्दिरका गर्भ-गृह घूम गया। द्वार नामदेवजीकी ओर। अब भी वहाँ नन्दीश्वर मन्दिरके ओर हैं।

पण्ढरीनाथके महाद्वारपर एक ब्राह्मण भागवत सुनाया। ये बार-बार सबको कहते 'परिसा भागवत' भागवत), फलतः इसी नामसे पुकारे जाने लगे। ओकी कीर्तिसे द्वेष होनेके कारण एक दिन व्यासासनसे नामदेवजीपर बहुत आक्षेप किये। नामदेवजीने रणोंपर मस्तक रखकर क्षमा माँगी। ब्राह्मणको ख हुआ, जब घर जानेपर उसकी पत्नीने उसे जीकी महत्ता समझायी। यही ब्राह्मण नामदेवजीके शिष्य हुए। उन्होंने नामदेवजीकी कृपासे भगवान्के ये। उनका कहना है—'नामा और केशव एक ही मदेव और विठ्ठल दोनों एकरूप हैं।'

गवान् पण्ढरीनाथकी आज्ञासे नामदेवजी श्रीज्ञानेश्वरजी- तीर्थयात्राको गये। यात्रासे लौटते समय बीकानेरसे दूर कौलायतमें दोनोंको प्यास लगी। उस मरुभूमिमें आँ भी मिला तो सूखा। ज्ञानेश्वरजी योगबलसे कुएँमें उन्होंने तलीका भेदन करके जल पिया। नामदेवजीके नी वे जल लाना चाहते थे। नामदेवजीने कहा—'मेरे तो विठ्ठल ही जल भेजेंगे।' नामदेवने अपने विठ्ठलको। तली फोड़कर जलकी धारा कुएँको मुखतक भरती

'तुम धन्य हो! तुमने अपने प्रेमसे भगवान्को बना लिया है। तुम्हारे सत्सङ्गके लाभके लिये ही मैं त करने निकला हूँ।' ज्ञानेश्वरजीने नामदेवजीकी भ प्रशंसा की। ज्ञानेश्वरजीके समाधि ले लेनेपर नामदेवजी पचास साधुओंको लेकर पंजाब चले गये। वहाँ भगवन्नामका प्रचार किया। पंजाबमें उनके कई म उनकी कविताओंका संग्रह 'नामदेवकी मुख-बानी' तथ चरित 'नामदेवकी जन्म-साखी' गुरुमुखीमें हैं। गुरुग्रन में उनके साठसे भी अधिक पद हैं। अठारह वर्ष पंजा कर नामदेवजी पण्ढरपुर लौट आये। संवत् १ उन 'विठ्ठल'के परम सेवकने श्रीविठ्ठल-मन्दिरके म सीढ़ियोंपर अपने पार्थिव शरीरको विसर्जित कर दिया

श्रीनामदेवजीके पद भक्तिसे पूरित हैं। सम्प्रदायमें तुकारामजीके पदोंके साथ ही उनके पदोंक होता है। महाराष्ट्र-भक्त अपने प्रदेशके महाभा कीर्तन करते हुए कहते हैं—

ज्ञानेश्वर	एकनाथ	रामदास	जय
तुकाराम	नामदेव	पाण्डुरंग	हरि

अर्थात् ज्ञानेश्वर, एकनाथ, समर्थ रामदास, तुका नामदेव—ये साक्षात् श्रीहरि पाण्डुरङ्गके स्वरूप हैं।

श्रीगोरखनाथजी

संत महापुरुष नाम, वर्ण, जातिसे परे हो नाथ-पन्थका प्रारम्भ आदिनाथ भगवान् शङ्करसे मा है। आदिनाथजीसे मत्स्यैन्द्रनाथजीको 'योग' प्राप्त नैपाल राज्यके अधिष्ठाता गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ही है आपको 'आर्यावलोकितेश्वर' कहा जाता है। गुरु मत्स्ये जीके प्रधान शिष्य गोरखनाथजी हैं।

गोरखनाथजीने तान्त्रिक पद्धतिके बदले तप एवं को आदर दिया। उनके सम्प्रदायमें अनेक सिद्ध पुर कुण्डलिनी-जागरण, खेचरीमुद्रा आदिका नाथ-पन्थ प्रचार हुआ। 'रस'-सिद्धिका भी आदर किया भर्तृहरिजी बाबा गोरखनाथजीके ही शिष्य हैं। गोर परम सिद्ध और अमर माने जाते हैं। वे अधिकारी चाहे जब दर्शन दे सकते हैं। गोरखनाथजीके ये सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ हैं।

कहा जाता है कि साधनकालमें एक बार सिद्धिये

बा. शि. मुंजे
२९.८.१९[illegible]

लिये गुरु मत्स्येन्द्रनाथजीने माया की । चारों ओर
ो गया कि मत्स्येन्द्रनाथजी साधुवेष त्यागकर सङ्गल-
न्दरियोंके साथ विषय-रत हो गये हैं । गोरखनाथजी-
दुःख हुआ । वे गुरुको सावधान करने अनेक
गाँ उठाकर सङ्गलद्वीप गये । वहाँ उन्होंने राज-ऐश्वर्य-
ोग करते गुरुको देखा । किसी प्रकार समझाकर
आये । गोरखनाथजी जब योगाश्रम पहुँचे, गुरु-
उनका उपहास किया । गुरुदेव तो दीर्घकालसे समाधि-
हैं । अहङ्कार दूर हो गया ।

ा गोरखनाथजीके अनेक स्थानोंमें आश्रम हैं । नैपाल,
लेकर राजपूतानेतक उनका नाथ-सम्प्रदाय किसी समय
्यापक था । महाराष्ट्रीय संतोंके मुकुटमणि ज्ञानेश्वरजी
ाथ-सम्प्रदायकी परम्परामें हैं । बौद्धकालमें योगकी
साधना तन्त्रके नामपर बहुत अधिक विकृत हो गयी
ोरखनाथजीने पुनः शास्त्रीय योग-मार्गको प्रतिष्ठित
उनका मत तप, कठोर त्याग एवं योगकी कठिन
मार्ग है । वे प्रमाद, आलस्य, भोग तथा बाह्य
बल विरोधी रहे हैं । सिद्धियाँ तो उनके पंथके अनेक
रही हैं । —सु०

महात्मा कबीरदास

ीमें लहरताराके समीप नीरू जुलाहेको एक नवजात
ा । इसी बालकका नाम आगे जाकर 'कबीर' हुआ ।
जी एक दिन पञ्चगङ्गा घाटकी सीढ़ियोंपर प्रहरभर रात्रि
र लेट गये । स्वामी रामानन्दजी वहींसे स्नान करने
रते थे । रामानन्दजीका पैर कबीरके ऊपर पड़ा । वे
' कहकर चौंक पड़े । कबीरने इसीको गुरुमन्त्र मान
कबीरदासजीने मुसल्मान सूफी संत शेख तकी और
म्बरदासका भी आदरपूर्वक स्मरण किया है । उन्होंने
मानके भेदको छोड़कर सत्सङ्ग प्राप्त किया था ।

रदासजीकी पत्नीका नाम लोई था । इनके कमाल
क पुत्र था । कमाल बड़े साधु-सेवी महापुरुष हुए ।
जी 'पढ़े-लिखे' नहीं थे । उन्होंने अपने कपड़ा
व्यवसायको बनाये रक्खा । महात्मा गोरखनाथजीसे
एक परम्परा चली आ रही थी । इन सिद्धोंका प्रभाव
तियोंपर अधिक था । कबीरदासजीपर इस परम्पराका

कबीरदासजीने सूफियोंकी प्रेम-साधना तथा
योगियोंके शब्दमार्ग, कुण्डलिनी-जागरणका समन्वय
उनके पश्चात् संत-मार्गकी एक परम्परा ही चल पड़
पलटू आदि अनेक संत हुए । कबीरदासजीके ग्रन्
सबद और साखी कहे जाते हैं । दूसरे संतमार्गी म
भी 'साखी' तथा 'सबद' लिखे हैं ।

वृद्धावस्थामें कबीरदासजीका काशीमें रहना लोगो
कर दिया । वे मगहर चले गये और वहीं ११
अवस्थामें शरीर छोड़ा ।

जौं कबिरा कासी मरै तो रामहि कौन निहोर

भगवान्‌के चरणोंमें अविचल विश्वासका यह प्र

कबीरदासजीकी वाणी अनुभूतिसे पूर्ण है । उन
प्रकारके आडम्बर तथा दिखावेका खण्डन करके एक
तत्त्वके प्रति सच्चे अनुराग एवं सात्त्विक गुणोंका
किया है । बहुधा वे अपनी बात गूढ़ ढंगसे कहते थे
'उलट बासियाँ' अत्यन्त दुर्बोध हैं । अपने
अनुरागमें मस्त वे एक ऐसे अक्खड़ संत थे, जो कहीं
परवा नहीं करता । वे भारतीय सैद्धान्तिक सहिष
समन्वयवादके उच्च आदर्श हैं । —सु०

गुरु नानकदेव

संवत् १५२६ वैशाख शुक्ल ३ (१५ अ
१४६९) को राइभोइ तलबण्डी (ननकाना साहिब
कालूचन्द पटवारीके गृहमें माता तृप्ताजीने एक मह
जन्म दिया । सिख-धर्मके प्रवर्तक यही गुरु नानकदेव

'तुमलोग कोई नवीन खेल खेलना चाहते हो
जैसे कहता हूँ, बैठकर मन-ही-मन 'सत्यकर्तार' कहते
गुरु नानकदेवका यह खेल था । पद्मासन लगवाक
बच्चोंको बैठा दिया और सब समाधिमें स्थित ह
बचपनमें एकान्त-सेवनमें ही उनका चित्त लगता था
संवत् १५३२ में गोपाल पण्डितके समीप इन्हें हिंद
संवत् १५३५ में व्रजलाल पण्डितके पास संस्कृत प
संवत् १५३९ में मौलवी कुतुबुद्दीन साहबके पा
पढ़ने बैठाया । तीनों शिक्षक स्वतः इनके ही शिष्य
उस पराविद्याका तत्त्व जाननेके लिये ।

''मैंने ऐसा 'सच्चा सौदा' खरीदा है, जो कोई न

रुपये उनकी सेवामें लग गये। घर लौटकर नानक-
को विवरण दे दिया। पिता बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने
रा। बहिन नानकीजी अपने भाईको साक्षात् ईश्वर-
ती थीं। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। अपने पति जयराम-
ग्रह करके गुरु नानकदेवजीको वे अपने पतिगृह
् ले आयीं। लोगोंके कहनेसे गुरुजीने संवत् १५४२
ख़ाँ लोदीके मोदीखानेका कार्य सम्हाल लिया।

् १५४४ में २४ जेठको मूलचन्दजीकी सुपुत्री
ादेवीका आपने पाणि-ग्रहण किया। आपके दो पुत्र
बा श्रीचन्द और बाबा लक्ष्मीदास। मोदीखानेका कार्य
तक किसी प्रकार चला रहे थे। सामान बिना मूल्य
ाप बाँटते थे, कुछ ठिकाना नहीं था। किसीको
ता हो तो क्या उसे मूल्यके बिना सामान देना
किया जा सकता है? इतनेपर भी हिसाब मिलानेपर
मिल जाता था। संवत् १५५४ की बात है, गुरु-
तौल रहे थे। एक, दो, तीन, चार—इस प्रकार
तो गिनती ठीक आयी; पर तेरह आते ही आपने
रा' कहना प्रारम्भ किया। भला, विश्वमें अपना क्या
ोंने सब आटा तौल दिया। उसी दिन मोदीखाना
।

ई हिंदू, न मुसलमान' बड़ी शीघ्रतासे गुरुजी ये
ः कह जाते। संवत् १५५४ में ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध,
के जालमें तड़पते विश्वको शान्तिका सन्देश देनेके
ने देशाटन प्रारम्भ किया। आपकी चार यात्राएँ
। प्रथम यात्रामें पहले ऐमनाबाद जाकर भाई लालो
घर ठहरे और वहाँसे हरद्वार, दिल्ली, काशी, गया
जगन्नाथपुरी आदि गये।

री यात्रामें दक्षिण भारतमें अर्बुदगिरि, सेतुबन्ध
सिंहलद्वीप (सीलोन) आदि स्थानोंमें आपने धर्म-
किया। तीसरी यात्रा सरमौर, टेहरी, गढ़वाल, हेमकूट,
र, सिकम, भूटान, तिब्बत आदि पर्वतीय प्रान्तोंमें
ौथी यात्रामें आप बलोचिस्तान होते मक्केतक पश्चिम-
। इस यात्रामें आपने रूम, बगदाद, ईरान, कन्धार,
आदिमें 'सत्यनाम' का उपदेश किया।

 नानकदेवकी उपदेश-शैली अदभुत थी। कहते हैं,

अल्लाहका घर न हो, उधर मेरे पैर कर दो।' लोगों
उनके पैर घुमाये, काबा उधर ही घूमता गया।

पचीस वर्ष भ्रमण करके संवत् १५७९ में कर
जिसे उन्होंने ही सं० १५६१ में बसाया था, निवास क
उपदेशामृतके साथ यहाँ लोगोंको अन्न भी वितरित
लिये 'लंगर' प्रारम्भ हुआ। यहीं इसी वर्ष गुरुजी
पिताका शरीर छूटा। स्वयं गुरुदेवने आश्विन शुक्ल १
१५९६ (२२ सितम्बर, सन् १५३९) को ७० वर्ष,
३ दिनकी अवस्थामें परधामगमन किया। अपनी
अधिकारी किसी पुत्रको बनानेके बदले उन्होंने अपने
शिष्य अङ्गदजीको बनाया था।

सिख, हिंदू तथा मुसलमान शिष्य गुरुदेवके
संस्कारके लिये विवाद कर रहे थे। सभी उनको अ
मानते थे। सब उनकी अन्त्येष्टिका अधिकार प्रकट कर
जिस महापुरुषने जीवनभर मेल एवं एकत्वका प्रचार
उसीके शरीरके लिये यह विवाद अत्यन्त अशोभन थ
दिव्यात्माने विवादका समाधान कर दिया। शरीरपर
उठाया गया तो वस्त्रके नीचे शरीर था ही नहीं। उ
आधा भाग लेकर हिंदू-सिखोंने संस्कार किया और मु
ने उसकी कब्र बनायी।

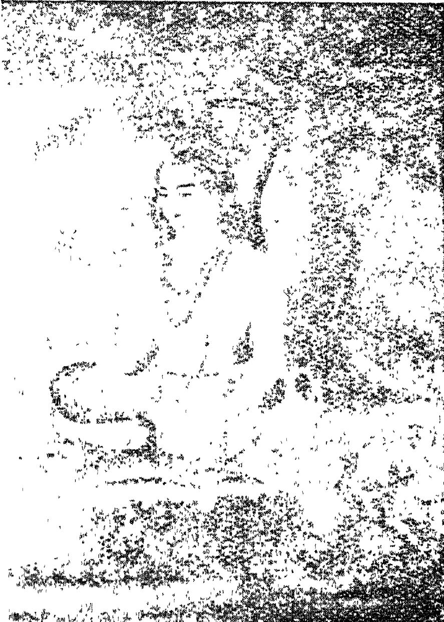
श्रीगुरु नानकदेवजीकी सम्पूर्ण वाणी पञ्चमगुरु श्री
जीने गुरुग्रन्थसाहबमें सङ्कलित की है। इनमें जपुर्ज
आरती, दक्षिणीय ओंकार, सिद्धगोष्ठी आदि प्रख्यात
हैं। गुरुजी हिंदू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, ईसाई आ
धर्मोंके केन्द्रीय तीर्थोंमें गये थे। सभी धर्मोंके संतोंसे
थे। सब कहीं उन्होंने उस एक 'सत्य कर्तार' को स्मर
का उपदेश किया था।

हम नहिं चंगे, बुरा नहिं कोइ
(गुरुग्र

'हम अच्छे नहीं हैं और जगत्में कोई बुरा न
दूसरोंके दोष देखना छोड़कर मनुष्यको केवल अपने दो
चाहिये और दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये। गुरुजी
आदर्श था। वे संकीर्णताके प्रबल विरोधी थे। "एक
और वही परम 'सत्य' है। समस्त जगत् उसी 'अकाल
की क्रीड़ा है। विवाद और द्वेष छोड़कर, अ
दिखावोंको त्यागकर सच्चाईसे उसको हृदयमें स्मर


संत श्रीतुकाराम

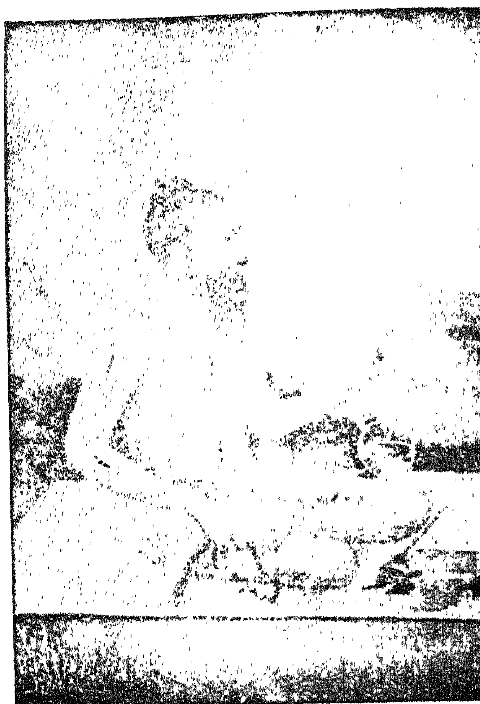

संत श्रीज्ञानेश्वर







भक्त सूरदास



गोस्वामी तुलसीदासजी





किया, वह एकत्व, भ्रातृत्व, सेवा और सादगीका धर्म है । उसमें आत्मसंयम, आत्मालोचन एवं ताकी प्रबल प्रेरणा है। कबीरदासजीने जिस 'एकत्व'का या था, गुरु नानकदेवजीने उसीका साक्षात् करके उसे करनेका महान् उद्योग किया । —सु०

सूरदासजी

दी-साहित्य-गगनमें सूर और तुलसीको विद्वानोंने सूर्य द्रकी उपमा दी है । बात है भी ऐसी ही। तुलसीदासजीने मर्यादापुरुषोत्तमका वरण करके अपने द्वारा लोकादर्शकी स्थापना की। उनकी वाणी सार्वभौम वनके प्रत्येक कोनेको प्रकाशित करते हैं। सूरदासजीके हैं लीलापुरुषोत्तम । वे अपने नटनागरकी लीलामें हापुरुष हैं। उनकी निष्ठा एकरूप है। उनके सम्मुख नहीं तो लोकादर्श कहाँसे आये । विद्वानोंने स्वीकार कि सूरने जिन रसोंको अपनाया है, विश्व-साहित्यमें ई उन रसोंमें उनकी समता नहीं कर सकता । बाल्य- र वियोग-शृंगारके वे एकछत्र सम्राट् हैं । श्रीकृष्णकी बाललीलाओंके वर्णनमें उनकी सूक्ष्म दृष्टि इतनी सत्यदर्शिनी है कि कोई उसकी कल्पनातक नहीं ा । गोपियोंके विरह-वर्णनमें वे पाषाणको भी रुला क्ति पदोंमें सञ्चित कर लाये हैं ।

ा जाता है कि आगरा-मथुरा सड़कपर स्थित सीही ग्राम- ासजीका जन्म हुआ था । उनके पिताका नाम था । वे सारस्वत ब्राह्मण थे । वे जन्मान्ध नहीं थे । रणवश पीछे अन्धे हो गये थे । मुसल्मानोंके साथ ताका युद्ध हुआ । उसमें पिता तथा छः भाई । ये इधर-उधर भटकते हुए एक कुएँमें गिर पड़े ीं छः दिन पड़े रहे । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने प्रकट हें निकाला, दृष्टि प्रदान की ।

ान नेत्रोंसे आपके दर्शन किये, उनसे जगत्को न पड़े ।' वरदानमें फिर अपना अन्धत्व ही माँगा । मथुरामें गऊघाटपर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीकी शरण ग्रहण की । आचार्यचरणके गोलोक-गमनके उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजीकी छत्रच्छाया इनके ही । इन्होंने श्रीमद्भागवतके आधारपर श्रीकृष्ण- जिन पदोंमें गान किया, उन पदोंका संग्रह ही 'सूरसागर' ता है । सूरदासजीके साथ सदा एक लेखक रहता था, जाता है कि 'सूरसागर' में एक लक्ष पद हैं । अब पंद्रह सहस्र पद ही उपलब्ध होते हैं ।

उस समय व्रज श्रीकृष्ण-रस-रसिक महापुरुषों स्थली हो रहा था । श्रीवल्लभसम्प्रदायमें 'अष्टछाप' कवि अत्यन्त प्रख्यात हैं । इनमें सभी उच्चकोटिके और भगवल्लीला-दर्शी थे । उनकी वाणी हृदय है । सूरदासजीके अतिरिक्त इनमें नन्ददास, कृ कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, परमानन्ददास, छीतस्वा गोविन्दस्वामीके नाम हैं । अष्टछापके अतिरिक्त तथा उसके पीछेतक श्रीकृष्ण-लीलाके गायक अ पुरुष हुए हैं । रसखान, घनानन्द, भारतेन्दु ह सत्यनारायण तथा रीतिकाव्यके कवियोंमें देव, विहा कर प्रभृतिने भी अपनी वाणी श्यामसुन्दरके गु पवित्र की है । उन लीलामय, त्रिभुवनसुन्दरकी ल काव्य है । वही रसरूप हैं, अतः काव्यमें रसके आ लिये वही आश्रय होते हैं; परंतु उन नवनीतचोरने हृदयको चुरा लिया है, वे काव्यके लिये उनकी कीर्ति गान नहीं करते । वे तो मुग्ध हृदयकी प्रेम-वाणीमें बो

प्रेमकी परा वाणीमें नन्दनन्दनका भावमुग्ध करनेवाले अनेक महाभाग हुए हैं । सूर उनके आ वे उस नन्दनकाननके भृङ्गराज हैं । उनके पद क हृदयकी वाणी हैं । उनमें मानवके विशुद्ध हृदय स्निग्ध भाव हैं । अतएव वह वाणी किसी देश विशेषके लिये नहीं, वह सभी कालोंमें सम्पूर्ण मान आनन्दका स्रोत है । मानव-संस्कृतिके अन्तर दिव्य गायक विश्वमें ऐसे बहुत कम हुए हैं ।

गोस्वामी तुलसीदासजी

भारतमें हिंदू-धर्म उत्पीड़नका आखेट हो र जनताको अनेक अशास्त्रीय मतोंने भ्रान्त करना प्र दिया था । हिंदू नरेश नाममात्रके नरेश रह गये थे । ने चाटुकारीको व्यवसाय बना लिया था । कविगण राजाओंकी स्तुतिके गान गाते या उनकी वासना करनेवाली शृङ्गारपरक रचनाएँ करते । उस युगमें पुरुषका उदय हुआ । जगत्के राग-रोषसे ऊपर उ लोकोत्तर संतने 'स्वान्तःसुखाय' अपने आराध्यकी कीर्तिसे अपनी वाणीको पवित्र किया । मर्यादा श्रीरामके आदर्श चरितने हिंदू-जातिको एक नवी

स्वामी श्रीतुलसीदासजीके जीवनके सम्बन्धमें निर्विवाद-
ःतना ही ज्ञात हो सकता है, जितना उनके ग्रन्थोंमें
कुछ है । ऐसी सामग्री बहुत थोड़ी है । शेष बातें
ःपद हैं । उनके ग्रन्थोंसे यह जान पड़ता है कि वे
ःलमें उत्पन्न हुए थे । किसी भी कारण अत्यल्प वयमें
ःासे पृथक् हो गये । प्रारम्भिक जीवनमें अनेक
ः शारीरिक आवश्यकतावश भटकते रहना पड़ा ।
अच्छी प्रकार अध्ययन किया और तीर्थाटन किया ।
ःन्थ उनकी विद्वत्ता तथा देशभ्रमणके साक्षी हैं ।

वामीजीका प्रारम्भिक जीवनमें विवाह हुआ था
ःृहस्थाश्रममें कुछ समय रहकर वे विरक्त हुए थे ।
६३१ में चैत्र शुक्ल नवमीको श्रीअयोध्याजीमें उन्होंने
रितमानसका लिखना प्रारम्भ किया । बहुत समयतक
कूटमें रहे और जीवनके अन्तिम वर्ष उनके काशीमें
हुए । काशीमें वे इससे पूर्व भी कई बार आये
ःा लगता है ।

ः दिनों काशीमें एक राय टोडरमल (अकबरके मन्त्री
ःडरमलसे भिन्न) रहते थे । ये सम्पन्न और श्रद्धालु
ः । गोस्वामीजीमें इनकी श्रद्धा हो गयी थी । इन्होंने
जीके लिये काशीमें असीघाटके पास स्थान बनवा
ःा । अन्तिम समयतक गोस्वामीजी यहीं रहे । तुलसी-
ः नामके साथ 'गोस्वामी' उपाधि क्यों लगी, यह
कठिन है । उत्तर-भारतमें ब्राह्मण गोस्वामी नहीं कहे
'तुलसी गोसाईं भयो' कहकर इस पदके लिये
जीने खेद प्रकट किया है 'गीतावली' में ।

स्वामीजीने काशीमें एक महामारीका वर्णन किया है ।
र उनके बाहुमें भयङ्कर पीड़ा हो गयी । हनुमान-
उसी समय लिखा गया । संवत् १६८० में काशीके
ःपर गोस्वामीजीने शरीर छोड़ा । उनके जीवनमें ही
अत्यन्त ख्याति हो गयी थी । काशीके विद्वानोंने
ः विरोधके पश्चात् उनका श्रेष्ठत्व स्वीकार कर
ःा ।

ःस्वामीजीके अनेक ग्रन्थ हैं—रामलला नहछू, जानकी-
पार्वतीमङ्गल, कवितावली, विनय-पत्रिका, दोहावली,
ःी और श्रीरामचरितमानस आदि । उस समय कविता-
ःे दोहे, कवित्त, सवैया, छप्पय, गीति तथा चौपाई-
विभिन्न प्रथाएँ थीं । गोस्वामीजीने सभी शैलियोंमें
...

अपने काव्य लिखे । उनके गेय तो सदा श्रीराम
श्रीरामचरितमानस उनका मानस-धन है और ः
तथा विश्व-मानवके लिये वह महामूल्यवान् माणिः
हो चुका है ।

गोस्वामीजी किस सम्प्रदाय या किस सिद्धान्तके ः
थे, यह प्रश्न ही व्यर्थ है । वे शास्त्रोंके प्रबल समः
शास्त्रविरोधी कोई भी क्रिया, भाव तथा सिद्धान्त हो—
उन्होंने कड़े शब्दोंमें प्रतिवाद किया । श्रुति, स्मृति
सम्मत सनातनधर्म ही उन्हें इष्ट था । 'नानापुराणनिः
सम्मत' मत ही उनका मत था । सिद्धान्त, आचाः
उपासना—सब स्मृति-पुराणसम्मत ही उन्हें अभीः
श्रीरामचरितमानस इसीलिये श्रेष्ठ शास्त्र बन गयः
इसीलिये उसके सम्बन्धमें अनेक मतवाद प्रश्रय
क्योंकि प्रस्थानत्रयीसे इन मतवादोंकी व्याख्या हुः
यद्यपि साधारण जनोंकी भाषामें 'मानस'-जैसे शास्त्रः
लिये गोस्वामीजीको बहुत विरोधका सामना करनः
फिर भी उनका 'मानस' उसी समय श्रीमधुसूदन सरः
विद्वान्का आदरपात्र हो गया था । झोपड़ीसे राजः
अबाध 'मानस' का प्रवेश है । सामान्य जनता धर्मः
'मानस' से ही प्राप्त करती है ।

भक्त नरसी मेहता

'भगवद्विश्वास' इस एक शब्दमें नरसीदासजीः
चरित है । बचपनसे उनमें भगवान्पर विश्वास था
कीर्तन छोड़कर उन्हें कोई कार्य अच्छा नहीं लगः
घरवालोंने उन्हें उपार्जनका उद्योग करते न देख पृः
दिया । अपने बाल-बच्चोंके साथ इस प्रकार पिताकी
पश्चात् भाइयोंसे अलग होना पड़ा उन्हें ।

काठियावाड़ प्रान्तके जूनागढ़ राज्यमें नरसीजीका जः
था । भगवान् शङ्करकी उपासना करके नित्य-रासः
गोलोककी रास-क्रीड़ाका उन्होंने दर्शन पाया था
व्ययकी चिन्ता, भला वे क्यों करते । भक्तोंके 'योग-
वहनकी प्रतिज्ञा करनेवाले श्यामसुन्दर क्या कभी
होते हैं, जो उनके जन उनके गुण-गानको छोड़ दूसः
को सोचें ।

नरसीजीके जीवनमें भगवद्विश्वास एवं भगः
चमत्कार बहुत अधिक हैं । द्वारिका जानेवाले यात्रियोंः
लेकर आपने साँवलिया साहके नाम हुंडी लिख दी । ः
...

श साँवलिया (श्यामसुन्दर) को सचमुच सेठ डी स्वीकार करनी पड़ी ।

गढ़के ब्राह्मण नरसीजीका सदा तिरस्कार करते थे । पिताके श्राद्धके समय उन लोगोंने पूरी जातिको रानेका इनसे आग्रह किया । नागर ब्राह्मणोंकी वहाँ ती थी । श्राद्धके दिन कुछ घृत कम हो गया । घी लाने बाजार गये । मार्गमें कुछ संत भगवान्का रते मिले । नरसीजी उसमें सम्मिलित हो गये । में मग्न होनेपर किसे घरका स्मरण रहता है । घरमें न रहा था । बेचारी ब्राह्मणी पतिकी प्रतीक्षा कर । भक्तवत्सल प्रभु नरसीके रूपमें घृत लेकर पहुँच द्ध, विप्रभोज आनन्दसे पूर्ण हुआ । पत्नीको आश्चर्य रात्रिमें नरसीजी घी लेकर घर पहुँचे और विलम्ब- खेद प्रकट करने लगे ।

के पुत्रका विवाह भी श्रीकृष्णचन्द्रको ही कराना र पुत्रीके विवाहको भी उसी 'साँवरिया' ने पूरा त्रीके यहाँ नरसीजी तो 'मायरे' (भात) में गोपीचन्दन, ला और रामनामी ही ले जा सके थे; लेकिन जिसके विश्वेश स्वयं उपस्थित हो, उसके 'मायरे' के ' से लदे हुए छकड़ोंको गिना कैसे जाय ।

-एक करके स्त्री और पुत्रका शरीरान्त हो गया । जैसे पूर्ण निश्चिन्त हो गये अपने आराध्यमें लगनेके जूनागढ़के 'रा' माण्डलिकने एक बार इन्हें बुलाकर केया—'तुम्हारे उपदेशोंके सम्बन्धमें बहुत-से विद्वान् रते हैं । यदि भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये तुम्हारी ठीक हैं और तुम सचमुच भक्त हो तो भगवान्के के गलेमें माला डालो और प्रार्थना करो कि भगवान् त तुम्हारे गलेमें पहना दें ।'

सीजीमें अविश्वासके लिये स्थान ही नहीं था । सायंकाल भगवान्के श्रृङ्गारके समय उनके गलेमें हना दी । रात्रिभर मन्दिरके द्वारपर कीर्तन करते प्रातः जब पहले दिनके श्रृङ्गारको उतारनेका समय बड़े भारी जन-समूहके मध्य भगवान्ने वह माला लेसे निकालकर नरसीजीके गलेमें डाल दी ।

ष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे ।'

सरोंकी पीड़ामें जो दुःखानुभव करे, वही वैष्णव है ।' सब समय, सबमें अपने आराध्यको देखनेवाले उन गुजराती संतकी यह महावाणी है । उनके पद पूरे अत्यन्त प्रिय हैं । —सु०

श्रीनाभादासजी

'भगवान्के चरित तो सुलभ हैं, क्योंकि वे भ हैं; परंतु भाव-भेदसे प्रभुको अपना बनानेवाले संतों अत्यन्त दुर्बोध हैं । गुरुकी कृपा और आज्ञासे दुष्कर कार्यमें प्रयास करता हूँ ।' नाभादासजीके उद्गार हैं । भक्तोंके पावन चरितोंकी जो माला उन्हों माल' के रूपमें प्रस्तुत की, वह भगवान्के वक्षको तो करेगी ही, उनके जनोंका सर्वदा कण्ठाभरण रहेगी ।

श्रीनाभादासजी दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे । उन संवत् १५४० में हुआ था । वैराग्योदय होनेप रामानन्द-सम्प्रदायके जयपुरकी 'गलता गादी' के मा अग्रदासजी महाराजसे दीक्षा ग्रहण की थी । 'भक्त अग्रदासजीकी पद्यात्मक टीका है । गुरुने शिष्यके व्याख्या की—यह गुरुके संत-स्वभाव और ग्रन्थ दोनोंका सूचक है ।

'भक्तमाल' में १०८ छप्पय हैं । इसमें संतसेवी की अद्भुत कथाएँ हैं । श्रीनाभादासजी महाराज प्रति निष्ठा रखनेवाले संत थे । वे साधुओंका (उच्छिष्ट) ग्रहण करते । 'साधु साक्षात् आरा हैं ।' यह उनकी दृढ़ धारणा थी । 'भक्तमाल' में इस उन्होंने पुष्ट किया है ।

भगवच्चरित्र तथा भक्त-चरित्र—यही दो गेय, तथा चिन्त्य हैं । लौकिक चरित्र उपेक्षणीय हैं । संस्कृतिकी यही परम्परा है । लौकिक महत्त्व चाहे कितना भी मिला हो, भारतने उसे स्मरण रखना नहीं माना । भगवच्चरित्रोंका अनेक संतोंने विवि गान किया है । 'राम ते अधिक राम कर दासा । भक्त-चरितोंकी माला बनानेवाले नाभादासजी स्व मालके सुमेरु हैं, यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं । –

स्वामी दयानन्द सरस्वती

काठियावाड़के मोरवी राज्यमें टंकारा छोटा-सा जहाँ वेदपाठी, धर्मिष्ठ ब्राह्मण अम्बाशङ्करके यहाँ उस जन्म लिया, जो आगे देशमें स्वामी दयानन्द स नामसे विख्यात हुआ । बालकका घरका नाम मूलशङ्क बालक मूलशङ्कर बचपनसे वीतराग एवं सत्यान्वे

स्कार सम्पन्न होनेका निश्चय किया पिताने और
स तिथिसे एक सप्ताह पूर्व ही घर छोड़ दिया।
तटपर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वतीसे मूलशङ्करने
हण किया। वे स्वामी दयानन्द सरस्वती हो गये।
श्रममें पर्यटन करते हुए काशी होकर वृन्दावन
हीं उन्हें प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्दजीके दर्शन
तुतः स्वामी दयानन्दजीके यही वास्तविक शिक्षा-
। इन्हींसे स्वामीजीने व्याकरण, वेदप्रभृतिकी शिक्षा
इन्हीं गुरुदेवके आदेशसे वे वैदिक धर्मकी स्थापनामें
ए। सन् १८७६ के हरिद्वार-महाकुम्भके अवसरपर
हले-पहले अपने मतका प्रचार प्रारम्भ किया।

मी श्रीदयानन्दजीने अपनी शैलीसे वेदोंका भाष्य
क्या। उनके द्वारा सर्वप्रथम बम्बई और लाहौरमें
नकी स्थापना हुई। पहले वे एनी बेसेंटके साथ कुछ
र्य करते रहे; किंतु वेदोंमें स्वामीजीकी अखण्ड निष्ठा
ासफी-सम्प्रदायसे उनका मत मिल नहीं सका, वे
चारमें लग गये। उनमें प्रकाण्ड प्रतिभा थी,
याग था और उनकी वाणीमें अद्भुत शक्ति थी।
उनका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा।

मी दयानन्द सरस्वती महान् पुरुष थे; उनके-जैसे
निर्भीक वक्ता बहुत कम होते हैं। वेदोंमें, प्राचीनतम
संस्कृतिमें उनकी अगाध निष्ठा थी। उन्होंने भरपूर
ाा हिंदू-धर्मकी रक्षाका। हिंदुत्वपर होनेवाले
का उन्होंने प्राणपणसे विरोध किया। एक विद्वान्
ब्दोंमें—'आर्यसमाज हिंदूधर्मका चौकीदार है।'
। सचाईसे प्रयत्न किया हिंदूधर्मकी रक्षाका। इसमें
स्थान ही नहीं है।

ीतराग महापुरुष—वे दो-टूक वक्ता, असदाचरणसे
। घृणा थी। महाराज जोधपुरके निमन्त्रणपर वे
ाये। महाराजके आचरणका उन्होंने स्पष्ट प्रतिवाद
फलतः महाराजकी रखैल वेश्याने उन्हें विष दिला
उन महापुरुषने विषके प्रभावसे १६ अक्टूबर सन्
ो शरीर छोड़ा और मरते-मरते अपने घातकके लिये
ादेश दे गये। दीपावलीकी वह रात्रि, दीपालोकोंमें
द्व्यालोक निर्वापित हो गया।

भेद—यह तो हिंदू-धर्मकी परमोदारताका महान
सत्यको स्वीकार करनेके लिये प्रतिक्षण ऐसी उज्ज्वल
और वेदोंके प्रति अगाध श्रद्धाके स्वामी दयानन्दज
आदर्श हैं। वेदोंके प्रति उनका त्याग, उद्योग
महान् हैं। —

स्वामी रामकृष्ण परमहंस

बंगालके हुगली जिलेमें एक ग्राम है कामारपुकु
१८ फरवरी सन् १८३६ को बालक गदाधरका जन
गदाधरके पिता खुदीराम चट्टोपाध्याय निष्ठावान् गरी
थे। गदाधरकी शिक्षा तो साधारण ही हुई, किंतु
सादगी और धर्मनिष्ठाका उनपर पूरा प्रभाव पर
वर्षकी अवस्थामें ही पिता परलोकवासी हुए। सत्र
अवस्थामें बड़े भाई रामकुमारके बुलानेपर गदाधर
आये और कुछ दिनों बाद भाईके स्थानपर रानी र
दक्षिणेश्वर-मन्दिरमें पूजाके लिये नियुक्त हुए। यहीं
मा महाकालीके चरणोंमें अपनेको उत्सर्ग कर दिया।
इतने तन्मय रहने लगे कि लोग उन्हें पागल सम
घंटों ध्यान करते और माके दर्शनोंके लिये तड़पत
दिन अर्धरात्रिको जब व्याकुलता सीमापर पहुँची, उन ज
प्रत्यक्ष होकर कृतार्थ कर दिया। गदाधर अब
रामकृष्ण ठाकुर हो गये।

बंगालमें बाल-विवाहकी प्रथा है। गदाधरका भ
बाल्यकालमें हो गया था; उनकी बालिका पत्नी जब द
आयी, गदाधर वीतराग परमहंस हो चुके थे। मा
मणिका कहना है—'ठाकुरके दर्शन एक बार पा
यही क्या मेरा कम सौभाग्य है?' परमहंसजी कहा क
'जो मा जगत्का पालन करती हैं, जो मन्दिरमें पीठपर
हैं, वही तो यह हैं।' ये उद्गार थे उनके अपनी
शारदामणिके प्रति।

अधिकारीके पास मार्गनिर्देशक स्वयं चले अ
उसे शिक्षा-दाताकी खोजमें भटकना नहीं पड़ता। ए
सन्ध्याको सहसा एक वृद्धा संन्यासिनी स्वयं दक्षिणेश्वर
परमहंस रामकृष्णको पुत्रकी भाँति उनका स्नेह प्र
और उन्होंने परमहंसजीसे अनेक तान्त्रिक साधनाएँ
उनके अतिरिक्त तोतापुरी नामक एक वेदान्ती महात्म
परमहंसजीपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उनसे परम
अद्वैत-ज्ञानका सत्र प्राप्त करके उसे अपनी साधनासे

परमहंसजीकी महत्ता उनके त्याग, वैराग्य, पराभक्ति
। अमृतोपदेशमें है, जिससे सहस्रों प्राणी कृतार्थ
सके प्रभावसे ब्राह्मसमाजके अध्यक्ष केशवचन्द्र सेन-
ान् भी प्रभावित थे, जिस प्रभाव एवं आध्यात्मिक
रेन्द्र-जैसे नास्तिक, तर्कशील युवकको परम आस्तिक,
गौरवका प्रसारक स्वामी विवेकानन्द बना दिया।

मी रामकृष्ण परमहंसजीका अधिकांश जीवन प्रायः
ी स्थितिमें ही व्यतीत हुआ। जीवनके अन्तिम तीस
न्होंने काशी, वृन्दावन, प्रयाग आदि तीर्थोंकी यात्रा
नकी उपदेश-शैली बड़ी सरल और भावग्राही थी।
छोटे दृष्टान्तमें पूरी बात कह जाते थे। स्नेह, दया
नाके द्वारा ही उन्होंने लोकसुधारकी सदा शिक्षा
५ अगस्त सन् १८८६ को उन्होंने महाप्रस्थान
सेवाग्रामके संतके शब्दोंमें 'उनका जीवन धर्मको
त्रमें उतारकर मूर्तस्वरूप देनेके प्रयासकी एक
ा है।'

—रा० श्री०

स्वामी विवेकानन्द

वश्वनाथदत्त पाश्चात्त्य सभ्यतामें आस्था रखनेवाले
। कौन जानता था कि उनके घरमें १२ जनवरी
६३ को उत्पन्न होनेवाला उनका पुत्र नरेन्द्रदत्त
जगत्को भारतीय तत्त्वज्ञानका सन्देश सुनानेवाला
वश्व-गुरु होगा। रोमा रोलाँने नरेन्द्रदत्त (भावी
द) के सम्बन्धमें ठीक कहा है—'उनका बचपन
वस्थाके बीचका काल योरोपके पुनरुज्जीवन-युगके
कार राजपुत्रके जीवन-प्रभातका स्मरण दिलाता
पनसे ही नरेन्द्रमें आध्यात्मिक पिपासा थी। सन्
ं पिताकी मृत्युके पश्चात् परिवारके भरण-पोषणका
उन्हींपर पड़ा। गरीब परिवार, कुशल थी कि
विवाह नहीं हुआ था। दुर्बल आर्थिक स्थितिमें
रहकर अतिथियोंके सत्कारकी गौरव-गाथा उनके
उज्ज्वल अध्याय है। नरेन्द्रकी प्रतिभा अपूर्व थी।
चपनमें ही दर्शनोंका अध्ययन कर लिया। ब्रह्म-
ी हो गये, पर वहाँ उनकी जिज्ञासा शान्त न हुई।

हुआ। परमहंसजी-जैसे जौहरीने रत्नको परखा। उ
महापुरुषके स्पर्शने नरेन्द्रको बदल दिया। कहा जात
उस शक्तिपातके कारण कुछ दिनोंतक नरेन्द्र उन्मत्त
उन्हें गुरुने आत्मदर्शन करा दिया था। जीवनके उ
जगत्के अन्धकारमें भटकते प्राणियोंके समक्ष उन्हें
करना था।

पच्चीस वर्षकी अवस्थामें नरेन्द्रदत्तने काषायवर
किये। वे स्वामी विवेकानन्द हो गये। पैदल ही
पूरे भारतकी यात्रा की। सन् १८९३ में शिकागोकी
धर्म-परिषद्में भारतके प्रतिनिधिके रूपमें उपस्थित
पहुँचे। परिषद्में उनके प्रवेशकी अनुमति मिलनी ई
हो गयी। उनको समय न मिले, इसका भरपूर प्रय
गया। भला, पराधीन भारत क्या सन्देश देगा—
वर्गको तो भारतके नामसे ही घृणा थी। एक अ
प्रोफेसरके उद्योगसे किसी प्रकार समय मिला अ
सितम्बर सन् १८९३ के उस दिन उनके अलौकिक त
ने पाश्चात्त्य जगत्को चौंका दिया। अमेरिकाने स्वी
कर लिया कि वस्तुतः भारत ही जगद्गुरु था और
सन् १८९६ तक वे अमेरिका रहे। उन्हींका व्यक्ति
जिसने भारत एवं हिंदू-धर्मके गौरवको प्रथम बार ि
जाग्रत् किया।

'अध्यात्मविद्या, भारतीय धर्म एवं दर्शनके बि
अनाथ हो जायगा।' स्वामी विवेकानन्दका यह दृढ़
था और विश्वने उनके सम्मुख मस्तक झुकाया।
तथा अमेरिकामें भी रामकृष्णमिशनकी अनेकों :
स्थापित हुईं। अनेकों अमेरिकन विद्वानोंने उनका ि
ग्रहण किया। धर्म एवं तत्त्वज्ञानके समान भारतीय स्वतं
प्रेरणाका भी उन्होंने नेतृत्व किया। वे कहा करते
'मैं कोई तत्त्ववेत्ता नहीं हूँ। न तो संत या दार्शनि
हूँ। मैं तो गरीब हूँ और गरीबोंका अनन्य भक्त हूँ
तो सच्चा महात्मा उसे ही कहूँगा, जिसका हृदय ग
लिये तड़पता हो।'

४ जुलाई सन् १९०२ को उस महान् विभूतिने
देह त्याग दिया; किंतु स्वामी विवेकानन्द तो भारतीय :

आदर्श वधू और आदर्श पत्नी सीता

(रचयिता—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम')

(१)

ससे पाके पास हियमें हुलास भरे,
निहार नित्य आनँद पगी रहे;
जिसे हैं सुरवृन्दसे अधिक मान्य,
समस्त स्वजनोंकी जो लगी रहे।
विनयसे, उदार व्यवहारसे भी
सबकी हो, बनी सबकी सगी रहे;
ानकी-सी आर्य-कुलकी वधू है वही,
सदा जो अनुरागमें रँगी रहे॥

(२)

न्दिरा-सी उतरी थी राजमन्दिरमें,
केरणोंका स्वर्णजाल-सा बिछाती थी;
ालसाओंसे लुभाती रामका ही मन,
प्रीति, उरमें उमंग उमगाती थी।
की सेविका, सुमित्राकी सुमित्रा बनी,
कौसलाका सदा हौसला बढ़ाती थी;
देव, देव रानियाँ भी रानियाँ थीं,
सबसे ही स्नेह सहज निभाती थी॥

(३)

ागे रह कुश-कंटक हटाऊँ दूर,
पियाके चुन कुसुम बिछाऊँ मैं;
दबाऊँ, करूँ अंचल-बयार मृदु
र्मणी हूँ सहधर्मको निभाऊँ मैं।
रही सुखमें सदैव प्राणनाथके जो,
दैव ! दुखमें न हाथ क्यों बटाऊँ मैं;
बनाऊँ शत अवध समान आज,
रीको राज-मंदिर बनाऊँ मैं॥

(४)

निश्चय यही ले चली संग रघुनं
नन्दनके देवकी वधू-सी छवि पात
नित्य वसुधामें जिसे सुलभ सुधाका
पतिका प्रसाद कंद-मूल-फल खात
रंच अभिमान नहीं, कंचन-सी काय
प्रिय चरणोंकी वह धूल बन जात
मुदित अमंद मुखचंद देख प्र
मैथिली-चकोरी बार-बार बलि जाती

(५)

देखा हनूमान्‌ने अशोक-शिंशपाके
सीता ध्यान-मग्न हैं, दृगोंका वंद पु
वयस तरुण, विभा अरुण, लुनाई
दस्यु दसमुखका विवेक गया लु
मन मैथिलीका मोह लेने या मना
विपुल विलासिनीका वृन्द गया जु
फिर भी पतिव्रताका आसन हिला थ
पैरों तले लोट रहा लंकाका मुकु

(६)

तन-मन-प्राण रघुनाथमें लगाये उ
तज रनवास वनवासिनी हुई
हरण हुआ तो आमरण उपवास
जीवनसे, जगसे उदासिनी हुई
बंक हुई भृकुटि, सुरासुर सशङ्क
लोभी लंकपतिकी विनाशिनी हुई
संशय विलोक लोक-पावन च
अनल-परीक्षा दे प्रकाशिनी हुई

(७)

त्याग दिया प्रियने प्रजाकी प्रीति पाने हेतु,
दग्ध हो वियोगमें दुसह दुख पाती वह;
किंतु नहीं रोष था, न दोष देती प्रीतमको;
अपने कियेका फल मान पछताती वह।
'हाय ! अब सेवा प्राणधनकी करेगी कौन,
सोच यही शोचसे अचेत हुई जाती वह;



भगवान् बुद्धका प्रथमोपदेश (सारनाथ)



[भारतीय पुरातत्त्व-विभागके सौजन्यसे

कपिलवस्तुके राजा महाराज शुद्धोदनकी पत्नी मायादेवी-
में जो दिव्य तेज प्रविष्ट हुआ था, उसे वर्तमान
ज्यके 'लुम्बिनी' नामक स्थानमें सन्तानरूपसे प्राप्त
लोकमें वे एक सप्ताहसे अधिक न ठहर सकीं।
कुमार सिद्धार्थका पालन उनकी विमाता गौतमी
केया। ज्योतिषियोंने बतलाया था कि राजकुमार
इ त्यागकर परम वीतराग कोई अतिप्रख्यात महा-
ो अथवा चक्रवर्ती सम्राट् होंगे। उन्नत भाल, विशाल
जानुलम्बित बाहु, दीर्घ कर्ण—सभी उनमें महापुरुषोंके
। उन्होंने अपनी प्रतिभासे बहुत शीघ्र विद्याध्ययन
र दिया। महाराज शुद्धोदन इसी चिन्तामें रहते थे
कहीं विरक्त होकर गृहत्याग न करें। महाराजने
ी व्यवस्था कर दी कि राजकुमारके सम्मुख दुःख,
द्धावस्था, मृत्यु, पीड़ा आदिकी कोई बात कभी न
ानन्द, उल्लास, राग-रंग ही उनके चारों ओर बना
। सुन्दरी राजकुमारी यशोधरा (गोपा) से सिद्धार्थ-
कर दिया महाराजने।

कुमार सिद्धार्थ छोटेपनसे एकान्तप्रिय, परम दयालु
ःखकातर थे। वे अपने आमोदभवन और क्रीडो-
ी प्रायः एकान्तमें बैठ जाते। कोई अज्ञात शक्ति
एक अस्पष्ट इङ्गित करती जान पड़ती। उन्होंने
नगर देखनेकी इच्छा प्रकट की। महाराजने व्यवस्था
राजकुमारको नगरमें कोई अप्रिय दृश्य न दिखायी
पूर्ण व्यवस्था होनेपर भी कुमारने पहली नगर-
एक वृद्धको देखा, दूसरीमें एक रोगीको और
एक शवको। सब वृद्ध होते हैं, सब रोगी हो
सब एक दिन मरेंगे—हम-आप सभी यह बात
; किन्तु महापुरुषकी बात ही भिन्न है। गौतमने
वेचार किया और उनके मनमें विश्वको इन
। मुक्ति दिलानेकी प्रबल प्रेरणा हुई।

कुमारी यशोधराने एक पुत्ररत्न पाया। इस
नाम राहुल था। सिद्धार्थने पुत्र हो जानेपर
करनेका निश्चय किया। अर्धरात्रिमें सोती हुई
ा पुत्रको छोड़कर वे अपने प्यारे घोड़े छन्दकपर
य सहचर छन्दके साथ राजसदनसे निकल गये।
...

गौतमने अनेक प्रसिद्ध आचार्योंका आश्रमा-
किया। उनकी सच्ची जिज्ञासा कहीं तृप्त न हुई
उन्होंने कठोर तप करनेका निश्चय किया। शरीर
गया। शक्तिका ह्रास हो गया। अन्तमें केवल
कष्ट देना व्यर्थ समझकर उन्होंने सुजाताका पाय
करके बोधिवृक्षके नीचे आसन लगाया। 'मार'
पराक्रम करके पराजित हुआ। गौतमने यहीं 'बो
किया। वे 'बुद्ध' हुए।

भगवान् बुद्धने काशीके निकट सारनाथमें अप
उपदेश चतुर्वर्गीय भिक्षुओंको किया। उन्होंने आ
अनेक विद्वानों, तपस्वियों और नरेशोंको अपने मतकं
दी। दीक्षित भिक्षुओंके लिये 'विहारों' की स्थापन
पुरुष भिक्षुओंके अतिरिक्त भगवान् तथागतने
भी भिक्षुणी होनेका अधिकार दिया। स्त्रियोंके लि
'विहार' बने। इन विहारोंके नियमादिका स्वय
उपदेश किया है।

भगवान् बुद्ध जब 'बोध' प्राप्तिके पश्चात् क
लौटे, उनकी पूर्वाश्रमकी पत्नी यशोधराने उनसे दीक्ष
की। छोटा बच्चा राहुल भी सद्धर्ममें दीक्षित हुआ। र
प्रायः सभी स्त्री-पुरुषों और महाराज शुद्धोदनने भी व

धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।
बुद्धं शरणं गच्छामि॥

भगवान् बुद्धने जिस तत्त्वज्ञानका उपदेश कि
चार आर्य सत्य कहा जाता है। १—सब कुछ क्षणि
दुःख रूप है। २—संसारके क्षणिक पदार्थोंकी तृ
दुःखोंका कारण है। ३—उपादानसहित तृष्णाका नाश
दुःखोंका नाश होता है। ४—हृदयसे अहंभाव और राग
सर्वथा निवृत्ति होनेपर निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

भगवान् बुद्धने साधनके आठ अङ्ग बतलाये
आर्य अष्टाङ्गमार्ग कहे जाते हैं। १—सत्यविश्वास, २—न
३—उच्च लक्ष्य, ४—सदाचरण, ५—सद्वृत्ति, ६—सत
स्थिति, ७—बुद्धिका सदुपयोग, ८—सद्ध्यान। भगवा
धर्म-प्रचारके लिये खूब प्रयत्न किया। उन्होंने अनेक का

ने लगे। उन्होंने अन्ततक दृढ़ निष्ठासे भगवान्‌की ४५ वर्ष धर्म-प्रचार करके अस्सी वर्षकी अवस्थामें ्से ५३५ वर्ष पूर्व गोरखपुरसे कुछ दूर कुशीनगरमें ो निर्वाण प्राप्त किया। उनके शरीरकी भस्मके लिये रसे माँग आने लगी। सब उनका स्मारक बनवाना । भस्मके आठ भाग किये गये। देशके भिन्न-भिन्न नोंमें भस्मकी स्थापना होकर उसपर स्मारक बने।

वान् बुद्धने जिस जीवदया और अहिंसा-धर्मका किया था, उनके अनुयायी भिक्षुसङ्घ तथा नरेशोंने वेस्तृत प्रचार किया। राजकुमार तथा सुकुमार रयाँ राजसुख छोड़कर भिक्षु एवं भिक्षुणी बने। र-दूर देशोंमें जाकर तथागतका ज्ञान-सन्देश दिया। यवद्वीप (जावा), सुवर्णद्वीप (सुमात्रा), चीन तथा जापानतक भारतीय भिक्षु गये। ब्रह्मदेश, श्याम तो मध्यमें थे ही। इन समस्त देशोंने तथागतका आदरपूर्वक सुना। उनके धर्मकी छत्रछायामें आकर शान्ति प्राप्त की।

ईसामसीहने अहिंसाकी शिक्षा भारत आकर ब विद्यालयमें प्राप्त की थी, यह अब इतिहासज्ञोंसे अज्ञात बुद्धधर्मके कारण भारतमें तथा भारतसे बाहर भी धर्मभाव, साहित्य, कला एवं संस्कृतिका व्यापक प्रचा मूर्तियों और ग्रन्थोंके रूपमें भारतीय संस्कृति बहुत बड़ी सामग्री अब भी 'बृहत्तर भारत' के इन दे

भगवान् बुद्धकी धारणा थी कि वे शाश्वत सनात ही उपदेश कर रहे हैं। उन्होंने मनुष्यको पशुताकी अ से वर्जित करके मानवताका सन्देश दिया है। —सु



भगवान् महावीर

ाकुवंशके क्षत्रियोंमें अनेक शाखाएँ हो गयी हैं। ावंशीय राजा सिद्धार्थकी राजधानी विहारप्रान्तका क्षत्रिय-ार था। आजसे २,५३७ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको शला देवीकी गोदमें एक महापुरुषका प्रादुर्भाव ये महापुरुष थे तीर्थंकर भगवान् महावीर। माता-नका नाम 'वर्द्धमान' रक्खा था। राजकुमार वर्द्धमानने तक समस्त क्षत्रियोचित कलाओंका अभ्यास कर माताके आग्रहसे समरवीर नामक नरेशकी कन्या देवीसे इनका विवाह हुआ। इनके एक कन्या 'प्रिय-नामक हुई। उसका विवाह जमाली नामक राजपुत्रसे भगवान् महावीरके इस जामाताने पीछे उनसे दीक्षा रके भी उनके विरुद्ध एक नवीन मतका प्रचार किया।

जकुमार वर्द्धमान अट्ठाईस वर्षके थे, जब उनके माता-शरीर-त्याग किया। महावीर गृह त्यागकर 'निर्ग्रन्थ होनेको दीर्घकालसे उत्सुक थे। भाई नन्दिवर्द्धनके दो वर्ष और उन्हें घर रहना पड़ा। घर रहते हुए दीन-दुखियोंमें राजकुलके संचित द्रव्यका दान प्रारम्भ एक वर्षमें तीन अरब, अट्ठासी करोड़, अस्सी लाख द्राओंका दान कुमार वर्द्धमानने याचकोंको किया।

स वर्षकी अवस्थामें गृह त्यागकर राजकुमार वर्द्धमानने पर सम्यक् विजय तथा सर्वज्ञताकी सिद्धिके लिये उन तप प्रारम्भ किया। यह तप साढ़े बारह वर्ष चल कभी-कभी छः-छः महीने वे निर्जल उपवास करते र महीनों खड़े-खड़े ध्यान करते रहते। साढ़े बारह व चौंतीस बार उन्होंने आहार ग्रहण किया था।

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'—राजपुत्र वर्द्धमानके तप विघ्न आये। उन्हें मनुष्य, पशु, प्रकृति तथा देवताअ प्रकारसे उत्पीड़ित किया। जंगली आभीरोंने उन अग्नि लगा दी। उनके कानोंमें काष्ठकी कीलें ठोंक द बिच्छू तथा दूसरे पशुओंने उन्हें भयंकर कष्ट दिये वर्षा, लू, ओले—सबने उन महामनस्वीको डिगाने प्रयास किया। 'संगम' नाम एक दुष्ट देवता (पि उनको नाना प्रकारसे यन्त्रणाएँ दीं। वे सामान्य मनु थे। उनका निश्चय हिमालयकी भाँति अविचल था उनके धैर्य तथा मनोबलको देखकर ही उन्हें 'महावी अन्ततः तपस्या पूर्ण हो गयी। अन्तःकरणके दोष एका हो गये। महावीर वीतराग, सर्वज्ञ एवं महासिद्ध हो

'भूतदया और अहिंसा'—भगवान् महावीरने लो कल्याणमय धर्मका उपदेश प्रारम्भ किया। इन्द्र प्रख्यात विद्वानोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

ने लगे। उन्होंने अन्ततक दृढ़ निष्ठासे भगवान्‌की ४५ वर्ष धर्म-प्रचार करके अस्सी वर्षकी अवस्थामें ईसे ५३५ वर्ष पूर्व गोरखपुरसे कुछ दूर कुशीनगरमें ने निर्वाण प्राप्त किया। उनके शरीरकी भस्मके लिये रसे माँग आने लगी। सब उनका स्मारक बनवाना। भस्मके आठ भाग किये गये। देशके भिन्न-भिन्न नोंमें भस्मकी स्थापना होकर उसपर स्मारक बने।

वान् बुद्धने जिस जीवदया और अहिंसा-धर्मका किया था, उनके अनुयायी भिक्षुसङ्घ तथा नरेशोंने वेस्तृत प्रचार किया। राजकुमार तथा सुकुमार रेयाँ राजसुख छोड़कर भिक्षु एवं भिक्षुणी बने। र-दूर देशोंमें जाकर तथागतका ज्ञान-सन्देश दिया। यवद्वीप (जावा), सुवर्णद्वीप (सुमात्रा), चीन तथा जापानतक भारतीय भिक्षु गये। ब्रह्मदेश, श्याम तो मध्यमें थे ही। इन समस्त देशोंने तथागतका आदरपूर्वक सुना। उनके धर्मकी छत्रछायामें आकर शान्ति प्राप्त की।

ईसामसीहने अहिंसाकी शिक्षा भारत आकर ब विद्यालयमें प्राप्त की थी, यह अब इतिहासज्ञोंसे अज्ञात बुद्धधर्मके कारण भारतमें तथा भारतसे बाहर भी धर्मभाव, साहित्य, कला एवं संस्कृतिका व्यापक प्रचार मूर्तियों और ग्रन्थोंके रूपमें भारतीय संस्कृति बहुत बड़ी सामग्री अब भी 'बृहत्तर भारत' के इन दे

भगवान् बुद्धकी धारणा थी कि वे शाश्वत सनात ही उपदेश कर रहे हैं। उन्होंने मनुष्यको पशुताकी अ से वर्जित करके मानवताका सन्देश दिया है। —सु



भगवान् महावीर

ाकुवंशके क्षत्रियोंमें अनेक शाखाएँ हो गयी हैं। वंशीय राजा सिद्धार्थकी राजधानी विहारप्रान्तका क्षत्रिय-ार था। आजसे २,५३७ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको शला देवीकी गोदमें एक महापुरुषका प्रादुर्भाव ये महापुरुष थे तीर्थंकर भगवान् महावीर। माता-नका नाम 'वर्द्धमान' रक्खा था। राजकुमार वर्द्धमानने तक समस्त क्षत्रियोचित कलाओंका अभ्यास कर माताके आग्रहसे समरवीर नामक नरेशकी कन्या देवीसे इनका विवाह हुआ। इनके एक कन्या 'प्रिय-नामक हुई। उसका विवाह जमाली नामक राजपुत्रसे भगवान् महावीरके इस जामाताने पीछे उनसे दीक्षा रके भी उनके विरुद्ध एक नवीन मतका प्रचार किया।

जकुमार वर्द्धमान अट्ठाईस वर्षके थे, जब उनके माता-शरीर-त्याग किया। महावीर गृह त्यागकर 'निर्ग्रन्थ होनेको दीर्घकालसे उत्सुक थे। भाई नन्दिवर्द्धनके दो वर्ष और उन्हें घर रहना पड़ा। घर रहते हुए दीन-दुखियोंमें राजकुलके संचित द्रव्यका दान प्रारम्भ एक वर्षमें तीन अरब, अट्ठासी करोड़, अस्सी लाख द्राओंका दान कुमार वर्द्धमानने याचकोंको किया।

स वर्षकी अवस्थामें गृह त्यागकर राजकुमार वर्द्धमानने पर सम्यक् विजय तथा सर्वज्ञताकी सिद्धिके लिये उन तप प्रारम्भ किया। यह तप साढ़े बारह वर्ष चल कभी-कभी छः-छः महीने वे निर्जल उपवास करते र महीनों खड़े-खड़े ध्यान करते रहते। साढ़े बारह व चौंतीस बार उन्होंने आहार ग्रहण किया था।

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'—राजपुत्र वर्द्धमानके तप विघ्न आये। उन्हें मनुष्य, पशु, प्रकृति तथा देवताअ प्रकारसे उत्पीड़ित किया। जंगली आभीरोंने उन अग्नि लगा दी। उनके कानोंमें काष्ठकी कीलें ठोंक द बिच्छू तथा दूसरे पशुओंने उन्हें भयंकर कष्ट दिये वर्षा, लू, ओले—सबने उन महामनस्वीको डिगाने प्रयास किया। 'संगम' नाम एक दुष्ट देवता (पि उनको नाना प्रकारसे यन्त्रणाएँ दीं। वे सामान्य मनु थे। उनका निश्चय हिमालयकी भाँति अविचल था उनके धैर्य तथा मनोबलको देखकर ही उन्हें 'महावीर अन्ततः तपस्या पूर्ण हो गयी। अन्तःकरणके दोष एका हो गये। महावीर वीतराग, सर्वज्ञ एवं महासिद्ध हो

'भूतदया और अहिंसा'—भगवान् महावीरने ले कल्याणमय धर्मका उपदेश प्रारम्भ किया। इन्द्र प्रख्यात विद्वानोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

ख्य महापुरुष हुए हैं। राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली-
ख नगरोंमें भगवान्ने चातुर्मास्य किया। मगध,
बेहारकी प्रजाका उनके प्रति अगाध प्रेम था। राजा
नन्दिवर्धन, चण्ड, प्रद्योतन, चेटक, उदयन,
र, अदीन-शत्रु प्रभृति नरेश महावीर स्वामीके शिष्य
वर्षतक धर्म-प्रचार करके बहत्तर वर्षकी आयुमें कार्तिक
गावस्याको पावापुरीमें उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।
क ही वस्तुमें देश, काल तथा अवस्था-भेदसे अनेक
अविरुद्ध धर्मोंका होना सम्भव है। अतः एकान्त
मुक वस्तुका अमुक धर्म है, दूसरा नहीं—यह कहना
ीं।' इस 'स्याद्वाद' सिद्धान्तकी महावीर स्वामीने

स्थापना की। समाजमें दया, परोपकार और अहिं
जीवनमें त्याग, तितिक्षा, तप, संयम, इन्द्रियनिग्र
मनुष्य-जातिके लिये उनके अमृत-सन्देश हैं। उ
जितने व्यापक एवं सार्वभौम रूपमें जैन धर्ममें ग्रहण कि
है, उतने व्यापक रूपमें वह दूसरे किसी धर्ममें नहीं ल
घोर तपस्या और उससे प्राप्त सिद्धियोंके लिये जैन
सदा प्रख्यात रहे हैं। भगवान् महावीरने मानव-सं
अहिंसा और त्याग तथा तपका जो वरदान दिया, वह
जातियोंके लिये आदर्श हुआ। मनुष्य अपनी दुर्बलत
भले अपना न सके; परन्तु यह स्वतःसिद्ध है कि उसका
तथा कल्याण त्याग, संयम और हिंसासे निवृत्त होनेमें



अश्वमेधपराक्रम सम्राट् समुद्रगुप्त

युगमें पुष्यमित्रने वैदिक ध्वजाको उन्नत किया
नरेशोंने उस सनातन हिंदू-धर्मको उज्ज्वलरूपमें
त किया। आज जो मूर्तियाँ, चित्र आदि प्राचीन
लब्ध हैं, उनमें हिंदू-मूर्तियों और चित्रोंमें अधिकांश
ोंके समयके हैं। कला—श्रद्धामयी कला उस समय
ङ्गोपाङ्ग रूपमें प्रकट हुई है।

ातके कारण पाश्चात्त्य इतिहासकारोंने गुप्तकालके
महान् प्रतापी सम्राट् समुद्रगुप्तकी बहुत कम चर्चा
च तो यह है कि यूरोपके इतिहासमें इतना पराक्रमी,
र साथ ही परम उदार धार्मिक कभी हुआ ही नहीं;
रके पश्चात् जबसे इतिहास प्राप्त है, सम्पूर्ण भारतका
ान् सम्राट् भी कोई नहीं हुआ। महाकवि हरिषेणके
सम्राट् समुद्रगुप्त 'लिच्छविदौहित्र' हैं। वे
सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रथमके पुत्र हैं। पिताने अपनी
वस्थाके लगभग प्रेम एवं उल्लाससे उन्हें राज्यासन
प्रयागमें प्राप्त प्रशस्तिसे ज्ञात होता है।

नरेशोंके लिये दिग्विजय सदा स्पृहाकी वस्तु रही
हेंदू-धर्म नरेशोंको केवल विजयके लिये प्रोत्साहित
नरेशोंके राज्यापहरणके लिये नहीं। सिंहासनपर
श्चात् समुद्रगुप्तने अपना अमित पराक्रम प्रकट
उत्तराखण्ड, दक्षिणापथ और सीमान्तके देशोंके
ी शक्तिके सम्मुख झुकनेको विवश हुए। उज्ज्वल
परम्पराके अनुसार सम्राट्ने किसीके राज्यका
नहीं किया। उन्होंने केवल कर लेकर राजाओंको

बने रहने दिया। उनकी दिग्विजययात्रा धर्मस्थापक
और हिमालयसे दक्षिण-सागरतक उन चक्रवर्ती र
छत्रछायामें हिंदू-धर्मकी उन्मुक्त ध्वजा फहराती थी।
धूमसे दिशाएँ पवित्र होती थीं। पूरा गान्धार (
अफगानिस्तान) और उससे आगेतकका प्रदेश र
करद प्रान्त था। नैपाल और ब्रह्मदेश उन्हें
मानते थे।

महाराज जनमेजयके पश्चात् पहली बार दिग्विजयी
समुद्रगुप्त अश्वमेध करनेमें सफल हुए। उस समय
जो मुद्रा प्रचलित की, उसपर एक ओर अश्व एवं
चित्र है और पीछे 'अश्वमेधपराक्रम' अङ्कित है। स
उपाधि थी 'परम भागवत' और सचमुच वे परम वैष्ण
उनकी मुद्रामें उनकी शिखामें झूमती तुलसीकी माला तथ
द्वारा निर्मित मन्दिरोंकी अब प्राप्त मूर्तियाँ इसका
हैं। सम्राट् अच्छे कवि एवं कुशल वीणावादक थे,
मुद्राओं तथा प्रशस्तियोंसे सिद्ध है। हिंदू-धर्म कभ
धर्मोंके प्रति असहिष्णु रहा ही नहीं। परम वैष्णव
समुद्रगुप्त महाश्रमण वसुबन्धुका पूरा-पूरा आदर करते
सिंहलनरेश मेघवर्माको बौद्धगयामें विहार बनानेकी
अनुमति दी।

इतिहासकालके भारतके एकछत्र सम्राट् अश्वमेधप
अतुल-शौर्य समुद्रगुप्तकी उपेक्षा जान-बूझकर स
न होती तो आज यह पाश्चात्त्योंको कहनेका अवसर न
कि 'भारतको एक देशका रूप अंग्रेजोंने दिया।'

के समयका वह गान्धार एवं मलयतक विस्तृत भारत, र्व धर्मनिष्ठा, वह साहित्य एवं कलाका सात्त्विक र्ग और हिंदू-धर्मका वह अकल्पित वैभव इतिहासज्ञों-के लिये अब भी खोजकी वस्तु है । सम्राट् समुद्र पराक्रमी, कलाप्रिय, कलाका आश्रयदाता और परम सार्वभौम फिर नहीं हुआ ।

—र

देवप्रिय सम्राट् अशोक

दर्शी सम्राट् अशोकके सम्बन्धमें यद्यपि इतिहास-हुत कुछ लिखा है, पर बहुत शेष है अब भी । न-प्रियजन' (सामान्य नागरिकके लिये अशोक-ाब्द) के उपदेशक और स्वयं सम्राट् होते हुए जिन' से शिक्षा-ग्रहणके उद्देश्यसे उनमें जानेवाले सम्राट्की पूरी बातें अब भी प्रकाशमें आयी

ट् बिन्दुसार बहुत बड़ा साम्राज्य छोड़ गये थे । मौर्यके उन सुयोग्य पुत्रने अपनी विजय-ध्वजा कन्याकुमारीतक विस्तीर्ण करनेका पूरा प्रयत्न किया पने युवराज अशोकसे उन्हें बहुत बड़ी आशा थी भी था । कठोर, उग्र, क्रूर प्रकृतिके अशोक जनतामें क' विख्यात थे । सम्राट् बिन्दुसारकी मृत्युके चार ात् परिषद्की अनुमतिसे अशोक सिंहासनासीन भिषेकके बादके बारह वर्ष अशोकके जीवनके क्रूरता, जयके वर्ष हैं । अन्तिम युद्ध था कलिङ्गका । रण-से पटती जा रही थी । कलिङ्गके देशभक्त शूर सदर्प रहे थे । सहसा अशोकका हृदय पलटा—विजेता विजयके समीप पहुँचकर युद्ध रोक दिया । पश्चात्ताप-द्र कर दिया उन्हें । सच ही तो है—भूमि, पर्वत, सीमाओंसे सीमित राज्यकी अपेक्षा मानव-हृदयोंका महान् है । अशोकने उस महान् साम्राज्यके लिये भूमिमें शस्त्र फेंक दिये और सचमुच मानव-हृदयोंके महान् सम्राट् हुए । राज्याभिषेकके तेरहवें वर्षमें न्दुभिके स्थानपर अशोककी धर्म-दुन्दुभि बजी । म्राट् जनतामें धर्म-प्रचार, धर्म-शिक्षाके लिये घूमने सम्राट्के सगे भाई महेन्द्र और बहिन संघमित्रा बौद्ध-ंवं भिक्षुणीके वेशमें सिंहल पहुँचे । नैपालमें स्वयं और उनके पश्चात् उनकी प्रियपुत्री चारुमतीने धर्म-ल्या ।

बौद्ध-धर्मकी ओर झुके । उन्होंने बौद्ध-धर्मको र घोषित किया और वे अपना सर्वस्व लगाकर उसके लग गये । अशोक—देवप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् बौद्ध थे । वे राज्यके साथ 'सङ्घ' का भी सञ्चालन व परंतु वे थे भारतीय सम्राट् । उनमें शुद्ध हिंदू-रक्त औ उदारता थी । उन्होंने ब्राह्मणों, मन्दिरों और वैदिव कोई तिरस्कार नहीं किया । उनकी शिक्षा, उनका हृ भी उनके उन शिलालेखोंसे स्पष्ट है, जो भारतके स्थलोंमें पाये जाते हैं । ये शिलालेख अपनी कल लिये भी प्रख्यात हैं ।

सम्राट् अशोक चालीस वर्षतक सिंहासनपर र अवधिमें उन्होंने स्वयं विभिन्न तीर्थोंमें घूमकर, : भेजकर, शिला लेख गाड़कर, अनेक प्रकारसे लोकमें स एवं धर्म-प्रचारका प्रयत्न किया । तीन वर्षके अ चौरासी हजार स्तूपोंका निर्माण कराना प्रियदर्शी ही कार्य था । गयाके समीप उन्होंने गुफाओंका आवास निर्मित कराया । सैकड़ों विहार, संघारा स्थापित किये हुए थे । अपने शिला-लेखोंमें उन्होंने माता एवं प्राणियोंकी सेवा, सभी सम्प्रदायोंकी परस्पर सद परलोकके सुधार तथा सत्य, त्याग, तप आदि सार्वभौम ही पूरा बल दिया है । सम्राट् सचमुच 'देवप्रिय' थे लोगोंको देवपथमें ले जानेका पूरा प्रयत्न किया । वे थे । जनतामें जनतासे शिक्षा-ग्रहण एवं विचार-वि भावनासे जाना उन्हीं जैसे महत्तमका कार्य था ।

चार सिंहोंके ऊपर स्थापित धर्मचक्र—अशोकके का यह प्रतीक अब भारतका राष्ट्रिय प्रतीक है । व्यापी पराक्रमपर धर्मचक्रकी स्थापना अशोकने की जानते हैं । उनका राज्य सम्पूर्ण भारतमें था औ सिंहल, मलय आदिमें उनका नाम आदरसे लिया ज

शेला, कौशाम्बी, नालन्दा आदि महाविद्यालय ·शासनमें ही समृद्ध हुए। सम्राट्ने स्वयं जीवनके देन बौद्ध-भिक्षुके रूपमें राजगृहमें किसी बौद्ध-मठ- त किये। उन्होंने एक आदर्श भारतीय सम्राट्का जीवन व्यतीत किया और भारतीय परम्पराके अ अन्तमें वीतराग भिक्षु हो गये। एक चीनी यात्रीने में सम्राट्की भिक्षुरूपमें एक प्रतिमा देखी थी, ऐ वर्णन है। —

सम्राट् हर्षवर्धन

ण्वीश्वरके अधिपति उस समय भारतमें बहुत प्रख्यात जब भाई राज्यवर्धनके युद्धमें मारे जानेपर मन्त्रि- सम्मतिसे हर्ष सिंहासनासीन हुए। अमितपराक्रम —उनका अपूर्व शौर्य, संगठित सैन्यशक्ति और त्साह; बहिन राज्यश्री-जैसी कुशल मन्त्रदात्री प्राप्त अल्पकालमें ही सिन्ध, सौराष्ट्र, कान्यकुब्ज, मिथिला, गौड़ तथा हिमालयके पर्वतीय प्रान्तपर भी अपना ापित कर लिया। दक्षिणापथके शासक पुलकेशीने ना सम्राट् स्वीकार किया। वे सार्वभौम नरेश हो ल छः वर्षोंमें यह सफलता प्राप्त की।

कवि बाणभट्टकी लेखनीने 'हर्षचरित' में सम्राट्की ाका बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है। सम्राट् हर्ष धर्म स्वीकार कर चुके थे। चीनी बौद्ध आचार्य उनके उपदेष्टा थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि र्ष परम उदार थे और उनकी उदारता सभी धर्मोंके मानरूपसे थी। प्रत्येक वर्ष सम्राट् प्रख्यात बौद्ध परिषद् आयोजित करते, उसमें सद्धर्मके प्रचारपर ार होता। प्रति पाँचवें वर्ष श्रीगङ्गा-यमुनाके संगम- गमें सम्राट्की मोक्षसभा आयोजित होती। युद्ध- सामग्री और शस्त्रास्त्रको छोड़कर सम्राट् सर्वस्व दान थे। ह्वेनसांगने लिखा है—'जब सम्राट्के पास द देते कुछ नहीं बचा, तब उन्होंने बहिन राज्यश्रीसे ए वस्त्र लेकर उसे उत्तरीय बनाया।' यह सर्वस्व- सम्राट्का है, जिसके पीछे इक्कीस नरेश और सैकड़ों चलते थे और जो सिंहासनपर बैठनेपर रत्नस्तूप जा था। इस महादानमें बौद्ध या ब्राह्मणका भेद सम्रा नहीं करते थे।

सम्राट् स्वयं श्रेष्ठ कवि थे। उनकी रत्नावली, आदि रचनाएँ प्रख्यात हैं। धर्मप्रचारके लिये उन्हों स्तूप बनवाये। आश्रम, संघाराम, विहार तथा समानरूपसे उन्होंने दान किये। सुमात्रा, जावा, आदिसे उनका बराबर सम्बन्ध रहा और उनके प्रभा हिंदू-संस्कृति समृद्ध होती रही। देशमें 'विहारों'में धर्मचर्चा और आश्रमोंमें यज्ञ उनकी महत्सेवासे चल उन्होंने धर्म, विद्या, कला—सबको पुरस्कृत, प्रोत्सा समृद्ध किया। कहा जाता था कि राज्यमें सम्राट् सब व्यक्ति थे; प्रजाकी चिन्ता, धर्म-प्रचारसे उन्हें अव नहीं मिलता था। —

सम्राट् चन्द्रगुप्त

क शासकोंसे भारतको स्वतन्त्र करनेवाले सम्राट् के सम्बन्धमें इतिहासके विद्वानोंमें बहुत मतभेद है। त्र (मगध)-नरेश नन्दके चन्द्रगुप्त पुत्र थे—यह तो न लिया गया है। कुछ विद्वान् उन्हें मुरा नामक पुत्र कहते हैं और कुछका कहना है कि नन्दकी एक तीय नरेश 'मोरिय' की कन्या थीं। उनके गर्भसे गुप्तकी उत्पत्ति हुई। नन्दकी बड़ी रानीके नौ पुत्र न सौतेले भाइयोंने बचपनमें चन्द्रगुप्तको अनेक भागना पड़ा। जब ग्रीकनरेश सिकन्दर (अलेक्ज भारत-सीमान्तपर आक्रमण किया, उस समय उनसे भेंट की थी और उनकी यूनानी सेनाके रण- ज्ञान प्राप्त किया था। जो भी हो, चन्द्रगुप्तको परम आचार्य चाणक्यका सहयोग प्राप्त हुआ। चाणक्यकी कुशलतासे नन्दके नौ पुत्र मारे गये और चन्द्रगुप्त सिंहासनाधीश्वर हुए।

चन्द्रगुप्त-जैसा शूर, आचार्यसेवी नरेश और

नम्र चरणानुगामी थे। किंतु चाणक्य ब्राह्मण थे, ह्मणत्वका आदर्श त्याग था। वे एक उटज (झोपड़ी) तथा विद्यार्थियोंको शिक्षा देकर अपना निर्वाह करते समय देशकी समृद्धि अतुलित वृद्धि पाती ही थी। विदेशी (ग्रीक) राजदूत मेगस्थनीजने चन्द्रगुप्तके ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए लिखा है कि 'सम्राट् के स्कन्धावारमें सदाचारी लक्ष पुरुष उपस्थित ।'

ात्य ऐतिहासिक विद्वानोंने अलेक्जेण्डर महान् र) की शूरताको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया भूलने योग्य नहीं है कि सिकन्दरने केवल भारती कुछ साधारण नरेशोंको पराजित किया था। पुरुके में वह कठिनाईसे छल करके ही जीत सका था। ज्य भी साधारण पर्वतीय राज्य ही था। किंतु उसी ानी सैन्यका साहस तोड़ दिया। सिकन्दरको पीछे ड़ा। उसने विजित प्रदेशोंमें अपना शासक नियुक्त ।

न्दरके लौटनेके कुछ ही दिन पश्चात् चन्द्रगुप्तने ज्य सज्जित की। आचार्य चाणक्यकी कृपासे मगधके ान्तरिक कलह शान्त हो गये थे। सिकन्दरके सेना-पति सिल्यूकस सिकन्दरद्वारा जीते हुए प्रदेशोंके शा चन्द्रगुप्तसे उनका संग्राम हुआ। सिल्यूकस इतनी पराजित हुए कि उन्होंने चन्द्रगुप्तके साथ अपनी विवाह करके गान्धार (अफगानिस्तान या कन्दहार समूचा देश चन्द्रगुप्तको भेंट कर दिया और वे यू गये। ग्रीसके राजदूत होकर मेगस्थनीज पाटलिपुत्रक उपस्थित हुए थे। उन्होंने लिखा है कि चन्द्रगुप्तने का (श्वशुर होनेके कारण) सत्कार करनेके लि तीन सौ हाथी भेंट किये थे।

पाश्चात्त्य इतिहासकारोंने सिल्यूकसको पराजयको तथा कम करनेका भरपूर प्रयत्न किया है। उन्होंने को नीच कुलोत्पन्न सिद्ध करनेका प्रयास किया है। भी उन्हें स्वीकार करना पड़ा है कि उस महान् सेनामें बीस हजार अश्वारोही, दो हजार रथ, च हाथी तथा दो लाख पदाति सैनिक थे। भारत- विदेशी सत्ताको सर्वथा पराजित करके भारतीयत करनेवाले सम्राट् चन्द्रगुप्तने जैनाचार्य भद्रबाहु दीक्षा ग्रहण की थी। उनके पुत्र बिम्बसार थ अशोक उनके पौत्र थे। कुछ दिन जैन रहकर अ बौद्ध हो गये थे।—सु०

सम्राट् विक्रमादित्य

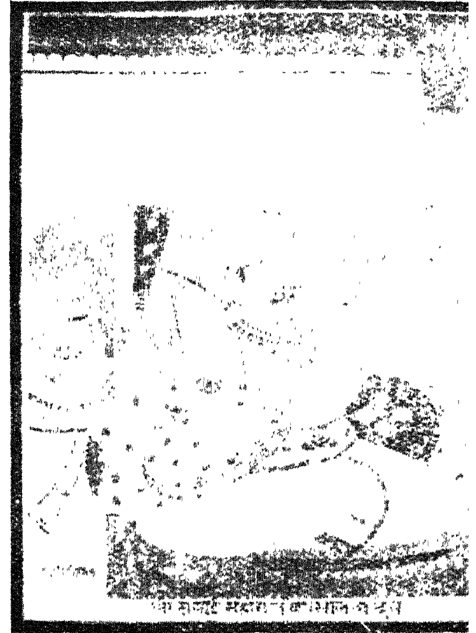
:खभञ्जक, वेतालसिद्ध, न्यायादर्श शकारि सम्राट् त्य आजके ऐतिहासिकोंके लिये एक समस्या हैं। क्रम-संवत् जिन लोकोत्तर मालवगणाधीश भगवान् वरके परम सेवकने प्रचलित किया, आजके क उनका पता ही नहीं लगा पाते। चन्द्रगुप्त प्रथमने की उपाधि धारण की, इस कल्पनापर ही उनका । जाता है। यह भूलने योग्य नहीं है कि गुर्जरके सम्राट् सिद्धराज जयसिंह सदा विक्रमका स्वप्न देखते ा एवं विद्वानोंके लोकविख्यात शरणद महाराज आदर्श सदा सम्राट् विक्रमादित्य रहे। भर्तृहरि- निर्माता, योगिराज गोरखनाथजीके अमर शिष्य । सम्राट् विक्रमके बड़े भ्राता कहे जाते हैं। बड़े रक्त होकर सिंहासन त्याग देनेपर विक्रमादित्यने काश्मीरकी पवित्र भूमि दस्युओंसे दलित हो र विक्रमादित्यने उन दुर्दम शत्रुओंको अपने प्रबल केवल पराजित ही नहीं किया, उन्हें भारतके उत्तर भगा दिया। इसी शौर्यने उन्हें 'शकारि' नामसे भू और कहा जाता है कि इसी विजयके उपलक्षमें वि प्रचलित हुआ।

महाराज विक्रमादित्य अपने न्यायके लिये इतने हैं कि उनके भूमिमें गड़े दिव्य सिंहासनके स्थान चरवाहा बैठ जाता तो वह भी उत्तम न्याया जाता था। राजा भोजने भूमिसे वह सिंहासन निकलवाया। सिंहासनमें बत्तीस मणिपुत्तलिकाएँ स्थानपर बनी थीं। भोजको उन पुत्तलिकाओंने भाँति सिंहासनपर बैठनेसे रोक दिया और सिंहासन





महाराजा पृथ्वीराज



महाराज छत्रसाल



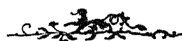
गुरु गोविन्दसिंहजी



धर्मवीर बन्दा वैरागी

दुखीके कष्टको निवारण करनेके लिये सदा प्रस्तुत
ामान्य व्यक्तिके दुःख दूर करनेमें भी यदि प्राण
ी बात हो तो सम्राट्‌को संकोच नहीं था। अपना
नी सुविधा, अपना जीवन-जैसी कोई वस्तु वहाँ
। अनेक आख्यायिकाएँ सम्राट् विक्रमादित्यके
प्रचलित हैं। सबका एक ही विषय है। सम्राट्‌ने
ष्टके लिये अपनेको आपत्तियोंमें झोंक दिया और
ोत्तर पुरुष असफल तो हो ही नहीं सकता। इसी पर-

दुःखभञ्जकताने विक्रमको भारतके हृदयमें प्रतिष्ठि
जहाँसे ऐतिहासिकोंके अल्प प्रयत्न उन्हें हटा नहीं
डा० पीटर्सन, डा० ब्याऌट तथा प्रो० फ्लीटने ईस्
पूर्व सम्राट् विक्रमादित्यकी स्थिति मन्दसोरके शि
आधारपर स्वीकार की है। विक्रमादित्य शा
पूर्ववर्ती हैं, यह इतिहाससिद्ध है। ऐतिहासिक अन्वे
मानते हैं कि इनका बनवाया रामकूट नामक महल
संवत्‌से लगभग आधी शती पूर्वका है।—सु०



महाराज शालिवाहन

-संवत्सरके प्रवर्तक शकराज शालिवाहनको
स्थान'के कर्ता 'टॉड' साहब गजनीके शकराजा
पुत्र बतलाते हैं। इन्हीं 'गज'ने 'गजनी' नगर
था। शत्रुओंद्वारा 'गज' जब युद्धमें मारे गये, तब
शालिवाहन वहाँसे भागकर भारत चले आये। इन्होंने
पने शौर्यसे पंजाबपर अधिकार कर लिया और
इनका राज्य दक्षिण-भारततक विस्तृत हो गया।
इनने गोदावरीके तटपर प्रतिष्ठानपुर (पैठण)को अपनी
बनाया।

स्मरण रखनेकी बात है कि उस समयतक विश्वमें
केवल एक ही धर्म था—हिंदू-धर्म। ईसाई या
धर्म तबतक उत्पन्न नहीं हुए थे। हिंदू-धर्ममें जो नि
हुए, वे बहिष्कृत हो गये। शक, हूण आदि
जाकर बसी हुई ऐसी ही बहिष्कृत जातियाँ थीं
आनेपर इन जातियोंके लोग विशेष प्रायश्चित्त
हिंदू-धर्ममें ले लिये जाते थे; क्योंकि वे हिंदू ही थे।

शालिवाहनने हिंदू-धर्ममें अपनेको पुनः सम्मि
लिया। उसने अपने यहाँसे बहुत-से लोगोंको
उनमें चारों वर्णोंके ही लोग थे। ये लोग उन-उन व
धीरे सम्मिलित हो गये। इन लोगोंको 'मग' कहा जाता है



महाराज पृथ्वीराज

ल्लीके अन्तिम हिंदू-सम्राट् महाराज पृथ्वीराजके
में महाकवि चन्दवरदाईने जो 'पृथ्वीराजरासो' लिखा
की ऐतिहासिकता सन्दिग्ध है। ऐतिहासिक प्रमाणोंसे
वर्णन मिलते नहीं। 'रासो' उच्चकोटिका जातीय
महाकाव्य है; पर जान पड़ता है कि उसमें बहुत-सी
जनश्रुतियाँ मिल गयी हैं। पृथ्वीराजकी राजसभाके
विद्वान्‌ने संस्कृतमें 'पृथ्वीराजविजय' नामक काव्य
था। इतिहासके विद्वान् इस काव्यको प्रामाणिक
हैं। महाराज पृथ्वीराजके सम्बन्धमें इसी काव्यके
पर ठीक विवरण प्राप्त होता है।

पृथ्वीराजके पितामह अर्णोराज और पिता सोमेश्वर
[illegible]
राज्योंको जीता भी। गजनीके अधीश्वर
मुहम्मद गोरीने सन् ११७५ ई० में मुलतानप
प्राप्त की। इसी समय उनके मनमें भारत
लालसा जगी। सन् ११७८ ई०में वे मुलत
अनहलवाड़पत्तन (नाहरवारा)की ओर आगे बढ़े
नरेश मूलराज तथा भीमदेवसे उनका घोर संग्राम हो
कि पृथ्वीराजकी सेना गुर्जर-नरेशकी सहायताको पहुँ
भारतकी पवित्र भूमि म्लेच्छोंसे अपवित्र हो, यह पृ
सह्य नहीं था। जिस समय गुर्जरनरेशके दूत
पहुँचकर यवन-वाहिनीके पराजित होकर लौट
संवाद दिया, पृथ्वीराज प्रसन्नतासे सिंहासनसे
हुए। उन्होंने दूतको बहुमूल्य पुरस्कारोंसे सन्तुष्ट कि

र ली थी । भारतमें हिंदू नरेशोंपर आक्रमण
नय था कि पृथ्वीराज उनकी सहायता करने आ
। सुल्तानने कूटनीतिसे काम लिया । उस समय
राज्य महमूद गजनवीके वंशधर खुसरू मलिकके
था । सुल्तानने इस मुसलमानी राज्यको हस्तगत
ल्लीके सीमान्तपर अधिकार करना ठीक समझा ।
चक्रदेवने उनकी सहायता की और कहना यही
के जम्मूनरेशकी सहायतासे ही सुल्तान लाहौरपर
कर सके । अन्यथा वे दो बार विफल होकर
थे ।

राज पृथ्वीराजका दिग्विजय-क्रम चलता रहा ।
बन्देलनरेश परमर्दिदेवको पराजित कर दिया था ।
रेश जयचन्दके साथ उनका बहुत बड़ा संग्राम
इस युद्धमें विजयी होकर उन्होंने 'परमभट्टारक
धेराज'की उपाधि धारण की ।

ीराज केवल अपने ऐश्वर्यके लिये महाराजाधिराज
थे । उन महान् दूरदर्शीने सुल्तानकी बढ़ती शक्ति
थी । 'भारतभूमि' की पावनताकी रक्षा करनेकी
थी उन्हें । सन् ११९१ ई०में सुल्तानने तबरहिंद
डा) पर अधिकार किया । महाराज पृथ्वीराज
ाचार पाते ही दो लाख अश्वारोही तथा तीन
नेषादी (गजसैन्य) के साथ जा धमके । सुल्तानके
म्मूनरेशको भी दण्ड देनेका उन्होंने निश्चय कर लिया
सुल्तान पहले ही तबरहिंदसे चले गये थे । उनके
जियाउद्दीनने सामना किया । युद्ध चल ही रहा
सुल्तान भी अपनी विशाल वाहिनी लेकर 'तराइन'
आ गये । बड़ा विकट युद्ध हुआ । कन्नौजनरेश
तथा जम्मूनरेश विजयदेवको छोड़कर सभी
। नरेश पृथ्वीराजके पक्षमें थे । सब म्लेच्छ-वाहिनीके
महाराजाधिराजकी विजय चाहते थे । महासमरमें
जके भाई दिल्लीपति गोविन्दरायका पराक्रम अतुलनीय
था । उनके अव्यर्थ बाणने सुल्तानको आहत कर
म्लेच्छ-वाहिनी पराजित हुई । महाराज पृथ्वीराज
होकर लौटे ।

सुल्तान मुहम्मद गोरी बड़ी निराशासे गजनी
उनको महाराजाधिराज पृथ्वीराजका बंदी होना प
बहुत बड़ा अर्थदण्ड देकर उन्होंने प्राण-भिक्षा प्राप्त
उनका और महमूद गजनवीके समयतकका भारत
पृथ्वीराजने अधिकृत कर लिया था । अब सुल्तानमें
नहीं था; किन्तु भारतकी भाग्यलक्ष्मी रूठ चुकी थ
समय कन्नौज-नरेश जयचन्दका दूत उनके पास
द्वेषने कन्नौज-पतिको अंधा कर दिया था । उन्हें
सम्पूर्ण अर्थ तथा सैन्यबलसे सहायताका आश्वा
था । विद्वान्, विद्वानोंका सत्कार करनेवाले, आल्ह
जैसे शूरोंके शरणद कन्नौज-नरेश व्यक्तिगत द्वेपसे
विधर्मियोंको आमन्त्रण दें—यह विधिकी विडम्बना ह

सुल्तानको यह सुअवसर चूकना नहीं था
फिरसे अपनी सेनाका संगठन किया । महाराज
प्रमत्त नहीं थे । वे अपनी सेनाके साथ तबरहिंद
आगे कुरुक्षेत्रमें आकर उपस्थित थे । उनकी सेनामें
राजपूत और अपगणस्थ (अफगानी) शूरम
पुण्यतोया सरस्वतीके तटपर पुनः संग्राम हुआ ।
जम्मूनरेशके बदले उनके राजकुमार नरसिंहदेव से
सुल्तानकी सहायता करने आये थे । कन्नौजनरेश
भी ससैन्य आ गये थे म्लेच्छवाहिनीको सहायत
महावीर गोविन्दराय (दिल्लीनरेश) रणभूमिमें ग
महाराज पृथ्वीराज शत्रुके बंदी हुए । सुल्तान
नेत्र फोड़ दिये, किन्तु अन्धे होनेपर भी उन
अपने शब्दवेधी बाणद्वारा भरे दरबारमें
मार दिया । इस प्रकार भारतीय स्वाधीनताका वह
उज्ज्वल प्रदीप सन् ११९३ ई०में निर्वापित हो गया

इतने दुर्लभ हैं !

सिंहनके लँहड़े नहीं, हंसनकी नहिं पाँत ।

सिद्धराज जयसिंह

ावामें जो सुयश महाराज विक्रमादित्यका है, राज-
ो महत्ता महाराणा प्रतापकी है, गुर्जरमें वही सुकीर्ति
जयसिंहकी है। ये जयकेशीकी कन्या मैणालदेवीके गर्भसे
ए थे। इनके पिता चौलुक्यवंशीय महाराज कर्णने इन्हें
ं ही इनकी योग्यताके कारण राज्य दे दिया।
ताके सहोदर भ्राता देवप्रसादने भी अपने पुत्र
लका भार इनपर छोड़ा और परलोकगामी हुए।
कुमारपाल इन्हीं त्रिभुवनपालके पुत्र थे।

क नामक एक मुसलमान दस्यु अपने शिल्पनैपुण्यसे
आकर प्रजापर अत्याचार करने लगा था।
के राजाके छोटे भाई भी उसके समर्थक थे।
ं ससैन्य आक्रमण करके उस दस्युको श्रीस्थल
ास्त किया। कहा जाता है कि यवन दस्युने कोई
न कर ली थी। उसे पराजित करनेसे पूर्व योगिनीको
सिद्ध किया। सुप्रसिद्ध वीर जगदेव परमार उनके
थे। इस महान् सेनापतिने उनको समराङ्गणमें बहुत
हायता दी।

जयिनीमें महामाली-मन्दिरमें भगवतीकी आराधना
महायश प्राप्त कर सकते हो।' जयसिंहको योगिनी-
दिया। जयसिंहने सैन्य सज्जित की। अवन्तिनाथ
उनके हाथ बंदी हुए। उज्जयिनीके साथ धार
ध भी उन्होंने विजय किये। अनेक नरेशोंने
न्याएँ देकर उनसे सम्बन्ध स्थापित किया।

राज जयसिंहने सरस्वती नदीके तटपर रुद्रमाल और
महावीर स्वामीके मन्दिर बनवाये। इन जैन
अतिरिक्त उन्होंने सहस्रलिङ्ग सरोवर खुदवाया
स्थानोंमें देव-मन्दिर निर्मित किये, सदाव्रत चल
विद्यालय स्थापित किये। उनकी राजसभामें उ
समान प्रसिद्ध कवि थे। जैनाचार्य हेमचन्द्र पहले उ
पण्डित रह चुके थे।

सन् ११४३ ई० में महावीर परमयशस्वी
सिद्धराजने स्थिरचित्त होकर आराध्यके चरणोंमें
लगाया। वे अन्न-जल छोड़कर बैठ गये। अनशन-
अपने नश्वर शरीरका उन्होंने त्याग किया। जीवनमें
प्रकार अदम्य, सबके सम्मान्य, अद्भुतविक्रम, उज्ज
रहे थे, उनकी मृत्यु भी वैसी ही असाधारण, लोकोत्त
समान हुई।

सिद्धराज जयसिंहने अपने सम्मुख सदा परदु
त्यागमूर्ति, दिगन्तविजयी शकारि महाराज विक्रम
आदर्श रक्खा। वे विक्रमके शौर्य, सुयश, वि
साम्राज्यके समान ही उनकी शक्ति, दया, उदार
अपनानेके लिये नित्य उत्सुक रहे। उन्होंने यो
दुखियोंका दुःख निवारण करनेके लिये ही प्राप्त की

जयसिंह धर्मके सम्बन्धमें परम निष्पक्ष शासक रहे
जैन एवं हिंदू, दोनों धर्मोंका समान आदर किया
मन्दिर बनवाये। दोनोंकी समृद्धिमें योग-दान
गुजरातमें वे उच्च सांस्कृतिक नरेश हुए हैं। अब
यशोगाथा गुजरातके गौरवकी वस्तु है।—सु०



महाराज छत्रसाल

ं कौं सराहौं, कै सराहौं छत्रसाल कौं।
-शौर्यके गायक राष्ट्रकवि भूषणने अपने समयमें
के योग्य दो ही शूर पाये। वे किसी नरेशके गुण-
ीं थे। वे तो हिंदू-जातिके शौर्यके गायक थे और
छत्रपति महाराज शिवाजी तथा बुन्देला-केसरी
ो छोड़कर और कोई इस शौर्यका प्रतीक नहीं हो
।

साथ रहनेसे तुम्हारी कीर्ति मेरी कीर्तिमें लुप्त हो
[illegible]
छत्रसालकी महत्ता शीघ्र अनुभव कर ली। छत्रसा
धर्मकी सेवाकी तीव्र लगन थी और उनमें अविच
था। वे महाराज शिवाजीकी कीर्ति सुनकर उनके
कार्यमें यथाशक्ति सहायता करने गये थे। महाराज
उन्हें अपने संगठन और युद्धकौशलकी शिक्षा दी
स्वामी रामदासका उन्हें आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

पन्नामहाराज चम्पतरायके शरीरान्तके पश्चात्
छत्रसाल सिंहासनपर बैठे। उस समय दिल्लीमें
दुर्बल हो चली थी। छत्रसालको यवनोंकी चिन्ता न

जीत लिया । दामनी नगर उन्होंने नवाब ो पराजित करके सन् १७०० में अपने राज्यमें । दिल्लीके बादशाह बहादुरशाहने सन् १७०७ में शीका शासक स्वीकार किया । मुसल्मानोंने यह एक त्रली थी उन बुन्देलकेसरीको शान्त करनेकी । ३३ में फरुखाबादके शासक अहमदखाँ बंगसने बड़ी ाके साथ उनपर आक्रमण किया । नीतिज्ञ छत्रसालने ाजीराव प्रभुसे सहायता माँगी । महाराष्ट्र एवं । संयुक्त शक्तिने पूरे बुन्देलखण्डको स्वाधीन कर ाज्यका तृतीयांश पेशवाको प्राप्त हुआ । दोनों शूरोंने कि पेशवा और उनके उत्तराधिकारी तथा छत्रसाल के उत्तराधिकारी सदा एक दूसरेके सहायक रहेंगे ।

सालके राजकवि लालने 'छत्रप्रकाश'में महाराजके सुन्दर वर्णन किया है । पण्डितराज विश्वनाथने य' काव्यमें उन हिंदू-मर्यादारक्षककी तेजस्वितासे कलाको पवित्र किया है । छत्रसाल विद्वानोंका आदर करते थे । कहा जाता है कि महाकवि भूषणकी उन्होंने स्वयं एक बार उठायी । उनका छत्रच्छायामें बुन्दे में साहित्ययुगका निर्माण हुआ । सैकड़ों कवि या हुए उस समय । छत्रपुरमें महाराजके बनवाये एक भग्नावशेष अब भी है ।

महाराज छत्रसाल विद्वानोंके सेवक थे । म और ब्राह्मणोंमें उनकी अपार श्रद्धा थी । दीन प्रजाके लिये वे प्राणोत्सर्ग करनेको सदा उद्यत रहते । प्र साक्षात् देवता मानती । दूर-दूरके लोग केवल उन करने आते थे । महाराजके मनमें हिंदू-धर्मके उद्धार ज्वाला प्रज्वलित होती थी । उन्होंने भय क्या होता जाना ही नहीं । विपक्षी उनके नामसे भयभीत केवल उन्होंने महाराष्ट्रके हिंदू-धर्मके पुनरुद्धारका म समय समझा था और उस महाकार्यमें सहयोग दिया था

मेवाड़चूड़ामणि महाराणा सांगा

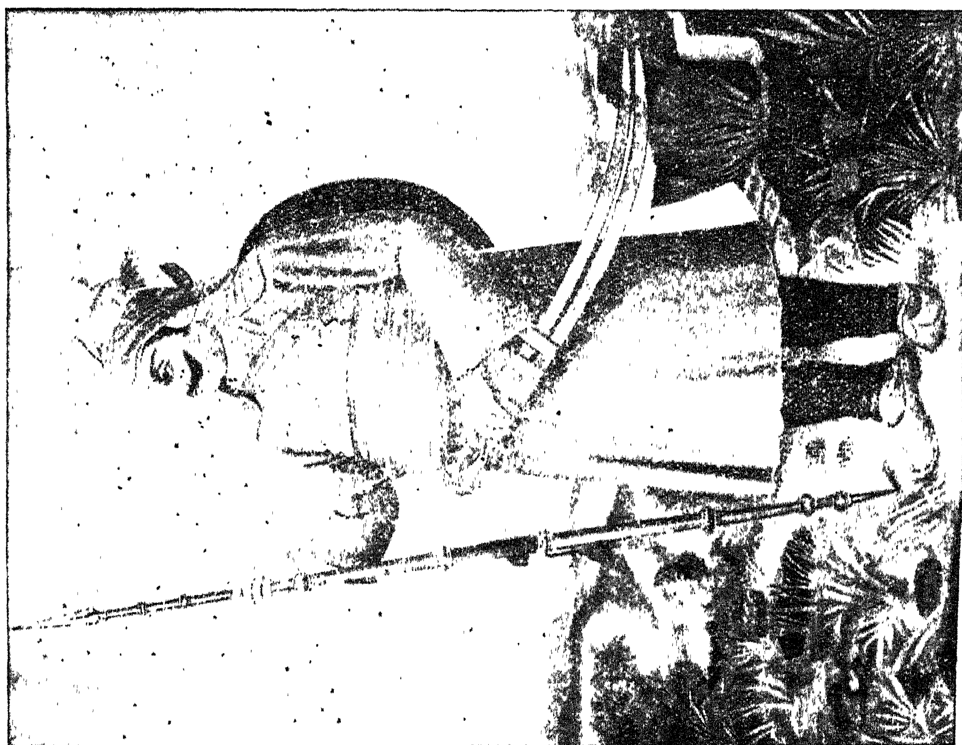
(लेखक—श्रीरामलालजी श्रीवास्तव बी० ए०)

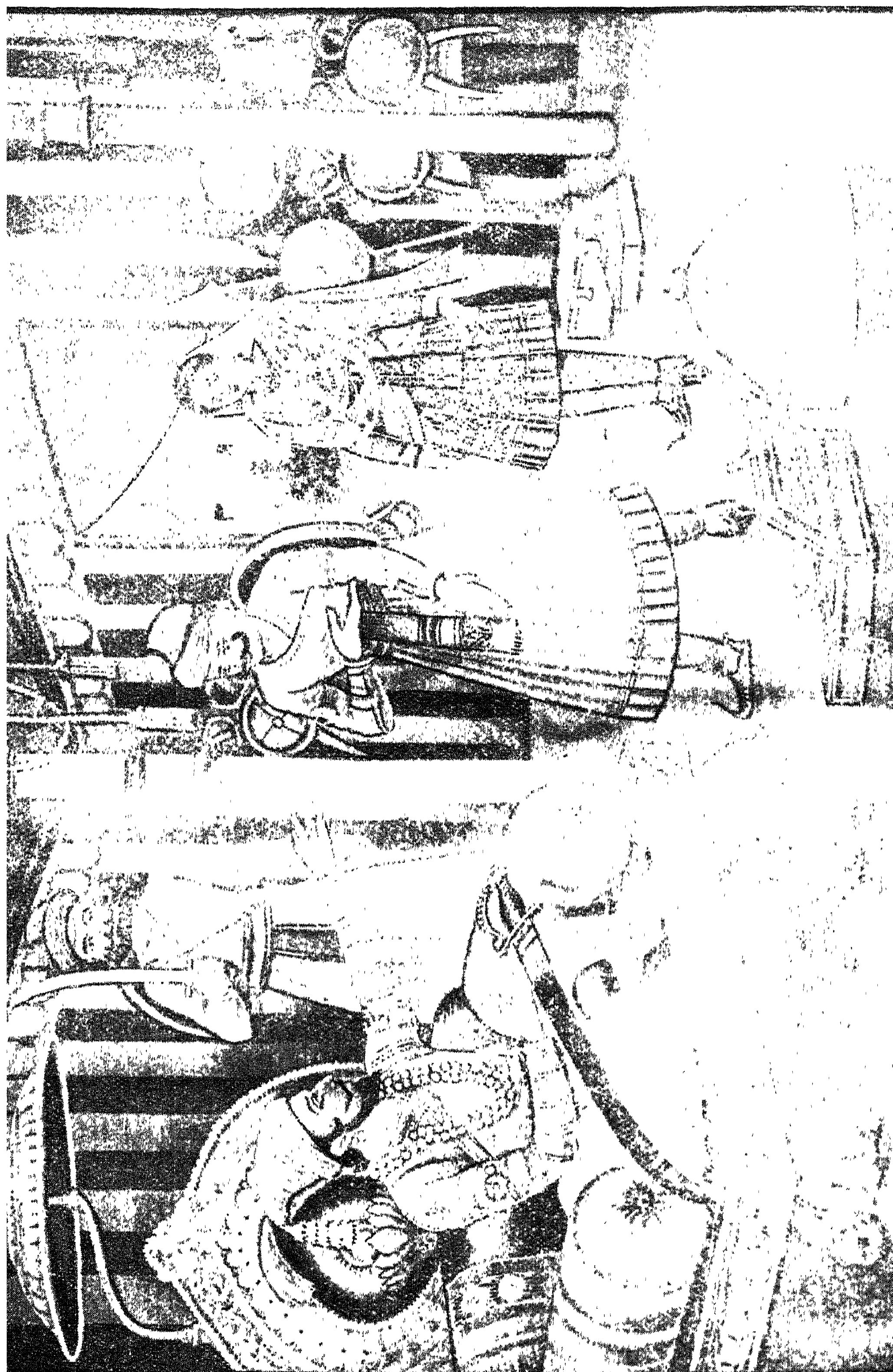
राणा प्रताप कहा करते थे 'यदि मेरे पितामह और मेरे पिता न आये होते, दिल्ली चित्तौड़के चरणोंमें जिसके शरीरपर शस्त्रोंके चालीस आघातोंके भयंकर , जिसने संग्राममें ही एक नेत्र, एक हाथ, एक पैर ा था, उस परम पराक्रमी महाराणा संग्रामसिंहके शल एवं तेजस्वी सेनापति विश्वके किसी दूसरे देशने नहीं । महाराणाकी सेवामें अस्सी हजार घुड़सवार रहते थे और जोधपुर, मारवाड़, ग्वालियर, चन्देरी, आबू आदिके नरेश उन्हें अपना मानते थे । उस महासेनानीको एक ही धुन थी—रम पावन भारतभूमिको यवनोंके अपवित्र शासनसे रना ।' लेकिन उनका व्यवहार मुसल्मान प्रजाके ऐसा ही था, जैसा पिताका पुत्रके प्रति होता है—ात्य इतिहासज्ञोंने भी स्वीकार किया है ।

लवा और दिल्लीके शासकोंके विरुद्ध महाराणा सांगा हीम लोदीने बकरोले और घटोलेके युद्धोंमें घुटने टेक मालवाके शाह मुजफ्फरको उसकी राजधानीमें ही उन्न किया और रणथम्भोरके दुर्गका उद्धार किया ।

वह कनवाहका अन्तिम युद्ध—बाबरके छक्के थे, उसके सैनिक विद्रोह करके भाग जानेको उद्यत थे अपने शराबके प्याले फोड़ डाले, कुरान लेकर उत्तेजित किया । इतनेपर भी कुछ होना नहीं था दुर्भाग्य—राणाका हाथी सहसा युद्धभूमिसे भाग सेनापतिके हटते ही सेना अस्त-व्यस्त हुई और बाबर हुआ । महाराणा सांगा कनवाहकी पराजयोंमें च विजय प्राप्त किये बिना चित्तौड़में चरण रखना अ धनी' को प्रिय नहीं था ।

महाराणा प्रतापने अपने उन्हीं पितामहका किया था । राजस्थानका इतिहास आनपर मिटनेव और अग्निमें अपने सुकोमल शरीरकी हँसते हँसते आ वाली सतियोंका पावन इतिहास है और उस





अपहृत मुस्लिम-महिला और हिंदू

(रचयिता—'श्रीविप्र' तिवारी)

रोंकी औरतोंको उड़ाकर अपनी बनानेकी कुप्रवृत्ति हिंदूकी नहीं है, उसके सामने तो 'परदारेषु मातृवत्'क
ज तो अपहृत महिलाओंकी शोचनीय अवस्था देखकर हृदय रो उठता है; क्या उन लोगोंकी यही सभ
उ सामने एक सर्वांगसुन्दरी मुस्लिम-महिला पकड़कर लायी गयी, उसे देखकर शिवाजीने कहा 'माता ! यदि
ने हुआ होता तो मैं भी आज कितना सुन्दर होता !' और उन्होंने उस महिलाको ससम्मान उसके पा
त्या ! यह है हिंदू-संस्कृति और हिंदू-धर्मकी मर्यादा।

(१)

नीय लेखनी यह कविके स्वकरको
र मसिपात्रको चलती है सर-सर !
दू-सभ्यताके उन अङ्कोंको बनाती !
य भारतीके जो भालपर चमकते हैं !
दू-संस्कृतिके अङ्क*, मुक्तासे प्रभावान,
नावलियोंको जो चकाचौंध करते !
दू-संस्कृतिके उन जलते प्रदीपोंकी
तित शिखाओंसे विश्वने किये हैं
ने मणि-मंदिरोंको शाश्वत ज्योतिर्मय;
ोंने बाँधी जो हिंदूकी मर्यादा,
ज भी अखंड है !
त्रकारकी यह, तूलिका विचित्रमय
त्रित करती है हिंदू-संस्कृतिका चित्र !

(२)

वीरवर शिवाके उस रोष-भूक
कम्पित हो डोल उठे तख्त शहनशाहों
अस्त-व्यस्त हो गयी शासनकी शृंख
काँटोंकी राहोंमें †हरमोंकी निवासि
दर-दर डोलती थीं वे न्योढ़ा 'हूर परियाँ
विश्वस्त परिचारक सम्मुख शिवाके,
सुन्दर सुललनाको लाया प्रमोद
अपहृत मुस्लिम वह नारी थी सु
चाँदको लजाती थी, लाज लजवंती
यौवन वसंतका उसपर प्रभाव
खिलती गुलाब पीत केशरकी क्यारी-स
बोले शिवराज-वीर भृत्यसे क्रुद्ध हो
'सैनिक ! किया है तुमने निंदनीय क्रू

(३)

अपहृत महिलासे फिर बोले शिवराज वीर
माता ! यदि जन्म लेता तेरे ही गर्भसे,
तेरे ही समान होता मैं भी तो रूपवान;
मा अधिकारणी हो समुचित सम्मानकी;
कंठसे उतार अनमोल मणि-मालाको
मेल डाली मोदसे सुराही···सुग्रीवमें;
बोले फिर गद्गद हो—'हिंदूने सीखा है
नारीके गौरवकी, नारीके धर्मकी
रक्षा करना ही, बस; अपनी हो, पराई हो;
माता हो, भगिनी हो, पुत्री हो, पत्नी हो;
सबका समादर वह करता है निर्विरोध !
अवनी और अम्बरमें, कण-कणमें, अणु-अणुमें—
हिंदू-सभ्यताकी जय, गूँज उठा जय-निनाद !!



---

* अक्षर । † अन्तःपुर ।

महाराणा प्रताप

रहसी, रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
ɪ बिसंभर ऊपंर रखिओ नहचो राण ॥
—अब्दुलरहीम खानखाना

र्न रहेगा और पृथ्वी भी रहेगी, (पर) मुगल-साम्राज्य नष्ट हो जायगा। अतः हे राणा! विश्वम्भर भगवान्के मने निश्चयको अटल रखना।'

राणाका वह निश्चय लोकविश्रुत है—

क कहासी मुख पतो इण तनसूँ इकलिंग।
तै ज्हाँईं ऊगसी, प्राची बीच पतंग॥

ार्य यह कि भगवान् एकलिङ्गकी शपथ है, प्रतापके से अकबर तुर्क ही कहलायेगा। मैं शरीर रहते धीनता स्वीकार करके उसे बादशाह नहीं कहूँगा। सूर्य ता है, वहाँ पूर्वमें ही उगेगा। सूर्यके पश्चिममें समान प्रतापके मुखसे अकबरको बादशाह निकलना है।

मई सन् १५३९, वि० सं० १५९६ ज्येष्ठ शुक्ला वह तिथि धन्य है, जब मेवाड़की शौर्य-भूमिपर कुटमणि प्रतापका जन्म हुआ। बाप्पा रावलके अक्षुण्ण कीर्तिकी उज्ज्वल पताका, राजपूती आन का वह पुण्य प्रतीक, महाराणा सांगाका वह पावन वि० सं० १६२८ फाल्गुन शुक्ला १५ ता० सन् १५७३ को सिंहासनासीन हुआ, अधिकांश नरेश परम कूटनीतिज्ञ सम्राट् अकबरके दरबारमें हो चुके थे। अनेकोंने अपनी कन्याएँ देकर बादशाहसे कर लिया था। प्रताप—शौर्यकी मूर्ति प्रताप एकाकी नी प्रजाके साथ और एकाकी ही उन्होंने जो धर्म एवं के लिये ज्योतिर्मय बलिदान किया, वह विश्वमें न्त्रता और अधर्मके विरुद्ध संग्राम करनेवाले, मान-रवशील मानवोंके लिये मशाल सिद्ध होगा।

ाट् अकबरकी कूटनीति व्यापक थी; राज्यको जिस न्होंने राजपूत-नरेशोंसे सन्धि एवं वैवाहिक सम्बन्ध-र्नय एवं विस्तृत कर लिया था, धर्मके सम्बन्धमें भी वे ीन इलाही' के द्वारा हिंदू-धर्मकी श्रद्धा थकित करनेके नहीं थे—कहना कठिन है। आज कोई कल कहे. प्रताप। अकबरका शक्तिसागर इस अरावलीके शिख ही टकराता रहा—वह नहीं झुका, नहीं झुका।

अकबरके महासेनापति मानसिंह शोलापुर वि लौट रहे थे। उदयसागरपर महाराणाने उनके प्रबन्ध किया। हिंदूनरेशके यहाँ, भला अतिथिका र होता; किंतु महाराणा प्रताप ऐसे राजपूतके सा भोजन कैसे कर सकते थे, जिसकी बुआ मुगल-अन्तः मानसिंहको बात समझनेमें कठिनाई नहीं हुई। अपम वे दिल्ली पहुँचे। उन्होंने सैन्य सज्जित करके आक्रमण कर दिया।

'हल्दीघाटी'—राजपूतानेकी वह पावन बलिद विश्वमें इतना पवित्र बलिदान-स्थल कोई नहीं। पृष्ठ रँगे हैं उस शौर्य एवं तेजकी भव्य गाथासे। अपने देश और नरेशके लिये वह अमर बलिदान वीरोंकी वह तेजस्विता और महाराणाका वह लोकोत्तर प इतिहासका, वीरकाव्यका वह परम उपजीव्य है। उष्ण रक्तने श्रावण संवत् १६३३ वि० में हल्दीघाट कण लाल कर दिया। अपार शत्रुसेनाके सम्मुख थोड़े- और भील सैनिक कबतक टिकते? महाराणाको प पड़ा और उनका प्रिय अश्व चेतक—उसने उन्हें पहुँचानेमें इतना श्रम किया कि अन्तमें वह सदाके लि स्वामीके चरणोंमें गिर पड़ा।

महाराणा प्रताप—वे प्रजाके आजसे शासक नह पर शासन करनेवाले थे। एक आज्ञा हुई और विज देखा—व्यर्थ है उसकी विजय। चित्तौड़ भस्म हो ग उजड़ गये, कुएँ भर दिये गये और ग्रामके लोग जं पर्वतोंमें अपने समस्त पशु एवं सामग्रीके साथ च गये। शत्रुके लिये इतना विकट उत्तर, यह उस सम राणाकी अपनी सूझ है। अकबरके उद्योगमें राष्ट्रियता देखनेवालोंको इतिहासकार बदायूनी आसफखाँके स्मरण कर लेने चाहिये—'किसीकी ओरसे सैनिक क्यों थे वे हिंदू ही और प्रत्येक स्थितिमें विजय इस्लामकी यह कूटनीति थी अकबरकी और महाराणा इसके समक्ष राष्ट्रगौरव लेकर अडिग भावसे उठे थे।

ंसी प्रकार जीवन व्यतीत करनेको बाध्य हुए। ो गुफाएँ ही आवास थीं और शिला ही शय्या थी। सम्राट् सादर सेनापतित्व देनेको प्रस्तुत था, उससे ?—वह केवल चाहता था प्रताप अधीनता स्वीकार उसका दम्भ सफल हो जाय। हिंदुत्वपर दीन-इलाही ी हो जाता। प्रताप—राजपूतकी आनका वह सम्राट्, वह गौरव-सूर्य इस संकट, त्याग, तपमें अम्लान डिग रहा। धर्मके लिये, आनके लिये अकल्पित है ा। कहते हैं महाराणाने अकबरको एक बार सन्धिपत्र पर इतिहासकार इसे सत्य नहीं मानते। यह अबुल-गढ़ी हुई कहानीभर है।

ल्पित सहायता मिली, मेवाड़के गौरव भामासाहने चरणोंमें अपनी समस्त सम्पत्ति रख दी। महाराणा सम्पत्तिसे पुनः सैन्य-संगठनमें लग गये। चित्तौड़को महाराणाने अपने समस्त दुर्गोंका शत्रुसे उद्धार कर लिया। उदयपुर उनकी राजधानी बना। अपने २५ वर्षों कालमें उन्होंने मेवाड़की केशरिया पताका सदा ऊँची

'चित्तौड़के उद्धारसे पूर्व पात्रमें भोजन, शय्या दोनों मेरे लिये वर्जित रहेंगे।' महाराणाकी प्रतिज्ञा अ और जब वे वि० सं० १६५३ माघ शुक्ला ११, जनवरी सन् १५९७ में परमधामकी यात्रा करने लगे परिजनों और सामन्तोंने वही प्रतिज्ञा करके उन्हें किया। अरावलीके कण-कणमें महाराणाका जीव अङ्कित है। शताब्दियोंतक पतितों, पराधीनों और उत लिये वह प्रकाशका काम देगा। चित्तौड़की उस पवि युगोंतक मानव स्वराज्य एवं स्वधर्मका अमर सन्देश होता सुन सकता है।

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै साप

—र

छत्रपति शिवाजी

'शत्रु महान् सेनानी है। मैंने उन्नीस सालतक युद्ध युद्धका सञ्चालन किया, परंतु उसकी शक्ति बढ़ती ही गयी।' —बादशाह औरंगजेब।

पूतोंका रक्त और वह भी विश्वके सर्वश्रेष्ठ मानधनी कुलका—जहाँ भी उसने अपनेको प्रकट किया, र्य अदम्य रहा है। महाराज सज्जनसिंह इसी कुलके वि०सं० १३७६में चित्तौड़ छोड़कर दक्षिण-भारतको ास बनाया। भोंसला* जाति आरम्भमें राणा कही और वह महाराज सज्जनसिंहकी ही सन्तति है। महारानी की कुक्षिसे इसी कुलमें शिवाजीका जन्म हुआ। जन्मसे शिवाजी 'मावली' बालकोंके साथ उनकी टुकड़ियाँ द्धके खेल ही खेलते। माता जीजाबाई-जैसी वीर-उन्हें पुराणोंकी महान् गाथाओंसे प्रोत्साहित किया। कोंडदेव-जैसे परमनीतिज्ञ एवं शूरमाके संरक्षणमें स्त्र-शिक्षा प्राप्त की और समर्थ स्वामी रामदास-जैसे महापुरुषके करोंकी अभय छाया उन्हें प्राप्त हो गयी। धर्मपर, गायोंपर, ब्राह्मणोंपर, मन्दिरोंपर, सती और असहाय जनतापर जो अत्याचार निरङ्कुश शकोंद्वारा हो रहे थे, शिवाजीका वीर हृदय उस आर्त क्रन्दनको सह नहीं सका। युवा होते-न-होते अपने बचपनके मावली-शूरोंका नेतृत्व सम्हाला राष्ट्र एवं संस्कृतिके परित्राणके लिये 'भवानी' (तलवार) की शरण ली।

शिवाजीके पिता शाहजी बीजापुर नवाबके सामन्त थे; किंतु शूर शिवाजी अन्यायी यवनको मस्तक यह सम्भव नहीं था। शिवाजीने बीजापुरके दुर्गोंपर करके अधिकार करना प्रारम्भ किया। शाहजीको कैद कर लिया। धुरन्धर राजनीतिज्ञ शिवाजीने सीधे पत्रव्यवहार किया और फल यह हुआ कि शाहजहाँने अपना सामन्त घोषित कर दिया। बीजापुर-नवाब दम नहीं था कि दिल्लीदरबारके सामन्तको कैद रख

बीजापुर-नवाबका सेनापति अफजलखाँ सेना बढ़ आया। धूर्ततापूर्वक उसने सन्धिके लिये बुलाया। दोनों अकेले मिलनेवाले थे। यवन- मिलते ही तलवार उठायी, परंतु शिवाजी अबोध यवनोंके विश्वासघातसे परिचित थे। उनके हाथके अफजलखाँकी कोख फाड़ दी। वनमें छिपे मराठे टूट पड़े। यवन-सेना परास्त हुई। बीजापुरने विवश सन्धि की। शिवाजीने मुगलोंके किले जीतने प्रारम्भ

* भोंसला' शब्द सूर्यवंशके द्योतक 'भास्वत' कुलका अपभ्रंश है।

बड़ी भारी सेनाके साथ शायस्ताखाँ भेजा गया, अपने ही गर्व और प्रमादसे परास्त हुआ। उसकी घुसकर मराठोंने आक्रमण किया और शिवाजीकी उसकी चार अँगुलियाँ कट गयीं। औरंगजेबने मुअज्जम और जयसिंहको भेजा शिवाजीके विरुद्ध। र ही लड़ें, यह महाराज शिवाजीको अभीष्ट नहीं ापति जयसिंहके परामर्शसे वे दिल्ली जानेको प्रस्तुत हो रंगजेबने उनका उचित सत्कार नहीं किया। दरबारमें शिवाजी यह अपमान कैसे सह लेते। धूर्त औरंगजेबने द कर लिया, पर कौशलसे वे निकल आये। लौटनेपर रायगढ़ दुर्गमें सन् १६७४ ईस्वीमें शिवाजीका राज्याभिषेक हुआ। बीजापुरनरेशने देकर उनसे मित्रता की। दक्षिणके शासकोंने उन्हें ग्रणी स्वीकार किया। महाराज शिवाजीका ध्येय वी' स्वराज्यका संस्थापन और उसके लिये वे सतत ह।

ोखाँ लिखते हैं कि 'शिवाजीने कभी किसी मस्जिद, थवा किसी धर्मको माननेवाली स्त्रीको हानि नहीं। यदि उनके हाथ कोई कुरानकी प्रति लग । वे उसे तुरंत आदरपूर्वक किसी मुसल्मानको।' छत्रपति शिवाजी महाराजके उद्योगको येक या संकीर्ण माननेवालोंको मुसल्मान लेखकका पढ़ लेना चाहिये। कहा जाता है कि किसी युद्धमें एक परम सुन्दरी यवनराजकुमारीको बंदी करके महाराजके सम्मुख उपस्थित किया। महाराज कुछ क्ष और देखकर बोले—'यदि मेरी माता ऐसी सुन्दर मैं इतना कुरूप न होता।' फिर सैनिकको डाँटकर 'इसको सुरक्षित इसके घर पहुँचा दो।' उन्होंने उसे पूर्वक उसके पिताके समीप भिजवाया। पर-स्त्रीमात्र भावका यह उज्ज्वल आदर्श ! महाराजका किसे द्वेष नहीं था। उन्होंने तो अत्याचार एवं अधर्मके तलवार उठायी थी। उनका उद्योग राष्ट्रिय संस्कृतिकी लिये था।

५३ वर्षकी अवस्थामें रायगढ़ दुर्गमें ही उन ा शरीर छोड़ा। उनका साम्राज्य—वह तो कभी उन था। उसे तो उन्होंने अपने गुरु समर्थ स्वामी र चरणोंपर चढ़ा दिया था और समर्थके साम्राज्यकी ह है वह गैरिकध्वजा। महाराज एक प्रतिनिधि गुरुदेवके और इस रूपमें महाराज एक निःस्पृह मह योगी हैं इतिहासके पृष्ठोंमें।

> राखी हिन्दुआनी, हिन्दुआन को तिलक राख्यो
> स्मृति पुरान राख्यो बेद बिधि सुनी ै
> राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन कै
> धरामें धरम राख्यो, गुन राख्यो गुनी
> 'भूषन' सुकवि जीति हद मरहट्टन क
> देश-देश कीरति बखानी तव सुनी
> साहके सपूत सिवराज ! समसेर तेरी
> दिल्ली दल दाबिके दिवाल राखी दुनी



पेशवा बाजीराव

ई भी हिंदू बाजीरावसे अधिक सचाई और सफलताके दुओंकी एकताके लिये प्रयत्न न कर सका।'

—वीर सावरकर

न् १६९९ में महाराष्ट्रके श्रीवर्द्धन ग्राममें एक ब्राह्मण- जन्म लिया। बचपनमें ही उसके पिता पेशवा बालाजी ने उसे सैनिक शिक्षा दिलायी और श्रीब्रह्मेन्द्रस्वामीने कृपा की। योगिराज ब्रह्मेन्द्रस्वामी उस हिंदूनरेशसे क नहीं थे, जिसके राज्यमें हिंदू-धर्मके तनिक भी की सम्भावना होती। पिताकी मृत्युके पंद्रह दिन यही बालक बाजीराव शाहूजी भोंसलेद्वारा पेशवा बनाये उन्होंने सनद प्राप्त करके पूनामें अपना केन्द्र बनाया था। मुगल बादशाह, निजाम, मालवाके यवन सूबे फिरंगी इसमें बाधक थे और अपनी नीतिकुशलता तथ पेशवा बाजीरावने इन सब बाधाओंको सुलझा लिया मालवापर दो बार विजय प्राप्त की। कर्णाटक वि निजामके षड्यन्त्रको विफल कर दिया, जो वह मिलकर करना चाहता था, और उसे युद्धमें पराजि सन् १७२७ के युद्धमें निजामने घुटने टेक दिये लौटते ही बुन्देलखण्डके शासक महाराज छत्रसा मिला। मालवाके सूबेदार बंगशने बुन्देलखण्डपर किया था और बुन्देलकेसरीने हिंदुत्वकी एकताके पेशवासे सहायता माँगी थी। [illegible]

ळकर, भोंसले, गायकवाड़, सिंधिया—सभी महाराष्ट्र-
शवाको अपना नेता और सेनापति स्वीकार कर चुके
वाका हिंदू-संगठन बड़े सफलरूपमें चल रहा था।
बादशाहने उन्हें मौखिकरूपमें मालवाका शासक
कर लिया, पर आज्ञापत्र देनेमें इधर-उधर करने लगा।
सेना सजायी और धावा किया, पर दिल्ली-बादशाहके
निजाम और अवधके नवाब सआदतखाँने भी
पराजित करनेका प्रयत्न किया; फिर भी तीनोंकी एक
नहीं। बादशाह सन्धि करनेपर विवश हुए। हिमालय-
कुमारीतक पेशवाका प्रभाव व्यापक हो गया।

दिल्लीपर नादिरशाहने आक्रमण किया, यह
पाते ही पेशवा बाजीरावने सेना सजायी और घोषि
कि 'नादिरशाह हिंदू-मुसलमान दोनोंका शत्रु है।' य
यह सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है कि पेशवा समस्त
विदेशी आक्रमणसे सुरक्षाके लिये कितने सचिन्त थे
युद्धयात्रामें नर्मदा किनारे सन् १७४० की २२
हिंदुत्वके इस महासेनापतिने शरीर छोड़ा। बीस व
पेशवापदपर रहे और जीवनके अन्तिम दिनतक उन्हों
जातिकी एकता और धर्मकी सुरक्षाके लिये अथक उद्यो

—र



गुरु गोविन्दसिंह

नानककी संतवाणीने सात्त्विक श्रद्धालुओंमें जो
ना दी, दिल्लीके बादशाहोंके अत्याचारने उसे
रके तलवार उठानेपर बाध्य किया। कोई भी सच्चा
राश्रय उत्पीड़ितोंका आर्तनाद कैसे सह सकता है।
नदेवके द्वारा ग्रन्थसाहबका संकलन हुआ, उस समय-
ोका शासन अकबरके हाथमें था; किंतु जहाँगीरके
र आते ही गुरु हरगोविन्द धर्म एवं निराश्रयोंकी
ये भाला और तलवार उठानेको विवश हुए।
सैनिकवृत्ति उन्हींसे प्रारम्भ हुई। जहाँगीरने गुरु
दको बंदी किया और वे बारह वर्षोंतक ग्वालियरके
ैद रहे।

तेगबहादुर परम सौम्य एवं परहितचिन्तक महा-
। उन्होंने समझ लिया था कि धर्मकी रक्षा उनके
रा ही होगी। गुरु तेगबहादुर एक दिन उदास
ालक गोविन्दसिंहने उदासीका कारण पूछा। गुरुने
 देश और धर्मको किसी महान् आत्माके बलिदानकी
ता है। बालककी तेजस्विता व्यक्त हो गयी—'आपसे
ंसारमें महान् आत्मा कौन है?' सचमुच गुरु
रने बालककी बात हृदयमें रख ली। मुसल्मानोंके
से पीड़ित, शरणमें आये ब्राह्मणोंके द्वारा उन्होंने
कराया—'हिंदुओंके नेता गुरु तेगबहादुर इस्लाम
र लें तो सब हिंदू मुसल्मान हो जायँ।' क्रूर
ने धर्तापूर्वक उन्हें दिल्ली बुला लिया और

गुरु गोविन्दसिंहपर पिताके बलिदानका प्रभाव
ही, साथ ही उन्होंने देख लिया कि औरंगजेबके अ
हिंदू-धर्मकी रक्षा केवल संगठित सैनिक शक्तिसे ही
है। नैनादेवीके पर्वतपर वर्षभरतक भवानीकी र
लिये यज्ञ किया गुरुदेवने और उसके पश्चात् उन वीरे
लिया, जो देवीके लिये स्वयं बलिदान होनेको उद्यत हुए,
'खालसा' कहलाये। स्वयं गुरुदेवने इन्हें 'अमृत'
और उनके हाथसे पिया। 'खालसा' वही हो सकता
पाँच खालसा बन्धुओंके हाथसे अमृत (कृपाणसे अ
जल) पी ले। सिख-जाति सम्पूर्ण सैनिक हो गयी
गोविन्दसिंहने कंघी, कच्छ, कर्द (कड़ा), केश और
अनिवार्य कर दिया प्रत्येक सिखके लिये।

गुरु गोविन्दसिंह अमोघ निशान मारते थे। उन
अचूक था। वे महाशूर थे और दो लंबी तलवारें बाँ
उन्होंने नाहन, आनन्दपुर और चकोरमें अपने सैनिक
स्थापित किये। दुर्भाग्यसे कुछ पहाड़ी हिंदूनरेश
विरुद्ध हुए। औरंगजेबने सरहिंद और लाहौरके सूबे
उनके विरुद्ध भेजा। गुरुदेवके दो बालक बंदी हुए
पिशाचोंने उन होनहार बालकोंको जीते-जी मस्जिदकी
चुन दिया। इस युद्धसे हटनेपर दमदमा
गोविन्दसिंहने सिखोंका 'दसवाँ ग्रन्थ' निर्मित किया।
अन्तिम दिन गुरु गोविन्दसिंहने दक्षिण-भारतमें गो
तटपर 'हुजूर साहब' में बिताये। यहीं सोते समय दो प

क, अद्वितीय शूरमा और माधवदास बैरागी (बन्दा
जैसे विरक्तका प्रेरक योगिराज महापुरुष उठ गया ।

सकल जगतमें खालसा पंथ गाजै ।
जगै धर्म हिंदू, सकल भंड भाजै ॥

का महान् आदर्श सम्मुख रखकर गुरु गोविन्दसिंहने को हिंदू-धर्मके रक्षक सैनिकोंके ही रूपमें संगठित । वे किसी नवीन धर्मकी स्थापनामें नहीं लगे थे, में ग्रन्थ' से सिद्ध है । सनातन धर्म एवं संस्कृतिकी ये ही उन्होंने सिख जातिका सैनिक संगठन किया । की फतह' और 'सत् श्री अकाल' के युद्धघोष गौ, ब्राह्मण, मन्दिर और धर्मकी रक्षाके लिये ही गु आज्ञाकारियोंने गुंजित किये ।

गुरु गोविन्दसिंह अच्छे सुकवि थे और हिंदू-धर्ममें गाढ़ निष्ठा थी । सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेम बुद्धिसागर, चण्डी-चरित्र आदि उनके ग्रन्थ केवल ही कारण नहीं, अपनी उन्नत रचनाके कारण भी अ हैं । उनकी वाणीमें धर्मनिष्ठा, श्रद्धा और ओज है । कृपाण तो सदा धर्मरक्षाके लिये ही खुली रही । धर्म हिंदू-धर्मके परित्राणके लिये ही उन्होंने पिताकी, पुत्रों स्वयं अपनी आहुति दी । —र



महाराज रणजीतसिंह

करचकिया' उस समय पंजाबकी एक छोटी-सी ी, जब वीरवर महासिंहकी पत्नी मलबाईने दो नवम्बर ८०को रणजीतसिंहको जन्म दिया । बचपनमें ही कलनेसे रणजीतसिंहका एक नेत्र नष्ट हो गया और ख दागोंसे भर गया । पाँच वर्षकी अवस्थामें ही वेवाह 'कन्दिया' की राजकुमारी 'महताबकुमारी' के ो गया । और बारह वर्षकी अवस्थामें पिताके ो होनेपर रणजीतसिंह सिंहासनपर बैठे । उन्होंने र्षकी अवस्थामें वस्तुतः राज्य सँभाला । इससे पूर्व र्षतक उनकी सास 'सदाकुमारी' राज्यका सञ्चालन हीं । शूर, नीतिनिपुणा सासने उन्हें नीतिकुशल । रणजीतसिंहकी आगामी विजयोंमें उनकी सास ाके साथ अनेक बार उनकी सहायता करती रहीं ।

सन सँभालते ही रणजीतसिंहको सबसे पहले उन सरदारोंका दमन करना पड़ा, जो उनकी अल्पवयमें बढ़ा चुके थे । अफगानोंके आक्रमणसे उस समय सिक्ख सरदार पहाड़ोंमें भाग जाते थे । जब अफगान ते, तब वे पहाड़ोंसे लौटकर शासन-व्यवस्था चलाते । सरदार जमानशाहके सिन्धुनद पारकर लाहौरकी ओर ही दूसरे सब सिक्खनरेश पहाड़ोंमें भाग गये । सिंहको भी पलायन करना पड़ा । रणजीतसिंहने उसी इस भयसे पंजाबको मुक्त करनेका दृढ़ संकल्प कर उन्होंने पहाड़ोंमें छिपे सरदारोंको एकत्र करके की । बाद लाहौरमें ही था कि रणजीतसिंह सरदारोंने

रणजीतसिंहके बढ़ते प्रभावने सहयोगी सरदारों ईर्ष्या उत्पन्न कर दी । उन्होंने षड्यन्त्र करके हस्सतख एक छट्ठा जातिके सरदारको रणजीतसिंहके वधके लिये किया । षड्यन्त्र विफल रहा । हस्सतखाँ मारा गय रणजीतसिंह समझ गये कि सरदारोंका संगठ मुसल्मानोंके भयसे छुटकारा सम्भव नहीं है । उन्हें पंजाबपर विजय करके उसे दृढ़रूप देनेका निश्चय दूसरा उपाय नहीं था विदेशियोंके आतङ्कसे मुक्ति

महाराज रणजीतसिंह केवल प्रारम्भिक ही पढ़े थे और विदेशियोंसे हिंदी तथा पं पंजाबी बोलते थे और उनके आज्ञापत्र गुरुमुखी जाते थे; परंतु वे अत्यन्त कुशल राजनीतिज्ञ थे लक्ष्यसिद्धिके सुअवसरोंका बड़ी निपुणतासे चुनाव शत्रुके दुर्बल समय एवं स्थानको वे भली प्रकार सकते थे । वैसे वे परम उदार थे और उन्होंने ऐसे किर राज्यपर अधिकार नहीं किया, जिसने उनकी स्वीकार कर ली । कर लेकर राजाओंको छोड़ देनेकी भारतीय परिपाटी उन्होंने बनायी रक्खी । सन् उन्होंने लाहौरपर अधिकार किया । इससे पूर्व अ राज्य उनके वशवर्ती हो चुके थे । सन् रणजीतसिंहका विधिवत् अभिषेक हुआ । उन्होंने की उपाधि धारण की । उसी समय लाहौरमें उनके सिक्का ढालनेवाली टकसाल स्थापित हुई । उन

पंजाबतक फैली थीं । नीतिकुशलता और शौर्यसे हने सबको अपने वशमें कर लिया । उन्होंने पूरे आधिपत्य स्थापित किया । इस प्रकार 'सुकरचकिया' के पुत्र होकर वे 'पंजाबकेसरी' हो गये । उनका पूर्ण हुआ । अफगान अब पंजाबकी ओर देखनेका हीं कर सकते थे । अंग्रेजोंने उनके यहाँ दूत भेजा ई लेकने उनसे मित्रताकी सन्धि की । पटियाला, दिके सरदार जब महाराज रणजीतसिंहके विरुद्ध प्रतिनिधिसे सहायता लेने गये, तब उसने स्पष्ट कह वह केवल गुप्त सहायता दे सकता है, प्रकटरूपसे सरी' का विरोध अंग्रेज नहीं करेंगे । यह समाचार राज रणजीतसिंहको मिला, तब उन्होंने स्वयं पटियाला सरदारोंको आमन्त्रित किया और उनसे मैत्री की ।

ाबके विस्तृत शासनमें महाराज रणजीतसिंहका जीवन द्रोही सरदारोंके साथ युद्ध करते ही व्यतीत हुआ । ो शक्ति बढ़ रही थी । शतद्रू (सतलज) के दक्षिणी उन्होंने अपना पंजा फैला लिया था । महाराज हने भारतके मानचित्रको देखकर ठीक ही कहा क दिन यह सब लाल (अंग्रेजशासित) हो ' महाराज रणजीतसिंहको शतद्रूके उत्तर-तटतक ही ाज्यसीमा रखनी पड़ी । वे परम नीतिज्ञ थे । उन्होंने र इस विदेशी सत्ताको नीचे ढकेलनेकी इच्छा की; न्होंने देखा कि दूसरे नरेश अंग्रेजोंके सहयोगी हैं । ा साथ देंगे, इसकी आशा नहीं । विवश होकर उन्होंने ो मित्र बनाये रखना हितकर समझा । अंग्रेज भी चेष्टा करके समझ चुके थे कि वे महाराज सिंहको छेड़कर लाभ नहीं उठा सकते । अतः उनके ालमें शतद्रूको पार करनेका लोभ उन्हें भी दबाये ा पड़ा । सन् १८०९ में अंग्रेजोंकी महाराज सिंहसे जो सन्धि हुई, उसमें दोनोंने शतद्रूको राज्य-ान लिया ।

ोलियन बोनापार्टके वाटरलूके संग्राममें पराजित अनेक फ्रांसीसी युवक वहाँसे भागे और उन्होंने [illegible]

काश्मीरके शासक शाहशुजाको पराजित करके कोहेनूर हीरा प्राप्त किया था । उनकी इच्छा थी हीरा पुरीमें भगवान् जगन्नाथके श्रीविग्रहको भूषि दुर्भाग्यवश महाराज जीवनकालमें उसे पुरी भेजनेकी नहीं कर सके । महाराजके शरीरान्तके पश्चात् अधि हीरेको 'राज्यकी सम्पत्ति' कहकर भेजना अस्वी दिया ।

सन् १८३१में १६ अक्टूबरको रोपड़में दशहर हुआ । गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिङ्कसे इ महाराजकी भेंट हुई । इस समय महाराजकी अंग्रेजे सन्धि हुई । अंग्रेजोंको सिन्धु नदीसे व्यापार अधिकार मिला । सन् १८३८में महाराज रणजी सहायतासे ही अंग्रेज-सेना अफगानिस्तानमें विजयी ह वहाँके सिंहासनपर शाहशुजाको बैठा पायी । इस विजयोत्सवके उपलक्षमें अतिथियोंके सत्कारके स महाराजको लकवेका रोग हुआ । इससे पहले भ इस रोगका एक बार आखेट होना पड़ा था । इसी क्रममें २८ जून सन् १८३९ को पंजाबका वह सूर्य गया । महाराजकी अन्त्येष्टिमें दस लाख रुपये व्य महाराजके साथ उनकी सन्तानहीन चार रानियाँ, सात तथा तीन और सेविकाएँ सती हुईं । ध्यानसिंह श सपरिवार चितापर चढ़ने जा रहे थे । उन्हें बड़ी ब रोका जा सका ।

महाराज रणजीतसिंह छोटे कदके अत्यन्त पुरुष थे । विदेशियोंने उनके आतिथ्य-सत्कार और सम्भाषणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । अपने जीवनमें अनेक तीर्थोंकी यात्रा की । उनके लिये सिक्ख-गुरु हिंदू-मन्दिर समान थे । काशीमें भगवान् विश्वनाथके शिखरको उन्होंने स्वर्णपत्रसे आच्छादित तीर्थयात्राके समय दुखियों, दीनों तथा साधु-ब उन्होंने लाखों रुपये वितरित किये । दुष्टोंको दमन वे सदा दत्तचित्त रहे । जब भी उन्हें किसी अत्याचारका समाचार मिला, उन्होंने अविलम्ब उसके उद्योग किया । पंजाबमें मुसलमानोंके आतङ्कसे सि हिंदू-धर्मको निर्भीक करके पुनः शक्ति देनेवाले वे

बन्दा बैरागी

ामय प्रभुके इस अद्भुत रंगमञ्चपर एक-से-एक
ात्र आया ही करते हैं। त्याग, तटस्थता, शौर्य तथा
जितना सुन्दर सामञ्जस्य बन्दाके जीवनमें हुआ है,
ाके निष्काम कर्मयोगका वैसा उज्ज्वल आदर्श इस
तिहासमें मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। गुरु गोविन्द-
तीर्थयात्रा करते हुए दक्षिणभारत पहुँचे, तब
मणराव उन्हें त्यागी, तपस्वीके वेशमें एक पर्वत-
।

ाथ अबलाएँ तुमसे रक्षाकी आशा करती हैं।
आज म्लेच्छोंकी छुरियोंके नीचे तड़पती हुई तुम्हारी
रही हैं! हमारे देव-मन्दिर ध्वस्त किये जा रहे हैं।
। धर्म कार्यक्षेत्रमें तुम्हारी सेवाकी पुकार कर रहा
किस धर्मकी आराधना करोगे तुम?' एक प्रख्यात
क लक्ष्यवेधी धनुर्धर, अमित उत्साही सुयोग्य शासक
र भारी आपत्तिके कालमें राज्य छोड़कर कौपीन
रके वनवासी हो जाय—यह गुरु गोविन्दसिंह-
ष्ट नहीं था।

आपका बन्दा हूँ!' लक्ष्मणरावने घुटने टेककर
ुकाया और उसी दिनसे वे सचमुच 'बन्दा' हो
ा जाता है कि गुरु गोविन्दसिंहने स्वयं उन्हें अपनी
प्रदान की।

ाण भारतसे 'बन्दा' पंजाब आये। गुरु गोविन्दसिंह
ो चुके थे। उनका शरीर अधिक दिनोंतक चल
। इतिहासमें वह घटना भी क्या भूलनेकी वस्तु है,
गोविन्दसिंहके छोटे-छोटे बच्चोंको जीवित ही दीवालमें
या गया था? बन्दा इस घटनासे अत्यन्त क्षुब्ध हो
न्होंने सिक्ख शूरोंको उत्साहित किया, एकत्र किया
होरपर आक्रमण कर दिया।

ल्मान इतिहासकारोंने द्वेषवश बन्दाको अनेक
लाञ्छित करनेका प्रयत्न किया है। वे उन महापुरुष-
जादूगर, पता नहीं क्या-क्या कहते हैं; पर उन्हें भी
करना पड़ा है कि बन्दा लोकोत्तर शूर थे। उनके
छूटे बाण कभी लक्ष्यच्युत नहीं होते थे। वे रणक्षेत्रमें
किट होते और विपक्षके प्रधान-प्रधान नायकोंको चुन-

थे। बन्दा सदा बैरागी ही रहे। वे प्रायः यु
समीप पहाड़ीपर ध्यानस्थ बैठे रहते। उनका स्वभाव
एकान्तमें ध्यान करनेका था। एक क्षण भी अनावश
कार्यमें लगनेकी उनसे आशा नहीं की जा सकती थ
क्षेत्रमें जब शत्रु बलवान् पड़ते, तब सिक्खसेनाके
उनको ढूँढ़ते। वे अपने अश्वपर बैठकर तूफानव
आते थे और जैसे ही उन्हें लगता कि अब उनकी आ
नहीं है, वे लौट पड़ते और इस प्रकार पर्वतप
ध्यानस्थ हो जाते, जैसे कोई घटना ही नहीं हुई हो।

दिल्ली-सम्राट् बहादुरशाह प्रथमने स्वयं सेन
बन्दाका सामना किया और वह उन्हें बन्दी करने
भी हो गया। लोहेकी जंजीरोंमें बँधे बैरागीको ह
जाया जा रहा था। बड़ी कठिनतासे छलपूर्वक
उस सिंहको बाँध सके थे। बन्दा—महायोगी
अपनेको सम्हाला। प्राणोंको स्थिर किया और सुदृढ़
जिनमें वे जकड़े थे, तड़-तड़ करके टूट गयीं।
सावधान होनेसे पूर्व समीपका यवन सैनिक घोड़ेसे
फेंक दिया गया। उसकी तलवार लेकर अश्व-पी
बन्दाका—सावधान बन्दाका कौन सामना करता
अपने सभी बन्दी साथियोंको अकेले मुक्त कर लिया

सिक्खसेना बन्दाके नेतृत्वमें दुर्दमनीय हो ग
अनेक बार उसने यवन-दुर्गपतियोंको परास्त किया
बार अपार सम्पत्ति उनके हाथ लगी। कई
नायकोंने अनुभव किया कि उन्हें बन्दाका स्थायी ने
हो जाय तो अजेय सिक्ख-साम्राज्य स्थापित हो स
अनेक बार उन्होंने अनुरोध किया कि विजयमें मि
वितरित न करके बन्दा स्वयं उसको स्वीकार कर
विजित दुर्गोंपर अधिकार करके उनके अधिपति बनें
ही शक्ति थी कि वे सिक्खसरदारोंको चाहे जब
कर लेते थे।

'मैं बैरागी हूँ और गुरुका बन्दा। मुझे
राज्यका क्या करना है!' सचमुच वे महान् बैर
कभी विजयमें मिले धनका कोई अंश उन्होंने छुअ
उनकी निजी आवश्यकताओंका भार भी उनके

थे । बन्दा तो दो स्थानोंपर मिलते थे—समर-क्षेत्रमें पीठपर या पर्वतकी शिलापर ध्यानस्थ ।

ल्लीके सिंहासनपर बहादुरशाहके बाद फरुखसियर उन्होंने काश्मीरके सूबेदार अब्दुलसमदखाँको रागीके विरुद्ध ससैन्य भेजा । अब्दुलसमदखाँने से काम लिया । उसने सिख-सरदारोंके पास सन्देश हमारी सिखोंसे कोई शत्रुता नहीं । सम्राट् सिखोंको राज्य देनेको प्रस्तुत हैं । बन्दा सिख नहीं है । सिखोंको भड़काकर सम्राट्का द्रोही बना दिया है । सिखोंका विनाश हो जायगा । हम केवल बन्दाको आये हैं ।'

दाने देख लिया कि सिखोंमें बुद्धि-भेद उत्पन्न हो । युद्धमें वे पूरा उत्साह नहीं दिखलाते । विवश उन्होंने दुर्गका आश्रय लिया । समदखाँ अपनी के सन्देश भेजनेमें लगा रहा । सिखोंने बन्दासे वह सिख है या नहीं । बन्दाका एक उत्तर था गुरुका बन्दा है । इससे न कम न अधिक । सिखोंने हकानेमें आकर दुराग्रह किया कि बन्दा विधिपूर्वक स्वीकार कर ले ।

र्म स्वीकार किया नहीं जाता । वह हृदयसे स्वीकार । मेरा धर्म किसी प्रकार त्रुटिपूर्ण नहीं और न किसी क कारणसे मैं उसे बदलनेको प्रस्तुत हूँ ।' निर्भीक । बैरागीका । सिखोंमें अनेक इससे रुष्ट हो गये । प्रधान नायक अपने दलके साथ दुर्ग छोड़कर गये । अब्दुलसमदने उन्हें आश्वासन दिया था चुपचाप जाने दिया जायगा; परन्तु उन्हें बन्दी गया और बड़ी निर्दयतापूर्वक मारा गया ।

त थोड़े सिख थे, जो उस महापुरुषको ठीक समझ । उन्होंने बन्दाका अन्ततक साथ दिया । थोड़े थे, दुर्गकी सामग्री समाप्त हो गयी थी । अन्ततः किसी अपने ही सैनिकने शत्रुके बहकानेसे दुर्ग-द्व दिया । बन्दा और उनके ७८४ साथी पकड़ लिये ग बार सिंहके पिंजड़ेमें बन्दाको बंद करके हाथीप भेजा गया ।

'तुम हमारा धर्म स्वीकार कर लो, तुम्हें ज दिया जायगा !' सम्राट्के प्रलोभनको एक भी सिखने नहीं किया । बन्दाको उन्होंने धर्म-परिवर्तनका भी छोड़कर अपनी सेनाके सेनापति पदको स्वीकार कहा । बैरागी क्या यवन-सम्राट्के अत्याचारोंमें यों स्वीकार कर लेते ? प्रतिदिन १०० बैरागी सिख-शूरोंके जाते । सात दिनोंतक यही क्रम चला । धर्मके लिये देना उन मनस्वियोंको गौरवमय प्रतीत हो रहा था । प्रलोभन उनके सम्मुख तुच्छ सिद्ध हुए ।

सन् १७१५ का वह मनहूस दिन आया । आठ बन्दा नगरसे बाहर लाये गये । निश्चित योजनाएँ पैशाचिक थीं कि बादशाह उन्हें देखनेका साहस न कर बन्दाके सम्मुख उनके इकलौते पुत्रकी छाती फाड़कर ज उस बालकका कलेजा निकाल लिया और बलपूर्वक मुखमें ठूँस दिया । वे बैरागी अर्धोन्मीलित नेत्र कि कुछ देखते ही न हों । तपायी हुई लोहेकी शलाखोंसे को पीटा गया और जब उनका पूरा शरीर झुल तब गरम चीमटोंसे उनका मांस नोचा जाने लगा इतनेपर भी मुसकरा रहे थे । निजाबुद्दौलाने पूछा— पीड़ा मिलनेपर भी तुम प्रसन्न कैसे हो ?' बन्दाने कहा आत्माके स्वरूपको पहचानता है वह इस बातको जानत आत्मा अमर है तथा दुःखातीत है ।' इस उत्तरसे चकित रह गये । बैरागीके मुखपर वेदनाका चिह्नत था । वे शरीरके संसर्गसे कबके परे हो चुके थे । उनके शरीरको अत्याचारियोंने हाथीके पैरोंतले रुँदवाया सच्चे शहीद हो गये । धर्मकी रक्षाके लिये उनका यह अमर है । —सु०

ज्ञान-योग-रत बन्दा वीर विकट त्यागी वैरागी था ।
संस्कृति-धर्म-देशका सच्चा रक्षक औ अनुरागी था ॥

उदार हिंदू-धर्म

(रचयिता—श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी उपनाम डाँगीजी)

(१)

हमारा हिंदू-धर्म उदार।
योंका संग्रह-मन्दिर, सत्य-प्रेमका द्वार॥
हमारा हिंदू-धर्म उदार॥ ध्रु०॥
ड़-शक-हूण-देव था आर्य-अनार्य अनेक—
का सुन्दर संगम हिंदु-जाति सब एक॥
ले सब आचार-विचार,
किंतु हैं सहयोगी-व्यवहार।
योग्यता या रुचिके अनुसार,
किया करते हम सदा सुधार॥
शैव, शाक्त, गणपति, रविके पूजक सब सार।
हमारा हिंदू-धर्म उदार॥

(२)

ुरि, हर, गणराज, प्रभाकर, सिद्ध बुद्ध, सुरनाथ।
ारदा, श्री, सावित्री आदि शक्तियाँ साथ॥
ग्नि, जल, पवन, शून्य या स्थान,
मनुज, पशु, पक्षी—सभी महान।
विविध हैं वर्ण, विविध पहिचान,
विविध वाहन, सबका सम्मान॥
वह भगवान् बसा है, निराकार-साकार।
हमारा हिंदू-धर्म उदार॥

(३)

ुसुंडि, वराह, मत्स्य, हिमवान, गरुड़, जगदीश—
सबका आदर सीखा, जङ्गम हो कि गिरीश॥
भीमें पाया निर्गुण एक,
सफल हो गयी सगुणकी टेक।
जहाँ था भावोंका उद्रेक,
वहाँ भी छोड़ा नहीं विवेक॥
कहीं अतिरेक हुआ पर, बना न [illegible]

(४)

व्यास, पतञ्जलि, जैमिनि, शङ्कर, गौतम, कपिल, क
नाना दर्शन-शास्त्र हमारे न्यारे-न्यारे
कहींपर नित्य वेदका गान,
कहीं सर्वस्व ब्रह्म—भगवान।
कहींपर सांख्य-योगकी तान,
कहींपर आतम-तत्त्वका मान
सबका ज्ञान समान हितङ्कर, सबमें सत्य
हमारा हिंदू-धर्म

(५)

नास्तिक-से-नास्तिक दर्शन भी रहे हमारे
सबको परखा, किंतु न छोड़ा कभी किसीका
इसीसे होता रहा विकास,
बढ़ाते गये आत्मविश्वास।
नहीं हम हुए व्यक्तिके दास,
बनाया हृदय विवेक-निवास॥
विविध हमारी परम्पराएँ, विविध पन्थ-
हमारा हिंदू-धर्म

(६)

कोई धर्मी, कोई प्रेमी, परमहंस या
कोई अर्थी, कोई कामी, धन-जन-बल-से
कहींपर है बहु-जनका स्वार्थ,
कहीं एकान्त पूर्ण परमार्थ।
हमारे पन्थ समष्टि-हितार्थ,
सभीमें जीवनके पुरुषार्थ॥
[illegible]

(७)

ां, दाम्पत्य प्रेममय, वानप्रस्थ, संन्यास।
आश्रम धर्म हमारे, समयोचित उल्लास॥
मी अध्ययन, कभी गृह-कर्म;
कभी विश्रांति, कभी मुनिधर्म।
समझते हम जीवनका मर्म,
सदा सर्वत्र शान्ति या शर्म॥
ात्मसन्तोष निरन्तर, ईश्वरका आधार।
हमारा हिंदू-धर्म उदार॥

(८)

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये वर्ण-व्यवस्था-भेद।
रहती नहीं वृत्तिकी, नहीं किसीको खेद॥
ीके भिन्न-भिन्न व्यापार,
परस्पर करते पर-उपकार।
किसीका है न किसीपर भार,
चलाते सब मिलकर संसार॥
सम सत्कार हृदयमें है, स्वाभाविक प्यार।
हमारा हिंदू-धर्म उदार॥

(९)

शक्तियाँ, विविध लब्धियाँ, ऋद्धि-सिद्धिदातार।
योग-विज्ञान आदि सब, मानस-बल-सञ्चार॥
ीका ध्येय विश्व-कल्याण,
यही तप-ज्ञान-ध्यानका प्राण।
इसीमें है जीवनका प्राण,
जगत-हित बिना व्यक्ति म्रियमाण॥
ा निर्माण हुआ अध्यात्म-दृष्टि-अनुसार।
हमारा हिंदू-धर्म उदार॥

(१०)

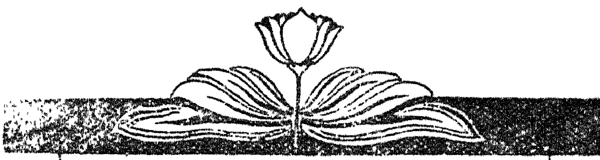
ईसाई, इस्लाम, पारसी, जैन, बौद्ध-अ
जो पथ हितके हेतु बनाये, वे हमको स्वं
'चर्च', 'मस्जिद' या 'चैत्य' विहार,
शान्तिके हैं सब ही आगार।
'मसीहा', नबी, संत, अव
हमारे प्रभुका सबपर प
सत्य प्रेमका अवलम्बन ले किया विश्व-
हमारा हिंदू-धर्म उ

(११)

कायर बनकर किया अहिंसाका न कभी अ
जहाँ हुआ अन्याय, मचाया वहाँ घोर, सं
सत्यमें रक्खा हितका ध्यान,
प्रेममें रही न्याय-पहिचान।
नम्रताका न भूलकर मान,
बढ़ाया सदा आत्म-अभिमान॥
गुरु-जनका सम्मान किया, पर रहे स्वतन्त्र वि
हमारा हिंदू-धर्म उ

(१२)

सभी धर्म ऐसे उदार हैं, प्रेम सभीका
निर्मल नीर बादलोंमें, पर मिली धरापर
हमारा पन्थ महान् विशाल,
किंतु हममें है दम्भ-कुचाल।
स्वार्थका फैला करके जाल,
अरे, हम व्यर्थ बजाते गाल
'सूर्य-चन्द्र'के सत्य-प्रेमसे, ज्योतिर्मय सं
हमारा हिंदू-धर्म उ



लोकमान्य तिलक

(लेखक—श्रीरामलालजी श्रीवास्तव बी० ए०)

धीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ।' भारतीय के इस मूल-मन्त्रके गायक लोकमान्य बालगङ्गाधर जन्म महाराष्ट्रके कोंकण प्रदेशमें समुद्रतटके रत्नगिरि !३ जुलाई सन् १८५६ को हुआ। उनके पिता व स्थानीय पाठशालाके शिक्षक थे । बचपनमें ह पिता उन्हें श्लोक कण्ठ कराया करते थे। ाल्से तर्कशील एवं प्रचण्ड मनोवृत्तिके व्यक्ति थे । ास करके भी १८८५ ईस्वीमें फर्ग्युसन कालेजमें णितका अध्यक्षपद स्वीकार किया। देशकी पराधीनता णोंको सदासे आकुल करती थी। सन् १८९१में और 'मराठा' का सम्पादन हाथमें लेकर उन्होंने ं नवजीवन देना प्रारम्भ किया। उनकी लेखनी वाक्य लिखने लगी । केवल इस सम्पादनकार्यको के चार वर्ष बाद सन् १८९५ ईस्वीमें वे बम्बई-धारा-सदस्य निर्वाचित हुए। लेकिन अंग्रेज-सरकारकी भयङ्कर सिद्ध हो चुके थे। प्लेगकमेटीके अध्यक्ष रैंड-; युवकने हत्या की और सरकारने लोकमान्यपर उसे करनेका अभियोग लगाकर १४ सितम्बर सन् १८९७ सालकी सजा दे दी।

कमान्य जेलसे छूटे। उन्हें महाराष्ट्रको जाग्रत् करना शको विदेशी शासनके साथ विदेशी संस्कृतिसे मुक्त धुन थी। महाराष्ट्रमें 'गणेशोत्सव' तथा 'शिवाजी-व' उन्हींके प्रयत्नसे प्रारम्भ हुए। गोखले एवं ो नीति लोकमान्यको प्रिय नहीं थी। 'भीख माँगनेसे ता नहीं मिलती !' वे कांग्रेसमें गरमदलके अग्रणी थे ह सूरत-कांग्रेसका अधिवेशन इतिहासमें अमर रहेगा, आक्रमण करके लोकमान्यने दक्षिण पक्षसे कांग्रेस ी। कांग्रेस प्रार्थना करनेवाली वैधानिक संस्थासे उसी स्वतन्त्र राष्ट्रिय संस्था बनी, उसके राष्ट्रिय स्वरूपके क लोकमान्य ही हैं।

महात्मा गान्धीके शब्दोंमें 'लोकमान्य सदा मेरे लिये समुद्र रहे।' सचमुच उनका ज्ञान अथाह था। उनकी दृष्टिने विदेशी राज्यके दोषके साथ विदेशी संस्कृतिके दोष बड़ी स्पष्टतासे देख लिये थे। सनातनधर्म-प्रचार, निषेध, शिवाजीकी राष्ट्रियता, विद्यार्थियोंमें व्यायाम ए प्रेमका प्रचार और गीताकी महत्ताका लोकमें व्याख्य प्रमुख आन्दोलन थे लोकमान्यके। लोकमान्यका ही था कि उस समयके क्रान्तिकारी युवक गीताकी पुस्त फाँसीके तख्तेपर चढ़नेमें गौरव मानते थे। सरका भयभीत हो गयी। वे १९०२ में फिर गिरफ्तार कर से बाहर मांडले जेलमें भेज दिये गये। वहीं जेलमें अपना महान् ग्रन्थ 'गीता-रहस्य' लिखा। जेलसे छू होमरूल-आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये।

सन् १९१६ की लखनऊ-कांग्रेसमें लोकमान्य ज में अंग्रेजोंको सहायता देनेके सर्वथा विरुद्ध थे ; गान्धी बिना शर्त सहायता देनेके पक्षमें थे। युद्ध भारतकी सहायताके बदले अंग्रेजोंकी ओरसे उसे रौ प्राप्त हुआ। देशने देखा कि लोकमान्यकी चेतावनी सत्य सिद्ध हुई। वे सदा स्वाधीनता एवं भारतीय लिये प्रयत्नशील रहे। देश आज स्वाधीन है, लो एक प्रयत्न पूर्ण हुआ; किंतु उनका गोवध-निषेध, संस्कृतिके लिये प्रयत्न—क्या देशके अग्रणी उ दिवंगत नेताको तुष्ट करेंगे ?

लोकमान्यने खोजके सम्बन्धमें 'ओरायन' एवं आर्कटिक निवास'—ये दो ग्रन्थ लिखे सही, परंतु पिछले दिनोंमें उन्होंने मान लिया था कि वे ब भूलें कर गये हैं और इसका कारण अंग्रेजोंकी अन्वेषकोंकी पुस्तकें हैं। हमें विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हु वे उन भूलोंको सुधारना भी चाहते थे, परंतु ३ सन् १९२० को उन्हें परलोकका निमन्त्रण आ बम्बईमें पाँच लाख जनताने समुद्रतटतक उनके पहुँचाया। महात्मा गान्धी भी उसमें थे। लोकमान्यकी जलती चितामें उनके वियोगसे व्य मुसल्मान युवक कूद पड़ा था। उनकी लोकप्रिय उन्हें लोकमान्य बनाया था। स्वाधीनता-संग्राममें वे सांस्कृतिक योधा थे और अब भी उनका कार्य अधूर

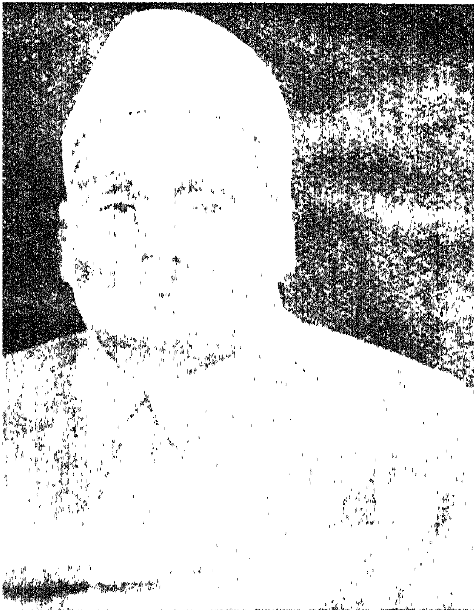




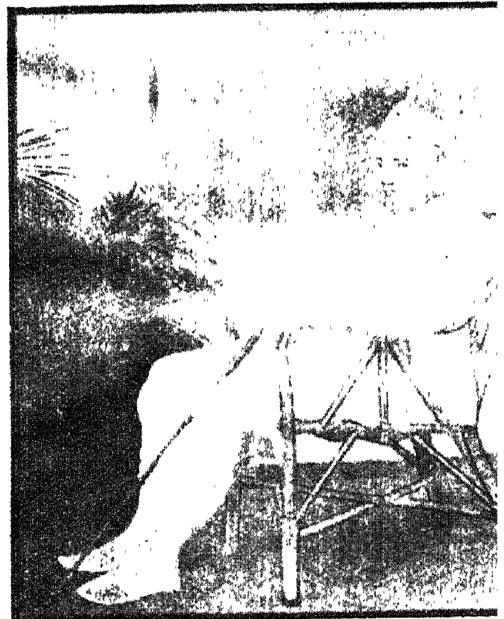
श्रीबंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय



श्रीबाल गङ्गाधर तिलक



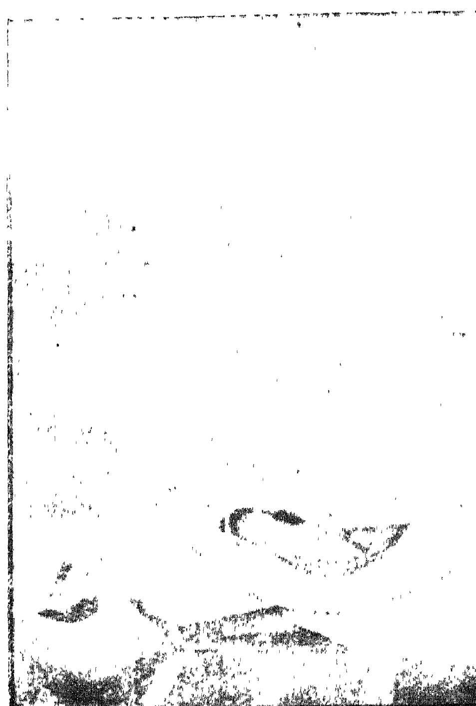
लाला लाजपतराय



पं० श्रीमोतीलाल नेहरू



स्वामी दयानन्द



स्वामी श्रद्धानन्द



महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर



लाला लाजपतराय

ला लाजपतराय व्यक्ति नहीं, संस्था थे। उन्हें अपने सारे संसारसे प्रेम था।'—महात्मा गान्धी

ग राधाकृष्णराय विद्यालयोंके निरीक्षक थे। उनका लुधियाना जिलेके जगरावाँ प्रान्तमें। २८ जनवरी ६५ को अपने ननिहाल ढोंडी ग्राममें उत्पन्न होनेवाले जपतने अपने इन पिताका नाम इतिहासमें अमर । पिताने उनकी शिक्षाकी समुचित व्यवस्था तिभाशाली बालक लाजपतराय शीघ्र ही शिक्षाके गे बढ़ गये। जब वे लाहौरमें मुख्तारी करने पहुँचे, यानन्द सरस्वतीके शिष्य गुरुदत्तकी वहाँ बड़ी धूम लालाजीके विचारोंपर आर्यसमाजका गम्भीर प्रभाव र आगे चलकर वे स्वयं आर्यसमाजके प्रमुख नेता

वर्षकी अवस्थामें लाला लाजपतराय प्रयाग-कांग्रेसमें त हुए। उन्होंने कांग्रेस-मञ्चसे पहला प्रभावशाली ईदोंमें दिया। शीघ्र ही वे लोकमान्य तिलकके साथ क्योंकि नरम दलकी नीति उन्हें चापलूसी जान पड़ती न् १९०५ में जो कांग्रेस-शिष्टमण्डल लंदन गया, उसमें एक प्रमुख सदस्य थे। लंदनसे लौटकर लोकमान्यकी नीतिका जोरोंसे समर्थन और प्रचार किया। सरकार उनसे चिढ़ उठी। सन् १९०७ में ला देकर उन्हें माण्डले-जेल भेज दिया गया। माण्डले-पर लालाजी इंगलैंड चले गये।

न् १९०९ में इंगलैंडसे लौटकर लालाजीने पण्डित हन मालवीयजीके सहयोगसे हिंदूमहासभाकी स्थापना लाजी राष्ट्रिय युद्धके सेनानी होनेके साथ सदा हिंदू-और उनकी स्वाधीनताका अर्थ सदा हिंदू-धर्म, हिंदू-एवं हिंदुस्थानकी सम्यक् स्वाधीनता था। वे हिंदू-के लिये सदा उद्योगशील रहे। सन् १९१२ में जब गान्धीजीका दक्षिण-अफ्रिका-सत्याग्रह छिड़ा, तब ने महात्माजीको प्रचुर धन भेजकर सहायता की। त्याग्रहके सम्बन्धमें शिष्टमण्डलके साथ वे पुनः इंगलैंड गये और जब प्रथम जर्मन-महासमरके समय उन लौटनेका आज्ञापत्र देना ब्रिटिश सरकारने अस्वीकार व तब वे वहाँसे अमेरिका चले गये। अमेरिकासे 'यंग इंडिया' पत्र निकालकर भारतीय स्वाधीनताके लिये विदेशोंमें प्रचार प्रारम्भ किया। सन् १९१९ में इत्याकाण्डका समाचार पाकर लालाजी भारत आने व्यग्र हो उठे। उन्होंने ब्रिटिश सरकारकी बड़ी कटु आ की। अन्ततः २० फरवरी सन् १९२० को वे बम्बई देशने उनका हृदय खोलकर स्वागत किया। महा असहयोग-आन्दोलनमें उन्होंने पूरा भाग लिया औ समयके कलकत्ता कांग्रेस-अधिवेशनके वे अध्यक्ष असहयोगका वह आन्दोलन—लाहौरके उसी डी० ए कालेजकी सीढ़ियोंपर बैठकर लालाजी सत्याग्रह क जिस कालेजके पहले वही सर्व-सर्वा थे। सन् १ सरकारने उन्हें डेढ़ वर्षका कारावास-दण्ड दिया, पर ने पूर्व ही छोड़ दिये गये। उन्हें पुनः गिरफ्तार कि और वे १९२३ में छोड़े गये। कांग्रेसमें सक्रिय हुए भी वे हिंदू-महासभाके लिये तत्परतापूर करते रहे।

सन् १९२८ में वह कुख्यात साइमन कमीशन कांग्रेसने उसके बहिष्कारका निर्णय किया। लालाजी लेकर लाहौरमें विरोध-प्रदर्शनका नेतृत्व कर रहे थे नृशंसतापूर्वक जुलूसपर लाठियाँ चला रही थी। लाल हटनेवाले शूर नहीं थे। एक अंग्रेज सार्जेंटकी १७ नवम्बर सन् १९२८ को सदाके लिये उन्हें मा गोदमें सुला दिया। लालाजी गये—राष्ट्रिय आन्दोल उच्चतम नेता और हिंदू-संगठनका प्रबल स्तम्भ चल लालाजीके पश्चात् तो कांग्रेस स्वदेशी संस्कृतिसे होती गयी। लाला लाजपतराय, वे निर्भीक सत्यनि पुरुष—उनका अपने सम्बन्धका कथन सबके म है। वे कहा करते थे—''मेरा मत 'सत्य' है। मेरा धर्म पूजा है। मेरा न्यायालय स्वयं मेरा अन्तःकरण है।''—

विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

वेश्वजनो, हे अमृतपुत्रो, हे दिव्य-धामवासी देवगण ! उस महान् पुरुषको जानता हूँ, जो अन्धकारसे ;, परम ज्योतिर्मय है । उसे जानो ! उसे जानकर ; पार हम हो सकते हैं । इसके अतिरिक्त दूसरी है । हे मृत भारत ! तेरे लिये भी यही एकमात्र न्य नहीं ।'

—रवीन्द्रनाथ

लका 'ठाकुर-परिवार' अपनी उदात्त विचारधारा, त्ति, जनसेवाके साथ विपुल ऐश्वर्यके लिये भी हा है । 'गुरुदेव' इसी परिवारमें महर्षि देवेन्द्रनाथ । प्रमुख जननायक एवं गम्भीर विचारकके कनिष्ठ पमें ७ मई सन् १८६१ ई० को जोड़ासाँकूके ाजप्रासादमें उत्पन्न हुए । भगवती लक्ष्मी एवं ोनोंका समान रूपसे यह कुल चिरकालसे कृपापात्र ासमाज' की विचारधाराका यही कुल प्रश्रय था । ोंका अतुल ऐश्वर्य और वैसी ही शान-शौकतके ्निक चिन्तन, साहित्य-साधना, कला-सेवा और समाज-सेवा, सुधारके आन्दोलनोंका नेतृत्व—ये ही -परिवारकी विशेषताएँ थीं । 'गुरुदेव' इसी वातावरणकी पले । यह ऐश्वर्य—स्वयं गुरुदेवका कहना था कि सेवा और निरीक्षण इतना अधिक था कि वह उनके न बन गया था । वे तनिक भी अकेले या स्वतन्त्र । थे । इस बन्धनने उन्हें गम्भीर और चिन्तनशील । बचपनमें ही वे अद्भुत कल्पनाएँ करते और पनालोकमें निमग्न रहते ।

-बहिनोंसे भरा परिवार और उसमें भी सब-के-सब एवं कलाके विनोदी, इस गोष्ठीने शैशवमें ही को कवि बना दिया । वे जब ग्यारह वर्षके केवल ्यार्थी थे, 'विद्यापति-पदावली' एवं ऐसी ही पुरानी के अनुकरणपर तुकबंदियाँ करने लगे थे । उस ालमें कवि विहारीलालके 'गीतकाव्य' बहुत सम्मान । गुरुदेवने उसी शैलीपर अपनी रचनाएँ प्रारम्भ वल चार-पाँच वर्षोंमें ही गीत, नाटक, कहानी, निबन्ध, आलोचनादि साहित्यके सभी क्षेत्रोंमें एक

गया । 'भुवनमोहिनी' उपन्यास, 'बनफूल' पद्य—उ की प्रारम्भिक रचनाएँ हैं, जो 'ज्ञानाङ्कुर', मासि प्रकाशित हुईं । 'कालमृगया', 'वाल्मीकि-प्रतिभा' संगीत', 'छवि ओ गान', 'प्रकृतिर प्रतिशोध' 'बौ ठ हाट' एवं 'कवि-काहिनी' प्रभृति प्रारम्भिक रचनाएँ बहुत हैं और उन्हींमें वह अङ्कुर है, जो आगे विश्वतरुके रू सम्मुख आया ।

बीसवीं सदीका वह युगारम्भ ही था, जब अपनी सर्जनाको कर्म-जगत्में मूर्त करनेके लिये गुरुदेव अ धर्मिणीके साथ अपने पूर्व-पुरुषोंकी उस तपोभूमि निकेतन' में आ गये थे । महाकवि उसे प्राचीन स शिक्षाकेन्द्रका मूर्तरूप देनेका स्वप्न लेकर आये थे । शिक्षाके दोषोंसे मुक्त उन्हें एक आदर्श सांस्कृत स्थापित करना था । सन् १९०१में इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम' की स्थापना हुई । यही आश्रम थोड़े ही 'विश्वभारती'-जैसी अन्ताराष्ट्रिय संस्था बन जायगा, यह त सोचा था । गुरुदेवने इसकी स्थापनाके लिये सपत्नीक त्याग किया था । अपना पुरीवाला मकान, बहुमूल्य भरण, पुस्तकें आदि सब बेचकर उन्होंने आश्रमकी कठिनाई दूर की और छात्रों तथा अध्यापकोंके स मिल गये । 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि ।' एक वर्ष भी उ स्थापनाको नहीं हुआ था कि सहधर्मिणी, दो बच्चे, तथा पूज्य पिता—सभी एक-एक कर परधाम पधारे हृदयपर यह बार-बार होनेवाला आघात ! लेकिन सुव होकर ज्योतिर्मय ही होता है, वेदनाकी महाज्वाला भावना गम्भीरसे गम्भीरतम होती गयी । 'खेया', 'प्रा 'राजा', 'गीताञ्जलि', 'गोरा', 'जीवनस्मृति', 'अचल और 'डाकघर'-जैसी उत्कृष्टतम कृतियाँ सन् १९ १९१२ तकके अल्पकालमें निर्मित हुईं । सन् १९ महाकविने विलायतयात्रा की । आयरिश कवि यीट्सने 'गीताञ्जलि' की ओर पाश्चात्य विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट फलतः 'गीताञ्जलि' विश्वविश्रुत 'नोबेल पुरस्कार'से स हुई । विश्वने भारतकी इस दिव्यविभूतिको 'विश्व स्वीकार किया । गुरुदेव जब स्वदेश लौटे, उनकी

द्र 'गीताञ्जलि'के अंग्रेजी अनुवादपर गुरुदेवको रस्कार' मिला था; परंतु बँगला-काव्य-मर्मज्ञ महाकविकी रचना 'गीताञ्जलि' न मानकर 'खेया'को मानते हैं। की रहस्य-भावनाका उच्चतम रूप प्रस्फुटित हुआ है। यह ते-संग्रह तब लिखा गया था, जब बंग-भंग-आन्दोलनमें नेताके रूपमें थोड़े दिनोंके लिये वे मैदानमें आ । 'स्वदेशी समाज', 'राष्ट्रिय कोष', 'राखी-बन्धन' वनकी ओजमयी कलाकृतियाँ हैं; किंतु उस र्ण संघर्षमय जीवनमें अपने स्थिर एकान्त कविरूपको कर 'खेया' का निर्माण तो सचमुच अद्भुत घटना है।

देव' विश्वमें सैनिक बनने नहीं आये थे। वे जनता कोंके पथ-दर्शक अपनी भव्य भावमयी कलासे जीवन-देव ही थे। आन्दोलनसे शीघ्र ही उनका तटस्थ सहज स्वाभाविक था; किंतु देशका अनुराग तो ीवन था। महात्माजीके सत्याग्रहसे पूर्व ही अपने वैरागी' पात्रके रूपमें गुरुदेवने आदर्श सत्याग्रहीकी प्रदान की। सरकारने—अंग्रेज सरकारने उन्हें 'सर' धि प्रदान की, जिसे जलियानवाला बागके काण्डके उन्होंने लौटा दिया।

की दयनीय दशाके प्रति गुरुदेवके हृदयमें जितनी उतनी ही घृणा थी उन्हें संकुचित राष्ट्रियतासे। स्वाधीनता उनके लिये अपनी स्वार्थ-सिद्धि । वे सदा उसके निखिल मानव-मुक्तिके रूपके थे। गुरुदेवने अटूट-अविरल रूपसे प्रतिवर्ष देशोंकी यात्राएँ कीं। इन सांस्कारिक यात्राओंका उनके साहित्य-सृजनसे कम महत्त्वका नहीं है। 'विश्व-—'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाका प्रसार, पूर्व-अन्तरका निवारण और विश्व-मानवकी प्रतिष्ठा इन का उद्देश्य था। प्रत्येक देशके विद्वानोंमें उन्हें रण सम्मान प्राप्त था और 'एकत्व' की भावनाके अपने व्यक्तित्वका उन्होंने पूरा उपयोग किया। , कवितापाठ, परस्पर बातचीत तथा पत्रव्यवहार-गुरुदेवने संकुचित राष्ट्रवृत्तिकी कठोर भर्त्सना करते नवकी एकता तथा विश्व-परिवारकी भावना जाग्रत् करनेका अजस्र उद्योग किया। उनके ऐसे पत्र अनेक संग्रहोंके रूपमें प्रकाशित हैं।

अपनी जीवन-सन्ध्याके निकट 'गुरुदेव' का और प्रोज्ज्वल हो उठा था। ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटीने उ लिट्की उपाधिसे सन् १९४१ में सम्मानित किया पूर्व ही शान्ति-निकेतनमें उनका 'उत्तरायण' नामक देश-विदेशके यात्रियोंके लिये तीर्थभूमि बन चुका थ वे वहाँ चाँदी-जैसे श्वेत दीर्घ श्मश्रुधारी, झुर्री पड़े ऋषिकल्प 'गुरुदेव' के दर्शन करने पधारते थे। गु आकृति जितनी भव्य थी, उनकी वेश-भूषा वैसी ह कविके उपयुक्त थी। ८१ वर्षकी अवस्थामें रोग पड़े-पड़े भी उन महामानवकी चिन्ता स्वार्थकलुष लिये ही थी। उस समय भी उन्होंने 'सभ्यतार नामक ओजस्वी निबन्ध मानवताको सन्देश देने लिखा। अन्तमें वह विदा-क्षण भी आया। ७ सन् १९४१ को विश्वकवि 'गुरुदेव' ने कलकत्ता मह इस धराका त्याग कर दिया। बंगाल या भारतका ह ही नहीं—मानवता रोयी, विश्व रोया और रोयी वह अधिष्ठात्री, जिसकी गोदमें न केवल साहित्य, अपितु एवं चित्रकलाके क्षेत्रमें भी 'गुरुदेव' ने अनुपम अर्पित की थीं।

'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' विश्वसंस्कृति महापुरोहितने अपने 'शान्तिनिकेतन' तथा अप 'विश्वभारती' के द्वारा इस आर्ष भावनाको सार्थक श्लाघ्य प्रयत्न किया। उनके कारण विश्वमानसमें का, भारतका, भारतीय ऋषि-संस्कृतिका, चिन्तनशीलताका गौरव जाग्रत् हुआ। मानवताको उन्हें मञ्जुकलाकी मधुर तानोंसे जगाया, प्रबुद्ध किया शान्तिका समुज्ज्वल पथ दिखाया। आज स्थूल आसक्त, अस्थिपर लड़नेवाले कुत्तोंसे भी गया बीत क्या गुरुदेवकी उस वाणीको सुनेगा? क्या उसके वह दिव्य झंकार उठेगी? मानवताके त्राणका दूस तो है नहीं। —सु०



महात्मा गान्धीजी

...में अनेक सुख्यात राजनैतिक पुरुष हुए हैं और होते ...न्तु महात्माजीके समान विश्वकी संस्कृतियोंमें एक ...पन्न कर देनेवाले महापुरुष सदा विश्वमें नहीं आया करते। ...पुरुष तो कभी-कभी मानव-समुदायको जाग्रत् करने, ... प्राप्त करनेका दिव्य सन्देश देने ही आते हैं।

...की चरम परिणति ही साध्य है; अतः अपवित्र, ...अनीतिपूर्ण साधनसे शुद्ध, पवित्र लक्ष्यकी प्राप्ति ...हीं । बुराईसे भलाईकी उत्पत्ति हो नहीं सकती। ... पवित्र, आदर्श होना जितना आवश्यक है, उतना ...क है उसकी प्राप्तिके साधनका शुद्ध एवं पवित्र ... भारतके लिये यह नवीन बात नहीं है। धर्मसे ही ...प्राप्तिका हिंदू-संस्कृतिने अत्यन्त बलपूर्वक समर्थन ...। युद्धमें भी असत्य, अन्याय यहाँ गर्हित माने गये ... आजके मोहग्रस्त अपवित्र साधनोंको ही आदर्श ... विश्वके सम्मुख साधनकी शुद्धिका परम गम्भीर ...उद्घोष करनेवाला महापुरुष संस्कृतिकी ... वाणीका मूर्त प्रकाश बनकर आया था जगत्‌में।

...श्विन कृष्ण १२, संवत् १९२६ (२ अक्टूबर, सन् ... ई०) की वह पावन तिथि धन्य है, जब विश्वने उस ...को प्राप्त किया और धन्य है वह गुजरातकी ... भारतीय भूमि, जहाँ वह आया। कोई विशेषता ...मोहनदास कर्मचन्द गान्धीके उस बाल्यकालमें और ...शेषता नहीं है उनके लन्दन जाकर अध्ययन करनेमें ...रिस्टर होकर भारत लौटनेमें; किन्तु यह कहना सत्य ...ा। सत्य, संयम, सादगीका उनका जीवन जन्मसे ...का जीवन है। सत्यपर स्थिरता, विलायतमें दृढ़ ...निष्ठा और सादगी—ये सामान्य जीवनकी बातें नहीं ... मातासे प्राप्त 'रघुपति राघव राजा राम' तथा ...', 'गीता' एवं 'नरसी'के पदोंका बीज तो ...मय पड़ा और पल्लवित हुआ। महात्माजी आजीवन ...मके जापक रहे। गीता और रामायण उनके ... ग्रन्थ थे। उनका सम्पूर्ण जीवन नरसीका वह 'वैष्णव' ...ा, जिसके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है—'वैष्णव जन तो

'राम'-नाम—महात्माजीके शब्दोंमें, वह उनका ... सहायक और शक्तिका मूल स्रोत था। सत्य उन... था। अहिंसा उनका साधन थी। सेवा उनकी ... त्याग और संयम उनके धर्म थे; किंतु 'राम'-नाम... जीवन था। महात्माजीके आदर्शपर विचार क... उनके 'राम'-नामको छोड़ देनेपर हमारे सम्मुख... प्राण-हीन जीवन, क्रिया एवं शक्तिहीन आदर्श ही ... है। वे इस दिव्य नामका जप, कीर्तन, स्मरण—सब... भगवान्‌पर अपार विश्वास ही उनके महान् धैर्य ... क्षमताका रहस्य है।

महात्माजी विलायतसे बैरिस्टर होकर लौटे, ब... लिये ही दक्षिण-अफ्रिका गये थे। दक्षिण-... भारतीयोंका जो अपमान वहाँके गोरे करते थे, जो ... वहाँ केवल सफेद चमड़ा न होनेसे सहना पड़... उसका पद-पदपर अनुभव हुआ। 'मनुष्य मनु... अपमान क्यों करे?' मानवताकी पुकार वहीं कानों... 'अन्याय करना जितना बड़ा पाप है, उसे चुपचाप ... भी उतना ही बड़ा पाप है!' महात्माजीने वहीं बड़... अपने इस महावाक्यकी घोषणा की। जीवनमें ... महावाक्यका सन्देश विश्वके उत्पीड़ित दुर्बलोंको सु...

'अन्यायका विरोध करते हुए भी अन्यायी... सद्भाव रखना ही सच्ची मानवता है। अन्यायी प... व्यक्ति होता है, वह दया और प्रेमका पात्र है... द्वारा उसके हृदयपर विजय पाना ही अन्यायका ठीक ... है। अन्यायका निषेध बलपूर्वक करना और उ... प्रति रोष या दण्डका प्रयोग करना एक भ्रान्त उ... उससे अन्याय रुक भले जाय, उसका बीज और ... चला जाता है।' बापूके इन विचारोंने ही उन्हें ... बनाया। दक्षिण-अफ्रिकामें ही उनके अन्यायके ... करनेके नूतन अस्त्र 'सविनय अवज्ञा'का जन्म ... उनका यह अस्त्र जीवनमें 'असहयोग', 'सत्याग्रह' ... रूपमें उपस्थित होता रहा। अपमान, मार सहना, ... अनेक दूसरी यन्त्रणाएँ सत्याग्रहीको मिलनी अनि...

अधमरा-सा कर दिया। उनके दो अगले दाँत एक
ारसे ही टूटे पर वे सदा दृढ़ और शान्त रहे;
हना जो था—'सत्याग्रह दुर्बल एवं कायरका शस्त्र
सबल एवं मनस्वीका अभेद्य कवच है।' अंग्रेजोंने
रि-भूरि प्रशंसा की, जब बोअर-युद्धमें वे स्वतः स्वयं-
र गये। विश्वने कभी सोचा ही न था कि अपने-
ाचार करनेवाले विपक्षीकी आपत्तिमें कोई उसका
बन सकता है और वह भी बिना शर्त—शुद्ध सेवा-

ण्येवाधिकारस्ते'—जैसे गीताका यह वाक्य उनके
ध्वनित होता हो। परिणाम क्या होगा, सहायक
, प्रभाव क्या पड़ेगा—यह सब कुछ नहीं। कार्यकी
के बाह्य परिणामसे नहीं, कर्ताके हृदयकी स्थितिसे
इये। विशुद्ध साथी न मिलें तो अकेले प्रलयमारुतके
स्थिरतासे खड़े होनेवाले उस महापुरुषको कितना
! किसीने! प्रवासी-भारतीय-समस्या, खिलाफत
, असहयोग-आन्दोलन, सत्याग्रह, पीड़ित-सेवा, ग्राम-
अन्तिम भीषण दिनोंकी वह नोआखाली-समस्या—
ी जागरूकता, दृढ़ता और श्रेयकी ओर निश्चित
ढ़नेकी प्रवृत्ति। साधनकी विशुद्धता तथा औद्धत्य-
तीव्र प्रतिकार!

रोधीका हृदय परिवर्तन करना है और वह प्रेम
वासे ही होगा।' महात्माजीके इस सुनिश्चित
ो अनेकोंने भ्रान्त रूपमें देखा। अनेकोंने उसे
तथा पक्षपात कहा। भारतका दुर्भाग्य कि इसी विचारके
एक हिंदू युवककी गोलियोंसे ही उन महापुरुषने
ोड़ा! उस समय भी वे प्रार्थनाके लिये प्रार्थना-
ा रहे थे। 'राम'—जिसका जीवन इस महामन्त्रसे
रहा हो, उसके जीवनका विलयन भी उसमें
था।

ने हाथसे कते सूतकी लँगोटी पहननेवाले; चर्खेको
प्रतीकके रूपमें स्वीकार करके भारतके प्राचीन
एवं ग्राम्य जीवनकी महत्ताको मशीनोंके वर्तमान
युगमें भी उज्ज्वल करनेवाले; सहिष्णुता, त्याग, स
सादगीकी मूर्ति बापूके जीवनके सम्बन्धमें जित
गया है, उसके संग्रहसे एक पूरा बड़ा पुस्तव
सकता है। भारतके उन राष्ट्रपुरुषकी स्वत
'आत्मकथा' एक महापुरुषका आत्मजीवन है।

बापूने भारतको केवल स्वाधीनता ही नहीं दी
कांग्रेसके वे सदा प्राण रहे; हमारे आन्दोलन अ
स्वाधीनता उन्हींके तप, त्याग, मार्गदर्शन और
व्यक्तित्वके पुरस्कार हैं; फिर भी राजनैतिक पुरुष (
शब्दोंमें कूटनीतिज्ञ) बापू कभी नहीं रहे। उ
शोधकका महत्त्व राजनीतिके क्षेत्रसे जीवनके क्षेत्रमें
है। उन्होंने लुप्त भारतीय प्राणोंको इसलिये जगाय
कि उन्हें विश्वास था कि स्वाधीन उद्बुद्ध भारत
शान्ति, अहिंसा, सत्यका सत्पथ दिखलायेगा
महालक्ष्यको लेकर वे भारतीय स्वाधीनता-संग्रामके
सेनानी बने।

'हिमालय-जैसी भूल।' बापूकी यह महान
अपनी भूलको कभी छोटा नहीं कहते थे। उन्हें
अपनी भूलके लिये दुराग्रह करनेकी बात ही नहीं
उनका जीवन ऋषियोंका सादा, श्रमपूर्ण, नैति
रहा है। उनके आदेश भारतके ग्रामोंको अपनी
संस्कृतिकी ओर लौटनेकी प्रबल प्रेरणा देते हैं
अथक उद्योग किये हैं इसके लिये। 'दूसरोंके बद
दोषको देखो! दूसरोंको क्षमा करो! उनकी सेव
उनकी सहायता करो और आवश्यकता पड़नेपर उ
दृढ़तापूर्वक—पर शान्तिसे अस्वीकार कर दो।'
जीवनके लिये यह सजीव सन्देश है।

विश्वको ईश्वर-विश्वास, भगवन्नाम, सत्य, उ
प्रशस्त मार्ग दिखानेवाले; जगत्के पीड़ि
वर्गको 'सत्याग्रह'का दिव्यास्त्र देकर चैतन्य
उन दिव्य पुरुषके प्रत्येक जीवन-कार्य एवं प्रयत्न ही
अशान्त जगत्को शान्ति दे सकता है, यदि मनु
सच्चाईसे स्वीकार करे और अपनाये! —सु०

महामना मालवीयजी

तो मालवीयजी महाराजका पुजारी हूँ। यौवनकालसे उनकी देशभक्तिका प्रवाह अविच्छिन्न है। मैं उनको हिंदू मानता हूँ। वे आचारमें नियमित और विचारमें र हैं। वे किसीसे द्वेष कर ही नहीं सकते। उनके हृदयमें शत्रु भी समा सकते हैं।'

—महात्मा गान्धी

दावेके साथ कह सकती हूँ कि विभिन्न मतोंके ल मालवीयजी महाराज ही भारतीय एकताकी मूर्ति हैं।'

—ऐनी बेसेंट

मना पण्डित मदनमोहन मालवीयका जन्म तीर्थराज २५ दिसम्बर, सन् १८६१ को हुआ। उनके पूर्वज प्रयाग आ बसे थे। उनके पिता श्रीव्रजनाथजी तनधर्मी एवं आस्तिक थे। उनका भगवद्विश्वास था। श्रीमद्भागवतकी कथा या पूजा-पाठ ही ा थी। कोई स्वतः बुला ले जाय तो पण्डितजी चले र्मपत्नीके यह कहनेपर कि घरमें भोजनके लिये कुछ उनका बँधा उत्तर था—'कोई कथा या पूजाके लिये तब कुछ प्रबन्ध हो।' लेकिन दान लेनेके वे इतने े कि उदार पड़ोसियोंकी सहायता भी मालवीयजीकी पाकर ही स्वीकार करती थीं। ऐसे विशुद्ध आस्तिक ाका प्रभाव मदनमोहनपर पड़ना ही था। मिर्जापुरके सनातनी पण्डित श्रीनन्दरामजीकी कन्या कुन्दनदेवी-येजीका विवाह हुआ। उनका दाम्पत्य-जीवन बड़ा यतीत हुआ। सती-साध्वी पत्नीने सदा उनका किया।

य मालवीयजी कट्टर हिंदू थे। हिंदू-सिद्धान्तोंकी उन्हें ूर्ति कहना चाहिये। आचारमें अत्यन्त संयमी और परम उदार—हिंदू-धर्मकी यह विशेषता उनमें बहुत। उनका स्पर्शास्पर्शका विचार इतना पूर्ण था कि बड़े के प्लेटफार्मपर एक ओर चौका लगाकर स्वयं खिचड़ी। उनके लिये सामान्य बात थी। मालवीय-परिवारसे सीके हाथका कच्चा भोजन वे नहीं करते थे। जब वे

कि लंदनसे लौटनेपर उन्होंने समुद्रयात्राका सविधि किया था। इतने आचारप्रधान होनेपर भी उनका इतना उदार था कि वे कभी किसी दूसरेपर कोई ही नहीं थे।

पूज्य मालवीयजीका गृह अपने अतिथि-सत्कार विख्यात था। उनके घरका चूल्हा प्रातः सूर्योदयके जाता। कोई किसी समय प्रस्थान करनेवाला हो—है, उसे तो भोजन करके ही जाना चाहिये। रा बजेतक चौका चलता रहता। अतिथि, ब्राह्मण और तो हिंदूके आराध्य हैं। पूज्य मालवीयजीको लोग पक्षपाती कहने लगे थे। वे कहा करते थे—'को मेरे पास किसी उद्देश्यसे आये और निराश लौटने ल प्राण उससे पहले चले जाने चाहिये।' प्राणपणसे ब्राह्मणोंकी सेवा की और जीवनके अन्तिम दिनोंमें उ ही धुन थी—प्रत्येक समर्थ मिलनेवालेसे उस असमर्थ की एक ही याचना होती थी—'मैं गायोंकी सेव सका। एक स्थानपर एक गोशालामें एक लाख गा पलें—मेरी यह लालसा रह गयी।' गो-सेवाके लिये भूमिके लिये, गोशालाओंके लिये उनका उद्योग था। उनसे किसी सामान्य व्यक्तिने भी गौके नाम सहायता चाही तो उन्होंने कभी अस्वीकार नहीं उनका कहना था—'प्रत्येक हिंदूके घरमें कम-से गाय रहनी ही चाहिये।'

'मैं पुराणोंकी सत्यताके सम्बन्धमें प्रत्येक समय करनेके लिये तैयार हूँ।' महामनाकी यह घोषणा मौखिक नहीं थी। पुराणोंपर उनकी अगाध श्रद्धा श्रीमद्भागवतका पाठ उनका नियमित रूपसे चलता लंदनके अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रममें भी उन्होंने अप विराम नहीं पड़ने दिया। उन्हें प्रायः सम्पूर्ण भागवत और जब वे गद्गद कण्ठसे भाव समझाते हुए श्रीम श्लोक पढ़ने लगते थे, उनके दोनों नेत्रोंसे अजस्र चलती थी।

'एक साथ एक लाख ब्रह्मचारी एक स्थान

रतको अमर भेंट है । विश्वविद्यालयके लिये कुछ प्राप्त किये बिना वे भोजन नहीं करते थे । जीवनके पर्यंतक उनका यह नियम चलता रहा और तभी ; जब वे सर्वथा असमर्थ हो गये ।

ावस्था, रोगशय्या, इतना दुर्बल शरीर कि उठकर कठिन, श्रवण एवं नेत्रोंमें शक्ति नहीं, कोई बात नहीं रहती थी और इस स्थितिमें भी महामना ालयके गरीब छात्रोंके सहायक पिता थे, दुखियोंके थे, उत्पीड़ितोंके शरणद थे, राष्ट्रिय आन्दोलनके के मन्त्रदाता थे । सब उस पितामहके पास उस भी पहुँच जाते और सन्तुष्ट होकर लौटते ।

ामनाको राजनैतिक जीवनके लिये कालाकाँकर-नरेश पालसिंहजीसे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला । कालाकाँकरमें नाके पत्रकार-जीवनका प्रारम्भ हुआ । वहाँसे प्रयाग उन्होंने 'अभ्युदय' और 'इंडियन ओपिनियन'का हाथमें लिया । सन् १९३१ में गोलमेजपरिषद्में ानेसे पूर्व सत्याग्रह-आन्दोलनके वे प्रमुख कर्णधार और उनके व्यापक प्रभावके कारण अंग्रेज-सरकारको ोचना पड़ा था उन्हें केवल कुछ दिनोंके लिये भी ानेके सम्बन्धमें । एकमात्र महामना ही ऐसे राष्ट्रिय प्रमुख नेता थे, जिनका प्रभाव देशके प्रत्येक वर्गपर रूपसे था । महात्मा गाँधी उन्हें बड़ा भाई कहते थे । हाराजोंके वे पूज्य थे । धार्मिक जनताके देवता और वर्गके परम आदरणीय थे । सरकारके उच्च कर्मचारी प्रभावसे परिचित थे और उनका पूरा सम्मान थे ।

हिंदू-महासभाके तो महामना जन्मदाता थे । हिंदू-संगठन, हिंदू-धर्म उनका प्राण था । उनका सदा एक ही था—'प्रत्येक हिंदू-घरमें एक गाय हो । प्रत्येक गाँवमें हो । प्रत्येक हिंदू युवक बलवान् बने !' लेकिन उन द्वेषको स्थान ही नहीं था । वे तो स्पष्ट कहते थे— मत पहनो, यह कहना ही द्वेषमूलक है । हमें है—स्वदेशी ही पहनो !' जातिगत विद्वेषको उन्हें प्रश्रय नहीं दिया ।

नोआखालीका वह पैशाचिक हत्याकाण्ड, रोगकृश महामनाने वह समाचार सुना और उनका हृ हो गया । वह धक्का सम्हाल नहीं सके वे । यह सर्व है कि नोआखालीकाण्डने ही १२ नवम्बर सन् १९ महामनाका बलिदान लिया । उनके अन्तिम सन्देश संगठन, हिंदू-जागरणकी कातर पुकार है । उन्होंने कह 'जो हिंदुओंको शान्तिके साथ नहीं रहने देना चाहते साथ किसी प्रकारकी सहिष्णुता नहीं हो सकती ।' संस्कृति और हिंदू-धर्म खतरेमें हैं । परिस्थिति संकट ऐसा समय आ गया है कि हिंदू एक होकर सहायताके साधनोंको परिपुष्ट करें ।' आज भी उन म चेतावनी वैसी ही नहीं है—कैसे कहा जा सकता है

एक सच्चा मानव, एक सच्चा आदर्श हिंदू, ए महापुरुष आया और चला गया । भारतके राष्ट्रिय ने उससे बहुत कुछ पाया और बहुत कुछ पाया हिं किंतु यदि राष्ट्रके कर्णधार और हिंदू एक होव आदर्शको स्वीकार कर लेते, भारत सचमुच ऋषियों हो जाता । हिंदू-संस्कृति पुनर्जीवन प्राप्त कर लेती महामना स्वयं हिंदू-संस्कृति, सादगी, सदाचार एवं जीवित प्रतिमा थे ।

वन्द्य मालवीय ! तुम्हें भूल न सकेंगे हम, दीनदुखियोंके सुखदायक तुम्हीं रहे ।
पुरुष अनेक पुरुषोत्तम तुम्हीं थे एक, शर हैं असंख्य किंतु सायक तुम्हीं रहे ॥
विश्वबन्धुताके गीत-गायक बहुत, पर सबके सुहृद, सब लायक तुम्हीं रहे ।
होते जगतीमें जन-नायक अनेक, किंतु हिंदुओंके एक ही सहायक तुम्हीं रहे ॥

—रा०

भारत-जननि

(रचयिता—श्रीशत्रुदमनप्रसादनारायण शर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, विशारद)

शार्दूल-विक्रीडित छन्द

(१)

कर[illegible]-मण्डितकुसुमा शुभ्र-त्रपा-रक्षिणी ।
[illegible] अम्बवती गङ्गा-सुधा-धार तू ॥
[illegible]किरीट-शोभित-शिखा आपूर्ण-धान्याकुला ।
[illegible]-अधाल-बहुला माताऽन्नपूर्णेश्वरि !

(२)

[illegible], पद्मासने, स्मानने !
[illegible] है कीर्तनोंसे भरा ॥
[illegible]-केश विलसे पुष्प-द्रुमोंसे गुँथे ।
[illegible] रविसुता दीर्वा त्रिवेणी बनीं ॥

(३)

श्रीनगरी शुभ्रा विलसती भूषा ललाट-स्थिता ।
[illegible]शिला सु-पुष्करवती हैं भद्र कर्णेन्द्रियाँ ॥
[illegible] त्वदीय मुख है, ऐश्वर्यका केन्द्र जो ।
[illegible] तीर्थराज, जिसमें थे वेद गाये गए ॥

(४)

[illegible]भि बनी अहर्वं-वसना आनन्द-चित्कानना ।
[illegible]क्षिण-उत्तरा पथ बने तेरे भुजा-नाल हैं ॥
[illegible], बिहार वक्रगतितः पद्मासनोपाङ्ग हैं ।
[illegible]वयवे, प्रहृष्ट-वदने, कल्याण-संवर्द्धिके ॥

(५)

सारी दिग्वधुएँ, अभीष्ट-वरदे ! [illegible]
सारे दिक्पति भी [illegible]चरणोंके अर्चनार्थ [illegible]
यज्ञोपासन [illegible] करते कर्मेन्द्रियें [illegible]
भव्ये भारत-भूमि [illegible] ! तू है [illegible]

(६)

तेरे दिव्य अमूल्य [illegible]-कण्ठमें श्रीसिन्धु[illegible]
हैं देवर्षि, सुपद्म. शेष विलसे [illegible]
हैं वीणा-वर-दण्ड-मण्डित-करा वाणी [illegible]
रुद्राणी शिव-शक्ति साधन-परा. [illegible]

(७)

तेरे सौम्य शुभाङ्कमें पल चुके श्रीराम, श्री[illegible]
श्रीसीता, वृषभानुजा कर चुकी हैं भूमिकायें
शुभ्रोध्या-व्रज-सख्य संस्करण हैं तेरे शुभा[illegible]
जो अद्यापि सचेत-से कर रहे सत्प्राण [illegible]

(८)

तेरे ही जल-वायुसे प्रथमतः सद्ज्ञानकी ज्यो[illegible]
दूर्वा-संस्कृति-वाटिका कलना-सी वासन्तिकी
तू ही प्राक्तन सभ्यता-प्रजननी अध्यात्म-भावा[illegible]
है सीमा-प्रतिमुक्त तू विहरती भू-[illegible]

(९)

द्रुत-विलम्बित छन्द

जननि ! जीवन दे, जय-दायिनि !
सुकृत-भाग्य-समुन्नति-दायिनि ।
स्तुति करूँ किस भाँति, न जानता;

संस्कृतिके रक्षण और प्रसारमें बाधक तीन महाभ्रम

ात्त्य विद्वानोंने अज्ञानसे, मतिभ्रमसे, किसी कुटिल
ग्रसे या अन्य किसी भी कारणसे हो—इन तीन
का प्रतिपादन, प्रचार और प्रसार किया—

१) यहाँ आर्यजाति बाहरसे आयी है । भारतवर्ष
ल निवास-स्थान नहीं है ।

२) चार हजार वर्षसे पहलेका कोई इतिहास नहीं है ।

३) जगत्में उत्तरोत्तर विकास—उन्नति हो रही है
रतीय विद्वानोंके मस्तिष्कमें भी अधिकांशमें ये
तें प्रवेश कर गयीं । काल-प्रभावसे या दैवसंयोगसे
द्वानोंका सभी क्षेत्रोंमें प्रभाव बढ़ा, जिसका परिणाम
ा कि जनतामें उत्तरोत्तर इन तीनों महाभ्रमोंका
होने लगा । इसीका यह फल है कि आज भारतीय
अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने पूर्वज, अपने
-रामायणादि प्राचीन इतिहास, अपने धर्मग्रन्थों,—
ते और पुराण-ग्रन्थोंपर अवहेलना, अश्रद्धा और
बढ़ रही है !

लोग जब बाहरसे आये हुए हैं, तब यहाँकी
हमारा कोई ममत्व क्यों होना चाहिये । यद्यपि
जगत्की देशभक्तिके प्रचारसे भारतवर्षको इस
ग अपनी जन्म-भूमि मानते हैं और इसके साथ
भी है; परंतु जबतक इसे पूर्वजोंकी पवित्र पितृभूमि
ते, तबतक भावमें उतनी उच्चता नहीं आ सकती ।

: हजार वर्ष पहलेका कोई इतिहास नहीं, इसका
हुआ कि हमारे वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण—सभी
ार वर्षके अंदर-अंदर बने हुए माने जाने लगे
में केवल कवि-कल्पनाकी भावना होने लगी ।
सच्चे गुण-गौरव कल्पनाकी आँधीमें उड़ गये ।
ोटी-सी संकुचित सीमामें आबद्ध होकर हमारा
ज्ञानभण्डार और गौरवपूर्ण अतीत सर्वथा निष्प्रभ
ी हो गया ।

रे भ्रमने तो बहुत बड़ा अनर्थ किया । सृष्टिके
ळसे जगत्में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है—इस
अतीतके ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, धर्म,
सदाचार, आचार-विचार, बुद्धि-विवेक, शौर्य-वी
तपस्या, वैभव-ऐश्वर्य और भाव-प्रभाव—सभी
फेर दिया । आज जितनी उन्नति है, उतनी दस
पहले नहीं थी; दस हजार वर्ष पहले जितनी
लाख वर्ष पहले नहीं थी । लाख वर्ष पहले जितनी
करोड़ वर्ष पहले नहीं थी । भ्रम तो यहाँतक
रहा था कि सृष्टिकी उम्र ही केवल चार-पाँच हजार
परन्तु वह भ्रम तो अब टिक नहीं सका । इसलिये
लोग छोड़ रहे हैं, पर इस विकासवादका महा
बड़े-बड़े मस्तिष्कोंमें भरा है ।

इन तीन भ्रमोंने हम भारतवासियोंको सहज पर
और परानुकरणपरायण बना दिया है । इसीका
उदाहरण हमारा 'नवविधान' है । इसमें आदिसे अन्त
विदेशीय विधानोंका आश्रय लिया गया है, अपने
ग्रन्थोंमें शासन और राजनीतिपर जो विशद विच
गया है उसकी ओर देखा भी नहीं गया । इन्हीं
कारण बाहरसे स्वराज्य मिल जानेपर भी हमारा
भी परतन्त्र है । नीयत बुरी न होनेपर भी
प्राचीन गौरवकी बातें प्रिय लगनेपर भी हमें
नहीं होता कि आजके जगत्की अपेक्षा हमार
जीवन बहुत उन्नत था और हमारा ज्ञानभण्डार
रत्नोंसे भरा था । आज भी खोज करनेपर उसमें
रत्न मिल सकते हैं, जिनकी अन्यान्य उन्नत कहानेवा
कल्पना भी नहीं है । यह अविश्वास इसीलिये है
मनमें यह बात दृढ़ताके साथ जँच गयी है कि
उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है । आज जितनी
उतनी उन्नति पहले कभी थी ही नहीं । इसीलिये
विषयमें आजकी उन्नतिकी नकल करना चाहते हैं
आत्मविस्मृति बड़ी ही बुरी है और इसीके कार
मस्तिष्कमें परतन्त्रताके विचारोंने अपना एक सुरा
बना लिया है ।

भारतवासियोंको गम्भीर विचार करके अपने
प्रकाशसे इन तीनों भ्रमोंके अन्धकारका नाश
चाहिये—नहीं तो उन्नतिके नामपर अवनतिव
धारामें बहते जाना रुकेगा ही नहीं

हिंदू-संस्कृति अध्यात्मप्रधान है

प्रधान लक्ष्य भगवत्प्राप्ति

नके सभी क्षेत्रोंमें व्याप्त सनातन परम्परासे चली ई अध्यात्मप्रधान धर्ममय सुसंस्कृत 'विचार और णाली' का नाम ही हिंदू-संस्कृति है। हिंदू-संस्कृति-नेर्मल धारा अत्यन्त प्राचीनकालसे अविच्छिन्नरूपमें है। अतएव हिंदू-संस्कृति सबसे प्राचीन और नीय सनातन भारतीय आर्य-संस्कृति है, यही वास्तव-संस्कृति है। इस संस्कृतिमें मनुष्य-जीवनका प्रधान कमात्र लक्ष्य है—मोक्ष, ज्ञान या भगवत्प्राप्ति। समें जीवनकी प्रत्येक क्रिया और चेष्टा इसी लक्ष्यपर कर की जाती है। इसीलिये हमारे पुरुषार्थ-चतुष्टयमें स्थान मोक्षको दिया गया है—धर्म, अर्थ, काम और गारांश यह कि हमारा अर्थ और काम (उपभोग) गा संयमित-नियमित होता है। धर्मरहित अर्थ और उपभोग (काम) महान् अनर्थ उत्पन्न करके मनुष्यका कर देते हैं। रावण, वेन, कंस, दुर्योधन आदि दाहरण हैं। केवल 'अर्थ' और 'काम'से युक्त जीवन -जीवन है। श्रीमद्भागवतमें कहा है कि 'जब हो जाता है, तब अर्थ और काममें फँसे हुए लोग र बंदरोंके समान वर्णसंकर हो जाते हैं।* हिंदू- में अर्थ तथा कामका त्याग नहीं है। उनकी भी ा है, पर वे होने चाहिये धर्मके आश्रित। वाल्मीकीय में भगवान् श्रीरामजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

> धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके
> समीक्षिता धर्मफलोदयेषु।
> तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे
> भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा॥
> यस्तु सर्वे स्युरसन्निविष्टा
> धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमेत।
> द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके
> कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता॥
> (अयोध्या० २१। ५६-५७)

'धर्मके फलस्वरूप सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्तिमें अर्थ, काम उपाय माने गये हैं, वे तीनों एक धर्ममें हैं। धर्मके अनुष्ठानसे इन तीनोंकी सिद्धि होती मुझे सन्देह नहीं है—जैसे पतिके अधीन रहनेवा अतिथि-पूजनादि धर्ममें, मनोऽनुकूल होनेसे काम सुपुत्रवती होकर अर्थमें सहायिका होती है। जिस क अर्थ, काम—तीनों सन्निविष्ट न हों, पर जिससे धर्म व वही कर्म करना चाहिये। धर्मको छोड़कर अर्थपराय वालेसे लोग द्वेष करने लगते हैं और ऐसे ही कामा प्रशंसाकी बात नहीं है।'

मनु महाराज कहते हैं कि जो अर्थ और का विरोधी हों, उन अर्थ और कामका त्याग क देना च

> परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ
> (४।

और धर्म—परम धर्म वस्तुतः वही है, जो जीवनधाराका मुख श्रीभगवान्की ओर मोड़ दे तथ अविराम गतिसे बिना किञ्चित् भी इधर-उधर भटके जी निरन्तर समुद्रकी ओर बहनेवाली गङ्गाजीकी धार उसी दिशामें बहता रहे*—

> मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधे

इसी प्रकार भगवान्के निमित्त किये जानेवाले शून्य धर्मयुक्त कर्मोंका फल बन्धनमुक्ति, दिव्यलोकोंकी परमात्मरूप परम स्वातन्त्र्य (मोक्ष) की प्राप्ति एव शान्तिकी उपलब्धि होती है†। वेदमें कहा गया है—

> तदाऽर्थधर्मश्च विलीयते नृणां
> वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः।
> ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां
> शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः॥

* स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति
(श्रीमद्भा० १।

'मनुष्योंके लिये सबसे बढ़कर परम धर्म वही है श्रीभगवान्में अहैतुकी और कभी न टूटनेवाली भक्ति हो। जि सच्चिदानन्द परमात्माकी उपलब्धि करके वह कृतकृत्य हो

† धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभि
लोकान् विशोकान् वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम
(श्रीमद्भा० ४। १४

'मनुष्य यदि मन, वाणी, शरीर और बुद्धिसे धर्मका करे तो वह धर्म उन्हें शोकरहित दिव्यलोक प्रदान करत यदि धर्म करनेवाले पुरुष स्वर्गादि लोकोंके भोगोंमें आस

' वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
ेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(शुक्ल यजुर्वेद ४०।१-२)

खिल विश्वमें जो कुछ भी जड-चेतन जगत् है, यह
से व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए, त्याग-
गते रहो। इसमें आसक्त मत होओ। किसीके भी
च्छा मत करो। इस जगत्में इस प्रकार ईश्वरप्रीत्यर्थ
हुए सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा करो। यों त्याग-
ये गये कर्म तुझ मनुष्यमें लिप्त नहीं होंगे। इसके
अन्य कोई मार्ग नहीं है।'

गवान् गीतामें कहते हैं—

र्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
र्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

(३।९)

(भगवान्) के निमित्त किये जानेवाले कर्मोंसे
दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ मनुष्य कर्मोंसे बन्धनको
ता है। अतएव अर्जुन! तुम आसक्तिरहित होकर
(भगवान्) के लिये ही भलीभाँति कर्म करो।'

द्भागवतमें कहा है—

न वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
ति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

(११।२।३६)

ीरसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे, अहङ्कारसे
न्मों अथवा एक जन्मके स्वभाववश जो कुछ भी
परमपुरुष भगवान् श्रीनारायणके लिये ही है—इस
न्हें समर्पण कर दे।'

वान्ने गीतामें स्वयं समर्पणकी आज्ञा की है—
रोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(९।२७)

र्जुन! तुम जो कर्म करते हो, जो खाते हो, जो हवन
करते हो, जो दान देते हो और जो तप करते हो,
मेरे अर्पण करो।'

इस अर्पणका फल भी भगवान् वहीं बतलाते हैं-

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि

(९

'इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्में
हो जाते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाले तुम शु
रूप कर्मबन्धनसे छूट जाओगे और उनसे छूटकर
प्राप्त होओगे।'

हिंदू-संस्कृतिका प्रधान और मूल स्वरूप यही
संस्कृति जीवको विषयासक्तिके नीचे स्तरसे उठाकर उ
के उच्च स्तरपर ले जाती है। इसका प्रत्येक साधन, चिन्ह
कर्म आत्माको परमात्मातक पहुँचानेमें सहायक हो

धर्म और समवितरण

मोक्ष जीवनका ध्येय है। इसीलिये हिंदू-संस्कृतिमें
साथ जीवनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। छोटे-से-छोटे
लेकर बड़े-से-बड़े कर्ममें धर्म सदा संलग्न है। परम
भगवान्की भक्ति ही है। पर उसके साथ कुछ ऐसे
धर्मके बतलाये गये हैं, जो सभीके लिये परम उपा
श्रीमनुमहाराज कहते हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्

(२

जो वेद और स्मृतिके द्वारा प्रतिपादित, स
द्वारा आचरित और अपनेको प्रिय लगनेवाला हो*
चार प्रकारका धर्मका साक्षात् लक्षण बतलाया गया है

---

* अपनेको प्रिय लगे, वैसा ही आचरण दूसरोंके प्र
अपनेको सम्मान, प्रेम, हित, द्वेष-दम्भरहित सद्व्यवह
लगता है, तो दूसरोंके साथ भी वैसा ही करना
महाभारतमें आया है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

धर्मका सर्वस्व—सार सुनना और उसे धारण करना च
जो कुछ भी अपनेसे प्रतिकूल हो, दूसरोंके साथ भी वैसा
न करे।

ः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
र्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(मनु० ६। ९२)

ते, क्षमा, दम (मनका संयम), अस्तेय, शौच,
ग्रह, धी (विज्ञान), विद्या (अध्यात्मविद्या),
[अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

ीमद्भागवतमें इस मानवधर्मको तीस लक्षणोंसे
गया है—

ं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
ंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
ां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥
ाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
ात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
णं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
ज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
ामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
शल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥
(७। ११। ८-१२)

य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका
मनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य,
स्वाध्याय, निष्कपटता, सन्तोष, समदृष्टि, महापुरुषोंकी
ीरे-धीरे सांसारिक भोगोंकी चेष्टासे निवृत्ति, मनुष्यके
मपूर्ण प्रयत्नोंका फल विपरीत होता है—ऐसा विचार,
आत्मचिन्तन, अन्न आदि पदार्थोंका प्राणियोंमें
र विभाजन, उन सभी प्राणियोंको—विशेष करके
को अपना आत्मा और इष्टदेव ही समझना, संतोंकी
।, भगवान्के गुण-माहात्म्यादिका श्रवण, कीर्तन और
उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति
सख्य और आत्मसमर्पण—यह सभी मनुष्योंके लिये
र्म है। इस तीस लक्षणवाले धर्मके पालनसे सबके
रूप भगवान् प्रसन्न होते हैं।

न लक्षणोंपर विचार करके देखिये। जिस संस्कृतिमें
ये लक्षण हों, उससे जगतका कोई भी प्राणी कैसे

सबमें समान भावसे यथायोग्य विभाग कर देना
बढ़कर समवितरण और क्या हो सकता है!

श्रीभगवान्ने गीतामें तो यहाँतक कह दिया है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात
(३

'यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरु
पापोंसे छूट जाते हैं; पर जो पापी मनुष्य अप
पोषणके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो (अन्नके
पाप ही खाते हैं।'

इसीसे हिंदू-घरमें नित्य पञ्चमहायज्ञ हो
संसारमें पाँच प्रकारके प्राणी हैं और उनके परस्पर
सबकी पुष्टि-तुष्टि और संरक्षण-संवर्धन होता है।
हैं—देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और इतर समस्त
देवताओंसे (भूमि, जल, सूर्य, चन्द्रमा आदिसे
संसारको इष्टभोग प्राप्त होते हैं। ऋषि-महर्षियों
मिलता है, पितरोंसे भरण-पोषण और परम हितकी
प्राप्त होती है। मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके द्वारा ए
सेवा करते हैं एवं पशु, पक्षी, वृक्ष-लतादि सब
लिये सदा अपनेको अर्पण किये रहते हैं। इ
मनुष्य विशेषरूपसे योग्य और साधनसम्पन्न
इसीलिये मनुष्यपर सबकी पुष्टिका दायित्व है।
उसीको अधिकार है। अतः मनुष्यका यह कर्त
वह जो कुछ उपार्जन करे, उसमें सबका भाग समझे
वह सभीके सहयोगसे कमाता-खाता है—जीवन-याप
है। इसीसे यज्ञसे बचे हुए अन्नको अर्थात् इन पाँचों
अपने भागोंको देनेके बाद जो बच रहता है, उस
जो खाता है, वह 'अमृत' खाता है। पर जो कमाईमेंसे
उचित भाग उन्हें न देकर सब अकेला हड़प
वह पाप खाता है।

आजकल कुछ लोग कहा करते हैं कि "हम तो
'साम्यवाद' चाहते हैं कि लोगोंको रोटी-कपड़
हिंदू-संस्कृतिमें इस रोटी-कपड़ेकी कोई व्यवस्था न
पर ऐसा कहनेवाले हिंदू-संस्कृतिके स्वरूपसे सर्वथा
हैं। असल बात तो यह है कि रोटी-कपड़ेकी जैसी

सीमामें ही अवरुद्ध है। वह भी केवल मनुष्योंके
ोर उन मनुष्योंके लिये है, जो अपने मतके हैं।
ंदू-संस्कृतिमें यह व्यवस्था प्राणिमात्रके लिये है।
प्रत्येक जीवको भगवान् मानकर उसकी सेवा
आदेश है।

। अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

हारमें सबसे अधिक ममत्वका व्यवहार सन्तानके
ता है। देवर्षि नारदजी धर्मराज युधिष्ठिरसे कहते हैं—

ष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः।
मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत्॥
(श्रीमद्भा० ७।१४।९)

िन, ऊँट, गधा, बंदर, चूहा, साँप, पक्षी और
आदिको अपने निज पुत्रके समान समझे। उनमें
में अन्तर ही कितना है।'

नी उदार संस्कृति है यह, जिसमें प्राणिमात्रको
। ही नहीं, सच्चा स्नेहदान है और सबके लिये
वितरणकी सुव्यवस्था है। आजकल तो 'अधिक
ाओ' की तरंगमें बंदर, हरिण और नीलगाय-जैसे
सामूहिक संहारकी राक्षसी व्यवस्था हो रही है।
स्वार्थी मनुष्य किस स्तरपर आ गया है! आश्चर्य
ुन बन्दरमार लोगोंको प्राणिमात्रको आश्रय देनेवाली
त्र उदार हिंदू-संस्कृतिमें साम्प्रदायिकताकी बू
ै! और इसकी निन्दा करनेमें उन्हें सुख
!!

समता

अवश्य है कि हिंदू-संस्कृतिमें समता विवेकपूर्ण
दू इस बातको जानते हैं कि समता आत्मामें होती
के व्यवहारमें नहीं होती। हिंदू दार्शनिकोंका
भव है कि सृष्टिकी स्थिति प्रकृतिकी विषमतामें ही
ाँ प्रकृतिका वैषम्य मिट जाता है, वहाँ जगत्‌का
ही लोप हो जाता है। वह तो महाप्रलयकी अवस्था
ं प्रकृति देवी परमात्माके अंदर प्रविष्ट होकर सो

लिये हिंदू विद्वान् जिन जीवोंके आकार-प्रकार,

उनमें भी ब्रह्म—परमात्माको समभावसे विराजित दे
भगवान् कहते हैं—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः
(गीता ५

'वे पण्डितजन विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमें, च
तथा गौ, हाथी और कुत्तेमें भी समदर्शी होते हैं

यहाँ कोई कह सकते हैं—'ब्राह्मण और चाण्डाल-
ही मनुष्य हैं। इनमें समदर्शन ही क्यों, समान व्यवहार
सकता है।' (यद्यपि यह संभव नहीं) उनसे यह
है कि मनुष्यकी बात तो ठीक है—पर गाय, हाथी,
साथ भी क्या सम व्यवहारकी बात कभी सोची जा
है? गौका दूध लोग चावसे पीते हैं, कुतियाका के
पीता; हाथीकी सवारीमें गौरव माना जाता है,
सवारी कोई नहीं करना चाहता। हाथी जितना ख
कुत्ता उतनेसे दबकर मर जा सकता है। हाथी, कु
गायके आकार-प्रकारमें भी बड़ा भेद है। इस अवस्था
सम-व्यवहारकी बात कहना पागलपन मात्र है। पर व्य
विषमता होते हुए भी प्राणिमात्रमें एक ही आ
एक ही भगवान् सदा विराज रहे हैं, इस बातको हिंदू
है। वह ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणोचित, चाण्डालके
चाण्डालोचित तथा गौ, हाथी और कुत्तेके साथ
योग्य व्यवहार करता है; परन्तु उनमें नित्य
परमात्माको देखनेके कारण किसीके साथ असद्व्यव
करता और न व्यवहारकी विषमतासे उसके प्र
परमात्मभावमें ही न्यूनता आती है।

जिस प्रकार अपने मस्तक, हाथ, पैर आदि
आत्मभाव समान होनेके कारण मनुष्य उनके
भेद रखता है—मस्तिष्कसे विचार करता है, मुँह
और बोलता है, हाथोंसे आदान-प्रदान करता,
पढ़ता है और पैरोंसे चलता है। एक अङ्गसे दूसरे
काम नहीं लेता; क्योंकि वह जानता है कि यह
नहीं है। परन्तु सबके सुख-दुःखका समान रूपसे
करता है और समस्त शरीरमें समान प्रेम करता है
प्रकार व्यवहारमें भेद रखता हुआ भी हिंदू प्रत्येक
साथ आत्माके नाते सदा समभावापन्न रहता है,
जैसे अपने योगक्षेम तथा कल्याणके लिये प्रयत्न क

वान् गीतामें कहते हैं—

मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
ां वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(६। ३२)

र्जुन! जो योगी अपनी ही तरह समस्त भूतोंमें सम को) देखता है और सुख या दुःखको भी सबमें सम, वह परम श्रेष्ठ योगी माना गया है।'

कहीं किसीके साथ कभी व्यवहारमें युद्धादि-जैसी ा करनी पड़ती है तो वैसे ही जैसे मनुष्य अपने इ अङ्गका विकार निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया न) कराता है। गीतामें भगवान्ने अर्जुनको नपर युद्धके लिये आज्ञा दी है। पर साथ ही यह कि राज्यकी आशासे, कामनासे, आसक्तिसे और वशमें होकर युद्ध न करो। युद्ध करो मेरी निकर, मेरे लिये, मेरी प्रसन्नताके लिये, मेरा कर्म। ऐसे विकट कर्ममें भी न आसक्ति रहे, न किसीके रहे—रहे केवल भगवत्परायणता, भगवद्भक्ति ावत्कर्म। इसीका नाम अनन्य भक्ति है। इसीसे ते हो जाती है।*

हिंदू-संस्कृतिकी ही विशेषता है कि इसमें विषमतामें खनेका तथा क्रूर कर्मोंमें भी अनासक्त और निर्वैर हें भगवत्कर्म बनाने एवं उनमें भक्ति और परायणता- ा करनेका कौशल प्राप्त है।

वहारिक अनेकतामें तात्त्विक एकता और प्रकृति- गत्की विषमतामें परमात्माकी नित्य समता देखना कृतिकी विशेषता है। इसी संस्कृतिमें यह अनुभव लाया गया है कि यह सारा जगत् एक ही भगवान्- ा है, उन्हींमें स्थित है और उन्हींमें समाता है।

ो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। न्त्यभिसंविशन्ति। तद् ब्रह्म— (तैत्तिरीय० ३। १)

त्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११। ५५)

र्जुन! जो पुरुष मेरे ही लिये कर्म करता है, मेरे परायण भक्त है, आसक्तिरहित है, समस्त प्राणियोंमें वैरभावसे

एवं इस सर्वगत परमात्माकी अपने-अपने कर्म पूजा करके मनुष्य जीवनकी परम और चरम सफलत कर सकता है।*

वर्णधर्म

अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भगवान्के विधान जिस वर्णमें (या जिस योनिमें) जन्म ग्रहण कर है, उसके जो स्वाभाविक कर्म हैं, वही उसके 'अ (स्वकर्म) हैं। यही वर्णधर्म है। वर्णधर्ममें सब पृथक्-पृथक् रूपसे कर्म नियत हैं। वर्णधर्मके अनु वर्ण या जातिकी जो पैतृक आजीविका है, उसीको अपना में सन्तुष्ट रहना और उससे जो कुछ उपार्जन हो यथायोग्य रीतिसे समाजमें वितरण कर देना उसका क जन्मसे ही वृत्ति नियत होनेसे न तो किसीमें कभी ३ का भाव आता है, न कोई किसीकी वृत्ति छीननेक करता है। इसके अतिरिक्त, वंशपरम्परासे आ जो साधन चले आते हैं, स्वाभाविक ही उनमें उस वं निपुण हो जाते हैं। उनके रक्त-मांसमें उसके भाव हैं। इससे उनका कार्य बहुत सुन्दर और सुचारुरूप होता है।

वर्णोंमें न तो आत्माकी दृष्टिसे कोई भेद है औ भेदसे उनमें कोई छोटा-बड़ा है। अपने अपने सभीका समान महत्त्व है। सभी अन्योन्याश्रित दूसरेके पूरक और सहायक हैं तथा सभीकी अपने-अपन विशिष्ट उपयोगिता है। ब्राह्मण ज्ञानबलसे, क्षत्रिय वैश्य धनबलसे और शूद्र जनबल तथा श्रमबलसे है। यही इनका स्वधर्म है। इनकी उत्पत्ति भी एक ही के दिव्य शरीरसे हुई है। ब्राह्मणकी भगवान्के क्षत्रियकी बाहुसे, वैश्यकी ऊरुसे और शूद्रकी हुई है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृत
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत

(ऋग्वेद १०। ९०

---

* यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं तत
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव

(गीता १८

जिस (परमेश्वर) से सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति

ब अपने-अपने कर्मका सुचारुरूपसे सम्पादन करते
मान्तरमें वे उच्च वर्णके होते हैं। जैसे नाटक-मण्डली-
अभिनेताके द्वारा अपने जिम्मेका अभिनय सफलता-
सम्पन्न किये जानेपर उसे दूसरे श्रेष्ठ पात्रका अभिनय
ा है, वैसे ही इस जगन्नाटकमें सफल अभिनेताको
में उच्च वर्णकी प्राप्ति होती है।

कर्म और पुनर्जन्म

्-संस्कृतिमें 'कर्म' और 'पुनर्जन्म'का सिद्धान्त अनुभव-
मान्य है। कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है
नुसार जन्मान्तरकी प्राप्ति होती रहती है एवं जबतक
ते या मुक्ति नहीं हो जाती, तबतक यह जन्म-मरण-
चलता ही रहता है। मरनेपर कर्मानुसार जीव
क देह प्राप्त करके तेजःप्रधान- देव-देहसे स्वर्गादि
अथवा वायुप्रधान पितृ-प्रेतादि-देहसे पितृ-प्रेत-
जाता है; परंतु इसके सिद्धान्तमें अनन्तकालीन स्वर्ग
नहीं है। स्वर्ग या नरकादिके सुख-दुःख भोगकर
अपने कर्मानुसार अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेता है।
ष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है और फलमें परतन्त्र है।
कर्माचरणसे अन्धकारमय दुःखप्रद नरकादि लोक
व पशु-पक्षी आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं और
त्र कर्मोंके फलस्वरूप सुखमय स्वर्गादि लोक और
ठ वर्णकी मानव-योनि प्राप्त होती है। छान्दोग्यो-
कहा है—

**गीयचरणाः......रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मण-
क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा......कपूयचरणाः
योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डाल-
।**

(५।१०।७)

जीवोंमें जो अच्छे आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र
योनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि
श्ययोनिको प्राप्त करते हैं तथा जो अशुभ आचरण-
हैं, वे तत्काल अशुभयोनिको प्राप्त होते हैं। वे
योनि, शूकरयोनि या चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं।'

आश्रम-धर्म

व्यवस्थाकी भाँति ही हिंदू-संस्कृतिमें आश्रम-
है। हिंदू-संस्कृतिका साध्य त्याग है, भोग नहीं।
बात मानी जाती है। हिंदू-संस्कृतिमें स्वाभाविक
की अपेक्षा त्यागीका स्थान ऊँचा है। महान् सम्राट्
महात्माओंकी चरणधूलि सिरपर चढ़ानेमें अपना
समझता है। किसके पास कितना अधिक धन-ऐ
इसका कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व है इस बातका
कितना बड़ा त्यागी है। पाश्चात्त्योंके संगसे जबसे भा
त्यागके महत्त्वको भुलाया और अपनी संस्कृतिके वि
विरुद्ध भोगैश्वर्यके पीछे पागल हुआ, तभीसे जीवन
मानकर उसकी दृष्टि केवल अर्थ और अधिकारपर टि
और तभीसे अनाचार, दुराचार, चोरी, छल, कप
बाजारी, रिश्वतखोरी आदि दोष आ गये और ये तब
मिट सकेंगे, जबतक कि त्यागकी महत्ताका यथार्थ
न हो जायगा।

हमारे आश्रमधर्ममें आरम्भसे ही त्यागकी शिक्षा
है। 'ब्रह्मचर्याश्रम'में राजकुमार भी गुरुकुलमें उ
रहता है, जिस रूपमें एक निर्धनका बालक। और नि
वहाँ समस्त विलास-सामग्रियोंका—ऐन्द्रिय सुखोप
त्याग और मन-इन्द्रियका संयम रखना पड़ता है। त्या
प्रथम घाटीको पार करके वह 'गृहस्थाश्रम'में आता है,
भोगोंमें रहकर त्यागी बनना पड़ता है। धन कमाता है
लिये नहीं, सारे समाजके लिये, विश्वके लिये—भ
लिये। पुत्रोत्पादन करता है, पर अपने लिये नहीं,
लिये, धर्मके लिये, भगवान्के लिये। वह संय
जितेन्द्रिय होता है। वह सारे समाजका सेवक होता है
आश्रमोंका और प्राणिमात्रका आश्रय होता है।*

* यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वह
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृह
स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छत
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियै
(मनु० ३। ७

'जैसे सब प्राणी प्राणवायुका आश्रय लेकर जीते हैं
सभी आश्रम गृहस्थाश्रमीका आश्रय लेकर जीते हैं; क्यों
ही नित्य विद्या और अन्नका दान देकर तीनों आश्र
टिकाये रखता है, अतः गृहस्थाश्रमी पुरुष तीनों आश्रमोंसे
जिसको स्वर्गके अक्षय सुखकी तथा इस लोकमें सुखकी

; प्रसादरूपसे जो प्राप्त होता है, उसीको अमृतरूप
ह अपना काम चलाता है। इस आश्रममें जीवनका
न् उत्तरदायित्वयुक्त कर्मपूर्ण अंश बिताकर और
योग्य त्यागभावापन्न उत्तराधिकारीपर घरका भार
गके पथमें और भी आगे बढ़नेके लिये वह 'वानप्रस्थ'
पहुँचता है और अन्तमें चतुर्थाश्रम—संन्यासमें सम्यक्
म्पूर्ण त्याग करके परमात्माके साथ एकात्मता प्राप्त
। चारों आश्रम उत्तरोत्तर अधिकाधिक त्यागकी
ले जानेवाले हैं और अपने-अपने पूर्वाश्रमकी सुदृढ़
आधारपर स्थित हैं।

विवाह

-संस्कृतिमें विवाह कभी न टूटनेवाला एक परम
र्मिक संस्कार है, यज्ञ है। वह इन्द्रियसुखभोगके लिये
क पुत्रोत्पादनके द्वारा परलोकगत पितरोंको सुख
और देवताओंको तुष्ट करनेके लिये है। इसमें
च्छेदकी बात तो दूर रही, जन्म-जन्मान्तरतक
का पवित्र सम्बन्ध बना रहता है। इसीसे हिंदू-स्त्रियाँ
वके साथ हँसते-हँसते सती हो जाती हैं। इस गये-
ानेमें भी सतियोंके चमत्कार होते ही रहते हैं*।

बड़ोंकी सेवा

दू-संस्कृतिमें माता-पिता, गुरु और श्रेष्ठ पुरुषोंकी
तथा सेवाका बड़ा महत्त्व है। मनु महाराज कहते हैं—

चार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥
यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान् विजयेद् गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते॥
(मनु० २। २२५, २२६, २२७,

'आचार्य, पिता, माता और बड़े भाई—इनका
सताये जानेपर भी, अपमान न करे। ब्राह्मणको तो वि
इनका अपमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि
ब्रह्माकी मूर्ति, पिता प्रजापतिकी मूर्ति, माता पृथ्वी

---

* अभी हालमें सीतापुरके चमखरि ग्राममें एक सती हो गयी
सम्बन्धमें हमारे पास बहुत-से पत्र आये हैं। सभीमें लिखा
ग्नि अपने-आप प्रकट हो गयी थी। उन पत्रोंमेंसे एक पत्र
जो श्रीमनोहरलालजी वैश्यका लिखा हुआ है। हमने
लिये वहाँ अपने एक आदमीको भेजा था। उन्होंने भी इस
सर्वथा सत्य बतलाया है—

सतीका चमत्कार

ाम पाताबोझ-महोली (सीतापुर) निवासी श्रीरामचरणलाल-
श्रीसरयूप्रसादजी वैश्यकी सुपुत्री श्रीजयदेवीका जन्म महोली-
था। श्रीजयदेवीके पिता जूनियर हाई स्कूल महोलीमें आज
ध्यापक हैं। श्रीजयदेवी बचपनसे ही भगवान्का भजन,
और रामायणपाठमें विशेष रुचि रखती थीं। आजसे सात
ठ मास पूर्व उसका विवाह चमखरि ग्राम-निवासी श्रीद्वारका-
ी वैश्यके पुत्र श्रीरामेलालजीके साथ सम्पन्न हुआ। विवाह
में ही हुआ था।

इस समय उनके पतिकी अवस्था २२ साल एवं श्री
जीका १९ वाँ वर्ष पूरा हो रहा है। इनके पतिदेव श्रीरामे
पौषकृष्ण १२ शुक्रवार ता० १६ दिसम्बर सन् १९४९ को
समय ४ बजे स्वर्गवास हो गया। तब श्रीजयदेवीजीने स
कि 'बिना स्नान किये हुए कोई भी व्यक्ति मेरे पतिके श
न करे एवं न स्नान किये बिना कोई घरमें ही प्रवेश करे और
रोये नहीं। फिर अपने श्वशुर श्रीद्वारकाप्रसादजीसे कहा
पुलिस सीतापुर तथा महोलीको सूचना कर दीजिये, जि
आपको कोई परेशान न करे।' इतनेमें तो यह समा
ओर फैल गया।

तदनन्तर श्रीजयदेवीजी स्नानादिसे निवृत्त होकर
श्रीरामायण-पाठ करती रहीं। दूसरे दिन बारह बजे म
तक पाठ, स्वाध्याय, भगवन्नाम-कीर्तन इत्यादि होता रहा
रथी श्मशान-घाटको रवाना हुई। हजारों आदमियोंकी
थी। पुलिसके अधिकारियोंने कई प्रकारके प्रश्न श्रीसतीजी

श्रीसतीजीने केवल इतना ही कहा, 'ईश्वर! तुम्हीं स
मात्र सहायक हो। तुम्हीं मेरा बेड़ा पार लँघाओ।' भग
करती हुई वे शवके आगे-आगे ग्रामसे दक्षिण तीन
तक गयीं।

पौषकृष्ण १३ शनिवारको २ बजकर २० मिनटपर प
अपनी गोदमें रखकर राम-राम करती हुई वे चित
गयीं। सतीजीने पहले श्रीसूर्यभगवान्की ओर हाथ जोड़
फिर नतमस्तक हो पुनः सूर्यभगवान्की ओर देखा।
उनके दोनों नेत्र अरुणिमामय हो गये, ललाट चमकने ल
अन्तिम बार सूर्यभगवान्की ओर देख दोनों हथेलियोंको
तुरंत ही अग्निदेव प्रज्वलित हो गये। सब लोग 'जय-जय' पु

उनके श्वशुर श्रीद्वारकाप्रसादजीने पूछा, 'बेटी!
क्या आज्ञा होती है?' तो कहा—'सर्वसम्पत्तिमान् होओगे।'
सरयूप्रसादजी तथा दारोगाको आशीर्वाद देकर भगवान

ड़ा भाई अपनी ही दूसरी मूर्ति है (इनका अपमान
न-उन देवताओंका अपमान करना माना जाता है)।
ो जन्म देकर उनका पालन-पोषण करनेमें माता-
जो दुःख सहना पड़ता है, उसका बदला सैकड़ों
करनेपर भी नहीं चुकाया जा सकता ।'

। गृहस्थी (माता, पिता और गुरु) इन तीनोंकी
तत्पर रहता है, वह तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त
है और स्वर्गमें सूर्यके सदृश अपने तेजस्वी शरीरके
ाश करता हुआ आनन्दमें रहता है ।'

भिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
ारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥
(मनु० २ । १२१)

मनुष्य नित्य बड़ोंको प्रणाम करता है और उनकी
ता है, उसके आयु, विद्या, यश और बल चारों
।'

-संस्कृतिके कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षणोंका यहाँ दिग्दर्शन
ाया है । वस्तुतः हिंदू-संस्कृति अध्यात्मप्रधान है ।
क लोकहितका पूरा ध्यान रखते हुए सत्य और
साधनसे अनासक्त होकर लौकिक उन्नति करना
में भी जीवनके चरम लक्ष्य भगवान्‌को कभी न
ए क्रमशः भगवान्‌की ओर बढ़ते रहना इसका
रूप है । पवित्र भारतवर्षमें इस महान् संस्कृतिका
ा, इसीसे भारत धन्य है और धन्य रहेगा ।

यन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
र्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥
(विष्णुपुराण २ । ३ । २४)

तालोग भी निरन्तर यही गाया करते हैं कि
स्वर्ग और मोक्षके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म
वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक
ाली हैं ।'

हो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
र्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥
 दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।

न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ।
कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ।
(श्रीमद्भा० ५ । १९ । २१

देवता भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंक
प्रकार महिमा गाते हैं—'अहा ! जिन जीवोंने भा
भगवान्‌की सेवाके योग्य मनुष्यजन्म प्राप्त कि
उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है ? अथवा इन
श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं ? इस परम सौभाग्यके
निरन्तर हम भी तरसते रहते हैं । हमें बड़े कठो
तप, व्रत और दानादि करके जो यह तुच्छ
अधिकार प्राप्त हुआ है—इससे क्या लाभ है ?
इन्द्रियोंके भोगोंकी इतनी बहुलता है कि उससे दबे
कारण कभी श्रीनारायणके चरणकमलोंकी स्मृति हो
नहीं । यह स्वर्ग तो क्या—जहाँके निवासियोंकी ए
कल्पकी आयु होती है, किंतु जहाँसे फिर संसार
लौटना पड़ता है, उन ब्रह्मलोकादिकी अपेक्ष
भारतभूमिमें थोड़ी आयुवाले होकर जन्म लेना अ
क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्य
किये हुए सम्पूर्ण कर्म श्रीभगवान्‌को अर्पण करके
अभयपद प्राप्त कर सकता है ।'

जगत्‌के लोग निष्पक्ष भावसे इस संस्कृतिके भव
दिव्य स्वरूपको समझें तो उन्हें बड़ा भारी अ
मिलेगा और यहाँके निवासियोंका तो यह परम क
है कि वे—जो आज अपने घरकी महान् संस्कृति
उसके पावन सिद्धान्तोंसे अनभिज्ञ रहकर परमु
बन रहे हैं, अपनी पवित्र आर्य-संस्कृतिकी अवहेलना
केवल 'अर्थ' और 'अधिकार' के पीछे प्रमत्त
'सनातनधर्म'के विनाशमें ही कल्याणकी भावना कर
एवं फलस्वरूप उत्तरोत्तर पाप-तापके मलिन और दु
पंकमें फँसे जा रहे हैं—शीघ्र चेतें, अपनी संस्कृतिको
समझें और अपनायें । भारतवर्षका सिर ऊँचा करने
उसके पास कोई वस्तु थी तो वह उसकी अध्यात्मप्रधान स
ही थी । इस अध्यात्मको अपनाकर अपना औ
आजके अशान्त जगत्‌को देकर उसका क्लेश दूर क
भारत अपने पुण्य कर्तव्यका पालन कर सकता है । भ
हमारी बुद्धिमें प्रकाश दें और अखिल विश्वका मङ्गल क

—हनुमानप्रसाद

लियोंपर गिननेके लिये भी अपर्याप्त सिद्ध होनेवाले
भारतपर शासन करते देखकर बच्चा केशवरावका
...ल हो जाता था। देशभक्ति माताके दूधके साथ ही
...-रगमें भरी थी। नागपुर-किलेपर फहरानेवाले
...कको उतारकर उसपर राष्ट्रध्वज फहरा देनेके लिये
बच्चोंके साथ घरसे सुरंग खोदनेका साहस इसने
ही किया। रहस्योद्घाटन होनेपर मा बापने दाँतोतले
दबा ली। नागपुरके सनातनी ब्राह्मण पं०
...जी पन्तको इस बच्चेका पिता बननेका सौभाग्य प्राप्त
बच्चेका पूरा नाम श्रीकेशवरावजी हेडगेवार था।
..., पर प्रतिष्ठित वंशमें इन्होंने शक संवत् १८१२
... संवत् १९४६) की प्रतिपदाके दिन जन्म लिया।
...रहवाँ वसन्त भी नहीं देखा था कि नागपुरके सन् १९०२
इनके माता-पिता साथ ही परलोकवासी हुए।
...म्भिक जीवनपर इनके यशस्वी बड़े भाईके उग्र
प्रभाव पड़ा। पर देशभक्त जीवनके लिये जिस शान्ति,
प्रेमकी अपेक्षा थी; वह स्वतः इनमें आ गया।
...न्तःकरणमें राष्ट्रोद्धार और लोकसंग्रहकी ज्वलन्त
था, फलतः घोर अपराध माना जानेपर भी इन्होंने
...तरम्' आन्दोलन किया और विवश होकर अनुशासन-
...ास्टरने इन्हें स्कूलसे पृथक् कर दिया।
१९१० में आप कलकत्ता मेडिकल कालेजमें भरती हो

दीन-दुखियोंकी सेवाके लिये आप सदा आगे रहने
यह उत्तम गुण सज्जनोंके बलपर शासन करनेवालों
सह्य होता, फलतः इनके पीछे पुलिस पड़ गयी
१९१५–२४ तक अनेक संस्थाओंमें काम करते हुए
आसेतु हिमाचल समस्त हिंदुओंके संघटनको ही भार...
लिये सर्वश्रेष्ठ और सुगम पथ समझा और इसीलिये
सन् १९२५ ई० की विजयादशमीको 'राष्ट्रिय स...
सङ्घ'की शुभ स्थापना की। इनकी निष्ठा, लगन...
स्नेहशील स्वभावके कारण इनके जीवनकालमें ही सङ्घ
प्रत्येक प्रान्तमें व्याप्त हो गया।

आपने सङ्घको अपना प्राण समझा और आजीवन
रहे। सादा जीवन और उच्च विचारके साथ आ...
समाज, हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिके त्राणके लि...
बहुमूल्य जीवनका एक-एक क्षण लगा दिया।
श्रीराम, श्रीकृष्ण, राणा प्रताप, वीर शिवाजी और गु...
सिंह आदि वीर, तपस्वी और भारतके लिये स...
करनेवाले प्रातःस्मरणीय हिंदुओंके जीवन आप...
प्रकाश-स्तम्भ थे। यद्यपि सन् १९४० के जूनमें अ...
कारण आपकी पाञ्चभौतिक काया पञ्चभूतोंमें समा गयी
आप अबतक सङ्घके आदर्श, क्रियाशील और नैष्ठिक
ही नहीं, समस्त हिंदू-हृदयोंके प्राणप्रिय हैं और इ...
जबतक हिंदू जीवित हैं, तबतक आप अमर हैं। —शि...

कुछ चित्रोंका परिचय

...संस्कृति—(सादा) बाहरी मुखपृष्ठपर—इसमें
...गया है कि हिंदू संस्कृतिका मूल उद्गम परमात्मा है।
...का प्रतीक 'प्रणव' है। अतः प्रणवको—भगवान्‌को
...ानकर इस संस्कृतिकी धारा चलती है। भगवान्‌का
...ानेपर उसमें शुभका प्रादुर्भाव होता है। 'स्वस्तिक'
...ा प्रतीक है। इस शुभ भावके फलस्वरूप षोडश-
...लके विकासकी भाँति शुद्ध हृदयमें अहिंसा, सत्य,
ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान, तप, संयम, कर्मफलमें विश्वास,
...में विश्वास, परलोकमें विश्वास, वर्णाश्रमधर्मका आचार,
...या, कर्तव्यपालन और शौर्य—इन १६ सद्गुणों-
...त्ति होती है। इनका परिणाम होता है—भक्ति, प्रेम,
...ौर सर्वात्मदर्शनकी प्राप्ति। इसके फलस्वरूप यहाँ
... जीवन सदाचारयुक्त, शान्त, परमात्मनिष्ठ और
...य हो जाता है। और अन्तमें उसे परमात्मरूप
...

ही प्रवेश प्राप्त करता है।

हिंदू-संस्कृति—(रंगीन) पृष्ठ मुखपृष्ठ—इस
राम-राज्यके रामदरबारमें कुत्तेकी भी फरियाद सुनी
है, (२) हिंदू-संस्कृतिका परिचय गंगा...
तपस्वी, सत्य-अहिंसाकी प्रकटमूर्ति ऋषियोंके सादे...
अरण्य-आश्रममें मिलता है, जहाँ त्रिकालज्ञ समद...
द्विज बालकोंको योग्य शिक्षा दे रहे हैं। यज्ञकुण्ड
प्रज्वलित है, और सिंह, गौ, हरिण एक साथ
करते हैं, (३) मोक्ष ही परम ध्येय है, यह
नवयुवक राजकुमार सिद्धार्थ अपनी तरुणी प...
नवजात शिशुको त्यागकर रात्रिके समय राजमहलकी...
निकल जाते हैं, (४) धर्मपर अडिग रहनेवा...
गोविन्दसिंहके पुत्र अपनेको हँसते हँसते दीवालमें...
बलिदानका अनुपम दृश्य उपस्थित कर रहे हैं और (५
...

न कर रही हैं। इस चित्रमें हिंदू-संस्कृतिके प्रधान ी, वृषभ, शङ्ख, कमल और प्रणव अङ्कित हैं। नीचे ा हरियश-कीर्तन चित्रित है।

दू-संस्कृतिमें ऋषि-आश्रम—(रंगीन) पृष्ठ १—ौर ऋषि-बालक यज्ञ-अध्ययनमें लगे हैं। पशु-पक्षी वेचर रहे हैं।

राधाकृष्ण-दर्पण-दर्शन—पृष्ठ २४—यह अत्यन्त कलापूर्ण पहाड़ी चित्र है। सामने खुली छत-कारीके कामकी चौकीपर कीमखावका मसनद-ाा है। दो सखियाँ माला गूँथ रही हैं। फव्वारा है। नीचे दूरपर पहाड़ोंके बीचमें सुन्दर कमलोंका है। किनारेपर फूलोंसे लदे वृक्ष हैं और सामने के विहार कर रही हैं। श्रीराधा-कृष्ण बड़ी तन्मयताके ाणमें छवि देख रहे हैं। श्रीराधाकृष्णकी प्रसन्नता मयताका भाव बहुत ही आकर्षक है।

राधाकृष्णकी मुरली-लीला—पृष्ठ २५—यह ी चित्रशैलीका अति सुन्दर चित्र है। चारों ओर ा कार्य है। श्रीराधाकृष्णका भावसौन्दर्य बड़ा ही और दर्शनीय है।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और शरत्-पूर्णिमा ीला)—(रंगीन) पृष्ठ ५६—ये दोनों नाथद्वाराकी बहुत सुन्दर सुनहरे चित्र हैं।

राम-लक्ष्मण-सीतासे भरत एवं माताओंका -पृष्ठ ८१—चित्रकूटके मिलनका सुन्दर दृश्य है।

ल्मीकि-आश्रममें नारद—पृष्ठ ८१—देवर्षि श्रीनारद-वाल्मीकिजीसे बातचीत कर रहे हैं। पर्वत, वृक्षावली, ादिका दृश्य बड़ा ही मनोहर है।

ा-महेश्वर—पृष्ठ २२५—यह हाथीदाँतकी बहुत ही ी है। त्रिवाङ्कुर स्टेटके पुरातत्त्व-विभागके अध्यक्ष श्री गोपीनाथ रावने एक Elements of Hindu raphy नामक विशद ग्रन्थ तीन भागोंमें लिखा शास्त्रीय बहुत-से हिंदू-देवमूर्तियोंके प्रकारभेदका विशद वर्णन है। इससे पता लगता है मूर्तियाँ नहीं बनतीं। उनके सहस्रों शास्त्रीय भेद बहुत ही ं! इन्हीं शास्त्रीय वर्णनोंके अनुसार विभिन्न देव-ायी जाती थीं। इस अङ्कमें इस 'उमा-महेश्वर'की मूर्तिके त्रिवाङ्कुर-कोचीन-सरकारके सौजन्यसे प्रकाशित जितनी चित्र हैं, वे सभी इसी प्रकारकी शास्त्रीय मूर्तियाँ हैं।

नलीला—पृष्ठ ३३६—पहाड़ी(बसौली) चित्रशैली-चित्र है। श्रीकृष्णका सखा ग्वालबालक ऊखलपर चढ़ा ोपर चढ़े श्रीकृष्ण छींकेपर रक्खी मटकीसे माखन निकाल रहे हैं। दूसरे सखा और बंदरके हाथमें श्रीकृ हुए माखनके लौंदे हैं। गोपाङ्गनाने इस आनन्दका करनेके लिये मथानी छोड़कर अपने मुँहको छिपा रक्

दानलीला पृष्ठ ३२९—श्रीकृष्ण और उनके प्रकारकी भावभङ्गिमासे दूध-दहीका दान ले

शक्ति-शक्तिमान्‌का प्रेमस्वरूप—(सुनहरा ४४०—कलाकी दृष्टिसे यह चित्र बहुत ही सुन्दर है

सृजन-पालन-संहार—(रंगीन) पृष्ठ ५१३—भगवान्‌के तीन स्वरूप सनातन धर्ममें माने गये हैं। ब्रह्मा वे जगत्‌का तथा विविध योनियोंका सृजन करते हैं, रूपसे जल, वायु, अन्न, ओषधि आदिके द्वारा भाँति-उनका पालन करते हैं और रुद्र (महादेव) के रूपसे विविध रोगों, लड़ाइयों, अग्नि-जलादिके द्वारा संहार कर

श्रीराधाकृष्णका वर्षाविहार—पृष्ठ ११२-पानी बचनेके लिये श्रीराधाकृष्ण दोनों कामरीकी एक कुटी उसमें छिप जाते हैं। ग्वाल-बाल भी पेड़के खोखलों गये हैं। सामने एक सखी उन्हें देख रही है। ऊपर भरा हुआ आकाश है, जिसमें बकपंक्ति उड़ रही है। और मानवके भावोंका उत्तम सामञ्जस्य इस चित्रमें है।

श्रीकृष्णका गौ चराकर लौटना —पृष्ठ सन्ध्या—गोधूलिके समय वनसे लौट रहे हैं। इसमें श्री उनके सखा और गायोंके भाव देखने योग्य हैं। दिनभर व्रत बिताकर व्रजनारियाँ बड़ी उमंगसे फूल बरसाकर इन दिव्य का स्वागत कर रही हैं। यह चित्र बोस्टन-संग्रहालयसे है। डाक्टर कुमारस्वामीने रंगोंमें इसे प्रकाशित किया

श्रीकृष्णका दावानल-पान—पृष्ठ ७१३—यह शैलीका चित्र है। यह शैली अपने चटकीले रंगोंके बहुत विख्यात है।

पुण्यदानसे नरकके प्राणियोंकी मुक्ति—पृष्ठ पुण्यात्मा महाराजा विपश्चित्‌का मरनेपर किसी साधारण कारण नरकके मार्गसे ले जाया गया। वे जब नरकोंके होकर आगे बढ़े तो नरक-यन्त्रणासे पीड़ित प्राणियोंको शान्ति मिली। इसका कारण पूछनेपर उन्हें बतलाया 'आपके पुण्यमय शरीरसे छूकर बहनेवाली वायुमें इतना है कि उसके लगनेसे इन प्राणियोंकी यातना मिट गयी है। दर्शनसे यमलोकके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि आदि सब कोमल हो ग इसपर राजाने कहा कि 'जब मेरे कारण इन पीड़ित प्राणियोंको मिलता है, तब मैं यहाँ नरकमें ही रहूँगा।' अन्तमें स्वयं ध और इन्द्र वहाँ आये। उदारहृदय राजाने अपना सारा नरकके प्राणियोंको अर्पण कर दिया। सब नरकके प्राणी न मुक्त हो गये। राजाको भी इस त्यागरूप पुण्यसे परमात प्राप्ति हो गयी। इसका विस्तृत इतिहास मार्कण्डेयपुराणमें

क्षमा-प्रार्थना

वर्षोंसे हिंदू-संस्कृति-अङ्कके प्रकाशनकी बात चल रही
वेषय बहुत व्यापक होनेके कारण यह सोचा जा रहा था
ाषयोंपर पूर्णरूपसे विचार किया जाना तो सम्भव
ा। क्योंकि हिंदू-संस्कृतिका प्रत्येक विषय इतना
कि उसपर पृथक् विशेषाङ्क निकाला जा सकता है
अधूरे-से विषयोंका विशेषाङ्क उपयुक्त नहीं होगा;
ें आदरणीय ग्राहकों तथा मित्रोंने बहुत जोर दिया,
ंस्कृति-अङ्क प्रकाशित करनेका निश्चय किया गया।
ा बहुत लंबी बन गयी। काट-छाँट करनेपर जितने
उनपर लेख लिखवानेका प्रयत्न किया गया।
ां भी बहुत-से विषय छूट गये। तथापि 'कल्याण'के
न् महानुभावोंने परिश्रम करके जो लेख लिखे, वे
उत्तम और मनन करने योग्य हैं। इस दृष्टिसे यह
ी तुच्छ बुद्धिके अनुसार अधूरा होनेपर भी बहुत
ो गया है। पाठकोंको कहाँतक सन्तोषप्रद होगा, यह
पढ़नेपर ही पता लगेगा।

अङ्कमें ऐसे बहुत-से विषयोंपर लेख प्रकाशित हुए
ा सम्पादकोंको पूरा ज्ञान नहीं है। साथ ही लेखकोंने
-अपने ज्ञान, दृष्टिकोण तथा मतके अनुसार ही उनपर
किया है। ऐसी अवस्थामें लेखोंमें प्रकाशित मतके
ाक महानुभाव ही उत्तरदायी हैं। किन्हींको कोई
ा तो लेखक महोदयोंसे ही पूछना चाहिये।

ारे परम आदरणीय संत-महात्माओं, आचार्यों,
कवियों तथा सम्माननीय अधिकारियोंने कृपापूर्वक
विता, सन्देश आदि भेजकर जो हमारा उपकार किया
लिये हम हृदयसे उनके कृतज्ञ हैं। लेख इतने अधिक आ
सबका प्रकाशित करना असम्भव हो गया; इसमे
लेख प्रकाशित नहीं हो सके हैं। बहुत-से अधूरे तथा
अंश छोड़कर प्रकाशित किये गये हैं। इसके लिये
ा जोड़कर सब महानुभावोंसे क्षमा चाहते हैं। लेखक
हमारी विवशता समझकर क्षमा करेंगे। लेखोंके
ा और मुद्रणमें कहीं कोई भूल हो गयी हो तो लेखक
कृपया क्षमा करें।

ा अङ्कके लिये सामग्री एकत्र करने, लेख लिखने-
ने, चित्रादि संग्रह करने, छायाचित्र उतरवाकर
और चित्रोंके ब्लाक बनाकर प्रकाशित करनेकी
ा देने आदिमें हमें अपने बहुत-से कृपालु महानुभावोंसे
संस्थाओंसे बड़ी सहायता मिली है। इनमें
ोपाध्याय डा० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०,
डी० लिट्०; श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम्० ए०
लिट्०; श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, डिप्टी कलक्टर; श्री
प्रसादजी, मंत्री, मानस-संघ; स्वामीजी कृष्णानन्दजी म
पं० श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदी, पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र
ए०; पं० श्रीदुर्गादत्तजी त्रिपाठी, डा० इन्द्रसेनजी, पं०
देवजी उपाध्याय, एम्० ए०; डा० श्रीरघुवीर, एम्०
एच्० डी०, डी० लिट्० एट् फिल्; श्रीशिवशरणज
श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा; श्रीविष्णुहरि वडेर, एम
एल्-एल्० बी०; पं० श्रीरघुनाथजी शर्मा, बैंकोक (स्याम)
श्रीशोभानाथजी, श्रीचमनलालजी और पं० श्रीहनूमान्ज
भारतीय पुरातत्त्व-विभाग कोचीन-त्रिवाङ्कुर-सरकार
बोर्ड और मानस-संघ, सतनाके नाम उल्लेखनीय हैं
सहायताके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

कुछ लेख विभिन्न मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों
गये हैं, इसके लिये हम उनके सम्पादकों और सञ्च
प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

सम्पादन-विभागके मित्रोंमें सम्मान्य पण्डित श्री
नारायणजी गर्दे, पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, श्री
सिंहजी, श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी, श्रीशिवनाथजी दुबे, श्र
शरणजी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीरामलाल
ए०, श्रीदुलीचन्द दुजारी आदि सभी सहयोगि
मित्रोंने बड़ी तत्परतासे काम किया; इसीके फ
इतना सुन्दर अङ्क निकल सका है। अपने इन स
धन्यवाद देकर हम उनके निर्मल प्रेममें बा
डालना चाहते।

बार-बार नुकसानकी बात सुनाकर हम अपने
दुखी नहीं करना चाहते। परंतु इस बार कई कारणो
पहलेके अनुमानसे बहुत ही अधिक नुकसान रह ग
यह केवल सूचनामात्र है।

अन्तमें इस अङ्कमें रही हुई त्रुटियोंके लिये ह
क्षमा चाहते हैं और आशा करते हैं कि हमारे पा
अङ्कसे हिंदू-संस्कृतिके महान् निर्मल, पवित्र, सर्व
और कल्याणप्रद रूपका किंचित् आभास पाकर
कार्यक्रम निश्चय करेंगे और अपने जीवनको हिंदू-स
परम लक्ष्य श्रीभगवान्के विशेष समीप ले जायँगे।

सम्पादक { हनुमानप्रसाद पो
चिम्मनलाल गोस

ज्ञय—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-
लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका
ना इसका उद्देश्य है ।

नियम

१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-
ल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत
हेत लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका
तन कष्ट न करें । लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने
छापनेका अधिकार सम्पादकको है । अमुद्रित
ा माँगे लौटाये नहीं जाते । लेखोंमें प्रकाशित
लेये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं ।

२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम
मूल्य भारतवर्षमें ७॥) और भारतवर्षसे बाहरके
) (१५ शिलिंग) नियत है । बिना अग्रिम
प्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता ।

३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ
सम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे
जाते हैं । वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये
हैं, किन्तु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तब-
अङ्क उन्हें लेने होंगे । 'कल्याण'के बीचके किसी
ाहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये
क नहीं बनाये जाते ।

) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी
प्रकाशित नहीं किये जाते ।

५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच
त्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है । यदि किसी
अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-
ी चाहिये । वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना
डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे
ते बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है ।

६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन
र्यालयमें पहुँच जानी चाहिये । लिखते समय
संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ
चाहिये । महीने-दो-महीनोंके लिये पता बदलवाना
ने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये ।
नेकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले
वस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी ।

) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे
चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषा
जायगा । विशेषाङ्क जनवरीका ही तथा वर्षका पहला अ
फरवरीसे दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला

(८) सात आना एक साधारण संख्याका मूल
पर नमूना भेजा जाता है; ग्राहक बननेपर वह अङ्क
सात आना बाद दिया जा सकता है ।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमी
'कल्याण'की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है

(१०) पुरानी फाइलें तथा विशेषाङ्क
रियायती मूल्यमें नहीं दिये जाते ।

(११) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट
साथ-साथ ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये
आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये ।

(१२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड
भेजना आवश्यक है । एक बातके लिये दुबारा पत्र
तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना

(१३) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा
चाहिये । वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं

(१४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागव
अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना अं
आदि भेजना चाहिये । 'कल्याण'के साथ पुस्तकें
नहीं भेजे जा सकते । प्रेससे १) से कमकी वी० पी
नहीं भेजी जाती ।

(१५) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले
विशेषाङ्क नहीं दिये जाते ।

(१६) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी
रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर (नये
हों तो 'नया' लिखें), पूरा पता आदि सब बातें
साफ लिखनी चाहिये ।

(१७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी
मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक "कल्याण" गोर
नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि स
"कल्याण" गोरखपुरके नामसे भेजने चाहिये ।

(१८) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे
अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम
लिया जाता ।

श्रीहरिः

हिंदूकी कामना और प्रार्थना

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।

श्रीरघुनाथ कृपालु कृपातें संत सुभाव गहौंगो ॥

जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।

पर हित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥

परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहिं पावक न दहौंगो ।

बिगत मान सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो ॥

परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।

तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भगति लहौंगो॥

—तुलसीदासजी